(अखिलवैद्यकग्रन्थानां शिरोभूषणः)

विदुषा विरचितः



मुरादाबादस्थायुर्वेदोद्धारकवैद्यराजकविवरश्रीलालाशालि-
ग्रामजीवैश्यविरचितया भाषाटीकया समलंकृतः ।

स च

सोऽयं ग्रन्थः

स्वकीये "श्रीवेंकटेश्वर" मुद्रणागारे मुद्रयित्वा प्रकाशितः ।

मुंबई



मुद्रक और प्रकाशक-

खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष-"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस, बम्बई.



अर्पण-पत्रिका.

श्रीमन्निखिलगुणनिकेतन परमोदार धीरचरित श्रेष्ठिवर्य्य श्रीखेमराज श्रीकृष्णदासजी "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेसाध्यक्ष बम्बई ।

महोदय !

देशी भाषाके ग्रंथकारोंको आश्रय देनेमें आपका अलौकिक यत्न है, संस्कृत साक्षरमण्डलमें आपने उत्तम प्रतिष्ठा प्राप्त की है। हिन्दी साहित्यका उद्धार करनेमें आप सदैव यत्नवान् रहते हो। योग्य-का आदर करनेमें आप प्रसिद्ध परीक्षक और गुणज्ञ हो। तथा गो, ब्राह्मण, अनाथ, विधवा और दीन भारत-वासियोंकी रक्षा करनेमें आप सबसे अग्रसर हो।

अत एव आपके पवित्र नामके साथ यह
"भाषाटीकासमेत वङ्गसेन" ग्रन्थ
सप्रेम, सादर और सविनय
समर्पित किया
जाता है।

विनयावनत,

शङ्करलाल हरिशङ्कर.

भूमिका ।

जबसे हिन्दूसौभाग्यका निष्कलङ्क मयंक अस्ताचलमें अस्त हुआ है, जबसे भारतलक्ष्मी अन्तर्हिता हुई है, जबसे आर्य्यभूमिमें वारंवार यवन लोगोंका पदार्पण हुआ है और जबसे राजनीति, समाजनीति और धर्म्मनीतिमें विशेष विप्लव (गोलमाल) हुआ है उस समयसे आर्य्य ऋषिप्रोक्त प्रायः सम्पूर्ण हिन्दूशास्त्र लुप्तसे हो गये और उन्हींके साथ भरताका महार्घरत्न और समस्त पृथ्वीका गौरवस्वरूप हमारा आयुर्वेद शास्त्र भी अतिशय शोचनीय अवस्थाको प्राप्त हो गया।

हिन्दूराजाओंके समय समस्त शास्त्रोंकी चर्चा थी, विद्याकी उज्ज्वल आभा भारतवर्षको प्रकाशित करती थी, उस समय हमारा आयुर्वेदशास्त्र सम्पूर्ण चिकित्साशास्त्रोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ और भारतसन्तानकी स्वास्थ्यरक्षाका एकमात्र अवलम्ब समझा जाता था। आयुर्वेदीय चिकित्सा सम्पूर्ण चिकित्साओंकी मूल और भारतसन्तानकी माताके समान हितकारिणी चिकित्सा समझी जाती थी। पूर्वकालमें हमारे पूर्वपुरुष आयुर्वेदीय चिकित्साके प्रभावसे शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्यलाभ करके धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्ष इस पुरुषार्थचतुष्टयका साधन करते हुए दीर्घकालतक सुखपूर्वक संसारयात्राको व्यतीत करते थे। आयुर्वेदीय नियमानुसार चलनेसे यहाँ कदापि रोगसंकट उपस्थित नहीं होता था। कदाचित् कोई रोग उत्पन्न हो गया तो एक बार उससे मुक्त होनेपर फिर कभी भी किसीको रोगकी भीषण मूर्तिके दर्शन नहीं करने पड़ते थे। आयुर्वेदीय चिकित्सा पूर्ण होनेके कारण भारतसन्तानको कभी किसी विदेशी चिकित्साका आश्रय नहीं लेना पडता था। इस देशमें उत्पन्न होनेवाली साधारण वनस्पतियोंके द्वारा उसके रोग दूर किये जाते थे। हमारे देशमें उत्पन्न हुई औषधियां हमारी प्रकृतिके अनुकूल होनेके कारण प्राचीन महर्षियोंने ठीक हमारे लिये ही आयुर्वेदशास्त्रकी रचना की थी।

आयुर्वेदशास्त्र केवल भारतमें ही सर्वोत्कृष्ट चिकित्साशास्त्र नहीं समझा जाता था, बल्कि कभी समस्त पृथ्वीभरके चिकित्साशास्त्रोंमें आयुर्वेदशास्त्रने अत्युच्च आसन ग्रहण किया था।

जिस समय अरब और मिश्रदेश प्राचीनताके अभिमानमें चूर्ण थे, जब पुराने रोम और ग्रीक देश सभ्यताकी शोभामें निमग्न थे, जिस समय सभ्यशिरोमणि पृथ्वीका आभूषणस्वरूप यूरोप देश असभ्यताके घोर अन्धकारसे आच्छादित था, तबसे ही हमारा आयुर्वेदशास्त्र सम्पूर्ण चिकित्साशास्त्रोंमें प्राचीन और सर्वोत्कृष्ट समझा जाता है।

आयुर्वेदकी प्राचीनता और उत्कृष्टताके विषयमें कतिपय विदेशी विद्वानोंके मत नीचे लिखे जाते हैं।

अबसे अनुमान तेरहसौ वर्ष पहले भुवनविजयी ग्रीकदेशाधिपति महावीर एलेक्जेंडर असाध्य रोगोंकी चिकित्साके लिये भारतवर्षीय वैद्योंको सदैव बड़े यत्न और सत्कारके साथ अपने यहाँ रखता था।

बारहसौ वर्ष पहले बुगदादपति खलीफा हारूंरसीद आयुर्वेदीय चिकित्साको पृथ्वीभरकी सम्पूर्ण चिकित्साओंमें श्रेष्ठ समझकर अपनी शरीररक्षाके लिये सदैव भारतवर्षीय वैद्योंको अपने राजमंदिरमें उपस्थित रखता था।

अयुल उल नामक प्रसिद्ध अर्बी भाषाके ग्रन्थमें लिखा है कि अष्टम शताब्दीमें भारतवर्षके पंडित लोग बुगदादकी राजसभामें उपस्थित होकर आयुर्वेद और ज्योतिषशास्त्रकी शिक्षा देते थे। 'सरक, सर्सस और वेदान' यह तीन भारतवर्षसे अरबदेशमें लाये गये। मालूम होता है कि ये तीनों ग्रंथ चरक, सुश्रुत, निदान इन तीनोंके अपभ्रंश नामान्तर हैं।

हकीम जालीनूस अपने रिसालेमें लिखते हैं कि, आयुर्वेदविद्या प्रथम भारतवर्षसे मिसरमें आई फिर मिसरसे यूनान और अरबदेशमें गई। वह यह भी लिखता है कि, मेरे गुरु अफलातूंने भारतवर्षमें जाकर कालज्ञानके ३६ लक्षण और बहुतसे ग्रंथ पढ़े। उनमेंसे कुछ सारभाग संग्रह करके

एक काठकी तख्तीपर लिखाकर सदैव अपने गलेमें जामेके भीतर पहने रहते थे और कभी किसीको प्रगट नहीं होने देते थे। जब उनकी मृत्युका समय समीप आ गया तब उन्होंने अपनी स्त्रीसे कहा कि, इस तख्तीको मेरी कबरमें गाड़ देना और इस विषयको अत्यन्त गुप्त रखना। स्त्रीने उनकी आज्ञानुसार उस तख्तीको पतिकी लाशके साथ कबरमें गाड़ दिया। इस प्रकार उस तख्तीको कबरमें गड़ी हुई देखकर मुझे अत्यन्त आश्चर्य हुआ और मैंने विचार किया कि, गुरुजी आप तो मरे ही किन्तु अपनी विद्याको भी मार गये। तब मैंने गुरुजीकी कबरको खोदकर तख्तीको निकाल लिया। पश्चात् उस विद्यामें मैंने अच्छे प्रकार योग्यता प्राप्त की, फिर मेरी देखादेखी अरसतू आदि विद्वानोंने हिन्दुस्तानमें जाकर आयुर्वेदको अध्ययन किया।

सुप्रसिद्ध डॉक्टर ओयाज भी आयुर्वेदीय चिकित्साके विषयमें कहते हैं कि, हिन्दुस्तानकी आर्य्यचिकित्सा सम्पूर्ण चिकित्साओंकी मूल है और सम्पूर्ण संसार उसका ऋणी है।

प्रोफेसर जे. एफ. रायल. डी. आर. एल्. एम्. जी. सी. जो कि, प्रथम बंगालकी सेनाके डॉक्टर थे और एशियाटिक व मेडिकल व फिजीकल सोसायटी एडिंगबर्ग और मेडीको सर्जीकल सोसायटी लंडनके मेम्बर थे। वह अपने व्याख्यानमें कहते हैं कि–हिन्दुओंका आयुर्वेदशास्त्र बहुत प्राचीन है, अरब और यूनानवालोंसे कहीं पहला है। किसी समय अरबदेशमें आयुर्वेदीय चिकित्साका विशेष प्रचार था। अरबवालोंने पहले आर्य्यचिकित्सासे ही चिकित्साकी शिक्षा प्राप्त की थी। अभीतक उस देशमें श्वासरोगमें धतूरेके बीज और कृमिरोगमें कौंचके बीज व्यवहार किये जाते हैं।

सुप्रसिद्ध संस्कृतशास्त्रके पूर्ण विद्वान् प्रोफेसर होरेस, हेमेन, विलसन् एम्. ए. एफ्. आर. एस्. प्रसीडेन्सी मेडिकल सोसाइटी कलकत्ता और प्रोफेसर ऑफ संस्कृत युनिवर्सिटी कॉलेज ऑफ फोर्ट जो कि, अत्यन्त विख्यात और संस्कृतविद्याके पूर्ण पारगामी माने जाते हैं, उन्होंने लिखा है कि–भारतवर्षमें बहुत पुराने समयसे चिकित्सा, ज्योतिष और दर्शन आदिके पारदर्शी विद्वान् विद्यमान हैं।

जिस समय यूरोपदेशमें शरीरविद्या (एनाटमी) का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था उस समय भारतवासियोंने जैसी औषधिचिकित्सा और शस्त्रचिकित्सामें पारदर्शिता दिखाई थी उसी प्रकार शरीरविद्याकी भी उन्नति की थी।

इत्यादि प्रमाणोंसे सिद्ध होता है कि, हमारा आयुर्वेदशास्त्र सम्पूर्ण चिकित्साशास्त्रोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ है।

हमारा आयुर्वेदशास्त्र जिस गम्भीर सत्यके ऊपर प्रतिष्ठित है उस प्रकार अन्य चिकित्सा शास्त्रोंकी दृढ नींव नहीं है। कारण कि–जिनका ज्ञान, भूत, भविष्यत् और वर्तमान इन तीनों कालके विषयको निरंतर हस्तामलकवत् अवलोकन करता है, आयुर्वेदशास्त्र उन्हीं त्रिकालदर्शी मुनिवृन्दोंकी असाधारण अन्वेषणाका अपूर्व फल है।

यद्यपि देशके सौभाग्यसे फिर आयुर्वेदकी आलोचनाका समय आ गया है। इस समय मृतप्राय आर्य्यचिकित्सा भारतसन्तानको अपनी ओर आकर्षित देखकर फिर जीवित होना चाहती है। यद्यपि अनेक भारतवासियोंकी आर्य्यचिकित्साके ऊपर फिर दिनपर दिन प्रीति बढ़ती जाती है परन्तु इसकी जितनी उन्नति होनी चाहिये उसके अभी शतांश भी नहीं हुई जो लोग देशमें शिक्षित और सभ्य संसारमें अग्रसर समझे जाते हैं उनकी देशी चिकित्सामें किञ्चित् भी श्रद्धा नहीं है। उनकी दृष्टिमें देशी चिकित्सा अतीव घृणाके योग्य समझी जाती है।

आज कल पाश्चात्य चिकित्सापद्धति अत्यन्त आडम्बर और सौन्दर्यपूर्ण होनेके कारण सभ्यसंसारमें श्रेष्ठ समझी जाती है। भारतके प्रत्येक स्थानमें बडे बड़े विशाल मेडिकलहॉलखुले हुए हैं। उनमें लाल, पीली, हरी, अनेक प्रकारकी सुन्दर काँचकी शीशियां नवीन भारतकी दृष्टिमें अपूर्व चकाचौंध उत्पन्न कर रही हैं।

सुन्दर दीर्घाकृति साइनबोर्ड, विलायती, मेज, टेबुल, कुर्सी, विलायती बने हुए अनेक प्रकारके अस्त्र और यन्त्रोंकी बाह्य रचनायें भारतवासियोंके हृदयमें अद्भुत चमत्कार उत्पन्न कर रही हैं। सर्वत्र सभ्यसमाजमें डॉक्टरोंका ही आह्वान हो रहा है। वैद्य लोग विचारे मूर्ख या निरे गँवार समझे जाते हैं।

भारतवर्षके प्रत्येक प्रान्तमें कितने ही मेडिकल कॉलेज,कितने ही अस्पताल, और कितने ही चिकित्सालय प्रतिष्ठित हैं। परन्तु हमारी आर्य्यचिकित्सा इन सर्व साधनोंसे शून्य होनेपर भी अन्य चिकित्साओंकी अपेक्षा अभीतक सर्वोत्कृष्ट पदपर प्रतिष्ठित है। प्रायः देखा जाता है कि जबतक रोग सहज होता है,जबतक बल मांसका क्षय नहीं होता और जबतक रोग जड़ नहीं पकड लेता तबतक रोगको दूर करनेके लिये अनेक डाक्टर समर्थ होते हैं,किन्तु जब रोग सांघातिक आकार धारण कर लेता है और जब शरीरगत रस, रुधिर, मांस, मज्जादि सप्त धातुमें विशेष रूपसे विकृत होकर आयु क्षीण हो जाती है उस समय कोई भी डॉक्टर रोगको दूर करनेके लिये समर्थ नहीं होता,केवल एक वैद्यमहाशय ही समर्थ हो सकते हैं।

इसमें संदेह नहीं कि यदि अब भी आयुर्वेदशास्त्रकी अच्छे प्रकारसे आलोचना कीजाय एवं शिक्षित समाज आयुर्वेदीय चिकित्साका अनुसरण करे तो सम्पूर्ण जगत् अवश्य मुक्तकंठसे आयुर्वेदकी श्रेष्ठता स्वीकार करके उसका एकान्त पक्षपाती बन जायगा।

चरकमें लिखा है-"त्रिविधं खलु रोगविशेषज्ञानं भवति। तद् यथा-आप्तोपदेशः प्रत्यक्षमनुमानश्चेति। त्रिविधे त्वस्मिन् ज्ञानसमुदाये पूर्वमाप्तोपदेशात् ज्ञानं ततः प्रत्यक्षानुमानाभ्यां परीक्षोपपद्यते। किं ह्यनुदिष्टपूर्वं प्रत्यक्षानुमानाभ्यां परीक्ष्यमाणो विद्यात्" (चरक-विमानस्थान-चतुर्थ अध्याय)।

अर्थात् रोगका ज्ञान तीन प्रकारसे होता है जैसे-आप्तोपदेश-प्रत्यक्ष और अनुमानसे।

इन तीनों उपायोंमें प्रथम आप्तोपदेशके द्वारा (रोगका) ज्ञान प्राप्त होता है फिर प्रत्यक्ष और अनुमानके द्वारा उसकी परीक्षा होती है। किन्तु जो पहले ही आप्तोपदेशके द्वारा जाना नहीं गया उसकी प्रत्यक्ष और अनुमानके द्वारा किस प्रकार परीक्षा हो सकती है?

चरकके इस महावाक्यके द्वारा यह कदापि सम्भव नहीं होसकता कि आप्तोपदेशवर्जित, प्रत्यक्ष और अनुमानपरायण पाश्चात्यपंडितगण सैकडों वर्षोंसे जगत्को वृथा विज्ञानके धुयेंके द्वारा उद्भासित करनेपर भी अभीतक प्रकृतसत्यतक पहुँचकर कृतकार्य हुए हों।

देखो! आप्तोपदेशके द्वारा किस प्रकार ज्ञान प्राप्त होता है उसको यहां दिखाते हैं।आप्तगण कहते हैं कि-यह रोग रोगका प्रकोपक है, इसप्रकार रोगका पूर्वरूप, रूप, साध्यासाध्यलक्षणआदि प्रथम आप्तोपदेशके द्वारा जानकर पश्चात् प्रत्यक्ष और अनुमानके द्वारा उसकी परीक्षा आरम्भ करते हैं। जैसे-राजयक्ष्माके उत्पन्न होनेसे पहले रोगीको स्वप्नमें काक, शुक और मयूरादिके दर्शनका ज्ञानका होता है, परन्तु विना आप्तोपदेशके हम उक्त स्वप्नके वृत्तान्तको किस प्रकार जान सकते हैं? और रोगीके निकट किसप्रकार स्वप्नसम्बन्धी विषयक बात पूँछ सकते हैं? और जो हम आप्तोपदेशके द्वारा पहलेसे ही यह बात जान लें कि राजयक्ष्माके पूर्वरूपमें उपर्युक्त काक, शुकादिक पक्षी दिखाई देते हैं तब तो किंचित् लक्षण प्रतीत होते ही स्वप्नसम्बन्धी सम्पूर्ण विषय रोगीसे अच्छे प्रकार मालूम करके राजयक्ष्माका सहजमें निर्णय कर सकते हैं।

आप्तगण कहते हैं कि-" असाध्यो बलवान् यश्च केशसीमन्तकृज्ज्वरः "

अर्थात् जिस ज्वरमें रोगीके बालोंमें गांठेंसी गुंद जाती हैं वह ज्वर अत्यन्त बलवान् और असाध्य जानना।

पहले हम यदि आप्तोपदेशके द्वारा इन अरिष्टके लक्षणोंको नहीं जानते तो रोगीकी परीक्षा करनेके समय उसके बालोंकी ओर कभी लक्ष्य नहीं देते?

महर्षि कहते हैं—

"वायुः पित्तं कफश्चोक्तः शरीरे दोषसंग्रहः।
मानसः पुनरुद्दिष्टो रजश्च तम एव च"॥

अर्थात्-वात, पित्त और कफ यह तीन शारीरिक दोष और रज, तम यह दो मानसिक दोष इन सम्पूर्ण शारीरिक और मानसिक दोषोंके विकृत होनेसे सब प्रकारके शारीरिक और मानसिक रोग उत्पन्न

होते हैं। जो आप्तोपदेशके द्वारा पहलेसे ही यह तत्त्व नहीं मालूम होता तो वात, पित, कफ (शारीरिक दोष) और रजस्तम (मानसिक दोष) के विषयमें किस प्रकार हम ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं , अतएव इनके प्रकोप और शमनादिके सम्बन्धमें सर्वथा अन्धकार होनेसे अन्यान्य चिकित्साशास्त्रोंने उपर्युक्त दोषोंके विषयमें कुछ भी उल्लेख नहीं किया है ।

रोगोत्पत्ति होनेसे पहले ही रोगको कहनेवाले आप्तोपदेशका परिहार करके केवल प्रत्यक्ष और अनुमानके द्वारा रोगका ज्ञान प्राप्त करना कदापि सम्भव नहीं हो सकता ।

आयुर्वेदाचार्य्य महात्मा महर्षिगण कहते हैं कि–मिथ्या आहार और विहारादिके द्वारा वातपित्तादि दोष विकृत अथवा वर्द्धित होकर रसरक्तादि सप्तधातुओंको विकृत करके धातुवैषम्य अथवा अनेक प्रकारके रोगोंकी उत्पत्ति करते हैं ।

इन मुख्य दोषोंके विषयमें अच्छे प्रकारसे परिचय नहीं होनेसे किसप्रकार रोग और चिकित्साका ज्ञान होना सम्भव हो सकता है ?

आज दश ग्यारह वर्षसे देशका सर्वनाश करनेवाले प्लेगकी चिकित्साके लिये संसारमें चारों ओर कोलाहल मच रहा है। इसको किसी प्रसिद्ध रोगके नामके साथ जोड़ देने एवम् इसकी यथार्थ चिकित्साकी अन्वेषणाके लिये आज कितनेक वर्षोंसे गवर्नमेन्टके द्वारा उत्साहित किये हुए बहुतसे विज्ञानविशारद डॉक्टर नियत हुए हैं। वे अपने अपने कल्पित उपायोंका अवलम्बन करके अनेक प्रकारके यत्न और औषधियोंकी कल्पना कर रहे हैं। किन्तु उनकी चिकित्सामें प्लेगके रोगियोंका अभीतक कुछ भी हितसाधन नहीं हुआ ।

जहाँ चिकित्साका नाम सुनकर असाध्य रोगी भी एकवार निराशाको त्यागकर शय्यासे उठ बैठते हैं वहाँ आज उक्त चिकित्साके नामसे रोगी एकदम भयभीत हो जाते हैं ।

परन्तु आयुर्वेदज्ञ वैद्य प्रथम आप्तोपदेशके द्वारा इसको ज्ञानके अधीन करके पश्चात् इसकी चिकित्सा करनेमें जरा भी विचालित नहीं होते ।

महर्षि चरकाचार्य्य अपनी संहितामें लिखते हैं कि–

"विकारनामाकुशलो न जिह्रीयात् कदाचन ।
नहि सर्वविकाराणां नामतोऽस्ति ध्रुवा स्थितिः" ॥

अर्थात् जो कभी किसी रोगका नाम समझमें नहीं आवे तो वैद्यको उसमें लज्जित नहीं होना चाहिये क्योंकि शास्त्रमें कुछ रोगोंके नाम लिखे नहीं हैं। रोग अनन्त हैं। उन सबका वैद्यक ग्रंथोंमें भी विवरण मिलना सर्वथा असम्भव है। इस विषयमें महर्षि चरक कहते हैं कि-

"स एव कुपितो दोषः समुत्थानविशेषतः ।
स्थानान्तरगतश्चैव जनयत्यामयान् बहून् ॥
तस्माद्विकारप्रकृतिरधिष्ठानान्तराणि च ।
समुत्थानविशेषांश्च बुद्ध्वा कर्म समाचरेत्" ॥

अर्थ–एक दोष कुपित होकर कारणविशेषसे शरीरके भिन्न २ स्थानोंमें जाकर नानाप्रकारके रोगोंको उत्पन्न करता है इस कारण रोगकी प्रकृति, स्थान और निदानकी विशिष्टतापर विशेष ध्यान रखकर चिकित्सा करनी चाहिये ।

अपि च "यथा शकुनयः सर्वदिक्षु परिपतन्तः स्वच्छायां नातिवर्तन्ते तथा स्वधातुवैषम्ये निमित्ताः सर्वविकारा वातपित्तकफा नातिवर्तन्ते । वातपित्तकफानान्तु पुनः समुत्थानसंस्थानप्रकृतिविशेषान् अभिसमीक्ष्य तदात्मकानपि च सर्वविकारांस्तानेवोपदिशन्ति बुद्धिमन्तः"

अर्थ–जिस प्रकार पक्षी समस्त दिशाओंमें परिभ्रमण करनेपरभी अपनी छायाको उल्लंघन करनेके लिये समर्थ नहीं होता उसी प्रकार सम्पूर्ण रोग स्वधातुके विकृत होनेसे उत्पन्न हुए होनेपर भी वात,

पित्त और कफके उल्लंघन करनेको समर्थ नहीं होते । इस देशके विद्वानोंने वात, पित्त और कफका निदान, स्थान, लक्षण, प्रकृति और समयके विचारको हृदयङ्गम करके समस्त रोगोंको वात, पित्त और कफ इस दोषत्रयके अन्तर्गत किया है । इस कारण देश, काल और पात्रके भेदसे रोग चाहे किसी प्रकारका नवीन आकार क्यों न धारण करे किन्तु वह वातज, पित्तज अथवा श्लैष्मिक, द्वन्द्वज, अथवा सान्निपातिक इनमेंसे किसी न किसी प्रकारका अवश्य होगा । आयुर्वेदीय चिकित्सक ऐसे नवीन रोगोंको देखकर कदापि भयभीत नहीं होते । महर्षियोंने समस्त रोगोंको वात, पित्त और कफ इन तीन दोषोंके अन्तर्गत करके जगतका महान् उपकार किया है । कितने ही मनुष्योंका कहना है कि-जिस प्रकार डॉक्टर लोग अनेक यन्त्रोंके द्वारा सहजमें ही रोगोंका निर्णय करते हैं, उस प्रकार वैद्यलोग कदापि सहजमें रोगका निर्णय नहीं कर सकते । किंतु उनकी यह बात कुछ युक्तिसंगत नहीं जान पड़ती। क्योंकि-देखो ! राजयक्ष्मा या हृदयरोगमें डॉक्टरलोग (स्टेथास्कोप) नामक यंत्रके द्वारा शब्दके तारतम्यसे रोगका सिद्धान्त निश्चय करते हैं । किन्तु वैद्यलोगोंका केवल नाडीपरीक्षाके द्वारा स्पर्श मात्रके तारतम्यसे रोगका निर्णय करना जितना क्लिष्ट और सूक्ष्म है उतना स्टेथास्कोपके द्वारा वक्षस्थल या हृदयकी परीक्षा करके शब्दके तारतम्यको जानना कठिन और सूक्ष्म नहीं है। इसके अतिरिक्त महर्षियोंने आयुर्वेदीय चिकित्सकोंके लिये एक और भी उत्तम सुभीता कर दिया है कि उन्होंने प्रत्येक रोगके इस प्रकार वैशेषिक लक्षण वर्णन किये हैं कि जिनके द्वारा नाड़ीके विना स्पर्श किये ही वैद्य महाशय यक्ष्मा और हृदय आदि रोगोंका सहजमें ही निश्चय कर सकते हैं । किन्तु डॉक्टर महोदय स्टेथास्कोपके सिवाय अन्य किसी प्रकार भी उक्तरोगोंके निर्णय करनेमें समर्थ नहीं हो सकते । अत एव जिन डॉक्टरोंकी श्रवणशक्ति नष्ट होगई है, उनके लिये राजयक्ष्मा और हृदयरोगका निर्णय करना सर्वथा असम्भव जान पड़ता है । विशेषकर जिस स्थानमें विशेष कोलाहल होरहा हो अथवा चित्तकी प्रवृत्ति किसी अन्य विषयमें लगी हो ऐसे अवसरपर डॉक्टर महोदय कदापि उक्त रोगकी परीक्षा करनेमें कृतकार्य्य नहीं हो सकते । अतएव स्पष्ट सिद्ध होता है कि आयुर्वेदीय वैद्योंका रोगपरीक्षाका प्रकार अत्यन्त समीचीन है ।

अन्तर्विद्रधि (यावसेस्) रोगके विषयमें कुछ चरकके वचन लिखते हैं । " अथासां विद्रधीनां साध्यासाध्यत्वविशेषविज्ञानार्थं स्थानकृतलिंगविषमुपदेक्ष्यामः । तत्र प्रधानमर्मजायां विद्रध्यां हृद्घट्टनतमकप्रमोहकासाः क्लोमजायान्तु विपाका मुखशोषगलग्रहाः, यकृज्जायां श्वासः प्लीहजायां मुखश्वासोपरोधः वृक्कजायां पार्श्वपृष्ठकटिग्रहः, नाभिजायां हिक्का, कुक्षिजायां कुक्षिपार्श्वान्तरांसशूलं, वंक्षणजायां सक्थिसादः, बस्तिजायां कृच्छ्रमूत्रपूतिवर्चस्त्वञ्चेति-

अर्थात् हृदयमें विद्रधि होनेपर हृदयमें पीडा, तमक, श्वास, इन्द्रियोंमें अज्ञान और खांसी उत्पन्न होती है । क्लोमस्थानमें विद्रधि होनेसे पियास,मुखशोष और गलस्तम्भरोग उत्पन्न होता है । यकृत्में विद्रधि होनेसे श्वास और प्लीहाके स्थानमें विद्रधि होनेसे श्वासोच्छ्वासका अवरोध, वृक्कदेशमें विद्रधि होनेसे पार्श्व, पृष्ठ और कटिप्रदेश स्तब्ध होजाता है । नाभिमें विद्रधि होनेसे हिक्कारोग उत्पन्न होता है । कुक्षिमें विद्रधि होनेसे कोख, पसवाडे और स्कंधप्रदेशोंमें शूल होता है । वंक्षणमें विद्रधि होनेसे ऊरुदेशमें अवसन्नता होती है । बस्तिमें विद्रधि होनेसे मूत्रका कठिनतासे उतरना और विष्ठामें दुर्गन्ध होती है । इत्यादि वैशेषिकलक्षणोंके द्वारा वर्तमान आयुर्वेदीय चिकित्सक स्थानीय अथवा यांत्रिकरोगोंके निर्णय करनेमें कदापि असमर्थ नहीं हो सकते । किन्तु यहां यह अवश्य स्वीकार करना होगा कि, यांत्रिक परीक्षाके द्वारा यह समस्त रोग और भी स्पष्टरूपसे विदित हो जाते हैं ।

शरत्कालमें जब पित्तज्वर कुपित होता है उसमें टेम्परेचर अर्थात् शरीरकी गर्मी अत्यन्त अधिक १०३. १०४ डिग्री तक हो जाती है, जीभ पीली पड जाती है, आहारमें एक साथ अनिच्छा होजाती है, तृषा, प्रलाप और हलदीके समान पतले दस्त होने लगते हैं । डॉक्टर लोग ऐसे रोगीको देखकर लक्षणोंके बाहुल्यसे अतिशय भयभीत होजाते हैं और तत्काल उसको रेमिटेटफीवर मान लेते हैं । उस समय

रोगीकी तात्कालिक अवस्थाको देखकर केवल लक्षणदर्शी डॉक्टर भ्रममें पड़ जाते हैं। परन्तु वैद्य महाशय ऐसे रोगीको देखकर तत्काल पित्तके प्रकोपका समय समझकर अनायास पित्तज्वर निश्चय करते हैं। शरत्कालमें पित्तज्वर प्राकृत होता है अतएव वह उससे कुछ भी विचलित नहीं होते क्योंकि "प्राकृतः सुखसाध्यस्तु वसन्तशरदुद्भवः" अर्थात्–वसन्त अथवा शरत्कालमें प्राकृतज्वर सुखसाध्य होता है। अब प्रसंगवश प्राकृतज्वरके लक्षण यहां लिखते हैं–

"वर्षाशरद्वसन्तेषु वाताद्यैः प्राकृतः क्रमात"।

अर्थात् वर्षाकालमें वातज्वर, शरत्कालमें पित्तज्वर और वसन्तऋतुमें कफज ज्वर प्राकृत होते हैं। अतएव जब शरत्कालमें पित्तज्वर कुपित होता है तब वह चाहे कितना ही भयंकर आकार क्यों न धारण करे किन्तु गन्धर्वनगरके समान शीघ्र ही नष्ट होजाता है। इस विषयमें चरक किस प्रकार अपना वैज्ञानिक मत प्रकट करते हैं, यहां उसे उद्धृत करते हैं:–

"ज्वरे तुल्यर्त्तुदोषत्वं प्रमेहे तुल्यदूष्यता।
रक्तगुल्मे पुराणत्वं सुखसाध्यस्य लक्षणम्" ॥

अर्थात् ज्वरमें यदि दोषोंके साथ ऋतुकी तुल्यता हो, प्रमेहमें दोषोंके साथ दूष्यकी तुल्यता हो और रक्तगुल्म यदि पुरातन होजाय तो उपर्युक्त ज्वर, प्रमेह और रक्तगुल्म यह तीनों सुखसाध्य होते है। किन्तु अन्यान्य रोग दोषोंके साथ ऋतुकी तुल्यता होनेसे दोषोंके साथ दूष्यकी तुल्यता होनेसे अथवा पुरातन होजानेसे अत्यन्त कष्टसाध्य होजाते हैं। यहां ऋतुके साथ दोषोंकी तुल्यता क्या है उसको संक्षेपरूपसे लिखते हैं। शीतकालमें सूर्य्यकी किरणोंकी मृदुता, दिनकी अल्पता, रात्रिके समयकी वृद्धि और चन्द्रमाकी किरणोंकी प्रबलता आदिके होनेसे उत्पन्न हुए शीतके प्रभावसे मनुष्योंके शरीरमें कफ संचित होता है फिर पौषके महीनेसे सूर्य्यके उत्तरायण होनेसे सूर्य्यकी किरणोंके द्वारा मनुष्योंके शरीरमें संचित हुआ कफ क्रमसे द्रवीभूत होकर वसंतऋतुमें कुपित होता है इस कारण वसन्तऋतुको कफका समय निश्चय किया है। अतएव कफदोषके साथ वसन्तऋतुकी तुल्यता होनेसे वसन्तकालोत्पन्न कफज्वर प्राकृत है। प्राकृतज्वर चाहे कितना ही भयंकर रूप क्यों न धारण करे किन्तु वह सुखसाध्य ही होता है। इसप्रकार वर्षाऋतुके शीतसे अभ्यस्त मनुष्योंका शरीर शरत्कालमें हठात् सूर्य्यकी किरणोंसे संतापित होजाता है।

वर्षामें संचित हुआ पित्त शरत्कालमें प्रकुपित होता है इसकारण शरत्काल पित्तका समय है। अतएव पित्तदोषके साथ शरदृतुकी तुल्यता होनेसे शरत्कालमें पित्तज्वर प्राकृत है। इसलिये इसकी चाहे कितनी ही भयंकर आकृति क्यों न हो किन्तु प्रकृत आयुर्वेदीय चिकित्सकगण उसको देखकर किंचित् मात्र भी भयभीत नहीं होते। यह रोग अन्य ऋतुओंमें उत्पन्न होनेसे वैकृत और अत्यन्त दुःसाध्य होता है।

उक्त साधारण रोगोंमें डॉक्टरोंके भयभीत होजानेका कारण केवल वात पित्त और कफकी अनभिज्ञता प्रतीत होती है। डॉक्टर महोदय मूत्रमें शर्करा (चीनी) को देखते ही अत्यन्त चमत्कृत हो जाते हैं तथा रोगको अत्यन्त गहन बताने लगते हैं। किन्तु वैद्य महाशय शर्कराको देखकर कदापि आकुलित नहीं होते। कारण कि–वह अच्छे प्रकारसे जानते हैं कि–कफजनित दश प्रकारके प्रमेहोंमें शर्करा प्रमेह भी होता है सो अत्यन्त सुखसाध्य है।

इस समय पश्चिमीय अस्त्रचिकित्साकी इतनी उन्नति देखकर अनेक भारतवासी कहते हैं कि–यूरोपीय शस्त्रचिकित्सा सम्पूर्ण चिकित्साओंकी अपेक्षा अधिक फलप्रद एवं सर्वोत्कृष्ट चिकित्सा है। किन्तु चरक, सुश्रुत प्रभृति आयुर्वेदीय ग्रंथोंके पढनेसे उनका यह भ्रम सहजमें ही दूर हो सकता है। इस देशमें भी कभी आर्य्यअस्त्रचिकित्साने विशेष उन्नति की थी। सुश्रुतके मतसे सम्पूर्ण अस्त्रचिकित्साओंकी अपेक्षा आयुर्वेदीय अस्त्रचिकित्सा अतिशय श्रेष्ठ समझी जाती है।

पूर्वकालमें अस्त्रचिकित्साने इतनी उन्नति की थी कि जिसकी रामायणादि पुराणोंमें अभीतक कथा सुनाई पड़ती है।

पूर्वकालमें अस्त्र, खड्ग, गदा, मुष्टि और प्रस्तरादिके द्वारा युद्ध होता था। एक योद्धा क्रमसे आठ दश दिनपर्यन्त युद्ध करता रहता था। उस समय धनुषके द्वारा छोड़े हुए बाण सम्पूर्ण शरीरमें बिंधजाते थे। शस्त्राघातसे शरीरमें अनेक प्रकारके क्षत होजाते थे एवम् अस्थि चूर्णित, भग्न और स्फीत होकर घोर पीडा उत्पन्न होजाती थी। उस समय हमारे पूर्वचिकित्सक शल्योद्धार, व्रणरोपण, व्रणशोधन, भग्नसंधानादि चिकित्साओंके द्वारा तत्काल व्रणकी पीड़ाका शमन कर देते थे। यहाँतक कि दूसरे दिन ही योद्धा लोग फिर स्वस्थ और सबल शरीरसे संग्राम करनेमें तत्पर होजाते थे।

इस प्रकार अनेक प्रकारकी घटनाओंको देखनेसे स्पष्टरूपसे विदित होता है कि प्राचीन समयमें इस देशमें अस्त्रचिकित्साने अत्यन्त उन्नति की थी। रामायणमें लिखा है कि-जब रावणने लक्ष्मणके हृदयमें शक्ति(शेल)का प्रहार किया था उस समय लक्ष्मणके वक्षस्थलमें क्षत और अस्थि भग्न होकर रुधिरका वमन होने लगा था। तब सुषेण वैद्यने विशल्यकरणी, अस्थिसंधानकारिणी आदि कई एक औषधियोंके द्वारा तत्काल रुधिरको बंद करके अस्थिसंधान और व्रणरोपण क्रिया करी थी। यह रीति आज तक भी हमारे देशमें प्रचलित है। रुधिरका वमन या रुधिरका स्राव होनेपर विशल्यकरणी व्यवहार की जाती है और आघातजनित क्षतरोगमें अस्थिसंहारिणी व्यवहृत होती है।

अब आयुर्वेदीय अस्त्रचिकित्सा किस क्रमसे अवनतिको प्राप्त हुई सो कहते हैं। पहले इस देशके समस्त ऋषि, मुनि, महात्मा, योगी, बडे बडे विद्वान्, पंडित, वैद्य और सर्वसाधारण मनुष्योंको देशी लता वृक्ष आदि वनौषधियोंके प्रत्यक्ष और आश्चर्यजनक गुण ज्ञात थे। अतएव वे अत्यन्त भयंकर क्षत और अस्थिभग्नादि रोगोंमें आश्चर्य और प्रत्यक्षफलप्रद साधारण लतावृक्षादि वनौषधियोंका प्रयोग करके सहजमें ही बड़े २ जटिल रोगोंको दूर कर देते थे। केवल अस्त्रचिकित्साके लिये कभी किसी भारतवासीको अन्य वैद्यका आह्वान नहीं करना पडता था।

इस प्रकार जब साधारण वनौषधियोंके द्वारा विना अस्त्रचिकित्साके ही बड़े २ भयंकर व्रणादि रोग सहजमें आरोग्य होने लगे तब अस्त्रचिकित्सासे भारतवासियोंको अश्रद्धा और भय उत्पन्न होने लगा। उससे यहांतक अश्रद्धा हुई कि, वैद्यमहाशय भी क्रम २ से अस्त्रचिकित्साको बिलकुल भूल गये और अस्त्र-शिक्षाके पठन पाठनका सर्वथा त्याग कर दिया। इस प्रकार पूर्वोक्त कारणोंसे देशी अस्त्रचिकित्साकी इतनी अवनति होगयी। अभी कुछ काल पहले इस देशमें बडे २ वैद्य विद्यमान थे. वह अनेक दुस्तर और भयंकर, क्षतादि रोगोंको एकमात्र साधारण वनौषधियोंके द्वारा आराम कर देते थे। किन्तु समयके परिवर्त्तनमें उक्त वैद्योंकी संख्या क्रमक्रमसे अल्प होती गई। एवं देशी औषधियोंके ऊपरसे उच्चश्रेणीके लोगोंका विश्वास और श्रद्धा उठती गई। सर्वत्र डॉक्टरी चिकित्साका प्रचार हो गया इससे प्रायः प्रत्यक्षफलप्रद समस्त देशी औषधियाँ छिप गईं। आजकल डॉक्टर लोग जिन बड़े २ व्रणोंको विना अस्त्रचिकित्साके द्वारा आराम नहीं कर सकते. उन व्रणोंको पहिले वैद्यलोग साधारण औषधियोंसे आरोग्य कर देते थे। अबतक भी कहीं २ साधारण आयुर्वेदीय द्रव्योंका अतुल प्रभाव देखा जाता है। पश्चिमीय चिकित्सापद्धतिके अनुसार प्रायः सब प्रकारके व्रण मुख होजानेपर विना अस्त्रचिकित्साके कदापि आरोग्य नहीं होसकते। परन्तु आयुर्वेदीय वैद्य सब प्रकारके व्रणोंमें मुख होजानेपर या बिना मुख हुए ही केवल सामान्य प्रलेपादिकी औषधियोंसे आरोग्य कर देते थे।

भारतवर्षमें नाना जातिके लता वृक्ष विद्यमान हैं। वह केवल प्रकृतिकी शोभा बढानेके लिये ही नहीं हैं बल्कि अनन्तगुणसम्पन्न दिव्य वनौषधियाँ हैं। पहले इन ही वनौषधियोंके प्रभावसे भारतवासी सब प्रकारके रोगोंसे वंचित रहकर स्वस्थ शरीरसे सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करते थे। आजकल इनही वनौषधियोंकी आलोचनाके अभावसे भारतवासी चिररोगी, कायर और दीन होरहे हैं। किन्तु जो सर्वदा सत्यके ऊपर स्थित हैं उनकी वार वार अवनति होनेपर भी अन्तमें अवश्य जय होती है। जगत्के

इसी नियमानुसार अब फिर आयुर्वेदकी उन्नतिका समय परिवर्तित होता दीखता है। अवनतिके घोरान्धकारको समाप्त करके आयुर्वेदशास्त्र अब फिर धीरे २ उन्नतिकी अरुण किरणोंको प्रकीर्ण करने लगा है। भारतके प्रत्येक प्रांतमें आयुर्वेदशास्त्रकी यत्किंचित् चर्चा सुनाई देने लगी है। अनेक भारतवासी पश्चिमीय चिकित्साके चाकचक्यपर मोहित होनेपर भी एकबार फिर निराधार आर्य्यचिकित्साकी ओर झुकते दिखाई देते हैं।

बंगदेशवासी पंडितलोग आर्य्यचिकित्साको भारतकी मुख्य चिकित्सा बनानेका यत्न कर रहे हैं। उन्हींके सदुद्योगसे भारतके अनेक स्थानोंमें आज अनेक आयुर्वेदीय विद्यालय, पाठशालायें, चिकित्सालय, शिक्षालय और औषधालय स्थापित हो रहे हैं। जिस प्रकार बंगदेशी विद्वन्मंडली आयुर्वेदका वास्तविक उद्धार करनेमें सर्वथा कटिबद्ध हो रही है उसी प्रकार दाक्षिण, महाराष्ट्र, गुजरात, मध्यप्रदेश और पश्चिमोत्तरदेशके मनुष्य भी आयुर्वेदके प्रचारके लिये धीरे धीरे अग्रसर होने लगे हैं। इस प्रकार क्रमशः हमारी भारतकी प्राचीन संस्कृत विद्या फिर उन्नतिके मार्गमें पद स्थापन करती दिखाई देती है। अनेक प्रकारके प्राचीन और अर्वाचीन संस्कृत ग्रंथ मूल और टीका समेत मुद्रित होते जाते हैं। एवं चरक, सुश्रुत, वाग्भट, भावप्रकाश, माधवनिदान, शार्ङ्गधर, चक्रदत्त और हारीतसंहिता आदि कितने ही आयुर्वेदीय ग्रंथ भी संस्कृत टीका और भाषाटीका समेत छपकर प्रकाशित हो रहे हैं।

यद्यपि आजतक उपर्युक्त चिकित्साशास्त्रसम्बन्धी चरक, सुश्रुतादि अनेक प्राचीन आर्षग्रन्थ विविध प्रकारसे अनेक स्थानोंमें छप चुके हैं और छपते जाते हैं किन्तु इनके द्वारा सर्वसाधारणको अधिक लाभ होता नहीं दीखता। कारण कि, चरक, सुश्रुतादि ग्रन्थ विषयोंके बाहुल्य और गहनतासे आजकलके अल्पबुद्धिवाले मनुष्योंको अधिक उपयोगी नहीं हो सकते। एवं भावप्रकाशादि अर्वाचीन ग्रंथ उक्त विषयोंकी संक्षिप्तता और अल्पता होनेके कारण सबको लाभकारी नहीं होसकते। अतएव इसी अभावको दूर करनेके लिये आयुर्वेदभण्डारके उज्ज्वलरत्नस्वरूप इस "बंगसेन" ग्रंथका प्रादुर्भाव हुआ है।

वैद्यकभण्डारमें बङ्गसेन बहुमूल्य महार्घरत्न है। इसकी चिकित्सापद्धति अन्य चिकित्साशास्त्रोंकी अपेक्षा अतिशय श्रेष्ठ है। जो विषय अन्य चिकित्साशास्त्रोंमें अपूर्ण हैं वे इसमें पूर्णरीतिसे वर्णन किये गये हैं। और, जो विषय अन्य ग्रंथोंमें अत्यन्त क्लिष्टतासे वर्णित हैं वे इसमें अत्यन्त सरल रीतिसे निरूपण किये गये हैं। ग्रंथकारने इसमें कितने ही नवीन रोगोंका निदान और चिकित्सा लिखी है जो कि आजकल इस देशमें अधिकतासे पाये जाते हैं। किंतु अन्य वैद्यकग्रंथोंमें उन रोगोंका कहीं नामतक भी नहीं लिखा है। ग्रंथकारने विशेषकरके इसमें प्राचीन आर्ष ग्रंथोंके क्रमसे अनुभूत सिद्धयोग कहे हैं।

जिस प्रकार इसकी चिकित्साका क्रम अतिशय श्रेष्ठ है उसी प्रकार रोगनिर्णय, वातपित्तादिदोषनिरूपण, रसरक्तादि सप्तधातुनिरूपण, वात, पित्त और कफके क्रमसे देश, काल एवं रुग्ण प्रकृतिका वर्णन, वसन्तादि षट्ऋतु, दिनचर्य्या, रात्रिचर्य्या, ऋतुचर्य्या, औषधियोंके गुण दोष, निघंटुखंड, कालज्ञान, अष्टविधपरीक्षा आदि अन्यान्य विषय भी अन्य ग्रंथोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ कहे हैं। जो विषय अन्य ग्रंथोंमें आठ आठ दश २ श्लोकोंमें वर्णित हैं, वे इसमें केवल एक दो श्लोकोंमें अत्यन्त सुगम रीतिसे कहे हैं। इस ग्रंथके प्रयोगोंके अनेक ग्रंथकार अपने २ ग्रंथोंमें संग्रह करते हैं इससे भी इस ग्रंथकी उत्कृष्टता सिद्ध होती है। भिषक्शिरोमणि बङ्गसेनने ठीक आजकलके मनुष्योंकी प्रकृतिके अनुसार ही इसकी रचना की है। इस ग्रंथके प्रयोग चक्रदत्त, भैषज्यरत्नावली आदि अनेक ग्रंथोंमें पाये जाते हैं। आयुर्वेदीय विद्यालयोंमें यह ग्रंथ अत्यन्त आदरपूर्वक पढ़ाया जाता है।

इस ग्रंथके आधारसे जाना जाता है कि इसके बनानेवाले भिषग्वर बंगसेनका जन्म विक्रमकी ग्यारहवीं शताब्दीमें बंगालके कांतिकावास या कान्तिनगरमें गदाधर वैद्यके घर हुआ था। बंगसेनका समय चक्रपाणिदत्तसे पहले जान पड़ता है। क्योंकि इस ग्रंथके घृत तैलादि अनेक सिद्धप्रयोग चक्रपाणिदत्तने अपने ग्रंथमें संग्रह किये हैं।

" चक्रपाणिदत्त वीरभूमि देशवासी प्रसिद्ध रोध्रवल नामक दत्तकुलमें उत्पन्न नारायणदत्तका पुत्र और नरदत्तका शिष्य था और वह वैद्य भानुदत्तके अन्तरंगभावसे गौड़राज्यकी पाकशालाका अध्यक्ष हुआ था। इसका प्रादुर्भाव ७९० के लगभग जान पड़ता है।

कितने ही वैद्य कहते हैं कि वंगसेन वैद्य अबसे अनुमान५००सौ वर्ष पहले मुजफ्फरपुर जिलेके कांति नगरमें विद्यमान थे। हमारे प्रियवर मित्र वैद्यराज रामेश्वरानन्दजीने विशेष अनुसंधानके द्वारा निश्चय किया है कि वंगसेन अबसे ४०० वर्ष पहिले वंगालके पूर्व विभागके श्रीपुर राज्यमें उपस्थित थे। हमने भी, वंगसेनकी जीवनीके लिये बहुत प्रयत्न किया, किन्तु शीघ्रताके कारण ठीक ठीक उनकी जाति,कुल, समय आदिका पता मालूम नहीं होसका इसका हमे खेद है।

यद्यपि यह ग्रन्थ अबतक संस्कृतमूल दो तीन स्थानोंमें छप चुका है, किन्तु केवल मूल मात्र होनेके कारण सर्वसाधारणको उपयोगी नहीं होसकता ऐसा विचारकर सुप्रसिद्ध विद्वद्वर्य्य श्रीमदायुर्वेदोद्धारक कविराज लाला शालिग्रामजीने इस वंगसेनका अनुवाद करना प्रारम्भ किया, किंतु उसकी समाप्तिके पूर्व ही आप यक्ष्मारोगसे पीड़ित होगये। लालाजीने यक्ष्माके एक दो लक्षण प्रतीत होते ही आठ नौ महीने पहले ही मुझसे कह दिया था कि " अबकी बार मुझे, 'जराजनित शोष' हुआ है, अतएव मेरे शरीरका विश्वास मत करना और इस वङ्गसेनका अनुवाद पूर्ण कर देना तथा अन्यान्य भैषज्यभास्कर प्रभृति मेरे अपूर्ण ग्रंथोंकी पूर्त्ति कर देना"। मैंने उक्त कविराजकी आज्ञाको सर्वथा शिरोधार्य्य समझकर इसका अनुवाद पूर्ण किया और यथा अवकाश लालाजीके अन्यान्य ग्रन्थोंकी भी पूर्ति की जायगी।

लाला शालिग्रामजीका जन्म वैक्रमीय संवत् १८८८ आश्विन शुक्ल तृतीयाको मुरादाबादके सुप्रसिद्ध सेठ लाला आनन्दस्वरूपके घर हुआ। आपकी रुचि बालकपनसे ही विद्या और कला कौशलमें विशेष जान पड़ती थी। यद्यपि आपकी अवस्थाका बहुतसा पूर्वभाग बाल्यक्रीडामें ही व्यतीत हुआ था, परन्तु पीछे थोडे ही समयमें आपने सम्पूर्ण कार्योंमें अपूर्व दक्षता प्राप्त कर ली थी।

परिणाम यह हुआ कि आप थोडे ही समयमें अच्छे विद्वान् बन गये। आप बडे परोपकारी थे। केवल परोपकारकी दृष्टिसे आपने अपने जीवनमें बहुतेरे काम किये जिनका उल्लेख करनेके लिये यहां स्थान नहीं है।

लालाजीका अपूर्व धैर्य्य, अतुल साहस, असीम उद्योग और अद्भुत कलाकौशल आदि गुण थोड़े समयमें ही सम्पूर्ण संसारमें विख्यात होगये। आप जिस प्रकार सत्यप्रतिज्ञ और धीरचरित थे, उसी प्रकार धर्मात्माओंमें अग्रगण्य और सज्जनोंमें माननीय समझे जाते थे। जो २ गुण लालाजीमें विद्यमान थे, वे गुण आजकलके बडे २ धीशक्तिसम्पन्न विद्वानोंमें भी नहीं देखे जाते। आप राजनीति, धर्म्मनीति और समाजनीतिके पूर्ण ज्ञाता एवं देश और कालके जाननेमें प्रसिद्ध पंडित थे। पूर्वअवस्थासे ही आपको नीति, धर्म्मशास्त्र, वैद्यक, ज्योतिष और साहित्यके संबधी ग्रंथोंको पढनेका विशेष अनुराग था। आपने अल्प समयमें कितने ही नाटक,उपन्यास, धर्म्मशास्त्र और वैद्यकके विविध ग्रन्थोंकी रचना की। आपके अबतक वैद्यक ग्रन्थोंमें से आयुर्वेदीय औषधिकोष, राजवल्लभनिघण्टु, शालिग्रामनिघण्टुभूषण, रसरत्नाकर, भावप्रकाश, धन्वंतरि, अर्कप्रकाश, द्रव्यगुण, बोपदेवशतक आदि ग्रन्थ छप चुके हैं। और शेष जो अपूर्ण ग्रन्थ हैं वे भी पूर्ण करके शीघ्र ही प्रकाशित किये जायँगे।

लालाजीके यद्यपि कोई पुत्र नहीं था परन्तु वे अपने दौहित्र भाई हरिशंकरको पुत्रसे भी अधिक प्रिय समझते थे, अतएव इनको वे सदैव अपने निकट रखते थे। हरिशंकरजीने भी उनके समीप रह कर उनके अनेक गुणोंका अनुकरण किया। संवत् १९५४ में उन्होंने इस नगरमें एक आयुर्वेदोद्धारक नामक औषधालय स्थापन किया और उसका सम्पूर्ण स्वत्वाधिकार मुझे और भाई हरिशंकरको प्रदान किया। आजतक हम दोनों उस औषधालयको उसी क्रमसे चला रहे हैं। जिस प्रकार प्रातःकालके छः बजेसे दश बजेतक और सन्ध्याके चार बजे से छः बजेतक लालाजी इस औषधालयमें नित्य उपस्थित होकर समस्त अभ्यागत रोगियोंका विना मूल्य औषधि और

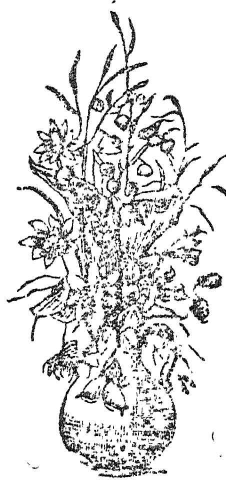
व्यवस्थादि प्रदान किया करते थे, उसी प्रकार हम दोनों प्रातः छः बजेसे दश बजेतक और सन्ध्याको चार बजेसे छः बजेतक औषधालयमें उपस्थित होकर समस्त अभ्यागत रोगियोंको विना मूल्य औषधि और व्यवस्थादि प्रदान करते हैं ।

जब यह वंगसेन मुझे लालाजीने अनुवाद करनेके लिये दिया था, तब इस ग्रन्थको देखकर जितनी मुझे प्रसन्नता हुई थी उतना ही दुःख भी हुआ।कारण कि—यह मूलग्रन्थ इतना ही अशुद्ध था कि इसमें कहीं२ श्लोकका आशय भी अच्छे प्रकारसे समझमें नहीं आता था । यद्यपि मैंने इसको यथामति शुद्ध किया है तथापि इसमें·अशुद्धियां अवश्य रह गई होंगी अतःसहृदय पाठक मुझे अल्पज्ञ समझकर क्षमा करेंगे और पत्र-द्वारा सूचित करनेकी उदारता दिखायेंगे ।

इसके अनुवाद करने तथा वंगसेनकी जीवनी आदिके खोज करनेमें श्रीयुत—वैद्यराज पण्डित दुर्गादत्तजी—प्रान्त, मुरादाबाद । श्रीयुत, वैद्यराज-भोलानाथजी शर्म्मा, लाहौर । श्रीयुत वैद्य·रामेश्वरानन्दजी, वम्बई । श्रीमान् पंडित मुकुन्दशास्त्री ओझा-प्रपन्नाहाटी, दर्भंगा आदि महानुभावोंसे विशेष सहायता मिली थी, अतः उक्त समस्त महानुभावोंका मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूं ।

मैंने जिनेंद्रदेवकी कृपासे और सम्पूर्ण वृद्धवैद्योंके अनुग्रहसे लालाशालिग्रामजीकी आज्ञानुसार इस ग्रंथका अनुवाद समाप्त किया है ।

भवदीय—अनुगृहीत,
वैद्य—शंकरलाल हरिशंकर,
"आयुर्वेदोद्धारक- औषधालय,"—मुरादाबाद.

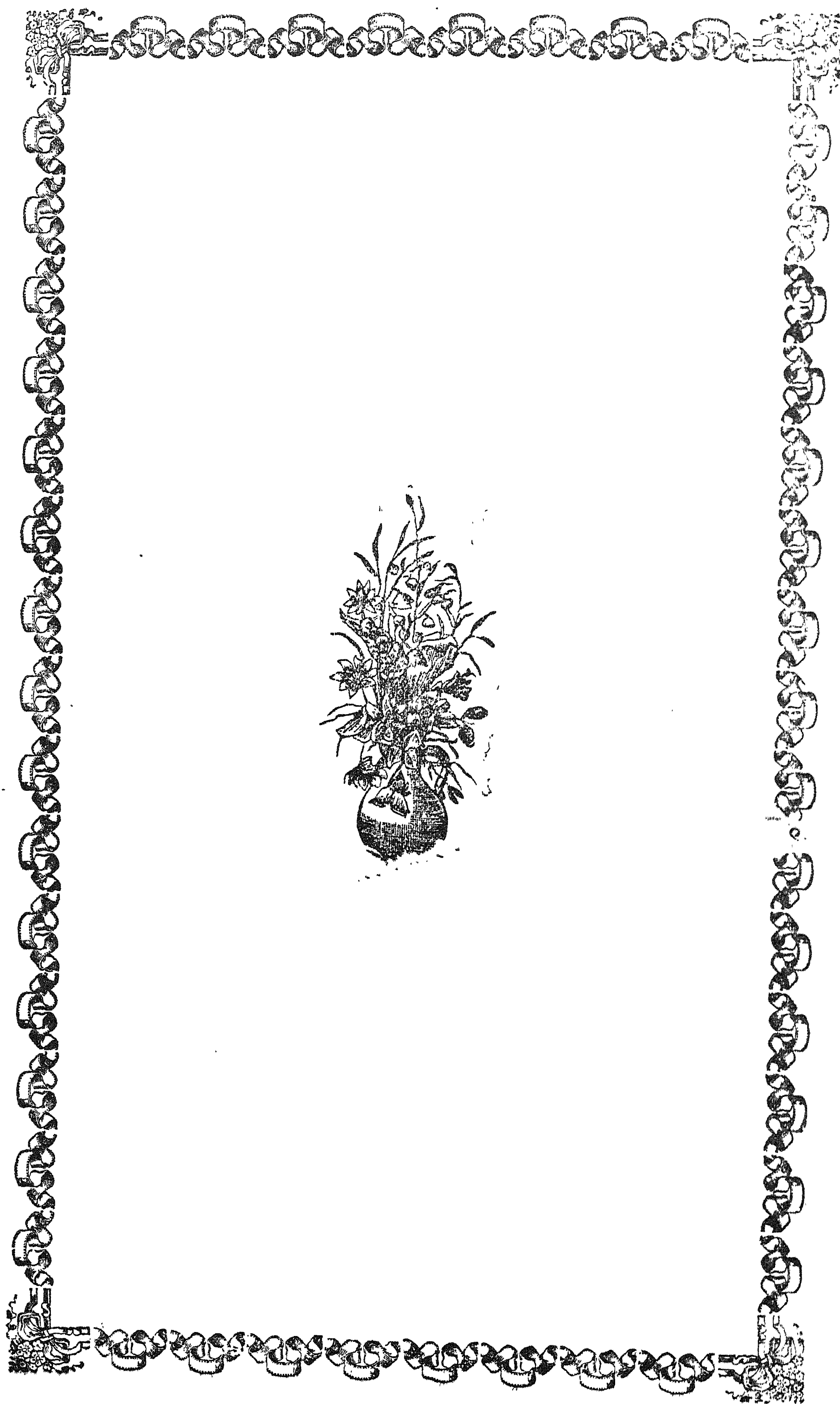


श्रीः ।

भाषाटीकासह वङ्गसेनस्थविषयानुक्रमणिका ।



इति भाषाटीकासह वङ्गसेनस्थविषयानुक्रमणिका समाप्ता ।



श्रीः।

अथ भाषाटीकासहितो वङ्गसेनः प्रारभ्यते ।

मङ्गलाचरणम् ।

नत्वा शारदपादपद्मयुगलं मत्त्वाप्तवाचां चयं
गत्वा पारमशेषपूर्वभिषजां सद्ग्रन्थवारांनिधेः ।
श्रीमत्पण्डितवङ्गसेनरचितां तन्नामिकां संहितां
शालग्रामपदाभिधानकलितो व्याख्याति विद्वन्मुदे ॥ १ ॥

ग्रन्थारम्भः ।

ध्यात्वा गिरीशमपहाय वचःप्रपञ्चं
वृद्धानुपास्य भिषजस्तदुदाहृतीश्च[1] ।
श्रीवङ्गसेनभिषजा खलु वैद्यवृद्धसिद्ध-
प्रयोगनिवहो बहु लिख्यतेऽस्मिन् ॥१॥

मैं श्रीवङ्गसेन वैद्य, प्रथम श्रीमहादेवजीका ध्यान कर और शब्दाडम्बरपूर्ण वचनोंको छोड़कर एवं वृद्ध वैद्योंकी उपासना कर और उनकी उक्तियोंको विचार कर वृद्ध वैद्योंके सिद्ध किये हुए प्रयोगोंको इस ग्रन्थमें लिखता हूँ ॥ १ ॥

सज्जनप्रार्थना ।

नत्वा शिवं प्रथमतः प्रणिपत्य चण्डीं
वाग्देवतां तदनु तातपदं गुरुं च ।
संगृह्यते किमपि यत्सुजनैस्तदत्र चेतो
विधातुमुचितं तदनुग्रहेण ॥ २ ॥

प्रथम शिव, पार्वती और सरस्वती देवीको वन्दना कर पश्चात् पिता और गुरुके चरणकमलोंको प्रणाम कर उनके अनुग्रहसे मैं इस ग्रन्थमें जो कुछ संग्रह करता हूँ उसको सज्जन कृपा कर ध्यान देकर पढें ॥ २ ॥

दुर्जनप्रार्थना ।

हेतुर्जनैः परगुणेषु भवादृशानां द्वेषः
किमेष सहजो गुणितापहारी याच्ञापि
दैन्यफलभूरिफला तदानीं तादृग्वि-
धस्य मिथुनस्य विमोचनाय ॥ ३ ॥

जब दूसरोंके गुणोंमें आप सरीखे मनुष्योंका हरनेवाला स्वाभाविक द्वेष है तब आपसे दीनताके ही महान् फलको प्राप्त करना इस प्रकारके मिथुन (द्वेष) और याच्ञाके लिये क्या यह जन अर्थात् ग्रन्थकार सफल हो सकता है अर्थात् नहीं हो सकता ॥ ३ ॥

कान्तिकावासनिर्जातश्रीगदाधरसू-
नुना । क्रियते वङ्गसेनेन चिकित्सा-
सारसंग्रहः ॥ ४ ॥

'कान्तिकावास' नगरमें उत्पन्न श्रीगदाधरका पुत्र म वङ्गसेन, इस चिकित्सासारसंग्रहको बनाता हूँ ॥ ४ ॥

हृदि तिष्ठति यस्यैष चिकित्सातत्त्व-
संग्रहः । सनिदानचिकित्सायां न
दरिद्रात्यसौ भिषक् ॥ ५ ॥

जिस वैद्यके हृदयमें यह चिकित्सातत्त्वसंग्रह स्थित रहता है वह वैद्य निदान और चिकित्साके विषयमें कदापि दरिद्रताको प्राप्त नहीं होता अर्थात् वह निदान सहित चिकित्साके जाननेमें निपुण हो जाता है, उसको किसी और शास्त्रकी निदान और चिकित्सामें आवश्यकता नहीं रहती, यही पर्याप्त है ॥ ५ ॥

धर्म्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमु-
त्तमम् । रोगास्तस्यापहर्त्तारः श्रेयसो
जीवितस्य च ॥ ६ ॥

---

(१) 'तत हृद्गतांश्च' इति पाठान्तरम् । (२) इत्यस्वारसिकः पाठ इति केचित् ।

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का उत्तम मूल (जड) आरोग्य है और रोग उसके, कल्याणके और जीवन के हरने वाले हैं ॥ ६ ॥

तेषां प्रशमनोपायमतिदुर्वाररंहसम् । ब्रूमहे नातिविस्तीर्णं सनिदानं चिकित्सितम् ॥ ७ ॥

उन अत्यन्त दुर्निवार्य्य वेगवाले रोगोंके निदान और चिकित्सा सहित शमन करनेवाले उपायोंको अनावश्यक विस्तार रहित पूर्ण रूपसे कहते हैं ॥७॥

निदानं पूर्वरूपाणि रूपाण्युपशय-स्तथा । सम्प्राप्तिश्चेति विज्ञानं रोगाणां पञ्चधा स्मृतम् ॥ ८ ॥

निदान, पूर्वरूप, रूप, उपशय और सम्प्राप्ति यह रोग जाननेके पांच कारण हैं अर्थात् इनके द्वारा रोगका ज्ञान होता है ॥ ८ ॥

येनाहारविहारेण रोगाणामुद्भवो भवेत् । क्षयो वृद्धिश्च दोषाणां निदानं हि तदुच्यते ॥ ९ ॥

जिस आहार और विहार के द्वारा रोगोंकी उत्पत्ति तथा वातादि दोषोंका क्षय और वृद्धि होती है उसको निदान कहते हैं ॥ ९ ॥

निमित्तहेत्वायतनप्रत्ययोत्थानकारणैः। निदानमाहुः पर्य्यायैः प्राग्रूपं येन लक्ष्यते ॥ १० ॥ उत्पित्सुरामयो दोषविशेषेणानधिष्ठितः । लिङ्गम-व्यक्तमल्पत्वाद्व्याधीनां तद्यथाय-थम् ॥ ११ ॥ तदेव व्यक्ततां यातं रूपमित्यभिधीयते । संस्थानं व्यञ्जनं लिङ्गं लक्षणं चिह्नमाकृतिः ॥ १२ ॥

जिस लक्षणसे उत्पन्न होनेवाले रोगका ज्ञान हो उसको पूर्वरूप कहते हैं जैसे कि, ज्वरके पूर्वमें श्रम आदिका होना ज्वरका पूर्वरूप है ।

अब निदानके पर्याय वाचक शब्दोंको कहते हैं- निमित्त, हेतु, आयतन, प्रत्यय, उत्थान और कारण ये निदानके पर्यायवाचक शब्द शास्त्र व्यवहारके अर्थ मुनीश्वरोंने कहे हैं। इनके कहनेका कारण यह है कि व्यवहारके लिये अर्थात् शास्त्रमें इन छहों शब्दोंमेंसे कोई शब्द आवे तो उसको निदानवाचक ही जाने। जिस जम्भाई आदिसे उत्पन्न होनेवाली व्याधिका ज्ञान हो उसको पूर्वरूप कहते हैं। फिर वह व्याधि दोष (वात पित्त कफ) से बहुधा अप्रगट हो। शंका-- यदि वातादिक दोषोंसे अप्रगट होगी तो व्याधिका प्रगट होना असम्भव है क्योंकि कारण तो वातादिक दोष हैं। जब दोष ही नहीं तो रोग कैसे प्रगट हो सकते हैं । उत्तर--इस पदका यह अर्थ है कि दोष (वात पित्त कफ) का व्याधिके अल्प होनेसे अप्रगट रूप होना अर्थात् थोडा २ होना. अतएव तत्तत् ज्वरादिव्याधिका अपने अपने अप्रगट लक्षण। पूर्वरूप वैसे वैसे ही होते हैं । अब कहते हैं कि पूर्वरूप दो प्रकारका है, एक सामान्य दूसरा विशिष्ट। सामान्यप्राग्रूप (पूर्वरूप) उसे कहते हैं जैसे दोष (वात पित्त कफ) से दूषित धातु उसके बिगडनेसे प्रगट होनेवाले ज्वरादि व्याधिमात्रहीकी प्रतीति हो और वात आदि दोषोंके चिह्न न मालूम हों जैसे "श्रमोऽरतिर्विवर्णत्वमिति" अर्थात् ज्वरमें श्रम हो, मनका न लगना, देहका विवर्ण इत्यादि लक्षण। और जिसमें होनहार रोगारम्भक दोष उसके चिह्न उसके एक अंशकी प्रतीति हो उसको विशिष्ट प्राग्रूप कहते हैं, जैसे " जृंभात्यर्थं समीरणात् " अर्थात् जंभाइका आना केवल वातके दोषसे ही है। इसमें होनहार रोग कौन ज्वर, उसका आरम्भक दोष कौन वात, उस वातका एक अंश कौन जंभाई, ऐसे और भी जानने चाहिये । इस विशिष्ट पूर्वरूपमें जंभाई आदि रूप देखकर कदाचित् पूर्वरूपको रूप न समझना चाहिये। क्योंकि यह तो केवल व्याधिके आरम्भक दोषमात्रका सूक्ष्म चिह्न है । इस बातको दृष्टांत देकर समझाते हैं---दृष्टान्त । जैसे तृणके समूहको छोटी अग्निकी चिनगारी गिरनेसे धूम (धुआँ) मात्र प्रकट देखकर हाथ, वस्त्र आदिके मारनेसे ही शांति कर सकते हैं, परन्तु जब अग्नि एक साथ जोरसे प्रज्वलित हो गई तब शान्त नहीं होसके ऐसे ही विशिष्ट पूर्वरूपके अल्प होनेसे चिकित्सा करनेसे शांति कर सकते हैं, परन्तु जब रूप होगया तब उसका उपाय नहीं हो सकता है इसीसे पूर्वरूप और रूपमें भेद है । अब कहते हैं पूर्वरूप और रूप इन दोनोंमें कोई शारीरिक अर्थात् शरीरसे सम्बन्ध रखते हैं और कोई मानसिक

अर्थात् मनसे सम्बन्ध रखते हैं । शारीरिक जैसे ज्वरमें मुखका विरस होना, देह भारी, नेत्रोंमें जल गिरना इत्यादिक और मानसिक जैसे मनका एक जगह न लगना और अपने हितकारक वचनोंसे शांति न होना तथा खट्टे चरपरे पदार्थ पर मन चलना । जब पूर्वोक्त प्राग्रूप प्रगट होजाय तब उसको रूप कहते हैं । और संस्थान, व्यञ्जन, लिंग, लक्षण, चिह्न और आकृति ये छ शब्द रूपके पर्याय-वाचक हैं ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥

उपशयः।

हेतुव्याधिविपर्य्यस्तविपर्य्यस्तार्थकारिणाम् । औषधान्नविहाराणामुपयोगं सुखावहम् ॥ १३ ॥ विद्यादुपशयं व्याधेः स हि सात्म्यमिति स्मृतम् । विपरीतोऽनुपशयो व्याध्यसात्म्यमिति स्मृतः ॥ १४ ॥

अब उपशयके लक्षणको कहते हैं:--हेतुविपरीत, व्याधिविपरीत, हेतुव्याधिविपरीत, हेतुविपर्यस्तार्थकारी, व्याधिविपर्यस्तार्थकारी, हेतुव्याधिविपर्यस्तार्थकारी ऐसे जो औषध अन्न (पथ्य) विहार (आचरण) इनका सेवन सुखकारक जानना उसको व्याधिका उपशय कहते हैं । इसका तात्पर्य यह हैं कि, रोगी और रोगका हेतु इनको सुखकारक जो औषध पथ्य आचरणरूप प्रयोग उसको उपशय कहतेहैं और व्याधिसात्म्य ये पर्यायवाचक नाम उसी उपशयके हैं । सुखकारकके कहनेसे यह प्रयोजन है कि दाह और प्यासयुक्त नवीन ज्वरमें शीतलजलका पाना व्याधिका बढानेवाला है इससे शीतल जल सुखकर्ता न हुआ अतएव शीतल जलको उपशय न समझना चाहिये परंतु दाहयुक्त प्यासमें शीतल जल उपशय माना जायगा क्योंकि सुखकारक है ॥

(अब क्रमसे उदाहरण लिखते हैं ।)

हेतुविपरीत औषध-जैसे शीतकफज्वरमें सोंठ, तो इसमें प्रथम समझना चाहिये कि, यहां हेतु कौन है कि, सर्दी उसका शीतल धर्म है तो अब शीत कफ यह कब शान्त हो जब कि सर्दी और कफसे विपरीत औषध मिले ऐसी औषध शुंठी सर्दी और कफ दोनोंको शान्त करती है तो शीतकफज्वरमें हेतुविपरीत औषध सोंठ हुई । ऐसे ही हेतुविपरीत अन्न जैसे श्रम और वातसे प्रगट ज्वरोंमें मांसका रस और चावल । इसमें हेतु कौन श्रम और वात, ये कब शान्त हों जब श्रम और वात--हरणकर्त्ता पथ्य मिले, ऐसा पथ्य कौन है मांसरस और चावलोंका भात, ये श्रम और वातके विपरीत हैं अर्थात् नाशक हैं । ऐसे ही हेतुविपरीत विहार कहिये आचरण कौन जैसे दिनके सोनेसे प्रकट कफपर रातमें जागना, यहां हेतु कौन हुआ कि दिनका सोना, उससे प्रगट दोष कौन कफ है, यह कफ कब शान्त हो जब जिस हेतुसे प्रगट हुआ उस हेतुसे विपरीत आचरण किया जाय, तो दिनके सोनेपर उलटा आचरण कौन है रातमें जागना, तो यह हेतुविपरीत आचरण हुआ । इसी प्रकार और उदाहरण व्याधिविपरीत आदिके बुद्धिमान् मनुष्य स्वयम् समझ लेवें । जो उपशयके लक्षण कहे हैं उससे विपरीत लक्षण अनुपशयके हैं और व्याधिका असात्म्य अर्थात असमान नाम उसी अनुपशयका पर्यायवाचक शब्द है ॥ १३ ॥ १४ ॥

सम्प्राप्ति।

यथा दुष्टेन दोषेण यथा चानुविसर्पता। निर्वृत्तिरामयस्यासौ सम्प्राप्तिर्जातिरागतिः ॥ १५ ॥

दोष कहिये वात पित्त कफ इनका दुष्ट होना नाम कुपित होना अनेक प्रकारका है अर्थात् स्वकारण या दूसरेके कारण करके ऐसे कुपित दोष अपने स्थानको छोडकर देहमें ऊपर नीचे तिरछे बिचरते हैं उस बिचरनेसे जो रोग प्रकट हो उसको सम्प्राप्ति कहते हैं और जाति तथा आगति ये दोनों पर्य्याय-वाचक नाम उसी सम्प्राप्तिके हैं. तात्पर्यार्थ यह है कि मनुष्यके देहमें वात पित्त कफ ये सम्पूर्ण दोष बढकर जैसे रोगको प्रगट करैं वैसेही उसको सम्प्राप्ति कहते हैं । उदाहरण–जैसे कुपित दोषोंका आमाशयमें प्रवेश होनेसे और उस स्थानमें इतस्ततो गमन करनेसे और पक्वाशयमें रहनेवाली अग्निको बाहर निकालनेसे तथा उसी जठर अग्निसे सर्व देहके तप्त होनेसे यह ज्वर है, ऐसा जो निश्चय किया जाता है उसीको संप्राप्ति कहते हैं, ऐसे ही अतिसारादि रोगोंकी संप्राप्ति जाननी चाहिये ॥ १५ ॥

संख्याविकल्पप्राधान्यबलकालविशेषतः। सा भिद्यते यथात्रैव वक्ष्यन्तेऽष्टौ ज्वरा इति ॥ १६ ॥

अब संप्राप्तिके भेद कहते हैं, सा कहिये सो संख्यादि विशेषण करके पांच प्रकारकी है जैसे १ संख्या २ विकल्प ३ प्राधान्य ४ बल ५ काल. जैसे इसी ग्रंथमें आगे आठ प्रकारका ज्वर, पांच प्रकारकी खाँसी कही जायगी अर्थात् रोगोंकी गणनाको ही संख्यारूप सम्प्राप्ति कहते हैं ॥ १६ ॥

दोषाणां समवेतानां विकल्पोंऽशांशकल्पना । स्वातन्त्र्यपारतन्त्र्याभ्यां व्याधेः प्राधान्यमादिशेत्॥ १७॥

मिल हुए दोष कहिये वात पित्त कफ इनके अंशांशका अनुमान करना उसको विकल्परूप सम्प्राप्ति कहते हैं, जैसे धूएँके निकलनेसे यह पर्वत अग्निवाला है, ऐसे ही इस रोगके देहमें वात का अंश विशेष है काहेसे कि वातके अंश विशेष मिलनेसे इसी अनुमानको विकल्पसंप्राप्ति कहते हैं। उदाहरण—जैसे रूखी शीतल हलकी और फलानेवाली इत्यादि गुणयुक्त जो पवन उसको रूक्ष आदि गुणयुक्त कसैला रस वातको सर्वांश करके बढानेवाला है । ऐसे ही कटुरस सर्व भाव करके पित्तका बढानेवाला है अर्थात् कटु, उष्ण, तीक्ष्णत्व करके हींग पित्तको बढाने वाली है । ऐसे ही मधुररस जैसे भैंसका दूध यह सर्व भाव करके कफ बढाने वाला है इत्यादि । इसमें "दोषाणाम्" जो बहुवचन है सो दोषोंके पृथक् पृथक् ग्रहणके वास्ते है और "समवेतानाम्" यह पद जो है सो द्वंद्वज और सन्निपातके ग्रहणनिमित्त धरा है । व्याधिकी स्वतन्त्रता और परतंत्रता करके प्रधानता और अप्रधानता कही है. जैसे स्वतंत्र ज्वरको प्रधानता है और ज्वराधीन श्वास आदि रोगोंको अप्रधानता है । अर्थात् व्याधिकी स्वतंत्रतासे प्रधानता और परतंत्रतासे अप्रधानता जाननी चाहिये ॥ १७ ॥

हेत्वादिकात्स्न्याविवयवैर्बलाबलविशेषणम् ॥ १८ ॥

हेतु आदि शब्दोंसे हेतु, पूर्वरूप और रूप इन के सर्व अवयव (लक्षण) मिलनेसे व्याधिको बलवान् जानना और थोड़े लक्षण मिलनेसे निर्बल जानना जिस रोगके प्रति जो निदान कहा है वह निदान सम्पूर्ण रोगोंको उत्पन्न करनेवाला है या एकदेश, ऐसे ही पूर्वरूप भी समस्त अवयवों करके व्याधिका प्रकाशक है या एकदेशसे इत्यादि ॥१८॥

नक्तंदिनर्तुभुक्तांशैर्व्याधिकालो यथाबलम् ॥ १९ ॥

नक्त (रात्रि) दिन (दिवस) ऋतु (वसन्तादि) भुक्त (आहार) इनका अंश कहिये एकदेश उसको यथादोष (वात, पित्त, कफ) के अनुसार व्याधिका काल अर्थात् रोगके घटने बढनेके हेतुका समय जाने। उदाहरण दिखाते हैं । जैसे रात्रिके तीन भाग करे प्रथम, मध्य और अन्त्य, तो रात्रिका प्रथमभाग कफका, मध्यभाग पित्त का, अन्त्यभाग वातका है । ऐसे ही दिनके भी तीन भाग करे तो पूर्वाह्न कफका, मध्याह्न पित्तका, अपराह्न वातका है । ऐसे ही ऋतु, जैसे वसंतऋतु में कफ, शरदृतुमें पित्त और वर्षामें वात कुपित होता है । ऐसे ही भोजनका, जैसे भोजन करनेके समय कफका काल और अन्नके पचनेके समय पित्तका काल और जब भले प्रकार परिपक्व होगया तब वातका काल, इसके जाननेसे यह प्रयोजन है कि, जिस दोष (वात, पित्त, कफ) का जो काल कहा है उसका उसी २ काल में जान लेना कठिन मालूम नहीं होता ॥ १९ ॥

इति प्रोक्तो निदानार्थस्तत्तद्व्यासेनोपदिश्यते ॥ २० ॥

इति कहिये यह संक्षिप्त प्रकारसे जो निदानार्थ कहा उसे विस्तारपूर्वक प्रतिरोगके निदान पूर्वरूपादि करके कहेंगे ॥ २० ।

सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः। तत्प्रकोपस्य तु प्रोक्तं विविधाहितसेवनम् ॥ २१ ॥

अब पूर्व कहे निदान के दो भेद कौन सन्निकृष्ट और विप्रकृष्ट उसमें सन्निकृष्ट कौन वातादिक समीपके कारण करके सर्व रोगोंका कारण है सो कहते हैं "सर्वेषामिति" कुपित हुए जो मल (वात, पित, कफ) ये सम्पूर्ण रोगोंके कारण होते हैं और उन वात, पित्त, कफ दोषोंके कोपका कारण अनेक प्रकारका अपथ्यसेवन करना ही है ॥ २१ ॥

निदानार्थकरो रोगो रोगस्याप्युपजायते। तद्यथा ज्वरसन्तापाद्रक्तपित्तमुदीर्य्यते॥ रक्तपित्ताज्ज्वरस्ताभ्यां श्वासश्चाप्युपजायते। प्लीहाभिवृद्ध्या जठरं जठराच्छोफ एव च॥ अर्शोभ्यो जाठरं दुःखं गुल्मश्चाप्युपजायते॥ प्रतिश्यायाद्भवेत्कासः कासात्सञ्जायते क्षयः। क्षयो रोगस्य हेतुत्वे शोषस्याप्युपजायते॥ २२॥

कोई प्रश्न करे कि जो, पूर्व कह आये हैं यह ही निदान है अथवा इसके व्यातीरिक्त और इसलिये कहते हैं रोगका रोग भी निदान होता है अर्थात् जो निदानसे कार्य होता है वह ही रोगसे भी होता है, इसवास्ते दृष्टांत देकर कहते हैं "तद्यथेति" जैसे ज्वरसंतापसे रक्तपित्त प्रगट होता है और रक्तपित्तसे ज्वर और रक्तपित्त व ज्वरसे श्वास प्रगट होता है और प्लीहाके बढनेसे जैसे उदररोग और उदररोगसे सूजन. बवासीरसे जैसे उदररोग और गुल्म (गोला) रोग, दिनमें सोने आदिकोंसे जुकाम होता है और जुकामसे खांसी तथा खांसीसे ओजप्रभृति धातुओंका क्षय होता है। यह क्षयरोग (राजयक्ष्मा) संपूर्ण रोगोंमें राजा है और शोषको भी प्रगट करता है॥ २२॥

ते पूर्वं केवला रोगाः पश्चाद्धेत्वर्थकारिणः। उभयार्थकरा दृष्टास्तथैव कार्यकारिणः॥ २३॥

वे रोग प्रथम स्वतंत्र होते हैं और पीछे जब बल मिल गया तो वे ही हेत्वर्थकारी अर्थात् रोगके उत्पन्न करनेवाले होते हैं, जैसे ज्वरसे रक्तपित्त होता है। इस प्रकार रोग उभयार्थकारी अर्थात् कार्य—कारण रूप हैं, सारांश यह कि स्वतंत्र रोग होनेसे कार्यरूप हैं और अन्य रोगका कारण होनेसे कारणरूप हैं॥२३॥

कश्चिद्धि रोगो रोगस्य हेतुर्भूत्वा निवर्त्तते। न प्रशाम्यति चाप्यन्यो हेतुत्वं कुरुतेऽपि च॥ एवं कृच्छ्रतमो नृणां दृश्यते व्याधिसंकरः॥ २४॥

१ 'शोषश्च' इति पाठान्तरम्।

अब उसी रोग उत्पन्न करनेवाली व्याधि की विचित्रता दिखाते हैं, जैसे कोई एक रोग दूसरे का कारण हो अर्थात् दूसरे रोगको प्रगट कर आप शांत हो जाता है। जैसे ज्वरके संतापसे रक्तपित्त होता है उस समय ज्वर दूर हो जाय और रक्तपित्त रह जावे। और कोई रोग दूसरे रोगको प्रगट कर आप जैसाका तैसा बना रहता है, जैसे बवासीर नहीं जाय और गुल्म तथा उदररोग पैदा होते हैं। इस प्रकार मनुष्योंके घोर क्लेशदायक मिले हुए रोग देखनेमें आते हैं। विशेष करके चिकित्सा विरुद्ध होनेसे ये रोग कृच्छ्रतम होते हैं॥२४॥

तस्माद्यत्नेन सद्वैद्यैरिच्छद्भिः सिद्धिमुत्तमाम्। ज्ञातव्यो वक्ष्यते योऽयं ज्वरादीनां विनिश्चयः॥ २५॥

अब कहे हुए निदानादिपंचकद्वारा रोगनिवृत्ति रूप सिद्धिकी इच्छा करके अवश्य जानने योग्यको कहते हैं "तस्मात्" इति इसी कारण उत्तम सिद्धि हमको प्राप्त हो ऐसी जिन सद्वैद्योंकी इच्छा है उन को ज्वरादि रोगोंका निदान जो आगे कहते हैं वह यत्नसे जानना चाहिये॥ २५॥

रोगमादौ परीक्षेत ततोऽनन्तरमौषधम्। ततः कर्म भिषक् पश्चाज्ज्ञानपूर्वं समाचरेत्॥ २६॥

वैद्यको चाहिये कि प्रथम रोगकी परीक्षा करै पीछे औषध की परीक्षा करै फिर ज्ञानपूर्वक चिकित्सा करै॥ २६॥

यस्तु रोगमविज्ञाय कर्माण्यारभते भिषक्। अप्यौषधविधानज्ञस्तस्य सिद्धिर्यदृच्छया॥

जो वैद्य रोगोंको विना जाने चिकित्सा करता है चाहे वह औषधमें प्रवीण भी हो तथापि उसको सिद्धि प्रारब्धके अधीन है॥ २७॥

अप्यौषधविधानज्ञः सर्वभैषज्यकोविदः। देशकालप्रमाणज्ञस्तस्य सिद्धिर्न संशयः॥ २८॥

जो वैद्य सम्पूर्ण औषधियोंके विधानको जाननेवाला है और सर्व औषधियोंके जाननेमें प्रवीण है तथा देश और कालके प्रमाणको जानता है, उसको सिद्धि में कुछ संशय नहीं॥ २८॥

भैषज्याहारचेष्टानां यो न वेत्ति गुणागुणम् । न स वेत्ति भिषक्सम्यक्तस्य स्वास्थ्यहिताहितम् ॥ २९ ॥

जो वैद्य औषध, आहार और रोगीकी चेष्टाके गुण अवगुणोंको नहीं जानता वह उसके स्वास्थ्य संबन्धी हित और अहितको भी अच्छेप्रकारसे नहीं जान सकता ॥ २९ ॥

आदावन्ते रुजां ज्ञाने प्रयतेत चिकित्सकः । साध्यासाध्यविभागज्ञस्ततः कुर्य्याच्चिकित्सितम् ॥ ३० ॥

साध्य और असाध्य रोगको जाननेवाला वैद्य प्रथम रोगको अच्छे प्रकारसे जाने फिर उसकी चिकित्सा करै ॥ ३० ॥

यस्तु रोगविशेषज्ञः सर्वभैषज्यकोविदः । देशकालप्रमाणज्ञस्तस्य सिद्धिर्न संशयः ॥ ३१ ॥

जो वैद्य सम्पूर्ण रोगों और सब औषधियोंके विधानमें प्रवीण है तथा देश और कालके प्रमाणको जाननेवाला है, उसको निस्संदेह सिद्धि होती है ॥ ३१ ॥

दर्शनस्पर्शनप्रश्नैर्व्याधिज्ञानं त्रिधा मतम् । आदौ दृशस्ततः स्पर्शाच्छीतादिप्रश्नतोऽपरम् ॥ ३२ ॥

दर्शन (देखना), स्पर्श छूना और प्रश्न (पूँछना) इन तीन प्रकारसे रोगका ज्ञान होता है, वहां प्रथम मल, मूत्र, जिह्वादिकको देखै, पश्चात् रोगीके शरीरको छूकर शीतादिकको जाने फिर उससे सम्पूर्ण हाल पूँछे ॥ ३२ ॥

कृच्छ्रोपायः सुखोपायो द्विविधः साध्य उच्यते । असाध्यो द्विविधो ज्ञेयो याप्यो यश्चाप्रतिक्रियः ॥ ३३ ॥

कष्टसाध्य और सुखसाध्य ऐसे साध्य दो प्रकारका है तथा असाध्य भी दो प्रकारका है, एक याप्य और दूसरा अचिकित्स्य अर्थात् त्याज्य ॥ ३३ ॥

याप्याः केचित्प्रकृत्यैव साध्या याप्या उपेक्षिताः । स्वभावाद्व्याधयोऽसाध्याः केचिद्याप्या उपेक्षिताः ॥ ३४ ॥

कोई रोग तो स्वभावसे याप्य होते हैं और कोई साध्यकी उपेक्षा करनेसे याप्य हो जाते हैं, कोई स्वभावसे ही असाध्य होते हैं और कोई याप्यरोग उपेक्षा अर्थात् उनकी चिकित्सा नहीं करनेसे असाध्य होजाते हैं ॥ ३४ ॥

साध्या याप्यत्वमायान्ति याप्याश्चासाध्यतां तथा । घ्नन्ति प्राणानसाध्यास्तु नराणां निष्क्रियावताम् ॥ ३५ ॥

चिकित्सा नहीं करनेवाले मनुष्योंके साध्यरोग याप्य होजाते हैं, याप्यरोग असाध्य होजाते हैं और असाध्यरोग प्राणोंका नाश करते हैं ॥ ३५ ॥

जातमात्रश्चिकित्स्यस्तु नोपेक्ष्योऽल्पतया गदः । वह्निशत्रुविषैस्तुल्यः स्वल्पोऽपि विकरोत्यसौ ॥ ३६ ॥

रोगके उत्पन्न होते ही उसका यत्न करना चाहिये यह न समझे कि, रोग तो अभी उत्पन्न हुआ, साध्य है अथवा जरासा ही है ऐसी उपेक्षा न करे । क्यों कि, थोड़े दिनोंका उत्पन्न हुआ अल्प ही रोग, अग्नि, शत्रु और विषके समान अनेक प्रकारके विकारोंको उत्पन्न कर देता है ॥ ३६ ॥

स च प्रकुपितो दोषः समुत्थानविशेषतः । स्थानान्तरगतश्चापि विकारान्कुरुते बहून् ॥ ३७ ॥

वही दोष कालान्तरमें अनेक कारणोंसे कुपित होकर पश्चात् स्थानान्तर में जाकर बहुतसे विकारोंको उत्पन्न कर देता है ॥ ३७ ॥

निवृत्तोऽपि पुनर्व्याधिः स्वल्पेनायाति हेतुना । क्षीणे मार्गे कृते दोषैः शेषः सूक्ष्म इवानलः ॥ ३८ ॥

आराम हुआ रोग, दोषोंके द्वारा क्षीण किये हुए मार्गमें शेष रह जाने पर अल्प कुपथ्य करनेसे ही जरासी अग्निकी चिनगारीके समान फिर प्रचण्ड हो जाता है ॥ ३८ ॥

कर्म्मजा व्याधयः केचिद्दोषजाः सन्ति चापरे । कर्म्मदोषोद्भवाश्चान्ये कर्म्मजास्ते स्वहेतुकाः ॥ ३९ ॥

कोई व्याधि कर्मज होती है और कोई दोषज होती है और कोई व्याधि कर्मज और दोषज दोनों मिला

होती है। पहिले जन्ममें किये हुए जो पापकर्म उनके उदयसे जो रोग उत्पन्न होता है उसको कर्मज रोग कहते हैं। वात,पित्त, कफ इनसे उत्पन्न हुए रोगोंको दोषज कहते हैं और कोई ऐसे राग होते हैं कि,पहिले जन्मके किये हुए जो पापकर्म वह उदय हो ही रहे थे कि,उसी समय कारण पाकर दोष भी कुपित होगये तो उसको कर्मज और दोषज दोनों मिश्रित जानना, कर्मज व्याधि अपने कारणसे ही उत्पन्न होती है॥३९॥

यथाशास्त्रं तु निर्णीतो यथाव्याधि चिकित्सितः। न शमं याति यो व्याधिः स ज्ञेयः कर्म्मजो बुधैः॥४०॥

जिस रोगका शास्त्रानुसार निदान कर यथोक्त चिकित्सा कीजावे किन्तु उस चिकित्सासे रोग शांत न हो तो उसको कर्मज व्याधि जानना॥४०॥

स्वल्पदोषो गरीयान्यः स ज्ञेयः कर्म्मदोषजः॥४१॥

जिस रोगमें अल्प दोष हो और वह बहुत गम्भीर दीखे उसको भी कर्मदोपज जानना॥४१॥

कर्म्मक्षयात्कर्म्मकृतो दोषजः स्वं स्वमौषधैः। कर्म्मदोषोद्भवो याति कर्म्मदोषक्षयात्क्षयम्॥४२॥

कर्मज रोग कर्मके क्षय होनेसे शान्त होते हैं और दोपज रोग चिकित्सा करनेस शान्त होते हैं। एवं कर्मज और दोषज रोग, कर्म और दोष दोनोंके क्षय होनेसे शान्त होते ह॥४२॥

नास्ति रोगो विना दोषैर्यस्मात्तस्माच्चिकित्सकः। अनुक्तमपि दोषाणां लिङ्गैर्व्याधिमुपाचरेत्॥४३॥

दोषोंके विना रोग उत्पन्न नहीं होते, इसकारण जो रोग शास्त्रमें नहीं कहे हैं उन रोगोंकी दोषोंके लक्षणोंके अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये॥४३॥

विकारनामाकुशलो न जिह्रीयात्कदाचन। नहि सर्वविकाराणां नामतोऽस्ति ध्रुवा स्थितिः॥४४॥

रोगके नामका निश्चय न हो सकनेपर वैद्यको लज्जा नहीं करनी चाहिये। कारण यह है कि, सर्व-रोगोंका नामसे ही निश्चय नहीं होता॥४४॥

यथा विषं यथा शस्त्रं यथाग्निरशनिर्यथा। तथौषधमविज्ञातं विज्ञातममृतं यथा॥४५॥

जिस प्रकार विष,शस्त्र, अग्नि और वज्र प्राणोंका नाश करते हैं, उसीप्रकार विना जानी हुई औषधि प्राणोंका नाश करती है और जानी हुई औषधि अमृतकी समान गुण करती है॥४५॥

याभिः क्रियाभिर्जायन्ते शरीरे धातवः समाः। सा चिकित्सा विकाराणां कर्म्म तद्भिषजां मतम्॥४६॥

जिस क्रियासे मनुष्योंके शरीरमें रसादि धातु सम होते ह वही रोगोंकी चिकित्सा है और वही वैद्योंका कर्म ह॥४६॥

न चैकान्तेन निर्दिष्टे शास्त्रेऽपि निविशेद्बुधः। स्वयमप्यत्र भिषजा ज्ञेयं बुद्धिमता भवेत्॥४७॥

विद्वान् वैद्यको एक मात्र शास्त्रमें कहे हुए वाक्य पर ही आग्रहपूर्वक नहीं बैठे रहना चाहिये, किन्तु अपनी बुद्धिसे तर्क वितर्क कर सब हाल जानना चाहिये (ऐसे स्थानमें दोषादिकी न्यूनाधिकताका विचार कर चिकित्सा करे)॥४७॥

उत्पद्यते हि सावस्था देशकालबलं प्रति। यस्यां कार्य्यमकार्य्यं स्यात्कर्म्मकार्य्यञ्च वर्जितम्॥४८॥

देश, काल और बलाबलकी अवस्थाको विचार-कर जो रोगीको औपधि दीजावे यदि वह औषधि रोगीको विकार लावे तो उसको त्याग देवे. कारण यह ह कि अनेक रोगोंमें देश, काल और बलके अनुसार करने योग्य काम भी नहीं करने योग्य होजाता है और न करने योग्य काम करनेयोग्य हो जाता है॥४८॥

व्याधेस्तत्त्वपरिज्ञानं वेदनायाश्च निग्रहः। एतद्वैद्यस्य वैद्यत्वं न वैद्यः प्रभुरायुषः॥४९॥

रोगका ज्ञान और वेदनाका दूर करना यही वैद्यका वैद्यत्व (वैद्यता) है, वैद्य आयुका स्वामी नहीं ह॥४९॥

ऋतुप्रकरण ।

वर्षा नभोनभस्यौ तु तत्र वायुः प्रकुप्यति । पित्तं प्रायेण रक्तञ्च शरदाश्विनकार्त्तिकौ ॥ ५० ॥

श्रावण और भादोंको वर्षाऋतु कहते हैं, वर्षाऋतुमें वायु कुपित होती है, आश्विन और कार्तिकको शरदृऋतु कहते हैं, शरदृऋतुमें प्रायः पित्त और रुधिर कुपित होते हैं ॥ ५० ॥

हेमन्तो मार्गपौषौ तु वातलो रूक्ष एव तु । तद्वच्च शिशिरो माघः फाल्गुनश्च प्रकीर्त्तितः ॥ ५१ ॥

मार्गशिर और पौषको हेमन्तऋतु कहते हैं. हेमन्त ऋतु वातकारक और रूक्ष है । माघ और फाल्गुनको शिशिरऋतु कहते हैं, शिशिरऋतुके गुण भी उसीके समान हैं ॥ ५१ ॥

वसन्तश्चैत्रवैशाखौ तस्मिञ्श्लेष्मा प्रवर्त्तते । ज्येष्ठाषाढौ च विख्यातौ निदाघः पित्तवानपि ॥ ५२ ॥

चैत्र और वैशाखको वसन्तऋतु कहते हैं, वसन्तऋतुमें कफ कुपित होता है । ज्येष्ठ और आषाढ़को ग्रीष्मऋतु कहते हैं. ग्रीष्मऋतुमें पित्त कुपित होता है ॥ ५२ ॥

जलप्रकरण ।

यथर्तुक्रमनिर्दिष्टं जलं क्वाथ्यं च वक्ष्यते । वर्षासूदकमादाय पचेत्तत्सप्तभागिकम् । अष्टभागावशिष्टं तु निर्दोषमुदकं पिबेत् ॥ ५३ ॥

जिसप्रकार ऋतुओंमें जलके काथका क्रम कहा है उसीको अब कहता हूं,वर्षाऋतुमें जल लेकर औटावे जब पचते २ सात भाग जल जाय अर्थात् सेरभरका आधपाव बाकी रह जाय तब उस अष्टावशेष निर्दोष जलको पीवे ॥ ५३ ॥

धारापातेन विष्टम्भि दुर्ज्जरं पवनाहतम् । शृतशीतं त्रिदोषघ्नं वाष्पान्तर्भावितं भुवि ॥ ५४ ॥

वही औटा हुआ जल धारारूपसे पतित होनेपर विष्टंभकारक होता है और वायुसे ताडित होनेपर दुर्जर होता है । जो औटाकर बर्त्तनमें ही मुँह ढक कर शीतल किया गया हो ऐसा शृतशीतल जल त्रिदोपनाशक होता है ॥ ५४ ॥

प्रावृट् नभोनभस्यौ च इषोर्ज्जौ तु शरन्मतौ । मार्गपौषौ तु हेमन्तः शिशिरो माघफाल्गुनौ ॥ वसन्तश्चैत्रवैशाखौ निदाघः शुचिशुक्रभाक् ॥ ५५ ॥

श्रावण और भादोंको प्रावृट्ऋतु कहते हैं, क्वार और कार्तिकको शरदृऋतु कहते हैं, मार्गशिर और पौपको हेमन्तऋतु कहते हैं, माघ और फाल्गुनको शिशिरऋतु कहते हैं, चैत्र और वैशाखको वसन्त ऋतु कहते हैं, ज्येष्ठ और आषाढको ग्रीष्मऋतु कहते ह ॥ ५५ ॥

प्रावृट्काले शृतं तोयं दद्याच्चाष्टगुणं जलम् । अष्टभागावशिष्टं तु निर्दोषमुदकं पिबेत् ॥ ५६ ॥

प्रावृट्ऋतुमें अष्टावशेष अर्थात् सेरभरका आधपाव शेष रहा और औटाकर शीतल कियाहुआ निर्दोष जल पीना चाहिये ॥ ५६ ॥

शरदि षड्गुणं तोयं दत्त्वा क्वथितमाचरेत् । षष्ठभागावशिष्टन्तु पिबेद्दोषहरं जलम् ॥ ५७ ॥

शरदृऋतुमें षष्ठावशेष अर्थात् तीन पाव जलको औटावे, जब औटते २ आध पाव रह जाय तब उस दोषनाशक जलको पीवे ॥ ५७ ॥

हेमन्ते च शृतं तोयं दत्त्वा पञ्चगुणं जलम् । पञ्चभागावशिष्टन्तु निर्दोषमुदकं पिबेत् ॥ (१)

हेमन्तऋतुमें सवासेर जलको औटावे जब औटते २ पावभर जल बाकी रह जाय तब उस पंचावशेष निर्दोष जलको पीवे ॥ (१)

शिशिरे च शृतं तोयं दत्त्वा चतुर्गुणं जलम् । चतुर्भागावशिष्टन्तु निर्दोषमुदकं पिबेत् ॥ (२)

शिशिरऋतुमें चतुर्थांश शेष अर्थात् एक सेर जलको औटावे जब औटते २ पाव भर बाकी रह

जाय तब शीतल करके उस निर्दोष जलको पीवे ॥ (२)

वसन्ते त्रिगुणं तोयं दत्त्वा कथितमाचरेत् । तृतीयभागशिष्टन्तु पिबेदोषहरं जलम् ॥ ५८ ॥ (३)

वसन्तऋतुमें तीन भागका एक भाग जल बाकी रह जाय अर्थात् तीनपाव • जलको औटावे जब औटते २ एक पाव रह जाय तब उसको शीतल करके पान करे ॥ ५८ ॥ (३)

ग्रीष्मे च द्विगुणं तोयं दत्त्वा वापि भिषग्वरः । अर्धोदकावशिष्टन्तु पिबेदोषहरं जलम् ॥ ५९ ॥

ग्रीष्मऋतुमें अर्द्धावशेष अर्थात् एकसेर जलको औटावे जब औटते २ आधासेर बाकी जल रह जाय तब उसको शीतल करके पान करे ॥ ५९ ॥

कोपः शरद्वसन्तेषु बहुकालेषु शान्तितः ॥ कफपित्तानिलाः पूर्वमध्यान्तेषु व्यवस्थिताः । वयोहोरात्रिभुक्तानां सन्धिष्वपि कफानिलौ ॥ ॥६०॥ वायोः प्रत्यूषसायाह्ने जीर्णान्ते च विसर्पणम् । पित्तस्याह्नो निशश्चार्द्धे जीर्णमाने च लक्षयेत् ॥ ६१ ॥ भुक्तमात्रप्रदोषे तु पूर्वाह्ने श्लेष्मणो भवेत् । एकद्वित्रिविभागेन दुष्टान्दोषान्विशोधयेत् ॥ ६२ ॥

शरद् और वसन्तऋतुमें कुपित हुए वातादिदोष बहुत कालमें शांत होते हैं. कफ, पित्त और वात ये तीनों दोष अवस्था, दिन, रात्रि और भोजन, इनके प्रथम, मध्य और अंतभागमें व्यवस्थित हैं अर्थात् प्रथम बाल्यावस्थामें कफ, दूसरी तरुणावस्थामें पित्त और अंत अर्थात् वृद्धावस्थामें वायुका समय होता है, दिनके प्रथमभागमें कफ,मध्यमें पित्त, अन्तमें वातका समय होता है, रातके प्रथमभागमें कफ, मध्यभागमें पित्त और रात्रिके अंतमें वातका समय होता है । भोजन करते समय कफ, भोजनके पचते समयपित्त और भोजनके पच जानेपर वायुका समय होता है तथा इनकी संधियोंमें कफ और वायुका समय होता है. एक, दो, तीन इन भागोंसे दुष्ट दोषोंको क्रमसे शोधन करे ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

शीते शीतप्रतीकारमुष्णे चैवोष्णवारणम् । कृत्वा कुर्य्यात्क्रियां प्राप्तां क्रियाकालं न हापयेत् ॥ ६३ ॥

शीत कालमें शीतका प्रतिकार करते हुए और उष्ण कालमें उष्णताका प्रतिकार करतेहुए चिकित्सा करे। किन्तु समयके विपरीत कदापि चिकित्सा न करै तथा क्रियाके कालको न जाने दे अर्थात् समयपर चिकित्सा करे ॥ ६३ ॥

अप्राप्ते वा क्रियाकाले प्राप्ते वा न कृता क्रिया । क्रिया हीनातिरिक्ता च साध्येष्वपि न सिध्यति ॥ ६४

जो वैद्य अप्राप्तसमयमें चिकित्साको करता है और प्राप्तसमयमें अथवा क्रियाके समयमें क्रिया नहीं करता है वह क्रियाहीन वैद्य साध्य रोगोंको भी नहीं सिद्ध कर सकता ॥ ६४॥

यात्युदीर्णं शमयति नान्यव्याधिं करोति च । सा क्रिया न तु या व्याधिं हरत्यन्यमुदीरयेत् ॥ ६५ ॥

जो बढे हुए रोगको शमन करे तथा दूसरे रोगको उत्पन्न नहीं करे उसको चिकित्सा कहते हैं. किन्तु उसको चिकित्सा नहीं कहते कि जो एक रोगको तो नष्ट करे और दूसरेको उत्पन्न करे ॥ ६५ ॥

प्रकृतिलक्षण ।

शुक्रासृग्गर्भिणीभोज्यचेष्टा गर्भाशयान्तरे । यः स्याद्दोषोऽधिकस्तेन प्रकृतिः सतधोदिता ॥ ६६ ॥

पुरुष और स्त्रीके संयोगके समय वीर्य्य, रज, स्त्रीका भोजन, स्त्रीकी चेष्टा और गर्भाशय इनमें जौनसा दोष अधिक हो उसी दोषके अनुसार गर्भमें जीवकी प्रकृति होती है. इस प्रकार वह प्रकृति वातादिदोषसे सात प्रकारकी कही है॥ ६६ ॥

कृशो रूक्षोऽल्पकेशश्च चलचित्तो न च स्थिरः । बहुवाग्व्योमगः स्वप्ने वातप्रकृतिको नरः ॥ ६७ ॥

वातप्रकृतिवाले मनुष्य कृश, रूखे शरीरवाले, अल्पकेशोंवाले, चंचलचित्तवाले, जिनका मन कहीं

स्थित नहीं रहे, बहुत बोलनेवाले और स्वप्नमें आकाशमें जानेवाले अर्थात् प्रायः सुपनेमें आकाशमें गमन करते हैं ॥ ६७ ॥

अकालपलितो गौरः प्रस्वेदी कोपनो बुधः । स्वप्नेऽपि दीप्तिवत्प्रेक्षी पित्तप्रकृतिको नरः ॥ ६८ ॥

पित्तप्रकृतिवाले मनुष्य विना समय (थोडी-अवस्था) में सफेद बालोंवाले, गौरवर्ण, अधिक पसीनेवाले, क्रोधस्वभावी, पंडित और स्वप्नमें सूर्य्य, चन्द्रमा, अग्नि इत्यादि दीप्त पादार्थोंको देखते हैं ॥ ६८ ॥

स्थिरचित्तः सुबद्धाङ्गः सुव्रतः स्निग्धमूर्द्धजः । स्वप्ने जलाशयालोकी श्लेष्मप्रकृतिको नरः ॥ ६९ ॥

कफप्रकृतिवाला मनुष्य स्थिरचित्तवाला, गठीले शरीरवाला, सुडौल, सदाचारी, चिकने बालोंसे युक्त और स्वप्नमें जलाशयको देखनेवाला होता है ॥६९॥

संमिश्रैर्लक्षणैर्ज्ञेया द्वित्रिदोषानुगा नराः । दोषश्चेद्रससद्भावे व्याधितप्रकृतिः स्मृतः ॥ ७० ॥

दो दोषोंके लक्षणोंके होनेसे द्वन्द्वज प्रकृति और तीन दोषोंके होनेसे त्रिदोषज प्रकृति होती है, दोष और रसभावके होनेसे रोगीकी व्याधित प्रकृति कही है ॥ ७० ॥

प्रकृतिमिह नराणां भौतिकीं केचिदाहुः पवनदहनतोयैः कीर्तितास्तास्तु तिस्रः । स्थिरविपुलशरीरः पार्थिवश्च क्षमावान् शुचिरथ चिरजीवी नाभसः खैर्महद्भिः ॥ ७१ ॥

कोई २ वैद्य कहते हैं कि, मनुष्योंकी प्रकृति पंच महाभूतोंसे बनी है जैसे कि पवन (वात), अग्नि (पित्त) और जल (कफ) इन तीन महाभूतोंवाले मनुष्योंकी प्रकृति तो ऊपर कह चुके, अब दो पृथ्वी और आकाश प्रकृतिवाले मनुष्योंके लक्षण कहते हैं, जो मनुष्य स्थिर और पुष्ट शरीरवाला हो तथा क्षमावान् हो उनकी पृथ्वी प्रकृति जानना । जो शुद्ध आत्मावाला हो और बहुतकाल पर्य्यन्त जीवे उनकी आकाशप्रकृति जाननी ॥ ७१ ॥

विषजातो यथा कीटो न विषेण विपद्यते । तद्वत्प्रकृतयो मर्त्यं शक्नुवन्ति न बाधितुम् ॥ ७२ ॥

जिस प्रकार विषसे उत्पन्न हुआ कीडा विषके द्वारा पीडित नहीं होता उसी प्रकार प्रकृतिगत दोष उसी प्रकृतिवाले मनुष्यको पीडित नहीं करते ॥ ७२ ॥

वायुः सामो विबन्धाग्निसादस्तम्भनकूजनैः । वेदनाशोफनिस्तोदैः क्रमशोऽङ्गानि पीडयेत् ॥ ७३ ॥

आमयुक्त वायु--विबन्ध, अग्निकी मंदता, स्तम्भ, कूजन, पीड़ा, सूजन, तोडनेके समान वेदना और क्रमसे सब अंगोंको पीडित करता है ॥ ७३ ॥

विचरेद्युगपच्चापि गृह्णाति कुपितो भृशम् । स्नेहाद्यैर्वृद्धिमायाति मेघे सूर्य्योदये निशि ॥ ७४ ॥

एकसाथ सब अंगोंमें विचरण करती है और बारंबार कुपित होती है तथा स्नेहादिक (तैलादि) पदार्थोंसे वृद्धिको प्राप्त होतीहै एवं मेघके समय, सूर्योदय और रात्रिमें बढ जाती है ॥ ७४ ॥

निरामो विशदो रूक्षो निर्विबन्धोऽल्पवेदनः । विपरीतगुणैः शान्तिं स्निग्धैर्याति विशेषतः ॥ ७५ ॥

निरामवायु--विशद, रूखी, विबन्धरहित, अल्प वेदना युक्त, सामवायुसे विपरीत गुणोंवाली और विशेषकर स्निग्ध पदार्थोंसे शांत होती है ॥ ७५ ॥

दुर्गन्धं हरितं श्यावं पित्तमम्लरसं गुरु । अम्लिकाकण्ठहृद्दाहकरं सामं विनिर्दिशेत् ॥ ७६ ॥

सामपित्त--दुर्गन्धित, हरित, श्यामरंगका, खट्टे रसवाला, भारी तथा खट्टापन व कंठ और हृदयमें दाहको उत्पन्न करता है ॥ ७६ ॥

आताम्रं पित्तमत्युष्णं रसे कटुकमस्थिरम् । पक्वं विगन्धि विज्ञेयं रुचिवह्निबलप्रदम् ॥ ७७ ॥

निराम पित्त--ताम्रवर्ण, अत्यंत उष्ण, रसमें कटु और चंचल होता है एवं पक्व, गंधरहित, रुचिकारक, अग्नि और बलकारक होता है ॥ ७७ ॥

फेनिलस्तंतुलः श्यावः कण्ठदेशेऽव-तिष्ठति । सामो बलाशो दुर्गन्धः क्षुदुद्गारविघातकृत् ॥ ७८ ॥

साम कफ--फेनिल (झागोंसे मिला हुआ), तंतुवार, श्याव, कंठमें रुकनेवाला, दुर्गन्धित तथा छींक और डकारको रोकनेवाला है ॥ ७८ ॥

फेनवान्पिण्डितः पाण्डुर्निःसारोऽगन्ध एव च । पक्वः स एव विज्ञेयः स्वेद-वान्वक्त्रशुद्धिकृत् ॥ ७९ ॥

पका हुआ कफ झागोंदार, गांठवाला, पांडुवर्ण, सारहीन, गंधरहित, पसीनेसे युक्त और मुखको शुद्ध करनेवाला होता है ॥ ७९ ॥

देशप्रकृतिलक्षण ।

बहूदकनगोऽनूपः कफमारुतरोग-वान् । जाङ्गलोऽल्पाम्बुशाखी च रक्तपित्तगदोत्तरः ॥ ८० ॥

जिसमें बहुतसे जलाशय और पर्वत हों उसको अनूपदेश कहते हैं, अनूपदेश--कफ और वायुके रोगोंको उत्पन्न करता है. जिसमें थोडे जलाशय और थोडे वृक्ष हों उसको जांगलदेश कहते हैं, जांगलदेश--रक्त और पित्तके रोगोंको उत्पन्न करता है ॥ ८० ॥

संश्लिष्टलक्षणोपेतो देशः साधारणो मतः । समाः साधारणे यस्माद्वर्षा-शीतोष्णमारुताः । समता तेन दोषाणां तस्मात्साधारणो वरः ॥८१॥

जिसमें दोनों देशोंके लक्षण मिलते हों उसको साधारणदेश कहते हैं. साधारणदेशमें वर्षा, शीत, उष्ण और पवन समान होते हैं, इस कारण साधारणदेश सब देशोंमें उत्तम है ॥ ८१ ॥

स्वदेशे निचिता दोषास्त्वन्यस्मि-न्कोपमागताः । बलवन्तस्तथा न स्युर्जलजा वा स्थलाहृताः ॥ ८२ ॥

अपने देशमें संचित हुए दोष अन्य देशमें कुपित हों तो बलवान् नहीं होते, उसीप्रकार जलदेशके दोष स्थलमें और स्थलदेशके दोष जलमें कुपित होनेपर बलवान् नहीं होते ॥ ८२ ॥

उचिते वर्त्तमानस्य नास्ति देशकृतं भयम् । आहारस्वप्नचेष्टादौ तद्दे-शस्य गुणे सति ॥ ८३ ॥

जो मनुष्य उचित आहार और विहार करते हैं उनको दुष्टदेशका कुछ भी भय नहीं, इसलिये जिस देशमें रहे उसके अनुसार ही आहार, निद्रा और चेष्टा करनी चाहिये ॥ ८३ ॥

मिथ्यादृष्टा विकारा हि दुराख्याता-स्तथैव च । यथा दुष्परिपृष्टाश्च मोह-येयुश्चिकित्सकान् ॥ ८४ ॥

जिन रोगोंको वैद्यने अच्छे प्रकारसे नहीं देखा और जिन रोगोंका समस्त हाल रोगीने वैद्यसे ठीक नहीं कहा तथा जिन रोगोंका हाल वैद्यने रोगीसे अच्छे प्रकार नहीं पूँछा ऐसे रोग वैद्यको मोहित करते हैं, इसलिये वैद्यको उचित है कि, अच्छे प्रकारसे रोगीकी चेष्टाको देखे और समस्त व्यवस्था बूझे तथा रोगी भी वैद्यको अच्छे प्रकारसे सब हाल सुना दे ॥ ८४ ॥

चिकित्सापादचतुष्टय ।

वैद्यो व्याध्युपसृष्टश्च भैषज्यं परिचा-रकः । एते पादाश्चिकित्सायाः कर्म्म-साधनहेतवः ॥ ८५ ॥

वैद्य, रोगी, औषध और परिचारक ये चिकित्साके चार पाद चिकित्सा कर्म हैं और येही (कार्य्य) साधनके हेतु हैं ॥ ८५ ॥

वैद्यलक्षण ।

तत्त्वाधिगतशास्त्रार्थो दृष्टकर्म्मा स्वय कृती । लघुहस्तः शुचिः शूरः सर्वो-पस्करभेषजः ॥८६॥ प्रत्युत्पन्नमतिर्धी-मान्व्यवसायी प्रियंवदः । सत्यधर्मपरो यश्च स भिषक्पदमश्नुते ॥ ८७ ॥

जो आयुर्वेद शास्त्रके तत्त्वार्थको अच्छे प्रकारसे जानता हो, जिसने अन्य वैद्यकी कीहुई क्रियाको अनेकबार देखा हो और अपने आप चिकित्सा सम्बन्धी क्रियामें कुशल हो, हलके हाथवाला हो, पवित्र हो, शूर (गंभीर रोगीको देखकर घबड़ावे नहीं), सर्वप्रकारक चिकित्साके उपकरण और औषधियोंसे

युक्त हो, अत्यन्त तीक्ष्णबुद्धिवाला, महाबुद्धिमान्, उद्योगी, प्रियबचन बोलनेवाला और सत्यधर्ममें तत्पर ऐसा वैद्य उत्तम होता है ॥ ८६ ॥ ८७ ॥

रोगीके लक्षण ।

आयुष्मान्सत्यवान्साध्यो द्रव्यवानात्मवानपि । उच्यते व्याधितः पादो वैद्यवाक्यकृदास्तिकः ॥ ८८ ॥

आयुष्मान्, सत्यधर्मपरायण, साध्य, द्रव्यवान्, इष्टमित्रोंसे युक्त, वैद्यकी आज्ञाको माननेवाला और आस्तिक ऐसा रोगी अच्छा कहा है ॥ ८८ ॥

औषधलक्षण ।

प्रशस्तदेशसम्भूतं प्रशस्तेऽहनि चोद्धृतम् । अल्पमात्रं महावीर्य्यं गन्धवर्णरसान्वितम् ॥ ८९ ॥ दोषघ्नमग्लानिकरमविकारि विपर्य्यये । समीक्ष्य काले दत्तं च भैषज्यं पाद उच्यते ॥ ९० ॥

उत्तम देशमें उत्पन्न हुई, शुभ दिनमें उखाडी हुई, अल्प मात्रा वाली और अत्यन्त वीर्यवान् तथा गंध वर्ण और रससंयुक्त, दोषनाशक,ग्लानि और विकार नहीं करनेवाली और विचारकर उत्तम समयमें दीगई ऐसी औषध उत्तम होती है ॥ ८९ ॥ ९० ॥

परिचारकलक्षण ।

स्निग्धोऽजुगुप्सुर्बलवान्युक्तो व्याधितरक्षणे । वैद्यवाक्यकृदश्रान्तः पादः परिचरो मतः ॥ ९१ ॥

स्नेहयुक्त, ग्लानिरहित, बलवान्, रोगीकी रक्षा करनेमें चतुर और वैद्यके वचनोंमें श्रद्धा करनेवाला ऐसा परिचारक उत्तम होता है ॥ ९१ ॥

गुणवद्भिस्त्रिभिः पादैश्चतुर्थो गुणवान्भिषक् । व्याधिमल्पेन कालेन महान्तमपि साधयेत् ॥ ९२ ॥

औषध, रोगी और परिचारक ये तीनों गुणवान् पाद और चौथा गुणवान् वैद्य ये चारों पाद अल्पकाल में ही बडे २ रोगोंको आरोग्य कर देते हैं ॥ ९२ ॥

वैद्यहीनास्त्रयः पादा गुणवन्तोऽप्यपार्थकाः । उद्गातृहोतृब्रह्माणो यथाऽध्वर्युं विनाऽध्वरे ॥ ९३ ॥

वैद्यके विना चिकित्साके तीनों पाद गुणवान् भी हों तो भी व्यर्थ है,जैसे अध्वर्युके बिना यज्ञमें उद्गाता, होता और ब्रह्मा निरर्थक है ॥ ९३ ॥

वैद्यस्तु गुणवानेकस्तारयेदातुरं सदा । प्लवं प्रतितरैर्हीनं कर्णधार इवाम्भसि ॥ ९४ ॥

एक गुणवान् वैद्य ही सदैव रोगियोंको रोगरूप सागरसे तारता है जैसे प्रतितर (भीतरसे सहारा लगानेवाले अन्य मनुष्यों) के बिना अकेला मल्लाह ही नावको पार लगाता है ॥ ९४ ॥

अथ मान ।

जालान्तरगते भानौ रजो यत्सूक्ष्मं दृश्यते । तैश्चतुर्भिर्भवेल्लिक्षा लिक्षाषड्भिश्च सर्षपः ॥ ९५ ॥

सूर्य्यकी किरणें जो घरके जाली, झरोखे, रोसनदान और धमालोंमें पडती हैं और उनमें जो रजके त्रसरेणु दीखते हैं उन चार त्रसरेणुओंकी एक लिक्षा होती है,छः लिक्षाकी एक सरसों होती है ९५

षट्सर्षपैर्यवस्त्वेको गुञ्जैका च यवैस्त्रिभिः । गुञ्जाभिर्दशभिः प्रोक्तो माषको ब्रह्मणा पुरा ॥ ९६ ॥

छः सरसोंका एक जौ होता है, तीन जवोंकी एक गुंजा, दश गुंजाका एक मासा होता है ॥ ९६ ॥

चत्वारो माषकाः शाणास्तद्द्वयं कोलसंज्ञितम् । वटकं द्रंक्षणं चैव कर्षस्तद्द्विगुणो भवेत् ॥ ९७ ॥

चार मासेका एक शाण होता है, दो शाणका एक कोल होता है, वटक और द्रंक्षण यह कोलके नाम हैं, दो कोलका एक कर्ष होता है ॥ ९७ ॥

अक्षः पिचुः पाणितलं कर्ष तच्च सुवर्णकम् । बिडालपदकं तुल्यं किञ्चिच्च कवलग्रहम् ॥ ९८ ॥

अक्ष, पिचु, पाणितल, कर्ष, सुवर्णक, बिडालपद, तुल्य, किंचित् और कवलग्रह ये कर्षके पर्याय हैं ॥ ९८ ॥

द्वाभ्यामर्धपलं ताभ्यां शुक्तिश्चापि तदुच्यते। स्यात्खलुष्कार्षिकं चैव पलं सर्वत्र निश्चितम्॥ ९९॥

दो कर्षका आधा पल होता है, उसको शुक्ति भी कहते हैं, चार कर्षका एक पल होता है॥ ९९॥

यत्प्रकुञ्चं पलं मुष्टिस्तथा बिल्वं चतुर्थिका। षोडशिका समुद्दिष्टा पलमेकं प्रमाणतः॥ १००॥

प्रकुञ्च, पल, मुष्टि, बिल्व, चतुर्थिका और षोडशिका यह पलके नाम हैं॥ १००॥

रक्तिकादिषु मानेषु यावत्तु कुडवेषु च। शुष्कद्रवाद्रद्रव्याणां तुल्यमानं प्रकीर्तितम्॥ १०१॥

रत्तीसे लेकर कुडवपर्य्यंत सूखे, गीले और पतले पदार्थ समान लेने चाहिये॥ १०१॥

क्वाथद्रव्यस्य बाहुल्यादुदकं स्वल्पमेव च। सम्यक्पाकं न मुञ्चन्ति हीनवीर्य्यन्तु केवलम्॥ १०२॥

काथद्रव्योंके अधिक और जलके अल्पहानसे अच्छे प्रकारसे पाक नहीं होता अर्थात् केवल हीनवीर्य्य होता है॥ १०२॥

आर्द्रद्रव्यद्रवद्रव्यपलैरष्टाभिरेव च। शुष्कद्रव्यचतुष्केण कुडवः समुदाहृतः॥ १०३॥

गीले पदार्थ और पतले पदार्थोंका आठ पलका कुडव होता है और सूखे पदार्थोंका चार पलका कुडव होता है॥ १०३॥

चतुष्पलस्तु कुडवः स शरावार्द्ध उच्यते। मानिकाष्टौ पलान्येव धरणं दशभिः पलैः॥ १०४॥

चार पलका कुडव होता है उसको अर्द्धशराव भी कहते हैं, आठ पलकी मानिका होता ह, दस पलका धरण होता है॥ १०४॥

द्वाभ्यां पलाभ्यां प्रसृतं तच्च षोडशकं विदुः। खारी च षोडश द्रोणा दशभिर्धरणैस्तुला॥ १०५॥

दो पलका एक प्रसृत होता है, उसको षोडशक भी कहते हैं, षोडश द्रोणकी एक खारी होती है, दश धरणकी एक तुला होती है॥ १०५॥

चत्वारः कुडवः प्रस्थः स शरावद्वयं मतम्। पलानि चैव विद्वद्भिः षोडशैव प्रकीर्त्तिताः॥ १०६॥ प्रस्थाश्चत्वार एव स्युराढकोऽष्टशरावकः। कंसः स एव विज्ञेयः स तु पात्रं च पण्डितैः॥ १०७॥ अपि मानविदो ह्येष चतुष्षष्टिपलो मतः। चत्वारश्चाढको द्रोणः स द्वात्रिंशच्छरावकः॥ १०८॥ शूर्पार्द्धं नल्वणं चैव कलशो घट एव च। अयं च पलसंख्यातः षट्पञ्चाशच्छतद्वयम्॥ १०९॥

चार कुडवका एक प्रस्थ होता है,उसको शरावद्वय और षोडशपल भी कहते हैं। चार प्रस्थका एक आढक होता है, उसको अष्टशराव,कंस, पात्र, और चतुःषष्टि पल भी कहते हैं। चार आढकका एक द्रोण होता है, उसको द्वात्रिंशच्छरावक, शूर्पार्द्ध, नल्वण, कलश और घट कहते हैं। इसकी पलसंख्या २५६ होती है॥ १०६॥ । १०७॥ १०८॥ ॥ १०९॥

द्रोणद्वयं च शूर्पः स्यात्स कुम्भ इति चोच्यते। चतुष्षष्टिशरावोऽसौ व्यवहारार्थमुच्यते॥११०॥

दो द्रोणका एक शूर्प होता है। उसको कुम्भ और चतुष्षष्टि शराव भी व्यवहारके लिये कहते हैं॥११०

स द्वादशपलानीह शतानां पञ्च चोच्यते। गोणी द्रोणाश्च चत्वारः स शराहशतं मतम्। अष्टाविंशति संयुक्तं सर्वथा सूक्ष्मबुद्धिभिः॥१११॥ पलानां तु सहस्रैकं चतुर्विंशतिकं स्मृतम्। प्रस्थादिमानमारभ्य द्रव्यादेर्द्विगुणान्वितम्। कुडवोऽपि क्वचिद्दृष्टं यथा दन्तीघृते स्मृतम्॥ ११२॥

इसकी पलसंख्या ५१२ होती है, चार द्रोणकी एक गोणी है, उसके एकसौ अट्ठाईस (१२८) शराव तथा १०२४ पल होते हैं, प्रस्थसे लेकर आगेको जो द्रव्य लेना हो तो दुगुना लेना चाहिये जैसे कि, दंती-घृतसें लिये जाते हैं। ॥ १११ ॥ ११२ ॥

वैणवाक्षायसादीनां भाण्डं तु चतुरंगुलम् । विस्तीर्णमथ वृत्तं च कुडवं तं विनिर्दिशेत् ॥ ११३ ॥

कुडवपरिमाण--बाँस, काठ और लोहे आदिका चार अंगुल चौंडा, चार अंगुल गहरा ऐसा एक गोल पात्र सामान्य वस्तु डालनेके लिये बनाया जाता है उसको कुडव परिमाण कहते हैं ॥ ११३ ॥

त्याज्य रोगी ।

चण्डः साहसिको भीतः कृतघ्नो व्यग्र एव च । यो वैद्यनृपतिद्वेष्टा सद्द्वेष्टा शोकपीडितः ॥११४॥ यादृच्छिको मुमूर्षुश्च विहीनः करणैश्च यः । वैरी वैद्यविदग्धश्च श्रद्धाहीनः सुशङ्कितः ॥ ११५ ॥ भिषजामभिधेयश्च नोपक्रम्या भिषग्विधाः । एतानुपाचरन्वैद्यो बहून्दोषानवाप्नुयात् ११६ एभ्योऽन्ये समुपक्रम्या नराः सर्वैरुपक्रमैः । नैव कुर्वीत लोभेन चिकित्सापुण्यविक्रयम् । ईश्वराणां वसुमतां लिप्सेतार्थन्तु वृत्तये ॥ ११७ ॥

जो अत्यन्त क्रोधी, दुस्साहसके काम करनेवाला, डरपोक, उपकारको न माननेवाला, हठ करनेवाला, वैद्य, सज्जन और राजासे द्वेष करनेवाला, शोकसे पीडित, स्वेच्छाचारी, मरनेकी इच्छा करनेवाला, शिथिल इन्द्रियों वाला, वैरी, वैद्यपर विश्वास नहीं करनेवाला, श्रद्धारहित और वैद्यके वचनोंमें शंका करनेवाला ऐसे रोगीकी वैद्यको चिकित्सा नहीं करनी चाहिये तथा जो वैद्यके समान हो और जो वैद्यको ठगनेवाला हो ऐसे रोगीकी भी चिकित्सा नहीं करे क्योंकि ऐसे रोगियोंकी चिकित्सा करनेसे वैद्य अत्यन्त अपवादको प्राप्त होता है, इनके सिवा अन्यान्य सर्व प्रकारके रोगियोंकी विधिपूर्वक चिकित्सा करे. वैद्य लोभसे निर्धन पुरुषोंसे धन लेकर चिकित्साके पुण्यको वेंचे नहीं किन्तु जो मनुष्य समर्थ और धनवान् हों उनसे आजीविकाके लिये धन लेने की इच्छा करे ११४ ॥ ११५ ॥ ११६ ॥११७ ॥

चिकित्सितं शरीरं यो न निष्क्रीणाति दुर्म्मतिः । स यत्करोति सुकृतं तत्सर्वं भिषगश्नुते ॥ ११८ ॥

जो दुष्टबुद्धि मनुष्य, अपने शरीरकी चिकित्सा कराता है और वैद्यको उसका कुछ बदला नहीं देता तो उसका उस शरीरके द्वारा किया हुआ समस्त पुण्य वैद्यको प्राप्त होजाता है ॥ ११८ ॥

क्वचिदर्थः क्वचिन्मैत्री क्वचिद्धर्म्मः क्वचिद्यशः । कर्म्माभ्यासः क्वचिच्चैव चिकित्सा नास्ति निष्फला ॥ ११९ ॥

चिकित्सा करनेसे कहीं धनकी प्राप्ति होती है, कहीं मित्रता होती है, कहीं धर्म्म, कहीं यश और कहीं क्रिया करनेका अभ्यास बढ़ता है; इसप्रकार चिकित्सा करना कहीं भी निष्फल नहीं होता ११९॥

कुचैलः कर्कशः स्तब्धो ग्रामीणः स्वयमागतः । शस्यते यश्च वैद्यो न धन्वन्तरिसमो यदि ॥ १२० ॥

जो वैद्य मैले कुचैले वस्त्रवाला, अप्रिय वचन बोलनेवाला, मूर्ख, व्यवहारमें अकुशल, ग्रामका रहनेवाला, विना बुलाये अपने आप आयाहुआ धन्वंतरिके समान हो तो भी उसका आदर नहीं होता॥१२०॥

स वैद्यो नहि योऽसाध्यानारभेत चिकित्सितुम् । अवैद्यजीविकासिद्धिः स्याद्घुणाक्षरवत्क्वचित् ॥१२१॥

जो असाध्यरोगकी चिकित्सा करना आरम्भ करता है वह वैद्य नहीं अर्थात् कुवैद्य है। ऐसे कुवैद्यकी जीविकासिद्धि कदाचित् घुणाक्षरन्यायके समान होजाती है ॥ १२१ ॥

माषान्नं विड्ग्रहे मेहे यवमद्यं मदात्यये । अबुद्धिपूर्वमप्याशु सेवितं भेषजं भवेत् ॥ १२२ ॥

जैसे कि मूर्ख मनुष्य भी शीघ्र ही विड्ग्रह और प्रमेहरोगमें प्रथम माषान्न और मदात्यय रोगमें जौकी मदिरा सेवन करे तो औषधि होजाती है ॥ १२२ ॥

आयुर्वेदोदितां युक्तिं कुर्वन्ति स्वहिताय ये। पुण्यायुर्बुद्धिसंयुक्ता नीरोगास्तु भवन्ति ते ॥ १२३ ॥

जो मनुष्य अपने हितके लिये आयुर्वेदोक्त युक्तिको पालन करते हैं वे पुण्य, आयु और बुद्धियुक्त होकर सदैव नीरोग रहते हैं ॥ १२३ ॥

आयुर्वेदलक्षण।

आयुर्हिताहितं व्याधेर्निदानं शमनं तथा। विद्यते यत्र विद्वद्भिः स चायुर्वेद उच्यते ॥ १२४ ॥

जिसमें आयुका हित, अहित, रोगका निदान और उसके शमनके उपाय विद्यमान हों उस शास्त्रको विद्वान् आयुर्वेद कहते हैं ॥ १२४ ॥

रोगगणना।

ज्वरोऽतिसारो ग्रहणी चार्शोऽजीर्णं विषूचिका। अलसः सविलम्बी च कृमिरुक्पाण्डुकामलाः ॥ १२५ ॥ हलीमकं रक्तपित्तं राजयक्ष्मा उरःक्षतम्। कासो हिक्का तथा श्वासः स्वरभेदस्त्वरोचकः ॥ १२६ ॥ छर्दिस्तृष्णा च मूर्च्छा च रोगाः पानात्ययादयः। दाहाख्यस्त्वपरोन्मादश्चापस्मारोऽनिलामयः ॥१२७॥ वातरक्तमुरुस्तम्भ आमवातोऽथ शूलरुक्। पङ्क्तिजं शूलमानाह उदावर्त्तोऽथ गुल्मरुक् ॥ १२८ ॥ हृद्रोगो मूत्रकृच्छ्रं च मूत्राघातं तथाऽश्मरी। प्रमेहो मधुमेहश्च पिटिकाश्च प्रमेहजाः ॥ १२९ ॥ मेदोदोषोदरं शोथो वृद्धिश्च गलगण्डकः। गण्डमाला ततो ग्रन्थिरर्बुदं श्लीपदं ततः॥१३०॥ विद्रधिव्रणशोफौ च द्वौ व्रणौ भग्ननाडिकौ। भगन्दरोपदंशौ च शूकदोषस्त्वगामयः ॥१३१॥ शीतपित्तमुदर्दश्च कोठश्चैवाम्लपैत्तिकः। विसर्पश्च सविस्फोटः सरोमन्ती मसूरिका ॥१३२॥ क्षुद्रास्यकर्णनासाक्षिशिरःस्त्रीबालकामयाः। विषं चेत्ययमेवात्र ज्ञेय उद्देशसंग्रहः ॥ १३३ ॥

(सब रोगोंकी गणना लिखते हैंः—)

ज्वर, अतिसार, संग्रहणी, अर्श (बवासीर), अजीर्ण, विषूचिका, अलस, विलम्बिका, कृमिरोग, पांडुरोग, कामला, हलीमक, रक्तपित्त, राजयक्ष्मा, उरःक्षत, कास (खाँसी), हिक्कारोग, श्वास, स्वरभेद, अरोचक, छर्दि (वमन), तृषारोग, मूर्च्छारोग, पानात्ययादिरोग, दाहरोग, उन्मादरोग, अपस्मार, वातरोग, वातरक्त, ऊरुस्तम्भ, आमवात, शूलरोग, पंक्तिशूल, आनाहरोग, उदावर्त, गुल्मरोग, हृदयरोग, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, अश्मरीरोग, प्रमेह, मधुमेह, प्रमेहपिटिका, मेदोरोग, उदररोग, शोथरोग, अंडवृद्धि, गलगण्डरोग, गण्डमाला, ग्रंथिरोग, अर्बुदरोग, श्लीपदरोग, विद्रधि, व्रणशोफ, व्रणरोग, नाडीव्रण, भग्नरोग, भगन्दर, उपदंशरोग, शूकदोष, कुष्ठादि त्वचाके रोग, शीतपित्त, उदर्द, कोठरोग, अम्लपित्त, विसर्परोग, रोमान्तिका, मसूरिका, क्षुद्ररोग, मुखरोग, कर्णरोग, नासारोग, नेत्ररोग, शिरोरोग, स्त्रीरोग, बालरोग, विषरोग ये रोग इस ग्रंथमें कहे जायँगे ॥१२५॥१२६॥१२७॥१२८॥१२९॥१३०॥१३१॥ ॥१३२॥१३३॥

इति निदानाधिकारः।

अथ ज्वराधिकारः।

ज्वरः समस्तरोगाणां यतो राजेति विश्रुतः। अतः प्रथमतस्तस्य प्रवक्ष्यामि चिकित्सितम् ॥ १३४ ॥

ज्वर सकल रोगोंका राजा है ऐसा सुना जाता है, इसकारण सबसे पहले ज्वरकी चिकित्सा कहता हूँ ॥ १३४ ॥

दक्षापमानसंक्रुद्धरुद्रनिःश्वाससम्भवः। ज्वरोऽष्टधा पृथग्द्वन्द्वः सङ्घातागन्तुजः स्मृतः ॥ १३५ ॥

ज्वर दक्षके अपमानसे क्रोधित हुए महादेवके श्वाससे उत्पन्न हुआ है और वह पृथक् (वातज, पित्तज, कफज), द्वन्द्वज-(वातपित्तज, कफपित्तज, वातकफज), त्रिदोषज-(सन्निपात जिसमें वात, पित्त, कफ तीनों मिले हुए हों) और आगन्तुज-(अभिघातादिजनित) इन भेदोंसे आठ प्रकारका है॥१३५॥

दुष्टाहारविहाराभ्यां दोषा ह्यामाशयाश्रयाः । बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निं ज्वरदाः स्यू रसानुगाः ॥ १३६ ॥

दुष्ट आहार और दुष्ट विहारके करनेसे वातादि दोष आमाशयमें स्थित होकर कोठेके अग्निकी गरमीको बाहर निकालकर रसमें प्राप्त होकर ज्वरको उत्पन्न करते हैं ॥ १३६ ॥

श्रमोऽरतिर्विवर्णत्वं वैरस्यं नयनप्लवः। इच्छाद्वेषौ मुहुश्चापि शीतवातातपादिषु ॥१३७॥ जृम्भाङ्गमर्दो गुरुता रोमहर्षोऽरुचिस्तमः। अप्रहर्षश्च शीतं च भवत्युत्पत्स्यति ज्वरे ॥ १३८ ॥

विना परिश्रम किये श्रम मालूम होना, कहीं चित्त न लगना, शरीरका रंग बदल जाय, मुखमें नीरसता, नेत्रोंमें जल भर आना, शीतवायु और धूपमें वारंवार इच्छा और वारंवार अप्रीतिका होना, जम्भाइयोंका आना, अंगोंका टूटना, शरीरमें भारीपन, रोमांच होना, भोजनमें अरुचि, अंधकारदर्शन, हर्षका नाश और शीतका लगना ये ज्वरके पूर्वरूप हैं अर्थात् ज्वरके पहिले ये लक्षण होते हैं ॥ १३७॥१३८॥

सामान्यतो विशेषात्तु जृम्भात्यर्थं समीरणात् । पित्तान्नयनयोर्दाहः कफादन्नारुचिस्तथा ॥ १३९ ॥

ये सामान्य पूर्व लक्षण कहे, अब कुछ विशेष कहते हैं । वातज्वरमें प्रथम जम्भाई अधिक आती हैं, पित्तज्वरमें नेत्रोंमें दाह होता है और कफज्वरमें अन्नसे अरुचि होती है ॥ १३९ ॥

सर्वलिङ्गसमावायः सर्वदोषप्रकोपजे । रूपैरन्यतराभ्यां च संसृष्टैर्द्वन्द्वजं विदुः ॥ १४० ॥

त्रिदोषज ज्वरमें तीनों दोषोंके लक्षण होते हैं और द्वन्द्वजज्वरके पूर्वमें अन्यान्य दोदोषोंके मिले हुए लक्षण होते हैं ॥ १४० ॥

ज्वरस्य पूर्वरूपेषु वर्त्तमानेषु बुद्धिमान्। पाययेत्सर्पिरेवार्त्तं ततः स लभते सुखम् ॥ १४१ ॥ विधिर्मारुतजेष्वेष पैत्तिकेषु विरेचनम् । मृदुप्रच्छर्दनं तद्वत्कफजेषु विधीयते । सर्वं त्रिदोषजेषूक्तं यथादोषं विकल्पयेत् ॥ १४२ ॥ स्वेदावरोधः सन्तापः सर्वाङ्गग्रहणं तथा । युगपद्यत्र रोगे तु स ज्वरो व्यपदिश्यते ॥ १४३ ॥ दोषैः सर्वैर्गवेहुधा समुद्भ्रान्तैर्विमार्गगैः । विक्षिप्यमानोऽन्तरग्निर्भवत्याशु बहिश्चरः॥१४४ रुणद्धि चाप्यपां धातुं यस्मात्तस्माज्ज्वरातुरः । भवत्यत्युष्णगात्रश्च स्विद्यति न च सर्वशः ॥ १४५ ॥ परिषेकान्प्रदेहांश्च स्नेहान्संशोधनानि च । दिवास्वप्नं व्यवायञ्च व्यायामं शिशिरं जलम् । क्रोधप्रवातभोज्यांश्च वर्जयेत्तरुणज्वरी ॥ १४६ ॥

अब ज्वरके पर्वरूपकी चिकित्सा कहते हैं । वातज्वरके पूर्वरूपमें रोगीको घी पिलावे तो उसको सुख प्राप्त होता है । पित्तज्वरके पूर्वरूपमें मृदु विरेचन दे और कफके पूर्वरूपमें मृदु वमन करावे । त्रिदोष ज्वरके पूर्वरूपमें दोषोंकी कल्पना कर यथादोषानुसार कर्म करे । ज्वरके लक्षण—पसीनेका न आना, सन्तापका होना और सम्पूर्ण अंगोंमें पीडाका होना ये सब लक्षण जिसमें एक साथ हों उसको ज्वर कहते हैं । वातादिदोष वेगवान् हो इधर उधर फैलकर एवं तिर्यग्गामी होकर भीतरी अग्निको बाहर निकाल देते हैं। उस अग्निके निकलनेसे पसीना रुक जाता है इसकारण सब शरीर गरम हो जाता है तब उसको ज्वरातुर कहते हैं। ज्वरमें परिषेक(जलादिकसे शरीरको

सींचना) चन्दनादिका शरीरमें लेप करना, तैल घृतादिक स्निग्ध पदार्थोंका सेवन, वमन, विरेचनादि कर्म्म, दिनमें सोना, मैथुन करना, दंड कसरत आदि करना, शीतल जलका सेवन, क्रोध, वायुका सेवन और भोजन ये सब, नवीन ज्वरवाला मनुष्य त्याग देवे ॥१४१ ॥ १४२ ॥ १४३ ॥ १४४ ॥ १४५॥ १४६ ॥

शोथश्छर्दिर्मदो मूर्च्छा तृष्णा भ्रममरोचकः । प्राप्नोत्युपद्रवानेतान्परिषेकादिसेवनात् ॥ १४७ ॥

यदि नवीन ज्वरवाला उपरोक्त परिषेकादि सेवन करे तो उसके शोथ (सूजन), वमन, मद, मूर्च्छा, तृषा, भ्रम और अरुचि आदि उपद्रव उत्पन्न होते हैं ॥ १४७ ॥

ज्वरितं ज्वरमुक्तं वा भोजयेल्लघुभोजनम् । श्लेष्मक्षये प्रवृद्धोष्मा बलवाननलस्तदा । वेगापायेऽन्यथा तद्धि ज्वरवेगाभिवर्द्धनम् ॥ १४८ ॥

जो ज्वरसे पीडित हो अथवा जो ज्वरसे मुक्त हो गया हो उसको अवश्य हलका भोजन कराना चाहिये। क्योंकि कफके क्षय होनेसे गरमी बढजाती है और उससे जठराग्नि प्रबल हो जाती है इसलिये वेगके हलके होने पर पथ्य देना चाहिए नहीं तो दोष वेगको प्राप्त होकर ज्वरके वेगको बढा देते हैं ॥ १४८ ॥

ज्वरितो हितमश्नीयाद्यद्यप्यस्याऽरुचिर्भवेत् । अन्नकाले ह्यभुञ्जानः क्षीयते म्रियतेऽथवा ॥ १४९ ॥

अतएव ज्वरवाले मनुष्यको यदि अरुचि भी हो तो भी हितकारक पदार्थोंको भक्षण करावे, क्योंकि अन्न देनेके समय भोजन नहीं करनेसे ज्वररोगी क्षीण हो जाता है अथवा मर जाता है ॥१४९॥

गुर्वभिष्यन्द्यकाले च ज्वरी नाद्यात्कथञ्चन । न तु तस्याहितं भुक्तमायुषे वा सुखाय च १५० ॥

ज्वररोगीको भारी और अभिष्यन्दी पदार्थोंका भोजन तथा बिना समय कदापि भोजन नहीं खाना चाहिये, क्योंकि वह उसकी आयु और सुखके लिए हितकारक नहीं होता ॥ १५० ॥

आनद्धः स्तिमितैर्दोषैर्यावन्तं कालमातुरः । तावत्कालन्तु लङ्घनमश्नीयात्तु विरिक्तवत् ॥ १५१ ॥

जबतक ज्वररोगी दोषोंसे घिरा रहे तबतक उसको हलका अन्न विरिक्त (जुलाब लिए हुए) के समान देना उचित है ॥ १५१ ॥

सातत्यात्स्वाद्यभावाच्च पथ्यं द्वेष्यत्वमागतम् । कल्पनाविधिभिस्तैस्तैः प्रियत्वं गमयेत्पुनः ॥ १५२ ॥

बहुत दिनोंतक निरंतर सेवन करने और स्वादिष्ट न होनेसे पथ्य द्वेषभावको प्राप्त हो जाता है-अर्थात् उससे अरुचि हो जाती है तब उसको वैद्य अनेक प्रकारकी कल्पनाओंसे सुन्दर करें ॥१५२॥

अरुचौ मातुलुङ्गस्य केसरं साज्यसैन्धवम् । धात्रीद्राक्षासितानां वा कल्कमास्येन धारयेत् ॥ १५३ ॥

इति तरुणज्वरविधिः ।

जो ज्वरमें अरुचि हो तो बिजौरे नींबूकी केशरको घी और सैंधे नोनमें मिलाकर अथवा आमले, दाख और मिश्री इनके कल्कको मुखमें धारण करे ॥ १५३ ॥

विनापि भेषजैर्व्याधिः पथ्यादेव निवर्त्तते । न तु पथ्यविहीनस्य भेषजानां शतैरपि ॥ १५४ ॥

केवल पथ्य सेवन करनेसे ही बिना औषधके भी रोग नष्ट हो जाते हैं किन्तु कुपथ्य सेवन करनेवाले मनुष्यके सैकडों औषधियोंके सेवन करनेसे भी आरोग्य नहीं होते ॥ १५४ ॥

शालयो रक्तशाल्याद्याः शस्यन्ते षष्टिकादयः । यवाग्वोदनलाजार्थे ज्वरितानां ज्वरापहाः ॥ १५५ ॥

शालिधान, लाल शालिधान, षष्टिकधान (साठी) ये सब धान ओदन (भात), खीलें और यवागू बनानेके लिये लेवे । ओदन (भात) और खीलेंकी यवागू ये सब ज्वररोगियोंके ज्वरको हरनेवाले हैं ॥ १५५ ॥

मुद्गान्मसूरांश्चणकान्कुलित्थान्समकुष्ठकान् । यूषार्थे यूषसात्म्यानां ज्वरितानां प्रकल्पयेत् ॥ १५६ ॥

मूँग, मसूर, चने, कुलथी और मोठ ये यूपके लिए देने चाहिए । इनमेंसे जौनसा यूष । ज्वररोगीको सात्म्य (माफिक) होवे वही उसको देना चाहिए॥ १५६

पटोलपत्रं सफलं कुलकं कारवेल्लकम् । कर्कोटकं कठिल्लं च विद्याच्छाकं ज्वरे हितम् ॥ १५७ ॥

पटोलपत्र, पटोलफल, मीठे परवल, करेला, ककोडा और पुनर्नवा इनका शाक ज्वरमें हितकारी है ॥ १५७ ॥

लावान्कपिञ्जलानेणांश्चकोरानुपचक्रकान् । सकुरङ्गान्कालपुच्छान्हरिणान्पृषतान्छशान् । प्रदद्यान्मांससात्म्यानां ज्वरितानां ज्वरापहान्॥१५८॥

लवा, कपिंजल (तीतर),एण (काला हिरन), चकोर, चकवा, कुरंग, कालपुच्छ, पृषतमृग और शशक (खरगोस) इन जीवोंका मांस (मांस भोजी) ज्वररोगीको देना चाहिये । परन्तु जिस रोगीको जिस जीवका मांस सात्म्य (माफिक) हो वही उसको देना चाहिये,ये ज्वरको हरनेवाले हैं,जो मांस नहीं खाते उनके लिये यह विधि नहीं है ॥१५८॥

न कषायं प्रशंसन्ति नराणां तरुणज्वरे । कषायेनाकुलीभूता दोषा जेतुं सुदुस्तराः ॥ १५९ ॥

नवीन ज्वरवाले रोगियोंको क्वाथ नहीं देना चाहिये क्योंकि क्वाथसे दोष आकुलित हो जाते हैं फिर उनको जीतना अत्यन्त दुस्तर हो जाता है१५९

दोषा वृद्धाः कषायेण स्तम्भितास्तरुणज्वरे । स्तभ्यन्ते न विपच्यन्ते कुर्वन्ति विषमज्वरम् ॥ १६० ॥

नवीन ज्वरमें क्काथके देनेसे दोष वृद्धिको प्राप्त होकर स्तम्भितहो जाते हैं, स्तम्भित दोष न पचते और न शमन होते हैं किन्तु विषम ज्वरको उत्पन्न करते हैं ॥ १६० ॥

न च्यवन्ते न पच्यन्ते कषायैस्तम्भिता मलाः । तिर्यग्विमार्गगाः स्थित्वा घोरं कुर्युर्नवज्वरम् ॥ १६१ ॥

क्वाथसे स्तम्भित हुए दोप न निकलते हैं और न पचते हैं किन्तु तिर्यग्गामी होकर घोर नवीन ज्वर को उत्पन्न करते हैं ॥ १६१ ॥

आमाशयस्थो हत्वाग्निं सामो मार्गान् पिधापयन् । विदधाति ज्वरं घोरं तस्माल्लङ्घनमादिशेत् ॥ १६२ ॥

वातादिदोष आमाशयमें स्थित होकर आमके साथ मिलकर जठराग्निको नष्ट कर शरीरके स्रोत को रोक करके ज्वरको उत्पन्न करते हैं इसकारण आमको पचनेके लिये, जठराग्निको दीपन करनेके लिये और स्रोतोंको शुद्ध करनेके लिये ज्वरमें अवश्य लंघन कराने चाहिये ॥ १६२ ॥

लङ्घनेन क्षयं नीते दोषे संधुक्षितेऽनले।विज्वरत्वं लघुत्वं च क्षुच्चैवास्योपजायते ॥ १६३ ॥

लंघन करनेसे वातादि दोप क्षय होकर जठराग्नि दीपन होती है तथा ज्वरकी हीनता, लघुता और क्षुधा उत्पन्न होती है ॥ १६३ ॥

शरीरलाघवकरं यद्द्रव्यं कर्म्म वा पुनः । तल्लङ्घनमिति ज्ञेयं बृंहणं तु पृथग्विधम् ॥ १६४ ॥

जो द्रव्य या कर्म्म शरीरमें लघुता उत्पन्न करे उसको लंघन कहते हैं और बृंहण इसके पृथक् अर्थात् विपरीत है ॥ १६४ ॥

बलाविरोधेनाथैनं लङ्घनेनोपपादयेत् । बलाधिष्ठानमारोग्यं यदर्थो हि क्रियाक्रमः ॥ १६५ ॥

वैद्यको चाहिये कि, इस प्रकार लंघन करावे जिससे रोगीके शरीरका बल नष्ट न हो, क्योंकि बलके अधीन आरोग्य है, जिस आरोग्यके लिये यह सब क्रियाकल्प कहा गया है ॥ १६५ ॥

तद्धि मारुतक्षुत्तृष्णामुखशोषभ्रमान्विते।कार्यं न बाले वृद्धे वा गर्भिण्यां

न च दुर्बले। न तथाध्वश्रमक्रोधकामशोकभवे ज्वरे ॥ १६६ ॥

वह लंघन--वातरोगी, तृषासे पीडित, क्षुधासे पीडित, मुखशोषी, भ्रमरोग, बालक, वृद्ध, गर्भिणी स्त्री, दुर्बल मनुष्य और मार्गके चलनेसे थके हुए मनुष्यको तथा श्रम, क्रोध, काम और शोकसे उत्पन्न हुए ज्वरमें नहीं कराने चाहिए ॥ १६६ ॥

सद्यो भुक्तस्य वा जाते ज्वरे सामे विशेषतः। वमनं वमनार्हस्य पथ्यमित्याह वाग्भटः॥ १६७ ॥

वाग्भटने कहा है कि भोजन करनेके पश्चात् तत्काल ज्वरके आ जाने पर विशेष कर आम ज्वरके होनेपर वमन कराने योग्य रोगीको वमन कराना हितकर है ॥ १६७ ॥

उत्तम लंघन होनेके लक्षण।

वातमूत्रपुरीषाणां विसर्गे गात्रलाघवे। हृदयोद्गारकण्ठास्यशुद्धौ तन्द्राक्लमे गते ॥ १६८ ॥ स्वेदे जाते रुचौ चैव क्षुत्पिपासासहोदये। कृतं लङ्घनमादेश्यं निर्व्यथे चान्तरात्मनि॥१६९॥

अपानवायु, मूत्र और मलका यथानियमसे निर्गत होना, देहमें हलकापन, हृदय, डकार, कंठ और मुख इनका शुद्ध होना, तन्द्रा और ग्लानिका न होना, पसीनोंका आना, रुचिका उत्पन्न होना, क्षुधा और तृषाका एक साथ लगना और आत्मामें किसी प्रकारकी पीड़ा न होना, ये सब लक्षण उत्तम लंघन होनेवाले रोगीके हैं ॥ १६८ ॥ १६९ ॥

अत्यंत लंघन होनेके दोष।

पर्वभेदोऽङ्गमर्दश्च कासः शोषो मुखस्य च। क्षुत्प्रणाशो रुचिस्तृष्णा दौर्बल्यं श्रोत्रनेत्रयोः ॥ १७० ॥ मनसः संभ्रमोऽभीक्ष्णमूर्ध्ववातः क्लमो हृदि। देहाग्निबलहानिश्च लङ्घनेऽतिकृते भवेत् ॥ १७१ ॥

अत्यन्त लंघन करनेके दोष--शरीरकी सब सन्धियोंमें पीडा, शरीरमें हडफूटन, खाँसी, मुखशोष, क्षुधाका नाश, अरुचि और तृषा, कान और नेत्रोंमें दुर्बलता, मनमें बारम्बार भ्रमका होना, सदैव ऊर्ध्ववातके उपद्रवोंका होना, हृदयमें ग्लानिका होना, देह, जठराग्नि और बलका नाश होना; ये सब लक्षण अत्यन्त लंघन करनेसे होते हैं ॥ १७० ॥ १७१ ॥

ज्वरमें जलपानविधि।

तृष्यतः सलिलं चोष्णं दद्याद्वातकफज्वरे। तद्धि मार्दवकृद्दोषस्रोतसां शीतमन्यथा॥ १७२ ॥

वात कफज्वरमें तृषा लगनेपर रोगीको उष्ण जल देना चाहिये, गरम जल दोषोंको शमन और शरीरके स्रोतोंको मृदु करनेवाला है। शीतल जल इससे विपरीत गुणोंवाला है ॥१७२॥

पित्तमद्यविषोत्थेषु पित्तकैः शृतशीतलम्। मुस्तापर्पटकोशीरचन्दनोदीच्यनागरैः। शृतं शीतं जलं दद्यातृड्दाहज्वरशान्तये॥ १७३ ॥

पित्तरोग, मद्यविकार और विषके उत्पन्न हुए रोगोंमें कडवी औषधियोंके द्वारा जलको औटाकर पश्चात् शीतल करके पीनेको देवे। नागरमोथा, पित्तपापडा, खस, लालचन्दन, सुगन्धबाला और सोंठ इनको जलमें औटावे, जब औट चुके तब खूब शीतल करके छान लेवे. यह जल तृषा, दाह और ज्वरको शांत करनेके लिये देवे ॥ १७३ ॥

पादशेषः कषायः स्यात् प्रसाध्यः षोडशेऽम्भसि। कथितोऽन्तः षडङ्गादिर्न निषिद्धो नवज्वरे॥ १७४ ॥

जिसमें क्वाथ द्रव्य सोलहगुने जलमें पकाकर चतुर्थांश शेष रक्खे जाँय उसको कषाय कहते हैं। इसकारण षडङ्गादि जल तरुणज्वरमें निषिद्ध नहीं है ॥ १७४ ॥

ज्वरमें पेया देनेकी विधि।

लङ्घिताय हिता पेया यथास्वं पाचनैः कृता। दीपनी पाचनी लघ्वी ज्वरार्त्तानां ज्वरापहा ॥ १७५ ॥

लंघन करनेवाले रोगीके लिये पेया अत्यन्त हितकारी है, वह यथादोषानुसार पाचन द्रव्योंसे बनाई हुई दीपन, पाचन, हलकी और ज्वररोगीके ज्वरको हरनेवाली है ॥१७५॥

लघुना पञ्चमूलेन पिप्पल्या सह धान्यया । महत्या पञ्चमूल्याथ व्याघ्री दुस्पर्शगोक्षुरैः॥ १७६ ॥ संसिद्धं भिषगाहारं प्रयुञ्जीत तथाक्रमम् । वातपित्ते श्लेष्मपित्ते कफवाते त्रिदोषजे ॥१७७॥

लघुपंचमूल-- (शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, छोटी कटेरी, बडी कटेरी और गोखरू) के द्वारा पेया बनाकर वातपित्तज्वरमें देवे। पीपल और धनियेके द्वारा बनाई पेया कफपित्तज्वरमें हितकारी है। बृहत्पंचमूल--(बेल, श्योनाक, कुम्भेर, पाढर, अरणी) के द्वारा सिद्ध की हुई पेया कफवातज्वरमें देवे कटेरी, जवासा और गोखुरू इनके काथके द्वारा सिद्ध कियेहुए अन्नको त्रिदोषज्वरमें देवे ॥ १७६ ॥ ॥ १७७ ॥

वाते वा सकफे पित्ते सामे वा तरुणज्वरे । आद्यमण्डं प्रशंसन्ति पटोलमगधान्वितम् ॥ १७८ ॥

वातज्वर, कफज्वर अथवा पित्तज्वर, आमज्वर, किंवा तरुणज्वरमें प्रथम परवल और पीपलके द्वारा सिद्ध किया हुआ मंड देना अत्यन्त हितकारी है ॥ १७८ ॥

पेयां वा रक्तशालीनां बस्तिपार्श्वशिरोरुजि । श्वदंष्ट्राकण्टकारिभ्यां सिद्धां ज्वरहरीं पिबेत् ॥ १७९ ॥

लाल शालिधानाकी पेयाको वस्ति, पार्श्वरोग और शिरोरोगमें देवे । गोखरू और कटेरीके द्वारा सिद्ध की हुई पेया ज्वरमें देवे ॥ १७९ ॥

विबद्धवर्चाः सयवां पिप्पल्यामलकैः शृताम् । सर्पिष्मतीं पिबेत्पेयां ज्वरदोषानुलोमिनीम् ॥ १८० ॥

मलबद्धतामें--जौ, पीपल और आमलोंके द्वारा सिद्ध की हुई पेया पान करे। ज्वर और वातादि दोषोंको अनुलोमन करनेके लिये पेयामें घी मिलाकर पीवे ॥ १८० ॥

कासे श्वासे च हिक्कायां पञ्चमूलीशृतां पिबेत् ॥ १८१ ॥

खाँसी, श्वास और हिकारोगमें पंचमूलके द्वारा सिद्ध की हुई पेया पीवे ॥ १८१ ॥

बलावृक्षाम्लकालाम्लकलशीधावनीशृताम् । अस्वेदनिद्रातृष्णार्त्तः पिबेत्पेयां सशर्कराम् ॥ १८२ ॥

खिरैटी, इमली, बेर, आमले, पृश्निपर्णी, शालिपर्णी इनकी पेया बनाकर मिश्री मिलाकर पीनेसे पसीनेका न आना, निद्रा और तृषाकी पीडा दूर होती है ॥ १८२ ॥

क्लिन्नां यवागूं मन्दाग्निपिपासार्त्तान्न पाययेत् । मदात्यये मद्यनित्ये ग्रीष्मे पित्तकफोत्थिते । ऊर्ध्वगे रक्तपित्ते च यवागूर्न हिता ज्वरे ॥ १८३ ॥

मंदाग्नि और तृषातुर रोगीको यवागू नहीं देनी चाहिये तथा मदात्ययरोगी, सदैव मदिरा पीनेवाले मनुष्यको ग्रीष्मऋतु, पित्तकफोद्भवरोग, ऊर्ध्वगत रक्तपित्तरोग और ज्वररोगमें यवागू नहीं देनी चाहिये ॥ १८३ ॥

तत्र तर्पणमेवाग्रे देयं स्याल्लाजसक्तुभिः । ज्वरापहैः फलरसैर्युक्तं समधुशर्करैः ॥ १८४ ॥

ज्वरमें प्रथम खीलोंके सत्तुओंके साथ ज्वरनाशक फलोंका रस, शहद और मिश्री मिलाकर तर्पण दे ॥ १८४ ॥

स्याद्धितः साधितो यूषस्त्वष्टादशगुणे जले । शृतं पञ्चगुणे भक्तं विलेपं च चतुर्गुणे ॥ १८५॥ क्वाथ्यद्रव्याञ्जलिं क्षुण्णं श्रपयित्वा जलाढके । अर्धशृतेन तेनाथ यवाग्वाद्येव कल्पयेत् ॥ १८६ ॥

अठारह गुने जलमें सिद्ध किया हुआ यूष हितकारी है तथा भातको पाँचगुने जलमें सिद्ध करना चाहिये और विलेपी चौगुने जलमें सिद्ध करना चाहिये। काथ द्रव्य चार पल लेकर खूब कूटकर एक आढक जलमें पकावे, जब आधा भाग जल बाकी रह जाय तब उसकी यवागू कल्पना करे ॥ १८५ ॥ १८६ ॥

वृद्धवैद्याः पलं द्रव्यं ग्राहयन्त्याढके जले । भेषजस्यातिबाहुल्यात् कदाचिदरुचिर्भवेत् ॥ १८७ ॥

वृद्ध वैद्य एक पल द्रव्यको लेकर एक आढक जलमें पकाते हैं। कदाचित् औषधिकी बाहुल्यतासे अरुचि होजावे तो- ॥ १८७ ॥

तदप्सु शृतशीतासु षडङ्गादि प्रयुज्यते । कर्षमात्रं ततो द्रव्यं साधयेत्प्रास्थिकेऽम्भसि । अर्धशृतं प्रयोक्तव्यं पानपेयादिसंविधौ ॥ १८८ ॥

षडंगादिके द्वारा औटाकर स्वयं शीतल किया हुआ जल पीनेको देवे । एक कर्ष औषधि लेकर एक प्रस्थ जलमें पकावे, जब आधा जल बाकी रह जाय तब उसको पान पेयादिके काममें लावे ॥ १८८ ॥

कर्षार्धं पिप्पलीशुण्ठ्योः कल्कद्रव्यस्य वा पलम् । विनीय पाचयेद्युक्त्या वारिप्रस्थेन चापरान् ॥ १८९ ॥

पीपल और सोंठ आधा २ कर्ष और कल्क द्रव्य एक पल लेकर विधिपूर्वक एक प्रस्थजलमें पकावे ॥ १८९ ॥

यूषांश्च रसकांश्चैव कल्केनानेन साधयेत् । बिल्वप्रमाणो घृततैलभृष्टो यूषो रसो वाप्युपकल्पनीयः ॥ कषायपानपथ्यान्नैर्द्वादशाहेऽतिलङ्घिते । सर्पिर्दद्यात्कफे क्षीणे वातपित्तोत्तरे ज्वरे ॥ १९० ॥

फिर इस कल्कके साथ यूष और रसादि सब सिद्ध करे । यूष और रसादिको एक पल तेल अथवा घृतादिसे भूनना चाहिये, बारह दिन लंघन करनेके पश्चात् वातपित्तज्वरमें कफके क्षीण होनेपर क्वाथ, पान और पथ्यादिके साथ घृत देना चाहिये ॥१९०॥

पक्वेषु दोषेष्वमृतं तद्विषोपममन्यथा । दशाहात्परतो दाने ज्वरोपद्रववृद्धिकृत् ॥ १९१ ॥

घृत दस दिनके पश्चात् ज्वरकी पक्क अवस्थामें देनेसे अमृतके समान गुण करता है, अपक्व अवस्थामें विषके समान अवगुणोंको उत्पन्न करता है तथा ज्वरके उपद्रवोंको बढाता है ॥ १९१ ॥

बहुदोषस्य मन्दाग्नेः सप्तरात्रात्परे ज्वरे । लङ्घनाम्बुयवागूभिर्यदा दोषो न पच्यते ॥ १९२ ॥

यदि बहुत दोषवाले और मंदाग्निवाले रोगीके सात दिनके पश्चात् ज्वर रहै और उसमें लंघन, उष्ण जल तथा यवागू आदिके देनेसे भी दोष न पचे तो- ॥ १९२ ॥

तदा तं मुखवैरस्यतृष्णारोचकनाशनैः । ज्वरघ्नैः पाचनैर्हृद्यैः कषायैः समुपाचरेत् ॥ १९३ ॥

उसको मुखकी विरसता, तृषा, अरुचि और ज्वरनाशक तथा हृदयको हितकारी ऐसे क्वाथरूपी जरन्न पाचन दे ॥ १९३ ॥

आमज्वरके लक्षण ।

लालाप्रसेकहल्लासहृदयाशुद्ध्यरोचकाः । निद्रालस्याविपाकास्यवैरस्यं गुरुगात्रता ॥ १९४ ॥ क्षुन्नाशो बहुमूत्रत्वं स्तब्धता बलवाञ्ज्वरः । आमज्वरस्य लिङ्गानि न दद्यात्तत्र भेषजम् ॥ १९५ ॥ भेषजं ह्यामदोषस्य भूयो वर्धयति ज्वरम् । शोधनं शमनीयं वा करोति विषमज्वरम् ॥१९६॥

आमज्वरके लक्षण-मुखसे लारका गिरना, उबकाईका आना, हृदयमें ग्लानि, अरुचि, निद्राका अधिक आना, आलस्य, दोषोंका अच्छे प्रकारसे नहीं पचना, मुखमें विरसता, शरीरमें भारीपन, क्षुधाका नाश, बहुत पेशाबका आना, देहमें जडता और ज्वरका बलवान् होना ये सब आमज्वरके लक्षण हैं । आमज्वरमें औषध नहीं देना चाहिये, आमज्वरमें औषध देनेसे ज्वरकी वृद्धि करती है तथा शोधन और शमन औषध देनेसे विषमज्वरको उत्पन्न करता है ॥१९४॥ ॥ १९५ ॥ १९६ ॥

आमज्वरमें औषध देनेसे हानि ।

दापयेद्दोषहरणं मोहादामज्वरे तु यः । स सुप्तं कृष्णसर्पं वा कराग्रेण परामृशेत् ॥ १९७ ॥

जो आमज्वरमें मोहके वश होकर दोषनाशक औषध देता है, वह सोते हुए काले साँपको अपने हाथसे छूकर जगाता है ॥ १९७ ॥

पच्यमान ज्वरके लक्षण ।

ज्वरवेगोऽधिका तृष्णा प्रलापश्वसनभ्रमाः। मलप्रवृत्तिरुत्क्लेशः पच्यमानस्य लक्षणम् ॥ १९८ ॥

ज्वरका वेग अधिक हो, तृषा, प्रलाप, श्वास, भ्रम, मलमूत्रादिकी प्रवृत्ति और उबकाई हो तो पच्यमान ज्वरका लक्षण जानना चाहिये ॥ १९८॥

निरामज्वरके लक्षण ।

क्षुत्क्षामता लघुत्वं च गात्राणां ज्वरमार्दवम् । दोषप्रवृत्तिरुत्साहो निरामज्वरलक्षणम्[1] ॥ १९९ ॥

अब निरामज्वरके लक्षण कहता हूँ--क्षुधाका लगना, शरीरमें लघुता, ज्वरका मंद होना, वातादि दोषोंकी प्रवृत्ति होना और उत्साह होना, ये निरामज्वरके लक्षण जानने ॥ १९९ ॥

ज्वरमें औषध देनेका समय ।

मृदौ ज्वरे लघौ देहे प्रचलेषु मलेषु च। पक्वं दोषं विजानीयाज्ज्वरे देयं तदौषधम् ॥ २०० ॥

जब ज्वर मंद होजाय, शरीर हलका होजाय,मल चलायमान होजाय तब दोषोंको पक्व जानकर औषध देवे ॥ २०० ॥

दोषप्रकृतिवैकृत्यादितेषां पक्वलक्षणम् । पक्वोऽप्यनिर्हृतो दोषो देहे तिष्ठन्महात्ययम् । विषमं वा ज्वरं कुर्य्याद्बलव्यापदमेव वा ॥ २०१ ॥

वात, पित्त और कफ इन तीनों दोषोंकी प्रकृतिकी विकृति हो जाय तब पक्वके लक्षण जानने । जो दोष पक्व होगया हो, परंतु शरीरमेंसे न निकाला गया हो तो वह शरीरमें रहता हुआ अत्यंत हानि करता है या तो विषमज्वरको उत्पन्न करता है अथवा बलका नाश करता है ॥ २०१ ॥

ज्वर पचनेकी अवधि ।

वातिकः सप्तरात्रेण दशरात्रेण पैत्तिकः । श्लैष्मिको द्वादशाहेन ज्वरः पाकं नियच्छति ॥ २०२ ॥

वातज्वर सात दिनमें, पित्तज्वर दस दिनमें और श्लैष्मिक ज्वर बारहै दिनमें पचता है ॥ २०२ ॥

पैत्तिके वा ज्वरे देयमल्पकालसमुत्थिते । अचिरज्वरितस्यापि भेषजं दोषपाकतः ॥ २०३ ॥

अल्पकालके उत्पन्न हुए पित्तज्वरमें दशवें दिन औषधि देनी चाहिये और जो वही पित्तज्वर बहुत कालका उत्पन्न हुआ हो तो दोषोंके पचनेपर औषधि देनी चाहिये ॥ २०३ ॥

पाययेदातुरं सामं पाचनं सप्तमेऽहनि । शमनेनाथवा दृष्ट्वा निरामं समुपाचरेत् ॥ २०४ ॥

आमज्वरवाले रोगीको वैद्य सातवें दिन पाचन औषधि देवे और निरामज्वरवाले रोगीको तत्काल शमनीय औषधि देवे ॥ २०४ ॥

पीताम्बुर्लङ्घितः क्षीणोऽजीर्णी भुक्तः पिपासितः । न पिबेदौषधं जन्तुः संशोधनमथेतरत् ॥ २०५ ॥

जिसने तत्काल जल पिया हो; जो लघन करनेसे क्षीण होगया हो, अजीर्ण रोगी, जिसने तत्काल भोजन किया हो और प्याससे व्याकुल ऐसे मनुष्योंको कदापि संशोधन (वमन; विरेचन) औषधि नहीं देवे ॥ २०५ ॥

वातज्वरके लक्षण ।

वेपथुर्विषमो वेगः कण्ठौष्ठपरिशोषणम् । निद्रानाशः क्षवस्तम्भो गात्राणां रौक्ष्यमेव च ॥ २०६ ॥ शिरोहृद्गात्ररुग्वक्त्रवैरस्यं गाढविट्कता । शूलाध्माने जृम्भणं च भवन्त्यनिलजे ज्वरे ॥ २०७ ॥

अब वातज्वरके लक्षण कहते हैं--कंप होना, ज्वरका विषम वेग, कंठ और होठोंका सूखना, निद्राका नाश, छींकका न आना, शरीरमें रूखापन, शिर, हृदय और शरीरमें पीड़ा, मुखमें विरसता, मलका गाढा होना, शूल और अफारेका होना तथा जम्भाईका आना ये सब लक्षण वातज्वरमें होते हैं ॥ २०६॥ २०७ ॥

[1] "दोषप्रवृत्तिरुत्साहो निरामज्वरलक्षम्" इत्यपि पाठः ।

वातज्वरपर साधारण पाचन।

नागरं देवकाष्ठं च धान्यकं बृहतीद्वयम्। दद्यात्पाचनकं पूर्वं ज्वरितानां ज्वरापहम् ॥ २०८ ॥

सोंठ, देवदारु, धनियाँ, कटेरी और बडी कटेरी इनका पाचन (काथ) बनाकर ज्वरवाले रोगीको देवे तो ज्वर दूर होता है ॥ २०८ ॥

हिमवद्विन्ध्यशैलाभ्यां प्रायो व्याप्ता वसुन्धरा। सौम्यासौम्यं हिमं हैममाग्नेयं वैन्ध्यमौषधम् ॥ २०९ ॥

हिमालय और विंध्याचल पर्वतसे प्रायः सम्पूर्ण पृथ्वी व्याप्त है। हिमालय पर्वतपर उत्पन्न होनेवाली औषधियाँ शीतल और सौम्य होती हैं एवं विंध्याचल पर्वतपर उत्पन्न होनेवाली औषधियाँ आग्नेय अर्थात् गरम और असौम्य होती हैं ॥ २०९ ॥

द्रव्याण्यभिनवान्येव प्रशस्तानि क्रियाविधौ। ऋते गुडघृतक्षौद्रधान्यकृष्णाविडङ्गतः ॥ २१० ॥

चिकित्सा-कर्ममें सम्पूर्ण द्रव्य नवीन ही लेने उत्तम होते हैं। परन्तु गुड, घी, शहद, पीपल और बायविडंग ये पुराने ही उत्तम होते हैं ॥ २१० ॥

यत्र येन प्रधानेन द्रव्यं समनुगृह्यते। तत्संज्ञकः स वै योगो भवतीति विनिश्चयः ॥ २११ ॥

जिस योगमें जो द्रव्य प्रधानरूपसे ग्रहण किया जाता है वह योग उसी द्रव्यके नामसे कहा जाता है ऐसा निश्चय है ॥ २११ ॥

मात्रोत्तमा पलेन स्यात् त्रिभिश्चाक्षैश्च मध्यमा। जघन्या स्यात्पलार्धेन स्नेहक्वाथौषधेषु च ॥ २१२ ॥

स्नेहकाथादि औषधियोंकी एक पलकी मात्रा उत्तम, तीन कर्षकी मात्रा मध्यम और दो कर्षकी मात्रा जघन्य होती है ॥ २१२ ॥

१ गुड़, घी, शहद कर्षणमें पुराने लेने और बृंहणमें नवीन लेने चाहिये ऐसा शिष्ट सम्मत है।

क्वाथद्रव्यपले वारि द्विरष्टगुणमिष्यते। चतुर्भागावशिष्टं तु पेयं पलचतुष्टयम् ॥ २१३ ॥

एक पल क्वाथकी औषधि लेकर सोलह गुने जलमें पकावे, जब चौथा भाग बाकी रह जाय तब उस चार पल क्वाथको पान करे ॥ २१३ ॥

दीप्तानलं महाकायं पाययेदञ्जलिं जलम्। अन्ये त्वर्द्धं परित्यज्य प्रसृतिं तु चिकित्सकाः ॥ २१४ ॥

जिन मनुष्योंकी जठराग्नि दीपन है, जिनका शरीर बडा और हृष्ट पुष्ट है उनको एक कुडव परिमाण क्वाथ देना चाहिये, परन्तु अन्य आचार्य कहते हैं कि उनको आधा कुडव परिमाण क्वाथ देना चाहिये ॥ २१४ ॥

क्वाथत्यागमनिच्छन्तस्त्वष्टभागावशेषितम्। पारम्पर्योपदेशेन वृद्धवैद्याः पलद्वयम् ॥ २१५ ॥

किन्तु अरुचि होनेके कारण प्राचीन वैद्य क्वाथके भागको पचाकर अष्टावशेष अर्थात् आठवाँ भाग बाकी रखते हैं और उस दोपल क्वाथको पिलाते हैं ॥ २१५ ॥

औषधप्राशनमंत्र।

ब्रह्मदक्षाश्विरुद्रेन्द्रभूचन्द्रार्कानिलादयः। ऋषयः सौषधिग्रामा भूतसङ्घाश्च पान्तु वः ॥ २१६ ॥

ब्रह्मा, दक्ष, अश्विनीकुमार, रुद्र, इन्द्र, पृथ्वी, चन्द्रमा, सूर्य, वायु आदिदेवता, ऋषि, सम्पूर्ण औषधियाँ और भूतोंके समूह ये सब तुम्हारी रक्षा करें ॥ २१६ ॥

रसायनमिवर्षीणां देवानाममृतं यथा। सुधेवोत्तमनागानां भैषज्यमिदमस्तु ते ॥ २१७ ॥

जिस प्रकार ऋषियोंको रसायन, देवताओंको अमृत और नागोंके लिये सुधा है उसीप्रकार यह औषधि तुम्हारे लिये गुणकारी हो ॥ २१७ ॥

२ "अनला" इत्यपि पाठः।

अथौषधप्राशनविधि ।

तत्रोपविश्य विश्रान्तः प्रसन्नवदनेक्षणः । औषधान्हेमरजतमृद्भाजनपरिस्थितान् ॥ २१८ ॥ पिबेत्प्रसन्नहृदयः पीत्वा पात्रमधोमुखम् । निःक्षिप्याचम्य सलिलं ताम्बूलाद्युपयोजयेत् ॥ २१९ ॥

प्रसन्न हैं मुख और नेत्र जिसके ऐसे रोगीको आरामसे बैठावे । पश्चात् औषधिको सोना चाँदी या मिट्टीके वर्त्तनमें करके देवे । रोगी उसको पीकर वर्त्तनको उलटा करके गेर देवे, फिर जल लेकर कुला करके मुखशुद्धिके लिये पान आदिको चावे ॥२१८॥ ॥२१९॥

वीर्य्याधिकं भवति भेषजमन्नहीनं हन्यात्तथामयमसंशयमाशु चैव । तद्बालवृद्धयुवतीमृदुभिश्च पीतं ग्लानिं परां समुपयाति बलक्षयं च ॥ २२० ॥

अन्नरहित औषधि अधिक वीर्य्यवाली होती है और वह निःसंदेह शीघ्र ही रोगको दूर करती है जो उसी अन्नरहित औषधिको बालक, वृद्ध, स्त्री और कोमल प्रकृतिवाले मनुष्य सेवन करें तो उनके ग्लानि उत्पन्न होकर बलका नाश होता है ॥२२०॥

अनुलोमोऽनिलः स्वास्थ्यं क्षुत्तृष्णा सुमनस्कता । लघुत्वमिन्द्रियोद्गारशुद्धिर्जीर्णौषधाकृतिः ॥ २२१ ॥

वायुका अनुलोमगतिसे संचार होना, शरीरमें स्वस्थता, क्षुधा और तृषाका लगना, मनकी प्रसन्नता, इन्द्रियोंमें हलकापन और शुद्ध डकारका आना, ये औषधि जीर्ण होजानेके लक्षण हैं ॥ २२१ ॥

औषधशेषे भुक्तं पीतश्च तथौषधं स शेषान्ने । न करोति गदोपशमं प्रकोपयत्यन्यरोगांश्च ॥ २२२ ॥

जो मनुष्य प्रथम औषधिको पीकर पश्चात् उसके ऊपर भोजन करता है अथवा जो प्रथम भोजन कर पश्चात् उसके ऊपर औषधि पीता है वह औषधि उसके रोगको शमन नहीं करती, किन्तु अन्यान्य रोगोंको उत्पन्न करती है ॥२२२॥

शीघ्रं विपाकमुपयाति बलं न हिंस्यादन्नावृतं न च मुहुर्वदनान्निरेति । प्राग्भुक्तसेवितमथौषधमेतदेव दद्याच्च वृद्धशिशुभीरुवराङ्गनाभ्यः ॥ २२३ ॥

परन्तु वृद्ध, बालक, भीरु (डरपोक) और स्त्री इनको भोजनसे पहिले सेवन कराई हुई औषधि शीघ्र पच जाती है और बलको भी नहीं घटाती, तथा अन्नसे आवृत (आच्छादित) होनेके कारण वारंवार मुखसे भी नहीं निकलती है इस कारण उक्त मनुष्योंको भोजनसे पहले ही औषधि सेवन करानी चाहिये ॥ २२३ ॥

वातज्वरचिकित्सा ।

बिल्वादेः पञ्चमूलस्य क्वाथः स्याद्वातिकज्वरे । पाचनं पिप्पलीमूलगुडूचीविश्वजोऽथवा ॥ २२४ ॥

बेल, श्योनाक, कुम्भेर, पाढर और अरणी इनका क्वाथ बनाकर अथवा पीपरामूल, गिलोय और सोंठ इनका पाचन बनाकर वातज्वरमें दे ॥ २२४ ॥

न शोधयति यद्दोषान्समान्नोदीरयत्यपि । समीकरोति विषमांस्तत्संशमनमुच्यते ॥ २२५ ॥

जो बिगडे दोषोंको शुद्ध नहीं करे तथा समान दोषोंको बढावे नहीं और विषम दोषोंको समान करे उसको संशमन औषधि कहते हैं ॥ २२५ ॥

किराताब्दामृतोदीच्यबृहतीद्वयगोक्षुरैः । सस्थिराकलशीविश्वैः क्वाथो वातज्वरापहः ॥ २२६ ॥

चिरायता, नागरमोथा, गिलोय, सुगन्धबाला, कटेरी, बड़ी कटेरी, गोखरू, पृश्निपर्णी, शालिपर्णी और सोंठ इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे वातज्वर दूर होता ह ॥ २२६ ॥

पञ्चमूलीबलारास्नाकुलत्थैः सह पौष्करैः । पर्वभेदं शिरःकम्पं निहन्ति पवनज्वरम् ॥ २२७ ॥

पंचमूलकी सब औषधियें, खिरैटी, रायसन, कुलथी और पोहकरमूल इनका क्वाथ बनाकर पान करनेसे सन्धियोंकी पीडा, शिरका काँपना और वातज्वर नष्ट होता है ॥२२७॥

पिप्पली शारिवा द्राक्षा बला चांशुमती तथा । एषोऽपि परमः सिद्धो वातज्वरविनाशनः ॥ २२८ ॥

पीपल, उसबा, दाख, खिरैटी और शालिपर्णी इनका काढा वातज्वरको अवश्य नष्ट करता है॥२२८॥

द्राक्षा गुडूची काश्मर्य्य त्रायमाणा सशारिवा । निष्क्वाथ्य सगुडं क्वाथं पिबेद्वातकृते ज्वरे ॥ २२९ ॥

दाख, गिलोय, कुम्भेर, धमार, बनपसा और उसबा इनके काढेमें गुड मिलाकर वातज्वरमें पीवे ॥२२९॥

दर्भं बलां गोक्षुरकं पिबेत्पादावशेषितम् । शर्कराघृतसंयुक्तं पिबेद्वातज्वरापहम् ॥ २३० ॥

डाभ, खिरैटी और गोखरू इनका चतुर्थांश शेष अर्थात् सेरभरका पावभर जल बाकी रखकर उसमें मिश्री और घी मिलाकर वातज्वरमें पानकरे॥२३०॥

शर्करादाडिमाभ्याञ्च द्राक्षादाडिमयोस्तथा । वैरस्ये धारयेत् कल्कं गण्डूषञ्च तथा हितम् ॥ २३१ ॥

मिश्री और अनार अथवा दाख और अनार इनका कल्क बनाकर मुखमें गण्डूष (कुल्ला) धारण करनेसे मुखकी विरसता दूर होती है ॥ २३१ ॥

आमं पचेदनिलजे हितो नित्यं रसौदनः । मुद्गामलकयूषस्तु गाढविट्के विधीयते ॥ २३२ ॥

वातज्वरमें नित्य रसोदनका सेवन करना आमको पचाता है । वातज्वरमें यदि मलविबन्ध होवे तो मूँग और आमलोंका यूष देवे ॥ २३२ ॥

इति वातज्वरचिकित्सा ।

पित्तज्वरचिकित्सा ।

पित्तज्वरके लक्षण ।

तीक्ष्णोष्णदाहतृण्मूर्च्छामदास्यकटुताभ्रमाः । प्रलापो घ्राणकण्ठौष्ठमुखपाकोऽक्षिसाश्रुता ॥ २३३ ॥ शीताभिलाषिता पीतमलनेत्रनखत्वचः । पित्तोद्गारातिसारौ च पैत्तिकज्वरलक्षणम् ॥ २३४ ॥

ज्वरका अत्यंत तीक्ष्ण और उष्ण वेग, दाह, तृषा, मूर्च्छा, मद, मुखमें कटुता, भ्रम, प्रलाप (बेतुकी बात) तथा नासिका, कंठ, होठ और मुखका पाक, नेत्रोंमें आँसुओंका भर आना, शीतकी अभिलाषा, मल, नेत्र, नख और त्वचा इनका पीला होना, पित्तकी डकार आना और पीला अतिसारका होना ये लक्षण पित्तज्वरके जानने चाहिए ॥२३३॥२३४ ॥

चिकित्सा ।

दाहवम्यर्दितं क्षामं निरन्नं तृष्णयान्वितम् । शर्करामधुसंयुक्तं पाययेल्लाजतर्पणम् ॥ २३५ ॥

दाह और वमनसे पीडित, कृश, क्षुधा और तृषासे पीडित ऐसे पित्तज्वरवालेको खीलोंके सत्तूमें मिश्री और सहत मिलाकर सेवन करावे ॥२३५ ॥

कलिङ्गं कटुफलं मुस्तं पाठा कटुकरोहिणी । पक्वं सशर्करं पीतं पाचनं पैत्तिके ज्वरे ॥ २३६ ॥

इन्द्रजौ, कायफल, नागरमोथा, पाढ और कुटकी इनके क्वाथमें मिश्री मिलाकर पान करे तो पित्तज्वर दूर हो ॥ २३६ ॥

शर्करामधुरो हन्ति कषायः पैत्तिकं ज्वरम् । चन्दनोशीरश्रीपर्णीपरूषकमधूकजः ॥ २३७ ॥

लालचन्दन, खस, कुम्भेर, फालसा और महुएकी छाल इनके काढेमें मिश्री मिलाकर पीनेसे पित्तज्वर दूर होता है ॥ २३७ ॥

गुडूचीपद्मरोध्राणां शारिवोत्पलयोस्तथा । शर्करामधुरो क्वाथः पीतः पित्तज्वरापहः ॥ २३८ ॥

गिलोय, पद्माख, लोध्र, अनंतमूल और कमल या कमलगट्टेकी गिरी इनके क्वाथमें मिश्री डालकर पान करनेसे पित्तज्वर नष्ट होता है ॥ २३८॥

दुरालभापर्पटकप्रियंगुभूनिम्बवासाकटुरोहिणीनाम्। जलं पिबेच्छर्करयावगाढं तृष्णास्रपित्तज्वरदाहयुक्तः२३९

धमासा, पित्तपापड़ा, मेंहदीके फूल, चिरायता, अडूसा और कुटकी इनके क्वाथमें खाँड मिलाकर पीवे तो तृषा, रक्तपित्त और दाहसहित ज्वर दूर होता है ॥ २३९ ॥

द्राक्षाभयापर्पटकाब्दतिक्ता क्वाथं सशम्याकफलं विदध्यात् । प्रलापमूर्च्छाभ्रमदाहमोहतृष्णान्विते पित्तभवे ज्वरे तु ॥ २४० ॥

दाख, हरड़, पित्तपापडा, नागरमोथा, कुटकी और अमलतासका गूदा इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे प्रलाप, मूर्च्छा, भ्रम, दाह, मोह, और तृषायुक्त पित्तज्वर दूर होता है ॥ २४० ॥

पटोलयवधान्याकमधुकं मधुसंयुतम् । हन्ति पित्तज्वरं दाहं तृष्णाञ्चैव प्रमाथिनीम् ॥ २४१ ॥

पटोलपत्र, इन्द्रजौ, धनियाँ और मुलैठी इनके क्वाथमें शहद मिलाकर पान करनेसे पित्तज्वर, दाह और तृषा दूर होती है ॥ २४१ ॥

पटोलयवनिष्क्वाथो मधुना मधुरीकृतः । तीव्रपित्तज्वरोन्मर्दी पानतृड्दाहनाशनः ॥ २४२ ॥

पटोपलत्र और इन्द्रजौ इनके क्वाथमें शहद डालकर पीवे तो तीव्र पित्तज्वर, तृषा और दाह दूर होती है ॥ २४२ ॥

गुडूच्यामलकैर्युक्तः केवलो वापि पर्पटः । पित्तज्वरं हरेत्तूर्णं दाहशोषभ्रमान्वितम् ॥ २४३ ॥

गिलोय और आमलेका अथवा केवल पित्तपापड़ेका ही क्वाथ पीनेसे दाह, मुखशोष और भ्रमयुक्त पित्तज्वर दूर होता है ॥ २४३ ॥

रोध्रोत्पलामृतापद्मशारिवाणां सशर्करः । क्वाथः पित्तज्वरं हन्यादथवा पर्पटोद्भवः ॥ २४४ ॥

लोध्र, कमल, गिलोय, पद्माख और अनंतमूल इनके क्वाथमें मिश्री मिलाकर पीनेसे पित्तज्वर दूर होता है। अथवा केवल पित्तपापड़ेका ही क्वाथ पीनेसे पित्तज्वर दूर होता है ॥ २४४ ॥

पर्पटामृतधात्रीणां क्वाथः पित्तज्वरं जयेत्द्राक्षारग्वधयोश्चापि काश्मर्य्या अथवा पुनः ॥ २४५ ॥

पित्तपापड़ा, गिलोय और आमले इनका क्वाथ पित्तज्वरको दूर करता है । अथवा दाख, अमलतास और कुम्भेरका क्वाथ भी पित्तज्वरको दूर करता है ॥ २४५ ॥

एकः पर्पटकः श्रेष्ठः पित्तज्वरविनाशनः । किं पुनर्यदि युज्येत चन्दनोशीरनागरैः ॥ २४६ ॥

इकला पित्तपापड़ाही पित्तज्वरका नाश करनेके लिये उत्तम है । यदि उसमें लालचन्दन, खस और सोंठ मिलाकर दिया जावे तो क्या कहना है २४६॥

विश्वपर्पटकोशीरघनचन्दनसाधितम्। दद्यात्सुशीतलं वारि तृट्छर्दिज्वरदाहनुत् ॥ २४७ ॥

सोंठ, पित्तपापड़ा, खस, नागरमोथा और लालचन्दन इनका क्वाथ बनाकर खूब शीतल करके पान करे तो तृषा, वमन, ज्वर और दाह दूर होता है ॥ २४७ ॥

गुडूची मुस्तधान्याकं मधूकं कटुरोहिणी । तृष्णाशूलारुचिच्छर्दिपित्तज्वरहरो गणः ॥ २४८ ॥

गिलोय, नागरमोथा, धनियां, मुलैठी और कुटकी इन औषधियोंका समूह तृषा, शूल, अरुचि, वमन और पित्तज्वरको नष्ट करता है ॥ २४८ ॥

किरातामृतधान्याकचन्दनोशीरपर्पटैः । सपद्मकैः कृतः क्काथो हन्ति पित्तभवं ज्वरम् । दाहहल्लासमरुचिमुत्क्लेशवमथुक्लमान् ॥ २४९ ॥

चिरायता, गिलोय, धनियां, लालचन्दन, खस, पित्तपापड़ा और पद्माख इसका काथ–पित्तज्वर, दाह, उबकाई, अरुचि, उत्क्लेश, वमन और क्लम (ग्लानि) को दूर करता है ॥ २४९ ॥

ससितो निशि पर्युषितः प्रातर्धान्याकतण्डुलक्काथः । पीतः शमयत्यचिरादन्तर्दाहं ज्वरं घोरम् ॥ २५० ॥

रात्रिमें धनियेके चावलोंको भिजो देवे । पश्चात् सुबहको काथ बनाकर मिश्री मिलाकर पीनेसे बहुत दिनोंकी भीतरी दाह और घोर ज्वर दूर होता है ॥ २५० ॥

चन्दनं मधुकं द्राक्षां कटुकां सदुरालभाम् । चन्दनादिगणः प्रोक्तो हन्याद्दाहज्वरारुचिम् ॥ २५१ ॥

लाल चन्दन, मुलैठी, दाख, कुटकी और जवासा इन सब औषधियोंको चन्दनादिगण कहते हैं, यह चन्दनादिगण दाह, ज्वर और अरुचिको नष्ट करता है ॥ २५१ ॥

मुद्गानामञ्जलीचूर्णं यष्टीमधुकसाधितम्। पाक्यं शीतकाषायं वा पिबेत्पित्तज्वरापहम् ॥ २५२ ॥

मूँगका चूर्ण १ कुड़व और मुलैठीका चूर्ण १ कुड़व; दोनों को मिलाकर काथ बनावे फिर शीतल हो जाने पर उसको छानकर पीनेसे अथवा उपर्युक्त चूर्णको रात्रिमें शीतल जलमें भिजाकर सवेरेको छानकर पीनेसे पित्तज्वर नष्ट होता है ॥ २५२ ॥

ह्रीबेरं धान्यकं मुस्तं चन्दनं मधुयष्टिका । वृषोशीरयुतः क्काथः शर्करामधुसंयुतः। रक्तपित्तं जयत्युग्रं तृष्णादाहज्वरापहः ॥ २५३ ॥

सुगन्धवाला, धनियाँ, नागरमोथा, चन्दन, मुलैठी, अडूसा और खस इनके क्वाथमें मिश्री और शहद मिलाकर पान करनेसे घोर रक्तपित्त, तृषा, दाह और ज्वर दूर होता है ॥ २५३ ॥

भूनिम्बातिविषालोध्रमुस्तकेन्द्रयवामृताः । वासकं नागरं बिल्वं कषायो माक्षिकान्वितः । श्वासं कासञ्च विड्भेदं रक्तपित्तज्वरं जयेत् ॥ २५४ ॥

चिरायता, अतीस, लोध, नागरमोथा, इंद्रजौ, गिलोय, अडूसा, सोंठ और वेलगिरी इनके काथमें शहद मिलाकर पान करनेसे श्वास, खाँसी, मलभेद और रक्तपित्तज्वर नष्ट होता है ॥ २५४ ॥

तिक्तावालकभूनिम्बश्यामापर्पटवासकैः । शृतं जलं सितायुक्तं रक्तपित्तज्वरं जयेत् ॥ २५५ ॥

कुटकी, सुगन्धवाला, चिरायता, अनंतमूल, पित्तपापडा और अडूसा इनके काथमें मिश्री मिलाकर पान करनेसे रक्तपित्तज्वर दूर होता है ॥ २५५ ॥

पथ्यां तैलघृतक्षौद्रैर्लिहेद्दाहज्वरापहाम् । कासासृक्पित्तवीसर्पश्वासान् हन्ति वमीनपि ॥ २५६ ॥

हरडको पिसकर तेल, घी और शहदके साथ मिला कर चाटनेसे दाह, ज्वर, खाँसी, रक्तपित्त, विसर्प, श्वास और वमन दूर होती है ॥ २५६ ॥

हर्म्ये शुभ्राभ्रसंकाशे शशांककरशीतले । मलयोदकसिक्ते वा सुप्यात्पित्तज्वरी नरः ॥ २५७ ॥

मनोहर और अत्यन्त निर्मल आकाशके समान स्वच्छ चन्द्रमाकी किरणोंसे शीतल और जिसमें चन्दनादिका जल छिड़का गया हो ऐसे घरमें पित्तज्वरवाला रोगी शयन करे ॥ २५७ ॥

जिह्वातालुगलक्लोमशोषे मूर्ध्नि च दापयेत्। केसरं मातुलुङ्गस्य मधुसैन्धवसंयुतम् ॥ २५८ ॥

जो जिह्वा, तालु, गला, मुख, कंठ, क्लोम (पिपासास्थान) और मस्तक इन स्थानोंमें शोष हो, तो बिजौरे नींबूकी कसरको शहद और सैंधे नमकके साथ मिलाकर सेवन करावे ॥ २५८ ॥

हरीतकी प्रियङ्गुश्च पिप्पली लोध्रमेव च । दार्वी हरिद्रा तेजोह्वा सक्षौद्रमुखधावने ॥ २५९ ॥ एतेन कटुभावाच्च मुखरोगश्च शाम्यति । वक्त्रं विशदतामेति भक्तच्छन्दश्च जायते ॥ मुद्गयूषौदनौ देयः सितया पैत्तिके ज्वरे ॥२६०॥

हरड, फूलप्रियंगु, पीपल, लोध, दारुहलदी, हलदी और तेजबल इनको जलमें भिजोकर छान लेवे फिर शहदमें मिलाकर बारंबार कुल्ले करे, इस प्रकार मुख धोनेसे मुखकी कटुता और समस्त मुखरोग नष्ट होते हैं तथा मुखमें निर्मलता और अन्नमें रुचि उत्पन्न होती है। पित्तज्वरमें मूँगका यूष और भात खाँडके साथ मिलाकर सेवन करे ॥ २५९ ॥ २६० ॥

इति पित्तज्वरचिकित्सा ।

कफज्वरचिकित्सा ।

कफज्वरलक्षण ।

कासश्वासप्रतिश्यायप्रसेकारुचिच्छर्दयः । निद्रा गुरुत्वं हृल्लासः स्तैमित्यं मधुरास्यता ॥ २६१ ॥ शीतरोमाञ्चता शौक्ल्यं मलाक्षिकरजत्वचि । उष्णाभिलाषिता चेति श्लैष्मिकज्वरलक्षणम् ॥ २६२ ॥

खाँसी, श्वास, प्रतिश्याय (जुकाम) और परिषेक (नासिकामुखादिकसे पानीका गिरना), अरुचि, वमन, निद्रा और शरीरका भारी होना, उबकाई आना, भीजे कपडेसे ढके हुएके समान देहका होना, मुखमें मधुरता, शीतका लगना, रोमांच का होना, मल, नेत्र, नख और त्वचाका सफेद होना और उष्णता (गर्मी) की अभिलाषाका होना ये कफज्वरके लक्षण जानने ॥ २६१ ॥ २६२ ॥

मातुलुङ्गशिफाविश्वकायस्थाग्रन्थिकोद्भवम् । कफज्वरेषु सक्षारं पाचनं वा कणादिकम् ॥ २२३ ॥

बिजौरे नीबूकी जड, सोंठ, हरड और पीपलामूल इनके काथमें जवाखार डालकर पीनेसे अथवा पिप्पल्यादि पाचन पीनेसे कफज्वर नष्ट होता है ॥ २६३ ॥

त्रिफला त्रिवृता मुस्तं कटुकं सकालिङ्गकम् । पटोलारग्वधं चैव रोहिणी चित्रकं समम् । क्काथः क्षौद्रयुतः श्लेष्मज्वरकासगलामये ॥ २६४ ॥

त्रिफला, निसोत, नागरमोथा, त्रिकुटा, इन्द्रजौ, पटोलपत्र, अमलतास, कुटकी और चीता इनके काथमें शहद डालकर कफज्वर, खाँसी और गलरोग में पीवे ॥ २६४ ॥

निम्बविश्वामृताभीरुशठी भूनिम्बपौष्करम् । पिप्पली बृहती चेति क्काथो हन्ति कफज्वरम् ॥ २६५ ॥

नीमकी छाल, सोंठ, गिलोय, शतावर, कचूर, चिरायता, पोहकरमूल, पीपल और बडी कटेरी इनका काथ कफज्वरको नष्ट करता है ॥ २६५ ॥

कुष्ठमिन्द्रयवं मूर्वा पटोलं वापि साधितम् । पिबेन्मरिचसंयुक्तं सक्षौद्रं कफजे ज्वरे ॥ २६६ ॥

कूठ, इन्द्रजौ, मूर्वा (चरनहार) और पटोलपत्र इनके काथमें काली मिर्चोंका चूर्ण और शहद मिलाकर पीनेसे कफज्वर नष्ट होता है ॥ २६६ ॥

त्रिफलापटोलवासाछिन्नरुहातिक्तरोहिणीषड्ग्रन्था । मधुना श्लेष्मसमुत्थे दशमूलीवासकस्य वा क्काथः ॥ मात्राक्षौद्रघृतादीनां काथे स्नेहे सुचूर्णवत् ॥ २६७ ॥

त्रिफला, पटोल, अडूसा, गिलोय, कुटकी और वच इनके काथमें शहद डालकर अथवा दशमूल और अडूसेके काथमें शहद मिलाकर पीवे। काथ और स्नेहोंमें शहद और घृतादिकी मात्रा चूर्णके समान जाननी ॥ २६७ ॥

सप्तच्छदं गुडूचीं च निम्बं स्फूर्जकमेव च । क्वाथयित्वा पिबेत्तोयं सक्षौद्रं कफजे ज्वरे ॥ २६८ ॥

सतवन, गिलोय, नीमकी छाल और तेंदू इनका काथ बनाकर और उस काथमें शहद मिलाकर पनिसे कफज्वर नष्ट होता है ॥ २६८ ॥

आमलक्यभया कृष्णा चित्रकश्चेत्ययं गणः । सर्वज्वरकफातङ्के भेदी दीपनपाचनः ॥ २६९ ॥

आमले, हरड, पपिल और चीता, यह आमलक्यादिगण सर्वप्रकारके कफज्वरमें देना चाहिये।यह भेदन, दीपन और पाचन है ॥ २६९ ॥

तिक्तानिम्बविषाव्योषशक्राह्वाभिः शृतं जलम् । पिबेत्कफज्वरं घोरं हन्ति काससमन्वितम् ॥ २७० ॥

कुटकी, नीम, अतीस, त्रिकुटा और इन्द्रजौ इनका क्वाथ पान करनेसे खांसी सहित घोर कफज्वर नष्ट होता है ॥ २७० ॥

सिन्धुवारदलक्वाथं कणाढ्यं कफजे ज्वरे । जङ्घयोश्च बले क्षीणे कर्णे च पिहिते पिबेत् ॥ २७१ ॥

सम्हालूके पत्तोंके काढेको पीपलका चूर्ण मिलाकर कफज्वर ,जंघाओंके बलकी क्षीणता और बधिरतामें पीवे ॥ २७१ ॥

मुस्तं मधुकबीजानि त्रिफला कटुरोहिणी । परूषकाणि निष्क्वाथः कफज्वरविनाशनः ॥ २७२ ॥

नागरमोथा, महुएके बीज, त्रिफला, कुटकी और फालसेकी छाल, इनका क्वाथ कफज्वरको नष्ट करता है ॥ २७२ ॥

चतुर्भद्रावलेहिका ।

कट्फलं पौष्करं कृष्णा शृङ्गी च मधुना सह । श्वासकासज्वरहरः श्रेष्ठो लेहः कफान्तकृत् ॥ २७३ ॥

कायफल, पोहकरमूल, पपिल और काकडाशृंगी इनका चूर्ण करके शहदमें मिलाकर चाटे तो श्वास, खाँसी, ज्वर और कफ दूर होता है ॥२७३॥

लिहेज्ज्वरार्तस्त्रिफलां पिप्पलीं समाक्षिकाम् । कासे श्वासे च मधुना सर्पिषा च सुखी भवेत् ॥ २७४ ॥

कफज्वरवाला रोगी त्रिफला और पीपलके चूर्णको शहदमें मिलाकर चाटे तथा खाँसी और श्वासमें येही अवलेह शहद और घीमें मिलाके चाटे ॥ २७४ ॥

कट्फलं पौष्करं शृङ्गीं मुस्तकं कटुकं शठीम् । समस्तान्येकशो वापि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥२७५॥ आर्द्रकस्वरसक्षौद्रैर्लिह्यात्कफविनाशनम् । शूलानिलारुचिच्छर्दिकासश्वासक्षयापहम् ॥ २७६ ॥

कायफल, पोहकरमूल, काकडासिंगी, नागरमोथा, त्रिकुटा और कचूर इन सबको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करके उस चूर्णको अथवा एक २ के चूर्णको अदरखके रसमें और शहदमें मिलाकर चाटे तो कफ, शूल, वात, अरुचि, वमन, खाँसी और क्षयरोग दूर होता है ॥ २७५ ॥ २७६ ॥

क्षौद्रोपकुल्यासंयोगः श्वासकासज्वरापहः । प्लीहानं हन्ति हिक्काञ्च बालानाञ्च प्रशस्यते ॥ २७७ ॥

पीपलके चूर्णको शहदमें मिलाकर चाटे तो श्वास, खाँसी, ज्वर, प्लीहा और हिचकी दूर होती है । यह बालकोंको अत्यन्त हितकारी है ॥ २७७ ॥

कर्षश्चूर्णस्य कल्कस्य गुटिकानाञ्च सर्वशः । द्रवः शुक्त्यावलेढव्यः पातव्यश्च चतुर्द्रवैः ॥ २७८ ॥

चूर्ण, कल्क, गुटिका और वाटिकादिको एक एक तोलाप्रमाण प्रयोग करना चाहिये । लेहन करके सेवन करना हो तो द्रव पदार्थ (घृत, शहद आदि) दो तोले प्रमाण और पान करके सेवन करना हो तो द्रवपदार्थ चौगुने लेने चाहिये ॥ २७८ ॥

मात्राया नास्त्यवस्थानं दोषमग्निबलं वयः । व्याधिं द्रव्यञ्च कोष्ठञ्च वीक्ष्य मात्रां प्रयोजयेत् ॥ २७९ ॥

औषधिकी मात्राका कोई निश्चित नियम नहीं है किन्तु दोष, अग्नि, बल, अवस्था, व्याधि, औषधि और कोठा इन सबको अच्छे प्रकारसे देखकर औषधिकी मात्रा देवे ॥ २७९ ॥

अजाजीशर्करायुक्तो दाडिमीस्वरसेन तु । रुचिष्यो मधुना युक्तः कर्तव्यः कवलग्रहः॥ २८० ॥ मुद्गयूषौदनश्चापि देयः कफसमुत्थिते ॥ २८१ ॥

जीरा, खाँड और अनारका स्वरस इनमें शहद मिलाकर मुखमें कवल धारण करे। यह रुचिकारक है । कफज्वरमें मूँगका यूष और भात देवे ॥२८०॥ ॥ २८१ ॥

इति कफज्वरचिकित्सा ।

वातपित्तज्वरचिकित्सा ।

वातपित्तज्वरे देयमौषधं पञ्चमेऽहनि । पित्तश्लेष्मज्वरे देयमौषधं सप्तमेऽहनि ॥ २८२॥ अत ऊर्ध्वं च सप्ताहाद्वातश्लेष्मज्वरे पिबेत् ॥ २८३ ॥

वातपित्तज्वरमें पाँचवें दिन औषधि देनी चाहिये, पित्तकफज्वरमें सातवें दिन औषधि देनी चाहिये । और वातकफज्वरमें नवमें दिन औषधि देवे ॥ २८२ ॥ ॥ २८३ ॥

वातपित्तज्वरके लक्षण ।

तृष्णा मूर्च्छा भ्रमो दाहः स्वप्ननाशः शिरोरुजा । कण्ठास्यशोषो वमथू रोमहर्षोऽरुचिस्तथा । पर्वभेदश्च जृम्भा च वातपित्तज्वराकृतिः ॥ २८४ ॥

अब वातपित्तज्वरके लक्षण कहते हैं-तृषा, मूर्च्छा, भ्रम, दाह, निद्राका न आना, शिरमें पीडा,कंठ और मुखमें शोष, वमन,रोमांचोंका होना, अरुचि, सन्धियोंमें पीडा और जम्भाइयोंका आना ये सब लक्षण वातपित्तज्वरके जानने ॥ २८४ ॥

चिकित्सा ।

संसृष्टदोषेषु हितं संसृष्टमथपाचनम् । निदिग्धिकाबलारास्नात्रायमाणामृतायुतैः । मसूरविदलैः क्वाथो वातपित्तज्वरं जयेत् ॥ २८५ ॥

द्वन्द्वज दोषोंमें मिश्रित अर्थात् उन २ दोषोंमें कही हुई औषधियोंको मिलाकर पाचन देवे ।कटेरी,खिरेंटी, रायसन, त्रायमान, गिलोय और मसूरकी दाल इनका क्वाथ वातपित्तज्वरको दूर करता है ॥ २८५॥

त्रिफलाशाल्मलीरास्नाराजवृक्षाटरूषकैः । शृतमम्बु हरत्याशु वातपित्तभवं ज्वरम् ॥ २८६ ॥

त्रिफला, सेमल, रायसन, अमलतास और अडूसा इनका क्वाथ वातपित्तज्वरको नष्ट करता है ॥ २८६ ॥

किराततिक्तममृतां द्राक्षामामलकीं शटीम् । निष्क्वाथ्य पित्तानिलजे तं क्वाथं सगुडं पिबेत् ॥ २८७ ॥

चिरायता, गिलोय, दाख, आमले और कचूर इनके क्वाथमें गुड मिलाकर पीनेसे वातपित्तज्वर नष्ट होता है ॥ २८७ ॥

मधुकादिक्वाथ ।

मधुकं शारिवा द्राक्षा मधूकं चन्दनोत्पलम् । काश्मरीफलकं लोध्रं त्रिफला पद्मकेशरम् ॥ २८८ ॥ परूषकं मृणालञ्च न्यसेदुत्तमवारिणि । मधुलाजसितायुक्तं तत्पीतमुषितं निशि ॥ २८९ ॥ वातपित्तज्वरं दाहं तृष्णामूर्च्छारुचिभ्रमान् । शमयेद्रक्तपित्तञ्च जीमूतमिव मारुतः ॥ २९० ॥

मुलैठी, सारिवन, दाख, महुआ, लाल चन्दन, कमल, कुम्भेरका फल, लोध, त्रिफला, कमलकेशर, फालसे और कमलकी नाल इन सबको समानभाग लेकर स्वच्छ जलमें रातको भिजो देवे फिर प्रातःकाल छान कर शहद खीलें और मिश्री मिलाकर पीनेसे यह वातपित्तज्वर, दाह, तृषा, मूर्च्छा, अरुचि, भ्रम और रक्तपित्तको नष्ट करता है, जिस प्रकार पवन बादलोंके समूहको नष्ट कर देता है॥ २८८ ॥२८९ ॥२९० ॥

विश्वामृताब्दभूनिम्बैः पञ्चमूलीसमन्वितैः । कृतः कषायो हन्त्याशु वातपित्तोत्तरं ज्वरम् ॥ २९१ ॥

सोंठ, गिलोय, नागरमोथा, चिरायता और पंचमूलकी समस्त औषधियें, इन सबका क्वाथ बनाकर पीनेसे शीघ्र ही वातपित्तज्वर दूर होता है ॥२९१ ॥

बलाभार्ङ्ग्यमृतैरण्डचन्दनोशीरपर्पटैः। उपकुल्याब्दह्रीबेरैः कषायश्च पिबेत्ततः । पर्वभेदशिरःकम्पं वातपित्तज्वरं जयेत् ॥ २९२ ॥

खिरैटी, भारंगी, गिलोय, अंडकी जड़, लाल चन्दन, खस, पित्तपापड़ा, पीपल, नागरमोथा और सुगंधबाला इनका काढा सन्धियोंकी पीड़ा, शिरका कांपना और वातपित्तज्वरको नष्ट करता है ॥ २९२ ॥

गुडूची पर्पटं मुस्तं किरातं विश्वभेषजम् । वातपित्तज्वरे देयं पञ्चभद्रमिदं शुभम् ॥ २९३ ॥

गिलोय, पित्तपापड़ा, नागरमोथा, चिरायता और सोंठ यह पंचभद्रनामक क्वाथ वातपित्तज्वरमें देना चाहिये ॥ २९३ ॥

नीलोत्पलमुशीराणि बला पद्मकमेव च । काश्मरी मधुकं द्राक्षा मधूकं सपरूषकम् ॥ २९४ ॥ पेयः शीतकषायोऽयं वातपित्तज्वरापहः । सप्रलापं समोहश्च शमयेत्पैत्तिकं ज्वरम् ॥२९५॥

नीलकमल, नीलोफर, खस, खिरैटी, पद्माख, कुम्भेर, मुलैठी, दाख, महुआ और फालसे इनका हिम बनाकर पीवे तो यह वातपित्तज्वरको नष्ट करता है तथा प्रलाप और मोहयुक्त पित्तज्वर दूर होता है ॥२९४॥२९५॥

आरग्वधफलं मुस्तं यष्टीमधुकमेव च । उशीरमभया चैव हरिद्रा दारुसाह्वया ॥ २९६ ॥ पटोलं पिचुमन्दश्च तथा कटुकरोहिणी । एभिः सिद्धः कषायः स्याद्वातपित्तभवे ज्वरे॥२९७॥

अमलतासका गूदा, नागरमोथा, मुलैठी, खस, हरड़, हल्दी, दारुहल्दी, पटोलपात, नीमकी छाल और कुटकी इनका क्वाथ वातपित्तज्वरमें हितकारी है ॥ २९६ ॥ २९७ ॥

कफपित्तहरा मुद्गाः कारवेल्लादयस्तथा । प्रायेण न तु ते देया वातपित्तोद्भवे ज्वरे । शूलोदावर्त्तविष्टम्भजनका ज्वरवर्धनाः ॥ २९८ ॥

मूँग, करेला आदि पदार्थ प्रायः कफपित्तनाशक हैं अतएव इनको वातपित्तज्वरमें नहीं देना चाहिये, क्योंकि इनको देनेसे शूल, उदावर्त और विष्टम्भ इनको उत्पन्न करते हैं तथा ज्वरको बढाते हैं ॥२९८॥

दाडिमामलमुद्गानां यूषस्त्वनिलपैत्तिके । मुद्गामलकयूषस्तु वातपित्तात्मके हितः ॥ २९९ ॥

अनार, आमले और मूँगका यूष वातपित्तज्वरमें देना चाहिये, मूँग और आमलोंका यूष भी वातपित्तज्वरमें हितकारी है ॥ २९९ ॥

महादाहे विधातव्यो यूषश्चणकसम्भवः ॥ ३०० ॥

जो वातपित्तज्वरमें अत्यंत दाह हो तो चनेका यूष देना चाहिये ॥ ३०० ॥

इति वातपित्तज्वरचिकित्सा ।

पित्तश्लेष्मज्वरचिकित्सा ।

पित्तकफज्वरके लक्षण ।

मुहुर्दाहो मुहुः शीतं स्वेदस्तम्भौ मुहुर्मुहुः । मोहः कासोऽरुचिस्तृष्णा श्लेष्मपित्तप्रवर्तनम् । लिप्ततिक्तास्यता तन्द्रा पित्तश्लेष्मज्वराकृतिः ॥ ३०१ ॥

अब कफपित्तज्वरके लक्षण कहते हैं, वारंवार दाह हो, वारंवार शीत लगे, वारंवार पसीना आवै, वारं वार शरीर जकड़ जावे, वेहोशी हो, खाँसी, अरुचि, तृषा, कफ और पित्तका गिरना, मुख कफसे लिपासा रहे तथा पित्तसे मुखमें कड़वापन हो और तन्द्रा हो, ये पित्तकफज्वरके लक्षण हैं ॥ ३०१ ॥

चिकित्सा ।

गुडूची निम्बधन्याकं पद्मकं चन्दनान्वितम् । तृष्णादाहज्वरच्छर्दिपित्तश्लेष्मज्वरापहः ॥ ३०२ ॥

गिलोय, नीम, धनियाँ, पद्माख और लालचन्दन इनका क्काथ तृषा, दाह, ज्वर, वमन और पित्तकफज्वरको नष्ट करता है ॥ ३०२ ॥

गुडूची निम्बधन्याकं पद्मकं चन्दनानि च । तृष्णादाहारुचिच्छर्दिसर्वज्वरहरो गणः ॥ ३०३ ॥

गिलोय, नीम, धनियाँ, पद्माख और लालचन्दन इन सब औषधियोंका क्काथ तृषा, दाह, अरुचि, वमन और सर्व प्रकारके ज्वरोंको हरनेवाला है ॥ ३०३ ॥

पटोलं पिचुमन्दश्च त्रिफला मधुकं बला । साधितोऽयं कषायश्च पित्तश्लेष्मभवे ज्वरे ॥ ३०४ ॥

पटोलपात, नीमकी छाल, त्रिफला, मुलैठी और खिरैटी इनका काढ़ा पित्तकफज्वरमें देना चाहिये ॥ ३०४ ॥

दीपनं कफविच्छेदि पित्तवातानुलोमनम् । ज्वरघ्नं पाचनं भेदि सृष्टं धान्यपटोलयोः ॥ ३०५ ॥

धनियां और पटोलपातका क्काथ—अग्निको दीपन करनेवाला, कफनाशक, पित्त और वातको अनुलोमन करनेवाला, ज्वरनाशक, पाचन और भेदक है ॥ ३०५ ॥

पटोलं चन्दनं मूर्वातिक्तापाठामृता गणः । पित्तश्लेष्मारुचिच्छर्दिज्वरकण्डूविषापहः ॥ ३०६ ॥

पटोलपत्र, चन्दन, चुरनहार, कुटकी, पाठ और गिलोय इनका क्काथ पित्तकफज्वर, अरुचि, वमन, ज्वर और खुजली तथा विषका नाशक है ॥ ३०६ ॥

सशर्करामक्षमात्रां कटुकामुष्णवारिणा । पीत्वा ज्वरं जयेज्जन्तुः कफपित्तसमुद्भवम् ॥ ३०७ ॥

एक तोला प्रमाण कुटकीके चूर्णको लेकर मिश्री मिलाकर गरम जलके साथ पान करे तो कफपित्तजन्य ज्वर दूर होताहै ॥ ३०७ ॥

त्रिफला त्रायमाणा च मृद्वीका कटुरोहिणी । पित्तश्लेष्मज्वरे ह्येषां कषायो ह्यनुलोमनः ॥ ३०८ ॥

त्रिफला, त्रायमान, दाख और कुटकी इनका क्काथ पित्तकफज्वरमें अनुलोमन करनेवाला है ३०८ ॥

वासकं पद्मकाष्ठश्च नागरं चन्दनामृते । पटोलं धान्यकश्चैव क्काथो मधुसमायुतः । कफपित्तज्वरं शूलं दाहं हन्त्यंघ्रिपाणिषु ॥ ३०९ ॥

कुड़ेकी छाल, पद्माख, सोंठ, लालचन्दन, गिलोय, पटोलपत्र और धनियाँ इनके क्काथमें शहद मिलाकर पान करनेसे कफपित्तज्वर, शूल और हाथ पाँवोंकी दाह दूर होती है ॥ ३०९ ॥

पटोलं वालकश्चैव मुस्तकं रक्तचन्दनम् । पाठा मूर्वामृता शुंठी चोशीरं कटुरोहिणी । समभागैः शृतं तोयं सर्वज्वरहरं पिबेत् ॥ ३१० ॥

पटोलपत्र, सुगन्धवाला, नागरमोथा, लाल चन्दन, पाढ़, मूर्वा, गिलोय, सोंठ, खस और कुटकी इन सबको समान भाग लेकर क्काथ बनाकर पीनेसे सर्व प्रकारके ज्वर नष्ट होते हैं ॥ ३१० ॥

सनागरं पर्पटकं पिबेद्वा सदुरालभम् । किराततिक्तकं मुस्तं गुडूचीं विश्वभेषजम् । पाठामुशीरं सोदीच्यं पिबेच्च ज्वरशान्तये ॥ ३११ ॥

ज्वरघ्नो दीपनश्चैव कषायो दोषपाचनः । तृष्णारुचिप्रशमनो मुखवैरस्यनाशनः ॥ ३१२ ॥

सोंठ और पित्तपापड़ा इनका क्वाथ अथवा धमासा, चिरायता कड़वा, नागरमोथा, गिलोय, सोंठ, पाढ, खस और सुगन्धबाला, इनका क्वाथ कफपित्तज्वरको शमन करनेके लिये पीवे। यह क्वाथ ज्वरनाशक, दीपन, दोषपाचक, तृषा, अरुचि और मुखकी नीरसताको दूर करता है ॥ ३११ ॥ ३१२ ॥

यवं पर्पटकं धान्यं पटोलं निम्बसाधितम्। पिबेत्सशर्कराक्षौद्रं पित्तश्लेष्मज्वरापहम् ॥ ३१३ ॥

इन्द्रजौ, पित्तपापड़ा, धनियाँ, पटोलपत्र और नीमकी छाल, इनके क्वाथमें शहद और मिश्री मिलाकर पीवे तो पित्तकफज्वर नष्ट होता है॥३१३॥

अमृताष्टक ।

अमृतेन्द्रयवारिष्टं पटोलं कटुरोहिणी। नागरं चन्दनं मुस्तं पिप्पलीचूर्णसंयुतम्। अमृताष्टकमित्येतत्पित्तश्लेष्मज्वरापहम् ॥ ३१४ ॥

गिलोय, इन्द्रजौ, नीमकी छाल, पटोलपत्र, कुटकी, सोंठ, लाल चन्दन और नागरमोथा, इनके क्वाथमें पपिलका चूर्ण डालकर पान करनेसे पित्तकफज्वर नष्ट होता है। इसको आमृताष्टक कहते हैं ॥ ३१४॥

कफपित्तवमिकण्डूज्वरवीसर्पदाहनुत्। कषायः परिपीतस्तु शृङ्गवेरपटोलयोः ॥ ३१५ ॥

अदरख और पटोलपत्रका क्वाथ पान करनेसे कफ, पित्त, वमन, खुजली, ज्वर, त्रिसर्प और दाह दूर होता है ॥ ३१५ ॥

कण्टकार्य्यादि ।

कण्टकार्य्यमृता भार्ङ्गी नागरेन्द्रयवासकम्। भूनिम्बं चन्दनं मुस्तं पटोलं कटुरोहिणी ॥ ३१६॥ कषायं पाययेदेतत्पित्तश्लेष्मज्वरापहम्। दाहतृष्णारुचिच्छर्दिकासहृद्रोगशूलनुत् ॥ ३१७ ॥

कटेरी, गिलोय, भारंगी, सोंठ, इन्द्रजौ, जवासा, चिरायता, चन्दन, नागरमोथा, पटोलपत्र और कुटकी इनके क्वाथको पान करनेसे पित्तकफज्वर नष्ट होता है तथा दाह, तृषा, अरुचि, वमन, खाँसी, हृदयरोग और शूल रोग दूर होता है ॥ ३१६ ॥ ३१७ ॥

पञ्चतिक्तक्वाथ।

क्षुद्रामृताभ्यां सह नागरेण सपुष्करं चैव किराततिक्तम्। पिबेत्कषायं त्वथ पञ्चतिक्तं ज्वरं निहन्त्यष्टविधं समस्तम् ॥ ३१८ ॥

कटेरी, गिलोय, सोंठ, पोहकरमूल और चिरायता इनका क्वाथ आठों प्रकारके ज्वरोंको नष्ट करता है ॥ ३१८ ॥

भार्ङ्ग्यादिगण।

भार्ङ्गी पुष्करमूलञ्च मुस्तकं कण्टकारिका। त्रिकण्टकबृहत्यौ च कर्णिनी-नागरैः शृतैः॥३१९॥एष भार्ङ्ग्यादिको नाम्ना पित्तश्लेष्मज्वरापहः। हृल्लासारोचकच्छर्दितृष्णादाहाविबन्धनुत् ३२०॥

भारंगी, पोहकरमूल, नागरमोथा, कटेरी, गोखरू, बड़ी कटेरी, शालिपर्णी, पृश्निपर्णी और सोंठ इनको भांग्यादिक कहते हैं। यह भांग्यादिगण पित्तकफज्वरनाशक तथा उबकाई, अरुचि, वमन, तृषा, दाह और विबन्धनाशक है ॥ ३१९ ॥ ३२० ॥

नागरेन्द्रयवं मुस्तं चन्दनं कटुरोहिणी। पिप्पलीचूर्णसंयुक्तं कषायन्तु पिबेन्नरः। भ्रममूर्च्छारुचिच्छर्दिपित्तश्लेष्मज्वरापहः ॥ ३२१ ॥

सोंठ, इन्द्रजौ, नागरमोथा, लाल चन्दन और कुटकी इनके क्वाथमें पीपलका चूर्ण डालकर पान करनेसे भ्रम, मूर्च्छा, अरुचि, वमन और पित्तकफज्वर नष्ट होता ह ॥ ३२१ ॥

द्राक्षा शम्याकधान्याकं कटुका मुस्तग्रंथिकम्। क्वाथं हन्यादुदावर्त्तं शूलं पित्तकफज्वरम् ॥ ३२२ ॥

दाख, अमलतास, धनियाँ, कुटकी, नागरमोथा और पीपलामूल इनका क्वाथ उदावर्त, शूल और पित्त-कफज्वरको नष्ट करता है ॥ ३२२ ॥

पटोलयवधान्याकमुद्गामलकचन्दनम्। पैत्तिके श्लेष्मपित्तोत्थे ज्वरे तृट्छर्दिदाहनुत् ॥ ३२३ ॥

पटोलपत्र, इन्द्रजौ, धनियाँ, मूँग, आमले और लालचन्दन इनके क्वाथको पित्तज्वर और कफपित्तज्वरमें पीनेसे तृषा, वमन और दाह दूर होती है ॥३२३॥

सपत्रपुष्पवासाया रसः क्षौद्रसितायुतः । कफपित्तज्वरं हन्ति सासृक्पित्तं सकामलम् ॥ ३२४ ॥

पत्ते और फूल सहित अडूसेका रस निकाल कर पश्चात् उसमें मिश्री और शहद मिलाकर पान करे तो कफ—पित्त—ज्वर, रक्तपित्त और कामला रोग दूर होता है ॥ ३२४ ॥

पटोलं पिचुमन्दश्च त्रिफला मधुकं यवाः । साधितोऽयं कषायः स्यात्पित्तश्लेष्मभवे ज्वरे ॥ ३२५ ॥

पटोलपात, नीमकी छाल, त्रिफला, मुलैठी और इन्द्रजौ इनका क्वाथ पित्त कफज्वरमें देना चाहिये ॥ ३२५ ॥

मुस्तपर्पटकैरातनिर्यूहेण प्रसाधितः । कफपित्तज्वरहरो यूषो धान्यपटोलयोः ॥ ३२६ ॥

नागरमोथा, पित्तपापडा और चिरायता, इनका सिद्ध किया हुआ निर्यूह अथवा धनियाँ और पटोलपत्रका यूष कफपित्तज्वरनाशक है ॥ ३२६ ॥

निम्बकोलकयूषस्तु हितः पित्तकफात्मके ॥ ३२७ ॥

नीमकी छाल और पटोलपत्र इनका यूष भी पित्तकफज्वरमें हितकारी है ॥ ३२७ ॥

इति पित्तश्लेष्मज्वरचिकित्सा ।

वातकफज्वरचिकित्सा ।

वातकफज्वरलक्षण ।

स्तैमित्यं पर्वणां भेदो निद्रा गौरवमेव च । शिरोग्रहः प्रतिश्यायः कासः कम्पोऽरुचिस्तथा । सन्तापो मध्यवेगश्च वातश्लेष्मज्वराकृतिः ॥ ३२७ ॥

शरीर गीले कपड़ेसे ढकासा मालूम हो, संधियोंमें पीडा हो, निद्रा अधिक आवे, देहमें भारीपन, शिरमें पीड़ा, जुकाम, खाँसी, कम्प, अन्नमें अरुचि, संताप और ज्वरका वेग मध्यम हो, ये वातकफज्वरके लक्षण जानने ॥ ३२७ ॥

चिकित्सा ।

क्षुद्रामृतानागरपुष्कराह्वयैः कृतः कषायः कफमारुतोत्तरे । सश्वासकासारुचिपार्श्वरुक्करे ज्वरे त्रिदोषप्रभवेऽपि शस्यते ॥ ३२८ ॥

कटेरी, गिलोय, सोंठ और पोहकरमूल, इनका क्वाथ बनाकर कफवातज्वरमें पीवे इससे श्वास, खाँसी, अरुचि, पसलियोंकी पीडा और त्रिदोषजनित ज्वर भी दूर होता है ॥ ३२८ ॥

मुस्तापर्पटकं शुण्ठी गुडूची सदुरालभा । कफवातारुचिच्छर्दिदाहशोषज्वरापहः ॥ ३२९ ॥

नागरमोथा, पित्तपापडा, सोंठ, गिलोय और धमासा, इनका क्वाथ वातकफ, अरुचि, वमन, दाह, शोष और ज्वरको दूर करता है ॥ ३२९ ॥

मातुलुङ्गफलकेसरोद्धृतः सिन्धुजन्ममरिचान्वितो मुखे । हन्ति वातकफरोगमास्यगं शोषमाशु जडतामरोचकम् ॥ ३३० ॥

बिजौरे नीं केशर, सैंधानोन और मिरच, इन को एकत्र पीसकर मुखमें धारण करनेसे, वातकफजन्य मुखशोष, मुखकी जड़ता, विरसता और अरुचि शीघ्र दूर होती है ॥ ३३० ॥

आरग्वधग्रन्थिकमुस्तातिक्ताहरीतकीभिः क्वथितः कषायः । सामे सशूले कफवातयुक्ते ज्वरे हितो दीपनपाचनश्च ॥ ३३१ ॥

अमलतास, पीपलामूल, नागरमोथा, कुटकी और हरड़ इनका काथ—आमशूल और कफवातयुक्त ज्वरमें हितकारक है तथा दीपन और पाचन है ॥ ३३१ ॥

आरोग्यपञ्चक ।

पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यचित्रकनागरैः। दीपनीयः शृतो वर्गः कफानिलगदापहः ॥ ३३२ ॥

पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता और सोंठ इनका काथ दीपन और कफवातके रोगोंका नाशक है ॥ ३३२ ॥

चातुर्भद्रक ।

किराततिक्तं मुस्तं च गुडूचीं विश्वभेषजम् । चातुर्भद्रकमित्याहुर्वातश्लेष्मज्वरापहम् ॥ ३३३ ॥

चिरायता, नागरमोथा, गिलोय और सोंठ इनको चातुर्भद्रक कहते हैं। यह वातकफके ज्वरको नष्ट करता है ॥ ३३३ ॥

पिप्पलीभिः शृतं तोयमनभिष्यंदि दीपनम् । वातश्लेष्मविकारघ्नं ज्वरघ्नं प्लीहनाशनम् ॥ ३३४ ॥

पीपलका काथ—अनभिष्यन्दी, दीपन, वातकफके विकारका नाशक, ज्वरनाशक और प्लीहाको नष्ट करता है ॥ ३३४ ॥

निम्बामृता विश्वदारु कट्फलं कटुकी वचा। कषायं पाययेदाशु वातश्लेष्मज्वरापहम् ॥३३५ ॥ पर्वभेदः शिरःशूलकासारोचकपीडितम् ॥ ३३६ ॥

नीमकी छाल, गिलोय, सोंठ, देवदारु कायफल, कुटकी और बच इनका काढ़ा वातकफज्वर, सन्धियोंकी पीडा, शिरःशूल, खाँसी और अरुचि इनसे पीडित मनुष्यको पिलावे ॥ ३३५ ॥ ३३६ ॥

दारुपर्पटभार्ङ्गीअब्दवचाधान्यककट्फलैः। साभयाविश्वपूतीकैः क्वाथो हिंगुमधूत्कटः ॥३३७॥ कफवातज्वरे पीतो हिक्काशोषगलग्रहान् । श्वासकासप्रमेहांश्च हन्यात्तरुमिवाशनिः॥३३८ ॥

देवदारु, पित्तपापडा, भारंगी, नागरमोथा, बच, धनियाँ, कायफल, हरड़, सोंठ और दुर्गन्धकरंज इनके काथमें हींग और शहद डालकर पीवे तो कफवातज्वरमें पिया हुआ हिक्का, शोष, गलग्रह, श्वास, खाँसी और प्रमेह इतने उपद्रवोंको नष्ट करता है जैसे वृक्षको वज्र नष्ट कर देता है ॥ ३३७॥३३८ ॥

दशमूलीरसः पीतः कणाढ्यश्च कफानिले । अविपाकेऽतिनिद्रायां पार्श्वरुक्श्वासकासके ॥ ३३९ ॥

कफवातज्वरमें दशमूलके काथमें पीपलका चूर्ण डालकर पीनेसे ज्वर, अजीर्ण, अतिनिद्रा, पसलीकी पीड़ा, श्वास और खाँसी दूर होती है ॥३३९॥

दशमूल ।

पर्ण्यौ बृहत्यौ गोकण्टो बिल्वोऽग्निमथनोऽरलुः । काश्मरी पाटला चेति सन्निपातहरो गणः ॥ ३४० ॥

शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, कटेरी, बडी कटेरी, गोखुरू, बेलगिरी अरणी, श्योनाक, कुम्भेर और पाढल इन औषधियोंके समूहको दशमूल कहते हैं, यह दशमूल सन्निपातनाशक है ॥ ३४० ॥

तृष्णान्विते वातकफार्तिशूले सश्वासकासारुचिबद्धविट्के । हितं जलं दीपनपाचनञ्च पटोलशुण्ठीयवपिप्पलीनाम् ॥ ३४१ ॥

पटोलपत्र, सोंठ, इन्द्रजौ और पीपल, इनका काथ तृषायुक्त वात-कफरोग, शूल, श्वास, खाँसी, अरुचि और मलबद्धता इनमें हितकारक, दीपन और पाचन है ॥ ३४१ ॥

पीनसश्वासबाधिर्य्ये जङ्घापर्वास्थिशूलिनि । कफवातज्वरे स्वेदं कारयेत्तं विधानवित् ॥ ३४२ ॥

पीनसरोग, श्वास, बधिरता, जंघा, संधि और अस्थिशूलमें तथा कफवातज्वरमें विधि जाननेवाला स्वेद कर्म करावे ॥ ३४२ ॥

वालुकास्वेद ।

खर्परभृष्टपटास्थितकाञ्जिकसंसिक्तवालुकास्वेदः। शमयति वातकफामयमस्तकशूलाङ्गभंगादीन् ॥ ३४३ ॥

एक खीपड़ेमें बालूको भरकर उसको खूब गरम करके रोगीके समीप धरे और रोगीको वस्त्रसे ढक देवे । पश्चात् बालूके ऊपर काँजीके छींटे देदेकर पसीना निकाले । यह बालुकास्वेद--वातकफके रोग, शिरकी पीड़ा और सब शरीरकी पीड़ाको शांत करता है अथवा बालूको खीपडेमें खूब तपाकर पश्चात् उसकी कपड़ेमें पोटली बनाकर उस पोटली को काँजीमें भिजोकर स्वेद देवे, इसको भी बालूका स्वद कहते हैं ॥ ३४३ ॥

स्रोतसां मार्दवं कृत्वा नीत्वा पावकमाशयम् । हत्वा वातकफस्तम्भं स्वेदोज्वरमपोहति ॥ ३४४ ॥

वालुकास्वेद--शरीरके स्रोतोंको मृदु अर्थात् शुद्ध करता है, अग्न्याशयको यथास्थानमें स्थापित करता ह, वातकफकी स्तम्भताको और ज्वरको दूर करता है ॥ ३४४ ॥

पुष्करमूलयूषस्तु वातश्लेमादिके हितः।

वातकफज्वरमें पोहकरमूलका यूप हितकारक है ।

इति वातकफज्वरचिकित्सा ।

सन्निपातचिकित्सा ।

सन्निपातनिदान ।

वैरोधिकैरन्नपानैरजीर्णाध्यशनेन च । व्यामिश्रसेवनाच्चापि सन्निपातः प्रकुप्यति ॥ ३४५ ॥

विरुद्ध (समयविरुद्ध, संयोगविरुद्ध, स्वभावदेशविरुद्ध) ऐसे अन्न और पानको सेवन करनेसे, अजीर्णमें भोजन करनेसे अथवा भोजन पर भोजन करनेसे या बिना समय भोजन करनेसे और अनेक प्रकारके मिश्रित पदार्थोंके सेवन करनेसे सन्निपात कुपित होते हैं ॥ ३४५ ॥

अब सन्निपातके लक्षण कहतेहैं ।

क्षणे दाहः क्षणे शीतमस्थिसन्धिशिरोरुजा। संस्रावे कलुषे रक्ते निर्भुग्ने चापि लोचने॥३४६॥ सस्वनौ सरुजौ कर्णौ कण्ठः शूकैरिवावृतः । तन्द्रा मोहः प्रलापश्च कासः श्वासोऽरुचिर्भ्रमः ॥३४७॥ परिदग्धा खरस्पर्शा जिह्वा स्रस्तांगता परम् । ष्ठीवनं रक्तपित्तस्य कफेनोन्मिश्रितस्य च ॥३४८॥ शिरसो लोठनं तृष्णा निद्रानाशो हृदि व्यथा । स्वेदमूत्रपुरीषाणां चिरादर्शनमल्पशः ॥ ३४९ ॥ कृशत्वं नातिगात्राणां सततं कण्ठकूजनम् । कोठानां श्यावरक्तानां मण्डलानाश्च दर्शनम् ॥ ३५०॥ मूकत्वं स्रोतसां पाको गुरुत्वमुदरस्य च । चिरात्पाकश्च दोषाणां सन्निपात ज्वराकृतिः ॥३५१॥

क्षणमें दाह हो, क्षणमें शीत लगे, हड्डा, संधि (जोड) और शिरमें पीड़ा हो, नेत्र आँसूयुक्त कलुषित (गँदले), लाल और टेढे हों, कानोंमें शब्द और पीड़ा हो, कंठ काटोंसे घिरा हुआ हो, तन्द्रा (ऊँघना), मोह (बेहोशी), प्रलाप (वृथा बकवाद), खाँसी, श्वास, अरुचि और भ्रम हो, जीभ अग्निसे जलीहुई सी मालूम हो तथा खरखरी हो, सम्पूर्ण अंग शिथिल हो जायँ, कफ मिले हुए रक्त और पित्तको थूके, शिरको इधर उधर लुढकावे, तृषा हो, निद्रा न आवे, हृदयमें पीड़ा, पसीना, मूत्र और मल ये बहुत कालमें थोड़े ५ निकलें, शरीर अत्यन्त कृश (दुबला) न हो, निरन्तर कंठ बोले, शरीरमें काले, पीले और लाल मिले रङ्गके गोल २ चकत्ते पड जायँ, मूकता (गूँगापन) हो, कान नासिकादि शरीरके स्रोतोंका पकना, उदरमें भारीपन और वातादि दोषोंका बहुत कालमें पकना ये सब सन्निपातज्वरके लक्षण जानने चाहिये ॥ ३४६ ॥ ३४७ ॥ ३४८ ॥ ३४९ ॥ ३५० ॥ ३५१ ॥

दोषे विवद्धे नष्टेऽग्नौ सर्वसंपूर्णलक्षणः । सान्निपातज्वरो साध्यः कृच्छ्रसाध्यस्ततोऽन्यथा ॥ ३५२ ॥

जिसमें सर्वदोष बढे हुए हों, जठराग्नि नष्ट हो गई हो और सम्पूर्ण लक्षण मिलते हों वह सन्निपात ज्वर असाध्य है--और इससे अन्यथा अर्थात् दोष बढे न हों, अग्नि कुछ दीपन हो और थोडे लक्षण हों तो कृच्छ्रसाध्य है ३५२ ॥

वातपित्ताधिक बभ्रु सन्निपात ज्वरके लक्षण।

वातपित्ताधिको यस्य सान्निपातश्च कुप्यति । तस्य ज्वरो मदस्तृष्णामुखशोषप्रमीलिकाः । आध्मानारुचितन्द्राश्च कासश्वासभ्रमक्लमाः । मुनिभिर्बभ्रुनामायं सन्निपात उदाहृतः ३५३ ॥

जिसके वातपित्ताधिक सन्निपात कुपित होता है उस मनुष्यके ज्वर, मद (बेहोशी), तृषा, मुखशोष, नेत्रोंका मिचना, अफारा, अरुचि, तन्द्रा, खांसी, श्वास, भ्रम और क्लम(ग्लानि) ये सब लक्षण होते हैं। इसको मुनियोंने बभ्रुसन्निपात कहा है ॥३५३॥

पित्तकफाधिकसन्निपातके लक्षण।

पित्तश्लेष्माधिको यस्य सान्निपातः प्रकुप्यति । अन्तर्दाहो बहिः शीतं तस्य तृष्णा प्रवर्द्धते ॥ ३५४ ॥ तुद्यते दक्षिणं पार्श्वं मुखशोषगलग्रहाः । ष्ठीवति रक्तपित्तं च कृच्छ्रात्कण्ठश्च दूयते ॥३५५॥ विड्भेदश्वासहिक्काश्च वर्द्धन्ते सप्रमीलिकाः । विधुः फल्गुश्च तौ नाम्ना सन्निपातावुदाहृतौ ॥३५६॥

जिस मनुष्यके पित्तकफाधिक सन्निपात कुपित होता है उसके शरीरके भीतर दाह हो और बाहरसे शीत लगे, तृषा बढ जावे, दहनी पसलीमें पीडा हो, मुखशोष, गला रुक जाय, रुधिर मिला पित्त थूके, कठिनतासे कंठसे बोला जाय, दस्त होने लगें, श्वास हो, हिचकी आवे और नेत्र मिचेसे जावें इनको विद्वानोंने बिधु और फल्गु नामक सन्निपात कहा है अर्थात् पूर्वोक्त बभ्रुनामक सन्निपातका नाम विधु और पित्तकफाधिक सन्निपातका नाम फल्गु कहा है ॥३५४ ॥ ३५५ ॥ ३५६ ॥

कफवाताधिक शीघ्रकारी सन्निपातके लक्षण।

श्लेष्मानिलाधिको यस्य सन्निपातः प्रकुप्यति । तस्य शीतज्वरो मूर्च्छा क्षुत्तृष्णा पार्श्वसंग्रहः ॥३५७॥ शूलमस्विद्यमानस्य हिक्का श्वासश्च जायते। असाध्यः सन्निपातोऽयं शीघ्रकारीति कथ्यते ॥ नहि जीवत्यहोरात्रमनेनाविष्टविग्रहः ॥ ३५८ ॥

जिस मनुष्यके कफवाताधिक सन्निपात कुपित होता है उसके शीतज्वर, मूर्च्छा, तृषा क्षुधा और पसलियोंमें पीडा, शूल, पसीनेका न आना, हिचकी और श्वासका अधिक बढना, ये सब लक्षण असाध्य हैं, इसको शीघ्रकारी सन्निपात कहते हैं इस सन्निपातवाला रोगी एक दिनरात भी नहीं जीता ॥ ३५७ ॥ ३५८ ॥

वातोल्बण विस्फोरकसन्निपातके लक्षण।

कासः श्वासस्तमो मूर्च्छा प्रलापो मोहवेपथू । पार्श्वयोर्वेदना जृम्भा कषायत्वं मुखस्य च । वातोत्तरस्य रूपाणि सन्निपातस्य लक्षयेत ॥३५९॥ एष विस्फोरको नाम्ना सन्निपातः सुदारुणः ॥

खाँसी, श्वास, अंधकारदर्शन, मूर्च्छा, प्रलाप, मोह, कम्प, पसलियोंमें पीडा, जम्भाईका अधिक आना और मुखमें कसैलापन, ये सब लक्षण जिसमें हों उसको वातोल्बण दारुण विस्फोरक सन्निपात जानना ॥ ३५९ ॥

पितोल्बण आशुकारी सन्नि०के लक्षण।

अतिसारो भ्रमो मूर्च्छा मुखपाकस्तथैव च । गात्रे च बिन्दवो रक्ता दाह-

स्तीव्रः प्रजायते ॥ ३६० ॥ पित्तोत्त-रस्य रूपाणि सन्निपातस्य लक्षयेत् । भिषग्भिः सन्निपातोऽयमाशुकारी प्रकीर्तितः ॥ ३६१ ॥

अतिसार (दस्तहों), भ्रम, मूर्च्छा, मुखका पकना, शरीरमें लालबिंदुओंका पड़ना और तीव्र दाहका होना ये लक्षण जिसमें हों उसको पित्तोल्वण आशुकारी सन्निपात जानना ॥ ३६१ ॥

कफोल्बण कंपनसन्निपातके लक्षण ।

जडता गद्गदा वाणी रात्रौ निद्रा भवत्यपि । प्रस्तब्धे नयने चैव मुखमाधुर्य्यमेव च॥३६२॥ कफोत्तरस्य रूपाणि सान्निपातस्य लक्षयेत् । मुनिभिरसन्निपातोऽयमुक्तः कम्पनसंज्ञकः ॥ ३६३ ॥

शरीरकी जड़ता, गद्गद बोलना, रात्रिमें नींद आना, नेत्रोंकी टकटकीसी लगी रहना और मुखमें मधुरता, ये सब लक्षण जिसमें हों उसको कफोल्बण कंपन सन्निपात जानना ॥ ३६२ ॥ ३६३ ॥

हीनवात मध्यपित्त और अधिककफ वैदारिक सन्निपातके लक्षण ।

हीनमध्याधिकैर्यस्य वातपित्तकफैः क्रमात्। सान्निपातः प्रभवति पीडयन्दोषदर्शनात् ॥ ३६४ ॥ अल्पशूलं कटीतोदो मध्ये दाहो रुजा भ्रमः । भृशं क्लमः शिरोवक्रमन्याहृदयवाग्रुजः ॥ ॥ ३६५॥ प्रमीलिकाः श्वासहिक्काकासजाड्यविसंज्ञताः । प्रथमोत्पन्नमेतत्तु साधयेत्तु कदाचन ॥ ३६६ ॥ एतस्मिन्सन्निपाते तु कर्णमूले सुदारुणा । पिटिका जायते जन्तुर्यया कृच्छ्रेण जीवति ॥ ३६७ ॥ स वैदारिकसंज्ञोऽयं सन्निपातः सुदारुणः । त्रिरात्रात्परमेतस्य व्यर्थमौषधकल्पनम् ॥ ३६८ ॥

जिसके हीनवात, मध्यपित्त और अधिक कफके कोपसे सन्निपात होता है, उसके उन्हीं दोषोंके क्रमसे पीड़ा करतेहुए लक्षण होते हैं अर्थात् उसमें वातजन्य उपद्रव अल्प, पित्तजन्य उपद्रव मध्यम और कफजन्य उपद्रव अधिक तथा अधिक पीड़ा करते हैं, जैसे कि अल्पशूल और कमरमें पीड़ा ये हीनवातके लक्षण जानने । मध्यदाह, पीड़ा और भ्रम ये मध्यपित्तके लक्षण जानने तथा अत्यंत ग्लानि यह अधिक कफका लक्षण है इत्यादि । एवं शिर, मुख, मन्या, हृदय और जिह्वामें पीडा हो, नेत्र मिचेसे जावें, श्वास, हिचकी, खाँसी, जडता हो, बेहोशी होवे। इसके उत्पन्न होतेही यदि चिकित्सा की जावे तो कदाचित् आराम होजाय पश्चात् नहीं. इस सन्निपातमें कानकी जड़में दारुण सूजन उत्पन्न होती है, जिसके प्रभावसे मनुष्य बड़े दुःखसे जीता है । इस दारुणसन्निपातको वैदारिक कहते हैं, तीन रात्रिके पश्चात् इसकी औषधि करनी वृथा है ॥३६४॥३६५॥३६६॥३६७॥३६८॥

मध्यवात, हीनपित्त, अधिककफ-कर्कोटक सन्निपातके लक्षण ।

मध्यहीनाधिकैर्यस्य सन्निपातो यदा भवेत् । तस्य रोगास्त एवोक्ता यथादोषबलाश्रयाः ॥ ३६९ ॥ अन्तर्दाहो विशेषोऽत्र प्रवक्तुं न च शक्यते । रक्तमालक्तकैनेव लक्ष्यते मुखमण्डलम् ॥ ॥ ३७० ॥ यत्नेनाकर्षितः श्लेष्मा हृद्यान्न प्रसिच्यते । इषुणेवाहतं पार्श्वं तुद्यते खन्यते हृदि ॥ ३७१ ॥ प्रमीलिकाश्वासहिक्का वर्धन्ते तु दिने दिने। जिह्वा दग्धा खरस्पर्शा गलः शूकैरिवावृतः ॥ ३७२ ॥ विसर्गं नाभिजानाति कूजते च कपोतवत् । अतीव श्लेष्मणा पूर्णः शुष्कवक्त्रोष्ठतालुकः ॥ ॥ ३७३ ॥ तन्द्रानिद्रातियोगार्त्तो हतवह्निर्हतद्युतिः । न चाति भजते ग्लानिं विपरीतानि यच्छति ॥३७४॥ आयम्यते च बहुशः सरक्तं ष्ठीवते-

ऽल्पशः । एष कर्कोटको नाम्ना सन्निपातः सुदारुणः ॥ ३७५ ॥

जिसके मध्यवात, हीनपित्त और अधिक कफसे सन्निपात होता है उसके उन्हीं दोषोंके अनुसार क्रमसे हीन, मध्य और अधिक रोग होते हैं, शरीरके भीतर दाह होना, बोलनेमें असमर्थता, मुखमण्डलका आलके रंगके समान लाल होना, बलपूर्वक आकर्षित किया हुआ भी कफ हृदयसे बाहर नहीं निकलता, पसलियोंमें तीर चुभनेकीसी पीडा, हृदयमें खोदनेके समान पीडा, नेत्र मिचेसे जायँ, श्वास और हिचकी, दिन प्रतिदिन बढ़ते जायँ, जभि जलीहुईसी और खरखरी हो, कंठमें कांटे पड जायँ, बेहोशीमें मल मूत्रको त्याग देवे, अधिक कफसे परिपूर्ण हो जानेसे कण्ठ कबूतरके समान कूंजे, मुख, ओष्ठ और तालु सूख जायँ, तन्द्रा और निद्रा होवे, जठराग्नि नष्ट होजाय, कांति (शरीरकी शोभा) जाती रहे, अधिक ग्लानि न हो, विपरीत चेष्टा करे और थोड़ा २ रुधिर मिला थूके, ये दारुणसन्निपात 'कर्कोटक' नामसे प्रसिद्ध है ॥ ३६९ ॥ ॥३७०॥३७१॥३७२॥३७३॥३७४॥३७५ ॥

अधिकवात, मध्यपित्त और हीनकफसंमोहकसन्निपातके लक्षण ।

प्रवृद्धमध्यहीनैश्च सन्निपातो यदा भवेत् । तस्य रोगास्त एवोक्ता यथादोषबलाश्रयाः ॥ ३७६ ॥ प्रलापायाससंमोहकम्पमूर्च्छारतिभ्रमाः । एकपक्षाभिघातस्तु तत्राप्येतद्विशेषतः । एष संमोहको नाम्ना सन्निपातः सुदारुणः ॥ ३७७ ॥

अधिकवात, मध्यपित्त और हीनकफके कोपसे जो सन्निपात होता है, उसमें उन्हीं दोषोंके अनुसार क्रमसे अधिक, मध्य और हानरोग होते हैं । प्रलाप, श्रम, बेहोशी, कम्प, मूर्च्छा, चित्तका कहीं न लगना, भ्रम और एक ओरका अंग रह जाना इन विशेष लक्षणोंसे युक्त दारुण सन्निपातको 'संमोहक' कहते हैं ॥ ३७६ ॥ ३७७ ॥

हीनवात, वृद्धपित्त और मध्यकफोल्बण सन्निपातके लक्षण ।

हीनातिवृद्धमध्यैस्तु सन्निपातो यदा भवेत् । तस्य रोगास्त एवोक्ता यथादोषबलाश्रयाः ॥ ३७८ ॥ हृदयं दह्यते चास्य यकृत्प्लीहान्त्रफुफ्फुसाः । पच्यन्तेऽत्यर्थमूर्ध्वाधःपूयशोणितनिर्गमः ॥ ३७९ ॥

हीनवात, वृद्धपित्त और मध्यकफके कोपसे जो सान्निपात होता है, उसमें उन्हीं दोषोंके क्रमसे हीन, अधिक और मध्यम रोग होते हैं । हृदयमें जलन, यकृत्, प्लीहा, आँतें और फेफड़ा यह पक जाते हैं, ऊर्ध्व और अधोमार्गसे राध और रुधिर निकलता है ॥ ३७८ ॥ ३७९ ॥

अधिकवात, हीनपित्त और मध्यकफजन्य सन्निपातके लक्षण ।

प्रवृद्धहीनमध्यैस्तु वातपित्तकफैश्च यः। तेन रोगास्त एवोक्ता यथारोगबलाश्रयाः । प्रलापायाससंमोहकम्पमूर्च्छारतिभ्रमाः॥३८०॥ मन्यास्तम्भेन मृत्युश्च तत्राप्येतद्विशेषणम् ।

अधिकवात, हीनापित्त और मध्यमकफके कोपसे जो सन्निपात होता है, उसमें उन्हीं दोषानुसार क्रमसे रोग होते हैं । तथा प्रलाप, श्रम, मोह, कम्प, मूर्च्छा, बेचैनी, भ्रम और मन्या नाड़ीके स्तम्भसे मृत्युका होना ये विशेष लक्षण होते हैं ॥ ३८० ॥

मध्यवात, अधिकपित्त और हीनकफोल्बणसन्निपातके लक्षण ।

मध्यप्रवृद्धहीनैश्च सन्निपातो यदा भवेत् । तस्य रोगास्त एवोक्ता यथारोगबलाश्रयाः ॥ ३८१ ॥ मोहप्रलापमूर्च्छाः स्यु स्तम्भकम्पशिरोग्रहाः । कासश्वासौ भ्रमस्तन्द्रा संज्ञानाशो हृदि ग्रहः ॥ ३८२ ॥ खेभ्यो रक्तं विसृजति तत्राप्येतद्विशेषणम् । अर्वाक्

त्रिरात्रान्मृत्युश्च तन्द्री वा स्तब्धलोचनः । एषां त्रयाणां नामानि याम्यक्रकचपाकलाः ॥ ३८३ ॥

मध्यवात, अधिकपित्त और हीनकफके कोपसे जो सन्निपात होता है, उसमें उन्हीं दोषोंके बलानुसार क्रमसे रोग होते हैं । मोह, प्रलाप, मूर्च्छा, अंधकारदर्शन, कम्प, शिरोरोग, खाँसी, श्वास, भ्रम, तन्द्रा, अचेत होजाना, हृदयमें पीडा, मुखनासिका आदिसे रुधिरका निकलना, तन्द्राका होना और नेत्रोंका पथराना ये विशेष लक्षण हैं । यह सन्निपात तीन दिनमें ही मनुष्यको मार देता है । उपरोक्त तीनो सन्निपातोंके क्रमसे याम्य, क्रकच और पालक नाम जानने ॥ ॥ ३८१ ॥ ३८२ ॥ ३८३ ॥

त्रिदोषोल्बण कूटपाकल सन्निपातज्वरके लक्षण ।

सर्वैर्दोषैः प्रकुपितं सन्निपातं निबोध मे । त्रयाणामपि दोषाणां सर्वरूपाणि लक्षयेत् ॥ ३८४ ॥ यानि ज्वरचिकित्सायां रूपाण्युक्तानि कृत्स्नशः । तैः सर्वैरेव सम्पूर्णैर्विज्ञेयः कूटपाकलः ॥ ॥ ३८५ ॥ व्याधिभ्यो दारुणेभ्यश्च वज्रशस्त्राग्निसन्निभः । केवलोच्छ्वासपरमः स्तब्धाङ्गः स्तब्धलोचनः ॥ ॥ ३८६ ॥ त्रिरात्रात्परमेतस्य जन्तोर्हरति जीवितम् । तदावश्यन्तु तं दृष्ट्वा मूढो व्याहरते यतः ॥ ३८७ ॥ धर्षितो राक्षसैर्नूनमवेलायां चरन्ति ये । अम्बया ब्रुवते केचिद्यक्षिण्या ब्रह्मराक्षसैः ॥ ३८८ ॥ पिशाचैर्गुह्यकैश्चैव तथान्यैर्मस्तके हतम् । कुलदेवार्चनाहीनं धर्षितं कुलदैवतैः ॥ ३८९ ॥ नक्षत्रपीडामपरे गरकर्मेति चापरे । वदन्ति सन्निपातन्तु भिषजाः कूटपाकलम् ॥ ३९० ॥

तीनों दोषोंके उल्बण होनेसे जो सन्निपात कुपित होता है उसमें तीनों दोषोंके सब लक्षण होते हैं । सब प्रकारके ज्वरोंमें जो जो लक्षण होते हैं ये सब लक्षण इस कूटपाकल सन्निपातमें होते हैं । यह दारुण व्याधि-वज्र, शस्त्र और अग्निके समान भयंकर है । इस सन्निपातरोगीके केवल श्वासमात्र ही आता है, सब शरीर जकड़ जाता है और नेत्र पत्थरके समान स्थिर होजाते हैं । तीन दिनके पश्चात् यह मनुष्यको मार देता है । इस सन्निपातरोगीको देखकर मूर्खलोग नानाप्रकारकी कपोलकल्पना करते हैं । कोई कहता है कि,-यह कुसमय (आधीरातके समय) चौराहा, श्मशानभूमि आदिस्थानोंमें गया इससे वहां राक्षसोंने दबालिया है, कोई कहता है कि-इसको देवीने ग्रस लिया है, कोई कहता है कि यक्षिणीने ग्रसा है, कोई ब्रह्मराक्षसकी बाधा बतलाता है, कोई पिशाचग्रसित और कोई गुह्यकग्रसित कहता है । कोई कहता है कि, इसके शिरमें चोट लगी है, कोई कहता है कि, इसने कुलदेवताका पूजन नहीं किया था अतः अब उन्होंने इसे दबालिया है, कोई नक्षत्रकी पीड़ा कहता है, कोई कहता है कि इसने विषभक्षण करलिया है, इसप्रकार मूढलोग अनेक प्रकारकी कल्पना करतेहैं परन्तु वैद्यलोग इसको कूटपाकल सन्निपात कहते हैं ॥ ३८४ ॥ ३८५ ॥ ३८६ ॥ ३८७ ॥ ३८८ ॥ ॥ ३८९ ॥ ३९० ॥

कूटस्थैर्जायते दोषैर्बलिभिः कूटपाकलम् । त्रयोदशविधं प्रोक्तं सन्निपातस्य लक्षणम् ॥ ३९१ ॥

यह बलवान् कूटस्थ दोषोंसे उत्पन्न होता है इसकारण इसको कूटपाकल सन्निपात कहते हैं । इस प्रकार तेरहप्रकारके सन्निपातोंके लक्षण कहेहैं ३९१॥

अथ सन्निपातचिकित्सा ।

वर्ध्यते वापि हीनस्य ह्रियते ह्यच्छ्रितस्य च । कफस्थानानुपूर्व्या वा सन्निपातज्वरक्रिया ॥ ३९२ ॥

अब सन्निपातकी चिकित्सा कहते हैं-हीन दोषको बढाकर और बढ़े हुए दोषको घटाकर कफके स्थानसे प्रारम्भ करके सन्निपातकी चिकित्सा करना उत्तम है ॥ ३९२ ॥

हीनस्य वर्धनाद्धानिर्वृद्धयोरिति निश्चयः । ह्रापनादतिवृद्धस्य हीनयोर्वृद्धिसम्भवः ॥ ३९३ ॥

सन्निपातमें हीन दोषको बढ़ाना और बढ़ेहुए दोषको घटाना अथवा अत्यंत वृद्धको हीन करना और हीनको बढाना इस प्रकार क्रिया करनी चाहिये ३९३

ततः समत्वं दोषाणामामस्थानं कफस्य तु । तत्रस्थानां क्रियां तद्वदिति ज्वरविनिर्णयः ॥ ३९४ ॥

पश्चात् सब दोषोंमें प्रथम कफ और आमके स्थानसे चिकित्सा प्रारम्भ करनी चाहिये अर्थात् प्रथम कफ और आमको दूर करना चाहिये, ऐसा सब ज्वरोंमें निश्चय है ॥ ३९४ ॥

यथा दोषोच्छ्रयश्चैव ज्वराञ्छेषानुपाचरेत् । निर्हरेत्पित्तमेवादौ ज्वरेषु समवायिषु । दुर्निवारतरं तद्धि ज्वरार्तेषु विशेषतः ॥ ३९५ ॥

जिस प्रकार दोष बढे हुए हों उसी प्रकार सम्पूर्ण ज्वरोंकी चिकित्सा करे । समवायि (मिलेहुए) ज्वरमें प्रथम पित्तको शमन करना चाहिये. कारण, पित्त अत्यंत दुर्निवार्य है और ज्वररोगपीड़ित शरीरमें विशेष कर दुर्निवार्य हो जाता है ॥ ३९५ ॥

सन्निपाते क्षुधार्तं यो भोजयेत्पिशितौदनम् । स कथं भिषगाख्यातिं लभेन्मूढो नराधमः ॥ ३९६ ॥

जो नराधम सन्निपात ज्वरमें रोगीको क्षुधाके समय मांस और भात खानेको देता है, वह मूर्ख किस प्रकार वैद्य कहा जा सकता है ? ॥ ३९६ ॥

सन्निपाते तु दाहार्थं यः सिञ्चेच्छीतवारिणा । आतुरः स कथं जीवेद्भिषग्वा स कथं भवेत् ॥ ३९७ ॥

सन्निपातरोगमें दाहसे पीडित मनुष्यको जो वैद्य शीतल जलसे सींचता है तो वह रोगी कैसे जी सकता है ? और वह वैद्य वैद्य कैसे होसकता है ३९७ ॥

सन्निपातेन मनुजं विलपन्तन्तु यो घृतम् । पाययेद्भोजयेद्वापि तौ च स्यातामुभौ वधम् ॥ ३९८ ॥

जो मनुष्य सन्निपातरोगमें प्रलाप करते हुए मनुष्यको घृतपान करावे, अथवा भोजनमें घृत देवे तो इन दोनों विधियोंसे रोगी मरजाता है ॥ ३९८ ॥

सन्निपातेन तप्यन्तं पार्श्वरुक्तालुशोषिणम् । यः पाययेज्जलं शीतं स मृत्युर्नरविग्रहः ॥ ३९९ ॥

सन्निपातरोगमें तृषासे पीड़ित तथा पसलियोंकी पीड़ा और तालुशोषसे पीड़ित रोगीको यदि शीतल जल पिलावे तो उस वैद्यको मृत्युरूप जानना ॥ ३९९

समुद्रतरणं ह्येतद्वदन्ति भिषगीश्वराः । मृत्युना सह योद्धव्यं सन्निपातचिकित्सुना ॥ ४०० ॥

जो सन्निपातकी चिकित्सा करता है वह वैद्य साक्षात् मृत्युके साथ युद्ध करता है, उसको प्राचीन वैद्य समुद्रसे तारनेवाला कहते हैं ॥ ४०० ॥

सन्निपातार्णवे मग्नं योऽभ्युद्धरति मानवम् । कस्तेन न कृतो धर्म्मः काञ्च पूजां न सोऽर्हति ॥ ४०१ ॥

सन्निपातरूपी समुद्रमें डूबेहुए रोगीको जो उद्धार करता है उसने कौनसा धर्म नहीं किया ? और वह कौनसी पूजाको प्राप्त नहीं होता है ? ॥ ४०१ ॥

श्लेष्मनिग्रहमेवादौ कुर्याद्व्याधौ त्रिदोषजे । निरस्ते श्लेष्मणि ह्यस्य स्रोतस्सूद्घाटितेषु च । लाघवं जायते ह्यस्य तृष्णा चैवोपशाम्यति ॥ ४०२ ॥

सन्निपातज्वरमें प्रथम कफको दूर करे, क्योंकि जब कफ निकल जायगा तब सब शरीरके छिद्र शुद्ध होजायँगे और शरीर भी हलका हो जायगा फिर तृषा भी शांत हो जायगी ॥ ४०२ ॥

लङ्घनं वालुकास्वेदो नस्यं निष्ठीवनं तथा । अवलेहोऽञ्जनश्चैव प्राक्प्रयोज्यं त्रिदोषजे ॥ ४०३ ॥

लंघन, वालुकास्वेद, (बालूसे सेककर पसीना निकालना), नास देना, निष्ठीवन (कुल्ले करना), अवलेह और अंजन ये सब सन्निपातमें प्रथम प्रयोग कराने चाहिये ॥ ४०३ ॥

त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा दशरात्रमथापि वा। लङ्घनं संनिपातेषु कुर्य्यादारोग्यदर्शनात् ॥ ४०४ ॥

तीन या पाँच रात्रि अथवा सात रात्रि किंवा दश रात्रि या आरोग्य होनेपर्य्यंत सन्निपातमें लंघन कराने चाहिये ॥ ४०४ ॥

दोषाणामेव सा शक्तिर्लङ्घने या सहिष्णुता । नहि दोषक्षये कश्चित्सहते लङ्घनादिकम् ॥ ४०५ ॥

जितने दिनोंतक रोगी लंघन सहसके उतने दिनोंपर्यंत दोषोंका बल जानना चाहिये क्योंकि दोषोंके नाश होनेपर ऐसा कौन मनुष्य है जो लंघनको सह लेवे ॥ ४०५ ॥

कफपित्ते द्रवे धातू सहेते लङ्घनं महत् । आमक्षयादूर्ध्वमपि वायुर्न सहते क्षणम् ॥ ४०६ ॥

कफ और पित्त ये दोनों पतले पदार्थ हैं, इसकारण ये बहुत लंघनोंको सह सकते हैं। आमके क्षय होनेपर केवल वायु शेष रहजाता है, वह एक क्षण भी लंघन नहीं सह सकता है ॥ ४०६ ॥

उत्तम, हीन और अधिक लंघन होनेके लक्षण ।

ग्लान्यङ्गगौरवे श्रद्धाविकृतिर्हीनलङ्घिते । प्रकांक्षालाघवो ग्लानिः स्वस्थता सुप्रसन्नता ॥ ४०७ ॥ उपद्रवनिवृत्तिश्च सम्यग्लङ्घितलक्षणम् । संमोहः सन्धिशैथिल्यं वातरुक्चातिलङ्घिते॥ ४०८ ॥

शरीरमें ग्लानि, भारीपन, अश्रद्धा ये विकार हीनलंघनके हैं । भोजनमें इच्छा, शरीरमें हलकापन, ग्लानिका नाश, स्वस्थता, प्रसन्नता और पूर्ण उपद्रवोंका निवृत्ति ये अच्छे प्रकारसे लंघन होनेके लक्षण हैं । मोह, संधियोंमें शिथिलता और वातके रोग ये लक्षण अत्यंत लंघन करनेमें होते हैं ॥ ४०७॥ ॥ ४०८ ॥

शस्तं सुलङ्घितस्यादौ विधाय कवलग्रहम् ॥ ४०९ ॥

सन्निपातमें अच्छेप्रकारसे लंघन किये हुए मनुष्यको प्रथम कवल धारण कराना चाहिये ॥ ४०९॥

लाजसक्तुकपथ्यं स्यात्सैन्धवेनावचूर्णितम् । तच्चेज्जीर्यत्यविघ्नेन रोगी जीवेत्तदा ध्रुवम् ॥ ४१० ॥

खीलोंके सत्तुओंको सैंधे नमकके साथ मिलाकर सन्निपातरोगीको देवे,जो वह अच्छे प्रकारसे पचजाय और कुछ विकार न लावे तो रोगी निश्चय जीता है ॥ ४१० ॥

रक्तपित्तहरत्वेन दाहज्वरकृते तथा । सक्तवः शीतवीर्य्याः स्युर्लाजपूर्वा हिता न ते ॥ ४११ ॥

खीलोंके सत्तू,रक्तपित्त और दाहज्वरको नष्ट करते हैं इसकारण शीतवीर्य्य हैं, शीतवीर्य होनेके कारण सन्निपातमें हितकारी नहीं हैं ॥ ४११ ॥

पाचनो दीपनो लाजमण्डस्तेनोष्ण इष्यते । अतोऽयं दशमूलादिसाधितोऽयं भिषग्मतः ॥ ४१२ ॥

खीलोंका मांड-पाचन, दीपन और उष्ण है। इसलिये इसको दशमूलादि औषधियोंके काथमें सिद्ध करके देना चाहिये ॥ ४१२ ॥

पञ्चमुष्टिकयूषेण त्रिकण्टककृतेन च । त्रिदोषशमनार्थं त्रिकण्टेनैव साधयेत् ॥ ४१३ ॥ यवकोलकुलत्थानां मुद्गामलकशुण्ठ्ययोः । एकैकं मुष्टिमादाय पचेदष्टगुणे जले ॥ ४१४ ॥ पञ्चमुष्टिक इत्येष वातपित्तकफापहः। शस्यते गुल्मशूले च श्वासे कासे क्षये ज्वरे ॥ ४१५ ॥

पंचमुष्टिकयूषकी ओषधियोंको गोखुरूके काथमें डालकर विधिपूर्वक यूष सिद्ध कर त्रिदोषशमन करनेके लिये देवे । जौ, बेर, कुलथी, मूँग और आमले

प्रत्येकको एक २ मुट्ठी लेकर अठगुने जलमें पकावे, जब यूष पककर सिद्ध होजाय तब उतारकर छान लवे फिर उसमें थोडासा सोंठका चूर्ण डाल देवे। इसको पंचमुष्टिकयूष कहते हैं। यह पंचमुष्टिकयूष वात, पित्त और कफनाशक है तथा गुल्म, शूल, श्वास, खाँसी, क्षय और ज्वरमें हितकारी है॥४१३॥४१४॥ ॥ ४१५ ॥

यवकोलकुलत्थैश्च मुद्गामलकसंयुतैः। धान्याकविश्वयुक्तैश्च यूषो वातकफापहः ॥ ४१६ ॥ सप्तमुष्टिक इत्येष सान्निपातज्वरापहः । कफवातामदोषघ्नः कण्ठहृद्वक्त्रशोधनः ॥ ४१७ ॥ आर्द्रकस्वरसोपेतं सैन्धवं सकटुत्रयम् । आकण्ठं धारयेदास्ये निष्ठीवेच्च पुनः पुनः ॥ ४१८ ॥ तेनास्य हृदये श्लेष्मा मन्यापार्श्वशिरोगलात् । लीनोऽप्याकृष्यते शुष्को लाघवं चास्य जायते४१९ पर्वभेदो ज्वरो मूर्च्छा निद्राश्वासगलामयाः । मुखाक्षिगौरवं जाड्यमुत्क्लेशश्चोपशाम्यति ॥४२०॥ सकृद्द्वित्रिचतुः कुर्य्याद्दृष्ट्वा दोषबलाबलम् । एतद्धि परमं प्राहुर्भेषजं सान्निपातिनाम् ४२१॥

जौ, बेर, कुलथी, मूँग, आमले, धनियाँ और सोंठ प्रत्येकको ४-४-तोले लेकर पूर्वोक्त विधिसे यूप बनावे । इसको सप्तमुष्टिकयूष कहते ह। यह सप्तमुष्टिकयूष वातकफनाशक तथा सान्निपातज्वर, कफ, वात और आमदोपनाशक है एवं कंठ, हृदय और मुखको शुद्ध करता है। सैंधानोन, सोंठ, मिरच, पीपल इनके चूर्णको अदरखके रसमें मिलाकर मुखमें धारण करे, जो कफ आवे तो उसको वारंवार थूकता रहे। इस प्रकार करनेसे हृदय, मन्या, पसली, शिर और गलेमें लिसाहुआ भी कफ खिंचकर बाहर निकल जाता है और शरीर हलका हो जाता है, संधियोंकी पीड़ा, ज्वर, मूर्च्छा, निद्रा, श्वास, गलरोग, मुख तथा नेत्रोंकी गुरुता, शरीरकी जड़ता और उबकाई दूर होती हैं। इसप्रकार दोषोंका बलाबल विचार कर दो, तनि या चार बार करे, यह सान्निपातरोगियोंकी उत्तम औषधि है ॥ ४१६-४२१ ॥

सुरसार्जकनिर्यासः समधुव्योषसैन्धवः । महाश्लेष्मानिलोद्रेकसंज्ञानाशविमोक्षणः ॥४२२ ॥

तुलसीका स्वरस, शहद, राल, त्रिकुटा और सैंधानोन इन सबको एकत्र मिलाकर चाटे तो बढे हुए कफवात नष्ट हों तथा चैतन्य उत्पन्न होता ह ॥ ४२२ ॥

मधूकसारसिन्धूत्थवचोषणकणाःसमाः। श्लक्ष्णं पिष्ट्वाम्भसा नस्यं कुर्य्यात्संज्ञाप्रबोधनम् ॥ ४२३ ॥

महुएका सार, सैंधानोंन, वच, काली मिरच और पीपल इन सबको समान भाग लेकर जलमें बारीक पीसकर नास लेनेसे संज्ञाका ज्ञान होता है ॥ ४२३॥

स्विन्नमामलकान्पिष्ट्वा द्राक्षया सहसंसृजेत् । विश्वभेषजसंयुक्तं मधुना सह लेहयेत् ॥ ४२४ ॥ तेनास्य शाम्यते मूर्च्छा कासः श्वासस्तथैव च ॥ ४२५॥

सीजेहुए आमले, मुनक्का और सोंठ इन सबको एकत्र पीस शहदके साथ चाटनेसे मूर्च्छा, खाँसी और श्वास ये सब दूर होते हैं ॥ ४२४ ॥ ४२५ ॥

अष्टाङ्गं मधुना लिह्यादार्द्रकस्वरसेन वा । संमोहं दारुणं हन्ति तन्द्राकाससमन्वितम् ॥ ४२६ ॥

अष्टांग अवलेहको शहद अथवा अदरखके रसमें मिलाकर चाटनेसे तन्द्रा और खाँसी संयुक्त बेहोशी दूर होती है ॥ ४२६ ॥

कट्फलं पुष्करं भार्ङ्गी व्योषं यासश्च कारवी । श्लक्ष्णचूर्णीकृतश्चैतन्मधुना सह लेहयेत् ॥ ४२७ ॥ एषावलेहिका हन्ति सन्निपातं सुदारुणम् । हिक्कां श्वासश्च कासश्च कण्ठरोगं नियच्छति ॥ ४२८ ॥ एतद्योज्यं कफोद्रेके चूर्णमार्द्रकजै रसैः । ऊर्ध्वजत्रुगदघ्नी या सायं कार्य्यावलेहिका । अधोरोगहरी या तु सा पूर्वं भोजनान्मता ॥४२९ ॥

कायफल, पोहकरमूल, भारंगी, त्रिकुटा, जवासा और कलौंजी इन सबको एकत्र महीन पीसकर शहदमें मिलाकर चाटे तो दारुणसन्निपात, हिक्का, श्वास, खाँसी और कंठरोग नष्ट होते हैं। इस चूर्णको कफकी अधिकतामें अदरखके रसमें मिलाकर सेवन करे। जो अवलेह ऊर्ध्वजत्रु और अधोगत रोगोंको हरण करनेवाले हैं उनको सन्ध्याके समय भोजनसे प्रथम देना चाहिये ॥ ४२७ ॥ ४२८ ॥ ४२९ ॥

मरिचं पिप्पली शुण्ठी पथ्या लोध्रं सपुष्करम्। भूनिम्बकटुका कुष्ठं यवानी कट्फलं तथा ॥ ४३० ॥ एतानि समभागानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत्। प्रस्वेदे कण्ठरोधे च सन्धौ मर्दनमिष्यते। एतदुद्धूलनं प्रोक्तं सन्निपातहरं परम् ॥ ४३१ ॥

त्रिकुटा, हरड़, लोध, पोहकरमूल, चिरायता, कुटकी, कूठ, अजवायन और कायफल इन सबको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करले, इसको अधिक पसीनेके आनेमें, कंठरोध और संधियोंकी पीड़ा होनेपर शरीरमें मर्दन करे। यह उत्तम उद्धूलन सन्निपातनाशक है ॥ ४३० ॥ ४३१ ॥

सर्वेषु सन्निपातेषु न क्षौद्रमवचारयेत्। शीतोपचारि क्षौद्रं स्याच्छीतं चात्र विरुध्यते ॥ ४३२ ॥

सम्पूर्ण सन्निपातोंमें मधु नहीं देना चाहिये। कारण यह है कि, मधुभक्षण करनेके पश्चात् शीतल उपचार करनेकी आवश्यकता होती है, किन्तु सन्निपातमें शीतल उपचार वर्जित हैं ॥ ४३२ ॥

क्रियाभिस्तुल्यरूपाभिः क्रियासांकर्यमिष्यते। भिन्नरूपतया तास्तु न कुर्वन्ति हि दूषणम् ॥ ४३४ ॥

जो एक समयमें एकसी दो चिकित्सा की जाती हैं उनको संकरक्रिया कहते हैं, उक्त क्रिया पृथक् पृथक् करनेसे दोषकारक नहीं होती हैं ॥ ३४४ ॥

यदा स्वल्पानिलकफौ तालुक्लोमगतौ श्रितौ। कुर्य्यातामधिकं शोषं जिह्वायाः खरतां तथा ॥ ४३४ ॥ तदा तां स्फुटितां जिह्वामुच्छुष्कां मधुपिष्टया। द्राक्षया साज्यया चास्यं लेपयेत्सन्निपातिनः ॥ ४३५ ॥ घर्षेज्जिह्वां जडां सिन्धुत्र्यूषणैः साम्लवेतसैः ॥ ४३६ ॥

जब अल्पवात और कफके आश्रित तालु और क्लोम होते हैं तब अधिक शोष उत्पन्न करते हैं तथा जीभको खरखरी और फटीसी कर देते हैं। इसपर मुनक्का शहद अथवा घीमें पीसकर जिह्वापर लेप करना चाहिये। जो जिह्वा जड़ होजाय तो सैंधानोन और त्रिकुटेके चूर्णको अमलबेतके रसमें मिलाकर जीभपर घिसे ॥ ४३४ ॥ ॥ ४३५ ॥ ४३६ ॥

स्वेदोद्गमे भ्रष्टकुलत्थचूर्णनिपातनं शस्तमिति ब्रुवन्ति। मृत्युश्च तस्मिन्बहुपिच्छिलत्वाच्छीतस्य जन्तोः परितः सरत्वात् ॥ ४३७ ॥

सन्निपातज्वरमें बहुत पसीना आवे तो भुनीहुई कुलथीको पीसकर शरीरमें मर्दन करना चाहिये। इस पसीनेमें बहुत पिच्छिलता होनेके कारण और उसमें शीघ्र ही शीतके फैलजानेसे तत्काल रोगीकी मृत्यु होती है ॥ ४३७ ॥

चूर्णं यथा कट्फलकृष्णजीरकं लोध्रं गवां काननविट्पुरातनम्। तिक्ता सपथ्या लवणं तथांजनमुद्धूलनं स्वेदविकारजित्परम् ॥ ४३८ ॥

कायफल, कालाजीरा, लोध, पुराने आरने उपले, कुटकी, हरड, नमक और अञ्जन इन सबको बारीक पीसकर शरीरमें मलनेसे पसीनेका आना बंद होजाता है ॥ ४३८ ॥

भूनिम्बः कारवी तिक्ता वचा कट्फलजं रजः। उद्धूलनं त्रिदोषोत्थे ह्यभिष्यन्दिनि च ज्वरे ॥ ४३९ ॥

चिरायता, कालाजीरा, कुटकी, बच और कायफल इन सबको बारीक पीसकर उद्धूलन करे. यह त्रिदोषज्वर और अभिष्यन्दिज्वरमें हितकारी है ॥ ४३९ ॥

बिल्वोऽग्निमन्थः स्योनाकः काश्मरी पाटला स्थिरा। त्रिकण्टकः पृष्ठपर्णी

बृहती कण्टकारिका । दशमूलमिदं श्वाससन्निपातज्वरापहम् ॥ ४४० ॥ अविपाकानिलश्लेष्मतन्द्रापार्श्वार्त्तिकाससुत । पिप्पलीचूर्णसंयुक्तं हृत्कण्ठग्रहनाशनम् ॥ ४४१ ॥ महान्ति यानि मूलानि काष्ठगर्भाणि यानि च । तेषां तु वल्कलं ग्राह्यं ह्रस्वमूलानि कृत्स्नशः ॥ ४४२ ॥

बेलगिरी, अरणी, सोनापाठा, कुम्भेर, पाढल, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, गोखरू, बडी कटेरी और कटेरी इन सब औषधियोंके समुदायको दशमूल कहते ह । यह दशमूल, श्वास, सन्निपातज्वर, अजीर्ण, वात, कफ, तन्द्रा, पार्श्ववेदना और खांसीको नष्ट करता है । इसमें पीपलका चूर्ण मिला लिया जाय तो हृदय और कंठवरोधको दूर करता है । इनमें जिन औषाधियोंकी बडी जडें हैं और जो छालसे लिपटी हुई हैं उनके छाल लेने चाहिये और जिनकी छोटी जडें हैं उनका सर्वांग लेना चाहिये ॥ ४४०—४४२ ॥

दशमूलस्य निर्यूहः कट्फलादिरजोयुतः । तुल्यार्द्रकरसोपेतो मृत्युकल्पं ज्वरं जयेत् ॥ ४४३ ॥

दशमूलके निर्यूहमें कायफल आदिका चूर्ण और समानभाग अदरखका रस मिलाकर पान करे तो मृत्युकल्पके समान ज्वरको भी नष्ट करता है॥४३३॥

पञ्चमूलीकिरातादिगणो योज्यस्त्रिदोषजे । पित्तोत्कटे च मधुना कणया वा कफोत्कटे ॥ ४४४ ॥

त्रिदोषज्वरमें पञ्चमूलके क्वाथमें किरातादि गणकी औषधियोंको मिलाकर प्रयोग करे एवं पित्ताधिकसन्निपातमें पञ्चमूलके क्वाथको शहदके साथ और कफाधिकमें पञ्चमूलके क्वाथको पपिलके साथदेवे ॥४४४॥

चिरज्वरे वातकफोल्बणे वा त्रिदोषजे वा दशमूलमिश्रः । किराततिक्तादिगणः प्रयोज्यः शुद्ध्यर्थिने वा त्रिवृताविमिश्रः ॥ ४४५ ॥

दशमूल, चिरायता, नागरमोथा, गिलोय और सोंठ इनका क्वाथ पुराने वातकफोल्बणज्वरमें अथवा त्रिदोष ज्वरमें देवे, यदि दस्त लानेकी आवश्यकता हो तो निसोतका चूर्ण डाल कर देवे ॥ ४४५ ॥

दशमूली शठी शृङ्गी पौष्करं सदुरालभम् । भार्ङ्गी कुटजबीजञ्च पटोलं कटुरोहिणी ॥ ४४६ ॥ अष्टादशाङ्ग इत्येषः सन्निपातज्वरापहः । कासहृद्ग्रहपार्श्वार्तिश्वासहिक्कावमीहरः॥४४७॥

दशमूल, कचूर, काकडाशिंगी, पोहकरमूल, धमासा, भारङ्गी, इन्द्रजौ, पटोलपत्र और कुटकी इन सब औषधियोंको अष्टादशांग कहते हैं। यह अष्टादशांग क्वाथ सन्निपातज्वर, खांसी, हृदयरोग, पसलियोंकी पीडा, श्वास, हिचकी और वमनको दूर करता है ॥ ॥ ४४६ ॥ ४४७ ॥

दशमूलीकषायन्तु पुष्कराह्वकणायुतम् । सन्निपातज्वरे देयं श्वासकासतृषान्विते ॥ ४४८ ॥

दशमूलके क्वाथमें पोहकरमूल और पीपलका चूर्ण डालकर श्वास, खांसी और तृषा युक्त सन्निपातज्वरमें देना चाहिये ॥ ४४८ ॥

बृहत्यौ पुष्करं भार्ङ्गी शठी शृङ्गी दुरालभा । वत्सकस्य च बीजानि पटोलं कटुरोहिणी ॥ ४४९ ॥ बृहत्यादिगणः प्रोक्तः सन्निपातज्वरापहः । श्वासादिषु च सर्वेषु हितः सोपद्रवेषु च ॥ ४५० ॥

बडी कटेरी, कटेरी, पोहकरमूल, भारङ्गी, कचूर, काकडा शिंगी, धमासा, इन्द्रजौ, पटोलपात और कुटकी इन औषधियोंके समूहको बृहत्यादिगण कहते हैं।यह बृहत्यादिगण सन्निपातज्वरनाशक है तथा श्वासादि सब उपद्रव सहित त्रिदोषज्वरमें हितकारी है४५०॥४४९॥

शठीपुष्करमूलं च व्याघ्री शृङ्गी दुरालभा । गुडूची नागरं पाठा किरातं कटुरोहिणी॥४५१॥ एष शट्यादिको वर्गः सन्निपातज्वरापहः । कासहृद्ग्रहपार्श्वार्त्तिश्वासे तन्द्र्याञ्च शस्यते ॥ ४५२ ॥

कचूर, पोहकरमूल, कटेरी, काकडाशिंगी, धमासा, गिलोय, सोंठ, पाढ, चिरायता और कुटकी इन सब

औषधियोंके समूहको शठ्यादिवर्ग कहते हैं। यह शठ्यादिवर्ग सन्निपातज्वरनाशक है, तथा खांसी, हृदयरोग, पसलियोंकी पीडा, श्वास और तन्द्रामें हितकारी है ॥ ४५१ ॥ ४५२ ॥

शटी पुष्करमूलन्तु गुडूची विश्वभेषजम् । त्रिकण्टकं त्रायमाणा पिप्पली सदुरालभा ॥ ४५३ ॥ व्याघ्री पर्पटकं रास्नाऽभया कटुकरोहिणी । देवदारु वचा भार्ङ्गी समभागानि कारयेत् ॥ ॥ ४५४ ॥ एष शठ्यादिको वर्गः सान्निपातज्वरापहः । कासं श्वासं दिवानिद्रां रात्रौ जागरणं तथा । मुखशोषं तृषां दाहं त्रिदोषञ्च नियच्छति ॥ ४५५ ॥

कचूर, पोहकरमूल, गिलोय, सोंठ, गोखुरू, बनपसा, पीपल, धमासा, कटेरी, पित्तपापडा, रायसन, हरड, कुटकी, देवदारु, बच और भारङ्गी इन सब औषधियोंके समुदायको बृहच्छठ्यादिवर्ग कहते हैं। यह शठ्यादिवर्ग सन्निपातज्वर, खांसी, श्वास, दिनमें सोना, रात्रिमें जागना, मुखशोष, तृषा, दाह और त्रिदोषको नष्ट करता है ॥ ४५३ ॥ ४५४ ॥ ४५५ ॥

पित्ताधिक्ये तु शठ्यादिर्बृहत्यादिः कफाधिके । वातोत्तरे सान्निपाते कट्फलादिः प्रशस्यते ॥ ४५६ ॥

पित्ताधिकसन्निपातमें शठ्यादिकाथ, कफाधिक सन्निपातमें बृहत्यादि और वाताधिकसन्निपातमें कट्फलादिक्वाथ हितकारी है ॥ ४५६ ॥

कट्फलाब्दवचापाठापुष्कराजाजिपर्पटैः । देवदार्वभयाशृङ्गीकणाभूनिम्बनागरैः ॥ ४५७ ॥ भार्ङ्गीकलिङ्गकटुकाशटीकत्तृणधान्यकैः । समांशैः साधितः क्राथो हिंग्वार्द्रकरसैर्युतः ॥ ॥ ४५८ ॥ कर्णमूलोद्भवं शोथं हन्ति मन्यागलाश्रयम् । कफवातज्वरं श्वासं कासं हिक्कां हनुग्रहम् ॥ ४५९ ॥ दशमूलयुतो ह्येष सान्निपातज्वरं जयेत् । अभिन्यासं समस्तञ्च कट्फलादिर्नियच्छति ॥ ४६० ॥

कायफल, नागरमोथा, बच, पाठ, पोहकरमूल, जीरा, पित्तपापडा, देवदारु, हरड, काकडाशिंगी, पीपल, चिरायता, सोंठ, भारङ्गी, इन्द्रजौ, कुटकी, कचूर, सुगन्धतृण और धनियां इन सबको समान भाग लेकर क्वाथ बनाकर हीङ्ग और अदरखका रस मिलाकर पान करे तो कर्णमूलोत्पन्न सूजन, गलाश्रित शोथ, कफवातज्वर, खांसी, श्वास, हिचकी और हनुस्तम्भादिरोग दूर होते हैं। इसमें दशमूलका काथ मिलाकर पीवे तो यह सन्निपातज्वर और सर्वप्रकारके अभिन्यास ज्वरको दूर करता है। ॥ ४५७ ॥ ४५८ ॥ ४५९ ॥ ४६० ॥

दारुनागरभूनिम्बधान्यतिक्ताकलिङ्गजैः । गजाह्वादशमूलाब्दैर्मृत्युकल्पं ज्वरं जयेत् ॥ ४६१ ॥ अष्टादशाङ्ग इत्येष सन्निपातज्वरापहः । कासहृद्ग्रहपार्श्वार्त्तिश्वासहिक्कावमीर्हरेत् ४६२ ॥

देवदारु, सोंठ, चिरायता, धनियां, कुटकी, इन्द्रजौ, गजपीपल, दशमूल और नागरमोथा, इनके काथको अष्टादशांगकाथ कहते हैं। यह अष्टादशांग काथ सन्निपातज्वरको नष्ट करता है तथा खांसी, हृदयकी पीडा, पसलियोंकी पीडा, श्वास, हिचकी और वमनको दूर करता है ॥ ४६१ ॥ ४६२ ॥

गुडूची चन्दनं पद्मनागरेन्द्रयवासकम् । अभयारग्वधोशीरपाठा धान्याब्दरोहिणी ॥ ४६३ ॥ कषायं पाययेदेतत्पिप्पलीचूर्णसंयुतम् । तन्द्राकासज्वरश्वासपिपासादाहनाशनः ॥ ४६४ ॥ विण्मूत्रानिलविष्टम्भात्रिदोषप्रभवस्य च । गुडूच्यादिगणो ह्येष पाचनो दीपनः परः ॥ ४६५ ॥

गिलोय, लाल चन्दन, पद्माख, सोंठ, इन्द्रजौ, जवासा, हरड, अमलतास, खस, पाढ, धनिआं, नागरमोथा और कुटकी इनके काथमें पिपलका चूर्ण डालकर पान करानेसे तन्द्रा, खांसी, ज्वर, श्वास, पियास, दाह, त्रिदोषके कुपित होनेसे मल, मूत्र और वायुका अवरोध ये दूर होते हैं। यह गुडूच्यादिगण पाचन और दीपन है ॥ ४६३ ॥ ४६४ ॥ ॥ ४६५ ॥

अमृतादशमूलीभ्यां साधितं विधिवज्जलम् । सन्निपातज्वरं हन्यात्त्रयोदशविधं नृणाम् ॥ ४६६ ॥

गिलोय और दशमूलके द्वारा विधिपूर्वक सिद्ध किया हुआ क्काथ तेरह प्रकारके सन्निपातोंको नष्ट करता है ॥ ४६६ ॥

विषशुण्ठी दशमूली छिन्ना पाठा च पिप्पलींद्रयवैः । सकिराततिक्तवासा शमयति हतौजसं सद्यः ॥४६७॥

अतसी, सोंठ, दशमूल, गिलोय, पाढ, पीपल, इन्द्रजौ, चिरायता और अडूसा, इनका क्वाथ ज्वरसे क्षीणरोगीको तत्काल आरोग्य करता है ४६७

त्र्यूषणदशमूलशुण्ठीभार्ङ्गीछिन्नोद्भवोद्भवः क्काथः।पीतः शमयति सहसा ज्वरमुग्रं सन्निपाताख्यम् ॥ ४६८ ॥

त्रिकुटा, दशमूल, सोंठ, भारंगी और गिलोय इनका क्वाथ पान करनेसे शीघ्र ही सन्निपात ज्वर दूर होता है ॥ ४६८ ॥

द्विपश्चमूली षड्ग्रंथा विश्वा गृध्रनखीद्वयम् । कफवातहरः क्काथः सन्निपातहरः परः ॥ ४६९ ॥

दशमूल, बच, सोंठ, बेर और झडबेर (किसीके मतसे कौआठोडी और मकोय) इनका क्काथ सन्निपात ज्वरको नष्ट करता है ॥ ४६९ ॥

सिंहास्यपर्पटारिष्टं यष्टिधान्याकनागरम् । दारुवग्रन्धेन्द्रयवाः श्वदंष्ट्राग्रन्थिकं तथा ॥ ४७० ॥ एषां कषायमह्नि सन्निपातज्वरे पिबेत् । श्वासातिसारकासघ्नं शूलारुचिहरं परम् ४७१॥

अडूसा, पित्तपापडा, नाम,मुलैठी,धनियां, सोंठ, देवदारु, वच, इन्द्रजौ, गोखरू और पीपलामूल इनका क्काथ बनाकर दिनमें पान करनेसें सन्निपातज्वर,श्वास,अतिसार, खाँसी, शूल और अरुचि दूर होती है ॥ ४७० ॥ ४७१ ॥

कट्फलं त्रिफला दारु चन्दनं सपरूषकम् । कटुकं पद्मकोशीरं विपचेत्काषिकं जलम् ॥ ४७२ ॥ तत्सन्निपातदाहघ्नं पानमात्रे प्रपूजितम् । दीर्घकालप्रयुक्तानां ज्वरिणाममृतोपमम्॥४७३॥

कायफल, त्रिफला, देवदारु, चन्दन, फालसा, त्रिकुटा, पद्माख और खस इनका क्काथ बनाकर पान करनेसे सन्निपातज्वर और उसकी दाह दूर होती है। यह काथ बहुत दिनोंके ज्वरवाले मनुष्यके लिए अमृतके समान है ॥ ४७२ ॥ ४७३ ॥

समुस्तं पश्चमूलञ्च दद्याद्वातोत्तरे गदे। भृशोष्णं वा सुखोष्णं वा दृष्ट्वा दोषबलाबलम् ॥ ४७४ ॥

पंचमूल और नागरमोथा इनका क्काथ बनाकर दोषोंके बलाबलको विचार कर अधिक उष्ण अथवा मंदोष्ण वातोल्बण सन्निपातज्वरमें देवे ॥ ४७४ ॥

कफोत्तरे बृहत्यादिगणश्च दशमूलजः। परूषकाणि त्रिफला देवदारु सकट्फलम् । पित्तोत्तरे नृणामेतत्सन्निपाते चिकित्सितम् ॥ ४७५ ॥

कफाधिक सन्निपातमें बृहत्यादिगणकी औषधि, दशमूलकी औषधि, फालसेकी छाल,त्रिफला, देवदारु और कायफल इनका काढा देवे ॥ ४७५ ॥

मुस्ता पर्पटकोशीरदेवदारुमहौषधम् । त्रिफला धन्वयासश्च नीली कांपिल्लकं त्रिवृत ॥ ४७६॥ किराततिक्तकं पाठा बला कटुकरोहिणी । मधुकं पिप्पलीमूलं मुस्ताद्यो गण उच्यते ॥ ४७७ ॥ अष्टादशाङ्गमुदकं सन्निपातज्वरापहम् ॥४७८ ॥ पित्तोत्तरे सन्निपाते हितमुक्तं मनीषिभिः । मन्यास्तम्भ उरोघाते हनुस्तम्भे शिरोगदे ॥ ४७९ ॥

पित्ताधिक सन्निपातमें नागरमोथा, पित्तपापड़ा, खस, देवदारु, सोंठ, त्रिफला,धमासा,नीलकी छाल, कबीला, निसोत, चिरायता, पाढ, खिरैंटी, कुटकी, मुलैठी और पीपलामूल इन सब औषधियोंके समूहको मुस्ताद्यगण कहते हैं । यह अष्टादशांग क्काथ सन्निपा-

तज्वरनाशक है, विशेष कर पित्तोल्बण सन्निपातमें अतीव हितकारी है तथा मन्यास्तम्भ, ऊरुस्तम्भ, हनुस्तम्भ और शिरोरोगमें अत्यन्त हितकारी है॥४७६॥ ॥ ४७७ ॥ ४७८ ॥ ४७९ ॥

व्योषाह्वत्रिफलारिष्टपटोलीतिक्तवत्सकैः । सभूनिम्बामृतापाठैस्त्रिदोषज्वरजिज्जलम् ॥ ४८० ॥

त्रिकुटा, त्रिफला, नीमकी छाल, पटोलपत्र, कुटकी, इन्द्रजौ, चिरायता, गिलोय और पाढ इनका क्वाथ त्रिदोषजनित ज्वरको नष्ट करता है ॥ ४८०॥

बिल्वकं त्रिवृता दन्ती समूलं चतुरङ्गुलम् । पक्वं कषायं विस्राव्य नीलीचूर्णविमिश्रितम् ॥ ससर्पिष्कं पिबेत्तूर्णं सन्निपाते विरेचनम् ॥ ४८१ ॥

बेलगिरी, निसोत, दंती और अमलतास, इनकी जडके क्वाथमें नीलका चूर्ण और घी मिलाकर पान करे तो सन्निपातरोगीको अच्छे प्रकारसे विरेचन हो जाता है ॥ ४८१ ॥

कम्पप्रलापनं यस्य संज्ञानाशश्च दारुणः । रसैश्च लाववर्तैश्च कलिङ्गैः शशतित्तिरैः ॥ ४८२ ॥ तर्पयेत्प्राक्पुराणेन सर्पिषाऽभ्यंजयेदपि । बलारास्नागुडूच्याद्यैस्तैलैश्च परिषेचयेत् ॥ ४८३ ॥

जिस रोगीके कम्प हो, प्रलाप करे और संज्ञा जाती रहे तो उसको लवा, बटेर, चिड़ा, कबूतर और तीतर इनके मांसरसको पिलावे, पश्चात् रोगीके शरीरसे पुराने घीको मलकर तर्पण करे तथा खिरैंटी, रायसन और गिलोय इत्यादिक द्वारा सिद्ध किया हुआ तेल शरीरमें लगावै ॥ ४८२ ॥ ४८३ ॥

तन्द्राके लक्षण ।

आचितामाशयकफे सन्निपातज्वरे दृढे । शान्तेऽप्यवश्यं तस्याशु तन्द्रा समुपजायते ॥ ४८४ ॥ अभिद्रवरसक्षीरदिवास्वप्ननिषेवणात् । दुर्बलस्याल्पवातस्य जन्तोः श्लेष्मा प्रकुप्यति ॥४८५ ॥ वायुमार्गं समावृत्य धमनीरनुसृत्य सः । तन्द्रां सुघोरां जनयेत्तस्या वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ ४८६ ॥ उन्मीलितविनिर्भुग्ने परिवर्तिततारके । भवतस्तस्य नयने कलिते चलपक्ष्मणी ॥४८७॥ निवृत्तानतदन्तौष्ठं मुहुरुत्तानशायिनम् । पिच्छिलोच्छिन्नतन्तुश्च कण्ठे श्लेष्मास्य गच्छति ॥ ४८८ ॥ कण्ठमार्गविरोधश्च वैकृतं चोपजायते । सोऽर्वाक्त्रिरात्रं साध्यः स्यादसाध्यस्तु ततः परम् ॥ ४८९ ॥

आमाशयमें आम और कफके संचित होनेसे जो दृढ सन्निपात ज्वर उत्पन्न होता है उसके शांत होनेपर शीघ्रही तन्द्रा उत्पन्न होती है । पतले रस और दूध आदि पदार्थोंको सेवन करनेसे, दिनमें सोनेसे दुर्बल और अल्पवायुवाले मनुष्यके कफ कुपित होकर वायुके मार्गको रोककर धमनियोंमें प्रवेश करके घोर तन्द्राको उत्पन्न करता है । अब उस तन्द्राके लक्षण कहता हूँ । तन्द्रावाले मनुष्यके नेत्र आधे मिचेसे अथवा टेढेसे प्रतीत हों, तारोंको इधर उधर फेरे, नेत्र जड़से हो जायँ तथा गिरेसे मालूम हों, पलक स्थिर हो जाय, होंठ ऊपरको सिमट जायँ, दांत बाहरसे दीखने लगें, वारंवार चित्त होकर सोवे, चिपकता हुआ गाढे कफका टेंट मुखमें आवे और उससे कंठमार्ग रुक जाय, इसप्रकार अनेक विकार होते हैं । यह तन्द्रा तीन दिनतक तो साध्य है पश्चात् असाध्य हो जाती है ॥ ४८४॥ ४८५॥४८६॥४८७॥४८८ ॥ ॥ ४८९ ॥

ज्योतिष्मत्यास्तथा तैलं मूलं पिण्डारकस्य च । तन्द्राविनाशनं श्रेष्ठं नस्यकर्म्मणि योजितम् ॥ ४९० ॥ सैन्धवं श्वेतमरिचं सर्षपः कुष्ठमेव च । मूत्रेण पिष्ट्वा बस्तस्य नस्यं तन्द्राविनाशनम् ॥ ४९१ ॥

मालकांगनीका तेल और पिंडारकी जड दोनोंको एकत्र पीसकर नस्य देनेसे तन्द्रा दूर होती है । सैंधानोन सैंजिनेके बीज सरसों और कूट इन सबको एकत्र बकरेके मूत्रमें पीसकर नास लेनेसे तन्द्रा दूर होती है ॥ ४९० ॥ ४९१ ॥

अम्लुराह्वयगन्धस्य विट्चूर्णमधुसंयुतम्। अञ्जनाद्बोधयेन्मुग्धं तन्द्रितं सन्निपातिनम् ॥४९२॥ जातीपुष्पं प्रवालश्च मरिचं रोहिणी वचा। सैन्धवं वस्तमूत्रेण तन्द्रानाशनमुत्तमम्॥४९३॥

गंधक और विडलवणके चूर्णको शहदमें मिलाकर कांसेके पात्रमें घिसकर नेत्रोंमें अंजन लगानेसे तन्द्रावाला रोगी चैतन्य हो जाता है। चमेलीके फूल, मूँगा, कालीमिरच, कुटकी, बच और सेंधानोंन इन सबको एकत्र बकरेके मूत्रमें पीसकर नास देनेसे तन्द्रा दूर होती है ॥ ४९२॥ ४९३॥

अयोरजःश्वेतलोध्रमञ्जनं मरिचं तथा। गोपित्तेन समायुक्तं तन्द्रानाशनमुत्तमम् ॥ ४९४ ॥

लोहेका चूर्ण, सफेद लोध, अंजन, काली मिरच और गोरोचन इन सबको एकत्र पीसकर नेत्रोंमें आंजनेसे तन्द्रा दूर होती है ॥ ४९४ ॥

सन्निपातज्वरोत्पन्नां युक्त्या तन्द्रां जयेद्भिषक्। उपद्रवः कष्टतमो ज्वराणां सविशेषतः ॥ ४९५ ॥

सन्निपात ज्वरमें उत्पन्न हुई तन्द्राको वैद्य बडी युक्तिसे जीते, क्योंकि ज्वरमें विशेषकर यह अत्यंत कष्टतम उपद्रव है ॥ ४९५ ॥

अभिन्यासज्वरके लक्षण।

त्रयश्च कुपिता दोषा उरःस्रोतोऽनुगा भृशम् । आमा विबद्धा ग्रथिता बुद्धीन्द्रियमनोऽनुगाः ॥ ४९६ ॥ जनयन्ति महाघोरमभिन्यासं ज्वरं नृणाम् । अस्तब्धगात्रस्त्ववाग्मी नष्टचेष्टो न कांक्षते ॥ ४९७॥ न च दृष्टिर्भवेत्तस्य समर्था रूपदर्शने । न च गन्धरसस्पर्शशब्दान्प्राप्याथ बुध्यते॥४९८॥ शिरो लोठयतेऽभीक्ष्णमाहारं नाभिनन्दति । कूजते तुद्यते चैवं प्रतिपत्तिश्च हीयते ॥ ४९९ ॥ कलं प्रभाषते किञ्चिदभिन्यासः स उच्यते । प्रत्याख्येयः स भूयिष्ठं कश्चिदेवात्र सिध्यति ॥ ५०० ॥

वातादि तीनों दोष कुपित होकर हृदयके स्रोतोंमें प्राप्त होकर आमसे विबद्ध और ग्रथित होकर बुद्धि, इन्द्रिय और मनके अनुगामी होकर घोर अभिन्यास ज्वरको उत्पन्न करते हैं। इसके होनेसे रोगीके शरीरमें निश्चेष्टता, बोलनेमें असमर्थता, नेत्र और कानोंमें जडता, देखने, सूँघने, छूने और सुननेमें असमर्थता होती है। तथा वह शिरको इधर उधर पटके, शयन करनेपर वारंवार करवटें लेवे अर्थात् किसीप्रकार चैन नहीं हो, आहारमें अरुचि, कूजे, उसके शरीरमें तोडनेकेसी पीडा हो और कंठसे थोडा बोले, इसको अभिन्यास सन्निपात कहते हैं । वह सन्निपातरोगी प्रायः नष्ट हो जाता है, कदाचित् कोई नीरोग होता है ॥ ४९६–५०० ॥

सप्ताहं वा दशाहं वा द्वादशाहमथापि वा । ते घ्नन्ति संहता धातोः पाकान्मुञ्चन्ति चान्यथा ॥ ५०१ ॥

इस सन्निपातरोगमें सात दिनमें या दश दिनमें या बारह दिनमें धातुओंका पाक होनेसे रोगीकी मृत्यु होती है और दोषोंका पाक होनेसे रोगसे मुक्ति होती है ॥ ५०१ ॥

एतत्तु हारीतस्त्वाह घ्नन्ति मुञ्चन्ति वा नरम् । दिवसैर्द्विगुणैः सप्तनवैकादशभिः क्रमात् ॥ ५०२ ॥

अन्य आचार्य्य कहते हैं कि–धातु और दोषोंके पचनेके अनुसार सन्निपात १४ या ९ अथवा ११ दिनमें मनुष्यको मारदेता है अथवा छोड देता है५०२

दुर्गेऽम्भसि यथा मग्नं भाजनं त्वरया बुधः। गृह्णीयात्तलमप्राप्तं तथाभिन्यासपीडितम् ॥ ५०३ ॥ निद्रोपेतमभिन्यासं क्षिप्रं विद्याद्गतौजसम् ॥५०४॥

जिसप्रकार अथाह जलमें गिरे हुए बर्तनको तलीमें पहुँचनेसे पहले ही पकड लेना चाहिये, उसीप्रकार अभिन्यासस‌न्निपातसे पीडित रोगीका शीघ्र ही यत्न

करना चाहिये, क्योंकि इसमें निद्राके आनेपर रोगी तत्काल हतवीर्य हो जाता है ॥ ५०३ ॥ ५०४

चिकित्सा ।

कारवीपुष्करैरण्डत्रायन्तीनागरामृताः । दशमूली शटी शृङ्गीवासाभार्ङ्गी पुनर्नवाः ॥ ५०५ ॥ तुल्या मूत्रेण निष्क्वाथ्य पीता स्रोतोविशोधनम् । अभिन्यासज्वरायासमाशु घ्नन्ति समुद्धतम् ॥ ५०६ ॥

कलौंजी, पोहकरमूल, अंडकी जड, बनपसा, सोंठ, गिलोय, दशमूल, कचूर, काकडाशिंगी, अडूसा, भारंगी और पुनर्नवा इन सबको समान भाग लेकर गोमूत्रमें क्वाथ बनाकर पान करे तो सब शरीरके स्रोत शुद्ध होजाते हैं और शीघ्र ही अभिन्यास ज्वर नष्ट हो जाता है ॥ ५०५ ॥ ५०६ ॥

मातुलुङ्गाश्मभिद्बिल्वव्याघ्रीपाठारुबूकजः । क्वाथो लवणमूत्राढ्योऽभिन्यासानाह शूलनुत् ॥ ५०७ ॥

बिजौरे नींबूकी जड़, पाषाणभेद, बेलगिरी, कटेरी, पाढ और अंडकी जड इनके क्वाथमें गोमूत्र और सैंधानोन मिलाकर पान करे तो अभिन्यासज्वर, आनाह और शूल दूर होता है ॥ ५०७ ॥

व्याघ्रीदुरालभाभार्ङ्गीशटीशृङ्गीसपौष्करम् । पक्वाम्बु श्लेष्महृद्देयमभिन्यासप्रशान्तये ॥ ५०८ ॥

कटेरी, धमासा, भारंगी, कचूर, काकडाशिंगी और पोहकरमूल इनका क्वाथ पान करनेसे कफ और अभिन्यासज्वर दूर होता है ॥ ५०८ ॥

भार्ङ्गी पुष्करमूलञ्च रास्ना बिल्वं समुस्तकम् । नागरं दशमूलञ्च पिप्पलीविषसाधितम् ॥ ५०९ ॥ हिंग्वार्द्रकरसोपेतं पिप्पलीचूर्णसंयुतम् । सन्निपातज्वरं घोरमभिन्यासञ्च दारुणम् । हृत्पार्श्वशूलमानाहं सद्यः पीतं नियच्छति ॥ ५१० ॥

भारंगी, पोहकरमूल, रायसन, बेलगिरी, नागरमोथा, सोंठ, दशमूल, पीपल और अतीस इनके क्वाथमें हींग और अदरखका रस तथा पीपलका चूर्ण डालकर पीवे तो घोर अभिन्यास सन्निपातज्वर, हृदय और पसलियोंका शूल एवं अफारा तत्काल दूर होता है ॥ ५०९ ॥ ५१० ॥

बीजपूरकबिल्वाश्मभेदकबृहतीद्वयम् । सकाशकं तथैरण्डं जले चाष्टगुणे स्मृतम् ॥५११॥ पक्त्वा गोमूत्रसंपृक्तं विडसौवर्चलान्वितम् । हृद्बस्तिशूलमानाहमभिन्यासे ज्वरे हितम् ५१२॥

बिजोरे नीबूकी जड, बेलगिरी, पाषाणभेद, कटेरी, बडी कटेरी, काँस और अंडकी जड इन सबको समान भाग लेकर अठगुने जलमें पकावे । जब क्वाथ तैयार हो जाय तब उसमें गोमूत्र, विडलवण और काला नोन मिलाकर पान करे । इससे हृदय और बस्तिका शूल, आनाह तथा अभिन्यासज्वर नष्ट होता है ॥ ५११ ॥ ५१२ ॥

दन्तीं द्रवन्तीं बृहतीमैरण्डं बीजपूरकम् । श्यामां व्याघ्रीञ्च निष्क्वाथ्याभिन्यासे बहुवर्चसि ॥ ५१३ ॥

दंती, मूसाकर्णी, बडी कटेरी, अंडका जड बिजौरे नींबूकी जड, अनंतमूल और कटेरी इनका क्वाथ पान करनेसे अभिन्यास ज्वर और मलकी अधिकता दूर होती है ॥ ५१३ ॥

सिंही व्याघ्र्यमृता द्राक्षा अजाजी सकटुत्रिकम् । शृङ्गी विडङ्गञ्च समं पक्त्वा विस्राव्य साधयेत् ॥ ५१४ ॥ घृताक्तैस्तण्डुलैर्भृष्टैः पेयामुष्णां ज्वरी पिबेत् । हिक्काश्वासी च कासी च तथाभिन्यासपीडितः ॥ विबद्धवातविण्मूत्रः पानमेतत्प्रयोजयेत् ॥५१५॥

कटाई, बडी कटेरी, गिलोय, दाख, जीरा, त्रिकुटा, काकडाशिंगी और वायविडंग इन सबको समान भाग लेकर क्वाथ बनावे । फिर घीमें भुने हुए चावलोंकी पेया बनाकर उस क्वाथमें मिलाकर गरमा-

गरम पीवे इससे हिचकी,श्वास,खांसी,अभिन्यासज्वर, वायु, मल और मूत्रकी बद्धता दूर होती है ॥५१४॥ ॥ ५१५ ॥

बृहती पौष्करं भार्ङ्गी शटी शृङ्गी दुरालभा । पक्त्वा पानं प्रशंसन्ति श्लेष्मा तेनोपशाम्यति ॥ ५१६ ॥

बडी कटेरी, पोहकरमूल; भारंगी,कचूर, काकडाशिंगी,धमासा, इनका क्वाथ बनाकर पान करनेसे कफ शांत होता है ॥ ५१६ ॥

त्रिवृद्विशालाकटुकात्रिफलारग्वधैः कृतः । सक्षारो भेदनः क्वाथः पेयः सर्वज्वरापहः ॥ ५१७ ॥

निसोत, इन्द्रायण, कुटकी, त्रिफला और अमलतास इनके क्वाथमें जवाखार डालकर पान करे। यह भेदन और सर्वप्रकारके ज्वरोंको हरनेवाला है ॥ ५१७ ॥

तिक्ताभयात्रिवृदन्तीफलं वै राजवृक्षजम् । क्षाराढ्यः सैन्धवोपेतः क्वाथो भेदी ज्वरापहः ॥ ५१८ ॥

कुटकी, हरड, निसोत, जमालगोटा और अमलतास इनके क्वाथमें जवाखार और सेंधानोंन डालकर पान करनेसे विरेचन होकर ज्वर दूर होता है॥५१८॥

आर्द्रकस्वरसोपेतं सिन्धूत्थं सकटुत्रिकम् । प्रबोधाय मुखे दद्यान्नस्यश्च मरिचेन वै ॥ ५१९॥

अदरखके रसमें सैंधानोन और त्रिकुटेके चूर्णको मिलाकर चैतन्य करनेके लिये मुखमें धारण करे अथवा काली मिरचोंको अदरखके रसमें पीसकर नास लेवे ॥ ५१९ ॥

मातुलुङ्गार्द्रकरसं कोष्णं त्रिलवणान्वितम्। अन्यद्वा सिद्धविहितं नस्यं तीक्ष्णं प्रयोजयेत् ॥ ५२० ॥

बिजौरे नीबू और अदरखके रसमें तीनों लवणोंके चूर्णको मिलाकर कुछ गरम करके उसका अथवा अन्यान्य तीक्ष्ण औषधियोंका नास देवे ॥ ५२० ॥

शिरीषबीजगोमूत्रकृष्णामरिचसैन्धवैः। अञ्जनं स्यात्प्रबोधाय सरसोनशिलावचैः ॥ ५२१ ॥

शिरसके बीज, पीपल, काली मिरच और सैंधानोंन इन सबको एकत्र गोमूत्रमें पीसकर अंजन बनावे। इस अंजनको नेत्रोंमें लगानेसे अथवा लशुन, मैनसिल और बच इनका अंजन बनाकर नेत्रोंमें लगानेसे चैतन्य उत्पन्न होता है ॥ ५२१ ॥

शिरीषबीजं मरिचं बस्तमूत्रेण तत्समम्। अञ्जनं तदभिन्यासे संज्ञाबोधनमिष्यते ॥ ५२२ ॥

शिरसके बीज और काली मिरच इनको एकत्र बकरेके मूत्रमें पीसकर नेत्रोंमें आँजनेसे संज्ञा उत्पन्न होती है ॥ ५२२ ॥

मातुलुङ्गरसं तस्य हिंगुशुण्ठीयुतं मुखे। दद्यात्प्रधमनं तीक्ष्णं कट्वतिक्तोपसंहितम् ॥ ५२३ ॥

बिजोरेके रसमें हींग और सोंठ मिलाकर मुखमें धारण करे तथा तीक्ष्ण और चरपरी एवं कडवी औषधियोंको नेत्र, नाक और कानमें फूँके ॥५२३॥

पटोलपत्रं सुषवी बृहती कण्टकारिका । मरिचं पिप्पली बिल्वं चिरबिल्वं सचित्रकम् ॥५२४॥ करञ्जबीजं मञ्जिष्ठा त्रायन्ती विश्वभेषजम् । गलप्रबोधनं—श्लेष्ममभिन्यासज्वरापहम् ॥ ५२५ ॥

पटोलपात,करेला,बडी कटेरी,कटेरी,कालीमिरच, पीपल, बेलगिरी, करंज, चीता, करंजबीज, मजीठ, त्रायमाण और सोंठ इनका क्वाथ कंठको शुद्ध करता है और अभिन्यासज्वरको नष्ट करता है ॥ ५२४ ॥ ॥ ५२५ ॥

करञ्जो बिल्वमञ्जिष्ठे त्रायन्त्यग्निः पटोलकम् । बृहत्यौ सुषवी योषं क्वाथः स्याद्गलशोधनः ॥ ५२६ ॥

करंजकी छाल,बेलगिरी, मजीठ,त्रायमाण, चीता, पटोलपात,बडी कटेरी, कटेरी, करेला और त्रिकुटा इनका क्वाथ कंठको शुद्ध करता है ॥५२६॥

---

१ लशुन मैनशिल और बचको उपरोक्त अञ्जनकी औषधियोंमें ही मिलाकर अञ्जन करावे।

चिकित्सिते कृतेऽप्येवं यस्य संज्ञा न जायते । ललाटे पादयोर्वापि तस्य दाहः प्रशस्यते ॥ ५२७ ॥

इन सब उपरोक्त अंजन नस्य आदिके प्रयोग करनेसे भी संज्ञा उत्पन्न न हो अर्थात् बेहोशी दूर न हो तो लोहेकी सलाईको अग्निमें तपाकर रोगीके दोनों पाँव और ललाटमें दाग देवे ॥ ५२७ ॥

सन्निपातज्वरस्यान्ते कर्णमूले सुदारुणः । शोथः सञ्जायते तेन कश्चिदेव विमुच्यते ॥ ५२८ ॥

सन्निपातज्वरके अंतमें कानकी जडमें घोर सूजन उत्पन्न होती है, उस सूजनसे कोई रोगी बचता है ५२८

तं जयेच्छोणितस्रावैः सर्पिःपानप्रलेपनैः। प्रदाहैः कफपित्तघ्नैर्वमनैः कवलग्रहैः ॥ ५२९ ॥

उसको रुधिरस्राव (जोंक आदि लगाना), घृतपान, दाग देना, कफपित्तनाशक वमन और कवलग्रह आदि उपचारोंसे जीते ॥ ५२९ ॥

जीर्णानां रक्तशालीनां ज्वरघ्नक्वाथसाधितः । प्रसृतस्त्वोदनो द्वित्रिः कार्य्यो यूषादिकोऽपि वा ॥ ५३० ॥ स चेज्जीर्यत्यविघ्नेन ज्वरी जीवेत्तदा ध्रुवम् ॥ ५३१ ॥

ज्वरनाशक काथमें पुराने लाल शालिचावलोंका भात अथवा यूषादिक दो या तीन प्रसृत परिमाण सिद्ध करके देवे, जो यह निर्विघ्न पचजाय तो रोगी निश्चय बच जाता है ॥ ५३० ॥ ५३१ ॥

गैरिकं पांशुकं शुण्ठीवचाकट्फलकाञ्जिकैः । कर्णशोथहरो लेपः सन्निपातज्वरे भृशम् ॥ ५३२ ॥

गेरु, धूल, सोंठ, बच कायफल इन सबको एकत्र कांजीमें पीसकर गरम करके कानकीज ड़में लगावे, इससे कर्णशोथ दूर होता है ॥ ५३२ ॥

आगन्तुकज्वर ।

अभिघाताभिचाराभ्यामभिशापाभिषङ्गतः। आगन्तुर्जायते दोषैर्यथास्वन्तं विभावयेत् ॥ ५३३ ॥

अभिघात (तलवार, लाठी आदिकी चोट लगनेसे, या वृक्ष, पर्वतादिसे गिरनेसे, अभिचार(शत्रु के द्वारा किये हुए मरणादि प्रयोगोंके करनेसे), अभिशाप (गुरू आदिके शापसे) और अभिषंग(भूतादिककी बाधा और कामादिके वेगसे)इन सब कारणोंसे वातादिक दोष कुपित होकर आगन्तुक ज्वरको उत्पन्न करते हैं, वह आगन्तुक ज्वर—वात, पित्त और कफ इन भेदोंसे तीन प्रकारका है जिस दोषकी अधिकता हो उसे जाने ॥

श्यावास्यता विषकृते दाहोऽतीसार एव च। भक्तारुचिः पिपासा च तोदश्च सह मूर्च्छया ॥५३४॥ औषधीगन्धजे मूर्च्छा शिरोरुग्वमथुस्तथा ॥ ५३५ ॥

विषके योगसे उत्पन्न हुए ज्वरमें मुखपर कालापन, दाह, अतिसार, भोजनमें अरुचि, तृषा, तोडने कैसी पीड़ा और मूर्च्छा यह सब लक्षण होते हैं ५३४ औषधकी गंधसे जो ज्वर आता है उसमें मूर्च्छा, शिरोरोग और वमन ये सब लक्षण होते हैं॥५३५॥

कामजे चित्तविभ्रंशस्तन्द्रालस्यमभोजनम् । हृदये वेदना चास्यं गात्रञ्च परिशुष्यति ॥ ५३६ ॥

कामज्वरमें चित्तभ्रम होना, तन्द्रा, आलस्य, भोजनमें अरुचि, हृदयमें पीडा और शरीरका सूखना ये सब लक्षण होते है ॥ ५३६ ॥

भयात्प्रलापः शोकाच्च भवेत्कोपाच्च वेपथुः। अभिचाराभिशापाभ्यां मोहस्तृष्णा च जायते ॥ भूताभिषङ्गादुद्वेगो हास्यरोदनकम्पनम् ॥५३७॥

भय और शोकसे उत्पन्न हुये ज्वरमें रोगी प्रलाप करता है, कोपसे उत्पन्न हुये ज्वरमें काँपता है, अभिचार और अभिशापसे उत्पन्न हुये ज्वरमें मोह और तृषा होती है, भूतबाधासे उत्पन्न हुये अभिषंग ज्वरमें उद्वेग, हास्य, रोना और कम्प होता है ॥ ५३७ ॥

कामशोकभयाद्वायुः क्रोधात्पित्तं त्रयो मलाः । भूताभिषङ्गात्कुप्यन्ति भूतसामान्यलक्षणाः ॥ ५३८ ॥

काम, शोक और भयसे वात कुपित होती है, क्रोधसे पित्त कुपित होता है, एवं भूतबाधासे तीनों

दोष कुपित होते हैं और वे ही भूतोंके सामान्य लक्षण होते हैं, (जिस भूतका जैसा लक्षण हो तत्समान लक्षण हो जाता है) ॥ ५३८ ॥

अभिचाराभिशापोत्थौ ज्वरौ होमादिभिर्जयेत् । दानस्वस्त्ययनातिथ्यैरुत्पातग्रहपीडजौ ॥ ५३९ ॥

अभिचार और अभिशापसे उत्पन्न हुये ज्वरको होम, दान, स्वस्तिवाचन, पुण्याहवाचन और अतिथि पूजनसे जीते ॥ ५३९ ॥

भूतविद्यासमुद्दिष्टैर्बन्धावेशनताडनैः । जयेद्भूताभिषङ्गोत्थं मनःस्वास्थ्यैश्च मानसैः ॥ ५४० ॥

भूताभिषंगोत्थ ज्वरको बंध, आवेशन और ताडनादि कर्मोंसे जीते और मानसिक ज्वरको मनको स्वस्थ करनेसे जीते ॥ ५४० ॥

औषधीगन्धविषजौ विषपित्तप्रबाधनैः । जयेत्कषायैर्मतिमान्सर्वगन्धकृतैर्भिषक् ॥ ५४१ ॥

औषधि और विषकी गन्धसे उत्पन्न हुये ज्वरको विष और पित्तनाशक औषधियोंसे अथवा सम्पूर्ण सुगंन्धित औषधियोंके क्वाथसे जीते ॥ ५४१ ॥

क्रोधजे पित्तजित्काम्ये नार्य्याः सद्वाक्यमेव च । आश्वासेनेष्टलाभेन वायोः प्रशमनेन च । हर्षणैश्च शमं यान्ति कामशोकभयज्वराः ॥५४२ ॥ कामात्क्रोधज्वरो नाशं क्रोधात्कामसमुद्भवः । याति ताभ्यामुभाभ्याञ्च भयशोकसमुत्थितः ॥ ५४३ ॥

क्रोधसे उत्पन्न हुये ज्वरमें पित्तनाशक क्रिया और कामज्वरमें सुन्दर स्त्रियोंके मधुरवचनोंके द्वारा उपचार करे । समझानेसे—धीरज बंधानेसे, इष्टपदार्थोंके मिलनेसे, वातनाशक यत्नोंसे और हर्षजनक वार्ता अथवा अन्य हर्षजनक पदार्थोंसे काम, शोक और भयसे उत्पन्न हुआ ज्वर दूर होता है । कामसे क्रोधज्वर नष्ट होता है और क्रोधसे कामज्वर नष्ट होता है तथा काम और क्रोधसे भयज्वर एवं शोकज्वर दूर होता है ॥ ५४२ ॥ ५४३ ॥

विसर्पेण ज्वरो यश्च यश्च विस्फोटकज्वरः । तत्रादौ सर्पिषः पानं कफापित्तोत्तरे भवेत् ॥ ५४४ ॥ निम्बदारुकषायं वा हितं सौमनसं तथा । श्रमक्षयोत्थे भुञ्जीत घृताभ्यक्तं रसौदनम् ॥ ५४५ ॥

जिसके विसर्पसे अथवा विस्फोटकसे कफपित्ताधिक ज्वर उत्पन्न हो तो उसको प्रथम घृत पान करावे, पश्चात् नीमकी छाल और देवदारुका क्वाथ पिलावे अथवा चमेलीके पत्तोंका क्वाथ पान करावे, श्रम और क्षयसे उत्पन्न हुये ज्वरमें घृतसंयुक्त रसोदन को भक्षण करे ॥ ५४४ ॥ ५४५ ॥

रोगोत्थानप्रकोपाभ्यां यो ज्वरो जायते नृणाम् । शमयेत्पाचयेद्वापि यथायोगैश्चिकित्सकः ॥ ५४६ ॥

अन्यान्य रोगोंके उत्पन्न होनेसे अथवा कुपित होनेसे जो ज्वर उत्पन्न होता है उसमें यथादोषानुसार शमन और पाचन औषधि देवे ॥ ५४६ ॥

स्त्रीणामप्यप्रजातानां प्रजातानां तथाऽहितैः । स्तन्यावतरणे चैव ज्वरो दोषैः प्रकुप्यति । तस्य प्रशमनं कार्य्यं यथादोषविधानतः ॥ ५४७ ॥

पुत्रवाली अथवा बिनापुत्रवाली स्त्रियोंके अहितकारक कारणोंसे और स्तनोंमें दूध प्रवर्तन होनेसे दोष कुपित होकर ज्वरको उत्पन्न करते हैं, उसमें यथा दोषानुसार औषधि देनी चाहिये ॥ ५४७ ॥

अभिघातज्वरे कुर्यात्क्रियामुष्णविवर्जिताम् । कषायमधुरस्निग्धां यथादोषमथापि वा ॥ ५४८ ॥

अभिघातज्वरमें उष्णवर्जित अर्थात् शीतल क्रिया तथा दोषानुसार कषैली, मधुर और स्निग्ध औषधि देवे ॥ ५४८॥

अभिघातज्वरो नश्येत्पानाभ्यङ्गेन सार्पिषः । मद्यैर्द्रव्यैश्च सात्म्यश्च तथा मांसरसोदनैः ॥ ५४९ ॥

अभिघातज्वरमें घृतपान करावे और उसके शरीर पर घृतकी मालिश करावे तथा रोगीकी प्रकृतिके अनुसार मेधाजनक और सात्म्य मांसरस और भात आदि द्रव्य देवे ॥ ५४९ ॥

व्यधबन्धश्रमात्यध्वभङ्गभ्रंशसमुद्भवान्। ज्वरानुपाचरेत्पूर्वं सुस्निग्धक्षीरभोजनैः ॥ ५५० ॥

व्यध (वेध, छेदन, भेदन), बन्धन (बाँधना), परिश्रम (अधिकमार्गका चलना) और गिरनेसे शरीर भंग होने पर इन कारणोंसे उत्पन्न हुए ज्वरमें प्रथम स्निग्ध और दूधका भोजन देवे ॥ ५५० ॥

इति आगन्तुकज्वरचिकित्सा ।

विषमज्वर ।

दोषोऽल्पोऽहितसम्भूतो ज्वरोत्सृष्टस्य वा पुनः । धातुमन्यतमं प्राप्य करोति विषमज्वरम् ॥ ५५१ ॥

ज्वरसे युक्त हुये मनुष्यके अल्पदोष भी कुपथ्य आहारादि द्वारा कुपित होकर रक्तादि किसी धातुमें प्राप्त होकर विषमज्वरको उत्पन्न करते हैं ॥ ५५१॥

संततः सततोऽन्येद्युस्तृतीयकचतुर्थकौ । सन्ततो रसधातुस्थः सततो रक्तधातुगः । भिषजा चैव विज्ञेयः सोऽन्येद्युः पिशिताश्रितः ॥ ५५२ ॥ मेदोगतस्तृतीयेऽह्नि ह्यस्थिमज्जागतः पुनः । कुर्याच्चातुर्थिकं घोरमंतकं रोगसंकरम् ॥ ५५३ ॥

वह विषमज्वर, संतत, सतत, अन्येद्युष्क, तृतीयक और चातुर्थिक इन भेदोंसे पांच प्रकारका है । वे दोष रसमें प्राप्त होकर संततज्वरको उत्पन्न करते हैं, रक्त धातुमें प्राप्त होकर सततज्वरको उत्पन्न करते हैं,मांसमें प्राप्त होकर अन्येद्युष्कज्वरको उत्पन्न करते हैं, मेदमें जाकर तृतीयकज्वरको उत्पन्न करते हैं, अस्थि और मज्जामें प्राप्त होकर मृत्युस्वरूप रोगसंकर चातुर्थिकज्वरको उत्पन्न करते हैं ॥ ५५२॥ ५५३ ॥

सप्ताहं वा दशाहं वा द्वादशाहमथापि वा । सन्तत्यायोऽविसर्गी स्यात्सन्ततः स निगद्यते ॥ ५५४ ॥

सात या दश अथवा बारह दिनमें जो बराबर एक सा चढ़ा रहै, घटे बढ़े नहीं उसको संततज्वर कहते हैं ॥ ५५४ ॥

अहोरात्रे सततको द्वौ कालावनुवर्त्तते। अन्येद्युष्कस्त्वहोरात्रादेककालं प्रवर्त्तते ॥ ५५५ ॥ तृतीयकस्तृतीयेऽह्नि चतुर्थेऽह्नि चतुर्थकः । केचिद्भूताभिषङ्गोत्थं ब्रुवते विषमज्वरम् ॥ ५५६ ॥

सततज्वर दिन रात दो समयमें दोबार आता है, अन्येद्युष्कज्वर रातदिनमें एकबार आता है । तृतीयक ज्वर तीसरे दिन आता है और चातुर्थिकज्वर चौथे दिन आता है । कोई वैद्य भूताभिषंगोत्थ ज्वरको विषमज्वर कहते हैं ॥ ५५५ ॥ ५५६ ॥

यः स्यादनियतात्कालाच्छीतोष्णाभ्यां तथैव च । वेगतश्चापि विषमः स ज्वरो विषमः स्मृतः ॥ ५५७ ॥

जो ज्वर शीत और उष्ण कारणोंसे विना समय आ जाय और जिसका वेग भी विषम हो उसको विषम ज्वर कहते हैं ॥ ५५७ ॥

कफपित्तात्त्रिकग्राही पृष्ठाद्वातकफात्मकः । वातपित्ताच्छिरोग्राही त्रिविधः स्यात्तृतीयकः ॥ ५५८ ॥

अब तृतीयकज्वरके तीन भेद कहते हैं, जो तृतीयक ज्वर कफपित्तसे उत्पन्न होता है वह प्रथम त्रिकस्थानसे प्रकट होकर सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त हो जाता है । जो वात कफसे उत्पन्न होता है, वह प्रथम पीठसे प्रकट होकर सब शरीरमें फैल जाता है और जो तृतीयकज्वर वातपित्तसे उत्पन्न होता है वह प्रथम शिरसे प्रकट होकर सर्वशरीरमें विस्तृत हो जाता है ॥ ५५८ ॥

चातुर्थिको दर्शयति प्रभावं द्विविधं ज्वरः । जङ्घाभ्यां श्लैष्मिकः पूर्वं शिरसोऽनिलसम्भवः ॥ ५५९ ॥

चातुर्थिकज्वर अपने प्रभावको दो प्रकारसे दिखाता है, कफजज्वर पहले जंघासे उत्पन्न होकर पश्चात् सब शरीरमें फैलता है और वातज चातुर्थिक ज्वर प्रथम शिरसे उत्पन्न होकर पश्चात् सब शरीरमें व्याप्त होता है ॥ ५५९ ॥

विषमज्वर एवान्यश्चातुर्थिकविपर्य्ययः। अस्थिमज्जागतैर्दोषैश्चातुर्थिकविपर्य्ययः । स मध्ये ज्वरयत्यह्नी ह्यादावन्ते विमुञ्चति ॥ ५६० ॥

एक और चातुर्थिक ज्वरसे विपरीत विषमज्वर होता है, वह चातुर्थिकज्वर विपरीत विषमज्वर अस्थि और मज्जामें जब दोष प्राप्त होते हैं तब उत्पन्न होता है, वह ज्वर पहिले और पीछेके दो दिनोंको छोडकर बीचके दो दिनोंमें आता है ॥ ५६० ॥

समौ वातकफौ यस्य हीनपित्तस्य देहिनः । भवेत्तीक्ष्णो मृदुर्वापि ज्वरस्तस्य तु रात्रिजः ॥ ५६१ ॥

जिसके शरीरमें वात और कफ समान हों और पित्त हीन हो उसको रात्रिमें तीक्ष्ण अथवा मृदु ज्वर आता है ॥ ५६१ ॥

ज्वरास्तु विषमाः सर्वे सन्निपातसमुद्भवाः । यथोल्बणस्य दोषस्य तेषां कार्य्यं चिकित्सितम् ॥ ५६२ ॥

सम्पूर्ण विषमज्वर सन्निपातसे उत्पन्न होते हैं । उनमें जो दोष अधिक हो उसीके अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ५६२ ॥

विषमज्वरनाशाय चिकित्सा वक्ष्यतेऽधुना । वातप्रधानं सर्पिर्भिर्बस्तिभिः सानुवासनैः । स्निग्धोष्णैरन्नपानैश्च शमयेद्विषमज्वरम् ॥ ५६३ ॥

अब विषमज्वरको नाश करनेके लिये चिकित्सा कहते हैं—वाताधिक विषमज्वरको घृतपान और अनुवासन बस्ति तथा स्निग्ध और उष्ण अन्नपानोंसे शांत करे ॥ ५६३ ॥

विरेचनेन पयसा सर्पिषा संस्कृतेन च । विषमं तिक्तशीतैश्च ज्वरं पित्तोत्तरं जयेत् ॥ ५६४॥

पित्ताधिक विषमज्वरमें गरम दूधमें घी मिलाकर विरेचनके लिये देवे; तथा तिक्त और शीतलपदार्थोंसे पित्ताधिक विषमज्वरको नष्ट करे ॥ ५६४ ॥

वमनं पाचनं रूक्षमन्नपानं विलंघनम् । कषायोष्णन्तु विषमे ज्वरे शस्तं कफोत्तरे ॥ ५६५ ॥

कफाधिक विषमज्वरमें वमन, पाचन, रूखे अन्न और पान, लंघन और उष्ण औषधियोंके क्काथ सब विषमज्वरमें हितकारक हैं ॥ ५६५ ॥

त्रायन्तीकटुकानन्तासारिवाभिः शृतं जलम् । सन्तताद्ये ज्वरे देयं वातादीनां निवृत्तये ॥ ५६६ ॥

त्रायमाण, कुटकी, अनंतमूल और गौरीसर इनका क्काथ बनाकर संततादि ज्वरोंमें वातादि दोषोंको दूर करनेके लिये देवे ॥ ५६६ ॥

द्राक्षापटोलनिम्बाब्दशक्राह्वात्रिफलाशृतम् । जलं जन्तुः पिबेच्छीतमन्येद्युर्ज्वरशान्तये ॥ ५६७ ॥

दाख, परवल, नीमकी छाल, नागरमोथा, इन्द्रजौ और त्रिफला इनका क्काथ शीतल करके पान करनेसे अन्येद्युष्क ज्वर दूर होता है ॥ ५६७ ॥

पटोलारिष्टमृद्वीकाशम्याकं त्रिफला वृषम् । क्काथ ऐकाहिकं हन्ति शर्करामधुयोजितः ॥ ५६८ ॥

पटोलपत्र, नीमकी छाल, दाख, अमलतास, त्रिफला और अडूसा इनके क्काथमें मिश्री और शहद मिलाकर पान करे तो ऐकाहिकज्वर दूर होता है ॥ ५६८ ॥

षोडशाष्टचतुर्भागं वातपित्तकफार्त्तिषु । क्षौद्रं कषाये दातव्यं विपरीता तु शर्करा ॥ ५६९ ॥

वातोल्बण विषमज्वरको नष्ट करनेके लिये क्काथमें मधु सोलह भाग डालना चाहिये। पित्तोल्बण विषमज्वरमें शहद आठ भाग डालना चाहिये और कफोल्बण विषमज्वरमें शहद चार भाग डालना चाहिये और मिश्री इससे विपरीत डालनी चाहिये॥ ५६९ ॥

पटोलेन्द्रयवानन्तापथ्यारिष्टामृताजलम् । ज्वरं सततकं पानं निहन्त्याशु प्रयोजितम् ॥ ५७० ॥

पटोलपत्र, इन्द्रजौ, अनंतमूल, हरड़, नीमकी छाल और गिलोय इनके काथको पान करनेसे सतत-ज्वर नष्ट होता है ॥ ५७० ॥

उशीरं चन्दनं मुस्तं गुडूचीधान्यनागरम् । अम्भसा क्वथितः पेयः शर्करामधुयोजितः । ज्वरे तृतीयके पुंसां तृष्णादाहसमन्विते ॥ ५७१ ॥

खस, लाल चन्दन, नागरमोथा, गिलोय, धनियां और सोंठ इनके काथमें शहद और मिश्री मिलाकर पान करनेसे तृषा और दाहसंयुक्त तृतीयक ज्वर दूर होता है ॥ ५७१ ॥

स्थिरासामलकीदारुशिवावृषमहौषधैः। शृतं शीतं जलं दद्यात्सितामधुविमिश्रितम् । चातुर्थिके ज्वरे तीव्रे मन्दे चैवाथ पावके ॥ ५७२ ॥

सालपर्णी, आमले, देवदारु, हरड, अडूसा ओर सोंठ इनके काथमें मिश्री और शहद मिलाकर पान करे तो चातुर्थिकज्वर और मंदाग्नि नष्ट होती है५७२

शैलूषमण्डनरजो वयसानुरूपं शुभ्राङ्गवत्ससुरभीपयसा निपीतम् । आदित्यवारभवपालदिने नरेण चातुर्थिकं सुचिरजं जयति क्षणेन ॥ ५७३ ॥कालिङ्गकः पटोलस्य पत्रं कटुकरोहिणी । पटोलं शारिवा मुस्तं पाठा कटुकरोहिणी ॥ ५७४ ॥ निम्बः पटोलं त्रिफला मृद्वीका मुस्तवत्सकौ । किराततिक्तममृता चन्दनं विश्वभेषजम् ॥ ५७५ ॥ गुडूच्यामलकं मुस्तमर्धश्लोकसमापनाः । कषायाः शमयन्त्याशु पञ्च पञ्चविधं ज्वरम् ॥ ५७६ ॥

गोणीहरिताल भस्मको तरुण तथा सफेद बछडेवाली गौके दूधके साथ रविवारकी पालीके दिन पान करे तो बहुत दिनोंका चातुर्थिकज्वर नष्ट होता है। कुडेकी छाल, पटोलपत्र, और कुटकी इनका काथ (१) पटोलपत्र, अनंतमूल, नागरमोथा, पाढ़ और कुटकी इनका काथ (२) नीमकी छाल, त्रिफला, दाख,नागरमोथा और कुडेकी छाल इनका काथ (३)चिरायता,गिलोय,चन्दन और सोंठ इनका काथ (४)गिलोय, आमले और नागरमोथा इनका काथ (५)यह पांच काथ कहे है, इनमेंसे किसी एक काथको पान करनेसे पाँचों प्रकारके विषमज्वर दूर होते हैं ॥ ५७३ ॥ ५७४ ॥ ५७५ ॥ ५७६ ॥

कल्कः शिरीषपुष्पस्य रजनीद्वयसंयुतः । नस्यं सर्पिःसमायोगाज्ज्वरं चातुर्थिकं जयेत् ॥ ५७७ ॥

सिरसके फूल, दारुहलदी और हलदी इनका कल्क बनाकर घी मिलाकर नास लेवे तो चातुर्थिक ज्वर दूर होता है ॥ ५७७ ॥

अगस्त्यपत्रस्वरसेन नस्यं निहन्ति चातुर्थिकमुग्रवीर्य्यम् ॥ ५७८ ॥

अगस्तियाके पत्तोंके स्वरसका नास लेनेसे चातुर्थिक ज्वर दूर होता है ॥ ५७८ ॥

सहदेवाया मूलं विधिना कण्ठानिबद्धमपहरति । एकद्वित्रिचतुर्भिर्दिवसैर्भूतज्वरं पुंसाम् ॥ ५७९ ॥

सहदेवीकी जडको विधिपूर्वक कंठमें बाँधनेसे ऐकाहिक,द्वयाहिक, त्र्याहिक और चातुर्थिक ज्वर दूर होता है ॥ ५७९ ॥

सितवर्षाभूमूलं पयसा पीतं च पैत्तिकं जयति । चातुर्थिकं सुचिरजं ताम्बूलेनैव भक्षणादथवा ॥ ५८० ॥

सफेद विषखपरेकी जडको दूधके साथ पान करनेसे अथवा पानमें रखकर भक्षण करनेसे बहुत दिनोंका चातुर्थिकज्वर दूर होता है ॥ ५८० ॥

कृष्णामलकीरामठदार्वीवचाराजसर्षपरसोनैः । छागलमूत्रसुपिष्टैर्नस्यं त्वैकाहिकादिघ्नम् ॥ ५८१ ॥

पीपल, आमले, हींग, दारुहल्दी, वच, राई और लहसुन इनको एकत्र बकरीके मूत्रमें पीसकर नास लेनेसे ऐकाहिक ज्वर नष्ट होता है ॥ ५८१ ॥

वन्दाकं विषजातश्च तक्रेण विषमज्वरे। सर्पिषा दधिमण्डेन हिंगुना च प्रयोजयेत् ॥ ५८२ ॥

विषके वृक्षसे उत्पन्न हुये बंदेको लेकर तक्रके साथ, घीके साथ या दहीके तोडके साथ अथवा हींग के साथ सेवन करे तो इससे विषमज्वर नष्ट होता है ॥ ५८२ ॥

पिप्पली शर्करा क्षौद्रं शृतं क्षीरं घृतं नवम् । खजेन मथितं पेयं विषमंज्वरनाशनम् ॥ ५८३ ॥

पपिल, मिश्री, शहद, औटाया हुआ दूध और नैनी घी इन सबको करछीसे एकत्र मिलाकर पान करनेसे विषमज्वर नष्ट होता है ॥ ५८३ ॥

क्षीराविकारजनिमर्दकसत्रयाणां मूलं ज्वरापहमवश्यमिदं शिखायाम् । बद्धं दिवाकरदिनेऽप्यथवाष्टमीषु रात्रिज्वरं हरति रञ्जितसूत्रबद्धम् ॥ ५८४ ॥

दुद्धी, हल्दी और कसौंदी इन तीनोंकी जडोंको रँगे हुए सूतमें लपेट कर आदित्यवारके दिन अथवा अष्टमीके दिन चोटीमें बाँधनेसे रात्रिज्वर दूर होता है ॥ ५८४ ॥

घृतं पयः शर्करा च पिप्पल्यो मधुसर्पिषा । पञ्चसारमिदं देयं मथितं विषमज्वरे ॥ क्षतक्षीणे क्षये कासे हृद्रोगे चापि शस्यते ॥ ५८५ ॥

घी, दूध, मिश्री, पीपल और शहद इनको घीमें मर्दन कर सेवन करे तो विषमज्वर दूर होता है, यह पंचसार क्षतक्षीण, क्षय, खाँसी और हृदयरोगमें भी हितकारी है ॥ ५८५ ॥

मुस्तामलकगुडूचीविश्वौषधिकण्टकारिकाक्वाथः । पीतः सकणाचूर्णः समधुर्विषमज्वरं हन्ति ॥ ५८६ ॥

नागरमोथा, आमले, गिलोय, सोंठ और कटेरी इनके क्वाथमें पीपलका चूर्ण और शहद मिलाकर पान करे तो विषमज्वर नष्ट होता है ॥ ५८६ ॥

रसोनकल्कं तिलतैलमिश्रं योऽश्नाति नित्यं विषमज्वरार्त्तः । प्रमुच्यते सोऽप्यचिराज्ज्वरेण वातामयैश्चापि सुघोररूपैः ॥ ५८७ ॥

लहसुनके कल्कको तिलके तेलमें मिलाकर नित्य सेवन करनेसे बहुतदिनोंका पुराना घोर विषमज्वर और वातरोग दूर होते हैं ॥ ५८७ ॥

जीरकं गुडसंयुक्तं विषमज्वरनाशनम् । अग्निमांद्यं जयेच्छीघ्रं वातरोगापहं मतम् ॥ ५८८ ॥

जीरेको गुडमें मिलाकर सेवन करे तो विषमज्वर नष्ट होता है तथा मंदाग्नि और वातरोग नष्ट होते हैं ॥ ५८८ ॥

वर्द्धमान पिप्पलि ।

क्षीरेण पञ्चवृद्ध्या वा दुग्धान्नाशी कणां पिबेत् । यावत्पूर्णं शतं तत्स्यात्तथा चैवापकर्षयेत् ॥ वातास्रश्वासपाण्ड्वर्शोगुल्मशोफोदरापहम्॥ ५८९ ॥

पहले दिन दूधके साथ ५ पीपलोंको पीसकर पीवे फिर दूसरे दिन १० पीपलोंको दूधके साथ पीवे, इसीप्रकार प्रतिदिन ५-५ पीपल पीवे और इस पर दूध और चावल भोजन करे. जब सौ पीपलें पूरी होजावें तो उसी क्रमसे पाँच २ घटाता जाय, इससे वातरक्त, श्वास, पाण्डु, बवासीर, गुल्म, सूजन, उदररोग और विषमज्वर नष्ट होते हैं ॥ ५८९ ॥

विषमज्वरेषु कर्त्तव्यमूर्ध्वं चाधश्च शोधनम् । शान्तिं नयेत्त्रिवृच्चापि सक्षौद्रा विषमज्वरम् ॥ ५९० ॥

सब प्रकारके विषमज्वरोंमें प्रथम ऊर्ध्वशोधन (वमन) और अधःशोधन (विरेचनादि) करावे । निसोतके चूर्णमें शहद मिलाकर भक्षण करनेसे विषमज्वर नष्ट होता है ॥ ५९० ॥

सुरा समंडाः पानार्थे भक्षार्थे चरणायुधाः । तित्तिराश्च मयूराश्च प्रयोज्या विषमज्वरे ॥ ५९१ ॥

विषमज्वरमें रोगीको पीनेके लिये मदिरा और मांड देवे और भोजनके लिये मुरगा, तीतर और मोर इनका मांस देवे ॥ ५९१ ॥

अङ्गवङ्गकलिङ्गेषु सौराष्ट्रमगधेषु च । वाराणस्याश्च यद्दत्तं तत्तदैकाहिके स्मरेत् ॥ ५९२ ॥

अंग, बंग, कलिंग, सौराष्ट्र, मगध और वाराणसी (बनारस) इन नगरोंमें दियेहुए दानका स्मरण करनेसे ऐकाहिक विषमज्वर दूर होता है ॥ ५९२॥

योऽसौ सरस्वतीतीरे अपुत्रस्तापसो मृतः । तस्मै तिलोदकं दद्यान्मुच्यत्यैकाहिको ज्वरः ॥ ५९३ ॥

सरस्वतीनदीके तीरपर जो पुत्रहीन तपस्वी मरा हो उसके लिये तिलाञ्जलि देनेसे ऐकाहिकज्वर दूर होता है ॥ ५९३ ॥

एतन्मन्त्रेण वाश्वत्थपत्रहस्तः प्रतर्पयेत् ॥ ५९४ ॥

अथवा "योऽसौ सरस्वती तीरे"–इत्यादि इस मंत्रसे हाथमें पीपलके पत्तेको लेकर तर्पण करे ॥५९४॥

अश्म्लोटजसहस्रेण दलेन सुकृतां पिबेत् । पेयां घृतप्लुतां जन्तुश्चातुर्थिकहरीं त्र्यहम् ॥ ५९५ ॥

अश्मन्तक वृक्षके एक हजार पत्तोंको घी चुपडकर जलमें पीसकर पान करनेसे चातुर्थिक और त्र्याहिक ज्वर नष्ट होता है ॥ ५९५ ॥

सैन्धवं पिप्पलीनाञ्च तण्डुलाः समनःशिलाः । नेत्राञ्जनं तैलपिष्टं शस्यते विषमज्वरे ॥ ५९६ ॥

सैंधानोन, पीपलके चावल और मैनशिल इनको एकत्र तेलमें पीसकर अंजन लगानेसे विषमज्वर दूर होता है ॥ ५९६ ॥

ऊर्णनाभेश्च जालेन कज्जलं ग्राहयेच्छनैः । अञ्जयेन्नेत्रयुगुलं द्व्याहिकन्तु ज्वरं जयेत् ॥ ५९७ ॥ निम्बपत्रं वचा कुष्ठं पथ्या सिद्धार्थकं घृतम् । विषमज्वरनाशाय गुग्गुलुश्चेति धूपनम् ॥ ॥५९८॥ वैडालं वा शकृच्छ्रेष्ठं वेपमानस्य धूपने ॥ ५९९ ॥ सहदेवीवचाभद्रानाकुलीभिः प्रधूपनम् । प्रदेहोद्वर्त्तनं कुर्य्यादेभिर्वा ज्वरशान्तये ॥ ६०० ॥

मकडीके जालेको जलाकर कज्जल बनाकर नेत्रोंमें लगानेसे द्व्याहिकज्वर दूर होता है । नीमके पत्ते, बच, कूठ, हरड, सफेद सरसों और गूगल इन सबको एकत्र पीसकर घीमें मिलाकर धूप देवे तो विषमज्वर दूर होता है । अथवा बिलावकी विष्ठाकी धूनी देनेसे कम्पयुक्त विषमज्वर दूर होता है । सहदेई, बच, अपराजिता और नाई इनकी शरीरमें धूप देनेसे अथवा इनका उबटन करनेसे सबप्रकारके ज्वर शांत होते हैं ॥ ५९७ ॥ ५९८ ॥ ५९९ ॥ ६०० ॥

मयूरचन्द्रकैर्धूपः सर्वज्वरग्रहापहः ६०१

मोरकी पूँछके चांदकी धूप देनेसे सर्वप्रकारके ज्वर और ग्राहबाधा दूर होती है ॥ ६०१ ॥

पलंकषावचाकुष्ठैर्निम्बपत्रयवैर्घृतैः । पथ्यासिद्धार्थकैर्धूपः शस्तः सर्वज्वरापहः ॥ ६०२ ॥

गूगल, बच, कूठ, नीमके पत्ते, जौ, घी, हरड और सफेद सरसों इनकी धूप देनेसे सर्व प्रकारके ज्वर दूर होते हैं ॥ ६०२ ॥

पुरध्यामवचासर्जनिम्बार्कागुरुदारुभिः । सर्वज्वरहरो धूपः श्रेष्ठोऽयमपराजितः ॥ ६०३ ॥

गूगल, रोहिषतृण, बच, राल, नीम, आकके पत्ते, अगर और देवदारु इनकी धूप देनेसे सर्वप्रकारके ज्वर दूर होते हैं. इसको अपराजिता धूप कहते हैं ॥ ६०३ ॥

माहेश्वरधूप ।

रुद्रजटा गोशृंगं बिडालविष्ठोरगस्य निर्मोकः । मदनफलभूतकेश्यौ वंशत्वग्रुद्रनिर्माल्यम् ॥ ६०४ ॥ घृतयवमयूरचन्द्रच्छागलकरोमाणि सर्षपाः सवचाः । हिंगुगवास्थिमरिचाः समभागाश्छागमूत्रसंपिष्टाः ॥ ६०५ ॥ धूपनविधिना शमयन्त्येते सर्वाञ्ज्वरान्नियतम् । ग्रहडाकिनीपिशाचप्रेतविकारानयं धूपः ॥ ६०६ ॥

रुद्रजटा (ईशमूल), गायका सींग, बिलावकी विष्ठा, सांपकी कैंचली, मैनफल, भूतकेशी, बाँसकी छाल, शिवका निर्माल्य, घी, जौ, मोरकी चाँद, बकरेके रोम, सरसों, वच, हींग, गोरोचन और कालीमिरच इन सबको समान भाग लेकर बकरेके मूत्रमें पीसकर विधिपूर्वक धूप देनेसे सर्वप्रकारके ज्वर, एवं डाकिनी, पिशाच, प्रेतआदिकी बाधा दूर होती है इसको माहेश्वरधूप कहते हैं ॥ ६०४ ॥ ॥ ६०५ ॥ ६०६ ॥

ज्वरवेगस्य कालश्च चिन्तयञ्ज्वर्य्यते तु यः । तस्येष्टैरद्भुतैर्वापि विषयैर्नाशयेत्स्मृतिम् ॥ ६०७ ॥

ज्वरके बढनेके समय ज्वरको स्मरण करनेसे जिस मनुष्यका ज्वर चढ़ जाता है, उसको इष्टपदार्थों और अद्भुतवार्ताओंके द्वारा स्मृतिको नष्ट कर देवे ॥ ६०७ ॥

सततं विषमं वापि क्षीणस्य सुचिरोत्थितम् । ज्वरं सम्भोजनैः पथ्यैर्ज्वरघ्नैः समुपाचरेत् ॥ ६०८ ॥

क्षीणमनुष्यके बहुत दिनोंके उत्पन्न हुए सतत या विषमज्वरको ज्वरनाशक पथ्य भोजनोंसे जीते ६०८॥

ज्वराः कषायैर्वमनैर्लङ्घनैर्लघुभोजनैः । रूक्षस्य ये न शाम्यन्ति सर्पिस्तेषां भिषङ्मतम् ॥ ६०९ ॥

रूक्षमनुष्यके जो ज्वर कषाय, वमन, लंघन और हलके पदार्थोंसे शांत नहीं हो तो उसको घृतपान करावे ॥ ६०९ ॥

बलाग्निमन्थत्रिफलाक्काथे दध्ना घृतं पचेत् । तिल्वकावापमेतद्धि विषमज्वरनाशनम् ॥ ६१० ॥

खिरैटी, अरणी और त्रिफला इनका काथ बनाकर उसमें दही, घी और लोधका चूर्ण डालकर सेवन करे तो विषमज्वर दूर होता है ॥ ६१० ॥

चन्दनादिघृत ।

चन्दनं चित्रकं सिंही वत्सकं मुस्तनागरे । कटुका त्रायमाणा च धात्र्युशीरे द्विशारिवे ॥ ६११ ॥ द्राक्षाऽर्द्धपलमात्राणि सौम्यवारेषु संहरेत् । क्षीराढकसमायुक्तां सर्पिषोऽर्द्धतुलां पचेत् ॥ ६१२ ॥ चातुर्थिकं हरेत्पीतमुन्मादं विषमज्वरम् । त्र्याहिकं श्वासकासौ च सर्वापस्मारमेव च ॥ ६१३ ॥

चन्दन, चीता, कटेरी, इन्द्रजौ, नागरमोथा, सोंठ, कुटकी, त्रायमाण, आमले, खस, दोनो सारिवे, गौरीयासांऊ और दाख ये प्रत्येक दो दो तोले लेकर सौम्यवारके दिन काथ बनावे, फिर उसमें एक आढक गौका दूध और २०० तोले घी डालकर विधिपूर्वक घृतको सिद्ध करे । यह चन्दनाद्यघृत, चातुर्थिकज्वर, उन्माद, विषमज्वर, त्र्याहिकज्वर, श्वास, खाँसी और सबप्रकारके अपस्मार रोग दूर करता है ॥ ६११ ॥ ६१२ ॥ ६१३ ॥

कल्याणघृत ।

विडंगमुस्तत्रिफलामञ्जिष्ठादाडिमोत्पलैः । श्यामैलवालुकैलाभिश्चन्दनामरदारुभिः ॥६१४॥ बर्हिष्ठकुष्ठरजनीपर्णिनीशारिवाद्वयैः । हरेणुकात्रिवृद्दन्तीवचातालीशनागरैः ॥६१५॥ बलाविशालबृहतीमालतीपृष्ठिपर्णिभिः । एतैश्च कार्षिकैः कल्कैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ६१६ ॥ चतुर्गुणेन पयसा द्विगुणेन जलेन च । एतत्कल्याणकं नाम सर्पिः पक्कं त्रिदोषनुत् । विषमज्वरश्वासकासगुल्मोन्मादज्वरापहम् ॥ ६१७ ॥

वायविडंग, नागरमोथा, त्रिफला, मजीठ, अनार, कमल, पीपल, एलुआ, इलायची, लाल चन्दन, देवदारु, सुगन्धवाला, कूठ, हलदी, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, श्वेत सारिवा, कृष्ण सारिवा, रेणुका, निसोत, दंती, बच, तालीसपत्र, सोंठ, खिरैंटी, इन्द्रायण, बड़ीकटेरी, चमेली और पृष्ठिपर्णी ये प्रत्येक औषधि एक २ कर्ष लेकर जलके साथ पीसलेवे फिर उत्तम गौका घी २ सेर, गौका दूध ८ सेर और दूना जल लेवे, सबको यथाविधिसे मिलाकर घृतको पकावे. यह कल्याण-

घृत त्रिदोषनाशक है तथा विषमज्वर, श्वास, खाँसी गुल्म, उन्माद और ज्वरनाशक है ॥ ६१४ ॥ ॥ ६१५ ॥ ६१६ ॥ ६१७ ॥

महाकल्याणघृत ।

एतदेव हविः पक्वं जीवनीयोपसंस्कृतम् । द्विपञ्चमूलक्वाथेन शतावर्य्या रसेन च ॥ ६१८ ॥ चतुर्गुणेन पयसा महाकल्याणमुच्यते । अपस्मारग्रहं शोषं क्लैब्यं कार्श्यमजीवितम् ॥ ६१९ ॥ घृतमेतन्निहन्त्याशु ये चापि विषमज्वराः । जीवनीयगणत्वेन काकोल्यादिगणग्रहः । महाकल्याणके कार्य्यो घृते तु दशकार्षिकः ॥ ६२० ॥

कल्याणघृतकी समस्त औषधियें, जीवनीयगणकी समस्त औषधियें, दशमूलकी समस्त औषधियें और जीवनीयगणकी औषध दश २ कर्ष लेनी, इन सबका क्वाथ शतावरका रस चौगुना दूध और उत्तम गौका घी पूर्वोक्त लेकर सबको यथाविधिसे पकावे। इसको महाकल्याणघृत कहते हैं । यह महाकल्याणघृत अपस्मार, शोष, क्लीबता, कृशता और विषमज्वर आदिको नष्ट करता है ॥ ६१८ ॥ ६१९ ॥ ६२० ॥

षट्पलघृत ।

शुण्ठी कणा चित्रकश्च चव्यं ग्रथिकमेव च । कुर्य्यात्पञ्चपलान्भागानेकैकस्य तु कुट्टितान् ॥ ६२१ ॥ जलद्रोणे विपक्तव्यं यावत्पादावशेषितम् । एतैस्तु पलिकैः कल्कैः सैंधवेन समन्वितैः ॥ ६२२ ॥ षट्पलं नाम विख्यातं विषमज्वरनाशनम् । श्वासकासाग्निदौर्बल्यप्रतिश्यायित्वमेव च । प्लीहोर्ध्ववातश्वयथुपाण्डुरोगांश्च नाशयेत् ॥ ६२३ ॥

सोंठ, पीपल, चीता, चव्य, पीपलामूल ये प्रत्येक ४-४ तोले लेकर कूट लेवे, फिर एकद्रोण जलमें सबको पकावे. जब चौथाभाग जलशेष रह जाय तब उतारलेवे पश्चात् इस क्वाथमें सैंधानोन एवं उक्त औषधियोंका एक २ पल कल्क डालकर घृतको सिद्ध करै । यह षट्पलघृत विषमज्वर, श्वास, खाँसी, अग्निकी मंदता, प्रतिश्याय, प्लीहा, ऊर्ध्ववात, सूजन और पाण्डुरोगको नष्ट करता है ॥ ६२१ ॥ ६२२ ॥ ६२३ ॥

अमृतषट्पलघृत ।

नागरश्चविकाक्षीरः पिप्पलीमूलचित्रकम् । कृष्णा च पलिकान्भागान्घृतप्रस्थे विपाचयेत् ॥ ६२४ ॥ शृंगवेररसप्रस्थं मस्तुप्रस्थं तथैव च । ऐकाहिकं द्व्याहिकञ्च त्र्याहिकञ्च चतुर्थकम् ॥ ॥ ६२५ ॥ एतान्सर्वज्वरान्हन्ति स्थूलत्वं कुरुते भृशम् । दुर्नामश्वासकासघ्नं बलवर्णाग्निवर्द्धनम् ॥ ६२६ ॥

सोंठ, चव्य, जवाखार, पीपलामूल, चीता और पीपल ये प्रत्येक चार २ तोले लेकर क्वाथ बनावे । फिर उत्तम गौका घी ६४ तोले, अदरखका रस ६४ तोले और दहीका तोड़ ६४ तोले लेवे, सबको यथाविधिसे मिलाकर विधिपूर्वक घृतको सिद्ध करे । यह अमृतषट्पलघृत ऐकाहिकज्वर, द्व्याहिकज्वर, त्र्याहिकज्वर, चातुर्थिकज्वर, बवासीर, श्वास और खाँसी इन सबको नष्ट करता है तथा स्थूलता, बल, वर्ण और जठराग्निको बढ़ाता है ॥ ६२४ ॥ ६२५ ॥ ॥ ६२६ ॥

सुवर्चिकानागरकुष्ठमूर्वालाक्षानिशालोहितयष्टिकाभिः । तैलं ज्वरे षड्गुणतक्रसिद्धमभ्यञ्जनाच्छीतविदाहनुत्स्यात् ॥ ६२७ ॥

सज्जी, सोंठ, कूठ, मूर्वा, लाख, हलदी और मजीठ इन सब औषधियोंके क्वाथके साथ तिलका तेल और तेलसे छः गुना गौके दहीका सार सबोंको एकत्र मिलाकर यथाविधि तेलको सिद्ध करे । इस तेलको शरीर पर मर्दन करनेसे शीत और दाह दूर होती है ॥ ६२७ ॥

दध्नः ससारकस्यात्र तक्रं कट्टरमिष्यते।

यहाँ दहीका सार जो तक्र उसको कट्टर कहते हैं॥

---

१ यदि ८० का प्रस्थ ले तो ५ तोलेका पल लेना। यदि ६४ का प्रस्थ ले तो ४ तोलेका पल लेना। ऊपर १ जगह पल से ४ तोला १ जगह पलसे ५ तोला लिया है, सो ठीक नहीं।

१ दहीमेंसे जो नीला पानी निकलता है ।

शुक्तारनालैर्दधिमस्तुतक्रैः फलाम्बुभागेन समं हि तैलम्। कृष्णादिकल्कैर्मृदुवह्निसिद्धमभ्यञ्जनं वातकफज्वराणाम् ॥ ६२८ ॥ ऐकाहिकद्वित्रिचतुर्थकानां मासार्द्धमासद्वयमासिकानाम्। निवारणं तद्विषमज्वराणां तैलन्तु षट्कट्वरकं महत्स्यात् ॥६२९॥

शुक्त (सिरका), कांजी, दहीका तोड़, तक्र, बिजौरेनींबूका रस और तेल ये प्रत्येक १-१सेर लेवे। सबको एकत्र मिलाकर उसमें पिप्पल्यादिगणकी औषधियोंका कल्क डाल कर मंद २ अग्निसे तेलको सिद्ध करे। इस महाषट्कट्वरतैलको शरीर पर मालिश करनेसे, वातकफज्वर, ऐकाहिकज्वर, द्व्याहिकज्वर, त्र्याहिकज्वर, चातुर्थिकज्वर, पाक्षिकज्वर, मासिकज्वर, द्वैमासिकज्वर और सर्वप्रकारके विषमज्वर दूर होते हैं ॥ ६२८ ॥ ६२९ ॥

कृष्णा चित्रकषड्ग्रन्था वासकं विषकाचनम। ग्रन्थिकैले चातिविषा रेणुकश्च कटुत्रयम् ॥ ६३० ॥ यवानी गोस्तनी व्याघ्री भूनिम्बं बिल्वचन्दनम्। भार्ङ्गी श्यामा शिवा धात्री स्थिरा मूर्वा सजीरका ॥ ६३१ ॥ सर्षपं हिंगुकटुकी विडङ्गश्च समांशकम्। एष कृष्णादिको नाम्ना गणो ज्वरविनाशनः ॥६३२ ॥

अब उस कृष्णादि अर्थात् पिपल्यादिगणकी औषधियोंको कहते हैं--पीपल, चीता, बच, अडूसा, अतीस, नागरमोथा, पीपलामूल, इलायची, दूसरे प्रकारका अतीस (बड़ीगांठवाली), रेणुका, त्रिकुटा, अजवायन, दाख, कटेरी, चिरायता, बेलगिरी, चन्दन, भारंगी, अनंतमूल, हरड, आमले, शालपर्णी, मूर्वा, जीरा, सरसों हींग, कुटकी और वायविडंग ये सब औषधियाँ समभाग लेवे। इन सब औषधियोंको कृष्णादिगण या पिप्पल्यादि गण कहते हैं (यह ज्वरनाशक है) ॥६३०॥ ॥ ६३१ ॥ ६३२ ॥

लाक्षारसाढके प्रस्थं तैलस्य विपचेद्भिषक्। मस्त्वाढकं समादाय पिष्ट्वा चात्र विनिःक्षिपेत् ॥६३३॥ शतपुष्पा हरिद्रा च मूर्वा कुष्ठं हरेणुकम्। कटुकं मधुकं रास्ना अश्वगन्धा च दारु च ॥ ६३४ ॥ समुस्तं चन्दनं चैव पृथगक्षसमानकैः। द्रव्यैरेतैस्तु तत्सिद्धमभ्यङ्गं मारुतापहम् ॥६३५॥ विषमाख्यान्ज्वरान्सर्वानाश्वेव प्रशमं नयेत्। कासं श्वासं प्रतिश्यायं कण्डूं दौर्गन्ध्यगौरवम् ॥ ६३६ ॥ त्रिकपृष्ठग्रहं शूलं गात्राणां स्फुटनं तथा। पाप्मालक्ष्मीप्रशमनं सर्वग्रहनिवारणम् ॥ ६३७॥ आश्विभ्यां निर्मितं सम्यक्तैलं लाक्षादिकं त्विदम् ॥

लाखका रस २५६ तोले, दहीका पानी २५६ तोले इनमें चौंसठ तोले तिलके तेलको मिलाकर पकावे फिर उसमें सौंफ, हल्दी, मूर्वा, कूट, रेणुका, कुटकी, मुलैठी, रास्ना, असगंध, देवदारु, नागरमोथा और चन्दन ये प्रत्येक औषधि १-१ कर्ष लेकर सबका कल्क बनाकर एकत्र मिलाकर तेलको सिद्ध करे। यह लाक्षादितैल शरीरपर मर्दन करनेसे वातरोग, सर्वप्रकारके विषमज्वर, श्वास, खाँसी, प्रतिश्याय, कण्डू, दुर्गन्ध, गुरुता, त्रिकशूल, पृष्ठशूल, शरीरका फटना, पाप, अलक्ष्मी और सर्वप्रकारकी ग्रहबाधा दूर होती है। यह महालाक्षादितैल श्रीअश्विनीकुमारोंने निर्माण किया है ॥ ६३३ ॥ ६३४ ॥ ६३५ ॥ ६३६ ॥ ॥ ६३७ ॥

सोमं सानुचरं देवं समातृगणमीश्वरम्। पूजयन्प्रयतः शीघ्रं मुच्यते विषमज्वरात् ॥ ६३८ ॥

पार्वती, अनुचरगण और मातृगणसहित शिवजीकी भक्ति पूर्वक पूजा करनेसे विषमज्वर शीघ्र ही नष्ट होता है अथवा 'सोमंसानुचरम्' इत्यादि मंत्रके पढ़नेसे विषमज्वर नष्ट होता है ॥ ६३८ ॥

दाहः स्वेदो भ्रमस्तृष्णा कंपो विड्भिदसंज्ञिता। कूजनं चातिवैगन्ध्यमा-

कृतिर्ज्वरमोक्षणे ॥ ६३९ ॥ त्रिदोषजे ज्वरे ह्येतदन्तर्वेगे च धातुगे । लक्षणं मोक्षकाले स्यादन्यस्मिन्स्वेददर्शनम् ॥ ६४० ॥

दाह, स्वेद, भ्रम, तृषा, कंप, मलभेद, संज्ञाका नाश, कूजना और अत्यन्त गन्धका आना ये सब लक्षण ज्वरके मोक्ष होनेके हैं, यह लक्षण त्रिदोषजज्वर, अन्तर्वेगज्वर और धातुगतज्वरके मोक्षके समयमें होते हैं । किन्तु अन्यान्यज्वरोंके मोक्षके समय केवल पसीना ही आता है ॥ ६३९॥६४० ॥

नित्यं मन्दज्वरो रूक्षः शूनः कृच्छ्रेण सिद्ध्यति । स्तब्धाङ्गः श्लेष्मभूयिष्ठो नरो वातबलासकी ॥ ६४१ ॥

सदैव मंदज्वर बना रहे, शरीरमें रुखापन, सूजन, शरीर जकडासा रहे,कफकी अधिकता हो ये वातबलासकज्वरके लक्षण जानने । यह वातबलासकज्वर कष्टसाध्य है ॥ ६४१ ॥

प्रलिंपन्निव गात्राणि घर्मेण गौरवेण च । मन्दज्वरविलेपी च स शीतः स्यात्प्रलेपकः ॥ ६४२ ॥

जिससें रोगी पसीनोंसे व्याप्त रहे,शरीरमें भारीपन हो, ज्वरका वेग मंद हो तो प्रलेपि ज्वर होता है और इसीमें सर्दी लगे तो उसको प्रलेपकज्वर जानना चाहिये ॥ ६४२ ॥

कफवातज्वरप्रोक्तां क्रियां वातबलासके । प्रयुञ्जीत भिषक् श्लेष्मज्वरघ्नींतु प्रलेपके ॥ ६४३ ॥ विदग्धेऽन्नरसे देहे श्लेष्मपित्ते व्यवस्थिते । तेनार्द्धं शीतलं देहमर्द्धमुष्णं प्रजायते॥६४४ ॥

वातबलासकज्वरमें कफवातज्वरोक्तक्रिया और प्रलेपकज्वरमें कफज्वरघ्नचिकित्सा करनी चाहिये । शरीरमें अन्नरसके दूषित होनेसे कफ पित्त कुपित होकर आधी देहको शीतल और आधी देहको गरम करते हैं ॥ ६४३ ॥ ६४४ ॥

काये दुष्टं यदा पित्तं श्लेष्मा चान्ते व्यवस्थितः । तेनोष्णत्वं शरीरस्य शीतत्वं करपादयोः ॥ ६४५ ॥

जब शरीरके भीतर पित्त कुपित होता है और कफ हाथ पैर आदिमें दुष्ट होकर स्थित होता है उस समय सब शरीर गरम हो जाता है और हाथ पाँव शीतल हो जाते हैं ॥ ६४५ ॥

काये श्लेष्मा यदा दुष्टः पित्तं चान्ते व्यवस्थितम् । शीतत्वं तेन गात्राणामुष्णत्वं हस्तपादयोः ॥ ६४६ ॥

जब शरीरके भीतर कफ कुपित होताहै और पित्त हाथ पाँव आदिमें दुष्ट होकर स्थित होता है तब सब शरीर शीतल हो जाता है और हाथ पाँव गरम हो जाते हैं ॥ ६४६ ॥

त्वक्स्थौ श्लेष्मानिलौ शीतमादौ जनयतो ज्वरम् । तयोः प्रशान्तयोः पित्तमन्ते दाहं करोति च ॥ ६४७ ॥

प्रथम कफ और वायु त्वचामें स्थित होकर शीतज्वरको उत्पन्न करते हैं, जब शांत हो जाते हैं तब पित्त दाहका उत्पन्न करता है ॥ ६४७ ॥

करोत्यादौ तथा पित्तं त्वक्स्थं दाहमतीव च । तस्मिन्प्रशान्ते त्वितरौ कुरुतः शीतमन्ततः ॥ ६४८ ॥

प्रथम पित्त त्वचामें स्थित होकर दाहयुक्त ज्वरको उत्पन्न करता है, जब वह शांत हो जाता है तब कफ और वायु अन्तमें शीतको उत्पन्न करते हैं ॥ ६४८ ॥

द्वावेतौ दाहशीतादिज्वरौ संसर्गजौ मतौ । दाहपूर्वस्तयोः कष्टः कृच्छ्रसाध्यतमश्च सः ॥ ६४९ ॥

उक्त दोनों दाहपूर्वक और शीतपूर्वकज्वर त्रिदोषजनित हैं, इनमें दाहपूर्वक कष्टसाध्य और शीतपूर्वक अत्यन्त कष्टसाध्य है ॥ ६४९ ॥

शुण्ठीवराब्दोशीरैश्च पिबेत्तोयं सुसाधितम् । दाहशीतज्वरहरं पाचनं भिषजां मतम् ॥ ६५० ॥

सोंठ, त्रिफला, नागरमोथा और खस इनका काथ बनाकर पान करनेसे दाहपूर्वकज्वर और शीतपूर्वकज्वर दूर होता है । यह काथ उत्तम पाचन है ऐसा वैद्योंका मत है ॥ ६५० ॥

शीताभिभूते पुरुषे कुर्याच्छीतहरीं क्रियाम् । दाहाभिभूते तु विधिं कुर्याद्दाहविनाशनम् ॥ ६५१ ॥

शीतज्वरके पीड़ित मनुष्यकी शीतनाशक चिकित्सा करनी चाहिये और दाहज्वरपीडित मनुष्यकी दाहनाशक चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ६५१ ॥

मधुफाणितमिश्रेण निम्बपत्राम्भसापि वा । दाहज्वरार्त्तं मतिमान्वामयेत्क्षिप्रमेव च ॥ ६५२ ॥

नीमके पत्तोंके क्काथमें शहद और फाणित (राब) मिलाकर दाहज्वरवाले रोगीको शीघ्र वमन करावे ॥ ६५२ ॥

उत्तानसुप्तस्य गभीरताम्रकांस्यादिपात्रं प्रणिधाय नाभौ । तत्राम्बुधारा बहुलं पतन्ती निहन्ति दाहं त्वरितं सुशीता ॥ ६५३ ॥

दाहवाले रोगीको चित्त सुलाकर, उसकी नाभिके ऊपर काँसेका अथवा तांबेका पात्र रखकर, उसमें दूरसे शीतल जलकी धारा छोडे इससे तत्काल दाह दूर होती है ॥ ६५३ ॥

वाप्यः कमलहासिन्यो जलयन्त्रगृहाः शुभाः । नार्य्यश्चन्दनादिग्धाङ्ग्यो दाहदैन्यहरा मताः ॥ ६५४ ॥

जिन बावडियोंमें कमल और कुमुद खिल रहे हैं उनमें स्नान करनेसे तथा जिन घरोंमें शीतलजलके फुहारे लग रहे हैं उनमें रहनेसे और जिन स्त्रियोंके अंग चन्दनादिसे चर्चित हैं उनको आलिंगन करनेसे उग्र दाह और दीनता दूर होती है ॥ ६५४ ॥

शतधौतघृताभ्यक्तं दिह्याद्वा यवसक्तुभिः । कोलामलकसंयुक्तैः शूकधान्याम्लसंयुतैः ॥ ६५५ ॥ अम्लपिष्टैः सुशीतैश्च फेनिलापल्लवैस्तथा । अम्लपिष्टैः सुशीतैश्च पलाशतरुजैर्दिहेत् ॥ ६५६ ॥ बदरीपल्लवोत्थेन फेनेनारिष्टकेन वा । लिप्तेऽङ्गे दाहतृण्मूर्च्छा सर्वथैव प्रशाम्यति ॥ ६५७ ॥

सौबार धुले घीकी मालिश करनेसे, या जौके सत्तुओंको जलमें सानकर लेप करनेसे अथवा बेर और आमलोंको जौकी कांजीमें पीसकर लेप करनेसे, राठेके पत्तोंको कांजीमें पीसकर लेप करनेसे या ढाकके पत्तोंको कांजीमें पीसकर लेप करनेसे, किंवा बेरीके पत्तोंके झागोंका लेप करनेसे अथवा नीमके पत्तोंके झागोंको शरीरपर लेप करनेसे दाह, तृषा और मूर्च्छा दूर होती है ॥ ६५५ ॥ ६५६ ॥ ६५७ ॥

दाडिमं बदरं लोध्रं कपित्थं बीजपूरकम् । पिष्ट्वा मूर्ध्नि प्रलेपोऽयं पिपासादाहनाशनः ॥ ६५८ ॥

अनारकी छाल, बेरीकी छाल, लोध, कैथ और बिजौरा नीबू इनको एकत्र जलमें पीसकर घीमें मिलाकर शिरपर लेप करनेसे तृषा और दाह दूर होती है ॥ ६५८ ॥

कालीयबदरानन्ता यष्टीचन्दनकाञ्जिकैः । सघृतैः स्याच्छिरोलेपस्तृष्णादाहविनाशनः ॥ ६५९ ॥

कलम्बक, बेरीकी छाल, अनन्तमूल, मुलैठी और चन्दन, इनको कांजीमें पीसकर घीमें मिला कर शिरपर लेप करनेसे तृषा और दाह दूर होती है ॥ ६५९ ॥

स्वरसं मातुलुङ्गस्य संयुक्तं मधुसर्पिषा । तालुशोषे प्रदेहोऽयं मूर्ध्नि दाहे ससैन्धवः ॥ ६६० ॥

बिजौरे नीबूके स्वरसको शहदमें और घीमें मिलाकर सेवन करनेसे तालुशोष दूर होता है, तथा मस्तकमें दाह हो तो उक्तयोगको सेंधेनोंनके साथ मिलाकर लेप करे ॥ ६६० ॥

करवीरस्य पत्राणि चन्दनं सारिवा तिलाः । तृष्णाघ्नः शिरसाऽऽलेप आरनालेन पेषितः ॥ ६६१ ॥

कनेरके पत्ते, चन्दन, अनन्तमूल और तिल इनको कांजीमें पीसकर शिरपर लेप करनेसे तृषा दूर होती है ॥ ६६१ ॥

वारि शीतं मधुयुतमाकण्ठाद्वा पिपासितम् । वामयेत्पाययित्वा तु तेन तृष्णा प्रशाम्यति ॥ ६६२ ॥

तृषासे व्याकुल मनुष्यको शतिल जलमें शहद मिलाकर कंठपर्य्यन्त पिलावे फिर वमन करा देवे इसप्रकार बार २ कंठपर्य्यन्त पिलाकर वमन करानेसे तृषा शांत हो जाती है ॥ ६६२ ॥

पद्मकतैलम्

पद्मकोत्पलकल्हारमृणालबिसपौष्करैः । कुमुदोशीरमञ्जिष्ठापद्मगैरिककट्फलैः ॥ ६६३ ॥ शारिवाद्वयलोध्राब्दक्षीरीखर्जूरमुस्तकैः । धात्रीशतावरीयुक्तः क्वाथे कल्के प्रयोजितैः ॥ ६६४ ॥ सलाक्षाम्भः पयः शुक्तस्वच्छकाञ्जिकमस्तुभिः । पक्वं तैलमिदं त्वच्यं तृष्णादाहज्वरापहम् ॥ ६६५ ॥ पञ्चप्रभृति यत्र स्युर्द्रव्याणि स्नेहसम्विधौ । तत्र स्नेहसमान्याहुरर्वाक्स्याच्च चतुर्गुणम् ॥ ६६६ ॥

पद्माख, कमल, लाल कुमुद, कमलकी नाल, कमलकन्द (भसीडा), पोहकरमूल, कमोदनी, खस, मजीठ, नीलकमल, गेरु, कायफल, रक्तसारिवा, कृष्णसारिवा, लोध, मोथा, दुद्धी, खजूर, नागरमोथा, आमले और शतावर, इन सब औषधियोंका कल्क और क्वाथ, लाखका रस, दूध, सिरका, दहीका पानी और तेलये सब समान भाग ले सबको यथाविधिसे मिलाकर विधिपूर्वक तैलको सिद्ध करे. यह पद्मक तैल त्वचाको हितकारी तथा तृषा और दाहज्वरनाशक है ॥ ६६३ ॥ ६६४ ॥ ६६५ ॥ ६६६ ॥

शीतस्तस्य तु वातघ्नं सुखोष्णाम्भोऽवगाहनम् । पट्टकौशेयवासोभिः पत्रोर्णादिभिरावृतः । निवाते मन्दिरे स्थाप्य कृष्णागुरुसुधूपिते ॥ ६६७ ॥

शीतपूर्वक ज्वरवाले रोगीकी वातनाशक चिकित्सा करे और सुखोष्ण जलमें शिरसे डुबकी लगाकर स्नान करावे एवं रेशमी, पट्ट, पत्र और ऊनी वस्त्रोंसे उसको ढक कर निर्वातस्थानमें बैठाकर काली अगरकी धूप देवे ॥ ६६७ ॥

कायस्थानाकुलीतिक्तावयस्थापुरचोरकैः । सहदेवीवचाकुष्ठैः शीतघ्नैर्धूपलेपनैः ॥ ६६८ ॥ एतैरेवौषधैः पिष्टैर्लवणक्षारसंयुतैः । साम्लैर्विपाचितं तैलमभ्यङ्गाच्छीतनाशनम् ॥ ६६९ ॥

हरड़, नकुलकंद, कुटकी, आमला, गिलोय, गूगल चोरक (सुगन्धित द्रव्य) सहदेई, वच और कूठादि शीतनाशक औषधियोंकी धूप देवे । अथवा उक्त औषधियोंको नमक और जवाखारके साथ पीसकर कांजीमें मिलाकर तैलको पकावे इस तैलको मलनेसे शीतपूर्वक ज्वर दूर होता है ॥ ६६८ ॥ ६६९ ॥

सुखोष्णैर्मस्तुगोमूत्रशुक्तैः सेकोऽतिशीतहा । सुरसार्जकशिग्रूणां प्रलेपो दलसम्भवः ॥ ६७० ॥

तुलसी, वनतुलसी और सैंजिनेके पत्तोंको दहीके तोड, गोमूत्र अथवा शुक्त पीसकर सुखोष्ण करके लेप करनेसे शीतज्वर नष्ट होता है ॥ ६७० ॥

रसादिधातुगतज्वरोंके लक्षण ।

गुरुता हृदयोत्क्लेशः सदनं छर्द्यरोचकौ । रसस्थे तु ज्वरे लिङ्गं दैन्यश्चास्योपजायते ॥ ६७१ ॥

शरीरमें भारीपन, हृदयमें उबकाई, वमन, भोजनमें अरुचि और दीनता ये सब लक्षण रसगत ज्वरके जानने ॥ ६७१ ॥

रक्तनिष्ठीवने दाहो मोहश्छर्दनविभ्रमौ । प्रलापः पिडिकास्तृष्णा रक्तप्राप्ते ज्वरे नृणाम् ॥ ६७२ ॥

रुधिरका थूकना, दाह, मोह, वमन, भ्रम, प्रलाप, फुन्सियोंका निकलना और तृषा ये लक्षण रुधिरगत ज्वरके होते हैं ॥ ६७२ ॥

पिण्डिकोद्वेष्टनं तृष्णा सृष्टमूत्रपुरीषता । उष्मान्तर्दाहविक्षेपौ ग्लानिः स्यान्मांसगे ज्वरे ॥ ६७३ ॥

पिण्डलियोंका ऐंठना, जकडना वा पिण्डलियोंमें गाँठोंका पडजाना, तृषा, मूत्र और मलकी अधिकता, गरमी, अन्तर्दाह और शरीरको इधर उधर पटकना तथा शरीरमें ग्लानि ये मांसगत ज्वरके लक्षण जानने चाहिये ॥ ६७३ ॥

भृशं स्वेदस्तृषा मूर्च्छा प्रलापश्छर्दिरेव च। दौर्गन्ध्यारोचकौ ग्लानिर्मेदस्थे चासहिष्णुता ॥ ६७४ ॥

पसीनेका अधिक आना, तृषा, मूर्च्छा, प्रलाप, वमन, दुर्गन्धि, अरुचि, ग्लानि और असहिष्णुता ये मेदगतज्वरके लक्षण जानने ॥ ६७४ ॥

भेदोऽस्थ्नां कूजनं श्वासो विरेकश्छर्दिरेव च । विक्षेपणञ्च गात्राणामेतदस्थिगते ज्वरे ॥ ६७५ ॥

हड्डियोंमें भेदनेकेसी पीडा, हड्डियोंका बोलना, श्वास, विरेचन, वमन और शरीरके अंगोंको इधर उधर पटकना ये अस्थिगत ज्वरके लक्षण हैं॥६७५॥

तमःप्रवेशनं हिक्का कासः शैत्यं वमिस्तथा । अन्तर्दाहो महाश्वासो मर्म्मभेदश्च मज्जगे ॥ ६७६ ॥

अंधकार दीखना, हिचकी आना, खाँसी, शीत लगना, वमन, भीतरी भागमें दाह, महाश्वास और मर्म्म स्थानोंमें भेदनेसरीखी पीडाका होना ये मज्जागत ज्वरके लक्षण जानने ॥ ६७६ ॥

मरणं प्राप्नुयात्तत्र शुक्रस्थानगते ज्वरे। शेफसस्तब्धता मोक्षः शुक्रस्य तु विशेषतः ॥ ६७७ ॥

जब शुक्रके स्थानमें ज्वर पहुँचता है तब प्रायः रोगी मर जाता है, तथा उसका लिंग जकड़ जाय और विशेषकर वीर्य्यका क्षरण होता है ॥ ६७७ ॥

रसरक्ताश्रितः साध्यो मांसमेदोगतश्च यः । अस्थिमज्जागतः कृच्छ्रः शुक्रस्थोऽपि न जीवति ॥ ६७८ ॥

रस, रक्त, मांस और मेदगत ज्वर साध्य है, अस्थि और मज्जागत कष्टसाध्य है, एवं शुक्रगतज्वर असाध्य है ॥ ६७८ ॥

सप्तधातुगतज्वरकी चिकित्सा ।

रसस्थे तु ज्वरे तस्मिन्कुर्य्याद्वमनलङ्घने। सेकः संशमनो लेपो रक्तमोक्षमसृग्गते ॥ ६७९ ॥

रसगतज्वरमें वमन और लंघन कराने चाहिये, रक्तगतज्वरमें जलसे सींचना, संशमन औषधि, लेप और रक्तमोक्षण कराना चाहिये ॥ ६७९ ॥

तीक्ष्णे विरेकश्च तथा कुर्य्यान्मांसगते ज्वरे । मेदःस्थे मेदसो नाशमस्थिस्थे वातनाशनम्॥६८०॥ बस्तिकर्म्म प्रयोक्तव्यमभ्यङ्गोद्वर्त्तनं तथा । मज्जाशुक्रे क्रिया नोक्ता मरणं तत्र भाषितम् ॥ ६८१ ॥

मांसगतज्वरमें तीक्ष्ण विरेचन करानी चाहिये, मेदगतज्वरमें मेदनाशक चिकित्सा करनी चाहिये। अस्थिगतज्वरमें वातनाशक चिकित्सा करनी चाहिये। तथा बस्तिकर्म्म, अभ्यंग (तैलादिमर्दन) और उद्वर्तन ये सब कराने चाहिये। मज्जा और शुक्रगतज्वरकी चिकित्सा नहीं कही केवल मरण ही कहा है॥६८०॥६८१॥

कटुका रोहिणी मुस्ता पिप्पलीमूलमेव च । हरीतकी च तत्तोयमामाशयगते ज्वरे ॥ ६८२ ॥

कुटकी, नागरमोथा, पीपलामूल और हरड इनका काथ आमाशयगत ज्वरोंमें देवे ॥ ६८२ ॥

वर्षाशरद्वसन्तेषु वाताद्यैः प्राकृतः क्रमात् । वैकृतोऽन्यः स दुःसाध्यः प्राकृतश्चानिलोद्भवः ॥ ६८३ ॥

वर्षाऋतुमें वातज्वर, शरद्ऋतुमें पित्तज्वर और वसन्तऋतुमें कफज्वर उत्पन्न हो तो प्राकृत जानना और इनसे विपरीत उत्पन्न हो तो विकृत जानना। वैकृतज्वर दुःसाध्य है और प्राकृत वातज्वर भी दुःसाध्य है ॥ ६८३ ॥

वर्षासु मारुतो दुष्टः पित्तश्लेष्मान्वितो ज्वरम् । कुर्य्यात्पित्तश्च शरदि तस्य चानुबलः कफः ॥ ६८४ ॥ तत्प्रकृत्या विसर्गाच्च तत्र नानशनाद्भयम् । कफो वसन्ते तमपि वातपित्तं भवेदनु॥६८५॥

वर्षाऋतुमें वायु दुष्ट होकर पित्तकफको साथ लेकर ज्वरको उत्पन्न करता है, शरत्कालमें पित्त दुष्ट होकर कफकी सहायता पाकर ज्वरको उत्पन्न करता है, उस ज्वरमें दोषोंके स्वभावसे और विसर्पकालके होनेसे लंघन करानेमें कुछ भय नहीं है,ऐसे ही वसन्तऋतुमें कफ दुष्ट होकर वातपित्तकी सहायता पाकर ज्वरको उत्पन्न करता है ॥ ६८४ ॥ ६८५ ॥

काले यथास्वं सर्वेषां प्रवृत्तिर्वृद्धिरेव च । निदानोक्तानुपशयो विपरीतोपशायिता ॥ ६८६ ॥

जिस प्रकार काल दोषोंकी प्रवृत्ति और वृद्धिका हेतु है उसी प्रकार उपशय और अनुपशय भी जानने. जैसे कि दोषोंको बढानेवाले आहार विहारादिक जो आचार हैं उनको अनुपशय जानना और दोषोंको नष्ट करनेवाले आहार विहारादि जो आचार हैं उनको उपशय जानना ॥ ६८६ ॥

अन्तर्दाहोऽधिका तृष्णा प्रलापः श्वसनं भ्रमः । सन्ध्यास्थिशूलमस्वेदो दोषवर्चोविनिग्रहः ॥ ६८७ ॥ अन्तर्वेगस्य लिङ्गानि ज्वरस्यैतानि लक्षयेत् ॥ ६८८ ॥

शरीरके भीतर दाह हो, अत्यन्त प्यास, बकवाद, श्वास, भ्रम, सन्धि और हड्डियोंमें शूलकी पीडा, पसीनेका न आना, वायु और मलका अच्छे प्रकारसे न उतरना ये अन्तर्वेग ज्वरके लक्षण हैं ॥ ६८७ ॥ ॥ ६८८ ॥

सन्तापो ह्यधिको बाह्यस्तृष्णादीनाञ्च मार्दवम् । बहिर्वेगस्य लिङ्गानि सुखसाध्यत्वमेव च ॥ ६८९ ॥

शरीरके बाहर अत्यंत सन्ताप हो और तृषादिक कम हों ये बहिर्वेग ज्वरके लक्षण जानने यह सुखसाध्य है ॥ ६८९ ॥

बलवत्स्वल्पदोषेषु ज्वरः साध्योऽनुपद्रवः ॥ ६९० ॥

बलवान् रोगीके अल्पदोष और उपद्रवरहित ज्वर हो तो साध्य है ॥ ६९० ॥

ज्वरे तुल्यर्त्तुदूष्यत्वं प्रमेहे तुल्यदूष्यता । रक्तगुल्मे पुराणत्वं सुखसाध्यस्य लक्षणम् ॥ ६९१ ॥

ज्वरमें ऋतुके अनुसार दूष्यता और प्रमेहमें दोषोंके समान दूष्यता और रक्तगुल्ममें पुरानापन ये सुखसाध्य लक्षण हैं ॥ ६९१ ॥

जीर्णज्वरके लक्षण ।

न शाम्यति ज्वरो यस्य पक्षादूर्ध्वं शरीरिणाम् । मन्दवेगानुचारी च स ज्ञेयो जीर्णतां गतः ॥ ६९२ ॥

जो ज्वर पन्द्रह दिनके पश्चात् भी शांत न हो और मंदवेगसे स्थिर रहे वह जीर्णताको प्राप्त होता है अर्थात् पन्द्रह दिनके पीछे जीर्णज्वर हो जाता है ६९२

आसप्तरात्रात्तरुणं ज्वरमाहुर्मनीषिणः ॥मध्यं चतुर्दशाहन्तु पुराणमत उत्तरम्॥ ६९३ ॥

ज्वर सातदिनतक तरुण होता है पश्चात् चौदह दिनतक मध्यम होता है और इसके उपरान्त पुराना हो जाता है ॥ ६९३ ॥

पुराणेऽपि ज्वरे दोषाः यद्यपथ्यैः पुनस्तथा । लङ्घयेत्तत्र तं पश्चाद्यथोक्तां कारयेत् क्रियाम् ॥ ६९४ ॥

पुराने ज्वरमें यदि कुपथ्य सेवन करनेसे वातादि दोष फिर बढजावें तो प्रथम लंघन कराकर पश्चात् ज्वरोक्त चिकित्सा करे ॥ ६९४ ॥

निदिग्धिकानागरिकामृतानां तोयं पिबेन्मिश्रितपिप्पलीकम् । जीर्णज्व-

किसीका ऐसा भी मत है कि तीन सप्ताहके पीछे ज्वर जीर्ण हो जाता है ।

रारोचककासशूलश्वासाग्निमान्द्यार्दितपीनसे तु ॥ ६९५ ॥ हन्त्यूर्ध्वजान्गदान्प्रायः सायं तेनोपयुज्यते ॥ पिप्पलीचूर्णसंयुक्तः क्वाथश्छिन्नोद्भवोद्भवः । जीर्णज्वरकफध्वंसी पञ्चमूलकृतोऽथवा ॥ ६९६ ॥

कटेरी, सोंठ और गिलोय इनके काथको पीपलका चूर्ण मिलाकर पान करे तो जीर्णज्वर, अरुचि, खांसी, शूल, श्वास, मंदाग्नि, अर्दित और पानस रोग नष्ट होते हैं। यदि ऊर्ध्वगत रोगोंको नष्ट करनेके लिये सेवन करे तो इसको संध्याके समय पीना चाहिये ॥६९५॥ गिलोयके काथमें पीपलका चूर्ण डालकर पान करनेसे जीर्णज्वर और कफ नष्ट होता है ॥ ६९६॥

पिप्पलीमधुसंमिश्रं गुडूचीस्वरसं पिबेत् ॥ जीर्णज्वरकफप्लीहकासारोचकनाशनम् ॥ ६९७ ॥

गिलोयके स्वरसमें पीपलका चूर्ण और शहत डाल कर पान करे तो जीर्णज्वर, कफ, प्लीहा, खांसी और अरुचि नष्ट होती है ॥ ६९७ ॥

जीर्णज्वरेऽग्निमान्द्ये च शस्यते गुडपिप्पली । कासाजीर्णारुचिश्वासहृत्पांडुकृमिरोगनुत् ॥ ६९८ ॥

जीर्णज्वर और मंदाग्निमें गुडके साथ पीपलका चूर्ण सेवन करना अत्यन्त श्रेष्ठ है । यह खांसी, अजीर्ण, अरुचि, श्वास, पाण्डुरोग और कृमिरोगनाशक है ॥ ६९८ ॥

अमृतायाः कषायं तु शृतं चैव सुशीतलम् । मधुपादयुतं पीतं जीर्णज्वरहरं परम् ॥ ६९९ ॥

गिलोयके काथको शीतल करके उसमें चौथा भाग शहद मिलाकर पान करनेसे जीर्णज्वर नष्ट होता है ॥ ६९९॥

अनन्तं बालकं मुस्तं नागरं कटुरोहिणीम् । सुखाम्बुना प्रागुदयात्पिबेदक्षसमं रवेः । एष सर्वज्वरं हन्ति दीपयत्याशु चानलम् ॥ ७०० ॥

अनंतमूल, सुगन्धवाला, नागरमोथा, सोंठ और कुटकी इनका काथ बनाकर सूर्योदयसे पहले मन्दोष्ण पान करे । यह सब प्रकारके ज्वरोंको नष्ट करता तथा अग्निको दीपन करता है ॥ ७०० ॥

द्राक्षादिकाथ ।

द्राक्षामृता शटी शृङ्गी मुस्तकं रक्तचन्दनम् । नागरं कटुकं पाठा भूनिम्बं सदुरालभम् ॥ ७०१ ॥ उशीरं धान्यकं पद्मं बालकं कण्टकारिका । पुष्करं पिचुमन्दश्च दशाष्टाङ्गमिति स्मृतम् ॥७०२ ॥ जीर्णज्वरारुचिश्वासकासश्वयथुनाशनम् ॥७०३ ॥

दाख, गिलोय, कचूर, काकडाशिंगी, नागरमोथा, लालचन्दन, सोंठ, कुटकी, पाढ, चिरायता, धमासा, खस, धनियाँ, पद्माख, सुगन्धवाला, कटेरी, पोहकरमूल और नीमकी छाल इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे जीर्णज्वर, अरुचि, श्वास, खांसी और सूजन दूर होती है ॥ ७०१ ॥ ७०२ ॥ ७०३ ॥

शिरोविरेचन ।

शिरोगौरवशूलघ्नमिन्द्रियप्रतिबोधनम् ॥ जीर्णज्वरे रुचिकरं दद्याच्छीर्षविरेचनम् ॥ ७०४ ॥ मधुना वाथ तैलेन ज्वरघ्नेन प्रयोजयेत् ॥ ७०५ ॥

जीर्णज्वरमें शिरोविरेचन (अर्थात् नस्य देना) शिरके भारीपन और शिरकी पीडाको हरता है इन्द्रियोंको चैतन्य करता और रुचिकारक है, इस कारण जीर्णज्वरमें शहद अथवा तेलके द्वारा नास देना चाहिये ॥ ७०४ ॥ ७०५ ॥

रक्तकरवीरपुष्पं कुष्ठं धात्रीफलं सधान्याम्बु । कल्कः सुखोष्णो लेपो ज्वरेषु शिरसो रुजं जयति ॥ ७०६ ॥

लालकनेरके फूल, कूठ, आमले, धनियाँ और सुगन्धवाला इनको जलमें पीसकर किंचित् गरम कर लेप करनेसे ज्वरमें शिरकी पीडा शांत होती है॥७०६॥

हिङ्गुसैन्धवसंयुक्तं नस्यं स्यादनवं घृतम् ॥ ७०७ ॥

अथवा हींग और सैंधानोनको पुराने घीमें मिलाकर नास देनेसे शिरकी पीड़ा शांत होती है॥७०७॥

कणामधुकमृद्वीकाबलाचन्दनशारिवाः। निष्क्वाथ्य पयसा पीतो जीर्णज्वर-विनाशनः ॥ ७०८ ॥

पपिल, मुलैठी, दाख, खिरैटी, चन्दन और सारिवा इनके क्वाथमें दूध मिलाकर पीवे तो जीर्ण-ज्वर नाश होता है ॥ ७०८ ॥

श्वेतजयन्तीमूलं विधिना बद्धं शिखान्तरे हन्ति । जीर्णज्वरं नराणां खलइव दुरितेन चात्मानम् ॥ ७०९ ॥

सफेद अपराजिताकी जडको विधिपूर्वक चोटीमें बांधनेसे जीर्णज्वर इस प्रकार दूर होता है जिस प्रकार दुर्जन मनुष्य पापसे अपने आत्माको नष्ट करता है ॥७०९॥

तिक्तां पर्पटभूनिम्बौ मुस्तां छिन्नरुहां पिबेत् । अभ्यासेन जयत्येष ज्वरमामृत्युमातुरः ॥ ७१० ॥

कुटकी, पित्तपापडा, चिरायता, नागरमोथा और गिलोय इनका क्वाथ नित्य पान करनेसे असाध्य रोगी भी आरोग्य हो जाता है ॥ ७१० ॥

नावनं लङ्घनं चिन्ता व्यवायं शोकभीक्रुधः । एभिरेव च निद्राया नाशः श्लेष्मातिसंक्षयात् ॥ ७११ ॥

नस्य, लंघन, चिंता, मैथुन, शोक, भय और क्रोध इत्यादि कारणोंसे और कफके अत्यन्त क्षय होनेसे निद्राका नाश होता है ॥ ७११ ॥

गुडं पिप्पलीमूलस्य चूर्णेनालोडितं लिहन् । चिरादपि च सन्नष्टां निद्रामाप्नोति मानवः ॥ ७१२ ॥ सायं स्विन्नमशेषं कृत्वा वार्त्ताकमेव पूर्वाह्णे । मधुयुतमश्नन्नचिरान्नष्टामप्याप्नुयान्निद्राम् ॥ ७१३ ॥

पीपलामूलके चूर्णको गुडमें मिलाकर भक्षण करनेसे बहुत दिनोंकी नष्ट हुई निद्रा आजाती है. बैंगनको सन्ध्यासमय उबालकर उसमें शहद मिलाकर प्रातःकाल भक्षण करे तो बहुत दिनोंकी नष्ट हुई भी निद्रा अवश्य आती है ॥ ७१२ ॥ ७१३ ॥

वायसजङ्घामूलं मूलं वा शिरसि काकमाच्याश्च । विधृतं निद्राकरणं स्नुङ्मूलं वाऽशितं सगुडम् ॥ ७१४ ॥

काकजंघा (मिसी) की जड़ अथवा मकोयकी जडको शिरपर धारण करनेसे अथवा थूहरकी जडको गुडके साथ भक्षण करनेसे अवश्य निद्रा आती है ॥ ७१४ ॥

निद्रानाशे प्रकर्त्तव्यं पादयोर्मृदुमर्दनम् । तिलतैलारनालाभ्यां शतधौतघृतेन च ॥ ७१५ ॥

निद्राके नष्ट होनेपर रोगीके दोनों पाँवोंपर तिलके तेलका, कांजी और सौवार धुले हुए घी आदि मृदु पदार्थोंका मर्दन करे ॥ ७१५ ॥

छागक्षीरेण विजयां पिष्ट्वा पादौ प्रलेपयेत् । तेनायाति पुनर्निद्रा चिरकालगतापि वा ॥ ७१६ ॥

भांगको बकरीके दूधमें पीसकर पाँवोंमें प्रलेप करनेसे बहुत दिनोंकी गई हुई भी निद्रा अवश्य आ जाती है ॥ ७१६ ॥

सुस्वरं श्रावयेच्चापि संगीतं मधुरस्वनम्। कर्णसंपूरणाद्वापि निद्रामाप्नोति मानवः ॥ ७१७ ॥

सुन्दर २ स्वरोंको श्रवण करनेसे तथा संगीत और नानाप्रकारके राग, रागिनियोंको सुननेसे एवं कर्णपूर्णसे भी निद्रा आ जाती है ॥ ७१७ ॥

मारिचं लालया दृष्ट्वा कस्तूर्याञ्जनमिष्यते । त्रिरात्रादपि सन्नष्टां निद्रामाप्नोति मानवः ॥ ७१८ ॥

कालीमिरच और कस्तूरी इनको लारमें घिसकर नेत्रोंमें आंजनेसे तीन दिनकी नष्ट हुई निद्रा फिर आजाती है ॥ ७१८ ॥

क्षीणे कफे ज्वरे जीर्णे स्वल्पदोषे पिपासिते। दाहार्त्ते च पयो योज्यं तन्नवे तु विषं भवेत् ॥ ७१९ ॥

क्षीणकफवाले, जीर्णज्वरवाले, अल्पदोषवाले, तृषासे पीड़ित और दाहसे पीड़ित इतने मनुष्योंको दूध पिलाना अत्यन्त हितकारी है परन्तु वही दूध नवीन ज्वरमें विषके समान अपकारी है ॥ ७१९ ॥

श्वासात्कासाच्छिरःशूलात्पार्श्वशूलात्सपीनसात् । मुच्यते ज्वरितः पीत्वा पञ्चमूलीशृतं पयः ॥७२०॥

पंचमूल (सालपर्णी, पृश्निपर्णी, कटेरी, कटाई और गोखरू) को क्षीरपाकविधिसे पकाकर पान करनेसे श्वास, खाँसी, शिरःशूल, पार्श्वशूल और पीनसरोग दूर होता है ॥ ७२० ॥

क्षीरपाकविधि ।

द्रव्यादष्टगुणं क्षीरं क्षीरात्तोयं चतुर्गुणम् । क्षीरावशेषः कर्त्तव्यः क्षीरपाके त्वयं विधिः ॥ ७२१ ॥

अब क्षीरपाककी विधि कहते हैं । क्वाथद्रव्योंसे आठभाग तो दूध लेवै और दूधसे चौगुना जल लेवै फिर यथाविधिसे पकावै जब जल जलजाय केवल दूध बाकी रहिजाय तब उतार लेवै ॥ ७२१॥

सिताज्यविश्वखर्जूरीमृद्वीकाभिः शृतं पयः । शीतं मधुयुतं पीतं तृड्दाहज्वरनाशनम् ॥ ७२२ ॥

चीनी (सफेदखांड), घी, सोंठ, खजूर और दाख इनको क्षीरपाककी विधिसे पकावै, जब शीतल होजावै तब सहद डालकर पान करे तो तृषा, दाह और ज्वर नष्ट होवै ॥ ७२२ ॥

त्रिकण्टकबलाव्याघ्रीगुडनागरसाधितम् । वर्चोमूत्रविबन्धघ्नं शोथज्वरहरं पयः ॥ ७२३ ॥

गोखरू, खिरैटी, कटेरी, गुड और सोंठ इनका दूधमें औटाकर पान करनेसे मलमूत्रका विबन्ध, सूजन और ज्वर नष्ट होता है ॥ ७२३ ॥

पृथ्वी च बिल्ववर्षाभूपयश्चोदकमेव च । क्षीरावशिष्टं तत्पीतं तद्धि सर्वज्वरापहम् ॥ ७२४ ॥

बडी इलायची, बेलगिरी और सफेद पुनर्नवा इनको क्षीरपाककी विधिसे दूध और जलमें पकावै जब केवल दूधमात्र बाकी रहजाय तब उतारकर शीतल करके पान करै यह सब प्रकारके ज्वरोंको नष्ट करे है ॥ ७२४ ॥

चूर्णं त्रिवृत्कणाश्यामात्रिफलानां सितासमम् । भेदि कोष्ठरुजादाहगौरवज्वरनाशनम् ॥ ७२५ ॥

निसोत, पीपल, अनंतमूल, त्रिफला और मिश्री इन सबको एकत्र पीसकर चूर्ण करले वह चूर्ण भेदक कोठेके रोग, दाह, गुरुता और ज्वरनाशक है ७२५॥

साधितं बिल्वपेशीभिर्मूलेनाऽमण्डकस्य च । सद्यो हन्ति पयः पीतं ज्वरं सम्परिवर्त्तिकम् ॥ ७२६ ॥

बेलगिरी और अंडकी जड़को क्षीरपाककी विधिसे पकावै इसको पान करनेसे जीर्णज्वर दूर होता है ॥ ७२६ ॥

मधुकारग्वधद्राक्षातिक्तायासफलत्रिकैः । सपटोलैर्जलं भेदि ज्वरं हन्ति त्रिदोषजम् ॥ ७२७ ॥

मुलैठी, अमलतासका गूदा, दाख, कुटकी, जवास त्रिफला और पटोलपत्र इनका क्वाथ बनाकर पान करनेसे अच्छे प्रकारसे विरेचन होती है और त्रिदोषज्वर दूर होता है ॥ ७२७ ॥

ज्वरक्षीणस्य न हितं वमनं न विरेचनम् । कामन्तु पायसं तस्य निरूहैर्वा हरेन्मलान् ॥ ७२८ ॥

ज्वरसे क्षीण मनुष्यको न वमन हितकारी और न विरेचन हितकारी है उसको इच्छानुसार दूध पिलावे अथवा निरूह बास्तिके द्वारा मलको निकालै ॥ ७२८ ॥

अरोचके गात्रसादे वैवर्ण्येङ्गमलादिषु । शान्तज्वरेऽपि शोध्यः स्यादनुबन्धभयान्नरः ॥ ७२९ ॥

ज्वरके शांत होनेपर भी जो अरुचि, अंगग्लानि, विवर्णता और अंगमें मलादिक जम गया हो तो अनुबन्धके भयसे वमन विरेचनादिकसे शोधना चाहिये ॥ ७२९ ॥

ज्वरोष्मणा ज्वरेऽजीर्णे वायुः कुप्यति रूक्षिते । घृतं संशमनं तस्य दीप्तस्येवाम्बु वेश्मनः ॥ ७३० ॥

जीर्णज्वरमें ज्वरकी उष्णतासे और शरीरकी रूक्षतासे वायु कुपित होता है उसको शमन करनेके लिये घृत पिलाना चाहिये जिस प्रकार जलते हुए घरको जलसे सेचना चाहिये ॥ ७३० ॥

कल्याणकं कटूफलकं घृतं जीर्णज्वरे पिबेत् ॥ ७३१ ॥

जीर्णज्वरमें कल्याणघृत और कटूफलक घृत सेवन करना चाहिये ॥ ७३१ ॥

कौक्कुटघृत ।

कुक्कुटं तरुणं सद्यः कृत्वा पादान्त्रवर्जितम् । तस्य मांसस्य कुर्वीत शृतं पलशतं भिषक् ॥७३२॥ बृहती कण्टकारी च शृङ्गी कर्कटकस्य च । बदराणि कुलित्थानि भार्ङ्गी ह्यामलकी तथा ॥ ७३३ ॥ शटी पुष्करमूलञ्च पञ्चमूलं महत्तथा । एततुलाञ्च संगृह्य द्विद्रोणे त्वम्भसः पचेत् ॥७३४॥ पादशेषं परिस्राव्य कषायं ग्राहयेद्भिषक् । षड्गुणं क्षीरमाहृत्य विपचेत्तु घृताढकम् ॥ ७३५ ॥ तत्र कल्कीकृतं दद्यादस्वल्पं पञ्चमूलकम् । तत्साधुसिद्धं विज्ञाय शुभे भाण्डे निधापयेत् ॥७३६॥ तस्य काले पिबेन्मात्रां बलं दोषमवेक्ष्य च । जीर्णे तस्मिंस्तु भुञ्जीत रक्तशाल्योदनं तथा ॥ ७३७ ॥ जीर्णज्वरोपसृष्टानां शुष्यतां श्वासकासिनाम् । प्रयोज्यं कौक्कुटं सर्पिर्यक्ष्मिणां विषमज्वरे ॥ ७३८ ॥ लेखनं बृंहणीयञ्च बलवर्णाग्निवर्धनम् ।

एक उत्तम तरुण मुरगेको लेकर उसके पाँव और आंतें पृथक् करदेवे पश्चात् उसके मांसको साफ करके ४०० पल जलमें पकावे जब जल १०० पल बाकी रहजाय तब उतारकर छानलेवे, पश्चात् कटाई, कटेरी, काकडाशिंगी, बेर, कुलथी, भार्ङ्गी आमले, कचूर, पोहकरमूल और बृहत्पंचमूल यह सब १०० पल लेकर दो द्रोण जलमें पकावे, जब जल चौथा भाग बाकी रहजाय तब उतारकर छानलेवे, फिर छैगुना दूध लेवै और एक आढक उत्तम घी लेवे और स्वल्प पंचमूलका कल्क बनावै सबको एकत्र मिलाकर उत्तम विधिसे घृतको सिद्ध करे । पश्चात् उत्तम चिकने वासनमें भरके रख देवे, फिर शुभदिनमें समय, बल और दोषोंका विचार कर मात्राका निरूपण कर पान करे,जब यह घृत जीर्ण होजावे तब लाल शालिधानोंके चावलोंका भात भोजन करे । यह कौक्कुटघृत जीर्णज्वरसे पीडित, शोष, श्वास, खाँसी राजयक्ष्मा और विषमज्वरमें प्रयोग करे । यह–लेखन पुष्टिकारक तथा बल, वर्ण और जठराग्निको दीपन करनेवाला है ॥ ७३२॥७३३॥७३४॥७३५॥७३६॥ ॥ ७३७ ॥ ७३८ ॥

वासादिघृत ।

वासां गुडूचीं त्रिफलां त्रायमाणां दुरालभाम् । पक्त्वाऽनेन कषायेन पयसा द्विगुणे च ॥७३९॥ पिप्पलीमुस्तमृद्वीकाचन्दनोत्पलनागरैः । कल्कीकृतैश्च विपचेद्घृतं जीर्णज्वरापहम् ॥ ७४० ॥

अडूसा, गिलोय, त्रिफला त्रायमान और धमासा इनके काथमें दूना दूध मिलाकर और पीपल,नागरमोथा

दाख, चन्दन, कमल और सौंठ इनका कल्क मिला-कर उत्तम गौका घी मिलाकर इस वासाद्य घृतको सिद्ध करे यह वासाद्य घृत जीर्णज्वरनाशक है ७३९॥ ॥ ७४० ॥

(घृतक्काथदुग्धविधि)

अत्र चाष्टगुणे तोये कथिते क्काथदुग्धयोः । प्रत्येकं द्विगुणं भागं पृथक्सर्पिषु निक्षिपेत् ॥ ७४१ ॥

यहाँ अठगुने जलमें क्काथ बनाकर और दूध प्रत्येक दो भाग लेकर घीमें डालने चाहिये ॥ ७४१ ॥

कल्काच्चतुर्गुणः स्नेहः स्नेहात्क्काथश्चतुर्गुणम् । क्काथाच्चतुर्गुणं वारि क्काथः क्काथ्यसमो मतः ॥ ७४२ ॥ मृदौ चतुर्गुणं देयं कठिनेऽष्टगुणं तथा । कठिनात्काठिने द्रव्ये देयं षोडशिकं जलम् ॥ ७४३ ॥ मृद्वादिक्काथ्यसङ्घाते मानमुक्तं चिकित्सकैः । मध्यस्योभयभागित्वादिच्छन्त्यष्टगुणं जलम् ॥ ७४४ ॥ पलैः षोडशभिः प्रस्थं शुष्काणां तद्विदो विदुः । द्विगुणं स्वरसाद्रार्णां तैलक्षीरघृताम्भसाम् ॥ ७४५ ॥

कल्कसे स्नेह (घृत) चौगुना, स्नेहसे क्काथ चौगुना और क्काथसे चौगुना जल तथा क्काथके जलके समान औषधि मृदुद्रव्योंमें जल चौगुना कठिन द्रव्योंमें अठगुना और अत्यंत कठिन द्रव्योंमें सोलहगुना जल डालना चाहिये। यह मृद्वादि द्रव्योंके भेदसे क्काथ बनानेके लिये वैद्योंने मान कहा है। मध्यद्रव्योंके दो भाग होनेसे अठगुना जल डालना चाहिये सूखे द्रव्योंका सोलहपल प्रस्थ माना जाता है। स्वरस गीले पदार्थ तेल घृत और जल यह दुगुने लेने चाहिये ॥ ७४२ ॥ ७४३ ॥ ७४४ ॥ ७४५ ॥

न लभ्यते रसो येषां क्काथन्तेषान्तु निक्षिपेत् । त्रिफलाव्यतिरेकेण मतमेतत्पतञ्जलेः ॥ ७४६ ॥

जिन औषधियोंका स्वरस न मिले उनका क्काथ लेना चाहिये परन्तु त्रिफलेका सदैव क्काथ ही लेना चाहिये यह पतंजलिका मत है ॥ ७४६ ॥

पिप्पल्याद्यिघृतम् ।

पिप्पल्यश्चन्दनं मुस्तमुशीरं कटुरोहिणी । कलिङ्गका त्वामलकी शारिवातिविषे स्थिरा ॥ ७४७ ॥ द्राक्षामलकबीजानि त्रायमाणा निदग्धिका । सिद्धमेतद्घृतं सद्यो जीर्णज्वरमपोहति ॥ ७४८ ॥ क्षयं कासं शिरःशूलं पार्श्वशूलमरोचकम् । अङ्गाभितापमग्निञ्च विषमं सन्नियच्छति ॥ ७४९ ॥

पीपल, लालचन्दन, नागरमोथा, खस, कुटकी, इन्द्रजौ, आमले, शारिवा, अतीस, सालपर्णी, दाख, इमलीके बीज, त्रायमान और कटेरी इन सब ओषधियोंके कल्क और क्काथके द्वारा घृतको सिद्ध करे। यह पिप्पल्यादि घृत तत्काल ही जीर्णज्वरको नष्ट करे है। तथा क्षय, खाँसी, शिर शूल, अरुचि, पार्श्वशूल, शरीरसंताप और मन्दाग्निको दूर करे है ७४७॥ ७४८॥ ७४९

जलस्नेहौषधानान्तु प्रमाणं यत्र नेरितम् । तत्र स्यादौषधात्स्नेहः स्नेहात्तोयं चतुर्गुणम् ॥ ७५० ॥

जहाँ जल, स्नेह और औषधियोंका प्रमाण नहीं कहा वहां औषधियोंसे स्नेह चौगुना और स्नेहसे चौगुना जल लेना चाहिये ॥ ७५० ॥

पिप्पल्याद्यमिदं क्कापि तन्त्रे क्षीरेण पच्यते । यत्राधिकरणेनोक्तिर्गणे स्नेहस्य संविधौ । तत्रैव कल्कनिर्यूहाविष्येते स्नेहवेदिना ॥ ७५१ ॥ एतद्वाक्यबलेनैव कल्कसाध्यपरं घृतम् ॥ ७५२ ॥

किसी २ ग्रंथकारके मतसे इस पिप्पल्यादि घृतमें दूध भी डाला जाता है। जिस स्नेहपाकमें कल्क और क्काथका विधान नहीं कहा, वहां स्नेहको जाननेवाले वैद्योंको उसी स्नेहकी औषधियोंका कल्क और क्काथ बनाकर डालना चाहिये इस वचनके अनुसार इस घृतको कल्कके द्वारा सिद्ध करना चाहिये ॥ ७५१ ॥ ७५२ ॥

क्षीरवृक्षादि तैल ।

क्षीरवृक्षासनारिष्टजम्बूसतच्छदार्जुनैः । शिरीष-खदिरास्फोतामृत-बल्याट-

रूषकैः ॥ ७५३ ॥ कटुकापर्पटोशीरवचातेजोवतीघनैः । साधितं तैलमभ्यङ्गादाशु जीर्णज्वरं जयेत् ॥ ७५४ ॥

क्षीरवृक्ष (बड़, पीपल, गूलर, पारिसपीपल, पाखर, सत्तान) विजयसार, नीमकी छाल, जामुनकी छाल, अर्जुनकी छाल, सिरसकी छाल, खैरकी छाल, अपराजिता (कोयली) गिलोय, अडूसा, कुटकी, पित्तपापडा, खस, वच, तेजबल और नागरमोथा इन सब औषधियोंके द्वारा तेलको सिद्ध करे। इस तेलको शरीरपर मालिस करनेसे शीघ्र ही जीर्णज्वर नष्ट होता है ॥ ७५३ ॥ ७५४ ॥

जीर्णज्वर ।

चन्दनाद्यं हितं तैलं शोषाधिकारकीर्तितम् । तथा नारायणं तैलं जीर्णज्वरहरं परम् ॥ ७५५ ॥

शोषाधिकारमें कहा हुआ चन्दनादितैल और वातव्याधिमें कहा हुआ नारायण तैल जीर्णज्वरमें प्रयोग कराने चाहिये क्योंकि यह जीर्णज्वरको हरनेवाला है ॥ ७५५ ॥

जीर्णज्वरेषु सर्वेषु दोषे पक्वाशयाश्रिते । स्नेहबस्तिः प्रयोक्तव्यः सनिरूहो यथाविधि ॥ ७५६ ॥

सब प्रकारके जीर्णज्वरोंमें वातादि दोष जब पक्वाशयमें प्राप्त होजावैं तब स्नेहबस्ति और निरूह बस्ति प्रयोग करे ॥ ७५६ ॥

गुडूच्यादिघृत ।

गुडूच्या रसकल्काभ्यां त्रिफलाया वृषस्य वा । मृद्वीकाया बलायाश्च सिद्धाः स्नेहा ज्वरच्छिदः ॥ ७५७ ॥

गिलोयके स्वरस अथवा कल्कके द्वारा किंवा त्रिफलेके काथ अथवा कल्कके द्वारा या अडूसेके काथ और कल्कके द्वारा, या खिरैटीके काथ और कल्कके द्वारा घृतको सिद्ध करै यह—घृत—सर्वप्रकारके ज्वरोंको हरनेवाला है ॥ ७५७ ॥

क्षीरषट्पलघृत ।

पञ्चकोलैः ससिन्धूत्थैः पलिकैः पयसा समम् । सर्पिःप्रस्थं शृतं प्लीहविषमज्वरनाशनम् ॥ ७५८ ॥

पंचकोल (पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सौंठ) और सैंधा नोन यह प्रत्येक चार चार तोले लेकर काथ बनावै और काथकी बराबर दूध तथा घी ८ पल लेवै, सबको यथाविधिसे मिलाकर घृतको सिद्ध करे, यह क्षीरषट्पलघृत--प्लीहा और विषमज्वरको नष्ट करे है ॥ ७५८ ॥

अत्र द्रवान्तरानुक्तौ क्षीरमेव चतुर्गुणम् । द्रवान्तरेण योगे हि क्षीरं स्नेहसमं भवेत् ॥ ७५९ ॥

स्नेहपाकमें जहां कोई द्रव्य पदार्थ नहीं कहा हो केवल दूधसे ही पाक करना होय तो स्नेहसे दूध चौगुना लेना चाहिये और जो कोई द्रवद्रव्य कहा हो तो स्नेहके समान दूध डालकर पाक करना चाहिये ॥ ७५९ ॥

दशमूलीक्षीरषट्पल घृत ।

दशमूलीरसे सर्पिः सक्षीरे पञ्चकोलकैः । सक्षारैर्हन्ति तत्सिद्धं ज्वरकासाग्निमन्दताः ॥ वातपित्तकफव्याधीन्प्लीहानं चापकर्षति ॥ ७६० ॥

दशमूल और पंचकोलके काथमें दूध और घृत मिला कर घृतको सिद्ध करै । यह घृत--ज्वर, खाँसी मंदाग्नि, वात, पित्त और कफके रोग एवं प्लीहाको नष्ट करे है ॥ ७६० ॥

बलाद्य घृत ।

बलः श्वदंष्ट्रां बृहन्तीं कलशीं धावनीं स्थिराम् । निम्बं पर्पटकं मुस्तं त्रायमाणां दुरालभाम् ॥ ७६१ ॥ कृत्वा कषायं कल्कार्थं दद्यादामलकीं शठीम् । द्राक्षापुष्करमूलञ्च मेदामामलकानि च ॥ ७६२ ॥ घृतं पयश्च तत्सिद्धं सर्पिर्ज्वरहरं परम् । क्षयकासप्रशमनं शिरःपार्श्वरुजापहम् ॥ ७६३ ॥

खिरैटी, गोखुरू, बड़ी कटेरी, पृश्निपर्णी, कटेरी, शालपर्णी, नीमकी छाल, पित्तपापड़ा, नागरमोथा, त्रायमाण और धमासा इनका काथ एवम् आमले, कचूर, दाख, पोहकरमूल, मेदा और आमले इनका कल्क तथा दूध और घी, सबको यथाविधिसे मिलाकर सिद्ध करे। यह बलाद्यघृत—क्षय, खाँसी, शिर और पसलियोंकी पीड़ाको नष्ट करता है॥७६१॥७६२॥७६३॥

अत्राप्यष्टगुणैस्तोयैः कथितः काथदुग्धयोः। प्रत्येकं द्विगुणो भागः कर्त्तव्यो भिषजा घृते ॥ ७६४ ॥

यहाँपर भी अठगुने जलमें काथ बनाकर, काथ और दूध प्रत्येक दो भाग घृतमें डालकर पकाने चाहिये ॥ ७६४ ॥

बृहद्वासादि घृत ।

वासामृतारिष्टभार्ङ्गीपञ्चमूलफलत्रिकैः । सपायसमधुद्राक्षाकाश्मीरैरक्षसम्मितैः ॥ ७६५ ॥ घृतप्रस्थं विपक्तव्यमेभिर्मात्रामतः पिबेत् । बृहद्वासाघृतं प्रोक्तमेतत्सर्वज्वरापहम् ७६६

अडूसा, गिलोय, नीमकी छाल, भारंगी, पंचमूल, त्रिफला, क्षीरकाकोली, मुलैठी, दाख और कुम्भेर ये प्रत्येक दो दो कर्ष लेकर काथ बनावे उस काथमें दूध और घी मिलाकर घतको सिद्ध करे। यह वासाद्यघृत सर्वप्रकारके ज्वरोंको हरनेवाला है ॥ ७६५ ॥ ॥ ७६६ ॥

मञ्जिष्ठादि घृत ।

मञ्जिष्ठातिविषा पथ्या वचा नागररोहिणी। देवदारु हरिद्रा च द्रोणेऽपां पालिकान्पचेत् ॥ ७६७॥ काथेऽस्मिन्साधयेत्पिष्टैर्घृतप्रस्थं पिचून्मितैः शृङ्गवेरकणाहिङ्गुद्विक्षारपटुपञ्चकैः ॥ ॥ ७६८ ॥ तत्कफावृतसर्वैकज्वरिणाममृतोपमम् । वर्ध्महिध्मारुचिश्वासपाण्डुरोगविकारिणाम् ॥ ७६९ ॥ मलग्रहप्रमेहार्शःप्लीहापस्मारशोषिणाम् । उदावर्त्तपरीतानां मन्दाग्निकृमिकुष्ठिनाम् ॥ ७७० ॥

मजीठ, अतीस, हरड़, वच, सोंठ, कुटकी, देवदारु और हल्दी ये प्रत्येक चार चार तोले लेकर एक द्रोण जलमें काथ बनावे उसमें आद्रक, पीपल, हींग, जवाखार, सज्जी और पाँचों नमक इन प्रत्येकका कल्क एक एक तोला तथा घृत ६४ तोले मिलाकर यथाविधिसे घृतको सिद्ध करे। यह मंजिष्ठादिघृत—कफज्वरवाले रोगियोंको अमृतके समान गुणकारी है तथा वर्ध्मरोग, हिध्म, अरुचि, श्वास, पाण्डुरोग, मलबंध, प्रमेह, बवासीर, प्लीहा और अपस्मार, शोषरोग, उदावर्त, मंदाग्नि, कृमि और कुष्ठरोगियोंको अत्यन्त हितकारी है ॥ ७६७ ॥ ७६८ ॥ ७६९ ॥ ७७० ॥

कुलित्थादि घृत ।

कुलित्थकोलत्रिफलादशमूलयवान्पचेत्। द्विपलान्सलिलद्रोणे घृते पिष्टाक्षकान्क्षिपेत् ॥ ७७१ ॥ पञ्चकोलकसताह्वा वयस्था हिङ्गुतुम्बुरू। शटी पुष्करमूलार्कमूलं प्रतिविषा वचा ॥ ७७२ ॥ किराततिक्तकं मुस्तं कर्कटाख्या दुरालभा। नक्तमालमुभे पाठे कटुका शिग्रु तेजनी ॥ ७७३ ॥ सोमवल्कं द्विरजनी कटुकी कण्टकारिका । पटोलनिम्बगोजिह्वाकम्बुका मदनो जटा॥ ७७४॥ लवणानि पलांशानि क्षारानर्द्धपलोन्मितान् । प्रस्थं चाज्यस्य तत्सिद्धं दीपनं कफवातजित् ॥ ७७५ ॥

कुलथी, बेर त्रिफला, दशमूल और इन्द्रजी ये प्रत्येक दो दो पल लेकर एक द्रोण जलमें पकावे फिर चतुर्थांश शेष रहने पर उतार ले। तथा पंचकोल, (पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता और सोंठ) सतवन हरड, हींग, तुम्बरू, कचूर, पोहकरमूल, आककी जड़, अतीस, वच, चिरायता, नागरमोथा, काकड़ाशिंगी, धमासा, करंज, पाढल, कठपाढल, कुटकी, सैंजिना, तेजबल, कायफल, हलदी दारुहलदी, कुटकी, कटेरी, पटोलपात, नीमकी छाल, गोजिया, असगंध, मैनफल और बालछड़ ये प्रत्येक एक एक कर्ष, नमक चार तोले और जवाखार दो तोले एवं गायका

घी १ प्रस्थ लेवेफिर सबको उत्तमप्रकारसे मिलाकर विधिपूर्वक घृतको सिद्ध करे । ७७१ ॥ ७७२ ॥ ७७३ ॥ ७७४॥ ७७५ ॥

हृत्प्लीहग्रहणीगुल्मश्वासकासार्शसां हितम् । दीर्घज्वराभिभूतानां ज्वरिणाममृतोपमम् ७७६ ॥

यह कुलित्थादिघृत-दीपन और कफवातनाशक है हृदय, प्लीहा, संग्रहणी, गुल्म, श्वास, खाँसी और बवासीरमें अत्यन्त हितकारी है । एवं दीर्घकालके ज्वररोगियोंको अमृतके समान हितकारी है॥७७६॥

षट्चरण तैल ।

लाक्षामधूकमञ्जिष्ठामूर्वाचन्दनसारिवाः । तैलं षट्चरणं नाम ह्यभ्यङ्गाज्ज्वरनाशनम् ॥ ७७७ ॥

लाख, मुलैठी, मजीठ, चुरनहार, चन्दन और सारिवा इनके कल्क और काथके द्वारा तैलको सिद्ध करे । इस षट्चरणतैलकी शरीरादिमें मालिस करनेसे ज्वर नष्ट होता है ॥ ७७७ ॥

षट्तक्र तैल ।

लाक्षा निशा कुष्ठशुण्ठ्यौ मंजिष्ठा च सुवर्चिका । मूर्वाचन्दनसंसिद्धं तैलं तक्रेऽथ षड्गुणे अभ्यङ्गेन प्रशाम्येत । दाहं शीतज्वरापहम् ॥ ७७८ ॥

लाख, हल्दी, कूठ, सोंठ, मजीठ, सज्जी, मूर्वा और चन्दन इनके कल्क और काथके द्वारा १ भाग तेलको ६ भाग तक्रके साथ मिलाकर विधिपूर्वक सिद्ध करे इस तैलको शरीरादिमें मलनेसे दाह और शीतज्वर नष्ट होता है ॥ ७७८ ॥

अङ्गारक तैल ।

मूर्वा लाक्षा हरिद्रे द्वे मंजिष्ठा सेन्द्रवारुणी । बृहती सैन्धवं कुष्ठं रास्ना मांसी शतावरी ॥ ७७९ ॥ आरनालाढकेनात्र तैलप्रस्थं विपाचयेत । तैलमङ्गारकं नाम सर्वज्वरविनाशनम् ॥ ७८० ॥

मूर्वा, लाख, हल्दी, दारुहल्दी, मजीठ, इन्द्रायन, बड़ी कटेरी, सैंधानोंन, कूठ, रायसन, वालछड़ और शतावर इनके क्वाथमें एक आढक कांजी और १ प्रस्थ तैल मिलाकर विधिपूर्वक तैलको सिद्ध करे.यह अङ्गारक तैल—सर्वप्रकारके ज्वरोंको हरनेवाला है ॥ ७७९ ॥ ७८० ॥

लाक्षादि तैल ।

लाक्षारससमं तैलं तैलान्मस्तु चतुर्गुणम् । अश्वगन्धानिशादारुकौन्तीकुष्ठाब्दचन्दनैः ॥ ७८१ ॥ समूर्वारोहिणीरास्नाशताह्वामधुकैः समैः । सिद्धं लाक्षादिकं नाम तैलमभ्यंजनादिना ॥ ७८२ ॥ सर्वज्वरक्षयोन्मादसर्वापस्मारवातनुत् । यक्षराक्षसभूतघ्नं गर्भिणीनां प्रशस्यते ॥७८३॥

लाखका रस या क्वाथ एकभाग, तैल १ भाग और दहीका तोड ४ भाग एवं असगंध, हल्दी, देवदारु, रेणुका,कूठ, नागरमोथा, चन्दन,मूर्वा, कुटकी, रास्ना,शतावर और मुलैठी इनका कल्क समान भाग सबको मिलाकर विधिपूर्वक तैलको सिद्ध करे । इस तैलको शरीरपर मर्दन करनेसे सर्वप्रकारके ज्वर, क्षय, उन्माद सर्वप्रकारका अपस्मार, यक्ष, राक्षस और भूतबाधा नष्ट होती हैं। एवं गार्भिणी स्त्रियोंको यह अत्यंत हितकारी है ॥ ७८१ ॥ ७८२ ॥ ७८३ ॥

महालाक्षादि तैल ।

लाक्षा हरिद्रा मंजिष्ठा फेनिलं मधुकं बला । लामज्जकं चन्दनश्च गैरिकं नीलमुत्पलम् ॥ ७८४ ॥ एषां भागान्समान्कृत्वा पक्त्वा तोये चतुर्गुणे । चतुर्भागावशेषे च गर्भे चैनं समावपेत ॥ ७८५ ॥ रेणुका पद्मकश्चैव वाजिगन्धा तथैव च । वेतसं चोरकं कुष्ठं देवदारु नखत्वचम् ॥ ७८६ ॥ शत-

पुष्पा पुण्डरीकं मांसी मधुकमेव च। एभिरक्षसमैः कल्कैः पाषाणेनैव पेषितैः॥ ७८७ ॥ मस्तुशुक्तारनालानामाढकाढकमावपेत्। क्षीराढकसमायुक्तं तैलप्रस्थं विपाचयेत्। तदभ्यंगात्क्षपयाति तैलं दाहं न संशयः॥ ७८८ ॥ वातपित्तभवं क्षिप्रं ज्वरमेतान्नियच्छाति। सप्रलापश्च तृष्णाश्च तालुशोषणमुल्बणम्॥ ७९९ ॥ ग्रहोपसृष्टा ये बाला रक्षःसन्दूषिताश्च ये। तेषां कष्टं प्रशमयेत्तैलं लाक्षादिकं महत्॥ ७९० ॥

लाख, हल्दी, मजीठ, रीठा, मुलैठी, खिरैंटी, लामज्जक, तृण, चन्दन, गेरू और नील कमल ये सब समान भाग लेकर चौगुने जलमें पकावै जब चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे फिर उसमें रेणुका, पद्माख, असगन्ध, वेत, चोरक, कूठ, देवदारु, नखद्रव्य, दालचीनी, सौंफ, पुंडरिया, बालछड़ और मुलैठी ये प्रत्येक एक एक कर्ष लेकर सिलपर पीसकर मिला देवे, तथा दहीका तोड़ १ आढक, शुक्तकांजी १ आढक, दूध १ आढक और तैल एक प्रस्थ। सबको मिलाकर विधिपूर्वक तैलको सिद्ध करे। इसको शरीरादिमें मलनेसे निःसंदेह दाह दूर होती है। तथा वातपित्तोत्पन्न ज्वर, प्रलाप, तृषा, तालुशोष, जो बालक ग्रहबाधासे पीडित हैं और राक्षसबाधासे दुःखित हैं उनके कष्टको दूर करनेके लिये यह महालाक्षादि तैल अत्युत्तम है॥ ७८४ ॥ ७८५ ॥ ७८६ ॥ ७८७ ॥ ॥ ७८८ ॥ ७९९ ॥ ७९० ॥

स्वर्जिकादि तैल।

स्वर्जिकाकुष्ठमंजिष्ठालाक्षामूर्वामहौषधैः। सक्षीरैः साधितं तैलमभ्याङ्गाद्दाहशीतनुत्॥ ७९१ ॥

सज्जी, कूठ, मजीठ, लाख, मूर्वा और सोंठ इनके कल्कके द्वारा दूध और तैलको एकत्र मिलाकर तैलको सिद्ध करे। इसको शरीरपर मर्दन करनेसे दाह और शीत दूर होता है॥ ७९१ ॥

बलादि तैल।

बलामधुकमञ्जिष्ठापद्मपद्मकचन्दनैः। समुद्रफेनह्रीबेररजनीगैरिकोत्पलैः॥ ॥ ७९२ ॥ पिष्टैरेतैः पचेत्तैलं मस्तुक्षीरं चतुर्गुणम्। वातपित्तज्वराज्जीर्णात्तेनाभ्यक्तः प्रमुच्यते॥ ७९३ ॥

खिरैंटी, मुलैठी, मजीठ, कमल, पद्माख, चन्दन, समुद्रफेन, सुगंधवाला, हल्दी, गेरू और कुमोदनी (बबूला) इन सबको समभाग लेकर एकत्र पीसकर कल्क बनावे फिर तिलका तेल १ भाग दहीका तोड ४ भाग और दूध ४ भाग लेवे। सबको यथाविधिसे मिलाकर तैलको सिद्ध करे इसको शरीरादिपर मर्दन करनेसे वात, पित्त और जीर्णज्वरादि सब रोग दूर होते हैं॥ ७९२॥७९३॥

पटोलादिस्नेह।

पटोलपिचुमन्दाभ्यां गुडूच्यामलकेन च। मदनैश्च शृतः स्नेहो ज्वरघ्नमनुवासनम्॥ ७९४॥

पटोलपात, नीमकी छाल, गिलोय, आमले और मैनफल इनके काथके द्वारा तैलको सिद्ध करके पिचकारीके द्वारा गुदामें चढानेसे ज्वर नष्ट होता है॥ ७९४॥

पटोलाद्यनुवासन।

पटोलमदनारिष्टगुडूचीमधुकैः शृतम्। श्वदंष्ट्रामदनशृङ्गीमधुकारिष्टवासकैः॥ ॥ ७९५ ॥ अश्वगन्धेति तैलस्य कार्षिकैराढकं पचेत्॥ अनुवासनकं तैलं सर्वज्वरविनाशनम्। कृत्स्नान्वातविकारांश्च नाशयेदपि चोत्थितान्॥ ७९६॥

पटोलपत्र, मैनफल, नीमकी छाल, गिलोय मुलैठी अथवा गोखरू, मैनफल, काकड़ासिंगी, मुलैठी नीमकी छाल, आडूसा और असगंध, प्रत्येक दो दो तोले लेकर एक आढ़क तेलमें पकावे। फिर इस तैलको अनुवासन बास्तिके द्वारा प्रयोग करे। यह सब प्रकारके ज्वरोंको हरनेवाला है और हरएक प्रकारके कष्टसाध्य वातविकारोंको दूर करनेवाला है॥ ७९५॥ ७९६॥

क्रियायास्तु गुणालाभे क्रियामन्यां प्रयोजयेत् । पूर्वस्यां शान्तवेगायां न क्रियासंकरो हितः ॥ ७९७ ॥

प्रथम रोगीके लिए जो क्रिया की जाय और वह गुण न करे तो वैद्यको उचित है कि, अन्यक्रियाको प्रयोग करे परन्तु जबतक पहली क्रियाका वेग शांत होजाय तबतक दूसरी क्रिया नहीं करनी चाहिए क्योंकि मिश्रित क्रिया रोगीको हितकारक नहीं है ॥ ७९७ ॥

षड्भिः केचिदहोरात्रैः केचिदष्टाभिरेव च । वक्ष्यन्ति मुनयः प्रायो रसस्य परिवर्त्तनम् ॥ ७९८ ॥ परिवृत्त्या रसस्यैव शान्तवेगा क्रिया भवेत् । गुणालाभे तु कर्त्तव्या विश्रामान्तरितक्षया । सैव न स्याद्यथा तस्यां पूर्ववत्संकराद्भयम् ॥ ७९९ ॥ ज्वरे पुराणे संक्षीणे कफपित्ते दृढाग्नये । रूक्षबद्धपुरीषाय प्रदद्यादनुवासनम् ॥ ८०० ॥

कोई अचार्य छ दिनरात और कोई आठादिनमे रसका परिवर्तन होना कहते हैं । जब रसका परिवर्तन होता है, तब क्रियाका वेग शांत होजाता है जब क्रिया गुण न करे तो कुछ काल विश्राम कर उसका नाश कर देवे, परन्तु जबतक उसका वेग शांत न हो तबतक संकरताके भयसे दूसरी क्रिया प्रयोग न करे । जीर्णज्वरमें, कफपित्तके क्षीण होने पर दीप्त अग्नि वाले मनुष्यको रूक्ष और मलबंधरोगीको अनुवासनबस्ति देनी चाहिए ॥ ७९८ ॥ ७९९ ॥ ॥ ८०० ॥

चन्दनाद्यनुवासन ।

चन्दनोत्पलकाश्मर्य्यमधुकागुरुकल्ककैः ॥ सिद्धं तैलं विधातव्यं बस्तौ सर्वज्वरापहम् ॥ ८०१ ॥

चन्दन, कमल, कुम्भेर, मुलैठी और अगर इनके कल्कके द्वारा तैलको सिद्ध करके बस्तिकर्म्ममें प्रयोग करना चाहिए यह तेल सब प्रकारके ज्वरोंको हरने वाला है ॥ ८०१ ॥

घृततैलगुडादींस्तु चैकाहेनैव साधयेत् । उषितास्तु प्रकुर्वन्ति विशेषेण गुणान्बहून् ॥ ८०२ ॥

घृत, तेल और गुडादिको एक ही दिनमें सिद्ध न करे, क्योंकि ये घृत तैलादि बासी होनेपर विशेष गुण करते हैं ॥ ८०२ ॥

स्नेहकल्को यदाङ्गुल्या वर्त्तितो वर्त्तिवद्भवेत् । वह्नौ क्षिप्ते तु नो शब्दस्तदा सिद्धिं विनिर्दिशेत् ॥ ८०३ ॥

जब तैल, घृतादिके ओषधियोंका कल्कके पकते समय उसमेंसे निकालकर अँगुलीसे मलनेपर बत्तीके समान हो जाय और तेलको अग्निमें डालनेसे चिर चिर शब्द न हो तो उसको सिद्ध हुआ समझना चाहिए ॥ ८०३ ॥

नस्ये मृदुः खरोऽभ्यङ्गे स्नेहे किट्टन्तु मध्यमम् । नातिस्थिरं पचेद्बस्तौ खरमभ्यञ्जने पचेत् ॥ ८०४ ॥

नस्यके लिए स्नेहका मृदु पाक करना चाहिए अभ्यंग (मालिश) के लिए खरपाक करना चाहिए और मध्यम पाक जब तक किट्ट न हो तबतक करना चाहिए । बस्तिकर्म्मके लिए बहुत गाढा पाक न करे ॥ ८०४ ॥

त्रिधा स्नेहपाकलक्षण ।

तत्र स्नेहौषधिविवेकमात्रं यत्र भेषजं स मृदुः । मधूच्छिष्टमिव विशदमविलेपि यत्र भेषजं स मध्यमः । कृष्णमवसन्नमीषद्विशदं चिक्कणञ्च यत्र भेषजं स खरः ॥ स्नेहपाकोऽथ कल्के स्यान्मृदुरङ्गुलिलेपिनि । न गृह्णात्यङ्गुलिं मध्यः शीर्यमाणः खरः स्मृतः ॥ ८०५ ॥

स्नेहपाकके लक्षण--जब स्नेहपाकके समय कल्ककी औषधि पतली हों और करछीसे लगजाय तब उसको मृदुपाक जानना । जब कल्ककी ओषधि मोमके समान

विशद और करछीसे न लगे उसको मध्यमपाक जानना जिसमें कल्ककी औषधि काली होकर कठिन किंचित् विशद और चिकनी पड़जाय उसको खरपाक कहते हैं। अन्यान्यग्रंथोंमें भी कहा है जिसमें कल्क अंगुलीपर चिपट जाय उसको मृदुपाक, जिसका कल्कअंगुलीपर नचिपटे परंतु नरम हो उसको मध्यमपाक और जिसमें कल्क गलकर कठिन हो जाय उसको खरपाक कहते हैं ॥ ८०५॥

परं पाको मृदुः कार्य्यो द्रव्यस्य न-खरो मतः । किञ्चिद्वीर्य्यं समादत्ते त-ज्जहाति खरः पुनः ॥ ८०६ ॥

द्रव्यपाक मृदु करे खर न करे क्योंकि, खरपाक किंचित् वीर्य्यकारक है और फिर वह छूट जाता है ॥ ८०६ ॥

तैलपाकविधि ।

शब्दस्योपरमे प्राप्ते फेनस्योपरमे तथा । गन्धवर्णरसादीनां संपत्तौ सिद्धिमादिशेत् ॥ ८०७ ॥ घृतस्यैवं विपक्वस्य जानीयात्कुशलो भिषक् । फेनोतिमात्रं तैलस्य शेषं घृतवदादि-शेत् ॥ ८०८ ॥ पक्वतैलाद्ब्दवेद्वीर्य्यं हीनमब्दार्द्धतः परम् । घृताद्र्धाब्दा-त्परं पक्वं गुडादेस्त्वब्दतः परम् ॥८०९॥

स्नेहपाकके समय जब उसमें चिर चिर शब्द बंद हो जावे झाग भी न रहे। तथा उसकी, गंध वर्ण और रस शुद्ध होजाय तो उस घृत अथवा तेलको पकाजाने परंतु तैलके पाकमें फेणा अधिक आता है बाकी घृत वत् है पक्वतैल छै मासके पश्चात् वीर्य्यहीन हो जाता है और पक्व घृत एकवर्षमें वीर्य्यहीन हो जाता है और गुड आदि पदार्थ एकवर्षके पश्चात् हीन वीर्य्य होजाते हैं ॥ ८०७ ॥ ८०८ ॥ ८०९ ॥

आरग्वधनिरूहबस्ति ।

आरग्वधमुशीरञ्च मदनस्य फलानि च । पर्ण्यश्चतस्रो मधुकं निरूहमुपक-ल्पयेत् ॥ ८१० ॥ प्रियङ्गुमदनं मुस्तं मधुकञ्च शताह्वया । कल्कः सर्पिगु-डक्षौद्रैर्ज्वरघ्नो बस्तिरुत्तमः ॥ ८११ ॥

१ कहीं ऐसाभी कहा है कि फेण आने लगे तो तैल सिद्ध होता है और फेण नाश होने पर घृत सिद्ध होने पर आता है।

अमलतासका गूदा, खस, मैनफल, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, शालपर्णी, पृश्निपर्णी और मुलैठी इनके काथको निरूह बस्तिके द्वारा प्रयोग करे अथवा फूलप्रियंगु, मैनफल,नागरमोथा, मुलैठी और सतावर इनका कल्क घी, गुड और शहद सबको एकत्र कर बस्ति लगावै यह ज्वरनाशक है॥८१० ॥ ८११॥

निरूहमात्राकल्पनाविधि ।

एकादशाष्टौ षट्कञ्च कषायस्य पलं मतम् । कफपित्तानिलोत्थेषु विकारेषु यथाक्रमम् ॥ ८१२ ॥ स्नेहस्य त्रिचतुः-षष्ठाश्चत्वारो मधुनस्तथा । पलद्वयं तु कल्कस्य कर्षः स्यात्सैन्धवस्य च ॥ ८१४ ॥ रसक्षीराम्लमूत्राणामेकैकं प्रक्षिपेत्पलम् । निरूहकल्पना मात्रा कथितैषा महर्षिणा ॥ ८१५ ॥

निरूहबास्तिके विषय कफमें ११ पल, पित्तमें ८पल और वातमें छ पल काढा लेवे जो स्नेह लेना हो तो कफमें तीनपल पित्तमें ४ पल और वातमें६ पल लेवे और सहत ४ पल, कल्क २ पल, सैंधानोन १ कर्ष और जो मांसरस, दूध कांजी और मूत्र ये पदार्थ डालना हो तो प्रत्येक वस्तु १—१ पल डाले निरूहबास्तिमें यह महर्षियोंने मात्राकी कल्पना कही है॥ ८१२ ॥ ८१३ ॥ ८१४ ॥

विष्णुं सहस्रमूर्द्धानं चराचरगुरुं वि-भुम् । स्तुवन्नामसहस्रेण ज्वरान्सर्वा-न्व्यपोहति ॥ ८१५ ॥

जिसके हजार शिर हैं और जो चराचरका गुरु है, उस विष्णु भगवानके हजार नामोंको पढकर स्तुति करनेसे सब प्रकारके ज्वर नष्ट होते हैं॥८१५॥

धनिष्ठादिनक्षत्रोत्पन्नज्वरावधि ।

ज्योतिश्चक्रं धनिष्ठादि वक्ष्यते दिन-निश्चयात् । दशरात्रं धनिष्ठासु ज्वरो भवति देहिनाम् ॥ ८१६ ॥ वारुणे-ऽपि दशाहेन मृत्युमाप्नोति मानवः । षडहे द्वादशाहे वा मृत्युर्भाद्रपदासु च ॥ ८१७ ॥ उत्तरासु भवेन्मोक्षश्च-तुर्दशादिनोत्तरम् । चतूरात्राष्टरात्रौ

वा रेवत्यां वर्त्तते ज्वरः ॥ ८१८ ॥ अश्विनीष्वपि षड्रात्रात्सुखं भवति देहिनाम् । यमदैवे समुत्पन्ने मरणं पञ्चमेऽहनि ॥ ८१९ ॥ कृत्तिकासु गृहीतस्य सप्तरात्रं भवेज्ज्वरः । न मुञ्चेद्यदि सप्ताहादेकविंशतिमे सुखम् । अत ऊर्ध्वं विपद्येत त्रिपक्षात्संशयो भवेत् ॥ ८२० ॥ रोहिण्यामष्टरात्रेण मुच्येदेकादशेऽहनि । मृगे च षडहं ज्ञेयं नवरात्रमथापि वा ॥ ८२१ ॥ आर्द्रायामुपसृष्टस्य पञ्चाहान्मृत्युमादिशेत् । ऊर्ध्वं यद्यपि वर्त्तेत त्रिपक्षात्संशयो भवेत् ॥ ८२२ ॥ पुनर्वसूपसृष्टेन ज्वरेण परिपीडनात् । त्रयोदशाहान्मुच्येत सप्तविंशेऽथवाहनि ॥ ॥ ८२३ ॥ पुष्ये त्रिरात्रं ज्वरितः सप्तरात्रान्निवर्त्तते । आश्लेषासु भवेन्मृत्युर्दीर्घकालक्रमात्तथा ॥ ८२४ ॥ मघासु द्वादशाहेन मृत्युर्भवति देहिनः । ऊर्ध्वं याति मघायान्तु पुनरेव सुखी भवेत् ॥ ८२५ ॥ पूर्वासु चोपसृष्टस्य फाल्गुनीषु भवेद्दश । उत्तरासु तथा चाष्टौ नवरात्रमथापि च । एकविंशतिरात्राद्वा ज्वरः सौख्यत्वमृच्छति ॥ ८२६ ॥ हस्ते च सप्तमे मोक्षश्चित्रायामष्टमेऽहनि । ऊर्ध्वं प्रपद्यमानो वा मुच्येच्चित्रागमे पुनः ॥ ८२७ ॥ स्वातियोगे दशाहेन मुच्यतेऽथ त्रयेण वा । विशाखासु भवेन्मृत्युरेकविंशतिमेऽहनि ॥ ८२८ ॥ ज्वरस्तु दिवसानऽष्टावनूराधासु वर्त्तते । अत ऊर्ध्वं न मुक्तं स्यान्नास्ति तस्य चिकित्सितम् ॥ ८२९ ॥ ज्येष्ठायां पञ्चमे मृत्युर्द्वादशाहेन वा सुखम् । स्वास्थ्यं दशाहान्मूलेन त्रिसप्ताहे तथा गते ॥ ८३० ॥

अषाढायान्तु पूर्वायां नवमेऽहनि मुच्यते । उत्तरासु त्वषाढासु मासात्क्लिश्यत्यसंशयः । अष्टमान्नवमान्मासात्ततोऽस्य सुखमादिशेत् ॥ ८३१ ॥ श्रवणेनाष्टरात्रन्तु क्लिश्यन्ति ज्वरपीडिताः ॥ ८३२ ॥ एतद्भगवता प्रोक्तं नक्षत्राणां विचेष्टितम् । य एवं वेत्ति तत्त्वेन स राज्ञोऽर्चनमर्हति ॥ ८३३ ॥

अब धनष्ठादि ज्योतिश्चक्रको दिनके निश्चयसे कहता हूं धनिष्ठा नक्षत्रमें उत्पन्न हुवा ज्वर दश दिन रहता है । शतभिषा नक्षत्रमें उत्पन्न हुआ ज्वर दशदिनमें मारदेता है । पूर्वाभाद्रपदामें उत्पन्न हुआ ज्वर छः अथवा बारहदिनमें मार देता है। उत्तराभाद्रपदामें उत्पन्न हुवा ज्वर चौदह दिनके पश्चात् नष्ट होजाता है। रेवतीनक्षत्रमें उत्पन्न हुआ ज्वर चार अथवा आठ दिनतक रहता है । अश्विनीनक्षत्रमें उत्पन्न हुआ ज्वर छः दिनमें आरोग्य होजाता है । भरणीनक्षत्रमें उत्पन्न हुआ ज्वर पाँचवें दिन मार देता है ।कृत्तिकानक्षत्रमें उत्पन्न हुआ ज्वर सात दिनतक रहता है और जो एक सप्ताहमें आरोग्य न हो तो २१ दिनमें आराम होजाता है।और जो इससे भी अधिक दिन बीत जाय तो तीनपक्षमें संशय होजाता है। रोहिणी नक्षत्रमें उत्पन्न हुआ ज्वर आठ दिनमें अथवा ग्यारह दिनमें छूट जाता है । मृगशिरमें उत्पन्न हुआ ज्वर छः दिन अथवा नौ दिनतक रहता है। आर्द्रानक्षत्रमें उत्पन्न हुआ ज्वर पांच दिनमें मार देता है । और जो इससे अधिक रहे तो तीनपक्षमें संशय होजाता है । पुनर्वसुनक्षत्रमें उत्पन्न हुआ ज्वर तेरह दिन अथवा सत्ताईस दिनमें निवृत्त होजाता है । पुष्यनक्षत्रमें उत्पन्न हुआ ज्वर तीन अथवा सात दिनमें निवृत्त होजाता है। आश्लेषानक्षत्रमें उत्पन्न हुआ ज्वर बहुतकालतक रहकर पश्चात् मारदेता है । मघानक्षत्रमें उत्पन्न हुआ ज्वर बारह दिनमें मार देता है । इससे अधिक दिन बीत जाय तो फिर सुखी होजाता है । पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रमें उत्पन्न हुआ ज्वर आठ अथवा नौ दिनतक किंवा २१ दिनतक रहकर दूर होजाता है या मारदेता है । हस्तनक्षत्रमें उत्पन्न हुआ ज्वर सातवें दिन और चित्रामें उत्पन्न हुआ ज्वर आठवें दिन मोक्ष

कर देता है जो आठ दिनसे अधिक बीत जावे तो ज्वरसे मुक्त होजाता है। स्वातीनक्षत्रमें उत्पन्न हुआ ज्वर दश दिन अथवा तीन दिनमें दूर होजाता है। विशाखानक्षत्रमें उत्पन्न हुआ ज्वर २१ दिनमें मारदेता है। अनुराधानक्षत्रमें उत्पन्न हुआ ज्वर आठ दिनतक रहता है इसके उपरांत न तो वह निवृत्त होता है और न उसकी चिकित्सा है। जेष्ठानक्षत्रमें उत्पन्न हुआ ज्वर पांचवें दिन मारदेता है। अथवा इसके पश्चात् १२ दिनमें सुख होजाता है। मूलनक्षत्रमें उत्पन्न हुआ ज्वर दश अथवा तीन सप्ताहमें दूर होजाता है। पूर्वाषाढानक्षत्रमें उत्पन्न हुआ ज्वर नौ दिनमें दूर होता है। उत्तराषाढानक्षत्रमें उत्पन्न हुआ ज्वर एक महीनेतक दुःख देता है, फिर आठ अथवा नौ महीनेके पश्चात् छूट जाता है। श्रवणनक्षत्रमें उत्पन्न हुआ ज्वर आठ दिनतक क्लेश देता है। यह भगवान्की कही हुई नक्षत्रोंकी चेष्टा कही, जो वैद्य इनके तत्त्वको जानता है, वह राजओंसे पूजा जाता है॥ ८१६—८३३॥

धनिष्ठादि स्वस्त्ययन ।

वसुरग्निरिति धनिष्ठायां वटशुङ्गमौदुम्बरं वा जुहुयात्॥ १॥

धनिष्ठानक्षत्रमें "वसुरग्निः"--इति इस मंत्रको पढकर वड़के अंकुर और गलरकी लकडीसे आहुति देवे॥ १॥

तत्त्वायामीति शतभिषजि जलपुष्पं जुहुयात्॥ २॥

"तत्वायामीति" इस मंत्रको पढकर शतभिषानक्षत्रमें कमलकी आहुति देवे॥ २॥

उत्तरत्राहि गौहि द्वे इति पूर्वाभाद्रपदासु शाल्योदनं जुहुयात्॥ ३॥

"उत्तरत्राहि गौहिद्वे इति" इन दोनों मंत्रोंको पढकर पूर्वाभाद्रपदामें शालिचावलोंके भातकी आहुति देवे॥ ३॥

अहिरिव भोगैरिति उत्तराभाद्रपदासु घृतौदनं जुहुयात्॥ ४॥

उत्तराभाद्रपदामें "अहिरिवभोगैरिति" इसको पढ़कर घी और भातकी आहुति देवे॥ ४॥

पूष्णो प्राश्येति रेवत्यां फलान्यक्षतानि जुहुयात्॥ ५॥

रेवतीनक्षत्रमें "पूष्णो प्राश्येति" इसको पढकर फल और अक्षतकी आहुति देवे॥ ५॥

अश्विनातेजसेत्यश्विन्यां गुडौदनं जुहुयात्॥ ६॥

अश्विनीनक्षत्रमें "अश्विना तेजसात"--इस मंत्रको पढकर गुड़ और भातकी आहुति देवे॥ ६॥

असि यम इति भरण्यां तण्डुलाञ्जुहुयात्॥ ७॥

भरणी नक्षत्रमें "असि यम"--इस मंत्रको पढ़कर चावलोंकी आहुति देवे॥ ७॥

अग्निर्मूर्द्धा इति कृत्तिकासु घृतं जुहुयात्॥ ८॥

कृत्तिकानक्षत्रमें "अग्निर्मूर्द्धा इति"--इस मंत्रको पढकर घृतकी आहुति देवे॥ ८॥

हिरण्यगर्भ इति रोहिण्यां सर्वबीजानि जुहुयात्॥ ९॥

रोहिणीनक्षत्रमें "हिरण्यगर्भ इति" इस मंत्रको पढकर सबवीजोंकी आहुति देवे॥ ९॥

त्वम्भसामेति मृगशिरसि पायसं जुहुयात्॥ १०॥

मृगशिरनक्षत्रमें "त्वम्भसामेति"—इस मंत्रको पढकर खीरकी आहुति देवे॥ १०॥

अहे पितुमरुतामित्याद्रायां कृसरां हुनेत्॥ ११॥

आर्द्रानक्षत्रमें "अहे पितुमरुतामिति"—इस मंत्रको पढकर खिचड़ीकी आहुति देवे॥ ११॥

महीमूषमातरमिति पुनर्वसौ तण्डुलाञ्जुहुयात्॥ १२॥

पुनर्वसुनक्षत्रमें "महीमूषमातरामिति"—इस मंत्रको पढ़कर चावलोंकी आहुति देवे॥ १२॥

बृहस्पते अतियदर्य्य इति पुष्ये घृतपायसं जुहुयात्॥ १३॥

पुष्यनक्षत्रमें "बृहस्पते अतियदर्य्य इति"—इस मंत्रको पढकर घी मिलाकर खीरकी आहुति देवे॥ १३॥

नमोऽस्तु सर्पेभ्यो इति आश्लेषासु सर्वौषधीर्जुहुयात् ॥ १४ ॥

सर्वौषधिवर्ग ।

कुष्ठं मांसी हरिद्रे द्वे सुरशैलेयपद्मकैः । वचाकर्चूरमुस्तैश्च सर्वौषधिकमुच्यते ॥ १ ॥

आश्लेषानक्षत्रमें "नमोस्तु सर्पेभ्यो इति"--इस मंत्रको पढकर सर्वौषधि (कूठ, बालछड, हल्दी, दारुहल्दी, देवदारु, भूरछरीला, वच, कचूर और नागरमोथा इनको सर्वौषधि कहते हैं) की आहुति देवे ॥ १४ ॥

इदं पितृभ्य इति मघासु शालितण्डुलाञ्जुहुयात् ॥ १५ ॥

मघानक्षत्रमें "इदं पितृभ्य इति" --इस मंत्रको पढकर शालिचावलोंकी आहुति देवे॥ १५ ॥

प्रातर्जितं भगमुग्रेति पूर्वाफाल्गुनीष्वक्षताञ्जुहुयात् ॥ १६ ॥

पूर्वाफाल्गुनीनक्षत्रमें "प्रातर्जितं भागमुग्रेति"इस-मंत्रको पढकर अक्षतकी आहुति देवे ॥ १६ ॥

तत्सवितुर्वरेण्यमिति उत्तराफाल्गुनीषु घृतं जुहुयात् ॥ १७ ॥

उत्तराफाल्गुनीनक्षत्रमें "तत्सवितुर्वरेण्यमिति"--इस मंत्रको पढकर घृतकी आहुति देवे ॥ १७ ॥

आकृष्णनेति हस्ते रक्तपुष्पं जुहुयात् ॥ १८ ॥

हस्तनक्षत्रमें "आकृष्णेनेति"--इस मंत्रको पढकर लाल फूलोंकी आहुति देवे ॥ १८ ॥

देवस्य त्वा सवितुरिति चित्रायां मधुपायसं जुहुयात् ॥ १९ ॥

चित्रानक्षत्रमें "देवस्य त्वा सवितुरिति"--इस मंत्रको पढकर शहद और खीरकी आहुति देवे॥ १९ ॥

वायुरग्नेजा इति स्वातिषु तण्डुलाञ्जुहुयात् ॥ २० ॥

स्वातिनक्षत्रमें "वायुरग्नेजा इति"-- इस मंत्रको पढकर चावलोंकी आहुति देवे ॥ २० ॥

इंद्राग्नि आगतमिति विशाखायां यवघृतं जुहुयात् ॥ २१ ॥

विशाखानक्षत्रमें "इन्द्राग्नि आगतमिति"-- इस-मंत्रको पढकर जौ और घीकी आहुति देवे ॥ २१ ॥

आनोमित्रो वरुणेति अनुराधासु मसूरं जुहुयात् ॥ २२ ॥

अनुराधानक्षत्रमें "आनोमित्रो वरुणेति"-इस मंत्रको पढकर मसूरकी आहुति देवे॥ २२ ॥

इन्द्रा सुत्रामेति ज्येष्ठासु कनकं तदभावे पीतपुष्पं जुहुयात् ॥ २३ ॥

ज्येष्ठानक्षत्रमें "इन्द्रासुत्रामेति"इस मंत्रको पढकर सुवर्णकी आहुति देवे और जो सुवर्ण न मिले तो पीले फूलोंकी आहुति देवे ॥ २३ ॥

मूलाय स्वाहेति मूले तिलव्रीह्याज्यानि जुहुयात् ॥ २४ ॥

मूलनक्षत्रमें "मूलायस्वाहेति"--इस मंत्रको पढकर तिल और व्रीहि धानोंकी आहुति देवे ॥ २४ ॥

अपाघमुपकिल्विषमिति पूर्वाषाढे घृतौदनं जुहुयात् ॥ २५ ॥

पूर्वाषाढानक्षत्रमें "अपाघमुपकिल्बिषमिति"--इस मंत्रको पढकर घी और चावलोंकी आहुति देवे२५॥

विश्वेऽद्यमिति उत्तराषाढे मधुरान्नं जुहुयात् ॥ २६ ॥

उत्तराषाढानक्षत्रमें "विश्वेऽद्यमिति"--इस मंत्रको पढकर मधुर भोजनकी आहुति देवे ॥ २६ ॥

इदं विष्णुरिति श्रवणे मूर्वास्तदभावे तण्डुलाञ्जुयात् ॥ २७ ॥

श्रवणनक्षत्रमें "इदं विष्णुरिति"--इस मंत्रको पढकर मूर्वा औषधिको आहुति देवे और जो मूर्वा न मिले तो चावलोंकी आहुति देवे ॥ २७ ॥

उरगवरुणरुद्रा वासवेन्द्रत्रिपूर्वा यमभहुतविशाखाः पापवारेण युक्ताः । तिथि नवमिषष्ठीद्वादशीभिश्चतुर्थ्या- मरणसहितयोगा रोगिणां मृत्युरेव ॥ ८३४॥

आश्लेषा, शतभिषा, आर्द्रा, धनिष्ठा, ज्येष्ठा, पूर्वाभाद्रापदा, पूर्वाषाढा, पूर्वाफाल्गुनी, भरणी, कृत्तिका और विशाखानक्षत्र ये पापवारोंसे युक्त हों एवं नवमी, षष्ठी, द्वादशी और चतुर्थी यह तिथि भी हों तो इसको मरण कहना अर्थात् इन योगोंमें उत्पन्न हुआ रोग रोगीके नाश करनेके लिये होता है ॥ ८३४ ॥

पथ्यापथ्य ।

सज्वरो ज्वरमुक्तो वा विदग्धानि गुरूणि वा । असात्म्यान्यन्नपानानि विरुद्धाध्यशनानि च ॥ ८३५ ॥ व्यायाममतिचेष्टां चाऽभ्यङ्गं स्नानं विवर्जयेत् । तेन ज्वरः शमं याति शान्तश्च न पुनर्भवेत् ॥ ८३६ ॥

ज्वरसहित या ज्वररहित मनुष्य विदग्ध अन्न (दाहकारक भोजन) भारी पदार्थ, असात्म्य (जो अपनी प्रकृतिके प्रतिकूल हों) अन्नपान, विरुद्ध और अजीर्णमें भोजन, व्यायाम (दंडकसरत) अत्यन्त चलना, फिरना, तेलादिका मर्दन और स्नान ये सब छोड़ देवे । इस प्रकार करनेसे ज्वर शांत होता है और शांत हुआ ज्वर फिर उत्पन्न नहीं होता ॥ ८३५ ॥ ८३६ ॥

व्यायामश्च व्यवायश्च स्नानं चक्रमणानि च । ज्वरमुक्तो न सेवेत यावन्नो बलवान्भवेत् ॥ ८३७ ॥

व्यायाम (दंडकसरत), व्यवाय (मैथुन), स्नान और अधिक भ्रमण करना इन सबको ज्वरमुक्त मनुष्य जबतक बलवान् न हो जाय तबतक न करे ॥ ८३७ ॥

वार्यमाणो दिवा स्वप्नमुक्त्वा यः सेवते नरः । तस्मात्तन्द्रा जडत्वञ्च मोहश्चाप्युपजायते ॥ ८३८ ॥

ज्वरसे मुक्त हुए मनुष्यको भोजन करके दिनमें सोना नहीं चाहिये, क्योंकि दिनमें शयन करनेसे तन्द्रा जड़ता और मोह उत्पन्न होता है ॥ ८३८ ॥

न जातु तर्पयेत्प्राज्ञः सहसा ज्वरकर्शितम् । तेन संशमितोऽप्यस्य पुनरेव भवेज्ज्वरः ॥ ८३९ ॥

ज्वरसे कृश हुए मनुष्यको कदापि एकसाथ तर्पण (तृप्तिकारक पदार्थ) न देवे, क्योंकि ज्वरसे छूटा हुआ ज्वर फिर आजाता है ॥ ८३९ ॥

श्वासो मूर्च्छा रुचिश्छर्दिस्तृष्णातीसारविड्ग्रहाः । हिक्काकासाङ्गभेदाश्च ज्वरस्योपद्रवा दश ॥ ८४० ॥

श्वास, मूर्च्छा, अरुचि, वमन, तृषा, अतिसार मलरोध, हिचकी, खाँसी और शरीरमें हड़फूटन ये ज्वरके दश उपद्रव हैं ॥ ८४० ॥

हेतुभिर्बहुभिर्जातो बलिभिर्बहुलक्षणः । ज्वरः प्राणान्तकृद्यश्च शीघ्रमिन्द्रियनाशनः ॥ ८४१ ॥

बहुत कारणोंसे उत्पन्न हुआ, बलवान्, बहुत लक्षणोंवाला और जो उत्पन्न होते ही एक किसी इन्द्रियको नष्ट करदेवे उसको शीघ्र प्राणनाशक जानना ॥ ८४१ ॥

ज्वरः क्षीणस्य शूनस्य गम्भीरो दैर्घ्यरात्रिकः । असाध्यो बलवान्यश्च केशसीमन्तकृज्ज्वरः ॥ ८४२ ॥

जो ज्वर क्षीण मनुष्यके बहुत दिनोंसे उत्पन्न हुआ हो तथा शरीरमें सूजन आ गई हो, ज्वर बलवान् हो और रोगीके शिरपर बालोंकी मांगसी गुंथ जावै, उसको असाध्य जानना ॥ ८४२ ॥

विसंज्ञस्ताम्यते यस्तु शेते निपतितोऽपि वा । शीतार्दितोऽन्तरुष्णश्च ज्वरेण म्रियते नरः ॥ ८४३ ॥

जो मनुष्य ज्वरसे व्याकुल होकर बेहोश हो जावै, जिससे सोकर और बैठकर उठा न जाय तथा जिसको

१ आश्लेषा । २ शतभिषा । ३ आर्द्रा । ४ धनिष्ठा । ५ ज्येष्ठा । ६ भरणी । ७ कृत्तिका ।

बाहरसे सर्दी लगे और भीतर दाह हो वह रोगी अवश्य ज्वरके द्वारा मृत्युको प्राप्त होता है ॥ ८४३॥

यो हृष्टरोमा रक्ताक्षो हृदि सङ्घातशूलवान् । वक्त्रेण चैवोच्छ्वसिति तं ज्वरो हन्ति मानवम् ॥ ८४४ ॥

जिस ज्वररोगीके रुयें खडे रहें, आंखें लाल हों, हृदयमें संघातके समान पीडा और ऊँचे मुखसे श्वाँस लेवे वह ज्वररोगी मर जाता है ॥ ८४४ ॥

हिक्काश्वासतृषायुक्तं मूढं विभ्रान्तलोचनम् । सन्ततोच्छ्वसितं क्षीणं नरं क्षपयति ज्वरः ॥ ८४५ ॥

जो ज्वररोगी हिचकी,श्वास और तृषासे युक्त हो, मूढ हो, नेत्र विभ्रान्त (चपल) हो जायँ, निरन्तर श्वास लेवे और क्षीण हो जाय वह पुरुष मर जाता है ॥ ८४५ ॥

हतप्रभेन्द्रियं क्षाममरोचकनिपीडितम् । गम्भीरतीक्ष्णवेगार्तं ज्वरितं परिवर्जयेत् ॥ ८४६ ॥

जिसकी कांति (शरीरकी शोभा) नष्ट हो गई हो, इन्द्रियें अपने २ कार्य करनेमें असमथ हों अन्नमें अत्यन्त अरुचि हो, ज्वर तीक्ष्ण और उसका वेग गम्भीर हो ऐसे ज्वररोगीको वैद्य त्याग दे ॥ ८४६॥

अरोचके गात्रसादे वैवर्ण्येऽङ्गमलादिषु । शान्तज्वरोऽपि शोध्यः स्यादनुबन्धभयान्नरः ॥ ८४७ ॥

ज्वरके शांत होनेपर भी यदि अरुचि, शरीरमें ग्लानि, अंग और मलादिमें विवर्णता ये लक्षण हों तो उसको अनुबंधके भयसे फिर वमन विरेचनादिसे शुद्ध करना चाहिये ॥८४७॥

बलवान्सर्वदोषेषु ज्वरः साध्योऽनुपद्रवः ॥ ८४८ ॥

रोगी बलवान् हो और ज्वर उपद्रव रहित हो तो साध्य जानना ॥ ८४८ ॥

ज्वरे तुल्यर्तुदोषत्वं प्रमेहे तुल्यदुष्टता । रक्तगुल्मे पुराणत्वं सुखसाध्यस्य लक्षणम् ॥ ८४९ ॥

ज्वरमें ऋतुके अनुसार दोषोंकी तुल्यता होनेसे साध्य होता है । प्रमेहमें दोषोंकी दुष्यता समान होनेसे साध्य होता है । और रक्तगुल्म पुराना होनेसे सुखसाध्य होता है ॥ ८४९ ॥

दाहः स्वेदो भ्रमस्तृष्णा कम्पो विड्भेदसंज्ञिता । कूजनं चातिवैगन्ध्यमाकृतिर्ज्वरमोक्षणे ॥ ८५० ॥

दाह, पसीनेका आना, भ्रम, तृषा, कम्प और मलका भेद, शरीरका कूँजना और दुर्गन्धका होना ये लक्षण ज्वरमुक्त होनेसे पहले होते हैं ॥ ८५० ॥

अन्यच्च ।

स्वेदो लघुत्वं शिरसः कण्डूः पाको मुखस्य च । क्षवथुश्चान्नलिप्सा च ज्वरमुक्तस्य लक्षणम् ॥ ८५१ ॥

पसीनेका आना, शरीरमें हलकापन आना, शिरमें खुजलीका चलना, मुखका पकना, छींकका आना, और भोजनमें रुचिका होना,ये सब ज्वरमुक्त होनेके लक्षण जानने ॥ ८५१ ॥

देहो लघुर्व्यपगतक्लममोहतापः पाको मुखे करणसौष्ठवमव्यथत्वम् । स्वेदः क्षवः प्रकृतियोगिमनोऽन्नलिप्सा कण्डूश्च मूर्ध्नि विगतज्वरलक्षणानि ॥ ८५२ ॥

शरीर हल्का हो, ग्लानि और सन्ताप इनका दूर होना, मुखका पकना, कर्णेन्द्रिय स्पष्ट श्रवण करने लगें; सब शरीरकी पीडा दूर हो, पसीनेका आना, प्रकृतिके अनुसार छींकका आना, अन्नमें रुचि और शिरमें खुजलीका चलना, ये सब लक्षण ज्वरमुक्त होनेके हैं ॥ ८५२ ॥

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायां ज्वराधिकारः ।

अथातिसाराधिकार ।

अतिसारनिदान ।

गुर्वतिस्निग्धरूक्षोष्णद्रवस्थूलातिशीतलैः । विरुद्धाध्यशनाजीर्णैरसात्म्यैश्चापि भोजनैः॥ १ ॥ स्नेहाद्यैरतियुक्तैश्च मिथ्यायुक्तैर्विषैर्भयैः । शोकदुष्टाम्बुमद्यातिपानैः सात्म्यर्तुपर्ययैः ॥ २ ॥ जलाभिरमणैर्वेगविघातैः क्रिमिदोषतः । नृणां भवत्यतीसारो लक्षणं तस्य वक्ष्यते ॥ ३ ॥

अत्यंत भारी, अत्यन्त चिकने, रूख, गरम, अत्यंत पतले, स्थूल (कठिन), अत्यन्त शीतल, विरुद्ध (संयोगविरुद्ध, स्वभावविरुद्ध, देशविरुद्ध, समय विरुद्ध), अध्यशन (भोजनपर भोजन) एवं भोजनकी अजीर्ण अवस्थामें भोजन करनेसे अथवा कच्चे पदार्थोंको भक्षण करनेसे, प्रकृतिके विपरीत भोजन करनेसे, स्नेहादि कर्म्मोंको अधिक करनेसे अथवा कुविधिसे करनेसे, विषको भक्षण करनेसे, भयसे, अत्यंत शोकसे, दुष्टजलको पान करनेसे, अत्यंत मदिरा पीनेसे, स्वभावके विरुद्ध और ऋतुके विरुद्ध आहार विहारादि करनेसे, अधिक जलमें क्रीड़ा करनेसे, मलमूत्रादिके वेगोंको रोकनेसे और पेटमें क्रमि होजानेसे मनुष्योंको अतिसार रोग उत्पन्न होता है । अब उसके लक्षण कहता हूँ ॥ १–३ ॥

अतिसारकी सम्प्राप्ति ।

संशम्यापां धातुरग्निं प्रवृद्धं वर्चोमिश्रो वायुनाधः प्रणुन्नः । सरत्यतीवातिसारं तमाहुर्व्याधिं घोरं षड्विधं तं वदन्ति ॥ ४ ॥ एकैकशः सर्वशश्चापि दोषैः शोकेनान्यः षष्ठ आमेन चोक्तः ॥ ५ ॥

उपर्युक्त कुपथ्यादि सेवन करनेसे,अपांधातु (रस, जल,रुधिर, मूत्रादि) उदरकी अत्यन्त बढ़ी हुई अग्नि को मंद करके मलके साथ मिलकर अपानवायुसे प्रेरित होकर नदीके वेगके समान गुदाके द्वारा निकलती है,इस कारण इसको अतिसार कहते हैं । इस दारुणरोगको छ प्रकारका कहा है, जैसे वातातीसार पित्तातीसार कफातीसार सन्निपातातीसार शोकातीसार और आमातीसार ॥ ४ ॥ ५ ॥

अतिसारका पूर्वरूप ।

हृन्नाभिपायूदरकुक्षितोदगात्रावसादानिलसन्निरोधाः । विट्सङ्ग आध्मानमथाविपाको भविष्यतस्तस्य पुरःसराणि ॥ ६ ॥

हृदय, नाभि, गुदा,उदर और कोख इनमें तोड़ने सरीखी पीड़ा, शरीरमें अप्रसन्नता, अपानवायुका अवरोध,मलका रुकना,अफारेका होना और भोजनका न पचना, ये अतिसारके पूर्वलक्षण हैं ॥ ६ ॥

चिकित्सा ।

हितं लङ्घनमेवादौ पूर्वरूपेषु देहिनः । कार्य्यश्चानशनस्यान्ते सद्रवं लघुभोजनम् ॥ ७ ॥

अतीसारके पूर्वरूपमें रोगीको प्रथम लंघन कराने अत्यंत हितकारी है, जब लंघन हो चुके तब पतले और हलके पदार्थोंका भोजन करावे ॥ ७ ॥

विश्वोदीच्योदकं पानं लङ्घनं चास्य शस्यते । हरिद्रादिं वचादिं वा पिबेच्चामेषु मानवः ॥ ८ ॥

प्रथम लङ्घन करना,पश्चात् सोंठ और सुगन्धवाला इनके काथको एवं हरिद्रादि अथवा वचादि औषधियोंके काथको पान करना चाहिये । ये सब आमयुक्त अतिसारमें हितकारक हैं ॥ ८ ॥

खण्डयूष ।

खंडयूषयवागूभिः पिप्पल्यादि प्रयोजयेत् । मुद्गयूषरसं तक्रं धान्यजीरकसंयुतम् । खंडयूषमिति प्रोक्तं सैन्धवेन समन्वितम् ॥ ९ ॥ अग्निसन्दीपनं प्रोक्तं ग्रहणीदोषनाशनम् । अरोचके ज्वरे चैव श्रेष्ठमेतत्प्रवाहिके॥१०॥

खंडयूष, यवागू और पिप्पल्यादि औषधियोंका काथ ये सब सेवन कराने चाहिये । मूँगका यूष,रस

तक्र, धनियाँ,जीरा और सेंधानोन इन सबको एकत्र मिलानेसे खंड़यूष सिद्ध होता है । यह खंडयूष अग्निको दीपन करता,संग्रहणीको नष्ट करता तथा अरुचि ज्वर और प्रवाहिकारोगमें अत्यन्त हितकारक है ॥ ९ ॥ १० ॥

षडंगयूष ।

बिल्वं सधान्यश्च सजीरकश्च पाठा च शुण्ठी तिलसंयुता च । पिष्टा षडङ्गः सुकृतो नराणां यूषो ह्यतीसारहरः प्रदिष्टः ॥ ११ ॥

बेलगिरी, धनियाँ, जीरा, पाढ, सोंठ और तिल इनको एकत्र पीसकर यूष बनावे । यह षडंगयूष, अति सारको हरनेवाला है ॥ ११ ॥

तृष्णापनयनी लघ्वी दीपनी बस्ति शोधनी । ज्वरे चैवातिसारे च यवागूः सर्वदा हिता ॥ १२ ॥

यवागू—तृषाको शांत करती है । एवं हलकी,अग्निको दीपन करनेवाली, बस्तिशोधक तथा ज्वर और आतिसारमें सदैव हितकारी है ॥ १२ ॥

आमपक्वक्रमं हित्वा नातिसारे क्रिया हिता । अतः सर्वातिसारेषु ज्ञेयं पक्वामलक्षणम् ॥ १३ ॥

आमको पक्व करनेवाली क्रियाके सिवा इनको आतिसार रोगमें अन्य क्रिया हितकारी नहीं है इस कारण सब प्रकारके अतीसारमें आम पक्व हुई है या नहीं यह जानना चाहिये ॥ १३ ॥

आमपाचनविधि ।

संसृष्टमामदोषैस्तु न्यस्तमाश्ववसीदति ॥ पुरीषं भृशदुर्गन्धि पिच्छिलं चामसंज्ञितम् ॥ १४ ॥ एतान्येव तु लिङ्गानि विपरीतानि यस्य वै । लाघवश्च विशेषेण तस्य पक्वं विनिर्दिशेत् १५॥

आमदोषयुक्त मल जलमें डालनेसे शीघ्र डूब जाता है वा अत्यंत दुर्गंधित और पिच्छल होता है उसको आम कहते हैं । जो इससे विपरीत लक्षणों युक्त हो अर्थात् जिससे दुर्गंधि न हो, पिच्छल न हो और विशेष कर हलका हो अर्थात् जलमें डालनेसे न डूबे उसको पक्वमल जानना चाहिये॥ १४ ॥ १५॥

न तु संग्रहणं दद्यात्पूर्वमामातिसारिणे।दोषा ह्यादौ बध्यमाना जनयन्त्यामयान्बहून् ॥ १६ ॥ शोथपाण्ड्वामयप्लीहकुष्ठगुल्मोदरज्वरान् । दण्डकालसकाध्मानग्रहण्यर्शोगदास्तथा ॥१७॥

आमातिसारमें रोगीको प्रथम कदापि संग्राहक मल रोधक) औषधि न देवे क्यों कि, प्रथम ही मलरोधक औषधि देने से दोष बद्ध होकर सूजन, पाण्डुरोग, प्लीहा, कुष्ठ, गुल्म, उदररोग, ज्वररोग, दण्डक,अलसका आध्मान, संग्रहणी और बवासीर आदि अनेकों रोगोंको उत्पन्न करते हैं ॥ १६ ॥१७॥

डिम्भो यः स्थविरो वापि वातपित्तात्मकश्च यः । क्षीणधातुबलार्त्तस्य बहुदोषोऽतिविश्रुतः ॥ १८ ॥ आमोऽपि स्तम्भनीयः स्यात्पाचनान्मरणं व्रजेत् ॥ १९ ॥ स्तोकं स्तोकं विबद्धं वा सशूलं योऽतिसार्यते । अभयापिप्पलीकल्कैः सुखोष्णैस्तं विरेचयेत् २०॥

किन्तु बालक, वृद्ध और जिसकी प्रकृति वात पित्तकी हो, बलहीन, धातुक्षीण और जिसको बहुत दस्त होचुके हों ऐसे आमातीसारवाले रोगीको मलरोधक औषधि देवे । पाचन औषधि कदापि न देवे कारण कि, आमके पचनेसे रोगी दुर्बल होकर मृत्युको प्राप्त होता है। थोड़ा २ या बहुत शूलयुक्त मल उतरे तब उसको हरड़ और पीपलके कल्कको किंचित उष्णजलके साथ पिलाकर दस्त करावे१८।१९।२०॥

दीप्ताग्निर्बहुदोषश्च विबन्धमतिसार्य्यते । विडङ्गत्रिफलाकृष्णाकषायैस्तं विरेचयेत् ॥ २१ ॥

जिसकी अग्नि दीपन हो और बहुतसे दोषोंके साथ विबन्ध कब्जसे मल उतरे उसको वायविडंग,त्रिफला और पीपल इनके काथको पिलाकर विरेचन करावे२१

क्षुत्क्षामस्य विरेके तु पेयां युंज्याद्विचक्षणः । भेषजैर्मारुतघ्नैश्च दीपनीयैश्च कल्पिताम् ॥ २२ ॥

जिसके क्षुधाकी पीड़ासे दस्त होते हों उसको वातनाशक और अग्निप्रदीपक औषधियोंके द्वारा सिद्धकी हुई पेया देवे ॥२२ ॥

योऽतिद्रवं प्रभूतञ्च पुरीषमतिसार्यते। तस्यादौ वमनं योज्यं पश्चाल्लङ्घनमेव च॥ २३॥

जिस रोगीके अत्यन्त पतले और बहुतसे दस्त होते हों उसको प्रथम वमन, पश्चात् लंघन कराने चाहिये॥ २३॥

शूलानाहप्रसेकार्त्तं वामयेदतिसारिणम्। पिप्पलीलवणाभ्याञ्च साधितेन जलेन वा॥ २४॥

शूल, आनाह और अतिसारवाले रोगीको पीपल और नमकका पानी बनाकर पिलावे उसके द्वारा उत्तम वमन हो जाती है॥ २४॥

द्वितीय आमपाचनविधि।

पथ्यादारुवचामुस्तैर्नागरातिविषान्वितैः। आमातिसारनाशाय क्काथमेभिः पिबेन्नरः॥ २५॥

हरड़, देवदारु, वच, नागरमोथा, सोंठ और अतीस इनका क्काथ बनाकर अमातीसार नष्ट करनेके लिये पान करे॥ २५॥

पाठहिंग्वजमोदोग्रापञ्चकोलाब्दजं रजः। उष्णाम्बुपीतं सरुजं जयत्यामं ससैन्धवम्॥ २६॥

पाढ, हींग, अजमोद, वच, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ और नागरमोथा इनको एकत्र पीसकर सैंधेनोनमें मिलाकर गरम जलके साथ पान करे। इससे पीड़ायुक्त दोष नष्ट होता है॥ २६॥

त्र्यूषणातिविषाहिङ्गुर्वचा सौवर्चलाभया। पीतोष्णेनाम्भसा जह्याद्‌आमातीसारमुद्धतम्॥ २७॥

त्रिकुटा, अतीस, हींग, वच, कालानोन और हरड़ इनका चूर्ण उष्णजलके साथ पान करनेसे प्रवल आमातीसार नष्ट होता है॥ २७॥

वचा बिल्वकणा विश्वाकुलकं कुष्ठदीप्यकम्। सविडङ्गं जयेत्पीतमाममुष्णाम्बुना भृतम्॥ २८॥

वच, वेलगिरी, पीपल, सोंठ, पटोलपत्र, कूट, अजमोद और वायविडंग इन सबको एकत्र पीसकर गरम जलके साथ पान करे। इससे आम परिपक्व होती है॥ २८॥

हरीतकी सातिविषा हिङ्गुसौवर्चलं वचा। सैन्धवं चेति पिष्टानि पाययेदुष्णवारिणा। आमातिसारयोगोऽयं पाचयित्वा चिकित्सति॥ २९॥

हरड़, अतीस, हींग, कालानोन, वच और सैंधानोन इन सबको एकत्र पीसकर गरम जलके साथ पान करनेसे आम दोष पचता है। यह अत्युत्तम योग है॥ २९॥

आमातिसारो योगेन यद्येतेन न शाम्यति। न तं योगशतेनापि चिकित्सति चिकित्सकः॥ ३०॥

जो इस योगसे आमातीसार नष्ट न हो तो सैकडों योगोंसे भी नष्ट नहीं होगा॥ ३०॥

एरण्डरससंपिष्टं पक्कमामञ्च नागरम्। आमातिसारशूलघ्नं दीपनं पाचनं तथा॥ ३१॥

कच्ची और भुनी हुई सोंठको अंडके रसमें पीसकर भक्षण करे। यह योग आमातीसार और शूल को नष्ट करता है दीपन और पाचन है॥ ३१॥

चित्रकं पिप्पलीमूलं वचा कटुकरोहिणी। पाठावत्सकबीजानि हरीतक्यो महौषधम्॥ ३२॥ एतदामसमुत्थानमतीसारं सवेदनम्। कफात्मकं सपित्तञ्च सवातं हन्ति वै ध्रुवम्॥ ३३॥

चीता, पीपलामूल, वच, कुटकी, पाढ, इन्द्रजा, हरड़ और सोंठ इनका क्काथ वेदनायुक्त आमातीसार, कफातीसार, पित्तातीसार और वातातीसारको निश्चय नष्ट करता है॥ ३२॥ ३३॥

श्वदंष्ट्रैरण्डधान्याम्लयवपुष्करसाधिता। पथ्या मधुयुता लीढा शूलग्रन्थिविनाशिनी॥ ३४॥

गोखरू, अंडकी जड़, धनियां, इन्द्र और पाहकर-मूल, इन सबको एकत्र पीसकर जौकी कांजीमें मिलाकर सेवन करे। अथवा हरड़को शहदमें मिलाकर भक्षण करे तो शूल और ग्रंथियुक्त आम नष्ट होती है ॥ ३४ ॥

नागरातिविषामुस्तैः क्वाथः स्यादामपाचनः ॥ ३५ ॥

सोंठ, अतीस और नागरमोथा इनका काथ आम को पचाता है ॥ ३५ ॥

बिल्वं मोचरसं पाठा गुडूची विश्वमुस्तकम् । गुडतक्रेण दुर्वारं पीतं हन्त्युदरामयम् ॥ ३६ ॥

बेलगिरी, मोचरस, पाढ, गिलोय, सोंठ और नागरमोथा इनके काथमें गुड़ और तक्र मिलाकर पान करनेसे दुस्तर अतीसारादि उदर रोग नष्ट होते हैं ॥ ३६ ॥

धान्यपञ्चक ।

धान्यनागरमुस्तञ्च बालकं बिल्वमेव च । आमशूलविबन्धघ्नं पाचनं वह्निदीपनम् ॥ ३७ ॥ पित्ते धान्यचतुष्कञ्च शुण्ठीत्यागाद्वदन्ति हि ।

धनियां, सोंठ, नागरमोथा, सुगन्धवाला और बेलगिरी इनका काथ आम शूल और विबन्धको नष्ट करता है एवं पाचन और अग्निप्रदीपक है ॥ ३७ ॥ यदि पित्तातीसारमें इसको देना हो तो इसमेंसे सोंठको निकाल और धनियां यथानुरूप बढा देवे ।

देवदारुवचामुस्तनागरातिविषाभयाः । सर्वाजीर्णप्रशमनं पेयमेतैः शृतं जलम् ॥ ३८ ॥

देवदारु, वच, नागरमोथा, सोंठ, अतीस और हरड़ इनका काथ सबप्रकारके अजीर्ण रोगको नष्ट करता है ॥ ३८ ॥

नागरातिविषामुस्तैरथवा धान्यनागरैः । तृष्णाशूलातिसारघ्नं रोचनं दीपनं लघु ॥ ३९ ॥

सोंठ, अतीस और नागरमोथा अथवा धनियाँ और सोंठ इनका काथ तृषा, शूल और अतीसारको नष्ट करता है तथा रोचन, दीपन और हलका है ॥ ३९ ॥

धान्यकातिविषोदीच्ययवानीमुस्तनागरैः । बलाद्विपर्णीबिल्वश्च दद्यादीपनपाचने ॥ ४० ॥

धनियां, अतीस, सुगन्धवाला, अजवायन, नागरमोथा सोंठ, खिरैंटी, शालपणी, पृष्टपर्णी और बेलगिरी इनका काथ देवे । यह दीपन और पाचन है ॥ ४० ॥

चतुःसमा गुटी ।

अभया नागरं मुस्तं गुडेन सह योजितम् । चतुःसमेयं गुटिका त्रिदोषघ्नी प्रकीर्तिता ॥ ४१ ॥ आमातिसारमानाहं सविबन्धं विषूचिकाम् । कृमीनरोचकं हन्याद्दीपयत्याशु चानलम् ॥ ४२ ॥

हरड, सोंठ और नागरमोथा इन सबको समान भाग लेकर एकत्र पीसकर गुड़में मिलाकर गोली बनावे, यह गुटिका त्रिदोषनाशक है तथा आमातीसार, आनाह, विबन्ध, विषूचिका, कृमिरोग और अरुचिको नष्ट कर अग्निको शीघ्र दीपन करती है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

दलोत्थः स्वरसः पयो हिज्जलस्य समाक्षिकः । जयत्याममतीसारं क्वाथो वा कुटजत्वचः ॥ ४३ ॥

हिज्जल (समुद्रफल) वृक्षके पत्तोंके स्वरसमें शहद मिलाकर अथवा कुडेकी छालके काथमें शहद मिलाकर सेवन करनेसे आमातीसार नष्ट होता है ॥ ४३ ॥

पयस्युत्काथ्य मुस्तानां विंशतिं त्रिगुणेऽम्भसि । क्षीरावशिष्टं तत्पीतं हन्त्यामं शूलमेव च ॥ ४४ ॥

दूध १ भाग, नागरमोथे २० और जल ३ भाग लेकर सबको औटो । जब पकाकर केवल दूध ही बाकी रहजाय तब उतारकर पान करे । यह काथ आम और शूलको नष्ट करता है ॥ ४४ ॥

काञ्जिकहरीतकी।

एरण्डमूलैः सकणैरारनाले विमिश्रिते सयवैः। स्विन्नां खादेदभयामामातीसारशूलार्त्तः॥ ४५॥

अंडकी जड और पीपल इनको पीसकर जौकी कांजीमें मिलाकर उसमें हरड डालकर पकावे जब वह सीज जायँ तब उस हरड़को सेवन करे तो इससे आमातीसार और शूल नष्ट होता है॥ ४५॥

केशराजसुनिषण्णकश्वटं दाडिमस्य फलमर्जुनोद्भवम्। क्वाथ एष परिशीलितो नृणां हन्ति साममथ शूलमद्भुतम्॥ ४६॥

काला भाँगरा, शिरीयारी, जलपीपल या चौलाई, अनारके छिलके और अर्जुनकी छाल इनका काथ सेवन करनेसे आमशूल नष्ट होता है॥ ४६॥

कलिङ्गादि चूर्ण।

कलिङ्गातिविषाहिङ्गुपथ्यासौवर्चलं वचा। शूलस्तम्भविबन्धघ्नं पेयं दीपनपाचनम्॥ ४७॥

कुडेकी छाल, अतीस, हींग, हरड, कालानोन और वच इनका काथ दीपन और पाचन है तथा शूलस्तम्भ और विबन्धको नष्ट करता है॥ ४७॥

स्विन्नाम्लबिल्वयवगोक्षुरकोरुबूकाछिन्नोद्भवा तुषजलैर्मधुनावलीढा। बद्धाल्पविट्कमतिसारमसृग्विमिश्रमामातिसारमपि हन्ति हरीतकीयम्॥ ४८॥

कांजी, बेलगिरी, जौ, गोखरू, अंडकी छाल और गिलोय इनके काथमें हरड़ डालकर सिजावै, पश्चात् उसको शहदमें मिलाकर काँजीके साथ सेवन करे। यह हरड—मलकी बद्धता, मलका अल्पता, रक्तातीसार और आमातीसारको नष्ट करती है॥४८॥

निरामरूपं शूलार्त्तं लङ्घनाद्यैश्च कर्शितम्। नरं रूक्षमवेक्ष्याग्निं सक्षारं पाययेद्घृतम्॥ ४९॥

कामरहित शूलरोगीको जो लंघन करनेसे कृश हो गया हो तथा रूखे शरीरवाला हो तो उसकी अग्निके बलाबलको विचारकर क्षार (जवाखारादि) के साथ घृतको पान करावे॥ ४९॥

चांगेरीघृत।

क्षारनागरचाङ्गेरीकोलदध्यम्लसाधितम्। सर्पिःपक्वं पिबेद्वापि शूलातीसारशान्तये। शुण्ठीक्षारसकल्काभ्यां विशिष्टं द्रव्यमिष्यते॥ ५०॥

जवाखार, सोंठ, चांगेरी (अम्ल नोनिया), बेरका क्वाथ, दहा, काँजी और घी इनमें सोंठ और जवाखारके कल्कको डालकर घृतको सिद्ध करे। यह घृत—शूलातीसारको शमन करता है॥ ५०॥

इति आमातिसार।

अरलुत्वक् प्रियङ्गुश्च मधुकं दाडिमाङ्कुरान्। अवाप्य पिष्ट्वा विपचेद्यवागूं दध्नि तां पिबेत्। एषा सर्वानतीसारान्हन्ति पक्वानसंशयः॥ ५१॥

श्योनाककी छाल, फूलप्रियंगु, मुलैठी और अनारके अंकुर इनको एकत्र जलमें पीसकर यवागू सिद्ध करे। इसको दहीमें मिलाकर पानेसे सब प्रकारके पक्कातीसारको नष्ट करती है॥ ५१॥

सलोध्रं धातकीबिल्व मुस्ताम्रास्थिकलिङ्गकम्। पिबेन्माक्षिकतक्रेण पक्कातीसारनाशनम्॥ ५२॥

लोध, धायके फूल, बेलगिरी, नागरमोथा, आमकी गुठली और इन्द्रजौ इनको एकत्र पीसकर भैंसके तक्रके साथ सेवन करे तो पक्कातीसार नष्ट होता है५२

अम्बष्ठाधातकीलोध्रसमङ्गापद्मकेसरम्। मधुकाऽरलुबिल्वश्च पक्कातीसारहा गणः॥ ५३॥

पाढ, धायके फूल, लोध, लज्जावंती, कमलकेशर, मुलैठा, श्योनाक और बेलगिरी इन सब औषधियोंका गण पक्कातिसारनाशक है॥ ५३॥

पद्मं समङ्गा मधुकं बिल्वं जम्बु सलाटुकम् । पिबेत्तण्डुलतोयेन सक्षौद्रमगदंकरम् ॥ ५४ ॥

कमल, लज्जावन्ती, मुलैठी, बेलगिरी और कची जामुन इनको चावलोंके जलके साथ पीसकर शहद मिलाकर पान करनेसे अतीसाररोगी निरोगी हो जाता है ॥ ५४ ॥

पक्कातिसारिणे देयो मुस्ताक्काथः समाक्षिकः ॥ ५५ ॥

नागरमोथेके काथमें शहद मिलाकर पकातीसारम देवे ॥ ५५ ॥

समङ्गादिचूर्ण ।

समङ्गा धातुकीपुष्पं माञ्जिष्ठा लोध्रमेव च । शाल्मलीवेष्टकं लोध्रवृक्षदाडिमयोस्त्वचौ ॥ ५६ ॥ आम्रास्थिमध्यं लोध्रञ्च बिल्वमध्यं प्रियङ्गु च । मधुकं शृङ्गवेरञ्च दीर्घवृन्तत्वगेव च ॥ ॥ ५७ ॥ चत्वार एते योगाः स्युः पित्तातीसारनाशनाः । उक्ता य उपयोज्यास्तु सक्षौद्रास्तण्डुलाम्बुना ॥ ५८ ॥

लज्जावंती, धायके फूल, मजीठ और लोध अथवा सेमलका गोंद (मोचरस) लोध और अनारकी वक्कल किंवा आमकी गुठलीकी मींग लोध बेलगिरी और फूलप्रियंगू या लैठी, सोंठ और श्योनाककी छाल इन चारों योगोंका चूर्ण पित्तातिसारनाशक है,इनमेंसे किसी एकके चूर्णको चावलोंके जलके साथ शहद मिलाकर पान करना चाहिये ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

पिष्टा तु दीर्घवृन्तत्वङ्महौषधसमन्विता ॥ पीता तण्डुलतोयेन पक्कातीसारनाशिनी ॥ ५९ ॥

श्योनाककी छाल और सोंठको पीसकर चावलोंके जलके साथ सेवन करनेसे पकातिसार नष्ट होता है ॥ ५९ ॥

पथ्याजाजीदुरालम्भाघोटाफलसमन्वितः । स्वरसोऽप्यथवा कल्कः पक्कातीसारनाशनः ॥ ६० ॥

हरड, जीरा, धमासा और बेर (किसीके मतसे सुपारी) इनका काथ अथवा कल्क पकातिसारना-शक है ॥ ६० ॥

नवचूतस्य पर्णानि कपित्थफलमेव च । पिष्ट्वा तण्डुलतोयेन पक्कातीसारशान्तये ॥ ६१ ॥

आमके कोमल पत्ते और कैथके गुदेको चावलोंके जलमें पीसकर सेवन करनेसे पकातिसार नष्ट होता है ॥ ६१ ॥

कुटजं वह्निचूर्णञ्च मधुना सह लेहयेत् । चिरोत्थितमतीसारं पक्कं पित्तास्रजं जयेत् ॥ ६२ ॥

इन्द्रजौ और चीतेके चूर्णको शहदके साथ चाटे तो बहुत दिनोंका अतीसार, रक्तातिसार और पित्तातिसार नष्ट होता है ॥ ६२ ॥

पक्कः कृदतीसारो ग्रहणी मार्दवाद्यता । प्रवर्त्तते यदा कार्य्यः क्षिप्रं सांग्राहिको विधिः ॥ ६३ ॥

जब अतीसारमें मल पकजाय और ग्रहणी कलामें मृदुता होकर मलकी प्रवृत्ति हो तो शीघ्र मलरोधक औषधि देनी उचित है ॥ ६३ ॥

कश्वटजम्बूदाडिमशृङ्गाटकपत्रबिल्वह्रीबेरम् । जलधरनागरसहितं गङ्गामपि वाहिनीं रुन्ध्यात् ॥ ६४ ॥

जलपीपल, जामुन, अनार, सिंघाडेके पत्ते, बेलगिरी, सुगन्धवाला, नागरमोथा और सोंठ इनका काथ गंगाके समान वेगवाले अतीसारको भी नष्ट कर देता है ॥ ६४ ॥

मोचरसमुस्तानागरपाठाशालूकधातकीकुसुमैः । चूर्णं मथितसमेतं रुणद्धि गङ्गाप्रवाहमपि ॥ ६५ ॥

मोचरस, नागरमोथा, सोंठ,पाढ, कमलकंद और धायके फूल इनके चूर्णको तक्रके साथ सेवन करनेसे गंगाके समान वेगवाला अतीसार भी नष्ट होता है ॥ ६५ ॥

मुस्तावत्सकबीजं मोचरसं बिल्वधातकी लोध्रम् । गुडमथितसंप्रयुक्तं गङ्गामपि वेगवाहिनीं रुन्ध्यात् ॥ ६६ ॥

नागरमोथा, इन्द्रजौ, मोचरस, बेलगिरी, धायके फूल और लोध इनके चूर्णको तक्र और गुड़के साथ सेवन करे तो गङ्गाके समान प्रवाहवाले दस्त भी बन्द हो जाते हैं ॥ ६६ ॥

अङ्कोटमूलकल्कः सक्षौद्रस्तण्डुलाम्बुना पीतः । सेतुरिव सरिद्वेगं झटिति निरुन्ध्यादतीसारम् ॥ ६७ ॥

अंकोलके कीचड़के कल्कको चावलोंके जलके साथ शहद डाल कर पीनेसे जिस प्रकार नदीके वेगको पुल रोक देता है उसी प्रकार यह अतीसारको तत्काल रोक देता है ॥ ६७ ॥

कृत्वालवालं सुदृढं पिष्टैरामलकैर्भिषक् । आर्द्रकस्वरसेनाशु पूरयेन्नाभिमण्डलम् ॥ ६८ ॥ नदीवेगोपमं घोरं प्रवृद्धं दुर्द्धरं नृणाम् । सद्योऽतीसारमजयं नाशयत्येष योगराट् ॥ ६९ ॥

आमलोंको जलमें गाढ़ा पीसकर लुगदी बनावे, फिर उस रोगीकी नाभिके चारों ओर गाढ़ा गाढ़ा लेप करके थामलासा बनादेवे जब सूखजावे तब नाभिमंडलको अदरखके रससे भर देवे । यह योगराज–नदीके वेगके समान घोर दुर्द्धर और अत्यन्त बढ़े हुए अतीसारको तत्काल रोक देता है ॥६८॥६९॥

सौवीरपिष्टः सहकारकल्को नाभिप्रलेपादतिसारहन्ता ॥ ७० ॥

कच्चे आमको सौवीरनामक काँजीमें पीसकर नाभिमडलपर प्रलेप करनेसे अतीसार रोग नष्ट होता है७०

अरुणं फेनिलं रूक्षमल्पमल्पं मुहुर्मुहुः । शकृदामं सरुक् शब्दं मारुतेनातिसार्य्यते ॥ ७१ ॥

वातातिसारमें--मल लाल,झागोदार,रूखा,वारबार थोडा २ उतरता है एवं कच्चा और उतरते समय पीडा सहित गुड गुड शब्द होता है ॥ ७१ ॥

लङ्घनमेकं मुक्त्वा नान्यद्भवतीह भेषजं बलिनः । समुदीर्णदोषनिचयं शमयति तत्पाचयत्येव ॥ ७२ ॥

अतीसाररोगमें बलवान् रोगीको लंघनके सिवा और कोई ओपधि हितकारी नहीं है । क्योंकि, लंघन दोषोंको शमन करके पचा देता है ॥ ७२ ॥

यथा दोषौषधैः सिद्धो यूषो मण्डादिकः क्रमात् । लाजमण्डः कृतो योगैस्तैः कृता हस्तमण्डिका ॥ वस्त्रप्लुता यवागूर्वा प्रसुतक्षुद्रभक्तकम् ॥ ७३ ॥

यथादोषानुसार यूष औषधियोंके द्वारा और मंडादिको क्रमसे सिद्ध करे, तथा फिर उन्हीं औषधियोंके द्वारा लाजमंड और हस्तमंडिकाको भी सिद्ध करे । यवागूको वस्त्रमें छान लेवे और क्षुद्रमंडका जल निचोड़ देवे ॥ ७३ ॥

सर्वेषु मलभेदेषु लवणं न प्रयोजयेत्। तद्धि तैक्ष्ण्यात्सरत्वाच्च दोषक्षोभाय कल्पते ॥ ७४ ॥

सब प्रकारके अतीसारोंमें लवणका प्रयोग कदापि न करे क्योंकि लवणकी तीक्ष्णता और सारकतासे वातादिदोष क्षोभित होते हैं ॥ ७४ ॥

सुनिषण्णाकवार्त्ताकुं कञ्चटं हितमुच्यते ॥ ७५ ॥

शिरियारीका शाक, बैंगन और कंचट (जलचौंलाई)ये सब अतीसाररोगमें हितकारक हैं॥ ७५ ॥

कपित्थबिल्वचाङ्गेरी तक्रदाडिमसाधिता । ग्राहिणी पाचिनी पेया वाते वा पञ्चमूलिका ॥ ७६ ॥

कैथ, बेल, चांगेरी, (अम्ल नोनिया) मट्ठा और अनार इनके द्वारा सिद्ध की हुई पेया अथवा पंचमूलके द्वारा सिद्ध की हुई पेया वातातिसारमें हितकारिणी है ॥ ७६ ॥

पञ्चमूली बला बिल्वधान्यकोत्पलबिल्वजा । वातातिसारिणे देया शुक्तेनान्यतमेन च ॥ ७७ ॥

पंचमूल, खिरैंटी, वेलकी छाल, धनियाँ, कमल और बेलगिरी इनकी वनाई हुई पेयाको सिरकेके साथ वातातिसारमें देना चाहिये ॥ ७७ ॥

वचा चातिविषा मुस्तं बीजानि कुटजस्य च । श्रेष्ठो वातातिसारे च योगो वैद्येन योजितः ॥ ७८ ॥

बच, अतीस, नागरमोथा और इन्द्रजौ इनका क्वाथ वातातिसारमें हितकारी है ॥ ७८ ॥

पूतिकं मागधी शुण्ठी बला धान्यं हरीतकी । पक्वाम्बुना पिबेत्सायं वातातिसारशान्तये ॥ ७९ ॥

दुर्गन्धकरंज, पीपल, सोंठ, खिरैंटी, धानियाँ और हरड इनका क्वाथ सन्ध्याके समय पान करनेसे वातातिसार अवश्य नष्ट होता है ॥ ७९ ॥

अथ पित्तातिसारकी चिकित्सा ।

पीतं रक्तासितं नीलं दुर्गन्धि हरितं द्रवम् । दाहपाकपिपासा च शकृत् पित्तात्प्रवर्त्तते ॥ ८० ॥

पित्तातिसारमें-मल पीला, लाल, सफेद, नीला, दुर्गंधियुक्त, हरा, पतला, दाह, गुदाका पकना और प्यास होती है ॥ ८० ॥

आमान्वयमतीसारं पैत्तिकं लङ्घनैर्जयेत् । लङ्घितस्य यथासात्म्यं यवागूं मण्डतर्पणैः ॥ ८१ ॥

आमयुक्त पित्तातिसारमें लंघन करावे, पश्चात् रोगाका जो सात्म्य हो ऐसी यवागू, मंड और तर्पण देवे ॥ ८१ ॥

शृतां चन्दनमुस्ताभ्यां पटोलोदीच्यनागरैः । पेयामम्लामनम्लां वा पाचनीं ग्राहणीं पिबेत् ॥ ८२ ॥

चन्दन, नागरमोथा, पटोलपत्र, सुगन्धवाला और सोंठ इनके काथसे बनाई हुई पेया इमलीके साथ अथवा तक्रके साथ सेवन करे । यह पेया पाचक और संग्राहक है ॥ ८२ ॥

धान्योदीच्यशृतं तोयं तृष्णादाहातिसारवान् । ताभ्यामेव सपाठाभ्यां सिद्धमाहारमाचरेत् ॥ ८३ ॥

धनियां और सुगन्धवाला इनका काथ तृषा, दाह और अतीसारमें जलकी जगह पीनेको देवे, एवं धनियाँ सुगन्धवाला और पाठा इनके द्वारा सिद्ध किया हुआ भोजन देवे ॥ ८३ ॥

बिल्वशक्रयवाम्भोदवालकातिविषायुतः । कषायो हन्त्यतीसारं सामं पित्तसमुद्भवम् ॥ ८४ ॥

बेलगिरी, इन्द्रजौ, नागरमोथा, सुगन्धवाला और अतीस इनका क्वाथ आमसहित पित्तातिसारको नष्ट करता ॥ ८४ ॥

बिल्वविश्ववनोदीच्यधान्यकैः क्वथितं जलम् । सामपित्तातिसारघ्नं दीपनं धान्यपञ्चकम् ॥ ८५ ॥

बेलगिरी, सोंठ, नागरमोथा, सुगन्धवाला और धनियाँ इनका क्वाथ आमसहित पित्तातिसारको नष्ट करनेवाला और दीपन है । अधिक पित्तमें सोंठ न देवे ॥ ८५ ॥

रसाञ्जनं सातिविषं कुटजस्य फलत्वचम् । धातकीं शृङ्गवेरञ्च पाययेत्तण्डुलाम्बुना ॥ ८६ ॥ माक्षिकेन युतो हन्यात्पित्तातीसारमुल्बणम् । मन्दं सन्दीपयेदग्निं शूलं चाशु निवर्त्तयेत् ॥ ८७ ॥

रसौत, अतीस, कुड़ेकी छाल, इन्द्रजौ, धायके फूल और सोंठ इनका चूर्ण करके चावलोंके जलके साथ शहद मिलाकर पान करावे। यह योग अत्यंत दारुण पित्तातिसारको नष्ट करनेवाला, अग्निको दीपन और शूलको नष्ट करता है ॥ ८६ ॥ ८७ ॥

मधुकं कट्फलं लोध्रं दाडिमस्य फलं त्वचम् । पित्तातिसारे मध्वाक्तं पाययेत्तण्डुलाम्बुना ॥ ८८ ॥

मुलैठी, कायफल लोध, और अनारका बक्कल इनको बारीक पीसकर चावलोंके जलके साथ शहद डाल कर पित्तातिसारमें सेवन करनेको देवे ॥ ८८ ॥

समङ्गा धातकीपुष्पं बिल्वं सौवर्चलं बिडम् । सक्षौद्रं दाडिमं चैककल्कं

तण्डुलवारिणा ॥ ८९ ॥ पीतं पित्तातिसारघ्नं सपैत्तं जठरामयम् ॥ ९० ॥

लज्जावंती, धायके फूल, बेलगिरी, कालानोन, विरियासञ्चर नोन और अनार इनको एकत्र पीस चावलोंके जलके साथ शहद मिलाकर पान करे तो पित्तातिसार और पित्तज उदररोग नष्ट होता है ॥ ८९ ॥ ९० ॥

धान्यक घृत ।

धान्यकल्केन संसिद्धं चतुर्गुणजले घृतम् । पित्तातिसारे सरुजे देयं दीपनपाचनम् ॥ ९१ ॥

धनियेका कल्क ४ तोले, घी १६ तोले और जल १ सेर लेवे, फिर यथाविधि घृतको सिद्ध करे । यह घृतपित्तातिसारकी पीडाको नष्ट करता है तथा दीपन और पाचन है ॥ ९१ ॥

पित्तातिसारमें क्वाथ ।

मुस्तं वत्सकबीजानि भूनिम्बं सरसाञ्जनम् । दार्वी दुरालभा बिल्वं बालकं रक्तचन्दनम् ॥ ९२ ॥ बालकं चन्दनं मुस्तं भूनिम्बं सदुरालभम् । उशीरं चन्दनं लोध्रं नागरं नीलमुत्पलम् ॥ ९३ ॥ पाठा मुस्तं हरिद्रे द्वे पिप्पली कौटजं फलम् । फलत्वचं वत्सकस्य शृङ्गवेरं घनं वचा ॥ ९४ ॥ षडेते पाठिका योगाः पित्तातीसारनाशनाः ।

नागरमोथा, इन्द्रजौ, चिरायता और रसौत १, दारुहल्दी, धमासा, बेलगिरी, सुगन्धवाला आर लाल चन्दन २, सुगन्धवाला, चन्दन, नागरमोथा, चिरायता और धमासा ३, खस, चन्दन, लोध, सोंठ और नीले कमल, ४, पाढ, नागरमोथा, हल्दी, दारुहल्दी, पीपल और इन्द्रजौ ५, एवं इन्द्रजा, कुडेकी छाल, सोंठ, नागरमोथा और वच ६, ये छ योग कहे । इनमेंसे प्रत्येकका क्वाथ पित्तातिसारनाशक है ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ ९४ ॥

अथ रक्तातिसारकी चिकित्सा ।

पित्तकृन्ति यदात्यर्थं द्रव्याण्यश्नाति पैत्तिके । तदोपजायतेऽभीक्ष्णं रक्तातीसारमुल्बणम् ॥ ९५ ॥

पित्तातिसारमें पित्तको कुपित करनेवाले पदार्थाको सर्वदा सेवन करनेसे रक्तातिसार उत्पन्न होता है ॥ ९५ ॥

तत्र तूर्णं क्रिया कार्य्या रक्तपित्तनिबर्हिणी ॥ ९६ ॥

रक्तातिसारमें शाघ्र रक्तपित्तनाशक चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ९६ ॥

छागे चार्द्धोदके क्षीरे नागरोत्पलबालकैः । पेया रक्तातिसारघ्नी पृष्ठपर्ण्या च साधिता ॥ ९७ ॥

बकरीके सेरभर दूधमें सेरभर पानी तथा सोंठ, कमल, सुगन्धवाला और पृष्ठपर्णी डालकर पेया बनाकर रक्तातिसारमें देवे ॥ ९७ ॥

कषायो मधुना पीतस्त्वचा दाडिमवत्सकात् । सद्यो जयेदतीसारं रक्तजं दुर्निवारकम् ॥ ९८ ॥

अनार और कुडेकी छालके क्वाथमें शहद डालकर पान करनेसे तत्काल दारुण रक्तातिसार नष्ट होता है ॥ ९८ ॥

ह्रीबेरादि ।

ह्रीबेरातिविषा मुस्ता बिल्वधान्यकवत्सकम् । समंगा धातकी लोध्रं विश्वं दीपनपाचनम् ॥ ९९ ॥ हन्त्यरोचकपिच्छामं विबन्धं सातिवेदनम् । सशोणितमतीसारं सज्वरं वाथ विज्वरम् ॥ १०० ॥

सुगन्धवाला, अतीस, नागरमोथा, बेलगिरी, धनियाँ, इन्द्रजौ, लज्जावंती, धायके फूल, लोध और सोंठ इनका क्वाथ दीपन और पाचन है तथा अरुचि, मलकी पिच्छलता, आम, पीडासहित मलरोध, ज्वरसहित या ज्वररहित रक्तातिसार नष्ट होता है ॥ ९९ ॥ ॥ १०० ॥

बिल्वं छागीपयः सिद्धं सितामोचरसान्वितम् । कलिङ्गचूर्णसंयुक्तं रक्तातीसारनाशनम् ॥ १०१ ॥

बेलगिरीको बकरीके दूधमें आटावे फिर इसमें मिश्री, मोचरस और इन्द्रजौका चूर्ण डालकर पीवे तो रक्तातिसार नाश होता है ॥१०१॥

गुडेन भक्षयेद्बिल्वं रक्तातीसारनाशनम् । आमशूलविबन्धघ्नं कुक्षिरोगविनाशनम् ॥ १०२ ॥

गुडमें बेलगिरीके चूर्णको मिलाकर भक्षण करनेसे रक्तातिसार नष्ट होता है तथा आम, शूल, विबन्ध और कुक्षिरोग नष्ट होता है॥ १०२ ॥

धातकीबदरीपत्रकपित्थरसमाक्षिकम् । सलोध्रमेकतो दध्ना पिबेन्निर्वाहिकार्दितः ॥ १०३॥

धायके फूल, बेरके पत्ते, कैथका रस, शहद और लोध इनको दहीके साथ पान करनेसे प्रवाहिका रोग नष्ट होता है ॥ १०३॥

पयसा पिप्पलीकल्कः पीतो वा रिचोद्भवः । त्र्याहान्निर्वाहिकां हन्ति चिरकालानुबन्धिनीम् ॥ १०४ ॥

पीपलके कल्क अथवा मिरचके कल्कको दूधके साथ सेवन करनेसे, तीन दिनमें बहुत पुराना प्रवाहिका राग नष्ट होता है ॥ १०४ ॥

रसाञ्जनं चातिविषा कुटजस्य फलत्वचम् । धातकीशृङ्गवेरञ्च पिबेत्तण्डुलवारिणा ॥ १०५ ॥ क्षौद्रेण युक्तं नुदति रक्तातीसारमुल्बणम् ॥ १०६ ॥

रसौत, अतीस, कुडेकी छाल, इन्द्रजौ, धायके फूल और सोंठ इन सबको एकत्र पीसकर चावलोंके जलके साथ शहद मिलाकर पान करे तो रक्तातिसार नष्ट होताहै ॥ १०५ ॥ १०६ ॥

गिरिमल्लिकादि घृत।

निष्क्वाथमूलममलं गिरिमल्लिकायाः सम्यक्फलं द्वितयमम्बु चतुःशरावे । तत्पादशेषसलिलं खलु शोषणीयं क्षीरे पलद्वयमिते कुशलैरजायाः ॥ ॥ १०७ ॥ प्रक्षिप्य माषकानष्टौ मधुनस्तत्र शीतले । रक्तातिसारी तत्पीत्वा नैरुज्यमिह विन्दति ॥ १०८॥

कुडेकी छाल ८ तोले, लेकर चार शराव (१२८ तोले) जलमें पकावे, जब चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतार लेवे,फिर उसमें ८ तोले दूध और शीतल होनेपर ८ तोले शहद मिलाकर पान करे तो इससे रक्तातिसार नष्ट होता है ॥ १०७ ॥ १०८ ॥

बदरीमूलकल्कन्तु तिलकल्कं तथैव च। संगृह्य स्वरसं तेषामजाक्षीरेण योजयेत् । तत्पिबेन्मधुना युक्तं रक्तातीसारनाशनम् ॥ १०९ ॥

बेरका जडका कल्क और तिलका कल्क इनका स्वरस लेकर बकरीके दूधमें मिलाकर शहदके साथ पान करे तो रक्तातिसार नष्ट होता है ॥ १०९ ॥

यष्टीमधुतिलाः कृष्णा पद्मकेसरमुत्पलम् । क्षौद्रमत्स्यण्डिकायुक्तमाज्येन पयसा पिबेत् ॥ ११० ॥

मुलैठी,काले तिल,कमलकेशर और कमल इनको पीसकर शहद और मिश्री डालकर बकरीके दूधके साथ पान करे ॥ ११० ॥

पीत्वा शतावरीकल्कं पयसा क्षीरंभोजनम् । रक्तातिसारे पीत्वा वा तया सिद्धं घृतं नरः ॥ १११ ॥

दूधके साथ शतावरका कल्क भक्षण करे और उसके ऊपर दूध मिला भोजन करे। अथवा शतावरके कल्कके द्वारा सिद्ध किया हुआ घृत रक्तातिसाररोगमें पान करे ॥ १११ ॥

क्षीरपिष्टं पिबेल्लोध्रं यष्ट्याह्वोत्पलमिश्रितम् । रक्तातिसारशमनं शर्करामधुयोजितम् ॥ ११२ ॥

लोध, मुलैठी और कमल इनको दूधमें पीसकर चीनी और शतावर मिलाकर पान करे तो रक्तातिसार शमन होता है ॥ ११२ ॥

पीतः प्रियङ्गुनः कल्कः सक्षौद्रस्तण्डुलाम्बुना । रक्तस्रावं जयेच्छीघ्रं धन्वयासरसान्वितः ॥ ११३ ॥

फूलप्रियंगूके कल्कको शहद और चावलोंके जलके साथ अथवा धमासेके रसके साथ पीनेसे शीघ्र ही रुधिरका गिरना बंद होता है ॥ ११३ ॥

कल्कस्तिलानां कृष्णानां शर्करापञ्चभागिकः । आज्येन पयसा पीतः सद्यो रक्तं नियच्छति ॥ ११४ ॥

काले तिलाके कल्कमें पाँच भाग मिश्री मिलाकर बकरीके दूधके और घृतके साथ पान करे तो तत्काल रुधिरका गिरना बंद होता है ॥ ११४ ॥

सल्लकीबदरीजम्बूप्रियालाम्रार्जुनत्वचः । पीताः क्षीरेण मध्वाढ्याः पृथक्शोणितवारणाः ॥ ११५ ॥

सालई, बेरी, जामुन, चिरौंजीका वृक्ष, आम और अर्जुन इनमेंसे किसी एककी छाल पीसकर दूध और शहदके साथ पान करे तो रुधिरस्राव बंद होता है ॥ ११५ ॥

सुस्विन्नकंचटं बालबिल्वं सनवनीतकम् । लिह्याद्रक्तातिसारे च सशूले ग्रहणीगदे ॥ ११६ ॥

कंचट (जलचौलाई) और कच्चाबेल, इनको उबालकर नैनी घी मिलाकर सेवन करे तो शूलयुक्त संग्रहणी और रक्तातिसार नष्ट होता है ॥ ११६ ॥

वयस्था शारिवा लोध्रं शर्करा मधुयष्टिका । पीतः शीतेन पयसा सक्षौद्रो रक्तनाशनः ॥ ११७ ॥

आमले, सारिवा, लोध, मिश्री और मुलैठी इनके एकत्र पीसकर शहद मिलाकर शीतल जलके साथ सेवन करनेसे रक्ताति सार होता है ॥ ११७ ॥

मुस्तकेन्द्रयवैः क्वाथं सुशीतं मधुना युतम् । रक्तपित्तातिसारघ्नं ग्रहणीदोषनाशनम् ॥ ११८ ॥

नागरमोथा और इन्द्रजौ इनका काथ शीतल करके शहद मिलाकर पान करे तो रक्तपित्तातिसार और संग्रहणी रोग नष्ट होता है ॥ ११८ ॥

नवनीतं मधुयुतं लिह्याद्वा सितया सह । नागकेशरचूर्णं वा रक्तसंग्रहणं परम् ॥ ११९ ॥

नैनी घीको शहदके साथ या चीनीके साथ अथवा नागकेशरके साथ भक्षण करे तो रुधिरका गिरना बंद होता है ॥ ११९ ॥

केशराजसमुद्भूता जलेन गुटिका कृता । जयेत्साममतीसारं सशूलं सास्रमाशु च ॥ १२० ॥

कुकुर भांगरेको जलमें पीसकर गोली बनाकर सेवन करे तो आमातीसार, शूल और रक्तातिसार नष्ट होता है ॥ १२० ॥

कृष्णामृन्मधुकं शक्रं कौटजं तण्डुलांबुना । पीतमेकत्र सक्षौद्रं रक्तसंग्रहणं परम् ॥ १२१ ॥

काली मट्टी, मुलैटी, कुडेकी छाल और इन्द्रजौ इनको एकत्र पीसकर चावलोंके जलके साथ शहद मिलाकर पान करे तो रुधिरका गिरना बन्द होता है ॥ १२१ ॥

पीत्वा सशर्कराक्षौद्रं चन्दनं तंडुलांबुना । दाहतृष्णाप्रमेहेभ्यो रक्तस्रावाच्च मुच्यते ॥ १२२ ॥

मिश्री, शहद, चन्दन और चावलोंका पानी इनको एकत्र पीसकर पान करे तो दाह तृषा प्रमेह और रक्तस्राव निवारण होता है ॥ १२२ ॥

कुटजस्य पलं ग्राह्यमष्टभागे जले शृतम् । तथैव विपचेद्भूयो दाडिमोदकसंयुतम् ॥ १२३ ॥ यावच्चलसिकाभासं शृतं तमुपकल्पयेत् । तस्यार्द्धकर्षं तक्रेण पिबेद्रक्तातिसारवान् । अ-

वश्यमरणीयोऽपि मृत्योर्याति न गोचरम् ॥ १२४ ॥

कुडेकी छालको एकपल लेकर आठ भाग जलमें पकावे, फिर उसमें अनारका रस डाल देवे जब पकते २ खूब गाढा हो जावे तब उतार लेवे, पश्चात् उसमें आठ मासे तक्र मिलाकर पान करे तो मृत्युको प्राप्त हुआ भी रक्तातिसार रोगी बच जाता है १२३॥ ॥ १२४ ॥

कुटजक्वाथतुल्योऽत्र दाडिमस्य रसो मतः ॥ १२५ ॥

यहां कुडेकी छालके समान अनारका रस लेना चाहिये ॥ १२५ ॥

यो रक्तं शकृतः पूर्वं पश्चाद्वा प्रतिसार्य्यते । सपल्लवैर्वटादीनां ससर्पिःसाधितं पयः ॥ १२६ ॥ पिबेत्सशर्कराक्षौद्रमथ चैवातिमन्थितम् । नवनीतं पिबेद्युक्त्या तक्रं चानुपिबेन्नरः ॥१२७॥

जिसके दस्तमें पहले या पश्चात् रुधिर गिरे, वह बड़के नवीन पत्तोंके कल्क और दूधके द्वारा घृतको सिद्ध करके पान करे अथवा घोलकर मिश्री और शहदमें मिलाकर पानकरे या नैनी घी पान करे किम्वा तक्र पान करे ॥ १२६ ॥ १२७ ॥

पिच्छ बस्ति ।

अल्पाल्पं बहुशो रक्तं सशूलमुपदेक्ष्यते । यदा वायुर्विबद्धश्च पिच्छबस्तिस्तदा हितः ॥ १२८ ॥

जो थोड़ा २ या बहुतसा रुधिर शूलयुक्त निकले और वायुका विबन्ध हो तो पिच्छल बस्ति लगावे १२८

शाल्मलेरार्द्रपुष्पाणि पुटपाककृतानि च । संकुट्योलूखले सम्यग्गृह्णीयात्पयसि शृते ॥ १२९॥ गृहीत्वा च पलं तस्य त्रिपलं घृततैलयोः । युक्तं मधुककल्केन माक्षिकात्रिपलेन च ॥ १३० ॥ "तैलाक्तवपुषं दद्याद्वस्तेः प्रत्यागते रसे । भोजयेत्पयसा वापि पित्तातीसारपीडितम् ॥ १३१ ॥

सेमलके गीले फूल लेकर पुटपाकविधिसे पकावें फिर उनको खरलमें पीसकर दूधमें औटावै, पश्चात् उसमेंसे एक पल घी और तेल बारह २ तोले एवं मुलैठी और शहद बारह २ तोले लेव, सबको मिलाकर पिचकारीके द्वारा प्रयोग करे परन्तु प्रथम शरीरपर तेलकी मालिश करलेवै । जब यह रस बस्तीमेंसे निकल आवे तब दूधके साथ भोजन करावे । पित्तातिसारपीडित मनुष्योंके यह पिच्छलबस्ति अत्यन्त हितकारी है ॥ १२९ ॥ १३० ॥ १३१ ॥

क्षीरद्रुमाणाश्च रसे विपक्वं तज्जैश्च कल्कैः पयसा च सर्पिः । सितोपलाढ्यं मधुपादयुक्तं रक्तातिसारं शमयत्युदीर्णम् ॥ १३२ ॥

क्षीरवृक्ष (बड़, गलर, पीपल, वेलियापीपल, पाखर) के स्वरस अथवा क्वाथ और कल्कमें दूध एवं घी डालकर पकावे । जब घृत सिद्ध होजाय तब उसमें मिश्री २ तोले और शहद १ तोला मिलादेवे इस घृतको सेवन करनेसे रक्तातिसार नष्ट होता है१३२॥

दाहे पाके हितं चाजं पयः क्षौद्रं सशर्करम् । गुदप्रक्षालने सेके प्रशस्तं पानभोजने ॥ १३३ ॥

गुदामें दाह हो, अथवा गुदा पकजाय तो बकरीके दूधमें शहद और मिश्री मिलाकर गुदाको धोवे या सींचे अथवा पान और भोजन करे ॥ १३३ ॥

चाङ्गेरीघृत ।

स्वेदोऽथ मूषिकामांसैस्तद्वसाभ्यञ्जनं तथा । गुदनिस्सरणे शस्तं चाङ्गेरीघृतमुत्तमम् ॥ १३४ ॥

जो गुदा बाहरको निकल आवे तो मूषेके मांसका स्वेद (बफारा) देवे अथवा उसीकी चर्बीको गुदाके ऊपर बाँधे । चाँगेरी घृतका गुदाके निकलनेमें सेवन उत्तम है ॥ १३४ ॥

शंबूकमांसं सुस्विन्नं सतैललवणान्वितम् । ईषद्घृतेन चाभ्यज्य स्वेदयेत्तेन

यत्नतः ॥ १३५ ॥ गुदभ्रंशमशेषेण नाशयेत्क्षिप्रमेव वा ॥ १३६ ॥

शम्बूक (घोंघे) के मांसको सिजाकर तेल और लवण तथा किंचित् घीमें मिलाकर प्रथम गुदामें तेल मलकर पश्चात् उसका स्वेद (बफारा) देवे, इससे गुदभ्रंशकी सम्पूर्ण पीड़ा नष्ट होती है ॥ १३५ ॥ ॥ १३६ ॥

मेघनादस्य मूलानि मधुना सितया सह। निहन्ति शोणितस्रावं तंडुलोदकपानतः ॥ १३७ ॥

चौलाईकी जड़को पीसकर शहद, मिश्री और चावलोंके जलके साथ पान करनेसे रुधिरका गिरना बंद होता है ॥ १३७ ॥

अथ कफातिसार ।



श्वेतं विसान्द्रनं स्निग्धं शीतलं मन्दवेदनम् । गौरवारुचिहल्लासैः पुरीषं सार्यते कफात् ॥ १३८ ॥

कफातिसारमें मल सफेद, आमगन्धयुक्त, गाढ़ा, चिकना, शीतल, अल्पपीडायुक्त, शरीरमें भारीपन, अरुचि और उबकाई ये सब लक्षण होते हैं ॥१३८

श्लेष्मातिसारे प्रथमं हितं लङ्घनपाचनम् । योज्यश्चामातिसारघ्नो यथोक्तो दीपनो गणः ॥ १३९ ॥

कफातिसारमें प्रथम लंघन कराना और पाचन देना हितकारी है; पश्चात् आमातिसारनाशक दीपन औषधि देनी चाहिए ॥ १३९ ॥

पूतिकव्योषबिल्वाग्निपाठादाडिमहिंगुभिः । योजयेत्संस्कृतैर्यूषः श्लेष्मातीसारनाशनः ॥ १४० ॥

दुर्गंधकरंज, त्रिकुटा, बेलगिरी, चीता, पाढ, अनार और हींग इनके काथका यूष बनाकर पान करे तो कफातीसार नष्ट होता है ॥ १४० ॥

गोकण्टकं गुहाव्याघ्रीकषायं सुशृतं पिबेत् । आमश्लेष्मातिसारघ्नं दीपनं पाचनं परम् ॥ १४१ ॥

गोखरू, पिठवन और कटेरीका क्वाथ आमातिसार नाशक है । एवं दीपन, और पाचन है ॥ १४१ ॥

पथ्या सौवर्चलं हिंगुसैन्धवातिविषा वचा । आमातिसारकफजं पीतमुष्णाम्बुना जयेत् ॥ १४२ ॥

हरड, कालानोन, हींग, सैंधानोन, अतीस और वच इनको एकत्र पीसकर चूर्ण करले, इस चूर्णको गरम जलके साथ पान करे तो आमसहित कफातीसार नष्ट होता है ॥ १४२ ॥

चव्यं सातिविषं कुष्ठं बालबिल्वं सनागरम् । वत्सकत्वक्फलं पथ्या छर्दिश्लेष्मातिसारनुत् ॥ १४३ ॥

चव्य, अतीस, कूट, कच्चेबेलका गूदा, सोंठ, कुडेकी छाल, इन्द्रजौ और हरड इनका क्वाथ वमन और कफातीसारको नष्ट करता है ॥ १४३ ॥

पथ्यात्रिकटुकापाठावचाग्रन्थिकवत्सकैः । सनागरैर्जयेत्क्वाथः कल्को वा श्लैष्मिकीं स्रुतिम् ॥ १४४ ॥

हरड, चीता, कुटकी, पाठ, वच, पीपलामूल, कुडेकीछाल और सोंठ इनका क्वाथ कफातिसारको नष्ट करता है ॥ १४४ ॥

पाठा वचा त्रिकटुकं कुष्ठं कटुकरोहिणी । उष्णांबुपेयान्येतानि श्लेष्मातीसारशान्तये ॥ १४५ ॥

पाढ, वच, त्रिकुटा, कूठ, और कुटकी इनका चूर्ण करके गरम जलके साथ पान करनेसे कफातिसार नष्ट होता है ॥ १४५ ॥

हिङ्गु सौवर्चलं व्योषमभयातिविषा वचा । पीतमुष्णाम्बुना चूर्णं श्लेष्मातीसारशान्तये ॥ १४६ ॥

हींग, कालानोन, त्रिकुटा, हरड, अतीस और वच इनके चूर्णको गरम जलके साथ पान करनेसे कफातिसार नष्ट होता है ॥ १४६ ॥

कुष्ठं पाठा वचा मुस्तं चित्रकं कटुरोहिणी । पीतमुष्णाम्बुना चूर्णं श्लेष्मातीसारनाशनम् ॥ १४७ ॥

कूट, पाढ, वच, नागरमोथा, चीता, और कुट इनका चूर्ण गरम जलके साथ पान करनेसे कफातिसार नष्ट होता है ॥ १४७ ॥

चव्यं सातिविषं कुष्ठं पाठा च कटुरोहिणी । अभयाम्बुधरा शुण्ठी बिल्वकर्कटिकायुता ॥ १४८ ॥ चित्रकं पिप्पलीमूलं पिप्पली गजपिप्पली । कृमिशत्रुवचा बिल्वपेशीधान्यककट्फलम् ॥ १४९ ॥ श्लोकार्धविहिता योगाश्चत्वारः कण्टकाः स्मृताः । श्लेष्मातिसारिणे देया ह्येते वर्णबलप्रदाः ॥ १५० ॥

१ चव्य, अतीस, कूट, पाढ और कुटकी, २ हरड, नागरमोथा. सोंठ, बेलगिरी और काकडाशिंगी ३ चीता, पीपलामूल, पीपल और गजपीपल, ४ वायविडंग, वच, बेलगिरी धनियाँ और कायफल, इन चार योगोंमेंसे किसी एकका क्वाथ पान करनेसे कफातिसार नष्ट होता है तथा वर्ण और बलकी वृद्धि होती है ॥ १४८ ॥१४९॥ १५०॥

नागरादिवटक ।

नागरातिविषा मुस्तं यवानी चित्रकं वचा । शठी पुष्करमूलञ्च पाठा कटुकरोहिणी ॥ १५१ ॥ भल्लातकास्थीन्यभया धातकी कौटजं फलम् । हिङ्गुसौवर्चलं क्षारं विडङ्गं विडसैन्धवम् ॥ १५२ ॥ मूत्रपिष्टान्समानेतान्वटकानक्षसम्मितान् । छायाशुष्कांस्तु ताञ्ज्ञात्वा दद्याच्छ्लेष्मातिसारिणे ॥ १५३ ॥ कृमिश्वयथुपाण्ड्वर्तिप्लीहगुल्मोदरापहान् । ग्रहण्यर्शोविकारघ्नानग्निसन्दीपनान्पिबेत् ॥ १५४ ॥

सोंठ, अतीस, नागरमोथा, अजवायन, चीता, वच कचूर, पोहकरमूल, पाढ, कुटकी, भिलावेकी मींग, हरड, धायके फूल, इन्द्रजौ, हींग, कालानोन, जवाखार, वायविडंग, विडियासंचरनोन, और सैंधानोन इन सबको समान भाग लेकर गोमूत्रमें पीसकर एक एक तोलेके वडे बनाकर छायामें सुखा देवे । इनको सेवन करनेसे कफातिसार, कृमिरोग, सूजन, पाण्डुरोग, प्लीहा, गुल्म, उदररोग संग्रहणी और बवासीर नष्ट होती है और अग्निसंदीपन होता है ॥ ॥१५१॥१५२॥१५३ ॥१५४॥

त्रिदोषातिसार चिकित्सा ।



तन्द्रायुक्तो मोहसादास्यशोषी वर्चः कुर्यान्नैकरूपं तृषार्त्तः । सर्वोद्भूतः स त्रिलिङ्गोपपत्तिः कृच्छ्रासाध्यो बालवृद्धासहानाम् ॥ १५५ ॥

तन्द्रा, मोह, शरीरमें ग्लानि मुखशोष, मलका रंग तीनों दोषोंके लक्षणोंवाला हो और तृषाका अधिक लगना, इसमें तीनों दोषोंके लक्षण मिलते हैं । यह कृच्छ्र साध्य है, पर बालक, वृद्ध और कमजोर मनुष्योंके उत्पन्न हो तो असाध्य जानना ॥ १५५ ॥

बृहच्छालिपर्ण्यादि ।

शालिपर्णी पृश्निपर्णी बृहती कण्टकारिका । बलाश्वदंष्ट्राबिल्वानि पाठा नागरधान्यकम् । एतदाहारसंयोगे हितं सर्वातिसारिणाम् ॥ १५६ ॥

शालपर्णी (सरिवन) पृश्निपर्णी (पिठवन) बडीकटेरी, खिरैंटी, गोखरू, बेलगिरी, पाढ, सोंठ और धनियाँ इनकी पेया बनाकर आहारके साथ सेवन करे । यह पेया सर्वातिसार अर्थात् त्रिदोषातीसारवाले रोगाको अत्यंत हितकारी है ॥ १५६ ॥

यत्र कल्केन संसिद्धा प्रसारिण्याग्निमन्थयोः । यवागूः प्राश्यमानोऽपि वातसारी सुखी भवेत् ॥ १५७ ॥

प्रसारणी और अरणी इनके कल्कद्वारा यवागू सेवन करे तो त्रिदोषातिसार रोगी सुखी होता है १५७

अजमोदा समङ्गा च वालकं पद्मकेसरम् । यवागूं साधयेदेतैः सर्वातीसारनाशिनीम् ॥ १५८ ॥

अजमोद, लज्जावंती, सुगन्धवाला, कमलकेशर इनकी यवागू सब प्रकारके अतीसारको नष्ट करती है ॥ १५८ ॥

शावरकभद्रमुस्ताविश्वौषधबिल्वधातकीपुष्पैः । सिद्धा तत्र यवागूर्देया सर्वातिसारिषु च ॥ १५९ ॥

लोध, नागरमोथा, सोंठ, बेलगिरी और धायके फूल इनके द्वारा यवागू बनाकर सेवन करनेसे सर्व प्रकारके अतीसार नष्ट होते हैं ॥ १५९ ॥

स्विन्नं कुतूहलदहने चाङ्गेरीपत्रसम्भवं युक्त्या । सिन्धूद्भवेन मिश्रं हन्त्यरुचिं जठररोगञ्च ॥ १६० ॥

चांगेरी (खटकल) के पत्तोंको युक्तिपूर्वक अच्छे प्रकार अग्निमें पुटपाकविधिसे पकाकर उनका रस निकालकर फिर उस रसमें सैंधानमक मिलाकर सेवन करे तो अरुचि और उदररोग दूर होता है ॥ १६० ॥

कट्वङ्गमोचाह्वघनाम्बुबिल्वैः ससारिवावत्सकनागरैश्च । जलं शृतं सर्वभवं नराणां निहन्त्यतीसारमसक्तवेगम् ॥ १६१ ॥

श्योनाककी जड़, मोचरस, नागरमोथा, सुगन्धवाला, बेलगिरी, अनन्तमूल, कुडेकी छाल और सोंठ इनका क्वाथ पान करनेसे सर्व प्रकारके अतीसार नष्ट होते हैं ॥ १६१ ॥

पञ्चमूल्यादि ।

पञ्चमूलीबलाबिल्वगुडूचीमुस्तनागरैः । पाठाभूनिम्बह्रीबेरकुटजत्वक्फलैः शृतम् ॥ १६२ ॥ हन्ति सर्वानतीसाराञ्ज्वरदोषं वमिं तथा । सशूलोपद्रवं श्वासं कासं हन्यात्सुदुस्तरम् १६३

पंचमूल, खिरैटी, बेलगिरी, गिलोय, नागरमोथा, सोंठ, पाढ़, चिरायता, सुगन्धवाला, कुडेकी छाल और इन्द्रजौ इनका क्वाथ सर्व प्रकारके अतीसार, ज्वरदोष, वमन, शूल, श्वास आदि दुस्तर उपद्रवोंको नष्ट करता है ॥ १६२ ॥ १६३ ॥

पञ्चमूलीति सामान्यात्पित्ते योज्या कनीयसी । महती पञ्चमूली च वातश्लेष्माधिके तथा ॥ १६४ ॥

पित्तातीसारमें तो लघुपंचमूल और वातकफातीसारमें बृहत्पंचमूल लेना चाहिये ॥ १६४ ॥

समङ्गातिविषामुस्तं ह्रीबेरं विश्वधातकी । कुटजत्वक्फलं बिल्वं क्वाथः सर्वातिसारनुत ॥ १६५ ॥

मजीठ, अतीस, नागरमोथा, सुगन्धवाला, सोंठ, धायके फूल, कुड़ेकी छाल, इन्द्रजौ और बेलगिरी इनका क्वाथ सर्वप्रकारके अतीसारको नष्ट करता है १६५

अभया नागरं मुस्तं गुडेन सह योजितम् । चतुःसमेयं गुटिका त्रिदोषघ्नी प्रकीर्त्तिता ॥ १६६ ॥ आमातिसारमानाहं विविधां च विषूचिकाम् । कृमीनरोचकं हन्यादीपयत्याशु चानलम् ॥ १६७ ॥

हरड, सोंठ और नागरमोथा इनको एकत्र पीसकर गुडमें मिलाकर गोली बनावे । यह चतुःसमगुटिका त्रिदोषातीसारको नष्ट करती है, तथा आमातीसार, आनाह, अनेक प्रकारकी विषूचिका, कृमिरोग और अरुचि इनको नाश करती है एवं जठराग्निको दीपन करती है ॥ १६६ ॥ १६७ ॥

बिल्वाब्दधातकीपाठाशुण्ठीमोचरसः समः । पीतो रुन्ध्यादतीसारं गुडतक्रेण दुर्जयम् ॥ १६८ ॥

बेलगिरी, नागरमोथा, धायके फूल, पाढ़, सोंठ और मोचरस, इनके क्वाथमें गुड और तक्र मिलाकर सेवन करे तो दुस्तर अतीसार नष्ट होता है ॥ १६८ ॥

दण्डीन्दीवरकेसराजशिखरीक्षीराविकादीप्यकं सूर्य्यावर्त्तकजीरकद्वययुतं भृष्टं मनाक् खर्परे ॥ पिष्ट्वा

पर्युषिताम्बुना दिनमुखे पीतं निहन्यान्नृणां नानावर्णरुजातिसारकगदं प्रोवाच धन्वन्तरिः ॥ १६९ ॥

दौना, नीलेकमल, कुकुरझँगरा, चिरचिटा, दुद्धी, अजवायन, हुलहुल, जीरा और कालाजीरा,इन सबको विधिसे खोपडेमें भूनकर बासी जलमें पीसकर प्रातःकाल पीवे तो अनेक प्रकारका पीडा युक्त अतीसार नष्ट होता है ऐसा धन्वन्तरिने कहा है ॥१६९॥

पलमङ्कोटमूलस्य पाठाद्यर्व्योक्ष्य पेषयेत् । यष्ट्याम्बुनाक्षमात्रस्य वटी सर्व्वातिसारहा ॥ १७० ॥

सम भाग मुलैठीके जलमें पीसकर एक २ तोलेकी गोली बनालेवे । यह गोली सब प्रकारके अतिसारों को नष्ट करती है ॥ १७० ॥

अंकोटमूलं तक्रेण ह्यतिसारहरं परम् । माहिषेण तु तक्रेण पाठापत्रं तथैव च ॥ १७१ ॥

अंकोटकी जड़को तक्रके साथ सेवन करनेसे अतीसार नष्ट होता है। एवं पाढके पत्तोंको भैंसके तक्रके साथ सेवन करनेसे अतीसार नष्ट होता है॥ १७१ ॥

कुटजत्वक्फलं मुस्तं क्वाथयित्वा जलं पिबेत् । अतिसारं जयत्याशु शर्करामधुसंयुतम् ॥ १७२ ॥

कुड़ेकी छाल, कुडेके बीज (इन्द्रजौ) और नागरमोथा इनका क्वाथ बनाकर मिश्री और शहद मिलाकर पान करे तो शीघ्र ही अतीसार नष्ट होता है१७२

बिभीतकफलं दग्धं हन्याल्लवणसंयुतम् । महान्तमप्यतीसारं चक्रपाणिरिवासुरान् ॥ १७३ ॥

बहेड़ेके फलको भूनकर नमक मिलाकर सेवन करे तो महाघोर अतीसार नष्ट होता है जैसे विष्णु असुरोंको नष्ट करते हैं ॥ १७३ ॥

वटप्ररोहं संपेष्य श्लक्ष्णं तंडुलवारिणा । तं पिबेत्तक्रसंयुक्तमतिसारहरं परम् ॥ १७४ ॥

बड़के अकुरोंको चावलोंके जलमें बारीक पीसकर तक्रके साथ पीनेसे अतीसार दूर होता है ॥ १७४ ॥

चार यूष ।

धातकी नागरं बिल्वं सलोध्रं पद्मकेसरम् । जम्बूत्वङ्नागरं धान्यं पाठा मोचरसं तथा ॥ १७५ ॥ समंगा धातकी बिल्वं मध्यजंब्वाम्रयोस्त्वचः । कपित्थानि विडंगानि नागरं मरिचानि च ॥ १७६ ॥ चांगेरी तत्र कोलाम्लं चत्वारस्ते कफात्तरे । श्लोकार्द्धे विहितान्दद्यात्सस्नेहलवणान्गुडान् ॥ १७७ ॥

धायके फूल, सोंठ, बेलगिरी, लोध, कमलकेशर १, जामुनकी छाल, सोंठ, धनियां, पाढ और मोचरस २, मजीठ, धायके फूल, बेलगिरी, जामुन और आमकी छाल ३, कैथ, वायविडिंग, सोंठ, मिरच, चांगेरी (खटकल) और खट्टे बेर ४' इन योगोंमेंसे किसी एक योगका यूष बनाकर, घृत, नमक और गुड़ मिलाकर सेवन करे तो कफाधिक अतीसार दूर होता है ॥ १७५ ॥ १७६ ॥ १७७ ॥

कुटजपुटपाक ।

अवेदनं सुसम्पक्कं दीप्ताग्नेः सुचिरोत्थितम् । नानावर्णमतीसारं पुटपाकैरुपाचरेत् ॥ १७८ ॥

पीड़ारहित, पक्क, दीप्ताग्निवाले और जिसके अतीसार उत्पन्न हुए बहुत दिन होगये हैं, उसके नाना प्रकारके रंगका अतीसार हो तो उसकी पुटपाककी विधिके द्वारा चिकित्सा करे ॥ १७८ ॥

स्निग्धं घनं कुटजवल्कलजन्तव जग्धमादाय तत्क्षणमतीव च पेषयित्वा । जम्बूपलाशदलतण्डुलतोयसिक्तं बद्धं कुशेन च बहिर्घनपंकलितम् ॥ १७९ ॥ सुस्विन्नमेतदवपीड्य रसं गृहीत्वा क्षौद्रेण युक्तमतिसारवते प्रदद्यात् । कृष्णात्रिपुत्रमतिपूजित एष योगः सर्वातिसारहरणे स्वयमेव राजा ॥ १८० ॥

चिकनी, भारी और जिसको कीडे न लगे हों ऐसी कुडेकी छालको लेकर चावलोंके जलमें खूब बारीक पीसकर गोली बना लेवे, फिर उस गोलीको जामुन और ढाकके पत्तोंमें लपेटकर कुशासे वेष्टित कर ऊपरसे गारेका लेपकर सुखा देवे, पश्चात् पुटपाक की विधिसे पकावे। फिर उसकी मट्टीको और पत्तों को अलग करके रस निकाल लेवे उस रसमें शहद मिलाकर सेवन करनेसे अतीसार रोग नष्ट होता है यह कृष्णात्रेयका कहा हुआ सर्व योगोंका राजा है ॥ १७९ ॥ १८० ॥

श्योनाकपुटपाक।

काश्मरीपद्मपत्रैश्च पक्त्वा कट्वङ्गवल्कलम्। सपद्मकेसरो ग्राही स्याद्रसो मधुसंयुतः॥ १८१॥

श्योनाककी छालको बारीक पीसकर, कुम्भेर, कमलपत्र और कमलकेशरसे वेष्टित करके पुटपाक विधिसे पकावे, पश्चात् उसका रस निकालकर शहद मिलाकर सेवन करे तो इससे अतिसार रोग नष्ट होता है ॥ १८१ ॥

न्यग्रोधादिपुटपाक।

न्यग्रोधादिगणापूर्णपुटपाकश्च तित्तिरे। द्रवो मधुसितोपेतः पीतो हन्त्युदरामयम्॥ १८२॥

न्यग्रोधादि गणकी समस्त औषधियाँ लेकर उनको खूब बारीक पीसकर तीतरके पेटमें भरकर पुटपाक विधिसे पकावै। फिर उसका रस निकालकर शहद मिलाकर पान करे तो अतीसार रोग नष्ट होता है ॥ १८२ ॥

शुण्ठीपुटपाक।

शुण्ठीमल्पघृतान्वितां परिवृतां गोधूमपिष्टैस्ततः। सद्यो गोमयवेष्टितान्तु विपचेन्मन्दाग्निना चातुरः॥ शीतीकृत्य सितासमां प्रतिदिनं भक्षेन्नरः पथ्यभुक्। सर्वोपद्रवसंयुतानपि जयेद्दीर्घातिसारामयान्॥१८३॥

सोंठके चूर्णको कुछेक घीमें मिलाकर फिर गेहूँके आटेका गोला बनाकर उसके मध्यमें रख देवे पश्चात् उसको डोरे आदिसे बाँधकर ऊपरसे गोबरका लेप करके मंद २ अग्निसे पकावे, जब शीतल होजावे तब बराबरकी मिश्री मिलाकर प्रतिदिन बलानुसार भक्षण करे और पथ्य भोजन करे। यह सर्व उपद्रव सहित और बहुत दिनोंके पुराने अतीसारको भी नष्ट करता है ॥ १८३ ॥

पुटपाकलक्षण।

पुटपाकस्य पाकोऽयं बहिरारक्तवर्णता। भेषजत्वात्पलस्यास्य पानमिष्टं चिकित्सकैः॥ १८४॥

पुटपाककी यह विधि है कि, जब पुष्टपाक ऊपर से लाल हो जाय तब उसको निकालकर औषधियों में रसको निचोड लेवे इसमेंसे एक पल लेकर पान करना चाहिये ॥ १८४ ॥

कुटजावलेह।

कुटजत्वक्कृतः क्वाथो घनीभूतः सुशोभनः। स लीढोऽतिविषायुक्तः सर्वातीसारनुद्भवेत् ॥१८५॥ इच्छन्त्यत्राष्टमांशेन क्वाथादतिविषारजः॥ १८६॥

कुडेकी छालको जलमें पकावे जब पकते २ जल गाढा हो जाय तब उसमें आठ भाग अतीसका चूर्ण डालकर सेवन करे यह सब प्रकारके अतीसारको नष्ट करती है ॥ १८५ ॥ १८६॥

मूलं त्वचः पलशतं रक्तस्य कुटजस्य च। जलद्रोणे विपाच्यैतत्पादशेषमथोद्धरेत् ॥ १८७ ॥ भूयस्तद्विपचेत्तावद्यावत्सान्द्रत्वमेति च। सैन्धवाक्षविडक्षारकृष्णेन्द्रयवधातकी ॥ १८८ ॥ जीरं चूर्णं समं कृत्वा मध्वक्तं विलिहेत्ततः। ततो महिषदध्ना च भोजयेच्च तमातुरम्। दुर्निवारमतीसारं जयेदेतदसंशयः॥१८९॥

लालकुडेकी जडकी छालको १०० पल लेकर एक द्रोण जलमें पकावे जब चौथाई भाग जल शेष रह जाय तब उतारकर छान लेवे फिर उसको चूल्हे पर चढाकर पकावे जब पककर खूब गाढा हो जाय तब उसमें सेंधानोन, कालानोन, बिडनोन, पीपल, इन्द्रजौ, धायके फूल और जीरा इन सबको समान भाग

लेकर चूर्ण करके मिला देवे । इसमें शहद मिलाकर चाटे और इसके ऊपर भैंसका दही भोजन करे तो इससे निःसन्देह दुर्निवार अतीसार दूर होता है ॥ १८७ ॥ १८८ ॥ १८९ ॥

द्वितीय कुटजावलेह ।

शतं कुटजमूलस्य क्षुण्णं तोयाऽर्मणे पचेत् । क्वाथे पादावशेषेऽस्मिँल्लेहीभूतः पुनः पचेत् ॥१९० ॥ सौवर्चलयवक्षारविडसैन्धवपिप्पली । धातकीन्द्रयवाजाजी चूर्ण दत्त्वा पलद्वयम् ॥ ॥१९१ ॥ लिह्याद्बदरमात्रन्तु तच्छीतं मधुसंयुतम् । पक्वापक्वमतीसारं नानावर्णं सवेदनम् ॥ दुर्वारग्रहणीदोषं जयेच्चैव प्रवाहिकाम्॥ १९२ ॥

कुडेकी जडकी छाल १०० पल लेकर कूट लेवे फिर उसको १ द्रोण जलमें पकावे, जब चौथाई जल शेष रह जाय तब उतार कर छान लेवे फिर दुबारा चूल्हे पर रखकर पकावे जब पकते २ गाढा हो जाय तब कालानोन, जवाखार, विडियानमक, सैंधालवण, पीपल, धायके फूल, इन्द्रजौ और जीरा इनका दो २ पल चूर्ण मिला देवे, जब शीतल होजाय तब शहद मिला देवे, प्रतिदिन एक कर्ष इसमेंसे भक्षण करे । इससे पक्क और अपक्व दोनों प्रकारका अतीसार अनेक रंगकी पीड़ायुक्त दुर्निवार संग्रहणी और प्रवाहिका रोग नष्ट होता है ॥१९०॥१९१॥१९२॥

लेहे यत्रास्ति नो भागो निर्दिष्टो द्रव्यकल्कयोः । तत्रापि पादिकः कार्य्यो द्रवात्कल्को विजानता ॥ १९३॥

जिस लेहमें द्रव्य और कल्ककी मात्रा नहीं कही वहां द्रव्यसे कल्क चौथाई भाग लेना चाहिए॥१९३

तृतीय कुटजावलेह ।

कुटजत्वक्पलशतं कषायमुपकल्पयेत् । वस्त्रपूतं पुनः क्वाथ्यं यदा लेहत्वमागतम् ॥ १९४ ॥ भल्लातकं विडङ्गानि त्रिफला त्रिकटु तथा । रसाञ्जनं चित्रकञ्च कुटजस्य फलानि च ॥ १९५॥ वचा सातिविषा बिल्वं पाठा मोचरसस्तथा । वालकञ्च समङ्गा च प्रत्येकं तु पलं पलम् ॥१९६॥ त्रिंशत्पलं गुडस्याथ चूर्णीकृत्य प्रदापयेत् । मधुनः कुडवं दत्त्वा घृतस्य कुडवं तथा ॥ १९७ ॥ एष लेहस्तु शमयेदर्शो रक्तसमुद्भवम् । वातिकं पैत्तिकञ्चैव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् ॥ १९८ ॥ ये च दुर्नामजा रोगास्तांस्तु सर्वान् व्यपोहति । रक्तपित्तमतीसारं पांडुरोगमरोचकम् ॥१९९॥ ग्रहणीं मार्दवं कार्श्यं श्वयथुं कामलामपि । अनुपाने च तं दद्याद्दधि तक्रं घृतं पयः ॥ २०० ॥

कुडेकी छालको १०० पल लेकर क्वाथ बनाकर कपडेमें छान लेवे, फिर दुबारा चूल्हे पर चढाकर पकावे. जब पकते २ लेहकी समान गाढा हो जाय तब उसमें मिलावे, बायविडंग, त्रिफला, त्रिकुटा, रसौत, चीता, इन्द्रजौ, बच, अतीस, बेलगिरी, पाढ, मोचरस, सुगन्धवाला और मजीठ प्रत्येकका चूर्ण चार २ तोले और गुड ३० पल मिला देवे शहद ३२ तोले और घी ३२ तोले, शीतल होनेपर मिला देवे । इस लेहको चाटनेसे रुधिरकी बवासीर, पित्तकी बवासीर, कफकी बवासीर, सन्निपातकी बवासीर और सब प्रकारकी बवासीर, रक्तपित्त, अतिसार, पांडुरोग, अरुचि, संग्रहणी, मृदुता, कृशता, सूजन और कामला रोग यह सब नष्ट होते हैं । इसपर अनुपानमें तक्र, दही, दूध और घी इनको देवे॥ १९४—२०० ॥

कुटजाष्टकावलेह ।

तुलामथार्द्रांगिरिमल्लिकायाः संकुट्य पक्त्वा रसमाददीत । तस्मिन् सुतप्ते पलसंमितानि संचूर्ण्य दद्यात्सह शाल्मलेन ॥ २०१ ॥ पाठां समङ्गातिविषां समुस्तां बिल्वञ्च पुष्पाणि च धातकीनाम् ॥ प्रक्षिप्य भूयो विपचेच्च तावद् दार्वीप्रलेपः स्वरसस्य यावत् ॥ २०२ ॥ पीतस्त्वसौ काल-

विदा जलेन मण्डेन वाऽजापयसाथ वापि। निहन्ति सर्वं त्वतिसारमुग्रं कृष्णं सितं लोहितपीतकञ्च॥२०३॥ दोषञ्च हन्याद्द्विविधं सरक्तं पित्तं तथार्शांसि सशोणितानि। असृग्दरश्चैवमसाध्यरूपं निहन्त्यवश्यं कुटजाष्टकोऽयम्॥ २०४॥ तुलाद्रव्ये जलद्रोणो द्रोणे द्रव्यतुला मताः। जीर्णे त्वपथ्यभोजी स्यादर्शोभ्यः प्रतिमुच्यते। रोगानीकविनाशाय कौटजो लेह ईरितः॥ २०५॥

कुडेकी गीली छाल १०० पल लेकर ओखलीमें डालकर कूटे, पश्चात् एकद्रोण जलमें पकावे जब चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे फिर दुबारा चूल्हे पर रखकर पकावे. जब पकते २ खूब गाढा होजाय तब सेमलकी गोंद, पाढ, मजीठ, अतीस, नागरमोथा और धायके फूल इन प्रत्येकका चूर्ण चार २ तोले मिलाकर तबतक पकावे जबतक करछीसे न चिपकने लगे फिर इसको जलमंड अथवा बकरीके दूधके साथ सेवन करे। यह सब प्रकारके उग्र अतीसार, कृष्ण, श्वेत, लाल और पीले रंगके दस्त, रक्तपित्त, रुधिरकी बवासीर और असाध्य रक्तप्रदरको नष्ट करता है। जब यह जीर्ण होजाय तब पथ्य भोजन करे। यह कुटजावलेह रोगमात्रको नष्ट करनेके लिये कहा है॥ २०१—२०५ ॥

अंकोटवटक।

सदार्व्यंकोटपाठानां मूलं त्वक्कुटजस्य च। शाल्मलीशालनिर्यासं धातकीं लोध्रदाडिमम्॥ २०६॥ पिष्ट्वाक्षसंमितान् कृत्वा वटकांस्तंडुलाम्बुना। तेनैव मधुसंयुक्तानेकैकान् प्रातरुत्थितः॥ २०७॥ पिबेदत्ययमापन्नो विड्विसर्गेण मानवः। अङ्कोटवटको नाम्ना सर्वातीसारनाशनः॥ २०८॥

दारुहल्दी, अंकोलकी जड़, पाढकी जडकी छाल, कुड़ेकी छाल, सेमलकी जड, सालका गोंद(राल), धायके फूल, लोध और अनार ये प्रत्येक समान भाग लेकर चावलोंके जलमें पीसकर एक २ कर्षके बडे बनालेवे प्रतिदिन प्रातःकाल एक बडेको शहदमें मिला कर भक्षण करे, इससे सर्वप्रकारके अतीसार नष्ट होते हैं॥ २०६॥ २०७॥ २०८॥

वत्सकाद्या गुटिका।

वत्सकस्याऽमृतायाश्च द्वे पले प्रस्थमौदकम्। श्रपयित्वा रसे तस्मिन् पादशेषेऽवतारिते॥ २०९॥ अष्टौ पलानि शक्रस्य यवांश्चूर्णीकृतानि तु। शुद्धपाकं विदित्वा तु यथा वह्नावतारितम्॥ २१०॥ सद्यः सर्वातिसारांश्च सर्वांश्च ग्रहणीगदान्। नाशयेद्दीपयेच्चाग्निं कृष्णात्रेयस्य शासनात्॥ २११॥

कुडेकी छाल और गिलोयको दो पल लेकर एक प्रस्थ जलमें पकावे जब पककर चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतार छान लेवे पश्चात् उसको चूल्हे पर चढा कर उसमें शुद्ध इन्द्रजौका चूर्ण ८पल डाल कर पकावे जब पककर गाढा होजाय तब उतारकर शीतल होनेपर गोलियां बना लेवे। यह गोली सबप्रकारके अतीसार और सबप्रकारकी संग्रहणीको नष्ट करती और अग्निको संदीपन करती है। यह गुटिका कृष्णात्रेयकी कही हुई है॥ २०९॥ २१०॥ २११॥

अंकोटगुटिका।

पलमंकोटमूलस्य पाठां दार्वीञ्च तत्समाम्। पिष्ट्वा तण्डुलतोयेन वटकानक्षसंमितान्॥ २१२॥ छायाशुष्कां पिबेत् क्षिप्रं पिष्ट्वा तंडुलवारिणा। वातपित्तकफप्रायान् द्वन्द्वजान् सान्निपातिकान्॥ हन्यात् सर्वानतीसारान् गुटिकेयं प्रयोजिता॥ २१३॥

अंकोल, पाढ और दारुहल्दी इन प्रत्येकको चार २ तोले लेकर चावलोंके जलमें पीसकर एक २ तोले की गोलियाँ बनाकर छायामें सुखादेवे। प्रतिदिन एक गोली चावलोंके जलके साथ सेवन करे। यह गोली वात, पित्त, कफ, द्वन्द्वज और सन्निपातिक तथा सब प्रकारके अतीसारोंको दूर करदेती है॥२१२॥२१३॥

अपराजितावलेह।

पलार्द्धमरुणायास्तु द्विपलं कुटजस्य च । केशराजस्य मूलं तु कर्षं तत्सर्वमेकतः ॥ २१४ ॥ संकुट्य सलिलप्रस्थे पक्त्वा पादस्थिते रसे।पूतेऽस्मिन्नर्धतः खण्डं छागक्षीरं चतुष्पलम् ॥ २१५ ॥ बिल्वातिविषयोश्चूर्णं मुस्तस्येन्द्रयवस्य च । प्रत्येकमक्षमात्रं तु क्षिप्त्वा पक्त्वा च भक्षयेत् ॥ २१६ ॥ शुद्धं तदनुभुञ्जीत काञ्जिकाम्बुप्रसाधितम् । माषगोक्षुरसिद्धं वा छागक्षीरं पिबेन्नरः ॥ ग्रहण्यतीसारहरो लेहोऽयमपराजितः ॥ २१७ ॥

अतीस २ तोले, कुडेकी छाल ८ तोले और कुकुरभांगरेकी जड एक कर्ष प्रमाण लेवे, सबको एकत्र कूटकर एक प्रस्थ जलमें पकावे जब पकते २ चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतार कर छान लेवे फिर उसमें खाँड ३२ तोले, बकरीका दूध १६ तोले, बेलगिरी, अतीस, नागरमोथा और इन्द्रजौ इन प्रत्येकका चूर्ण एक २ कर्ष डालकर पकावे जब पककर शीतल हो जाय तब अग्निका बलाबल विचार कर वमन विरेचनादिके द्वारा शुद्ध होकर भक्षण करे। अनुपान-कांजीके जलमें सिद्ध किये हुए उडद अथवा बकरीके दूधमें औटाये हुए गोखरू पान करे। यह अवलेह संग्रहणी और अतीसारको नष्ट करे है ॥२१४-२१७॥

षडङ्गघृत।

वत्सकस्य च बीजानि दार्व्याश्चैव त्वगुत्तमा । पिप्पली शृङ्गवेरञ्च लाक्षा कटुकरोहिणी ॥ २१८ ॥ षड्भिरेतैर्घृतं सिद्धं पेयं मण्डविमिश्रितम् । अतिसारं जयेच्छीघ्रं त्रिदोषमपि दारुणम् ॥ २१९ ॥

कुडेके बीज, दारुहल्दीकी छाल, पीपल, आर्द्रक, लाख और कुटकी इन छः औषधियोंके काथ और कल्कके द्वारा घृतको सिद्ध करे।फिर इस घृतमें खाँड मिलाकर सेवन करनेसे त्रिदोषज दारुण अतीसार नष्ट होता है ॥ २१८॥ २१९ ॥

कुटजादि घृत।

कुटजत्वक्फलं लोध्रं कृष्णादार्वीमहौषधम् । कटुका चेति तैः सिद्धं घृतं सर्वातिसारनुत् ॥ २२० ॥

कुडेकी छाल, इन्द्रजौ, लोध, पीपल, दारुहल्दी, सोंठ और कुटकी इनके काथ और कल्कके द्वारा घृतको सिद्ध करके सेवन करे। यह सब प्रकारके अतीसारको नष्ट करता है॥ २२० ॥

सप्ताङ्गघृत।

दार्वी सलाक्षाकटुका साविश्वा त्वक्कौटजा शक्रयवः सकृष्णः । एभिर्विपक्वं घृतमाशु हन्ति मंडेन पीतं सकलातिसारम् ॥ २२१ ॥

दारुहल्दी, लाख, कुटकी, सोंठ, कुडेकी छाल, इन्द्रजौ और पीपल इनके क्वाथ और कल्कके द्वारा घृतको सिद्ध करे। इसको मंडके साथ सेवन करनेसे सब प्रकारका अतीसार नष्ट होता है॥ २२१ ॥

महाबिल्वतैल।

तुलां संकुट्य बिल्वस्य पचेत्पादावशेषिताम्। सक्षीरं साधयेत्तैलं श्लक्ष्णपिष्टैरिमैः समैः ॥ २२२ ॥ धातुकी बिल्वकुष्ठञ्च रास्ना शुण्ठी पुनर्नवा । देवदारुर्वचा मुस्तं लोध्रं मोचरसान्वितम् ॥ २२३॥ मृद्वग्निना साधितञ्च ग्रहण्यर्शोऽतिसारनुत्। बिल्वतैलमिति ख्यातं महदात्रेयपूजितम् ॥ २२४ ॥

सौ पल बेलके गूदेको लेकर कूट लेवे,फिर उसको चौगुने जलमें पकावे जब चौथाई भाग जल शेष रह जाय तब उतारकर छानलेवे फिर उसमें दूध और तेल तथा धायके फूल, बेलगिरी, कूट,रायसन, सोंठ, पुनर्नवा, देवदारु, वच, नागरमोथा, लोध और मोचरस समान भाग लेकर बारीक पीसकर मिलादेवे । विधिपूर्वक मंद २ अग्निसे तेलको पकावे। यह तैल--संग्रहणी, बवासीर और अतीसारको नष्ट करता है॥ यह तैल-महत्आत्रेयसे पूजित किया हुआ है ॥२२२ ॥ २२३ ॥ २२४ ॥

ग्रहण्यर्शोविकारे ये स्नेहाद्या उपक-ल्पिताः। तेपि चात्र प्रयोक्तव्या यथादोषं विजानता ॥ २२५ ॥

जो संग्रहणी और अर्शरोगमें घृत तैलादिक कहे हैं, उनको यथादोषानुसार इस अतीसारमें प्रयोग करना चाहिये ॥ २२५ ॥

वातपित्तातिसारके लक्षण।

कट्वादिभी रसैः क्रुद्धैः प्रवृद्धौ पित्त-मारुतौ। व्यासाद्य ग्रहणीं नृणामतीसारकरौ स्मृतौ ॥ २२६ ॥ सशब्दं फेनिलं रूक्षं कषायोदकसान्निभम्। पक्वाम्लरसवर्णाभं हरिद्राप्रतिमं घनम् ॥ २२७ ॥ विण्मूत्रकार्ष्ण्यं सृजाति सशूलं दाहपाकवान्। विद्यात्तदाहशोषान्तवातपित्तातिसारिणाम् ॥ २२८ ॥

कटु आदि रसोंको अत्यन्त सेवन करनेसे, वात पित्त कुपित होकर वृद्धिको प्राप्त होजाते हैं। फिर वे ग्रहणी कलामें प्राप्त होकर मनुष्योंको अतीसार उत्पन्न करते हैं। जिससे पेटमें गुड़गुड़ शब्द हो, मल झागोंदार, रूखा, काथके समान वर्णवाला, पकी इमलीके रसके समान या हल्दीके समान रंगवाला, भारी, तथा विष्ठा और मूत्र काले रंगका, शूल और दाहयुक्त उतरे, गुदा पकजाय, दाह और शोप हो ये लक्षण वातपित्तातीसारके जानने चाहिये ॥ २२६-२२८ ॥

वातपित्तातीसारकी चिकित्सा।

लघुना पञ्चमूलेन पिप्पल्या सह धान्यया। आहारो भिषजा योज्यः सर्वदा हितमिच्छता ॥ २२९ ॥

लघुपंचमूल, पीपल और धनियाँ इन औषधियोंके द्वारा सिद्ध हुआ आहार वातपित्तातीसारमें सदैव प्रयोग करना चाहिये ॥ २२९ ॥

कट्फलं मधुकं लोध्रं त्वग्दाडिमफलस्य च। वातपित्तातिसारघ्नं पिबेत्तण्डुलवारिणा ॥ २३० ॥

कायफल, मुलैठी, लोध और अनारके फलका वल्कल इनका कल्क बनाकर चावलोंके जलके साथ सेवन करे तो वातपित्तातीसार नष्ट होताहै ॥२३०॥

कलिङ्गकं वचा मुस्तं दारु सातिविषासमम्। कल्कं तण्डुलतोयेन पिबेत्पित्तानिलामयी ॥ २३१ ॥

इन्द्रजा, वच, नागरमोथा, देवदारु और अतीस इनका कल्क चावलोंके जलके साथ पान करलेसे, वातपित्तातीसार नष्ट होता है ॥ २३१ ॥

फेनिलं बहुशो रक्तं सकलं वेदनान्वितम्। विविधं सार्यमाणश्च वातपित्तातिसारिणाम् ॥ २३२ ॥

मल झागोंदार, अधिकतर रुधिरका स्राव, अत्यन्त वेदना और अनेक रंगके दस्तों का होना ये वातपित्तातीसारके लक्षण जानने ॥ २३२ ॥

कफपित्तातीसारके लक्षण।

कट्वम्ललवणस्निग्धगुरुमिष्टोपसेवनात्। श्लेष्मपित्ते प्रकुपिते वह्निं संछाद्य देहिनाम् ॥ २३३ ॥ कषायन्तं द्रवं स्निग्धं मन्दवेगं सवेदनम्। घनं शाल्मलिपिच्छाभं पद्मपत्रनिभं क्वचित् ॥ २३४ ॥ पिच्छिलं शङ्खवर्णाभं रक्तबिन्दुभिराचितम्। क्षुत्तृष्णे चातिबहुले श्लेष्मपित्तातिसारिणाम् ॥ २३५ ॥

कटु (चरपरे), अम्ल (खट्टे), लवण (नमकीन), स्निग्ध (चिकने), गुरु (भारी) और मधुर रसोंको अधिकतर सेवन करनेसे कफ और पित्त कुपित होकर जठराग्निको आच्छादित करलेते हैं तब मनुष्योंके काथसदृश, पतला, स्निग्ध, मंदवेगवाला, मंदपीड़ायुक्त, गाढ़ा, सेमलके गोंदकेसमान पिच्छिल, कमलके पत्रके समान चिकना, शंखके समान श्वेत, और लालबिन्दुसंयुक्त मल एवं क्षुधा और तृषा अधिक लगती है। ये सब लक्षण कफपित्तातीसारमें होते हैं ॥ २३३ ॥ २३४ ॥ २३५ ॥

कफपित्तातीसारचिकित्सा ।

यथा दोषप्रशमनी दद्याद्दीपनपाचनी । यवागूर्बद्धदोषाणां श्लेष्मपित्तातिसारिणाम् ॥ २३६ ॥

कफपित्तनाशक औषधियोंके द्वारा दीपन और पाचन ऐसी यवागू बनाकर कफपित्तातीसारमें देवे। यह दोषोंके विवन्धको दूर करनेवाली है ॥ २३६ ॥

शालिपर्णीबलाबिल्वैः पृथक्पर्णी च साधिता । दाडिमाम्लयुता पेया श्लेष्मपित्तातिसारिणाम् ॥ २३७ ॥

शालिपर्णी, वेलगिरी, खिरैंटी और पृश्निपर्णी इनके क्वाथसे पेया बनाकर उसमें अनारका रस और इमलीका रस डालकर कफपित्तातीसारवाले रोगीको पिलावे ॥ २३७ ॥

कुटजातिविषा मुस्तं हरिद्रा पर्णिनीद्वयम् । सक्षौद्रशर्करं शस्तं श्लेष्मपित्तातिसारिणाम् ॥ २३८ ॥

इन्द्रजौ, अतीस, नागरमोथा, हल्दी, शालपर्णी, और पृश्निपर्णी इनके क्वाथमें शहद और मिश्री मिलाकर पान करे तो कफपित्तातीसार नष्ट होता है २३८

मुस्ता सातिविषा मूर्वा वचा च कुटजः समाः । एषां कषायः सक्षौद्रः श्लेष्मपित्तातिसारहृत् ॥ २३९ ॥

नागरमोथा, अतीस, चुरनहार, वच और कुडेकी छाल इनके क्वाथमें शहद मिलाकर पान करनेसे कफपित्तातीसार नष्ट होता है ॥ २३९ ॥

मुस्तं हरिद्रे मधुकं पृष्टपर्णी सवृक्षकम् । मधुयुक्तं निहन्त्याशु श्लेष्मपित्तसमुद्भवम् ॥ २४० ॥ सवेदनं सरक्तश्च पुरीषं सन्दधाति च । श्लेष्मपित्तातिसारघ्नं रक्तं चाशु नियच्छति ॥२४१॥

नागरमोथा, हल्दी, दारुहल्दी, मुलेठी, पिठवन और कुड़ेकी छाल इनके क्वाथमें शहद मिलाकर पान करे तो शीघ्र ही कफपित्तातीसार नष्ट होता है तथा पीड़ायुक्त रुधिरसहित मलका गिरना बंद होता है ॥ २४०॥२४१ ॥

पाठावत्सकबीजानि चित्रकं विश्वभेषजम् । पिबेन्निःक्वाथ्य चूर्णानि कृत्वा वोष्णेन वारिणा ॥२४२॥ पित्तश्लेष्मातिसारघ्नं ग्रहण्यां शूलनुद्भिनम् ॥२४३॥

पाढ, कुड़ेके बीज, चीता और सोंठ इनका क्वाथ अथवा इनका चूर्ण बनाकर उष्णजलके साथ पीवे तो कफपित्तातीसार, संग्रहणी और शूल रोग नष्ट होता है ॥ २४२ ॥२४३ ॥

लोध्रं चन्दनयष्ट्याह्वदार्वीपाठाऽनिलोत्पलम् । तण्डुलोदकसंपिष्टं दीर्घवृन्तत्वगान्वितम् ॥ २४४ ॥ पूर्ववत् क्वथितादस्माद्रसमादाय शीतलम् । मध्वक्तं पाययेच्चैतत् कफपित्तोत्तरामये ॥२४५ ॥

लोध, चन्दन, मुलेठी, दारुहल्दी, पाढ, सागोन, कमल और स्योनाककी छाल इन सबको चावलोंके जलके साथ पीसकर पूर्वोक्त पुटपाककी रीतिसे पकावे, जब शीतल हो जाय तब उसमेंसे रस निकालकर शहद मिलाकर पानकरे इससे कफपित्तातिसार नष्ट होता है ॥ २४४ ॥ २४५ ॥

वातकफादिके लक्षण ।

रसैः स्वादुकटुप्रायैरुभौ वातकफौ नृणाम् । कुरुतस्तावतीसारं क्रुद्धौ वह्निं निरस्य च ॥ २४६ ॥

स्वादिष्ठ और कटुरसोंको अधिकतर सेवन करनेसे मनुष्योंके वात और कफ कुपित होकर अग्निको शमन करके अतीसारको उत्पन्न करते हैं २४६॥

द्रवं सफेनं पुरीषं तत्तुल्यमामगन्धिकम् । सशब्दं वेदनावन्तं न चामं परिपच्यते ॥ २४७ ॥ नित्यं गुडगुडायन्तं तन्द्रामूर्च्छाभ्रमक्लमैः । प्रसक्तं सन्धिकटयूरूजानुपृष्ठास्थिशूलिनः ॥ २४८ ॥

जिसमें पतला, झागोंदार, आमगन्धवाला, शब्दयुक्त, वेदनासहित और आमयुक्त नित्य गुडगुडाहटके साथ

मल उतरता है एवं उसमें तन्द्रा, मूर्च्छा, भ्रम, ग्लानि तथा सन्धि, कमर, घुटने, जांघ और पीठकी हड्डीमें शूलकी पीडा होती है ॥ २४७ ॥ २४८ ॥

चिकित्सा ।

धान्यपञ्चकसंसिद्धो धान्यविश्वकृतोऽथवा । आहारो भिषजा योज्यो वातश्लेष्मातिसारिणाम् ॥ २४९ ॥

धान्यपंचकके क्काथमें, अथवा धानियाँ और सोंठके क्काथमें सिद्ध कियाहुआ आहार वातकफातीसारवाले मनुष्यको हितकारी है ॥ २४९ ॥

चिरबिल्वं वचा दारु पञ्चकोलं पुनर्नवा । विदारिगन्धाबृहतीबिल्वाद्यं खण्डितान्यवान् । क्काथो यवागूर्यूषं वा वातश्लेष्मातिसारिणाम् ॥ २५० ॥

करंज, वच, देवदारु, पंचकोल, (पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ) पुनर्नवा, शालपर्णी, बडीकटेरी, बेलगिरी आदि औषधि और कुटे हुए जौ इनका क्काथ या यवागू अथवा यूष बनाकर वातकफातीसारवाले रोगीको पान करावे ॥ २५० ॥

बिल्वं वत्सकबीजानि पाठा हिंगुशिवान्विता । वातश्लेष्मातिसारेषु कषायं पाचनं पिबेत् ॥ २५१ ॥

बेलगिरी, इन्द्रजौ, पाढ, हींग और हरड इनका क्काथ वातकफातीसारमें पाचनरूपसे पान करे २५१

चित्रकातिविषा मुस्तं बालबिल्वं सनागरम् । वत्सकत्वक्फलं पथ्या वातश्लेष्मातिसारनुत् ॥ २५२ ॥

चीता, अतीस, नागरमोथा, कच्चा बेल, सोंठ, कुडेकीछाल इन्द्रजौ और हरड इनका क्काथ वातकफातीसारको नष्ट करता है ॥ २५२ ॥

पूतिदारुत्वचं रोध्रं कट्वङ्गमथ नागरम् । दाडिमाम्लयुतं दद्याद्वातश्लेष्मातिसारिणाम् ॥ २५३ ॥

दुर्गन्धकरंज, देवदारुकी छाल, लोध, श्योनाक और सोंठ इनके क्काथमें अनारका रस मिलाकर पीवे तो वातकफातीसार नष्ट होता है ॥ २५३ ॥

वातातिसारे यच्चोक्तं पाचनं ग्राहि भेषजम् । तदत्रापि प्रयुञ्जीत सपित्तकफमारुते ॥ २५४ ॥

वातातीसारमें कहीहुई पाचन और ग्राही औषधिपित्तयुक्त कफवातातीसारमें भी प्रयोग करे॥२५४॥

छर्द्यतीसारकी चिकित्सा ।

बिल्वचूतास्थिनिर्यूहः पीतः सक्षौद्रशर्करः । निहन्याच्छर्द्यतीसारं वैश्वानर इवाहुतिम् ॥ २५५ ॥

बेलगिरी और आमकी गुठलीके रसको शहद और मिश्री मिलाकर पान करे तो वमन और अतीसार नष्ट होता है ॥ २५५ ॥

पटोलयवधान्याकक्काथः पेयः सुशीतलः । शर्करामधुसंयुक्तः छर्द्यतीसारनाशनः ॥ २५६ ॥

पटोलपात, इन्द्रजौ और धनियेके क्काथमें मिश्री और शहद मिलाकर पान करनेसे वमन और अतीसार नष्ट होता है ॥ २५६ ॥

प्रियंग्वंजनमुस्ताह्वं पाययेत्तु यथाबलम् । तृष्णातीसारछर्दिघ्नं सक्षौद्रं तण्डुलाम्बुना ॥ २५७ ॥

फूलप्रियंगु, रसोत और नागरमोथा इनके चूर्णको शहदमें मिलाकर चावलोंके जलके साथ शरीरके बलानुसार सेवन करे तो तृषा, अतीसार और वमन दूर होती है ॥ २५७ ॥

कषायो भृष्टमुद्गस्य सलाजमधुशर्करः । छर्द्यतीसारतृड्दाहज्वरघ्नः संप्रकाशितः ॥ २५८ ॥

भुनीहुई मूँगके क्काथमें खीलें और मिश्री मिलाकर पीवे तो वमन, अतीसार, तृषा और ज्वरका नाश होता है ॥ २५८ ॥

जंब्वाम्रपल्लवोशीरवटशुङ्गावरोहकम् । रसः क्काथोऽथवा चूर्णं क्षौद्रेण

सह योजितम् ॥ २५९ ॥ छर्दिज्वरमतीसारं मूर्च्छां तृष्णाश्च दुर्जयाम् । नियच्छत्यचिराद्रक्तच्युतिं वाऽनेकहेतुकाम् ॥ ५६० ॥

जामुन और आमके नवीन पत्ते, खस और वड़के अंकुर इनका स्वरस अथवा क्वाथ किंवा चूर्ण शहदके साथ सेवन करे तो वमन, ज्वर, अतीसार, मूर्छा, दुर्जय तृषा, अनेक कारणोंसे उत्पन्न हुआ अतीसार, और रुधिरका गिरना ये सब दूर होते हैं ॥ २५९॥ ॥ २६० ॥

शोथातिसारचिकित्सा ।

विडङ्गातिविषा मुस्तं दारुपाठा कलिङ्गकम् । मरिचेन समायुक्तं शोथातीसारनाशनम् ॥ २६१ ॥

वायविडंग, अतीस, नागरमोथा, देवदारु, पाढ और इन्द्रजौ इनके क्वाथमें काली मिरचोंका चूर्ण डालकर पान करनेसे शोथातीसार नाश होता है ॥ २६१ ॥

किराताब्दामृतोदीच्यमुस्तचन्दनधान्यकैः । शोथातिसारहृल्लासतृड्दाहज्वरनाशनः॥ २६२ ॥

चिरायता, नागरमोथा, गिलोय, सुगन्धवाला, मोथा,चन्दन और धनियाँ इनका क्वाथ शोथातीसार, उबकाई, तृषा, दाह और ज्वरनाशक है ॥ २६२॥

विश्वौषधस्य गर्भेण दशमूलजले शृतम् । घृतं निहन्त्यतीसारं ग्रहणीं पाण्डुकामलाम् ॥ २६३ ॥

सोंठके कल्क और दशमूलके क्वाथके द्वारा घृतको पकाकर सेवन करे तो अतीसार, संग्रहणी, पाण्डु और कामलारोग नष्ट होता है ॥ २६३ ॥

शोक और भयातिसारकी । चिकित्सा ।

तैस्तैर्भावैः शोचतोऽल्पाशनस्य बाष्पोष्मा वै वह्निमाविश्य जन्तोः । कोष्ठं गत्वा क्षोभयेत्तस्य रक्तं तच्चाधस्तात्काकणन्ती प्रकाशम् ॥ २६४ ॥ निर्गच्छेद्वै विड्विमिश्रं ह्यविड् वा निर्गन्धं वा गन्धवच्चातिसारः । शोकोत्पन्नो दुश्चिकित्स्योऽतिमात्रं रोगो वैद्यैः कष्ट एष प्रदिष्टः ॥ २६५ ॥

धन, पुत्र, मित्र, स्त्री इत्यादि इष्ट वस्तुओंके नष्ट होनेसे जब मनुष्य अत्यन्त खेद खिन्न हो जाय तब उसकी क्षुधा मंद होकर उसके बाष्प (जलधातु) और उष्मा (गरमी) यह दोनों कोठेमें जाकर जठराग्निको मंद कर रुधिरको क्षोभित करती हैं । फिर वह रुधिर गुंजाके समान लाल, गुदाके द्वारा मलमिश्रित अथवा मलरहित दुर्गन्धसहित अथवा विना गन्धवाले दस्तके साथ आताहै इसको शोकातीसार कहते हैं । यह अत्यन्त दुश्चिकित्स्य वैद्योंसे कष्टसाध्य है ॥ २६४ ॥ २६५ ॥

भयशोकसमुद्भूतौ ज्ञेयौ वातातिसारवत् । तयोर्वातहरी कार्य्या हर्षणाश्वासनैः क्रिया ॥ २६६ ॥

भयसे और शोकसे जो उत्पन्न हुए अतीसार उनकी चिकित्सा वातातीसारके समान करे । तथा वातनाशक औषधियों, आनन्दजनक वस्तुओं और धीरजके द्वारा उनको शमन करे ॥ २६६ ॥

विषार्शःकृमिसंभूते हिता चोभयशर्मदा ॥ २६७ ॥

विष अर्श और कृमिसे उत्पन्न हुए अतीसारमें हितकारक और सुखकारक दोनों प्रकारकी चिकित्सा करे ॥ २६७ ॥

कल्याणावलेह ।

शर्कराधातुकीलोध्रैः पाठारलुकपिप्पली । समङ्गाभिर्मोचरसपद्मकेसरसंयुतैः ॥ २६८ ॥ अर्शःप्रभावकृमिजं विरुद्धपानान्नदोषसम्भृतम् । अतिसारमयं शमयति लेहः कल्याणको नाम्ना ॥ २६९ ॥

मिश्री, धायके फूल, लोध, पाढ, स्योनाक, पीपल, मजीठ, मोचरस और कमलकेशर इनसबको समान भाग लेकर विधिपूर्वक अवलेह बनावे। यह कल्याण नामक अवलेह बवासीर और कृमिरोगसे उत्पन्न हुए तथा विरुद्ध अन्नपानके सेवन करनेसे उत्पन्न हुए अतीसारको शमन करता है ॥ २६८॥२६९ ॥

दीप्ताग्निर्बहुदोषो यो विबन्धं वातिसार्य्यते । विडङ्गत्रिफलाकृष्णाकषायैस्तं विरेचयेत् ॥ २७० ॥

दीप्ताग्नि और बहुत दोषयुक्त अतीसारवाले रोगी के विबन्ध सहित मल उतरे तो वायविडंग, त्रिफला और पीपल इनका क्वाथ पिलाकर विरेचन करावे ॥ २७० ॥

क्षुत्क्षामस्य विरिक्तस्य युञ्ज्यात्पेयां विचक्षणः । भेषजैर्मारुतघ्नैश्च दीपनैः संप्रकल्पिताम् ॥ २७१ ॥

जिसके क्षुधाकी व्याकुलतासे दस्त होने लगें, उसको वातनाशक दीपन औषधियोंके द्वारा सिद्ध कीहुई पेया पान करनेको देवे ॥ २७१ ॥

अन्नाजीर्णात्प्रद्रुताः क्षोभयन्तः कोष्ठं दोषा धातुसङ्घान्मलांश्च । नानावर्णं नैकशः सारयन्ति शूलोपेतं षष्ठमेनं वदन्ति ॥ २७२ ॥

भोजन किये हुए अन्नके अजीर्ण होनेसे, वातादिदोष क्षोभित होकर अपने मार्गको छोडकर, कोठेमें जाकर और कोठेको बिगाड कर रस रक्तादि धातु और मलादिको गुदाके द्वारा निकालते हैं वह अनेकरंगका और शूलयुक्त होता है उसको छठा आमातीसार कहते हैं ॥ २७२ ॥

तत्रापि वमनं कार्य्यं लङ्घनं च यथाक्रमम् । शूलानाहप्रसेकान्तं वामयेदतिसारिणाम् ॥ २७३ ॥ पिप्पलीलवणाभ्यांश्च साधितेन जलेन वा । विश्वोदीच्योदकं पानं लङ्घनं वापि शस्यते ॥ २७४ ॥ पिप्पल्यादिः प्रयोक्तव्यो यूषःसह षडादिभिः॥२७५॥

इसमें यथाक्रमसे वमन और लंघन कराने चाहिये तथा शूल, आनाह् और प्रसेक रोगको शमन करनेके लिये पीपल और लवणके द्वारा सिद्ध किये हुए जलसे वमन करावे फिर सोंठ और सुगन्धवाला इनके क्वाथको पीना और लंघन करना हितकारी है तथा पिप्पल्यादिगणकी औषधियोंके साथ षडङ्गादि यूष प्रयोग करना चाहिए॥ २७३ ॥ २७४॥ २७५ ॥

आमपाचनविधि ।

नागरातिविषा मुस्तं हिंगुवत्सकचित्रकाः । घननेजोवतीपाठापिप्पलीन्द्रयवाः समम् ॥ २७६ ॥ सैन्धवं कौटजं बीजं वचा कटुकरोहिणी । विडं पाठामतिविषां कुटजं विश्वभेषजम् ॥ २७७ ॥ एलाकुटजबीजानि लोध्रं सावरकं न्यसेत् । वत्सकातिविषाशुण्ठीबिल्वहिंगुयवांबुदाः ॥ ॥ २७८ ॥ श्लोकार्द्धविहिता योगाः षडेते पाचना मताः । उष्णाम्बुमद्यधान्याम्लैः पीता वा श्लक्ष्णचूर्णिताः ॥ २७९ ॥

सोंठ, अतीस, नागरमोथा, हींग, कुडेकी छाल और चीता १, नागरमोथा, तेजबल, पाढ, पीपल और इन्द्रजौ २, सेंधानोन, इन्द्रजौ, वच और कुटकी ३, विडनमक, पाढ, अतीस, कुडेकी छाल और सोंठ ४, इलायची, इन्द्रजौ और सफेद लोध ५, किंवा कुडेकी छाल, अतीस, सोंठ, बेलगिरी, हींग, इन्द्रजौ और नागरमोथा ६, इन छः योगोंमेंसे किसी एकके क्वाथको अथवा किसी एकके चूर्णको गरमजल, मदिरा या धानोंकी काँजीके साथ पान करे तो आम पचकर आमातीसार दूर होता है ॥ २७६—२७९ ॥

वायुः प्रवृद्धो निचितं बलासन्नुदत्यधस्तादहिताशनस्य । प्रवाहतोऽल्पं बहुशो मलाक्तं प्रवाहिकां तां प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥ २८० ॥

अहित भोजन करनेवाले मनुष्यके वृद्धिको प्राप्त वायु संचितकफको मलके साथ बारबार गुदाके द्वारा निकालता है और उसमें कठिनतासे पीडायुक्त थोडा२ दस्त आता है उसको प्रवाहिका रोग कहते हैं॥२८०

प्रवाहिका वातकृता सशूला पित्तात्सदाहा सकफा कफाच्च । सशोणिता शोणितसम्भवाच्च ताः स्नेहरूक्षप्रभवा मतास्तु ॥ २८१ ॥

वातजप्रवाहिकामें शूल होता है, पित्तजप्रवाहिकामें दाह होती है, कफकी प्रवाहिकामें कफ आता है और रुधिरकी प्रवाहिकामें रुधिर आता है, यह प्रवाहिकारोग स्नेह और रूक्ष पदार्थोंके सेवन करनेसे उत्पन्न होता है ॥ २८१ ॥

तासामतीसारवदादिशेच्च लिङ्गं क्रमं चामविपक्कताञ्च ॥ २८२ ॥ तैलं सर्पिर्दधि क्षौद्रं सिता विश्वं सफाणितम् । सर्वमालोड्य पातव्यं सद्यो निर्वाहिकां जयेत् ॥ २८३ ॥

इस प्रवाहिकाके विशेष लक्षण क्रमसे अतिसारकी आम और पक्वावस्थाकी समान जानने चाहिएँ। तेल, घी, दही, शहद, मिश्री, सोंठका चूर्ण और राब इन सबको एकत्र मिलाकर पान करनेसे प्रवाहिका रोग दूर होता है ॥ २८२ ॥ २८३ ॥

कल्कः स्याद्बालबिल्वानां तिलकल्कश्च तत्समः । दध्नः सारोऽम्लस्नेहाढ्यः सद्यो हन्यात्प्रवाहिकाम्॥२८४॥

कच्चे बेलका कल्क और उसके समान तिलका कल्क, दहीकी मलाई, खटाई घी और तेल इन सबको एकत्र मिलाकर सेवन करे तो तत्काल प्रवाहिका रोग नष्ट होता है ॥ २८४ ॥

बलाबिल्वं गुडं तैलं पिप्पली विश्वभेषजम् । लिह्याद्वातप्रतिहते सशूले सप्रवाहिके ॥ २८५ ॥

खिरैंटी, बेलगिरी, गुड, तेल, पपिल और सोंठ इन सबको एकत्र पीसकर लेह बनाकर सेवन करे तो शूलयुक्त वातजप्रवाहिका रोग नष्ट होता है॥२८५॥

बिल्वपेशी गुडं लोध्रं तैलं मरिचयोजितम् । लीढ्वा प्रवाहिकाक्रान्तः क्षिप्रं सुखमवाप्नुयात् ॥ २८६ ॥

बेलगिरी, गुड, लोध, तेल और काली मिरच इन सबको एकत्र पीसकर भक्षण करे तो प्रवाहिका रोग आराम होता है ॥ २८६ ॥

पयसा पिप्पलीकल्कः पीतो वा मरिचोद्भवः । त्र्यहान्निर्वाहिकां हन्ति चिरकालानुबन्धिनीम् ॥ २८७ ॥

पीपलके कल्कको अथवा कालीमिरचोंके कल्कको दूधके साथ पान करनेसे बहुत दिनोंकी प्रवाहिका तीन दिनमें नष्ट होती है ॥ २८७ ॥

धातकीबदरीपत्रं कपित्थरसमाक्षिकम् । सलोध्रमेकतो दध्ना पिबेन्निर्वाहिकार्दितः ॥ २८८ ॥

धायके फूल, बेरीके पत्ते, कैथका रस, शहद, लोधका चूर्ण और दही इन सबको एकत्र करके प्रवाहिका रोगसे पीडित पान करे तो प्रवाहिका रोग नष्ट होता है ॥ २८८ ॥

त्र्यूषणाद्य घृत ।

त्र्यूषणं त्रिफला मुस्तं चित्रको हस्तिपिप्पली । बिल्वं कर्कटिका हिंगु विडङ्गं सनिदग्धिकाम् ॥ २८९ ॥ घृतप्रस्थं पचेदेभिर्गवां मूत्रे चतुर्गुणे । तत्प्रयोगं पिबेत्कोलं हन्यात्तेन प्रवाहिकाम् ॥ २९० ॥

त्रिकुटा, त्रिफला, नागरमोथा, चीता, गजपीपल, बेलगिरी काकडाशिंगी, हींग, वायविडंग और कटेरी इनके क्वाथ और चौगुने गौमूत्रके द्वारा प्रस्थ घृतको सिद्ध करे। प्रतिदिन इसमेंसे १ तोला खानेसे यह प्रवाहिका रोगको नष्ट करता है॥ २८९ ॥ २९० ॥

पिच्छाबस्ति ।

यवाः सक्तुश्च लाजानां मूलं पुष्पश्च शाल्मलेः । न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थशुङ्गाश्च द्विपलोन्मिताः ॥ २९१ ॥ त्रिप्रस्थे सलिलस्यैतत्क्षीरप्रस्थं विपाचयेत् । क्षीरशेषं कषायञ्च पूतं कृत्वा क्षिपेदयम् ॥ २९२ ॥ कल्कः शाल्मलिनिर्य्यासः समङ्गा चन्दनोत्पलम् । वत्सकस्य च बीजानि प्रियंगुः पद्मकेशरम् ॥ २९३ ॥ पि-

च्छाबस्तिरियं सिद्धा सघृतक्षौद्रश-
र्करा । प्रवाहिकागुदभ्रंशरक्तस्राव-
ज्वरापहा ॥ २९४ ॥

जौ, खीलोंके सत्तू, सेमलकी जड और फूल, वड, गूलर और पीपलके अंकुर ये सब दो पल, तीन प्रस्थ जल और एक प्रस्थ दूध लेकर सबको विधिपूर्वक पकावे जब पककर केवल दूध बाकी रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर उसमें सेमलका गोंद, मजीठ, चन्दन, कमल, इन्द्रजौ, फूलप्रियंगु और कमलकेशर इनका कल्क मिलाकर पकावे जब पककर गाढा हो जाय तब उतारलेवे इसको पिच्छा बस्ति कहते हैं । इसको घी, शहद और मिश्री मिलाकर बास्तिद्वारा प्रयोग करे । यह प्रवाहिका, गुदभ्रंश, रुधिरका गिरना और ज्वरका नाश करती है ॥ २९१-२९४ ॥

पुरीषक्षयकी चिकित्सा ।

दीप्ताग्निर्निष्पुरिषो यः सार्यते फेनि-
लं शकृत् । स पिबेत् फाणितं शुण्ठी-
दधितैलसमन्वितम् ॥२९५॥

जिस दीप्ताग्निवाले मनुष्यके झागयुक्त और विष्टा-रहित दस्त आता हो वह राब, सोंठ, दही और तेल इनको एकत्र मिलाकर सेवन करे ॥ २९५ ॥

दध्ना ससारेण समाक्षिकेण भुञ्जीत
निःसारिकपीडितस्तु । सुतप्तकुप्य-
क्कथितेन वापि क्षीरेण शीतेन
मधुप्लुतेन ॥ २९६ ॥

दहीकी मलाईमें शहद मिलाकर भक्षण करे अथवा जस्तको जलमें बुझाकर उसमें शीतल दूध और शहद डालकर पान करे ॥ २९६ ॥

बलाविश्वशृतं क्षीरं गुडतैलानुयो-
जितम् । दीप्ताग्निं पाययेत्प्रातः सुखदं
वर्चसः क्षये ॥२९७ ॥

खिरैंटी और सोंठको दूधमें औटाकर उसमें गुड और तेल मिलाकर दीप्ताग्निवाले पुरुषको प्रातःकाल पिलावे तो पुरीषक्षय दूर होता है ॥ २९७ ॥

शशमांसं सरुधिरं समंगा सघृतं द-
धि । विपाच्य खादेत्सेवेच्च मृद्वन्नं
शकृतः क्षये ॥ २९८ ॥

खरगोशका मांस और रुधिर, मजीठ, घी और दही इन सबको पकाकर सेवन करे । और इसके ऊपर मृदु आहार करे यह पुरीषक्षयको दूर करता है ॥ २९८ ॥

विबन्धवातविट्शूलपरीतः समवा-
हिकः । सरक्तपित्तश्च पयः पिबेत्तृष्णा-
समन्वितः ॥२९९ ॥

वातविबन्ध, मलरोध, शूलयुक्त प्रवाहिका, रक्त-पित्त और तृषासे पीड़ित रोगी दूध पीवे ॥ २९९ ॥

जीर्णेऽमृतोपमं क्षीरमतीसारे सुयो-
जितम् । स्वचिरोत्थे च तत्पेयमपां
भागैस्त्रिभिः शृतम् ॥ ३०० ॥

जीर्ण अतीसारमें दूध अमृतके समान है, एक भाग दूधको तीन भाग जलमें औटावे, जब पानी जलजाय केवल दूध ही बाकी रहजाय तब इसको बहुत दिनोंके पुराने अतीसारमें पान करे ॥ ३०० ॥

असाध्य लक्षण ।

पक्वजाम्बवसंकाशं यकृत्पिंडानिभं
तनु । घृततैलवसामज्जावेशवारं
पयो दधि॥ ३०१ ॥ मांसधावनतो-
याभं कृष्णं नीलारुणप्रभम् । कर्बुरं
मेचकं स्निग्धं चन्द्रकोपगतं घनम् ॥
॥ ३०२ ॥ कुणपं मस्तुलुङ्गाभं सगन्धं
क्कथितं बहु । तृष्णादाहभ्रमश्वासहि-
क्कापार्श्वास्थिशूलिनम् ॥ ३०३ ॥ सं-
मूर्च्छाऽरतिमोहैश्च युक्तं पक्वलीगु-
दम् । प्रलापयुक्तश्च भिषग्वर्जयेदति-
सारिणम् ॥ ३०४ ॥

जिसका मल पके जामुनके समान नीला, यकृत्के समान कृष्ण और लोहित हो एवं घृत, तेल, चर्बी, मज्जा हड्डीकी मींग, वेशवार (मसालेके जलके) समान दूध, दही और मांसके धोवनके समान, काला, नीला,

लाल,चित्राविचित्र अनेक रंगका, थोडा काला और रूक्ष चिकना मयूरपुच्छ चन्द्रके समान रंगवाला, गाढा,मुरदेके समान गंधवाला मस्तुलुंग (मस्तककी) मज्जा के समान, और बहुत दुर्गन्धवाला ऐसा दस्त आता है उस रोगीके तृषा,दाह, श्रम, श्वास,हिचकी पसलियोंमें शूल, मूर्च्छा,बेचैनी और मोह हो,गुदाकी वली पक जाय और प्रलाप करे तो इन लक्षणोंवाले अतीसाररोगीको त्याग देवे ॥ ३०१—३०४ ॥

असंवृतगुदं क्षीणं शूलाध्मानमुपद्रुतम् । गुदे पक्के गतोष्माणमतिसारिणमुत्सृजेत् ॥ ३०५॥

जिस क्षीणमनुष्यकी गुदा मल उतरनेके बाद बंद न हो; शूल और आध्मान इत्यादि उपद्रव हों, गुदा पक जाय और उसके शरीरमें गरमी न रहे वैद्य ऐसे अतीसार रोगीको त्यागदेवे ॥ ३०५ ॥

श्वासशूलपिपासार्त्तं क्षीणं ज्वरनिपीडितम् । विशेषेण नरं वृद्धमतिसारो विनाशयेत् ॥ ३०६ ॥

श्वास, शूल, तृषा, ज्वरसे पीडित और क्षीण इन उपद्रवोंसहित और विशेष कर वृद्ध मनुष्यको अतीसार नष्ट करदेता है ॥ ३०६ ॥

लिङ्गैरसाध्यो ग्रहणीविकारो यैस्तैरतीसारगदो न सिध्येत् । वृद्धस्य नूनं ग्रहणीविकारोऽहत्वा तनुं नैव निवर्त्तते तु ॥ ३०७ ॥

जिनलक्षणोंसे अतीसार रोग असाध्य होता है और वही लक्षण संग्रहणीमें हों तो संग्रहणी भी असाध्य जाननी। विशेष कर वृद्ध मनुष्यके उत्पन्न हुआ संग्रहणीरोग प्राणोंको लिये विना नहीं छोडता३०७॥

शोथं शूलं ज्वरं मूर्च्छां श्वासं कासमरोचकम् । छर्दिं तृष्णाञ्च हिक्काञ्च दृष्ट्वातीसारिणं त्यजेत् ॥ ३०८ ॥

वैद्य—सूजन, शूल, ज्वर, मूर्च्छा, श्वास, खाँसी, अरुचि, वमन, तृषा और हिचकी इन लक्षणोंसे युक्त अतीसारवाले रोगीको त्याग देवे ॥ ३०८ ॥

हस्तपादाङ्गुलीसन्धिप्रपाको मूत्रविड्ग्रहः । पुरीषस्योष्णतातीव कोष्ठभेदो न जीवति॥ ३०९ ॥

जिसकी हाथ और पाँवोंकी अंगुलियोंकी संधि पकती हों, मूत्र और मलका अवरोध हो एवं मलमें अत्यंत उष्णता हो तो ऐसा अतीसारवाला रोगी नहीं जीता है ॥ ३०९ ॥

विगत अतीसारके लक्षण।

यस्योच्चारं विना मूत्रं सम्यग्वायुश्च गच्छति । दीप्ताग्नेर्लघुकोष्ठस्य स्थिरस्तस्योदरामयः ॥ ३१० ॥

जिस मनुष्यके मूत्र उतरनेके समय मल न आवे, वायु शुद्धरीतिसे संचार करे, अग्निदीपन हो और कोठा हलका हो जाय उसके अतीसार आरोग्य हुआ जानना ॥ ३१० ॥

स्नानावगाहमभ्यंगं गुरु स्निग्धश्च भोजनम् । व्यायाममग्निसन्तापमतीसारे विवर्जयेत् ॥ ३११ ॥

स्नान, अवगाहन, अभ्यंग कर्म,भारी और स्निग्ध पदार्थोंका भोजन, व्यायाम और अग्निका संताप इन सबको अतीसाररोगी त्याग देवे ॥ ३११ ॥

इति अतीसाररोगचिकित्सा ।

अथ ज्वरातिसारचिकित्सा।

ज्वरातिसारयोरुक्तं निदानं यत्पृथक्पृथक् । तस्माज्ज्वरातिसारस्य तेन नात्रोदितः पुनः ॥ ३१२ ॥

ज्वर और अतीसारका जो पृथक् २ निदान कहा है उसीके अनुसार ज्वरातीसारका निर्णय करना चाहिये इन रोगोंका पृथक् २ निदान तो कहही चुके हैं इसकारण यहां ज्वरातीसारका फिर निदान नहीं कहा ॥ ३१२ ॥

च्यवमानं ज्वरात्सृष्टमुपेक्षेत मलं सदा । अतिप्रवर्त्तमानन्तु साधयेत्स चिकित्सकैः ॥ ३१३ ॥

ज्वरके मल चलायमान हुआ तो उसकी सदैव उपेक्षा करनी चाहिये और जो अधिकतर दस्त होने लगें तो वैद्योंको उत्तम विधिसे चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३१३ ॥

ज्वरातिसारयोरुक्तं भेषजं यत्पृथक्पृथक्। न तन्मिलितयोः कार्यमन्योन्यं वर्द्धते यतः ॥३१४॥ अतस्तौ प्रतिकुर्वीत विशेषोक्तचिकित्सकैः॥३१५॥

ज्वर और अतीसारमें जो पृथक्२ औषधियाँ कही हैं, उनको मिलाकर ज्वरातीसारमें कदापि प्रयोग न करे क्योंकि, ज्वरनाशक औषधि प्रायः भेदक और अतीसारनाशक तथा मलस्तम्भक होती है इस लिए दोनों परस्पर रोगोंको बढानेवाली हैं इस कारण ज्वरातीसारमें जो विशेष चिकित्सा कही है वही करनी चाहिये ॥ ३१४ ॥ ३१५ ॥

लङ्घनमुभयोर्युक्तं मिलिते कार्य्यं विशेषतस्तदनु। उत्पलषाष्टिकसिद्धं लाजामण्डादिकं पेयम् ॥ ३१६ ॥

ज्वर और अतीसार इन दोनों रोगोंमें प्रथम लंघन कराना कहा है, इसी प्रकार ज्वरातीसारमें भी प्रथम लंघन करावे पश्चात् कमल और साठीकी खीलोंका सिद्ध किया हुआ मंडादिक देवे ॥ ३१६ ॥

पृश्निपर्णीबलाबिल्वनागरोत्पलधान्यकैः। ज्वरातिसारे पेयां वा पिबेत्साम्लां शृतां नरः ॥ ३१७ ॥

पिठवन, खिरैटी, बेलगिरी, सोंठ, कमल और धनियाँ इनकी पेया बनाकर अनारदानेका रस मिला कर पीवै ॥ ३१७ ॥

धातकीक्वाथसंसिद्धा विश्वभेषजसंस्कृता। दाडिमाम्रयुता पेया ज्वरातीसारशूलिनाम् ॥ ३१८ ॥

धायके फूलोंके क्वाथ, सोंठके चूर्ण और अनारके द्वारा रस सिद्ध की हुई पेया ज्वरातीसार और शूलको नष्ट करती है ॥ ३१८ ॥

एरण्डमूलयवगोक्षुरकारनालैः स्विन्नां लिहन्ति विजयां मधुना युतां ये। तेषां प्रणाशमुपयान्त्युदरामयास्तु सर्वे सशूलविषमज्वरकासयुक्ताः ॥ ३१९ ॥

जो अंडकी जड, जौ और गोखरू इनके क्वाथ और उसके कांजीमें पकाईहुई भांगको शहदमें मिला कर सेवन करे तो सर्वप्रकारके उदररोग, सब प्रकारके शूल, खाँसी और विषमज्वर नष्ट होता है ॥ ३१९ ॥

कणाकरिकणालाजागणो मधुसितायुतः। पीतो ज्वरातिसारस्य तृष्णावम्योश्च नाशनः ॥ ३२० ॥

पीपल, गजपीपल और खीलें, इनके काथमें शहद एवं मिश्री मिलाकर सेवन करे तो ज्वरातीसार तृषा और वमन नष्ट होता है ॥ ३२० ॥

पाठेन्द्रयवभूनिम्बमुस्तपर्पटकामृता। जयत्याममतीसारं ज्वरञ्च समहौषधम् ॥ ३२१ ॥

पाढ, इन्द्रजौ, चिरायता, नागरमोथा, पित्तपापडा और गिलोय इनका क्वाथ आमयुक्त अतीसार और ज्वरको नष्ट करता है ॥ ३२१ ॥

नागरादि।

नागरातिविषामुस्तभूनिम्बामृतवत्सकैः। सर्वज्वरहरः क्वाथः सर्वातीसारनाशनः ॥ ३२२ ॥

सोंठ, अतीस, नागरमोथा, चिरायता, गिलोय और इन्द्रजौ इनका क्वाथ सबप्रकारके ज्वरों और सबप्रकारके अतीसारोंको नष्ट करता है ॥ ३५२ ॥

ह्रीबेरादि।

ह्रीबेरातिविषामुस्तबिल्वनागरधान्यकम्। पिबेत्पिच्छाविबन्धघ्नं शूलदोषामपाचनम्। सरक्तं हन्त्यतीसारं सज्वरं वाथ विज्वरम् ॥ ३२३ ॥

सुगन्धवाला, अतीस, नागरमोथा, बेलगिरी सोंठ और धनियाँ इनका क्वाथ, विबन्ध और शूल दोषको नष्ट करता है तथा झागोंसहित आमको पचाता है एवं रक्तातीसार, ज्वरातीसार, अथवा ज्वररहित अतीसारको भी दूर करता है ॥ ३२३ ॥

गुडूच्यादि।

गुडूच्यतिविषाधान्यशुण्ठीबिल्वाब्दवालकैः। पाठाभूनिम्बकुटजचन्दनो-

शीरपर्पटैः॥ ३२४ ॥पिबेत्कषायं सक्षौद्रं पिपासादाहनाशनम्। ज्वरातिसारसन्तापं नाशयेदविकल्पतः॥ ३२५ ॥

गिलोय, अतीस, धनियाँ, सोंठ, बेलगिरी, नागरमोथा, सुगन्धवाला, पाढ, चिरायता, कुडेकी छाल, चन्दन, खस और पित्तपापडा इनका क्काथ शहद मिलाकर पान करे तो पियास, दाह और ज्वरातीसारका संताप नष्ट होता है ॥ ३२४ ॥ ३२५ ॥

वत्सकस्य फलं दारु रोहिणी गजपिप्पली ।श्वदंष्ट्रा पिप्पली धान्यं बिल्वं पाठा यवानिका ॥ ३२६ ॥द्वावेतौ सिद्धयोगौ तौ श्लोकार्द्धेनाभिभाषितौ ॥ ज्वरातिसारशमनौ विशेषाद्दाहनाशनौ ॥ ३२७ ॥

इन्द्रजौ, देवदारु, कुटकी और गजपीपल १, अथवा गोखरू, पीपल, धनियाँ, बेलगिरी, पाढ और अजवायन २ इन दोनोंमेंसे किसी योगका क्काथ बनाकर पान करे तो ज्वरातीसार शमन होता है और विशेष कर दाह नष्ट होती है ॥ ३२६॥ ३२७॥

उत्पलं दाडिमत्वचं पद्मकेसरमेव च । पिबेत्तंडुलतोयेन ज्वरातीसारनाशनम् ॥ ३२८ ॥

कमल, अनारकी छाल, कमलकेशर, इनके चूर्णको चावलोंके जलके साथ पीवे तो ज्वरातीसार नष्ट होता है ॥ ३२८ ॥

उशीरं बालकं मुस्तं धान्यकं विश्वमेव च । समङ्गा धातकी लोध्रं बिल्वं दीपनपाचनम् ॥ ३२९ ॥हन्त्यरोचकपिच्छामं विविधं सातिवेदनम् । सशोणितमतीसारं सज्वरं वाथ विज्वरम् ॥ ३३० ॥

खस, सुगन्धबाला, नागरमोथा, धनियाँ, सोंठ, लज्जावंती, धायके फूल, लोध और बेलगिरी इनका क्काथ दीपन और पाचन है तथा अरुचि, पिच्छल, आम नानाप्रकारकी पीडासहित रक्तातीसार, ज्वरसहित अथवा विना ज्वरवाले अतीसारको नष्ट करता है ॥ ३२९ ॥ ३३० ॥

बिल्ववालकभूनिम्बगुडूचीधान्यनागरैः । कुटजाब्दयुतः क्काथो ज्वरातीसारशूलनुत ॥ ३३१ ॥

बेलगिरी, सुगन्धवाला, चिरायता, गिलोय, धनियाँ, सोंठ, कुडेकी छाल और नागरमोथा इनका क्काथ ज्वरातीसार और शूलको नष्ट करता है ३३१

समङ्गा धातकीपुष्पं केशरं नीलमुत्पलम् । तण्डुलोदकसंयुक्तं ज्वरातीसारनाशनम् ॥ ३३२ ॥

लज्जावंती, धायके फूल, नागकेशर और नीले कमल इनको एकत्र पीसकर चावलोंके जलके साथ सेवन करनेसे ज्वरातीसार नष्ट होता है ॥ ३३२ ॥

नागरातिविषामुस्तागुडूचीविश्ववत्सकैः । कषायः पाचनः शोथज्वरातीसारवारणः ॥ ३३३ ॥

सोंठ, अतीस, नागरमोथा, गिलोय और कुडेकी छाल, इनका क्काथ पाचन है एवं सूजन, ज्वर और अतीसारको हरनेवाला है ॥ ३३३ ॥

मुस्तकातिविषाशुण्ठीवत्सकाभयतिक्तकैः । सर्वातिसारहृल्लाससर्वशोथज्वरापहः ॥ ३३४ ॥

नागरमोथा, अतीस, सोंठ, इन्द्रजौ, हरड और चिरायता इनका क्काथ सब प्रकारके अतीसार, उबकाई और सर्व प्रकारकी सूजन तथा ज्वरको दूर करनेवाला है ॥ ३३४ ॥

क्काथेन दशमूलस्य विश्वमक्षयुगं पिबेत् । ज्वरे चैवातिसारे च सशोथे ग्रहणीगदे ॥ ३३५ ॥

दशमूलके क्काथके साथ दो तोले सोंठके चूर्णको सेवन करे तो ज्वर, अतीसार, सूजन और संग्रहणी रोग नष्ट होता है ॥ ३३५ ॥

मुस्तकविश्वातिविषागोपीभूनिम्बवत्सकक्काथः ।मकरन्दगर्भयुक्तो ज्वरातिसारं जयेद्घोरम् ॥ ३३६ ॥

नागरमोथा, सोंठ, अतीस, सारिवा, चिरायता और कुडेकी छाल इनके क्वाथमें कमलकेशरका चूर्ण मिलाकर पान करे तो ज्वरातीसार नष्ट होता है३३६

नागरामृतभूनिम्बबिल्वामलकवत्सकैः। समुस्तातिविषोशीरैर्ज्वरातीसारहृज्जलम् ॥ ३३७ ॥

सोंठ, गिलोय, चिरायता, बेलगिरी, आमले, इन्द्रजौ, नागरमोथा, अतीस और खस इनका क्वाथ ज्वरातीसारको शांत करता है ॥ ३३७ ॥

व्योषादि चूर्ण ।

व्योषं वत्सकबीजञ्च निम्बभूनिम्बमार्कवम् । चित्रकं रोहिणीं पाठां दार्वीमातिविषां वचाम् ॥ ३३८ ॥ श्लक्ष्णं चूर्णीकृतं सर्वं तत्तुल्यां वत्सकत्वचम् ।। सर्वमेकत्र संयोज्य प्रपिबेत्तंडुलाम्बुना ॥ ३३९ ॥ सक्षौद्रं वा पिबेदेतत्पाचनं ग्राहि दीपनम् । तृष्णारुचिप्रशमनं ज्वरातीसारनाशनम् ॥ ३४० ॥ कामलाग्रहणीदोषान्गुल्मं प्लीहानमेव च । प्रमेहं पाण्डुरोगञ्च श्वयथुञ्चापकर्षति ॥ ३४१ ॥

त्रिकुटा,इन्द्रजौ, नीमकी छाल,चिरायता, भांगरा, चीता, कुटकी, पाढ, दारुहल्दी, अतीस और बच इन सबको समान भाग लेवे और सबके समान कुडेकी छाल लेवे फिर सबको एकत्र कूट पीसकर चावलोंके जलके साथ अथवा शहदके साथ सेवन करे। यह पाचन, मलरोधक, अग्निको दीपन करनेवाला, तथा तृषा अरुचि और ज्वरातीसारको शमन करनेवाला है एवं कामला, संग्रहणीरोग,गुल्म, प्लीहा, प्रमेह, पाण्डुरोग और सूजनको नष्ट करता है ॥३३८—३४१ ॥

कट्वंगादि वटक।

कट्वङ्गबिल्वजंब्वास्थिकपित्थं सरसाञ्जनम् । लाक्षाहरिद्रे ह्रीबेरं कट्फलं शुकनासिकाम् ॥ ३४२ ॥ लोध्रं मोचरसं शंखं धातकीं वटशुङ्गकम् । पिष्ट्वा तण्डुलतोयेन वटकानक्षसम्मितान् ॥ ३४३ ॥ छायाशुष्कान्पिबेत्प्रातर्ज्वरातीसारशान्तये । रक्तपित्तज्वरहराञ्छूलातीसारनाशनान्३४४॥

श्योनाककी छाल, बेलगिरी, जामुनकी गुठली, कैथ, रसौत, लाख, हल्दी, दारुहल्दी, सुगन्धवाला, कायफल, श्योनाककी छाल, लोध, मोचरस, शंख, धायके फूल और बड़के अंकुर इनको चावलोंके जल में पीसकर एक २ तोलेके बडे बनाकर छायामें सुखा देवे फिर इनको प्रात:काल सेवन करे। यह ज्वरातीसारको शांत करते हैं तथा रक्त पित्त ज्वर, शूल और अतीसारको नष्ट करते हैं ॥ ३४२—३४४ ॥

पाठामतिविषां निम्बं समङ्गा चन्दनं जलम् । धातकीं मुस्तभूनिम्बं जटामांसीं सनागराम् ॥ ३४५ ॥ दार्वीं च समभागानि घृतप्रस्थे विपाचयेत् । सज्वरेऽस्मिन्नतीसारे ग्रहण्यां पाण्डुरोगिणि । मूत्रकृच्छ्रे गुदस्रावे विषूच्यामलसे हितः ॥ ३४६ ॥

पाढ, अतीस, नीमकी छाल, लज्जावंती, चन्दन, सुगन्धवाला, धायके फूल, नागरमोथा, चिरायता, बालछड,सोंठ और दारुहल्दी, इन सबको समान भाग लेकर क्वाथ और कल्क बनाकर घृतको सिद्ध करे। यह घृत—ज्वरातीसार, संग्रहणी, पाण्डुरोग, मूत्रकृच्छ्र गुदस्राव और विषूचिका तथा अलसक रोगमें अत्यन्त हितकारक है ॥ ३४५ ॥ ३४६ ॥

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायामतीसाराधिकारः सम्पूर्णः ॥

अथ ग्रहणी रोग ।

अतिसारे निवृत्तेऽपि मन्दाग्नेरहिताशनः। भूयः सन्दूषितो वह्निर्ग्रहणीमभिदूषयेत ॥ १ ॥

अतीसारके निवृत्त होनेपर भी मंदाग्निवाले पुरुष के अहित पदार्थोंके सेवन करनेसे जठराग्नि दूषित होकर ग्रहणीकलाको अभिदूषित कर संग्रहणी रोगको उत्पन्न करती है ॥ १ ॥

तस्मात्कार्य्यः परीहारस्त्वतीसारे विरेकवत् । यावन्न प्रकृतिस्थः स्याद्दोषतः प्राणतस्तथा ॥ २ ॥

इस कारण जबतक दोषमें और आत्मा प्रकृतिमें स्थित न हो तबतक अतीसार रोगी विरेचन (जुलाब) के समान परहेज करे ॥ २ ॥

मांसासृङ्मेदसे तिस्रश्चतुर्थी श्लेष्मधारिणी । पञ्चमी च मलं धत्ते षष्ठी चाग्निधरा मता । रेतोधरा सप्तमी स्यादिति सप्त कलाः स्मृताः ॥ ३ ॥

पहली कला—मांसको धारण करती है, दूसरी कला—रुधिरको,तीसरी कला—मेदको, चौथी कला कफको,पांचवी कला—मलको, छठी कला—अग्निको, और सातवीं कला—रेतको धारण करती है, इस प्रकार ये सात कलायें कही हैं ॥ ३ ॥

षष्ठी पित्तधरा नाम या पूर्वं समुदाहृता । पक्कामाशयमध्यस्था ग्रहणी सा प्रकीर्तिता ॥ ४ ॥

इनमें जो छठी पित्तधरा नामक कला कही है वह पक्काशय और आमाशयके मध्यमें स्थित है उसी को ग्रहणी कहते हैं ॥ ४ ॥

अग्न्यधिष्ठानमन्नस्य ग्रहणाद् ग्रहणी मता । नाभेरुपरि सा ह्यग्निबलोपस्तम्भबृंहिता ॥ ५ ॥

अन्नका अधिष्ठान अग्नि है और उसको ग्रहण करनेसे ग्रहणी कहते हैं। वह अग्नि नाभिके ऊपर स्थित ह तथा बलसे स्तम्भित और पुष्ट रहती है ॥ ५ ॥

अपक्वं धारयत्यन्नं पक्वं सृजति चाप्यधः ॥ ६ ॥

अपक्व अन्नको धारण करती है और पके हुए अन्न को नीचे गिरा देती है ॥ ६ ॥

ग्रहण्यामलमग्निर्हि स चापि ग्रहणीं श्रितः । तस्मात्सन्दूषिते वह्नौ ग्रहणी दूष्यते नृणाम् ॥ ७ ॥

ग्रहणीका बल अग्नि ही है और ग्रहणीके आश्रित है, इसलिये अग्निके दूषित होनेसे मनुष्योंके ग्रहणी भी दूषित हो जाती है ॥ ७ ॥

एकैकशः सर्वशश्च दोषैरत्यर्थमूर्च्छितैः । सा दुष्टा बहुशो भुक्तमाममेव विमुञ्चति ॥ ८ ॥ पक्वं वा सरुजं पूति मुहुर्बद्धं मुहुर्द्रवम् । ग्रहणीरोगमाहुस्तमायुर्वेदविदो जनाः ॥ ९ ॥

अत्यन्त दुष्ट हुए अलग २ वात, पित्त, कफ, और मिले हुए दोषोंसे वह ग्रहणी दुष्ट होकर अपक्व अथवा पक्व मलको गुदाके द्वारा गिराती है उस समय प्रायः पीडा हो, मल दुर्गन्धयुक्त हो, कभी पतला और कभी गाढा मल उतरता हो तो इसको वैद्यलोग संग्रहणी कहते हैं ॥८॥९॥

संग्रहणीका अपूर्वरूप ।

पूर्वरूपन्तु तस्येदं तृष्णालस्यं बलक्षयः । विदाहोऽन्नस्य पाकश्च चिरात्कायस्य गौरवम् ॥ १० ॥

तृषा, आलस्य, बलका नाश, अन्नका दाहपूर्वक बहुतकालमें पचना और शरीरमें भारीपन, यह संग्रहणीके पूर्व लक्षण जानने ॥ १० ॥

संग्रहणीका निदान और रूप ।

कटुतिक्तकषायातिरूक्षशीताम्लभोजनैः । प्रमितानशनात्यध्ववेगनिग्रहमैथुनैः ॥ ११ ॥ मारुतः कुपितो वह्निं संछाद्य कुरुते गदान् ॥ १२ ॥

चरपरे, कडवे, कषैले, अत्यन्त रूखे, शीतल और खट्टे पदार्थोंके सेवन करनेसे, या अल्प भोजन करनेसे, अथवा उपवास करनेसे, अधिकतर मार्गके चलनेसे, मल मूत्रादिकोंके वेगको रोकनेसे

और अत्यंत स्त्रीप्रसंग करनेसे, वायु कुपित होकर अग्निको आच्छादित कर रोगोंको उत्पन्न करता है ॥ ११ ॥ १२ ॥

संग्रहणीके लक्षण।

तस्यान्नं पच्यते दुःखं शुक्तपाकं खरां गता। कंठास्यशोषः क्षुत्तृष्णा तिमिरं कर्णयोः स्वनः ॥ १३ ॥ पार्श्वोरुवंक्षणग्रीवारुगभीक्ष्णं विषूचिका। हृत्पीडा कार्श्यदौर्बल्यं वैरस्यं परिकर्तिका ॥ १४ ॥ गृद्धिः सर्वरसानाञ्च मनसः सदनं तथा। जीर्णे जीर्यति चाध्मानं भुङ्क्ते स्वास्थ्यमुपैति च ॥ १५ ॥ सवातगुल्महृद्रोगप्लीहाशंकी च मानवः ॥ चिराद्दुःखं द्रवं शुष्कं तन्वामं शब्दफेनवत्। पुनः पुनः सृजेद्वर्चः कासश्वासार्दितोऽनिलात् ॥ १६ ॥

उस रोगीके अन्न अत्यन्त कष्टसे पचता है और उसका पाक खट्टा होता है, शरीरमें रूक्षता होती है, कण्ठ और मुख सूखता है, क्षुधा और तृषा अधिक लगे, आँखोंके सम्मुख अंधकार दीखे, कानोंमें शब्द हो, पसली, जानु, वंक्षण और ग्रीवा इनमें अधिक पीडा हो, विषूचिका (अर्थात् कै और दस्त हों), कच्चा अन्न निकले अथवा वारवार सुईके समान पीडा हो, हृदयमें वेदना हो, शरीर कृश और दुर्बल हो, मुखमें विरसता, गुदामें कतरनीके समान पीडा तथा सर्व रसवाले पदार्थोंको भक्षण करनेकी सदैव इच्छा हो, मनमें ग्लानि हो, भोजनके पचते समय अथवा पच जानेपर अफारा हो और भोजन करते समय सुख हो, वायुका गोला हो, हृदयरोग, प्लीहा इन रोगोंकी शंका, बहुत देरमें अत्यन्त कष्टसे कभी पतला, कभी सूखा और बहुत थोडा, आम शब्द और झाग मिला बारबार मल उतरता है तथा वातसे श्वास और खाँसी भी होती है (यह वातसे उत्पन्न हुई ग्रहणीके लक्षण जानना चाहिये)॥ १३ ॥ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥

ग्रहणीमाश्रितं दोषमजीर्णवदुपाचरेत्। लङ्घनैर्दीपनीयैश्च सामातीसारभेषजैः ॥ १७ ॥ दोषं सामं निरामञ्च विद्यादत्रातिसारवत्। अतीसारोक्तविधिना तस्यामञ्च विपाचयेत् ॥ १८ ॥

संग्रहणीरोगमें अजीर्णके समान चिकित्सा करे, तथा आमातीसारोक्त लंघन करावे और दीपन औषधि देवे। जिस प्रकार अतिसारमें दोषोंकी समता अथवा निरामता प्रथम ही जान ली जाती है उसी प्रकार इनमें भी दोषोंकी साम और निराम अवस्था प्रथम विचार लेनी चाहिये। जो दोष आम सहित हो तो अतीसारोक्त विधिके अनुसार आमको पचावे ॥ १७ ॥ १८ ॥

विशुद्धामाशयायास्मै पञ्चकोलकसंस्कृतम्। दद्यात्पेयादिलघ्वन्नं योजयेत्तु प्रदीपनम् ॥ १९ ॥

शुद्ध आमाशयवाले मनुष्यको पंचकोलसे संस्कार किये हुए पेयादि हलके अन्न देवे, पश्चात् अग्निको दीपन करनेवाले पदार्थ प्रयोग करे ॥ १९ ॥

पञ्चकोलकयूषस्तु मूलकानां रसोऽथवा। सुस्निग्धो दाडिमाम्लश्च वातनुद्भोजने हितः ॥ २० ॥

पंचकोलका यूष, या मूलीका स्वरस अथवा अनारका रस और स्निग्ध पदार्थ इन सबको भोजनके साथ प्रयोग करे। ये सब वातकी संग्रहणीमें हितकारी हैं ॥ २० ॥

पेयादि पटु लघ्वन्नं पञ्चकोलादिभिर्युतम्। दीपनानि च तक्रं च ग्रहण्यां तु प्रयोजयेत् ॥ २१ ॥

लवणयुक्त पेयादि हलके अन्न और पंचकोल आदि सहित यूष, अग्निको दीपन करनेवाले पदार्थ और तक्र ये सब संग्रहणी रोगमें प्रयोग करने चाहिये २१

कपित्थबिल्वचाङ्गेरीतक्रदाडिमसाधिता। यवागूः पाचयत्यामं शकृत्संवर्त्तयत्यपि ॥ २२ ॥

कैथ, बेलगिरी, चांगेरी, अम्ल (चूका), तक्र और अनार इनके द्वारा सिद्ध की हुई यवागू आमको पचाती है और मलको बांधती है ॥ २२ ॥

ग्रहणीदोषिणां तक्रं दीपनं ग्राहि लाघवम्। पथ्यं मधुरपाकत्वान्न च पित्तं

प्रकोपयेत् ॥ २३ ॥ कषायोष्णविकाशित्वाद्रौक्ष्याच्चैव कफे हितम् । वाते स्वाद्वम्लसान्द्रत्वात्सद्यस्कमविदाहितम् ॥ २४ ॥

संग्रहणीरोगियोंको तक्र—दीपन पाचन और हलका है, पथ्य है, यह मधुरपाकी होनेसे पित्तको कुपित नहीं करता है कषैला, उष्ण, विकाशि और रूक्ष होनेसे कफमें हितकारी है। स्वादिष्ठ, अम्ल और सान्द्र होनेसे वातमें हितकारक है तथा तत्काल गुणकारक है और दाहकारक नहीं है ॥२३॥२४॥

शुण्ठीसमुस्तातिविषां गुडूचीं पिबेत्समांशां क्वथितां जलेन । मन्दानलत्वे सततामतायामामानुबन्धे ग्रहणीगदे च ॥ २५ ॥

सोंठ,नागरमोथा,अतीस और गिलोय इन सबको समान भाग लेकर क्वाथ बनाकर पान करे। यह क्वाथ मन्दाग्नि, आमातीसार और आमयुक्त ग्रहणीरोगको नष्ट करता है ॥ २५ ॥

पिप्पल्यादिचूर्ण ।

पिप्पलीबृहतीव्याघ्रीयवक्षारकलिंगकाः। चित्रकं शारिवापाठाशटीलवणपञ्चकम् ॥ २६ ॥ तच्चूर्णं पाययेद्दध्ना सुरयोष्णाम्भसापि वा । मारुतग्रहणीदोषे शमनं परमं मतम् ॥ २७ ॥

पीपल, बडी कटेरी, कटेरी, जवाखार, इन्द्रजौ, चीता, सारिवा, पाठा, कचूर और पांचो नमक इन सबको एकत्र पीसकर चूर्ण करले फिर इस चूर्णको गौके दहीके साथ अथवा उष्णजलके साथ सेवन करे तो वातज संग्रहणी,रोग शमन होता है ॥ २६ ॥ २७ ॥

धान्यकातिविषोदीच्ययवानीमुस्तनागरम् । बला द्विपर्णी बिल्वं च दद्याद्दीपनपाचनम् ॥ २८ ॥

धनियाँ, अतीस, सुगन्धवाला, अजवायन, नागरमोथा, सोंठ, खिरैंटी, शालपर्णी, पृश्निपर्णी और बेलगिरी इनका क्वाथ दीपन और पाचन है ॥२८॥

कालिंगाहिंग्वतिविषा वचासौवर्चलाभयाः । दार्वीग्रन्थिकमूलेन पातव्यश्चोष्ण वारिणा ॥ २९ ॥

इन्द्रजौ, हींग, अतीस, वच, कालानमक, हरड, दारु हलदी और पीपलामूल इनके चूर्णको गरम जलके साथ पीना चाहिये ॥ २९ ॥

नागरं कौटजं बीजं पिप्पली बृहतीद्वयम् । चित्रकं शारिवा पाठा क्षारं लवणपञ्चकम् ॥ ३० ॥ चूर्णयित्वा सुरामण्डं दधिकोष्णाम्बुकाञ्जिकैः । पिबेदग्निविवृद्ध्यर्थं कोष्ठवातहरं परम् ॥ ३१ ॥

सोंठ, कुडेके बीज, पीपल, बडी कटेरी, कटेरी, चीता, सारिवा, पाढ, जवाखार और पाँचों नमक इनका चूर्ण करके सुरा मंडके साथ अथवा दहीके साथ किंवागरम जल या कांजीके साथ अग्निको बढानेके लिए पान करे । यह कोठेकी वायुको हरनेवाला है ॥ ३० ॥ ३१ ॥

हिंग्वष्टकचूर्ण ।

यवानीव्योषसिन्धूत्थजीरकद्वयहिंगुजम् । आद्यग्रासाशितं साज्यं चूर्णं वातनुदग्निकृत ॥ ३२ ॥

अजवायन, त्रिकुटा, सैंधानोंन, जीरा, कालाजीरा और हींग इनका चूर्ण करके घी मिलाकर भोजनके पहले ग्रासमें मिलाकर भक्षण करे । यह चूर्ण वातनाशक और अग्निको दीपन करता है ॥ ३२ ॥

कृष्णाविडविजयानां गुटिका सर्पिष्मती पाने । ग्रहणीदोषेष्वरुचिमन्दाग्निशकृद्विबन्धे च ॥ ३३ ॥

पीपल, विरियासंचरनोन और भाँग इनको एकत्र पीसकर घीके योगसे गोली बना लेवे । यह गोली—संग्रहणीरोग, अरुचि, मंदाग्नि और मलकी विबन्धताको नष्ट करती है ॥ ३३ ॥

चित्रकादिगुटिका ।

चित्रकं पिप्पलीमूलं द्वौ क्षारौ लवणानि च । व्योषं हिंग्वजमोदाश्च

चव्यं चैकत्र चूर्णयेत् ॥ ३४ ॥ गुटिका मातुलुङ्गस्य दाडिमस्य रसेन वा । कृता विपाचयत्यामं दीपयत्याशु चानलम् ॥ ३५ ॥

चीता, पीपलामूल, जवाखार, सज्जी, पांचों नमक, त्रिकुटा, हींग, अजमोद और चव्य इनको एकत्र पीसकर बिजौरे नींबूके स्वरस अथवा अनारके स्वरससें खरलकर गोली बना लेवे। यह गोली—आमको पचाती है और अग्निको दीपन करती है ॥ ३४ ॥ ३५॥

सौवर्चलं सैन्धवञ्च विडमौद्भिदमेव च। सामुद्रेण समं पञ्च लवणान्यत्र योजयेत्॥ ३६ ॥

कालानमक, सैंधानमक, साम्भरनमक[1], खारीनमक और समुद्रनोन यह पाँचों समान भाग लेवे इनके समुदायको पंचलवण कहते हैं ॥ ३६ ॥

ज्ञात्वा तु परिपक्कं च वातजं ग्रहणीगदम्। दीपनैर्भेषजैः पक्कैः सर्पिर्भिः समुपाचरेत् ॥ ३७॥

वातजसंग्रहणीको परिपक्क जानकर दीपन औषधियोंके द्वारा सिद्ध किये हुए घृतसे चिकित्सा करे३७॥

धान्यबिल्वबलाशुण्ठीतालपर्णीशृतं जलम्। स्याद्वातग्रहणीदोषे सानाहे सपरिग्रहे ॥ ३८ ॥

धनियाँ, बेलगिरी, खिरैंटी, सोंठ ओर सौंफ इनका काथ बनाकर पीवे तो वातजग्रहणी, आनाह और शूल नष्ट होता है ॥ ३८ ॥

द्विपंचमूलादिघृत ।

द्विपञ्चमूले सरलं देवदारु सनागरम्। पिप्पली पिप्पलीमूलं चित्रकं हस्तिपिप्पलीम् ॥ ३९ ॥ शणबीजं यवान्कोलान्कुलित्थानाकुलीकृतान्। पाचयेदारनालेन दध्ना सौवीरकेण च ॥ ४० ॥ चतुर्भागावशेषेण पचेत्तेन घृताढकम्। स्वर्जिकायावशूकानां क्षारौ दत्त्वा च युक्तितः॥ ४१ ॥

[1] साम्भर नमक लेना जो मारवाडसे आता है।

सैन्धवोद्भिदसामुद्रविडानां रोमकस्य च। ससौवर्चलपाकानां भागान्द्विपलिकान्पृथक् ॥ ४२ ॥ विनीय चूर्णितांस्तस्मात्पाययेत्प्रसृतं बुधः। करोत्यग्निबलं वर्णं वातघ्नं भुक्तपाचनम् ॥ ४३ ॥

दशमूल, धूपसरल, देवदारु, सोंठ, पीपल, पीपलामूल, चीता, गजपीपल, सनके बीज, जौ, बेर और कुलथी इनके काथ तथा काँजी, दही और सौवीर नामक काँजी इनके द्वारा एक आढक घृतको पकावे फिर सज्जी, जवाखार, सैंधानोंन, खारी नमक, समुद्रनमक, बिडनमक, सामरनमक और कालानमक इनका चूर्ण दो दो पल डाले, सबको मिलाकर विधि पूर्वक घृतको सिद्ध करे। यह घृत—अग्नि, बल और वर्णको बढानेवाला है, अन्नको पचानेवाला तथा वातको नष्ट करनेवाला है ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

अत्र शुष्कमानेन द्विपञ्चमूलादीनां षट्पञ्चाशत्पलाधिकः पलशतद्वयमारनालादीनामन्यतमस्य च। चतुर्भिर्द्रोणैर्निष्काथ्य द्रोणावशेष इष्यते । स्वर्जीकाक्षारयवक्षारयोरपि द्विपलिकत्वम् ॥

यहाँ दशमूलकी सूखी औषधि ५६ पल लेनी चाहिये। काँजीआदि पदार्थ २०० पल लेने चाहिएँ । पंचमूलादि औषधियोंको चार द्रोण जलमें पकावे, जब चौथाई भाग जल शेष रह जाय तब उतार कर छान लेवे सज्जी और जवाखार भी दो दो पल लेने चाहिये।

पञ्चमूल्यादिघृत ।

पञ्चमूल्यभयाव्योषपिप्पलीमूलसैन्धवैः । रास्नाक्षारद्वयाजाजीविडङ्गशठिभिर्घृतम्॥ ४४ ॥ शुक्तेन मातुलुङ्गस्य स्वरसेनार्द्रकस्य च। शुष्कमूलककोलाम्बु चुक्रिका दाडिमस्य च ॥ ४५॥ तक्रमस्तुसुरामण्डसौवीरकतुषोदकैः। काञ्जिकेन च

तत्पक्कं पीतमाग्निकरं परम् ॥ ४६ ॥ शूलगुल्मोदरानाहकासानिलगदापहम् ॥ ४७ ॥

पंचमूल, हरड, त्रिकुटा, पीपलामूल, सैंधानोंन, रायसन, जवाखार, सज्जी, जीरा, कालाजीरा, वायविडंग और कचूर इन सबका कल्क तथा शुक्त(सिरका), बिजौरेनिंबूका स्वरस, अदरखका स्वरस, सूखी मूलीका क्वाथ, बेरका क्वाथ, चूकेका स्वरस, अनारका रस, छाँछ, दहीका तोड, सुरामंड, सौवीर नामक कांजी, जौका पानी और कांजी इन सबके द्वारा यथाविधि घृतको पकावे इस घृतको पान करनेसे अग्नि दीपन होती है तथा गुल्म, शूल, उदररोग आनाह खांसी और वातरोग नष्ट होते हैं ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

महदग्निघृत ।

चव्यचित्रकपाठानां तेजोवत्यास्तथैव च । कणापिप्पलिमूलानां भागान्दद्याच्चतुष्पलान् ॥ ४८ ॥ पलानि चाष्टौ मुस्तायाः सुनिशामुष्टयस्त्विह । आस्फोताथाः प्रवालानां मालतीकरवीरयोः ॥ सप्तपर्णकरञ्जार्कतापशाऽक्षोटकस्य च ॥ ४९ ॥ एतान्संकुट्य विपचेज्जलद्रोणचतुष्टये । चतुर्भागावशेषन्तु कुर्यान्मन्देन वह्निना ॥ ५० ॥ कटुकातिविषे स्यातां प्रत्येकं त्रिपलोन्मिते । पिप्पलीनाञ्च कुडवं विडंगानां घनस्य च ॥ ५१ ॥ तथा वत्सकबीजानां कल्कार्थं सम्प्रदापयेत् ॥ ५२ ॥ क्षारस्य यावशूकस्य स्वर्जिकायास्तथैव च । विडसैन्धवयोश्चैव दद्याद्द्वे पले भृते ॥ ५३ ॥ ततस्तेन कषायेण कल्कैरेभिश्च पेषितैः । दधिमस्त्वम्लयुक्तैश्च पचेद्वैद्यो घृताढकम् ॥५४॥ साम्बु कल्कं पिबेत्कर्ष विंष्टम्भे द्विगुणं पिबेत् । उष्णोदकानुपानञ्च कुर्याज्जीर्णेऽथ भोजनम् ॥५५॥ अनेन ग्रहणीदोषाः सर्वे नश्यन्ति देहिनाम् । कफवाताश्रयाश्चैव गुल्माश्चैव चतुर्विधाः ॥ ५६ ॥ अर्शांसि नाशयत्येव प्लीहानं शमयत्यपि । महदग्निघृतं त्वेतद्भिषजा परिचक्ष्यते ॥५७॥

चव्य, चीता, पाढ, तेजबल, पीपल और पीपलामूल, ये प्रत्येक चार २ पल, नागरमोथा आठपल, हल्दी, मुलैठी, कोयलके पत्ते, मालतीके कोमल पत्ते, कनेरके पत्ते, सतौना, करंज, आक, हिंगोट और अखरोट इन सबको एकत्र कूटकर चार द्रोण जलमें पकावे जब चौथाई भाग शेष रहजाय तव उतारकर छान लेवे फिर उसको मन्द २ अग्निसे पकावे और उसमें कुटकी, अतीस, ये प्रत्येक तीन २ पल, पीपल, वायविडंग, नागरमोथा और इन्द्रजौ ये प्रत्येक चार २ पल, जवाखार, सज्जी, विरियासंचरनोंन और सैंधानोंन ये प्रत्येक दो दो पल, उन सबको उक्त काथमें पीसकर मिला देवे फिर दही, दहीका तोड और कांजी मिलाकर एक आढक प्रमाण घृतको पकावे। इसको नित्य एक कर्षप्रमाण पान करे। अनुपान-गरम जल। जब यह जीर्ण हो जाय तब भोजन करे। इसको सेवन करनेसे सर्वप्रकारके संग्रहणी रोग, कफवातोद्भवसंग्रहणी रोग, चारोंप्रकारके गुल्म, सर्व प्रकारकी बवासीर, प्लीहारोग यह सब शीघ्र ही दूर हो जाते हैं यह महदग्निघृत—वैद्योंकरके कहा हुआ है ॥ ४८—५७ ॥

"स्निग्धं भुञ्जीत चाप्यन्नं मांसं खादेच्च मेदुरम् । अत्याग्निनाशनार्थाय भक्षयेन्मधुना सह"

"इसपर स्निग्ध अन्न भोजन करे तथा स्त्रीजातिके पशुओंका मांस खाय जो भस्माग्निको दूर करनेके लिये सेवन करना हो तो शहदके साथ भक्षण करे"

शुण्ठीघृत ।

घृतं नागरकल्केन सिद्धं वातानुलोमनम् । ग्रहणीपाण्डुरोगघ्नं प्लीहकासज्वरापहम् ॥ ५८ ॥

सोंठके कल्कके द्वारा घृतको पकाकर सेवन करे तो वह वातको अनुलोमन करता है तथा संग्रहणी, पाण्डुरोग, प्लीहा और ज्वरको दूर करता है ॥५८॥

विश्वौषधस्य गर्भेण दशमूलजले शृतम् । घृतं निहन्याच्छ्वयथुं ग्रहणीमामवातजाम् ॥ ५९ ॥

सोंठके कल्क और दशमूलके काथके द्वारा घृतको पकाकर सेवन करनेसे सूजन और आमवातज संग्रहणी रोग नष्ट होता है ॥ ५९ ॥

बृहच्चांगेरीघृत ।

नागरं पिप्पलीमूलं चित्रकं हस्तिपिप्पली । श्वदंष्ट्रा पिप्पली धान्यं बिल्वं पाठा यवानिका ॥ ६० ॥ चाङ्गेरी स्वरसे सर्पिः कल्कैरेतैर्विपाचयेत् । चतुर्गुणेन दध्ना च तद्घृतं कफवातनुत् ॥ ६१ ॥ अर्शांसि ग्रहणीदोषं मूत्रकृच्छ्रं प्रवाहिकाम् । गुदभ्रंशार्त्तिमानाहमेतत्सर्प्पिर्व्यपोहति ॥ ६२ ॥

सोंठ, पीपलामूल, चीता, गजपीपल, गोखरू, पीपल, धनियाँ, वेलगिरी, पाढ और अजवायन इन सबका चूर्ण चार चार तोले लेवे, और घृत ६४ पल एवं चांगेरी (अम्ल नोनिया) का रस २५६ पल लेवे और २५६ पल दही लेवे फिर सबको मिलाकर यथा विधिसे घृतको सिद्ध करे । यह घृत–सब प्रकारके कफ, वातरोग, सवप्रकारकी बवासीर, सवप्रकारकी संग्रहणी, मूत्रकृच्छ्र, प्रवाहिका, गुदभ्रंश और आनाह इन सब रोगोंको नष्ट करता है ॥ ६० ॥६१॥६२॥

बस्तिकर्म्म भिषक् कुर्य्यान्मन्दाग्नेः सक्तवर्चसः ॥

जो वातसंग्रहणीमें अग्नि मंद हो और मलका अवरोध हो तो वैद्यको उचित है कि, वस्तिकर्म प्रयोग करे ॥

कट्वजीर्णविदाह्यम्लक्षाराद्यैः पित्तमुल्बणम् । संप्लावयेद्धन्त्यनिलं जलं तप्तमिवानलम् ॥ ६३ ॥ सोऽजीर्णं नीलपीताभं पीताभः सार्य्यते द्रवम् । पूत्यम्लोद्गारहृत्कण्ठदाहारुचितृड्दितः ॥ ६४ ॥ वह्नेः प्रदूषणं पित्तं विरेकैर्वमनेन वा । हत्वा भोज्यैर्लघुग्राही दीपनैरविदाहिभिः ॥ ६५ ॥ त्रिभिः संबृहयेद्वह्निं चूर्णैस्निग्धैश्च तिक्तकैः ॥ ६६ ॥

चरपरे, कच्चे, दाहकारक, खट्टे, खारी, नमकीन और गरम पदार्थोंको भक्षण करनेसे पित्त अत्यन्त कुपित होकर जठराग्निको इस प्रकार मंद करदेता है जिस प्रकार गरम जल अग्निको बुझादेता है । उससे कच्चा, नीला, पीला और पतला ऐसा मल उतरता हो। तथा दुर्गन्धयुक्त, खट्टी डकार आती हो और कंठमें दाह, अरुचि और तृषाकी पीड़ा हो ये सब लक्षण हों तो पित्तकी संग्रहणी जाननी चाहिये उस जठराग्निको दूषित करनेवाले पित्तको विरेचन और वमनके द्वारा शांत करे । पश्चात् हलके भोजन, मलरोधक दीपन और अविदाही पदार्थोंको सेवन करे । और कड़वे तथा स्निग्ध चूर्णोंसे अग्निको दीपन करे ॥ ६३ ॥ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

रसाञ्जनादिचूर्ण ।

रसाञ्जनमतिविषा वत्सकस्य फलत्वचम् । नागरं धातकी चैव सक्षौद्रं तंडुलाम्बुना ॥ पित्तग्रहणीदोषार्शोरक्तपित्तातिसारनुत् ॥ ६७ ॥

रसौत, अतीस, इन्द्रजौ, कुड़ेकी छाल, सोंठ और धायके फूल इन सबको एकत्र पीसकर शहद और चावलोंके जलके साथ सेवनकरनेसे पित्तकी संग्रहणी, बवासीर, रक्तपित्त और अतीसार नष्ट होता है॥६७॥

पाठादिकाथचूर्ण ।

पाठावत्सकबीजानि चित्रकं विश्वभेषजम् । पिबेन्निष्क्वाथ्य चूर्णानि कृत्वा चोष्णेन वारिणा ॥ ६८ ॥ पित्तश्लेष्माभिभूतानां ग्रहण्यां शूलनुद्धितम्॥६९॥

पाढ, इन्द्रजौ, चीता और सोंठ इनका काथ अथवा इनका चूर्ण बनाकर गरम जलके साथ पान करनेसे पित्तकफसे उत्पन्न हुई संग्रहणी और सब प्रकारका शूल नष्ट होता है ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

नागरादिचूर्ण ।

नागरातिविषा मुस्तं धातकी सरसाञ्जनम् । वत्सकत्वक्फलं बिल्वं पाठा तिक्तकरोहिणी ॥ ७० ॥ पिबेत्समांशं तच्चूर्णं सक्षौद्रं तण्डुलांबुना । पैत्तिके ग्रहणीदोषे रक्तं यच्चोपवेश्यते ॥ ७१ ॥ अर्शांस्यथ गुदे शूलं जयेच्चैव प्रवाहिकाम् । नागराद्यमिदं चूर्णं कृष्णात्रेयेण पूजितम् ॥ ७२ ॥

सोंठ, अतीस, नागरमोथा, धायके फूल, रसोत, कुड़ेकी छाल, इन्द्रजौ, बेलगिरी, पाढ और कुटकी इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण करके शहद और चावलोंके जलके साथ पान करे तो पित्तकी संग्रहणी, रुधिरकी बवासीर, गुदशूल और प्रवाहिका रोग नष्ट होता है। यह नागरादिचूर्ण कृष्णात्रेयकरके पूजित किया हुआ है॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥

तंडुलोदकविधि ।

जलमष्टगुणं दद्यात्पलं कण्डिततण्डुलान् । भावयित्वा ततो देयं तण्डुलोदककर्म्मणि ॥ ७३ ॥

चारतोले कुटे हुए चावलोंको आठपलजलमें भिजो देवे, फिर उनको एकप्रहरके पश्चात् छान लेवे तो तण्डुलोदक बन जाता है इसको तण्डुलोदक कर्म्ममें लाना चाहिए ॥ ७३ ॥

भूनिम्बादि चूर्ण ।

भूनिम्बकटुकाव्योषमुस्तकेन्द्रयवान्समान् । द्वौ चित्रकाद्वत्सकत्वग्भागाःषोडश चूर्णयेत ॥७४॥ गुडशीतांबुना पीतं ग्रहणीदोषगुल्मनुत् । कमलाज्वरपाण्डुत्वमेहारुच्यतिपाण्डुनुत् ॥७५॥ गुडयोगाद्धि ड्वांबुस्याद्गुडवर्णरसान्वितम्।

चिरायता, कुटकी, त्रिकुटा, नागरमोथा और इन्द्रजो ये सब एक २ भाग, चीतेकी जड़की छाल २ भाग और कुड़ेकी छाल १६ भाग, सबको एकत्र चूर्ण कर गुड़ और शीतल जलके साथ पीवे तो संग्रहणी रोग, गुल्म कामला, ज्वर, पाण्डुरोग, प्रमेह अरुचि और पाण्डुता नष्ट होती है । यहाँ गुण और शीतल जलका जो योग (अनुपान) कहा वहाँ गुड़का शरबत लेना चाहिए॥ ७४ ॥ ७५ ॥

पाठादिचूर्ण ।

पाठाबिल्वानलव्योषजम्बुदाडिमधातकी। कटुकातिविषामुस्तादार्वीभूनिम्बवत्सकैः ॥ ७६ ॥ सर्वैरेतैः समं चूर्णं कौटजं तण्डुलांबुना।सक्षौद्रेण पिबेच्छर्दिज्वरातीसारशूलनुत॥७७॥ रुग्दाह ग्रहणीदोषारोचकानलसादनुत ।

पाढ, बेलगिरी, चीता, त्रिकुटा, जामुन, अनार, धायके फूल, कुटकी, अतीस, नागरमोथा, दारुहल्दी, चिरायता और इन्द्रजौ ये सब समान भाग लेवे सबको एकत्र चूर्ण करके चावलोंके जलके साथ और शहदके साथ सेवन करे । यह चूर्ण वमन,ज्वर, अतीसार, शूल, दाह, संग्रहणी रोग, अरुचि और अग्निकी मंदताको नष्ट करता है॥ ७६ ॥ ७७ ॥

चन्दनादिघृत ।

चन्दनं पद्मकोशीरं पाठा मूर्वा कुटंनटम् । षड्ग्रन्था शारिवास्फोतासप्तपर्णाटरूषकम् ॥ ७८ ॥ पटोलोदुम्बराश्वत्थवटप्लक्षकपित्थकान् । कटुकां रोहिणीं मुस्तं निम्बञ्च द्विपलांशकम् ॥ ७९ ॥ द्रोणेऽपां साधयेत्पादशेषे प्रस्थं घृतं पचेत् । किराततिक्तेन्द्रयवबीराभागाधिकोत्पलैः॥ ८० ॥ कल्कैरक्षसमैः पेयं तत्पित्तग्रहणीगदे ।

चन्दन, पद्माख, खस, पाढ, मूर्वा, दयोनाककी छाल, वच, सारिवा, कोयली, सतवन, अडूसा, पटोलपत्र, गूलर, पीपलकी छाल, बड़के अंकुर, पिलखन, कुटकी, कैथ, हरड़ नागरमोथा और नीमकी छाल, ये प्रत्येक औषधि दो दो पल लेकर एक द्रोण जलमें पकावे जब चौथाई भाग

जल शेष रह जाय तब उतारकर छान लेवे। फिर उस काथको चूल्हेपर चढावे और उसमें सोलह पल घृत डाले तथा चिरायता, इन्द्रजौ, भुँईआमला, पीपल और कमल इनका कल्क एक २ कर्ष प्रमाण डालकर पकावे। इस घृतको पान करनेसे पित्तकी संग्रहणी नष्ट होती है ॥७८॥७९॥८०॥

किरातादिघृत।

किराततिक्तं षड्ग्रन्था त्रायमाणा कटुत्रिकम्। चन्दनं पद्मकोशीरं दार्वीत्वक्कटुरोहिणी ॥ ८१ ॥ कुटजत्वक्फलं मुस्तं यवानी देवदारु च। पटोलनिम्बपत्रैलासौराष्ट्र्यातिविषावचा॥८२॥ मधुशिग्रोश्च बीजानि मूर्वा पर्पटकं तथा। तच्चूर्णं मधुना लेह्यं पेयं सर्वैर्घृतेन वा ॥ ८३ ॥ हृत्पाण्डुग्रहणीदोषशूलगुल्मारुचिज्वरान्। कामलां सन्निपातञ्च मुखरोगञ्च नाशयेत्॥८४॥

चिरायता, वच, त्रायमाण, त्रिकुटा, चन्दन, पद्माख, खस, दारुहल्दी, कुटकी, कुडेकी छाल, इन्द्रजौ, नागरमोथा, अजवायन, देवदारु, पटोलपात, नीमके पत्ते, इलायची, बटकरी, अतीस, बच, मुलैठी, सैंजिनेके बीज, मूर्वा और पित्तपापडा इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण कर शहदमें मिलाकर सेवन करे अथवा इन सब औषधियोंके द्वारा घृतको पकाकर पान करे। यह घृत–हृदयरोग, पाण्डुरोग, संग्रहणीरोग, शूल, गुल्म, अरुचि, ज्वर, कामला, सन्निपात और मुखरोगका नाश करता है ॥८१ ॥८२॥८३ ॥८४ ॥

मसूरस्य कषायेण बिल्वगर्भं पचेद्घृतम्। हन्ति कुक्ष्यामयान्सर्वान्ग्रहणीपाण्डुकामलान् ॥८५ ॥

मसूरके क्वाथ और बेलगिरीके कल्कके द्वारा घृतको सिद्ध करे। यह मसूरघृत–कोखमें उत्पन्न हुए सब प्रकारके संग्रहणी, पाण्डु और कामलादि रोगोंको नष्ट करता है ॥ ८५ ॥

मसुरादिघृत।

मसूराणां पलशतं जलद्रोणे विपाचयेत्। पादशेषे रसे तस्मिन्दद्याद्बिल्वं पलाष्टकम् ॥८६ ॥ घृतप्रस्थं पचेद्धीमाञ्छास्त्रविन्मृदुनाग्निना। प्रवाहिकामतीसारं ग्रहणीदोषमेव च ॥ ॥ ८७ ॥ हन्यात्क्षिप्रसन्देहं कृष्णात्रेयस्य शासनात्। भिन्नविट्के प्रशंसन्ति मसूरघृतमुत्तमम् ॥ ८८ ॥

सौ १०० पल मसूरको लेकर एकद्रोण जलमें पकावे, जब पकते २ चौथाई भाग जल शेष रह जाय तब उसमें बेलगिरी आठपल और गौका उत्तम घी १६ पल डालकर घृतको मंद२ अग्निसे पकावे। यह घृत—प्रवाहिका, अतीसार और संग्रहणीरोगको नष्ट करता है यह कृष्णात्रेय करके पूजित मसूरघृत अतीसाररोगमें अत्यन्त हितकारी है ८६॥८७॥८८

व्रीहिप्राण्यङ्गयोः क्वाथमुषितं परिवर्जयेत्। नवं धान्यमभिष्यन्दि लघु संवत्सरोषितम् । विदाहि गुरु विष्टम्भि विरूढं वातकोपनम् ॥ ८९ ॥

व्रीहि धानोंका और प्राणियोंके मांसका बासी क्वाथ नहीं लेना चाहिए। नये धान्य अभिष्यन्दी होते हैं और एक वर्षके पुराने धान्य हलके होते हैं। जिनमें अंकुर निकल आये हों ऐसे धान्य दाहकारक, भारी, विष्टम्भकारी और वातको कुपित करनेवाले होते हैं ॥ ८९ ॥

कलिङ्गघृत।

कलिङ्गफलकल्केन घृतप्रस्थं प्रसाधितम्। कफपित्तसमुद्भूतां ग्रहणीं हन्त्यसंशयम् ॥ ९० ॥

इन्द्रजौके कल्कके द्वारा एक प्रस्थ घृतको पकावे। उस घृतको पान करनेसे कफपित्तसे उत्पन्न हुई संग्रहणी अवश्य नष्ट हो जाती है ॥ ९० ॥

कफग्रहणीरोगकी चिकित्सा।

गुर्वतिस्निग्धशीतादिभोजनादतिभोजनात्। भुक्तमात्रस्य च स्वप्नाद्धन्त्यग्निं कुपितः कफः ॥ ९१ ॥ तस्यान्नं पच्यते दुःखं हृल्लासच्छर्द्यरोचकाः। आस्योपदेहमाधुर्य्यकासष्ठीवनपीन-

सा: ॥ ९२ ॥ हृदयं मन्यतेस्त्यानमुदरं स्तिमितं गुरु । दुष्टं मधुरमुद्गारसदनं स्त्रीष्वहर्षणम् ॥ ९३ ॥ भिन्नामश्लेष्मसंसृष्टगुरुवर्चःप्रवर्त्तनम् । अकृशस्यापि दौर्बल्यमालस्यञ्च कफात्मके ॥ ९४ ॥

भारी, अत्यन्त चिकने और शीतल पदार्थोंके सेवन करनेसे, अत्यंत भोजन करनेसे एवं भोजन करते ही सो रहनेसे कफ कुपित होकर अग्निको मंद कर देता है । तब उस मनुष्यके खाया हुआ अन्न कठिनतासे पचता है, उवकाई, वमन और अरुचि हो, मुखमें कफ लिसा रहे और मीठापन, खाँसी आनेसे वारंवार कफको थूके, पीनस (जुकाम), हृदय भींजासा मालूम हो, उदरमें भारीपन और जडता हो, दुष्ट मीठी डकारें आवें, ग्लानि, स्त्रीमें अनिच्छा, फटासा, एवं आम और कफ सहित भारी मल उतरे, ऊपरसे शरीर पुष्ट दीखनेपर भी दुर्बलता और आलस्यका होना, इत्यादि लक्षणोंसे कफकी संग्रहणी जाननी ॥ ९१॥९२॥९३॥९४॥

ग्रहण्यां कफदुष्टायां तीक्ष्णैः प्रच्छर्दने कृते । लवणाम्लकटुक्षारैः क्रमाद्वह्निं विवर्द्धयेत् ॥ ९५ ॥

कफकी संग्रहणीमें रोगीको तीक्ष्ण औषधियोंके द्वारा वमन करावे । तथा लवण, अम्ल, कटु और क्षार द्रव्योंसे क्रमपूर्वक जठराग्निको दीपन करे ९५

शुण्ठी मुस्तं विडङ्गञ्च सुरातक्रोष्णवारिणा । श्लैष्मिकं ग्रहणीदोषं पीतं हन्त्यग्निवर्द्धनम् ॥ ९६ ॥

सोंठ, नागरमोथा और वायविडंग इनके चूर्णको सुरा, तक्र अथवा गरम जलके साथ सेवन करे तो अवश्य कफजसंग्रहणी रोग नष्ट होता है ॥९६ ॥

यवागूविधि ।

पालाशं चित्रकं चव्यं मातुलुङ्गं हरीतकीम् । पिप्पली पिप्पलीमूलं पाठां धान्यकनागरम् ॥ ९७ ॥ कर्षिकान्तुदकप्रस्थे पक्त्वा पादावशेषिते । पानीयार्थं प्रयुञ्जीत यवागूं तैश्च साधिताम् ॥ ९८ ॥

ढाकके बीज, चीता, चव्य, बिजौरा नींबू, हरड, पीपल, पीपलामूल, पाढ, धनियाँ और सोंठ ये प्रत्येक एक २ कर्ष लेकर एक प्रस्थ जलमें पकावे । जब चौथाई भाग जल शेष रह जाय तो उतार कर छान लेवे । इसके द्वारा यवागूको सिद्ध करके पीवे ॥९७॥९८॥

पिप्पल्यादि चूर्ण ।

समूलां पिप्पलीं क्षारौ द्वौ पञ्च लवणानि च । मातुलुङ्गाभयारास्नाशटीमरिचनागरम् ॥ ९९ ॥ कृत्वा समांशं तच्चूर्णं पिबेत्प्रातः सुखाम्बुना । श्लैष्मिके ग्रहणीदोषे बलमांसाग्निवर्द्धनम् ॥ १०० ॥

पीपल, पीपलामूल, जवाखार, सज्जी, पाँचोंनमक, बिजौरानीम्बू, हरड, रास्ना, कचूर, मिरच और सोंठ इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर चूर्ण करके मंदोष्णजलके साथ प्रातःकाल पीवे तो कफज संग्रहणी रोग नष्ट होता है, तथा बल मांस और जठराग्निकी वृद्धि होती है ॥ ९९ ॥ १०० ॥

व्योषं साम्रत्वचं वत्सं चूर्णयेत्तण्डुलाम्बुना । निपीतं ग्रहणीदोषकामलापाण्डुरोगजित् ॥ १०१ ॥ प्रमेहारुच्यतीसारगुल्मशोथज्वरापहम् ॥ १०२ ॥

त्रिकुटा, आमकी छाल और कुडेकी छाल, इनको एकत्र पीसकर चावलोंके जलके साथ पान करे इससे संग्रहणीरोग, कामला, पाण्डुरोग, प्रमेह, अरुचि, अतीसार, गुल्म, शोथ और ज्वर नष्ट होता है ॥ १०१ ॥ १०२ ॥

भल्लातकक्षार ।

भल्लातकं त्रिकटुकं त्रिफला लवणत्रयम् । अन्तर्धूमं द्विपलिकं गोपुरीषाग्निना दहेत् ॥ १०३ ॥ स क्षारः सर्पिषा पीतो भोज्यैश्चाप्यथ चूर्णितः । हृत्पाण्डुग्रहणीदोषगुल्मोदावर्त्तशूलनुत् ॥ १०४ ॥

मिलावे, त्रिकुटा, त्रिफला, कालानमक, सैंधानमक और कचियानमक इनको दो दो पल लेकर अन्तर्धूमकी रीतिसे आरने उपलोंकी अग्निसे पकावे। जब स्वांग शीतल हो जाय तब निकालकर चूर्ण करले, फिर उसमें जवाखार और घी मिला कर सेवन करे। यह–हृदयरोग, पाण्डुरोग, संग्रहणी, गुल्म, उदावर्त और शूलको नष्ट करता है॥१०३॥१०४॥

दुरालभादिक्षार।

दुरालभाकरञ्जौ द्वौ सप्तपर्णं सवत्सकम्। षड्ग्रन्था मदनं मूर्वा पाठाचारग्वधं तथा॥ १०५॥ गोमूत्रे च समांशानि कृत्वा चूर्णानि दापयेत्। दग्ध्वा तच्च पिबेत्क्षारं बलवर्णाग्निवर्द्धनम्॥ १०६॥

धमासा, करंज, बडीकरंज, सतौना, कुड़ेकी छाल, वच, मैनफल, मूर्वा, पाढ और अमलतास इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण करके गोमूत्रमें मिलाकर दग्ध करे पश्चात् उस क्षारको पान करे तो बल, वर्ण और अग्निकी वृद्धि होती है॥१०५॥१०६॥

भूनिम्बादि क्षार।

भूनिम्बं रोहिणी तिक्ता पटोलं निम्बपर्पटम्। दहेन्माहिषमूत्रेण क्षार एषोऽग्निवर्द्धनः॥ १०७॥

चिरायता, कुटकी, पाढ, पटोलपत्र, नीमकी छाल और पित्तपापडा इनको भैंसके मूत्रमें मिलाकर दग्ध करे। यह भूनिम्बादि क्षार अग्निको दीपन करनेवाला है॥ १०७॥

हरिद्रादिक्षार।

द्वे हरिद्रे वचा कुष्ठं चित्रकं कटुरोहिणी। मुस्तकं बस्तमूत्रेण सिद्धः क्षारोऽग्निवर्द्धनः॥ १०८॥

हल्दी, दारुहल्दी, वच, कूठ, चीता, कुटकी और नागरमोथा इनको बकरीका मूत्र मिलाकर जलावे यह क्षार अग्निको बढ़ानेवाला है॥ १०८॥

महाक्षार।

यवक्षारं दशपलं सैन्धवं द्विगुणं भवेत्। भल्लातकानि त्रिवृता चित्रकं त्रिफलात्वचः॥ १०९॥ स्नुह्यर्कयोश्च दुग्धश्च तैलस्य च घृतस्य च। प्रस्थं प्रस्थं समावाप्य चूर्णैरेतैर्विमिश्रयेत॥ ११०॥ तदाहयेन्महाक्षारं पाययेच्च सुखाम्बुना। ग्रहणीदीपने श्रेष्ठो गुल्मार्शःकृमिनाशनः॥ १११॥

जवाखार १० पल, सैंधानोन २० पल, एवं भिलावे, निसोत, चीता, त्रिफला और दारचीनी इन सबको एक २ प्रस्थ लेकर एकत्र चूर्ण कर एक प्रस्थ थूहरके दूध, एक प्रस्थ आकके दूध, एक प्रस्थ तिलके तेल और एक प्रस्थ घी इनमें सबको मिलाकर यथाविधिसे दग्ध करे। इस महाक्षारको गरम जलके साथ पान करे। यह अग्निको दीपन करनेवाला, तथा गुल्म, बवासीर और कृमिरोगको हरनेवाला है॥ ॥ १०९॥ ११०॥ १११॥

वार्ताकुगुटिका।

चतुष्पलं सुधाकाण्डात्त्रिपलं लवणत्रयात्। वार्ताकात्कुडवश्चार्काद्विपले द्वे चित्रकात्पले॥ ११२॥ दग्धा तु वार्त्ताकुरसे गुटिका भोजनोत्तरम्। भुक्ताभुक्तं पचत्याशु कासश्वासार्शसां हिता। विषूचिकाप्रतिश्याय-हृद्रोगघ्ना च सा मता॥ ११३॥

थूहरकी लकडी १६ तोले, तीनों लवण १२ तोले बैंगुन १६ तोले, आक २ पल, बेलगिरी २ पल और चीता २ पल, इन सबको एकत्र अग्निमें जलाकर बैंगुनके रसमें गोलियें बनालेवे। इन गोलियोंको भोजनके पश्चात् सेवन करे तो किया हुआ भोजन शीघ्र पचता है और संग्रहणी दूर होती है। खाँसी, श्वास और अर्श रोगमें यह अत्यन्त हितकारी है। एवं विषूचिका, प्रतिश्याय और हृदयरोगमें विशेषकर उपयोगी है॥ ११२॥ ११३॥

मध्वारिष्ट।

नवपिप्पलीमध्वाक्ते कलशेऽगुरुधूपिते। मध्वाढकं जलसमं चूर्णानीमानि दापयेत्॥ ११४॥ कुडवार्धं विडङ्गस्य पिप्पल्याः कुडवं तथा।

चतुर्थकांशं त्वक्क्षीरं केसरं मरिचानि च ॥ ११५ ॥ त्वगेलापत्रकर्चूरं क्रमुकातिविषाघनान् । हरेण्वेले तु तेजोह्वां पिप्पलीमूलचित्रकान् ॥ ११६॥ कर्षिकं संस्थितं मासमेतदूर्ध्वं नियोजयेत । मन्दं सन्दीपयत्यग्निं करोति विषमं समम् ॥ ११७ ॥ हृत्पांडुग्रहणीरोगकुष्ठार्शःश्वयथुज्वरान्। वातश्लेष्मामयांश्चान्यानरिष्टोऽयंव्यपोहति११८

नौ पीपलोंको बारीक पीसकर शहदमें मिलाकर एक कलशेके भीतर लेप कर देवे, फिर उस कलशे को अगरकी धूपसे सुवासित कर उसमें एक आढक परिमाण शहद व एक आढक जल, एवं वायविडंग ८ तोले, पीपल १६ तोले, वंशलोचन ४ तोले, नागकेशर, कालीमिरच, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, कचूर, सुपारी, अतीस, नागरमोथा, रेणुक, बडी इलायची, तेजबल, पीपलामूल और चीता ये प्रत्येक एक २ कर्ष प्रमाण भरकर रख देवें, इस प्रकार इसको एक महीने तक रक्खा रहने देवे। एक महीनेके पश्चात् इसको निकालकर सेवन करे तो यह मन्दाग्निको दीपन करता है और विषम अग्निको समान करता है तथा हृदयरोग, पांडुरोग, संग्रहणी, कोढ, बवासीर, सूजन, ज्वर और वात कफके रोगोंको नष्ट करता है ॥ ११४ ॥ ११५ ॥ ११६ ॥ ॥ ११७ ॥ ११८ ॥

मधूकपुष्पासव।

द्रोणं मधूकपुष्पाणां विडङ्गस्य ततोऽर्धतः । चित्रकस्य ततोऽर्धश्च तथा भल्लातकाढकम् ॥ ११९ ॥ मञ्जिष्ठाष्टपलं तुर्य्ये द्रोणेऽपाश्च विपाचयेत। द्रोणावशेषं तच्छीतं मध्वाढकसमन्वितम् ॥ १२० ॥ एलामृणालपुरुभिश्चन्दनागुरुधूपिते । कुम्भे मासि स्थिते तापे मासान्ते तं वियोजयेत॥१२१॥ ग्रहणीं दीपयत्येष बृंहणो रक्तपित्तनुत । शोथकुष्ठकिलासानां प्रमेहानाश्च नाशनः ॥ १२२ ॥

महुएके फूल १ द्रोणपरिमाण, वायविडंग आधा द्रोण, चीता १ आढक, भिलावे १ आढक और मजीठ ८ पल इन सबको ४ द्रोण जलमें पकावे, जब १ द्रोण जल शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे, फिर शीतल होनेपर १ आढक परिमाण शहद मिलादेवे, फिर इलायची, कमलकी नाल, गूगल, चन्दन और अगरसे धूपित किये हुए एक कलशमें उपरोक्त द्रव्योंको भरकर रख देवे। इसप्रकार एक महीने पर्य्यन्त रक्खा रहने देवे, पश्चात् निकालकर इसको सेवन करे। यह आसव ग्रहणी अर्थात् अग्निको दीपन करता है एवं रक्तपित्तको नष्ट करता है, पुष्टिकर्त्ता तथा सूजन, कुष्ठ, किलासकुष्ठ और प्रमेहको नष्ट करता है ॥ ११९ ॥ १२० ॥ १२१ ॥ १२२ ॥

दशमूलासव।

द्विपञ्चमूलरजनीजीवकर्षभचित्रकान्। पृथक्पञ्चपलैर्भागैश्चतुर्द्रोणेऽम्भसःपचेत ॥ १२३ ॥ द्रोणशेषे रसे पूते गुडस्य कुडवं क्षिपेत। चूर्णितान्पालिकान्सर्वान्दद्याच्चात समाक्षिकान्॥१२४॥प्रियंगुपुष्पं माञ्जिष्ठा विडङ्गं मधुकं कणाम् । लोध्रं सावरकं चैव मासार्द्धं स्थापयेत्क्षितौ ॥ १२५ ॥ दशमूलासवः सिद्धो दीपनो रक्तपित्तनुत । आनाहकफहृद्रोगपाण्डुरोगाङ्गसादनुत १२६

बेलगिरी, श्योनाक, कुम्भेर, पाढल, अरणी, शालपर्णी, पृष्टिपर्णी, गोखरू, कटेरी, बडी कटेरी, हल्दी, जीवक, ऋषभक और चीता ये प्रत्येक पांच २ पल लेकर चार द्रोण जलमें पकावे जब एक द्रोण जल शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे फिर उसमें ८ पल गुड़, ८ पल शहद, फूलप्रियंगु, मजीठ, वायविडंग, मुलैठी, पीपल और सफेद लोध ये प्रत्येक चार २ तोले पीसकर मिला देवे इसको पृथ्वीमें १५ दिनतक गाढ देवे, फिर निकाल लेवे तो दशमूलासव तैयार होता है। यह—अग्निको दीपन करनेवाला, रक्तपित्तनाशक तथा आनाह, कफ, हृदयरोग, पाण्डुरोग, और शरीरके अंगफूटनको दूर करनेवाला है १२३॥ ॥ १२४ ॥ १२५ ॥ १२६ ॥

पिंडासव ।

प्रस्थिकी पिप्पली प्रस्थं गुडं प्रस्थं बिभीतकम् । उदकप्रस्थसंयुक्तं यवप्रस्थं निधापयेत् ॥ १२७ ॥ तस्मात्सुजातात्तु पलं सलिलाञ्जलिसंयुतम् । पिबेत्पिंडासवो ह्येष रोगानीकविनाशनः ॥१२८॥ स्वस्थोऽपि यः पिबेन्मासं नरः स्निग्धरसाशनः । तस्याग्निं दीपयत्येष आरोग्याय प्रकीर्तितः १२९

पीपल १ प्रस्थ, गुड १ प्रस्थ, बहेडा१ प्रस्थ, जल१ प्रस्थ और जौ १ प्रस्थ सबको यथाविधिसे मिलाकर पृथ्वीमें गाड देवे. १५ दिनके पश्चात् निकाल कर छान लेवे । इसप्रकार यह आसव सिद्ध होता है उसमेंसे चार तोले लेकर एक कुडवपरिमाण जलके साथ पान करे । यह पिण्डासव सर्वरोगोंका नाश करनेवाला है । जो स्वस्थ मनुष्य भी इसको एकमहीनेपर्यंत सेवन करे और स्निग्धरसवाले पदार्थोंका भोजन करे तो उसकी अग्नि अत्यन्त दीपन होजाती है । यह आरोग्यके लिये कहा है ॥ १२७—१२९ ॥

बृहतीचित्रकक्षारघृत ।

बृहतीचित्रकक्षारः सप्तवारपरिस्रुतः । द्विगुणेन घृतं पक्वं वर्द्धयत्याशु पावकम् ॥ १३० ॥

बृहती (बडीकटेरी) और चीता इनका सातवार टपकाया हुआ खार लेकर दुगुने घृतके साथ पकावे। यह शीघ्र ही जठराग्निको बढाता है ॥ १३० ॥

श्लेष्मग्रहणीपरघृत ।

स्यान्मांद्यं जाठरस्याग्नेर्यस्य स्यान्न मलच्युतिः । तस्य वह्निकरैः पक्वं युक्तियुक्तं हितं घृतम् ॥ १३१ ॥

जिसकी जठराग्नि मंद होगई हो और दस्त न आता हो उस संग्रहणीरोगीके अग्निको दीपन करनेवाले युक्तिसे सिद्ध किए हुए घृतको सेवन करावे१३१

त्रिदोषजग्रहणी ।

पृथग्वातादिनिर्दिष्टहेतुलिङ्गसमागमे । त्रिदोषं निर्दिशेदेवं तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ १३२ ॥

वातादि तीनों दोषोंके कुपित होनेके पृथक् पृथक् जो कारण कहे हैं उन सब कारणोंसे तीनों दोष कुपित होकर अग्निको मंद करके संग्रहणी उत्पन्न करते हैं उनमें तीनों दोषोंके लक्षण होते हैं उनको कहता हूँ ॥ १३२ ॥

त्रिदोषे विधिवद्वैद्यः पञ्चकर्म्माणि कारयेत् । सर्वजायां ग्रहण्यान्तु सामान्यो विधिरीक्ष्यते ॥ १३३ ॥ दीपनान्यन्नपानानि चूर्णारिष्टं घृतानि च । प्रविभज्य यथाऽवस्थं सर्वजे बस्तिकर्म च ॥१३४॥ घृतक्षाराऽऽसवाऽरिष्टान्दद्यादग्निविवर्द्धनान् ॥ १३५ ॥

त्रिदोषज संग्रहणीमें प्रथम वमन विरेचनादि पंच कर्म करावे उसमें साधारण विधि कहते हैं—अग्निको दीपन करनेवाले अन्न, पान, चूर्ण, अरिष्ट और घृत तथा बस्तिकर्म ये सब त्रिदोषज संग्रहणीमें अवस्थाको विचार कर प्रयोग करे तथा अग्निको बढानेके लिये घृत, क्षार, आसव और अरिष्ट देवे ॥ १३३ ॥ ॥ १३४ ॥ ॥ १३५ ॥

शतावरीघृत ।

शतावरीचन्दनपद्मकोत्पलं प्रियंगुपाठामगधास्थिराभिः । बिल्वाजमोदातिविषासमंगा जीवन्तिवह्नीन्द्रयवैः सुपिष्टैः ॥ १३६ ॥ घृतं कषाये तु कलिङ्गकानां पक्वं निहन्याद्ग्रहणीं त्रिदोषाम् । पित्तातिसारं रुधिरप्रवाहं तथार्शसो दोषसमूहबन्धम् ॥ १३७ ॥

शतावर, चन्दन, पद्माख, कमल, फूलप्रियंगु, पाठ, पीपल, शालिपर्णी, बेलगिरी, अजमोद, अतीस, लज्जावंती, जीवंती, चीता और इन्द्रजौ इनके कल्क और कुडेकी छालके द्वारा घृतको सिद्ध करे । यह त्रिदोषज संग्रहणी, पित्तातीसार, रुधिरका स्राव और रुधिरकी बवासीरको नष्ट करता है ॥१३६॥१३७॥

आरुष्करघृत ।

आरुष्करं हिंगुकणा सयष्टी पूतीकशुण्ठीमरिचं गजाह्वा । अजाजी चव्या

रुचकं सवह्निमूलं विडङ्गं सह दीप्यकञ्च ॥ १३८ ॥ सक्षारहिंगुत्रिकटूग्रगन्धा पलार्धभागैर्विपचेद्विधिज्ञः ॥ १३९ ॥ अत्र धान्याकचांगेरीदशमूलीसमं पृथक् । हविःप्रस्थं निहन्त्याशु ग्रहणीं सर्वजां नृणाम् ॥ १४० ॥ विष्टम्भमामजान्रोगान्कृमिजान्कुक्षिजांस्तथा । मन्दानलभवान्सर्वान्नभस्वानिव वारिदम् ॥ १४१ ॥

मिलावे, हींग,पीपल, मुलैठी, दुर्गन्धकरंज,सौंठ, मिरच, गजपीपल,जीरा, चव्य, कालानमक,चीतेकी जड़,वायविडंग,अजवायन,जवाखार,हींग,त्रिकुटा और बच इनको दो दो तोले लेकर विधिपूर्वक क्काथ बनावे तथा धनियाँ, चांगेरी, दशमूल इनका क्काथ समान भाग और१प्रस्थ घी लेवे।सबको मिलाकर विधिपूर्वक घृतको सिद्ध करे । इस घृतको सेवन करनेसे-सर्व प्रकारकी संग्रहणी विष्टम्भरोग, आमसे उत्पन्नहुए रोग, कृमिसे उत्पन्नहुए रोग, उदरके समस्त रोग और मंदाग्निसे उत्पन्न हुए रोग नष्ट होजाते हैं जिसप्रकार पवनसे बादल नष्ट होजाते हैं ॥१३८॥ १३९॥ १४०॥ १४१ ॥

संग्रहणीके लक्षण ।

अन्त्रकूजनमालस्यं दौर्बल्यं सदनं तथा । द्रवं घनं सितं स्निग्धं सकटीवेदनं शकृत् ॥ १४२ ॥ आमं बहु सपैच्छिल्यं सशब्दं मन्दवेदनम् । पक्षान्मासादशाहाद्वा नित्यं वापि विमुञ्चति ॥१४३॥ दिवा प्रकोपो भवति रात्रौ शान्तिं व्रजेच्च सा । दुर्विज्ञेया दुर्निवारा चिरकालानुबन्धिनी । सा भवेदामवातेन संग्रहग्रहणी मता ॥ १४४ ॥

आँतें बोलें,आलस्य जिसमें हो,शरीरमें दुर्बलता, अंगफूटन हो, मल पतला, गाढा, सफेद,चिकना, उतरे कमरमें पीडा हो,आम(अपक्क) कच्चा अत्यन्त पिच्छल शब्दयुक्त, मन्द पीड़ायुक्त एक एक पक्षमें अथवा एक महीनेमें किंवा दश दिनमें अथवा नित्य दस्त आवे, तथा रोगका प्रकोप दिनमें अधिक हो और रात्रिमें शांत होजाय उसको अतिदुर्विज्ञेय, दुस्तर और बहुत कालतक रहनेवाली संग्रहणी जाननी । यह आमवातसे उत्पन्न होती है ॥ १४२ ॥ ॥ १४३ ॥ १४४ ॥

संग्रहणीकी चिकित्सा ।

मसूरयूषः संपीतः क्काथो नागरबिल्वजः । संग्रहग्रहणीं हन्ति तक्रेण बृहती तथा ॥ १४५ ॥

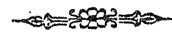
मसूरका यूष अथवा सोंठ और बेलगिरीका क्काथ किंवा बडी कटेरीके चूर्णको तक्रके साथ सेवन करनेसे संग्रहणीरोग नष्ट होता है ॥ १४५ ॥

मसूरघृत ।

विश्वाजाजी बिल्वपेशी कल्कसिद्धं घृतं हरेत् । मसूरस्य कषायेण संग्रहग्रहणीगदम् ॥ १४६ ॥

सोंठ,जीरा और बेलगिरी इनके कल्क और मसूरके क्काथके द्वारा घृतको सिद्ध करे। यह घृत संग्रहणी रोगको दूर करता है ॥ १४६ ॥

गोतक्रके गुण ।



ग्रहणीरोगिणां तक्रं संग्राहि लघु दीपनम् ॥ सेवनीयं सदा गव्यं त्रिदोषशमनं हितम् ॥ १४७ ॥

संग्रहणीवाले मनुष्यको तक्रका सेवन संग्राही (मलरोधक), हलका और अग्निको दीपन करनेवाला है । इस कारण संग्रहणीरोगियोंको सदैव गौका तक्र सेवन कराना चाहिये। वह अत्यन्त हितकारक और त्रिदोषको शमन करनेवाला है ॥ १४७ ॥

दुःसाध्यो ग्रहणीदोषो भेषजैर्नैव शाम्यति । सहस्रशोऽपि विहितैर्विना तक्रस्य सेवनात् ॥ १४८ ॥

यह दुःसाध्य संग्रहणीरोग विना तक्र सेवन किये हजारों औषधियोंसे भी शांत नहीं होता ॥ १४८ ॥

यथा तृणचयं वह्निस्तमांसि सविता यथा। निहन्ति ग्रहणीरोगं तथा तक्रस्य सेवनम् ॥ १४९ ॥

जिस प्रकार तृणोंके समूहको अग्नि और अंधकारके समूहको सूर्य्य नष्ट करदेता है, उसी प्रकार तक्रका सेवन संग्रहणीरोगको नष्ट करता है ॥ १४९ ॥

संग्राह्या धेनवः श्रेष्ठास्तक्रपानाय रोगिणाम्। तासां पयस्तत्रगुणा जायन्ते वर्णभेदतः ॥ १५० ॥

रोगियोंको तक्र पीनेके लिये उत्तम २ गौओंको संग्रह करे उन गौओंके दूधके गुण उनके वर्णभेदसे जानने ॥ १५० ॥

पीताया मारुतं हन्ति श्वेतायाः पित्तजान्गदान्। रक्ताया गोः कफं हन्ति कृष्णाया गोस्त्रिदोषजित् ॥ १५१ ॥

पीली रंगकी गौका दूध--वातनाशक है। सफेद रंगकी गौका दूध--पित्तरोग नाशक है। लालगौका दूध कफनाशक है। काली गौका दूध--त्रिदोषनाशक है ॥ १५१ ॥

अरण्ये चारयेद्धेनूर्नातितृणलतान्विते ॥ १५२ ॥ पीतोदकाया विस्रम्भान्मन्दं मन्दं प्रचारयेत्। तासां दुग्धं परिग्राह्यं तक्रार्थं भिषजां वरैः ॥१५३॥ दुग्धमक्वथितं वाते पित्ते त्वीषत्कृतं हितम्। कफे त्रिदोषजे रोगे पादोनक्वथितं शृतम् ॥ १५४ ॥

उन गौओंको ऐसे जंगलमें चरावे जहां बहुत तृण और लता न हों। फिर विश्राम कराकर झकोल कर उत्तम जल पिलाकर धीरे धीरे चरावे उन गौओंका दूध तक्रके लिये ग्रहण करे। वातरोगमें कच्चा दूध और पित्त रोगमें किंचित् औटाया हुआ तथा कफ रोगमें एवं त्रिदोषरोगमें चार भागका तीन भाग शेष रह जाय तब ग्रहण करे * ॥ १५२॥१५३ ॥ १५४ ॥

* हमारी सम्मति यह है कि कच्चा दूध पित्तरोगोंमें देना और औटाकर वात रोगमें देना चाहिये क्योंकि कच्चा दूध पेटमें जाकर हवा पैदा करता है।

तदीषदम्लसंयोगात्कठिनं दधि शस्यते। तदल्पजलसंयुक्तमथनं मथितं भवेत् ॥ १५५ ॥

उस औटाये हुए दूधका किंचित् दहीके जामनके या खटाईके योगसे कठिन दही जमावे फिर उसमें किंचित् जल डालकर रईसे मथकर उसमेंसे घी निकाल लेवे ॥ १५५ ॥

तक्रमुद्धृतसारन्तु शुण्ठीचूर्णयुतं पिबेत् ॥ तक्रेण निर्बले जाते त्यक्त्वान्नादिभोजने ॥ १५६ ॥ शरीरे जातरूक्षत्वं शुक्लत्वं मूत्रनेत्रयोः। किञ्चित्स्निग्धं पिबेत्तक्रं ततश्चाधिकसारवत् ॥ १५७ ॥

तक्र और सोंठका चूर्ण इनको एकत्र मिलाकर नित्य पीवे। तक्रसे जो निर्बलता उत्पन्न हो तो सर्वप्रकारके अन्नादिक त्याग कर केवल तक्रका सेवन करे। तक्रको सेवन करनेसे शरीरमें रूक्षता और मूत्र एवं नेत्रोंमें श्वेतता उत्पन्न होती है। प्रथम किंचित् स्निग्धता युक्त तक्रको पीवे पश्चात् अधिक स्निग्ध अर्थात् नवनीतसहित तक्रको पीवे ॥ १५६ ॥ १५७ ॥

तक्रं सनवनीतञ्च पिबेन्नागरसंयुतम्। शनैः शनैर्हरेदन्नं तक्रन्तु परिवर्द्धयेत् ॥ १५८ ॥ तक्रमेव यथाहारो भवेदन्नविवर्जितः। तक्रसात्म्यं यथा कुर्यान्नैवान्नं तत्र भक्षयेत् ॥१५९॥ बुभुक्षायां पिपासायां पिबेत्तक्रं सनागरम्। श्रमं न कुर्य्याद्बहुशो न कुर्य्याद्बहुभाषणम् ॥ १६० ॥ न कुर्य्यान्मैथुनं तक्रपाने क्रोधं विवर्जयेत्। एवं यः सेवते तक्रं ग्रहणी तस्य नश्यति। शीघ्रमेव न सन्देहः श्रीर्यथा द्यूतकारिणः ॥ १६१ ॥

नैनी घी युक्त तक्रको सोंठके चूर्णके साथ मिलाकर पानकरे इसपर क्रमशः धीरे२ अन्नको घटाता जाय और उसीप्रकार क्रमसे तक्रको बढाता जाय उसको यहां तक बढावे कि, अन्नका बिलकुल त्याग करदेवे और केवल तक्रका ही आहार करे, जब भूंख और प्यास

लगे तसी सोंठके चूर्णके साथ तक्रको पान करे। इसमें—बहुत परिश्रम, बहुत भाषण (ज्यादा बोलना), मैथुन और क्रोध इन सबको त्याग देवे। इस प्रकार जो तक्रको सेवन करता है उसकी संग्रहणी शीघ्र ही नष्ट होजाती है। जिस प्रकार जुआ खेलनेवाले मनुष्यकी लक्ष्मी शीघ्रही नष्ट होजाती है॥१५८-१६१॥

प्रशान्ते ग्रहणीरोगे अन्नं गृह्णाति योगतः। अन्नत्यागविधानेन गृह्णीयाच्च शनैः शनैः॥ १६२॥

जब ग्रहणीरोग शांत होजाय तब अन्नको सेवन करे। जिसप्रकार अन्नको प्रथम घटाया था उसी क्रमसे बढावे॥ १६२॥

ग्रहणीरोगिणां तक्रं हितं दोषत्रयापहम्। कालकूटविषं साक्षादन्यथा परिसेवितम्॥ १६३॥

संग्रहणीरोगियोंके लिये तक्रका सेवन—हितकारक और त्रिदोषनाशक है। परन्तु इससे विपरीत सेवन किया हुआ साक्षात् कालकूट विषके समान है१६३॥

तस्माद्यत्नेन संसेव्यं तक्रं संग्रहणीगदे। शस्तं नातःपरं किञ्चिद्ग्रहणीरोगशान्तये॥ १६४॥

इस कारण यत्नपूर्वक संग्रहणीरोगमें तक्रको सेवन कराना चाहिये। संग्रहणीरोगको शांत करनेके लिये इससे उत्तम अन्य औषधि नहीं है॥ १६४॥

आम्रातकाम्रजम्बूत्थे कषाये पादशेषिते। शालिसिद्धा यवागूस्तु भुक्ता कुक्ष्यामयं जयेत॥ १६५॥

आमडे, आम और जामुन इनके चतुर्थांश शेष काथमें शालिचावलोंकी सिद्ध की हुई यवागू सेवन करनेसे कुक्षिरोग नष्ट होता है॥ १६५॥

अंकोटमूलं धातक्यो बिल्वपेशी महौषधम्। कथितं शीतलं पेयं कुक्षिरोगहरं परम्॥ १६६॥

अंकोलकी जड़, धायके फूल, बेलगिरी और सोंठ इनके काथको शीतल करके पान करनेसे कुक्षिरोग नष्ट होता है॥ १६६॥

अंकोटस्य त्रयो भागा भागश्चैकोऽरुणाभवः। तण्डुलोदकसंपीतिः सर्वकुक्ष्यामयापहः॥ १६७॥

अंकोलकी जड़की छाल ३ भाग और अतीस १ भाग इन दोनों एकत्र पीसकर चावलोंके जलकेसाथ पान करनेसे सब प्रकारके कुक्षिरोग नष्ट होते हैं१६७॥

तक्रेण वल्कलं पीतं स्निग्धं पथ्यातरूद्भवम्। ग्रहणीं नाशयेत्क्षिप्रमामरक्ताश्रितां ध्रुवम्॥ १६८॥

हरडके वृक्षकी छालको तक्रमें पीसकर सेवन करनेसे आम और रक्तयुक्त संग्रहणी नष्ट होती है॥१६८॥

स्विन्नानि बालबिल्वानि खादेत्क्षौद्रेण मानवः। तक्रेणानलगर्भेण सार्द्धं तद्ग्रहणीं जयेत॥ १६९॥

उसीजे हुए कच्चे बेलको शहदके साथ सेवन करनेसे अथवा चीतेके चूर्णको तक्रके साथ सेवन करनेसे संग्रहणीरोग नष्ट होता है॥ १६९॥

बालबिल्वबलाशुण्ठीधातकीमुस्तधान्यकैः। कषायैः साधिता हन्ति यवागूर्ग्रहणीगदम्॥ १७०॥

कच्चाबेल, खिरैंटी, सोंठ, धायके फूल, नागरमोथा और धनियाँ इनके काथके द्वारा सिद्ध की हुई यवागू संग्रहणीरोगको नष्ट करती है॥ १७०॥

जम्बूदाडिमशृङ्गाटपाठाकश्चटपल्लवैः॥ १७१॥ पक्कं पर्युषितं बालबिल्वं सगुडनागरम्। हन्ति सर्वानतीसारान्ग्रहणीमतिदुस्तराम्॥ १७२॥

जामुन, अनार, सिंहाड़े, पाढ और जलचौलाईके पत्ते इनके बासी काथमें कच्चे बेलको उसीज लेवे, पश्चात् उसमें गुड़ और सोंठ मिलाकर सेवन करे तो सब प्रकारके अतीसार और अत्यन्त दुस्तर संग्रहणी रोग नष्ट होता है॥ १७१॥ १७२॥

चांगेरीघृत।

चाङ्गेरीस्वरसे दद्याद् घृतप्रस्थं चतुर्गुणे। अजाक्षीरस्य च प्रस्थं पिबेत्सर्पिरिहौषधैः ॥१७३॥ व्योषबिल्वकपित्थानि समङ्गाधातकी घनम्। अजाज्यतिविषा मोचा धान्यकोत्पलबालकम् ॥ १७४ ॥ बला यवानिकाग्निश्च पाठा ग्रन्थिकदाडिमम्। अक्षप्रमाणैरेतैस्तु सर्पिः सिद्धं महागुणम् ॥ १७५ ॥ ग्रहण्यर्शोविकारघ्नं शूलगुल्मज्वरापहम्। कफवातारुचिहरं बलवर्णाग्निवर्धनम् ॥ १७६॥ क्रिमिदोषगुदभ्रंशयकृत्प्लीहामयापहम्। सर्वातिसारशमनं ग्रहणीदीपनं परम् ॥ १७७॥

चांगेरीका स्वरस ४ प्रस्थ, घी १ प्रस्थ, बकरीका दूध १ प्रस्थ, तथा त्रिकुटा, बेलगिरी, कैथ, मजीठ, धायके फूल, नागरमोथा, जीरा, अतीस मोचरस, धनियाँ, कमल, सुगन्धवाला, खिरैंटी, अजवायन, चीता, पाढ,पीपलामूल और अनार इन प्रत्येकका कल्क एक २ तोला इन सबको यथाविधि मिलाकर घृतको सिद्ध करे यह चांगेरी घृत--अत्यन्त गुणवाला है। संग्रहणी,बवासीर, शूल,गुल्म, ज्वर,कफ, वात, अरुचि, क्रिमिदोष, गुदभ्रंश, यकृत, प्लीहारोग और सब प्रकारके अतीसारको नष्ट करनेवाला है। बल वर्ण और अग्निको बढानेवाला है एवं ग्रहणीको दीपन करनेवाला है ॥ १७३--१७७ ॥

बृहच्चांगेरीघृत।

पिप्पली नागरं पाठा श्वदंष्ट्रा च पृथक् पृथक्। भागांस्त्रिपालिकान्दत्त्वा कषायमुपकल्पयेत ॥ १७८॥ गंडारी पिप्पलीमूलं व्योषं चव्यकचित्रकम्। पिष्ट्वा कल्कं क्षिपेत्क्काथे द्रव्यैरर्धपलैः पृथक् ॥ १७९॥ पलानि सर्पिषश्चात्र चत्वारिंशत्प्रदापयेत। चांगेरीस्वरसं तुल्यं सर्पिषा दधि षड्गुणम् ॥ १८०॥ मृद्वग्निना साधयेत्तत्सर्पिः सिद्धं निधापयेत। तदाहारे विधातव्यं पाने च यौगिकैर्बुधैः ॥ १८१ ॥ ग्रहण्यर्शोविकारघ्नं गुल्महृद्रोगनाशनम्। शोथप्लीहोदरानर्शोमूत्रकृच्छ्रज्वरापहम् ॥ १८२ ॥ कासहिक्कारुचिश्वाससदनं पार्श्वशूलनुत। बलपुष्टिवर्णकरमग्निसन्दीपनं परम् ॥ १८३ ॥

पीपल, सोंठ, पाढ और गोखरू ये प्रत्येक तीन २ पल लेकर सोलह गुने जलमें पकावे, जब जल पककर अष्टावशेष रह जाय तब उतारकर छान लेवे पश्चात् उसमें मजीठ, पीपलामूल, त्रिकुटा, चव्य और चिता ये प्रत्येक दो दो तोले लेकर कल्क बनाकर मिलादेवे और घी ४० पल, चांगेरीका स्वरस ४० पल एवं घीसे छ गुना दही लेवे सबको यथाविधि एकत्र करके मंद २ अग्निसे घृतको पकावे। इस बृहच्चांगेरी घृतको आहार और पानमें व्यवहार करे । इसके सेवन करनेसे—संग्रहणी, बवासीर, गुल्म, हृदयरोग, सूजन, प्लीहा, उदररोग, मूत्रकृच्छ्र, ज्वर, खाँसी, हिचकी, अरुचि, श्वास, अंगकी ग्लानि और पसलियोंकी पीडा दूर होती है। तथा बल, पुष्टि और वर्णकी वृद्धि होती है, जठराग्नि दीपन होती है ॥ १७८—१८३ ॥

अत्र गण्डार्यादिचित्रकांतास्त्रिपलिकैरेभिः षोडशगुणैर्जलैस्तथा क्काथयेद्यथा कषायः स्नेहसमत्वं भवतीति।

इन औषधियोंमें गण्डारीसे चित्रकतक जितनी औषधि हैं उनको तीन २ पल लेकर उनके सोलह हिस्से जलसे क्काथ करे जिससे काढा स्नेह (घी,तैल की समान) हो जाय॥

मुस्तकातिविषाबिल्वचूर्णितं कौटजं तथा। मधुना वापि संलीढं ग्रहणीं हन्ति सर्वजाम् ॥१८४॥

नागरमोथा, अतीस, बेलगिरी और इन्द्रजौ इन सबको एकत्र पीसकर शहदमें मिलाकर सेवन करे तो सब प्रकारकी संग्रहणी नष्ट होती है॥ १८४ ॥

पञ्चकोलकसुस्विन्नं बालबिल्वं गुडान्वितम् । शेषाद्द्रवानुपानं स्यात्संग्रहण्यतिसारनुत् ॥ १८५ ॥

कच्चे बेलको पंचकोलके क्वाथमें उसेकर गुडमें मिलाकर पंचकोलके उसी क्वाथके साथ पान करनेसे संग्रहणीरोग और अतीसाररोग नष्ट होता है ॥१८५॥

श्वेतो वा यदि वा रक्तः प्रपक्वो ग्रहणीगदः । गुडेनाधिकसंज्ञेन भक्षितेनाशु नश्यति ॥ १८६ ॥

जो संग्रहणी रोग पक जाय और उसमें श्वेत अथवा लाल दस्त आवे तो अधिकतर गुड भक्षण करे उससे शीघ्र ही संग्रहणीरोग नष्ट होता है ॥ १८६ ॥

बिल्वाब्दशक्रयवबालकमोचसिद्धमाजं पयः पिबति यो दिवसत्रयञ्च । सोऽतिप्रवृद्धचिरजं ग्रहणीविकारं शेषं सशोणितमसाध्यमपि क्षिणोति ॥ १८७ ॥

जो बेलगिरी, नागरमोथा, इन्द्रजौ, सुगन्धवाला और मोचरस इनको बकरीके दूधमें पकाकर उस दूधको तीन दिनतक पीवे तो इससे उसकी अधिक बढी हुई बहुत पुरानी रुधिरयुक्त और असाध्य संग्रहणी नष्ट होजाती है ॥ १८७ ॥

भोजनार्थं समुद्गानां वर्चोवेगाविनाशनम् । आरनालोदकैः पिष्टं प्रातः पिष्टकभक्षणम् ॥ १८८ ॥

भोजनके लिये मूँगको कांजीके जलमें पीसकर उसके बडे बनाकर प्रातःकाल भक्षण करे इससे मलका वेग रुक जाता है ॥ १८८ ॥

केशराजोऽर्जुनक्षारं प्रातः पीतश्च मस्तुना । निहन्ति साममत्यर्थमचिराद्ग्रहणीरुजम् ॥ १८९ ॥

कुकुरभाँगरा और अर्जुनके खारको प्रातःकाल दही के तोडके साथ पान करनेसे आमयुक्त बहुत दिनोंकी पुरानी संग्रहणी नष्ट होती है ॥ १८९ ॥

कपित्थमधिलीढ्वैव सव्योषं क्षौद्रशर्करम् । कट्फलं मधुसंयुक्तं मुच्यते जठरामयात् ॥ १९० ॥

कैथको शहदमें मिलाकर चाटनेसे अथवा त्रिकुटेके चूर्णको शहद और मिश्रीके साथ सेवन करनेसे किम्वा कायफलके चूर्णको शहदमें मिलाकर चाटनेसे उदररोग नष्ट होता है ॥ १९० ॥

अष्टपलकघृत ।

त्र्यूषणत्रिफलाकल्के बिल्वमात्रे गुडात्पले । सर्पिषोऽष्टपलं पक्त्वा मात्रां मन्दानलः पिबेत् ॥ १९१ ॥

त्रिकुटा, त्रिफला और बेलगिरी इन प्रत्येकका कल्क १--१ पल तथा गुड एक पल और घी ८ पल मिलाकर घृतको सिद्ध करे । इस घृतको पान करनेसे मन्दाग्नि नष्ट होती है ॥ १९१ ॥

बिल्वादि घृत ।

बिल्वाग्निचव्यार्द्रकशृङ्गवेरैः क्वाथेन कल्केन च सिद्धमाज्यम् । सछागदुग्धं ग्रहणीगदोत्थे शोथाग्निसादाऽरुचिनुद्वरिष्ठम् ॥ १९२ ॥

बेलगिरी, चीता, चव्य, अदरख और सोंठ इनके कल्क तथा क्वाथ और बकरीके दूधके द्वारा घृतको पकाकर सेवन करनेसे संग्रहणीरोगमें उत्पन्न हुई सूजन, अग्निकी मन्दता और अरुचि दूर होती है १९२

बृहन्मसूरादि घृत ।

मसूरस्य तुलाक्वाथे घृतप्रस्थं विपाचयेत् । पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यचित्रकनागरम् ॥ १९३ ॥ तत्सिद्धं द्विगुणे क्षीरे ग्रहणीघ्नं त्रिदोषनुत् । दुर्नामानिलविष्टम्भं जयेच्चैव प्रवाहिकाम् । बलवर्णकरं हृद्यमाग्निसन्दीपनं परम् ॥ १९४ ॥

मसूरके (१०० पल) क्वाथमें एक प्रस्थ घी, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता और सोंठ इनका कल्क और दूना बकरीका दूध मिलाकर घृतको सिद्ध करे । यह घृत संग्रहणीरोगको हरनेवाला, त्रिदोषनाशक, बवासीर, वातविष्टम्भ और प्रवाहिका रोगको नष्ट करता है। बल और वर्णको बढानेवाला, हृदयको हितकारी और अग्निको दीपन करनेवाल है ॥ १९३ ॥ १९४ ॥

कपित्थाष्टक ।

यवानी पिप्पलीमूलं चतुर्जातकनागरैः । मरिचाग्निजलाजाजीधान्यसौवर्चलैः समैः ॥ १९५ ॥ वृक्षाम्लधातकीकृष्णाबिल्वदाडिमदीप्यकैः । त्रिगुणैः षड्गुणसितैः कपित्थाष्टगुणैः कृतः ॥ १९६ ॥ चूर्णोऽतिसारग्रहणीक्षयगुल्मगुदामयान् । श्वासं कासाऽरुची हिक्कां कपित्थाष्टमिदं जयेत् १९७॥

अजवायन, पीपलामूल, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर, इलायची, सोंठ, कालीमिरच, चीता, सुगन्धवाला, जीरा, धनियाँ और कालानमक, ये सब एक २ भाग, विशांबिल, धायके फूल, पीपल, बेलगिरी अनार और अजवायन ये प्रत्येक तीन २ भाग, मिश्री ६ भाग और कैथ ८ भाग इन सबको एकत्र चूर्ण करके सेवन करे तो अतीसार, संग्रहणी, क्षय, गुल्म, गुदाके रोग, श्वास, खाँसी, अरुचि और हिक्का रोग दूर होते हैं ॥ १९५॥१९६॥१९७ ॥

मधूकपुष्पासव ।

मधूकपुष्पस्वरसं शृतमन्दक्षयीकृतम् । क्षौद्रपादयुतं शीतं पूर्ववत्सन्निधापयेत्॥ १९८ ॥ तं पीत्वा ग्रहणीदोषाञ्जयेत्सर्वाहिताशनः ॥ १९९ ॥

महुएके फूलोंके स्वरसको मन्द२अग्निसे पकावे फिर उसमें चौथा भाग शहद मिलाकर शीतल करके विधिपूर्वक आसवको सिद्ध करे । इसको पान करनेसे सर्वप्रकारकी संग्रहणी और सबप्रकारके अतीसार नष्ट होते हैं । इसपर पथ्य भोजन करे ॥१९८॥१९९॥

कल्याणगुड ।

प्रस्थत्रयेणामलकीरसस्य शुद्धस्य दत्त्वार्धतुलां गुडस्य । चूर्णीकृतैर्ग्रन्थिकजीरचव्यव्योषेभकृष्णाहबुषाजमोदैः ॥ २०० ॥ विडङ्गसिन्धुत्रिफलायवानीपाठाग्निधान्यैश्च पलप्रमाणैः । दत्त्वा त्रिवृच्चूर्णपलानि चाष्टावष्टौ च तैलस्य पचेद्यथावत् ॥ २०१॥ तं भक्षयेदक्षफलप्रमाणं यथेष्टचेष्टस्त्रिसुगन्धियुक्तम् । अनेन सर्वे ग्रहणीविकाराः सश्वासकासस्वरभेदशोथाः ॥ २०२ ॥ शाम्यन्ति चायं चिरमन्तराग्नेः हतस्य पुंस्त्वस्य च वृद्धिहेतुः । स्त्रीणाञ्च वन्ध्यामयनाशनं स्यात्कल्याणको नाम गुडः प्रसिद्धः ॥ २०३ ॥

तैले त्रिवृन्मनाग्भ्रष्टस्त्रिसुगन्धि पलं पलम् । सुसिद्धे निक्षिपेदत्र गुडे कल्याणपूर्वके ॥

अडतालीस पल आमलोंके रसमें पचास पल शुद्ध गुड डालकर पीपलामूल,जीरा,चव्य,त्रिकुटा,गजपीपल हाऊबेर, अजमोद, वायविडंग, सैंधानमक, त्रिफला, अजवायन, पाढ और धनियाँ इन प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले निसोतका चूर्ण बत्तीस तोले तिलका तेल बत्तीस तोले सबको यथाविधि मिलाकर गुडको सिद्ध करें। सिद्ध होजानेके पश्चात् त्रिसुगन्धिका चूर्ण एक २ पल डालकर प्रतिदिन इसमेंसे एक २ तोला प्रमाण भक्षण करे। इससे सब प्रकारके संग्रहणी रोग, स्वास, खाँसी, स्वरभेद और सूजन दूर होती है तथा बहुत दिनोंकी मन्दाग्नि दीपन होती है, पुरुषत्व बढता है और स्त्रियोंका वन्ध्यापन नष्ट होता है। इस कल्याण गुड़में निसोतके चूर्णको तेलमें भूनकर और "त्रिसुगन्धि अर्थात् इलायची, दालचीनी और तेजपात इन प्रत्येकका चूर्ण चार २ तोले मिलाना चाहिये" ॥ ॥२००॥ २०१ ॥ २०२ ॥ २०३॥

महाकल्याणगुड ।

पिप्पली पिप्पलीमूलं चित्रको हस्तिपिप्पली । धान्यकश्च विडङ्गानि यवानी मरिचानि च ॥ २०४ ॥ त्रिफला चाजमोदा च नीलनी जीरकं तथा । सौवर्चलं सैन्धवश्च सामुद्रं रुचकं विडम् ॥ २०५ ॥ आरग्वधश्च त्वक्पत्रं सूक्ष्मैला चोपकुञ्चिका।

नागरेन्द्रयवाश्चैव षड्विंशत्येककार्षिकम् ॥ २०६ ॥ मृद्वीकायाः प्रधानाया दद्यात्पलचतुष्टयम्। त्रिवृतायाः पलान्यष्टौ गुडस्यार्ध तुलां तथा ॥ २०७ ॥ तिलतैलं पलान्यष्टौ चामलक्या रसस्य तु । प्रस्थत्रयमिदं सर्वं शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ २०८ ॥ औदुम्बरं चामलकं बादरं वा यथाफलम्। तावन्मात्रं प्रयुञ्जीत भिषग्दृष्ट्वा यथाबलम् ॥ २०९ ॥ सर्वांश्च ग्रहणीरोगान्प्रमेहांश्चैकविंशतिम् । उरोघातं प्रतिश्यायं दौर्बल्यं वह्निसंक्षयम् ॥ २१० ॥ ज्वरानपि हरेत्सर्वान्कुर्यात्कान्तिं मतिं स्वरम् । पिचुपाठान्वयाद्धन्ति रक्तपित्तञ्च विड्ग्रहम् ॥ २११ ॥ धातुक्षीणो वयःक्षीणः क्षीणः स्त्रीभिः क्षयी तथा । तेभ्यो हितश्च सर्वेभ्यो वन्ध्यानाञ्चैव पुत्रदम् ॥ २१२ ॥ रूपौदार्य्यं स्वरौदार्य्यं मेधामावहति स्थिराम् । महाकल्याणकं नाम रसायनमनुत्तमम् ॥ २१३ ॥

पीपल, पीपलामूल, चीता, गजपीपल, धनियाँ, बायविडंग, अजवायन, कालीमिरच, त्रिफला, अजमोद, नील, जीरा, सैंधानमक, समुद्रनमक, कालानमक, सामर, विड् नमक, अमलतास, दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायची, कालाजीरा' सोंठ और इन्द्रजौ इन प्रत्येकको दो दो तोले, काली दाख १६ तोले, निसोत ३२ तोले, उत्तम गुड़ २०० तोले, तिलका तेल ३२ तोले और आमलोंका स्वरस ४८ पल इन सबको एकत्र मिलाकर मन्द मन्द अग्निसे पकावे । वैद्य रोगीका बलाबल विचार कर इसमेंसे गूलर, आमला अथवा बेरकी बराबर मात्रा भक्षण करनेको देवे । इससे—सर्व प्रकारके संग्रहणी रोग, २१ प्रकारके प्रमेह, उरोघात, प्रतिश्याय, दुर्बलता, अग्निकी मंदता और सर्व प्रकारके ज्वर नष्ट होते हैं। तथा कांति, बुद्धि और स्वरकी वृद्धि होती है । यदि इसमें नीम और पाढका चूर्ण डाला जाय तो यह रक्तपित्त और मलरोधको हरता है। जो मनुष्य धातु क्षीण हैं, जो अवस्थामें क्षीण होगये हैं और जो स्त्रियोंके अत्यन्त प्रसंग करनेसे क्षीण होगये हैं उन सबके लिये यह हितकारी है और वन्ध्यास्त्रियोंको पुत्रका देनेवाला है. तथा रूप, स्वर और मेधाको स्थिर करनेवाला है । यह महाकल्याण नामक गुड़ उत्तम रसायन है ॥ २०४—२१३ ॥

द्वितियकल्याणगुड ।

विडङ्गपिप्पलीमूलत्रिफलाधान्यचित्रकान् । मरिचेन्द्रजवाजाजीपिप्पलीहस्तिपिप्पलीः ॥ २१४ ॥ लवणान्यजमोदाश्च चूर्णितं कार्षिकं पृथक्। तिलतैलत्रिवृच्चूर्णभागौ चाष्टपलोन्मितौ ॥ २१५ ॥ धात्रीफलरसप्रस्थान्गुडानर्धतुलांस्तथा । पक्वा मृद्वग्निना खादेद्बदरोदुम्बरोन्मितम् ॥ २१६ ॥ गुरोर्भुक्तं न चात्र स्याद्विहाराहारयन्त्रिणाम्॥मन्दाग्नित्वं ज्वरं मूर्च्छां मूत्रकृच्छ्रमरोचकम् ॥ २१७ ॥ श्वयथुं गात्रशूलञ्च कासं श्वासं भ्रमक्षयम्। कुष्ठार्शःकामलामेहान् गुल्मोदरभगन्दरान् ॥ २१८ ॥ ग्रहणीः पाण्डुरोगांश्च हन्ति सर्वामयांस्त्वयम् । कल्याणको गुडः ख्यातः सर्वर्तुषु च योजितः ॥ २१९ ॥

वायविडंग, पोपलामूल, त्रिफला, धनियाँ, चीता, कालीमिरच, इन्द्रजौ, जीरा, पीपल, गजपीपल, पांचों नमक और अजमोद ये प्रत्येक एक एक कर्ष, तिलका तेल ३२ तोले, निसोतका चूर्ण ३२ तोले, आमलोंका स्वरस ६४ तोले और गुड ५० पल लेवे । सबको मिलाकर यथाविधिसे मन्द २ अग्निसे पकावे । इसमेंसे प्रतिदिन बेरकी बराबर अथवा गूलरकी बराबर भक्षण करे । इसपर भारी पदार्थोंका भोजन नहीं करे और मिथ्याहार विहारोंको छोड देवे । यह कल्याणगुड—मन्दाग्नि, ज्वर, मूर्च्छा, मूत्रकृच्छ्र, अरुचि, सूजन, गात्रशूल, खांसी, श्वास, भ्रम, क्षय, कोढ, बवासीर कामला, प्रेमह, गुल्म, उदर

भगन्दर, संग्रहणी, पाण्डुरोग और सब प्रकारके रोगोंको हरता है। यह कल्याणगुड सर्व ऋतुओंमें प्रयोग करना चाहिए ॥ २१४—२१९ ॥

तृतीय कल्याणगुड।

चित्रकामृतचांगेरीचव्यग्रन्थिकनागरम्। बिल्वश्च धातकी पाठा ह्रीबेरं सपुनर्नवा ॥ २२० ॥ कुटजत्वक्फलं लोध्रं पृथक्पञ्चपलांशकम्। जले चतुर्गुणे सिद्धं यावत्पादावशेषितम् ॥ २२१ ॥ आर्द्रकस्वरसं मुस्तं प्रसन्नं चाम्लकाञ्जिकम्। तुलार्धश्च पृथग्दद्याद्गुडस्यार्धतुलां पचेत् ॥ २२२ ॥ तन्तुमत्सदृशं तोये प्रक्षिप्तं न विसर्पति। त्र्यूषणं त्रिफला मुस्तयवानीजीरकद्वयम् ॥ २२३ ॥ चूर्णमष्टपलैरेतैः सिद्धं शीते प्रदापयेत्। मात्रामग्निबलं ज्ञात्वा उपयुञ्जीत बुद्धिमान् ॥ २२४ ॥ मन्दाग्न्युपहताः केचिद्ये च वातकफामयैः। हतास्तेभ्यो हितं चेदं वह्निवृद्धिकरं परम् ॥ २२५ ॥ ग्रहणीदोषशूलघ्नं शोथपाण्ड्वामयापहम्। श्वासकासज्वरार्शोघ्नं प्लीहगुल्मोदरापहम् ॥ २२६ ॥ दीर्घकालोत्थितश्चैव हन्ति रोगगणन्त्विदम्। दृष्टं वारसहस्रेण किं पुनश्चाचिरोत्थितम् ॥ २२७ ॥ "गुडं कल्याणकं नाम वृष्यं पौष्टयं बलप्रदम्।"

चीता, गिलोय, चांगेरी (अम्ल नोनिया), चव्य, पीपलामूल, सोंठ, बेलगिरी, धायके फूल, पाठ, सुगन्धवाला, पुनर्नवा, कुडेकी छाल, इन्द्रजौ और लोध प्रत्येक पांच २ पल लेकर चौगुने जलमें पकावे जब चौथाई भाग शेष रह जाय तब उतारकर छान लेवे फिर उसमें अदरखका रस नागरमोथा और स्वच्छ उत्तम काँजी प्रत्येक पचास २ पल और गुड़ पचास पल मिलाकर यथाविधिसे पकावे जब तंतुके समान उसमें तारसे निकलने लगें और जलमें डालनेसे फैले नहीं तब शीतल होनेपर त्रिकुटा त्रिफला, नागरमोथा, अजवायन, जीरा और काला जीरा इनका आठ२ पल चूर्ण मिला देवे। अग्निका बलाबल विचारकर मात्रा निरूपण करे। जो मनुष्य मंदाग्निसे पीड़ित हैं और जो वातकफसे ग्रसित हैं उनके लिये यह अत्यन्त हितकारी है। एवं अग्निको दीपन करनेवाला और ग्रहणी दोष, संग्रहणीरोग, शूल, सूजन, पांडुरोग, श्वास, खाँसी, ज्वर, बवासीर, प्लीहा, गुल्म, उदररोग और बहुत कालसे उत्पन्न हुए पुराने रोगोंको नष्ट करता है, ऐसा हजारों बार देखा गया है। नवीन रोगोंको तो कहना ही क्या है। यह कल्याणगुड़ वीर्यजनक, पुष्टिकारक और बलकारक है ॥ २२०–२२७ ॥

चतुर्थ कल्याणगुड।

मस्त्वारनालचांगेरीशृङ्गवेररसं तथा। तुलार्धं तु पृथग्दद्यादामलक्याः शतार्द्धकम् ॥२२८॥ तिलतैलपलान्यष्टौ गुडस्यार्धतुलां पचेत्। तन्तुमत्सदृशं तोये प्रक्षिप्तं न विसर्पति ॥२२९॥ वत्सकातिविषा कुष्ठं धातकी च रसाञ्जनम्। सव्योषं पिप्पलीमूलं दारु चव्यं सचित्रकम् ॥ २३० ॥ सक्षारलवणं चूर्णं दद्यादर्धपलांशकम्। मात्रामग्निबलापेक्षी चोपयुञ्जीत बुद्धिमान् ॥ २३१ ॥ दुर्नामश्वासकासघ्नो ग्रहणीदोषमेहनुत्। गुल्मोदावर्तहृद्रोगशोफपाण्ड्वामयापहः॥ २३२ ॥ कफवातामदोषघ्नः पाचनो वह्निदीपनः। गुडः कल्याणको नाम्ना वृष्यः पुष्टिबलप्रदः ॥ २३३ ॥

दहीका तोड़, काँजी, चांगेरीका स्वरस और अदरखका रस ये प्रत्येक पचास २ पल, आमलेका रस १५० पल, तिलका तेल ८ पल, गुड ५० पल, इन सबको मिलाकर यथाविधिसे पकावे। जब पकते २ गाढा होजाय और जलमें डालनेसे नहीं फैले तो कुडेकी छाल, अतीस, कूठ, धायके फूल, रसौत, त्रिकुटा, पीपलामूल, देवदारु, चीता, जवाखार और पांच

नमक ये प्रत्येक दो दो तोला लेकर चूर्ण करके मिला देवे। अग्निका बलाबल विचारकर मात्राको निरूपण करे तो यह–बावासीर, श्वास, खाँसी, संग्रहणी, प्रमेह, गुल्म, उदावर्त, हृदयरोग, सूजन, पाण्डुरोग, कफ, वात और आमदोषनाशक है यह कल्याणगुड–पाचन, अग्निप्रदीपक, वृष्य, पुष्टि और बलकारक है ॥ २२८–२३३ ॥

कूष्माण्डकल्याणगुड।

कूष्माण्डकानां पक्कानां स्विन्नानां निष्कुलत्वचाम्। सर्पिष्प्रस्थे पलशतं ताम्रपात्रे शनैः पचेत् ॥ २३४ ॥ पिप्पलीपिप्पलीमूलं चित्रको हस्तिपिप्पली। धान्यकानि विडङ्गानि नागरं मरिचानि च ॥ २३५ ॥ त्रिफला चाजमोदा च कालिङ्गाजाजिसैन्धवम्। एकैकस्य पलश्चैकं त्रिवृदष्टपलं तथा ॥ २३६॥ तैलस्य च पलान्यष्टौ गुडात् पञ्चाशदेव तु। प्रस्थैस्त्रिभिः समेतन्तु रसेनामलकस्य[1] च ॥ २३७ ॥ तावत्पाकं प्रकुर्वीत मृदुना वह्निना भिषक्। यावद्दर्वीप्रलेपः स्यात्तदेनमवतारयेत् ॥ २३८ ॥ औदुम्बरं चामलकं बादरं वा प्रमाणतः। यथाबलं तु कायस्य भक्षयेत्तु गुडं नरः ॥ २३९ ॥ अनेनैव विधानेन प्रयुक्तश्च दिने दिने। प्रसह्य ग्रहणीदोषान्कुष्ठानर्शोभगन्दरान् ॥ ॥ २४० ॥ ज्वरमानाहहृद्रोगगुल्मोदरविषूचिकाः। कामलापाण्डुरोगांश्च प्रमेहांश्चैकविंशतीन् ॥ २४१ ॥ वातशोणितवीसर्पराजयक्ष्महलीमकान्। कफपित्तानिलान्सर्वान्प्ररूढांश्चापि नाशयेत् ॥ २४२ ॥ व्याधिक्षीणा वयःक्षीणाः स्त्रीषु क्षीणाश्च ये नराः। तेषां हितश्च बल्यश्च वयःस्थापन एव च। गुडः कल्याणको नाम्ना वन्ध्यायाः पुत्रदः परः ॥ २४३ ॥

प्रथम एक पका हुआ पेठा लेकर उसे छीलकर उबाल लेवे फिर उसके टुकडे कर १०० पल प्रमाण लेवे और घी १६ पल लेवे। फिर पीपल, पीपलामूल, चीता, गजपीपल, धनियाँ, बायविडङ्ग, सोंठ, कालीमिरच, त्रिफला, अजमोद, कुडेकी छाल, जीरा और सैंधानमक प्रत्येक चार २ तोले, निसोत ३२ तोले, तिलका तेल ३२ तोले, गुड ५० पल और आमलोंका रस ३ प्रस्थ ६० तोलेको लेकर सबको मिला तांबेके बासनमें करके धीरे २ मन्द २ अग्निसे पकावे जब पकते २ गाढा होकर करछीसे लगनेलगे तब उतार लेवे इसमेंसे शरीरका बलाबल विचारकर–गूलर, आमले अथवा बेरकी बराबर भक्षण करे। इस प्रकार प्रतिदिन सेवन करे तो यह कूष्माण्डकल्याणगुड–संग्रहणी, कोढ, बवासीर, भगन्दर, ज्वर, आनाह, हृदयरोग, गुल्म, उदररोग, विषूचिका, कामला, पाण्डुरोग, इक्कीस प्रकारके प्रमेह, वातरक्त, विसर्प, राजयक्ष्मा, हलीमक, कफ, पित्त और वातके समस्त रोगोंको नष्ट करता है। जो मनुष्य रोगोंसे क्षीण होगये हैं और जो अधिक स्त्रीप्रसंग करनेसे क्षीण होगये हैं, उनके लिये यह हितकारक, बलकारक और अवस्थास्थापक है। एवं बन्ध्या स्त्रियोंको पुत्रका देनेवाला है ॥ २३४–२४३ ॥

बहुशालिगुड।

त्रिवृत्तिक्ता निकुम्भा च श्वदंष्ट्रा चित्रकं शटी। विशाला मुस्तकं शुण्ठी कृमिशत्रुर्हरीतकी ॥ २४४ ॥ द्विपलांशाः पलान्यष्टौ भल्लातकफलानि च। सूरणं द्वादश प्रोक्तं षट्पलं वृद्धदारुकम् ॥ २४५ ॥ एतानि खण्डशः कृत्वा द्विद्रोणेऽपां विपाचयेत्। पादशेषन्तु कुर्वीत पचेद्गुडतुलां भिषक् ॥ ॥ २४६ ॥ कन्दत्तिक्तत्रिवृद्वह्निमुस्तैलामरिचत्वचम्। नागकेसरचूर्णश्च ह्येकैकं द्विपलोन्मितम् ॥२४७॥ एतानि सूक्ष्मचूर्णानि गुडमध्ये विनिःक्षिपेत्। भक्षयेद्गुटिकां प्राज्ञः कर्षांशां

[1] तांबेके कलई किये हुए वर्तनमें बनाना चाहिये नहीं तो आमलोंकी खटाससे कषैलापन आजायगा.

पथ्यभुङ्नरः ॥ २४८ ॥ वातपित्तकफप्रायां द्विदोषां सान्निपातिकाम् । ग्रहणीं नाशयत्याशु चक्रपाणिर्यथाऽसुरान् ॥ २४९ ॥ कामलाकुष्ठमेहार्शःपाण्डुरोगभगन्दरान् । श्वयथूदरगुल्मांश्च जयेत्सम्यक्प्रयोजितः ॥ २५० ॥ "सर्वास्वृतुषु कर्त्तव्यो गुडोऽयं बहुशालिकः"

निसोत, कुटकी, दन्ती, गोखरू, चीता, कचूर, इन्द्रायन, नागरमोथा, सोंठ, वायविडंग और हरड ये प्रत्येक आठ आठ तोले, भिलावे बत्तीस तोले, जिमीकन्द १२ पल और विधारा २४ तोले लेवे । इन सबको कूटकर दो द्रोण जलमें पकावे. जब चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतार कर छान लेवे । फिर उसमें १०० पल गुड डालकर पकावे, पकते समय उसमें विदारीकन्द, चिरायता, निसोत, चीता, नागरमोथा, इलायची, कालीमिरच, दालचीनी और नागकेशर इन प्रत्येकका चूर्ण दो २ पल मिलाकर एक२ तोलेकी गोलियाँ बना लेवे प्रतिदिन एक गोली खाय और पथ्य भोजन करे तो यह वात पित्त और कफकी संग्रहणी, द्वन्द्वज संग्रहणी और त्रिदोषकी संग्रहणीको इस प्रकार नष्ट करदेता जिस प्रकार विष्णु दैत्योंका नाश करते हैं । तथा कामला, कोढ, प्रमेह, बवासीर, पाण्डुरोग, भगन्दर, सूजन, उदररोग और गुल्मरोगको भी दूर करता है । इस बाहुशालगुड़को सर्वकालमें सेवन करना चाहिये ॥ २४४—२५० ॥

सारकल्प ।

आलिप्य तापीकरवीरकाभ्यां वैश्वानरे प्रज्वलिते निधाय । तप्तं सुतप्तं विनियोज्य तक्रे निर्वाप्य वारान्बहुशः सुलोहम् ॥ २५१ ॥ एभिः प्रकारैः सुमृताश्च लोहाश्चूर्णीकृताश्चापि पलानि चाष्टौ । सर्पिष्पलं तैलपले पलानि चत्वारि चादाय वरारसस्य॥ २५२ ॥ तक्रस्य चाम्लस्य चतुष्पलानि कर्षश्च कर्षं पृथगौषधानाम् । व्योषाजमोदाचविकानलानां मूलं प्रदद्याद्दशपिप्पलीनाम् ॥ २५३ ॥ सिन्धुप्रभूतं सविडङ्गचूर्णं तक्रेण हन्याद्ग्रहणीं समस्ताम् । अर्शांसि शोथं परिणामसंज्ञं शूलञ्च दीप्तिं प्रकरोति वह्नेः ॥ २५४ ॥

सोनामाखी और मैनशिलको जलमें पीसकर लोहेके पत्रोंपर लेप करे उनको खूब प्रज्वलित अग्निमें रखकर तपावे पश्चात् उनको तक्रमें बुझावे, इस प्रकार वारंवार तपाकर अनेकवार तक्रमें बुझावे। इस प्रकार भस्म किया हुआ लोहा आठ पल लेकर चूर्ण कर ले । फिर उसमें घी ४ तोले, तेल ४ तोले, त्रिफलेका रस ४ पल, खट्टा तक्र ४ पल, एवं पीपल १० तथा त्रिकुटा, अजमोद, चव्य, चीता, पीपलामूल सैंधानोन और बायविडंग इनका चूर्ण दो २ तोला मिलावे । यह सारकल्प—तक्रसे लिया जाये. सर्व प्रकारकी संग्रहणी, बवासीर, सूजन और परिणामशूलको नष्ट करता है एवं अग्निको दीपन करता है ॥ २५१–२५४ ॥

अपराजितावलेह ।

पलार्द्धमरुणायास्तु द्विपले कुटजत्वचः । केशराजस्य मूलानि कर्षं तत्सर्वमेकतः ॥ २५५ ॥ संकुट्य सलिलप्रस्थे पक्त्वा पादस्थिते रसे । दत्त्वा सप्तपलं तस्मिञ्छागक्षीरं चतुष्पलम् २५६ शोष्यं पक्वरसं भूयः पचेद्दार्वीप्रलेपनम् । विश्वातिविषयोश्चूर्णं मुस्तस्येन्द्रयवस्य च ॥ २५७ ॥ प्रत्येकमक्षमात्रन्तु क्षिप्त्वायदक्षमात्रकम् । तदशित्वानुभुञ्जीत काञ्जिकाम्लप्रसाधितान् ॥ २५८ ॥ मत्स्यान्गोपुच्छसंज्ञांस्तु छागक्षीरं ततः पिबेत् । ग्रहण्यतीसारहरो लेहोऽयमपराजितः २५९

अतीस २ तोले, कुड़ेकी छाल ८ तोले और भांगरेकी जड २ तोले लेवे सबको एकत्र कूट कर ६४ तोले जलमें पकावे जब चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतार कर छान लेवे फिर उसमें सात पल बकरीका दूध मिलाकर पकावे, जब पकते २ चारपल दूध सूख जाय और गाढा होकर करछीसे लगने लगे तब सोंठ, अतीस, नागरमोथा और इन्द्रजौ

प्रत्येकका चूर्ण एक एक तोला मिला देवे । प्रतिदिन इसमेंसे एक तोला प्रमाण भक्षण करे और खट्टी कांजीमें सिद्ध की हुई गोपुच्छनामक मछली भोजन करे अथवा बकरीका दूध पीवे, तो यह अपराजितावलेह—संग्रहणी और अतीसारको नष्ट करता है ॥ २५५—२५९ ॥

इति वंगसेने भाषाटीकायां ग्रहण्यधिकारः संपूर्णः॥

अथ अर्शोरोग ।

अर्शोरोगकी संख्यापूर्वक संप्राप्ति ।

पृथग्दोषैः समस्तैश्च शोणितात्सहजानि च । अर्शांसि षट्प्रकाराणि विद्याद् गुदवलित्रये ॥ १ ॥

वातज १ पित्तज २ कफज ३ त्रिदोषज ४ रक्तज ५ और सहज ६ ऐसे छःप्रकारकी बवासीर मनुष्योंकी गुदाकी तीन वलियोंमें उत्पन्न होती है ॥ १॥

दोषास्त्वङ्मांसमेदांसि संदूष्य विविधाकृतीन् । मांसांकुरानपानादौ कुर्वन्त्यर्शांसि ताञ्जगुः ॥ २ ॥

दुष्ट हुए वातादिदोष, त्वचा, मांस और मेदको दूषित करके गुदामें अनेक प्रकारके आकारवाले मांसके अकुरों (मस्से) को उत्पन्न करते हैं उनको अर्श अर्थात् बवासीर कहते हैं ॥ २ ॥

वातज बवासीरके कारण ।

कषायकटुतिक्तानि रूक्षशीतलघूनि च । प्रमितालपाशनं तीक्ष्णमद्यमैथुनसेवनम् ॥ ३ ॥ लङ्घनं देशकालौ च शीतौ व्यायामकर्म्म च । शोको वातातपस्पर्शो हेतुर्वातार्शसांमतः४

कषैले, चरपरे, कड़वे, रूखे, शीतल और हलके पदार्थोंको अधिकतर सेवन करनेसे, बहुत थोडा भोजन करनेसे अथवा (भोजनके समय भोजन नहीं करनेसे और कुसमय भोजन करनेसे) तीक्ष्ण पदार्थोंका सेवन करनेसे,मदिरा पीनेसे,अत्यन्त स्त्रीसंसर्ग करनेसे,लंघन (उपवास) करनेसे,शीतदेशमें रहनेसे और शीत कालके कारण अधिक व्यायाम करनेसे अत्यन्त शोक करनेसे,अधिकतर वायु और धूपमें फिरनेसे वातकी बवासीर कुपित होती है अर्थात् वातकी बवासीर होनेके ये कारण हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥

पित्तज बवासीरके कारण ।

कट्वम्ललवणोष्णानि व्यायामाग्न्यातपप्रभाः । देशकालावशिशिरौ क्रोधो मद्यमसूयनम् ॥ ५ ॥ विदाहि तीक्ष्णमुष्णञ्च सर्वपानान्नभेषजम् । पित्तोल्बणानां विज्ञेयः प्रकोपे हेतुरर्शसाम् ॥ ६ ॥

चरपरे, खट्टे, नमकीन और गरम ऐसे पदार्थोंको अधिक सेवन करने, अधिक व्यायाम (दंडकसरत) के करनेसे, अग्निको सेवन करनेसे अथवा धूपमें रहनेसे, उष्णदेशमें निवास करनेसे, ग्रीष्म ऋतुके कारण, क्रोध करनेसे, मद्यपान करनेसे, पराई सम्पत्तिको देखकर डाह करनेसे, दाहकारक, तीक्ष्ण एवं उष्ण अन्न पान और औषधियोंको भक्षण करनेसे पित्तकी बवासीर कुपित होती है । अर्थात् पित्तकी बवासीर होनेके ये सब कारण हैं ॥ ५ ॥ ६ ॥

कफज बवासीरके कारण ।

मधुरस्निग्धशीतानि लवणाम्लगुरूणि च । अव्यायामदिवास्वप्नशय्यासनसुखे रतिः ॥ ७ ॥ प्राग्वातसेवा शीतौ च देशकालावचिन्तनम् । श्लैष्मिकानां समुद्दिष्टमेतत्कारणमर्शसाम् ॥ ८ ॥

मधुर, चिकने,शीतल, नमकीन, खट्टे और भारी ऐसे पदार्थोंका भोजन करना, परिश्रम नहीं करना, दिनमें सोना, सुखपूर्वक सेज अथवा आसनपर गद्दी तकिये लगाये अधिक बैठे रहना, पूर्वकी वायु (पुरवाई हवा) को सेवन करना,शीतलदेशमें निवास करना, शीत ऋतुका होना और किसी प्रकारका विचार न करना अर्थात् आलस्यमें पडे रहना ये सब कफकी बवासीरके कारण हैं । अर्थात् इन कारणोंसे कफकी बवासीर होती है ॥ ७ ॥८ ॥

द्वन्द्वज बवासीरके कारण ।

हेतुलक्षणसंसर्गाद्विद्याद्द्वन्द्वोल्बणानि च ।

उपरोक्त मिश्रित कारणोंसे द्वन्द्वज बवासीर कुपित होती है उसमें दो दोषोंके लक्षण मिलते हैं॥

त्रिदोषजबवासीरके कारण।

सर्वो हेतुस्त्रिदोषाणां सहजैर्लक्षणैः समम्॥ ९॥

उपरोक्त तीनों दोषोंके कारणोंसे त्रिदोषज बवासीर कुपित होती है और उसमें तीनों दोषोंके लक्षण होते हैं। सहज बवासीरके लक्षण भी इसी प्रकार जानने॥ ९॥

बवासीरके पूर्वलक्षण।

विष्टम्भोऽन्नस्य दौर्बल्यं कुक्षेराटोप एव च। कार्श्यमुद्गारबाहुल्यं सक्थिसादोऽल्पविट्कता॥ १०॥ ग्रहणीदोषपाण्ड्वार्त्तेराशङ्का चोदरस्य च। पूर्वरूपाणि निर्दिष्टान्यर्शसामभिवृद्धये॥ ११॥

अन्नका विष्टम्भ होना अर्थात् अन्नको अच्छे प्रकारसे न पचनेके कारण पेटमें मलका रुकना, शरीरमें दुर्बलता, कोखमें गुड़गुडाहट, कृशता, डकारोंका अधिक आना, जांघोंमें वेदना, मलका थोडा उतरना, संग्रहणी, पांडुरोग और उदररोगकी आशंका होना ये सब लक्षण बवासीरके उत्पन्न होनेसे पूर्वमें होते हैं॥ १०॥ ॥ ११॥

वातजबवासीरके लक्षण।

गुदाङ्कुराश्चात्यनिलाः शुष्काश्चिमिचिमान्विताः। म्लानाः श्यावारुणाः स्तब्धा विषदाः परुषाः खराः॥ १२॥ मिथो विसदृशा वक्रास्तीक्ष्णा विस्फुटिताननाः। बिम्बीकर्कन्धुखर्जूरकार्पासीफलसन्निभाः॥ १३॥ केचित्कदम्बपुष्पाभाः केचित्सिद्धार्थकोपमाः। शिरः पार्श्वांसकट्यूरुवङ्क्षणाभ्यधिकव्यथाः॥ १४॥ क्षवथूद्गारविष्टम्भहृद्ग्रहाऽरोचकप्रदाः। श्वासकासाग्निवैषम्यकर्णनादभ्रमावहाः॥ ॥ १५॥ तैरार्त्तो ग्रथितं स्तोकं सशब्दं सप्रवाहिकम्। रुक्फेनपिच्छानुगतं विबद्धमुपवेश्यते॥ १६॥ कृष्णत्वङ्नखविण्मूत्रनेत्रवक्त्रश्च जायते। गुल्मप्लीहोदराष्ठीलासम्भवस्तत एव च॥ १७॥

वातकी बवासीरमें गुदाके अंकुर सूखे, चिमचिम पीडावाले, कुह्मलाये हुए, काले, लाल, जड, विशद, कर्कश, खरखरे, आपसमें सब एकसे न हों, तिरछे, तीक्ष्ण, कटेमुखवाले, कन्दूरी, बेर, खजूर और कपासके फलके समान हों, कोई कदमकी फूलकी समान, कोई सरसोंके दानेकी समान हों, शिर, पसली, कन्धे, कमर, जंघा और वंक्षण इन स्थानोंमें अधिक पीडा हो, छींक, डकार और मलका अवरोध हो, हृदयमें पीडा, अरुचि, श्वास, खाँसी, अग्निकी विषमता, कानोंमें शब्द, भ्रान्ति और उस रोगीके गांठदार थोडा शब्दयुक्त, प्रवाहिकाके लक्षणोंवाला, पीडायुक्त, झागोंदार बहुत चिकना और विबन्धसहित ऐसा मल उतरे तथा उसकी त्वचा, नख, विष्ठा, मूत्र, नेत्र और मुख सब काले हों एवं प्लीहा, उदररोग, अष्ठिला, इत्यादि विकार उत्पन्न होते हैं॥ १२—१७॥

वातजबवासीरकी चिकित्सा।

तत्र वातप्रायेषु स्नेहस्वेदवमनविरेचनानुस्थापनानुवासनमतिसिद्धमिति वातजे स्नेहस्वेदादीति।

वातज बवासीरमें प्रथम वैद्य स्नेह, स्वेद, वमन, विरेचन, अनुस्थापन और अनुवासन बस्ति प्रयोग करे।

लवणादिक्षार।

लवणान्यर्कपत्राणि विनीय तरुणानि च। तैलेनाम्लेन युक्तानि युक्त्या क्षारं दहेद्भिषक्॥ १८॥ उष्णोदकेन मद्यैर्वा रसैरम्लैस्तु लाभतः। पीतः प्रशमयत्येषक्षारोऽर्शो वातसम्भवम्॥ १९॥

पांचों नमक और आकके पके हुए पत्ते लेकर तेल और खटाईमें मिलाकर किसी वर्तनमें धर सन्धि लेपकर अग्निमें युक्तिसे उनको जलाकर खार निकाले पश्चात् उस खारको गरम जल, मदिरा अथवा कांजोके साथ पान करे तो वातज बवासीर नष्ट होती है॥ १८॥ १९॥

पित्तजबवासीरके लक्षण ।

पित्तोत्तरानीलमुखा रक्तपीतासितप्रभाः । तन्वसृक्स्राविणो विस्रास्तनवो मृदवस्तथा ॥ २० ॥ शुकजिह्वायकृत्खंडजलौकावक्त्रसन्निभाः । दाहपाकज्वरस्वेदतृण्मूर्च्छाऽरतिमोहदाः ॥ २१ ॥ सोष्माणो द्रवनीलोष्णपीतरक्तामवर्चसः । यवमध्याहरित्पीतहारिद्रत्वङ्नखादयः ॥ २२ ॥

पित्तकी बवासीरमें गुदाके अंकुर (मस्से) नीले मुखवाले, लाल, पीले, काले उनमेंसे थोडा २ रुधिर स्रवे, रुधिरकेसी गंध आवे, छोटे कोमल तथा तोतेके जभिकी समान, कलेजेके टुकडेकें समान और जौंकके मुखकी समान हों और जौंकी समान बीचमेंसे मोटे हों, दाह, पाक, ज्वर, पसीनेका अधिकतर निकलता, तृषा, मूर्च्छा, बेचैनी, मोह (बेहोसी) और सन्तापयुक्त हों, तथा मल पतला, नीला, गरम, पीला, लाल और आमसहित उतरे, त्वचा और नखादिक हरे, पीले एवं हल्दीकी समान रंगवाले हों ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥

पित्तजबवासीरकी चिकित्सा ।

पित्तजेषु विरेचनमिति । बालकं शृङ्गवेरञ्च पाययेत्तंडुलाम्बुना । मधुयुक्तं प्रशमयेदर्शः पित्तसमुद्भवम्॥२३॥

पित्तकी बवासीरमें प्रथम विरेचन करावे फिर सुगन्धवाला और सोंठ इनको चावलोंके जलमें पीस कर शहद मिलाकर पान करे तो पित्तकी बवासीर नष्ट होती है ॥ २३ ॥

कफजबवासीरके लक्षण ।

श्लेष्मोल्बणा महामूला घना मन्दरुजः सिताः । उत्सन्नोपचिताः स्निग्धाः स्तब्धवृत्तगुरुस्थिराः ॥ २४ ॥ पिच्छिलाः स्तिमिताः श्लक्ष्णाः कण्ड्वाढ्याः स्पर्शनप्रियाः । करीरपनसास्थ्याभास्तथा गोस्तनसन्निभाः॥ २५ ॥ वङ्क्षणानाहिनः पायुबस्तिनाभिविकर्षिणः । सकासश्वासहृल्लासप्रसेकारुचिपीनसाः॥ २६॥ मेहकृच्छ्रशिरोजाड्यशिशिरज्वरकारिणः । क्लैब्याग्निमार्दवच्छर्दिरामप्रायविकारदाः ॥ २७ ॥ वसामांसकफप्राज्यपुरीषाः सप्रवाहिकाः । न स्रवन्ति न भिद्यन्ते पाण्डुस्निग्धत्वगादयः ॥ २८ ॥

कफकी बवासीरमें गुदाके अंकुर (मस्से) महामूल (बडी जडवाले), घन, मन्दपीडावाले, सफद, ऊँचे, मोटे, चिकने, जड, गोल, भारी, कठिन, पिच्छिल, कफसे भीजे हुए, श्लक्ष्ण (स्वच्छ), अधिक खुजलीयुक्त और स्पर्श करनेमें प्रिय तथा करीर और कटहरके गुठलीके समान एवं गौके थनकी समान हों, वंक्षण स्थानमें अफारा हो, गुदा, बस्ती और नाभिमें पीडा हो तथा खाँसी, श्वास, उबकाई, मुखसे पानीका निकलना, अरुचि, पीनस, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, शिरमें जडता, शीत ज्वरका होना नपुंसकता, अग्निकी मन्दता, वमनका होना, और आमके विकारोंका होना, एवं वसा (चर्बी) मांस और कफयुक्त मलका उतरना, प्रवाहिकाका होना, न उसमेंसे स्राव हो और न वह टूटे और उसके त्वचादि पांडु वर्ण (श्वेत, पीत मिश्रित) और चिकने हों ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥

कफजबवासीरकी चिकित्सा ।

कफजे शृङ्गवेरस्य क्वाथो नित्योपयोगिकः ।

कफकी बवासीरमें सोंठका क्वाथ सदैव उपयोग करने योग्य है ॥

त्रिदोषज और सहज बवासीरके लक्षण ।

सर्वैः सर्वात्मकान्याहुर्लक्षणैः सहजानि च ॥ २९ ॥

जिसमें तीनों दोषोंके लक्षण मिलते हों उसको सन्निपातकी बवासीर जानना और सहजके लक्षण भी इसी प्रकार जानना ॥ २९ ॥

सहजबवासीरकी चिकित्सा ।

यथास्वौषधसंयुक्तं पाययेत्सहजेषु च ।

सहज (स्वाभाविक, वंशसे उत्पन्न हुई) बवासीरकी यथादोषानुसार चिकित्सा करे ॥

सबप्रकारकी बवासीरकी चिकित्सा।

सर्वाण्यर्शांसि मतिमान् पूर्वमालेपनादिभिः। स्वेदरक्तावसेकैश्च जयेच्च हितभोजनैः॥ ३०॥

बुद्धिमान् वैद्य सबप्रकारकी बवासीरको प्रथम प्रलेपादि स्वेद, मोक्षण और हितकारक भोजनोंसे जीते॥ ३०॥

त्रयो विकाराः प्रायेण ये परस्परहेतवः। अर्शांसि चातिसारश्च ग्रहणी गुद एव च॥ ३१॥

अर्श (बवासीर), अतिसार और संग्रहणी ये तीनों रोग प्रायः परस्पर अन्योन्याश्रयदोषयुक्त हैं ये तीनों गुदामें ही होते हैं॥ ३१॥

एषामग्निबले हीने वृद्धिर्वृद्धे परिक्षयः। तस्मादग्निं सदा रक्षेदेषु त्रिषु विशेषतः॥ ३२॥

इन तीनों रोगोंमें जब अग्नि निर्बल अर्थात् मन्द होजाती है तब ये वृद्धिको प्राप्त होते हैं और जब अग्नि बलवान् अर्थात् दीपन होती है तब ये नष्ट होजाते हैं, इसकारण इन तीनों रोगोंमें विशेष करके अग्निकी रक्षा करनी चाहिये॥ ३२॥

यद्वायोरनुलोम्याय यदग्निबलवृद्धये। अन्नपानौषधं सर्वं तत्सेव्यं नित्यमार्शसैः॥ ३३॥

जो वायुको अनुलोमन करनेवाले हैं और जो अग्निके बलको बढानेवाले हैं उन सब अन्नपान और औषधियोंको अग्निके बलको बढानेके लिये नित्य बवासीरमें सेवन करे॥ ३३॥

यदतो विपरीतं स्यान्निदाने यत्प्रदर्शितम्। गुदजाऽविपरीतेन न तत्कार्य्यं कदाचन॥ ३४॥

जो अन्नपानादि इससे विपरीत हैं तथा निदानमें जो अर्शरोग उत्पन्न होनेके कारण कहे हैं उन सबको कदापि सेवन न करे॥ ३४॥

शालिषष्टिकगोधूमयवान्नं संस्कृतं घृतैः। अजाक्षीरेण वा निम्बपटोलानां रसेन वा॥ ३५॥ मांसैर्मांसरसैर्वापि कन्दवार्त्ताकमूलकैः। जीवंत्युपोदकाशाकैस्तण्डुलीयकवास्तुकैः॥ ३६॥ अन्यैश्च सृष्टविण्मूत्रमरुद्भिर्वह्निदीपनैः॥ ३७॥ वातातिसारवद्भिन्नवर्चास्यर्शांस्युपाचरेत्। उदावर्त्तविधानेन गाढविट्कानि वाऽसकृत्॥ ३८॥ प्रवृत्तबहुलाऽस्राणि पित्तशोणितनाशनैः। योगैरुपाचरेत्तु विड्बन्धे बन्धनाशनैः॥ ३९॥

शालिधान, साठीधान, गेहूं और जौ इनको घृतमें सिद्ध करके, अथवा बकरीके दूधमें सिद्ध करके सेवन करे किम्वा नीमके रस अथवा पटोलके रसके साथ सेवन करे। मांसरस (सोरुआ), जिमीकंद, वैंगुन, मूली, जीवन्ति, पोईका शाक, चौलाईका शाक, वथुएका शाक, तथा अन्यान्य मल, मूत्र और वायुको अनुलोमन करनेवाले, एवं अग्निको दीपन करनेवाले पदार्थ बवासीरमें सेवन करे। बवासीरमें जो दस्त होते हों तो वातातीसारके समान चिकित्सा करे। जो मल गाढा हो तो उदावर्तकी समान चिकित्सा करे। जो बवासीरमें अधिक रुधिर गिरता हो तो रक्तपित्तके समान आचरण करे। और जो मलकी वद्धता हो तो विबन्धनाशक चिकित्सा करे॥ ३५--३९॥

कृष्णसर्पादिधूप।

कृष्णसर्पवराहोष्ट्रजम्बूकवृषदंशकाः। वसामभ्यञ्जनं दद्याद्धूपनं वार्शसां हितम्॥ ४०॥

काला साँप, सुअर, ऊट, गीदड और बिल्ली इनकी चर्वीकी गुदापर मालिस करना अथवा धूप देना बवासीरको अत्यन्त हितकारी है॥ ४०॥

दुर्नाम्नां साधनोपायश्चतुर्द्धा परिकीर्त्तितः। भेषजक्षारशस्त्राग्निसाध्यत्वाद्याप्य उच्यते॥ ४१॥

बवासीरकी चिकित्सा चार प्रकारसे होती है। उसमें औषधि, क्षार, शस्त्र और अग्नि इनके द्वारा सिद्ध होनेसे बवासीरको याप्य कहते हैं॥ ४१॥

नृकेशादिधूप।

नृकेशं सर्पनिर्मोकं वृषदंशस्य चर्म्म च। अर्कमूलं शमीपत्रमर्शसां धूपनं परम् ॥ ४२ ॥

मनुष्यके बाल, सांपकी कैंचली, बिलावका चर्म्म, आकको जड़ और छोंकरके पत्ते इनकी धूप बवासीर रोगियोंको अत्यन्त हितकारी है॥ ४२ ॥

निशादिलेप।

निशाकोशातकीचूर्णं विशुष्कं सैन्धवान्वितम्। गोमूत्रेण समायुक्तं लेपो दुर्नामनाशनः॥ ४३ ॥

हल्दी और तोरई इनको सुखाकर चूर्ण करले, फिर उसमें सैंधेनमकका चूर्ण मिलाकर गोमूत्रके साथ लेप करनेसे बवासीर नष्ट होती है॥ ४३॥

सिद्धयोग।

कृष्णानिशा शङ्खसुवर्चिका च करञ्जबीजं सदलञ्च सिन्धुः। गुञ्जाफलं केशरमध्यबीजं समूलकन्तुत्थककेहमवाक्यम् ॥ ४४ ॥ दक्षस्य वर्चः कनकं यवानी कोशातकीबीजरसश्च तुल्यः। स्नुह्यर्कदुग्धेन च भावयित्वा पश्चात्प्रभाव्यं सुरभीरसेन ॥ ४५ ॥ छित्वा विघृष्टवाथ विघृष्टच योज्यं लेपं विदध्याद्गुदजक्षयाय। ग्रन्थ्यर्बुदं पूयवहाश्च नाडीं सगण्डमालामपचीं प्रहन्ति ॥ ४६ ॥

"शस्त्रादिभिर्ये च जिताः प्रलेपात्तेऽपि प्रणश्यन्त्यधिमांसदोषाः।"

पीपल, हल्दी, शंख, सज्जी, करंजुएके बीज और पत्ते, सैंधानमक, घुंघुची, नागकेशर, उसके मध्यके बीज और उसकी जड़, तूतिया, सत्यानाशी कटेरीकी जड़, मुरगेकी विष्टा, कनक(धतूरा), अजवायन और तोरईके बीजोंका रस इन सबको समान भाग लेकर थूहर और आकके दूधमें भावना देकर पश्चात् गौके दूधमें भावना देवे। इस प्रकार वारंवार खरल करे और भावना देवे। इसका लेप करनेसे बवासीर, ग्रन्थि, अर्बुद, नाडीव्रण, गण्डमाला, अपची इत्यादि अधिमांस दोषसे उत्पन्नहुए विकार नष्ट होते हैं॥ ४४ ॥ ४५॥ ४६ ॥

त्र्यूषणाद्यचूर्ण।

गुदश्वयथुशूलार्त्तं मन्दाग्निं पाययेत्तु तम्। त्र्यूषणं पिप्पलीमूलं पाठा हिंगु सचित्रकम् ॥ ४७ ॥ सौवर्चलं पुष्कराख्यमजाजी बिल्वपेशिकम्। विडं यवानीं हबुषां विडङ्गं सैन्धवं वचाम् ॥ ४८ ॥ तिन्तिडीकञ्च मण्डेन मद्येनोष्णोदकेन च। तथार्शोग्रहणीदोषाच्छूलानाहाच्च मुच्यते॥ ४९ ॥

बवासीर रोगमें मन्दाग्निवाले पुरुषके जो गुदामें सूजन और शूल हो तो त्रिकुटा, पीपलामूल, पाढ, हींग, चीता, कालानमक, पोहकरमूल, जीरा, बेलगिरी, बिडनमक, अजवायन, हाऊबेर, वायबिडंग, सैंधानमक, वच और इमली इन सबका एकत्र चूर्ण करके मांडके साथ या मदिराके साथ अथवा गरम जलके साथ सेवन करनेसे बवासीर, ग्रहणीदोष (अग्निकी मन्दता), शूल और आनाहरोग नष्ट होता है॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

पूतिकादियोग।

पूतीकमभया मुस्तं भूनिम्बाऽसितवत्सकाः। सूरणाग्निकसिन्धूत्थं देवदाली च चूर्णिताः ॥ ५० ॥ तक्रेण पिबतश्चान्नं तक्रेणैव समश्नतः। मासात्पक्वफलानीव पतन्त्यर्शांस्यसंशयम् ॥ ५१ ॥

दुर्गन्धकरंज, हरड़, मागरमोथा, चिरायता, काले कुड़ेकी छाल, जिमीकन्द, चीता, सैंधानमक और देवदाली (बंदाल) इन सबका एकत्र चूर्ण करके तक्रके साथ पान करे और उसके ऊपर तक्रके साथ भोजन करे। इसप्रकार करनेसे एक महीनेमें पके फलके समान गुदाके अंकुर (मस्से) गिर जाते हैं॥ ५० ॥ ५१॥

विडंगसारादिक्काथ ।

विडङ्गसारामलकञ्च पिष्टं भल्लातकक्काथमधुप्रगाढम् । अर्शांसि जन्तूंश्च जयत्यजीर्णाऽक्षयश्च सन्धुक्षयति क्षणेन ॥ ५२ ॥

विडंगसार और आमलोंको पीसकर भिलावोंके काथमें डालकर शहदके साथ सेवन करे तो बवासीर कृमि और अजीर्णदोष नष्ट होता है तथा अग्नि दीपन होती है ॥ ५२ ॥

कठिनं यः पुरीषन्तु कृच्छ्रान्मुञ्चति मानवः । सघृतं लवणैर्युक्तं नरोऽपानजहं पिबेत् ॥ ५३ ॥

जो अर्शरोगवाले मनुष्यके अत्यन्त कष्टसे कठिन मल उतरे तो सैंधेनमकमें घृत मिलाकर पान करे ॥ ५३ ॥

सक्तुर्दधिरसोपेतो दधिसर्पिःसमायुतः । त्वक्पत्रैलाविडव्योषजीरकद्वयमिश्रितः । विड्विबन्धामशूलघ्नो रोचनो गुदजे हितः ॥ ५४ ॥

सत्तु और दहीके साथ, अथवा दही और घीके साथ दालचीनी, तेजपात, इलायची, विरियाविड नमक, त्रिकुटा, जीरा और काला जीरा इनका चूर्ण मिलाकर सेवन करे तो मलरोध और आमशूल नष्ट होता है । यह रुचिकारक और बवासीरमें हितकारी है ॥ ५४ ॥

विड्विबन्धे हितं तक्रं यवानीविडसंयुतम् ॥ ५५ ॥

मलविबन्धरोगमें अजवायन और विरियाविडनमकका चूर्ण तक्रके साथ सेवन करना अत्यन्त हितकारी है ॥ ५५ ॥

सैन्धवं नागरं पाठा दाडिमस्य रसं गुडम् । सतक्रलवणं दद्याद्वातवर्चोऽनुलोमनम् ॥ ५६ ॥

सैंधेनमक, सोंठ, पाढ, अनारका रस और गुड़ इनको तक्रमें मिलाकर सेवन करनेसे अथवा केवल सैंधेनमकका चूर्ण तक्रमें मिलाकर पान करनेसे वायु और मल यथामार्गमें स्थित होते हैं ॥ ५६ ॥

गुडाद्य चूर्ण ।

गुडं भल्लातकं शुण्ठी विडङ्गं वृद्धदारुकम् । त्रिगुणं दीपनं वृष्यमर्शसो विड्विबन्धनुत् ॥ ५७ ॥

भिलावे, सोंठ, वायविडंग और विधारा ये सब समान भाग और सबसे तिगुना गुड लेवे, इनकी गोली बनाकर सेवन करे । यह चूर्ण अग्निको दीपन करता है, मैथुनशक्तिको बढाता है, बवासीर और विबन्धको नष्ट करता है ॥ ५७ ॥

न च रोहन्ति गुदजाः पुनस्तक्रसमाहताः । तक्राभ्यासोऽर्शसां कार्यो बलवर्णाग्निवृद्धये । स्रोतःसु तक्रशुद्धेषु रसः सम्यगुपैति यः ॥ ५८ ॥ तेन पुष्टिर्बलं वर्णः प्रहर्षश्चोपजायते । वातश्लेष्मविकाराणां शतञ्च विनिवर्तयेत् ॥ ५९ ॥

तक्रको सेवन करनेसे नष्ट हुए गुदाके अंकुर(मस्से) फिर उत्पन्न नहीं होते इसकारण बवासीररोगमें तक्रका अभ्यास करना चाहिये, तक्रके अभ्याससे पुष्टि बल वर्ण और अग्निकी वृद्धि होती है। तक्रको सेवन करनेसे शरीरके स्रोत शुद्ध होकर उनमें अच्छेप्रकारसे रसका संचार होता है । एवं सैकड़ों कफवातके विकारोंका नाश होता है ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

चिरबिल्वाग्निसिन्धूत्थनागरेन्द्रयवारलून् । तक्रेण पिबतोऽर्शांसि निपतन्त्यसृजा सह ॥ ६० ॥

करंज, चीता, सैंधानमक, सोंठ, इन्द्रजो और श्योनाक इनका चूर्ण तक्रके साथ पान करनेसे बवासीरके मस्से और रुधिरका गिरना दूर हो जाता है ॥ ६० ॥

हरिद्रादिप्रलेप।

हरिद्राजालिनीचूर्णं कटुतैलसमायुतम् । एष प्रलेपकः प्रोक्तो ह्यर्शसामन्तकारकः ॥ ६१ ॥

हल्दी और कडवी तोरईके चूर्णको कडवे तेलमें मिलाकर लेप करनेसे बवासीरके मस्से गिरकर बवासीर नष्ट होजाती है ॥ ६१ ॥

गुदस्वेद ।

स्वेदो गोमयपिण्डेन सक्तुनामलकेन च । शतपुष्पेण वा कार्यो गुदजानां निवृत्तये ॥ ६२ ॥

गोबरका गोला बनाकर स्वेद देनेसे अथवा सत्तू और आमलोंका स्वेद देनेसे किंवा सोयेका स्वेद देनेसे बवासीर दूर हो जाती है ॥ ६२ ॥

घृतभर्जित हरीतकी ।

सगुडां पिप्पलीयुक्तामभयां घृतभर्जिताम् । त्रिवृद्दन्तीयुतां वापि भक्षयेदनुलोमिकीम् ॥ ६३ ॥

हरड़को घीमें भूनकर उसमें गुड़ और पीपलका चूर्ण मिलाकर अथवा निसोतका चूर्ण और दन्तीका चूर्ण मिलाकर सेवन करे तो वायुका और मलका अनुलोमन होता है ॥ ६३ ॥

अपामार्गादियोग ।

अम्बुना वाप्यपामार्गमूलं वा तंडुलांबुना । तिलारुष्करसंयोगं भक्षयेदग्निवर्धनम् ॥ ६४ ॥ कुष्ठरोगहरं श्रेष्ठमर्शसां नाशनं परम् ॥ ६५ ॥

चिरचिटेकी जडके चूर्णको तिल और भिलावेका चूर्ण मिलाकर जल अथवा चावलोंके जलके साथ भक्षण करे इससे अग्नि बढ़ती है यह कुष्ठरोगनाशक और अर्श रोगको जड़से दूर करता है ॥६४॥६५॥

तिलादियोग ।

तिलभल्लातकं पथ्या गुडश्चेति समांशकम् । दुर्नामश्वासकासघ्नं प्लीहपांडुज्वरापहम् ॥ ६६ ॥

तिल, भिलावे, हरड और गुड इनको समान भाग लेकर गोली बनाकर सेवन करे तो बवासीर, श्वास, खाँसी, प्लीहा, पांडु और ज्वर नष्ट होता है ॥६६ ॥

सूरणपुटपाक ।

मृल्लिप्तं सूरणं कन्दं पक्वाग्नौ पुटपाकवत् । दद्यात्सतैललवणं दुर्नामविनिवृत्तये ॥ ६७ ॥

जिमीकंदके ऊपर मट्टीका लेप करके पुटपाककी रीतिसे अग्निमें पकावे पश्चात् उसको तेलमें भूनकर और नमक मिलाकर बवासीरको दूर करनेके लिये भक्षण करे ॥ ६७ ॥

कृष्णतिलादिप्रयोग ।

असितानां तिलानां प्राक्प्रकुञ्चं शीतवारिणा । खादतोऽर्शांसि शाम्यन्ति द्विजदार्ढ्याङ्गपुष्टिदम् ॥ ६८ ॥

चार तोले काले तिलोंको लेकर चूर्ण करके शीतल जलके साथ प्रातःकाल पीवे तो बवासीर नष्ट होती है दांत दृढ होते हैं और शरीर पुष्ट होता है ॥ ६८ ॥

वार्ताकपुटपाक ।

स्विन्नं वार्त्ताकफलं व्योषायाः क्षारजेन सलिलेन । तद्घृतभृष्टं युक्तं गुडेन तृप्तिमायाति ॥ ६९ ॥ पिबति च तक्रं नूनं तस्यान्वेव सुवृद्धगुदजानि । नाशं प्रयान्ति पुंसां सहजान्यपि सप्तरात्रेण ॥ ७० ॥

वैगुनको, त्रिकुटेके क्षार जलमें सीजाकर पश्चात् उसको घृतमें भूनकर गुडके साथ मिलाकर भक्षण करे तो तृप्ति होती है इसपर थोडासा तक्र अवश्य पीना चाहिये । इससे अत्यन्त बढी हुई बवासीर और सहजबवासीर भी सात दिनमें नाशको प्राप्त होती है ॥ ६९ ॥७०॥

गुडहरीतकी ।

पित्तश्लेष्मप्रशमनी कच्छुकंडूरुजापहा । गुदजान्नाशयत्याशु योजिता सगुडाभया ॥ ७१ ॥

गुड़में हरडका चूर्ण मिलाकर सेवन करनेसे पित्त और कफ नष्ट होता है । कच्छु (सूखी खुजली) और कण्डू (मीठी खुजली) और विशेष कर बवासीर दूर होती है ॥ ७१ ॥

तक्र योग ।

त्वचं चित्रकमूलस्य पिष्ट्वा कुम्भं प्रलेपयेत् । तक्रं वा दधि वा तत्र जातमर्शोहरं पिबेत् ॥ ७२ ॥

चीतेकी जड़की छालको बारीक पीसकर घड़ेके भीतर लेप करे, पश्चात् उसमें तक्र अथवा दहीको भरदेवे फिर उस तक्रको अथवा दहीको पान करनेसे बवासीर दूर होती है ॥ ७२ ॥

पाठादियोग ।

दुस्पर्शकेन बिल्वेन यवान्या नागरेण च । एकैकेनापि संयुक्ता पाठा हन्त्यर्शसां रुजम् ॥ ७३ ॥

पाढको जवासेके साथ,या बेलगिरीके साथ,अथवा अजवायनके साथ किम्वा सोंठके साथ सेवन करनेसे बवासीर नष्ट होती है ॥ ७३ ॥

प्रातःप्रातरदृष्टार्शो ब्रह्मचारी गुडाभयाम् । गोमूत्रद्रोणसंसिद्धां भक्षयेदनुलोमिकीम् ॥ ७४ ॥

ब्रह्मचर्य्यको धारण कर प्रातःकाल हरडको एक द्रोण गोमूत्रमें सिद्ध करके गुडमें मिलाकर सेवन करे इसमें वातादिदोष और मल यथामार्गमें स्थित होते हैं ॥ ७४ ॥

कुशमूलं बलायुक्तं पानं तण्डुलधावनम् । रुणद्धि गुदजास्रावं प्रदरं वापि सर्वजम् ॥ ७५ ॥

कुशाकी जड़ और खिरैटीको पीसकर चावलोंके जलके साथ पान करनेसे गुदासे रुधिरका गिरना और सर्व प्रकारका प्रदर दूर होता है ॥ ७५ ॥

शोणितस्रावविधि ।

शस्त्रैर्वापि जलौकाभिः प्रोच्छूनकठिनार्शसः । शोणितं सञ्चितं दृष्ट्वा हरेत्प्राज्ञः पुनः पुनः ॥ ७६ ॥

गुदाके अंकुर कठिन और सूजनयुक्त हों और उनमें रुधिर जमगया हो तो शस्त्र अथवा जौंकके द्वारा वारंवार रुधिरको निकाले ॥ ७६ ॥

रुग्गतं कफवातेन अत्यर्थं गुदकीलकम् । स्वेदयेद्वृषापिंडै रास्नया वाथ शिग्रुभिः ॥ ७७ ॥

जो कफवातसे गुदाके अंकुरोंमें अत्यन्त पीडा हो तो अडूसेके पिंड अथवा रास्नाके पिंडिया सहिंजनके पिंडसे स्वेद देवे ॥ ७७ ॥

उदकषट्पलघृत ।

नागरं ग्रन्थिकं चव्यं पिप्पली क्षारचित्रकम् । एतैश्च पलिकैः सर्वैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ७८ ॥ उदकस्य त्रयो भागाः क्षीरस्यैकं तदेकतः । दुर्नामश्वासकासघ्नं प्लीहापाण्ड्वामयापहम् ॥ ७९ ॥ विषमज्वरशान्त्यर्थं तृष्णारोचकनाशनम् । एतत्षट्पलकं नाम बलवर्णाग्निवर्द्धनम् ॥ ८० ॥

सोंठ, पीपलामूल, चव्य, पीपल, जवाखार और चीता इनका कल्क चार २ तोले, घी ६४ तोले, जल तीन भाग और दूध एक भाग, सबको एकत्र मिलाकर यथाविधिसे घृतको सिद्ध करे । यह घृत--बवासीर, श्वास, खांसी, प्लीहा, पाण्डुरोग, विषमज्वर, तृषा और अरुचिको नष्ट करता है । यह षट्पलक घृत--बल, वर्ण और अग्निको दीपन करनेवाला है ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥

पलाशक्षारघृत ।

व्योषगर्भं पलाशस्य त्रिगुणे भस्मवारिणा । साधितं पिबतः सर्पिः पतत्यर्शांस्यसंशयम् ॥ ८१ ॥

ढाककी भस्मको तिगुने जलमें पकाकर क्वाथ करे फिर उस क्वाथ और त्रिकुटेके कल्कके द्वारा घृतको सिद्ध करे । इस घृतको पान करनेसे निःसंदेह बवासीरके मस्से गिरजाते हैं ॥ ८१ ॥

चव्याद्य घृत ।

चव्यं त्रिकटुकं पाठा क्षारं कुस्तंबुरूणि च । यवानीपिप्पलीमूलमुभे च विडसैन्धवे ॥ ८२ ॥ चित्रकं बिल्वमभयां पिष्ट्वा सर्पिर्विपाचयेत् । शकृद्वातानुलोम्यार्थं जाते दध्नि चतुर्गुणे ॥ ८३ ॥ प्रवाहिकां गुदभ्रंशं मूत्रकृ-

च्छ्रं परिस्रवम् । गुदवङ्क्षणशूलञ्च घृतमेतद्व्यपोहति ॥ ८४ ॥

चव्य, त्रिकुटा, पाढ, जवाखार, धनियाँ, अजवायन, पीपलामूल, संचरनमक, सैंधानमक, चीता, बेलगिरी और हरड इनके कल्क और चौगुने दहीमें घृतको सिद्ध करे । यह घृत--प्रवाहिका, गुदभ्रंश, मूत्रकृच्छ्र, गुदस्राव, गुदशूल और वंक्षणशूलको नष्ट करता है ॥ ८३—८४ ॥

ह्रीबेरादि घृत ।

ह्रीबेरमुत्पलं लोध्रं समङ्गा चित्रचव्यकम् । पाठा सातिविषा बिल्वं धातकी देवदारु च॥८५॥ दार्वीत्वङ्नागरं मांसी मुस्तं क्षारो यवाग्रजः । चित्रकश्चेति पेष्याणि चाङ्गेरी स्वरसे घृतम् ॥ ८६ ॥ एकत्र साधयेत्सर्वं तत्सर्पिः परमौषधम् । अर्शोऽतिसारग्रहणीपांडुरोगेऽरुचौ तथा ॥८७॥ मूत्रकृच्छ्रे गुदभ्रंशे बस्त्यानाहप्रवाहके । पिच्छास्रावेऽर्शसां शूले योज्यमेतत्त्रिदोषनुत् ॥ ८८ ॥

सुगन्धवाला, कमल, लोध, मजीठ, चीता, चव्य, पाढ, अतीस, बेलगिरी, धायके फूल, देवदारु, दारुहल्दी, दालचीनी, सोंठ, बालछड़, नागरमोथा, जवाखार और चीता इनके कल्क और चांगेरीके रसके द्वारा घृतको सिद्ध करे । यह घृत--बवासीर, अतीसार, संग्रहणी, पाण्डुरोग, अरुचि, मूत्रकृच्छ्र, गुदभ्रंश, बस्ति, आनाह, प्रवाहिका, पिच्छस्राव और बवासीरके शूलमें अत्यन्त हितकारी है ॥८५॥ ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ ८८ ॥

अग्निघृत ।

पिप्पली पिप्पलीमूलं चित्रको हस्तिपिप्पली । हिंगुचव्याजमोदाश्च पञ्चैव लवणानि च ॥ ८९ ॥ द्वौ क्षारौ हबुषा चैव दद्यादर्द्धपलोन्मिताम् । दधिकाञ्जिकशुक्तानि स्नेहमात्रासमानि च ॥ ९० ॥ आर्द्रकस्वरसप्रस्थं घृतप्रस्थं विपाचयेत् । एतदग्निघृतं नाम मन्दाग्नीनां प्रशस्यते ॥ ९१ ॥ अर्शसां नाशनं श्रेष्ठं तथा गुल्मोदरापहम् । ग्रन्थ्यर्बुदापचीकासकफमेदोऽनिलानपि ॥ ९२ ॥ नाशयेद्ग्रहणीदोषं श्वयथुं सभगन्दरम् । ये च बस्तिगता रोगा ये च कुक्षिसमाश्रिताः ॥ ९३ ॥ सर्वास्तान्नाशयत्याशु सूर्य्यस्तम इवोदितः ।

पीपल, पीपलामूल, चीता, गजपीपल, हींग, चव्य, अजमोदा, पांचों नमक, जवाखार, सज्जी और हाऊबेर प्रत्येकका कल्क दो दो तोले, दही, कांजी और शुक्त नामक काँजी प्रत्येक सोलह २ पल, अदरखका रस सोलह पल और गौका उत्तम घी एक प्रस्थ लेवे, सबको यथाविधिसे मिलाकर विधिपूर्वक घृतको सिद्ध करे। यह मंदाग्निमें अत्यन्त हितकारी है। बवासीरको नष्ट करनेके लिये उत्तम औषधि तथा गुल्म, उदररोग, ग्रन्थि, अर्बुदरोग, अपची, खाँसी, कफ, मेदरोग, वातरोग, संग्रहणीरोग, सूजन और भगन्दररोगको नष्ट करता है । एवं बस्तिगतरोग और कुक्षिगत समस्त रोगोंको यह घृत इसप्रकार दूर करता है जिसप्रकार सूर्य अंधकारको नष्ट करता है ॥ ८९ ॥ ९० ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ ९३ ॥

बृहदग्निघृत ।

भल्लातकसहस्रार्धं जलद्रोणे विपाचयेत् । अष्टभागावशिष्टन्तु कषायमवतारयेत् ॥९४॥ घृतप्रस्थं समावाप्य कल्कानीमानि दापयेत् । त्र्यूषणं पिप्पलीमूलं चित्रको हस्तिपिप्पली ॥ ९५ ॥ हिङ्गुचव्याजमोदाश्च पञ्चैव लवणानि च । द्वौ क्षारौ हबुषा चैव दद्यादर्द्धपलोन्मितान् ॥९६॥ दधिकाञ्जिकशुक्तानि स्नेहमात्रासमानि च । आर्द्रकस्वरसश्चैव शोभाञ्जनरसं तथा ॥ ९७ ॥ तत्सर्वमेकतः कृत्वा शनैर्मृद्वग्निना पचेत् । एतदग्निघृतं नाम मन्दाग्नीनां प्रशस्यते ॥ ९८ ॥

अर्शसां नाशनं श्रेष्ठं मूढवातानुलोमनम् । कफवातोद्भवे गुल्मे प्लीहोदरदकोदरे ॥९९॥ शोफं पाण्ड्वामयं कासं ग्रहणीं श्वासमेव च । एतान्विनाशयत्याशु सूर्य्यस्तम इवोदितः ॥१००॥

उत्तम ५०० भिलावे लेकर एक द्रोण जलमें पकावे, जब आठवाँ भाग जल शेष रह जाय तब उतारकर छान लेवे । फिर उस क्काथमें एक प्रस्थ घी तथा त्रिकुटा, पीपलामूल, चीता, गजपीपल, हींग, चव्य, अजमोद, पांचों नमक, जवाखार, सज्जी और हाऊबेर प्रत्येकका कल्क दो २ तोले, दही, कांजी, शुक्त, अदरखका स्वरस और सहिंजनेका रस, प्रत्येक एक २ प्रस्थ डाले, सबको एकत्र करके यथाविधि मन्द २ अग्निसे घृतको सिद्ध करे । यह घृत, मन्दाग्निरोगमें अत्यन्त हितकारी, बवासीरको नष्ट करनेवाला, दुष्ट वायुको अनुलोमन करनेवाला, तथा कफ वातसे उत्पन्न हुए गुल्म, प्लीहा रोग, उदररोग, जलोदर, सूजन, पांडु, खाँसी, संग्रहणी, स्वास इन सब रोगोंको हरनेवालाहै ! जिस प्रकार सूर्य अन्धकारको हरनेवाला है ॥ ९४--१०० ॥

उदावर्त्तपरीता ये ये चात्यर्थनिरूक्षिताः । विलोमवातशूलार्त्तास्तेष्विष्टमनुवासनम् ॥ १०१ ॥

बवासीरमें यदि उदावर्त्त हो और शरीरमें अत्यन्त रूक्षता हो तथा वायुका अवरोध और शूलसे पीडित हो तो अनुवासनबस्ति देवे ॥ १०१ ॥

पिप्पली मधुकं बिल्वं शताह्वा मदनं वचा । कुष्ठं शटी पुष्कराह्वं चित्रकं देवदारु च ॥ १०२ ॥ पिष्ट्वा तैलं विपक्तव्यं द्विगुणक्षीरसंयुतम् । अर्शसां दृढवातानां तच्छ्रेष्ठमनुवासनम्॥१०३॥

पीपल, मुलैठी, बेलीगरी, शतावर, मैनफल, वच, कूठ, कचूर, पोहकरमूल, चीता और देवदारु इन सबको एकत्र कूटकर तेलमें पकावे और उसमें दुगुना दूध डाले । इसकी अनुवासनबस्ति बनाकर वातसे पीडित बवासीरवाले मनुष्योंके लिये प्रयोग करे। यह अत्यन्त हितकारी है ॥ १०२ ॥ १०३ ॥

गुदनिस्सरणं शूलं मूत्रकृच्छ्रं प्रवाहिकाम् । कट्यूरुपृष्ठदौर्बल्यमानाहं वङ्क्षणामयम् ॥ १०४ ॥ पिच्छास्रावं गुदे शोथं वातवर्चोविनिग्रहम् । उत्थानं बहुशो यच्च जयेत्तच्चानुवासनात् ॥ १०५ ॥

जो गुदा बाहर निकल आवे, शूल हो, मूत्र कठिनतासे उतरे, प्रवाहिका हो, कमर, जाँघ और पीठमें दुर्बलता हो, अफारा हो, वंक्षण स्थानमें पीडा हो, झागोंयुक्त, चिकना स्राव हो, गुदामें सूजन, विष्ठा और वायुका अवरोध हो यदि ये लक्षण वारंवार हों तो अनुवासनबस्ति देकर इन सब विकारोंको जीते ॥ १०४--१०५ ॥

कासीसादि तैल ।

कासीसदन्तीसिन्धूत्थकरवीरानलैः पचेत् । तैलमर्कपयोमिश्रमभ्यङ्गात्पायुकीलनुत् ॥ १०६ ॥

हीराकसीस, दन्ती, सैंधानमक, कनेर और चीता इनके कल्क और आकके दूधसे तेलको पकावे इस तेलको लगानेसे गुदाके अंकुर नष्ट हो जाते हैं ॥ १०६ ॥

बृहत्कासीसादि तैल।

कासीसं सैन्धवं कृष्णा शुण्ठी कुष्ठञ्च लाङ्गली । शिलाभिदश्वमारश्च जन्तुघ्नं दन्तिचित्रकम् ॥ १०७ ॥ हरितालं तथा स्वर्णक्षीरी चैतैः पचेत्समैः । तैलं स्नुह्यर्कपयसा गवां मूत्रं चतुर्गुणम् ॥ १०८ ॥ एतदभ्यङ्गतोऽर्शांसि क्षारवत्पातयेद्ध्रुवम् । क्षारकर्म्मकरं ह्येतन्न च सन्दूषयेद्वलिम् ॥ १०९ ॥

कसीस, सैंधानमक, पीपल, सोंठ, कूठ, कलिहारी, पाषाणभेद, कनेर, वायविडंग, दन्ती, चीता, हरताल और सत्यानासी कटेरी इन सबको समान भाग लेवे, तेल एक प्रस्थ, आकका दूध तेलकी बराबर और गोमूत्र तेलसे चौगुना लेवे । सबको मिला कर यथा विधिसे तेलको सिद्ध करे । इस तेलको लगानेसे गुदाके अंकुर निश्चय पतित हो जाते हैं

जिस प्रकार क्षारसे गुदाके अंकुर गिर जाते हैं। यह क्षारकर्म करनेसे गुदाकी वलिको दूषित नहीं करता है ॥ १०७ ॥ १०८ ॥ १०९ ॥

दन्त्यादि तैल।

दन्त्यश्वमारकासीसविडङ्गैलाग्निसैन्धवैः। सार्कक्षीरैः पचेत्तैलमभ्यङ्गात्पायुकीलनुत् ॥ ११० ॥

दन्ती, कनेर, कसीस, वायविडंग, इलायची, चीता और सैंधानमक इन सब औषधियोंको आकके दूधके साथ सरसोंके तेलमें पकावे। इस तैलको मर्दन करनेसे गुदाके अंकुर नष्ट होजाते हैं ॥ ११० ॥

सैन्धवादि चूर्ण।

लवणोत्तमवह्निकलिङ्गयवान् चिरबिल्वमहापिचुमन्दयुतान्। पिब सप्तदिनं मथिताँल्लुलितान् यदि मर्दितुमिच्छसि पायुरुहान् ॥ १११ ॥

सैंधानमक, चीता, इन्द्रजौ, करंज और बकायनके बीज इन सबका बारीक चूर्ण करके सात दिन तक तक्रके साथ पान करनेसे गुदाके अंकुर नष्ट हो जाते हैं ॥ १११ ॥

कटुत्रयादि चूर्ण।

कटुत्रयं वचा हिङ्गुपाठाक्षारौ विषद्वयम्। चव्यातिक्तकलिङ्गानि गजाह्वा लवणानि च ॥ ११२ ॥ ग्रन्थिबिल्वाजमोदाश्च गणो द्वाविंशको मतः ॥ ॥ ११३ ॥ एतानि समभागानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत्। एरण्डतैलसंयुक्तं सदा लिह्यात्ततो नरः ॥ ११४ ॥ बिडालपदकं वापि पिबेदुष्णेन वारिणा। श्वासं हन्यात्तथा शोथमर्शांसि च भगन्दरम् ॥ ११५ ॥ हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च सक्थिशूलमरोचकम्। प्लीहानं सप्रमेहञ्च कामलां पाण्डुरोगताम् ॥ ११६ ॥ आमवातमुदावर्त्तमन्त्रवृद्धिं गुदकृमीन्। हन्याच्च ग्रहणीरोगानेयं मया परिकीर्त्तिताः ॥ ११७ ॥

त्रिकुटा, वच, हींग, पाढ, जवाखार, सज्जी, वत्सनाभविष, शृंगीविष, चव्य, कुटकी, इन्द्रजौ, गजपीपल, पांचोंनमक, पीपलामूल, बेलगिरी और अजमोद इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर एकत्र कूट पीस कर बारीक चूर्ण कर ले। इस चूर्णको अंडीके तेलके साथ मिलाकर एक तोला प्रमाण सेवन करे और ऊपरसे गरम जल पीवे। यह चूर्ण-श्वास, सूजन, बवासीर, भगन्दर, हृदयशूल, पसलियोंकी पीडा, सक्थि शूल, अरुचि, प्लीहा, प्रमेह, कामला, पाण्डुरोग, आमवात, उदावर्त, अन्त्रवृद्धि, गुदाके कृमि और संग्रहणी रोगको नष्ट करता है ॥ ११२-११७ ॥

कल्याण लवण।

भल्लातकञ्च त्रिफलां दन्तीचित्रकमेव च। एतानि समभागानि सैन्धवं द्विगुणं भवेत् ॥ ११८ ॥ कपालपुटसम्पक्वं मृदुना गोमयाग्निना। एतत्कल्याणलवणं श्रेष्ठमर्शोविकारिणाम् ॥ ११९ ॥

भिलावे, त्रिफला, दन्ती और चीता ये सब समान भाग और सैंधानमक इन सबसे दुगुना लेवे। पश्चात् इन सबका चूर्ण करके कपालपुटमें रखकर आरनेउपलोंकी मन्द २ अग्निसे पकावे तो कल्याणलवण तैयार होता है। यह कल्याणलवण बवासीर रोगवालोंको अत्यन्त हितकारी है ॥ ११८ ॥ ११९ ॥

समशर्कर चूर्ण।

शुण्ठीकणामरिचनागदलत्वगेलाचूर्णीकृतं क्रमविवर्द्धितमूर्द्धमन्त्यात्। खादेदिदं समसितं गुदजाग्निमान्द्यगुल्माऽरुचिश्वसनकण्ठहृदामयेषु १२० ॥

सोंठ ६ भाग, पीपल ५ भाग, कालीमिरच ४ भाग, नागकेशर ३ भाग, तेजपात २ भाग और इलायची १ भाग लेवे और सबकी बराबर मिश्री लेवे। सबका एकत्र बारीक चूर्ण करके सेवन करे तो बवासीर, मन्दाग्नि, गुल्म, अरुचि, श्वास, कण्ठ और हृदयरोग नष्ट होता है ॥ १२० ॥

व्योषादि चूर्ण।

व्योषाग्न्यरुष्करविडङ्गतिलाभयानां चूर्णं गुडेन सहितं सततं प्रयो-

ज्यम् । दुर्नामशोथगरकुष्ठशकृद्विबन्धमग्नेर्जयत्यबलतां कृमिपाण्डुतां वा ॥ १२१ ॥

त्रिकुटा, चीता, भिलावे, वायविडंग, तिल और हरड़ इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण कर ले और सब चूर्णकी बराबर गुड मिलावे। इसको भक्षण करनेसे बवासीर, सूजन, विषदोष, कोढ, मलविबन्ध, मंदाग्नि, कृमि और पांडुरोगादि नष्ट होते हैं ॥ १२१ ॥

फलवर्त्ति तैल ।

तिक्ततुम्ब्युद्भवं तैलं तैलश्चालसिसम्भवम्। आक्षोटकरसश्चैव रसं निर्गुण्डिगोमयैः ॥ १२२ ॥ प्रत्येकैकन्तु सर्वेषां ग्राह्यं पलचतुष्टयम् । कर्षैकं सैन्धवं दद्यादन्तीमूलं द्विमाषकम् ॥ १२३ ॥ द्विमाषं सर्जिकाक्षारमेतत्तैलं विपाचयेत् । तिक्ततुम्बीकृतावर्त्तीर्यवेन्द्रस्वरसेन च । तैलेनाभ्यञ्जनेनैव दद्याद्दुर्नामशान्तये ॥ १२४ ॥

कड़वी तोंबीके बीजोंका तेल, अलसीका तेल, अखरोटका रस, निर्गुण्डीका रस और गोमूत्र ये प्रत्येक चार चार पल लेवे, सैंधानमक १ तोला, दन्तीकी जड २ माशे और सज्जी दो माशे लेवे सबको मिलाकर विधिपूर्वक तेलको सिद्ध करे । फिर कड़वी तोंबीको इन्द्रजौके रसमें उसकी बत्ती बनाकर उसको इस तेलमें भीसकर भिजोकर लगानेसे बवासीर अवश्य नष्ट होजाती है ॥ १२२॥ १२३ ॥ १२४॥

विजयचूर्ण ।

त्रिकत्रयं वचा हिङ्गु पाठाक्षारौ निशाद्वयम् । चव्यतिक्ताकलिङ्गानि शताह्वा लवणानि च ॥१२५॥ ग्रन्थिबिल्वाजमोदा च गणोऽष्टाविंशतिर्मतः । एतानि समभागानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ॥ १२६ ॥ ततो बिडालपदकं पिबेदुष्णेन वारिणा । एरण्डतैलसंयुक्तं सदा लिह्यात्ततो नरः ॥ १२७ ॥ श्वासं हन्यात्तथा शोथमर्शांसि च भगन्दरान् । हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च वातगुल्मं तथोदरम् ॥ १२८ ॥ हिक्काश्वासं प्रमेहांश्च कामलां पांडुरोगताम् । आमवातमुदावर्त्तमन्त्रवृद्धिगुदकृमीन् ॥१२९ ॥ अन्ये च ग्रहणीदोषा ये मया परिकीर्त्तिताः। महाज्वरोपसृष्टानां भूतोपहतचेतसाम् ॥ १३० ॥ अप्रजानाञ्च नारीणां प्रजावर्द्धनमेव च । विजयो नाम चूर्णोऽयं महाव्याधिहरः परः१३१

त्रिकुटा, त्रिफला, दालचीनी, इलायची, तेजपात, बच, हींग, पाढ, जवाखार, सज्जी, हल्दी, दारुहल्दी, चव्य, कुटकी, इन्द्रजौ, शतावर, पांचो नमक, पीपलामूल, बेलगिरी और अजमोद इन अट्ठाईस औषधियोंको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण कर ले इस चूर्णको एक तोला लेकर गरम जल और अंडीके तेलसे चिकना करके सेवन करे । यह विजय चूर्ण—श्वास, सूजन, बवासीर, भगन्दर, हृदयशूल, पसलियोंकी पीडा, वात, गुल्म, उदररोग, हिक्का, श्वास, प्रमेह, कामला, पाण्डुरोग, आमवात, उदावर्त्त, अन्त्रवृद्धि, गुदाके कृमि और अन्यान्य जो संग्रहणी आदि रोग मैंने कहे हैं उन सबको नष्ट करता है। तथा महाज्वर और भूतबाधाको दूर करता है। यह विजयचूर्ण—वन्ध्यास्त्रियोंको पुत्र देनेवाला और सब प्रकारकी महाव्याधियोंको नष्ट करनेवाला है ॥१२५—१३१ ॥

दन्त्यरिष्ट ।

त्रिफलादशमूलानि निकुम्भानां पलं पलम् । वारिद्रोणे शृतं पादशेषे गुडतुलायुतम् ॥ १३२ ॥ आज्यभाण्डे स्थितं मासं दन्त्यरिष्टो निषेवितः। गुदजकृम्युदावर्त्तग्रहणीपांडुरोगनुत् ॥ १३३ ॥

त्रिफला, दशमूलकी समस्त औषधि और दन्ती प्रत्येक चार २ तोले लेकर एक द्रोण जलमें पकावे जब जल चौथाई भाग शेष रह जाय तब उसको छान लेवे पश्चात् उसमें १००पल गुड डालकर घीके चिकने

वासनमें भरकर एक महीनेतक गाड़ देवे। फिर निकालकर इस दन्त्यरिष्टको सेवन करे। यह दन्त्यरिष्ट बवासीर, कृमि, उदावर्त, संग्रहणी और पाण्डुरोगको नष्ट करता है ॥ १३२ ॥ १३३ ॥

अरिष्टादेस्तु सन्धानं धातकीलिप्तभाजने । पानमानमरिष्टादेः क्वाथपानसमं जगुः ॥ १३४ ॥

अरिष्टादिकको धायके फूलकी मदिरासे लिपे हुए वर्त्तनमें रखना चाहिये, अरिष्टकी मात्रा क्वाथके समान जाननी ॥ १३४ ॥

चतुस्सममोदक ।

सनागराऽरुष्करवृद्धदारकं गुडेन यो मोदकमत्युदारकम् । अशेषदुर्नामकरोगदारकं करोति वृद्धिं सहसैव दारकम् ॥ १३५ ॥

सोंठ, भिलावे औ विधारा ये सब समान भाग लेकर चूर्ण कर लेवे और सबके बराबर गुड मिलाकर मोदक बनावे। यह मोदक सब प्रकारकी बवासीरको हरनेवाले हैं और बलकी वृद्धि करनेवाले हैं ॥ १३५ ॥

स्वल्पसूरण मोदक ।

मरिचमहौषधिचित्रकसूरणभागा यथोत्तरं द्विगुणाः । सर्वसमो गुडभागः सेव्योऽयं मोदकः प्रसिद्धफलः ॥ १३६ ॥ ज्वलयति ज्वलनं जाठरमुन्मूलयति शूलगुदगुल्मगदान् । निःशेषयति श्लीपदमर्शांसि प्रणाशयत्याशु ॥ १३७ ॥

कालीमिरच १ भाग, सोंठ २ भाग, चीता ३ भाग, जिमीकन्द ४ भाग और सबके बराबर गुड लेवे। इन सबको एकत्र कूटकर मोदक बनावे। यह प्रसिद्ध मोदक अग्निको दीपन करनेवाले, उदररोगको हरनेवाले, तथा गुदशूल, गुल्मरोग, सब प्रकारके श्लीपदरोग और सब प्रकारकी बवासीरको नष्ट करनेवाले हैं ॥ १३६ ॥ १३७ ॥

सूरणपिण्डी ।

चूर्णीकृताः षोडश सूरणस्य भागास्ततोऽर्धेन च चित्रकस्य । महौषधाऽर्धौ मरिचस्य चैको गुडेन दुर्नामजयाय पिण्डी ॥ १३८ ॥

सूरणपिंडी, जिमीकन्द १६ भाग, चीता ८ भाग, सोंठ ८ भाग, कालीमिरच १ भाग और गुड़ सबके बराबर लेवे, इन सबको मिलाकर पिण्डी बनावे। यह सूरणपिण्डी सब प्रकारकी बवासीरको दूर करती है ॥ १३८ ॥

बृहत्सूरणमोदक ।

षोडशसूरणभागा वह्नेरष्टौ महौषधस्याथ । अर्धेन भागयुक्तिर्मरिचस्य ततोऽपि चार्धेन ॥ १३९ ॥ त्रिफलाकणासमूलातालीसाऽरुष्करकृमिघ्नानाम् । भागा महौषधसमा दहनांशा तालमूली च ॥ १४० ॥ भागः सूरणतुल्यो पातव्यो वृद्धदारकस्यापि । भृङ्गैले मरिचांशे सर्वाण्येकत्र संचूर्ण्य ॥ १४१ ॥ द्विगुणेन गुडेन युतः सेव्योऽयं मोदकः प्रकामघनैः । गुरुवृष्यभोज्यरहितेष्वितरेपूपद्रवं कुर्य्यात् ॥ १४२ ॥ भस्मकमनेन जनितं पूर्वमगस्त्यस्य योगराजेन । भीमस्य मारुतेरपि महाशनौ तेन तौ जातौ ॥ १४३ ॥ अग्निबलमात्रहेतुर्न केवलं सूरणो महावीर्य्यः । प्रभवति शस्त्रक्षाराग्निभिर्विनाप्यर्शसामेषः ॥ १४४ ॥ श्वयथुश्लीपदगदाजिद्ग्रहणीश्च तथा कफानिलजाम् । नाशयति वलीपलितं मेधाङ्कुरुते वृषत्वञ्च ॥ १४५ ॥ हिक्कां श्वासं कासं सराजयक्ष्मप्रमेहांश्च । प्लीहानञ्च तथोग्रं हन्त्याशु रसायनं पुंसाम् ॥ १४६ ॥

जिमीकन्द १६ भाग, चीता ८ भाग, सोंठ ४ भाग, कालीमिरच २ भाग, त्रिफला, पीपलामूल, तालीसपत्र, भिलावे और वायविडंग ये प्रत्येक औषधि सोंठके समान लेवे, मुसली चीतेकी बराबर, विधारा जिमीकन्दके समान, दालचीनी और इलायची कालीमिरचके समान लेवे । सबको एकत्र पीसकर चूर्ण कर लेवे और सब चूर्णमें दुगुना गुड मिलाकर मोदक बनावे, काम और धनकी इच्छा करनेवाले मनुष्यको यह मोदक सेवन करने चाहियें जो मनुष्य इन मोदकोंको सेवन करते हैं और इनके ऊपर भारी, वृष्य ऐसा भोजन नहीं करते उनके यह मोदक अनेक उपद्रवोंको उत्पन्न करते हैं । इस योगराजके प्रभावसे पहिले अगस्त्य ऋषिके भस्माग्नि हो गई थी और इसीके प्रभावसे भीमसेनके भी भस्मानल हो गई थी कि जिससे यह दोनों पुरुष बहुतसा भोजन करने लगे थे । वहाँ केवल सूरण ही इतना वीर्य्यकारक नहीं है, किन्तु अग्नि और बलका कारण है । यह शस्त्र, क्षार और अग्नि कर्मके विना ही बवासीरको दूर कर देता है । यह बृहत्सूरणमोदक सूजन, श्लीपदरोग, कफवातसे उत्पन्न हुई संग्रहणी, वलीपलित रोग, हिक्का, श्वास खाँसी, राजयक्ष्मा, प्रमेह और अग्रप्लीहारोग तथा विशेष करके बवासीरको नष्ट करता है । मेधाको उत्पन्न करता, मैथुन शक्तिको बढाता है और रसायन है ॥ १३९ ॥ १४६ ॥

अगस्त्यमोदक ।

हरीतकीनां त्रिपलं त्रिपलं कटुकत्रयम् । त्वक्पत्रं सार्द्धपलकं गुडस्यार्द्धपलं मतम् ॥ १४७ ॥ अगस्त्यमोदका ह्येते कल्पितान्परिभक्षयेत् । शोथार्शोग्रहणीदोषकासोदावर्त्तनाशनान् ॥ १४८ ॥

हरड १२ तोले, त्रिकुटा १२ तोले, दालचीनी, तेजपात ६ तोले और गुड २ तोले लेवे । इन सबको एकत्र पीसकर मोदक बनावे । यह अगस्त्यमोदक—सूजन, बवासीर, संग्रहणीरोग, खाँसी और उदावर्तको नष्ट करता है ॥ १४७ ॥ १४८ ॥

प्राणदागुटिका ।

त्रिपलं शृङ्गबेरस्य चतुष्कं मरिचस्य च । पिप्पल्याः कुडवार्धश्च चव्यस्य पलमेव च ॥ १४९ ॥ तालीशपत्रस्य पलं पलार्द्धं केशरस्य च । द्वे पले पिप्पलीमूलादर्द्धकर्षश्च पत्रकात् ॥१५०॥ सूक्ष्मैलाकर्षमेकञ्च कर्षञ्च त्वङ्मृणालयोः । अजमोदाद्विजाज्योश्च सूक्ष्माण्येकत्र चूर्णयेत् ॥ १५१ ॥ गुडात्पलानि त्रिंशच्च चूर्णमेकत्र कारयेत् । अक्षप्रमाणा गुटिका प्राणदेति च सा स्मृता ॥ १५२ ॥ पूर्वं भक्षेत्तु पश्चाच्च भोजनस्य यथाबलम् । मद्यं मांसरसं यूषं क्षीरं तोयं पिबेदनु ॥ १५३ ॥ हन्यादर्शांसि सर्वाणि सहजान्यस्रजानि च । वातपित्तकफोत्थानि सन्निपातोद्भवानि च ॥ १५४ ॥ पानात्यये मूत्रकृच्छ्रे वातरोगे गलग्रहे । विषमज्वरपित्ते च पाण्डुरोगे तथैव च॥१५५ ॥ कृमिहृद्रोगिणाश्चैव गुल्मशूलार्त्तिनां तथा । छर्द्यतीसाररोगाणां कामलाहिक्किनां हिता ॥ १५६ ॥ शुण्ठ्याः स्थानेऽभया देया विट्शुडे वातपित्तजे । प्राणदेयं सितां दत्त्वा चूर्णमानाच्चतुर्गुणाम् ॥ १५७ ॥ अम्लपित्ताग्निमान्द्यादौ प्रयोज्या गुदजातुरे । अनुपानं प्रयोक्तव्यं व्याधौ श्लेष्मभवे पलम् । पलद्वयं त्वनिलजे पित्तजे तु पलत्रयम् ॥ १५८ ॥ फलाम्लधान्याम्लरसोदकश्च मद्यं मरुद्रोगिणि चानुपानम् । इक्षो रसः क्षीरहिमाम्बु पित्ते उष्णाम्बुयूषं कफजे विदध्यात् ॥ ॥ १५९ ॥ गंडूषमात्रया देयं मृदौ क्रूरे च पश्च च । अनुपानं प्रयोक्तव्यं देशकालमवेक्ष्य च ॥ १६० ॥ यथा जलगतं तैलं तत्क्षणादेव सर्पति । तथा भैषज्यसङ्गेषु प्रसर्पत्यनुपानतः॥१६१ ॥

सोंठ १२ तोले, कालीमिरच १६ तोले, पीपल ८ तोले, चव्य ४ तोले, तालीशपत्र ४ तोले, नागकेशर २ तोले, पीपलामूल ८ तोले,तेजपात ८ माशे छोटी इलायची १ कर्ष (१६ माशे),दालचीनी और खस एक २ तोला, जीरा १ तोला, काला जीरा १ तोला और अजमोदा १ तोला इन सबको एकत्र पीसकर बारीक चूर्ण कर लेवे फिर गुड तीस पल लेवे सबको मिलाकर एक २ तोलेकी गोली बना लेवे । इसको प्राणदागुटिका कहते हैं । अपने बलानुसार इसको भोजनके पहिले अथवा पीछे भक्षण करे । इसपर मदिरा, मांसरस (सोरुआ), यूष, दूध अथवा जलका अनुपान करे । यह प्राणदागुटिका—सर्व प्रकारकी बवासीर, सहज बवासीर, रुधिरकी बवासीर, वात, पित्त और कफसे उत्पन्न हुई बवासीर, सन्निपातकी बवासीर, पानात्ययरोग, मूत्रकृच्छ्ररोग, वातरोग, गलग्रह, विषमज्वर, पित्तज्वर, पांडुरोग, कृमिरोग, हृदयरोग, गुल्म, शूल, वमन, अतीसार, कामला और हिक्कारोगमें अत्यन्त हितकारी है। इसको मलरोधक और वातपित्तकी बवासीरमें देना हो तो सोंठकी जगह हरड डालनी चाहिए । गुडके स्थानमें चूर्णसे चौगुनी चीनी डालनी चाहिए । इस प्राणदागुटिकाको अम्लपित्त, मन्दाग्नि और गुदाके रोगोंमें देना चाहिए । कफके रोगोंमें अनुपान४ तोला पीना चाहिए।और पित्तके रोगोंमें १२ तोले अनुपान पीना चाहिए । वातरोगमें फलोंकी कांजी, धानोंकी काँजी, रसौदन और मदिराका अनुपान करे । पित्त रोगमें ईखका रस, दूध और शीतलजलका अनुपान करे । कफके रोगोंमें उष्णजल और यूषका अनुपान करे । देश और कालको विचार कर मृदु और क्रूर अनुपानकी पंचगण्डूषकी मात्रा देवे । जिसप्रकार तेल जलमें डालदेनेसे तत्काल फैल जाता है उसी प्रकार अनुपानसे औषधि शरीरमें शीघ्र फैल जाती है ॥ ॥ १४९—१६१ ॥

काङ्कायण मोदक ।

पथ्यापञ्चपलान्येकमजाज्यामरिचस्य च । पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागराः ॥ १६२ ॥ पलाभिवृद्धया क्रमशो यवक्षारपलद्वयम् । भल्लातकपलान्यष्टौ कन्दस्तु द्विगुणो मतः । द्विगुणेन गुडेनैषां वटकानक्षसम्मितान् ॥ १६३ ॥ कृत्वैनं भक्षयेत्प्रातस्तक्रमम्भोऽनु वा पिबेत् । मन्दाग्निं दीपयत्येष ग्रहणीपांडुरोगनुत् ॥ १६४ ॥ काङ्कायणेन शिष्येभ्यः शस्त्रक्षाराग्निभिर्विना । भिषग्जितमिदं प्रोक्तं श्रेष्ठमर्शोविकारिणाम् ॥ १६५ ॥

हरड५ पल, जीरा और काली मिरच १-१ पल पीपल एक पल, पीपलामूल २ पल, चव्य ३ पल, चीता ४ पल, सोंठ ५ पल, और जवाखार २ पल, भिलावे ८ पल जिमीकन्द १६ पल और सबसे दुगुना गुड लेवे । सबको एकत्र पीसकर एक२तोलेकी गोली बना लेवे, प्रतिदिन प्रातःकाल एक गोली खाकर ऊपरसे तक्र अथवा जलका अनुपान करे। यह कांकायणमोदक—मन्दाग्निको दीपन करते हैं संग्रहणी और पांडुरोगको नष्ट करते हैं। कांकायण ऋषिने अपने शिष्योंके लिए यह कांकायणमोदक कहे है । जो बवासीर शस्त्र, क्षार और अग्निके द्वारा आरोग्य नहीं होती उसको यह कांकायण मोदक निश्चय आराम कर देते हैं।।१६२—१६५।।

भल्लातक गुड ।

भल्लातकसहस्रे द्वे जलद्रोणे विपाचयेत । पादशेषे रसे तस्मिन् पचेद्गुडतुलां भिषक् ॥ १६६ ॥ भल्लातकसहस्रार्द्धं छित्वा तत्रैव दापयेत् । सिद्धेऽस्मिंस्त्रिफलाव्योषयवानीमुस्तसैन्धवम् ॥ १६७ ॥ कर्षांशं चूर्णितं दद्यात्त्वगैलापत्रकेसरम् । खादेदग्निबलापेक्षी प्रातरुत्थाय मानवः ॥१६८॥ कुष्ठार्शःकामलामेहान्ग्रहणीं पाण्डुतामपि । हन्यात्प्लीहोदरं कासं कृमिदोषं भगन्दरम् ॥१६९॥भल्लातकगुडो ह्येष श्रेष्ठश्चार्शोविकारिणाम् ॥ १७०॥

दो सहस्र भिलावे लेकर एक द्रोण जलमें पकावे जब चौथाई भाग जल शेष रह जाय तब उतार कर छान लेवे । फिर उसमें १०० पल गुड डाले पश्चात् उन सीजे हुए भिलावोंमेंसे ५०० भिलावोंके टुकडे

करके डालकर पकावे। जब पाक पककर तैयार होजाय तब त्रिफला, त्रिकुटा, अजवायन, नागरमोथा, सैंधानमक, दालचीनी, इलायची, तेजपात और नागकेशर इन प्रत्येकका चूर्ण एक २ तोला मिला देवे । इसमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर अग्निका बलाबल विचार भक्षण करे । इससे सब प्रकारके कोढ़, ववासीर, कामला, प्रमेह, संग्रहणी, पाण्डुरोग, प्लीहा, उदररोग, खाँसी, कृमिदोष और भगन्दररोग नष्ट होता है । यह भल्लातकगुड - अर्शरोगवालोंको अत्यन्त हितकारी है ॥ १६६—१७० ॥

भल्लातकावलेह ।

सुपक्वभल्लातफलानि चैव द्विधाविदार्य्याढकसम्मितानि । विपाच्य तोयेन चतुर्गुणेन चतुर्थशेषे व्यपनीय तानि ॥ १७१ ॥ पुनः पचेत्क्षीरचतुर्गुणेन घृतांशयुक्तेन घनं यथा स्यात् । सितोपलाः षोडशभिः पलैश्च विमृश्य संस्थाप्य दिनानि सप्त ॥ १७२ ॥ ततः प्रयुञ्ज्याग्निबलेन मात्रां जयेद्विकारानखिलान्गुदोत्थितान् । कचान्सुनीलान्घनकुञ्चिताग्रान् सुपर्णदृष्टिश्च शशाङ्ककान्तिम् ॥ १७३ ॥ जवं हयानां बलमुत्तमञ्च स्वरं मयूरस्य हुताशदीप्तिम् । स्त्रीवल्लभत्वं विविधां प्रभाञ्च नीरोगतां द्वित्रिशतायुषञ्च ॥ १७४ ॥ न चान्नपाने परिहारमस्ति न चातपे वाऽध्वनि मैथुने च । प्रयोगकाले सकलामयानां राजा ह्ययं सर्वरसायनानाम् ॥ १७५ ॥

अच्छे प्रकारसे पके हुए और दो टुकड़े किये हुए एक आढक प्रमाण भिलावे लेकर चौगुने जलमें पकावे । जब चौथाई भाग जल शेष रह जाय तब उसको उतार कर छान लेवे। फिर उसमें चौगुना दूध और चौथाई भाग घी डालकर पकावे । जब पकते२ गाढ़ा हो जाय तब उसमें १६ पल मिश्री डाल कर करछीसे चलाकर एकम एक करके किसी स्वच्छ पात्रमें भर देवे फिर सात दिनतक उसको रक्खा रहने देवे । पश्चात् अग्निके बलाबलको विचारकर मात्राका निरूपण करे । यह भल्लातकावलेह-सर्व प्रकारके गुदाके रोगोंको नष्ट करता है, बालोंको श्यामवर्ण, घने और कुंचित करता है, दृष्टिको गरुडके समान दीप्त और चन्द्रमाके समान शरीरमें कांतिको उत्पन्न करता है। अश्वके समान वेग और बलको उत्पन्न करता है । इसके प्रभावसे मोरके समान स्वर होता है । अग्निके समान प्रकाश उत्पन्न होता है । इसको सेवन करनेवाला स्त्रियोंको वल्लभ होता है । नानाप्रकारके प्रभावसे युक्त होता है । नीरोग होकर दो तीन सौ वर्षतक जीता है । इसके सेवनमें किसी प्रकारके अन्नपान, धूप, भ्रमण, मैथुन आदिका परहेज नहीं है । इसको सेवन करनेसे—सर्वप्रकारके रोग नष्ट होते हैं । यह भल्लातकावलेह सर्व रसायनोंका राजा है ॥ १७१—१७५ ॥

पटोलाद्यवलेह ।

पटोलमूलं त्रिफलां विशालां चतुरङ्गुलम् । नीलिनी त्रिवृता दन्ती कृमिघ्नं सपुनर्नवा ॥ १७६ ॥ कटुकं सातला लोध्रं भागान्दशपलोन्मितान् । दत्त्वा द्रोणचतुष्कन्तु सलिलं पादशेषितम् ॥ १७७ ॥ तैलस्य कुडवं तत्र गुडस्य तु तुलां पचेत् । त्रिवृच्चूर्णं पलान्यष्टौ लेहवत्साधु साधयेत् ॥ १७८ ॥ शीतीभूते न्यसेत्तत्र व्योषं पञ्चपलोन्मितम् । पलत्रयं त्रिजातस्य दत्त्वा सङ्घट्टयेत्पुनः ॥ १७९ ॥ ततो यथाबलं खादेत्पलार्द्धं पिचुमेव च । नाहारे यन्त्रणा काचिन्न विहारे तथैव च ॥ १८० ॥ विबन्धाध्मानगुल्मार्शःपाण्डुरोगकफक्रमीन् । कुष्ठमेहारुचिं हन्ति ह्यन्त्रवृद्धिपु शस्यते ॥ १८१ ॥

पटोलकी जड, त्रिफला, इन्द्रायण, अंडकी जड, नील, निसोत, दन्ती, वायविडंग, पुनर्नवा, त्रिकुटा, सातला और लोध प्रत्येकको दश २ पल लेकर चार द्रोण जलमें पकावे, जब एक द्रोण जल शेष रह जाय तब उतारकर छान लेवे । पश्चात् उसमें तिलका तेल एक कुडव (१६ तोले) गुड़१००पल और निसोतका

चूर्ण८पल डालकर उत्तम विधिसे लेहके समान पकावे जब पककर सिद्ध होजाय तब उतार कर शीतल होने-पर त्रिकुटेका चूर्ण २० तोले और त्रिजातकका चूर्ण ३ पल डालकर खूब करछीसे चलाकर एकमएक कर लेवे।पश्चात् इसमेंसे अपने बलानुसार दो तोले अथवा एक तोला प्रमाण भक्षण करे । इसपर आहार और विहारका कुछ परहेज नहीं है। यह विबन्ध, अफारा, गुल्म, बवासीर, पाण्डुरोग, कफ, कृमि, कोढ,प्रमेह, अरुचि और अंत्रवृद्धिरोगको नष्ट करता है ॥१७६-१८१ ॥

मोदकं वटकं लेहं कर्षमात्रं प्रयोज-येत् । कर्षद्वयं पलं वापि देयं रोगा-ऽग्न्यपेक्षया ॥ १८२ ॥

मोदक, वटक और अवलेह ये प्रत्येक एक २ तोला देने चाहिए किन्तु रोगीकी अग्निका अधिक बल देखे तो दो तोले अथवा चार तोले भी देवे ॥ १८२ ॥

भल्लातकविधान ।

बीजं भल्लातकस्यैकं पूतं निःक्वाथ्य वारिणि । क्वाथयेत्षोडशगुणे शु-क्तिशेषं हितं पिबेत् ॥ १८३ ॥ एकै-कं वर्द्धयेद्बीजमापञ्चाशाद्विचक्षणः । आसप्तर्तिं पञ्चवृद्ध्या वर्द्धयेन्मतिमां-स्ततः॥ १८४ ॥ शुक्तिवृद्ध्या कषा-यञ्च वर्धयेदातुरः पलान् । सकषा-याणि बीजानि वर्द्धितानि यथाक्र-मम् ॥ १८५ ॥ पुनः क्रमेण तेनैव ह्रा-सयेदात्मवान्नरः । इत्युत्कर्षापकर्षा-भ्यां सहस्रं यावदादरात् ॥ १८६ ॥ उपयुक्तं जयत्येतद्गुदजानि कृमीं-स्तथा । भल्लातकविधानं तु चेदं गोपु-ररक्षितम् ॥ १८७ ॥

शुद्ध भिलावेके एक बीजको लेकर सोलह गुने जलमें औटावे । जब पकते २ चार तोले जल शेष रह जाय तब छानकर पान करे । फिर प्रतिदिन एक २ बीज बढाता जाय । इस प्रकार पचास तक बढावे, जब पचास हो जाँय तब पांच २ बढाने लगे इस प्रकार ७० तक बढावे और इसी प्रकार क्वाथ भी प्रतिदिनके क्रमसे चार २ तोले बढाता जाय जिस क्रमसे बीजोंको बढावे उसी क्रमसे क्वाथको भी बढावे । सत्तरके पश्चात् उसी क्रमसे घटाता जाय। इस बढाने घटानेसे जब हजार बीज होजाँयगे तब गुदाके कृमि और अर्शरोग नष्ट होजावेंगे । यह भल्लातकविधान गोपुर ऋषिने कहा है ॥ १८३—१८७ ॥

योगराजगुग्गुलु ।

पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यचित्रकना-गरैः । पाठा विडङ्गेन्द्रयवहिंगुभाग-वचान्वितैः ॥ १८८ ॥ सर्षपाऽतिवि-षाजाजी चित्रकैरण्डकट्फलैः । तज-कुष्ठाजमोदाह्वा कटुका तेजनी समैः ॥ १८९ ॥ भागैः संचूर्णितैरेषां त्रिफला त्रिगुणा भवेत् । सर्वेषामेव द्रव्याणां समो देयोऽथ गुग्गुलुः ॥ १९० ॥ एकीकृत्य शुभे भाण्डे मधुना सुपरि-प्लुतः । योगराज इति ख्यातो योगो-ऽयममृतोपमः ॥ १९१ ॥ एष निष्प-रिहारस्तु पानभोजनमैथुनैः । रेतो-दोषाश्च ये पुंसां योनिदोषास्तु योषि-ताम् ॥ १९२ ॥ निहन्ति सर्वान्दुर्वा-रान्नात्र कार्य्या विचारणा । अर्शांसि वातगुल्मञ्च वातरोगमरोचकम् ॥ ॥ १९३ ॥ नाभिशूलमुदावर्त्तं हृद्रोगं ग्रहणीं तथा । क्षयं कुष्ठमपस्मारं प्रमेहं वातशोणितम् ॥ १९४ ॥ महान्तम-ग्निसादञ्च कासं श्वासं भगन्दर-म् । सर्वव्याधिविनिर्मुक्तो जीवेद्वर्षश-तद्वयम् ॥ १९५ ॥ क्षीराज्यरसयूषाक्तं दोषधात्वनलोचितम् । बुभुक्षितो मात्रयाऽन्नमद्याद्गुग्गुलुसेवकः॥ १९६ ॥ वातं स्थिरादिक्वाथेन पित्तं काकोलि-कादिना । आरग्वधाद्येन कफं पीतो जयति गुग्गुलुः॥ १९७ ॥ दार्वीक्वाथेन

मेहं जयति मधुयुतो मेदसश्चापि वृद्धिं पाण्डुत्वं मूत्रयुक्तः क्षपयति विधिवितं छागदुग्धेन सिद्धः। निम्बक्काथेन कुष्ठं श्वयथुमतिबलं मूलकक्काथपीतः निघ्नं कुम्भीकवृक्षस्वरसपरिगतो मूषकश्वासदोषान्॥ १९८॥

पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ, पाढ, वायविडंग, इन्द्रजौ, हींग, वच, सरसों, अतीस, जीरा, चीता, अण्डकी जड, तज, कूठ, अजमोद, कुटकी और तेजबल ये समान भागलेवे, त्रिफला तीन भाग लेवे, सबका एकत्र चूर्ण करे और सब चूर्णके बराबर गूगल लेवे। सबको शहदमें मिलाकर एक उत्तम चिकने बासनमें भरकर रख देवे। इसको योगराजगूगल कहते हैं। यह अमृतके समान गुणकारक है। इसपर पान, भोजन और मैथुनका कुछ परेहज नहीं है। जो पुरुष शुक्रदोषसे पीडित हैं और जो स्त्री योनिरोगवाली हैं उन सबके दुस्तर रोगोंको यह योगराजगूगल निश्चय दूर कर देता है तथा सब प्रकारकी बवासीर, वात, गुल्म, वातरोग, अरुचि, नाभिशूल, उदावर्त्त, हृदयरोग, संग्रहणी, क्षय, कुष्ठ, अपस्मार, प्रमेह, वातरक्त, अत्यन्त अग्निकी मंदता, खाँसी, श्वास, भगन्दर और सब प्रकारके रोगोंसे विमुक्त होकर दो सौ वर्षपर्य्यन्त जीता रहता है। इसपर दोष धातु और अग्निके बलानुसार भूखके लगनेपर दूध, घी, मांसरस और यूषके साथ अन्नका भोजन करे। इस योगराजगूगलको वातरोगमें—शालिपर्णिआदि औषधियोंके काथके साथ पान करे, पित्तरोगमें काकोली आदिके काथसे, कफरोगमें अमलतास आदिके काथके साथ पान करे।यह दारुहल्दीके काथसे प्रमेहको, शहदके साथ मेदकी वृद्धि (स्थूलता) को, बकरीके दूधके साथ पाण्डुरोग और मूत्रकृच्छ्रको, नीमके काथके साथ कोढको, मूलीके काथके साथ सूजनको और जलकुम्भीके स्वरसके साथ सेवन करनेसे चूहेके विषको दूर करता है॥ १८८—१९८॥

श्रीबाहुशालगुड।

त्रिवृत्तेजोवती दन्ती श्वदंष्ट्रा चित्रकं शटी। गवाक्षी मुस्तविश्वाह्वाविडङ्गानि हरीतकी॥ १९९॥ पलोन्मितानि चैतानि पलान्यष्टावरुष्करात्। वृद्धदारुपलान्यष्टौ सूरणस्य च षोडश॥ २००॥ जलद्रोणे पचेत्काथं चतुर्भागावशोषितम्। पूतन्तु तं रसं भूयः काथेभ्यो द्विगुणो गुडः॥२०१॥ लेहं पचेत्तु तं तावद्यावद्दर्वीप्रलेपनम्। अवतार्य ततः पश्चाच्चूर्णानीमानि दापयेत्॥ २०२॥ त्रिवृत्तेजोवतीकन्दचित्रकान्द्विपलांशकान्। एलात्वङ्मरिचं चापि गजाह्वाश्चापि षट्पलम्॥ २०३॥ द्वात्रिंशच्च पलश्चैव चूर्णयित्वा निधापयेत्। ततो मात्रां प्रयुञ्जीत जीर्णे क्षीररसाशनः॥२०४॥ पञ्च गुल्मान्प्रमेहांश्च पांडुरोगं हलीमकम्। जयेदर्शांसि सर्वाणि तथा सर्वोदराणि च॥२०५॥ दीपयेद्ग्रहणीं मन्दां यक्ष्माणं चापकर्षति। पीनसे च प्रतिश्याय आमवाते तथैव च॥ ॥२०६॥ अयं सर्वगदेष्वेव कल्याणो लेह उत्तमः। दुर्नामान्तकरश्चासौ दृष्टो वारसहस्रशः॥२०७॥ भवन्त्यनेन पुरुषाः शतवर्षा निरामयाः। दीर्घायुषः प्रजननो वलीपलितनाशनः॥ ॥२०८॥ रसायनवरश्चैष मेधाजननउत्तमः। गुडः श्रीबाहुशालोऽयं दुर्नामारिः प्रकीर्त्तितः॥ २०९॥

निसोत, तेजबल, दन्ती, गोखरू, चीता, कचूर, इन्द्रायण, नागरमोथा, सोंठ, वायविडंग और हरड प्रत्येक चार २ तोले, भिलावे ८ पल, विधारा ८ पल और जिमीकन्द १६ पल लेवे, पश्चात् इन सबको एक द्रोण जलमें पकावे। जब चौथाई भाग जल शेष रह जाय तब उतार कर वस्त्रमें छान लेवे। फिर उस काथसे दुगुना गुड डालकर मंद २ अग्निसे धीरे २ पकावे जब पकते२ करछीसे चिपकने लगे तो उतार लेवे फिर इसमें निसोत, तेजबल, जिमीकन्द और चीता प्रत्येकका चूर्ण आठ आठ तोले, इलायची

दालचीनी, कालीमिरच और गजपीपल प्रत्येकका चूर्ण छः छःपल मिला देवे, इसको शक्त्यनुसार भक्षण करे । इस औषधिके जीर्ण होनेपर दूध और मांसरस (सोरुआ) का भक्षण करे । यह गुड—पांचप्रकारके गुल्म, सब प्रकारके प्रमेह, पाण्डुरोग, हलीमक, सब प्रकारकी बवासीर और सर्व प्रकारके उदररोगोंको नष्ट करता है । मंदाग्निको दीपन करता और राजयक्ष्माको नष्ट करता है। यह बाहुशालगुड पीनस, प्रतिश्याय, आमवात और सब प्रकारके रोगोंमें हितकारी है। यह बवासीर रोगको विशेष करके दूर करता है, ऐसा हजारों बार देखा गया है। इसको सेवन करनेसे मनुष्य रोगोंसे छूटकर सौवर्षतक जीता रहता है। यह गुड़ आयुको बढानेवाला, सन्तानोत्पादक, वलीपालित नाशक, उत्तम रसायन, उत्तम मवाजनक है इस श्रीबाहुशालगुडको " दुर्नामारि" भी कहते हैं ॥ १९९—२०९ ॥

गुडपाक ।

सार्धं पलं पलं चार्धं विदध्याद्गुडखण्डयोः । श्रेष्ठमध्यमहीनेषु मात्रेयं मुनिना स्मृता ॥ २१० ॥ तोयपूर्णे यदा पात्रे क्षिप्तो न प्लवते गुडः । क्षिप्तस्तु निश्चलस्तिष्ठेत्पातितस्तु न शीर्य्यते ॥ २११ ॥ यदा दर्वीप्रलेपः स्याद्यावद्वातन्तुली भवेत् । एष पाको गुडादीनां सर्वेषां परिकीर्त्तितः ॥ २१२॥ सुखमर्दः सुखस्पर्शो गन्धवर्णरसान्वितः। पीडितो भजते मुद्रां गुडः पाकमुपागतः ॥ २१३ ॥

गुड और खांडकी छः तोले, चार तोले और दो तोले को क्रमशः उत्तम मध्यम और हीनमात्रा कही है । जलसे भरे हुए पात्रमें गुड़को डाले जो वह गुड़ जलमें न डूबे किन्तु निश्चल भावसे ठहर जावे और चारों तरफको न फैले, तथा जो करछीसे लगने लगे और जिसमें तन्तुसे छूटने लगे तो गुड़पाक हुआ जानना। यह गुड़पाककी विधि सब जगह कही है। जो हाथसे मलनेमें और छूनेमें नरम हो जाय, जिसमें गन्ध, वर्ण और रस पूर्ण हो तथा जिसको अंगुलियोंसे मलनेसे बत्तीसी बन जाय तो वह उत्तम विधिसे गुडपाक हुआ जानना ॥ २१०—२१३ ॥

लोहवर्णन ।

मुण्डं तीक्ष्णञ्च कान्तञ्च त्रिप्रकारमयः स्मृतम् । मृदु कुण्डञ्च कण्डारं त्रिविधं मुण्डमेव च ॥ २१४ ॥

मुण्ड, तीक्ष्ण और कान्त इन भेदोंसे लोहा तीन प्रकारका कहा है । उनमें मुण्डलोह, मृदु, कुण्ड और कुण्डार इन भेदोंसे तीन प्रकारका है ॥ २१४ ॥

मृदुलक्षण ।

हतद्रावमविस्फोटं मृदु कुम्भहतं च यत् ।

जो शीघ्र पतला हो जाय, घनकी चोटसे न टूटे और सचिक्कण हो उसको मृदु जानना ॥

कुण्डलक्षण ।

घट्टने प्रसरं दुःखात्तत्कुण्डं मध्यमं स्मृतम् ॥ २१५ ॥

बड़ी मुश्किलसे घनकी चोटसे जो पतला हो वह कुंडसंज्ञक मध्यम लोह कहा है ॥ २१५ ॥

कण्डारलक्षण ।

विधृतं भज्यते भङ्गे कृष्णं कण्डालकं स्मृतम् ॥ २१६ ॥

जो घनकी चोटसे टूटकर भीतरसे काला निकले उसको कण्डार (ल) लोह कहते हैं ॥ २१६ ॥

मुण्डजातिमृदुलोहगुण ।

मुण्डं वरं मृदुलकं कफवातशूलशूलाप्रमेहगुदजामयपाण्डुहारि । गुल्मामवातजठरार्त्तिहरं प्रदीपि शोफापहं रुधिरकृत्खलु कोष्ठशोधि ॥ २१७ ॥

मृदुनामक मुण्डजातिका लोह उत्तम, नरम तथा कफवात, शूल, आमशूल, प्रमेह, बवासीर, पाण्डुरोग, गुल्म, आमवात, उदररोग और सूजनको हरनेवाला है अग्निको दीपन करनेवाला, रुधिरको उत्पन्न करनेवाला और कोठेको शुद्ध करनेवाला है ॥ २१७ ॥

तीक्ष्णभेद।

खराख्यं योगरं सारं कर्णकं द्रावकं तथा। रोमकं षड्विधं तीक्ष्णं मुनिभिः परिकीर्त्तितम् ॥ २१८ ॥

खर, योगर, सार, कर्णक, द्रावक और रोमक इन भेदोंसे तीक्ष्ण लोहा छः प्रकारका है ॥२१८॥

कान्तलोहभेद।

हुन्तालमपरं तारं वट्टं वाजरकालकम्। कान्तं सप्तविधं प्रोक्तं भ्रामकं चुम्बकं तथा ॥ २१९ ॥

हुन्ताल, तार, वट्ट, बाजर, कालक, भ्रामक और चुम्बक इन भेदोंसे कान्तलोह सात प्रकारका है २१९

खरयोगरहुन्तालवाजरादि लोहके भेद।

नीलं कृष्णमतिस्निग्धं सूक्ष्मं सारमयः शुभम्। न नमेद्भङ्गुरं यत्तत्खरलोहमुदाहृतम् ॥ २२० ॥ कृष्णपाण्डुरकच्छुरबीजतुल्यन्तु योगरम्। विच्छेदनेऽतिपरुषं हुन्तालमिति कथ्यते२२१ ॥ योगैर्वज्रसङ्काशैः सूक्ष्मैर्यूखैश्च सान्द्रकैः। निशितं श्यामलाङ्गश्च वाजरं तत्प्रकीर्त्तितम् ॥ २२२ ॥

जो भीतरसे नीला, काला, अत्यन्त चिकना, सूक्ष्म, सारयुक्त और तोडनेसे नवे नहीं किन्तु टूट जावे उसको उत्तम खर लोहा जानना। जो काला, पाण्डुरंगका ओर जिसमें पारेके समान तिरछी लकीर हो उसको योगर कहते हैं। जो तोडनेमें अत्यन्त कठोर हो उसको हुंताल कहते हैं, जो तोडनेमें वज्रके समान प्रकाशित हो, सूक्ष्म रेखायुक्त, भारी और काला हो उसको वाजर कहते हैं ॥२२०॥ २२१॥१२२ ॥

नीलं कृष्णप्रभं सान्द्रमव्रणं गुरुतारकम्। अयः परशवन्तीक्ष्णशस्त्रं कालायसं खरम् ॥ २२३ ॥

जो नीला, काला, नरम, व्रणरहित अर्थात् चिकना और भारी हो उसको तार कहते हैं। पारशव, तीक्ष्ण, शस्त्र, कालायस और खर ये खरलोहके नाम हैं२२३

खरलोहगुण।

रूक्षं स्यात्खरलोहकं समधुरं पाके च वीर्य्ये हिमं तिक्तोष्णं कफवातपित्तजनितप्लीहामपाण्ड्वार्त्तिनुत्। सद्यः शूलयकृद्दक्षयजरामोहामवातापहं दीप्तं चातिरसायनं कफहरं दुर्नामभेदापहम् ॥ २२४ ॥

खरलोहा—रूखा, पाकमें मधुर, शीतवीर्य्य, कडवा, गरम, कफ, वात और पित्तसे उत्पन्न हुए प्लीहा और पांडु आदि रोगोंको नष्ट करता है। तत्काल शूल, यकृत, क्षयरोग, जरा, मोह और आमवातरोगको नष्ट करता है। अग्निको दीपन करनेवाला, अत्यन्त रसायन, कफनाशक और बवासीरको हरनेवाला है ॥ २२४ ॥

खरलोहात्परं सर्वमेकैकं स्याच्छतोत्तरम् ॥ २२५ ॥

खरलोहसे परे प्रत्येक लोहमें सौ सौ गुण अधिक हैं ॥ २२५ ॥

गुडूचीहंसपादी च रक्तमालाफलत्रयम्। गोपालिका गोरसना तुम्बुरुं लोहतप्तकम्। एषां रसैः सिञ्चयेत्तद्गिरिदोषनिवृत्तये ॥ २२६ ॥

गिलोय, हंसपदी, रक्तमाला, त्रिफला, गोपीवल्ली, गोंजिया और तुम्बुरु इनके रसमें लोहेको तपाकर गिरिदोष दूर करनेके लिए वारंवार बुझावे ॥२२६॥

तत्तदाकरसम्भूतं तत्तद्रोगविनाशनम्। तेन तस्य परीक्षायां यतेमहि सहेतुकम् ॥ २२७ ॥

लोहा जैसी २ खानसे उत्पन्न होता है उसी २ के अनुसार गुणकारक और रोगनाशक जानना। इस कारण उसकी यत्नपूर्वक परीक्षा करनी चाहिए२२७

कन्तकं तण्डुलाङ्गं स्यादार्यवन्मलयोपरि। कृशताडं कृशाङ्गश्च शूलाग्रश्चोग्रदेशजम् ॥ २२८ ॥

कन्तकलोहा चावलोंके समान होता है और वह आर्य तथा मलयपर्वतपर होता है । कुश ताड लोहा बहुत पतला होता है वह शूलके अग्रभागमें लगाया जाता है और उग्रदेशमें होता है ॥ २२८ ॥

पाण्डिजं द्विविधं कृष्णं शुक्लञ्च सम-दाडिमम् । भद्रमैरण्डबीजाभं स्नुहीपत्रनिभं शुभम् ॥ २२९ ॥

पाण्ड्य लोहा काला और सफेद इन भेदोंसे दो प्रकारका है । उनमें अनारके समान, अंडके बीजके समान और थूहरके पत्तोंके समान श्रेष्ठ होता है ॥ २२९ ॥

वज्रमर्कपत्राङ्गमीषत्स्वर्णच्छवि द्विधा। कान्तं मृदुतरं ताडं रूक्षं कान्तिशितिकरम् ॥ २३० ॥

वज्रलोहा आकके पत्तोंके समान और किंचित् सोनेकी कांतिके समान ऐसे दोप्रकारका होता है । कान्तलोह बहुत नरम होता है, ताड रूखा और काली कांतिवाला होता है ॥ २३० ॥

क्षुद्राङ्गं गुरुतारं स्यात्कलिङ्गजमथः स्मृतम् । रूक्षं रुक्मप्रतीकाशं तीक्ष्णं मृदुफलं स्मृतम् ॥ २३१ ॥

तारलोहा–छोटा २ भारी--और कलिंगदेशमें उत्पन्न होता है । तीक्ष्णलोहा--रूखा, सोनेके समान प्रकाशमान और उसका फल नरम होता है॥२३१॥

यकृत्प्लीहशिरःशूलमम्लपित्तानिलोद्भवम् । पार्श्वरोगहतं वातं हन्याद्वातकफोद्भवम् ॥ २३२ ॥ छर्द्यतीसारशूलानि परिणामोद्भवं तथा । वातं सर्वाङ्गिकं पित्तं निहन्याच्चोग्रदेशजम् २३३॥

उग्रदेशमें उत्पन्न हुआ लोहा—यकृत, प्लीहा, शिरःशूल, अम्लपित्त, वातसे उत्पन्न हुआ पार्श्वशूल, वातकफसे उत्पन्न हुई वमन, अतीसार, परिणामशूल,सर्वांगवात,वात और पित्त इन सबको नष्ट करता है ॥२३२॥ २३३ ॥

भेदनं दीपनं वर्द्धदुर्नामाख्यं त्रिदोषजम् ।गात्रभेदं कफवातं हन्ति वज्रोद्भवं तु यत्॥ २३४ ॥

वज्रसे उत्पन्न हुआ लोहा—भेदक, अग्निको दीपन करनेवाला, त्रिदोषसे उत्पन्न हुई बवासीर, शरीरमें भेदने सरीखी पीडा, कफ और वातको नष्ट करता है ॥ २३४ ॥

गुल्मश्च पाण्डुरोगश्च ज्वरांश्च विषमोद्भवान् । अर्शांसि श्वासशोथांश्च प्रमेहांश्च विशेषतः॥ २३५॥ गलग्रहं रक्तपित्तं मरुद्रोगं भयानकम् । निद्रालस्यावरोधश्च निहन्यात्पाणिदेशजम् ॥ २३६ ॥

पाणिदेशमें उत्पन्न हुआ लोहा—गुल्मरोग, पांडुरोग, विषमज्वर, बवासीर, श्वास, सूजन, विशेष करके प्रमेह, गलग्रह, रक्तपित्त, दारुण वातरोग, निद्रा और आलस्यको नष्ट करता है॥२३५ ॥२३६॥

रक्तोत्थं चापि चोष्माणं रक्तपित्तं सुदारुणम् । मूर्च्छाछर्दिहरं दाहं वज्रं शमयति ध्रुवम् ॥ २३७ ॥ सर्वान्रोगान्निहन्त्याशु कुष्ठाष्टादशसम्मितान् । पावनं पुत्रजननं वन्ध्यायां वीर्य्यवर्द्धनम् । बल्यं क्षयापहं धातुबृंहणं स्यात्कलिङ्गजम् ॥ २३८ ॥

कलिंगदेशमें उत्पन्न हुआ लोहा—रुधिरसे उत्पन्न हुई गरमी, दारुण रक्तपित्त, मूर्च्छा, वमन और दाह इनको वज्रलोह निश्चय शमन करता है,सब प्रकारके रोगों और अठारह प्रकारके कोढोंको हरता है, पवित्र, वन्ध्या स्त्रियोंके पुत्रको उत्पन्न करने वाला, वीर्य्यवर्द्धक, बलकारक, क्षयनाशक और धातुको पुष्टिकारक है ॥ २३७ ॥ २३८ ॥

एतानि सर्वाणि विचेष्टितानि हितानि रोगोपशमाय सन्ति। वयोविशेषेषु विशेषविज्ञैर्विज्ञाय दत्तानि च देशकाले ॥ २३९ ॥

यह सब लोह अनेक प्रकारकी चेष्टाओंसे, अनेक प्रकारके अनुपानोंसे, विविधप्रकारके रोगोंको हरनेवाले हैं इस कारण इनको अवस्था, देश और कालका अच्छे प्रकार विचार कर प्रयोग करे ॥ २३९ ॥

सामान्याद्द्विगुणश्चोग्रं तस्मादष्टगुणं कलिः । कलेर्दशगुणं भद्रं भद्राद्वज्रं सहस्रधा ॥ २४० ॥ वज्रात्षष्टिगुणं पाण्डिर्निरावेर्दशभिर्गुणैः । ततः कोटिसहस्रेण त्वयःकान्तं महागुणम् २४१॥

सामान्यलोहेसे दूने गुण उग्रलोहेमें, उग्रलोहेसे दशगुण अधिक कलिंगमें, कलिंग लोहेसे दशगुण अधिक भद्रलोहेमें, भद्रलोहेसे हजारगुण अधिक वज्र लोहेमें, वज्रसे साठगुण अधिक पाण्डिलोहेमें ओर उससे अधिक एक करोड हजार गुण कान्तलोहेमें हैं ऐसा जानना चाहिए ॥ २४० ॥ २४१ ॥

अग्निमुखलोह ।

त्रिवृच्चित्रकनिर्गुण्डी स्नुही मुण्डितका जडा । प्रत्येकशोऽष्टपलिका जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ २४२ ॥ पादशेषे रसे तस्मिन्पुनस्तेन विपाचयेत् । पलद्वयं विडङ्गस्य व्योषात्कर्षद्वयं पृथक् ॥२४३ ॥ त्रिफालायाः पलं पञ्च शिलाजतुपलं न्यसेत् । दिव्यौषधहतस्यापि वैकङ्कतहतस्य वा ॥ ॥ २४४ ॥ पलद्वादशकं देयं रुक्मलोहस्य चूर्णितम् । मधुशर्करयोर्युक्तं चतुर्विंशतिभिः पलैः ॥ २४५ ॥ घनीभूते सुशीते च दापयेदवतारयेत् । एतदग्निमुखं नाम दुर्नामान्तकरं परम् ॥२४६ ॥ मन्दमाग्निं करोत्याशु कालाग्निसमतेजसम् । पर्वतोप्यवजीर्येत प्रसादादस्य देहिनाम् ॥ २४७ ॥ गुरुपिष्टान्नपानानि पयो मांसरसा हिताः । दुर्नामपांडुश्वयथुप्लीहकुष्ठोदरापहम् ॥ २४८॥ न स रोगोऽस्ति यश्चापि न निहन्यादिदं क्षणात् ।करीरकाञ्जिकादीनि ककारादीनि वर्जयेत् । स्रवत्यतोऽन्यथा लोहो देहात्किट्टश्च दुर्जयम् ॥ २४९ ॥

निसोत, चीता, निर्गुण्डी, थूहर, गोरखमुण्डी और भुँईआमले ये प्रत्येक आठ २ पल लेकर एक द्रोणजलमें पकावे जब चौथाई भाग जल शेष रह जाय तब उतारकर छान लेवे। फिर उसमें वायविडंगका चूर्ण दो पल, त्रिकुटेका चूर्ण छः तोले, त्रिफलेका चूर्ण २० तोले, शिलाजीत ४ तोले फिर मैनशिलसे अथवा विकंकत (कंटाई) के रससे मारा हुआ तीक्ष्ण लोहेका चूर्ण १२ पल डालकर विधिपूर्वक पकावे, जब गाढा होकर शीतल हो जाय तब शहद और खांड २४ पल मिलाकर उतार लेवे । यह अग्निमुख लोह बवासीरको नष्ट करनेवाला है, मन्दाग्निको कालाग्निके समान दीपन करता है, इसके प्रभावसे मनुष्योंके पतथर तक भी जीर्ण हो जाते हैं । इसपर भारी पदार्थ,पिष्टके पदार्थ,भारी अन्नपान,दूध, मांसरस (सोरुआ) और घी ये सब हितकारक हैं । यह अग्निमुख लोह बवासीर, पांडु, सूजन, प्लीहा, कुष्ठ और उदररोगको नष्ट करता है । संसारमें ऐसा कोई रोग नहीं है जो इस लोहेके सेवन करनेसे आरोग्य नहीं हो. इसपर करीर, काँजी आदि ककारादि पदार्थ छोड देवे यदि अन्यप्रकारसे इस लोहेको सेवन किया जाय तो यह लोहा शरीरसे फूटकर निकल जाता है ॥ २४२—२४९ ॥

लोहाष्टक ।

पलद्वादशकं कृत्वा कृष्णलोहस्य खण्डशः । भार्ङ्गचम्बष्ठासगण्डीरमूलैः पिण्डं प्रलेपयेत् ॥ २५० ॥ दत्त्वा प्रधमयेत्तावद्यावत्सर्वमृतं भवेत् । घृतस्य षट्पलं देयं शर्करायास्तथैव च॥२५१॥ सूर्य्यावर्त्तरसप्रस्थे त्रिफलासहिते शुभे । प्रक्षिप्य विपचेद्भूयो यावत्सान्द्रत्वमेति च ॥ २५२ ॥ सिद्धे रात्र्युषिते बीजं सूर्य्यावर्त्तस्य दापयेत् । कर्षं त्रिकटुकस्यापि त्रिकर्षं चूर्णसंयुतम्२५३॥ मधुत्रिपलसंयुक्तं यथाग्नि चोपयोजयेत् । अर्शांसि कामला कुष्ठपाण्डुरोगक्रमींस्तथा ॥ २५४ ॥ वृद्धिं गुल्मोदरं शोथं विशेषात्परिणामजम् । शूलान्निहन्ति सर्वांस्तु विकारान्नात्र संशयः

॥ २५५ ॥ एतल्लोहाष्टकं नाम सर्वदोषहरं परम् ।

कृष्णलोहेको १२ पल लेकर टुकडे कर लेवे फिर भारंगी, पाढ और समष्ठिल वृक्षकी जडको पीसकर उनके ऊपर प्रलेप करे पश्चात् उनको अग्निमें रखकर फूंके जबतक वह सब अच्छे प्रकारसे न मरजावें तब तक अग्नि देवे फिर उस भस्ममें ६ पल घी, छः पल खांड, हुलहुलका रस १६ तोले और त्रिफलेका काथ ६४ तोले मिलाकर जबतक वह गाढा न हो तबतक पकावे, जब सिद्ध हो जाय तब उसमें रात्रिमें भीजे हुए हुलहुलके बीजोंका चूर्ण एक तोला, त्रिकुटेका चूर्ण तीन तोले और शहद तीन पल मिला देवे अग्निका बलाबल विचारकर इसको भक्षण करे । यह लोहाष्टक सब प्रकारकी बवासीर, कामला, कुष्ठ, पांडु, कृमिरोग, अंडवृद्धि, गुल्म, उदररोग, सूजन विशेष करके परिणामशूल और सब प्रकारके शूलोंको निःसन्देह नष्ट करता है ॥ २५०—२५५ ॥

चव्यादिलोह ।

चव्यं पलाष्टकं देयं खदिरं चार्द्धमेव च । चित्रकस्य पलं पञ्च तालमूली च तत्समा ॥ २५६ ॥ त्रिफलाप्रस्थसंयुक्तं जलद्रोणे विपाचयेत् । अष्टभागावशेषेण कषायमवतारयेत् ॥ २५७ ॥ आज्यात्पलाष्टकं देयं रुक्मलोहस्य षोडश । पचेत्ताम्रमये पात्रे सुशीते चावतारयेत् ॥ २५८ ॥ त्रिवृद्दन्तीविडङ्गानि पथ्या चामलकानि च । शुण्ठी विभीतकं कृष्णा एषां चूर्णं पलार्धकम् ॥ २५९ ॥ शर्करा मधु चत्वारि स्निग्धे भाण्डे निधापयेत् । गुरुवृष्यान्नपानानि पयो मांसरसो हितः ॥ २६० ॥ दुर्नामकुष्ठश्वयथुपाण्डुप्लीहोदराणि च । गुदशूले कुक्षिशूले परिणामकृते हितः ॥ २६१ ॥ बलवर्णकरं वृष्यमग्निसन्दीपनं परम् । करीरं काञ्जिकञ्चैव काकमाचीञ्च वर्जयेत् ॥ २६२ ॥

चव्य ३२ तोले, खैर १६ तोले, चीता २० तोले, मुसली २० तोले और त्रिफला ६४ तोले लेकर एक द्रोणमें पकावे जब आठवाँ भाग जल शेष रह जाय तब उतारकर छान लेवे फिर उस काथमें घी ३२ तोले और तीक्ष्ण लोहभस्म ६४ तोले डालकर तांबेके बासनमें पकावे जब पकते पकते गाढा होकर स्वांगशीतल हो जाय तब उतार लेवे फिर उसमें निसोत, दन्ती, वायविडंग, हरड़, आमले, सोंठ, बहेड़ा और पीपल इन प्रत्येकका चूर्ण दो दो तोले, शहद १६ तोले और मिश्री १६ तोले मिला देवे, पश्चात् इसको एक चिकने बासनमें भरकर रखदेवे । इसपर भारी और वृष्य अन्नपान दूध और मांसरस हितकारी है । यह चव्याद्यलोह--बवासीर, कोढ, सूजन, पाण्डु, प्लीहा, उदररोग, गुदशूल, कुक्षिशूल और परिणामशूलको नष्ट करता है । बल और वर्णको बढाता है, वीर्य्यवर्द्धक और जठराग्निको दीपन करताहै । इसपर करील, काँजी, काकमाची (मकोय) और सब ककारादि पदार्थ त्याग देवे २५६—२६२॥

अथ शङ्करलोह ।



प्रणम्य शङ्करं देवं दण्डपाणिं महेश्वरम् । जीवितारोग्यमान्विच्छन्नारदः पृच्छते गुरुम् ॥ २६३ ॥ सुखोपायेन हे नाथ शस्त्रक्षाराग्निभिर्विना । दुर्बलानाञ्च भीरूणां चिकित्सां वक्तुमर्हसि ॥ २६४ ॥ स शिष्यवचनं श्रुत्वा लोकानां हितकाम्यया । अर्शसां नाशनं श्रेष्ठं भैषज्यमिदमीरितम् २६५ पांडिवज्रादिलोहानामादायान्यतमं शुभम् । कृत्वा निर्मलमादौ तु कुनटचा माक्षिकेन च ॥ २६६ ॥ पत्नूरमूलकल्केन स्वरसेन दहेत्ततः । वह्नौ निक्षिप्य विधिवत्स्थूलाङ्गारेण निर्धमेत् ॥ २६७ ॥ ज्वाला च तस्य

रोद्धव्या त्रिफलाया रसेन तु । ततो विज्ञाय गलितं शङ्कुनोर्ध्वं विनिः-क्षिपेत् ॥ २६८॥ त्रिफलाया रसे पूते तदाकृष्य विनिर्वपेत् । न सम्यग्गलितं यत्तु तेनैव विधिना पुनः॥२६९॥ ध्मातं निर्वापयेत्तस्मिल्लोहं तत्रिफलारसे । यल्लोहं न मृतं तत्तु पाच्यं भूयोऽपि पूर्ववत् । मारणान्न मृतं यच्च तत्पक्तव्यमलोहवत् ॥ २७० ॥ तद्नुलोहवल्लोहपात्रे कालायसमुद्गरेण संचूर्ण्य । हत्वा बहुशः सलिले प्रक्षाल्याङ्गाराद्धुद्धृतन्तदयः ॥ २७१॥ केवलमग्नौ शुष्कीं कृत्वाऽऽतपेऽथवा भिषक् पश्चात् । लोहशिलायां पिष्ट्वा तस्मिंश्छर्भानि तद्भागौ ॥ २७२ ॥ ततः संशोष्य विधिवच्चूर्णयेल्लोहभाजने । लोहेनैव तथा यत्स्यात् दृषदा सूक्ष्मचूर्णितम् ॥ २७३ ॥कृत्वा लोहमये पात्रे मार्दे वा लिप्तरन्ध्रके । रसैः पङ्कोपमं कृत्वा पचेद्गोमयवह्निना ॥ ॥ २७४ ॥ पुटानि क्रमशो दद्यात् पृथगेषां विधानतः । त्रिफलार्द्रकभृङ्गाणां केशराजस्य बुद्धिमान्॥ २७५॥ मानकन्दकभल्लातवह्नीनां सूरणस्य च । हस्तिकर्णपलाशस्य कुलिशस्य तथैव च ॥ २७६ ॥ पुटे पुटे चूर्णयित्वा लोहात् षोडशिकं पलम् । तन्मानं त्रिफलायाश्च पलेनाधिकमाहरेत् ॥ २७७ ॥ अष्टभागावशेषेण रसे तस्याः पचेद्बुधः । अष्टौ पलानि दत्त्वा च सर्पिषो लोहभाजने ॥ २७८ ॥ ताम्रे वा लोहदार्व्या तु चालयेद्विधिपूर्वकम् । ततः पाकविधानज्ञः स्वच्छे चोर्ध्वे च सर्पिषि२७९ मृदुमध्यादिभेदेन गृह्णीयात्पाकमाद-तः । आरभेत विधानज्ञः कृतकौतुकमङ्गलः ॥ २८० ॥ अमरं घृतसंयुक्तं लिहेद्वा रक्तिकाक्रमात् । वर्धमानानुपानञ्च गव्यं क्षीरोत्तमं मतम्२८१ गव्यालाभे ह्यजायाश्च स्निग्धवृष्यादिभोजनम्।सद्यो वह्निकरश्चैव भस्मकञ्च नियच्छति॥ २८२ ॥ हन्ति वातं तथा पित्तं कुष्ठानि विषमज्वरम् । गुल्मशूलाक्षिरोगांश्च निद्रालस्यमरोचकम् ॥ ॥ २८३ ॥ शूलञ्च परिणामञ्च प्रमेहमपबाहुकम् । श्वयथुं रक्तस्रावञ्च दुर्नामञ्च विशेषतः ॥ २८४ ॥ बलकृद्बृंहणश्चैव कान्तिदं स्वरबोधनम् । लाघवञ्च मनोज्ञञ्च आरोग्यं पुष्टिवर्द्धनम् ॥ ॥ २८५ ॥ आयुष्यं श्रीकरश्चैव यशस्तेजस्करं शुभम् । सश्रीकं पुत्रजननं वलीपलितनाशनम् ॥ २८६ ॥ दुर्नामारिरियं नाम्ना दृष्टो वारसहस्रशः । निर्मूलं दह्यते शीघ्रं यथा तूलकमग्निना ॥ २८७ ॥ सौकुमार्य्याऽल्पकार्यत्वान्मद्यसेवी यदा नरः । जीर्णमद्यादियुक्तानि भोजनैः सह पाययेत् ॥ २८८ ॥ लावतित्तिरिवार्त्ताकमयूरशशकादयः । चटकः कलविङ्कश्च वर्त्तिश्च हरिणैणकः २८९॥ श्येनः काको बृहल्लावो वनविष्किरिकादयः । पारावतमृगादीनां मांसं जाङ्गलजं शुभम् ॥ २९० ॥ मद्गुरो रोहितः श्रेष्ठः शकुनश्च विशेषतः । मत्स्यराज इमे प्रोक्ता हितमत्स्याश्च ये नराः ॥ २९१ ॥ प्रशस्तं वार्त्ताकफलं पटोलं बृहतीफलम् । प्रलंबा भीरुवेत्राग्रं ताडकं तंडुलीयकम् ॥ ३९२ ॥ वास्तुकं धान्यशाकञ्च क्रमुकं चक्रवर्त्त-

नम् । नारिकेलश्च खर्जूरं दाडिमं लवलीफलम् ॥ २९३ ॥शृङ्गाटकश्च पक्वाम्रद्राक्षातालफलानि च । जातिकोशं लवङ्गश्च पूगतांबूलपत्रकम् ॥ २९४ ॥ हितान्येतानि वस्तूनि लोहमेतत्समश्नताम् । नाश्नीयाल्लकुचं कोलं कर्कन्धुबदराणि च । जम्बीरं बीजपूरश्च करमर्दकतिन्तिडीः ॥ २९५ ॥ आनूपानि च मांसानि क्रकरं पुत्रदादयः । हंससारसदात्यूहशंकुकंकबलाहकाः ॥ २९६ ॥ माणकन्दकरीराणि कतकश्च कलिङ्गकम् ।कूष्माण्डकश्च कर्कोटं केमुकश्च विशेषतः॥२९७ ॥कटुकं कालशाकश्च कशेरुं कर्कटीं तथा । विदलानि च सर्वाणि ककारादींश्च वर्जयेत् ॥ २९८ ॥ लोहराजस्तथा चायं स्वयं रुद्रेण भाषितः । जगतामुपकाराय दुर्नामारिरियं ध्रुवम् ॥ २९९ ॥ स्थानादपैति मेरुश्च पृथ्वी पर्य्येति वा पुनः।पतन्ति चन्द्रताराश्च मिथ्या नैव वदाम्यहम्॥३००॥ब्रह्मघ्नाश्च कृतघ्नाश्च क्रूरा येऽसत्यवादिनः । वर्जनीया विशेषेण भिषजा गुरुनिन्दकाः३०१॥ मुनिरसपिष्टविडङ्गं मुनिरसलीढं चिरस्थितं धर्मे । द्रावयति लोहदोषान् वह्निर्नवनीतपिण्डमिव॥ ३०२ ॥

एक समय अशिंकर, देवाधिदेव, दण्डको धारण करनेवाले महेश्वरको प्रणाम करके मनुष्योंके जीवन और आरोग्यकी इच्छा करनेवाले नारदऋषिने जगद्गुरु (महादेव) से पूछा हे नाथ ! शस्त्रक्रिया,क्षारकर्म और अग्निकर्मको छोडकर सुख सहित उपायसे दुर्बल और भीरु (डरपोक, कायर), अर्शरोगवाले रोगियोंकी चिकित्सा कृपा करके कहिये, तब शिष्य (नारदजी) के वचनोंको सुनकर संसारके प्राणियोंपर दया करके शिवजीने अर्शरोगको दूर करनेवाली यह औषधि कही। पांडुवज्रादि लोहोंमेंसे कोई एक उत्तम लोहा लेकर उसको मैनसिल और सोनामाखीके द्वारा शुद्ध करे। फिर उसको पतंगकी जडके कल्कके स्वरसमें बुझाकर सालके कोयलोंकी अग्निमें फूंके और उसमेंसे जो आगकी लपटें निकलें उनको त्रिफलेके रसके छींटे देदेकर बंद कर देवे, जब वह गल जाय तब चीमटेसे ऊपरको उठाकर त्रिफलेके रसमें बुझावे । जो अच्छे प्रकारसे न गले तो फिर इसी विधिसे वारंवार लोहेको गलाकर त्रिफलेके रसमें बुझावे और जो वारंवार अग्निमें धमानेसे भी न गले तो उसको दुष्ट लोहा समझ कर छोड देना चाहिए । पश्चात् उसको लोहेके पात्रमें डालकर लोहेके मूँगरेसे चोटकर चूर्ण कर लेवे फिर उसको बहुतसे जलसे धोकर जिससे कि, कोयलोंकी छाइ आदि छूट जावे । पश्चात् उसको अग्नि अथवा धूपमें सुखाकर लोहेकी शिलापर पीसकर विधिपूर्वक बारीक चूर्ण कर लेवे फिर उसको लोहेके पात्रमें रख उस पात्रके मुखको बन्दकर मट्टीके गारेसे लीपकर सुखावे पश्चात् आरने उपलोंकी अग्निमें पकावे । फिर क्रमसे त्रिफला, अदरख, भांगरा, कुकुरभांगरा, मानकन्द, भिलावे, चीता, जिमीकन्द, हस्तकर्णपलाश और थूहर इन प्रत्येकको रसकी अलग २ भावना देकर गजपुटमें पकावे और प्रत्येक पुटमें चूर्ण करता जाय। फिर इस लोहेके चूर्णको सोलह पनसे अधिक त्रिफलेके रसमें पुट देवे,आठवाँ भाग बाकी रहे हुए त्रिफलेके काथमें फिर इस लोहेको पकावे । पश्चात् इस लोहेके चूर्णको लोहेकी अथवा तांबेकी कढाईमें चढाकर उसमें ३२तोले घी डालकर लोहपाककी विधिको जाननेवाला वैद्य विधिपूर्वक पकावे और लोहेकी करछीसे चलाता जाय जब स्वच्छ घी तैरकर ऊपरको आजावे तब मृदु, मध्यादि जैसा पाक करना हो वैसा पाक करके उतार लेवे । इस प्रकार जब लोहा सिद्ध हो जाय तब मंत्र पढकर और अनेकप्रकारके मंगलरूप उत्सवादि कार्य करके शहद और घीमें मिलाकर एक रत्तीके क्रमसे बढाता हुआ खावे और ऊपरसे गौका दूध पीवे यह उत्तम अनुपान है । जो गौका दूध न मिले तो बकरीका दूध पीवे और वृष्य तथा स्निग्ध भोजन करे । यह शंकरलोह-तत्काल अग्निको दीपन करनेवाला, भस्मकरोग, वात, पित्त कोढ, विषमज्वर गुल्म, शूल, नेत्ररोग, निद्रा, आलस्य, अरुचि, शूल, परिणाम शूल, प्रमेह, अपबाहुकवात, सूजन, रुधिर

और विशेषकर बवासीरको नष्ट करता है तथा बलकारक, बृंहण, कान्तिजनक, स्वरको सुन्दर करनेवाला, शरीरमें हल्कापन, मनोज्ञता और आरोग्यदायक, पुष्टिकारक, आयुको बढानेवाला, लक्ष्मीको बढानेवाला यश और तेजको फैलानेवाला, उत्तम कान्तिवाले पुत्रोंको उत्पन्न करनेवाला, बली और पलितनाशक, यह दुर्नामारि (बवासीरका शत्रु) लोहा—हजारोंबार परीक्षा किया गया है जिस प्रकार अग्नि रुईको जला देती है उसी प्रकार इससे बवासीर जडसे भस्म हो जाती है। इसपर मद्यपान करना निषेध है। परन्तु जो निरन्तर मद्यको सेवन करते हैं और कोमल तथा अल्पशरीरवाले हैं वे जीर्ण मदिराको भोजनके साथ सेवन करते रहें। लवा, तीतर, बटेर, मोर, खरगोश आदि चिडा घरका चिड़ा-बतक, हिरन, कालाहिरन, सिकरा, कौआ, बडालवा बनमें रहनेवाले विकिरादि पक्षी, परेवा और सम्पूर्ण जंगलीजीव इन सबका मांस, तथा मुद्गर, रोहित और शकुली ये मछलियोंके राजा हैं ये मछली भक्षण करनेवाले मनुष्योंको हितकारी हैं। वैगुन, परवल, बडी कटेरीके फल, लम्बा कद्दू अथवा लम्बी तोम्बी, शतावर, बेंतके अंकुर, बंदाल (सोनिया), चौलाई, बथुआ, धनियेका शाक, क्रमुक (केउंवा) और चकवडका शाक, ये सब शाक हितकारी हैं। नारियल, खजूर, अनार, हरफारेवडी, सिंघाड़े, पके आम, दाख, ताडके फल, जायफल, लौंग, सुपारी और पान ये पदार्थ हितकारक हैं। एवं लकुच (बडहल), बेर, बडे बेर, झडबेर, जम्भीरीनींबू, विजौरानींबू, करौंदा, इमली, केंकडा और पंडाकतादि अनूपदेशके जीवोंका मांस, हंस, सारस, दात्यूह, शंकु, कंक और बगुला इनका मांस मातकन्द, करीर, निर्मलीफल, तरबूज, पेठा, ककोडा, विशेष करके केमुक शाक, सरसोंका शाक, नाडीका शाक, कसेरू, ककडी सब प्रकारके दो दालवाले अन्न और ककारादि समस्त पदार्थ इस लोहेको सेवन करनेवाले मनुष्यको त्याग देने चाहिये। यह दुर्नामारि लोहराज संसारके उपकारके लिये श्रीमान् भगवान् शिवजीने स्वयं कहा है। शिवजी कहते हैं कि, चाहे अपने स्थानसे सुमेरु पर्वत हट जाय, पृथ्वी लौट जाय, चन्द्रमा और तारागण आकाशसे पतित हो जाँय परन्तु मेरे वचन असत्य नहीं हो सकते। ब्रह्मघाती, कृतघ्नी, क्रूर और असत्यवादी तथा गुरुनिन्दक इन मनुष्योंको यह लोहा नहीं देना चाहिए। अतएव अब इस लोहदोषकी शांति कहते हैं। वायविडंगको अगस्तियाके रसमें पीसकर थोडी देर धूपमें रखकर अगस्तियाके रसके साथ पान करनेसे लोहेके दोष गलजाते हैं। जिसप्रकार अग्नि नैनी घीके पिण्डको जला देती है २६३-३०२

लोहपरिपाकके लक्षण।

काले मलप्रवृत्तिर्लाघवमुदरे विशुद्धिमुद्गारे। अङ्गे चानवसादो मनःप्रसादोऽस्य परिपाके॥ ३०३॥

यथा समयमें मलका उतरना, उदरमें हलकापन, डकारका शुद्ध होना, देहमें किसी प्रकारकी व्यथाका न होना और चित्तमें प्रसन्नताका होना ये लोहपरिपाकके लक्षण जानने॥ ३०३॥

कृमिरिपुचूर्णं लीढं सहितं स्वरसेन वङ्गसेनस्य। क्षपयत्यचिरान्नियतं लोहाजीर्णोद्भवं शूलम्॥ ३०४॥ कुर्य्यात्कनकबीजैश्च रेचनं किट्टशान्तये। भवेद्यद्यतिसारश्च पीत्वा दुग्धन्तु तं जयेत्॥ ३०५॥ गुञ्जाद्वादशकादूर्ध्वं वृद्धिरस्य भयप्रदा।

अगस्तियाके स्वरसमें वायविडंगका चूर्ण मिलाकर सेवन करनेसे लोहेके अजीर्णसे उत्पन्न हुआ शूल नष्ट होता है; किट्टके विकारोंको शांत करनेके लिये धतूरेके बीजोंसे विरेचन करावे। लोहेके सेवन करनेसे जो दस्त होनेलगे तो दूध पिलाकर उसको जीते। इसको बारह रत्तीसे अधिक सेवन करनेसे भय उत्पन्न होता है॥ ३०४॥ ३०५॥

रक्तार्शनिदान।

रक्तोल्बणा गुदे कीलाः पित्ताकृतिसमन्विताः। वटप्ररोहसदृशा गुञ्जाविद्रुमसन्निभाः॥ ३०६॥ तेऽत्यर्थं दुष्टमुष्णञ्च गाढविट्कप्रपीडिताः। स्रवन्ति सहसा रक्तं तस्य चाति-

प्रवृत्तितः ॥ ३०७ ॥ भेकाभः पीड्यते दुःखैः शोणितक्षयसम्भवैः । हीनवर्णबलोत्साहो हतौजाः कलुषेन्द्रियः ॥ ३०८ ॥ विट्श्यावं कठिनं रूक्षमधो वायुर्न वर्त्तते ॥ ३०९ ॥

रुधिरकी बवासीरमें गुदाके मस्से रुधिरसे भरे हुए पित्तके समान आकृतिवाले, बड़के अंकुरोंके समान चोंटली और मूँगेके समान होते हैं । मल गाढा हो जाय और उस गाढे मलके अत्यन्त कठिनतासे उतरनेसे मस्से दबेंऔर उनमेंसे दुष्ट गरम रुधिर स्रवे अधिक रुधिरके गिरनेसे सम्पूर्ण शरीर मेंडकके समान पीला पड़ जाय तथा रुधिरके अधिक क्षय होनेसे अत्यन्त कष्टसे पीडित हो वर्ण, बल और उत्साह हीन हो जाय, पुरुषार्थ नष्ट होजाय, सब इन्द्रियें कलुषित होजांय, मल पिंगलवर्ण, कठिन रूखा और काला हो, अपानवायु न फिरे, ये सब रुधिरकी बवासीरके लक्षण जानने ॥ ३०६—३०९ ॥

वाताद्यनुबन्ध ।

तनु चारुणवर्णञ्च फेनिलं चासृगर्शसाम् । कट्यूरुगुदशूलञ्च दौर्बल्यं यदि चाधिकम् । तत्रानुबन्धो वातस्य हेतुर्यदि च रूक्षणम् ॥ ३१० ॥ शिथिलं श्वेतपीतञ्च विट्स्निग्धं गुरु शीतलम् । यद्यर्शसां घनं चासृक्तन्तुमत्पाण्डुपिच्छिलम्॥ ३११॥ गुदं सपिच्छं स्तिमितं गुरु स्निग्धञ्च कारणम् । श्लेष्मानुबन्धो विज्ञेयस्तत्र रक्तार्शसां बुधैः ॥ ॥ ३१२ ॥

वातसम्बन्धी रुधिरकी बवासीरमें थोडा लालरंगका और झागोंयुक्त रुधिर गिरता है तथा कटि, ऊरु और गुदामें शूल तथा दुर्बलता अधिक होती है इसमें रूक्षता कारण है । कफानुबन्धी रुधिरकी बवासीरमें शिथिल, सफेद, पीला, चिकना, भारी, शीतल, पांडुवर्ण और पिच्छल रक्त निकले और गुदा भी पिच्छल (गीली) होवे इसमें गुरु और स्निग्ध कारण है ॥ ३१०—३१२ ॥

सामान्य चिकित्सा ।

रक्तार्शसामुपेक्षेत रक्तमादौ स्रवेद्भिषक् । दुष्टास्रे निगृहीते हि शूलानाहाद्यसृग्गदाः ॥ ३१३ ॥

रुधिरकी बवासीरमें प्रथम रुधिरको बन्द नहीं करे, किन्तु निकाले । क्योंकि दुष्ट रुधिरको बन्द करनेसे शूल आनाह और रुधिर विकार उत्पन्न होते हैं ॥ ३१३ ॥

चन्दनादि क्राथ ।

चन्दनकिराततिक्तकधन्वयवासाः सनागराः क्कथिताः । रक्तार्शसां प्रशमना दार्वीत्वगुशीरनिम्बाश्च ॥३१४॥

लालचन्दन, चिरायता, धमासा और सोंठ इनका क्काथ अथवा दारुहल्दी, खस ओर नीमकी छाल इनका क्काथ रुधिरकी बवासीरको नष्ट करता है ॥ ३१४ ॥

नवनीतादियोग ।

नवनीततिलाभ्यासात्केसरनवनीतशर्कराभ्यासात् । दधिसरमथिताभ्यासाद्गुदजाः शाम्यन्ति रक्तवाहाः ॥ ३१५ ॥

नैनी घी और तिलोंको मिलाकर अथवा नागकेशर नैनी घी और मिश्री इनको एकत्र मिलाकर दहीकी मलाई और तक्रके साथ बहुत दिनों तक सेवन करनेसे रुधिरकी बवासीर दूर हो जाती है ॥ ३१५ ॥

कमलकेशरादि ।

सपद्मकेशरक्षौद्रं नवनीतं नवं लिहन् । सिताकेसरसंयुक्तं रक्तार्शाः स सुखी भवेत् ॥ ३१६ ॥

कमलकेशर, शहद, ताजा नैनी घी, मिश्री और नागकेशर इन सबको एकत्र करके सेवन करनेसे रुधिरकी बवासीरवाला नीरोग होता है ॥ ३१६॥

पेया ।

लाजैः पेया पीता चुक्रिका केशरोत्पलैः सिद्धा । हन्त्याशु रक्तरोगं तथा बलापृष्टपर्णीभ्याम् ॥ ३१७ ॥

चूका, नागकेशर और कमल इनके द्वारा खीलोंकी पेया बनाकर पीवे तथा खिरैंटी और पिठवनके काथ के द्वारा पेया बनाकर पीवे तो रुधिरकी बवासीर नष्ट होती है ॥ ३१७ ॥

पयसा शृतेन यूषैः सतीनमुद्गाढकीमसूराणाम् । भोजनमद्यादम्लैः शालिश्यामाककोद्रवाणाम् ॥ ३१८ ॥

मटर, मूँग, अरहर और मसूर इनके यूषके साथ शालिचावल और कोदों इनका भोजन खटाईके साथ मिलाकर खाय ॥ ३१८ ॥

शशहरिणश्यावमांसैः कपिञ्जलैः पेयकैः सुसिद्धैश्च । भोजनमद्यादम्लैर्मधुरैरीषत्सुमधुरैर्वा ॥ ३१९ ॥

खरगोश, काला हिरन और कपिंजल इनके मांसकी पेया बनाकर खट्टे भोजनके साथ या मधुर भोजनके साथ अथवा किंचित् मधुर भोजनके साथ सेवन करे ॥ ३१९ ॥

ज्योत्स्निकाबीजकल्केन लेपो रक्तार्शसां हितः । तद्वद्व्योषरजोयुक्तं नवनीतं प्रलेपयेत् ॥ ३२० ॥

कड़वी तोरईके बीजोंको पीसकर लेप करनेसे बवासीर नष्ट होती है, तथा त्रिकुटेका चूर्ण नैनी घीमें मिलाकर लेप करनेसे रुधिरकी बवासीर नष्ट होती है ॥ ३२० ॥

समङ्गोत्पलमोचाह्वतिरीटतिलचन्दनैः । छागक्षीरं प्रयोक्तव्यं गुदजे शोणितात्मके ॥ ३२१ ॥

मजीठ, कमल, मोचरस, लोध और चंदन इनको बकरीके दूधमें औटाकर पान करनेसे रुधिरकी बवासीर नष्ट होती है ॥ ३२१ ॥

सातिविषा कुटजत्वक्फलश्च रसाञ्जनश्च मधुयुतानि । रक्तापहानि दद्यात्पिपासवे तंडुलजलेन ॥ ३२२ ॥

अतीस, कुडेकी छाल, इन्द्रजौ और रसौत इनके चूर्णको शहदमें मिलाकर चावलोंके जलके साथ पान करनेसे रुधिरकी बवासीर दूर होती है ॥ ३२२ ॥

यवानीन्द्रयवं पाठा बिल्वं शुण्ठी रसाञ्जनम् । चूर्णं शूले हितं पेयं प्रवृद्धे वातशोणिते ॥ ३२३ ॥

अजवायन, इन्द्रजौ, पाढ़, बेलगिरी, सोंठ और रसौत इनका चूर्ण जलके साथ पीवे तो शूल और वातरक्तकी बवासीर दूर होती है ॥ ३२३ ॥

कुटजादि घृत ।

कुटजफलवल्ककेशरनीलोत्पललोध्रधातकीकल्कैः । सिद्धं घृतं विधेयं शूले रक्तार्शसां भिषजा ॥ ३२४ ॥

इन्द्रजौ, कुड़ेकी छाल, नागकेशर, नीले कमल, लोध और धायके फूल इनके कल्कके द्वारा घृतको सिद्ध करके सेवन करनेसे शूलयुक्त रुधिरकी बवासीर नष्ट होती है ॥ ३२४ ॥

अवाक्पुष्पीघृत ।

अवाक्पुष्पी बला दार्वी पृष्टपर्णी त्रिकण्टकम् । न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थशुङ्गाश्च द्विपलोन्मिताः ॥ ३२५ ॥ कषाय एषां पेष्यास्तु जीवन्ती कटुरोहिणी । पिप्पली पिप्पलीमूलं मरिचं देवदारु च ॥ ३२६ ॥ कलिङ्गं शाल्मलीपुष्पं वीरा चन्दनकुंकुमम् । कट्फलं चित्रकं मुस्तं प्रियंगवतिविषे स्थिरा॥३२७॥ पद्मोत्पलानां किञ्जल्कं समङ्गा स निदिग्धिका। बिल्वं मोचरसं पाठा भागाः स्युः कार्षिकाः पृथक् ॥ ३२८ ॥ चतुष्प्रस्थं घृतप्रस्थे कषायमुपकल्पयेत् । त्रिंशत्पलानि तु प्रस्थो विज्ञेयो द्विपलाधिकः ॥ ३२९ ॥ सुनिषण्णकचाङ्गेर्योः प्रस्थौ द्वौ स्वरसस्य च । सर्वैरेतैर्यथोद्दिष्टैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ॥ ३३० ॥ एतदर्शःस्वतीसारे त्रिदोषे रुधिरच्युतौ । प्रवाहणे गुदभ्रंशे पिच्छासु विविधासु च ॥ ३३१ ॥ उत्था-

ने चातिबहुशः शोथे शूले गुदाश्रिते । मूत्रग्रहे मूढवाते मन्दाग्नावरुचावपि ॥ ३३२ ॥ प्रयोज्यं विधिवत्सर्पिर्बलवर्णाग्निवर्द्धनम् । विविधेष्वन्नपानेषु केवलं वा निरत्ययम् ॥ ३३३ ॥ द्रव्याण्यष्टाविहादाय जलषोडशके क्वथेत् । निःक्वाथ्य प्रस्थशेषन्तु गृह्णीयात्प्रसृतं भिषक् ॥ ३३४ ॥

अधःपुष्पी अथवा सौंफ, खिरेंटी, दारुहल्दी, पिठवन, गोखरू, वड़, गूलर और पीपलके अंकुर ये प्रत्येक दो दो पल लेकर चार प्रस्थ जलमें पकावे जब एक प्रस्थ जल शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे। फिर जीवन्ती, कुटकी, पीपल, पीपलामूल, कालीमिरच देवदारु, इन्द्रजौ, सेमलके फूल, कपूरकाचरी, चन्दन केशर, कायफल, चीता, नागरमोथा, फूलप्रियंगू, अतीस, शालिपर्णी, कमल और कमोदनीकी केशर, मजीठ, कटेरी, बेलगिरी, मोचरस और पाढ ये प्रत्येक एक एक कर्ष लेकर कल्क बनावे। घी एक प्रस्थ (यहां बत्तीस पलका एक प्रस्थ जानना), शिरिआरी और चांगेरीका स्वरस प्रत्येक दो दो प्रस्थ लेवे, सबको यथाविधि मिलाकर घृतको सिद्ध करे। यह घृत बवासीर अतीसार, त्रिदोषके रुधिरस्राव, प्रवाहिका, गुदभ्रंश, अनेक प्रकारके पिच्छलस्राव, गुदाके अत्यन्त उठे हुए मस्से सूजन, गुदाका शूल, मूत्रग्रह, मूढवात, मंदाग्नि और अरुचि इन सब रोगोंमें विधिपूर्वक प्रयोग करना चाहिये। यह बल, वर्ण और अग्निको बढानेवाला है और अन्य प्रकारके अन्न पानीके साथ अथवा इकले घृतको सेवन करना चाहिये। इसमें आठों औषधियोंको सोलह गुने जलमें पकाकर एक प्रस्थ शेष रखना चाहिये ३२५॥ ३३४ ॥

महाचांगेरीघृत ।

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थबदरीप्लक्षवेतसाः। एभ्यः प्रवालांस्तरुणांस्त्रिपलांश्च समाहरेत् ॥ ३३५ ॥ अवाक्पुष्प्याः पलान्यष्टौ द्वौ च दार्व्यास्तथैव च। शालपर्ण्याः पले द्वे तु सर्वमेतत्समावपेत् ॥ ३३६ ॥ द्वे पले कालशाकस्य सर्वमेतत्समावपेत् । द्विद्रोणे सलिले साध्यमष्टभागावशेषितम् ॥ ३७७ ॥ घृतस्यार्धाढकश्च स्यात्सक्वाथं सुखाग्निना । कुचांगेर्य्याम्लिकाभ्याश्च स्वरसः स्नेहसम्मितः ॥३३८॥ देवदारु च मुस्तश्च चित्रकं बिल्वपेशिका । कट्फलं शृङ्गवेरश्च पिप्पली चन्दनं तथा ॥ ३३९ ॥ सौवेरमञ्जनं मूलं पिप्पल्याः कटुरोहिणी । गन्धप्रियंगुपुष्पश्च शाल्मली जीविकाह्वया ॥३४०॥ वत्सकस्य च बीजानि तथा चातिविषाभया । एषामक्षसमा भागाः पृथग्दत्त्वा विपाचयेत् ॥ ३४१ ॥ वातगुल्ममतीसारं शूलं ज्वरमरोचकम् । स्त्रीणामसृग्दरं सर्वं रक्तपित्तप्रवाहिकाम् ॥ ३४२ ॥ पांडुरोगं तथा कासं कृमिदोषांश्च नाशयेत् । छर्दिं माक्षिकसंयुक्तं शमयेद्दीपनं परम् ॥ ३४३ ॥ गर्भाधानञ्च वन्ध्यानां करोत्यर्शोनिवारणम् । चाङ्गेरीघृतमित्युक्तं ख्यातमर्शोनिवारणम् ॥ ३४४ ॥ बलमांसकरश्चैतद्रक्तगुल्महरं तथा । अर्शसां पित्तजातानां हितं तद्रक्तजेष्वपि ॥ ३४५ ॥ सन्निपातसमुत्थेषु सर्वतो भिषजः क्रमः ॥

वड़, गूलर, पीपल वृक्ष, बेरी, पाखर और बेत इन प्रत्येकके कोमल पत्ते तीन २ पल, अधःपुष्पी (अंधाहुली) ८ पल, दारुहल्दी ८ पल, शालपर्णी ८ तोले और कालशाक (नाडीका शाक) ८ तोले लेवे। सबको एकत्र दो द्रोण जलमें पकावे। जब आठवाँ भाग जल शेष रहजाय तब उतार लेवे, फिर उसमें घी अर्ध आढक, चूकेका स्वरस अर्धआढक, देवदारु, नागरमोथा, चीता, बेलगिरी, कायफल, अदरख, पीपल, चन्दन, कालासुरमा, पीपलामूल, पीपल, कुटकी, गन्धप्रियंगुके फूल, सेमल, जीवक, इन्द्रजौ, अतीस और हरड़ इन

प्रत्येकका कल्क एक २ तोला डालकर यथाविधि धीरे २ मंदमंद अग्निद्वारा पकावे। यह घृत—वातगुल्म, अतीसार, शूल, ज्वर, अरुचि, स्त्रियोंके प्रदररोग, रक्तपित्त, प्रवाहिका, पाण्डुरोग, खांसी, कृमिदोष और वमनको दूर करता है। तथा शहदके साथ अग्निको दीपन करता है, एवं वन्ध्यास्त्रियोंके गर्भको उत्पन्न करता है, बवासीरको नष्ट करता है यह चांगेरीघृत—बवासीरके हरनेमें प्रसिद्ध है। बल और मांसको करता है, रक्तगुल्मको हरनेवाला तथा पित्त और रुधिरसे उत्पन्न हुई बवासीर, सन्निपातकी बवासीर और सब प्रकारकी बवासीरोंमें हितकारी है ॥ ३३५--३४५ ॥

कुटजरसक्रिया।

कुटजत्वचो विपाच्यं पलशतमर्धं महेन्द्रसलिलेन। यावत्सान्द्ररसं तद्द्रव्यं स्वरसस्ततो ग्राह्यः ॥ ३४६ ॥ मोचरसः ससमङ्गा फलिनी च पलांशकैस्त्रिभिस्तैश्च। वत्सकबीजं तुल्यं चूर्णीकृतमत्र दातव्यम् ॥ ३४७ ॥ पूतः क्वथितः सान्द्रः स्वरसो दार्वीप्रलेपनो ग्राह्यः। मात्राकालोपहिता रसक्रियैषा जयत्यसृक्स्रावम् ॥ ३४८ ॥ छागक्षीरप्रयुक्ता पेया मण्डेन वा यथाग्निबलम्। जीर्णौषधस्तु शालीन्पयसा छागेन भुञ्जीत ॥ ३४९ ॥ रक्तगुदजातीसारं सासृग्रुजो निहन्त्याशु। बलवच्च रक्तपित्तं रसक्रियैषा ह्युभयमार्गगम् ॥ ३५० ॥ अत्राष्टभागावशिष्टा कर्त्तव्या क्वाथकल्पना ॥ ३५१ ॥

कुड़ेकी गीली छाल२०० तोले लेकर मेहके पानीमें पकावे। जब पकते २गाढा होजाय तब छानकर रसको ग्रहण करे फिर उस रसमें मोचरस, लज्जावंती और फूलप्रियंगू ये प्रत्येक चार२तोले, तथा सबके बराबर इन्द्रजौका चूर्ण डालकर पकावे जब पकते२गाढा होकर करछीसे लगने लगे तब उतार लेवे। समयको विचारकर मात्राका निरूपण करे यह रसक्रिया रुधिरके स्रावको बंद करती है। इसको बकरीके दूधके साथ अथवा मांडके साथ अग्निका बलाबल विचार कर सेवन करे। जब यह औषधि जीर्ण हो जाय तब बकरीके दूधके साथ शालि चावलोंका भोजन करे। यह कुटजरसक्रिया रुधिरकी बवासीर, रुधिरका अतीसार, सब प्रकारके रुधिरविकार और बलवान् दोनों प्रकारके रक्तपित्तको नष्ट करनेवाली है। यहाँ क्वाथकी कल्पना अष्टावशेष करनी चाहिये ॥ ३४६--३५१ ॥

कुटजलेह।

कुटजत्वक्पलशतं जलद्रोणे विपाचयेत्। अष्टभागावशिष्टन्तु कषायमवतारयेत् ॥ ३५२ ॥ वस्त्रपूतं ततः क्वाथं पचेल्लेहत्वमागतम्। मुस्तं मोचरसं लोध्रं कपित्थफलधातकी ॥ ३५३ ॥ भल्लातकं विडङ्गानि त्रिकटु त्रिफलां तथा। रसाञ्जनं चित्रकञ्च कुटजस्य फलानि च ॥ ३५४ ॥ वचामतिविषां बिल्वं प्रत्येकन्तु पलं पलम्। त्रिंशत्पलं गुडस्याथ चूर्णीकृत्य निधापयेत् ॥ ३५५ ॥ मधुनः कुडवं दद्याद्घृतस्य कुडवं तथा। एष लेहः शमयति चार्शोरक्तसमुद्भवम् ॥ ३५६ ॥ वातिकं पैत्तिकञ्चैव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम्। ये च दुर्नामजा रोगास्तान्सर्वान्नाशयत्यपि ॥ ३५७ ॥ अम्लपित्तमतीसारं पाण्डुरोगमरोचकम्। ग्रहणीमार्दवं कार्श्यं श्वयथुं कामलामपि ॥ ३५८ ॥ अनुपानं घृतं दद्यान्मधु तक्रं जलं पयः। यथा सात्म्यं निषेवेत पानाहारविचक्षणः ॥ ३५९ ॥ रोगानीकवधार्थाय कौटजो लेह उच्यते ॥

कुड़ेकी गीली छाल१०० पल लेकर एक द्रोणजलमें पकावे। जब आठवाँ भाग जल शेष रहजाय तब उतार कर कपड़ेसे छान लेवे फिर उसमें नागरमोथा, मोचरस, लोध, कैथका गूदा, धायके फूल, भिलावे, वायविडंग, त्रिकुटा, त्रिफला, रसौत, चीता, इन्द्रजौ, वच, अतीस और बेलगिरि इन प्रत्येकका चूर्ण चार तोले और गुड़ ३०पल डालकर पकावे। जब पकते २

गाढा होकर करछीसे चिपकने लगे तब उतार लेवे, शीतल होनेपर शहद एक कुड़व और घी एक कुड़व परिमाण मिलादेवे । यह अवलेह--रुधिरसे उत्पन्न हुई बवासीरको नष्ट करनेवाला तथा वातज, पित्तज, श्लेष्मिक, सान्निपातिक और सब प्रकारकी बवासीरको नष्ट करता है । अम्लपित्त, अतीसार, पाण्डुरोग अरुचि, संग्रहणी, मृदुता, कृशता, सूजन और कामलादिरोगोंको यह कुटज अवलेह निश्चय दूर करता है । अनुपान--घृत, तक्र, मधु, जल और दूध है । इसपर अपने स्वभावके अनुसार भोजन करे। यह कुटजावलेह रोगमात्रको नष्ट करनेके लिये कहा है ३५९

चित्रकादिभल्लातकावलेह ।

चित्रकं त्रिफला मुस्तं ग्रन्थिकश्चविकामृता । हस्तिपिप्पल्यपामार्गदण्डोत्पलकुठेरकाः ॥ ३६० ॥ एषां चतुष्पलान्भागाञ्जलद्रोणे विपाचयेत् । भल्लातकसहस्रे द्वे छित्वा तत्रैव दापयेत् ॥ ३६१ ॥ तेन पादावशेषेण लोहपात्रे पचेद्भिषक् । तुलार्धं तीक्ष्णलोहस्य घृतस्य कुडवद्वयम् ॥ ३६२ ॥ त्र्यूषणं त्रिफलावह्निसैन्धवं विडमौद्भिदम् । सौवर्चलं विडङ्गानि पलिकांशानि कल्पयेत् ॥ ३६३ ॥ कुडवं वृद्धदारस्य तालमूल्यास्तथैव च । सूरणस्य पलान्यष्टौ चूर्णं कृत्वा विनिक्षिपेत् ॥ ॥३६४॥ सिद्धशीते प्रदातव्यं मधुनः कुडवद्वयम्।प्रातर्भोजनकाले वा ततः खादेद्यथाबलम् ॥ ३६५ ॥ अर्शांसि ग्रहणीरोगं पाण्डुरोगमरोचकम् । कृमिगुल्माश्मरीमेहशूलांश्चाशु व्यपोहति ॥ ३६६ ॥ करोति शुक्रोपचयं वलीपलितनाशनम् । रसायनमिदं श्रेष्ठं सर्वरोगहरं परम् ॥ ३६७ ॥

चीता, त्रिफला, नागरमोथा, गठिवन अथवा पीपलामूल, चव्य, गिलोय, गजपीपल, चिराचिटा, दडोत्पल, (एक प्रकारकी सहदेवी) और तुलसी प्रत्येक सोलह २ तोले और छिले हुए भिलावे २००० दोहजार लेकर एक द्रोण जलमें पकावे । जब पकते २ चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे । फिर उस काथमें उन्ही सीजे हुए भिलावोंको छीलकर डाल देवे । तीक्ष्ण लोहेकी भस्म ५० पल, घी दो कुड़व, त्रिकुटा, त्रिफला, चीता सेंधानमक, विरिया, संचरनमक, खारी नमक, काला नमक और वायविडंग इन प्रत्येकका चूर्ण चार२ तोले, विधारेका चूर्ण एक कुड़व, मुसलीका चूर्ण एक कुड़व और जिमीकन्दका चूर्ण३२ तोले डाल कर पकावे जब अवलेह सिद्धहोकर शीतल होजाय तब उसमें दो कुड़व परिमाण शहद मिलावे। इसको बलानुसार प्रातःकाल अथवा भोजनके साथ भक्षण करे । यह सब प्रकारकी बवासीर, संग्रहणी, पाण्डुरोग, अरुचि, कृमि, गुल्म, अश्मरी, प्रमेह और शूलको तत्काल नष्ट करता है। शुक्रको संचित करता और वलीपलितरोगका नाश करताहै यह उत्तम रसायन सर्व रोगोंको हरनेवाली है ॥ ३६०-३६७ ॥

असात्म्यतामेवमेषां दाहादिक्रम इष्यते ॥ ३६८ ॥

जिनको ये अवलेहादि औषधियें माफिक नहीं हो उनके लिये दाहादि कर्म कहते हैं ॥ ३६८ ॥

सूत्रबन्धन ।

भावितं रजनीचूर्णं स्नुहीक्षीरैः पुनः पुनः । बन्धनात्सुदृढं सूत्रं छिनत्त्यर्शो भगन्दरम् ॥ ३६९ ॥

हल्दीके चूर्णको वारंबार थूहरके दूधमें भावना देकर सूतसे लपेटकर उस सूतको खूब खींचकर बांधनेसे बवासीरके मस्से और भगन्दर नष्ट होता है३६९

क्षारसूत्र ।

स्नुहीकाण्डगते क्षीरे भल्लातकसमन्विते । ज्योतिष्मत्रिफलादन्तीकोशातक्यग्निसैन्धवैः ॥ ३७० ॥ चूर्णैरेतैः समघृतैः बन्धयेत्सूत्रकं दृढम् । सूत्रं तत्पातयेदर्शः छिन्नमूल इव द्रुमः ॥ ३७१ ॥

थूहरका दूध, भिलावे, मालकांगुनी, त्रिफला, दन्ती, तोरई, चीता और सैंधानमक इन सबको एकत्र पीसकर घीमें मिलाकर सूतपर लेप करके उस सूतको मस्सेपर खींचकर बांधनेसे ववासीरके मस्से गलकर गिर जाते हैं जिस प्रकार जड़के कटनेसे वृक्ष गिरजाता है ॥ ३७० ॥ ४७१ ॥

कालपुष्पादिक्षार।

श्वेतपुष्पः कालपुष्पो रक्तपुष्पस्तथैव च। पीतपुष्पो वरस्तेषु कालपुष्पः प्रकीर्त्तितः ॥ ३७२ ॥ प्रशस्तेऽहनि नक्षत्रे कृतमङ्गलपूर्वकम्। कालपुष्पकमाहत्य दग्ध्वा भस्म समाहरेत् ॥ ३७३ ॥ आढकन्तु समादाय जलद्रोणे विपाचयेत्। चतुर्भागावशिष्टेन वस्त्रपूतेन वारिणा ॥ ३७४ ॥ शङ्खचूर्णस्य कुडवं प्रक्षिप्य विपचेत्पुनः। शनैः शनैर्मृदावग्नौ यावत्सान्द्रतनुर्भवेत् ॥ ३७५ स्वर्जिकायावशूके च शुण्ठी मरिचपिप्पली। वचाचातिविषा चैव हिङ्गुचित्रकयोस्तथा ॥ ३७६ ॥ एषां चूर्णानि निक्षिप्य पृथगेवाष्टमाषकम्। दर्व्या संघट्टितश्चैव स्थापयेदायसे घटे ॥ ३७७ ॥ एष वह्निसमः क्षारः कीर्त्तितः काश्यपादिभिः। नातितीक्ष्णो न च मृदुः शिवः शीघ्रं सपिच्छलः। शुक्लः श्लक्ष्णोऽत्यभिष्यन्दी क्षारस्याष्टाविमे गुणाः ॥ ३७८ ॥

सफेदफूलका, कालेफूलका, लालफूलका और पीले फूलका इन भेदोंसे घंटापाढल चार प्रकारका होता है। इनमें काले फूलका उत्तम होता है, उत्तम नक्षत्र और शुभ दिनमें मंगल कार्य करके कालेफूलके घंटापाढल वृक्षको लेकर अग्निमें जलाकर भस्म कर लेवे। फिर उस भस्मको एक आढक परिमाण लेकर एक द्रोण जलमें पकावे। जब चौथा भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर वस्त्रमें छान लेवे। पश्चात् उसमें एक कुडव परिमाण शंखकी भस्म मिलाकर धीरे२पकावे। जब पकते २ गाडा पड़ जाय तब सज्जी, जवाखार, सोंठ, मिरच, पीपल, वच, अतीस, हींग और चीता इन प्रत्येकका चूर्ण आठ २ मासे मिलाकर खूब करछीसे चलाकर एक लोहेके बासनमें भरकर रख देवे। यह अग्निके समान क्षार काश्यपादि ऋषियोंने कहा है। यह खार—न अत्यन्त तीक्ष्ण है, न मृदु है, शुभ है, शीघ्र गुणकारक, पिच्छिल, सफेद, श्लक्ष्ण और अभिष्यन्दी है ॥ ३७२—३७८ ॥

करीषराशिमध्यस्थं कृत्वा कर्म्मसु योजयेत्। क्षारं क्षारोदकं कोष्णं न्यसेन्मन्दप्रवाहिणीम् ॥ ३७९ ॥ तोये कालकमुष्ककस्य विपचेद्भस्माढकं षड्गुणे पात्रे लोहमये दृढे विपुलधीर्दर्व्या शनैर्घट्टयेत् ॥ दग्ध्वाग्नौ बहुशंखनाभिशकलान्पूतावशेषे क्षिपेद्यावेरण्डजनालमेष दहति क्षारो वरो वाक्छतात् ॥ ३८० ॥ पानीयं प्रतिसारिणीयमिति च क्षारो द्विधा शस्यते तत्राद्यो गरगुल्मकादिशमने दुर्नामकादौ परः ॥ ३८१ ॥ पानीयं भावयित्वा तु स्रावयेच्च चतुर्गुणे। द्विगुणे षड्गुणे वारि तद्वारानेकविंशतिम् ॥ ३८२ ॥ प्रायस्त्रिभागशिष्टेऽस्मिन्नच्छपैच्छिल्यरक्तता। सञ्जायते तदा स्राव्यं क्षाराम्भो ग्राह्यमिष्यते ॥ ॥ ३८३ ॥ तूर्य्येणाष्टमकेन षोडशगुणेनांशेन संव्यूहिमो मध्यः श्रेष्ठ इति क्रमेण विहितः क्षारोदकः शंखकः ॥ ३८४ ॥

काले मोखेकी भस्म एक आढक परिमाण लेकर छः गुने जलमें लोहेके पात्रमें पकावे और धीरे २ लोहेकी करछीसे चलाता जाय और उसमें शंखनाभिकी छनी हुई भस्मको मिला देवे। जितनी देर सौवार गिननेमें लगे उतनी देरमें यह क्षार अंडकी नालको जला देवे तो उत्तम क्षार हुआ जानना। यह क्षार पानीय और प्रतिसारणीय इन भेदोंसे दो प्रकारका है। उसमें पहला पानीयक्षार विषविकार और गुल्मादि

रोगोंको शमन करनेमें उत्तम है और दूसरा प्रतिसारणीय क्षार बवासीर आदि रोगोंको नष्ट करनेके लिये उत्तम कहा है। पानीयरूप जो क्षार है उसको दुगुने या चौगुने जलमें अथवा छगुने जलमें भिजोकर इक्कीसवार टपकावे। प्रायः तीनभाग शेष रहनेपर इस क्षारमें पिच्छलता और रक्तता उत्पन्न हो तो उसको टपका कर क्षारजल ग्रहण करना चाहिए। चारगुने आठगुने अथवा सोलहगुने जलमें बनाया हुआ और शंखका चूर्ण जिसमें पडा हो ऐसा क्षार जल क्रमसे संव्यूहिम, मध्यम और श्रेष्ठ कहा जाता है ॥ ३७९—३८४ ॥

अभयारिष्ट।

हरीतकीनां प्रस्थार्धं प्रस्थमामलकस्य च। कपित्थानां दशपलं तदर्धा चेन्द्रवारुणी ॥ ३८५ ॥ विडङ्गं पिप्पली लोध्रं मरिचं सैलवालुकम्। द्विपलांशं जलस्यैतच्चतुर्द्रोणे विपाचयेत् ॥ ३८६ ॥ द्रोणशेषे रसे तस्मिन्पूतशेषे प्रदापयेत्। गुडस्य द्विशतं तिष्ठेन्मासार्धं घृतभाजने ॥ ३८७ ॥ पलादूर्ध्वं भवत्येवं ततो मात्रा यथाबलम्। अस्याभ्यासादरिष्टस्य गुदजा यान्ति सङ्क्षयम् ॥ ३८८ ॥ ग्रहणीपाण्डुरोगघ्नः प्लीहगुल्मोदरापहः। कुष्ठशोथारुचिहरो बलवर्णाग्निवर्द्धनः ॥ ३८९ ॥ सिद्धोयमभयारिष्टः कामलाश्वित्रनाशनः। कृमिग्रन्थ्यर्बुदव्यङ्गराजयक्ष्मज्वरांतकृत् ॥३९०॥ पानमानमरिष्टादेः क्वाथपानसमं जगुः। भिषजत्वात्पलं केचित्प्रथमं मदलक्षणम् ॥ ३९१ ॥

हरड ३२ तोले, आमले ६४ तोले, कैथका गूदा १० पल, इन्द्रायन ५ पल, वायविडंग, पीपल, लोध, कालीमिरच और एलुआ ये प्रत्येक औषधि दो दो पल लेकर चार द्रोण जलमें पकावे। जब एक द्रोण जल शेष रह जाय तब उतारकर छान लेवे। फिर उसमें २०० पल गुड डालकर घीके चिकने बासनमें भर कर पन्द्रह दिनतक रक्खा रहने देवे। इसकी बलानुसार एक पलसे अधिक मात्राको निरूपण करे। इस अरिष्टके अभ्याससे गुदाके मस्से नष्ट होजाते हैं तथा संग्रहणी, पाण्डुरोग, प्लीहा, गुल्म, उदररोग, कुष्ठ, सूजन और अरुचि नष्ट होती है। यह बल, वर्ण और अग्निको बढानेवाला है। यह अभयारिष्ट—कामला, श्वित्रकुष्ठ, कृमि, ग्रन्थि, अर्बुदरोग, व्यंग, राजयक्ष्मा और ज्वरको नष्ट करता है। अरिष्टादिके पीनेकी मात्रा क्वाथ पानके समान जाननी। कोई २ वैद्य ऐसा कहते हैं कि, इसमें मदके लक्षण होनेसे इसकी एक पलकी मात्रा है ॥ ॥ ३८५—३९१ ॥

यन्त्रप्रकार।

षडंगुलं सकर्णीकं कुर्याद्यन्त्रस्य मण्डलम्। अङ्गुष्ठोदरविस्तीर्णं छिद्रं स्यादङ्गुलायतम् ॥ ३९२ ॥

गुदाके अंकुरोंको पकड़नेके लिये जो यंत्र बनाया जाता है उसकी विधि कहते हैं—उस यंत्रका मण्डल छः अंगुल प्रमाण और कर्णिकायुक्त बनाना चाहिए। तथा अंगूठेके उदरके समान चौडा और उसका छिद्र एक अंगुलका गोल होना चाहिए ॥ ३९२ ॥

पञ्चाङ्गुलं बालकानां वयस्थानां षडङ्गुलम्। अर्शसान्तत्प्रयोक्तव्यं लुप्तोष्ठन्तु भगन्दरे ॥ ३९३ ॥ यन्त्रं सप्तांगुलं स्त्रीणामायतं चतुरंगुलम् ॥

जो बालकोंके लिये बनाना हो. तो पांच अंगुल प्रमाण उसका मण्डल बनाना चाहिये और पूर्ण अवस्थावाले मनुष्यके लिये छः अंगुलका बनाना उचित है। यह यन्त्र अर्शरोगमें प्रयोग करना चाहिये और जिसमें ओष्ठ बन्द हो जाँय ऐसे भगन्दर रोगमें भी प्रयोग करना चाहिये ॥ ३९३ ॥

स्त्रियोंके लिये सात अंगुलका यन्त्र बनाना उचित है। और उसकी चौडाई चार अंगुल होनी चाहिए।

गुदाविवरण।

तत्र स्थूलान्प्रतिबद्धमर्धपञ्चाङ्गुलं गुदमाहुः। तस्मिन्वलयस्तिस्रोऽध्यूर्ध्वांगुलान्तरसंभूताः। प्रवाहिणी वि-

सर्जनी संवरणी चेति । रोमान्तेभ्यो यवाध्यर्धो गुदौष्ठः परिकीर्त्तितः ३९४

स्थूल आँतसे बंधीहुई साढे पाँच अंगुलकी गुदा है उसमें तीन वलि हैं और वह आधे २अंगुलके अन्तरसे हैं। प्रवाहिणी, विसर्जनी और संवरणी ये तीनों वलियोंके नाम हैं। रोमोंके अंतमें आधे जौंके समान जो स्थान है उसको गुदोष्ठ कहते हैं ॥ ३९४ ॥

प्रथमा तु गुदौष्ठादङ्गुलमात्रा तत्राऽचिरकालजातान्यल्पदोषलिंगोपद्रवाणि भेषजसाध्यानि । मृदुप्रसृतावगाढान्युच्छ्रिताग्राणि क्षारेण । कर्कशस्थिरपृथुकठिनान्यग्निना । तनुमूलान्युच्छ्रिताग्राणि क्लेदवन्ति च शस्त्रेण ॥

पहले गुदोष्ठकी एक अंगुलप्रमाण मात्रा है। जो बवासीर थोडे दिनोंकी उत्पन्न हुई हो जिसमें अल्पदोषोंके लक्षण और उपद्रव हों उसको औषधिसाध्य जानना।जो बवासीर मृदु, फैलीहुई, जमीहुई, गाढी और आगेसे कुछ ऊंचीसी हो उसको क्षारसाध्य जानना। जिस बवासीरके अंकुर कर्कश, कठिन, मोटे, मजबूत और कठोर हों उसकी अग्निकर्मके द्वारा चिकित्सा करे और जिस बवासीरके अंकुर पतली जडवाले, आगेसे उठेहुए और क्लेदयुक्त हों उसकी शस्त्रके द्वारा चिकित्सा करे ॥

क्षारेण वह्निना वापि वातश्लेष्मसमुद्भवम् । क्षारेणैव दहेदर्शः पित्तरक्तसमुद्भवम् ॥ ३९५ ॥

वात और कफजनित अर्शरोगकी क्षार और अग्निके द्वारा चिकित्सा करनी चाहिये, पित्तरक्तसे उत्पन्न हुए अर्शरोगकी केवल क्षारके द्वारा ही चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३९५ ॥

तत्र बलवन्तमातुरमर्शोभिरुपद्रुतमुपस्निग्धं परिस्विन्नमनिलवेदनावृद्ध्युपशान्त्यर्थं स्निग्धमुष्णमल्पमन्नं द्रवमायं भुक्तवन्तमुपवेश्य शुचौ देशे साधारणे व्यभ्र काले समे फलके शय्यायां वा प्रत्यादित्यगुदमन्यस्योत्सङ्गे निषण्णपूर्वकायमुत्तानं किञ्चिदुन्नतकटिकं वस्त्रकम्बलकोपविष्टं यन्त्रशाटकेन परिक्षिप्तग्रीवासक्थिकं परिकर्म्माभिः सुपरिगृहीतमस्पन्दनशरीरं कृत्वा ततोऽस्मिन् घृताभ्यक्तं यन्त्रमृज्वणुमुखं पायौ शनैः शनैः प्रवाहमानस्य प्रणिधायप्रविष्टं चार्शो वीक्ष्य शलाकयोत्पीड्य पिचुवस्त्रयोरन्यतरेण प्रमृज्य क्षारं पातयेदिति ॥

अर्शरोगसे पीड़ित बलवान् रोगीको प्रथम स्निग्ध और स्वेदित कर फिर वायुकी पीडाकी वृद्धिको शमन करनेके लिये चिकना, उष्ण और विशेषकर पतला थोडा अन्न भोजन कराकर उत्तम शुद्ध और समान तथा साधारण ऐसी भूमि या तख्त अथवा शय्यापर सुखपूर्वक लिटादेवे किन्तु उस दिन आकाशमंडल बादलोंसे रहित हो। उसकी गुदाको सूर्य्यके सम्मुख कर उसकी कमरके नीचे वस्त्र अथवा कम्बलकी गद्दी बनाकर रखदेवे जिससे कमर ऊपरको उठजाय। फिर वस्त्रसे उसकी ग्रीवा और हाथ, पांव आदि अच्छे प्रकारसे बांधदेवे और अन्यपुरुषोंसे उसको अच्छे प्रकारसे पकड़वा देवे जिससे कि, रोगी पीड़ित होनेसे इधर उधर अंगोंको न पटके । पश्चात् उसकी गुदामें घी चुपटकर सीधे और छोटे मुखवाले यंत्रको शनैः२ प्रवेश करे।फिर यंत्रके भीतर घुसजानेपर अर्शको देखे और सलाईसे दबावे फिर फोये या वस्त्रसे पोंछकर क्षारको डाले ॥

पद्मपत्रसमः पित्ते क्षारलेपः प्रशस्यते ।हेमन्ते ह्युद्गते सूर्ये वसन्तेऽस्तगते मतः॥ ३९६ ॥

पित्तकी बवासीरमें कमलके पत्तेके समान क्षारका लेप करना चाहिए। हेमन्तऋतुमें सूर्य्यके उदय होने पर और वसन्तऋतुमें सूर्य्यके अस्त होनेपर क्षार कर्म करना चाहिये ॥ ३९६ ॥

पातयित्वा च पाणिना यन्त्रद्वारं पिधाय वाक्छतमात्रमुपेक्षेत ततः प्रमृज्य क्षारव्याधिबलं चावेक्ष्य पुनः पातयेत् । अथार्शः पक्वजाम्बवसंका-

शमभिवीक्ष्यावसन्नमीषन्नतमुपावर्त्तयेत् । क्षारं प्रक्षालयेद्धान्याम्लदधिमस्तुशुक्तानामन्यतमेन ततो यष्टिमधुकमिश्रितसर्पिषा निर्वाप्य यन्त्रमपनीयोत्थाप्यातुरमुष्णोदककोष्ठेऽवगाह्य शीताभिरद्भिः परिषिञ्चेत् । अशीताभिरित्येके ततो निर्वातमगारं प्रवेश्याऽऽचारिकमादिशेत् ॥

क्षारको डालनेके पश्चात् हाथसे यंत्रद्वारको ढककर सौ मात्राके उच्चारण समयतक ढका रहने देवे । फिर वस्त्रादिसे साफ करके क्षार और रोगके बलको विचार कर फिर डाले जब इस प्रकार क्षार डालनेसे अर्शके अंकुर पकी जामुनके समान और कुछ नीचे हो जाँय तब छोड़ देवे पश्चात् क्षारको धानोंकी काँजी या दहीके तोड अथवा सूक्तनामक कांजीसे धोडाले। फिर मुलैठीको पीसकर घीमें मिलाकर लगादेवे और यंत्रको निकाल देवे। तथा रोगीको उठा करके गरम जलमें बैठाकर शीतल जलसे सींचे। कोई आचार्य कहते हैं कि, गरमजलसे सींचे। फिर उसको वातरहित स्थानमें प्रवेश कराकर अर्शसम्बन्धी आचरण करावे ॥

भुञ्ज्यात्पाकाय लघ्वन्नं माषतक्रसमान्वितम् । अथ चेत्स्थिरमूलत्वात्क्षारदग्धं न शीर्यते ॥ इदमालेपनं तत्र समग्रमवचारयेत् ॥

उडद और तक्रसहित हलका अन्न अर्शरोगीका भोजनके लिये देवे। जो बवासीरके अंकुर स्थिरमूलवाले होनेके कारण क्षारसे दग्ध करनेपर न गलें तो नीचे लिखे यह सब योग प्रयोग करें ॥

अम्लीकाञ्चिकबीजानि तिलान् मधुकमेव च । सर्पिषा सममात्राणि तथैवमनुलेपयेत् ॥ ३९७ ॥

इमली, चौंटली, तिल और मुलैठी इन सबको समान भाग लेकर एकत्र पीसकर घीमें मिलाकर लेप करे ॥ ३९७ ॥

तिलकल्कः समधुको घृताक्तो व्रणरोपणः । सावशेषं पुनर्दाहैश्चैकैकं समुपक्रमेत् ॥ ३९८ ॥ प्राग्दक्षिणं ततो वामं ततः पृष्ठाग्रजं पुनः। ज्वलनेनाथ सन्दग्धः पक्वजंबुफलोपमः ॥ ३९९ ॥ तत्र लेपं प्रयुञ्जीत पथ्याम्लक्षारचन्दनैः । दाहे बस्त्यादिजे लेपः शतधौतेन सर्पिषा ॥ ४०० ॥

तिलके कल्कको मुलैठीके चूर्ण सहित घीमें मिलाकर लगावे तो वह व्रणको रोपण करता है । जो गुदाके अंकुर जलानेपर भी फिर बाकी रहजायँ तब फिर एक एकको क्रम क्रमसे जलावे । प्रथम दहनी ओरके अंकुरोंको दग्ध करे फिर बाई ओरके अंकुरोंको जलावे फिर पीठके और आगेके अंगुरोंको जलावे । गुदाके अंकुर जलने पर पके जामुनके समान हो जाते हैं । फिर हरड, कांजी, क्षार और चन्दन इनको पीसकर लेप कराना चाहिये । जो क्षारकर्म करनेसे और जलानेसे गुदाके अंकुरोंमें दाह उत्पन्न हो तो सौ बार धुलेहुए घीका बस्तिआदि स्थानपर लेप करे ॥ ३९८ ॥ ३९९ ॥ ४०० ॥

किंजल्कदेवाह्वसुरसागुडकुष्ठपुनर्नवैः । कल्कैः कृतैरधो नाभेर्लेपयेद्बस्ति वङ्क्षणम् ॥ ४०१ ॥

कमलकेशर, देवदारु, तुलसी, गुड़, कूठ और पुनर्नवा इनका कल्क बनाकर अधोभाग, नाभिस्थान, बस्तिस्थान औरवंक्षणस्थानमें लेपकरना चाहिये ४०१

छायासु शोषितागोविट्पिंडैः सौवीरपाचितैः । स्वेदयेद्गुदेशन्तु दाहादिक्लेशशान्तये ॥ ४०२ ॥

गौके गोबरको छायामें सुखाकर उसका पिण्ड बनाकर सौवीर नामक कांजीमें पकावे फिर दाहादि क्लेश शमन करनेके लिये गुदाको स्वेदित करना चाहिये ॥ ४०२ ॥

क्षारमुष्णाम्बुनाऽवाप्य विबन्धे मूत्रवर्चसे ॥ पिबेद्व्रणविशुद्ध्यर्थं वराक्वाथं सगुग्गुलुम् ॥ ४०३ ॥

क्षारको गरमजलमें मिलाकर मल और मूत्ररोगमें पीना चाहिये । व्रणको शुद्ध करनेके लिये त्रिफलेके काथमें गूगल डालकर पीना चाहिये ॥ ४०३ ॥

आहारमुदिशेच्चापि स्वेदनं वेदनासु च । जीर्णशाल्यन्नमुद्गादि पथ्यं तिक्ताज्यसैन्धवैः ॥ ४०४ ॥

स्वेदकर्म करनेके पश्चात् पीड़ा होनेपर पुराने शालिचावलोंका भात, मूँग आदि अन्न, कड़वे पदार्थ, घृत और सैंधानमक ये पथ्य द्रव्य देवे ॥ ४०४ ॥

गुदेष्वर्शस्सु सर्वेषु तद्देशे पूर्वजन्मनि । जलौकाभिर्हरेच्चासृक्पुनर्जन्मनिवृत्तये ॥ ४०५ ॥

सर्वप्रकारके गुदाके अर्शरोगोंमें तत्काल उस स्थानका रुधिर निकलवाना चाहिये । कारण कि जिससे फिर अंकुर उत्पन्न न होजायँ ॥ ४०५ ॥

तत्र वातानुलोम्यमन्नरुचिरग्निदीप्तिलाघवं बलवर्णोत्पत्तिर्मनस्तुष्टिरिति सम्यग्दग्धलिङ्गानि । अतिदग्धं तु गुदावदरणं दाहो ज्वरः पिपासा शोणितातिप्रवृत्तिस्तन्निमित्ताश्चोपद्रवा भवन्ति । श्यामाल्पव्रणता कण्डूरनिलवैगुण्यमिन्द्रियाणामप्रसादो विकारस्य चाशान्तिर्हीनदग्धे तु लक्षणमिति ।

जिसमें जब अच्छे प्रकार वायुका अनुलोमन होने लगे शरीरमें हलकापन अन्नके रुचि और अग्नि दीपन होजाय तथा बल,वर्ण उत्पन्न हों और मन प्रसन्न हो तो उत्तम प्रकारसे दग्ध होनेके लक्षण जानने। गुदा विदीर्ण हो जाय, दाह हो,ज्वर,तृषा,रुधिरका अत्यंत निकलना और उसके निकलनेके कारण अनेक उपद्रव हों तो उसको अतिदग्ध जानना ।हीनदग्धके लक्षण—काले और छोटे २ व्रण उत्पन्न हों,खुजलीका होना, वायुकी विगुणता, इन्द्रियोंमें अप्रसन्नता और विकारोंका शमन नहीं होना ये सब लक्षण हों तो उसको हीनदग्ध जानना ।

कपित्थाद्यघृत ।

स्वरसे तु कपित्थाम्लदाडिमामलकोद्भवे। द्विप्रस्थे सर्पिषः प्रस्थं पचेत्क्षारार्त्तिदाहनुत ॥ ४०६ ॥

कैथ,इमली और आमले इनके दो प्रस्थ स्वरसमें एक प्रस्थ घी डालकर मंद मंद अग्निसे पकावे । इस घृतको सेवन करनेसे क्षार आदिके प्रयोग करनेसे उत्पन्न हुई पीडा और दाह दूर होती है ॥ ४०६ ॥

दृष्टं सर्वव्रणं वैद्यः क्षारं दत्त्वानुवासयेत् । पिप्पल्याद्येन तैलेन सेवेद्दीपनभेषजम् ॥ ४०७॥

वैद्य सब प्रकारके उत्पन्न व्रणोंको क्षारप्रयोग करके अनुवासन करे । तथा पिप्पल्याद्य तैलके साथ दीपन औषधियोंको सेवन करे ॥ ४०७ ॥

मेढ्रादिष्वपि जायन्ते यथा स्वन्नाभिजानि तु । गण्डूपदस्य रूपाणि पिच्छलानि मृदूनि च ॥ ४०८ ॥

लिंग,नाभि और नासिकादि स्थानोंमेंभी केंचुयेके समान पिच्छल और नरम ऐसे अर्शके अंकुर उत्पन्न होते हैं ॥ ४०८॥

नाभिकर्णाक्षिनासासु जातेष्वर्शःसु योजयेत् । लेपं तैलञ्च पूर्वोक्तं घ्राणजे शस्त्रकर्म च ॥ ४०९ ॥

नाभि, कान, नेत्र और नासिकामें उत्पन्न हुई बवासीरमें उपरोक्त लेप और तैलादिको प्रयोग करे और नासिकागत अर्शरोगमें शस्त्रकर्म भी प्रयोग करे ॥ ४०९ ॥

प्रतिसारणेन च सैन्धवनिशायुगागारधूमकाशीशलवणप्रलेपानि नासामेहनगुदजानि शमयन्तीति ॥

सैंधानमक, हलदी, दारुहलदी,घरका धुँआ,कसीस और नमक इनका प्रतिसारणविधिद्वारा लेप करनेसे नासिका और लिंगगत अर्शरोग नष्ट होता है ॥

प्रतिसारणमात्रा ।

प्रतिसारणमुद्दिष्टं चूर्णं कल्कश्च तत्त्रिधा । कोलास्थिमात्रपिंडेन घर्मेण नव सप्त षट् ॥ ४१० ॥ श्रेष्ठमध्यमहीनेषु कवलोक्तं च लक्षणम् ॥

चूर्ण, कल्क और बेरकी गुठलीके बराबर पिंड इसप्रकार प्रतिसारण तीन प्रकारका होता है।इनकी नौ, सात और छः ये तीनों श्रेष्ठ, मध्य और हीन मात्रा हैं । इनको धूपमें करे । कवलके समान इनके लक्षण जानने ॥ ४१० ॥

नासाजार्शःसु कुर्वीत क्षारेण प्रतिसारणम् । नासास्रोतःप्रमाणेन यन्त्रं सौवर्णराजतम् ॥ ४११ ॥ अङ्गुलं कर्णकोपेतमर्धाङ्गुलमथायतम् । उत्तानशायिनः क्षारं दद्यात्पिचुशलाकया ॥ ४१२ ॥

नासागत अर्शरोगमें क्षारके द्वारा प्रतिसारण करना चाहिये। नासिकाके छिद्रके समान सोने या चांदीका यन्त्र बनवाना चाहिए। उसमें एक २ अंगुलकी कर्णिका लगानी चाहिये। आधे अंगुल उसकी चौडाई होनी चाहिये। रोगीको चित्त सुलाकर फायेकी शलाकासे क्षार डालना चाहिये॥४११॥४१२

चर्मकीललक्षण।

व्यानो गृहीत्वा श्लेष्माणं करोत्यर्शस्त्वचो बहिः। कीलोपमं स्थिररूपं चर्मकीलन्तु तद्विदुः॥ ३१३ ॥ वातेन तोदपारुष्यं पित्तादसितरक्तता। श्लेष्मणा स्निग्धता तस्य ग्रन्थितत्त्वं सवर्णता ॥ ४१४ ॥ चर्मकीलं दहेच्छित्त्वा क्षारेण दहनेन वा ॥ ४१५ ॥

व्यानवायु कफको ग्रहण करके त्वचाके बाहर अर्शको उत्पन्न करता है, वह अर्श कीलके समान कठिन और खर होती है उसको चर्मकील कहते हैं। उस वातजनित चर्मकीलमें सुई चुभाने सरीखी पीड़ा, और खरखरापन होता है। पित्तजनित चर्मकीलमें कालापन और लाली होती है। और कफजनित अर्शरोगमें स्निग्धता और त्वचाके समान गाँठ होती है। चर्मकीलको क्षार अथवा अग्निके द्वारा जलाकर नष्ट करना चाहिये॥ ४१३ ॥ ४१४ ॥ ४१५ ॥

साध्यासाध्यता।

पञ्चात्मा मारुतः पित्तं कफो गुदवलित्रये। सर्व एव प्रकुप्यन्ति गुदजानां समुद्भवे ॥ ४१६ ॥ तस्मादर्शांसि सर्वाणि बहुव्याधिकराणि च। सर्वदेहोपतापीनि प्रायः कृच्छ्रतमानि च ॥ ४१७ ॥

गुदाकी तीनवलियोंमें बवासीरके अंकुर उत्पन्न होनेसे पांचों प्रकारका वायु, पांच प्रकारका पित्त और पांच प्रकारका कफ कुपित होता है। इस कारण यह बवासीर रोग अत्यन्त दुःखदायक है और अनेक प्रकारके रोगोंको उत्पन्न करनेवाला और प्रायः कष्टसाध्य है ॥ ४१६ ॥ ४१७ ॥

सुखसाध्यलक्षण।

बाह्यायान्तु वलौ जातान्येकदोषोल्बणानि च। अर्शांसि सुखसाध्यानि न चिरोत्पतितानि च॥ ४१८ ॥

जो बवासीरके अंकुर बाहरकी वलिमें उत्पन्न हुए हों और बवासीरके एक दोषसे उत्पन्न हुई हो या बहुत दिनोंकी पुरानी न हो ऐसी बवासीर सुखसाध्य जाननी ॥ ४१८ ॥

कष्टसाध्यलक्षण।

द्वंद्वजानि द्वितीयायां वलौ यान्याश्रितानि च। कृच्छ्रसाध्यानि तान्याहुः परिसंवत्सराणि च ॥ ४१९॥

जो दो दोषोंसे उत्पन्न हुई हो, दूसरी वलीमें उत्पन्न हुई हो और जिसको उत्पन्न हुए एक वर्ष बीत चुका हो ऐसी बवासीर कृच्छ्रसाध्य है॥ ४१९ ॥

असाध्यलक्षण।

सहजानि त्रिदोषाणि यानि चाभ्यन्तरां वलिम्। जायन्तेऽर्शांसि संश्रित्य तान्यसाध्यानि निर्दिशेत् ॥४२०॥

जो जन्मसे ही उत्पन्न हुई हो, त्रिदोषसे उत्पन्न हुई हो और भीतरकी वलीमें हो. उसको असाध्य जानना ॥ ४२० ॥

याप्यलक्षण।

शेषत्वादायुषस्तानि चतुष्पादसमन्विते। याप्यन्ते दीप्तकायाग्नेः प्रत्याख्येयान्यतोऽन्यथा ॥ ४२१ ॥

यदि बवासीर असाध्य हो पर रोगीकी आयु बाकी हो तथा चतुष्पाद (वैद्य, परिचारक, औषधि और रोगी) ठीक हो और रोगीकी अग्नि दीपन हो तो याप्य जाननी और जो इससे विपरीत हो तो असाध्य जाननी ॥ ४२१ ॥

हस्ते पादे मुखे नाभ्यां गुदे वृषणयोस्तथा। शोथो हृत्पार्श्वशूलश्च यस्यासाध्योऽर्शसो हि सः॥ ४२२ ॥

जिस बवासीररोगीके हाथ, पाँव, मुख,नाभि, गुदा और अंडकोश इनमें सूजन हो, हृदय तथा पसलियेंमें शूलकी पीडा हो, उसको असाध्य जानना ॥ ४२२ ॥

हृत्पार्श्वशूलं संमोहश्छर्दिरङ्गस्य रुग्ज्वरः। तृष्णा गुदस्य पाकश्च निहन्युर्गुदजातुरम् ॥ ४२३ ॥

हृदय और पसलियोंमें शूलके समान पीडा हो, बेहोस हो, वमन, अंगोंमें पीडा हो, ज्वर, तृषा और गुदाका पकना इन लक्षणोंवाला बवासीररोगी मर जाता है ॥ ४२३ ॥

तृष्णारोचकशूलार्तमतिप्रसुतशोणितम्। शोथातीसारसंयुक्तमर्शांसि क्षपयन्ति हि ॥ ४२४ ॥

जो तृषा अरुचि और शूलसे पीडित हो, जिसके रुधिर अधिक स्रवे, सूजन और अतीसार हो, ऐसा बवासीररोगी मर जाता है ॥ ४२४ ॥

वेगावरोधः स्त्री पृष्ठयानमुत्कटकासनम्। यथास्वं दोषलश्चान्नमर्शसां परिवर्जयेत् ॥ ४२५ ॥

मलमूत्रादिके वेगको रोकना, स्त्रीप्रसंग, हाथी घोड़ेकी सवारी, उकरू बैठना और दोषकारक अन्न पानोका सेवन इन सबको बवासीर रोगी त्याग देवे ॥ ४२५ ॥

इति श्रीवंगसेने अर्शरोगाधिकारः संपूर्णः।

अथ अजीर्णनिदान।

मन्दस्तीक्ष्णोऽथ विषमः समश्चेति चतुर्विधः। कफपित्तानिलाधिक्यात्तत्साम्याज्जाठरोऽनलः॥ १ ॥ विषमो वातजान्रोगांस्तीक्ष्णः पित्तनिमित्तजान्। करोत्यग्निस्तथा मन्दो विकारान्कफसम्भवान् ॥ २ ॥

मन्द, तीक्ष्ण, विषम और सम इन भेदोंसे जठराग्नि चारप्रकारकी है। कफकी अधिकतासे मंदाग्नि, पित्तकी अधिकतासे तीक्ष्णाग्नि, वातकी अधिकतासे विषमाग्नि और तीनों दोषोंके समान होनेसे समाग्नि होती है। विषमाग्नि—वातके रोगोंको, तीक्ष्णाग्नि—पित्तके रोगोंको और मंदाग्नि कफके रोगोंको उत्पन्न करती है ॥ १ ॥ २ ॥

समा समाग्नेरशिता मात्रा सम्यग्विपच्यते। स्वल्पापि नैव मन्दाग्नेर्विषमाग्नेस्तु देहिनः॥ ३ ॥ कदाचित्पच्यते सम्यक्कदाचिन्न विपच्यते। मात्रातिमात्राप्यशिता सुखं यस्य विपच्यते ॥ ४ ॥ तीक्ष्णाग्निरिति तं विद्यात्समाग्निः श्रेष्ठ उच्यते ॥५॥ समाग्निं रक्षयेन्नित्यमन्नपानेंधनैर्हितैः। मन्दाग्निं कटुतिक्तैश्च कषायवमनैर्हितैः॥ ६ ॥ तीक्ष्णाग्निं मधुरस्निग्धैर्विरेकगुरुशीतलैः। स्नेहाम्ललवणाद्यैश्च विषमाग्निमुपाचरेत् ॥ ७ ॥

समाग्निवाले मनुष्यके यथोचित मात्रासे किया हुआ भोजन अच्छे प्रकारसे पच जाता है, मन्दाग्निवाले पुरुषके अल्पमात्रामें किया हुआ भोजन भी नहीं पचता है। विषमाग्नि

वाले मनुष्यको कभी अच्छे प्रकारसे भोजन पच जाता है और कभी नहीं पचता और तीक्ष्णाग्निवाले मनुष्यके भोजनपर भोजन या अधिक किया हुआ भोजन भी अच्छे प्रकारसे पच जाता है। उक्त चारों प्रकारकी अग्नियोंमें समाग्नि श्रेष्ठ है । इस लिए हितकारक अन्न पानरूपी ईंधनसे सदैव समाग्निकी रक्षा करनी चाहिए। मन्दाग्निमें कटु, तिक्त और कषैले पदार्थोंके द्वारा वमन करानी चाहिये। तीक्ष्णाग्निमें मधुर और स्निग्ध पदार्थोंके द्वारा विरेचन एवं भारी और शीतल पदार्थों का सेवन हितकारी है । और विषमाग्निमें स्नेह, अम्ल और नमकीन पदार्थ सेवन करने चाहिए ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥

चिकित्सा।

अन्नमण्डं पिबेदुष्णं हिंगुसौवर्चलान्वितम्। विषमोऽपि समस्तेन मन्दो दीप्येत पावकः ॥ ८ ॥

भातके मांडमें हींग और काले नमकका चूर्ण डाल कर गरमगरम पीनेसे विषमाग्नि, सम और मन्दाग्नि दीपन होती है ॥ ८ ॥

अष्टगुणमण्ड ।

सुतण्डुलानां प्रसृतद्वयश्च तदर्धमुद्गः कटुकत्रयश्च । कुस्तुम्बुरुसैन्धवहिंगुतैलमेभिश्च सर्वैः क्रियते च मण्डः॥९॥ क्षुद्बोधनो बस्तिविशोधनश्च प्राणप्रदः शोणितवर्धनश्च । ज्वरापहारी कफपित्तहन्ता वायुञ्जयेदष्टगुणो हि मण्डः ॥ १० ॥

उत्तम चावल चार पल और मूँग दो पल लेकर चौदहगुने जलमें पकावे । जब वे अच्छे प्रकार सीज जायँ तब माँड उतार कर उसमें त्रिकुटा, धनियाँ, सैंधानमक हींग इनका चूर्ण उचित मात्रासे मिलाकर और तेलसे छौंक देवे। यह मंड-क्षुधाकी वृद्धि करनेवाला, बस्तिशोधक, प्राणरक्षक, रुधिरको बढानेवाला, ज्वरनाशक, कफपित्त नाशक और वायुको हरनेवाला है। यह आठ गुण इस मंडमें हैं इस लिए इसको अष्टगुण मण्ड कहते हैं ९॥१०॥

हरीतकी भक्ष्यमाणा नागरेण गुडेन वा। सैन्धवोपहिता वापि सातत्येनाग्निदीपनी ॥ ११ ॥

हरडके चूर्णको सोंठ, गुड अथवा सैंधानमकके साथ नित्य सेवन करनेसे अग्नि अत्यन्त दीपन होती है ११

सिन्धूत्थहिंगुत्रिफलायवानीव्योषैर्गुडांशैर्गुडकान्प्रकुर्यात् । तैर्भक्षितैस्तृप्तिमवाप्नुयान्नरो भुञ्जीत मन्दाग्निरपि प्रभूतम् ॥ १२ ॥

सैंधानमक, हींग, त्रिफला, अजवायन और त्रिकुटा ये सब समानभाग और सबके बराबर गुड़ लेवे, फिर सबको एकत्र मिलाकर गोलियाँ बनावे। इनको सेवन करनेसे मंदाग्निवाला बहुत भोजन करता है और तृप्त होता है ॥ १२ ॥

गुडेन शुण्ठीमथ चोपकुल्यां पथ्यां तृतीयामथ दाडिमं वा ।आमेष्वजीर्णेषु गुदामयेषु वर्चोविबंधेषु च नित्यमद्यात् ॥ १३ ॥

गुडके साथ सोंठके चूर्णको या पीपलके चूर्णको, अथवा हरड़के चूर्णको किम्वा अनारको सेवन करे । यह प्रयोग आम, अजीर्ण बवासीर और मलविबन्धमें निरन्तर हितकारी है ॥ १३ ॥

विडंगभल्लातकचित्रकामृता सनागरा तुल्यगुडेन सर्पिषा। लिहन्ति ये मन्दहुताशना नरा भवन्ति ते वाडवतुल्यवह्नयः ॥ १४ ॥

वायविडंग, भिलावे, चीता, गिलोय और सोंठ, इन सबका एकत्र चूर्ण करके गुड और घीमें मिलाकर सेवन करे तो मंदाग्नि बडवाग्निके समान दीपन होती है ॥ १४ ॥

अभया निम्बसंयुक्ता भक्षितानलवृद्धिकृत् । दद्रुविस्फोटकांश्चैव नाशयत्याशु देहिनाम् ॥ १५ ॥

हरडको नीमके साथ भक्षण करनेसे अग्निकी वृद्धि होती है, तथा दाद और विस्फोटादि विकार नष्ट होते हैं ॥ १५ ॥

दहनाजमोदसैन्धवनागरमरिचाम्लतक्रेण । सप्ताहाद्दाग्निकरं पाण्डुशोथविनाशनं परम् ॥ १६ ॥

चीता, अजमोद, सैंधानमक सोंठ और काली मिरच, इनको खट्टे तक्रके साथ सेवन करनेसे सात

दिनमें जठराग्नि अत्यन्त दीपन होती है तथा पांडुरोग और बवासीर रोग दूर होता है ॥ १६ ॥

हरीतकी धान्यतुषोदसिद्धा सपिप्पलीसैन्धवहिंगुयुक्ता । सोद्गारधूमं भृशमप्यजीर्णं विजित्य सद्यो जनयेत्क्षुधां च ॥ १७ ॥

हरड़को धान्यतुषोदक नामक कांजीके द्वारा सिद्ध करके उसमें पीपल, सैंधानमक और हींग मिलाकर सेवन करनेसे धुआंयुक्त डकार और अजीर्ण नष्ट होता है तथा भूख अत्यन्त लगती है ॥ १७ ॥

शुण्ठीचूर्णसमायुक्तं यवक्षारं समालिहेत् । सर्पिषा प्रातरुत्थाय ततो वह्निप्रदीपनम् ॥ १८ ॥

सोंठके चूर्ण और जवाखारको घृतमें मिलाकर प्रातःकालमें उठकर भक्षण करनेसे अग्नि दीपन होती है ॥ १८ ॥

विजया पिप्पली शुण्ठी त्रिसमं परिकीर्तितम् । अग्निसंदीपनं नृणां तृड्दोषभयनाशनम् ॥१९ ॥

हरड, पीपल और सोंठ इनको समभाग लेकर चूर्ण करले इसको त्रिसम कहते हैं । यह त्रिसम मनुष्योंकी अग्निको दीपनकरनेवाला, तृषा और भयनाशक है ॥ १९ ॥

नागराम्बु सदा पथ्यं जीर्णाजीर्णविशंकिनाम् ॥ २० ॥

जिन मनुष्योंको जीर्णाजीर्णकी शंका हो उनको सदैव सोंठका पानी पीना हितकारी है ॥ २० ॥

किञ्चिदामेन मन्दाग्निरभयागुडनागरम् । जग्ध्वा तक्रेण भुञ्जीत युक्तमन्नं षडूषणैः ॥ २१ ॥

हरड़, गुड और सोंठ इनका एकत्र चूर्ण करके तक्रमें मिलाकर सेवन करे और षडूषणसे सिद्ध किया हुआ अन्न भोजन करे तो आमयुक्त मन्दाग्नि नष्ट होती है ॥ २१ ॥

विश्वाभयागुडूचीनां कषायेण षडूषणम् । पिबेच्छ्लेष्माणि मन्दाग्नौ त्वक्पत्रसुरभीकृतम् ॥ २२ ॥ कणामरिचशुण्ठीभिर्ग्रन्थिकानलच्छव्यकैः ॥ भिषग्भिराद्यैराख्यातं चतुष्पञ्च षडूषणम् ॥ २३ ॥

सोंठ, हरड, गिलोय और षडूषण इनके काथको दालचीनी और तेजपातसे सुवासित करके कफरोग और मन्दाग्निमें पान करे । पीपल, काली मिरच, सोंठ, पीपलामूल इन चार औषधियोंको चतुरूषण कहते हैं और जो इसमें चीता मिला लिया जाय तो पंचोषण और चव्य मिलानेसे षडूषण हो जाता है ॥ २२ ॥ २३ ॥

अग्निमान्द्यकी चिकित्साविधि ।

उपवासादिमन्दाग्निर्यवागूभिः पिबेद्घृतम् । रौक्ष्ये मन्दे पिबेत्सर्पिः तैलं वा दीपनैर्युतम् ॥ २४ ॥ चूर्णारिष्टासवैर्मन्दमभिस्नेहादुपाचरेत् । भिन्ने गुदोपलेपास्तु मले तैलसुरासवाः ॥ ॥२५॥ उदावर्ते तु मन्दाग्नौ निरूहाः सानुवासनाः । व्याधियुक्तस्य मन्दाग्नौ सर्पिरेवाग्निदीपनम् ॥२६॥

मन्दाग्निवाला प्रथम लंघनादि करे और फिर घृतयुक्त यवागू पान करे । जो मन्दाग्निमें रूक्षता हो तो घृत अथवा दीपन औषधियोंके साथ तेलको पान करे । मन्दाग्निमें चूर्ण, अरिष्ट, आसव और स्नेहादि प्रयोग करे। यदि मल पतला हो तो तेल, सुरा और आसव इनका गुदापर प्रलेप करे । मन्दाग्निरोगमें उदावर्त होनेपर निरूहबस्ति और अनुवासनबस्ति उपयोग करनी चाहिये । मन्दाग्निमें घृतका पान ही अग्निको दीपन करता है ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥

अजीर्णरोग ।

आमं विदग्धं विष्टब्धं कफपित्तानिलैस्त्रिभिः । अजीर्णं केचिदिच्छन्ति चतुर्थं रसशेषतः ॥ २७ ॥ अजीर्णं पञ्चमं केचिन्निर्दोषं दिनपाकि च । वदन्ति षष्ठं चाजीर्णं प्राकृतं प्रतिवासरम् ॥ २८ ॥

कफ पित्त और वात इन तीन दोषोंसे क्रमशः आम, विदग्ध और विष्टब्ध ये तीन प्रकारके अजीर्ण होते हैं अर्थात् कफसे आमाजीर्ण (जिस अजीर्णमें अन्न नहीं पचता) पित्तसे विदग्धाजीर्ण(जिस अजीर्णमें अन्न जल जाता है) और वातसे विष्टब्धाजीर्ण (जिसमें भोजन किया हुआ बँधसा जाता है) होता है, चौथा एक रसशेषसे अर्थात् रसशेष अजीर्णमें अन्न अच्छे प्रकारसे नहीं पचता है । एक पाँचवा अजीर्ण दिनपाकी होता है उसमें किया हुआ भोजन दिनभरमें पचता है । यह निर्दोष है क्योंकि उसमें अफारादि उपद्रव नहीं होते और एक छठा अजीर्ण प्राकृत अर्थात् स्वभावसे होता है । यह निरन्तर होता रहता है ॥ २७ ॥ २८ ॥

कफे क्षीणे यदा पित्तं स्वस्थाने मारुतानुगम्। तीक्ष्णं प्रवर्द्धयेदग्निं तदा तं भस्मकं वदेत् ॥ २९ ॥

कफनाशक पदार्थोंके सेवन करनेसे जब कफ क्षीण हो जाता है तब पित्त वायुके साथ मिलकर अपने स्थानमें अत्यन्त कुपित होकर वायुकी सहायतासे अग्निको अत्यन्त प्रज्वलित कर देता है तब उसको भस्मक रोग कहते हैं ॥ २९ ॥

तृड्दाहश्वासमूर्च्छादीन्कृत्वैवात्याग्निसम्भवान् । पक्त्वा रसादिकान्धातून्नाशयेदाशु जीवितम् ॥ ३० ॥

इसमें तृषा, दाह, श्वास और मूर्च्छादि अनेक अग्नि सम्बन्धी रोग उत्पन्न होते हैं यह भस्माग्नि आहारको बहुत शीघ्र भस्म कर देती है, पश्चात् रस रक्तादि धातुओंको भस्म करके प्राणोंको भी भस्म कर देती है ॥ ३० ॥

अजीर्णनिदान ।

अत्यंबुपानाद्विषमाशनाच्च सन्धारणात्स्वप्नविपर्ययाच्च । कालेऽपि सात्म्यं लघु चापि भुक्तमन्नं न पाकं भजते नरस्य ॥ ३१ ॥

अत्यन्त जलको पीनेसे, विषम भोजन करनेसे, मलमूत्रादिकोंके वेगोंको धारण करनेसे,रात्रिमें जागनेसे, और दिनमें सोनेसे, इन कारणोंसे भोजनके समय भी सात्म्य (स्वभावके माफिक) और हलका भोजन भी किया जाय तो नहीं पच सकता है॥३१॥

ईर्ष्याभयक्रोधपरीक्षितेन लुब्धेन रुग्दैन्यनिपीडितेन । प्रद्वेषयुक्तेन च सेव्यमानमन्नं न सम्यक्परिपाकमेति ॥ ३२ ॥

अब मानसिक कारण कहते हैं,—ईर्षा अर्थात् पराई सम्पदाको देखकर जलनेसे, भयसे, क्रोधसे, लोभसे, शोकसे, दीनतासे और अत्यन्त द्वेष करनेसे मनुष्योंके किया हुआ भोजन अच्छे प्रकार नहीं पचता है ॥ ३२ ॥

सामान्याजीर्णलक्षण ।

ग्लानिर्गौरवमाटोपो भ्रमो मारुतमूढता । विबन्धोऽतिप्रवृत्तिर्वा सामान्याजीर्णलक्षणम् ॥ ३३ ॥

ग्लानि,भारीपन, पेटमें अफारा और गुडगुडाहट, भ्रम, अपानवायुका अवरोध, दस्तका न आना, अथवा अत्यन्त आना ये सामान्य अजीर्णके लक्षण हैं ॥ ३३ ॥

आमाजीर्ण ।

तत्रामे गुरुतोत्क्लेदः शोथो गण्डाक्षिकूटगः । उद्गारश्च यथाभुक्तमविदग्धः प्रवर्त्तते ॥ ३४ ॥

आमाजीर्णमें भारीपन, उबकोई आना, गाल और नेत्रोंमें सूजन होना, जैसा भोजन किया जाय वैसे ही धुँयेरहित डकारका आना ये आमाजीर्णके लक्षण जानने ॥ ३४ ॥

विदग्धाजीर्णलक्षण ।

विदग्धे भ्रमतृण्मूर्च्छा पित्ताच्च विविधा रुजः । उद्गारश्च सधूमाम्लः स्वेदो दाहश्च जायते ॥ ३५ ॥

विदग्ध अजीर्णमें—भ्रम, तृषा, मूर्च्छा, पित्तके अनेक रोग, खट्टी और धूँएयुक्त डकारोंका आना, तथा पसीना और दाह होता है ॥ ३५ ॥

विष्टब्धाजीर्णलक्षण ।

विष्टब्धे शूलमाध्मानं विविधा वातवेदनाः । मलवाताप्रवृत्तिश्च स्तंभो मोहोऽङ्गसादनम् ॥ ३६ ॥

विष्टब्धाजीर्णमें शूल, अफारा, अनेक प्रकारकी वातकी पीड़ा, मल और वायुका अवरोध, शरीरका बन्धासा हो जाना, मोह और शरीरमें पीडा हो ३६

रसशेषाजीर्णलक्षण।

रसशेषेऽन्नाविद्वेषो हृदयाशुद्धिगौरवे।

रसशेष अजीर्णमें अन्नमें द्वेष अर्थात् अरुचि, हृदयमें जड़ता और भारीपन होता है॥

अनात्मवन्तः पशुवद्भुञ्जते येऽप्रमाणतः। रोगानीकस्य ते मूलमजीर्णं प्राप्नुवन्ति हि॥ ३७॥ प्रायेणाहारवैषम्यादजीर्णं जायते नृणाम्। तन्मूलो रोगसङ्घातस्तद्विनाशाद्विनश्यति॥ ३८॥

जिन मनुष्योंका मन वशमें नहीं है वे भोजनके लालची पशुके समान अप्रमाण भोजन करते हैं। अतएव उनके यह अनेक रोगोंका मूल अजीर्णरोग उत्पन्न होता है। प्रायः भोजनकी विषमतासे मनुष्योंके अजीर्णरोग उत्पन्न होता है। वही अजीर्ण रोगोंके समूहको उत्पन्न करनेका कारण है। उस अजीर्णके नष्ट होनेसे सर्व रोग नष्ट हो जाते हैं॥ ॥ ३७॥ ३८॥

अजीर्णोपद्रव।

मूर्च्छा प्रलापो वमथुः प्रसेकः सदनं भ्रमः। उपद्रवा भवन्त्येते मरणञ्चाप्यजीर्णतः॥ ३९॥

मूर्च्छा, प्रलाप, वमन, मुखसे लारका गिरना, ग्लानि, भ्रम तथा मरण ये सब अजीर्णके उपद्रव हैं॥ ३९॥

अजीर्णकी चिकित्सा।

वचा लवणतोयेन वान्तिरामे प्रशस्यते। धान्यनागरसिद्धं वा तोयं दद्याद्विचक्षणः॥ ४०॥ आमाजीर्णप्रशमनं शूलघ्नं बस्तिशोधनम्॥ ४१॥

आमाजीर्णमें प्रथम वच और नमकके जलसे वमन करावे। फिर धनियाँ और सोंठका काढा बनाकर पीवे तो आमाजीर्ण शमन होता है, शूल नष्ट होता है और मूत्राशय शुद्ध होता है॥४०॥४१

अन्नं विदग्धं हि नरस्य शीघ्रं शीताम्बुना वै परिपाकमेति। तद्यस्य शैत्येन निहन्ति पित्तमाक्लेदिभावाच्च नयत्यधस्तात्॥ ४२॥

विदग्ध अजीर्णमें शीतल जल पीनेसे विदग्ध भोजन पचजाता है, और शीतताके योगसे पित्त नष्ट होकर गीलेपनसे पचे हुए भोजनको नीचे गेर देता है॥ ४२॥

विष्टब्धे स्वेदनं कार्य्यं पेयं वा लवणोदकम्। रसशेषे दिवास्वप्नं लङ्घनं वातवर्ज्जनम्॥ ४३॥ आलिप्य जठरं प्राज्ञो हिङ्गुत्र्यूषणसैन्धवैः। दिवास्वप्नं प्रकुर्वीत सर्वाजीर्णप्रणाशनम्॥ ४४

विष्टब्धअजीर्णमें पसीने निकलवावे अथवा नमक मिला जल पिलावे। रसशेष अजीर्णमें दिनमें सोना, लंघन और निर्वातस्थानमें रहना यह सब उपचार करे। हींग, त्रिकुटा और सैंधानमक इनको जलमें पीसकर पेटपर लेप करे और दिनमें शयन करे। यह सब प्रकारके अजीर्णको शमन करते हैं॥ ४३॥ ४४

व्यायामप्रमदाध्ववाहनरतान्क्लान्तानतीसारिणः शूलश्वासवतस्तृषापरिगतान्हिक्कामरुत्पीडितान्॥ क्षीणान्क्षीणकफाञ्छिशून्मदहतान्वृद्धान्रसाजीर्णिनो रात्रौ जागरितान्नरान्निरशनान्कामं दिवा स्वापयेत॥४५॥

व्यायाम (दण्ड, कसरत), स्त्रीसंसर्ग, मार्ग चलने और हाथी घोडेकी सवारीपर चढनेसे थकेहुए मनुष्योंको तथा अतीसार, शूल, श्वास, तृषा, हिचकी वातसे पीडित, क्षीण क्षीण कफवाले, मदसे पीडित, बालक, वृद्ध, अजीर्णवाले, रात्रिमें जागनेवाले और लंघन करनेवाले ऐसे मनुष्योंको दिनमें यथेच्छ शयन कराना चाहिये॥ ४५॥

पथ्यापिप्पलिसंयुक्तं चूर्णं सौवर्चलं पिबेत्। मस्तुनोष्णोदकेनाथ मत्वा दोषगतिं भिषक्॥ ४६॥ चतुर्विधमजीर्णञ्च मन्दानलमथारुचिम्। आध्मानं वातगुल्मञ्च शूलञ्चाशु नियच्छति ४७॥

हरड, पीपल और काला नमक इनके चूर्णको दहीके पानीके साथ अथवा गरमजलके साथ दोषोंकी गतिको जानकर सेवन करावे। यह योग चारों प्रकारके अजीर्ण, मन्दाग्नि, अरुचि, अफारा, वातगुल्म और शूलको शीघ्रही नष्ट करता है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

भवेदजीर्णं प्रति यस्य शङ्का स्निग्धस्य जन्तोर्बलिनोऽन्नकाले। पूर्वं स शुण्ठीमभयामशङ्को भुञ्जीत संप्राश्य हितं हिताशी ॥ ४८ ॥

स्निग्ध और बलवान् मनुष्यके भोजनके समय यदि अजीर्णकी शंका उत्पन्न हो तो वह प्रथम सोंठ और हरडको भक्षण करके पश्चात् हितकारक भोजन करे ॥ ४८ ॥

विदह्यते यस्य तु भुक्तमात्रं दह्येत हृत्कोष्ठगलश्च यस्य । द्राक्षासितामाक्षिकसंप्रयुक्तां लीढाऽभयां वै स सुखं लभेत्तु ॥ ४९ ॥

जिसके भोजन करनेपर तत्काल दाह उत्पन्न हो तथा हृदय, कोढ और गलेमें जलन हो तो दाख, चिनी और शहद इनको एकत्र मिलाकर सेवन करे इससे सुखकी प्राप्ति होती है ॥ ४९ ॥

चित्रकचविकानागरमागधिकाग्रन्थिकैर्यवागूः स्यात्। गुल्मानिलशूलहरी रुचिप्रदा वह्निजननी च ॥ ५० ॥

चीता, चव्य, सोंठ, पीपल और पीपलामूल इनके द्वारा सिद्ध की हुई यवागू गुल्म, वात आर शूलको हरनेवाली, रुचिकारक और अग्निको दीपन करनेवाली है ॥ ५० ॥

वत्सकं सप्तपर्णश्च करञ्जश्च दुरालभाम्। पाठामारग्वधं मूर्वां षड्ग्रन्थां मदनं दहेत् ॥ ५१ ॥ गोमूत्रेणोपयुक्तस्तु क्षारोऽयं वह्निदीपनः । शूले निरन्नकोष्ठेऽद्भिः कोष्णाभिश्चूर्णितं पिबेत्॥ ॥ ५२॥ हिङ्गुप्रतिविषाव्योषसौवर्चलवचाभयाः । तीव्रार्त्तिरपि नाजीर्णे पिबेच्छूलघ्नमौषधम् । दोषग्रस्तोऽनलो नालं पक्तुं दोषौषधाशनम् ॥ ५३ ॥

कुडेकी छाल, सतवन, करंज, धमासा, पाढ, अमलतास, मूर्वा, वच और मैनफल, इनको अग्निमें जलाकर भस्म कर लेवे फिर इसका क्षार ग्रहण करके गोमूत्रके साथ सेवन करे तो अग्नि दीपन होती है। जो बिना भोजन किये ही शूल उत्पन्न हो तो हींग, अतीस, त्रिकुटा, कालानमक, वच और हरड़ इनका चूर्ण करके गरमजलके साथ सेवन करे । जो अत्यंत तीव्र अजीर्णकी पीडा हो तो भी शूलनाशक औषधि नहीं पीवे, क्योंकि दोषोंसे आच्छादित हुई अग्नि दोष, औषधि और भोजनके पकानेको समर्थ नहीं है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

प्रातराशे त्वजीर्णे तु सायमाशो न दुष्यति । अजीर्णे सायमाशे तु प्रातराशो विषीभवेत् ॥ ५४ ॥

प्रात:कालेक भोजनके अजीर्णमें सन्ध्याके समय दोष नहीं होता और सन्ध्याके भोजन करनेके अजीर्णमें प्रात:काल भोजन करना विषके समान हो जाता है ॥ ५४ ॥

हिंग्वष्टकचूर्ण ।

त्रिकटुकमजमोदा सैन्धवं जीरके द्वे समधरणधृतानामष्टमो हिङ्गुभागः । प्रथमकवलभोजी सर्पिषा चूर्णमेतज्जनयति जठराग्निं वातरोगांश्च हन्ति ॥ ५५ ॥

त्रिकुटा, अजमोद, सैंधानमक, जीरा और कालाजीरा ये सब समान और हींग आठवाँ भाग लेवे; सबको एकत्र कूट पीसकर बारीक चूर्ण करे । फिर इस चूर्णको भोजनके पहले ग्रासमें घीके साथ मिलाकर भक्षण करे । यह हिंग्वष्टकचूर्ण—जठराग्निको दीपन करता है और वातरोगोंको हरता है ॥ ५५ ॥

अग्निमुख चूर्ण ।

हिङ्गुभागो भवेदेको वचा च द्विगुणा भवेत् । पिप्पली त्रिगुणा देया

शृङ्गवेरं चतुर्गुणम् ॥ ५६ ॥ यवानिका पञ्चगुणा षड्गुणा च हरीतकी। चित्रकं सप्तगुणितं कुष्ठं चाष्टगुणं भवेत् ॥ ५७ ॥ एतद्वातहरं चूर्णं पीतमात्रं प्रशस्यते। पिबेद्दध्ना मस्तुना वा सुरया कोष्णवारिणा ॥ ५८ ॥ सोदावर्त्तमजीर्णञ्च प्लीहानमुदरं तथा। अङ्गानि यस्य शीर्य्यन्ति विषं वा येन भक्षितम् ॥ ५९ ॥ अर्शोहरो दीपनश्च श्लेष्मघ्नो गुल्मनाशनः। चूर्णो ह्यग्निमुखो नाम्ना न कश्चित् प्रतिहन्यते ॥ ६० ॥

हींग१ भाग, वच२भाग, पीपल ३ भाग, अदरख ४ भाग, अजवायन ५ भाग, हरड़ ६ भाग, चीता७ भाग और कूठ ८ भाग लेवे। पश्चात् सबको एकत्र कूट पीसकर चूर्ण बनावे। इस वातनाशक अग्निमुख चूर्णको दहीके पानीके साथ अथवा सुराके साथ, किंवा मंदोष्ण जलके साथ सेवन करनेसे उदावर्त, अजीर्ण, प्लीहा और उदररोग नष्ट होते हैं। जिसका शरीर गलता है अथवा जिसने विष भक्षण करा है, और जो बवासीरसे पीडित हैं उनके लिये यह आरोग्यदायक है। अग्निको दीपन करनेवाला, कफनाशक और गुल्मनाशक है। यह अग्निमुख चूर्ण कहीं निष्फल नहीं होता है ॥ ५६—६० ॥

द्वितीयाग्निमुखचूर्ण।

चित्रकहपुषाग्रन्थिकपिप्पलिसौवर्चलाजमोदाभिः। धान्यशटीयवपुष्करक्षाराजाजितिन्तिडीकैश्च ॥ ६१ ॥ चव्ययवानीदाडिममृद्वीकैलाम्लवेतसैश्च समैः। अग्निमुखोऽयं चूर्णः काञ्जिकेन मस्तुना सीधुना ॥ ६२ ॥ पीतोऽन्यतमेन नृभिर्गुल्मारुचिवह्निपादशूलानि। दुर्नामप्लीहोदरकफवातमदान्विनाशयति ॥ ६३ ॥

चीता, हाऊबेर, पीपलामूल, पीपल, काला नमक, अजमोद, धनियाँ, कचूर, इन्द्रजौ, पोहकरमूल, जवाखार, जीरा, तिन्तिड़ी, चव्य, अजवायन, अनारदाना, दाख, इलायची और अम्लवेत ये सब औषधियें समान भाग लेकर कूट पीस कर बारीक चूर्ण करले। इस अग्निमुख चूर्णको कांजी, दहीके पानी अथवा सीधूनमक सुराके साथ सेवन करे तो गुल्म, अरुचि, अग्निकी मंदता, शूल, बवासीर, प्लीहा, उदररोग और कफवातके रोग नष्ट होतेहैं ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

भास्करलवण।

पिप्पली पिप्पलीमूलं धान्यकं कृष्णजीरकम्। सैन्धवञ्च विडञ्चैव पत्रं तालीशकेशरम् ॥ ६४ ॥ एषां द्विपलिकान्भागान्पञ्च सौवर्चलस्य च। मरिचाजाजिशुण्ठीनामेकैकस्य पलं पलम् ॥ ६५ ॥ त्वगेले चार्द्धभागे च सामुद्रात्कुडवद्वयम्। दाडिमात्कुडवञ्चैकं द्वे पले चाम्लवेतसात् ॥ ६६ ॥ एतच्चूर्णीकृतं श्लक्ष्णं गन्धाढ्यममृतोपमम्। लवणं भास्करं नाम्ना भास्करेण विनिर्मितम् ॥ ६७ ॥ जगतोऽस्य हितार्थाय वातश्लेष्मामयापहम्। तक्रमस्तुसुराशुक्रमम्लकाञ्जिकयोजितम् ॥ ६८ ॥ जाङ्गलानूपमांसेषु रसेषु विविधेषु च। मन्दाग्निना खाद्यतां शक्तो भवति पावकः ॥ ६९ ॥ अर्शांसि ग्रहणीदोषं शोथकुष्ठभगन्दरान्। हृद्रोगमामदोषांश्च विविधानुदरे स्थितान् ॥ ७० ॥ प्लीहानं वातरक्तञ्च श्वासकासोदरकृमीन्। शूलञ्च नाशयत्येतद्दुष्टं नृपमिवापदः ॥ ७१ ॥

पिपल, पीपलामूल, धनियाँ, कालाजीरा, सैंधानमक, विरियासंचरनमक, तेजपात, तालीसपत्र, नागकेशर यह प्रत्येक औषधी आठ आठ तोले, कालानमक २० तोले, कालीमिरच, जीरा, सोंठ ये प्रत्येक चार चार तोले, दालचीनी और इलायची दो दो तोले, समुद्रनोन३२तोले, अनारदाना १६ तोले और

अम्लवेत८तोले लेवे,इन सबको एकत्र बारीक पीस कर चूर्ण बनावे तो लवणभास्कर चूर्ण तैयार होताहै। यह उत्तम सुगन्धित अमृतके समान लवणभास्कर चूर्ण संसारके उपकारके लिये श्रीमान् भास्कराचार्यजीने निर्माण किया है। यह लवणभास्कर-वात और कफके रोगोंको नष्ट करता है। अनुपान-तक्र(मट्ठा), दहीका तोड़, सुरा, चुक्रनामक कांजी, नींबूका रस, जांगल और अनूपजीवोंके मांसका रस है। इसको मंदाग्निवाला सेवन करे तो अग्नि अत्यन्त दीपन होती है। यह चूर्ण-बवासीर, संग्रहणी, सूजन, कोढ़, भगन्दर,हृदयरोग,आमदोष,अनेक प्रकारके उदररोग, प्लीहा, वातरक्त, श्वास, खाँसी, उदररोग, कृमि और शूलको नष्ट करता है॥ ६४—७१॥

वडवानल चूर्ण ।

सैन्धवसमूलमगधाचव्यानलनागरहरीतक्यः । क्रमवृद्धमाग्निवर्द्धनं करोति वडवानलं चूर्णम् ॥ ७२ ॥

सैंधानमक १ भाग, पीपलामूल २ भाग, पीपल ३ भाग, चव्य ४ भाग, चीता ५ भाग, सोंठ ६ भाग और हरड़ ७ भाग लेवे। सबको एकत्र कूट पीसकर बारीक चूर्ण करलेवे तो वडवानलचूर्ण तैयार होता है। यह वडवानल चूर्ण—अग्निको अत्यन्त दीपन करता है॥ ७२॥

हिंगुद्वादशक चूर्ण ।

हिंगुसैन्धवकृष्णानां कृष्णामूलककोलयोः । यवान्याश्च हरीतक्या दाडिमाम्लिकयोस्तथा ॥ ७३ ॥ वह्निनागरकोग्राणां भागाः संवर्धिताः क्रमात् । हिंगुद्वादशकं नाम चूर्णं ब्रह्मविनिर्मितम् ॥ ७४ ॥ अरुचिं पञ्चगुल्मांश्च हृद्रोगं संनियच्छति । अष्ठीलाध्मानशूलानां द्वन्द्वमर्शांसि नाशयेत् ॥ ७५ ॥

हींग, सैंधानमक, पीपल,पीपलामूल,कालीमिरच, अजवायन, हरड़, अनारदाना, इमली, चीता, सोंठ और वच ये सब औषधि क्रमसे एकसे एक अधिक लेकर चूर्ण करे तो हिंगुद्वादशकनामवाला चूर्ण तैयार होता है। यह चूर्ण ब्रह्माजीने निर्माण किया है। यह अरुचि, पांचों प्रकारके गुल्म, हृदयरोग, आष्ठीला, आध्मान, शूल और दोनों प्रकारकी बवासीरको नष्ट करता है॥ ७३॥ ७४॥ ७५॥

बृहदग्निमुखचूर्ण ।

द्वौ क्षारौ चित्रकं पाठा करञ्जलवणानि च। सूक्ष्मैलापत्रकं भार्ङ्गी कृमिघ्नं हिंगु पुष्करम् ॥ ७६ ॥ शठी दार्वी त्रिवृन्मुस्तं वचा चेन्द्रयवास्तथा । धात्री जीरकवृक्षाम्लश्रेयसी चोपकुञ्चिका ॥ ७७ ॥ अम्लवेतसमम्लीका दाडिमं सकटुत्रिकम् । भल्लातकाजमोदा च यवानी सुरदारु च ॥ ७८॥ अभयातिविषा श्यामा हपुषारग्वधं समम् । तिलमुष्ककशिग्रूणां कोकिलाक्षपलाशयोः ॥७९॥ क्षाराणि लोहकिट्टञ्च तप्तं गोमूत्रसेचितम् । सूक्ष्मचूर्णानि कृत्वा तु समभागानि कारयेत् ॥ ८० ॥ मातुलुङ्गरसेनैव भावयेद्दिवसत्रयम् । दिनत्रयञ्च शुक्तेन आर्द्रकस्वरसेन च ॥ ८१ ॥ अत्यग्निकारकं चूर्णं प्रदीप्ताग्निसमप्रभम् । उपयुक्तं विधानेन नाशयत्यचिराद्गदम् ॥ ८२ ॥ अजीर्णकमथो गुल्मं प्लीहानं गुदजानि च । उदराण्यन्त्रवृद्धिञ्च अष्ठीलां वातशोणितम् ॥ ८३ ॥ प्रणुदत्युल्बणान्दोषान्नष्टमग्निं च दीपयेत् । समस्तव्यञ्जनोपेतं भक्तं दत्त्वा च भाजने । दापयेदस्य चूर्णस्य बिडालपदमात्रकम् ॥ ८४ ॥ गोदोहमात्रात्तत्सर्वं द्रवीभवति सोष्णकम् ॥ ८५ ॥

जवाखार, सज्जी,चीता, पाढ, करंज,पांचो नमक, छोटी इलायची, तेजपात, भारंगी, वायविडंग, हींग, पोहकरमूल, कचूर, दारुहलदी, निसोत, नागरमोथा, वच, इन्द्रजौ, आमले, जीरा,तिन्तिडीक,गजपीपल, कलौंजी, अम्लवेत, इमली, अनार,त्रिकुटा, भिलावे,

अजमोद, अजवायन, देवदारु, हरड, अतीस, पीपल, हाऊबेर, अमलतास, तिलोंका खार, मोखेका खार, सैंजनेका खार, तालमखानेका खार और गोमूत्रसे सिद्ध की हुई लोहेकी कीट इन सबको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण कर ले फिर इस चूर्णको विजोरे नींबूके रसमें तीन दिनतक भावना देवे फिर तीन दिन तक शुक्तनामक कांजीमें और तीन दिनतक अदरख-के रसमें भावना देवे तो बृहदग्निमुख चूर्ण तैयार होता है। यह चूर्ण–जठराग्निको प्रदीप्त अग्निके समान अत्यन्त दीपन करनेवाला है। इसको उपर्युक्त विधि-के अनुसार सेवन करनेसे बहुत दिनोंके रोग नष्ट हो जाते हैं। तथा अजीर्ण, गुल्म, प्लीहारोग, गुदाके रोग, उदररोग, अन्त्रवृद्धि, अष्ठीला, वातरक्त और अत्यन्त उल्बण दोषोंको नष्ट करता है। नष्ट अग्निको दीपन करता है। सम्पूर्ण व्यञ्जनोंयुक्त भातको बर्तनमें रख पश्चात् उसमें १ तोला इस चूर्णको डालकर खानेसे गोदोहनकाल अर्थात् खाया हुआ भोजन शीघ्र द्रवी-भूत हो जाता है अर्थात् पच जाता है ॥ ७६ ॥८५॥

वडवामुखचूर्ण।

पथ्यानागरकृष्णाकरञ्जबिल्वादिभिः सितातुल्यैः। वडवामुख इव जरयति बहुगुर्वपि भोजनं त्वरितम् ॥

हरड़, सोंठ, पीपल, करंज और बेलगिरी ये सब ओषधि समान भाग और सबके समान मिश्री लेवे। सबको एकत्र पीस लेवे। इसको वडवामुख चूर्ण कहते हैं। यह वडवामुख चूर्ण—अत्यन्त भारी भोजनको भी शीघ्र पचा देता है ॥

ज्वालामुखचूर्ण।

हिंग्वाम्लवेतसकटुत्रिकचित्रकेभ्यः सक्षारपौष्करफलात्रिकदाडिमेभ्यः। कार्यः पृथग्गुडपलान्यवकुट्य चूर्णो ज्वालामुखोऽयमनलस्य करोति दीप्तिम् ॥ ८६ ॥

हींग, अम्लवेत, त्रिकुटा, चीता, जवाखार, पोह-करमूल, त्रिफला और अनार ये प्रत्येक ओषधि चार २ तोले लेकर जौकुटके समान चूर्ण करे और सब चूर्णके बराबर गुड मिलावे तो ज्वालामुख चूर्ण तैयार होता है। यह ज्वालामुख चूर्ण—अग्निको अत्यन्त दीपन करता है ॥ ८६ ॥

वृषद्वादशक चूर्ण।

पिप्पल्यतिविषा हिंगुर्नागरेन्द्रयवा वचा। पाठाजमोदकटुका वृषसौवर्चलाभयाः ॥ ८७ ॥ वृषद्वादशकं चूर्णमजीर्णानाहगुल्मनुत्। भगन्दरश्वासकासमूत्रकृच्छ्रार्शसां हितम् ॥ ८८ ॥

पीपल, अतीस, हींग, सोंठ, इन्द्रजौ, वच, पाढ, अजमोद, कुटकी, अडूसा, कालानमक और हरड इन सबको समानभाग लेकर बारीक चूर्ण करले। यह वृषद्वादशक चूर्ण—अजीर्ण, आनाह, गुल्म, भगन्दर, श्वास, खाँसी, मूत्रकृच्छ्र और अर्शरोगमें अत्यन्त हितकारी है ॥ ८७॥ ८८ ॥

समशर्करचूर्ण।

एलात्वङ्नागपुष्पाणां मात्रोत्तरविवर्द्धिता। मरिचं पिप्पली शुण्ठी चतुष्पञ्च षडुत्तराः॥८९॥ द्रव्याण्येतानि यावन्ति तावती सितशर्करा। चूर्णमेतत्प्रवक्तव्यमग्निसन्दीपनं परम् ॥९०॥

इलायची १ भाग, दालचीनी २ भाग, नाग-केशर ३ भाग, कालीमिरच ४ भाग, पीपल ५ भाग और सोंठ ६ भाग लेवे। सबको एकत्र चूर्ण कर ले और सब चूर्णके बराबर सफेद चीनी मिलावे, इसको समशर्कर चूर्ण कहते हैं। यह अग्निको अ-त्यन्त दीपन करता है ॥ ८९ ॥ ९० ॥

मरिचादि चूर्ण।

मरिचाग्निकणा पथ्या दाडिमञ्च महौषधम्। हिंगुसौवर्चलोपेतं चूर्णमग्निकरं परम् ॥ ९१ ॥

कालीमिरच, चीता, पीपल, हरड़, अनारदाना, सोंठ, हींग, कालानमक इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण बनाकर सेवन करे। यह मरिचादि चूर्ण अग्निको अत्यन्त दीपन करता है ॥ ९१ ॥

नागरादि चूर्ण।

नागरं कौटजं बीजं पिप्पली बृहतीद्वयम्। चित्रकं शारिवा पाठा क्षारं लवणपञ्चकम् ॥ ९२ ॥ चूर्णं पिष्ट्वा सुरामण्डदधिकोष्णांबुकाञ्जिकैः। पि-

बेदग्निविवृद्ध्यर्थं कोष्ठवातहरं परम् ॥ ९३ ॥

सोंठ, कुडेके बीज (इन्द्रजौ), पापिल, बड़ीकटेरी, कटेरी, चोता, अनन्तमूल, पाढ, जवाखार, पांचो नमक इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर कूट पीसकर चूर्ण बनावे । इस चूर्णको सुराके साथ या मांड़के साथ, दहीके साथ अथवा गरम जलके साथ किंवा कांजीके साथ पीवे तो अत्यन्त अग्नि बढती है और कोठेकी वायु नष्ट होती है ॥९२ ॥ ९३॥

मस्तुषट्पल घृत ।

पलिकैः पञ्चकोलैस्तु घृतं मस्तु चतुर्गुणम् । सक्षारासिद्धमन्दाग्निं कफं गुल्मञ्च नाशयेत् ॥ ९४ ॥

पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता और सोंठ तथा जवाखार प्रत्येक औषधि चार २ तोले, गौका घी ४ पल और दहीका पानी घीसे चौगुना लेवे। यथाविधिसे घृत सिद्ध करे । यह घृत मन्दाग्नि कफ और गुल्मको नष्ट करनेवाला है ॥ ९४ ॥

महाषट्पल घृत ।

शृङ्गवेररसप्रस्थं घृतप्रस्थञ्च तत्समम् । चुक्रप्रस्थेन संयोज्यं तथा काञ्जिकमस्तुनोः ॥ ९५ ॥ पिप्पली मरिचं हिंगु साजमोदं सजीरकम् । हपुषाऽजाजि कृष्णा च सैन्धवं विडमौद्भिदम् ॥ ९६ ॥ सौवर्चलं यवक्षारं चित्रको हस्तिपिप्पली । चाविका पिप्पलीमूलं यवानी धान्यनागरम् ॥ ९७ ॥ एतैः कर्षसमैर्भागैर्विपचेन्मृदुनाग्निना । कफजान्हन्ति रोगांश्च वातजान्क्रमिसम्भवान् ॥९८॥ अजीर्णं जरयत्याशु नराणां बलवर्धनम् । गुल्मप्लीहोदरं शूलं ज्वरं हिक्कां प्रमीलिकाम् । ॥ ९९ ॥ महाषट्पलमित्येतज्ज्वलनं दाववह्निवत् । क्षिप्रमेव तथा रोगान्नाशयत्यशनिर्यथा॥ १००॥

अदरखका रस १प्रस्थ, घी १प्रस्थ, चूकेका रस१ प्रस्थ, कांजी १ प्रस्थ, दहीका तोड १ प्रस्थ, पपिल, कालीमिरच, हींग, अजमोद, जीरा, हाऊबेर, काला जीरा, सैंधानमक, विरियासंचरनमक, रेहका नमक, कालानमक, जवाखार, चीता, गजपीपल, चव्य, पीपलामूल, अजवायन, धनियाँ और सोंठ प्रत्येक औषधि एक २ तोला लेकर कल्क बनावे पश्चात् सबको यथाविधिसे मिलाकर मन्द २ अग्निसे पकावे।जब सिद्ध हो जाय तब उतार लेवे । यह घृत सम्पूर्ण कफके रोग, वातरोग, कृमिरोग, अजीर्ण, गुल्म,प्लीहा,उदररोग,शूल,ज्वर,हिचकी और तन्द्राको नष्ट करता है । यह मनुष्योंके बलको बढानेवाला और अत्यन्त अग्निको दीपन करनेवाला है९५॥१००

मरिचादि घृत ।

मरिचं पिप्पलीमूलं नागरं पिप्पली तथा । भल्लातकं यवानी च विडङ्गं हस्तिपिप्पली ॥ १०१ ॥ हिंगुः सौवर्चलश्चैव विडसैन्धवचव्यकम् । सामुद्रश्च यवक्षारं चित्रको वचया सह ॥ १०२ ॥ एतैरर्धपलैर्भागैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् । दशमूलरसे सिद्धं पयसा द्विगुणेन च ॥ १०३ ॥ मन्दाग्नीनां हितं सिद्धं ग्रहणीदोषनाशनम् । विष्टम्भमामदौर्बल्यं प्लीहानमपकर्षति ॥ १०४ ॥ कासं श्वासं क्षयश्चापि दुर्नाम सभगन्दरम् । कफजान्हन्ति रोगांश्च वातजान्क्रमिसम्भवान् ॥ १०५ ॥ तान्सर्वान्नाशयत्याशु शुष्कं दावानलो यथा ॥ १०६ ॥

कालीमिरच, पीपलामूल, सोंठ, पीपल, भिलावे, अजवायन, वायविडंग, गजपीपल, हींग, कालानमक, विडनमक, सैंधानमक, चव्य, समुद्रनमक, जवाखार, चीता और वच ये प्रत्येक ओषधि दो दो तोले एवं उत्तम गौ का घी एक प्रस्थ, दशमूलका क्वाथ १ प्रस्थ और दूध २ प्रस्थ लेवे । सबको यथाविधि से मिलाकर विधिपूर्वक घृतको सिद्ध करे । यह घृत मन्दाग्निवाले मनुष्योंके लिये हितकारी और संग्र-

हणीको नष्ट करनेवाला है । तथा विष्टम्भ, आम, दुर्बलता, प्लीहा, खाँसी, श्वास, क्षय, बवासीर, भगन्दर, सर्वप्रकारके कफरोग, वातरोग, कृमिरोग इन सबको इस प्रकार नष्ट करता है । जिसप्रकार सूखे वनको दावानल जला देती है ॥ १०१—१०६ ॥

धान्यजीरकघृत ।

धान्यजीरकसंसिद्धं घृतमग्निविवर्धनम् । रोचनं दोषशमनं छर्दिदाहविनाशनम् ॥ १०७ ॥

धनियाँ और जीरेके कल्कके द्वारा सिद्ध किया हुआ घृत--अग्निको बढानेवाला, रुचि कारक, त्रिदोषनाशक तथा वमन और दाहको शमन करनेवाला है ॥ १०७ ॥

धान्यघृत ।

धान्यकं निस्तुषं कृत्वा जले चाष्टगुणे पचेत् । तेन पादावशेषेण तत्कल्कैर्विपचेद्घृतम् ॥ १०८ ॥ वातरोगेषु सर्वेषु पैत्तिकेषु च शस्यते । कफजेषु च रोगेषु सर्पिरेतद्यथामृतम् १०९

तुषरहित धनियेको अठगुने जलमें पकावे, जब चौथाभाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे । फिर इस क्काथ और धनियेके कल्कके द्वारा घृतको सिद्ध करे । यह घृत सर्वप्रकारके वातरोग, पित्तरोग और कफ रोगोंमें अमृतके समान हितकारी है॥१०८ ॥ १०९॥

जीरकघृत ।

जीरकं चित्रकं चव्यं यवानी नागरं तथा । पलिकानि च तत्सर्वं पञ्चैव लवणानि च ॥ ११० ॥ आरनालाढकं दत्त्वा घृतप्रस्थं विपाचयेत् । एतदग्निविवृद्ध्यर्थमर्शसां नाशनं परम् ॥ १११ ॥

जीरा, कालाजीरा, चीता, चव्य, अजवायन, सोंठ और पांचोंनमक, प्रत्येक औषधि चार चार तोले, कांजी १ आढक और घी १ प्रस्थ लेवे । सबको यथाविधिसे मिलाकर घृतको सिद्ध करे । यह घृत— अग्निको दीपन करनेवाला और बवासीरको हरनेवाला है ॥ ११० ॥ १११ ॥

धान्यकघृत ।

धान्यकस्य तु शुद्धस्य चतुःषष्टिपलानि च । जलद्रोणे विपक्तव्यं यावत्पादावशेषितम् ॥ ११२ ॥ घृतप्रस्थं पचेत्तेन शनैर्मृद्वग्निना भिषक् । जीरकस्य पलान्यष्टौ कल्कीकृत्य निधापयेत् ॥ ११३ ॥ अग्निसन्दीपनं हृद्यं पिबेच्छ्लेष्मनिबर्हणम् । आमशूलं गुदे शूलं शूलं वङ्क्षणयोनिजम् ॥११४॥ आमवातमुदावर्त्तमर्शोरोगांश्च नाशयेत् ॥

शुद्ध धनियां ६४ पल लेकर एक द्रोण जलमें पकावे, जब चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर इस क्काथमें १ प्रस्थ घी और जीरेका कल्क ८ पल डालकर यथाविधि मंद २ अग्निसे घृतको पकावे । यह घृत–अग्निको दीपन करनेवाला, हृदयको हितकरी, कफनाशक तथा आमशूल, गुदजशूल, वंक्षणशूल, योनिशूल, आमवात, उदावर्त्त और सब प्रकारकी बवासीरको हरनेवाला है॥११२--११४

अग्निघृत ।

पिप्पली पिप्पलीमूलं चित्रको हस्तिपिप्पली । हिंगुचव्याजमोदा च पञ्चैव लवणानि च ॥ ११५ ॥ द्वौ क्षारौ हपुषा चैव दद्यादर्धपलोन्मितान् । दधिकाञ्जिकशुक्तानि घृतमात्रा समानि च ॥ ११६ ॥ आर्द्रकस्य रसप्रस्थे घृतप्रस्थं विपाचयेत् । एतदग्निमुखं नाम मन्दाग्नीनां प्रशस्यते ॥ ११७ ॥ अर्शसां नाशनं श्रेष्ठं तथा गुल्मोदरापहम् । ग्रन्थ्यर्बुदापचीकासकफमेदोऽनिलानपि ॥ ११८ ॥ नाशयेद्ग्रहणीदोषं श्वयथुं सभगन्दरम् । ये च बस्तिगता रोगा ये च कुक्षिं समाश्रिताः । सर्वांस्तान्नाशयत्याशु सूर्यस्तम इवोदितः ॥ ११९ ॥

पीपल, पीपलामूल, चीता, गजपीपल, हींग, चव्य, अजमोद, पांचोंनमक, जवाखार, सज्जी और हाऊबेर ये प्रत्येक औषधि दोदो तोले, दही, कांजी, शुक्त, अदरखका रस और घी ये सब समानभाग लेवे । सबको यथाविधि मिलाकर उत्तम विधिसे घृतको सिद्ध करे । यह अग्निमुख घृत-मंदाग्निवाले मनुष्योंको अत्यन्त हितकारी है। तथा बवासीर, गुल्म, उदररोग, संग्रहणीरोग, सूजन, भगन्दर, सर्वप्रकारके बस्तिगतरोग और सर्वप्रकारके कुक्षिगतरोगोंको नष्ट करता जिसप्रकार उदयहुआ सूर्य अंधकारके समूहको नष्ट करता है ११५--११९॥

अल्पचुक्र ।

यन्मस्त्वादि शुचौ भाण्डे सक्षौद्रगुडकाञ्जिकम् । धान्यराशौ त्रिरात्रस्थं शुक्तं चुक्रं तदुच्यते ॥ १२० ॥

शुद्धबर्तनमें शहद, गुड़, कांजी और मस्त्वादि (दहीका पानी इत्यादि) भरकर तीन राततक धानोंके ढेरमें रक्खा रहने देवे । इसको अल्पचुक्र कहते हैं ॥ १२० ॥

चुक्रसन्धानविधान ।

गुडक्षौद्रारणालानि समस्तूनि यथोत्तरम् । शंसन्ति द्विगुणान्भागान्सम्यक्चुक्रस्य सिद्धये ॥ १२१ ॥

चुक्रके बनानेके लिये गुड़ १ भाग, सहद २ भाग, कांजी ४ भाग और दहीका पानी ८ भाग लेना चाहिये ॥ १२१ ॥

बृहच्चुक्रसन्धानविधान ।

प्रस्थं तंडुलतोयतस्तुषजलात्प्रस्थत्रयं चाम्लतः प्रस्थार्धं दधितोऽम्लमूलकफलान्यष्टौ गुडान्मानिके । मान्यौ शोधितशृङ्गवेरसकला द्वे सिन्धवजाज्योः पले द्वे कृष्णोषणयोर्निशापलयुगं निक्षिप्य भाण्डे दृढे ॥ १२२ ॥ स्निग्धे धान्ययवादिराशिनिहितं त्रीन्वासरान्स्थापयेद्ग्रीष्मे तोयधरात्यये च चतुरो वर्षासु पुष्पागमे ॥ षट्शीतेऽष्टदिनान्यतः परिमितं विस्राव्य संवापयेच्चातुर्जातपलेन संहितमिदं शुक्तश्च चुक्रश्च यत् ॥ १२३ ॥ हन्याद्वातकफामदोषजनितान्नानाविधानामयान् दुर्नामानि च शूलगुल्मजठरान्हत्वाऽनलं दीपयेत्॥ १२४ ॥

चावलोंका जल १ प्रस्थ, तुषादक कांजी ३ प्रस्थ, अम्लदही आधा प्रस्थ या नींबूका अर्क, मूली और फल ८ प्रस्थ, गुड ३२ तोले, शुद्ध अदरख सबसे दुगुना, सैंधा नमक ८ तोले, जीरा ८ तोले, पीपल ८ तोले, कालीमिरच ८ तोले, और हल्दी ८ तोले लेवे । सबको एकत्र करके उत्तम विधिसे दृढ और चिकने बासनमें भरके धानोंके ढेरमें तीन दिनतक गाड देवे यह सन्धान ग्रीष्म और प्रावृट् ऋतुमें चार दिनमें, वर्षा ऋतु और वसन्तऋतुमें छः दिनमें और हेमन्तऋतुमें आठ दिनमें तैयार हो जाता है। फिर इसको छानकर चातुर्जातक (दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर) का चूर्ण चारतोले मिला देवे । इसको शुक्त और चुक्र कहते हैं । यह-वात, कफ, आमदोषजन्य रोग, अनेक प्रकारके रोग, बवासीर, शूल, गुल्म और समस्त उदररोगोंको नष्ट करता है तथा मन्दाग्निको दीपन करता है ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ १२४ ॥

चित्रकगुड ।

वह्नेर्द्विपञ्चमूलस्य क्वाथे पलशतद्वये । अमृताया रसस्यैके पूतेऽस्मिन्नभयाढके ॥ १२५॥ पचेद्गुडतुलां तावद्यावद्दापाकलक्षणम् । अन्येद्युस्तत्र मधुनः सुशीते कुडवद्वयम् ॥ १२६ ॥ प्रक्षिपेत्त्रिसुगन्धस्य त्रिकटोश्च पलं पलम् । प्रत्येकं स्याद्यवक्षाराच्छुक्तिस्तस्मिन्रसायने ॥ १२७ ॥ उत्तमं कथितं पुंसामश्विभ्यामग्निवृद्धये । जीर्यत्यपि हि काष्ठानि कासश्वासं क्षयं कृमीन् ॥ १२८ ॥ गुल्मोदरार्शःकुष्ठानि सान्त्रवृद्धिं निहन्ति च । योगैः शतैरप्यजितांस्ग्रहाञ्जयति पीनसान् ॥ १२९ ॥

चीते और दशमूलका काथ २००पल, गिलोयका रस एक आढक, हरड़का काथ एक आढ़क और उत्तम गुड़ १००पल लेवे. सबको यथाविधिसे मिला कर पकावे, जब पाक सिद्ध होजाय तब उतार लेवे। फिर दूसरे दिन शीतल होनेपर उसमें शहद दो कुडव, त्रिसुगन्ध (दालचीनी, इलायची, तेजपात) और त्रिकुटा (सोंठ,मिरच, पीपल) प्रत्येक चार२ तोले और जवाखार दो तोले मिलादेवे । यह उत्तम रसायन अश्विनीकुमारोंने अग्निको दीपन करनेके लिये कही है । इसको सेवन करनेसे काष्ठ भी जीर्ण होजाता है । एवं खाँसी, श्वास, क्षय,कृमि,गुल्म, उदररोग, बवासीर, कोढ़, अन्त्रवृद्धि तथा सैकड़ों औषधियोंसे भी आरोग्य नहीं हुआ पीनसरोग इससे तीन दिनमें नष्ट हो जाता है ॥१२५--१२९ ॥

चित्रकहरीतक्यमृतेत्यत्र चित्रकादीनां त्रयाणामम्भः प्रत्येकं पञ्चाशत्पलं दत्त्वा विस्राव्य सार्द्धद्वादशवासराः स्थापयितव्यम् ॥

चीता, हरड और गिलोय, प्रत्येक औषधियोंमें पांच २ सौ पल जल डालकर काथ पकाना चाहिये फिर छानकर अठारह दिनतक रखना चाहिये ।

क्षारगुड ।

द्वे पाठे दशमूलार्ककट्फलातिविषात्रिवृत् । भागैर्दशपलान्दत्त्वा जलद्रोणे विपाययेत् ॥ १३० ॥ पादशेषे गुडतुलां दत्त्वा पक्के गुडे ततः। चूर्णितां पञ्चपलिकां चव्यव्योषहरीतकीम् ॥ १३१॥ चित्रकं सयवक्षारं द्विगुणं तत्र दापयेत् ।दर्व्याः प्रलेपनं वापि ततस्तमवतारयेत्॥ १३२॥ हिंग्वम्लवेतसं चव्यं त्रिवृतस्तु पलं तथा। क्षिप्त्वा चैकीकृतं सर्वं स्थापयेद्भाजने शुभे ॥ १३३ ॥ततः क्षारगुडं खादेदजीर्णारुचिनाशनम्।प्लीहार्शःशोथपांडुत्वमेहकुष्ठजरापहम् ॥ १३४॥

दोनों प्रकारका पाढ़, दशमूल, आक, कायफल, अतीस और निसोत ये प्रत्येक दश दश पल लेकर एक द्रोण जलमें पकावे । जब चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे । फिर उसमें गुड १०० पल,चव्य,त्रिकुटा और हरडका चूर्ण५पल, चीता और जवाखार १० पल मिलाकर पकावे। जब पकते पकते करछीसे चिपटने लगे, तब उतार लेवे। फिर इसमें हींग, अमलवेत, चव्य और निसोतका चूर्ण चार तोले मिलाकर सबको एकमएक करके एक उत्तम चिकने बासनमें भरकर रख देवे । इस क्षारगुडको अजीर्ण,अरुचि, प्लीहा, बवासीर, सूजन, पाण्डु, प्रमेह, कोढ और वृद्धताको दूर करनेके लिये भक्षण करे ॥ १३०-१३४ ॥

द्वितीयक्षारगुड ।

द्वे पञ्चमूले त्रिफला त्रिवृन्मूलं शतावरी । दन्ती चित्रकमास्फोता रास्ना पाठा सुधा शटी ॥ १३५ ॥ पथ्या दशपलान्भागान्दग्ध्वाम्भसि समाहरेत् । त्रिःसप्तकृत्वस्तद्भस्म जलद्रोणे च गालयेत् ॥ १३६ ॥ तद्द्रोणं साधयेदग्नौ चतुर्भागावशेषितम् । ततो गुडतुलां दत्त्वा साधयेन्मृदुनाग्निना ॥ १३७ ॥ सिद्धं गुडन्तु विज्ञाय चूर्णानीमानि दापयेत् । वृश्चिकाली द्विकाकोल्यौ यवक्षारं समावपेत्१३८ एतत्पञ्चपलान्भागान्पृथक्पञ्च पलानि च । हरीतकीं त्रिकटुकं स्वर्जिकां चित्रकं वचाम् ॥ १३९ ॥ हिंग्वम्लवेतसाभ्याञ्च द्वे पले तत्र दापयेत् ।अक्षप्रमाणां गुटिकां कृत्वा खादेद्यथाबलम् ॥ १४० ॥ अजीर्णं जरयत्येष जीर्णं सन्दीपयत्यपि । भुक्तं भुक्तञ्च जीर्य्येत पाण्डुत्वमपकर्षति ॥ १४१ ॥ प्लीहार्शांसि श्वयथुञ्च श्लेष्मकासमरोचकम् । मन्दाग्निञ्च विषाग्निञ्च कफं कण्ठोरसस्तथा ॥ १४२ ॥ कुष्ठानि च प्रमेहांश्च गुल्मं चाशु व्यपोहति । ख्यातः क्षारगुडो ह्येष रोगमस्ते प्रयोजयेत् ॥ १४३ ॥

दशमूल, त्रिफला, निसोतकी जड, शतावर, दन्ती, चीता, कोयल, रायसन, पाढ़, थूहर कचूर और हरड़, ये प्रत्येक औषधि दश २ पल लेकर अग्निसे जलाकर भस्म कर लेवे। फिर उस भस्मको२१वार एक द्रोण जलमें पकावे, फिर उस क्षार जलको पकावे जब पकते२ चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब सौ पल गुड डाल कर मन्द मन्द अग्निसे पकावे। जब गुड सिद्ध होजाय तब वृश्चिकाली (बिछारी), काकोली, क्षीरकाकोली और जवाखार ये प्रत्येक औषधि पांच२ पल, हरड, त्रिकुटा, सज्जी, चीता, वच, हींग और अमलवेत प्रत्येक आठ २ तोले मिला देवे। फिर एक २ तोलेकी गोली बनाकर बलानुसार भक्षण करे। यह क्षारगुड–अजीर्णको जीर्ण करनेवाला, जीर्णमें अग्निको दीपन करनेवाला, भोजनको तत्काल जीर्ण करने वाला, पाण्डुरागको नष्ट करनेवाला, तथा प्लीहा, बवासीर, सूजन, कफ, खाँसी, अरुचि, मंदाग्नि, विषमाग्नि, कण्ठका कफ, कोढ़, प्रमेह और गुल्म रोगको शीघ्रही नष्ट करता है। यह क्षारगुड नामसे प्रसिद्ध है। इसको रोगसे ग्रसित मनुष्यको देना चाहिये ॥ १३५--१४३ ॥

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायां अजीर्णरोगाधिकार तथा अग्निमांद्याधिकार संपूर्ण ॥

अथ विषूचिकादिनिदान।

स्वल्पं यदा दोषविबद्धमामं लीनं न तेजःपथमावृणोति। भवत्यजीर्णेऽपि तदा बुभुक्षा सा मन्दबुद्धिं विषवन्निहन्ति ॥ १४४ ॥

जब थोडासा दोषोंसे बाँधा और छिपा हुआ हो तब वह अग्निके मार्गको नहीं रोकता अर्थात् भूखको बन्द नहीं करता है इसलिये अजीर्णमें भी भूखलगती है। वह भूख मूर्ख मनुष्यको विषके समान मार देती है ॥ १४४ ॥

प्रायेणाहारवैषम्यादजीर्णं जायते नृणाम्। तन्मूलो रोगसंघातस्तद्विनाशाद्विनश्यति ॥ १४५ ॥

बहुधा आहारकी विषमतासे मनुष्योंके अजीर्ण रोग उत्पन्न होता है; जो सब रोगोंकी जड है, उसके नष्ट होनेसे सर्वरोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १४५ ॥

अजीर्णमामं विष्टब्धं विदग्धश्च यदीरितम्। विषूच्यलसकौ तस्माद्भवेच्चापि विलम्बिका ॥ १४६ ॥

आम, विष्टब्ध और विदग्ध ये जो अजीर्ण कहे हैं उनसे विषूचिका, अलसक और विलम्बिका ये तीन रोग क्रमशः उत्पन्न होते हैं ॥ १४६ ॥

सूचीभिरिव गात्राणि तुदन्सन्तिष्ठतेऽनिलः। यस्याजीर्णेन सा वैद्यैर्विषूचीति निगद्यते ॥ १४७ ॥

जिस मनुष्यके अजीर्णमें वायुसे शरीरमें सुई चुभोने सरीखी पीडा हो उसको विषूचिकारोग कहते हैं ॥ १४७ ॥

न तां परिमिताहारा लभन्ते विदितागमाः। मूढास्तामजितात्मानो लभन्तेऽशनलोलुपाः ॥ १४८ ॥

यह विषूचिका रोग परिमित भोजनकरनेवाले और वैद्यक शास्त्रको जाननेवाले मनुष्योंको उत्पन्न नहीं होता है, यह रोग उन्हींको उत्पन्न होता है जो पुरुष मूर्खबुद्धि हैं; जिनकी इन्द्रियें वशमें नहीं हैं और जो भोजनके लालची हैं ॥ १४८ ॥

विषूचिकाके लक्षण।

मूर्च्छातिसारौ वमथुः पिपासा शूलभ्रमोद्वेष्टनजृम्भदाहाः। वैवर्ण्यकम्पौ हृदये रुजश्च भवन्ति भेदः शिरसश्च तस्य ॥ १४९ ॥

मूर्च्छा, अतीसार, वमन, तृषा, शूल, भ्रम शरीरमें ऐंठन, जम्भाई, दाह, विवर्णता, कंप, हृदयमें वेदना और शिरमें तोड़ने सरीखी पीडा ये सब लक्षण जिस रोगमें हों उसको विषूचिका कहते हैं ॥ १४९ ॥

अलसकके लक्षण।

कुक्षिरानह्यतेऽत्यर्थं प्रताम्येत प्रकूजति। निरुद्धो मारुतश्चैव कुक्षावु-

परिधावति ॥ १५० ॥ वायुः कम्पभ्रमानाहशूलादीन्प्रकरोति वा । पित्तं ज्वरातिसारौ च दाहादिस्वेदनानि च ॥ १५१ ॥ श्लेष्माङ्गगुरुताछर्दिवाग्भङ्गष्ठीवनानि च ॥ १५२ ॥ वातवर्चोनिरोधश्च यस्यात्यर्थं भवेत्तु । तस्यालसकमाचष्टे तृष्णोद्गारौ च यस्य वै ॥ १५३ ॥

जिसमें कुक्षि और उदरमें अफारा हो, वेदनाके मारे कूजे, वायु रुक कर कोख, कण्ठादिमें विचरण करे तथा कम्प, भ्रम, आनाह और शूलादि उपद्रवोंको उत्पन्न करे, पित्त, ज्वर, अतीसार, दाहादि और स्वेदादि उपद्रवोंको करे। कफ, शरीरमें भारीपन, वमन, स्वरभंग और ष्ठीवन(थूकना) को करे, अपानवायु और मलमूत्रादिका अवरोध हो, तृषा लगे और डकार आवे ये लक्षण हों तो उसको अलसक कहते हैं ॥ १५० ॥ १५१ ॥ १५२ ॥ १५३ ॥

नाधो गच्छति यो नोर्ध्वमाहारो न विपच्यते । तेन सोऽलसको नाम्ना शीघ्रं देहविनाशकृत् ॥ १५४ ॥ दोषास्त्वलसके प्रोक्ताश्छर्द्यतीसारवर्जिताः । कारकास्तीव्रशूलादेः स्रोतसः सन्निरोधकाः ॥ १५५ ॥ तिर्य्यग्जातास्तनुस्तब्धाः स्तम्भवत्स्तम्भयन्ति च । स दण्डालसकस्त्याज्यः शीघ्रं देहविनाशकृत् ॥ १५६ ॥

जिस अजीर्णमें किया हुआ भोजन न ऊपरको वमनके मार्गसे निकले और न नीचेको गुदाके मार्गसे गिरे और न पचे उसको शीघ्र शरीरको नष्ट करनेवाला अलसक रोग कहते हैं। अलसकरोगमें कुपित हुए दोष यदि वमन और अतीसारको न करें तो तीव्र शूल और शरीरके स्रोतोंका अवरोध करते हैं, तथा तिर्यग् मार्गसे होकर शरीरको स्तम्भकी समान स्तंभित कर देते हैं उसको दंडालसक रोग कहते हैं यह शीघ्र प्राणोंको नष्ट करनेवाला है । इस कारण यह रोग त्याज्य है ॥१५४॥१५५॥१५६॥

विलंबिकाके लक्षण ।

दुष्टश्च भुक्तं कफमारुताभ्यां प्रवर्त्तते नोर्ध्वमधश्च यस्य । विलंबिकान्तां भृशदुश्चिकित्स्यामाचक्षते शास्त्रविदः पुराणाः ॥ १५७ ॥

जब वात, कफ दुष्ट होकर किये हुए भोजनको न वमनके द्वारा मुखमार्गसे निकालें और न गुदाके मार्गसे मलरूपसे पतित करें तब उसको आयुर्वेदके जाननेवाले वैद्य दुश्चिकित्स्य विलम्बिका रोग कहते हैं ॥ १५७ ॥

अजीर्णमें आमके कार्य ।

यत्रस्थमामं विरुजेत्तमेव देशं विशेषेण विकारजातैः । दोषेण येनावततं शरीरं तल्लक्षणैरामसमुद्भवैश्च ॥

जहां आम रहती है वह स्थान जिस दोषसे व्याप्त हो उसके लक्षणोंसे और आमके लक्षणोंसे शरीर विशेष प्रकारकी वेदना युक्त होता है ॥

असाध्य लक्षण ।

यः श्यावदन्तौष्ठनखोऽल्पसंज्ञो वम्यर्दितोऽभ्यन्तरजातनेत्रः । क्षामस्वरः सर्वविमुक्तसन्धिर्यायान्नरोऽसौ पुनरागमाय ॥

जिसके दांत, होठ और नाखून ये काले पड़जायँ, कुछ कुछ बेहोसी होवे, वमनसे पीडित होवे, नेत्र भीतरको घुसे जायँ, स्वर बैठ जाय और सर्व शरीरके जोड ढीले पडजायँ वह रोगी असाध्य जानना ।

जीर्णाहारके लक्षण ।

उद्गारशुद्धिरुत्साहो वेगोत्सर्गो यथोचितः। लघुता क्षुत्पिपासा च जीर्णाहारस्य लक्षणम् ॥ १५८ ॥

शुद्ध डकारका आना, शरीर और चित्तमें उत्साहका होना, भोजनके अनुसार मलमूत्रका ठीक उतरना, देहमें हलकापन हो और क्षुधा, तृषाका लगना ये जीर्ण आहारके लक्षण हैं ॥ १५८ ॥

विषूचिकाके उपद्रव ।

निद्रानाशोऽरतिः कम्पो मूत्राघातो विसंज्ञता । अमी उपद्रवा घोरा विषूच्यां पञ्च दारुणाः ॥ १५९ ॥

निद्राका न आना, बेकली, कंप, मूत्रका अवरोध और संज्ञाका नाश ये विषूचिकाके पांच घोर उपद्रव हैं ॥ १५९ ॥

चिकित्सा ।

विषूच्यां सर्वरूपाणि सन्नियम्य चिकित्सकः । वमनं कारयेत्क्षिप्रमुष्णेन लवणाम्बुना ॥ १६० ॥

सर्वलक्षणोंयुक्त विषूचिकारोगमें नमक और गरम जलके द्वारा वमन करावे ॥ १६० ॥

यावत्सन्तिष्ठते दुष्टो नरस्यान्नरसो हृदि । तावन्मर्म्माणि भिद्यन्ते विषं पीतवतो यथा ॥ १६१ ॥

जबतक मनुष्योंके हृदयमें दुष्ट अन्नका रस स्थित रहता है तबतक विषको पिये हुएके समान मर्म्म स्थानोंमें पीडा होती है ॥ १६१ ॥

विषूच्यामतिवृद्धायां पार्ष्ण्योर्दाहः प्रशस्यते । तद्दिने लङ्घनं कार्यं विरक्तवदुपाचरेत् ॥ १६२ ॥

अत्यन्त बढीहुई विषूचिकामें अग्निके द्वारा एँडीमें दाग देवे, तथा लंघन करावे और विरेचन करावे ॥ १६२ ॥

जातीफलश्च चुक्रश्च मिष्टतैलेन पाचयेत् । तेन मर्दनमात्रेण खल्लीशूलं निवारयेत् ॥ १६३ ॥

जायफल और चूकेको मीठे तेलमें पकाकर मर्दन करनेसे खल्ली शूल नष्ट होता है ॥ १६३ ॥

कुष्ठसैन्धवयोः कल्कं चुक्रतैलसमन्वितम् । विषूच्यां मर्दनं कोष्णं खल्लीशूलनिवारणम् ॥ १६४ ॥ चुक्राभावेऽत्र काञ्जिकं देयमिति ।

कूठ और सैंधानमक, इनके कल्कको चूक और तेलमें मिलाकर विषूचिकामें मन्दोष्ण मर्दन करनेसे खल्लीशूल नष्ट होता है । इसमें यदि चूक न मिले तो उसके अभावमें कांजी लेनी चाहिए ॥ १६४ ॥

अर्करसादितैल ।

अर्कपत्ररसप्रस्थं प्रस्थं धत्तूरकस्य च । श्वेतस्नुहीरसप्रस्थं प्रस्थं सौभाञ्जनार्द्रकात् ॥१६५॥ कुष्ठसैन्धवयोः कल्कं पले द्वे द्वे प्रमाणतः। एकीकृत्य समस्तं तद्दधिकं चाम्लकाञ्जिकम् ॥ १६६ ॥ तैलप्रस्थं समावाप्य पचेन्मृद्वग्निना शनैः । खल्लीं निवारयत्येतद्विषूचीरोगसम्भवाम् ॥ १६७ ॥ पक्षाघातामवातांश्च गृध्रसीं खञ्जपङ्गुताम् ॥

आकके पत्तोंका रस ६४ तोले, धतूरेके पत्तोंका रस ६४ तोले, सफेद थूहरका रस ६४ तोले, सैंजिनेका रस ६४ तोले, अदरखका रस ६४ तोले, कूठ और सैंधेनमकका कल्क आठ आठ तोले, दही और खट्टी कांजी एक एक प्रस्थ और तिलका तेल एक प्रस्थ लेवे । इन सबको एकत्र मिलाकर मंद मंद अग्निसे धीरे २ पकावे । यह अर्करसादि तैल--विषूचिकारोगमें उत्पन्न हुए खल्लीशूल, पक्षाघात, आमवात, गृध्रसीवात, खञ्जता और पंगुताको नष्ट करता है ॥ १६५—१६७ ॥

करञ्जनिम्बशिखरीगुडूच्यर्जुनवत्सकैः । पीतः कषायो वमनाद्घोरां हन्ति विषूचिकाम् ॥ १६८ ॥

करञ्ज, नीम, चिरायता, गिलोय, अर्जुनकी छाल और कुड़ेकी छाल इनका क्राथ बनाकर पान करे तो वमन होकर घोर विषूचिका रोग नष्ट होता है॥ १६८

हन्ति दन्त्यग्निकल्कस्तु पिप्पलीकल्कसंयुतः । पीतः कोष्णेन तोयेन क्षिप्रं हन्याद्विषूचिकाम् ॥ १६९ ॥

दन्ती, चीता और पपिल इनका कल्क बनाकर गरम जलके साथ पान करनेसे तत्काल विषूचिका नष्ट होती है ॥ १६९ ॥

अंजन।

व्योषं करंजस्य फलं हरिद्रे मूलं समावाप्य च मातुलुङ्ग्याः। छायाविशुष्का वटिका तु कार्या हन्याद्विषूचीं नयनाञ्जनेन ॥ १७० ॥

त्रिकुटा, करंजफल, दारुहल्दी, हल्दी और बिजौरे नींबूकी जड इनको एकत्र पीसकर गोली बनाकर छायामें सुखादेवे, इन गोलियोंको नेत्रोंमें आंजनेसे विषूचिका रोग नष्ट होता है ॥ १७० ॥

द्वितीय अंजन।

गुडपुष्पसारशिखरी तंडुलं गिरिकर्णिका हरिद्रे द्वे। अञ्जनगुटिका विलयति विषूचिकां त्रिकटुकसनाथा॥१७१

महुएका सार, चिरचिटके चावल, नीली कोप्पल, हल्दी, दारुहल्दी और त्रिकुटा इनको एकत्र कूट पीस कर गोली बनालेवे। इनको नेत्रोंमें आंजनेसे विषूचिका रोग नष्ट होता है॥ १७१ ॥

त्वक्पत्ररास्नाऽगुरुशिग्रुकुष्ठैरत्यम्लपिष्टैः सवचाशताह्वैः। उद्वर्त्तनं खल्लिविषूचिकाघ्नं तैलं विपक्वञ्च तदर्थकारि ॥ १७२ ॥

दालचीनी, तेजपात, रायसन, अगर, सहिंजना, कूठ, वच और शतावर इनको एकत्र नींबूके रसमें पीसकर लेप करनेसे अथवा उक्त औषधियोंका तेल पकाकर लेप करनेसे खल्लीसहित विषूचिकारोग नष्ट होता है ॥ १७२ ॥

पिपासायामथोत्क्लेशे लवंगस्याम्बु शस्यते। जातिफलस्य वा शीतं शृतं भद्रघनस्य च ॥ १७३ ॥ सरुग्वाऽऽनद्धमुदरमम्लपिष्टैः प्रलेपयेत्। दारुहैमवतीकुष्ठशताह्वाविश्वसैन्धवैः ॥ १७४ ॥ तक्रेण युक्तं यवचूर्णमुष्णं सक्षारमार्त्तिं जठरस्य हन्यात्। स्वेदो घटैर्वा बहुबाष्पपूर्णैरुष्णैस्तथाऽन्यैरपि पाणितापैः ॥ १७५ ॥

प्यास और अत्यन्त उबकाईमें लौंगोंका औटाया हुआ पानी अथवा जायफलका किम्वा नागरमोथेका काथ पान करना उत्तम है। शूलयुक्त अफारा हो तो दालचीनी, सत्यानाशी कटेरी, कूठ, शतावर, सोंठ और सैंधे नमकको नींबूके रसमें पीसकर पेटपर लेप करे। एवं जौका चून और जवाखार इनको तक्रमें मिलाकर गरम करके उदरके ऊपर लेप करनेसे उदरका शूल नष्ट होता है। अथवा घडेमें गरमजल भरकर उसके द्वारा स्वेद देनेसे या हाथोंसे सेक करनेसे विषूचिका रोग दूर होता है॥१७३॥ १७४॥१७५॥

विलंबिकालसकयोरयमेव क्रियाक्रमः ॥ १७६ ॥

विलाम्बिका और अलसक रोगमें इसीप्रकार चिकित्सा करनी चाहिए॥ १७६॥

सुरसादि करञ्जादि सहकाररसं तथा। हिंगु सौवर्चलं चुक्रं मधुमद्यानि यानि च ॥ १७७ ॥ एतेषामूर्ध्वभागित्वात्सम्यग्जीर्णेऽपि देहिनाम्। अजीर्णतामिवोद्गारो गन्धतो ह्युपलक्ष्यते॥१७८॥

सुरसादिगणकी औषधियें, करंजादिगणकी औषधियें, आमका रस, हींग, कालानमक, चूक, मधु और सब प्रकारकी मदिरा, इनके ऊर्ध्वभागी होनेसे अच्छे प्रकार जीर्ण होनेपर भी मनुष्योंको अजीर्णके समान डकारें आती हैं। और वह गन्धसे जानीजाती हैं॥ ॥ १७७ ॥ १७८ ॥

इति वंगसेने भाषाटीकायां विषूचिकादि अधिकार संपूर्ण ॥

अथ भस्मकनिदानचिकित्सा ।



कफे क्षीणे यदा पित्तं स्वस्थाने मारुतानुगम् । तीव्रं प्रवर्द्धयेदग्निं तदा तं भस्मकं वदेत् ॥ १ ॥ तृड्दाहश्वासमूर्च्छादीन्कृत्वैवात्यग्निसम्भवान् । पक्वान्नमाशु धात्वादीन् संक्षयन्नाशयेत्तनुम् । क्षणाद्भुक्तं भवेद्भस्म स रोगो भस्मकः स्मृतः ॥ २ ॥

मनुष्योंके जब कफ क्षीण होजाता है तब पित्त वातके साथ मिलकर अपने स्थानमें पहुँचकर अग्निको अत्यन्त तीव्र करदेता है, तब इसको भस्म अग्नि या भस्मक रोग कहते हैं। यह—तृषा, दाह, श्वास और मूर्च्छादि अग्निके उपद्रवोंको करता है।यह भोजनको पचाकर फिर रसरक्तादि धातुओंको पचाता है, पश्चात् देहका नाश करता है । इसमें किया हुआ भोजन क्षणभरमें भस्म होजाता है इसकारण इसको भस्मकरोग कहते हैं ॥ १ ॥ २ ॥

तं भस्मकं गुरुस्निग्धसान्द्रमण्डहिमस्थिरैः । अन्नपानैर्नयेच्छान्तिं पित्तघ्नैश्च विरेचनैः ॥ ३ ॥

इस भस्मकरोगको भारी, चिकने, गाढे, माँड, शीतल और कठिन ऐसे अन्नपानोंसे और पित्तनाशक विरेचनोंसे शमन करे ॥ ३ ॥

अत्युद्धताग्निशान्त्यै माहिषदधिदुग्धतक्रसर्पींषि । संसेवेत यवागूं समधुच्छिष्टां ससर्पिष्काम् ॥ ४ ॥

अत्यन्त बढीहुई अग्निको शान्त करनेके लिए भैंसका दही, दूध,तक्र और घृत आदि सेवन करावे अथवा मोम और घीकी बनाई हुई यवागू सेवन करावे ॥ ४ ॥

असकृत्पित्तहरणं पायसं प्रतिभोजनम् ।श्यामात्रिवृद्विपक्कं वा पयो दद्याद्विरेचनम् ॥ ५ ॥

भस्मकरोगमें वारंवार पित्तको शमन करनेवाली औषधि देनी चाहिये, तथा खीरका भोजन कराना चाहिए और काले निसोतको दूधमें पकाकर विरेचन करनेके लिये देवे ॥ ५ ॥

यत्किञ्चिन्मधुरं सेव्यं श्लेष्मलं गुरुभोजनम् । सर्वं तदत्यग्निहितं भुक्त्वा प्रस्वपनं दिवा ॥ ६ ॥

जितने मधुर, कफकारक और भारी पदार्थ हैं भस्माग्निमें उन सबका भोजन और दिनमें सोना हितकारक है ॥ ६ ॥

कफे पूर्वं जिते पित्ते मारुते वाऽनलः समः । समधातौ पचत्यन्नं पुष्ट्यायुर्बलवर्धनम् ॥ ७ ॥

कफ, पित्त और वातको पहले जीतनेसे समधातु जठराग्निको समान करती है तब अन्नको अच्छे प्रकारसे पचाती है और पुष्टि तथा आयु और बलको बढानेवाली होजाती है ॥ ७ ॥

मुहुर्मुहुरजीर्णोऽपि भोज्यान्यान्युपहारयेत् । निरिन्धनो रसं लब्ध्वा यथैवान्नेन पाचयेत् ॥ ८ ॥

वारंवार अजीर्ण होनेपर भी रोगीको थोडा २ भोजन अवश्य कराता रहे ।कारण यह है कि भोजनके न मिलनेसे जठराग्नि कभी रसको पचाकर बिलकुल शांत न होजाय अर्थात् फिर अन्नपचानेमें असमर्थ होकर शरीरको नष्ट न करदेवे ॥ ८ ॥

कोलास्थिमज्जाकल्कस्तु पीतो वाप्युदकेन वै । अचिराद्विनिहन्त्येष प्रयोगो भस्मकं नृणाम् ॥ ९ ॥

बेरकी गुठलीके भीतरकी मींगको जलमें पीसकर पान करनेसे बहुत दिनोंका भस्मकरोग नष्ट होताहै९

नारीक्षीरेण संयुक्तां पिबेदौदुम्बरीं त्वचम् । ताभ्यां वा पायसं सिद्धं पिबेदत्यग्निशान्तये ॥ १० ॥

गूलरकी छालको स्त्रीके दूधमें पीसकर पान करनेसे अथवा स्त्रीके दूधमें गूलरके छालकी खीर बनाकर अत्यन्त बढीहुई अग्निको शांत करनेके लिये देवे ॥ १० ॥

सिततण्डुलसितकमलं छागक्षीरेण पायसं सिद्धम् । भुक्त्वा घृतेन पुरुषो द्वादशदिवसान् बुभुक्षितो न भवेत् ॥ ११ ॥

सफेद चावल और सफेद कमल इनको पीसकर बकरीके दूधमें खीर बनाकर घी मिलाकर बारह दिनतक भक्षण करे तो इससे भस्मकरोग नष्ट हो जाता है ॥ ११ ॥

विदारीस्वरसं क्षीरे पचेदष्टगुणं घृतम् । माहिषं जीवनीयेन कल्केनात्यग्निनाशनम् ॥ १२ ॥

विदारीकंदका स्वरस आठ सेर, भैंसका दूध आठ सेर, गौका उत्तम घी १ सेर और जीवनीयगणकी औषधियोंका कल्क १ सेर लेवे। सबको मिलाकर यथाविधिसे घृतको सिद्ध करे। यह घृत--अत्यन्त बढी हुई अग्निको शांत करता है ॥ १२ ॥

इति वंगसेने भाषाटीकायां भस्मकरोगाधिकार संपूर्ण ॥

अथ कृमिरोगनिदान ।

कृमयस्तु द्विधाः प्रोक्ता बाह्याभ्यन्तरभेदतः । बहिर्मलकफा सृग्विट्जन्मभेदाच्चतुर्विधाः ॥ १ ॥ नामतो विंशतिविधा बाह्यास्तत्र मलोद्भवाः । तिलप्रमाणसंस्थानवर्णाः केशाम्बराश्रयाः ॥ २ ॥ बहुपादाश्च सूक्ष्माश्च यूकालिख्याश्च नामतः। द्विधा ते कोठपिटिकाः कण्डूगण्डान्प्रकुर्वते ॥ ३ ॥

बाह्य (बाहरका) और आभ्यन्तर (भीतरका) इन भेदोंसे कृमिरोग दो प्रकारका है। बाह्यकृमिरोग बाहरके मैल, कफ, रुधिर और विष्ठासे उत्पन्न होनेवाला ऐसे चार प्रकारका है और वह नामभेदसे बीस प्रकारका है, उसमें ऊपरके मैलसे उत्पन्न होनेवाले कृमियोंको बाह्यकृमि कहते हैं और वे तिलके समान व वर्णवाले होते हैं, कपडे और केशोंमें रहते हैं. वे बहुत पांववाले बहुत सूक्ष्म जूं और लीख नामसे दो प्रकारके होते हैं दोनों प्रकारके कृमि, कोठ (चकत्ते) पिडिका (फुन्सी) कण्डू (खुजली) और गांठोंको उत्पन्न करते हैं ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥

अजीर्णभोजी मधुराम्लसेवी द्रवप्रियः पिष्टगुडोपभोक्ता । व्यायामवर्जी च दिवाशयी च विरुद्धभोजी लभते कृमींस्तु ॥ ४ ॥

अजीर्णमें भोजन करनेसे, मधुर, अम्ल, द्रव (पतले), पिष्टक (पिट्ठी पदार्थ) और गुड आदि पदार्थ सदैव सेवन करनेसे, कसरत आदिको न करनेसे, दिनमें सोनेसे और विरुद्ध भोजन करनेसे मनुष्योंके कृमि रोग उत्पन्न होता है ॥ ४ ॥

माषपिष्टाम्ललवणगुडशाकैः पुरीषजाः । मांसमाषगुडक्षीरदधिशुक्तैः कफोद्भवाः ॥ ५ ॥ विरुद्धाजीर्णशाकाद्यैः शोणितोत्था भवन्ति हि ॥ ६ ॥

उडद, पिष्टकपदार्थ, खट्टे, नमकीन पदार्थ, गुड और शाक इनको सेवन करनेसे मलके कृमि उत्पन्न होते हैं। मांस, उडद, गुड, दूध, दही और शुक्त (कांजी विशेष) इनको सेवन करनेसे कफके कृमि उत्पन्न होते हैं। विरुद्ध भोजन और अजीर्ण (कच्चे) शाकादिको भक्षण करनेसे रुधिरके कृमि उत्पन्न होते हैं ॥ ५ ॥ ६ ॥

पेटमें कृमि होजानेके लक्षण ।

ज्वरो विवर्णता शूलं हृद्रोगच्छर्दनं भ्रमः । भक्तद्वेषातिसाराश्च सञ्जातकृमिलक्षणम् ॥ ७ ॥

ज्वर, शरीरका रंग बदल जाना, शूल, हृदयमें पीडा, वमन, भ्रम, भोजनमें अरुचि और अतीसार ये लक्षण उदरमें कृमि हो जानेपर होते हैं ॥ ७ ॥

कफादामाशये जाता वृद्धाः सर्पन्ति सर्वतः । पृथुवर्ध्मनिभाः केचित्केचिद्गण्डपदोपमाः ॥ ८ ॥ रूढधान्याङ्कुराकारास्तनुदीर्घास्तथाऽणवः । श्वेतास्ताम्रावभासाश्च नामतः सप्तधा तु ते

॥ ९ ॥ अन्त्रादा उदरावेष्टा हृद्यादा महागुहाः । चुरवो दर्भकुसुमाः सुगन्धास्ते च कुर्वते ॥ १० ॥ हृल्लासमास्यस्रवणमविपाकमरोचकम् । छर्दिशूलज्वरानाहकार्श्यश्वयथुपीनसान् ॥ ११ ॥

कफसे कृमि उत्पन्न होकर आमाशयमें बढकर चारों ओर फैल जाते हैं उनमें कोई मोटे चर्म्मके समान, कोई कैंचुयेके समान, कोई धान्यके अंकुरके समान, कोई छोटे, कोई बडे, कोई बहुत छोटे, कोई सफेद और कोई तांबेके समान प्रभाववाले होते हैं। और वे अन्त्राद, उदरवेष्ट, हृदयाद, महागुह, चुरव, दर्भकुसुम और सुगन्ध इन नामोंसे सात प्रकारके होते हैं। ये कुपित होकर उबकाई, मुखसे लारका गिरना, अन्नका न पचना, अरुचि, वमन, शूल, ज्वर, आनाह, कृशता, सूजन और पीनसको उत्पन्न करते हैं ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥

रक्तवाहिशिरास्थाना रक्तजा जन्तवोऽणवः । अपादावृत्तताम्राश्च सौक्ष्म्यात्केचिददर्शनाः ॥ १२ ॥ केशादा लोमविध्वंसा रोमद्वीपा उदुम्बराः । षडेते कुष्ठकर्माणः सहसौरसमातरः ॥ १३ ॥

रुधिरके बहनेवाली नाडियोंमें रहनेवाले रुधिरसे उत्पन्न हुए कृमि बहुत बारीक होते हैं, पांवरहित, गोल और तांबेके रंगके समान लाल रंगके होते हैं। उनमें कोई बहुत छोटे कृमि होते हैं जो कि देखनेमें नहीं आते उनके केशाद, लोमविध्वंस, रोमद्वीप, उदुम्बर, सौरस और मातर ये छः नाम हैं ये विशेषकर कुष्ठरोगको करते हैं ॥ १२ ॥ १३ ॥

पक्वाशये पुरीषोत्था जायन्तेऽधो विसर्पिणः । संवृद्धाश्च भवेयुश्च ते यदामाशयोन्मुखाः ॥ १४ ॥ तदास्योद्गारनिःश्वासविड्गन्धानुविधायिनः । पृथुवृत्ततनुस्थूलाः श्यावाः पीताः सितासिताः ॥ १५ ॥ ते पञ्च नामभिः ख्याताः ककेरुकमकेरुकाः । सौसुरादाः सशूलाख्या लेलिहा जनयन्ति च ॥ १६ ॥ विड्भेदशूलविष्टम्भकार्श्यपारुष्यपाण्डुताः । रोमहर्षाग्निसदनगुदकण्डूर्विमार्गगाः ॥ १७ ॥

पक्काशयमें विष्ठासे कृमि उत्पन्न होकर गुदाके मार्गसे बाहर निकलते हैं। जब वे अधिक बढजाते हैं तब आमाशयमें ऊपरको मुँह करके विचरण करनेसे उस मनुष्यके डकार और श्वासमें विष्ठाके समान दुर्गन्ध आती है वे कृमि लम्बे, गोल, छोटे, मोटे, धूसररंगके पीले, सफेद और काले होते हैं। ककेरुक, मकेरुक, सौसुराद, शूलाख्य और लेलिह ये इनके नाम हैं। यह विमार्गगामी होनेपर मलभेद, शूल, विष्टम्भ, कृशता, कर्कशता, पाण्डुता, रोमांच, मन्दाग्नि और गुदामें खुजलीको उत्पन्न करते हैं ॥ १४ ॥ १५ ॥ ॥ १६ ॥ १७ ॥

चिकित्सा।

तेषामन्यतमं वैद्यो जिघांसुः स्निग्धमातुरम् । सुरसादिविपक्वेन सर्पिषा वाऽन्नमादिशेत् ॥ १८ ॥ विरेचयेत्तीक्ष्णतमैर्योगैरास्थापयेद्धि च ॥ १९ ॥

अब कृमिरोगकी चिकित्सा कहते हैं। उन दोनों प्रकारके कृमिरोगको नष्ट करनेके लिये प्रथम रोगीको स्निग्ध करे, फिर सुरसादि औषधियोंके पकाये हुए घीके साथ अन्न देवे। अथवा तीक्ष्ण विरेचन और आस्थापन बस्तिप्रयोग करे ॥ १८ ॥ १९ ॥

विडङ्गतण्डुलव्योषशिग्रुभिर्मरिचेन च । तक्रसिद्धा यवागूः स्यात्कृमिघ्नी संस्रुवर्चिका ॥ २० ॥

वायविडंगके चावल, त्रिकुटा, सहिंजना और काली मिरच, तथा तक्र इनके द्वारा सिद्ध की हुई यवागूमें सज्जी डालकर पीवे। यह कृमिनाशक योग है २०

विडङ्गव्योषसंयुक्तमन्नमण्डं पिबेन्नरः । दीपनं कृमिनाशाय वह्नेश्च कुरुते भृशम् ॥ २१ ॥

भातके माँडमें वायविडंग और त्रिकुटेका चूर्ण डालकर पान करे। यह प्रयोग दीपन, कृमिनाशक और जठराग्निको बढानेवाला है ॥ २१ ॥

सक्षौद्रः कृमिजिद्भिः पीतः कृमिहृरशिग्रुजश्च क्वाथः। पीतं मूत्रमजाया ग्रन्थिकचूर्णान्वितं वापि॥ २२॥

वायविडंग और सहिंजनके क्वाथमें शहद डालकर पीवे अथवा पीपलामूलका चूर्ण बकरीके मूत्रके साथ पानकरे तो कृमिरोग नष्ट होता है॥ २२॥

पुष्कराह्वास्थिनिर्यासं कृमिघ्नार्द्धेन संयुतम्। लिह्याद्धर्म्मस्थितः प्रातः सर्वकृमिनिवारणम्॥

पोहरकरफूल और अस्थिनिर्यास ये समान भाग और वायविडंग आधा भाग लेवे। सबको एकत्र मिलाकर प्रातःकाल धूपमें रखकर सेवन करे तो सब प्रकारके कृमि नष्ट होते हैं॥

पारशीययवानी पीता पर्युषितवारिणा प्रातः। गुडपूर्वा कृमिजालं कोष्ठगतं पातयत्याशु॥ २३॥

खुरासानी अजवायनको बासी जलमें पीसकर गुड़ मिलाकर पान करे तो कोष्ठगत सम्पूर्ण कृमि नष्ट हो जाते हैं॥ २३॥

पारिभद्रकपत्रोत्थं रसं क्षौद्रयुतं पिबेत्। किंशुकस्य रसं वापि धत्तूरस्यापि वा रसम्॥ २४॥

नीमके पत्तोंके रसमें शहद डालकर पीनेसे अथवा ढाकके पत्तोंके रसमें शहद डालकर पीनेसे किंवा धतूरेके रसको पान करनेसे कृमि नष्ट होते हैं॥२४॥

मुस्ताखुपर्णीफलदारुशिग्रुक्वाथः सकृष्णाकृमिशत्रुकल्कः। मार्गद्वयेनापि चिरप्रवृत्तान्कृमीन्निहन्ति कृमिजांश्च रोगान्॥ २५॥

नागरमोथा, मूसाकानी, त्रिफला, देवदारु और सहिंजनेके क्वाथमें पीपल और वायविडंगका कल्क मिलाकर पान करनेसे दोनों मार्गोंसे प्रवृत्त हुए कृमि और कृमिसे उत्पन्न हुए रोग नष्ट होते हैं॥ २५॥

आखुपर्णीदलैः पिष्टैः पिष्टकेन तु पूपिकाः। जग्ध्वा सौवीरकं चानुपिबेत्कृमिहरं परम्॥ २६॥

मूसाकानीके पत्तोंको पीसकर गेहूँके आटेमें मिलाकर पूरी बनाकर खाय और ऊपरसे सौवीरनामक कांजी पीवे तो सब प्रकारके कृमिरोग नष्ट हो जाते हैं॥ २६॥

पलाशबीजस्वरसं पिबेद्वा क्षौद्रसंयुतम्। पिबेत्तद्बीजकल्कं वा तक्रेण कृमिनाशनः॥ २७॥

ढाकके बीजोंके स्वरसमें शहद मिलाकर पान करनेसे अथवा ढाकके बीजोंको तक्रमें पीसकर पान करनेसे कृमिरोग नष्ट होता है॥ २७॥

लिह्यात्क्षौद्रेण वैडङ्गं चूर्णं कृमिविनाशनम्। सुरसादिगणं वापि सर्वथैवोपयोजयेत्॥ २८॥

वायविडंगके चूर्णको शहदमें मिलाकर चाटनेसे सब कृमि नष्ट होते हैं अथवा सम्पूर्ण सुरसादिगणकी औषधियोंको इसी विधिसे सेवन करे॥ २८॥

प्रत्यहं कटुकं तिक्तं भोजनञ्च हितं भवेत्। कृमीणां नाशनं रुच्यमग्निसन्दीपनं परम्॥ २९॥

नित्य कटु और तिक्तपदार्थोंका भोजन कृमिरोगमें हितकारी है तथा कृमिरोगनाशक, रुचिकारक और अग्निको दीपन करनेवाला है॥ २९॥

त्रिफलाद्यघृत।

फलत्रयं वचा दन्तीत्रिवृत्कम्पिल्लकैः समैः। सिद्धं सर्पिर्गवां मूत्रं पीतं कृमिविनाशनम्॥ ३०॥

त्रिफला, वच, दन्ती, निसोत और कबीला इन सब ओषधियोंको समान भाग लेकर क्वाथ और कल्क बनाकर उसके द्वारा घृतको सिद्ध करे। यह त्रिफलादिघृत--कृमिरोगको नष्ट करता है॥ ३०॥

विडंगादिघृत।

त्रिफलायास्त्रयः प्रस्था विडङ्गं प्रस्थमेव च। दीप्यश्च दशमूलञ्च लाभतः समुपाहरेत्॥ ३१॥ पादशेषे जलद्रोणे पूते सर्पिर्विपाचयेत्। प्रस्थो-

न्मितं सिन्धुयुतं तत्परं कृमिनाशनम् ॥ ३२ ॥ विडङ्गघृतमित्येतल्लेह्यं शर्करया सह ॥ सर्वकृमीन् प्रणुदति वज्रं मुक्तमिवासुरान् ॥ ३३ ॥

त्रिफलेकी तीनों ओषधि ३ प्रस्थ, वायविडंग १ प्रस्थ और दीपनीय तथा दशमूलकी जितनी औषधियें मिल सकें उतनी ही लेवे फिर सबको मिलाकर एकद्रोण जलमें पकावे, जब चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे फिर इसमें घी १ प्रस्थ और सैंधानमक १ प्रस्थ डालकर घृतको सिद्ध करे। यह विडंगघृत--कृमिनाशक है, इसमें खांड मिलाकर सेवन करे। यह सब प्रकारके कृमिरोगोंका नष्ट करनेवाला है ॥ ३१--३३ ॥

पिप्पलादिचूर्ण ।

पिप्पली पिप्पलीमूलं सैन्धवं कृष्णजीरकम् । चव्यचित्रकतालीसपत्रकं नागकेशरम् ॥ ३४ ॥ एषां द्विपलिकान्भागान्पञ्च सौवर्चलस्य च । मरिचाजाजिशुण्ठीनामेकैकस्य पलं पलम् ॥ ३५ ॥ दाडिमात्कुडवश्चैव द्वे पले चाम्लवेतसात् । सर्वमेकत्र संघृत्य योजयेत्कुशलो भिषक् ॥ ३६ ॥ पिप्पल्याद्यमिदं ख्यातं नष्टवह्नेः प्रदीपनम् । अर्शांसि ग्रहणीगुल्ममुदरं सभगन्दरम् ॥ ३७ ॥ कृमिकंडूरुचिहरं सुरयोष्णोदकेन वा । नातः परतरं किञ्चिदामशोथनिषूदनम् ॥ ३८ ॥

पीपल, पीपलामूल, सैंधानमक, कालाजीरा, चव्य, चीता, तालीसपत्र, तेजपात और नागकेशर, ये प्रत्येक ओषधि आठ आठ तोले लेवे, कालानमक २० तोले, कालीमिरच, जीरा और सोंठ ये प्रत्येक ओषधि चार तोले, अनार दाना एक कुडवपरिमाण और अमलवेत ८ तोले लेवे, इन सबको एकत्र पीसकर चूर्ण कर लेवे। यह पिप्पल्यादि चूर्ण--अग्निको दीपन करनेवाला, बवासीर, संग्रहणी, गुल्म, उदररोग, भगन्दर, कृमि, कण्डू और अरुचिको नष्ट करनेवाला है। इसको मंदोष्ण जलके साथ अथवा सुराके साथ सेवन करे। इससे उत्तम आम और सूजनको हरनेवाली अन्य ओषधि नहीं है ॥ ३४--३८ ॥

सावित्रवटक ।

पलङ्कषापले द्वे तु कृष्णायसपलद्वयम् । पथ्यामृताक्षधात्रीणां पृथगेकैकशः पलम् ॥ ३९ ॥ पूतीकचव्यव्योषाग्निकारवीकृमिनाशनैः । चूर्णितैरर्धपलिकैस्तिलतैलं पलद्वयम् ॥ ४० ॥ त्रिफलाया रसप्रस्थे खंडं प्रस्थयुगं पचेत् । दार्वीप्रलेपात्पाकश्च चातुर्जातकसंयुतम् ॥ ४१ ॥ सावित्रवटका ह्येते यथाग्निबलभक्षिताः । कृमिकोष्ठाग्निदौर्बल्यशोथगुल्मोदरव्रणान् ४२ कामलापाण्डुरोगार्शो भगन्दरगदज्वरान् । निहन्युर्वा तु सन्नद्धा वयःस्थैर्यबलप्रदाः ॥ ४३ ॥ वातप्रमेहशमनाश्चक्षुष्याः पुष्टिवर्द्धनाः । भवन्त्यतिस्निग्धभुजां वातातपनिषेविणाम् ॥ ४४ ॥

ढाकके बीज ८ तोले, काले लोहेकी भस्म आठ तोले, हरड़, गिलोय, बहेड़ा और आमला ये प्रत्येक चार ४ तोले, दुर्गंधकरंज, चव्य, सोंठ, मिरच, पीपल, चीता, काला जीरा और वायविडंग ये प्रत्येक दो दो तोले, तिलका तेल ८ तोले, त्रिफलेका रस १ प्रस्थ और खांड दो प्रस्थ लेवे, सबको एकत्र मिलाकर पकावे। जब करछीसे चिपकने लगे तब दालचीनी, इलायची, तेजपात और नागकेशर इनका चूर्ण मिलाकर बड़े बना लेवे इनको "सावित्रवटक" कहते हैं। अग्निका बलाबल विचारकर इनको भक्षण करे। यह सावित्रवटक कृमि, कोष्ठ, अग्निकी मंदता, सूजन, गुल्म, उदररोग, व्रण, कामला, पाण्डुरोग, बवासीर, भगन्दर और ज्वररोगको नष्ट करते हैं । तथा अवस्था, स्थिरता और बलको उत्पन्न करते हैं । वातको शमन तथा प्रमेहको नष्ट करते हैं, नेत्रोंको हितकारी और पुष्टिकारक हैं । इनको सेवन करनेवाला मनुष्य

अत्यन्त स्निग्ध आहार, वायु और धूपका सेवन करे॥ ३९--४४॥

रसेन्द्रेण समायुक्तो रसो धत्तूरपत्रजः। ताम्बूलपत्रजो वापि लेपनं यूकनाशनम्॥ ४५॥

धतूरेके पत्तोंके रसमें पारेको खरल करके लेप करनेसे अथवा पानके रसमें पारेको खरल कर लेप करनेसे जुयें नष्ट हो जाती हैं॥ ४५॥

मशकहरधूप।

ककुभकुसुमं विडङ्गं लाङ्गलीं भल्लातकं तथोशीरम्। श्रीवेष्टकं सर्जरसं मदनश्चैवाष्टमं दद्यात्॥ ४६॥ एष सुगन्धो धूपो मशकानां नाशनः श्रेष्ठः। शय्यासु मत्कुणानां शिरसिच वस्त्रे च यूकानाम्॥ ४७॥

कोहके फूल, वायविडंग, कलिहारी, भिलावे, खस, श्रीवेष्ट (लोबान), राल और मैनफल इनकी धूप बनाकर देनेसे मच्छरोंका नाश होता है। इस धूपको खाटमें देनेसे खटमल दूर हो जाते हैं। सिर और कपडोंमें देनेसे जुयें नष्ट हो जाती हैं॥ ४६॥ ४७॥

भण्डी पिष्टाऽऽरनालेन गोमूत्रेणाभिशिल्लकाः। कुनटी कटुतैलेन योगा यूकापहास्त्रयः॥ ४८॥

मजीठको काँजीमें पीसकर शिलारसको, गोमूत्रमें पीसकर और मैनसिलको कड्वे तेलमें पीसकर लेप करनेसे जुयें नष्ट हो जाती हैं। यह तीनों प्रत्येक जुओंको हरनेवाले हैं॥ ४८॥

भुजंगादिनाशकधूप।

लाक्षाभल्लातकश्च श्रीवासः श्वेताऽपराजिता। अर्जुनस्य फलं पुष्पं विडङ्गं सर्जगुग्गुलुः॥ ४९॥ एभिः कृतेन धूपेन शाम्यन्ति नियतं गृहे। भुजङ्गमूषका दंशा घुणामशकमत्कुणाः॥ ५०॥

लाख, भिलावे, श्रीवास, सफेद अपराजिता, अर्जुनके फल और फूल, वायविडंग, राल और गूगल इन सबकी धूप बनाकर देनेसे घरमें रहनेवाले सर्प, मूसे, डांस, घुन, मच्छर और खटमल भाग जाते हैं ४९-५०

विडंगतैल।

सविडङ्गं गन्धशिलया सुसिद्धं सुरभीजलेन कटुतैलम्। निखिला नयति विनाशं लिक्ष्यासहिताश्च वै यूकाः॥ ५१॥

वायविडंग और गन्धक इनके कल्कके द्वारा गोमूत्र मिलाकर कडवे तेलको पकावे। यह तैल-सब प्रकारकी जुआँ और लीखोंको दूर करता है॥ ५१॥

अपथ्य।

क्षीराणि मांसानि घृतानि चैव दधीनि शाकानि च पर्णवन्ति। समाषतोयान्मधुरान्रसांश्च कृमीन्जिघांसुः परिवर्ज्जयेत्तु॥ ५२॥

कृमिरोगी दूध, मांस, घृत, दही, पत्रशाक, उडद, शीतलजल और मधुररस इन सब पदार्थोंको कृमिरोगमें त्याग देवे॥ ५२॥

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायां कृमिरोगाधिकार समाप्त।

अथ पाण्डुरोग।



पांडुरोगाः स्मृताः पञ्च वातपित्तकफैस्त्रयः। चतुर्थः सन्निपातेन पञ्चमो भक्षणान्मृदः॥ १॥

वातज, पित्तज, कफज और सन्निपातज ऐसे पाण्डुरोग चार प्रकारका है और पांचवां मृत्तिकाको भक्षण करनेसे होता है॥ १॥

पाण्डुरोगके पूर्वलक्षण।

पिपासारुचिहल्लासैरुरुदाहोऽङ्गगौरवम्। रक्तलोचनता तस्य पूर्वरूपस्य लक्षणम्॥ २॥

तृषाका अधिक लगना, अरुचिका होना, उबकाईका आना, जांघोंमें दाहका होना, शरीरमें भारीपन और नेत्रोंमें लालीका होना ये पाण्डुरोगके पूर्वलक्षण जानने॥ २॥

पाण्डुरोगके उत्पन्न होनेके कारण।

यवायमम्लं लवणानि मद्यं मृदं दिवास्वप्नमतीव तीक्ष्णम्। निषेव्य-

माणस्य समेत्य रक्तं कुर्वन्ति दोषा-स्त्वचि पाण्डुतां च ॥ ३ ॥

अत्यन्त मैथुन करनेसे, अधिकतर खट्टे पदार्थों, अत्यन्त नमकीन व खारी पदार्थोंको खानेसे, मदिराको पीनेसे, मट्टीको खानेसे, दिनमें सोनेसे और बहुत तीक्ष्ण पदार्थोंको सेवन करनेसे वातादि तीनों दोष कुपित होकर रुधिरको दूषित करके शरीरकी त्वचाको पाण्डुवर्ण (पीलेरंगकी) करदेते हैं ॥ ३ ॥

पाण्डुरोगका पूर्वरूप ।

त्वक्स्फोटनिष्ठीवनगात्रसादो मृद्भक्षणप्रेक्षणकूटशोथाः । विण्मूत्रपीतत्वमथाविपाको भविष्यतस्तस्य पुरस्सराणि ॥ ४ ॥

शरीरकी त्वचाका फटना, वारंवार थूकना, देहमें ग्लानि, मृत्तिकाभक्षण करनेकी इच्छा, आंखें सूजना, मलमूत्रका पीला होना और भोजनका नहीं पचना ये लक्षण पाण्डुरोग उत्पन्न होनेसे पहले होते हैं ॥४॥

वातजपाण्डुरोगके लक्षण ।

त्वङ्मूत्रनयनादीनां रूक्षकृष्णारुणाभता । वातपांड्वामये कम्पतोदानाहभ्रमादयः ॥ ५ ॥

वातजपाण्डुरोगमें त्वचा, मूत्र, मल और नेत्रादि रूखे, काले और लाल हों, तथा कंप, तोड़ने सरीखी पीडा, आनाह और भ्रमादिक उपद्रव होते हैं ॥५॥

पित्तजपाण्डुरोगके लक्षण ।

पीतमूत्रशकृन्नेत्रो दाहतृष्णाज्वरान्वितः । भिन्नविट्कोऽतिपीताभः पित्तपांड्वामयी नरः ॥ ६ ॥

पित्तजपाण्डुरोगमें मूत्र, मल और नेत्रादि पीले हों, दाह,तृषा और ज्वर हो,मल पतला और शरीरकी प्रभा अत्यन्त पीली ये लक्षण होते हैं ॥ ६ ॥

कफजपाण्डुरोगके लक्षण ।

कफप्रसेकश्वयथुतन्द्रालस्यातिगौरवैः । पांडुरोगी कफाच्छुक्लत्वङ्मूत्रनयनाननैः ॥ ७ ॥

कफज पाण्डुरोगमें मुखसे वारंवार कफका निकलना, सूजन,तन्द्रा, आलस्य, शरीरमें अत्यन्त भारीपन और त्वचा, मूत्र, मल, नेत्र तथा मुख ये सब सफेद होते हैं ॥ ७ ॥

सर्वान्नसेविनः सर्वे दुष्टा दोषास्त्रिदोषजम् । त्रिदोषलिङ्गं कुर्वन्ति पांडुरोगं सुदुस्सहम् ॥ ८ ॥

तीनों दोषोंको कुपित करनेवाले पदार्थोंको सेवन करनेसे तीनों दोष कुपित होकर सर्व लक्षणोंयुक्त दुःसाध्य पाण्डुरोगको उत्पन्न करते हैं ॥ ८ ॥

असाध्यपांडुरोगके लक्षण ।

ज्वरारोचकहृल्लासछर्दितृष्णाक्लमान्वितः । पांडुरोगी त्रिभिर्दोषैस्त्याज्यः क्षीणो हतेन्द्रियः ॥ ९ ॥

ज्वर, अरुचि, हृल्लास (उबकाई), वमन, तृषा और ग्लानि इन उपद्रवोंसे युक्त, क्षीण और जिसकी इंद्रियें शिथिल हो गई हों एवं त्रिदोषज ऐसा पाण्डुरोगी त्यागने योग्य है ॥ ९ ॥

मृत्तिकाभक्षणजन्यपांडुरोग ।

मृत्तिकादनशीलस्य कुप्यत्यन्यतमो मलः । कषाया मारुतं पित्तमूषरा मधुरा कफम् ॥ १० ॥ कोपयेन्मृद्रसादींश्च रौक्ष्याद्भुक्तञ्च रूक्षयेत् । पूरयत्यविपक्वैव स्रोतांसि निरुणद्धि च ॥ ११ ॥ इन्द्रियाणां बलं हत्वा तेजो वीर्यौजसी तथा । पांडुरोगं करोत्याशु बलवर्णाग्निनाशनम् ॥१२॥

जो मनुष्य सदैव मिट्टी भक्षण करता है उसके वातादि दोष कुपित होते हैं ।उसमें कषैली मृतिकाको भक्षण करनेसे वात कुपित होती है, खारी मिट्टीको भक्षण करनेसे पित्त कुपित होता है और मीठी मिट्टीको खानेसे कफ कुपित होता है । फिर वही भक्षण की हुई मृत्तिका रसादि धातुओंको कुपित करके अपने रूखेपनसे भक्षण किये हुए भोजनको रूखा कर देती है और आप विना ही पके रस रक्तादि बहनेवाली नाडियोंके स्रोतोंको बंदकर

देती है, पश्चात् वह इन्द्रियोंकी शक्तिको नष्ट करके तेज, वीर्य और ओजको नष्ट करदेती है, फिर बल, वर्ण और अग्निनाशक पाण्डुरोगको उत्पन्न करती है ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥

विशेष लक्षण ।

शूनाक्षिकूटगण्डभ्रूः शूनपान्नाभिमेहनः । कृमिकोष्ठोऽतिसार्येत मलं सासृक्कफान्वितम् ॥ १३ ॥

नेत्र, गाल, भौंएँ, पाँव, नाभि और लिंग इनपर सूजनका होना, कोठेमें कीड़ोंका पड़जाना, कफ और रुधिरसे मिला हुआ वारंवार मलका उतरना ये पाण्डुरोगके विशेष लक्षण हैं ॥ १३ ॥

असाध्यलक्षण ।

पांडुरोगश्चिरोत्पन्नः खरीभूतो न सिध्यति । कालप्रकर्षाच्छूनांगो यो वा पीतानि पश्यति ॥ १४ ॥ बद्धुलं विट् सुहरितं सकफं योऽतिसार्य्यते । दीनः स्वेदादिदिग्धाङ्गश्छर्दिमूर्च्छातृडन्वितः ॥१५॥ स नास्त्यसृक्क्षयाद्यस्तु पाण्डुः श्वेतत्वमाप्नुयात् । पाण्डुदन्तनखो यस्तु पाण्डुनेत्रश्च यो नरः । पाण्डुसंघातदर्शी च पाण्डुरोगी विनश्यति१६

बहुत दिनोंका उत्पन्न हुआ पाण्डुरोग अत्यन्त पुराना होनेसे असाध्य होजाता है । जिसका शरीर सूज जाय और जिसको सम्पूर्ण पदार्थ पीले ही पीले दिखाई देवे, वह भी असाध्य होता है । जिसके कफमिश्रित, बहुतसा और हरे रंगका मल उतरे वह भी असाध्य जानना । अथवा जो मनुष्य दीन हो जाय तथा जिसका शरीर पसीने आदिसे व्याप्त हो वमन, मूर्च्छा और तृषायुक्त हो वह भी पाण्डुरोगी असाध्य जानना । रुधिरके क्षय होनेसे जिसका शरीर पीला या सफेद पड़गया हो और जिसके दाँत, नख और नेत्र पीले होगये हों तथा सम्पूर्ण संसारके पदार्थोंको पीलाही देखे वह पांडुरोगी अवश्य नष्ट हो जाता है ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥

अन्तेषु शूनं परिहीनमध्यं म्लानं तथान्तेषु च मध्यशूनम् । गुदे च शेफस्यथ मुष्कयोश्च शूनं प्रताम्यंतमसंज्ञकल्पम् ॥ १७ ॥

जिसके हाथ, पाँव और शिरमें सूजन हो और मध्यभाग दुबला हो ऐसा पाण्डुरोगी अथवा जिसके मध्य शरीरमें सूजन, हाथ, पाँव, शरीर यह कृश हों और गुदा, लिंग व अंडकोषोंमें सूजन हो, तो ऐसे पांडुरोगीको वैद्य त्याग देवे ॥ १७ ॥

विवर्जयेत्पाण्डुकिनं यशोऽर्थी तथातिसारज्वरपीडितश्च ॥ १८ ॥

यशकी इच्छा करनेवाला वैद्य अतीसार और ज्वरसे पीडित पांडुरोगीको भी त्याग देवे ॥ १८ ॥

चिकित्सा ।

साध्यश्च पाण्ड्वामयिनं समीक्ष्य स्निग्धं घृतेनोर्ध्वमधश्च शुद्धम् । सम्पादयेत्क्षौद्रघृतप्रगाढैर्हरीतकीचूर्णमयैः प्रयोगैः । पिबेद्घृतं वा रजनीविपक्वं यत्त्रैफलं तिक्तकमेव चापि॥१९॥

प्रथम पाण्डुरोगीको साध्य देखकर पश्चात् घृतसे स्निग्ध करके वमन और विरेचनके द्वारा शुद्ध करे । फिर हरड़के चूर्णमें शहद और घी मिलाकर सेवन करावे, एवं हल्दीके कल्कके द्वारा सिद्ध किया हुवा अथवा त्रिफलेके द्वारा किम्वा तिक्त पदार्थोंके द्वारा सिद्ध किया हुआ घृतपान करावे ॥ १९ ॥

विरेचनद्रव्यकृतं पिबेद्वा योगांश्च वैरेचनिकान्घृतेन ॥ २० ॥

अथवा विरेचक औषधियोंको घृतके साथ पीवे, किम्वा विरेचन औषधियोंके द्वारा सिद्ध किये हुए घृतको पान करे ॥ २० ॥

विधिः स्निग्धोऽथ वातोत्थे तिक्तः शीतस्तु पैत्तिके । श्लैष्मिके कटु रूक्षोष्णः कार्यो मिश्रस्तु मिश्रके ॥ २१ ॥

वातज पांडुरोगमें स्निग्ध क्रिया, पित्तज पांडुरोगमें तिक्त और शीतल क्रिया, कफज पाण्डुरोगमें कटु रूक्ष और उष्णक्रिया एवं मिश्रित पाण्डुरोगमें मिश्रित चिकित्सा करनी चाहिए ॥ २१ ॥

दशमूलादिक्काथ ।

द्विपञ्चमूलीक्वथितं सविश्वं कफात्मके पांडुगदे पिबेत्तत् । ज्वरेऽतिसारे

१क्षयथौ ग्रहण्यां श्वासेऽरुचौ कण्ठ-हृद्रामयेषु ॥ २२ ॥

दशमूल और सोंठ इनका क्वाथ बनाकर कफज पाण्डुरोगमें पीवे । यह–ज्वर, अतीसार, सूजन, संग्रहणी, श्वास, अरुचि, कंठ और हृदयरोगको नष्ट करता है ॥ २२ ॥

लौहादिमोदक ।

अयस्तिलत्र्यूषणकोलभागैः सर्वैः समं माक्षिकधातुचूर्णम् । तैर्मोदकः क्षौद्रयुतः सुभुक्तः पाण्ड्वामये दूरगतेऽपि शस्तः ॥ २३ ॥

लोहेकी भस्म, तिल, सोंठ, मिरच और पीपल प्रत्येक औषधि एक २ तोला लेवे और सबके बराबर शुद्ध सोनामाखीका चूर्ण लेवे । सबको शहदमें मिलाकर मोदक बनावे । यह मोदक वहुत पुराने पाण्डुरोगको नष्ट करते हैं ॥ २३ ॥

दहनाजमोदसैन्धवनागरमरिचाम्लतक्रेण । सप्ताहादग्निबलं पाण्डुर्शो वै विमर्दनं परमम् ॥ २४ ॥

चीता, अजमोद, सैंधानमक, सोंठ और काली मिरच इनका चूर्ण करके खट्टे मट्ठेके साथ सात दिन तक अग्निका बलाबल विचारकर सेवन करे तो पाण्डुरोग नष्ट होता है ॥ २४ ॥

सप्तरात्रं गवां मूत्रे भावितं चाप्ययोरजः । पाण्डुरोगप्रशान्त्यर्थं पयसा च पिबेन्नरः ॥ २५ ॥

लोहेके चूर्णको सात दिनतक गोमूत्रमें भावना देकर पश्चात् दूधके साथ पान करे तो पाण्डुरोग नष्ट होता है ॥ २५ ॥

गोमूत्रसिद्धमण्डूरचूर्णं सगुडमभ्यसेत् । पाण्डुरोगं जयेत्सर्वं पंक्तिशूलञ्च दारुणम् ॥ २६ ॥

मंडूरको गोमूत्रमें शुद्ध करके गुड़ मिलाकर सेवन करे तो सब प्रकारके पाण्डुरोग नष्ट होते हैं और दारुण परिणामशूल भी नष्ट होता है ॥ २६ ॥

अयोमलन्तु सन्तप्तं भूयो गोमूत्रसाधितम् । मधुसर्पिर्युतं लीढ्वा पाण्डुरोगी सुखी भवेत् ॥ २७ ॥ दीपनं चाग्निजननं शोथपाण्ड्वामयापहम् । कल्याणकाह्वयं दद्याद्भक्षयेद्वा गुडं नरः ॥२८॥

पुराने लोहेके किट्टको वारंवार आगमें तपाकर वारंवार गोमूत्रमें बुझावे, फिर शहद और घीमें मिलाकर सेवन करे तो पाण्डुरोगी सुखी होता है । यह--दीपन, अग्निजनक, सूजन और पांडुरोगको नष्ट करनेवाला है । अथवा कल्याणगुडको सेवन करनेसे भी उक्त फल होता है ॥ २७॥२८ ॥

मृत्तिकां भावितां दद्यात्तुल्यां निम्बरसेन वा । वार्त्ताकया कटुरोहिण्या गोमूत्रेण च भावयेत् ॥ २९ ॥ मृद्द्वेषकरणार्थन्तु भिषक् पश्चान्नियोजयेत् ॥

मृत्तिकाको बराबरके नीमके रसमें भावना देकर भक्षण करे, अथवा कटेरी और कुटकीको गोमूत्रमें भावना देकर भक्षण करे।शरीरको मृदु करनेके लिये यह औषधि पीछेसे भक्षण करनी चाहिए ॥ २९ ॥

मूर्वाद्यघृत ।

मूर्वातिक्तानिशायासकृष्णाचन्दनपर्पटैः । त्रायन्तीवत्सभूनिम्बपटोलाम्बुददारुभिः ॥३०॥ अक्षमात्रैर्घृतप्रस्थं सिद्धं क्षीरचतुर्गुणे । पाण्डुताज्वरविस्फोटशोफार्शोरक्तपित्तनुत॥३१

मूर्वा, कुटकी, हल्दी, जवासा, पीपल, चन्दन, पित्तपापडा, त्रायमाण, इन्द्रजौ, चिरायता, पटोलपात, नागरमोथा और देवदारु प्रत्येक औषधि एक२ तोला लेकर कल्क बनावे,फिर इस कल्क और चौगुने दूधके द्वारा १ प्रस्थ (६४ तोले) घृतको सिद्ध करे । यह मूर्वाद्यघृत--पाण्डुता, ज्वर, विस्फोटक, सूजन, बवासीर और रक्तपित्तको नष्ट करता है ॥ ३० ॥ ३१ ॥

कटुकाद्यघृत ।

कटुकां रोहिणीं मुस्तां हरिद्रां वत्सकत्वचम् । पटोलं चन्दनं मूर्वां त्राय-

माणां दुरालभाम् ॥ ३२ ॥ सपिप्पलीं कर्कटिकां पूतिकं देवदारु च। पिष्टाक्षमात्रं तैः सर्पिः प्रस्थं क्षीराढके पचेत् ॥ ३३ ॥ रक्तपित्तं ज्वरं दाहं श्वयथुं सभगन्दरम्। अर्शांस्यसृग्दरश्चैव हन्याद्विस्फोटकांस्तथा॥३४॥

कुटकी, नागरमोथा, हल्दी, कुडेकी छाल, पटोलपात, चन्दन, मूर्वा, त्रायमाण, धमासा, पीपल, काकड़ाशृंगी, पूतिकरंज और देवदारु, प्रत्येक औषधि १६-१६ माशे लेकर कल्क बनाकर एक आढक प्रमाण दूधके साथ एकप्रस्थ घीको सिद्ध करे। यह घृत—रक्तपित्त, ज्वर, दाह, सूजन, भगन्दर, बवासीर, रक्त प्रदर और विस्फोटकरोगको नष्ट करता है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

व्योषादिघृत।

व्योषं बिल्वं द्वे रजन्यौ त्रिफला द्वे पुनर्नवे। मुस्ता चायोरजः पाठा विडङ्गं देवदारु च ॥ ३५ ॥ वृश्चिकाली च भार्ङ्गी च सक्षीरैस्तैः शृतं घृतम्। सर्वान्प्रशमयत्याशु विकारान्मृत्तिकोद्भवान् ॥ ३६ ॥

त्रिकुटा, बेलगिरी, हल्दी, दारुहल्दी, त्रिफला दोनों प्रकारके पुनर्नवे, नागरमोथा, लोहेका चूर्ण, पाढ़, वायविडंग, देवदारु, बिछाटी और भारंगी इनके कल्कके द्वारा चौगुने दूधमें घृतको सिद्ध करे। यह व्योषादिघृत—सब प्रकारके मृत्तिकासे उत्पन्न हुए विकारोंको नष्ट करता है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

देवदार्व्यादिघृत।

देवद्रुत्रिफलाव्योषवृश्चिकालीद्वयोरजः। हरिद्रे चित्रकं भार्ङ्गी पाठे द्वे च पुनर्नवे ॥ ३७ ॥ विडङ्गं पिप्पली लोध्रं पचेन्मूत्रेचतुर्गुणे। घृतं तत्पाण्डुहृद्रोगग्रहणीगुददोषनुत् ॥ ३८ ॥

देवदारु, त्रिफला, त्रिकुटा, बिछाटी, लोहेका चूर्ण, हल्दी, दारुहल्दी, चीता, भारंगी, पाढ, सोंठ और विषखपरा, वायविडंग, पीपल और लोध, इनके कल्कके द्वारा चौगुने गोमूत्रमें घृतको सिद्ध करे। यह घृत—पाण्डुरोग, हृदयरोग, संग्रहणीरोग और गुदरोगको नष्ट करता है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

रजनीत्रिफलाद्य।

रजनीक्वाथकल्काभ्यां घृतं पाण्ड्वामयापहम्। त्रिफलाकल्कगोमूत्रसिद्धं वा माहिषं घृतम् ॥ ३९ ॥

हल्दीके क्वाथ और कल्कके द्वारा घृतको सिद्धकरके सेवन करनेसे पाण्डुरोग नष्ट होता है। अथवा त्रिफलेके कल्कके द्वारा गोमूत्रमें भैंसके घृतको सिद्ध करके सेवन करनेसे भी पाण्डुरोग नष्ट होता है ॥ ३९ ॥

दन्तीघृत।

दन्त्याश्चतुष्पलरसे पिष्टैर्दन्तीशलाटुभिः। तद्वत्प्रस्थो घृताद्गुल्मप्लीहहृद्रोगपांडुनुत् ॥ ४० ॥

दन्ती और बेलगिरीको चार पल दन्तीके क्वाथमें पीसकर उसमें एक प्रस्थ घी डालकर पकावे। यह घृत-गुल्म, प्लीहा, हृदयरोग और पाण्डुरोगको नष्ट करता है ॥ ४० ॥

दन्तीकुडवोऽत्राष्टपलिकः षोडशभिः सलिलकुडवैः।निष्क्वाथ्य पादावशेषः कृतः ॥

दन्तीघृतके सिद्ध करनेमें आठपलका कुडव लेना चाहिए। सोलह कुडव पानीमें क्वाथकर जब चतुर्थांश पानी शेष रह जाय तब उसको छानकर काममें लाना चाहिए।

योगराज।

ताप्यरजतरूप्यायोमलाः पञ्चपलाः पृथक्। चित्रकत्रिफलाव्योषविडङ्गैः पलिकैः सह ॥ ४१ ॥ शर्कराष्टपलोन्मिश्रा चूर्णिता मधुनाप्लुता। उदुम्बरसमां मात्रामतः खादेद्यथाग्निमान् ॥ ४२ ॥ दिने दिने प्रयोगेणजीर्णे भुञ्जाद्यथेप्सितम्। वर्जयित्वा कुलित्थांश्च काकमाचीकपोतकान्॥४३॥

योगराज इति ख्यातो योगोऽयममृतोपमः । रसायनमिदं श्रेष्ठं सर्वरोगहरं परम् ॥ ४४ ॥ पाण्डुरोगं विषं कासं यक्ष्माणं विषमज्वरम् । कुष्ठानि गरजं मेहं श्वासं हिक्कामरोचकम् ॥ ४५ ॥ विशेषाद्धन्त्यपस्मारं कामलां गुदजानि च ॥ ४६ ॥

सोनामाखी, रूपामाखी, रूपेकी भस्म और लोहेका चूर्ण प्रत्येक पांच २ पल लेवे चीता, त्रिफला, त्रिकुटा और वायविडंग, ये प्रत्येक औषधि चार २ तोले लेवे और खांड आठ पल लेवे। सबको एकत्र पीसकर बारीक चूर्ण करके शहदमें मिलाकर प्रति दिन एक तोले प्रमाण या अग्निका बलाबल विचार कर भक्षण करे। इसके जीर्ण होनेपर यथेष्ट भोजन करे। इसपर कुलथी, काकमाची (मकोय) और कबूतर इनको त्याग देवे। यह योग "योगराज" इस नामसे प्रसिद्ध है और अमृतके समान गुणकारी है। यह श्रेष्ठरसायन सर्वरोगनाशक है। पाण्डुरोग, विष, खांसी, राजयक्ष्मा, विषमज्वर, कुष्ठ, गरदोष, प्रमेह, श्वास, हिचकी, अरुचि, विशेष कर अपस्मार, कामलारोग और बवासीरको नष्ट करता है ॥ ४१—४६ ॥

सुवर्णमथवा रूप्यं योगे यत्र न सम्भवेत् । तत्र लोहेन कर्मापि भिषक्कुर्य्यादतन्द्रितः ॥ ४७ ॥

जहां सुवर्ण अथवा चांदी न मिले वहां वैद्य लोहेके ही द्वारा कर्म करे ॥ ४७ ॥

शिवगुटिका ।

कुटजत्रिफलानिम्बपटोलघननागरैः । भावितानि दशाहानि रसैर्द्विर्गुणितानि च ॥ ४८ ॥ शिलाजतुपलान्यष्टौ तावती सितशर्करा । त्वक्क्षीरी पिप्पली धात्री कर्कटाख्या पलोन्मिता ॥ ४९ ॥ निदग्धीफलमूलाभ्यां पलं युञ्ज्यात्त्रिजातकात् । मधुत्रिपलसंयुक्तां कुर्यादक्षसमां गुटीम् ॥ ५० ॥ दाडिमाम्लपयःक्षीररसयूषसुरासवान् । तांभक्षयित्वाऽनुपिबेन्निरन्नो हितभक्ष्यभाक् ॥ ५१ ॥ पांडुकुष्ठगरप्लीहकामलार्शोभगन्दरान् । श्रुतिदृक्छुक्रमूत्राग्निदोषशोथगदोदरान् ॥ ५२ ॥ कासासृग्वातपित्तासृक्शूलगुल्मगलग्रहान् । नेत्रचक्रगदान्हन्ति सर्वरोगहरा शुभा ॥ ५३ ॥

कुडेकी छाल, त्रिफला, नीम, पटोलपात, नागरमोथा, और सोंठ इन प्रत्येकके सोलह २ पल क्राथमें अलग २ आठ पल शिलाजीतको भावना देवे। फिर उसमें आठ पल सफेद खांड मिलावे। तथा वंशलोचन, पीपल, आमले, काकडासिंगी, कटेरीकी जड और फल, तथा त्रिजातक इन प्रत्येकका चूर्ण चार२ तोले और शहद बारह तोले मिलाकर एकएक तोलेकी गोलियां बना लेवे। प्रतिदिन एक गोली खाय और ऊपरसे अनारका रस, नींबूका रस, जल, दूध, रस, यूष, सुरा और आसव इनमेंसे किसी एकका अनुपानकरे इसपर हितकारी भोजन करे यह शिवगुटिका पाण्डुरोग, कोढ, विषदोष, प्लीहा, कामला, बवासीर भगन्दर, कर्णरोग, नेत्ररोग, वीर्यदोष, मूत्ररोग, अग्निमन्दता, सूजन, उदररोग, खांसी, वातरक्त, रक्तपित्त शूल, गुल्म, गलग्रह और सर्वप्रकारके नेत्ररोग तथा सम्पूर्ण रोगोंके समूहको हरनेवाली है ॥ ४८ ॥ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

त्र्यूषणादिवटी ।

त्र्यूषणं त्रिफला दारु हरिद्रे नीलिनीफलम् । द्राक्षा चेन्द्रयवं मुस्ता मंजिष्ठा कटुरोहिणी ॥ ५४ ॥ शतावरी शिग्रुबीजं चित्रकं गजपिप्पली । शालिपर्णी पृष्टपर्णी बृहती कण्टकारिका ॥ ५५ ॥ पाठा भल्लातकं दन्ती विशाला सदुरालभा । शटी मधुरसा रास्ना विडंगश्च समाक्षिकम् ॥ ५६ ॥ एतैश्चूर्णैः समैर्वापि लोहं द्विगुणमावपेत् । यावच्छूकश्च संमृद्य गवां मूत्रेण पाचयेत् ॥ ५७ ॥ ततोऽक्षमात्रां गुटिकां पाययेत्तंडुलाम्बुना । पाण्डु

रोगं जयत्याशु ब्रह्मदण्ड इवासुरान् ॥ ५८ ॥ कृमिकुष्ठप्रमेहार्शोग्रहणीदोषशोथहा । भगन्दरश्वासकासप्लीहगुल्मोदरापहा ॥ ५९ ॥

त्रिकुटा, त्रिफला, दारुहल्दी, हल्दी, नीलके फल, दाख, इन्द्रजौ, नागरमोथा, मजीठ, कुटकी, शतावर, सहिंजनेके बीज, चीता, गजपीपल, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, कटेरी, बडी कटेरी, पाढ, भिलावे, दन्ती, इन्द्रायण, धमासा, कचूर, मूर्वा, रायसन, वायविडंग और सोनामाखी, इन सब औषधियोंका चूर्ण समान भाग और लोहका चूर्ण दो भाग तथा जवाखार दो भाग, सबको एकत्र मिलाकर गोमूत्रमें पकावे। फिर एक २ तोलेकी गोलियां बना लेवे। प्रतिदिन एक गोली चावलोंके जलके साथ सेवन करे। यह गोली पांडुरोगको नष्ट करनेवाली है जिसप्रकार दैत्योंको ब्रह्मदण्ड शीघ्र ही नष्ट कर देता है, तथा यह गोली कृमि, कुष्ठ, प्रमेह, बवासीर, संग्रहणी, सूजन, भगन्दर, श्वास, खांसी, प्लीहा, गुल्म और उदररोगको नष्ट करती है ॥ ५४—५९ ॥

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायां पांडुरोगाधिकार सम्पूर्ण।

अथ कामलारोगनिदान।



पाण्डुरोगी तु योऽत्यर्थं पित्तलानि निषेवते । तस्य पित्तमसृङ्मांसं दग्ध्वा रोगाय कल्पते ॥ ६० ॥

जो पांडुरोगी अत्यन्त पित्तकारक पदार्थोंको सेवन करता है उसका पित्त रुधिर और मांसको जलाकर कामलारोगको उत्पन्न करता है ॥ ६० ॥

हारिद्रनेत्रः स भृशं हारिद्रत्वङ्नखाननः । रक्तपीतशकृन्मूत्रो भेकवर्णो हतेन्द्रियः॥ ६१ ॥ दाहाविपाकदौर्बल्यसदनारुचिकर्षितः । कामला बहुपित्तैषा कोष्ठशाखाश्रया मता ॥ ६२ ॥

कामलारोगमें नेत्र हल्दीके समान अत्यन्त पीले हो जाते हैं, त्वचा,नख, और मुख भी अत्यन्त पीले हो जाते हैं,मल और मूत्र लाल तथा पीले होते हैं,सम्पूर्ण शरीर बरसातके मेंढकके समान पीला होता है, इन्द्रियोंकी शक्ति नष्ट हो जाती है तथा दाह, अन्नका न पचना, दुर्बलता,अंगोंकी शिथिलता और अरुचि इनसे व्याकुल होता है इस रोगमें पित्त प्रबल होता है। यह कोष्ठाश्रित और शाखाश्रित इन भेदोंसे दो प्रकारका है ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

कुम्भकामला।

कालान्तरात्खरीभूता कृच्छ्रा स्यात्कुम्भकामला ॥ ६३ ॥

यही कामलारोग बहुत पुराना होनेसे कृच्छ्रसाध्य होकर कुम्भकामला नामसे कहा जाता है ॥ ६३ ॥

कृष्णः पीतशकृन्मूत्रो भृशं शूनश्च मानवः । सरक्ताक्षिमुखच्छर्दिविण्मूत्रो यश्च ताम्यति ॥ ६४ ॥

जिसका मल और मूत्र काला तथा पीला हो, शरीर अत्यन्त सूजनयुक्त हो तथा नेत्र, मुख, वमन, विष्ठा और मूत्र यह सब लाल हो जायँ और पीडाके मारे अत्यन्त व्याकुल हो ऐसा कामलारोगी असाध्य होता है ॥ ६४ ॥

दाहारुचितृडानाहतन्द्रामोहसमन्वितः। नष्टाग्निसंज्ञः क्षिप्रं हि कामलावान्विपद्यते ॥ ६५ ॥

दाह, अरुचि, तृषा, आनाह, तन्द्रा और मोह इन उपद्रवों सहित, तथा जिसकी अग्नि नष्ट हो गई हो और जो ज्ञानरहित हो गया हो ऐसा कामलारोगी अवश्य मर जाता है ॥ ६५ ॥

छर्द्यरोचकहृल्लासज्वरक्लमनिपीडितः ॥ नश्यति श्वासकासार्तो विड्भेदी कुम्भकामली ॥ ६६ ॥

वमन, अरुचि, उबकाई, ज्वर, ग्लानि, श्वास और खाँसी इनसे पीडित और मलका पतला उतरना इन लक्षणोंवाला कुम्भकामलारोगी अवश्य नष्ट हो जाता है ॥ ६६ ॥

चिकित्सा।

रेचनं कामलार्त्तस्य स्निग्धस्यादौ प्रयोजयेत्। ततः प्रशमनी कार्य्या क्रिया वैद्येन जानता ॥ ६७॥

प्रथम कामलारोगीको घृतादिसे स्निग्ध कराकर विरेचन करावे, पश्चात् इसको शमन करनेवाली चिकित्सा करे ॥ ६७ ॥

त्रिफलाया गुडूच्या वा दार्व्या निंबस्य वा रसः । प्रातर्माक्षिकसंयुक्तः शीलितः कामलापहः ॥ ६८ ॥

त्रिफलेके रसमें, अथवा गिलोयके रसमें किम्वा दारुहल्दीके रसमें अथवा नीमके रसमें, शहद मिलाकर प्रातःकाल पनिसे कामलारोग नष्ट होता है ॥ ६८ ॥

अञ्जनं कामलार्तानां द्रोणपुष्पीरसं शुभम् । निशागैरिकधात्रीणां चूर्णं वा संप्रकल्पयेत् ॥ ६९ ॥

उत्तम गूमाके पत्तोंके रसको अथवा हल्दी, गेरू और आमले इनके चूर्णको कामलारोगीके नेत्रोंमें आंजनेसे कामला रोग दूर होता है ॥ ६९ ॥

नस्यं कर्कोटमूलस्य घ्रेयं वा जालिनीफलम् । गुडूची पत्रकल्कं वा पिबेत्तक्रेण कामली । भक्तं तक्रेण भुञ्जीत स जहात्याशु कामलाम् ॥ ७० ॥

ककोड़ेकी जड़को पीसकर नास देनेसे, अथवा कडवी तोरईको पीसकर नास देनेसे कामलारोग दूर होता है । अथवा कामलारोगी गिलोयके पत्तोंके कल्कको तक्रके साथ पान करे वा तक्रके साथ भातको भोजन करे तो कामलारोग शीघ्र दूर होता है ॥७०॥

लोहचूर्णं निशायुग्मं त्रिफलां कटुरोहिणीम् । प्रलिह्य मधुसर्पिभ्यां कामलार्त्तः सुखी भवेत् ॥ ७१ ॥

लोहेका चूर्ण, हल्दी, दारुहल्दी, त्रिफला और कुटकी इनके चूर्णको शहद और घी मिलाकर चाटे तो कामला रोगी सुखी होता है ॥ ७१ ॥

अष्टादशांगगुटिका ।

किराततिक्तं सुरदारु दार्वी मुस्तागुडूची कटुका पटोलम् । दुरालभा पर्पटकं सनिम्बं कटुत्रिकं वापि फलत्रिकञ्च ॥ ७२ ॥ विडङ्गसारञ्च समांशकानि सर्वैः समं चूर्णमथात्र लौहम् ॥ सर्पिर्मधुभ्यां गुटिका विधेया तक्रानुपानं भिषजा प्रयोज्यम् ॥ ७३ ॥ निहन्ति पांडुं श्वयथुं प्रमेहं हलीमकं हृद्ग्रहणीप्रदोषम् । श्वासञ्च कासञ्च सरक्तपित्तमर्शांस्यथोरोग्रहमामवातम् ॥ ७४॥ व्रणान्सगुल्मान्कफविद्रधींश्च श्वित्राणि कुष्ठं सततप्रयोगात् ॥७५॥

चिरायता, देवदारु, दारुहल्दी, नागरमोथा, गिलोय, कुटकी, पटोलपत्र, धमासा, पित्तपापड़ा, नीम, त्रिकुटा, त्रिफला और वायविडंग ये सब औषधि समान भाग लेकर चूर्ण कर लेवे और सब चूर्णके बराबर लोहेका चूर्ण लेवे फिर सबको एकत्र मिलाकर शहद और घीके योगसे गोली बनावे । इस गोलीको तक्रके साथ सेवन करे । यह अष्टदशांग गुटिका निरन्तर प्रयोग करनेसे पाण्डुरोग, सूजन, प्रमेह, हलीमक, हृदयरोग, संग्रहणीरोग, श्वास, खाँसी, रक्तपित्त, बवासीर, उरोग्रह, आमवात, व्रण, गुल्म, कफ, विद्रधि और श्वित्रकुष्ठको दूर करता है ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ ७५ ॥

धात्रीलोह ।

धात्री लोहरजो व्योषनिशाक्षौद्राज्यशर्कराः । लीढ़ा निवारयत्याशु कामलामुद्धतामपि॥ ७६॥

आमले, लोहेका चूर्ण, त्रिकुटा और हल्दी इनके चूर्णको शहद, घी और मिश्रीके साथ मिलाकर खाय तो अत्यन्त बढा हुआ कामलारोग भी नष्ट होता है ॥ ७६ ॥

तुल्यां वायोरजः पथ्याहरिद्रां क्षौद्रसर्पिषा । चूर्णितां कामली लिह्याद्गुडक्षौद्रेण चाभयाम् ॥ ७७ ॥

लोहेका चूर्ण, हरड और हल्दी इनके चूर्णको समान भाग लेकर शहद और घी मिलाकर चाटे अथवा हरडके चूर्णको गुड और शहदमें मिलाकर चाटे तो कामलारोग दूर होता है ॥ ७७ ॥

हरिद्रादिघृत ।

हरिद्रात्रिफलानिम्बबलामधुकसाधितम् । सक्षीरं माहिषं सर्पिः कामलाहरमुत्तमम् ॥ ७८ ॥

हल्दी, त्रिफला, नीमकी छाल, खिरैंटी और मुलैठी इनके कल्कके द्वारा भैंसके दूधमें घृतको पकाकर सेवन करे तो कामलारोग नष्ट होता है ॥७८॥

गुडूचीघृत ।

गुडूचीरसकल्काभ्यां सिद्धं क्षीरचतुर्गुणे । माहिषं घृतमेवाशु कामलाहरमुत्तमम् ॥ ७९ ॥

गिलोयके रस और कल्कके द्वारा चौगुने दूधमें भैंसके घीको सिद्ध करे । यह घृत–कामलारोगको हरनेके लिये श्रेष्ठ है ॥ ७९ ॥

अयोरजो हरिद्रे द्वे त्रिफला कटुरोहिणी । चूर्णं कामलिनां श्रेष्ठं घृतमाक्षिकसंयुतम् ॥ ८० ॥

लोहेका चूर्ण, हल्दी, दारुहल्दी, त्रिफला और कुटकी इनका चूर्ण शहद और घीमें मिलाकर सेवन करे । यह--कामलारोगियोंको अत्यन्त हितकारी है ॥ ८० ॥

सकफो मारुतः पित्तं कामलायां बहिः क्षिपेत् । तस्य स्युः पीतमूत्रत्वक्श्वेतविट्दशनानि च ॥८१॥ विष्टम्भगौरवाटोपहिक्काश्वासज्वरादयः॥ ॥८२॥ तं हि कट्वम्लरूक्षैश्च शिखितित्तिरदक्षजैः । रसैर्यूषैश्च कौलित्थैर्मुद्गजैरपि भोजयेत् । व्योषाढ्यं बीजपूराम्लं पिबेद्वातप्रशान्तये ॥ ८३ ॥

जब कामलारोगमें कफ और वायुके साथ पित्त शरीरके बाहर त्वचादिपर गिरता है तब उसके मूत्र और त्वचा पीले तथा विष्ठा और दाँत सफेद हो जाते हैं और विष्टम्भ, गुरुता, अफारा, हिचकी, श्वास और ज्वरादि उपद्रव होते हैं । ऐसे रोगीको कटु, अम्ल और रूखे पदार्थ, मोर, तीतर और मुरगे इनका सोरुआ, कुलथी और मूँगका यूष, त्रिकुटेके चूर्णको बिजौरे नींबूके रसमें मिलाकर वातको शमन करनेके लिये सेवन करावे ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥

कुम्भाख्यकामलायां तु हितः कामलिको विधिः ॥ ८४ ॥ गोमूत्रेण पिबेत्कुम्भकामलायां शिलाजतु । मासं माक्षिकधातुं वा किट्टं वाथ हिरण्यजम् ॥ ८५ ॥

कुम्भकामलारोगमें कामलामें कही हुई विधि हितकारी है । कुम्भकामलारोगमें शिलाजीतको गोमूत्रके साथ एक महीनेतक सेवन करे, अथवा सोनामाखी या लोहेके मैलको किंवा सोनेके मैलको सेवन करे ॥ ८४ ॥ ८५ ॥

दग्ध्वाक्षकाष्ठैर्मलमायसं तु गोमूत्रनिर्वापितमष्टवारम् । विचूर्ण्य लीढं मधुनाऽचिरेण कुम्भाह्वयं पाण्डुगदं निहन्ति ॥ ८६ ॥

लोहेके मैलको लेकर बहेडेकी लकडियोंमें तपाकर गोमूत्रमें बुझावे, इसप्रकार आठवार करे। फिर इसका चूर्ण करके शहदमें मिलाकर सेवन करे तो थोडे ही कालमें कुम्भकामला और पाण्डुरोग नष्ट होता है ॥ ८६ ॥

कामलार्त्तः सृजेद्यस्तु तैलपिष्टनिभं मलम् । कफबद्धगुदस्तस्य श्लेष्मघ्नैः कामलां हरेत् ॥ ८७ ॥

कामला रोगीके यदि तैल और पिष्टकके समान मल उतरे और गुदा कफसे बँधी हो तो कफनाशक औषधियोंके द्वारा उस कामलारोगको नष्ट करे ८७॥

इति वंगसेने भाषाटीकायां
कामलाधिकार सम्पूर्ण ।

अथ पाण्डुरोगका भेद हलीमक ।

यदा तु पाण्डोर्वर्णः स्याद्धरितः श्यावपीतकः । बलोत्साहक्षयस्तन्द्रा मन्दाग्नित्वं मृदुज्वरः ॥ ८८ ॥ स्त्रीष्व-

हर्षोऽङ्गमर्दश्च श्वासस्तृष्णाऽरुचिर्भ्रमः। हलीमकं तदा तस्य विद्यादनिलपित्ततः ॥ ८९ ॥

जब पाण्डुरोगीके शरीरका रंग हरा, धूसर और पीला होता है तथा बल और उत्साहका नाश होता है, तन्द्रा, मन्दाग्नि, स्त्रीप्रसंगमें अनिच्छा, अंगोंका टूटना, श्वास,तृषा,अरुचि और भ्रम हो तब उसको हलीमकरोग कहते हैं।यह बात पित्तसे उत्पन्न होता है ॥ ८८ ॥ ८९ ॥

पानकीके लक्षण ।

सन्तापो भिन्नवर्चश्च बहिरंतश्च पीतता ।पांडुता नेत्रयोर्यस्य पानकीलक्षणं वदेत् ॥ ९० ॥

अब, पाण्डुरोगका भेद पानकी है उसके लक्षण कहते हैं । जब पाण्डुरोगीके शरीरमें सन्ताप, मल पतला हो, बाहरके त्वचादि और भीतरके मलादि पीले हों और नेत्रोंका रंग पांडुवर्ण हो तब उसको पानकी कहते हैं ॥ ९० ॥

चिकित्सा ।

पिबेत्खदिरतोयेन मद्यं लोहरजांसि च ॥ ९१ ॥

खैरके क्काथमें मदिरा और लोहेका चूर्ण मिलाकर हलीमकरोगमें पान करे ॥ ९१ ॥

सिताद्यवलेह।

सितातिक्ताबलायष्टित्रिफलारजनीयुगैः। लेहं लिह्यात्समध्वाज्यं हलीमकप्रशांतये ॥ ९२ ॥

मिश्री, कुटकी, खिरैंटी, मुलैठी, त्रिफला,हल्दी और दारुहल्दी इनका चूर्ण करके शहद और घीमें मिलाकर अवलेह बनावे। यह अवलेह हलीमकको शांत करनेके लिये सेवन करे ॥ ९२ ॥

मधुरैरम्लपानैस्तं वातपित्तहरैर्हरेत् । कामलापांडुरोगोक्तां क्रियां चात्र प्रयोजयेत् ॥ ९३ ॥

हलीमकरोगमें वातपित्तनाशक मधुर और अम्ल औषधियोंका पानक बनाकर पिलावे और कामला एवं पाण्डुरोगमें कही हुई चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ९३ ॥

अमृतादिघृत ।

अमृतलतारसकल्कप्रसाधितं तुरगविद्विषा सर्पिः । क्षीरचतुर्गुणमेतद्धितरेच्च हलीमकार्त्तेभ्यः ॥ ९४ ॥

गिलोयके स्वरस और कल्कके द्वारा भैंसके घीको चौगुने दूधमें पकावे । यह घृत हलीमकरोगको नष्ट करता है ॥ ९४ ॥

फलत्रिकामृतावासातिक्ताभूनिम्बनिम्बजः ।क्काथः क्षौद्रयुतो हन्यात्पांडुरोगं सकामलम् ॥ ९५ ॥

त्रिफला, गिलोय, अडूसा, कुटकी, चिरायता और नीम इनके क्काथमें शहद डालकर पान करे तो पाण्डु और कामलारोग नष्ट होते हैं ॥ ९५ ॥

दार्वीतिक्ताभयारिष्टवर्षाभूसुपटोलजः । क्काथः शोथोदरश्वासकामलापांडुरोगनुत् ॥ ९६ ॥

दारुहल्दी, कुटकी, हरड़, नीम, पुनर्नवा और पटोलपत्र इनका क्काथ सूजन, उदररोग, श्वास, कामला और पाण्डुरोगको दूर करता है ॥ ९६ ॥

नवायस चूर्ण ।

त्र्यूषणं त्रिफला मुस्तं विडङ्गश्चित्रकं समम् । लोहचूर्णं नवगुणं कृत्वा चूर्णं पिबेन्नरः ॥ ९७ ॥ मासं तक्रेण गोमूत्रैर्लिह्याद्वा मधुसर्पिषा । स जयेत्पांडुहृद्रोगकुष्ठशोथभगन्दरान् ॥ ९८ ॥ कृमीनर्शांसि जयति मन्दाग्नित्वमरोचकम् । युक्तितोऽभ्यसनाच्चैव जरां न लभतेऽबलम् ॥ ९९॥ इन्द्रियाणां विशुद्धिश्च बलवर्णप्रसादनम् । मासेन लभते जन्तुरेतच्चूर्णं नवायसम् १००

सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आँवला, नागरमोथा, वायविडंग और चीता ये प्रत्येक औषधि एक २ भाग और लोहेका चूर्ण नौ भाग लेवे। सबको एकत्र पीसकर एक महीने पर्यंत तक्र और गोमूत्रके साथ पान करे अथवा शहद और घीमें मिलाकर चाटे तो पांडुरोग, हृदयरोग, कोढ, सूजन, भगन्दर, कृमिरोग, बवासीर, मन्दाग्नि और अरुचि ये सब नष्ट होते हैं इस चूर्णको एक महीनेतक युक्ति और अभ्याससे विधिपूर्वक सेवन करे तो वह मनुष्य जरा और निर्बलताको प्राप्त नहीं होता है। इसके प्रभावसे इन्द्रियें शुद्ध, बल और वर्णमें प्रसन्नता उत्पन्न होती है॥ ९७--१००॥

मण्डूरवटक।

पुनर्नवात्रिवृद्व्योषविडङ्गं दारुचित्रकम्। कुष्ठं हरिद्रे त्रिफला दन्ती चव्यं कलिंगकम्॥ १०१॥ कटुका पिप्पिलीमूलं मुस्तश्चेति पलोन्मितम्। मंडूरं द्विगुणं चूर्णाद्गोमूत्रार्धाढके पचेत्॥ १०२॥ गुडवद्वटकान् कृत्वा तक्रेणालोड्य तान् पिबेत्। ते पांडुरोगं प्लीहानमर्शांसि विषमज्वरम्। श्वयथुं ग्रहणीदोषं हन्युः कुष्ठकृमींस्तथा॥ १०३॥

पुनर्नवा, निसोत, त्रिकुटा, वायविडंग, देवदारु, चीता, कूट, हल्दी, दारुहल्दी, त्रिफला, दन्ती, चव्य, इन्द्रजौ, कुटकी, पीपलामूल और नागरमोथा ये प्रत्येक औषधि एक २ पल लेकर चूर्ण करलेवे और सब चूर्णसे दुगुना मंडूर लेवे। सबको एकत्र करके आधे आढक परिमाण गोमूत्रमें पचावे। जब गुड़के समान पाक होजावे तब उसके बडे बनाकर तक्रके साथ सेवन करे। यह मंडूरवटक--पाण्डुरोग, प्लीहा, बवासीर, विषमज्वर, सूजन, संग्रहणी, कोढ और कृमिरोगको नष्ट करनेवाला है॥ १०१॥१०२॥१०३॥

बृहन्मण्डूरवटक।

त्र्यूषणं त्रिफला मुस्तं विडङ्गं चव्यचित्रकौ। दार्वीत्वङ्माक्षिकं धातुग्रन्थिकं देवदारु च॥ १०४॥ एषां द्विपलिकान्भागान्कृत्वा चूर्णं पृथक् पृथक्। मंडूरं द्विगुणं चूर्णाच्छुद्धमञ्जनसन्निभम्॥ १०५॥ मूत्रे चाष्टगुणे पक्त्वा तस्मिंस्तु प्रक्षिपेत्ततः। उदुम्बरसमान्कुर्याद्वटकांस्तान्यथाग्निवान्॥ १०६॥ उपयुञ्जीत तक्रेण सात्म्यं जीर्णे च भोजयेत्। मण्डूरवटका ह्येते प्राणदाः पांडुरोगिणाम्॥ १०७॥ कुष्ठानि गरजं शोथमूरुस्तम्भं कफामयान्। अर्शांसि कामलां मेहान् प्लीहानं शमयत्यपि॥ १०८॥

त्रिकुटा, त्रिफला, नागरमोथा, वायविडंग, चव्य, चीता, दारुहल्दी, दालचीनी, सोनासाखी, पीपलामूल और देवदारु ये प्रत्येक औषधि आठ २ तोले लेकर चूर्ण करलेवे और कृष्ण अंजनके समान निर्मल मंडूर सब चूर्णसे दुगुना लेवे। सबको एकत्र आठगुने गोमूत्रमें पकावे, फिर एक२तोलेके बडे बनालेवे। इनको अग्निका बलाबल विचार कर तक्रके साथ सेवन करे। जब औषधि जीर्ण हो जाय तब अपने स्वभावके अनुकूल भोजन करे। यह मण्डूरवटक—पाण्डुरोगियोंको प्राण देनेवाले हैं। तथा कोढ, विषविकार, सूजन, ऊरुस्तम्भ, कफरोग, बवासीर, कामला, प्रमेह और प्लीहाको शमन करनेवाले हैं॥ ॥ १०४—१०८॥

निम्बादिगुटिका।

निम्बं पटोलं कुटजं त्रिफला मुस्तनागरम्। पचेज्जलाढके पादशेषे द्राक्षां च शीतले॥ १०९॥ शिलाजतु पलान्यष्टौ मासं संस्थापयेच्च तम्। उद्धृत्य तं शिलातुल्यमेतांश्चापि पलोन्मितान्॥ ११०॥ मोचधात्रीफलतुगाकर्कटादिनिदग्धिकाः॥ त्रिवर्णपादसंयुक्तं क्षौद्रं त्रिपलसंयुतम्॥१११॥ पयोऽनुपानं गुटिकां कृत्वा खादेद्यथाबलम्। कामलापांडुरोगार्शःशोथज्वरनिपीडितः॥ ११२॥

नीमकी छाल, पटोलपत्र, कुडेकी छाल, त्रिफला, नागरमोथा और सोंठ ये प्रत्येक औषधि चार २ तोले लेकर एक आढकजलमें पकावे जब जल, चौथाई भाग शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर इसमें आठ पल शिलाजीत डालकर पृथ्वीमें गाडदेवे पश्चात् एक महीनेमें जब पत्थरके समान हो जाय तब उखाड लेवे फिर इसमें मोचरस, आमले, वंशलोचन, काकडाशिंगी और कटेरी प्रत्येक औषधिका चूर्ण एक २ पल मिलादेवे और शहद तीन पल मिलावे फिर एक २ तोलेकी गोलियाँ बना लेवे । प्रतिदिन बलानुसार एक गोली खाय और दूधका अनुपान करे । यह गोली--कामला, पाण्डुरोग, बवासीर, सूजन और ज्वरसे पीडित मनुष्योंको अत्यन्त हितकारी है ॥ १०९—११२ ॥

मंडूरगुटिका ।

विडङ्गमुस्तत्रिफलादेवदारुषडूषणैः । निर्वाप्य सप्तधा मूत्रे मंडूरं ग्राह्यमिष्यते ॥ ११३ ॥ तुल्यमात्रमयश्चूर्णं गोमूत्रेऽष्टगुणे पचेत् । तैरक्षमात्रां गुटिकां कृत्वा खादेद्दिने दिने ॥ कामलापांडुरोगार्त्तः सुखमापद्यते क्षणात् ॥ ११४ ॥

वायविडंग, नागरमोथा, त्रिफला, देवदारु, त्रिकुटा, चव्य, चीता और पीपलामूल ये सब औषधियें समान भाग लेवे और सबके बराबर गोमूत्रमें शुद्ध किया हुआ मण्डूर लेवे।सबको एकत्र पीसकर अठगुने गोमूत्रमें पकावे, जब लेहके समान होजाय तब एक २ तोलेकी गोलियां बनालेवे । प्रतिदिन एक गोली खाय । इससे—कामला और पाण्डुरोगी तत्काल सुखी होते हैं ॥ ११३ ॥ ११४ ॥

विभीतक्यादिगुटिका ।

विभीतकायोमलनागराणां चूर्णं तिलानां गुडसंप्रयुक्तम् । तक्रानुपानं गुटिका निहन्ति ह्यतिप्रवृद्धानपि पांडुरोगान् ॥ ११५ ॥

बहेड़ा, लोहेका मल, सोंठ और तिल इनका चूर्ण करके गुड़में मिलाकर गोलियां बनावे इन गोलियोंको तक्रके साथ सेवन करे तो अत्यन्त बढ़ा हुआ भी पाण्डुरोग नष्ट होता है ॥ ११५ ॥

मण्डूरवज्रवटक ।

पञ्चकोलं समरिचं देवदारुफलत्रिकम् । हिंगुमुस्तसमायुक्ता भागास्त्रिपलसम्मिताः ॥ ११६ ॥ यावन्त्येतानि चूर्णानि मंडूरं द्विगुणं ततः । पक्त्वा चाष्टगुणे मूत्रे घनीभूतं समुद्धरेत् ॥११७॥ ततोऽक्षमात्रान्वटकान् पिबेत्तक्रेण तक्रभुक् । पांडुरोगं जयत्येष मन्दाग्नित्वमरोचकम् ॥ ११८ ॥ अर्शांसि ग्रहणीशोथमूरुस्तंभं हलीमकम् । कृमिं प्लीहानमुदरं गलरोगश्च नाशयेत्॥११९॥ मंडूरो वज्रनामायं रोगानीकप्रणाशनः॥ १२० ॥ निर्वाप्य सप्तधा मूत्रे मंडूरं ग्राह्यमिष्यते । ग्राहयेदष्टगुणितं गोमूत्रं सर्वचूर्णतः ॥ १२१ ॥

पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ, मिरच देवदारु, हरड, बहेड़ा, आमला, हींग और नागरमोथा ये प्रत्येक औषधि बारह २ तोले लेवे और सबसे दुगुना मंडूर लेवे । फिर सबको एकत्र करके अठगुने गोमूत्रमें पकावे । जब पकते २ गाढा हो जाय तब उतारकर एक२तोलेके बड़े बनालेवे । प्रति दिन एक बड़ा तक्रके साथ सेवन करे।यह मंडूरवज्रवटक-पाण्डुरोग, मंदाग्नि, अरुचि, बवासीर, संग्रहणी, सूजन, ऊरुस्तम्भ, हलीमक, कृमि, प्लीहा, उदररोग और गलरोगको नष्ट करते हैं । यह मंडूरवज्र—सम्पूर्णरोगोंको हरनेवाला है । इसमें प्रथम मंडूरको सातवार अग्निमें तपाकर सातवार गोमूत्रमें बुझाना चाहिए और सब चूर्णसे अठगुना गोमूत्र लेना चाहिए ॥ ११६–१२१ ॥

विडंगाद्यवलेह ।

विडङ्गं त्रिफला व्योषं दार्वी कृष्णमयोरजः । कामला पांडुरोगघ्नं लिह्यात् क्षौद्रघृतप्लुतम् ॥ १२२ ॥

वायविडंग, हरड़, बहेडा, आमला, सोंठ, मिरच, पीपल, दारुहल्दी और कृष्णलोहेकी भस्म इन सबको

एकत्र पीसकर शहद और घीमें मिलाकर चाटे तो कामला और पाण्डुरोग नष्ट होते हैं ॥ १२२ ॥

आमलक्यवलेह ।

रसमामलकीनान्तु संशुद्धं यन्त्रपीडितम् । द्रोणं पचेत्तु मृद्वग्नौ तत्र चेमानि दापयेत् ॥ १२३ ॥ चूर्णितं पिप्पलीप्रस्थं मधुकं द्विपलं तथा । प्रस्थं गोस्तनिकायाश्च द्राक्षायाः कल्कपेशितम् ॥ १२४ ॥ शृङ्गवेरपले द्वे च तुगाक्षीर्याः पलद्वयम् । तुलार्धं शर्करायाश्च घनीभूतं समुद्धरेत् ॥ १२५ ॥ मधुप्रस्थसमायुक्तं लेहयेत्पलसम्मितम् । हलीमकं कामलाञ्च पांडुत्वं चापकर्षति ॥ १२६ ॥

अच्छेप्रकारसे यन्त्रद्वारा निकाला हुआ आमलेका स्वरस एक द्रोण लेकर मन्द मन्द अग्निसे पकावे और उसमें पीपलका चूर्ण १ प्रस्थ, मुलैठी दो पल, एवं दाख १ प्रस्थ, इन सबको शीतल जलमें पीसकर मिलादेवे । जब सिद्ध होजाय तब सोंठका चूर्ण ८ तोले, वंशलोचन ८ तोले और मिश्री ५० पल मिलाकर उतार लेवे । फिर शीतल होनेपर १ प्रस्थ शहद मिलादेवे । प्रतिदिन इसमेंसे चार तोले प्रमाण सेवन करे । यह अवलेह--हलीमक, कामला और पाण्डुरोगको नष्ट करता है ॥ १२३--१२६ ॥

खादिरलेह ।

पचेत् खदिरनिःक्वाथे विडङ्गं धान्ययोरजः । बला तिक्ता सिता यष्टी त्रिफला रजनीद्वयम् ॥ १२७ ॥ लेहं लिह्यात्समध्वाज्यैः पांडुरोगी हलीमकी। स लेहः कामलां हन्यादपि संवत्सरोत्थिताम् ॥ १२८ ॥

खैरके क्वाथमें वायविडंग, धनियाँ, लोहचूर्ण, खिरैंटी, कुटकी, मिश्री, मुलैठी, त्रिफला, हल्दी और दारुहल्दी इनका एकत्र चूर्ण करके शहद और घीमें मिलाकर सेवन करे। यह अवलेह—एक वर्षके पुराने हलीमक, पाण्डुरोग और कामला रोगको नष्ट करता है ॥ १२७ ॥ १२८ ॥

कल्याणगुड ।

कृष्णे द्वे ग्रन्थिकं वह्निर्दीप्यकोषणसैन्धवम् । कृमिघ्नं त्रिफला धान्यकालजामजमोदकम् ॥ १२९ ॥ पलिकानि त्रिवृत्पञ्च तैलं सर्पिः पलाष्टकम् । रसप्रस्थत्रयं धात्र्या गुडस्यार्द्धशतं पचेत् ॥ १३० ॥ एतत्कल्याणकं पाण्डुकामलार्शोज्वरापहम् । मेहकुष्ठक्षयश्वासग्रहणीहृद्रसायनम् ॥ ॥ १३१ ॥

पीपल, गजपीपल, पीपलामूल, चीता, अजवायन, कालीमिरच, सैंधानमक, वायविडंग, त्रिफला, धनियाँ, कालाजीरा और अजमोद ये प्रत्येक औषधि चार २ तोले, निसोत ५ पल, तेल और घी ८--८ पल, आमलेका स्वरस ३ प्रस्थ और गुड ५० पल इन सबको एकत्र करके पकावे । यह कल्याणगुड--पांडु, कामला, बवासीर, ज्वर, प्रमेह, कोढ, क्षय, श्वास, ग्रहणीरोग और हृद्रोगको नष्ट करता है तथा उत्तम रसायन है ॥ १२९ ॥ १३० ॥ १३१ ॥

पुनर्नवादिक्काथ ।

पुनर्नवानिम्बपटोलशुण्ठीतिक्तामृतादार्व्यभयाकषायः । सर्वाङ्गशोथोदरकासशूलश्वासान्वितं पांडुगदं निहन्ति ॥ १३२ ॥

पुनर्नवा, नीम, पटोलपत्र, सोंठ, कुटकी, गिलोय, दारुहल्दी और हरड, इनका क्वाथ सम्पूर्ण अंगोंकी सूजन, उदररोग, खाँसी, शूल और श्वासयुक्त पाण्डुरोगको नष्ट करता है ॥ १३२ ॥

पथ्य ।

यवगोधूमशाल्यन्नरसैर्जाङ्गलजैः समैः। मुद्गाढकीमसूराद्यैर्यूषो भोजनमिष्यते ॥ १३३ ॥

इसमें जौ, गेहूँ, शालिचावलोंका भात, जंगली जीवोंका मांसरस, मूँग और अरहर तथा मसूरादिका यूष भोजनके लिये हितकारी है ॥ १३३ ॥

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायां पांडु
कामलाहलीमकरोगाधिकार
संपूर्ण ।

अथ रक्तपित्तनिदान ।

घर्म्मव्यायामशोकाध्वव्यवायैरतिसेवितैः । तीक्ष्णोष्णक्षारलवणैरम्लैः कटुभिरेव च ॥१॥ पित्तं विदग्धं स्वगुणैर्विदहत्याशु शोणितम् । ततः प्रवर्त्तते रक्तमूर्ध्वञ्चाधो द्विधापि वा ॥२॥ ऊर्ध्वं नासाक्षिकर्णास्यैर्मेढ्रयोनिगुदैरधः । कुपितं रोमकूपैश्च समस्तैस्तत्प्रवर्त्तते ॥ ३ ॥ केचिच्चैव यकृत्प्लीहा प्रवदन्त्यसृजो गतिम् ॥ ४ ॥

अधिकतर धूपमें फिरनेसे, परिश्रम करनेसे, शोकके करनेसे, बहुत मार्गके चलनेसे और अत्यन्त स्त्रीप्रसंग करनेसे, तीक्ष्ण, गरम, खार, लवण, अम्ल और कटु ऐसे पदार्थोंको अत्यन्त सेवन करनेसे इत्यादि कारणोंसे दग्ध हुआ पित्त अपने गुणोंसे रुधिरको जलाता है । तब वह रुधिर ऊर्ध्व अथवा अधोमार्गसे किम्वा ऊर्ध्व और अधो दोनों मार्गोंसे निकलने लगता है । ऊर्ध्वमार्ग अर्थात् नासिका, नेत्र, कान और मुख आदिके द्वारा निकलता है । और अधोमार्ग-अर्थात् लिंग, योनि और गुदाके द्वारा निकलता है । जब वह अधिक कुपित होता है तो सम्पूर्ण रोमकूपोंसे निकलने लगता है । कोई वैद्य रुधिरकी गतिको यकृत् और प्लीहा भी कहते हैं ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥

पूर्वलक्षण ।

सदनं शीलकामित्वं कण्ठधूमायनं वमिः । लोहगन्धश्च निःश्वासो भवत्यस्मिन् प्रविश्यति ॥ ५ ॥

सर्व अंगोंमें शिथिलता, शीतलपदार्थोंकी इच्छा, गलेमेंसे धुँआसा निकलना, वमनका होना और श्वासमें लोहेके समान गन्धका आना, ये लक्षण रक्तपित्त होनेके पूर्व होते हैं ॥ ५ ॥

श्लैष्मिकरक्तपित्तके लक्षण ।

सान्द्रं सपांडु सस्नेहं पिच्छिलञ्च कफान्वितम् ।

गाढा, पाण्डुवर्ण, स्नेहयुक्त और पिच्छिल ऐसा रुधिर कफके रक्तपित्तमें निकलता है ।

वातिकरक्तपित्तके लक्षण ।

श्यावारुणं सफेनञ्च तनु रूक्षञ्च वातिकम् ॥ ६ ॥

वातजरक्तपित्तमें रुधिर धूसर, लाल, झागोंयुक्त, पतला और रूखा निकलता है ॥ ६ ॥

पैत्तिकरक्तपित्तके लक्षण ।

रक्तपित्तं कषायाभं कृष्णं गोमूत्रसन्निभम् । मेचकागारधूमाभमञ्जनाभञ्च पैत्तिकम् ॥ ७ ॥

पित्तजरक्तपित्तमें काढेके समान रंगवाला, काला, गोमूत्रके समान, मोरके पूंछके समान, चन्द्रमाके समान, अंगारेके समान धुयेंके समान और अंजनके समान नीला या काला रुधिर गिरता है ॥ ७ ॥

द्वन्द्वज और सन्निपातज रक्तपित्तके लक्षण ।

संसृष्टलिङ्गं संसर्गात्त्रिलिङ्गं सान्निपातिकम् । ऊर्ध्वगं कफसंसृष्टमधोगं मारुतानुगम् । द्विमार्गं कफवाताभ्यामुभाभ्यां तत्प्रवर्त्तते ॥ ८ ॥

द्वन्द्वजरक्तपित्तमें दो दोषोंके लक्षण और त्रिदोषज रक्तपित्तमें तीनों दोषोंके लक्षण होते हैं । ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त कफजन्य होता है, अधोगामी वातजन्य होता है और दोनों मार्गसे निकलनेवाला कफ-वात दोनों दोषोंसे उत्पन्न होता है ॥ ८ ॥

ऊर्ध्वं साध्यमधो याप्यमसाध्यं युगपद्गतम् ॥ ९ ॥

इनमें ऊर्ध्वगामी साध्य है, अधोगामी याप्य और ऊर्ध्व तथा अधो दोनों मार्गोंसे निकलनेवाला असाध्य है॥ ९ ॥

एकमार्गं बलवतो नातिवेगं नवोत्थितम्। रक्तपित्तं सुखे काले साध्यं स्यान्निरुपद्रवम्॥ १०॥

एक मार्गसे निकलनेवाला, बलवान् रोगीके उत्पन्न हुआ, बहुत वेगवाला नहीं, नवीन शीतकालमें उत्पन्न हुआ और उपद्रवरहित ऐसा रक्तपित्त साध्य होता है॥ १० ॥

एकदोषानुगं साध्यं द्विदोषं याप्यमुच्यते। यत्त्रिदोषमसाध्यं तन्मंदाग्नेरतिवेगवत्॥ ११॥ व्याधिभिः क्षीणदेहस्य वृद्धस्यानश्नतश्च यत्॥ १२॥

एकदोषजनित रक्त पित्त साध्य है, दो दोषजन्य याप्य है और त्रिदोषसे उत्पन्न हुआ मन्दाग्नि वाले मनुष्यके अत्यन्त वेगयुक्त, रोगसे क्षीण हुए मनुष्यके, वृद्धके और जिसकी भूख कम होगई हो ऐसे मनुष्यके उत्पन्न हुआ रक्तपित्त असाध्य है॥ ११ ॥ १२ ॥

रक्तपित्तके उपद्रव।

दौर्बल्यं श्वासकासज्वरवमथुमदाः पांडुतादाहमूर्च्छा, भुक्ते घोरो विदाहस्त्वधृतिरपि सदा हृद्यतुल्या च पीडा। तृष्णा कोष्ठस्य भेदः शिरसि च तपनं पूतिनिष्ठीवनश्च, भक्तद्वेषाविपाको विकृतिरपि भवेद्रक्तपित्तोपसर्गाः॥ १३॥

दुर्बलता, श्वास, खाँसी, ज्वर, वमन, नसासा मालूम हो, पाण्डुता, दाह, मूर्च्छा, भोजन करनेके पश्चात् घोर दाह हो, सदैव अधीरता, हृदयमें पीडा, तृषा, दस्तका पतला होना, शिरमें सन्ताप, थूकमें दुर्गन्ध, भोजनमें अरुचि, भोजनका अच्छे प्रकारसे नहीं पचना, इनके सिवाय और भी अनेक विकार होते हैं, ये सब--रक्तपित्तके उपद्रव हैं॥ १३ ॥

असाध्यलक्षण।

मांसप्रक्षालनाभं क्वथितमिव च यत् कर्दमाम्भोनिभं वा, मेदःपूयास्रकल्पं यकृदिव यदि वा पक्वजम्बूफलाभम्। यत् कृष्णं यच्च नीलं भृशमतिकुणपं यत्र चोक्ताविकारास्तद्वर्ज्यं रक्तपित्तं सुरपतिधनुषा यच्च तुल्यं विभाति॥ १४॥

विकृतरूपसे असाध्यता कहते हैं। रक्तपित्तका रुधिर धोये हुए मांसजलके समान हो, काढेके समान हो, अथवा कीचके जलके समान हो, किम्वा मेद, राध और रुधिरमिश्रित हो, या कलेजेके समान अथवा पके जामुनफलके समान हो, काला अथवा नीला और जिसमें मुरदेके समान दुर्गन्ध आती हो, और जिसमें पूर्वोक्त विकार हों, एवं इन्द्रधनुष्यके समान जिसका वर्ण हो, ऐसा रक्तपित्त असाध्य होता है॥ १४ ॥

येन चोपहतो रक्तं रक्तपित्तेन मानवः। पश्येद्दृश्यं वियच्चैव तच्चासाध्यमसंशयः॥ १५॥

रक्तपित्तसे पीड़ित मनुष्य जो आकाशादि सम्पूर्ण देखने योग्य घट, पटादि द्रव्य पदार्थोंको लाल देखे वह रोगी अवश्य मर जाता है॥ १५ ॥

लोहितं छर्दयेद्यस्तु बहुशो लोहितेक्षणः। लोहितोद्गारदर्शी च म्रियते रक्तपैत्तिकः॥ १६ ॥

जो रक्तपित्तरोगी वारम्वार रुधिरकी वमन करे, तथा जिसके नेत्र लाल होजाँय और जिसकी डकारमें रुधिर आवे ऐसा रोगी मर जाता है॥ १६ ॥

चिकित्सा।

पित्तास्रं शमयेन्नादौ प्रवृत्तं बलिनोऽश्नतः। हृत्पाण्डुग्रहणीदोषप्लीहगुल्मक्षयादिकृत्॥ १७॥ गलग्रहं पूतिनस्यं मूर्च्छायं ह्यरुचिं तथा। कुष्ठानर्शांसि वीसर्पवर्णनाशं भगन्दरम्। बुद्धीन्द्रियोपरोधश्च कुर्य्यात् स्तम्भितमादितः॥ १८॥

बलवान् और भोजन करनेवाले ऐसे रक्तपित्त-रोगीके वेगसे गिरे हुए रुधिरको पहले ही एक साथ बंद नहीं करे, क्योंकि पहलेसे रुधिरको बंद करनेसे वह दूषित रुधिर जमकर हृदयरोग, पाण्डुरोग, संग्रहणी, प्लीहा, गुल्म, क्षयादि रोग, गलग्रह, पूतिनस्य, मूर्च्छा, अरुचि, कोढ, बवासीर, विसर्प, विवर्णता, भगन्दर, बुद्धि और इन्द्रियोंका अवरोध इत्यादि विकारोंको उत्पन्न कर देता है ॥ १७ ॥ १८ ॥

क्षीणमांसबलं बालं वृद्धं शोषानुबन्धिनम् । अवाम्यमविरेच्यञ्च शमनीयैरुपाचरेत् ॥ १९ ॥

जिसका मांस और बल क्षीण होगया हो, व बालक, वृद्ध और जो शोषरोगसे पीडित हैं उनको वमन विरेचन नहीं कराने चाहिये, किन्तु शमन औषधियोंके द्वारा चिकित्सा करनी चाहिए ॥ १९ ॥

ऊर्ध्वं प्रवृत्तदोषस्य पूर्वं लोहितपित्तिनः । अक्षीणबलमांसाग्नेः कर्त्तव्यमपतर्पणम् ॥ २० ॥

जिस रक्तपित्तरोगीके रुधिर उर्ध्वमार्गसे निकले तथा जिसका बल, मांस और अग्नि क्षीण न हुई हो ऐसे रोगीको प्रथम लंघन करावे ॥ २० ॥

ऊर्ध्वगे तर्पणं पूर्वं कर्त्तव्यञ्च विरेचनम् । प्रागधोगमने पेयं वमनञ्च यथा बलम् ॥ २१ ॥

ऊर्ध्वगत रक्तपित्तमें प्रथम तर्पण कराकर पश्चात् विरेचन करावे । अधोगत रक्तपित्तरोगमें प्रथम यथा दोषानुसार पेया देवे, पश्चात् वमन करानी चाहिये ॥ २१ ॥

आरग्वधेन धात्र्या वा त्रिवृता पथ्ययाऽथवा । विरेचनं प्रयोक्तव्यं शर्करामाक्षिकोत्तरम ॥ २२ ॥

अमलतास और आमले इनके क्वाथमें, अथवा निसोत और हरड इनके क्वाथमें बूरा और शहद डालकर विरेचन करावे ॥ २२ ॥

मुस्तेन्द्रयवयष्ट्याह्वं मदनाह्वं पयो मधु । शिशिरं वमनं योज्यं रक्तपित्तहरं परम् ॥ २३ ॥

नागरमोथा, इन्द्रजौ, मुलैठी और मैनफल नइके क्वाथमें दूध और शहद डालकर शीतल करके वमन करनेके लिये पीवे यह उत्तम रक्तपित्तनाशक है ॥ २३ ॥

शालिपर्ण्यादिना सिद्धा पेया पूर्वमधोगते । रक्तातिसारहन्ता च योज्यो विधिरशेषतः ॥ २४ ॥

अधोगत रक्तपित्तमें शालपर्णी आदि औषधियोंके द्वारा सिद्ध की हुई पेया प्रथम पान करे पश्चात् विशेष कर रक्तातीसारनाशक विधिका प्रयोग करे ॥ २४ ॥

शालिषष्टिकनीवारकोरदूषप्रसाधिता । श्यामाकश्च प्रियंगुश्च भोजनं रक्तपित्तिनाम् ॥ २५ ॥

शालि, साठी, नीवार, कोदों, समा और कंगनी ये सब धान्य रक्तपित्तवाले रोगीको भोजनके लिये देवे ॥ २५ ॥

मसूरमुद्गचणकाः समुकुष्ठाढकीफलाः । प्रशस्ताः सूपयूषार्थं कल्पिता रक्तपित्तिनाम् ॥ २६ ॥

मसूर, मूँग, चने, मौठ और अरहर इनकी दाल अथवा यूष रक्तपित्तवाले रोगीको देना चाहिए ॥ २६ ॥

दाडिमामलकं कोलमम्लार्थं चापि दापयेत् । पटोलनिम्बवेत्राग्रप्लक्षवेतसपल्लवाः । शाकार्थं शाकसात्म्यानां तण्डुलीयादयो हिताः ॥ २७ ॥

अनार, आमले और बेर ये रक्तपित्तरोगीको खटाईके लिये देवे । परवल, नीम, वेंतका अग्रभाग, परवर और वेंतके कोमल पत्ते तथा चौलाई आदिका शाक जिनके स्वभावके अनुकूल हो उन रक्तपित्तवाले रोगियोंको देवे ॥ २७ ॥

पारावतकपोतांश्च लावरक्ताक्षवर्त्तकान् । शशान् कपिञ्जलानेणान् हरिणान् कालपुच्छकान् ॥ २८ ॥ रक्तपित्तहरान् दद्याद्रसांस्तेषां प्रयोजयेत् ॥ २९ ॥

परेवा, कबूतर, लवा, चकोर, बत्तक, खरगोश, कपिञ्जल, सफेद तीतर, एणमृग—काला हिरन और कालपुच्छमृग इनका मांसरस रक्तपित्तरोगवालेको देना चाहिये, यह रक्तपित्तनाशक है ॥ २८ ॥ २९ ॥

ईषदम्लाननम्लांश्च घृतभ्रष्टान् ससैन्धवान् । कफानुगे यूषशाकं दद्याद्वातानुगे रसम् ॥ ३० ॥

किंचित् अम्ल अथवा मधुरपदार्थ घीमें भूनकर सैंधानमक डालकर कफजरक्तपित्तरोगमें खानेको देवे अथवा यूष और शाक देवे । और वातज रक्तपित्तमें मांसरस देवे ॥ ३० ॥

पथ्यं सतीनयूषेण ससितैर्लाजसक्तुभिः । जलं खर्जूरमृद्वीकामधुकैः सपरूषकैः ॥ ३१ ॥

रक्त पित्तरोगमें मटरका यूष और खांड मिले हुए खीलोंके सतुओंका पथ्य देवे । खजूर, दाख, महुए और फालसे इनका क्काथ पीनेको देवे ॥ ३१ ॥

ह्रीवेरमुत्पलं धान्यं चन्दनं याष्टिकामृता। वृषोशीरयुतः क्काथः शर्करामधुसंयुतः ॥ ३२ ॥ रक्तपित्तं जयत्युग्रं तृष्णां दाहं ज्वरं तथा ॥ ३३ ॥

सुगन्धवाला, कमल, धनियाँ, लालचन्दन, मुलैठी, गिलोय, अडूसा और खस इनके क्काथमें शहद और मिश्री मिलाकर पान करनेसे तृषा, दाह और ज्वर सहित अत्यन्त उग्र रक्तपित्त नष्ट होता है ३२॥३३ ॥

पद्मोत्पलानां किञ्जल्कं पृष्टिपर्णी प्रियंगुका । जले साध्यरसे तस्मिन् पेया स्याद्रक्तपित्तिनाम् ॥ ३४ ॥

कमल और कमोदनीकी केशर, पिठवन और फूलप्रियंगू इनके क्काथके द्वारा पेया सिद्ध करके रक्तपित्त रोगीको देवे ॥ ३४ ॥

चन्दनोशीरलोध्राणां रसे तस्मिन् सनागरे । किराततिक्तकोशीरमुद्गानां तद्वदेव तु ॥ ३५ ॥

अथवा चन्दन, खस, लोध और सोंठ इनके क्काथमें पेया तैयार करके रक्तपित्तरोगीको पान करावे । किंवा चिरायता, खस और मूँगके क्काथमें पेया बनाकर रक्तपित्तरोगीको देवे ॥ ३५ ॥

शशः सवास्तुकः शस्तो विबन्धे रक्तपित्तजे। वातोत्तरे तित्तिरिः स्यादुदुंबररसे शृतः ॥ ३६ ॥

रक्तपित्तरोगमें विबन्ध हो तो खरगोसके माँसका रस और बथुएका शाक देवे, यह अत्यन्त हितकारी है । वाताधिक्य रक्तपित्तरोगमें तीतरके मांसका रस और गूलरका रस अथवा गूलरका क्काथ हितकारी है ॥ ३६ ॥

मयूरप्लक्षनिर्यूहो न्यग्रोधस्य च कुक्कुटः । रसौ विषोपलादीनां वार्त्ताककूकरौ हितौ ॥ ३७ ॥

मोर और पाखर इनका निर्यूह, बड और मुरगेका यूष अथवा कमलकेशर और मिश्री इनका यूष तथा बैंगुन और केकड़ेका रस हितकारक है ॥ ३७ ॥

तृष्यते तिक्तसंसिद्धं तृणाद्यं वा कफोदकम् । सिद्धं विदारिगन्धाद्यैः शृतशीतमथापि वा ॥ ३८ ॥

रक्तपित्तमें तृषा लगे तो तिक्त औषधियोंके द्वारा सिद्ध किया हुआ जल पीनेको देवे अथवा विदारीगंधादि औषधियोंके द्वारा सिद्ध किया हुआ शृतशीतल जल पीनेको देवे ॥ ३८ ॥

प्रियंग्वञ्जनमृल्लोध्रः श्लक्ष्णचूर्णावचूर्णितः । वासाक्काथो रसो वाऽसृक्पित्तजित्ससितामधुः ॥ ३९ ॥

फूलप्रियंगू, अंजन, मृत्तिका और लोध इनको बारिक पीसकर चूर्ण कर लेवे, फिर इस चूर्णको अडूसेके क्काथ अथवा रसके साथ मिश्री और शहद मिलाकर पानकरे । यह रक्तपित्तनाशक है ॥ ३९ ॥

वृषपत्राणि संपीड्य रसं समधुशर्करम् । पिबेत्तेन समं याति रक्तपित्तं सुदारुणम् ॥ ४० ॥

अडूसेके पत्तोंको कूटकर उनका रस निचोड़लेवे। फिर उस रसमें शहद और मिश्री मिलाकर सेवन करे तो दारुण रक्तपित्त नष्ट होता है ॥ ४० ॥

पत्रादिचूर्ण ।

पत्रं त्वगेलानतचन्दनानां श्यामासशुण्ठीमधुकोत्पलानाम् । स्याद्धात्रीवासाद्विगुणोत्तराणां चूर्णं सिताक्षौद्रसमन्वितानाम् ॥४१॥दाहे ज्वरे लोहि-

तपित्तयुक्ते कासे क्षये शोणितमूत्रकृच्छ्रे । रक्तेऽतिमात्रं पतिते मुखेन गुदेऽथ नासाश्रुतिमेढ्रयोनौ ॥ ४२॥ प्रोक्तं पुरा रक्तविनिग्रहार्थं चूर्णं वसिष्ठेन महागदघ्नम् ॥

तेजपात २ भाग, दालचीनी ४ भाग, इलायची ६ भाग, तगर ८ भाग, चन्दन १० भाग, कालीसर १२ भाग, सोंठ १४ भाग, मुलैठी १६ भाग, कमल १८ भाग, आमले २० भाग और अडूसा २२ भाग लेवे । सबको एकत्र कूटकर चूर्ण बनावे, फिर इस चूर्णमें समान भाग मिश्री और शहद मिलाकर भक्षण करे । यह पत्रजादि चूर्ण—दाहज्वर, रक्तपित्त, खाँसी, राजयक्ष्मा, रुधिरविकार, मूत्रकृच्छ्र, अधिकतर रुधिरका मुखमार्गसे निकलना, गुदा, नासिका, कान, लिंग और योनि इनके द्वारा रुधिरका निकलना इन सबको दूरकरता है । यह चूर्ण पूर्वकालमें वसिष्ठजीने रक्तपित्तके रोगोंको नष्ट करनेके लिये कहाहै ॥४१॥४२॥

उत्पलं कुसुमं पद्मं कह्लारं लोहितोत्पलम् । मधुकश्चेति पित्तासृक्तृष्णाछर्दिहरो गणः ॥ ४३ ॥

नीलेकमल, लालकमल, कमोदिनी, लालकमोदिनी और मुलैठी इन सब औषधियोंका समूह रक्तपित्त, तृषा और वमनको हरनेवाला है ॥ ४३ ॥

तथा वृषाकषायश्च शर्करामधुसंयुतम् । पाययेत्तेन सद्यो हि रक्तपित्तं प्रशाम्यति ॥ ४४ ॥

अडूसेके काथको शहद और मिश्रीके साथ मिलाकर पान करनेसे तत्कालही रक्तपित्तरोग नष्ट होता है ॥ ४४ ॥

आटरूषकनिर्यूहं प्रियंगुमृत्तिकाञ्जने । विनीय लोध्रं सक्षौद्रं रक्तपित्तहरं पिबेत् ॥ ४५ ॥

अडूसेके काथमें फूलप्रियंगू, मृत्तिका, अंजन, लोध और शहद डालकर पान करे तो रक्तपित्त नष्ट होता है ॥ ४५ ॥

वासाकषायोत्पलमृत्प्रियंगुलोध्राञ्जनाम्भोरुहकेशराणि । पीत्वा सिताक्षौद्रयुतानि हन्यात् पित्तासृजो वेगमुदीर्णमाशु ॥ ४६ ॥

अडूसेके काथमें कमल, मिट्टी, फूलप्रियंगू, लोध, अंजन और कमलकेशरका चूर्ण, मिश्री और शहद डालकर पान करनेसे अत्यन्त वेगयुक्त रक्तपित्त नष्ट होता है ॥ ४६ ॥

वासायां विद्यमानायामाशायां जीवितस्य च । रक्तपित्ती क्षयी कासी किमर्थमवसीदति ॥ ४७ ॥

अडूसेके विद्यमान होनेपर जीवनकी आशा करनेवाले रक्तपित्त,क्षय और खांसीरोगवाले मनुष्य क्यों दुःख पाते हैं ॥ ४७ ॥

तालीशचूर्णयुक्तः पेयः क्षौद्रेण वासकस्वरसः । कफपित्तश्वासतमकस्वरभेदरक्तपित्तहरः ॥ ४८ ॥

अडूसेके स्वरसमें तालीसपत्रका चूर्ण और शहद डालकर पान करनेसे कफपित्त, तमक,श्वास,स्वरभेद और रक्तपित्त नष्ट होता है ॥ ४८ ॥

आटरूषकमृद्वीकापथ्याक्वाथः सशर्करः । क्षौद्राढ्यः कसनश्वासरक्तपित्तनिवर्हणः ॥ ४९ ॥

अडूसा, दाख और हरड़ इनके काथमें मिश्री और शहद डालकर पान करनेसे खाँसी, श्वास और रक्तपित्त नष्ट होताहै ॥ ४९ ॥

शतावरी वरा रास्ना काश्मर्यं सपरूषकम् । पाययेद्रक्तपित्तघ्नं सद्यः शूलहरं परम् ॥ ५० ॥

शतावर, त्रिफला, रायसन, कुम्भेर और फालसे इनका काथ बनाकर पान करनेसे रक्तपित्त और शूल तत्काल नष्ट होता है ॥ ५० ॥

चन्दनेन्द्रयवाः पाठा कटुका सदुरालभा । गुडूची वासकं लोध्रं पिप्पलीक्षौद्रसंयुतम् । कफान्वितं जयेद्रक्तं तृष्णाकासज्वरापहम् ॥ ५१ ॥

चन्दन, इन्द्रजौ, पाढ, कुटकी, धमासा, गिलोय, अडूसा, लोध और पीपल इनके काथमें शहद डालकर पान करनेसे कफयुक्त रुधिरका गिरना, तृषा, खाँसी और ज्वर नष्ट होता है ॥ ५१ ॥

पिबेच्छीतकषायं वा जंब्वाम्रार्जुनसम्भवम्। उडुम्बरफलानाञ्च रसं समधु पाययेत् ॥ ५२ ॥

जामुन, आम और अर्जुन इनका काथ शीतल करके पीवे किंवा गूलरके पत्तोंके रसमें शहद डालकर पान करे ॥ ५२ ॥

त्रिवृता त्रिफला श्यामा पिप्पली शर्करा मधु। मोदकः सन्निपातोर्ध्वरक्तपित्तज्वरापहः ॥ ५३ ॥

निसोत, त्रिफला, कालीसर, पीपल, मिश्री और शहद इन सबको एकत्र पीसकर लड्डू बनावे, यह मोदक सन्निपातिक ऊर्ध्वगत रक्तपित्त और ज्वरको नष्ट करते हैं ॥ ५३ ॥

अतसीकुसुमसमङ्गा वटप्ररोहत्वगम्भसा पीता। प्रशमयति रक्तपित्तं यदि भुङ्क्ते मुद्गयूषेण ॥ ५४ ॥

अलसीके फूल, लज्जावंती, वडके अंकुर और दालचीनी इनका काथ बनाकर पानकरनेसे रक्तपित्त नष्ट होता है। इसमें मूँगके यूषके साथ भोजन करना चाहिए ॥ ५४ ॥

उशीरकालीयकलोध्रपद्मकं प्रियंगुकाकट्फलशङ्खगैरिकम्। पृथक् पृथक् चन्दनतुल्यभागिकं सशर्करातंडुलधावनप्लुतम् ॥ ५५ ॥ रक्तं सपित्तं तमकं पिपासां दाहञ्च पित्तं शमयन्ति सद्यः ॥ ५६ ॥

खस, कलम्बक, लोध, पद्माख, फूलप्रियंगू, कायफल, शंख, गेरू और चन्दन ये सब ओषधि समान भाग लेकर चावलोंके जलके साथ सेवन करे तो रक्तपित्त, तमक, श्वास, पियास, दाह और पित्त ये सब तत्काल नष्ट होते हैं ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

वृषस्य स्वरसं कृत्वा द्रवैरेभिः प्रयोजयेत्। प्रियंगुमृत्तिकालोध्रमञ्जनञ्चेति चूर्णयेत् ॥ एतच्चूर्णन्तु पातव्यं रसक्षौद्रसमन्वितम् ॥ ५७ ॥ नासिकामुखपायुभ्यो योनिमेढ्राच्च वेगतः। रक्तपित्तं स्रवद्धन्ति सिद्ध एष प्रयोगराट् ॥५८॥ यच्च शस्त्रक्षतेनैव रक्तं स्रवति वेगतः। तदप्यनेन चूर्णेन तिष्ठत्येवावचूर्णितम् ॥ ५९ ॥

अडूसेके स्वरसमें फूलप्रियंगू, फिटकरी, लोध, रसोतका चूर्ण और शहद डालकर पान करे। यह योगराज—नासिका, मुख, गुदा, योनि और लिंग इनके द्वारा रुधिरके निकलनेको बंद करता है। शस्त्रके चीरनेसे जिस घावका रुधिर निकलना बंद नहीं होता वह रुधिर इस चूर्णके प्रभावसे बंद हो जाता है ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

अभया मधुसंयुक्ता पाचनी दीपनी मता। श्लेष्माणं रक्तपित्तञ्च हन्ति शूलातिसारनुत् ॥ ६० ॥

हरडके चूर्णको शहदके साथ सेवन करे। यह दीपन, पाचन, कफ, रक्तपित्त, शूल और अतीसारको नष्ट करता है ॥ ६० ॥

इक्षूणां मध्यकाण्डानि सकन्दं नीलमुत्पलम्। केसरं पुण्डरीकस्य मोचं मधुकपद्मके ॥ ६१ ॥ वटप्ररोहशुङ्गाश्च द्राक्षा खर्जूर एव च। एतानि समभागानि कषायमवतारयेत् ॥ ६२ ॥ व्युषितं मधुसंयुक्तं पाययेच्छर्करान्वितम्। सप्रमेहं रक्तपित्तं क्षिप्रमेतन्नियच्छति ॥ ६३ ॥

ईखके पौंडेकी गांठ, नीलकमलका कन्द, सफेदकमलकी केशर, मोचरस, मुलैठी, पद्माख, बडके अंकुर, बड़की कोंपल, दाख और खजूर ये सब समान भाग लेकर काथ बनाकर रात्रिमें रख देवे फिर सबेरेको इस काथमें शहद और मिश्री डालकर पान करे। यह काथ प्रमेह, और रक्तपित्तको नष्ट करता है ॥ ६१ ॥ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

लोहगन्धिनि निःश्वासे उद्गारे धूमगन्धिनि । पृथ्वीकां शाणमात्रान्तु खादेद्द्विगुणशर्कराम् ॥ ६४ ॥

जो श्वासमें तप्तलोहके समान गन्ध आवे और डकारमें धुयेंके समान गन्ध आवे तो वडी इलायचीका चूर्ण४माशे लेकर८माशे सफेद बूरामें मिलाकर भक्षण करे ॥ ६४ ॥

कषायैर्विविधैर्योगैर्दीप्तेऽग्नौ विजिते कफे । रक्तपित्तं न चेच्छाम्येत्तत्र वातोल्बणं पयः ॥ ६५ ॥

कफरहित और दीप्त अग्निवाले मनुष्यके अनेक काथोंके पिलानेसे जो रक्तपित्त शान्त नहीं हो और उसमें वातकी अधिकता हो तो दूध पिलावे ॥ ६५॥

छागं पयः स्यात्परमं प्रयोगे गव्यं शृतं पञ्चगुणे जले वा । सशर्करं माक्षिकसंप्रयुक्तं विदारिगन्धादिगुणे शृतं वा ॥ ६६ ॥

बकरीके दूध अथवा गौके दूधको पांचगुने जलमें पकावे । फिर उसमें मिश्री और शहद डालकर पान करे अथवा विदारिगन्धादि औषधियोंके द्वारा सिद्ध किये हुए दूधको पीवे ॥ ६६ ॥

यष्टीमधूकार्जुनजीवनीयद्राक्षाबलागोक्षुरकैः शृतं वा ॥ ६७ ॥

मुलैठी, अर्जुनली छाल, जीवनीयगणकी ओषधि, दाख, खिरैंटी और गोखरू इनके द्वारा दूधको सिद्ध करके पीवे ॥ ६७ ॥

द्राक्षायाः फलिनीभिर्वा बलाया मधुकेन वा । श्वदंष्ट्रया शतावर्या रक्तजित्साधितं पयः ॥ ६८ ॥

दाख और फूलप्रियंगू इनके द्वारा सिद्ध किया हुआ दूध अथवा खिरैंटी और मुलैठीके द्वारा सिद्ध किया हुआ दूध किंवा गोखरू और शतावरके द्वारा सिद्ध किया हुआ दूध रुधिरको बंद करता है ॥ ६८॥

पक्वोदुम्बरकाश्मर्यः पथ्या खर्जूरगोस्तनी । मधुना हन्ति संलीढा रक्तपित्त पृथक्पृथक् ॥ ६९ ॥

पके गूलर, कुम्भेरके फल, हरड, खजूर और दाख इन प्रत्येकको अलग २ शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे रक्तपित्त नष्ट होता है ॥ ६९ ॥

खदिरस्य प्रियंगूनां कोविदारस्य शाल्मलेः । पुष्पचूर्णन्तु मधुना लिहन्नारोग्यमश्नुते ॥ ७० ॥

खैर, फूलप्रियंगू, कचनार और सेमल इनके फूलोंका चूर्ण करके शहदमें मिलाकर सेवन करे तो रक्तपित्त नष्ट होता है ॥ ७० ॥

वासकस्य रसे पथ्या सप्तधा परिभाविता । कृष्णा वा मधुना पीता रक्तपित्तं द्रुतं जयेत् ॥ ७१ ॥

अडूसेके रसमें हरडको सातबार भावना देकर अथवा पीपलको अडूसेके रसमें भावना देकर शहदके साथ सेवन करनेसे रक्तपित्त शीघ्र नष्ट होता है॥७१॥

स्वरसः सरसः प्रोक्तः कल्को दृषदि पेषितः । क्वथितस्तु शृतः शीतः शर्वरीमुषितो हिमः ॥ ७२ ॥

द्रव्यको कूटकर जो रस निकाला जाय उसको स्वरस कहते हैं और जो द्रव्य किंचित् जलमें पीसा जाय उसको कल्क कहते हैं । जो औटाकर शीतल किया जाय उसको काथ कहते हैं और जो औटाकर शीतलकरके अथवा औषधियोंको जलमें भिजोकर रात्रिमें रक्खा जाय उसको हिम कहते हैं ॥ ७२ ॥

द्रव्येण यावता द्रव्यमेकीभूयाऽऽर्द्रतां व्रजेत् । तावत्प्रमाणं निर्दिष्टं भिषग्भिर्भावनाविधौ ॥ ७३ ॥

द्रव्यको किसी स्वरस अथवा काथमें वारंवार भिजावे । जबतक वह एकरूप होकर खूब गीला न हो जाय तबतक भावना देवे, येही भावनाकी विधि जाननी ॥ ७३ ॥

क्षीरेण लाक्षां मधुमिश्रितेन प्रपीय जीर्णे पयसान्नमद्यात् । सद्यो निहन्याद्रुधिरं क्षतोत्थं कान्तार्जुनानामथवापि कल्कम् ॥ ७४ ॥

लाखके चूर्णको दूधके साथ शहदमें मिलाकर पानकरे और इसके जीर्ण होनेपर दूधकी खीर भोजन करे तो तत्काल घावसे निकलनेवाला रुधिर बंद होजाता है। अथवा फूल प्रियंगू और अर्जुनकी छालका कल्क बनाकर सेवन करनेसे रुधिरका गिरना बंद होता है ॥ ७४ ॥

कल्कं मधूकत्रिफलार्जुनानां निशि स्थितं लोहमये सुपात्रे। साज्यं विलिह्यानुपिबेत्सुशीतं सशर्करं छागपयः क्षुधार्त्तः ॥ ७५ ॥

मुलैठी, त्रिफला और अर्जुनकी छाल इनका कल्क बनाकर रात्रिके समय लोहेके बासनमें भरकर रख देवे, फिर प्रातःकाल इसमें घी मिलाकर पान करे। इसके ऊपर शीतल पदार्थोंका अनुपान करे और जब भूंख लगे तो मिश्री मिलाकर बकरीका दूध पीवे ॥ ७५ ॥

अतिनिस्स्रुतरक्तो वा क्षौद्रयुक्तं पिबेदसृक्। यकृद्वा भक्षयेदाजं मांसं पित्तसमायुतम् ॥ ७६ ॥ पारावतस्य मांसं वा घृतसिद्धं सशर्करम्। भक्षयेन्मधुना शीतं रक्तपित्तनिवारणम् ॥७७॥

अधिकतर रुधिरके निकलनेपर बकरेके रुधिरको शहदके साथ पीवे अथवा मांस और पित्तसंयुक्त बकरेका यकृत् खाय किम्वा कबूतरके मांसको घीमें भूनकर मिश्री मिलाकर शीतल करके शहदके साथ खाय तो रक्तपित्त नष्ट होता है ॥ ७६ ॥ ७७ ॥

सकफे ग्रथिते रक्ते क्षारः सक्षौद्रसर्पिषा ॥

कफके रक्तपित्तमें रुधिरकी गांठें पड़ जानेपर जवाखारको शहद और घीमें मिलाकर भक्षण करे ॥

मृणालोत्पलपद्मानां किंशुकासनयोस्तथा ॥ ७८ ॥ मधुकस्य प्रियंगूनामवलेहः पृथक् पृथक्। प्रायेणोपहताग्नित्वात् सपित्तमतिसार्य्यते ॥ ७९ ॥ प्राप्नोति चास्य वैरस्यं नवान्नमाभिनन्दति। नागरेन्द्रयवौ तत्र पातव्यौ तण्डुलाम्बुना ॥ सिद्धा यवागू जीर्णे वा चाङ्गेरीतक्रदाडिमैः ॥ ८० ॥

कमलकी नाल, कमोदनी, कमल, पलाशपुष्प, विजयसार मुलैठी और फूल प्रियंगू इनका पृथक् २ अवलेह बनाकर रक्तपित्तमें सेवन करे। रक्तपित्तमें प्रायः अग्निके नष्ट होजानेसे पित्त अधिक निकलताहै। तब मुखमें विरसता और अन्नमें अरुचि उत्पन्न होती है। अग्निके नष्ट होनेपर सोंठ और इन्द्रजौंका चूर्ण चावलोंके जलके साथ पान करे और इसके जीर्ण होनेपर नोनिया, तक्र और अनार इनके द्वारा सिद्ध की हुई यवागू पान करे ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥

नासाप्रवृत्तरुधिरं घृतभृष्टं श्लक्ष्णपिष्टमामलकम्। सेतुरिव तोयवेगं रुणद्धि मूर्ध्नि प्रलेपेन ॥ ८१ ॥

आमलोंको घीमें भूनकर बारीक पीसकर मस्तकपर लेप करनेसे नासिकासे रुधिरका गिरना इस प्रकार बन्द होता है जिस प्रकार जलके वेगको पुल रोकदेता है ॥ ८१ ॥

घ्राणप्रवृत्ते जलमाशु देयं सशर्करं नासिकया पयो वा। द्राक्षारसं क्षीरघृतं पिबेद्वा सशर्करं चेक्षुरसं पिबेद्वा॥८२॥

नासिकाके द्वारा अधिक रुधिर गिरनेपर जलमें मिश्री मिलाकर नासिकासे पान करे, अथवा दूध, किम्वा दाखका रस, अथवा दूध, घी या ईखके रसमें मिश्री मिलाकर पान करे ॥ ८२ ॥

रसो दाडिमपुष्पोत्थो रसो दूर्वाभवोऽथवा। आम्रास्थिजः पलाण्डोर्वा नासिकास्रुतरक्तजित ॥ ८३ ॥

अनारके फूलोंका रस, अथवा दूबका रस, किम्वा आमकी गुठलीका रस, अथवा प्याजके रसका नास लेनेसे नासिकासे रुधिरका गिरना बन्द होता है ॥ ८३ ॥

रसो दाडिमपुष्पस्य दूर्वारससमन्वितः। आलक्तकरसोपेतः पथ्यारससमन्वितः ॥ ८४ ॥ योजितो नासयोः क्षिप्रं त्रिदोषमपि दारुणम्। नासारक्तं प्रवृत्तन्तु हन्यादिति किमद्भुतम् ॥ ८५ ॥

अनारके फूलोंका रस, दूबका रस, लाखका वा मेहदीका रस और हरडका रस इनसबको मिलाकर नास देनेसे त्रिदोषज और अत्यन्त दारुण नासिकासे रुधिरका गिरना बन्द हो जाता है ॥ ८४ ॥ ८५ ॥

दूर्वाभयादाडिमपुष्पकानां लाक्षामलक्याः स्वरसेन नस्यम् । दिनत्रयं यः कुरुते प्रभाते नासाऽसृजं नाम रुजं निहन्ति ॥ ८६ ॥

दूब, हरड, अनारके फूल, लाख और आमले इनका स्वरस निकालकर तीनदिनतक प्रातःकाल नास देनेसे नाकसे रक्तका गिरना बंद होजाता है ॥ ८६॥

श्यामाघृत ।

श्यामाऽश्वमोरटानन्ताशर्कराभिः शृतं घृतम् । सर्वदोषहरं हृद्यं नस्यं नासागतेऽसृजि ॥ ८७ ॥

कालीसर, असगन्ध, क्षीरमोरट, अनन्तमूल और मिश्री इन सब औषधियोंके द्वारा घृतको सिद्ध करके नासदेवे तो नाकसे रुधिरका गिरना बन्द होजाता है तथा यह घृत-सर्वदोषनाशक और हृदयको हितकारी है ॥ ८७ ॥

दूर्वाद्यतैल ।

दूर्वा भव्यफलं माषकुलित्थौ वंशपत्रिका । जलस्थलोद्भवौ कर्णमोचकौ खरमञ्जरी ॥ ८८ ॥ दण्डोत्पलस्य मूलं तु निःक्काथ्याष्टगुणेऽम्भसि । तत्पादशेषितं तैलं तुल्यं कृत्वा विपाचयेत् । तत्तैलं प्रतिमर्शेन आनाहाख्यं गदं जयेत् ॥ ८९ ॥

दूब, भव्यफल, उड़द, कुलथी, वंशपत्री, तृण, जल और स्थलमें होनेवाले कर्णमोरट, तृण, चिरचिटा और दंडोत्पलकी जड इन सबको कूटकर आठगुने जलमें पकावे । जब चौथाई भाग जल शेष रह जाय तब उतार लेवे, फिर उसमें बराबरका तेल मिलाकर पकावे । यह दूर्वाद्यतैल आनाहाख्य रोगको नष्ट करता है ॥ ८८ ॥ ८९ ॥

रक्तातिसारिकं कर्म रक्ते स्यात्पायुगामिनि । पित्तप्रमेहिकं कर्म मेढ्रगे विनियोजयेत् ॥ ९० ॥

जो गुदाके द्वारा रुधिर निकाले तो रक्तातीसारोक्त यत्न करने चाहिये और जो लिंगके द्वारा निकलता हो तो पित्तजप्रमेहोक्त चिकित्सा करे ॥ ९० ॥

तृणपञ्चमूलीक्षीर ।

शृतं क्षीरं पिबेच्चापि पञ्चमूल्या तृषाह्वया । गोकण्टकानां स्वरसैः पर्णिनीभिस्तथा पयः ॥ ९१ ॥ हन्त्याशु रक्तं सरुजं विशेषान्मूत्रमार्गगम् । मेढ्रगे विहितश्चापि बस्तिरुत्तरसंज्ञिकः ॥ ९२ ॥

तृण, पंचमूलको दूधमें औटाकर पान करनेसे, अथवा गोखरूके स्वरसको पान करनेसे किम्वा शालिपर्णी और पृश्निपर्णी, इनको दूधमें औटाकर पान करनेसे पीड़ायुक्त रुधिरका गिरना बन्द होता है और विशेषकर लिंगके द्वारा रुधिरका गिरना बन्द होजाता है । लिंगगत रक्तपित्तरोगमें उत्तरबस्ति देवे ॥ ९१ ॥ ९२ ॥

चन्दनाद्यचूर्ण ।

चन्दनं नलदं लोध्रमुशीरं पद्मकेशरम् । नागपुष्पञ्च बिल्वञ्च भद्रमुस्तं सशर्करम् ॥ ९३ ॥ ह्रीबेरञ्चैव पाठा तु कुटजोत्पलमेव च । शृङ्गवेरं सातिविषा धातकी सरसाञ्जनम् ॥ ९४॥ आम्रास्थि जम्बुसारास्थि तथा मोचरसोऽपि च । नीलोत्पलं समङ्गा च सूक्ष्मैला दाडिमत्वचम् ॥ ९५ ॥ चतुर्विंशतिरेतानि समभागानि कारयेत् । तण्डुलोदकसंयुक्तं मधुना सह योजयेत् ॥ ९६ ॥ योगो लोहितपित्तानामर्शिनां ज्वरिणां तथा । मूर्च्छामेदोपसृष्टानां तृष्णार्त्तानां प्रदापयेत् ॥ ९७ ॥ अतीसारं तथा छर्दिः स्त्रीणाञ्च रजसो ग्रहम् । प्रच्युतानाञ्च गर्भाणां स्थापनं परमुच्यते । अश्विनोः सम्मतो योगो रक्तपित्तनिबर्हणः ॥ ९८ ॥

चन्दन, बालछड़, लोध, खस, कमलकेशर, नागकेशर, बेलगिरी, भद्रमोथा, मिश्री, सुगन्धवाला, पाढ, कुड़ेकी छाल, कमल, अदरख, अतीस, धायके फूल, रसौत, आमकी गुठली, जामुनकी गुठली, मोचरस, नीले कमल, लज्जावंती, छोटी इलायची और अनारकी छाल इन सबको समान भाग लेकर कूटपीसकर चूर्ण करलेवे, फिर इस चूर्णको चावलोंके जलके साथ और शहतके साथ रक्तपित्तरोग, बवासीर, ज्वर, मूर्च्छा, मेदरोग और तृषारोगवाले रोगी सेवन करें। यह चूर्ण—अतीसार, वमन और स्त्रियोंके दूषित रुधिरको दूर करता है तथा गिरते हुए गर्भको स्थापन करता है। यह योग रक्तपित्तको दूर करनेके लिये अश्विनीकुमारोंने निम्मार्ण किया है ॥९३-९८॥

दूर्वाद्यघृत ।

दूर्वासोत्पलकिञ्जल्कं मञ्जिष्ठा शैलवालुकम् । शिवा लोध्रमुशीरञ्च मुस्तं चन्दनपद्मकम् ॥ ९९ ॥ विपचेत्कार्षिकैरेतैः सर्पिराजं सुखाग्निना । तण्डुलाम्बु त्वजाक्षीरं दद्यादेवं चतुर्गुणम् ॥ १०० ॥ द्राक्षायष्ट्याह्वमधुककाश्मरीचन्दनं सितम् । पिष्ट्वा तत्कार्षिकैर्द्रव्यैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ १०१ ॥ तत्पानं वमतो रक्तं नावनं नासिकागते । कर्णाभ्यां यस्य गच्छेत्तु तस्य कर्णौ प्रपूरयेत् ॥ १०२ ॥ चक्षुःस्राविणि रक्ते च पूरयेत्तेन चक्षुषी । मेढ्रपायुप्रवृत्ते च बस्तिकर्मणि तद्धितम् ॥ रोमकूपप्रवृत्ते च तदभ्यङ्गे प्रयोजयेत् ॥ १०३ ॥

दूब, कमल, कमलकी केशर, मजीठ, एलुआ, हर्ड़, लोध, खस, नागरमोथा, चन्दन और पद्माख प्रत्येक औषधि एक एक कर्ष, चावलोंका जल १प्रस्थ, बकरीका दूध चारप्रस्थ, दाख, मुलेठी, कुम्भेर और सफेद चन्दन इन प्रत्येकका कल्क एक एक कर्ष और घी एक प्रस्थ लेवे सबको मिला कर यथाविधिसे मंद मंद अग्निसे पकावे। इस दूर्वाद्यघृतको पान करनेसे वमनके द्वारा रुधिरका गिरना बन्द होता है। नास लेनेसे नाकसे रुधिरका गिरना बंद होता है, कानमें डालनेसे कानसे रुधिरका गिरना बन्द होता है, जो नेत्रके द्वारा रुधिर स्रवे तो इसको नेत्रोंमें भरे। जो लिंग और गुदाके द्वारा रुधिर स्रवे तो इसको वस्तिकर्ममें प्रयोग करे और जो रोमकूपोंसे रुधिर निकलता हो तो इस घृतको शरीरमें मालिस करे ॥९९-१०३॥

महादूर्वाद्यघृत ।

दूर्वासेन्दीवरं पद्मं मञ्जिष्ठा शैलवालुका । रास्ना मुस्ता तथोशीरं चन्दनं मधुकाह्वयम् ॥ १०४ ॥ पद्मकं लोध्रकुष्ठञ्च चन्दनं रजनीद्वयम् । काकोल्यौ शारिवे चेति कल्कैरेभिश्च कार्षिकैः ॥ १०५ ॥ घृतप्रस्थमजाक्षीरं तण्डुलोदकसंयुतम् । दूर्वायाः स्वरसेनापि साधितं मृदुनाग्निना ॥ १०६ ॥ तत्पानं वमतो रक्तं नावनं नासिकागते । कर्णाभ्यां यस्य गच्छेत्तु तस्य कर्णौ प्रपूरयेत् ॥ १०७ ॥ रक्तस्राविणि चार्शांसि लेपयेत्तेन सर्पिषा । मेढ्रपायुप्रवृत्ते तु तदभ्यङ्गे प्रयोजयेत् ॥ ॥ १०८ ॥ पित्तजेषु विकारेषु स्फोटादिषु च बुद्धिमान् । विषेषु कीटदोषेषु विसर्पेषु प्रयोजयेत् ॥ १०९ ॥

दूब, नीलेकमल, कमल, मजीठ, एलुआ, रायसन, मोथा, खस, चन्दन, मुलेठी, पद्माख, लोध, कूठ, सफेद चन्दन, हल्दी, दारुहल्दी, काकोली, क्षीरकाकोली, सारिवा और अनन्तमूल, प्रत्येकका कल्क एक २ तोला, गौका घी १ प्रस्थ, बकरीका दूध ४ प्रस्थ, चावलोंका जल ४ प्रस्थ और दूबका स्वरस ४ प्रस्थ लेवे सबको एकत्र मिलाकर यथाविधिसे मन्द २ अग्निकेद्वारा घृतको सिद्ध करे। इस घृतको पान करनेसे रुधिरकी वमन दूर होती है। नास लेनेसे नासिकासे रुधिरका गिरना बन्द होता है। कानोंमें भरनेसे कानसे रुधिरका गिरना बंद होता है। जो बवासीरमें रुधिर गिरता हो तो बवासीरके मस्सोंपर इस घृतका लेप करे। जो रुधिर गुदा और लिंगके द्वारा गिरता हो तो इसको शरीरमें मालिस करे। इस

घृतको बुद्धिमान् वैद्य—सम्पूर्ण पित्तविकार, स्फोटक, विषदोष, कृमिदोष और विसर्परोगमें प्रयोग करे ॥ १०४ ॥ १०५ ॥ १०६ ॥ १०७ ॥ १०८ ॥ १०९ ॥

शुंगाद्यघृत ।

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थशुङ्गानापोथ्य वासयेत्। अहोरात्रं जले तप्ते घृतं तेनाम्भसा पचेत् ॥ ११० ॥ तदर्द्धं शर्करायुक्तं लेहयेत् क्षौद्रपादिकम् । अधो वा यदि वा चोर्ध्वं रक्तं यस्य प्रवर्त्तते । सुखं तस्याशु युञ्जेत अग्निवेशवचो यथा ॥ १११ ॥

वड, गूलर और पीपलवृक्षके अंकुर लेकर एक दिनरात जलमें पकाकर क्वाथ बनावे, फिर इस क्वाथमें घृत डालकर पकावे, पश्चात् उस घीमें आधा भाग मिश्री और चौथाई भाग शहद डालकर सेवन करे तो उर्ध्व और अधो दोनों मार्गोंसे रुधिरका गिरना बंद होता है और रोगी सुखी होता है । ऐसा अग्निवेशने कहा है ॥ ११० ॥ १११ ॥

शतावरीघृत ।

शतावरीदाडिमतित्तिडीकं काकोलिमेदे मधुकं विदारीम् । पिष्ट्वा तु मूलं फलपूगकस्य घृतं पचेत् क्षीरचतुर्गुणश्च ॥ ११२ ॥ कासज्वरानाहविबन्धशूलं तद्रक्तपित्तञ्च घृतं निहन्ति ॥ ११३ ॥

शतावर, अनार, इमली, काकोली, मेदा, महामेदा, मुलेठी, विदारीकन्द और सुपारी इन सबको पीसकर सबसे चौगुना दूधमें घीको सिद्धकरे। यह शतावरी घृत--खांसी, ज्वर, आनाह, विबन्ध, शूल और रक्तपित्तको नष्ट करता है ॥ ११२ ॥ ११३ ॥

बृहच्छतावरीघृत ।

शतावर्यास्तु मूलानां रसं प्रस्थद्वयं मतम्। तत्समञ्च भवेत्क्षीरं घृतप्रस्थं विपाचयेत्॥११४॥जीवकर्षभकौ मेदा महामेदा तथैव च। काकोली क्षीरकाकोली मृद्वीका मधुकं तथा ॥११५॥ मुद्गपर्णी माषपर्णी विदारी रक्तचन्दनम्। शर्करामधुसंयुक्तं सिद्धं विस्रावयेद्घृतम् ॥ ११६ ॥ रक्तपित्तविकारेषु वातरक्तगदेषु च । क्षीणशुक्रे प्रदातव्यं वाजीकरणमुत्तमम् ॥११७॥ अङ्गदाहं शिरोदाहं ज्वरं पित्तसमुद्भवम् । योनिशूलञ्च दाहञ्च मूत्रकृच्छ्रञ्च पैत्तिकम् ॥ ११८ ॥ एतान् रोगान्निहन्त्याशु छिन्नाभ्राणीव मारुतः । शतावरीसर्पिरिदं बलवर्णाग्निवर्द्धनम् । शतावर्यादिके चाज्ये शर्करामधुपादिकम् ॥ ११९ ॥

शतावरका रस २ प्रस्थ, गौका दूध २ प्रस्थ, उत्तम घी १ प्रस्थ तथा जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, दाख, मुलेठी, मुगवन, मषवन, विदारीकन्द, लाल चन्दन इनका कल्क डालकर घृतको सिद्ध करे । जब सिद्ध होजाय तब मिश्री और शहद डालकर उतार लेवे। यह महाशतावरीघृत रक्तपित्तरोग, वातरक्त और शुक्रकी क्षीणतामें प्रयोग करना चाहिए । यह उत्तम वाजीकरण तथा अंगदाह, शिरोदाह, पित्तज्वर, योनिशूल, दाह और पित्तजमूत्रकृच्छ्र इन सब रोगोंको नष्ट करता है । यह शतावरीघृत बल वर्ण और अग्निको बढानेवाला है। इस शतावरीघृतमें मिश्री और शहद चौथाई भाग डालना चाहिए ॥ ॥ ११४—११९ ॥

वासाद्यघृत ।

वासां सशाखां सपलाशमूलां कृत्वा कषायं कुसुमानि चास्याः । प्रदाय कल्कं विपचेद्घृतं तत्सक्षौद्रमाश्वेव निहन्ति रक्तम् ॥ १२० ॥ शाणस्य कोविदारस्य वृषस्य ककुभस्य च। कल्कान् कृत्वा प्रशंसन्ति पुष्पकञ्च चतुष्पलम् ॥ १२१ ॥

शाखा, पत्र और जड़सहित अडूसा लेकर क्वाथ बनावे। फिर उस क्वाथमें सन, कचनार बासा और अर्जुन इनके चारपल फूलोंका कल्क और घृत डालकर उत्तम विधिसे घृतको सिद्ध करे । इस घृतमें शहद

डालकर पान करनेसे रुधिरका गिरना बंद हो जाता है ॥ १२० ॥ १२१ ॥

वासाघृत।

समूलपत्रशाखं तु वृषं धौतं सुकुट्टितम्। स्वरसं तस्य निष्कास्य कषायं वा जले शृतम् ॥ १२२ ॥ चतुर्गुणे जले तस्मिन् घृतप्रस्थं विपाचयेत्। कुसुमैर्मञ्जरीभिश्च कल्कपेष्यैः सुखाग्निना ॥ १२३ ॥ विघट्टयेत् काष्ठदर्व्या पात्रे लोहमये दृढे। अनेन विधिना पक्वं मधुपादसमायुतम् ॥१२४॥ पिबेत्कासे क्षये श्वासे रक्तपित्ते हलीमके। शिरोपघाते तिमिरे तथा मन्दे च पावके। न तुल्यमस्ति भैषज्यं विशेषाद्रक्तपित्तिनाम् ॥ १२५ ॥

मूल,पत्र और शाखासहित अडूसेको लेकर जलसे धोकर कूटकर उसका स्वरस निकाले, अथवा चौगुने जलमें पकाकर क्काथ बनावे,फिर इस क्काथमें घृत और अडूसेके फूल एवं मंजरी (बाल) का कल्क बनाकर मिला देवे, पश्चात् मंद मंद अग्निसे घृतको सिद्ध करे। फिर इस घृतको लोहेके पात्रमें डालकर काठकी करछीसे खूब घोटे। इसप्रकारसे पकाये हुए घृतमें चौथाई भाग शहद डालकर पान करे।यह घृत—खांसी,क्षय, श्वास,रक्तपित्त, हलीमक, शिरोपघात, तिमिर और मंदाग्निरोगमें अत्यन्त हितकारी है। विशेषकर रक्तपित्तरोगकी इससे उत्तम अन्य औषधि नहीं है १२२—१२५ ॥

बृहद्वासा घृत।

वासाकल्करसे सर्पिः पयसा सह पाचयेत्। कल्कैर्भूनिम्बकुटजमुस्तयष्ट्याह्वचन्दनैः॥ १२६ ॥ उशीरमधुकानन्ताशारिवोत्पलपद्मकैः। त्रायन्त्युत्पलमूर्वाभिर्मदयन्त्याश्च पल्लवैः ॥ १२७ ॥ सिताक्षौद्रयुतं हन्याद्रक्तपित्तं सुदारुणम्। पैत्तिकं वातिकं गुल्मं स्वरभेदं हलीमकम् ॥ १२८ ॥ ये चान्ये कीर्त्तिता रोगा रक्तपित्तकफाश्रयाः। तान् सर्वान्नाशयत्येतत्पीयमानं हिताशिना ॥ १२९ ॥

उत्तम गौका घी ४ सेर, अडूसेका रस १६ सेर, दूध ४ सेर, अडूसा, चिरायता, कुडेकी छाल, नागरमोथा, मुलैठी, चन्दन, खस, महुआ, अनन्तमूल, सारिवा, कमल, पद्माख,त्रायमाण, कमोदिनी, मूर्वा और मोतियाके पत्ते इनसबका मिला हुआ कल्क एक सेर लेवे। सबको मिलाकर विधिपूर्वक घृतको सिद्ध करे। इस घृतको मिश्री और शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे दारुण रक्तपित्त, पैत्तिक गुल्म,वातिक गुल्म, स्वरभेद, हलीमक और जो अन्यान्य रक्तपित्त एवं कफसे उत्पन्न होनेवाले रोग हैं वे सब पानमात्रसे ही नष्ट होते हैं ॥ १२६—१२९ ॥

कामदेवघृत।

अश्वगन्धापलशतं तदर्द्धं गोक्षुरस्य च। शतावरी विदारी च शालिपर्णी बलामृता ॥ १३० ॥ अश्वत्थस्य च शृङ्गानि पद्मबीजं पुनर्नवा। काश्मर्य्याश्च फलञ्चैव माषबीजं तथैव च ॥ १३१ ॥ पृथग्दशपलान् भागांश्चतुर्द्रोणेऽम्भसः पचेत्। द्रोणशेषे रसे तस्मिन् पूतशीते प्रदापयेत् १३२॥ मृद्वीका पद्मकं कुष्ठं पिप्पली रक्तचन्दनम्। पत्रकं नागपुष्पञ्च आत्मगुप्ताफलं तथा ॥ १३३ ॥ नीलोत्पलं शारिवे द्वे जीवनीयान्यशेषतः। पृथक्कर्षसमा भागाः शर्करायाः पलद्वयम् ॥ १३४ ॥ रसः स्यात्पौण्ड्रकेक्षूणामाढकाढकमाहरेत्। चतुर्गुणेन पयसा घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ १३५ ॥ रक्तपित्तं क्षतक्षीणं कामलां वातशोणितम्। हलीमकं पाण्डुरोगं वर्णभङ्गं स्वरक्षयम् ॥ १३६ ॥ मूत्रकृच्छ्रमुरोदाहं पार्श्वशूलञ्च नाशयेत्। एतद्राज्ञां प्रदातव्यं बह्वन्तःपुरचा-

रिणाम् ॥ १३७ ॥ स्त्रीणाञ्च वामजातानां दुर्बलानाञ्च देहिनाम् । क्लीबानामल्पशुक्राणां जीर्णानामल्परेतसाम् ॥ १३८ ॥ श्रेष्ठं बलकरं धन्यं हृद्यं वृष्यं रसायनम् । ओजस्तेजस्करं स्वर्यमायुष्यं प्राणवर्द्धनम् ॥ १३९ ॥ संबृंहयति शुष्कांश्च पुरुषान्दुर्बलेन्द्रियान् । सर्वरोगविनिर्मुक्तस्तोयसिक्तो यथा द्रुमः । कामदेव इति ख्यातं सर्पिरुक्तं महागुणम् ॥ १४० ॥

असगन्ध १०० पल, गोखरू ५० पल, शतावर, विदारीकंद, शालिपर्णी, खिरैंटी, गिलोय, पीपल वृक्षके अंकुर, कमलगट्टा, पुनर्नवा, कुम्भेरके फल और उडद प्रत्येक दश २ पल लेवे । सबको मिलाकर चार द्रोण जलमें पकावे । जब पकते २ एक द्रोण जल शेष रह जाय तब उतार कर छान लेवे, फिर इस क्वाथमें दाख, पद्माख, कूठ, पीपल, लालचन्दन, तेजपात, नागकेशर, कौंचके बीज, नीलकमल, दोनों सारिवा और जीवनीयगणकी समस्त औषधि(जीवक, ऋषभक, ऋद्धि, वृद्धि, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, मुगवन, मषवन) प्रत्येक एक २ तोला, मिश्री ८ तोले, पुंडक, दोनों प्रकारकी ईखका रस एक २ आढक परिमाण, दूध ४ प्रस्थ और घी १ प्रस्थ डाल कर मंद मंद अग्निसे यथाविधि घृतको सिद्ध करे। यह कामदेवघृत—रक्तपित्त, क्षतक्षीण, कामला, वातरक्त, हलीमक, पाण्डुरोग, विवर्णता, स्वरभंग, मूत्रकृच्छ्र, उरोदाह और पसलियोंकी पीडाको नष्ट करता है। यह घृत विशेषकर अन्तःपुरमें रहनेवाले राजाओंके सेवन योग्य है । तथा वन्ध्या स्त्री, दुर्बल मनुष्य, नपुंसक, शुक्रक्षीण, वृद्धमनुष्य और अल्पवीर्यवाले मनुष्यको अत्यन्त हितकारी है। उत्तम, बलकारक, धन्य, हृदयको हितकारी, वीर्यको बढानेवाला, रसायन, ओज और तेजको बढानेवाला, स्वरको सुन्दर करनेवाला, आयु और प्राणोंको बढानेवाला, सूखे और दुर्बल इन्द्रियवाले पुरुषोंको पुष्ट करनेवाला और सर्वरोगोंसे मुक्त करनेवाला है । जिस प्रकार जलसे सींचा हुआ वृक्ष पुष्ट हो जाता है । यह महागुणसम्पन्न घृत "कामदेव" इस नामसे प्रसिद्ध है ॥ १३०—१४० ॥

अनन्तादिघृत ।

अनन्ता शारिवा पद्मं सलोध्रं नीलमुत्पलम् । कल्कैरेतैः पचेत्सर्पिः सक्षीरं नावनं परम् ॥ १४१ ॥ रक्तपित्तं प्रशमयेन्नारीणां प्रदरं तथा ॥१४२॥ हस्तपादाङ्गदाहेषु ज्वरे रक्ते तथोर्ध्वगे । वासाघृतं शतावर्य्या सिद्धं वा परमं हितम् ॥ १४३ ॥

अनन्तमूल, गौरिसर, कमल, लोध और नीलेकमल इनके कल्कके द्वारा दूधमें घृतको पकावे। इस घृतकी नास देनेसे रक्तपित्तरोग नष्ट होता है और स्त्रियोंका प्रदर दूर होता है। हांथ पांवकी दाह, ज्वर और ऊर्ध्वगत रक्तपित्तमें वासाघृत और शतावरीघृत प्रयोग करने चाहिये ॥ १४१ ॥ १४२ ॥ १४३ ॥

दूर्वादितैल ।

दूर्वामधुकमञ्जिष्ठाद्राक्षेक्षुरसचन्दनैः । शारिवाद्वयनक्ताह्वैस्तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ १४४ ॥ क्षीरं चतुर्गुणं दत्त्वा सिद्धमभ्यञ्जने हितम् । रक्तपित्तहरं ह्येतद्बल्यं वातघ्नमुत्तमम् । दूर्वातैलमिति ख्यातं शशिवर्णकरं महत् १४५

दूब, मुलैठी, मजीठ, दाख, ईखका रस, चन्दन, दोनों प्रकारका सारिवा और हल्दी इनके कल्कके द्वारा चौगुने दूधमें एक प्रस्थ तेलको पकावे । इस तेलकी मालिस करे तो यह रक्तपित्तको नष्ट करता है । बलकारक, वातनाशक और उत्तम है । यह दूर्वातैल चन्द्रमाके समान शरीरके वर्णको उज्ज्वल करता है ॥ १४४ ॥ १४५ ॥

मधुकादिगुटिका ।

मधुकं मधुकं द्राक्षात्वक्क्षीरीपिप्पली तथा । त्रिजातस्य त्रयः कर्षाः शर्करायाः पलद्वयम् ॥ १४६॥ द्राक्षामधुकखर्ज्जूरं पलांशं श्लक्ष्णचूर्णितम् । मधुना गुटिका बद्धा हन्ति सा पित्तशोणितम् ॥ १४७ ॥ कासश्वासारुचिच्छर्दिमूर्च्छाहिक्कामदभ्रमान् ।

क्षतक्षयं स्वरभ्रंशं प्लीहानं दीर्घमारुतान् । रक्तनिष्ठीवहृत्पार्श्वरुक्पिपासाज्वरानपि ॥ १४८ ॥

मुलैठी, महुआ, दाख, वंशलोचन, पीपल, दालचीनी, इलायची और तेजपात प्रत्येक एक २ तोला, मिश्री ८ तोले, दाख, मुलैठी और खजूर प्रत्येक एक २ तोले लेवे, सबको एकत्र पीसकर शहदमें मिलाकर गोली बनावे । प्रतिदिन एक गोली खाय, यह गोली—रक्तपित्तको नष्ट करती है तथा खाँसी, श्वास, अरुचि, वमन, मूर्च्छा, हिचकी, मद, भ्रम, क्षतक्षय, स्वरभंग, प्लीहा, दीर्घवात, रुधिरकी वमन, हृदयरोग, पसलीकी पीडा, तृषा और ज्वरको नष्ट करती है ॥ १४६ ॥ १४७ ॥ १४८ ॥

खण्डकूष्माण्ड ।

वृद्धं पुरातनं वापि कूष्माण्डं कठिनं दृढम् । त्वक्शिराभिर्विनिर्मुक्तं मन्त्रबीजैर्विवर्जितम् ॥ १४९ ॥ स्विन्नं सुपिष्टं दृषदि वस्त्रेणैव तु पीडितम् । विशुष्कमातपे किञ्चिद्गृह्णीयात्तु तुलां ततः ॥ १५० ॥ औदुम्बरे कटाहे तु पचेत्प्रस्थं तु सर्पिषः । कृत्वा क्षौद्रनिभं तस्मिन्क्षिपेत्खण्डशतं भिषक् ॥ १५१ ॥ कूष्माण्डपीडनात्तोयं तेनैव विपचेत्पुनः । मुक्तसर्पिर्यदा पश्येत्तदा पक्वं विनिर्दिशेत् ॥ १५२ ॥ सुस्विन्नपाके निष्पन्ने सर्पिरर्द्धं क्षिपेन्मधु । कणापलद्वयं चूर्णं जीरकञ्च सनागरम् ॥ १५३ ॥ त्रिसुगन्धं सधान्याकं मरिचं शुक्तिपाणिकम् । खादेदग्निबलापेक्षी पथ्यभुङ्मात्रया नरः ॥ १५४॥ कासं श्वासं क्षतक्षीणं यक्ष्माणं हृदये रुजम् । रक्तपित्तं ज्वरं दाहं तृट्छर्दिञ्च विमुञ्चति । वैस्वर्य्यं पीनसं कार्श्यं जीमूतमिव मारुतः ॥ १५५ ॥

खुब पकेहुए, पुराने, कठिन और दृढ पेठेको लेकर छीलकर उसकी शिरा अन्त्र और बीज निकाल लेवे फिर उसको उसेकर पीसकर बस्त्रमें निचोड़ लेवे, पश्चात् कुछेक धूपमें सुखा लेवे, ऐसे सौपल पेठेको ताम्बेके पात्रमें एक प्रस्थ घीको डालकर पकावे । जब घी खूब तपकर लाल होजाय तब उसमें १०० पल खांड डालकर पकावे और पेठेको कपडेमें निचोडनेसे जो पेठेका रस निकाला हो उसको भी इसमें डालदेवे,जब घी नहीं दीखे तब उसको पक्व जानकर उतार लेवे । फिर उसमें घीसे आधा शहद, पीपलका चूर्ण ८ तोले, जीरा सफेद, सोंठ, दालचीनी, इलायची, तेजपात, धनियाँ और कालीमिरच प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले डालदेवे । अग्निका बलाबलपर विचारकर इसकी मात्रा निरूपण कर भक्षण करे । इसपर पथ्य भोजन करे । इसको सेवन करनेसे खाँसी, श्वास, क्षतक्षीण, राजयक्ष्मा, हृदयकी पीडा, रक्तपित्त, ज्वर, दाह, तृषा, वमन, स्वरभंग, पीनस और कृशता इन सबका इसप्रकार नाश होता है जिसप्रकार बादलोंका वायुसे नाश होता है ॥ १४९–१५५ ॥

द्वितीयखण्डकूष्माण्ड ।

कूष्माण्डकात्पलशतं सुस्विन्नं निष्कुलीकृतम् । पचेत्तप्ते घृतप्रस्थे शनैस्ताम्रमये कटे ॥ १५६ ॥ यदा मधुनिभः पाकस्तदा खण्डशतं न्यसेत् ॥ पिप्पलीशृङ्गवेराभ्यां द्वे पले जीरकस्य तु । त्वगेलापत्रमरिचं धान्यकानां पलार्द्धकम् ॥ १५७ ॥ न्यसेच्चूर्णीकृतं तत्र दर्व्या संघट्टयेत्ततः । तत्पक्वं स्थापयेद्भाण्डे दत्त्वा क्षौद्रं घृतार्द्धकम् ॥ १५८ ॥ तद्यथाऽग्निबलं खादेद्रक्तपित्ती क्षतक्षयी । कासश्वासतमच्छार्दितृष्णाज्वरनिपीडितः ॥ १५९ ॥ वृष्यं पुनर्नवकरं बलवर्णप्रसादनम् । उरःसन्धानकरणं बृंहणं स्वरबोधनम् । अश्विभ्यां निर्मितं श्रेष्ठं कूष्माण्डकरसायनम् ॥ १६० ॥

सौपल पेठेको लेकर उसेयलेवे, फिर उसको छीलकर बीजादि निकालकर टुकड़े कर लेवे । पश्चात् उन पेठेके टुकडोंको तांबेके पात्रमें एकप्रस्थ घी डाल कर पकावे । जब वह घी शहदके समान पककर तपजाय तब उसमें १०० पल खांड डाल देवे । जब पाक तैयार होजाय तब पीपल, अदरख और जीरा प्रत्येकका चूर्ण दो दो पल, दालचीनी, इलायची, तेजपात, कालीमिरच और धनियाँ प्रत्येकका चूर्ण दो दो तोले डालकर खूब करछीसे चलाकर एकमएक करदेवे । फिर उसको उत्तम चिकने बासनमें भरकर रखदेवे और आधाप्रस्थ शहद मिलादेवे । अग्निका बलाबल विचार रक्तपित्त, क्षतक्षय, खांसी, श्वास, तमक, वमन, तृषा और ज्वरसे पीडित मनुष्यको सेवन करावे । यह वृष्य,फिरसे नवीन अवस्था करनेवाला, बल और वर्णको प्रसन्न करनेवाला,उरसन्धानकारक, पुष्टिकारक, स्वरशोधक और उत्तम हो । इस कूष्माण्ड रसायनको अश्विनीकुमारोंने निर्म्माण किया है ॥ १५६--१६० ॥

वासाखण्ड ।

पञ्चाशच्च पलं स्विन्नं कूष्माण्डात्प्रस्थमाज्यतः । पक्कं पलशतं खंडं वासाक्काथाढके पचेत् ॥ १६१ ॥ शुभाधात्रीघनैर्भार्ङ्गीत्रिसुगन्धैश्च कर्षिकैः । शैलेयविश्वधान्याकमरिचैश्च पलांशकैः ॥ १६२ ॥ पिप्पलीकुडवश्चैव मधुमानीं प्रदापयेत् । कासं श्वासं क्षयं हिक्कां रक्तपित्तं हलीमकम् । हृद्रोगमम्लपित्तञ्च पीनसञ्च व्यपोहति ॥ १६३ ॥

प्रथम पेठेको उबाल छीललेवे, फिर चक्कूसे बनारकर टुकडे करलेवे, ऐसे टुकडे २०० तोले, घृत ६४ तोले, बूरा १०० पल, पेठेका स्वरस २५६ तोले, अडूसेका काथ २५६ तोले लेवे । फिर इन सबको विधिपूर्वक मिलाकर पकाव । अवलेहको उत्तमप्रकारसे पकवानेपर वंशलोचन, आमले, नागरमोथा, भारंगी, तेजपात, इलायची, और दालचीनी प्रत्येक एक एक कर्ष, भूरिछरीला, सोंठ, धनियां और कालीमिरच प्रत्येक एक एक तोला और पीपल १६ तोले, सबका चूर्ण करके डालदेवे शीतल होनेपर३२ तोले शहद मिलादेवे । यह वासाकूष्माण्ड खाँसी, श्वास, क्षय, हिचकी,रक्तपित्त, हलीमक, हृदयरोग, अम्लपित्त और पीनसरोगको नष्ट करता है ॥ १६१ ॥ ॥ १६२ ॥ १६३ ॥

१ प्रथम तांबेके पात्रमें कलई करालेवे नहीं तो कस हो जावेगा ।

युक्तसर्पिषि कूष्माण्डे पाके बन्धेनुमुद्रया ॥ १६४ ॥

घीमें पेठेके टुकडोंको डालकर मुद्रासे पाक करना चाहिये ॥ १६४ ॥

सूरणपाक ।

कूष्माण्डकविधानेन सूरणः परिकीर्त्तितः । अर्शसां मूढवातानां मन्दाग्नीनां विशेषतः ॥ १६५ ॥

उपरोक्त कूष्मांडपाककी विधिसे ही सूरणपाक कराना चाहिये । यह सूरणपाक-बवासीर, मूढवात और मन्दाग्निवाले पुरुषोंको अत्यन्त हितकारी है ॥ १६५ ॥

क्षीरमिक्षुरसं यूषं पञ्चमूलीकषायजम् । अनुपानं प्रयोक्तव्यं खण्डकूष्माण्डकादिषु ॥ १६६ ॥

दूध, ईखका रस और पंचमूलके काथसे सिद्ध कियाहुआ यूष ये सब खण्डकूष्माण्ड आदिके अनुपान जानने ॥ १६६ ॥

द्वितीयवासाखण्ड ।

तुलामादाय वासायाः पचेदष्टगुणे जले । तेन पादावशेषेण पाचयेदाढकं भिषक् ॥ १६७ ॥ चूर्णानामभयानाञ्च खण्डाच्छुद्धाच्छतं तथा । द्वे पले पिप्पलीचूर्णात् सिद्धशीते च माक्षिकात् ॥ १६८ ॥ कुडवं पलमात्रन्तु चातुर्जातन्तु चूर्णितम् । क्षिप्त्वा विलोडितं खादेद्रक्तपित्ती यथानलम् ॥ १६९ ॥ कासश्वासगृहीतश्च यक्ष्मणा च प्रपीडितः ॥ १७० ॥

अडूसेको १०० पल लेकर अठगुने जलमें पकावे जब चौथाभाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छान

लेवे फिर उसमें हरडोंका चूर्ण २५६ तोले, शुद्धखांड १०० पल और पीपलका चूर्ण ८ तोले, मिलाकर पकावे । पककर शीतल होजाय तब उसमें ३२ तोले शहद और चातुर्जातकका चूर्ण ४ तोले मिलाकर खूब करछीसे चलाकर एकमएक करलेवे, अग्निके बलानुसार इसको सेवन करे। यह वासाखण्ड खाँसी, श्वास और राजयक्ष्मारोगवालेको हितकारी है॥ १६७॥१६८॥१६९॥ १७०॥

वासाकुटजकूष्माण्डशतपत्र्यासहामृताः। नित्यमार्द्राः प्रयोक्तव्या मानतो द्विगुणा मताः ॥ १७१ ॥

अडूसा, कुडा, पेठा, सेवति, और पियाँवासा तथा गिलोय यह सब गिलेमानसे दुगुने लेने चाहिये१७१॥

खण्डखाद्यलोह ।

क्षीरं चतुर्गुणं लोहाद्घृतं द्विगुणमुत्तमम् । चूर्णपादश्च वैडङ्गं दद्यान्मधुसिते समे ॥ १७२ ॥ एकीकृत्य पचेल्लोहं खादेदग्निबलं यथा । रक्तपित्तं जयत्युग्रं खण्डखाद्यं रसं स्मृतम् १७३॥

लोहेका चूर्ण १ भाग, दूध ४ भाग, घी २ भाग और लोहेसे चौथाई भाग वायविडंगका चूर्ण लेवे पहले लोहकी भस्म, दूध और घीको तांबेके बासनमें पकाकर फिर वायविडंगका चूर्ण मिलादेवे, जब शीतल होजाय तब समान भाग मिश्री और शहद मिलाकर चिकने बासनमें भरकर रखदेवे । अग्निका बलावल विचार कर सेवन करे । यह खंडखाद्यरस--उग्र रक्तपित्तको नष्ट करता है ॥ १७२ ॥ १७३ ॥

अमृताख्य लोहरसायन ।

अमृता त्रिवृता दन्ती श्रावणी खदिरो वृषः । चित्रको भृङ्गराजश्च कोकिलाक्षः सपुष्करः ॥ १७४ ॥ पुनर्नवाबलाकाशाः शिग्रुभोरटदारकाः । स्नुही रविरसो दर्भः कुशास्थि सहपीवरी ॥ १७५ ॥ गवाक्षी वरुणः कन्दश्चविका तालमूलिका । नागबला कणामूलं कुष्ठं ब्राह्मणयष्टिका ॥ १७६॥ पलोन्मितानि सर्वाणि जलद्रोणे विपाचयेत् । अष्टभागावशिष्टं तु कषायमुपकल्पयेत् ॥१७७॥ त्रिफलायास्तथा प्रस्थं जलाष्टगुणपाचितम् । तस्मादष्टावशेषस्तु कषायस्तु परिस्रुतः ॥ १७८ ॥ माक्षिकेण हतश्चापि पुटितश्च यथाविधि । आयसं चूर्णितं पूतं पलं षोडशसम्मितम् ॥ १७९ ॥ पलान्यभ्रस्य चत्वारि तावन्ति गन्धकस्य च । द्वे पले च रसस्यापि पुटितस्य यथाविधि१८०॥ गुडस्य च पलान्यष्टौ सितायाश्चाथ पौत्तिके । रक्तपित्तेऽथ खण्डस्य मत्स्यण्ड्या वाथ कासके ॥ १८१ ॥ गुग्गुलोर्द्विपलं दत्त्वा प्रस्थार्धं सर्पिषस्तथा । एवं पाकविधिज्ञस्तु पचेल्लोहं समाहितः ॥ १८२ ॥ शीतेऽवतार्ये मधुनः क्षिपेदष्टपलं भिषक् । माक्षिकस्य विशुद्धस्य द्विपलं रजसः क्षिपेत् ॥ १८३ ॥ शिलाजतोस्तथा चूर्णं पलार्द्धं सम्मितं भिषग् । अथैषां प्रक्षिपेच्चूर्णं पलमात्रं पृथक् पृथक् ॥१८४॥ त्रिकटु त्रिफला दन्ती त्रिवृता जीरकद्वयम् । गार्ग्यं सारं तालीशं धान्याकं मधुयष्टिका ॥१८५ शुभा रसांजनं भृङ्गी चित्रकं चव्यमुस्तकम् । चातुर्जातककङ्कोलं लवङ्गं जातिकं फलम् ॥ १८६ ॥ द्राक्षाखर्जूरकं चूर्णं पलार्धं सम्मितं भिषक्। एष लोहवरः श्रीमान् सर्वव्याधिप्रणाशनः ॥१८७॥ यत्र यत्र प्रयुञ्जीत तत्तदाशु विनाशयेत् । रक्तपित्तेऽम्लपित्ते च क्षये कुष्ठे ज्वरेऽरुचौ ॥१८८॥ दुर्नाम्नि चोदरे शूले ग्रहण्यां चामवातके । वातरक्ते मूत्रकृच्छ्रे प्रमेहे शर्करागदे ॥ १८९ ॥ अस्योपयोगान्मनुजस्तारुण्यमधिगच्छति । ब्रह्मचर्येण कुर्वीत प्लुतं माक्षिकसर्पि-

षा ॥ १९० ॥ माषकं रत्तिकावृद्ध्या यावदष्टौ च माषकाः । वर्जयेद्विदलं सूपं मांसं चानूपसम्भवम् ॥ १९१ ॥ ककारपूर्वकं सर्वं प्रयत्नेन विवर्जयेत् । अमृताख्यो वरो लोहः सर्वत्रैवोपयुज्यते । अनेन जन्तवः स्वस्था नीरुजः सन्ति नान्यथा ॥ १९२ ॥

गिलोय, निसोत, दन्ती, गोरखमुण्डी, खैर, अडूसा, चीता, भांगरा, तालमखाना, पोहकरमूल, पुनर्नवा, खिरैंटी, काँस, सहिंजना, ईखकी जड़, विधारा, थूहर का दूध, आकका दूध, डाभ, कुशा, हड़संकरी, शतावर, इन्द्रायण, वरना, कमलकंद, चव्य, मुसली, गंगेरन, पीपलामूल, कूठ और भारंगी प्रत्येक औषधि चार२ तोले लेकर एक द्रोण जलमें पकावे। जब पकते २आठवाँ भाग जल शेष रह जाय तब उतारकर छान लेवे, फिर एक प्रस्थ त्रिफलेको लेकर अठगुने जलमें पकावे जब आठवाँ भाग जल शेष रहजाय तब उतार कर छान लेवे और उसमें मिला देवे। पश्चात् इस काथमें अच्छे प्रकारसे पुटपाकसे किया और सोनामाखीसे मारा हुआ लोहेका चूर्ण १६पल, अभ्रककी भस्म १६ तोले, शुद्धगंधक १६ तोले, अच्छे प्रकारसे पुटपाक किया हुआ पारा ८ तोले, गुड८पल और जो पित्तकी अधिकता हो तो गुडके स्थानमें खांड डाले, रक्तपित्तके लिये खांड डाले और खांसीके लिये इसमें मिश्री मिलावे। शुद्ध गूगल ८ तोले, और ३२तोले घी डालकर लोहपाकको जाननेवाला विधिपूर्वक पकावे। जब पककर तैयार होजाय तब शीतल होनेपर ३२ तोले शहद मिलावे और शुद्ध सोनामाखीका चूर्ण ८ तोले और शुद्ध शिलाजीत२तोले मिलावे तथा त्रिकुटा, त्रिफला, दन्ती, निसोत, जीरा, कालाजीरा, खैरसार, तालीशपत्र, धनियाँ, मुलैठी, वंशलोचन, रसौत, काकडाशिंगी, चीता, चव्य और नागरमोथा प्रत्येकका चूर्ण चार ४ तोले, दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर, शीतलचीनी, लौंग, जायफल, दाख और खजूर प्रत्येकका चूर्ण दो दो तोले मिलादेवे, सबको यथाविधिसे मिलाकर एक उत्तम चिकने बासनमें भरकर रख देवे। यह श्रीमान् लोह सर्व लोहोंमें उत्तम है और सर्व प्रकारके रोगोंको हरनेवाला है । इसको जिस रोगमें दिया जावे यह उसर को नष्ट करता है। रक्तपित्त, अम्लपित्त, क्षय, कुष्ठ, ज्वर, अरुचि, बवासीर, उदररोग, शूल, संग्रहणी, आमवात, वातरक्त, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह और शर्करारोगको नष्ट करता है । इसको सेवन करनेसे मनुष्य तरुण होजाता है इसको सेवन करनेवाला मनुष्य ब्रम्हचर्य्य रहे और इस लोहेको घी और शहदमें मिलाकर सेवन करे। इसकी मात्रा एक रत्तीसे बढाकर आठमासे पर्य्यन्त है । इसपर द्विदल अन्न, अनूपदेशके जीवोंका मांस और ककारादि पदार्थ ये सम्पूर्ण छोडदेवे । यह अमृताख्यलोह सर्वरोगोंमें प्रयोग करना उचित है । इसके प्रभावसे सर्वप्राणी निरोग और स्वस्थ होते हैं ॥ १७४ ॥ १९२ ॥

खण्डादिलोह ।

शतावरी छिन्नरुहा वृषमण्डतिकाबलाः । तालमूली च गायत्री त्रिफलायास्त्वचस्तथा ॥ १९३ ॥ भार्ङ्गीपुष्करमूलस्य पृथक् पञ्चपलानि तु । जलद्रोणे विपक्तव्यमष्टभागावशेषितम् ॥ १९४ ॥ दिव्यौषधिहतस्याभि माक्षिकेण हतस्य च । पलं च द्वादशं देयं रुक्मलोहस्य चूर्णितम् ॥१९५ ॥ खण्डतुल्यं घृतं देयं पलषोडशकं बुधैः । पचेत्ताम्रमये पात्रे गुडादेः पाकवद्यथा ॥ १९६ ॥ प्रस्थार्द्धं मधुनो देयं शुभाश्मजतुकं त्वचम् । शृङ्गं विडङ्गं कृष्णा च शुण्ठ्यजाजी पलं पलम् ॥ १९७ ॥ त्रिफला धान्यकं पत्रं द्वयं मरिचकेशरम् । चूर्णं दत्त्वा सुमथितं स्निग्धभाण्डे निधापयेत्॥१९८॥ यथाकालं प्रयुञ्जीत बिडालपदकं ततः । गव्यक्षीरानुपानश्च सेव्यं मांसरसं पयः ॥ १९९ ॥ गुरुवृष्यान्नपानानि स्निग्धं मांसादि बृंहणम् । रक्तपित्तं प्रदुष्टञ्च क्षयं कासं विशेषतः ॥ ॥ २०० ॥ वातरक्तं प्रमेहञ्च शीतपित्तं वमिं क्लमम् । श्वयथुं पाण्डुरोगञ्च कुष्ठं प्लीहोदरं तथा ॥ २०१ ॥ आनाहं

रक्तस्रावश्च अम्लपित्तं निहन्ति च। चक्षुष्यं बृंहणं वृष्यं माङ्गल्यं प्रीतिवर्धनम् ॥ २०२ ॥ आरोग्यं पुत्रदं श्रेष्ठं कायाग्निबलवर्द्धनम् । श्रीकरं लाघवकरं खण्डखाद्यं प्रकीर्त्तितम् ॥ ॥ २०३ ॥ छागं पारावतं मांसं तित्तिरिक्रकराः शशाः । कुलिङ्गाः कृष्णसारा ये तेषां मांसानि योजयेत्॥२०४॥ नारिकेरपयःपानं सुनिषण्णकवास्तुकम् । शुष्कमूलकजीवाख्यं पटोलं बृहतीफलम् ॥ २०५ ॥ फलं वार्त्ताकपक्वाम्रं खर्ज्जूरं स्वादुदाडिमम् । ककारपूर्वकं यच्च मांसं चानूपसंभवम् । वर्जनीयं विशेषेण खण्डकाद्यं समश्नता ॥ २०६ ॥

शतावर, गिलोय, अडूसा, गोरखमुण्डी, खिरैंटी, मुसली, खैर, त्रिफला, दालचीनी, भारंगी, पोहकरमूल प्रत्येक औषधि वीस २ तोले लेकर एक द्रोण जलमें पकावे। जब आठवाँ भाग जल शेषरहजाय तब उतारकर छानलेवे, फिर इसमें मैनशिल और सोनामाखीसे मारा हुआ तीक्ष्ण लोहेका चूर्ण ४८ तोले, सफेद खांड ६४ तोले और घी ६४ तोले मिलाकर तांबेके पात्रमें गुडादि पाकके समान पकावे । जब पककर शीतल हो जाय तब३२तोले शहद मिलावे तथा वंशलोचन, शिलाजीत, दालचीनी, काकडाशिंगी, वायविडंग, पीपल, सोंठ और जीरा प्रत्येकका चूर्ण चार चारतोले, त्रिफला, धनियाँ, तेजपात, काली मिरच और नागकेशर प्रत्येकका चूर्ण दो २ तोले डाले, सबको एकत्र मथकर एक चिकने बासनमें भरकर रख देवे। समयको विचार इस औषधिको एक तोला भक्षण करे और ऊपरसे गौका दूध पीवे । इसपर मांसरस, दूध, भारी और वृष्य अन्नपान, स्निग्धपदार्थ और मांसादि बृंहण पदार्थ भोजन करे । यह उत्तमलोह-दुष्ट रक्तपित्त, क्षय, खाँसी, वातरक्त, प्रमेह, शीतपित्त, वमन, क्लम, सूजन, पाण्डुरोग, कोढ, प्लीहा, उदररोग, आनाह, रक्तस्राव और अम्लपित्तको नष्ट करता है । नेत्रोंको हितकारी, पुष्टिकारक, वीर्य्यजनक, मंगलकारक, प्रीतिवर्द्धक, आरोग्यदायक, पुत्रदायक, श्रेष्ठ, जठराग्नि और बलको बढानेवाला, लक्ष्मीजनक और लाघवकर, यह खण्डखाद्य नामसे कहा है । इसपर बकरा, परेवा, तीतर, कृकर, (केकडा) खरगोश, कुलिंग(चिडा) और कृष्णसार मृग इनका मांस सेवन करना चाहिये । तथा नारियलका जल, शिरिआरी, बथुआ, सूखी मूली, जीवक शाक, पटोल (परवल), कटेरीके फल, बैंगुन, पके आम, खजूर और मीठा अनार ये सब तथा ककारनामवाले सम्पूर्ण पदार्थ और अनूपदेशोंके जीवोंका मांस ये सब खण्डखाद्य लोहेको सेवन करनेवाला त्याग देवे॥१९३—२०६ ॥

यच्च पित्तज्वरे प्रोक्तं बहिरन्तश्च भेषजम् । रक्तपित्ते हितं तच्च क्षीणक्षतहितं च यत् ॥ २०७ ॥

पित्तज्वरमें जो बाह्य और आभ्यन्तर चिकित्सा कही है तथा क्षीणक्षतमें जो चिकित्सा कही है वह सब रक्तपित्तमें हितकारी है ॥ २०७ ॥

शीतावगाहसेकाद्याः प्रशस्ता रक्तपित्तिनाम् । दाडिमामलकं विद्वानम्लसात्म्याय दापयेत् ॥ २०८ ॥ शालिषष्टिकनीवारचणमुद्गमसूरकाः । श्यामाक्ताश्च प्रियंगवश्च भोजनं रक्तपित्तिनाम् ॥ २०९ ॥

शीतलजलमें घुसकर स्नान करना और शीतल जलको शरीरपर छिडकना रक्तपित्तमें हितकारक है । जिनको खटाई सात्म्य है उनको अनार और आमले सेवन करने चाहिये । रक्तपित्तमें भोजनके लिये शालिचावल, साँठी चावल, नीवार, चने, मूँग, मसूर, समा और कंगनी[1] यह धान हितकारी है ॥ २०८ ॥ ॥ २०९ ॥

पटोलनिम्बवेत्राग्रतण्डुलीयादयो हिताः । पारावतकपोतांश्च लावान्रक्ताक्षवर्णकान् ॥ २१० ॥ शशान् कपिञ्जलानैणान् हरिणान्कालपुच्छकान् । रक्तपित्तहरान्विद्याद्रसांस्त्वे-

१ कंगनी धान गरम और रूक्ष अधिक होता है अतः वह नहीं देना चाहिये इसी प्रकार नीवार भी जानो ।

षां प्रयोजयेत् ॥ ईषदम्लाननम्लांश्च घृतभृष्टान् सशर्करान् ॥ २११ ॥

शाकके लिये परवल, नीम, बेंतका अग्रभाग और चौलाई आदि लेने चाहिये । परेवा, कबूतर, लवा चकोर, वत्तक, खरगोश, कपिञ्जल, एण, हरिण और कालपुच्छ मृग इनके मांसका रस रक्तपित्तनाशक है इसलिये रक्तपित्तमें इनका मांस सेवन करना चाहिये तथा किंचित् अम्ल और मधुर पदार्थोंको घीमें भूनकर मिश्री मिलाकर सेवन करे ॥ २१० ॥ २११ ॥

सामान्यो हितयोगेषु द्रव्यशक्तिं समीक्ष्य हि । प्रयोज्यो रक्तपित्तादौ योगो वातादिजे गदे ॥ २१२ ॥

वातादिरोगोंमें सामान्य जो हितकारक योग कहे हैं उनके द्रव्योंके गुणोंको विचारकर रक्तपित्तमें प्रयोग करे ॥ २१२ ॥

इति वंगसेने भाषाटीकायां रक्तपित्ताधिकार संपूर्ण ।

अथ राजयक्ष्मनिदान ।

वेगरोधात् क्षयाच्चैव साहसाद्विषमाशनात् । त्रिदोषो जायते यक्ष्मा गदो हेतुश्च दुष्टयात् ॥ १ ॥

मल और मूत्रादि वेगोंको रोकनेसे, एवं अत्यन्त मैथुनसे क्षीण होनेसे, साहस, अर्थात् (अपनेसे नहीं करनेयोग्य जो भारी काम उनको करनेसे) अथवा बलवान्के साथ वैर करनेसे और विषम अर्थात् विरुद्ध भोजन या भोजनपर भोजन किम्वा अजीर्णमें भोजन और कभी अधिक कभी कम भोजन करनेसे तीनों दोष दुष्ट होकर राजयक्ष्मा रोगको उत्पन्न करते हैं ॥ १ ॥

कफप्रधानैर्दोषैस्तु रुद्धेषु रसवर्त्मसु । अतिव्यवायिनो वापि क्षीणे रेतस्यनन्तराः । क्षीयन्ते धातवः सर्वे ततः शुष्यति मानवः ॥ २ ॥

कफकी प्रधानतावाले वातादिदोष जब कुपित होते हैं तब उनके कुपित होनेसे रसकी बहनेवाली नाडी बंद हो जाती हैं । अथवा अत्यन्त मैथुन करनेसे जब वीर्य्य क्षीण होता है तब उसके क्षीण होनेसे अन्य मांसादिक धातुएं भी क्षीण हो जाती हैं तब मनुष्य सूखने लगता है ॥ २ ॥

पूर्वलक्षण ।

श्वासाङ्गसादकफसंस्रवतालुशोषवम्यग्निसादमदपीनसकासनिद्राः । शोषे भविष्यति भवन्ति स चापि जन्तुः शुक्लेक्षणो भवति मांसपरो रिरंसुः ॥३॥ स्वप्नेषु काकशुकशल्लकिनीलकण्ठगृध्रास्तथैव कपयः कृकलासकाश्च । तं वाहयन्ति स नदीर्विजलाश्च पश्येच्छुष्कांस्तरून्पवनधूमदवार्दितांश्च ॥ ४ ॥

जब राजयक्ष्मा उत्पन्न होनेको होता है तब उससे पहले श्वास, शरीरमें शिथिलता, मुखके द्वारा कफका निकलना, तालुका सूखना, वमन, अग्निकी मंदता, मद (नसा), पीनस, खाँसी, निद्राका आना ये लक्षण होते हैं । वह मनुष्य मांसके खानेकी ओर स्त्रीप्रसंग करनेकी इच्छा करता है उसके नेत्र सफेद होते हैं । तथा स्वप्नमें कौआ, तोता, सेंइ, नीलकंठ, गीध, बन्दर और गिरगट इनपर अपनेको बैठा देखता है, एवं जलरहित नदी, पवन, धुँआ, दावाग्निसे पीडित और सूखे ऐसे वृक्षोंको देखता है ॥ ३ ॥ ४ ॥

राजयक्ष्माके त्रिरूपलक्षण ।

अंसपार्श्वाभितापश्च सन्तापः करपादयोः । ज्वरः सर्वाङ्गगश्चेति लक्षणं राजयक्ष्मणः ॥ ५ ॥

कन्धे और पसलियोंमें सन्ताप, हाथ और पांवोंमें दाह और सब शरीरमें ज्वर ये राजयक्ष्माके सामान्य तीन लक्षण हैं ॥ ५ ॥

षड्रूपलक्षण ।

कासो ज्वरः पार्श्वशूलं स्वरभेदो महारुचिः । अग्निमान्द्यं विजानीयाल्लक्षणं राजयक्ष्मणः ॥ ६ ॥

खाँसी, ज्वर, पसलियोंमें शूलकी पीडा, स्वरभंग, अत्यन्त अरुचि और मंदाग्नि ये छः लक्षण राजयक्ष्मामें होते हैं ॥ ६ ॥

दोषभेदसे एकादशरूपलक्षण।

स्वरभेदोऽनिलाच्छूलं सङ्कोचश्चांसपार्श्वयोः। ज्वरो दाहोऽतिसारश्च पित्ताद्रक्तस्य चागमः ॥ ७ ॥ शिरसः परिपूर्णत्वमभक्तच्छन्द एव च। कासः कण्ठस्य चोध्वंसो विज्ञेयः कफकोपतः ॥ ८ ॥

वातके कोपसे स्वरभंग, शूल, कन्धे और पसलियोंमें संकोच होता है। पित्तके कोपसे ज्वर, दाह, अतीसार और रुधिरका स्राव होता है। और कफके कोपसे शिरमें भारीपन, भोजनमें अरुचि, खाँसी और गलेका पडजाना ये लक्षण होते हैं ॥ ७ ॥ ८ ॥

द्वितीयषड्रूपलक्षण।

भक्तद्वेषो ज्वरः कासः श्वासः शोणितदर्शनम्। स्वरभेदश्च जायन्ते षड्रूपे राजयक्ष्माणि ॥ ९ ॥

भोजनमें अरुचि, ज्वर, खाँसी, रुधिरका निकलना और स्वरभेद ये छः लक्षण राजयक्ष्मामें होते हैं ॥ ९ ॥

साध्यासाध्यता।

एकादशभिरेभिर्वा षड्भिर्वापि समन्वितम्। कासातिसारपार्श्वार्त्तिस्वरभेदारुचिज्वरैः ॥ १० ॥ त्रिभिर्वा पीडितं लिङ्गैर्ज्वरकासासृगामयैः। जह्याच्छोषार्दितं जन्तुं स्वमिच्छन् विपुलं यशः ॥ ११ ॥

ऊपर जो स्वरभेदादि ग्यारह लक्षण कहे हैं उनसे युक्त अथवा खाँसी, अतीसार, पसलियोंमें पीडा, स्वरभेद, अरुचि और ज्वर इन छः लक्षणोंयुक्त, अथवा ज्वर, खाँसी और रुधिरका गिरना इन तीनों लक्षणोंयुक्त ऐसे शोषरोगीको विपुल यशका चाहने वाला वैद्य त्याग देवे ॥ १० ॥ ११ ॥

सर्वैरर्धैस्त्रिभिर्वापि लिङ्गैर्मांसबलक्षयैः। युक्तो वर्ज्यश्चिकित्स्यस्तु सर्वरूपोऽप्यतोऽन्यथा ॥ १२ ॥

सर्व लक्षणों युक्त, अथवा छः लक्षणों युक्त, किंवा तीन लक्षणोंयुक्त ऐसे शोषरोगीकी यदि उसके मांस, बलादिक्षय हो गये हों तो चिकित्सा नहीं करनी चाहिये और जो उसके सम्पूर्ण लक्षण भी हों परन्तु उसके मांस और बल क्षय न हुए हों तो उसकी यत्नपूर्वक चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १२ ॥

महाशनं क्षीयमाणमतिसारप्रपीडितम्। शूनमुष्कोदरश्चैव यक्ष्मिणं परिवर्जयेत् ॥ १३ ॥ शुक्लाक्षमन्नद्वेष्टारमूर्ध्वश्वासनिपीडितम्। कृच्छ्रेण बहुमेहंतं यक्ष्मा हन्तीह मानवम् ॥ १४ ॥

जो राजरोगी बहुत भोजन करनेपर भी दिन प्रतिदिन क्षीण होता जाय, अतिसारसे पीडित हो, जिसके अंडकोशों और उदरपर सूजन आगई हो, जिसकी आँखें सफेद होगी अन्नमें अरुचि हो, ऊर्ध्वश्वाससे पीडित और जो अत्यन्त कष्टके साथ वारंवार मूते ऐसे राजयक्ष्मारोगीको वैद्य त्याग देवे ॥ १३ ॥ १४ ॥

परं दिनसहस्रं तु यदि जीवति मानवः। सुभिषग्भिरुपक्रान्तस्तरुणः शोषपीडितः ॥ १५ ॥ उपक्रमेदात्मवन्तं दीप्ताग्निमकृशं नरम् ॥ १६ ॥

जिसकी उत्तम वैद्योंद्वारा चिकित्सा की गई हो और वह तरुण हो तो ऐसा राजयक्ष्मारोगी एक हजार दिनतक जी सकता है। सारांश यह है कि इस रोगकी एक हजार दिन तककी परम अवधि है। जिन मनुष्योंकी इन्द्रियें वशमें हैं, जिनकी अग्नि दीपन है और जिनका शरीर कृश नहीं हुआ है ऐसे राजयक्ष्मारोगियोंकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १५ ॥ १६ ॥

व्यवायशोकादिजन्यक्षयरोगके लक्षण।

व्यवायशोकवार्धक्यव्यायामाऽध्वप्रशोषितान्। व्रणोरःक्षतसंज्ञौ च शोषिणौ लक्षणैः शृणु ॥ १७ ॥

अब व्यवायशोषी, शोकशोषी, वार्द्धक्यशोषी, व्यायामशोषी, अध्वशोषी, व्रणशोषी और उरःक्षतशोषी; इनके यथाक्रमसे लक्षण कहते हैं ॥ १७ ॥

व्यवायशोषीके लक्षण ।

व्यवायशोषी शुक्रस्य क्षयलिङ्गैरुपद्रुतः । पांडुदेहो यथापूर्वं क्षीयन्ते चास्य धातवः ॥ १८ ॥

व्यवायशोषी अर्थात् अत्यन्त मैथुन करनेसे जो क्षयरोग उत्पन्न होता है उसमें सम्पूर्ण शुक्रक्षयके लक्षण होते हैं और इस रोगीका शरीर पीला हो जाता है । फिर शुक्रसे मज्जा,मज्जासे अस्थि,अस्थिसे मेद, मेदसे मांस, मांससे रुधिर और रुधिरसे रसका क्षय होता है इसीको विलोम क्षय कहते हैं ॥ १८ ॥

शोकशोषीके लक्षण ।

प्रध्यानशीलः स्रस्ताङ्गः शोकशोष्यपि तादृशः । विना शुक्रक्षयकृतैर्विकारैरुपलक्षितः ॥ १९ ॥

शोकशोषी अर्थात् अत्यन्त शोक चिन्तादि करनेसे जो शोषरोग होता है उसमें अत्यन्त चिन्ता हो, और सम्पूर्ण अंग शिथिल हों इसमें शुक्रक्षयके विना व्यवायशोषीके सब लक्षण होते हैं ॥ १९ ॥

जराशोषीके लक्षण ।

जराशोषी कृशो मन्दो नष्टबुद्धिबलेन्द्रियः । कम्पनोऽरुचिमान्भिन्नकांस्यपात्रहत स्वरः ॥ २० ॥ ष्ठीवति श्लेष्मणा हीनो गौरवारुचिपीडितः । संप्रस्रुतास्यनासाक्षः शुष्करूक्षमलच्छविः॥ २१ ॥

जराशोषी अर्थात् वृद्धताके कारण जो शोषरोग होता है उसमें रोगी कृश हो जाता है तथा उसकी बुद्धि बल और इन्द्रियें मन्द अथवा नष्ट हो जाती हैं, कम्प हो, अरुचि, फूटे काँसेके पात्रके समान शब्द हो; वारंवार थूकनेपर भी कफ नहीं निकले, शरीरमें भारीपन, अरुचिसे पीडित, मुख, नासिका और नेत्रोंमेंसे पानी गिरे सूखा और रूखा मल उतरे, शरीर रूखा और सूखा हो ॥ २० ॥ २१ ॥

अध्वशोषीके लक्षण ।

अध्वशोषी च स्रस्ताङ्गः संभृष्टपरुषच्छविः । प्रसुप्तगात्रावयवः शुष्कक्लोमगलाननः ॥ २२ ॥

अध्वशोषी अर्थात् अधिक मार्ग चलनेसे जो शोकरोग होता है उसमें रोगीका शरीर शिथिल तथा भुनेहुएके समान और खरदरा होजाता है और उसके सम्पूर्ण शरीरके अवयव सुन्न होजाते है तथा क्लोम (तृषा लगनेका स्थान), कण्ठ और मुख सूखजाते हैं ॥ २२ ॥

व्यायामशोषीके लक्षण।

व्यायामशोषीभूयिष्ठमेभिरेव समन्वितः । लिङ्गैरुरःक्षतकृतैः संयुक्तश्च क्षतं विना ॥ २३ ॥

व्यायामशोषी अर्थात् अत्यन्त परिश्रम या अधिक व्यायाम करनेसे जो शोषरोग होता है उसमें अध्वशोषीके लक्षण और क्षतके विना उरःक्षतके सब लक्षण होते हैं ॥ २३ ॥

व्रणशोषीके लक्षण ।

रक्तक्षयाद्वेदनाभिस्तथैवाहारयन्त्रणात् । व्रणितस्य भवेच्छोषः स चासाध्यतमो मतः ॥ २४ ॥

व्रणरोगीको अत्यन्त रुधिरके क्षय होनेसे, व्रणकी अत्यन्त पीडासे और आहारके थकनेसे जो शोष होता है उसको असाध्य जानना ॥ २४ ॥

अथ चिकित्सा ।

व्यवायशोषिणां क्षीररसमांसाज्यभोजनैः । सकलैर्मधुरैर्हृद्यैर्जीवनीयरुपाचरेत् ॥ २५ ॥

व्यवायशोषी मनुष्योंके लिये दूध, मांसरस और घीके साथ भोजन करना हितकारी है। तथा सम्पूर्ण मधुर, हृदयको हितकारी एवं प्राणरक्षक पदार्थ उपयोगी हैं ॥ २५ ॥

हर्षणाश्वासनैः क्षीरैः स्निग्धैर्मधुरशीतलैः। दीपनैर्लघुभिश्चान्नैः शोकशोषमुपाचरेत् ॥ २६ ॥

शोकशोषी मनुष्योंकी—आनन्द, धीरज, स्निग्ध, मधुर, शीतलपदार्थ, दीपन और हलके अन्न इनके द्वारा चिकित्सा करनी चाहिए ॥ २६ ॥

आस्यासुखैर्दिवास्वप्नशीतैर्मधुरबृंहणैः। तक्रमांसरसाहारैरध्वशोषिणमाचरेत् ॥ २७ ॥

अध्वशोषी रोगियोंको—उत्तम आसन, बिछौने, गद्दी तकिये लगाकर बैठाना, दिनमें सोना, शीतल, मधुर और पुष्टिकारक पदार्थ, तक्र और मांसरसका आहार इनके द्वारा चिकित्सा करनी चाहिए ॥२७॥

व्रणशोषं जयेत्स्निग्धैर्दीपनैः स्वादुशीतलैः। ईषदम्लैरनम्लैर्वा यूषमांसरसादिभिः ॥ २८ ॥

चिकने, दीपन, स्वादिष्ठ, शीतल, किंचित् अम्ल और मधुर पदार्थोंका यूष तथा मांसरस, इनके द्वारा व्रणशोषीकी चिकित्सा करनी चाहिए ॥ २८ ॥

व्यायामशोषिणं स्निग्धैः क्षतक्षयहितैर्हिमैः। उपाचरेज्जीवनीयैर्विधिना श्लैष्मिकेण तु ॥ २९ ॥

व्यायामशोषी मनुष्यकी—स्निग्ध, क्षतक्षयपर हितकारी, शीतल, जीवनीयगणकी औषधियों और कफकारक पदार्थोंके द्वारा चिकित्सा करनी चाहिए२९॥

बलिनो बहुदोषस्य पञ्चकर्म्माणि कारयेत्। यक्ष्मिणः क्षीणदेहस्य तत्कृतं स्याद्विषोपमम् ॥ ३० ॥

बहुतदोषयुक्त, बलवान् क्षयरोगीको पंचकर्म्म (वमन, विरेचन, नस्य, निरूहबस्ति और अनुवासन बस्ति) कराने चाहिए, परन्तु क्षीण दोषवाले क्षयरोगीको ये पंचकर्म्म कराने विषके समान अहितकारी हैं ॥ ३० ॥

शुक्रायत्तं बलं पुंसां मलायत्तञ्च जीवितम्। अतो विशेषात्संरक्षेद्यक्ष्मिणो मलरेतसी ॥ ३१ ॥

बल शुक्रके आधीन है, और जीवन मलके आधीन है, इस कारण राजयक्ष्मवाले रोगीके वीर्य और मलकी यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए ॥ ३१ ॥

शालिषष्टिकगोधूमयवमुद्गादयः शुभाः। मद्यानि जाङ्गलाः पक्षिमृगाः शस्ता विशोषिणाम् ॥ मूलकानां कुलित्थानां यूषैर्वा सूपसंस्कृतैः॥३२ ॥

राजयक्ष्मामें शालिधान, साठीधान, गेहूँ, जौ और मूँग आदि सब अन्न हितकारी हैं तथा मदिरा और जांगलदेशके पशु—पक्षियोंका मांस और मूली तथा कुलथीका यूष अथवा दाल यह सब संस्कार कियेहुए पदार्थ हितकारी हैं ॥ ३२ ॥

सापिप्पलीकं सयवं सकुलित्थं सनागरम्। दाडिमामलकोपेतं स्निग्धमाजं रसं पिबेत्॥३३ ॥ तेन षड्विनिवर्तन्ते विकाराः पीनसादयः ॥३४ ॥

पीपल, जौ, कुलथी, सोंठ, अनार और आमले इनसे युक्त और घृतादिके द्वारा स्निग्ध किया हुआ बकरेका मांसरस पीवे इससे पीनसादि छः प्रकारके रोग दूर होते हैं ॥ ३३ ॥३४॥

षडङ्गयूष।

द्रव्यतो द्विगुणं मांसं सर्वतोऽष्टगुणं जलम्। पादस्थं संस्कृतं चाज्यं षडङ्गो यूष उच्यते॥ ३५॥

द्रव्यसे दुगुना मांस, सबसे आठगुना जल और जब पकते २ चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब घी डालकर सिद्ध करे इसको षडङ्ग यूष कहते हैं ३५॥

धान्यकं पिप्पलीविश्वदशमूलीजलं पिबेत्। पार्श्वशूलज्वरश्वासपीनसादि निवर्त्तयेत् ॥ ३६ ॥

धनियाँ, पीपल, सोंठ और दशमूलकी समस्त औषधियें इनका क्राथ बनाकर पान करनेसे पसलियोंका शूल, ज्वर, श्वास और पीनसादि रोग नष्ट होते हैं ॥ ३६ ॥

अश्वगन्धामृता भार्ङ्गी दशमूली बला वृषा। पुष्करातिविषे घ्नन्ति क्षयं क्षीररसाशिनः ॥ ३७ ॥

असगन्ध, गिलोय, भारंगी, दशमूल, वच, अडूसा पोहकरमूल और अतीस, इनका काथ पीवे और ऊपरसे दूध तथा मांसरसको भोजन करे तो राजयक्ष्मा रोग नष्ट होता है ॥ ३७ ॥

कपिमांसं समादाय श्लक्ष्णचूर्णन्तु कारयेत् । तत्पिबेत्क्षीरसंयुक्तं क्षयरोगहरं परम् ॥ ३८ ॥

वन्दरके सूखे मांसको पीसकर बारीक चूर्ण करलेवे, फिर उस चूर्णको दूधके साथ पान करनेसे क्षय रोग नष्ट होता है ॥ ३८ ॥

हारिणं छागमांसन्तु श्लक्ष्णचूर्णीकृतं शुभम् । अजाक्षीरेण पातव्यं क्षयव्याधिविनाशनम् ॥ ३९ ॥

और बकरेके मांसको सुखाकर खूब बारीक पीसकर चूर्ण करलेवे । फिर उस चूर्णको बकरीके दूधके साथ पीवे तो क्षयरोग नष्ट होता है ॥ ३९ ॥

दशमूलवचारास्नापुष्करसुरदारुनागरैः क्वथितम् । पेयं पार्श्वशिरोरुक्क्षयकासादिशान्तये सलिलम् ॥४०॥

दशमूल, वच, रायसन, पोहकरमूल, देवदारु और सोंठ इनका काथ, पार्श्वशूल, शिरोरोग, राजयक्ष्मा और कासादिरोगोंको नष्ट करता है ॥ ४० ॥

ककुभत्वङ्नागवलावानरिबीजानि चूर्णितं पयसि । पक्वं मधुघृतयुक्तं ससितं यक्ष्मादिकासहरम् ॥ ४१ ॥

अर्जुनकी छाल, गंगरेन और कौंचके बीज, इनका चूर्ण करके दूधमें डालकर पकावे, फिर उसमें शहद, घी और बूरा डालकर पान करे तो राजयक्ष्मा, खाँसी आदि रोग दूर होते हैं ॥ ४१ ॥

स्थिरापुनर्नवैरण्डवासर्षभाः सजीवकाः । श्वदंष्ट्राभीरुलांगूलीविदारीहंसपादिकाः ॥ ४२ ॥ बृहत्यौ वृश्चिकाली च द्वे मेदे मर्कटी तथा । शोषगुल्मानिलश्वासकासपित्तहरो गणः ॥ ४३ ॥

शालिपर्णी, पुनर्नवा, अंड, अडूसा, ऋषभक, जीवक, गोखरू, शतावर, जलपीपल, विदारीकंद, हंसपदी, कटेरी, बडी कटेरी, वृश्चिकाली, मेदा, महामेदा और कौंछ इन औषधियोंका समूह-शोष, गुल्म, वात, श्वास, खाँसी और पित्तको नष्ट करता हैं ॥४२ ॥४३ ॥

द्विपञ्चमूलीमगधाधान्यनागरजं जलम् । चातुर्जातकसंयुक्तं पिबेन्नित्यं क्षयातुरः । कासज्वरादिशमनं बलपुष्टिविवर्द्धनम् ॥ ४४ ॥

दशमूल, पीपल, धनियाँ और सोंठ इनके काथमें चातुर्जातका चूर्ण डालकर क्षयरोगी नित्य पान करे तो खाँसी और ज्वरादिरोग नष्ट होते हैं तथा बल और पुष्टिकी वृद्धि होती है ॥ ४४ ॥

समूलपत्रच्छदपल्लवाया रसः प्रयोज्यो मदयन्तिकायाः । मासोपयोगेन समस्तलिङ्गं यक्ष्माणमुग्रं हरति प्रसह्य ॥ ४५॥

मूल, पत्र और कोमल पल्लवों सहित मोतियेके पञ्चाङ्गको कूटकर रस निचोड लेवे, इस रसको एक महीने पर्य्यन्त सेवन करे तो सम्पूर्ण लक्षणयुक्त उग्र राजयक्ष्मा रोग नष्ट होता है ॥ ४५ ॥

छागमांसं पयश्छागं छागं सर्पिः सनागरम् । छागोपसेवा शयनं छागमध्ये तु यक्ष्मनुत् ॥ ४६ ॥

बकरेका मांस, बकरीका दूध और बकरीका घी सोंठ मिलाकर खानेसे और बकरी, बकरोंकी सेवा करने और उनके बीचमें सोनेसे राजयक्ष्मा रोग नष्ट होता है ॥ ४६ ॥

कूष्माण्डकफलोत्थेन रसेन परिपेषितम् । लाक्षाकर्षद्वयं पीत्वा जयेद्रक्तक्षयं नरः ॥ ४७ ॥

दो तोले लाखको लेकर पेठेके रसमें पीसकर पान करनेसे रक्तक्षय रोग शांत होता है ॥ ४७ ॥

व्योषं शतावरी त्रीणि फलानि द्वे बले तथा । सर्वामयहरो योगः सेव्यो लोहरजोऽन्वितः ॥ ४८ ॥ एतद्रक्षःक्षतं

हन्ति कण्ठजां विविधां रुजम्। राजयक्ष्माणमत्युग्रं बाहुस्तम्भमथार्दितम्॥ ४९॥

त्रिकुटा, शतावर, त्रिफला, खिरैंटी और कंघी इन सबका चूर्ण करके लोहेका चूर्ण मिलाकर सेवन करनेसे सर्वप्रकारके रोग दूर होते हैं तथा उरःक्षत, अनेकप्रकारके कण्ठरोग, अत्यन्त उग्र राजयक्ष्मा, बाहुस्तम्भ और आर्दितरोग नष्ट होता है॥४८॥४९॥

मधुनाढ्या विडङ्गाश्मजतुलोहघृताभयाः। घ्नन्ति यक्ष्माणमत्युग्रं सेव्यमाना हिताशिनः॥ ५०॥

वायाविड़ंग, शिलाजीत, लोहा, घी और हरडका चूर्ण शहदमें मिलाकर हितकारी भोजन, करनेवाला मनुष्य सेवन करे तो अत्यन्त उग्र राजयक्ष्मा नष्ट होता है॥ ५०॥

चव्यत्र्योषविडङ्गानि चूर्णं कृत्वा लिहेन्नरः। सर्पिर्मधुभ्यां मुच्येत क्षयरोगान्न संशयः॥ ५१॥

चव्य, त्रिकुटा और वायविडंग इनका चूर्ण करके घी और शहदमें मिलाकर चाटे तो क्षयरोग निःसन्देह छूटजाता है॥ ५१॥

दिनकरदीधितिशोषितपारावतमांसमनुदिनं नियतम्। यो लेढि मधुघृताभ्यां स जयति यक्ष्माणमत्युग्रम्॥ ५२॥

परेवाके मांसको सूर्यके धूपमें प्रतिदिन सुखाकर शहद और घीमें मिलाकर चाटे तो अत्यन्त उग्र राजयक्ष्मा रोग नष्ट होता है॥ ५२॥

कृष्णाद्राक्षासितालेहः क्षयहा क्षौद्रतैलवान्। मधुसर्पिर्युतो वाश्वगन्धाकृष्णासितोद्भवः॥ ५३॥

पीपल, दाख, मिश्री, शहद और तेल इनका अवलेह बनाकर चाटे अथवा असगन्ध और पीपलके चूर्णको मिश्री, शहद और घीमें मिलाकर चाटे तो क्षयरोग नष्ट होता है॥ ५३॥

शर्करामधुसंयुक्तं नवनीतं लिहेत् क्षयी। क्षीराशी लभते पुष्टिमतुल्ये चाज्यमाक्षिके॥ ५४॥

क्षयरोगी-मिश्री, शहद और नैनी घी इन तीनोंको मिलाकर सेवन करे अथवा न्यूनाधिक मात्रासे शहद और घी मिलाकर खाय और दूधका भोजन करे तो क्षयरोगी पुष्ट होता है॥ ५४॥

शतपुष्पा नतं कुष्ठं मधुकं देवदारु च। पिष्ट्वा लेपः ससर्पिष्कः पृष्ठपार्श्वांशरुक्षु च॥ ५५॥

सोया, तगर, कूठ, मुलैठी और देवदारु इनको पीसकर घीमें मिलाकर पीठ, पसली, कन्धे तथा वक्षस्थलपर लेप करे तो शूलकी पीडा दूर होती है॥ ५५॥

चूर्णं काकुभमिष्टं वासकरसभावितं बहून्वारान्। मधुघृतसितोपलाभिर्लिह्यं क्षयकासरक्तपित्तहरम्॥ ५६॥

अर्जुनकी छाल और ईंटका चूर्ण करके अनेकबार अडूसेके रसमें भावना देकर शहद, घी और मिश्री मिलाकर चाटे तो राजयक्ष्मा, खाँसी और रक्तपित्त नष्ट होता है॥ ५६॥

जीवन्त्याद्यनुवर्तन।

जीवन्ती शतवीजा च विकसा सुपुनर्नवा। अश्वगन्धाभया भार्ङ्गी तर्कारी मधुकं बला॥ ५७॥ विदारी सर्षपा कुष्ठं तंडुलीयाऽतसीफलम्। माषास्तिलाश्च किट्टश्च सर्वमेकत्र चूर्णयेत॥ ५८॥ यवचूर्णश्च द्विगुणं दध्ना युक्तं समाक्षिकम्। एतदुद्वर्त्तनं कार्य्यं पुष्टिवर्णबलप्रदम्॥ पुष्टये शोषिणां कार्य्यमभ्यंगोद्वर्त्तनादिकम्॥ ५९॥

जीवन्ती, सफेद दूब, मजीठ, पुनर्नवा, असगन्ध, हरड, भारंगी, अरणी, मुलैठी, खिरैंटी, विदारीकन्द, सरसों, कूठ, चौलाई, अलसी, उडद और तिल तथा तिल की खल इन सबको एकत्र चूर्ण कर लेवे और सब चूर्णसे दुगुना जौका चूर्ण लेवे। फिर सबको दही और शहदमें मिलाकर उपटन बनावे। इस

उपटनको शरीरमें मलनेसे पुष्टि, बल और वर्णकी वृद्धि होती है । यह उपटन राजक्ष्मारोगियोंको पुष्ट करनेके लिये नित्यप्रति मालिश करना चाहिए ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

पिबेन्नागबलामूलं सार्धं कर्षं विवर्द्धितम् । पलं क्षीरयुतं मासं क्षीरवर्त्ती निरन्नभुक् ॥६०॥ एष प्रयोगः पुष्ट्यायुर्बलारोग्यकरः परः ॥ ६१ ॥

गँगेरनकी जड़को प्रतिदिन डेढ कष बढाकर चार तोले दूधके साथ नित्य एक महानेतक सेवन करे और इसपर दूधका भोजन करे तो पुष्टि, आयु, बल और आरोग्य बढता है ॥ ६० ॥ ६१ ॥

सितोपलादिलेह ।

सितोपला तु गोक्षीरी पिप्पली बहुलात्वचः । अन्त्यादूर्ध्वं द्विगुणितं लेहयेन्मधुसर्पिषा ॥६२॥ चूर्णितं प्राशयेदेतच्छ्वासकासज्वरापहम् । पार्श्वशूलञ्च मन्दाग्निं सुप्तजिह्वामरोचकम् । हस्तपादाङ्गदाहेषु ज्वरे रक्ते तथोर्ध्वगे ॥ ६३ ॥

मिश्री १६ भाग, वंशलोचन ८ भाग, पीपल ४ भाग, छोटी इलायची २ भाग और दालचीनी १ भाग लेवे सबका चूर्ण कर शहद और घीमें मिलाकर चाटे तो खाँसी, श्वास, ज्वर, पसलियोंकी पीडा, मन्दाग्नि, जिह्वाकी जडता, अरुचि, हाथ, पांव, और शिरकी दाह, ज्वर और ऊर्ध्वगत रक्तपित्तरोग नष्ट होता है ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

तालीसादिचूर्णगुटिका ।

तालीसपत्रं मरिचं नागरं पिप्पली शुभा । यथोत्तरं भागवृद्ध्या त्वगेला चार्द्धभागिके ॥ ६४ ॥ पिप्पल्यष्टगुणा चात्र प्रदेया सितशर्करा । कासश्वासारुचिहरं तच्चूर्णं दीपनं परम् ॥ ॥ ६५ ॥ हृत्पाण्डुग्रहणीदोषप्लीहशोषज्वरापहम् । छर्द्यतीसारशूलघ्नं मूढवातानुलोमनम् ॥ ६६ ॥ कल्पयेद्गुटिकाश्चैव चूर्णं पक्का सितोपलम् । गुटिका ह्यग्निसंयोगाच्चूर्णाल्लघुतरा स्मृता ॥ ६७ ॥

तालीसपत्र १ भाग, मिरच २ भाग, सोंठ ३ भाग, पीपल ४ भाग, वंशलोचन ५ भाग, दालचीनी और इलायची आधा २ भाग, पीपल ८ भाग और सबकी बरावर मिश्री लेवे। सबको एकत्र मिलाकर चूर्ण बनावे । इस तालीसादि चूर्णको सेवन करनेसे खाँसी, श्वास और अरुचि नष्ट होती है, तथा अग्नि दीपन होती है । यह चूर्ण हृदय, पाण्डुरोग, संग्रहणी, प्लीहा, शोष, ज्वर, वमन, अतीसार और शूलको नष्ट करता है, एवं दुष्टवायुको अनुलोमन करता है । और जो इसकी गुटिका बनानी हो तो अग्निके संयोगसे चीनीकी चासनी बनाकर बडी बडी गोली बनावे, यह गोली चूर्णसे हलकी है ॥ ६४ ॥ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

महातालीसादिचूर्ण ।

तालीसं चित्रकं व्योषं दाडिमं तित्तिडीयकम् । एतेषां पलिकान् भागान् दीप्यको गजपिप्पली ॥ ६८ ॥ यवानी शतभेद्यश्च कृमिघ्नं ग्रन्थिकं तथा । चव्यश्च केसरश्चैव हपुषाजाजि धान्यकम् ॥ ६९ ॥ जातीफलं लवङ्गञ्च त्रिसुगन्धं कणा शुभा । एतेषां कर्षमेकन्तु द्विगुणा शर्करा भवेत् ॥ ७० ॥ पीनसं राजयक्ष्माणं हृद्रोगं वातपैत्तिकम् ॥ मूत्रकृच्छ्रोन्त्ररोगान् पांडुरोगं हलीमकम् ॥ ७१ ॥ अशीतिं वातजान् रोगांश्चत्वारिंशञ्च पैत्तिकान् । विंशतिं श्लैष्मिकांश्चैव ह्येकादशगलग्रहान् ॥ ७२ ॥ ज्वरांच्छूलानि चार्शांसि भगन्दरांश्च शोषकान् । वैस्वर्य्यहननश्चैव ऊरुस्तम्भं हनुग्रहम् ॥ ७३ ॥ महातालीसमित्येतत्सर्वान् व्याधीन व्यपोहति ॥७४॥

तालीसपत्र, चीता, त्रिकुटा, अनार और इमली प्रत्येक चार२ तोले लेवे। अजमोद, गजपीपल, अजवायन, चूका, वायविडंग, पीपलामूल, चव्य, केशर, हाऊबेर, जीरा, धनियाँ, जायफल, लौंग, दालचीनी, इलायची, तेजपात, पीपल और वंशलोचन, ये प्रत्येक औषधि एक एक तोला लेकर चूर्ण बनावे और सब चूर्णसे दुगुनी मिश्री लेवे। इस चूर्णको सेवन करनेसे पीनस, राजयक्ष्मा, हृद्रोग, वातपैत्तिक, मूत्रकृच्छ्र, नेत्ररोग, पाण्डुरोग, हलीमक, अस्सी प्रकारके वातरोग, चालीस प्रकारके पित्तरोग, बीसप्रकारके कफरोग, ग्यारह प्रकारके गलरोग, ज्वर, शूल, ववासीर, भगन्दर, शोष, स्वरकी हीनता, ऊरुस्तम्भ और हनुग्रह आदि सब प्रकारके रोग नष्ट होते हैं॥ ६८-७४॥

तालीसाद्यचूर्ण।

तालीसमरिचनागरपिप्पलीतन्मूलत्रुटिफलत्वचः। जातिफलमृणालंत्वक्क्षीरीमुस्ततुल्यांशम्॥ ७५॥ चूर्णं त्रिगुणसितोपलमेतद्रुच्यं प्रदीपनं हृद्यम्। ज्वररक्तपित्तकासश्वासक्षयगुल्मशूलघ्नम्॥ ७६॥ कृम्यतीसारग्रहणीहृद्रोगामूढमारुतं दाहम्। करचरणादिषु शमयति पांडुगदं कण्ठरोगञ्च॥ ७७॥

तालीसपत्र, कालीमिरच, सोंठ, पीपल, पीपलामूल, इलायची, दालचीनी, जायफल, मृणाल, (कमलकी नाल), वंशलोचन और नागरमोथा ये सब समान भाग लेवे और सबसे तिगुनी सफेद मिश्री लेवे सबको एकत्र चूर्ण कर लेवे। यह तालीशादि चूर्ण रुचिकारक, अग्निको दीपन करनेवाला, हृदयको हितकारी, तथा ज्वर, रक्तपित्त, खाँसी, श्वास, क्षय, गुल्म, शूल, कृमि, अतीसार, संग्रहणी, हृदयरोग, मूढवात, हाथ पाँवकी दाह, पाण्डुरोग और कण्ठरोगको नष्ट करता है॥७५॥७६॥७७॥

कर्पूरादिचूर्ण।

कर्पूरचोचकं कोलजातीफलदलैः समैः। लवङ्गमांसीमरिचैः कृष्णाशुण्ठीविवर्धितैः॥ ७८॥ चूर्णं सिता समं हृद्यं रोचनं क्षयकासजित्। वैस्वर्य्यश्वासगुल्मार्शश्छर्दिकण्ठामयापहम्॥ ७९॥ प्रयुक्तं चान्नपानेषु भेषजद्वेषिणां हितम्॥ ८०॥

कपूर, दालचीनी, कंकोल, जायफल और तेजपात ये समान भाग, लौंग १ भाग, वालछड़ २ भाग, कालीमिरच ३ भाग, पीपल ४ भाग और सोंठ ५ भाग लेवे और सबकी बराबर मिश्री लेवे, सबको एकत्र पीसकर चूर्ण बनावे। यह कर्पूरादिचूर्ण—हृदयको हितकारी, रोचक, क्षय, खाँसी, स्वरक्षीणता, श्वास, गुल्म, ववासीर, वमन और कण्ठरोगोंको नष्ट करता है। इसको सब अन्नपानोंमें प्रयोग करना चाहिए। यह औषधियोंसे द्वेष करनेवाले मनुष्योंको अत्यन्त हितकारी है॥७८-८०॥

जातीफलादिचूर्ण।

जातीफलं विडङ्गानि चित्रकं तगरं तिलाः। तालीसं चन्दनं शुण्ठी लवङ्गं चोपकुञ्चिका॥ ८१॥ कर्पूरं चाभया धात्री मरिचं पिप्पली तुगा॥ एषामक्षसमा भागाश्चातुर्जातकसंयुताः॥८२॥ पलानि सप्त भङ्गायाः शर्करा समयोजिताः। जयेत्कासं क्षयं श्वासं ग्रहणीमग्निमार्दवम्॥८३॥ वातश्लेष्मोद्भवांश्चान्यान् प्रतिश्यायानरोचकान्। एतानेव रुजो हन्ति वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा॥ ८४॥

जायफल, वायविडंग, चीता, तगर, तिल, तालीसपत्र, चन्दन, सोंठ, लौंग, इलायची, कपूर, हरड़ आमले, कालीमिरच, पीपल और वंशलोचन प्रत्येक औषधि एक २ तोला लेवे और चातुर्जातककी चारों औषधि ४ तोले, भांग ७ पल लेवे और सबके बराबर मिश्री लेवे सबको एकत्र पीसकर चूर्ण बनावे। यह जातीफलादिचूर्ण--खाँसी, क्षय, श्वास, संग्रहणी, अग्निकी मंदता, वात कफसे उत्पन्न हुए रोग, प्रतिश्याय और अरुचि इन सबको इस प्रकार नष्ट करता है जिस प्रकार वज्र वृक्षोंको नष्ट करता है॥ ८१—८४॥

शृंगादिचूर्ण ।

शृङ्ग्यर्जुनाश्वगन्धनागबलापुष्कराह्वयाछिन्नरुहाः । तालीसादिसमेता लेह्या मधुसर्पिर्भ्यां यक्ष्महराः ॥ ८५ ॥

काकड़ाशिंगी, अर्जुन, असगन्ध, गंगेरन, पोहकरमूल और गिलोय तथा सम्पूर्ण तालीसादिचूर्णकी औषधि लेवे। सबका एकत्र चूर्ण करके शहद और घीमें मिलाकर सेवन करे। यह राजयक्ष्माको नष्ट करता है ॥ ८५ ॥

यवान्यादिचूर्ण ।

यवानी तित्तिडीकश्च नागरश्चाम्लवेतसम्। दाडिमं बदरश्चाम्लं कार्षिकानुपकल्पयेत् ॥ ८६ ॥ धान्यसौवर्चलाजाजी वराङ्गं चार्द्धकार्षितम्। पिप्पलीनां पलश्चैकं द्वे पले मरिचस्य च ॥ ८७ ॥ शर्करायाश्च चत्वारि पलान्येकत्र चूर्णयेत् । जिह्वासंशोधनं हृद्यं तच्चूर्णं भक्तरोचकम् ॥ ८८ ॥ हृत्प्लीहपार्श्वशूलघ्नं विबन्धानाहनाशनम्। कासश्वासहरं ग्राहि ग्रहण्यर्शोविबन्धनुत् ॥ ८९ ॥

अजवायन, इमली, सोंठ, अम्लवेत, अनार और खट्टेबेर प्रत्येक एक एक तोला, धनियाँ, कालानमक, जीरा और दालचीनी प्रत्येक औषधि आधा २ तोला, पीपल ४ तोले, कालीमिरच ८ तोले और मिश्री १६ तोले लेवे सबको एकत्र पीसकर चूर्ण बनावे। यह यवान्यादि चूर्ण--जिह्वाको शुद्ध करनेवाला, हृदयको हितकारी, भोजनमें रुचिकारक, तथा हृदयरोग, प्लीहा, पार्श्वशूल, बिवन्ध, अफरा, खाँसी, श्वास, संग्रहणी और बवासीरको दूर करता है, तथा मलरोधक है ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥

सूक्ष्मैलादिचूर्ण ।

सूक्ष्मैलाकेसरं त्वक् च पत्रं तालीशजं तुगा। पृथ्विका दाडिमं धान्यं जीरकश्च द्विकार्षिकम् ॥ ९० ॥ पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यचित्रकनागरम् । मरिचं दीप्यकश्चैव वृक्षाम्लं चाम्लवेतसम् ॥ ९१ ॥ अजमोदाजगन्धा च दधित्थश्चेति कार्षितम्। प्रदेयमिह शुद्धायाः शर्करायाश्चतुष्पलम् ॥ ९२ ॥ चूर्णमस्ति प्रदातव्यं परमं रुचिवर्धनम्। प्लीहाकासमथाशांसि श्वासं शूलं ज्वरं वमिम् ॥९३॥ निहन्ति दीपयत्यग्निं बलवर्णप्रदं परम्। वातानुलोमनं हृद्यं कण्ठजिह्वाविशोधनम् ॥ ९४ ॥

छोटी इलायची, नागकेशर, दालचीनी, तेजपात, तालीसपत्र, वंशलोचन, बडी इलायची, अनार, धनियाँ और जीरा प्रत्येक औषधि दो दो तोले, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ, कालीमिरच, अजवायन, विषांबिल, अमलवेत, अजमोद, वनतुलसी और कैथ प्रत्येक एक एक तोला और शुद्ध अकरकरा चार पल लेवे, सबको एकत्र पीसकर चूर्ण करे। यह सूक्ष्मैलादि चूर्ण—अत्यन्त रुचिकारक तथा प्लीहा, खाँसी, बवासीर, श्वास, शूल, ज्वर और वमनको दूर करता है। अग्निको दीपन करता है, बल और वर्णको बढाता है, वायुको अनुलोमन करता, हृदयको हितकारी, कंठ और जिह्वाको शुद्ध करता है ॥ ९० ॥ ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ ९४ ॥

अमृतादिघृत ।

गुडूचीशारिवाह्रस्वापञ्चमूलीबलावृषम्। समूलपत्रशाखन्तु पृथग्दशपलानि च ॥ ९५ ॥ जलद्रोणे विपक्तव्यं यावत्पादावशेषितम् । पिप्पली चन्दनं लोध्रं ह्रीबेरोशीरपर्पटम् ॥९६॥ पाठाभूनिम्बयष्ट्याह्वत्रायन्तीनीलमुत्पलम् । मुस्तकेन्द्रयवाः शुण्ठी कटुकं सदुरालभम् ॥ ९७ ॥ त्वक्पत्रं वृषमूलञ्च कल्कैरर्धपलैर्भिषक् । अजाक्षीरेण तत्तुल्यं घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ९८ ॥ हन्ति यक्ष्माणमत्युग्रं रक्तपित्तं त्रिदोषजम्। श्वासकासक्षतक्षीणदाहशोथरुजापहम् ॥ ९९ ॥

गिलोय,सारिवा,लघु पंचमूल, खिरैंटी और अडूसा, ये प्रत्येक औषधि जड़,पत्ते, शाखासहित दश दश पल लेकर एक द्रोण जलमें पकावे। जब चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे, फिर उसमें पीपल, चन्दन, लोध,सुगंधवाला, खस, पित्तपापड़ा, पाढ, चिरायता, मुलेठी, त्रायमाण, नीलकमल, नागरमोथा, इन्द्रजौ, सोंठ, मिरच, धमासा, दालचीनी, तेजपात और अडूसेकी जड़, प्रत्येकका कल्क दो दो तोले, बकरीका दूध एक प्रस्थ और बकरीका अथवा गौका घी १ प्रस्थ लेवे । सबको मिलाकर यथाविधिसे घृतको सिद्ध करे।यह अमृतादिघृत—अत्यन्त उग्र राजयक्ष्मा,त्रिदोषज रक्तपित्त, श्वास, खाँसी, क्षत, क्षीण, दाह और सूजनको दूर करता है ॥ ९५—९९

वासादिघृत ।

वासामृतारिष्टनिदग्धिकानां रसेऽश्वगन्धेभबलार्जुनानाम् । सिद्धं सपञ्चोषणपुष्कराणां कल्कैर्घृतं छागपयस्सु शोषे ॥ १०० ॥

अडूसा, गिलोय, नीम, कटेरी, असगन्ध, गंगरेन और अर्जुनकी छाल इनके स्वरस अथवा क्काथ तथा पंचोषण और पोहकरमूलके कल्कके द्वारा बकरीके दूधमें घृतको सिद्ध करे।यह वासादिघृत-राजयक्ष्मामें अत्यन्त हितकारी है ॥ १०० ॥

बलादिघृत ।

बलाविदारिगन्धाभ्यां विदार्य्यामलकेन च । सिद्धं सलवणं सर्पिर्नस्यं पेयमतुत्तमम् ॥ १०१ ॥

खिरैंटी, शालपर्णी, विदारीकंद और आमले इनके कल्कके द्वारा घृतको सिद्ध करे, इसमें नमक मिलाकर, नास देवे अथवा इसको पान करे तो राजयक्ष्मा रोगमें अत्यन्त हितकारी है ॥ १०१ ॥

खर्जूरादिचूर्ण ।

घृतं खर्जूरमृद्वीकामधुकैः सपरूषकैः । सपिप्पलीकैर्वैस्वर्य्यकासश्वासज्वरापहम् ॥ १०२ ॥

खजूर, दाख, फालसे और पीपल इनके कल्कके द्वारा घृतको सिद्ध करे। यह घृत—स्वरहीनता,खाँसी, श्वास और ज्वरको नष्ट करता है ॥ १०२ ॥

एलादिमन्थ ।

एलाजमोदामलकाभयाक्षगायत्रिनिम्बाशनसालसारान् । विडङ्गभल्लातकचित्रकञ्च कटुत्रिकाम्भोदसुराष्ट्रिकांस्तु ॥ १०३ ॥ पक्त्वा जले तेन पचेत्तु सर्पिस्तस्मिंस्तु सिद्धे त्ववतारिते च । त्रिंशत्पलान्यत्र सितोपलाया दद्यात्तुगाक्षीरिपलानि षट् च ॥ ॥ १०४॥प्रस्थे घृतस्य द्विगुणञ्च दद्यात् क्षौद्रं ततो मन्थकृतं विदध्यात् । पलं पलं प्रातरतो लिहेच्च पश्चात्पिबेत् क्षीरमतन्द्रितश्च ॥१०५॥एतद्विधेयं परमं पवित्रं दोषघ्नमायुष्यतमं तथैव । यक्ष्माणमाशु व्यपहन्ति नूनं पाण्ड्वामयञ्चैव भगन्दरञ्च ॥ न चात्र किंचित्परिवर्जनीयं रसायनञ्चैतदुपास्यमानम् ॥ अत्र चतुर्गुणक्काथेन कल्कमिदं पाच्यम् ॥ १०६ ॥

इलायची, अजमोद, हरड, बहेड़ा, आमला, खैर, नीम, विजयसार, सालका सार, वायविडंग,भिलावे, चीता, त्रिकुटा, नागरमोथा और सोरठकी मिट्टी इनको जलमें पीसकर क्काथ बनावे।उस क्काथमें इन्हीं औषधियोंका चौथाई भाग कल्क डालकर एक प्रस्थ घृतको पकावे । जब उत्तम विधिसे पकजाय तब उतार लेवे। फिर उसमें सफेद मिश्री १२० तोला, वंशलोचन २४ तोले और शहद २प्रस्थ डालकर खूब चलाकर एकमएक करलेवे । प्रातःकाल प्रतिदिन इसमेंसे चार तोले प्रमाण लेकर चाटे और इसके ऊपर दूध पीवे । यह एलादिमंथ अत्यन्त पवित्र है।दोषनाशक, अवस्थास्थापक, राजयक्ष्माको बहुत थोडे ही कालमें नष्ट करता है तथा पाण्डुरोग और भगन्दर रोगको दूर करता है । इसपर कुछ भी परहेज नहीं है । यह उत्तम एलादिमंथ रसायन सेवन योग्य है । यहां चौगुने क्काथमें कल्क पकाना चाहिए ॥ १०३॥ ॥ १०४ ॥ १०५ ॥ १०६ ॥

दशमूलीशृतघृत ।

दशमूलीशृतात् क्षीरात् सर्पिर्यदुद्वियान्नवम् । सपिप्पलीकं सक्षौद्रं घृतं स्वरविशोधनम् ॥ १०७ ॥ शिरःपार्श्वांशशूलघ्नं कासश्वासज्वरापहम् ॥ १०८ ॥

दशमूलको दूधमें ओटाकर दही जमा देवे, फिर उसको मथकर घी निकाल लेवे । इस घृतमें पीपल और शहद डालकर सेवन करे । यह घृत—स्वरको शुद्ध करनेवाला, तथा शिर, पार्श्व और कंधोंके शूल खाँसी, श्वास और ज्वरका नाशक है॥१०७॥१०८

षडङ्गघृत ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्याचित्रकनागरैः । सयावशूकैः सक्षीरैः स्रोतसां शोधनं घृतम् ॥ कल्कोऽत्रपादिकः कार्य्यः क्षीरश्चापि चतुर्गुणम् ॥१०९॥

पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ और जवाखार इनके कल्कके द्वारा दूधमें घृतको सिद्ध करे । यह घृत—शरीरके स्रोतोंको शुद्ध करनेवाला है । यहां कल्क चौथाई भाग और दूध चौगुना लेना चाहिए ॥ १०९ ॥

जीवन्त्यादिघृत ।

जीवन्ती मधुकं द्राक्षा फलानि कुटजस्य च । शुण्ठी पुष्करमूलञ्च व्याघ्रीगोक्षुरकं बला ॥ ११० ॥ नीलोत्पलं चामलकी त्रायमाणा दुरालभा । पिप्पली च समञ्जिष्टा घृतं वैद्यो विपाचयेत् ॥ १११ ॥ एतद् व्याधिसमूहस्य रोगेशस्य समुत्थितम् । रूपमेकादशविधं सर्पिरुग्रं व्यपोहति ॥ ११२ ॥

जीवन्ती, मुलैठी, दाख, इन्द्रजौ, सोंठ, पोहकरमूल, कटेरी, गोखरू, खिरैंटी, नीलोत्पल, आमले, त्रायमाण, धमासा, पीपल और मजीठ इनके क्वाथ और कल्कके द्वारा वैद्य उत्तम प्रकार घृतको पकावे । यह घृत राजयक्ष्मासे उत्पन्न रोगोंके समूहको नष्ट करता है और एकादशलक्षणयुक्त उग्र राजयक्ष्मा रोगको नष्ट करता है ॥ ११० ॥ १११ ॥ ११२ ॥

पिप्पलीघृत ।

पिप्पलीगुडसंयुक्तं छागक्षीरयुतं घृतम् । एतदग्निविवृद्ध्यर्थं सर्पिश्च क्षयकासिनाम् ॥ ११३ ॥

पीपल, गुड और बकरीके दूधमें घीको सिद्ध करे। यह घृत—क्षय और खाँसीरोगवालोंकी अग्निको बढानेवाला है ॥ ११३ ॥

पाराशरघृत ।

यष्टीबलागुडूच्यल्पपञ्चमूलतुलां पचेत् । द्रोणेऽपामष्टभागस्थे तत्र पात्रे पचेद्घृतम् ॥ ११४ ॥ धात्रीविदारीक्षुरसे त्रिपात्रे पयसोऽर्मणे । सुपिष्टैर्जीवनीयैश्च पाराशरमिदं घृतम् । ससैन्धं राजयक्ष्माणमुन्मूलयति शीलितम् ॥ ११५ ॥

मुलैठी, खिरैंटी, गिलोय और लघुपंचमूलकी औषधियें ये सब १०० पल लेकर एक द्रोण जलमें पकावे। जब आठवाँ भाग जल शेष रहजाय तब उसमें एक आढक घी, आमले, विदारीकंद और ईखका रस तीन आढक, दूधमें पिसीहुई जीवनीय गणकी औषधियोंका कल्क१द्रोण सबको एकत्र मिलाकर घृतको सिद्ध करे । इसमें सैंधानमक डालकर विधिपूर्वक सेवन करे । यह पाराशरघृत- राजयक्ष्मारोगको जड़से नष्ट करता है ॥ ११४ ॥ ११५ ॥

श्वदंष्ट्रादिघृत ।

श्वदंष्ट्रां सदुरालभां चतस्रः पर्णिनीं बलाम् । भागानेतान्मितान् कृत्वा पलं पर्पटकस्य च ॥ ११६ ॥ पचेदष्टगुणे तोये चतुर्भागावशेषिते । रसे तु पूते द्रव्याणामेषां कल्कं समाचरेत् । शटीपुष्करमूलानां पिप्पली त्रायमाणयोः ॥ ११७ ॥ आमलक्याः किरातस्य तिक्तस्य कुटजस्य च । फलानां शारिवायाश्च सुपिष्टानक्षरस-

म्मितान् ॥ ११८ ॥ तैः साधयेद्घृतप्रस्थं क्षीरं द्विगुणितं भिषक् । ज्वरं दाहं भ्रमं शोषमंसपार्श्वशिरोरुजम् ॥ ११९ ॥ तृष्णाच्छर्दिमतीसारमेतत्सर्पिर्व्यपोहति । पचेदष्टगुणेनात्र घृतं ज्ञेयं चिकित्सकैः ॥ १२० ॥

गोखरू, धमासा, शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, माषपर्णी, मुद्गपर्णी, खिरैंटी और पित्तपापड़ा, प्रत्येक औषधि चार चार तोले लेकर अठगुने जलमें पकावे । जब पकते २ चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे फिर कचूर, पोहकरमूल, पीपल, त्रायमाण, आमले, चिरायता, कुटकी, इन्द्रजौ और सरिवा इन प्रत्येकका कल्क एक २ तोला, घी १ प्रस्थ, दूध २ प्रस्थ; सबको एकत्र मिलाकर विधिपूर्वक घृतको सिद्ध करे । यह घृत--ज्वर, दाह, भ्रम, शोष, कन्धे, पसली, शिरकी पीड़ा, तृषा, वमन, अतीसार इन सबको नष्ट करता है । यह घृत अठगुने क्काथमें पकाना चाहिए ॥ ११६ ॥ १२० ॥

छागलाद्यघृत ।

छागमांसं तुलां गृह्य साधयेन्नलवणेऽम्भसि । पादशेषेण तेनैव सर्पिः प्रस्थं विपाचयेत् ॥ १२१ ॥ ऋद्धिर्वृद्धिश्च मेदे द्वे जीवकर्षभकौ तथा । काकोलीक्षीरकाकोली कल्कैः पृथक्पलोन्मितैः ॥ १२२ ॥ सम्यक् सिद्धे चावतार्य्ये शीते तस्मिन् प्रदापयेत् । शर्करायाः पलान्यष्टौ मधुनः कुडवं क्षिपेत ॥ १२३ ॥ पलं पलं लिहेत्प्रातर्यक्ष्माणं हन्ति दुस्तरम् । क्षतं क्षयञ्च कासञ्च पार्श्वशूलमरोचकम् ॥ १२४ ॥ स्वरक्षयमुरोरोगं श्वासं हन्यात् सुदुस्तरम् । बलमांसकरं वृष्यमग्निसन्दीपनं परम् । स्त्रीणाञ्चतुष्पदे श्रेष्ठं पुंसां वै विहगे मतम् ॥ १२५ ॥

४०० तोले बकरेके मांसको लेकर १ द्रोण जलमें पकावे जब चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब घी ६४ तोले, ऋद्धि, वृद्धि, मेदा, महामेदा, जीवक, ऋषभक, काकोली और क्षीरकाकोली, प्रत्येकका कल्क अलग२ चार चार तोले लेकर सबको एकत्र कर उत्तमविधिसे घृतको सिद्ध करे । जब, घृत सिद्ध होकर शीतल हो जाय तब मिश्री ३२ तोले और शहद १६ तोले मिलादेवे इसको प्रतिदिन प्रातःकाल चार२तोले प्रमाण खाय । यह छागलाद्यघृत--क्षतक्षय, खाँसी, पार्श्वशूल, अरुचि, स्वरक्षय, उरोरोग और दुस्तर श्वासको नष्ट करता है । बल और मांसको बढानेवाला, वीर्य्यवर्द्धक और अग्निदीपक है। चौपाये पशुओंमें स्त्रीजातिका मांस उत्तम होता है और पक्षियोंमें पुरुषजातिका मांस उत्तम होता है ॥ १२१ ॥ ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ १२४ ॥ १२५ ॥

बलागर्भघृत ।

द्विपञ्चमूलस्य पचेत्कषाये प्रस्थद्वयं मांसरसस्य चैकम् । कल्कं बलायाः सुनियोज्य गर्भे सिद्धं पयः प्रस्थयुतं घृतञ्च ॥ १२६ ॥ सर्वाभिघातोत्थितयक्ष्मशूलक्षतक्षयोत्कासहरं प्रदिष्टम् ॥ १२७ ॥

दशमूलके दो प्रस्थ क्काथमें एक प्रस्थ मांसरस, खिरैंटीका कल्क १ प्रस्थ, गौका दूध १ प्रस्थ और गौका घी १ प्रस्थ मिलाकर विधिपूर्वक घृतको सिद्ध करे । यह घृत—सर्वप्रकारके अभिघातसे उत्पन्न हुए राजयक्ष्मा, शूल, क्षतक्षय और उग्र खाँसीको नष्ट करता है ॥ १२६ ॥ १२७ ॥

चन्दनादितैल ।

चन्दनाम्बुनखं वाप्यं यष्टी शैलेयपद्मकम् । मञ्जिष्ठा सरलं दारु कट्फलं पूतिकेशरम् ॥ १२८ ॥ पत्रैलेच सुरामांसी कङ्कोलं वनितांबुदम् । हरिद्रे शारिवे तिक्ता लवङ्गागुरुकुङ्कुमम् ॥ १२९ ॥ त्वग्रेणु नलिका चैभिस्तैलं मस्तुचतुर्गुणम् । लाक्षारससमं सिद्धं ग्रहघ्नं बलवर्णकृत ॥ १३० ॥ अपस्मारज्वरोन्मादकृत्यालक्ष्मीवि-

नाशनम् । आयुःपुष्टिकरञ्चैव वशीकरणमुत्तमम् ॥ १३१ ॥

चन्दन,सुगन्धवाला, नख,कूठ,मुलैठी,भूरिछरीला, पद्माख, मजीठ, धूपसरल, देवदारु, कायफल, जवादि, कस्तूरी, नागकेशर, तेजपत्र, इलायची, कपूरकचरी, कंकोल, फूलप्रियंगू, नागरमोथा, हल्दी, दारुहल्दी,दोनों प्रकारकी सारिवा,कुटकी,लौंग,अगर, केशर, दालचीनी, रेणुका और नलिका इनके कल्क और काथमें एक प्रस्थ तिलका तेल, दहीका तोड़ ४ प्रस्थ, लाखका रस ४ प्रस्थ मिलाकर विधिपूर्वक तैलको सिद्ध करे। यह चन्दनादितैल ग्रहदोषनाशक है, बल और वर्णको बढानेवाला, तथा अपस्मार, ज्वर, उन्माद और अलक्ष्मीका नाश करनेवाला है। आयु और पुष्टिको बढ़ानेवाला और उत्तम वशीकरण योग है ॥ १२८ ॥ १२९ ॥ १३० ॥ १३१ ॥

शतपाकतैल।

क्षीरे चतुर्गुणे तैलं प्रस्थं सिद्धं तिलोद्भवम् । शतशः पाचितं यष्टीपलकल्केन यत्नतः॥ १३२ ॥ पाननस्यादिभिर्यक्ष्महृद्गुदामयपांडुजित् । ऊर्ध्वजत्रुगुदोन्मादरक्तपित्तविसर्पनुत्॥१३३॥

तिलका तेल १ प्रस्थ और दूध ४ प्रस्थ लेवे फिर चार तोले मुलैठीका कल्क डालकर सौवार तैलको पकावे इस तैलको पान, नस्यादिमें प्रयोग करना चाहिये । यह राजयक्ष्मा, हृदयरोग, गुदारोग,पाण्डुरोग, उर्ध्वजत्रुरोग, उन्माद, रक्तपित्त और विसर्परोगको नष्ट करता है ॥ १३२ ॥ १३३ ॥

ज्वरसन्तापदौर्बल्ये लाक्षातैलं प्रयोजयेत् । बालरोगाधिकारोक्तं पारम्पर्योपदेशतः ॥ १३४ ॥

बालरोगमें जो परंपराके उपदेशसे लाक्षादि तैल कहा है उसको ज्वर, सन्ताप और दुर्बलतामें प्रयोग करना चाहिए ॥ १३४ ॥

वासावलेह ।

वासकस्य रसप्रस्थं मानिका सितशर्करा । पिप्पलीद्विपलं सर्पिर्दत्त्वा मृद्वग्निना पचेत् ॥१३५॥ लेहीभूते ततः पश्चाच्छीते क्षौद्रपलाष्टकम् । दत्त्वावतारयेद्वैद्यो मात्रया लेहमुत्तमम् १३६ निहन्ति राजयक्ष्माणं श्वासं कासञ्च दारुणम् । पार्श्वशूलञ्च हृच्छूलं रक्तपित्तं ज्वरं तथा ॥ १३७ ॥

अडूसेका स्वरस १ प्रस्थ, सफेद खाँड ६४ तोले, पीपल ८ तोले और घी ३२ तोले, सबको एक पात्रमें डालकर विधिपूर्वक मन्द २ अग्निसे पकावे जब पकते २ लेहके समान होजाय तब उतारलेवे, शीतल होनेपर ३२ तोले शहद मिलादेवे । अग्निका बलाबल विचार कर मात्राका निरूपण करे। यह वासावलेह—श्वास, राजयक्ष्मा, खाँसी, पार्श्वशूल, हृदयशूल, रक्तपित्त और ज्वरको दूर करता है ॥ ॥ १३५ ॥ १३६ ॥ १३७ ॥

सर्पिर्गुड ।

त्वक्क्षीरीश्रावणीद्राक्षामूर्वर्षभकजीवकैः। वीरद्धीक्षीरकाकोलीबृहतिकपिकच्छुभिः ॥ खर्जूरविषमेदाभिः क्षीरपिष्टैः पलोन्मितैः ॥ १३८ ॥ धात्रीविदारीक्षुरसप्रस्थैः प्रस्थं घृतात्पचेत् । शर्करायास्तुलां शीते क्षौद्रार्धप्रस्थमेव च ॥१३९॥ दत्त्वा सर्पिर्गुडान्कुर्यात्कासहिक्काज्वरामयम्। यक्ष्माणं तमकं श्वासं रक्तपित्तं हलीमकम् । शुक्रं निद्राक्षयं तृष्णां हन्युः कार्श्यं सकामलाम् ॥ १४० ॥

वंशलोचन, गोरखमुण्डी, दाख, मूर्वा, ऋषभक, जीवक, काकोली, क्षीरकाकोली,बडी कटेरी, कोंचके वीज, खजूर, कमलकेशर और मेदा इन प्रत्येक औषधधियोंको चार २ तोले लेकर दूधमें पसिलेवे। आमले, विदारीकन्द और ईखका रस प्रत्येक एक एक प्रस्थ एवं उत्तम गौका घी १ प्रस्थ लेवे, सबको मिलाकर अच्छे प्रकार मन्द मन्द अग्निसे पकावे। जब सिद्ध होजाय तब १०० पल सफेद खाँड और शहद ३२ तोले मिला कर इसके मोदक बना लेवे । यह सर्पिगुड अर्थात् मोदक--खाँसी,हिचकी,ज्वर,राजयक्ष्मा,तमक,श्वास,रक्तपित्त,

हलीमक, शुक्रक्षय, निद्राक्षय, तृषा, कृशता और कामलारोगको नष्ट करते हैं ॥ १३८—१४० ॥

च्यवनप्राशावलेह ।

बिल्वाग्निमन्थश्योनाककाश्मर्य्यः पाटलाबलाः । पर्ण्यश्चतस्रः पिप्पल्यः श्वदंष्ट्रा बृहतीद्वयम् ॥ १४१ ॥ शृङ्गी तामलकी द्राक्षा जीवन्ती पुष्करागुरु । अमृता चाभया वृद्धिर्जीवकर्षभकौ शटी ॥ १४२ ॥ मुस्तं पुनर्नवा मेदा सूक्ष्मैलोत्पलचन्दने । विदारीवृषमूलानि काकोलीकाकनासिका ॥ १४३ ॥ एषां पलोन्मितान्भागाञ्छतान्यामलकस्य च । पञ्च दद्यात्तदैकत्वं जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ १४४ ॥ ज्ञात्वा रसगतानेतानौषधानथ तद्रसान्। तच्चामलकमुद्धृत्य निष्कुलं तैलसर्पिषोः ॥ १४५ ॥ पलद्वादशके भृष्ट्वा दत्त्वा चार्धतुलां भिषक्। मत्स्यण्डिकायाः पूताया लेहवत्साधु साधयेत् ॥ १४६॥ प्रदापयेत्सिद्धमिते मधुनश्चात्र षट्पलम् । चतुष्पलं तुगाक्षीर्य्याः पिप्पल्या द्विपलं तथा ॥ १४७॥ पलमेकं निदध्याच्च त्वगैलापत्रकेशरात् । इत्ययं च्यवनप्राशः परमुक्तो रसायनः ॥१४८॥ कासश्वासहरश्चैव विशेषेणोपदिश्यते । क्षीणक्षतानां वृद्धानां बालानां चाङ्गवर्द्धनम् ॥ १४९ ॥ स्वरक्षयमुरोरोगं हृद्रोगं वातशोणितम् । पिपासां मूत्रशुक्रस्थान् दोषांश्चैवापकर्षति ॥ १५० ॥ अस्य मात्रां प्रयुञ्जीत योऽपरुन्ध्यान्नभोजनम् । अस्य प्रयोगाच्च्यवनः सुवृद्धोऽभूत् पुनर्युवा॥ ॥ १५१ ॥ मेधां स्मृतिं कान्तिमनामयत्वमायुः प्रहर्षं बलमिन्द्रियाणाम्। स्त्रीषु प्रहर्षं परमग्निवृद्धिं वर्णप्रसादं पवनानुलोम्यम् ॥ १५२ ॥ रसायनस्यास्य नरः प्रयोगाल्लभेत जीर्णोऽपि कुटीप्रवेशात् । जराकृतं रूपमपास्य पूर्वं बिभर्त्ति रूपं नवयौवनानाम् १५३॥

बेल, अरणी, अरलु, कुम्भेर, पाढ़ल, खुरैंटी, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, पीपल, गोखुरू, कटेरी, बड़ी कटेरी, काकड़ाशिंगी, भुईआमला, दाख, जीवन्ती, पोहकरमूल, अगर, गिलोय, हरड़, वृद्धि, जीवक, ऋषभक, कचूर, नागरमोथा, पुनर्नवा, मेदा, छोटी इलायची, कमल, चन्दन, विदारीकन्द, अडूसेकी जड़, काकोली और काकनासा (कौआठोंडी) ये प्रत्येक औषधि चार २ तोले और आमले ५०० लेवे । सबको एक द्रोणजलमें पकावै । जब चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतार लेवे। पश्चात् इस काथमेंसे आमलोंको अलग निकालकर आमलोंकी गुठली निकाल डाले और काढ़ेको छानकर रखदेवे। फिर ४८ तोले घी और तेलमें उपरोक्त आमलोंको भूनकर पीस लेवे, तदनन्तर पचास पल मिश्री पूर्वोक्त काथमें मिला देवे और यह आमले मिलाकर पकावे। जब लेहकी समान होकर शीतल होजाय तब २४ तोले शहद मिलादेवे । तथा वंशलोचन ४ पल, पीपल २ पल और दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर, इन चारोंका चूर्ण चार तोले मिला देवे ।और सबको चलाकर एकमएक कर लेवे । यह च्यवन प्राश अवलेह उत्तम रसायन है । विशेष कर खाँसी और श्वासको नष्ट करता है। क्षीणक्षत, वृद्ध और बालकोंके अंगोंको बढ़ानेवाला है । तथा स्वरभंग, छातीके रोग, हृदयरोग, वातरक्त, प्यास, मूत्रदोष और शुक्रदोषोंको दूर करता है । इसकी इतनी मात्रा सेवन करे जिससे भूख कम न हो । इसके प्रसादसे च्यवनऋषि फिरसे युवा हुए थे । यह च्यवनप्राश अवलेह मेधा, स्मरणशक्ति, कांति, आरोग्यता, आयुकी वृद्धि, इन्द्रियोंका बल, स्त्रीप्रसंगमें अत्यन्त आनंद, जठराग्निकी वृद्धि और शरीरकी सुंदरताको उत्पन्न करता है तथा वायुको अनुलोमन करता है । इसके प्रभावसे वृद्धमनुष्य भी तरुणताको प्राप्त होता है । मनुष्य इसको जराके पूर्वरूपमें सेवन करनेसे नवयौवनयुक्त हो जाता है ॥ १४१—१५३ ॥

केचिदिच्छन्ति मत्स्यण्ड्याः स्थाने तु सितशर्करा। मृदुकल्कसमः पाको भृष्टधान्या प्रशस्यते ॥ १५४ ॥

चतुर्भागजले प्रायो द्रव्यं गतरसं भवेत् । अयन्तु च्यवनप्राशः पित्तोद्रेके प्रशस्यते । चत्वारः षड्यवाश्चास्य दीयन्ते प्रथमं किल ॥ १५५ ॥

कोई वैद्य इसमें मिश्रीके स्थानमें सफेद खाँड डालते हैं, मृदुकल्कके समान इसका पाक करना चाहिए । इसमें आमलोंको भून लेना चाहिए। प्रायः चार भाग जलमें द्रव्यगत रस होता है । यह च्यवनप्राश अवलेह पित्तोद्रेकमें हितकारी है । इसकी दशजौकी मात्रा है अर्थात् प्रथम इसको दश जौकी परिमाणसे सेवन करना चाहिए ॥ १५४ ॥ १५५ ॥

उच्चटाद्यमोदक ।

उच्चटेक्षुरसः क्षौद्रं तुगाक्षीर्याश्च बुद्धिमान् । प्रस्थं प्रस्थं पृथग्गृह्य शर्करार्धतुलान्तथा ॥ १५६ ॥ आत्मगुप्ताफलानाञ्च कुडवं मरिचस्य च । त्रिसुगन्धिकृतावापं मन्थानेन विमन्थयेत् ॥ १५७ ॥ पलिकान्मोदकान्कृत्वा स्थापयेद्भाजने वरे । एतद्वृद्धिकालमेकं वा खादेदग्निबलं प्रति ॥ १५८ ॥ वटकान्नियताहारो ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः । स हन्याद्यक्ष्मिणः सद्य एकादशविधं क्षयम् ॥ १५९ ॥ स्वरवर्णबलौदार्य्यतुष्टिपुष्टिविवर्धनम् । आयुष्यं पौष्टिकं चाग्न्यं भूतोपहतचेतसाम् । व्याकुलीकृतदेहानां वृद्धानां क्षीणरेतसाम् ॥ १६० ॥ वाजीकरणमप्येवं वन्ध्यानां पुत्रदं परम् । धनुःस्त्रीमद्यभाराध्वखिन्नानां बलवर्धनम् ॥ १६१ ॥ हृत्प्लीहग्रहणीदोषमूत्रकृच्छ्रापतन्त्रकम् । अपस्मारविषोन्मादनाशनं तद्रसायनम् ॥ १६२ ॥

उच्चटा (तृणविशेष), ईखका रस, शहद और वंशलोचन एक २ प्रस्थ, सफेद बूरा २०० तोले, कौंछके बीज १६ तोले, कालीमिरच १६ तोले और दालचीनी, इलायची, तेजपातका चूर्ण १६ तोले, सबको एकत्र मिलाकर रईसे मथकर चार २ तोलेके मोदक बनाकर उत्तम बासनमें भर कर रख देवे । प्रतिदिन दोनों समय एक २ मोदक खाय । परन्तु अग्निका बलाबल विचारकर सेवन करे । इसमें नियत समयपर भोजन करे और जितेंद्रिय होकर ब्रह्मचर्य्यको धारण करे । यह मोदक राजयक्ष्मारोगीके ग्यारह प्रकारके क्षयको हरते हैं । एवं स्वर, वर्ण, बल और औदार्य्य तथा तुष्टि, पुष्टिको बढ़ाते हैं। आयुको बढ़ानेवाले, पुष्टिकारक, अग्निको दीपन करनेवाले एवं भूतबाधासे पीड़ित; वृद्धि और क्षीणवीर्य मनुष्यके अत्यन्त हितकारी हैं । उत्तम वाजीकरण, बन्ध्या स्त्रियोंको पुत्र देनेवाले, धनुष्य, स्त्री, मदिरा और भार ढोनेसे जो मनुष्य खेदखिन्न हो गये हैं उनके बलको बढानेवाले हैं, हृदयरोग, प्लीहा, संग्रहणी, मूत्रकृच्छ्र, अपतन्त्रक, अपस्मार, विषविकार और उन्मादको दूर करते हैं । यह श्रेष्ठ रसायन है ॥ १५६—१६२ ॥

ज्वराणां शमनीयो यः पूर्वमुक्तः क्रियाविधिः । यक्ष्मिणां ज्वरदाहेषु ससर्पिष्कः प्रशस्यते॥१६३॥ नित्यं स्वदेवपूजाभक्तिभैषज्यदेवतागुरुषु । छागलमांसपयोऽन्नञ्जीवति यक्ष्मी चिरं धृतिमान् ॥ १६४ ॥

ज्वररोगमें जो प्रथम क्रिया कही है वह सब राजयक्ष्मारोगमें और ज्वरकी दाहमें घृतके साथ प्रयोग करनी चाहिये । राजयक्ष्मारोगमें नित्य इष्टदेवकी पूजा, औषधि, देवता और गुरुमें भक्ति, बकेरेका मांस और बकरीके दूधका भोजन करे । इस प्रकार करनेसे राजयक्ष्मा रोगी बहुतकालतक जीता रहता है ॥ १६३ ॥ १६४ ॥

उपद्रवान्सत्वरवैकृतादीञ्जयेद्यथा क्षिप्रमवेक्ष्य शास्त्रम् । त्यजेत्कुवैद्यप्रतिपादितानि बुद्धेर्विरुद्धानि च भेषजानि ॥ १६५ ॥

यथाविधि शास्त्रको अवलोकन कर तत्काल विकारोंको करनेवाले ऐसे उपद्रवोंको शीघ्रही जीतना

चाहिए । और कुवैद्योंके द्वारा बनाई हुई बुद्धिके विरुद्ध औषधियोंको त्याग देना चाहिए ॥ १६५ ॥

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायां
यक्ष्माधिकार संपूर्ण ।

अथ क्षतक्षयाधिकार ।



धनुरायस्यतोत्यर्थं भारमुद्वहतो गुरुम् । युद्ध्यमानस्य बलिभिः पततो विषमोच्चतः ॥ १ ॥ वृषं हयं वा धावन्तं दम्यं चान्यं निगृह्णतः । शिलाकाष्ठाश्मनिर्घातान्क्षिपतो निघ्नतः परान् ॥ २ ॥ अधीयानस्य वात्युच्चैर्दूरं वा व्रजतो द्रुतम् । महानदीं वा तरतो हयैर्वा सह धावतः ॥ ३ ॥ सहसोत्पततो दूरं तूर्णं वापि प्रनृत्यतः । तथान्यैः कर्मभिः क्रूरैर्भृशमभ्याहतस्य वा ॥ ४ ॥ वीक्षते वक्षसि व्याधिर्बलवान्समुदीर्य्यते ॥ ५ ॥ स्त्रीषु चातिप्रसक्तस्य रूक्षस्याल्पमिताशनः । उरोविरुध्यतेऽत्यर्थं भिद्यतेऽथ विदह्यते ॥ ६ ॥ प्रपीडयते ततः पार्श्वे शुष्यत्यङ्गं प्रवेपते । क्रमाद्वर्णं बलं वीर्यं रुचिरग्निश्च हीयते ॥ ७ ॥ ज्वरो दाहो मनोदैन्यं विड्भेदोऽग्निवधावपि । दुष्टः श्यावः सुदुर्गन्धः पीतो विग्रथितो बहुः ॥ ८ ॥ कासमानस्य वाऽभीक्ष्णं कफः सान्द्रश्च जायते । सक्षतः क्षीयतेऽत्यर्थं तथा शुक्रौजसः क्षयात् ॥ ९ ॥

अत्यन्त धनुष चढ़ानेसे, बहुत भार उठानेसे, बलवान्के साथ युद्ध करनेसे, टेढ़ी अथवा ऊँची जगहसे गिरनेसे, दौडतेहुए बैल, घोडे, हाथी, इत्यादिको पकडनेसे, शिला, पत्थर, काष्ठ और अस्त्र आदिको फेकनेसे, या चोट लगनेसे, दूसरोंको मारनेसे, बहुत ऊँचे स्वरसे बोलनेसे, भागकर दूर जानेसे, बडी-गम्भीर नदीको तैरनेसे, घोडेके साथ दौडनेसे, एक साथ अकस्मात् उछलनेसे या कूदनेसे, शीघ्र नृत्यकरनेसे, बहुतसे क्रूर कर्म्म करनेसे, तथा अन्यान्य मल्लयुद्धादि क्रूर कर्म करनेसे, किसीप्रकारकी छातीमें भारी चोटके लगनेसे और छाती फट जानेसे इत्यादि अनेक कारणोंसे बलवान् उरःक्षत रोग उत्पन्न होता है । अथवा अल्प परिमाणमें और सूक्ष भोजन करनेवाले, स्त्रीमें अत्यन्त आसक्त होनेवालेकी छातीमें अत्यन्त पीडा होती है तथा छेदन और दाहके समान पीडा होती है । पसलीमें वेदना, अंग सूखने और काँपने लगते हैं । क्रमसे वर्ण, बल, वीर्य, रुचि और जठराग्नि क्षीण होने लगती हैं । ज्वर, दाह, चित्तमें दीनता, मलभेद और अग्निका नाश होता है तब दुष्ट, काला, पीला, मिलाहुआ, लाल, दुर्गन्धित, पीला, गांठयुक्त, बहुतसा और गाढा ऐसा कफ श्वास लेनेसे निकलता है । तो वह उरःक्षतरोगी शुक्र और पराक्रमके क्षीण होनेसे अत्यन्त क्षीण होजाता है ॥ १-९ ॥

पूर्वरूप ।

अव्यक्तं लक्षणं तस्य पूर्वरूपमिति स्मृतम् ॥ १० ॥

उसके अप्रकट लक्षणोंको पूर्वरूप कहते हैं ॥ १० ॥

असाध्य लक्षण ।

उरोरुक् शोणितच्छर्दिः कासो वैशेषिकः क्षते । क्षीणे सरक्तमूत्रत्वं पार्श्वपृष्ठकटीग्रहः ॥ ११ ॥

छातीमें पीडा, रुधिरकी वमन, विशेषकर खाँसी, क्षीण होनेसे रुधिर मिले मूत्रका उतरना, पसली, पीठ और कमरका रहजाना, जिसमें यह सब लक्षण हों इसको असाध्य कहते हैं ॥ ११ ॥

क्रियाक्षयकरत्वाच्च क्षय इत्यभिधीयते । संशोषणाद्रसादीनां शोष इत्युच्यते बुधैः ॥ १२ ॥

यह रोग पाचनादि क्रियाओंका क्षय करता है इसकारण इसको क्षय कहते हैं । यह रस रक्तादि धातुओंको शोषण करता है, इसकारण इसको शोष कहते हैं ॥ १२ ॥

अन्यच्च ।

अल्पलिङ्गस्य दीप्ताग्नेः साध्यो बलवतो नवः । परिसम्वत्सरो याप्यः सर्वलिङ्गं विवर्जयेत ॥ १३ ॥

जिसमें थोडे लक्षण हों, अग्निदीपन हो, रोगी बलवान् हो और थोडे ही कालसे उरःक्षत उत्पन्न हुआ हो वह साध्य है । जिसको उत्पन्न हुए एक वर्ष बीतगया हो उसको याप्य कहते हैं और जिसमें सम्पूर्ण लक्षण मिलते हों उसको असाध्य जानना । असाध्यरोगको वैद्य त्याग देवे ॥ १३ ॥

भुक्तद्वेषो ज्वरः श्वासः कासशोणितदर्शनम् । स्वरभेदश्च जायन्ते षड्रूपे राजयक्ष्मणि ॥ १४ ॥

भोजनमें अरुचि, ज्वर, श्वास, खाँसी, रुधिरकी वमन और स्वरभंग ये छः लक्षण राजयक्ष्मामें होते हैं ॥ १४ ॥

परं दिनसहस्रन्तु यदि जीवति मानवः । सुभिषग्भिरुपक्रान्तस्तरुणः शोषपीडितः ॥ १५ ॥

यदि क्षय रोगी तरुण हो और उत्तमवैद्यके द्वारा उसकी चिकित्सा कीजाय तो १ हजारदिनतक जीता रहता है ॥ १५ ॥

चिकित्सा ।

प्राणरोधात्क्षयाद्वापि कोष्ठात्पूतियुतात्तथा । क्षतोरस्यन्नपाकेन निःश्वासो वाऽतिपूतिकः ॥ १६ ॥ उरो मत्वा क्षतं लाक्षां पयसा मधुसंयुताम् । सद्य एव पिबेज्जीर्णे पयोऽद्याच्च सशर्करम् ॥ पार्श्वबस्तिरुजिश्चाम्लपित्ताग्निस्तां सुरायुताम् ॥ १७ ॥ भिन्नविट्कः समुस्ताभिर्विषापाठा सवत्सका । बलाश्वगन्धा श्रीपर्णी बहुपत्री पुनर्नवा ॥ १८ ॥ पयसा नित्यमभ्यस्ताः शमयन्ति क्षतक्षयम् ॥ १९ ॥

प्राणवायुको रोकनेसे अथवा बहुत शीघ्रगामी श्वासको रोकनेसे, धातुओंके क्षयहोनेसे, दुर्गन्धित कोठेके होनेसे छातीमें घाव होजाता है । तब अन्नके पाकसे अथवा अत्यन्त दुर्गन्धसे श्वास अत्यन्त दुर्गन्धित निकलता है । ऐसे छातीमें घावको जानकर लाखको दूध और शहदके साथ पीवे और जब वह जीर्ण होजाय तब तत्काल मिश्री मिलाकर दूध पीवे। पार्श्वशूल, बस्तिशूल और अम्लपित्त तथा मंदाग्निवाले मनुष्योंको मदिराके साथ पान करावे । मलभेद अर्थात् अतीसारवाले उरःक्षयरोगीको नागरमोथा, अतीस, पाढ, इन्द्रजौ, खिरैंटी, असगन्ध, अरणी, शतावर और पुनर्नवा इनको दूधके साथ नित्य सेवन करावे इससे क्षतक्षयरोग शमन होता है ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥

शर्करायवगोधूमं जीवकर्षभकौ मधु । शृतं क्षीरानुपानश्च लिह्यात्क्षीणः क्षतः कृशः ॥ २० ॥

सफेद खाँड, जौ, गेंहू, जीवक, ऋषभक और शहद इन सबको औटे हुए दूधके साथ क्षतक्षीणसे कृश हुआ मनुष्य पीवे ॥ २० ॥

इक्ष्वालिका बिसग्रन्थिः पद्मकेशरचन्दनैः । शृतं पयो मधुयुतं संधानार्थं पिबेत्क्षती ॥ २१ ॥

इक्ष्वालिका (तृणविशेष), कमलकी नाल, कमलकेशर और चन्दन इनको दूधमें औटाकर क्षतको भरनेके लिये क्षतक्षयरोगी पान करे ॥ २१ ॥

रक्तष्ठीवी पिबेत्सिद्धं लाक्षारसपयोघृतैः । वर्षाभूशर्करामुस्तशालितण्डुलजं रजः ॥ २२ ॥

जो रुधिरकी वमन हो तो पुनर्नवा, मिश्री, नागरमोथा और शालिचावलोंका चूर्ण इनको दूधमें औटा कर लाखका रस और घी डालकर पानकरे ॥ २२ ॥

लाक्षाचूर्णन्तु सुकृतं क्षौद्राज्येन समन्वितम् । सकृल्लीढं शमयति शोषोद्भूतां वमिं तथा ॥ २३ ॥

लाखके चूर्णको शहद और घीके साथ मिलाकर सेवन करनेसे एकवारमें ही शोषसे उत्पन्न हुई वमन दूर होती है ॥ २३ ॥

एलादिगुटिका ।

एला पत्रं त्वचो द्राक्षा पिप्पल्यर्धं पलं तथा । सितामधुकखर्जूरमृद्वीकाश्च पलोन्मिताः ॥ २४ ॥ संचूर्ण्य मधुना युक्ता गुटिकाः संप्रकल्पयेत् । अक्षमात्रां ततश्चैकां भक्षयेच्च दिने दिने २५॥ कासं श्वासं ज्वरं हिक्कां छर्दिं मूर्च्छां मदं भ्रमम् । रक्तनिष्ठीवनं तृष्णां पार्श्वशूलमरोचकम् ॥ २६ ॥ शोथप्लीहाढयवातांश्च स्वरभेदं क्षतक्षयम् । गुटिका तर्पणी वृष्या रक्तपित्तश्च नाशयेत् ॥ २७ ॥

इलायची, तेजपात, दालचीनी, दाख और पीपल ये प्रत्येक दो २ तोले, मिश्री, मुलैठी, खजूर और किसमिस प्रत्येक चार २ तोले लेवे । सबका एकत्र चूर्ण करके शहदमें मिलाकर एक एक तोलेकी गोलियां बनालेवे। प्रतिदिन एक२गोली खाय यह गोली-- खाँसी, श्वास, ज्वर, हिचकी, वमन, मूर्च्छा, मद, भ्रम, रुधिरका थूकना, तृषा, पार्श्वशूल, अरुचि, सूजन, प्लीहा, आढ्यवात, स्वरभेद, क्षतक्षय और रक्तपित्तको नष्ट करती है। यह गोली-तृप्तिकारक और वृष्य है ॥ २४—२७ ॥

यष्टयाह्वघृत ।

यष्टयाह्वनागबलयोः क्काथे क्षीरसमे घृतम् । पयसा पिप्पलीमांसी कल्कैः सिद्धं क्षये हितम् ॥ २८ ॥

मुलैठी और गंगेरनके क्काथमें समान भाग दूध, पीपल और बालछड़का कल्क डालकर घृतको पकावे यह घृत—क्षयरोगमें अत्यन्त हितकारी है ॥ २८ ॥

बलादिघृत ।

घृतं बलानागबलार्जुनांबुसिद्धं सयष्टीमधुकल्कपादम् । हृद्रोगशूलक्षतरक्तपित्तं कासानिलोत्थाञ्छमयत्युदीर्णान् ॥ २९ ॥

खिरैंटी, गंगेरन और अर्जुन इनके क्काथमें मुलैठीका कल्क डालकर घृतको पकावे । यह घृत-हृदयरोग, शूल, क्षत, रक्तपित्त और अत्यन्त बढ़ी हुई वातकी खांसीको दूर करता है ॥ २९ ॥

श्वदंष्ट्रादिघृत ।

श्वदंष्ट्रोशीरमञ्जिष्ठा बलाकाश्मर्यकतृणम् । दर्भमूलं पृष्टपर्णी बलासर्षभका स्थिरा ॥ ३० ॥ पलिकान्साधयेत्तेषां रसे क्षीरचतुर्गुणे । कल्कैः स्वगुप्तवर्षाभूमेदाजीवन्तिजीवकैः ॥३१॥ शतावर्य्यादिमृद्वीका शर्कराश्रावणीवृषैः । प्रस्थं सिद्धं घृताद्वातपित्तहृद्रोगगुल्मनुत् ॥ ३२ ॥ मूत्रकृच्छ्रप्रमेहार्शःकासशोषक्षयापहम् । धनुःस्त्रीमध्यभाराध्वखिन्नानां बलमांसदम् ॥ ३३ ॥

गोखरू, खस, मजीठ, खिरैंटी, कुम्भेर, कत्तृग, डाभकी जड, पृश्निपर्णी, कंघी, ऋषभक और शालिपर्णी, प्रत्येक चार२ तोले लेकर क्काथ बनावे । इस क्काथमें चौगुना दूध, कौंचके बीज, पुनर्नवा, मेदा, जीवन्ती, जीवक, शतावरी, दाख, मिश्री, गोरखमुण्डी और अडूसा इनका कल्क डालकर एक प्रस्थ घृतको सिद्ध करे। यह घृत—वात, पित्त, हृदयरोग, गुल्म, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, बवासीर, खांसी, शोष और क्षयको नष्ट करता है तथा धनुष्य, स्त्री, मार्ग और बोझा ढोनेसे जो खेदखिन्न होगये हैं उनके बल और मांसको बढाता है ॥ ३०—३३ ॥

द्राक्षादिघृत ।

द्राक्षायाः सम्मितं प्रस्थं मधुकस्य पलाष्टकम् । पचेत्तोयाढके शुद्धे पादशेषेण तेन तु ॥ ३४ ॥ पालिके मधुकद्राक्षे पिष्टे कृष्णापलद्वयम् । प्रदाय सर्पिषः प्रस्थं पचेत्क्षीरे चतुर्गुणे ३५॥ सिद्धे शीते पलान्यष्टौ शर्करायाःप्रदापयेत् । एतद्द्राक्षाघृतं सिद्धं क्षीणक्षतसुखावहम् ॥३६॥ वातपित्तज्वरश्वा-

सविस्फोटकहलीमकान् । प्रदरं रक्त-पित्तञ्च हन्यान्मांसबलप्रदम् ॥ ३७ ॥

दाख १ प्रस्थ और मुलैठी ८ पल इनको एक आढक जलमें पकावे । जब चौथाईभाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर इसमें मुलैठी और दाखका चूर्ण चार चार तोले, पीपलका चूर्ण८ तोले, घी१ प्रस्थ और दूध चौगुना डालकर उत्तम-विधिसे घृतको पकावे। जब घी सिद्ध हो जाय तब शीतल होनेपर मिश्री ८ पल मिलादेवे । यह द्राक्षा-दिघृत-क्षीणक्षत मनुष्योंको सुखकारी है । तथा वात-पित्तज्वर, श्वास, विस्फोटक, हलीमक, प्रदर और रक्तपित्तको नष्ट करता है, बल और मांसको उत्पन्न करता है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

अमृतप्राश ।

क्षीरे धात्रीविदारीक्षुक्षीरिणाञ्च तथा रसे । पचेत्समे घृतप्रस्थं मधुकैरिक्षु-कान्वितैः ॥ ३८ ॥ द्राक्षाद्विचन्दनो-शीरशर्करोत्पलपद्मकैः । मधूककुसु-मानन्ताकाश्मरीतृणसंज्ञकैः ॥ ३९ ॥ प्रस्थार्धं मधुनः शीते शर्करार्धतुलां तथा । पलार्धकांश्च संचूर्ण्य त्वगेला-पत्रकेसरान्॥४०॥विनीय तस्य संलि-ह्यान्मात्रां नित्यं सुयन्त्रितः ॥ ४१ ॥ अमृतप्राशमित्येतदश्विभ्यां परिकी-र्त्तितम् । क्षीरमांसाशिनां हन्ति रक्त-पित्तं क्षतक्षयम् ॥ ४२ ॥ तृष्णारुचि-श्वासकासच्छर्दिमूर्च्छाप्रमर्दनम् । मूत्र-कृच्छ्रज्वरघ्नश्च बलं स्त्रीरतिवर्द्धनम्४३॥

दूध, आमले, विदारीकंद, ईख आर क्षीरवृक्ष इनका रस समान भाग और घी १ प्रस्थ लेवे,मुलैठी, ईख, दाख, चन्दन, लालचन्दन, खस,मिश्री,कमल, पद्माख, महुवेके फूल, अनन्तमूल, कुम्भेर और तृण इन सबका चूर्ण डालकर पकावे । जब लेहके समान होजाय तब शीतल होनेपर ३२ तोले शहद और ५० पल खांड तथा दालचीनी, इलायची, तेजपात और नागकेशर इनका चूर्ण दो २ तोले मिलादेवे । फिर अग्निका बलाबल विचारकर मात्राका निरूपण करे। यह अमृतप्राश अवलेह, अश्विनीकुमारोंने निर्माण किया है।इसको सेवन करनेवाला दूध और मांसरसका भोजन करे । यह अमृतप्राश अवलेह-रक्तपित्त, क्षत, क्षय, तृषा, अरुचि, श्वास, खाँसी, वमन, मूर्च्छा, मूत्रकृच्छ्र और ज्वरको दूर करता है । बल और स्त्रियोंमें रतिको बढाता है ॥ ३८—४३॥

सर्पिर्गुड ।

बला विदारी ह्रस्वा च पञ्चमूली पु-नर्नवा । पञ्चानां क्षीरवृक्षाणां शुङ्गा मुष्ट्यंशिकाः पृथक् ॥ ४४ ॥ वि-पाच्य सलिलद्रोणे पूते पादाव-शेषिते । पादांशे छागगोक्षीरे विदा-र्य्याः स्वरसे पृथक् ॥ ४५ ॥ जीव-नीयैः पचेत्कल्कैरक्षमात्रैर्घृताढकम् । सितापलानि पूते च द्वात्रिंशदापये-च्छिते ॥ ४६ ॥ गोधूमं पिप्पली भार्ङ्गीचूर्णं शृङ्गाटकस्य च । समाक्षि-कं कौडविकं तत्सर्वं खजमूर्च्छितम् ॥ ॥ ४७ ॥ स्त्यानं सर्पिर्गुडान्कृत्वा भू-र्जपत्रेण वेष्टयेत् । ताञ्जग्ध्वा पलिका-न्क्षीरं मद्यं चानुपिबेत्कफे ॥ ४८ ॥ शोषे कासे क्षये क्षीणे श्रमस्त्रीभार-कर्षिते । रक्तनिष्ठीवने तापे पीनसे चोरसि क्षते ॥४९॥ शस्ताः पार्श्वशि-रःशूले भेदे च स्वरवर्णयोः ॥ ५० ॥

खिरैंटी, विदारीकन्द, लघुपञ्चमूल, पुनर्नवा,वड़, गूलर, पीपल,पारिसपीपल और पिलखन इनके अंकुर अथवा कोंपल ये प्रत्येक चार२ तोले लेकर एकद्रोण जलमें पकावे । जब पकते२ चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर उसमें चौथाई भाग बकरीका दूध और विदारीकन्दका स्वरस तथा जीवनीयगणकी समस्त औषधियें एक २ तोला लेकर कल्क बनाकर मिलादेवे और एक आढक परिमाण घी डालकर पकावे । शीतल होनेपर वस्त्रमें छान लेवे फिर ३२ पल मिश्री, गेहूँ, पीपल, भारंगी और सिंघाड़ेका चूर्ण तथा शहद ये प्रत्येक

सोलह २ तोले मिलाकर खूब रईसे मथकर चार २ तोलेके लड्डू बनाकर भोजपत्रमें लपेटकर रख देवे। प्रतिदिन एक मोदक खाय और ऊपरसे दूध अथवा मदिरा पीवे। यह मोदक—कफ, शोष, खाँसी, क्षयक्षीण, परिश्रम, स्त्रीप्रसंग और भारढोनेसे थकना, रुधिरका थूकना, ताप, पीनस, उरःशूल, पार्श्वशूल, शिरःशूल, स्वरभेद और विवर्णता इन सब रोगोंमें अत्यन्त हितकारी है॥ ४४--५०॥

अत्र षोडशगुणे जले निःक्वाथ्य चतुर्भागावशिष्टक्वाथे द्विगुणं क्षीरं विदार्याजरसयोः प्रत्येकं द्विपञ्चाशत्पलैः पाकः।

यहां क्वाथकी औषधियें सोलहगुने जलमें पकावे जब चौथाई भाग क्वाथ शेष रहजाय तब उतार कर छानलेवे। फिर उसमें बकरीका दूध ५२ पल और बिदारीकन्दका स्वरस ५२ पल डालकर पाक करना चाहिए।

सर्पिमोदक।

गोक्षीरार्द्धाढकं सर्पिः प्रस्थमिक्षुरसाढकम्। रसं विदार्याः कुडवं रसात्प्रस्थञ्च तैत्तिरात्॥ ५१॥ दद्यात्सिध्यति तस्मिंस्तु पिष्टानिक्षुरसैरिमान्। मधूकपुष्पकुडवं पिप्पलीकुडवं तथा॥ ५२॥ कुडवार्धं तु गोक्षीर्याः खर्जूराणि च विंशतिः॥ पृथग्बिभीतकान्पञ्च पिप्पल्यश्च चतुर्थकान्॥५३॥ त्रिंशत्पलानि खण्डाद्वा मधुकात्कर्षमेव च॥ तथार्धपलिकान्यत्र जीवनीयानि दापयेत्॥ ५४॥ सिद्धेऽस्मिन्कुडवं क्षौद्राच्छीते प्रक्षिप्य मोदकान्। कारयेन्मरिचाजाजीपलचूर्णावचूर्णितान्॥ ५५॥ वातासृक्पित्तरोगेषु क्षतकासक्षयेषु च। शुष्यतां क्षीणशुक्राणां रक्ते चोरसि संस्थिते॥ ५६॥ क्षयिदुर्बलभीरूणां पुष्टिवर्णबलार्थिनाम्। योनिदोषक्षतस्रावदुर्बलानाञ्च योषिताम्॥ ५७॥ गर्भार्थिनीनां गर्भश्च स्रवेद्यासां म्रियेत च। धन्या बल्या हितास्तासां शुक्रशोणितवर्धनाः॥ ५८॥

गौका दूध अर्धआढक, घी एकप्रस्थ, ईखका रस १ आढक, विदारीकन्दका स्वरस एक कुडव और तीतरका रस एकप्रस्थ सबको मिलाकर यथाविधिसे पकावे। जब सिद्ध होजाय तब महुएके फूल१६तोले और पीपलका चूर्ण १६ तोले, ईखके रसमें पीसकर मिला देवे। तथा वंशलोचन८तोले, खजूर२०, बहेड़े ५, और पीपल ४, खांड ३० पल, मुलैठी एक तोला और जीवनीयगणकी औषधि दो २ तोले, यह सब द्रव्य तथा शीतल होनेपर १६ तोले शहद मिला देवे फिर कालीमिरच और जीरेका चूर्ण चार तोले मिला कर लड्डू बनालेवे। यह मोदक-वातरक्त, पित्तरोग, क्षत, खांसी,क्षय, शुष्कता,क्षीणशुक्र, उरःक्षत, क्षय, दुर्बल और भयभीत ऐसे मनुष्योंको अत्यन्त हितकारी है। पुष्टि, वर्ण और बलको बढानेवाले हैं। योनिदोष, क्षतस्राव, दुर्बल स्त्री, जिनको गर्भधारणकी इच्छा हो अथवा जिनका गर्भस्राव होता हो या जिनके मरी हुई सन्तान उत्पन्न होती है उनके लिये यह अत्यन्त हितकारी है। धन्य, बलकारक, तथा शुक्र और रुधिरको बढानेवाले हैं॥ ५१—५८॥

यद्यच्च तर्पणं शीतमविदाहि हितं लघु। अन्नपानं निषेव्यन्तु क्षतक्षीणे सुखार्थिभिः॥ ५९॥

जो जो पदार्थ तृप्तिकारक,शीतल,दाहकारक नहीं, हितकारक और हलके हैं उन सब अन्नपानोंको क्षतक्षीणमें सुखके लिये सेवन करे॥ ५९॥

शोकं स्त्रियः क्रोधमसूयताञ्च त्यजेदुदारान्विषयान् भजेत्तु। तथा द्विजातींस्त्रिदशान्गुरूंश्च वाचश्च पुण्याः शृणुयाद्द्विजेभ्यः॥६०॥

क्षतक्षयमें शोक, स्त्री, क्रोध और निन्दाको त्याग देवे। तथा उदारविषयोंको भजे,एवं ब्राह्मण,देवता, गुरु और ब्राह्मणोंसे शास्त्रादिके पुण्य वचन सुने ६०

इति वंगसेने भाषाटीकायां क्षतक्षयाधिकार संपूर्ण।

अथ कासरोगनिदान ।

धूमोपघाताद्रजसस्तथैव व्यायामरूक्षान्ननिषेवणाच्च । विमार्गगत्वादपि भोजनस्य वेगावरोधात्क्षवथोस्तथैव ॥१॥ प्राणो ह्युदानानुगतः प्रदुष्टः संभिन्नकांस्यस्वनतुल्यघोषः । निरेति वक्त्रात्सहसा सदोषो मनीषिभिः कास इति प्रदिष्टः ॥ २ ॥

मुख और नासिकादिमें धूआं लगनेसे या धूलके पडनेसे, अत्यन्त कसरत आदि परिश्रम करनेसे, रूखे अन्नको सेवन करनेसे, भोजन करते समय भोजनके नासिकादि विमार्गमें चले जानेसे, मलमूत्रादिकके वेगोंको रोकनेसे और छींकको रोकनेसे दूषित हुई प्राणवायु उदानवायुसे मिलकर अकस्मात् फूटे कांसेके समान शब्द करती हुई मुखके बाहर कफ या पित्त को साथ लेकर निकलती है उसको वैद्यलोग कासरोग अर्थात् खाँसी कहते हैं ॥ १ ॥ २ ॥

पञ्चकासाः स्मृता वातपित्तश्लेष्मक्षतक्षयैः । क्षयायोपेक्षिताः सर्वे बलिनश्चोत्तरोत्तरम् ॥ ३ ॥

वात, पित्त, कफ, क्षत और क्षय इनभेदोंसे खाँसी पांच प्रकारकी है । इनकी चिकित्सा नहीं करनेसे राजयक्ष्मारोग उत्पन्न होजाता है। ये सब उत्तरोत्तर बलवान् अर्थात् वातसे पित्त, पित्तसे कफ, कफसे क्षत और क्षतसे क्षयकी खाँसी बलवान् है ॥ ३ ॥

पूर्वरूप ।

पूर्वरूपं भवेत्तेषां शूकपूर्णगलास्यता । कण्ठे कण्डूश्च भोज्यानामवरोधश्च जायते ॥ ४ ॥

गले और मुखमें शूकके समान काँटे जमजायँ, कंठमें खुजलीसी चले और भोजन करते समय कठिनतासे ग्रास निगला जाय ये कासरोगके पूर्व लक्षण हैं ॥ ४ ॥

वातजकासके लक्षण ।

हृच्छङ्खमूर्द्धोदरपार्श्वशूली क्षामाननः क्षीणबलः स्वरौजाः । प्रसक्तवेगस्तु समीरणेन भिन्नस्वरः कासति शुष्कमेव ॥ ५ ॥

हृदय, कनपटी, शिर, उदर और पसलियोंमें शूलकी पीडा, मुखका उतरजाना, बल, स्वर और ओजका क्षीण होजाना, वारंवार तेजीके साथ खाँसीका उठना, स्वरका बैठजाना और सूखी खाँसीका उठना ये वातज खाँसीके लक्षण हैं ॥ ५ ॥

चिकित्सा ।

रूक्षस्यानिलजं कासमादौ स्नेहैरुपाचरेत् । सर्पिभिर्वस्तिभिः पेयाक्षीरयूषरसादिभिः ॥ ६ ॥

जो रूखे मनुष्यके वातकी खांसी हो तो प्रथम स्नेहपानादि उपचार करने चाहिएँ । तथा घृतपान, बस्तिकर्म, पेया, दूध, यूष, मांस और रसादि प्रयोग करने चाहिएँ ॥ ६ ॥

वास्तुको वायसीशाकं मूलकं सुनिषण्णकम् । स्नेहास्तैलादयो भक्ष्याः क्षीरेक्षुरसगौडकाः ॥ ७ ॥ दध्यारनालाम्लफलं प्रसन्नापानमेव च । शस्यते वातकासेषु स्वाद्वम्ललवणानि च ॥ ८ ॥ ग्राम्यानूपोदकैः शालियवगोधूमषष्टिकान् । रसैर्मांसात्मगुप्तानां यूषैर्वा भोजयेद्धितान् ॥ ९ ॥ दशमूलीशृता कासश्वासहिक्कारुजापहा । यवागूर्दीपनी वृष्या वातरोगविनाशिनी ॥ १० ॥

बथुआ, मकोय, मूली और शिरियारी इनका शाक, तैलादि स्नेह, दूध, ईखका रस, गुड़के बने पदार्थ, दही, कांजी, खट्टेफल, प्रसन्ना नामक मदिरा, स्वादिष्ठ, अम्ल और नमकीन ये सब पदार्थ वातकी खांसीमें हितकारी हैं । एवं ग्राम्य, अनूप और जलचर जीवोंका मांसरस और

शालिचावल, जौ, गेहूँ, साठीधान और कौंछके बीजका रस अथवा यूष सेवन कराना हितकारी है। दशमूलके काथमें सिद्ध कीहुई यवागू—खाँसी, श्वास और हिचकीको दूर करती है। यह दीपन, वृष्य और वातरोग नाशक है ॥ ७-१० ॥

पञ्चमूलीकृतः क्वाथः पिप्पलीचूर्णसंयुतः। रसान्नमश्नतो नित्यं वातकासमुदस्यति ॥ ११ ॥

पंचमूलीके काथमें पीपलका चूर्ण डालकर पान करे और नित्यप्रति मांसरसके साथ भोजन करे तो वातकी खाँसी दूर होती है ॥ ११ ॥

रसं कर्कटकानां वा घृतभृष्टं सनागरम्। वातकासप्रशमनं शृङ्गीमत्स्यस्य वा पुनः ॥ १२ ॥

केकड़ेके मांसके रसको घृतमें भूनकर सोंठ डालकर अथवा शृंगी मछलीके रसको घृतमें भूनकर सोंठ डालकर सेवन करे तो वातकी खाँसी दूर होती है ॥ १२ ॥

शटीशृङ्गीकणाभार्ङ्गीगुडवारिदवासकैः। सतैलैर्वातकासघ्नैर्लेहोऽयमपराजितः ॥ १३ ॥

कचूर, काकडाशिंगी, पीपल, भारंगी, गुड, नागरमोथा और अडूसा इनका अवलेह बनाकर तेलमें मिलाकर सेवन करनेसे वातकी खाँसी दूर होती है यह अपराजितालेह है ॥ १३ ॥

भार्ङ्गीद्राक्षाशटीशृङ्गीपिप्पलीविश्वभेषजैः। गुडतैलयुतो लेहो हितो मारुतकासिनाम् ॥ १४ ॥

भारंगी, दाख, कचूर, काकडाशिंगी, पीपल और सोंठ, इनका चूर्ण करके उसका गुड़, तेलके द्वारा अवलेह बनाकर सेवन करना वातकी खाँसीवालोंको हितकारी है ॥ १४ ॥

चूर्णिता विश्वदुःस्पर्शा शृङ्गी द्राक्षा शटी सिता। लीढा तैलेन वातोत्थं कासं जयति दुस्तरम् ॥ १५ ॥

सोंठ, धमासा, काकडाशिंगी, दाख, कचूर और मिश्री इनके चूर्णको तेलमें मिलाकर चाटनेसे वातकी खाँसी दूर होती है ॥ १५ ॥

दशमूलादिघृत।

दशमूलीकषायेण भार्ङ्गीकल्कैर्घृतं पचेत्। दक्षतित्तिरिनिर्यूहे तत्परं वातकासनुत् ॥ १६ ॥

दशमूलके काथ, भारंगीके कल्क, मुरगे और तीतरके निर्यूहमें घीको सिद्ध करे। यह घृत--वातकी खाँसीको दूर करता है ॥ १६ ॥

भार्ङ्ग्यादिघृत।

भार्ङ्गीकल्कैर्घृतश्चाथ पचेद्दध्नि चतुर्गुणे। भार्ङ्गीरसं द्विगुणितं वातकासहरं परम् ॥ १७ ॥

भारंगीके एक भाग कल्कसे चौगुने दही और भारंगीके दुगुने रसमें एकभाग घृतको मिलाकर यथाविधिसे सिद्ध करे। यह घृत--वातकी खाँसीको दूर करता है ॥ १७ ॥

रास्नादिघृत।

द्रोणेऽपां साधयेद्रास्नां दशमूली शतावरीम्। पलिकां मानिकांशांस्त्रीन्कुलित्थान्बदरान् यवान् ॥ १८ ॥ तुलार्द्धं राजमाषस्य पादशेषेण तेन तु। घृताढकं समक्षीरं जीवनीयैः पलोन्मितैः ॥ १९ ॥ सिद्धं तद्दशभिः कल्कैः नस्यपानानुवासनैः। समीक्ष्य वातरोगेषु यथावस्थं प्रयोजयेत् ॥ २० ॥ पञ्चकासाञ्छिरःकम्पं शूलं वंक्षणयोनिजम्। सर्वाङ्गैकाङ्गरोगांश्च सप्लीहोर्ध्वानिलं जयेत् २१॥

रायसन, दशमूल और शतावर; प्रत्येक औषधि चार चार तोले, कुलथी, बेर और जौ ये प्रत्येक सोलह सोलह पल और बडी जातके उड़द ५० पल लेवे सबको एकत्र कर एक द्रोण जलमें पकावे। जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतार कर छान लेवे। फिर इसमें घी और दूध एक एक आढक परिमाण तथा जीवनीय गणकी औषधियोंका कल्क चार चार तोले डालकर घृतको सिद्ध करे। इस घृतको वातरोगोंमें विचार पूर्वक

अवस्थानुसार नस्य, पान और अनुबासन बस्ति आदिमें प्रयोग करे। यह रास्नादिघृत--पांचोंप्रकारकी खाँसी, शिरःकम्प, वंक्षणशूल, योनिशूल, सर्वांगशूल, एकांगरोग, प्लीहा और ऊर्ध्वगत वातको नष्ट करता है ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥

जीवकर्षभकौ मेदे काकोल्यौ मधुकं सह । जीवन्ती जीवनीयोऽयं मधुरो जीवनो गणः ॥ २२ ॥ शूर्पपर्णीं विना केचिदष्टवर्गमिमं विदुः । ऋद्धिवृद्धियुतं चान्ये जीवन्तीमधुकं विना॥२३॥

जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, मुलैठी और जीवन्ती इन सब औषधियोंके समूहको मधुरजीवनीयगण कहते हैं। इसमें कोई वैद्य शूर्पपर्णीके विना इसको अष्टवर्ग कहते हैं और कोई वैद्य ऋद्धि वृद्धि सहित और जीवन्ती तथा मुलैठी रहितको अष्टवर्ग कहते हैं ॥२२॥ २३॥

चित्रकाद्यवलेह ।

चित्रकं पिप्पलीमूलं व्योषं मुस्तं दुरालभाम् । शटी पुष्करमूलञ्च श्रेयसी सुरसा वचा ॥ २४ ॥ भार्ङ्गी छिन्नरुहा रास्ना कर्कटाख्या च कार्षिकान् । कल्कान्निदग्धिकार्धस्य कषाये पलविंशतिः ॥ २५ ॥ मत्स्यण्डिकाया दत्त्वा तु सर्पिषः कुडवं पचेत् । सिद्धशीते पृथक् क्षौद्रपिप्पली कुडवान्वितम् ॥ २६ ॥ चतुष्पलं तु गोक्षीर्य्याश्चूर्णितं तत्र दापयेत् । लेहयेत्कासहृद्रोगश्वासगुल्मनिवारणम् ॥ २७ ॥

चीता, पीपलामूल, नागरमोथा त्रिकुटा, धमासा, कचूर, पोहकरमूल, गजपीपल, तुलसी, वच, भारंगी, गिलोय, रायसन और काकडासिंगी, ये प्रत्येक औषधि एक एक तोला लेकर कल्क बना ले फिर उसको कटेरीके ५० पल काथमें मिलाकर तथा मिश्री ८० तोले और घी १६ तोले डालकर पकावे। जब पककर तैयार होजाय तो शीतल होनेपर शहद १६ तोले, पीपल १६ तोले और वंशलोचनका चूर्ण १६ तोले मिला देवे। यह कण्टकार्यादि अवलेह-खाँसी, हृदयरोग, श्वास और गुल्मरोगको नष्ट करता है ॥ २४—२७ ॥

पित्तजकासनिदान-पूर्वकचिकित्सा ।

उरोविदाहज्वरवक्त्रशोषैरभ्यर्दितस्तिक्तमुखस्तृषार्त्तः । पित्तेन पीतानि वमेत्कटूनि कासेत्सपाण्डुः परिदह्यमानः ॥ २८ ॥

पित्तकी खाँसीमें--छातीमें दाह (जलन), ज्वर, मुखका सूख जाना, मुखका कडवा होना, तृषाकी पीडा, पीले और कडवे कफको खाँसते समय थूकना, रोगीका शरीर पीलापन और दाह होती है ॥ २८॥

काकोली बृहती मेदा युग्मैः सवृषनागरैः । पित्तकासे रसक्षीरयूषांश्चाप्युपकल्पयेत् ॥ २९ ॥

काकोली, बडी कटेरी, मेदा, महामेदा, अडूसा और सोंठ इनके काथमें सिद्ध किया हुआ रस, दूध और यूषका सेवन करे ॥ २९ ॥

बलाद्विबृहती द्राक्षा वासाभिः क्वथितं जलम् । पित्तकासापहं पेयं शर्करामधुयोजितम् ॥ ३० ॥

खिरैटी, कटेरी, बडी कटेरी, दाख और अडूसा इनके काथमें मिश्री और शहद डालकर पान करे तो पित्तकी खाँसी दूर होती है ॥ ३० ॥

शटी ह्रीबेरबृहती शर्करा विश्वभेषजम् । पक्त्वा रसं पिबेत्पूतं सघृतं पित्तकासनुत् ॥ ३१ ॥

कचूर, सुगन्धवाला, बडी कटेरी, खाँड और सोंठ इनके काथको वस्त्रमें छानकर घी डालकर पान करे तो पित्तकी खाँसी दूर होती है ॥ ३१ ॥

सरादिपञ्चमूलस्य पिप्पलीद्राक्षयोस्तथा । कषायेण शृतं क्षीरं पिबेत्समधुशर्करम् ॥ ३२ ॥

तृणपंचमूल, पीपल और दाख, इनको दूधमें औटाकर खांड और शहद डालकर पित्तकी खाँसीमें पान करे ॥ ३२ ॥

द्राक्षामधुकखर्जूरपिप्पलीमरिचान्वितम् । पित्तकासहरं ह्येतल्लिह्यान्माक्षिकसर्पिषा ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

दाख, मुलैठी, खजूर, पीपल और कालीमिरच इनका चूर्ण करके शहद और घीमें मिलाकर चाटे तो पित्तकी खाँसी दूर होती है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

षट्प्रस्थघृत ।

माहिष्यजाविगोक्षीरधात्रीफलरसैः समैः । सर्पिःप्रस्थं पचेद्युक्त्या पित्तकासनिवारणम् ॥ ३५ ॥

भैंस, बकरी, भेड और गौका दूध; प्रत्येक एक१ प्रस्थ, आमलोंका रस १ प्रस्थ और घी१प्रस्थ लेवे । सबको मिलाकर यथाविधिसे घृतको सिद्ध करे । यह घृत–पित्तकी खाँसीको दूर करता है ॥३५ ॥

द्वितीयक्षीरघृत ।

अपोथ्य क्षीरिणां शुङ्गान् पचेत्क्षीरचतुर्गुणे । द्राक्षाकल्के घृतं सिद्धं लिह्यात्तत्पित्तकासनुत ॥ ३६ ॥

वड़, गूलर, पीपल, पारिसपीपल और पाखर; इनके अंकुरोंको चौगुने दूधमें पकाकर क्राथ बनावे । फिर उस क्राथमें घी और दाखका कल्क डालकर घृतको सिद्ध करे । यह घृत—पित्तकी खाँसीको दूर करता है ॥ ३६ ॥

क्षीरवृक्षाङ्कुरक्राथं पक्कं क्षीरसमं घृतम् । पाययेत्पित्तकासघ्नं मधुना चावलेह्येत ॥ ३७ ॥

उक्त क्षीर वृक्षोंके अंकुर लेकर दूधमें औटावे, फिर उस औटे हुए दूधमें बराबरका घी डालकर पकावे । जब पकते २ घृत अवशेष रह जाय तब उतार लेवे । फिर इसमें शहद मिलाकर पित्तकी खाँसीमें सेवन करे ॥ ३७ ॥

कफकासनिदान, चिकित्सा ।



प्रलिप्यमानेन मुखेन सीदन् शिरोरुजार्त्तः कफपूर्णदेहः । अभक्तरुग्गौरवसादयुक्तः कासेद्भृशं सान्द्रकफः कफेन ॥ ३८ ॥

कफकी खाँसीमें-मुखमें कफ लिपटा रहनेसे पीडित रहना, शिरकी पीडासे व्याकुल, सम्पूर्ण शरीरका कफसे व्याप्त रहना, भोजनमें अरुचि, शरीरमें भारीपन, जडता और वारंवार गाढे कफको खाँसते समय थूकना आदि लक्षण होते हैं ॥ ३८ ॥

कफजे छर्दनं कार्यमामे लङ्घनमेव च । शस्तं यवान्नविकृतियूषांश्च कटुतिक्तकान् ॥ ३९ ॥

कफकी खाँसीमें प्रथम वमन करानी चाहिये, और जो कफ आम अर्थात् कचा हो तो प्रथम लंघन कराने चाहिए, तथा जौका अन्न कटु और तिक्त पदार्थोंका यूष एवं कफकी प्रकृतिको नष्ट करना ये सब उपचार करने चाहिएँ ॥ ३९ ॥

नवांगयूष ।

मुद्गामलाभ्यां यवदाडिमाभ्यां कर्कन्धुना मूलकशुण्ठिकेन । शुण्ठीकणाभ्यां सकुलित्थकेन यूषो नवाङ्गः कफरोगहर्त्ता ॥ ४० ॥

मूँग, आमले, जौ, अनार, बेर, सूखीमूली, सोंठ, पीपल और कुलथी इन नव औषधियोंका यूष कफरोगोंको नष्ट करता है ॥ ४० ॥

शठ्यादिघृत ।

शटीसातिविषा मुस्तं शृङ्गी कर्कटकस्य च । अभया शृङ्गबेरश्च समान् हर्षादि पेषयेत् ॥ ४१ ॥ हिङ्गुसैन्धवसंयुक्तं सुखोदकपरिप्लुतम् । काले पानाय दातव्यं श्लेष्मकर्म्मनिबर्हणम् ॥ ४२ ॥

कचूर, अतीस, नागरमोथा, काकडाशिंगी, हरड और अदरख इनको समान भाग लेकर पत्थर पर पीसकर हींग और सैंधानमक मिलाकर मन्दोष्ण जलके साथ सेवन करे तो कफकी खाँसी दूर होती है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

तैलभृष्टश्च पिप्पल्याः कल्काक्षं ससितोपलम् । पिबेद्वा कफवातघ्नं कुलित्थं सलिलप्लुतम् ॥ ४३ ॥

पीपलके कल्कको तैलमें भूनकर और बहेडेके कल्कको मिश्रीके साथ सेवन करनेसे अथवा कुलथीके काथमें मिलाकर पान करनेसे कफ वातकी खाँसी दूर होजाती है ॥ ४३ ॥

पार्श्वशूले ज्वरे श्वासे कासे श्लेष्मसमुद्भवम् । पिप्पलीचूर्णसंयुक्तं दशमूलीजलं पिबेत् ॥ ४४ ॥

दशमूलके काथमें पीपलकाचूर्ण डालकर पार्श्वशूल, ज्वर, श्वास और कफकी खाँसीमें सेवन करे॥ ४४॥

पौष्करं कट्फलं भार्ङ्गी विश्वपिप्पलिसाधितम् । पिबेत्काथं कफोद्रेके कासश्वासे च हृद्ग्रहे ॥ ४५ ॥

पोहकरमूल, कायफल, भारंगी, सोंठ और पपिल इनका काथ बनाकर पान करनेसे कफकी खाँसी, श्वास और हृदयरोग दूर होता है ॥ ४५ ॥

देवदारु शटी रास्ना शृङ्गी धन्वयवासकम् । तैलक्षौद्रयुतं लिह्याच्छ्लेष्मकासे सुदारुणे ॥ ४६ ॥

देवदारु, कचूर, रायसन, काकडाशिंगी और धमासा इनका चूर्ण बनाकर तेल और शहद मिलाकर दारुण खाँसीमें चाटे ॥ ४६ ॥

व्योषपुष्करमृद्वीका त्रिफलाशटिचित्रकैः । मधुतैलयुतो लेहः श्लेष्मकासनिबर्हणः ॥ ४७ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, पोहकरमूल, दाख, हरड़, बहेड़ा, आमला, कचूर और चीता इनको पीसकर शहद और तेलमें मिलाकर चाटनेसे कफकी खाँसी दूर होती है ॥ ४७ ॥

बृहतकण्टकार्यादिघृत ।

समूलपत्रशाखायाः कण्टकार्य्या रसाढके । घृतप्रस्थं बलाव्योषविडङ्गशटिचित्रकैः ॥ ४८ ॥ सौवर्चलयवक्षारबिल्वामलकपुष्करैः । वृश्चीरबृहतीपथ्यायवानीदाडिमादिभिः ॥ ॥ ४९ ॥ द्राक्षापुनर्नवाचव्यदुरालम्भाम्लवेतसैः । शृङ्गीतामलकीभार्ङ्गीरास्नागोक्षुरकैः पचेत् ॥ ५० ॥ कल्कैस्तु सर्वकासेषु हिक्काश्वासे च शस्यते । कण्टकारीघृतं सिद्धं कफकासनिषूदनम् ॥ ५१ ॥

कटेरीके पंचांगका एक आढक परिमाण रस लेवे उसमें घी एकप्रस्थ, खिरैंटी, सोंठ, पीपल, मिरच, वायविडंग, कचूर, चीता, कालानोन, जवाखार, बेलगिरी, आमले, पोहकरमूल, श्वेतपुनर्नवा, बडीकटेरी, हरड, अजवायन, अनार, दाख, रक्तपुनर्नवा, चव्य, धमासा, अम्लवेत, काकडाशिंगी, भुँइआमला, भारंगी, रायसन, और गोखुरू इनका कल्क डालकर घृतको पकावे । यह घृत-सर्व प्रकारकी खाँसी. हिचकी और श्वासमें हितकारी है, यह विशेष कर कफकी खाँसीको दूर करता है ॥ ४८--५१ ॥

व्योषाद्यघृत ।

व्योषाजमोदचित्रकजीरकषड्ग्रन्थिकचव्यकलिकतम् । सर्पिः कफकासहरं वासकरससाधितं समधु ॥ ५२ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, अजमोद, चीता, जीरा, बच और चव्य इनके कल्क और अडूसेके रसके द्वारा घृतको सिद्ध करे । इस घृतमें शहद मिलाकर सेवन करनेसे कफकी खाँसी दूर होती है ॥ ५२ ॥

निर्गुण्डीघृत ।

निर्गुण्डिपत्रस्वरसेन सिद्धं सर्पिः कफोत्थं विनिहन्ति कासम् ॥ ५३ ॥

निर्गुण्डीके पत्तोंके स्वरसमें घृतको पकाकर सेवन करनेसे कफकी खाँसी दूर होती है ॥ ५३ ॥

विभीतकं घृताभ्यक्तं गोशकृत्परिवेष्टितम् । स्विन्नमग्नौ हरेत्कासं ध्रुवमास्यविधारितम् ॥ ५४ ॥

बहेड़ेको घीमें सानकर, गोबरमें लपेटकर अग्निमें पकाकर मुखमें रखनेसे खाँसी दूर होती है॥ ५४ ॥

कट्फलादिक्काथ ।

कट्फलं कत्तृणं भार्ङ्गी मुस्तं धान्यं बलाभया । शुण्ठी पर्पटकं शृङ्गी सुराह्वञ्च जले शृतम् ॥ ५५ ॥ मधुहिङ्गुयुतं पेयं कासे वातकफात्मके । कण्ठरोगे मुखे शूले श्वासे हिक्काज्वरेषु च ॥ ५६ ॥

कायफल, सुगन्धतृण, भारंगी, नागरमोथा, धनियाँ, खिरैंटी, हरड़, सोंठ, पित्तपापड़ा, काकड़ाशिंगी और देवदारु इनके काथमें शहद और हींग डालकर पान करनेसे वातकफजन्य खाँसी, कण्ठरोग, मुखशूल, श्वास, हिचकी और ज्वर दूर होता है५५॥५६

लवंगादिसमशर्कराचूर्ण ।

लवङ्गजातीफलपिप्पलीनां भागान् प्रकल्प्याक्षसमानमीषाम् । कर्षार्धमेकं मरिचस्य दद्यात्पलानि चत्वारि महौषधस्य ॥५७॥ सितासमं चूर्णमिदं प्रसह्य रोगानिमांस्तु प्रबलान्निहन्ति । कासज्वरारोचकमेहगुल्मश्वासाग्निमान्द्यग्रहणीगदेषु ॥ ५८ ॥

लौंग, जायफल और पीपल ये प्रत्येक औषधि एक २ तोला, कालीमिरच आधातोला, सोंठ १६ तोले, इनका चूर्ण कर लेवे और सब चूर्णके समान मिश्री लेवे । सबको मिलाकर चूर्ण बनावे । यह चूर्ण-खाँसी, ज्वर, अरुचि, प्रमेह, गुल्म, श्वास, मंदाग्नि और ग्रहणीरोगमें अत्यन्त हितकारी है॥५७॥५८ ॥

सिंहास्यामृतसिंहीनां क्वाथं मधुसमायुतम् । पिबेत्सपित्ते कफजे कासे श्वासे ज्वरे क्षये ॥ ५९ ॥

अडूसा, गिलोय और कटेरी, इनका काथ बनाकर शहद मिलाकर पान करनेसे पित्तकफज खाँसी, श्वास, ज्वर और क्षयरोग दूर होता है ॥ ५९ ॥

वासकस्वरसः पेयो मधुयुक्तो हिताशिना । पित्तश्लेष्मकृते कासे रक्तपित्ते विशेषतः ॥ ६० ॥

अडूसेके स्वरसमें शहद मिलाकर सेवन करे और इसपर हितकारक भोजन करे तो पित्तकफज खाँसी और विशेष कर रक्तपित्तरोग दूर होता है ॥ ६० ॥

वातश्लेष्मकृते कासे तालीसाद्यं प्रयोजयेत् । पित्तयुक्ते भवेच्छ्रेष्ठं वंशरोचनया युतम् ॥ ६१ ॥

वात, कफकी खाँसीमें तालीसाद्य चूर्ण प्रयोग करे और पित्तकी खाँसीमें वंशलोचनके साथ अडूसेके रसको सेवन करे ॥ ६१ ॥

दशमूलाद्यघृत ।

दशमूलाढके प्रस्थं घृतस्याक्षसमैः पचेत् । पुष्कराक्षशटीबिल्वसुरसाव्योषहिंगुभिः ॥ ६२ ॥ पेयानुपानं तत्पेयं कासे वातकफात्मके । श्वासरोगेषु सर्वेषु कफवातात्मकेषु च॥६३॥

दशमूलका काथ एक आढक, गौका घी १ प्रस्थ, पोहकरमूल, बहेड़ा, कचूर, बेलगिरी, तुलसी, सोंठ, मिरच, पीपल और हींग इन सबका कल्क एक एक तोला सबको मिलाकर यथाविधिसे घृतको पकावे । यह दशमूलाद्यघृत–अनुपान विशेषके साथ सेवन किया हुआ वातकफकी खाँसी, सर्वप्रकारका श्वास और सब प्रकारके कफवातजन्य रोगोंको दूर करता है ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

भृङ्गराजतैल ।

भृङ्गराजरसप्रस्थं शृङ्गवेररसं तथा । कटुतैलस्य च प्रस्थं गोमूत्रप्रस्थसंयुतम् ॥ ६४ ॥ दशमूलकुलित्थाश्च शुष्कमूलकशिग्रुकम् । भार्ङ्गी च कुडवांशानि क्वाथयेत्सलिलाढके ॥ ६५ ॥ पादशेषेण तेनापि कल्कं दत्त्वा विपाचयेत् । देवदारुवचाकुष्ठं शताह्वाल-

वणत्रयम् ॥ ६६ ॥ हिंगुतुम्बुरुणी-व्योषं यवानी जीरकद्वयम् । चित्रकं पिप्पलीमूलं वरो भृङ्गरसस्तथा ॥६७॥ कट्फलं चित्रकश्चैव समभागानि कारयेत् । सम्यक् सिद्धश्च विज्ञाय पाने नस्ये प्रयोजयेत् ॥ ६८ ॥ वातश्लेष्मात्मके कासे प्रतिश्याये च पीनसे । श्वासरोगेषु सर्वेषु कफवातात्मकेषु च । तैलं त्विदं भृङ्गराजं कफव्याधिविनाशनम् ॥ ६९ ॥

भांगरेका रस १ प्रस्थ, अदरखका रस १ प्रस्थ, कडवातेल १ प्रस्थ और गोमूत्र १ प्रस्थ लेवे, दशमूलकी सम्पूर्ण औषधि, कुलथी, सूखीमूली, सहिंजने की जड़ और भारंगी ये प्रत्येक औषधि सोलह २ तोले लेकर सबको १ आढक परिमाण जलमें पकावे जब चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर उक्त सब पदार्थ और इस काथको मिलाकर देवदारु, वच, कूट, सौंफ, तीनों लवण, हींग, तुम्बुरू, त्रिकुटा, अजवायन, जीरा, कालाजीरा, चीता, पीपलामूल, त्रिफला, भांगरा, कायफल और चीता इनका कल्क मिलाकर पचावे जब सिद्ध होजाय तब इसको पान और नस्यमें प्रयोग करे । यह भृंगराज तैल--वात कफकी खाँसी, प्रतिश्याय, पीनस और सब प्रकारके वात जन्य श्वासरोगमें हितकारी है । यह तैल कफव्याधि नाशक है ॥६४--६९॥

उरःक्षतजकासरोगनिदान ।

अतिव्यवायभाराऽध्वयुद्धाश्वगजनिग्रहैः । रूक्षस्योरःक्षतं वायुर्गृहीत्वा कासमावहेत् ॥ ७० ॥ स पूर्वं कासते शुष्कं ततः ष्ठीवेत्सशोणितम् । कण्ठेन रुजताऽत्यर्थं विभिन्नेनैव चोरसा ॥ ७१ ॥ सूचिभिरिव तीक्ष्णाभिस्तुद्यमानेन शूलिना । दुःखस्पर्शेन शूलेन भेदपीडाभितापिना ॥ ७२ ॥ पर्वभेदज्वरश्वासतृष्णावैस्वर्य्यपीडितः । पारावत इवाकूजन् कासवेगात् क्षतो भवेत् ॥ ७३ ॥

अत्यन्त मैथुन करनेसे, बहुत बोझके उठानेसे, बहुतमार्गके चलनेसे, युद्ध करनेसे और भागते हुए हाथी घोडोंको रोकनेसे, रूखे मनुष्यकी छातीमें घाव होकर उसमें वायु प्राप्त हो खाँसीको करती है। प्रथम वह मनुष्य सूखा खाँसता है,फिर रुधिर थूकता है, कंठमें अत्यन्त पीडा होती है, हृदयमें फटने सरीखी पीड़ा होती है, सुईकी समान तीक्ष्ण और तोडने सरीखी पीडा हो, छुआ भी न जाय, छेदन भेदनके समान पीडा हो, संधियोंमें हडफूटन, ज्वर, श्वास,तृषा,स्वरभंग और कबूतरके समान कूजता है यह क्षतोत्पन्न खाँसीके लक्षण जानने चाहिये ॥७०॥ ॥ ७१ ॥ ७२॥ ७३ ॥

चिकित्सा ।

कासे तु क्षतजे बल्यैर्जीवनीयैर्घृतैरपि । शमनैः पित्तकासघ्नैरन्यैश्च मधुरौषधैः ॥ ७४ ॥

क्षतजखाँसीमें बलकारक, जीवनीय घृत, शमन और पित्तकासनाशक तथा अन्यान्य मधुर औषधियोंके द्वारा चिकित्सा करनी चाहिए ॥ ७४ ॥

यवागूं वा पिबेत्सिद्धां क्षतोरस्कः सुशीतलाम् ॥ ७५ ॥

उरःक्षतकी खाँसीमें यवागूको खूब शीतल करके पान करे ॥ ७५ ॥

द्राक्षेक्षुबालिकापद्ममृणालोत्पलचन्दनैः । शृतां पेयां मधुयुतां सन्धानार्थं पिबेत्क्षती ॥ ७६ ॥

दाख, इक्षुवालिका (एक प्रकारके तृण), कमल, कमलकी नाल, कुमुद और चन्दन इनके काथमें सिद्ध कीहुई पेया शहद डालकर क्षतसन्धानके लिये पान करे ॥ ७६ ॥

इक्ष्वाद्यावलेह ।

इक्ष्विक्षुबालिकापद्ममृणालोत्पलचन्दनैः । मधुकं पिप्पली द्राक्षा लाक्षा

शृङ्गी शतावरी ॥ ७७ ॥ द्विगुणा च तुगाक्षीरी सिता सर्वैश्चतुर्गुणा। लिह्यात्तन्मधुसर्पिभ्यां क्षतकासनिवृत्तये ॥ ७८॥

ईख, इक्षुवालिका (तृणविशेष), कमल, कमलकी नाल, कमोदनी, चंदन, मुलैठी, पपिल, दाख, लाख, काकडासिंगी और शतावर ये सब समान भाग, वंशलोचन दुगुना और मिश्री सबसे चौगुनी लेनी चाहिये। सबको मिलाकर अवलेह बनावे। इसमें शहद और घी डालकर चाटे तो क्षतकी खाँसी दूर होती है ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

पिप्पली पद्मकं द्राक्षा सुपक्वं बृहतीफलम्। घृतक्षौद्रयुतो लेहः क्षतकासनिबर्हणः ॥ ७९ ॥

पीपल, पद्माख, दाख, पकेहुए बडीकटेरीके फल इन सबका एकत्र चूर्ण करके शहद और घीमें मिला कर सेवन करे तो क्षतकी खाँसी दूर हो ॥ ७९ ॥

मञ्जिष्ठमूर्वानतवह्निपाठाः कृष्णां हरिद्रां विलिहेद्विचूर्ण्य। क्षौद्रेण कासे क्षतजे क्षयोत्थे पिबेद्घृतं चेक्षुरसे विपक्वम् ॥ ८० ॥

मजीठ, मूर्वा, तगर, चीता, पाढ, पीपल और हल्दी इनका चूर्ण करके शहदमें मिलाकर चाटे तो क्षत और क्षयज खाँसी दूर होती है अथवा ईखके रसमें घीको पकाकर पान करनेसे क्षतकी खांसी दूर होती है ॥ ८० ॥

क्षीरपाक।

इक्ष्विक्षुबालिकापद्ममृणालोत्पलचन्दनैः। शृतं पयो मधुयुतं सन्धानार्थं पिबेत् क्षती ॥ ८१ ॥

ईख, इक्षुबालिका, कमल, कमलकी नाल, कमोदनी और चन्दन इनको दूधमें औटाकर शहद मिला कर क्षतरोगी संधानके लिए पान करे ॥ ८१ ॥

वासाकूष्माण्ड।

पञ्चाशच्च पलं स्विन्नं कूष्माण्डात्प्रस्थमाज्यतः। पक्वं पलशतं खण्डं वासाक्काथाढके पचेत् ॥ ८२ ॥ शुभ्रा धात्री घनो भार्ङ्गी त्रिसुगन्धैश्च कार्षिकैः। पिप्पली कुडवश्चैव मधुमानं प्रदापयेत् ॥८३॥ कासं श्वासं क्षयं हिक्कां रक्तपित्तं हलीमकम्। हृद्रोगमम्लपित्तञ्च पीनसञ्च व्यपोहति। भुक्तसर्पिषु कूष्मांडे पाके गन्धेन मुद्रया ॥ ८४ ॥

उसीजिहुए और छिलेहुए पेठेके ५० पल टुकडे लेकर एक प्रस्थ घीमें भून लेवे। फिर उन टुकडोंको और शुद्ध सौ पल खांडको एक आढक पारिमाण अडूसेके काथमें डालकर पकावे। जब पकते २ गाढा होकर अवलेहके समान होजाय तब वंशलोचन, आमले, नागरमोथा, भारंगी, दालचीनी, इलायची और तेजपात प्रत्येकका चूर्ण एक २ तोला मिला देवे। पीपलका चूर्ण १६ तोले और शीतल होनेपर शहद ३२ तोले मिला देवे। यह खांसी, श्वास, क्षय, हिचकी, रक्तपित्त, हलीमक, हृदयरोग, अम्लपित्त और पीनस रोगको दूर करता है। पेठेको घी मिला कर पकानेमें सिद्ध होजानेका अंदाजा उसकी सुगंध और चासनीके रंगसे होता है ॥८२॥८३॥८४॥

अथ क्षयजकासनिदान।

विषमासात्म्यभोज्यातिव्यवायातिप्रजागरैः। घृणिनां शोचतां नृणां व्यापन्नेऽग्नौ त्रयो मलाः ॥ ८५ ॥ कुपिताः क्षयजं कासं कुर्युर्देहक्षयप्रदम् ॥ ८६ ॥ सगात्रशूलज्वरदाहमोहान् प्राणक्षयं चोपलभेत कासी। शुष्कञ्च निष्ठीवति दुर्बलश्च प्रक्षीणमांसो रुधिरं सपूयम् ॥ ८७ ॥ तं सर्वलिङ्गं भृशदुश्चिकित्स्यं चिकित्सितज्ञाः क्षयजं वदन्ति ॥ ८८ ॥

विषम भोजन करनेसे, असात्म्य (स्वभावके विरुद्ध) भोजन करनेसे, अत्यंत मैथुन करनेसे और अधिकतर जागनेसे, घृणाको करनेवाले और चिंता करनेवाले मनुष्योंके अग्निके मंद होजानेपर तीनों दोष कुपित होते हैं। वे कुपित हुए दोष देहको नष्ट करनेवाली क्षयकी खांसीको उत्पन्न करते हैं। तब उसमें

शरीरमें पीडा,ज्वर,दाह,मोह, प्राणक्षय, सूखी खांसी उठना, रोगीका दुर्बल होना, मांस क्षीण होना, रुधिर और राधका थूकना, आदि लक्षण होते हैं। उन सम्पूर्ण दोषोंके लक्षणोंसे युक्त क्षयज खांसीको वैद्य लोग अत्यंत दुश्चिकित्स्य कहते हैं ॥ ८५-८८॥

इत्येष क्षयजः कासः क्षीणानां देहनाशनः।साध्यो बलवतां वा स्याद्याप्यस्त्वेवं क्षतोत्थितः ॥ ८९ ॥ नवौ कदाचित् सिध्येतामपि पादगुणान्वितौ। स्थविराणां जराकासः सर्वो याप्यः प्रकीर्त्तितः ॥ ९० ॥ त्रीन् पूर्वान् साधयेत साध्यान् पथ्यैर्याप्यांस्तु यापयेत ॥ ९१ ॥

यह क्षयज खांसी क्षीण मनुष्योंके देहको नष्ट करनेवाली है। बलवान् मनुष्योंके साध्य अथवा याप्य होती है। इसीप्रकार क्षतज खांसी जाननी। जो ये दोनोंप्रकारकी खांसी नवीन उत्पन्न हुई हों और चिकित्साके चार पाद ठीक हों तो कदाचित् साध्य होती हैं और वृद्ध मनुष्योंके उत्पन्न हुई जरा अवस्थाकी सर्व खांसी याप्य होती हैं। पहिली तीन वात पित्त और कफकी खांसी साध्य हैं उनकी औषधिके द्वारा चिकित्सा करनी चाहिये। और पथ्य सेवन करके याप्यकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ८९ ॥ ॥ ९० ॥ ९१ ॥

चिकित्सा।

पिप्पली पद्मकं लाक्षा संपक्वं बृहतीफलम्। घृतक्षौद्रयुतो लेहः क्षयकासनिबर्हणः ॥ ९२ ॥

पीपल, पद्माख, लाख और पकेहुए बडीकटेरीके फल इनको एकत्र पीसकर घी और शहदमें मिलाकर चाटे तो क्षयकी खांसी दूर होती है ॥ ९२ ॥

चूर्णं काकुभनिष्कं वासकरसभावितं बहून्वारान्। मधुघृतासितोपलाभिर्लेह्यं क्षयकासपित्तहरम् ॥९३॥

अर्जुनकी छालका चूर्ण चारमासे लेकर अडूसेके रसमें बहुत बार भावना देकर शहद घी और मिश्री मिलाकर सेवन करे तो क्षयकी खांसी और पित्त दूर होता है ॥ ९३ ॥

पिप्पल्यादिघृत।

पिप्पलीगुडसंसिद्धं छागक्षीरयुतं घृतम्। एतदग्निविवृद्ध्यर्थं सर्पिश्च क्षयकासिनाम् ॥ ९४ ॥

पीपल, गुड, बकरीका दूध और घी इनको एकत्र पकाकर सेवन करनेसे यह—क्षयकी खांसीको दूर करता है और अग्निको दीपन करता है ॥ ९४ ॥

कुलीरादिघृत।

कुलीरशुक्तिचटकेण लावाद्भिःक्वाथ्य वर्यैर्मधुरैस्तथान्यैः। पचेद्घृतं तत्तु निषेव्यमाणं हन्यात् क्षयोत्थं क्षतजञ्च कासम् ॥९५॥

केकडा, शीप,चिडा, हिरन और लवा इनके क्वाथ में तथा अन्यान्य मधु वर्गकी औषधियोंके क्वाथमें घी को पकावे। यह घी-क्षय और क्षतकी खांसीको दूर करता है ॥९५॥

द्विपंचमूलादिघृत।

द्विपञ्चमूलीत्रिफलाभार्ङ्गी शुण्ठीसचित्रकैः। कुलित्थापिप्पलीमूलपाठाकोलयवैर्जले ॥ ९६ ॥ शृते नागरदुःस्पर्शशटीपिप्पलपौष्करैः। कल्कैः कर्कटशृङ्ग्या च समैः सर्पिर्विपाचयेत् ॥९७॥ सिद्धेऽस्मिन्चूर्णितौ क्षारौ द्वौ पञ्चलवणानि च। दत्त्वा युक्त्या पिबेन्मात्रां क्षयकासनिपीडितः॥९८॥

दशमूलकी समस्त औषधियें, त्रिफला, भारंगी, सोंठ,चीता, कुलथी, पीपलामूल,पाढ, बेर और जौ, इनके क्वाथमें सोंठ, धमासा, कचूर, पपिल, पोहकरमूल और काकडाशिंगी, इनका कल्क और उत्तम घी डालकर घृतको पकावे। जब घृत सिद्ध होजाय तब जवाखार सज्जी और पांचोंनमक इनका चूर्ण मिला देवे। इसको युक्तिपूर्वक सेवन करे। यह घृत क्षयकी खाँसीको दूर करता है ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ ९८ ॥

अश्वगन्धादिघृत।

शुभेऽह्नि सुदेशसंभूतं मूलशतं सम्यमश्वगन्धायाः। पुण्येऽहनि संक्षुण्णं विपचेद्द्रोणेऽम्भसि च विद्वान् ॥ ९९ ॥ ज्ञात्वाष्टभागसिद्धं गृह्णीयात्तद्रसं सुपरिपूतम्। द्वे चैवात्र पलशते दद्याच्छागस्य मांसस्य ॥ १०० ॥ सर्पिः प्रस्थमथैकं गव्यञ्च पयश्चतुर्गुणं दद्यात्। कल्कानक्षसमानानूर्ध्वमतः संप्रवक्ष्यामि ॥ १०१ ॥ काकोलीद्वयमृद्धी मेदे द्वे जीवकं स्वयंगुप्ताम्। वृषभकमेलां मधुकं मृद्वीकां यासपिप्पल्यौ ॥ १०२ ॥ जीवन्तीमुपकुल्यां बलां विदारीं शतावरीं चात्र। दत्त्वा सम्यग्विपचेत् सर्पिरथोद्धृत्य स्थित्वा च ॥ १०३ ॥ मधुशर्करयोः कुडवं दत्त्वा भाण्डे शुभे स्थितं मृदितम्। लीढ्वा तत्पाणितले यथेष्टमाहारमश्नीयात् ॥ १०४ ॥ क्षीणक्षतशिशुवृद्धाः क्षीणेन्द्रियहीनबलवर्णमांसाश्च। प्राश्य प्रकुर्यात् सद्यः पुष्टिबलारोग्यतेजांसि ॥ १०५ ॥ उपयुज्य सर्पिरेतत्सप्ततिवर्षो युवेव पुनर्भूत्वा। बहुशः स्त्रियोऽधिगच्छेन्न चात्र शुक्रक्षयं लभते ॥ १०६ ॥ पुत्रार्थिनी च नारी लभते पुत्रान्वयस्यतीतेऽपि। वन्ध्या लभते पुत्रं प्राश्येदश्वाश्वगन्धाद्यम् ॥ १०७ ॥ उपयुक्ते यः पुरुषो मासत्रयं द्विमासं वा। नारीशतं स गच्छेन्नैव भजेद्योषितां तृप्तिम् ॥ १०८ ॥ खालित्यवलीपलितैर्न चास्य देहोऽभिभूयते क्षिप्रम्। वातव्याधिभिरार्त्तस्तथैव हृद्बस्तिरोगार्त्तः ॥ १०९ ॥ न चिरादपि रोगार्त्ता भुञ्जानाः सर्पिररोगा भवन्ति। अतो जगद्धितार्थिसर्पिरिदं वाजिगन्धायाः ॥ ११० ॥ श्रेष्ठं वाजीकरणं निर्दिष्टमश्विभ्यां पूर्वं बहुशः। प्रोक्तं वृष्यं बल्यं क्षयकासहरं पुष्टिकरञ्च ॥ १११ ॥

शुभदिन, शुभनक्षत्रमें उत्तमदेशमें उत्पन्न हुई असगन्धकी जड १०० पल लेकर कूटकर एकद्रोण जलमें पकावे। जब पकते २ आठवां भाग जलशेष रहजाय तब उतारकर वस्त्रमें छान लेवे। फिर उसमें २०० पल बकरेका मांस, घी १ प्रस्थ और गौका दूध चौगुना, एवं काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि, वृद्धि, मेदा, महामेदा, जीवक, कौंछ, अडूसा, इलायची, मुलेठी, दाख, जवासा, पीपल, गजपीपल, जीवन्ती, छोटीइलायची, खिरैंटी, विदारीकंद और शतावर, प्रत्येकका कल्क एक २ तोला सबको यथा विधिसे मिलाकर घृतको सिद्ध करे। जब घृत सिद्ध होजाय तब शीतल होजानेपर शहद और मिश्री सोलह२तोले डालकर मर्दन करके एक उत्तम चिकने बासनमें भर कर रख देवे। फिर प्रतिदिन इसमेंसे एकतोला परिमाण हथेली पर रखकर सेवन करे। इसपर यथेष्ट आहार करे। इसके सेवनसे क्षतक्षीण, बालक, वृद्ध, क्षीण-इन्द्रिय, बल, वर्ण और मांसक्षीण मनुष्यके तत्काल पुष्टि, बल, आरोग्यता और तेजकी वृद्धि होती है इस घृतसे सत्तर वर्षका पुराना मनुष्यभी फिरसे युवा होजाता है और वह अनेक स्त्रियोंमें रमण करता है और वह कदापि वीर्य्यक्षयको प्राप्त नहीं होता है। पुत्रकी इच्छा करनेवाली स्त्री अवस्थाके व्यतीत होने परभी उत्तम पुत्रको जनती है तथा इसके सेवनसे वन्ध्यास्त्री भी सर्वगुणसम्पन्न पुत्रको उत्पन्न करतीहै। जो मनुष्य इस घृतको एकमहीने अथवा दो महीने किम्वा तीन महीनेतक सेवन करता है वह सौ स्त्रियों के पास जा सकता है तथा कदापि स्त्रियोंके भोगनेमें तृप्त नहीं होता। तथा इसके प्रतापसे शीघ्रही खालित्य, वलि और पलितयुक्त नहीं होता। वातव्याधि, हृदयरोग और बस्तिरोग नहीं होता। इस घृतके सेवन करनेवाले मनुष्य बहुत कालतक रोगी नहीं होते। इसी लिए यह अश्वगन्धादि घृत संसारके हितके लिये कहा है। यह श्रेष्ठ, बाजीकरण, वृष्य, बल्य, क्षयकासनाशक और पुष्टिकारक है। इसको अश्विनीकुमारोंने निर्माण किया है ॥ ९९--१११ ॥

पिप्पल्याद्यवलेह ।

पिप्पलीमधुकं वापि कार्षिकञ्च सितोपलम् । प्रस्थिकं गव्यमाज्यञ्च क्षीरमिक्षुरसस्तथा ॥ ११२ ॥ यवगोधूममृद्वीकाचूर्णमामलकाद्रसम् । तैलञ्च प्रसृतांशानि तत्सर्वं मृदुनाग्निना ॥ ११३ ॥ पचेल्लेहं घृतक्षौद्रयुक्तः सश्वासकासनुत् । क्षयहृद्रोगकासघ्नो हितो वृद्धाऽल्परेतसाम् ॥ ११४ ॥

पीपल और मुलैठी प्रत्येक एक एक कर्ष, मिश्री १ प्रस्थ, गौका घी १प्रस्थ, दूध १ प्रस्थ,ईखका रस १ प्रस्थ, जौ और गेहूँका चूर्ण, दाख,आमलोंका रस और तिलका तेल, प्रत्येक आठ आठ तोले, सबको मिलाकर मंद मंद अग्निसे पकावे। जब लेहके समान होकर शीतल होजाय तब शहद और घी मिला देवे। यह अवलेह-श्वास, खाँसी, क्षय और हृदयरोगको दूर करता है तथा वृद्ध और अल्पवीर्य वाले मनुष्योंको हितकारी है ॥ ११२ ॥ ११३ ॥ ११४ ॥

क्षयकास।

सन्निपातभवो ह्येषः क्षयकासः सुदारुणः । सन्निपातहितं तस्मात्कार्य्यमत्र चिकित्सितम् ॥ ११५ ॥

यह दारुण क्षयकी खाँसी विशेषकर सन्निपातसे उत्पन्न होती है इस कारण इसमें सन्निपातमें जो हितकारक चिकित्सा कही है वह सब करनी चाहिए ॥ ११५ ॥

कासश्वास।

अमृता नागरं फञ्जी व्याघ्रपर्णी सुसाधितः। क्वाथः पिप्पलिचूर्णाढ्यः कासश्वासौ जयत्यलम् ॥ ११६ ॥

गिलोय, सोंठ,भारंगी और शालिपर्णी इनके क्वाथ में पीपलका चूर्ण डालकर सेवन करे तो खाँसी और श्वास शीघ्र दूर होता है ॥ ११६ ॥

भार्ङ्गी सनागरासिंही कुलित्थं मूलकं तथा । पिबेत्पिप्पलिचूर्णेन कासश्वासं व्यपोहति ॥ ११७ ॥

भारंगी,सोंठ,कटेरी,कुलथी और मूली इनके क्वाथ में पीपलका चूर्ण डालकर पान करे तो खाँसी और श्वास दूर होता है ॥ ११७ ॥

स्वरसं शृङ्गवेरस्य माक्षिकेन समन्वितम् । पाययेत्कासश्वासघ्नं प्रतिश्यायकफापहम् ॥ ११८ ॥

अदरखके रसमें शहद मिलाकर पीनेसे खाँसी, श्वास, प्रतिश्याय और कफका नाश होता है॥१८८॥

पथ्या शुण्ठीघनगुडैर्गुटिकां धारयन्मुखे। सर्वेषु श्वासकासेषु केवलं वा विभीतकम् ॥ ११९ ॥

हरड, सोंठ, नगरमोथा और गुड़, इनकी गोली बनाकर मुखमें धारण करे तो सर्वप्रकारकी खाँसी और श्वास दूर होता है अथवा केवल बहेडेको मुखमें धारण करनेसे भी वही फल होता है ॥११९॥

नागरेणाभया तद्वत्कासमाशु व्यपोहति ॥ १२० ॥

उक्त प्रकारसे सोंठ और हरडके चूर्णको सेवन करनेसे खाँसी और श्वास दूर होता है ॥१२०॥

सपिप्पलीपुष्करमूलपथ्याशुण्ठीशटीमुस्तकसूक्ष्मचूर्णैः । गुडेन युक्ता गुटिकाः प्रयोज्याः श्वासेषु कासेषु च वर्धितेषु ॥ १२१ ॥

पीपल, पोहकरमूल, हरड, सोंठ, कचूर और नागरमोथा इनका बारीक चूर्ण बनाकर गुडमें मिलाकर गोलियाँ बना लेवे। यह गोलियें सर्वप्रकारकी बढी हुई खाँसी और श्वासको दूर करती हैं॥१२१॥

अष्टाङ्गचूर्णसंयुक्तं पक्वा क्षीरं प्रयोजयेत्। कासं श्वासान्वितं घोरं हन्यादेतन्न संशयः॥ १२२ ॥

अष्टांगचूर्णको दूधमें औटाकर पान करनेसे खाँसी और घोर श्वासरोग निश्चय नष्ट होता है ॥ १२२ ॥

पञ्चकोलैः शृतं क्षीरं कफघ्नं लघु शस्यते। श्वासकासारुचिहरं बलवर्णाग्निवर्धनम् ॥ १२३ ॥

पंचकोलकी औषधियोंके द्वारा दूधको औटाकर पान करे तो वह दूध हलका और कफनाशक होता है तथा श्वास खाँसी और अरुचिको दूर करता है, एवं बल, वर्ण और अग्निको बढाता है ॥ १२३॥

वाम्यमानस्य कासेन नासास्रावे स्वरे जडे । क्षवथौ गन्धनासे च धूमपानं प्रयोजयेत् ॥ १२४ ॥

जो कासरोगी वमनसे पीडित हैं, तथा जिनके नाकके द्वारा जलका स्राव होता है,स्वर जड़ होगया है,छीक और नाकमें दुर्गन्ध आती है उनको धूमपान प्रयोग करना चाहिए ॥ १२४ ॥

धूमपान ।

मनःशिलैलामरिचं मांसी मुस्तं सगुग्गुलुम् । धूमं तस्यानु च पयः सुखोष्णं सगुडं पिबेत् ॥ १२५॥ पञ्चकासान् क्षयद्वन्द्वसर्वदोषसमुत्थितान् । शतैरपि प्रयोगाणां साधयेदप्रसाधितान् ॥ १२६ ॥

मैनशिल, इलायची,कालीमिरच, बालछड़,नागरमोथा और गूगल इनको एकत्र मिलाकर धूमपान करे।और उसके पश्चात् मन्दोष्ण दूधमें गुड मिलाकर पीवे । यह पांचोंप्रकारकी खाँसी, क्षयज खाँसी, द्वन्द्वज खाँसी,सर्वदोषजन्य खाँसी, और जो सैकडों औषधि करनेसे भी आरोग्य नहीं हुई उस खाँसीको यह धूम अवश्य दूर करदेता है ॥ १२५ ॥ १२६ ॥

मनःशिलालिप्तदलं बदर्य्या धर्मशोषितम् । सक्षीरं धूमपानन्तु महाकासनिवारणम् ॥ १२७ ॥

मैनशिलको पीसकर बेरीके पत्तोंपर लेप करके धूपमें सुखाकर धूमपान करे और ऊपरसे दूध पान करे तो महादारुण खाँसी दूर होती है ॥ १२७ ॥

पिष्ट्वा त्रिपुटधत्तूरमूलव्योषमनःशिलाः ॥ तेन प्रलिप्य वसनं धूमवर्त्तिं प्रयोजयेत् ॥ १२८ ॥ धूमं तस्याः पिबेद्यस्तु त्र्यहात्कासमुदस्याति ॥ १२९ ॥

निसोत, धतूरेकी जड़, त्रिकुटा और मैनशिल इनको एकत्र पीसकर कपड़ेपर लेपकर उसकी बत्ती बनाकर धूमपान करनेसे तीनदिनमें खाँसी दूर होजाती है ॥ १२८ ॥ १२९ ॥

अर्कक्षीरशिले तुल्ये तदर्द्धश्च कटुत्रिकम् । चूर्णितं वह्निनिःक्षिप्तं पिबेद्धूमन्तु योगवित् ॥ १३० ॥

आकका दूध और मैनशिल यह दोनों समान भाग और त्रिकुटा आधा भाग, सबको एकत्र पीसकर अग्निमें डालकर धूमपान करे ॥ १३० ॥

जातेरुत्तरदिङ्मूलं शिलैलागुग्गुलुः समः । अजामूत्रेण पिष्टोऽयं धूमः कासहरः परः ॥ १३१ ॥ भक्षयेदथ तच्चूर्णं पिबेद्दुग्धमथांबुना । कासाः पञ्चविधा यान्ति शान्तिमाशु न संशयः ॥ १३२ ॥

उत्तर दिशामें उत्पन्न हुई चमेलीकी जड़,मैनशिल, इलायची और गूगल इन सबको समान भाग ले एकत्र बकरीके मूत्रमें पीसकर धूमपान करनेसे खांसी दूर होती है।अथवा इन्हीं औषधियोंके चूर्णको दूध या जलके साथ पान करे तो पांचप्रकारकी खाँसी शीघ्र ही शान्त होजाती है ॥ १३१ ॥ १३२

कण्टकार्यादिक्काथ ।

कण्टकारीकृतः क्काथः सकृष्णः सर्वकासहा । कण्टकार्य्याः कणायाश्च चूर्णं मधुयुतं लिहेत् ॥ १३३ ॥

कटेरीके काथमें पीपलका चूर्ण डालकर पीनेसे सर्वप्रकारकी खाँसी दूर होती है। कटेरी और पीपलके चूर्णको शहद मिलाकर सेवन करे तो सर्वप्रकारकी खांसी दूर होती है ॥ १३३ ॥

देवदारुबलारास्नात्रिफलाव्योषपद्मकैः । सविडङ्गः शिलातुल्यं तच्चूर्णं सर्वकासनुत् ॥ १३४ ॥

देवदारु, खिरैंटी, रायसन, त्रिफला, त्रिकुटा, पद्माख, वायविडंग और मैनशिल, इन सबको समानभाग लेकर चूर्ण कर सेवन करे । यह चूर्ण सर्व प्रकारकी खांसीको दूर करता है ॥ १३४ ॥

कुनट्यादिलेह ।

कुनटीसैन्धवव्योषविडङ्गामलहिङ्गु-भिः। लेहः साज्यमधुः कासश्वास-हिक्कानिवारणः॥ १३५॥

मैनशिल, सैंधानमक, त्रिकुटा, वायविडंग, आमले और हींग इनका चूर्ण करके शहद और घी मिलाकर चाटे तो खाँसी, श्वास और हिचकी दूर होती है१३५

हरीतक्यादिमोदक ।

हरीतकीकणाशुण्ठी मरिचं गुडसंयुतम् ।कासघ्नो मोदकः प्रोक्तः परं चानलदीपनः॥ १३६॥

हरड, पीपल, सोंठ, कालीमिरच और गुड इन सबको एकत्र पीसकर मोदक बनावे । यह मोदक खाँसीको हरते हैं और अग्निको दीपन करते हैं१३६

समशर्करचूर्ण ।

शुण्ठीकणामरिचनागदलत्वगेलं चूर्णीकृतं क्रमविवर्द्धितमूर्ध्वमन्त्यात् । खादेदिदं समसितं गुदजाग्निमान्द्य-गुल्मारुचिश्वसनकण्ठहृदामयेषु॥१३७॥

इलायची १ भाग, दालचीनी २ भाग, तेजपात ३ भाग, नागकेशर ४ भाग, कालीमिरच ५ भाग, पीपल ६ भाग और सोंठ ७ भाग लेवे। सबको एकत्र चूर्ण कर सबके बराबर मिश्री मिला लेवे । यह समशर्करचूर्ण–बवासीर, मंदाग्नि, गुल्म, अरुचि, श्वास, कण्ठ और हृदयरोगको दूर करता है॥१३७

बृहत्समशर्करचूर्ण ।

लवङ्गजातीफलपिप्पलीनां भागान् प्रकल्प्याक्षसमानमीषाम्। पलार्धमात्रं मरिचस्य दद्यात्पलानि चत्वारि महौषधस्य ॥१३८॥ सितासमं चूर्णमिदं प्रसह्य रोगानिमानाशु बलान्निहन्यात्। कासज्वरारोचकमेहगुल्म श्वासाग्निमान्द्यग्रहणीप्रदोषान् १३९

लौंग, जायफल और पीपल प्रत्येक एक २ तोला कालीमिरच २ तोले और सोंठ १६ तोले और सबके बराबर मिश्री । सबका एकत्र बारीक चूर्ण कर लेवे।यह बृहत्समशर्करचूर्ण–खांसी, ज्वर, अरुचि, प्रमेह, गुल्म, श्वास, मंदाग्नि और संग्रहणीको दूर करता है॥ १३८॥ १३९॥

मरिचादिचूर्ण ।

कर्षः कर्षार्द्धमथो पलं पलद्वयं तथार्द्धकर्षश्च । मरिचस्य पिप्पलीनां दाडिमगुडयावशूकानाम् ॥ १४०॥ सर्वौषधैरसाध्या ये कासाः सर्ववैद्यनिर्मुक्ताः। अपि पूयं छर्दयतां तेषामिदमौषधं पथ्यम्॥ १४१॥

कालीमिरच१ तोला, पीपल आधा तोला, अनारके फूलका बक्कल ४ तोले, गुड ८ तोले और जवाखार आधा तोला लेवे। सबको एकत्र पीसकर गोली बना लेवे । जो खाँसी सैकडों औषधि करनेसेभी आरोग्य नहीं हुई और जो वैद्यकरके वर्जित है तथा जिनके थूकते समय राध निकलती है उनके लिये यह औषधि पथ्य है। इसमें दाडिमके छिलका लेना चाहिये॥ ॥ १४०॥ १४१॥

विभीतकावलेह ।

प्रस्थं विभीतकानामस्थि विहाय साधयेदजामूत्रे । लेहयेदवलेहोऽयं मधुयुक्तः श्वासकासघ्नः॥ १४२॥

एकप्रस्थ बहेडेकी गिरी लेकर बकरीके मूत्रमें पकावे । जब पकते २ लेहके समान होजाय तब शहद मिलाकर सेवन करे तो सर्व प्रकारकी खांसी और श्वास दूर होता है॥ १४२॥

जीवन्त्यादिचूर्ण ।

जीवन्तीं मधुकं पाठां त्वक्क्षीरं त्रिफलां शठीम्। मुस्तैलां पिप्पलीं द्राक्षां द्वे बृहत्यौ विभीतकम्॥ १४३॥ शारिवां पौष्करं मूलं कर्कटाख्यां रसाञ्जनम् । पुनर्नवां लोहरजस्त्राय-

माणां यवानिकाम् ॥ १४४ ॥ भार्ङ्गीतामलकीमृद्धिं विडङ्गं धन्वयासकम्। क्षारं चित्रकहिंग्वम्लवेतसं देवदारु च ॥ १४५ ॥ चूर्णीकृत्य पलांशानि लेहयेन्मधुसर्पिषा । चूर्णं पाणितलं पञ्च कासानेतद्व्यपोहति१४६

जीवन्ती, मुलैठी, पाढ, वंशलोचन, त्रिफला, कचूर, नागरमोथा, इलायची, पीपल, दाख, कटेरी, बडी कटेरी, बहेडा, सारिवा, पोहकरमूल, काकडाशिंगी, रसौत, पुनर्नवा, लोहेकी भस्म, त्रायमाण, अजवायन, भारंगी, भुँईआमला, ऋद्धि, वायविडंग, धमासा, जवाखार, चीता, हींग, अम्लवेत और देवदारु प्रत्येक औषधि चार चार तोले लेकर चूर्ण करलेवे। इसमें शहद और घी मिलाकर प्रतिदिन एकतोला प्रमाण खाय तो यह चूर्ण पांचोंप्रकारकी खाँसीको दूर करता है ॥ १४३-१४६ ॥

पद्मकादिचूर्ण।

पद्मकं त्रिफलां व्योषं विडङ्गं सुरदारु च। चूर्णीकृत्य पलांशानि लेहयेन्मधुसर्पिषा ॥ १४७॥ एतैश्चूर्णैः समैः सर्वैः पृथक् क्षौद्रं घृतं सिताम्। लिह्याल्लेहं विपच्यैतत सर्वकासहरं परम् ॥ १४८ ॥

पद्माख, त्रिफला, त्रिकुटा, वायबिडंग और देवदारु प्रत्येक औषधि चार २ तोले लेकर चूर्ण बना लेवे। फिर सब चूर्णके समान शहद और घी अलग अलग लेकर एकत्र मिला देवे। इसको चाटनेसे सर्वप्रकारकी खाँसी नष्ट होती है ॥ १४७॥ १४८ ॥

सिंहामृतघृत ।

सर्पिर्गुडूचीवृषकण्टकारी क्काथेन कल्केन च सिद्धमेतत । पेयं पुराणज्वरकासशूलश्वासाग्निमान्द्यग्रहणीगदेषु ॥ १४९ ॥

गिलोय, अडूसा और कटेरी इनके काथ और कल्कमें घृतको सिद्ध करे।यह घृत--जीर्णज्वर, खाँसी, शूल, श्वास, मन्दाग्नि और संग्रहणीको दूर करता है॥ १४९ ॥

कण्टकारिघृत ।

घृतं रास्ना बला पथ्या श्वदंष्ट्रा कल्कपाचितम्। कण्टकारिरसे सर्पिः पञ्चकासनिषूदनम् ॥ १५० ॥

रसायन, खरैटी, हरड और गोखुरू इनके कल्क और कटेरीके रसमें घृतको पकावे। यह घृत पांचोंप्रकारकी खाँसीको दूर करता है ॥ १५० ॥

द्वितीयकण्टकारिघृत ।

समूलपत्रशाखायाः कण्टकार्यास्तुलां शुभाम्। क्षुण्णां पचेज्जलद्रोणे चतुर्भागावशेषिते ॥ १५१ ॥ मिश्रिते तत्कषायेऽस्मिन् घृतप्रस्थं विपाचयेत्। कल्कान्बिल्वप्रमाणांश्च तत्रेमानि प्रदापयेत ॥ १५२ ॥ पिप्पली पिप्पलीमूलं चित्रको हस्तिपिप्पली। सौवर्चलं यवक्षारो रास्नात्रिकटुकं वचा ॥ ॥ १५३ ॥ एतत्सर्पिः प्रशंसन्ति पञ्चकासनिवारणम्। श्वासं कासं प्रतिश्यायं श्लेष्मकासञ्च नाशयेत्॥१५४॥ निर्दिग्धिकाघृतमिदं न व्याधिरतिवर्त्तते । जातशूलोऽपि संवृद्धो देवसेनामिवासुराः॥ १५५ ॥

सौ पल कटेरीके पंचांगको कूटकर एकद्रोण जलमें पकावे। जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे। फिर इस काथमें गौका घी १ प्रस्थ, पीपल, पीपलामूल, चीता, गजपीपल, कालानमक, जवाखार, रायसन. त्रिकुटा और वच प्रत्येकका कल्क चार २ तोले डालकर उत्तम विधिसे घृतको पकावे। यह घृत--पांचोंप्रकारकी खाँसी, श्वास, प्रतिश्याय और विशेष कर कफकी खाँसीको दूर करता है। और बढीहुई व्याधिको तथा दुःसाध्य शूलरोगको इस प्रकार नष्ट करता है जैसे देवसैन्य असुरोंका नाश करता है ॥ १५१--१५५ ॥

तृतीयकण्टकारिघृत।

कण्टकार्य्यास्तुलां क्षुण्णां कृत्वा द्रोणेऽम्भसि पचेत । तेनाढकेन क्काथेन

घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ १५६ ॥ रास्ना दुःस्पर्शषड्ग्रन्थापिप्पलीद्वयचित्रकैः । सौवर्चलं यवक्षारं कृष्णामूलैश्च तं जयेत् ॥ १५७ ॥ कासश्वासकफष्ठीव हिध्मारोचकपीनसान् ॥ १५८ ॥

सौ पल कटेरीके पंचांगको लेकर कूटकर एक द्रोण जलमें पकावे । जब पकते २ जल एक आढक रहजाय तब उतारकर छान लेवे । फिर इस काथमें १ प्रस्थ घी, तथा रसायन, जवासा, वच, पीपल, गजपीपल, चीता, कालानमक, जवाखार और पीपलामूल, प्रत्येकका कल्क चार चार तोले डालकर घृतको सिद्ध करे । यह घृत खाँसी, श्वास, कफका थूकना, हिध्म, अरुचि और पीनसको दूर करता है ॥ १५६ ॥ १५७ ॥ १५८ ॥

बृहद्वासकादिघृत ।

सभूलपत्रशाखन्तु श्लक्ष्णं कृत्वाटरूषकम् । तस्य कुर्य्यात्पलशतं द्वौ प्रस्थौ पञ्चमूलयोः ॥ १५९ ॥ हरीतकीविभीतक्योर्वल्कलं कुडवद्वयम् । दद्यादामलकानाञ्च कुडवञ्च त्रिभागशः॥१६० निःक्काथ्य सलिलद्रोणे चतुर्भागावशोषिते । भेषजानि सुपिष्टानि तत्रेमानि प्रदापयेत् ॥१६१॥ द्वे मेदे द्वे हरिद्रे च जीवकर्षभकावुभौ । काकोली क्षीरकाकोली चन्दनं मधुकं तथा ॥ ॥ १६२ ॥ मुद्गपर्णी माषपर्णी पयस्या चापि पिप्पली। मरिचं चाश्वगन्धा च सशुण्ठी काकनासिका ॥१६३॥ सूक्ष्मैला शतपुष्पा च मृद्वीका च शतावरी । एतैः सर्पिर्विपक्तव्यं गवां क्षीरे चतुर्गुणे ॥ १६४ ॥ सर्वकासापहं सर्पिः क्षीणक्षतसुखावहम् । हिक्काश्वासहरश्चैव स्वररक्तप्रसादनम् ॥ १६५ ॥

मूल, पत्र और शाखाओं समेत अडूसा १०० पल, दशमूलकी औषधियें २ प्रस्थ, हरड और बहेडेकी छाल दो कुडव और आमले ३ कुडव लेवे । सबको एकद्रोण जलमें पकावे । जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे। फिर इस काथमें मेदा, महामेदा, हल्दी, दारुहल्दी, जीवक, ऋषभक, काकोली, क्षीरकाकोली, चन्दन, मुलैठी, मुगवन, मषवन, दुधी, पीपल, मिरच, असगन्ध, सोंठ, काकनासा (केआठोढी), छोटी इलायची, सौंफ, दाख और शतावर इनका कल्क डालकर गौके चौगुने दूधमें घृतको सिद्ध करे । यह घृत सब प्रकारकी खांसीको हरनेवाला, क्षतक्षीण मनुष्योंको सुख देनेवाला, हिचकी और श्वासको दूर करनेवाला तथा स्वर और रुधिरको प्रसन्न करनेवाला है ॥ १५९-१६५ ॥

कण्टकारीलेह ।

कण्टकार्य्यास्तुलां सम्यग् जलद्रोणे विपाचयेत् । पादावशेषिते तस्मिन् कल्कानेतान् प्रदापयेत् ॥ १६६ ॥ दुरालभा छिन्नरुहा भार्ङ्गी कर्कटकाह्वया । रास्ना मुस्तं शटी चव्यं चित्रकं त्र्यूषणं तथा ॥ १६७ ॥ पलांशानि पलान्यत्र शर्करायास्तु विंशतिः। घृततैलपलान्यस्मिन्नष्टावष्टौ प्रदापयेत् ॥ १६८ ॥ कल्कं कृत्वा घृते शीते मधुनोऽष्टपलं क्षिपेत् । चतुःपलं पिप्पलीनां तुगाक्षीर्य्याश्चतुःपलम् । एष लेहः शमयति पञ्चकासांश्चिरोत्थितान् ॥ १६९ ॥

कटेरीके पंचांगको पांचसेर(अस्सीके सेरसे)लेकर एकद्रोण जलेमें पकावे । जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतार कर छान लेवे । फिर इस काथमें धमासा, गिलोय, भारंगी, काकडाशिंगी, रायसन, नागरमोथा, कचूर, चव्य, चीता, त्रिकुटा प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले, सफेद बूरा २० पल, घी और तेल आठ आठ पल सबको एकत्र मिलाकर पकावे । जब पकते २ लेहके समान होजाय तब शीतल होनेपर शहद ८ पल, पीपल ४ पल और वंशलोचन ४ पल डालकर खूब करछीसे चला देवे । यह लेह पांचोंप्रकारकी पुरानी खाँसीको दूर करता है ॥ १६६ ॥ १६७ ॥ १६८ ॥ १६९ ॥

व्याघ्रीहरीतकी।

समूलपुष्पच्छदकण्टकार्यास्तुलां जलद्रोणपरिप्लुताञ्च। हरितकीनाञ्च शतं निदध्यादेतत्तु पक्का चरणावशेषम् ॥ १७० ॥ गुडस्य दत्त्वा शतमेतदग्नौ विपक्कमुत्तार्य्य ततः सुशीते । कटुत्रिकञ्च त्रिपलप्रमाणं पलानि षट्पुष्परसस्य चापि ॥ १७१ ॥ क्षिपेच्चतुर्जातपलं यथाग्निप्रयुज्यमानो विधिनावलेहः । वातात्मकं पित्तकफोद्भवञ्च द्विदोषकासानपि च त्रिदोषान् ॥ ॥ १७२ ॥ क्षतोद्भवं च क्षयजञ्च हन्यात्तत्पीनसश्वासमुरःक्षतञ्च । यक्ष्माणमेकादशमुग्ररूपं भृगूपदिष्टं हि रसायनं स्यात् ॥ १७३ ॥

मूल, फूल, पत्र और शाखासहित कटेरी १०० पल और हरड १०० पल लेकर एक द्रोण जलमें डालकर पकावे। जब चौथाई भाग शेष रह जाय तब उतार लेवे। फिर गुड़ १०० पल डालकर पकावे। जब वह अच्छे प्रकार पक जाय तब नीचे उतारकर शीतल होनेपर उसमें त्रिकुटेका चूर्ण १२ तोले, शहद २४ तोले और चातुर्जातकका चूर्ण ४ तोले मिलादेवे। इस अवलेहको अग्निका बलाबल विचारकर सेवन करे तो वातज, पित्तज, कफज, द्वन्द्वज और त्रिदोषज खाँसी, क्षतकी खाँसी, क्षयकी खाँसी, पीनस, श्वास, उरःक्षत और ग्यारह लक्षणोंयुक्त उग्रराजयक्ष्मा रोग दूर होता है। यह उत्तम रसायन भृगुजीने प्रकाशित की है ॥ १७०--१७३ ॥

अगस्त्यहरीतकी।

दशमूली स्वयंगुप्ता शङ्खपुष्पी शटी बला । हस्तिपिप्पल्यपामार्गपिप्पलीमूलचित्रकान् ॥ १७४ ॥ भार्ङ्गी पुष्करमूलञ्च द्विपलांशं यवाढकम् । हरीतकीशतञ्चैकं जले पञ्चाढके पचेत् ॥ १७५ ॥ यवैः स्विन्नैः कषायन्तु पूतं तच्चाभयाशतम् । पचेद्गुडतुलां दत्त्वा कुडवञ्च पृथग् घृतम् ॥ ॥ १७६ ॥ तैलात्पिप्पलिचूर्णाच्च सिद्धे शीते च माक्षिकात् । कुडवं पलमानं च चातुर्जातविचूर्णितम् ॥१७७॥ लिह्याद्द्वे चाभये नित्यमतः खादेद्रसायनम् । तद्वलीपलितं हन्याद्वर्णायुर्बलवर्धनम् ॥ १७८ ॥ पञ्चकासक्षयश्वासान् हिक्काः सविषमज्वरान् । हन्याद्गुल्मग्रहण्यर्शोहृद्रोगारुचिपीनसान् ॥ १७९ ॥ अगस्त्यविहितं धन्यमिदं श्रेष्ठं रसायनम् । संख्या पलानां शतशो मतागस्त्यहरीतकी ॥ १८० ॥

दशमूल, कौंछके बीज, शंखाहुली, कचूर, खिरैंटी, गजपीपल, चिरचिटा, पीपलामूल, चीता, भारंगी और पोहकरमूल ये प्रत्येक औषधि आठ २ तोले लेकर ५ आढक जलमें पकावे। फिर एक आढक जौ और हरड १०० इनको महीन कपडेकी पोटलीमें बांधकर पकते हुए जलमें डालदेवे। जब पककर चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे और हरडोंको निकालकर उनकी गुठली निकालडाले। फिर उन हरडोंको घी और तेलमें भूनलेवे, पश्चात् पूर्वोक्त काथमें १०० पल गुड, ये भुनी हुई हरडें २००, १६ तोले घी, १६ तोले तेल और १६ तोले पीपलका चूर्ण डालकर पकावे। जब सिद्ध होकर शीतल होजाय तब १६ तोले शहद और चातुर्जातका चूर्ण चार तोले मिलादेवे। प्रतिदिन इसमेंसे दो हरड खाय। यह रसायन-वलीपलित रोगको नष्ट करती है, वर्ण, आयु और बलको बढाती है तथा पांचोंप्रकारकी खांसी, क्षय, श्वास, हिचकी, विषमज्वर, गुल्म, संग्रहणी, बवासीर, हृदयरोग, अरुचि और पीनसको दूर करती है। वह श्रेष्ठ रसायन अगस्त्यऋषिने निर्माण की है ॥ १७४--१८० ॥

यथोद्दिष्टगुणं कुर्वन् पित्तञ्च कुरुते यदि । तथा सायं गुडो योज्य एष एवाल्पमात्रया ॥ १८१ ॥

यहां सौ पल हरड लेनी चाहिए। यदि उपरोक्त गुणोंको करता हुआ यह अवलेह पित्तको करे तो संध्याके समय इस गुडकी अल्पमात्रा प्रयोग करनी चाहिए ॥ १८१ ॥

आर्द्रद्रव्यद्रवद्रव्यपलैरष्टाभिरेव च । शुष्कद्रव्यचतुष्केण कुडवः समुदाहृतः ॥ १८२ ॥

आर्द्रद्रव्य अर्थात् गीले पदार्थ और पतले पदार्थोंका ८ पलका एक कुडव होता है और सूखे पदार्थोंका ४ पलका एक कुडव होता है ॥ १८२ ॥

यवगोधूममाषाश्च तिलाश्चापि नवाहिताः । पुराणा विरसा रूक्षा न तदर्थकराः स्मृताः ॥ १८३ ॥ हरीतक्योऽपि नवा ग्राह्याः ॥

जौ, गेहूं, उड़द और तिल ये नवीन उत्तम होते हैं ये पुराने, नीरस, रूखे और उस गुणको नहीं करते हैं इस कारण ये श्रेष्ठ नहीं हैं। यहां हरड़भी नवीन लेनी चाहिये ॥ १८३ ॥

बृहदगस्त्यहरीतकी ।

अभयानां शतं दारु शङ्खपुष्पी मधूलिकाम्। स्वयंगुप्तां पञ्चमूल्यौ द्वे शटीं पुष्कराह्वयम् ॥ १८४ ॥ पञ्चकोलबला हस्तिपिप्पली साश्मभेदकाम् । भार्ङ्गी पुनर्नवाञ्चैव द्विपलांशां यवाढकम् ॥ १८५ ॥ पचेत्पञ्चाढके तोये पादशेषं तथोद्धरेत् । विनीय चाभयां तत्र पुनश्चाग्नावधिश्रयेत् ॥ १८६ ॥ दत्त्वा गुडतुलां तत्र कषाये कुडवे पृथक् । तैलात् पिप्पलिचूर्णाच्च घृतात् क्षौद्रात्तथैव च ॥ १८७ ॥ पक्वा तल्लेहवत्स्थाप्यं घृतभाण्डे विधानतः । पथ्यभुङ् नियताहारः खादेद्वे द्वे हरीतकी॥१८८ ॥ हन्याच्च ग्रहणीगुल्मपाण्डर्त्तिविषमज्वरान्।यक्ष्मार्शःप्लीहवैस्वर्य्यश्वासकासारुचिक्षयान् ॥ १८९ ॥ बलवर्णाग्निजननं वलीपलितनाशनम् । रसायनमिदं सिद्धमगस्त्यविहितं मतम् ॥ १९० ॥

हरड १००, देवदारु, शंखाहुली, मूर्वा, कौंछके बीज, दशमूलकी औषधियें, कचूर, पोहकरमूल, पंचकोल, खिरैंटी, गजपीपल, पाषाणभेद, भारंगी और पुनर्नवा ये प्रत्येक दो २ पल और जौ एक आढक; इन सबको पांच आढक जलमें और हरडोंको कपडेमें बांध क्राथमें डालकर पकावे जब पकते २ चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे । फिर इस क्राथमें पूर्वोक्त हरडोंकी गुठली निकालकर उक्त हरडें तथा गुड़ १००पल, तेल१६तोले, पीपलका चूर्ण १६तोले और घी१६तोले डालकर उत्तम विधिसे सिद्ध करे। जब पककर अवलेहके समान हो जाय तब उतारकर शीतल होनेपर१६तोले शहद डालकर घीके चिकने बासनमें भरकर रखदेवे । फिर प्रतिदिन इसमेंसे दो हरड खाय और इसपर पथ्य भोजन करे तो यह संग्रहणी, गुल्म, पाण्डुरोग, विषमज्वर, राजयक्ष्मा, बवासीर, प्लीहा, स्वरहीनता, श्वास, खाँसी, अरुचि और क्षयको नष्ट करती है । बल, वर्ण और अग्निको बढ़ानेवाली, तथा वलीपलितनाशक है । यह सिद्ध रसायन अगस्त्य ऋषिने निर्माण की है ॥ १८४--१९० ॥

वसिष्ठहरीतकी ।

यवाढके सप्तजलाढकानि हरीतकीनान्तु शतं गुरूणाम् । लौहे कटाहे समाधिश्रयित्वा द्रव्याणि चैतानि समान्यधीत ॥ १९१ ॥ दन्त्यश्वगन्धा चिरबिल्वमूलं भल्लातकं बिल्वफलं नतञ्च । उभे हरिद्रे गजपिप्पली च पत्राणि मूलानि च चित्रकस्य ॥ १९२ ॥ पिप्पल्यपामार्गमथात्मगुप्ता सर्वाणि कुर्यात्पलसम्मितानि । एकत्र सर्वाणि भिषग्विदध्याद् द्विपञ्चमूलीं च यवप्रमाणाम् ॥ १९३ ॥ मृदूनि सुस्विन्नयवान् विदित्वा शनैः प्रयत्नादवतारयेच्च । विस्राव्य तेनैव जलेन सार्द्धं पचेत्पुराणस्य शतं गुडस्य ॥१९४॥ भूयो गुरूणामपि तत्र दद्याद्धरीतकीनाञ्च सहस्रमन्यत् । प्रस्थं पुराणस्य घृतस्य दद्यान्नवस्य तैलस्य च तावदेव ॥ १९५ ॥ शीते मधुस्नेहसमन्तु दद्यात् पलानि चाष्टावथ पिप्पलीनाम् । सा कल्कमिश्रा त्वथ सेव्यमाना

सर्वाञ्ज्वरान्नाशयतीह मासात् ॥१९६॥ मासद्वयेनैव च नेत्ररोगान्निहन्त्यपूर्वाश्च करोति दृष्टिम् । कुष्ठानि मासत्रयतो निहन्ति प्रभिन्नकर्णाङ्गुलिनासिकानि ॥ १९७ ॥ भगन्दरं श्लीपदवातगुल्मं श्वासं तथा मासचतुष्टयेन । संभक्षिता पञ्चभिरेव मासैः करोति केशान्भ्रमराञ्जनाभान् ॥ १९८ ॥ षड्भिस्तु मासैः खलु सापि कुर्य्यात् केशान् सुशीतान् घनकुञ्चिताग्रान् । सहस्रपथ्यामथ चोपयुंज्य बलं भवेदुत्तमकुञ्जरस्य ॥ १९९ ॥ स्वरं मयूरस्य हयस्य वेगं शरच्छशाङ्कस्य पराञ्च कान्तिम् । सौभाग्यमेधास्मृतिसत्त्वयुक्तो बलान्वितः पद्मदलायताक्षः ॥ ॥ २०० ॥ जीवेत्समानाञ्च सहस्रमग्र्यं प्रयोगकालादिति सत्यवाक्यम् । समीक्ष्य कल्पांस्तु चकार योगं हिताय लोकस्य मुनिर्वसिष्ठः ॥२०१॥

बड़ी बड़ी सौ हरडे और जौ एक आढक परिमाण लेकर सात आढक जलमें एक लोहेके कढावमें डाल कर पकावे तथा दन्ती, असगन्ध, करंजीकी जड़, मिलावे, बेलगिरी, तगर, हल्दी, दारुहल्दी, गजपीपल, चीतेकी जड और पत्ते, पीपल, चिरचिटा और कौंछके बीज, ये प्रत्येक औषधि चार२ तोले और दशमूलकी औषधि एक आढक परिमाण डालकर पकावे । जब पकते २ जौ नरम होकर फूलजाय तब धीरेसे उतार कर छानलेवे । फिर इस काथमें ५० पल गुड़ और वेही इस काथकी निकाली हुई सौ हरडें तथा एक हजार कच्चीहरडें और पुराना घी १ प्रस्थ और नूतन तेल१प्रस्थ डालकर पकावे, जब पककर शीतल होजाय तब शहद १ प्रस्थ और पीपलका चूर्ण८ पल, मिला देवे। इसको सेवन करनेसे एक महीनेमें सर्वप्रकारके ज्वर दूर होते हैं। दूसरे महीनेमें सर्वप्रकारके नेत्ररोग दूर होकर अपूर्व दृष्टि होजाती है, और तीसरे महीनेमें कोढ नष्ट होजाता है, तथा कटीहुई अंगुलि और नासिका ठीक होजाती है । चौथे महीनेमें भगन्दर, श्लीपद, वातगुल्म और श्वास दूर होजाता है। पांचवें महीनेमें बाल भौंरेके समान तथा अंजनके समान काले होजाते हैं । छठे महीनेमें बाल सुन्दर, सघन और कुंचित होजाते हैं। इन हजार हरडोंको सेवन करनेसे उत्तम हाथीके समान बल उत्पन्न होता है। मोरके समान स्वर, घोडेके समान वेग और शरदऋतुके चन्द्रमाके समान कांति होजाती है । इसको सेवन करनेवाला मनुष्य सौभाग्य, मेधा, स्मरणशक्ति, पराक्रम और बलयुक्त होता है, तथा नेत्र कमलदलके समान होजाते हैं । वह मनुष्य निर्विकार, नवयौवनयुक्त हजारवर्ष पर्य्यन्त जीता रहता है । इस योगका संसारके हितके लिये वसिष्ठऋषिने बहुतसे कल्कोंको विचार कर निर्म्माण किया है ॥ १९१—१०१ ॥

कुलित्थ गुड ।

कुलित्थानां पलशतं दशमूलपलं तथा । शतं ब्राह्मणयष्ट्याश्च चतुर्गुणजले शृतम् ॥ २०२ ॥ पादावशेषे पूते च गुडस्यार्धतुलां पचेत् । पाकं ज्ञात्वावतार्यैव सुशीते श्लक्ष्णचूर्णितम् ॥ २०३ ॥ षट्पलञ्च तुगाक्षीर्य्याः पिप्पल्या द्विपलं तथा । कुडवं मधुनो दद्यात्स्थापयेत्स्निग्धभाजने ॥ २०४ ॥ खादेदग्निबलापेक्षी नाशयेदचिराद्यम् । यक्ष्माणं पीनसं कासं श्वासं जीर्णमजीर्णकम् ॥ २०५ ॥ जीर्णज्वरं पाण्डुरोगं हृद्रोगं श्लेष्ममारुतम् । कुलित्थगुड इत्युक्तः सर्वोपद्रवनाशनः ॥ २०६ ॥

कुलथी१०० पल, दशमूल १०० पल और भारंग १०० पल लेकर चौगुने जलमें पकावे । जब पकते २ चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे। फिर इस काथमें ५० पल गुड डालकर पकावे । जब अच्छे प्रकारसे पकजाय तब शीतल होनेपर वंशलोचन २४ तोले, पीपल ८ तोले और शहद १६तोले डालकर एक उत्तम चिकने बासनमें भरकर रखदेवे । अग्निका बलाबल विचार कर इसमेंसे भक्षण करे। यह बहुत पुराने राजयक्ष्मा, पीनस, खांसी, श्वास, जीर्ण, अजीर्ण, जीर्णज्वर, पाण्डुरोग, हृदयरोग और कफवातको नष्ट करता है। यह कुलि-

त्थगुड—सर्वप्रकारके उपद्रवोंको नष्ट करनेवाला है ॥ २०२ ॥ २०३ ॥ २०४ ॥ २०५ ॥ २०६ ॥

द्वितीयकुलित्थगुड ।

चतुष्पलं मूलकशुण्ठिकस्य तथैव शुद्धस्य कुलित्थकस्य । तुल्यं प्रदद्याद्दशमूलतश्च द्रोणेऽम्भसिः सर्वमिदं पचेत्त ॥ २०७ ॥ दत्त्वा हविस्तैलपलाष्टकश्च गुडस्य शुद्धस्य तुलां तथैव । तावत्पचेद्यावदिदं समस्तं सद्ध्व्य दार्व्यां गुडपाकमेति ॥ २०८ ॥ चूर्णीकृतैर्जीरकचव्यशृङ्गीभार्ङ्गीत्रिसौगन्धिककट्फलैश्च । मुस्तायवानीशठिपुष्करैश्च सव्योषकैरर्धपलप्रमाणैः ॥ २०९ ॥ सार्धं क्षिपेन्माक्षिकप्रस्थमात्रं दद्यात्सुशीते त्वथ वह्न्यपेक्षाम् । मात्रां ततो लेहवदालिहेच्च पथ्याशनश्च द्वययोगकाले ॥ ॥ २१० ॥ कफोद्भवा ये च विकारजाताः सश्वासकासा हृदयक्षतश्च । हृत्पार्श्वशूलज्वरछर्दितृष्णास्वरक्षयारोचकवह्निसादाः ॥ ते नाशमायांत्युपयोगतश्च कुलित्थसंज्ञस्य गुडस्य शीघ्रम् ॥ २११ ॥

सूखी मूली १६ तोले, सोंठ १६ तोले, उत्तमकुलथी १६ तोले और दशमूलकी औषधियें १६ तोले लेकर एक द्रोण जलमें पकावे । जब पकते २ जल चौथाई भाग शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर इस काथमें घी और तेल आठ पल और शुद्ध गुड़ १०० पल डालकर पकावे। जब पकते२ करछीसे लगने लग जाय और गाढा होजाय तब जीरा, चव्य, काकड़ाशिंगी, भारंगी, दालचीनी, इलायची, तेजपात, कायफल, नागरमोथा, अजवायन, कचूर, पोहकरमूल, सोंठ, मिरच और पीपल प्रत्येकका चूर्ण दो २ तोले एवं शीतल होनेपर आधा प्रस्थ शहद डालकर खूब मिलादेवे । अग्निका बलाबल विचारकर दोनों समय इसको चाटे और इसपर पथ्य भोजन करे। यह कुलित्थगुड—सब प्रकारके कफरोग, श्वास, खाँसी, हृदयक्षत, हृदयरोग, पार्श्वशूल, ज्वर, वमन, तृषा, स्वरहीनता, अरुचि और मंदाग्निको दूर करता है२०७॥ ॥ २०८ ॥ २०९ ॥ २१० ॥ २११ ॥

खादिरवासकपल्लवछायाशुष्कश्च संचूर्ण्य । त्रिभागपिप्पलीयुक्तं कटुत्रयं मधुनावलिह्यात् ॥ २१२ ॥

खैरसार१ भाग, छायामें सुखाये हुए अडूसेके पत्ते २ भाग, और त्रिकुटा ३ भाग, इनका एकत्र चूर्ण करके शहद मिलाकर सेवन करे तो सर्व प्रकारकी खाँसी दूर होती है ॥ २१२ ॥

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायां कासरोगाधिकार संपूर्ण ॥ १२ ॥

अथ हिक्काधिकार ।

विदाहिगुरुविष्टम्भिरूक्षाभिष्यन्दिभोजनैः । शीतपानाशनस्नानरजोधूमातपानिलैः॥ १ ॥ व्यायामकर्म्मभाराध्ववेगाघातापतर्पणैः। हिक्का श्वासश्च कासश्च नृणां समुपजायते ॥ २ ॥

दाहकारक, भारी, विष्टम्भकारी, रूखे और अभिष्यन्दजनक भोजन करनेसे, शीतल जलके पीनेसे शीतल जलमें स्नान करनेसे, धूल रुआँ, धूप और अत्यन्त पवनके सेवन करनेसे, दंड कसरत आदि परिश्रम करनेसे, बोझको ढोनेंसे बहुत मार्गके चलनेसे मलमूत्रादिके वेगोंको रोकनेसे और उपवास व्रतादिके करनेसे मनुष्योंके हिक्का, श्वास और खाँसी उत्पन्न होतीहै ॥ १ ॥ २ ॥

संप्राप्ति ।

मुहुर्मुहुर्वायुरुदेति सस्वनो यकृत्प्लीहांत्राणि मुखादिवाक्षिपन् । सघोषवानाशु हिनस्ति यस्मात्ततस्तु हिक्केत्यभिधीयते बुधैः ॥ ३ ॥

प्राणवायु दूषित होकर उदान वायुसे मिलकर जब मुखसे बाहर निकलती है तब मनुष्य बार बार हिक् २ शब्द करता है। और वह वायु यकृत् प्लीहादिको मुखके बाहर खींचतीसी मालूम होती है और मुखमें आनकर घोर शब्द करती है तब इसको बुद्धिमान् हिक्का (हिचकी) कहते हैं। यह शीघ्र ही प्राणोंका नाश करनेवाली है॥ ३॥

प्राणोदकान्नवाहीनि स्रोतांसि विकृतानिलः। हिक्कां करोति संरुध्य तासां लिङ्गं पृथक्शृणु॥ ४॥

दुष्टवायुसे प्राण, जल और अन्नके बहनेवाले स्रोत रुककर हिक्काको उत्पन्न करे हैं। अब उसके अलग अलग लक्षण कहते हैं उनको सुनो॥ ४॥

अन्नजां यमलां क्षुद्रां गम्भीरां महतीं तथा। वायुः कफेनानुगतः पञ्च हिक्काः करोति च॥ ५॥

कफसे प्राण वायु मिलकर अन्नजा, यमला, क्षुद्र, गम्भीरा और महती ऐसे पांचप्रकारकी हिक्काको उत्पन्न करती है॥ ५॥

पूर्वरूप।

कण्ठोरसो गुरुत्वञ्च वदनस्य कषायता। हिक्कानां पूर्वरूपाणि कुक्षेराटोप एव च॥ ६॥

कण्ठ और छातीमें भारीपन, मुखमें कषैलापन और कोखमें गुड़गुडाहट शब्दका होना, ये लक्षण हिक्काके होनेसे पहिले होते हैं॥ ६॥

अन्नजाके लक्षण।

पानान्नैरतिसंयुक्तैः सहसा पीडितोऽनिलः। हिक्कयत्यूर्ध्वगो भूत्वा तां विद्यादन्नजां भिषक्॥ ७॥

अत्यन्त अन्नपानके करनेसे एक साथ प्राणवायु पीड़ित होकर ऊपरको जाकर अन्नजा हिक्काको उत्पन्न करती है॥ ७॥

यमलाके लक्षण।

चिरेण यमलैर्वेगैर्या हिक्का संप्रवर्त्तते। कम्पयन्ती शिरो ग्रीवां यमलान्तां विनिर्दिशेत्॥ ८॥

जो बहुत देरमें ठहर ठहर कर दो २ हिक्का आवैं और शिर तथा ग्रीवाको कँपावे उसको यमला कहते हैं॥ ८॥

क्षुद्राके लक्षण।

विकृष्टकालैर्या वेगैर्मन्दैः समभिवर्त्तते। क्षुद्रिका नाम सा हिक्का जत्रुमूलात्प्रधावति॥ ९॥

जो हिक्का जत्रुके (कन्धेके जोडके) समीपसे उत्पन्न होकर मन्द वेगसे जल्दी जल्दी चले उसको क्षुद्रा कहते हैं॥ ९॥

गंभीराके लक्षण।

नाभिप्रवृत्ता या हिक्का घोरा गम्भीरनादिनी। अनेकोपद्रववती गम्भीरा नाम सा स्मृता॥ १०॥

जो हिक्का नाभिके समीपसे उत्पन्न होकर घोर गम्भीर शब्द करे और जिसमें ज्वर तृषादि अनेक उपद्रव हों उसको गम्भीरा कहते हैं॥ १०॥

महाहिक्काके लक्षण।

मर्म्माण्यापीडयन्तीव सततं या प्रवर्त्तते। महाहिक्केति सा ज्ञेया सर्वगात्रप्रकम्पिनी॥ ११॥

जो हिक्का मर्म्म स्थानोंको पीडित करती हुई और सम्पूर्ण अंगोंको कम्पाती हुई निरन्तर चले उसको महा हिक्का कहते हैं॥ ११॥

असाध्य लक्षण।

आयम्यते हिक्कतो यस्य देहो दृष्टिश्चोर्ध्वम्भ्राम्यते यस्य नित्यम्। क्षीणोऽन्नद्विट् क्षौति यश्चातिमात्रं तौ द्वौ चान्त्यौ वर्जयेद्धिक्कमानौ॥ १२॥

जिस मनुष्यका हिचकी लेते समय शरीर फैलजाय, दृष्टि ऊपरको चढजाय, भ्रम होजाय, तथा जो क्षीण होजाय, अन्नमें अरुचि हो और छींक बहुत आवैं ऐसे यह दोनों हिक्कारोगी एवं गम्भीरा और महती हिक्कारोगी त्याज्य हैं अर्थात् इनकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिए॥ १२॥

अतिसंचितदोषस्य भक्तद्वेषकृतस्य च। व्याधिभिः क्षीणदेहस्य वृद्ध-

स्यातिव्यवायिनः ॥ १३ ॥ आयासाद्यासमुत्पन्ना हिक्का हन्त्याशु जीवितम् । यमिका या प्रलापार्त्तिमोहतृष्णासमन्विता ॥ १४ ॥

हिक्कारोगमें जो वातादि दोष अत्यन्त संचित हों भोजनमें अरुचि, व्याधिसे शरीर क्षीण, वृद्ध और अत्यन्त मैथुन करनेवाले और आयासादिसे मनुष्यको हिक्का उत्पन्न होकर मार देती है । प्रलाप, बेचैनी, मोह और तृषा इन लक्षणोंसे युक्त यामिका हिक्का मनुष्यको मार देती है ॥ १३ ॥ १४ ॥

अक्षीणश्चाप्यदीनश्च स्थिरधात्विन्द्रियश्च यः । तस्य साधयितुं शक्या यमिका हन्त्यतोऽन्यथा ॥ १५ ॥

जो बलवान्, प्रसन्नचित्त हो, धातु और इन्द्रियें जिसके यथास्थानमें स्थित हैं उसके यमिका हिचकी साध्य है और जो इससे विपरीत हो तो असाध्य है ॥ १५ ॥

आसां क्षुद्रान्नजा साध्या शेषाः प्राणहरा मताः ॥ १६ ॥

इन पांच प्रकारकी हिक्काओंमें क्षुद्रा और अन्नजा साध्य हैं और वातकी तीनों हिचकी प्राणनाशक हैं ॥ १६ ॥

यथाग्निरिक्षोः पवनानुवृद्धो वज्रं यथा वा सुरराजमुक्तम् ॥ रोगास्तथैते खलु दुर्निवाराः श्वासः सहिक्का च विलम्बिका च ॥ १७ ॥

जिस प्रकार वायुसे वृद्धिको प्राप्त हुई ईखकी अग्नि और जिस प्रकार इन्द्रके हाथसे छूटा हुआ वज्र दुर्निवार है उसी प्रकार श्वास, हिक्का और विलम्बिका यह रोग दुर्निवार हैं ॥ १७ ॥

चिकित्सा ।

प्राणावरोधतर्जनविस्मापनभयभाषकैश्च घोरैः । कथाप्रयोगैः शमयेद्धिक्कां घोरां मनोघातैः ॥ १८ ॥

प्राणायाम, अथवा प्राण पवनको रोकना, ताडना करना, आश्चर्यजनक वार्ताओंका कहना, भयभीत करनेवाली बातोंका कहना, नानाप्रकारकी चित्र विचित्र कथाओंका कहना और घोर वनमें चोट लगनेवाली वार्ताओंका करना इनके द्वारा घोर हिक्काओंको शमन करना चाहिये ॥ १८ ॥

हिक्कार्त्तस्य पयश्छागं हितं नागरसाधितम् । रसां पिबेत्फलिन्याश्च लाजसक्तून् ससैन्धवान् ॥ १९ ॥

बकरीके दूधमें सोंठ डालकर औटावे, फिर उस दूधको हिक्कारोगीको पान करावे तो हिचकी शांत होजाती है । फूलप्रियंगुके रसमें खीलोंके सत्तू और सैंधानमक मिलाकर पान करनेसे हिक्कारोग शांत होता है ॥ १९ ॥

मधुकं मधुसंयुक्तं पिप्पली शर्करान्विता ।नागरं गुडसंयुक्तं हिक्काघ्नं नावनत्रयम् ॥ २० ॥

मुलैठीको शहदमें मिलाकर, अथवा पीपलको चीनीमें मिलाकर किम्वा सोंठको गुडमें मिलाकर नास देनेसे हिक्कारोग शांत होता है ॥२० ॥

स्तन्येन मक्षिकाविष्ठा नस्यं वालक्तकाम्बुना । योज्यं हिक्काभिभूताय स्तन्यं वा चन्दनान्वितम् ॥ २१ ॥

मक्खीकी विष्ठाको दूधमें पीसकर, अथवा लाखको जलमें पीसकर, किम्वा चन्दनको दूधमें पीसकर नासदेनेसे हिक्कारोग शांत होता है ॥ २१ ॥

मधुसौवर्चलोपेतं मातुलुङ्गरसं पिबेत् । अप्यसाध्यां नयत्यस्तं हिक्कां क्षौद्रावलेहनात् ॥ २२ ॥

शहद और कालानमक मिलाकर बिजौरेका रसपान करे अथवा केवल शहदको ही चाटनेसे असाध्य हिक्कारोगभी शमन होता है ॥ २२ ॥

सद्य एव महायोगः कासमूलभवं रजः । हिक्कार्त्तो मधुना लिह्याच्छुण्ठीधात्रीकणान्वितम् ॥ २३ ॥

काँसकी जड़को पीसकर शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे अथवा सोंठ, अमले और पीपलका चूर्ण शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे हिचकी दूर होती है ॥ २३ ॥

प्रवालत्रिफलाशंखचूर्णं मधुघृतप्लुतम्। पिप्पली गैरिकं चेति लेहो हिक्कानिवारणः ॥ २४ ॥

मूँगा, त्रिफला, शंखका चूर्ण, पीपल और गेरू इनको एकत्र पीसकर शहदमें मिलाकर चाटे तो हिचकी दूर होती है ॥ २४ ॥

कोलमज्जाञ्जनं लाजा तिक्ता काञ्चनगैरिकम् । कृष्णा धात्री सिता शुण्ठी कासीसन्दधिनाम च ॥ २५ ॥ पाटल्याः सफलं पुष्पं कृष्णा खर्जूरमुस्तकम् । षडेते पादिका लेहा हिक्काघ्ना मधुसंयुताः ॥ २६ ॥

बेरकी गिरी, अँजन और खीलें (१) कुटकी कचनार और गेरू (२) पीपल, आमले, मिश्री और सोंठ (३) कसीस और कैथ (४) पाढलके फल और फूल (५) पीपल, खजूर और नागरमोथा (६) इन छः योगोंमेंसे कोई एक योग लेकर चूर्ण करके शहदमें मिलाकर सेवन करे तो अवश्य हिचकी दूर होती है ॥ २५ ॥ २६ ॥

नैपाल्या गोविषाणाभ्यां कुष्टसर्जरसस्य च । धूमं कुशस्य वासाज्यं पिबेद्धिक्कोपशान्तये ॥ २७ ॥

मैनाशील, काकडासिंगी, कूठ, राल, कुशा और अडूसा इनको एकत्र पीसकर घीमें मिलाकर चिलममें रखकर धूम पान करे तो हिचकी बन्द होजाती है ॥ २७ ॥

निर्धूमाङ्गारनिक्षिप्तश्लक्ष्णमाषरजोद्भवः । हिक्कापथ्व निहन्त्याशु धूमः पीतो न संशयः ॥ २८ ॥

उडदोंका बारीक चूर्ण लेकर धूमरहित अंगारोंमें डालकर धूमपान करे तो निःसन्देह हिचकी दूर होजाती है ॥ २८ ॥

सुपूतिकीटाद्यं चूर्णम्

सुपूतिकीटं लशुनोग्रगन्धा हिंग्वन्वितं चूर्णमिदं सुभावितम् । अजाविमूत्रेण च सप्तकृत्वा घ्राणानिषिक्तं विनिहन्ति हिक्काम् ॥ २९ ॥

पूतिकीट (कीटविशेष), लशुन, वच और हींग इनको एकत्र पीसकर बकरीके मूत्रमें सातबार भावना देकर नास देवे तो हिचकी दूर होती है २९॥

हरेणवोऽथ पिप्पल्यः क्वाथहिंगुसमायुतः । हिक्काप्रशमनः श्रेष्ठो धन्वन्तरिवचो यथा ॥ ३० ॥

रेणुका अथवा पीपलके काथमें हींग डालकर पान करे तो हिचकी शमन होती है ॥ ३० ॥

कुकूलानलसंस्विन्न इक्षुवाल्यप्रसम्भवः । रसः समाक्षिकः पीतो हिक्कामाशु नियच्छति ॥ ३१ ॥

भुसकी अग्निमें इक्षुवालिका (तृण विशेष) की जडको जलके द्वारा उसेकर रस निकालकर शहद मिलाकर पान करे तो हिचकी दूर होजाती है ॥३१॥

नारीक्षीराद्यघृत ।

नारीक्षीरेण वा सिद्धं सर्पिर्मधुरकैरपि । नासानिषिक्तं पीतं वा सद्यो हिक्कां नियच्छति ॥ ३२ ॥

स्त्रीके दूध और मधुर औषधियोंके द्वारा घीको सिद्ध करके नासिकाके द्वारा नास लेवे अथवा पान करे तो हिचकी दूर होजाती है ॥ ३२ ॥

यत्किञ्चित्कफवातघ्नमुष्णं वातानुलोमनम् । भेषजं पानमन्नं वा हिक्काश्वासेषु तद्धितम् ॥ ३३ ॥

जो द्रव्य कफवात नाशक हैं, गरम और वातको अनुलोमन करनेवाले हैं, वे औषधि अन्न और पान हिक्का और श्वासमें हितकारी है ॥ ३३ ॥

हिक्काश्वासे पिबेद्भार्ङ्गीं सविश्वामुष्णवारिणा ॥ ३४ ॥ नागरं वा सिता भार्ङ्गी सौवर्चलसमन्विताम् ॥ ३५ ॥ अभयानागरकल्कं पौष्करयावशूक

मरिचकल्कं वा । तोयेनोष्णेन पिबे-च्छासी हिक्की च तच्छान्त्यै ॥ ३६ ॥

हिक्का और श्वासमें भारंगी और सोंठको पीसकर गरमजलके साथ पान करे अथवा सोंठ, मिश्री, भारंगी और कालानमक इनको सेवन करे किम्वा हरड़ और सोंठके कल्क, अथवा पोहकरमूल, जवाखार; और कालीमिरचके चूर्णको गरमजलके साथ पान करे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

तृषितो दशमूलस्य क्वाथं वा देवदारुजम् । मदिरां वा पिबेद्युक्त्या हिक्काश्वासनिपीडितः ॥ ३७ ॥

हिक्का और श्वासमें तृषा हो तो दशमूलका क्वाथ या देवदारुका क्वाथ किम्वा मदिराको युक्तिसे सेवन करे ॥ ३७ ॥

दशमूलाद्यं घृतम् ।

दशमूलीरसे सर्पिर्दधिमण्डेन साधयेत् । कृष्णासौवर्चलक्षारवयस्थाहिंगुरोचकैः । कायस्थया च तत्पानाद्धिक्काश्वासौ नियच्छति ॥३८॥

पीपल, कालानमक, जवाखार, हरड, हींग, लाल प्याज और आमले इनके कल्कके द्वारा दशमूलके क्वाथ और दहीके मांडमें घृतको सिद्ध करे । यह घृत हिक्का और श्वासको दूर करता है ॥ ३८ ॥

वासाघृतं वाथ पिबेत्पिबेत्त्र्यूषणमेव वा । वातपित्तानुबन्धे तु गुडविश्वसमन्वितम् ॥ ३९ ॥

वासाघृतको अथवा त्रिकुटेके चूर्णको गुडमें मिलाकर वातपैत्तिकाहिक्का रोगमें सेवन करे । अथवा सोंठको गुडमें मिलाकर सेवन करना चाहिये १॥३९॥

छागक्षीरं प्रयोक्तव्यं शृतं तोये चतुर्गुणे । श्वासघ्नं भेषजं यच्च तच्च कार्यं प्रयत्नतः ॥ ४० ॥

बकरीके दूधमें चौगुना जल डालकर पकावे जब जल जल जाय तब इसको पीवे तथा जो औषधि श्वासको दूर करती हैं उन सबको हिक्कारोगमें यत्नपूर्वक प्रयोग करना चाहिये ॥ ४० ॥

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायां हिक्काधिकारः समाप्तः ॥

अथ श्वासरोगाधिकार ।



यैरेव कारणैर्हिक्का बहुभिः संप्रवर्तते । तैरेव कारणैः श्वासः सद्यो भवति देहिनाम् ॥ १ ॥

जिन कारणोंसे हिक्कारोग उत्पन्न होता है उन्हीं कारणोंसे तत्काल मनुष्योंके श्वासरोग भी उत्पन्न होता है ॥ १ ॥

महोर्ध्वच्छिन्नतमकक्षुद्रभेदैस्तु पञ्चधा । भिद्यते स महाव्याधिः श्वास एको विशेषतः ॥ २ ॥

महाश्वास, ऊर्ध्वश्वास, छिन्नश्वास, तमकश्वास और क्षुद्रश्वास इन भेदोंसे यह पांच प्रकारका है और विशेषकर एक ही श्वास है ॥ २ ॥

पूर्वरूप ।

प्राग्रूपं तस्य हृत्पीडा शूलमाध्मानमेव च । आनाहो वक्त्रवैरस्यं शंखनिस्तोद एव च ॥ ३ ॥

जब श्वास उत्पन्न होनेको होता है तब उससे कुछ पहिले हृदयमें पीडा, शूल, पेटका फूलना, अफारा, मुखमें विरसता और कनपटियोंमें तोडने सरीखी पीडा होती है ॥ ३ ॥

यदा स्रोतांसि संरुध्य मारुतः कफमूर्च्छितः । विश्वग्व्रजति संक्रुद्धस्तदा श्वासान् करोति सः ॥ ४ ॥

वायु जब कफके साथ मिलकर प्राण जल और अन्नके बहनेवाले स्रोतोंको रोक देता है तब अपने आप वायु कफसे रुककर चारों ओर स्थित होकर श्वासको उत्पन्न करता है ॥ ४ ॥

---

१ अजीर्णसे भी हिक्का होती है उसमें बोलिके साथ खटाससे गला भर आता है या विदग्धान्न वेगके साथ गलेमें भर आता है उसकी चिकित्सा पाचन औषधियोंसे करनी चाहिए, उष्ण औषधियोंसें वह नहीं शांत होती । (इष्ट प्रत्ययोऽयम्. अमरनाथस्य.)

महाश्वासके लक्षण ।

उद्धूयमानवातो यः शब्दवद्दुःखितो नरः। उच्चैः श्वसिति संरुद्धो मत्तर्षभ-इवानिशम् ॥ ५ ॥ प्रनष्टसंज्ञाविज्ञानस्तथा विभ्रान्तलोचनः। विवृत्ताक्षाननो बद्धमूत्रवर्चा विशीर्णवाक् ॥ ॥ ६ ॥ दीर्घं प्रश्वसितं चास्य दूराद्विज्ञायते भृशम् । महाश्वासोपसृष्टस्तु क्षिप्रमेव विपद्यते ॥ ७ ॥

जिस मनुष्यके प्राणवायु शब्द करता हुआ ऊर्ध्व-गतिको प्राप्त होकर मुखसे श्वासको छोडता है तो मनुष्य दुःखित होता है। जिस प्रकार रोकाहुआ मस्त बैल ऊपरको श्वास लेता है, उसी प्रकार यह मनुष्य रात्रि दिन निरन्तर श्वास लेता है, उसका ज्ञान, विज्ञान नष्ट होजाता है, नेत्र भ्रान्तियुक्त हों, नेत्र और मुख जिसके फैलजाँय, मलमूत्रादिकका अवरोध हो, स्वर क्षीण हो, चित्त व्याकुल हो, श्वास बहुत दीर्घ हो, ये लक्षण जिसमें हों, उसको महाश्वास कहते हैं। महाश्वासवाला रोगी शीघ्र मरजाता है ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७॥

ऊर्ध्वश्वासके लक्षण ।

ऊर्ध्वं श्वसिति यो दीर्घं न च प्रत्याहरत्यधः। श्लेष्मावृत्तमुखस्रोताः क्रुद्धगन्धवहार्दितः ॥ ८ ॥ ऊर्ध्वदृष्टिर्विपश्यंश्च विभ्रान्ताक्ष इतस्ततः। प्रमुह्यन्वेदनार्त्तश्च शुष्कास्योऽरतिपीडितः॥ ॥ ९ ॥ ऊर्ध्वश्वासे प्रकुपिते चाधः श्वासो निरुध्यते । मुह्यतस्ताम्यतश्चोर्ध्वं श्वासस्तस्यैव हन्त्यसून् ॥१०॥

जो मनुष्य ऊपरको लम्बा श्वास लेता है, वह नीचेको नहीं उतरता क्योंकि वह कुपितवायुसे पीडित होता है। तब कफसे मुख और सब शरीरके स्रोत रुकजाते हैं। नेत्र भ्रान्तियुक्त हो कर ऊपरको और जिधर तिधरको देखते हैं। मोह और वेदनासे पीडित हो, मुख सूखे और बेचैनी हो, ऊर्ध्वश्वासके कुपित होनेसे अधः श्वास रुकजाता है और वह मनुष्य मोह युक्त और खिन्न होकर मरजाता है ॥ ८॥९॥१०॥

छिन्नश्वासके लक्षण ।

यस्तु श्वसिति विच्छिन्नं सर्वप्राणैर्निपीडितः । न वा श्वसिति दुःखार्त्तो मर्म्मच्छेदरुगर्दितः ॥ ११ ॥ आनाहस्वेदमूर्च्छार्त्तो दह्यमानेन वस्तिना। विप्लुताक्षः परिक्षीणः श्वसन्रक्तैकलोचनः ॥ १२ ॥ विचेताः परिशुष्कास्यो विवर्णः प्रलपन्नरः । छिन्नश्वासेन विच्छिन्नः स शीघ्रं विजहात्यसून् ॥ १३ ॥

जो मनुष्य अपनी सम्पूर्णशक्तियोंसे रुक रुक कर श्वासलेता है उसके हृदयादि मर्म्मस्थानोंमें छेदनेसरीखी पीडा हो, अत्यन्त पीडा होनेके कारण श्वास भी न लेसके, अफारा, पसीना और मूर्च्छासे व्याकुल हो, मूत्राशयमें दाह हो, नेत्र जलसे डुबडुबेसे हों, शरीर-क्षीण हो, वारंवार श्वास लेवे, एक नेत्र लाल होजाय, अचेत होजाय, मुख सूख जाय, शरीरका रंग विवर्ण होजाय, बकवाद करे, ऐसा छिन्नश्वाससे पीडित मनुष्य शीघ्रही प्राणोंको छोड देता है॥११॥१२॥१३॥

तमकश्वासके लक्षण ।

प्रतिलोमं यदा वायुः स्रोतांसि प्रतिपद्यते । ग्रीवां शिरश्च संगृह्य श्लेष्माणं समुदीर्य च ॥ १४ ॥ करोति पीनसं तेन रुद्धो घुर्घुरकं तथा । अतीव तीव्रवेगश्च श्वासं प्राणप्रपीडकम् ॥ १५ ॥ प्रताम्यति स वेगेन त्रस्यते स निरुध्यते । प्रमोहं कासमानश्च स गच्छति मुहुर्मुहुः ॥ १६ ॥ श्लेष्मणा मुच्यमानेन भृशं भवति दुःखितः। तस्यैव च विमोक्षान्ते मुहूर्त्तं लभते सुखम् ॥ १७ ॥ तथास्योध्वंसते कण्ठः कृच्छ्राच्छक्नोति भाषितुम् । न चापि निद्रां लभते शयानः श्वासपीडितः ॥ १८ ॥ पार्श्वे तस्यावगृह्णाति शयानस्य समीरिणः । आसीनो लभते सौख्यमुष्णञ्चैवाभिनन्दति॥१९॥

उच्छ्रिताक्षो ललाटेन स्विद्यता भृशमार्त्तिमान् । विशुष्कास्यो बहुश्वासो मुहुश्चैवावधम्यते ॥ २० ॥ मेघांबुशीतप्राग्वातैः श्लेष्मलैश्च प्रवर्द्धते । स याप्यस्तमकः श्वासः साध्यो वा स्यान्नवोत्थितः ॥ २१ ॥

जब शरीरकी वायु अपना मार्ग छोडकर कुमार्गमें जाकर नाडियोंके स्रोतोंमें प्राप्त होकर ग्रीवा और शिरको जकडकर कफको बढा कर पीनस रोगको उत्पन्न करता है तब वह प्राणवायु उस पीनसरोगके कफसे रुके हुए कंठमें घुरघुर शब्दको करके पश्चात् अत्यन्त तीव्र वेगवाले और प्राणपीड़क घोर श्वासको उत्पन्न करता है। तब उस श्वासके वेगसे अत्यन्त व्यथा होती है, त्रास होता है, रोगी निश्चेष्ट होजाता है वारंवार खाँसीके उठनेसे बेहोश हो,खाँसनेसे जो कफ निकल जाता है तो एक मुहूर्तमात्रको सुख होता है, गलेमें फांसेंसी लगती हैं,बोलनेसे अत्यन्त कष्ट होता है जब वह सोता है तो नींद नहीं आती; क्योंकि लेटनेसे वायु पसलियोंमें पीडाको करती है और जब वह उठता है तब चैन पड़ता है । गरम पदार्थोंमें इच्छा होती है, नेत्र ऊपरको सूजेसे रहैं, ललाटमें पसीनेके आनेके कारण अत्यन्त व्याकुलता होती है, मुख वारम्वार सूखता है और जिस प्रकार हाथीपर बैठनेसे शरीर हिलता है उसी प्रकार वारंवार श्वास लेनेसे हिलता है । यह श्वास मेघके वर्षनेसे, शीतल पदार्थोंके सेवन करनेसे, अथवा शीतऋतुमें या शीत देशमें रहनेसे, पूर्वकी पवनके चलनेसे और कफकारक पदार्थोंको सेवन करनेसे वृद्धिको प्राप्त होता है । यह तमकश्वास याप्य है और कदाचित् नवीन उत्पन्न हुआ साध्य भी होता है ॥ २०-२१ ॥

प्रतमकश्वासके लक्षण ।

ज्वरमूर्च्छापरीतस्य विद्यात्प्रतमकन्तु तम् । उदावर्त्तरजोऽजीर्णक्लिन्नकायनिरोधजः ॥ २२ ॥ तमसा वर्धतेऽत्यर्थं शीतैश्चाशु प्रशाम्यति । मज्जतस्तमसीवास्य विद्यात्प्रतमकन्तु तम् ॥ २३ ॥

इस तमकश्वासमें ज्वर और मूर्च्छा होनेसे इसको प्रतमक कहते हैं। अन्य आचार्योंका यह मत है कि उदावर्तसे, नाक और मुखमें धूलके गिरनेसे, अजीर्णसे, विदग्ध भोजनके पकनेसे अथवा अधिकतर भोजनकरनेसे और मलमूत्रादिकके वेगोंको रोकनेसे उत्पन्न हुआ जो श्वास वह उष्णतासे अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त होता है, शीतलतासे शांत होता है और उस रोगीको यह जान पड़ता है कि, मैं अन्धकारमें डूबा हुआ हूं इसको प्रतमक श्वास कहते हैं ॥२२॥२३॥

क्षुद्रश्वासके लक्षण ।

रूक्षायासोद्भवः कोष्ठे क्षुद्रो वातमुदीरयेत् । क्षुद्रश्वासेन सोऽत्यर्थं दुःखेनाङ्गप्रबाधकः ॥ २४ ॥ हिनस्ति न च गात्राणि न च दुःखं यथोत्तरम् । न च भोजनपानानां निरुणद्ध्युचितां गतिम् ॥ २५॥ नेन्द्रियाणां व्यथाञ्चैव काञ्चिदापादयेद्रुजम् । स साध्य उक्तो बलिनः सर्वो वाऽव्यक्तलक्षणः॥ क्षुद्रः साध्यतमस्तेषां तमकः कृच्छ्र उच्यते ॥ २६ ॥ त्रयः श्वासा न सिध्यन्ति तमको दुर्बलस्य च ॥ २७ ॥ कामं प्राणहरा रोगा बहवो न तु ते तथा । यथा श्वासश्च कासश्च हरते प्राणमाशु हि ॥ २८॥ वाताधिको भवेत्क्षुद्रस्तमकस्तु कफोत्तरः । कफाद्वाताधिकात्पित्तसंसृष्टश्छिन्नसंज्ञकः ॥ श्वासो मारुतसंसृष्टो महानूर्ध्वस्तथा मतः ॥ २९ ॥

रूखे पदार्थोंको सेवन करनेसे और अत्यन्त परिश्रम करनेसे क्षुद्रश्वास उत्पन्न होता है इसमें वायु बढ़ जाती है. किन्तु यह और श्वासोंकी समान अत्यन्त दुःखदायक नहीं है तथा यह महाश्वासादिकोंकी समान अंगोंको पीडित करनेवाला और कष्टदायक नहीं है । यह भोजन पानादिकी यथोचित गतिको भी नहीं रोकता है, इन्द्रियोंको भी पीड़ित नहीं करता है और अन्यान्य किसी रोगको भी उत्पन्न नहीं करता, यह क्षुद्रश्वास साध्य होता है

साध्य होताहै। और बलवान् मनुष्यके उत्पन्न हुए महाश्वासादिक भी जबतक सम्पूर्ण लक्षणोंयुक्त नहीं होते हैं तबतक साध्य होतेहैं और क्षुद्रश्वास इन सब श्वासोंमें अत्यन्त सुखसाध्य है। तमक श्वास कृच्छ्र साध्य है। महाश्वास, ऊर्ध्वश्वास और छिन्नश्वास ये तीनों कष्ट साध्य हैं, और दुर्बल मनुष्यके उत्पन्न हुआ तमकश्वास भी असाध्य है। जितने रोग हैं प्रायः सभी प्राणनाशक हैं, उनमें बहुतेरे अत्यन्त कठिन हैं और उन सबमें खाँसी और श्वास जितना शीघ्र प्राणोंका नाश करते हैं उसप्रकार अन्य नहीं करते हैं। इनमें क्षुद्रश्वास वातोल्बण है, तमकश्वास कफोल्बण है, छिन्नश्वास त्रिदोषज है, महाश्वास और ऊर्ध्वश्वास वातोल्बण हैं॥ २४-२९ ॥

श्वासादिकी चिकित्सा।

स्नेहबस्तिमृते केचिदूर्ध्वश्चाधश्च शोधनम्। मृदुप्राणवतां श्रेष्ठं श्वासिनामादिशन्ति हि ॥ ३० ॥

श्वासरोगमें प्रथम दुर्बल मनुष्योंके स्नेह बस्तिके विना ऊर्ध्व और अधः शोधन कराना चाहिए॥३०॥

दशमूलीशटीरास्नापिप्पलीविश्वपौष्करैः। शृङ्गीतामलकीभार्ङ्गीगुडुचीनागरादिभिः॥ ३१ ॥ यवागूं विधिना सिद्धं कषायं वा पिबेन्नरः। कासहृद्ग्रहपार्श्वार्त्तिहिक्काश्वासप्रशान्तये ॥ ३२ ॥

दशमूल, कचूर, रायसन, पीपल, सोंठ, पोहकरमूल, काकडासिंगी, भुईआमला, भारंगी, गिलोय और सोंठ इनकी विधिपूर्वक यवागू बनाकर सेवन करे तो खाँसी, हृदयरोग, पार्श्वशूल, हिचकी और श्वास दूर होता है॥ ३१॥ ३२॥

कुलित्थयवकोलाम्लदशमूलबलाजलम्। पानार्थं कल्पयेत्कासहिक्काश्वासनिवृत्तये ॥ ३३ ॥

कुलथी, जौ, खट्टेबेर, दशमूल और खिरैंटी इनका क्वाथ हिचकी और श्वासको दूर करनेके लिये पान करे॥ ३३॥

कुलित्थनागरव्याघ्रीवासाभिः क्वथितं जलम्। पीतं पौष्करसंयुक्तं श्वासकासनिवारणम् ॥ ३४ ॥

कुलथी, सोंठ, कटेरी, अडूसा इनके क्वाथमें पोहकरमूलका चूर्ण डालकर पान करनेसे श्वास और खांसी दूर होती है॥ ३४॥

दशमूलस्य वा क्वाथः पौष्करेणावचूर्णितः। श्वासकासप्रशमनः पार्श्वशूलविनाशनः ॥ ३५॥

दशमूलके क्वाथमें पोहकरमूलका चूर्ण डालकर पान करनेसे श्वास और खांसी दूर होती है और पसलियोंकी पीडा शांत होती है॥ ३५॥

रम्भाकुन्दशिरीषाणां कुसुमं पिप्पलीयुतम्। पिष्ट्वा तण्डुलतोयेन पीत्वा श्वासमपोहति ॥ ३६ ॥

केला, कुन्द और शिरस इनके फूल तथा पीपल सबको एकत्र चावलोंके जलमें पीसकर पीनेसे श्वास रोग दूर होता है॥ ३६॥

देवदारुवचाभार्ङ्गीविश्वपौष्करकट्फलैः। कृत्वा क्वाथो जयत्याशु श्वासकासानशेषतः ॥ ३७ ॥

देवदारु, वच, भारंगी, सोंठ, पोहकरमूल और कायफल इनका क्वाथ बनाकर सेवन करनेसे श्वास और खांसी दूर होती है॥ ३७॥

शृङ्गीमहौषधिकणाघनपुष्कराणां चूर्णं शटीमरिचयोश्च सिताविमिश्रम्। क्वाथेन पीतममृता वृषपञ्चमूल्याः श्वासं त्र्यहेन विनिहन्ति हि घोररूपम् ॥ ३८ ॥

काकडाशिंगी, सोंठ, पीपल, नागरमोथा, पोहकरमूल, कचूर और कालीमिरच इनका चूर्ण करके गिलोय, अडूसा और पंचमूलके क्वाथमें डालकर मिश्री मिलाकर पान करे तो तीन दिनमें घोर श्वास दूर होता है॥ ३८॥

कूष्माण्डकासिताचूर्णं पीतं कोष्णेन वारिणा । शीघ्रं शमयति श्वासं कासश्चैव सुदारुणम् ॥ ३९ ॥

पेठा और मिश्री इनके चूर्णको गरम जलके साथ पान करे तो शीघ्र ही दारुण श्वास और खांसी दूर होती है ॥ ३९ ॥

व्याघ्रीदुरालभाशृङ्गीबिल्वमध्यत्रिकण्टकैः । सामृताग्निश्रृतैरेतैर्यूषः स्याच्छ्वासनुत्परः ॥ ४० ॥

कटेरी, धमासा, काकडाशिंगी, बेलगिरी, गोखरू, गिलोय और चीता इनका यूष बनाकर पीनेसे श्वास रोग दूर होता है ॥ ४० ॥

कुलित्थदशमूलानां क्वाथे स्युर्जाङ्गला रसाः । कासमर्दकपत्राणां यूषः सौभाञ्जनस्य च ॥ ४१ ॥ शुष्कमूलकयूषश्च हिक्काश्वासनिवारणः ॥ ४२ ॥

कुलथी और दशमूलके काथमें जांगल जीवोंका मांसरस डालकर अथवा कसौंदीके पत्तोंका यूष किम्वा सहिंजनेका यूष अथवा मूलीका यूष भी हिचकी और श्वासको दूर करता है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

द्राक्षां हरीतकीं कृष्णां कर्कटाख्यां दुरालभाम् । विलिहन्मधुसर्पिर्भ्यां श्वासान् हन्ति सुदारुणान् ॥ ४३ ॥

दाख, हरड, पीपल, काकडाशिंगी और धमासा इनका चूर्ण करके शहद और घी मिलाकर सेवन करे तो दारुण श्वास दूर होता है ॥ ४३ ॥

गुडं कटुकतैलेन मिश्रयित्वा समं लिहन् । त्रिसप्ताहप्रयोगेण श्वासं निर्मूलतां नयेत् ॥ ४४ ॥

समान भाग गुडको कडवे तेलमें मिलाकर २१ दिनतक सेवन करनेसे श्वासरोग नष्ट होता है ॥ ४४

श्वाविधः सूचका दग्धा सक्षौद्रघृतशर्करा ॥ ४५ ॥ श्वासकासहरा बर्हिपादौ वा मधुसर्पिषा ॥ ४६ ॥

खरगोश और सेईके मांसको जलाकर शहद, घी और मिश्री मिलाकर सेवन करे तो श्वास और खाँसी दूर होती है अथवा मोरके पांवोंको जलाकर शहद और घी मिलाकर सेवन करनेसे श्वास और खाँसी दूर होती है ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

हरिद्रां मरिचं द्राक्षां गुडं रास्नां कणां शटीम् । तैलेन विलिहन् हन्याच्छ्वासान् प्राणहरानपि ॥ ४७ ॥

हल्दी, कालीमिरच, दाख, गुड़, रायसन, पीपल और कचूर इनको पीसकर तेल मिलाकर चाटनेसे श्वास दूर होता है ॥ ४७ ॥

"हरिद्रापत्रमेरण्डमूलं लाक्षां मनःशिलाम् । देवदारुघनं मांसीं पिष्ट्वा वर्त्तिं प्रकल्पयेत् ॥" तां घृताक्तां पिबेद्धूमं श्वासं हन्ति सुदारुणम् । श्वासहिक्कापरिगतं स्निग्धैः स्वेदैरुपाचरेत् ॥ ४८ ॥ युक्तैर्लवणतैलाभ्यां तैरस्य ग्रथितः कफः । श्वासो विलयनं याति मारुतश्च प्रशाम्यति ॥ ४९ ॥ स्निग्धं ज्ञात्वा ततश्चैनं भोजयित्वा रसौदनम् । वातश्लेष्मविबन्धे वा भिषग्धूमं प्रयोजयेत् ॥ ५० ॥

हल्दी, तेजपत्र, अंडकी जड, लाख, मैनशिल, देवदारु, नागरमोथा और बालछड़ इनको एकत्र पीसकर बत्ती बनावे। फिर इन बत्तियोंको घीमें सानकर उनका धुआँ पीवे तो दारुण श्वास दूर होता है । हिचकीमें श्वास हो तो स्निग्ध और स्वेदकर्म्म करे, और जो हृदयमें कफ अटक रहा तो सैंधानमक तेलमें मिलाकर मालिश करे इससे श्वास नष्ट होता है और वायु शमन होजाती है फिर इसको स्निग्ध जानकर रसौदनका भोजन करावे और वातकफका विबन्ध हो तो धूमपान प्रयोग करे ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥

शृङ्ग्यादि चूर्ण ।

शृङ्गीकटुत्रयफलत्रयकण्टकारी भार्ङ्गीसपुष्करजटालवणानि पञ्च । चूर्णं पिबेदशिशिरेण जलेन हिक्काश्वासोर्ध्ववातकसनारुचिपीनसेषु ॥५१ ॥

काकडाशिंगी, त्रिकुटा, त्रिफला, कटेरी, भारङ्गी, पोहकरमूल और पांचों नमक इनका बारीक चूर्ण कर के गरम जलके साथ पान करनेसे हिचकी, श्वास, ऊर्ध्ववात, खाँसी, अरुचि और पीनस रोग नष्ट होता है ॥ ५१ ॥

निदिग्धिकां चामलकप्रमाणां हिङ्ग्वार्द्रयुक्तां मधुनोंऽशयुक्ताम् । लिहेन्नरः श्वासनिपीडितो हि श्वासं जयत्येष बलात्त्र्यहेण ॥ ५२ ॥

कटेरी और आमले समान भाग लेकर चूर्ण कर लेवे। फिर इस चूर्णमें शहद और शहदसे चौथाई भाग हींग और अदरखका रस डालकर सेवन करे तो तीन दिनोंमें श्वास रोग दूर होता है ॥ ५२ ॥

भल्लातकमधुपर्णीपथ्यादशमूलनागरक्काथः । तमके कफप्रधाने शस्तः श्वासे च मारुतजे ॥ ५३ ॥

भिलावा, मुलैठी, हरड़ा, दशमूल और सौंठ इनका काथ कफोल्बण तमक श्वास और वातके श्वासमें हितकारी है ॥ ५३ ॥

पथ्याकषायमथवा पिबेद्रसं मार्कवस्य मधुना । तमके पुष्करजम्बा स नागरं क्षीरमेकञ्च ॥ ५४ ॥

अथवा हरडके काथको किम्वा भांगरेको रसको शहदमें मिलाकर पान करे किम्वा तमकश्वासमें पोहकरमूल, जामुन और सौंठको दूधमें औटाकर पान करे ॥ ५४ ॥

शट्यादि चूर्ण ।

शटी पुष्करजीवन्तीत्वङ्मुस्तंपुष्कराह्वयम् । सुरसा तामलक्यौ वा पिप्पल्यगुरुनागरम् ॥ ५५ ॥ बालकस्य समं चूर्णं कृत्वाष्टगुणशर्करम् । सर्वथा तमके श्वासे हिक्कायाञ्च प्रयोजयेत् ॥ ५६ ॥ अत्रैकस्माद्द्रव्यादष्टगुणा शर्करा । सर्वथेति पानभोजनादिषु ॥

कचूर, कूठ, जीवन्ती, दालचीनी, नागरमोथा, पोहकरमूल, तुलसी, भुँई आमला, भुँईतरवट, पीपल, अगर, सोंठ और सुगन्धवाला इन सबको समान भाग लेकर बारीक पीसकर चूर्ण करले और चूर्णमें आठ भाग मिश्री मिलाकर सेवन करे। इसको भोजनपानादिमें सर्वथा व्यवहार करनेसे श्वास और हिचकी दूर होती है ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

हिंस्रादिघृत ।

हिंस्राविडङ्गपूतिकत्रिफलाव्योषचित्रकैः । द्विक्षारं सर्पिषः प्रस्थं चतुर्गुणजले प्लुतम् ॥ ५७ ॥ कर्षमात्रैः पचेत्तद्धि श्वासकासौ व्यपोहति । अर्शांस्यरोचकं गुल्मं शकृद्भेदं क्षयं तथा ॥ ५८ ॥

हिंस्रा (कटेरी), वायविडंग, पूतिकरंज, त्रिफला, त्रिकुटा, चीता और दोनों खार (जवाखार, सज्जी) प्रत्येकके एक एक कर्ष प्रमाण कल्कके द्वारा एकप्रस्थ घीको चौगुने जलमें पकावे। यह-श्वास, खाँसी, बवासीर, अरुचि, गुल्म और मलभेदको दूर करता है ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

सौवर्चलादिघृत ।

सौवर्चलयवक्षारकटुकाव्योषचित्रकैः । घृतं वचाविडङ्गैश्च साधितं श्वासशान्तये ॥ ५९ ॥

कालानमक, जवाखार, कुटकी, त्रिकुटा, चीता, बच और वायविडंग इनके कल्कके द्वारा घृतको सिद्ध करे। इसको श्वासके शांत करनेके लिये पान करे ॥ ५९ ॥

कुलित्थादिघृत।

कुलित्थरससंयुक्तं पञ्चकोलभृतं घृतम्। दीपनं श्वासकासघ्नं कफव्याधिहरं परम् ॥ ६० ॥

कुलथीका रस और पंचकोलका काथ इनमें घृतको सिद्ध करे । इसको सेवन करनेसे अग्निदीपन, श्वास और खाँसी दूर होती है और कफरोग नष्ट होता है ॥ ६० ॥

तिक्तादिघृत ।

तिक्तासौवर्चलक्षारपथ्यात्रिकटुहिंगुभिः । समांशैर्घृतं सिद्धं सक्षीरं श्वासकासनुत् ॥ ६१ ॥ गुल्मानाहञ्च शमयेत्प्रवृद्धान्गुदजानपि ॥

कुटकी, कालानमक, जवाखार, हरड, त्रिकुटा और हींग इनके द्वारा चौगुने दूधमें घीको पकावे। यह घृत--श्वास, खाँसी, गुल्म, अफारा और बढी-हुई बवासीरको दूर करता है ॥ ६१ ॥

द्वितीयकुलित्थादि घृत ।

कुलित्थदशमूलञ्च तथा ब्राह्मणयष्टिका । प्रस्थं प्रस्थञ्च संगृह्य वारिद्रोणेन साधयेत्॥६२॥ पादशेषे रसे तस्मिन् घृतप्रस्थं विपाचयेत्। क्षीरकं द्विगुणं दत्वा कल्कितैः पञ्चकोलकैः॥६३॥सक्षारैः पलिकैः सर्वैः शनैर्मृद्वग्निना पचेत् । कासश्वासहरञ्चैव हिक्काञ्च विषमज्वरम् ॥ ६४ ॥ हन्यात्तथार्शोग्रहणीहृद्रोगारुचिपीनसान् । गुल्मं प्लीहामयं हन्याद्बलवर्णाग्निवर्धनम्॥६५॥ अग्निसन्दीपनञ्चैव कौलित्थं षट्पलं घृतम् ॥ ६६ ॥

कुलथी, दशमूल और भारंगी प्रत्येक औषधि एक २ प्रस्थ लेकर एक द्रोण जलमें पकावे। जब पकते २ चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे। फिर उसमें एक प्रस्थ घी और दुगुना दूध, तथा पंचकोल और जवाखारका कल्क चार २ तोले डालकर मन्द मन्द अग्निसे पकावे। यह घृत--खाँसी और श्वासको हरनेवाला तथा हिक्का, विषमज्वर, बवासीर, ग्रहणी, हृदयरोग, अरुचि, पीनस गुल्म और प्लीहाको दूर करनेवाला है। बल, वर्ण और अग्निको बढानेवाला तथा अग्निको दीपन करने वाला है ॥ ६२-६६ ॥

सुवहादि घृत ।

सुवहाकालिकाभार्ङ्गी शुकाख्यं कौचुलं फलम् । काकादनी शृङ्गवेरं वर्षाभूर्बृहतीद्वयम् ॥ ६७॥ पलमात्रैर्घृतप्रस्थं पचेदेतैर्जलाढके । कदुष्णं पीतमेतद्धि श्वासामयविनाशनम्॥६८॥

नीलसिन्धुवार, नीली, भारंगी, शिरसा, कौंछके बीज, काकादनी, अदरख, पुनर्नवा और दोनों कटेरी; प्रत्येक औषधिको एक एक पल लेकर कल्क बनावे। फिर इस कल्कके द्वारा एक प्रस्थ घीको एक आढ़क जलमें पकावे। फिर इस घृतको सुहाता २ पीवे तो यह श्वासको दूर करता है ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

भृंगराजतैल ।

तैलं दशगुणे सिद्धं भृङ्गराजरसे शुभे। पीयमानं यथान्यायं श्वासकासौ व्यपोहति ॥ ६९ ॥

दशगुने भाँगरेके रसमें तिलका तेल पकाकर यथाविधिसे पान करे तो श्वास और खाँसी दूर होती है ॥ ६९ ॥

क्षीरपिप्पली ।

तिस्रस्तिस्रस्तु पूर्वाह्णे भुक्ताग्रे भोजनस्य च ॥ ७० ॥ पिप्पल्यः किंशुकक्षारभाविता घृतभर्जिताः । प्रयोज्या मधुसंमिश्रा रसायनगुणैषिणा ॥७१॥ जेतुं कासक्षयश्वासहिक्काशोषगलामयान् ॥ ७२ ॥ अर्शांसि ग्रहणीदोषं पांडुतां विषमज्वरान् ॥ ७३ ॥ वैस्वर्यं पीनसं शोफं गुल्मं वातबलासकम् । मासमेवाश्नतो युक्त्या माध्विकं पिबतोऽनु च ॥ ७४ ॥

दिनके पूर्वकालमें भोजनसे प्रथम तीन २ पीपल लेकर ढाकके क्षारमें भावना दे घीमें भून शहदमें मिलाकर रसायनकी इच्छा करनेवाला मनुष्य सेवन करे। यह खाँसी, राजयक्ष्मा, श्वास, हिक्का, शोष, गलरोग, बवासीर, संग्रहणी, पाण्डुरोग, विषमज्वर, स्वरभंग, पीनस, सूजन, गुल्म और वात बलासक रोगको दूर करता है। इसको युक्तिपूर्वक एक महीनेतक सेवन करे। माध्वीक नामक मदिराका अनुपान करे ॥ ७०--७४ ॥

भार्ङ्गीगुड ।

शतं संगृह्य भार्ङ्ग्यास्तु दशमूल्यास्तथा परम् । शतं हरीतकीनाञ्च पचेत्तोये चतुर्गुणे ॥ ७५ ॥ पादावशेषे तस्मिंस्तु रसे वस्त्रनिपीडिते । आ-

लोडय च तुलां पूतां गुडस्य त्वभयां ततः ॥ ७६ ॥ पुनः पचेत्तु मृद्वग्नौ यावल्लेहत्वमागतम् । शीते च मधुनश्चात्र षट्पलानि प्रदापयेत् ॥ ७७ ॥ त्रिकटु त्रिसुगन्धश्च पलिकानि पृथक् पृथक् । कर्षद्वयं यवक्षारं संचूर्ण्य प्रक्षिपेत्ततः ॥ ७८ ॥ भक्षयेदभयामेकां लेहस्यार्द्धपलं लिहेत् । श्वासं सुदारुणं हन्ति कासं पञ्चविधं तथा ॥ ७९ ॥ स्वरवर्णप्रदो ह्येष जठराग्निप्रदीपनः । हरीतकीशतस्यात्र प्रस्थत्वादाढकं जलम् ॥ ८० ॥

भारंगी, दशमूल और हरड प्रत्येक १०० पल लेकर चौगुने जलमें पकावे । जब चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे इस क्वाथमें १००पल गुड और पूर्वोक्त क्वाथकी हरड निकालकर मिलाकर खूब आलोडन करके मन्द२ अग्निसे पकावे। जब पकते २ लेहके समान होजाय तब शीतल होने पर उसमें छः पल शहद मिलादेवे। तथा सोंठ,मिरच, पीपल, दालचीनी, इलायची, तेजपात, प्रत्येकका चूर्ण चार २ तोले और जवाखार दो तोले मिलाकर प्रतिदिन इसमेंसे एक हरड खाय और दो तोले अवलेह चाटे । यह भार्ङ्गीगुड़ दारुण श्वास और पांचों प्रकारकी खाँसीको दूर करता है । स्वरको सुन्दर करनेवाला, वर्णको उज्ज्वल करनेवाला और अग्निको दीपन करनेवाला है । यहां हरड़१०० पल नहीं किन्तु १०० हरड़ लेनी चाहिए । और जल एक आढक परिमाण लेना चाहिए ॥ ७५—८० ॥

कुलित्थगुड ।

कुलित्थं दशमूलञ्च तथैव द्विजयाष्टिका । शतं शतञ्च संगृह्य जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ ८१ ॥ पादावशेषे तस्मिंस्तु गुडस्यार्धतुलां क्षिपेत् ॥८२॥ शीतीभूते च पक्के च मधुनोऽष्टौ पलानि च ॥ ८३ ॥ षट्पलानि तुगाक्षीर्य्याः पिप्पल्याश्च पलद्वयम् । त्रिसुगन्धि सुगन्धश्च खादेदग्निबलं प्रति ॥ ८४ ॥ श्वासं कासं ज्वरं हिक्कां नाशयेत्तमकं तथा । योगसंदर्शनादत्र वृद्धवैद्योपदेशतः ॥ ८५ ॥ जलं चतुर्गुणं देयं स्वल्पत्वाद्द्रोणवारिणा । मानसान्निध्यसंवादाद्द्विपलं त्रिसुगन्धिनः ॥ ८६ ॥

कुलथी, दशमूल और भारंगी ये प्रत्येक औषधि सौ सौ पल लेकर एकद्रोण जलमें पकावे। जब पकते २ चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे । फिर इसमें ५० पल गुड डालकर पकावे। जब पककर लेहके समान होजाय तब सिद्ध हुआ जाने। फिर शीतल होनेपर शहद ८ पल,वंशलोचन ६ पल, पीपल २ पल और त्रिसुगन्धका चूर्ण २ पल तथा अन्यान्य सुगन्ध द्रव्योंका चूर्ण डालकर मिला देवे और एक उत्तम चिकने बासनमें भरकर रख देवे । यह कुलित्थगुड—श्वास, खाँसी, ज्वर, हिचकी और तमक श्वासको भी दूर करता है । अनेक प्रकारके योगोंको देखनेसे और वृद्ध वैद्योंके उपदेशसे यहां जल चौगुना लेना चाहिए । क्योंकि यहां छोटे द्रोणका परिमाण है । यहां त्रिसुगन्धिकी औषधियें दो पल लेनी चाहिएँ ॥ ८१—८६ ॥

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायां
श्वासाधिकार संपूर्ण ।

अथ स्वरभेदरोगाधिकार ।



अत्युच्चभाषणविषाध्ययनाभिघातसन्दूषणैः प्रकुपिताः पवनादयस्तु । स्रोतस्सु ते स्वरवहेषु गताः प्रतिष्ठां हन्युः स्वरं भवति चापि हि षड्विधः सः ॥ १ ॥

अत्यन्त जोरसे बोलनेसे,विषादिकको भक्षण करनेसे, बहुत जोरसे वेदादिकको पढ़नेसे और कण्ठमें चोटादिके लगनेसे वातादि दोष कुपित होकर स्वरकी बहनेवाली जो कण्ठमें नसें हैं उनमें प्राप्तहोकर स्वरको नष्ट करके छः प्रकारके स्वरभेदको उत्पन्न करते हैं ॥ १ ॥

वातेन कृष्णनयनाननमूत्रवर्चा भिन्नं शनैर्भवति गर्दभवत्स्वरश्च । पित्तेन पीतनयनाननमूत्रवर्चा ब्रूयाद्गलेन स च दाहसमन्वितेन ॥ २ ॥

वायुके स्वरभेदमें रोगीके नेत्र, मुख, मूत्र और विष्ठा काले हों, स्वर फटा हुआ तथा गधेके स्वरके समान होता है । पित्तके स्वरभेदमें नेत्र, मुख, मूत्र और विष्ठा पीले होते हैं और बोलते समय कण्ठमें जलन होती है ॥ २ ॥

ब्रूयात्कफेन सततं कफरुद्धकण्ठः स्वल्पं शनैर्वदति चापि दिवा विशेषात् । सर्वात्मके भवति सर्वविकारसंपत्तं चाप्यसाध्यमृषयः स्वरभेदमाहुः ॥ ३ ॥

कफके स्वरभेदमें निरन्तर कण्ठ कफसे रुका रहे, थोड़ा थोड़ा धीरे२ बोले और दिनमें सूर्य्यके निकलनेपर कफके फटनेसे बहुत बोलता है एवं त्रिदोषके स्वरभेदमें तीनों दोषोंके लक्षण होते हैं और यह असाध्य है ऐसा आयुर्वेदाचार्य्यगण कहते हैं ॥ ३ ॥

धूमेत वाक् क्षयक्षते क्षयमाप्नुयाच्च वागेषु चापि हतवाक्परिवर्जनीयः । अन्तर्गतं स्वरमलक्षपदं चिरेण मेदोन्वयाद्वदति दिग्धगलस्तृषार्त्तः॥ ४ ॥

क्षयके स्वरभेदमें बोलते समय धुँआसा निकले, और टूटे फूटे शब्द निकलें।जब इसमें वाणीका नाश होता है तब यह असाध्य होजाता है । मेदके स्वरभेदमें कंठ कफमेदसे चिकटा रहता है और बहुतकालमें गलेके भीतर कुछ समझमें न आवे ऐसा बोलता है और उसको तृषा अधिक लगती है ॥ ४ ॥

असाध्यके लक्षण ।

क्षीणस्य वृद्धस्य कृशस्य चापि चिरोत्थितो यः सहजोऽपि जातः । मेदस्विनः सर्वसमुद्भवश्च स्वरामयो यो न स सिद्धिमेति ॥ ५ ॥

क्षीण मनुष्य, वृद्ध और कृश मनुष्यके उत्पन्न हुआ स्वरभेद,बहुत दिनोंसे उत्पन्न हुआ,जन्मसे प्रगट हुआ,मेदसे उत्पन्न हुआ और तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुआ स्वरभेद असाध्य है ॥ ५ ॥

चिकित्सा ।

स्निग्धान् परं तापनकृष्यधातून् संयोजयेद्वमनबस्तिविरेचनैश्च । नस्यावपीडमुखधावनधूमलेहैः सम्पादयेत्तु विविधैः कवलग्रहैश्च ॥ ६॥

प्रथम स्नेहपान, ताप और धातुओंका अपकर्षण करे तथा स्नेह,बस्तिकर्म्म,वमन और विरेचन प्रयोग करे, पश्चात् नस्य, अवपीडन, मुखधावन, धूमपान और अवलेह तथा अनेक प्रकारके कवल मुखमें धारण करे ॥ ६ ॥

यः श्वासकासविधिरादित एव चोक्तस्तश्चाप्यशेषमवचारयितुं यतेत ॥७ ॥

जो विधि श्वास और कासरोगमें कही है वह विधि इस स्वरभंगमें विचार कर करनी चाहिए।॥७॥

कासमर्दादिघृत ।

स्वरोपघातेऽनिलजे भुक्तोपरि घृतं पिबेत् ॥ ८ ॥ कासमर्दकवार्त्ताकमार्कवस्वरसैः पचेत् । पीतं घृतं हन्त्यनिलं सिद्धं वार्त्ताकजे रसे ॥ ९ ॥

वातके स्वरभेदमें प्रथम भोजन करके पश्चात् घृतको पान करे ।कसौंदी, बैंगुन और भांगरेके स्वरसमें घृतको सिद्ध करे। अथवा केवल बैंगनके रसमें सिद्ध करे इस घृतको पान करनेसे वातका स्वरभेद दूर होता है ॥ ८ ॥ ९ ॥

तथा कोष्णजलं देयं भुक्त्वा घृतगुडौदनः । पैत्तिके च विरेकस्तु पयश्च मधुरैः शृतम् ॥ लिह्यान्मधुरकाणां वा

चूर्णं मधुसमायुतम् ॥ १० ॥ अश्नीयाच्च ससर्पिष्कं यष्टीमधुकषायकम्॥११॥

घी, गुड और भातको भोजन करके गरमजलको पान करे। पित्तके स्वरभेदमें विरेचन करावे और मधुर औषधियोंको दूधमें औटाकर पान करे, अथवा मधुर औषधियोंका चूर्ण करके शहदमें मिलाकर सेवन करे, किम्वा मुलैठीके क्वाथमें घी डालकर पान करे ॥ १० ॥ ११ ॥

शृंगादिघृत ।

शुङ्गांस्त्वचं क्षीरवतां द्रुमाणां संकुद्य दुग्धे विपचेत्तु तेन । कल्केन यष्टीमधुकस्य सर्पिः सिद्धं पिबेत्तन्मधुशर्कराक्तम् ॥ १२ ॥

क्षीर वृक्षोंके अंकुर और छाल लेकर कूटकर दूधमें पकावे फिर उसमें मुलैठीका कल्क और घी डालकर घृतको सिद्ध करे। इस घृतमें शहद और मिश्री डालकर पान करे। यह घृत पित्तके स्वरभेदको दूर करता है ॥ १२ ॥

पिप्पली पिप्पलीमूलं मरिचं विश्वभेषजम् । पिबेन्मूत्रेण मतिमान् कफजे स्वरसंक्षये ॥ १३ ॥

पीपल, पीपलामूल, कालीमिरच और सोंठ इनका चूर्ण गोमूत्रमें डालकर पान करे। यह कफके स्वरभेदको नष्ट करता है ॥ १३ ॥

अजमोदां निशां धात्रीं क्षारं वह्निं विचूर्ण्य च । मधुसर्पिर्युतं लीढ्वा स्वरभेदं व्यपोहति ॥ १४ ॥

अजमोद, हल्दी, आमले, जवाखार और चीता इनका चूर्ण घी और शहदमें सेवन किया हुआ स्वरभेदको नष्ट करता है ॥ १४ ॥

फलत्रिकत्र्यूषणयावशूकचूर्णञ्च हन्यात्स्वरभेदमाशु । किं वा कुलित्थं वदनान्तरस्थं स्वरामयं हन्त्यथ पौष्करं वा ॥ १५ ॥

त्रिफला, त्रिकुटा और जवाखार इनके चूर्णको किम्वा कुलथीका चूर्ण अथवा पोहकरमूलके चूर्णको मुखमें रखनेसे स्वरभंगरोग नष्ट होता है ॥ १५ ॥

वाते सलवणं तैलं पित्ते सर्पिः समाक्षिकम् । कफे सक्षारकटुकं क्षौद्रं केवलमिष्यते ॥ १६ ॥

वातके स्वरभेदमें सैंधानमक तेलमें मिलाकर सेवन करे, पित्तके स्वरभेदमें शहदमें घी मिलाकर सेवन करे, कफके स्वरभेदमें जवाखार, त्रिकुटा और शहद इनको सेवन करे ॥ १६ ॥

गले तालुनि जिह्वायां दन्तमूलेषु चाश्रितः । तेन निष्क्रामते श्लेष्मा स्वरश्चाशु प्रसीदति ॥ १७ ॥

इसप्रकार करनेसे गला, तालु, जीभ और दांतोंकी जड इनमें रहनेवाला कफ निकलकर गिर जाता है और स्वर स्वच्छ होजाता है ॥ १७ ॥

अगुरुसुरदारुदार्वीसलिलं स्वरभेदहृत्पिबेत्कोष्णम् । व्याघ्रीसुरतरुनागरसिंहमुखक्वाथमथवापि ॥१८ ॥ तैलाक्तं स्वरभेदे वा खादिरं धारयेन्मुखे । पथ्यापिप्पलिसंयुक्तं युक्तं वा नागरेण तु ॥ १९ ॥ बदरीपत्रकल्कन्तु घृतभृष्टं ससैन्धवम् । स्वरोपघाते कासे च लेहमेनं प्रयोजयेत् ॥ २० ॥

अगर, देवदारु और दारुहल्दी इनका क्वाथ बनाकर मन्दोष्णपान करनेसे स्वरभेद नष्ट होता है। अथवा बडीकटेरी, देवदारु, सोंठ और अडूसा इन का क्वाथ पान करनेसे स्वरभेद नष्ट होता है। अथवा खैरसारको तेलमें मिलाकर मुखमें धारण करे, अथवा हरड़ और पीपलके चूर्णको किम्वा सोंठके चूर्णको अथवा बेरीके पत्तोंके कल्कको घीमें भूनकर सैंधानमक मिलाकर स्वरभंग और खांसीमें चाटे ॥१८॥ ॥ १९ ॥ २० ॥

स्वरोपघाते मेदोजे कफवद्विधिरिष्यते । क्षयजे सर्वजे वापि प्रत्याख्यामाचरेत् क्रियाम् ॥ २१ ॥

मेदजस्वरभेदमें कफजस्वरभेदोक्त चिकित्सा करे, क्षयज और त्रिदोषज स्वरभेदको असाध्य समझकर यथायोग्य चिकित्सा करे ॥ २१ ॥

निदग्धिकादिलेह ।

निदग्धिकापलशतं तदर्द्धं ग्रन्थिकस्य च । चित्रकस्य तदर्धञ्च दशमूलञ्च तत्समम् ॥ २२ ॥ द्रोणद्वयेऽपां निःक्काथ्य कषायाढकमाहरेत् । पूते क्षिपेत्तदर्धन्तु पुराणस्य गुडस्य च ॥२३॥ सर्वमेकत्र कृत्वा च लेहवत्साधु साधयेत् । अष्टौ पलानि पिप्पल्यास्त्रिजातकपलं तथा ॥ २४ ॥ मरिचानां पलन्त्वेकं सर्वमेकत्र चूर्णितम् । मधुनः कुडवं दत्त्वा तदश्नीयाद्यथानलम् ॥ २५ ॥ स्वरभेदहरं मुख्यं प्रतिश्यायहरं परम् । श्वासकासाग्निमान्द्यार्शोगुल्ममेहगलामयान् ॥ २६ ॥ आनाहमूत्रकृच्छ्राणि हन्याद्ग्रन्थ्यर्बुदानि च ॥ २७॥

कटेरी १०० पल, पीपलामूल ५० पल, चीता २५ पल और दशमूलकी औषधियें २५ पल लेकर एकद्रोण जलमें पकावे । जब पकते २ एक आढक जल शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे। फिर उस काथमें ५० पल पुराना गुड डालकर मन्द २ अग्नि से अवलेहके समान पकावे । जब सिद्ध होजाय तब पीपलका चूर्ण आठ पल, त्रिसुगन्धि (दालचीनी, इलायची, तेजपात) का चूर्ण ४ तोले, कालीमिरचों का चूर्ण १ पल, और शीतल होनेपर शहद १६ तोले डालकर खूब चला देवे, फिर एक चिकने बासनमें भरकर रखदेवे । अग्निका बलाबल विचारकर इस को सेवन करे । यह अवलेह—स्वरभेद, प्रतिश्याय, श्वास, खांसी, मन्दाग्नि, बवासीर, गुल्म, प्रमेह, गलरोग, आनाह, मूत्रकृच्छ्र, ग्रन्थि और अर्बुदरोगको नष्ट करता है ॥ २२-२७ ॥

शर्करामधुमिश्राणि शृतानि मधुरैः सह । पिबेत्पयांसि यस्योच्चैर्वदतोऽभिहतः स्वरः ॥ २८ ॥

शर्करा और शहद मिलाकर मधुर औषधियोंका काथ वह पान करे जिसका बहुत जोरसे बोलनेसे अथवा बहुत बोलनेसे स्वर बैठ गया हो ॥ २८ ॥

वातादिजनितश्वासकासघ्ना ये प्रकीर्तिताः । योगास्तांश्चापि युञ्जीत यथादोषं चिकित्सकः ॥ २९ ॥

वातादिजन्य श्वास, और खांसीमें जो औषधि कही है वे सब यथादोषानुसार स्वरभंगमें भी प्रयोग करनी चाहिएँ ॥ २९ ॥

चव्यादिचूर्ण ।

चव्याम्लवेतसकटुत्रयतिन्तिडीकं तालीसजीरकतुगादहनैः समांशैः ॥ चूर्णं गुडप्रमुदितं त्रिसुगन्धियुक्तं वैस्वर्यपीनसकफारुचिषु प्रशस्तम् ॥ ३० ॥

चव्य, अमलवेत, सोंठ, मिरच, पीपल, इमली, तालीसपत्र, जीरा, वंशलोचन और चीता ये सब औषधियें समान भाग लेकर चूर्ण करके गुडमें मिलाकर और उसमें कुछ त्रिसुगन्धिका चूर्ण डालकर खाय तो स्वरहीनता, पीनस, कफ और अरुचि दूर होती है ॥ ३० ॥

कण्टकारिघृत ।

व्याघ्रीस्वरसाविपक्वं रास्नावाट्यालगोक्षुरव्योषैः । सर्पिः स्वरोपघातं निहन्ति कासञ्च पञ्चविधम् ॥ ३१ ॥

कटेरीके स्वरसमें रास्ना, खिरैंटी, गोखरू और त्रिकुटा इनका कल्क और घृत डालकर घृतको पकावे यह घृत--स्वरभंग और पांचोंप्रकारकी खांसीको दूर करता है ॥ ३१ ॥

शुष्कद्रव्यमुपादाय स्वरसानामसम्भवे ।वारिण्यष्टगुणे साध्यं ग्राह्यं पादावशेषितम् ॥ ३२ ॥ स्वरसानां चालाभे चूर्णस्याढकमाढकमुदकस्य च । तद्वारि पर्युषितं मृदितं स्वरसवत्प्रयोज्यम् ॥ ३३ ॥

जो किसी द्रव्यका स्वरस न मिले वहां एक भाग सूखे द्रव्य लेकर आठगुने जलमें पकावे । जब चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उसको ग्रहण करे । अथवा रस न मिलनेपर सूखे द्रव्योंका चूर्ण एक आढक और एक आढक जल लेकर भिगो देवे

जब यह द्रव्य खूब नरम होजायँ तब छानकर उसका स्वरस ग्रहण करे ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

हिक्काश्वासे क्षये कासे स्वर्याणि पठितानि तु। सर्पींषि तानि योज्यानि भिषग्भिः स्वरसंक्षये ॥ ३४ ॥

हिचकी, श्वास, क्षय, खांसी, स्वरके नाश होनेमें जो स्वरको ठीक करनेवाले घृत कहे हैं उनका प्रयोग करै ॥ ३४ ॥

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायां स्वरभेदाधिकार सम्पूर्ण।

अथारोचकाधिकार।

वातादिभिः शोकभयातिलोभक्रोधैर्मनोघ्नाशनरूपगन्धैः। अरोचकाः स्युः परिहृष्टदन्तः कषायवक्त्रश्च नरोऽनिलेन ॥ १ ॥

वातादिदोष, शोक, भय, अत्यन्त लोभ, क्रोध और मनको बिगाड़नेवाले आहार, रूप और गन्धको सेवन करनेसे पांच प्रकारका अरोचक रोग उत्पन्न होता है। उसमें वातकी अरुचिमें दांत खट्टे और मुख कषैला होता है ॥ १ ॥

कट्वम्लमुष्णं विरसञ्च पूति पित्तेन विद्याल्लवणञ्च वक्त्रम्। माधुर्य्यपैच्छिल्यगुरुत्वशैत्यविबन्धसम्बन्धयुतं कफेन ॥ २ ॥

पित्तकी अरुचिमें–मुख कटु, गरम, नीरस, दुर्गन्धित और नमकीन होता है। कफकी अरुचिमें-मुख मधुर, लिवलिवा, भारी, शीतल,- बँधासा और कफसे लिहसासा होता है ॥ २ ॥

अरोचके शोकभयातिलोभक्रोधाद्यहृद्याशुचिगन्धजे स्यात्। स्वाभाविकञ्चास्यमथारुचिश्च त्रिदोषजेनैकरसं भवेत्तु ॥ ३ ॥

शोक, भय, अतिलोभ, क्रोधादि, मनको बिगाडनेवाले पदार्थ और दुर्गन्धित वस्तु इनसे उत्पन्न हुई अरुचिमें मुखका स्वाद स्वाभाविक होता है और त्रिदोषज अरुचिमें मुखका स्वाद अनेक रसोंवाला होता है ॥ ३ ॥

हृच्छूलपीडनयुतं पवनेन पित्तात्तृड्दाहशोषबहुलं सकफप्रसेकम्। श्लेष्मात्मकं बहुरुजं बहुभिश्च विद्याद्वैगुण्यमोहजडताभिरथापरञ्च ॥ ४ ॥

वातकी अरुचिमें हृदयमें शूल और पीडा होती है। पित्तकी अरुचिमें तृषा, दाह और अत्यन्त शोष होता है। कफकी अरुचिमें मुखसे बहुत कफ गिरता है, बहुत दोषोंकी अरुचिमें अनेकप्रकारकी पीडा होती है। तथा मनव्याकुलता, मोह और जडता ये लक्षण भय शोकादिजन्य अरुचिमें होते है ॥ ४ ॥

प्रक्षिप्तन्तु मुखे ह्यन्नं जन्तुर्न खादयेद्यदि। अरोचकः स विज्ञेयो भक्तद्वेषमतः शृणु ॥ ५ ॥ चिन्तयित्वा तु मनसा दृष्ट्वा श्रुत्वा तु भोजनम्। द्वेषं करोति यो जन्तुः स भक्तद्वेष उच्यते ॥ ६ ॥

जो मनुष्य मुखमें दिये हुए अन्नको न खाय अर्थात् वह अन्न उसके मुखमें न चले उसको अरुचि कहते हैं। भोजनको मनमें चितवन करके या देख कर और सुन करके जो भोजनसे द्वेष करता है उसको भक्तद्वेष कहते हैं ॥ ५ ॥ ६ ॥

यस्य चान्ने भवेच्छ्रद्धा स भक्तच्छन्द उच्यते। कुपितस्य भयार्त्तस्य ज्वरितस्य विरोधकः ॥ ७ ॥

क्रोध, भय और ज्वरके विरोधसे जो अन्नपर अश्रद्धा होती है उसको भक्तच्छन्द कहते हैं ॥ ७ ॥

अरुचिचिकित्सा।

बस्तिः समीरणे पित्ते विरेको वमनं कफे। कुर्य्याद्धृद्यानुकूलानि हर्षणञ्च मनोघ्नजे ॥ ८ ॥

वातकी अरुचिमें बास्तिकर्म्म, पित्तकी अरुचिमें विरेचन, कफकी अरुचिमें वमन और मनको बिगाडने

वाले पदार्थोंसे उत्पन्न हुई अरुचिमें हृदयके अनुकूल और आनन्दजनक पदार्थोंका सेवन करना चाहिये ॥ ८ ॥

वान्तो वचाद्भिरनिले विधिवत् पिबेच्च स्नेहोष्णतोयमदिरान्यतमेन चूर्णम् । कृष्णाविडङ्गयवभस्महरेणुभार्ङ्गीरास्नैलहिंगुलवणोत्तमनागराणाम् ९॥

वातकी अरुचिमें प्रथम वचके द्वारा वमन कराकर पश्चात् विधिपूर्वक स्नेह, उष्णजल, अथवा मदिरा इनमेंसे किसी एकके साथ पीपल, वायविडंग, जवाखार, रेणुका, भारंगी, रायसन, इलायची, हींग, सैंधानमक और सोंठ इनके चूर्णको सेवन करे ॥९॥

पैत्ते गुडांबुमधुकैर्वमनं प्रशस्तं लेहः ससैन्धवसितामधुसर्पिरिष्टः ॥

पित्तकी अरुचिमें गुडका शरबत और मधुर औषधियोंके द्वारा वमन कराकर पश्चात् सैंधानमक, मिश्री, मुलेठी और घी मिलाकर चाटे ।

निम्बांबुछर्दितवतः कफजेऽनुपानं राजद्रुमांबुमधुना सह दीप्यकाढ्यम्॥१०॥

कफकी अरुचिमें नीमके रससे वमन कराकर पश्चात् अमलतासके काथमें शहद और अजमोदका चूर्ण डालकर पान करे ॥ १० ॥

मरिचं मधुना लेह्यं कफजे रोचके भिषक् । अरुचौ कवलास्तावद्धूमाः सुमुखधावनम् ॥ मनोज्ञमन्नपानञ्च हर्षणाश्वासनानि च ॥ ११ ॥

कफकी अरुचिमें कालीमिरचोंके चूर्णको शहदमें मिलाकर चाटे । कवलधारण, धूमपान, मुखधावन, मनोहर अन्नपान, आनन्दजनक वार्ता और धीरज बँधावना ये सब कर्म्म अरुचिमें करे ॥११ ॥

कुष्ठसौवर्चलाजाजीशर्करामरिचं विडम् । धान्यैलापद्मकोशीरपिप्पल्यश्चन्दनोत्पलम् ॥१२॥ लोध्रं तेजोवती पथ्या त्र्यूषणं सयवाग्रजम् ॥ आर्द्रदाडिमनिर्यासस्त्वजाजीशर्करायुतः ॥ १३ ॥ सतैलमाक्षिकास्त्वेते चत्वारः कवलग्रहाः । चत्वारोऽरोचकान् हन्युर्वातपित्तकफजसर्वजान् ॥१४॥

कूठ, कालानमक, जीरा, मिश्री, कालीमिरच और विडनमक (१) धनियाँ, इलायची, पद्माख, खस, पीपल, चन्दन, और कमल (२) लोध, तेजवल, हरड़, त्रिकुटा और जवाखार (३) अदरख, अनारका रस, जीरा और मिश्री (४) इन चारों योगोंका चूर्ण करके तेल और घीमें मिलाकर क्रमसे वात, पित्त, कफ और त्रिदोषज अरुचिमें कवल धारण करे ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥

अम्लिकागुडतोयञ्च त्वगेला मरिचान्वितम् । अभक्तच्छन्दरोगेषु शस्तं कवलधारणम् ॥ १५ ॥

इमली, गुडका शरबत, दालचीनी, इलायची और कालीमिरच इनका कवल धारण करना अभक्तच्छन्दरोगमें हितकारी है ॥ १५ ॥

शृङ्गवेररसञ्चैव मधुना सह योजयेत् । अरुचिश्वासकासघ्नं प्रतिश्यायकफापहम् ॥ १६ ॥

अदरखके रसमें शहद मिलाकर सेवन करे तो अरुचि, श्वास, खांसी, प्रतिश्याय और कफ नष्ट होता है ॥ १६ ॥

भोजनाग्रे सदा पथ्यं जिह्वाकण्ठविशोधनम् । अग्निसन्दीपनं हृद्यं लवणार्द्रकभक्षणम् ॥ १७ ॥

भोजनसे पहले सैंधानमक मिलाकर अदरखको भक्षण करना सदैव पथ्य है । जिह्वा और कंठशोधक है, अग्निको दीपन करनेवाला और हृदयको हितकारी है ॥ १७ ॥

कारव्यजाजीपत्रैलाव्योषवृक्षाम्लदाडिमम् । सक्षौद्रशर्करं हृद्यं रुचिवह्निप्रदीपनम् ॥ १८ ॥

कलौंजी, जीरा, तेजपत्र, इलायची, त्रिकुटा, विषाम्बिल और अनारदाना इनका चूर्ण करके शहद और मिश्रीमें मिलाकर सेवन करे । यह हृदयको हितकारी, रुचिकारक और अग्निको दीपन करनेवाला है ॥ १८ ॥

इच्छाविनाशजनितेषु च बाधकेषु भावान् भवाय वितरेत्खलु शक्यरूपान् । अर्थेन चातिपतितेषु पुनर्भवाय पौराणिकैः श्रुतिपथैरनुमानयेत्तम्॥१९॥ दैन्यं गते मनसि बोधनमत्र शस्तं दद्यात्प्रियं मनसि सेव्यमरोचकेषु॥२०॥

इच्छाको नष्ट करनेवाले भावोंको रोके, अत्यन्त नष्ट हुई इच्छाको फिरसे पुराण वेद और शास्त्रोंके द्वारा संतुष्ट करे, मनमें अत्यन्त दीनता हो तो ज्ञानोपदेश करे तथा जो पदार्थ मनको प्रिय हों उनको देवे और सेवन करावे ॥ १९ ॥ २० ॥

सात्म्यान् सुदेशरचितान् विविधांश्च भक्ष्यान् पानानि मूलफलखाण्डवरागलेहान् । सेवद्रसांश्च विविधान्विविधैः प्रकारैर्भुञ्जीत चापि लघुरूक्षमनःसुखानि ॥ २१ ॥

सात्म्य (जो अपनी प्रकृतिके अनुसार हो)और अपने देशके बनाये हुए अनेक प्रकारके भक्ष्य, पान, मूल, फल, खाण्डव,राग और लेह तथा नानाप्रकारके रसोंको अनेक प्रकारसे सेवन करे । हलके और रूखे तथा मनको सुख देनेवाले पदार्थोंका सेवन करे ॥ २१ ॥

यस्य यदीप्सितं किञ्चित्तदेयमरुचौ सदा । विडङ्गमधुसंयुक्तो रसो दाडिमसम्भवः ॥ असाध्यमपि संहन्यादरुचिं वक्त्रधारितः ॥ २२ ॥

जो पदार्थ अपनेको इच्छित हों उनको अरुचिमें किंचित् सेवन करे । वायविडंगको शहदमें मिलाकर अनारके रसके साथ मुखमें कवल धारण करे । यह असाध्य अरुचिको भी दूर करता है ॥ २२ ॥

कलहंसकाँजी।

अष्टादशशिग्रुफलानि दशमरिचानि विंशतिपिप्पलल्यः । आर्द्रकपलं गुडपलं प्रस्थत्रयमारनालस्य ॥ २३ ॥ विडलवणसहितमेतत् खजाहतं सुरभिगन्धाढ्यम् । व्यञ्जनसहस्रघाति ज्ञेयं कलहंसकं नाम्ना ॥ २४ ॥

सहिंजनेके बीज १८, कालीमिरच १०, पीपल २०, अदरख ४ तोले, गुड ४ तोले और कांजी ३ प्रस्थ, विडलवण ४ तोले, इन सबको एकत्र मिलाकर रखदेवे और उसमें त्रिजातकादि सुगन्धि डालदेवे । यह कलहंसनामक काँजी स्वरको उत्तम, रुचिको उत्पन्न और अग्निको दीपन करती है ॥ २३॥ २४ ॥

दाडिमादिचूर्ण।

द्वे पले दाडिमादष्टौ खण्डाद्व्योषात्पलत्रयम् । त्रिसुगन्धिपलश्चैकं चूर्णमेकत्र कारयेत् ॥ २५ ॥ दीपनं रोचनं हृद्यं पीनसज्वरकासजित् ॥

अनारदाना ८ तोले, खाँड ८ पल, त्रिकुटा ३ पल और त्रिसुगन्धि४ तोले लेवे । सबको एकत्र मिलाकर बारीक पीसकर सेवन करे । यह अग्निको दीपन करनेवाला, रुचिकारक,हृदयको हितकारी तथा पीनस, ज्वर और खाँसीको दूर करता है ॥ २५ ॥

खाण्डवचूर्ण।

पिप्पलीनां शतश्चैकं द्वे शते मरिचस्य च । सितापलचतुष्कञ्च नागरार्धपलं तथा ॥ २६ ॥ धान्यसौवर्चलाजाज्यस्त्वगेलैश्चार्धकर्णिके । कोलदाडिमवृक्षाम्लयवानी चाम्लवेतसम् ॥ २७ ॥ कार्षिकांश्चूर्णयेदेतान् हृद्यमन्नमरोचनम् । प्लीहहृद्ग्रहणीदोषपञ्चकासानिबर्हणः ॥ २८ ॥ खाण्डवो नाम गुल्मार्त्तिविबन्धानाहशूलनुत् ॥

पीपल १००, कालीमिरच २००,मिश्री १६ तोले सोंठ२ तोले, धनियां, कालानमक, जीरा, दालचीनी और इलायची प्रत्येक छः छः मासे । बेर,अनारदाना विषाविल, अजवायन और अम्लवेत प्रत्येकका चूर्ण एक एक तोला लेवे सबको एकत्र पीसकर चूर्ण कर लेवे । यह चूर्ण—हृदयको हितकारी, अन्नपर रुचि करानेवाला, तथा प्लीहा, हृदयरोग, संग्रहणीरोग,पांचोंप्रकारकी खाँसी, गुल्म, विबन्ध, आनाह और शूलको नष्ट करनेवाला है ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥

महाखाण्डवचूर्ण ।

तालीशोषणचव्यनागलवणैस्तुल्यांशकैर्द्विस्ततः कृष्णाग्रन्थिकतिन्तिडीकद्रुतभुक्त्वग्जीरकाख्यैर्युतः॥ विश्वैलाबदराम्लवेतसघनैर्धान्याजमोदायुतैस्त्र्यंशैर्दाडिमपाद एष विहितः श्रेष्ठः सिताद्धर्युतः॥२९॥ कण्ठास्योदरहृद्विकारशमनः कायाग्निसन्दीपनो गुल्माध्मानविषूचिकागुदरुजाश्वासक्रिमिच्छर्दिहा ॥ कासारुच्यतिसारमूढमरुतां वा हृद्रुजां नाशनश्चूर्णोऽयं भिषजामतीव कथितः ख्यातो महाखाण्डवः ॥ ३०॥

तालीसपत्र, कालीमिरच, चव्य, नागकेशर और सेंधानमक प्रत्येक एक २ तोला, पीपल, पीपलामूल, समाक, चीतेकी छाल, दालचीनी और जीरा प्रत्येक दो २ तोले, सोंठ,इलायची, बेर, अम्लवेत, नागरमोथा,धनियाँ और अजमोद प्रत्येक तीन तीन तोले लेवे। सबका एकत्र चूर्ण करके सब चूर्णसे चौथाई भाग अनारदाना और मिश्री चूर्णसे आधी लेवे फिर सबको एकत्र मिलाकर सेवन करे। यह महाखाण्डवचूर्ण—कंठ, मुखरोग, उदररोग, हृदयरोग, गुल्म, आध्मान,विषूचिका, गुदजरोग, श्वास, कृमिरोग, वमन, खाँसी, अरुचि, अतीसार,मूढवात और हृदयरोगको नष्ट करता है। तथा जठराग्निको दीपन करता है ॥ २९ ॥ ३० ॥

क्षतोक्तन्तु यवान्याद्यं चूर्णमत्र प्रयोजयेत् ॥ ३१॥

क्षयरोगमें जो यवान्यादि चूर्ण कहा है वह यहां भी प्रयोग करना चाहिये ॥ ३१॥

यवानीखाण्डवचूर्ण ।

यवानीं तिंतिडीकश्च नागरं साम्लवेतसम् । दाडिमं बादरश्चाम्लं कार्षिकानुपकल्पयेत् ॥ ३२ ॥ धान्यसौवर्चलाजाजीवराङ्गमर्धकार्षिकम् । पिप्पलीनां शतश्चैकं द्वे शते मरिचस्य च ॥ ३३ ॥ शर्करायाश्च चत्वारि पलान्येकत्र चूर्णयेत् । जिह्वाविशोधनं हृद्यं तच्चूर्णं भक्तरोचकम् ॥ ३४ ॥ हृत्पीडापार्श्वशूलघ्नं विबन्धानाहनाशनम् । कासश्वासहरं ग्राहि ग्रहण्यर्शोविकारनुत् ॥ ३५ ॥

अजवायन, समाक, सोंठ, अमलवेत, अनारदाना और खट्टे बेर प्रत्येक एक२तोला,धनियाँ,कालानमक, जीरा और दालचीनी प्रत्येक छःछः मासे,पीपल१०० कालीमिरच २०० और खांड ४०० पल लेवे फिर सबको एकत्र बारीक पीसकर चूर्ण कर लेवे यह चूर्ण—जिह्वाको शुद्ध करनेवाला,हृदयको हितकारी, भोजनपर रुचि करानेवाला तथा हृदयकी पीडा, पार्श्वशूल, विबन्ध, आनाह, खाँसी और श्वासको हरनेवाला, मलरोधक,संग्रहणी और बवासीरको दूर करनेवाला है ॥३२॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

लवंगादि चूर्ण ।

लवङ्गकङ्कोलमुशीरचन्दनं नतं सनीलोत्पलकृष्णजीरकम् । एला सकृष्णागुरुभृङ्गकेशरं कणा सविश्वानलदं सहांबुना ॥ ३६ ॥ कर्पूरजातीफलवंशरोचनं सिताष्टभागं समसूक्ष्मचूर्णितम् । सुरोचनं तर्पणमग्निदीपनं बलप्रदं वृष्यतमं त्रिदोषनुत् ॥ ३७ ॥ उरोविबन्धं तमकं गलग्रहं सश्वासयक्ष्मारुचिपीनसं तथा । ग्रहण्यतीसारमथासृजः क्षयं प्रमेहरोगश्च निहन्ति सत्वरम् ॥ ३८ ॥

लौंग, कंकोल, खस, चन्दन, तगर, नीलोत्पल, कालाजीरा, इलायची, अगर, दालचीनी, नागकेशर, पीपल, सोंठ, चीता, सुगन्धिवाला, कपूर, जायफल और वंशलोचन ये सब समान भाग और मिश्री आठ भाग लेकर सबका एकत्र चूर्ण करे । यह चूर्ण—रुचिकारक, तृप्तिकारक,अग्निदीपक,बलदायक,अत्यन्त वृष्य, त्रिदोषनाशक तथा हृदयरोग, विबन्ध, तमक, गलग्रह, श्वास, राजयक्ष्मा, अरुचि, पीनस, संग्रहणी, अतीसार, रुधिरक्षय और प्रमेह रोगको नष्ट करनेवाला है ॥ ३६ ॥३७॥ ३८॥

सूक्ष्मैलादिचूर्ण ।

सूक्ष्मैलापत्रकं त्वक् च पत्रं तालीशजन्तुगा । पृथ्वीका जीरकं धान्यं दाडिमं चार्द्धकार्षिकम् ॥ ३९ ॥ पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यचित्रकनागरम् । मरिचं दीप्यकश्चैव वृक्षाम्लं चाम्लवेतसम् ॥ ४० ॥ अजमोदाश्वगन्धा च दधित्थं चापि कार्षिकान् । प्रदेया चातिशुद्धायाः शर्करायाश्चतुष्पलम् ॥ ४१ ॥ चूर्णमग्निप्रसादं स्यात्परमं रुचिवर्द्धनम् । प्लीहानं कासमर्शांसि शूलं श्वासं वमिं ज्वरम् ॥ ४२ ॥ निहन्ति दीपयत्यग्निं बलवर्णप्रदं परम् । वातानुलोमनं हृद्यं कण्ठजिह्वाविशोधनम् ॥ ४३ ॥

छोटी इलायची, तेजपत्र, दालचीनी, तालीसपत्र वंशलोचन, बड़ी इलाची, जीरा, धनियाँ और अनारदाना प्रत्येक छः छः मासे लेवे, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ, कालीमिरच, अजवायन, विषांबिल, अमलेवत, अजमोद, असगन्ध और कैथ प्रत्येक एक एक तोला और उत्तम सफेद चीनी १६ तोले लेवे, सबको एकत्र बारीक पीसकर चूर्ण बनावे । यह चूर्ण-अग्निको अत्यन्त दीपन करता है और रुचिकारक, तथा प्लीहा, खाँसी, बवासीर, शूल, श्वास, वमन और ज्वरको हरनेवाला, तथा अग्नि, बल वर्णको बढानेवाला, वातको अनुलोमन करनेवाला, हृदयको हितकारी, कण्ठ और जिह्वाको शुद्ध करनेवाला है ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

व्याघ्रीघृत ।

व्याघ्रीस्वरसविपक्कं रास्नाकट्फलगोक्षुरव्योषैः । सर्पिः स्वराभिघातं हन्यात् कासं च पञ्चविधम् ॥ ४४ ॥

बड़ी कटेरीके स्वरसमें रायसन, कायफल, गोखरू और त्रिकुटेके कल्कके द्वारा घृतको सिद्ध करे । यह घृत-स्वरभंग और पांचों प्रकारकी खाँसीको हरता है ॥ ४४ ॥

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायां
अरोचकाधिकार सम्पूर्ण ।

अथ छर्दिरोगाधिकार ।



दुष्टैर्दोषैः पृथक् सर्वैर्बीभत्सालोकनादिभिः । छर्दयः पञ्च विज्ञेयास्तासां लक्षणमुच्यते ॥ १ ॥

दुष्ट हुए वातादिदोषोंसे पृथक् २ तीन प्रकारकी, त्रिदोषसे एक और घृणित पदार्थोंके देखनेसे या सूँघनेसे अथवा भक्षण करनेसे एक, ऐसे पांच प्रकारकी वमन उत्पन्न होती है । अब उनके लक्षण कहते हैं ॥ १ ॥

अतिद्रवैरतिस्निग्धैरहृद्यैर्लवणादिभिः । अकाले चातिमात्रैश्च तथाऽसात्म्यैश्च भोजनैः ॥ २ ॥ श्रमाद्भयात्तथोद्वेगादजीर्णात्क्रिमिदोषतः । नार्य्याश्चापन्नसत्वायास्तथातिद्रुतमश्नतः ॥३॥ बीभत्सैर्हेतुभिश्चान्यैर्द्रुतमुत्क्लेशितो बलात् । छादयन्नाननं वेगैरर्दयन्नङ्गभञ्जनैः । निरुच्यते छर्दिरिति दोषो वक्त्रं प्रधावति ॥ ४ ॥

अत्यन्त पतले, अत्यन्त चिकने, हृदयको अहितकारी और बहुत लवणके पदार्थोंको भक्षण करनेसे, विना समय भोजन करनेसे, अधिकतर भोजन करनेसे, असात्म्य (स्वभावके विरुद्ध) भोजन करनेसे, श्रम, भय, उद्वेग, अजीर्ण और क्रिमिदोषसे, गर्भवती स्त्रीके गर्भकी पीडासे, बहुत शीघ्र भोजन करनेसे, तथा अन्यान्य बीभत्स मुर्दार (ग्लानिकर) कारणोंसे, वातादिदोष अपने स्थानसे भ्रष्ट होकर शीघ्र बलपूर्वक अपने वेगोंसे मुखको आच्छादित करके और अंगोंको तोड़ते हुए किये हुए भोजनको मुखके द्वारा निकालते हैं इसको छर्दि (वमन) कहते हैं ॥ २ ॥ ॥ ३ ॥ ४ ॥

पूर्वरूप ।

हल्लासोद्गारसंरोधः प्रसेको लवणस्तनुः । द्वेषोऽन्नपाने च भृशं वमीनां पूर्वलक्षणम् ॥ ५ ॥

उबकाईका आना, डकारका रुकना, मुखसे पानी का गिरना, मुखमें नमककासा स्वाद और अन्नपानपर अत्यन्त अरुचि हो ये वमनके पूर्वलक्षण हैं ॥ ५॥

वातच्छर्दिके लक्षण ।

हृत्पार्श्वपीडामुखशोषशीर्षनाभ्यर्त्तिकासस्वरभेदतोदैः । उद्गारशब्दप्रबलं सफेनं विच्छिन्नकृष्णं तनुकं कषायम् ॥ ६ ॥ कृच्छ्रेण वाऽल्पं महता च वेगेनार्त्तोऽनिलाच्छर्दयतीह दुःखम् ॥ ७ ॥

हृदय और पसलियोंमें पीड़ा, मुखशोष, शिर और नाभिमें शूलके समान पीडा हो, खाँसी, स्वरभेद और तोडने सरीखी पीड़ा हो, बहुत जोरसे डकार आवे, झागसहित रुक रुक कर थोंडी २ काले रंगकी पतली और कषैली स्वादवाली वमन होती है जिसमें अत्यन्त कठिनतासे, बहुत वेगसे थोडी वमन आवे और अत्यन्त दुःख हो ये वातकी छर्दिके लक्षण जानने ॥ ६ ॥ ७ ॥

असाध्यलक्षण ।

क्षीणस्य या छर्दिरतिप्रवृत्ता सोपद्रवा शोणितपूययुक्ता । सचन्द्रिकां तां प्रवदन्त्यसाध्यां साध्यां चिकित्सेदनुपद्रवाश्च ॥ ८ ॥

क्षीण मनुष्यके अत्यन्त वेगसे वारंवार होनेवाली उपद्रवयुक्त, रुधिर और राधसहित तथा मोरकी चन्द्रिकाके समान ऐसी वमन असाध्य है । उपद्रवरहित वमनको साध्य समझकर चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ८ ॥

अथ चिकित्सा ।

आमाशयात् क्लेशभवा हि सर्वाः स्युश्छर्दयो लङ्घनमेव तस्मात् । प्रकारयेन्मारुतजां विना तु संशोधनं वा कफपित्तहारि ॥ ९ ॥

आमाशयमें उत्क्लेशके होनेसे सब प्रकारकी वमन होती हैं । इस कारण वातकी वमनको छोड़कर शेष छर्दियोंमें लंवन कराना अथवा कफपित्तनाशक जुल्लाब देना चाहिये ॥ ९ ॥

ससैन्धवं पिबेत्सर्पिर्वातच्छर्दिनिवारणम् । लवणत्रययुक्तेन संयुक्तं त्र्यूषणेन च । हन्यात्क्षीरोदकं पीतं छर्दिं पवनसम्भवाम् ॥ १० ॥

सैंधानमक और घीको मिलाकर सेवन करनेसे वातकी वमन दूर होती हैं। तीनों लवण और त्रिकुटेके चूर्णको दूध और जलके साथ पान करनेसे वातकी वमन दूर होती है ॥ १० ॥

मुद्गामलकयूषं वा ससर्पिष्कं ससैन्धवम् । यवागूं मधुमिश्रां च पञ्चमूलीशृतां पिबेत् ॥ ११ ॥

मूँग और आमलेके यूषको घी या सैंधेनमकमें मिलाकर पान करे, अथवा पंचमूलके क्काथके द्वारा यवागू बनाकर शहद मिलाकर पान करे ॥ ११ ॥

धान्याकविश्वदशमूलकषायसिद्धान् यूषारसान् पवनवम्यरुचिप्रशान्त्यै । पीत्वा सुखानि लभते मधुभिः श्रितं वा शङ्खाह्वया स्वरसमूषणचूर्णयुक्तम् ॥ १२ ॥

धनियाँ, सोंठ और दशमूल इनके क्काथके द्वारा रस अथवा यूषको बनाकर वातकी वमन और अरुचिको दूर करनेके लिये पान करे, अथवा शंखाहुली के स्वरसमें कालीमिरचका चूर्ण डालकर पान करे तो सुख होता है ॥ १२ ॥

पित्तच्छर्दिके लक्षण ।

मूर्च्छापिपासामुखशोषमूर्द्धताल्वक्षिसंतापतमोभ्रमार्त्तः । पीतं भृशोष्णं हरितं सतिक्तं धूम्रञ्च पित्तेन वमेत्सदाहम् ॥ १३ ॥

मूर्च्छा, तृषा, मुखका सूखना, शिर; तालु और नेत्रोंमें सन्ताप हो, भ्रमहो, पीला, अत्यन्त गरम, हरा, कडवा, धुँयेंके रंगका और दाहयुक्त ऐसे पित्तको वमन करे, यह पित्तकी छर्दिके लक्षण जानने ॥ १३ ॥

चिकित्सा ।

छर्द्यां पित्तोद्भवायान्तु श्लक्ष्णकुम्भोद्भवं रजः। मृद्वीकेक्षुविदारीणां रसो रेकाय शस्यते ॥ १४ ॥

पित्तकी वमनमें घडेकी मिट्टीको बारीक पीसकर दाख, ईख और विदारीकन्द इनके रसमें मिलाकर पीवे तो पित्तकी वमन दूर होती है ॥ १४ ॥

पित्तोपशमनीयानि योज्यानि च हितानि च । कषाययूषकल्कानि घ्नन्ति पित्तोत्तरं वमिम् ॥ १५ ॥

पित्तकी वमनमें पित्तको शमन करनेवाले और पित्तमें हितकारक काथ, यूष और कल्क प्रयोग करे १५

लाजामसूरयवमुद्गकृता यवागूः छर्द्यां हिता मधुयुता बहुपित्तजायाम् । यूषाः सुगन्धिमधुतिक्तरसप्रगाढामृद्भृष्टलोष्ठभवमंबुहितं तृषायाम् ॥१६॥

खीलें, मसूर, जौ और मूंग इनकी यवागू बनाकर शहद डालकर अधिक पित्तकी छर्दिमें पानकरे, सुगन्धित पदार्थ, मधुर द्रव्य और तिक्त पदार्थ इनका यूष या मांड पान करे और तृषाको शान्त करनेके के लिये मिट्टीको अग्निमें तपाकर शीतल जलमें बुझा कर उस जलको पान करे ॥ १६ ॥

तृड्दाहपित्तबहुलेषु वमीगतेषु द्राक्षारसं पिबति माक्षिकसंयुतश्च ॥ १७ ॥

तृषा और दाहयुक्त ऐसी पित्तकी वमनमें दाखके रसको शहद मिलाकर पान करे ॥ १७ ॥

सोदीच्यं गैरिकं पेयं सेव्यं वा तंडुलांबुना । शीतं धात्रीरसाद्यं वा पित्तच्छर्दिनिवृत्तये ॥ १८ ॥

सुगन्धवाला और गेरू इनको चावलोंके जलमें पीसकर अथवा आमलेके शीतल रसमें मिलाकर पान करनेसे पित्तकी वमन शमन होती है ॥ १८ ॥

चन्दनेनाक्षमात्रेण संयोज्यामलकीरसम् । पिबेन्माक्षिकसंयुक्तं छर्दिस्तेन निवार्यते ॥ १९ ॥

एक तोला चन्दनको आमलोंके रसमें पीसकर शहद मिलाकर पान करे तो वमन दूर होती है १९॥

चन्दनश्च मृणालश्च वालकं तगरं वृषम् । सतण्डुलोदकक्षौद्रः कल्कः पीतो वमिं जयेत् ॥ २० ॥

चन्दन, कमलकी नाल, सुगन्धवाला, तगर, अडूसा इनका कल्क बनाकर चावलोंके जलके साथ शहद मिलाकर पीवे तो वमन दूर होती हैं ॥ २०॥

कषायो भृष्टमुद्गस्य सलाजमधुशर्करः । छर्द्यतीसारतृड्दाहज्वरघ्नः संप्रकाशितः ॥ २१ ॥

भुनीहुई मूँगके काथमें खीलें, शहद और मिश्री मिलाकर पान करनेसे वमन, अतीसार, तृषा, दाह और ज्वर नष्ट होता है ॥ २१ ॥

काथः पर्पटजः पीतः सक्षौद्रः छर्दिनाशनः ॥ २२ ॥

पित्तपापडेके काथमें शहद डालकर पान करनेसे वमन दूर होती है ॥ २२ ॥

हरीतकीनां चूर्णन्तु लिह्यान्माक्षिकसंयुतम् । अधोभागीकृते दोषे छर्दिः शीघ्रं निवर्तते ॥ २३ ॥

हरड़के चूर्णको शहदमें मिलाकर चाटे तो दोषों के अधोभागमें जानेसे वमन शीघ्र बंद होजाती है ॥ २३ ॥

गुडूचीत्रिफलानिम्बपटोलैः क्वथितं पिबेत् । क्षौद्रयुक्तं निहन्त्याशु छर्दिं पित्ताम्लसम्भवाम् ॥ २४ ॥

गिलोय, त्रिफला, नीम और पटोलपत्र इनके काथमें शहद डालकर पीनेसे अम्लपित्तसे उत्पन्न हुई वमन दूर होती है ॥ २४ ॥

सिताचन्दनमध्वक्तं लिहेद्वा मक्षिकाशकृत् । सोपद्रवा पित्तभवा छर्दिरेतेन शाम्यति ॥ २५ ॥

मिश्री, चन्दन और शहद इनको एकत्र करके मक्खीकी विष्ठा मिलाकर सेवन करनेसे उपद्रव पित्तकी वमन दूर होती है ॥ २५ ॥

सर्पिः क्षौद्रसितोपेतान् लाजसक्तून् पिबेत्तथा। पित्तच्छर्दिश्च तेनाशु प्रशाम्यति सुदुस्तरा ॥ २६॥

घी, शहद, मिश्री और खीलोंके सक्तु इनको एकत्र मिलाकर सेवन करनेसे दुस्तर पित्तकी वमन दूर होती है ॥ २६ ॥

कफच्छर्दिके लक्षण।

तन्द्रास्यमाधुर्य्यकफप्रसेकसन्तोषनिद्रारुचिगौरवार्त्तः। स्निग्धं घनं स्वादु कफाद्विशुद्धं सलोमहर्षोऽल्परुजं वमेत्तु ॥ २७॥

तन्द्रा, मुखमें मधुरता, मुखके द्वारा कफका गिरना, सन्तोष, निद्रा, अरुचि, भारीपन, चिकना, गाढा, मीठा और शुद्ध ऐसा कफ वमनमें गिरना, रोमांच और अल्प पीडाका होना ये लक्षण कफकी छर्दिमें होते हैं ॥ २७ ॥

चिकित्सा।

छर्द्यां कफोद्भवायान्तु वमनं योजयेद्भिषक्। तोयैः सर्षपसिन्धूत्थाहिंगुनिम्बकणायुतैः ॥ २८ ॥

कफसे उत्पन्न हुई वमनमें सरसों, सैंधानमक, हींग, नीमकी छाल और पीपल इनके काथके द्वारा वमन करावे ॥ २८ ॥

शस्यन्ते शालिगोधूमयवमुद्गमकुष्टकाः। तक्रकाञ्जिकयूषाश्च पटोलाद्याश्च भोजने॥ २९ ॥

शालिचावल, गेहूँ, जौ, मूंग और मोठ इनका यूष तक्र, कांजी सहित और पटोलादिका यूष भोजनके लिए देवे ॥ २९ ॥

आरग्वधादिनिर्यूहं दशाङ्गं योग्यमेव च। पाययेन्मधुसंयुक्तं कफच्छर्दिविनाशनम् ॥ ३०॥

आरग्वधादि निर्यूह और दशांगक्काथमें शहदमिलाकर सेवन करनेसे कफकी वमन दूर होती है॥ ३०॥

मनःशिलायाः फलपूरकस्य रसैः कपित्थस्य च पिप्पलीनाम्। क्षौद्रेण चूर्णं मरिचैश्च युक्तं लि कफच्छर्दिमुदीर्णवेगम् ॥ ३१ ॥

मैनशिल, बिजौरे नींबूका रस, कैथका रस, पीपलका चूर्ण और कालीमिरचोंका चूर्ण उन सबको एकत्र शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे कफकी वमन शमन होती है ॥ ३१ ॥

विडङ्गत्रिफलाविश्वाचूर्णं मधुयुतं जयेत्। विडङ्गप्लक्षशुङ्गानामथवा श्लेष्मजां वमिम् ॥ ३२ ॥

वायविडंग, त्रिफला और सोंठ इनका एकत्र चूर्ण करके शहदमें मिलाकर सेवन करे अथवा विडंग पिलखनके अकुरोंको पीसकर शहदमें मिलाकर चाटनेसे कफकी वमन दूर होती है ॥ ३२ ॥

सजाम्बवं वा बदरस्य चूर्णं मुस्तायुतं कर्कटकस्य शृङ्गम्। दुरालभं वा मधुसंप्रयुक्तं लिहेत्कफच्छर्दिविनिग्रहार्थम् ॥ ३३ ॥

जामुन, बेर, नागरमोथा, काकडाशिंगी और धमासा इनका एकत्र चूर्ण करके शहद मिलाकर सेवन करे तो कफकी वमन दूर होती है ॥ ३३ ॥

त्रिदोषजच्छर्दि।

शूलाविपाकारुचिदाहतृष्णा श्वासप्रमेहप्रबलाप्रसक्तम्। छर्दिस्त्रिदोषाल्लवणाम्लनालं सान्द्रोष्णरक्तं वमतां नृणां स्यात् ॥ ३४ ॥

शूल, अजीर्ण, अरुचि, दाह, तृषा, श्वास, मोह और अत्यन्त आसक्तता हो, तथा नमकीन, खट्टी, नीली, गाढी, गरम और लालरंगकी वमन हो, ये त्रिदोष वमनके लक्षण हैं ॥ ३४ ॥

असाध्यलक्षण।

विट्स्वेदमूत्राम्बुवहानि वायुःस्रोतांसि संरुध्य यदोर्ध्वमेति। उत्पन्नदोषस्य समाचितन्तु दोषं खमुद्धूय नरस्य कोष्ठात् ॥ ३५॥ विण्मूत्रयोस्त-

त्समगन्धवर्णं तृट्श्वासकासार्त्तियुतं प्रसक्तम्। प्रच्छर्दयेद्दुष्टमिहातियोगात्तयार्दितश्चाशु विनशमेति ॥ ३६ ॥

जब वायु मल, मूत्र और पसीनेको रोक करके उर्द्ध्वगतिको प्राप्त होती है तब ऊपर आनेवाले दोषोंको कोठेके बाहर निकाल कर वमन कराती है उस वमनकी मलमूत्रके समान गंध और उनके ही समान वर्ण होता है । तृषा, श्वास और खांसीकी पीड़ा हो, बहुत जोरसे दुर्गन्धित, दुष्ट वमन करे, इस वमनसे पीडित मनुष्य शीघ्रही मरजाता है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

चिकित्सा ।

पिष्ट्वा धात्रीफलं द्राक्षां शर्कराञ्च पलोन्मिताम्। दत्त्वा मधुपलञ्चैव कुडवं सलिलस्य च । वाससा गालितं पीतं हन्तिच्छर्दिं त्रिदोषजाम् ॥ ३७ ॥

आमले, दाख और सफेद खाण्ड तथा शहद ये प्रत्येक एक २ पल लेकर १६ तोले जलमें पीसकर वस्त्रमें छानकर पान करनेसे त्रिदोषजन्य वमन शमन होती है ॥ ३७ ॥

मसूरसक्तवः क्षौद्रं मर्दिता दाडिमाम्भसा । पीता निवारयत्याशु छर्दिं दोषत्रयोद्भवाम् ॥ ३८ ॥

मसूरके सत्तुओंको अनारके रसमें मर्दन करके शहद मिलाकर पीनेसे त्रिदोषजन्य वमन शमन् होती है ॥ ३८ ॥

श्रीफलस्य गुडूच्या वा कषायो मधुसंयुतः। पेयश्छर्दित्रये शीतो मूर्वा वा तण्डुलाम्बुना ॥ ३९ ॥

बेल अथवा गिलोयके काथमें शहद मिलाकर पीनेसे अथवा मूर्वाको चावलोंके जलमें पीसकर पीनेसे त्रिदोषकी वान्ति शान्त होती है ॥ ३९ ॥

समाक्षिका मधुरसा पीता वा तण्डुलाम्भसा । तर्पणं वा मधुयुतं तिसृणामपि भेषजम् ॥ ४० ॥

मूर्वाको शहत्के साथ पीसकर पीनेसे अथवा शहद युक्त तृप्तिकारक पदार्थ त्रिदोषजन्य वमननाशक है ॥ ४० ॥

कृतं गुडूच्या विधिवत्कषायं हिमसंज्ञितम् । तिसृष्वपि भवेत्पथ्यं माक्षिकेण समन्वितम् ॥ ४१ ॥

गिलोयका विधिपूर्वक हिम बनाकर शहद मिलाकर सेवन करे तो त्रिदोषजनित वमन दूर होती है ४१

युक्ताम्ललवणः पिष्ट्वा उष्णवीर्योऽथवा हितः ॥ ४२ ॥

खटाई और लवणको एकत्र पीसकर उष्ण वीर्य्य वाले पदार्थोंके साथ सेवन करनेसे वमन दूर होती है ४२

एलालवङ्गगजकेशरकोलमज्जलाजाप्रियङ्गुघनचन्दनपिप्पलीनाम् । चूर्णं सितामधुयुतं मनुजो विलिह्य च्छर्दिं निहन्ति कफमारुतपित्तजां च ॥४३॥

इलायची, लौंग, नागकेशर, बेरकी मींग, खीलें, फूलप्रियंगु, नागरमोथा, लालचन्दन और पीपल इन सबको एकत्र पीसकर मिश्री और शहद मिलाकर सेवनकरे तो कफ, वात और पित्तजन्य वमन दूर होती है ॥ ४३ ॥

कोलमज्जाकणाधात्रीलाजाविश्वफलत्रिकम् । श्यामाञ्जनाब्दकौलित्थं माक्षिकाविट्सितायुतम् ॥४४॥कणोषणकपित्थन्तु त्वगेलापत्रकं समम् । सक्षौद्राः पादिकालेहाः षडेते छर्दिनाशनाः ॥ ४५ ॥

(१) बेरकी मींग, पीपल और आमले (२) खीलें, सोंठ और त्रिफला (३) सारिवा, अञ्जन और कुलथी (४)मक्खीकी विष्ठा और मिश्री (५) पीपल, मिर्च और कैथका गूदा (६) दालचीनी, इलायची, तेजपात, इन छ योगोंमेंसे किसी एक यागको पीसकर शहद और मिश्री मिलाकर सेवन करनेसे वमन दूर होती है ॥ ४४—४५ ॥

कोलामलकमज्जानौ माक्षिकाविट् सितामधु । सकृष्णातण्डुलो लेहः छर्दिमाशु नियच्छति ॥ ४६ ॥

बेर और आमलेकी मज्जा, मक्खीकी विष्ठा, मिश्री, शहत और पीपलके चावल, इन सबको एकत्र मिलाकर चाटनेसे सब प्रकारकी वमन शान्त होती है ॥ ४६ ॥

लाजाकपित्थमधुमागधिकोषणानां-क्षौद्राभयात्रिकटुधान्यकजीरकाणाम्। पथ्याऽमृतामरिचमाक्षिकपिप्पलीनां लेहास्त्रयः सकलवम्यरुचिप्रशान्त्यै ॥ ४७ ॥

खीलें, कैथ, शहद, पीपल और काली मिरच इनका अवलेह अथवा शहद, हरड, त्रिकुटा, धनियां और जीरा इन सबका अवलेह अथवा हरड,गिलोय, काली मिरच; शहद और पीपल इनका बनायाहुआ अवलेह सब प्रकारकी वमन और अरुचिको दूर करता है ॥ ४७ ॥

मनःशिलादि लेह।

मनःशिलामागधिकोषणानां चूर्णं कपित्थाम्लरसेन युक्तम् । लाजैः समांशैर्मधुनावलीढं छर्दिं प्रसक्तामसकृन्निहन्ति ॥ ४८ ॥

मैनशिल, पीपल और काली मिरच इन सबको समान भाग लेवे और सबके बराबर खीलें लेवे सबको एकत्र पीसकर कैथ और नींबूके रसमें मिलाकर शहत डालकर सेवन करनस तत्काल सब प्रकारकी वमन दूर होती है ॥ ४८ ॥

अश्वत्थवल्कलं शुष्कं दग्धं निर्वापितं जले। तज्जलं पानमात्रेण छर्दिं जयति दुर्जयाम् ॥ ४९ ॥

पीपलवृक्षकी सूखी छालको जलाकर जलमें बुझाकर उस जलको छानकर पीनेसे तत्काल दुस्तर वमन दूर होती है ॥ ४९ ॥

जात्या रसः कपित्थस्य पिप्पलीमरिचान्वितः। क्षौद्रेण युक्तः शमयेल्लेहोऽयं छर्दिमुल्बणाम् ॥ ५० ॥ अत्र जातीशब्देन धात्र्याः ग्रहणम् ।

आमलेका रस, कैथका गूदा, पीपल और काली मिरच इनसबको एकत्र पीसकर शहद मिलाकर सेवन करनेसे दुस्तर वमन दूर होती है ॥ ५० ॥

निम्बाम्रपल्लवगवेधुकधान्यमेवं ह्रीबेरवारिमधुना पिबतोऽल्पमल्पम् । छर्दिः प्रयाति शमनं त्रिसुगन्धियुक्ता लीढा निहन्ति मधुना सदुरालभा वा ॥ ५१ ॥

नीम और आमके कोमल पत्ते, गरहेडु, धनियां और सुगन्धवाला इनका काथ बनाकर शहद मिलाकर सेवन करनेसे वमन दूर होती है अथवा धमासा और त्रिसुगन्धि इनका काथ बनाकर शहद मिलाकर सेवन करनेसे वमन शमन होती है ॥ ५१ ॥

विदलानि च मुद्गानां पिप्पल्यश्चैव कुट्टिताः। आशु तत्सलिलं पेयं समधु च्छर्दिनाशनम् ॥ ५२ ॥

मूँगकी दालको जलमें औटाकर पीपलका चूर्ण डालकर शहद मिलाकर सेवन करनेसे शीघ्र ही वमन दूर होती है ॥ ५२ ॥

तण्डुलीययुतं खादेत्कपित्थं त्र्यूषणेन वा। सौवर्चलमजाज्यश्च पिप्पलीमरिचानि च । युक्तोऽयं मधुना लेहः श्रेष्ठश्छर्दिनिवारणः ॥ ५३ ॥

मातुलुङ्गरसो लाजाशर्करामधुसंयुतः । पिप्पलीचूर्णसंयुक्तः श्रेष्ठश्छर्दिनिवारणः ॥ ५४ ॥

चौलाईको कैथके जलमें मिलाकर अथवा त्रिकुटेको कैथके रसमें मिलाकर सेवन करनेसे, या काला नमक, जीरा, पीपल और कालीमिरच इनको पीसकर शहद मिलाकर चाटनेसे वमन दूर होती है। बिजौरेका रस, खीलें,खांड, शहद इन्होंको पीपलके चूर्णसे युक्त कर पीनेसे छर्दि निवृत्त होती है५३॥५४॥

कृष्णोषणसिताचूर्णं लाजतुल्यं समाक्षिकम् । कपित्थबीजपूराम्लकालिकतं छर्दिनाशनम् ॥ ५५ ॥

पीपल, कालीमिरच और मिश्री ये सब समान भाग और सबकी बराबर खीलें लेवे, सबको एकत्र पीसकर शहद मिलाकर कैथ और बिजौरे नींबूके रसमें मिलाकर सेवन करनेसे वमन दूर होती है ॥ ५५ ॥

प्रियंग्वंजनमुस्तानि पाययेत्तु यथाबलम् । तृष्णातिसारच्छर्दिघ्नं सक्षौद्रतंडलाम्बुना ॥ ५६ ॥

फूलप्रियंगू, अंजन और नागरमोथा इन सबको एकत्र पीसकर शहद और चावलोंके जलके साथ मिलाकर अग्निके बलानुसार सेवन करनेसे तृषा, अतीसार और वमन दूर होती है ॥ ५६ ॥

आम्रास्थिबिल्वनिर्यूहः पीतः समधुशर्करः। निहन्याच्छर्द्यतीसारं वैश्वानर इवाहुतिम् ॥ ५७॥

आमकी गुठली और बेलगिरी इनके क्वाथमें शहद और मिश्री डालकर सेवन करनेसे वमन और अतीसार दूर होता है ॥ ५७ ॥

जम्बाम्लपल्लवशतं क्षौद्रं दत्त्वा सुशीतलं सलिलम्। लाजैरवचूर्ण्य पिबेच्छर्द्यतिसारे परं सिद्धम् ॥ ५८ ॥

जामुन और आमके कोमल सौ पत्ते लेकर उनको शीतल जलमें पीसकर खीलोंका चूर्ण और शहद मिलाकर पान करनेसे वमन और अतीसार दूर होता है ॥ ५८ ॥

पद्मकादिघृत।

पद्मकामृतनिम्बानां धान्यचन्दनयोः पचेत्। कल्के क्वाथे च हविषः प्रस्थं छर्दिनिवारणम् ॥ ५९ ॥ तृष्णारुचिप्रशमनं दाहज्वरहरं परम्।

पद्माख, गिलोय, नीम, धनियाँ और चन्दन इनके क्वाथ और कल्कके द्वारा एक प्रस्थ घृतको पकावे। यह घृत—वमन, तृषा, अरुचि और दाहज्वरको दूर करता है ॥ ५९ ॥

कल्याणकत्र्यूषणजीवकानि घृतानि देयानि तु छर्दिरोगे ॥ ६० ॥

कल्याणघृत, त्र्यूषणादिघृत और जीवकाद्यघृतको भी वमनमें प्रयोग करना चाहिए ॥ ६० ॥

आगन्तुजच्छर्दिनिदान।

बीभत्सजा दौहृदजामजा च ह्यसात्म्यतो वा कृमिजा च या हि। सा पञ्चमी तांश्च विभावयेद्वै दोषोच्छ्रयेनैव यथोक्तमादौ ॥ ६१ ॥

ग्लानिकारक पदार्थों, रुधिर, राध, विष्ठा आदिको देखनेसे, गर्भवती स्त्रीके दोहदके उत्पन्न होनेसे, अजीर्णके होनेसे, स्वभावविरुद्ध भोजन करनेसे और कृमिरोगके होनेसे पांचवी अगन्तुज छर्दि उत्पन्न होती है इस छर्दिमें भी पूर्वोक्त वातादि दोषोंका निश्चय करना चाहिये ॥ ६१ ॥

शूलहृल्लासबहुला कृमिजा च विशेषतः। कृमिहृद्रोगतुल्येन लक्षणेन च लक्षिता ॥ ६२ ॥

विशेषकर कृमिजन्य छर्दिमें शूल और अधिक उबकाई आती है और कृमिज हृदयरोगके लक्षण भी होते हैं ॥ ६२ ॥

चिकित्सा।

बीभत्सजामबीभत्सैर्हेतुभिः संहरेद्वमिम्। दौर्हृदोत्थां वमिं हृद्यैः कांक्षितैर्वस्तुभिर्जयेत् ॥ ६३ ॥

ग्लानिकारक पदार्थोंसे उत्पन्न हुई वमनको उत्तम पवित्र स्वच्छ, आनन्दजनक और चित्तको प्रसन्न करनेवाले पदार्थोंसे जीते, और दोहदजन्य वमनको मनोवांछित और हृदयको प्रिय पदार्थोंसे दूर करे ॥ ६३ ॥

लङ्घनैर्वमनैर्वापि सात्म्यैर्वा सात्म्यसम्भवाम्। कृमिहृद्रोगवच्चापि साधयेत्कृमिजां वमिम् ॥ ६४ ॥

स्वाभावविरुद्ध पदार्थोंसे उत्पन्न हुई वमनको लंघन वमन और स्वभाव अनुकूल पदार्थोंसे जीते, और कृमिजन्य वमनको कृमि एवं हृदयरोगोक्त चिकित्सासे जीते ॥ ६४ ॥

यथादोषञ्च वितरेच्छस्तं विधिमनन्तरम्। पवनघ्नी चिरोत्थासु प्रयोज्या छर्दिषु क्रिया ॥ ६५ ॥

यथादोषानुसार यथोक्त विधिसे उपचार करे और बहुत दिनोंकी पुरानी वमनमें वातनाशक चिकित्सा करे ॥ ६५ ॥

छर्दितृषाचिकित्सा।

फल्गुप्रवालं छिन्नाया मधुकं नीलमुत्पलम्। क्षुण्णैः शीतकषायोऽयं तृष्णाछर्दिनिवारणः ॥ ६६ ॥

कठूमरके अंकुर, गिलोय, मुलैठी और नीलकमल इनका काथ बनाकर शीतल करके पीनेसे तृषा और वमन शमन होती है ॥ ६६ ॥

एतैरवौषधैः सिद्धां लाजपेयां पिबेन्नरः । सशर्करां समाक्षीकां तृष्णाछर्दिनिवारणाम् ॥ ६७ ॥

अथवा इन्हीं औषधियोंके द्वारा खीलोंकी पेया बनाकर उसमें मिश्री और शहद डालकर सेवन करनेसे तृषा और वमन दूर होती है ॥ ६७ ॥

आम्रजम्बुकषायं वा पिबेन्माक्षिकसंयुतम् । छर्दिं सर्वां प्रणुदति तृष्णाश्चैवापकर्षति ॥ ६८ ॥

आम और जामुनका काथ बनाकर उसमें शहद मिलाकर सेवन करनेसे सर्व प्रकारकी वमन और तृषा दूर होती है ॥ ६८ ॥

वटशुङ्गं सितालोध्रं दाडिमं मधुकं मधु । पिबेत्तंडुलतोयेन च्छर्दितृष्णानिवारणम् ॥ ६९ ॥

बडके अंकुर, मिश्री, लोध, अनार, मुलैठी और शहद इन सबको एकत्र मिलाकर चावलोंके जलके साथ पान करनेसे वमन और तृषा दूर होती है॥६९॥

ओदनं रक्तशालीनां शीतं माक्षिकसंयुतम् । भोजयेत्तेन शाम्येत च्छर्दितृष्णे चिरोत्थिते ॥ ७० ॥

लालशालि चावलोंके भातको शहदके साथ खानेसे बहुत दिनोंकी पुरानी वमन और तृषा शांत होती है।

महाकल्याणकं सर्पिः कल्याणकमथापि वा । शतावरीघृतं वापि तृष्णाच्छर्दिनिवारणम् ॥ ७१ ॥

महाकल्याणघृत, कल्याणघृत और शतावरीघृत, ये सब तृषा और वमनको दूर करते हैं ॥ ७ ॥

उपद्रव ।

कासश्वासो ज्वरस्तृष्णा हिक्का वैचित्यमेव च । हृद्रोगस्तमकश्चैव ज्ञेयाश्छर्देरुपद्रवाः ॥ ७२ ॥

श्वास, खाँसी, ज्वर, तृषा, हिचकी, अचेत, हृदयरोग और तमक (अंधकारदर्शन) ये सब छर्दिके उपद्रव हैं ॥ ७२ ॥

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायां छर्द्यधिकार संपूर्ण ।

अथ तृषारोगाधिकार ।

भयश्रमाभ्यां बलसंक्षयाद्वा ऊर्ध्वं चितं पित्तविवर्द्धनैश्च । पित्तं सवातं कुपितं नराणां तालुप्रसन्नं जनयेत्पिपासाम् ॥ १ ॥

भय और परिश्रमके होनेसे, बलके क्षय होनेसे तथा पित्तको बढानेवाले द्रव्योंसे संचित हुआ जो पित्त वह कुपित होकर वायुको साथ लेकर ऊर्द्धगतिको प्राप्त होकर तालुमें जाकर तृषाको उत्पन्न करता है ॥ १ ॥

स्रोतःस्वपांवाहिषु दूषितेषु दोषैश्च तृट् सम्भवतीह जन्तोः । तिस्रः स्मृतास्ताः क्षतजा चतुर्थी क्षयात्तथा ह्यामसमुद्भवा च ॥ २ ॥ भक्तोद्भवा सप्तमिकेति तासां निबोध लिङ्गान्यनुपूर्वशस्तु ॥ ३ ॥

जलके वहनेवाले जो स्रोत हैं जब वे दोषोंसे दूषित होते हैं तब मनुष्यके तृषा उत्पन्न होती है वह पृथक् २ दोषोंसे तीन प्रकारकी, क्षतज चौथी, क्षयज पांचवी, आमज छठी और अन्नज सातवीं इन भेदोंसे सात प्रकारकी होती है अब इनके क्रमसे लक्षण कहते हैं ॥ २ ॥ ३ ॥

वातजतृषानिदान ।

क्षामास्यता मारुतसम्भवायां तोदस्तथा शङ्खशिरस्सु चापि । स्रोतोनिरोधो विरसश्च वक्त्रं शीताभिरद्भिश्च विवृद्धिमेति ॥ ४ ॥

वातकी तृषामें मुख मलिन होजाता है कनपटी और शिरमें तोडने सरीखी पीडा होती है शरीरके स्रोतोंका

अवरोध, तथा मुखमें विरसता होती है और वह शीतल जलको पीनेसे बढती है ॥ ४॥

पित्तजतृषाके लक्षण।

मूर्च्छान्नविद्वेषविलापदाहरक्तेक्षणत्वंप्रततश्च शोषः। शीताभिनन्दा मुखतिक्तता च पित्तात्मकायां मुखधूमनश्च ॥ ५ ॥

मूर्छा, अरुचि, प्रलाप (वृथा बकवाद), दाह, नेत्रोंमें लाली, अत्यन्त शोष, शीतकी इच्छा, मुखमें कडवापन और मुखमेंसे धुआँसा निकलना ये लक्षण पित्तकी तृषामें होते हैं ॥ ५ ॥

बाष्पावरोधात्कफसंवृतेऽग्नौ तृष्णाबलासेन भवेत्तथा तु। निद्रागुरुत्वं मधुरास्यता च तृष्णार्दितः शुष्यति चातिमात्रम् ॥ ६ ॥

जब कफ कुपित होकर जठराग्निको आच्छादित करके तृषाको उत्पन्न करता है, उस समय जब वाफ ऊपरको तो नहीं जा सकती तब नीचेको ही जाकर जलकी बहनेवाली नाडियोंको तपाकर तृषाको उत्पन्न करता है। कफकी तृषामें—अधिक निद्राका आना, भारीपन, मुखमें मधुरता होती है और वह मनुष्य दिनपर दिन सूखता जाता है ॥ ६ ॥

क्षतजतृषाके लक्षण॥

क्षतस्य रुक् शोणितनिर्गमाभ्यां तृष्णा चतुर्थी क्षतजा मता तु॥ ७॥

घावके होनेसे जो पीडा और रुधिर स्रवता है तब तृषा उत्पन्न होती है इसको चौथी क्षतज तृषा कहते हैं॥ ७॥

क्षयजतृषाके लक्षण।

रसक्षयाद्या क्षयसम्भवा सा तयाभिभूतस्तु निशादिनेषु । पेपीयतेऽम्भः ससुखं न याति तां सन्निपातादिति केचिदाहुः। रसक्षयोक्तानि च लक्षणानि तस्यामशेषेण भिषग् व्यवस्येत ॥ ८ ॥

रसके क्षय होनेसे जो तृषा होती है उसको क्षयजा कहते हैं। इससे पीडित मनुष्य बारंबार रातदिन जल पीनेसे भी तृप्त नहीं होता है। कोई २ आचार्य्य इसको सान्निपातिकतृषा भी कहते हैं। उसमें रसक्षयके सब लक्षण अच्छेप्रकार जानकर चिकित्सा करे॥ ८॥

आमजाके लक्षण।

त्रिदोषलिङ्गामसमुद्भवा च हृच्छूलनिष्ठीवनसादकर्त्री।

आमकी तृषामें तीनों दोषोंके लक्षण होते हैं। हृदयमें शूल,वारंवार थूकना और शरीरमें शिथिलता होती है।

अन्नजाके लक्षण।

स्निग्धं तथाम्लं लवणञ्च भुक्तं गुर्वन्नमेवाशु तृषां करोति ॥ ९ ॥

चिकने, खट्टे, नमकीन और भारी अथवा मात्राधिक भोजन करनेसे मनुष्योंके जो तृषा उत्पन्न होती है उसको अन्नजा कहते हैं॥ ९॥

उपसर्गजाके लक्षण।

हीनस्वरः प्रताम्यन् दीनाननशुष्कहृदयगलतालुः। भवति खलु सोपसर्गात्तृष्णा सा शोषिणी कष्टा ॥१०॥ ज्वरमोहक्षयकासश्वासाद्युपसृष्टदेहानाम्। सर्वास्त्वतिप्रसक्ता रोगकृशानां वमिप्रसक्तानाम्। घोरोपद्रवयुक्ता तृष्णा मरणाय विज्ञेया ॥ ११ ॥

उपसर्ग अर्थात् एक रोगमें जो दूसरा रोग उत्पन्न होजाता है उसको उपद्रव कहते हैं। जैसे कि—ज्वर, मोह, क्षय, खाँसी और श्वासादि इनमें जो तृषा उत्पन्न हो तो उनमें स्वरहीनता, बेहोशी, दीनता, मुखशोष, हृदय, गले और तालुमें शोष (खुशकी) होता है यह तृषा शरीरको सुखानेवाली और कष्टसाध्य होती है। अत्यन्त बढी हुई और रोगसे कृश हुए मनुष्योंके उत्पन्न हुई वमनयुक्त और घोर उपद्रवयुक्त ऐसी तृषा मरनेके ही लिये उत्पन्न होती है ॥ १० ॥ ॥ ११ ॥

चिकित्सा ।

वातघ्नमन्नपानं मृदुलघुशीतञ्च वात-तृष्णायाम् । स्याज्जीवनीयसिद्धं क्षीरघृतं वातजे तर्षे ॥ १२ ॥

वातकी तृषामें वातनाशक अन्नपान, मृदु, (कोमल), लघु (हलके) और शीतल पदार्थ तथा जीवनीयगणकी औषधियोंके द्वारा सिद्ध किये हुए दूध और घीको सेवन करे ॥ १२ ॥

तृष्णातिवृद्धावुदरे च पूर्णे तं वामये-न्मागधिकोदकेन । विलोमनञ्चात्र हितं विधेयं स्याद्दाडिमाम्रातकमातु-लुङ्गैः ॥ १३ ॥

जो तृषा अधिक बढ गई हो और जल पीते २ पेट अधिक अफरगया हो तो पीपलके काथके द्वारा वमन करावे और अनार, अम्बाडा, एवं विजौरे नींबूके द्वारा वायुको अनुलोमन करे ॥ १३ ॥

सुवर्णरौप्यादिभिरग्नितप्तैर्लोष्ठैः कृतं-वा सिकतोत्करैर्वा । जलं सुखोष्णं शमयेत्तु तृष्णां सशर्करं क्षौद्रयुतं हितं वा ॥ १४ ॥

सुवर्ण, रूपा, मिट्टीका, ढेला, अथवा बालूको अग्निमें तपाकर जलमें बुझावे, फिर सुहाता २ इस जलको पान करे अथवा शीतल करके इस जलमें मिश्री और शहद मिलाकर पीवे ॥ १४ ॥

वाततृषा ।

तृष्णायां पवनोत्थायां सगुडं दधि शस्यते । रसाश्च बृंहणाः शीता गु-डूच्या रस एव च ॥ १५ ॥

वातकी तृषामें गुड और दही मिलाकर सेवन करना एवं बृंहण रस, शीतल द्रव्य और गिलोयका रस ये सब हितकारी हैं ॥ १५ ॥

पञ्चाङ्गकाः पञ्चगणा य उक्तास्तेष्वम्बु सिद्धं प्रथमे गणे वा । पिबेत्सुखोष्णं मनुजोऽल्पशस्तु मुच्येत तृट्तः पव-नात्मकातः ॥ १६ ॥

पांच २ औषधियोंके जो पांच गण कहे हैं उनमें से किसी एक गणको औटाकर अथवा पहले गणकी शालिपर्णी, वडी कटेरी, पृश्निपर्णी, कटेरी और गोखरू इनका काथ बनाकर सुहाता २ पान करनेसे वातकी तृषा शीघ्र दूर होती है ॥ १६ ॥

पित्ततृषा ।

पित्तोत्थितां पित्तहरैर्विपक्वं निहन्ति तोयं पय एव वापि ॥ १७ ॥

पित्तकी तृषामें पित्तनाशक औषधियोंके द्वारा सिद्ध किये हुए काथ और दूध हितकारी हैं ॥ १७ ॥

स्वादुतिक्तं द्रवं शीतं पित्ततृष्णाप-हं परम् । काश्मर्य्यं शर्करायुक्तं चन्द-नोशीरधान्यकम् । द्राक्षामधुकसंयुक्तं पित्ततर्षे जलं पिबेत् ॥ १८ ॥

मधुर, कडवे, पतले और शीतल द्रव्य ये सब पित्तकी तृषाको दूर करते हैं । कुम्भेर, चन्दन, खस, धनियाँ, दाख और मुलैठी इनके काथमें मिश्री मिला-कर पीनेसे पित्तकी तृषा दूर होती है ॥ १८ ॥

स्याज्जीवनीयसिद्धं क्षीरं घृतं वा पि-त्तजे तर्षे । तद्वद्द्राक्षाचन्दनखर्जू-रोशीरमधुयुतं तोयम् ॥ १९ ॥

जीवनीयगणकी औषधियोंके द्वारा सिद्ध किया हुआ दूध या घी पित्तकी तृषामें हितकारी है अथवा दाख, चन्दन, खजूर और खस इनका काथ शहद मिला कर सेवन करनेसे पित्तकी तृषाको दूर करता है ॥ १९ ॥

द्राक्षाचन्दनखर्जूरी पीतं मधुयुतं ज-लम् । तृष्णाहरं पिबेद्वापि मधुना तं-डुलोदकम् ॥ २० ॥

दाख, चन्दन और खजूर इनका काथ बनाकर शहद मिलाकर पीनेसे तृषा दूर होती है । अथवा चावलोंके जलको शहद मिलाकर पान करनेसे पित्तकी तृषा दूर होती है ॥ २० ॥

कफतृषा ।

तिक्तं द्रवञ्च कट्वम्लं कफतृष्णानिबर्ह-णम् ॥ २१ ॥

कड़वे, पतले, चरपरे और खट्टे द्रव्य कफकी तृषाको दूर करते हैं ॥ २१ ॥

बिल्वाढकीधातकिपञ्चकोलदर्भेषु सिद्धं कफजां निहन्ति। हितं भवेच्छर्दनमेव चात्र तप्तेन निम्बप्रसवोदकेन॥२२

वेलगिरी, तुवर, धायके फूल, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ और डाभकी जड इनके द्वारा सिद्ध किए हुए क्वाथको देनेसे कफकी तृषा दूर होती है। अथवा नीमके गरमक्वाथके द्वारा वमन कराना हितकारी है ॥ २२ ॥

अजीरधान्याद्रकशृङ्गवेरसौवर्चलान्यर्धजलप्लुतानि। मद्यानि हृद्यानि च गन्धवन्ति पीतानि सद्यः शमयन्ति तृष्णाम् ॥२३॥

जीरा, धनियाँ, अदरख, सोंठ और कालानमक इनके चूर्णको जलमें आधा भिगोकर उस जलको सुगन्धित मदिरामें मिलाकर पीनेसे तत्काल कफकी तृषा दूर होती है ॥ २३ ॥

लाजोदकं मधुयुतं शीतं गुडविमर्दितम्। काश्मर्यशर्करायुक्तं पिबेत्तृष्णार्दितो नरः ॥ २४ ॥

खीलोंके शीतल जलमें शहद या गुड मिलाकर पीनेसे अथवा कुम्भेरको मिश्रीके साथ जल मिलाकर पीनेसे तृषा दूर होती है ॥ २४ ॥

शर्कराकेसरं क्षौद्रं कृष्णाजीरकदाडिमैः। स्नेहो वा तृड्जयी कृष्णा मधुक्षीरद्रुमाङ्कुरैः ॥ २५ ॥

मिश्री, नागकेशर, शहद, पीपल, जीरा और अनार इनको घीमें मिलाकर सेवन करनेसे अथवा पीपल, शहद और क्षीरवृक्षोंके अंकुरोंको एकत्र मिलाकर सेवन करनेसे तृषा दूर होती है ॥ २५ ॥

अम्लं दाडिमबीजं पीतं धात्रीफलञ्च धान्याम्लैः। आर्द्रपटास्तरणकृतप्रावृतगात्रस्तृषां जयति ॥ २६ ॥

खट्टे अनारके बीज और आमलोंको कांजीमें पीसकर पीनेसे अथवा गीले कपडेको शरीरपर ढकनेसे तृषा दूर होती है ॥ २६ ॥

गोस्तनीक्षुरसक्षीरयष्टीमधुमधूत्पलैः। नियतं नस्यतः पीतैस्तृषा शाम्यति दारुणा ॥ २७ ॥

दाख, ईखका रस, दूध, मुलैठी, शहद, कमल इनको एकत्र जलमें पीसकर नाकके द्वारा पीनेसे दारुण तृषा शांत होती है ॥ २७ ॥

कर्णशिरोमुखलेपश्चुक्रिकयाम्लदाडिमरसेन। तर्पयति शीघ्रमेव जलौघवत्सैकतराशिम् ॥ २८ ॥

चूकेको खट्टे अनारके रसमें पीसकर कान, शिर और मुखपर लेप करनेसे शीघ्रही तृप्ति होती है जैसे जलका समूह वालूकी राशिको तृप्त कर देता है॥२८

कोलदाडिमवृक्षाम्लचुक्रिकाचुक्रिकारसः। पञ्चाम्लको मुखे लेपः सद्यस्तृष्णां नियच्छति ॥ २९ ॥

बेर, अनार, विषांबिल, चूका और चूकेका रस इस पंचाम्लका मुखमें लेप करनेसे तत्काल तृषा दूर होती है ॥ २९ ॥

क्षीरेक्षुरसमार्द्वीकक्षौद्रसीधुगुडोदकैः। वृक्षाम्लाम्लैश्च गण्डूषास्तालुशोषप्रणाशनाः ॥ ३० ॥

दूध, ईखका रस, दाख, शहद, सीधुनामक मदिरा, गुडका शरबत, विषांबिल और अम्लवेत इनका गण्डूष तालुशोषको नष्ट करता है ॥ ३० ॥

तालुशोषे पिबेत्सर्पिर्घृतमण्डमथापि वा। धान्याम्लमास्यवैरस्यमलदौर्गन्ध्यनाशनम् ॥ तदेव शृतशीतं हि मुखशोषहरं परम् ॥ ३१ ॥

तालुशोषमें घृत पान करे अथवा घृत और माँड पीवे। कांजी–मुखकी बिरसता, मल और दुर्गन्धको दूर करती है और वही पकाकर शीतल कीहुई मुखशोषको नष्ट करती है ॥ ३१ ॥

वैशद्यञ्जनयत्यास्ये सन्दधाति मुखव्रणान्। दाहतृष्णाप्रशमनं मधुगण्डूषधारणम् ॥ ३२ ॥

शहदका गण्डूष—विशदताजनक, मुखके व्रणको हरनेवाला, एवं दाह और तृषाको हरनेवाला है॥३२॥

जिह्वातालुगलक्लोमशोषे मूर्द्धनि दापयेत् । केशरं मातुलुङ्गस्य घृतसैन्धवसंयुतम् ॥ ३३ ॥

जिह्वा, तालु, गल और क्लोम (तृषाका स्थान) इन में शोष हो तो बिजौरेनींबूकी केशरको घी और सैंधेनमकके साथ मिलाकर शिरपर मालिश करे ॥ ३३ ॥

दाडिमं बदरं लोध्रं कपित्थं बीजपूरकम् । पिष्ट्वा मूर्ध्नि प्रलेपश्च पिपासादाहनाशनः ॥ ३४ ॥

अनार, बेर, लोध, कैथ और बिजौरानींबू इनको एकत्र पीसकर मस्तकपर प्रलेप करनेसे तृषा और दाह नष्ट होती है ॥ ३४ ॥

वारि शीतं मधुयुतमाकण्ठाद्वा पिपासितम् । पाययेद्वामयेच्चापि तेन तृष्णा प्रशाम्यति ॥ ३५ ॥

शीतल जलमें शहद मिलाकर कंठपर्य्यन्त खूब पी लेवे, फिर अंगुली डालकर वमन कर लेवे तो तृषा शांत होती है ॥ ३५ ॥

वटप्ररोहं मधुकुष्ठमुत्पलं सलाजचूर्णं गुटिकां प्रकल्पयेत् । सुसंहिता सा वदने विधारिता तृष्णां प्रवृद्धामपि हन्ति सत्वरम् ॥ ३६ ॥

बड़के अंकुर, शहद, कूट, कमल और खीलें इन को एकत्र पीसकर गोली बना लेवे । इन गोलियोंको मुखमें धारण करनेसे अत्यन्त बढी हुई तृषा भी शांत होती है ॥ ३६ ॥

क्षयजतृषाकी चिकित्सा ।

क्षतोद्भवारुग्विनिवारणेन जयेद्रसानामसृजश्च पानैः । क्षयोत्थितां क्षीरजलं निहन्यान्मांसोदकं वा मधुकोदकं वा ॥ ३७ ॥

घावके होनेसे जो तृषा उत्पन्न होती है उसको दूर करनेके लिए घावका यत्न करे अथवा मांसका रस और रुधिरको पान करे । क्षयसे उत्पन्न हुई तृषामें दूध और जल मिलाकर पीवे अथवा मांसरस या शहद को जलमें घोलकर पीवे ॥ ३७ ॥

आमोद्भवां बिल्ववचायुतानां जयेत्कषायैरथ दीपनानाम् । उल्लेखनैर्गुर्वशनप्रजातां जयेत्क्षतोत्थां तु विना पिपासाम् ॥ ३८ ॥

आमसे उत्पन्न हुई तृषाको बेलगिरी और बच डाल कर दीपन क्वाथोंसे जीते । भारी अन्नादिकके सेवनसे जो तृषा उत्पन्न हो तो वमनादि लेखन उपायोंसे जीते किन्तु वह क्षतज नहीं हो ॥ ३८ ॥

स्निग्धेऽन्ने भुक्ते या तृष्णा स्यात्तां गुडाम्बुना शमयेत् । अतिरूक्षदुर्बलानां तृष्णां शमयेन्नृणामिहाशु पयः ॥३९॥ छागो वा घृतभृष्टः शीतो मधुरो रसो हृद्यः ॥ ४० ॥

स्निग्ध अन्नके सेवन करनेसे जो तृषा उत्पन्न होती है उसको गुडके शरबतसे शांत करे, अत्यन्त रूखे और दुर्बल मनुष्योंके जो तृषा उत्पन्न हो तो दूध पिलाकर शमन करे अथवा बकरेके मांसको घीमें भून कर खाय या अन्यान्य मधुरादि रस किम्वा हृदयको जो हितकारी हों ऐसे पदार्थोंको सेवन करे ॥ ३९ ॥ ॥ ४० ॥

मूर्च्छाछर्दितृषादाहस्त्रीमद्यभृशकर्षितः । पिबेयुः शीतलं तोयं रक्तपित्ते मदात्यये ॥ ४१ ॥

मूर्च्छा, वमन, तृषा, दाह, स्त्रीप्रसंग[1] और मद्यपान करनेसे अत्यन्त क्षीण हुआ मनुष्य रक्तपित्त और मदात्यय रोगमें शीतल जल पीवे ॥ ४१ ॥

तृष्यन्नूर्ध्वामयी क्षीणो न लभेत जलं यदि । मरणं दीर्घरोगश्च प्राप्नुयात्त्वरितं नरः ॥ ४२ ॥

ऊर्ध्वगत रोगवाले मनुष्य और क्षीण मनुष्योंके जो तृषा उत्पन्न होती है उस तृषामें यदि वह जल नहीं पीवे तो तत्काल ही मृत्यु अथवा महारोग उत्पन्न होता है ॥ ४२ ॥

१ स्त्रीप्रसंगसें क्षीणहुए मनुष्यको उष्ण दूध पिलाना चाहिए

सात्म्यान्नपानभैषज्यैस्तृषार्त्तस्य जयेत्तृषाम्। तस्याञ्जितायामन्योऽपि व्याधिः शक्यश्चिकित्सितुम् ॥ ४३ ॥

सात्म्य (जो अपनी प्रकृतिके अनुकूल हो) अन्न पान और औषधि यह तृषारोगीको शांत करनेके लिये पिलावे। इसप्रकार तृषाको जीतनेसे अन्यव्याधि भी जीत सकता है ॥ ४३ ॥

तृषितो मोहमायाति मोहात्प्राणान्विमुञ्चति। तस्मात्सर्वास्ववस्थासु न कश्चिद्वारि वर्ज्जयेत् ॥ ४४॥

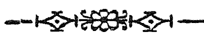
तृषातुर मनुष्यके मोह उत्पन्न होता है और मोहसे प्राण नष्ट होते हैं इसकारण किसी अवस्थामें भी जलका देना बंद न करे ॥ ४४ ॥

अन्नेनापि विना जन्तुः प्राणान्धारयते चिरम् । तोयाभावे पिपासार्त्तः क्षणात्प्राणैर्विमुच्यते ॥४५॥

अन्नके विना प्राणी बहुत कालतक जीते रहते हैं परन्तु जलके विना तो तृषित मनुष्य क्षणभरमें प्राणों को छोड देता है ॥ ४५ ॥

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायां
तृ धिकार संपूर्ण ।

अथ मूर्च्छाधिकार।



क्षीणस्य बहुदोषस्य विरुद्धाहारसेविनः । वेगाघातादभीघाताद्धीनसत्त्वस्य वा पुनः ॥ १ ॥ कारणायतनेषूग्रां बाह्येष्वाभ्यन्तरेषु च। निवसन्ति यदा दोषास्तदा मूर्च्छन्ति मानवाः॥ २ ॥ संज्ञावहासु नाडीषु पिहितास्वनिलादिभिः । तमोऽभ्युपैति सहसा सुखदुःखव्यपोहकृत ॥३॥ सुखदुःखव्यपोहाच्च नरः पतति काष्ठवत् । मोहो मूर्च्छेति तामाहुः षड्विधा सा प्रकीर्त्तिता ॥ ४ ॥ वातादिभिः शोणितेन मद्येन च विषेण च । षट्स्वप्येतासु पित्तं तु प्रभुत्वेनावतिष्ठति ॥ ५ ॥

क्षीण मनुष्योंके, बहुत दोषोंके संचित होनेसे, विरुद्ध आहारके करनेसे, मलमूत्रादिकके वेगोंको रोकनेसे, लकडी आदि चोटके लगनेसे और सत्त्वगुणके नष्ट होनेसे, मनके बहनेवाले बाहरकी कामेन्द्रियें और भीतरकी ज्ञानेन्द्रियोंमें जब बढेहुए वातादि दोष स्थित होते हैं तब प्राणी मूर्च्छित होते हैं। संज्ञा अर्थात् चेतनाकी बहनेवाली नाडियोंमें जब वातादिदोष आच्छादित होजाते हैं तब एकाएकी सुख दुःखको नष्ट करनेवाला तमोगुण उत्पन्न होता है, सुखदुःखके नष्ट होनेसे मनुष्य काष्ठके समान गिरपडता है, तब उसको मूर्च्छा अथवा मोह कहते हैं यह मूर्च्छारोग वात, पित्त, कफ, रक्त, मद्य और विष इन भेदोंसे छः प्रकारका है। परन्तु इन छःओंमें पित्त प्रधानतासे रहता है ॥१-५॥

पूर्वरूप ।

हृत्पीडाजृम्भणं ग्लानिः संज्ञादौर्बल्यमेव च । सर्वासां पूर्वरूपाणि यथास्वन्तं विभावयेत् ॥ ६ ॥

हृदयमें पीडा, जम्भाईयोंका आना, ग्लानि और ज्ञानका नष्ट होना ये सब मूर्च्छाओंके यथादोषानुसार पूर्वरूप जानने ॥ ६ ॥

वातजमूर्च्छाके लक्षण ।

नीलं वा यदि वा कृष्णमाकाशमथवारुणम् । पश्यंस्तमः प्रविशति शीघ्रञ्च प्रतिबुध्यते ॥ ७ ॥ वेपथुश्चाङ्गमर्दश्च प्रपीडा हृदयस्य च । कार्श्यं स्यावारुणा छाया मूर्च्छाये वातसम्भवे ॥ ८ ॥

जो मनुष्य नीले या काले, अथवा लाल आकाशको देखकर अंधकारमें घुसता हुआ मूर्च्छित होजाता

है तथा कंप, शरीरका टूटना, हृदयमें पीडा, कृशता और शरीरका रंग धूसर वर्ण हो जाता है और इसमें शीघ्र ही रोगी चैतन्य होजाता है उसको वातकी मूर्च्छा कहते हैं ॥ ७ ॥ ८ ॥

पित्तजमूर्च्छाके लक्षण ।

रक्तं हरितवर्णञ्च वियत्पीतमथापि वा । पश्यंस्तमः प्रविशति सस्वेदश्च प्रबुध्यते ॥९॥ सपिपासः ससन्तापो रक्तपीताकुलेक्षणः । संभिन्नवर्चाः पीताभो मूर्च्छाये पित्तसम्भवे ॥१०॥

पित्तकी मूर्च्छामें मूर्च्छाके आनेके समय रोगी लाल, हरे अथवा पीले आकाशको देखकर अंधकारमें घुसता है। जब मूर्च्छा दूर होती है अर्थात् होश होता है तब पसीना आता है, तृषा, सन्ताप, नेत्र लाल और पीले तथा व्याकुलता, मल पतला और शरीरका रंग पीला होता है ॥ ९ ॥ १० ॥

कफजमूर्च्छाके लक्षण ।

मेघसंकाशमाकाशमावृतं वा तमोघनैः । पश्यंस्तमः प्रविशति चिराच्च प्रतिबुध्यते ॥ ११ ॥ गुरुभिः प्रावृतैरङ्गैर्यथैवार्द्रेण चर्म्मणा । सप्रसेकः सहृल्लासो मूर्च्छाये कफसम्भवे ॥ १२ ॥

कफकी मूर्च्छामें मेघोंसे आच्छादित आकाश अथवा घोर अंधकारसे आकाशको आच्छादित देखकर मूर्च्छित होता है और बहुतकालमें चैतन्य होता है, भारी बोझ अथवा गीला चमड़ासा शरीरपर ढका हुआ मालूम होता है, मुखसे पानी गिरता है और उबकाई आती है ॥ ११ ॥ १२ ॥

सान्निपातिकमूर्च्छाके लक्षण।

सर्वाकृतिः सन्निपातादपस्मार इवागतः । स जन्तुं पातयत्याशु विना बीभत्सचेष्टितैः ॥ १३ ॥

सन्निपातकी मूर्च्छामें तीनों दोषोंके लक्षण होते है और उसमें प्राणी अचानक ही बीभत्स कारणोंके विना अपस्माररोगीके समान गिर जाता है ॥१३॥

रक्तजमूर्च्छाके लक्षण ।

पृथिव्यापस्तमोरूपं रक्तगन्धश्च तन्मयः । तस्माद्रक्तस्य गन्धेन भुवि मूर्च्छन्ति मानवाः ॥ १४ ॥ द्रव्यस्वभाव इत्येके दृष्ट्वा यदपि मुह्यति ॥१५॥

पृथ्वी और जल तमोगुण विशिष्ट हैं और रुधिरकी गन्धभी तमोगुणयुक्त है इस कारण तामसी मनुष्य रुधिरकी गंधसे मूर्च्छित होजाते हैं और अन्य आचार्य्य कहते हैं कि, द्रव्यका स्वभावही ऐसा है कि, जिसको देखनेसे मूर्च्छा होती है॥१४॥१५॥

मद्य और विषकी मूर्च्छाके लक्षण ।

गुणास्तीव्रतरत्वेन स्थितास्तु विषमद्ययोः । त एव तस्मात्ताभ्यान्तु मोहौ स्यातां यथेरितौ ॥ १६ ॥

तैलादिक पदार्थोंमें जो तीव्र गुण रहते हैं वेही गुण अत्यन्त तीव्रतासे विष और मद्यमें रहते हैं इसकारण मद्य और विषसे तीव्र मूर्च्छा होती है तथा मद्यकी अपेक्षा विषसे अत्यन्त तीव्र जाननी ॥ १६ ॥

स्तब्धाङ्गदृष्टिस्त्वसृजा गूढोच्छ्वासश्च मूर्च्छितः ॥ १७ ॥ मद्येन विलपञ्छेते नष्टविभ्रान्तमानसः । गात्राणि विक्षिपन् भूमौ जरां यावन्न याति तत् ॥ १८ ॥ वेपथुस्वप्नतृष्णाः स्युस्तमश्च विषमूर्च्छिते । वेदितव्यं तीव्रतरैर्यथास्वं विषलक्षणैः ॥ १९ ॥

रुधिरकी मूर्च्छामें सम्पूर्ण अंग और दृष्टि जड हो जाती है और अच्छे प्रकारसे श्वास नहीं आता है । अत्यन्त मदिराके पीनेसे जो मूर्च्छा होती है उसमें रोगी बहुत बकवाद करें, सो जावे, बेहोश हो जावे, मनमें भ्रम हो और जबतक मद्य जीर्ण नहीं हो तबतक हाथ पाँवोंको इधर उधर भूमिमें पटकता रहता है। विषकी मूर्च्छावाले मनुष्यके कम्प, निद्रा, तृषा और अंधकारदर्शन ये सब लक्षण होते हैं । इसमें जैसा २ तीव्र या मृदु विष भक्षण कियाजाय उसी उसी प्रकारके अनुसार लक्षण जानने ॥१७—१९॥

मूर्च्छा पित्ततमःप्राया रजःपित्तानिलाद्भ्रमः। तमोवातकफात्तन्द्रा निद्रा श्लेष्मतमोभवा॥ २०॥

पित्त और तमोगुणसे मूर्च्छा होती है। रजोगुण पित्त और वायुसे भ्रम होता है। तमोगुण वात और कफसे तन्द्रा होती है, कफ और तमोगुणसे निद्रा होती है॥ २०॥

क्लमके लक्षण।

अनायासश्रमो देहे प्रवृद्धः श्वासवर्जितः। क्लमः स इति विज्ञेय इन्द्रियार्थप्रबाधकः॥ २१॥

विना परिश्रमके शरीर अत्यन्त थकासा मालूम हो और उससे श्वास भी नहीं आवे और इन्द्रियें भी अपने २ कार्यको नहीं कर सकें उसको क्लम कहते हैं॥ २१॥

तन्द्राके लक्षण।

इन्द्रियार्थेष्वसंवित्तिर्गौरवं जृम्भणं क्लमः। निद्रार्त्तस्येव यस्यैतत्तस्य तन्द्रां विनिर्दिशेत्॥ २२॥

जिसमें इंद्रियें अपने २ विषयको नहीं ग्रहण कर सकें तथा निद्राके समान गुरुता (भारीपन) जंभाई और क्लम ये लक्षण हों उसको तन्द्रा कहते हैं॥ २२॥

इन्द्रियाणान्तु मनसो मोहो निद्रा निगद्यते। विमोहस्त्विन्द्रियाणान्तु स तु तन्द्रा विरच्यते॥ २३॥

जिसमें इंद्रियोंमें और मनमें मोह होता है उसको निद्रा कहते हैं और जिसमें इंद्रियें और मनमें मोह नहीं होता उसको तंद्रा कहते हैं॥ २३॥

दोषेषु मदमूर्च्छाया गतवेगेषु देहिनाम्। स्वयमेवोपशाम्यन्ति संन्यासो नौषधैर्विना॥ २४॥

दोषोंके वेग नष्ट होनेसे मद मूर्च्छादिक अपने आप ही शांत होजाते हैं और संन्यास बिना औषधि के शांत नहीं होता है॥ २४॥

संन्यासके लक्षण।

वाग्देहमनसां चेष्टामाक्षिप्यातिबला मलाः। संन्यस्यान्त्यबलं जन्तुं प्राणायतनमाश्रिताः॥ २५॥ स ना संन्याससंन्यस्तः काष्ठीभूतो मृतोपमः। प्राणैर्विमुच्यते शीघ्रं मुक्त्वा सद्यःफलां क्रियाम्॥ २६॥

जब हृदयमें रहनेवाले अत्यन्त बलवान् कुपित दोष प्राणोंके स्थानरूप हृदयमें--वाणीकी, देहकी और मनकी चेष्टाको नष्ट करके दुर्बल मनुष्यको बेहोश करदेते हैं तब वह संन्यास रोगी पृथ्वीमें काठके समान मराहुआ सा गिर जाता है. उसकी तत्काल सिद्धिदायक चिकित्सा (सुई चुभोना, दाग देना आदि) न की जावे तो वह शीघ्र ही प्राणोंको छोड देता है॥ २५॥ २६॥

चिकित्सा।

सेकावगाहा मणयः सहाराः शीताः प्रदेहा व्यजनानिलाश्च। शीतानि पानानि च गन्धवन्ति सर्वासु मूर्च्छासु निवारकाणि॥ २७॥

मूर्च्छारोगमें रोगीके शरीरपर जलका छिडकना जलमें घुसकर स्नान करना, मणि मोती आदिके हारोंको धारण करना, चन्दनादि सुगन्धित और शीतल पदार्थोंका प्रलेप करना, शीतल पंखेकी पवन और गुलाब, केवडा आदि शीतल और सुगन्धित अर्कोंका पीना, ये कर्म्म सब प्रकारकी मूर्च्छाको दूर करते हैं॥ २७॥

सिद्धानि वर्गे मधुरे पयांसि सदाडिमा जाङ्गलजा रसाश्च। तथा यवा लोहितशालयश्च मूर्च्छासु पथ्याश्च सतीनमुद्गाः॥ २८॥

मधुर द्रव्योंके साथ सिद्ध किया हुआ दूध, अनारके रसके साथ जांगल जीवोंका मांसरस तथा जौ, लाल चावल, मटर और मूँग ये सब पदार्थ मूर्च्छारोगमें हितकारी हैं॥ २८॥

मूर्च्छां प्रशस्तांबुशिरोविरेकैर्जयेदभीक्ष्णं वमनैश्च तीक्ष्णैः॥ २९॥

शिरोविरेचन (अत्यन्त तीक्ष्ण नस्य) अथवा तीक्ष्ण वमन करानेसे मूर्च्छा दूर होती है ॥ २९ ॥

कोलमज्जोषणोशीरं केशरं शीतवारिणा । पीतं मूर्च्छां जयेल्लीढ्वा कृष्णां वा मधुसंयुताम् ॥ ३० ॥

बेरकी मींग, काली मिरच, खस और नागकेशर इनको एकत्र शीतल जलमें पीसकर पीनेसे अथवा पीपलको शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे मूर्च्छा दूर होती है ॥ ३० ॥

भ्रमः पित्तस्य संवृद्धौ जायते पवनस्य च । अतस्तयोः प्रशमनीं क्रियामत्रावचारयेत् ॥ ३१ ॥

वात और पित्तके अधिक बढ़नेसे भ्रम उत्पन्न होता है इस कारण भ्रमको दूर करनेके लिये मूर्च्छामें वातपित्तशामक चिकित्सा करनी चाहिए ॥ ३१ ॥

महौषधामृता क्षौद्रं पुष्करं ग्रन्थिकोद्भवम् । पिबेत्कणायुतं क्वाथं मूर्च्छायाञ्च मदेषु च ॥ ३२ ॥

सोंठ, गिलोय, शहद, पोहकरमूल और पीपलामूल इनका क्वाथ बनाकर पीपलका चूर्ण डालकर पान करनेसे मूर्च्छा और मद दूर होता है ॥ ३२ ॥

पिबेद्दुरालभाक्वाथं सघृतं भ्रमशान्तये । त्रिफलायाः प्रयोगो वा प्रयोगः पयसोऽपि वा ॥ ३३ ॥

धमासेके क्वाथमें घी डालकर भ्रमको शांत करनेके लिये पान करे । त्रिफलेको सेवन करनेसे अथवा दूधको सेवन करनेसे भ्रम शांत होता है ॥ ३३ ॥

कार्पासबीजपाण्डुरतण्डुलतक्रैः प्रकल्पिता पेया । धान्यकहिंगुनागरजीरकलवणैर्विनाशयेद्भ्रमणम् ॥ ३४ ॥

कपासके बीज, धवकी छाल, चावल, तक्र, धनियाँ, हींग, सोंठ, जीरा और सैंधानमक इनकी बनाई हुई पेया भ्रमको दूर करती है ॥ ३४ ॥

स्विन्नमामलकं पिष्ट्वा द्राक्षया सह संसृजेत् । विश्वभेषजसंयुक्तं मधुना सह लेहयेत् । तेनास्य शाम्यते मूर्च्छा श्वासः कासस्तथैव च ॥ ३५ ॥

उसीजे हुए आमले, दाख और सोंठ इनको एकत्र पीसकर शहद मिलाकर चाटनेसे मूर्च्छा, श्वास और खाँसी दूर होती है ॥ ३५ ॥

पञ्चमूलकषायञ्च मधुना सितया पिबेत् । यथास्वञ्च ज्वरघ्नानि कषायाणि प्रयोजयेत् ॥ ३६ ॥

पंचमूलके क्वाथको शहद और मिश्रीके साथ पान करे और ज्वरनाशक क्वाथोंको भी यथादोषानुसार पान करे ॥ ३६ ॥

रक्तजायान्तु मूर्च्छायां हितः शीतक्रियाविधिः । मद्यजायां पिबेन्मद्यं निद्रां सेवेत वा सुखम् ॥ ३७ ॥

रुधिरकी मूर्च्छामें शीतल उपाय करना चाहिए । मद्यकी मूर्च्छामें मदिरा पीवे और सुखपूर्वक निद्रासेवन करे ॥ ३७ ॥

विषजायां विषघ्नानि भेषजानि प्रयोजयेत् ॥ ३८ ॥

विषकी मूर्च्छामें विषनाशक औषधि प्रयोग करे ॥ ३८ ॥

भ्रमनाशिनीगुटी ।

कृष्णाशताह्वाशुण्ठीनां साभयानां पलं पलम् । गुडस्य षट्पलान्येषा गुटिका भ्रमनाशिनी ॥ ३९ ॥

पीपल, शतावर, सोंठ और हरड ये प्रत्येक औषधि चार चार तोले और गुड २४ तोले लेवे, सबको एकत्र कूट पीसकर गोली बना लेवे । यह गोली—भ्रमको दूर करती है ॥ ३९ ॥

अञ्जनान्यवपीडाश्च धूमाः प्रधमनानि च । सूचीभिस्तोदनं शस्तं दाहपीडानखान्तरे ॥ ४० ॥ लुञ्चनं केशलोम्नाञ्च दन्तैर्दंशनमेव च । आत्मगुप्तावघर्षश्च हितस्तस्यावबोधने ॥ ४१ ॥

अंजन, अवपीडन, नस्य, धूम्रपान, प्रधमन, सुई चुभोना, दाग देना, पीडना, नोंचना, बाल और रुओंको उखाडना, दातोंसे काटना और कैंचकी

की फलीको घिसकर लगाना सबको मूर्च्छाके दूर करनेके लिये उपचार करे ॥ ४० ॥ ४१ ॥

उत्थितो लब्धसंज्ञश्च लशुनस्य रसं पिबेत् । खादेत्सव्योषलवणबीजपूरकेशरम् ॥ ४२ ॥

जब संज्ञा आजाय अर्थात् चैतन्य होजाय तब लशुनका रस पीवे अथवा त्रिकुटा, सैंधानमक और बिजौरेकी केशरको एकत्र करके सेवन करे ॥ ४२ ॥

पथ्याक्काथेन संसिद्धं घृतं धात्रीरसेन च। सर्पिः कल्याणकं वापि मदमूर्च्छापहं पिबेत् ॥ ४३ ॥

हरड़के काथके द्वारा और आमलोंके रसके द्वारा सिद्ध किया हुआ घी अथवा कल्याणघृत मद और मूर्च्छाको दूर करनेके लिये पान करे ॥ ४३ ॥

इति श्रीवङ्गसेने भाषाटीकायां
मूर्च्छाधिकार संपूर्ण ।

मदात्ययाधिकार ।

तहां प्रथम मदात्ययरोगका निदान कहते हैं:—

ये विषस्य गुणाः प्रोक्तास्ते मद्येऽपि प्रकीर्त्तिताः। तेन मिथ्योपयुक्तेन भवत्युग्रो मदात्ययः ॥ १ ॥

जो विषके गुण कहे हैं वेही गुण मद्यमें भी जानने। मद्यको कुविधिसे सेवन करनेसे अत्यंन्त भयंकर मदात्यय रोग उत्पन्न होता है ॥ १ ॥

किन्तु मद्यं स्वभावेन यथैवान्नं तथा स्मृतम्। अयुक्तियुक्तं रोगाय युक्तियुक्तं तथामृतम् ॥ २ ॥

किंतु मद्य स्वभावसे ही ऐसी है जैसे कि अन्न स्वभावसे ही प्राणरक्षक है । इसको कुविधिसे पीनेसे अनेक रोगोंको उत्पन्न करती है और युक्तिपूर्वक पीनेसे अमृतकी समान गुणोंको करती है ॥ २ ॥

प्राणाः प्राणभृतामन्नं तदयुक्तन्तु हन्त्यसून्। विषं प्राणहरं तच्च युक्तियुक्तं रसायनम् ॥ ३ ॥

यद्यपि अन्न प्राणियोंके प्राणोंकी रक्षा करनेवाला है तथापि इसको अयुक्तिसे सेवन कियाजाय तो यही प्राणोंका नाश करदेता है। इसी प्रकार विष प्राणोंका नाश करनेवाला होने पर भी युक्तिपूर्वक सेवन किया जाय तो रसायनके गुणोंको करता है ॥ ३ ॥

विधिना मात्रया काले हितैरन्नैर्यथाबलम्। प्रहृष्टो यः पिबेन्मद्यं तस्य स्यादमृतोपमम् ॥ ४ ॥

विधिपूर्वक यथामात्रानुसार उचित समय हितकारक अन्नोंके साथ बलानुसार अत्यन्त हर्षित होकर जो मद्यपान करता है उसके वह पीहुई मद्य अमृतकी समान गुण करती है ॥ ४ ॥

स्निग्धैस्तदन्नैर्मांसैश्च भक्ष्यैश्च सह सेवितम्। भवेदायुःप्रकर्षाय बलायोपचयाय च ॥ ५ ॥

स्निग्ध अन्न, मांस और अनेक प्रकारके भक्ष्योंके साथ सेवन कीहुई मदिरा--आयु और बलको बढाती है और शरीरको पुष्ट करती है तथा अत्यन्त आनन्द उत्पन्न करती है ॥ ५ ॥

काम्यता मनसस्तुष्टिस्तेजो विक्रम एव च ॥ विधिना सेव्यमाने तु मद्ये सन्निहिता गुणाः ॥ ६ ॥

विधिपूर्वक सेवन कीहुई मदिरा सुन्दर स्वरूप और कामनाको करती है। मनमें सन्तोष, तेज और पराक्रमको उत्पन्न करती है इसके सिवाय और भी अन्यान्य गुणोंको उत्पन्न करे है ॥ ६ ॥

तथैवान्नमनन्नेन सेव्यमानममात्रया । कायाग्निना ह्यग्निसमं समेत्य कुरुते गदान् ॥ ७ ॥

और जो वही मद्य विना अन्नके कुविधिसे सेवन की जाय तो अग्निके समान शरीरकी अग्निके साथ मिलकर भयंकर मदात्यय आदि रोगोंको उत्पन्न करती है ॥ ७ ॥

मदेन करणानान्तु भावान्यत्वे कृते सति । निगूढमपि भावं स्वं प्रकाशं कुरुतेऽवशः ॥ ८ ॥

मद्यसे विवश हुआ पुरुष अन्यान्य भावोंको प्राप्त होकर अपने गुह्यभावोंको भी प्रकाशित कर देता है ॥ ८ ॥

श्लैष्मिकांश्चाल्पपित्तांश्च स्निग्धान्मांसोपसेविनः । पानं न बाधतेऽत्यर्थं विपरीतांश्च बाधते ॥ ९ ॥

कफप्रकृतिवाले, अल्पपित्तवाले, स्निग्ध और मांसको सेवन करनेवाले मनुष्योंको मदिरा बाधा नहीं करती और इनसे विपरीतोंको बाधा करती है॥ ९॥

त्रिगुणमदके लक्षण ।

बुद्धिस्मृतिप्रीतिकरः सुखश्च पानान्ननिद्रारतिवर्द्धनश्च । संपाठगीतस्वरवर्धनश्च प्रोक्तोऽतिरम्यः प्रथमो मदो हि ॥ १० ॥

प्रथममद--बुद्धि, स्मरणशक्ति, प्रीति, सुख, पान, क्षुधा, निद्रा और कामदेवको बढ़ाता है, तथा पढ़ने और गानेमें उत्तम स्वरको उत्पन्न करता है और यह प्रथम मद अति रम्य है ॥ १०॥

अव्यक्तबुद्धिस्मृतिवाग्विचेष्टः सोन्मत्तलीलाकृतिरप्रशान्तः । आलस्यनिद्राभिहतो मुहुश्च मध्येन मत्तः पुरुषो मदेन ॥ ११ ॥

द्वितियमदसे--बुद्धि, स्मरणशक्ति और वाक्शक्ति मन्द होती है तथा उससे मत्त पुरुष विरुद्ध चेष्टा, अत्यन्त प्रचण्ड होकर उन्मत्तकी समान लीला करता, तथा वारंवार आलस्य और निद्रासे पीड़ित होजाता है॥११

गच्छेदगम्या न गुरूंश्च मन्येत् खादेदभक्ष्याणि च नष्टसंज्ञः । ब्रूयाच्च गुह्यानि हृदि स्थितानि मदे तृतीये पुरुषस्त्वतन्त्रः ॥ १२ ॥

मदकी तृतीय अवस्थामें पुरुष स्वतंत्र होकर अगम्य स्त्रियोंमें गमन करता है । गुरुजनोंका अनादर, अभक्ष्य भक्षण करता है,संज्ञाका नष्ट होना और हृदयमें स्थित गुप्त बातोंको कहने लगता है ॥ १२ ॥

चतुर्थे तु मदे मूढो भग्नदार्विव निष्क्रियः । कार्य्याकार्यविभागाज्ञो मृतादथ परो मृतः ॥ १३ ॥

चतुर्थमदसे पीडित मनुष्य— फटी हुई लकडीके समान, क्रिया रहित होकर पृथ्वीमें गिरता है, तथा कार्य्य और अकार्य्यको नहीं समझता और मरेसे भी अधिक मरेकी समान होजाता है ॥१३॥

को मदं तादृशं गच्छेदुन्माद इव चापरः । बहुदोषमिवारूढः कान्तारं स्ववशः कृती ॥ १४ ॥

अतएव इस महानिंद्य उन्मादके समान बहुत दोषयुक्त मदका कौन सेवन करे अर्थात् हिंस्रजीवों युक्त वनके समान ऐसी हानिकारक मदिरा किसीको भी सेवन नहीं करनी चाहिए ॥ १४ ॥

निर्भुक्तमेकान्तत एव मद्यं निषेव्यमाणं पुरुषेण नित्यम् । आपादयेत्कष्टतमान्विकारानापादयेच्चापि शरीरभेदम् ॥ १५ ॥

विना स्निग्धादि भोजनके निरन्तर नित्य पी हुई मदिरा अनेक दुःखदायक विकारोंको उत्पन्न करती है और शरीरको भी नष्ट करती है ॥ १५ ॥

क्रुद्धेन भीतेन पिपासितेन शोकाभितप्तेन बुभुक्षितेन । व्यायामभाराध्वपरिक्षतेन वेगावरोधाभिहतेन चापि ॥ १६ ॥ अत्यम्लभक्ष्यावततोदरेण सजीर्णभक्तेन तथा बलेन । उष्णाभितप्तेन च सेव्यमानं करोति मद्यं विविधान्विकारान् ॥ १७ ॥

क्रोधित, भयभीत, तृषातुर, शोकयुक्त, क्षुधासे पीडित, अत्यन्त कसरत, परिश्रम और बोझ ढोने या मार्ग चलनेसे जो थकगये हैं, मलमूत्रके वेगोंको रोकनेसे अथवा लाठी आदिकी चोट लगनेसे, अधिकतर खटाई खानेसे, भरे पेट पर खानेसे, अजीर्णमें भोजन करनेवाले, निर्बल और गर्मीसे संतापित ऐसे पुरुषोंके पीहुई मदिरा अनेक प्रकारके विकारोंको उत्पन्न करती है ॥ १६ ॥ ॥ १७ ॥

पानात्ययं परमदं पानाजीर्णमथापि वा । पानविभ्रमसंज्ञश्च तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ १८ ॥

अब उन विकारोंको कहते हैं । पानात्यय, परमद, पानाजीर्ण और पानविभ्रम इत्यादि भयंकर विकार

१ मृतादप्यपरो मृत इत्यपि पाठः ।

उत्पन्न होते हैं। अब उनके लक्षणोंको कहते हैं ॥ १८ ॥

वातज मदात्ययके लक्षण।

हिक्काश्वासशिरःकम्पपार्श्वशूलप्रजागरैः। विद्याद्बहुप्रलापस्य वातप्रायं मदात्ययम् ॥ १९ ॥

वातके मदात्ययमें हिचकी, श्वास, शिरका काँपना, पसलियोंमें पीडाका होना, निद्राका नहीं आना और बहुत बकवादका होना ये सब लक्षण होते हैं ॥१९॥

पित्तज मदात्ययके लक्षण।

तृष्णादाहज्वरस्वेदमोहातीसारविभ्रमैः। विद्याद्धरितवर्णस्य पित्तप्रायं मदात्ययम् ॥ २० ॥

पित्तके मदात्ययमें तृषा, दाह, ज्वर, पसीनेका आना, मोह, अतीसार, भ्रम और शरीरका रंग हरा हो जाता है ॥ २० ॥

कफज मदात्ययके लक्षण।

छर्द्यरोचकहृल्लासतन्द्रास्तैमित्यगौरवैः। विद्याच्छीतपरीतस्य कफप्रायं मदात्ययम् ॥ २१ ॥

वमन, अरुचि, उबकाई, तन्द्रा, शरीरमें गीलापन और भारीपन तथा शरदीका लगना ये सब लक्षण कफज मदात्ययमें होते हैं ॥ २१ ॥

त्रिदोषजनित मदात्ययके लक्षण।

ज्ञेयस्त्रिदोषजश्चापि सर्वलिङ्गैर्मदात्ययः ॥ २२ ॥

त्रिदोषजनित मदात्ययमें तीनों दोषोंके सम्पूर्ण लक्षण होते हैं ॥ २२ ॥

परमदके लक्षण।

श्लेष्मोच्छ्रयोऽङ्गगुरुता विरसास्यता च विण्मूत्रसक्तिरथ तन्द्रिररोचकश्च। लिङ्गं परस्य तु मदस्य वदन्ति तज्ज्ञास्तृष्णा रुजा शिरसि सन्धिषु चापि भेदः ॥ २३ ॥

परमदरोगमें रोगीकी नाकसे कफका गिरना, शरीरमें भारीपन, मुखमें विरसता और मल मूत्रका अवरोध, तन्द्रा, अरुचि, तृषा, शिरमें पीडा और सब सन्धियोंमें भेदन सरीखी पीडा होती है ॥ २३ ॥

पानाजीर्णके लक्षण।

आध्मानमुग्रमथवोद्गिरणं विदाहः पाने त्वजीर्णमुपगच्छति लक्षणानि। ज्ञेयानि तत्र भिषजा सुविनिश्चितानि पित्तातिकोपजनितानि च कारणानि ॥ २४ ॥

पानाजीर्णमें अत्यन्त पेटका फूलना, डकारका आना और दाहका होना अथवा अजीर्ण, वमनका होना ये सब लक्षण होते हैं तथा और भी पित्तप्रकोपजनित अनेक कारण होते हैं ॥ २४ ॥

पानविभ्रमके लक्षण।

हृद्गात्रतोदकफसंस्रवकण्ठधूममूर्च्छावमिज्वरशिरोरुजनप्रदेहाः। द्वेषः सुरान्नविकृतेषु च तेषु तेषु तं पानविभ्रममुशन्त्यखिलेन धीराः ॥ २५ ॥

हृदय और गात्रमें तोडने या सुई चुभोने सरीखी पीड़ा होती है, नाक और मुखसे कफका निकलना, कंठमें धुआँसा उठना, वमन, मूर्च्छा, ज्वर, शिरमें पीड़ा होना, मुखमें कफ लीसा रहे तथा सर्व प्रकारकी मदिरा पर और सर्व प्रकारके अन्नोंके ऊपर अरुचि हो तो मद्यके विकारोंमें पानविभ्रमरोग उत्पन्न हुआ जानना चाहिए ऐसा प्राचीनाचार्य्योंने कहा है ॥ २५ ॥

असाध्यलक्षण।

हीनोत्तरौष्ठमतिशीतममन्ददाहं तैलप्रभास्यमतिपानहतं त्यजेत्तु। जिह्वौष्ठतालुमसितं त्वथवापि नीलं पित्ते च यस्य नयने रुधिरप्रभे वा ॥ २६ ॥

पानात्यय और पानविभ्रम आदि रोगोंमें जो रोगीका नीचेका होंठ लटक जाय, बाहरसे अत्यन्त शीत लगे, भीतर दाह हो, मुख तेलके समान चिपकासा रहे, जिह्वा, तालु और होंठ काले अथवा नीले पड़जायँ, नेत्र पीले या रुधिरके समान लाल होजायँ तो उसको असाध्य समझ कर त्याग देवे ॥ २६ ॥

उपद्रव ।

हिक्काज्वरौ वमथुवेपथुपार्श्वशूलाः कासभ्रमावपि च पानहतं त्यजेत्तु ॥ २७ ॥

हिचकी, ज्वर, वमन, कंप, पार्श्वशूल,खांसी और भ्रम ये लक्षण हों तो वैद्य उस मदात्ययरोगवाले रोगीको त्याग देवे ॥ २७ ॥

ध्वंसक और विक्षेपके लक्षण ।

विच्छिन्नमद्यः सहसा योऽतिमद्यं निषेवते । ध्वंसको विक्षेपकश्च रोगश्चास्योपजायते ॥ २८ ॥

जो मनुष्य कदापि मद्य नहीं पीता हो वह मनुष्य यदि एकसाथ निरन्तर कुविधिसे अधिकतर मद्यपान करे तो उसके ध्वंसक और विक्षेपक यह रोग उत्पन्न होते हैं ॥ २८ ॥

श्लेष्मप्रसेकहृत्कण्ठास्यशोषश्च सहिष्णुता । तन्द्रानिद्रातियोगश्च ज्ञेयं ध्वंसकलक्षणम् ॥ २९ ॥

ध्वंसक रोगमें कफका गिरना, हृदय, कंठ और मुखमें शोष, असहनशीलता,अत्यन्त बेकली,अत्यन्त तन्द्रा और निद्राका होना, ये सब लक्षण होते हैं ॥ २९ ॥

हृत्कंठरोगसंमोहश्छर्दिरंगरुजा ज्वरः । तृष्णाकासशिरःशूलमेतद्विक्षेपलक्षणम् ॥ ३० ॥

विक्षेपक रोगमें हृदय और कंठमें पीड़ा, मोह, वमन, समस्त शरीरमें पीड़ा, ज्वर, तृषा खाँसी और शिरमें पीडा ये सब लक्षण होते हैं ॥ ३० ॥

चिकित्सा ।

मद्यं सौवर्चलं व्योषं युक्तं किञ्चिज्जलान्वितम् । जीर्णमद्याय दातव्यं वातपानात्ययापहम् ॥ ३१ ॥

काला नमक, सोंठ, मिरच और पीपल इनको एकत्र कुछेक जलके साथ पीसकर मदिराके साथ जीर्ण मद्यवालेको देवे तो वातज पानात्यय दूर होता है ॥ ३१ ॥

योजयेन्मातुलुङ्गाम्लदाडिमैः पानकान्यपि । स्निग्धाम्लमलवणाम्लांश्च रसाञ्जाङ्गलजाञ् शुभान् ॥ ३२ ॥

इसमें बिजौरा नींबू, इमली और खट्टा अनार इनका पानक (पन्ना) बनाकर देवे तथा स्निग्ध, अम्ल और लवण रसवाले पदार्थोंके साथ जांगल जीवोंका मांसरस देवे ॥ ३२ ॥

सूक्तं सौवर्चलं शृंगी त्र्यूषणार्द्रकदीप्यकैः । मद्यं पीत्वा जयत्युग्रं पवनोत्थं मदात्ययम् ॥ ३३ ॥

सूक्त (सिरका), काला नमक, काकड़ाशिंगी, त्रिकुटा, अदरख और अजवायन इनके साथ मद्यको पीनेसे वातजनित मदात्यय दूर होता है ॥ ३३ ॥

पित्तान्वये मधुरवर्गकषायसिद्धं मद्यं हितं समधुशर्करमिष्टगन्धि । पीत्वा च मद्यमपि चेक्षुरसप्रगाढं किञ्चित् क्षणस्थितमथोल्लिखितव्यमेव ॥ ३४ ॥

पित्तजनित मदात्यय रोगमें मधुर वर्गकी औषधियोंके द्वारा काथ बनाकर उत्तम गंधवाली मदिरामें मिलाकर और उसमें शहद तथा मिश्री डालकर पीवे। अथवा मदिरा और बहुतसे ईखके रसको पीकर थोडी देर ठहरकर वमन करे ॥ ३४ ॥

सतीनमुद्गमिश्रान् वा दाडिमामलकान्वितान् । द्राक्षामलकखर्जूरपरूषकरसेन वा । कल्पयेत्तर्पणान् यूषान्रसांश्च विविधात्मकान् ॥ ३५ ॥

मटर, मूँग अथवा अनार और आमले या दाख, आमले, खजूर और फालसे इनके रसोंके द्वारा तृप्तिकारक यूष और अनेक प्रकारके रस बनाकर देवे ॥ ३५ ॥

पित्ते क्षौद्रसितायुक्तं मद्यमर्द्धोदकं पिबेत् । पित्तपानात्यये योज्या सर्वतश्च क्रिया हिमाः ॥ ३६ ॥

पैत्तिक मदात्ययमें शहद और मिश्रीके साथ आधा जल मिली हुई मदिरा पीवे। पित्तज पानात्ययमें सब प्रकारकी शीतल क्रिया करे ॥ ३६ ॥

वमनद्रव्यसंयुक्तमद्येनोल्लेखनं हितम् । पानरोगे कफोद्भूते लङ्घनञ्च यथाबलम् । दीपनीयौषधोपेतं पिबेन्मद्यं समाहितः ॥ ३७ ॥

कफजनित मदात्ययरोगमें वमनकारक औषधियोंको मदिरामें मिलाकर उससे वमन करना हितकारी है और बलानुसार लंघन करावे तथा अग्निको दीपन करनेवाली औषधियोंके साथ मद्य पीवे॥३७॥

त्रिफलाया रसो वाऽपि व्योषचूर्णसमन्वितः । शुष्कमूलकजो यूषः कौलित्थो वा मधूत्कटः। यवान्नविकृतिर्योज्या जाङ्गलान्नकृतानि च॥३८॥

त्रिफलेके रसमें त्रिकुटेका चूर्ण डालकर सेवन करे या सूखी मूलीका यूष या कुलथीका यूष, तीव्र मदिरामें मिलाकर पीवे अथवा जौका यूष या जौकी मदिरा और जांगल देशके जीवोंका मांसरस पीवे ॥ ३८ ॥

अष्टाङ्ग लवण।

सौवर्चलमजाजी च वृक्षाम्लं साम्लवेतसम् । त्वगेलामरिचार्धांशं शर्कराभागयोजितम् ॥ ३९ ॥ एतल्लवणमष्टाङ्गमग्निसन्दीपनं परम् । मदात्यये कफप्राये दद्यात् स्रोतोविशुद्धये॥४०॥

काला नमक १ भाग, जीरा, तिंतिडी, अमलबेत, दालचीनी, इलायची और काली मिर्च ये प्रत्येक आधा भाग और मिश्री एक भाग लेवे, सबको एकत्र कूट पीस लेवे तो अष्टांग लवण तैयार होता है। यह अष्टांग लवण—अग्निको दीपन करनेवाला है । इसको स्रोतोंके शुद्ध करनेके लिये कफजनित मदात्यय रोगमें देवे ॥ ३९ ॥ ४० ॥

सर्वजे सर्वमेवेदं प्रयोक्तव्यं चिकित्सकैः। आभिः क्रियाभिः सिद्धाभिः शान्तिं याति मदात्ययः ॥ ४१ ॥

त्रिदोषजानित मदात्यय रोगमें उपरोक्त सर्वदोष नाशक चिकित्सा करनी चाहिए। इस प्रकार विधिपूर्वक चिकित्सा करनेसे मदात्यय रोग शांत होता है ॥ ४१ ॥

न चेन्मद्यक्रमं हित्वा क्षीरमस्य प्रयोजयेत् । लङ्घनाद्यैः कफे क्षीणे जाते दौर्बल्यलाघवे ॥ ४२ ॥ ओजस्तुल्यगुणं क्षीरं विपरीतञ्च मद्यतः । क्षीरप्रयोगे मद्यञ्च क्रमेणाल्पाल्पमाचरेत् ॥ ४३ ॥

मदिराका क्रम छोड़कर दूध नहीं देना चाहिए । जब लंघनादिसे कफ क्षीण होजावे और दुर्बलता तथा लघुता प्राप्त होजावे तब ओजके समान गुणोंवाला गौका उत्तम दूध मदिरासे विपरीत देना चाहिए । दूध अथवा मदिरा थोड़ी २ देनी चाहिए ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

मन्थः खर्जूरमृद्वीकावृक्षाम्लाम्लिकदाडिमैः । परूषकैः सामलकैर्युक्तो मद्यविकारनुत ॥ ४४ ॥

खजूर, दाख, तिन्तिडी, इमली, अनार, फालसे और आमले इनका मन्थ बनाकर सेवन करे तो मदिराके विकार दूर होते हैं ॥ ४४ ॥

चव्यादिचूर्ण।

चव्यं सौवर्चलं हिङ्गु जीरकं विश्वदीप्यकम् । चूर्णं मद्येन दातव्यं पानात्ययरुजापहम् ॥ ४५ ॥

चव्य, काला नमक, हींग, जीरा, सोंठ और अजमोद इनका चूर्ण मदिराके साथ सेवन करे तो पानात्यय रोग दूर होता है ॥ ४५ ॥

मधुत्रिफलागुडार्द्रकयोग।

मधुना हन्त्युपयुक्ता त्रिफला रात्रौ गुडार्द्रकं प्रातः । सप्ताहात् पथ्यभुजो मदमूर्च्छाकामलोन्मादान्॥ ४६ ॥

रात्रिमें त्रिफलेके चूर्णको शहदके साथ और प्रातःकाल--गुडके साथ अदरखको भक्षण करे तथा पथ्यसे रहे तो सात दिनमें मद, मूर्च्छा, कामला और उन्मादरोग नष्ट होता है ॥ ४६ ॥

अहानि सप्त चाष्टौ च नृणां पानात्ययं स्मृतम् । पानं हि भजते जीर्णमत ऊर्ध्वं विमार्गगम् ॥ ४७ ॥

मनुष्योंके पानात्यय रोग सात या आठ दिनतक रहता है फिर जीर्ण होकर अन्य गतिको प्राप्त हो जाता है ॥ ४७ ॥

सगुडः कूष्माण्डकरसः शमयति मदमाशु मदनकोद्रवजम् । धत्तूरकं च दुग्धं सशर्करञ्च पानयोगेन ॥ ४८ ॥

पेठेके रसमें गुड़ डालकर पीनेसे मैनफल और कोदोंका मद शीघ्र दूर होता है । दूधमें मिश्री डालकर पीवे तो धतूरेका मद दूर होता है ॥ ४८ ॥

सच्छर्दिमूर्च्छातिसारं मदं पूगफलोद्भवम् । सद्यः प्रशमयेत्पीतमाकूतेर्वारि शीतलम् ॥ ४९ ॥

पेटभरकर शीतल जल पीनेसे वमन, मूर्च्छा, अतीसार और सुपारीका मद दूर होता है ॥ ४९ ॥

वन्यकरीषघ्राणाज्जलपानाल्लवणभक्षणादपि च। शाम्यति पूगफलमदश्चूर्णरुजा शर्कराकवलात् ॥ ५० ॥

आरने उपलोंको सूँघनेसे या जलको पीनेसे अथवा नमकको भक्षण करनेसे सुपारीका मद दूर होजाता है, मिश्रीका कवल धारण करनेसे चूनेका मद दूर होता है ॥ ५० ॥

मद्यं पीत्वा यदि ना तत्क्षणमवलेढि शर्करां सघृताम् । जातु न मदयति मद्यं मनागपि प्रथितं जीर्णमपि ॥ ५१ ॥

मद्यको पीकर जो तत्काल ही घीमें मिश्री मिलाकर खाय तो अत्यन्त तीक्ष्ण मदिरा भी जीर्ण हो जाती है ॥ ५१ ॥

कट्फलमुस्तगुडूचीमाषैः क्रमविवर्धितैश्च तत्सर्वम् । चर्वितमुखधृतमात्रं हन्याद्गन्धं सुराप्रभवम् ॥ ५२ ॥

कायफल १ माशे, नागरमोथा२ माशे और गिलोय ३ माशे इनको मद्यपानके पश्चात् मुखमें डालकर चाबे तो मुखकी गन्ध दूर होती है ॥ ५२ ॥

पथ्याक्काथेन संसिद्धं घृतं धात्रीरसेन वा । सर्पिः कल्याणकं वापि मदमूर्च्छापहं पिबेत् ॥ ५३ ॥

हरड़के काथमें अथवा अमलोंके रसमें घीको पकाकर सेवन करे तो मद और मूर्च्छा सब दूर होती है ॥ ५३ ॥

शतावरीपुनर्नवादिघृत ।

शतावरीसवृश्चीवयष्टिकल्कैः शृतं घृतम् । पयः पुनर्नवाक्काथे पानात्ययमपोहति ॥ घृतं पुष्टिकरं पानान्मद्यपानहतौजसः ॥ ५४ ॥

शतावर, पुनर्नवा और मुलेठीके कल्कके द्वारा दूध और पुनर्नवाके काथमें घृतको पकावे । यह घृत पुष्टिकारक और मदात्यय रोगको दूर करताहै ॥ ५४ ॥

ये च तृष्णादयो रोगास्ते निवार्याः स्वभेषजैः । मद्यप्रक्षीणदेहस्य बस्तयः सानुवासनाः । अभ्यङ्गोत्सादनस्नानसर्पिःक्षीरनिषेवणम् ॥ ५५ ॥

मदात्ययमें तृषा आदि जो रोग हैं उन उनकी औषधियोंसे दूर करना चाहिए । मद्यसे क्षीण देहवाले मनुष्योंको अनुवासनबस्ति, अभ्यंग, उत्सादन, स्नान और घृत, दूधका पान करना मद्यके दोषको दूर करता है ॥ ५५ ॥

जलप्लुतश्चंदनभूषिताङ्गः स्रग्वी सभक्तां पिशितोपदंशाम् । पिबेत्सुरां नैव लभेत रोगान्मनोवधातांश्च मदं न याति ॥ ५६ ॥

जो जलमें गोता मारकर स्नान करते हैं, शरीरको चन्दनादि पदार्थोंसे विभूषित करते हैं, भात और मांस

तथा उपदंश (चाट) के साथ मदिराको पान करते हैं वह मनको नष्ट करनेवाले मदको प्राप्त नहीं होते ५६

यं दोषमधिकं पश्येत्तमादौ प्रतिकारयेत् । कफस्थानानुपूर्व्या वा तुल्यदोषे मदात्यये ॥ ५७ ॥

मदात्यय रोगमें जौनसा दोष अधिक दीखे उसीको प्रथम निवारण करे अथवा समान दोषवाले मदात्ययमें कफस्थानके आनुपूर्वतापूर्वक चिकित्सा करे ५७

त्याज्य रोगी ।

कान्तिश्च हीना च विहीनकर्णौ जिह्वातिनीला दशनावली च । नेत्रे तु रक्ते शुकपक्षपीते कृष्णाधरौ यत्र विवर्जनीयः ॥ ५८ ॥

जिसके देहकी कान्ति नष्ट होजाय, कानोंसे ठीक नहीं सुनाई देवे, जीभ और दांतोंकी पंक्ति अत्यन्त नीली पडजाय, नेत्र लाल अथवा तोतेके पंखकी समान पीले होजायँ और होठ काले पड़जायँ ऐसे मदात्ययरोगवालेको त्यागना उचित है ॥ ५८ ॥

इति श्रीवङ्गसेने भाषाटीकायां पानात्ययपरमदपानाजीर्णपानविभ्रमाधिकार सम्पूर्ण ।

अथ दाहरोगनिदानाधिकार ।



त्वचं प्राप्तः स पानोष्मा पित्तरक्ताभिमूर्च्छितः । दाहं प्रकुरुते घोरं पित्तवत्तत्र भेषजम् ॥ १ ॥

मद्यपान करनेसे दूषित पित्तकी गरमी पित्त और रक्तको बढाकर त्वचामें दाहको उत्पन्न करती है। उस दाहको मद्यजनित कहते हैं । इसमें पित्तकी समान चिकित्सा करनी चाहिए ॥ १ ॥

चिकित्सा ।

शतधौतघृताभ्यक्तं दिह्यात्तु यवसक्तुभिः । कोलामलकसंयुक्तैर्दाडिमाम्लेन बुद्धिमान् ॥ २ ॥

दाहसे पीडित मनुष्यके शरीरमें सौवार धुले हुए घीका लेप करे । तथा जौके सत्तुओंका शरीरपर लेप करे । बेर और आमलोंको एकत्र पीसकर या अनार और इमलीको एकत्र पीसकर लेप करे ॥२॥

छादयेत्तस्य सर्वाङ्गमारणालार्द्रवाससा । लामज्जेनाथ शूक्तेन चन्दनेनानुलेपयेत् ॥ ३ ॥

वस्त्रमें काँजीका लेप करके उससे सर्वांगको आच्छादित करे । अथवा लामज्जक (खस भेद)नामक सुगन्धित तृण या सिरका अथवा चन्दनका अनुलेपन करे ॥ ३ ॥

चन्दनाम्बुकणास्यन्दितालवृन्तोपवीजितः । सुप्यादाहार्दिताम्भोजकदलीदलसंस्तरे ॥ ४ ॥

चन्दनको जलमें पीसकर उस जलसे ताड़के पंखेको भिजोकर उससे दाहरोगीकी पवन करे तथा कमल और केलेके पत्तोंपर शयन करावे ॥ ४॥

परिषेकावगाहेषु व्यञ्जनानाञ्च सेवने । शस्यते शिशिरं तोयं तृष्णादाहोपशान्तये ॥ ५ ॥

दाहसे पीडित मनुष्यके शरीरपर शीतल जलका छींटा देना, शीतल जलमें घुसकर स्नान करना, पंखेपर शीतल जलको छिड़ककर पवन करना, ये सब तृषा और दाहको शमन करते हैं ॥ ५ ॥

क्षीरैः क्षीरकषायैश्च सुशीतैश्चन्दनान्वितैः । अन्तर्दाहं प्रशमयेदेतैश्चान्यैः सुशीतलैः ॥ ६ ॥

दूध और दूधवाले वृक्षोंका सुशीतल चन्दनयुक्त काथसे और अन्यान्य शीतल प्रयोगोंसे अन्तर्दाह शमन होती है ॥ ६ ॥

फलनीलोध्रसेव्याम्बु हेमपत्रं कुटंनटम् । कालीयकरसोपेतं दाहे शस्तं प्रलेपनम् ॥ ७ ॥

फूलप्रियंगू, लोध, लामज्जक, सुगन्धवाला, धतूर के पत्ते, चंदन इनको अगरके रसमें पीसकर लेप करनेसे दाह शमन होती है ॥ ७ ॥

श्लक्ष्णसूक्ष्मकृतो लेपश्चन्दनस्यापि दाहनुत् । त्वग्जातस्योष्मणो रोधाच्छीतकृत्त्वमथागुरु ॥ ८ ॥

सफेद चन्दनको बारीक पीसकर उसका पतला लेप करनेसे दाह दूर होती है । त्वचागत गर्मीके रुकनेसे शरीरकी त्वचा शीतल होजाती है । शीतके होने पर शरीरपर अगरका लेप करे ॥ ८ ॥

ह्रीबेरपद्मकोशीरचन्दनक्षोदवारिणा । सम्पूर्णामवगाहेत द्रोणीं दाहार्दितो नरः ॥ ९ ॥

सुगन्धवाला, पद्माख, खस और चन्दन इनको जलमें पीसकर उस जलको डेगमें भरकर उसमें दाह पीडित मनुष्य गोता मारकर स्नान करे ॥ ९ ॥

आमलक्यादिखण्ड ।

आमलक्याश्च कुडवं सुस्विन्नं निष्कुलीकृतम् । प्रस्थेन पयसा पिष्ट्वा पचेत्प्रस्थे च सर्पिषि ॥ १० ॥ प्रस्थं दत्त्वा सितायाश्च वासापलचतुष्टयम् । जीरकं मरिचं कृष्णां चातुर्जातं क्षिपेत्पुनः ॥ ११ कर्ष दत्त्वा ततः स्निग्धे भाण्डे धृत्वोपभोजयेत् । दाहं सुदुर्जयं हन्ति मूर्च्छा छर्दिं चिरोत्थिताम् ॥१२॥

उत्तम बडे बडे ३२ तोले आमले लेकर उनकी गुठली अलग करके एक प्रस्थ दूधमें पीसकर एक प्रस्थ घीमें पकाकर उसमें मिश्री १ प्रस्थ, अडूसा ४ पल, जीरा, कालीमिरच, पीपल, दालचीनी, इलायची तेजपात और नागकेशर इन प्रत्येक औषधियोंका कल्क एकएक तोला डाले जब पककर तैयार होजाय तब उतारकर चिकने बासनमें भरकर रख देवे । यह आमलक्यादि खंड-दुर्जयदाह, मूर्च्छा और बहुत दिनोंकी वमनको भी दूर करता है॥१०॥११॥१२॥

मातुलुङ्गरसक्षौद्रप्रदेहं दाहनाशनम् । शस्यंते चात्र पानानि शीतानि विविधानि च ॥ १३ ॥

बिजौरेनींबूका रस और शहद इनका लेप दाहको शमन करता है । दाहरोगमें विविध प्रकारके शीतल पानीय पदार्थ सब हितकारी हैं ॥ १३ ॥

शीतवातजलस्पर्शः शीतान्युपवनानि च । पित्तज्वरहरं यच्च दाहे तत्कार्य्यमिष्यते ॥ १४ ॥

शीतल पवन, शीतल जलका स्पर्श, शीतल उपवन, (पुष्पवाटिका) और जो जो पदार्थ पित्तज्वरको हरनेवाले हैं वे सब दाहरोगमें हितकारी हैं ॥ १४ ॥

वाप्यः कमलहासिन्यो जलयन्त्रगृहाः शुभाः । नार्य्यश्चन्दनदिग्धाङ्ग्यो दाहदैन्यहरा मताः ॥ १५ ॥

बावडी, जिनमें कमल खिल रहे हैं ऐसे निर्मल जलके सरोवर, जिनमें जलके फुहारे लगरहे हैं ऐसे घर, जिन्होंने चन्दनादिसे अपने शरीरको अलंकृत किया हो ऐसी स्त्रियोंका आलिंगन ये सब दाहको शमन करते हैं ॥ १५ ॥

कुशादिघृत तैल ।

कुशादिशालिपर्णीभिर्जीवकर्षभसाधितम् । तैलं घृतञ्च दाहघ्नं वातपित्तविनाशनम् ॥ १६ ॥

कुशादिगणकी औषधियें, शालिपर्णी, जीवक और ऋषभक इन औषधियोंके द्वारा तेल या घृतको सिद्ध करे । यह तेल, या घृत-दाह और वातपित्तको नष्ट करता है ॥ १६ ॥

रक्तजदाह ।

कृत्स्नदेहानुगं रक्तमुद्रिक्तं दहति ध्रुवम् । संचूष्यते तृष्यते वा ताम्राभस्ताम्रलोचनः । लोहगन्धाङ्गवदनो वह्निनैवावकीर्य्यते ॥१७॥

जब सम्पूर्ण शरीरका रुधिर दूषित होकर दाहरोगको उत्पन्न करता है तब उस दाहसे पीडित मनुष्यके शरीरमें चूसनेकीसी पीडा होती है। प्यास अधिक लगती है, नेत्र तांबेके समान लाल होतेहैं, गात्र और मुखमें

लोहेके समान गन्ध आती है और रोगी अग्निसे जले हुएके समान अत्यन्त दाहयुक्त हो तो इसको रक्तजदाह जानना चाहिए ॥ १७ ॥

चिकित्सा।

तं विलंघ्य विधानेन संसृष्टाहारमाचरेत्। प्रशाम्यत्य वा दाहो रसैस्तुष्टस्य जाङ्गलैः ॥ १८ ॥ शाखाश्रयं युथान्यायं रोहिणीं व्यधयेच्छिराम्॥ १९ ॥

इस दाहरोगीको विधिपूर्वक लंघन कराकर पश्चात् संसृष्ट आहार अर्थात् उत्तम स्निग्ध और शीतल हल्का अन्न भोजनके लिये देवे। अथवा जांगल जीवोंके मांसके रसको देवे। रसके द्वारा तृप्त होनेसे दाह शमन होती है। जो इस प्रकार करनेसे भी दाह शांत न हो तो रोहिणी नामक शिरा (नस) को छिदवाकर फस्त खुलवावे ॥ १८ ॥ १९ ॥

तृष्णानिरोधज दाह।

पित्तज्वरसमः पित्तात् स चाप्यस्य विधिः स्मृतः ॥ २० ॥ तृष्णानुरोधादब्धातौ क्षीणे तेजस्समुद्भवः । स बाह्याभ्यन्तरं देहं प्रदहेन्मन्दचेतसः । संशुष्कगलताल्वोष्ठो जिह्वां निष्कृष्य वेपते ॥ २१ ॥

पित्तकी दाहमें पित्तज्वरके समान लक्षण होते हैं इस कारण पित्तजदाहमें पित्तज्वरके समान चिकित्सा करनी चाहिये। प्यासके समय जलको न पीनेसे शरीरकी जलधातुके क्षीण होनपर तेज वृद्धिको प्राप्त होकर शरीरके बाहर तथा भीतर दाहको उत्पन्न करता है इससे गला, तालु और होठ सूख जाते हैं रोगी जीभको बाहर निकालता है, सुध नहीं रहती और कांपता है ॥ २० ॥ २१॥

चिकित्सा।

पाययेत्काममम्भश्च शर्कराम्भः पयोऽपि वा। क्षीरमिक्षुरसं वापि वितरेच्चखिलं विधिम् ॥ २२ ॥

तृषाजनित दाहमें यथेच्छ जल पीवे, अथवा खांडका शरबत बनाकर पीवे अथवा दूधमें ईखका रस मिलाकर (यदि ग्रीष्म ऋतु हो तो) पीवे॥२२॥

रक्तपूर्णकोष्ठजदाह।

असृजा पूर्णकोष्ठस्य दाहोऽन्यः स्यात्सुदुस्तरः। विधिः सद्योव्रणीयोक्तस्तस्य लक्षणमेव च ॥ २३ ॥

शस्त्रके लगनेसे रुधिर निकलकर कोष्ठमें भरजाय तब अत्यन्त दुस्तर दाहरोग उत्पन्न होता है। इसके लक्षण सद्योव्रणके समान होते हैं इसलिये इसकी सद्योव्रणोक्त चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २३ ॥

धातुक्षयोत्थो यो दाहस्तेन मूर्च्छातृषान्वितः । क्षामस्वरः क्रियाहीनः स सीदेद्भृशपीडितः ॥ २४ ॥

रसादि धातुक्षयजनित दाहमें मूर्च्छा, प्यास, स्वरभंग और रोगी चेष्टारहित होजाता है। इस दाहसे पीडित रोगी उत्तम चिकित्सा न करावे तो मृत्युको प्राप्त होता है ॥ २४ ॥

क्षतजोऽनश्नतश्चान्यः शोचतो वाप्यनेकधा। तेनान्तर्दह्यतेऽत्यर्थं तृष्णामूर्च्छाप्रलापकम् ॥ २५ ॥

क्षतके होनेसे जो दाह होती है उसमें भूख बहुत कम होजाती है और अनेक प्रकारके शोकके कारण जो दाह होती है उसमें शरीरके भीतर अत्यन्त दाह होती है तथा प्यास मूर्च्छा और प्रलाप यह लक्षण होते हैं ॥ २५ ॥

मर्म्माभिघातजोऽप्यस्ति सोऽसाध्यः सप्तमो मतः। सर्व एव च वर्ज्याः स्युः शीतगात्रेषु देहिनः ॥ २६ ॥

मर्मस्थानमें चोट लगनेसे दाह होती है वह सातवीं दाह असाध्य है, सब दाहोंमें शीतल शरीरवाला रोगी असाध्य है ॥ २६ ॥

चिकित्सा।

तमिष्टविषयोपेतं सुहृद्भिरभिसम्मितम् । क्षीरमांसरसाहारं विधिनोक्तेन साधयेत् ॥ २७ ॥

धातुक्षयादिजन्य दाहरोगको अनेक प्रकारके इष्ट विषयोंसे जीते तथा मित्रमंडलीके साथ बैठकर उक्त विधिसे दूध और मांसरसका भोजन करे ॥ २७ ॥

सर्व एव विवर्ज्यास्तु शीतगात्रेषु देहिषु । प्रशान्तोपद्रवो वापि शोधनं प्राप्तमाचरेत् ॥ २८ ॥

सम्पूर्ण शीतल शरीरवाले दाहरोगी त्याज्य हैं। दाहरोगमें उपद्रवोंके शमन होने पर शोधन क्रिया करनी चाहिए ॥ २८ ॥

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायां दाहाधिकार सम्पूर्ण ।

अथ उन्मादरोगाधिकार ।



मद्यन्त्युद्गता दोषा यस्मादुन्मार्गमाश्रिताः । मानसोऽयमतो व्याधिरुन्माद इति कीर्त्तितः ॥ १ ॥

वातपित्तादि दोष अत्यन्त बढकर विपथगामी होकर मनोवह (मनको बढानेवाली) धमनियोंमें प्रवेश करके मनमें भ्रांति उत्पन्न करते हैं। इसको उन्माद रोग कहते हैं। यह मनको विकृत कर देता है अतएव यह मानसिक रोग है ॥ १ ॥

एकैकशः सर्वशश्च दोषैरत्यर्थमूर्च्छितैः। मानसेन च दुःखेन स पञ्चविध उच्यते॥ २॥

अत्यन्त कुपित हुए वातादि दोषोंसे पृथक् २ तीन तीन सन्निपातसे और मानसिक दुःखसे एक ऐसे उन्मादरोग पांच प्रकारका है ॥२॥

विषाद्भवति षष्ठस्तु यथास्वन्तेषु भेषजम् । स चाप्रवृद्धस्तरुणो मदसंज्ञां बिभर्त्ति च ॥ ३ ॥

और एक विष भक्षण करनेसे होता है उसको छठा उन्माद समझना चाहिए । इसकी यथादोषानुसार चिकित्सा करनी चाहिये । जबतक यह रोग बढा नहीं तबतक इसको मद ऐसा कहते हैं ॥ ३ ॥

उन्मादके सामान्यकारण और सम्प्राप्ति।

विरुद्धदुष्टाशुचिभोजनानि प्रधर्षणं देवगुरुद्विजानाम् । उन्मादहेतुर्भयहर्षपूर्वो मनोऽभिघातो विषमाश्च चेष्टाः ॥ ४ ॥

संयोग विरुद्ध द्रव्य, दूषित पदार्थ और अपवित्र द्रव्योंको भोजन करनेसे, देवता और गुरुजन आदि का अपमान करनेसे, भय और हर्षके कारण मनमें चोटके लगनेसे अथवा ज्ञानेन्द्रियोंकी चेष्टा करनेसे उन्मादरोग उत्पन्न होता है ॥ ४ ॥

तैरल्पसत्वस्य मलाः प्रदुष्टा बुद्धेर्निवासं हृदयं प्रदूष्य । स्रोतांस्यधिष्ठाय मनोवहानि प्रमोहयन्त्याशु नरस्य चेतः ॥ ५ ॥

पूर्वोक्त कारणोंसे दूषित वात पित्त और कफ अल्प सत्व (दिल कमजोर) वाले मनुष्योंके बुद्धिके निवास स्थान मन और हृदयको दूषित करके और मनोवह स्रोतोंमें प्रवेश करके अन्तःकरणमें विकार उत्पन्न करते हैं ॥ ५ ॥

उन्मादका पूर्वरूप ।

धीविभ्रमः सत्त्वपरिप्लवश्च पर्याकुला दृष्टिरधीरता च। अबद्धवाक्यं हृदयञ्च शून्यं सामान्यमुन्मादगदस्य लिङ्गम् ॥ ६ ॥

बुद्धिमें भ्रम, चित्तमें चंचलता, दृष्टिको इधर उधर चलाना, अधैर्य, हृदयमें शून्यता और वृथा बकवाद या कुछका कुछ बोलना यह उन्मादरोगके सामान्य लक्षण हैं ॥ ६॥

वातजउन्मादके लक्षण ।

रूक्षाल्पशीतान्नविरेकधातुक्षयोपवासैरनिलोऽतिवृद्धः । चिन्तादिदुष्टं हृदयं प्रदूष्य बुद्धिं स्मृतिं चाप्यु-

पहन्ति शीघ्रम् ॥ ७ ॥ अस्थानहास्यस्मितगीतनृत्यवागङ्गविक्षेपणरोदनानि । पारुष्यकार्श्यारुणवर्णता च जीर्णे बलं चानिलजस्य रूपम् ॥ ८ ॥

रूक्ष, शीतल और थोडा भोजन करनेसे, विरेक (जुल्लाब) धातुक्षय और उपवास इन कारणोंसे वृद्धिको प्राप्त हुई वायु--चिन्ता शोकादिसे आकुलित होकर अंतःकरणको दूषित करके बुद्धि और स्मरणशक्तिका नाश करके उन्माद रोगको उत्पन्न करती है। इसमें रोगी विना कारण ही हँसता है, मन्द २ मुसकाता है, विना समयके नृत्य और गान करता है, अधिक बोले, अंगोंको इधर उधर फेंकता है, रोता है, बोलनेसे खरखरा, शरीर कृश और लाल होजाता है और भोजनके पचनेपर रोगका अधिक बल होता है। ये वातज उन्मादके लक्षण जानने ॥ ७ ॥ ८ ॥

पित्तजउन्मादके लक्षण ।

अजीर्णकट्वम्लविदाह्यशीतैर्भोज्यैश्चितं पित्तमुदीर्णवेगम् । उन्मादमत्युग्रमनात्मकस्य हृदि स्थितं पूर्ववदाशु कुर्यात् ॥ ९ ॥ अमर्षसंरम्भविनग्नभावाः सन्तर्जनाभिद्रवणौष्ण्यरोषाः । प्रच्छायशीतान्नजलाभिलाषाः पीता च भा पित्तकृतस्य लिङ्गम् ॥ १० ॥

अजीर्ण, कटु, अम्ल, दाहकारक और उष्ण ऐसे अधिक भोजन करनेसे पित्त वृद्धिको प्राप्त होकर इन्द्रिय लोलुप मनुष्योंके मनोवह धमनियोंमें प्रवेश करके अंतःकरणको दूषित करके उन्माद रोगको उत्पन्न करता है। इस रोगमें असहनशीलता, हाथ पावोंका पटकना, नंगा हो जाना, भयभीत होना, भागना, दौड़ना, शरीरका अधिक गरम होना, छायामें जानेकी इच्छा, शीतल अन्न और शीतल जल पीनेकी अभिलाषा होना और शरीरकी पीली कांति हो जाना, ये सब पित्तज उन्मादके लक्षण जानने ॥ ९ ॥ १० ॥

कफजउन्मादके लक्षण ।

संपूर्णैर्मन्दविचेष्टितस्य सोष्मा कफो मर्मणि संप्रवृद्धः । बुद्धिं स्मृतिं चाप्युपहन्ति चित्तं प्रमोहयन् संजनयेद्विकारम् ॥ ११ ॥ वाक्चेष्टितं मन्दमरोचकश्च नारीविविक्तप्रियता च निद्रा । छर्दिश्च लाला च बलश्च भुक्ते नखादिशौक्ल्यश्च कफात्मके स्यात् ॥ १२

थोडी भूखमें पेटभर कर भोजन करनेसे, परिश्रम न करनेसे मनुष्योंके पित्तसहित कफ हृदयमें अत्यन्त बढ़कर बुद्धि और स्मरणशक्तिको नष्ट करके चित्तको विकृत कर उन्मादरोगको उत्पन्न करता है। यह उन्मादरोगी थोडा बोलता है, भोजनादिमें अरुचि होती है, स्त्रीमें आसक्त हो, अधिक निद्रामें मग्न रहे, वमन और लार अधिक गिरे, भोजन करनेपर रोगका अधिक जोर हो। ये कफज उन्मादके लक्षण जानने ॥ ११ ॥ १२ ॥

सन्निपातजउन्मादके लक्षण।

यः सन्निपातप्रभवोऽपि घोरः सर्वैः समस्तैरपि हेतुभिः स्यात् । सर्वाणि रूपाणि बिभर्त्ति तादृग्विरुद्धभैषज्यविधिर्विवर्ज्यः ॥ १३ ॥

सन्निपातज उन्मादरोग सब प्रकारके मिलेहुए कारणोंसे उत्पन्न होता है। इसकारण यह सब लक्षणोंयुक्त होता है, इस महाभयंकर विरुद्ध चिकित्सनीय सान्निपातिक उन्मादरोगीको वैद्य त्याग देवे १३

शोकजउन्मादके लक्षण।

चौरैर्नरेन्द्रपुरुषैररिभिस्तथान्यैर्वित्रासितस्य धनबान्धवसंक्षयाद्वा । गाढं क्षते मनसि च प्रियया रिरंसोर्जायेत चोत्कटतरो मनसो विकारः ॥ १४ ॥ चित्रं ब्रवीति च मनोऽनुगतं विसंज्ञो गायत्यथो हसति रोदिति चापि मूढः ।

चोर, राजपुरुष, शत्रु अथवा अन्य किसीके त्राससे तथा धन और बन्धुके नाश होनेसे, अथवा इष्ट प्रियजनोंके न मिलनेसे मनुष्योंका अन्तःकरण अत्यन्त क्षोभित होकर घोर मानसिक विकार अर्थात् शोकजउन्मादको उत्पन्न करता है। यह

रोगाक्रान्त मनुष्य ज्ञानशून्य होकर नानाप्रकारकी गुप्त कथाओंको प्रकाशित करता है। तथा गीत गाता, हँसता, रोता तथा मूर्ख हो जाता है ॥ १४ ॥

विषजउन्मादके लक्षण ।

रक्तेक्षणो हतबलेन्द्रियभाः सुदीनः श्यावाननो विषकृतेन भवेद्विसंज्ञः ॥ १५ ॥

विषजउन्मादरोगीके नेत्र लाल होजाँय, मुख काला पडजाय, बल, इंद्रियें और शरीरकी कांति जाती रहती है तथा दीनता और ज्ञानशून्यता हो जाती है ॥ १५ ॥

उन्मादके असाध्य लक्षण ।

अवाङ्मुखस्तून्मुखो वा क्षीणमांसबलो नरः । जागरूको ह्यसन्देहमुन्मादेन विनश्यति ॥ १६ ॥

जो उन्मादरोगी सदैव नीचेको अथवा ऊपरको जिसका मुख करे रहता है, मांस और बल क्षीण होजाय और कभी निद्रा न आवे उसको असाध्य जानना ॥ १६ ॥

चिकित्सा ।

वातिके स्नेहपानं प्राग्विरेकः पित्तसम्भवे । कफजे वमनं कार्य्यं परो बस्त्यादिकः क्रमः ॥ १७ ॥

वातके उन्मादरोगमें प्रथम स्नेहपान, पित्तके उन्मादरोगमें प्रथम विरेचन, कफके उन्मादरोगमें प्रथम वमन और अन्यान्य उन्मादरोगोंमें प्रथम बस्त्यादि कर्म करने चाहिए ॥ १७ ॥

यच्चोपदिश्यते किञ्चिदपस्मारचिकित्सिते । उन्मादे तच्च कर्त्तव्यं सामान्याद्दोषदूष्ययोः ॥ १८ ॥

अपस्मार रोगमें जो कुछ यत्न कहागया है वह उन्मादरोगमेंभी करना चाहिए, कारण इसमें दोष और दूष्य समान हैं ॥ १८ ॥

द्रुमाग्निजलशैलेभ्यो विषमेभ्यश्च तं सदा । रक्षेदुन्मादिनं चैव सद्यः प्राणहरं हि तत ॥ १९ ॥

उन्मादरोगीकी वृक्ष, अग्नि, जल, पर्वत और विषमस्थान आदिसे सदैव रक्षा करनी चाहिए क्योंकि यह तत्काल प्राणनाशक है ॥ १९ ॥

ब्राह्मीकुष्माण्डीफलषड्ग्रंथाशंखपुष्पिकास्वरसाः । उन्मादहता दृष्टा पृथगेते कुष्ठमधुमिश्राः ॥ २० ॥

ब्राह्मी, पेठा, बच और शंखाहुली इनके पृथक् २ स्वरसमें कूटका चूर्ण और शहद मिलाकर सेवन करे तो उन्मादरोग दूर होता है ॥ २० ॥

चाङ्गेरीरसकाञ्जिकगुडसमभागा सुमाथिताः क्रमशः । उन्मादरोगशमना पीता दिवसत्रयेणैव ॥ २१ ॥

चांगेरी, खटकलका रस,कांजी और गुड ये सब समानभाग लेकर अच्छे प्रकारसे एकत्र मथकर तीन दिनतक पीनेसे उन्मादरोग दूर होता है ॥ २१ ॥

मण्डूकपर्ण्याः स्वरसः कनकदलसंयोजितः समभागः । शमयत्युन्मादगदं तृणराजवल्लीरसयुक्तः ॥ २२ ॥

मण्डूकपर्णी (ब्राह्मी) के स्वरसमें धतूरेके पत्तोंका स्वरस मिलाकर अथवा तृणराजवल्ली (·तालवृक्ष) का रस मिलाकर सेवन करे तो उन्माद रोग शमन होता है ॥ २२ ॥

सितकुसुमबलायाः सार्धकर्षत्रयं यः शिखरिचरणकोलं क्षीरपाकेन पक्वम् । पिबति तदनु शीतं प्रातरुत्थाय नित्यं जयति झटिति घोरं व्याधिमुन्मादमुग्रम् ॥ २३ ॥

सफेद फूलकी खिरैंटीका चूर्ण ३ ॥ कर्ष, पुनर्नवाकी जडका चूर्ण १ तोला, दोनोंको क्षीरपाककी विधिसे पकाकर शीतल करके नित्य प्रातःकाल पीवे तो अत्यन्त घोर उन्मादरोग तत्काल दूर होता है २३

सिद्धार्थकाद्यञ्जन ।

सिद्धार्थको हिंगुवचाकरञ्जो देवदारु च । मञ्जिष्ठा त्रिफला श्वेता कटभीत्वक् कटुत्रिकम् । समांशानि प्रिय-

हिङ्गुश्च शिरीषो रजनीद्वयं वत्समूत्रेण पिष्टोऽयमगदः पानमञ्जनम् ॥ २४ ॥ नस्यमालेपनञ्चैव स्नानमुद्वर्त्तनं तथा । अपस्मारविषोन्मादकृत्यालक्ष्मीज्वरापहम् ॥ २५ ॥ भूतेभ्यश्च भयं हन्ति राजद्वारे च शस्यते । सर्पिरतेन सिद्धं वा गोमूत्रे च तदर्थकृत ॥ २६ ॥

सफेद सरसों, हींग, वच, करंज, देवदारु, मजीठ, त्रिफला, फटकरी, कटभी, दालचीनी, त्रिकुटा, फूलप्रियंगू, सिरस, हल्दी और दारुहल्दी इनको बकरीके मूत्रमें पीसकर पीवे या अंजन लगावे, नास लेवे, शरीरपर लेप करे स्नान करे, और इसको देहपर मले तो अपस्मार, विष, उन्माद, कृत्या, अलक्ष्मी और ज्वर दूर होते हैं, तथा भूतबाधा दूर होती है । राजद्वारमें जाते समय इसका सेवन करना शुभ है । अथवा इन सब औषधियोंके कल्कके द्वारा गोमूत्रमें घृतको पकाकर सेवन करनेसे उपयुक्त सब गुणोंकी प्राप्ति होती है ॥ २४-२६ ॥

दशमूलांबु सघृतं युक्तं मांसरसेन वा । ससिद्धार्थकचूर्णश्च केवलं नावनं घृतम् ॥ २७ ॥

दशमूलके काथमें घी मिलाकर अथवा मांसरस मिलाकर सेवन करे अथवा केवल सरसोंके चूर्णमें घी मिलाकर नास लेवे तो उन्मादरोग दूर होता है ॥ २७ ॥

उन्मादशान्तये पेयो रसो वा तिलमाषजः । प्रयोज्यं सार्षपं तैलं नस्याभ्यञ्जनयोः सदा ॥ २८ ॥

उन्मादको शांत करनेके लिये तिल और उडदोंका क्काथ बनाकर पीवे अथवा सरसोंके तेलको सदैव नस्य और अभ्यंजनमें प्रयोग करे ॥ २८ ॥

आश्वासयेत्सुहृद्भिश्च वाक्यैर्धर्मार्थसंहितैः । ब्रूयादिष्टविनाशं वा दर्शयेदद्भुतानि च ॥ २९ ॥

उन्मादरोगीको इष्टमित्रोंके द्वारा धैर्य्य प्रदान करे, धर्म, अर्थको साधन करनेवाले वचनोंसे शांत करे, अथवा उससे इष्ट वस्तुका नाश होना कहे, या अद्भुत पदार्थोंको दिखावे ॥ २९ ॥

बद्धं सर्षपतैलाक्तमुत्तानमातपे न्यसेत् । कपिकच्छ्वाथ वा तप्तैर्लोहतैलजलैः स्पृशेत ॥ ३० ॥

उन्मादरोगीके शरीरको सरसोंके तेलसे भिजोकर धूपमें चित्त लिटादेवे । अथवा उसके शरीरपर कौंछकी फली लगावे या गरम लोहेको अथवा गरम तेलको या गरम जलको लगावे ॥ ३० ॥

कशाभिस्ताडयित्वा च सुबद्धं विजने गृहे । रुन्ध्याच्चेतो हि विद्वांस्तं तथा व्रजति तत्सुखम् ॥ ३१ ॥

उन्मादरोगीको एकान्त स्थानमें बांधकर चाबुकोंकी मार लगावे । इसप्रकार करनेसे जब उसको चेत होजाय तब छोड देवे तो उन्मादरोगी सुखी होता है ॥ ३१ ॥

सर्पेणोद्धृतदंष्ट्रेण दान्तैः सिंहैर्गजैश्च तम् । त्रासयेच्छस्त्रहस्तैश्च शत्रुभिस्तस्करैस्तथा ॥ ३२ ॥ अथवा राजपुरुषा बहिर्नीत्वा सुसंयतम् । त्रासयेयुर्बधैरेनं तर्जयन्तो नृपाज्ञया ॥ ३३॥ देहदुःखभयेभ्यो हि परं प्राणभयं भवेत् । तेन तस्य शमं याति सर्वतो विप्लुतं मनः ॥ ३४ ॥

विना दाँतके साँप, हाथी और व्याघ्र आदि जीवोंसे अथवा शस्त्रको हाथमें लिये हुए शत्रु अथवा तस्करोंके द्वारा त्रास देवे । अथवा राजपुरुषोंसे अनेक प्रकारसे भयभीत करावे और अनेक प्रकारसे कष्ट देवे तथा राजाकी आज्ञा लेकर उसके शरीर और प्राणोंको दुःख देवे, देह दुःख भयसे प्राणभय होता हैं, इसप्रकार करनेसे उसका बिगडा हुआ मन फिरसे प्रकृतिमें स्थित होजाता है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

सततं धूपयेच्चैनं गोमांसैश्चैव पूतिभिः ॥ ३५ ॥

उन्मादरोगीको निरन्तर गोमांस आदि दुर्गन्धित मांसोंके द्वारा धूनी देवे ॥ ३५ ॥

इष्टद्रव्यविनाशेन मनो यस्योपहन्यते। तस्य तत्सदृशप्राप्त्या शान्त्याश्वासैः शमं नयेत् ॥ ३६ ॥

इस वस्तुके नाश होनेसे जिस उन्मादरोगीका मन नष्ट होजाय उसको वैसी ही वस्तु देवे या उस की प्राप्ति कहे और शांति, संतोष तथा धीरज आदि-से शमन करे ॥ ३६ ॥

कामशोकभयक्रोधहर्षेर्ष्यालोभसम्भवात् । परस्परप्रतिद्वन्द्वैरेभिरेव शमं नयेत् ॥ ३७ ॥

काम, शोक, भय, क्रोध, हर्ष, ईर्षा और लोभ इनसे उत्पन्न हुए उन्मादरोगको उनके विपरीत काम-शांति आदि उपायोंसे शांत करे ॥ ३७ ॥

बुद्ध्वादोषं वयः सात्म्यं देशकालं बलाबलम् । चिकित्सितमिदं कुर्य्या-दुन्मादे भूतदोषजे ॥ ३८ ॥

वैद्यको उचित है कि, भूतज उन्माद रोगमें रोगी के दोष, अवस्था, प्रकृति देश काल और बलाबल को विचार कर चिकित्सा करे ॥ ३८ ॥

महर्षिपितृगन्धर्वैरुन्मादस्य च बुद्धिमान् । वर्जयेदञ्जनादीनि तीक्ष्णानि क्रूरकर्म्म च ॥ ३९ ॥

महर्षि, पितृ और गन्धर्व इनकी बाधासे उत्पन्न हुए उन्मादरोगमें तीक्ष्ण अंजन, तीक्ष्ण नस्य और सम्पूर्ण क्रूर कर्म करने त्याग देवे ॥ ३९ ॥

अपस्मारक्रियां वापि ग्रहोद्दिष्टांश्च कारयेत् । शान्ति दोषविशुद्धिश्च स्नेहबस्तिभिराचरेत् ॥ ४० ॥

ग्रह ग्रसित उन्मादरोगमें अपस्मारोक्त सर्व क्रियायें करे । तथा शांति, दोष विशोधन और स्नेहबस्ति ये सब कर्म करे ॥ ४० ॥

मृदुपूर्वान्तु विषये क्रियामूर्छां प्रयोजयेत् । शोकशान्तिमपनयेदुन्मादे पश्चमे भिषक् ॥ ४१ ॥

विषजनित उन्मादरोगमें प्रथम मृदु क्रिया करे और शोकज उन्मादरोगमें शांति आदि कर्म्म करे ॥ ४१ ॥

उरोबाहुललाटस्थां शिरां मुक्त्वा प्रयत्नतः । निवाते शमनं युञ्ज्याद्बिल्वाद्यम्बुकणान्वितम् ॥ ४२ ॥

उन्मादरोगीको वातरहित स्थानमें बैठाकर उसके उर, बाहु और ललाटकी युक्तिपूर्वक फस्त खुलवावे और बिल्वादि औषधियोंके क्वाथमें पीपलका चूर्ण डालकर पिलावे ॥ ४२ ॥

त्र्यूषणादिवर्ति।

त्र्यूषणं हिंगुलवणं वचाकटुकरोहिणी । शिरीषनक्तमालानां बीजं श्वेताश्च सर्षपाः ॥ ४३ ॥ गोमूत्रपिष्टैरेतैस्तु वर्तिर्नेत्राञ्जने हिता । चातुर्थिकमपस्मारमुन्मादं वा नियच्छति ॥ ४४ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, हींग, सैंधानमक, वच, कुटकी, शिरसके बीज, करंजके बीज और सफेद सरसों इन सबको गोमूत्रमें पीसकर बत्ती बनावे इस बत्तीको नेत्रोंमें लगानेसे चातुर्थिक ज्वर, अपस्मार और उन्मादरोग दूर होता है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

सारस्वत चूर्ण।

कुष्टाश्वगन्धे लवणाजमोदे द्वे जीरके त्रीणि कटूनि पाठा । माङ्गल्यपुष्पा च समानचूर्णं कृत्वा च चूर्णेन वचोद्भवेन ॥ ४५ ॥ तुल्येन युक्तं बहुशो रसेन तद्भावितं ब्रह्मविनिर्मितायाः । सर्पिर्मधुभ्याञ्च ततोऽक्षमात्रं लिह्यान्नरः सप्तदिनं हिताशी ॥ ४६ ॥ ऐश्वर्य्यमिच्छन्मनसश्च धैर्य्यं मेधां तथेच्छन्द्विगुणञ्च कालम् । पठेन्नरः श्लोकसहस्रमह्नस्तद्वत् प्रयोज्यं द्विगुणञ्च कालम् ॥ ४७ ॥ सारस्वतमिदं चूर्णं ब्रह्मणा निर्मितं स्वयम् । जगद्धिताय लोकानां दुर्मेधानां विचेतसाम् ॥ ४८ ॥

कूठ, असगन्ध, सैंधानमक, अजमोद, दोनों जीरे, सोंठ, मिरच, पीपल, पाढ और शंखपुष्पी इन सबको

समान भाग लेवे और सबके बराबर वचका चूर्ण लेवे। सबको एकत्र करके ब्राह्मीके रसमें कई दिनतक खरल करे। फिर इसको शहद और घीमें मिलाकर प्रतिदिन एक २ तोला प्रमाण खाय इसप्रकार सात दिनतक सेवन करे। इसके प्रभावसे ऐश्वर्य, धीरज, मेधा और अवस्थाकी वृद्धि होती है। तथा एक दिन में हजार श्लोकोंके धारण करनेकी सामर्थ्य उत्पन्न होती है। और दुगुनी आयु होती है। यह सारस्वत नामक चूर्ण पहले ब्रम्हाजीने स्वयं विकल चित्तवाले मनुष्योंके लिये निर्मित किया था ॥ ४५-४८ ॥

हिंग्वादिघृत।

हिंगुसौवर्चलव्योषैर्द्विपलांशैर्घृताढकम्। चतुर्गुणे गवां मूत्रे सिद्धमुन्माद-नाशनम् ॥ ४९ ॥

हींग, कालानमक और त्रिकुटा यह प्रत्येक औषधि इन सबको दो २ पल, घी १ आढक और घृतसे चौगुना गोमूत्र लेकर उसमें घृतको पकावे। यह हिंग्वादि घृत—उन्मादरोग को दूर कर देता है ॥ ४९ ॥

महापैशाचिक घृत।

जटिला पूतना केशी चारटी मर्कटी वचा। त्रायमाणा जया वीरा चोरकः कटुरोहिणी ॥ ५० ॥ कायस्था शूकरी च्छत्रा सातिच्छत्रा पलंकषा। महापुरुषदन्ता च वयस्था नाकुलीद्वयम् ॥ ५१ ॥ कटम्भरा वृश्चिकाली सस्थिराऽपि च तैर्घृतम्। सिद्धं चातुर्थिकोन्मादग्रहापस्मारनाशनम् ॥ ५२ ॥ महापैशाचकं नाम घृतमेतद्यथाऽमृतम्। मेधा-बुद्धिस्मृतिकरं बालानां चाग्निदीप-नम् ॥ ५३ ॥

बालछड, हरड, भूतकेशी, ब्राह्मी, कौंछ, बच, त्रायमाण, अरणी, क्षीरकाकोली, चोरपुष्पी, कुटकी, आमला, बाराहीकंद, सौंफ, सोया, गूगल, शतावर, गिलोय, रास्ना, गंधरास्ना, मालकांगनी, बिछौटी और शालिपर्णी ये प्रत्येक औषधि दो २ तोले लेवे इन सबका कल्क बनाकर उसमें २२० तोले जल और ५६ तोले घृत डालकर पकावे। यह घृत—चातुर्थिक ज्वर, उन्माद, ग्रहबाधा और अपस्मार को नष्ट करता है। यह महापैशाचिक घृत--अमृतके समान है। तथा मेधा, बुद्धि और स्मरणशक्तिको बढानेवाला एवं बालकोंके अंगको पुष्ट तथा उनके अग्निको बढानेवाला है ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ॥ ५२ ॥ ॥ ५३ ॥

सारस्वतघृत।

त्रिफला लक्ष्मणाऽनन्ता समङ्गा शारिवाऽमृता। ब्राह्मी पाठा द्विबृहती द्विस्थिरा द्विपुनर्नवा ॥ ५४ ॥ सहदेवी सूर्यवल्ली वयस्था गिरिकर्णिका। तोयकुम्भे पचेदेतत्पलांशं पादशेषिते ॥ ५५ ॥ नतं कौन्ती वचा कुष्ठं कृष्णसर्षपसैन्धवैः। निरुक्सवर्णवत्सायाः संसिद्धं पयसा च गोः ॥ ५६ ॥ पुष्ययोगे घृतप्रस्थं सुहेमकलशे स्थितम्। पानाभ्यञ्जनतो मेधा स्मृत्यायुःपुष्टिवर्धनम्। रक्षोघ्नश्च विषघ्नश्च सारस्वतमिदं घृतम् ॥ ५७ ॥ क्वाथ्ये विचूर्णिते क्षिप्त्वा ततः षोडशिकं जलम्। पादशेषं प्रकर्त्तव्यमेष क्वाथविधिः स्मृतः ॥ ५८ ॥

हरड, बहेडा, आमला, लक्ष्मणाकी जड, अनन्तमूल, मजीठ, सारिवा, गिलोय, ब्राम्ही, पाढ, कटेरी, बडी कटेरी, शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, दोनों प्रकारके पुनर्नवा, सहदेवी, सूरजमुखी, हड और कोयल, इन सबको चार२ तोले लेकर एक घडे जलमें क्वाथ बनावे। जब पकते२ चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतार कर छान लेवे फिर उसको चूल्हेपर चढा देवे और उसमें तगर, रेणुका, वच, कूट, पीपल, सरसों और सैंधानमक इन सब औषधियोंका कल्क; रोगरहित और एक रंगकी गौका दूध और घी डालकर पुष्यनक्षत्रमें पकावे इसको सुवर्णके कलशमें भरकर रख देवे। फिर इसको पान और मालिशके द्वारा व्यवहार करनेसे, मेधा, स्मरणशक्ति आयु और पुष्टिकी वृद्धि होती है। यह सारस्वत नामक घृत राक्षसबाधा और विषबाधाको नष्ट करता है। क्वाथकी औषधियोंका चूर्ण करके सोलहगुने जलमें पकावे। जब पकते २

चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतार कर छान लेवे, यह काथकी विधि है ॥ ५४--५८ ॥

पानीयकल्याणघृत ।

दशमूली तथा रास्ना वानरी त्रिवृता बला । मूर्वा शतावरी चेति काथ्यैस्तु कुडवैः पृथक् ॥ ५९ ॥ कृतकाथं पृथक् प्रस्थद्वयं मृद्वग्निना पचेत् । विशाला त्रिफला कौन्ती देवदार्वेलवालुकम् । स्थिरानतं द्वे रजन्यौ शारिवे द्वे प्रियङ्गुका ॥ ६० ॥ नीलोत्पलैला मञ्जिष्ठा दन्ती दाडिमकेसरम् । विडङ्गं पृष्ठपर्णी च कुष्ठचन्दनपद्मकैः ॥ ६१ ॥ तालीशपत्रं बृहती मालत्याः कुसुमं नवम् । अष्टाविंशतिभिः कल्कैरेतैः कर्षसमन्वितैः ॥ ६२ ॥ चतुर्गुणं जलं दत्त्वा घृतप्रस्थं विपाचयेत् । अपस्मारे ज्वरे शोषे कासे मन्दानले कृशे ॥ ६३ ॥ वातरक्ते प्रतिश्याये तृतीयकचतुर्थके । कटिशूले मूत्रकृच्छ्रे विसर्पोपहतेषु च ॥ ६४ ॥ कण्डूपाण्ड्वामयोन्मादविषमेहगरेषु च । भूतोपहतचित्तानां गद्गदानामचेतसाम् ॥ ६५ ॥ शस्तं स्त्रीणाञ्च वन्ध्यानां धन्यमायुर्बलप्रदम् । अलक्ष्मीपापरक्षोघ्नं सर्वग्रहनिवारणम् ॥ ६६ ॥ कल्याणकमिदं सर्पिः श्रेष्ठं पुंसवनेषु च ।

दशमूलकी समस्त औषधियें, रायसन, कौंछ, निसोत, खिरैंटी, चुरनहार और शतावर ये प्रत्येक औषधि एक एक कुडव परिमाण लेकर अलग २ दो दो प्रस्थ जलमें मंद २ अग्निसे पकावे फिर इन सब काथोंको छानकर एकत्र मिलाकर पकावे और इसमें इन्द्रायण, हरड, बहेडा, आमला, रेणुका, देवदारु, एलुआ, शालिपर्णी, तगर, हल्दी, दारुहल्दी, शारिवा, अनंतमूल, फूलप्रियंगू, नीलाकमल, इलायची, मजीठ, दन्ती, अनारके फलकी छाल, नागकेशर, वायविडंग, पृष्ठपर्णी, कूठ, चन्दन, पद्माख, तालीसपत्र, बडी कटेरी और मालतीके नवीन फूल, ये प्रत्येक औषधि दो दो तोले लेकर कल्क बनाकर उपरोक्त काथमें डाल देवे तथा इसमें चौगुना जल और एक प्रस्थ घी डालकर पकावे । यह घृत--अपस्मार, ज्वर, शोष, खाँसी, मंदाग्नि, कृशता, वातरक्त, प्रतिश्याय, तृतीयक ज्वर, चातुर्थिक ज्वर, कटिशूल, मूत्रकृच्छ्र, विसर्परोग, कण्डू, पाण्डु, उन्माद, विष, प्रमेहदोष, भूतोन्माद तथा अन्यान्य गद्गद एवं मनस्सम्बन्धीय रोगोंमें हितकारी है। वन्ध्या स्त्रियोंको अत्यन्त हितकारी है। धन धान्य और आयुको बढानेवाला, तथा अलक्ष्मी, पाप, राक्षसबाधा और सर्वप्रकारकी ग्रहबाधाको दूर करता है । यह कल्याणघृत पुंसवन कर्म्ममें उत्तम है ॥ ५९--६६ ॥

महाकल्याणघृत ।

द्विजलं सचतुः क्षीरं तत्स्यात्कल्याणकं महत्। एभ्य एव स्थिरादींश्च जले पक्त्वैव विंशतिम् ॥ ६७ ॥ अथ तस्मिन् पचेत् सर्पि र्गृष्टिक्षीरं चतुर्गुणम् । वीरा द्विमाषकाकोली स्वयंगुप्तर्षभर्द्धिभिः ॥ ६८ ॥ मेदया च समैः कल्कैस्तस्मात् कल्याणकं महत् । बृंहणीयं विशेषेण सन्निपातहरं परम् ॥ ६९ ॥

इस कल्याणघृतमें दुगुना जल और चौगुना दूध डालकर पकाया जाय तो यह महाकल्याणघृत सिद्ध होता है । शालिपर्णी आदि उपरोक्त औषधियोंको पीस वीस भाग जलमें पकाकर उस काथमें घृत और एकबारकी व्याई हुई गौका चौगुना दूध, बडी शतावर, उडद, बनउडद, काकोली, कौंछ, ऋषभक, ऋद्धि और मेदा, इनका कल्क डालकर घृतको पकावे तो यह महाकल्याणघृत सिद्ध होता है । यह घृत--पुष्टिकारक और विशेष करके सान्निपातको हरनेवाला है ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

चैतसघृत ।

श्यामा मधुरसा रास्ना देवदारु शतावरी । श्वदंष्ट्रा दशमूलञ्च तैर्युक्तया

क्वाथकल्कितैः ॥ ७० ॥ साधितश्चैतसं नाम घृतं चेतोविकारनुत । उन्मादमदमूर्च्छायां ज्वरापस्मारभेषजम् ॥ ७१ ॥

अनन्तमूल, चुरनहार, रायसन, देवदारु, शतावर, गोखुरू और दशमूलकी समस्त औषधियां इनको समान भाग लेकर इनके आधेका काथ और आधेका कल्क बनाकर उसमें घृतको सिद्ध करे तो यह चैतसनामक घृत सिद्ध होता है। यह चैतसनामवाला घृत—समस्त चित्तके विकारोंको दूर करता है तथा उन्माद, मद, मूर्च्छा, ज्वर और अपस्मारकी यह उत्तम औषधि है ॥ ७० ॥ ७१ ॥

द्वितीयचैतसघृत ।

पञ्चमूल्या च काश्मर्य्यो रास्नैरण्डत्रिवृद्बला । मूर्वा शतावरी चेति क्वाथैर्द्विपलिकैरिमैः ॥ ७२ ॥ कल्याणकस्य चांशेन चैतसं नाम तद्घृतम्। सर्वचेतोविकाराणां शमनं परमुच्यते ॥ ७३ ॥ कार्य्यः कषायो द्विगुणाष्टतोयैः पानीयकल्याणककल्कपाच्यम् ॥

पंचमूलकी औषधियां, कुम्भेर, रायसन, अंडकी जड, निसोत, खिरैंटी, मूर्वा और शतावर ये प्रत्येक औषधि आठ २ तोले लेकर सोलहगुने जलमें पकावे जब पकते २ चौथाई भाग जल शेष रह जाय तब इसमें पानीय कल्याणघृतकी औषधियोंका कल्क डालकर पकावे इसमें कल्याणघृतका अंश होनेसे यह चैतसघृत कहा जाता है। यह घृत—सर्वप्रकारके चित्तके विकारोंको शमन करता है ॥ ७२ ॥ ७३ ॥

निशादि घृत ।

निशायुक्त्रिफलाश्यामावचासिद्धार्थहिंगुभिः । शिरीषकटभीश्वेतामञ्जिष्ठाव्योषदारुभिः ॥ ७४ ॥ समैः कल्कैर्घृतं मूत्रे सिद्धमुन्मादनाशनम् ॥

हल्दी, दारुहल्दी, त्रिफला, अनन्तमूल, बच, सफेद सरसों, हींग, सिरस, कटभी, फटकरी, मजीठ, त्रिकुटा और देवदारु इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर इनका कल्क बनाकर इस कल्क और गोमूत्रके साथ घृतको सिद्ध करे। यह घृत—उन्मादरोगको अवश्य दूर करता है ॥ ७४ ॥

चन्दनादि तैल ।

चन्दनाम्बुनखं वाप्यं यष्टी शैलेयपद्मकम् । मञ्जिष्ठासरलं दारु शट्येलापूतिकेशरम् ॥ ७५ ॥ पत्रं तैलवं मुरा मांसी कङ्कोलं वनिताम्बुदम् । हरिद्रे शारिवे तिक्ता लवणागुरुकुंकुमम् ॥ ७६ ॥ त्वग्रेणु नलिका चेति तैलान्मस्तु चतुर्गुणम् । लाक्षारससमं सिद्धं ग्रहघ्नं परमं मतम् ॥ ७७ ॥ अपस्मारग्रहोन्मादकृत्यालक्ष्मीज्वरापहम् । आयुःपुष्टिकरश्चैव वशीकरणमुत्तमम् ॥ ७८ ॥

चन्दन, नेत्रवाला, सुगन्ध, नखद्रव्य, जवाखार, मुलैठी, भूरिछरीला, पद्माख, मजीठ, धूपसरल, देवदारु, कचूर, इलायची, जवादिकस्तूरी, नागकेशर, तेजपात, लोध, कपूरकचरी, बालछड, शीतलचीनी, फूलप्रियंगू, नागरमोथा, हल्दी, दारुहल्दी, दोनोंप्रकारकी शारिवा, कुटकी, सैंधानमक, अगर, केशर, दालचीनी, रेणुका और नलीनामक सुगन्ध द्रव्य, इन सब औषधियोंका कल्क दो दो तोले, तिलका तेल १ सेर, दहीका तोड ४ सेर, लाखका रस ४ सेर, इन सबको एकत्र करके तेलको सिद्ध करे। यह चन्दनादितैल—ग्रहबाधा तथा अपस्मार, सर्वप्रकारके ग्रह, उन्माद, कृत्या, अलक्ष्मी और ज्वरको नष्ट करता है। एवं आयु और पुष्टिको करनेवाला तथा उत्तम वशीकरण है ॥ ७५—७८ ॥

निवृत्तामिषमद्यो यो हिताशी प्रयतः शुचिः । निजागन्तुभिरुन्मादैर्न कदाचित् स युज्यते ॥ ७९ ॥

जो मनुष्य पथ्य भोजन करनेवाला है और मांस मदिरा आदि दुष्ट पदार्थोंको त्यागकर पवित्र होगया है वह निज और आगन्तुक उन्मादरोगसे कदापि पीडित नहीं होता है ॥ ७९ ॥

विगतोन्मादके लक्षण ।

प्रसादश्चेन्द्रियार्थानां बुद्ध्यात्ममनसां तथा । धातूनां प्रकृतिस्थत्वं विगतोन्मादलक्षणम् ॥ ८० ॥

सब इंद्रियों अपना २ कार्य करनेको समर्थ हों, बुद्धि, आत्मा और मन प्रसन्न हों और सब धातुयें प्रकृतिमें स्थित हों तो उन्माद दूर हुआ जानना ॥ ८० ॥

भूतोन्मादके लक्षण ।

अमर्त्यवाग्विक्रमवीर्यचेष्टाज्ञानादिविज्ञानबलादिभिर्यः । उन्मादकालो नियतश्च यस्य भूतोत्थमुन्मादमुदाहरेत्तम् ॥ ८१ ॥

जिसमें वाणी, पराक्रम, शक्ति, शारीरिक चेष्टा, तत्त्वज्ञान और शिल्पादि ज्ञान मनुष्यकासा नहीं हो तथा रोगकी वृद्धि और शांतिका समय निश्चय नहीं हो सके उसको भूतोन्माद कहते हैं । यह भूतोन्माद आठ प्रकारका है ॥ ८१ ॥

देवग्रहग्रसितके लक्षण ।

सन्तुष्टः शुचिरथ दिव्यमाल्यगन्धो निस्तन्द्रोऽप्यवितथसंस्कृताभिभाषी । तेजस्वी स्थिरनयनो वरप्रदाता ब्रह्मण्यो भवति नरः स देवजुष्टः ॥ ८२ ॥

देहग्रहपीड़ितउन्मादरोगमें रोगीका चित्त अत्यन्त सन्तुष्ट हो, शुद्ध आचरण करे, सुगन्धित पुष्पोंकी मालाको शरीरमें धारण करे, शुद्ध संस्कृत भाषा बोले, तेजस्वी, स्थिर दृष्टि, अपने निकटके मनुष्योंको वरप्रदान करता है और ब्राह्मणोंमें भक्ति करता है ॥ ८२ ॥

असुरग्रहजुष्टके लक्षण ।

संस्वेदी द्विजगुरुदेवदोषवक्ता जिह्माक्षो विगतभयो विमार्गदृष्टिः । सन्तुष्टो भवति न चान्नपानजातैर्दुष्टात्मा भवति च देवशत्रुजुष्टः ॥८३॥

असुरग्रहपीडित उन्मादरोगीका शरीर अत्यन्त पसीनेयुक्त हो, ब्राह्मण, गुरु और देवताओंकी निंदा करे, नेत्र उज्ज्वल और रोगी भय रहित हो, दृष्टिको इधर उधर फेरे, अन्नपानादिसे संतुष्ट न हो और सदैव पापक्रियामें लिप्त रहता है ॥ ८३ ॥

गन्धर्वग्रहग्रसितके लक्षण ।

हृष्टात्मा पुलिनवनान्तरोपसेवी स्वाचारः प्रियपरिगीतगन्धमाल्यः । नृत्यन् वै प्रहसति चारु चाल्पशब्दं गन्धर्वग्रहपरिपीडितो मनुष्यः ॥८४॥

गंधर्वग्रहपीड़ित उन्मादरोगमें रोगीका चित्त सदैव प्रफुल्लित रहे, पुलिनयुक्त वन उपवनमें अधिकतर रहनेवाला, उत्तम आचरणोंको करनेवाला, प्रीत, सुगन्ध और पुष्पादिकोंमें अनुराग करनेवाला उत्तमप्रकारसे धीरे २ नाचे, हँसे और मंद २ मुसकराता है ॥ ८४ ॥

यक्षग्रहग्रसितके लक्षण ।

ताम्राक्षः प्रियतनुरक्तवस्त्रधारी गम्भीरो द्रुतगतिरल्पवाक्सहिष्णुः । तेजस्वी वदति च किं ददामि कस्मै यो यक्षग्रहपरिपीडितो मनुष्यः ॥ ८५ ॥

यक्षग्रहपीडित मनुष्यके नेत्र तांबेके समान लाल हों, बारीक, सुन्दर और लालरंगके वस्त्रोंको धारण करे, गम्भीर, बुद्धिमान्, जलदी चलनेवाला, थोडा बोलनेवाला, सहनशील, तेजस्वी और किसको क्या दूं ऐसे बोलता है ॥ ८५ ॥

पितृग्रहग्रसितके लक्षण ।

प्रेतानां स दिशति संस्तरेषु पिण्डान् शान्तात्मा जलमपि चापसव्यवस्त्रः । मांसेप्सुस्तिलगुडपायसाभिकामस्तद्भक्तो भवति पितृग्रहाभिजुष्टः ॥८६॥

माता, पिता अथवा अन्य किसी पितृग्रहद्वारा पीडित मनुष्य शांतचित्त होकर और वामोत्तरीय वस्त्रको धारण करके पितरोंके कुशाकी शय्यापर

जल और पिंड देवे, तथा पितरोंमें अत्यन्त भक्ति करता है, शान्तचित्त, जल और वस्त्र अपसव्य रक्खे तिल, गुड और खीर खानेकी इच्छा करता है ॥८६॥

सर्पग्रहग्रसितके लक्षण।

यस्तूर्व्यां प्रसरति सर्पवत् कदाचित् सृक्किण्यौ विलिहति जिह्वया तथैव। क्रोधालुर्गुडमधुदुग्धपायसेप्सुर्विज्ञेयो भवति भुजङ्गमेन जुष्टः॥ ८७॥

भुजंगग्रहजुष्ट भौतिक उन्मादरोगमें रोगी पृथ्वीमें छातीके बलसे साँपके समान चलता है, कभी २ जिह्वासे दोनों होठोंको चाटता है, सदैव क्रोधयुक्त रहता है। तथा गुड़, दूध, मधु और खीर खानेकी इच्छा करता है॥ ८७॥

राक्षसग्रहग्रसितके लक्षण।

मांसासृग्विविधसुराविकारलिप्सुर्निर्लज्जो भृशमतिनिष्ठुरोऽतिशूरः। क्रोधालुर्विपुलबलो निशावचारी शौचद्विड् भवति स राक्षसैर्गृहीतः ८८

राक्षसग्रहपीडित रोगी मांस, रुधिर और अनेक प्रकारके मदिराके विकारोंको भक्षण करनेकी इच्छा करता है, अत्यन्त निर्लज्जता और निष्ठुरताके आचरण करता है, अतिशय साहसी, बलवान् और क्रोधयुक्त हो रात्रिमें भ्रमण करता है। एवं शुद्ध आचरणोंका द्वेषी होता है॥ ८८॥

ब्रह्मराक्षसग्रसितके लक्षण।

देवविप्रगुरुद्वेषी वेदवेदांगनिन्दकः। आत्मपीडाकरोऽहिंसो ब्रह्मराक्षससेवितः॥ ८९॥

ब्रह्मराक्षससे पीडित मनुष्य देवता, ब्राह्मण और गुरुजनोंसे द्वेष करता है, वेद और वेदके अंगोंकी निंदा करनेवाला, अपने शरीरको पीडित करनेवाला होता है॥ ८९॥

पिशाचग्रसित उन्मादके लक्षण।

उद्धस्तः कृशपुरुषो चिरप्रलापी दुर्गन्धो भृशमशुचिस्तथातिलोलः। बह्वाशो विजनवनान्तरोपसेवी व्याचेष्टन्भ्रमति रुदन्पिशाचजुष्टः॥९०॥

पिशाचग्रहपीडित रोगी दोनों हाथोंको ऊपरको करता है, शरीर कृश, कर्कश और दुर्गन्धयुक्त होता है नानाप्रकारके प्रलापके वचनोंको चिरकालतक कहता है, भयानक और अशुचि व्यवहार करता है तथा सब प्रकारके अन्न और पानोंमें लम्पट होता है, जो भोजन मिले तो परिमाणसे अधिक खाता है, निर्जन वनमें रहता है और विरुद्ध आचरण करता हुआ रोरोकर भ्रमण करता है॥ ९०॥

असाध्यलक्षण।

स्थूलाक्षो द्रुतमटनः सफेनलेही निद्रालुः पतति च कम्पते च योऽति। यश्चाद्रिद्विरदनगादिविच्युतः सन् सोऽसाध्यो भवति तथा त्रयोदशाब्दे॥ ९१॥

जिस भूतोन्मादरोगीके नेत्र भयानक होजायँ, जिह्वासे झागोंयुक्त दोनों हाथोंको चाटे, बहुत शीघ्र चले और निद्रायुक्त हो, काँपे, पृथ्वीपर गिरजाय, उस रोगीका रोग असाध्य जानना। जो रोगी पर्वत. या वृक्षादिसे गिरजाय वह अवश्य मृत्युके वश होता है और तेरह वर्षके बाद प्रायः सब उन्माद असाध्य होजाते हैं॥ ९१॥

देवादिकोंके आवेश समय।

देवग्रहाः पौर्णमास्यामसुराः सन्ध्ययोरपि। गन्धर्वाः प्रायशोऽष्टम्यां यक्षाश्च प्रतिपद्यपि॥ ९२॥ पितरः कृष्णपक्षे स्युः पञ्चम्यामपि चोरगाः। रक्षांसि रात्रौ पैशाचाश्चतुर्दश्यां विशन्ति हि॥९३॥ दर्पणादीन्यथा छाया शीतोष्णं प्राणिनो यथा। स्वमणिं भास्करार्चिश्च यथा देहञ्च देहधृक्। विशन्ति न च दृश्यन्ते ग्रहास्तद्वच्छरीरिणाम्॥ ९४॥

देवग्रह—पूर्णिमाको प्रवेश करते हैं, असुरग्रह सन्ध्याके समय और पूर्णमासीको भी प्रवेश करते हैं, गन्धर्वग्रह प्रायः अष्टमीको प्रवेश करतेहैं, यक्षग्रह प्रतिपदाको प्रवेश करते हैं, पितृग्रह अमावास्याको, सर्पग्रह पंचमीको, राक्षसग्रह रात्रिको और पिशाचग्रह मनु-

ष्योंके शरीरमें चतुर्दशीको प्रवेश करते हैं। कोई यह शंका करते हैं कि, जब मनुष्योंके शरीरमें ग्रह प्रवेश करते हैं तो वे क्यों नहीं दीखते इसका समाधान इसप्रकार है कि—जैसे कि दर्पणादिमें मनुष्य प्रवेश करते हैं अर्थात् मनुष्यका प्रतिबिंब पडता है, मनुष्यके शरीरमें शीत, उष्ण प्रवेश करते हैं, सूर्य्यकी किरणें सूर्य्यकांतमणिमें प्रवेश रकती हैं और जैसे आत्मा अदृश्यभावसे शरीरमें प्रवेश करता है उसीप्रकार सर्वग्रह मनुष्यके शरीरमें प्रवेश करते हुए नहीं दीखते हैं ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ ९४॥

सर्पिष्पानादिरागन्तोर्मन्त्रादिश्चेक्ष्यते विधिः ॥ ९५ ॥ पूजाबल्युपहारेष्टिहोममंत्राञ्जनादिभिः । जयेदागन्तुमुन्मादं यथाविधि शुचिर्भिषक् ॥९६ ॥

आगन्तुक अर्थात् भूतादिजनित उन्मादरोगको घृतादिपान, मंत्रादिकर्म्म, पूजा, बालिदान, भेंट, होममंत्र और अंजन इत्यादि विधिसे जीते। इसमें पवित्र वैद्यके द्वारा शुद्ध रीतिके अनुसार चिकित्सा करानी चाहिए ॥ ९५ ॥ ९६ ॥

रक्तमाल्यानि गन्धश्च बीजानि मधुसर्पिषी । भक्ष्याश्च सर्वे सर्वेषां सामान्यो विधिरुच्यते ॥ ९७ ॥

लालफूलोंकी माला, सुगन्धित पदार्थ, करंजके बीज, शिरसके बीज, शहद, घी और सर्वप्रकारके भक्ष्य पदार्थ प्रयोग करने चाहिएँ । यह सामान्य विधि भूतोन्मादमें कही है ॥ ९७॥

ऋक्षजंबुकरोमाणि सल्लकी लशुनं तथा । हिंगुर्मूत्रश्च वत्सस्य धूपमस्य प्रयोजयेत् । एतेन शाम्यति क्षिप्रं बलवानपि यो ग्रहः ॥ ९८ ॥

रीछ और गीदडके रोम, हींग, सेईके कांटे, लशुन और बकरेका मूत्र इन सबको एकत्र मिलाकर धूनी देनेसे बलवान् ग्रहभी शमन होजाता है॥९८॥

शिरीषबीजं लशुनं शुण्ठीं सिद्धार्थकं वचाम् । मंजिष्ठां रजनीं कुष्ठं वत्समूत्रेण पेषयेत् ॥ ९९ ॥ वर्तिश्छायाविशुष्का च सा योज्या नयनाञ्जने ॥ १०० ॥

शिरसके बीज, लशुन, सोंठ, सफेद सरसों, मजीठ वच, हल्दी और कूठ इनको बकरेके मूत्रमें पीसकर बत्तीयें बनावे । उन बत्तियोंको छायामें सुखाकर नेत्रोंमें आंजनेसे सब प्रकारके ग्रह दूर होते हैं॥९९॥ ॥ १०० ॥

महाधूप ।

कार्पासास्थिमयूरपिच्छबृहतीनिर्म्माल्यपिण्डीतकैस्त्वङ्मांसीवृषदंशविट्तुषवचाकेशाहिनिर्मोचनैः । नागेन्द्रद्विजशृङ्गहिंगुमरिचैस्तुल्यैः कृतं धूपनं स्कन्दोन्मादपिशाचराक्षससुरावेशज्वरघ्नं परम् ॥ १०१ ॥

कपासके बीज(बिनौले), मोरकी पूँछ, बडीकटेरी, शिवकी निर्माल्य, मैनफल, दालचीनी, बालछड, बिलावकी सूखी विष्ठा, भुस, वच, मनुष्यके बाल, साँपकी कैंचुली, हाथीदांत, गोसींग, हींग और कालीमिरच इन सबको समान भाग लेकर एकत्र पीसकर धूप बनावे। यह धूप—स्कन्दोन्माद, पिशाच, राक्षसबाधा, असुरादिका आवेश और ज्वरको नष्ट करती है१०१

कल्याणकं प्रयुञ्जीत महद्वा चैतसं घृतम् । तैलं नारायणं वाथ महन्नारायणं तथा ॥ १०२ ॥

इसमें कल्याणघृत अथवा महाकल्याणघृत वा चैतसघृत या नारायण तैल अथवा महानारायण तैल प्रयोग करे॥ १०२ ॥

न च रौद्रं प्रयुञ्जीत प्रयोगं देवताग्रहे । ऋते पिशाचादन्येषु प्रातिकूलं न वा चरेत् ॥ १०३ ॥

देवग्रहग्रसित मनुष्यके कदापि रौद्रकर्म्म नहीं प्रयोग करे। और पिशाचादि ग्रहग्रसितको छोडकर मनुष्योंको कदापि उनके प्रतिकूल विधि न करे१०३

वैद्यास्तु वै निहन्युस्ते ध्रुवं क्रुद्धा महौजसः । हिताहितविधानश्च नित्यमेव समाचरेत् ॥ १०४ ॥

क्योंकि विरुद्धकर्म करनेसे वे क्रुद्ध होकर वैद्यको नष्ट कर देते हैं अतएव इनमें हिताहित विधि अच्छे प्रकारसे विचारकर प्रयोग करने चाहिए ॥ १०४ ॥

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायां उन्मादाधिकार संपूर्ण ।

अथापस्माररोगाधिकार ।

अपस्मारका निदान।

चिन्ताशोकादिभिर्दोषाः क्रुद्धा हृत्स्रोतसां स्थिताः । कृत्वा स्मृतेरपध्वंसमपस्मारं प्रकुर्वते ॥ १ ॥

चिंता,शोकादि कारणोंसे प्रकुपित हुए दोष हृदय और स्रोतोंमें स्थित होकर स्मरणशक्तिको नष्ट करके अपस्माररोगको उत्पन्न करते हैं ॥ १ ॥

वातात्पित्तात्कफात्सर्वैर्दोषैः स स्याच्चतुर्विधः । तमसो दर्शनं ध्यानं हृत्कम्पो नेत्रवैकृतम् । भ्रमो हृदयशून्यत्वं भाविनस्तस्य लक्षणम् ॥२॥

वात,पित्त और कफ तथा त्रिदोषज ऐसे अपस्मार रोग चार प्रकारके हैं। अंधकारदर्शन, एकओर ध्यान लगजाय,हृदयका काँपना,नेत्रोंका विकृत होना,भ्रम, हृदयमें शून्यता इत्यादि अपस्मारके सामान्य लक्षण जानने ॥ २ ॥

तमःप्रवेशः संरम्भो दोषोद्रेकहतस्मृतिः। अपस्मार इति ज्ञेयो गदो घोरश्चतुर्विधः ॥ ३ ॥

अंधकारमें प्रवेश होनेके समान ज्ञानका नष्ट होजाना, नेत्रोंका टेढा तिरछा होजाना, हाथ, पैरोंको इधर उधर पटकना, इसमें दुष्ट दोषोंके द्वारा ज्ञान और स्मरणशक्तिका नाश होता है। इसकारण इसको अपस्मार रोग कहते हैं । यह भयंकर अपस्मार रोग वात, पित्त, कफ और सान्निपातिक ऐसे चार प्रकारका है ॥ ३ ॥

अपस्मारका पूर्वरूप।

हृत्कम्पःशून्यता स्वेदो ध्यानं मूर्च्छा प्रमूढता । निद्रानाशश्च तस्मिंश्च भविष्यति भवन्त्यथ ॥ ४ ॥

हृदयकम्प, अंगोंमें शून्यता, पसीनेका अत्यन्त आना, ध्यान लगजाना, मूर्च्छा, निद्राका नाश, तथा मन और इंद्रियोंमें मोह हो ये सब लक्षण अपस्मारके पूर्वमें होते हैं ॥ ४ ॥

वातजअपस्मारके लक्षण ।

कम्पते प्रदशेद्दन्तान् फेनोद्वामी श्वसित्यपि । परुषारुणकृष्णानि पश्येद्रूपाणि चानिलात् ॥ ५ ॥

वातजअपस्मारमें रोगीको अरुण या कृष्णवर्णका स्वरूप दीखता है अर्थात् उसको ऐसा मालूम होता है कि मेरेपास कोई लाल या काले रंगका मनुष्य दौडा चला आता है तथा कांपता है, दांतोंको चबाता है, मुखसे झाग डालता है और खर २ श्वास लेता है॥५॥

पित्तज अपस्मारके लक्षण ।

पीतफेनाङ्गवक्त्राक्षः पीतासृग्रूपदर्शनः । सतृष्णोष्णानलव्याप्तलोकदर्शी च पैत्तिकः ॥ ६ ॥

पित्तज अपस्मारवाला रोगी पीत या लोहित रंगके स्वरूपको देखकर मूर्च्छित होजाता है अर्थात् उसको यह मालूम होता है कि मेरेपास कोई पीले रंगका मनुष्य दौडा आता है । उसका शरीर, मुख, मुखके झाग और नेत्र पीले रंगके होते हैं । उसको अत्यन्त तृषा होती है और सम्पूर्ण जगत् अग्नि द्वारा व्याप्त और संतप्त दीख पडता है ॥ ६ ॥

कफजअपस्मारके लक्षण ।

शुक्लफेनांगवक्त्राक्षः शीतहृष्टाङ्गजो गुरुः । पश्येच्छुक्लानि रूपाणि श्लैष्मिको मुच्यते चिरात् ॥ ७ ॥

कफकी मृगीवाला रोगी सफेद रंगके स्वरूपको देखकर मूर्च्छित होजाता है अर्थात् उसको सफेद रंग मनुष्य दौड़ा आता दिखाई देता है। रोगीका मुख, मुखके झाग, नेत्र और सब शरीर सफेद होजाता है

देहमें शीतलता,रोमांचोंका होना और शरीरमें भारीपन होना, ये कफज अपस्मारके लक्षण होते हैं कफज अपस्मारका रोगी अन्यान्य अपस्मारोंकी अपेक्षा देरमें चैतन्य होता है ॥ ७ ॥

त्रिदोषअस्मारके लक्षण ।

सर्वैरेभिः समस्तैश्च लिङ्गैर्ज्ञेयस्त्रिदोषजः । अपस्मारः स चासाध्यो यः क्षीणस्यानवश्च यः ॥ ८ ॥

जिस अपस्माररोगमें तीनों दोषोंके लक्षण मिलते हों उसको सान्निपातिक अपस्मार कहते हैं । क्षीण मनुष्योंके उत्पन्न हुआ सान्निपातिक अपस्मार असाध्य है । यह रोग बहुत दिनोंका होजाने पर भी असाध्य होजाता है ॥ ८ ॥

असाध्यलक्षण ।

विस्फुरन्तं सुबहुशः क्षीणं प्रचलित भ्रुवम् । नेत्राभ्याश्च विकुर्वाणमपस्मारो विनाशयेत् ॥ ९ ॥

जो अत्यन्त कांपे, दोनों भौंको चलावे, नेत्रोंको टेढा करे और जिसका शरीर अत्यन्त कृश होगया हो ऐसा अपस्माररोगी नहीं बचता है ॥ ९ ॥

अपस्मारके वेगका समय ।

पक्षाद्वा द्वादशाहाद्वा मासाद्वा कुपिता मलाः । अपस्माराय कुर्वन्ति वेगं किञ्चिदथान्तरम् ॥ १० ॥ देवे वर्षत्यपि यथा भूमौ बीजानि कानिचित् । शरदि प्रतिरोहन्ति तथा व्याधिसमुच्छ्रयः ॥ ११ ॥

१५ दिन, १२ दिन अथवा एक महीनेमें वातादि दोष कुपित होकर अपस्मारके रोगको करते हैं । इनमें पित्तका १५ दिनमें, वातका वेग १२ दिनमें और कफका वेग १ महीनेमें होता है । और कभी २ उपरोक्त अवधिको छोडकर अधिक कम दिनोंमें भी होता है । इसमें दृष्टान्त कहते हैं कि, बहुत प्रकारके बीज पृथ्वीपर वर्षा होनेपर भी उत्पन्न नहीं होते हैं और फिर शरद ऋतुमें जमते हैं । इसीप्रकार रोगकी अवधि भी जाननी चाहिए ॥ १० ॥ ११ ॥

चिकित्सा ।

पूर्वं युञ्ज्यादपस्मारे छर्दनादीनि बुद्धिमान् । वातिकं बस्तिभिः प्रायः पैत्तिकन्तु विरेचनैः । कफजं वमनैर्धीमानपस्मारमुपाचरेत् ॥ १२ ॥

अपस्मार रोगमें पहले बुद्धिमान् वैद्य वमनादि क्रिया करे । प्रथम वातज अपस्मारमें बस्तिकर्म्म पित्तज अपस्माररोगमें विरेचन और कफज अपस्मार रोगमें वमन करावे ॥ १२ ॥

ततस्तीक्ष्णं प्रयुञ्जीत भिषक्सम्यग्विशोधनम् । सर्वतः शुद्धदेहस्य स्यादुन्मादहरी क्रिया ॥ १३ ॥

जब इसप्रकार अपस्मार रोगीके देहको अच्छेप्रकारसे शुद्ध कर लेवे तो फिर तीक्ष्ण कर्म्म प्रयोग करे। अपस्मार रोगीको सर्वप्रकारसे शुद्ध करके पश्चात् उन्मादनाशक क्रिया करे ॥ १३ ॥

उपयोगे ग्रहोक्तानां योगानां चाथ शेषतः । शिग्रुकट्वङ्गकिणिहीनिम्बत्वग्रससाधितम् ॥ चतुर्गुणे गवां मूत्रे तैलमभ्यंजने हितम् ॥ १४ ॥

भूतादि ग्रहोंमें जो प्रयोग कहे हैंवे इस अपस्माररोगमें भी प्रयोग करने चाहिएँ । सहिंजनेकी छाल, श्योनाक, कटभी और नीमकी छाल, इनके काढेमें चौगुना गोमूत्र डालकर तेलको पकावे। इस तेलकी मालिश करनेसे अपस्मार रोग शमन होता है।।१४ ॥

गोधानकुलनागानां वृषभर्क्षगवामपि । पित्तेषु तैलं सिद्धश्च नस्याभ्यङ्गेषु पूजितम् ॥ १५ ॥

गोय, नौला, साँप, बैल, रीछ और गौ इन सबके पित्तोंको लेकर तेलमें पकाकर उसको नस्य और अभ्यंजन कर्ममें प्रयोग करना चाहिए ॥ १५ ॥

तीक्ष्णैरुभयतो भागैः शिरश्चापि विरेचयेत् । पूजां रुद्रस्य कुर्वीत तद्गणानां विशेषतः ॥ १६ ॥

तीक्ष्ण औषधियोंके द्वारा ऊर्ध्व, अधोभागको शुद्ध करे तथा शिरको विरेचन देवे और महादेवकी पूजा करे तथा विशेषकरके उनके गणोंकी पूजा करे ॥ १६ ॥

तैलेन लशुनं सेव्यं पयसा च शतावरी। ब्राह्मीरसश्च मधुना सर्वापस्मारभेषजम् ॥ १७ ॥

लशुनको तेलके साथ, शतावरीको दूधके साथ और ब्राह्मीके रसमें शहद मिलाकर सेवन करनेसे सब प्रकारका अपस्मार रोग दूर होता है ॥ १७ ॥

उद्बन्धननरग्रीवापाशं दग्ध्वा कृता मषी। शीतांबुना समं पीता हन्त्यपस्मारमुद्धतम् ॥ १८ ॥

जिस रस्सीको गलेमें डालकर मनुष्यको फांसी दी जाती है उस रस्सीको जलाकर उसकी स्याई बनाकर शीतल जलके साथ पीनेसे अपस्माररोग दूर होता है ॥ १८ ॥

विदह्य निर्द्रवां कृत्वा छागजामन्त्रनालिकाम्। तामम्लसाधितां खादेदपस्मारमुदस्यति ॥ १९ ॥

बकरीकी आंतो और नलीको जलाकर उसको खटाईमें सिद्ध करके खाय तो अपस्मार रोग दूर होता है ॥ १९ ॥

निर्गुण्डीभववन्दाकपाननस्योपयोगतः। उपैति सहसा नाशमपस्मारो महागदः ॥ २० ॥

निर्गुण्डीके वन्देको लेकर जलके साथ पीसकर पीनेसे या नास लेनेसे शीघ्र ही अपस्मार रोग शांत होता है ॥ २० ॥

मनोह्वाताक्ष्यजश्चैव शकृत्पारावतस्य च। अञ्जनाद्धन्त्यपस्मारमुन्मादश्च विशेषतः ॥ २१ ॥

मैनशिल, रसौत और कबूतरकी बीट इनको एकत्र पीसकर नेत्रोंमें आंजनेसे अपस्मार रोग और विशेष करके उन्माद रोग दूर होता है ॥ २१ ॥

श्वशृगालबिडालानां कपीनाश्च गवामपि। पित्तानि नस्यतो दद्यादपस्मृत्तिनिवृत्तये ॥ २२ ॥

कुत्ता, गीदड, विलाव, वन्दर और गौ इनके पित्तका नास लेनेसे अपस्माररोग शांत होता है॥ २२

यष्टीहिंगुवचादारुशिरीषलशुनामयैः। साजमूत्रैरपस्मारे सोन्मादे नावनाञ्जने ॥ २३ ॥

मुलैठी, हींग, वच, देवदारु, सिरसके बीज, लशुन और कूट इनको बकरीके मूत्रमें पीसकर नेत्रोंमें आंजनेसे अपस्मार रोग और उन्मादरोग दूर होता है ॥ २३ ॥

कपित्थाच्छारदान्मुद्गान् मुस्तोशीरयवांस्तथा। सव्योषान् वत्समूत्रेण पिष्ट्वा वर्त्तिं प्रकल्पयेत् ॥ २४ ॥ अपस्मारे तथोन्मादे सर्पदष्टे गरार्दिते। विषपीते जलमृते चैताः स्युरमृतोपमाः ॥ २५ ॥

कैथ, शारदीय धान्य, मूँग, नागरमोथा, खस, जौ और त्रिकुटा इन सबको एकत्र बकरीके मूत्रमें पीसकर बत्ती बनावे। यह बत्ती—अपस्मार, उन्माद, सर्पदंश, विषसे पीडित, विषपान किये हुए और जलमें डूबे हुए इन सब रोगियोंको हितकारी है ॥ २४ ॥ ॥ २५ ॥

जलमृतके लक्षण।

बद्धपायुं विपर्याक्षं शीतपादकरोदरम्। विद्याज्जलमृतं जन्तुं शूनपान्नाभिमेहनम् ॥ २६ ॥

जिसका मूल द्वार (अपानवायु) रुक जाय, नेत्र विकृत हो जायँ, हाथ पांव और उदर ये शीतल हो जायँ तथा पांव नाभि और लिंग पर सूजन हो इसको जलमृत जानना ॥ २६ ॥

पुष्योद्धृतं शुनः पित्तमपस्मारघ्नमञ्जनम्। तदेव सर्पिषा युक्तं धूपनं परमं स्मृतम् ॥ २७ ॥

पुष्यनक्षत्रमें कुत्तेका पित्त लेकर नेत्रोंमें आंजनेसे अपस्मार रोग दूर होता है अथवा कुत्तेके पित्तको घीमें मिलाकर धूनी देनेसे अपस्माररोग दूर होता है ॥ २७ ॥

याभिः क्रियाभिः सिद्धाभिर्हृदयं संप्रबुद्ध्यते। स्रोतांसि चास्य शुद्ध्यन्ति स्मृतिं संज्ञाश्च विन्दति ॥ २८ ॥

इन उपरोक्त क्रियाओंके करनेसे हृदयमें ज्ञान उत्पन्न होता है, शरीरके स्रोत शुद्ध होते हैं, स्मरण-शक्ति और चेतना प्रकट होती है ॥ २८ ॥

नकुलोलूकमार्जारगृध्रकीटाहिकाकजैः। तुण्डैः पक्षैः पुरीषैश्च धूपनं कारयेद्भिषक् ॥ २९ ॥

नौला, उल्लू, बिलाव, गीध, कीड़ा, सर्प और कौआ इनकी चोंच, पंख और विष्ठाकी अपस्मार रोगीको धूनी देवे ॥ २९ ॥

गोमूत्रसिद्धार्थकशिग्रुपर्णैरुद्वर्त्तनं तैरथवा प्रलेपः। पित्तश्च गोमत्स्यकृतोऽत्र धूमो नस्यश्च तीक्ष्णैरवबोधनार्थम् ॥ ३० ॥

सफेद सरसों और सहिंजनेके पत्ते इनको एकत्र गोमूत्रमें पीसकर इसका उबटन या प्रलेप करे या गौ और मछलीके पित्तकी धूनी देवे तथा चैतन्य करनेके लिये तीक्ष्ण नस्य देवे ॥ ३० ॥

अपेतराक्षसी कुष्ठं पूतनाकेशचोरकैः। उत्सादनं मूत्रपिष्टैर्मूत्रैरेवावसेचयेत् ॥ ३१॥

तुलसी, कूट, हरड, बालछड और चोरकसुगन्ध द्रव्य इन सबको गोमूत्रमें पीसकर गोमूत्रके साथ मिलाकर अपस्मार रोगीके शरीरपर सेचन करे ३१॥

मूलं बर्हिशिखाया गवाक्ष्या लीढं नरेण मासेन। निःशेषयत्यपस्मृतिमिति सिद्धं नात्र सन्देहः ॥ ३२॥

मोरकी शिखाकी जडको गोरखककडीके रसमें मिला कर एक महीने तक सेवन करनेसे अपस्मार रोग दूर होता है इसमें सन्देह नहीं ॥ ३२ ॥

यः खादेत् क्षीरभक्ताशी माक्षिकेन वचारजः। अपस्मारं महाघोरं सुचिरोत्थं जयेद् ध्रुवम् ॥ ३३ ॥

जो मनुष्य नियमसे वचके चूर्णको शहदमें मिला कर खाय और दूधके साथ भोजन करे तो महाघोर और बहुत दिनोंका उत्पन्न हुआ अपस्मार रोग अवश्य दूर होता है ॥ ३३ ॥

उत्तरदिग्गतमुस्तकमूलं बुद्ध्या समुद्धृतं पेष्यम्। पीतं पयसा हन्यादपस्मृतिं गोसवर्णवत्सायाः ॥ ३४ ॥

उत्तरदिशामें उत्पन्न हुए नागरमोथेकी जडको उखाडकर उसका चूर्ण करके एक रंगके बछडेवाली गौके दूधके साथ सेवन करनेसे अपस्मार रोग दूर होता है ॥ ३४ ॥

कूष्माण्डकफलोत्थेन रसेन परिपेषितम्। अपस्मारविनाशाय यष्ट्याह्वं स पिबेत्त्र्यहम् ॥ ३५ ॥

पेठेके रसमें मुलैठीको पीसकर तीन दिन तक पीनेसे अपस्माररोग दूर होता है ॥ ३५ ॥

काकोत्तरगतं मूलं योगानीतं विधूपितम् ॥ ३६ ॥

कौवाठोडीकी जडको पीसकर अपस्मार रोगीको धूनी देवे ॥ ३६ ॥

उग्रमक्षमितं चूर्णं कृतश्च मधुसर्पिषा। भक्षयेत् क्षीरभक्ताशी त्रिदिनेऽपस्मृतिक्षयः ॥ ३७ ॥

एक तोला प्रमाण वचके चूर्णको शहद या घीमें मिलाकर सेवन करनेसे तीन दिनमें अपस्मार रोग दूर होता है ॥ ३७ ॥

कृकलासस्य मत्स्यस्य ग्रीष्मे च जठरे क्षिपेत्। विपाटिते च मरिचं शोषे स्थाप्यं प्रयत्नतः। चूर्णयित्वा प्रधमयेदपस्मारनिवृत्तये ॥ ३८ ॥

कालीमिरचको केकडे या मछलीके पेटमें भरकर ग्रीष्म ऋतुमें गाड देवे। फिर उसको उखाडकर उसमेंसे मिरचको निकालकर धूपमें सुखाकर चूर्ण करके अपस्मारको दूर करनेके लिये धूनी देवे ॥ ३८ ॥

मदनस्य च बीजानि चूर्णयित्वा तथैव च। पिण्डीतकस्य चाल्पस्य कर्षैकं पेषयेज्जले ॥ ततोऽस्य पानमात्रेण नश्यतेऽपस्मृतिर्गदः ॥ ३९ ॥

मैनफलके बीजोंका चूर्ण तथा छोटे मैनफलका चूर्ण करके एक तोला प्रमाण जलमें पीसकर पीनेसे अपस्माररोग दूर होता है ॥ ३९ ॥

त्रिपाठिना विक्रमेण ह्ययमुक्तो न संशयः। दुश्चिकित्स्यो ह्यपस्मारश्चिरकाली महागदः ॥ ४० ॥ तस्माद्रसायनैरेनं प्रायशः समुपाचरेत् ॥ ४१ ॥

त्रिपाठी विक्रमने यह निश्चय किया है कि—अपस्मार दुश्चिकित्स्य, बहुत दिनोंतक रहनेवाला महारोग है, इसकारण विशेष कर इसमें रसायनविधिसे चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ४० ॥ ४१ ॥

हृत्कम्पोऽक्षिरुजा यस्य स्वेदो हस्तादिशीतता । दशमूलीजलं तस्य कल्याणाज्यश्च योजयेत् ॥ ४२ ॥

जिसके हृदयमें कम्प, नेत्रोंमें पीडा, पसीनेका आना और हाथ पांव शीतल हों उसको दशमूलका क्वाथ और कल्याणघृत सेवन करावे ॥ ४२ ॥

पञ्चकोलं समरिचं त्रिफलं बिडसैन्धवम् । कृष्णाविडङ्गपूतीकायवानीधान्यजीरकम् ॥ ४३ ॥ पीतमुष्णांबुना चूर्णं वातश्लेष्मामयापहम् । अपस्मारे तथोन्मादे अर्शसां ग्रहणीगदे । एतत्कल्याणकं चूर्णं नष्टस्याग्नेश्च दीपनम् ॥ ४४ ॥

पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ, मिरच, त्रिफला, बिडनमक, सैंधानमक, पीपल, वायविडङ्ग, दुर्गन्धकरञ्ज, अजवायन, धनियाँ और जीरा इन सबका एकत्र चूर्ण करके गरम जलके साथ पान करनेसे वात, कफके रोग दूर होते हैं । यह चूर्ण—अपस्मार, उन्माद, बवासीर, संग्रहणी और मन्दाग्निको दूर करता है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

पलंकषा तैल ।

पलंकषा वचा यष्टी वृश्चिकाली च सर्षपा । जटिलापूतनाकेशीनाकुलीहिंगुजीरकैः ॥ ४५ ॥ लशुनातिविषातिक्ताकुष्ठैर्विड्भिश्च पाक्षिणाम् । मांसाशिनां यथालाभं वस्तमूत्रे चतुर्गुणे ॥ ४६ ॥ सिद्धमभ्यञ्जने तैलमपस्मारविनाशनम् ॥ ४७ ॥

गूगल, वच, मुलैठी, बिछाटी, सरसों, बालछड, हरड़, भूतकेशी, नकुलकन्द, (नाई),हींग, जीरा, लशुन, अतीस, कुटकी, कूठ और पाक्षियोंकी बीट तथा मांस खानेवाले यथालाभ मांस डालकर सबको चौगुने बकरीके मूत्रमें मिलाकर तिलके तेलको सिद्ध करे । इस तेलकी मालिश करनेसे अपस्मार रोग दूर होता है ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

त्रिफलातैल ।

त्रिफलाव्योषकुष्ठाब्दयवक्षारफणिज्झकैः। साभिः कल्कीकृतैर्द्रव्यैर्गजमूत्रे चतुर्गुणे ॥ ४८ ॥ साधितं नावनं तैलमपस्मारं विनाशयेत् ॥ ४९ ॥

त्रिफला, त्रिकुटा, कूट, नागरमोथा, जवाखार और मरुआ इन सब औषधियोंका कल्क बनाकर हाथीके चौगुने मूत्रमें तेलको पकावे। इस तेलको नस्यादि कर्ममें प्रयोग करनेसे अपस्माररोग दूर होता है ॥ ४८ ॥४९ ॥

ब्राह्मीघृत ।

ब्राह्मीरसवचाकुष्ठं शंखपुष्पीभिरेव च। पुराणं पक्कमुन्मादग्रहापस्मारहृद् घृतम् ॥ ५० ॥

ब्राह्मीका रस, वच, कूट और शंखाहुली इनके कल्कके द्वारा घृतको सिद्ध करे । यह घृत—पुराने, पक्क और अत्यन्त भयंकर ग्रह एवं अपस्मारको दूर करता है ॥ ५० ॥

कूष्माण्डकघृत ।

कूष्माण्डकरसे सर्पिरष्टादशगुणे पचेत् । यष्टयाह्वकल्कं तत्पानमपस्मारविनाशनम् ॥ ५१ ॥

पेठेके रसमें मुलैठीके कल्कके द्वारा घृतको पकावे यह घृत—अपस्माररोगको दूर करता है ॥ ५१ ॥

स्वल्पपञ्चगव्य घृत ।

गोशकृद्रसदध्यम्लक्षीरमूत्रैः समैर्घृतम्। सिद्धं चतुर्थकोन्मादमपस्मारविनाशनम् ॥ ५२ ॥

गौके गोबरका रस, दही, तक्र, दूध और गोमूत्र इनके द्वारा घृतको सिद्ध करे। यह घृत—चातुर्थिक ज्वर और अपस्मारको दूर करता है ॥ ५२ ॥

महापञ्चगव्य घृत।

द्वे पञ्चमूल्यौ त्रिफलारजन्यौ कुटजत्वचम् । सप्तपर्णमपामार्गं नीलिनी कटुरोहिणी ॥ ५३ ॥ शम्याकफलमूलञ्च पौष्करं सदुरालभम् । द्विपलानि जलद्रोणे पक्त्वा पादावशेषिते ॥ ५४ ॥ भार्ङ्गी पाठा त्रिकटुकं त्रिवृता निचुलानि च। श्रेयसीमाढकीं मूर्वां दन्तीं भूनिम्बचित्रकौ ॥ ५५ ॥ द्वे शारिवे रोहिषञ्च भूतिकं मदयन्तिकाम् । क्षिपेत् पिष्ठाक्षमात्राणि तैः प्रस्थं सर्पिषः पचेत् ॥ ५६ ॥ गोशकृद्रसदध्यम्लक्षीरमूत्रैश्च तत्समैः । पञ्चगव्यमिदं ख्यातं महत्तदमृतोपमम् ॥ ५७ ॥ अपस्मारे तथोन्मादे श्वयथावुदरेष्वपि । गुल्मार्शःपाण्डुरोगेषु कामलायां हलीमके । अलक्ष्मीग्रहरक्षोघ्नं चातुर्थिकनिवारणम् ॥ ५८ ॥ जङ्गमानां वयस्थानां चर्मरोमनखादिकम् । क्षीरमूत्रपुरीषाणि जीर्णाहारेषु संहरेत् ॥ ५९ ॥

दशमूल, त्रिफला, हल्दी, दारुहल्दी, कुडेकी छाल, सतवन, चिरचिंटा, नील, कुटकी, अमलतासका गूदा, अमलतासकी जड, पोहकरमूल और धमासा ये प्रत्येक औषधि दो २ पल लेकर एक द्रोण जलमें पकावे जब पकते २ चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे। फिर इसमें भारंगी, पाढ, त्रिकुटा, निसोत, जलवेत, हरड़, अडहर, मूर्वा, दंती, चिरायता, चीता, दोनों प्रकारकी सारिवा, रोहिष तृण, भूतृण और मोतियाके फूल ये प्रत्येक औषधि दो २ तोला पीसकर डाल देवे और एक प्रस्थ उत्तम गौका घी तथा गोबरका रस, दही, तक्र, दूध और गोमूत्र ये सब समान भाग डालकर घृतको पकावे तो यह महत् पंचगव्य नामक घृत सिद्ध होता है। यह महापंचगव्यघृत—अपस्मार, उन्माद, सूजन, अर्बुद, गुल्म, बवासीर, पाण्डुरोग, कामला, हलीमक, अलक्ष्मी, ग्रहबाधा, राक्षसबाधा और चातुर्थिक ज्वरको दूर करता है, जंगमजीवोंके पूर्ण अवस्था होनेपर चर्म, रोम, नखादिक, दूध, मूत्र और विष्ठा आदि ये सब उनके भोजनके जीर्ण होनेपर ग्रहण करने चाहिये ॥ ५३—५९ ॥

महाचैतसघृत।

शणस्त्रिवृत्तथैरण्डो दशमूली शतावरी । रास्ना मागधिका शिग्रुक्काथे द्वे द्वे पले पृथक् ॥६०॥ विदारी मधुकं मेदे द्वे काकोल्यौ तथा सिता । खर्जूरी भीरुमृद्वीका युञ्जातं गोक्षुरं तथा ॥६१॥ चैतसस्य घृतस्यांशैः पक्तव्यं सर्पिरुत्तमम् । महाचैतससंज्ञन्तु ज्वरापस्मारनाशनम् ॥ ६२ ॥ गदोन्मादप्रतिश्यायतृतीयकचतुर्थकान् । पाप्मालक्ष्म्यौ जयेदेतत्सर्वग्रहनिवारणम् ॥ ६३ ॥ श्वासकासहरञ्चैव शुक्रार्त्तवविशोधनम् ॥ ६४ ॥

सन, निसोत, अंडकी जड, दशमूल, शतावर, रायसन, पीपल और सहिंजना इन प्रत्येकका क्वाथ पृथक् २ दो २ पल, विदारीकन्द, मुलैठी, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, मिश्री, खजूर, शतावर, दाख, छुहारा और गोखरू इनका कल्क तथा चैतसघृतमें कही हुई समस्त औषधियोंका कल्क डालकर इस घृतको उत्तम विधिसे पकावे। यह महाचैतसघृत ज्वर और अपस्मारको दूर करता है, तथा उन्मादरोग, प्रतिश्याय, तृतीयक ज्वर चातुर्थिक ज्वर, पाप, अलक्ष्मी और सम्पूर्ण ग्रहोंको दूर करता है एवम् श्वास और खांसीको दूर करता है तथा शुक्र और आर्त्तवको शुद्ध करता है ॥६०॥६४॥

क्वाथकी विधि।

द्रव्यआपोत्थिते क्वाथे दत्त्वा षोडशिकं जलम् । पादशेषश्च कर्त्तव्यमेष क्वाथविधिः स्मृतः ॥ ६५ ॥

कुटे हुए द्रव्योंमें सोलह भाग जल डालकर काथ करे, जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रह जाय तब उसको उतारकर छानलेवे । यह क्वाथविधि जाननी ॥ ६५ ॥

मधूकघृत ।

मधूकद्विपले कल्के द्रोणे चामलकीरसे । तस्मिन् सिद्धं घृतप्रस्थं पित्तापस्मारभेषजम् ॥ ६६ ॥

मुलैठीका कल्क आठ तोले और उत्तम गौका घी एक प्रस्थ इनको एक द्रोण आमलोंके रसमें डालकर पकावे । यह मधूक घृत—पित्तज अपस्माररोगको दूर करता है ॥ ६६ ॥

काश्मरघृत ।

काशक्षीरेक्षुरसयोः काश्मर्यष्टगुणे घृते । कार्षिकैर्जीवनीयैश्च सर्पिःप्रस्थं विपाचयेत् । वातपित्तोद्भवं क्षिप्रमपस्मारं नियच्छति ॥ ६७ ॥

कांसका काथ, दूध, ईखका रस और कुम्भेरका रस ये ८ भाग, जीवनीयगणकी औषधियोंका कल्क एक एक तोला और उत्तम गौका घी१ प्रस्थ सबको मिलाकर पकावे । यह घृत—वातपित्तजनित अपस्मारको दूर करता है ॥ ६७ ॥

वचादि घृत ।

वचाशम्याककैरण्डवयस्थाहिंगुचोरकैः । सिद्धं पलंकषायुक्तैर्वातश्लेष्मात्मके घृतम् ॥ ६८ ॥

वच, अमलतास, कैरण्ड (एक प्रकारकी करंज), आमले, हींग, अन्धाहलि और गूगल इनके कल्कके द्वारा घृतको सिद्ध करे । इस घृतके सेवन करनेसे वातकफजन्य अपस्मार दूर होता है ॥ ६८ ॥

कटभी तैल ।

कटभीनिम्बकट्वङ्गमधुशिग्रुत्वचां रसे । सिद्धं मूत्रसमं तैलमभ्यङ्गार्थं प्रशस्यते ॥ ६९ ॥

कटभी, नीम, सोनापाठा मुलेठी और सहिंजनेकी छाल इनके रसमें गोमूत्र और तिलका तेल डालकर तेलको सिद्ध करे । यह तेल अपस्मार रोगवाले मनुष्योंके लिये अभ्यंगमें उत्तम है ॥ ६९ ॥

शिग्रुतैल ।

शिग्रुकुष्ठशिलाऽजाजीलशुनव्योषहिंगुभिः । वत्समूत्रे शृतं तैलं नावनं स्यादपस्मृतौ ॥ ७० ॥

सहिंजना, कूठ, मैनशिल, जीरा, त्रिकुटा, लसुन और हींग इनके कल्कके द्वारा गोमूत्रमें तेलको सिद्ध करे । इस तेलको नस्यादिक कर्म्ममें प्रयोग करनेसे अपस्मार रोग दूर होता है ॥ ७० ॥

जीवनीययमक ।

तैलप्रस्थं घृतप्रस्थं जीवनीयैः पलोन्मितैः । क्षीरद्रोणे पचेत्सिद्धमपस्माराविनाशनम् ॥ ७१ ॥

जीवनीयगणकी समस्त औषधियोंका कल्क चार चार तोले, गौका दूध एकद्रोण, घी एक प्रस्थ और तेल एक प्रस्थ लेवे । इन सबको एकत्र करके इस यमकको सिद्ध करे । इसको सेवन करनेसे अपस्मार रोग दूर होता है ॥ ७१ ॥

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायां अपस्माररोगाधिकार सम्पूर्ण ।

अथ वातव्याधिनिदान ।

रूक्षशीताल्पलध्वन्नव्यवायातिप्रजागरैः । लंघनप्लवनात्यध्वव्यायामादिप्रचेष्टितैः ॥ १ ॥ विषमादुपचाराद्वा दोषासृक्स्रावणादति । धातूनां संक्षयाच्चिन्ताशोकरोगाऽतिकर्षणात् ॥ २ ॥ वेगसन्धारणादामादभिघातादभोजनात् । मर्म्मबाधाद्गजोष्ट्राश्वशीघ्रयानादिसेवनात् ॥ ३ ॥ देहे

स्रोतांसि रिक्तानि पूरयित्वाऽनिलो बली । करोति विविधान् व्याधीन् सर्वाङ्गैकाङ्गसंश्रयान् ॥ ४ ॥

रूखा, शीतल, थोडा और हलका ऐसे अन्नका भोजन करनेसे, अत्यन्त मैथुन करनेसे, अत्यन्त जागनेसे, अत्यन्त लंघन करनेसे, पानीमें तैरनेसे, अत्यन्त मार्गके चलनेसे, अत्यंत व्यायाम या परिश्रम करनेसे, अतिशय विरुद्ध चेष्टा करनेसे, विषम उपचारोंसे वात पित्तादि और मल मूत्रादि दोष तथा रुधिरके अधिक निकलनेसे अर्थात् वमन विरेचन और फस्तके खुलवानेसे, रस रक्तादि धातुओंके क्षय होनेसे, चिंता, शोक और रोगद्वारा शरीरके क्षय होनेसे, मल मूत्रादिकोंके वेगको रोकनेसे, आमसे, चोटके लगनेसे या मर्म स्थानोंमें चोटके लगनेसे, हाथी, घोडा, ऊँट आदि शीघ्र चलनेवाली सवारियों पर बैठकर जानेसे, कुपित हुई जो बलवान् वायु वह शरीरकी खाली नाडियोंमें भरकर अनेक प्रकारके सर्वाङ्गव्यापी या एकांगव्यापी रोगोंको उत्पन्न करता है ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥

पूर्वरूप और रूप ।

अव्यक्तं लक्षणं तेषां पूर्वरूपमिति स्मृतम् ॥ ५ ॥ आत्मरूपन्तु यद्व्यक्तमपायो लघुता पुनः । संकोचः पर्वणां स्तंभो भंगोऽस्थ्नां पर्वणामपि ॥ ६ ॥ लोमहर्षः प्रलापश्च पार्श्वपृष्ठकटिग्रहाः । खाञ्ज्यपांगुल्यकुब्जत्वशोषोऽङ्गानामनिद्रता ॥ ७ ॥ गर्भशुक्ररजोनाशः स्पन्दनं गात्रसुप्तता । शिरोनासाक्षिजत्रूणां ग्रीवायाश्चापि हुण्डनम् ॥ ८ ॥ भेदस्तोदार्तिराक्षेपो मोहश्चायास एव च । एवंविधानि रूपाणि कुरुते कुपितोऽनिलः । हेतुस्थानविशेषाच्च भवेद्रोगविशेषकृत् ॥ ९ ॥

जो जो वातव्याधि आगे कही जायँगी उनके जो अप्रकट (किंचित् प्रकाशित) लक्षण हैं उनको पूर्वरूप कहते हैं । वे ही प्रकट होनेपर लक्षण कहे जाते हैं और उनकी लघुता अर्थात् न्यूनताको अपाय कहतेहैं अर्थात् कुपितवायुका अल्प होजाना ही रोगका नाश कहा जाता है। संधियोंमें संकोच होना और जकड़ना, अस्थि और संधिस्थानोंमें टूटने फूटनेकेसी पीडा, रोमांच हो आना, व्यर्थ बकवाद, पसली, पीठ और कमरमें पीडाका होना, खंजत्व (लँगडापन), पंगुत्व (लूलापन), कुब्जत्व (कुबडापन), अंगोंका सूखना, निद्राका नाश, गर्भ शुक्र और रजका नाश, शरीरका काँपना, शरीरमें शून्यता, मस्तक, नाक, नेत्र, हँसियें और गर्दन इनका भीतरको चले जाना, अथवा टेढ हो जाना, छेदन और भेदनकेसी पीडा, शूल, आक्षेप, मोह, श्रम, ये सब कुपित हुई वायुके लक्षण हैं । इसके अतिरिक्त वायु कफावृत होकर मन्यास्तम्भ रोगको उत्पन्न करती है । यह हेतुविशेष स्थानविशेषसे विशिष्ट रोगोंको उत्पन्न करती है। जैसे पक्वाशयमें स्थित होकर आँतोंको कुँजाती हैं इत्यादि और भी हेतुस्थान विशेष सम्बन्धी रोग जानने॥५॥ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥

कोष्ठाश्रितवायुके कार्य ।

तत्र कोष्ठाश्रिते दुष्टे निग्रहो मूत्रवर्चसोः । ब्रध्नहृद्रोगगुल्मार्शःपार्श्वशूलश्च मारुते ॥ १० ॥

अवस्थानके विशेषसे वायुके कार्य्य कहे जाते हैं। कोठेमें स्थित वायु दुष्ट होनेसे मलमूत्रका अवरोध करती है एवं ब्रध्म (बद), हृदयरोग, गुल्म, बवासीर और पसलियोंमें पीडा करती है ॥ १० ॥

सर्वांगकुपितवायुके कार्य ।

सर्वाङ्गकुपिते वाते गात्रस्फुरणभञ्जनम् । वेदनाभिः परीताश्च स्फुटन्तीवास्थिसन्धयः ॥ ११ ॥

सब अंगोंमें वायु कुपित होनेसे सब अंगोंका फडकना, टूटना और पीडाके होनेसे हड्डियोंकी संधियोंमें फूटनसी होती है ॥ ११ ॥

गुदामें स्थित वायुके कार्य ।

ग्रहो विण्मूत्रवातानां शूलाध्मानाश्मशर्कराः । जंघोरुत्रिकहृत्पृष्ठरोगशोफा गुदे स्थिते ॥ १२ ॥

गुदस्थ वायुके कुपित होनेसे मल,मूत्र और अधोवायु ये सब रुक जाते हैं तथा शूल,पेटका फूलना,अश्मरी, शर्करा रोगकी पीडा, जंघा, ऊरु, त्रिक,हृदय और पीठमें पीड़ा, तथा सूजन ये सब होते हैं॥१२॥

आमाशयस्थितवायुके कार्य ।

रुक्पार्श्वोदरहृन्नाभ्यां तृष्णोद्गारविषूचिकाः । कासः कण्ठास्यशोषश्च श्वासश्चामाशयस्थिते ॥ १३ ॥

आमाशयमें स्थित दूषित वायु पसलियोंमें पीडा, हृदयमें शूल,नाभि और पेटमें पीड़ा, पियास, डकार, विषूचिका (हैजा), खांसी, मुख और कंठका सूखना तथा श्वासको उत्पन्न करती है ॥ १३ ॥

पक्वाशयस्थवायुके कार्य ।

पक्वाशयस्थोऽन्त्रकूजं शूलाटोपौ करोति च । कृच्छ्रमूत्रपुरीषत्वमानाहं त्रिकवेदनाम् ॥ १४ ॥

पक्वाशयमें स्थित दूषित वायु आंतोंका कूँजना, शूल, पेटमें गुडगुडाहट, मलमूत्रका कठिनतासे उतरना, पेट बँधासा रहना और त्रिकस्थानमें पीडा इन सब विकारोंको करती है ॥ १४ ॥

इन्द्रियोंमें स्थित वायुके कार्य ।

श्रोत्रादिष्विन्द्रियवधं कुर्य्यात् क्रुद्धः समीरणः ॥ १५ ॥

कर्ण आदि इन्द्रियोंमें स्थित दूषित वायु इन्द्रियोंका नाश करती है ॥ १५ ॥

रसधातुगतवायुके लक्षण ।

त्वग्रूक्षा स्फुटिता सुप्ता कृशा कृष्णा च तुद्यते । आतन्यते सरागा च सर्वरुक् त्वग्गतेऽनिले ॥ १६ ॥

त्वचागत वायुके दूषित होनेसे त्वचा रूखी, फटीसी, सुन्न, कृश,काली, फलीसी और कुछ लाली लिये होती है, त्वचामें पीडा और सब संधिस्थानोंमें पीडा होती है ॥ १६ ॥

रक्तगतवायुके लक्षण ।

रुजस्तीव्राः ससन्तापा वैवर्ण्यं कृशताऽरुचिः ॥ गात्रे चारूंषि भुक्तस्य स्तम्भश्चासृग्गतेऽनिले ॥ १७ ॥

रक्तगत दूषित वायु—संताप सहित तीव्र पीडा करती है, शरीरका रंग बदल जाता है, कृशता अरुचि, शरीरमें फुन्सियें और भोजन करनेके पश्चात् देह बँधोसी हो जाती है ॥ १७ ॥

मांसमेदोगतवायुके लक्षण ।

गुर्वङ्गन्तुद्यतेऽत्यर्थं दण्डमुष्टिहतं तथा । सरुक् स्तिमितमत्यर्थं मांसमेदोगतेऽनिले ॥ १८ ॥

मांस और मेदस्थित वायुसे शरीरमें भारीपन, विना परिश्रमके श्रम मालूम होना, लठिया या मुक्का मारनेकेसी पीडा होना और अत्यन्त चींसे मारना आदि लक्षण होते हैं ॥ १८ ॥

मज्जास्थिगतवायुके लक्षण ।

भेदोऽस्थिपर्वणां सन्धिशूलं मांसबलक्षयः । अस्वप्नं सन्ततारुक् च मज्जास्थिकुपितेऽनिले ॥ १९ ॥

मज्जा और अस्थिगत दूषित वायुसे अस्थि,गाठोंमें और संधिस्थानोंमें भेदनेसरीखी पीडा, मांस और बलका क्षय,निद्रानाश और निरंतर पीडा होती है १९

शुक्रगतवायुके लक्षण ।

क्षिप्रं मुञ्चति बध्नाति शुक्रं गर्भमथापि वा । विकृतिं जनयेच्चापि शुक्रस्थः कुपितोऽनिलः ॥ २० ॥

शुक्रस्थित दूषित वायु वीर्य्यको शीघ्र छोडती है, अथवा गर्भको शीघ्र छोडती है, तथा सुखाकर पतन करदेती है या वीर्य्य और गर्भको विकृत कर देती है ॥ २० ॥

शिरागतवायुके लक्षण ।

कुर्य्याच्छिरागतः शूलं शिरःकुञ्चनपूरणम् । बाह्याभ्यन्तरमायामं खल्लीकुब्जत्वमेव च ॥ २१ ॥

शिरागत दूषित वायु—शरीरमें शूल, शिराओंमें संकोच और स्थूलता करती है। बाह्यायाम, आभ्यन्तरायाम, खल्ली और कुबड़ापन इन विकारोंको उत्पन्न करती है ॥ २१॥

स्नायुगत और सन्धिगतवायुके लक्षण।

सर्वाङ्गैकाङ्गरोगांश्च कुर्य्यात् स्नायुगतोऽनिलः। हन्ति सन्धिगतः सन्धीञ्छूलशोथौ करोति च ॥२२ ॥

स्नायुगत दूषितवायु-सर्वांगव्यापी और एकांगव्यापी रोगोंको उत्पन्न करती है। सन्धिगत वायु—संधिस्थानोंको नष्ट करती है, स्तम्भता और शूलको उत्पन्न करती है तथा सूजनको भी करती है ॥ २२ ॥

पित्तकफाश्रितप्राणवायुके कार्य ।

प्राणे पित्तावृते छर्दिर्दाहश्चैवोपजायते। दौर्बल्यं सदनं तन्द्रा वैरस्यञ्च कफावृते ॥ २३ ॥

प्राणवायु पित्तसंयुक्त होनेसे वमन और दाहको उत्पन्न करती है। कफयुक्त प्राणवायु–दुर्बलता ग्लानि तन्द्रा और मुखमें विरसता इन सब विकारोंको उत्पन्न करती है ॥ २३ ॥

पित्तकफाश्रितउदानवायुके कार्य ।

उदाने पित्तयुक्ते तु दाहो मूर्च्छा भ्रमः क्लमः। अस्वेदहर्षौ मन्दाग्निः शीतता च कफावृते ॥ २४ ॥

पित्तयुक्त उदानवायु—दाह, मूर्च्छा, भ्रम और ग्लानि उत्पन्न करती है। कफयुक्त उदानवायु--पसीनेका नहीं आना, रोमांचोंका हो जाना, मंदाग्नि और शीतताको उत्पन्न करती है ॥ २४॥

पित्तकफाश्रितसमानवायुके कार्य।

स्वेददाहौष्ण्यमूर्च्छाः स्युः समाने पित्तसंयुते । कफेन संगो विण्मूत्रे गात्रहर्षश्च जायते ॥ २५ ॥

पित्तयुक्त समानवायुसे पसीनेका आना, दाहका होना, गरमी मालूम होना और मूर्च्छाका होना । कफसंयुक्त समानवायु--मलमूत्रका अवरोध और रोमांचोंको करती है ॥ २५ ॥

पित्तकफाश्रितअपानवायुके कार्य ।

अपाने पित्तयुक्ते तु दाहौष्ण्यं रक्तमूत्रता। अधःकाये गुरुत्वञ्च शीतता च कफावृते ॥ २६ ॥

पित्तयुक्त अपानवायु--दाह, गरमी और मूत्रमें लाली प्रकट करती है। कफयुक्त अपानवायु--नीचेके शरीरमें भारीपन और शीतलताको करती है ॥२६॥

पित्तकफाश्रितव्यानवायुके लक्षण।

व्याने पित्तावृते दाहो गात्रविक्षेपणं क्लमः। गुरूणि सर्वगात्राणि स्तम्भनं चास्थिपर्वणाम् ॥ २७ ॥ लिङ्गं कफावृते व्याने चेष्टास्तम्भस्तथैव च। स्तम्भनोत्क्षेपण श्वास-शोफ-शूलानि सर्वशः ॥ २८ ॥

पित्तयुक्त व्यानवायु--दाह, हाथ, पाँव आदि अंगोंका इधर उधर फेंकना और ग्लानिको करती है। कफयुक्त व्यानवायु--सब अंगोंमें भारीपन, हड्डी और संधियोंका जकडना, हड्डी और पर्वस्थानोंका जकडना, सर्व स्तम्भकी चेष्टा, सब शरीरका जकडना, अंगोंका पटकना, श्वास, सूजन और शूल इत्यादि विकारोंको करती है ॥ २७ ॥ २८ ॥

चिकित्सा।

नरञ्च शुद्धवातार्त्तमादौ पानं नियोजयेत्। वसायाश्चाथ मज्जाया तैलस्याथ घृतस्य च ॥ २९ ॥

प्रथम वातसे पीडित मनुष्यको वमन विरेचनादिसे शुद्ध करके चर्बी या मज्जा अथवा तेल या घृत पान करावे ॥ २९ ॥

अभ्यङ्गं स्वेदनं बस्तिर्नस्यं स्नेहो विरेचनम्। स्निग्धाम्ललवणस्वादु वृष्यं वातामयापहम् ॥ ३० ॥

तैलादिककी मालिश--स्वेदन, बस्तिकर्म्म, नस्य, स्नेहन, विरेचन, स्निग्ध, अम्ल, लवण, मधुर और पुष्टिकारक पदार्थोंका भक्षण करना ये सब वातरोगनाशक हैं ॥ ३० ॥

पटोलकफलैर्यूषो वृष्यो वातहरो लघुः। वाट्यालककृतो यूषः परं वातविनाशनः॥ ३१॥

परवलोंका यूष-वृष्य,वातनाशक और हलका है। खिरैंटीका किया हुआ यूष विशेष वातनाशक है॥३१॥

पञ्चमूलीबलासिद्धं क्षीरं वातामये हितम्॥ ३२॥

पंचमूल और खिरैंटीको दूधमें पकाकर पीनेसे वातरोग दूर होता है॥ ३२॥

कोलं कुलित्था सुरदारुरास्ना माषा उमातैलफलानि कुष्ठम्। वचाशताह्वायवचूर्णमम्लमुष्णानि वातामयिनां प्रदेहः॥ ३३॥

बेर, कुलथी, देवदारु, रायसन, उड़द, अलसी, सरसों, कूठ, वच, सौंफ और जौका चून इन सबको एकत्र काँजीमें पीसकर किंचित् गरम करके लेप करनेसे वातरोग शमन होते हैं॥ ३३॥

स्नेहैश्चतुर्भिर्दशमूलमिश्रैर्गन्धौषधैश्चानिलहृत्प्रदेहः। आनूपमत्स्यामिषवेशवारैरुष्णैः प्रदेहः पवनापहः स्यात्॥ ३४॥

चारों प्रकारके स्नेह (तेल, घृत, चर्बी, मज्जा) दशमूल और अगर चन्दनादि सुगन्धित पदार्थोंका बनाया हुआ प्रलेप वातनाशक है। अनूपदेशकी मछली और अनूपदेशके जीवोंका मांस और वेशवार इनका गरम २ प्रलेप वातनाशक है॥ ३४॥

वेशवार।

निरस्थिपिशितं पिष्टं स्विन्नं गुडघृतान्वितम्। कृष्णामरिचसंयुक्तं वेशवारमिति स्मृतम्॥ ३५॥

हड्डीरहित शूकर आदिके मांसको लेकर उसको खूब पीस लेवे। फिर उसमें गुड़ और घी डालकर पकावे तथा कालीमिरचका चूर्ण डाल देवे तो वेशवार सिद्ध होता है॥ ३५॥

बृहत्फाणिज्जकोत्थेन रसेन परिलेपयेत्। प्रदेशं वायुना ग्रस्तं नरः सम्यक् प्रशान्तये॥ ३६॥

बडीवनतुलसीके या महुएके रसको वायुसे पीडित स्थानपर लेप करनेसे वायु शांत होती है॥ ३६॥

तिन्तिडीकदलैः सिद्धं तालिण्डिकया सह। पिष्ट्वा सुखोष्णमालेपं दद्याद्वातरुजापहम्॥ ३७॥

इमलीके पत्तोंके साथ ताड़की डाढीको पकाकर उसको पीसकर उसको कुछ२ गरम करके लेप करे। तो वातरोग दूर होता है॥ ३७॥

वाजिगन्धादिगण।

वाजिगन्धा बला तिस्रो दशमूलमिहौषधम्। द्वे गृध्रनख्यौ रास्ना च गणो मारुतनाशनः॥ ३८॥

असगन्ध, खिरैंटी गंगेरन, नागवला, दशमूलकी समस्त औषधियें, सोंठ, दोनों प्रकारकी व्याघ्रनखी और रायसन इन सब औषधियोंका समूह वातनाशक है॥ ३८॥

सहचराऽमरदारु सनागरं क्वथितमम्भसि तैलविमिश्रितम्। पवनपीडितदेहगति पिबन् द्रुतविलम्बितगो भवतीच्छया॥ ३९॥

पियावांसा,देवदारु और सोंठ इनके क्वाथमें अंडीका तेल डालकर वातसे नष्ट हो गई है गमनशक्ति जिसकी ऐसा मनुष्य पीवे। इसको पीनेसे वह यथेच्छानुसार शीघ्र या देरमें चलसकता है॥ ३९॥

रसोनपेय।

पलमर्धपलश्चापि रसोनस्य च कुट्टितम्। हिंगुजीरकसिन्धूत्थसौवर्चलकटुत्रिकैः॥ ४०॥ चूर्णैस्तैर्माषकोन्मानैरवचूर्ण्य विलोडितम्। यथाग्निभक्षितं प्रातरुबुक्क्वाथानुपानतः॥ ४१॥ दिने दिने प्रयोक्तव्यं मासमेकं निरन्तरम्। वातरोगान्निहन्त्याशु चार्दितं चापतन्त्रिकम्॥ ४२॥ एकाङ्गरोगिणे दद्यात्तथा सर्वाङ्गरोगिणे। उरुस्तम्भेषु गृध्रस्यां कृमिदोषे विशेषतः॥ ४३॥

उत्तम लशुन ४ तोले लेकर कूटलेवे, फिर उसमें हींग, जीरा, सैंधानमक, काला नमक और त्रिकुटा इन प्रत्येक औषधियोंका चूर्ण एक२ मासा उक्त कुटे हुए लशुनमें मिला देवे। फिर इसमेंसे जठराग्निके बलानुसार अंडके काथके साथ पीवे। इसको प्रतिदिन एक महीनेतक पीनेसे समस्त वातरोग, अर्दित, अपतंत्रक, एकांगरोग, सर्वांगरोग, ऊरुस्तम्भ, गृध्रसीवात और विशेषकरके कृमिरोग दूर होते हैं ॥ ४०—४३ ॥

स्वल्परसोनपिण्ड।

पलमर्द्धपलं वापि रसोनस्य सुकुट्टितम्। हिंगुजीरकसिन्धूत्थसौवर्चलकटुत्रिकैः ॥ ४४ ॥ चूर्णितैर्माषकोन्मानैरवचूर्ण्य विलोडितम्। यथाग्निभक्षितं प्रातरुरुबूक्काथानुपानतः ॥ ४५ ॥ दिने दिने प्रयोक्तव्यं मासमेकं निरंतरम्। वातामयं निहन्त्येव मर्दितं चापतन्त्रकम् ॥ ४६ ॥ एकाङ्गरोगिणां रोगं तथा सर्वाङ्गरोगिणाम्। ऊरुस्तम्भं गृध्रसीञ्च शूलद्वन्द्वं कृमीनपि। कटिपृष्ठामयं हन्याज्जाठरञ्च समीरणम् ॥ ४७ ॥

चार तोले अथवा दो तोले उत्तम लशुन लेकर कूट लेवे, फिर उसमें हींग, जीरा, सैंधानमक, कालानमक और त्रिकुटा प्रत्येकका चूर्ण एक२ मासा मिला देवे। फिर इसमेंसे अग्निके बलानुसार अंडके काथसे प्रतिदिन एक महीनेतक नित्य पीवे तो इससे वातरोग, अर्दित, अपतन्त्रक, एकांगरोग, सर्वांगरोग, ऊरुस्तम्भ, गृध्रसी, वात, शूल, द्वन्द्वजरोग, कृमिरोग कटिरोग, पृष्ठकी पीडा और पेट सम्बन्धी वातरोग सब दूर होते हैं ॥ ४४—४७ ॥

लशुनयोग।

पिष्ट्वा सुसूक्ष्मं लशुनस्य कन्दं घृतेन लिह्याद्घृतभोजनाशी। तस्य प्रणश्यन्ति हि वातरोगाः संस्कारहीनात्पुरुषादिवार्थाः ॥ ४८ ॥

लशुनकी गाँठोंको उत्तम विधिसे बारीक पीसकर घीमें मिलाकर सेवन करे और भोजनमें खूब घी डाल कर खाय तो इससे सर्वप्रकारके वातरोग नष्ट होते हैं। जिस प्रकार संस्काररहित पुरुषका धन नष्ट हो जाता है ॥ ४८ ॥

दशमूलस्य निर्यूहो हिंगुपुष्करचूर्णितः। शमयेत्परिपीतस्तु वातं मिम्मिणसंज्ञितम् ॥ ४९ ॥

दशमूलके निर्यूहमें हींग और पोहकरमूलका चूर्ण डालकर पीवे तो मिनमिनापन दूर होता है ॥ ४९ ॥

वातग्रहप्रदेशे च स्वेदः कार्यो विजानता। सिद्धार्थकविमिश्रैस्तु पत्रैर्मदनमिश्रितैः ॥ ५० ॥ यद्वा तेन विधानेन सदोषत्वान्न सिद्ध्यति ॥ ५१ ॥

जो अंगवातसे ग्रसित हो उसपर स्वेद विधिको जाननेवाला वैद्य स्वेद देवे। सफेद सरसों और मैनफलके पत्ते इनको यथोक्तविधिसे पीसकर स्वेद देवे ॥ ५० ॥ ५१ ॥

भेषजैः स्नेहसंयुक्तैर्भोज्यैर्हि प्रचितो मलः। मार्गं रुद्धोऽनिलं रुन्ध्यात्तस्मात्तमनुलोमयेत् ॥ ५२ ॥ क्षीणो यश्च विरेचैः स्यात्तं निरूहैरुपाचरेत् ५३

स्नेहयुक्त औषधियोंको सेवन करनेसे अथवा पुष्टिकारक घृतादिकके भोजन करनेसे मल बद्ध होजाता है. इससे वातका मार्ग रुकजाता है। उसके रुकनेसे वायु संचार नहीं करसकती, इसकारण उस समय अनुलोमन करनेवाले पदार्थोंसे वायुको अनुलोमन करे। जो वातरोगी विरेचनादिसे क्षीण हो गये हैं उनके निरूह बस्ति देवे ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

शीतोष्णस्निग्धरूक्षाद्यैर्वातलो यो न शाम्यति। विकारस्तत्र विज्ञेयो दुष्टमेवात्र शोणितम् ॥ ५४ ॥

जो वातविकार शीतल, उष्ण, स्निग्ध और रूक्षादि चिकित्सासे शमन न हो तो उसको दूषित रुधिरका कारण जानना ॥ ५४ ॥

पिबेत्कुटजबीजानां चूर्णं प्रातः सुखांबुना। शुण्ठीचित्रकयुक्तानां कुक्षिवातनिवारणम् ॥ ५५ ॥

कुडेके बीजोंका चूर्ण, सोंठका और चीतेका चूर्ण इन सबको मंदोष्ण जलके साथ पीनेसे कुक्षिगत वात दूर होती है ॥ ५५ ॥

प्रातरुत्थाय यत्नेन तैलमात्रासमान्वितम् । पिबेद्वृषणवातघ्नमार्द्रकस्वरसं बुधः ॥ ५६ ॥

नित्य प्रातःकाल उठकर यत्नपूर्वक अदरखके रसमें तेल मिलाकर पान करनेसे वातसे पीडित वृषण आरोग्य होते हैं ॥ ५६ ॥

ऊर्ध्ववातविनाशाय वासापत्रसमन्वितम्। श्यामामूलं पिबेत्पिष्टं क्षीरेण परिमिश्रितम् ॥ ५७ ॥

ऊर्ध्ववातको नष्ट करनेके लिये अरूसेके पत्ते और अनन्तमूलकी जड़को दूधमें पीसकर पीवे ॥ ५७ ॥

सुप्तवाते त्वसृङ्मोक्षं कुर्य्याच्च बहुशो भिषक् । दिह्याच्च लवणागारधूमैस्तैलसमन्वितैः ॥ ५८ ॥

सुप्तवात (सुन्नवायु), रोगमें वैद्य विशेष कर रक्तमोक्षण अर्थात् फस्त खुलवावे। सैंधानमक, घरका धुआसा और तेल इनको एकत्र करके इनका लेप करे ॥ ५८ ॥

हृदयानिलनाशाय गुडूचीमरिचान्वितम् । पिबेत्प्रातः प्रयत्नेन सम्यगुष्णाम्भसा सह ॥ ५९ ॥

हृदयकी वातको दूर करनेके लिये गिलोय और काली मिरच इनको एकत्र पीसकर गरम जलके साथ पीवे ॥ ५९ ॥

पिबेदुष्णाम्भसा पिष्टं साश्वगन्धं विभीतकम् । गुडयुक्तं प्रयत्नेन हृदयानिलनाशनम् ॥ ६० ॥

असगंध और बहेड़ेको एकत्र पीसकर गुडमें मिला कर गरम जलके साथ पीनेसे हृदयकी वायु दूर होती है ॥ ६० ॥

देवदारुसमायुक्तनागरं परिपेषितम् । हृद्वातवेदनार्त्तस्तु पीत्वा सुखमवाप्नुयात् ॥ ६१ ॥

देवदारु और सोंठ इनको एकत्र पीसकर गरम-जलके साथ पीनेसे हृदयगत वातकी पीड़ा शमन होती है ॥ ६१ ॥

हृदि प्रकुपिते सिद्धमंशुमत्याः पयो हितम् ॥ ६२ ॥

पृश्निपर्णीको दूधमें औटाकर पीनेसे हृदयगत कुपित वायु शांत होती है ॥ ६२ ॥

साल्वण स्वेद ।

काकोल्यादिः सवातघ्नः सर्वाम्लद्रव्यसंयुतः । सानूपमांसः सुस्विन्नः सर्वस्नेहसमन्वितः ॥ ६३ ॥ सुखोष्णः स्पष्टलवणः साल्वणः परिकीर्त्तितः। तेनोपनाहं कुर्वीत सदा वै वातरोगिणाम् ॥ ६४ ॥ काकोल्यादिगणो ग्राह्यो नाष्टवर्गिकसंज्ञिकः । वातघ्नो दशमूलादिवर्गोऽम्लो दाडिमादिकम् ॥ ६५ ॥ सर्वस्नेहश्चतुःस्नेहो लवणं सैन्धवादिकम् । अम्लादिभिश्च संस्कार्यं काकोल्यादित्रयं त्रिभिः॥६६॥

काकोल्यादि गणकी समस्त औषधियें, दशमूलादिगणकी औषधियें, सर्व प्रकारके अम्लद्रव्य और सर्वप्रकारके अनूपदेशके जीवोंका मांस, इन सबको एकत्र पकाकर इसमें सर्व प्रकारके स्नेह (तेल, घी, चर्बी, मज्जा) और लवण डालकर इसको सुखोष्ण कर लेवे। इसको साल्वणस्वेद कहते हैं। इसका उपनाह (स्वेद) सदैव वातरोगियोंको देना चाहिये, यहां काकोल्यादिगण अष्टवर्ग समझना चाहिये। वातघ्नगण दशमूलादि गण जानना । दाडिमादिक पदार्थोंका अम्लवर्ग समझना । सर्वस्नेह-चारों प्रकारके स्नेह जानने । लवण—सैंधवादि नमक जानने । काकोल्यादि तीनों गणकी औषधियोंको अम्लादि द्रव्योंसे संस्कार करना चाहिये ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

महासाल्वण स्वेद ।

दशमूली बलास्तिस्रो विदारी पृश्निपर्णिका । शतावर्य्यश्वगन्धा च जीवनीयगणैः सह ॥ ६७ ॥ श्यामा पुनर्नवैरण्डः पृष्ठपर्णी च मर्कटी ।

पुण्डरीकं तुगाक्षीरी शाल्मली सुरदारु च ॥ ६८ ॥ कुष्ठशूरणमूलानि कर्कटाख्यामृता निशा। आम्रातकोकिलाख्यश्च शटी पाषाणभेदकः ॥ ॥ ६९ ॥ अलर्को वसुघण्टा च सूर्य्यावर्त्तः सकाञ्चनम्। यवकोलकुलित्थाश्च तिलोमासर्षपास्तथा॥ ७० ॥ रास्नाप्रसारणीकुष्ठं मातुलुङ्गाम्लवेतसौ। चुक्रानूपानि मांसानि स्नेहाश्चत्वार एव च॥ ७१ ॥ काञ्जिकं दधि तक्रञ्च जम्बीरं तित्तिडीफलम्। कुक्कुटीबीजपूरञ्च सर्वाणि लवणानि च ॥ ॥ ७२ ॥ सुखोष्णैस्तैलयुक्तस्तु सुपिष्टैर्वातरोगिषु। उपनाहः सदा कार्यो वातव्याधिनिवृत्तये ॥ ७३ ॥ अयं हि गुल्मञ्च तथान्त्रवृद्धिं हन्यात्तथा शोफमुदग्रमाङ्गम्। हन्यान्नरस्यार्दितवातमुग्रमाजानुशोथञ्च तथार्दितं वा ॥ ७४ ॥

दशमूलकी समस्त औषधियें, खिरैंटी, कंघो, गंगेरन, विदारीकन्द, पिठवन, शतावर, असगन्ध, जीवनीयगणकी समत औषधियें, अनन्तमूल, पुनर्नवा, अण्डकी जड़, पृश्नपर्णी, कौंछ, पुण्डेरिया, वंशलोचन, सेमल, देवदारु, कूठ, जिमीकन्द, काकड़ाशिंगी, गिलोय, हल्दी, अम्बाड़ा, तालमखाना, कचूर, पाषाणभेद, कुकरोंदा, बड़ी मौलीसरी, घण्टापाटल, सूरजमुखी, कचनार, जौ, बेर, कुलथी, तिल, अलसी, सरसों, रायसन, प्रसारन, कूट, बिजौरा नींबू, अम्लवेत, चूक, अनूपदेशके जीवोंका मांस, चारोंप्रकारके स्नेह, कांजी, दही, तक्र, जम्बीरी नींबू, शमारु, मीठा बिजौरा और सर्व प्रकारके लवण इन सबको एकत्र पीसकर तेल मिलाकर सुहाता सुहाता सदैव वातरोगको दूर करनेके लिये उपनाह लेप देवे। यह महासाल्वण स्वेद— गुल्म, अंत्रवृद्धि, सर्वशरीरगत शोथ, उग्र अर्दित वात और जानुपर्य्यंत शोथको दूर करता है॥ ६७—७४ ॥

वायौ जठरजे युञ्ज्यात् क्षारचूर्णादिपाचनम्। विशेषतस्तु कोष्ठस्थे वाते क्षिप्रं पिबेन्नरः ॥ ७५ ॥ पाचनीयरसैर्युक्तैरन्यैर्वा पातयेन्मलान्। गुदपक्वाशयस्थे तु कर्मोदावर्त्तिकं हितम् ॥ ॥ ७६ ॥ आमाशयस्थे त्वनिले प्रशस्तं प्राग्भोजनं दीपनपाचनञ्च। प्रच्छर्दनं तीक्ष्णविरेचनञ्च पुराणमुद्गा यवशालयश्च ॥ ७७ ॥

उदरगत वायुरोगमें क्षार, चूर्ण और पाचनादि प्रयोग करे। विशेष कर कोष्ठगत वातमें यह विधि करनी चाहिये। पाचन औषधियोंके क्काथोंके साथ अथवा अन्य रेचनकी औषधियोंके द्वारा मलको निकाले। गुदास्थित और पक्काशयगत वातरोगमें उदावर्तोक्त कर्म्म करे। आमाशयगत वातरोगमें प्रथम दीपन और पाचन पदार्थोंका भोजन करे। तथा वमन, तीक्ष्ण, विरेचन, पुरानी मूँग, जौ और शालिधान ये सर्व हितकारक हैं ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ॥ ७७ ॥

तीन क्काथ।

भूतीकपथ्याशटिपुष्कराणि बिल्वं गुडूची सुरदारु शुण्ठी। विडङ्गवासातिविषाकणा च क्काथास्त्रयः सामसमीरणघ्नाः ॥ ७८ ॥

अजवायन, हरड, कचूर और पोहकरमूल इनका अथवा बेलगिरी, गिलोय, देवदारु और सोंठ इनका अथवा वायविडंग, अडूसा, अतीस और पीपल इनका क्काथ आमसहित वातको दूर करता है ॥ ७८ ॥

षड्धरणयोग।

आमाशयगते वायौ छर्दिः स्वापो यथाक्रमम्। देयः षड्धरणो योगः सप्तरात्रं सुखाम्बुना ॥ ७९ ॥

आमाशयगत वातरोगमें वमन और निद्रा इत्यादि सेवन करावे। अथवा सात दिनतक[1] सुहाते २ गरम जलके साथ षड्धरण योग देवे ॥ ७९ ॥

---

१ सात दिन सेवन करानेकी विधि यह है कि--पहले दिन वमन कराकर फिर दूसरे दिनसे लेकर छः दिनतक पाठक्रमके अनुसार साढे चार २ माशेकी मात्रासे लेकर सबको एकत्र कर सेवन करावे।

चित्रकेन्द्रयवौ पाठा कटुकातिविषाऽभया। महाव्याधिप्रशमनो योगः षड्धरणः स्मृतः ॥ ८० ॥ योगेऽस्मिन् भिषजा ग्राह्याः षण्णां षड्धरणाः पृथक्। दिनेषु षट्सु दातव्यास्तेन षड्धरणः स्मृतः ॥ ८१ ॥

चीता, इन्द्रजौ, पाढ, कुटकी, अतीस और हरड़ इन सबके समुदायको "षड्धरण" कहते हैं। यह महाव्याधिको शमन करनेवाला है। इसमें प्रत्येक औषधि एक २ धरण (टंक) प्रमाण लेनी चाहिए इसको छः दिन तक सेवन करना चाहिए॥८०॥८१॥

वह्नेः संबृहणं कार्यं कर्मौदावर्तिकं तथा। पक्वाशयगते वापि देयं स्नेहविरेचनम् ॥ ८२ ॥

पक्वाशयगत वातरोगमें प्रथमअग्निको दीपन करनेवाले कर्म करने चाहिएँ, फिर उदावर्त रोगोक्त क्रिया करनी और स्नेह विरेचन देना चाहिए ॥८२॥

बस्तयः शोधनीयाश्च प्राशाश्च लवणोत्तराः ॥ कार्य्यो बस्तिगते चापि विधिर्बस्तिविशोधनः ॥ ८३ ॥

तथा शोधनवस्ति और लवणयुक्त प्राश देने चाहिएँ, बस्तिगतरोगमें भी शोधनबस्ति आदि विधि करनी चाहिए ॥ ८३ ॥

श्रोत्रादिषु प्रकुपिते कार्यश्चानिलहा क्रमः। स्नेहाभ्यङ्गोपनाहाश्च मर्दनालेपनानि च ॥ ८४ ॥

कर्णादि इन्द्रियोंमें कुपित वायु पर वातनाशक क्रिया करनी चाहिए। एवं स्नेह, अभ्यंग, उपनाह, मर्दन और लेपन इत्यादि उपचार करने चाहिएँ ८४

वायौ त्वगाश्रितेऽभ्यङ्गं स्नेहं स्वेदश्च योजयेत्। रक्तस्थे शीतलाँल्लेपान्विरेकं रक्तमोक्षणम् ॥ ८५ ॥

रसगत अर्थात् त्वचागतवातमें अभ्यङ्ग, स्नेह और स्वेद प्रयोग करे। रक्तगतवातरोगमें शीतल लेप, विरेचन और रक्तमोक्षण कर्म करे ॥ ८५॥

मांसमेदोगते वाते सविरेकं निरूहणम्। अस्थिमज्जागते स्नेहं बाह्याभ्यन्तरतो भिषक् ॥ ८६ ॥

मांस और मेदगत वातरोगमें विरेचन और निरूहण बस्ति देवे। अस्थि और मज्जागतवातरोगमें स्नेहपान और स्नेहका मर्दन करे ॥ ८६ ॥

केतक्यादितैल।

केतकिनागबलातिबलानां यद्बहुलेन रसेन विपक्वम्। तैलमनल्पतुषोदकसिद्धं मारुतमस्थिगतं विनिहन्ति ॥ ८७ ॥

केवडा, नागबला, कंघी, इन तीनोंके स्वरस या काथमें थोड़ी कांजी डालकर उसमें तेलको पकावे। यह तेल अस्थिगत वातको दूर करता है ॥ ८७ ॥

बलादिघृतमण्ड।

सन्धिस्नायुगते वाते दाहस्नेहोपनाहनम्। हर्षोऽन्नपानं शुक्रस्थे बलशुक्रकरं हितम् ॥ ८८ ॥

संधिगत और स्नायुगत वातरोगमें--दाह, स्नेह और उपनाहन कर्म करना चाहिए। शुक्रगत वातरोगमें हर्षजनक कार्य, बल और वीर्यवर्द्धक अन्नपान सेवन कराने चाहिएँ ॥ ८८ ॥

अवगाहकुटीकर्षुः प्रस्तराभ्यङ्गबस्तिभिः। जयेत्सर्वगतं वातं शिरामोक्षैश्च बुद्धिमान् ॥ ८९ ॥

सर्वांगगत वातरोगको तेलका अवगाहन, प्रस्तरस्वेद, अभ्यंग, बस्तिप्रयोग और शिरामोक्ष (फस्त या नस खुलवाना) इत्यादि उपचारोंसे जीते॥ ८९

एकाङ्गवातं मतिमाञ्छृङ्गैश्चावास्थितं जयेत् ॥ ९० ॥ वक्षस्त्रिकः स्कन्धगतं वायुं मन्यागतं तथा। वमनं हन्ति नस्यश्च कुशलेन प्रयोजितम् ॥ ९१ ॥

एकांग वातरोगमें शृंगी या तोम्बी आदि लगावे। वक्ष, त्रिक, स्कन्ध और मन्याागत वातरोगको वमन तथा नस्यके द्वारा दूर करे॥ ९० ॥ ९१ ॥

सर्वाङ्गगतमेकांगस्थितं वापि समीरणम्। रुणाद्धि केवलो बस्तिस्तोयवेगमिवाचलः॥ ९२ ॥

सर्वांग अथवा एकांगवातरोगको केवल बस्ति प्रयोग ही दूर करता है, जिसप्रकार जलके वेगको पर्वत रोकता है॥ ९२ ॥

पिबैदैरण्डतैलं वा बस्तिकुक्षिगुदाश्रये। दशमूलीकषायेण मातुलुङ्गरसेन वा॥ ९३ ॥

वस्ति, कुक्षि और गुदाश्रित वातरोगमें दशमूलके काथेके साथ अथवा विजौरे नींबूके रसके साथ अंडीके तेलको पीवे॥ ९३ ॥

मूर्द्धस्थे स्नेहकृत्तस्य शिरो बस्तिश्च लेपनम्॥ ९४ ॥

मूर्द्धास्थित वातरोगमें स्नेहका मर्दन, शिरोबस्ति और लेप करे॥ ९४ ॥

बलाबिल्वशृते क्षीरे घृतमण्डं विपाचयेत्। तस्य शुक्तिं प्रकुर्वीत नस्यं शीर्षगतेऽनिले॥ ९५ ॥

खिरैंटी और बेलगिरीके काथमें दूध और घृतमंड डालकर पकावे। फिर उसका शुक्त बनाकर उसका नास लेनेसे शिरोगत वातरोग दूर होता है॥ ९५ ॥

तैलं संकुचिते त्वंगे माषसैन्धवसाधितम्। बाहुशीर्षगते नस्यं पानश्चोपरिभक्तकम्॥ ९६ ॥

जो अंग वातसे सिकुड जाय उसपर उडद और सैंधोंनमकसे पकाये हुए तेलको मले। बाहु और शीर्षगत वातरोगमें उपरोक्त तेलका नस्य और भोजनके पश्चात् पान करे॥ ९६ ॥

गर्भे शुष्के तु वातेन बालानाश्चापि शुष्यताम्। सिताकाश्मर्य्यमधुकैर्हितमुत्थापने पयः॥ ९७ ॥

वातसे जो गर्भ सूखजाय और गर्भिणीका शरीर कृश होजाय और बालक सूखजाय तो मिश्री कुम्भेर और मुलैठी इनके द्वारा दूधको पकाकर सेवन करावे॥ ९७ ॥

हनुग्रहके लक्षण।

जिह्वानिर्लेखनाच्छुष्कचर्वणादभिघाततः। कुपितो हनुमूलस्थः संश्रयित्वाऽनिलो हनुम्॥ ९८ ॥ करोति विवृतास्यत्वमथवा संवृतास्यताम्। हनुग्रहः स तेन स्यात्कृच्छाच्चर्वणभाषणम्॥ ९९ ॥

जिह्वाको घिसनेसे, सूखे पदार्थोंके भक्षण करनेसे, हनु अर्थात् ठोडीमें चोटके लगनेसे हनु (ठोडी) की मूलमें स्थित वायु कुपित होकर मुखको खोलदे अथवा बंद कर दे, यह रोगी अत्यंत कष्टसे खाता है और बोलता है, इसको हनुस्तम्भ कहते हैं॥ ९८ ॥ ९९ ॥

चिकित्सा।

संवृतं चिबुकं स्विन्नामुन्नाम्यास्यश्च बुद्धिमान्। विवृतां नामयित्वा तु कुर्य्यादायामवत्क्रियाम्॥ १०० ॥

मिचेहुये मुखको वैद्य स्निग्धपदार्थोंसे मलकर बफारा देकर खोल देवे और जो रोगीका मुख खुला रहगया होय तो पूर्वोक्त उपायोंसे उसके मुखको बंद कर देवे॥ १०० ॥

सगुडां पक्वबिम्बीन्तु प्रक्षिप्य वदनान्तरे। न्यस्तं सङ्गमयेत् स्थानं स्निग्धस्विन्नश्च नाशयेत्॥ १०१ ॥

गुडके साथ पकीहुई कन्दूरीको मुखके भीतर रख कर फिर उसको दो अँगुली और अँगूठेसे दबाकर घृतादि चिपडकर तथा बफारा देकर बंद करदेवे १०१

अर्दिते नवनीतेन खादेन्माषेण्डरीं नरः। अर्दिते शोथयुक्ते तु वमनं रक्तमोक्षणम्॥ १०२॥ श्लेष्मभागे क्षयं नीते बृंहणः समुपाचरेत्। रसोनं घृततैलाभ्यां पिबेद्वाप्यर्दितापहम्॥ १०३ ॥

अर्दितरोगमें नैनीघीके साथ उड़दकी वड़ी बनाकर खानी चाहिये। शोथयुक्त अर्दितरोगमें वमन और रक्तमोक्षण करे। इसप्रकार करनेसे जब कफका भाग क्षय होजाय तब बृंहण (पुष्टिकारक) पदार्थ देवे। लशुनको घृत और तेलके साथ खानेसे अर्दितरोग दूर होता है॥ १०२॥ १०३॥

जिह्वास्तम्भक लक्षण।

वाग्वादिनीशिरासंस्थो जिह्वां स्तम्भयतेऽनिलः। जिह्वास्तंभः स तेनान्नपानवाक्येष्वनीशता॥ १०४॥

जब वायु वाणीके वहानेवाली नसोंमें प्राप्त होकर जिह्वाको स्ताम्भित करदेते हैं तो उसको जिह्वास्तम्भ कहते हैं। इससे अन्न पानको भक्षण करनेकी और बोलनेकी शक्ति नष्ट होजाती है॥ १०४॥

चिकित्सा।

जिह्वास्तम्भे यथाऽवस्थं वातव्याधिचिकित्सितम्। सामान्योक्ता क्रिया चात्र अर्दितस्य हिता मता॥ १०५॥

जिह्वास्तम्भरोगमें दोषानुसार वातव्याधिपर कही हुई चिकित्सा करे और अर्दितोक्त सामान्य क्रिया भी इसमें करनी चाहिए॥ १०५॥

मन्यास्तम्भके लक्षण।

दिवास्वप्नासनस्थानो विकृतोर्ध्वं निरीक्षणैः। मन्यास्तम्भं प्रकुरुते स एव श्लेष्मणावृतः॥ १०६॥

दिनमें सोनेसे, विकृतासन, या विषमस्थानमें बैठनेसे अथवा विकृतरूपसे ऊपरको देखनेसे कफ सहित वायु मन्या अर्थात् ग्रीवाकी नाडीको स्तम्भन करदेती है इसको मन्यास्तम्भ कहते हैं॥ १०६॥

मन्यास्तम्भकी चिकित्सा।

पञ्चमूलीकृत क्काथो दशमूलीकृतोऽथवा। रूक्षं स्वेदं तथा नस्यं मन्यास्तम्भे प्रयोजयेत्॥ १०७॥

इसमें पंचमूलका काथ अथवा दशमूलका काथ देवे। तथा रूक्षस्वेद और नस्य प्रयोग करे॥ १०७॥

कुब्जलक्षण।

हृदयं यदि वा पृष्ठमुन्नतं क्रमशः सरुक्। क्रुद्धो वायुर्यदा कुर्यात्तदा तं कुब्जमादिशेत्॥ १०८॥

कुपितहुई वायु हृदय और पीठको क्रमसे पीडा सहित जब ऊँचा करती है तब उसको कुब्ज (कुबडा) कहते हैं॥ १०८॥

कुब्जकी चिकित्सा।

वातघ्नैर्दशमूल्या च वातकुब्जमुपाचरेत्। स्नेहैर्मांसरसैर्वापि प्रवृद्धन्तं विवर्जयेत्॥ १०९॥

नवीन कुब्जक वातरोगमें वातनाशक औषधियें, दशमूलका काथ, स्नेहपान और मांसरस इत्यादि उपायोंके द्वारा दूर करे और वहुत दिनोंके कुब्जकरोगकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिए॥ १०९॥

शिरोग्रहके लक्षण।

रक्तमाश्रित्य पवनं कुर्य्यान्मूर्द्धधराः शिराः। रूक्षाः सवेदनाः कृष्णाः सोऽसाध्यः स्याच्छिरोग्रहः॥ ११०॥

वात रुधिरके आश्रित होकर शिरको धारण करनेवाली नाडीको रूखी, पीडायुक्त और काली कर दे तो इसको शिरोग्रह कहते हैं। यह शिरोग्रह असाध्य है॥ ११०॥

शिरोग्रहकी चिकित्सा।

शिरोग्रहे तु कर्त्तव्या शिरोगतमरुत्क्रिया॥ १११॥

शिरोग्रह रोगमें वातज शिरोरोगके समान चिकित्सा करनी चाहिए॥ १११॥

बाहुशोषका निदान।

अंसदेशस्थितो वायुः शोषयित्वांऽसबन्धनम्। अंसबन्धनशोषः स्याद्बाहुशोषः सवेदनः। शिरां संकुच्य तत्रस्थो जनयत्यपबाहुकम्॥ ११२॥

स्कन्ध (कन्धे) में रहनेवाली वायु दूषित होकर स्कन्धके बन्धनको सुखा देवे तो इसको अंसबन्धन

शोष कहते हैं और जो इसमें पीडा हो तो बाहुशोष कहते हैं । जिसमें स्कंधस्थित वायु स्कन्धदेशकी शिराओंको संकुचित कर दे उसको अपबाहुक कहते हैं ॥ ११२ ॥

गृध्रसीके लक्षण।

स्फिक्पूर्वा कटिपृष्ठोरुजानुजङ्घापदं क्रमात् । गृध्रसीस्तंभरुक्तोदैर्गृह्णाति स्पन्दते मुहुः ॥ ११३ ॥ वाताद्वातकफाभ्यां सा विज्ञेया द्विविधा पुनः । वातजायां भवेत्तोदो देहस्यातीववक्रता ॥ जानुजङ्घोरुसन्धीनां स्फुरणं स्तब्धता भृशम् ॥ ११४ ॥ वातश्लेष्मोद्भवायान्तु गौरवं वह्निमार्दवम् । तन्द्रा मुखप्रसेकश्च भक्तद्वेषस्तथैव च ॥ ११५ ॥

वायु प्रथम कूलेको जकडकर फिर क्रमसे गुदा, कमर, पीठ, ऊरु, जानु, जंघा और पांवोंको जकड देवे या पीडित करदेवे, नोचनेकीसी पीडा हो और बारंबार काँपे इसको गृध्रसीरोग कहते हैं । वातज और वातकफज इसप्रकार यह गृध्रसीरोग दो प्रकार का है । तहां वातज गृध्रसीरोगमें तोड़ने सरीखी पीडा, देहमें अत्यन्त वक्रता, जानु, जंघा और ऊरुकी संधियोंमें स्फुरण और अत्यन्त स्तब्धता होती है । वातकफजगृध्रसीरोगमें—शरीरमें भारीपन, अग्निकी मन्दता, तन्द्रा, मुखसे पानी गिरना और भोजनमें अरुचि ये सब लक्षण होते हैं ॥ ११३—११५ ॥

विश्वाचीके लक्षण।

तलं प्रत्यङ्गुलीनां या कण्डरा बाहुपृष्ठतः । बाह्वोः कर्म्मक्षयकरी विश्वाचीति हि सोच्यते ॥ ११६ ॥

बाहुके पीछेसे लेकर हाथके ऊपरके भागतक प्रत्येक अंगुलिके तले जो मोटी नसें हैं उनको वायु दूषित करके हाथसे लेना, देना, खोलना, फैलाना, मुट्ठी बंद करना आदि बाहोंके कामोंको रोकनेवाला जो रोग होता है उसको विश्वाची कहते हैं ॥११६॥

बाहुशोषकी चिकित्सा।

बाहुशोषे पिबेत् भुक्त्वा सर्पिः कल्याणकं महत् । वातेऽपबाहुके नस्यं स्वेदं चोत्तरभक्तिकम् ॥ ११७ ॥

बाहुशोषरोगमें भोजन करनेके पश्चात् बृहत्कल्याण घृत पान करे । अपबाहुक रोगमें भोजनके पश्चात् नस्य और स्वेद देवे ॥ ११७ ॥

बलामूलशृतं तोयं सैन्धवेन समन्वितम् । बाहुशोषगते वायौ मन्यास्तम्भे च शस्यते ॥ ११८ ॥

खिरैंटीकी जड़का क्वाथ बनाकर उसमें सैंधानमक डालकर पीवे तो बाहुशोष रोग और मन्यास्तम्भ रोग दूर होता है॥ ॥ ११८॥

परमौषधमपबाहुकमन्यास्तम्भोर्ध्वजत्रुगतरोगे । शीतलजलेन नावनमुपशमने जिङ्गिनी च पुरः ॥ ११९ ॥

अपबाहुक,मन्यास्तम्भ और सर्व प्रकारके ऊर्ध्वजत्रुरोगोंमें मजीठ और गूगल इनको शीतल जलमें पीसकर नास देवे यह उत्तम औषधि है ॥ ११९ ॥

नस्येन शीतपयसा शुकाशिंबिमूलाजिङ्गिनी पिष्टा । अपबाहुककन्धरपीडामचिराद्विनाशयेद्योगमिदम्॥ १२० ॥

कौंछकी जड और मजीठको शीतल जलमें पीसकर उसकी नास लेनेसे अपबाहुक रोग और कंधेकी पीडा बहुत शीघ्र दूर होती है ॥ १२० ॥

काकोदुम्बरिदुग्धैः सरामठैर्हरेत्सर्वयोगविच्च । कपिकच्छुमूलयुक्तैर्नस्यैरपबाहुजां पीडाम् ॥ १२१ ॥

कठूमरका दूध, हींग और कौंछकी जड इन सबको एकत्र पीसकर नास लेनेसे अपबाहुकरोग दूर होता है ॥ १२१ ॥

मूलं बलायास्त्वथ पारिभद्रं तथात्मगुप्तास्वरसं पिबेद्वा । नस्यन्तु यो माषरसेन दद्यान्मासादसौ वज्रसमानबाहुः ॥ १२२ ॥

खिरैंटीकी जड और फरहद अथवा नीमकी जड इनका क्वाथ पीवे, या कौंछका रस पीवे अथवा उडदोंके क्वाथकी नस्य देवे तो एक महीनेमें बाहु वज्रके समान हो जाती है ॥ १२२ ॥

दशमूलीबलामाषक्वाथं तैलाज्यमिश्रितम्। सायं भुक्त्वा पिबेन्नस्यं विश्वाच्यामपबाहुके॥ १२३॥

दशमूल, खिरैंटी और उड़द इनके काथमें तेल और घी डालकर सन्ध्याके समय भोजनके पश्चात् इसका नस्य देवे तो विश्वाची और अपबाहुक रोग दूर होता है॥ १२३॥

माषतैल।

माषसिन्धुबलारास्नादशमूलकहिंगुभिः। वचाजटाशताख्याभिः सिद्धं तैलं सनागरम्॥ १२४॥ ऊर्ध्वं भक्ताशनाद्धन्याद्बाहुशोषापबाहुकौ। पक्षाघातं तथैवाशु विश्वाचीमुद्धतामपि॥ १२५॥

उडद, सैंधानमक, खिरैंटी, रायसन, दशमूल, हींग, वच, बालछड, शतावर और सोंठ इनके काथ और कल्कके द्वारा तेलको सिद्ध करे। इसको भोजन करनेके पश्चात् सेवन करे तो यह बाहुशोष, अपबाहुक पक्षाघात और भयंकर विश्वाची रागको भी शीघ्र ही दूर करे है॥ १२४॥ १२५॥

खञ्ज और पंगुके लक्षण।

वायुः कट्याश्रितः सक्थ्नः कण्डरामाक्षिपेद्यदि। खञ्जस्तदा भवेज्जन्तुः पंगुः सक्थ्नोर्द्वयोर्वधात्॥ १२६॥

खंज और पंगुके लक्षण—कमरमें रहनेवाली वायु जंघाकी नसोंको ग्रहण कर एक पांवको जकड देवे उसको "खञ" कहते हैं और जिसमें दोनों जांघोंकी नसोंको पकडकर दोनों पावोंको जकड देवे उसको "पंगु" कहते हैं॥ १२६॥

कलाय खञ्जके लक्षण।

कम्पते गमनारम्भे खञ्जन्निव च गच्छति। कलायखंजन्तं विद्यान्मुक्तसन्धिप्रबन्धनम्॥ १२७॥

कलायखंजके लक्षण—कलायखंजमें रोगी थर २ कम्पित होकर विकलभावसे गमन करता है तथा उसके सन्धिबन्धन शिथिल हो जाते हैं उस रोगको कलायखंज कहते हैं॥ १२७॥

पादहर्षके लक्षण।

हृष्येते चरणौ यस्य भवेतांश्च प्रसुप्तकौ। पादहर्षः स विज्ञेयः कफमारुतकोपजः॥ १२८॥

जिस रोगमें कफके तथा वायुके कुपित होनेसे दोनों पांव रोमांच युक्त होकर झनझन करने लगते हैं उसको पादहर्ष जानना चाहिये॥ १२८॥

पाददाहके लक्षण।

पादयोः कुरुते दाहं पित्तासृक्सहितोऽनिलः। विशेषतश्चंक्रमणात्पाददाहं तमादिशेत्॥ १२९॥

पाददाह रोगमें वायु पित्त और रुधिरके साथ मिलकर दोनों पांवोंमें दाह उत्पन्न करती है और चलते समय विशेष कर दाह होती है तो उसको पाददाह कहते हैं॥ १२९॥

क्रोष्टुशीर्षके लक्षण।

वातशोणितजः शोथो जानुमध्ये महारुजः। ज्ञेयः क्रोष्टुकशीर्षस्तु स्थूलक्रोष्टुकशीर्षवत्॥ १३०॥

वायु और रक्तसे दोनों जानु अर्थात् घुटनोंकी संधियोंमें अत्यन्त व्यथायुक्त सूजन उत्पन्न हो और वह सूजन क्रोष्टु अर्थात् स्यारके शिरके समान बडी हो उसको क्रोष्टुशीर्ष कहते हैं॥ १३०॥

वातकण्टकके लक्षण।

रुक् पादे विषमे न्यस्ते श्रमाद्वा जायते यदा। वातेन गुल्फमाश्रित्य तमाहुर्वातकण्टकम्॥ १३१॥

ऊँचे नीचे स्थानमें पांवके पडनेसे अथवा श्रमसे पाद मुचगाय वायु कुपित होकर गुल्फ स्थान (टकनो) में पीडा उत्पन्न करे उसको वातकंटक[1] कहते हैं॥ १३१॥

चिकित्सा।

खञ्जपंग्वोः कलायाख्ये विश्वाचीपादहर्षयोः॥ पाददाहे च गृध्रस्यां

---

1 लोकमें मोच पडगई मानते हैं।

क्रोष्टुके वातकण्टके ॥ १३२ ॥ शिरां विद्ध्वाशु कुर्वीत यथाविधि चिकित्सकः ॥ उपाचरेदभिनवं खञ्जं पंगुमथापि वा । विरेकाऽऽस्थापनस्वेदगुग्गुलुस्नेहबस्तिभिः ॥ १३३ ॥

खंज, पंगु, कलायखंज, विश्वाची, पादहर्ष, पाददाह, गृधसी क्रोष्टुशीर्ष और वातकंटक इन सब रोगोंमें विधिपूर्वक वैद्य शिरावेध करे अर्थात् नस छेदे। जो खंज और पंगुरोग, नवीन हो तो विरेचन, आस्थापन स्वेद, गूगल स्नेह और बस्तिकर्म्म ये सब उपचार करे॥ १३२ ॥ १३३ ॥

पादहर्षे तु कर्त्तव्यः कफव्याधिहरो विधिः । वातरक्तक्रमं कुर्य्यात् पाददाहे विशेषतः ॥ १३४ ॥

पादहर्ष रोगमें कफनाशक विधि करनी चाहिए । पाददाह रोगमें विशेष कर वातरक्तके समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १३४ ॥

मसूरविदलैः पिष्टैः शृतशीतेन वारिणा । चरणौ लेपयेत्सम्यक् पाददाहप्रशान्तये ॥ १३५ ॥

मसूरकी दालको औटाकर शीतल किये हुए जलके साथ पीसकर पांवोंपर लेप करनेसे पांवोंकी दाह दूर होती है ॥ १३५ ॥

नवनीतेन संलिप्तौ वह्निना परितापितौ । मुच्येते चरणौ क्षिप्रं परितापात्सुदारुणात् ॥ १३६ ॥

पांवोंपर नैनी घीका लेप करके उनको अग्निसे सेकनेसे तत्काल पांवोंकी दाह दूर होती है ॥१३६॥

गुग्गुलुं क्रोष्टुशीर्षे तु गुडूचीं त्रिफलाम्भसा । क्षीरेणैरण्डतैलं वा पिबेद्वा वृद्धदारुकम् ॥ १३७ ॥ रसं तित्तिरिमांसस्य क्रोष्टुके मधुरं पिबेत् । वातरक्तक्रियाभिश्च जयेज्जांबुकमस्तकम् ॥ १३८ ॥

१ लाक्षादि तैलकी मालिशसे हाथ और पैरोंकी दाह दूर होजाती है ।

क्रोष्टुशीर्ष रोगमें गिलोय और त्रिफलेके क्वाथमें गूगल डालकर पीवे । अथवा दूधमें अंडीका तेल डालकर पीवे । या विधारेके चूर्णको दूधके साथ सेवन करे। तितिरके मांसरसमें मिश्री आदि मधुर पदार्थ डालकर पीवे । इस क्रोष्टुशीर्षरोगको वातरक्तपर कहीहुई चिकित्साके द्वारा जीते ॥ १३७ ॥ ॥ १३८ ॥

रक्तावसेचनं कुर्य्यादभीक्ष्णं वातकण्टके । पिबेदेरण्डतैलं वा दहेत सूचीभिरेव वा ॥ १३९ ॥

वातकंटकरोगमें वारंवार रुधिर निकलवावे अथवा अंडीके तेलको पीवे अथवा सुईसे दाग देना चाहिये ॥ १३९ ॥

पुनर्नवायाः श्वेतायास्तैलं मूलेन साधयेत् । वातकण्टकमाहन्यात् पादाभ्यङ्गेन मर्दनात् ॥ १४० ॥

सफेद पुनर्नवेकी जडको तेलेंम पकाकर उसको पांवोंमें मालिश करनेसे वातकंटक रोग दूर होता है ॥ १४० ॥

वात ष्ठीलानिदान ।

नाभेरधस्तात्सञ्जातः सञ्चारी यदि वा चलः । अष्ठीलावद्घनो ग्रन्थिरूर्ध्वमायत उन्नतः ॥ वात ष्ठीलां विजानीयाद्बहिर्मार्गावरोधिनीम् ॥ १४१ ॥

नाभिके नीचे चलायमान अथवा स्थिर गोलाकार कठिन, ऊपरसे कुछ चौंडी, आडी, किंचित् ऊँची, ऐसी गांठ उत्पन्न हो और उसके होनेसे मल, मूत्र और अधोवायुका अवरोध हो तो उसको वातष्ठीला कहते हैं ॥ १४१ ॥

प्रत्यष्ठीलाके लक्षण ।

एतामेवरुजायुक्तां वातविण्मूत्ररोधिनीम् । प्रत्यष्ठीलामिति वदेज्जठरे तिर्य्यगुत्थिताम् ॥ १४२ ॥

पूर्वोक्त वातष्ठीलाकी गांठ यदि उदर (नाभि) के ऊपर उत्पन्न हो पीडा हो और मल मूत्रका अवरोध हो तो प्रत्यष्ठीला कहते हैं ॥ १४२ ॥

२ तेल मर्दन कराकर जिस तर्फसे ऊँचा हो उसके दूसरे तर्फको खैंचकर मोच निकलवावे ।

दोनोंकी चिकित्सा।

अष्ठीलायाः क्रिया कार्य्या गुल्मस्यान्तरविद्रधेः। चूर्णं हिंग्वादिकश्चात्र पिबेदुष्णेन वारिणा॥ १४३॥

अष्ठीला, प्रत्यष्ठीला आदिकी गुल्म और अन्तरविद्रधिके समान चिकित्सा करनी चाहिए। हिंग्वादिचूर्णको गरमजलके साथ पीना चाहिये ॥१४३॥

तूनीनिदान।

अधो या वेदना याति वर्चोमूत्राशयोत्थिता। भिन्दतीव गुदोपस्थं सा तूनी नामतो मता॥ १४४॥

जिस रोगमें मूत्राशय अथवा पक्काशयमें पीडा उत्पन्न होकर अत्यन्त जोरसे मलद्वार, लिंग अथवा योनिमें फटनेकेसी पीडा प्रवेश करे उस रोगको तूनी कहते हैं॥ १४४॥

प्रतितूनीके लक्षण।

गुदोपस्थोत्थिता यातु प्रतिलोमं विधाविता। वेगैः पक्काशयं याति प्रतितूनीति सोच्यते॥ १४५॥

जिस रोगमें मलद्वार अथवा उपस्थदेशसे पीडा उत्पन्न होकर अत्यन्त जोरसे पक्काशयमें प्रवेश करती है उस रोगको प्रतिनी कहते हैं॥ १४५॥

दोनोंकी चिकित्सा।

तून्याश्च प्रतितून्याश्च प्रशास्ताः स्नेहबस्तयः। पिबेद्वा स्नेहलवणं पिप्पल्यादिमथांबुना। उष्णेन रामठक्षारं प्रलीढमथवा घृतम्॥ १४६॥

तूनी और प्रतितूनी दोनोंमें स्नेहबस्ति हितकारी है अथवा घीके साथ सैंधव नमकको खाय। अथवा पीपल आदि औषधियोंको जलके साथ पीवे। या गरम जलके साथ हींग और जवाखार सेवन करे या घृतके साथ खाय॥ १४६॥

तन्द्राके लक्षण।

वाताद्वातकफात्तन्द्रा गौरवारोचकान्विता॥ १४७॥

वातसे और वातकफसे तन्द्रा उत्पन्न होती है इसमें भारीपन और अरुचि होती है॥ १४७॥

तन्द्राकी चिकित्सा।

अयोरजः श्वेतलोध्रमञ्जनं मरिचं तथा। गोपित्तेन समायुक्तं तन्द्रानाशनमुत्तमम्॥ १४८॥

लोहेका चूर्ण, सफेद लोध, सफेद अंजन, काली मिरच और गायका पित्त इन सबको एकत्र मिलाकर अंजन लगानेसे तन्द्रा दूर होती है॥ १४८॥

पलाण्डुहिंगुलशुनं वचाकटुकरोहिणी। जीवन्तीरससंयुक्तं तन्द्राविलयनं परम्॥ १४९॥

प्याज, हींग, लशुन, वच, कुटकी और जीवंती इन सबको एकत्र मिलाकर सेवन करनेसे तन्द्रा दूर होती है॥ १४९॥

आध्मानके लक्षण।

साटोपमत्युग्ररुजमाध्मानमुदरं भृशम्। आध्मानमिति जानीयाद्धोरं वातनिरोधजम्॥ १५०॥

वायुसे पक्काशय अत्यन्त फूल जाय तथा पक्काशयमें गुड़गुड़ शब्द और अत्यन्त पीडा हो उसको आध्मान रोग कहते हैं॥ १५०॥

प्रत्याध्मानके लक्षण।

विमुक्तपार्श्वहृदयं तदेवामाशयोत्थितम्। प्रत्याध्मानं विजानीयात्कफव्याकुलितानिलम्॥ १५१॥

वायु कफसे मिलकर आमाशयमें गुड़गुड़ाहट शब्द करे तथा आमाशय फूल जावे, पसली और हृदयमें पीडा हो, व्याकुलता हो उसको प्रत्याध्मान रोग कहते हैं॥ १५१॥

आध्मानकी चिकित्सा।

आध्माने लङ्घनं पूर्वं दीपनं पाचनं ततः। फलवर्त्तिक्रियां कुर्य्याद्वस्तिकर्म च शोधनम्॥ १५२॥

आध्मानरोगमें प्रथम लंघन करवाकर फिर दीपन और पाचन औषधि देवे, फलवर्ति क्रिया करे तथा बस्ति और वमन विरेचन देवे ॥ १५२ ॥

प्रत्याध्मानकी चिकित्सा ।

प्रत्याध्माने समुत्पन्ने कुर्य्याल्लङ्घनछर्दने । दीपनानि प्रयुञ्जीत पूर्ववद्बस्तिकर्म च ॥ १५३ ॥

प्रत्याध्मानरोगमें लंघन और वमन करानी चाहिए तथा दीपन औषधियें और पूर्वोक्त बस्तिकर्म्म आदि भी करने चाहिएँ ॥ १५३ ॥

कंपवातके लक्षण ।

सर्वाङ्गकम्पः शिरसो वायुर्वेपथुसंज्ञकः ।

जो सब अंगोंको और शिरको कँपावे उसको कंपवायु कहते हैं ।

खल्लीके लक्षण ।

खल्ली तु पादजङ्घोरुकरमूलावमोटिनी ॥ १५४ ॥

जिसमें पाँव, जाँघ, ऊरु और हाथके मूल टेढे होने लगे उसको खल्ली कहते हैं ॥ १५४ ॥

कंप और खल्लीवातकी चिकित्सा ।

वायुं वेपथुनामानं स्वेदाभ्यङ्गानुवासनैः । उपाचरेन्निरूहैश्च शिरोबस्तिविरेचनम् ॥ १५५ ॥

कंपवायुमें स्वेद, अभ्यंग, अनुवासन, निरूहबस्ति शिरोबस्ति और विरेचन कर्म्म करे ॥ १५५ ॥

कुष्ठसैन्धवयोः कल्कश्चुक्रतैलसमन्वितः । सुखोष्णो मर्दने योज्यः खल्लीशूलनिवारणः ॥ १५६ ॥

कूठ और सैंधे नमकका कल्क चूकेके तेलके साथ सुहाता सुहाता मर्दन करे तो खल्लीशूल नष्ट होता है॥

भल्लातकादिघृत ।

भल्लातकानि सिन्धूत्थमधूच्छिष्टमहौषधम् । अम्लेन पयसा वाऽपि घृतमेतद्विपाचयेत ॥ १५७ ॥ एतेनोद्वर्त्तनं कार्यं प्रदेहश्चैव शाम्यति । अतिप्रवृद्धां खल्लीं तु तत्क्षणादेव नाशयेत् ॥ १५८ ॥

भिलावे, सैंधानमक, मोम और सोंठ इनका कल्क,काँजी और दूध इन सबको एकत्र करके इनमें घृतको सिद्ध करे । इस घृतका उद्वर्तन और प्रलेप करनेसे अत्यंत बढी हुई खल्लीवात तत्काल नष्ट होती है ॥ १५७ ॥ १५८ ॥

मूकमिन्मिण और गद्गदका निदान ।

आवृत्य वायुः सकफो धमनीः शब्दवाहिनीः । नरान् करोत्यवचनान् मूकमिन्मिणगद्गदान् ॥ १५९ ॥

कफसहित वायु शब्दके वहनेवाली नाडियोंमें प्राप्त होकर मनुष्योंके वचनको क्रियारहित मूक (गूंगा) मिनमिन (मिनमिना नाकमें बोलना) और गद्गद (बोलते समय बीचके स्वर व्यंजनोंको खा जाना) कर देवे उसको मूक,मिन्मिण और गद्गद वायु कहते हैं ॥ १५९॥

उपरोक्त तीनों रोगोंकी चिकित्सा ।

सारस्वत घृत ।

प्रस्थं घृतस्य पालिकैः शिग्रुवचाधातकीलोध्रलवणैः । आजे पयसि सपादैः सिद्धं सारस्वतं नाम्ना ॥ १६० ॥ विधिवदुपयुज्यमानं जड गद्मूकतां क्षणाज्जित्वा । स्मृतिमतिमेधाप्रतिभाः कुर्य्यात् सम्यगिष्टवाग्भवति १६१

उत्तम गायका घी १ प्रस्थ(६४ तोले,) सहिंजना, वच, धायके फूल,लोध और सैंधानमक इन प्रत्येकका कल्क चार चार तोले और घीके बराबर बकरीका दूध लेवे, इन सबको एकत्र मिलाकर उत्तम विधिसे घृतको सिद्ध करे तो यह सारस्वत घृत सिद्ध होता है । इस सारस्वतको विधिपूर्वक सेवन करनेसे— जड़, गद्गद और मूकता क्षणभरमें दूर होती है तथा स्मरणशक्ति, मेधा और प्रतिभाकी वृद्धि होती है एवं वाणी स्पष्ट हो जाती है ॥ १६० ॥ १६१ ॥

कल्याणकलेह।

सहरिद्रावचाकुष्ठं पिप्पलीविश्वभेषजम्। अजाजी चाजमोदा च यष्टीमधुकसैन्धवम् ॥ १६२ ॥ एतानि समभागानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत्। तच्चूर्णं सर्पिषालोड्य प्रत्यहं भक्षयेन्नरः ॥ १६३ ॥ एकविंशतिरात्रेण भवेच्छ्रुतिधरो नरः। मेघदुन्दुभिनिर्घोषो मत्तकोकिलनिःस्वनः ॥ जडगद्गदमूकत्वं लेहः कल्याणको जयेत् ॥१६४॥

हलदी, वच, कूठ, पीपल, सोंठ,जीरा, अजमोद, मुलैठी और सेंधानमक इन सबको समानभाग लेकर बारीक चूर्ण करलेवे। इस चूर्णको घृतमें मिलाकर प्रतिदिन भक्षण करे। इसके प्रभावसे २१ दिनमें मनुष्य शास्त्रको धारण करनेवाला होजाता है और उसका शब्द मेघ, दुन्दुभि और उन्मत्त कोकिलके स्वरके समान होजाता है तथा जड,गद्गद और मूकता दूर होती है इसको कल्याणकलेह कहते हैं ॥१६२—॥ १६४॥

मूत्रावरोधके लक्षण।

मारुते प्रगुणे बस्तौ मूत्रं सम्यक् प्रवर्त्तते। विकारान्विविधान्वापि प्रतिलोमे भवन्ति च ॥ १६५॥

मूत्राशयमें रहनेवाली वायु जो दूषित न हो तो मूत्र अच्छेप्रकारसे उतरता है और जो दूषित होजाय तो अनेक प्रकारके अश्मरी और मूत्रकृच्छ्रके विकारोंको उत्पन्न करता है॥ १६५॥

स्थाननामलक्षणके अनुसार वातव्याधिनिदान।

स्थाननामानुरूपैश्च लिङ्गैः शेषान्विनिर्दिशेत्। सर्वेष्वेतेषु संसर्गं पित्तादेरुपलक्षयेत् ॥ १६६ ॥

ऊपर जो वातरोग कहे हैं इनके सिवा और भी अनेक प्रकारके वातरोग जानने। उनके स्थान और रूपानुसार नाम निश्चय करने। जैसे--कुक्षिमें शूल हो तो कुक्षिशूल, नखोंमें पीडा हो तो नखभेद इत्यादि इस अधिकारमें जितनी वातजनित व्याधि कही हैं वे सब पित्त और कफके मिश्रित हैं। परन्तु इनमें वायु प्रधान है, पित्त, कफ अप्रधान हैं॥ १६६ ॥

आक्षेपकवातके सामान्यलक्षण।

यदा तु धमनीः सर्वाः कुपितोऽभ्येति मारुतः। तदा क्षिपत्याशु मुहुर्मुहुर्देहं मुहुश्चरः ॥ १६७ ॥ मुहुर्मुहुस्तदाक्षेपादाक्षेपक इति स्मृतः ॥ १६८ ॥

जब वायु कुपित होकर सब धमनियोंमें प्रवेश करती है तब वह वारंवार संचार करके शरीरको वारंवार चलायमान करती है। जैसे—हाथीपर बैठनेसे झकोले लगते हैं ऐसे ही वारंवार हिलाती है। वारंवार आक्षेप करनेसे इसको आक्षेपकरोग कहते हैं ॥ १६७ ॥ १६८ ॥

आक्षेपकवायुके अपतन्त्रक और अपतानक इन दोनोंभेदोंकी अवस्था विशेष।

क्रुद्धः स्वैः कोपनैर्वायुः स्थानादूर्ध्वं प्रवर्त्तते। पीडयन्हृदयं गत्वा शिरः शङ्खौ च पीडयेत् ॥ १६९ ॥ धनुर्वन्नामयेद्गात्राण्याक्षिपेन्मोहयेत्तथा। आकृच्छ्राद्दुच्छ्वसेच्चापि स्तब्धाक्षो वा निमीलिकः ॥ कपोत इव कूजेच्च निःसंज्ञः सोऽपतन्त्रकः ॥ १७० ॥ दृष्टिं संस्तभ्य संज्ञां च हत्वा कण्ठेन कूजति। हृदि मुक्ते नरः स्वास्थ्यं याति मोहं वृते पुनः॥ १७१ ॥ वायुना दारुणं प्राहुरेके तमपतानकम् ॥ १७२ ॥

पूर्वोक्त रूक्षादि कारणोंसे कुपित हुई जो वायु अपने निजस्थानको छोड़कर ऊपर जाकर हृदयमें पीड़ा करती है। फिर मस्तक और कनपटियोंको पीडा करती है, शरीरको धनुषके समान नवा दे, चलेतपर बेहोश करदे, बड़े कष्टसे श्वास ले, नेत्र स्थिर होजाँय या मिचजावें और अचेत होकर कबूतरके समान कूँजे इस रोगको अपतन्त्रक रोग कहते हैं। दृष्टि बँध जाय, संज्ञा जाती रहे, कण्ठसे कूँजे, जब हृदयको वायु छोडे तब सुख हो और जब पकड़ ले तो फिर

बहोशी होजाय इस दारुणरोगको अपतानक कहते हैं ॥ १६९ ॥ १७० ॥ १७१ ॥ १७२ ॥

दण्डापतानकके लक्षण ।

कफान्वितो यदा वायुर्धमनीष्वेव तिष्ठति । स दण्डवत्स्तम्भयति कृच्छ्रो दण्डापतानकः १७३ ॥

कफयुक्त वायु धमनी नाडियोंमें प्राप्त होकर शरीरको दण्डेके समान जकड देवे, इसको दण्डापतानक कहते हैं, यह कृच्छ्र साध्य है ॥ १७३ ॥

धनुस्तम्भके लक्षण ।

धनुस्तुल्यो नमेद्यस्तु स धनुस्तंभसंज्ञितः । विवर्णवद्धरदनः स्रस्तांगो नष्टचेतनः । प्रस्विद्यंश्च धनुस्तम्भे दशरात्रं न जीवति ॥ १७४ ॥

कुपित हुई वायु नाडियोंको संकुचित करके शरीरको धनुषके समान नवा देती है इसकारण इसको धनुस्तम्भ रोग कहते हैं । इसमें वर्णका बदलना, दाँतोंका जकडना, अंगोंका शिथिल होना, मूर्च्छित होना और स्वेद ये विकार होते हैं। धनुष स्तम्भ रोगी दश दिनतक बचता नहीं ॥ १७४ ॥

अन्तरायामके लक्षण ।

अंगुलीगुल्फजठरहृद्वक्षोगलसंश्रितः । स्नायुप्रतानमनिलो यदा क्षिपति वेगवान् ॥ १७५ ॥ विष्टब्धाक्षः स्तब्धहनुर्भग्नपार्श्वः कफं वमन् ॥ अभ्यंतरं धनुरिव यदा नमति मानवः ॥ १७६ ॥ तदा सोऽभ्यन्तरायामं कुरुते मारुतो बली ॥ १७७ ॥

अंगुली, गुल्फ (पाँवकी गाँठ), पेट, हृदय, वक्षःस्थल और गलेमें रहनेवाली वायु वेगवान् होकर स्नायुसमूहको सुखाकर बाहर निकाल दे तब उस मनुष्यके नेत्र स्थिर होजाँय, ठोडी जकडजाय, पसलियोंमें पीडा हो, मुखसे कफ गिरने लगे और जब मनुष्य आगेको ओरको नवजाता है तब वह बलवान् वायु अन्तरायामको उत्पन्न करती है ॥ १७५ ॥ १७६ ॥ १७७ ॥

बाह्यायामके लक्षण ।

बाह्यस्नायुप्रतानस्थो बाह्यायामं करोति च । तमसाध्यं बुधाः प्राहुः पृष्ठकट्यूरुभञ्जनम् ॥ १७८ ॥

जिसप्रकार अन्तरायाममें वायु आगेकी नसोंमें रहकर अन्तरायामको करती है वैसे ही पीछेकी नसोंमें रहनेवाली वायु पीछेके भागको नवाकर बाह्यायामको करती है अर्थात् पीठ, कमर, और जंघाओंको मोड़देती है उसको असाध्य जानना ॥ १७८ ॥

आक्षेपकके भेद ।

कफपित्तान्वितो वायुर्वायुरेव च केवलः । कुर्य्यादाक्षेपकं त्वन्यं चतुर्थमभिघातजम् ॥ १७९ ॥

आक्षेपक वायु चार प्रकारकी है । एक कफान्वित, दूसरी पित्तान्वित, तीसरी केवल वातज और चौथी अभिघातज ॥ १७९ ॥

असाध्यत्व ।

गर्भपातनिमित्तश्च शोणितस्रवाच्च यः । अभिघातनिमित्तश्च न सिद्ध्यत्यपतानकः ॥ गते वेगे भवेत्स्वास्थ्यं सर्वेष्वाक्षेपकादिषु ॥ १८० ॥

गर्भके पतित होनेसे, अत्यंत रक्तके निकलनेसे और चोटके लगनेसे जो अपतानक रोग होता है वह असाध्य है । सर्वप्रकारके आक्षेपकादि रोगोंमें वेगके शांत होनेपर सुख होता है ॥ १८० ॥

अथ चिकित्सा ।

अथापतानकेनार्त्तमस्रस्ताक्षमवेपनम् । अस्तब्धमेढ्रमस्वेदं बहिरायामवर्जितम् ॥ १८१ ॥ अखट्वापातिनश्चैव त्वरितं समुपाचरेत् ॥ १८२ ॥

जो अपतानक वायुसे पीडित रोगीके नेत्र जबतक कंपरहित न हों तथा जबतक लिंग जकडे हुआ न हो, पसीना न आवे, बहिरायामके लक्षण न हों और जबतक खाटपर न पडे तबतक बहुत शीघ्र उसकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १८१ ॥ १८२ ॥

तत्र प्रागेव सुस्विन्नं स्निग्धाङ्गे तीक्ष्णनावनम् । स्रोतोविशुद्धये युंज्यादन्नपाने ततो घृतम् ॥ १८३ ॥ विदार्य्यादिगणक्वाथे दधिक्षीररसैः शृतम् । नातिमात्रं ततो वायुर्व्याप्नोति सहसैव च ॥ १८४ ॥

प्रथम अपतानक वातरोगीके शरीरको घृत तैलादिसे स्निग्ध करके फिर तीक्ष्ण नस्य देवे, स्रोतोंको विशुद्ध करनेके लिये अन्नपान और विदारीगण आदि औषधियोंका क्वाथ, दही और दूध इन सबके द्वारा घृतको सिद्ध करके पिलावे इससे एकसाथ अत्यन्त वायु कुपित नहीं होती ॥ १८३ ॥ १८४ ॥

वेगान्तरेऽम्बुमूर्द्धानमसकृच्चास्य रेचयेत् । अवपीडैः प्रधमनैस्तीक्ष्णैःश्लेष्मनिबर्हणैः ॥ १८५ ॥ श्वसनात्तु विमुक्तात्तु तथा संज्ञां न विन्दति । सौवर्चलाभयाव्योषसिद्धं सर्पिश्चले कफे ॥ १८६ ॥

जब इसका वेग शमन हो जाय तब जलके द्वारा शिरोविरेचन देवे तथा तीक्ष्ण और कफनाशक औषधियोंके द्वारा अवपीडन और प्रधमन करे, जो श्वासादिकके विमुक्त होनेपर संज्ञा उत्पन्न हो और कफ चलायमान हो तो काला नमक, हरड, और त्रिकुटा इनके द्वारा घृतको सिद्ध करके पान करावे ॥ १८५ ॥ १८६ ॥

अपतानकिने शस्तं दशमूलीशृतं जलम् । पिप्पलीचूर्णसंयुक्तं जीर्णे मांसरसौदनम् ॥ १८७ ॥

अपतानक रोगमें दशमूलके क्वाथमें पीपलका चूर्ण डालकर देवे और इसके जीर्ण होनेपर मांसरसके साथ भातका पथ्य देवे ॥ १८७ ॥

हन्त्यभुक्तवता पीतमम्लं दध्यपतानकम् । मरिचेन समायुक्तं स्नेहबस्तिरथापि वा ॥ १८८ ॥

१ श्वसनाः प्रश्वासोच्छ्वासवहा धमन्यस्तास्त्विति ।

भोजनसे प्रथम खट्टे दहीमें काली मिरचोंका चूर्ण डालकर पीवे अथवा स्नेहबस्ति प्रयोग करे ॥ १८८ ॥

महास्नेह ।

कुलित्थयवकोलानि भद्रदार्व्यादिकं गणम् । निष्क्वाथ्यानूपमांसञ्च तेनाम्लैः पयसाऽथवा ॥ १८९ ॥ स्वादुकन्दयुतं चैवं महास्नेहं विपाचयेत् । स्वेदाभ्यङ्गावगाहैश्च नस्यपानानुवासनैः । स हन्ति वातं तेनैव स्नेहस्वेदान्प्रयोजयेत् ॥ १९० ॥

कुलथी, जौ, बेर, देवदार्व्यादिगणकी समस्त औषधियें, और अनूपदेशके जीवोंका मांस इन सबका क्वाथ बनाकर उसमें काँजी अथवा दूध तथा स्वादुकंद (विदारीकंद) का रस डालकर महास्नेहको (तैल या घृतको) पकावे । इसको स्वेद, अभ्यंग, अवगाहन, नस्य, पान, अनुवासन और स्नेहादि कर्मोंमें प्रयोग करे तो वातरोग दूर होता है ॥ १८९ ॥ १९० ॥

तिल्वकघृत ।

पलाष्टकं तिल्वकतो वचायाः प्रस्थं पलं शिग्रु च पञ्चमूलम् । सैरण्डासिंहीत्रिवृतं घटेऽपां पक्त्वा पचेत्पादशृतेन तेन ॥ १९१ ॥ दध्नोपेतं यावशूकांशबिल्वैः सर्पिःप्रस्थं हन्ति तत्सेव्यमानम् । दुष्टान्वातानेकसर्वाङ्गसंस्थान्योनिव्यापद्ब्रध्मगुल्मोदरश्च १९२ ॥

तिल्वक (लोध) आठ पल, वच १ प्रस्थ, सहिंजना, पंचमूल, अंड, कटेली और निसोत ये प्रत्येक चार चार तोले लेकर सबको एक घडे जलमें पकावे । जब पकते पकते जल चौथाई भाग बाकी रहजाय तब उतारकर छान लेवे फिर क्वाथमें दही और जवाखार तथा एकप्रस्थ घृत डालकर घृतको सिद्ध करे । इस घृतको सेवन करनेसे अनेकप्रकारके दुष्ट वातरोग, एकांगवात, सर्वांगवात, योनिव्यापक रोग, ब्रध्म, गुल्म और उदररोग ये सब दूर होते हैं ॥ १९१ ॥ १९२ ॥

चिकित्सितमिदं कुर्य्याच्छुद्धे वातेऽपतानके। संसृष्टदोषे संसृष्टं कुर्य्याद्येन क्रियापथम् ॥ १९३ ॥

शुद्ध अपतानक वातरोगमें वैद्य इसप्रकार चिकित्सा करे और मिले हुए दोषोंमें मिश्रित कर्म्म करे ॥ १९३ ॥

दोषमाक्षेपके ज्ञात्वा शिरां विद्धा यथाक्रमम् । समीरणहरं कर्म्म कारयेत्कुशलो भिषक् ॥ १९४ ॥

आक्षेपक रोगमें दोषोंको जानकर यथाविधिसे शिरोवध करे और कुशल वैद्य समस्त वातनाशक कर्म्म करे ॥ १९४ ॥

बाह्ये चाभ्यन्तरायामे योज्या चार्दितवत्क्रिया । अथापतन्त्रकेनार्त्तमातुरं नापतर्पयेत् । निरूहबस्तिं वमनं सेवयेन्न कदाचन ॥ १९५ ॥

बाह्यायाम और अभ्यंतरायाम दोनों प्रकारके वातरोगोंमें अर्दित रोगके समान चिकित्सा करे अपतन्त्र रोगसे पीडित मनुष्योंको कदापि तर्पण नहीं देवे तथा निरूहबस्ती और वमन कदापि नहीं करावे ॥ १९५ ॥

श्वसनाः कफवाताभ्यां रुद्धास्तस्य विमोक्षयेत् । तीक्ष्णैः प्रधमनैः संज्ञां तासु मुक्तासु विन्दति ॥ १९६ ॥

जब कफ और वायुसे श्वासादि रुकजायँ तब उसको तीक्ष्ण औषधियोंके द्वारा प्रधमन करे इससे संज्ञा उत्पन्न होती है और श्वासादि भी ठीक हो जाते हैं ॥ १९६ ॥

मरिचादिनस्य ।

मरिचं शिग्रुबीजानि विडङ्गञ्च फणिज्जकम् । एतानि श्लक्ष्णचूर्णानि दद्याच्छीर्षविरेचनम् ॥ १९७ ॥

कालीमिरच, सहिंजनेके बीज, वायविडंग, मरुवा इन सबका बारीक चूर्ण करके नास देवे तो इससे शीघ्र ही सर्वप्रकारके वातकफसम्बन्धीय अपतन्त्रकादिरोग दूर होते हैं ॥ १९७ ॥

हिंग्वम्लवेतसं शुण्ठी ससौवर्चलदाडिमम् । पिबेद्वातकफघ्नञ्च वातहृद्रोगनुद्धितम् ॥ १९८ ॥

हींग, अमलवेत, सोंठ, कालानमक और अनारदाना इन सबको एकत्र जलमें पीसकर पान करनेसे वातकफ-रोग नष्ट होते हैं तथा वात और हृदयरोग भी दूर होता है ॥ १९८ ॥

हरीतकी वचा रास्ना सैन्धवं चाम्लवेतसम् । घृतमार्द्रकसंयुक्तमपतन्त्रकनाशनम् ॥ १९९ ॥

हरड, वच, रायसन, सैंधानमक, अमलवेत और अदरख इन सबको एकत्र पीसकर घृत मिलाकर सेवन करनेसे अपतंत्रक रोग दूर होता है ॥ १९९ ॥

विभीतकादिचूर्ण ।

विभीतकं सातिविषं भद्रमुस्तञ्च पिप्पली । भार्ङ्गी सशृङ्गवेरञ्च सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ २०० ॥ चूर्णान्येतानि मद्येन पीतान्युष्णोदकेन वा । नाशयन्ति नृणां शीघ्रं कासश्वासापतानकम् ॥ २०१ ॥

बहेडा, अतीस, नागरमोथा, पीपल, भारंगी और काकडाशिंगी इन सबको एकत्र पीसकर बारीक चूर्ण करलेवे। इस चूर्णको मदिराके साथ अथवा गरम जलके साथ पीनेसे मनुष्योंकी शीघ्र ही खाँसी श्वास और अपतानक रोग दूर होता है ॥ २०० ॥ ॥ २०१ ॥

पक्षाघातके लक्षण ।

गृहीत्वार्धन्तनो वायुः शिराःस्नायुर्विशोष्य च । पक्षमन्यतमं हन्ति सन्धिबन्धान्विमोक्षयन् ॥ २०२ ॥ कृत्स्नोऽर्धकायं तस्य स्यादकर्म्मण्यो विचेतनः । एकाङ्गरोगन्तं केचिदन्ये पक्षवधं विदुः ॥ २०३ ॥ सर्वाङ्गरोगन्तं केचित्सर्वकायस्थितेऽनिले ॥ २०४ ॥ दाहसन्तापमूर्च्छाः स्युर्वायौ पित्त-

समन्विते । शैत्यशोफगुरुत्वानि तस्मिन्नेव कफावृते ॥ २०५ ॥ शुद्धवातहतं पक्षं कृच्छ्रसाध्यतमं विदुः । साध्यमन्येन संयुक्तमसाध्यं क्षयहेतुकम् ॥ २०६ ॥

जिस रोगमें वायु आधे शरीरको पकड कर शिरा और स्नायुको सुखाकर सन्धिबन्धनको ढीलाकर एक ओरके पक्ष अर्थात् एक तरफकी नाक, कान, नेत्र, हाथ, पांव आदि आधे अंगको शिथिल कर देती है तब उस मनुष्यका आधा या सब अंग कार्य्य करनेको असमर्थ तथा अचेत होता है, इसको कितने वैद्य एकांगरोग और कितने पक्ष कहते हैं । सम्पूर्णमें यह पक्षाघात नामसे विख्यात है । समस्त शरीरमें अनिलके स्थित होनेपर सर्वांग रोग होता है । वात पित्तजनित पक्षाघात रोगमें दाह, संताप और मूर्च्छा होती है । वातकफजन्य रोगमें शरीरमें शीतलता और सूजन होती है । वातजनित पक्षाघात कष्टसाध्य,वातपित्तजनित और वात कफ जनित पक्षाघात साध्य और क्षयसे उत्पन्न हुआ पक्षाघात रोग असाध्य है ॥ २०२—२०६ ॥

पक्षाघातकी चिकित्सा ।

पक्षाघातिनमक्षीणं स्निग्धं स्विन्नं विरेचितम् । बस्तिभिः संप्रयुञ्जीत क्रमेणाक्षेपकस्य च ॥ २०७ ॥

जो पक्षाघात रोगी क्षीण न हो तो उसको स्निग्ध और स्विन्न करके विरेचन देवे और क्रमसे आक्षेपक रोगमें बस्तिकर्म्म प्रयोग करे ॥ २०७ ॥

माषात्मगुप्तामैरण्डशृतं वाट्यालकं तथा ॥ हिंगुसैन्धवसंयुक्तं पक्षाघातं विनाशयेत् ॥ २०८ ॥ आत्मगुप्ताबलामाषविश्वैरण्डशृतं जलम् । ससैन्धवं पिबन्नासारन्ध्रेणाशु व्यपोहति॥ पक्षाघातं शिरोरोगं नेत्ररोगहरं परम् ॥ २०९ ॥

उडद, कौंछ, अंडकी जड और खिरैंटी इनके क्वाथमें हींग और सैंधानमक डालकर पीनेसे पक्षाघात रोग दूर होता है । कौंछ, खिरैंटी, उडद, सोंठ और अंडकी जड इनका क्वाथ बनाकर उसमें सैंधानमक डाल कर नासिकाके द्वारा पान करनेसे पक्षाघात, शिरोरोग और नेत्ररोग दूर होते हैं ॥ २०८॥ ॥ २०९ ॥

माषादिनस्य ।

माषबलाशुकशिम्बीकतृणरास्नोरुबूकाश्वगन्धानाम् । क्वाथो नस्यनिपीतो रामठलवणान्वितः कोष्णः ॥ ॥ २१० ॥ अपहरति पक्षवातं मन्यास्तम्भसकर्णनादरुजम् । दुर्जयमर्दितवातं सप्ताहाज्जयति चावश्यम् ॥ माषिके हिंगुसिन्धूत्थे जरणाद्यास्तु शाणिकाः ॥ २११ ॥

उडद, खिरैंटी,कौंछ, सुगंधितृण,रायसन, अंडकी जड, और असगंध इनका क्वाथ बनाकर इसमें हींग और सैंधानमक डालकर सुहाताका नासिका द्वारा पीवे तो पक्षवात, मन्यास्तम्भ, कर्णनादरोग, दुर्जय, अर्दित, वातरोग ये सब सात दिनमें दूर होते हैं । इस माषादि नस्यमें हींग,सैंधानक और जीरा ये सब चार २ मासे डालने चाहिये ॥ २१० ॥ २११ ॥

ग्रन्थिकादितैल ।

ग्रन्थिकाऽग्निकणाशुण्ठीरास्नासैन्धवकल्कितम् । माषक्वाथांबुना तैलं पक्षाघातं व्यपोहति ॥ २१२ ॥

पीपलामूल, चित्रक, पीपल, सोंठ, रायसन और सैंधानमक इनके कल्कके द्वारा और उरदोंके क्वाथके द्वारा तेलको पकावे । इस तेलको सेवन करनेसे पक्षाघात रोग दूर होता है ॥ २१२ ॥

माषतैल ।

माषात्मगुप्तातिविषोरुबूकरास्नाशताह्वालवणैः सुपिष्टैः । चतुर्गुणे माषबलाकषाये तैलं कृतं हन्ति हि पक्षवातम् ॥ २१३ ॥

उडद, कौंछ, अतीस, अंडकी जड, रायसन, शतावर और सैंधानमक इन सबको कल्कके द्वारा चौगुने उडद और खिरैंटीके क्वाथमें तेलको सिद्ध करे । इस तेलको सेवन करनेसे पक्षवातरोग दूर होता है ॥ २१३ ॥

आदित्यपाकगुग्गुलु ।

पृथक्पलांशा त्रिफला पिप्पली चेति चूर्णितम् । दशमूलांबुना भाव्यं त्वगेलार्धपलान्वितम् ॥ २१४ ॥ दत्त्वा पलानि पञ्चैव गुग्गुलोर्वटकीकृतः। एवं मांसरसाभ्यासाद्वातरोगानशेषतः ॥ हन्ति सन्ध्यस्थिमज्जास्थान्वृक्षामिन्द्राशनिर्यथा ॥ २१५ ॥ लेहवद्द्विगुणेनायमालोड्यालोड्यचातपे । दशमूलांबुना शोष्यः सप्तवारान्सुगुग्गुलुः ॥ २१६ ॥

हरड, बहेडा, आमला यह प्रत्येक चार चार तोले, पीपल चार तोले, दालचीनी दो तोले, इलायची २ तोले और उत्तम गूगल २० तोले इन सबको एकत्र पीसकर दुगुने दशमूलके काथमें वारम्वार धूपमें भावना देकर लेहकी तरह आलोडन करके इसप्रकार सातबार दशमूलके काथमें सातबार भावना देकर धूपमें सुखावे, फिर इसकी गोलियां बनावे । इस आदित्यपाक गूगलको मांसरसके साथ सेवन करनेसे सर्वप्रकारके वातरोग, संधिगत, अस्थिगत और मज्जागत वातरोग दूर होते हैं ॥२१४-२१६॥

एरण्डादिगुग्गुलु ।

शुक्लैरण्डस्य मूलानि युग्मं सहचरस्य च । मुस्ता दुरालभा दीप्या देवाह्वं कटुका शटी ॥ २१७ ॥ पञ्चकोलं बला पथ्या क्षुद्रे द्वे च पुनर्नवा । विषोग्रा वाजिगन्धा च शतावर्य्याटरूषकम् ॥ २१८ ॥ धान्यं छिन्नरुहा चैव विडङ्गं व्याधिघातकम् । गोक्षुरं वृद्धदारुं च दीप्यको निशयुग्मकम् ॥ २१९ ॥ चतुस्त्रिंशतिको भागः पीतः कौशिकसंयुतः । सर्ववातविकारघ्नः पाचनो दीपनो लघुः ॥ आमवातस्य शोथस्य स्रोतसां कफनाशनः ॥ २२० ॥

सुफेद अंडकी जड़, दोनों प्रकारका पियावासा, नागरमोथा, धमासा, अजमोद, देवदारु, कुटकी, कचूर, पंचकोल, खिरैंटी, हरड़, दोनों प्रकारकी कटेरी, पुनर्नवा, अतीस, वच, असगंध, शतावर, अडूसा, धनियाँ, गिलोय, वायविडंग, अमलतास, गोखरू, विधारा, अजमोद और दोनों प्रकारकी हलदी ये सब समान भाग और चौंतीस ३४ भाग गूगल लेवे । इन सबकी गोलियें या काथ बनाकर पानेसे सर्व प्रकारके वातविकार, आमवातके शोथको और स्रोतोंके कफको नष्ट करता है। यह दीपन और पाचन है ॥ २१७ ॥ २१८ ॥ २१९ ॥२२० ॥

त्रयोदशांगगुग्गुलु ।

आभाश्वगन्धा हबुषा गुडूची शतावरी गोक्षुरकश्च रास्ना । श्यामा शताह्वा च शटी यवानी सनागरा चेति समैश्च चूर्णम् ॥ २२१ ॥ देयं भवेत्कौशिकमत्र तुल्यं देयं तथा सर्पिरतोऽर्धभागम् । अक्षार्धमात्रन्तु ततः प्रयोगात्कृत्वानुपानं सुरयाथ यूषैः ॥ २२२ ॥ मद्येन वा कोष्णजलेन वाथ क्षीरेण वा मांसरसेन वापि । कटिग्रहे गृध्रसि बाहुपृष्ठे हनुग्रहे जानुनि पादयुग्मे ॥ २२३ ॥ सन्धिस्थिते चास्थिगते च वाते मज्जागते स्नायुगते च कोष्ठे । रोगाञ्जयेद्वातकफानुबन्धान वातेरितान्हृद्ग्रहयोनिदोषान् ॥ २२४ ॥ भग्नास्थिविद्धेषु च खञ्जवाते त्रयोदशाङ्गं प्रवदन्ति सिद्धाः ॥ २२५ ॥

आभा (एक प्रकारका वणिक्द्रव्य अथवा बबूरके बीज), असगन्ध, हाऊबेर, गिलोय, शतावर, गोखरू, रायसन, अनन्तमूल, सौंफ, कचूर, अजवायन और सोंठ ये प्रत्येक औषधि समान भाग और सबके बराबर गूगल लेवे और गूगलसे आधा घी डाले । सबको एकत्र मिलाकर खूब कूटे जब एकजीव होजाय एक उत्तम चिकने बासनमें भरकर रख देवे। इसमेंसे प्रतिदिन एक तोला या आधा तोला लेकर सुरा, यूष, मदिरा, अथवा गरमजलके साथ या दूधके साथ किम्वा मांसरके साथ सेवन करे तो कटिग्रह,

गृध्रसी, बाहुगत वात, पृष्ठगत वायु, हनुग्रह, जानुगत वात, कोष्ठगत वायु, पादगत वात, संधिगत वात, अस्थिगत वात, मज्जागत वात, स्नायुगत वायु, कोष्ठगत, वात, वातकफजानित रोग, हृदयगत और योनिगत वायु, भग्नास्थि, अस्थिविद्ध और खंजवात दूर होती है ॥ ॥ २२१—२२५ ॥

स्वायम्भुवगुग्गुलुवटी ।

व्योषं सग्रन्थिकं पथ्यां चित्रकं जीरकद्वयम् । अजमोदा यवानी च वचाचव्यमवल्गुजम् ॥ २२६ ॥ लवणत्रितयं क्षारौ समभागानि कारयेत् । यावन्त्येतानि चूर्णानि तावन्तं गुग्गुलं शुभम् ॥ २२७ ॥ पादार्द्धसम्मितं चात्र योजयेदम्लवेतसम् । गुटिकैषा हिता वाते सामे सन्ध्यस्थिमज्जगे ॥ २२८ ॥ दृढीकरोति भग्नञ्च जठरानलदीपनी । पूजिता देवदेवेन कालपाशेन शम्भुना ॥२२९॥

त्रिकुटा, पीपलामूल, हरड़, चीता, सुफेद जीरा, काला जीरा, अजमोद, अजवायन, वच, चव्य, बावची, कालानमक, सैंधानमक, विरियासंचरनमक, सज्जीखार, जवाखार ये सब समान भाग लेवे, इसको एकत्र पीसकर चूर्ण बनावे और सब चूर्णके बराबर गूगल लेवे और गूगलसे आठवाँ भाग अम्लवेत लेवे। सबको एकत्र मिलाकर गोली बनावे। यह गोली-आमवात, संधिगत वात, अस्थिगतवात, और मज्जागत वातको दूर करती है। टूटी हुई हड्डियोंको जोडनेवाली और जठराग्निको दीपन करनेवाली है। यह देवोंके देव कालपाशरूपी महादेवसे पूजित है ॥ २२६—२२९ ॥

पत्रलवण और स्नेहलवण ।

गन्धर्वहस्ताटरूषमुस्तकनक्तमालपूतीकारग्वधचित्रकानां पत्राण्याहृत्यार्द्राणि लवणेन सहोलूखले संक्षुद्य स्नेहघटे संक्षिप्यालिप्य गोशकृद्भिर्दाहयेत् । एतत्पत्रलवणमुपादिशति वातरोगिणामिति पत्रलवणम् । एवं स्नुहिकाण्डवार्त्ताकुशिग्रुलवणानि संक्षुद्य घटे सर्पिस्तैलवसामज्जानं प्रक्षिप्यावलिप्यावलिप्य पूर्ववद्दहेत् । एतत्स्नेहलवणमुपादिशति हि वातरोगेषु ।

"अण्डकी जड, अडूसा, नागरमोथा, दुर्गंध करंज, अमलतास और चीता इन सबके हरे पत्ते लेकर लवणके साथ ओखलीमें कूटकर स्नेहयुक्त घडेमें डालकर उस घडेको गायके गोबरसे चारों ओर खूब लेप करके अग्निमें पुटपाक विधिसे पकावे तो यह पत्रलवण सिद्ध होता है। यह पत्रलवण--वातरोगियोंको अत्यन्त हितकारी है । तथा इसी प्रकार थूहरकी काण्ड, बैंगन, सहिंजना और लवण इन सबको एकत्र कूट पीसकर इसमें तेल, वसा और मज्जा मिलाकर एक घडेमें भरकर पूर्वोक्त विधिसे गोबर आदिसे घडेको लेप करके अग्निमें पकावे तो यह स्नेहलवण सिद्ध होता है । यह स्नेहलवण-वातरोगोंमें अत्यन्त हितकारक है ॥

तिल्वकाख्यघृत ।

त्रिफला शंखिनी दन्ती विडङ्गं त्रिवृता सुधा । कार्षिकाणि पचेत्तानि तिल्वकस्य पलेन च ॥ २३० ॥ दध्नि च त्रिवृताक्वाथे घृतप्रस्थं चतुर्गुणम् । तिल्वकाख्यं घृतं तत्स्याद्विरेके वातरोगिणाम् ॥ १३१ ॥

त्रिफला, शंखपुष्पी, दंती, वायविडंग, निसोत और थूहर यह प्रत्येक एक एक तोला और लोध चार तोले लेकर कल्क बनाकर दही और निसोतके चौगुने काथमें एक प्रस्थ घृतको पकावे तो यह तिल्वकाख्यघृत सिद्ध होता है । यह वातरोगियोंको विरेचनके लिये अत्यन्त हितकारक है ॥ २३० ॥ २३१ ॥

रास्नादिघृत ।

रास्नापुष्कराबिल्वाग्निशिग्रुसैन्धवगोक्षुरैः । कृष्णां पिष्ट्वा पचेत्सर्पिः कृत्स्नं वातार्तिनाशनम् ॥ २३२ ॥

रायसन, पोहकरमूल, बेलगिरी, चीता, सहिंजना, सैंधानमक, गोखरू और पपिल इनके कल्कके द्वारा घृतको सिद्ध करे । यह घृत-वातनाशक है ॥ २३२ ॥

अश्वगन्धादिघृत ।

अश्वगन्धाकषाये च कल्कैः क्षीरं चतुर्गुणम् । घृतं पक्वन्तु वातघ्नं वृष्यं मांसविवर्धनम् ॥ २३३ ॥

असगंधके क्वाथ और कल्कके द्वारा चौगुने दूधमें घीको पकावे । इस घृतको सेवन करनेसे वातरोग नष्ट होते हैं । वीर्यकी और मांसकी वृद्धि होती है ॥ २३३ ॥

दशमूलादिघृत।

द्रोणेऽम्भसः पचेद्भागान्दशमूलांश्चतुष्पलान् । यवकोलकुलित्थानां भागैः प्रस्थोन्मितैः सह । जीरेण च घृतं पक्वं तर्पणं पवनार्त्तिजित् ॥ २३४ ॥

दशमूलकी प्रत्येक औषधि चार २ पल लेकर एक द्रोण जलमें पकावे। जब पकते २ चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे,फिर इस क्वाथमें जौ,बेर, कुलथीका कल्क एक २ पल और दूध एक २ प्रस्थ डालकर घीको सिद्ध करे यह घृत उत्तम तर्पण और वातनाशक है॥ २३४ ॥

छागलादिघृत ।

आजं चर्म्म विनिर्मुक्तं त्यक्त्वा शृङ्गखुरादिकम् । पञ्चमूलीद्वयञ्चैव जलद्रोणे विपाचयेत् ॥२३५॥ तेन पादावशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् । जीवनीयैः सयष्ट्याह्वैः क्षीरञ्चैव शतावरीम् ॥ २३६ ॥ छागल्याद्यमिदं नाम्ना सर्ववातविकारनुत । अर्दिते कर्णशूले च बाधिर्य्ये मूकमिम्मिणे ॥ ॥ २३७ ॥ जडगद्गदपंगूनां खञ्जे गृध्रसिकुब्जयोः । अपतानापतन्त्रे च सर्पिरेतत्प्रशस्यते ॥ २३८ ॥ द्वाविंशञ्च पलान्येव देयानि दशमूलतः । घृते तैले च योगे च यद्द्रव्यं पुनरुच्यते । तज्ज्ञातव्यमिहार्य्येण भागतो द्विगुणं भवेत् ॥ २३९ ॥

चर्म्म, सींग और खुरआदिसे रहित बकरीके ५० पल मांसको १ द्रोण जलमें पकावे, जब पकते पकते जल आठ सेर बाकी रहजाय तब उतारकर छानलेवे इसीप्रकार ५० पल दशमूलको १ द्रोण जलमें पकाकर चौथाई भाग अर्थात् आठ सेर जल बाकी रक्खे फिर दूध १ प्रस्थ, शतावरका रस १ प्रस्थ,गायका घी १ प्रस्थ तथा कल्कके लिये जीवनीय दशक और मुलैठी ये सब २ प्रस्थ लेवे, पश्चात् विधिपूर्वक घृतको बनावे । इस घृतको सेवन करनेसे सर्वप्रकारके वातरोग, अर्दितवात, कर्णशूल, बधिरता, गूंगापन, मिनमिन वात, जडता,गद्गद वात,पंगुला वात, खंजवात, गृध्रसी वात, कुब्जक वात, अपतातक वात और अपतंत्र वातरोग दूर होता है । इसको छागलादिघृत कहते हैं ॥ २३५—२३९ ॥

बलाशैरीयतैल।

बलानिष्क्वाथकल्काभ्यां तैलपक्वं पयोन्वितम् । सर्ववातविकारघ्नमेवं शैरीयपाचितम् ॥ २४० ॥

खिरैंटीके क्वाथ और कल्कके द्वारा दूध डालकर तेलको पकावे । इसीप्रकार नीले पियावांसेके क्वाथ और कल्कके द्वारा दूध डालकर तेलको पकावे । ये दोनों प्रकारके तेल—सर्वप्रकारके वातविकारोंको दूर करते हैं ॥ २४० ॥

महाबलातैल ।

बलाग्निमन्थमैरण्डबृहतीद्वयगोक्षुरम् । बिल्वनागबलाभीरुस्योनाकं पारिभद्रकम् ॥ २४१ ॥ पाटला साश्वगन्धा च केतकी च प्रसारणी। पृष्ठपर्णी स्थिरा चैव बृहतीसहचरद्वयम् ॥ २४२ ॥ एषां दशपलान्भागान्वारिद्रोणद्वये पचेत् । पादशेषं परिस्राव्य तैलं प्रस्थद्वयं पचेत् ॥ २४३ ॥ कल्कानि जीवनीयानि रास्नासैन्धवदारु च । कुष्ठं मांसीवचाग्रन्थिमञ्जिष्ठासरलानि च ॥ २४४ ॥ त्वक्पत्रकं वराङ्गञ्च एलामुस्तकवालुकम् ।

एतैः कल्कैः सुपिष्टैश्च पाचयेन्मृदुनाग्निना ॥ २४५ ॥ क्षीरञ्च द्विगुणं दद्याच्छतावर्य्या रसस्य च। एतत्तैलवरं तेषां रोगाणां वातजन्मनाम् ॥२४६॥ नाशयेद्वातरक्तञ्च आमवातं सुदारुणम्। गृध्रसीपीठसर्पेषु चाढ्यवाते सदा हितम्। पाने बस्तौ तथाभ्यङ्गे नस्ये चैव प्रयोजयेत् ॥ २४७॥

खिरैंटी, अरणी, अंडकी जड़,कटेरी,बडी कटेरी, गोखरू, वेलगिरी, नागवाला, शतावर, श्योनापाठा, नीम, पाढल, असगंध, केतकी, प्रसारन, पृश्निपर्णी-शालिपर्णी, भटकटैया और दोनों प्रकारके पीला, और कालावासा ये प्रत्येक औषधि दश दश पल लेकर दो द्रोण जलमें पकावे, जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे, फिर इसमें उत्तम तिलका तेल २ प्रस्थ, तथा जीवनीयगणकी औषधियें, रायसन,सेंधानमक, देवदारु,कूठ, बालछड़, वच, पीपलामूल, मजीठ, धूपसरल, दालचीनी, तेजपात, तज, [1]इलायची, नागरमोथा और सुगन्धवाला, इन सबका कल्क एक २ पल डालकर उत्तम विधिसे मन्द२ अग्निसे पकावे और इसमें तेलसे दुगुना दूध और शतावरका रस डाले। यह उत्तम तेल वातरोगियोंको अत्यन्त हितकारक है। तथा वातरक्त, दारुण आमवात, गध्रसीवात, पीठसे जो खिचडते हैं उनकी पीडा और आढ्यवात रोगमें सदैव हितकारक है। इसको पान, बस्तिकर्म्म, अभ्यंग और नस्यकर्म्ममें प्रयोग करना चाहिए॥२४१-२४७

द्वितीयमहाबला तैल।

बलामूलीकषायस्य दशमूलीकृतस्य च। यवकोलकुलित्थानां क्काथस्य पयसस्तथा ॥ २४८ ॥ अष्टावष्टौ शुभा भागास्तैलादेकस्तदेकतः। पचेद्वाप्य मधुरं गणं सैन्धवसंयुतम् ॥ ॥ २४९ ॥ तथागुरुं सर्जरसं सरलं देवदारु च। मञ्जिष्ठां पद्मकं कुष्ठमेलां कालानुशारिवाम् ॥ २५० ॥ मांसीं शैलेयकं पत्रं तगरं शारिवां वचाम्। शतावरीमश्वगन्धां शतपुष्पां पुनर्नवाम् ॥ २५१ ॥ तत्साधुसिद्धं सौवर्णे राजते मृण्मयेऽपि वा। प्रक्षिप्य कलशे सम्यक् तत्तु गुप्तं निधापयेत् ॥ २५२ ॥ बलातैलमिदं नाम्ना सर्ववातविकारनुत्। यथाबलमतो मात्रां सूतिकायै प्रदापयेत् ॥२५३॥ या च गर्भार्थिनी नारी क्षीणशुक्रश्च यः पुमान्। क्षीणे वाते मर्महते मथितेऽभिहते तथा ॥ २५४ ॥ भग्ने श्रमाभिपन्ने च सर्वथैवोपयुज्यते। सर्वानाक्षेपकादींश्च वातव्याधीन्व्यपोहति ॥ २५५ ॥ हिक्काश्वासमधीमन्थं गुल्मं कासं सुदुस्तरम्। षण्मासादुपयुज्यैतदन्त्रवृद्धिं व्यपोहति ॥ २५६ ॥ प्रत्यग्रधातुः पुरुषो भवेच्चास्थिरयौवनः। एतद्धि राज्ञा कर्त्तव्यं राजमान्याश्च ये नराः। सुखिनः सुकुमाराश्च धानिनश्चापि मानिनः ॥ २५७ ॥

तिलका तेल आठसेर,खिरैंटीका क्काथ आठ सेर, दशमूलका क्काथ आठ सेर, जौ, बेर और कुलथीका क्काथ आठ सेर, दूध आठ सेर, और मधुर काकोल्यादि गणकी औषधियें, सेंधानमक, अगर, राल, सरलधूप, देवदारु, मजीठ, पद्माख, लालचन्दन, कूठ, इलायची, सारिवा, बालछड, भूरिछरीला, तेजपात, तगर, पुष्प, अनन्तमूल, वच, शतावर, असगन्ध, सौंफ और पुनर्नवा ये प्रत्येक समान भाग सब दो सेर लेवे सबको मिलाकर अच्छे प्रकारसे तेलको सिद्ध कर सुवर्ण या चाँदी आदिके कलशेमें भरकर गुप्त रीतिसे रखदेवे। यह बृहद्बला तेल सर्वप्रकारके वातविकारोंको दूर करता है। प्रसूत रोगमें इसकी बलानुसार मात्रा देवे। जो गर्भकी इच्छा करनेवाली स्त्रियें हैं और जो क्षीण वीर्य्य पुरुष हैं उनके लिए यह अत्यन्त हितकारी है। तथा वातसे क्षीणशरीर, मर्महत, मथितवात, भग्न और श्रमयुक्त वातमें यह अत्यन्त उपकारी है। एवं सर्व प्रकारके आक्षेपकादि वातरोग, हिक्का, श्वास, अधि-

[1] यहाँ सब तैलोंमें बडी इलायची डालनी चाहिये।

मन्थ, गुल्म दुस्तर खाँसी, और छः महीने तक इस का प्रयोग करनेसे अन्त्रवृद्धि रोग अवश्य दूर होता है। इसको सेवन करनेसे पुरुष उग्र धातु सम्पन्न और स्थिरयौवनयुक्त होता है। राजमान्य पुरुषोंको राजाकी आज्ञासे इसको बनाना चाहिए तथा सुखी सुकुमार अवस्थावाले धनी और मानी पुरुषोंको यह अवश्य बनाना चाहिए ॥ २४८—२५७ ॥

सहचरादितैल।

साधयित्वा जलद्रोणे तुलां सहचरस्य च। पादशेषे पचेत्तैलं दत्त्वा क्षीरं चतुर्गुणम् ॥ २५८ ॥ चन्दनागुरुयष्ट्याह्वशटीदेवद्रुमं घनम्। सैन्धवञ्चाजमोदा च काकोल्यौ जीरकाबुभौ ॥ २५९ ॥ कुष्ठं सौवर्चलं व्योषं रास्ना भार्ङ्गीत्रिकण्टकम्। एतै रक्षसमैर्भागैः शर्करायाः पलाष्टकम् ॥ २६० ॥ पक्वं प्रयोजयेत्पानादभ्यङ्गे नावनेऽपि वा। ऊर्ध्ववाते ह्यधोवाते पक्षाघातेऽपबाहुके ॥ २६१ ॥ कर्णवाते शिरःकम्पे शिरोरोगे तथार्दिते। सर्ववातकृते दोषे कफमेदःकृतेऽनिले ॥ २६२ ॥

एक तुला पियावांसेको लेकर एक द्रोण जलमें पकावे जब पकते २ जल चौथाई भाग शेष रह जाय तब उतारकर छान लेवे फिर इसमें १ सेर तिलका तेल और ४ सेर उत्तम गायका दूध, तथा चन्दन, अगर, मुलैठी, कचूर, देवदारु, नागरमोथा, सैंधानमक, अजमोद, काकोली, क्षीरकाकोली, जीरा, कालाजीरा, कूठ, कालानमक, त्रिकुटा, रायसन, भारंगी और गोखरू, इन प्रत्येक औषधियोंका कल्क एक २ तोला और उत्तम खांड आठ पल डालकर तेलको सिद्ध करे इसको पान, अभ्यंग नस्य, ऊर्ध्ववात, अधोवात, पक्षाघात, अपबाहुक, कर्णवात, शिरःकम्प, शिरोरोग, अर्दितरोग, सर्वप्रकारके वातरोग और कफ और मेद जनित वातरोग इन सबमें प्रयोग करे ॥ २५८-२६२

महासहचरादितैल।

कृत्स्नां सहचरादेकां कृत्वा जर्जरितां तुलाम्। काश्मरीपाटलाविल्वं तुलाभिरथापरम् ॥ २६३ ॥ अश्वगन्धां बलां तद्वन्मूलं शतावरं वचाम्। चतुर्द्रोणे विपक्तव्यं चतुर्भागावशेषितम् ॥ २६४ ॥ शताह्वाहिंगुयष्ट्याह्वदेवदारुसचित्रकम्। त्वगेला कृमिहन्ता च रास्नातगरसैन्धवाः ॥ २६५ ॥ महासहचरं तैलं वातश्लेष्महरं परम्। पाने नस्ये तथाभ्यङ्गे बस्तिकर्म्मणि शस्यते ॥ २६६ ॥ अशीतिं वातजान्रोगांश्चत्वारिंशच्च पैत्तिकान्। विंशतिं श्लैष्मिकांश्चैव पानादेवापकर्षति ॥ २६७ ॥

उत्तम पुराना पियावाँसा, कुम्भेर, पाढल, बेलगिरी, असगंध, खिरैंटी, शतावर और वच यह प्रत्येक ओषधि एक एक तुला प्रमाण लेकर कूट लेवे, सबको चार द्रोण जलमें पकावे। जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रह जाय तब उतारकर छान लेवे, फिर इसमें सौंफ, हींग, मुलैठी, देवदारु, चीता, दालचीनी, इलायची, वायविडंग, रायसन, तगर और सैंधानमक इन सब औषधियोंका एक २ पल कल्क डालकर ४ सेर तैलको सिद्ध करे; यह महासहचरादि तैल—वातकफको नष्ट करता है। तथा पान, नस्य, अभ्यंग और बस्तिकर्ममें हितकारी है। इसको पान करनेसे-अस्सी प्रकारके वातरोग चालीसे प्रकारके पित्तरोग और वीस प्रकाकरके कफरोग दूर होते हैं ॥२६३॥ २६७॥

विष्णुप्रोक्त अंगवरतैल।

शालिपर्णी पृष्ठपर्णी बला च बहुपुत्रिका। एरण्डस्य च मूलानि बृहत्या पूतिकस्य च ॥ २६८ ॥ गवेधुकस्य मूलानि तथा सहचरस्य च। एतेषां पलिकान्भागांस्तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ॥ २६९ ॥ आजञ्चवाथ गव्यञ्च क्षीरं दद्याच्चतुर्गुणम्। अस्य पक्वस्य तैलस्य शृणु वीर्य्यमतःपरम् ॥ २७० ॥ अश्वानां वातभग्नानां कुञ्जराणां तथैव

च। तैलमेतत्प्रयोक्तव्यं सर्ववातनिवारणम् ॥ २७१ ॥ आयुष्मांश्च नरः पीत्वा निश्चयेन दृढो भवेत्। हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च तथैवार्द्धञ्च भेदकम् ॥ कामलापाण्डुरोगञ्च शर्करामश्मरीं हरेत् ॥ २७२ ॥ क्षीणेन्द्रिया नरा ये च जराया जर्जरीकृताः। येषां चापि क्षयो व्याधिरन्त्रवृद्धिश्च दारुणा॥२७३ अर्दितं गलगण्डञ्च वातशोणितमेव च। स्त्रियो या न प्रसूयन्ते तासाञ्चैव प्रयोजयेत् ॥ २७४ ॥ गर्भमश्वतरी विन्द्यान्न च मृत्युवशं नयेत् । एतदङ्गवरं तैलं विष्णुना परिकीर्तितम्॥२७५

शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, खिरैंटी, शतावर, अंडकी जड,बडी कटेरीकी जड,दुर्गंधकरंजकी जड,गरहेडुकी जड और पियावाँसेकी जड ये प्रत्येक औषधि एक २ पल लेकर कल्क बनावे, तिलका तेल १ प्रस्थ और बकरी, या गायका दूध चौगुना लेवे, सबको एकत्र मिलाकर उत्तम विधिसे तेलको पकावे । अब इस तेलके प्रभाव सुनो। जो घोडे या हाथी अथवा मनुष्य वातसे पीडित हैं उन सबको यह तेल सेवन कराना चाहिये। इसको पीनेसे मनुष्य दीर्घायु और दृढ होते हैं। तथा यह तेल—हृदयके शूल, पसलियोंका शूल, अर्द्धावभेदक, कामला, पाण्डुरोग, शर्करा, अश्मरी, जो मनुष्य क्षीणेन्द्रिय हैं, जरासे जर्जर होगये हैं, जो क्षय रोगसे पीडित हैं तथा जिनके दारुण अन्त्र-वृद्धि है, एवं अर्दितरोग, गलगण्डरोग, वातरक्त और जो स्त्रियें वंध्या हैं उनको यह अवश्य सेवन कराना चाहिये। इसके प्रभावसे अश्वतरी (खिच्चरी) भी गर्भको धारण कर लेती है और इसको सेवन करनेवाला मृत्युको प्राप्त नहीं होता।यह अंगवर तैल विष्णु भगवान्ने कहा है ॥ २६८—२७५ ॥

महाकल्याणकतैल।

बलाश्वगन्धामरदारुरास्ना स्थिरा वचा नागबला सलोहम् । आरुष्करं चन्दनपुष्कराख्यं नतं गुडूचीलवणोत्तमं च ॥ २७६ ॥ काकोलिमेदे मधुकं विदारी सचित्रकं गुग्गुलुजीरकञ्च । द्राक्षाऽगुरुर्नागरधान्यकञ्च एतानि सर्वाणि समानि कृत्वा ॥ २७७ ॥ कल्कैः कषायैर्विधिना प्रयुक्तैस्तैलं पचेत्तोयचतुर्गुणञ्च । आम्लारनालं दधिदुग्धयुक्तं दत्त्वा समांसं विधिवद्विधिज्ञः ॥ २७८ ॥ तन्नावनाभ्यञ्जननस्यपानैर्निहन्ति घोरानचिरेण रोगान्। कल्याणकं नाम महच्च तैलं स्तम्भं जयेत्कार्मुकनामधेयम् ॥२७९॥ दण्डापतानार्दितवेपमानाः सुपिण्डिताः पिण्डितकुब्जखञ्जाः। पुनर्युवानोऽतिमनोऽभिरामा भवन्ति ते तैलवरेण सर्वे ॥ २८० ॥ अश्वोऽपि भग्नः सकृदेव दन्ती भग्नो भवेन्मारुतविक्रमश्च। वन्ध्यापि पुत्रं लभते वराभं दीर्घायुषं सर्वगुणैरुपेतम् ॥२८१॥ अप्सु प्रवाताहतचञ्चलोर्मिर्महोदधिर्लङ्घयतीह वेलाम् । सवातजा एव हि तैलराजं रोगा न वै लङ्घयितुं समर्थाः ॥ २८२ ॥

खिरैंटी, असगन्ध, देवदारु, रायसन,शालिपर्णी, वच, नागबला, लोहेका चूर्ण, भिलावा,लाल चन्दन, पोहकरमूल, तगर, गिलोय, सैंधानमक, काकोली मेदा, महामेदा, मुलैठी, विदारीकंद, चीता, गूगल, जीरा, मुनक्का, अगर, सोंठ और धनियाँ ये सब समानभाग ले । इनके कल्क और काथके द्वारा चौगुने जल, खट्टी काँजी, दही और दूधमें विधिपूर्वक तेलको पकावे । इस तेलको अभ्यंजन, नस्य और पान कर्ममें प्रयोग करनेसे बड़े २ भयंकर रोग बहुत शीघ्र दूर हो जाते हैं। यह तेल—दण्डापतानक रोग, अर्दितरोग, कंपवात, पिंडितवात, कुब्जता और खंजताको अवश्य नष्ट कर देता है । इस तेलके प्रभावसे मनुष्य फिर युवाके समान होकर स्त्रियोंको परमप्रिय होता है । जिन घोड़े और हाथियोंके अंग वायुसे टूट गये हैं वे घोड़े और हाथी वायुके पराक्रमके समान बलवान् होजाते हैं । इस तेलको सेवन

करनेसे वंध्या स्त्रियेंभी सुन्दर कांतिवाली, दीर्घायु और सर्वगुणसम्पन्न पुत्रोंको उत्पन्न करती हैं। जिन मनुष्योंका शरीर वायुसे सुन्न होगया है वे बहुत शीघ्र चंचल होकर जलोंमें लहरोंको और समुद्र लँघनेमें समर्थ हो जाते हैं। ऐसा जगत्‌में कोई भी वातरोग नहीं है जो इस तेलसे आरोग्य नहीं होता हो ॥ २७६-२८२ ॥

स्वल्पनारायण तैल।

शतावरी चांशुमती पृश्निपर्णीशिटीबलाः। एरण्डस्य च मूलानि बृहत्याः पूतिकस्य च ॥ २८३ ॥ गवेधुकस्य मूलानि तथा सहचरस्य च। एषां दशपलान्भागाञ्जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ २८४ ॥ पादावशेषे पूते च गर्भे चैनं समाचरेत्। पुनर्नवावचादारुशताह्वाचन्दनागुरु ॥ २८५ ॥ शैलेयं तगरं कुष्ठमेलामांसीस्थिराबलाः। अश्वाह्वा सैन्धवं रास्ना पलार्द्धानि च पेषयेत् ॥ २८६ ॥ गव्याजपयसोःप्रस्थौ द्वौ द्वावत्र प्रदापयेत्। शतावर्य्या रसप्रस्थं तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २८७ ॥ अस्य तैलस्य सिद्धस्य शृणु वीर्य्यमतः फलम्। अश्वानां वातभग्नानां कुञ्जराणां नृणां तथा ॥ २८८ ॥ तैलमेतत्प्रयोक्तव्यं सर्ववातविकारनुत्। आयुष्मांश्च नरः पीत्वा निश्चयेन पुमान्भवत् ॥ २८९॥ गर्भमश्वतरी विन्द्यात्किं पुनर्मानुषी तथा। हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च तथैवार्धावभेदकम् ॥ २९० ॥ अपचीं गण्डमालाञ्च वातरक्तं हनुग्रहम्। कामलां पांडुरोगञ्च अश्मरीञ्चापि नाशयेत् ॥२९१॥ तैलमेतद्भगवता विष्णुना परिकीर्तितम्। नारायणमिति ख्यातं वातान्तकरणं तथा २९२॥

क्वाथके लिये शतावर, शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, कचूर, खिरैंटी, अण्डकी जड, बृहती, पूतिकरंजकी जड, गरेहडुयेकी जड, पियाबाँसेकी जड; ये प्रत्येक दश दश पल जल द्रोण, शेष चतुर्थांश, कल्कके लिये पुनर्नवा, वच, देवदारु, सौंफ, चन्दन, अगर, भूरिछरीला, तगर, कूट, इलायची, बालछड, सारिवन, खिरैंटी, असगन्ध, सैंधानमक और रायसन ये प्रत्येक दो २ तोले लेकर पीस ले, गायका दूध २ प्रस्थ, बकरीका दूध २ प्रस्थ, शतावरका रस २ प्रस्थ, तिलका तेल २ प्रस्थ सबको मिलाकर यथाविधि तेलको सिद्ध करे। यह नारायण तेल—वातरोगसे पीडित घोडे, हाथी और मनुष्योंके सर्वप्रकारके वातरोगोंको दूर करता है। इसको पीनेसे मनुष्य दीर्घायु और पुरुषत्वको प्राप्त होते हैं। इसको सेवन करनेसे खिच्चरियोंकोभी गर्भ रहजाता है, फिर स्त्रियोंका तो कहनाही क्या? यह तेल हृदयशूल, पार्श्वशूल, अर्द्धावभेदक, अपची, गण्डमाला, वातरक्त, हनुग्रह, कामला, पाण्डुरोग और पथरीको दूर करता है। यह नारायण तेल—विष्णु भगवान्‌ने निर्म्माण किया है और सर्वप्रकारके वातरोगोंको दूर करता है ॥ २८३-२९२ ॥

मध्यमनारायणतैल।

बिल्वोऽग्निमन्थः श्योनाकः पाटला पारिभद्रकः। प्रसारण्यश्वगन्धा च बृहतीकण्टकारिका ॥ २९३ ॥ बला चातिबला चैव श्वदंष्ट्रा सपुनर्नवा। एषां दशपलान्भागांश्चतुर्द्रोणेऽम्भसः पचेत् ॥ २९४ ॥ पादशेषं परिस्राव्य तैलप्रस्थं पचेच्छनैः। शतपुष्पा देवदारु मांसी शैलेयकं वचा। चन्दनं तगरं कुष्ठमेलापर्णीचतुष्टयम् ॥ २९५॥ रास्ना तुरगगन्धा च सैंधवञ्च पुनर्नवा एषां द्विपलिकान्भागान्पेषयित्वा विनिःक्षिपेत् ॥ २९६ ॥ शतावरीरसञ्चैव तैलतुल्यं प्रदापयेत्। आजं वा यदि वा गव्यं क्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम् ॥२९७॥ पाने बस्तौ तथाऽभ्यंगे भोज्ये नस्ये प्रदापयेत्। अश्वो वा वातसम्भग्नो

गजो वा यदि वा नरः ॥ २९८ ॥ पंगुलः पीठसर्पी च तैलेनानेन सिद्ध्यति । अधोभागे च ये वाताः शिरोमध्यगताश्च ये ॥ २९९ ॥ मन्यास्तंभे हनुस्तंभे दन्तरोगे गलग्रहे । यस्य शुष्यति चैकाङ्गं गतिर्यस्य च विह्वला ॥ ३०० ॥ क्षीणेन्द्रिया नष्टशुक्रा ज्वरक्षीणाश्च ये नराः । बधिरा लल्लजिह्वाश्च मन्दमेधस एव वा ॥३०१॥ मन्दप्रजा च या नारी या च गर्भं न विन्दति । वातार्त्तौ वृषणौ येषामन्त्रवृद्धिश्च दारुणा । एतत्तैलवरं तेषां नाम्ना नारायणं स्मृतम् ॥ ३०२ ॥

बेलगिरी, अरणी, श्योनापाठा, पाढल, नीम, प्रसारणी, असगन्ध, बडी कटेरी, कटेरी, खिरैंटी, कंघी, गोखरू और पुनर्नवा ये प्रत्येक औषधि दश२ पल लेकर ४ द्रोण जलमें पकावे जब पकते२ चौथाई भाग जल शेष रह जाय तब उतार कर छान लेवे, फिर इसमें तिलका तेल १ प्रस्थ, सौंफ, देवदारु, बालछड, भूरिछरीला, वच, चन्दन, तगर, कूठ, इलायची, शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, रायसन, असगन्ध, सैंधानमक और पुनर्नवा ये प्रत्येक औषधि दो दो पल लेकर पीसकर मिला देवे, शतावरका रस १ सेर तथा बकरी या गायका दूध ४ प्रस्थ, इन सबको यथाविधिसे एकत्र मिलाकर तेलको सिद्ध करे । इसको पान, बस्तिकर्म, अभ्यंग, भोजन और नस्य कर्ममें प्रयोग करे। यह तेल वातसे पीडित घोडे, हाथी और मनुष्योंको अत्यन्त हितकारी है। जो मनुष्य पंगु हैं अथवा जो पीठसे खिचडते हैं उनके लिये यह तेल विशेष उपकारी है, यह तेल-अधोगत वायु, शिरोमध्यगतवायु, मन्यास्तम्भ, हनुस्तम्भ, दन्तरोग, गलग्रह तथा जिसका १ अंग सूख गया है, जिसकी गति विह्वल होगई है, जो क्षीणेंद्रिय हैं जिनका वीर्य नष्ट होगया है, जो ज्वरसे क्षीण होगये हैं, एवं बधिर, अल्ल जिह्वावाले, मन्दबुद्धि मनुष्य, जो स्त्री अल्प सन्तानको उत्पन्न करती है, अथवा जो बिलकुल गर्भको धारण नहीं करती, जिनके अण्डकोष वातकी वेदनासे पीडित हैं और जिन के दारुण अन्त्रवृद्धि रोग है उनके लिये इस तेलको सेवन अत्युत्तम है । इसको मध्यमनारायण तैल कहते हैं ॥ २९३—३०२ ॥

महानारायणतैल ।

बिल्वाश्वगंधाबृहतीश्वदंष्ट्राश्योनाकवाट्यालकपारिभद्राः । क्षुद्राकटिल्लातिबलाग्निमन्थं प्रत्येकमेकं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥३०३॥ सपादप्रस्थं विधिनोद्धृतानां क्षिप्त्वा सुयत्नात्सरणीयुतानाम् । मूलं विदध्यादथ पाटलीनां द्रोणैरपामष्टभिरेव पक्का ॥ ३०४ ॥ पादावशेषेण रसेन तेन तैलाढकाभ्यां सममेव दुग्धम्। आजं विदध्यादथवाऽपि गव्यं दद्याद्रसं वापि शतावरीणाम् ॥३०५॥ तैलेन तुल्यं पुनरेव तत्र रास्नाश्वगन्धाऽमरदारुकुष्ठम् । पर्णीचतुष्कागुरुकेसराणि सिन्धूत्थमांसी रजनीद्वयञ्च ॥३०६॥ शैलेयकं चन्दनपुष्कराणि एला सयष्टीतगराब्दपत्रम् । भृङ्गाष्टवर्गाम्बुवचापलाशं पृथ्वी च थौणेयकचोरकाख्यम् ॥३०७॥ एतैः समस्तैर्द्विपलप्रमाणैः कर्पूरकाश्मीरमृगाण्डजानाम् । दद्यात्सुगन्धाय वदन्ति केचित्प्रस्वेददौर्गन्ध्यविनाशनाय ॥ ३०८ ॥ चूर्णीकृतानां द्विपलप्रमाणैरालोड्य सर्वं विधिना विपक्वम् । नारायणं नाम महच्च तैलं सर्वैः प्रकारैर्विधिवत्प्रयोज्यम् ॥३०९॥ अश्वेभपुंसां पवनार्दितानां ये पङ्गवः पीठविसर्पिणश्च । एकाङ्गशुष्कार्दितवेपमाना बाधिर्यशुक्रक्षयपीडिताश्च ॥ ३१० ॥ मन्याहनुस्तम्भगलग्रहार्त्तास्त्यक्तामयास्ते बलवर्णयुक्ताः । संसेव्य तैलं सहसा भवन्ति वन्ध्यापि नारी लभते सुपुत्रम् । देवोपमं सर्व-

गुणोपपन्नं सुमेधसं श्रीविजयान्वितञ्च ॥ ३११ ॥ शाखाश्रिते कोष्ठगते च वाते वृद्धौ विधेयं पवनार्दितानाम् । जिह्वाऽनिले दन्तगते च शूले वातापहं तैलवरं प्रसिद्धम् ॥ ३१२ ॥ उन्मादकुब्जज्वरकर्षितानां नातः परं तैलवरं प्रदिष्टम्॥ वातामये वैद्यवरेण योज्यं वायुप्रकर्षं प्रमदाप्रियत्वम् ॥ ॥३१३॥ प्राप्नोति लक्ष्मीं विजयञ्च नित्यं रक्षांसि दुष्टानि निहन्ति नूनम् । तैलोपजीवी जरया विमुक्तो जीवेन्नरो वर्षशतानि पञ्च ॥ ३१४॥ देवासुरे युद्धवरे समीक्ष्य स्नाय्वस्थिभग्नानसुरैः सुरांश्च । नारायणोक्तं सुरबृंहणार्थं नारायणं तेन वदन्ति तज्ज्ञाः॥३१५॥

बेलगिरी, असगन्ध, बडी कटेरी, गोखरू, श्योनापाठा, खिरैंटी, नीम, कटेरी, पुनर्नवा, कंघी, अरणी, प्रसारणी और पाढलकी जड, ये प्रत्येक औषधि अस्सी २ तोले लेकर आठ द्रोण जलमें पकावे। जब पकते२ दो द्रोण जल शेष रहजाय तब उतार कर छान लेवे पश्चात् इस काढेमें एक आढक (५१२तोले) परिमाण उत्तम तिलका तेल, एक आढक परिमाण गायका या बकरीका दूध, शतावरका रस एक आढक, तथा रायसन, असगन्ध, देवदारु, कूठ, शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, अगर, नागकेशर, सैंधानमक, बालछड, हल्दी, दारुहल्दी, भूरिछरीला, चन्दन, पोहकरमूल, इलायची, मुलैठी, तगर, नगरमोथा, तेजपात, भाँगरा, अष्टवर्गकी आठों औषधियें, सुगन्धवाला, वच, कचूर, सफेद पुनर्नवा थुनेर और चोरक द्रव्य ये प्रत्येक औषधि आठ २ तोले लेकर पीसकर मिला देवे, फिर तैलको विधिपूर्वक पकावे। इस तेलको महानारायण तैल कहते हैं। पश्चात् कितनेक वैद्य इसमें कपूर, केशर और कस्तूरी ये प्रत्येक दो दो पल सुगन्धिके लिये और कितनेक वैद्य प्रस्वेद और दुर्गंधको दूर करनेके लिये डालते हैं। इस महानारायण तैलको विधिपूर्वक सर्व प्रकारके वातरोगोंमें प्रयोग करना चाहिये। वातसे पीडित घोडे हाथी और जो मनुष्य पंगु हैं तथा पीठसे खिचडते हैं उनके लिये यह अत्यन्त उपयोगी है। एकांगशोष, आर्दित, कंप, बधिरता, शुक्रक्षयसे पीडित, मन्यास्तम्भ, हनुस्तम्भ और गलग्रह रोगवाले मनुष्योंकी उक्तपीड़ाओंको दूर करके बल और वर्णयुक्त करता है। इस तेलको विधिपूर्वक बराबर सेवन करनेसे वंध्या स्त्रियें भी, बहुत शीघ्र देवताके समान सर्वगुणसम्पन्न, उत्तम बुद्धिवाले विजय और लक्ष्मीको धारणकरनेवाले पुत्रको उत्पन्न करती हैं। यह तेल–शाखागत वात, कोष्ठगत वात, वातवृद्धि, जिह्वागत वात, दंतगत शूल और समस्त वातरोगोंको दूर करता है, उन्माद, कुब्जवात और ज्वरसे व्याकुल मनुष्योंके लिये इस तेलसे उत्तम अन्य औषधि नहीं है। वातरोगोंमें बुद्धिमान् वैद्यको चाहिये कि इसी तेलका प्रयोग करे। यह तेल वायुको शमन करनेवाला और स्त्रियोंको प्रिय है। जो मनुष्य इस तेलका नित्य सेवन करता है उसके नित्य लक्ष्मी और विजयकी प्राप्ति होती है, दुष्टराक्षसोंका नाश होता है, तथा वह मनुष्य जरारहित होकर पांचसौ वर्षतक जीता रहता है। पूर्वकालमें देवता और असुरोंका परस्पर युद्ध हुआ था, उस समय असुरोंने देवताओंकी हड्डी, स्नायु और संधि आदि तोडडाली थीं तब श्रीनारायणने देवताओंकी पुष्टिके अर्थ निजनामसे प्रसिद्ध नारायणतैल निर्म्माण किया है ॥ ३०३—३१५ ॥

माषतैल।

माषप्रस्थं समादाय पचेत्सम्यक् जलाढके। पादशेषे रसे तस्मिन्क्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम् ॥ ३१६॥प्रस्थञ्च तिलतैलस्य कल्कं दत्त्वाक्षसम्मितम्। जीवनीयानि यान्यष्टौ शतपुष्पा ससैन्धवा ॥ ३१७ ॥ रास्नाऽऽत्मगुप्ता कटुका मधुकं कुष्ठमेव च । पक्षाघातार्दिते वाते कर्णशूले च दारुणे ॥ ३१८ ॥ मन्दश्रुतौ चाश्रवणे तिमिरे च त्रिदोषजे। हस्तकंपे शिरःकम्पे विश्वाच्यामपबाहुके॥ ३१९॥ कलायखञ्जे शस्तं स्यात्पानाभ्यञ्जनबस्तिभिः । माषतैलमिदं श्रेष्ठमूर्ध्वजत्रुगदापहम् ।

"यवमाषतिलानाञ्च प्रस्थः षोडशभिः पलैः" ॥ ३२० ॥

उत्तम उड़द १६ पल लेकर एक आढक जलमें पकावे। जब पकते पकते जल चौथाई भाग बाकी रह जाय तब उतारकर छान लेवे, फिर इस क्वाथमें ४ प्रस्थ गायका दूध और एक १ प्रस्थ उत्तम तिलका तेल. जीवनीयगणकी औषधियें—जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि, वृद्धि, सौंफ, सैंधानमक, रायसन, कौंछ, कुटकी, मुलैठी और कूठ प्रत्येक औषधिका एक एक तोला कल्क डालकर विधिपूर्वक इस तेलको पकावे। यह तेल—पक्षाघात, अर्दितवात, दारुण कर्णशूल, कम सुनना, बहरापन, त्रिदोषज तिमिररोग, हस्तकंप, शिरःकम्प, विश्वाची, अपबाहुक और कलायखंज आदि रोगोंमें पान, अभ्यंजन और वस्तिकर्म्ममें सर्वप्रकारके प्रयोग करना चाहिये। यह उत्तम माषतैल—सर्व प्रकारके ऊर्ध्वजत्रुरोगोंको दूर करता है॥ (जो उड़द और तिलोंका प्रस्थ सोलह पलोंका होता है) ॥ ३१६-३२० ॥

बृहन्माषादितैल।

माषक्वाथे बलाक्वाथे रास्नाया दशमूलजे। यवकोलकुलित्थानां छागमांसरसे पृथक् ॥३२१॥ प्रस्थे तैलस्य च प्रस्थं क्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम्। रास्नात्मगुप्तासिन्धूत्थशताह्वैरण्डमुस्तकैः ३२२ जीवनीयबलाव्योषैः पचेदक्षसमैः पृथक्। हस्तकम्पे शिरःकम्पे बाहुशोषेऽपबाहुके ॥ ३२३ ॥ बाधिर्ये कर्णशूले च कर्णनादे च दारुणे। विश्वाच्यामर्दिते कुब्जे गृध्रस्यामपतानके ॥३२४॥ बस्त्यभ्यञ्जनपानेषु नावनेषु प्रयोजयेत्। माषतैलमिदं श्रेष्ठमूर्ध्वजत्रुगदापहम् ॥ ३२५ ॥

उड़दोंका क्वाथ, खिरैंटीका क्वाथ, रास्नाका क्वाथ, दश मूलका क्वाथ, जौ बेर और कुलथीका क्वाथ तथा बकरीका मांसरस इनके द्वारा एक प्रस्थ उत्तम तेल, चार प्रस्थ दूध, एवं रायसन, कौंछ, सैंधानमक, सौंफ, अंडकी जड़, नागरमोथा, जीवनीयगणकी, औषधियें, खिरैंटी और त्रिकुटा प्रत्येक औषधिका कल्क एक एक तोला डालकर उत्तम विधिसे तेलको सिद्ध करे। यह बृहन्माषादि तैल—हस्तकंप, शिरःकंप, बाहुशोष, अपबाहुक रोग, बधिरता, कर्णशूल, दारुण कर्णनाद, विश्वाची, अर्दितवात, कुब्जवात, गृध्रसी और अपतानक रोगमें इसको वस्ति, अभ्यंजन, पान और नस्यके द्वारा प्रयोग करे। यह उत्तम माषतैल—समस्त ऊर्ध्वजत्रुरोगोंको दूर करता है ३२१—३२५॥

महामाषादितैल।

माषस्यार्द्धाढकं देवं तुलार्द्धं दशमूलतः। छागमांसपलं त्रिंशज्जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ ३२६ ॥ चतुर्भागावशेषन्तु कषायमवतारयेत्। प्रस्थञ्च तिलतैलस्य पयो दत्त्वा चतुर्गुणम् ॥ ३२७ ॥ जीवनीयानि मंजिष्ठा चव्यचित्रककट्फलम्। सव्योषं पिप्पलीमूलं रास्नामलकगोक्षुरम् ॥३२८॥ आत्मगुप्ता तथैरण्डः शताह्वालवणत्रयम्। अश्वगन्धामृताभीरुयवानीसवचाशटी ॥ ३२९ ॥ एतैरक्षसमैः कल्कैः साधयेन्मृदुनाग्निना। पक्षवातादिभिः सर्वैरर्दिते च हनुग्रहे॥३३०॥ कर्णशूले च बाधिर्ये तिमिरे च त्रिदोषजे। पाणिपादशिरोग्रीवा श्रवणे मन्द एव च ॥ ३३१ ॥ कलायखञ्जे पङ्गौ च गृध्रस्यामपबाहुके। पाने बस्तौ तथाभ्यङ्गे नस्ये कर्णाक्षिपूरणे। एतत्तैलं प्रशंसन्ति सर्ववातविकारनुत ॥ ३३२ ॥

उत्तम उडद आधे आढक परिमाण, दशमूलकी औषधियें ५ पल, बकरीका मांस तीस पल इन सबको अलग अलग कपडेकी पोटलीमें बांधकर सबको एकत्रकर एक द्रोण जलमें पकावे। जब पकते पकते जल चौथाई भाग बाकी रह जाय तब

उतारकर छान लेवे, फिर इसमें तिलका तेल १ प्रस्थ, दूध ४ प्रस्थ, जीवनीय गणकी औषधियें, मजीठ, चव्य, चीता, कायफल,त्रिकुटा, पीपलामूल, रायसन, आमले, गोखरू, कौंछ, अंडकी जड,सौंफ, कालानमक, सैंधानमक, विरियासंचरनमक,असगंध, गिलोय,शतावर,अजवायन,वच और कचूर ये प्रत्येक औषधि एक एक तोला लेकर कल्क कर उत्तमविधिसे तेलको सिद्ध करे। यह तेल सर्वप्रकारके पक्षवातरोग, अर्दित, हनुग्रह, कर्णशूल, बधिरता, त्रिदोषज, तिमर रोग, हाथ, पांव, शिर और गर्दनकी पीडा, कमसुनना, कलायखंज,पंगुता, गृध्रसी और अपबाहुक इन सब रोगोंमें पान, बस्ति, अभ्यंग, नस्य, कर्ण और नेत्रोंके पूरण करनेमें यह तेल बहुत उत्तम है। यह तेल—सर्वप्रकारके वातविकारोंको दूर करनेकी उत्तम औषधि है ॥ ३२६–३३२ ॥

सामिषमहामाषतैल।

माषद्रोणं समावाप्य चाश्वगन्धां शतावरीम् । प्रसारणीं सातिबलां तथा गंधर्वहस्तकम् ॥ ३३३ ॥ सहचरस्य मूलन्तु केतकीनां तथैव च । आत्मगुप्ता च वाट्यालं दशमूलमथापि वा ॥ ३३४ ॥ एषां दशपलान्भागान्कौक्कुटं मांसमेव च । चतुःषष्टिपलं दत्त्वा जलसूर्पे विपाचयेत् ३३५॥ तेन पादावशेषेण शास्त्रविन्मृदुनाग्निना । क्षीरद्रोणसमायुक्तं तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ३३६ ॥ अतः कल्कानिमान्दद्यात्पलिकाञ्श्लक्ष्णपेषितान् । जीवनीयानि यान्यष्टौ यष्टीचन्दनसैन्धवम् ॥ ३३७ ॥ देवदारुबलाकुष्ठं रास्नैलाशुकाशिम्बिका । मांसीवचा शतपुष्पा विदारी च प्रसारिणी ॥ ॥ ३३८ ॥ वृद्धदारुकमूलञ्च विडङ्गं सरलं तथा । शतावर्य्यश्वगन्धा च शठी त्र्यूषणमेव च ॥ ३३९ ॥ अम्लवेतसदार्वी च शाणं देयं पृथक्पृथक् ॥ ३४० ॥ पाने बस्तौ तथाऽभ्यङ्गे नस्ये कर्णाक्षिपूरणे । अर्दिते कर्णशूले च शिरोरोगे हनुग्रहे ॥ मुखरोगेषु सर्वेषु मन्यास्तम्भेऽपबाहुके ॥ ३४१ ॥ कर्णस्रावे च बाधिर्ये तिमिरे च त्रिदोषजे । हृद्रोगे चैव गृध्रस्यामामवाते कटिग्रहे ॥ ३४२ ॥ कलायखञ्जे विश्वाच्यां हितमेतद्विशेषतः । जंघोरुपादपृष्ठे च पार्श्वे शूलमतीव च॥३४३॥ अन्त्रवृद्ध्यण्डवृद्धिश्च वातरक्तं सुदारुणम् । पीनसं कुब्जपंगू वा चाशीतिं वातजान्गदान् ॥ ३४४ ॥ वलीपलितखालित्यान्केशानां पतनं हरेत् । बलमांसप्रदश्चैव शुक्रवृद्धिकरं परम् ॥ ३४५ ॥ अपत्यजननं श्रेष्ठं गर्भिण्याः परमं हितम् । हस्त्यश्वोष्ट्रादिव्यायामैर्भ्रष्टसंधिप्रसादकम् ३४६ तैलमात्रोपयोगेन व्याधिं निर्मूलतां नयेत् । सर्ववातविनाशाय वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ महामाषमिदं तैलं कृष्णात्रेयेण पूजितम् ॥ ३४७ ॥

उत्तम काले उड़द एक द्रोण, असगन्ध, शतावर, प्रसारन, कंघी, अंडकी जड, पियावाँसेकी जड, केतकीकी जड, कौंछ, खिरैंटी और दशमूलकी औषधियें ये प्रत्येक द्रव्य दश २ पल और मुरगेका मांस चौंसठ पल लेवे। सबको एक सूर्प (कुम्भ) परिमाण जलमें पकावे। जब पकते २ जल चौथाई भाग बाकी रह जाय तब उतारकर छान लेवे, फिर इस काथमें दूध १ द्रोण परिमाण, तेल १ प्रस्थ,तथा जीवनीयगणकी औषधियें, अष्टवर्गकी औषधियें, मुलैठी, चन्दन, सैंधानमक, देवदारु, खिरैंटी, कूठ, रायसन, इलायची, कौंछ, बालछड, वच, सौंफ, विदारीकन्द, प्रसारिणी, विधारेकी जड, वायविडंग, धूपसरल, शतावर, असगन्ध, कचूर,सौंठ, मिरच, पीपल, अमलवेत और दारुहल्दी ये प्रत्येक औषधि चार २ मांसे लेकर बारीक कल्क कर, यथा विधि मिलाकर तेलको पकावे। इस तेलको पान, बस्ति,

अभ्यंग, नस्य कर्म्म, कर्ण और नेत्रोंके पूरण करनेमें प्रयोग करे। यह—अर्दित, कर्णशूल, शिरोरोग, हनुग्रह, सर्वप्रकारके मुखरोग, मन्यास्तम्भ, अपबाहुक, कर्णस्राव, बधिरता, त्रिदोषज, तिमिररोग, हृदयरोग, गृध्रसीवात, आमवात, कटिग्रह, कलायखंज, विश्वाची, जंघागतवात, ऊरुगतवात, पादगतवात, पृष्ठगतवात, अत्यन्त पार्श्वशूल, अंत्रवृद्धि, अण्डवृद्धि, दारुण वातरक्त, पीनस, कुब्जता, पंगुता और अस्सीप्रकारके वातरोगोंको दूर करता है। यह तेल—वलीपलित विनाही अवस्थाके शरीरमें वलोंका पड़ना और वालोंका सफेद हो जाना, खालित्य (गंज) और केशोंका गिरना इनको दूर करता है। बल, मांस और शुक्रकी वृद्धि करता है यह गर्भको उत्पन्न करनेवाला और गर्भिणी स्त्रियोंको अत्यन्त हितकारक है। हाथी घोडे और ऊंट आदिसे गिर पडनेसे, कुस्ती लडनेसे, टूटी हुई संधियोंके जोडनेवाला है। केवल इस तेलको ही सेवन करनेसे रोग जड़से नष्ट होजाते हैं। जिस प्रकार इन्द्रके वज्रसे वृक्ष नष्ट होजाता है, उसी प्रकार सर्व प्रकारके वातरोग नष्ट हो जाते हैं। यह महामाषतैल कृष्णात्रेय करके पूजित है ॥३३३—३४७॥

क्षीराढकं शतावर्य्या रसप्रस्थद्वयं पृथक्। शृङ्गवेरस्य तैलस्य प्रस्थं साध्यञ्च कार्षिकैः ॥ ३४८ ॥ शताह्वादारुशैलेयमांसीचन्दनवालकैः। त्वगेलांशुमतीरास्नातगरैरण्डसैन्धवैः ॥ ॥३४९॥ अश्वगन्धासमंगोग्रामूर्वामरिचनागरैः ॥ तन्मासपीतं विधिवत्तैलं सिद्धार्थकं जयेत् ॥ ३५०॥ कुब्जवामनपंगुत्ववातभग्नावकुञ्चनम्। सर्वाङ्गैकाङ्गरोगांश्च हनुमन्यागलामयान् ॥ ३५१ ॥ वातरक्तञ्च कुष्ठानि कंडूपामाविचर्चिकाः। गण्डमालापचीवक्त्रपाकोदरभगन्दरान् ॥३५२॥ कुष्ठव्रणान्सविषमानारम्भान्विविधाञ्ज्वरान्। सन्निपातांश्च शूलानि विषमूर्च्छभ्रमामयान् ॥ ३५३ ॥ वातगुल्मं बहून्मेहानन्त्रवृद्धिश्च शर्करा-म्। कामलां पांडुरोगञ्च शूलं नेत्रगदोद्भवम् ॥ ३५४ ॥ मूढगर्भांश्च भग्नांश्च योनिदंन्ध्यामयान्बहून्। वृद्धानामल्पशुक्रदृक्स्मृतीनां क्षयरेतसाम् ३५५ रसायनं बलारोग्यवर्ण्याग्न्यायुर्विवर्द्धनम् ॥ ३५६ ॥

उत्तम गायका दूध १ आढक परिमाण, शतावरका रस २ प्रस्थ, अदरखका रस२प्रस्थ और तेल १ प्रस्थ तथा सौंफ, देवदारु, भूरिछरीला, वालछड, चन्दन, सुगन्धवाला, दालचीनी, इलायची, शालिपर्णी, रायसन, तगर, अण्डकी जड, सैंधानमक, असगन्ध, मजीठ, वच, चुरनहार, कालीमिरच और सोंठ इन सब औषधियोंके १ तोला कल्कके द्वारा सबको एकत्र मिलाकर यथाविधिसे तैलको पकावे। इस तेलको विधिपूर्वक मासपर्यन्त सेवन करनेसे—कुब्जता, वामनता, पंगुता, वातभय, अवकुंचन, सर्वांगवात, एकांगवातरोग, हनुस्तम्भ, मन्यास्तम्भ, गलस्तम्भ, वातरक्त, कुष्ठ, कंडू, पामा, विचर्चिका, गण्डमाला, अपची, मुखपाक, उदररोग, भगन्दर, कुष्ठ, व्रण, अनेकप्रकारके विषमज्वर, सन्निपात, शूल, विष, भ्रम, मूर्च्छाके रोग, वातगुल्म, बहुत प्रकारके प्रमेह, अन्त्रवृद्धि, शर्करा, कामला, पांडुरोग, शूलरोग, नेत्ररोग, मूढगर्भ, भयरोग, योनिदोष और वंध्यापन दूर होता है। जो मनुष्य वृद्ध होगये हैं, जिनके अल्प शुक्र और जिनकी दृष्टि मंद है; जिनकी स्मरणशक्ति घट गई है, जिनका वीर्य्य क्षय होगया है उनके यह तेल रसायन, बल, आरोग्यता, वर्ण अग्नि और आयुको बढानेवाला है ॥ ३४८—३५६ ॥

शतावरआदिके खोदनेका मन्त्र।

ॐ नारायणाय स्वाहा। उत्तराभिमुखः स्थित्वा खदिरकीलकेन खनेत्।

'ॐ नारायणाय स्वाहा' इस मंत्रको पढकर उत्तरकी ओर मुख करके खैरकी कीलसे शतावर आदिको खोदना चाहिए।

शतावर्याः सर्वासां चौषधीनां साधनायोत्पाटन मन्त्रः ॥

शतावरआदि औषधियोंको सब कार्य्योंमें लेनेके लिये इसी मंत्रसे उखाडकर इसी विधिसे लाना चाहिए।

"ॐकुमारबीजनाय स्वाहा। इत्युत्पाटनमन्त्रः।"

"ॐ कुमारबीजनाय स्वाहा" यह शतावर आदिके उखाडनेका मन्त्र है।

महामाषतैल।

माषस्याद्धांढकं देयं दशमूलं तुलार्द्धतः। बलामूलन्तु तस्यार्द्धं केतकीनां तथैव च ॥ ३५७ ॥ दक्षमांसं पलं त्रिंशज्झिंटिकाः पञ्चविंशतिः। जलद्रोणद्वये पक्त्वा पादशेषेऽवतारितं ॥ ॥ ३५८ ॥ तिलतैलस्य च प्रस्थं पयो दत्त्वा चतुर्गुणम्। जीवनीयानि यान्यष्टौ मञ्जिष्ठाचव्यकट्फलम् ॥३५९॥ व्योषं रास्नाकणामूलं मधुकं पुष्करं तथा। माषात्मगुप्तकैरण्डशताह्वा लवणत्रयम् ॥ ३६० ॥ कुष्ठाश्वगन्धा ह्यमृता यवानी सवचाशटी। नागरं मागधी मुस्तं वर्षाभू रजनीद्वयम् ॥ ॥ ३६१ ॥ शतावरीबृहत्यौ च एतैरक्षसमन्वितैः। पक्षाघातेषु सर्वेषु ह्यर्दिते च हनुग्रहे ॥ ३६२ ॥ मन्दश्रुतौ च श्रवणे तिमिरे च त्रिदोषजे। हस्तकम्पे शिरःकम्पे गात्रकम्पे शिरोग्रहे ॥ ३६३ ॥ शस्तं कलायखञ्जे च गृध्रस्यामपबाहुके। बाधिर्य्ये कर्णनादे च सर्ववातविकारनुत ॥ ३६४ ॥ दण्डापतानके चैव मन्यास्तम्भे विशेषतः। हनुस्तम्भे प्रशस्तं स्यात सूतिकावातनाशनम् ॥३६५॥ त्वच्यं मांसप्रदश्चैव शुक्राग्निबलवर्द्धनम्। अण्डवृद्धिमन्त्रवृद्धिं वातरक्तञ्च नाशयेत ॥ ३६६॥

उत्तम उडद आधे आढक परिमाण, दशमूलकी औषधियें ५० पल, खिरैंटीकी जड २५ पल, और केतकीकी जड २५ पल, मुरगेका मांस ३० पल और पियावांसा पचीसपल, इन सबको एकत्र दो द्रोण जलमें पकावे। जब पकते २ जल चौथाई भाग बाकी रह जाय तब उतारकर छान लेवे। फिर इसमें तिलका तेल एक प्रस्थ, दूध चार प्रस्थ, जीवनीयगणकी ८ औषधियें, मजीठ, चव्य, कायफल, त्रिकुटा, रायसन, पीपलामूल, मुलैठी, पोहकरमूल, उडद, कौंछ, अंडकी जड, सौंफ, सैंधानमक, कालानमक, कचियानमक, कूठ, असगंध, गिलोय, अजवायन, वच, कचूर, सोंठ, पीपल, नागरमोथा, पुनर्नवा, हलदी, दारुहलदी, शतावर, कटेरी और बडी कटेरी प्रत्येक औषधिका कल्क एक एक तोला, सबको एकत्र मिलाकर यथाविधिसे तेलको पकावे। यह महामाषतैल सर्वप्रकारके पक्षाघात रोग, अर्दित, हनुग्रह, कमसुनना, बधिरता, त्रिदोषज तिमिररोग, हस्तकंप, शिरःकंप, गात्रकंप, शिरोरोग, कलायखंज, गृध्रसी, अत्यन्त अपबाहुकरोग, बधिरता, कर्णनाद, सर्वप्रकारके वातके विकार, दण्डापतानकरोग, मन्यास्तम्भ, हनुस्तम्भ और सूतिकाके वातविकारोंको नष्ट करता है। त्वचाको हितकारी, मांसवर्द्धक, शुक्र, अग्नि और बलको बढानेवाला एवं अण्डवृद्धि, अन्त्रवृद्धि और वातरक्तको नष्ट करता है ॥ ३५७—३६६ ॥

माषतैल।

माषप्रस्थं बलाप्रस्थं दशमूल्यास्तथा परम्। प्रस्थं सहचरस्यैकमश्वाह्वाप्रस्थमेव च ॥३६७॥ जलद्रोणद्वये पक्त्वा चतुर्भागावशेषिते। तैलप्रस्थं पचेच्छागक्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम्॥३६८॥ कल्कैः सिन्धूत्थयष्ट्याह्वरास्नाव्योषाश्वगन्धकैः। शतपुष्पासमायुक्तैस्तत्सिद्धं सर्ववातनुत ॥ ३६९ ॥

उडद १ प्रस्थ, खिरैंटी १ प्रस्थ, दशमूल १ प्रस्थ, पियावांसा १ प्रस्थ और असगन्ध १ प्रस्थ इन सबको दो द्रोण जलमें पकावे। जब पकते२ जल चौथाई भाग बाकी रहजाय तब उतारकर छान लेवे। फिर इस क्राथमें

तिलका तेल १ प्रस्थ, बकरीका दूध चार प्रस्थ, कल्कके लिये सैंधानमक, मुलैठी, रायसन, त्रिकुटा, असगन्ध और सौंफ, प्रत्येक ओषधि दो दो तोले लेकर कल्क बनाकर सबको यथाविधिसे एकत्र मिलाकर तेलको पकावे। यह तेल सर्व प्रकारके वातविकारोंको दूर करता है॥ ३६७-३६९॥

चतुर्विंशतिकाप्रसारिणीतैल।

शतत्रयं प्रसारिण्या द्वे च पीतसहाचरात्। अश्वगन्धैरंडबलावरीरास्नापुनर्नवाः॥ ३७०॥ केतकीदशमूलश्च पृथक् त्वक्पारिभद्रतः। प्रत्येकमेषान्तु तुला तुलार्धं किलिमं तथा॥ ॥ ३७१॥ तुलार्धं स्याच्छिरीषस्य लाक्षायाः पञ्चविंशतिः। पलानि लोध्राच्च तथा सर्वमेकत्र साधयेत्॥ ॥ ३७२॥ जले पंचाढकशते सपादे तत्र शेषयेत्। द्रोणद्वयं काञ्जिकश्च षड्विंशत्याढकान्वितम्। क्षीरदध्नोः पृथक्प्रस्था दश मस्त्वाढकं तथा॥ ३७३॥ इक्षोरसाढके चैव छागमांसतुलां नयेत्। जलं पञ्चचत्वारिंशत्प्रस्थे पक्के तु शेषयेत्॥ ३७४॥ सप्तदशरसप्रस्थान्माञ्जिष्ठाक्काथ एव च। कुडवोनाढकोन्माने द्रवैरेभिस्तु साधयेत्॥ ३७५॥ सुशुद्धतिलतैलस्य द्रोणप्रस्थेन संयुतम्। आद्य एभिर्द्रवैः पाकः कल्कैर्भल्लातकं कणा॥ ३७६॥ नागरं मरिचं चैव प्रत्येकं षट्पलोन्मितम्। भल्लातकाऽसहित्वे तु रक्तचन्दनमिष्यते ३७७ पथ्याक्षधात्र्यः सरलं शताह्वाकर्कटीवचाः। चोरपुष्पीशटीमुस्तं द्वयं पद्मश्च सोत्पलम्॥ ३७८॥ पिप्पलीमूलमञ्जिष्ठासाश्वगन्धापुनर्नवाः। दशमूलं समुद्दिष्टं चक्रमर्दो रसाञ्जनम्॥ ॥ ३७९॥ गन्धतृणं हरिद्रा च जीवनीयगणस्तथा। एतेषां पलिकैर्भागैराद्यः पाको विधीयते॥ ३८०॥ देवपुष्पीबोलपत्रे शल्लकीरसशैलजे। प्रियंगुशीरमधुरीमांसीदारुबलावचाः॥ ३८१॥ श्रीवासो नालिकाख्याति सूक्ष्मैला कुन्दुरुर्मुरा। नखीद्वयश्च त्वक्पत्री सुमना पूतिचम्पकम्॥ ३८२॥ मदनं रेणुका स्पृक्का मातुलुङ्गं पलत्रयम्। प्रत्येकं गन्धतोयेन द्वितीयः पाक इष्यते॥ ३८३॥ गंधोदकी च त्वक्पत्री पत्रकोशीरमुस्तकम्। प्रत्येकं सबलामूलं पलानि पञ्चविंशतिः॥ ॥ ३८४॥ कुर्य्याद्द्रभागोऽत्र जलप्रस्थं पञ्चविंशतिः। अर्द्धावशिष्टाः कर्त्तव्याः पाके गन्धांबुकर्म्मणि॥ ३८५॥ गन्धांबुचन्दनांबुभ्यां तृतीयः पाक इष्यते। कल्कोऽत्र केशरं कुष्ठं त्वक्कालीयककुंकुमम्॥ ३८६॥ भद्रश्रियं ग्रन्थिपर्णं लताकस्तूरिका तथा। लवङ्गागुरुकंकोलजातीकोषफलानि च॥ ३८७॥ एलालवङ्गवल्ली च प्रत्येकं त्रिपलोन्मिता। कस्तूरी षट्पला चन्द्रात्पलं सार्धश्च गृह्यते॥ ३८८॥ वेधार्थश्च पुनश्चन्द्रं मदौ देयौ तथोन्मितौ। महाप्रसारणी सेयं राजभोग्या प्रकीर्त्तिता॥ ३८९॥ गुणान्प्रसारणीनान्तु वहत्येषां बलोत्तमान्॥ ३९०

गंधप्रसारिणी तीनसौ ३०० पल, पीले फूलका पिया वाँसा दोसौ २०० पल, असगंध, अंडकी जड, खिरैंटी, शतावर, रायसन, पुनर्नवा, केतकी, दशमूल और नीमकी छाल ये प्रत्येक सौ सौ पल, देवदारु पचास पल, शिरसकी छाल पचासपल, लाख पचीस पल; लोध २५ पल, इन सबको पचास आढक जलमें पकावे। जब पकते पकते जल चौथाई भाग बाकी रहजाय तब उतारकर छान लेवे, फिर एकद्रोण काँजी (यद्यपि मूलमें कांजी दो द्रोण और छब्बीस आढक

परिमाण लिखी है तथापि वृद्ध वैद्योंके मतसे १द्रोण हि डालनी चाहिये, क्योंकि काँजीकी गन्ध अधिकतासे आने लगती है), दूध और दही प्रत्येक दश दश प्रस्थ, दहीका तोड़ एक आढक, ईखका रसएक आढक, बकरेका मांस १०० पल लेकर ४५ प्रस्थ जलमें पकावे। जब पकते पकते १७ प्रस्थ जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे, फिर मजीठका काथ ७॥ सेर, तिलका तेल एकद्रोण एक प्रस्थ, कल्कके लिये भिलावे, पीपल, सोंठ, कालीमिरच, ये प्रत्येक छः छः पल लेवे, जो भिलावे न मिलें तो उसके अभावमें लालचंदन लेना चाहिए। तथा हरड़, बहेड़ा, आमला, धूपसरल, सौंफ, काकडाशिंगी, वच, अंधाहुली, कचूर, नागरमोथा, कमल, कुमुद, पीपलामूल, मजीठ, असगंध, पुनर्नवा, दशमूल, चकवड, रसौत, गंधतृण, हलदी और जीवनीयगणकी समस्त औषधियें ये प्रत्येक चार चार तोले लेकर कल्क बनाकर प्रथम बार पाक करे। पश्चात् लौंग, बोल, तेजपात, शल्लकीका गोंद, भूरिछरीला, फूलप्रियंगु खस, सौंफ, बालछड़, देवदारु, खिरैंटी, वच, श्रीवासका गोंद, नली, छोटी इलायची, कुन्दुरु, मुरामांसी, दोनों प्रकारकी नखी, दालचीनी, गंगापत्री, चमेली, खट्टाशमुष्क, चम्पा, मैनफल, रेणुका, असवरग और बिजौरानींबू ये प्रत्येक तीन तीन पल; इन सबके कल्कके साथ और प्रत्येक गंधजलके साथ दूसरा पाक करे। गंधोदक बनानेकी विधि यह है कि, दालचीनी, गंगापत्री, तेजपात, खस, नागरमोथा और खिरैंटीकी जड प्रत्येक पचीस पचीस पल लेकर पचीस पल जलमें पकावे। जब आधा जल बाकी रह जाय तब उतार लेवे, इसको गंधाम्बु कहते हैं। इस गंधोदकके द्वारा दूसरा पाक करे। फिर इस गंधोदक और चन्दनोदकके द्वारा निम्नलिखित कल्कके द्वारा तीसरा पाक करे। अब चन्दनोदक बनानेकी विधि कहते हैं, कुटाहुआ चंदन५० पल, जल २५ प्रस्थ, अर्द्धावशेष अथवा चतुर्थांश शेष काथ बनावे और चन्दनको जलमें घिस लेवे। इसको चंदनोदक, चन्दनाम्बु और चंदनजल कहते हैं। उपरोक्त चंदनोदक और गंधोदकके द्वारा नागकेशर, कूठ, दालचीनी, पीलाचंदन, केशर, चन्दन, गठिवन, लताकस्तूरी, लौंग, अगर, शीतलचीनी, जायफल, जावित्री, इलायची और लौंगकी बेल प्रत्येकका कल्क तीन तीन पल, कस्तूरी छः पल और कपूर छै तोले इनके कल्कके द्वारा तीसरा पाक करे। जब तेल पककर तैय्यार हो जाय तब सुवासित करनेके लिये कस्तूरी और कपूर अनुमानसे मिलाने चाहिएँ। यह महाप्रसारिणी तैल राजाओंके सेवन करने योग्य है। यह तैल अन्यप्रसारिणीतैलोंकी अपेक्षा अधिक गुणोंवाला है ॥ ३७०—३९० ॥

शुक्तबनानेकी विधि।

अत्र शुक्तविधिर्मण्डः प्रस्थं पञ्चाढकोन्मितम्। काञ्जिकं कुडवौ दध्नो गुडप्रस्थोऽम्बुमूलकात् ॥ ३९१ ॥ पलान्यष्टौ शोधितार्द्रात्पलं षोडशकं तथा। कणाजीरकसिन्धूत्थहरिद्रामरिचं पृथक् ॥ ३९२ ॥ द्विपलं भाविते भांडे घृतश्चाष्टदिनस्थितम्। सिद्धं भवति तच्छुक्तं यदावतार्य गृह्यते। तदा देयं चतुर्जातं पृथक्कर्षत्रयोन्मितम् ॥ ३९३ ॥

भातका मांड ६४ तोले, कांजी ५ आढकपरिमाण दही ३२ तोले, गुड़ ६४ तोले, कांजिमूलक (कांजीके नीचेकी जमी हुई गाद) आठ पल, शुद्ध अदरख १६ पल, पीपल, जीरा, सैंधानमक, हलदी और कालीमिरच ये प्रत्येक दो दो पल लेवे फिर सबको एकत्र घीके चिकने बासनमें भरकर आठ दिनतक रक्खा रहने देवे। फिर इसमें दालचीनी, इलायची, तेजपात और नागकेशर प्रत्येकका चूर्ण छै छै तोले मिला देवे। इसको शुक्त कहते हैं ॥ ३९१—३९३ ॥

पञ्चपल्लवके द्वारा शुद्धि।

पञ्चपल्लवतोयेन गंधानां क्षालनं तथा। शोधनं चात्र संस्कारो विशेषश्चात्र वक्ष्यते ॥ ३९४ ॥ आम्रजंबूकपित्थानां बीजपूरकबिल्वयोः। गंधकर्म्मणि सर्वत्र पत्राणि पञ्चपल्लवम् ॥ ३९५ ॥

पंचपल्लवके कोमल पत्तोंके काथके द्वारा समस्त गंधद्रव्योंको धोकर धूपमें सुखाना चाहिए। इसप्रकार

समस्त गंधद्रव्य शुद्ध होते हैं। आम, जामुन, कैथ, बिजौरानींबू और बेल इन पांचों वृक्षोंके पत्तोंको पंचपल्लव कहते हैं। यह सब गंधकर्म्मोंमें प्रयोग किये जाते हैं॥ ३९४ ॥ ३९५ ॥

नखशुद्धि।

चण्डीगोमयतोयेन यदि वा तिंतिडीजलैः। नखं संक्राथयेदेभिर्भाण्डेन मृण्मयेन तु॥ ३९६॥ पुनरुद्धृत्य प्रक्षाल्य भर्जयित्वा निषेचयेत्। गुडपथ्यांबुना ह्येवं शुद्ध्यते नात्र संशयः॥ ३९७॥

नखद्रव्यको भैंसके गोवरके रस अथवा इमलीके काथसे काली मिट्टीके वर्त्तनमें औटावे, फिर गंधोदकसे धोकर घीमें भूनकर गुड मिलाकर हरडोंके जलमें भिजोकर धूपमें सुखा देवे तो निःसंदेह नख शुद्ध हो जाता है॥ ३९६॥ ३९७॥

हरिद्रावचाशुद्धि।

गोमूत्रे चालंबुषके पक्का पञ्चदलोदके। पुनः सुरभितोयेन बाष्पस्वेदेन स्वेदयेत्॥३९८॥ गंधोग्रा शुध्यते ह्येवं रजनी च विशेषतः॥ ३९९॥

वच और हलदीको गोमूत्र और गोरखमुंडीके काथमें तथा पंचपल्लवके काथमें पकाकर गंधोदकके जलकी बाष्प देकर स्वेदन कर सुखा लेवे तो वच शुद्ध हो जाती है और विशेष कर हलदी शुद्ध हो जाती है॥ ३९८॥ ३९९॥

मुस्तकशुद्धि।

मुस्तकन्तु मनाक् क्षुण्णं काञ्जिके त्रिदिनोषितम्। पञ्चपल्लवपानीये स्विन्नमातपशोषितम्॥ ४००॥ गुडांबुना सिच्यमानं भर्जयेच्चूर्णयेत्ततः। आजसौभाञ्जनजलैर्भावयेदिति शुद्ध्यति॥ ४०१॥

नागरमोथेको कूटकर तीन दिनतक कांजीमें भिजो रक्खे, फिर पंचपल्लवके जलमें पकाकर सुखा लेवे। फिर गुडके शर्वतमें भिजोकर सुखा लेवे, पश्चात् भूनकर चूर्ण कर ले; फिर बकरीके मूत्र और सहिंजनेके रसकी भावना देवे तो नागरमोथा शुद्ध हो जाता है॥ ४००॥ ४०१॥

शैलजशुद्धि।

काञ्जिके क्वथितं शैलं भृष्ट्वा पथ्यागुडांबुना। सिञ्चेदेवं ततः पुष्पैर्विविधैरधिवासयेत्॥ ४०२॥

प्रथम भूरिछरीलेको कांजीमें पकाकर पंचपल्लवके जलसे धो डाले, फिर अग्निमें भूनकर हरड और गुडके जलमें भिजोकर अनेक प्रकारके सुगंधित पुष्पोंसे सुवासित करले तो भूरिछरीला शुद्ध हो जाता है॥ ४०२॥

खट्टाशीशुद्धि।

यथालाभमपामार्गस्तुह्याद्क्षीरलेपितम्। बाष्पस्वेदेन संस्वेद्य पूतिं निर्लोमतां नयेत्॥ ४०३॥ दोलापाकं पचेत्पश्चात्पञ्चपल्लववारिणि। खलः साधुमिवोत्पीड्य ततो निःस्नेहतां नयेत्॥ ४०४॥ आजसौभांजनजलैर्भावयेच्च पुनः पुनः। शिग्रुमूले च केतक्याः पुष्पपत्रपुटे च तम्। पचेदेवं विशुद्धश्च मृगनाभिसमो भवेत्॥४०५॥

चिरचिटा और थूहरके दूधसे खट्टाशीको लेपकर भापसे स्वेदन करे तो यह दुर्गंधरहित और रोमशून्य हो जाती है। फिर इसको पंचपल्लवके जलमें दोलायंत्रके द्वारा पकाकर निचोड लेवे तो खट्टाशी स्नेहरहित हो जाती है। पश्चात् बकरीके मूत्र और सहिंजनेके रसमें वारंवार भावना देकर सहिंजनेकी जड, केतकीके फूल और पत्तोंसे लपेटकर पुटपाक विधिसे पकावे। इस प्रकार करनेसे खट्टाशी शुद्ध होकर कस्तूरीके समान हो जाती है॥ ४०३॥ ४०४॥ ४०५॥

शिलारसादि शुद्धि।

तुरुष्कं मधुना भाव्यं काश्मीरश्चापि सर्पिषा। रुधिरेणायसं प्राज्ञैर्गोमूत्रैर्ग्रन्थिपर्णिकम्॥ ४०६॥ मधूदकेन मधुरीपत्रकं तंडुलांबुना। ईषत्क्षारा-

नुगंधा तु दग्धा याति न भस्मताम् ॥ ४०७ ॥ पीता केतकगंधा वा लघु स्निग्धा मृगोत्तमा ॥ ४०८ ॥ पक्वात्कर्पूरतः प्राहुरपक्वं गुणवत्तरम् । तत्रापि स्याद्यदक्षुद्रं स्फटिकाभं तदुत्तमम् ॥ ४०९ ॥ पक्वश्च सदलं स्निग्धं हरितद्युति चोत्तमम् । भङ्गे मनागपि न चेन्निपतन्ति ततः कणाः ॥ ४१० ॥ मृगशृङ्गोपमं कुष्ठं चन्दनं रक्तपीतकम् । काकतुंडाकृतिः स्निग्धो गुरुश्चैवोत्तमोऽगुरुः ॥ ४११ ॥ स्निग्धाल्पकेशरं त्वस्रं शैलजो वृत्तमांसलः । मुरा पीता वरा प्रोक्ता मांसी पिङ्गजटाकृतिः ॥४१२॥ रेणुका मुद्गसंस्थानां शस्तमानूपजंघनम् । जातीफलं सशब्दश्च स्निग्धं गुरु च शस्यते॥४१३॥ एला सूक्ष्मफला श्रेष्ठा प्रियंगुः श्यामपाण्डुरा । नखमश्वखुरं हस्तिकर्णश्चैवात्र शस्यते । एतेषामपरेषाञ्च नवतामवरो गुणः ॥ ४१४ ॥

शिलारसको शहदमें भावना देनेसे, केशरको घीमें भावना देनेसे, लोहेको रुधिरमें भावना देनेसे, गठिवनको गोमूत्रमें भावना देनेसे, सौंफको मधूदक (शहदके शर्बतमें) भावना देनेसे और तेजपातको चावलोंके जलमें भिजोनेसे शुद्धि होती है । किंचित् क्षार गंधवाली कस्तूरीको जलानेसे भस्म नहीं होती है । तथा पीली केतककी समान गन्धवाली हलकी और चिकनी ऐसी कस्तूरी उत्तम है । पक्के कपूरसे अपक्व कर्पूर विशेषगुणोंवाला होता है । इसमें भी बडा और स्फटिकके समान स्वच्छ उत्तम होता है । पक्का कपूर भी पत्रोंवाला, चिकना और हरीकांतिवाला उत्तम होता है, परन्तु तोडनेमें उसके टुकडे टूट २ कर अलग न गिरे । हिरनके सींग समान कूठ उत्तम होता है, लाल और पीले रंगका चन्दन उत्तम होता है । अगर कौवेकी चोचके समान, चिकनी और भारी उत्तम होती है । चिकनी और अल्पकेशरवाली केशर उत्तम होती है । भूरिछरीला गोल और स्थूल उत्तम होता है । मुरामांसी (एकाङ्गी मुरा) पीली उत्तम होती है । वालछड पीली जडवाली उत्तम होती है । रेणुका मूँगके समान उत्तम होती है । नागरमोथा अनूपदेशका उत्तम होता है । जायफल शब्दयुक्त, चिकना और भारी उत्तम होता है । इलायची छोटे फलवाली उत्तम होती है । फूलप्रियंगू काला और पाण्डुरंगका उत्तम होता है । नख घोडेके खुरके समान और हाथीके कानोंके समान उत्तम होता है । ये सब तथा अन्यान्य समस्त औषधियें नवीन ही विशेष गुणवाली जाननी चाहिएं ॥ ४०६—४१४ ॥

महामाषतैल ।

माषद्रोणं समादाय अश्वगन्धाप्रसारिणी । द्विपञ्चमूल्यात्मगुप्ता बलागन्धर्वहस्तकः ॥ ४१५ ॥ एषां दशपलान्भागान्वारिद्रोणे चतुष्टये । क्वाथमेभिः प्रकुर्वीत चतुर्भागावशेषितम् ॥ ४१६ ॥ यष्ट्याह्वदारुकुष्ठैलारास्नामांसीबलावचाः । शताह्वा चात्मगुप्ता च चाश्वगन्धा च चन्दनम् ॥ ॥ ४१७ ॥ शट्युरुबुकवृक्षाम्लत्र्यूषणागुरुवृश्चिकम् । सिन्धूद्भवं विदारी च प्रसारिणी शतावरी ॥ ४१८ ॥ बृद्धदारुकातिबलाविडङ्गसरलानि च । कल्कैरेतैः पलैर्भागैस्तैलाढकसमायुतैः ॥ ४१९ ॥ क्षीरतुल्यसमायुक्तं शनैर्मृद्वग्निना पचेत् । पाने बस्तौ तथाभ्यङ्गे नस्ये भोज्ये च पूजितम् ॥ ॥ ४२० ॥ अर्दिते कर्णशूले च शिरोरोगे हनुग्रहे । मुखरोगेषु सर्वेषु मन्यास्तम्भेऽपबाहुके ॥ ४२१ ॥ मन्दश्रवणबाधिर्ये कर्णरोगातिपीनसे । हृद्रोगे गृध्रसीश्चैव आमवातं कटिग्रहम् ॥ ४२२ ॥ जंघोरुपादपृष्ठेषु पार्श्वशूलमतीव च । अन्त्रवृद्ध्यण्डवृद्धिश्च वातरक्तं सुदारुणम् ॥ ४२३ ॥

विश्वाचीखञ्जपङ्गूवातावशीतिं वातजान्हरेत् ॥ ४२४ ॥ वलीपलितखालित्यं केशानां पतनं परम् । बलमांसकरश्चैवशुक्रवृद्धिकरं परम् ॥ ४२५॥ अपत्यजननंश्रेष्ठं गर्भिणीनां परं हितम् ॥ हस्त्यश्वोष्ट्रादिव्यायामैर्भग्नसन्धिप्रसाधनम् ॥ ४२६ ॥ तैलमात्रोपयोगेन व्याधिर्निर्मूलतां नयेत् । सर्वातंकविनाशाय वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा। महामाषमिदं तैलं कृष्णात्रेयेण पूजितम् ॥ ४२७॥

उत्तम काले उड़द एक द्रोण, असगन्ध, प्रसारिणी, दशमूल, कौंछ, खिरैंटी और अण्डकी जड ये प्रत्येक दश दश पल लेकर सबको चार द्रोण जलमें पकावे। जब पकते २ जल चौथाई भाग शेष रह जाय तब उतारकर छान लेवे। फिर इस काथमें मुलैठी, देवदारु, कूठ, इलायची, रायसन, वालछड, खिरैंटी, वच, सौंफ, कौंछ, असगंध, चन्दन, कचूर, अण्डकी जड़, विषांबिल, त्रिकुटा, अगर, विछाटी, सैंधानमक, विदारीकन्द, प्रसारणी, शतावर, विधारा, कंघी, वायविडंग और धूप सरल, ये प्रत्येक औषधि चार चार तोले लेकर कल्क बनाकर डाल देवे तथा तिलका तेल एक आढक और दूध एक आढक मिलावे। सबको यथाविधिसे मिलाकर उत्तम विधिसे मन्द २ अग्निसे तेलको सिद्ध करे। इस तेलको पान, वस्तिकर्म्म, अभ्यंग, नस्य और भोजनमें प्रयोग करे। यह महामाषतैल—आर्दितरोग, कर्णशूल, शिरोरोग, हनुग्रह, सर्व प्रकारके मुखरोग, मन्यास्तम्भ, अपबाहुकरोग, मन्दश्रवण, बधिरता, कर्णरोग पीनसरोग, हृदयरोग, गृध्रसीरोग, आमवात, कटिग्रह, जंघागतशूल, कंठशूल, पादशूल, पृष्ठशूल, पार्श्वशूल, अन्त्रवृद्धि, अण्डवृद्धि, दारुण वातरक्त विश्वाचीवात, खञ्जवात, पंगुवात, अस्सी प्रकारके वातरोग, वलीपलित, (विना समय ही शरीरमें बलोंका पडना, और विना समयही बालोंका सफेद हो जाना) खालित्यरोग और बालोंका गिरना, इत्यादि वात सम्बन्धीय अनेक रोगोंको दूर करताहै तथा बल और मांसको बढानेवाला, शुक्रको बढानेवाला वन्ध्या और गर्भिणी स्त्रियोंको अत्यन्त हितकारी, हाथी, घोडे और ऊँट आदिपरसे गिरनेसे और व्यायाम करनेसे टूटी हुई संधियोंको जोडनेवाला है। इस केवल तेलको सेवन करनेसे ही सर्वप्रकारके रोग नष्ट होते हैं। जिस प्रकार वज्र वृक्षोंको नष्ट कर देता है उसी प्रकार यह तेल सर्वप्रकारके रोगोंको नष्ट करदेता है यह महामाषतैल कृष्णात्रेय करके पूजित है।।४१५-४२७।।

शतकप्रसारिणीतैल।

प्रसारिणीशतक्काथे तैलप्रस्थं पयः समम्। जीवकर्षभकौ मेदे काकोल्यौ कुष्ठचन्दने ॥ ४२८ ॥ शताह्वां दारु मञ्जिष्ठां रास्नां पिष्ट्वा विपाचयेत्। वस्तिपानादिभिर्युक्तमेतन्मारुतरोगनुत् ॥ ४२९ ॥

१०० पल प्रसारिणीके क्काथमें एकप्रस्थ तैल और बराबरका दूध डाले तथा जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, कूठ, चंदन, सौंफ, देवदारु, मजीठ और रायसन इनका कल्क मिलाकर विधिपूर्वक पकावे। इस तेलको बस्ति और पानादिकर्ममें प्रयोग करनेसे सर्व प्रकारके वातरोग नष्ट हो जाते हैं ।। ४२८ ।। ४२९ ।।

त्रिंशतिप्रसारिणीतैल।

प्रसारण्यास्तुलामश्वगन्धाया दशमूलतः। तुलां तुलां पृथग्वारिद्रोणे पादांशशेषिते। तैलाढकं चतुः क्षीरं दधितुल्यं द्विकाञ्जिकम् ॥ ४३० ॥ द्विपलैर्ग्रन्थिकक्षारप्रसारिण्यक्षसैन्धवैः। समाञ्जिष्ठाग्नियष्ट्याह्वैः पलिकैर्जीवनीयकैः ॥ ४३१ ॥ शुण्ठ्याः पञ्चपलान्दत्त्वा त्रिंशद्भल्लातकानि च। पचेद्धस्त्यादिना वातं हन्ति सन्धिशिरास्थिगम् ॥ ४३२ ॥ पुंस्त्वोत्साहस्मृतिप्रज्ञाबलवर्णाग्निवृद्धये। प्रसारिणीये त्रिंशत्यां त्वक्षं सौवर्चलन्त्विह ॥ ४३३॥

प्रसारणी १०० पल, असगन्ध १०० पल और दशमूलकी औषधियें १०० पल लेवे, सबको अलग

एक २ द्रोण जलमें पकावे। जब पकते २ चौथाई जल शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे। इन तीनों काथोंको एकत्र मिलाकर इसमें उत्तम तिलका तेल एक आढक, दूध ४ आढक, दही ४ आढक और कांजी ८ आढक तथा पीपलामूल, जवाखार, प्रसारिणी, बहेडा और सैंधानमक प्रत्येक दो २ पल, मजीठ, चीता, मुलैठी और जीवनीयगणकी समस्त औषधियें प्रत्येकका कल्क चार चार तोले, सोंठका कल्क २० तोले और भिलावेका कल्क तीस पल, सबको यथाविधिसे मिलाकर मंद मंद अग्निसे तेलके पकावे इस तेलको व्यवहार करनेसे वस्तिगत वात, संधिगत वात और शिरागत, अस्थिगत वात नष्ट होती है। तथा पुंसता, उत्साह, स्मरणशक्ति, प्रज्ञा, बल, वर्ण और अग्निकी वृद्धि होती है। इस त्रिशती प्रसारिणी तेलमें एक तोले प्रमाण कालानमक डालना चाहिये ॥ ४३०—४३३ ॥

कुब्जप्रसारिणतैल।

प्रसारिणीशतं क्षुण्णं पचेत्तोयार्मणे शुभे। पादशिष्टे समं तैलं दधि दद्यात्सकाञ्जिकम् ॥ ४३४ ॥ द्विगुणञ्च पयो दत्त्वा कल्कान्द्विपलिकांस्तथा। चित्रकं पिप्पलीमूलं मधुकं सैन्धवं वचाम् ॥ ४३५ ॥ शतपुष्पां देवदारु रास्नां वारणपिप्पलीम् । प्रसारिण्याश्च मूलानि मांसी भल्लातकं तथा ॥ ४३६॥ पचेन्मृद्वग्निना तैलं वातश्लेष्मामयाञ्जयेत् । अशीतिं नरनारीस्थान्वातरोगान्व्यपोहति ॥ ४३७ ॥ कुब्जस्तिमितपंगुत्वं गृध्रसीखञ्जकार्दितम् । हनुपृष्ठशिरोग्रीवास्तम्भञ्चाशु नियच्छति ॥ ४३८ ॥

प्रसारिणी १०० पल लेकर कूट लेवे, फिर उसको ५१२ पल जलमें पकावे। जब पकते २ चौथाई भाग जल शेष रह जाय तब उतारकर छान लेवे, फिर इस काथमें तेल, दही और कांजी ये सब समान भाग तथा दूध दो भाग डाले एवं चीता, पीपलामूल, मुलैठी, सैंधानमक, वच, सौंफ देवदारु, रायसन, गजपीपल, प्रसारिणी, बालछड़ और भिलावे इन प्रत्येकका कल्क आठ आठ तोले मिलाकर मन्द मन्द अग्निसे विधिपूर्वक तेलको सिद्ध करे। यह तेल-वात कफजनित रोग, नरनारियोंके अस्सीप्रकारके वातरोग, कुब्जता, जडता, पंगुता, गृध्रसीवात, खंजता, अर्दित, हनुस्तम्भ, पृष्ठस्तंभ, शिरस्तम्भ और ग्रीवास्तम्भको दूर करता है ॥ ४३४–४३८ ॥

सप्तशतिकामहाप्रसारिणीतैल।

समूलपत्रामुत्पाट्य शरत्काले प्रसारिणीम् । शतं ग्राह्यं सञ्चरुच्छतावर्य्याः शतं तथा ॥ ४३९ ॥ बलात्मगुप्ताश्वगन्धाकेतकीनां शतं शतम्। चतुर्गुणेन तोयेन द्रवैस्तैलाढकं पचेत् ॥ ४४० ॥ मस्तुमांसरसं चुक्रं पयश्चाढकमाढकम् । दध्नाढकं समायुक्तं पाचयेन्मृदुनाग्निना ॥ ४४१ ॥ द्रव्याणान्तु प्रदातव्या मात्रा चार्धपलात्मिका। तगरं चन्दनं कुष्ठं केसरं मुस्तकं त्वचम् ॥ ४४२ ॥ रास्ना सैन्धवपिप्पल्यां मांसीमञ्जिष्ठयष्टिकाः। जीवकर्षभकौ मेदा महामेदा तथा पुनः ॥ ४४३ ॥ शतपुष्पा व्याघ्रनखं शुण्ठी देवाह्वमेव च। काकोली क्षीरकाकोली वचा भल्लातकं तथा॥४४४॥ पेषयित्वा समानेतान्साधनीया प्रसारिणी। नातिपक्कं नातिहीनं सिद्धपूतं निधापयेत् ॥ ४४५ ॥ यत्र यत्र प्रदातव्यं तन्मे निगदतः शृणु । कुब्जानामथ पंगूनां वामनानां तथैव च ॥ ४४६ ॥ यस्य शुष्यति चैकाङ्गं ये च भग्नास्थिसन्धयः॥ ४४७ ॥ वातशोणितदुष्टानां वातोपहतचेतसाम् । स्त्रीपदक्षीणशुक्राणां वाजीकरणमुत्तमम् ॥ ४४८ ॥ पाने बस्तौ तथाभ्यङ्गे नस्ये चैव प्रदापयेत्। प्रयुक्तं शमयत्याशु वातजान् विविधान्गदान् ॥ ४४९ ॥

शरदृतुमें जड और पत्तोंसहित प्रसारनको उखाड कर उसको १०० पल लेवे, पियाबाँसा १०० पल, शतावर १०० पल, खिरैंटी १०० पल, कौंछ १०० पल, असगंध १०० पल और केतकी जड १०० पल लेकर सबको चौगुने जलमें पकावे। जब पकते पकते जल चौथाई भाग शेष रह जाय तब उतारकर छान लेवे, फिर इस क्वाथमें एक आढक परिमाण तिलका तेल, दहीका तोड एक आढक, मांसरस एक आढक, चूक एक आढक, दूध एक आढक और दही एक आढक परिमाण डाले तथा तगर, चंदन, कूठ, नागकेशर, नागरमोथा, दालचीनी, रायसन, सैंधानमक, पीपल, बालछड, मजीठ, मुलैठी, जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, सौंफ, व्याघ्रनख, सोंठ, देवदारु, काकोली, क्षीरकाकोली, वच और भिलावे ये प्रत्येकका दो २ तोले कल्क डालकर यथाविधिसे तेलको सिद्ध करे। इसको इस प्रकार पकावे कि, जिससे यह न तो बहुत पकजाय और न कच्चा रह जाय अर्थात् अच्छे प्रकारसे पक जाय तब उतारकर छान लेवे। यह तेल जिन २ मनुष्योंको देना चाहिए यह कहता हूं सो सुनो-कुबडा मनुष्य, पंगु, बौना मनुष्य, जिसका एक अंग सूख गया हो, जिसकी अस्थि और संधि भग्न होगई हो, जो मनुष्य वातरक्तसे या वातसे पीडित हैं और श्लीपद रोगवाले मनुष्योंको यह अत्यन्त हितकारी है। जो मनुष्य वीर्य्यक्षीण हैं उनके लिये-उत्तम वाजीकरण है। इसको पान, बस्तिकर्म्म, अभ्यंग और नस्यकर्म्म इन सबमें यथाविधि प्रयोग करना चाहिए। यह अनेक प्रकारके वातरोगोंको शमन करता है॥ ४३९—४४९॥

महाप्रसारिणीतैल।

प्रसारिणीपलशतं गुडूची सहचरं बला। एरण्डमश्वगन्धा च दशमूली शतावरी॥ ४५०॥ कुट्टयित्वा पलशतं साधयेत्सलिलार्मणे। चतुर्भागावशेषश्च कषायमवतारयेत॥४५१॥ तैलं मांसरसं क्षीरं दधि शुक्रं तथैव च। एतानि समभागानि द्विगुणं चाम्लकाञ्जिकम्॥ २५२॥ कल्के पेष्याणि भागानि तत्रेमानि प्रदापयेत्। नागरातिविषामुस्तं शटी चैलांबुपत्रकम्॥ ४५३॥ चन्दनं तगरं कुष्ठं पुष्कराह्वं ससैन्धवम्। त्र्यूषणं कटुकं क्षारं मञ्जिष्ठाकटुकागुरु॥४५४॥ शताह्वापिप्पलीमूलं मांसिचन्दनमेव च। प्रसारिणीमूलमपि जीवनीयानि यानि च॥ ४५५॥ एतैस्तु पालिकैर्भागैस्तैलपात्रे विपाचयेत्। अश्वं वा वातसंभग्नं गजं वा जर्जरीकृतम्॥ ॥ ४५६॥ एकाङ्गं क्षवथुं कंपमपतानकमेव च। हन्यादेतान्गदान्सर्वान्महत्येषा प्रसारिणी॥ बलवर्णकरी ह्येषा नित्यमात्रेयपूजिता॥ ४५७॥

प्रसरिणी १०० पल, गिलोय, पियाबाँसा, खिरैंटी, अण्डकी जड, असगंध, दशमूल और शतावर ये प्रत्येक १००--१०० पल लेकर कूट लेवे, फिर इनको एक द्रोण जलमें पकावे। जब पकते पकते जल चौथाई भाग शेष रह जाय तब उतारकर छान लेवे। फिर इस क्वाथमें तेल, मांसरस, दूध, दही और शुक्त यह सब समान, एक २ आढक भाग और दो भाग खट्टी कांजी, तथा सोंठ, अतीस, नागरमोथा, कचूर, इलायची, सुगंधवाला, तेजपात, चंदन, तगर, कूठ, पोहकरमूल, सैंधानमक, त्रिकुटा, चीता, जवाखार, मजीठ, कुटकी, अगर, सौंफ, पीपलामूल, बालछड, चंदन, प्रसारणीकी जड और जीवनीयगणकी समस्त औषधियें ये प्रत्येक चार चार तोलेलेकर कल्क बनाकर मिला देवे। सबको यथाविधिसे मिलाकर मन्द२ अग्निके द्वारा तेलको सिद्ध करे। यह तेल घोडे और हाथियोंके टूटे हुए और जर्जर किए हुए अंगोंको जोडता है और वातसे पीडित मनुष्योंके लिए सदैव हितकारी है। तथा एकांगवात, क्षवथु, कम्प, अपतानक इन सब रोगोंको दूर करता है, बल और वर्णको बढाता है। यह महाप्रसारिणी तैल नित्य आत्रेयकरके पूजित है॥ ४५०—४५७॥

गन्धहस्तीप्रसारिणीतैल।

समूलपत्रशाखायाः प्रसारिण्याः क्षतत्रयम्। सहचरस्य शतं द्वे च शा-

तावर्यश्वगन्धयोः ॥ ४५८ ॥ गुडूच्येरण्डमूलानां वानरीक्षुरकस्य च । पुनर्नवायाः केतक्याः पञ्चमूलद्वयस्य च ॥ ४५९॥ त्रिफलाचित्रकं बिल्वं बलातिबलयोरपि । शिरीषमूलं पञ्चाशद्रास्नादारुतदंशिके ॥४६०॥सर्वमेतत्सुसंक्षुद्य कटाहे समाधिक्षिपेत्। वारिद्रोणे शते क्वाथ्यं दशभागस्थितेन वै ॥४६१॥व्यक्ताम्लेनारणालेन द्रोणद्वययुतेन च। मस्तुक्षीरेक्षुनिर्यासछागमांसरसैस्तथा॥ ४६२ ॥ आढकाढकसंयुक्ते तथा शुक्तयाढकेन च। तैलद्रोणसमायुक्तं दृढे भाण्डे निधापयेत् ॥४६३ ॥ द्रव्याणि यानि पेष्याणि तानि वक्ष्याम्यतः शृणु । भल्लातकं नतं शुण्ठीकृष्णाशटचभयावचाः ॥ ४६४ ॥ बलाप्रसारिणी चैव कणामूलन्तु चोरकम् । लवङ्गं शतपुष्पा च सूक्ष्मैलात्वक् च वालकम् ॥ ४६५ ॥ कुष्ठं व्याघ्रनखं मांसी सैन्धवं मदनं वचा । कस्तूर्यगुरुमञ्जिष्ठातुरुश्कनखकुंकुमम् ॥ ४६६ ॥ तुम्बुरं चन्दनं पूति कङ्कोलं त्रिसुगन्धिकम् । पद्मकोत्पलकालीयदार्व्यग्निसितचन्दनम्॥४६७॥ शटीरेणुकशैलेयश्रीवासं कुन्दुरुं नलम् । जातीकोषं वरीभीरु सरलं पद्मकेसरम् ॥ ४६८ ॥ प्रियंगुशीरतगरं नलिकाजीवनं गणम् । लवङ्गं नागपुष्पञ्च तथा कर्पूरमञ्जनम्॥४६९॥ कटुकापूगजातीनां फलानि ताडिकीफलम् । भागांस्त्रिपलिकान्कृत्वा शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ ४७० ॥ इष्टवर्गरसस्पर्शं गंधेनापि समन्वितम् । स्वभागशेषं तत्सिद्धं तत्तु गुप्तं निधापयेत ॥ ४७१ ॥ पानाभ्यङ्गे तथा नस्ये निरूहे चानुवासने । एतद्धि वडवाश्वानां किशोराणां यथामृतम् ॥४७२॥ एतदेव कुमाराणां कुञ्जराणां गवामपि । वृद्धोऽप्येतन्नरः पीत्वा पुनश्च तरुणो भवेत् ॥ ४७३ ॥ एतेनैव च तैलेन शुष्यमाणा महाद्रुमाः । मूले सिक्ताः प्ररोहन्ति सनालच्छदपल्लवाः ॥४७४॥ अप्रसूता च या नारी सम्यक्पीत्वा प्रसूयते । अप्रजः पुरुषो यश्च सोऽपि पीत्वा सुतं लभेत् ॥ ४७५ ॥ अशीतिर्वातजान्रोगांश्चत्वारिंशच्च पैत्तिकान् । विंशतिः श्लैष्मिकांश्चापि संसृष्टान्सान्निपातिकान् ॥ ४७६ ॥ क्षिप्रं विनाशयत्येव तैलमेतत्प्रयोजितम् । पूर्वस्माद्विशिष्टतरं गन्धहस्तीति लक्षणम् ॥४७७॥

मूल, पत्ते और शाखासहित प्रसारिणी ३००पल, पियाबाँसा २०० पल, शतावर २०० पल, असगन्ध २०० पल, गिलोय, अण्डकी जड, कौंछ, तालमखाना, पुनर्नवा, केतकी, दशमूल, त्रिफला, चीता, बेलगिरी, खिरैंटी, कंघी और शिरसकी जड़ तथा रास्ना और देवदारु ये प्रत्येक ५०—५० पल इन सबको एकत्र कूटकर १०० द्रोण जलमें पकावे । जब पकते२ दशवाँ भाग जल शेष रह जाय तब उतारकर छान लेवे । फिर उसमें खट्टी कांजी २ द्रोण, दहीका तोड, दूध, ईखका रस और बकरेके मांसका रस तथा शुक्तनामवाली कांजी ये प्रत्येक एक एक आढक और तिलका तेल १ द्रोण, तथा कल्कके लिये भिलावे, तगर, सोंठ, पीपल, कचूर, हरड, वच, खिरैंटी, प्रसारिणी,पीपलामूल,अंधाहुली,लौंग, सौंफ, छोटी इलायची, दालचीनी, सुगंधवाला, कूठ, वाघनख, वालछड, सैंधानमक, मैनफल, वच, कस्तूरी, अगर, मँजीठ, शिलारस, नख, केशर, तुम्बुरु, चन्दन, खट्टाशीमुष्क. शीतलचीनी, त्रिसुगन्धी, पद्माख, कुमुद, कलम्बक, दारुहल्दी, चीता, सफेद्चंदन, कचूर, रेणुका, भूरिछरीला, श्रीवास,कुन्दुरु, नली, जायफल, शतावर, बड़ीशतावर, सरल, कमलकेशर, फूलप्रियंगू, खस, तगर, पनड़ी, जीवनीय-

गणकी समस्त औषधियें, लौंग, नागकेशर, कपूर, अंजन, कुटकी, सुपारी, जायफल और ताडकाफल ये प्रत्येक औषधि तीन २ पलं लेकर कल्क बनाकर मिलाकर विधिपूर्वक धीरे २ मंद २ अग्निसे पकावे तथा इसमें उत्तम सुगंधित औषधियोंका कल्क और जल डाले जब पकते पकते केवल तेल शेष रहजाय तब उतार लेवे। इस तेलको गुप्तरीतिसे ढककर रख देवे। इसको पान, मालिश, नस्य, निरूहबस्ति और अनुवासन कर्म्ममें प्रयोग करे। यह तेल—किशोरअवस्थावाले बालक, घोडे, घोडी तथा हाथी और गायोंको अत्यंत हितकारी है, इसको वृद्धमनुष्य पीवे तो फिर तरुणकी समान होजाता है। इस तेलको सूखेहुए वृक्षोंकी जडमें डालनेसे वह वृक्ष शाखा, पत्ते और फल फूल सहित हरा भरा होजाता है। जिन स्त्रियोंके संतान उत्पन्न नहीं होती उनके इस तेलके सेवन करनेसे उत्तम सन्तान उत्पन्न होती है। जिन पुरुषोंके संतान नहीं होती उनके इस तेलके सेवन करनेसे उत्तम पुत्र उत्पन्न होते हैं। अस्सी प्रकारके वात, चालीस प्रकारके पित्तके रोग, वीसप्रकारके कफरोग, तथा द्वन्द्वज और सान्निपातिक इत्यादि समस्त रोगोंको यह गन्धहस्तीप्रसारणी तेल अवश्य दूर करदेता है, पहले महाप्रसारिणी तेलसे विशेषतर है ॥ ४५८—४७७ ॥

अष्टादशशतक प्रसारिणीतैल।



समूलपत्रशाखायाः प्रसारिण्याः शतत्रयम्। शतमेकं शतावर्या अश्वगन्धाशतं तथा ॥ ४७८ ॥ केतकीनां शतश्चैकं दशमूलाच्छतं शतम्। शतं वाट्यालकस्यापि शतं सहचरस्य च ॥ ४७९ ॥ जलद्रोणशतं दत्त्वा शतभागावशोषितम्। ततस्तेन कषायेण कषायाद्विगुणेन च ॥ ४८० ॥ सुव्यक्तेनारणालेन दाधिमस्त्वाढकेन च। क्षीरशुक्तेक्षुनिर्यासछागमांसरसेन च ॥ ॥ ४८१ ॥ तैलं द्रोणसमायुक्तं दृढे भांडे निधापयेत्। द्रव्याणि यानि पेष्याणि तानि वक्ष्याम्यतःशृणु ४८२॥ भल्लातकं नतं शुण्ठी चित्रकं पिप्पली शटी। वचापृक्काप्रसारिण्यः पिप्पलीमूलमेव च ॥ ४८३ ॥ देवदारुशताह्वा च सूक्ष्मैलात्वक्च वालकम्। कुष्ठं व्याघ्रनखं मांसीवीरचन्दनशारिवाः ॥ ४८४ ॥ कस्तूर्यगुरुमञ्जिष्ठातुरुष्कनखकुंकुमम्। कर्पूरकुन्दुरुनिशालवङ्गध्यामसैंधवम्॥४८५॥ कंकोलनलिकामुस्ताकालीयोत्पलपत्रकम्। शटीहरेणुशैलेयश्रावीसभ्रकशेरुकम् ॥ ४८६ ॥ त्रिफलाकच्छुराभीरुसरलापद्मकेसरम्। प्रियंगूशीरजलदं जीवकाद्यपुनर्नवा ॥ ४८७ ॥ दशमूलाश्वगन्धा च नागपुष्पं रसांजनम्। कटुकाजातिपूगानां फलानि सल्लकीरसम्॥४८८॥ भागांस्त्रिपलिकान्दत्त्वा शनैर्मृद्वग्निना पचेत्। आयसे वाथ ताम्रे वा सुदृढे मृन्मयेऽपि वा ॥ ४८९ ॥ प्रयोगः षड्विधश्चापि रोगार्त्तानां विधीयते। अभ्यङ्गात्त्वग्गतं हन्तिपानात्कोष्ठगतं तथा॥३९०॥ भोजनात्सूक्ष्मनाडीस्थान्नस्यादूर्ध्वगतांस्तथा। आमाशयगते बस्तिर्निरूहः सर्वकायिके ॥ ४९१ ॥ एतद्धि वडवाशानां किशोराणां यथामृतम्। एतदेव मनुष्याणां कुञ्जराणां गवामपि ॥ ४९२ ॥ अनेनैव च तैलेन शुष्यमाणा महाद्रुमाः। सिक्ताः पुनः प्ररोहन्ति भवन्ति फलशालिनः ॥ ४९३ ॥ वृद्धोऽप्यनेन पीतेन पुनश्च तरुणो भवेत्। अप्रसूता च या

नारी सा पीत्वाऽपि प्रसूयते ॥ ४९४ ॥ अप्रजः पुरुषो यश्च सोऽपि पीत्वा लभेत्सुतम् । अशीतिं वातजात्रोगान्पैत्तिकान्श्लैष्मिकानपि ॥ ३९५ ॥ सन्निपातसमुत्थांश्च नाशयेत्क्षिप्रमेव च । एतेनांधकवृष्णीनां कृतं पुंसवनं महत् । पुष्टिवर्णबलश्चाशु तैलमेतत्प्रदापयेत् ॥ ४९६ ॥

मूल, पत्र और शाखासमेत प्रसारिणी ३०० पल, शतावर १०० पल, असगंध १०० पल, केतकी १०० पल, दशमूलकी प्रत्येक औषधि १००—१०० पल, खिरेंटी १०० पल और पियावाँसा १०० पल; इन सबको १०० द्रोणजलमें पकावे । जब पकते २ सौवाँभाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे, फिर इसकाथमें दुगुनी साठी कांजी, दहीका तोड एक आढक, दूध एक आढक, शुक्तनामवाली कांजी एक आढक, ईखका रस एक आढक, मांसरस एक आढक और तिलका तेल एक द्रोण, तथा भिलावे, तगर, सोंठ, चीता, पीपल, कचूर, वच, असवरग, प्रसारिणी, पीपलामूल, देवदारु, सौंफ, छोटी इलायची, दालचीनी, सुगंधवाला, कूठ, बावनख, बालछड़, खस, चन्दन, शारिवा, कस्तूरी, अगर, मजीठ, शिलारस, नख, केशर, कपूर, कुन्दुरु, हलदी, लौंग, रोहिसतृण सैंधानमक, कंकोल, नलिका, नागरमोथा, लाल चन्दन, कमल, तेजपत्र, कचूर, रेणुका, भूरिछरीला, कशेरु, त्रिफला, कौंछ, शतावर, धूपसरल, कमलकेशर, फूलप्रियंगु खस, नागरमोथा, जीवनीयगणकी औषधियें, पुनर्नवा, दशमूल, असगन्ध, नागकेशर, रसौत, कुटकी, जायफल, सुपारी और सलाईका रस ये प्रत्येक तीन २ पल लेकर कल्क बनाकर मिला देवे फिर लोहेके या तांबेके अथवा मिट्टीके उत्तम और दृढवर्तनमें धीरे २ मन्द २ अग्निसे तेलको सिद्ध करे । इसको सब रोगियों को छः प्रकारसे व्यवहार करावे, इसकी शरीरपर मालिश करनेसे त्वचागत रोग दूर होते हैं । पीनेसे कोष्ठगत रोग दूर होते हैं । भोजनमें प्रयोग करनेसे सूक्ष्म नाडीगत रोग दूर होते हैं । नस्यकर्ममें प्रयोग करनेसे ऊर्ध्वगत रोग दूर होते हैं । बस्तिकर्म्ममें प्रयोग करनेसे आमाशयगत रोग नष्ट होतेहैं और निरूहवस्तिमें प्रयोग करनेसे सर्व शरीरगत रोग नष्ट होते हैं । यह तेल—युवा, घोड़े घोडियोंको अमृतके समान है और मनुष्य, हाथी एवं गायोंको अत्यन्त हितकारी है, इस तेलसे सूखे वृक्षोंको सींचनेसे वे फिर पत्ते, फूल फलसहित होकर हरेभरे हो जाते हैं । इस तेलको यदि वृद्ध मनुष्य भी पान करें तो फिर तरुणके समान हो जाता है । जिन स्त्रियोंके बालक उत्पन्न नहीं होते उनके इसके सेवन करनेसे अवश्य सन्तान उत्पन्न होती है । जिन मनुष्योंके वीर्य्यदोषके कारण सन्तान उत्पन्न नहीं होती उनके इसके सेवन करनेसे पुत्र उत्पन्न होता है । यह तेल अस्सीप्रकारके वातरोग, चालीस पित्तके रोग और बीस कफके रोग तथा अन्यान्य द्वन्द्वज और सान्निपातिक रोगोंको निश्चय दूर कर देता है । इस तेलके प्रभावसे अंधक वृष्णि नामक यादवोंके पुत्रोत्पत्ति हुई थी । यह तेल--पुष्टि, वर्ण और बलको शीघ्रही उत्पन्न करता है ॥ ४७८—४९६ ॥

अजितप्रसारिणतैल ।

शरत्सु संपक्वसुजातसारप्रसारिणीमूलशतं विशुद्धम् । दशैव मूलानि बलाश्वगन्धाशतावरीसाहचरं श्वदंष्ट्रा ॥ ४९७ ॥ रास्नात्मगुप्तामृतवृश्चिकानां शतं शतश्चापि सुकुट्टितं च । पृथक्पृथक्त्वाढकसंमितानां कुलुत्थकोलांश्च यवांश्च दद्यात् ॥ ४९८ ॥ द्रोणैस्तु षड्भिर्विपचेज्जलस्य द्रोणावशेषेषु पचेद्धि तत्र । तैलाढकं मांसरसाढकश्च दध्याढकं क्षीरचतुर्गुणश्च ॥ ४९९ ॥ शुक्ताढकं मूलरसाढकश्च मस्त्वाढकश्चाढककाञ्जिकश्च । द्रव्यैः समैरर्द्धपलांशिकैश्च सुसूक्ष्मपिष्टैर्दृषदि प्रयत्नात् ॥ ५०० ॥ रास्नाशताह्वाऽगुरुदारुयुक्तं मञ्जिष्ठयष्टीमधुकं नताब्दम् । मांसीवचासैन्धवचित्रकश्च क्षारं यवानां सरलं कृमिघ्नम् ॥ ५०१ ॥ आरुष्करं पुष्करमूलकुष्ठं सपि-

प्पली पिप्पलिमूलचव्यम् । मेदायुगश्चार्षभकावुभौ च काकोलियुग्मं मरिचं त्वगेलम् ॥५०२॥शृङ्गीशठीव्याघ्रनखं सचोचं स्पृक्कागजाह्वामदनं सशुण्ठी। सकेशरं चन्दनपत्रचोरं त्रिकण्टशृङ्गाटककोलकश्च॥५०३॥ ऋद्धिं समृद्धिं रजनीमृणालं यवान्यजाजी त्वजमोदकश्च । पञ्चाशदन्तानधिकांश्चतुर्भिः क्षिप्त्वा विपाच्यं मृदुनाग्निना च ॥ ५०४ ॥ संपूज्य विप्रान्भिषजोऽवतार्य्य शान्तिं तथा स्वस्त्यवधार्य्य कुम्भे। क्षिप्त्वा च संपूज्य गृहे सुगुप्ते तत्स्थापयेत्तैलवरं प्रयत्नात् ॥ ५०५ ॥ यान्यान्विकारान्विनिहन्ति युक्तं नियुज्यते यत्र यथा निबोध मे। ये पङ्गवः पीठविसर्पिणश्च सङ्कोचितस्नायुशिराश्च कुब्जाः ॥ ५०६ ॥ गतिप्रनष्टा विनताश्च खञ्जाः सन्ध्यस्थिसंपीडितभग्नगात्राः। मन्यासु पृष्ठे भुजकण्ठकट्यां स्तम्भं नृणां मारुतजं निहन्ति ॥ ५०७ ॥ एकाङ्गसर्वाङ्गजमप्यशेषं वातं जयेदर्दितशोथकंडूः। स्तम्भं जयेच्चापकृताभिधानं बाह्यान्तरायामहनुग्रहश्च ॥ ५०८ ॥ ये वातसंग्राह्यतिजर्जिताङ्गा विश्लिष्टजान्वस्थिकटीकपालाः । सन्धिच्युताः स्तब्धतमाः शिराश्च भवन्ति सर्वेऽपि पुनर्नवास्ते ॥ ५०९ ॥ स्नाय्वस्थिसन्ध्यूरुगवातशूलं शिरोभवं गात्रभवं निहन्ति । कर्म्मायथार्थप्रभवश्च शूलं सर्वाङ्गमेकाङ्गगमाशु हन्ति ॥ ५१० ॥ स्त्रीणाञ्च योन्युद्भववस्तिशूलं वृद्धेन वातेन च रक्तजश्च। पुंसाञ्च शुक्रक्षयमागते च शूलं तथा मेढ्रगतं निहन्ति ॥ ५११ ॥ क्षीणेन्द्रिया ये विकलाश्च गद्गदाः स्मृत्या विहीनाः पुनरुक्तवाचः । निरुद्धवाचस्त्वथ कश्मला ये स्त्रियश्च याः स्युः प्रजया विहीनाः॥ ५१२ ॥ दुष्टेन्द्रिया ये पुरुषाश्च तेषां प्रसारिणी चैव हिता क्रियासु । विशोधयेदार्त्तवशुक्रदोषान् प्रजाकरी स्यात्स्मृतिदा प्रदिष्टा ॥ ५१३ ॥ प्रत्याध्मानाध्मानमाहार्त्तिकोष्ठं जृम्भोद्गारं कर्णनादं क्षतश्च। वातोन्मादं वातजापस्मृतिश्च शाखावातं गृध्रसीं चापि हन्ति॥ ५१४ ॥ रोगाञ्जयेद्वातभवानशीतिं मिश्रांस्तथा वातकफोद्भवांश्च । सेवन्ति ये शूलजितां प्रसारिणीमभ्यङ्गपानाशननस्यबस्तिभिः ॥ ५१५ ॥ भवन्ति ते चाप्याजिताः सदामयैर्विष्णुर्यथाऽभूदजितः सुरारिभिः ॥ ५१६ ॥ अजिता नामतः ख्याता वातरोगैर्न जीयते । क्षीणजर्जरिताङ्गानां वातसङ्कोचितात्मनाम् ॥ ५१७ ॥ प्रसारयति चाङ्गानि तेन प्रोक्ता प्रसारिणी।अभ्यंगैस्त्वग्गतं हन्ति पाने नाडीगतं तथा ॥ ५१८ ॥ भोजनेन तु कोष्ठस्थान्नस्येनोर्ध्वगतान्गदान् । अधोगान्बस्तिदानेन सर्वान्हन्ति प्रसारिणी ॥ ५१९ ॥ सकलभुवनरोगानुग्रवीर्य्यान्निहन्ति प्रतिहतविषमाग्नीरूपसंपत्स्वभावः। उपचितसमगात्रः कान्तिलावण्ययुक्तो भवति च बलवान्वा जाठरेऽग्नौ प्रदीप्ते ॥५२०॥ तुरगजवसमः स्याद्गृध्रदृष्टिर्वपुष्मान्श्रुतिमयूरसमः स्याद्धारयेद्विश्रुतश्च। स्मृतिमतिधृतियुक्तः स्पष्टवाक् स्पष्ट-

चित्तः स्फुरपटुगुणयुक्तः शुद्धशुक्रः प्रजावान् ॥ ५२१ ॥ विषगदविनिहन्ता यद्वदेवादरः स्यात् पवनगदनिहन्ता तद्वदेवाशु दृष्टिः । अमृतमिव सुराणां नागराजं सुधैव भवति च पुरुषाणां तद्वदेतद्धि तैलम् ॥ ॥ ५२२॥ प्रसारिण्यश्वगन्धा च नागराख्या बला तथा । नित्यमार्द्रा प्रयोक्तव्या भागतो द्विगुणा मता ॥५२३॥

शरदृऋतुमें पकी हुई ऐसी उत्तम प्रसारिणीकी जड१००पल, दशमूलकी समस्त औषधियें, खिरैंटी असगंध, शतावर, पियावाँसा, गोखरू, रायसन, कौंछ, गिलोय, वृश्चिकपर्णी (विछाटी), प्रत्येक सौ २ पल, कुलथी, बेर और जौ ये प्रत्येक औषधि एक एक आढक परिमाण लेकर कूट लेवे। फिर सबको छ द्रोण जलमें पकावे । जब पकते २ जल केवल एक द्रोण शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे । फिर इस काथमें तेल एक आढक, मांसका रस एक आढक, दही एक आढक, दूध ४ आढक, शुक्तनामवाली कांजी एक आढक,मूलीका रस एक आढक, दहीका तोड एक आढक और कांजी एक आढक इन सबको एकत्र करे तथा इसमें रायसन, सौंफ, अगर, देवदारु, मजीठ, मुलैठी, महुआ, तगर, नागरमोथा, वालछड, वच, सैंधानमक, चीता, जवाखार,धूपसरल, वायविडंग, भिलावे, पोहकरमूल,कूठ, पीपल, पीपलामूल, चव्य, मेदा, महामेदा,जीवक, ऋषभक काकोली,क्षीरकाकोली,कालीमिरच, दालचीनी, इलायची,काकडाशिंगी,कचूर,वाघनख, सुपारी,असवरग, गजपीपल, मैनफल, सोंठ, नागकेशर, चन्दन, तेजपात, भटेउर, गोखरू, सिंघाडे, कंकोल,ऋद्धि,वृद्धि, हलदी, कमलकी नाल, अजवायन, जीरा और अजमोद ये प्रत्येक औषधि दो दो तोले लेकर कल्क बनाकर मिला देवे, फिर विधिपूर्वक मंद मंद अग्निसे तेलको पकावे । जब यह तेल सिद्ध होजाय तब वैद्य प्रथम ब्राह्मणोंकी पूजा करके तथा अन्यान्य स्वस्तिवाचक मंगल कार्य करके उत्तम गुप्त और पवित्र घरमें देवतादिका पूजन करके इस तेलको उतारकर विधिपूर्वक स्थापन करे । यह तेल जिन जिन रोगोंको दूर करता है उन उनको कहता हूँ। जो मनुष्य पंगु हैं जो पीठसे खिचडते हैं, जिनकी स्नायु शिरा सकुच गई हैं, जो मनुष्य कुबडे हैं, जिनकी गमन करनेकी शक्ति नष्ट होगई हैं जो मनुष्य नव गये है, जो खंज हैं, जिनकी संधि और अस्थि दबगई हैं,जिनके गात्र टूट गये हैं, जिनकी मन्यानाडी, पृष्ठ, हाथ, कण्ठ और कमर जकड गई हैं उनके लिये यह तेल अत्यंत हितकारी है । यह सब प्रकारके वातरोगोंको दूर करता है,एवं एकांगवात, सर्वांगवात, अर्दित, सूजन, खुजली और स्तम्भवातको नष्ट करता है, बाह्य और आभ्यन्तरायाम एवं हनुग्रहको नष्ट करता है । जो मनुष्य वातकी वेदनासे पीडित हैं, जिनका शरीर जरासे जर्जर होगया है, जिनकी जानुकी अस्थि, कमरकी अस्थि और कपालकी अस्थि विचलित होगई हैं,जिनकी संधि शिथिल होगई हैं और जिनकी शिरा स्तब्ध होगई हैं वे मनुष्य इस तेलके प्रभावसे फिर नवीन अवस्थाको प्राप्त होजाते हैं यह तेल-स्नायु अस्थि,संधि,ऊरु,शिरोगत और शरीरगत वातशूलको नष्ट करता है । इसको यथाविधिसे व्यवहार करनेसे सर्वप्रकारके शूल, सर्वांगशूल, एकांगशूल, स्त्रियोंके योनिगतशूल,बस्तिशूल, कुपित वातजनितशूल,रुधिरजनितशूल, पुरुषोंके शुक्रक्षयजनितशूल, मेढ्रगतशूल, एवं जो मनुष्य क्षीणेन्द्रिय हैं, विकल हैं, जो गद्गद भाषण करते हैं,जिनकी स्मरण शक्ति नष्ट होगई है, जिनसे स्पष्ट नहीं बोला जाता, जो रुक रुक कर बोलते हैं,जो कश्मल हैं,जिन स्त्रियोंके संतान उत्पन्न नहीं होती, जिन मनुष्योंकी इन्द्रियें दुष्ट हैं उनके लिये यह अत्यंत हितकारक और संकुचित अंगोंको फैलानेवाला है । यह तेल--आर्त्तव और वीर्य्यके दोषोंको शुद्ध करनेवाला है । संतानको उत्पन्न करनेवाला और स्मरण शक्तिको बढानेवाला है । तथा प्रत्याध्मान, अजीर्णकी पीडा, कोष्ठगतपीडा, जृम्भा, उद्गार (डकार), कर्णनाद, क्षत, वातोन्माद,वातज-अपस्मार, शाखागतवात, गृध्रसीवात,अस्सी प्रकारके वातरोग, मिश्रितवातरोग, और वातकफजनित रोग इन सबको दूर करता है ।जो मनुष्य शूलके जीतनेवाले इस अजितप्रसारिणीतेलको अभ्यंग,पान,भोजन नस्य और बस्तिकर्म्मके द्वारा सेवन करतेहैं वे सदैव सब रोगोंको जीत लेते हैं । इसको 'अजित' ऐसा कहते हैं इसके सामने वातरोग नहीं जी सकते । जिन मनुष्योंका शरीर क्षीण और जर्जर होगयाहै,जिनके

वातके कारण अंग सकुच गये हैं उनके अंगोंको यह फैला देता है इस कारण इसको प्रसारिणी तेल कहते हैं। इस तेलकी मालिश करनेसे-त्वचाके रोग नष्ट होते हैं। पान करनेसे--नाडीगत रोग नष्ट होते हैं। भोजनमें व्यवहार करनेसे-कोष्ठगतरोग दूर होते हैं। नस्यकर्म्ममें प्रयोग करनेसे--ऊर्ध्वगतरोग नष्ट होते हैं। बस्तिकर्म्ममें प्रयोग करनेसे-अधोगत रोग नष्ट होते हैं। इस प्रकार यह प्रसारिणी तैल-सर्वप्रकारके रोगोंको दूर करता है। यह प्रसारणीतैल सम्पूर्ण संसारके रोगोंको दूर करता है, विषम अग्निको ठीक करता है, रूप और स्वभावको यथा अवस्थामें स्थित करता है, सम्पूर्ण अंगोंको सुडौल, कांति और लावण्यता युक्त करता है तथा बलको उत्पन्न करता और जठराग्निको दीपन करता है। यह घोडेके समान गति, गृध्रकी समान दृष्टि, मयूरके समान शब्द और अनेक शास्त्रोंको धारण करनेका सामर्थ्य उत्पन्न करता है। इससे स्मरणशक्ति, मति और धारणाशक्तिकी वृद्धि होती है तथा वचनमें स्पष्टता और चित्तमें प्रसन्नता होती है, शरीरमें स्फूर्ति और पटुतादि गुण उत्पन्न होते हैं। उसका वीर्य्य शुद्ध और अनेक पुत्रोंको उत्पन्न करता है। यह तेल सर्वप्रकारके विषके विकारोंको और सर्वप्रकारके वातके विकारोंको नष्ट करता है तथा दृष्टि शक्तिको बढाता है। जिस प्रकार देवताओंके लिये अमृत और नागेंद्रके लिये सुधा है उसी प्रकार मनुष्योंके लिये यह तेल है। प्रसारिणी, असगन्ध और गंगेरन ये सदैव गीली और भागमें दुगुनी लेनी चाहिये ॥ ४९७–५२३ ॥

रसोनतैल ।

रसोनकल्कस्वरसेन सिद्धं तैलं पचेद्यस्त्वनिलामयार्त्तः । तस्याशु नश्यन्ति च वातरोगा ग्रन्था विशाला इव दुर्गृहीताः ॥ ५२४ ॥

लहसुनके कल्क और स्वरसके द्वारा तेलको सिद्ध करे । इस तेलको सेवन करनेसे सर्वप्रकारकी वातजनित पीडा और सम्पूर्ण वातके रोग नष्ट होते हैं ॥ ५२४ ॥

मूलकादितैल ।

बालमूलकमापीड्य तैलं दध्याम्लकाञ्जिकम् । क्षीरञ्चैवाढकं दद्यात्पचेत्कल्कैः पलोन्मितैः ॥ ५२५ ॥ रास्ना भल्लातकं शिग्रु सैन्धवं गजपिप्पली । बला चातिबला शुण्ठी पिप्पली चित्रकं वचा ॥ ५२६ ॥ श्वदंष्ट्रा चेति तत्पक्कं वातश्लेष्मामयापहम् । ब्रध्मगृध्रसिपंगुत्वं खञ्जं वै सापतानकम् ॥ ॥ ५२७ ॥ कट्यूरुस्तम्भनं शोषं पर्वस्तम्भप्रकम्पनम् । हन्याद्गुल्मञ्च वातोत्थं बलवर्णाग्निवर्धनम् । वन्ध्यानां पुत्रदश्चैव तैलमूलकसाह्वयम् ॥ ५२८ ॥

कच्ची मूलीको कुचलकर उसका रस निचोड लेवे, फिर उस रसमें तिलका तेल, दही, खट्टी कांजी और दूध ये सब एक एक आढक तथा रायसन, भिलावे, सहिंजना, सैंधानमक, गजपीपल, खिरैंटी, कंघी, सोंठ, पीपल, चीता, वच और गोखरू; प्रत्येक औषधिका कल्क चार चार तोले लेवे, सबको यथाविधिसे मिलाकर विधिपूर्वक तेलको सिद्ध करे । यह तेल-वात और कफके रोगोंको दूर करनेवाला है। तथा ब्रध्म गृध्रसी, पंगुता, खञ्जता, अपतानक, कटिस्तम्भ, ऊरुस्तंभ, शोष, पर्वस्तंभ, प्रकम्प और वातजनित गुल्म इन सबको दूर करता है तथा बल, वर्ण और अग्निको बढानेवाला है, वन्ध्यास्त्रियोंको पुत्र देनेवाला है ॥ ५२५ ॥ ५२६ ॥ ५२७ ॥ ५२८ ॥

दशमूलादि तैल ।

दशमूलं बला रास्ना चाश्वगन्धा पुनर्नवा । गुडूच्यैरण्डपूतीकभार्ङ्गीवृषकरोहिषम् ॥ ५२९ ॥ शतावरीसहचराकाकनासापलोन्मिता । यवमाषातसीकोलकुलत्थाः प्रसृतोन्मिताः ॥ ॥ ५३० ॥ चतुर्द्रोणेऽम्भसः पक्त्वा द्रोणशेषेण तेन तु । तैलाढकं समक्षीरं जीवनीयैः पचेच्छनैः ॥ ५३१ ॥ अनुवासनमेतद्धि सर्ववातविकारनुत्॥

दशमूल, खिरैंटी, रायसन, असगन्ध, पुनर्नवा, गिलोय, अण्डकी जड, दुर्गन्धकरंज भारंगी, अडूसा

रोहिसतृण, शतावर, पियाबाँसा और कौआठोडी ये प्रत्येक औषधि चार २ तोले, जौ, उडद, अलसी, बेर और कुलथी ये प्रत्येक औषधि आठ आठ तोले परिमाण, इन सबको चार द्रोण जलमें पकावे । जब पकते पकते एक द्रोण जल शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे । फिर इस काथमें एक आढक परिमाण तेल और बराबरका दूध मिलाकर तथा जीवनीय गणकी औषधियोंके कल्कके द्वारा तेलको सिद्ध करे । इस तेलको अनुवासनवस्तिके द्वारा प्रयोग करे तो सर्वप्रकारके वातविकार नष्ट होते हैं॥५२९-५३१ ॥

अश्वगन्धादितैल ।

शतं पक्त्वाश्वगन्धाया जलद्रोणेऽशेषितम् । विस्राव्य विपचेत्तैलं क्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम् ॥ ५३२ ॥ कल्कैर्मृणालशालूकविशकिञ्जल्कमालतीः । पुष्पैर्ह्रीबेरमधुकशारिवापद्मकेसरैः ॥ ५३३ ॥ मेदापुनर्नवाद्राक्षामञ्जिष्ठाबृहतीद्वयैः । एलैलवालुत्रिफलामुस्तचन्दनपद्मकैः ॥ ५३४ ॥ पक्वं रक्ताश्रयं वातरक्तापित्तमसृग्दरम् । हन्यात्पुष्टिबलं कुर्य्यात्कृशानां मांसवर्धनम् ॥ ५३५ ॥ रेतोयोनिविकारघ्नं व्रणशोथापकर्षणम् । षंढानपि वृषान्कुर्य्यात्पानाभ्यङ्गानुवासनैः ॥ ५३६ ॥

उत्तम असगंध १०० पल लेकर एक द्रोण जलमें पकावे । जब पकते पकते जल चौथाई भाग शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे । फिर उस काथमें तेल १ प्रस्थ और चौगुना दूध तथा कमलकी नाल, भसीडे, कमलकंद, कमलकी केशर, मालतीके फूल, सुगंधवाला, मुलैठी, शारिवा, पद्माख, केशर, मेदा, पुनर्नवा, दाख, मजीठ, कटेरी, बडी कटेरी, इलायची, एलुआ, त्रिफला, नागरमोथा, चंदन और पद्माख इनका कल्क डालकर विधिपूर्वक तैलको सिद्ध करे। यह तैल—रक्तवात, रक्तपित्त और रक्तप्रदरको दूर करता है । पुष्टि और बलको बढाता है। कृश मनुष्योंके मांसको बढानेवाला, शुक्र और योनिविकारको नष्ट करनेवाला, एवं व्रण, शोथको अपकर्षण करनेवाला और नपुंसकोंको पुरुष बनानेवाला है। इसको पान, अभ्यंग और अनुवासनबस्तिमें प्रयोग करे ॥ ५३२—५३६ ॥

शतावरीतैल ।

शतावरीरसप्रस्थं क्षीरप्रस्थसमान्वितम् । तैलप्रस्थं पचेदेभिः समस्तैर्गोमयाग्निना ॥ ५३७ ॥ शतावरी सांशुमती पृष्ठपर्णी बलाद्वयम् । अश्वगन्धा च बिल्वश्च श्वदंष्ट्रा पौड्रकं तथा ॥ ५३८ ॥ निष्क्वाथ्य मूलमेतेषां तस्मिंस्तैले विनिःक्षिपेत् । शतपुष्पा देवदारु मांसी शैलेय कंबला ॥ ५३९ ॥ चन्दनं तगरं कुष्ठमेला चांशुमती वचा । वृद्धिजीवककाकोलिमेदामधुकमुत्पलम् ॥ ५४० ॥ सर्वमेतत्समाहृत्य कल्कैरक्षसमन्वितैः । पाने बस्तौ तथाभ्यङ्गे नस्ये चैव प्रदापयेत् ॥ ५४१ ॥ अङ्गशूलं शिरःशूलं मेहदण्डापतानकम् । वातरक्तं सदाहञ्च वातपित्तार्दितं गदम् ॥ ५४२ ॥ शोथपाण्ड्वामयप्लीहकामलागरगृध्रसीः। योनिशूलमसृग्दोषमाध्मानं विनिहन्ति च ॥५४३॥ क्षीणशुक्रौजसां पुंसां शस्तं वन्ध्यासुतप्रदम् । शतावरीतैलमिदं कृष्णात्रेयेण पूजितम् ॥ ५४४ ॥

शतावरका रस १ प्रस्थ, दूध १ प्रस्थ और उत्तम तिलका तेल १ प्रस्थ इन सबको एकत्र करके इनमें शतावर, पृश्निपर्णी, खिरैंटी, शालिपर्णी, कंघी, असगंध, बेलगिरी, गोखरू और ईख इन सबका काढा और सौंफ, देवदारु, बालछड, भूरिछरीला, खिरैंटी, चंदन, तगर, कूठ, इलायची, शालिपर्णी, वच, वृद्धि, जीवक, काकोली, मेदा, मुलैठी और कमल, प्रत्येक औषधिका कल्क दो दो तोले डालकर उत्तम विधिसे तेलको आरनेउपलोंकी अग्निके द्वारा पकावे । इस तेलकोपान, बस्ति, अभ्यंगऔर नस्यकर्म्ममें प्रयोगकरे ।

यह तेल—अंगशूल, शिरःशूल, प्रमेह, दण्डापतानक, दाहयुक्तवातरक्त, वातपित्तजनितरोग, सूजन, पांडुरोग, प्लीहा, कामला, विषदोष, गृध्रसी, योनिशूल, रुधिरविकार और अफारेको दूर करता है । यह तेल क्षीणशुक्र और क्षीणओजवाले मनुष्योंको अत्यंत हितकारी है और वंध्या स्त्रियोंके पुत्रको उत्पन्न करनेवाला है । यह शतावरी तैल—कृष्णात्रेयकरके पूजित है॥ ५३७—५४४ ॥

पथ्य ।

सर्पिस्तैलवसामज्जापानाभ्यञ्जनबस्तयः । स्वेदोऽग्निना निवातश्च स्थानं प्रावरणानि च ॥ ५४५ ॥ रसः पयांसि भोज्यानि स्वाद्वम्ललवणानि च । बृंहणं यच्च तत्सर्वं प्रशस्तं वातरोगिणाम् ॥ ५४६ ॥

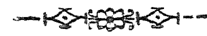
घी, तेल, वसा और मज्जा इनको पान, अभ्यञ्जन और बस्तिकर्म्ममें प्रयोग करना । अग्निके द्वारा स्वेद देना, वातरहित स्थानका सेवन और अनेक प्रकारके उष्णआवरण गर्म कपडे ओढना, मांसरस, दूधका भोजन, मधुर, अम्ल और लवण रसवाले पदार्थ और पुष्टिकारक पदार्थ ये सब वातरोगमें हितकारक हैं ॥ ५४५ ॥ ५४६ ॥

साध्यासाध्य ।

हनुस्तम्भार्दिताक्षेपपक्षाघातापतानकाः । कालेन महता वाता यत्नात्सिद्ध्यन्ति वा न वा ॥ ५४७ ॥ नवान्बलवतश्चैतान्साधयेन्निरुपद्रवान् ॥ ५४८ ॥ विसर्पदाहरुक्सङ्गमूर्च्छारुच्यग्निमार्दवैः । क्षीणमांसबलं वाता घ्नन्युः पक्षवधादयः ॥ ५४९ ॥ क्षीणं सुप्तत्वचं भग्नं कम्पाध्मानानिपीडितम् । रुजार्त्तिमन्तश्च नरं वातव्याधिर्विनाशयेत् ॥ ५५० ॥ अव्याहतगतिर्य्यस्य स्थानस्थाः प्रकृतिस्थिताः । वायुः स्यात्सोऽधिकं जीवेद्वीनरोगः समाः शतम् ॥५५१॥

हनुस्तम्भ, अर्दित, आक्षेपक, पक्षाघात और अपतानक ये रोग बहुत दिनोंमें धनवान्के बडे परिश्रम और यत्नोंसे साध्य होते हैं अथवा नहीं भी होते हैं। परन्तु थोडे दिनोंके उत्पन्न हुए और उपद्रवरहित बलवान् मनुष्योंके हुए हों तो चिकित्सा करनी चाहिये । विसर्प, दाह, वेदना, मलमूत्रका अवरोध, मूर्च्छा, अरुचि और मन्दाग्नि, इन सब उपद्रवोंसे युक्त पक्षाघातादि वातरोग, कृश और दुर्बल मनुष्योंका नाश करते हैं। क्षीण, जिसका स्पर्शज्ञान नष्ट होगया हो, जिसकी अस्थि भंग होगई हों, कम्प और आध्मानसे दुःखित, पीडायुक्त ऐसे मनुष्योंको यह वातरोग नष्ट करदेता है । जिसके शरीरमें रहनेवाली वायु दूषित नहीं हुई हो, यथास्थानमें अवस्थित हो, जिसकी गति न रुके वह मनुष्य नीरोगी होकर एकसौ वर्षतक जीता रहता है ॥५४७—५५१॥

अर्दितरोगका निदान ।



उच्चैर्व्याहरतोऽत्यर्थं खादतः कठिनानि च । हसतो जृम्भतो भाराद्विषमाच्छयनासनात् ॥ ५५२ ॥ शिरोनासौष्ठचिबुकललाटेक्षणसन्धिगः । अर्दयत्यनिलो वक्त्रमर्दितं जनयत्यतः ॥ ५५३ ॥ वक्रीभवति वक्त्रार्धं ग्रीवाश्चाप्यपवर्त्तते । शिरश्चलति वाक्सङ्गो नेत्रादीनाञ्च वैकृतम्॥५५४॥ ग्रीवाचिबुकदन्तानां तस्मिन्पार्श्वे च वेदना । तमर्दितमिति प्राहुर्व्याधिं व्याधिविचक्षणाः ॥ ५५५ ॥

ऊंचे स्वरसे पढनेसे या बोलनेसे सुपारी आदि कठिन पदार्थोंके खानेसे, बहुत जोरसे हँसनेसे, बहुत जँभाई लेनेसे, बोझके ढोनेसे, विषमस्थानमें शयन करनेसे और विषम (टेढे, तिरछे होकर) बैठनेसे मस्तक, नासिका, होंठ, ठोडी, ललाट और नेत्रोंकी संधियोंमें रहनेवाली वायु कुपित होकर एक ओरके मुखको टेढा करके अर्दितरोगको उत्पन्न करती है। इसमें आधा मुख टेढा होजाता है, गर्दन मुडती नहीं,

शिर हिलने लगता है, बोला नहीं जाता, नेत्र आदि विकृत होजाते हैं। जिस अंगकी ओर उसी ओरकी गर्दन टेढी तथा ठोड़ी और दांतोंमें दर्द होता है रोगके ज्ञाता विद्वान् वैद्य उसको आर्दितरोग कहते हैं ॥५५२--५५५ ॥

वातार्दितके लक्षण ।

वातात्पित्तात्कफाच्च स्यात्त्रिविधः स समासतः । लालास्रावो व्यथा कम्पः स्मरणं वाग्घनुग्रहः । ओष्ठयोः श्वयथुः शूलमर्दिते वातजे भवेत् ॥ ५५६ ॥

आर्दितरोग वातज, पित्तज और कफज इन भेदोंसे तीन प्रकारका है। वातजनित आर्दितरोगमें मुखसे लारका गिरना, शरीरमें पीडा, कम्प, अंगोंका फडकना, वाणी और ठोडीका जकडना, होठोंमें सूजन और शूल होता है ॥ ५५६ ॥

पित्तजनित अर्दितके लक्षण ।

पीतमास्यं ज्वरस्तृष्णा पित्तजे मोहधूपने ।

पित्तजनित आर्दितरोगमें मुखपर पीलापन, ज्वर, तृषा, मोह और धुँआसा होता है ॥

कफजनित अर्दितके लक्षण ।

गण्डे शिरसि मन्यायां शोफः स्तम्भः कफात्मके ॥ ५५७ ॥

कफजनित आर्दितरोगमें गण्डस्थल, शिर, मन्यानाडीमें सूजन और स्तम्भ होता है ॥ ५५७ ॥

मिश्रित अर्दितके लक्षण ।

भाविनो लक्षणं तस्य वेपथुर्नेत्रमाविलम् ॥ ५५८ ॥

मिश्रित आर्दितरोगमें उन्हीं उन्हीं दोषोंके लक्षण होते हैं, तथा सूजन और नेत्रोंमें गदलापन होता है ५५८

असाध्यलक्षण ।

क्षीणस्यानिमिषाक्षस्य प्रशस्ताव्यक्तभाषिणः । न सिध्यत्यर्दितं गाढं त्रिवर्षं वेपनस्य च ॥ ५५९ ॥

जो मनुष्य अत्यंत क्षीण होगया हो, जो स्पष्टरूपसे नहीं बोलसके, जिसके आँखोंके पलक नहीं लगते, रोगको उत्पन्न हुए तीन वर्ष बीत चुके हों अथवा नाक, मुख और नेत्रोंमेंसे पानी स्रवता हो, कांपता हो वह आर्दितरोगी असाध्य जानना ॥ ५५९ ॥

अर्दितरोगकी चिकित्सा ।

स्नेहपानानि नस्यश्च भोज्यान्यनिलहानि च । उपनाहाश्च शस्यन्ते स्वेदनं बस्तयो हिताः ॥ ५६० ॥

आर्दितरोगमें प्रथम स्नेहपान, नस्य, वातनाशक भोजन, उपनाह, स्वेदन और बस्तिकर्म ये सब हितकारी हैं ॥ ५६० ॥

दशमूलीकषायेण मातुलुङ्गरसेन च । बलायाः पञ्चमूल्या वा क्षीरं वातात्मके हितम् ॥ ५६१ ॥

वातजनित आर्दितरोगमें दशमूलके काथके साथ अथवा बिजौरे नींबूके रसके साथ या खिरैंटीके काथके साथ अथवा पंचमूलके काथके साथ दूधको पीवे ॥ ५६१ ॥

माषपिष्टकृतं जग्ध्वा नवनीतेन सोऽर्दिती । क्षीरं मांसरसैर्भुक्त्वा दशमूलीरसं पिबेत् ॥५६२ ॥

उडदकी पिट्ठीको नैनीघीके साथ खाना अथवा मांसके रसके साथ दूधको या केवल दशमूलके काथको पीना ये आर्दितरोगमें हितकारी हैं ॥ ५६२ ॥

बस्तावभ्यंगनस्ये च स्वेदयेत्तत्परः पुमान् । विबेदुपरि भुक्त्वाज्यमर्दितं स व्यपोहति ॥ ५६३ ॥

अर्दितरोगमें प्रथम बस्तिकर्म, अभ्यंग, नस्य और स्वेद देवे। पश्चात् ऊपरसे घीके साथ भोजन करे इससे अर्दित रोग दूर होता है ॥ ५६३ ॥

अर्दिते पित्तजे शीतान्स्नेहांश्चैव विनिर्दिशेत् । घृतबस्तिप्रसेकश्च क्षीरसेकं तथैव च ॥ ५६४ ॥

पित्तजनित अर्दितरोगमें शीतल स्नेह प्रयोग करे, तथा घृतके द्वारा बस्तिकर्म्म, प्रसेक और दूधके द्वारा सींचना ये सब हितकारक हैं ॥ ५६४ ॥

जिह्मीभूताननो मूको दाहवान्योऽर्दिती भवेत् । कुर्य्यात्प्रतिक्रियां तस्य वातपित्तविनाशिनीम् ॥ ५६५ ॥

अर्दितरोगमें जो रोगीका मुख टेढा होगया हो और वह गूँगा होजाय तथा दाह हो तो उसकी वातपित्तनाशक चिकित्सा करनी चाहिए ॥ ५६५ ॥

शिरसो रेचनं कार्य्यं द्रव्यैः पित्तहरैस्तथा । सतीक्ष्णनस्यपानेन पुराणस्यैव सर्पिषः ॥ ५६६ ॥

पित्तनाशक द्रव्योंके द्वारा शिरोविरेचन अर्थात् नस्य देवे तथा पुराने घृतको नासिकाके द्वारा पान करावे और तक्ष्णि नस्य देवे ॥ ५६६ ॥

श्लेष्मभागे क्षयं नीते बृंहणैस्समुपाचरेत् । अर्दिते शोथसंयुक्ते वमनं संप्रशस्यते ॥ ५६७ ॥

अर्दितरोगमें कफके क्षीण होनेपर पुष्टिकारक उपचार करे । सूजनयुक्त अर्दितरोगमें वमन कराना हितकारक है ॥ ५६७ ॥

दाहेन च समायुक्ते शिरसा रक्तमोक्षणम् ॥ ५६८ ॥

दाहयुक्त अर्दितरोगमें शिरमेंसे रुधिर निकलवावे ॥ ५६८ ॥

रसोनकल्कं तिलतैलमिश्रं खादेन्नरो योऽर्दितरोगयुक्तः । तस्यार्दितं नाशमुपैति शीघ्रं वृन्दं घनानामिव वायुवेगात् ॥ ५६९॥

लशुनके कल्कको तिलोंके तेलमें मिलाकर खानेसे अर्दितरोग शीघ्रही नष्ट होजाता है, जिसप्रकार वायुके वेगसे बादलोंका समूह नष्ट हो जाता है ॥ ५६९ ॥

दशमूलादि तैल ।

दशमूलीरसक्षीरजीवनीयविपाचितम् । तैलं हन्त्यर्दितं नस्यपानाभ्यङ्गानुवासनैः ॥ ५७० ॥

दशमूलके काथमें दूध और जीवनीयगणकी औषधियोंका कल्क डालकर तेलको पकावे । इस तैलको नस्य, पान, अभ्यंग और अनुवासन वस्तिके द्वारा प्रयोग करे तो अर्दितरोग नष्ट होता है ॥ ५७० ॥

क्षीरतैल ।

सतृणमहापञ्चमूलमाहृत्य, द्विगुणोदके क्षीरे निष्क्वाथ्य, क्षीरावशिष्टमवतार्य्य, विस्राव्य तैलप्रस्थेन सहोन्मिश्र्य पुनरग्नावधिश्रृत्य, विपाचयेत् । ततस्तैलानुगतमवतार्य्य, शीतीभूतमश्नीयात्, तदेतत् क्षीरतैलमर्दितानां पानादिषु प्रयोज्यम् । इति क्षीरतैलम् ॥

अब क्षीरतैल बनानेकी विधि कहते हैं--तृणमहापंचमूल लेकर दुगुने जल और दूधमें पकावे । जब पकते २ केवल दूध मात्र बाकी रहजाय तब उतारकर छान लेवे । फिर इसमें एक प्रस्थ तिलका तेल डालकर चूल्हेपै चढाकर पकावे, जब पकते२ केवल तेल बाकी रहजाय तब उतारकर छान लेवे; जब स्वयं शीतल होजाय तब इस क्षीरतैलको अर्दित रोगियोंके पानादिकमें प्रयोग करना चाहिए॥

वातव्याधिविधानमिह कुर्य्याद्विचक्षणः ।

इस अर्दितरोगमें वैद्यको उचित है कि, वातव्याधिमें जो विधान कहा है वह सब इसमें भी प्रयोग करे ।

गृध्रसीनिदान ।

स्फिक्पार्श्वरुकटीपृष्ठजानुजङ्घापदं क्रमात् । गृध्रसीस्तम्भरुक्तोदैर्गृह्णाति स्पंदते मुहुः । वाताद्वातबलासाभ्यां विज्ञेया सा द्विधा पुनः ॥ ५७१ ॥

कुपित हुई वायु-स्फिक् (कूला), गुदा, ऊरु, कमर, पीठ, जानु, जंघा और पांव इनको क्रमसे स्तम्भित करदे, अर्थात् इन सबको जकड देवे, इसमें तोडनेसरीखी पीडा, स्तम्भ और भयंकर वेदना हो तथा वारंवार कंप हो तो उसको गृध्रसी कहते हैं । यह गृध्रसी रोग वातिक और वातकफज ऐसे दो प्रकारका है ॥ ५७१ ॥

वातज गृध्रसीके लक्षण ।

वातजायां भवेत्तोदो देहस्यातीव वक्रता । जानुजङ्घोरुसन्धीनां स्फुरणं स्तब्धता भृशम् ॥ ५७२ ॥

वातजनित गृध्रसी रोगमें--शरीरमें तोडनेसरीखी पीडा, देहका टेढापन, तथा जानु, जंघा और ऊरु इनकी सन्धियोंमें स्फुरण (फडकना)और जकडना होती है ॥ ५७२ ॥

वातकफजनित गृध्रसीके लक्षण ।

वातश्लेष्मोद्भवायान्तु स्तैमित्यं वह्निमार्दवम् । तन्द्रामुखप्रसेकश्च भक्तद्वेषस्तथैव च ॥ ५७३ ॥

वातकफजनित गृध्रसीरोगमें शरीर भीजासा रहे। अग्निकी मन्दता, तन्द्रा, मुखसे पानीका गिरना और भोजनमें अरुचि ये सब लक्षण होते हैं ॥ ५७३ ॥

गृध्रसीचिकित्सा ।

सर्वत्राकर्षणं कुर्य्याद्रूक्षदीपनपाचनम् । तप्ततैलेष्टकास्वेदमर्दनं चोपनाहनम् ॥ ॥ ५७४ ॥ गृध्रस्यानन्तरं सम्यग्रेकेन वमनेन वा । ज्ञात्वा निरामदीप्ताग्निं बस्तिभिः समुपाचरेत् ॥ ५७५ ॥

गृध्रसीरोगमें--प्रथम सर्वत्र कर्षण चिकित्सा करे, तथा रूक्ष, दीपन और पाचन औषधियोंके द्वारा उपचार करे। एवं गरम तेल, इष्टका स्वेद, मर्दन और उपनाहन कर्म्म करे । गृध्रसीरोगमें अच्छेप्रकारसे प्रथम रोगीको विरेचन और वमन देवे। जब विरेचन और वमन देनेसे शुद्ध होकर आमरहित हो जाय तथा अग्नि दीपन होजाय तो बस्ति प्रयोग करे ॥ ॥ ५७४॥५७५ ॥

नादौ बस्तिविधिं कुर्य्याद्यावदूर्ध्वं न शुद्धयति । स्नेहो निरर्थकस्तस्य भस्मन्येव हुतं यथा ॥ ५७६ ॥

जबतक गृध्रसीरोगमें ऊर्ध्वभाग शुद्ध न होजाय तबतक बस्तिकर्म्म न करे, क्योंकि स्नेह व्यर्थ जाता है जैसे कि भस्ममें किया हुआ हवन व्यर्थ होता है ॥ ५७६ ॥

दशमूलकी औषधि ।

दशमूलीबलारास्नागुडूचीविश्वभेषजम् । पिबेदेरण्डतैलेन गृध्रसीखञ्जपंगुषु ॥ ५७७ ॥

दशमूल, खिरैंटी, रायसन, गिलोय और सोंठ, इनका क्काथ बनाकर उसमें अंडकी तेल डालकर पान करनेसे गृध्रसी, खंजता और पंगुता दूर होती है ॥ ५७७ ॥

पञ्चमूलीकषायन्तु सुखोष्णं त्रिवृतायुतम् । गृध्रसीं गुल्मशूलञ्च सद्यः पीतं नियच्छति ॥ ५७८ ॥

पंचमूलके मंदोष्णक्काथमें निशोथका चूर्ण डालकर सुहाता २ पान करनेसे गृध्रसी वायु और गुल्मशूल तत्काल नष्ट होजाता है ॥ ५७८ ॥

द्वित्रिस्थानेषु गृध्रस्यां शिरां प्रच्छन्नवेधिताम् । गुञ्जाकल्केन लिप्त्वा च सद्यस्त्यजति वेदनाम् ॥ ५७९ ॥

गृध्रसीरोगमें दो तीन जगह अप्रकट रीतिसे शिरावेध करे फिर उसपर चाटलीके कल्कका लेप कर देवे तो तत्काल वेदना दूर होजाती है ॥ ५७९ ॥

यद्येवं तथापि ग्रन्थान्तरमवलोकनीयम् ।

यद्यपि यह लिखा भी है तथापि अनेक ग्रन्थान्तरोंके मतको अवश्य देखना चाहिये ।

तैलमेरण्डजं वापि गोमूत्रेण पिबेन्नरः। मासमेकं प्रयोगोऽयं गृध्रस्यूरुग्रहापहः ॥ ५८० ॥

अंडीके तेलको गोमूत्रके साथ एक महीनेतक पीवे तो गृध्रसी और ऊरुग्रह रोग दूर होता है ॥ ५८०॥

तैलं घृतं साद्रकमातुलुङ्गं रसं सचुक्रं सगुडं पिबेद्वा । कट्यूरुपृष्ठत्रिकगुल्मशूलं गृध्रस्युदावर्त्तहरः प्रयोगः॥५८१॥

तेल और घीको अदरखके रसके साथ या बिजौरे नींबूके रसके साथ या चूकेके साथ अथवा गुड़के साथ पान करे तो कटि, ऊरु, पृष्ठ, त्रिकशूल, गुल्मशूल, गृध्रसी और उदावर्त यह सब रोग दूर होते हैं ॥ ५८१ ॥

विशोध्यैरण्डबीजानि पिष्ट्वा क्षीरे विपाचयेत् । तत्पायसं कटीशूले गृध्रस्यां परमौषधम् ॥ ५८२ ॥

शुद्ध अंडके बीजोंको पीस कर दूधमें पकावे। यह खीर–कटिशूल और गृध्रसीरोगकी परम औषधि है ॥ ५८२ ॥

पञ्चमूलीकषायन्तु रुबुतैलत्रिवृद्युतम्। गृध्रसीगुल्मशूलञ्च पीतं सद्यो नियच्छति ॥ ५८३ ॥

पंचमूलके काथको अंडीके तेल और निसोथके चूर्णके साथ सेवन करे तो तत्काल गृध्रसी और गुल्मशूल नष्ट होजाता है ॥ ५८३ ॥

मेषशृङ्गीविडङ्गानि श्वदंष्ट्रा चाश्वगन्धजम् । एरण्डमूलबिल्वञ्च बृहती कण्टकारिका ॥ ५८४ ॥ कषायो रुबुकोपेतः पीतो वङ्क्षणबस्तिजम्। शूलं गृध्रसीजं हन्ति चिरकालानुबन्धि वा ॥ ५८५ ॥

मेढाशिंगी, बायबिडंग, गोखरू, असगंध, अंडकी जड़, बेल, बडी कटेरी और छोटी कटेरी इनके काथमें अंडीका तेल डाल कर पीनेसे वंक्षणशूल, बस्तिशूल और बहुत दिनोंका पुराना गृध्रसीशूल नष्ट होता है ॥ ५८४ ॥ ५८५ ॥

गोमूत्रैरण्डतैलाभ्यां कृष्णा पीता सुचूर्णिता । दीर्घकालोत्थितां हन्ति गृध्रसीं कफवातजाम् ॥ ५८६ ॥

पीपलके चूर्णको गोमूत्र और अंडीके तेलके साथ सेवन करनेसे बहुत दिनोंकी पुरानी कफवातजनित गृध्रसी दूर होती है ॥ ५८६ ॥

सिंहास्यशुण्ठीकृतमालकानां पिबेत्कषायं रुबुतैलमिश्रम् । यो गृध्रसीनष्टगतिश्च सुप्तः स वीतरुक् स्यात्तु किमत्र चित्रम् ॥ ५८७ ॥

बासा, सोंठ और अमलतास इनके काथमें अंडीका तेल मिला कर पान करनेसे जो गृध्रसी रोगसे पीडित हैं, जिनकी गति नष्ट होगई है और जिनके अंग सुन्न होगये हैं उनकी पीडा दूर होकर निरोग हो जाते हैं ॥ ५८७ ॥

अश्नाति यो नरः सिद्धामेरण्डफलमिश्रिताम् । यवागूं गृध्रसीस्विन्नः पूर्वामाप्नोत्यसौ गतिम् ॥ ५८८ ॥

जो मनुष्य अंडीके फलोंके साथ यवागूको सिद्ध करके सेवन करता है तो गृध्रसीरोगसे पीडित वह मनुष्य पहलेके समान गतिको प्राप्त होता है ॥ ५८८॥

बृहन्निम्बतरोर्मूलं वारिणा परिपेषितम् । पीतस्तन्नाशयेत्क्षिप्रमसाध्यामपि गृध्रसीम् ॥ ५८९ ॥

बकायनकी जड़को जलमें पीस कर पान करनेसे असाध्य भी गृध्रसीरोग अवश्य नष्ट हो जाता है ॥ ५८९ ॥

शेफालिकादलैः क्वाथो मृद्वग्निपरिपाचितः। दुर्वारं गृध्रसीरोगं पीतमात्रश्च संहरेत् ॥ ५९० ॥

शेफालिका (हारशिंगार) के पत्तोंका मंद मंद अग्निसे काथ बना कर पान करनेसे ही दुर्निवार गृध्रसी रोग पीते ही नष्ट हो जाता है ॥ ५९० ॥

तगरस्य शिफामार्द्रां पिष्ट्वा तक्रेण यः पिबेत् । रिङ्गणानिलरोगस्तु तत्क्षणादेव नश्यति ॥ ५९१ ॥

तगरकी गीली जड़को तक्रके साथ पीसकर सेवन करनेसे तत्काल ही रींगन वायु दूर होती है ॥ ५९१ ॥

शुण्ठीगन्धर्वबीजाभ्यां पिष्टाभ्यां पायसं पचेत् । भक्षितं तत्कटीशूलं गृध्रसीं हन्त्यसंशयम् ॥ ५९२ ॥

सोंठ और अंडके बीज इनको एकत्र पीसकर दूधमें खीर पकावे। इस खीरका सेवन करनेसे कटिशूल और गृध्रसी रोग तत्काल दूर होता है ॥५९२॥

वापनादिक्रियायोगैर्यदि शान्तिं न याति सा । तदा कर्त्तव्यमेतत्तु व्यधनादिचिकित्सकैः ॥ ५९३ ॥

इन उपरोक्त लेपन, अभ्यंग, औषधिसेवन आदि क्रियाओंसे गृध्रसीरोग नष्ट न हो तो शिरावेध दाहादिके द्वारा चिकित्सा करे ॥ ५९३ ॥

गृध्रस्यार्त्तस्य जङ्घायां स्नेहस्वेदे कृते भिषक् । पद्भ्यां संमर्दितायाश्च सूक्ष्ममार्गेण गृध्रसीम् ॥ ५९४ ॥ अवतार्याङ्गुलौ सम्यक् कनिष्ठायां शनैः शनैः । ज्ञात्वा समुद्गतां ग्रन्थिं कण्डरायां व्यधेच्छिराम् ॥ ५९५ ॥ तां शस्त्रेण विदार्य्याशु सबालांकुरसन्निभाम् । समुद्धृत्याग्निना दग्ध्वा लिम्पेद्यष्टयाह्वचन्दनैः ॥ ५९६ ॥ विध्याच्छिरामेव बस्तेरधस्ताच्चतुरंगुले । यदि नोपशमं गच्छेद्दहेत्पादकनिष्ठिकाम् ॥ ५९७ ॥

गृध्रसीरोगसे पीडित मनुष्यकी जंघाओंको घृत तैलादिकसे अच्छे प्रकारसे स्वेदित कर पांवोंतक मर्दन कर सूक्ष्म मार्गसे गृध्रसी वायुको कनिष्ठिका अंगुलीमें धीरे २ उतार कर आई हुई गांठको अच्छे प्रकार ऊंची समझ शीघ्र ही उसको शस्त्रसे काट देवे और उसमेंसे अंकुरके समान छोटे पदार्थको निकाल देवे और तत्काल उसको अग्निसे दग्ध करके मुलैठी और चंदनको एकत्र पीस कर लेप कर देवे । बस्तिके चार अंगुल नीचे शिराको वेधे। जो इस प्रकार करनेसे गृध्रसीका शमन नहीं हो तो पांवकी कनिष्ठ अंगुलीको दग्ध करे ॥ ५९४ ॥ ५९५ ॥ ५९६ ॥ ५९७ ॥

रास्नायास्तु पलश्चैकं पञ्चकर्षाणि गुग्गुलोः । सर्पिषा वटिकां कृत्वा खादेद्वा गृध्रसीहराम् ॥ ५९८ ॥

रास्ना चार तोले और गूगल पांच तोले दोनोंको एकत्र घीमें पीस कर गोली बना लेवे। इन गोलियोंको सेवन करनेसे गृध्रसीरोग दूर होता है ॥ ५९८ ॥

पथ्यादिगुग्गुलु ।

पथ्याविभीतामलकीफलानां शतं क्रमेण द्विगुणाभिवृद्धम् । प्रस्थेन युक्तश्च पलंकषाणां द्रोणे जले संस्थितमेकरात्रम् ॥ ५९९ ॥ अर्द्धावशेषं क्वथितं कषायं भाण्डे पचेत्तत्पुनरेव लौहे । अमूनि पश्चादवतार्य्य दद्याद्द्रव्याणि संचूर्ण्य पलार्द्धकानि ॥ ६००॥ विडङ्गदन्तीत्रिफलागुडूचीकृष्णात्रिवृन्नागरकोषणानि। यथेष्टचेष्टस्य नरस्य शीघ्रं हिमाम्बुपानानि च भोजनानि ॥ ६०१ ॥ निषेव्यमाणो विनिहन्ति रोगांस्तद्व्याधितान्गृध्रसिखञ्जितांश्च । प्लीहानमुग्रं जठराणि गुल्मं पाण्डुत्वकण्डूमपि वातरक्तम् ॥६०२॥ पथ्याह्वयो गुग्गुलुरेष नाम्ना ख्यातः क्षितौ चाप्रमितप्रभावः । बलेन नागेन्द्रबलं मनुष्यं जवेन कुर्य्याद्धयतुल्यवेगम् ॥ ६०३॥ आयुःप्रकर्षं विदधाति सद्यश्चक्षुर्बलं पुष्टिकरो विषघ्नः । क्षतस्य सन्धानकरो विशेषाद्रोगेषु शस्तः सकलेषु चैव ॥ ६०४ ॥

हरड१००,बहेडे२००,आमले४००,और गूगल६४ तोले लेवे, इन सबको एकत्र एक द्रोण जलमें एक रात्रिभर रक्खा रहने देवे, फिर प्रातःकाल पकावे। जब पकते पकते जल आधा बाकी रह जाय तब उतार कर छान लेवे, फिर इस काथको उत्तम लोहेके बासनमें करके पकावे और इसमें वायविडंग, दंती, त्रिफला, गिलोय, पीपल, निसोत, सोंठ और काली मिरच ये प्रत्येक दो दो तोले डाल देवे। स्वयं शीतल होनेपर इसको उत्तम धोके चिकने बासनमें करके रख देवे। इसका सेवन करनेवाला मनुष्य इच्छानुसार आहार विहार करे तथा विशेष कर शीतल अन्नपान सेवन करे। इसको सेवन करनेसे सर्व प्रकारकी वातव्याधि,गृध्रसीरोग, खंजता,प्लीहा, उग्र उदररोग, गुल्मरोग, पांडुरोग, कण्डू और वातरक्तादि रोग दूर होते हैं। यह 'पथ्यादिगुग्गुलु' इस नामसे पृथ्वीमें प्रसिद्ध है। यह अमित प्रभाववाला है। इसका सेवन करनेवाला मनुष्य बलमें हाथीके समान और वेगमें घोडेके समान होजाता है। यह गूगल अवस्थाको बढानेवाला, नेत्रोंकी ज्योतिको बढानेवाला, पुष्टिको उत्पन्न करनेवाला, विषको नष्ट करनेवाला, विशेष कर व्रणको भरनेवाला और सब प्रकारके रोगोंमें उपकारी है॥ ५९९—६०४॥

लशुनादिघृत।

पचेद्घृताढकं क्वाथे लशुनस्याढकोद्भवे। कर्षं चव्याग्निकृष्णानां पलिके विश्वहिंगुनी ॥ ६०५ ॥ लवणांश्च पृथक् पिष्ट्वा पलार्द्धं चाम्लवेतसम्। गृध्रसीवातरुग्गुल्मपक्षाघातनिवारणम् ॥ ६०६ ॥

लशुनका काथ एक आढक, उत्तम घी एक आढक तथा चव्य,चीता,पीपल,एक२ कर्ष,सोंठ,हींग एक २ पल, सैंधा नमक और अमलबेत आधा २ पल सबको एकत्र पीसकर यथाविधिसे घृतको सिद्ध करे। यह घृत-गृध्रसी, वात, गुल्म और पक्षाघातको नष्ट करता है॥ ६०५ ॥ ६०६ ॥

अश्वगन्धातैल।

वाजिगन्धाबलाबिल्वदशमूलाम्बुसाधितम्। गृध्रस्यां तैलमैरण्डं परं बस्तौ प्रयोजयेत् ॥ ६०७ ॥

असगन्ध, खिरैंटी, बेलगिरी और दशमूलकी औषधियें इन सबका काथ बनाकर इस काथमें अण्डीके तेलको पकावे। इस तेलका गृध्रसीरोगमें बस्तिकर्म्मके द्वारा प्रयोग करे॥ ६०७॥

शिंशिपात्वक्तुलां क्षुण्णां जलद्रोणद्वये पचेत्। अष्टभागावशिष्टश्च पूतं लेहश्च कारयेत् ॥ ६०८ ॥ पायसं सहविष्यान्नं तत्कर्षेण च मिश्रितम्। भक्षयेदेकविंशाहं गृध्रसीनाशनं परम् ॥ ६०९ ॥

सीसमकी छाल एक तुला परिमाण लेकर कुछ कूट कर दो द्रोण जलमें पकावे, जब पकते २ जल आठवाँ भाग बाकी रह जाय तब उतार कर छान लेवे। फिर इसको दुबारा पकावे। जब यह लेहके समान होजाय तब इसमें प्रतिदिन पायस (खीर) और हविष्यान्न यह प्रत्येक एक २ तोला परिमाण मिलाकर इक्कीस दिनतक खाय तो अवश्य गृध्रसीरोग दूर होजाता है॥ ६०८॥ ६०९॥

सैन्धवादितैल।

द्वे पले सैन्धवात्पञ्च शुण्ठ्या ग्रन्थिकचित्रकात्। द्वे द्वे भल्लातकास्थीनि विंशतिर्द्वे तथाढके ॥ ६१० ॥ आरनालात्पचेत्प्रस्थं तैलस्यैरण्डजस्य च। गृध्रस्यूरुग्रहांश्चापि सर्ववातविकारनुत् ॥ ६११ ॥

सैंधा नमक ८ तोले, सोंठ २० तोले, पीपलामूल और चीता प्रत्येक आठ आठ तोले, भिलावेंकी गिरी २० पल, कांजी दो आढक और अंडीका तेल एक प्रस्थ लेवे, इन सबको एकत्र मिलाकर यथाविधिसे तेलको पकावे। यह तेल-गृध्रसी वात, ऊरुग्रह और सर्व प्रकारके वात—विकारोंको नष्ट करता है॥ ६१० ॥ ६११ ॥

गोक्षुरादितैल।

श्वदंष्ट्रा स्वरसं तैलं क्षीराढकसमन्वितम्। शृङ्गबेरपलान्पञ्च विंशद्गुड

पलानि च ॥ ६१२ ॥ सिद्धमेकत्र तत्तैलं गृध्रस्यां पादकम्पने । कटीपृष्ठग्रहे शोथे शस्तं वातविकारिणाम् ॥ ॥ ६१३ ॥ वन्ध्यानां गर्भजननं रेतोदोषापकर्षणम् । बस्तौ पाने हितश्चैव विशेषान्मूत्रकृच्छ्रिणाम् ॥ ६१४ ॥

गोखरूका स्वरस या काढा एक आढक, तेल १ आढक, दूध १ आढक, अदरखका कल्क ५ पल, गुड २०पल इन सबको एकत्र करके तेलको सिद्ध करे। यह तेल–गृध्रसी, पादकम्प, कटिग्रह, पृष्ठग्रह, सूजन और सर्व प्रकारके वातविकारोंमें हितकारी है। वंध्या स्त्रियोंके गर्भको देनेवाला, वीर्य्यदोषको दूर करनेवाला और विशेष करके मूत्रकृच्छ्र रोगियोंको बस्ति और पानकर्म्ममें हितकारी है ॥ ६१२ ॥ ६१३ ॥ ६१४ ॥

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायां वातव्याधिनिदानचिकित्साधिकार सम्पूर्ण ।

अथ वातरक्ताधिकार ।

वातरक्तका निदान ।

लवणाम्लमधुक्षारस्निग्धोष्णाजीर्णभोजनैः । क्लिन्नशुष्कांबुजानूपमांसपिण्याकमूलकैः ॥ १ ॥ कुलित्थमाषानिष्पावशाकादिपललेक्षुभिः । दध्यारनालसौवीरचुक्रतक्रसुरासवैः ॥ २ ॥ विरुद्धाध्यशनक्रोधदिवास्वप्नप्रजागरैः । प्रायशः सुकुमाराणां मिथ्याहाराविहारिणाम् । स्थूलानां दुःखितानाञ्च कुप्यते वातशोणितम् ॥ ३ ॥

नमक, खट्टे, मधुर, खारी, चिकने, गरम और कच्चे पदार्थोंको भक्षण करनेसे अथवा अजीर्णमें भोजन करनेसे, सडे हुए या सूखे जलचर जीवोंके मांसको तथा जलके निकट रहनेवाले जीवोंके मांसको खानेसे, तिलकल्क (खल), मूली, कुलथी, उड़द, सेमके बीज, शाकादिक, मांस, ईख, दही, कांजी, सौवीर नामवाली कांजी, चूक, तक्र (मट्ठा), मदिरा, आसव, विरुद्धभोजन (संयोग, देश, काल और मात्रा विरुद्ध द्रव्य) इन सब पदार्थोंको भक्षण करनेसे तथा भक्षण किये हुए भोजन न पचनेपर फिर कच्ची अवस्थामें भोजन करनेसे, क्रोध करनेसे, दिनमें सोनेसे, रात्रिमें जागनेसे इत्यादि अनेक कारणोंसे विशेष कर सुकुमार और मिथ्याहार विहार करनेवाले मनुष्योंके तथा स्थूल शरीरवाले और दुःखित मनुष्योंके वात और रक्त कुपित होता है ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥

वातरक्तकी सम्प्राप्ति ।

हस्त्यश्वोष्ट्रैर्गच्छतश्चाश्नतश्च वैदाह्यन्नं सविदाहाशनस्य । कृत्स्नं रक्तं विदहत्याशु तच्च दुष्टं स्रस्तं पादयोश्चीयते तु ॥ ४ ॥ तत्संपृक्तं वायुना दूषितेन तत्प्राबल्यादुच्यते वातरक्तम् ॥ ५ ॥

हाथी, घोडे और ऊँटपर चढकर चलनेवाले मनुष्योंके दाहकारक अन्न पान सेवन करनेसे तथा विदग्ध अवस्थामें भोजन करनेसे, शरीरका समस्त रुधिर जल कर पाँवोंमें संचित होकर सूजन पैदा करता है। फिर वह रुधिर दुष्ट वायुसे मिल जाता है तब दोनोंकी प्रबलतासे इसको वातरक्त कहते हैं ४ ॥ ५

वातरक्तके पूर्वलक्षण ।

स्वेदोऽत्यर्थं नवा कार्ष्ण्यं स्पर्शाज्ञत्वं कृतेति रुक् । सन्धिशैथिल्यमालस्यं सदनं पिटिकोद्गमः ॥ ६ ॥ जानुजङ्घोरुकट्यंसहस्तपादाङ्गसन्धिषु । निस्तोदः स्फुरणं भेदो गुरुत्वं सुप्तिरेव च ॥ ७ ॥ कंडूः सन्धिषु रुग्दाहो भूत्वा नश्यति चासकृत् । वैवर्ण्यं मण्डलोत्पत्तिर्वातासृक्पूर्वलक्षणम् ॥ ८ ॥

पसीनेका अधिक आना, अथवा बिलकुल नहीं आना, जिस स्थानमें रोग उत्पन्न हो उस स्थानका काला पड जाना तथा स्पर्शका ज्ञान नष्ट होजाना, अत्यन्त पीडाका होना सन्धिबन्धनका शिथिल होना, आलस्य, अंगोंका रह जाना, शरीरमें फुंसियोंका उत्पन्न होना, तथा जानु, जंघों, ऊरु, कटि, स्कन्ध हाथ पांव और सन्धिस्थानोंमें सुई चुभोनेके समान पीडा होना, अंग फडकना, तोडनेके समान पीडा होना, भारीपन, शरीरमें शून्यता, खुजली, सन्धियोंमें पीडा बारबार दाहका उत्पन्न होना और तत्काल नष्ट होजाना, विवर्णता और शरीरमें गोल २ चकत्तोंका होना, ये वातरक्तके उत्पन्न होनेसे पूर्ण लक्षण होते हैं ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥

वाताधिक वातरक्तके लक्षण ।

वाताधिकेऽधिकं तच्च शूलस्फुरणतोदनम् । शोथस्य रूक्षकृष्णत्वं श्यावतावृद्धिहानयः ॥ ९ ॥ धमन्यंगुलिसन्धीनां संकोचोऽङ्गग्रहोऽतिरुक् । शीतद्वेषानुपशयौ स्तम्भवेपथुसुप्तयः ॥ १० ॥

वाताधिकवातरक्तमें विशेष कर शूल, अंगोंका फडकना और तोडनेकीसी पीडाका होना, सूजन, रूक्षता, कृष्णता या नीलापन तथा वातरक्तके लक्षणोंकी वृद्धि हो और तत्काल वे शांत हो जायँ, धमनी और अंगुलियोंकी सन्धियोंका संकोच हो, देह जकडजाय और अत्यन्त पीडा हो,शीतलपदार्थोंमें अरुचि हो और शीतका सेवन करनेसे रोगकी वृद्धि हो तथा स्तम्भ,कम्प और शून्यता होती है ॥९॥१०॥

रक्ताधिक वातरक्तके लक्षण ।

रक्ते शोथोऽतिरुक् तोदस्ताम्रश्चिमिचिमायते । स्निग्धरूक्षैः शमं नैति कण्डूक्लेदसमन्वितः ॥ ११ ॥

रक्ताधिक वातरक्तमें सूजन, अत्यन्त पीडा, ताडन सरीखी पीडा होना, खुजला और उस स्थानमें तांबेके समान लाल क्लेद बहे, एवं सूजनमें चिम २ शब्द होता है, स्निग्ध और रूक्ष क्रियासे रोगकी शांति नहीं होती ॥ ११ ॥

पित्ताधिक वातरक्तके लक्षण ।

पित्ते विदाहः संमोहः स्वेदो मूर्च्छा मदस्तृषा । स्पर्शाक्षमत्वं रुग्रागः शोफः पाको भृशोष्णता ॥ १२ ॥

पित्ताधिक वातरक्तमें अत्यन्त दाह,मोह,पसनिका आना, मूर्च्छा, मद, तृषा, स्पर्शको न सह सकना, अत्यन्त पीडा, लाल वर्ण, सूजन, छोटे २ पीले फोडे होकर उनका पक जाना और अत्यन्त गरमी होना ये लक्षण होते हैं ॥ १२ ॥

कफवातरक्तके लक्षण ।

कफे स्तैमित्यगुरुता सुप्तिः स्निग्धत्वशीतता । कण्डूर्मन्दा च रुग्द्वन्द्वे सर्वलिङ्गश्च संकरे ॥ १३ ॥

कफाधिक वातरक्तमें शरीर भीगे,कपडेसे ढकासा मालूम हो, शरीरमें भारीपन हो, शून्यता, स्निग्धता, शीतलता,खुजली और मदपीडा होती हैं । द्वंद्वज और त्रिदोषज वातरक्तमें दो दोषों और तीनों दोषोंके लक्षण होते हैं ॥ १३ ॥

उपद्रवैर्यच्च जुष्टं प्राणमांसक्षयादिभिः । प्राक् स्थित्वा पाणिपादेषु कृत्स्नदेहं विसर्पति ॥ १४ ॥

जिसमें सम्पूर्ण उपद्रव हों,रोगीका बल और मांस क्षीण होगया हो उसके प्रथम वातरक्त हाथ और पावोंमें उत्पन्न होकर फिर सम्पूर्ण शरीरमें फैल जाता है ॥ १४ ॥

पादयोर्मूलमास्थाय कदाचित् सुप्तयोरपि । आखोर्विषमिव क्रुद्धं तद्देहमनुसर्पति ॥ १५ ॥

जिस प्रकार चूहेका विष कांटे हुए स्थानसे क्रम क्रमसे सर्व शरीरमें फैल जाता है उसीप्रकार वातरक्त पादमूल या हस्तमूलमें उत्पन्न होकर सर्वशरीरमें फैल जाता है ॥ १५ ॥

असाध्यलक्षण ।

आजानु स्फुटितं यच्च प्रभिन्नं प्रस्नुतञ्च यत् । वातरक्तमसाध्यं स्याद्याप्यं संवत्सरोत्थितम् ॥ १६ ॥

जिस वातरक्तमें पांवोंसे घुटनोंतककी त्वचा विदीर्ण हो गई हो या अधिक फट गई हो एवं जिसमें रुधिर और राध टपके ऐसा रोगी असाध्य जानना । जिस वातरक्तको उत्पन्न हुए एक वर्ष बीत गया हो,पूर्वोक्त लक्षण अधिक नहीं हों वह याप्य होता है ॥ १६ ॥

वातरक्तके उपद्रव ।

अस्वप्नारोचकश्वासमांसकोथशिरोग्रहाः । संमूर्च्छामन्दरुक्तृष्णाज्वरमोहप्रवेपकाः ॥ १७ ॥ हिक्कापांगुल्यवीसर्पपाकतोदभ्रमक्लमाः । अंगुलीवक्रतास्फोटदाहमर्मग्रहार्बुदाः ॥१८॥ एतैरुपद्रवैर्युक्तो मोहेनैकेन वापि यत्। तमसाध्यामिति प्राहुर्वातरक्तं विचक्षणाः ॥ १९ ॥

निद्राका नहीं आना, अरुचि, श्वास, मांसका गल कर गिरना,शिरमें पीडा,मूर्च्छा, शरीरमें मंद २ पीडा, तृषा, ज्वर, मोह, शरीर लिपासा रहे,कम्प, हिचकी, पंगुता,विसर्प, पकना, तोडनेसरीखी पीडा, भ्रम, ग्लानि, हाथों पावोंकी अंगुलियोंका टेढा हो जाना, फोडोंका उत्पन्न होना, दाह, मर्म्मस्थानोंका जकडना और अर्बुद ये सब वातरक्तके उपद्रव हैं । इन सब उपद्रवोंयुक्त वातरक्त रोगी असाध्य होता है। केवल एक मोह हीहो तो भी असाध्य होता है,कारण कि मोहग्रस्तरोगी नहीं बचता है ॥१७॥ १८॥१९॥

साध्यासाध्यप्रकार ।

अकृत्स्नोपद्रवं याप्यं साध्यं स्यान्निरुपद्रवम् । एकदोषानुगं साध्यं नवं याप्यं द्विदोषजम् ॥ त्रिदोषजमसाध्यं स्याद्यस्य च स्युरुपद्रवाः ॥ २० ॥

वातरक्तमें जो समस्त उपद्रव न हों तो याप्य, जो एक भी उपद्रव नहीं हो तो साध्य है । एक दोष जनित नवीन वातरक्त साध्य है, दो दोषजनित और नवीन वातरक्त याप्य और त्रिदोषजनित तथा उपद्रवयुक्त वातरक्त असाध्य है ॥ २० ॥

वातरक्तकी चिकित्सा

वातशोणितिनो रक्तं स्निग्धस्य बहुशो हरेत् । अल्पाल्पं रक्षयेद्वायुं यथादोषं यथाबलम् ॥ २१ ॥

वातरक्त रोगीको प्रथम स्नेहपानादिकसे स्निग्ध करके दोष और बलानुसार वायुकी वृद्धिसे रोगीकी रक्षा करता हुआ वारंवार थोडा २ रुधिर निकलवावे ॥ २१ ॥

उग्रांगदाहतोदेषु जलौकाभिर्विनिर्हरेत् । तुम्बीशृङ्गैश्चिमिचिमाकंडूरुग्वेदनान्वितम् ॥ २२ ॥ प्रच्छन्नेन शिराभिर्वा देशादेशान्तरं व्रजेत् ॥ २३ ॥

वातरक्तरोगमें-जो शरीरमें उग्र दाह और तोडनेसरीखी पीडा हो तो जोंकके द्वारा रुधिर निकलवावे, जो शरीरमें चिमचिम ऐसा शब्द हो तथा खुजली और घोर पाडा हो तो तोम्बी अथवा शिंगी लगवा कर रुधिर निकलवावे ॥ २२ ॥ जो वातरक्तमें ऐसे रुधिरको न निकाला जाय तो वह रुधिर गुप्तरीतिसे अथवा शिराओंके मार्गसे सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त हो जाता है ॥ २३ ॥

अंगे म्लाने तु न स्राव्यं रूक्षे वातोत्तरश्च यत् । गम्भीरं श्वयथुं स्तम्भं कम्पवातशिरामयान्॥ २४ ॥ ग्लानिमन्यांश्च वातोत्थान्कुर्य्याद्वायुरसृक्क्षयात् । खञ्जादीन्वातरोगांश्च मृत्युं वात्यवशोषितम् ॥२५॥ कुर्य्यात्तस्मात्प्रमाणेन स्निग्धाद्रक्तं विनिर्हरेत् ॥ २६ ॥

जो वातरक्त रोगीका शरीर म्लान (मुरझाया और रूखा) हो तथा वाताधिक वातरक्त हो तो रुधिरको नहीं निकलावे । यदि भूलसे ऐसे रोगियोंका रुधिर निकाल लिया जाय तो वायु रुधिरके क्षय होनेसे गम्भीर सूजन,

स्तम्भ,कम्प,वात,शिराओंके रोग, ग्लानि और अनेक प्रकारके बातजनित रोगोंको उत्पन्न करती है।विना विचारे अथवा अधिक रुधिर निकालनेसे अनेक प्रकारके वातजनित खंजता आदि रोग अथवा मृत्यु होती है। इस कारण प्रथम रोगीको स्निग्ध करके प्रमाणके अनुसार रुधिर निकलवाना चाहिए ॥२४॥ २५॥२६॥

विरेचयेच्च पित्ताढ्यौ स्नेहयुक्तैर्विरेचनैः। रूक्षैर्वा मृदुभिः शस्तमसकृद्वस्तिकर्म्म च ॥ नहि बस्तिसमं किञ्चिद्वातरक्तचिकित्सितम् ॥ २७॥

पित्ताधिक वातरक्त रोगमें विरेचनकी औषधियोंमें स्नेह डाल कर विरेचन करावे। रूक्ष अथवा मृदु औषधियोंके द्वारा बस्तिकर्म करावे। बस्तिकर्म्मके समान वातरक्तकी अन्य चिकित्सा नहीं है ॥ २७ ॥

बाह्यमालेपनाभ्यङ्गपरिषेकोपनाहनैः। विरेकास्थापनस्नेहपानैर्गम्भीरमाचरेत् ॥ २८ ॥

बाह्य वातरक्तमें प्रलेप, अभ्यंग(मालिस),परिषेक (जलका छिडकना) और उपनाह ये सब उपचार करे। गम्भीर वातरक्तमें विरेचन, आस्थापन बस्ति, स्नेहपान ये सब उपचार करे॥ २८ ॥

अपथ्य।

दिवास्वप्नं श्रमं तापं व्यायामं मैथुनं तथा। कटूष्णं गुर्वभिष्यंदि लवणाम्लं विवर्जयेत् ॥ २९ ॥

वातरक्त रोगमें दिनमें सोना,परिश्रम करना,सूर्य्यकी धूपादिको सेवन करना, दण्ड कसरत करना, स्त्रीप्रसंग, चरपरे, गरम, भारी, अभिष्यन्दी, नमक और खटाई ये सब पदार्थ छोड देने चाहिए ॥२९॥

पथ्य।

पुराणयवगोधूमा नविाराः शालिषष्टिकाः। भोजनार्थे रसार्थे तु विष्किराः प्रतुदा हिताः॥ ३० ॥

पुराने जौ, गेहूँ, नीवारधान, शालिधान और साठीधान ये भोजनके लिये देवे।रसके लिये विष्किर जातिके और प्रतुदजातिके पक्षियोंका मांसरस देवे ॥ ३० ॥

आढक्यश्चणका मुद्गा मसूराश्च मकुष्ठकाः। सूपार्थे बहुसर्पिष्काः प्रशस्ता वातशोणिते ॥ ३१ ॥

दालके लिये अडहर, चने, मूँग, मसूर और मोठ इनकी दाल बनाकर वहुतसा घी डालकर देवे॥३१॥

सुनिषण्णकवेत्राग्रं काकमाचीशतावरी। वास्तुकापोदकीशाकं शाकं सौवर्चलं तथा ॥ ३२ ॥ घृतमांसरसंभृष्टं शाकसात्म्याय दापयेत् ॥३३ ॥

वातरक्तमें शाकके लिये शिरिआरी अर्थात् चौपतियाका शाक, बेंतका अग्रभाग, मकोयके पत्तोंका शाक, शतावरके पत्तोंका शाक, बथुएका शाक,पोईका शाक और ब्रह्मीका शाक, ये सब शाक घी और मांसरसमें भूनकर जिनको शाक अनुकूल पडता है उनको देवे॥ ३२ ॥ ३३ ॥

सर्पिस्तैलवसामज्जापानाभ्यञ्जनबस्तिभिः। सुखोष्णैरुपनाहैश्च वातोत्तरमुपाचरेत् ॥ ३४ ॥

वाताधिक वातरक्तरोगमें घी, तेल, वसा (चर्बी), और मज्जा इनका पान, अभ्यंजन, बस्तिकर्म्म और मंदोष्ण उपनाह इनके द्वारा व्यवहार करे॥ ३४॥

हितं गोधूमचूर्णैर्वा छागक्षीरघृतप्लुतैः। लेपः पिष्टास्तिलास्तद्वद्भृष्टाः पयसि निर्वृताः ॥ ३५ ॥ क्षीरपिष्टातसीलिपाद्वर्द्धमानफलेन वा ॥ ३६ ॥

गेहूँके चूनको बकरीके दूध और घीमें मिलाकर अथवा भुनेहुए तिलोंको दूधमें पीसकर लेप करनेसे वातरक्तका शमन होता है। अलसीको दूधमें पीस कर लेप करनेसे अथवा अंडके बीजोंको दूधमें पीस कर लेप करनेसे वातरक्त रोग दूर होता है॥३५॥ ३६॥

उभे शताह्वे मधुकं बला च प्रियालकश्चापि कशेरुकश्च। घृतं विदारी च

सितोपलाश्च युञ्ज्यात्प्रदेहं पवने सरक्ते ॥ ३७ ॥

शतावर, बडी शतावर,मुलैठी, खिरैंटी, चिरौंजी, कशेरू, घी, विदारीकंद और मिश्री इन सबको एकत्र पीस कर लेप करनेसे वातरक्त दूर होता है ॥ ३७॥

रास्नागुडूचीमधुकं बले द्वे सजीरकं सार्षपकं पयश्च । घृतं सुसिद्धं मधुशेषयुक्तं रक्तानिलार्त्तं प्रणुदेत्प्रदेहम् ३८॥

रायसन, गिलोय, मुलैठी, खिरैंटी, कंघी, जीर और सरसों, इनको एकत्र पीस कर दूध और घृतमें मिला कर पकावे, जब घृत सिद्ध होजाय तब इसमें शहद डाल कर लेप करे तो वातरक्तकी पीडा शमन होती है ॥ ३८ ॥

वासागुडूचीचतुरंगुलानामेरण्डतैलेन पिबेत्कषायम् । क्रमेण सर्वाङ्गजमप्यशेषं जयेदसृग्वातभवं विकारम् ॥ ३९ ॥

अडूसा; गिलोय और अंडकी जड़ इनका क्राथ बनाकर उसमें अंडीका तेल डालकर सेवन करनेसे क्रम क्रमसे सर्वांगगत वातरक्त रोग दूर होता है ३९

त्रिवृद्विदारीक्षुरकक्काथो वातास्रनाशनः ॥ ४० ॥

निसोथ, विदारीकंद और गोखरू इनका क्राथ बनाकर सेवन करनेसे वातरक्त रोग दूर होता है ४०

गुडूच्याः स्वरसं कल्कं चूर्णं वा क्राथमेव वा। प्रभूतकालमासेव्यो मुच्यते वातशोणितात् ॥ ४१ ॥

गिलोयके स्वरस या कल्क अथवा चूर्ण किंवा क्राथको नित्य सेवन करनेसे वातरक्त रोग दूर होता है ॥ ४१ ॥

अमृतानागरधान्यककर्षत्रितयेन पाचनं सिद्धम् । जयति सरक्तवातं सामं कुष्ठान्यशेषेण ॥ ४२ ॥

गिलोय;सोंठ और धनियाँ ये प्रत्येक एक २ तोला लेकर क्राथ बनाकर सेवन करे तो वातरक्त, आमवात और सर्व प्रकारके कुष्ठ नष्ट होते हैं ॥४२॥

वत्सादन्युद्भवः क्राथः पीतो गुग्गुलुमिश्रितः । समीरणसमायुक्तं शोणितं संप्रणाशयेत ॥ ४३ ॥

गिलोयके क्राथमें गूगल डाल कर सेवन करनेसे वातरक्त रोग दूर होता है ॥ ४३ ॥

अभया गुड ।

तिस्रोऽथवा पञ्च गुडेन पथ्या जग्ध्वा पिबेच्छिन्नरुहाकषायम् । तद्वातरक्तं शमयत्युदीर्णमाजानुभिन्नं च्युतमप्यवश्यम् ॥ ४४ ॥

तीन अथवा पाँच हरडोंको गुड़में मिला कर खाय और ऊपरसे गिलोयका क्राथ पान करे तो जानु पर्य्यंत फैला हुआ भी वातरक्त दूर होता है ॥४४॥

गुग्गुलुवटी ।

गुग्गुल्वमृतवल्लीभिर्द्राक्षालुङ्गरसेन वा । त्रिफलाया रसैर्युक्ता गुटिका कोलसम्मिता ॥ ४५ ॥ भक्षयेन्मधुनाऽऽलोड्य शृणु कुर्वन्ति यत्फलम् । पादस्फोटं महाघोरं स्फोटं सर्वाङ्गजश्च यत् । तत्सर्वं नाशयत्याशु ह्यसाध्यं वातशोणितम् ॥ ४६ ॥

गूगल,गिलोय और दाख इनको एकत्र पीस कर बिजौरे नींबूके रसमें अथवा त्रिफलेके रसमें छोटे बेरकी बराबर गोलियाँ बना लेवे । इन गोलियोंको शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे पादस्फोट, सर्वांगगत महाघोर स्फोट और असाध्य वातरक्त शीघ्र ही दूर होता है ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

माहिषं नवनीतन्तु फलिनीपरिमिश्रितम् । गोमूत्रमिश्रितं कृत्वा क्षीरेण लवणेन च ॥ ४७ ॥ तदेकत्र समालोड्य वह्निना तापयेच्छनैः । गात्रमुद्वर्त्तयेत्तेन देहस्फुटनशान्तये ॥ ४८॥

फूलप्रियंगुको भैंसके नैनीघीमें मिला कर फिर गोमूत्र,

दूध और नमक इन सबमें अच्छे प्रकारसे मिलाकर मंद मंद अग्निसे गरम करके शरीर पर लेप करनेसे देहका फूटना बंद होता है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

घृतेन वातं सगुडा विबन्धं पित्तं सिताढ्या मधुना कफञ्च। वातासृगुग्रं रुबुतैलमिश्रा शुण्ठ्यामवातं शमयेद्गुडूची ॥ ४९ ॥

गिलोय–घृतके साथ सेवन करनेसे वातरोगको, गुडके साथ सेवन करनेसे विबन्धको, मिश्रीके साथ सेवन करनेसे पित्तके रोगोंको, शहदके साथ सेवन करनेसे कफको, अंडीके तेलके साथ सेवन करनेसे उग्र वातरक्तको और सोंठके साथ सेवन करनेसे आमवातको नष्ट करता है ॥ ४९ ॥

सिंहास्यपञ्चमूलच्छिन्नरुहैरण्डगोक्षुरक्काथः। एरण्डतैलरामठसैन्धवचूर्णान्वितः पीतः ॥ ५० ॥ शमयति वातरक्तं तथामवातं कटीशूलम्। मूत्रपुरीषविबन्धब्रध्मविकारं सुदुर्वारम् ५१

अडूसेकी जड, पंचमूलकी औषधियें, गिलोय, अण्डकी जड और गोखरू इनका क्वाथ बनाकर उसमें अण्डीका तेल, हींग और सैंधेनमकका चूर्ण डालकर पान करे तो वातरक्त रोगका शमन होता है तथा आमवात, कटिशूल, मलमूत्रावरोध और दुस्तर ब्रध्मरोग दूर होता है ॥ ५०॥५१ ॥

गन्धर्वहस्तवृषगोक्षुरकामृतानां मूलं बलेक्षुरकयोश्च पचेत्तु धीमान्। वातासृगाशु विनिहन्ति चिरप्ररूढमाजानुगस्फुटितमूर्ध्निगतं तु धीमान् ५२॥

अण्डकी जड, अडूसा, गोखरू, गिलोय, खिरैंटी और तालमखाना इनका क्वाथ बनाकर सेवन करनेसे बहुत दिनोंका जानुतक और मस्तकतक फैला हुआ घोर वातरक्तका भी शमन होता है ॥ ५२ ॥

पिप्पलीवर्धमानं वा सेव्या पथ्या गुडेन वा कोकिलाक्षामृताक्काथे पिबेत्कृष्णां यथाबलम् ॥ ५३ ॥

वर्द्धमानपीपलको सेवन करनेसे अथवा हरडको गुडके साथ सेवन करनेसे या बलानुसार पीपलके चूर्णको तालमखाने और गिलोयके क्वाथमें मिलाकर सेवन करनेसे वातरक्तका शमन होता है ॥ ५३ ॥

मधुकाद्द्विगुणं तैलं तैलादाज्यं पयो भवेत् ॥ ५४ ॥ यद्यथाग्निबलं पेयं वातरक्तरुजापहम् ॥ ५५ ॥

मुलैठीसे दुगुना तेल, तेलके बराबर घी और दूध लेवे,सबको एकत्र मिलाकर सिद्ध करे। इसको अग्निका बलाबल विचार कर पान करे तो वातरक्त रोग दूर होता है ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

नवकार्षिक क्वाथ।

त्रिफलानिम्बमञ्जिष्ठावचाकटुकरोहिणी। वत्सादनीदारुनिशाकषायं नवकार्षिकम् ॥ ५६ ॥ वातरक्तं तथा कुष्ठं पामानं रक्तमंडलम्। कुष्ठं कपालिकाकुष्ठं पानादेवापकर्षति ॥ पञ्चरक्तिकमाषेण कार्योऽयं नवकार्षिकः ॥ ५७ ॥

त्रिफला, नीम, मजीठ,बच, कुटकी, गिलोय और दारुहलदी ये प्रत्येक औषधि एक एक तोला लेकर क्वाथ बनावे। इस क्वाथको सेवन करनेसे—वातरक्त, कोढ, पामा, रक्तमण्डल, कुष्ठ और कपालकुष्ठ ये सब तत्काल नष्ट हो जाते हैं। यहांपर पांच रत्तीके मासेके हिसाबसे तोला लेना चाहिये ॥५६॥५७॥

कर्षादौ तु पलं यावद्द्याद्दशगुणं जलम्। ततस्तु कुडवं यावत्तोयमष्टगुणं भवेत् ॥ ५८ ॥

क्वाथके लिये कर्षसे लेकर पलपर्य्यंत औषधियोंमें दशगुना जल डालना और पलसे लेकर कुडवपर्य्यंत औषधियोंमें अठगुना जल डालना चाहिए ॥ ५८ ॥

विरेचनैर्घृतक्षीरपानैः सेकैः सबस्तिभिः। शीतैर्निर्वापणैश्चापि रक्तपित्तोत्तरं जयेत् ॥ ५९ ॥

रक्ताधिक और पित्ताधिक वातरक्तरोगमें विरेचन, घृत, दूध पान, बस्तिकर्म्म और शीतल आच्छादन इनके द्वारा चिकित्सा करे ॥ ५९ ॥

रक्तोत्तरं क्षीरघृतमधुकोशीरवारिभिः । लेपनं शाल्मलीकल्कमाविक्षीरेण संयुतम् ॥ ६० ॥ सेचनं वा प्रकर्त्तव्यमाविक्षीरैः क्षणं क्षणम् । सहस्रशतधौतेन घृतेन रुधिरोत्तरे ६१॥ लेपनं कोष्णशीतेन घृतसर्जरसेन वा । सरागे सरुजे दाहे रक्तं विस्राव्य लेपयेत् ॥ ६२ ॥

रक्ताधिक वातरक्तरोगमें दूध, घी, मुलैठी, खस और जल इनका शरीरपर लेप करे । अथवा सेमलके कल्कको भेडके दूधमें मिलाकर लेप करे अथवा भेड़के दूधका वारंवार शरीरपर सेचन करे । रक्ताधिक वातरक्तमें हजार बार अथवा सौ बार धुले हुए घीकी मालिश करे । अथवा राल और घृतको गरम करके सुहाता सुहाता लेप करे । लाली, पीडा और दाह हो तो प्रथम रुधिर निकलवा कर पश्चात् औषधियोंका प्रलेप करे ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

तिलाः प्रियालं मधुकं विषं मूलञ्च वेतसाम् । सघृतः पयसा पिष्टः प्रलेपो रागदाहनुत् ॥ ६३ ॥

तिल, चिरौंजी, मुलैठी, कमलकंद और बेतकी जड इनको दूधमें पीस कर घृत मिलाकर प्रलेप करे तो लाली और दाह दूर होती है ॥ ६३ ॥

पित्तोत्तरे तु काश्मर्य्यद्राक्षारग्वधचन्दनैः । मधुकक्षीरकाकोलीयुक्तैः काथं सुशीतलम् ॥ शर्करामधुसंयुक्तं वातरक्ते पिबेन्नरः ॥ ६४ ॥

पित्ताधिक वातरक्तमें-कुम्भेर, दाख, अमलतास, चंदन, मुलैठी और क्षीरकाकोली इनका क्वाथ बनाकर शीतल करके उसमें खांड और शहद मिला कर सेवन करे ॥ ६४ ॥

पटोलत्रिफलाभीरुगुडूचीकटुरोहिणी । क्काथः पित्ताधिके शस्तः शर्करामधुसंयुतः ॥ ६५ ॥

पटोलपत्र,नीमकी छाल,त्रिफला,शतावर, गिलोय और कुटकी इनका काथ बनाकर उसमें मिश्री और शहद डालकर सेवन करे तो पित्ताधिक वातरक्त दूर होता है ॥ ६५ ॥

वमनं मृदुनाऽत्यर्थं स्नेहसेकैर्विलङ्घनम् । कोष्णाः सेकाश्च शस्यन्ते वातरक्ते कफोत्तरे ॥ ६६ ॥

कफाधिक वातरक्तमें मृदु करनेके लिये वमन करावे तथा स्नेहकर्म्म, सींचना और लंघन ये सब प्रयोग करे । इस कफाधिक वातरक्तको मंदोष्ण जलके द्वारा सींचना चाहिए ॥ ६६ ॥

तैलमूत्रसुरायुक्तैः परिषेकः सदा हितः । गौरसर्षपकल्केन प्रदेहो वातरक्तहा ॥ ६७ ॥

तेल, मूत्र और मदिरा इनको मिलाकर शरीर पर सेक करना सदैव हितकारक है, सफेद सरसोंके कल्कका प्रलेप करनेसे कफाधिक वातरक्तका शमन होता है ॥ ६७ ॥

शिग्रुवरुणयोः कल्को धान्याम्लेनानिलार्त्तिजिल्लेपात् । भवति नवेति च कल्को न विधेयः सिद्धयोगेऽस्मिन् ॥ ६८ ॥

सहिंजने और बरनेकी छालके कल्कको धानोंकी कांजीमें मिलाकर लेप करनेसे वातकी पीडा शमन होती है वा नहीं इस कल्कसिद्ध योगमें ऐसा कभी नहीं समझना चाहिये ॥ ६८ ॥

कल्कः श्लेष्मोत्तरे लेप्यो वाजिगंधातिलोद्भवः । लेपः सर्षपनिम्बार्कहिंस्राक्षारतिलैर्हितः ॥ ६९ ॥

असगंध और तिलोंका कल्क बनाकर कफाधिक वातरक्तमें प्रलेप करे । अथवा सरसों, नीम, आक, बालछड और तिलोंका खार इनको एकत्र मिला कर प्रलेप करे ॥ ६९ ॥

गृहधूमवचाकुष्ठशताह्वारजनीद्वयम् । प्रलेपः शूलनुद्वातरक्ते चाथ कफोत्तरे ॥ ७० ॥

घरका धुँआसा, वच, कूठ, शतावर, हल्दी और दारुहल्दी इनको एकत्र मिलाकर प्रलेप करनेसे कफाधिक और रक्ताधिक वातरक्तका शूल नष्ट होता है ॥ ७० ॥

अमृताकटुकायष्टीशुण्ठीकल्कं समाक्षिकम् । गोमूत्रपीतं जयति सकफं वातशोणितम् ॥ ७१ ॥

गिलोय, कुटकी, मुलैठी और सोंठ इनके कल्कमें शहद मिलाकर गोमूत्रके साथ सेवन करनेसे कफाधिक वातरक्तरोग दूर होता है ॥ ७१ ॥

धात्रीहरिद्रामुस्तानां कषायं वा समाक्षिकम् । संसर्गे सन्निपाते च क्रियामन्यविमिश्रिताम् ॥ ७२ ॥

आमले, हलदी और नागरमोथा इनके काथमें शहद डालकर पान करनेसे कफाधिक वातरक्तरोग दूर होता है। द्विदोषज और त्रिदोषज वातरक्तमें अन्यान्य मिश्रित चिकित्सा करनी चाहिए ॥ ७२ ॥

बलाघृत ।

बलामतिबलां मेदामात्मगुप्तां शतावरीम् । काकोलीं क्षीरकाकोलीं रास्नां मृद्वीश्च पेषयेत् ॥ ७३ ॥ घृतं चतुर्गुणं क्षीरं तैः सिद्धं वातरक्तनुत् । हृत्पाण्डुरोगवीसर्पकामलादाहनाशनम् ॥ ७४ ॥

खिरैंटी, कंघी, मेदा, कौंछ, शतावर, काकोली, क्षीरकाकोली, रास्ना और दाख इनके कल्कके द्वारा घृतको चौगुने दूधमें पकावे। यह घृत—वातरक्त, हृद्यरोग, पाण्डुरोग, विसर्प, कामला और दाहको दूर करता है ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

शतावरीघृत ।

शतावरीकल्कगर्भं रसे तस्याश्चतुर्गुणे। क्षीरतुल्यं घृतं सिद्धं वातशोणितनाशनम् ॥ ७५ ॥

शतावरके कल्क और चौगुने काथके द्वारा तथा चौगुने दूधमें घृतको सिद्ध करे। यह घृत—वातरक्तको दूर करता है ॥ ७५ ॥

गुडूचीघृत ।

गुडूचीक्काथकल्काभ्यां सपयस्कं घृतं शृतम् । हन्ति वातं तथा रक्तं कुष्ठं जयति दुस्तरम् ॥ ७६ ॥

गिलोयके काथ और कल्कके द्वारा दूधमें घृतको पकावे। यह घृत—वातरक्त और दुष्ट कुष्ठको नष्ट करता है ॥ ७६ ॥

अमृतादिघृत ।

अमृतायाः कषायेण कल्केन च महौषधम् । मृद्वग्निना घृतं सिद्धं वातरक्तहरं परम् ॥ ७७ ॥ आमवाताखवातादीन्क्रिमिकुष्ठव्रणानपि । अर्शांसि गुल्मांश्च तथा नाशयेदाशु योजितम् ॥ ७८ ॥

गिलोयके काथ और सोंठके कल्कके द्वारा मंद मंद अग्निसे घृतको सिद्ध करे। यह घृत—वातरक्तको दूर करनेवाला तथा आमवात, रक्तवातादि, कृमि, कोढ, व्रण, बवासीर और गुल्म इन सबको दूर करता है ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

द्वितीय अमृतादिघृत ।

अमृतास्वरसविपक्वं सर्पिस्तत्कल्कसाधितं पीतम् । अपहरति वातरक्तमुत्तानं चावगाढञ्च ॥ ७९ ॥

गिलोयके स्वरस और कल्कके द्वारा घृतको पकावे। यह घृत—उत्तान और अत्यंत गम्भीर वातरक्तको दूर करता है ॥ ७९ ॥

द्वितीय गुडूचीघृत ।

अमृतायाः पलशतं जलद्रोणेंऽशशेषितम् । घृतप्रस्थं विपक्तव्यं कल्का-

नष्टौ पलानि च ॥ ८० ॥ चतुर्गुणेन पयसा वातासृक्कुष्ठनाशनम् । कामलापांडुरोगघ्नं प्लीहकासज्वरापहम् ८१॥

गिलोय १०० पल लेकर एक द्रोण जलमें पकावे, जब पकते पकते चौथाई भाग शेष रह जाय तब उतारकर छान लेवे, फिर इसमें आठ पल गिलोयका कल्क, घृत एक प्रस्थ और उत्तम गायका दूध ४ प्रस्थ डालकर उत्तम विधिसे घृतको सिद्ध करे। यह घृत—वातरक्त, कोढ़, कामला, पाण्डुरोग, प्लीहा, खाँसी और ज्वरको दूर करता है ॥ ८० ॥ ८१ ॥

अमृतादिघृत ।

अमृता मधुकं द्राक्षा त्रिफला नागरं बला । वासारग्वधवृश्चीवदेवदारुत्रिकण्टकम् ॥ ८२ ॥ कटुका सवरी कृष्णा काश्मर्यस्य फलानि च । रास्नाक्षुरकगन्धर्ववृद्धदारुघनोत्पलैः ॥ ८३॥ कल्कैरेभिः समैः कृत्वा सर्पिःप्रस्थं विपाचयेत् । धात्रीरससमो देयो वारित्रिगुणसंयुतः ॥ ८४ ॥ सम्यक् सिद्धन्तु विज्ञातं भोज्ये पाने च शस्यते । बहुदोषोत्थितं वातं रक्तेन सह मूर्छितम् ॥ ८५ ॥ उत्तानं चापि गम्भीरं त्रिकजङ्घोरुजानुजम् । क्रोष्टुशीर्षे महाशूले आमवाते सुदारुणे ॥ ८६ ॥ दाहरोगोपसृष्टस्य वेदनां चातिदुस्तराम् । मूत्रकृच्छ्रमुदावर्त्तं प्रमेहं विषमज्वरम् ॥ ८७ ॥ एतान्सर्वान्निहन्त्याशु वातपित्तकफोत्थितान् । सर्वकालोपयोगेन वर्णायुर्बलवर्द्धनम् ॥ अश्विभ्यां निर्मितं श्रेष्ठं घृतमेतदनुत्तमम् ॥ ८८ ॥

गिलोय, मुलैठी, दाख, त्रिफला, सोंठ, खिरैटी, अड़ूसा, अमलतास, पुनर्नवा, देवदारु, गोखरू, कुटकी, शतावर, पपिल, कुम्भेरके फल, रास्ना, तालमखाना, अंडकी जड़, बिधारा, नागरमोथा और कमल इनके कल्कके द्वारा घी एक प्रस्थ, आमलोंका रस २ प्रस्थ और जल ३ प्रस्थ सबको एकत्र करके उत्तम विधिसे घृतको सिद्ध करे। जब यह अच्छे प्रकारसे पक जाय तब इसको भोजन और पानमें व्यवहार करे। यह घृत—बहुतसे दोषोंसे उत्पन्न हुए वातरक्त, अत्यंत उभरा हुआ वातरक्त, गम्भीर वातरक्त, त्रिक, जंघा, ऊरु और जानुगत वातरक्त, क्रोष्टुशीर्ष, महाशूल, दारुण आमवात, अत्यंत पीडायुक्त दुस्तर दाह, मूत्रकृच्छ्र, उदावर्त्त, प्रमेह, विषमज्वर और सर्व प्रकारके वात पित्त तथा कफसे उत्पन्न हुए रोगोंको दूर करता है। इसको हमेशा सेवन करनेसे—वर्ण, आयु और बलकी वृद्धि होती है। यह उत्तम घृत—अश्विनीकुमारोंने निर्माण किया है॥ ८२-८८ ॥

महागुडूचीघृत ।

अमृतायाः शतं प्राप्य जलद्रोणे विपाचयेत् । चतुर्भागावशिष्टन्तु घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ८९ ॥ क्षीरं चतुर्गुणं तत्र दापयेन्मतिमान्भिषक् । कल्कं चात्र प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ॥ ९० ॥ काकोली क्षीरकाकोली जीवकर्षभकौ च यत् । शतावरी वयस्था च मधुकं नीलमुत्पलम् ९१ अश्वगन्धा च मूलानि स्थिरा कटुकरोहिणी । ऋद्धिर्वृद्धिस्तथा मेदे श्वदंष्ट्रा बृहतीद्वयम् ॥ ९२ ॥ गुडूचीफलिनीरास्नावासकं चापि संहरेत् । तदेकत्र समैर्भागैः पाचयेन्मृदुनाग्निना ॥ ९३ ॥ पानाभ्यञ्जननस्येषु परिषेके च दापयेत् । वातरक्तं सशोथाढ्यं सदाहं क्रोष्टुशीर्षकम् ॥ ९४ ॥ खञ्जोरुस्तम्भवातश्च रक्तपित्तं सुदारुणम् । बहुविधं वातकृच्छ्रं गृध्रसीं वातकण्टकम् ॥ नाशयेद्योजितं सर्पिर्धन्वन्तरिवचो यथा ॥ ९५ ॥

गिलोयको १०० पल लेकर एक द्रोण जलमें पकावे। जब पकते पकते जल चौथाई भाग बाकी रह जाय तब उतारकर छान लेवे। फिर इस क्काथमें उत्तम गायका

घी एक प्रस्थ, गायका दूध ४ प्रस्थ तथा नीचे लिखी औषधियोंका कल्क दो दो तोला, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक, शतावर, हरड, मुलैठी, नील कमल, असगंधकी जड, शालिपर्णी, कुटकी, ऋद्धि, वृद्धि, मेदा, महामेदा, गोखरू, कटेरी, बड़ी कटेरी, गिलोय, फूलप्रियंगु, रास्ना और अडूसा इनका कल्क मिलावे । सबको एकत्र मिलाकर यथाविधिसे घृतको मन्द २ अग्निसे पकावे । इसको पान, अभ्यंजन, नस्य और सेचनमें प्रयोग करे । यह घृत—अत्यन्त सूजनयुक्त वातरक्त, दाहयुक्त, क्रोष्टुशीर्षवात, खंजता, ऊरुस्तम्भ, दारुण रक्तपित्त, अनेक प्रकारका वातकृच्छ्र, गृध्रसी और वातकण्टकरोग इन सबको यह दूर करता है ॥ ८९—९५ ॥

पिण्डतैल ।

शारिवासर्जमञ्जिष्ठायष्टीसिक्थैः पयोन्वितैः । तैलं पक्वा प्रयोक्तव्यं पिण्डाख्यं वातरक्तनुत् ॥ ९६ ॥

शारिवा, राल, मजीठ, मुलैठी और मोम इनके द्वारा दूधमें तैलको पकावे । यह पिण्डाख्य तैल—वातरक्त को दूर करता है ॥ ९६ ॥

द्वितीय पिण्डतैल ।

शारिवासर्जयष्ट्याह्वमधूच्छिष्टैः पयोन्वितैः । सिद्धमेरण्डतैलं वा वातरक्तरुजापहम् । अपूतमथितस्यास्य पिण्डतैलस्य योगतः ॥ ९७ ॥

शारिवा, राल, मुलैठी, मोम और दूध इनके द्वारा अंडके तैलको पकावे । यह वातरक्तको दूर करता है, सपिंड तैलके योगसे गलित, मथित वातरक्तकी पीडा दूर होती है ॥ ९७ ॥

गुडूचीतैल ।

तुलां पचेज्जलद्रोणे गुडूच्याः पादशेषितम् । क्षीरद्रोणन्तु ताभ्याञ्च पचेत्तैलाढकं शनैः ॥ ९८ ॥ कल्कैर्मधुकमञ्जिष्ठा जीवनीयगणस्तथा । कुष्ठैलागुरुमृद्वीका मांसीव्याघ्रनखं नखी । हरेणुश्रावणीव्योषशताह्वाशृङ्गिशारिवा ॥ ९९ ॥ त्वक्पत्रागुरुविक्रान्ता स्थिरातामलकी तथा । नतं केसरह्रीबेरं पद्मकोत्पलचन्दनम् ॥ १०० ॥ सिद्धं कर्षसमैर्भागैः पानाभ्यङ्गानुवासनैः । सेव्यं वातास्रजान्हन्ति सर्वधात्वन्तराश्रितान् ॥ ॥ १०१ ॥ धन्यं पुंसवने स्त्रीणां गर्भदं वातपित्तनुत् । स्वेदकंडूरुजायासशिरःकम्पामयार्दितान् । हन्याद्व्रणकृतान्दोषान्गुडूचीतैलमुत्तमम् ॥१०२॥

गिलोयको एक तुला परिमाण लेकर एक द्रोण जलमें पकावे, जब पकते पकते जल चौथाई भाग बाकी रह जाय तब उतार कर छान लेवे । फिर इस काथमें उत्तम गायका दूध एक द्रोण और उत्तम तिलका तेल एक आढक तथा मुलैठी, मजीठ, जीवनीयगणकी औषधियें, कूट, इलायची, अगर, दाख, बालछड़, बाघनख, नखीद्रव्य, रेणुका, गोरखमुण्डी, त्रिकुटा, सौंफ काकडाशिंगी, शारिवा, दालचीनी, तेजपात, काली अगर, विष्णुकान्ता, शालिपर्णी, भुँइआमला, तगर, नागकेशर, सुगंधबाला, पद्माख, कमोदिनी और चन्दन प्रत्येक औषधिका कल्क एक एक तोला डालकर उत्तम विधिसे तेलको सिद्ध करे । इस तेलका पान, अभ्यंग और अनुवासनवस्तिमें प्रयोग करनेसे सर्व धातुगत वातरक्त रोग दूर होता है । यह तेल, स्त्रियोंको पुंसवन कर्ममें पूज्य और पुत्रको देनेवाला, वातपित्तनाशक, तथा पसीना, खुजली, शिरःकम्प, आर्दित और व्रणके विकार इन सबको दूर करनेवाला है ॥ ॥ ९८–१०२ ॥

अमृताह्वय तैल ।

गुडूचीमधुकं ह्रस्वपञ्चमूलीपुनर्नवा । रास्नामेरण्डमूलञ्च जीवनीयानि लाभतः ॥ १०३ ॥ पलानां शतैर्भागैर्बलापञ्चशतं भवेत् । कोलान्बिल्वयवान्माषान्कुलत्थांश्चाढकोन्मितान् ॥ १०४ ॥ काश्मर्याणाञ्च शुष्काणां षोडशद्रोणवारिणि । सा-

धयेज्जर्जरं पूतं चतुर्द्रोणञ्च शेषयेत् १०५ तैलद्रोणं पचेत्तेन दत्त्वा पञ्चगुणं पयः । पिष्ट्वा त्रिपलिकांश्चैव चन्दनोशीरकेशरम् ॥ १०६ ॥ पत्रैलाऽगुरुकुष्ठानि तगरं मधुयष्टिका । माञ्जिष्ठार्धपलश्चैव तत्सिद्धं सर्वयौगिकम् ॥ १०७॥ वातरक्ते क्षते क्षीणे भारार्त्ते क्षीणरेतसि ॥ वेपथौ क्षिप्तभग्नानां सर्वमेकाङ्गरोगिणाम् ॥ १०८ ॥ योनिदोषमपस्मारमुन्मादं विषमज्वरम् । हन्यात्पुंसवनञ्चैव तैलाध्रमसृताह्वयम् ॥ १०९॥

गिलोय, मुलैठी, लघुपंचमूल, पुनर्नवा, रास्ना, अंडकी जड और जीवनीयगणकी जितनी औषधियें मिल सकें प्रत्येक १००-१०० पल लेवे, खिरैंटी ५०० पल लेवे, बेर, बेल, जौ, उड़द और कुलथी ये प्रत्येक एक एक आढक परिमाण तथा कुम्भेरके सूखे फल एक आढक इन सबको सोलह द्रोण जलमें पकावे । जब पकते २ चार द्रोण जल अवशेष रह जाय तब उतारकर छान लेवे । फिर इस काथमें तिलका तेल १ द्रोण, गायका दूध ५ द्रोण तथा चन्दन, खस और नागकेशर ये तीनों तीन तीन पल, तेजपात, इलायची, अगर, कूठ, तगर, मुलैठी और मजीठ ये प्रत्येक दो २ तोले लेवे, इनका कल्क कर सबको यथाविधि मिलाकर तेलको पकावे । यह तेल-वातरक्त, क्षतक्षीण, बोझ ढोनेसे थके हुए, वीर्य्यक्षीण, कंप, क्षिप्त, भग्न, सर्व प्रकारके एकांगरोग, योनिदोष, अपस्मार, उन्माद और विषमज्वरमें अत्यंत हितकारी है और पुंसवन कर्ममें भी अत्यन्त उपयोगी है ॥ १०३-१०९ ॥

नागबलातैल ।

शुद्धां पचेन्नागबलां तुलान्तु जलार्मणे पादकषायसिद्धम् । पाच्यन्तु तैलाढकमत्र देयमजापयस्तैलविमिश्रितन्तु ॥ ११० ॥ नतं सयष्टीमधुकं सकल्कं दत्त्वा पृथक् पञ्चपलं विपक्कम् । तद्वातरक्तं शमयत्युदीर्णं बस्तिप्रदानेन हि सप्तरात्रात् । दशाहयोगेन करोत्यरोगं पीतञ्च तैलोत्तममश्विजुष्टः ॥ १११ ॥

उत्तम शुद्ध नागबला एक तुला परिमाण लेकर एक द्रोण जलमें पकावे, जब पकते पकते जल चौथाई भाग शेष रह जाय तब उतार कर छान लेवे। इस काथमें तिलका तेल १ आढक और बकरीका दूध २ आढक परिमाण तथा तगर और मुलैठी प्रत्येकका कल्क पाँच २ तोले लेकर सबको यथाविधि मिलाकर मन्द २ अग्निसे तेलको पकावे। इस तेलको बस्तिके द्वारा प्रयोग करनेसे सात दिनमें घोर वातरक्तरोग दूर होता है। इस अश्विनीकुमारोंके निर्माण किये हुए तेलको दश दिनतक पीनेसे वातरोगी आरोग्य होता है ॥ ११० ॥ १११ ॥

दशपाकबलातैल ।

बलाकषायकल्काभ्यां तैलं क्षीरचतुर्गुणम् । दशपाकं भवेत्तेन वातासृग्वातपित्तनुत् ॥ ११२ ॥ धन्यं पुंसवनञ्चैव नराणां शुक्रवर्द्धनम् । रेतोयोनिविकारघ्नमेतद्वातविकारनुत् ॥ ११३ ॥

खिरैंटीके काथ और कल्कके द्वारा एक प्रस्थ तेल और चौगुने दूधको मिला कर मंद २ अग्निसे पकावे। इस प्रकार तेलको दश बार पकावे तो यह दशपाकबलातैल तैयार होता है । यह तेल-वातरक्त और वातपित्तको दूर करता है । पुंसवनकर्ममें उत्तम, मनुष्योंके वीर्य्यको बढानेवाला, वीर्य्यदोष और योनिके रोगोंको हरनेवाला और वातविकारको नष्ट करनेवाला है ॥ ११२ ॥ ११३ ॥

शतपाकसहस्रपाकबलातैल ।

बलाकषायकल्काभ्यां तैलं क्षीरं समं पचेत् । सहस्रशतपाके वा वातासृग्वातपित्तनुत् ॥ ११४ ॥ रसायनमिदं श्रेष्ठमिन्द्रियाणां प्रबोधनम् । जीवनं बृंहणं स्वर्य्यं शुक्रासृग्दोषनाश-

नम् ॥ ११५ ॥ बलातैलसहस्रेण तथा पाकसहस्रकम् ॥ ११६॥

खिरैंटीके कल्क और काथके द्वारा एक प्रस्थ तेलको चौगुने दूधमें पकावे । इस प्रकार सौ बार या हजार बार तेलको पकावे । यह शतपाकी अथवा सहस्र-पाकवाला बलातैल उत्तम रसायन है, इन्द्रियोंको चैतन्य करनेवाला, जीवन (प्राणरक्षक), बृंहण (पुष्टिकारक), स्वरको शुद्ध करनेवाला, वीर्य्यके विकार और रुधिरके विकारोंको दूर करनेवाला है । खिरैंटीके द्वारा तेलको हजारबार पकाना चाहिए ॥ ११४ ॥ ११५ ॥ ११६ ॥

पुनर्नवागुग्गुलु ।

पुनर्नवामूलशतं विशुद्धं रुबूकमूलञ्च तथा प्रगृह्य । दत्त्वा पलं षोडशकञ्च शुण्ठ्याः संकुट्य सम्यग्विपचेद्घटेऽपाम् ॥ ११७ ॥ पलानि चाष्टावथ कौशिकस्य तेनाष्टशेषेण पुनः पचेत्तु । एरण्डतैलं कुडवं च दद्यात्तथा त्रिवृच्चूर्णपलानि पञ्च ॥ ११८ ॥ निकुम्भचूर्णस्य पलं गुडूच्याः पलद्वयं चार्धपलं पलं वा । पलत्रयं त्र्यूषणचित्रकानि सिन्धूत्थभल्लातविडङ्गकानि॥११९॥ कर्षं तथा माक्षिकधातुचूर्णं पुनर्नवायाः पलमेव चूर्णम् । चूर्णानि दत्त्वा ह्यवतार्य शीते खादेन्नरः कर्षसमप्रमाणम् ॥१२०॥ वातास्रजं वृद्धिगदञ्च सर्वं जयत्यवश्यं त्वथ गृध्रसीञ्च । जङ्घोरुपृष्ठत्रिकबस्तिजञ्च तथामवातं प्रबलं जयेत्तु ॥ १२१ ॥

पुनर्नवेकी जड़ १०० पल, अण्डकी जड १०० पल और सोंठ १६ पल इन सबको एकत्र कूटकर एक द्रोण जलमें पकावे । जब पकते २ जल आठवाँ भाग शेष रह जाय तब उतारकर छान लेवे । फिर इस काथमें उत्तम शुद्ध गूगल ८ पल डालकर फिर पकावे।जब मावासा बन जाय अंडीका तेल एक कुडव परिमाण, निसोतका चूर्ण ५ पल, दंतीका चूर्ण चार तोले, गिलोय दो पल या डेढ पल, त्रिकुटा, चीता, सैंधानमक मिलावे और वायविडंग इन सबका चूर्ण ३पल, सोनामाखीका चूर्ण एक तोला और पुनर्नवेक चूर्ण ४ तोले डालकर उत्तम विधिसे मन्द २ अग्निसे एकजीव कर ले। जब सिद्ध हो जाय तब स्वयंशीतल होनेपर उतार लेवे । इसमेंसे प्रतिदिन एक तोला परिमाण खाय । यह गूगल–वातरक्त, बढे हुए सर्वप्रकारके वातरक्त, गृध्रसीरोग, जंघागत, ऊरुगत, पृष्ठगत,त्रिकगत वात, बस्तिगत और प्रबल आमवातको दूर करता है ॥ ११७–१२१ ॥

चत्वारो माषका हीने मध्यमेऽष्टौ च माषिकाः । श्रेष्ठे द्वादशकाः प्रोक्ता वैद्यैर्विज्ञायते त्रिधा ॥ संसरत्वाद्गुरुत्वाद्वा गुग्गुलोः करणक्रमः ॥ १२२ ॥

चार माशेका कर्ष हीन होता है,आठ माशेका कर्ष मध्यम होता है और बारह माशेका कर्ष उत्तम होता है । इस प्रकार वैद्योंने तीन प्रकारका कर्ष माना है । सारक और भारीपन युक्त होनेसे यह गूगलका क्रम कहा है ॥ १२२ ॥

प्रस्थमेकं गुडूच्याश्च ह्यर्धप्रस्थन्तु गुग्गुलोः । प्रत्येकं त्रिफलायास्तु तत्प्रमाणं विनिर्दिशेत् ॥ १२३ ॥ सर्वमेकत्र संकुट्य क्वाथयेन्नल्वणेऽम्भसि । पादशेषं परिस्राव्यं कषायं ग्राहयेद्भिषक् ॥ १२४ ॥ पुनः पचेत्कषायन्तु यावत्सान्द्रत्वमागतम् । दन्तीं व्योषविडङ्गानि गुडूचीत्रिफलात्वचः॥ ॥१२५॥ ततश्चार्द्धपलं चूर्णं गृह्णीयाद्वा प्रति प्रति । कर्षन्तु त्रिवृतायाश्च सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ॥ १२६ ॥ तस्मिन्सुसिद्धं विज्ञाय कवोष्णे प्रक्षिपेद्बुधः । ततश्चाग्निबलं ज्ञात्वा खादेत्कर्षप्रमाणतः ॥ १२७ ॥ वातरक्तं तथा कुष्ठं गुदजान्यग्निसादनम् । कुष्ठव्रणं प्रमेहांश्च सामवातं भगन्दरम् ॥ १२८ ॥ आढ्यवातञ्च श्वयथुं सर्वानेतान्व्य-

पोहति । अश्विभ्यां निर्मितः पूर्वममृताख्यो हि गुग्गुलुः ॥ १२९ ॥

गिलोय १ प्रस्थ, गूगल आधा प्रस्थ और त्रिफलेकी प्रत्येक औषधि आधा आधा प्रस्थ लेवे, सबको एकत्र कूटकर एक द्रोण जलमें पकावे, जब पकतेर जल चौथाई भाग शेष रह जाय तब उतारकर छान लेवे। फिर इस काथमें दंती, त्रिकुटा, वायबिडंग, गिलोय, त्रिफला और दालचीनी, प्रत्येकका चूर्ण दो दो तोले, निसोतका चूर्ण एक तोला डालकर एकजीव कर ले और चिकने बर्तनमें रक्खे । अग्निका बलाबल विचारकर इसमेंसे प्रतिदिन एक तोला प्रमाण खाय । यह गूगल—वातरक्त, कोढ, बवासीर, मंदाग्नि, कुष्ठ, व्रण, प्रमेह, आमवात, भगन्दर, आढ्यवात और सूजन इन सबको दूर करता है। यह पूर्वकालमें अश्विनीकुमारोंने निर्माण किया है ॥ १२३ ॥ १२४ ॥ १२५ ॥ ॥ १२६ ॥ १२७ ॥ १२८ ॥ १२९ ॥

अमृतादिगुग्गुलु ।

द्विप्रस्थममृतायाश्च प्रस्थमेकन्तु गुग्गुलोः। प्रत्येकं त्रिफलाप्रस्थं वर्षाभूप्रस्थमेव च ॥ १३० ॥ सर्वमेकत्र संकुट्य साधयेन्नल्वणेऽम्भासि । पुनः पचेत्पादशेषं यावत्सान्द्रत्वमागतम् १३१ दन्तीचित्रकमूलानां कणाविश्वाफलत्रिकम् । गुडूचीत्वग्विडङ्गानां प्रत्येकार्द्धपलोन्मितम् ॥ १३२ ॥ त्रिवृता कर्षमेकन्तु सर्वमेकत्र चूर्णयेत् । सिद्धे चोष्णे क्षिपेत्तत्र त्वमृतागुग्गुलुः परम् ॥ १३३ ॥ अतो यथाबलं खादेदम्लपित्ती विशेषतः । वातरक्तं तथा कुष्ठं गुदजान्यग्निसादनम् ॥ १३४ ॥ कुष्ठव्रणं प्रमेहांश्च सामवातं भगन्दरम् । नाड्याढ्यवातं श्वयथुं हन्यात्सर्वामयांस्तथा । अश्विभ्यां निर्मितो ह्येष ह्यमृताद्यस्तु गुग्गुलुः ॥ १३५ ॥

गिलोय २ प्रस्थ, गूगल १ प्रस्थ, त्रिफलेकी प्रत्येक औषधि एक एक प्रस्थ और पुनर्नवा १ प्रस्थ, इन सबको एकत्र कूट करके एक द्रोण जलमें पकावे। जब पकते २ जल चौथाई भाग बाकी रह जाय तब उतारकर छान लेवे। फिर इस छने हुए काथको पकावे, जब पकते १ गाढा होजाय तब दंती, चीतेकी जड, पपिल, सोंठ, त्रिफला, गिलोय दालचीनी, और बायविडंग प्रत्येक औषधिका चूर्ण दो२तोले और निसोतका चूर्ण एक तोला सबको मिलाकर खूब चलाकर एकमएक कर लेवे । इस अमृतागूगलको बलानुसार सेवन करे । यह विशेष कर अम्लपित्त, वातरक्त, कोढ, बवासीर, मन्दाग्नि, कुष्ठ, व्रण, प्रमेह, आमवात, भगन्दर, नाडीगत वात, आढ्यवात, सूजन और सर्व प्रकारके रोगोंको दूर करता है। यह अमृतागूगल अश्विनीकुमारोंने निर्माण किया है ॥ १३०–१३५ ॥

सूर्यप्रभावटिका ।

चित्रकं त्रिफलानिम्बपटोलमधुयष्टिका । वराङ्गं केसरश्चैव जीवन्ती चाम्लवेतसम् ॥ १३६ ॥ रामसेनकदार्व्येलामुस्तापर्पटकं तथा । तुत्थकं कटुका भार्ङ्गी चव्यं पद्मकदीप्यकौ ॥ ॥ १३७ ॥ पिप्पली मरिचं दन्ती शटी शुण्ठी सपुष्करम् । विडङ्गं पिप्पलीमूलं जीरकं देवदारु च ॥ १३८ ॥ पद्मकं कटुकं रास्ना दुरालम्भामृता त्रिवृत् । लतातुरुष्कतालीशौ वृक्षाम्ललवणत्रयम् ॥ १३९ ॥ धान्यकं चाजमोदा च कारवी धातुमाक्षिकम्॥ जातीफलं तुगाक्षीरी वाजिगन्धा च दाडिमम् ॥ १४० ॥ कंकोलकमुशीरञ्च द्विक्षारामलकं तथा । एतानि पलमात्राणि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ ॥ १४१ ॥ गिरिजस्य पलान्यष्टौ द्विपलश्चैव गुग्गुलोः। प्रस्थमेकं सिताया श्च घृतस्य कुडवं तथा ॥ १४२ ॥ गिरिजेन समं लोहं प्रस्थार्धं माक्षि-

कस्य च॰। सर्वमेकत्र संमिश्र्य स्निग्धभांडे निधापयेत् ॥ १४३ ॥ वातव्याधिमूरुस्तम्भमर्दितं गृध्रसीं तथा। विद्रधिं श्लीपदं गुल्मं पांडुरोगं हलीमकम् ॥ १४४ ॥ क्षतक्षयमपस्मारमन्त्रवृद्धिश्च नाशयेत्। अरोचकं पार्श्वशूलमुदरश्च भगन्दरम् ॥ १४५ ॥ हृद्रोगशूलनुत्कम्पविषमज्वरनाशनम्। वर्षोपयोगात्कुरुते वलीपलितनाशनम् ॥ १४६ ॥ उरःक्षतश्च यात्रोगान्मुखरोगांश्च दारुणान्। नाशयेद्गुटिकाश्चापि चूर्णं पाणितलोन्मितम् ॥ १४७ ॥ विविधान्नानि भुञ्जीत यथेष्टश्च यथासुखम्। रसैर्मांसैश्च यूषैश्च क्षीरैर्द्राक्षां शुभां पिबेत् ॥ १४८ ॥ मेधां संजनयेद्दीप्तिं जीवेद्वर्षशतत्रयम्। वन्ध्यानां पुत्रदा श्रेष्ठा शुक्रवृद्धिकरा परा ॥ १४९ ॥ गुटिका भास्करी नाम्ना प्रोक्ता देवेन शम्भुना। प्रमेहं रक्तपित्तश्च सामवातमहाक्षयम् ॥ १५० ॥ नाडीव्रणांश्च घोरांश्च ह्यपचीश्च प्रणाशयेत्। श्वयथुश्च शिरोरोगं कामलाश्च नियच्छति ॥ १५१ ॥ धात्विन्द्रियबलक्षीणो हतभो हतपौरुषः। भवेदनेन युक्तो ना बलधातुपराक्रमैः ॥ दृष्टिपुष्ट्या स युक्तश्च निर्विकारो निरामयः ॥ १५२ ॥ अग्निदीप्तियुतो हृष्टो दीर्घायुः पुरुषो भवेत्। ये वातप्रभवा रोगा ये च पित्तसमुद्भवाः। कफरोगाश्च ये केचिद्द्वन्द्वजं सन्निपातजम् ॥ १५३ ॥ ते सर्वे प्रशमं यान्ति भास्करेण तमो यथा। रोगविद्राविणी प्रोक्ता गुटी सूर्य्यप्रभा मता ॥ १५४ ॥

चीता, त्रिफला, नीमकी छाल, परवल, मुलैठी, दालचीनी, नागकेशर, जीवंती, अमलवेत, चिरायता दारुहल्दी, इलायची, नागरमोथा, पित्तपापडा, तूतियां[1], कुटकी, भारंगी, चव्य, पद्माख, अजवायन, अजमोद, पीपल, काली मिरच, दंती, कचूर, सोंठ, पोहकरमूल, बायविडंग, पीपलामूल, जीरा, देवदारु, पद्माख, कुटकी, रास्ना, धमासा, गिलोय, निसोत, लताकस्तूरी, लोवान, तालीशपत्र, विपांविल, तीनों लवण, धनियां, अजमोद, कलौंजी, सोनामाखी, जायफल, वंशलोचन, असगंध, अनारका वक्कल, शीतलचीनी, खस, जवाखार, सज्जीखार और आमले ये प्रत्येक औषधि चार चार तोले लेकर बारीक चूर्ण करले, तथा शिलाजीत आठ पल, गूगल दो पल, मिश्री एक प्रस्थ, घी एक कुडव, लोहेकी भस्म आठ पल और सोनामाखीकी भस्म आधा प्रस्थ इन सबको एकत्र मिलाकर उत्तम चिकने बासनमें भरकर रख देवे। यह सूर्य्यप्रभावटिका—सर्व प्रकारके वातरोग, उरुस्तम्भ, अर्दित, गृध्रसी, विद्रधि, श्लीपद, गुल्म, पाण्डुरोग, हलीमक, क्षतक्षय, अपस्मार, अन्त्रवृद्धि, अरोचक, पार्श्वशूल, उदररोग, भगन्दररोग, हृदयरोग, शूल, कम्प और विषमज्वरको नष्ट करती है। इसको एक वर्षपर्य्यन्त सेवन करनेसे वली और पलितरोग नष्ट होता है तथा उरःक्षत और दारुण मुखरोगको यह गोली अथवा उपरोक्त औषधिका एक तोला प्रमाण सेवन किया हुआ चूर्ण दूर कर देता है। इसपर अनेक प्रकारके यथेष्ट और सुखकारक अन्न पान सेवन करे तथा अनेक प्रकारके मांसरस, यूप, दूध और दाख आदि स्वादिष्ट पदार्थ सेवन करे। इसके प्रभावसे मेधा दीपन होती है, तीन सौ वर्षकी अवस्था होती है, वन्ध्या स्त्रियोंके उत्तम पुत्र उत्पन्न होता है, वीर्य्यकी वृद्धि होती है। यह सूर्य्यप्रभावटिका पूर्वकालमें महादेवने कही थी। यह गोली—प्रमेह, रक्तपित्त, आमवात, राजयक्ष्मा, नाडीव्रण, दारुण रोग, अपची, सूजन, शिरोरोग और कामलाको नष्ट करती है। जिन मनुष्योंकी धातु, इन्द्रियें और बल क्षीण हो गया है, जिनकी कांति नष्ट हो गई है और जो पुरुषार्थहीन हैं वे सब इसके प्रभावसे बल, धातु और पराक्रमयुक्त हो जाते हैं तथा उनकी दृष्टि और शरीर पुष्ट होकर विकार और रोगरहित हो जाते हैं एवं उनकी अग्नि अत्यंत दीपन होती है

[1] तूतिया शुद्ध करके डालना चाहिये।

और बहुत दिनोंतक जीते रहते हैं । जो वातजनित रोग हैं, जो पित्तजनित रोग हैं तथा कफजनित जो रोग हैं और जो द्वन्द्वज तथा सान्निपातज रोग हैं वे सब इस सूर्य्यप्रभावटिकाके प्रतापसे शीघ्र ही शमन हो जाते हैं । जिस प्रकार सूर्य्यसे अंधकार नष्ट हो जाता है । यह सूर्य्यप्रभागुटिका-रोगोंको दलित करनेवाली है ॥ १३६-१५४ ॥

कैशोरगुग्गुलु ।

वरमहिषलोचनोदरसन्निभवर्णस्य गुग्गुलोः प्रस्थम् । प्रक्षिप्य तोयराशौ त्रिफलाञ्च यथोक्तपरिमाणाम् ॥१५५॥ द्वात्रिंशच्छिन्नरुहा पलानि देयानि यत्नेन ॥ १५६ ॥ विपच्वेदप्रमत्तो दर्व्या संघट्टयन्मुहुर्यावत । अर्धक्षयितं तोयं जातं ज्वलनस्य सम्पर्कात् ॥ ॥ १५७ ॥ अवतार्य्य वस्त्रपूतं पुनरपि सम्पादयेदयःपात्रे । सान्द्रीभूतं तस्मिन्नवतार्य्य हिमोपलप्रस्थे ॥ ॥ १५८ ॥ त्रिफलाचूर्णार्धपलं त्रिकटोश्चूर्णं षडक्ष परिमाणम् । कृमिरिपुचूर्णार्धपलं कर्षं कर्षं त्रिवृद्दन्त्योः॥१५९॥ पलमेकन्तु गुडूच्या दत्त्वा संचूर्ण्य यत्नेन । उपयुज्य चानुपानं यूषं क्षीरं सुगन्धिसलिलञ्च ॥ १६० ॥ इष्टाहारविहारी भैषज्यमुपयुज्य सर्वकालमिदम् । तनुरोधिवातशोणितमेकजमथ सर्वजं जयति ॥ १६१ ॥ स्रुतपरिशुष्कं स्फुटितं जीर्णं वा जानुजं वापि । व्रणकासकुष्ठगुल्मं श्वयथूदरपांडुमेहांश्च ॥ १६२ ॥ मन्दाग्निञ्च विबद्धं प्रमेहपिटिकांश्च नाशयत्याशु । सततं निषेव्यमाणः कालवशाद्धन्ति सर्वगदान् ॥ १६३ ॥ अभिभूय जरादोषं करोति कैशोरकं रूपम् ॥ १६४ ॥ प्रत्येकं त्रिफलाप्रस्थं जलं तत्र षडाढकम् । गुडवद्गुग्गुलोः पाकः सन्धेयस्तु विशेषतः ॥ १६५ ॥

भैंसके नेत्रके पेटके समान उत्तम भैंसिया गूगल ६४ तोले, त्रिफलेकी प्रत्येक औषधि पृथक् पृथक् एक एक प्रस्थ और गिलोय ३२ पल इन सबको एकत्र एक द्रोण जलमें पकावे और खूब करछीसे चलाता जाय । जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रह जाय तब उतारकर छान लेवे (किंतु मूलमें लिखा है कि, आधा भाग जल शेष रहने पर उतार लेना चाहिये सो आधा शेष रखनेसे क्राथ ठीक नहीं होसकता । इसलिये वृद्ध वैद्योंके उपदेशसे चतुर्थांश ही शेष रखना चाहिए) फिर इस क्राथको पात्रमें भरके अग्निपर चढाकर पकावे । जब पकते२गाढा हो जाय तब उतार लेवे, फिर इसमें सफेद मिश्री या कन्द एक प्रस्थ, त्रिफलेका चूर्ण २ तोले, त्रिकुटेका चूर्ण ६ तोले, वायबिडंगका चूर्ण २ तोले, निसोत १ तोला, दंती १ तोला और गिलोयका चूर्ण ४ तोले, सबको यथाविधि मिलाकर खूब करछीसे चला देवे । इसको यूष, दूध अथवा सुगंधित जलके साथ सेवन करे । इसपर इच्छानुसार आहार, विहार करे । इस गूगलको सदैव सेवन करनेसे शरीरको रोकनेवाली, एकदोषज, द्विदोषज, त्रिदोषज, स्रवता हुआ, स्फुट हुआ, सूखा हुआ, बहुत पुराना और जानुओंतक प्राप्त हुआ ऐसा वातरक्तरोग अवश्य दूर होता है तथा व्रण, खांसी, कोढ़, गुल्म, सूजन, उदररोग, पाण्डुरोग, प्रमेह, मंदाग्नि, मलबद्ध और प्रमेहपिडिका भी दूर हो जाती है । यह निरंतर सेवन किया हुआ कालके वश हुए रोगोंको जीतता है । जरा अवस्थाको दूर करके फिरसे नवयौवनयुक्त करता है । इसमें त्रिफलेकी प्रत्येक औषधि पृथक् पृथक् एक एक प्रस्थ लेनी चाहिये, जल छः आढक परिमाण लेना चाहिए और विशेष कर गूगलका पाक गुडके समान करना चाहिए ॥ १५५-१६५ ॥

सिंहनादगुग्गुलु ।

अष्टौ पलान्यत्र पलंकषायाः प्रस्थं पृथक् शुद्धफलत्रयस्य । दत्त्वा पचेद्द्रोणयुगे जलस्य पादावशेषं पुनरेव वैद्यः ॥ १६६ ॥ दन्तीत्रिवृत्त्र्यूषणवारीणां विडङ्गमुस्तात्रिफलामृतानाम् । कटूव्युग्रगन्धाग्निकमाणकानां

सपारदानाञ्च सगन्धकानाम् ॥१६७॥ पलार्धमानप्रमितं सचूर्णं दद्याद्विपक्के पुनरेव तत्र । फलानि संचूर्ण्य च कातकानि सहस्रसंख्याकलितानि पश्चात् ॥ १६८ ॥ खादेत्तु माषद्वितयं प्रवृत्तं तोयादिकं देयमतोऽनुपाने । आमानिलं सन्धिगतं सशूलं शिरोगतं जानुकटिस्थितञ्च ॥ १६९ ॥ शोषातिवृत्तिं विषमज्वरार्तिं प्रमेहकुष्ठानि भगन्दरञ्च । हन्यान्नराणामिति सिंहनादो मेदो मरुच्छ्लेष्मगदान्पुरोऽयम् ॥१७०॥ दाहोऽत्यन्तप्रवृत्तिर्वा विकारोऽल्पोऽपि चेद्भवेत् । तत्कृतस्तु तदा तत्र तक्रभक्तं हितं पिबेत् । उद्वर्त्तनं शीतजलस्नानञ्च शयनं तथा । विरेकातिशयं कुर्य्यात्सिंहनादे यतः सुधीः ॥१७१ ॥ ज्ञात्वा बलं शरीरे तु दद्यादेवं न वा भिषक् । तोयारणनालगोक्षीरैः क्रमात्पक्कं विशुद्ध्यति ॥ फलं कतकसंज्ञन्तु कृत्वा चूर्णं ततः क्षिपेत् ॥१७२॥

गूगल ८ पल और त्रिफलेकी प्रत्येक औषधि एक एक प्रस्थ लेकर दो द्रोण जलमें पकावे। जब पकते२ चौथाई भाग जल शेष रह जाय तब उतारकर छान लेवे । फिर इस क्वाथको अग्निपर चढाकर गुड़पाककी तरह पकावे । गाढा होनेपर दंती,निसोत,त्रिकुटा, कौंचके बीज, बायविडंग, नागरमोथा, त्रिफला, गिलोय, कुटकी, बच, चीता, मानकन्द, पारेकी भस्म[1] और शुद्ध गन्धक प्रत्येक दो २ तोले और निर्मली फल १००० लेवे, सबका एकत्र चूर्ण करके मिला देवे । प्रतिदिन इसमेंसे दो माशे जल दूधादिके अनुपानके साथ सेवन करे । यह सिंहनादगूगल-आमवात, सन्धिगत वात, शूल, शिरोगत वात,जानुगत वात, कटिगत वात,शोष, विषमज्वर,प्रमेह,कोढ, भगन्दर, मेदरोग, वातरोग और सब प्रकारके कफरोगोंको दूर करता है। जो इसको सेवन करनेसे अत्यन्त दाह हो अथवा अन्यान्य थोड़े बहुत किसी प्रकारके विकार मालूम हों तो इसके ऊपर तक्रके साथ भात खाय तथा शीतल और सुगन्धित पदार्थोका शरीरपर उबटन करे, शीतल जलसे स्नान करे और शीतल भूमिमें शयन करे। जो इस सिंहनादगूगलको सेवन करनेसे अत्यन्त दस्त होने लगें और रोगी बलहीन हो जाय तो इसका सेवन बन्द कर देवे । अथवा रोगीके बलानुसार इसको सेवन करावे । कतकफलशोधनविधि–निर्मलीके फलोंको लेकर जल, कांजी और गायके दूधमें क्रमसे पकावे तो कतकफल शुद्ध हो जाते हैं । पश्चात् इनका चूर्ण करके उपरोक्त औषधिमें मिला देवे ॥ १६६–१७२ ॥

[1] इसके अभावमें रससिन्दूर डाल देना चाहिये ।

द्वितीय सिंहनादगुग्गुलु ।

पलत्रयं कषायस्य त्रिफलायाः सुचूर्णितम् । सौगन्धिकं पलश्चैवं कौशिकस्य पलत्रयम् ॥ १७३ ॥ कुडवं चित्रतैलस्य सर्वमादाय यत्नतः । पाचयेत्पाकविद्वैद्यः पात्रे लोहमये दृढे ॥१७४॥ हन्ति वातं तथा पित्तं श्लेष्मिणं खञ्जपंगुताम्। श्वासं सुदुर्जयं हन्ति कासं पञ्चविधं तथा॥१७५॥कुष्ठानि वातरक्तञ्च गुल्मशूलोदराणि च । आमवातं जयेदेतदपि वैद्यविवर्जितम् ॥ १७६ ॥ मासादस्योपयोगेन जरापलितनाशनम्॥सर्पिस्तैलरसोपेतमश्नीयाच्छालियष्टिकम् ॥ १७७ ॥ सिंहनाद इति ख्यातो रोगवारणदर्पहा । वह्नेर्दीप्तिकरं पुंसां भाषितं दंडपाणिना ॥ १७८ ॥ अत्राहुस्त्रिफलाक्वाथं पृथक् त्रिपलसम्मितम्। किञ्चिन्निर्य्याति चैरंडस्नेहपाकेऽधिके खरे ॥ १७९ ॥

त्रिफलेका क्वाथ १२ तोले,शुद्ध गन्धकका चूर्ण ४ तोले, गूगल १२ तोले और अंडीका तेल १६ तोले, सबको यत्नपूर्वक लेकर पाकको जाननेवाला वैद्य उत्तम लोहेके दृढ पात्रमें पकावे । यह सिंहनादगूगल–वातजनितरोग, पित्तजनितरोग, कफजनितरोग, खजता, पंगुता,दुस्तर श्वास, पाँच प्रकारकी खाँसी, कोढ, वातरक्त,गुल्म, शूल,उदररोग और वैद्य करके

त्याग किया हुआ आमवात रोग, इन सबको दूर करता है। इसको नियमपूर्वक एक महीनेतक सेवन करनेसे-जरा (बुढापा) और पलित (विना ही अवस्थाके बालोंका सफेद हो जाना) रोग नष्ट होते हैं। इसपर-घी, तैल और मांसरस इनके साथ शालिचावल और साँठीचावलोंका भात खाय। यह सिंहनादगूगल-रोगरूपी हाथियोंके दर्पको भंजन करनेवाला है एवम् अग्निको दीपन करनेवाला है। इसको महादेवने कहा है। यहां त्रिफलेकी प्रत्येक औषधिका क्वाथ तीन २ पल लेना चाहिए। स्नेहपाक अधिक खर करनेसे अण्डीका तेल थोडा निकलता है॥ १७३-१७९ ॥

धान्यतुम्बुरुशुण्ठीनां मांसकूष्मांडमाषयोः। गुडूच्या गुग्गुलोश्चैव प्रस्थं षोडशभिः पलैः ॥ १८० ॥

धनियाँ, तुम्बुरु, सोंठ, मांस, पेठा, उडद, गिलोय और गूगल इन सबका १६ पलका एक प्रस्थ होता है॥ १८० ॥

चन्द्रप्रभावटिका।

क्रिमिरिपुदहनव्योषत्रिफलामरदारुचव्यभूनिम्बाः। मागधिमूलं मुस्तं शटीवचाधातुमाक्षिकम् ॥ १८१ ॥ लवणं क्षारनिशायुगकुस्तुम्बुरुगजकणातिविषा ॥ १८२ ॥ कर्षांशिकान्येव समानि कुर्यात्पलाष्टकं चाश्मजतु प्रदद्यात्। निष्पत्रशुद्धस्य पुरस्य धीमान्पलद्वयं लोहरजस्तथैव ॥१८३॥ सिताचतुष्कं पलमत्र वा स्यात्त्रिकुम्भकुम्भं त्रिसुगन्धियुक्तम्। पृथक्पलं चूर्णमथावपेच्च चन्द्रप्रभेयं गुटिका विधेया ॥ १८४ ॥ ज्वरातिसारग्रहणीविकारांश्चार्शांसि निर्नाशयते षडेव। भगन्दरान्कामलपांडुरोगान्नष्टस्य वह्नेः कुरुते प्रदीप्तिम् ॥ १८५ ॥ हन्त्यामयान्पित्तकफानिलोत्थान्नाडीगते मर्मगते व्रणे च। क्षतक्षये गृध्रसियक्ष्मणोश्च मेहे गजाख्ये प्रदरे प्रयोज्या ॥ १८६ ॥ शुक्रक्षये चाश्मरिमूत्रकृच्छ्रे शुक्रप्रवाहेऽप्युदरामये च। शम्भुं समभ्यर्च्य कृतप्रसादं प्राप्ता गुटी चन्द्रमसः प्रसादात् ॥१८७ ॥ न पानभोज्ये परिहारमस्ति न शीतवातातपमैथुने वा। भक्तस्य पूर्वं सततं प्रयोज्या तक्रानुपानाप्यथ मस्तुना वा॥ १८८ ॥ अजारसो जाङ्गलजो रसो वा पयोऽथवा शीतजलानुपानम् ॥ १८९ ॥ शुक्रदोषांस्त्रिहन्त्यष्टौ प्रमेहांश्चैव विंशतिः। वलीपलितनिर्मुक्तो वृद्धोऽपि तरुणायते ॥ १९० ॥

बायबिडंग, चीता, त्रिकुटा, त्रिफला, देवदारु, चव्य, चिरायता, पीपलामूल, नागरमोथा, कचूर, बच, सोनामाखी, सैंधानमक, जवाखार, हलदी, दारुहल्दी, धनियाँ, गजपीपल और अतीस ये प्रत्येक औषधि एक २ तोला, शिलाजीत ८ पल, पत्ररहित और शुद्ध गूगल २ पल, लोहेका चूर्ण २ पल, मिश्री ४ पल, निसोत, दन्ती और त्रिजातक प्रत्येकका चूर्ण चार २ तोले इन सबको एकत्र मिलाकर उत्तम विधिसे कूट पीस कर गोली बनावे। इसको चन्द्रप्रभावटिका कहते हैं। यह गोली-ज्वर, अतीसार, संग्रहणी, छः प्रकारकी बवासीर, भगन्दर, कामला, पाण्डुरोग, मंदाग्नि, पित्त, कफ और वातजनित रोग, नाडीगत, मर्म्मगत व्रण, क्षतक्षय, गृध्रसी, राजयक्ष्मा, हस्तिमेह, प्रदर, शुक्रक्षय, पथरी, मूत्रकृच्छ्र, वीर्य्यका गिरना और सर्वप्रकारके उदररोगोंमें हितकारक है। किया है प्रसन्न जिनको ऐसे सदाशिवको पूजकर चन्द्रमाके प्रसादसे यह उत्तम गोली प्राप्त हुइ है। इसपर भोजन और पानका कुछ परहेज नहीं है तथा शीत, पवन, धूप और मैथुनका भी परहेज नहीं है। इसको भोजनसे पहिले सदैव तक्रके साथ अथवा दहीके तोड़के साथ, बकरीके मांसरसके साथ, जाङ्गल जीवोंके मांसरसके साथ, किंवा दूधके साथ अथवा शीतल जलके साथ सेवन करे। यह चन्द्रप्रभावटिका आठ प्रकारके शुक्रदोष, बीस प्रकारके

प्रमेह और वलीपलितरोगोंको दूर करके वृद्ध मनुष्यको भी तरुणके समान कर देती है ॥ १८१--१९०॥

शिवसिद्धान्तोक्त बृहच्छिवगुटिका।

काले रवितापाढये चायःपात्रे शिलाजतु प्रवरम्। त्रिफलारससंयुक्तं त्र्यहं विशुद्धं पुनः शुष्कम् ॥ १९१ ॥ दशमूलस्य गुडूच्या रसे बलायास्तथा पटोलस्य। मधुकरसे गोमूत्रे त्र्यहं त्र्यहं भावयेत्क्रमशः ॥१९२॥ एकाहं क्षीरेण तु ततः परं भावयेत्पुनः शुष्कम्। सप्ताहं भाव्यं स्यात्क्वाथेनैषां यथालाभम् ॥ १९३ ॥ काकोल्यौ द्वे मेदे विदारियुग्मं शतावरी द्राक्षा। वृद्धियुगर्षभवीरा मुण्डितकाजीवांशुमत्यश्च ॥ १९४ ॥ रास्नापुष्करचित्रकदन्तीभकणाकालिङ्गचव्याश्च। कटुका शृङ्गी पाठा चैतानि पलांशकानि कार्य्याणि ॥ १९५ ॥ अष्टगुणसाधितानां रसेन पादांशकेन भाव्यं स्यात्। गिरिजस्यैवं भावितशुद्धस्य पलानि दश षड् वा ॥ ॥ १९६ ॥ द्विपलश्च विश्वधात्रीमागधिकाकर्कटाख्यमरिचानाम्। तुगाक्षीरीत्वग्नागदलैलानां मन्त्रयित्वा तु ॥ १९७॥ गिरिजस्य षोडशपलैर्गुटिकाः कार्य्यास्ततोऽक्षसमाः ॥ १९८ ॥ ताः शुष्का नवकुम्भे जातीपुष्पाधिवासिते स्थातव्याः। तासामेका काले पेया भक्ष्यापि वा सततम् ॥ १९९ ॥ क्षीररसदाडिमरसाः सुरासवश्च मधुकशिशिरतोयानि। आलोक्य गुणं तासामनुपाने वा प्रशस्यन्ते ॥ २०० ॥ सुजीर्णलघ्वन्नपयोजांगलनिर्यूहयूषभोजी स्यात्। सप्ताहं यावदतः परं भवेत्सर्वसामान्यः ॥ २०१ ॥ भुक्त्वापि भक्षतेऽग्रे यदृच्छया नोद्वहेद्भयं किञ्चित्। निरुपद्रवा प्रयुक्ता सुकुमारैः कामिभिश्चैव ॥ २०२॥ संवत्सरं प्रयुक्ता हन्त्येषा वातशोणितं प्रबलम्। बहुवार्षिकमपि गाढं यक्ष्माणं चाढयवातञ्च ॥ ॥ २०३ ॥ ज्वरयोनिशुक्रदोषप्लीहार्शःपांडुरोगहृद्ग्रहणी-। ब्रध्नवमिगुल्मपीनसहिक्काकासारुचिश्वासान् ॥ ॥ २०४ ॥ जठरं श्वित्रं कुष्ठं जाड्यं क्लैब्यं मदक्षयं शोषम्। उन्मादमपस्मारौ वदनाक्षिशिरोगदान्सर्वान् ॥ ॥ २०५ ॥ आनाहमतीसारं सासृग्दरकामलां प्रमेहांश्च। यकृदर्बुदानि विद्रधिं भगन्दरं रक्तपित्तञ्च ॥ २०६ ॥ अतिकार्श्यमतिस्थौल्यं स्वेदमपि प्लीहगदञ्च निहन्ति। दंष्ट्राविषमपि चोग्रं गराणि चैषां बहुप्रकाराणि ॥ २०७ ॥ मन्त्रौषधप्रयोगानरिप्रयुक्तांस्तांत्रिकास्तथा बाधाः। पाप्मालक्ष्मीं चेयं शमयति गुटिका शिवा नाम्नी ॥ २०८ ॥ बल्या वृष्या धन्या कान्तिवर्णयशःश्रीकरी चेयम्। दद्यान्नृपसदृशतां जयति वादे सुखस्था सर्वम् ॥ २०९ ॥ प्रकृतिमेधासुस्मृतिबुद्धिबलयुक्तस्तथा दृढशरीरः। पुष्ट्योजोवर्णेन्द्रियतेजोबलसंपदोपेतः २१० वलिपलितरोगरहितो जीवेद्वै शरदां शतं स पुरुषः। संवत्सरप्रयोगाद्वाभ्यां तु शतानि चत्वारि॥२११॥ सर्वामयाजिद्धितं मुनिभिर्भक्त्या रसायनं रहस्यम्। शिवगुटिकेति रसायनमुक्तं गिरिशेन गणपतये॥२१२॥

उत्तम शिलाजीतको ले कर सूर्य्यकी प्रचंड धूपमें लोहेके पात्रमें रख कर तीन दिनतक त्रिफलेके रसकी भावना देवे। इस प्रकार वारंवार भावना देवे और वारंवार धूपमें सुखावे। फिर दशमूल, गिलोय, खिरैंटी, पटोल और मुलैठी इनके रस अथवा काथमें और गोमूत्रमें क्रम क्रमसे तीन तीन दिनतक भावना देवे, फिर एक दिन दूधमें भावना दे कर धूपमें सुखा लेवे, पश्चात् काकोली, क्षीरकाकोली, मेदा, महामेदा, विदारी, क्षीरविदारी, शतावर, दाख, वृद्धि, ऋद्धि ऋषभक, जीवक, घीकुवार, गोरखमुण्डी, जीवन्ती, पृष्टिपर्णी, रायसन, पोहकरमूल, चीता, दंती, गजपीपल, इन्द्रजौ, चव्य, कुटकी, काकड़ाशिंगी और पाढ ये प्रत्येक औषधि चार चार तोले ले कर अठगुने जलमें पकावे। जब पकते पकते जल चौथाई भाग बाकी रह जाय तब उतारकर छान लेवे, फिर इस काथमें उपरोक्त शिलाजीतको सात दिनतक भावना देवे तो शिलाजीत अच्छे प्रकारसे शुद्ध हो जाता है। इस प्रकार शुद्ध किया हुआ शिलाजीत १६ पल, सोंठ, आमले, पीपल, काकडाशिंगी, काली मिरच, वंशलोचन, दालचीनी, नागरपान और इलायची ये प्रत्येक औषधि आठ आठ तोले सबको एकत्र कूट पीस कर एक एक तोलेकी गोली बनावे। इन गोलियोंको धूपमें सुखा कर चमेली आदिके सुगंधित फूलोंमें बसा कर उत्तम नवीन घडेमें भरकर रख देवे। प्रतिदिन एक गोली भक्षण करे अथवा जलके साथ सेवन करे। अनुपान-दूध, मांसरस, अनारका रस, मदिरा, आसव, शहद और शीतल जलादिक। अथवा इन गोलियोंके गुणोंके अनुसार या रोगानुसार अनुपानकी कल्पना करे। इन गोलियोंके जीर्ण होनेपर हलका अन्न, दूध, जांगल जीवोंके मांसका काथ और यूषका भोजन करे। सात दिनके पश्चात् फिर साधारण भोजन करे। फिर इसको चाहे भोजनसे पहले भक्षण करे और चाहे भोजनसे पीछे भक्षण करे। इससे किसी प्रकारका भय नहीं है। यह गोली सुकुमार और कामी पुरुषोंको सेवन की हुई कुछ भी उपद्रव नहीं करती है। इसको एक वर्षपर्य्यंत नित्य सेवन करनेसे-वातरक्त रोग दूर होता है तथा बहुत वर्षोंका पुराना और गम्भीर राजयक्ष्मा, आढ्यवात, ज्वर, योनि और शुक्रदोष, प्लीहा, बवासीर, पाण्डुरोग, हृदयरोग, संग्रहणी, ब्रध्मरोग, वमन, गुल्म, पीनस, हिचकी, खाँसी, अरुचि, श्वास, उदररोग, श्वित्रकुष्ठ, जडता, नपुंसकता, मद, क्षय, शोष, उन्माद, अपस्मार, मुखरोग, नेत्ररोग, शिरोरोग, आनाह, अतीसार, रक्तप्रदर, कामला, प्रमेह, यकृत्, अर्बुद, विद्रधि, भगन्दर, रक्तपित्त, अत्यन्त कृशता, अत्यन्त स्थूलता, स्वेद, प्लीहा, दंष्ट्राविष, उग्रविष, अनेक प्रकारके कृत्रिम विष, शत्रुओंकरके मंत्र, औषधि और अनेक प्रकारके किये हुए मारण मोहनादि प्रयोग तथा तांत्रिकों करके करी हुई अनेक प्रकारकी बाधा, पाप और अलक्ष्मी इन सबको यह "शिवगुटिका" दूर कर देती है तथा बलकारक, वीर्य्यवर्द्धक, धन्य, कांति, वर्ण, यश और लक्ष्मीको बढाती है। राजाके समान जय करानेवाली और सर्व प्रकारके सुखमें स्थित करती है। इसको नित्य सेवन करनेवाला मनुष्य प्रकृति, मेधा, स्मरणशक्ति, बुद्धि, बल, दृढशरीर, पुष्टि, ओज, वर्ण, इन्द्रिय, तेज, बल और सम्पदायुक्त हो जाता है। वली और पलित रोगोंसे रहित हो कर वह पुरुष दो सौ वर्षतक जीता रहता है। इसको एक वर्ष पर्य्यंत सेवन करनेसे और दो वर्षपर्यंत सेवन करनेसे चार सौ वर्षतक जीता रहता है, इसके प्रभावसे सर्व प्रकारके रोग दूर होते हैं, मुनियोंको भक्तिपूर्वक इस गुप्तरसायनका सेवन करना चाहिए। यह शिवगुटिका रसायन गणपतिके लिये पूर्वकालमें महादेवने कही है ॥ १९१-२१२ ॥

शिलाजतुशोधनविधि !

तेषु यत्कृष्णमलघु स्निग्धं निःशर्करश्च यत्। गोमूत्रगन्धि यच्चापि तत्प्रधानं शिलाजतु॥२१३॥ शिलाजतुसमं द्रव्यं क्वाथ्यमष्टगुणे जले। पादावशिष्टं तत्पूतं तस्मिन्कोष्णे विनिःक्षिपेत्॥२१४॥ तत्समरसतां यातं संशुष्कं प्रक्षिपेद्रसे भूयः। स्वैः स्वैरेव क्वाथैर्भाव्यं वारान्भवेत्सप्त ॥ २१५ ॥

काला, भारी, चिकना, शर्करारहित और जिसमें गोमूत्रकी गंध आती हो ऐसा शिलाजीत उत्तम

होता है। शिलाजीतको शुद्ध करनेवाली औषधि शिलाजीतके समान ले कर अठगुने जलमें पकावे। जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रह जाय तब उतार कर छान लेवे, फिर उस उष्ण क्वाथमें शिलाजीतको भावना देवे। इस प्रकार करनेसे जब वह क्वाथमें डालनेसे क्वाथके समान हो जाय तब फिर इसको सुखा कर क्वाथमें डाले, ऐसे वारंवार प्रत्येक औषधिके क्वाथमें सात सात बार भावना देवे॥ ॥ २१३-२१५ ॥

योगसारामृत।

शतावरी नागबला वृद्धदारकमुच्चटा। पुनर्नवामृताकृष्णावाजिगन्धात्रिकण्टकम्॥ २१६॥ पृथग्दशपलान्येषां सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत्। तदर्धशर्करायुक्तं चूर्णं संमर्दयेद्बुधः॥२१७॥ स्थापयेत्सुदृढे भाण्डे मध्वार्द्धाढकसंयुतम्। घृतप्रस्थेन चालोड्य त्रिसुगन्धिपलेन च॥ २१८॥ खादेद्यथेष्टचेष्टान्नो यथावह्निबलं नरः। वातरक्तं क्षयं कुष्ठं कार्श्यं पित्तास्रसम्भवम्॥ ॥२१९॥ वातपित्तकफोत्थांश्च रोगानन्यांश्च तद्विधान्। हत्वा करोति पुरुषं वलीपलितवार्जितम्। योगसारामृतो नाम्ना लक्ष्मीकीर्तिविवर्द्धनः॥ २२०॥

शतावर, नागबला, बिधारा, उच्चटातृण, पुनर्नवा, गिलोय, पीपल, असगंध और गोखरू ये प्रत्येक औषधि दश दश पल ले कर बारीक चूर्ण कर लेवे और सब चूर्णसे आधी उत्तम चीनी लेवे, शहद आधा आढक और घी एक प्रस्थ लेवे तथा दालचीनी, इलायची और तेजपातका चूर्ण चार तोले लेवे, सबको एकत्र मिलाकर अच्छे प्रकारसे चला कर एकमएक कर लेवे।इस पर इच्छानुसार आहार विहार करे। इसको अग्निके बलानुसार सेवन करे। यह योगसार-वातरक्त,क्षय, कोढ, कृशता, पित्तरक्त, वातपित्त और कफजनित रोग और अन्यान्य अनेक प्रकारके रोगोंको दूर करता है। यह योगसारामृत-वली और पलित रोगको दूर करता है। लक्ष्मी और कीर्तिको बढानेवाला है॥ २१६॥ २१७॥ २१८॥ ॥२१९॥ २२०॥

पथ्य।

व्यायामं मैथुनं कोपमुष्णाम्बुलवणं रसम्। दिवास्वप्नमभिष्यन्दि गुरुधान्यं विवर्जयेत॥ २२१॥

इसपर व्यायाम (दंड कसरत), मैथुन, क्रोध, गरम जल, लवणरस, दिनमें सोना, अभिष्यन्दिपदार्थ और भारी अन्न ये सब त्याग देवे॥२२१॥

इति श्रीवङ्गसेने भाषाटीकायां
वातरक्तनिदानाचिकित्सा-
धिकार समाप्त॥ २५॥

अथोरुस्तम्भाधिकार।



शीतोष्णद्रवसंशुष्कगुरुस्निग्धैर्निषेवितैः। जीर्णाजीर्णे तथाऽऽयाससंक्षोभस्वप्नजागरैः॥ १॥ सश्लेष्ममेदः पवनः साममत्यर्थसश्चितम्। अभिभूयेतरं दोषमूरू चेत्प्रतिपद्यते॥ २॥ सक्थ्यस्थीनि प्रपूर्य्यान्तः श्लेष्मणा स्तिमितेन च। तदा स्तभ्नाति तेनोरू स्तब्धौ शीतावचेतनौ॥ ३॥ परकीयाविव गुरू स्यातामतिभृशव्यथौ। ध्यानाङ्गमर्दस्तैमित्यतन्द्राच्छर्द्यरुचिज्वरैः॥ ४॥ संयुक्तौ पादसदनकृच्छ्रोद्धरणसुप्तिभिः। तमूरुस्तम्भमित्याहुराढ्यवातमथापरे॥ ५॥

जीर्ण अथवा अजीर्ण अवस्थामें शीतल, गरम, पतले, सूखे, भारी और चिकने पदार्थोंके अत्यन्त सेवन करनेसे, अधिक व्यायाम करने या शरीरको संचालन करनेसे, दिनमें सोने और रातमें जागनेसे, परस्पर विरुद्ध आहार और विहारोंके द्वारा कफ और मेदसयुक्त वायु शरीरमें स्थित अपक्व संचित आमदोष पित्तको आच्छादित करके दोनों ऊरुओंमें प्राप्त होकर तथा आर्द्रकफसे उनके भीतरकी हड्डियोंको परिपूर्ण कर देती है तब वायु स्तब्ध अर्थात् गतिरहित हो जाती है, इससे दोनों ऊरु अर्थात् घुटने स्तब्ध, शीतल, चेतनारहित, ऐसा मालूम हो कि जैसे दूसरेके होते हैं, भारी और अत्यन्त पिडायुक्त होते हैं तथा रोगी उठनेको और चलनेको असमर्थ हो जाता है ऊरुस्तम्भरोगमें मनुष्य निश्चेष्ट हो जाता है और शरीर गीले कपडेसे ढके हुएके समान मालूम होता है । तन्द्रा, वमन, अरुचि, शरीरमें पीड़ा, ज्वर और दोनों पांवोंका सो जाना, तथा बडे कष्टसे उठा कर धरा देना ये सब होते हैं उसको ऊरुस्तम्भ कहते हैं और कोई २ वैद्य आढ्यवात कहते हैं ॥ १-५ ॥

पूर्वरूप ।

प्राग्रूपं तस्य निद्रातिध्यानं स्तिमितता ज्वरः । लोमहर्षोऽरुचिश्छर्दिर्जंघोर्वोः सदनं तथा ॥ ६ ॥

ऊरुस्तम्भके पूर्वरूपमें अधिक निद्राका आना, ध्यानका लग जाना, स्तैमित्य (शरीर गीले कपडेसे आच्छादित होनेके समान जान पडना), ज्वर, रोमांचोंका होना, अरुचि, वमन, जंघा और ऊरुओंका रह जाना ये सब लक्षण होते हैं ॥ ६ ॥

ऊरुस्तम्भके लक्षण ।

वातशंकिभिरज्ञानात्तस्य स्यात्स्नेहनात्पुनः । पादयोः सदनं सुप्तिः कृच्छ्रादुद्धरणं तथा ॥ ७ ॥ जङ्घोरुग्लानिरत्यर्थं शश्वद्वा दाहवेदने । पादं च व्यथते न्यस्तं शीतस्पर्शं न वेत्ति सः ॥ ८ ॥ संस्थाने पीडने गत्यां चालने वाप्यनीश्वरः । अन्यनेयौ हि संभग्नावूरू पादौ च मन्यते ॥ ९ ॥

वैद्य, वातरोगके भ्रमसे ऊरुस्तम्भमें यदि स्नेह क्रिया (तैलादिका मर्दन) प्रयोग करे तो उससे रोग अधिक बढ़ जाता है, पांवोंमें शिथिलता और सुप्ती हो जावे, अत्यंत कष्टसे पांव उठाया और धरा जावे, जंघा और ऊरुओंमें ग्लानि हो, सदैव जलन और वेदना हो, पैरोंमें व्यथा हो, शीतल द्रव्योंका स्पर्श मालूम न हो, पांवोंको न हिला सके और न उठा सके, न धर सके, पांव और घुटने टूटेसे या दूसरेकेसे जान पड़ें, ये सब ऊरुस्तम्भके लक्षण हैं ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥

असाध्य लक्षण ।

यदा दाहार्तितोदार्तो वेपनः पुरुषो भवेत् । ऊरुस्तम्भस्तदा हन्यात्साधयेदन्यथा नवम् ॥ १० ॥

ऊरुस्तम्भवाले रोगीके यदि दाह करनेके समान पीडा या सुई चुभोने सरीखी पीडा और कम्प हो तो वह रोगी नष्ट हो जाता है और जो उपरोक्त उपद्रव न हों और थोडे दिनोंका उत्पन्न हुआ हो तो साध्य है ॥ १० ॥

ऊरुस्तम्भकी चिकित्सा ।

स्नेहासृक्स्रावववमनबस्तिकर्म्मविरेचनम् । वर्जयेदाढ्यवाते तु यतस्तैस्तस्य कोपनम् ॥ ११ ॥ तस्मादत्र सदा कार्यं स्वेदलंघनरूक्षणम् । आममेदः कफाधिक्यान्मारुतं नयतां शमम् ॥ १२ ॥ यत्स्यात्कफप्रशमनं न च मारुतकोपनम् । तत्सर्वं सर्वदा कार्यमूरुस्तम्भस्य भेषजम् ॥ १३ ॥ सर्वो रूक्षक्रमः कार्य्यस्तत्रादौ कफनाशनः । पश्चाद्वातविनाशाय कृत्स्ना कार्या यथा क्रियाः ॥ १४ ॥ भोज्याः पुराणाः श्यामाककोद्रवोद्दालशालयः । जाङ्गलैरघृतैर्मांसैः शाकैश्चालवणैर्हितैः ॥ १५ ॥ वायसीवास्तुकारिष्टसुनिषण्णकमूलकैः । शाकैरलवणैर्युक्तं जीर्णशाल्योदनं भिषक् ॥ १६ ॥ रूक्षणाद्वातकोपश्चेन्निद्रानाशार्तिसूचकः । स्नेहस्वेदक्रमस्तत्र कार्यो वातामयापहः ॥ १७ ॥

प्रतारयेत्प्रतिस्रोतो नदीं शीतजलां शिवाम् । सरश्च विमलं शीतं स्थिरतोयं पुनः पुनः ॥ १८ ॥ तथा विशुष्के च कफे व्रजेच्छान्तिमुरुग्रहः । शरीरबलमग्निश्च कार्येषा रक्षिता क्रिया ॥ १९ ॥

ऊरुस्तम्भरोगमें स्नेहन, रुधिरका निकलवाना (फस्त खुलवाना आदि), वमन कराना, वस्तिकर्म्म (पिचकारी लगाना) और विरेचन (जुल्लाव),इन सबको त्याग देवे क्योंकि इन स्नेहादि कर्म्मोंको सेवन करनेसे ऊरुस्तंभका उलटा प्रकोप होता है इसकारण ऊरुस्तंभमें सदैव स्वेदन,लंघन तथा रूक्षक्रिया करनी चाहिए । इस रोगमें वायुका बचाव करके आम, मेद और कफ अधिक होनेसे जो जो औषधि कफको शमन करनेवाली और वायुको कुपित नहीं करनेवाली हैं उन सबको सदैव इसमें सेवन करे । इस ऊरुस्तम्भरोगमें समस्त रूक्ष क्रिया करनी चाहिए । उसमें भी प्रथम कफको नष्ट करनेवाली क्रिया प्रयोग करनी चाहिये और फिर उसके पश्चात् वातनाशक क्रिया करनी चाहिए । ऊरुस्तम्भरोगमें पुराने समा, कोदों, वनकोदों और शालिचावल इनको घृतरहित जांगल जीवोंके मांसके साथ और लवणरहित हितकारक शाकोंके साथ भोजन करे । मकोय, बथुआ, नीमके पत्ते, शिरिआरी और मूली इनका विना नमकका शाक बनाकर पुराने शालिचावलोंके भातके साथ खाय । जो रूक्ष क्रिया करनेसे पीडायुक्त वायुका प्रकोप और निद्राका नाश हो तो वायुकी वेदनाको हरनेवाले स्नेहन तथा स्वेदन कर्म्म करे । ऊरुस्तम्भरोगीको शीतल जलवाली सुन्दर नदीमें उसके प्रवाहके साथ तैरावे और निर्मल तथा शीतल एवं स्थिर जलवाले सरोवरमें वारंवार तैरावे । रोगीके शरीरके बलका और अग्निका बचाव करके जिस प्रकार कफ सूख कर ऊरुस्तंभ शांत हो, उसी प्रकार चिकित्सा करनी चाहिए ॥ ११–१९ ॥

सक्षारमूत्रस्वेदांश्च रूक्षानुत्सादनानि च । कुर्य्याद्दाहे च मूत्राढ्यैः करञ्जफलसर्षपैः ॥ २० ॥ मूलं वाथाश्वगन्धाया मूलैरर्कस्य वा भिषक् । पिचुमन्दस्य वा मूलैरथवा देवदारुणा२१

ऊरुस्तंभरोगमें क्षार तथा मूत्र संयुक्त पदार्थोंसे स्वेदन करे । और रूक्ष पदार्थोंसे सांथले और घुटनोंको मले । दाह हो तो मूत्रादिकसे अथवा करंजुवेके फलोंसे संयुक्त सरसोंसे अथवा असगन्धके चूर्णसे अथवा आककी जडके चूर्णसे अथवा नीमकी जडके चूर्णसे या देवदारुके चूर्णसे सांथलोंको मले ॥ २० ॥ ॥ २१ ॥

क्षौद्रसर्षपवल्मीकमृत्तिकासंयुतैर्भिषक् । गाढमुत्सादनं कुर्य्यादूरुस्तम्भे सवेदने ॥ २२ ॥

ऊरुस्तंभमें अत्यन्त पीडा हो तो शहद, सरसों और बाँबीकी मिट्टी, इन सबको एकत्र पीस कर सांथलोंको मले ॥ २२ ॥

दन्ती द्रवन्ती सुरसा सर्षपैश्चापि बुद्धिमान् । तर्कारीस्वरसं शिग्रुवचावत्सकनिम्बकैः ॥ पत्रमूलफलैस्तोयैः शृतमुष्णश्च सेवनम् ॥ २३ ॥

दन्ती,द्रवंती (छोटी दंती),तुलसी, सरसों, जीवंती, सहिंजना, बच, कुडा और नीम इनके पत्ते, जड़ और फलोंका स्वरस क्राथ बना कर गरम गरम सेवन करे ॥ २३ ॥

भल्लातकामृताशुण्ठी दारुपथ्यापुनर्नवा । पञ्चमूलीद्वयोन्मिश्रा ऊरुस्तम्भनिबर्हणा ॥ २४ ॥

भिलावें, गिलोय, सोंठ, देवदारु, हरड, पुनर्नवा और दशमूल, इन सब औषधियोंका क्राथ बनाकर अथवा चूर्ण बनाकर सेवन करनेसे ऊरुस्तम्भरोग दूर होता है ॥२४ ॥

पिप्पली पिप्पलीमूलं भल्लातकफलानि च । कल्कं मधुयुतं पीत्वा ऊरुस्तम्भाद्विमुच्यते ॥ २५ ॥

पीपल,पीपलामूल और भिलावें इनका कल्क बनाकर तथा शहद मिलाकर सेवन करनेसे ऊरुस्तम्भरोग दूर होता है ॥ २५॥

रास्नादिक्काथ।

रास्नाश्यामाकपथ्या मरिचमिसिशिवा वेल्लकश्वाश्वगन्धा यासं छिन्नाजमोदासुमुखमतिविषा वृद्धदारुर्बृहत्यौ। शुण्ठी तिक्ता यवानी सहचरचविकैरण्डदार्व्याजकर्णा ऊरुस्तम्भामवातं जठररुजकटीपृष्ठशूलान्त्रवृद्धिम् ॥ वातामश्वासशोथान्कफपवनरुजादण्डकांश्चाशु हन्यात् ॥ २६ ॥

रास्ना, सारिवा, हरड, काली मिरच, सौंफ,हलदी, बायबिडंग, असगंध, जवासा, गिलोय, अजमोद, बनतुलसी, अतीस, बिधारा, कटेरी, बडी कटेरी, सोंठ, कुटकी, अजवायन, पियावाँसा, चव्य, अंडकी जड, दारुहलदी और साल इनका क्काथ बना कर सेवन करनेसे ऊरुस्तम्भ, आमवात, उदररोग, कटिशूल, पृष्ठशूल, अंत्रवृद्धि, अपक्कवात, श्वास, सूजन, वातपित्त, कफजनित रोग और दंडकाक्षेपरोग नष्ट होता है ॥ २६ ॥

ग्रन्थिकारुष्ककृष्णानां क्काथं क्षौद्रान्वितं पिबेत। चव्ययासाग्निदारूणां कल्कं वा मधुसंयुतम् ॥ २७ ॥ त्रिफलाचव्यकटुकं ग्रन्थिकं मधुना लिहन्। ऊरुस्तम्भविनाशाय पुरं मूत्रेण वा पिबेत् ॥ २८ ॥

पीपलामूल भिलावे और पीपल इनका क्काथ बनाकर शहद डालकर सेवन करनेसे ऊरुस्तंभ रोग दूर होता है। चव्य, जवासा, चीता और देवदारु इनका कल्क बनाकर शहद मिलाकर सेवन करनेसे अथवा त्रिफला, चव्य, कुटकी और पीपलामूल इनका चूर्ण बनाकर शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे ऊरुस्तंभरोग नष्ट होता है। अथवा ऊरुस्तंभरोगको दूर करनेके लिये गूगलको गोमूत्रके साथ सेवन करे॥ २७॥ २८॥

लिह्याद्वा त्रिफलाचूर्णं क्षौद्रेण कटुकायुतम्। सुखाम्बुना पिबेद्वापि चूर्णं षड्धरणं नरः॥ २९॥

त्रिफलेके चूर्णको और कुटकीके चूर्णको शहद मिलाकर चाटनेसे ऊरुस्तम्भरोग नष्ट होता है। अथवा षड्धरण चूर्णको मंदोष्ण जलके साथ पान करनेसे ऊरुस्तम्भरोग शमन होता है ॥ २९॥

पिप्पलीवर्धमानं वा माक्षिकेण गुडेन वा। ऊरुस्तम्भे प्रशंसन्ति गण्डीरारिष्टमेव वा ॥ ३० ॥

वर्द्धमानपीपलको शहद अथवा गुडके साथ सेवन करनेसे ऊरुस्तम्भरोग दूर होता है। वनसूरणका अरिष्ट बनाकर सेवन करनेसे ऊरुस्तम्भरोग शमन होता है ॥ ३० ॥

शिलाजतुं गुग्गुलुं वा पिप्पलीमथ नागरम्। ऊरुस्तम्भे पिबेन्मूत्रैर्दशमूलीरसेन वा ॥ ३१ ॥ त्रिफलापिप्पली मुस्तं चव्यं कटुकरोहिणी। लिह्याद्वा मधुना चूर्णमूरुस्तम्भार्दितो नरः ॥ ३२ ॥

ऊरुस्तम्भरोगमें शिलाजीत और गूगलको अथवा पीपल और सोंठको गोमूत्र या दशमूलके क्काथके द्वारा पान करनेसे ऊरुस्तम्भरोग दूर होता है। त्रिफला, पीपल, नागरमोथा, चव्य और कुटकी, इनका चूर्ण बनाकर शहद मिलाकर सेवन करनेसे ऊरुस्तम्भरोग नष्ट होता है ॥ ३१ ॥३२ ॥

घृतं सौरेश्वरं दद्यादूरुस्तम्भे कफोत्तरे। दद्याच्छुण्ठीघृतं वापि वैश्वानरमथापि वा ॥ सैन्धवाद्यं हितं तैलममृताद्योऽपि गुग्गुलुः ॥ ३३ ॥

ऊरुस्तम्भरोगमें जो कफकी अधिकता हो तो सौरेश्वरघृत अथवा शुंठीघृत या वैश्वानरचूर्ण तथा सैन्धवादितैल अथवा अमृतादि गूगलको देना चाहिए॥ ३३ ॥

कुष्ठादितैल।

कुष्ठं श्रीवेष्टकोदीच्यं सरलं दारु केशरम्। अजगन्धाश्वगन्धे च तैलं तैः सार्षपं पचेत्। सक्षौद्रं मात्रया तद्वदूरुस्तम्भार्दितः पिबेत् ॥ ३४ ॥

कूठ, सरलका गोंद, सुगंधवाला, धूपसरल, देवदारु, नागकेशर, वनतुलसी और असगंध इनके कल्कके द्वारा सरसोंके तेलको पकाकर शहद मिलाकर यथोचित मात्रासे सेवन करनेसे अथवा पान करनेसे ऊरुस्तम्भरोग दूर होता है ॥ ३४ ॥

अष्टकट्वरतैल।

पलाभ्यां पिप्पलीमूलान्नागरादष्टकट्वरः। तैलप्रस्थं समं दध्ना गृध्रस्यूरुग्रहापहः ॥ ३५ ॥ सस्नेहं दधिसंभूतं तक्रं कट्वर उच्यते। अष्टकट्वरतैलेऽत्र तैलं सार्षपमिष्यते। पिप्पलीमूलशुण्ठयोश्च प्रत्येकं द्विपलं कृतम् ३६

पीपलामूल ८ तोले, सोंठ ८ तोले, मलाईयुक्त दहीसे बनाई हुई खट्टी छाछ ६४ तोले, दही ६४ तोले और सरसोंका तेल ६४ तोले,इन सबको एकत्र मिलाकर विधिपूर्वक तेलको सिद्ध करे। इसको अष्टकट्वर तैल कहते हैं। इस तेलका उपयोग करनेसे ऊरुस्तम्भरोग दूर होता है ॥ ३४ ॥ ३६ ॥

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायां ऊरुस्तम्भाधिकार समाप्त।

अथामवातरोगाधिकार।

विरुद्धाहारचेष्टस्य मन्दाग्नेर्निश्चलस्य च। स्निग्धं भुक्तवतो ह्यन्नं व्यायामश्चाथ कुर्वतः ॥ १ ॥ वायुना प्रेरितो ह्यामः श्लेष्मस्थानं प्रधावति। तेनात्यर्थं विदग्धोऽसौ धमनीः प्रतिपद्यते ॥ २ ॥ वातपित्तकफैर्भूयो दूषितो ह्यन्नजो रसः। स्रोतांस्यभिष्यन्दयति नानावर्णोऽतिपिच्छिलः ॥३॥ जनयत्यग्निदौर्बल्यं हृदयस्य च गौरवम्। व्याधीनामाश्रयो ह्येष आमसंज्ञोऽतिदारुणः ॥ ४ ॥

विरुद्ध आहार (प्रकृतिविरुद्ध, समयविरुद्ध,संयोगविरुद्ध) और विरुद्ध चेष्टा करनेवाले तथा खाली बैठे रहनेवाले और स्निग्ध अन्न भक्षण करके कसरत करनेवाले मनुष्योंके, मंदाग्निके कारण वायुसे प्रेरित हुई आम कफस्थान (आमाशय), वक्षस्थल, कंठ, मस्तक और संधियोंमें प्राप्त होती है। आम जो पित्तके स्थानोंमें जाय तो पक जाती है। किन्तु ऊपर कहे अनुसार कफके स्थानोंमें प्राप्त होनेके कारण अत्यन्त अपक्व रहकर यह आम धमनियोंके मार्गसे चलती है। इस प्रकार संचलन करती हुई यह आम फिर वातसे, पित्तसे तथा कफसे अत्यन्त दूषित होकर स्रोतोंमें रहनेवाले रसको वहने वाली शिराओंको रोक कर स्रोतोंको भारी कर देती है। वातादि दोषोंसे अनेक प्रकारके वर्णवाली, अत्यंत चिकनी,पिच्छिल यह आम अग्निको निर्बल कर देती है और हृदयमें भारीपनको उत्पन्न करती है। यह महादारुण आम व्याधियोंका आश्रयरूप है ॥ १–४ ॥

आमवातका पूर्वरूप।

अजीर्णाद्यो रसो जातः संचितः संक्रमेण वै। आमसंज्ञां स लभते शिरोगात्ररुजाकरः ॥ ५ ॥

भोजन किये हुए अन्नके नहीं पचनेसे जो अन्नका अपक्व रस उत्पन्न होता है वह क्रम क्रमसे जब एकत्रित होजाता है तब उसको आम कहते हैं। वह आम सम्पूर्ण शरीर तथा मस्तकमें पीडा करता है ॥ ५ ॥

आमवातके सामान्य लक्षण।

युगपत्कुपितावेतौ त्रिकसन्धिप्रवेशकौ। स्तब्धश्च कुरुते गात्रमामवातः स उच्यते ॥ ६ ॥

जब आम और वायु दोनों एक समय कुपित होकर कोठे तथा कमर और गर्दनकी पीछेकी संधियोंमें प्रविष्ट होकर शरीरको जकड़ देते हैं तब उसको आमवात कहते हैं ॥ ६ ॥

विशेषलक्षण ।

अङ्गमर्दोऽरुचिस्तृणा आलस्यं गौरवं ज्वरः । अपाकः शून्यताङ्गाना-मामवातस्य लक्षणम् ॥ ७ ॥

अंगोंका टूटना, अरुचि, तृषा, आलस्य, भारीपन, ज्वर, अन्नका नहीं पचना और अंगोंमें शून्यता ये आमवातके विशेष लक्षण हैं ॥ ७ ॥

अत्यन्त बढेहुए आमवातके लक्षण ।

सकष्टः सर्वरोगाणां यदा प्रकुपितो भवेत् । हस्तपादशिरोगुल्फत्रिकजानूरुसन्धिषु ॥ ८ ॥ करोति सरुजं शोथं यत्र दोषः प्रपद्यते । स दोषो रुजतेऽत्यर्थं व्याविद्ध इव वृश्चिकैः ॥ ॥ ९ ॥ जनयेत्सोऽग्निदौर्बल्यं प्रसेकारुचिगौरवम् । उत्साहहानिर्वैरस्यं दाहश्च बहुमूत्रताम् ॥ १० ॥ कुक्षौ कठिनतां शूलं तथा निद्राविपर्ययम् । तृट्छर्दिभ्रममूर्च्छाश्च हृद्ग्रहं विधिबन्धनम् ॥ १२ ॥ जाड्यान्त्रकूजमानाहं कष्टांश्चान्यानुपद्रवान् ॥ १२ ॥

सम्पूर्ण रोगोंमें अत्यन्त कष्टजनक जब यह आमवात अधिक कुपित होता है तब हाथ, पाँव, मस्तक, गुल्फ, त्रिक, घुटने, सांथल और घुटनोंके जोड़; इनमें पीड़ा युक्त सूजन उत्पन्न करता है । दुष्ट हुई यह आम जिस प्रदेशमें जाती है उसी शरीरके प्रदेशमें बीछूके काटे हुएके समान घोर पीड़ा करती है। आमवातसे जठराग्नि निर्बल होजाती है, मुखमें थूक आने लगता है, अरुचि होती है, शरीरमें भारीपन, उत्साहका नाश, विरसता, दाह, मूत्रका बाहुल्य, कुक्षिस्थानोमें कठिनता, शूल, निद्राका नाश, तृषा, भ्रम, वमन, मूर्च्छा, हृदयमें जड़ता, मलका अवरोध, जड़ता, आँतोंका कूजना, अफारा और दूसरे कलायखंजादि दुःखदायक उपद्रव होते हैं ॥ ८ ॥ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥

पित्तात्सदाहरागश्च सशूलं पवनानुगम् । स्तिमितं गुरुकण्डूकं कफजुष्टं तमादिशेत् ॥ १३ ॥

पित्ताधिक आमवातमें दाह और लाली होती है। वाताधिक आमवातरोगमें शूल होता है । कफाधिक आमवातरोगमें जड़ता, भारीपन और खुजली अधिक होती है ॥ १३ ॥

साध्यासाध्यविचार ।

एकदोषानुगः साध्यो द्विदोषो याप्य उच्यते । सर्वदेहचरः शोथः सकृच्छ्रः सान्निपातिकः ॥ १४ ॥

एक दोषजनित आमवात साध्य, दो दोष जनित आमवात याप्य और त्रिदोषजनित तथा सम्पूर्ण शरीरमें सूजनयुक्त आमवात कष्टसाध्य जानना ॥ १४ ॥

आमवातकी चिकित्सा ।

लंघनं स्वेदनं तिक्तं दीपनानि कटूनि च । विरेचनं स्नेहनश्च बस्तयश्चाममारुते ॥ १५ ॥

आमवातरोगमें लंघन, स्वेदन, कडवे, दीपन और चरपरे पदार्थ, विरेचनकर्म, स्नेहनकर्म और बस्तिकर्म ये सब उपचार करने चाहिये ॥ १५ ॥

रूक्षः स्वेदो विधातव्यो वालुकापुटकैस्तथा । उपनाहाश्च कर्त्तव्यास्तेऽपि स्नेहविवर्जिताः ॥ १६ ॥

आमवातरोगमें रेतेकी पोटली बनाकर उसका रूक्ष सेंक करे और स्नेहरहित उपनाह स्वेद देवे ॥ १६ ॥

आमवाताभिभूताय पीडिताय पिपासया । पञ्चकोलेन संसिद्धं पानीयं हितमुच्यते ॥ १७ ॥

आमवातसे पीडित मनुष्यको तृषा लगे तो पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता और सोंठ इनके द्वारा जलको पकाकर देवे ॥ १७ ॥

शुष्कमूलकयूषस्तु यूषं वा पाञ्चमौलिकम् । रसकं काञ्जिकं वापि शुण्ठिचूर्णावचूर्णितम् ॥ १८ ॥

आमवातरोगीको सूखी मूलीका यूष अथवा पंचमूलका यूष किंवा काँजीमें सोंठका चूर्ण डाल कर देवे ॥ १८॥

सौवीरं स्विन्नवार्त्ताकं तथा तिक्तफलानि च ॥ १९ ॥

सौवीरनामक काँजीमें बैंगनको उबाल कर अथवा कडवे फलोंको उबाल कर सेवन करे ॥ १९ ॥

वास्तूकशाकं सारिष्टं शाकं पौनर्नवं हितम् । पटोलं गोक्षुरश्चैव वरुणं कारवेल्लकम् ॥ २० ॥ यवान्नं कोरदूषान्नं पुराणं शालिषष्टिकम् । लावकानां तथा मांसं हितं तक्रेण संस्कृतम् ॥ २१ ॥ हितं च यूषं कौलत्थं कालायश्चणकस्य च । रुच्यं दद्याद्यथासात्म्यमामवाताहितं च यत् २२ ॥

बथुएका शाक, नीमके पत्तोंका शाक, पुनर्नवेका शाक, परवलका शाक, गोखरूके पत्तोंका शाक, बरनेके पत्तोंका शाक, करले, जौ, कोदों, पुराने शालि और साठीधान, तक्रमें सिद्ध किया हुआ लवेका मांस, कुलथीका यूष, मटरका यूप और चनेका यूष ये सब आमवातरोगमें हितकारी हैं। आमवातरोगीको अपनी प्रकृतिके अनुसार जो रुचे और आमवातरोगमें हितकारी हो वही उसको देना चाहिए॥२०॥२१॥२२॥

शतपुष्पावचाविश्वश्वंदंष्ट्रावरुणत्वचः । पुनर्नवासदेवाह्वशटीमुण्डितिकाः समाः ॥ २३ ॥ प्रसारणी च तर्कारी फलश्च मदनस्य च । शुक्तकाञ्जिकपिष्टाश्च सुखोष्णा लेपने हिताः ॥ २४ ॥

सौंफ, वच, सोंठ, गोखरु, बरनेकी छाल, पुनर्नवा, देवदारु, कचूर, गोरखमुण्डी, प्रसारणी डोडीका शाक और मैनफल इन सबको सिरकेकी काँजीमें पीसकर मंदोष्ण करके लेपन करनेसे आमवातरोग शान्त होता है ॥ २३ ॥ २४ ॥

अहिंस्राकेमुकामूलं शिग्रुवल्मीकमृत्तिका । मूत्रपिष्टैश्च कर्त्तव्यमुपनाहप्रलेपनम् ॥ २५ ॥

अहिंस्रा (हींस), केमुककी जड़, सहिंजनेकी जड़ और बाँबीकी मिट्टी: इनको गोमूत्रमें पीसकर पीड़ाके स्थानमें लेप करनेसे अथवा बाँधनेसे आमवातरोग शान्त होता है ॥ २५ ॥

चित्रकं कटुका पाठा कलिङ्गातिविषामृताः । देवदारुवचामुस्ता नागरातिविषाभयाः ॥ पिबेदुष्णाम्बुना नित्यमामवातस्य भेषजम् ॥ २६ ॥

चीता, कुटकी, पाठ, इन्द्रजौ, अतीस, गिलोय, देवदारु, वच, नागरमोथा, सोंठ, अतीस और हरड़ इन सबको एकत्र पीसकर गरमजलके साथ नित्य पीनेसे आमवातरोग शान्त होता है ॥ २६ ॥

शटीशुण्ठ्यभया चोग्रा देवाह्वातिविषामृताः । कषायमामवातस्य पाचनं रूक्षभोजनम् ॥ २७ ॥

कचूर, सोंठ, हरड़, वच, देवदारु, अतीस और गिलोय इनका क्राथ बनाकर पान करे और रूक्ष भोजन करे, इससे आमवातरोग शान्त होता है२७॥

रास्नां गुडूचीमैरण्डं देवदारुमहौषधम् । पिबेत्सर्वाङ्गिके वाते सामे सन्ध्यस्थिमज्जगे ॥ २८ ॥

रायसन, गिलोय, अण्डकी जड, देवदारु और सोंठ इनका क्राथ बनाकर सर्वांगवात, आमवात, संधिगत वात, अस्थिगत और मज्जागतवातमें पीना चाहिए ॥ २८ ॥

पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यचित्रकनागरैः । क्वथितं वारि तत्पेयमामवातनिबर्हणम् ॥ २९ ॥

पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता और सोंठ इनका क्राथ बनाकर पीनेसे आमवातरोग दूर होता है ॥ २९ ॥

शटीविश्वौषधीकल्कं वर्षाभूक्काथसंयुतम् । सप्तरात्रं पिबेज्जन्तुरामवातविनाशनम् ॥ ३० ॥

कचूर और सोंठ इनका कल्क बनाकर पुनर्नवेके काथमें मिलाकर सात दिनतक पान करनेसे आमवात रोग शमन होता है ॥ ३० ॥

रास्नामृतारग्वधदेवदारुत्रिकण्टकैरण्डपुनर्नवानाम् । क्वाथं पिबेन्नागरचूर्णमिश्रं जंघोरुपार्श्वत्रिकपृष्ठशूले ३१

रायसन, गिलोय, अमलतास, देवदारु, गोखरु, अंडकी जड़ और पुनर्नवा इनका काथ बनाकर सोंठका चूर्ण डालकर पान करनेसे जंघा, ऊरु, पार्श्व-त्रिक और पृष्ठगतशूल नष्ट होता है ॥ ३१ ॥

आमवाते कणायुक्तं दशमूलीजलं पिबेत् । खादेद्वाप्यभया विश्वं गुडूचीं नागरेण वा ॥ ३२ ॥

आमवातरोगमें दशमूलके काथमें पीपलका चूर्ण डाल कर पान करे, अथवा हरड और सोंठको एकत्र मिलाकर भक्षण करे या गिलोय और सोंठको मिलाकर खाय ॥ ३२ ॥

चित्रकेन्द्रयवापाठाः कटुकातिविषाभयाः । आमाशयोत्थवातघ्नं चूर्णं पेयं तथाम्बुना ॥ ३३ ॥

चीता, इन्द्रजौ, पाढ, कुटकी, अतीस और हरड़ इनका चूर्ण बनाकर सुहाते २ गरम जलके साथ भक्षण करे तो आमवातरोग शान्त होता है ॥ ३३ ॥

पुनर्नवामृताशुण्ठीशताह्वावृद्धदारुकम् । शटीमुण्डतिकाचूर्णमारनालेन पाययेत् ॥ आमवातं निहन्त्याशु गृध्रसीमुद्धतामपि ॥ ३४ ॥

पुनर्नवा, गिलोय, सोंठ, सौंफ, विधारा, कचूर और गोरखमुंडी इन सबका एकत्र चूर्ण बनाकर काँजीके साथ पान करनेसे आमवात और उद्धत गृध्रसीरोग दूर होता है ॥ ३४ ॥

कर्षं नागरचूर्णस्य काञ्जिकेन पिबेत्सदा । आमवातप्रशमनं कफवातहरं परम् ॥ ३५ ॥

एक तोला सोंठके चूर्णको कांजीके साथ सदैव पान करनेसे आमवात और कफवात शान्त होता है ॥ ३५ ॥

पञ्चमूलकचूर्णन्तु पिबेदुष्णेन वारिणा । मन्दाग्निशूलगुल्मश्च काफारोचकनाशनम् ॥ ३६ ॥

पंचमूलके चूर्णको गरमजलके साथ पीनेसे मन्दाग्नि, शूल, गुल्म, कफ और अरुचि नष्ट होती है ॥ ३६ ॥

आमवातगजेन्द्रस्य शरीरवनचारिणः । एक एव निहन्त्याशु ह्येरण्डस्नेहकेसरी ॥ ३७ ॥

शरीररूपी वनमें विचरण करनेवाले आमवातरूपी गजेन्द्रको एक अण्डीका तेलरूपी सिंह ही नष्ट कर देता है ॥ ३७ ॥

एरण्डतैलयुक्तां हरीतकीं भक्षयेन्नरो विधिवत् । आमानिलार्तियुक्तो गृध्रसीवृद्ध्यर्दितो नियतम् ॥ ३८ ॥

नित्य अण्डीके तैलके साथ हरडको विधिपूर्वक सेवन करनेसे आमवातकी पीडा, गृध्रसी, वृद्धि और अर्दितरोग दूर होता है ॥ ३८ ॥

आरग्वधस्य पत्राणि भृष्टानि कटुतैलतः । आमघ्नानि नरः कुर्य्यात्सूपभक्तावृतानि च ॥ ३९ ॥

अमलतासके पत्तोंको कडवे तेलमें भूनकर भक्षण करे और ऊपरसे दाल भात खाय तो आमवातकी पीडा शान्त होती है ॥ ३९ ॥

कटिग्रहके लक्षण ।

वायुः कट्याश्रितः शुद्धः सामो वा जनयेद्रुजम् । कटिग्रहः स एवोक्तः पङ्गुः सक्थिद्वयाश्रितः ॥ ४० ॥

कटिमें रहनेवाली शुद्ध वायु अथवा आमसहित वायु व्यथाको उत्पन्न करती है, इसको कटिग्रह कहते हैं। जो

इसमें दोनों सांथले रह जायँ तो इसको पंगुरोग कहते हैं ॥ ४० ॥

कटिग्रहकी चिकित्सा ।

शुण्ठीगोक्षुरकः क्वाथः प्रातः प्रातर्निषेवितः। सामे वाते कटीशूले पाचनो रुक्प्रणाशनः ॥ ४१ ॥

सोंठ और गोखरू इनका क्वाथ बनाकर प्रतिदिन प्रातःकाल सेवन करनेसे आमवात, कटिशूल और सर्व प्रकारकी वातकी पीडा शमन होती है ॥ ४१॥

यवक्षारसमायुक्तो मूत्रकृच्छ्रविनाशनः ॥ ४२ ॥

ऊपरके क्वाथमें जवाखार डाल कर पान करनेसे मूत्रकृच्छ्ररोग दूर होता है ॥ ४२ ॥

दशमूलीकषायेण पिबेद्वा नागराम्भसा। कुक्षिबस्तिकटीशूले तैलमेरण्डसम्भवम् ॥ ४३ ॥

दशमूलके क्वाथको अथवा सोंठके क्वाथको अंडोके तेलके साथ पान करनेसे कुक्षिशूल, बस्तिशूल और कटिशूल नष्ट होता है ॥ ४३ ॥

महौषधगुडूच्योस्तु क्वाथं पिप्पलिसंयुतम्। पिबेदामे सरुक्कोष्ठे कटीशूले विशेषतः॥ ४४ ॥

सोंठ और गिलोय इनका क्वाथ बनाकर पीपलका चूर्ण डालकर पीनेसें आमवात, कोष्ठशूल और विशेष करके कटिशूल नष्ट होता है ॥ ४४ ॥

विशोध्यैरण्डबीजानि पिष्ट्वा क्षीरे विपाचयेत्। तत्पायसं कटीमूले ध्रस्यां परमौषधम् ॥ ४५ ॥

अण्डके बीजोंको शुद्ध करके दूधमें पीसकर खीर पकावे। यह खीर कटिशूल और गृध्रसी वातकी परम औषधि है ॥ ४५ ॥

शुकतरुवल्कलसहितं गोमूत्रे स्थापितं तु सप्ताहम्। हिंगुवचाशतपुष्पासैन्धवयुक्तेन तेनाथ॥ ४६ ॥ तत्पुटकेन च हन्यात्कटीरुजं दारुणं पुंसाम्। आममेदोवृद्धिभवान्विकारांश्चानिलोद्भवान् ॥ ४७ ॥

शिरसकी छालको गोमूत्रमें पीस कर सात दिनतक रख देवे। फिर इसमें हींग, बच, सौंफ और सेंधानमक मिला कर पुटपाकविधिसे पकावे। इसको सेवन करनेसे दारुण कटिशूल, आम और मेदके बढनेसे उत्पन्न हुए विकार और समस्त वातविकार नष्ट होते हैं॥ ४६ ॥ ४७ ॥

अमृतादिचूर्ण।

अमृतानागरगोक्षुरुमुण्डतिकावरुणकैः कृतं चूर्णम्। मस्त्वारनालपीतं सामानिलनाशनं ख्यातम् ॥ ४८ ॥

गिलोय, सोंठ, गोखरू, गोरखमुण्डी और बरुनेकी छाल इनका चूर्ण बनाकर दहीके तोड अथवा कांजीके साथ पान करनेसे आमवातरोग नष्ट होता है ॥ ४८ ॥

लघुरास्नादि।

रास्नैरण्डशतावरीसहचरादुःस्पर्शवासामृता, देवाह्वातिविषाभयाघनशटीशुण्ठीकषायः कृतः। पीतः सोरुबुतैल एष विहितः सामे सशूलेऽनिले, कट्यूरुत्रिकपार्श्वपृष्ठजठरे कोष्ठे च वातार्त्तिजित् ॥ ४९ ॥

रास्ना, अंडकी जड़, शतावर, पियाबाँसा, जवासा, अडूसा, गिलोय, देवदारु, अतीस, हरड, नागरमोथा, कचूर, और सोंठ इनका क्वाथ बनाकर अंडीका तेल डाल कर पान करनेसे आमवात, शूल, कटिशूल, ऊरुशूल, त्रिकशूल, पार्श्वशूल, पृष्ठशूल, उदरगत वात, कोष्ठगत और सर्व प्रकारके वातकी पीडा शमन होती है ॥ ॥ ४९ ॥

महारास्नादि।

रास्नावातारिमूलश्च वासकः सदुरालभः। शटीदारुबला मुस्तं नागरातिविषाभया ॥ ५० ॥ श्वदंष्ट्राव्याधिघातश्च मिसिधान्यं पुनर्नवा।

अश्वगन्धामृताकृष्णा वृद्धदारुशतावरी ॥ ५१ ॥ वचासहचरा चैव चविका बृहतीद्वयम् । समभागान्वितैरेतै रास्ना त्रिगुणभागिकैः ॥ ५२ ॥ कषायं पाययेत्सिद्धमष्टभागावशेषितम् । शुण्ठीचूर्णसमायुक्तमामाद्येन युतं तथा ॥ ५३ ॥ अलंबुषादिसंयुक्तमजमोदादिना तथा ॥ यथादोषं यथाव्याधि प्रक्षेपं कारयेद्भिषक् ॥ ५४ ॥ सर्वेषु वातरोगेषु सन्धिमज्जागतेषु च । कुब्जके वामने चैव पक्षाघाते तथार्दिते ॥ ५५ ॥ जानुजङ्घास्थिपीडासु गृध्रस्याश्च हनुग्रहे । प्रशस्तवातरक्ते स्यादूरुस्तम्भे तथाऽर्शसि ॥ ५६ ॥ विश्वाचीगुल्महृद्रोगविषूचीक्रोष्टुशीर्षके । अन्त्रवृद्धौ श्लीपदे च योनिशुक्रामये तथा ॥ ॥ ५७ ॥ पुंसां मेढ्रगते रोगे स्त्रीणां वंध्यामयेऽपि च । योषितां गर्भदं मुख्यं नास्त्यस्मात् परमं क्वचित् ॥५८॥ सर्वेषां पाचनानान्तु श्रेष्ठमेतद्धि पाचनम् । महारास्नादिको नाम्ना प्रजापतिविनिर्मितः ॥ ५९ ॥

रायसन, अंडकी जड, अडूसा, धमासा, कचूर, देवदारु, खिरैंटी, नागरमोथा, सोंठ, अतीस, हरड, गोखरू, अमलतास, सौंफ, धनियां, पुनर्नवा, असगंध, गिलोय, पीपल, विधारा, शतावर, बच, पियाबाँसा, चव्य, दोनों प्रकारकी खरेंटी ये प्रत्येक औषधि समान भाग लेवे और रास्ना इन सबसे तीन भाग लेवे इन सबको एकत्र मिला कर अष्टावशेष क्वाथ बनावे। इस क्वाथमें वैद्य दोषानुसार अथवा रोगानुसार सोंठका चूर्ण अथवा आमादि चूर्ण या अलम्बुषाद्य चूर्ण किंवा अजमोदादि चूर्ण डालकर पान करावे। यह महारास्नादि क्वाथ सर्व प्रकारके वात, सन्धिगत वात, मज्जागत वात, कुब्जकवात, वामनकवात, पक्षाघात, आर्दित, जानुगत वात, जंघागत वात, अस्थिगत वात, गृध्रसीवात, हनुग्रह, वातरक्त, ऊरुस्तम्भ, बवासीर, विश्वाचीवात, गुल्म, हृदयरोग, विषूची, क्रोष्टुशीर्ष अन्त्रवृद्धि, श्लीपद, योनिरोग, शुक्रदोष, लिंगगत रोग और स्त्रियोंके वन्ध्यादि रोगोंमें अत्यन्त हितकारी है एवं स्त्रियोंके गर्भको उत्पन्न करनेवाला है। यह सम्पूर्ण पाचनोंमें उत्तम पाचन है। यह महारास्नादि क्वाथ-पहले स्वयं ब्रह्माजीने निर्म्माण किया था ॥ ५०-५९ ॥

रास्नादशमूलक्वाथ ।

रास्नाविश्वविडङ्गानि रुबुकत्रिफला तथा । दशमूलं पृथक् श्यामाक्वाथो वातामयापहः ॥ ६० ॥ अर्द्धावभेदके चाढ्ये अर्दिते वातखञ्जके । नेत्ररोगे शिरःशूले ज्वरापस्मारयोस्तथा ॥ मनोभ्रंशे च विविधे कथितश्च सुखप्रदम् ॥ ६१ ॥

रायसन, सोंठ, बायविडंग अंडकी जड, त्रिफला, दशमूलकी समस्त पृथक् पृथक औषधि और निसोत इन सबका क्वाथ बना कर पान करनेसे वातरोग, अर्द्धावभेदक, आढ्यवात, अर्दितवात, वातखंज, नेत्ररोग, शिरःशूल, ज्वर, अपस्मार और अनेक प्रकारके मानसिक रोगोंको दूर करता है तथा सुखको उत्पन्न करता है ॥ ६० ॥ ६१ ॥

अलम्बुषादिचूर्ण ।

अलम्बुषागोक्षुरकत्रिफलानागरामृता । यथोत्तरं भागवृद्ध्या श्यामाचूर्णश्च तत्समम् ॥ ६२ ॥ पिबेन्मस्तु सुरातक्रकाञ्जिकोष्णोदकेन वा । आमवातं जयत्याशु रक्तपित्तं सशोणितम् ॥ ६३ ॥ त्रिकजानूरुसन्ध्यस्थिज्वरारोचकनाशनम् । अलंबुषादिकं चूर्णं रोगानीकविनाशनम् ॥६४॥ हरीतक्यक्षधात्रीभिः प्रसिद्धा त्रिफला क्रमात् । प्रत्येकं तेन वा युञ्ज्याद्भागवृद्धिर्यथोत्तरम् ॥ ६५ ॥

गोरखमुंडी १ भाग, गोखरू २ भाग, त्रिफला ३ भाग, सोंठ ४ भाग और गिलोय ५ भाग लेवे और सबके बराबर निसोतका चूर्ण लेवे, सबको एकत्र कूट पीस कर चूर्ण बनावे। इस चूर्णको सुरा, तक्र, कांजी अथवा गरम जलके साथ पान करनेसे आमवात, रक्तपित्त, त्रिक, ऊरु, जानु, संधि, अस्थिगत शूल, ज्वर और अरुचि दूर होती है। यह अलम्बुषादि चूर्ण—सम्पूर्ण रोगोंको दूर करनेवाला है। हरड, बहेड़ा और आमला, ये प्रत्येक औषधि एकसे दुगुनी लेनी चाहिए अथवा क्रमसे प्रत्येक औषधि बढा कर लेनी चाहिए अर्थात् हरड १ भाग, बहेडे २ भाग और आमले ३ भाग अथवा ४ भाग लेवे। इसको त्रिफला कहते हैं ॥६२॥ ६३॥ ६४॥६५॥

आभादिचूर्ण।

आभारास्नागुडूची च शतावरिमहौषधम्। शतपुष्पाश्वगंधा च हपुषा वृद्धदारुकम्॥ ६६॥ यवानी चाजमोदा च समभागानि कारयेत्। सूक्ष्मचूर्णमिदं कृत्वा बिडालपदकं पिबेत्॥६७॥ कटिग्रहं गृध्रसीञ्च मन्यास्तम्भं हनुग्रहम्। ये च कायगता रोगाः सर्वांस्तांश्च प्रणाशयेत्। चूर्णमाभादिनामेदं सर्ववातविकारनुत्॥ ६८॥

आभा (वणिक् द्रव्य विशेष या बबूरके बीज) रायसन, गिलोय, शतावर, सोंठ, सौंफ, असगन्ध, हाऊबेर विधारा, अजवायन और अजमोद ये सब औषधि समान भाग लेकर बारीक चूर्ण कर लेवे। प्रतिदिन इसमेंसे एक तोला प्रमाण खाय। यह चूर्ण—कटिग्रह, गृध्रसी, मन्यास्तम्भ, हनुग्रह और सम्पूर्ण शरीरगत रोगोंको एवं सब प्रकारके वातविकारोंको नष्ट करता है॥ ६६॥ ६७॥ ६८॥

द्वितीय अलम्बुषादिचूर्ण।

अलम्बुषागोक्षुरुकं गुडूचीवृद्धदारुकम्। पिप्पलीत्रिवृतामुस्तं वरुणं सपुनर्नवम्॥ ६९॥ त्रिफलानागरञ्चैव सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत्। मस्त्वारनालतक्रेण पयो मांसरसेन वा। आमवातं जयत्याशु श्वयथुं सन्धिसंस्थितम्॥ ७०॥

गोरखमुण्डी, गोखरू गिलोय, विधारा, पीपल, निसोत, नागरमोथा, बरनेकी छाल, पुनर्नवा, त्रिफला और सोंठ ये प्रत्येक औषधि समान भाग लेकर बारीक चूर्ण कर लेवे। इस चूर्णको दहीके तोड, कांजी, तक्र, दूध अथवा मांसरसके साथ सेवन करे तो आमवात और संधिगत सूजन शीघ्र ही दूर होजाती है॥ ६९॥ ७०॥

वैश्वानरचूर्ण।

माणिमन्थस्य भागौ द्वौ यवान्यास्तावदेव तु। भागास्त्रयोऽजमोदाया नागराद्भागपञ्चकम्॥ ७१॥ दश द्वौ च हरीतक्याः श्लक्ष्णचूर्णीकृतं शुभम्। मस्त्वारनालतक्रेण सर्पिषोष्णोदकेन वा॥७२॥ पीतं जयत्यामवातं गुल्महृद्बस्तिजान्गदान्। प्लीहानं हन्ति शूलादीनानाहं गुदजानि च॥७३॥ विबन्धं जाठरात्रोगांस्तथा वै हस्तपादजान्। वातानुलोमनमिदं चूर्णं वैश्वानरं स्मृतम्॥ ७४॥

सैंधानमक २ भाग, अजवायन २ भाग, अजमोद ३ भाग, सोंठ ५ भाग और हरड १२ भाग लेवे, सबको एकत्र पीसकर बारीक चूर्ण कर लेवे, इस चूर्णको दहीके तोड़के साथ, कांजीके साथ, घीके साथ, तक्रके साथ, अथवा गरम जलके साथ सेवन करे तो आमवात, गुल्म, हृदयरोग, बस्तिगत रोग, प्लीहा, शूलादिक, आनाह, बवासीर, विबन्ध, उदररोग और हस्त पांवोंके समस्त रोगोंको दूर करता है। यह वैश्वानर चूर्ण—वातको अनुलोमन करनेवाला है॥ ७१॥ ७२॥ ७३॥ ७४॥

शुण्ठीघृत।

पुष्ट्यर्थं पयसा साध्यं दध्ना विण्मूत्रसंग्रहे। दीपनार्थं मतिमता मस्तुना वा प्रकीर्त्तितम्॥ ७५॥ सर्पिर्नागर-

कल्केन सौवीरकचतुर्गुणम् । सिद्धमग्निकरं श्रेष्ठमामवातहरं परम् ॥ ७६ ॥

सोंठके कल्कके द्वारा चौगुनी सौवीर नामवाली कांजीमें घृतको सिद्ध करे । यह घृत-अग्निको दीपन करनेवाला और आमवातको हरनेवाला है। जो इसको पुष्टिके लिये बनाना हो तो इस घृतको दूधके द्वारा पकाना चाहिए । जो मल मूत्रके विबन्धको दूर करनेके लिये पकाना हो तो दहीके द्वारा सिद्ध करे और जो इसको अग्निदीपन करनेके लिये बनाना हो तो दहीके तोडके द्वारा सिद्ध करे ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

द्वितीय शुण्ठीघृत ।

नागरक्काथकल्काभ्यां घृतप्रस्थं विपाचयेत् । चतुर्गुणेन तेनाथ केवलेन जलेन वा ॥ ७७ ॥ वातश्लेष्मप्रशमनमग्निसन्दीपनं परम् । नागरं घृतमित्युक्तं कटीशूलामनाशनम् ॥ ७८ ॥

सोंठके कल्क और चौगुने क्वाथके द्वारा अथवा केवल चौगुने पानीके द्वारा घृतको पकावे । यह घृत-वातकफको शमन करनेवाला, अग्निको दीपन करनेवाला और कटिशूल तथा आमवातको नष्ट करता है ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

काञ्जिकादिघृत ।

हिंगुत्रिकटुकं चव्यं माणिमन्थं तथैव च । कल्कान्कृत्वा पृथक्सर्वान्घृतप्रस्थं विपाचयेत ॥ ७९ ॥ आरनालाढकं दत्त्वा तत्सर्पिर्जाठरापहम् । शूलं विबन्धमानाहमामवातं कटिग्रहम् ॥ नाशयेद्ग्रहणीदोषं मन्दाग्नेर्दीपनं परम् ॥ ८० ॥

हींग, त्रिकुटा, चव्य और सैंधानमक इन सबका पृथक् पृथक् कल्क बना कर एक प्रस्थ घृतको एक आढक कांजीके द्वारा पकावे । यह घृत-उदररोग, शूल, विबन्ध, आनाह, आमवात, कटिग्रह और ग्रहणी रोगको नष्ट करता है तथा अग्निको दीपन करता है ॥ ७९ ॥ ८० ॥

शृङ्गवेरादिघृत ।

शृङ्गवेरं यवक्षारं पिप्पलीमूलपिप्पली । सचव्यं चित्रकं हिंगु माणिमन्थं तथैव च ॥ ८१ ॥ कल्कं कृत्वा तु मतिमान्घृतप्रस्थं विपाचयेत् । आरनालाढकं दत्त्वा तत्सर्पिर्जठरापहम् ॥ ८२ ॥ शूलं विबन्धमानाहमामवातं कटिग्रहम् । नाशयेद्ग्रहणीरोगमग्निसन्दीपनं परम् ॥ ८३ ॥

अदरख, जवाखार, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, हींग और सैंधानमक इन औषधियोंके कल्कके द्वारा एक प्रस्थ घृतको एक आढक कांजीमें पकावे । यह घृत-उदररोग, शूल, विबन्ध, आनाह, आमवात, कटिशूल और संग्रहणीको नष्ट करता है तथा अग्निको दीपन करता है ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥

पिबेद्बिन्दुघृतं वापि धान्वन्तरमथापि वा । महाशुण्ठीघृतं चैव सामवाते पुनः पुनः ॥ ८४ ॥ यत्किञ्चिल्लेखनं सर्पिर्दीपनं पाचनञ्च यत् । तत्सर्वमामवातेषु योज्यं वा मस्तुना घृतम् ॥ ८५ ॥

आमवात रोगमें बिन्दुघृत अथवा धान्यन्तरघृत या महाशुण्ठी घृत बारंबार पान करे । जो घृत लेखन दीपन और पाचन हैं वे सब आमवात रोगमें प्रयोग करने चाहिएँ । अथवा मस्तुघृतको सेवन करना चाहिए ॥ ८४ ॥ ८५ ॥

अजमोदादिवटक ।

अजमोदमरिचपिप्पलीविडङ्गसुरदारुचित्रकशताह्वाः । सैन्धवपिप्पलीमूलं भागा नवकस्य पलिकाः स्युः ॥ ८६ ॥ शुण्ठी दशपलिका स्यात्पलानि तावन्ति वृद्धदारस्य । अभयापलानि पञ्च तच्चूर्णं कारयेच्छ्लक्ष्णम् ॥ ८७ ॥ समगुडवटकानदतश्चूर्णं वा कोष्णवारिणा पिबतः । नश्यन्त्यामानिलजाः सर्वे रोगाः

सुदारुणाः शीघ्रम् ॥ ८८ ॥ विषूचिकाप्रतितूनीतूनीहृद्रोगा गृध्रसी चोग्रा। कटिबस्तिगुदस्फुटनं चैवास्थिजङ्घयोस्तीव्रम् ॥ ८९ ॥ श्वयथुस्तथाङ्गसन्धिषु ये चान्ये चामवातसंभूताः। सर्वे प्रयान्ति नाशं तम इव सूर्य्यांशुविध्वस्तम् ॥ ९० ॥ क्षुद्बोधनमारोग्यं स्थिरतरुणं वलीपलितनाशनञ्च। कुरुते सतताभ्यासाद्गुणानन्यांस्तथा सुबहून् ॥ ९१ ॥

अजमोद, कालीमिरच, पीपल, वायविडंग, देवदारु, चीता, सौंफ, सैंधानमक और पीपलामूल ये प्रत्येक औषधि चार चार तोले, सोंठ ४० तोले, विधारा ४० तोले, और हरड़ २० तोले लेवे, इन सबको एकत्र बारीक पीस कर चूर्ण करे। फिर इस चूर्णमें बराबरका गुड मिलाकर बड़े बनावे। इन बड़ोंको सेवन करनेसे अथवा उपरोक्त चूर्णको गरम जलके साथ सेवन करनेसे आमवातरोग, हृदयरोग सर्व प्रकारके दारुणरोग, विषूचिका, प्रतितूनी, तूनी, उग्र-गृध्रसीरोग, कटिशूल, बस्तिशूल, गुदस्फुटन, अस्थि और जंघागत तीव्र वातकी पीडा, संपूर्ण अंग और संधियोंमें प्राप्त हुई सूजन और अन्यान्य समस्त आमवातसंबंधी रोग इस प्रकार दूर होते हैं जिस-प्रकार सूर्य्यसे अंधकारका समूह नष्ट होजाता है। इस अजमोदादिचूर्णका सदैव अभ्यास करनेसे क्षुधाकी वृद्धि होती है, आरोग्य बढता है, यौवनअवस्था स्थिर होती है, वली और पलितादि रोग नष्ट होते हैं तथा अन्यान्य बहुतसे गुणोंको उत्पन्न करता है ॥ ८६-९१ ॥

योगराजगूगल।

चित्रकं पिप्पलीमूलं यवानी कारवी तथा। विडङ्गमजमोदा च जीरकं सुरदारु च ॥ ९२ ॥ चव्यैला सैन्धवं कुष्ठं रास्नागोक्षुरधान्यकम्। त्रिफलामुस्तकं व्योषं त्वगुशीरं यवाग्रजम् ॥ ९३ ॥ तालीशपत्रं पत्रञ्च सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत्। यावन्त्येतानि चूर्णानि तावन्मात्रश्च गुग्गुलुः ॥ ९४ ॥ संमर्द्य सर्पिषा गाढं स्निग्धभाण्डे निधापयेत्। ततो मात्रां प्रयुञ्जीत यथेष्टाहारवानपि ॥ ९५ ॥ योगराज इति ख्यातो योगोऽयममृतोपमः। आमवाताढ्यवातादीन्कृमिदुष्टव्रणानि च ॥ ९६ ॥ प्लीहगुल्मोदरानाहदुर्नामानि विनाशयेत्। अग्निश्च कुरुते दीप्तं तेजो वृद्धिबलं तथा ॥ वातरोगाञ्जयत्येष सन्धिमज्जागतानपि ॥ ९७ ॥

चीता, पीपलामूल, अजवायन, कलौंजी, वायविडंग, अजमोद, जीरा, देवदारु, चव्य, बडी इलायची, सैंधानमक, कूट, रायसन, गोखरू, धनियाँ, त्रिफला, नागरमोथा, त्रिकुटा, दालचीनी, खस, जवाखार, तालीसपत्र और तेजपत्र ये प्रत्येक औषधि समान भाग लेवे और सबकी बराबर गूगल लेवे, सबको एकत्र कूट पीसकर चूर्ण कर लेवे। इस चूर्णको और गूगलको घीमें खूब अच्छे प्रकारसे मर्दन करके एक उत्तम चिकने बासनमें भर कर रख देवे, रोगीकी अग्निके बलानुसार इसकी मात्राका निरूपण करे। इस पर यथेच्छ भोजन करे। यह योगराजगूगल अमृतके समान है। यह-आमवातादि, कृमि, दुष्टव्रण, प्लीहा, गुल्म, उदररोग, आनाह, बवासीर और संधिमज्जागत आदि सर्व प्रकारके वातरोगोंको शमन करता है। तथा अग्निको दीपन, तेज और बलको बढाता है ॥ ९२-९७ ॥

शुण्ठीखण्ड।

नागरस्य पलान्यष्टौ घृतस्य पलविंशतिः। क्षीराढकसमायुक्तं खण्डस्यार्धशतं पलम् ॥ ९८ ॥ व्योषत्रिजातकद्रव्यात्प्रत्येकञ्च पलं पलम्। निदध्याच्चूर्णितं तत्र खादेदग्निबलं प्रति ॥ ॥ ९९ ॥ आमवातप्रशमनं बलपुष्टिविवर्धनम्। बल्यमायुष्यमोजस्यं वलीपलतनाशनम् ॥ १०० ॥

सोंठ ३२ तोले, घी ८० तोले, दूध एक आढक परिमाण, खाँड ५० पल, त्रिकुटा और त्रिजातकी

प्रत्येक औषधिका चूर्ण चार २ तोले, इन सबको उत्तम विधिसे मिला कर पाक करे। पहले शुण्ठीको दूधमें डाल कर खोया बनावे फिर घी डाल कर भून ले फिर चूर्ण मिला कर खाँड मिलावे। इस शुण्ठी खण्डको अग्निके बलानुसार भक्षण करे। यह आमवातको शमन करनेवाला, बल और पुष्टिको बढानेवाला, बलकारक, अवस्थाको स्थापन करनेवाला, ओजको बढानेवाला और वली तथा पलितको नष्ट करता है ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ १०० ॥

रसोनपिण्ड ॥

पलं शतं रसोनस्य तिलस्य कुडवं तथा। हिंगुत्रिकटुकं क्षारौ द्वौ पञ्चलवणानि च ॥ १०१ ॥ शतपुष्पा तथा कुष्ठं पिप्पलीमूलचित्रकौ। अजमोदा यवानी च धान्यकञ्चापि बुद्धिमान् ॥ ॥ १०२ ॥ प्रत्येकञ्च पलञ्चैषां श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत्। घृतं भाण्डे दृढे चैव स्थापयेद्दिनषोडशम् ॥ १०३ ॥ प्रक्षिपेत्तैलमानीय प्रस्थार्द्धं काञ्जिकस्य च। खादेत्कर्षप्रमाणन्तु तोयं मद्यं पिबेदनु ॥ १०४ ॥ आमवाते तथा वाते सर्वाङ्गैकाङ्गसंस्थिते। अपस्मारेऽनले मन्दे श्वासे कासे गरेषु च। सोन्मादे वातभग्ने च शूले जन्तुषु शस्यते ॥ १०५ ॥

लशुन १०० पल, तिल १ कुड़व परिमाण, हींग, त्रिकुटा, जवाखार, सज्जीखार, पांचों लवण, सौंफ, कूठ, पीपलामूल, चीता, अजमोद, अजवायन और धनियाँ ये प्रत्येक औषधि चार २ तोले लेकर बारीक चूर्ण करलेवे। इस चूर्णको घीके चिकने बासनमें भर कर १६ दिनतक रक्खे, फिर इसमें ३२ तोले तेल और ३२ तोले कांजी मिला देवे। इसमेंसे प्रतिदिन एक तोला प्रमाण खाय। इसपर जल अथवा मदिराका अनुपान करे। यह रसोनपिंड-आमवात, वात, सर्वांगवात, एकांगवात, अपस्मार, मंदाग्नि, श्वास, खाँसी, विषदोष, उन्माद, वातभग्न और सर्व प्रकारके वातशूलोंको नष्ट करता है ॥ १०१ ॥ १०२ ॥ १०३ ॥ १०४ ॥ १०५ ॥

प्रसारिणीतैल।

प्रसारिण्या रसे सिद्धं तैलमैरण्डजं पिबेत्। सर्वदोषहरञ्चैव कफरोगहरं परम् ॥ १०६ ॥

प्रसारिणीके काथमें अथवा स्वरसमें अंडीका तेल पकाकर सेवन करे। यह तेल-सम्पूर्ण दोषोंको हरनेवाला और कफरोगको नष्ट करनेवाला है ॥ १०६ ॥

द्विपञ्चमूलादितैल।

द्विपञ्चमूलीनिर्यासफलदध्याम्लकाञ्जिकैः। तैलं कट्यूरुपार्श्वार्त्तिकफवातामतद्गदान् ॥ १०७ ॥ हन्ति बस्तिप्रदानेन करोत्यग्निबलं महत् ॥ १०८ ॥

दशमूलका काथ, गोंद और फल, दही और कांजीके द्वारा तेलको पकावे। इस तेलके द्वारा बस्ति लगानेसे कटि, ऊरु, पार्श्वशूल, कफ और वात तथा आमसे उत्पन्न हुए रोग नष्ट होते हैं तथा अग्निकी अत्यंत वृद्धि होती है ॥ १०७ ॥ १०८ ॥

बृहत्सैन्धवादितैल।

सैन्धवं श्रेयसी रास्ना शतपुष्पा यवानिका। स्वर्जिका मरिचं कुष्ठं शुण्ठी सौवर्चलं विडम् ॥ १०९ ॥ वचाजमोदाजरणं पौष्करं मधुकं कणा। एतान्यर्धपलांशानि सूक्ष्मपिष्टानि कारयेत् ॥ ११० ॥ प्रस्थमैरण्डतैलस्य प्रस्थं स्याच्छतपुष्पजम्। काञ्जिकं द्विगुणं दत्त्वा मस्तु च द्विगुणं तथा ॥ ॥ १११ ॥ एतत्संभृत्य संभारं शनैर्मृद्वग्निना पचेत्। सिद्धमेतत्प्रयोक्तव्यमामवातहरं परम् ॥ ११२ ॥ पानाभ्यञ्जनबस्तौ च कुरुतेऽग्निबलं भृशम्। वातार्त्तिवङ्क्षणे शस्तं कटीजानूरुसन्धिजे ॥ ११३ ॥ शूले हृत्पार्श्वजे चैव वातश्लेष्मनिपीडिते। बाह्यायामार्दितानाहेष्वन्त्रवृद्धिनिपीडिते ॥ अन्यांश्चानिलजान्रोगान्नाशयत्याशु देहजान् ॥ ११४ ॥

सैंधानमक, हरड, रायसन, सौंफ, अजवायन, सज्जी, काली मिरच, कूठ, सोंठ, काला नमक, बिड नमक, बच, अजमोद, जीरा, पोहकरमूल, मुलैठी और पीपल ये प्रत्येक औषधि दो २ तोले लेकर कूट पीस कर वारीक चूर्ण कर लेवे। फिर इस चूर्णमें अंडीका तेल १ प्रस्थ, सौंफका तेल १ प्रस्थ, कांजी २ प्रस्थ और दहीका तोड२ प्रस्थ मिला कर विधिपूर्वक मंद मंद अग्निसे तेलको पकावे । यह तेल–आमवातको नष्ट करनेवाला है । इसको पान, अभ्यंजन और बस्तिकर्म्ममें प्रयोग करे। यह अत्यन्त अग्निके बलको बढानेवाला है तथा वातकी पीडा, वंक्षणशूल, कटिशूल, जानुगतशूल, उरःशूल, संधिगतशूल, हृदयशूल, पार्श्वशूल, वातकफके रोग, बाह्यायाम, अर्दित, आनाह, अंत्रवृद्धि और अन्यान्य वातके रोगोंको दूर करदेता है ॥ १०९–११४ ॥

निरूह ।

स्वल्पप्रसारिणीतैलं तैलं वा सैन्धवादिकम् । दशमूलाद्यतैलेन बस्तिदानं प्रशस्यते ॥ ११५ ॥ तैलस्य द्विपलं दद्यात्काञ्जिकस्य चतुष्पलम् । दशमूलरसं मूत्रं पृथक्पञ्चपलानि च॥ ११६ वचामदनयष्ट्याह्वाशताह्वाकुष्ठसैन्धवैः । पिप्पल्यतिविषामुस्ताराम्नाकट्फलपौष्करैः ॥ ११७ ॥ अक्षांशिकैश्च तत्सर्वं मन्थयीत विचक्षणः । प्रस्थार्धं प्रथमं देयो बस्तिर्भिर्वाविशंकितः ॥ ११८ ॥ द्वितीये च तृतीये च वर्जयेत्प्रसृतद्वयम् । सर्ववातविकारेषु मोहे चवृषणामये ॥ ॥ ११९ ॥ कुक्षौ हृत्पार्श्वपृष्ठेषु जानुजंघाकटिग्रहे । विबन्धानाहरोगेषु शर्कराश्मरिपीडिते ॥ १२० ॥ भग्नास्थिपृष्ठगात्रेषु पिच्चितेषु क्षतेषु च । एतन्निरूहवत्प्राज्ञो निरायासो महागुणः ॥ १२१ ॥

इसमें लघुप्रसारिणी तैलकी अथवा सैंधवादि तैलकी अथवा दशमूलादि तैलकी पिचकारी लगावे । इस पिचकारीमें तेल ८ तोले, कांजी १६ तोले, दशमूलका रस वीस तोले और गोमूत्र वीस तोले लेवे । फिर इन सब पदार्थोंको एकत्र मिला कर बच, मैनफल, मुलैठी, सौंफ, कूठ, सैंधानमक, पीपल, अतीस, नागरमोथा, रास्ना, कायफल और पोहकरमूल ये प्रत्येक एक २ तोला लेकर पहले मिश्रित किये हुए तैल आदि औषधियोंका मथन करे फिर कपडेसे छान कर निःशंक होकर बत्तीस तोले इस द्रवकी पिचकारी लगावे । दूसरी वार तथा तीसरी वार चौबीस तोले इस द्रवकी पिचकारी लगावे । सर्व प्रकारके वातविकार, प्रमेह, वृषणकी पीडा, कुक्षिरोग, हृदयरोग, पीठकी पीडा, पसलियोंकी पीडा, जानुगत वायुकी पीडा, जंघागत वायुकी पीडा, कमरका दर्द, विबन्ध, अफारा, शर्करारोग, अश्मरी, भग्नशरीर और पिच्चित हुए व्रणमें यह निरूहबस्ति अत्यन्त गुणकारक है और इसमें कुछ कष्ट नहीं होता है ॥ ११५–१२१ ॥

पथ्यापथ्य ।

दधि मत्स्यं गुणक्षीरं पोतकीमाषपिष्टकम् । वर्जयेदामवातार्त्तो मांसमानूपजञ्च यत् ॥ १२२ ॥

दही, मछली, गुड, दूध, पोईका शाक, उडद, पिष्टक और आनूपदेशके जीवोंका मांस ये सब आमवातरोगी त्याग देवे ॥ १२२ ॥

अभिष्यन्दिकरा ये च ये चान्ये गुरुपिच्छलाः। वर्जनीयाः प्रयत्नेन आमपीडार्दितैर्नरैः ॥ १२३ ॥

तथा जो अभिष्यन्द करनेवाले पदार्थ हैं, एवं भारी और पिच्छिलपदार्थ इन सबको आमवातवाला रोगी त्याग देवे ॥ १२३ ॥

शोकाक्षेपकसंकोचस्तम्भश्वयथुकम्पनम् । हनुग्रहार्दितं खञ्जं पांगुल्यं खुत्तवातता ॥ १२४ ॥ सन्धिच्युतिः पर्वभेदो मेदोमज्जास्थिजा गदाः । एते स्थानस्य गाम्भीर्यात्सिध्येयुर्यत्नतो नवाः । तस्माज्जयेन्नवान्येव सुभिषङ्निरुपद्रवान् ॥ १२५ ॥

शोक, आक्षेपक, संकोच, स्तम्भ, शोथ, कम्प, हनुग्रह, अर्दित, खंजता, पंगुता, सुप्तवात, संधिभग्न, पर्वभेद, मेद, मज्जा और अस्थिगतरोग ये सब स्थानकी गम्भीरताके कारण नवीन अवस्थामें बडे यत्नसे चिकित्सा करने पर आरोग्य होसकते हैं। इस कारण वैद्यको उचित है कि, इनको नवीन ही अवस्थामें उपद्रवरहित होनेपर जीते क्योंकि पश्चात् कष्टसाध्य और असाध्य होते हैं ॥ १२४ ॥ १२५ ॥

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायां आमवात-
चिकित्साधिकार समाप्त ॥ २७ ॥

अथ शूलरोगाधिकार।

शूलनिदान।

दोषैः पृथक्समस्तामद्वन्द्वैः शूलोऽष्टधा भवेत् । सर्वेष्वेतेषु शूलेषु प्रायेण पवनः प्रभुः ॥ १ ॥

वातज, पित्तज, कफज, वातपित्तज, पित्तकफज, वातश्लेष्मज, त्रिदोषज और आमजनित इस प्रकार शूलरोग आठ प्रकारका है। परन्तु इन सब शूलोंमें वायु प्रधान है। कारण यह है कि प्रायः शूलरोग विना वायुके उत्पन्न नहीं होता है ॥ १ ॥

व्यायामयानादतिमैथुनाच्च प्रजागराच्छीतजलातिपानात् । कलायमुद्गाढकिकोरदूषादत्यर्थरूक्षाध्यशनाभिघातात् ॥ २ ॥ कषायतिक्तातिविरूढजान्नविरुद्धवल्लूरकशुष्कशाकात् । विट्शुक्रमूत्रानिलवेगरोधाच्छोकोपवासादतिभाष्यहास्यात्॥३॥ वायुः प्रवृद्धो जनयेद्धि शूलं हृत्पार्श्वपृष्ठत्रिकबस्तिदेशे । जीर्णे प्रदोषे च घनागमे च शीते च कोपं समुपैति गाढम् ॥ ४ ॥ मुहुर्मुहुश्चोपशमप्रकोपो विड्वातसंस्तम्भनतोदभेदैः । संस्वेदनाभ्यञ्जनमर्दनाद्यैः स्निग्धान्नभोज्यैश्च समं प्रयाति ॥ ५ ॥

व्यायाम (अधिक दंड कसरत करना), घोड़े हाथी आदिकी अधिक सवारी करना, अत्यन्त स्त्रीप्रसंग, रात्रिमें जागना, अधिक शीतल जलको पीना, मटर, मूँग, अरहर, कोदों तथा अन्यान्य रूक्ष अन्नोंको अतिशय सेवन करनेसे, अजीर्णमें भोजन करनेसे, चोटके लगनेसे, कषैले और कडवे पदार्थोंको अत्यन्त सेवन करनेसे, जिसमें अंकुर निकल आये हों ऐसे अन्नको भक्षण करनेसे, विरुद्ध भोजन (दूधके साथ मछली आदि) खानेसे, सूखेमांस और सूखे शाकको भक्षण करनेसे, मल मूत्र और वायुके वेगको रोकनेसे, शोक, उपवास, बहुत जोरसे हँसनेसे और बहुत जोरसे बोलनेसे, वायु बढकर हृदय, पार्श्व, पृष्ठ और त्रिकस्थान तथा बस्तिस्थानमें शूलको उत्पन्न करती है। वह शूल भोजनके पचनेपर, संध्याकालमें, वर्षा और शीतऋतुमें अत्यन्त कोपको प्राप्त होता है। तथा वह शूल वारंवार कुपित और वारंवार शांत होता है। इसमें विष्ठा तथा मूत्र रुक जाता है। सुई चुभानेके समान और विदारनेके समान पीड़ा होती है। स्वेदन, अभ्यंजन और तैलादिके मलनेसे तथा स्निग्ध और उष्ण पदार्थोंको भक्षण करनेसे यह शूल शांत होजाता है ॥ २–५ ॥

चिकित्सा।

वमनं लंघनं स्वेदः पाचनं फलवर्त्तयः । क्षारचूर्णानि गुटिका शस्यते शूलशान्तये ॥ ६ ॥

वमन, लंघन, स्वेद, पाचन, फलवर्त्ति (गुदाके द्वारा बत्ती चढाना), क्षार, चूर्ण और गुटिका ये सब उपचार शूलकी शांतिके लिये करने चाहिये ॥ ६ ॥

विज्ञाय वातशूलन्तु स्नेहस्वेदैरुपाचरेत् । पायसैः कृशरापिण्डैः स्निग्धैर्वा पिशितोत्कटैः ॥ ७ ॥ आशुकारी हि पवनस्तस्मात्तं त्वरया जयेत् । तस्य शूलाभिपन्नस्य स्वेद एव सुखावहः ॥ ८ ॥

वातशूलको जानकर खीर, खिचडी, स्निग्ध भोजन अथवा जिसमें मांसके पदार्थ अधिक हों ऐसे पदार्थोंके द्वारा स्नेहन और स्वेदन करना हितकारी है। यह वातशूल मनुष्यको तत्काल मार देता है इस कारण इसको शीघ्र ही जीतना चाहिए। प्रायः शूलसे पीड़ित मनुष्यके पसीना निकलवाना ही सुखकर है ॥ ७ ॥ ८ ॥

बिल्वैरण्डतिलैः कृत्वा गुटिकामम्लपेषिताम्। वातशूलोपशान्त्यर्थं प्रमृज्यादुष्णया तया ॥ ९ ॥

बेलगिरी, अण्डकी जड और तिल इनको एकत्र कांजीमें पीसकर गोली बनावे, इन गोलियोंको गरम करके पेटपर फिरानेसे वातका शूल शांत होता है ॥ ॥ ९ ॥

तिलैश्च गुटिकां कृत्वा भ्रामयेज्जठरोपरि। गुटिका शमयत्याशु शूलञ्चैव सुदुस्तरम् ॥ १० ॥

तिलोंको पीसकर गोली बना कर गरम करके पेटपर फिरानेसे दुस्तर शूल दूर होता है ॥ १० ॥

नाभिलेपाज्जयेच्छूलं मदनः काञ्जिकान्वितः। जीवन्तीमूलकल्को वा सतैलः पार्श्वशूलहा ॥ ११ ॥

मैनफलको काँजीमें पीस क नाभिके ऊपर लेप करनेसे शूल दूर होता है। जीवंतीकी जडको तेलमें पीस कर लेप करनेसे पार्श्वशूल दूर होता है ॥ ११ ॥

वातात्मकं हन्त्यचिरेण शूलं स्नेहेन युक्तस्तु कुलित्थयूषः। ससैन्धवो व्योषयुतः सलावः सहिंगुसौवर्चलदाडिमाढ्यः ॥ १२ ॥

स्नेहयुक्त कुलथीके यूषमें सैंधानमक, त्रिकुटेका चूर्ण अथवा लवेके मांसमें हींग, कालानमक और अनारदाना मिला कर सेवन करनेसे वातजशूल तत्काल शांत होता है ॥ १२ ॥

बलादिचूर्ण।

बलापुनर्नवैरण्डबृहतीद्वयगोक्षुरम्। सहिंगुलवणोपेतं सद्यो वातरुजापहम् ॥ १३ ॥

खिरैंटी, पुनर्नवा, अंडीकी जड, बडी कटेरी, कटेरी, गोखरू, हींग और सैंधानमक इनको एकत्र मिला कर सेवन करनेसे वातजशूल तत्काल नष्ट होता है ॥ १३ ॥

तुंबरादिचूर्ण।

तुम्बुरूण्यभयाहिंगु पौष्करं लवणत्रयम्। पिबेद्यवांबुना वातशूलगुल्मापतन्त्रकी ॥ १४ ॥

तुम्बुरु, हरड, हींग, पोहकरमूल और तीनों लवण इनको एकत्र पीस कर जौकी कांजीके साथ सेवन करनेसे वातशूल, गुल्म और अपतन्त्रक रोग दूर होता है ॥ १४ ॥

हिंग्वम्लकृष्णामलकं यवानी क्षाराभयासैंधवतुल्यभागम्। चूर्णं पिबेद्वारुणिमण्डमिश्रं शूले प्रवृद्धेऽनिलजे शिवाय ॥ १५ ॥

हींग, नींबू, पीपल, आमले, अजवायन, जवाखार, हरड और सैंधानमक ये सब औषधि समान भाग लेकर बारीक चूर्ण कर लेवे, इस चूर्णमें सुरामंड मिला कर पान करनेसे अत्यन्त बढा हुआ वातका शूल नष्ट होता है ॥ १५ ॥

विश्वमैरण्डजं मूलं क्वाथयित्वा जलं पिबेत्। हिंगुसौवर्चलोपेतं सद्यः शूलनिवारणम् ॥ १६ ॥

सोंठ और अंडकी जड़ इनका क्काथ बना कर उसमें हींग और कालानमक डाल कर पीनेसे तत्काल वातका शूल नष्ट होता है ॥ १६ ॥

विश्वैरण्डयवक्काथः सद्यः शूलनिवारणः। तद्वदिन्द्रयवक्काथो हिंगुसौवर्चलान्वितः ॥ १७ ॥

सोंठ, अंडकी जड और जौ इनका क्काथ बना कर पीनेसे तत्काल शूल नष्ट होता है। तथा इन्द्रजौका क्काथ बना कर उसमें हींग और कालानमकका चूर्ण डाल कर पीनेसे तत्काल शूल नष्ट होता है ॥ १७ ॥

यवानीहिंगुसिन्धूत्थक्षारसौवर्चला-

भयाः । सुरामण्डेन पातव्या वातशूलनिषूदनाः ॥ १८ ॥

अजवायन, हींग, सैंधानमक, जवाखार, कालानमक और हरड इनको एकत्र करके सुराके मण्डके साथ पान करनेसे वातका शूल नष्ट होता है ॥ १८ ॥

शूले निरन्नकोष्ठे हि कोष्णाद्भिश्चूर्णिताः पिबेत् । हिंगुप्रतिविषाव्योषवचासौवर्चलाभयाः ॥ १९ ॥

हींग, अतीस, त्रिकुटा, बच, कालानमक और हरड इनका चूर्ण बना कर विना भोजन किये अर्थात् खाली पेटपर मन्दोष्ण जलके साथ पान करनेसे शूलरोग शमन होता है ॥ १९ ॥

पित्तशूलनिदान ।

क्षारातितीक्ष्णोष्णविदाहितैलनिष्पावपिण्याककुलित्थयूषैः । कट्वम्लसौवीरसुराविकारैः क्रोधानलायासरविप्रतापैः ॥ २० ॥ ग्राम्यातियोगादशनैर्विदग्धैः पित्तं प्रकुप्याशु करोति शूलम् । तृण्मोहदाहार्तिकरं हि नाभ्यां संस्वेदमूर्च्छाभ्रमदोषयुक्तम् ॥ २१ ॥ मध्यन्दिने कुप्यति चार्द्धरात्रे विदाहकाले जलदात्यये च । शीते च शीतैः समुपैति शान्तिं सुस्वादुशीतैरपि भोजनैश्च ॥ २२ ॥

जवाखार, अति तीक्ष्ण, उष्ण और दाहकारक एवं तैल, निष्पाव (सेम), खल, कुलथीका यूष, कटु, अम्ल, सौवीर (एक प्रकारकी कांजी) सुक्तयासिर्का और अनेक प्रकारके सुराविकार इनको भक्षण करनेसे तथा क्रोध, अग्निका सेवन, परिश्रम, धूपमें फिरना और अत्यंत मैथुन करना एवं विदग्धपाकी अन्नका भक्षण करना इत्यादि कारणोंसे पित्त दूषित होकर शीघ्र ही नाभिमें शूलको उत्पन्न करता है। वह शूल, तृषा, मोह, दाह और घोर वेदनाको उत्पन्न करता है तथा पसीना, मूर्च्छा और भ्रमको करता है। यह शूल-मध्याह्नके समय, अर्धरात्रिके समय, भुक्तद्रव्योंके विदग्धपाकके समय अथवा ग्रीष्मऋतु और शरदृतुमें अधिक वृद्धिको प्राप्त होता है । स्वादिष्ट और शीतल पदार्थोंके भोजन करनेसे, शीतल पवन आदिके लगनेसे, शीत कालमें यह शूल शांत होता है ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥

पित्तशूलकी चिकित्सा ।

गुडशालीयवाः क्षीरं सर्पिष्पानं विरेचनम् । जाङ्गलानि च मांसानि भेषजं पित्तशूलिनः ॥ २३ ॥

गुड, शालिचावल, दूध, घृतपान, विरेचन और जांगलदेशके जीवोंका मांस ये सब पित्तजशूलकी औषधि हैं अर्थात् पित्तके शूलमें ये सब सेवन करने चाहिये ॥ २३ ॥

वामयेत्पित्तशूलार्त्तं पटोलेक्षुरसादिभिः । पश्चाद्विरेकयेत्सम्यक् पित्तगुल्मविरेचनैः ॥ २४ ॥

पित्तशूलसे पीड़ित मनुष्यको परवल और ईखका रस आदिके द्वारा वमन करावे पश्चात् पित्तगुल्ममें जो विरेचनकी औषधि कही हैं, उन औषधियोंके द्वारा अच्छे प्रकारसे विरेचन देवे ॥ २४ ॥

शीतावगाहाः पुलिनाः सवाता भांडानि कांस्यानि जलप्लुतानि । अन्यानि शस्तानि च शीतलानि सचन्दनार्द्रैश्च करः सुशीतः ॥ २५ ॥

शीतलजलमें घुस कर स्नान करना, शीतल जलवाली नदियोंके किनारेपर बैठना, मन्द सुगन्धित शीतल पवनको सेवन करना, शीतल जलसे भरे हुए काँसीके पात्रोंको नाभिपर धारण करना तथा अन्यान्य शीतल उपचारोंको करना और चन्दन, खस आदिको जलमें पीसकर उस जलसे शरीरको सींचना यह सब पैत्तिक शूलमें हितकारी हैं ॥ २५ ॥

मणिराजतताम्राणि भाजनानि च सर्वशः । परिपूर्णानि तोयेन शूलस्योपरि निःक्षिपेत् ॥ २६ ॥

मणि, रत्न चाँदी और ताँबा इनके पात्रोंमें शीतल जलको भर कर शूलके ऊपर धारण करे ॥ २६ ॥

विरेचनं पित्तहरं च शस्तं रसश्च शस्तः शशलावकानाम् । संतर्पणं लाजमधूपपन्नं योगाः सुशीता मधुसंप्रयुक्ताः ॥ २७ ॥ शतावरी सयष्ट्याह्वा वाट्यालकुशगोक्षुरैः । शृतशीतं पिबेत्तोयं सक्षौद्रगुडशर्करम् । पित्तासृग्दाहशूलघ्नं सद्यो दाहज्वरापहम् ॥ २८ ॥

पित्तनाशक विरेचन, खरगोश और लवेके मांसका रस, खीलोंको जलमें भिजोकर उसमें शहद मिलाकर तृप्तिके लिये पान करना तथा और अन्यान्य शीतल योगोंमें शहद मिलाकर सेवन करना ये सब पित्तजशूलमें हितकारी हैं । शतावर, मुलैठी, खिरैंटी, कुशा और गोखरू इनका क्वाथ बनाकर उसमें शहद, गुड और मिश्री मिलाकर पान करनेसे रक्तपित्त, दाह, शूल और तत्काल दाहज्वर दूर होता है ॥ २७ ॥ २८ ॥

धात्र्या रसं विदार्य्या वा त्रायन्ती गोस्तनाम्बु वा । पिबेत्सशर्करं सद्यः पित्तशूलनिषूदनम् ॥ २९ ॥

आमलोंके रसमें, विदारीकंदके रसमें अथवा त्रायमाणके रसमें या दाखोंके काथमें मिश्री मिलाकर पीनेसे तत्काल पित्तका शूल शमन होता है ॥ २९ ॥

त्रिफलारग्वधक्वाथं सक्षौद्रं शर्करान्वितम् । पाययेद्रक्तपित्तार्तं दाहशूलनिवारणम् ॥ ३० ॥

त्रिफला और अमलतास इनका क्वाथ बनाकर शहद और मिश्री मिलाकर सेवन करनेसे रक्तपित्तकी पीडा, दाह और शूल नष्ट होता है ॥ ३० ॥

छर्द्यां ज्वरे पित्तभवे च शूले घोरे विदाहे तृषितेऽतिमात्रम् । यवस्य पेयां मधुना विमिश्रां पिबेत्सुशीतां मनुजः सुखार्थी ॥ ३१ ॥

वमन, ज्वर, पित्तजशूल, घोरदाह और अत्यंत तृष्णामें जौकी पेया बनाकर उसमें शहद मिलाकर शीतल करके पान करे ॥ ३१ ॥

शतावरीरसं क्षौद्रयुक्तं प्रातः पिबेन्नरः । दाहशूलोपशान्त्यर्थं सर्वपित्तामयापहम् ॥ ३२ ॥

शतावरके रसमें शहद मिलाकर प्रातःकाल पान करे तो दाह और शूल तथा सर्वप्रकारके पित्तके विकार शमन होते हैं ॥ ३२ ॥

बृहत्यौ गोक्षुरैरण्डकुशकाशेक्षुबालिकाः । पीताः पित्तभवं शूलं सद्यो हन्युः सुदारुणम् ॥ ३३ ॥

बडी कटेरी, कटेरी, गोखरू, अंडकी जड, कुशा, कांस, और ईषण तृण इनकी जडोंसे इनका क्वाथ बना कर पान करनेसे दारुण पित्तशूल शमन होता है ॥ ३३ ॥

प्रलिह्यात्पित्तशूलघ्नं धात्रीचूर्णं समाक्षिकम् । सगुडां वृतमिश्रां वा शूलं हन्याद्धरीतकी ॥ ३४ ॥

आमलोंके चूर्णमें शहद मिलाकर सेवन करनेसे पित्तका शूल शांत होता है । हरडको गुडमें मिलाकर सेवन करनेसे शूल शमन होता है ॥ ३४ ॥

कुशादिमूलयष्ट्याह्वैः क्षीरमर्द्धोदके शृतम् । रक्तपित्तोपशमनं वेदना चोपशाम्यति ॥ ३५ ॥

कुशादि तृणपंचमूल और मुलैठी इनको आधे दूध और आधे जलमें डालकर पकावे । जब पकते पकते केवल दूध बाकी रह जाय तब इसको पीवे । इससे रक्तपित्त और शूल शमन होता है ॥ ३५ ॥

कुशादिघृत ।

कुशादिमूलारुणपञ्चवल्कलं शतावरीकोमलकांबुसाधितम् । घृतं पयस्युल्बणपित्तशूलजित्सिता मधूकारुणकल्कसाधितम् ॥ ३६ ॥

कुशादि तृणपंचमूल, मजीठ, वड, गूलर, पाखर, पपिल और पारिसपीपल, इन पांचों वृक्षोंकी

छाल और हरी शतावर इनका क्वाथ बनाकर उसमें मिश्री, मुलैठी और मजीठका कल्क डालकर चौगुने दूधमें घृतको पकावे। यह घृत-पित्तोल्बणशूलको दूर करता है ॥३६॥

कफशूलनिदान।

आनूपवारिजकिलाटपयोविकारैर्मांसेक्षुपिष्टकृशरातिलशष्कुलीभिः। अन्यैर्बलासजनकैरपि हेतुभिश्च श्लेष्माप्रकोपमुपगम्य करोति शूलम् ॥ ॥ ३७ ॥ हृल्लासकाससदनारुचिसंप्रसेकैरामाशये स्तिमितकोष्ठशिरोगुरुत्वैः। भुक्ते सदैव हि रुजं कुरुतेऽतिमात्रं सूर्य्योदये च शिशिरे कुसुमागमे च ॥ ३८॥

अनूपदेशके जीवोंका मांस, जलचरजीवोंका मांस, किलाट (फटे हुए दूधका मावा इत्यादि), दूधके बने हुए पदार्थ (दही, तक्र, रबडी, मलाई, इत्यादि) मांस,ईखका रस, विविधप्रकारके पिट्ठीके बने हुए मिष्टान्न और पकान्न, खिचडी, तिल, पूरी, कचौरी, तथा अन्यान्य कफकारक पदार्थोंको भक्षण करनेसे कफ कुपित होकर शूलरोगको उत्पन्न करता है। इसमें उबकाई, खांसी, दुर्बलता, अरुचि, मुखसे पानीका गिरना, आमाशय और कोष्ठमें स्तब्ध और मस्तकमें भारीपन होता है। भोजन करते ही अत्यंत पीडा होना, तथा सूर्य्योदयके समय, शिशिरऋतु और वसन्तऋतुमें कफका संचय तथा वृद्धि होनेसे यह शूल अत्यंत कुपित होता है॥ ॥ ३७॥ ३८ ॥

कफशूलकी चिकित्सा।

संस्वेद्य कोष्णसक्षारसक्तुतक्रैस्तथापरैः। प्रवाप्य कफशूलार्तमवश्यमुपवासयेत् ॥ ३९ ॥

उष्ण, क्षार, सत्तू और तक्र तथा अन्यान्य प्रयोगोंके द्वारा कफजशूल रोगीको स्वेदित करे, पश्चात् लंघन करावे ॥ ३९ ॥

शाल्यन्नं जाङ्गलं मांसं सारिष्टं कटुकं रसम्। मद्यानि जीर्णगोधूमं कफशूले प्रयोजयेत् ॥ ४० ॥

कफजनित शूलमें शालिचावलोंका भात, जांगल प्रदेशके पशुपक्षियोंका मांस, अरिष्ट (औषधियोंके काथके द्वारा बनाई हुई मदिरा), तीक्ष्ण रस, जीर्ण मदिरा और गेहूंके बने हुए पदार्थ ये सब सेवन करने चाहिएँ॥ ४० ॥

लवणत्रयसंयुक्तं पञ्चकोलकरामठम्। सुखोष्णेनाम्बुना पानं कफशूले प्रदापयेत् ॥ ४१ ॥

सैंधानमक, बिडनमक, कालानमक, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ और हींग इनको एकत्र पीसकर सुहाते सुहाते गरम जलके साथ पान करे तो कफशूल नष्ट होता है ॥ ४१ ॥

श्लेष्मशूलहरा पेया पञ्चकोलेन साधिता ॥ ४२ ॥

पंचकोलसे साधित की पेया श्लेष्म और शूलको हरती है ॥ ४२॥

व्याघ्री ससिंहीफलबिल्वमूलं शिलोद्भवं गोक्षुरकञ्च तुल्यम्। एरंडमूलं द्विगुणं च पक्का पिबेद्यवक्षारयुतं कषायम्। हृत्कुक्षिपार्श्वानुगतं निहन्याच्छूलं नराणां कफजं प्रवृद्धम् ॥ ४३ ॥

कटेरी, बडी कटेरी, त्रिफला, बेलकी जड, शिलाजीत और गोखरू यह सब समान भाग तथा अंडकी जड़ दो भाग लेवे। सबको एकत्र मिलाकर काथ बनावे। इस काथमें जवाखारका चूर्ण डाल कर पान करनेसे हृदय, कुक्षि और पार्श्वगत शूल तथा अत्यंत बढाहुआ कफशूल नष्ट होता है ॥ ४३ ॥

द्वंद्वज और त्रिदोषजशूल।

द्विदोषलक्षणैरेतैर्विद्याच्छूलं द्विदोषजम् ॥ ४४ ॥ सर्वेषु दोषेषु च सर्वलिङ्गं विद्याद्भिषक्सर्वभवञ्च शूलम्।

सुकष्टमेनं विषवज्रकल्पं विवर्जनीयं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥ ४५ ॥

जिसमें दो दोषोंके लक्षण मिलते हों उसको द्वंद्वज अर्थात् द्विदोषज शूल जानना । जिसमें सम्पूर्ण दोषोंके लक्षण मिलते हों उसको त्रिदोषज अर्थात् सान्निपातिक शूल जानना । यह शूल अत्यन्त कष्टदायक है तथा विष और वज्रके समान दुर्निवार है, इस कारण यह चिकित्सा करने योग्य नहीं है ऐसा वैद्योंने कहा है ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

चिकित्सा।

शंखचूर्णं सलवणं सहिंगुव्योषसंयुतम्। उष्णोदकेन तत्पीतं शूलं हन्ति त्रिदोषजम् ॥ ४६ ॥

शंखका चूर्ण,सैंधानमक,हींग और त्रिकुटा इनको एकत्र पीस कर गरम जलके साथ सेवन करनेसे त्रिदोषज शूल नष्ट होता है ॥ ४६ ॥

गोमूत्रसिद्धं मंडूरं त्रिफलाचूर्णसंयुतम् । विलिहन्मधुसर्पिर्भ्यां शूलं हन्ति त्रिदोषजम् ॥ ४७ ॥

मण्डूरको गोमूत्रमें सिद्ध करके त्रिफलेके चूर्णमें मिला कर शहद और घीके साथ चाटनेसे त्रिदोषजनित शूल दूर होता है ॥ ४७ ॥

विदारीदाडिमरसः सव्योषलवणान्वितः । क्षौद्रयुक्तो जयत्याशु त्रिदोषप्रभवां रुजम् ॥ ४८ ॥

विदारीकंद, अनारका रस, त्रिकुटेका चूर्ण और सैंधानमक इन सबको एकत्र मिलाकर शहदके साथ चाटनेसे त्रिदोषजनित शूल दूर होता है ॥ ४८ ॥

एरण्डफलमूलानि बृहतीद्वयगोक्षुरम् । पर्णिन्यः सहदेवी च सिंहपुच्छीक्षुबालिका॥४९॥ तुल्यैरेतैः शृतं तोयं यवक्षारयुतं पिबेत् । पृथग्दोषभवं शूलं हन्यात्सर्वभवं तथा ॥ ५० ॥

अंडके फल, अंडकी जड, कटेरी, बडी कटेरी, गोखरू, पृश्निपर्णी,शालिपर्णी, सहदेवी,पिठवन और इक्षुबालिका सब औषधि समान भाग लेकर काथ बनाकर जवाखार डालकर पान करनेसे वातज शूल, पित्तज शूल, कफज शूल और त्रिदोषज शूल नष्ट होता है ॥ ४९ ॥ ५० ॥

अथामशूलनिदान।

आटोपहृल्लासवमीगुरुत्वं स्तैमित्यमानाहकफप्रसेकैः । कफस्य लिङ्गेन समानलिङ्गमामोद्भवं शूलमुदाहरन्ति ॥ ५१ ॥

जिसमें पेटमें गुड गुड शब्द, उबकाई, वमन, भारीपन, मंदता, आनाह और मुखसे कफका गिरना तथा कफज शूलके समान लक्षण हों उसको आमशूल कहते हैं ॥ ५१ ॥

चिकित्सा।

आमशूले क्रिया कार्य्या कफशूलविनाशिनी । सेव्यमामहरं सर्वं यद्यदग्निविवर्द्धनम् ॥ ५२ ॥

आमशूलमें कफशूलको नष्ट करनेवाली समस्त चिकित्सा करनी चाहिए तथा समस्त आमनाशक और अग्निको दीपन करनेवाली औषधि सेवन करनी चाहिए ॥ ५२ ॥

चित्रकग्रन्थिकैरण्डशुण्ठीधान्यजलैः शृतम् । शूलानाहविबंधेषु सहिंगुविडसैन्धवम् ॥ ५३ ॥

चीता, पीपलामूल, अण्डकी जड, सोंठ और धनियाँ इनका काथ बनाकर उसमें हींग, विडलोन और सैंधानमक डाल कर सेवन करे तो शूल, आनाह और विबन्धरोग दूर होता है ॥ ५३ ॥

एरण्डसप्तककाथ।

एरण्डबिल्वबृहतीद्वयमातुलुङ्गपाषाणभित्त्रिकटुमूलकृतः कषायः । सक्षारहिंगुलवणोरुबुतैलमिश्रः श्रोण्यंसमेढ्रहृदयस्तनरुक्षुपेयः ॥ ५४ ॥

अण्डकी जड, बेलगिरी, कटेरी, बडी कटेरी, बिजौरा नीबू, पाषाणभेद और त्रिकुटा इनका काथ

बना कर उसमें जवाखार, हींग, सैंधानमक और अंडीका तेल डाल कर पान करनेसे कटिगत, स्कन्धगत, लिंगगत, हृदयगत, स्तनगत और ऊरुगत शूल नष्ट होता है ॥ ५४ ॥

शूलके स्थान ।

वातात्मकं बस्तिगतं वदन्ति पित्तात्मकं चापि वदन्ति नाभ्याम् । हृन्नाभिकुक्षौ कफसन्निकृष्टं सर्वेषु देशेषु च सन्निपातात् ॥ ५५ ॥

वातजशूल मूत्राशयमें, पित्तजशूल नाभिमें, कफजशूल हृदय, कोख और नाभिमें और सान्निपातिक शूल सम्पूर्ण शरीरमें होता है ॥ ५५ ॥

कफवातज शूल ।

बस्तौ हृत्कण्ठपार्श्वेषु सशूलः कफवातिकः । कुक्षौ हृन्नाभिमध्येषु स शूलः कफपैत्तिकः ॥ दाहज्वरकरो घोरो विज्ञेयो वातपैत्तिकः ॥ ५६ ॥ एकदोषोत्थितः साध्यः कृच्छ्रसाध्यो द्विदोषजः । सर्वदोषोत्थितो घोरस्त्वसाध्यो भूर्युपद्रवः ॥ ५७ ॥

कफवातजशूल—बस्ति, हृदय, कंठ और पसलियोंमें होताहै। कफपित्तजशूल—कोख, हृदय और नाभिमें होता है। वातपित्तज शूल—घोर दाह ज्वरको उत्पन्न करता है। इनमें एकदोषोत्पन्न शूल साध्य है। द्विदोषोत्पन्न शूल कष्टसाध्य है। और त्रिदोषोत्पन्न तथा अधिक उपद्रवयुक्त अत्यंत दारुण शूल असाध्य है॥५६॥५७॥

पार्श्वशूलके लक्षण ।

निगृह्य मारुतं श्लेष्मा कुक्षिपार्श्वव्यवस्थितः । साध्मानाटोपसंरुद्धः सूचीभिरिव निस्तुदन् ॥ ५८ ॥ उच्छ्वसित्येव वक्रेण नवान्नमभिनन्दति । न च निद्रामुपैत्येष पार्श्वशूलः प्रकीर्तितः ॥ ५९ ॥

कफ वायुको साथ लेकर कोख और पसलियोंमें व्याप्त होकर उदरमें अफारा और गुड़गुडाहट करके सुई चुभोने सरीखी पीडाको उत्पन्न करता है। इस पार्श्वशूलमें मनुष्य मुखसे ही ऊँचा श्वास लेता है, अन्नमें अरुचि हो जाती है और निद्रा भी नहीं आती है. इसको पार्श्वशूल कहते हैं ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

कुक्षिशूलके लक्षण ।

प्रकुप्यति यदा कुक्षौ वह्निमाक्रम्य मारुतः । तदास्य भोजनं भुक्तं वातस्तब्धं न पच्यते ॥ ६० ॥ उच्छ्वसन्नतिमात्रेण शूलेनाऽऽहन्यते मुहुः । शयनेनासने चैव तिष्ठन्तो लभते सुखम् ॥ कुक्षिशूल इति ख्यातो वातादामसमुद्भवात् ॥ ६१ ॥

जब वायु जठराग्निको आच्छादित करके कुक्षिमें कुपित होता है तब मुखमें दिया हुआ भोजन वातस्तंभ होनेसे नहीं पचने देता। जब श्वासका अधिक वेग होता है तब वारंवार शूलका कोप होता है। इसमें शयन करने पर और आसन पर बैठने पर सुख होता है। इसको आमवातोद्भव कुक्षिशूल कहते हैं ॥ ६० ॥ ६१ ॥

हृदयशूलके लक्षण ।

कफपित्तावरुद्धस्तु मारुतो रसमूर्च्छितः । हृदिस्थं कुरुते शूलमुच्छ्वासारोधनं परम् ॥ ६२ ॥ हृच्छूल इति स ख्यातो रसमारुतकोपतः ॥ ६३ ॥

कफ पित्तसे आच्छादित हो कर और रससे मूर्च्छित हुई वायु श्वासको रोक कर हृदयमें शूलको उत्पन्न करती है। रस और वातके प्रकोपसे उत्पन्न हुआ यह हृदयशूल नामसे कहा जाता है ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

बस्तिशूलके लक्षण ।

संरोधात्कुपितो वायुर्बस्ति संभृत्य तिष्ठति । बस्तिवंक्षणनाडीषु ततः शूलोऽस्य जायते । विण्मूत्रवातसंरोधो बस्तिशूलः स संज्ञितः ॥ ६४ ॥

मलमूत्रादिके वेगोंको रोकनेसे कुपित हुई वायु मूत्राशयमें स्थित होकर भरजाती है। इससे मूत्राशय

और वंक्षण प्रदेशकी नाडियोंमें शूल होता है, मल, मूत्र और वायुका अवरोध होता है इसको बस्तिशूल कहते हैं ॥६४॥

मूत्रशूलके लक्षण।

नाभ्यां वंक्षणपार्श्वेषु कुक्षौ मेढ्रानुबन्धकः। मूत्रमावृत्य गृह्णाति मूत्रशूलः समारुतात् ॥ ६५ ॥

नाभि, वंक्षण, पार्श्व और कुक्षि इनमें लिंगके भीतर मूत्रको रोककर जो शूल होता है उसको मूत्रशूल कहते हैं, यह वातसे उत्पन्न होता है ॥ ६५ ॥

विट्शूलके लक्षण।

वायुः प्रकुपितो यस्य रूक्षाहारस्य देहिनः। वातान् रुणद्धि कोष्ठस्थो मन्दीकृत्य तु पावकम् ॥ ६६ ॥ शूलं संजनयत्क्षिप्रं स्रोत आवृत्य मारुतः। दक्षिणं यदि वा वामं कुक्षिमाश्रित्य जायते ॥ ६७ ॥ सर्वत्र वर्धते क्षिप्रं भ्रमनिःश्वासघोषवत्। पिपासा वर्धतेऽतीव भ्रमो मूर्च्छा च जायते ॥६८॥ उच्चारितो मूत्रितश्च न शान्तिमधिगच्छति। विट्शूलमेतज्जानीयाद्विषक्परमदारुणम् ॥ ६९ ॥

रूखे पदार्थोंको सेवन करनेवाले मनुष्योंके वायु कुपित होकर मलको रोक देती है और कोठेकी अग्निको मन्द करके तथा स्रोतोंको रोक कर शूलको उत्पन्न करती है। यह शूल दहिनी अथवा बांई कोखमें उत्पन्न होता है। यह सर्वत्र भ्रमण करता हुआ और शब्द करता हुआ बढता है। इसमें तृषा अधिकतर बढजाती है। भ्रम और मूर्च्छादि उपद्रव भी होते हैं, मल और मूत्रके त्याग करनेपर भी शांति नहीं होती। इस महादारुण रोगको विट्शूल कहते हैं ॥ ६६–६९ ॥

विट्शूलकी चिकित्सा।

रसोनं मद्यसंमिश्रं पिबेत्प्रातः प्रकांक्षितः। वातश्लेष्मकृतं शूलं निहन्याद्वह्निदीपनम् ॥ ७० ॥

लशुनको मदिरामें मिलाकर प्रातःकाल पान करनेसे वातकफजनित शूल दूर होता है और अग्नि दीपन होती है ॥ ७० ॥

क्षारोदकं पिबेत्तत्र पिप्पल्या सगुडान्वितम्। कुक्षिशूलं जयत्युग्रं ये च वातकफोद्भवाः ॥ ७१ ॥

पीपलको गुडमें मिलाकर क्षार जलके साथ पान करनेसे वातकफजनित कुक्षि शूल दूर होता है ॥७१

पटोलत्रिफलारिष्टैः शृतं क्षौद्रयुतं पिबेत्। पित्तश्लेष्मज्वरच्छर्दिदाहशूलोपशान्तये ॥ ७२ ॥

परवल, त्रिफला और नीम इनका क्वाथ बनाकर शहद मिलाकर पान करनेसे पित्त, कफ, ज्वर, वमन, दाह और शूल शमन होता है ॥ ७२ ॥

पित्तजे कफजे चापि या क्रिया कथिता पृथक्। एकीकृत्य प्रयुञ्जीत तां क्रियां कफपित्तजे ॥ ७३ ॥

पित्तजशूल और कफज शूलमें जो चिकित्सा अलग अलग कही है वही क्रिया एकत्र मिलाकर कफपित्तज शूलमें प्रयोग करनी चाहिए ॥ ७३ ॥

निदिग्धिकाबृहत्यौ च कुशकाशेक्षुवालिकाः। श्वदंष्ट्रैरण्डमूलानि वारिणा सह पाचयेत् ॥ पिबेत्सशर्कराक्षौद्रं शूले पित्तानिलात्मके ॥ ७४ ॥

कटेरी, बडी कटेरी, कुशा, काँस, इक्षुवालिका, गोखरू और अंडकी जड इनको एकत्र जलमें पका कर मिश्री और शहद मिलाकर पान करनेसे वातपित्तजशूल शमन होता है ॥ ७४ ॥

हिंग्वादिचूर्ण।

हिंगुसौवर्चलं पथ्या विडसैन्धवतुम्बुरु। पौष्करञ्च पिबेच्चूर्णं दशमूलीयवाम्भसा ॥ ७५ ॥ पार्श्वहृत्कटिपृष्ठानां शूले तन्द्रापतानके। श्लेष्मणोत्थे प्रसेके च गलरोगे च शस्यते ॥७६॥

हींग, काला नमक, हरड, विरियासंचर नमक, सैंधानमक, तुम्बरू और पोहकरमूल इनको एकत्र पीसकर चूर्ण करके दशमूलके काथके साथ या जौके काथके साथ पान करनेसे पार्श्वशूल, हृदयशूल, कटिशूल, पृष्ठशूल, तन्द्रा, अपतानक, कफजनित प्रसेक और गलरोग ये सब दूर होते हैं ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

बृहत्तुम्बुर्वादिचूर्ण ।

तुम्बुरूण्यभयाहिंगु पौष्करं लवणत्रयम् ॥ यवानी च यवक्षारं विडङ्गं नागरं वचा ॥ ७७ ॥ त्रिवृत्त्रिगुणितं चूर्णं रुबुतैलसमन्वितम् ॥ ७८ ॥ उष्णांबुना च तत्पेयं गुल्मे वातकफात्मके ॥ ७९ ॥ उदरेषु विबन्धे च वातविण्मूत्ररेतसाम् ॥ ८० ॥

तुम्बुरू, हरड, हींग, पोहकरमूल, सैंधानमक, कालानमक, बिडनोन, अजवायन, जवाखार, वायविडंग, सोंठ और बच ये सब समान भाग और निसोत तीन भाग लेवे, सबको एकत्र पीसकर बारीक चूर्ण बनालेवे इस चूर्णमें अंडीका तेल डालकर गरम जलके साथ पान करनेसे वातकफजनित गुल्म, उदररोग और वात, मल, मूत्र तथा वीर्य्यबन्ध दूर होता है ॥ ७७–८० ॥

तुम्बुर्वादिचूर्ण ।

तुम्बुरूण्यभयाहिंगु पौष्करं लवणत्रयम् । पिबेद्यवांबुना वातगुल्मशूलापतन्त्रकी ॥ ८१ ॥

तुम्बुरु, हरड, हींग, पोहकरमूल और तीनों लवण इनका एकत्र पीसकर चूर्ण करके जौके काथके साथ पान करनेसे वात, गुल्म, शूल और अपतंत्रकरोग दूर होता है ॥ ८१ ॥

विश्वादिचूर्ण ।

विश्वोरुबूकदशमूलयवाम्भसा च द्विक्षारहिंगुलवणत्रयपुष्कराणाम् । चूर्णं पिबेद्धृदयपृष्ठकटिग्रहामपक्वाशयार्त्तिभृशरुग्ज्वरगुल्मशूली ॥ ८२ ॥

सोंठ, अंडकी जड, दशमूल और जौके काथमें जवाखार, सज्जी, हींग, तीनों लवण और पोहकरमूल इनका चूर्ण डालकर पान करनेसे हृदयशूल, पृष्ठशूल कटिशूल, आमशूल, पक्वाशयकी पीडा, ज्वर, गुल्म और सर्वप्रकारके शूल नष्ट होते हैं ॥ ८२ ॥

रुचकादिचूर्ण ।

चूर्णं समं रुचकहिंगुमहौषधानां शुण्ठ्यंबुना कफसमीरणसम्भवासु । हृत्पार्श्वपृष्ठजठरार्त्तिविषूचिकासु पेयं तथा यवरसेन च विड्विबन्धे ॥ ८३ ॥

कालानमक, हींग और सोंठ इनका चूर्ण करके कफ और वातजनितशूलमें पान करना चाहिए। और इस चूर्णको हृदयशूल, पार्श्वशूल, पृष्ठशूल, उदररोग, विषूचिका और मलविबन्धरोगमें जौके काथके साथ पान करना चाहिए ॥ ८३ ॥

क्वाथेन चूर्णपानश्च तत्र क्वाथप्रधानता । प्रवर्त्तते न तेनायं चूर्णापेक्षाच्चतुर्गुणः ॥ ८४ ॥ हिंगुनः स्वल्पमानोऽक्ते समशब्दे सहार्थता ॥ ८५ ॥

जहां क्वाथके साथ चूर्णको पान करना कहा है वहां काथ प्रधान समझना चाहिए और वहां चूर्णसे काथ चौगुना लेना चाहिए । हींग परिमाणके अनुसार लेनी चाहिए । सब औषधियोंको समान नहीं लेनी चाहिये, क्योंकि यहां सम शब्द समानवाचक नहीं समझना चाहिए ॥ ८४ ॥ ८५ ॥

त्रिफलाक्वाथगोमूत्रक्षौद्रक्षीररसैः पृथक् । एरंडतैलद्विगुणैर्हितं शान्त्यै विरेचनम् ॥ ८६ ॥

त्रिफलेके काथमें गोमूत्र, शहद, दूध और दुगुना अंडीका तेल डालकर पान करनेसे अच्छे प्रकारसे विरेचन होजाती है और शूल शमन होता है ॥ ८६ ॥

हिंगु तैलं सलवणं गोमूत्रेण विपाचितम् । नाभिस्थाने प्रदातव्यं यस्य शूलं सवेदनम् ॥ ८७ ॥

हींग, तेल और नमक इनको गोमूत्रमें पकाकर नाभिस्थान पर प्रलेप करनेसे घोर पीडायुक्त शूल शांत होता है ॥ ८७ ॥

दारुहैमवतीकुष्ठशताह्वाहिंगुसैन्धवैः । अम्लपिष्टैः सुखोष्णैश्च शूलार्त्तमुदरं दिहेत् ॥ ८८ ॥

देवदारु, चोक, कूठ, सोया, हींग और सैंधानमक इन सबको एकत्र कांजीमें पीसकर सुहाता २ पेटपर लेप करनेसे शूलकी वेदना शांत होती है ॥ ८८ ॥

पुनर्नवादिस्वेद ।

पुनर्नवैरंडयवातसीभिः कार्पासजैरस्थिभिरारनालैः । स्विन्नैरमीभिर्भिषजा च कार्य्यः स्वेदः समीरार्त्तिहरो नराणाम् ॥ ८९ ॥

पुनर्नवा, अंडकी जड, जौ, अलसी, कपासके बीज (बिनौले) और कांजी इनको एकत्र पीसकर इसके द्वारा स्वेद देनेसे वातकी वेदना शमन होती है ॥ ८९ ॥

तैलमैरंडजं वापि दशमूलस्य वारिणा । पीतं निहन्ति साटोपं हिंगुसौवर्चलान्वितम् ॥ ९० ॥

अंडीके तेलको दशमूलके जलमें मिलाकर हींग और काले नमकके चूर्णके साथ पान करनेसे गडगडाहट और शूल दूर होता है ॥ ९० ॥

पथ्यां सशक्रयवपुष्करमूलयुक्तां निष्काथ्य हिंगुजटिलातिविषासुयुक्ताम् । पीत्वा सुखोष्णमथ वातकृतश्च शूलमामोद्भवं कफकृतश्च निहन्ति तूर्णम् ॥ ९१ ॥

हरड, इन्द्रजौ और पोहकरमूल इनका क्वाथ बना कर इसमें हींग, पीपल और अतीसका चूर्ण डालकर सुहाता सुहाता पान करनेसे वातजशूल, आमशूल, और कफजनितशूल दूर होता है ॥ ९१ ॥

मातुलुङ्गरसो वापि शिग्रुक्वाथस्तथाऽपरः । सक्षारो मधुना पीतः पार्श्वहृद्बस्तिशूलनुत् ॥ ९२ ॥

बिजौरे नींबूके रसको अथवा सहिंजनेके क्वाथको जवाखार और शहद डालकर पान करनेसे पार्श्वशूल, हृदयशूल और बस्तिशूल नष्ट होते हैं ॥ ९२ ॥

मातुलुङ्गरसः सर्पिः सहिंगुलवणान्वितम् । सुखोष्णं पाययेदेतद्विड्विबन्धानुलोमनम् ॥ ९३ ॥ कुक्षिहृत्पार्श्वशूलेषु वेदना चोपशाम्यति ॥९४॥

बिजौरेनींबूका रस, घी, हींग और सैंधानमक इन सबको एकत्र मिलाकर सुहाता सुहाता पान करनेसे मलविबन्धका अनुलोमन होता है तथा कुक्षिशूल हृदयशूल और पार्श्वशूल इनकी पीडा शमन होती है ॥ ९३ ॥ ९४ ॥

पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यचित्रकनागरैः । यवागूर्दीपनीया स्याच्छूलघ्नी चोपसाधिता ॥ ९५ ॥

पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता और सोंठ इनके द्वारा बनाई हुई यवागू अग्निको दीपन करती है और शूलको शमन करती है ॥ ९५ ॥

सहिंगुतुम्बुरुव्योषयवानीचित्रकाभयाः । सक्षारलवणाश्चूर्णं पिबेत्प्रातः सुखांबुना । विण्मूत्रानिलशूलघ्नं पाचनं वह्निदीपनम् ॥ ९६ ॥

हींग, तुम्बुरु, त्रिकुटा, अजवायन, चीता, हरड, जवाखार और सैंधानमक इन सबका एकत्र चूर्ण करके प्रातःकाल सुखोष्णजलके साथ पान करनेसे मल, मूत्र और वातका शूल शमन होता है, पाचन और अग्नि दीपन होती है ॥ ९६ ॥

बिल्वमूलमथैरंडचित्रकं विश्वभेषजम् । हिंगुसैन्धवसंयुक्तं सद्यः शूलनिवारणम् ॥ ९७ ॥

बेलकी जड़, अण्डकी जड़, चीता, सोंठ, हींग और सैंधानमक इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर कूट पीसकर चूर्ण करलेवे इस चूर्णको सेवन करनेसे तत्काल शूल नष्ट होता है ॥ ९७ ॥

मूत्रान्तः पाचितां शुष्कां लोहचूर्णसमन्विताम् । सगुडामभयामद्यात्सर्वशूलप्रशान्तये ॥ ९८ ॥

हरडोंको गोमूत्रमें पकाकर सुखालेवे, फिर उसमें लोहेका चूर्ण, और गुड मिलाकर सेवन करे तो सर्वप्रकारके शूल नष्ट होते हैं ॥ ९८ ॥

त्रिफलायास्तथा चूर्णं चूर्णं वा काललोहजम् । शर्कराचूर्णसंयुक्तं सर्वशूले निवारणम् ॥ ९९ ॥

त्रिफलेका चूर्ण अथवा काले लोहेके चूर्णमें मिश्रीका चूर्ण मिलाकर सेवन करनेसे सर्वप्रकारका शूल नष्ट होता है ॥ ९९ ॥

कम्बलावृतदेहस्य प्राणायामं प्रकुर्वतः । कटुतैलाक्तसक्तूनां धूपं शूलनिवारणम् ॥ १०० ॥

कम्बलको उढाकर और प्राणायाम क्रियाको कराकर सत्तुओंको कडवे तेलमें मिलाकर धूप देवे तो तत्काल शूल नष्ट होता है ॥ १०० ॥

हिंगु त्रिकटुकं कुष्ठं यवक्षारोऽथ सैन्धवम् । मातुलुङ्गरसोपेतं प्लीहशूलापहं रजः ॥ १०१ ॥

हींग, त्रिकुटा, कूठ, जवाखार और सैंधेनमकको एकत्र पीसकर बिजौरे नींबूके रसमें मिलाकर सेवन करनेसे प्लीहा और शूल नष्ट होता है ॥ १०१ ॥

वाते निरूहाः सविरेचनाश्च क्षीरप्रयोगा मधुराश्च पित्ते । तिक्तः कषायः कटुकस्तथैव कफेन शूले खलु सन्निविष्टे ॥

वातजशूलमें निरूहवस्ति और विरेचन, पित्तजशूलमें दूधका प्रयोग, मधुर पदार्थ और कफजशूलमें तिक्त और कटु औषधियोंका क्राथ, प्रयोग करना चाहिये ॥

हिंग्वादिवटक।

हिंगुसौवर्चलं पाठा द्वौ क्षारौ लवणत्रयम् । चूर्णीकृत्य विधातव्यं भिषजा लशुने रसे ॥ १०२ ॥ हृच्छूले पार्श्वशूले च मन्यास्तम्भे सुदारुणे । प्रयोज्यं कुक्षिशूले च भिषजा सिद्धिमिच्छता ॥ १०३ ॥

हींग, काला नमक, पाढ, जवाखार, सज्जी, सैंधानमक, कालानमक और विरियासंचरनमक इन सबका एकत्र चूर्ण करके लशुनके रसमें मिला कर बडे बनावे । इन बडोंको सेवन करनेसे-हृदयशूल, पार्श्वशूल, दारुण मन्यास्तम्भ और कुक्षिशूल नष्ट होता है ॥ १०२ ॥ १०३ ॥

एरण्डाद्यघृत।

एरंडमूलं बृहती श्वदंष्ट्रा पुनर्नवा गोक्षुरुकस्य मूलम् । शतावरीहंसपदी बला च महासहाक्षुद्रसहाविदारी ॥ ॥ १०४ ॥ बिल्वस्य मूलं समृणालचित्रं निदग्धिकाजीवकऋषभौ च । कुशे कुशाख्या सहदेवदेवे पचेत्कषायं जलपादशेषम् ॥ १०५ ॥ क्राथेन कल्केन पचेत्तु धीमान्रसेन तुल्यं फलपूरकस्य ॥ १०६ ॥ उत्कृष्टदोषो यस्य स्याद्यस्य शूलो न शाम्यति । तत्र सर्पिरिदं दद्यात्प्रसह्य विनिवारणम् ॥ ॥ १०७ ॥ सर्वस्थानगतं शूलमेतद्धन्ति चतुर्विधम् । एरंडाद्यमिदं सर्पिः कृष्णात्रेयेण पूजितम् ॥ १०८ ॥

अण्डकी जड, बडी कटेरी, गोखरू, पुनर्नवा, गोखरूकी जड, शतावर, हंसपदी, खिरैंटी, माषपर्णी, मुद्गपर्णी, विदारीकंद, बेलकी जड, कमलकी नाल, चीता, कटेरी, जीवक, ऋषभक, सरपता, कुशा, सहदेवी और देवदारु, इन सब औषधियोंके कल्क और इन ही औषधियोंके चतुर्थांश शेष क्राथमें बराबरके बिजौरेनींबूके रसके द्वारा घृतको सिद्ध करे । जिन मनुष्योंके दोष अधिक बढे हुए हैं और जिनके शूल किसी औषधिसे भी शमन नहीं होता उनको यह घृत सेवन करना चाहिये । यह तत्काल पीडाको दूर कर देता है । यह घृत-शरीरके सम्पूर्ण स्थानोंमें उत्पन्न हुए चारों प्रकारके शूलोंको दूर करता है । यह एरण्डाद्यघृत कृष्णात्रेय करके पूजित है ॥ १०४-१०८ ॥

बीजपूरादिघृत।

बीजपूरकमैरंडं रास्ना गोक्षुरकं बला। पृथक्पञ्चपलान्भागान्यवप्रस्थसमायुतान् ॥ १०९ ॥ वारिद्रोणेन साध्यं स्याद्यावत्पादावशेषितम्। घृतप्रस्थं पचेत्तेन कल्कं दत्त्वाक्षसंमितम् ११०॥ तुम्बुरूण्यभया हिंगु व्योषं सौवर्चलं विडम्। सैन्धवं यावशूकश्च स्वर्जिका साम्लवेतसम् ॥१११॥ मस्तुप्रस्थद्वयं दद्यात्सिद्धं मृद्वग्निना भिषक् पानमेतत्प्रशंसन्ति शूलं हन्ति त्रिदोषजम् ॥ ११२ ॥ वातशूलं यकृच्छूलं गुल्मप्लीहापहं परम्। हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च अन्त्रशूलञ्च यद्भवेत्॥११३॥ बलवर्णकरं हृद्यमग्निसन्दीपनं परम्। याज्ञवल्क्येन मुनिना भाषितं तत्त्वदर्शिना ॥ ११४ ॥

बिजौरानींबू, अण्डकी जड़, रायसन, गोखरू, खिरैंटी ये प्रत्येक औषधि पांच पांच पल, जौ एक प्रस्थ, इन सबको एक द्रोण जलमें पकावे। जब पकते २ जल चौथाई भाग बाकी रहजाय तब उतार कर छानलेवे, फिर इस क्वाथमें तुम्बुरु, हरड़, हींग, त्रिकुटा, काला नमक, त्रिरियासंचरनमक, सेंधानमक, जवाखार, सज्जी और असलवेत इन प्रत्येक औषधिका कल्क दो दो तोले डाले और दहीका तोड दो प्रस्थ लेवे, सबको मिलाकर यथाविधिसे एक प्रस्थ घृतको पकावे। इस घृतको पान करनेसे त्रिदोषजनित शूल दूर होता है तथा वातशूल, यकृत्शूल, गुल्म और प्लीहादि रोग, हृदयशूल पार्श्वशूल और अन्त्रशूल नष्ट होता है। बल और वर्णकी वृद्धि होती है, हृदयको हितकारी और अग्निको दीपन करता है। यह बीजपूरादिघृत, महामुनि तत्त्वदर्शी याज्ञवल्क्यजीका कहाहुआ है ॥ १०९–११४ ॥

शूलघृत।

घृताच्चतुर्गुणो देयो मातुलुङ्गरसो यदि। शुष्कमूलककोलाम्लकषायो दाडिमाद्रसः ॥ ११५ ॥ विडङ्गलवणक्षारं पञ्चकोलयवानिभिः। पाठामूलककल्कैश्च सिद्धं शूलं मतं घृतम् ॥ ॥ ११६ ॥ हृत्पार्श्वशूलं वै श्वासं कासं हिक्कां तथैव च। ब्रध्मगुल्मप्रमेहार्शोवातव्याधिं विनाशयेत् ॥ ११७ ॥

घी १ प्रस्थ, बिजौरे नींबूका रस ४ प्रस्थ, सूखी मूली और खट्टे बेर इनका क्वाथ ४ प्रस्थ, अनारका रस ४ प्रस्थ, कल्कके लिये वायविडंग, सेंधानमक, जवाखार, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ, अजवायन और पाढकी जड़ ये प्रत्येक औषधि एक २ तोला लेवे, सबको विधिपूर्वक मिलाकर घृतको पकावे। यह घृत—हृदयशूल, पार्श्वशूल, श्वास, खाँसी, हिचकी, ब्रध्म, गुल्म, प्रमेह, बवासीर और सर्व प्रकारके वातविकारोंको नष्ट करता है ॥ ११५ ॥ ११६ ॥ ॥ ११७ ॥

यस्य नैवं प्रशाम्येत तस्य बस्तिविधिर्मतः। नारायणेन तैलेन प्रसारिण्या तथैव च ॥ ११८ ॥

इसप्रकार चिकित्सा करनेपर जो शूल शांत नहीं हो तो उसके बस्ति प्रयोग करनी चाहिये। अथवा नारायणतैल तथा प्रसारिणीतैल प्रयोग करना चाहिये ॥ ११८ ॥

शूलके उपद्रव।

वेदना च तृषा मूर्च्छा आनाहो गौरवारुची। कासश्वासौ च हिक्का च शूलस्योपद्रवाः स्मृताः ॥ ११९ ॥

वेदना, तृषा, मूर्च्छा, अफारा, भारीपन, अरुचि, खाँसी, श्वास और हिक्का ये दश शूलके उपद्रव हैं ॥ ११९ ॥

अपथ्य।

व्यायामं मैथुनं मद्यं लवणं कटुकानि च। वेगरोधं शुचं क्रोधं वर्जयेच्छूलवान्नरः ॥ १२० ॥

व्यायाम (दंड कसरत), मैथुन (स्त्रीप्रसंग), मद्यपान, लवणरस, कटुरसवाले पदार्थ, मलमूत्रादिके वेगोंका अवरोध, शोक और क्रोध ये सब शूलवाला रोगी त्याग देवे ॥ १२० ॥

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायां
शूलाधिकार संपूर्ण ॥ २८ ॥

अथ परिणामशूलनिदानम् ।



स्वैर्निदानैः प्रकुपितो वायुः सन्निहितस्तदा । कफपित्ते समावृत्य शूलकारी भवेद्बली ॥ १ ॥ भुक्ते जीर्य्यति यच्छूलं तदेव परिणामजम् । तस्य लक्षणमप्येतत्समासेन विधीयते ॥२॥

वायुको बढानेवाले और कुपित करनेवाले जो रूक्षादि कारण उनसे वायु दूषित होकर कफ पित्तके समीप जाकर उनको आवृत कर बलवान् होकर शूलको उत्पन्न करती है और वह शूल भोजनके पचनेके समय होता है । इस कारण इसको परिणामशूल कहते हैं । उसके लक्षण अब संक्षेपसे कहता हूं ॥ १ ॥ २ ॥

वातजपरिणामशूल ।

आध्मानाटोपविण्मूत्रविबन्धारातिवेपनैः । स्निग्धोष्णैः प्रशमं याति वातिकं तद्वदेद्भिषक् ॥ ३ ॥

वातिक परिणामशूलमें-अफारा, पेटमें गुडगुडाहट, मलमूत्रका रुकना, बेचैनी और कम्प यह सब लक्षण होते हैं. यह शूल स्निग्ध और उष्ण द्रव्योंसे शांत होता है ॥ ३ ॥

पित्तजपरिणामशूलके लक्षण ।

तृष्णादाहारतिस्वेदं कट्वाम्ललवणोत्तरम् । शूलं शीतशमप्रायं पैत्तिकं तद्वदेद्भिषक् ॥ ४ ॥

जिसमें-तृषा, दाह बेचैनी और पसीना ये सब लक्षण हों तथा जो चरपरे, खट्टे और नमकीन द्रव्योंके सेवन करनेसे वृद्धिको प्राप्त हो और प्रायः शीतल पदार्थोंके सेवन करनेसे शांत हो उसको पित्तजन्यपरिणामशूल जानना चाहिये ॥ ४ ॥

श्लैष्मिकपरिणामशूलके लक्षण ।

छर्दिहृल्लाससंमोहस्वल्परुग्दीर्घसन्ततिः । कटुतिक्तोपशान्तौ च तद्विज्ञेयं कफात्मकम् ॥ ५ ॥

इसमें वमन, उबकाई और इन्द्रिय तथा मनमें मोह ये सब लक्षण हों, पीड़ा कम हो और बहुत दिनोंतक रहे एवं जो चरपरे और कड़वे पदार्थोंके सेवन करनेसे शांत हो उसको कफजपरिणामशूल जानना चाहिये ५॥

द्विदोषज और त्रिदोषजपरिणामशूलके लक्षण ।

संसृष्टलक्षणं बुद्धा द्विदोषं परिकल्पयेत् । त्रिदोषजमसाध्यं स्यात्क्षीणमांसबलानलम् ॥ ६ ॥

जिसमें दो दोषोंके लक्षण मिलते हों उसको द्वन्द्वज जानना और जिसमें तीनों दोषोंके लक्षण मिलते हों उसको त्रिदोषज जानना । यह त्रिदोषज परिणाम शूल असाध्य है-अथवा जिसमें मांस बल और अग्नि क्षीण होगये हों वह परिणामशूल असाध्य है ॥ ६ ॥

अथ चिकित्सा ।

लङ्घनं प्रथमं कुर्य्याद्वमनं सविरेचनम् । बस्तिकर्म्म परं चात्र पक्तिशूलोपशान्तये ॥ ७ ॥

परिणामशूलमें-प्रथम लंघन पश्चात् वमन और विरेचन करावे । तत्पश्चात् वस्तिकर्म्मप्रयोग करे ॥ ७ ॥

निरूहो वाजिगन्धा च मधुतैलिकबस्तयः । निम्बक्काथेन वमनं कटुतुम्बीरसेन वा ॥ ८ ॥ पटोलपत्रक्काथेन कारवेल्लोदकेन वा । प्रियंगुपत्रक्काथेन हितं मोचरसेन वा ॥ ९ ॥

यष्ट्याह्वादिकयोगेन वमनं परिशस्यते । पीत्वा च क्षीरमाकण्ठं मदनक्काथसंयुतम् ॥ १० ॥ कान्तारकस्य पौण्ड्रस्य कोशकारस्य वा रसम् । परिणामशूलशान्त्यर्थं वमनाय प्रयोजयेत् ॥ ११ ॥

प्रथम निरूहवस्ति देवे, फिर असगन्धका काथ और शहदको तेलमें मिलाकर बस्ति देवे । नीमके काथके द्वारा वमन करावे अथवा कड़वी तोम्बीके रसके द्वारा वमन करावे । किम्वा कड़वे परवलके पत्तोंके काथके द्वारा, करेलेके पत्तोंके काथ द्वारा अथवा फूल प्रियंगुके पत्तोंके काथ द्वारा अथवा मोचरसके द्वारा या मुलैठी आदिके काथके द्वारा वमन करावे । मैनफलका काथ बनाकर उसमें दूध मिलाकर कंठपर्य्यंत पिलावे—अथवा काली ईपके रसको अथवा पौण्ड्क नामवाली ईपके रसको या सफेद ईखके रसको पिलाकर वमन करा देवे । इससे परिणामशूल शमन होता है ॥ ८–११ ॥

दन्ती च त्रिवृता श्यामा कर्णिका कटुकाह्वया । नीलिकानागरं चूर्णं तैलैरेरण्डजेन वा ॥ युक्तं विरेचनं सद्यः पक्तिशूलनिवारणम् ॥ १२ ॥

दंती, निसोत, अनन्तमूल, अमलतास, कुटकी, नील, और सोंठ इनका चूर्ण बनाकर अंडीके तेलमें मिलाकर युक्तिपूर्वक विरेचन देवे । इससे परिणामशूल तत्काल नष्ट होजाता है ॥ १२ ॥

विडंगाद्यमोदक ।

विडङ्गतंडुलं व्योषं बृहद्दन्ती सचित्रकम् । सर्वाण्येतानि चाहृत्य श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ॥ १३ ॥ गुडेन मोदकं कृत्वा भक्षयेत्प्रातरुत्थितः । उष्णोदकानुपानं च दद्यादग्निविवर्धनम् । जयेत्रिदोषजं शूलं परिणामसमुद्भवम् ॥ १४ ॥

वायविडंगके चावल, त्रिकुटा, बडी दंती और चीता—ये प्रत्येक औषधि समान भाग लेकर बारीक चूर्ण कर लेवे । पश्चात् इसमें बराबर भाग गुड मिलाकर एक एक तोलेके मोदक बनावे । प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर एक २ मोदक खाय । ऊपरसे गरम जलका पान करे । इससे अग्निकी वृद्धि होती है और त्रिदोषजनित परिणामशूल नष्ट होता है ॥ १३ ॥ १४ ॥

नागरगुडातिलकल्कं पयसा संसाध्य यः पुमानद्यात् । उग्रं परिणतिशूलं नश्यति तस्य त्रिरात्रेण ॥ १५ ॥

सोंठ, गुड और तिलोंका कल्क—इनको दूधमें पकाकर सेवन करनेसे तीनदिनमें घोर परिणामशूल नष्ट होता है ॥ १५ ॥

एरण्डवह्निशंबूकवर्षाभूगोक्षुरं समम् । अन्तर्दग्ध्वा पिबेदद्भिरुष्णाभिः शूलशान्तये ॥ १६ ॥

अंडकी जड, चीता, घोंघा, पुनर्नवा और गोखुरू इन सबको समान भाग लेकर शराव सम्पुटमें रख भस्म कर लेवे । इस भस्मको गरम जलके साथ पान करनेसे परिणामशूल शांत होता है ॥ १६ ॥

शंबूकजं भस्म पीतं जलेनोष्णेन तत्क्षणात् । पक्तिजं विनिहन्त्येतच्छूलं विष्णुरिवासुरान् ॥ १७ ॥

घोंघेकी भस्मको गरम जलके साथ पान करनेसे परिणामशूल तत्काल नष्ट होता है । जिसप्रकार विष्णु भगवान्से असुरोंके समूह नष्ट होते हैं ॥ १७ ॥

शंबूकं त्र्यूषणञ्चैव पञ्च वै लवणानि च । समांशैर्गुटिकां कृत्वा कलम्बूकरसेन वा ॥ १८ ॥ प्रातर्भोजनकाले वा भक्षयेच्च यथाबलम् । शूलाद्विमुच्यते जन्तुः सहसा परिणामजात् १९ ॥

घोंघेकी भस्म, सोंठ, मिरच, पीपल और पांचों नमक—प्रत्येक औषधि समानभाग लेकर कूट पीसकर कलमीशोरेके रसमें गोलियां बनालेवे । इन गोलियोंको प्रातःकाल या भोजनके समय बलानुसार सेवन करे तो इससे तत्काल परिणामशूल शांत होता है ॥ १८ ॥ १९ ॥

विष्णुक्रान्तामूलकल्कः पीतः सघृतशर्करः। पयसा शमयत्याशु शूलं पक्तिसमुद्भवम् ॥ २० ॥

विष्णुक्रान्ता (नीली कोयल) की जडका कल्क बनाकर घी और खांड मिलाकर दूधके साथ पान करनेसे परिणामशूल नष्ट होता है ॥ २० ॥

यः पिबति सप्तरात्रं सक्तूनेकान्कलाययूषेण। जयति परिणामशूलं शमयेत्तज्जलं वा प्रयोजितम् ॥ २१ ॥

इकले सत्तुओंको मटरके यूषके साथ सात दिनतक सेवन करनेसे परिणामशूल दूर होता है अथवा मटरके क्वाथको सेवन करनेसे भी परिणामशूल दूर होता है ॥ २१ ॥

शम्बूकादिमोदक।

पलानि त्रीणि शंबूकाल्लोहचूर्णात्पलद्वयम्। रसाञ्जनात्पलश्चैकं लोहसिंघातकात्पलम् ॥ २२ ॥ सर्वैः समं शर्करा च मधुना च परिप्लुतम्। सर्वमेतत्समाहृत्य मोदकान्कारयेद्भिषक् ॥ २३ ॥ तान्भक्षयेच्च यत्नेन शूले गुल्मे हृदामये। विशेषतः पक्तिशूले शोथे पांडुगदे भ्रमे ॥ २४ ॥ दुर्नाम्नि कासे कृच्छ्रे च प्रमेहाश्मरिवृद्धिषु। अग्निमांद्ये स्मृतिभ्रंशे पीनसेऽर्धावभेदके ॥ २५ ॥

घोंघेकी भस्म १२ तोले, लोहेका चूर्ण ८ तोले, रसौत ४ तोले, लोहेका मैल ४ तोले और सबके समान मिश्री लेवे सबको एकत्र पीसकर शहदमें मिलाकर लड्डू बनालेवे। इन लड्डूओंको यत्नपूर्वक सेवन करनेसे शूल, गुल्म, हृदयरोग, विशेष करके परिणामशूल, सूजन, पाण्डुरोग, भ्रम, बवासीर, खांसी, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, अश्मरी, अन्त्रवृद्धि, मंदाग्नि, स्मृतिभ्रंश, पीनस और अर्द्धावभेदक ये सब रोग दूर होते हैं ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥

कृष्णाभया लोहचूर्णं विलिहन्मधुसर्पिषा। परिणामोद्भवं शूलं सद्यो हन्ति सुदुस्तरम् ॥ २६ ॥

पपिल, हरड और लोहेका चूर्ण इनको एकत्र शहद और घीमें मिलाकर चाटनेसे तत्काल परिणामशूल दूर होता है ॥ २६ ॥

पथ्या लोहरजः शुण्ठी तच्चूर्णं मधुसर्पिषा। परिणामभवं हन्ति वातपित्तकफात्मकम् ॥ २७ ॥

हरड, लोहेका चूर्ण और सोंठ इनको शहद और घीमें मिलाकर सेवन करनेसे वात-पित्त-कफजनित परिणामशूल दूर होता है ॥ २७ ॥

त्रिफलादिलोह।

त्रिफलां लोहचूर्णन्तु यष्टीमधुकमेव च। मधुसर्पियुतं लिह्याच्छूलं हन्ति त्रिदोषजम् ॥ २८ ॥

त्रिफला, लोहेका चूर्ण और मुलैठी इनको एकत्र पीसकर शहद और घीमें मिलाकर सेवन करनेसे त्रिदोषजनित शूल दूर होता है ॥ २८ ॥

चतुःसमलेह।

अभ्रं ताम्रं रसं लोहं प्रत्येकं संस्कृतं पलम्। सर्वमेतत्समाहृत्य गृह्णीयात्कुशलो भिषक् ॥ २९ ॥ आज्ये पलद्वादशके दुग्धे वत्सरसंख्यके। क्षिप्त्वा तत्र पचेच्चूर्णं सुपूतं घनतन्तुना ॥ ॥ ३० ॥ विडङ्गं त्रिफलावह्नीन् त्रिकटून्वा तथैव च। पिष्ट्वा पलोन्मितानेतान्यथा संमिश्रितान्नयेत् ॥ ३१ ॥ ततः पिष्ट्वा शुभे भांडे स्थापयेत्तु विचक्षणः। आत्मनः शोभने चाह्नि पूजयित्वा रविं गुरुम् ॥ ३२ ॥ घृतेन मधुनालोड्य भक्षयेन्माषकादिकम्। अष्टौ माषान्क्रमेणैव वर्धयेत्तु समाहितः ॥ ३३ ॥ अनुपानश्च दुग्धेन नारिकेलोदकेन च। जीर्णे

शर्करशाल्यन्नं मुद्गमांसरसाशयः ॥ ॥ ३४ ॥ रसायनाविरुद्धानि ह्यन्यान्यपि च कारयेत् ॥ ३५ ॥ हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च आमवातं कटिग्रहम् । गुल्मशूलं प्लीहशूलं यकृच्छूलं विशेषतः ॥ ३६ ॥ अग्निमान्द्यं क्षयं कुष्ठं कासं श्वासं विचर्चिकाम् । अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रञ्च योगेनानेन नश्यति ॥ ३७ ॥

अभ्रककी भस्म, तांबेकी भस्म, शुद्ध पारा और शुद्धलोहेकी भस्म-प्रत्येक चार चार तोले इन सबको एकत्र पीसकर ४८ तोले घी और ४८ तोले दूधमें डालकर पकावे जब पकते पकते गाढा होजाय तब इसमें वायविडंग, त्रिफला, चीता और त्रिकुटा ये प्रत्येक औषधि चार२ तोले लेकर चूर्ण बनाकर वस्त्रमें छान कर मिलादेवे । जब सिद्ध होजाय तब एक उत्तम चिकने बासनमें भरकर रखदेवे । शुभदिनमें सूर्य्य, चन्द्रमा आदि देवता और गुरुदेवका पूजन करके इस औषधिको घी और शहदमें मिलाकर एक माशा प्रमाण भक्षण करे । फिर क्रमक्रमसे एक माशेसे वढाकर प्रतिदिन आठ माशे पर्य्यन्त सेवन करे । अनुपान-दूध और नारियलका जल । जब औषधि जीर्ण होजाय तब शालिचावलोंके भातको खांडके साथ भक्षण करे तथा मूंगका यूष और मांसरसादिकोंको भक्षण करे । इसपर रसायनके विरुद्ध पदार्थ सेवन नहीं करे । यह हृदयशूल, पार्श्वशूल,आमवात, कटिग्रह, गुल्मशूल, प्लीहशूल, यकृत्शूल, मन्दाग्नि, क्षय, कुष्ठ, खाँसी, श्वास, विचर्चिका, अश्मरी, और मूत्रकृच्छ्र आदि सब रोगोंको नष्ट करता है२९-३७

भक्तवारिगुटिका ।

त्रिवृता चित्रकं मुस्तं त्रिफला त्र्यूषणं तथा । एकैकस्य समो भागस्तदर्धो रसगन्धयोः ॥ ३८ ॥ लोहात्रिकं विभागानां वङ्गस्ताद्द्विगुणो भवेत् । एतत्सकलचूर्णन्तु चूर्णयित्वा विचक्षणः ॥ ३९ ॥ त्रिफलायाः कषायेण गुटिकां कारयेद्भिषक् । तत्रैकं भक्षयेद्भातभक्तवारि पिबेदनु ॥ ४० ॥ पक्तिशूलं त्रिदोषोत्थमम्लपित्तं वमिं ज्वरम् । हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च वस्तिकुक्षिगुदे रुजम् ॥ ४१ ॥ कासं श्वासं तथा कुष्ठं ग्रहणीदोषनाशनम् । यकृत्प्लीहोदरञ्चैव राजयक्ष्मज्वरापहम् ४२

निसोत, चीता, नागरमोथा, हरड,बहेडा आमला, सोंठ,मिरच, और पीपल-ये प्रत्येक औषधि दो २ तोले शुद्ध पारेकी भस्म १ तोला, शुद्ध गन्धक १ तोला, लोहेकी भस्म ६ तोले, और वंगकी भस्म ४ तोले लेवे।इन सबको एकत्र पीसकर त्रिफलेके क्वाथमें खरल करके एक २ माशेकी गोलियाँ बनालेवे । प्रति दिन एक गोली खाय और ऊपरसे भातके मांडका अनुपान करे । यह भक्तवारिगुटिका-त्रिदोषजनित परिणामशूल, अम्लपित्त, वमन, ज्वर, हृदयशूल, पार्श्वशूल,वस्तिशूल, कुक्षिशूल,गुदशूल, खाँसी,श्वास, कोढ, संग्रहणी, यकृत, प्लीहा, उदररोग, राजयक्ष्मा और ज्वरको दूर करती है ॥ ३८-४२ ॥

त्रिफलादिलोह ।

अक्षामलकशिवानां स्वरसैः पक्वं सुलोहजञ्च रजः । सगुडं यदुपभुंक्ते मुञ्चति त्रिदोषजं शूलम् ॥ ४३ ॥

बहेडा, आमले और हरड़ इनके क्वाथमें लोहेके चूर्णको पकावे । फिर इसमें गुड मिलाकर सेवन करे तो त्रिदोषजनितशूल दूर होता है ॥ ४३ ॥

सामुद्रादिचूर्ण ।

सामुद्रं सैन्धवं क्षारो रुचकं रौमकं विडम् । दन्ती लोहरजः किट्टं त्रिवृच्छूरणकं समम् ॥ ४४ ॥ दधिगोमूत्रपयसा मन्दपावकपाचितम् । तद्यथाग्निबलं चूर्णं पिबेदुष्णेन वारिणा ॥ ४५ ॥ जीर्णेऽजीर्णे तु भुञ्जीत मांसादिघृतसाधितम् । नाभिशूलं यकृच्छूलं गुल्मप्लीहकृतञ्च यत् ॥ ४६॥

विद्रध्यष्ठीलिजं हन्ति कफवातोद्भवं तथा । अन्नद्रवं जरयितुमजीर्णं ग्रहणीगदम् ॥ ४७ ॥ शूलानामपि सर्वेषामौषधं नास्त्यतः परम् । परिणामसमुत्थस्य विशेषेणान्तकं स्मृतम् ४८

समुद्रनमक, सैंधानमक, जवाखार, काला नमक, सामरनमक, बिड नमक, दंती, लोहेका चूर्ण, मंडूरभस्म, निसोत, और जिमीकंद ये सब समान भाग लेकर बारीक पीसकर चूर्ण बनावे । इस चूर्णको दही, गोमूत्र और दूधमें मंद २ अग्निसे पकावे । जब सिद्ध होजाय तब इसका चूर्ण करलेवे । इसको अग्निके बलानुसार गरम जलके साथ सेवन करे । जब यह जीर्ण होजाय अथवा जीर्ण न हुआ हो तब भी मांसादिके पदार्थोंको घीमें सिद्ध करके भोजन करे । यह सामुद्रादि चूर्ण–नाभिशूल,यकृतशूल, गुल्मशूल, प्लीहाशूल, विद्रधि, अष्ठीला,कफवातजनितशूल,अन्नद्रवशूल,अजीर्ण, ग्रहणीरोग और विशेष करके परिणामशूलको दूर करता है । सर्वप्रकारके शूलरोगोंकी इससे उत्तम अन्य औषधि नहीं है ॥ ४४–४८ ॥

गुडपिप्पलीघृत ।

सपिप्पलीगुडं सर्पिः पचेत्क्षीरे चतुर्गुणे । विनिहन्त्यम्लपित्तञ्च शूलञ्च परिणामजम् ॥ ४९ ॥

पीपिल, गुड़ और घी इनको चौगुने दूधमें पकाकर सेवन करनेसे अम्लपित्त और परिणामशूल दूर होता है ॥ ४९ ॥

पिप्पलीघृत ।

क्राथेन कल्केन च पिप्पलीनां सिद्धं घृतं माक्षिकसंप्रयुक्तम् । क्षीरानुपानं विनिहन्त्यवश्यं शूलं प्रवृद्धं परिणामसंज्ञम् ॥ ५० ॥

पीपलके कल्क और क्वाथके द्वारा घृतको सिद्ध करे । फिर इसमें शहद मिलाकर दूधके साथ सेवन करे । यह घृत–अत्यंत बढे हुए घोर परिणामशूलको दूर करता है ॥ ५० ॥

लौहादिलेह ।

लोहस्य रजसो भागास्त्रिफलायास्त्रयस्तथा । गुडस्याष्टौ तथा भागा गूडान्मूत्रं चतुर्गुणम् ॥ ५१ ॥ एतत्सर्वन्तु विपचेद्गुडपाकविधानवत् । लिहेच्चैतद्यथाशक्ति क्षये शूले च पाकजे ॥ ५२ ॥

लोहेका चूर्ण १ भाग,त्रिफला ३ भाग,गुड ८ भाग और गोमूत्र ३२ भाग लेवे । सबको एकत्र मिलाकर गुडपाककी विधिसे पकावे । पश्चात् इसमेंसे यथाशक्त्यनुसार सेवन करे । यह क्षय और परिणामशूलको दूर करता है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

कोलादिमण्डूर ।

कोलग्रन्थिकशृङ्गवेरचपलाक्षारैः समं चूर्णितम् । मंडूरं सुरभीजलेऽष्टगुणिते पक्त्वाथ सान्द्रीकृतम् ॥ ५३ ॥ तत्खादेद्दशनादिमध्यविरतौ प्रायेण दुग्धान्नभुक् । जेतुं वातकफामयान्परिणतौ शूलं हि शूलानि च ॥ ५४ ॥

चव्य, पीपलामूल, सोंठ, पपिल और जवाखार– ये सब समान भाग लेवे और इन सबकी बराबर मंडूर लेवे । सबको एकत्र पसिकर चूर्ण करलेवे और अठगुने गोमूत्रमें पकावे । जब पककर गाढा होजाय तब उतारकर छान लेवे । इसको भोजनके बीचमें सेवन करे । प्रायः इसपर दूधके साथ भात खाय तो इससे सर्वप्रकारके वातकफजानित रोग, परिणामशूल और सर्व प्रकारके शूल नष्ट होते हैं।।५३।।५४।।

भीमवटकमण्डूर ।

यवक्षारं कणा शुण्ठी कोलं ग्रन्थिकचित्रके । पलप्रमाणमादाय प्रस्थं लोहस्य किट्टकम् ॥ ५५ ॥ शनैः पचेदाविलेपं गोमूत्राष्टगुणेन च । ततोऽक्षमात्रान्वटकान्योजयेत्सतरात्रकम् ॥ ॥ ५६ ॥ भक्षयेद्भोजनस्याग्रे मध्ये

भुक्तवतस्तथा। सर्पिः क्षीररसोपेतै रसैर्जाङ्गलजैः शुभैः ॥ ५७ ॥ विनिहन्त्यम्लपित्तञ्च शूलं च परिणामजम्। सर्वशूलगदांश्चाशु नाशयत्येष वीर्यवान्। स भीमवटको ह्येष योगराजः प्रकीर्त्तितः ॥ ५८ ॥

जवाखार, पीपल, सोंठ, चव्य, पीपलामूल और चीता–ये प्रत्येक औषधि चार चार तोले लेवे, लोहमण्डूर एक प्रस्थ लेवे। सबको अठगुने गोमूत्रमें मंदमंद अग्निसे पकावे। जब पककर सिद्ध होजाय तब एक एक तोलेके बडे बनालेवे। प्रतिदिन भोजनसे पहले भोजनके बीचमें और भोजनके अन्तमें एक एक बडा खाय। इस प्रकार सात दिनतक सेवन करे। इसपर घी और दूधयुक्त जांगल प्राणियोंके मांसरसको भोजन करे। यह अम्लपित्त, परिणामशूल, और सर्व प्रकारके शूलोंको दूर करता है। यह भीमवटक–सर्व योगोंका राजा है॥ ५५–५८॥

क्षीरमण्डूर।

लोहकिट्टपलान्यष्टौ गोमूत्रस्याढके पचेत्। क्षीरप्रस्थेन तत्सिद्धं पक्तिशूलहरं नृणाम्॥ ५९ ॥

आठ पल लोहेके मैलको एक आढक गोमूत्रमें पकावे। जब सिद्ध होजाय तब एक प्रस्थ दूध डाल कर पकावे। इसको सेवन करनेसे परिणामशूल दूर होता है॥ ५९॥

शतावरीमण्डूर।

संशोध्य चूर्णितं कृत्वा मण्डूरस्य पलाष्टकम्। शतावरीरसस्याष्टौ दध्नश्च पयसस्तथा॥ ६०॥ पलान्यादाय चत्वारि तथा गव्यस्य सर्पिषः। विपचेत्सर्वमेकत्र यावत्पिण्डत्वमागतम् ॥ ६१ ॥ सिद्धन्तु भक्षयेन्मध्ये भोजनस्याग्रतोऽपि वा। वातात्मकं पित्तभवं शूलञ्च परिणामजम्। विनिहन्त्येव योगोऽयं मंडूरस्य न संशयः॥ ६२ ॥

शुद्ध किये हुए मण्डूरका चूर्ण आठ पल, शतावरका रस आठ पल, दही आठ पल और दूध आठ पल और गौका घी चार पल लेवे। सबको एकत्र मिलाकर पकावे। जब पककर पिण्डके समान होजाय तब उतार लेवे। इसको भोजनसे पहले, भोजनके बीचमें और भोजनके अन्तमें सेवन करे। यह शतावरीमण्डूर-वातजनित, पित्तजनित, परिणाशूल और सर्वप्रकारके शूलोंको अवश्य दूर कर देता है॥ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

तारामण्डूरगुड।

विडङ्गं चित्रकं चव्यं त्रिफला त्र्यूषणानि च। नवभागानि सर्वाणि लोहकिट्टसमानि च॥६३॥ गोमूत्रं द्विगुणं दत्त्वा मूत्राद्द्विगुणितं गुडम्। शनैर्मृद्वग्निना पक्त्वा सुसिद्धं पिण्डतां गतम् ॥६४॥ स्निग्धे भांडे विनिःक्षिप्य भक्षयेत्कोलमात्रया। प्राङ्मध्यान्तक्रमेणैव भोजनस्य प्रयोजितः ॥६५॥ योगोऽयं शमयत्याशु पक्तिशूलं सुदारुणम्। कामलापांडुरोगञ्च शोथं मन्दाग्नितामपि ॥ ६६॥ अर्शांसि ग्रहणीरोगं कृमिगुल्मोदराणि च। नाशयेदम्लपित्तं च स्थौल्यं चाप्यपकर्षति॥ ६७ ॥ वर्जयेच्छुष्कशाकानि विदाह्यम्लकटूनि च। पक्तिशूलान्तको ह्येष गुडो मण्डूरसंज्ञकः॥ शूलार्त्तानां कृपाहेतोस्तारया परिकीर्त्तितः॥ ६८ ॥

वायविडग, चीता, चव्य, हरड़, बहेडा, आमला, सोंठ, मिरच और पीपल ये नौ औषधि एक एक भाग और लोहेका मैल सबकी बराबर लेवे। गोमूत्र सबसे दुगुना भाग और गोमूत्रसे दुगुना गुड लेवे। सबको एकत्र करके मन्द २ अग्निसे पकावे। जब पककर पिंडके समान हो जाय तब एक उत्तम चिकने वासनमें भरकर रख देवे। इसमेंसे प्रतिदिन एक तोला प्रमाण भोजनसे पहले, भोजनके बीचमें और भोजनके अन्तमें भक्षण करे। यह तारामण्डूर–

दारुण परिणामशूल, कामला, पाण्डुरोग, सूजन, मन्दाग्नि, बवासीर, संग्रहणी, कृमि, गुल्म, उदररोग अम्लपित्त और स्थूलतादि समस्त रोगोंको दूर करता है। इसपर सूखे शाक दाहकारक, खट्टे और चरपरे पदार्थ ये सब छोडने चाहिए। यह मण्डूरगुड परिणामशूलको नष्ट करनेवाला है। इसको तारादेवीने शूलरोगियोंपर दया करके पूर्वकालमें कहा है ॥६३–॥ ६८ ॥

पुनर्नवादिमण्डूर।

वर्षाभूर्वरुणोमानलोहकिट्टन्तु पूतकम्। भार्ङ्गी च समभागानि मूत्रे दशगुणे पचेत् ॥ ६९ ॥ अन्तर्धूमविपक्वेन मधुसर्पिर्युतं लिहन्। वाताधिकं तथा पित्तं द्वन्द्वजं श्लेष्मजं तथा। एष त्रिदोषजं हन्ति शूलं हि परिणामजम् ॥ ७० ॥

पुनर्नवा, वरुना, मानकन्द, शुद्धलोहेका मैल और भारंगी–ये सब औषधि समान भाग लेकर दशगुने गोमूत्रमें पकावे पश्चात् इसको सम्पुटमें रखकर पकावे। इसमें शहद और घी मिलाकर सेवन करे। यह मण्डूर–वातज, पित्तज, द्वन्द्वज, कफज और त्रिदोषजनित परिमाणशूलको नष्ट करता है ॥ ६९ ॥ ॥ ७० ॥

बृहत्त्र्यूषणादिमण्डूर।

त्र्यूषणं त्रिफला चव्यं विडङ्गानलजीरकम्। शृङ्गी मुस्तं देवकाष्ठं कारवी धान्यतुम्बुरु ॥७१॥ दन्तीत्रिवृत्तयोर्मूलं ग्रन्थिकं गजपिप्पली। त्वगेलापत्रकं चूर्णं सर्वमर्द्धपलं पृथक् ॥७२ गृह्णीयाद्गन्धपाषाणं केशरं चाक्षसम्मितम्। मंडूरस्य विशुद्धस्य पलानां पञ्चविंशतिः ॥ ७३ ॥ कृत्वा चूर्णं ततः सूक्ष्मं स्वरसैर्भावयेत्तु तम्। कर्कोटककेशराजवन्ध्यातालसमुद्भवैः ॥७४॥ धात्रीफलरसप्रस्थं मूत्रमष्टगुणं तथा। दत्त्वा विपाचयेत्तावद्यावत्पाकश्च गच्छति ॥७५॥ खादेदग्निबलं मत्वा परिहारविवर्जितः। वातश्लेष्मोद्भवं शूलमम्लपित्तं सुदारुणम् ॥७६॥ प्लीहानमुदरं गुल्मं ग्रहणीपांडुकामलाम्। कृमीनर्शांसि कुष्ठानि शोषस्थौल्यमरोचकम् ॥ ७७ ॥ ये वातप्रभवा रोगा ये च पित्तकफोद्भवाः। तान्सर्वान्नाशयत्याशु भास्करस्तिमिरं यथा। त्र्यूषणं नाम विख्यातं वह्नेर्दीप्तिकरं परम् ॥ ७८ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, चव्य, वायविडंग, चीता, जीरा, काकडाशिंगी, नागरमोथा, देवदारु, कलौंजी, धनिया, तुम्बुरु, दंतीकी जड़, निसोतकी जड, पीपलामूल, गजपीपल, दालचीनी, इलायची और तेजपात ये प्रत्येक औषधि दो २ तोले, शुद्ध गन्धक १ तोला, नागकेशर १ तोला और शुद्ध मण्डूर २५ पल-इन सबका बारीक चूर्ण करके काकडा, भांगरा, बाँझककोडा और ताड़ इनके रसमें पृथक् २ भावना देवे। फिर इसमें आमलोंका स्वरस १ प्रस्थ और गोमूत्र आठ भाग डालकर मन्द २ अग्निसे पकावे। जब पककर सिद्ध होजाय तब इसमेंसे अग्निके बलानुसार सेवन करे। इसपर कुछ परहेज नहीं है। यह औषधि–वातकफजनितशूल, दारुण अम्लपित्त, प्लीहा, उदररोग, गुल्म, संग्रहणी, पाण्डु, कामला, कृमिरोग, बवासीर, कोढ, शोष, स्थौल्य, अरुचि, समस्त वात, समस्त पित्तरोग और सम्पूर्ण कफरोगोंको दूर करता है। जिस प्रकार सूर्य्य अन्धकारके समूहको नष्ट करता है। यह त्र्यूषणादि मण्डूर–अग्निको अत्यन्त दीपन करता है ॥ ७१–७८ ॥

नारिकेललवण।

नारिकेलस्य तोयश्च लवणेन प्रपूरितम्। विपक्वमग्निना सम्यक्परिणामजशूलनुत ॥ ७९ ॥ वातिकं पैत्तिकश्चैव श्लैष्मिकं सन्निपातिकम् ॥ ८० ॥

नारियलके जलमें लवण डालकर अच्छे प्रकार अग्निसें सिद्ध करे। यह वातज, पित्तज और कफज सर्वप्रकारके परिणामशूलोंको दूर करताहै ॥७९॥८०॥

अयोगुग्गुलु।

त्रिफला मुस्तकं व्योषं विडङ्गं पुष्करं वचा। चित्रकं मधुकं चैव पलांशं श्लक्ष्णचूर्णितम् ॥ ८१ ॥ अयश्चूर्णं पलान्यष्टौ गुग्गुलोस्तावदेव तु। प्रातर्विलिह्य भुञ्जीतोऽजीर्णेऽस्मिन्सद्र जयेद्रुजम् ॥ ८२ ॥ जीर्णान्नसम्भवं शूलं पांडुरोगं हलीमकम्। आमवातं तथा गुल्मं श्वयथुं विषमज्वरम् ॥ ८३ ॥

हरड़, बहेडा, आमला, नागरमोथा, सोंठ, मिरच, पीपल, वायविडंग, पोहकरमूल, वच, चीता और मुलैठी ये प्रत्येक औषधि चार चार तोले लेवे, लोहेका चूर्ण ८ पल, गूगल ८ पल इन सबको एकत्र मिलाकर खूब कूट कर एकजीव कर ले फिर एक चिकने बासनमें करके रख देवे। इसमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल भक्षण करे और इसके जीर्ण होनेपर भोजन करे। यह लौह गूगल-परिणामशूल, पांडुरोग, हलीमक, आमवात, गुल्म, सूजन और विषमज्वरको दूर करता है ॥८१–८३॥

आमलकखण्ड।

स्विन्नपीडितकूष्माण्डात्तुलार्धं भृष्टमाज्यतः। प्रस्थार्द्धे तुल्यखण्डश्च पचेदामलकीरसात् ॥ ८४ ॥ प्रस्थे सुस्विन्नकूष्माण्डरसप्रस्थं विप्रक्षिपन्। दर्व्या पाकं गते तस्मिंश्चूर्णीकृत्य निधापयेत् ॥ ८५ ॥ द्वे द्वे पले कणाजाजीशुण्ठीनां मरिचस्य च। पलं तालीशधान्याकचातुर्जातकमुस्तकम् ॥ ॥ ८६ ॥ कर्षप्रमाणं प्रत्येकं प्रस्थार्द्धं माक्षिकस्य च। पक्तिशूलं निहन्त्येव दोषत्रयकृतश्च यत् ॥ ८७ ॥ छर्द्यम्लपित्तमूर्च्छाश्च कासश्वासावरोचकम्। हृच्छूलं रक्तपित्तञ्च पृष्ठशूलञ्च नाशयेत्। रसायनमिदं श्रेष्ठं खण्डामलकसंज्ञकम् ॥ ८८ ॥

उबाला हुआ और निचोडा हुआ पेठा २०० तोले लेकर ६४ तोले घीमें भूने। फिर उसमें स्वच्छ खांड ३२ तोले, आमलोंका रस ३२ तोले और पेठेका रस ६४ तोले डाल कर सबको एकत्र मिला कर पकावे। जब पकते २ करछीसे लगने लगजाय तब इसमें पीपल, जीरा, सोंठ और काली मिरच प्रत्येक औषधिका चूर्ण आठ २ तोले, तालीसपत्र ४ तोले, धनियां ४ तोले, दालचीनी, इलायची, नागकेशर, तेजपात और नागरमोथा ये औषधि एक २ तोला पीसकर मिलादेवे। और ३२ तोले शहद मिलावे। यह–त्रिदोषजनित और परिणामशूल, वमन, अम्लपित्त, मूर्च्छा, खाँसी, श्वास, अरुचि, हृदयशूल, रक्तपित्त और पृष्ठशूलको नष्ट करता है। यह खण्डामलक नामवाली उत्तम रसायन है ॥ ८४–८८ ॥

अर्शोविकारनिर्दिष्टो लेहो लोहामृताह्वयः। परिणामशूलशान्त्यर्थं कर्त्तव्यः संप्रजानता ॥ ८९ ॥

बवासीर रोगमें जो अमृताह्वयलोह कहा है वह परिणामशूलमें भी शूलकी शांतिके लिये प्रयोग करना चाहिए ॥ ८९ ॥

अथान्नद्रवशूलनिदान।

जीर्णेऽजीर्यत्यजीर्णे वा यच्छूलमुपजायते। पथ्यापथ्यप्रयोगेण भोजनेऽभोजनेन वा। न शमं याति नियमात्सोऽन्नद्रव उदाहृतः ॥ ९० ॥

भोजनके पचनेपर अथवा पचते समय या भोजनके अजीर्ण अवस्थामें जो शूल उत्पन्न होता है उसको अन्नद्रवशूल कहते हैं। वह अन्नद्रवशूल पथ्यापथ्यसे तथा भोजन करनेसे या नहीं भोजन करनेसे नियमसे शांत नहीं होता ॥ ९० ॥

अन्नद्रवाख्ये शूले तु न तावत्स्वास्थ्यमश्नुते। यावत्कटुकपित्ताम्लमन्नं न च्छर्दयेद्द्रवम् ॥ ९१ ॥

अन्नद्रवशूलमें जबतक चरपरे, कडवे पित्तोंको और खट्टे अन्नको वमनके द्वारा नहीं गेरता तबतक शांति नहीं होती है ॥ ९१ ॥

चिकित्सा ।

वान्तमात्रे जरत्पित्ते शूलमाशु प्रशाम्यति । पित्तार्तं वमनं कार्यं कफार्त्तश्च विरेचनम् ॥ ९२ ॥

जरत्पित्तमें केवल वमन करानेसे ही शूल शांत हो जाता है इसमें जबतक पित्त गिरे तबतक वमन करानी चाहिए और जबतक कफ गिरे तबतक विरेचन करानी चाहिये ॥ ९२ ॥

अन्नद्रवे च तत्कार्यं जरत्पित्ते यदीरितम् । आमपक्वाशये शुद्धे गच्छेदन्नद्रवः शमम् ॥९३॥

जरत्पित्तमें जो औषधियां कही हैं वे सब अन्नद्रवशूलमें प्रयोग करनी चाहिएँ। आमाशय और पक्वाशयके शुद्ध होनेपर अन्नद्रवशूल अपने आप शमन हो जाता है ॥ ९३ ॥

माषेण्डरीं समधुकां सुस्विन्नान्तैलपाचिताम् । तादृशीं सर्पिषा खादेदन्नद्रवनिपीडितः ॥ ९४ ॥

उडदकी वडी बना कर तेलमें पकावे । फिर उनको शहदमें डालकर घीके साथ भक्षण करे तो अन्नद्रव शांत होता है ॥ ९४ ॥

धात्रीफलभवं चूर्णमयश्चूर्णसमायुतम् । यष्टीचूर्णेन वा युक्तं लिह्यात्क्षौद्रेण तद्गदे ॥ ९५ ॥

आमलोंके चूर्णमें लोहेका चूर्ण मिलाकर अथवा मुलैठीके चूर्णमें लोहेका चूर्ण मिलाकर शहदके साथ सेवन करनेसे अन्नद्रवशूल शमन होता है ॥ ९५ ॥

श्यामाकतंडुलैः सिद्धं सिद्धं कोद्रवतंडुलैः । प्रियङ्गुतंडुलैः सिद्धं पायसं शार्करं हितम् ॥ ९६ ॥

समेके चावलोंकी, कोदोंके चावलोंकी या कंगुनीके चावलोंकी दूधमें खीर बना कर उसमें उत्तम खांड डाल कर सेवन करे तो अन्नद्रवशूल शांत होता है ॥ ९६ ॥

गौडिकं सौरणं कन्दं कूष्मांडं वापि भक्षयेत् । कलाययवसक्तून्वा सक्तून्वा लाजसम्भवान् ॥ ९७ ॥ कुलित्थसक्तूनथवा दध्नाऽद्याद्विस्तरेण तु । चणकानामथवा सक्तून् कोद्रवस्यौदनं तथा ॥ ९८ ॥ गोधूममंडकं तत्र सर्पिषा गुडसंयुतम् । सासितं शीतदुग्धेन मृदितं वा हितं मतम् ॥ ९९ ॥

इसमें गुडके बने पदार्थ, सूरणकंद, पेटा, मटर, जौके सत्तू, खीलोंके सत्तू, या कुलथीके सत्तू, दहीके साथ खाय अथवा दहीके बने हुए पदार्थोंको भक्षण करे, चनेके सत्तू अथवा कोदोंका भात ये सब हितकारी हैं । गेहूंके मंडकको घी और गुड तथा बूरा मिला कर शीतल दूधमें मिला कर खानाभी हितकारक है ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ ९९ ॥

पटोलपत्रयूषेण खादेच्चणकसक्तुकान् । भृष्टा वा चणकान्खादेद्भुजावानथ निस्तुषान् ॥ १०० ॥

अथवा अन्नद्रवशूलमें चनेके सत्तुओंको पटोलपत्रके यूषके साथ भक्षण करे । अथवा भुने हुए चनोंके बडे बनाकर खाय ॥ १०० ॥

कलायान्वा निराहारस्तृषितः क्षीरपो भवेत् ॥ १०१ ॥

अथवा निराहार होनेपर केवल मटरको खाय और तृषा लगनेपर दूधको पीवे ॥ १०१ ॥

अन्नद्रवो दुश्चिकित्स्यो दुर्विज्ञेयो महागदः । तस्मात्तस्य प्रशमने परं यत्नं समाचरेत् ॥ १०२ ॥

वैद्यको उचित है कि अन्नद्रवशूल भयंकर, महारोग और दुश्चिकित्स्य है, इस कारण इसकी शांति करनेमें अच्छे प्रकारके यत्न करे ॥ १०२ ॥

अन्नद्रवे जरत्पित्ते वह्निर्मन्दो भवेद्यतः । तस्मादन्नानि पानानि दीपनीयानि कारयेत् ॥ १०३ ॥

अन्नद्रव और जरत्पित्तमें अग्नि मंद हो जाती है इस कारण इसमें सम्पूर्ण अन्नपान अग्निको दीपन करनेवाले सेवन करने चाहिएँ ॥ १०३ ॥

कलाययवगोधूमश्यामाकाः कोरदूषकाः। राजमाषाः स्थूलमाषाः कुलित्थाः कङ्गुशालयः॥ १०४॥ भोजनार्थे प्रशस्ताश्च पुराणाः सप्रियङ्गवः। दधिलुतरसं क्षीरं गव्यमाजं समाहिषम्। घृतं पुराणं शाकार्थे वास्तुको निम्बपल्लवाः॥ १०५॥ कर्कोटकारवेल्लानां पत्राणि च फलानि च। यानि कानि प्रयोज्यानि कासमर्दफलानि च॥ १०६॥ बर्हिणो हरिणा मत्स्या रोहिताः सकपिञ्जलाः। एतस्मिन्नामये शस्ता मता मुनिचिकित्सकैः॥ १०७॥

मटर, जौ, गेहूँ, समा, कोदों, लोबिया, बडा लोबिया, कुलथी, कंगुनी, शालिचावल और पुराने कंगुनीधान ये सब अन्नद्रवशूलमें भोजनके लिये प्रयोग करने चाहिएँ। दही मथा हुआ, दूध, गाय भैंसका घी, पुराना घी, बथुएका शाक, नीमके पत्तोंका शाक, ककोडे और करेलेके पत्तों व फलोंका शाक, तथा कसौंदीके फलोंका शाक, मोर और हिरनका माँस, रोहू मछली और तीतर ये सब अन्नद्रव शूलमें हितकारी हैं ऐसा प्राचीन मुनियोंने कहा है॥ १०४-१०७॥

गुडमंडूर।

गुडामलकपथ्यानां चूर्णं प्रत्येकशः पलम्। त्रिपलं लोहकिट्टस्य तत्सर्वं मधुसर्पिषा॥ १०८॥ समालोड्य ततः खादेदक्षमात्रं प्रमाणतः। आदिमध्यावसानेषु भोजनस्य निहन्ति तत्॥ १०९॥ अन्नद्रवं जरत्पित्तमम्लपित्तं सुदारुणम्। परिणामसमुत्थश्च शूलं संवत्सरोत्थितम्॥ ११०॥

गुड, आमले और हरड़ प्रत्येकका चूर्ण चार २ तोले और लोहेका मल १२ तोले लेवे, सबको एकत्र शहद और घीमें मिला कर प्रतिदिन एक तोला परिमाण खाय। इसको भोजनके आदि, भोजनके मध्य और भोजनके अन्तमें सेवन करना चाहिए। यह गुडमण्डूर-अन्नद्रवशूल, जरत्पित्त, दारुण अम्लपित्त और एक वर्षके पुराने परिणामशूलको दूर करता है॥ १०८॥ १०९॥ ११०॥

कलायचूर्णगुटिका।

कलायचूर्णं भागौ द्वौ लोहकिट्टस्य चापरः। कारवेल्लपलाशानां रसेनैव विमर्दयेत्॥ १११॥ कर्षमात्रां ततश्चैकां भक्षयेद्गुटिकां नरः। मण्डानुपानात्सा हन्ति जरत्पित्तं सुदुर्जयम्॥ ११२॥

मटरका चूर्ण २ भाग और लोहेका मल १ भाग दोनोंको एकत्र कर करेलेके पत्तोंके रसमें खरल करके एक २ तोलेकी गोलियाँ बना लेवे इन गोलियोंको मांडके अनुपानके साथ भक्षण करे तो दुःसाध्य जरत्पित्त शूल दूर होता है॥ १११॥ ११२॥

एरण्डसप्तकं पेयं हपुषाद्यं सदा हितम्। धान्वन्तरं सकौमारं घृतं रासायनश्च यत्॥ ११३॥

अन्नद्रवशूलमें एरण्डसप्तक, हपुषाद्यघृत, धान्वन्तरघृत, सौकुमारघृत तथा इसके सिवाय अन्यान्य रसायनघृत प्रयोग करने चाहिये॥ ११३॥

इति संक्षेपतः प्रोक्तमन्नद्रवचिकित्सितम्। अन्नद्रवेऽपि यत्प्रोक्तं जरत्पित्तेऽपि तद्धितम्॥ ११४॥

इस प्रकार संक्षेपसे यह अन्नद्रवशूलकी चिकित्सा कही है। अन्नद्रवशूलमें जो चिकित्सा कही है वह सब जरत्पित्तमें भी हितकारी है॥ ११४॥

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायां
परिणामशूलान्नद्रवजरत्पित्तनिदान-
चिकित्साधिकार समाप्त॥ २९॥

अथोदावर्त्तरोगाधिकार ।



तत्रादावुदावर्तनिदानमाह ।

वातविण्मूत्रजृम्भाश्रुक्षवोद्गारवमीन्द्रियैः । क्षुत्तृष्णाश्वासनिद्राणां धृत्योदावर्त्तसम्भवः ॥ १ ॥

वायु, मल, मूत्र, जम्भाई, आंसू, छींक, डकार, वमन, वीर्य्य, क्षुधा, तृषा, श्वास और निद्रा इनके वेगोंको रोकनेसे तेरह प्रकारका उदावर्त्त रोग उत्पन्न होता है ॥ १ ॥

वातमूत्रपुरीषाणां सङ्गाध्मानं क्लमो रुजः । जठरे वातजाश्चान्ये रोगाः स्युर्वातनिग्रहात् ॥ २ ॥

अधोवातरोधजनक उदावर्त्तरोगमें वायु, मूत्र और मलका अवरोध, आध्मान, ग्लानि, पीडा, तथा उदरमें वातजनित तोद शूलादि नानाप्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं ॥ २ ॥

आटोपशूलौ परिकर्त्तिका च सङ्गः पुरीषस्य तथोर्ध्ववातः । पुरीषमास्यादथवा निरेति पुरीषवेगेऽभिहते नरस्य ॥ ३ ॥

मलवेगरोधजनित उदावर्त्त रोगमें पेटमें गुड़ २ शब्द, गुदाद्वारमें कतरनीके समान पीडा, मलरोध और वायुकी ऊर्ध्वगति तथा कभी २ मुखके द्वारा मल निकलता है ॥ ३ ॥

बस्तिमेहनयोः शूलं मूत्रकृच्छ्रं शिरोरुजा । विनामो वङ्क्षणानाहः स्याल्लिङ्गं मूत्रनिग्रहे ॥ ४ ॥

मूत्रवेगरोधजनित उदावर्त्त रोगमें बस्ति और लिंगमें शूल, मूत्रकृच्छ्र और शिरमें पीडा तथा वंक्षण देशमें आनाहकी पीडासे शरीर नव जाता है ॥ ४ ॥

मन्यागलस्तम्भशिरोविकारा जृम्भोपघातात्पवनात्मकाः स्युः । तथाक्षिनासावदनामयाश्च भवन्ति तीव्राः सह कर्णरोगैः ॥ ५ ॥

जम्भाईके रोकनेसे जो उदावर्त्त रोग होता है उसमें मन्यास्तम्भ और गलस्तम्भ होता है तथा वातजन्य तीव्र शिरोरोग, नेत्ररोग, नासारोग, कर्णरोग और मुखरोग उत्पन्न होते हैं ॥ ५ ॥

आनन्दजं वाप्यथ शोकजं वा नेत्रोदकं प्राप्तममुञ्चतो हि । शिरोगुरुत्वं नयनामयाश्च भवन्ति तीव्राः सह पीनसेन ॥ ६ ॥

आनन्द अथवा शोकसे उत्पन्न हुए जो आंसू उनको रोकनेसे जो उदावर्त्त रोग उत्पन्न होता है उसमें शिरमें भारीपन, पीनसरोग और भयंकर नेत्ररोग उत्पन्न होते हैं ॥ ६ ॥

मन्यास्तम्भः शिरःशूलमर्दितार्धावभेदकौ । इन्द्रियाणाञ्च दौर्बल्यं क्षवथोः स्याद्विधारणात् ॥ ७ ॥

छींकके वेगको रोकनेसे जो उदावर्त्त रोग उत्पन्न होता है उसमें मन्यास्तम्भ, शिरःशूल, आर्दित, अर्द्धावभेदक और सम्पूर्ण इन्द्रियोंमें दुर्बलता उत्पन्न होती है ॥ ७ ॥

कण्ठास्यपूर्णत्वमतीव तोदः कूजश्च वायोरथवा प्रवृत्तिः । उद्गारवेगेऽभिहिते भवन्ति जन्तोर्विकाराः पवनप्रसूताः ॥ ८ ॥

उद्गार अर्थात् डकारको रोकनेसे जो उदावर्त्तरोग उत्पन्न होता है उसमें मुख और कण्ठ भरासा मालूम हो, सुई छेदने सरीखी पीड़ा हो, अव्यक्त भाषण और श्वासका अवरोध होता है तथा वातजनित हिक्कादि रोग उत्पन्न होते हैं ॥ ८ ॥

कण्डूकोठारुचिव्यङ्गशोफपाण्ड्वामयज्वराः । कुष्ठवीसर्पहृल्लासाश्छर्दिनिग्रहजा गदाः ॥ ९ ॥

वमनको रोकनेसे जो उदावर्त्त रोग उत्पन्न होता है उसमें खुजली, मण्डलके समान गोल २ चकत्ते पड़-

जाते हैं, शरीरमें खुजली, अरुचि, व्यंग, (झांई), पांडु, ज्वर, कुष्ठ, विसर्प और उबकाई आदि अनेक विकार होते हैं ॥ ९ ॥

मूत्राशये वै गुदमुष्कयोश्च शोथो रुजा मूत्रविनिग्रहश्च । शुक्राश्मरी तत्स्रवणं भवेच्च ते ते विकाराभिहतेऽतिशुक्रे ॥ १० ॥

वीर्य्यके वेगको रोकनेसे जो उदावर्त्त रोग उत्पन्न होता है उसमें मूत्राशय, मलद्वार और अंडकोशोंमें सूजन तथा पीडा होती है, मूत्ररोग, शुक्रजअश्मरी, वीर्य्यस्राव और वीर्य्यक्षरणके अनेक विकार होते हैं ॥ १० ॥

तन्द्राङ्गमर्दारुचिविभ्रमाश्च क्षुधाभिघातात्कृशता च दृष्टेः।

क्षुधाके वेगको धारण करनेसे जो उदावर्त्त रोग उत्पन्न होता है उसमें तन्द्रा, अंगोंका टूटना, अरुचि, श्रम, दृष्टिकी हीनता और कृशता होती है ॥

कण्ठास्यशोषः श्रवणावरोधस्तृष्णाभिघाताद्धृदयव्यथा च ॥ ११ ॥

तृषाके रोकनेसे जो उदावर्त्त रोग उत्पन्न होता है उसमें कंठ और मुखका सूखना, कानोंमें शब्दका नहीं सुनना और हृदयमें पीडा होती है ॥ ११ ॥

श्रान्तस्य निःश्वासविनिग्रहेण हृद्रोगमोहावथवापि गुल्मः।

जो थका हुआ मनुष्य श्वासके वेगको रोकता है तो उसके जो उदावर्त्त रोग उत्पन्न होता है उसमें हृदयरोग, मूर्च्छा और गुल्मरोग उत्पन्न होता है ॥

जृम्भाङ्गमर्दाक्षिशिरोऽतिजाड्यं निद्राभिघातादथवापि तन्द्रा ॥ १२ ॥

निद्राके वेगको रोकनेसे जो उदावर्त्त रोग उत्पन्न होता है उसमें जम्भाई, अँगोंका टूटना, नेत्र और मस्तकमें जडता तथा तन्द्रा होती है ॥ १२ ॥

असाध्यलक्षण।

तृष्णार्दितं परिक्लिन्नं क्षीणं शूलैरुपद्रुतम् । शकृद्वमन्तं मतिमानुदावर्त्तिनमुत्सृजेत् ॥ १३ ॥

तृषासे पीडित, क्लेशयुक्त, क्षीण, शूलसे दुःखित और जो मलकी वमन करे ऐसे उदावर्त्तरोगीकी वैद्य चिकित्सा नहीं करे ॥ १३ ॥

अथ चिकित्सा।

सर्वेष्वेतेषु विधिवदुदावर्त्तेषु कृत्स्नशः। वायोः क्रिया विधातव्या स्वमार्गप्रतिपत्तये ॥ १४ ॥

इन सब उदावर्त्तोंमें वायु ही मुख्य कारण है, इसलिये प्रथम वातको ही अपने मार्गमें लानेके लिये यत्न करना चाहिए ॥ १४ ॥

पुरीषजे तु कर्त्तव्यो विधिरानाहिकश्च यः। क्षारवैतरणो बस्ती युञ्ज्यादत्र चिकित्सकः ॥ १५ ॥ सौवर्चलाढ्यां मदिरां मूत्रे त्वभिहते पिबेत् । एलां वाप्यथ मद्येन क्षीरं वारि तथा पिबेत् ॥ १६ ॥

पुरीषजनित उदावर्त्त रोगमें आनाहके समान चिकित्सा करनी चाहिए। तथा क्षार और वैतरणरूप वस्ति प्रयोग करे। मूत्रजनित उदावर्त्तरोगमें काले नमकको मदिरामें डालकर पीवे। इलायचीको मदिराके साथ अथवा दूधके साथ किंवा जलके साथ पान करनेसे मूत्रवेगरोधजनित उदावर्त्त रोग शान्त होता है ॥ १५ ॥ १६ ॥

दुस्पर्शास्वरसं वापि कषायककुभस्य च । एर्वारुबीजं तोयेन पिबेद्वा लवणीकृतम् ॥ १७ ॥

जवासेके काथ या अर्जुनकी छालके काथको पीनेसे मूत्रजनित उदावर्त्तरोग शांत होता है। ककड़ीके बीजोंको जलमें पीसकर नमक डालकर सेवन करनेसे मूत्रवेगरोधजनित उदावर्त्तरोग शान्त होता है ॥ १७ ॥

शर्करेक्षुरसं क्षीरं द्राक्षारसमथापि वा। सर्वत्रैव प्रयुञ्जीत मूत्रकृच्छ्राश्मरीविधिम् ॥ १८ ॥

मिश्री, ईखका रस, दूध अथवा दाखका रस इन सबको उदावर्त्त रोगमें सेवन करना चाहिए। इस उदावर्त्त रोगमें सम्पूर्ण मूत्रकृच्छ्र और अश्मरीरोगोक्त विधि करनी चाहिए ॥ १८ ॥

स्नेहस्वेदैरुदावर्त्तं जृम्भजं समुपाचरेत् । अश्रुमोक्षोऽश्रुजे कार्य्यः स्निग्धस्विन्नस्य देहिनः ॥ १९ ॥

जम्भाईके रोकनेसे उत्पन्न हुए उदावर्त्तको स्नेह और स्वेदके द्वारा दूर करना चाहिए । आँसुओंके रोकनेसे उत्पन्न हुए उदावर्त्तको प्रथम स्निग्ध और स्वेदित करके आंसू निकलवावे ॥ १९ ॥

क्षवजे क्षवपत्रेण घ्राणस्थेनानयेत्क्षवम् । तथोर्ध्वजत्रुकेऽभ्यङ्गः स्वेदो धूमः समाहृतः ॥ २० ॥

छींकके रोकनेसे उत्पन्न हुए उदावर्त्तमें नकछिकनीके पत्तोंको नासिकाके द्वारा सूंघकर छींक लेवे तथा गरदनके ऊपर मालिश करावे, स्वेद निकलवावे और धूम्रपान करावे ॥ २० ॥

उद्गारजे क्रमोपेतं स्नैहिकं धूममाचरेत् । वम्याघातं यथादोषं सम्यक्स्नेहादिभिर्जयेत् ॥ २१॥ सक्षारलवणोपेतमभ्यङ्गं वाऽत्र दापयेत् । बस्तिशुद्धिकरं सिद्धं चतुर्गुणजलं पयः ॥ २२ ॥ आवारिनाशात्कथितं पीतवन्तं प्रकामतः । रमयेयुः प्रिया नार्य्यः शुक्रोदावर्त्तिनं परम् ॥ २३ ॥

डकारके रोकनेसे उत्पन्न हुए उदावर्त्तमें स्नेहयुक्त धूम्रपान करे अर्थात् स्निग्ध पदार्थोंको अग्निपर डालकर उनका धुआँ पीवे । वमनके रोकनेसे उत्पन्न हुए उदावर्त्तमें यथादोषानुसार अच्छे प्रकारसे स्नेहादि कर्म करे । तथा जवाखार और सैंधानमक इनको एकत्र पीसकर तेलमें डालकर इनकी मालिश करे । वीर्य्यके वेगको रोकनेसे उत्पन्न हुए उदावर्त्तमें दूधमें चौगुना पानी डालकर तथा मूत्राशयको शुद्ध करनेवाले पदार्थ डालकर पकावे । जब सब जल जलजाय केवल दूध बाकी रहजाय तब मिश्री डालकर पीवे और अपनी प्यारी स्त्रीसे सम्भोग करे ॥२१॥ २२ ॥२३॥

अत्राभ्यङ्गावगाहश्च मदिराश्चरणायुधाः । शाली पयो निरूहाश्च हितं मैथुनमेव च ॥ २४ ॥

इस उदावर्त्तमें अभ्यंग, अवगाहन, मद्यपान, मुरगेका मांस, शालिचावल, दूध, निरूहबस्ति और मैथुन-ये सब हितकारी हैं ॥ २४ ॥

क्षुद्विघाते हितं स्निग्धमुष्णमल्पञ्च भोजनम् । तृष्णाघाते पिबेन्मन्थं यवागूं वा सुशीतलाम् ॥ २५ ॥ रसेनाद्यात्तु विश्रान्तः श्रमश्वासातुरो नरः । निद्राघाते पिबेत्क्षीरं सुप्याच्चेष्टकथारतः ॥ २६ ॥

क्षुधाके वेगको रोकनेसे जो उदावर्त्त रोग उत्पन्न होता है उसमें स्निग्ध और उष्ण ऐसा अल्प भोजन करे । तृषाके रोकनेसे उत्पन्न उदावर्त्तमें मंथ और शीतल यवागू पान करे । विशेष परिश्रम करनेसे जो श्वास होता है उस श्वासको रोकनेसे उत्पन्न उदावर्त्तमें आनन्दपूर्वक विश्राम करे और मांसरसके साथ भोजन करे । निद्राके वेगको रोकनेसे उत्पन्न उदावर्त्तमें दूधको पीवे, आनन्दपूर्वक उत्तम शय्यापर शयन करे और उत्तम उत्तम हर्षोत्पादक कथा सुने ॥२५ ॥ २६ ॥

अन्यत् उदावर्तभेदनिदान ।

वायुः कोष्ठानुगो रूक्षैः कषायकटुतिक्तकैः । भोजनैः कुपितः सद्य उदावर्त्तं करोति च ॥ २७ ॥ वातमूत्रपुरीषाश्रुकफमेदोवहानि च । स्रोतांस्युदावर्त्तयति पुरीषं चापि वर्त्तयेत् ॥ २८ ॥ ततो हृद्बस्तिशूलार्त्तो हृल्लासारतिपीडितः । वातमूत्रपुरीषाणि कृच्छ्रेण लभते नरः ॥ २९ ॥ श्वासकासप्रतिश्यायदाहमोहतृषाज्वरान् । वमिहिक्काशिरोरोगमनःश्रवणविभ्रमान् ॥ बहूनन्यांश्च लभते विकारान्वातकोपजान् ॥ ३० ॥

१ वीर्य्यके उदावर्त्तके लक्षण नहीं कहे और चिकित्सा कही है, किसीका ऐसा मत है कि वेगोंको न रोके परन्तु काम आदि पांच वेगोंको रोके । वीर्यके रोकनेसे ही पूर्व कालमें ऊर्ध्वरेतस कहलाते थे क्यों कि वीर्य रहनेसे ही मनुष्य बलवान् होता है ।

रूखे, कषैले, तीक्ष्ण और कडवे भोजनोंसे कुपित हुई कोठेमें रहनेवाली वायु तत्काल उदावर्तरोगको उत्पन्न करती है। कुपित हुई वात, अधोवायु, मूत्र, विष्ठा, आँसू, कफ और मेदाको वहानेवाली नाडियोंके मार्गको रोककर मलको स्तम्भित करती है तब हृदय तथा बस्तिशूल, हल्लास अरति इनके पीडित होनेसे मनुष्यको अधोवायु, मूत्र और विष्ठा थोडे २ कठिनतासे उतरते हैं तथा श्वास, खाँसी, प्रतिश्याय, दाह, मोह, तृषा, ज्वर, वमन, हिचकी, शिरमें पीडा, मनमें भ्रम, श्रवणमें भ्रम तथा और भी बहुतसे वातके विकार उत्पन्न होते हैं ॥ २७-३० ॥

तच्चिकित्सा।

उदावर्त्तिनमभ्यक्तं स्विन्नगात्रमुपाचरेत् । वर्त्तिकास्थापनस्वेदवस्तिरेचनकर्म्मभिः ॥ ३१ ॥

प्रथम उदावर्त्तरोगीको घृतादिसे अभ्यक्त करके स्वेदित करे। फिर वर्त्तिप्रयोग, आस्थापनवस्ति, स्वेद, बस्तिकर्म्म और विरेचन कर्म करे ॥ ३१ ॥

त्रिवृत्सुधापत्रतिलादिशाकग्राम्यौदकानूपरसैर्यवान्नम् । अन्यैश्च सृष्टानिलमूत्रविड्भिरद्यात्प्रसन्नागुडसीधुपायी ॥ ३२ ॥

निसोत, थूहरके पत्ते, तिलादि शाक, तथा ग्राम्य जलचर और अनूपदेशके जीवोंके मांसका रस, यवान्न सुरामंड और गुडसे बनाई हुई सीधुनामवाली मदिरा तथा अन्यान्य-वायु-मल और मूत्र निःसारक द्रव्य उदावर्त्त रोगमें सेवन करने चाहिएँ ॥ ३२ ॥

क्षारचित्रकहिंग्वम्लवेतसैर्भेदनैर्मता । यवागूः साधिता वापि तत्रारग्वधपल्लवैः ॥ ३३ ॥

जवाखार, चीता, हींग और अमलवेंत-इनको एकत्र मिलाकर सेवन करनेसे उदावर्त्तरोग दूर होता है। अथवा उपर्य्युक्त औषधियोंके द्वारा अमलतासके पत्तोंके रसमें यवागू बनावे। इसको सेवन करनेसे उदावर्त्त रोग दूर होता है ॥ ३३ ॥

श्यामादि।

श्यामादन्ती द्रवन्ती स्नुक् महाश्यामाऽमृता त्रिवृत । सप्तलाशंखिनीश्वेता राजवृक्षः सतिल्वकः ॥ काम्पिल्लकं करञ्जश्च हेमक्षीरीत्ययं गणः ॥ ॥ ३४ ॥ सर्पिस्तैलरजः क्वाथकल्केष्वन्यतमेषु च । उदावर्त्तोदरानाहविषगुल्मविनाशनः ॥ ३५ ॥

छोटीपीपल दंती, द्रवंती (छोटीदन्ती), बडी थूहर पीपल, गिलोय, निसोत, सातला, शंखाहुली, सफेदफूलकी कटेरी, अमलतास, लोध, कवीला, करंजुआ और सत्यानासी कटेरी (चोक) इन सब औषधियोंके क्वाथ और कल्कके द्वारा घृत अथवा तेलको पकाकर सेवन करनेसे वा उपर्य्युक्त औषधियोंका क्वाथ बनाकर सेवन करनेसे या केवल चूर्ण बनाकर सेवन करनेसे-उदावर्त्त, उदररोग, आनाह, विषविकार और गुल्म नष्ट होता है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

वल्मीकमृत्तिकामूलं करञ्जस्य फलत्वचम् । पिष्ट्वा मूत्रेण सिद्धार्थमुदावर्त्तप्रलेपनम् ॥ ३६ ॥

वाँवीकी मट्टी, करंजकी जड और करंजके फलकी छाल इनको एकत्र गोमूत्रमें पीसकर गरम करके लेप करनेसे उदावर्त्तरोग शमन होता है ॥ ३६ ॥

हरीतकीयवक्षारपीलूनि त्रिवृता तथा । घृतैश्चूर्णमिदं पेयमुदावर्त्तविनाशनम् ॥ ३७ ॥

हरड, जवाखार, पीलू और निसोत इनका चूर्ण करके घृतमें मिलाकर सेवन करनेसे उदावर्त्तरोग शमन होता है ॥ ३७ ॥

हिंगुकुष्ठवचास्वर्जि विडञ्चेति द्विरुत्तरम् । मद्येन चाथ पिप्पल्या मूलकानां रसेन वा । भुक्त्वा स्निग्धमुदावर्त्ताद्वातगुल्माद्विमुच्यते ॥ ३८ ॥

हींग, २ भाग, कूठ ४ भाग, वच ८ भाग, सज्जी १६ भाग और विड़नमक ३२ भाग लेवै। सबको

एकत्र पीसकर चूर्ण बना लेवे । इस चूर्णको मदिराके साथ अथवा पीपलामूलके क्राथके साथ पान करे और इसपर स्निग्ध भोजन करे तो इससे उदावर्त्त और वातगुल्म नष्ट होता है ॥ ३८ ॥

हिंगुमाक्षिकसिन्धूत्थैः पक्त्वा वर्त्तिं सुनिर्मिताम् । घृताभ्यक्तां गुदे दद्या- दुदावर्त्तविनाशिनीम् ॥ ३९ ॥

हींग, शहद और सैंधानमक इनको एकत्र मिलाकर खरल करके बत्ती बनावे । इस बत्तीको घीमें सानकर गुदामें चढावे तो उदावर्त्तरोग दूर होता है ॥ ३९ ॥

फलवर्ति ।

मदनं पिप्पलीकुष्ठं वचा गौराश्च सर्षपाः । गुडक्षीरसमायुक्ता फलवर्तिः प्रशस्यते ॥ ४० ॥

मैनफल, पीपल, कूठ, वच और सफेद सरसों- इनको एकत्र पीसकर गुड़ और दूधमें मिलाकर बत्ती बनावे । इन बत्तियोंको गुदामें चढानेसे उदावर्त्तरोग शमन होता है ॥ ४० ॥

आगारधूमसिन्धूत्थतैलयुक्ताम्लमूलकम् । क्षुण्णं निर्गुण्डिपत्रं वा स्विन्नं पायौ क्षिपेद्बुधः ॥ ४१ ॥

घरका धुआँ, सैंधानमक, काँजी और तेल इन सबको एकत्र पीसकर अथवा निर्गुण्डीके पत्तोंको उसीजकर उनका रस निचोडकर गुदामें डालनेसे उदावर्त्तरोग शमन होता है ॥ ४१ ॥

नारायणचूर्ण ।

खंडं पलं त्रिवृतासममुपकुल्या कर्षचूर्णितं सूक्ष्मम् । प्राग्भोजने समधुविडालपदकं लिहेत्प्राज्ञः ॥ ४२ ॥ एतद्गाढपुरीषे पित्तकफार्ते च विनियोज्यम् । स्वादुर्नृपयोग्योऽयं चूर्णो नारायणो नाम्ना ॥ ४३ ॥

उत्तम खाँड ४ तोले, निसोतका चूर्ण १ तोला और पीपलका चूर्ण १ तोला-इन सबको एकत्र पीसकर शहदमें मिलाकर भोजनसे पहले एक तोला परिमाण खाय । इससे मलका बँधजाना और पित्त कफकी पीडा तथा उदावर्त्त दूर होता है। यह नारायण चूर्ण स्वादिष्ठ है इसकारण राजाओंके योग्य है ॥ ४२-४३ ॥

गुडाष्टक ।

सव्योषं पिप्पलीमूलं त्रिवृद्दन्ती सचित्रकम् । तच्चूर्णं गुडसंमिश्रं भक्षयेत्कल्पमुत्थितः ॥ ४४ ॥ एतद्गुडाष्टकं नाम बलवर्णाग्निवर्द्धनम् । शोथोदावर्तगुल्मघ्नं प्लीहपांड्वामयापहम् ४५

सोंठ, मिरच, पीपल, पीपलामूल, निसोत, दंती और चीता इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण बनावे और सब चूर्णके बराबर गुड मिलाकर प्रातःकाल भक्षण करे । यह गुडाष्टक-बल, वर्ण और जठराग्निको बढानेवाला है । तथा सूजन, उदावर्त, गुल्म, प्लीहा और पाण्डुरोगको दूर करनेवाला है४४॥४५॥

मूलकाद्यघृत ।

मूलकं शुष्कमार्द्रश्च वर्षाभू पञ्चमूलकम् । आरेवतफलश्चांशु पक्त्वा तेन घृतं पचेत् ॥ तत्पीयमानं शमये- दुदावर्तमसंशयम ॥ ४६ ॥

गौका घी १ सेर, जल ४ सेर, तथा कल्कके लिए सूखी मूली, अदरख, पुनर्नवा, स्वल्पपंचमूल और अमलतासका गूदा प्रत्येक दो दो तोले लेवे । सबको एकत्र मिलाकर यथाविधिसे घृतको सिद्ध करे । इस घृतको पान करनेसे उदावर्तरोग दूर होता है॥४७ ॥

स्थिराद्यघृत ।

स्थिरादिवर्गस्य पुनर्नवायाः शम्याकपूतीककरंजयोश्च । सिद्धः कषाये द्विपलांशिकानां प्रस्थो घृतात्स्यात्प्रतिबद्धवाते ॥ ४७ ॥

गौका घी २ सेर, जल ८ सेर और क्राथके लिए स्थिरादि वर्गकी औषधियाँ, पुनर्नवा, अमलतास, दुर्गन्धकरंज और करंज-प्रत्येक आठ आठ तोले और

पाकके लिए जल ३२ सेर, शेष ८ सेर रक्खे। यथाविधिसे घृतको सिद्ध करे । यह घृत-वायुकी वृद्धताको दूर करता है ॥ ४७ ॥

यन्महावज्रकं सर्पिर्गुल्मिनां विहितं च यत् । उदरिणामशेषेण तदुदावर्त्तिने हितम् ॥ ४८ ॥ उदावर्त्तोदरगदे पक्वं सर्पिर्यदीरितम् । एतद्द्वित्रिचतुर्मासान्दद्यादुष्णांबुना भिषक् ॥४९॥

गुल्मरोगमें जो महावज्रघृत कहा है उसको सर्व प्रकारके उदररोग और विशेष करके उदावर्त्त रोगमें प्रयोग करना चाहिये । उदररोगमें जो घृत कहे हैं वे सब दो या तीन अथवा चार माशे प्रमाण गरम जलके साथ उदावर्त्तरोगमें प्रयोग करना चाहिये ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

वाट्यक्षीररसैः सेव्यं यच्च वातानुलोमनम् । वातघ्नैर्लवणाद्यैश्च रसाद्यैरन्नमाचरेत् ॥ ५० ॥

जौका मांड, दूध, मांसरस इत्यादि जो पदार्थ वातको अनुलोमन करनेवाले हैं वे सब तथा वातनाशक पदार्थ, लवण मिले पदार्थ और मांसरसयुक्त अन्न ये सब उदावर्त्त रोगमें प्रयोग करने चाहिएँ ॥ ५० ॥

इति श्रीवङ्गसेने भाषाटीकायां उदावर्त्तनिदानचिकित्साधिकार समाप्त ॥ ३० ॥

अथानाहरोगाधिकार ।

निदान ।

आमं शकृद्वा निचितं क्रमेण भूयो विबद्धं विगुणानिलेन । प्रवर्त्तमानं न यथास्वमेनं विकारमानाहमुदाहरन्ति ॥ १ ॥

जिसमें आम या विष्ठा क्रमसे संचित हो, दुष्ट वायुसे बँधकर अथवा सूखकर अपने मार्गसे नहीं निकले तो उसको वैद्य आनाहरोग कहते हैं ॥ १ ॥

तस्मिन्भवत्यामसमुद्भवे च तृष्णाप्रतिश्यायशिरोविदाहः । आमाशये शूलमथो गुरुत्वं हृत्स्तम्भमुद्गारविघातनञ्च ॥ २ ॥

आमसे उत्पन्न हुए आनाहरोगमें तृषा, प्रतिश्याय, मस्तकमें जलन, आमाशयमें शूल, शरीरमें भारीपन, हृदयका जकड़ना और डकारका न आना ये सब लक्षण होते हैं ॥ २ ॥

स्तम्भः कटिपृष्ठपुरीषमूत्रे शूलोऽथ मूर्च्छा शकृतश्च छर्दिः । श्वासश्च पक्वाशयजे भवन्ति तथालसोक्तानि च लक्षणानि ॥ ३ ॥

जो मलके संचयसे आनाह हुआ हो तो कमर, पीठ, मल, मूत्र इनका अवरोध, शूल, मूर्च्छा, विष्ठामिली हुई वमन, श्वास और अलसक रोगमें जो लक्षण कह आये हैं ये सब पक्वाशयसे उत्पन्न आनाह रोगमें होते हैं । अफारा तथा वायुका विघात इत्यादि लक्षण होते हैं ॥ ३ ॥

असाध्यलक्षण ।

तृष्णार्दितं परिक्लिन्नं क्षीणं शूलैरुपद्रुतम् । शकृद्वमन्तमतिमानुदावर्त्तिनमुत्सृजेत् ॥ ४ ॥

तृषासे पीडित, क्लेशयुक्त, क्षीण, शूलसे दुःखित और जो मलकी वमन करे ऐसे उदावर्त्तरोगीकी वैद्य चिकित्सा नहीं करे ॥ ४ ॥

आनाहरोगकी चिकित्सा ।

आमोद्भवे वातमुपक्रमेत संसर्गभक्तक्रमदीपनीयैः । विषूचिकायामभिकीर्त्तितानि द्रव्याणि वैरेचनिकानि चापि ॥ ५ ॥

आमजनित आनाहरोगमें वातके उपक्रमसे चिकित्सा करे तथा भोजनके साथ दीपन पदार्थोंको सेवन करावे और विषूचिकारोगमें जो औषधि कही हैं तथा जो औषधि विरेचन करनेवाली हैं वे सब इसमें प्रयोग करनी चाहिएँ ॥ ५ ॥

त्रिवृताद्यावटिका।

त्रिवृद्धरीतकीश्यामा स्नुहीक्षीरेण पेषयेत् । वटिकामूत्रपीतास्ताः श्रेष्ठाश्चानाहभेदिकाः ॥ ६ ॥

निसोत, हरड और पीपल इनको थूहरके दूधमें पीसकर गोलियां बना लेवे। इन गोलियोंको गोमूत्रके साथ पान करनेसे आनाहरोग दूर होता है ॥ ६ ॥

फलवर्त्ति।

मदनं पिप्पलीकुष्ठं वचा गौराश्च सर्षपाः। गुडक्षीरसमायुक्ताः फलवर्त्तिः प्रशस्यते ॥ ७ ॥ आनाहं च गुदे शूलं कुक्षिशूलकमेव च। तस्य वातमुदावर्तं योगेनानेन शाम्यति ॥ ८ ॥

मैनफल, पीपल, कूठ, वच और सफेद सरसों इनको एकत्र पीसकर गुड और दूधमें मिलाकर बत्ती बनावे। इस बत्तीको गुदामें प्रवेश करनेसे आनाह रोग, गुदाशूल, कुक्षिशूल और उदावर्तरोग शमन होता है ॥ ७ ॥ ८ ॥

रामठाद्यावर्त्ति।

रामठधूमविड्व्योषगुडमूत्रविपाचिता । गुदेऽगुष्ठसमा वर्त्तिर्विधेयानाहशूलनुत् ॥ ९ ॥

हींग, घरका धुँआसा, विडनमक और सोंठ, मिर्च, पीपल, गुड इनको एकत्र गोमूत्रमें पकाकर अंगूठेकी समान बडी बनावे। इसको गुदामें चढानेसे आनाह और शूलरोग दूर होता है ॥९॥

त्रिवृताद्यागुटी।

त्रिवृत्कृष्णाहरीतक्यो द्विचतुष्पञ्चभागिकाः। गुटिका गुडतुल्यास्तु विड्विबन्धगदापहाः ॥ १० ॥

निसोत २ भाग, पीपल ४ भाग और हरड ५ भाग लेवें और सबकी बराबर गुड लेवें। इन सबको एकत्र मिलाकर गोली बनावे। यह गोली-मलविबन्धरोगको दूर करती है ॥ १० ॥

त्रिकुटाद्यावर्त्ति।

वर्त्तिस्त्रिकटुकसैन्धवसर्षपग्रहधूमकुष्ठमदनफलैः । मधुनि गुडे वा पक्के विदधीताङ्गुष्ठपरिमाणा ॥ ११ ॥ वर्त्तिरियं दृष्टफला शनैः प्रणिहिता गुदे घृताभ्यक्ता । आनाहोदावर्त्तशमनी जठरगुल्मनिवारणी ॥ १२ ॥

त्रिकुटा, सैंधानमक, सरसों, घरका धुँआसा, मैनफल और कूठ इन सबको एकत्र पीसकर शहत अथवा गुडमें पकाकर अँगूठेकी बराबर बत्ती बनावे। इनको घीमें चुपडकर गुदामें चढावे। यह बत्ती आनाह, उदावर्त, उदररोग और गुल्मको दूर करती है ॥ ११ ॥ ॥ १२ ॥

द्विरुत्तराहिंग्वादिचूर्ण।

द्विरुत्तराहिंगुवचा सकुष्ठं सुवर्चिका चैव विडङ्गचूर्णम् । सुखाम्बुनानाहविषूचिकार्त्तिहृद्रोगगुल्मोर्ध्वसमीरणेषु ॥ १३ ॥

हींग १ भाग, वच ३ भाग, कूठ ५ भाग, सज्जी ७ भाग और वायविडंग ९ भाग लेवे। इन सबको एकत्र पीसकर मंदोष्णजलके साथ पान करनेसे विषूचिकारोग, हृदयरोग, गुल्म और ऊर्ध्ववातरोग दूर होते हैं ॥ १३ ॥

हिंग्वाद्यचूर्ण।

हिंगूग्रगन्धाविडशुण्ठ्यजाजीहरीतकीपुष्करमूलकुष्ठम् । यथोत्तरं भागविवृद्धमेतत्प्लीहोदरानाहविषूचिकासु ॥ १४ ॥

हींग १ भाग, वच २ भाग, विडनमक ३ भाग, सोंठ ४ भाग, जीरा ५ भाग, हरड ६ भाग, पोहकरमूल ७ भाग और कूठ ८ भाग लेवे। सबको एकत्र पीसकर चूर्ण कर लेवे। इस चूर्णको सेवन करनेसे प्लीहा, उदररोग, आनाह और विषूचिकारोग शमन होता है ॥ १४ ॥

वचाद्यचूर्ण।

वचाभयाचित्रकयावशूकान्सापिप्पलीकातिविषान्सकुष्ठान्। उष्णाम्बुनानाहविमूढवातान्पीत्वा जयेदाशु रसौदनाशी॥ १५॥

वच,हरड,चीता, जवाखार, पीपल, अतीस और कूठ,सबको एकत्र पीसकर चूर्ण बनावे। इस चूर्णको मंदोष्णजलके साथ सेवन करे और इसपर मांसरसके साथ भात खाय तो यह–आनाह और मूढवातको दूर करता है॥ १५॥

आनाहेऽपि प्रयुञ्जीत उदावर्त्तहरीं क्रियाम्॥

उदावर्त्तरोगमें जो चिकित्सा कही है वह आनाह रोगमें भी प्रयोग करनी चाहिए।

इति श्रीवङ्गसेने भाषाटीकायाम्
आनाहनिदानचिकित्सा-
धिकार समाप्त॥ ३१॥

अथ गुल्मरोगाधिकार।



दुष्टा वातादयोऽत्यर्थं मिथ्याहारविहारतः। कुर्वन्ति पञ्चधा गुल्मं कोष्ठान्तर्ग्रन्थिरूपिणम्॥१॥ तस्य पञ्चविधं स्थानं पार्श्वहृद्वस्तिनाभयः॥ २॥

मिथ्या आहार और मिथ्या बिहार इन कारणोंसे वातादि दोष दूषित होकर कोठमें पांचप्रकारका ग्रन्थिरूप गुल्मरोग उत्पन्न करते हैं। दोनों पसली, हृदय, नाभि और वस्ति इन स्थानोंमें गुल्मरोग उत्पन्न होता है॥ १॥ २॥

गुल्मका सामान्यरूप।

हृद्वस्त्योरन्तरे ग्रन्थिः सञ्चारी यदि वाऽचलः। वृत्तश्चयोपचयवान्स गुल्म इति कीर्त्तितः॥ ३॥

हृदय और वस्ति इनके बीचमें जो स्थिर या चलायमान, गोल, कभी घटे कभी बढे ऐसी ग्रन्थि हो तो उसको गुल्म कहते हैं॥ ३॥

गुल्मकी संप्राप्ति।

सव्यस्तैर्जायते दोषैः समस्तैरपि चोच्छ्रितैः। पुरुषाणां तथा स्त्रीणां ज्ञेयो रक्तेन चापरः॥ ४॥

कुपित हुए पृथक् २ वातादि दोषोंसे तीनप्रकारका और एक सन्निपातका ऐसे सब मिलाकर पुरुष और स्त्रियोंके गुल्मरोग चार प्रकारका होता है। परन्तु स्त्रियोंके रक्तसे उत्पन्न होनेवाला एक पांचवां गुल्म और होता है। क्षीरपाणिके मतसे द्वन्द्वज गुल्म भी होता है, रक्तगुल्म स्त्रियोंकेही होता है, पुरुषोंके नहीं होता परन्तु धातुरूप रक्तजगुल्म स्त्री और पुरुष दोनोंके होता है॥ ४॥

गुल्मका पूर्वरूप।

उद्गारबाहुल्यपुरीषबन्धतृप्त्यक्षमत्वान्त्रविकूजनानि। आटोपमाध्मानमपाकशक्तिरासन्नगुल्मस्य वदन्ति चिह्नम्॥ ५॥

डकारका अधिक आना, मलरोध, अन्नमें अरुचि, सामर्थ्यका नाश, आँतोंका कूँजना, पेटमें गुडगुड शब्द होना, अफारा, पेटका जकडना और मन्दाग्नि ये लक्षण हों तो समझना चाहिए कि गुल्मरोग उत्पन्न होगा॥ ५॥

गुल्मके साधारण लक्षण।

अरुचिः कृच्छ्रविण्मूत्रं वातश्चान्त्रविकूजनम्। आनाहश्चोर्ध्ववातत्वं सर्वगुल्मेषु लक्षणम्॥ ६॥

अरुचि, मल और मूत्रका कष्टसे उतरना, वातसे आँतोंका कूँजना, पेटका मल बँध जाना और वायुकी ऊर्ध्वगति ये लक्षण साधारणतः सर्वप्रकारके गुल्मरोगोंमें होते हैं॥ ६॥

गुल्मके कारण और लक्षण।

रूक्षान्नपानं विषमातिमात्रं विचेष्टनं वेगविनिग्रहश्च। शोकाभिघातोऽतिमलक्षयश्च निरन्नता चानिलगु-

ल्महेतुः ॥ ७ ॥ यत्स्थानसंस्थानरुजाविकल्पं विड्वातसंगं गलवक्त्रशोषम् । श्यावारुणत्वं शिशिरज्वरश्च हृत्कुक्षिपार्श्वांसशिरोरुजश्च ॥ ८ ॥ करोति जीर्णेऽत्यधिकं प्रकोपं भुक्ते मृदुत्वं समुपैति यश्च । वातात्सगुल्मो न च तत्र रूक्षं कषायतिक्तं कटु चोपशेते ॥ ९ ॥

रूक्षअन्न, रूक्षपान, विषम और अधिक प्रमाणमें भोजन विरुद्ध चेष्टा, मलमूत्रादिके वेगोंका रोध, शोक, अभिघात, विरेचनादिसे मलका क्षय और उपवास ये सब वातगुल्मके कारण हैं । जो गुल्म कभी हृदय, कभी कुक्षि, कभी पार्श्व, कभी कंधा और कभी बस्तिमें चला जाय तथा कभी लम्बा, कभी गोल, कभी मोटा, कभी छोटा होजाय तथा उसमें कभी बहुत पीडा, कभी थोडी पीडा हो, कभी सुई चुभोने सरखी, कभी कतरनेकेसी, मल और अधोवायुका अवरोध हो, कण्ठ और मुख सुखजाय, शरीरका रंग नीला अथवा लाल हो जाय, शीत लगकर ज्वर आ जाय, हृदय, कोख, पसली, कन्धा और मस्तकमें पीडा हो, भोजनके जीर्ण होनेपर अधिक पीडा हो और भोजन करनेके पश्चात् नरम होजाय ये वातगुल्मके लक्षण हैं । इसमें रूखे, कषैले, कडवे और चरपरे पदार्थोंको सेवन करानेसे रोगीको सुख नहीं होता है ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥

वातगुल्मकी चिकित्सा ।

प्रागेव वातिके गुल्मे सुस्निग्धं स्वेदितं नरम् । रेचितं स्नेहरेकैश्च निरूहैः सानुवासनैः ॥ उपाचरेद्भिषक्प्राज्ञो मात्राकालविवेकतः ॥ १० ॥

वातगुल्मरोगीको प्रथम घृतादिकसे स्निग्ध करके पसीने निकलवावे तथा स्निग्धविरेचन, निरूहबस्ति और अनुवासनबस्ति देकर फिर समय मात्राको विचारकर औषधि प्रयोग करे ॥ १० ॥

मातुलुङ्गरसो हिंगु दाडिमं विडसैन्धवम् । सुरामण्डेन दातव्यं वातगुल्मरुजापहम् ॥ ११ ॥

बिजौरेनींबूका रस, हींग, अनार, बिडनमक और सैंधानोन इनको एकत्र पीसकर मदिराके मांडके साथ पान करानेसे वातगुल्मरोग दूर होता है ॥ ११ ॥

नागरार्द्धपलं पिष्टं द्वे पले चित्रकस्य च । तिलस्यैकं गुडपलं क्षीरेणोष्णेन पाययेत् । वातगुल्ममुदावर्त्तं योनिशूलञ्च नाशयेत् ॥ १२ ॥

सोंठ २ तोले, चीता ८ तोले, तिल ४ तोले और गुड ४ तोले सबको एकत्र पीसकर मन्दोष्णदूधके साथ पान करावे । यह-वातगुल्म उदावर्त्त और योनिशूलको नष्ट करता है ॥ १२ ॥

हिंगुपञ्चक ।

हिंगुसौवर्चलं शुण्ठी दाडिमं साम्लवेतसम् । श्वासहृद्रोगशमनमिदं स्याद्धिंगुपञ्चकम् ॥ १३ ॥

हींग, कालानमक, सोंठ, अनार और अमलवेंत इन सबको एकत्र पीसकर सेवन करनेसे-श्वास, हृदयरोग, विशेषकरके गुल्मरोग दूर होताहै ॥ १३ ॥

स्वर्जिका कुष्ठसहिता क्षारः केतकिजोऽपि वा । पीतस्तैलेन शमयेद्गुल्मं पवनसम्भवम् ॥ १४ ॥

सज्जी, कूठ और केतकीका खार इनको एकत्र पीसकर तेलके साथ पान करनेसे वातजनित गुल्म शमन होता है ॥ १४ ॥

पिबेदैरण्डतैलं वा वारुणीमण्डमिश्रितम् । तदेव तैलं पयसा वातगुल्मी पिबेन्नरः ॥ १५ ॥

अथवा अण्डीके तेलमें मदिराका मण्ड डालकर पान करनेसे वा अण्डीके तेलमें दूध डालकर सेवन करनेसे वातगुल्म शमन होता है ॥ १५ ॥

पञ्चमूलकषायेण सक्षारेण शिलाजतु । पिबेत्तस्य प्रयोगेण वातगुल्माद्विमुच्यते ॥ १६ ॥

पंचमूलके काथमें जवाखार और शिलाजीत डालकर पान करनेसे वातगुल्म शमन होता है॥ १६॥

वातगुल्मप्रतीकारे प्रकुप्यति यदा कफः। शस्तमुल्लेखनं तत्र चूर्णाद्याश्च कफापहाः॥ १७॥

वातगुल्म पर इस प्रकार उपचार करनेसे जो कफ कुपित हो तो लेखन और कफनाशक चूर्णादि प्रयोग करे॥ १७॥

यदि कुप्यति वा पित्तं विरेकस्तत्र भेषजम्। दोषघ्नैरप्यशान्तौ च गुल्मे शोणितमोक्षणम्॥ १८॥

और जो पित्त कुपित हो तो विरेचन देवे, यदि ऐसा करनेसे दोषोंकी शांति नहीं हो तो रुधिर मोक्षण करावे॥ १८॥

त्र्यूषणाद्यघृत।

त्र्यूषणं त्रिफला धात्री विडङ्गं चव्यचित्रकैः। कल्कैरेतैर्घृतं सिद्धं सक्षीरं वातगुल्मनुत्॥ १९॥

सोंठ, मिरच, पीपल, त्रिफला, आमले, वायविडंग और चीता इनके कल्कके द्वारा दूधमें घृतको सिद्ध करे। यह घृत–वातगुल्मको दूर करता है॥ १९॥

हपुषाद्यघृत।

हपुषाव्योषपृथ्वीकाचव्यचित्रकसैन्धवैः। साजाजीपिप्पलीमूलदीप्यकैर्विपचेद्घृतम्॥ २०॥ सकोलमूलकरसं सक्षीरं दधि दाडिमम्। तत्परं वातगुल्मघ्नं शूलानाहविमोक्षणम्॥ ॥ २१॥ योन्यर्शोग्रहणीदोषश्वासकासारुचिज्वरान्। पार्श्वहृद्बस्तिशूलञ्च घृतमेतद्व्यपोहति॥ २२॥ पञ्चादीनि च यत्र स्युर्द्रव्याणि स्नेहसन्निधौ। तत्र स्नेहसमान्याहुरर्वाक्स्याच्च चतुर्गुणम्॥ २३॥

हाऊबेर, त्रिकुटा, बडी इलायची, चव्य, चीता, सैंधानमक, जीरा, पीपलामूल और अजमोद प्रत्येक औषधिका कल्क दो दो तोले, बेरका क्वाथ ४ सेर, मूलीका रस ४ सेर, दूध, ४ सेर, दही ४ सेर, अनारका रस ४ सेर और उत्तम गौका घी ४ सेर लेवे। सबको एकत्र मिलाकर यथाविधिसे घृतको सिद्ध करे। यह घृत–वातगुल्म, शूल, आनाह, बवासीर, योनिदोष, श्वास, खाँसी, अरुचि, ज्वर, पार्श्वशूल, हृदयशूल और बस्तिशूलको नष्ट करता है। जहाँ पांचों द्रव्य स्नेहके समीप हों वहां स्नेहके समान लेना और जहां स्नेहसे पहले हों वहां द्रव्य चतुर्गुण होने चाहिये॥ २०॥ २१॥ २२॥ २३॥

चित्रकाद्यघृत।

चित्रकव्योषसिन्धूत्थपृथ्वीकाचव्यदाडिमैः। दीप्यकग्रन्थिकाजाजीहपुषाधान्यकैः समैः॥ २४॥ दध्यारनालबदिरमूलकस्वरसैर्घृतम्। तत्पिबेद्वातगुल्माग्निदौर्बल्याटोपशूलनुत्॥ २५॥

चीता, त्रिकुटा, सैंधानमक, इलायची, चव्य, अनार, अजमोद, पीपलामूल, जीरा, हाऊबेर, और धनियाँ प्रत्येक औषधिका कल्क दो दो तोले, दही, काँजी, बेरका काथ और मूलीका स्वरस ये प्रत्येक दो दो सेर और उत्तम गौका घी १ सेर लेकर विधिपूर्वक घृतको सिद्ध करे। इस घृतको सेवन करनेसे वातगुल्म, मंदाग्नि, आटोप और शूल नष्ट होता है॥ २४॥ २५॥

हिंग्वाद्यघृत।

हिंगुसौवर्चलव्योषविडदाडिममाषकैः। पुष्कराजाजिधान्याम्लवेतसक्षारचित्रकैः॥ २६॥ शटीवचाजगन्धैलास्वरसैश्च विपाचितम्। शूलानाहहरं सर्पिर्दध्ना चानिलगुल्मिनाम्॥ २७॥

हींग, कालानमक, त्रिकुटा, विड नमक, अनार, उड़द, पोहकरमूल, जीरा, धनियाँ, अमलबेत, जवाखार, चीता, कचूर, बच, वनतुलसी और इलायची इनके स्वरसमें दहीके द्वारा घृतको पकावे। यह घृत–शूल, आनाह और वातगुल्मको दूर करता है॥ २६॥ २७॥

पथ्य ।

तित्तिरांश्च मयूरांश्च कुक्कुटांश्चैव वर्त्तिकान् । सर्पिः शालिप्रसन्नांश्च वातगुल्मे प्रयोजयेत् ॥ २८ ॥

तीतर, मोर, मुरगा और बत्तक इनका मांस, घी, शालिचावल और प्रसन्नानामवाली मदिरा अथवा सुरामण्ड इन सबको वातगुल्ममें प्रयोग करना चाहिए ॥ २८ ॥

पित्तगुल्मके कारण ।

कट्वम्लतीक्ष्णोष्णविदाहिरूक्षक्रोधातिमद्यार्कहुताशसेवा । आमाभिघातो रुधिरं प्रदुष्टं पैत्तस्य गुल्मस्य निदानमुक्तम् ॥ २९ ॥ ज्वरः पिपासा वदनाङ्गरागः शूलं महज्जीर्य्यति भोजने च । स्वेदो विदाहो व्रणवच्च गुल्मः स्पर्शासहं पैत्तिकगुल्मरूपम् ३०

कटु, अम्ल, तीक्ष्ण, उष्ण, दाहकारक और रूखे-पदार्थोंके सेवन करनेसे, क्रोध, अत्यन्त मद्यपान, धूप और अग्निको अतिशय सेवन करनेसे, विदग्ध अजीर्णसे, लकड़ी आदिकी चोटके लगनेसे और रुधिरके दूषित होनेसे पित्तगुल्म उत्पन्न होता है। इसमें ज्वर, तृषा, मूख और शरीरमें अरुणता, अन्नके पचनेके समय अत्यंत शूलकी पीडा, पसीना, विदाह और व्रणके समान स्पर्शका न सह सकना ये सब लक्षण होते हैं, इसको पित्तगुल्म कहते हैं॥२९॥३०॥

पित्तगुल्मकी चिकित्सा ।

काकोल्यादिमहातिक्तवासाद्यैः पित्तगुल्मिनम् । स्नेहितं स्रंसयेत्पश्चाद्योजयेद्बस्तिकर्म्मणा ॥ ३१ ॥

पित्तगुल्ममें प्रथम रोगीको काकोल्यादि घृत, महातिक्तघृत और वासाद्यघृतके द्वारा स्निग्ध करके विरेचन देवे पश्चात् बस्तिकर्म करे ॥ ३१ ॥

विरेकाय सित युक्तं काम्पिल्लं वा समाक्षिकम् । द्राक्षाभयारसं गुल्मे पैत्तिके सगुडं पिबत् ॥ ३२ ॥

कबीलेके चूर्णको मिश्री मिलाकर अथवा शहद मिलाकर विरेचनके लिये सेवन करे। अथवा दाख और हरड़के काथमें गुड़ मिलाकर सेवन करे ॥३२॥

मधुकं चन्दनं द्राक्षा पयसा मधुकं मधु । पिबेत्तण्डुलतोयेन पित्तगुल्मोपशान्तये ॥ ३३ ॥

मुलैठी, चंदन और दाख इनको दूधके साथ सेवन करनेसे अथवा मुलैठी और शहद इनको चावलोंके जलके साथ पान करनेसे पित्तगुल्मरोग शमन होता है ॥ ३३ ॥

पक्कगुल्मलक्षण ।

गुरुः कठिनसंस्थानो गूढमांसोत्तराश्रयः । अविवर्णः स्थिरश्चैव स पक्को गुल्म इष्यते ॥ ३४ ॥

भारी, कठिन, अच्छेप्रकारसे स्थित हुआ, गूढ, मांसमें प्राप्त हुआ, बुरे रंगका और स्थिर ऐसा गुल्म पक्क जानना ॥ ३४ ॥

दाहशूलादिसंक्षोभस्वप्ननाशाऽरुचिज्वरैः । विदह्यमानं जानीयाद्गुल्मं तमुपनाहयेत् ॥ ३५ ॥

दाह और शूलादिकसे क्षोभित हुआ, निद्राका नाश, अरुचि और ज्वरसे दाहको प्राप्त हुआ ऐसे गुल्मको जानकर उपनाह स्वेद आदि करे ॥ ३५ ॥

पक्के तु व्रणवत्कार्यं व्यधशोधनरोपणम् । स्वयमूर्ध्वमधो वापि स चेद्दोषः प्रपद्यते ॥ ३६ ॥ द्वादशाहमुपेक्षेत रक्षन्वैद्यैरुपद्रवान् । परश्च शोधनं सर्पिः शुद्धे समधुतिक्तकम् ॥ ३७ ॥

पक्क गुल्ममें व्रणके समान चीरना, शोधन और रोपण करना आदि विधि करनी चाहिए। जो अपने आपही ऊपर और नीचे दोष प्राप्त हों तो अन्य उपद्रवोंकी रक्षा करके बारह दिन पर्यंत उपेक्षा करे। पश्चात् शोधन करनेवाले घृतप्रयोग करे फिर तिक्त औषधियोंके साथ शहद सेवन करावे ॥ ३६॥३७॥

त्रायमाणाद्यघृत।

जले दशगुणे साध्यं त्रायमाणाचतुष्पलम्। पञ्चभागस्थितं घृतं कल्कैः संयोज्य कार्षिकैः॥ ३८॥ रोहिणीकटुकामुस्तत्रायमाणादुरालभाः। द्राक्षातामलकीवीराजीवन्तीचन्दनोत्पलैः॥ ३९॥ रसस्यामलकानाञ्च क्षीरस्य च घृतस्य च। एतानि पृथगष्टाष्टौ दत्त्वा सम्यग्विपाचयेत्॥ ४०॥ पित्तगुल्मं रक्तगुल्मं वीसर्पं पैत्तिकं ज्वरम्। हृद्रोगं कामलां कुष्ठं हन्यादेतद्घृतोत्तमम्॥ ४१॥

चार पल त्रायमाणको लेकर दशगुने जलमें पकावे। जब पकते पकते जल पांचवा भाग बाकी रह जाय तब उतार कर छान लेवे। इस क्वाथमें मांसरोहिणी, कुटकी, नागरमोथा, त्रायमाण, धमासा, दाख, भुईआमला, शतावर, जीवंती, चन्दन और कमल प्रत्येक औषधिका कल्क एक एक तोला, आमलोंका स्वरस ८ पल; दूध ८ पल और उत्तम गौका घी ८ पल लेवे। सबको एकत्र मिलाकर यथाविधिसे घृतको पकावे। यह उत्तम घृत-पित्तगुल्म, रक्तगुल्म, विसर्प, पित्तज्वर, हृदयरोग, कामला और कुष्ठको नष्ट करता है॥ ३८-४१॥

द्राक्षाद्यघृत।

द्राक्षां मधुकखर्जूरं विदारीं सशतावरीम्। परूषकाणि त्रिफलां साधयेत्पलसंमिताम्॥ ४२॥ जलाढके पादशेषे रसमामलकस्य च। घृतमिक्षुरसं क्षीरमभयाकल्कपादिकम्॥ ४३॥ साधयेत्तु घृतं सिद्धं शर्कराक्षौद्रपादिकम्। प्रयोगपित्तगुल्मघ्नं सर्वपित्तविकारनुत॥ ४४॥

दाख, मुलैठी, खजूर, विदारीकन्द, शतावर, फालसे और त्रिफला ये प्रत्येक औषधि चार २ तोले लेकर एक आढक जलमें पकावें। जब पकते २ जल चौथाई भाग बाकी रहजाय तब उतार कर छान लेवे फिर इस क्वाथमें आमलोंका स्वरस, घी, ईखका रस, दूध और हरडोंका कल्क प्रत्येक क्वाथसे चौथाई भाग डाल कर विधिपूर्वक घृतको सिद्ध करे इस घृतमें चतुर्थांश भाग खांड और शहद मिलाकर सेवन करे तो इससे पित्तगुल्म और सर्वप्रकारके पित्तके विकार दूर होते हैं॥ ४२॥ ४३॥ ४४॥

पथ्य।

शालिगोछागदुग्धञ्च पटोलं मिश्रितं घृतम्। द्राक्षापरूषकं धात्री खर्जूरं दाडिमं सिता। पथ्यार्थं पैत्तिके गुल्मे बलातैलञ्च योजयेत॥ ४५॥

शालिचावलोंका भात, गौ और बकरीका दूध, परवल, घी, दाख, फालसे, आमले, खजूर, अनार और मिश्री ये सब पथ्य हैं। खिरैंटीका तेल भी पित्तगुल्ममें पथ्यके लिये प्रयोग करना चाहिए॥ ४५॥

कफगुल्मके लक्षण।

शीतं गुरुस्निग्धमचेष्टनञ्च संपूरणं प्रस्वपनं दिवा च। गुल्मस्य हेतुः कफसम्भवस्य सर्वस्तु दृष्टो निचयात्मकस्य॥ ४६॥ स्तैमित्यशीतज्वरगात्रसादहृल्लासकासारुचिगौरवाणि। शैत्यं रुगल्पा कठिनोन्नतत्वं गुल्मस्य रूपाणि कफात्मकस्य॥ ४७॥

शीतल, भारी और चिकने पदार्थोंका सेवन, बिलकुल परिश्रम नहीं करना और दिनमें सोना इत्यादि कारणोंसे कफसम्बन्धी ये सब कफ एकत्र होकर जो गुल्म होता है वही कफगुल्मका हेतु है। शरीर गीले कपड़ेसे ढके हुएके समान मालूम हो, शीतज्वर, अंगोंका टूटना, अंगग्लानि, उबकाई, खाँसी, अरुचि, भारीपन, शीतका लगना, अल्पपीड़ा, गुल्म, कठिन और ऊंचा हो ये सब कफगुल्मके लक्षण हैं॥ ४६॥ ४७॥

कफगुल्मकी चिकित्सा।

स्नेहोपनाहनस्वेदतीक्ष्णस्रंसनबस्तिभिः। योगैश्च वातगुल्मोक्तैः श्लेष्मगुल्ममुपाचरेत॥ ४८॥

कफजगुल्ममें स्नेह कर्म्म, उपनाहस्वेद, तीक्ष्ण विरेचन, बस्ति कर्म्म और अन्यान्य वातगुल्ममें कहे प्रयोग सेवन करने चाहिएँ ॥ ४८ ॥

तिलैरण्डातसीबीजसर्षपैः परिलिप्य च । श्लेष्मगुल्ममयःपात्रैः सुखोष्णैः स्वेदयेद्भिषक् ॥ ४९ ॥

तिल, अंडके बीज, अलसी और सरसों इन सबको एकत्र पीसकर कफगुल्मके ऊपर लेप करे । फिर उस लोहेके पात्रको अग्निसे गरम करके सुहाता २ कफगुल्मरोगीको स्वेद देवे ॥ ४९ ॥

पञ्चमूलीशृतं तोयं पुराणं वारुणीरसम् । कफगुल्मे पिबेत्काले जीर्णं माध्वीकमेव च ॥ ५० ॥

पंचमूलके काथमें पुराना वारुणीका रस डालकर पीनेसे अथवा पुरानी माध्वीक नामवाली मदिराको पीनेसे कफगुल्म नष्ट होता है ॥ ५० ॥

यवानीचूर्णितं तक्रं विडेन लवणीकृतम् । विबेत्सन्दीपनं वातमूत्रवर्चोऽनुलोमनम् ॥ ५१ ॥

अजवायनके चूर्णको तक्रमें डालकर और थोड़ासा विडनमक मिलाकर पान करनेसे अग्नि दीपन होती है तथा यह वायु, मूत्र और मलको अनुलोमन करता है ॥ ५१ ॥

क्षीरषट्पलघृत ।

पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यचित्रकनागरैः । पलिकैः सयवक्षारैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ५२ ॥ क्षीरप्रस्थेन तत्सर्पिर्हन्ति गुल्मं कफात्मकम् । ग्रहणीपांडुरोगघ्नं प्लीहकासज्वरापहम् ॥ ५३ ॥

पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ और जवाखार ये प्रत्येक औषधि चार चार तोले, उत्तम गौका घी एक प्रस्थ और दूध एक प्रस्थ लेवे । विधिपूर्वक घृतको पकावे । यह घृत—कफजनित गुल्म, संग्रहणी, पाण्डुरोग, प्लीहा, खाँसी और ज्वरको नष्ट करता है ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

व्योषाद्यघृत ।

सव्योषक्षारलवणं दशमूलशृतं घृतम् । कफगुल्मं जयत्याशु सहिंगुविडदाडिमम् ॥ ५४ ॥

त्रिकुटा, जवाखार, सैंधानमक, हींग, विडनमक और अनार इन औषधियोंके कल्क और दशमूलके काथमें घृतको पकावे । यह घृत—कफजनित गुल्मको नष्ट करता है ॥ ५४ ॥

भल्लातकाद्यघृत ।

भल्लातकानां द्विपलं पञ्चमूलपलोन्मितम् । साध्यं विदारिगन्धाढ्यमापोथ्य सलिलाढके ॥ ५५ ॥ पादावशेषे पूते च पिप्पली नागरं वचा । विडङ्गं सैन्धवं हिंगु यावशूकं विडं शटी ॥ ५६ ॥ चित्रकं मधुकं रास्ना पिष्ट्वा कर्षसमान्भिषक् । प्रस्थञ्च पयसो दत्त्वा घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ५७ ॥ एतद्भल्लातकं सर्पिः कफगुल्महरं परम् । प्लीहपांड्वामयश्वासग्रहणीकासरोगनुत् ॥ ५८ ॥

भिलावे ८ तोले, पंचमूलकी पृथक् २ औषधि चार चार तोले और विदारीकंद ४ तोले लेवे, इन सबको एक आढक जलमें पकावे । जब पकते २ जल चौथाई भाग शेष रह जाय तब उतार कर छान लेवे । फिर इस काथमें पीपल, सोंठ, बच, वायविडंग, सैंधानमक, हींग, जवाखार, विडनमक, कचूर, चीता, मुलैठी और रास्यसन प्रत्येक औषधिका कल्क एक एक तोला, दूध १ प्रस्थ और उत्तम गौका घी १ प्रस्थ लेवे । सबको मिलाकर यथाविधिसे घृतको सिद्ध करे । यह भल्लातकघृत—कफगुल्मको नष्ट करनेवाला तथा प्लीहा, पाण्डुरोग, श्वास, संग्रहणी और खांसीको दूर करता है ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

मिश्रकस्नेह ।

त्रिवृता त्रिफला दन्ती दशमूलं पलोन्मितम् । जले चतुर्गुणे पक्त्वा

चतुर्भागे स्थिते रसे ॥ ५९ ॥ सर्पिरैरंडजं तैलं क्षीरं तत्र प्रयोजयेत् । सस्निग्धो मिश्रकः स्नेहः सक्षौद्रः कफगुल्मनुत् ॥ ६० ॥ कफवातविकारेषु कुष्ठप्लीहोदरेषु च । प्रयोज्यो मिश्रकः स्नेहो योनिशूले तथाधिके ॥ ६१ ॥

निसोत, हरड, बहेडा, आमला, दंती और दशमूलकी सम्पूर्ण औषधियां प्रत्येक चार चार तोले लेकर चौगुने जलमें पकावे । जब पककर जल चौथाई भाग बाकी रहजाय तब उतारकर छान लेवे। फिर इस काथमें घी, अण्डीका तेल और दूध डालकर पकावे । जब पकते पकते केवल घी और अण्डीका तेल बाकी रह जाय तब उतार लेवे। इस मिश्रक स्नेहमें शहद मिलाकर सेवन करनेसे कफगुल्मको नष्ट करता है। यह कफगुल्म, कफ और वातके विकार, कुष्ठ,प्लीहा, उदररोग और विशेष कर योनिशूलमें प्रयोग करना चाहिए ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥

दंतीहरीतक्यवलेह ।

जलद्रोणे विपक्तव्या विंशतिः पञ्च चाभयाः । दन्त्याः पलानि तावन्ति चित्रकस्य तथैव च ॥ ६२ ॥ अष्टभागावशेषन्तं रसं पूतमधिश्रयेत् । दन्तीसमं गुडं पूतं दद्यात्तत्राभयाश्च ताः ॥ ६३ ॥ तैलार्धकुडवं चैव त्रिवृतायाश्चतुष्पलम् । चूर्णितं चार्द्धपलिकं पिप्पली विश्वभेषजम् ॥६४॥ तत्साध्यं लेहवच्छीते तस्मिंस्तैलसमं मधु । क्षिपेच्चूर्णं पलश्चैकं त्वगेलापत्रकेसरात ॥ ६५ ॥ ततो लेहं पलं लीढ्वा जग्ध्वा चैकां हरीतकीम् । सुखं विरिच्यते स्निग्धो दोषप्रस्थमनामयः ॥ ६६ ॥ गुल्मं श्वयथुमर्शांसि पांडुरोगमरोचकम् । हृद्रोगग्रहणीदोषान्कामलां विषमज्वरान् । गुल्मं प्लीहानमानाहमेतान् हन्त्युपसेविता॥६७॥

पोटलीमें बँधीहुई उत्तम हरडें २५ पल, दंतीकी जड़ २५ पल, और चीतेकी जड २५ पल लेकर १ द्रोण जलमें पकावे । जब पककर आठवां भाग जल बाकी रहजाय तब उतारकर छान लेवे और पोटलीको खोलकर हरडोंको निकाल लेवे । पश्चात् इस काथमें २५ पल गुड, काढेमेंकी निकाली हुई सब हरडें सोलह तोले,निसोतका चूर्ण, सोलह तोले तेल, पीपल और सोंठ दो २ तोले, सबको एकत्र मिला अवलेह बनावे । जब शीतल होजाय तब शहद १६ तोले और चातुर्जातकका चूर्ण चार तोले मिला देवे । प्रतिदिन चार तोले अवलेह और इसमेंकी एक हरड सेवन करे तो इससे कोठा स्निग्ध होकर सुखपूर्वक दस्त होने लगते हैं । तथा गुल्म, सूजन, बवासीर, पाण्डुरोग, अरुचि, हृदयरोग, संग्रहणी, कामला, विषमज्वर, गुल्म, प्लीहा और आनाह रोग ये सब दूर होते हैं ॥ ६२–६७ ॥

पथ्य ।

कुलित्थाञ्जीर्णशालींश्च षष्टिकान्यवजाङ्गलान् । मद्यतैलघृतं तक्रं कफगुल्मे प्रयोजयेत् ॥ ६८ ॥

कुलथी, पुराने शालिचावल, साँठीचावल, जौ, जांगलप्रदेशके जीवोंका मांस, मदिरा, तेल, घृत और तक्र ये सब कफजगुल्ममें प्रयोग करने चाहिए॥६८॥

द्वन्द्वजगुल्म ।

निमित्तलिङ्गानुपलभ्य गुल्मे संसर्गजे दोषबलाबलञ्च । व्यामिश्रलिङ्गानुपलभ्य गुल्मांस्त्रीनादिशेदौषधकल्पनार्थम् ॥ ६९ ॥

द्वन्द्वजगुल्ममें निमित्त, लक्षण और दोषोंका बलाबल विचारकर औषधि करनेके लिए वात तथा पित्तसे उत्पन्न हुए, वायु और कफसे उत्पन्न हुए और पित्त तथा कफसे हुए इस प्रकार और भी तीन द्वन्द्वज गुल्मोंकी यथा दोषानुसार कल्पना करनी चाहिए ॥ ६९ ॥

हिंग्वादिचूर्ण ।

हिंगु त्रिकटुकं पाठां हपुषामभयां शटीम् । अजमोदाजगन्धे च तिन्तिडीं चाम्लवेतसम् ॥७०॥ दाडिमं पौष्करं धान्यमजाजीं चित्रकं वचाम् । द्वौ क्षारौ पञ्चलवणं चव्यं चैकत्र

योजयेत् ॥ ७१ ॥ चूर्णमेतत्प्रयोक्तव्य-मन्नपानेष्वनत्ययम् । प्राग्भुक्तमथवा पेयं मद्येनोष्णोदकेन च ॥ ७२ ॥ पार्श्वहृद्बस्तिशूलेषु गुल्मे वातकफात्मके । आनाहे मूत्रकृच्छ्रे च शूले च गुदयोनिजे ॥ ७३ ॥ ग्रहण्यर्शोविकारेषु प्लीहपांड्वामयेऽरुचौ । उरोविबन्धहिक्कायां कासे श्वासे गलग्रहे ॥ ७४॥ भावितं मातुलुङ्गस्य चूर्णमेतद्रसेन वा । बहुशो गुटिकाः कार्य्याः कार्षिकाः स्युस्ततोऽधिकम् ॥ ७५ ॥

हींग, सोंठ, मिरच, पीपल, पाढ,हाऊबेर, हरड़, कचूर, अजमोद, वनतुलसी, (तित्तिड़ी,) अमलवेंत, अनारदाना, पोहकरमूल, धनियाँ, जीरा, चीता, वच, जवाखार, सज्जी, पांचों नमक, और चव्य इन सबको एकत्र कूट पीसकर चूर्ण बनावे। इस चूर्णको अन्नपानके साथ नित्य खाय। अथवा प्रातःकाल मदिराके साथ या गरम जलके साथ सेवन करे। यह हिंग्वादि-चूर्ण पार्श्वशूल, हृदयशूल, बस्तिशूल, वातकफजनित गुल्म, आनाह, मूत्रकृच्छ्र, गुदजशूल, योनिशूल, संग्रहणी, बवासीर प्लीहा, पाण्डुरोग, अरुचि, उरोग्रह, विबंध, हिक्का, खाँसी, श्वास, और गलग्रहरोगको दूर करता है। जो इसकी गोली बनानी हो तो इस चूर्णको बिजौरेनींबूके रसमें खरल करके एक २ तोलेकी गोलियां बना लेवे। यह गोलीभी पूर्वोक्त गुणोंवाली जाननी चाहिए॥७०-७५

द्वितीय हिंग्वाद्यचूर्ण।

हिंगुग्रन्थिकधान्यजीरकवचाचव्याग्निपाठाशटीवृक्षाम्लं लवणत्रयं त्रिकटुकं क्षारद्वयं दाडिमम् ॥ पथ्या पौष्करवेतसाम्लहपुषाजाज्यस्तदेभिः कृतं चूर्णं भावितमेतदार्द्रकरसैः स्याद्बीजपूरद्रवैः ॥ ७६ ॥ गुल्माध्मानगुदांकुरग्रहणिकोदावर्त्तसंज्ञान्गदान् प्रत्याध्मानगदोदराश्मरियुतांस्तूनीद्वयारोचकान् । ऊरुस्तम्भमतिभ्रमश्च मनसो बाधिर्य्यमष्ठीलिकां प्रत्यष्ठीलिकया सहापहरते प्राक् पीतमुष्णाम्बुना ॥ ७७ ॥ हृत्कुक्षिवंक्षणकटीजठरान्तरेषु बस्तिस्तनांसफलकेषु च पार्श्वयोश्च । शूलानि नाशयति वातबलासजानि हिंग्वाद्यमाद्यमिदमाश्विनसंहितोक्तम् ॥ ७८ ॥

हींग, पीपलामूल, धनियाँ, जीरा, वच, चव्य, चीता, पाढ,कचूर, समाक, कालानमक,सैंधानमक, बिडनमक, सोंठ मिरच, पीपल, जवाखार,सज्जीखार, अनारदाना, हरड़, पोहकरमूल, अमलवेत, हाऊबेर और कालाजीरा इन सब औषधियोंको कूट पीसकर चूर्ण बना लेवे। इस चूर्णको अदरखके रसमें और बिजौरे नींबूके रसमें खरल कर लेवे। यह हिंग्वादि चूर्ण-गुल्म, आध्मान, बवासीर, संग्रहणी, उदावर्त्तरोग, प्रत्याध्मान, उदररोग, पथरी, तूनी, प्रतितूनी, अरुचि,ऊरुस्तम्भ, मनमें अत्यन्त भ्रम, बधिरता, अष्ठीलिका और प्रत्यष्ठीला इन सब रोगोंको दूर करदेता है। इसको प्रातःकाल गरम जलके साथ सेवन करना चाहिए। यह चूर्ण-हृदयशूल, वंक्षणशूल, कटिशूल, उदरशूल बस्तिशूल, स्तनशूल, स्कन्धशूल और पार्श्वशूल इन सबको नष्ट करता है तथा विशेष कर वातकफजनित शूलको नष्ट करता है। यह हिंग्वादिचूर्ण अश्विनीकुमारसंहितामें कहा है ॥ ७६ ॥ ७७ ॥७८॥

पथ्य।

गुल्मवान्मदिरामण्डैस्तैलमैरण्डजंपिबेत् । बलासे प्रबले वाते पित्ते तु क्षीरसंयुतम् ॥ ७९ ॥

मदिराका मंड और अंडीका तेल यह प्रबल कफवातवाले गुल्म रोगीको सेवन करने चाहिए और पित्तके गुल्ममें इनमें दूध मिलाकर सेवन करना चाहिए॥ ७९ ॥

त्रिदोषगुल्मके लक्षण।

महारुजं दाहपरीतमश्मवद् घनोन्नतं शीघ्रविदाहि दारुणम्। मनः-

शरीराग्निबलापहारिणं त्रिदोषजं गुल्ममसाध्यमादिशेत् ॥ ८० ॥

अत्यंतपीडा करनेवाला, दाहयुक्त, पाषाणके समान कठिन, ऊँचा और बहुत भयंकर दाह करनेवाला, तथा अन्तःकरण, शरीर, अग्नि और बलको हरनेवाला ऐसा त्रिदोषजगुल्म जानना चाहिए। यह असाध्य होता है ॥ ८० ॥

त्रिदोषगुल्मकी चिकित्सा।

धीमानुपाचरेद्गुल्मं प्रत्याख्याय त्रिदोषजम्। सन्निपातोत्थिते गुल्मे त्रिदोषघ्नो विधिर्हितः ॥ ८१ ॥

सन्निपातगुल्मको असाध्य जानकर त्रिदोषनाशक चिकित्सा करनी चाहिए। इसपर त्रिदोषनाशक औषधि प्रयोग करे ॥ ८१ ॥

धात्रीफलकघृत।

धात्रीफलानां स्वरसे षडङ्गं विपचेद्घृतम्। शर्करासैन्धवोपेतं तद्धितं सर्वगुल्मिनाम् ॥ ८२ ॥

आमलेके स्वरसमें षडङ्ग घृतको पकावे। इस घृतमें मिश्री और सैंधानमक डालकर सेवन करे तो सर्व प्रकारके गुल्म नष्ट होते हैं ॥ ८२ ॥

लङ्घनं दीपनं स्निग्धमुष्णं वातानुलोमनम्। बृंहणञ्च भवेदन्नं तद्धितं सर्वगुल्मिनाम् ॥ ८३ ॥

लंघन, अग्निप्रदीपक, चिकने, उष्ण, वातानुलोमक और सर्वप्रकारके पुष्टिकारक अन्नपान गुल्मरोगीको हितकारी हैं ॥ ८३ ॥

गुल्मिनामनिलशान्तिरुपायैः सर्वशो विधिवदाचरितव्या। मारुते तु विजिते समुदीर्णं दोषमल्पमपि कर्म निहन्यात् ॥ ८४ ॥

सर्वप्रकारके गुल्मरोगमें प्रथम अनेक प्रयत्नोंसे वातको शमन करना चाहिए। क्योंकि वातके शमन होनेपर पश्चात् अन्यदोष थोडेही यत्नोंसे आप शान्त होजाते हैं ॥ ८४ ॥

सुखोष्णजाङ्गलरसाः सुस्निग्धाव्यक्तसैन्धवाः। कटुत्रिकसमायुक्ता हिताः पानेषु गुल्मिनाम् ॥ ८५ ॥

जांगलदेशके जीवोंके मांसरसको घीमें भूनकर कुछएक सैंधानमक और त्रिकुटेका चूर्ण डालकर सुहाता सुहाता पान करे। यह गुल्म रोगियोंको हितकारी है ॥ ८५ ॥

कुम्भीपिण्डेष्टकास्वेदान्कारयेत्कुशलो भिषक्। उपनाहाश्च कर्त्तव्याः सुखोष्णाः शाल्वणादयः ॥ ८६ ॥

घडेमें वातनाशक काथोंको अथवा कांजी आदिको भरकर स्वेद देवे, इसको कुम्भीस्वेद कहते हैं। सिद्ध मांसादिके पिण्डसे जो स्वेद दिया जाता है उसको पिण्डस्वेद कहते हैं। और ईटको गरम करके कांजीमें भिजोकर स्वेद देनेको 'इष्टकास्वेद' कहते हैं। इन तीनों प्रकारके स्वेद, सुखोष्ण लेप, उपनाहस्वेद और शाल्वणस्वेदके द्वारा गुल्मरोगको शमन करना चाहिए ॥ ८६ ॥

स्थानावसेको रक्तस्य बाहुमध्ये शिराव्यधः। स्वेदानुलोमनञ्चैव प्रशस्तं सर्वगुल्मिनाम् ॥ ८७ ॥

गुल्मके स्थानमें तथा जिस पार्श्वमें गुल्म उत्पन्न हो उस बाहुकी संधिकी नीचेकी शिरामेंसे रक्तमोक्षण करावे तथा स्वेद और वातानुलोमक क्रिया करे इससे गुल्मरोग दूर होता है ॥ ८७ ॥

स्रोतसां मार्दवं कृत्वा जित्वा मारुतमुल्बणम्। भित्त्वा विबन्धं गुल्मस्य स्वेदो गुल्ममपोहति ॥ ८८ ॥

गुल्मरोगमें स्वेदका देना स्रोतोंको शुद्ध करता है। बलवान् वायुको शमन करता है और मलमूत्रादिके रोधको दूर करके गुल्मके विबन्धको नष्ट करता है ॥ ॥ ८८ ॥

वल्लूरं मूलकं मत्स्याञ्छुष्कशाकांश्च वैदलम्। न खादेद्वालुकं गुल्मी मधुराणि फलानि च ॥ ८९ ॥

सूखा मांस, मूली, मछली, सूखाशाक, द्विदलअन्न, (दो दालवाले धान्य) आलू(कांदू, रताल्रू इत्यादि) और मधुरफल इन सबको गुल्मरोगी त्यागदेवे॥८९॥

ऊर्ध्ववातश्च मनुजं गुल्मिनश्च निरूहयेत् ॥ ९० ॥

गुल्मरोगमें जो ऊर्ध्ववात हो तो उसको निरूहण बस्ति देनी चाहिए ॥ ९० ॥

वचाद्यचूर्ण।

वचाविडाऽभयाशुण्ठीहिंगुकृष्णाग्निदीप्यकाः । द्वित्रिषट्चतुरेकाष्टसप्तपञ्चांशिकाः क्रमात् ॥ ९१ ॥ चूर्णं मद्यादिभिः पीतं गुल्मानाहोदरापहम् । शूलार्शःश्वासकासघ्नं ग्रहणीदीपनं परम् ॥ ९२ ॥

वच २ भाग, विडनमक ३ भाग, हरड ६ भाग, सोंठ ४ भाग, हींग १ भाग, पीपल ८ भाग, चीता ७ भाग और अजमोद ५ भाग लेवे, सबको एकत्र कूट पीसकर चूर्ण बना लेवे । इस चूर्णको मदिरा आदिके साथ पान करे । यह-गुल्म, आनाह, उदररोग, शूल, बवासीर, श्वास, खाँसी और संग्रहणीको दूर करता है ॥ ९१ ॥ ९२ ॥

पाठानिकुम्भरजनीत्रिकटुत्रिफलाग्निकम् । लवणं वृक्षमम्लश्च चूर्णं गोमूत्रसाधितम् ॥ ९३ ॥ घनीभूते तु वटिकां कृत्वा खादेत्तु गुल्मवान् । गुल्मप्लीहाग्निसादांश्च नाशयेयुरशेषतः ॥ ९४ ॥

पाढ, दंती, हलदी, सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, चीता, सैंधानमक और समाक इन सबको समान भाग लेकर बारीक पीसकर चूर्ण बनालेवे । फिर इस चूर्णको गोमूत्रमें पकावे । जब गाढा होजाय तब गोलियां बना लेवे । यह गोलियां गुल्म, प्लीहा और मन्दाग्निको नष्ट करती हैं॥९३॥९४॥

हिंगुपुष्करमूलानि तुम्बुरूणि हरीतकीम् । श्यामां विडं सैन्धवञ्च यवक्षारं महौषधम् ॥ ९५ ॥ यवक्काथोदकेनैव घृतभृष्टं तु पाययेत् । तेनास्य भिद्यते गुल्मः समूलः सपरिग्रहः ९६ ॥

हींग, पोहकरमूल, तुम्बुरु, हरड, निसोत, विडनमक, सैंधानमक, जवाखार और सोंठ—इनको एकत्र पीसकर चूर्ण बना लेवे । इस चूर्णको घीमें भूनकर जौके काथके साथ पान करे । इससे बढ़ा हुआ गुल्म मूल सहित जडसे नष्ट होजाता है ॥ ९५ ॥ ९६ ॥

वचाहरीतकीहिंगुसैन्धवं साम्लवेतसम् । यवक्षारं यवानीञ्च पिबेदुष्णेन वारिणा ॥ ९७ ॥ एतद्धि गुल्मनिचयं समूलं सपरिग्रहम् । भिनत्ति सप्तरात्रेण वह्नेर्वृद्धिं करोति च ॥९८ ॥

वच, हरड, हींग, सैंधानमक, अमलवेंत, जवाखार और अजवायन इन सबको समान भाग लेकर बारीक पीसकर चूर्ण बना लेवे । इस चूर्णको गरम जलके साथ सेवन करनेसे सातदिनमें बढ़ा हुआ मूल सहित जड़से गुल्म नष्ट होता है तथा अग्नि दीपन होती है ॥ ९७ ॥ ९८ ॥

वातवर्चोनिरोधे वा सामुद्रार्द्रार्कसर्षपैः । कृत्वा पायौ विधातव्या वर्त्तयो मरिचोत्तरैः ॥९९॥

गुल्मरोगमें जो मल और अपानवायुका अवरोध हो तो समुद्रनोन, अदरख, आक, सरसों और कालीमिरच इनको एकत्र पीसकर कपडेपर बत्ती बनाकर गुदामें रक्खे तो मल और वायु निर्गत होती है॥९९॥

खादेद्वाप्यंकुरान्भृष्ट्वा पूतीकनृपवृक्षयोः । पिबेत्त्रिवृन्नागरं वा सगुडां वा हरीतकीम् ॥ १००॥

अथवा दुर्गंधकरंज और अमलतासके अंकुरोंको भून कर खाय । अथवा निसोत और सोंठको एकत्र पीसकर जलके साथ पान करे अथवा गुडके साथ हरड खाय ॥ १०० ॥

गुग्गुलं त्रिवृतां दन्तीं द्रवन्तीं सैंधवं वचाम् । मूत्रमद्यपयोद्राक्षारसैर्वीक्ष्य यथाबलम् ॥ १०१ ॥

गूगल, निसोत, दंती, मूसाकानी, सैंधानमक और बच इनको एकत्र पीसकर चूर्ण बनाकर मूत्रके साथ, मदिराके साथ, दूधके साथ अथवा दाखके रसके साथ बलानुसार सेवन करे ॥ १०१ ॥

क्षारद्वयानलव्योषनीलीलवणपञ्चक-म् । चूर्णितं सर्पिषा पेयं सर्वगुल्मो-दरापहम् ॥ १०२ ॥

जवाखार, सज्जी, चीता, सोंठ, मिरच, पीपल, नीलीके बीज और पांचोंनमक-इन सबको समान-भाग लेकर बारीक चूर्ण बनाकर घीके साथ सेवन करनेसे सर्व प्रकारके गुल्म और उदररोग दूर होते हैं ॥ १०२ ॥

भार्ङ्गीषट्पलघृत ।

षड्भिः पलैर्मगधजाफलमूलचव्य-विश्वौषधज्वलनयावककल्कपक्वम् । प्रस्थं घृतस्य दशमूलरुबूकभार्ङ्गीक्का-थेन वा पयसि दध्नि च षट्पलाख्यम् ॥ १०३ ॥ गुल्मोदरारुचिभगन्दरव-ह्निसादकासज्वरक्षयशिरोग्रहणीवि-कारान् । सद्यः शमं नयति ये च कफानिलोत्थांस्तानाशु नाशयति दुर्जयमग्निमान्द्यम् ॥ १०४ ॥

पीपल, पीपलामूल, चव्य, सोंठ, चीता और जवाखार-ये प्रत्येक औषधि चार चार तोले लेकर कल्क बनावे। इन औषधियोंके कल्कके द्वारा एक प्रस्थ घृतको दशमूलके काथमें, अंडके काथमें और भारंगीके काथमें तथा दूध और दहीमें पकावे । जब पकते पकते घृतमात्र शेष रह जाय तब उतार लेवे । यह षट्पलघृत-गुल्म, उदररोग, अरुचि, भगन्दर, अग्निमान्द्य, खाँसी, ज्वर, क्षय, शिरोरोग, संग्रहणी-रोग और कफवातजनित समस्त रोगोंको तथा घोर मन्दाग्निको तत्काल दूर कर देता है ॥१०३॥१०४॥

दन्तीघृत।

दन्त्याश्चतुष्पलरसे पिष्टैर्दन्तीशिला-टुभिः । पचेत्प्रस्थं घृताद्गुल्मप्लीह-पांड्वार्तिशूलनुत् ॥ १०५ ॥

दन्तीके चार पल रसमें दन्तीको पत्थर पर पीस लेवे । फिर इस कल्क और काथके द्वारा एक प्रस्थ घृतको पकावे । यह घृत-प्लीहा, पाण्डुरोग और शूलको नष्ट करता है ॥ १०५ ॥

बिन्दुघृत ।

त्रिवृदर्कस्नुहीक्षीरकाम्पिल्लैश्च पलां-शकैः । सैन्धवाद्विपलोपेतैः हविः कुडवमम्भसि ॥ १०६ ॥ पक्वमस्मा-त्पिबेत्कर्षमुष्णवार्यनुपानकम् । सर्व-गुल्मोदरध्वंसि स्रंसनं बिन्दुसंज्ञ-कम् ॥ १०७ ॥

निसोत, आकका दूध, थूहरका दूध, कबीला ये प्रत्येक औषधि चार२ तोले और सैंधानमक आठ तोले लेवे इनके कल्कके द्वारा आधसेर घृतको जलमें पकावे। जब पकते पकते केवल घृतमात्र शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे। इस घृतमेंसे एक तोला परिमाण गरमजलके साथ पान करे । यह घृत-सर्व-प्रकारके गुल्मरोग और उदररोगोंको दूर करता है, इससे अच्छे प्रकारसे विरेचन होजाता है ॥ १०६ ॥ ॥ १०७ ॥

दधिकघृत ।

विडदाडिमसिन्धूत्थहुतभुग्व्योषजी-रकैः।हिङ्गुसौवर्चलक्षारचुक्रवृक्षाम्ल-वेतसैः ॥ १०८ ॥ बीजपूररसोपेतैः सर्पिर्दधिचतुर्गुणम् । साधितं दधि-कं नाम्ना गुल्महृत्पार्श्वशूलनुत्॥१०९॥

विडनमक, अनारदाना, सैंधानमक, चीता, त्रिकु-टा, जीरा, हींग, कालानमक, जवाखार, चूका, समाक और अमलबेंत-इन औषधियोंके कल्कके द्वारा बिजौरेनींबूके रसमें एक प्रस्थ घृतको चौगुने दहीमें पकावे । यह दधिकघृत-गुल्म, हृदयरोग और पार्श्व-शूलको नष्ट करता है ॥ १०८॥ १०९ ॥

नीलिनीघृत ।

नीलिनीं त्रिफलां रास्नां बलां कटु-करोहिणीम् । पचेद्विडङ्गं व्याघ्रीञ्च पलिकानि जलाढके ॥ ११० ॥ तेन

पादावशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् । दध्नः प्रस्थेन संयोज्य सुधाक्षीरपलेन च ॥ १११ ॥ ततो घृतपलं दद्याद्यवागूमंडमिश्रितम् । जीर्णे सम्यग्विरिक्तश्च भोजयेद्रसभोजनम् ॥ ११२ ॥ गुल्मकुष्ठोदरव्यंगशोफपाण्ड्वामयज्वरान् । श्वित्रं प्लीहानमानाहं घृतमेतद्व्यपोहति ॥ ११३ ॥

कालादाना, त्रिफला, रायसन, खिरैंटी, कुटकी, वायविडंग और कटेरी-ये प्रत्येक औषधि चार चार तोले लेकर एक आढक जलमें पकावे जब पकते पकते जल चौथाई भाग शेष रहजाय तब उतार कर छान लेवे। फिर इस क्वाथमें घी एक प्रस्थ, दही एक प्रस्थ और थूहरका दूध ४ तोले डाल। विधि पूर्वक घृतको सिद्ध करे। इसमेंसे चार तोले प्रमाण यवागूके मांडके साथ खाय। जब अच्छे प्रकारसे विरेचन होजाय तथा यह औषधि जीर्ण होजाय तब इसपर मांसरसका भोजन करे। यह घृत-गुल्म, कोढ, उदररोग, व्यंग, सूजन, पाण्डुरोग, ज्वर, श्वित्र, प्लीहा और आनाह रोगोंको दूर करता है॥ ११०-११३ ॥

वचाद्यतैल।

वचापुष्करकुष्ठैला मदनामरसिन्धुजैः । काकोलीद्वययष्ट्याह्वमेदायुग्मकुटन्नटैः ॥ ११४॥ पाठाजीरकजीवन्तीभार्ङ्गीचन्दनकट्फलैः । सरलागुरुबिल्वाम्रवाजिगन्धाग्निवृद्धिभिः ॥ ११५ ॥ विडङ्गारग्वधश्यामात्रिवृन्मागधिकादिभिः । पिष्टैस्तैलं पचेत्क्षीरे पञ्चमूलीरसान्विते ॥ ॥ ११६॥ गुल्मानाहाग्निमान्द्यार्शोग्रहणीमूत्रसङ्गिनाम् । अनुवासनविधौ युक्तं शस्यतेऽनिलरोगिषु॥११७॥

बच, पोहकरमूल, कूठ, इलायची, मैनफल, देवदारु, सैंधानमक, काकोली, क्षीरकाकोली, मुलैठी, मेदा, महामेदा, श्योनाक, पाढ, जीरा, जीवन्ती, भारंगी, चन्दन, कायफल, धूपसरल, अगर, बेलगिरी, आमकी छाल, असगन्ध, चीता, वृद्धि, वायविडंग, अमलतास, काला निसोत, निसोत और पीपल-इन औषधियोंके कल्कके द्वारा दूध और पंचमूलके क्वाथमें तेलको पकावे। जब पकते पकते तेलमात्र अवशेष रहजाय तब उतार कर छान लेवे। गुल्म, आनाह, मन्दाग्नि, बवासीर, संग्रहणी, मूत्ररोध और वातरोगमें इस तेलको अनुवासनबस्तिके द्वारा प्रयोग करना चाहिए ॥११४॥११५॥११६॥११७॥

कांकायनगुटिका।

शटी पुष्करमूलञ्च दन्ती चित्रकमाढकी । शृङ्गवेरवचाश्चैव पलिकानि समाहरेत् ॥ ११८ ॥ त्रिवृत्तायाः पलं कुर्य्यात्रीन्कर्षांश्चैव हिंगुनः। पलं हि लवणानाञ्च यवक्षारपलं तथा ॥ ॥ ११९ ॥ द्वे पले च तथा शुण्ठ्या द्वे पले चाम्लवेतसात् ॥ १२० ॥ यवान्यजाजीमरिचं धान्यकं गिरिकर्णिका । उपकुञ्चिकाजमोदा च कुर्य्यादर्द्धपलोन्मितान् ॥ १२१ ॥ हरीतकी पले द्वे च विडङ्गं दाडिमं तथा। मातुलुङ्गरसेनैव गुटिकाः कारयेद्भिषक् ॥ १२२ ॥ एकां तासाञ्च द्वे तिस्रो गुटिकास्ताः सुखांबुना। अम्लैर्मद्यैश्च पातव्या घृतेन पयसाऽथवा ॥ १२३ ॥ एताः काङ्कायनेनोक्ताः गुटिका गुल्मभेदिकाः। अर्शोहृद्ग्रहणीरोगकृमीणाञ्च विनाशिकाः ॥ १२४ ॥ गोमूत्रेण निहन्युश्च श्लेष्मगुल्मं चिरोत्थितम् । क्षीरेण पित्तगुल्मन्तु मद्येन श्लेष्मवातिकम् ॥ १२५ ॥ त्रिफलारसमूत्राभ्यां निचयं सान्निपातिकम् । रक्तगुल्मञ्च नारीणां पयसा क्रमेण तु ॥ १२६ ॥

कचूर, पोहकरमूल, दंती, चीता, सोरठकी मिट्टी, अदरख और वच-ये प्रत्येक औषधि चार चार तोले, निसोत चार तोले, हींग ३ तोले, पांचों नमक चार२ तोले, जवाखार चार तोले, सोंठ आठ तोले, अमलबेंत आठ तोले, अजवायन, जीरा, काली मिरच, धनियाँ, विष्णुक्रांता, कलौंजी और अजमोद ये प्रत्येक औषधि दो दो तोले, हरड़ ८ तोले, वायविडंग आठ तोले और अनारदाना आठ तोले लेवे। सबको एकत्र कूट पीस कर चूर्ण बना लेवे। इस चूर्णको बिजौरेनींबूके रसमें खरल करके गोलियाँ बना लेवे। इसमेंसे प्रतिदिन एक गोली या दो गोली अथवा तीन गोली गरम जलके साथ, कांजीके साथ, मदिराके साथ, घीके साथ अथवा दूधके साथ खाय। यह गोली कांकायनऋषिने कही है। यह-गुल्मको भेदन करनेवाली, तथा बवासीर, हृदयरोग, संग्रहणीरोग और कृमिरोगको नष्ट करती हैं, इनको गोमूत्रके साथ सेवन करनेसे बहुत दिनोंका पुराना कफजगुल्म दूर होता है। इनको दूधके साथ सेवन करनेसे पित्तजगुल्म दूर होता है। मदिराके साथ पान करनेसे कफवातिकगुल्म दूर होता है। त्रिफलेके रसके साथ और गोमूत्रके साथ सेवन करनेसे सान्निपातिकगुल्म दूर होता है और ऊंटनीके दूधके साथ सेवन करनेसे स्त्रियोंका रक्तगुल्म दूर होता है॥ ११८-१२६॥

हिंग्वादिवटिका।

हिंगुत्रिकटुकवचाजमोदा धान्याजगन्धादाडिमतिन्तिडीकाः पाठाचित्रकचव्यसैन्धवविडसौवर्चलयवक्षारस्वर्जिकाः पिप्पलीमूलाम्लवेतसशटीपुष्करहपुषाजाज्यः पथ्याः। संचूर्ण्य मातुलुङ्गाम्लेन बहुशः परिभाव्य गुटिकाः कारयेत्। ततः प्रातरेकैकां वातरोगी च भक्षयेत्। एवं खलु योगो गुल्मश्वासकासारोचकहृद्रोगान् हरति अयं जन्तून्प्रति प्रयोगश्चात्यर्थमुपयुज्यत इति। इति हिंग्वादिवटिकाप्रकारः संस्कृतेनोक्तः।

हींग, त्रिकुटा, वच, अजमोद, धनियाँ, वनतुलसी, अनारदाना, विपांविल, पाढ, चीता, चव्य, सेंधानमक, विरियासंचरनमक, कालानमक, जवाखार, सज्जी, पीपलामूल, अमलवेत, कचूर, पोहकरमूल, हाऊबेर, जीरा और हरड इन सबको समान भाग लेकर कूट, पीसकर चूर्ण बनालेवे। इस चूर्णको बिजौरेनींबूके रसमें खूब खरल करके गोलियाँ बनालेवे इनमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल वातरोगी एक २ गोली खाय। यह गोली-गुल्म, श्वास, खाँसी, अरुचि, हृदयरोग इत्यादि अनेक रोगोंको दूर करती है॥

आरोग्यवटिका।

अपामार्गपलाशानां तथैवेक्षुरसस्य च स्नुह्यर्कयोर्मातुलुङ्गकुटजस्याग्निकस्य च॥ १२७॥ तिलसर्षपमूलानि दग्ध्वा भस्मानि कारयेत्। गोजाविण्मूत्रसहितं सर्पिस्तैलसमन्वितम्॥ ॥ १२८॥ त्र्यूषणं पिप्पलीमूलं चित्रकं शुष्कमूलकम्। मूर्वामतिविषां पाठां कुष्ठं भल्लातकानि च॥ १२९॥ चव्यं पूतिकरञ्जं च बिल्वं कटुकरोहिणीम्। द्वौ क्षारौ पञ्चलवणं समभागानि कारयेत्॥ १३०॥ सन्नीय चूर्णलवणैः शनैर्मृद्वग्निना पचेत्। तदग्निचूर्णं निर्धूमं कृत्वा चूर्णं सुशीतलम्॥ १३१॥ अङ्गुलीग्रहमालोड्य सुरामंडेन पाययेत्। मस्त्वारनालमूत्रैस्तु युक्तः स्याद्वातगुल्मनुत्॥ ॥ १३२॥ शूलवातोदरप्लीहपांड्वामयकिलासकम्। हन्यादारोग्यलवणं प्रशस्तं कफवातनुत्॥ १३३॥

चिरचिटा, ढाक, ईखका रस, थूहरका दूध, आकका दूध, बिजौरेनींबूकी जड, कूडेकी जड, चीतेकी जड, तिलकी जड और सरसोंकी जड-इन सबको जला कर भस्म कर लेवे। फिर इसमें गोमूत्र, बकरीका मूत्र, भेडका मूत्र, घी, तेल, त्रिकुटा, पीपलामूल, चीता, सूखीमूली, मूर्वा, अतीस, पाढ, कूठ, भिलावे, चव्य,

दुर्गंधकरंज, बेलगिरी, कुटकी, जवाखार, सज्जी और पांचों नमक ये सब समान भाग लेकर सबको एकत्र पीस कर पुटपाककी विधिसे भस्म कर ले। जब पक कर स्वयं शीतल हो जाय तब निकाल कर पीसकर चूर्ण कर लेवे। इस चूर्णको सुरामंडमें अंगुलीसे मिलाकर खाय और ऊपरसे दहीके तोडका या कांजीका अथवा गोमूत्रका अनुपान करे। यह चूर्ण वातगुल्म,शूल,वात,उदररोग,प्लीहा, पाण्डुरोग, किलास, और कफवातको नष्ट करता है ॥१२७-१३३॥

नादेयीक्षार।

नादेयी कुटजार्कशिग्रु बृहती स्नुग्बिल्वभल्लातकं, व्याघ्रीकिंशुकपारिभद्रकजटाऽपामार्गनीपाऽग्निकान् ॥ वासामुष्ककपाटलीं सलवणां दग्ध्वा जले पाचितं, हिंग्वादिप्रतिवापमेतदुदितं गुल्मोदराष्ठीलिषु॥ १३४ ॥

जलवेंत,कुडेकी छाल, आककी छाल, सहिंजनेकी छाल, बडी कटेरीकी जड, थूहरकी जड, बेलगिरी, भिलावे,कटेरी, ढाकके फल, नीमकी छाल, चिरचिटा, कदम्ब, चीता, अडूसा, मोखापाढल और पाटला नमक-इन सबको अग्निमें जला कर जलमें पकावे। जब क्षार सिद्ध हो जाय पश्चात् इसमें हींगआदि औषधियोंका छौंक दे करके सेवन करे। यह-गुल्म, उदररोग और अष्ठीलिकारोगको दूर करता है ॥१३४

हिंग्वादिचूर्ण।

हिंगूग्रगन्धाविडशुण्ठ्यजाजीहरीतकीपुष्करमूलकुष्ठम्। भागोत्तरं चूर्णितमेतदिष्टं गुल्मोदराजीर्णविषूचिकासु॥ १३५ ॥

हींग एक भाग, वच २ भाग, विडनमक ३ भाग, सोंठ ४ भाग, जीरा ५ भाग, हरड ६ भाग, पोहकरमूल ७ भाग और कूठ ८ भाग लेवे। सबको एकत्र पीसकर चूर्ण बनावे। यह चूर्ण-गुल्म, उदररोग, अजीर्ण और विषूचिकारोगको दूर करता है ॥ ॥ १३५ ॥

रक्तगुल्मकी सम्प्राप्ति निदान और लक्षण।

नवप्रसूताहितभोजना या या चामगर्भं विसृजेदृतौ वा। वायुर्हि तस्याः परिगृह्य रक्तं करोति गुल्मं सरुजं सदाहम् ॥ १३६ ॥ पैत्तस्य लिङ्गेन समानलिङ्गं विशेषणश्चाप्यपरं निबोध। यः स्पन्दते पिण्डित एव नाङ्गैश्चिरात्सशूलः समगर्भलिङ्गः ॥ स रौधिरः स्त्रीभव एव गुल्मो मासे व्यतीते दशके चिकित्स्यः॥ १३७ ॥

नवप्रसूतास्त्रीके अपथ्य सेवन करनेपर अथवा अपक्व अवस्थामें गर्भके पतित हो जाने पर या ऋतुकालमें अहितकारक भोजन करनेसे, वायु गर्भाशयमें रुधिरको जमा कर पीड़ा और दाहयुक्त गुल्मको उत्पन्न करता है। इसमें बहुतसे पित्तगुल्मके लक्षण होते हैं इसमें जो शेषकर लक्षण होते हैं,उनको कहता हूँ। वह गुल्म गोलाकार पेटमें फड़कता रहता है और उसके हाथ पांव आदि अंगोंका आकार नहीं फड़कता दीखता है और गर्भके सब लक्षण मालूम होते हैं बहुत देरमें शूल होता है। ऐसी स्त्रियोंके इस रक्तगुल्मकी चिकित्सा दश महीनेके पश्चात् करनी चाहिये ॥ १३६ ॥ १३७ ॥

रक्तगुल्मकी चिकित्सा।

रौधिरस्य तु गुल्मस्य गर्भकालक्रमेण च। सुस्निग्धस्विन्नकायायै योज्यं स्नेहविरेचनम् ॥ १३८ ॥

रक्तगुल्मवाली स्त्रीके जब गर्भका समय बीतजावे तब उसको स्निग्ध और स्वेदित करके स्नेहयुक्त विरेचन देवे ॥ १३८ ॥

शताह्वादिकल्क।

शताह्वाचिरबिल्वत्वग्दारुभार्ङ्गीकणाभवः। कल्कः पीतो जयेद्गुल्मं तिलक्काथेन रक्तजम्॥ १३९ ॥

शतावर, करंजकी छाल, देवदारु, भारंगी और पीपल इनके कल्कको तिलोंके क्वाथके साथ पान करनेसे रक्तगुल्म दूर होता है ॥ १३९ ॥

तिलक्वाथ ।

तिलक्वाथो गुडव्योषघृतभार्ङ्गीयुतो भवेत् । पानं रक्तभवे गुल्मे नष्टे पुष्पे च योषिताम् ॥ १४० ॥

तिलोंके क्वाथमें गुड, त्रिकुटेका चूर्ण, भारंगीका चूर्ण और घृत डालकर पान करनेसे स्त्रियोंका रक्तगुल्म नष्ट होता है और नष्ट हुआ रजोधर्म फिरसे उत्पन्न होता है ॥ १४० ॥

पीतः सुरारसो युक्त्या मदिरा वाऽऽशु गुल्मनुत् ॥ १४१ ॥

युक्तिपूर्वक सुराके रसको पान करनेसे अथवा मदिराको पीनेसे स्त्रियोंका रक्तगुल्म दूर होता है ॥ ॥ १४१ ॥

मुंडिरेचनिकाचूर्णं शर्करामाक्षिकान्वितम् । विदधीतास्रगुल्मिन्यां मलसंरेचनाय च ॥ १४२ ॥

गोरखमुण्डी, रेवनचीनी, खाँड और शहद इनको एकत्र पीसकर सेवन करनेसे रक्तगुल्म दूर होता है और अच्छे प्रकारसे दस्त होने लगता है ॥ १४२ ॥

पलाशक्षारघृत ।

विशेषमपरश्चास्याः शृणु रक्तप्रभेदनम् । पलाशक्षारतोयेन सर्पिः सिद्धं पिबेच्च सा ॥ १४३ ॥ यस्मिन्नवसरे क्षारतोयसाध्यघृतादिषु । फेनोद्गमस्य निष्पत्तिर्नष्टदुग्धसमाकृते । स एव तस्य पाकस्य कालो नेतरलक्षणः ॥ १४४ ॥

अब विशेष रुधिरके गुल्मको भेदन करनेवाले प्रयोग कहता हूँ। ढाकके खारके जलसे घृतको पकाकर सेवन करे तो रक्तगुल्म नष्ट होता है। जो क्षारादिके जलके द्वारा घृतको पकाना हो तो उसमें जब पकते पकते फटे हुए दूधके समान झाग आ जायँ तब उसको अच्छे प्रकारसे सिद्ध हुआ जानना वही उसके पाकका समय है ॥ १४३ ॥ १४४ ॥

कह्लारघृत ।

कह्लारमुत्पलं पद्मं कुमुदं मधुयष्टिका । पक्त्वाऽम्बुनाथ तत्क्वाथं जीवनीयोपकल्पितम् ॥ १४५ ॥ घृतं पक्त्वा नवं पीतं रक्तपित्तास्रगुल्मनुत् । दाहतृष्णाज्वरच्छर्दियोनिदोषहरं परम् ॥ १४६ ॥

गौका घी २ सेर, कल्कके लिये जीवनीयदशक आधसेर और क्वाथके लिये सुफेद कुमुद, लालकुमुद, लालकमल, नीलकमल और मुलैठी दो सेर, जल बत्तीस सेर, शेष आठ सेर रक्खे। सबको मिलाकर यथाविधिसे घृतको सिद्ध करे। इस घृतको पान करनेसे रक्तपित्त, रक्तगुल्म, दाह, तृषा, ज्वर, वमन और योनिके विकार दूर होते हैं ॥ १४५ ॥ १४६ ॥

उष्णैर्वा भेदयेद्भिन्ने विधिरसृग्दरो हितः । अतिप्रवृत्तमस्रन्तु भिन्ने गुल्मे निवारयेत् ॥ १४७ ॥ रक्तपित्तहरैर्योगैर्वातघ्नैश्च मरुद्रुदान् । गुर्वभिष्यन्दि कुर्य्याद्धि रक्षन्नग्निबलं सदा ॥ १४८ ॥ गुल्मवत्स्वन्नपानानि यथावस्थं प्रयोजयेत् ॥ १४९ ॥

रक्तगुल्मको उष्ण औषधियोंके द्वारा भेदित करे। जब भेदित हो जाय तब प्रदरनाशक विधि करनी चाहिए। जो गुल्मके भेदित होनेपर अत्यन्त रुधिरस्राव होने लगे तो तत्काल उसको रक्तपित्तनाशक औषधियोंके द्वारा बंद करे और जो उसमें वातकी पीडा हो तो वातनाशक औषधियोंके द्वारा उस पीडाको शमन करे। इसपर सदैव भारी और अभिष्यंदकारक अन्नपानोंसे अग्नि और बलकी रक्षा करनी चाहिए। इसमें यथादोषानुसार गुल्मके समान अन्नपान सेवन करने चाहिए ॥ १४७ ॥ १४८ ॥ १४९ ॥

असाध्यलक्षण ।

सञ्चितः क्रमशो गुल्मो महावास्तुपरिग्रहः । कृतशूलः शिरानद्धो यदा

कूर्म इवोन्नतः ॥ १५० ॥ दौर्बल्यारुचिहृल्लासकासच्छर्द्यरुचिज्वरैः । तृष्णातन्द्राप्रतिश्यायैर्युज्यते न स सिद्ध्यति ॥ १५१ ॥ गृहीत्वा सरुजं श्वासं छर्द्यतीसारपीडितम् । हृन्नाभिहस्तपादेषु शोथः कर्षति गुल्मिनम् ॥ ॥ १५२ ॥ श्वासः शूलं पिपासान्नविद्वेषो ग्रन्थिमूढता । जायते दुर्बलत्वञ्च गुल्मिनो मरणाय वै ॥ १५३ ॥

जो गुल्म क्रम क्रमसे संचित होकर सर्व उदरमें व्याप्त हो,शूलको उत्पन्न करे तथा शिराओंके जालसे वेष्टित हो, कछुएकी समान ऊँचा हो जाय, एवं दुर्बलता, अरुचि, उबकाई, खाँसी, वमन, अरुचि, ज्वर, तृषा, तन्द्रा और प्रतिश्याय इनसे युक्त हो तो असाध्य जानना । अथवा पीडा, श्वास, वमन, अतीसार इनसे पीडित, हृदय, नाभि, बस्ति और पांवों तक सूजन हो और शूल हो ऐसा गुल्मरोगी असाध्य है । एवं श्वास, शूल, पियास, अन्नमें अरुचि और अकस्मात् गुल्मकी गांठ लुप्त हो जाना और दुर्बलता ये सब लक्षण गुल्मरोगीके मरनेके लिए उत्पन्न होते हैं ॥ १५०॥ १५१॥ १५२ ॥ १५३ ॥

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायां
गुल्मनिदानचिकित्साधिकार
समाप्त ॥ ३२ ॥

अथ हृदयरोगाधिकार ।

हृदयरोगका निदान ।

अत्युष्णगुर्वम्लकषायतिक्तश्रमाभिघाताध्यशनप्रसङ्गैः । सञ्चिन्तनैर्वेगविधारणैश्च हृदामयः पञ्चविधः प्रदिष्टः ॥ १ ॥

अत्यन्त उष्ण, भारी, खट्टे,कषैले,कडवे ऐसे पदार्थोंको सेवन करनेसे, तथा श्रम, अभिघात,अध्यशन (भोजनपर भोजन), मैथुन, मलमूत्रादिके वेगका धारण, चिंता इत्यादि कारणोंसे हृदयरोग उत्पन्न होता है । वह वातादि सम्बन्धसे पांच प्रकारका जानना ॥ १ ॥

जठरानलदौर्बल्यादाविपक्वस्तु यो रसः । स आमसंज्ञको देहे सर्वदोषप्रकोपजः ॥ २ ॥ अन्यदोषेभ्य एवादौ विवृद्धेभ्योऽन्यमूर्च्छनात् । कोद्रवेभ्यो विषस्येव वदन्त्यामस्य सम्भवम् ॥ ३ ॥

जठराग्निके मन्द होनेसे जब भोजनका रस अपक्व रह जाता है, उसको आम कहते हैं-और वह शरीरमें स्थित हुआ अनेक प्रकारके दोषोंको कुपित करता है । और वह सर्व दोषोंके प्रकोपसे उत्पन्न होता है । वह पहिले अन्य दोषोंसे बढकर और अन्य दोषोंसे मूर्च्छित होता है, जिस प्रकार कोदोंसे विष होता है उसी प्रकार आमका होना सम्भव है ॥२॥ ॥ ३ ॥

दूषयित्वा रसं दोषा विगुणा हृदयं गताः । हृदि बाधां प्रकुर्वन्ति हृद्रोगं तं प्रचक्षते ॥ ४ ॥

दोष कुपित होकर रस धातुको दूषित करके हृदयमें पीडाको उत्पन्न करते हैं, उसको हृदयरोग कहते हैं ॥ ४ ॥

वातजहृदयरोगके लक्षण ।

आयम्यते मारुतजे हृदयन्तुद्यते तथा । निर्मथ्यते दीर्यते च स्फोट्यते पाट्यतेऽपि च ॥ ५ ॥

वातजहृदयरोगमें-हृदयमें खींचनेके समान, सुई चुभोनेके समान,फोडनेके समान, तोडनेके समान, मथनेके समान और कुल्हाडीसे चीरनेके समान पीडा होती है ॥ ५॥

हृदयरोगकी चिकित्सा ।

वातोपसृष्टे हृदये वामयेत्स्निग्धमातुरम् । द्विपञ्चमूलीक्वाथेन सुस्नेहलवणेन च ॥ ६ ॥

वातजनितहृदयरोगमें-रोगीको दशमूलके क्वाथमें तेल और सैंधानमकका चूर्ण डालकर पान कराकर वमन करावे ॥ ६ ॥

पिप्पल्यैलावचाहिंगुयवक्षारोऽथ सैन्धवम्। सौवर्चलमथो शुण्ठी ह्यजमोदा च चूर्णितम्॥ ७॥ फलधान्याम्लकौलित्थदधिमद्यवसादिभिः। पाययेच्छुद्धदेहश्च स्नेहेनान्यतमेन च॥ ८॥

पीपल, इलायची, वच, हींग, जवाखार, सैंधानमक कालानमक, सोंठ और अजमोद–इन सबका एकत्र चूर्ण कर त्रिफलाके काथके साथ, कांजीके साथ, कुलथीके यूषके साथ, दही, मदिरा, वसा अथवा अन्य किसी स्नेह पदार्थके साथ वमन विरेचनादिके लिये शुद्ध शरीरवाले हृदयरोगीको पान करावे॥ ७॥ ८॥

पुष्करादिकल्क।

सपुष्कराह्वं फलपूरमूलं महौषधं शाठ्यभया च कल्कः। क्षाराम्लसर्पिर्लवणैर्विमिश्रैः स्यद्वातहृद्रोगविकर्त्तितान्नः॥ ९॥

पोहकरमूल, बिजौरे नींबूकी जड, सोंठ, कचूर और हरड–इन सबको पीसकर कल्क बनाकर जवाखारके साथ, कांजीके साथ, घीके साथ अथवा सैंधानमकके साथ मिला कर खाय तो वातजहृदयरोग दूर होता है॥ ९॥

पुष्करादिकाथ।

काथः कृतः पौष्करमातुलुङ्गपलाशपूतीकशठीसुराह्वैः। सनागराजाजिवचायवानी सक्षार उष्णो लवणेन पेयः॥ १०॥

पोहकरमूल, बिजौरा नींबू, ढाक, दुर्गंधकरंज, कचूर और देवदारु–इनके काथमें सोंठ, जीरा, वच, अजवायन इनके काथमें जवाखार और सैंधानमक इनका चूर्ण डालकर गरम गरम पीवे तो वातजहृदयरोग दूर होता है॥ १०॥

हरीतक्यादि घृत।

हरीतकीपुष्करनागराह्वयैर्यवैर्वयस्थालवणैश्च कल्कैः। सहिंगुभिः साधितमेव सर्पिर्हितञ्च हृत्पार्श्वगदेऽनिलोत्थे॥ ११॥

हरड, पोहकरमूल, सोंठ, इंद्रजौ, गिलोय और सैंधानमक इनके कल्कके द्वारा हींग डालकर घृतको सिद्ध करे। यह घृत–हृदयरोग, पार्श्वशूल और वातके रोगोंको दूर करता है॥ ११॥

पुनर्नवादितैल।

पुनर्नवां दारु सपञ्चमूलं रास्नां यवान्कौलकपित्थबिल्वम्। पक्त्वा जले तेन पचेत्तु तैलमभ्यङ्गपानेऽनिलहृद्गदघ्नम्॥ १२॥

पुनर्नवा, देवदारु, पंचमूल, रायसन, जौ, बेर, कैथ और बेलगिरी इनके काथमें तेलको पकावे। इस तेलकी मालिश करनेसे और इसको पान करनेसे वातजहृदयरोग दूर होता है॥ १२॥

पथ्य।

बल्यमांसरसक्षीरघृतशालिश्च भोजयेत्। वातघ्नसिद्धं तैलञ्च वस्तिं दद्याद्विचक्षणः॥ १३॥

बलकारक पदार्थ, मांस, मांसरस, दूध, घी और शालिचावल तथा वातनाशक औषधियोंके द्वारा सिद्ध किये हुए तैल और वस्तिकर्म ये सब उपचार वातज हृदयरोगमें करने चाहिये॥ १३॥

पित्तजहृदयरोग लक्षण।

तृष्णोपदाहशोषाः स्युः पैत्तिके हृद्यक्लमः। धूमायनञ्च मूर्च्छा च स्वेदः शोषो मुखस्य च॥ १४॥

पित्तजहृदयरोगमें–तृषा, कुछ दाह, शोष, हृदयमें ग्लानि, धुँआ निकलतासा मालूम हो, मूर्च्छा, स्वेद और मुखशोष होता है॥ १४॥

चिकित्सा।

श्रीपर्णीमधुकक्षौद्रसितागुडजलैर्वमेत्। पित्तोपसृष्टे हृदये सेवेत मधुरैः शृतम्। घृतं कषायांश्चोद्दिष्टान्पित्तज्वरविनाशनान्॥ १५॥

पित्तजहृदयरोगमें-कुम्भेरके फल और मुलैठीके काथमें शहद, मिश्री और गुड़ डालकर वमन करावे। मधुरपदार्थोंके साथ सिद्ध किया हुआ घृत और काथ सेवन करे तथा पित्तज्वरोक्त चिकिसा करे ॥ १५ ॥

शीताः प्रदेहाः परिशोधनञ्च तथा विरेको हृदि पित्तदुष्टे । द्राक्षासिताक्षौद्रपरूषकैः स्याच्छुद्धे च पित्तापहमन्नपानम् ॥ १६ ॥

पित्तजहृदयरोगमें-चंदनादिके शीतल प्रलेप, शीतल जलका सेचन और विरेचन ये सब उपचार करे। तथा वमनविरेचनादिसे शरीरको शुद्ध करके दाख, मिश्री, मधु और फालसे एवं पित्तनाशक अन्नपान प्रयोग करे ॥ १६ ॥

पिष्ट्वा पिबेद्वापि सिताजलेन यष्ट्याह्वयं तिक्तकरोहिणीं च ॥ १७ ॥

मुलैठी और कुटकीको जलमें पीसकर मिश्रीके शर्बतसे पान करनेसे पित्तजनितहृदयरोग दूर होता है ॥ १७ ॥

अर्जुनक्षीरपाक ।

अर्जुनस्य त्वचासिद्धं क्षीरं योज्यं हृदामये । सितया पञ्चमूल्या वा बलया मधुकेन वा ॥ १८ ॥

अर्जुनवृक्षकी छालको दूधमें पकाकर मिश्री डालकर पान करे, अथवा पंचमूलको या खिरैंटीको अथवा मुलैठीको दूधमें पकाकर मिश्री मिलाकर सेवन करे तो पित्तजहृदयरोग दूर होता है ॥१८॥

ककुभादिचूर्ण।

घृतेन दुग्धेन गुडाम्भसा वा पिबन्ति चूर्णं ककुभस्त्वचो ये। हृद्रोगजीर्णज्वररक्तपित्तं हत्वा भवेयुश्चिरजीविनस्ते ॥ १९ ॥

घृत, दूध अथवा गुड़के शर्बतके साथ अर्जुनवृक्षकी छालका चूर्ण सेवन करनेसे हृदयरोग, जीर्णज्वर और रक्तपित्तरोग दूर होता है ॥ १९ ॥

कशेरुकाद्यघृत ।

कशेरुकाशैवलशृङ्गवेरप्रपौण्डरीकं मधुकं बिसञ्च । ग्रन्थिश्च सर्पिः पयसा पचेत्तैः क्षौद्रान्वितं पित्तगदामयघ्नम् ॥ २० ॥

कसेरू, जलमें होनेवाला जाल, अदरख, पुंडेरिया मुलैठी, कमलकंद और गठिवन-इनके काथके द्वारा दूधमें घृतको पकावे फिर इस घृतमें शहद डालकर सेवन करे तो पितजहृदयरोग दूर होता है ॥ २० ॥

श्रेयस्याद्यघृत ।

श्रेयसीशर्कराद्राक्षाजीवकर्षभकोत्पलैः । बलाखर्जूरकाकोलीमेदायुग्मैश्च साधितम् । सक्षीरं माहिषं सर्पिः पित्तहृद्रोगनाशनम् ॥ २१ ॥

हरड, खांड, दाख, जीवक, ऋषभक, कमल, खिरैंटी, खजूर, काकोली, मेदा और महामेदा-इनके काथके द्वारा भैंसके दूधमें भैंसके घृतको पकावे । यह घृत पित्तजहृदयरोगको दूर करता है ॥ २१ ॥

स्थिराद्यघृत ।

स्थिरादिकल्कवत्सर्पिः क्षीरेणेक्षुरसेन वा । द्राक्षारसेन पक्वं वा पित्तरोगविनाशनम् ॥ २२ ॥

शालिपर्णी आदि औषधियोंका कल्क, घी, दूध, ईखका रस और दाखोंका रस-इन सबको एकत्र मिलाकर पकावे । इस घृतको सेवन करनेसे पित्तजहृदयरोग दूर होता है ॥ २२ ॥

पथ्य ।

सक्षौद्रं वितरेद्वस्तिस्तैलं मधुकसंयुतम् ॥ २३ ॥

शहदके साथ पिचकारी लगावे और शहदके साथ तेलको सेवन करे, यह पित्तजहृदयरोगमें हितकारी है ॥ २३ ॥

कफजहृदयरोगके लक्षण ।

गौरवं कफसंस्रावोऽरुचिस्तम्भोऽग्निमार्दवम् । माधुर्य्यमपि चास्यस्य बलासो वर्तते हृदि ॥ २४ ॥

कफजहृदयरोगमें भारीपन, कफका निकलना, अरुचि, हृदयका जकड़ना, मन्दाग्नि और मुखमें मधुरता होती है ॥ और हृदयमें कफका सञ्चार होता है ॥ २४ ॥

चिकित्सा ।

हृद्रोगे कफजे स्विन्नं वमितं लङ्घितं नरम् । कफघ्नैर्भेषजैर्युञ्ज्याज्ज्ञात्वा दोषबलाबलम् ॥ २५ ॥

कफजहृदयरोगपर प्रथम पसीने निकलवावे, वमन करावे, लंघन करावे और दोषोंका बलाबल विचारकर कफनाशक औषधियोंके द्वारा चिकित्सा करे ॥ २५ ॥

वचानिम्बकषायाभ्यां वाम्यं हृदि कफोत्थिते । वातहृद्रोगहृच्चूर्णं पिप्पल्यादि च योजयेत् ॥ २६ ॥

कफजनितहृदयरोगमें—वच और नीमके क्वाथके द्वारा वमन करावे। वातजहृदयरोग नाशक जो पिप्पल्यादि चूर्ण है इसको भी इसमें प्रयोग करे ॥ २६ ॥

कुम्भीशठीबलारास्नाशुण्ठीपथ्यासपौष्कराः । चूर्णिता वा सृता मूत्रे पातव्याः कफहृद्ग्रहे ॥ २७ ॥

पाढल, कचूर, खिरैंटी, रायसन, सोंठ, हरड़ और पोहकरमूल इन सबका चूर्ण करके अथवा क्वाथ बनाकर गोमूत्रके साथ पान करे तो कफजहृदयरोग दूर होता है ॥ २७ ॥

सूक्ष्मैला मागधीमूलं प्रलीढं सर्पिषा सह । नाशयत्याशु हृद्रोगं गुल्मानपि विशेषतः ॥ २८ ॥

छोटी इलायची और पीपलामूलको पीसकर घृतमें मिलाकर सेवन करनेसे हृदयरोग और विशेषकर गुल्मरोग दूर होता है ॥ २८ ॥

तिक्तकचूर्ण ।

मुस्तैलाचन्दनोशीरजीवनीव्योषचित्रकाः । बिल्वत्वक्कटुकादारुदार्वीत्वक्पर्पटत्वचः ॥ २९ ॥ पटोलं निम्बषड्ग्रन्था ऋद्धिभूनिम्बशिग्रुकाः । चूर्णं त्रायन्तीसौराष्ट्रीकेशरातिविषाः समाः । तिक्ताख्यं हन्ति हृद्रोगं शूलहृत सन्निपातजित् ॥ ३० ॥

नागरमोथा, इलायची, चन्दन, खस, जीवनीयगणकी औषधि, त्रिकुटा. चीता, बेलकी छाल, कुटकी, देवदारु, दारुहलदीकी त्वचा, पित्तपापड़ेकी छाल, पटोलपत्र, नीम, बच, ऋद्धि, चिरायता, सहिंजना, त्रायमाण, फिटकरी, नागकेशर और अतीस ये सब औषधि समान भाग लेकर चूर्ण बनावे । यह तिक्तचूर्ण—हृदयरोग, शूल और सन्निपातको दूर करता है ॥ २९ ॥ ३० ॥

पथ्य ।

फलतैलं विदध्याच्च बस्तौ बस्तिविशारदः ॥ ३१ ॥ कौलित्थधान्यैश्च रसैर्यवान्नपानानि तीक्ष्णानि सशर्कराणि ॥ ३२ ॥

बस्तिमें—बस्तिकर्म्ममें कुशल फलोंका तेल कुलथी और धनियेंका यूष, जौ, तीक्ष्ण अन्नपान और खांड ये सब प्रयोग करे ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

त्रिदोषज और कृमिजनितहृदयरोगके लक्षण ।

विद्यात्त्रिदोषन्त्वपि सर्वलिङ्गं तीव्रार्त्तितोदं कृमिजं सकण्डूम् ॥ ३३ ॥ उत्क्लेदः ष्ठीवनं तोदः शूलं हृल्लासकस्तमः । अरुचिः श्यावनेत्रत्वं शोथश्च कृमिजे भवेत् ॥ ३४ ॥

जिसमें सर्व लक्षण मिलते हों वह त्रिदोषजहृदयरोग जानना । जिसमें तीव्र नोचनेकेसी पीड़ा हो और खुजली हो उसको कृमिजन्यहृदयरोग जानना । उत्क्लेद, वारंवार थूकना, सुई चुभानेसरीखी पीडा, शूल, उबकाई, अंधकार, अरुचि, नेत्रोंमें कृष्णता और शोथ्य ये कृमिजहृदयरोगके लक्षण हैं ॥ ३३ ॥ ३४

उपद्रव ।

क्लमः सादो भ्रमः शोषो ज्ञेयास्तेषामुपद्रवाः । कृमिजे कृमिजातीनां श्लैष्मिकाणाञ्च ये मताः ॥ ३५ ॥

क्षोम (तृषा लगनेका स्थान) में ग्लानि, भ्रम, और शोष ये हृदयरोगके उपद्रव हैं। कृमिजहृदयरोगके उपद्रव कफजकृमिरोगके समान होते हैं ॥ ३५ ॥

चिकित्सा ।

त्रिदोषजे लङ्घनमादितः स्यादन्नश्च सर्वेषु हितं विधेयम् । हीनाधिकं मध्यमवेक्ष्य चैव कार्यं त्रयाणामपि कर्म्म शस्तम् ॥ ३६ ॥

त्रिदोषजहृदयरोगमें प्रथम लंघन करावे तथा त्रिदोषनाशक अन्नपान देवे एवं दोषोंकी प्रबलता, हीनता और समता विचारकर यथाविधिसे चिकित्सा करे ॥ ३६ ॥

हृद्रोगे कृमिजे पूर्वं कुर्य्याल्लङ्घनपाचनम् । पश्चात्कृमिहरं कर्म्म कृमिरोगोक्तमाचरेत् ॥ ३७ ॥

कृमिजनितहृदयरोगमें प्रथम लंघन और पाचन करावे । पश्चात् कृमिरोगमें कही हुई कृमिनाशक चिकित्सा करनी चाहिए ॥ ३७ ॥

कृमिजे च पिबेन्मूत्रं विडंगामयसंयुतम् । हृदि स्थिताः पतन्त्येव ह्यधस्तात्कृमयो नृणाम् ॥ ३८ ॥

कृमिजनितहृदयरोगमें वायविडंग और कूटको एकत्र पीसकर गोमूत्रके साथ पान करे तो पेटमें स्थित असाध्यकृमि गिर जाते हैं ॥ ३८ ॥

कृमिहृद्रोगिणां स्निग्धं भोजयेत्पिशितोदनम् । दध्ना च पललोपेतं त्र्यहं पश्चाद्विरेचयेत् ॥ ३९ ॥

कृमिजन्यहृदयरोगीको प्रथम स्निग्ध करके पश्चात् मांसके साथ भात भक्षण करावे । और तीन दिनतक दहीके साथ मांस खिलाकर पीछे विरेचन देवे॥३९॥

सुगन्धिभिः सलवणैर्योगैः साजाजिशर्करैः।विडङ्गाढ्यैर्धान्याम्लं पाययेत्सिद्धमुत्तमम् ॥ ४० ॥

अनेकप्रकारके सुगंधित, नमकीन तथा जीरा और खाँड मिले हुए ऐसे योगोंके साथ धानोंकी कांजीको वायविडंगका चूर्ण डालकर पान करावे॥४०

यवान्नं वितरेच्चास्मै सविडङ्गमतः परम् ॥ ४१ ॥

भोजनके लिये वायविडंगके साथ जौका अन्न देवे ॥ ४१ ॥

चूर्णं पुष्करजं लिह्यान्माक्षिकेण समायुतम् ।हृच्छूलश्वासकासघ्नं क्षयहिक्कानिवारणम् ॥ ४२ ॥

पोहकरमूलके चूर्णको शहदमें मिलाकर चाटनेसे हृदयशूल, श्वास, खाँसी, क्षय और हिक्कारोग दूर होता है ॥ ४२ ॥

हिङ्गुसौवर्चलं विश्वं दाडिमं साम्लवेतसम् । चूर्णमुष्णाम्बुना पेयं श्वासहृद्रोगशान्तये ॥ ४३ ॥

हींग, कालानमक, सोंठ, अनार दाना और अमलवेंत-इन सबको एकत्र पीसकर चूर्ण बनाकर गरम-जलके साथ पान करनेसे श्वास और हृदयरोग शांत होता है ॥ ४३ ॥

हिंगूग्रगन्धाविडविश्वकृष्णाकुष्ठाभयाचित्रकयावशूकम् । पिबेत्ससौवर्चलपुष्कराढ्यं यवाम्भसा शूलहृदामयघ्नम् ॥ ४४ ॥

हींग, वच, वायविडंग, सोंठ, पीपल, कूठ,हरड, चीता, जवाखार, कालानमक और पोहकर मूल-इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण बनाकर जौकी कांजीके साथ पान करनेसे शूल और हृदयरोग दूर होता है ॥ ४४ ॥

दशमूलकषायन्तु लवणक्षारयोजितम् । कासं श्वासश्च हृद्रोगं गुल्मशूलश्च नाशयेत् ॥ ४५ ॥

दशमूलके क्वाथमें सैंधानमक और जवाखारका चूर्ण डालकर पान करनेसे खाँसी, श्वास, हृदयरोग, गुल्म और शूल नष्ट होता है ॥ ४५ ॥

घृतेन दुग्धेन गुडाम्भसा वा पिबन्ति चूर्णं ककुभस्त्वचोत्थम् । हृद्रोगजीर्णज्वररक्तपित्तं हत्वा भवेयुश्चिरजीविनस्ते ॥ ४६ ॥

अर्जुनकी छालको चूर्णके घीके साथ, दूधके साथ अथवा गुड़के शर्बतके साथ पान करनेसे हृदयरोग, जीर्णज्वर और रक्तपित्तरोग दूर होते हैं ॥ ४६ ॥

हरीतकी वचा रास्ना पिप्पल्यो विश्वभेषजम्। शटी पुष्करमलश्च चूर्णं हृद्रोगनाशनम् ॥ ४७ ॥

हरड, वच, रायसन, पीपल, सोंठ, कचूर और पोहकरमूल इनका चूर्ण–हृदयरोगनाशक है ॥ ४७ ॥

पुटदग्धं हरिणशृङ्गं पिष्टं गव्येन सर्पिषा पिबतः। हृत्पृष्ठशूलमाचिरादुपैति शान्तिं सुकष्टमपि ॥ ४८ ॥

सावद हिरनके सींगको पुटपाककी विधिसे जलाकर भस्म करलेवे, इस भस्मको घीमें पीसकर पीनेसे बहुत पुराना और कष्टसाध्य हृदयशूल तथा पृष्ठशूल नष्ट होता है ॥ ४८ ॥

तैलाज्यगुडविपक्वं चूर्णं गोधूमपार्थजं वापि। पिबति पयसा यः स भवेज्जितसकलहृदामयः पुरुषः ॥४९॥

गेहूँ और अर्जुनकी छालके चूर्णका तेल, घी और गुडमें पकाकर दूधके साथ पान करनेसे सर्वप्रकारका हृदयरोग दूर होता है ॥ ४९ ॥

गोधूमककुभश्चूर्णं छागपयोगव्यसर्पिषा पक्वम्। मधुशर्करासमेतं शमयति हृद्रोगमुद्धतं पुंसाम् ॥ ५० ॥

गेहूँ और कोहकी छालके चूर्णको बकरीके दूध और गौके घीमें पकाकर शहद और खांड मिलाकर सेवन करनेसे दारुण हृदयरोग दूर होता है॥ ५० ॥

वल्लभघृत।

मुख्यं शतार्द्धं तु हरीतकीनां सौवर्चलस्यापि पलद्वयञ्च। सिद्धं घृतं वल्लभकं हि नाम्ना हृत्कासगुल्मोदरमारुतघ्नम् ॥ ५१ ॥

उत्तमहरड़ ५० और कालानमक ८ तोले, इनके कल्कके द्वारा घृतको सिद्ध करे। यह घृत–हृदयरोग, खाँसी, गुल्म, उदररोग और वातरोगोंको दूर करता है ॥ ५१ ॥

क्षीरवल्लभघृत।

शतार्धमभयानान्तु सौवर्चलपलद्वयम्। पचेत्कल्कैर्घृतप्रस्थं कृत्वा क्षीरं चतुर्गुणम्। घृतं वल्लभकं नाम्ना श्रेष्ठं स्यादपतन्त्रके ॥ ५२ ॥

हरड ५०, कालानमक ८ तोले इनके कल्कके द्वारा एक प्रस्थ घीको चौगुने दूधमें पकावे। यह क्षीरवल्लभघृत–हृदयरोग और अपतंत्रकरोगको दूर करता है ॥ ५२ ॥

अर्जुनघृत।

पार्थस्य कल्कं स्वरसेन सिद्धं शस्तं घृतं सर्वहृदामयघ्नम् ॥ ५३ ॥

अर्जुनके क्वाथ और कल्कके द्वारा घृतको पकावे यह घृत–सर्वप्रकारके हृदयके रोगोंको दूर करता है ॥ ५३ ॥

बलाद्यघृत।

घृतं बला नागबलार्जुनांबुसिद्धं सयष्टीमधुकल्कपादम्। हृद्रोगशूलं क्षतरक्तपित्तकासानिलासृक्छमयत्युदीर्णम् ॥ ५४ ॥

खिरैंटीके और नागबलाके और अर्जुनके क्वाथमें चौथाई भाग मुलैठीका कल्क डालकर घृतको सिद्ध करे। यह घृत–हृदयरोग, शूल, क्षत, रक्तपित्त खाँसी और दारुणवातरक्त को दूर करता है ॥५४॥

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायां हृदयरोगाधिकार समाप्तः ॥ ३३ ॥

अथ उरोग्रहाधिकार।

उरोग्रहनिदान और सम्प्राप्तिलक्षण।

अत्यभिष्यन्दि गुर्वन्नशुष्कपूत्यामिषाशनात्। सास्रं मांसं यकृत्प्लीहं

मद्यो वृद्धिं यथा गतम् ॥ १ ॥ उरोग्रहं तदा कुक्षौ कुरुतः कफमारुतौ । सस्तम्भं सरुजं घोरं रूक्षं स्पर्शासहं गुरुम् ॥ २ ॥ आध्मानकुक्षिहृच्छोथवातविण्मूत्ररोधता । तन्द्रारोचकशूलानि तत्र लिङ्गानि निर्दिशेत् ॥ ३ ॥

अत्यन्त अभिष्यंदी पदार्थ, भारी अन्न और सूखे तथा दुर्गंधित मांसको भक्षण करनेसे, मांस और रुधिरके संयोगसे यकृत् और प्लीहा, जिससमय वृद्धिको प्राप्त होते हैं, उसी समय कफ और वात कुक्षिमें जाकर उरोग्रहरोगको उत्पन्न करते हैं।स्तम्भ, घोर पीडा, ज्वर,रूक्षता,स्पर्शको न सहसकना,गुरुता, आध्मान, कुक्षि और हृदयमें सूजन, अधोवायुका अवरोध, मलमूत्रका रुकजाना, तन्द्रा, अरुचि और शूल ये सब लक्षण उरोग्रहरोगमें होते हैं ।।१।।२।।३।।

चिकित्सा ।

अत्राशु स्वेदनं युक्त्या दहनं रक्तमोक्षणम् । तीक्ष्णैर्निरूहणं चैकं क्रमात्तत्क्षणमादरात् ॥ ४ ॥ पुत्रजीवकशिग्रूत्थाः सूर्य्यावर्त्तबलोद्भवाः । रसा एकैकशः कोष्णाद्धिंशो वा रामठान्विताः ॥ ५ ॥ सपञ्चलवणाः पेयाः त्रिवृद्गुडसुकाल्पिताः । तं प्रवृत्तं यथालाभं मूत्रतैलसुरासवैः ॥ ६ ॥ दध्याम्लवेतसक्षारान्सरामठसचित्रकान् । पिबेत्तैलारनालाभ्यामुरोग्रहनिवृत्तये॥ ॥ ७ ॥ यथातुरेणात्र कृतस्य कर्मणो विधेर्विरोधो न भवेन्मनागपि । यथा बलं वीक्ष्य च शुद्धविग्रहं तथाविधं पथ्यमिति प्रयोजयेत् ॥ ८ ॥

उरोग्रहरोगमें प्रथम युक्तिपूर्वक स्वेद, लोहादिकी शलाकाके द्वारा दाग, रक्तमोक्षण और तीक्ष्ण औषधियोंके द्वारा निरूह बस्ति ये सब कर्म क्रमसे प्रयोग करे। जियापोता, सहिंजना, हुलहुल और खिरेंटी इनमेंसे किसी एकके रसको गरम करके उसमें हींग और पांचोंनमक डालकर पान करनेसे उरोग्रह शांत होता है । अथवा निसोत और गुड़ एकत्र कर गोमूत्र, तेल, सुरा या आसवके साथ पीसकर सेवन करनेसे, या दही, अमलवेंत, जवाखार, हींग और चीता समान भाग लेकर तेल और कांजीके साथ पान करनेसे उरोग्रहरोग दूर होता है । उरोग्रहरोगीको बलके अनुसार वमन, विरेचनादिके द्वारा शुद्धकर रोगको दूर करनेवाली पथ्य देवे ॥ ४-८ ॥

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायां उरोग्रह-
निदानचिकित्साधिकार
समाप्त ॥ ३४ ॥

मूत्रकृच्छ्ररोगाधिकार ।



मूत्रकृच्छ्रका निदान ।

व्यायामतीक्ष्णौषधरूक्षमद्यप्रसङ्गनित्यद्रुतपृष्ठयानात् । आनूपमत्स्याध्यशनादजीर्णात्स्युर्मूत्रकृच्छ्राणि नृणां तथाष्टौ ॥ १ ॥

व्यायाम (दंड, कसरत आदि),तीक्ष्ण औषधियोंका सेवन, रूखे पदार्थोंका भक्षण, सदैव मद्यपान करना, नित्य मैथुन, घोडे आदिपर चढकर दौडना, अधिक जलवाले या अनूप देशकी मछलियोंको खाना, भोजनपर भोजन करना और अजीर्ण-इन कारणोंसे मनुष्योंके आठप्रकारका मूत्रकृच्छ्ररोग उत्पन्न होता है ॥ १ ॥

संप्राप्ति ।

पृथग्मलाः स्वैः कुपिता निदानैः सर्वेऽथवा कोपमुपेत्य बस्तौ । मूत्रस्य मार्गं परिपीडयन्ति यदा तदा मूत्रयतीह कृच्छ्रात् ॥ २ ॥

अपने अपने कारणोंसे वातादिदोष अलग २ कुपित होकर अथवा सब एकसाथ कुपित होकर मूत्राशयमें जाकर मूत्रके मार्गको पीडित करते हैं,तब मनुष्य बडे कष्टसे मूतता है ॥ २ ॥

वातोत्पन्नमूत्रकृच्छ्रके लक्षण।

तीव्रा हि रुग्वंक्षणबस्तिमेढ्रे स्वल्पं मुहुर्मूत्रयतीह वातात्।

वातजमूत्रकृच्छ्रमें वंक्षण, बस्ति और लिंगमें अत्यंत पीडा होती है और वारंवार थोड़ा थोड़ा मूत्र उतरता है।

पित्तोत्पन्नमूत्रकृच्छ्रके लक्षण।

पीतं सरक्तं सरुजं सदाहं कृच्छ्रं मुहुर्मूत्रयतीह पित्तात् ॥ ३ ॥

पित्तजमूत्रकृच्छ्रमें पीला, किंचित् लाल, पीडासहित और दाहयुक्त थोडा २ अत्यन्त कठिनतासे मूतता है ॥ ३ ॥

कफजमूत्रकृच्छ्रके लक्षण।

बस्तेः सलिङ्गस्य गुरुत्वशोथौ मूत्रं सपिच्छं कफमूत्रकृच्छ्रे।

कफजमूत्रकृच्छ्रमें वस्ति और लिंगमें भारीपन हो तथा सूजन और मूत्रमें पिच्छिलता होती है।

सन्निपातोद्भवमूत्रकृच्छ्रके लक्षण।

सर्वाणि रूपाणि तु सन्निपाताद्भवंति तत्कृच्छ्रतमञ्च कृच्छ्रम् ॥ ४ ॥

त्रिदोषजमूत्रकृच्छ्रमें सब लक्षण होते हैं। यह अत्यन्त कष्टसाध्य है ॥ ४ ॥

शल्यजमूत्रकृच्छ्रके लक्षण।

मूत्रवाहिषु शल्येन क्षतेष्वभिहतेषु च। मूत्रकृच्छ्रं तदाघाताज्जायते भृशदारुणम्। वातकृच्छ्रेण तुल्यानि तस्य लिङ्गानि निर्दिशेत् ॥ ५ ॥

मूत्रके वहानेवाली जो नाडियां हैं उनमें किसी प्रकारका घाव होनेसे अथवा चोट लगनेसे अत्यन्त भयंकर मूत्रकृच्छ्र उत्पन्न होता है। इसके लक्षण वातजमूत्रकृच्छ्रके समान होते हैं ॥ ५ ॥

पुरीषजमूत्रकृच्छ्रके लक्षण।

शकृतस्तु प्रतीघाताद्वायुर्विगुणतां गतः। आध्मानं वातशूलञ्च मूत्रसङ्गं करोति च ॥ ६ ॥

मलके वेगको रोकनेसे वायु कुपित होकर पेटका फूलना, वातशूल और मूत्रका अवरोध करती है॥६॥

अश्मरीजन्यमूत्रकृच्छ्रके लक्षण।

अश्मरीहेतुतत्पूर्वं मूत्रकृच्छ्रमुदाहरेत् ॥ ७ ॥

जो मूत्रकृच्छ्र अश्मरीके कारणोंसे होता है उसको अश्मरीमूत्रकृच्छ्र कहते हैं ॥ ७ ॥

शुक्रजमूत्रकृच्छ्रके लक्षण।

शुक्रे दोषैरुपहते मूत्रमार्गे विधारिते। सशुक्रं मूत्रयेत्कृच्छ्राद्बस्तिमेहनशूलवान् ॥ ८ ॥

वातादिक दोषोंसे वीर्य दूषित होकर मूत्रमार्गको रोक देता है तब मनुष्यके मूत्राशय और लिंगमें शूल होता है और वह शुक्रसंयुक्त कठिनतासे मूतता है॥८॥

अश्मरी, शर्करा इनदोनोंकाअवांतरभेद।

अश्मरी शर्करा चैव तुल्यसम्भवलक्षणे। विशेषणं शर्करायाः शृणु कीर्त्तयतो मम ॥ ९ ॥ पच्यमानाश्मरी पित्ताच्छोष्यमाणा च वायुना। विमुक्तकफसन्धाना क्षरन्ती शर्करा मता ॥ १० ॥ हृत्पीडा वेपथुः शूलं कुक्षावग्निस्तु दुर्बलः। तया भवति मूर्च्छा च मूत्रकृच्छ्रञ्च दारुणम् ॥११॥

अश्मरी और शर्कराके लक्षण समान ही हैं, परन्तु कुछ थोड़ासा अन्तर है सो कहते हैं।पित्तसे पकनेवाली वातसे सूखनेवाली और कफसे छूटनेवाली ऐसी पथरी मूत्रके मार्गसे रेतेके समान झरने लगे, उसको शर्करा कहते हैं। उस शर्कराके कारण हृदयमें पीडा, कम्प, कोखमें शूल, मन्दाग्नि, मूर्च्छा और घोर मूत्रकृच्छ्ररोग उत्पन्न होता है ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥

चिकित्सा।

अभ्यञ्जनस्नेहनिरूहबस्तिस्वेदोपनाहोत्तरबस्तिसेकान्। स्थिरादिभिर्वातहरैश्च सिद्धान्दद्याद्रसांश्चानिलमूत्रकृच्छ्रे ॥ १२ ॥

वायुसे मूत्रकृच्छ्र हुआ हो तो वैद्य रोगीको अभ्यंग (तैलादिकी मालिश), स्नेहपान, निरूहवस्ति तथा उत्तरवस्ति देवे वस्तिस्थानके ऊपर योग्य औषधियोंको बँधवावे, घी आदिसे वस्तिस्थानको सिद्ध करावे तथा वातनाशक शालपर्णी आदि पदार्थोंसे पकाये हुए रस पिलावे ॥ १२ ॥

अमृता नागरा धात्री वाजिगन्धा त्रिकण्टकम् । प्रपिबेद्वातरोगार्तः शूलवान्मूत्रकृच्छ्रवान् ॥ १३ ॥

गिलोय, सोंठ, आमले, असगन्ध और गोखरू इनका क्वाथ बना कर पान करे तो वातसम्बन्धीय रोग,शूल और मूत्रकृच्छ्ररोग नष्ट होता है ॥ १३ ॥

पुनर्नवाद्यमिश्रक ।

पुनर्नवैरण्डशतावरीभिः पत्तूरवृश्चीरबलाश्मभिद्भिः । द्विपञ्चमूलेन कुलित्थकेन यवैश्च तोयोत्क्वथिते कषाये १४॥ तैलं वराहर्क्षवसाघृतञ्च तैरेव कल्कैर्लवणैश्च सिद्धम् । तन्मात्रयात्र प्रतिहन्ति पीतं शूलान्वितं मारुतमूत्रकृच्छ्रम् ॥ १५ ॥

पुनर्नवा, अण्ड, शतावर, पतंग,पुनर्नवा, खिरैंटी, पाषाणभेद, दशमूल, कुलथी और जौ इनका क्वाथ बनाकर उस क्वाथमें इन्हीं पदार्थोंका कल्क डाल कर तथा सैंधानमक डाल कर पकाया हुआ तेल, और सुअरकी चर्बी, रीछकी चर्बी और घी इनको उचित मात्रानुसार पान करनेसे शूलसहित वायुसम्बन्धी मूत्रकृच्छ्ररोग दूर होता है ॥ १४ ॥ १५ ॥

पित्तजमूत्रकृच्छ्रकी चिकित्सा ।

सेकावगाहाः शिशिराः प्रदेया ग्रैष्मो विधिर्बस्तिपयोविकाराः । द्राक्षाविदारीक्षुरसैर्घृतैश्च कृच्छ्रेषु पित्तप्रभवेषु कुर्य्यात् ॥ १६ ॥

पित्तजमूत्रकृच्छ्रमें वैद्य रोगीके वस्तिस्थानपर जल, चंदन आदि शीतल पदार्थोंका सेचन करावे, तथा शीतल जलमें घुसकर स्नान करावे, खस, चंदनादि शीतल पदार्थोंका लेप करे,ग्रीष्मऋतुके अनुसार उपचार करे और दाखका रस,विदारीकंदका रस,ईखका रस तथा घी इनकी उत्तरवस्ति लगावे तथा इन्हीं पदार्थोंको डालकर दूधके बने पदार्थ खिलावे ॥१६॥

तृणपंचमूल ।

कुशः काशः शरो दर्भ इक्षुश्चेति तृणोद्भवम् । पित्तकृच्छ्रहरं पञ्चमूलं बस्तिविशोधनम् ॥१७॥ एतत्सिद्धं पयः पीतं मेढ्रगं हन्ति शोणितम् ॥ १८ ॥

कुशा,काँस,रामसर, डाभ और ईख इन पांचोंकी जड़को तृणपंचमूल कहते हैं ।इस पंचमूलका उपयोग करनेसें पित्तसम्बन्धी मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है और मूत्राशय शुद्ध होता है । इस पंचमूलको दूधमें औटा कर पान करनेसे लिंगसे रुधिरका गिरना बंद होता है ॥ १७ ॥ १८ ॥

शतावर्य्यादिक्वाथ ।

शतावरीकासकुशाश्वदंष्ट्राविदारिशालीक्षुकशेरुकाणाम् । क्काथं सुशीतं मधुशर्कराभ्यां युक्तं पिबेत्पैत्तिकमूत्रकृच्छ्रे ॥ १९ ॥

शतावर, काँस, कुशा,गोखरू,विदारीकंद, शालिचावल,ईख और कशेरू इनका क्वाथ बना कर शीतल करके उसमें शहद और घी डाल कर पीनेसे पित्तज मूत्रकृच्छ्ररोग दूर होता है ॥ १९ ॥

एर्वारुबीजादिपान ।

एर्वारुबीजं मधुकं सदार्वी पैत्ते पिबेत्तण्डुलधावनेन । दार्वीं तथैवामलकीरसेन समाक्षिकं पित्तकृते च पित्ते २०

खीरेके बीज,मुलैठी और दारुहलदी इनको चावलोंके जलमें पीस कर पान करनेसे अथवा दारुहलदीको पीस कर आमलोंके रसके साथ शहद मिलाकर पान करनेसे पित्तजनित मूत्रकृच्छ्ररोग दूर होता है ॥ २० ॥

हरीतक्यादिक्वाथ ।

हरीतकीगोक्षुरराजवृक्षपाषाणभिद्धन्वयवासकानाम् । क्काथं पिबेन्मा-

क्षिकसंप्रयुक्तं कृच्छ्रे सदाहे सरुजे विबन्धे ॥ २१ ॥

हरड, गोखरू, अमलतास, पाषाणभेद और धमासा इनका काथ बना कर शहद डाल कर पान करनेसे पित्तज मूत्रकृच्छ्र, दाह, विबन्ध और पीडा शांत होती है ॥ २१ ॥

शतावरीघृत ।

शतावरीकासकुशाश्वदंष्ट्राविदारिकेक्ष्वामलकैश्च सिद्धम् । सर्पिः पयो वा सितया विमिश्रं कृच्छ्रेषु पित्तप्रभवेषु योज्यम् ॥ २२ ॥

शतावर, काँस, कुशा, गोखरू, विदारीकन्द, ईख और आमले इनके काथ और दूधमें घृतको पकावे। फिर इस घृतमें मिश्री मिलाकर सेवन करे तो पित्तजनित मूत्रकृच्छ्ररोग दूर होता है ॥ २२ ॥

त्रिकण्टाद्यघृत ।

त्रिकण्टकैरण्डकुशाद्यभीरुकर्कारुकेक्षुस्वरसेन सिद्धम् । सर्पिर्गुडार्द्धांशयुतं प्रयोज्यं कृच्छ्राश्मरीमूत्रविघातदोषे । अयं विशेषेण पुरा विधेयः सर्वाश्मरीणां प्रचुरः प्रयोगः ॥ २३ ॥

गोखरू, अरंड, कुशा आदिकी जड, शतावर, ककडीके बीज और ईखका स्वरस इनको घीमें पकावे, फिर इसमें आधा भाग गुड डाल कर खाय तो इससे मूत्रकृच्छ्र, पथरी और मूत्राघात दूर होता है। इस उत्तम प्रयोगको विशेषकर सब प्रकारकी पथरीमें प्रयोग करना चाहिए ॥ २३ ॥

कफजमूत्रकृच्छ्रचिकित्सा ।

क्षारोष्णतीक्ष्णौषधमन्नपानं स्वेदो यवान्नं वमनं निरूहाः । तक्रञ्च तिक्तोषणसिद्धतैलान्यभ्यंगपानं कफमूत्रकृच्छ्रे ॥ २४ ॥

क्षार, उष्ण तथा तीक्ष्ण औषधि, अन्नपान, स्वेदन, जौका भोजन, वमन, निरूहणवस्ति, तक्र और कडवे पदार्थोंसे और उष्ण पदार्थोंसे पकाये हुए तेलका अभ्यंग करनेसे अथवा उक्त तेलका पान करनेसे कफज मूत्रकृच्छ्र रोग नष्ट होता है ॥ २४ ॥

मूत्रेण सुरया वापि कदलीस्वरसेन वा । कफकृच्छ्रविनाशाय सूक्ष्मं पिष्ट्वा त्रुटिं पिबेत् ॥ २५ ॥

अथवा छोटी इलायचीको गोमूत्रके साथ या सुराके साथ किंवा केलेके स्वरसमें बारीक पीसकर गोली बना कर सेवन करे तो कफजनितमूत्रकृच्छ्र रोग दूर होता है ॥ २५ ॥

तक्रेण युक्तं शितिवारकस्य बीजं पिबेन्मूत्रविघातहेतोः । पिबेत्तथा तंडुलधावनेन प्रवालचूर्णं कफमूत्रकृच्छ्रे ॥ २६ ॥

शिरिआरीके बीजोंको तक्रमें पीस कर पान करनेसे मूत्राघातरोग दूर होता है मूँगेकी भस्म पीस कर चावलोंके जलके साथ पान करनेसे कफजमूत्रकृच्छ्ररोग दूर होता है ॥ २६ ॥

त्रिदोषजमूत्रकृच्छ्रकी चिकित्सा ।

सर्वं त्रिदोषप्रभवे च कृच्छ्रे स्थानानुपूर्व्या प्रसमीक्ष्य कार्य्यम् । त्रिभ्योऽधिके प्राग्वमनं कफे स्यात्पित्ते विरेकः पवने च बस्तिः ॥ २७ ॥

तीनों दोषोंसे मूत्रकृच्छ्र हुआ होय तो वायुके स्थानकी आनुपूर्वीपनसे अर्थात् वायुसे लेकर जो कफपर्यंत उपचार कहे हैं उन सबको मिश्रित करके प्रयोग करे विशेष कर दोषोंकी अवस्था देख कर मिश्रित उपचार करे। त्रिदोषज मूत्रकृच्छ्रमें जो कफाधिक्य हो तो प्रथम वमन, पित्त अधिक हो तो विरेचन और वाताधिकमें बस्ति प्रदान करे ॥ २७ ॥

बृहतीधावनीपाठायष्टीमधुकलिङ्गकाः । पाचनीयो बृहत्यादिः कृच्छ्रदोषत्रयापहः ॥ २८ ॥

बड़ी कटेरी, पृष्ठपर्णी, पाढ, मुलैठी और इन्द्रजौ इनका काथ बनाकर पीनेसे त्रिदोषजनित मूत्रकृच्छ्र रोग दूर होता है ॥ २८ ॥

गुडेन मिश्रितं क्षीरं कदुष्णं कामतः पिबेत् । मूत्रकृच्छ्रेषु सर्वेषु शर्करावातरोगनुत् ॥ २९ ॥

अथवा गुड़को दूधमें डालकर किंचित् उष्ण करके इच्छानुसार पान करनेसे सर्व प्रकारके मूत्रकृच्छ्र, शर्करा और वातरोग नष्ट होते हैं ॥ २९ ॥

अभिघातजनितचिकित्सा ।

मूत्रकृच्छ्रेऽभिघातोत्थे वातकृच्छ्रक्रिया मता । पञ्चवल्कलकल्कलेपः कवोष्णोऽत्र मूत्राशयगे ॥ ३० ॥

चोट आदिके लगनेसे जो मूत्रकृच्छ्र उत्पन्न हुआ हो तो वातजमूत्रकृच्छ्रके समान चिकित्सा करे। पंचक्षीरीवृक्षोंकी छालको जलमें पीस कर कुछएक गरम करके मूत्राशयपर लेप करनेसे अभिघातजनित मूत्रकृच्छ्ररोग दूर होता है ॥ ३० ॥

मद्यं पिबेद्वा ससितं ससर्पिः शृतं पयश्चापि सिताज्ययुक्तम् । धात्रीरसं चेक्षुरसं पिबेद्वा कृच्छ्रे सरक्ते मधुना विमिश्रम् ॥ ३१ ॥

मूत्रकृच्छ्रमें जो रुधिरसहित मूत्र उतरता हो तो घी, मिश्री तथा शहद इनके साथ मिलाकर मद्य पीवे अथवा औटाया हुआ दूध शहदके साथ तथा आधा-भाग मिश्री डाल कर पीवे। अथवा आमलोंका रस और ईखकी रस इनको मिला कर उसमें शहद डाल-कर पान करे ॥ ३१ ॥

शुक्रजमूत्रकृच्छ्रकी चिकित्सा ।

लेह्यं शुक्रविबन्धोत्थे शिलाजतु समाक्षिकम् । वृष्यैर्बृंहितधातोश्च विधेयाः प्रमदोत्तमाः ॥ ३२ ॥

वीर्य्यदोषसे मूत्रकृच्छ्र हुआ हो तो शिलाजीतको शहदमें मिला कर चाटे। इससे वीर्य्यदोषजनित मूत्रकृच्छ्र रोग दूर होता है। अथवा इसमें रोगीको पुष्टिकारक पदार्थ भक्षण करा कर वीर्यको बढ़ावे, पश्चात् उत्तम स्त्रियोंसे रमण करावे ॥ ३२ ॥

एलाहिंगुयुतं क्षीरं सर्पिर्मिश्रं पिबेन्नरः । मूत्रहृद्रोगशुद्ध्यर्थं शुक्रदोषहरं परम् ॥ ३३ ॥

इलायची, हींग और घी इनको दूधमें डाल कर पान करनेसे मूत्र और हृदय शुद्ध होता है तथा वीर्य्यके दोष नष्ट होते हैं ॥ ३३ ॥

मलजनितमूत्रकृच्छ्ररोगके लक्षण ।

स्वेदचूर्णक्रियाऽभ्यङ्गबस्तयः स्युः पुरीषजे । कृच्छ्रे तत्र विधिः कार्य्यो सर्वशुक्रविबन्धजित् ॥ ३४ ॥

मलके रोकनेसे जो मूत्रकृच्छ्र हुआ हो तो स्वेदन-योग्य चूर्णोंका सेवन, तैलादिककी मालिश और वस्ति कर्म्म करे। तथा शुक्रविबन्धनाशक समस्त विधि करनी चाहिए ॥ ३४ ॥

क्वाथो गोक्षुरबीजस्य यवक्षारयुतः सदा । मूत्रकृच्छ्रं शकृज्जन्म पीतः शीघ्रं नियच्छति ॥ ३५ ॥

गोखरुओंका क्वाथ बना कर उसमें जवाखार डाल कर पान करनेसे पुरीषजनित मूत्रकृच्छ्र दूर होता है ॥ ३५ ॥

अश्मरीजनितमूत्रकृच्छ्रकी चिकित्सा ।

सप्तच्छदारग्वधकेतकैलाः निम्बः करञ्जः कुटजो गुडूची । साध्या जले तेन पचेद्यवागूं सिद्धं कषायं मधुसंयुतं वा ॥ ३६ ॥

सतौना, अमलतास, केतकी, इलायची, नीमकी छाल, करंज, कुडेकी छाल और गिलोय इनका क्वाथ बनाकर उसमें शहद डालकर सेवन करे अथवा इस क्वाथसे यवागू बना कर खाय तो पथरीसे उत्पन्न हुआ मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ ३६ ॥

एर्वारुबीजकल्कश्च श्लक्ष्णं पिष्टाक्षसंमितः । धान्याम्ललवणैः पेयो मूत्रकृच्छ्रविनाशनः ॥ ३७ ॥

अथवा एक तोला प्रमाण ककडीके बीजोंको पीस कर कांजी और सैंधानमक मिलाकर सेवन करनेसे मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ ३७ ॥

त्रिकण्टकारग्वधदर्भकाशदुरालभापर्वतभेदपथ्याः । निघ्नंति पीता मधुनाश्मरीन्तु संप्राप्तमृत्योरपि मूत्रकृच्छ्रम् ॥ ३८ ॥

गोखरू, अमलतास, डाभ, काँस, धमासा, पाषाणभेद और हरड़–इनको एकत्र पीसकर शहद मिलाकर पान करनेसे अश्मरीजनित संप्राप्त मृत्युवाला भी मूत्रकृच्छ्ररोग दूर होता है ॥ ३८ ॥

निर्दग्धिकायाः स्वरसं कुडवं मधुसंयुतम् । मूत्रदोषहरं पीत्वा नरः सम्पद्यते सुखम् ॥ ३९ ॥

कटेरीके सोलह तोले स्वरसमें शहद डालकर पान करनेसे मूत्रकृच्छ्ररोगी अच्छा होता है ॥ ३९ ॥

कषायोऽतिबलामूलसाधितोऽशेषकृच्छ्रजित् ।

खिरैंटीकी जड़का काथ बनाकर पान करनेसे मूत्रकृच्छ्ररोग नष्ट होता है ।

पीतश्च त्रपुसीबीजं सतिलाज्यं पयोन्वितम् ॥ ४० ॥

खीरेके बीज और तिल इनको एकत्र पीसकर घी और दूधके साथ पान करनेसे मूत्रकृच्छ्ररोग दूर होता है ॥ ४० ॥

त्रिफलायाः सुपिष्टायाः कल्कं कोलसमन्वितम् । वारिणा लवणीकृत्य पिबेन्मूत्ररुजापहम् ॥ ४१ ॥

त्रिफला और वेर इनका कल्क बना कर उसमें किंचित् नमक डाल कर पान करनेसे मूत्रकृच्छ्र रोग नष्ट होता है ॥ ४१ ॥

यवोरुबूकैस्तृणपञ्चमूलपाषाणभेदैः सशतावरीभिः । कृच्छ्रेषु गुग्गुल्वभयाविमिश्रैः कृतः कषायो गुडसंप्रयुक्तः ॥ ४२ ॥

जौ, अंडकी जड, तृणपंचमूल, पाषाणभेद, शतावर गूगल और हरड–इनका काथ बनाकर उसमें गुड डालकर पान करनेसे मूत्रकृच्छ्र रोग नष्ट होता है ॥ ४२ ॥

मूलानि कुशकाशेक्षुशराणां चेक्षुवालिकाः । मूत्राघातेऽश्मरीकृच्छ्रे पञ्चमूली तृणात्मिका ॥ ४३ ॥

कुश, काँस, ईख, रामसर और इक्षुवालिका (एक प्रकारके तृण), इन पाँचोंको तृणपंचमूल कहते हैं । इस तृणपंचमूलको जलमें पीसकर सेवन करनेसे मूत्राघात और अश्मरी दूर होती है ॥ ४३ ॥

गुडमामलकं पिष्टं श्रमघ्नं तर्पणं प्रियम् । पित्तासृग्दाहशूलघ्नं मूत्रकृच्छ्रनिवारणम् ॥ ४४ ॥

गुड और आमलोंको एकत्र मिला कर सेवन करना श्रमनाशक, तृप्तिकारक, प्रिय तथा रक्तपित्त, दाह, शूल और मूत्रकृच्छ्रनाशक है ॥ ४४ ॥

सितातुल्यो यवक्षारः सर्वकृच्छ्रप्रणाशनः । द्राक्षासितोपलाकल्कं कृच्छ्रघ्नं मस्तुना युतम् ॥ ४५ ॥

जवाखारको मिश्रीके साथ सेवन करनेसे सर्व प्रकारका मूत्रकृच्छ्ररोग दूर होता है। दाख और मिश्रीके कल्कको दहीके पानीके साथ सेवन करनेसे मूत्रकृच्छ्र रोग शान्त होता है ॥ ४५ ॥

विदारीशारिवाछागशृङ्गीवत्सादनीनिशाः । कृच्छ्रं पित्तानिलं हन्ति वल्लिजं पञ्चमूलकम् ॥ ४६ ॥

विदारीकंद, सारिवा, मेढाशिंगी, गिलोय, हलदी और वायविडंग तथा तृणपंचमूल–इनको जलमें पीस कर पान करनेसे वातपित्तजनित मूत्रकृच्छ्र रोग दूर होता है ॥ ४६ ॥

एलाश्मभेदकशिलाजतुपिप्पलीनामेर्वारुबीजलवणोत्तमकुंकुमानाम् । चूर्णानि तण्डुलजले लुलितानि पीत्वा प्रत्यग्रमृत्युरपि जीवति मूत्रकृच्छ्री ॥ ४७ ॥

इलायची, पाषाणभेद, शिलाजीत, पीपल, खीरेके बीज, सैंधानमक और केसर–इनका चूर्ण करके चाव

लोंके जलके साथ सेवन करनेसे मृत्युको प्राप्त हुआ भी मूत्रकृच्छ्ररोगी आरोग्य होता है ॥ ४७ ॥

अयोरजः श्लक्ष्णपिष्टं मधुना सह योजितम् । मूत्रकृच्छ्रं निहन्त्याशु त्रिभिर्लेहैर्न संशयः ॥ ४८ ॥

लोहेकी भस्मको वारीक पीसकर शहदमें मिलाकर तीन दिनतक सेवन करनेसे निःसंदेह मूत्रकृच्छ्ररोग दूर हो जाता है ॥ ४८ ॥

सुकुमारकुमारक पुनर्नवादिलेह ।

पुनर्नवामूलतुलां दर्भमूलं शतावरी । बला तुरगगन्धा च तृणमूलं त्रिकण्टकम् ॥ ४९ ॥ विदारिगन्धानागाह्वगुडूच्यतिबलास्तथा । पृथग्दशपलान्भागानपां द्रोणे विपाचयेत् ॥५०॥ तेन पादावशेषेण घृतस्यार्द्धाढकं पचेत् । मधुकं शृङ्गवेरञ्च द्राक्षासैन्धवपिप्पली ॥ ५१ ॥ द्विपलानि पृथग्दत्त्वा यवान्याः कुडवं तथा । त्रिंशद्गुडपलान्यत्र तैलस्यैरण्डजस्य च ॥ ५२ ॥ एतदीश्वरपुत्राणां प्राग्भोजनमनिन्दितम् । राज्ञां राजसमानानां बहुस्त्रीपतयश्च ये ॥ ५३ ॥ मूत्रकृच्छ्रे कटीशूले तथा गाढपुरीषिणाम् । मेढ्रवंक्षणशूले च योनिशूले च शस्यते ॥ ५४ ॥ यथोक्तानाञ्च गुल्मानां वातशोणितजाश्च ये । बल्यं रसायनं शीतं सुकुमारकुमारकम् । पुनर्नवाशते द्रोणे देयोऽन्येष्वपि चापरः ॥ ५५ ॥

पुनर्नवाकी जड चार सौ तोले एवं डाभकी जड, शतावर, खिरैंटीकी जड, असगंध, तृणपंचमूल, गोखरू विदारीकन्द, नागकेशर, गिलोय और कंघी—ये प्रत्येक चालीस चालीस तोले लेकर एक हजार चौवीस (१०२४) तोले जलमें पकावे। जब पकते पकते जल चौथाई भाग बाकी रह जाय तब उतार कर छान लेवे। फिर इस क्काथसे एक सौ अट्ठाईस (१२८) तोले घृत पकावे इसमें मुलैठी, अदरख, दाख, सैंधानमक और पीपल ये प्रत्येक आठ २ तोले पीस कर डाले। अजवायन १ कुडव गुड १२० तोले, अण्डीका तेल १२० तोले डालकर विधिपूर्वक इसका पाक करे। इस सुकुमारकुमार अवलेहको श्रीमानोंके पुत्रोंको भोजनके पहिले सेवन करना उत्तम है। यह घृत—राजा, राजाके समान और जिनके बहुतसी स्त्रियें हैं ऐसे मनुष्योंको सेवन करना चाहिए। तथा मूत्रकृच्छ्र, कटिशूल, मलबद्ध, लिंगशूल, वंक्षणशूल, योनिशूल, गुल्मरोग और वातरक्त—इन सब रोगोंमें हितकारी है। यह बलकारक, रसायन, शीतल और कुमारों (बालकों) को सुकुमार करनेवाला है (कोई कहते हैं कि पुनर्नवेको एवं अन्यान्य औषधियोंको सौ द्रोण जलमें पकाना चाहिये) ॥ ४९-५५ ॥

मूत्राघातविधानमप्यत्र कार्यम् ।

मूत्रकृच्छ्ररोगमें मूत्राघातरोगोक्तचिकित्साभी करनी चाहिए।

इति श्रीवङ्गसेने भाषाटीकायां कृच्छ्रनिदानचिकित्साधिकार समाप्त ॥ ३५ ॥

अथ मूत्राघातरोगाधिकार ।

मूत्राघातका निदान ।

जायन्ते कुपितैर्दोषैर्मूत्राघातास्त्रयोदश । प्रायो मूत्रविघाताद्यैर्वातकुण्डलिकादयः ॥ १ ॥

विशेष कर मूत्रादिके वेगोंको रोकनेसे कुपित हुए दोष वातकुण्डलिकादि तेरह प्रकारके मूत्राघातोंको उत्पन्न करते हैं ॥ १ ॥

वातकुण्डलिकाके लक्षण ।

रौक्ष्याद्वेगाभिघाताद्वा वायुर्बस्तौ सवेदनः । मूत्रमाविश्य चरति विगुणः कुण्डलीकृतः ॥ २ ॥ मूत्रमल्पाल्पमथवा सरुजं संप्रवर्त्तते ।

वातकुण्डलिकान्तान्तु व्याधिं विद्यात्सुदारुणम् ॥ ३ ॥

शरीरके रूक्ष होनेसे अथवा मूत्रादिकके वेगोंको रोकनेसे दूषित हुई वायु कुण्डलाकार (गोलाकार) हो कर मूत्रमें मिलकर पीडाको उत्पन्न करती है, तथा मूत्रमें मिली हुई होनेसे मूत्राशयमें विचरण करती है, इससे थोड़ा थोड़ा और पीडायुक्त मूत्र उतरता है। इस अत्यंत दारुण रोगको वातकुण्डलिका कहते हैं ॥ २ ॥ ३ ॥

अष्ठीलाके लक्षण।

आध्मापयन्बस्तिगुदं रुध्वा वायुश्चलोन्नताम । कुर्य्यात्तीव्रार्त्तिमष्ठीलां मूत्रविण्मार्गरोधिनीम् ॥ ४ ॥

वायु, मूत्र तथा मलको रोककर मूत्राशय तथा गुदामें अफारेको उत्पन्न करके चंचल, ऊंची, तीव्र पीडावाली और मूत्र तथा मलके मार्गको रोकनेवाली पिंडीकी समान गांठको उत्पन्न करती है इसको अष्ठीला कहते हैं ॥ ४ ॥

वातबस्तिके लक्षण।

वेगं विधारयेद्यस्तु मूत्रस्याकुशलो नरः। निरुणद्धि मुखं तस्य बस्तेर्बस्तिगतोऽनिलः ॥ ५ ॥ मूत्रसङ्गो भवेत्तेन बस्तिकुक्षिनिपीडितः। वातबस्तिः स विज्ञेयो व्याधिः कृच्छ्रप्रसाधनः ॥ ६ ॥

जो मूर्ख मनुष्य मूत्रके वेगको रोकता है उसके मूत्राशयमें रहनेवाली वायु बस्ति (मूत्राशय) के मुखको बंद करदेती है, तब मूत्र रुक जाता है और बस्त्याशय तथा कोखमें पीडा होती है इसको वातबस्ति कहते हैं। यह वातबस्तिरोग कष्टसाध्य जानना ॥ ५ ॥ ६ ॥

मूत्रातीतके लक्षण।

चिरं धारयतो मूत्रं त्वरया न प्रवर्त्तते। मेहमानस्य मन्दं वा मूत्रातीतः स उच्यते ॥ ७ ॥

मूत्रके वेगको बहुत समयतक रोकनेसे मूत्र शीघ्र नहीं उतरता है मूतनेके समय जो धीरे २ थोडा २ मृतता है तो उसको मूत्रातीत कहते हैं ॥ ७ ॥

मूत्रजठरके लक्षण।

मूत्रस्य वेगेऽभिहिते तदुदावर्तहेतुकः। अपानः कुपितो वायुरुदरं पूरयेद् भृशम् ॥८॥ नाभेरधस्तादाध्मानं जनयेत्तीव्रवेदनाम्। तन्मूत्रजठरं विद्यादधो बस्तिनिरोधनम् ॥ ९ ॥

मूत्रके वेगको रोकनेसे जो उदावर्तरोग उत्पन्न होता है, उस उदावर्तसे कुपित हुई वायु पेटको पूरित करके नाभिके नीचे तीव्र पीडा युक्त अफारेको करता है अधोबस्तिको अवरोध करनेवाले इस रोगको मूत्रजठर कहते हैं ॥ ८ ॥ ९ ॥

मूत्रोत्संगके लक्षण।

बस्तौ वाप्यथवा नाले मणौ वा यस्य देहिनः। मूत्रं प्रवृत्तं सज्जेत सरक्तं वा प्रवाहतः ॥ १० ॥ स्रवेच्छनैरल्पमल्पं सरुजं वाप्यनीरुजम्। विगुणानिलजो व्याधिः स मूत्रोत्सङ्गसंज्ञितः॥११॥

मूत्र त्यागनेके समय बस्ति या लिंग अथवा लिंगके अग्रभागमें जब मूत्र रुक जाता है तब वह हृदयके श्वासादिके बलसे मूत्रको करता है, तब वायु मूत्राशयको फाडकर पीडायुक्त अथवा विनापीडाके रुधिरयुक्त थोडा थोडा मूत्र धीरे धीरे उतरता है। विगुणवातोत्पन्न इस रोगको मूत्रोत्संग कहते हैं ॥ १० ॥ ॥ ११ ॥

मूत्रक्षयके लक्षण।

रूक्षस्य क्लान्तदेहस्य बस्तिस्थौ पित्तमारुतौ। मूत्रक्षयं सरुग्दाहं जनयेत्तां तदाह्वयम् ॥ १२ ॥

रूखे और थके हुए मनुष्यके मूत्राशयमें स्थित पित्त और वायु मूत्रका क्षय करते हैं, इससे पीडा और दाह होती है इसको मूत्रक्षय कहते हैं ॥ १२ ॥

मूत्रग्रन्थिके लक्षण ।

अन्तर्बस्तिमुखे वृत्तः स्थिरोऽल्पः सहसा भवेत् । अश्मरीतुल्यरुग्ग्रन्थिः- मूत्रग्रन्थिः स उच्यते ॥ १३ ॥

मूत्राशयके भीतर अकस्मात् गोल आकारवाली, स्थिर, छोटे आमलेके समान गाँठ हो और उसमें पथरीकी समान पीडा हो उसको मूत्रग्रन्थि कहते हैं ॥ १३ ॥

मूत्रशुक्रके लक्षण ।

मूत्रितस्य स्त्रियं यातो वायुना शुक्र- मुद्धृतम् । स्थानाच्च्युतं मूत्रयतः प्राक् पश्चाद्वा प्रवर्त्तते । भस्मोदकप्रतीकाशं मूत्रशुक्रं तदुच्यते ॥ १४ ॥

मूत्रके वेगको रोककर जो मनुष्य स्त्रीप्रसंग करता है, उसका वीर्य्य वायुसे भ्रष्ट होकर मूतनेसे पहले अथवा मूतनेके पीछे राख मिले हुए पानीके समान गिरता है उसको मूत्रशुक्र कहते हैं ॥ १४ ॥

उष्णवातके लक्षण ।

व्यायामाध्वातपैः पित्तं बस्तिं प्राप्याऽनिलावृतम् । बस्तिं मेढ्रं गुदश्चैव प्रदहेत्स्रावयेदधः ॥ १५ ॥ मूत्रं हारिद्रमथवा सरक्तं रक्तमेव च । कृच्छ्रात्पुनः पुनर्जंतोरुष्णवातं वदंति तम् ॥ १६ ॥

व्यायाम (कसरत आदि परिश्रम), अत्यन्त मार्गका चलना और विशेषकर धूपमें फिरना-इन कारणोंसे पित्त कुपित होकर वायुके साथ बस्तिमें प्राप्त होकर बस्ति, लिंग और गुदामें दाहको उत्पन्न करता हो तथा हलदीके समान या किंचित् लालरंगको अथवा रुधिरयुक्तमूत्रको वारंवार कष्टसे मूते, उसको उष्णवातरोग कहते हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥

मूत्रसादके लक्षण ।

पित्तं कफो वा द्वौ वापि संहन्येतानिलेन चेत् । कृच्छ्रान्मूत्रं तदा पीतं रक्तं श्वेतं घनं सृजेत् ॥ १७ ॥ सदा- हरोचनाशंखचूर्णवर्णश्च तद्भवेत् । शुष्कं समस्तवर्णं वा मूत्रसादं वदन्ति तम् ॥ १८ ॥

पित्त या कफ, अथवा पित्त-कफ दोनों जब वायुसे दूषित हो जाते हैं तब पीला, लाल, सफेद और गाढा ऐसा कष्टसे मूत्र उतरता है तथा मूतनेके समय जलन हो और वह मूत्र भूमिमें सूख जाय और उसका रंग गोरोचन या शंखके चूर्णकी समान हो तो इसको मूत्रसादरोग कहते हैं ॥ १७ ॥ १८ ॥

विड्विघातके लक्षण ।

रूक्षदुर्बलयोर्वातेनोदावर्त्तं सकृद्यथा । मूत्रस्रोतोऽनुपद्येत विट्संसृष्टं तदा नरः ॥ १९ ॥ विड्गन्धं मूत्रयेत्कृच्छ्राद्विड्विघातं विनिर्दिशेत् ॥ २० ॥

रूखे शरीरवाले और दुबले मनुष्यके वायुसे प्रेरित मल जब उदावर्तको करता है तब वह मल मूत्र मार्गकी तरफ जाता है, उस समय वह मनुष्य मूतता है तो बड़े कष्टसे विष्ठाकी गंधयुक्त मूत्र उतरता है इसको विड्विघात कहते हैं ॥ १९ ॥ २० ॥

बस्तिकुण्डलके लक्षण ।

द्रुताध्वलंघनायासैरभिघातात्प्रपीडितात् । स्वस्थानाद्वस्तिरुद्वृत्तः स्थूलस्तिष्ठति गर्भवत् ॥२१॥ शूलस्पन्दनदाहार्तो बिन्दुं बिंदुं स्रवत्यपि । पीडितस्तु सृजेद्धारां संस्तम्भोद्वेष्टनार्त्तिमान् ॥ २२ ॥ बस्तिकुण्डलमाहुस्तं घोरं शस्त्रविषोपमम् । पवनप्रबलं प्रायो दुर्निवारो ह्यबुद्धिभिः ॥ ॥ २३ ॥ तस्मिन् पित्तान्विते दाहः शूलं मूत्रविवर्णता । श्लेष्मणा गौरवं शोथः स्निग्धं मूत्रं घनं सितम् ॥ २४ ॥ श्लेष्मरुद्धबिलो बस्तिः पित्तोदीर्णो न सिध्यति । अविभ्रान्तबिलः साध्यो न च यः कुण्डलीकृतः ॥ स्या-

द्रुस्तौ कुण्डलीभूते तृण्मोहः श्वास एव च ॥ २५ ॥

बहुत शीघ्र दौडनेसे या चलनेसे, लंघन करनेसे, अधिक परिश्रम करनेसे, लकडी आदिकी चोटके लगनेसे, दबानेसे बस्ति अपने स्थानको त्यागकर ऊपर जाय, स्थूल होकर गर्भके समान हो जाती है उससे शूल,कम्प और दाहसे पीडित होकर एक एक बूँद मूत्र उतरता है । जब बस्ति (पेडू) को जोरसे दावे तो बडी वेगसे धार गिरती है, बस्तिमें सूजन और पेटमें पीडा होती है इसको बस्तिकुंडल कहते हैं।यह महाभयंकर व्याधि शस्त्र और विषके समान है । इसमें प्रायः वायु प्रबल होती है,यह थोडी बुद्धिवाले वैद्योंकरके दुर्निवार है । सो यह बस्तिकुण्डलरोग पित्ताधिक्य होय तो इसमें दाह, शूल और मूत्रका रंग बुरा होता है। और जो इसमें कफाधिक्य होय तो भारीपन,सूजन,मूत्र चिकना,गाढा और सुफेद होता है । जिस बस्तिका मुख कफकरके बंद होजाय और पित्त करके व्याप्त होय वह बस्ति असाध्य है। जिसका मुख खुला होय वह साध्य है।और कुण्डलीकृत न होय सो भी साध्य है । इस कुण्डलीभूतबस्तिके होनेसे तृषा, मोह और श्वास यह लक्षण होते हैं ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥

मूत्राघातकी चिकित्सा ।

स्नेहस्वेदोपपन्नस्य हितं स्नेहविरेचनम् । दद्यादुत्तरबस्तिश्च मूत्राघाते सवेदने ॥ २६ ॥

पीड़ायुक्त मूत्राघातरोगमें स्नेहन तथा स्वेदन क्रिया करके पश्चात् स्नेहयुक्त पदार्थोंसे विरेचन देवे तथा उत्तरबस्ति भी देवे, यह हितकारी है ॥ २६ ॥

नलकुशकाशेक्षुशिफां क्वथितां प्रातः सुशीतलां ससिताम् । पिबतः प्रयाति नियतं मूत्रग्रह इत्युवाच कविः ॥ २७ ॥

नरसल, कुशा, कांस और ईखकी जड़ इनका क्वाथ बनाकर उसमें मिश्री डालकर शीतल करके प्रातःकाल पान करनेसे मूत्राघातरोग दूर होता है ॥ २७॥

गोधावत्या मूलं क्वथितं घृततैलगोरसोन्मिश्रम् । पीतं निरुद्धमचिराद्भिनत्ति मूत्रसंघातम् ॥ २८ ॥

गोधापदी(कालीमुसली) की जडका क्वाथ बनाकर उसमें घी,तेल और गायका दूध डालकर पान करनेसे बहुत दिनोंका पुराना मूत्राघातरोग शीघ्र दूर होता है ॥२८॥

पिबेच्छिलाजतुक्वाथे वृके वीरतरादिके । रसं दुरालभाया वा कषायं वासकस्य वा ॥ २९ ॥ क्वाथं सपत्रमूलस्य गोक्षुरो सफलस्य च । पिबेन्मधुसितायुक्तं मूत्रकृच्छ्ररुजापहम् ॥ ३० ॥

अथवा वीरतरादिगणका क्वाथ बनाकर उसमें शिलाजित डालकर अथवा धमासेका रस डालकर या अडूसेका क्वाथ डालकर पान करनेसे अथवा पत्र,पुष्प, फल और जडसहित गोखरूका क्वाथ बनाकर उसमें शहद और मिश्री डालकर पान करनेसे मूत्रकृच्छ्ररोग दूर होता है ॥ २९ ॥ ३० ॥

घनसारस्य चूर्णेन वस्त्रवर्तिः कृताम्बुना । गुण्डयित्वा ध्वजे क्षिप्तः मूत्ररोधं जहाति सा ॥ ३१ ॥

कपूरको जलमें पीसकर कपडेपर लपेटकर बत्ती बनावे, फिर उस बत्तीको लिंगके छिद्रमें रक्खे तो मूत्रका अवरोध दूर होता है ॥ ३१ ॥

सदाभद्राश्मभिन्मूलं शतावर्य्याश्च चित्रकम् । रोहिणीकोकिलाक्षौ च क्रौञ्चस्थूलत्रिकण्टकम् ॥ श्लक्ष्णपिष्टः सुरापीतो मूत्राघातप्रबाधनः ॥ ३२ ॥

कुम्भेर, पाषाणभेद, शतावर, चीता, कुटकी, तालमखाना, कमलगट्टा और बडे गोखरू इनको एकत्र पीसकर मदिराके साथ पान करनेसे मूत्राघात रोग दूर होता है ॥ ३२ ॥

पिबेद्वहिशिखामूलं दुग्धभुक् तण्डुलाम्भसा । बस्तिमुत्तरबस्तिं वा सर्वेषामेव दापयेत् ॥ ३३ ॥

अग्निशिखाकी जडको चावलोंके जलके साथ पीसकर पीवे और दूधके साथ भोजन करे तो मूत्राघात रोग दूर होता है । अथवा सर्वप्रकारके मूत्राघातरोगोंमें बस्ति और उत्तरबस्ति देवे ॥ ३३ ॥

निदग्धिकायाः स्वरसं पिबेद्वा तक्रसंयुतम् । जले कुंकुमकल्कं वा सक्षौद्रमुषितं निशि ॥ ३४ ॥

कटेरीके स्वरसको तक्रके साथ पान करनेसे मूत्राघात रोग दूर होता है । अथवा केशरको जलमें पीसकर उसमें शहद मिलाकर रात्रिमें रख देवे फिर प्रातःकाल होनेपर पीवे तो मूत्राघातरोग दूर होता है॥३४॥

सतैलं पाटलाभस्म क्षारवद्वा परिस्नुतम् । सुरां सौवर्चलवतीं मूत्राघाती पिबेन्नरः ॥ ३५ ॥

पाढलकी भस्मको क्षारके समान नितारकर तेलके साथ पान करनेसे मूत्राघातरोग दूर होता है । अथवा मदिरामें कालानमक डालकर पान करनेसे मूत्राघातरोग दूर होता है ॥ ३५ ॥

त्रिकण्टकैरण्डशतावरीभिः सिद्धं पयो वा तृणपञ्चमूलैः ॥ ३६ ॥ गुडप्रगाढं सघृतं पयो वा रोगेषु कृच्छ्रादिषु शस्तमेतत् ॥ ३७ ॥

गोखरू, अंडकी जड और शतावर इनको दूधमें औटाकर पान करनेसे अथवा तृणपंचमूलको दूधमें औटाकर पान करनेसे अथवा गुड, घी और दूध इनको एकत्र मिलाकर पान करनेसे मूत्रकृच्छ्रादि समस्त मूत्रसम्बन्धीरोग नष्ट होते हैं ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

शृतशीतपयोऽन्नाशी चन्दनं तण्डुलाम्बुना । पिबेत्सशर्करं श्रेष्ठमुष्णवाते सशोणिते ॥ ३८ ॥

चन्दनको चावलोंके जलमें घसकर और मिश्री मिलाकर पान करे और इसपर औटाकर शीतल किये हुए दूधके साथ भोजन करे तो रुधिरयुक्त उष्ण वात रोग दूर होता है ॥ ३८ ॥

शिलोद्भिदादितैल ।

शिलोद्भवैरण्डकुशास्थिरादिपुनर्नवाभीरुरसेषु सिद्धम् । तैलं शृतं क्षीरमथानुपानं कालेषु कृच्छ्रादिषु संप्रयोज्यम् ॥ ३९ ॥

पाषाणभेद, अण्डकी जड, कुशाकी जड यानी दाभ, शालपर्णी, पुनर्नवा और शतावर इनके रसमें तेलको पकावे और इसको दूधके अनुपानसे सेवन करे तो मूत्रकृच्छ्रादि रोग नष्ट होते हैं ॥ ३९ ॥

धान्यगोक्षुरकघृत ।

धान्यगोक्षुरुकक्काथकल्कसिद्धं घृतं हितम् । मूत्राघाते मूत्रकृच्छ्रे शुक्रदोषे च दारुणे ॥ ४० ॥

धनियाँ और गोखरू इनके काथ और कल्कसे घृतको पकावे इस घृतको सेवन करनेसे मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र और दारुणवीर्य्यदोष शान्त होते हैं ॥४०॥

भद्रावहघृत ।

अम्बष्ठा पाटला चैव वर्षाभूद्वयमेव च । विदारीकन्दकाशश्च कुशमोरटगोक्षुराः ॥ ४१ ॥ पाषाणभेदो वाराही शालिमूलं शरस्तथा । भल्लातकं शिरीषस्य मूलमेषामथाहरेत् ॥ ४२ ॥ समभागानि सर्वाणि क्काथयित्वा विचक्षणः । पादशेषे कषाये तु घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ४३ ॥ कल्कं दत्वा च मतिमान्गिरिजं मधुकं तथा । नीलोत्पलं तु काकोली बीजं त्रापुसमेव च ॥ ४४ ॥ कूष्माण्डजं तथैर्वारुसम्भवञ्च समं भवेत् । उष्णवातं निहन्त्येतद्घृतं भद्रावहं स्मृतम्॥४५॥

पाढ, पाढ़ल, दोनों प्रकारका पुनर्नवा, विदारीकन्द, कांस, कुशा, ईखकी जड़,गोखुरू, पाषाणभेद, वाराहीकंद, शालिधानोंकी जड़, रामसर, भिलावे और सिरसकी जड़ इन सबको समान भाग लेकर काथ बनावे। जब पकते २ चौथाई भाग जल शेष रह जाय तब उतारकर छान लेवे। फिर इसमें शिलाजीत, मुलेठी, नीलकमल, काकोली, खीरेके बीज, पेठेके बीज और ककड़ीके बीज समान भाग लेकर कल्क बना कर मिला देवे और चौंसठ तोले घी डालकर पकावे। यह भद्रावत् घृत-उष्णवातको नष्ट करता है ॥ ४१-४५ ॥

विदारीघृत।

विदारीवृषको यूथी मातुलुङ्गी च भूस्तृणम्। पाषाणभेदः कस्तूरी वसुको वशिरोऽनलः॥ ४६ ॥ पुनर्नवा वचा रास्ना बला चातिबला तथा। कशेरुविसशृङ्गाटतामलक्यः स्थिरादयः॥ ४७ ॥ शरेक्षुदर्भमूलञ्च कुशः काशस्तथैव च। पलद्वयन्तु संगृह्य जलद्रोणे विपाचयेत्॥ ४८ ॥ पादशेषे रसे तस्मिन्घृतप्रस्थं विपाचयेत्। शतावर्य्यास्तथा धात्र्याः स्वरसो घृतसम्मितः॥ ४९ ॥ षट्पलं शर्करायाश्च कार्षिकाण्यपराणि च। यष्ट्याह्वं पिप्पली द्राक्षा काश्मर्य्यं सपरूषकम्॥ ५० ॥ एला दुरालभा कौन्ती कुंकुमं नागकेशरम्। जीवनीयानि चाष्टौ च दत्त्वा च द्विगुणं पयः॥ ५१ ॥ एतत्सर्पिर्विपक्तव्यं शनैर्मृद्वग्निना भिषक्। मूत्राघातेषु सर्वेषु विशेषात्पित्तजेषु च ॥ ५२ ॥ कासश्वासक्षतोरस्कधनुस्त्रीभारकर्षिते। तृष्णाच्छर्दिमनःकम्पे शोणितच्छर्दिते तथा ॥५३॥ रक्ते यक्ष्मण्यपस्मारे तथोन्मादशिरोग्रहे। योनिदोषे रजोदोषे शुक्रदोषे स्वरामये ॥ ५४ ॥ एतत्स्मृतिकरं वृष्यं वाजीकरणमुत्तमम्। पुत्रदं बलवर्णाढ्यं विशेषाद्वातनाशनम्॥ ५५ ॥ पानभोजननस्येषु न कचित्प्रतिहन्यते। विदारीघृतमित्युक्तं रसायनमनुत्तमम्॥ ॥ ५६ ॥

विदारीकन्द, अडूसा, जुही, बिजौरा, भूतृण, पाषाणभेद, कस्तूरी, सांभरनमक, समुद्रनमक, चीता, पुनर्नवा, बच, रायसन, खिरेंटी, कंघी, कसेरू, भसींडे, सिंघाडे, भुईआमला, स्थिरादिगणकी औषधि, रामसर, ईख, दाभ, कुशा और कांस-ये प्रत्येक औषधि आठ २ तोले लेकर एक द्रोण जलमें पकावे। जब पकते २ जल चौथाई भाग शेष रह जाय तब उतारकर छान लेवे फिर इस काथमें घृत एक प्रस्थ, शतावरका रस एक प्रस्थ, आमलोंका स्वरस एक प्रस्थ, उत्तम खांड या मिश्री २४ चौवीस तोले तथा मुलेठी, पीपल, दाख, कुम्भेर, फालसे, इलायची, धमासा, रेणुका, केशर, नागकेशर और जीवनीयगणकी आठों औषधि ये प्रत्येक एक २ तोला लेकर कल्क बनाकर मिलादेवे तथा उत्तम गौका दूध दो प्रस्थ डाले सबको मिलाके उत्तम विधिसे मन्द २ अग्निसे घृतको पकावे तो यह विदारीघृत सिद्ध होता है। यह घृत-सर्वप्रकारके मूत्राघात, विशेषकर पित्तजनितमूत्ररोग, खांसी, श्वास, उरःक्षत, धनुष चढानेसे कर्षित हुए, विशेष स्त्रीप्रसंग करनेसे कर्षित हुए, तृषा, वमन, मानसिक रोग, कंप, रुधिरकी वमन, क्षयरोग, रुधिरके विकार, अपस्मार, उन्माद, शिरोरोग, योनिदोष, रजोदोष, शुक्रदोष और स्वरभंग आदि रोग, इन सबमें हितकारी है। यह घृत-स्मरणशक्तिको बढानेवाला, वीर्य्यजनक, उत्तम वाजीकरण, पुत्रजनक, बल और वर्णको सुंदर करनेवाला, विशेष कर वातरोगोंको नष्ट करनेवाला और उत्तम रसायन है। इसको पान, भोजन और नस्यमें प्रयोग करना चाहिए इस पर कुछ परहेज नहीं है॥ ४६-५६ ॥

पिष्ट्वाखुमलमुष्णेन चारनालेन पेषयेत्। बद्धमूत्रं निहन्त्याशु तथैव कर[1]भिभवम्॥ ५७ ॥

---

१ उष्ट्रो हस्ती वा।

चूहेकी विष्ठाको गरम कांजीमें पीसकर अथवा ऊंटनी या हथिनीके मूत्रमें पीसकर मूत्राशयपर लेप करनेसे मूत्रका अवरोध दूर होता है ॥ ५७ ॥

स्त्रीणामतिप्रसङ्गेन शोणितं यस्य रिच्यते । मिथुनोपरमश्चास्य बृंहणीयो विधिर्हितः । ताम्रचूडवसातैलं हितमश्चोत्तरबस्तिषु ॥ ५८ ॥

जिसको अत्यन्त मैथुन करनेसे मूत्रमें रुधिर आता हो उसको मैथुनका त्याग कराकर धातुको बढ़ानेवाले उपाय करावे, पश्चात् मुरगेकी चर्बी और तेलसे उत्तरवस्ति देवे यह अत्यन्त हितकारी है ॥ ५८ ॥

स्वगुप्ताफलमृद्वीका कृष्णेक्षुरसितारजः ॥ ५९ ॥ समांशमर्धभागानि क्षीरक्षौद्रघृतानि च । सर्वं सम्यग्विमथ्याक्षमात्रं लिह्वा पयः पिबेत् ॥६०॥ हन्ति शुक्रक्षयोत्थांश्च दोषान्वन्ध्यासुतप्रदम् ॥ ६१ ॥

कौंछके वीज, दाख, काली ईखका रस और काली मिट्टी इनको समान भाग लेवे दूध, घी और शहद ये आधे २ भाग लेवे, सबको मिलाकर इसमेंसे एक तोला भर खाय और ऊपरसे दूधको पीवे तो इससे वीर्य्यके क्षयसे उत्पन्न हुई पीड़ा नष्ट होती है और वंध्यास्त्रियोंको पुत्रकी प्राप्ति होती है ॥ ५९ ॥ ॥ ६० ॥ ६१ ॥

क्षौद्रार्द्धभागघृत ।

क्षौद्रार्धभागः कर्तव्यो भागः स्यात्क्षीरसर्पिषोः । शर्करायाश्च चूर्णश्च द्राक्षाचूर्णश्च तत्समम् ॥६२॥ स्वयंगुप्ताफलश्चैव तथा च क्षुरकस्य च । पिप्पलीनां तथा चूर्णं समभागं प्रदापयेत् ॥ ६३ ॥ तदैकध्यं समानीय खजेनाथ विमथ्य च । तस्य पाणितलं चूर्णं लिहन्क्षीरं ततः पिबेत् ॥ ६४ ॥ एतत्सर्पिः प्रयुञ्जानः शुद्धदेहो नरः सदा । शुक्रदोषाञ्जयेत्सर्वान् ये चापि भृशदुर्जयाः ॥६५॥ जयेच्छोणितरोगांश्च वन्ध्यागर्भं लभेत च । सर्पिरेतत्प्रयुञ्जानाद्योनिदोषात्प्रमुच्यते ॥ ६६ ॥

एक भाग दूध, एक भाग घी, आधा भाग शहद, एक भाग मिश्री, दाख, कौंछके बीज, तालमखाना और पीपल ये एक २ भाग लेवे । इन सबको एकत्र रईसे अच्छेप्रकार मथकर इसमेंसे प्रतिदिन एक तोलाभर चाटे और ऊपरसे दूध पीवे । परन्तु यह प्रथम वमन, विरेचनादिसे शरीरको शुद्ध कर सेवन करना चाहिये । यह घृत-सर्वप्रकारके दारुण शुक्रदोष, सर्व प्रकारके रुधिरके विकार और सर्वप्रकारके योनिदोषोंको दूर करता है तथा वंध्यास्त्रियोंके संतानको उत्पन्न करता है ॥ ६२-६६ ॥

अश्मरीमूत्रकृच्छ्रेषु भोजनं यत्प्रकीर्तितम् । मूत्राघातेषु तत्कुर्य्याद्देशकालविधानवित् ॥ ६७ ॥

अश्मरीरोगमें और मूत्रकृच्छ्ररोगमें जो आहार विहार कहा है वह सब देशकालके अनुसार मूत्राघातमें भी देना चाहिए ॥ ६७ ॥

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायां मूत्राघातनिदानचिकित्साधिकार समाप्त ॥ ३६ ॥

अथाश्मरीरोगाधिकार ।

अश्मरीरोगनिदान ।

वातपित्तकफैस्तिस्रश्चतुर्थी शुक्रजापरा । प्रायः श्लेष्माश्रयाः सर्वा अश्मर्य्यः स्युर्यमोपमाः ॥ १ ॥

वात, पित्त और कफसे ऐसे तीन प्रकारके और चौथे वीर्य्यसे ऐसे पथरीरोग चार प्रकारका होता है वीर्य्यसे हुई पथरीको छोड़कर शेष तीनों प्रकारकी पथरी प्रायः कफाश्रयसे होती है और वीर्यसे होनेवाली पथरीमें वीर्य ही कारण है । सर्वप्रकारकी पथरी विना चिकित्साके अवश्य यमरूप (मृत्यु करनेवाली) हो जाती है ॥ १ ॥

सम्प्राप्ति।

विशोषयेद्वस्तिगतं सशुक्रं मूत्रं सपित्तं पवनः कफं वा। यदा तदाश्मर्युपजायते तु क्रमेण पित्तेष्विव रोचना गोः ॥ २ ॥

जब कुपित हुई वायु वस्तिगत शुक्रके साथ मूत्रको अथवा पित्तके साथ कफको सुखाती है तब क्रमक्रमसे पथरी उत्पन्न होती है, जिस प्रकार गौके पित्तमें गोरोचन बढता जाता है ॥ २ ॥

पूर्वरूप।

नैकदोषाश्रयाः सर्वा अथासां पूर्वलक्षणम्। बस्त्याध्मानं तदासन्नदेशेषु परतोऽतिरुक्॥ मूत्रे बस्तसगन्धत्वं मूत्रकृच्छ्रं ज्वरोऽरुचिः॥ ३ ॥

सर्वप्रकारकी अश्मरी त्रिदोषसे उत्पन्न होती हैं। केवल त्रिदोष उल्बणताके भेदसे उसके वातादिदोष भेद जानने। पथरीके उत्पन्न होनेसे पहले बस्तिमें अफारा, जिस स्थानमें पथरी उत्पन्न होनेको हो वह स्थान अत्यंत पीडासे व्याप्त हो, मूत्रमें बकरेके समान दुर्गन्ध, कृच्छ्रता, ज्वर और अरुचि होती है॥३॥

सामान्य लक्षण।

सामान्यलिङ्गं रुङ्नाभिसेवनीबस्तिमूर्ध्वसु। विशीर्णधारं मूत्रं स्यात्तया मार्गनिरोधने॥ ४ ॥ तद्व्यपायात्सुखं मेहेदच्छं गोमेदकोपमम्। तत्संक्षोभात्क्षते सास्रमायासाच्चातिरुग्भवेत्॥ ५ ॥

पथरी हुई हो तो नाभिमें, सीमनमें, तथा नाभिसे नीचेके प्रदेशमें पीडा होती है पथरीसे मूत्रके बहन करनेवाले स्रोतोंका अवरोध होनेपर मूत्रकी धार बीचमें ही कटजाती है, किसी समय वायुसे पथरी मूत्रके मार्गसे अन्य स्थानको चली जाती है तब गोमेदमणिके सदृश वर्णवाला स्वच्छ मूत्र सुखसे उतरता है पथरीके संचारसे मूत्रका मार्ग घिसकर मूत्र रुधिरयुक्त उतरता है और बलपूर्वक मूत्र त्यागनेसे अत्यंत पीडा होती है ॥ ४ ॥ ५ ॥

तत्र वाताद्भृशं चार्तो दन्तान्खादति वेपते। गृह्णाति मेहनं नाभिं पीडयत्यनिशं क्वणन्॥ ६ ॥ सानिलं मुञ्चति शकृन्मुहुर्मेहति बिन्दुशः। श्यावारुक्षाश्मरी चास्य स्याच्चिताकण्टकैरिव॥ ७ ॥

वाताधिक्य पथरीरोगमें रोगी अत्यन्त पीडासे पीडित होकर दाँतोंको चबाता है, कांपता है, लिंग और नाभिको हाथसे रगडता है निरन्तर पीड़ाके मारे रोता है, मूत्र आनेके समय शब्दके साथ मलको त्याग करता है और बारबार मूत्र टपक टपक कर गिरता है। पथरीका रंग धूसर या नीला होता है और उसके ऊपर काँटे होते हैं ॥ ६ ॥ ७ ॥

वातोल्बणपथरीकी चिकित्सा।

तस्याः पूर्वेषु रूपेषु स्नेहादिक्रम इष्यते॥ ८ ॥

पथरीके पूर्वरूप होनेपर स्नेहादिक प्रयोग करने चाहिए ॥ ८ ॥

शुण्ठ्यादिक्काथ।

शुण्ठ्यग्निमन्थपाषाणशिग्रुवारुणगोक्षुरैः। अभयारग्वधफलैः क्वाथं कृत्वा विचक्षणः॥ ९ ॥ रामठक्षारलवणचूर्णं दत्त्वा पिबेन्नरः। अश्मरीमूत्रकृच्छ्रघ्नं दीपनं पाचनं परम्॥ हन्यात्कोष्ठाश्रितं वातं कट्यूरुगुदमेढ्रजम्॥१०॥

सोंठ, अरणी, पाषाणभेद, सहिंजना, वरुना, गोखरू, हरड और अमलतास इन सबको समान भाग लेकर एकत्र पीसकर क्काथ बनावे। फिर इस क्वाथमें हींग, जवाखार और सैंधनमकका चूर्ण डालकर पान करनेसे अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, कोष्ठगत वात, कटिगत वात, ऊरुगत वात, गुदाश्रितवात और लिंगाश्रित वायु दूर होती है। अग्नि दीपन होती है और यह पाचन है॥ ९ ॥ १० ॥

एलादिक्काथ।

एलोपकुल्यामधुकाश्मभेदकौन्तीश्व दंष्ट्रावृषकोरुवूकैः । शृतं पिबेदश्मजतुप्रगाढं सशर्करं चाश्मरिमूत्रकृच्छ्रे ॥ ११ ॥

इलायची, पीपल, मुलैठी, पाषाणभेद, रेणुका, गोखुरू, अडूसा और अंडकी जड इनके काथमें शिलाजीत डालकर पान करनेसे शर्करा, पथरी और मूत्रकृच्छ्र दूर होता है ॥ ११ ॥

वरुणादिक्काथ।

वरुणस्य त्वचं श्रेष्ठां शुण्ठीगोक्षुरुसंयुताम् । यवक्षारगुडं दत्त्वा काथयित्वा पिबेद्धितम् ॥ १२ ॥ अश्मरीं वातजां हन्याच्चिरकालानुवन्धिनीम् ॥ १३ ॥

वरनाकी उत्तम छाल, सोंठ और गोखुरू इनका काथ बनाकर उसमें जवाखार और गुड डालकर पान करनेसे बहुत दिनोंकी पुरानी वातोल्बण पथरी दूर होती है ॥ १२ ॥ १३ ॥

पाषाणभेदादिघृत।

पाषाणभेदोवसुकोवशिरोऽश्मन्तकस्तथा । शतावरीश्वदंष्ट्रा च बृहतीकण्टकारिका ॥ १४ ॥ कपोतवंकामलकी काञ्चनोशीरगुन्द्रकाः । वृक्षादनी भल्लुकश्च वरुणः शाकजं फलम् ॥ ॥ १५ ॥ यवाः कुलित्थकोलानि कतकस्य फलानि च । उषकादिप्रतीवापमेषां काथैः शृतं घृतम् ॥ भिनत्ति वातसंभूतामश्मरीं क्षिप्रमेव तु ॥ १६॥

पाषाणभेद, आककी जड, लाल चिरचिटा, विजयसार, शतावर, गोखरू, बडी कटेरी, कटेरी, ब्राह्मी, आमला कचनार, खस, गुन्द्रतृण, वंदा, आलू, वरना, सागोनके फल, जौ, कुलथी, बेर और निर्मलीके फल इनका काथ बनाकर उसमें ऊषकादिगणकी औषधियां डालकर घृतको पकावे । इस घृतको सेवन करनेसे वातोल्वणवाली पथरी दूर होती है ॥१४॥१५॥१६॥

क्षारान्यवागूः पेयाश्च कषायांश्च पयांसि च । भोजनानि प्रकुर्वीत वर्गैरश्मरिनाशनैः ॥ १७ ॥

पथरी रोगमें पथरीको नाशकरनेवाली औषधियोंके द्वारा क्षार, यवागू, पेया, काथ, दूध और भोजन सिद्ध करके देवे । इससे वातजनित पथरी आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ १७ ॥

वीरतरादिगण।

वीरवृक्षोऽग्निमन्थश्च काशो वृक्षादनीकुशः । मोरटेन्दीवरीसूर्य्यभक्ता-गोक्षुरुटुण्टुकाः ॥ १८ ॥ वसुकोवशिरोदर्भशैरीयावश्मभेदकः । गुन्द्रोऽनलः कुरण्टश्च गणो वीरतरादिकः ॥ १९ ॥ अश्मरीशर्कराकृच्छ्रमारुतार्त्तिहरो गणः । बृहद्वाते वीरतरस्तदभावे मतः शरः ॥ २० ॥

वीरवृक्ष अरनी, कांस, बंदा, कुशा ईखकी जड, नीले कमल, हुलहुल, गोखुरू, टेंटू, आककी जड, लाल चिरचिटा, डाभ, कटसरैया, पाषाणभेद, गुन्द्रतृण, चीता और पीले फूलका पियावाँसा इन सब औषधियोंके समुदायको वीरतरादिगण कहते हैं । यह वीरतरादिगण-पथरी, शर्करा, मूत्रकृच्छ्र और वायुकी पीडाको शमन करता है । जो वीरतर नहीं मिले तो उसके अभावमें रामशर लेना चाहिए ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥

पित्तोल्बणअश्मरीके लक्षण।

पित्तेन दह्यते बस्तिः पच्यमान इवोष्मवान् । भल्लातकास्थिसंस्थाना रक्ता पीताऽसिताऽश्मरी ॥ २१ ॥

पित्तोलबणपथरीमें-बस्तिमें दाह और अग्निसे पकाने सरीखी पीडा होती है । पथरी भिलावेके गुठलीके समान लाल, पीली और काली होती है ॥२१॥

पित्तोल्बणअश्मरीकी चिकित्सा।

कुशादिघृत।

कुशः काशः शरो गुन्द्र उत्कटो मोरटाश्मभित्। दर्भो विदारी वाराही शालिमूलं त्रिकण्टकः ॥ २२ ॥ भल्लूकः पाटला पाठा पत्तूरोत्थकुरंटिका ॥ २३ ॥ पुनर्नवा शिरीषश्च क्वथितैस्तु सुसाधितम्। घृतं शिलाह्वमधुकैर्बीजैरिन्दीवरस्य च ॥ २४ ॥ त्रिपुषैर्वारुकादीनां बीजैश्चावापितं शुभम्। भिनत्तिपित्तसंभूतामश्मरीं क्षिप्रमेव तु ॥ २५ ॥

कुशा, काँस, रामसर, गुन्द्रतृण, उत्कट (एक प्रकारके तृण), ईखकी जड, पाषाणभेद, डाभ, विदारीकन्द, वाराहीकन्द, शालिधानकी जड, गोखुरू, भिलावे, पाढल, पाढ, शालिंच, कटसरैया, पुनर्नवा और शिरस इनके काथमें घृतको पकावे। इसमें शिलाजीत, मुलैठी, महुएके बीज, खीरे और ककडीके बीज इनका चूर्ण मिलाकर सेवन करे तो इससे तत्काल पित्ताश्मरी नष्ट होती है ॥ २२-२५ ॥

क्षारान्यवागूः पेयाश्च कषायाणि पयांसि च। भोजनादि प्रकुर्वीत वर्गेऽस्मिन्पित्तनाशने ॥ २६ ॥

पित्तको नष्ट करनेवाली जो औषधियें हैं उनमें क्षार, यवागू, पेया, कषाय, दूध और भोजन सिद्ध करके पित्तोल्बण अश्मरीवाले रोगीको देवे ॥ २६ ॥

शिलाजतु शिलाह्वं स्यात्पटीरो गुत्थगुन्द्रकौ। मधुकः कृतह्रस्वत्वाद्बीजैर्बीजकमुच्यते ॥ २७ ॥ कुर्य्यात्क्षारादिकं क्काथे तस्मिन्क्षयमवापकैः। वर्गत्वेन यथालाभं परिभाषा प्रवर्त्तते ॥ २८ ॥

शिलाजीत, शिलारस, पेटर, मोथी तृण, गुन्द्रकतृण, मुलैठी और विजयसार इनके काथादिमें जवाखारादि डालकर उपयोग करना चाहिये। वर्गके लिए वैद्यकग्रन्थोंकी परिभाषा है कि, वर्गमेंकी जो औषधि नहीं मिलें तो उनमेंसे जितनी मिलें उन्हींका उपयोग करना चाहिए ॥ २७ ॥ २८ ॥

कफोल्बणाश्मरीनिदान।

बस्तिर्निस्तुद्यत इव श्लेष्मणा शीतलो गुरुः। अश्मरी महती श्लक्ष्णा मधुवर्णा सिताऽथवा ॥ २९ ॥ एता भवन्ति बालानां तेषामेव च भूयसा। आश्रयोपचयाल्पत्वाद् ग्रहणाहरणे सुखाः ॥ ३० ॥

कफकी उल्बणतासे पथरी हो तो नोंचने सरीखी पीड़ा होती है और पथरी शीतल, भारी, मोटी और चिकनी, शहदके समान वर्णवाली, अथवा सफेद होती है। यह पथरी प्रायः बालकोंके ही होती है और बालकोंके वृद्धिका आश्रय अल्प होता है इससे बालकोंकी पथरी निकालनेमें सुगमता होती है ॥ २९ ॥ ३० ॥

कफोल्बण अश्मरीकी चिकित्सा।

वरुणादिघृत।

गणे वरुणकादौ तु गुग्गुल्वेलाहरेणुभिः। कुष्ठभद्राह्वमरिचचित्रकैः ससुराह्वयैः ॥ ३१ ॥ एतैः सिद्धमजासर्पिरूषकादिगणेन वा। भिनत्ति कफसंभूतामश्मरीं क्षिप्रमेव च ॥ ३२ ॥ भद्रादिस्तेन चात्रिष्टो गणः श्यामादिको बुधैः ॥ ३३ ॥

वरुणादिगणकी औषधियोंके काथमें गूगल, इलायची, रेणुका, कूठ, नीम, कालीमिरच, चीता और देवदारु इनका कल्क डालकर अथवा ऊषकादि औषधियोंका कल्क डालकर बकरीके घृतको पकावे। इस घृतको सेवन करनेसे कफाश्मरी तत्काल नष्ट होती है। भद्रादिगणके काथमें या श्यामादिगणके काथमें घृतको सिद्ध करके सेवन करनेसे भी कफाश्मरी तत्काल नष्ट होती है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

क्षारान्यवागूः पेयाश्च कषायाणि पयांसि च । भोजनानि प्रकुर्वीत वर्गेऽस्मिन्कफनाशने ॥ ३४ ॥

वरुणादिवर्ग अथवा अन्यान्य कफाश्मरी नाशक औषधियोंके वर्गोंमें क्षार, यवागू, पेया, कषाय, दूध तथा भोजनको सिद्ध करके कफके नाश करनेके लिये प्रयोग करे ॥ ३४ ॥

शुक्रजाश्मरीनिदानमाह ।

शुक्राश्मरी तु महतां जायते शुक्रधारणात । स्थानाच्च्युतममुक्तं हि मुष्कयोरन्तरेऽनिलः ॥ शोषयत्युपसंहृत्य शुक्रं तच्छुक्रजाश्मरी ॥ ३५ ॥ बस्तिरुङ्मूत्रकृच्छ्रत्वं मुष्कश्वयथुकारिणी । तस्यामुत्पन्नमात्रायां शुक्रमेति विलीयते ॥ ३६ ॥ पीडिते त्ववकाशेऽस्मिन्नश्मर्येव च शर्करा । अणुशो वायुना भिन्ना सा तस्मिन्ननुलोमगे ॥ ३७ ॥ निरेति सह मूत्रेण प्रतिलोमे विबध्यते । मूत्रस्रोतः प्रविश्यैताः सिकताः कुर्युरुपद्रवान् ॥ ३८ ॥

शुक्राश्मरी केवल अधिक उमरवाले ही मनुष्योंके होती है, किन्तु बालकोंके नहीं होती है । यह शुक्रके रोकनेसे होती है । जैसे मैथुन करनेके समय मैथुनको वीर्य्य स्खलित होनेसे पहले रोक देवे, तब, शुक्र अपने स्थानसे चलायमान हुआ भीतर ही रुकजाता है अर्थात् बाहर नहीं निकलता तब पवन उस शुक्रको उठाकर सुखा देती है । उसको शुक्राश्मरी कहते हैं इससे रोगीके दोनों अण्डकोषोंमें सूजन, बस्तिमें पीडा और मूत्रकृच्छ्रता होती है । लिंग और अण्डकोषोंका मध्यभाग दबानेसे यह पथरी भीतर लीन हो जाती है । इस प्रकार जब यह लीन हो जाती है तब तत्काल मूत्रके मार्गसे वीर्य्य निकलता है । शर्करा और सिकता इन भेदोंसे अश्मरी दो प्रकारकी है जो अश्मरी वायुसे भिन्न भिन्न होकर खण्ड खण्ड अर्थात् शर्कराके समान होती है उसको शर्कराश्मरी कहते हैं । जो अश्मरी बालूके कणके समान हो उसको सिकताश्मरी कहते हैं । शर्करा और सिकता इन दोनोंमें शर्कराकी अपेक्षा सिकताश्मरीके रेणु सूक्ष्म होते हैं । शर्कराश्मरी रोगमें वायुकी अनुलोम गति होनेपर उसके रेणु मूत्रके साथ निकलते हैं । विरूप गति होनेपर वह बद्ध हो जाती है और मूत्रस्रोतमें आ जाय तो अनेक उपद्रवोंको करती है ॥ ३५ ॥ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

उपद्रव ।

दौर्बल्यं सदनं कार्श्यं कुक्षिरोगस्तथारुचिम् । पाण्डुत्वमुष्णवातश्च तृष्णां हृत्पीडनं वमिम् ॥ ३९ ॥

दुर्बलता, ग्लानि, शरीरमें कृशता, कुक्षिशूल, अरुचि, पांडुता, उष्णवात, तृषा, हृदयरोग और वमन ये इसके उपद्रव होते हैं ॥ ३९ ॥

अरिष्ट ।

प्रसूननाभिवृषणं बद्धमूत्रं रुजातुरम् । अश्मरी क्षपयत्याशु सिकताशर्करान्विता ॥ ४० ॥

जिस अश्मरीरोगीके नाभि और अंड दोनों सूज जायँ, मूत्र रुकजाय और अत्यंत पीडा हो ऐसे मनुष्यके शर्करा और सिकताश्मरी शीघ्र ही प्राणोंको नष्ट कर देती है ॥ ४० ॥

शुक्रजाश्मरीकी चिकित्सा ।

शुक्राश्मर्य्यान्तु सामान्यो विधिरश्मरिनाशनम् । यवक्षारगुडोन्मिश्रं रसं पुष्पफलोद्भवम् ॥ पिबेन्मूत्रविबन्धघ्नं शर्कराश्मरिनाशनम् ॥ ४१ ॥

शुक्राश्मरीमें अश्मरीनाशक सामान्य विधि करनी चाहिए अथवा पेठेके रसमें जवाखार और गुड डालकर पान करे तो मूत्रका अवरोध, शर्करा और अश्मरी नष्ट होती है ॥ ४१ ॥

तिलापामार्गकदलीपलाशयवबिल्वजाः । क्वाथः पेयोऽविमूत्रेण शर्कराश्मरिनाशनः ॥ ४२ ॥

तिल, चिरचिटा, केला, ढाकके फल, जौ और बेल इनका क्वाथ बनाकर भेडके मूत्रके साथ पान करनेसे शर्करा और अश्मरी नष्ट होती है ॥ ४२ ॥

केतुकांकोलकतकशाकेन्दीवरजैः फलैः । पीतमुष्णांबु सगुडं शर्करां पातयत्यधः ॥ ४३ ॥

केउंआ, अंकोल, निर्मलीके फल, सागोनके फल और कमलगट्टे इनका क्वाथ बनाकर उसमें गुड डालकर पान करे तो शर्करा नष्ट होती है ॥ ४३ ॥

पाषाणभिद्गोक्षुरुको रुबूकं द्वे कण्टकार्य्यौ क्षुरकाह्वमूलम् । दध्ना पिबेत्क्षीरसुपिष्टमेतत्स्याद्भेदनार्थे सिकताश्मरीणाम् ॥ ४४ ॥

पाषाणभेद, गोखुरू, अंडकी जड, कटेरी, बडी कटेरी और तालमखाना इनको दूधमें पीसकर दहीमें डालकर सेवन करे तो पथरी और सिकता नष्ट हो जाती है ॥ ४४ ॥

यः पिबेद्रजनीं सम्यक्सगुडान्तुषवारिणा । तस्याशुचिररूढापि यात्यस्तं मेढ्रशर्करा ॥ ४५ ॥

हलदीको गुडमें मिलाकर तुषोदकके साथ पान करनेसे बहुत दिनोंकी पुरानी शर्कराश्मरी दूर होती है ॥ ४५ ॥

पिबतः कुटजं दध्ना पथ्यमन्नं च खादतः । निपतत्यचिरात्तस्य नियतं मेढ्रशर्करा ॥ ४६ ॥

कुडेकी छालको पीसकर दहीमें मिलाकर खाय पथ्य भोजन करे तो बहुत दिनोंकी पुरानी अश्मरी दूर होती है ॥ ४६ ॥

त्रापुसबीजं दध्ना पीतं वा नारिकेलजं कुसुमम् । विण्मूत्रशर्कराया भवति सुखी कतिपयैर्दिवसैः ॥ ४७ ॥

खीरेके बीजोंको दहीमें पीसकर अथवा नारियलके फूलोंको दहीमें पीसकर सेवन करनेसे मल मूत्र और पथरीकी बाधासे पीडित मनुष्य बहुत शीघ्र सुखी होता है ॥ ४७ ॥

श्वदंष्ट्रावारुणीशुण्ठीक्वाथं क्षौद्रयुतं पिबेत् । शर्कराऽश्मरिशूलघ्नं मूत्रकृच्छ्रहरं परम् ॥ ४८ ॥

गोखुरू, वरना और सोंठ इनका क्वाथ बनाकर शहद डालकर पान करनेसे शर्करा, अश्मरी, शूल और मूत्रकृच्छ्ररोग नष्ट होता है ॥ ४८ ॥

कूष्माण्डकरसो हिंगुयवक्षारसमायुतः । बस्तौ मेढ्रे सशूले च शर्कराश्मरिनाशनः ॥ ४९ ॥

पेठेके रसमें हींग और जवाखार डालकर पान करनेसे बस्तिशूल, मेढ्रशूल, शर्करा और अश्मरी नष्ट होती है ॥ ४९ ॥

पुनर्नवाऽयोरजनीश्वदंष्ट्राफलगुप्रवालाश्च सदर्भपुष्पाः । क्षीराम्लमद्येक्षुरसप्रपिष्टः पेयो भवेदश्मरिशर्करासु ॥५०॥

पुनर्नवा, लोहेकी भस्म, हलदी, गोखुरू, कठूमर, मूँगेकी भस्म और डाभके फूल इनको एकत्र पीस कर दूध, काँजी, मदिरा और ईखका रस इनके साथ पीवे तो शर्करायुक्त अश्मरी नष्ट होती है ॥ ५० ॥

वरुणत्वक्छिलाभिदशुण्ठीगोक्षुरुकैः कृतः । कषायः क्षारसंयुक्तः शर्कराश्च भिनत्त्यपि ॥ ५१ ॥

वरनाकी छाल, पाषाणभेद, सोंठ और गोखुरू इनके क्वाथमें जवाखार डालकर पान करनेसे शर्करासहित अश्मरी नष्ट होती है ॥ ५१ ॥

तृणपञ्चमूलादिघृत ।

पञ्चमूल्यास्तृणाख्यायास्तथा गोक्षुरुकस्य च । पृथग्दशपलान्भागाञ्जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ ५२ ॥ चतुर्भागावशिष्टेन घृतप्रस्थं विपाचयेत् । गुडगोक्षुरुबीजञ्च कल्कं तत्र प्रदापयेत् ॥ ५३ ॥ तत्सिद्धं मूत्रदोषेषु शर्करास्वश्मरीषु च । स्नेहने भोजने चैव प्रयोज्यं सर्पिरुत्तमम् ॥ ५४ ॥

तृणपंचमूल और गोखुरू ये प्रत्येक दश दश पल लेकर एक द्रोण जलमें पकावे । जब पकतेर चौथाई भाग जल शेष रह जाय तब उतारकर छान लेवे ।

फिर इसमें गुड और गोखुरुओंका कल्क डालकर एक प्रस्थ घृतको पकावे। इस घृतको लेहन और भोजनमें प्रयोग करे तो इससे सर्वप्रकारके मूत्रदोष, शर्करा और अश्मरी नष्ट होती है॥ ५२॥ ५३॥ ५४॥

वरुणतैल।

त्वक्पत्रफलमूलस्य वरुणात्सत्रिकण्टकात्। कषायेण पचेत्तैलं बस्तिना स्थापनेन च। शर्कराश्मरिशूलघ्नं मूत्रकृच्छ्रनिवारणम्॥ ५५॥

त्वचा, पत्र, फल और जडसहित वरना तथा गोखुरू लेकर चौगुने जलमें काथ बनावे। फिर इस काथके द्वारा तेलको पकावे। इस तेलकी स्थापनबस्ति दे तो शर्करा, अश्मरी, शूल और मूत्रकृच्छ्ररोग नष्ट होता है॥ ५५॥

कुशादितैल।

कुशाग्निमन्थशैरेयनलदर्भेक्षुगोक्षुराः। कपोतवंकावसुकवशिरेन्दीवरीशराः॥ ५६॥ धातक्यरलुवन्दाककर्णिकाराश्मभेदकाः। एषां कल्ककषायाभ्यां सिद्धं तैलं प्रयोजयेत्॥ ५७॥ पानाभ्यञ्जनयोगेन बस्तिनोत्तरबस्तिना। शर्कराश्मरिरोगेषु मूत्रकृच्छ्रे च दारुणे॥ ५८॥ प्रदरे योनिशूले च शुक्रदोषे तथैव च। वन्ध्यागर्भप्रदं प्रोक्तं तैलमेतत्कुशादिकम्॥५९॥

कुशा, अरणी, कटसरैया, नल, दाभ, ईख, गोखुरू, ब्राह्मी, आककी जड़, लालचिरचिटा, कमल, रामसर, धायके फूल, टेंटू, बंदा, कर्णिकार और पाषाणभेद इन सब औषधियोंके काथ और कल्कके द्वारा तेलको पकावे। इस तेलको पान, अभ्यंजन, बस्ति और उत्तरबस्ति इनमें प्रयोग करे। इससे शर्करा, अश्मरी, दारुण मूत्रकृच्छ्र, प्रदर, योनिशूल और शुक्रदोष ये सब दूर होते हैं। यह तेल—वंध्या स्त्रियोंके गर्भको उत्पन्न करता है॥ ५६॥ ५७॥ ५८॥ ५९॥

सामान्यचिकित्सा।

नागरवरुणगोक्षुरुपाषाणभित्कपोतवंकजः क्राथः। गुडयावशूकविमिश्रः पीतो हन्त्यश्मरीमुग्राम्॥६०॥

सोंठ, वरना, गोखुरू, पाषाणभेद और ब्राह्मी इनका काथ बनाकर गुड और जवाखार डालकर सेवन करनेसे घोर अश्मरीरोग दूर होता है॥ ६०॥

त्रिकण्टकस्य बीजानां चूर्णं माक्षिकसंयुतम्। अविक्षीरेण सप्ताहं पेयमश्मरिनाशनम्॥ ६१॥

गोखरूओंके बीजोंका चूर्ण करके शहद मिलाकर बकरी या भेड़के दूधके साथ सात दिनतक सेवन करनेसे पथरीरोग दूर होता है॥ ६१॥

पिबेद्वरुणजं मूलं काथं तत्कल्कसंयुतम्।

वरनेकी जडके काथमें वरनेकी जड़का चूर्ण डालकर पान करनेसे पथरीरोग दूर होता है॥

क्राथश्च शिग्रुमूलोत्थः कदूष्णोऽश्मरिनाशनः॥ ६२॥

सहिंजनेकी जडका काथ बनाकर मंदोष्ण पान करनेसे अश्मरीरोग दूर होता है॥ ६२॥

शृङ्गवेरयवक्षारपथ्याकालीयकान्वितः। दधिमण्डो भिनत्त्युग्रामश्मरीमाशु पानतः॥ ६३॥

अदरख, जवाखार, हरड और पीतचन्दन इनका कल्क बनाकर दहीके मांडके साथ सेवन करनेसे पथरी रोग शीघ्र दूर होता है॥ ६३॥

पाषाणभेदवरुणगोक्षुरकपोतवंकजः क्राथः। गिरिजतुगुडप्रगाढः कर्कटिकात्रपुसबीजयुतः॥ ६४॥ पेयोऽश्मरीमवश्यं दुर्भेद्यामपि भिनत्ति योगवरः। शिखरिणमिव शतकोटिः शतमन्योर्हस्तनिर्मुक्तः॥ ६५॥

पाषाणभेद, वरना, गोखुरू और ब्राह्मी इनका क्काथ बनाकर उसमें शिलाजीत, गुड़, ककडीके बीजोंका चूर्ण और खीरेके बीजोंका चूर्ण डालकर पान करनेसे अत्यंत कठिन पथरी भी भिद जाती है। जिस प्रकार इन्द्रके हाथसे छूटा हुआ वज्र अनेक पर्वतोंको भेद डालता है ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

श्रीपर्णीफलबीजं मथितेन यः पुमानद्यात्। शाकमशित्वाऽवश्यं तद्धन्ति रोगाश्मरीपीडाम् ॥ ६६ ॥

अरणीके बीजोंको तक्रके साथ सेवन करनेसे अथवा अरणीके पत्तोंका शाक भक्षण करनेसे अश्मरी रोग अवश्य नष्ट हो जाता है ॥ ६६ ॥

श्वदंष्ट्रैरण्डबीजानि नागरं वरुणत्वचः। एतत्क्वाथवरं प्रातः पिबेदश्मरिनाशनम् ॥ ६७ ॥

गोखुरू, अंडके बीज, सोंठ और वरनाकी छाल इनका क्वाथ बनाकर प्रातःकाल पान करनेसे अश्मरी रोग दूर होता है ॥ ६७ ॥

रक्तोद्भवे तूत्पलनालतालकाशेक्षुबालीक्षुकुशोदकानि । पिबेत्सिताक्षौद्रयुतानि खादेद्विदारिमिक्षुत्रपुसानि चैव ॥ ६८ ॥

कमलकी नाल, ताडका फल, कास, ईख, छोटी ईख और कुशा इनको जलमें पीस कर शहद मिला कर सेवन करे और ऊपरसे विदारीकंद, ईख और खीरेको भक्षण करे तो पथरीजनित मूत्रमें रुधिरका गिरना बंद होता है ॥ ६८ ॥

वरुणादिचूर्ण।

पलान्यष्टौ तु कुर्वीत क्षाराणां वरुणत्वचः। तदर्द्धं यावशूकात्तु ततोऽप्यर्धं गुडाद्घृतम् ॥ ६९ ॥ एकीकृत्य विमृद्यैतत्खादेत्कर्षप्रमाणतः। घर्मांबुना सहावश्यं कृच्छ्राश्मरिविनाशनम् ॥ ७० ॥

वरनेकी छालका खार ३२ तोले, जवाखार १६ तोले और गुड़ तथा घी आठ ८ तोले, इन सबको एकत्र मिलालेवे और प्रतिदिन उसमेंसे एक तोला प्रमाण खाय तथा इसपर गरम जल पीवे तो यह चूर्ण मूत्रकृच्छ्र और अश्मरीको नष्ट करता है ॥६९॥७०॥

वरुणकभस्मपरिस्रुतसलिलं तच्चूर्णं यावशूकयुतम् । क्वथनीयं तत्तावद्यावच्चूर्णत्वमायाति ॥ ७१ ॥ तद्गुडयुक्तं हन्यात्तदुदारामश्मरीं घोराम् । वह्निसदनं सुकष्टमश्ममयीमश्मरीं चाशु ॥ ७२ ॥

वरनेके छालकी भस्म करके जलमें डाल देवे और फिर वस्त्रमें डालकर नितारे, पश्चात् उस नितरे हुए पानीमें जवाखार मिला देवे। फिर इसको पकावे। जबतक यह पकते २ चूर्णके समान न हो जाय तबतक इसको पकावे। फिर इसमें गुड़ मिलाकर सेवन करनेसे भयंकर पथरी, मन्दाग्नि और अनेक प्रकारके उदररोग तथा पत्थरके समान कठिन पथरी भी नष्ट होती है ॥ ७१ ॥ ७२ ॥

वरुणकगुड।

नो जग्धं कृमिभिर्घनं सुतरुणं स्निग्धं शुचिस्थानजं घस्रे पुण्यनिरीक्षिते वरुणकं छित्त्वा तुलां प्राहयेत् ॥ संगृह्याप्सु चतुर्गुणासु विपचेत्पादावशेषं जलं तत्तुल्येन गुडेन वै दृढतरे भाण्डे पचेत्तत्पुनः ॥ ७३ ॥ ज्ञात्वैवं घनतां गुडे परिणते प्रत्येकमेषां पलं शुण्ठ्योर्वारुकबीजगोक्षुरुकणापाषाणभिच्छीतलाः ॥ कूष्माण्डत्रपुसाक्षबीजकुनटीवास्तूकसौभाञ्जनद्राक्षैलागिरिजाभयाकृमिहतां चूर्णीकृतानां क्षिपेत् ॥ ७४ ॥ पथ्याशी प्रतिवासरं गुडममुं योग्यप्रमाणं नरः । खादेत्तस्य समस्तदोषजनिताश्मर्यः पतन्ति द्रुतम् ॥७५॥

जो कीडोंका खाया हुआ हो तथा तरुण, स्निग्ध और पवित्र स्थानमें उत्पन्न हुआ ऐसे वरनेके वृक्षको शुभदिनमें, शुभ नक्षत्रमें काटकर उसमेंसे चार सौ तोले ग्रहण करे और उसको चौगुने पानीमें पकावे। जब वह पककर चौथाई भाग बाकी रह जाय तब उसको उतारकर छान लेवे। फिर इस छने हुए काथमें बराबरका गुड़ डालकर एक उत्तम दृढ पात्रमें पकावे, जब गुड़ पककर गाढा होजाय तब उसमें सोंठ, ककड़ीके बीज, गोखुरू, पीपल, पाषाणभेद, पद्माख, पेठेके बीज, खीरेके बीज, बहेडेके बीज, धनियाँ, बथुआ, सहिजना, दाख, इलायची, शिलाजीत, हरड और वायविडंग प्रत्येक औषधिका चूर्ण चार २ तोले डालकर खूब अच्छे प्रकारसे करछीसे चलादेवे। इस वरुणक गुडको पथ्य भोजन करके बलानुसार भक्षण करे तो इससे समस्त दोषोत्पन्न पथरीरोग दूर होता है ॥ ७२ ॥ ७४ ॥ ७५ ॥

कुलित्थाद्यघृत ।

कुलित्थसिन्धूत्थविडङ्गसारं सशर्करं शीतलियावशूकम् । बीजानि कूष्माण्डकगोक्षुराभ्यां घृतं पचेत्तद्वरुणस्य तोये ॥ ७६ ॥ दुःसाध्यसर्वाश्मरिमूत्रकृच्छ्रं मूत्राभिघातश्च समूत्रबन्धम् । एतानि सर्वाणि निहन्ति शीघ्रं प्ररूढवृक्षानिव वज्रपातः ॥ ७७ ॥

कुलथी, सैंधानमक, वायविडंगके चावर, दवाड, जवाखार, पेठेके बीज और गोखुरूके बीज इनके कल्कके द्वारा वरनेके काथमें घृतको पकावे। यह घृत-सर्वप्रकारकी दुःसाध्य पथरी, मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघात और मूत्रावरोध इनसब रोगोंको इस प्रकार नष्ट करता है, जिस प्रकार वज्र दृढ जड़वाले वृक्षोंको शीघ्र नष्ट कर देता है ॥ ७६ ॥ ७७॥

शरादिपंचमूलघृत ।

शरादिपञ्चमूल्या वा कषायेण पचेद्घृतम् । प्रस्थं गोक्षुरुकल्केन सिद्धमद्यात्सशर्करम् । अश्मरीमूत्रकृच्छ्रघ्नं रेतोमार्गरुजापहम् ॥ ७८ ॥

रामसर और तृणपञ्चमूलके काथमें-एक प्रस्थ गोखुरूका कल्क डालकर घृतको पकावे। फिर इसमें मिश्री या उत्तम खाँड मिलाकर सेवन करे तो अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र और वीर्यके मार्गकी पीडा दूर होती है ॥ ७८ ॥

वरुणघृत ।

वरुणस्य तुलां क्षुण्णां जलद्रोणे विपाचयेत् । पादशेषं परिस्राव्य घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ७९ ॥ वरुणं कदलीबिल्वं तृणजं पञ्चमूलकम् । अमृता चाश्मभेदश्च बीजश्च त्रपुसस्य च ॥ ८० ॥ शतपर्वातिलक्षारं पलाशक्षार एव च । यूथिकायाश्च मूलानि कार्षिकानि समावपेत् ॥ ८१ ॥ अस्य मात्रां पिबेज्जन्तुर्देशकालाद्यपेक्षया । जीर्णे चास्मिन्पिबेत्पूर्वं गुडं जीर्णन्तु मस्तुना ॥ ८२ ॥ अश्मरीं शर्कराश्चैव मूत्रकृच्छ्रञ्च नाशयेत् ॥ ८३ ॥

वरनाकी उत्तम छाल १०० सौ पल लेकर कुछ कूटकर एक द्रोण जलमें पकावे। जब पकते २ जल चौथाई भाग बाकी रहजाय तब उतारकर छान लेवे। फिर इस काथमें वरनेकी छाल, केला, वेल, तृणपंचमूल, गिलोय, पाषाणभेद, खीरेके बीज, ईखकी जड, तिलोंका खार, ढाकका खार और जुहीकी जड इन प्रत्येकका कल्क एक २ तोले डालकर एक प्रस्थ घृतको विधिपूर्वक मन्द २ अग्निसे पकावे। इस घृतको देश और कालका विचार कर यथामात्रानुसार पान करे। इसके जीर्ण होनेसे पहले पुराने गुडको दहीके तोडके साथ पान करे। यह घृत-अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र और शर्कराको नष्ट करता है ॥ ७९-८३ ॥

वीरतरादि तैल ।

सैन्धवाद्यन्तु यत्तैलमृषिभिः परिकीर्त्तितम् । तत्तैलं द्विगुणं क्षीरं पचेद्वीरतरादिना ॥ ८४ ॥ क्वाथेन पूर्वकल्केन साधितन्तु भिषग्वरैः । एतत्तैलवरं श्रेष्ठमश्मरीणां विनाशनम् ॥ ॥ ८५ ॥ मूत्राघाते मूत्रकृच्छ्रे पिच्छिते

मथिते तथा। भग्ने श्रमाभिपन्ने च सर्वथैव प्रशस्यते ॥ ८६ ॥

ऋषियोंने जो सैंधवाद्य तैल कहा है उस तेलको दुगुने दूधमें वीरतरादिगणके काथ और कल्कके द्वारा पकावे। यह उत्तम तेल-अश्मरीको नष्ट करता है। तथा मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र, एवं पिचे हुए मथित, मसले हुए, हड्डी आदि टूटे हुए और अत्यन्त परिश्रम करनेसे थके हुए अंगोंमें मालिश करनेसे भी अत्यन्त हित करता है ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ ८६ ॥

द्वितीयवीरतराद्यतैल।

वीरवृक्षाश्मभेदाग्निमन्थस्योनाकपाटलाः। वृक्षादनीसहैरण्डभल्लुकोशीरपद्मकम् ॥ ८७ ॥ कुशकाशशरेक्षूणामास्फोताकोकिलाक्षयोः। शतावरी श्वदंष्ट्रा च सोत्कटाद्वयवंजुलाः ॥ ८८ ॥ कपोतवङ्काश्रीपर्णी काश्मरीमूलसंयुता। एतैः कषायैः कल्कैश्च तैलं धीरो विपाचयेत ॥ ८९ ॥ वातपित्तविकारेषु बस्तिं दद्याद्विचक्षणः। शर्कराश्मरिशूलघ्नं मूत्रकृच्छ्रविनाशनम् ॥ ९० ॥

वीरवृक्ष, पाषाणभेद, अरणी, श्योनाक, पाढल, वंदा, पियावाँसा, अंडकी जड, भिलावे, खस, पद्माख, कुशा, काँस, रामसर, ईख, अपराजिता, तालमखाना, शतावर, गोखुरू, दोनों जातिका ऊंटकटीरा, तेजवल, ब्राह्मी, अरणी और कुम्भेर इन सबके काथ और इन्हींके कल्कके द्वारा तेलको पकावे। फिर इस तेलकी वात और पित्तके विकारोंमें बस्ति देवे। इस तेलसे शर्करा, अश्मरी, शूल और मूत्रकृच्छ्र नष्ट होते हैं ॥ ८७-९० ॥

पुनर्नवाद्यतैल।

पुनर्नवामृताभीरुसक्षारलवणत्रयैः। शटीकुष्ठवचामुस्तरास्नाकट्फलपौष्करैः ॥ ९१ ॥ यवानीहपुषाहिंगुशताह्वासाजमोदकैः। विडङ्गातिविषायष्टीपञ्चकोलकसंयुतैः ॥ ९२ ॥ एतैरक्षसमैः कल्कैस्तैलप्रस्थं विपाचयेत। गोमूत्रं द्विगुणं देयं काञ्जिकं तद्वदेव तु ॥ ९३ ॥ पुनर्नवाद्यमित्येतत्तैलं पानेन बस्तिना। शर्कराश्मरिशूलघ्नं मूत्रकृच्छ्रप्रमोचनम् ॥ ९४ ॥ कट्यूरुबस्तिमेढ्रस्थं कुक्षिशूलविनाशनम्। कफवातामशूलघ्नमन्त्रवृद्धेश्च नाशनम् ॥ ९५ ॥

पुनर्नवा, गिलोय, शतावर, जवाखार, तीनों लवण, कचूर, कूठ, वच, नागरमोथा, रायसन, कायफल, पोहकरमूल, अजवायन, हाऊबेर, हींग, सौंफ, अजमोद, वायविड़ंग, अतीस, मुलैठी और पंचकोल ये प्रत्येक औषधि एक एक तोला लेकर कल्क बनावे। इस कल्कके द्वारा एक प्रस्थ तेलको दुगुने गोमूत्र और दुगुनी कांजीमें पकावे तो यह पुनर्नवाद्यतैल सिद्ध होता है। इस तेलको पान करनेमें अथवा बस्तिकर्म्ममें प्रयोग करनेसे शर्करा, अश्मरी, शूल, मूत्रकृच्छ्र, कटिशूल, ऊरुशूल, बस्तिशूल, लिंगशूल, कुक्षिशूल, कफ, वात, आमशूल और अन्त्रवृद्धिरोग नष्ट होता है ॥ ९१-९५ ॥

ब्रध्नाधिकारनिर्दिष्टं सैन्धवाद्यमिहेष्यते। सर्वथैवोपयोज्यस्तु गणो वीरतरादिकः ॥ ९६ ॥ घृतैः क्षीरैः कषायैश्च क्षारैश्चोत्तरबस्तिभिः। अश्मरीं चाप्यशाम्यन्तीं प्रत्याख्याय समुद्धरेत ॥ ९७ ॥

ब्रध्नाधिकारमें जो सैन्धवादि तेल कहा है; वह इस शर्करा और सिकतापथरीरोगमें भी प्रयोग करना चाहिए। वीरतरादिगणकी औषधियोंके द्वारा सिद्ध किये हुए तेल, घृत, दूध, काथ और क्षारादिकी उत्तरबस्ति देनेसे भी जो पथरी बलवान् हो और किसी औषधिसे शांत न हो तो अस्त्र आदिके द्वारा पथरीको लिंगमेंसे निकालना चाहिए ॥ ९६ ॥ ९७ ॥

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायां
अश्मरीरोगाधिकार
समाप्त ॥ ३७ ॥

अथ प्रमेहरोगाधिकार ।

प्रमेहका निदान ।

आस्यासुखं स्वप्नसुखं दधीनि ग्राम्योदकानूपरसाः पयांसि । नवान्नपानं गुडवैकृतश्च प्रमेहहेतुः कफकृच्च सर्वम् ॥ १ ॥

आरामसे बैठे रहनेसे, अत्यन्त निद्रासे, दही, ग्राम्यजीवोंका मांस, जलचरजीवोंका मांसरस, अनूपदेशके जीवोंका मांसरस, दूध, नवीन अन्न, नवीन जल, गुडके बने पदार्थ, गुड और सम्पूर्ण कफकारक पदार्थ ये सब प्रमेह होनेके कारण हैं-अर्थात् इनको सेवन करनेसे प्रमेहरोग उत्पन्न होता है ॥ १ ॥

प्रमेहकी सम्प्राप्ति ।

मेदश्च मांसश्च शरीरजं च क्लेदं कफो बस्तिगतं प्रदूष्य । करोति मेहान्समुदीर्णमुष्णैस्तानेव पित्तं परिदूष्य चापि ॥ क्षीणेषु दोषेष्ववकृष्य धातून्संदूष्य मेहान् कुरुतेऽनिलश्च ॥ २ ॥

कफ, पित्त और वातोद्भव प्रमेहोंकी क्रमसे सम्प्राप्ति कहते हैं । बस्तिगत कफ, मेद, मांस और क्लेदको दूषित करके कफप्रमेहोंको उत्पन्न करता है । उसी प्रकार अधिक गरम पदार्थोंको सेवन करनेसे बढा हुआ पित्त मेद मांसादिकको दूषित करके पित्तप्रमेहोंको उत्पन्न करता है । एवं वायु कफ पित्तकी क्षीणतासे वसा, मज्जादि धातुओंको खींचकर बस्तिके मुखपर लाकर वातजप्रमेहोंको उत्पन्न करता है ॥२॥

साध्याः कफोत्था दश पित्तजाः षड् याप्या न साध्याः पवनाच्चतुष्काः । समक्रियत्वाद्विषमाक्रियत्वान्महात्ययत्वाच्च यथाक्रमन्ते ॥ ३ ॥

कफोत्पन्न दश प्रमेह साध्य हैं । कारण यह है कि, इनकी औषधक्रिया समान है । छः प्रकारके पित्तप्रमेह याप्य हैं कारण यह कि, इनमें औषधिक्रिया विषम है । और चार प्रकारके वातप्रमेह असाध्य हैं कारण, वायु मज्जादि गम्भीर धातुओंको अपकर्षण करनेसे शीघ्र अत्यन्त पीडा करता है तथा इनकी विषम क्रिया है ॥ ३ ॥

दोषदूष्योंका वर्णन ।

कफः सपित्तः पवनश्च दोषा मेदोस्रशुक्रांबुवसालसीकाः । मज्जारसौजः पिशितश्च दूष्याः प्रमेहिणां विंशतिरेव मेहाः ॥ ४ ॥

कफ, पित्त और वायु ये दोष तथा मेद, रक्त, शुक्र, जल, स्नेह, लसीका, मज्जा, रस, ओज और मांस ये दूष्य हैं अर्थात् कफपित्तादि दोषोंसे ये मेद रक्तादि दूषित होते हैं, इस कारण ये दूष्य कहे जाते हैं । इन दोष और दूष्योंसे वीस प्रकारके प्रमेह उत्पन्न होते हैं ॥ ४ ॥

पूर्वरूप ।

दन्तादीनां मलाढ्यत्वं प्राग्रूपं पाणिपादयोः । दाहश्चिक्कणता देहे तृट्स्वाद्वास्यश्च जायते ॥ ५ ॥

जब प्रमेह उत्पन्न होनेको होता है तब उससे पहले दाँत आदिमें मैल इकट्ठा होता है, हाथ पांवोंमें दाह, शरीरमें चिकनापन, तृषा और मुखमें मीठापन होता है ॥ ५ ॥

सामान्य लक्षण ।

सामान्यं लक्षणं तेषां प्रभूताऽऽविलमूत्रता ॥ ६ ॥

मूत्रकी अधिकता और गदलापन होना यह प्रमेहका सामान्य लक्षण है ॥ ६ ॥

प्रमेहके कारण ।

दोषदूष्याविशेषेऽपि तत्संयोगविशेषतः । मूत्रवर्णादिभेदेन भेदो मेहेषु कल्प्यते ॥ ७ ॥

दोष और दूष्य इनकी विशेषता न होने पर भी संयोगकी विशेषतासे मूत्रके वर्ण आदिमें जो अन्तर होता है उससे प्रमेहोंके भेदोंकी कल्पना करी है ॥७॥

दशकफप्रमेहोंके लक्षण।

स्वच्छं बहुसितं शीतं निर्गन्धमुदकोपमम्। मेहत्युदकमेहेन किञ्चिच्चाविलपिच्छिलम् ॥ ८ ॥

जिसमें स्वच्छ, बहुत सफेद, शीतल, गंधरहित, जलके समान, किंचित् गदला और चिकना मूत्र उतरे उसको उदकमेह कहते हैं ॥ ८ ॥

इक्षो रसमिवात्यर्थं मधुरं चेक्षुमेहतः। सान्द्रीभवेत्पर्युषितं सान्द्रमेहेन मेहति ॥ ९ ॥

ईखके रसके समान रंगवाला और स्वादमें मीठा मूत्र उतरे उसको इक्षुमेह कहते हैं। मूत्रको पात्रमें करके रात्रिके समय रखदेवे जो वह दूसरे दिन गाढा होजाय तो उसको सान्द्रमेह जानना चाहिये ॥ ९ ॥

सुरामेही सुरातुल्यमुपर्यच्छमधो घनम् ॥ १० ॥

जिसका मूत्र सुराके समान ऊपर तो स्वच्छ और नीचे गाढा हो तो उसको सुरामेह कहते हैं ॥१०॥

संहृष्टरोमा पिष्टेन पिष्टवद्बहुलं सितम्। शुक्राभं शुक्रमिश्रं वा शुक्रमेही प्रमेहति। मूत्राणून्सिकतामेही सिकतारूपिणो मलान् ॥ ११ ॥ शीतमेही सुबहुशो मधुरं भृशशीतलम्। शनैः शनैः शनैर्मेही मन्दं मन्दं प्रमेहति। लालातन्तुयुतं मूत्रं लालामेहेन पिच्छिलम् ॥ १२ ॥

जिसमें पिसेहुए चावलोंके पानीके समान सफेद और बहुत मूत्र उतरे तथा मूतनेके समय रोमांच हो आवे उसको पिष्टप्रमेह जानना। जो शुक्रके समान अथवा शुक्रमिला मूते उसको शुक्रमेह कहते हैं। जिस प्रमेहमें छोटे २ वालू रेतके समान कण मूते उसको सिकतामेह कहते हैं। वारंवार मधुर और अत्यन्त शीतल मूत्र उतरे उसको शीतमेह कहते हैं। धीरे २ थोडा २ मूते उसको शनैर्मेह कहते हैं। लारके समान तंतुयुक्त और पिच्छिल मूत्र उतरे उसको लालामेह कहते हैं ॥ ११ ॥ १२ ॥

पित्तके छः प्रमेहोंके लक्षण।

गन्धवर्णरसस्पर्शैः क्षारेण क्षारतोयवत् ॥ १३ ॥ नीलमेहेन नीलाभं कालमेही मषीनिभम्। हारिद्रमेही कटुकं हरिद्रासन्निभं दहत् ॥ १४ ॥ विस्रं माञ्जिष्ठमेहेन मञ्जिष्ठासलिलोपमम्। विस्रमुष्णं सलवणं रक्ताभं रक्तमेहिनः ॥ १५ ॥

खारी जलके समान गंध, वर्ण, रस और स्पर्श हो उसको क्षारमेह कहते हैं। जिसमें नीला मूत्र उतरे उसको नीलमेह कहते हैं। स्याहीके समान काला मूत्र उतरे उसको कालमेह कहते हैं। कटु रसवाला, हलदीके समान रंगवाला और दाहयुक्त मूत्र उतरे उसको हारिद्रमेह कहते हैं। दुर्गन्धित और मजीठके काथके समान मूत्र उतरे उसको मांजिष्ठमेह कहते हैं। दुर्गंधयुक्त, गरम, नमकीन और रुधिरके समान लाल मूत्र उतरे उसको रक्तमेह कहते हैं ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥

वातके ४ प्रमेहोंके लक्षण।

वसामेही वसामिश्रं वसाभं मूत्रयेन्मुहुः। मज्जाभं मज्जमिश्रं वा मज्जामेही मुहुर्मुहुः ॥ कषायं मधुरं रूक्षं क्षौद्रमेहं वदेद्बुधः ॥ १६ ॥ हस्ती मत्त इवाजस्रं मूत्रं वेगविवर्जितम्। सलसीकं विबद्धञ्च हस्तिमेही प्रमेहति ॥ १७ ॥

चर्बीयुक्त और चर्बीके समान वारंवार मूते उसको वसामेह कहते हैं। मज्जाके समान अथवा मज्जामिश्रित मूत्र वारंवार उतरे उसको मज्जामेह कहते हैं। कषैला, मधुर, रूखा और शहदके समान मूते उसको क्षौद्रमेह कहते हैं। मत्त हाथीके समान वारंवार वेगरहित तारसंयुक्त और रुक रुक कर मूते उसको हस्तिमेह कहते हैं ॥ १६ ॥ १७ ॥

प्रमेहके उपद्रव ।

कफप्रमेहके उपद्रव ।

अविपाकोऽरुचिश्छर्दिस्तन्द्रा कासः सपीनसः। उपद्रवाः प्रजायन्ते मेहानां कफजन्मनाम् ॥ १८ ॥

अन्नका अच्छेप्रकारसे परिपाक नहीं होना, अरुचि, वमन, तन्द्रा, खाँसी और पीनस ये सब उपद्रव कफजप्रमेहमें होते हैं ॥ १८ ॥

पित्तजप्रमेहके उपद्रव ।

वस्तिमेहनयोस्तोदो मुष्कावदरणं ज्वरः । दाहतृष्णाम्लिकामूर्च्छा विड्भेदः पित्तजन्मनाम् ॥ १९ ॥

वस्ति और लिंगमें तोडनेसरीखी पीडा हो, दोनों अंडकोषोंमें फाडनेकीसी पीडा हो तथा दाह, तृषा, खट्टी डकारोंका आना, मूर्च्छा और मलभेद ये सब उपद्रव पित्तजप्रमेहके जानने ॥ १९ ॥

वातजप्रमेहके उपद्रव ।

वातजानामुदावर्त्तकम्पहृद्ग्रहलोलता । शूलमुन्निद्रताशोषः श्वासः कासश्च जायते ॥ २० ॥

उदावर्त्त, कम्प, हृदयका रुकना, चपलता, शूल, निद्राका नहीं आना, शोष, श्वास और खाँसी ये वातजप्रमेहके उपद्रव जानने ॥ २० ॥

प्रमेहका अरिष्ट ।

यथोक्तोपद्रवारिष्टमतिप्रसुतमेव च । पिडिकापीडितं गाढं प्रमेहो हन्ति मानवम् ॥ २१ ॥

जिसमें उपरोक्त अविपाकादि सब उपद्रव हों और अत्यंत शुक्र स्रवित होता हो तथा पिडिकाओंसे पीडित हो ऐसा प्रमेहरोगी निश्चय मरणको प्राप्त होता है ॥ २१ ॥

असाध्य लक्षण ।

मूर्च्छाछर्दिज्वरश्वासकासवीसर्पगौरवैः । उपद्रवैरुपेतो यः प्रमेही दुष्प्रतिक्रियाः ॥ २२ ॥

जो प्रमेही मनुष्य मूर्च्छा, वमन, ज्वर, श्वास, खांसी, विसर्प और गुरुता इन उपद्रवोंसे युक्त हो तो असाध्य जानना ॥ २२ ॥

स्त्रियोंके प्रमेह न होनेका कारण ।

रजःप्रसेकान्नारीणां मासि मासि विशुद्ध्यति । कृत्स्नं शरीरं दोषांश्च न प्रमेहन्त्यतः स्त्रियः ॥ २३ ॥

स्त्रियोंके महीनेके महीने रजोधर्म्म होता रहता है इस कारण उससे शरीरके सब दोष स्वच्छ रहते हैं अतएव स्त्रियोंके प्रमेह नहीं होता ॥ २३ ॥

असाध्य लक्षण ।

जातः प्रमेही मधुमेहिनो वा न साध्यरोगः स हि बीजदोषात् । ये चापि केचित्कुलजा विकारा भवन्ति तांश्च प्रवदन्त्यसाध्यान् ॥ २४ ॥

मधुमेहवाले मनुष्यसे उत्पन्न हुआ जो प्रमेहवान् मनुष्य उसका प्रमेह बीजके दोषके कारण साध्य नहीं है। जो जिसके कुलमें परंपरासे विकार चले आते हैं वह भी साध्य नहीं हैं ॥ २४ ॥

सर्व प्रमेहोंकी उपेक्षा करनेसे मधुमेह होता है ।

सर्व एव प्रमेहास्तु कालेनाप्रतिकारिणः । मधुमेहत्वमायान्ति तदाऽसाध्या भवन्ति हि ॥ २५ ॥

चिकित्सा न करनेसे सर्वप्रकारके प्रमेह कालान्तरमें मधुमेहको प्राप्त हो जाते हैं और तब असाध्य होते हैं ॥ २५ ॥

मधुमेहे मधुसमं जायते स किल द्विधा । क्रुद्धे धातुक्षयाद्वायौ दोषावृतपथेऽथवा ॥ २६ ॥ आवृतो दोषलिङ्गानि सोऽनिमित्तं प्रदर्शयन् । क्षणात्क्षीणः क्षणात्पूर्णो भजते कृच्छ्रसाध्यताम् ॥ २७ ॥

मधुमेहमें मूत्र शहदके समान होता है । यह मधुमेह दो प्रकारका होता है सो इस प्रकार कि, एक तो धातुओंके क्षयसे वायुका प्रकोप होनेपर होता है,

अथवा दोषोंसे वायुका मार्ग रुक जानेसे होता है, दोषोंसे वायुका मार्ग रुक जानेपर वह वायु अकस्मात् दोषोंके चिह्नोंको दिखाता है और उसी प्रकार क्षणमात्रमें मूत्राशयको खाली कर डालता है तथा क्षणमात्रमें पूर्ण कर देता है इसीसे प्रमेह कष्टसाध्य हो जाता है ॥ २६ ॥ २७ ॥

मधुमेहशब्दकी प्रवृत्तिमें कारण ।

मधुरं यच्च सर्वेषु प्रायो मध्विव मेहति । सर्वेऽपि मधुमेहाख्या माधुर्याच्च तनोरतः ॥ २८ ॥

प्रायः सर्वप्रकारके प्रमेहोंमें मनुष्य मीठा और मधुकी सदृश मूतता है और शरीरमें मधुरता होती है इस कारण सर्वप्रमेह मधुमेह नामसे कहे जाते हैं २८॥

प्रमेहोंकी उपेक्षा करनेसे दश प्रकारकी पिडिका होती हैं उनको कहते हैं:-

शराविका कच्छपिका जालिनी विनतालजी । मसूरिका सर्षपिका पुत्रिणी सविदारिका ॥ २९ ॥ विद्रधिश्चापि पिडकाः प्रमेहोपेक्षया दश । सन्धिमर्मसु जायन्ते मांसलेषु च धामसु ॥ ३० ॥

प्रमेहोंकी उपेक्षा करनेसे संधियोंमें, मर्मस्थानोंमें और अधिक मांसवाले प्रदेशोंमें दश प्रकारकी पिडिका (फुंसियें) उत्पन्न होती हैं और वे अनुक्रमसे शराविका, कच्छपिका, जालिनी, विनता, अलजी, मसूरिका, सर्षपिका, पुत्रिणी, विदारिका तथा विद्रधि इन नामोंसे कही जाती हैं ॥ २९ ॥ ३० ॥

दशप्रकारकी पिडिकाओंके लक्षण ।

अन्तोन्नता च तद्रूपा निम्नमध्या शराविका । गौरसर्षपसंस्थाना तत्प्रमाणा च सर्षपी ॥ ३१ ॥

जो पिडिका अंतमें ऊँची, मध्यमें नीची हो और सकोरेकी सदृश हो उसको शराविका कहते हैं। जो पिडिका सफेद सरसोंके समान आकारवाली और इतनी ही बडी हो वह सर्षपिका जाननी ॥ ३१ ॥

सदाहा कूर्म्मसंस्थाना ज्ञेया कच्छपिका बुधैः । जालिनी तीव्रदाहा तु मांसजालसमावृता ॥ ३२ ॥

जो पिडिका दाहयुक्त तथा कछुएके पीठकी सदृश हो उसको कच्छपिका कहते हैं, जो पिडिका तीव्र दाहवाली और सूक्ष्म नसोंके जालसे लिपटी हुई हो उसको जालिनी कहते हैं ॥ ३२ ॥

अवगाढरुजाक्लेदा पृष्ठे वाप्युदरेऽपि वा । महती पिडका नीला सा बुधैर्विनता स्मृता ॥ ३३ ॥

जो पिडिका–बडी, मोटी, नीलवर्णवाली और पेट तथा पीठमें उत्पन्न हुई हो वह विनता जाननी॥३३॥

महत्यल्पचिता ज्ञेया पिडका चापि पुत्रिणी । मसूरसंस्थानसमा विज्ञेया तु मसूरिका ॥ ३४ ॥

जो पिडिका बडी और सूक्ष्म फुंसियोंसे व्याप्त हो उसको पुत्रिणी जाननी । जो पिड़िका मसूरकी दालके समान बडी हो उसको मसूरिका जाननी ॥ ३४ ॥

रक्तासितास्फोटचिता विज्ञेया त्वलजी भवेत् । विदारीकन्दवद्वृत्ता कठिना च विदारिका ॥ ३५ ॥

जो पिड़िका लाल तथा काली हो और अन्य फुंसियोंसे व्याप्त हो उसको अलजी कहते हैं। जो पिडिका विदारीकंदके समान गोल और कठोर हो वह विदारिका जाननी ॥ ३५ ॥

विद्रधेर्लक्षणैर्युक्ता ज्ञेया विद्रधिका च सा ॥ ३६ ॥

जो पिडिका विद्रधिके लक्षणोंसे युक्त हो उसको विद्रधिका जाननी ॥ ३६ ॥

प्रमेहकी पिडिकाओंमें दोषोंका निर्णय ।

ये यन्मयाः स्मृता मेहास्तेषामेतास्तु तन्मयाः ।

जो प्रमेह जिस दोषसे युक्त हो उस प्रमेहकी पिडिका भी उसी दोषवाली होती है ।

विनाप्रमेहके पिडिकाओंका होना ।

विना प्रमेहमप्येता जायन्ते दुष्टमेदसः। तावच्चैता न लक्ष्यन्ते यावद्वास्तुपरिग्रहः ॥ ३७ ॥

जिस मनुष्यकी मेदा दूषित हो उसके विना प्रमेह भी पिडिका होती हैं । जबतक इन पिडिकाओंने अपने अपने स्थानको भलीभाँति पकडा न हो तबतक यह पिडिका नहीं दीखती हैं ॥ ३७ ॥

पिडिकाओंकी असाध्यता ।

गुदे हृदि शिरस्यंसे पृष्ठे मर्म्मसु चोत्थिताः । सोपद्रवा दुर्बलाग्नेः पिडकाः परिवर्जयेत् ॥ ३८ ॥

गुदा, हृदय, शिर, कंधे, पीठ इनके मर्म्मस्थानोंमें उत्पन्न हुई, उपद्रवयुक्त और मंदाग्निवाले मनुष्यके उत्पन्न हुई पिडिकाओंकी चिकित्सा न करे ॥३८॥

पिडिकाओंके उपद्रव ।

तृट्श्वासमांससंकोचमोहहिक्कामदज्वराः । विसर्पमर्म्मसंरोधाः पिडकानामुपद्रवाः ॥ ३९ ॥

तृषा, श्वास, मांसका संकोच, बेहोशी, हिचकी, मद, ज्वर, विसर्प और मर्म्मस्थानोंमें अवरोध यह पिड़िकाओंके उपद्रव हैं ॥ ३९ ॥

प्रमेहरोगकी चिकित्सा ।

प्रमेहमें हितकारक पदार्थ ।

श्यामाककोद्रवोद्दालगोधूमचणकाढकी । कुलित्थाश्च हिता भोज्ये पुराणा मेहिनां सदा ॥ ४० ॥

समा, कोदों, वनकोदों, गेहूं, चने, अरहर और कुलथी ये सब पुराने धान्य प्रमेहरोगवाले मनुष्योंको भोजनमें हितकारक हैं ॥ ४० ॥

मेहिनां तिक्तशाकानि जाङ्गला हरिणाण्डजाः । यवान्नविकृतिर्मुद्गाः शस्यन्ते शालिषष्टिकाः ॥ ४१ ॥

कडवेशाक, जांगलप्रदेशके पशुपक्षियोंका मांस, जौके पदार्थ, मूँग, शालिचावल और साँठीचावल ये सब प्रमेहरोगमें हितकारक हैं ॥ ४१ ॥

प्रमेहरोगमें त्याज्य पदार्थ ।

सौवीरश्च सुरातक्रं तैलं क्षीरं घृतं गुडम् । अम्लेक्षुरसपिष्टान्नानूपमांसानि वर्जयेत् ॥ ४२ ॥

सौवीर, मदिरा, तक्र, तेल, दूध, घी, गुड, खटाई, ईखका रस, पकान्न और अनूपदेशके जीवोंका मांस इनको प्रमेहरोगी त्याग देवे ॥ ४२ ॥

तत्रादित एव प्रमेहिनमुपास्निग्धमन्यतमेन प्रियंग्वादिसिद्धेन तैलेन वामयेत्प्रगाढं विरेचयेच्च विरेचनादनन्तरं सुरसादिकषायेणास्थापयेत् । महौषधभद्रदारुमुस्तावापेन मधुसैन्धवयुक्तेन दह्यमानं वा न्यग्रोधादिकषायेण निस्तैलेनेति । वातोत्कटेषु स्नेहपानं विशेषतः ।

प्रमेहरोगमें प्रथम रोगीको प्रियंगू आदिके द्वारा सिद्ध किये हुए तेलसे स्निग्ध करके वमन तथा विरेचन करावे, विरेचन करानेके पश्चात् सुरसादि औषधियोंके काथमें सोंठ, देवदारु और नागरमोथेका चूर्ण एवं शहद तथा सैंधानमक मिलावे और फिर इस काथसे निरूहबस्ति देवे और जो दाह होती हो तो तेलरहित न्यग्रोधादि काथसे निरूह बस्ति देवे, वायुकी अधिकतावाले प्रमेहोंमें विशेष कर स्नेहपान करावे ।

पारिजातजयानिम्बवह्निगायत्रिणा पृथक् । पाठायाः सागुरोः पीता द्वयस्य शारदस्य च ॥ ४३ ॥ जलेक्षुमद्यसिकताः शनैर्लवणपिष्टकान् । सान्द्रमेहान्कफान्घ्नन्ति काथाश्चाष्टौ समाक्षिकाः ॥ ४४ ॥

फरहदका काथ करके उसमें शहद डाल कर पान करनेसे उदकप्रमेह नष्ट होता है । अरणीका काथ बनाकर शहद डाल कर पान करनेसे इक्षुमेह

नष्ट होता है। नीमके काथमें शहद डाल कर पान करनेसे सुरामेह नष्ट होता है। चीतेके काथमें शहद डाल कर पान करनेसे सिकतामेह नष्ट होता है। खैरका काथ बना कर शहद डाल कर पान करनेसे शनैर्मेह नष्ट होता है। पाढके काथमें शहद डाल कर पान करनेसे क्षारमेह नष्ट होता है। अगरके काथमें शहद डालकर पान करनेसे पिष्टकप्रमेह नष्ट होता है। दोनों प्रकारकी हल्दीके काथमें शहद डाल कर पान करनेसे सांद्रमेह नष्ट होता है॥ ४३॥ ४४॥

हरीतकीकट्फलमुस्तलोध्राः पाठाविडङ्गार्जुनधन्वयासाः। उभे हरिद्रे तगरं विडङ्गं कदम्बशालार्जुनदीप्यकाश्च॥ ४५॥

हरड़, कायफल, नागरमोथा और लोध इनका काथ बना कर उसमें शहद डाल कर पान करनेसे उदकमेह नष्ट होता है। पाढ, वायविडंग, अर्जुनकी छाल और धमासा इसके काथमें शहद डाल कर पान करनेसे इक्षुमेह नष्ट होता है, दोनों हलदी, तगर और वायविडंग इनका काथ बना कर शहद डाल कर पान करनेसे सान्द्रमेह नष्ट होता है। कदमकी छाल, शालकी छाल, अर्जुनकी छाल और अजवायनका काथ बना कर शहद डाल कर पान करनेसे सुराप्रमेह नष्ट होता है॥ ४५॥

दार्वी विडङ्गं खदिरो धवश्च सुराह्वकुष्ठागुरुचन्दनानि। दार्व्यग्निमन्थौ त्रिफला च पाठा मूर्वाभया चैव तथा श्वदंष्ट्रा॥ ४६॥ यवान्युशीराण्यभयागुडूचीजंबूशिवाचित्रकसप्तपर्णाः। पादैः कषायाः कफमेहविशैर्दशोपदिष्टा मधुसंप्रयुक्ताः॥ ४७॥

दारुहलदी, वायविडंग, खैरसार, धावेके पुष्प इनका काथ बना कर शहद डाल कर पीनेसे पिष्टप्रमेह दूर होता है। देवदारु, कूठ, अगर और चन्दन इनके काथमें शहद डालकर पान करनेसे शुक्रप्रमेह दूर होता है। दारुहलदी, अरणी, त्रिफला और पाढ इनका काथ बना कर शहद डाल कर पान करनेसे सिकतामेह दूर होता है। पाढ, चुरनहार और गोखुरू, हर्ड, इनका काथ बना कर शहद डाल कर पान करनेसे शीतमेह दूर होता है। अजवायन, खस, हरड़ और गिलोय इनका काथ बना कर शहद डाल कर पान करनेसे शनैर्मेह दूर होता है। जामुन, हर्ड, चीता और सतौन इनका काथ बना कर शहद डाल कर पान करनेसे लालाप्रमेह दूर होता है॥ ४६॥ ४७॥

उशीरलोध्रार्जुनचन्दनानामुशीरमुस्तामधुकाभयानाम्। पटोलनिम्बामलकामृतानां मुस्ताभयामुष्ककवृक्षकाणाम्॥ ४८॥ लोध्राम्रकालीयकधातकीनां विश्वार्जुनानां मिशिसोत्पलानाम्। शिरीषधान्यार्जुनकेशराणां प्रियंगुपद्मोत्पलकिंशुकानाम्॥ ४९॥ अश्वत्थपाठासनवेतसानां कटंकटेर्युत्पलमुस्तकानाम्। पैत्तेषु मेहेषु सदोपदिष्टाः कषाययोगा मधुसंप्रयुक्ताः॥ ५०॥

खस, लोध, अर्जुनकी छाल आर चन्दन इनके क्वाथमें शहद डालकर पान करनेसे अथवा खस, नागरमोथा, मुलैठी और हरड इनके क्वाथमें शहद डालकर पान करनेसे या परवल, नीमकी छाल, आमले और गिलोय इनके क्वाथमें शहद डाल कर पान करनेसे अथवा नागरमोथा, हरड़ और मोखा इनके क्वाथमें शहद डालकर पान करनेसे या लोध, आमकी छाल, पीतचन्दन और धायके फूल इनके क्वाथमें शहद डाल कर पान करनेसे, अथवा सोंठ, अर्जुनकी छाल, सौंफ और कमल इनके काथमें शहद डाल कर पान करनेसे, किम्वा सिरसकी छाल, धनियाँ, अर्जुनकी छाल और नागकेशर इनके क्वाथमें शहद डाल कर पान करनेसे, अथवा फूलप्रियंगू, कमल, कुमुद और ढाकके पुष्प इनके क्वाथमें शहद डाल कर पान करनेसे अथवा पीपलकी छाल, पाढ, विजयसार और वेंत इनके क्वाथमें शहद डालकर पान करनेसे, अथवा हल्दी, दारुहल्दी, कमल और नागरमोथा इनका क्वाथ बना कर शहद डाल कर पान करनेसे पित्तजप्रमेह दूर होता है॥ ४८॥ ४९॥ ५०॥

कफमेहहरक्वाथसिद्धं सर्पिः कफे हितम्।

कफप्रमेहनाशक औषधियोंके क्वाथसे पकाया हुआ घृत कफजप्रमेहोंको दूर करता है।

पित्तमेहघ्ननिर्यूहसिद्धं पित्तहरं घृतम् ॥ ५१ ॥

पित्तप्रमेहनाशक औषधियोंके क्वाथसे पकाया हुआ घी पित्तजप्रमेहोंको नष्ट करता है ॥ ५१ ॥

कम्पिल्लसप्तच्छदशालजानि वैभीतरौहीतककौटजानि । पटोलकालीयगदागुरूणि क्षौद्रेण लिह्यात्कफपित्तमेही ॥ ५२ ॥

कवीला, सतौना, शाल, बहेडा, रोहेडा कुडेके बीज, परवल, दारुहलदी, कूठ और अगर इनको एकत्र पीस कर शहद मिला कर चाटनेसे कफपित्तजप्रमेह दूर होता है ॥ ५२ ॥

दूर्वाकसेरुपूतीककुम्भीकप्लवशेवलम् । जलेन क्वथितं पीतं शुक्रमेहहरं परम् ॥ ५३ ॥

दूब, कसेरु, दुर्गन्धकरंज, कायफल, नागरमोथा और सिवार इनका जलमें क्वाथ बना कर पान करनेसे शुक्रप्रमेह दूर होता है ॥ ५३ ॥

त्रिफलारग्वधद्राक्षाकषायो मधुसंयुतः। पीतो निहन्ति फेनाह्वं प्रमेहं नियतं नृणाम् ॥ ५४ ॥

त्रिफला, अमलतास और दाख इनके क्वाथमें शहद डाल कर पान करनेसे फेनके समान प्रमेह दूर होता है ॥ ५४ ॥

छिन्नावह्निकषायं वा पाठा कुटजरामठम् । तिक्ताकुष्ठञ्च संचूर्ण्य सर्पिर्मेही पिबेन्नरः ॥ ५५ ॥

गिलोय और चीता इनका क्वाथ बना कर पान करनेसे अथवा पाढ, कुडेकी छाल, हींग, कुटकी और कूठ इनका चूर्ण करके सेवन करनेसे घृतके समान प्रमेह दूर होजाता है ॥ ५५ ॥

पाठाशिरीषदुस्पर्शमूर्वातिन्दुककिंशुकम् । कपित्थानां भिषक् क्वाथं हस्तिमेहे प्रयोजयेत् ॥ ५६ ॥

पाढ, सिरसकी छाल, जवासा, मूर्वा, तेंदू, ढाकके पुष्प और कैथ इनका क्वाथ बना कर सेवन करनेसे हस्तिप्रमेह दूर होता है ॥ ५६ ॥

त्रिफलादारुदार्व्यब्दक्वाथः क्षौद्रेण मेहहा ।

त्रिफला, देवदारु, दारुहलदी और नागरमोथा इनका क्वाथ बना कर शहद डाल कर पान करनेसे प्रमेहरोग दूर होता है ।

कुटजासनदार्व्यब्दफलत्रयभवोऽथवा ॥ ५७ ॥

अथवा कुडेकी छाल, विजयसार, दारुहलदी, नागरमोथा और त्रिफला इनका क्वाथ बना कर पान करनेसे प्रमेहरोग नष्ट होता है ॥ ५७ ॥

गुडूच्या स्वरसः पेयो मधुना सह मेहजित् ।

अथवा गिलोयके स्वरसमें शहद डाल कर पान करनेसे प्रमेहरोग दूर होता है ।

निशाकल्कयुतो धात्रीरसो वा माक्षिकान्वितः ॥ ५८ ॥

या आमलोंके रसमें हलदीका कल्क अथवा शहद डालकर पान करनेसे प्रमेहरोग शमन होता है॥५८॥

मधुना त्रिफलाचूर्णमथवाश्मजतूद्भवम् । लोहजं वाभयोत्थं वा लिहेन्मेहनिवृत्तये ॥ ५९ ॥

त्रिफलेके चूर्णको अथवा शिलाजीतको या लोहेके भस्मको अथवा हरडोंके चूर्णको शहदमें मिला कर चाटनेसे प्रमेहरोग नाश होता है ॥ ५९ ॥

कटंकटेरीमधुकत्रिफलाचित्रकैः समैः । सिद्धः कषायः पातव्यः प्रमेहानां विनाशनः ॥ ६० ॥

दारुहलदी, मुलैठी, त्रिफला और चीता ये सब समान भाग लेकर क्काथ बनावे। इस क्वाथको पान करनेसे प्रमेहरोग दूर होता है॥६०॥

फलत्रिकं दारुनिशां विशालां मुस्ताश्च निःक्काथ्य निशांशकल्कम्। पिबेत्कषायं मधुसंप्रयुक्तं सर्वप्रमेहेषु समुत्थितेषु॥ ६१॥

त्रिफला, दारुहलदी, इन्द्रायण और नागरमोथा इनका क्वाथ बनाकर उसमें हलदीका कल्क और शहद डालकर पान करनेसे सर्वप्रकारके प्रमेह दूर होते हैं॥ ६१॥

गोभक्षितान्यवान्मूत्रभावितान्केवलानपि। चित्रकोदश्विता खादेन्निम्बमुद्गरसेन वा। भक्षयेन्मधुना मासं प्रमेही यवपिष्टकम्॥ ६२॥

गौके खायेहुए जौको उसके गोबरमेंसे निकाल कर गोमूत्रकी भावना देवे। अथवा विना ही भावना दिये चितकबरी गौके उदश्वित् नामक तक्रके साथ, नीमके रसके साथ अथवा मूँगके रसके साथ सेवन करनेसे प्रमेहरोग दूर होता है। अथवा जौकी पिट्ठीको एक महीनेतक शहदके साथ सेवन करनेसे प्रमेहरोग दूर होता है॥ ६२॥

मेदोघ्ना बद्धमूत्राश्च समाः सर्वेषु धातुषु। यवास्तस्माद्विशिष्यन्ते प्रमेहेषु विशेषतः॥ ६३॥

जौ–मेदको नष्ट करनेवाले, मूत्रको रोकनेवाले और सब धातुओंको समान अवस्थामें करनेवाले हैं। इस कारण प्रमेहरोगमें जौ विशेष हितकारी हैं॥ ६३॥

न्यग्रोधादि चूर्ण।

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थस्योनाकारग्वधासनम्। आम्रं कपित्थं जंबुश्च प्रियालं ककुभं धवम्॥ ६४॥ मधूकं मधुकं लोध्रं वरुणं पारिभद्रकम्। पटोलं मेषशृङ्गी च दन्ती चित्रकमाढकी॥ ॥ ६५॥ करञ्जत्रिफलाशक्रभल्लातकफलानि च। एतानि समभागानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत्॥ ६६॥ न्यग्रोधाद्यमिदं चूर्णं मधुना सह योजयेत्। फलत्रयकषायानुपिबेत्तेन मूत्रं विशुद्ध्यति॥ ६७॥ एतेन विंशतिर्मेहा मूत्रकृच्छ्राणि यानि च। प्रशमं यान्ति योगेन पिडिका न च जायते॥६८॥

वड, गूलर, पीपलकी छाल, स्योनाक, अमलतास, विजयसार, आम, कैथ, जामुन, चिरौंजी, कोह, धावा, मुलैठी, महुआ, लोध, वरना, फरहद, पटोलपात, मेढाशिंगी, दंती, चीता, अडहर, करंज, त्रिफला, इन्द्रजौ और भिलावे ये सब समानभाग लेवे। सबको एकत्र पीसकर वारीक चूर्ण करलेवे तो यह न्यग्रोधाद्यचूर्ण तैय्यार होता है। इस चूर्णको शहदके साथ सेवन करना चाहिए और इसके ऊपर त्रिफलेका क्वाथ पान करना चाहिए। इससे मूत्र शुद्ध होता है तथा वीस प्रकारके प्रमेह, सर्वप्रकारके मूत्रकृच्छ्र और सर्वप्रकारकी प्रमेहपिड़िका दूर होती हैं॥ ६४–६८॥

त्रिकट्वाद्यगुटिका।

त्रिकटुत्रिफलातुल्यं गुग्गुलश्च समांशिकम्। गोक्षुरुक्काथसंयुक्तां गुटिकां कारयेद्बुधः॥ ६९॥ देशकालबलापेक्षी भक्षयेच्चानुलोमिकाम्। न चात्र परिहारोऽस्ति कर्म कुर्य्याद्यथेप्सितम्॥ ७०॥ प्रमेहान्वातरोगांश्च वातशोणितमेव वा। मूत्राघातं मूत्रदोषं प्रदरश्चाशु नाशयेत्॥ ७१॥

त्रिकुटा और त्रिफला यह समान भाग लेकर चूर्ण बनावे और सब चूर्णके बराबर गूगल लेवे। पहले गोखुरुओंके क्वाथमें गूगलको शुद्ध करले फिर अग्नि पर चढाकर पूर्ण पकावे जब मावा सा हो जाय फिर गोलियाँ बनावे। इन गोलियोंको देश, काल और बलका विचार कर सेवन करना चाहिए। यह गोली–वातको अनुलोमन करनेवाली हैं। इसपर किसी प्रकारका परहेज नहीं है, इसपर अपनी इच्छानुसार आहार विहार करे। यह गोली–सर्वप्रकारके प्रमेह, समस्त वातरोग, वातरक्त, मूत्राघात, मूत्रदोष और प्रदरको नष्ट करती हैं॥ ६९॥ ७०॥ ७१॥

दाडिमाद्यघृत ।

दाडिमस्य च बीजानि कृमिघ्नस्य च तण्डुलाः । रजनी चवकाऽजाजी नागरं त्रिफला कणा ॥ ७२ ॥ त्रिकण्टकस्य च फलं यवानी धान्यकं तथा । वृक्षाम्लचविकाकोलसिन्धूद्भवसमाहितैः ॥ ७३ ॥ कल्कैरक्षसमैरेभिर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् । भोज्ये पाने प्रदातव्यं सर्वर्तुषु च मात्रया ॥ ॥ ७४ ॥ प्रमेहविंशतिं चैव मूत्राघातं तथाश्मरीम् । कृच्छ्रं सुदारुणाश्चैव हन्यादेव न संशयः ॥ ७५ ॥ विबन्धानाहशूलघ्नं कामलाज्वरनाशनम् । दाडिमाद्यं घृतश्चैतदश्विभ्यां परिकीर्त्तितम् ॥ ७६ ॥

अनारके दाने, वायविडंगके चावल,हलदी, चव्य, जीरा, सोंठ, त्रिफला, पीपल, गोखुरू, अजवायन, धनियाँ, विषांबिल, चव्य, बेर और सैंधानमक ये प्रत्येक औषधि एक एक तोला लेकर कल्क बनावे । इस कल्कके द्वारा एक प्रस्थ घृतको पकावे । अश्विनी कुमारोंका कहा यह घी सर्वऋतुओंमें मात्राके अनुसार भोजन पानके साथ सेवन करे । यह घृत—बीसों प्रकारके प्रमेह, मूत्राघात, अश्मरी, दारुण मूत्रकृच्छ्र, विबन्ध, आनाह, शूल, कामला और ज्वरको नष्ट करता है ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

गोक्षुरादिचूर्णगुटिका ।

श्वदंष्ट्रा सकणा मुस्ता गुडूची फल्गुपल्लवाः । दर्भाङ्कुराश्च गण्डीरी रोहिषस्य च पल्लवाः ॥ ७७ ॥ काला पुनर्नवा श्यामा शारिवा देवदारु च । पिप्पली शृङ्गवेरश्च विडङ्गं मरिचानि च ॥ ७८ ॥ पाठा काम्पिल्लकं भार्ङ्गी द्वे हरिद्रे निदिग्धिका । एरण्डमूलं दन्ती च चित्रकं कटुरोहिणी ॥ ७९ ॥ एतानि समभागानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् । यावन्त्येतानि चूर्णानि द्विस्तावत् स्यादयोरजः ॥ ८० ॥ततो बिडालपदकं पिबेदुष्णेन वारिणा । अलाभे चापि मद्यानां मेहाञ्जयति विंशतिम् ॥८१॥ श्वयथुश्च तथार्शांसि पाण्डुरोगं हलीमकम् । उदराण्यथ शूलानि प्लीहानश्चापि कर्षति ॥८२॥ एभिर्गोमूत्रपिष्टैस्तु गुटिकां कारयेद्भिषक् । रोगेष्वेतेषु मुख्याः स्युर्बलमांसविवर्द्धनाः ॥ ८३ ॥

गोखुरू, पीपल, नागरमोथा, गिलोय, कठूमरके पत्ते, दाभके अंकुर, समष्ठिला, रोहिषतृणके पत्ते, निसोत, रक्तपुनर्नवा, सारिवा, देवदारु, पीपल, अदरख, वायविडंग, कालीमिरच, पाढ, कबीला, भारंगी, हलदी, दारुहलदी, कटेरी, अंडकी जड, दंती, चीता और कुटकी ये सब समान भाग लेवे और सबसे दुगुना लोहेका चूर्ण लेवे । सबको एकत्र पीसकर कपडेमें छान लेवे । इसमेंसे प्रतिदिन एक तोला प्रमाण मदिराके साथ और जो मदिरा न मिले तो गरम जलके साथ पान करे । यह चूर्ण—वीसप्रकारके प्रमेह, सूजन, बवासीर, पाण्डुरोग, हलीमक, उदररोग, शूल और प्लीहाको दूर करता है । अथवा इस चूर्णको गोमूत्रमें पीसकर गोली बनावे । यह गोली भी उपरोक्त समस्तरोगोंको नष्ट करती है और विशेष करके बल तथा मांसको बढाती है ॥ ७७-॥ ८३ ॥

सिंहामृतघृत ।

कण्टकार्य्या गुडूच्याश्च संहरेच्च शतं शतम् । सङ्कुट्योलूखले विद्वांश्चतुर्द्रोणेऽम्भसः पचेत् ॥ ८४ ॥ तेन पादावशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् । त्रिकटुत्रिफलारास्नाविडङ्गान्यथ चित्रकम् ॥ ८५ ॥ काश्मर्य्यः पञ्चमूलानि पूतिकस्य त्वगेव च । कलिङ्ग इति सर्वाणि सूक्ष्मपिष्टानि कारयेत् ॥८६॥ अक्षमात्रां पिबेत्प्रातः शालिभिः पय-

सा हितैः । प्रमेहं मधुमेहञ्च मूत्रकृच्छ्रं भगन्दरम् ॥ ८७॥ आलस्यञ्चान्त्रवृद्धिञ्च कुष्ठरोगं विशेषतः । क्षयं चैव निहन्त्येतन्नाम्ना सिंहामृतं घृतम् ॥ ८८ ॥

कटेरी और गिलोय सौ २ पल लेकर ओखलीमें कूट कर चार द्रोण जलमें पकावे। जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रह जाय तब उतार कर छान लेवे। फिर इस काथमें त्रिकुटा, त्रिफला, रायसन, वायविडंग, चीता, कुम्भेर, पंचमूल, पूतिकरंजकी छाल और इन्द्रजौ इनका कल्क बना कर डाले और इसमें एक प्रस्थ घृतको विधिपूर्वक पकावे। प्रतिदिन प्रातःकाल इसमेंसे एक तोला प्रमाण खाय और इसपर दूधके साथ शालिचावलोंका भात खाय। यह घी–प्रमेह, मधुमेह, मूत्रकृच्छ्र, भगन्दर, आलस्य, अन्त्रवृद्धि, विशेष कर कुष्ठरोग और क्षयरोगको नष्ट करता है ॥ ८४ ॥ ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ ८८ ॥

धान्वन्तरघृत ।

दशमूलं करञ्जौ द्वौ देवदारु हरीतकी । वर्षाभूर्वरुणो दन्ती चित्रकं सपुनर्नवम् ॥८९॥ सुधानीपकदम्बाश्च बिल्वभल्लातकानि च । शटी पुष्करमूलञ्च पिप्पलीमूलमेव च ॥९०॥ पृथग्दशपलान्भागानेतांस्तोयार्म्मणे पचेत् । यवकोलकुलित्थानां प्रस्थं प्रस्थं विपाचयेत् ॥ ९१ ॥ तेन पादावशेषेण घृतप्रस्थं पचेद्भिषक् । निचुलं त्रिफलाभार्ङ्गी रोहिषं गजपिप्पली ॥ ९२ ॥ शृङ्गवेरं विडङ्गानि वचा कम्पिल्लकं तथा । गर्भेणानेन तत्सिद्धं पाययेत्तु यथाबलम् ॥ ९३ ॥ एतद्धान्वन्तरं नाम विख्यातं सर्पिरुत्तमम् । कुष्ठप्रमेहगुल्मांश्च श्वयथुं वातशोणितम् ९४॥ प्लीहोदराणि चार्शांसि विद्रधिं पिडकाश्च याः । अपस्मारं तथोन्मादं सर्पिरेतान्नियच्छति ॥ ९५ ॥ पृथक्तोयार्म्मणे तत्र पचेद्द्रव्याच्छतं शतम् । शतत्रयाधिके तोयमुत्सर्गक्रमतो भवेत् ॥ ९६ ॥

दशमूलकी समस्त औषधियाँ, दोनों करंज, देवदारु, हरड, गदहपुनेरा, वरना, दंती, चीता, पुनर्नवा, थूहर, दोनों प्रकारकी कदम्ब, बेलगिरी, भिलावे, कचूर, पोहकरमूल और पीपलामूल प्रत्येक औषधिका चालीस चालीस तोले चूर्ण, जौ, बेर और कुलथी ये प्रत्येक एक एक प्रस्थ लेवे, सबको एक२ द्रोण जलमें पकावे। जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रह जाय तब उतार कर छान लेवे। फिर इस क्वाथमें जलवेत, त्रिफला, भारंगी, रोहिषतृण, गजपीपल, अदरख, वायविडंग, वच और कबीला इन प्रत्येक औषधिका कल्क एक २ तोला और उत्तम गौका घी एक प्रस्थ डाल कर विधि पूर्वक घृतको सिद्ध करे। इस घृतमेंसे शरीरके बलानुसार भक्षण करे। इस उत्तम घृतको धान्वन्तर कहते हैं। यह घी–कोढ, प्रमेह, गुल्म, सूजन वातरक्त, प्लीहा, उदररोग, बवासीर, विद्रधि, प्रमेह, पिडिका, अपस्मार और उन्माद इन सबको नष्ट करता है। इस घृतमें प्रत्येक औषधि १०० पल लेकर अलग २ एक २ द्रोण जलमें पकानी चाहिये ॥ ८९–९६ ॥

अर्जुनादिघृत वा तैल ।

अर्जुनपटोलनिम्बैः सवचादीप्यकररासमञ्जिष्ठैः । भल्लातकागुरुघनैः सगदानलचन्दनोशीरैः ॥ ९७ ॥ गोक्षुरुकसोमवल्कैर्निम्बपटोलैर्हरिद्रया वरया । अश्मन्तकार्जुनाभ्यां दीप्यकयुक्तेन चैव लोध्रेण ॥ ९८ ॥ माञ्जिष्ठातिविषाभ्यां कल्कैर्वा कषायैः पचेत्तैलम् । कफवातोत्थे मेहे पित्तकृते साधयेत्सर्पिः ॥ ९९ ॥

अर्जुनकी छाल, पटोलपात, नीमकी छाल, वच, अजवायन, रायसन, मजीठ, भिलावे, अगर, नागरमोथा, कूठ, चीता, चन्दन, खस, गोखुरू और कायफल इन सबका काथ बना कर उसमें नीमकी छाल,

पटोलपत्र, हलदी, त्रिफला, पाषाणभेद, अर्जुनकी छाल, अजमोद, लोध, मजीठ और अतीस इनका कल्क डालकर तेलको पकावे । इस तेलको सेवन करनेसे कफ और वातजनित प्रमेह दूर होते हैं तथा इन ही औषधियोंके क्वाथ और इन ही औषधियोंके कल्कके द्वारा पकाया हुआ घी-पित्तके प्रमेहोंको दूर करता है ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ ९९ ॥

गोक्षुराद्यवलेह ।

गोकण्टकं सदलमूलफलं गृहीत्वा संकुट्टितं पलशतं क्वथितन्तु तोये । पादस्थितेन च जलेन पलानि दत्त्वा पञ्चाशतञ्च विपचेदथ शर्करायाः ॥१००॥ तस्मिन्घनत्वमुपगच्छति चूर्णितानि दद्यात्पलद्वयमितानि सुभेषजानि । शुण्ठीकणामरिचनागदलत्वगेलाजातीयकोशककुभत्रपुसीफलानि १०१॥ वांसीपलाष्टकमिह प्रणिधाय नित्यं लेह्यं सुसिद्धममृतं पलसंमितन्तु । हन्त्याशु मूत्रपरिदाहविबन्धशुक्रान् कृच्छ्राश्मरीरुधिरमेहमधुप्रमेहान्१०२

पत्ते, जड और फलसहित उत्तम गोखुरू १०० पल लेकर कुछएक कूट कर चौगुने जलमें पकावे । जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रह जाय तब उतार कर छान लेवे । फिर इस छने हुए काथमें उत्तम खाँड अथवा मिश्री ५० पल डाल कर पकावे । जब पकते पकते यह गाढा होजाय तब इसमें सोंठ, पीपल, मिरच, नागकेशर, दालचीनी, इलायची, जायफल, कोहके फूल और खीरेके बीज ये प्रत्येक औषधि आठ आठ तोले पीसकर डाल देवे और वंशलोचन ३२ तोले डाल कर उतार लेवे । पश्चात् इस अमृतके समान उत्तम अवलेहमेंसे चार तोले प्रमाण ले कर नित्य सेवन करे । यह गोक्षुराद्यवलेह-मूत्रकी दाह, मूत्रावरोध, शुक्रदोष, मूत्रकृच्छ्र, पथरी, रक्तप्रमेह और मधुमेहको नष्ट करता है ॥ १०० ॥ ॥ १०१ ॥ १०२ ॥

सारलेह ।

सारवर्गकषायं चतुर्थांशावशिष्टमवतार्य्य परिस्राव्य पुनरवनीय साधयेत् । सिध्यति चामलकलोध्रप्रियंगुदन्तीकृष्णायसताम्रचूर्णान्यावपेत् । तदेतदनुपदग्धं लेहीभूतमवतार्य्याऽनुगुप्तं निदध्यात् ततो यथायोगमुपयुञ्जीत एष लेहः सर्वमधुमेहानपहन्ति ।

सारवर्गकी समस्त औषधियाँ ले कर चौगुने जलमें पकावे जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रह जाय तब उतार कर छान लेवे । फिर इस काथमें आमले, लोध, फूलप्रियंगु, दन्ती, लोहेकी भस्म और तांबेकी भस्म इनका चूर्ण डाल देवे, जब वह लेहके समान गाढा हो जाय तब जलनेके भयसे उतार लेवे । फिर इसको एक उत्तम स्वच्छ पात्रमें भर कर रख देवे । इसको विधिपूर्वक सेवन करे । इससे-सर्व प्रकारके मधुमेह नष्ट हो जाते हैं ।

असनादियोग ।

असनञ्च प्रियालञ्च सालञ्च खादिरं तथा । सालवर्गं तथा ग्राह्यं भवेच्चैतद्विचक्षणैः ॥ १०३ ॥ मधुमेहत्वमापन्नं भिषग्भिः परिवर्जितम् । योगेनानेन मतिमान्प्रमेहिनमुपाचरेत् १०४॥

विजयसार, चिरौंजी, साल, खैर और सालवर्गकी औषधियां इन सबको एकत्र कर इनका उपयोग करनेसे प्रमेहरोग अवश्य दूर होता है । जो प्रमेह मधुमेहताको प्राप्त हो गया हो तथा जिसकी चिकित्सा अन्य वैद्योंने छोड़ दी हो वह प्रमेह भी नष्ट होता है॥ ॥ १०३ ॥ १०४ ॥

शिलाजतु स्वर्णमाक्षिक और रौप्यमाक्षिक प्रयोग ।

मासि शुक्रे शुचौ वापि शैलाः सूर्य्यांशुतापिताः । जतुप्रकाशं स्वरसं शिलाभ्यः प्रस्रवन्ति हि ॥ १०५ ॥ शिलाजत्विति विख्यातं महाव्याधिनिवारणम् । त्रप्वादीनाञ्च लोहानां

षण्णामन्यतमश्च यत ॥ १०६ ॥ तेषां तद्गन्धतश्चापि षड्योनिप्रथितं क्षितौ। लोहाद्द्रवति यद्यस्माच्छिलाजतु जतुप्रभम्॥१०७॥अस्य लोहस्य तद्वीर्य्यं रसं वापि बिभर्ति तत् । त्रपुसीसायसादीनि प्रधानान्युत्तरोत्तरम् ॥१०८॥ यथा तथा प्रयोगोऽपि श्रेष्ठः श्रेष्ठगुणः स्मृतः। तत्सर्वं तिक्तकटुकं कषायानुरसं सरम् ॥ १०९ ॥ कटुपाक्युष्णवीर्य्यश्च शोषणं छेदनं तथा। तत्र यल्लघु कृष्णाभं स्निग्धं निःशर्करश्च यत् ॥ ११० ॥ गोमूत्रगन्धि नीलं वा तत्प्रधानं प्रचक्षते । तद्भावितं सारगणैर्हृतदोषं दिनादितः ॥१११॥ पिबेत्सारोदकेनैव श्लक्ष्णपिष्टं यथाबलम्। जाङ्गलेन रसेनाद्यात्तस्मिञ्जीर्णे तु भोजनम् ॥ ११२ ॥ उपयुज्य तुलामेव मृतस्यैवाश्मजन्मनः। विजित्वा मधुमेहाख्यमन्तकं रोगशङ्करम् ॥ ११३ ॥ वपुर्वर्णबलोपेतः शतं जीवत्यनामयः। शतं शतं तुलायान्तु सहस्रं दशतौलिकम् ॥ ११४ ॥ भल्लातकविधानेन परिहारविधिः स्मृतः। प्रमेहं कुष्ठमस्मारमुन्मादं श्लीपदं तथा ॥ ११५ ॥ शोषं शोफार्शांसि गुल्मं पाण्डुतां विषमज्वरम्। व्यपोहत्यचिरात्कालाच्छिलाजतु निषेवितम् ॥ ११६ ॥ न सोऽस्ति रोगोऽयश्चापि निहन्यात्तच्छिलाजतु । शर्करां चिरसंभूतां भिनत्ति च तथाश्मरीम् ॥ ११७ ॥ भावनालोडने चास्य कर्त्तव्ये भेषजैर्हितैः। एवं च माक्षिकं धातुं तापीजममृतोपमम् ॥ ११८ ॥ मधुरं काञ्चनाभासमम्लं वा रजतप्रभम्। व्यपोहति ज्वरान्कुष्ठमेहपाण्ड्वामयक्षयान् ॥ ११९ ॥तद्भावितान्कुलित्थांश्च कपोतांश्च विवर्जयेत् ॥१२०॥

ज्येष्ठ अथवा आषाढके महीनेमें पर्वत सूर्य्यकी किरणोंसे संतापित होकर शिलाओंमेंसे लाखकी समान रसको छोडते हैं, उस रसको शिलाजतु (शिलाजीत) कहते हैं। यह शिलाजीत महाभयंकर रोगोंको नष्ट कर देता है। सीसेको आदि लेकर लोहेपर्य्यंत छहों धातुओंकी खानका शिलाजीत होता है। इस भाँति शिलाजीत छः प्रकारका है। अपनी २ गंधसे परीक्षा करनी चाहिए। जो शिलाजीत लोहेकी खानसे लाखकी सदृश उत्पन्न होता है, उसमें लोहेका रस वीर्य्य होता है। रांग, सीसा और लोहेसे लाखके समान उत्पन्न होनेवाले शिलाजीत उत्तरोत्तर अधिक गुणवाले हैं। सर्व प्रकारके शिलाजीतोंमें लोहेका शिलाजीत अधिक गुणवाला है। सर्व प्रकारके शिलाजीत कडवे, चरपरे, कषैले, सारक, कटुपाकी, उष्णवीर्य्य, शोषण और छेदक हैं। जो शिलाजीत हलका, कालीकांतियुक्त, चिकना, शर्करारहित, गोमूत्रके समान गंधवाला और नीली कांतियुक्त हो ऐसा शिलाजीत उत्तम होता है। ऐसे उत्तम शिलाजीतको लेकर सारवर्गकी औषधियोंके द्वारा भावना देकर बारीक पीसकर सारवर्गके क्वाथके साथ शरीरके बलानुसार पान करे और इसके पचने पर जंगली जीवोंके मांसरसके साथ भोजन करे। जो मनुष्य इस अमृतके समान शिलाजीतको चारसौ तोले प्रमाण जन्मसे लेकर जीवनभरमें सेवन करता है उसके मधुमेहनामक महापीडायुक्त यह भयंकर रोग नष्ट होजाता है और वह सौ वर्षपर्य्यंत आरोग्यतासे जीता रहता है। उसका शरीर, वर्ण तथा बल अति उत्तम होजाता है। जब एक तुला (४०० तोले) खानेसे सौ वर्षतककी आयु होती है तो दशतुलाप्रमाण खानेसे हजारवर्षकी आयु होती है। जितना परहेज भिलावेको सेवन करनेसे करना पडता है उतना ही परहेज इसमें करना चाहिए। शिलाजीतको सेवन करनेसे— प्रमेह, कोढ, अपस्मार, उन्माद, श्लीपद, क्षय, सूजन, बवासीर, गुल्म, पाण्डुरोग और विषमज्वर नष्ट होता है। ऐसा कोई भी रोग नहीं है जो शिलाजीतको सेवन करनेसे आरोग्य नहीं हो। शिलाजीत बहुत दिनोंकी पथरी और शर्कराको भी नष्ट कर देता है। हितकारी औषधियोंमें शिलाजीतको भावना देवे

तथा ऐसी ही औषधियोंमें मिलावे। इसी प्रकार सोनामाखी अथवा रूपामाखी भी अमृतके समान है। उनको भी सारवर्गकी औषधियोंमें भावना देकर सारवर्गकी औषधियोंके क्वाथके साथ पान करे तो इससे ज्वर, कोढ, प्रमेह, पाण्डुरोग तथा क्षयका नाश होता है। सोनामाखी-मधुर और सुवर्णके समान वर्णवाली उत्तम होती है। रूपामाखी-खट्टी और चाँदीके समान उत्तम होती है। सोनामाखी और रूपामाखी सेवन करनेवाले मनुष्य कुलथी और कबूतरके मांसको त्याग देवे ॥१०५-१२०॥

प्रमेहपिडिकाओंकी चिकित्सा।

प्रमेहपिटिकानां प्राक्कार्य्यं रक्तावसेचनम्। पाटनश्च विपक्कानां तासां पानं प्रशस्यते ॥ १२१ ॥ क्काथो वनस्पतेर्वस्तमूत्रं तीक्ष्णश्च शोधनम्। एलादिकेन कल्केन तैलं व्रणप्रपूरणम् ॥ १२२ ॥ क्काथमारग्वधादीनां कुर्य्योदुद्वर्त्तनानि च। सालसारादिना सेकं भोज्यादींश्चणकादिना१२३॥

प्रमेहपिड़िकाओंमेंसे प्रथम रुधिर निकलवावे और पक गई हों तो शस्त्रसे चिरवाना चाहिए। वनस्पतिओंके क्काथसे और बकरीके मूत्रसे तथा तीक्ष्णपदार्थोंसे पिड़िकाओंके स्थानको शुद्ध करे। शुद्ध करनेके पश्चात् इलायची आदिपदार्थोंके कल्कसे पकाया हुआ तेल लगावे जिससे व्रण भर जाय। प्रमेहापिडिकाओंपर अमलतास आदिके क्काथसे उद्वर्त्तन करे तथा सालसारादिके क्काथसे सेचन करे। और चने आदिका भोजन देवे ॥ १२१॥१२२॥१२३ ॥

प्रमेहसे आरोग्यहुएकी परीक्षा।

प्रमेहिनो यदा मूत्रमनाविलमपिच्छलम्। विशदं तिक्तकटुकं तदारोग्यं प्रचक्षते ॥ १२४ ॥

जब प्रमेहरोगीका मूत्र-स्वच्छ, पिच्छिलतारहित, विशद, कड़वा और चरपरे रसयुक्त आने लगे तब उसको आरोग्य हुआ जानना चाहिए ॥ १२४ ॥

इति श्रीवङ्गसेने भाषाटीकायां
प्रमेहाधिकार समाप्त ॥ ३८ ॥

अथ मेदरोगाधिकार।

मेदरोगका निदान।

अव्यायामदिवास्वप्नश्लेष्मलाहारसेविनः। मधुराम्लरसप्रायः स्नेहान्मेदो विवर्द्धते ॥ १ ॥

कसरत आदि परिश्रम नहीं करनेसे, दिनमें सोनेसे, कफकारक आहार करनेसे, मधुररस, अम्लरस और घी आदि स्नेहपदार्थोंको अधिक सेवन करनेसे मेदकी वृद्धि होती है ॥ १ ॥

मेदवृद्धिकी सम्प्राप्ति।

मेदसावृतमार्गत्वात्पुष्यन्त्यन्ये न धातवः। मेदस्तु चीयते तस्मादसक्तः सर्वकर्म्मसु ॥ २ ॥

मेदके बढनेके कारण समस्त धातुओंके मार्ग बंद होजाते हैं, इस कारण अन्य धातुयें पुष्ट नहीं होतीं इससे मेदधातु बढती जाती है। जिससे मनुष्य सब कामोंमें असमर्थ होजाता है ॥ २ ॥

मेदवृद्धिके लक्षण।

क्षुद्रश्वासतृषामोहस्वप्नक्रथनसादनैः। युक्तः क्षुत्स्वेददौर्गन्ध्यैरल्पप्राणोऽल्पमैथुनः ॥ ३ ॥ मेदस्तु सर्वभूतानामुदरे बस्तिषु स्थितम्। अतएवोदरे वृद्धिः प्रायो मेदस्विनो भवेत् ॥ ४ ॥ मेदसावृतमार्गत्वाद्वायुः कोष्ठे विशेषतः। चरन्सन्धुक्षयेदग्निमाहारं शोषयत्यपि ॥ ५ ॥ तस्मात्स शीघ्रं जरयत्याहारश्चापि कांक्षते। विकारां-

श्वाश्रुते घोरान्कांश्चित्कालविपर्ययात ॥ ६ ॥ एतावुपद्रवकरौ विशेषादग्निमारुतौ। एतौ हि दहतः स्थूलं वनं दावानलो यथा ॥ ७ ॥ मेदस्यतीव संवृद्धे सहसैवानिलादयः । विकारान्दारुणान्कृत्वा नाशयंत्याशु जीवितम् ॥ ८ ॥ मेदोमांसातिवृद्धत्वाच्चलस्फिग्गुदरस्तनः । अयथोपचयोत्साहो नरोऽतिस्थूल उच्यते ॥ ९ ॥ स्थूले स्युर्दुस्तराः कुष्ठविसर्पाः सभगन्दराः । ज्वरातीसारमेहार्शःश्लीपदाऽपचिकामलाः । मेदसः स्वेददौर्गन्ध्याज्जायंते जन्तवोऽणवः ॥ १० ॥

जिसके मेदकी वृद्धि हुई हो वह मनुष्य क्षुद्रश्वास, तृषा, मोह, निद्रा, पीडा, ग्लानि, क्षुधा, पसीना तथा दुर्गन्धतासे युक्त होता है। उसकी सामर्थ्य और मैथुनशक्ति घट जाती है। मेद सर्व प्राणियोंके पेटमें रहती है इस लिये मेदकी वृद्धिवाले मनुष्यका अधिक करके पेट बढ जाता है। वायुका मार्ग मेदसे रुकनेके कारण वह वायु विशेष करके कोठेमें ही फिरती रहनेसे अग्निको प्रदीप्त करती है और किये हुए भोजनको सुखा भी देती है जिससे मेदवृद्धिवाले मनुष्यका आहार तत्काल पच जाता है। फिर भोजन करनेकी इच्छा होती है। कुछ कालके अनन्तर इस मनुष्यको भयंकर विकारभी उत्पन्न होते हैं, अग्नि और वायु यह विशेष करके उपद्रवोंको उत्पन्न करते हैं और जिस प्रकार दावानल वनको जला देती है उसी प्रकार यह मेद उस मोटे मनुष्यको जला देती है। मेदके अत्यन्त बढनेपर वायु आदि धातु सहसा दारुण विकारोंको उत्पन्न करके तत्काल जीवनका नाश कर देती है मेद और मांसकी अत्यन्त वृद्धि होनेपर मनुष्यके कूले, पेट और स्तन हिला करते हैं। जिसका मेद अयोग्य प्रकारसे बढता हो वह मनुष्य बहुत मोटा कहा जाता है । उस स्थूल मनुष्यके कोढ, विसर्प, भगन्दर, ज्वर, अतीसार, प्रमेह, बवासीर, श्लीपद, अपची और कामला यह रोग दुस्तर होजाते हैं। मेदसे पसीनेमें दुर्गंधता होनेपर सूक्ष्म २ जीव भी होजाते हैं ॥ ३-१० ॥

चिकित्सा।

पुराणाः शालयो मुद्गाः कुलित्थोद्दालकोद्रवाः । लेखना बस्तयश्चैव सेव्या मेदस्विना सदा ॥ ११ ॥

मेदकी वृद्धिवाला पुरुष पुराने शालिचावल, मूँग, कुलथी और कोदों तथा लेखनबस्ति इन सबको सदैव सेवन करे ॥ ११ ॥

अस्वप्नश्च व्यवायश्च व्यायामश्चिन्तनानि च । स्थौल्यमिच्छन्परित्यक्तुक्रमेणातिविवर्धयेत् ॥ १२ ॥

जागरण, मैथुन, परिश्रम और चिन्ता इन सबको स्थूलताकी इच्छा करनेवाला त्याग देवे और मेदवृद्धिवाला उक्त कर्मोंको क्रम क्रमसे बढावे ॥१२॥

श्रमचिन्ताव्यवायाध्वक्षौद्रजागरणप्रियः । हन्त्यवश्यमतिस्थौल्यं यवश्यामाकभोजनम् ॥ १३ ॥

मेदवृद्धिवाला मनुष्य परिश्रम, चिंता, मैथुन, मार्गभ्रमण, शहदका सेवन और जागरण इनसे प्रेम रक्खे और जौ तथा समाके चावलोंका भोजन करे, इससे स्थूलता नष्ट होजाती है ॥ १३ ॥

सचव्यजीरकव्योषहिंगुसौवर्चलानलाः । मस्तुना शक्तवः पीता मेदोघ्ना वह्निदीपनाः ॥ १४ ॥

चव्य, जीरा, त्रिकुटा, हींग, कालानमक और चीता इनका चूर्ण बना कर दहीके पानीके साथ सेवन करे। सत्तुओंको भक्षण करे तो मेद नष्ट होती है और अग्नि दीपन होती है ॥ १४ ॥

फलत्रयं त्रिकटुकं सतैललवणान्वितम्। षण्मासानुपयोगेन कफमेदोनिलापहम् ॥ १५ ॥

त्रिकुटा, त्रिफला, तेल और सैंधानमक इनको एकत्र मिला कर छःमहीने तक सेवन करनेसे कफ और मेद नष्ट होता है ॥ १५ ॥

विडङ्गं नागरं क्षारं काललोहरजो मधु । यवामलकचूर्णन्तु प्रयोगः श्रेष्ठ उच्यते ॥ १६ ॥

वायविडंग, सोंठ, जवाखार, काला लोह, शहद, जौं और आमले इनको एकत्र मिला कर सेवन करनेसे स्थूलता नष्ट होती है ॥ १६ ॥

मूत्रं वा त्रिफलाचूर्णं मधुयुक्तं मधूदकम् । बिल्वादिपञ्चमूलस्य प्रयोगः क्षौद्रसंयुतः ॥ अतिस्थौल्यहरः प्रोक्तो मण्डश्च सेवितो ध्रुवम् ॥ १७ ॥

गोमूत्र अथवा त्रिफलेके चूर्णको शहदके साथ,अथवा शहद मिले पानीके साथ सेवन करनेसे स्थूलता नष्ट होती है । अथवा बृहत्पंचमूलके चूर्णको शहदके साथ सेवन करनेसे अत्यन्त स्थूलता नष्ट होती है । अथवा माँडको सेवन करनेसे स्थूलता नष्ट होती है १७

कर्कशदलवह्निसलिलं शतपुष्पाहिंगुसंयुक्तम् । पुटकेन हन्ति नियतं सर्वभवां मेदसां वृद्धिम् ॥ १८ ॥

पटोलपत्र,चीता और सौंफ इनका काथ बना कर उसमें हींग डाल कर पान करनेसे मेदकी वृद्धि नष्ट होती है ॥ १८॥

क्षारवातारिपत्रस्य हिंगुयुक्तं पिबेन्नरः । मेदोवृद्धिविनाशाय भक्तमण्डसमन्वितम् ॥ १९ ॥

जवाखार और अण्डके पत्ते इनके काथमें हींग डाल कर सेवन करे और ऊपरसे माँडसहित भात खाय तो इससें मेदकी वृद्धि नष्ट होती है ॥ १९ ॥

गवेधुकानां पिष्टानां यवानाञ्चाथ शक्तवः । सक्षौद्रत्रिफलाकाथः पीतो मेदोहरो मतः ॥ २० ॥

गरहेडुयेके अथवा जौके सत्तुओंको शहद और त्रिफलेके काथके साथ पान करनेसे मेदवृद्धि दूर होती है ॥२०॥

गुडूचीत्रिफलाकाथस्तथा लोहरजोयुतः । अश्मजं महिषाक्षं वा तेनैव विधिना पचेत् ॥ २१ ॥

गिलोय और त्रिफलेके काथमें लोहेका चूर्ण डाल कर पान करनेसे मेदवृद्धि रोग दूर होता है अथवा शिलाजीत या गूगलको इसी काथमें पका कर पान करनेसे मेदवृद्धि रोग दूर होता है ॥ २१ ॥

अतिमुक्ताद्बीजमध्यं मधुलीढं हन्त्युदरवृद्धिम् । मधुना चित्रकमूलं तथैव हितभोजने भुङ्क्ते ॥ २२ ॥

तेंदूकी मींगको शहदमें मिला कर चाटनेसे उदरवृद्धिरोग दूर होता है । अथवा चीतेकी जडको पीस कर शहदमें मिलाकर चाटे और ऊपरसे इसपर हितकारक भोजन करे तो मेदवृद्धिरोग दूर होता है २२

यद्वा रुबूकमूलं मधुदिग्धं स्थाप्यते निशां सकलाम् । सलिलस्य तस्य पानाज्जाठरवृद्धिं शमं नयति ॥ २३ ॥

अंडकी जडको रात्रिभर शहदमें मिला कर रख देवे । फिर प्रातःकाल उसके रसको पान करे तो उदरवृद्धि रोग नष्ट होता है ॥ २३ ॥

प्रातर्मधुयुतं वारि सेवितं स्थौल्यनाशनम् । उष्णमन्नस्य मण्डं वा पिबन्कृशतनुर्भवेत् ॥ २४ ॥

नित्य प्रातःकाल जलमें शहद मिलाकर पान करनेसे स्थूलता नष्ट होती है । उष्णअन्न अथवा पकाये हुए भातके गरम मांडको पीनेसे स्थूलता नष्ट होती है ॥ २४ ॥

बदरीपत्रकल्केन पेया काञ्जिकसाधिता । स्थौल्यं नश्येदग्निमन्थरसं वापि शिलाजतु ॥ २५ ॥

बेरीके पत्तोंके कल्कको कांजीमें पका कर पेया बना कर सेवन करनेसे स्थूलता नष्ट होती है । अथवा शिलाजीतको अरणीके काथमें डाल कर पान करनेसे मेदवृद्धिरोग दूर होता है ॥ २५ ॥

उद्वर्तन ।

शैलेयकुष्ठगुरुदेवदारुकौन्तीसमुस्तात्वक्पत्रपत्रैः । श्रीवासपृक्काखरपुष्पदेवपुष्पं तथा सर्वमिदं प्रपिष्य ॥ ॥ २६ ॥ धत्तूरपत्रस्य रसेन गाढमुद्वर्त्तनं स्थौल्यहरं प्रदिष्टम् ॥ २७ ॥

भूरिछरीला, कूठ, अगर, देवदारु, रेणुका, नागरमोथा, दालचीनी, पंचपत्र, श्रीवासगोंद, असवरग, ब्राह्मी और लौंग इन सबको एकत्र धतूरेके पत्तोंके रसमें पीसकर शरीरपर गाढा उबटन करनेसे स्थूलता नष्ट होती है ॥ २६ ॥ २७ ॥

अमृतादिगुग्गुलु ।

अमृतात्रुटिविल्ववत्सकं कलिङ्गपथ्यामलकानि गुग्गुलुः । क्रमवृद्धमिदं मधुप्लुतं पिण्डकास्थौल्यभगन्दराञ्जयेत् ॥ २८ ॥

गिलोय १ भाग, इलायची २ भाग, वेलगिरी ३ भाग, कुड़ेकी छाल ४ भाग, इन्द्रजौ ५ भाग, हरड़ ६ भाग, आमले ७ भाग और गूगल ८ भाग ले, सबको एकत्र मिलाकर एकजीव करके शहदके साथ चाटनेसे पिडिका, स्थूलता और भगन्दररोग दूर होता है ॥ २८ ॥

दशांगगुग्गुलु ।

व्योषाग्नित्रिफलामुस्तविडङ्गैर्गुग्गुलुं समम् । खादन्सर्वाञ्जयेद्व्याधीन्मेदःश्लेष्मामवातजान् ॥ २९ ॥

त्रिकुटा, चीता, त्रिफला, नागरमोथा, वायविडंग और गूगल ये सब समान भाग लेकर एकत्र मिलाकर इतना कूटे जो एकजीव होजाय इसके सेवन करनेसे मेदरोग, कफ और आमवातजनितरोग दूर होते हैं ॥ २९ ॥

लौहरसायन ।

गुग्गुलुस्तालमूली च त्रिफलाखादिरं वृषम् । त्रिवृतालम्बुषा शुण्ठी निर्गुंडी चित्रकस्तथा ॥ ३० ॥ एषां दशपलान्भागांस्तोये पञ्चाढके पचेत् । पादशेषं ततः कृत्वा कषायमवतारयेत ॥ ३१ ॥ पलद्वादशकं देयं रुक्मलोहं सुचूर्णितम् । पुराणसर्पिषः प्रस्थं शर्कराष्टपलान्वितम् ॥ ३२ ॥ पचेत्ताम्रमये पात्रे सुशीते चावतारिते । प्रस्थार्द्धं माक्षिकं देयं शिलाजतु पलद्वयम् ॥ ३३ ॥ एलात्वचः पलार्द्धश्च विडङ्गानि पलत्रयम् । मरिचांजनकृष्णे द्वे द्विपलं त्रिफलान्वितम् ॥ ३४ ॥ पलद्वयन्तु कासीसं सूक्ष्मचूर्णीकृतं बुधैः । चूर्णं दत्त्वा सुमथितं स्निग्धे भांडे निधापयेत ॥ ॥ ३५ ॥ ततः संशुद्धदेहस्तु भक्षयेदक्षमात्रकम् । अनुपानं क्षिपेत्क्षीरं जाङ्गलानां रसं तथा ॥ ३६ ॥ वातश्लेष्महरं श्रेष्ठं कुष्ठमेदोदरापहम् । कामलापांडुरोगघ्नं श्वयथुं सभगन्दरम् ॥ ३७ ॥ मूर्च्छामोहविषोन्मादं गराणि विषमाणि च । स्थूलानां कर्षणं श्रेष्ठं मेदुरे परमौषधम् ॥ ३८ ॥ कर्षयेच्चातिमात्रेण कुक्षिं पातालसन्निभम् । बल्यं रसायनं मेध्यं वाजीकरणमुत्तमम् ॥ ३९ ॥ श्रीकरं पुत्रजननं वलीपलितनाशनम् । नाश्नीयात्कदलीकन्दं काञ्जिकं करमर्दकम् । करीरं कारवेल्लञ्च षट् ककाराणि वर्जयेत ॥ ४० ॥

गूगल, मुसली, त्रिफला, खैर, अडूसा, निसोत, गोरखमुंडी, सोंठ, रेणुका और चीता ये प्रत्येक औषधि दश दश पल लेकर पांच आढक जलमें पकावे । जब पकते पकते चौथाई भाग जल शेष रहै तब उतारकर छानलेवे, फिर इस काथमें उत्तमविधिसे चूर्ण कियाहुआ लोह ४ तोले, पुराना घी १ प्रस्थ और उत्तमखांड अथवा मिश्री ३२ तोले डाल कर विधिपूर्वक तांबेके पात्रमें पकावे । जब पककर शीतल होजाय तब उतारलेवे । फिर इसमें उत्तम

शहद ३२ तोले, शिलाजीत ८ तोले, इलाइची और दालचीनी दो २ तोले, वायविडंग १२ तोले, काली मिरच ८ तोले, पीपल ८ तोले, रसौत अथवा अंजन ८ तोले, त्रिफलेकी औषधि ८ तोले और कसीस ८ तोले लेवे, इन सबको बारीक पीस कर चूर्ण करके एकत्र मिलादेवे और खूब करछीसे चलाकर एकमएक करलेवे पश्चात् एक उत्तम चिकने वासनमें भरकर रखदेवे । फिर वमन विरेचनादिसे शुद्ध होकर इसमेंसे एक तोलाप्रमाण भक्षण करे और ऊपरसे दूध तथा जांगलजीवोंके मांसके रसका अनुपान करे । उत्तम लोहरसायन–वातकफनाशक, कुष्ठ, मेद, उदररोग, कामला, पाण्डुरोग, तथा सूजन, भगंदर, मूर्च्छा, मोह, विष, उन्माद, गरदोष और विषमरोगोंको दूर करता है । स्थूलमनुष्योंको कृश करनेवाली, मेदरोगकी परम औषधि और उदरको अत्यन्त पतला करनेवाली है । बलकारक, रसायन, मेधाजनक, उत्तम वाजीकरण, लक्ष्मीजनक, पुत्रको उत्पन्न करनेवाली, वली (शरीरमें बलोंका अर्थात् झुररी पडना) और पलित (विना ही समय बालोंका सफेद होना) रोगको नष्ट करनेवाली है । इस रसायनपर केला, कंद, कांजी, करोंदा, करीर और करेला इन छः पदार्थोंको छोड देवे ॥ ३०–४० ॥

लोहारिष्ट ।

सालासारादिनिर्यूहं चतुर्थांशावशेषितम् । परिस्रुतं ततः शीतं मधुना मधुरीकृतम् ॥ ४१ ॥ फाणतीभावमापन्नं गुडं शोधितमेव वा । श्लक्ष्णपिष्टानि चूर्णानि पिप्पल्यादेर्गणस्य च ॥ ४२ ॥ एकध्यमावपेत्कुम्भे संस्कृते घृतभाविते । पिप्पलीचूर्णमधुभिः प्रलिप्ते चान्तरे शुचौ ॥ ४३ ॥ सूक्ष्माणि तीक्ष्णलोहस्य तनुपत्राणि बुद्धिमान् । खादिराङ्गारतप्तानि बहुशः प्रक्षिपेद्बुधः ॥ ४४ ॥ सुपिधानं ततः कृत्वा यवराशौ निधापयेत् । मासांस्त्रींश्चतुरो वापि यावदालोहसंक्षयात् ॥ ४५ ॥ ततो जातरसं जन्तुः प्रातः प्रातर्यथाबलम् । उपयुञ्ज्याद्यथायोगमाहारं चास्य कल्पयेत् ॥ ४६ ॥ एष स्थूलं कृशेन्नूनं नष्टस्याग्नेः प्रसाधनम् । शोथघ्नः कुष्ठमेहघ्नो गुल्मपाण्ड्वामयापहः ॥ ४७ ॥ प्लीहोदरहरः शीघ्रं विषमज्वरनाशनम् । अभिष्यंदापहरणो लोहारिष्टो महागुणः ॥ ४८ ॥

सालसारादि गणकी औषधियोंको लेकर चौगुने जलमें पकावे। जब पककर जल चौथाई भाग बाकी रहजाय तब उतार कर छान लेवे। फिर शीतल होने पर मधु डाल कर मधुर करलेवे, फिर शुद्ध गुडकी चासनी कर उसमें पिप्पल्यादिगणका बारीक चूर्ण और उक्त काथ मिलादेवे। फिर घी चुपड़े हुए पवित्रपात्रमें पीपलका चूर्ण और शहद चुपडकर रखदेवे । पश्चात् उसमें बुद्धिमान् वैद्य सूक्ष्म और पतले लोहेके पत्रोंको खैरके अंगारोंपर वारंवार तपाकर छोडे फिर पात्रके मुखको भलीभाँति बंद कर उस घडेको तीन चार महीनेतक अथवा जबतक लोहा गले तब तक जौके ढेरमें रक्खे, यह सब लोहा उसमें रसरूप हो जाय तो लोहारिष्ट सिद्ध होता है । शरीरादिके बलानुसार प्रातःकाल यह लोहारिष्ट पीवे और उसके ऊपर योग्य आहार करे तो यह स्थूलशरीरको पतला करदेता है, नष्ट हुई जठराग्नि फिरसे दीपन होती है और सूजन, कोढ, प्रमेह, गुल्म, पाण्डुरोग, प्लीहा, उदररोग और विषमज्वरको नष्ट करता है। यह महागुणान्वित लोहारिष्ट-अभिष्यन्दनाशक है॥४१–४८॥

व्योषाद्यशक्तूपयोग ।

व्योषचित्रकशिग्रूणि त्रिफलां कटुरोहिणीम् । बृहत्यौ द्वे हरिद्रे द्वे पाठामतिविषां स्थिराम् ॥ ४९॥ हिंगुकेम्बुकमूलानि यवानी धान्यचित्रकम् । सौवर्चलमजाजी च हपुषा चेति चूर्णयेत् ॥ ५० ॥ चूर्णं तैलघृतक्षौद्रभागाः स्युर्मानतः समाः । शक्तूनां षोडशगुणे भागः संतर्पणं पिबेत् ॥ ५१॥ प्रयोगात्त्वस्य शाम्यन्ति रोगाः संतर्पणोत्थिताः । प्रमेहा मूढवाताश्च

कुष्ठान्यर्शांसि कामलाः ॥ ५२ ॥ पांडुप्लीहामयः शोफो मूत्रकृच्छ्रमरोचकम्। हृद्रोगो राजयक्ष्मा च कासश्वासौ गलग्रहः ॥ ५३ ॥ कृमयो ग्रहणीदोषः श्वैत्र्यं स्थौल्यमतीव च। नराणां दीप्यते वह्निः स्मृतिर्बुद्धिश्च वर्द्धते ॥ ५४॥

त्रिकुटा, चीता, सहिंजनेकी जड, त्रिफला, कुटकी, बडी कटेरी, कटेरी, हलदी, दारुहलदी, पाढ, अतीस, शालिपर्णी, हींग, केउआकी जड, अजवायन, धनियाँ, चीता, कालानमक, जीरा और हाऊबेर–इन सबको समान भाग लेकर बारीक पीस कर चूर्ण बनालेवे, फिर तिलका तेल, घी और शहद प्रत्येक चूर्णकी बराबर लेवे और जौके सत्तु १६ भाग लेवे, सबोंको एकत्र मिलाकर किसी शीतलपदार्थके साथ सेवन करे। इससे--प्रमेह, मूढवात, कोढ, बवासीर, कामला, पांडुरोग, प्लीहा, सूजन, मूत्रकृच्छ्र, अरुचि, हृदयरोग, राजयक्ष्मा, खाँसी, श्वास, गलग्रह, कृमिरोग, संग्रहणीरोग, श्वित्रकुष्ट और विशेष करके स्थूलता नष्ट होती है, अग्नि दीपन होती है, स्मरणशक्ति और बुद्धिकी वृद्धि होती है॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१॥ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

त्रिफलादि तैल।

त्रिफलातिविषामूर्वात्रिवृच्चित्रकवासकैः। निम्बारग्वधषड्ग्रन्थासप्तपर्णानिशाद्वयैः ॥ ५५ ॥ गुडूचीन्द्रासुरीकृष्णाकुष्ठसर्षपनागरैः। तैलमेभिः समैः पक्कं सुरसादिरसप्लुतम् ॥ ५६ ॥ पानाभ्यञ्जनगंडूषनस्यबस्तिषु योजितम्। स्थूलताऽऽलस्यपांड्वादीन्क्षयेत्कफकृतान्गदान् ॥ ५७ ॥

त्रिफला, अतीस, मूर्वा, निसोत, चीता, अडूसा, नीम, अमलतास, बच, सतवन, हलदी, दारुहलदी, गिलोय, इन्द्रायण, पीपल, कूठ, सरसों और सोंठ इनके कल्कके द्वारा और सुरसादिगणकी औषधियोंके क्वाथके द्वारा तेलको पकावे। इस तेलको पान, अभ्यंजन, गण्डूष, नस्य और बस्तिकर्म्ममें प्रयोग करे। यह तेल–स्थूलता, आलस्य, पांडुआदिरोग और कफजनितरोगोंको नष्ट करता है॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

महासुगन्धि तैल।

चन्दनं कुंकुमोशीरप्रियंगुत्रुटिरोचनाः। तुरुष्कागुरुकस्तूरी कर्पूरो जातिपत्रिका ॥ ५८ ॥ जातीकङ्कोलपूगानां लवङ्गस्य फलानि च। नालिकानलदं कुष्ठं हरेणु तगरं प्लवम् ॥५९॥ नखं व्याघ्रनखं स्पृक्का बोलो दमनकं तथा। स्थौणेयकं चोरकश्च शैलेयं शैलवालुकम् ॥ ६० ॥ सरलं सप्तपर्णश्च लाक्षा तामलकी तथा। लामज्जकं पद्मकश्च धातक्याः कुसुमानि च ॥ ६१ ॥ प्रपौण्डरीकं कर्चूरं समांशैः शाणमात्रकैः। महासुगन्धिमित्येतत्तैलप्रस्थेन साधयेत् ॥ ६२ ॥ प्रस्वेदमलदौर्गन्ध्यकंडूकुष्ठहरं परम्। अनेनाभ्यक्तगात्रस्तु वृद्धः सप्ततिकोऽपि वा ॥ ६३ ॥ युवा भवति शुक्राढ्यः स्त्रीणामत्यन्तवल्लभः। सुभगो दर्शनीयश्च गच्छेच्च प्रमदां शतम् ॥ ६४ ॥ वन्ध्यापि लभते गर्भं षण्ढोऽपि पुरुषायते। अपुत्रः पुत्रमाप्नोति जीवेच्च शरदां शतम् ॥ ६५ ॥

चंदन, केशर, खस, फूलप्रियंगु, इलायची, गोरोचन, लोबान, अगर, कस्तूरी, कपूर, जावित्री, जायफल, कंकोल, सुपारी, लौंग, नली, वालछड, कूठ, रेणुका, तगर, नागरमोथा, नख, व्याघ्रनख, असवरग, बोल, दौना, मुरला, थुनेर, चोरक (भटेउर), भूरिछरीला, एलुआ, धूपसरल, सतौना, लाख, भुईआमला, लामज्जकतृण, पद्माख, धायके फूल, पुंडेरिया और कचूर, ये प्रत्येक पदार्थ चार चार मासे लेकर कल्क बनाकर चौंसठ तोले तेलमें डालकर पकावे तो यह महासुगंधितैल सिद्ध होता है। इस तेलको व्यवहार करनेसे–पसीना, मलसे हुई दुर्गंधता, खुजली और कोढ ये सब नष्ट हो जाते

हैं। इस तेलकी मालिश करनेसे सत्तर वर्षका वृद्ध भी युवा, अधिकवीर्य्यवान्, स्त्रियोंको अत्यन्त प्रिय, भाग्यवान्, सुन्दर और सौ स्त्रियोंसे प्रसंग करनेको समर्थ होता है. वंध्या स्त्रियोंके गर्भ रहता है, नपुंसक मनुष्य भी पुरुषत्वको प्राप्त होता है, विनापुत्रवाले स्त्रीपुरुषोंके पुत्रकी प्राप्ति होती है और सौ वर्षकी आयु होती है ॥ ॥ ५८-६५ ॥

वासादलरसो लेपाच्छङ्खचूर्णेन संयुतः। बिल्वपत्ररसो वापि गात्रदौर्गन्ध्यनाशनः ॥ ६६ ॥

अडूसेके पत्तोंके रसमें शंखका चूर्ण डालकर लेप करनेसे अथवा बेलके पत्तोंके स्वरसका लेप करनेसे शरीरकी दुर्गंध दूर होती है ॥ ६६ ॥

अलम्बुषाभवं चूर्णं पीतं काञ्जिकसंयुतम् । दौर्गन्ध्यं नाशयत्याशु दुष्टमेदोभवं नृणाम् ॥ ६७ ॥

गोरखमुंडीके चूर्णको कांजीके साथ पान करनेसे दुष्टमेदजनित शरीरकी दुर्गंध दूर होती है ॥ ६७ ॥

बिल्वशिवासमभागाल्लेपाद्भुजमूलगन्धमपहरति । परिणिततिन्तिडिकान्वितपूतिकरञ्जोत्थबीजं वा ॥ ६८ ॥ चिञ्चापत्रस्वरसं म्रक्षितकक्षादियोजितं जयति । दुग्धहरिद्रोद्वर्त्तनमचिराच्चिरदेहदौर्गन्ध्यम् ॥ ६९ ॥

बेलके पत्ते और हरड इन दोनोंको समान भाग लेकर एकत्र पीसकर लेप करनेसे बगलकी दुर्गंध दूर होती है या इमलीके बीज और दुर्गंध करंजके बीजोंको पीस कर लेप करनेसे अथवा दुर्गंधित करंजके बीजोंके कल्कको इमलीके पत्तोंके स्वरसमें डालकर लेप करनेसे अथवा इमलीके स्वरसको मलनेसे शरीरकी दुर्गंध दूर होती है। हलदीको दूधमें पीस कर उसका शरीरपर उद्वर्तन करनेसे बहुत शीघ्र शरीरकी दुर्गंध दूर होती है ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

शिरीषलामज्जकहेमलोध्रैस्त्वग्दोषसंस्वेदहरः प्रकर्षः। पत्राम्बुलोध्रामयचन्दनानि शरीरदौर्गन्ध्यहरः प्रदेहः ७०

शिरस, लामज्जकतृण, नागकेशर और लोध इनका चूर्ण बना कर शरीरपर मलनेसे त्वचाके विकार और पसीना दूर होता है। तेजपात, सुगन्धवाला, लोध, कूठ और चन्दन इनको एकत्र पीस कर शरीरपर प्रलेप करनेसे शरीरकी दुर्गंध दूर होतोहै॥७०॥

हिलमोचरसोयुक्तश्चूर्णैरुदधिफेनजैः। प्रलेपेन हरत्याशु देहदौर्गन्ध्यमुत्कटम् ॥ ७१ ॥

समुद्रफेनको हुलहुलके रसमें पीसकर लेप करनेसे शरीरकी दुर्गंध दूर होती है॥ ॥ ७१ ॥

हरीतकीन्तु संपिष्य गात्रमुद्वर्त्तयेन्नरः। पश्चात्स्नानं प्रकुर्वीत देहप्रस्वेदशान्तये ॥ ७२ ॥

हरडोंको पीस कर शरीरपर उबटन करे पश्चात् स्नान करे तो प्रस्वेदसे होनेवाली शरीरकी दुर्गंध दूर होती है ॥ ७२ ॥

बब्बुलस्य दलैः सम्यग्वारिणा परिपेषितैः । गात्रमुद्वर्त्तयेत्पश्चाद्धरीतक्या सुपिष्टया ॥ ७३ ॥ भूय उद्वर्त्तनं कृत्वा पश्चात्स्नानं समाचरेत्। प्रस्वेदान्मुच्यते शीघ्रं ततस्त्वेवं समाचरेत् ॥ ७४ ॥

बबूरके पत्तोंको अच्छे प्रकारसे जलमें पीस कर शरीर पर उद्वर्त्तन करे, अथवा हरडको पीसकर शरीर पर उद्वर्त्तन करे पश्चात् स्नान करे तो शीघ्र शरीरका पसीना और दुर्गंध दूर होती है ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

चन्द्रांशुसलिलं लोध्रं शिरीषोशीरकेसरैः। उद्वर्त्तनं भवेद्ग्रीष्मे स्वेदकर्मनिवारणम् ॥ ७५ ॥

कपूर, सुगंधवाला, लोध, शिरस, खस और नागकेशर इनको एकत्र पीसकर ग्रीष्मकालमें उद्वर्तन करनेसे पसीना दूर होता है॥ ७५ ॥

सुरया सममभयाफलचूर्णं मधुना विलिह्य प्रत्यूषम् । स्वेदान्हत्वा लभते पुरुषोऽप्यत्यन्तसौरभ्यम् ॥७६॥

हरडके चूर्णको मदिराके साथ अथवा शहदके साथ प्रातःकाल सेवन करनेसे पसीना नष्ट होकर अत्यन्त सुगन्ध उत्पन्न होती है ॥ ७६ ॥

मल्लीकुसुमाभयकरिलेपो घर्म्म विनिहन्ति सदाहम् । विञ्चकिलपत्रहरिद्रे कर्कटिपत्रं सदूर्वया सहितम् । संपिष्य गात्रलेपाद्घर्मं विविधं शमं याति ॥ ७७ ॥

मोतियाके फूल हर्ड और नागकेशर इनको एकत्र पीसकर शरीरपर प्रलेप करनेसे पसीना, दाह और दुर्गंध दूर होती है। दौनेके पत्ते, हलदी, ककड़ीके पत्ते और दूब इनको एकत्र पीसकर शरीरपर लेप करनेसे पसीना और दुर्गंध दूर होती है ॥ ७७ ॥

हस्तपादसुतौ योज्यं गुग्गुलुं पञ्चतिक्तकम् । अशक्तौ पञ्चतिक्तं वा पक्त्वा खादेदतन्द्रितः ॥ ७८ ॥

जो हाथ पाँव पसीजते हों तो गूगल और पंचतिक्तघृतको सेवन करे । शरीरमें शक्ति न हो तो पथ्यसे रहकर पंचत्तिक्तघृतको सेवन करे ॥ ७८ ॥

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायां
मेदोधिकार संपूर्ण ॥

अथ उदररोगाधिकार ।

उदररोगका निदान ।

रोगाः सर्वेऽपि मन्देऽग्नौ सुतरामुदराणि च । अजीर्णान्मलिनैश्चान्नैर्जायन्ते मलसञ्चयात् ॥ १ ॥

प्रायः सर्वप्रकारके रोग मन्दाग्निसे उत्पन्न होते हैं और उदररोग विशेषकर मन्दाग्निके होनेसे तथा अजीर्णकारक पदार्थों और दूषित अन्नोंको सेवन करनेसे और कोष्ठबद्धताके होनेसे अथवा मलिन अन्नोंके भोजनसे उत्पन्न होता है ॥ १ ॥

उदररोगकी सम्प्राप्ति ।

रुद्ध्वा स्वेदाम्बुवाहीनि दोषाः स्रोतांसि सञ्चिताः । प्राणाग्न्यपानान्संदूष्य जनयन्त्युदरं नृणाम् ॥ २ ॥

संचित हुए दोष, स्वेद और अम्बुवाहिनी संपूर्ण शरीरके स्रोतोंको रोककर तथा अग्नि और प्राण एवं अपानवायुको दूषित करके मनुष्योंके उदररोगको उत्पन्न करते हैं ॥ २ ॥

उदररोगके पूर्वलक्षण ।

तत्पूर्वरूपं बलवर्णकाङ्क्षा वलीविनाशो जठरे निरोधः । जीर्णाऽपरिज्ञानविदाहयुक्तो बस्तौ रुजः पादगलश्च शोथः ॥ ३ ॥

जब उदररोग उत्पन्न होनेको होता है तब उससे पहले उदरमें मल,मूत्र और अपान वायुका रुकना, बल, वर्ण, आकांक्षा और त्रिवली इनका नाश होता है । भोजनके जीर्ण होनेपर भी सन्देहका रहना,दाह, मूत्राशयमें पीडा, पाँवमें और गलेमें सूजन होती है ॥ ३ ॥

उदररोगके सामान्यलक्षण ।

आध्मानं गमनेऽशक्तिर्दौर्बल्यं दुर्बलाग्निता । शोथः सदनमङ्गानां संगो वातपुरीषयोः । दाहस्तन्द्रा च सर्वेषु जठरेषु भवन्ति हि ॥ ४ ॥

अफारा, चलनेमें असमर्थता, दुर्बलता, अग्निकी मन्दता, सूजन, अंगोंका टूटना, वायु तथा विष्ठाका अवरोध,दाह और तन्द्रा ये लक्षण सामान्यरूपसे सर्वप्रकारके उदररोगोंमें होते हैं ॥ ४ ॥

उदररोगसंख्या ।

पृथग्दोषैः समस्तैश्च प्लीहबद्धक्षतोदकैः । सम्भवन्त्युदराण्यष्टौ तेषां लिङ्गं पृथक् शृणु ॥ ५ ॥

उदररोग आठप्रकारके कहे हैं। जैसे कि,वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, सान्निपातिक, प्लीहोदर, बद्धोदर

अर्थात् कठोदर, क्षतादर और जलोदर। अब इनके लक्षण अलग अलग सुनो॥ ५॥

वातोदरके लक्षण।

तत्र वातोदरे शोथः पाणिपान्नाभिकुक्षिषु। कुक्षिपार्श्वोदरकटीपृष्ठरुक्पर्वभेदनम्॥ ६॥ शुष्ककासाङ्गमर्दश्च गुरुता मलसंग्रहः। श्यावारुणत्वगादित्वमकस्माद्वृद्धिह्रासवत्॥७॥ सतोदभेदमुदरं तनुकृष्णाशिराततम्। आध्मानदृतिवच्छब्दमाहतं प्रकरोति च। वायुश्चात्र सरुक्छब्दो विचरेत्सर्वतो गतिः॥ ८॥

वातोदर रोगमें हाथ, पाँव, नाभि और कोखम सूजन हो, एवं कोख, पसली, पेट, कमर और पीठमें पीडा हो, संधियोंमें तोड़ने सरीखी पीड़ा होती है। सूखी खाँसी, शरीरका टूटना, नाभिके नीचेका भाग भारी मालूम होना, मलरोध, त्वचादिका रंग धूसर या लाल हो, अकस्मात् उदर घटे बढे, सुई चुभोनेकेसी और तोड़ने सरीखी पीडा हो, पेटमें सूक्ष्म और काले रंगकी नसोंसे उदर व्याप्त हो, उदरमें अंगुली मारनेसे फूली मशककासा शब्द हो, इस वातोदरमें वायु सर्वत्र विचरण करती हुई शब्द और पीडा करती है॥ ६॥ ७॥ ८॥

साध्यासाध्यविचार।

जन्मनैवोदरं सर्वं प्रायः कृच्छ्रतमं मतम्। बलिनस्तदजाताम्बु यत्नसाध्यं नवोत्थितम्॥ ९॥

प्रायः आठोंप्रकारके उदररोग उत्पन्न होते ही कष्टसाध्य हो जाते हैं। बलवान् मनुष्यके थोडे दिनोंसे उत्पन्न हुआ हो और उसमें जल उत्पन्न नहीं हुआ हो ऐसा रोगी कदाचित् बडे यत्न करनेसे साध्य हो जाता है॥ ९॥

अजातोदकके लक्षण।

अजातशोथमरुणं सशब्दं नातिभारिकम्। सदा गुडगुडायन्तं शिराजालगवाक्षितम्॥ १०॥ नाभिं विष्टभ्य पायौ तु वेगं कृत्वा प्रशाम्यति। हृद्वङ्क्षणकटीनाभिगुदं प्रत्येकशूलिनः॥ ११॥ कर्कशं सृजतेऽपानं नातिमन्दे च पावके। लालयाऽचिरमेवास्ये मूत्रेऽल्पं संहते बहिः। अजातोदकमित्येतैर्युक्तं विज्ञाय लक्षणैः १२॥

उदर सूजनरहित हो, शरीर या पेटमें लाली हो, शब्द हो, कुछ भारीपन मालूम हो, सदैव गुड-गुड शब्द हो, झरोखोंके समान नसोंके जालसे व्याप्त हो और वायु नाभिको फुलाकर वेगको धारण करके गुदामें जाकर शान्त हो जाती है। रोगीके हृदय, वंक्षण, कमर और गुदा इन प्रत्येकमें पीडा हो, अपानवायु कठिनतासे निकले, अग्नि सर्वथा मन्द न हो, मुखसे थोडी २ देरमें लार बहे और विरसता हो, मूत्र थोडा उतरे, मल अधिक निकले और दोष परस्पर मिले हों तो इन लक्षणोंसे युक्त जानना चाहिए कि उदररोगमें जल उत्पन्न नहीं हुआ है॥ १०॥ ११॥ १२॥

वातोदरकी चिकित्सा।

उपक्रमेद्भिषग्दोषबलकालविशेषवित्। स्थिरादिसर्पिषः पानं स्नेहस्वेदविरेचनम्॥ १३॥

प्रथम वैद्य रोगीके दोषोंका बलाबल और कालको अच्छे प्रकारसे विचारकर स्थिरादिघृत पान करावे तथा स्नेह, स्वेद और विरेचन देवे॥ १३॥

वेष्टनं वाससा नाभौ शाल्वणश्चोपनाहनम्। चित्रतैलं स्थिराद्यन्तु निरूहः सानुवासनः। पयोयूषरसान्नश्च योज्यं वातोदरे क्रमात्॥ १४॥

रोगीकी नाभिके ऊपर वस्त्रोंको लपेटकर शाल्वण और उपनाहन स्वेद देवे। स्थिरादि औषधियोंके क्वाथमें अण्डीका तेल डालकर निरूह और अनुवासनबस्ति देवे। तथा दूध, यूष, मांसरस और अन्न ये क्रमसे प्रयोग करे॥ १४॥

एरण्डादि तैल।

एरण्डतैलं दशमूलमिश्रं गोमूत्रयुक्तस्त्रिफलारसो वा। निहन्ति वातोदरशोथशूलं क्वाथः समूत्रो दशमूलजश्च॥ १५॥

अण्डीके तेलमें दशमूलका चूर्ण डाल कर पान करनेसे अथवा त्रिफलेके काथमें गोमूत्र डाल कर पान करनेसे, या दशमूलके काथमें गोमूत्र डाल कर पान करनेसे वातोदर, सूजन और शूल यह नष्ट होते हैं १५

कुष्ठं दन्तीयवक्षारं व्योषं त्रिलवणं वचा । अजाजीदीप्यकं हिंगु स्वर्जिकाचव्यचित्रकम् ॥ १६ ॥ शुण्ठी चोष्णांबुना पीता वातोदररुजापहा १७॥

कूठ, दन्ती, जवाखार, त्रिकुटा, सैंधानमक, काला नमक, साँभरनमक, वच, जीरा, अजवायन, हींग, सज्जी, चव्य, चीता और सोंठ इन सबको एकत्र पीस कर गरमजलके साथ पान करनेसे वातोदररोग दूर होता है ॥ १६ ॥ १७ ॥

दशमूलीकषायेण क्षीरयुक्तं शिलाजतु । सद्यो वातोदरी क्षीरमौष्ट्रं वाऽश्नातु केवलम् ॥ १८ ॥

दशमूलके काथमें दूध और शिलाजीत डाल कर पान करनेसे अथवा केवल ऊंटनीके दूधको पान करनेसे वातोदररोग दूर होता है ॥ १८ ॥

सामुद्राद्यचूर्ण ।

सामुद्रसौवर्चलसैन्धवानां क्षारो यवानामजमोदकश्च । सपिप्पलीचित्रकशृङ्गवेरं हिंगुं विडश्चेति समानि कुर्य्यात् ॥ १९ ॥ एतानि चूर्णानि घृतप्लुतानि युञ्जीत पूर्वं कवले प्रशस्तम् । वातोदरं गुल्ममजीर्णभुक्तं वायुप्रकोपं ग्रहणीश्च दुष्टाम् ॥ २० ॥ अर्शांसि दुष्टानि च पांडुरोगं भगन्दरश्चेति निहन्ति सद्यः ॥ २१ ॥

समुद्रनमक, कालानमक, सैंधानमक, जवाखार, अजमोद, पीपल, चीता, अदरख, हींग और बिडनमक ये सब समान भाग लेकर चूर्ण बनालेवे। इस चूर्णको घीमें मिलाकर भोजनके प्रथम ग्रासमें मिलाकर भक्षण करे । इससे—वातोदर, गुल्म, अजीर्ण, वातका प्रकोप, दुष्ट संग्रहणी, दुष्ट बवासीर, पाण्डुरोग और भगन्दररोग ये सब नष्ट होते हैं ॥ ॥ १९–२१ ॥

दशमूलषट्पलघृत ।

पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यचित्रकनागरैः । सक्षौद्रैरर्द्धपलिकैर्द्विप्रस्थं सर्पिषः पचेत् ॥ २२ ॥ कल्कैर्द्विपश्चमूलस्य तुलार्द्धस्य रसेन तु । दधिमण्डाढकं दत्त्वा तत्सर्पिर्जठरापहम् ॥ ॥ २३ ॥ श्वयथुं वातविष्टम्भं गुल्मार्शांसि च नाशयेत् । अनया मात्रया वारद्वयं पाच्यमिदं हविः ॥ २४ ॥

पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ और शहद ये प्रत्येक दो दो तोले लेवे, उत्तम गौका घी २ प्रस्थ, दशमूलका कल्क और काथ २०० तोले और दहीका मांड एक आढक परिमाण—इन सबको एकत्र मिला कर विधिपूर्वक घृतको सिद्ध करे । यह घृत—उदररोग, सूजन, वातविष्टम्भ, गुल्म और बवासीरको नष्ट करता है । इस घृतको इसी मात्रासे दो वार पकाना चाहिए ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥

दशमूलाद्यघृत ।

दशमूलीकषायेण रास्नानागरदारुभिः । पुनर्नवाभ्यांश्च घृतं सिद्धं वातोदरापहम् ॥ २५ ॥

दशमूलके काथ, रायसन, सोंठ, देवदारु और पुनर्नवा इनके कल्कके द्वारा घृतको पकावे । यह घृत वातोदररोगको नष्ट करता है ॥ २५ ॥

लशुनतैल ।

लशुनस्य तुलामेकां जलद्रोणे विपाचयेत् । चतुर्भागावशेषन्तु कषायमवतारयेत् ॥ २६ ॥ तत्काथश्च परिस्राव्य विशाले ताम्रभाजने । चित्रतैलाढकं दद्याद्भेषजानि प्रदापयेत् ॥ २७ ॥ त्रिकटु त्रिफला दन्तीहिंगुसैन्धवचित्रकम् । देवदारुवचाकुष्ठं मधुशिग्रुपुनर्नवम् ॥ २८ ॥ सौवर्चलविडङ्गानि दीप्यकं हस्तिपिप्पली ।

एतेषां पलिकान्भागांस्त्रिवृताद्धेपलानि च ॥ २९ ॥ पिष्ट्वा कषायेणानेन शनैर्मृद्वग्निना पचेत । तत्पिबेत्प्रातरुत्थाय यथाग्निबलमात्रया ॥ ३० ॥ निहन्ति सर्वरोगाणि जठराणि विशेषतः । मूत्रकृच्छ्रमुदावर्त्तमन्त्रवृद्धिं गुदक्रमीन् ॥ ३१ ॥ पार्श्वकुक्षिभवं शूलमामशूलमरोचकम् । यकृदष्ठीलिकानाहान्प्लीहानश्चाङ्गवेदनम् । मासमात्रेण नश्यन्ति चार्शांसि वातजा गदाः ॥ ३२ ॥

उत्तम १०० पल लशुनको लेकर एक द्रोण जलमें पकावे। जब पकते २ जल चौथाई भाग बाकी रहजाय तब उतारकर छान लेवे। फिर इस काथको एक उत्तम तांबेके पात्रमें डालकर चूल्हेके ऊपर रक्खे और उसमें अंडीका तेल१आढकपरिमाण, तथा त्रिकुटा, त्रिफला, दंती, हींग, सैंधानमक, चीता, देवदारु, बच, कूठ, लालसहिंजना, पुनर्नवा, कालानमक,वायविडंग,अजवायन और गजपीपल ये प्रत्येक औषधि चार चार तोले और निसोत २ तोले, इन सबको उसी काथमें पीसकर डाले और विधिपूर्वक धीरे २ मंद २ अग्निसे पकावे। प्रातःकाल उठकर इसमेंसे अग्निके बलानुसार सेवन करे। यह तैल-सर्वप्रकारके रोग, विशेष कर उदररोग, मूत्रकृच्छ्र, उदावर्त्त, अन्त्रवृद्धि, गुदजकृमि, पार्श्वशूल, कुक्षिशूल, आमशूल, अरुचि, यकृत्, अष्ठीलिका, आनाह, प्लीहा, अंगवेदना और एकमहीनेमें वातज बवासीरको दूर कर देता है ॥२६-३२॥

पित्तोदरनिदान।

पित्तोदरे ज्वरो मूर्च्छा दाहस्तृट् कटुकास्यता । भ्रमोऽतिसारः पीतत्वं त्वगादावुदरं हरित ॥ ३३ ॥ पीतताम्रशिरानद्धं सस्वेदं सोष्म दह्यते । धूमायति मृदुस्पर्शं क्षिप्रपाकं प्रदूयते ॥ ३४ ॥

पित्तोदररोगमें ज्वर, मूर्च्छा, दाह, तृषा, मुखमें कड़वापन,भ्रम, अतीसार,त्वचाआदिका रंग पीला हो जाना, उदरका रंग हरा हो,पीली और लाल नसोंसे व्याप्त हो, पसीना आवे, गरमीसे पेटमें दाह हो,आतोंमेंसे धुंआसा निकले, हाथोंके छूनेसे नरम मालूम हो, शीघ्र पके और दुखे यह पित्तोदरके लक्षण जानने ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

पित्तोदरकी चिकित्सा।

पित्तोदरे तु बलिनं पूर्वमेव विरेचयेत् । दुर्बलन्त्वनुवास्यादौ शोधयेत्क्षीरबस्तिना ॥ ३५ ॥ सञ्जातबलकायाग्निं जातस्निग्धं विरेचयेत् । त्रिवृत्कल्केन पयसा रुबुकस्य शृतेन वा । सातलात्रायमाणाभ्यां कृतेनारग्वधेन च ॥ ३६ ॥ घृतं पित्तोदरे देयं मधुरौषधसाधितम् ।

पित्तोदररोगमें रोगी यदि बलवान् हो तो प्रथम उसको जुलाब देवे और जो रोगी बलवान् नहीं हो तो अनुवासनबस्ति देकर क्षीरबस्तिसे शुद्ध करे । तथा शरीरमें अग्नि और बलके होनेपर स्निग्धविरेचन देवे । निसोतके कल्कको दूधमें अथवा अंडके काथको दूधमें या सातला अथवा त्रायमाण किंवा अमलतासके द्वारा दूधको पकाकर देवे। तथा मधुर औषधियोंके द्वारा घृतको सिद्ध करके देवे ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

स्यात्त्रिवृत्त्रिफलासिद्धं पश्चात्सर्पिर्विशोधनम् ॥ ३७ ॥ न्यग्रोधादिकषायेण सर्पिः क्षौद्रसितायुतम् । आस्थापनं प्रयोक्तव्यं स्नेहबस्तिसमन्वितम् । साद्रर्पायससिद्धेन कर्त्तव्यमुपनाहनम् ॥ ३८ ॥

निसोत और त्रिफलेके काथके द्वारा घृतको सिद्ध करके देवे, जब अच्छेप्रकारसे विरेचन होजाय तब न्यग्रोधादि औषधियोंके काथके द्वारा घृतको सिद्ध कर उसमें शहद और मिश्री मिलाकर उसके द्वारा आस्थापन और स्नेहबस्ति प्रयोग करे। अथवा उपरोक्त औषधियोंके द्वारा उत्तम दूधकी पतली खीर बनाकर उसके द्वारा उपनाहकर्म्म करे ॥३७॥३८॥

स्थिरादिसाधितं तैलं क्षीरञ्च प्राशने हितम् । पञ्चमूलशृतं क्षीरं पित्तोदरविनाशनम् ॥ ३९ ॥

अथवा स्थिरादि गणकी औषधियोंके द्वारा तेलको पकाकर वा दूधको पकाकर पान करे । पंचमूलकी औषधियोंके द्वारा दूधको पकाकर सेवन करनेसे पित्तोदररोग दूर होता है ॥ ३९ ॥

पृष्टपर्णीबलाव्याघ्रीलाक्षानागरसाधितम् । क्षीरं पित्तोदरं हन्ति इति पित्तोदरे क्रिया ॥ ४० ॥

पृश्निपर्णी, खिरैंटी, कटेरी, लाख और सोंठ इनके द्वारा दूधको पकाकर सेवन करनेसे पित्तोदर रोग दूर होता है ॥ ४० ॥

कफोदरनिदान ।

श्लेष्मोदरेऽङ्गसदनं स्वापं श्वयथुगौरवम् । निद्रोत्क्लेशरुचिः श्वासः कासः शुक्लत्वगादिता ॥ ४१ ॥ उदरं स्तिमितं स्निग्धं शुक्लराजीततं महत् । शिराभिवृद्धिकठिनं शीतस्पर्शं गुरु स्थिरम् ॥ ४२ ॥

कफोदरमें–अंगोंका टूटना और शून्यता, सूजन, गुरुता, निद्राकी अधिकता, उबकाई होनेकेसी इच्छा, अरुचि, श्वास, खाँसी, त्वचादिका रंग सफेद होना, पेट भीजासा मालूम होना, चिकना, सफेद, नसोंसे व्याप्त हो बडी २ शिराओंकी वृद्धि हो, कठिन, हाथके छूनेसे शीतल जानपडे तथा भारी और स्थिर होता है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

कफोदरचिकित्सा ।

श्लेष्मोदरिणन्तु पिप्पल्यादिसिद्धेन सर्पिषा स्नेहयित्वा स्नुहीक्षीरविपक्केनानुलोम्य च। त्रिकटुकमूत्रतैलप्रगाढेन मुस्तकादिक्काथेनाऽऽस्थापयेदनुवासयेच्च । किट्टसर्षपामलकबीजैश्चोपनाहयेत् उदरिणं भोजयेच्चैनं त्रिकटुप्रगाढेन कुलित्थयूषेण पयसा स्वेदयेच्चाभीक्ष्णम्।

कफोदररोगीको प्रथम पीपलके कल्कसे सिद्ध किया हुआ घृत पान कराकर पश्चात् थूहरके दूधसे पकाये हुए घृतसे अनुलोमन करावे फिर सोंठ, मिरच, पीपल, गोमूत्र, अण्डीका तेल और नागरमोथेका क्काथ इनके द्वारा स्थापन और अनुवासनवस्ति देवे । लोहेका मैल, सरसों, आमलोंके बीज–इन सबको एकत्र पीस कर उदरपर उपनाह करे। तथा कुलथीके यूषमें त्रिकुटेका चूर्ण डालकर भोजनके साथ देवे । एवं गरम जलसे वारंवार उदरपर सेक करे ।

व्योषयुक्तं कुलित्थांबु पयो वा भोजने हितम् । गोमूत्रारिष्टपानैश्च चूर्णाऽयस्कृतिभिस्तथा । सक्षीरतैलपानैश्च शमयेत्तु कफोदरम् ॥ ४३ ॥

कुलथीके काथमें त्रिकुटेका चूर्ण डाल कर भोजन अथवा पानमें देवे । गोमूत्र और अरिष्ट इनमें आयसादि चूर्ण डाल कर पान करे अथवा दूधमें अण्डीका तेल डाल कर पान करनेसे कफोदररोग शमन होता है ॥ ४३ ॥

सन्निपातोदरनिदान ।

स्त्रियोऽन्नपानं नखरोममूत्रविडार्त्तवैर्युक्तमसाधुवृत्ताः । यस्मै प्रयच्छन्त्यरयो गरांश्च दुष्टांबुदूषी विषसेवनाद्वा ॥ ४४ ॥ तेनाशु रक्तं कुपिताश्च दोषाः कुर्युः सुघोरं जठरं त्रिलिङ्गम् ॥ ४५ ॥ तच्छीतवाते भृशदुर्दिने च विशेषतः कुप्यति दह्यते च । स चातुरो मूर्च्छति हि प्रसक्तं पांडुः कृशः शुष्यति तृष्णया च । दूष्योदरं कीर्तितमेतदेव प्लीहोदरं कीर्त्तयतो निबोध ॥ ४६ ॥

जिस मनुष्यको दुष्टस्त्री वशमें करनेके लिये नख, बाल, मूत्र, मल अथवा आर्तव (रजोधर्मका रुधिर) मिश्रित अन्न पान भक्षण करादेवे अथवा जिसको शत्रु-संयोगज दूषीविष देवे, या जो मनुष्य दुष्टजल (सिवार, काई, पत्तों संयुक्त पानी) पीते हैं, अथवा

जो मनुष्य विष सेवन करते हैं उनके उपर्युक्त कारणोंसे रक्त और दोष कुपित होकर अत्यन्त दारुण और त्रिदोषज उदररोगको उत्पन्न करते हैं। वह उदररोग शीतकालमें या शीतपवनके चलनेके समय अथवा जिस दिन वर्षाकी झडी लग रही हो उस समयमें विशेष कर कुपित होता है। इस रोगीके शरीरमें दाह हो, निरन्तर मूर्च्छा रहे, शरीरका रंग पीला पड़ जाय, कृश होजाय, तृषा करके सूखता जाय इसको दूष्योदर भी कहते हैं। आगे प्लीहोदरको कहते हैं ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

चिकित्सा।

सन्निपातोदरे कार्य्य एष एव क्रियाक्रमः। रौहीतकाऽभयाकल्कं गोमूत्रेण विभावितम्। पीतं सर्वोदरप्लीहमेहार्शःकृमिगुल्मनुत ॥ ४७ ॥

सन्निपातोदरकी इसीप्रकार चिकित्सा करनी चाहिये। रोहेड़ा और हरड़ इनको गोमूत्रमें पीसकर पान करनेसे सर्वप्रकारके उदररोग, प्लीहा, प्रमेह, बवासीर, कृमि और गुल्मरोग नष्ट होते हैं ॥ ४७ ॥

सप्तलाशङ्खिनीसिद्धं घृतं चात्र विशोधनम्। दन्तीद्रवन्तीफलजं तैलं दूष्योदरे पिवेत् ॥ ४८ ॥

सन्निपातोदररोगवालेको सातला और शंखपुष्पीके कल्कके द्वारा घृतको पकाकर देवे, इससे रेचन होता है। अथवा दंती और द्रवंतीके फलोंका तेल पान करनेसे दूष्योदररोग दूर होता है ॥ ४८ ॥

नागराद्ययमक।

नागरं त्रिफलाप्रस्थं घृततैलं तथाढकम्। मस्तुना साधयित्वा तु पिबेत्सर्वोदरापहम् ॥ ४९ ॥ कफमारुतसम्भूते गुल्मे चैव प्रशस्यते ॥ ५० ॥

सोंठ और त्रिफलेके कल्कके द्वारा एक प्रस्थ तेल और घृतको एक आढक दहीके पानीमें पकावे इसको पान करनेसे सर्वप्रकारका उदररोग, कफवातजनित गुल्मरोग नष्ट होता है ॥ ४९ ॥ ५० ॥

अत ऊर्ध्वं निगद्यन्ते सामान्या योगसम्मताः। दोषैः कुक्षौ हि संपूर्णे वह्निर्मन्दत्वमिच्छति ॥ ५१ ॥ तस्माद्भोज्यानि पेयानि दीपनानि लघूनि च। शालिषष्टिकगोधूमयवनीवारभोजनम्। विरेकास्थापनं श्रेष्ठं सर्वेषु जठरेषु च ॥ ५२ ॥

अब इसके उपरान्त सामान्ययोगोंको कहते हैं। वातादि तीनों दोष उदरमें प्राप्त होकर अग्निकी मंदताको करते हैं। इस कारण इसमें दीपन और हलके ऐसे पदार्थोंकी पेया प्रयोग करनी चाहिए। शालिचावल, साँठीचावल, गेहूँ, जौ और नीवारधान इनका भोजन, विरेचन और स्थापनबस्ति ये सब उदररोगमें हितकारी हैं ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

उदकानूपजं मांसं शाकं पिष्टकृतं तिलान् ॥ ५३ ॥ व्यायामाध्वदिवास्वप्नयानपानं विवर्जयेत्। तथोष्णलवणाम्लानि विदाहीनि गुरूणि च ॥ ॥ ५४ ॥ नाद्यादन्नानि जठरे तोयपानं विवर्जयेत्। उदरिणां मलाढ्यत्वाद्बहुशः शोधनं मतम् ॥ ५५ ॥

हलचरजीवोंका मांस, अनूपप्रदेशके जीवोंका मांस, शाक, तिलोंकी पिट्ठी, दंड, कसरत आदि परिश्रम, मार्गका चलना, दिनमें सोना, हाथी घोडेकी सवारी और पानीय पदार्थ—इन सबको उदररोगी त्याग देवे। तथा गरम, लवणके पदार्थ, खट्टे पदार्थ, दाहकारक और भारी ऐसे अन्न और जल इन सबको उदररोगी त्यागदेवे। प्रायः उदररोगियोंके विशेषकर मलकी बद्धता होजाती है इस कारण उदर रोगमें वारंवार विरेचन देना चाहिए॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

क्षीरेणैरण्डजं तैलं पिबेन्मूत्रेण वै सकृत। ज्योतिष्मत्या पिबेत्तैलं पयसा वा दिनाष्टकम् ॥ ५६ ॥

अंडीके तेलमें दूध डालकर गोमूत्रके साथ एकवार पान करनेसे उदररोग नष्ट होता है। अथवा मालकांगुनीके तेलको दूधके साथ आठदिन तकपान करनेसे सर्वप्रकारका उदररोग दूर होता है ॥ ५६ ॥

कंकुष्ठचूर्णं मुस्तांबुपीतं संसेव्य मानवः। अष्टभ्योऽप्युदरेभ्यश्च द्रुतं कुर्यान्निवृत्तिकाम् ॥ ५७ ॥

कंकुष्टके चूर्णको नागरमोथेके क्वाथमें डाल कर पान करनेसे आठों प्रकारका उदररोग दूर होता है॥ ॥ ५७ ॥

स्नुहीपयो भावितानां पिप्पलीनां पयोशनः। सहस्रमुपयुञ्जीत शक्तितो जठरामयी ॥ ५८ ॥

थूहरके दूधमें पीपलोंको भावना देकर अपनी शक्तिके अनुसार एक सहस्रपर्य्यंत सेवन करे तो सर्वप्रकारका उदररोग दूर होता है ॥ ५८ ॥

वातोदरी पिबेत्तक्रं पिप्पलीलवणान्वितम्। शर्करामरिचोपेतं स्वादु पित्तोदरी पिबेत् ॥ ५९ ॥

पीपल और सैंधानमकको तक्रमें डाल कर वातोदर रोगमें पान करे। मिश्री और काली मिरचको तक्रमें डाल कर स्वादिष्ट करके पित्तोदररोगीको पिलाना चाहिए ॥ ५९ ॥

यवानीहपुषाजाजीव्योषयुक्तं कफोदरी। सन्निपातोदरी क्षिप्रं त्रिकटुक्षारसैन्धवैः॥ ६० ॥ बद्धोदरी च हपुषादीप्यकाजाजिसैन्धवैः। पिबेच्छिद्रोदरी तक्रं पिप्पलीक्षौद्रसंयुतम् ॥ त्र्यूषणक्षारलवणैर्युक्तन्तु निचयोदरी ॥ ६१ ॥

कफोदररोगीको तक्रमें अजवायन, हाऊबेर, जीरा और त्रिकुटेका चूर्ण डाल कर पान करावे। सन्निपातोदररोगमें त्रिकुटा, जवाखार और सैंधानमक डाल कर पान करावे। बद्धोदररोगीको तक्रमें हाऊबेर, अजवायन, जीरा और सैंधानमकका चूर्ण डाल कर पान करावे, छिद्रोदररोगीको तक्रमें पीपलका चूर्ण और शहद डाल कर पान करावे। बद्धोदररोगीको त्रिकुटेका चूर्ण, जवाखार और सैंधानमक मिला कर तक्र पान करावे ॥ ६० ॥ ६१ ॥

शिलाजतूनां मूत्राणां गुग्गुलोस्त्रिफलस्य च। स्नुहीक्षीरप्रयोगश्च शमयत्युदरामयम् ॥ ६२ ॥

शिलाजीतको गोमूत्रमें डाल कर पान करनेसे अथवा गूगलको त्रिफलेके क्वाथमें डाल कर पान करनेसे अथवा इनको थूहरके दूधके साथ पान करनेसे सर्व प्रकारके उदररोग दूर होते हैं ॥ ६२ ॥

पूतीकरञ्जबीजं मूलकबीजं गवादनीमूलम्। शंखभस्म च काञ्जिकपीतं शमयेज्जलोदरमपि ॥६३॥

दुर्गंध करंजके बीज, मूलीके बीज, गरहेडुएकी जड़ और शंखकी भस्म–इन सबको एकत्र काँजीके साथ पान करनेसे जलोदररोग भी दूर होता है६३॥

कलिंगबीजशाणश्च शाणष्टङ्कणहिंगुनोः। शंखशाणसमायुक्तं षड् वा पिप्पलिमाषकाः॥ ६४ ॥ गोमूत्रेण तु सम्पेष्य पीतं शमयाति द्रुतम्। उदराणि च सर्वाणि चिरजातोदकान्यपि ॥ ६५॥

इन्द्रजौ ४ माशे, सुहागा और हींग चार चार माशे, शंखकी भस्म ४ माशे और पीपल ६ माशे, इन सबको एकत्र गोमूत्रके साथ पीस कर पान करनेसे शीघ्र ही सर्व प्रकारके उदररोग और बहुत दिनोंका पुराना जलोदर नष्ट होता है ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

सप्ताहं माहिषं मूत्रं पयसाऽन्नांबुवर्जितम्। पीतमौष्ट्रमजामूत्रं श्वयथूदरनाशनम् ॥६६॥

शोथोदरमें केवल सात दिनतक भैंसके मूत्रको दूधके साथ पान करे और इसपर अन्न और जलका त्याग कर देवे। अथवा ऊंटनीके या बकरीके मूत्रको पान करनेसे शोथोदररोग दूर होता है ॥ ६६ ॥

यः पिबेत्प्रातरुत्थाय चव्यचित्रकमिश्रितम्। क्षिप्रं तस्य जयेदौष्ट्रमसाध्यमपि चोदरम् ॥ ६७ ॥

जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर चव्य और चीतेके चूर्णको ऊँटके मूत्रके साथ पान करता है उसका असाध्य उदररोग भी अवश्य नष्ट होजाता है॥६७॥

विशाला शंखिनी दन्ती त्रिवृन्नीली फलत्रयम् । निशाविडङ्गकंपिल्लं मूत्रेणोदरवान्पिबेत् ॥ ६८ ॥

इन्द्रायन, शंखपुष्पी, दन्ती, निसोत, नीली वृक्ष, त्रिफला, हलदी, वायविडंग और कबीला इनको गोमूत्रके साथ पान करनेसे उदररोग नष्ट होता है६८

पेयं वा चव्यदन्त्यग्निविडङ्गं व्योषकल्कितम् । पेयो वा शृङ्गवेराम्बुकषायो दारुवह्निजः । चव्यविश्वसमुत्थो वा पेयो जठरशान्तये ॥ ६९ ॥

अथवा चव्य, दंती, चीता, वायविडंग और त्रिकुटा इनके चूर्णको गोमूत्रके साथ पान करनेसे उदररोग नष्ट होता है वा अदरख, देवदारु और चीतेके काथको पान करनेसे उदररोग नष्ट होता है । या चव्य और सोंठ इनको एकत्र पीस कर गोमूत्रके साथ पान करनेसे उदररोग दूर होता है ॥ ६९ ॥

क्षारद्वयानलव्योषनीलीलवणपञ्चकम् । चूर्णितं सर्पिषा पेयं सर्वगुल्मोदरापहम् ॥ ७० ॥

जवाखार, सज्जी, चीता, त्रिकुटा, नीली, पांचों नमक इन सबको एकत्र पीस कर बारीक चूर्ण करके घीमें मिला कर सेवन करनेसे सर्व प्रकारका गुल्म और उदररोग दूर होता है ॥ ७० ॥

विडंगं चित्रकं दन्ती चव्यं व्योषञ्च तत्पयः । कल्कैः कोलसमैः पीत्वा प्रवृद्धमुदरं जयेत् ॥ ७१ ॥

वायविडंग, चीता, दंती, चव्य और त्रिकुटा इन सबको एकत्र जलमें पीस कर एक तोला प्रमाण सेवन करनेसे अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त हुआ उदररोग दूर होता है ॥ ७१ ॥

गवाक्षीशंखिनीदन्तीनीलिनीकल्कसंयुतम् । सर्वोदरविनाशाय गोमूत्रपानमाचरेत् ॥ ७२ ॥

इन्द्रायन, शंखाहुली, दंती और नीली इनका कल्क बना कर गोमूत्रके साथ पान करनेसे सर्व प्रकारका उदररोग दूर होता है ॥ ७२ ॥

देवद्रुमं शिग्रु च पूरकञ्च गोमूत्रपिष्टामथवाश्वगन्धाम् । पीत्वाशु हन्याज्जठरं प्रवृद्धं कृमीन्सशोथानुदरञ्च दूष्यम् ॥ ७३ ॥

देवदारु, सहिंजना और विजौरानींबू इनको गोमूत्रमें पीस कर अथवा केवल असगंधको गोमूत्रमें पीस कर पान करनेसे बढाहुआ उदररोग, कृमि और शोथसंयुक्त तथा त्रिदोषजनित उदररोग दूर होता है७३

पिप्पलीवर्द्धमानं वा कल्पोद्दिष्टं प्रयोजयेत् । जठराणां विनाशाय नास्ति तेन समं भुवि ॥ ७४ ॥

अथवा वर्द्धमानपीपलको यथोक्त विधिसे प्रयोग करे, क्योंकि इस वर्द्धमानपीपलके समान उदररोगकी संसारमें अन्य औषधि नहीं है ॥ ७४ ॥

स्नुक्पयसा परिभावितस्तंडुलचूर्णैर्निर्मितः पूपः । उदरमुदारं हन्याद्योगोऽयं सप्तरात्रेण ॥ ७५ ॥

चावलोंके चूनको थूहरके दूधमें भावना देकर उसके मालपूए बनावे । इन पूओंको सेवन करनेसे सात दिनमें अत्यन्त बढा हुआ भी उदररोग दूर होता है ॥ ७५ ॥

बबूलस्य त्वचं श्रेष्ठां क्राथयेत्सलिलेन तु । पुनः पचेत्कषायन्तु यावत्सान्द्रत्वमागतम् ॥ ७६ ॥ तत्पिबेत्तक्रसंयुक्तं तक्रभोजी मिताशनः । निहन्यादाशु योगोऽयं जलोदरमपि ध्रुवम् ॥ ७७ ॥

उत्तम बबूरकी छालको लेकर जलमें पकावे । जब पककर अच्छे प्रकारसे काथ होजाय तब उतार कर छान लेवे । फिर दुबारा चूल्हेपर चढा कर पकावे । जब पकते २ खूब गाढा अवलेहके समान होजाय तब उसको उतार कर शीतल होनेपर उसमें तक्र (छाँछ) मिला कर पान करे और उसपर तक्रके साथ ही भोजन करे तो यह उत्तम योग जलोदर रोगको भी निश्चय दूर कर देता है ॥ ७६ ॥७७॥

मूत्राण्यष्टावुदरिणां सेके पाने च योजयेत्। पिप्पलवर्द्धमानं वा पयसैव प्रयोजयेत् ॥ ७८ ॥

आठों प्रकारके उदररोगोंमें सर्वप्रकारके मूत्र सींचने और पीनेमें प्रयोग करने चाहिएँ। अथवा वर्द्धमान-पीपलको दूधके साथ सेवन करना चाहिए ॥ ७८ ॥

देवदारुपलाशार्कहस्तिपिप्पलिशिग्रुभिः। साश्वगन्धैः सगोमूत्रैः प्रदिह्यादुदरं शनैः ॥ ७९ ॥

देवदारु, ढाक, आक, गजपीपल, सहिंजना और असगंध इनको गोमूत्रसे पीसकर धीरे २ उदरपर प्रलेप करे ॥ ७९ ॥

पटोलादिचूर्ण।

पटोलपत्रं रजनी विडङ्गं त्रिफलात्वचम्। कम्पिल्लकं नीलिनीं च त्रिवृतं चेति चूर्णयेत् ॥ ८० ॥ षडाद्यान्कार्षिकानन्त्यांस्त्रींश्च द्वित्रिचतुर्गुणान्। कृत्वा चूर्णं ततो मुष्टिं गवां मूत्रेण वा पिबेत् ॥ ८१ ॥ विरिक्तो जाङ्गलरसैरोदनं मृदु भोजयेत्। मण्डं पेयाश्च पीत्वा वा सव्योषं षडहं पयः ॥ ८२ ॥ शृतं पिबेत्ततश्चूर्णं पिबेदेवं ततः पुनः। हन्ति सर्वोदराण्येतच्चूर्णं जातोदकानि च ॥८३ ॥ कामलां पांडुरोगञ्च श्वयथुं वापि कर्षति ॥ ८४ ॥

पटोलपत्र, हलदी, वायविडंग, हरड, बहेडा और आमला ये प्रत्येक एक एक तोला, कबीला २ तोले, नीली ३ तोले और निसोत ४ तोले लेवे। सबको एकत्र पीसकर चूर्ण करले। इस चूर्णको चार तोले प्रमाण लेकर गोमूत्रके साथ पान करे। जब विरेचन (दस्त) होजाय तब जांगलजीवोंके मांसके रसके साथ भात भोजन करे। अथवा मंड और पेयाको पीकर त्रिकुटेके चूर्णको दूधमें औटाकर उस दूधको छः दिनतक पान करे, फिर उसके पश्चात् उसी क्रमसे चूर्णको पीकर दूधको पान करे। इस प्रकार वारंवार सेवन करनेसे सर्व प्रकारके उदररोग, जलोदर, कामला, पाण्डुरोग और सूजन दूर होती है ॥ ८० ॥ ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

नारायणचूर्ण।

यवानीहपुषाधान्यं त्रिफला सोपकुञ्चिका। कारवीपिप्पलीमूलमजगन्धा शटी वचा ॥ ८५ ॥ शताह्वाजीरकं व्योषं स्वर्णक्षीरी सचित्रकम्। द्वौ क्षारौ पौष्करं मूलं कुष्ठं लवणपञ्चकम् ॥ ८६ ॥ विडङ्गञ्च समांशानि दन्तिभागत्रयं भवेत्। त्रिवृद्विशाले द्विगुणे सातला स्याच्चतुर्गुणा ॥८७॥ एष नारायणो नाम्ना चूर्णो रोगगणापहः। एनं प्राप्य निवर्त्तन्ते रोगा विष्णुमिवासुराः ॥ ८८ ॥ तक्रेणोदरिभिः पेयो गुल्मिभिर्बदरांबुना। आनद्धवाते सुरया वातरोगे प्रसन्नया ॥ ॥ ८९ ॥ दधिमण्डेन विड्भेदे दाडिमांबुभिरर्शासि । परिकर्तिषु वृक्षाम्लैरुष्णांबुभिरजीर्णके ॥ ९० ॥ भगन्दरे पांडुरोगे कासे श्वासे गलग्रहे। हृद्रोगे ग्रहणीरोगे कुष्ठे मन्दानले ज्वरे ॥९१॥ दंष्ट्राविषे मूलविषे संगरे कृत्रिमे विषे। यथार्हं स्निग्धकोष्ठेन पेयमेतद्विरेचनम् ॥ ९२ ॥

अजवायन, हाऊबेर, धनियाँ, त्रिफला, काला जीरा, कलौंजी, सौंफ, पीपलामूल, वनतुलसी, कचूर, वच, सौंफ, जीरा, त्रिकुटा, चोक, चीता, जवाखार, सज्जी, पोहकरमूल, कूठ, पांचों नमक और वायविडंग ये प्रत्येक औषधि एक एक भाग लेवे, दंती तीन भाग लेवे, निसोत और इन्द्रायन प्रत्येक दो २ भाग और सातला चार भाग लेवे। इन सबको एकत्र पीसकर चूर्ण करले। इसको नारायणचूर्ण कहते हैं।

यह चूर्ण-रोगोंके समूहोंको नष्ट करताहै इस चूर्णको सेवन करनेवाले मनुष्यके कोई रोग उत्पन्न नहीं होता है, जिसप्रकार विष्णुसे असुरोंके समूहका नाश होता है यह नारायणचूर्ण-उदररोगियोंको तक्रके साथ, गुल्मरोगियोंको वेरीके क्वाथके साथ, आनद्धवातमें मदिराके साथ, वातरोगमें प्रसन्नानामक मदिराके साथ, मलभेदमें दहीके मांडके साथ, बवासीरमें अनारके रसके साथ, परिकर्तिकामें विपांविलनींबूके रसके साथ, अजीर्णरोगमें गरम जलके साथ, तथा भगन्दर, पाण्डुरोग, खाँसी, श्वास, गलग्रह, हृदयरोग, संग्रहणीरोग, कोढ, मंदाग्नि, ज्वर, दंष्ट्राविष, मूलविष, खनिजविष, कृत्रिमविष और सर्वप्रकारके विषोंमें यथायोग्य प्रथम स्निग्धकोष्ठ करके इस उत्तम विरेचनको देना चाहिए ॥ ८५—९२ ॥

महाक्षार ।

तिलसर्षपनालानि यवनालं सुधामपि । दशमूलमपामार्गं दन्तीं चित्रकमाढकीम् ॥९३॥ मधूकमैन्द्रीं त्रिवृतां त्रिफलां करवीरकम् । पुनर्नवां वृश्चिकालीमर्कंकम्पिल्लनिम्बकम् ॥ ९४ ॥ एतान्दशपलान्भागान्युक्त्या दग्ध्वा समावपेत् । गोमूत्रे द्रोणसंयुक्ते सप्तकृत्वस्तु पाचयेत् ॥ ९५ ॥ वचामतिविषां पाठां द्वे हरिद्रे महौषधम् । त्रिवृत्कम्पिल्लकं क्षारं तथैव लवणानि च ॥ ९६ ॥ महौषधं शिग्रुफलं कुष्ठं भल्लातकानि च । पिप्पलीं च विडङ्गानि त्रिफलां देवदारु च ॥९७॥ कटुकां रोहिणीं मुस्तं दन्तीं हिंग्वम्लवेतसम् । दधिशुक्तारनालानामाढकाढकमाचरेत् ॥ ९८ ॥ समांशकेन भागेन सर्पिस्तैलं विपाचयेत् । विगतार्चिर्यथाशान्तमथैतदवतारयेत् ९९ ततो विडालपदकं पिबेदुष्णेन वारिणा । रुच्यैरम्लैश्च पानैश्च क्षीरैर्मूत्रेण वा पुनः ॥ १०० ॥ महाक्षार इति ख्यातो जठराणां विनाशनः । प्लीहान्यर्शांसि गुल्मानि सशूलं हृदयग्रहम् ॥ १०१ ॥ यक्ष्माणश्च प्रमेहश्च पांडुरोगं भगन्दरम् । सक्रमीग्रहणीदोषान्व्रणोदावर्तकुण्डलम् । मूत्रकृच्छ्रमपस्मारं क्षारोऽयं विनिवर्त्तते ॥ १०२ ॥

तिल और सरसोंकी नाल, जौकी नाल, थूहरका डंडा, दशमूलकी दश औषधियाँ, चिरचिटा, दंती, चीता, अरहर, महुवा, इन्द्रायन, निसोत, त्रिफला, कनेर, पुनर्नवा, वृश्चिकाली, आक, कवीला और नीम ये प्रत्येक औषधि दश दश पल लेकर विधिपूर्वक अग्निमें जलालेवे, फिर इनकी भस्मको जलमें डालकर नितार लेवे । फिर उस क्षारजलको सात द्रोण गोमूत्रमें डालकर पकावे और उसमें वच, अतीस, पाढ, हलदी, दारुहलदी, सोंठ, निसोत, कबीला, जवाखार, पांचों नमक, सोंठ, सहिंजनेकी जड, कूट, भिलावे, पीपल, वायविडंग, त्रिफला, देवदारु, कुटकी, नागरमोथा, दंती, हींग और अमलवेंत इन प्रत्येक औषधिका चूर्ण चार २ तोले, दही, शुक्तनामवाली काँजी अथवा सिर्का और कांजी ये प्रत्येक एक २ आढक, घी और तेल यह समान भाग इन सबको उसमें डालकर पकावे । जब पककर अपने आप अग्नि शांत होकर आप शीतल होजाय तब उतार लेवे । फिर इसमेंसे एक तोला प्रमाण लेकर गरम जलके साथ अथवा रुचिकारक और खट्टे ऐसे पानीय पदार्थोंके साथ या दूधके साथ, अथवा गोमूत्रके साथ सेवन करे । यह महाक्षार—सर्वप्रकारके उदररोगोंको दूर करनेवाला है । तथा प्लीहा, बवासीर, गुल्म, शूल, हृदयरोग, राजयक्ष्मा, प्रमेह पाण्डुरोग, भगन्दर, कृमि, संग्रहणी, व्रण, उदावर्त्त, मूत्रकृच्छ्र और अपस्मार इन सबको नष्ट करता है ॥ ९३-१०२ ॥

नाराचघृत ।

स्नुक्क्षीरदन्तीत्रिफलाविडङ्गसिंही-त्रिवृच्चित्रककर्षकल्कम् । घृतं विपक्वं कुडवप्रमाणं तोयेन तस्याऽक्षसमानकर्षम् ॥१०३॥ पीत्वोष्णमंभोऽनुपिबे-

द्विरिक्ते पेयां रसं वा प्रचरेद्विधिज्ञः। नाराचमेतज्जठरामयानां युक्त्योपसृष्टं समनुप्रदिष्टम् ॥ १०४ ॥

थूहरका दूध, दन्ती, त्रिफला, वायविडंग, कटेरी, निसोत और चीता ये प्रत्येक पदार्थ एक एक तोला प्रमाण लेकर कल्क बनावे। इस कल्कके द्वारा सोलह तोले घीको पकावे तो नाराचघृत सिद्ध होता है। विरेचनके लिये पानीके साथ इस घृतको एक तोला अथवा दो तोलेप्रमाण लेकर पान करे और ऊपरसे गरम जल पीवे। विधिको जाननेवाला पुरुष इस घृतसे विरेचन होनेपर योग्य पेया अथवा योग्य रस पीवे। जिस प्रकार बाण निशानको तोडता है उसी प्रकार युक्तिसे उपयोगमें लाया हुआ यह घी उदरके सब रोगोंको नष्ट कर देता है ॥ १०३ ॥ १०४ ॥

द्वितीय नाराचघृत।

त्रिफला चित्रकी दन्ती बृहती कण्टकारिका। स्नुहीसार्कविडङ्गानि घृतस्य कुडवं पचेत् ॥ १०५ ॥ तस्य मृद्वग्निसिद्धस्य कर्षार्द्धं पाययेन्नरः। शोथगुल्मोदरानाहप्लीहोदरकफोदरान् ॥ १०६ ॥ नाशयत्युल्बणानेतान्सर्पिर्नाराचसंज्ञितम् ॥ १०७ ॥

त्रिफला, चीता, दन्ती, कटेरी, बडीकटेरी, थूहर, आक और वायविडंग इन प्रत्येकके एक एक तोला कल्कमें सोलह तोले घृतको मन्द २ अग्निसे पकावे तो यह नाराचघृत सिद्ध होता है। इस घृतमेंसे आधा तोला लेकर सेवन करे। यह नाराचघृत–सूजन, गुल्म, उदररोग, आनाह, प्लीहोदर, कफोदर और सर्व प्रकारके बढे हुए उदररोगोंको नष्ट कर देता है ॥१०५॥ ॥ १०६ ॥ १०७ ॥

त्रिवृतादिघृत।

पयस्यष्टगुणे सर्पिः प्रस्थं स्नुक्पयसः पलम्। त्रिवृतापलषट्केन सिद्धं जठरगुल्मनुत् ॥ १०८ ॥

दूध ८ प्रस्थ, घी १ प्रस्थ, थूहरका दूध ४ तोले और निसोतका कल्क २४ तोले, इन सबको एकत्र करके उत्तम विधिसे घृतको सिद्ध करे। यह घृत–सर्व प्रकारके उदररोग और गुल्मरोगको नष्ट करता है ॥ १०८ ॥

बिन्दुघृत।

अर्कक्षीरपले द्वे तु स्नुहीक्षीरपलानि षट्। पथ्या कम्पिल्लकं श्यामा शम्याकगिरिकर्णिका ॥ १०९ ॥ नीलिनी त्रिवृता दन्ती शङ्खिनी चित्रकं तथा। एतेषां पलिकैर्भागैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ११० ॥ अथास्य मलिने कोष्ठे बिन्दुमात्रं प्रदापयेत्। यावन्तस्य पिबेद्बिन्दूंस्तावद्वेगाद्विरिच्यते ॥१११॥ कुष्ठं गुल्ममुदावर्त्तं श्वयथुं सभगन्दरम्। शमयत्युदराण्यष्टौ वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा। एतद्बिन्दुघृतं नाम येनाभ्यक्तो विरिच्यते ॥ ११२ ॥

आकका दूध ८ तोले, थूहरका दूध २४ तोले, हरड, कबीला, पीपल, अमलतास, सफेद अपराजिता, नीली, निसोत, दन्ती, शंखपुष्पी और चीता यह प्रत्येक औषधि चार चार तोले–इनके कल्कके द्वारा एक प्रस्थ घृतको पकावे। इस घृतमेंसे एक बिन्दुमात्र लेकर मलिनकोष्ठवाले मनुष्यको देवे। इस घृतकी जितनी बूँदें पान करे उतनीही बार दस्त होंगे। यह बिन्दुघृत–कोढ, गुल्म, उदावर्त्त, सूजन, भगन्दर और आठों प्रकारके उदर रोगोंको नष्ट करता है। इस बिन्दुघृतको पेट पर मालिश करनेसे भी दस्त होने लगते हैं ॥१०९ ॥ ११० ॥ १११ ॥ ११२ ॥

शालिपर्णी तैल।

शालिपर्णी विदारी च सहदेवा सगोक्षुरा। उभे स्थिरे शारिवे च जीवकर्षभकावुभौ ॥ ११३ ॥ पर्णिन्यौ च विशाला च रुबूको वृद्धिरेव च। कण्डूरा त्वक् सुपत्री च फलत्रयमथापि वा ॥ ११४ ॥ एषां चतुर्दशपलं मानतः सर्वसंयुतम्। पुनर्नवैरण्डयोश्च

फलमेकं पृथक्पृथक् ॥ ११५ ॥ षोडशांशसमाख्यातं दशमूल्याश्च विंशतिम् । संकुट्य कथिते द्रोणे जले पादावशेषिके ॥ ११६ ॥ दधिकाञ्जिकमूत्राणां प्रस्थं प्रस्थं चतुश्चतुः । तैलमैरंडजं चैव प्रस्थमेकं समाचरेत् ॥ ॥ ११७ ॥ सार्द्धकर्षप्रमाणां तां मात्रां वैद्यस्तु दापयेत् ॥ ११८ ॥ पलाशपुष्पीधवचित्रकाणां स्नुहीद्रुमत्वङ्मदनारग्वधानाम् । फलत्रिकस्यापि तथैव दद्यात्क्षारस्य लोध्रस्य पलं तथैव ॥ ११९ ॥ पयः स्नुहायाश्च पलश्चतुष्कं येषां च कल्केन पचेद्विधिज्ञः । क्षीरेण तद्वै पिबतश्च जन्तोः सर्वोदरं तैलवरं निहन्ति ॥ १२० ॥

शालिपर्णी, विदारीकंद, दंडोत्पल, गोखुरू, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, शारिवा, जीवक, ऋषभक, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, इन्द्रायन, अंडकी जड़, वृद्धि, हिंगुपत्री और त्रिफला ये सब औषधि चौदह पल लेवे, पुनर्नवा और अंड ये प्रत्येक पृथक् २ चार चार तोले लेवे और दशमूलकी औषधियां २० पल लेवे । इन सबको कूट कर एक द्रोण जलमें पकावे । जब पकते पकते जल चौथाई भाग शेष रह जाय तब उतार कर छान लेवे । फिर इस काथमें दही, कांजी और गोमूत्र ये प्रत्येक द्रव्य चार चार प्रस्थ और अंडीका तेल १ प्रस्थ तथा कल्कके लिये नाड़ीहींग, धौं, चीता, थूहरकी छाल, मैनफल, अमलतास, त्रिफला, जवाखार और लोध यह प्रत्येक चार २ तोले और थूहरका दूध १६ तोले इन सबका कल्क डाल कर उत्तम विधिसे धीरे २ तेलको पकावे। इसको डेढ २ तोलेकी मात्रासे दूधके साथ पान करे यह शालिपर्णतैल सर्व प्रकारके उदररोगोंको दूर करता है ॥ ११३-१२० ॥

प्लीहोदरनिदान ।

विदाह्यभिष्यन्दिरतस्य जन्तोः प्रदुष्टमत्यर्थमसृक्कफश्च । प्लीहाभिवृद्धिं कुरुतः प्रवृद्धौ प्लीहोत्थमेतज्जठरं वदन्ति ॥ १२१ ॥ तद्वामपार्श्वे परिवृद्धिमेति विशेषतः सीदति चातुरोऽत्र ॥ १२२ ॥ प्लीहानिर्वेदनः श्वेतः कठिनः स्थूल एव च । महापरिग्रहः शान्तः श्लेष्मसम्भव उच्यते ॥ ॥ १२३ ॥ सज्वरः सपिपासश्च स्वेदनस्तीव्रवेदनः । पीतगात्रो विशेषेण प्लीहा पैत्तिक उच्यते ॥ १२४ ॥

दाहकारक और अभिष्यन्दी द्रव्य भोजन करनेवाले मनुष्योंके रुधिर और कफ अत्यन्त दूषित होकर उदरके वामपार्श्वमें प्लीहाको बढा कर शरीरमें अत्यन्त वेदनाको उत्पन्न करते हैं इसीको प्लीहोदर कहते हैं। इसमें रोगी अत्यन्त दुःखी होता है। कफजप्लीहामें पीडारहित, शरीरका वर्ण श्वेत, प्लीहा अत्यन्त कठिन, मोटी, बहुत भारी और शांत होती है। पित्तजप्लीहामें ज्वर, पिपासा, पसीनेका अधिक आना, तीव्र पीडा और विशेष करके शरीरका रंग पीला होता है ॥ १२१ ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ १२४ ॥

नित्यमाबद्धकोष्ठश्च नित्योदावर्त्तपीडितः । वेदनाभिः परीतश्च प्लीहा वातिक उच्यते ॥ १२५ ॥

वातजप्लीहारोगमें नित्य कोष्ठबद्धता, नित्य उदावर्त्तकी पीडा और विशेष पीडाका होना ये सब लक्षण होते हैं ॥ १२५ ॥

क्लमो विदाहः संमोहो वैवर्ण्यं गात्रगौरवम् । उत्क्लेदभ्रममूर्च्छाभिर्ज्ञेयं रक्तस्य लक्षणम् ॥ १२६ ॥

रुधिरजनितप्लीहामें—ग्लानि, दाह, मोह, विवर्णता, शरीरमें भारीपन, उवकाई भ्रम और मूर्च्छा ये सब लक्षण होते हैं ॥ १२६ ॥

त्रयाणामपि रूपाणि प्लीहासाध्यो भवन्ति हि ॥ १२७ ॥

और जिसमें तीनों दोषोंके लक्षण मिलते हों उसको त्रिदोषजप्लीहा कहते हैं। त्रिदोषजप्लीहारोग असाध्य है ॥ १२७ ॥

प्लीहोदरकी चिकित्सा।

स्नेहस्वेदविरेकादि विधेयं प्लीहरोगिणे ॥ १२८ ॥ दध्ना भुक्तवतो वामबाहुमध्ये शिरां भिषक्। विध्येत्प्लीहविनाशाय यकृन्नाशाय दक्षिणे। प्लीहानं मर्दयेद्गाढं दुष्टरक्तप्रशान्तये ॥ १२९ ॥ मणिबन्धे समुत्पन्नं वाममंगुष्ठमीरितम्। दहेच्छिरां क्षरेणाशु वैद्यः प्लीहप्रशान्तये ॥ १३० ॥

प्लीहारोगीके लिए प्रथम स्नेहन, स्वेदन और रेचन इत्यादि विधि करनी चाहिए। तथा प्लीहाको नाश करनेके लिये प्रथम दहीको खिलाकर बाँये बाहुमध्यकी शिराको वेधे और यकृत्को नष्ट करनेके लिये दहने बाहुमध्य शिराको वेधे और दुष्टरुधिरकी शांतिके लिये प्लीहाको अच्छे प्रकारसे मर्दन करे अथवा बाँये हाथके पहुँचेमें अँगूठेकी शिराको दग्ध करे तो शीघ्रही प्लीहा शान्त होती है ॥ १२८ ॥ १२९ ॥ ॥ १३० ॥

विडङ्गाढ्यान्ससिन्धूत्थान्सक्तून्कृत्वा वचान्वितान्। पिबेत्क्षीरेण संचूर्ण्य प्लीहगुल्मोदरापहम् ॥ १३१ ॥

वायविडंग, सैंधानमक, सत्तु और वच इन सबको एकत्र जलमें पीसकर दूधके साथ पान करनेसे प्लीहा, गुल्म और उदररोग दूर होता है ॥ १३१ ॥

सिन्धुमगधाग्निचूर्णं शिग्रुशिवाऽऽमलकीरसनिपीतश्च। प्रबलमपि योगराजः प्लीहानं नाशयत्याशु ॥ १३२ ॥

सैंधानमक, पीपल और चीता इनके चूर्णको सहिंजना, हरड और आमलेके रसके साथ पान करनेसे अत्यन्त बढीहुई प्लीहा भी शीघ्र नष्ट होती है ॥ १३२ ॥

तिलैरण्डद्रवस्तस्य क्षारो भल्लातकं कणा। एषां भागं समं कृत्वा तत्तुल्यन्तु गुडं मतम् ॥ १३३ ॥ खादेदग्निबलं मत्वा पावकस्य विवृद्धये। जयेत्प्लीहानमत्युग्रं यकृद्गुल्मं तथैव च ॥ १३४ ॥

तिल और अंडीका खार, भिलावे और पीपल ये सब समान भाग और सबके बराबर गुड लेवे। सबको एकत्र मिलाकर अग्निको दीपन करनेके लिये अपनी अग्निके बलानुसार भक्षण करे। इससे अत्यन्त उग्र प्लीहा, यकृत् और गुल्म नष्ट होता है ॥ ॥ १३३ ॥ १३४ ॥

अम्लवेतससंयुक्तः शिग्रुक्वाथः ससैन्धवः। पीतः प्लीहोदरं हन्ति पिप्पलीमरिचान्वितः ॥ १३५ ॥

सहिंजनेके क्वाथमें अमलवेत, सैंधानमक, पीपल और कालीमिरच इनका चूर्ण डालकर पान करनेसे प्लीहोदररोग दूर होता है ॥ १३५ ॥

कुष्ठं वचा शृङ्गवेरं चित्रकं कौटजं फलम्। पाठा चैवाजमोदा च पिप्पल्यः समचूर्णिताः ॥ १३६ ॥ ततो बिडालपदकं पिबेदुष्णेन वारिणा। प्लीहोदरमुदावर्त्तं सर्वमेतेन शाम्यति ॥ १३७

कूठ, वच, अदरख, चीता, इन्द्रजौ, पाढ, अजमोद और पीपल इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण बनालेवे। इस चूर्णको एक तोला प्रमाण लेकर गरम जलके साथ पान करे। इससे प्लीहोदर और उदावर्त्त ये सब रोग शान्त होते हैं ॥ १३६ ॥ १३७ ॥

पातव्यो युक्तितः क्षारः क्षीरेणोदधिशुक्तिजः। पयसा च प्रयोक्तव्याः पिप्पल्यः प्लीहशान्तये ॥ १३८ ॥

समुद्रकी सीपके खारको दूधके साथ सेवन करनेसे अथवा पीपलके चूर्णको दूधके साथ सेवन करनेसे प्लीहारोग शान्त होता है ॥ १३८ ॥

अर्कपत्रं सलवणं पुटदग्धं सुचूर्णितम्। निहन्ति मस्तुना पीतं प्लीहानमतिदारुणम् ॥ १३९ ॥

आकके पत्ते और सैंधानमक इनको पुटपाकके विधिसे फूककर चूर्ण कर ले। इस चूर्णको दहीके पानीके साथ पान करनेसे दारुण प्लीहारोग दूर होता है ॥ १३९ ॥

वायुः प्लीहानमुत्कृत्य कुपितो यस्य तिष्ठति । शूलः परितुदन्पार्श्वप्लीहा तस्य विवर्द्धते ॥ १४० ॥

वायु जिस रोगीके प्लीहाको उठाकर कुपित होता है उसके शूल, तोडनेकरीकी पीडा, पार्श्वशूल और प्लीहाकी वृद्धि होती है ॥ १४० ॥

हिंगुत्रिकटुकं कुष्ठं यवक्षारोऽथ सैन्धवम् । मातुलुङ्गरसोपेतं प्लीहशूलहरं रजः ॥ १४१ ॥

हींग, त्रिकुटा, कूठ, जवाखार और सैंधानमक इनका चूर्ण करके त्रिजोरेनींबूके रसके साथ सेवन करनेसे प्लीहा और शूल नष्ट होता है ॥ १४१ ॥

पलाशक्षारतोयेन पिप्पली परिभाविता । गुल्मप्लीहार्तिशमनी वह्निदीप्तिकरी मता ॥ १४२ ॥

ढाकके खारके जलमें पीपलकी भावना देकर सेवन करनेसे गुल्म और प्लीहाकी पीडा शान्त होती है तथा अग्नि दीपन होती है ॥ १४२॥

रसेन जम्बीरफलस्य शङ्खनाभीरजः पीतमवश्यमेव । कर्षप्रमाणं शमयेदशेषं प्लीहामयं कूर्म्मसमानमाशु१४३॥

जम्बीरीनींबूके रसमें शंखनाभिके चूर्णको एक तोला परिमाण डाल कर पान करनेसे सर्वप्रकारकी और कछुएके समान बढी हुई प्लीहा शान्त होजाती है ॥ ॥ १४३ ॥

शरपुङ्खमूलकल्कः पीतस्तक्रेण नाशयत्यचिरात् । चिरतरकालसमुत्थं प्लीहानं रूढमवगाढम् ॥ १४४ ॥

सरफोंकेकी जड़के कल्कको तक्रके साथ पान करनेसे शीघ्रही बहुत दिनोंकी पुरानी और अत्यन्त जमी हुई प्लीहा शान्त होती है ॥ १४४ ॥

क्षारं वा विडकृष्णाभ्यां पूतिकस्याम्बुनिःसृतम् । यकृत्प्लीहप्रशान्त्यर्थं पिबेत्प्रातर्यथाबलम् ॥ १४५ ॥

करंजके खारके जलमें जवाखार, विरियासंचरनमक और पीपल इनको एकत्र मिलाकर प्रातःकाल बलानुसार पान करनेसे यकृत् और प्लीहा शान्त होती है ॥ १४५ ॥

सुस्विन्नं शाल्मलीपुष्पं निशापर्य्युषितं नरः । राजिकाचूर्णसंयुक्तमद्यात्प्लीहोपशान्तये ॥ १४६ ॥

सेमलके फूलोंको उसेजकर रात्रिमें रखे रहने देवे, पश्चात् प्रातःकालको उसमें राईका चूर्ण डालकर पान करनेसे प्लीहारोग शान्त होता है १४६ ॥

यवान्यादिचूर्ण ।

यवानिकाचित्रकयावशूकषड्ग्रन्थिदन्तीमगधोद्भवानाम् । प्लीहानमेताद्विनिहन्ति चूर्णमुष्णाम्बुना मस्तुसुरासवैर्वा ॥ १४७ ॥

अजवायन, चीता, जवाखार, वच, दंती और पीपल, इनके चूर्णको गरम जलके साथ अथवा दहीके पानीके साथ या मदिराके साथ अथवा आसवके साथ सेवन करनेसे प्लीहारोग दूर होता है ॥ १४७ ॥

विडंगादिचूर्ण ।

विडङ्गानि यवानी च चित्रकं चेति तत्समम् । द्विगुणं देवदारु च नागरं सपुनर्नवम् ॥ १४८ ॥ अथ चैतानि चूर्णानि गवां मूत्रेण पाययेत् । उदरीभूतमप्येवं प्लीहानं संप्रणाशयेत् ॥ १४९ ॥

वायविडंग, अजवायन और चीता ये सब समान भाग लेवे तथा देवदारु, सोंठ और पुनर्नवा ये सब दो दो भाग लेवे। इन सबका एकत्र चूर्ण करके गोमूत्रके साथ पान करनेसे अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त हुई प्लीहा नष्ट होती है ॥ १४८ ॥ १४९ ॥

भल्लातकमोदक ।

भल्लातकाभयाजाजीगुडेन सह मोदकः । सप्तरात्रान्निहन्त्याशु प्लीहानमतिदारुणम् ॥ १५० ॥

मिलावे, हरड और जीरा इनको एकत्र पीस कर गुडमें मिला कर मोदक बना लेवे। इन मोदकोंको सात दिनपर्य्यंत सेवन करनेसे अत्यन्त दारुण प्लीहा भी नष्ट होती है ॥ १५० ॥

अभयावटक।

अभयाफलत्रयाणां पलत्रयं त्रिकटुकात्पलमेकञ्च। दीप्यकचव्यकचित्रकविडङ्गवृक्षाम्लसिन्धुवचार्धपलैः ॥ १५१ ॥ त्वक्पत्रैलाकर्षैस्त्रिभिर्युक्तं सुचूर्णितं सूक्ष्मम्। त्रिंशद्गुडपलसहिताः कर्त्तव्यास्तदक्षसंमिता वटकाः ॥ १५२ ॥ अभयावटका नाम्ना प्लीहार्शोगुल्मजठरापहराः। पांड्वामयकामलिनां मन्दाग्नीनां सर्वदा शस्ताः ॥ १५३ ॥

हरड़ और त्रिफला ३ पल, त्रिकुटा १ पल, अजवायन, चव्य, चीता, वायविडंग, विषांबिल, सेंधानमक और वच, ये प्रत्येक औषधि दो दो तोले, तथा दालचीनी, तेजपात और इलायची ये प्रत्येक औषधि एक एक तोला, सबको एकत्र पीसकर बारीक चूर्ण कर लेवे और इसमें तीस पल गुड मिला कर एक एक तोलेके बडे बना लेवे। यह अभयावटक–प्लीहा, बवासीर, गुल्म, उदररोग, पाण्डुरोग, कामला और मन्दाग्नि इन सब रोगोंमें हितकारी है ॥ १५१ ॥ ॥ १५२ ॥ १५३ ॥

अग्निमुखलवण।

चित्रकं त्रिवृतादन्तीत्रिफलापुष्करैः समैः। यावन्त्येतानि चूर्णानि तावन्मात्रन्तु सैन्धवम् ॥ १५४ ॥ भावयेत्तु स्नुहीक्षीरे तत्काण्डे प्रक्षिपेद्बुधः। मृत्तिकेनानुलिप्तस्य प्रक्षिपेज्जातवेदसि ॥ १५५ ॥ सुदग्धन्तु ततो ज्ञात्वा उद्धरेत्तु शनैर्भिषक्। यकृत्प्लीहोदरानाहगुल्मपांड्वामयादिहृत् ॥ १५६ ॥ सेवितोऽग्निबलं मत्वा अर्शोभ्यः प्रतिमोक्षयेत्। लवणोऽग्निमुखो नाम्ना वह्नेर्दीप्तिकरःपरः१५७

चीता, निसोत, दंती, त्रिफला और पोहकरमूल ये प्रत्येक औषधि समान भाग लेवे और सबके बराबर सेंधानमक लेवे। इन सबका एकत्र चूर्ण करके थूहरके दूधमें भावना देवे. फिर इस औषधिको सेंडके डंडेमें भर कर उसके ऊपर मिट्टी लपेट कर अग्निमें पुटपाककी विधिसे पकावे। जब अच्छे प्रकारसे पक जाय तब निकाल लेवे। शीतल होनेपर इसका चूर्ण करके सेवन करे। इसको सेवन करनेसे–यकृत, प्लीहा, उदररोग, आनाह, गुल्म, पाण्डुरोग और बवासीर नष्ट होती है। इसको अग्निका बलाबल विचारकर सेवन करे। यह अग्निमुखलवण अग्निको दीपन करताहै॥ १५४–१५७॥

षट्पलकघृत।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकसुनागराणाम्। ससैन्धवानां पलिका भागा घृतप्रस्थं तदेकध्यम् ॥ १५८ ॥ तुल्यक्षीरं विपचेत्सर्पिः स्यात्खलु षट्पलकं नाम्ना। प्लीहाग्निसादगुल्मोदावर्त्तक्षयथुपांडुगदान् ॥ १५९ ॥ श्वासकासं सपीनसमर्द्धाङ्गवातविषमज्वरानपहरति ॥ १६० ॥

पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ और सेंधानमक ये प्रत्येक औषधि चार चार तोले लेकर कल्क बना कर उस कल्कके द्वारा एक प्रस्थ घृतको बराबरके दूधमें पकावे तो यह षट्पलनामवाला घृत सिद्ध होता है। यह षट्पलघृत–प्लीहा, अग्निकी मंदता, गुल्म, उदावर्त्त, सूजन, पाण्डुरोग, श्वास, खाँसी, पीनस, अर्द्धांगवात और विषमज्वर इन सबको नष्ट करता है ॥ १५८ ॥ १५९ ॥ १६० ॥

वह्निषट्प्रस्थघृत।

चिरबिल्वत्वचः क्राथमार्द्रकस्वरसं घृतम्। मस्तुभल्लातकक्राथं शुक्तश्चैवाम्लकाञ्जिकम् ॥ १६१ ॥ एतैस्तुल्यैर्घृतं धृत्वा कल्कैरेतैस्तु पादिकैः। ग्रन्थिकव्योषहपुषाहिंग्वजाजीद्वयं तथा ॥ १६२ ॥ चव्याजमोदे सक्षारे तथा लवणपञ्चकम्। श्रेयसी चेति मृदुना तत्साध्यमनलेन वा ॥ १६३ ॥

वह्निषट्प्रस्थमेतत्तु जठरानलदीपनम्। प्लीहोदराध्मानहरं वातोदरदकोदरम् ॥ १६४ ॥ कफवातकृते चैव शूलेऽतीव प्रशस्यते । अर्शांसि नाशयत्याशु कृमींश्चैव विशेषतः॥१६५॥ सपांडुराणि कुष्ठानि दद्रुकुष्ठानि यानि च । अन्यान्यपि च कुष्ठानि तानि हन्यादिदं घृतम् ॥ १६६ ॥

करंजकी छालका क्वाथ, अदरखका स्वरस, दहीका पानी, भिलावेका क्वाथ, शुक्तनामक संधान और खट्टीकाँजी ये प्रत्येक पदार्थ एक २ प्रस्थ लेकर इनमें एक प्रस्थ उत्तम गौका घी डाल कर तथा पीपलामूल, त्रिकुटा, हाऊबेर, हींग,जीरा, कालाजीरा,चव्य,अजमोद, जवाखार पांचोंनमक और हरड इन औषधियोंका कल्क डाल कर मंद मंद अग्निसे घृतको सिद्ध करे । यह वह्निषट्प्रस्थघृत–जठराग्निको दीपन करनेवाला तथा प्लीहा, उदररोग, आध्मान, वातोदर, जलोदर, कफवातजनित उदररोग, शूल, बवासीर, कृमिरोग, पाण्डुरोग, कोढ, दाद और अन्यान्य सर्वप्रकारके कुष्ठोंको नष्ट करता है ॥ १६१ ॥ १६२ ॥ ॥ १६३ ॥ १६४ ॥ १६५ ॥ १६६ ॥

चित्रकघृत ।

चित्रकस्य तुलाक्काथे घृतप्रस्थं विपाचयेत् । आरनालन्तु द्विगुणं दधिमण्डं चतुर्गुणम् ॥ १६७ ॥ पञ्चकोलकतालीसक्षारैर्लवणसंयुतैः । द्विजीरकनिशायुग्मैर्मरिचन्त्वत्र दापयेत् ॥ १६८ ॥ प्लीहगुल्मोदरोन्मादपांडुरोगारुचिज्वरान् । बस्तिहृत्पार्श्वकट्यूरुशूलोदावर्त्तपीनसान् १६९॥ हन्यात्पीतं तदर्शोघ्नं शोथघ्नं दीपनं परम् । बलवर्णकरश्चापि भस्मकञ्च नियच्छति ॥ १७० ॥

चीतेका काथ ४०० तोले, उत्तम गौका घी १प्रस्थ, कांजी २ प्रस्थ,दहीका मांड ४ प्रस्थ तथा पीपल पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ, तालीसपत्र, जवाखार, सैंधानमक, जीरा, कालाजीरा, हलदी, दारुहलदी और कालीमिरच इनका कल्क डाल कर मन्द मन्द अग्निके द्वारा घृतको पकावे । यह घृत–प्लीहा, गुल्म, उदररोग, उन्माद, पाण्डुरोग, अरुचि, ज्वर, बस्तिशूल, हृदयशूल, पार्श्वशूल, कटिशूल, ऊरुशूल, उदावर्त्त, पीनस, बवासीर, सूजन और भस्मकरोगको दूर करता है तथा अग्निको दीपन करनेवाला, बल और वर्णको बढानेवाला है ॥ १६७ ॥ १६८ ॥ ॥ १६९ ॥ १७० ॥

चित्रकादिघृत ।

चित्रकस्य तुलाक्काथे घृतप्रस्थं विपाचयेत् । दध्यारनालद्विगुणं दधिमण्डं चतुर्गुणम् ॥ १७१ ॥ पञ्चकोलकतालीशं द्वौ क्षारौ लवणानि च । यवानिके द्वे जरणे मरिचान्यत्र दापयेत् ॥ १७२ ॥ प्लीहशोथोदरार्शोघ्नं विशेषाद्वह्निदीपनम् । बलवर्णकरं वापि भस्मकञ्च नियच्छति ॥ १७३ ॥

चीतेका क्वाथ १०० पल, उत्तम गौका घी १ प्रस्थ, दही और कांजी प्रत्येक दो दो प्रस्थ, दहीका मांड चार प्रस्थ, तथा पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ, तालीशपत्र, जवाखार, सज्जी, सैंधानमक, अजवायन, जीरा, कालाजीरा और कालीमिरच इनका कल्क डाल कर सबको यथाविधिसे मिला कर मन्द २ अग्निसे घृतको पकावे । यह घृत–प्लीहा, शोथोदर, बवासीर और भस्मकरोगको नष्ट करता है विशेषकर अग्निको दीपन करनेवाला और बल तथा वर्णको बढानेवाला है ॥ १७१ ॥ १७२ ॥ १७३ ॥

ब्राह्मघृत ।

शिलाह्वयं नागरकालशाकं काकादनीमूलनिदग्धिका च । पञ्चैव दद्याल्लवणानि हिंगु कृष्णा च तैरक्षसमैः पृथक्पृथक् ॥ १७४ ॥ प्रस्थं घृतं स्याच्च पचेच्छनैः शनैश्चतुर्गुणं मूत्रमतः प्रदीयते । पयश्च दद्याद्विगुणं विपक्कं तद्ब्रह्मजुष्टं प्रवदन्ति सर्पिः ।

प्लीहोदरं दूष्यमथोदरञ्च आयम्यमानं जठरं निहन्ति ॥ १७५ ॥

शिलारस, सोंठ, नाडीका शाक, कौआठोडीकी जड, कटेरीकी जड, पांचोंनमक, हींग और पीपल ये प्रत्येक औषधि एक १ तोला लेकर कल्क बनावे, तथा गौका उत्तम घी १ प्रस्थ, गोमूत्र ४ प्रस्थ, दूध २ प्रस्थ इन सबको एकत्र मिलाकर यथाविधिसे घृतको पकावे। यह घृत–प्लीहोदर, दूष्योदर और सर्व प्रकारके उदर रोगोंको दूर करता है ॥१७४॥१७५॥

शंखद्राव।

स्वर्जिका च यवक्षारः कासीसं टङ्कणं तथा। सौराष्ट्रं सैंधवञ्चैव स्फटिकं नवसारकम् ॥ १७६ ॥ सर्वमेकत्र कर्त्तव्यं सूक्ष्मचूर्णन्तु कारयेत। कूपीमध्ये क्षिपेत्तन्तु द्रावयेद्रावयन्त्रके ॥ ॥ १७७॥ गुल्मं प्लीहांस्तथानाहं रोगान्सर्वोदरांस्तथा। अर्शांसि ग्रहणीदोषं भगन्दरव्रणानि च। नाशयेन्नात्र संदेहो नान्यथा शंकरोऽब्रवीत् ॥ १७८ ॥

सज्जी, जवाखार, कसीस, सुहागा, सोरा, सैंधानमक, फटकरी और नवसादर ये सब समानभाग लेकर बारीक पीसकर चूर्ण करले, फिर इस चूर्णको काचकी सीसीमें रखकर द्रावकयंत्रमें द्रवीभूत करे। यह शंखद्राव–गुल्म, प्लीहा, आनाह, सर्वप्रकारके उदररोग, बवासीर, संग्रहणी, भगन्दर और व्रण इन सबको निश्चय नष्ट करता है ॥ १७६ ॥ १७८ ॥

रोहीतकाद्यघृत।

रोहीतकत्वचः श्रेष्ठाः पलानां पञ्चविंशतिः। कोलद्विप्रस्थसंयुक्तं कषायमुपकल्पयेत् ॥ १७९ ॥ पलिकैः पञ्चकोलैस्तु तत्तुल्यैश्चापि मात्रया। रौहीतकत्वचा पिष्टैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ १८० ॥ प्लीहाभिवृद्धिं शमयेदेतदाशु प्रयोजितम्। तथा गुल्मज्वरश्वासकृमिपांडुत्वकामलाः ॥ १८१ ॥ अत्राष्टगुणे जले निष्क्वाथ्य चतुर्भागावशेषः कर्तव्यः।

रोहिडेकी उत्तमछाल १००तोले और बेरीकी छाल २ प्रस्थ लेकर काथ बनावे। इस काथमें पंचकोल और रोहिडेका कल्क एक एक पल डाल कर एक प्रस्थ घृतको पकावे। यह रोहितकघृत–प्लीहाकी वृद्धि, गुल्म, ज्वर, श्वास, कृमि, पाण्डुरोग और कामला इन सब रोगोंको नष्ट करता है। यहाँ अठगुन जलमें क्वाथ करके चतुर्थांश शेष रखना चाहिए ॥ १७९ ॥ ॥ १८० ॥ १८१ ॥

महारोहीतकघृत।

रोहितकात्पलशतं संक्वाथ्य बदिराढकम्। साधयित्वा जलद्रोणे चतुर्भागावशेषिते ॥ १८२ ॥ घृतप्रस्थं समावाप्य छागक्षीरं चतुर्गुणम्। तस्मिन्द्रव्याणि सर्वाणि प्रदद्यात्कार्षिकाणि च ॥ १८३ ॥ व्योषं फलत्रिकं हिंगु यवानी तुम्बुरुं विडम्। अजाजी कृष्णलवणं दाडिमं देवदारु च ॥१८४॥ पुनर्नवा विशाला च यवक्षारं सपौष्करम्। विडङ्गं चित्रकञ्चैव हपुषा कारवी तथा ॥ १८५ ॥ एतैर्घृतं विपक्वन्तु विदध्याद्भाजने नवे। पाययेत्त्रिपलां मात्रां व्याधेर्बलमवेक्ष्य च ॥ १८६ ॥ रसकेनाथ यूषेण पयसा वा घृतं पिबेत्। प्रयुक्तन्तु घृतं तेषां व्याधीन्हन्यादिमान्बहून्॥१८७॥ यकृत्प्लीहोदरञ्चैव प्लीहशूलं तथैव च। हृच्छूलं कुक्षिशूलञ्च पार्श्वशूलमरोचकम् ॥ १८८ ॥ विबन्धशूलं शमयेत्पांडुरोगं सकामलम्। छर्द्यतीसारशूलघ्नं तन्द्राज्वरनिवारकम् ॥१८९॥ रोहीतकघृतं ह्येतत्प्लीहानां दृष्टमौषधम् ॥ १९० ॥

रोहिड़की छाल ४०० तोले. बेरोंकी छाल २५६ तोले इनको एक द्रोण जलमें पकावे । जब पकते पकते जल चौथाई भाग शेष रहजाय तब उतार कर छानलेवे । फिर इसमें गौका उत्तम घी १ प्रस्थ, बकरीका दूध ४ प्रस्थ, तथा त्रिकुटा, त्रिफला, हींग, अजवायन, तुम्बुरु, विडनमक. जीरा, कालानमक, अनारदाना, देवदारु, पुनर्नवा, इन्द्रायन, जवाखार, पोहकरमूल, वायविडंग, चीता, हाऊबेर और कलौंजी इन प्रत्येक औषधिका कल्क एक २ तोला डालकर यथाविधिसे घृतको उत्तम नवीन पात्रमें सिद्ध करे इसमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल रोगीके बलानुसार तीन पल परिमाण मांसरसके साथ, अथवा यूषके साथ, या दूधके साथ, किम्वा घीके साथ सेवन करावे । यह घृत–यकृत, प्लीहोदर, प्लीहा, शूल, हृदयशूल, कुक्षिशूल, पार्श्वशूल, अरुचि, विबन्धशूल, पाण्डुरोग कामला, वमन, अतीसार, शूल, तन्द्रा और ज्वरको नष्ट करताहै । यह रोहीतकघृत–प्लीहारोगकी अव्यर्थ औषधि है ॥ १८२–१९० ॥

कदलीक्षार तैल ।

कदलीतिलनालानां क्षारेण क्षुरकस्य च । पीतं तैलं जयेन्नृणां प्लीहानं कफवातजम् ॥ १९१ ॥

केला, तिलोंकी नालका खार और तालमखानेका खार इनके द्वारा तैलको पकावे। इस तैलके पान करनेसे कफवातजप्लीहा रोग दूर होता है ॥१९१॥

माणादिगुटिका ।

माणमुण्डाऽमृतावासास्थिराचित्रकसैन्धवम् ॥ नागरं तालमूलञ्च प्रत्येकन्तु त्रिकार्षिकम् ॥ १९२ ॥ विडं सौवर्चलं क्षारौ पिप्पल्यश्चापि कार्षिकाः। एतच्चूर्णीकृतं सर्वं गोमूत्रस्याढकं पचेत् ॥ १९३ ॥ सान्द्रीभूते गुटीं कुर्य्याद्दत्त्वा त्रिपलमाक्षिकम् । यकृत्प्लीहोदरहरो गुल्मार्शोग्रहणीहरः । योगः परिकरो नाम्ना वह्निसन्दीपनः परः ॥ १९४ ॥

मानकन्द, वच, गिलोय, अडूसा, शालिपर्णी, चीता, सैंधानमक, सोंठ और मुसली ये प्रत्येक औषधि तीन तीन तोले, विडनमक, कालानमक, जवाखार, सज्जीखार और पीपल ये प्रत्येक औषधि एक एक तोला-इन सबका एकत्र चूर्ण करके एक आढक गोमूत्रमें पकावे । जब पकते पकते गाढा होजाय तब शीतल होनेपर उतार कर उसमें १२ तोले शहद मिलाकर गोलियां बनालेवे । यह मानादिगुटिका– यकृत, प्लीहा, उदररोग, गुल्म, ववासीर और संग्रहणी रोगको दूर करती है और अग्निको दीपन करती है ॥ १९२–१९४ ॥

चित्रकलेह ।

चित्रकस्य शतं दद्यात्तुल्यं ग्रन्थिकस्य च । पञ्चाशद्दशमूलस्य शेषान्पञ्च पलान्पृथक् ॥ १९५ ॥ बला भार्ङ्गी शटी पाठा पौष्करं मूलमेव च । चतुर्द्रोणेऽम्भसः पक्का पादशेषावतारिते ॥ ॥ १९६ ॥ पचेद्गुडशतं दत्त्वा तैलवत्साधु साधयेत् । चतुष्पलन्तु पिप्पल्यास्तुगाक्षीर्य्याश्चतुष्पलम् ॥ १९७ ॥ त्रिजातकपलञ्चैकं मरिचस्य पलं तथा । सूक्ष्मचूर्णं ततः कृत्वा दत्त्वा सम्यग्विघट्टयेत् ॥१९८॥ पलमात्रं ततः खादेत्प्लीहगुल्मोदराणि च । हन्ति यक्ष्माणमत्युग्रं पित्तार्तिं चाम्लपित्तिनाम् ॥ १९९ ॥ भारद्वाजेन कथितो लेहश्चित्रकसंज्ञकः ॥ २०० ॥

चीता ४०० तोले, पीपलामूल ४०० तोले, दशमूलकी औषधियें २०० तोले, खिरैंटी, भारंगी, कचूर, पाढ और पोहकरमूल ये प्रत्येक औषधि वीस बीस तोले, सबको चार द्रोण जलमें पकावे । जब पकते पकते जल चौथाई भाग शेष रहजाय तब उतार कर छानलेवे । फिर इस क्वाथमें गुड ४०० तोले, पीपल १६ तोले, वंशलोचन १६ तोले, त्रिजातकका चूर्ण ४ तोले और कालीमिरच ४ तोले डालकर उत्तमविधिसे तैलके समान पकावे । जब पककर गाढा होजाय तब करछीसे चलाकर एकमएक कर देवे । इसमेंसे चार तोले प्रमाण खाय । यह प्लीहा, गुल्म, उदररोग उग्र राजयक्ष्मा, पित्त-

की वेदना और अम्लपित्तको दूर करता है यह चित्रकलेह भारद्वाजऋषिने कहा है ॥ १९५–२०० ॥

क्षारपिप्पली ।

चपलायाः पलं पञ्च यवाग्रं तावदेव तु । सामुद्रलवणानाञ्च तावन्मात्रं प्रदापयेत् ॥ २०१ ॥ वेणुसास्फोटकश्चैव शिखर्यङ्कोलस्तथैव च । शिरिषो लोध्रवृक्षश्च विशाखा माणकन्दकम् ॥२०२॥ सुधा च सुरपुष्पञ्च शम्याकदलसञ्चयम् । वरुणं शिग्रुमूलञ्च वाट्यालं चित्रकं तथा ॥ २०३ ॥ एषां पञ्चपलान्भागान्पलांशान्पञ्चविंशतिम् । क्षारं दत्वा तु सर्वेषां पचेत्तत्र जलाढके ॥ २०४ ॥ गोमूत्रं तावदेवात्र साधयेच्च यथाविधि । भक्षयेद्घृतसंयुक्तां यकृत्प्लीहहरां परान् । वातमष्ठीलिकाश्चैव गुल्मं हन्ति त्रिदोषजम् ॥ २०५ ॥

पीपल २० तोले,जवाखार २० तोले, समुद्रनमक २० तोले, बाँस, सिहोडा, चिरचिटा, शिरस, लोध, करेला, मानकंद,थूहर, लौंग,अमलतासके पत्र, वरना, सहिंजनेकी जड. खरैंटी और चीता ये प्रत्येक औषधि पांच पांच पल और जवाखार १०० तोले इन सबको एक आढकजलमें पकावे और जलकी बराबर गोमूत्र डाले, उत्तमविधिसे धीरे धीरे पकावे। इसको घीके साथ सेवन करनेसे–यकृत, प्लीहा,वात, अष्ठीलिका और त्रिदोषजगुल्म नष्ट होता है॥२०१॥ ॥२०२॥२०३॥२०४॥२०५ ॥

बृहत्क्षारपिप्पली ।

प्रशस्तेऽहनि नक्षत्रे वृक्षकं लोध्रचित्रकम् । वरुणं शिग्रुमूलञ्च वाट्यालं चाथ पुष्करम् ॥ २०६ ॥ कन्दो विशाखापुष्पी च तथा ब्राह्मणयष्टिका । पृथक्पञ्चपलान्येषां पलांशात्पञ्चविंशतिः ॥ २०७ ॥ क्षारं कृत्वा पचेद्वारि गोमूत्राढकयोस्तथा । सर्वं विपाच्य सक्षारा समुस्ताऽनलपिप्पली ॥ २०८ ॥ पृथक्पञ्चपलैर्भागैः पिप्पलीघृतमर्दिता । यकृत्प्लीहहरा श्रेष्ठा वातष्ठीलामगुल्मनुत ॥ २०९ ॥

उत्तमदिन उत्तमनक्षत्रमें कुडेकी छाल, लोध, चीता, वरना, सहिंजनकी जड, खिरैंटी,पोहकरमूल, मानकन्द, पुनर्नवा और भारंगी ये प्रत्येक औषधि पांच पांच पल लेकर १०० तोले क्षार बनावें । इस क्षारजलको एक आढक जल और गोमूत्रमें पकावे । जब पकते पकते गाढा होजाय तब उतार लेवे, फिर इसमें नागरमोथा, चीता और पीपल इन प्रत्येकका चूर्ण बीस बीस तोले डालदेवे । पीपलको घीमें मर्दन करके सेवन करे तो यकृत, प्लीहा, वातष्ठीला और गुल्मरोग नष्ट होता है ॥ २०६—२०९ ॥

अभयालवण ।

पारिभद्रपलाशार्कस्नुह्यपामार्गचित्रकाः । वरुणोऽग्निमन्थं वसुकं श्वदंष्ट्रा बृहतीद्वयम् ॥ २१० ॥ पूतीकास्फोतकुटजकोशातक्यः पुनर्नवा । समूलपत्रशाखायाः क्षोदयित्वा उलूखले ॥ २११ ॥ तिलनालप्रदीप्ताग्निसुदग्धं भस्म शीतलम् । क्षारप्रस्थं गृहीत्वा तु न्यसेत्पात्रे दृढे नवे ॥ २१२ ॥ जलद्रोणे विपक्तव्यं यावत्पादावशेषितम् । पूर्ववत्क्षारकल्केन साधयेच्च विचक्षणः ॥ २१३ ॥ प्रस्थमेकञ्च लवणं तदर्द्धाञ्च हरीतकीम् । तुल्याम्बुभागगोमूत्रं साधयेन्मृदुनाग्निना ॥ २१४ ॥ किंचित्सबाष्पे चार्धे च सम्यक् सिद्धेऽवतारिते । अजाजी त्र्यूषणं हिंगुयवानी पुष्करं शटी॥ २१५ ॥एतैस्तु चार्धपलिकैश्चूर्णं कृत्वा प्रदापयेत् । लवणञ्चाभयानां वै भक्षयेच्च यथाबलम् ॥२१६॥ व्याधिश्चावेक्ष्य मतिमाननुपानं यथा

हितम् । ये च कोष्ठगता रोगास्तान्नि- हन्ति न संशयः ॥ २१७ ॥ यकृत्प्ली- होदरानाहगुल्माष्ठीलाग्निसादनुत् । प्रतितून्यर्तिहृद्रोगशर्कराश्मरिनाश- नम् ॥ २१८ ॥

पारिभद्र, फरहद, ढाक, आक, थूहर, चिराचिटा, चीता, वरना, अरणी, मंदार, गोखुरू, कटेरी, बडी कटेरी, दुर्गन्धकरंज, कोइली, कुडेकी छाल, कडवी, तोरई और पुनर्नवा—इन सबका पंचांग लेकर ओख- लीमें कूट लेवे। फिर इनको तिलोंकी लकड़ियोंके द्वारा भस्म करलेवे। जब वह शीतल हो जाय तब उस भस्मको १ प्रस्थ लेकर जलमें नितार कर एक द्रोण जलमें नवीन उत्तम पात्रमें पकावे। जब जल चौथाई भाग शेष रहजाय तब उसमें सैंधानमक १ प्रस्थ, हरड ३२ तोले और जलकी बराबर गोमूत्र डालकर मंद २ अग्निसे पकावे जब अच्छे प्रकारसे पककर तैयार होजाय और उसमें कुछ भाफ रहे तब उतार- लेवे फिर भाफ उठते समय उसमें जीरा, त्रिकुटा, हींग, अजवायन, पोहकरमूल और कचूर ये प्रत्येक ओषधि दो दो तोले चूर्ण करके मिलादेवे। इस अभ- यालवणको रोगीके बलानुसार भक्षण करावे और रोगका विचार कर अनुपानकी कल्पना करे तो यह अभयालवण—समस्त कोष्ठगतरोग, यकृत्, प्लीहा, उदररोग, आनाह, गुल्म, अष्ठीला, मंदाग्नि, प्रति- तूनी, हृदय और शर्करासमेत अश्मरीको नष्ट करता है ॥ २१०–२१८ ॥

अथ यकृतोदरनिदान।

मन्दज्वराग्निः कफपित्तलिङ्गैरुपद्रुतः क्षीणबलोऽतिपांडुः । सव्यान्यपार्श्वे यकृति प्रदुष्टे ज्ञेयं यकृदाल्युदरं तथैव ॥ २१९ ॥ उदावर्त्तरुजानाहैर्मोहतृ- ड्दहनज्वरैः । गौरवारुचिकाठिन्यै- र्विद्यात्तत्र मलान्क्रमात् ॥ २२० ॥

जिसप्रकार प्लीहा बाँई ओर होती है उसी प्रकार दहिनी ओर यकृत् होता है। यकृत् दूषित होनेसे यकृ- दाल्युदर होता है । इसमें मन्दज्वर, मन्दाग्नि और प्रायः कफ पित्तके बहुतसे लक्षण होते हैं । रोगीका बल क्षीण होजाता है और शरीरका वर्ण पीला पड- जाता है । उदावर्त्त, शूल और मल बँधासा रहना ये लक्षण वातसे होते हैं । मोह, तृषा, दाह और ज्वर ये लक्षण पित्तसे होते हैं तथा शरीरका भारीपन, अरुचि और उदरमें कठिनता ये लक्षण कफसे होते हैं ॥ २१९ ॥ २२० ॥

यकृतोदरकी चिकित्सा ।

प्लीहोदिष्टाः क्रियाः सर्वा यकृतिः संप्रकल्पयेत । कार्य्यश्च दक्षिणे बाहौ तत्र शोणितमोक्षणम् ॥ २२१ ॥

यकृत्‌रोगमें प्लीहारोगोक्त सम्पूर्ण चिकित्सा करनी चाहिए तथा दहिने बाहुकी मध्यशिरामेंसे रक्तमो- क्षण करना चाहिए ॥ २२१ ॥

चित्रकघृत ।

पिप्पलीचित्रिकामूलं पिष्ट्वा सर्पि- र्विपाचयेत । घृतं चतुर्गुणं क्षीरं यकृ- त्प्लीहोदरापहम् ॥२२२॥

पीपल और चीतेकी जडके कल्कमें तथा चोगुने दूधमें घृतको पकावे । यह घी—यकृत् और प्लीहाको दूर करता है ॥ २२२ ॥

पिप्पलीघृत ।

पिप्पलीकल्कसंयुक्तं घृतं क्षीरं चतुर्ग- णम् । पिबेत्प्लीहाग्निसादाग्नियकृद्रो- गहरं परम् ॥२२३॥

पीपलका कल्क ४ तोले, घी ३२ तोले और दूध १२८ तोले,सबको एकत्र मिलाकर पकावे । यह घृत प्लीहा, मन्दाग्नि और विशेष कर यकृत्‌रोगको दूर करता है ॥ २२३ ॥

बद्धगुदोदरके लक्षण ।

यस्यान्त्रमन्नैरुपलेपिभिर्वा बालाश्म- भिर्वा पिहितं यथावत् । सञ्चीयते यस्य मलः सदोषः शनैः शनैः शर्क- रवच्च नाड्याम् ॥ २२४ ॥ निरुद्ध्यते तस्य गुदे पुरीषं निरेति कृच्छ्रादपि चाल्पमल्पम् । हृन्नाभिमध्ये परिवृद्धि- मेति तस्योदरं बद्धगुदं वदन्ति॥ २२५॥

जिस मनुष्यकी आंतें उपलेपी अर्थात् चिपटनेवाले पदार्थ अथवा शाकादि या बाल तथा कंकरपत्थरोंसे

होजाय उस मनुष्यका मल वातादि दोषोंसे नित्य थोडा थोडा आंतोंमें जमता जाता है जिस प्रकार बुहारी देते समय थोडा२ कूडा करकट रह जाता है तब वह मल गुदद्वारको रोक कर कुछ २ मलको अत्यंत कठिनतासे निकलने देता है। इसमें हृदय और नाभिके बीचमें पेट बढ जाता है इसको बद्धगुदोदर×कहते हैं॥२२४॥ २२५॥

क्षतोदरके लक्षण।

शल्यं तथान्नोपहितं यदन्त्रं भुक्तं भिनत्त्यागतमन्यथा वा। तस्मात्क्षतान्त्रात्सलिलप्रकाशः स्रावः स्रवेद्वै गुदजस्तु भूयः॥ २२६॥ नाभेरधश्चोदरमेति वृद्धिं निस्तुद्यते दाल्यति चातिमात्रम्। एतत्परिस्राव्युदरं प्रदिष्टं क्षतोदरं कीर्तयतो निबोध२२७

काँटा,खोवडा,कंकर,हड्डी आदि पदार्थ अन्नके साथ पक्वाशयमें चले जायँ, वहाँ तिरछे होकर आंतोंमें छेद कर दें, तब उस क्षतयुक्त आँतोंसे पानीके समान गुदाके मार्गसे बहुत स्राव हो, इसमें नाभिके नीचे पेट बढ जाताहै एवं अत्यन्त शूल और तोडने सरीखी पीडा होती है और इसको क्षतोदर कहते हैं कोई २ वैद्य परिस्राव्युदर भी कहते हैं॥ २१६॥ २२७॥

उत्पत्तिसहितजलोदरके लक्षण।

यः स्नेहपीतोऽप्यनुवासितो वा वांतो विरिक्तोऽप्यथवा निरूढः। पिबेज्जलं शीतलमाशु तस्य स्रोतांसि दुष्यन्ति हि तद्वहानि॥ २१८॥ स्नेहोपलिप्तेष्वथवापि तेषु दकोदरं पूर्ववदभ्युपैति। स्निग्धं महत्तत्परिवृत्तनाभिः समाततं पूर्णमिवांबुना वा॥ २२९॥ यथा दृतिः क्षुभ्यति कम्पते च शब्दायते चापि दकोदरं तत॥ २३०॥

अब इसके उपरांत जलोदरको कहते हैं—जो मनुष्य स्नेहपान करनेपर या अनुवासन बस्ति सेवन करनेपर, अथवा वमन विरेचन करनेपर किंवा निरूहबस्ति सेवन करनेपर तत्काल ही बहुतसा शीतल जल पी लेवै तो उस मनुष्यकी जल बहनेवाली नाडी दूषित होकर अथवा उसमें चिकनाईके लिपटनेसे क्रमक्रमसे बढकर जलोदर उत्पन्न होता है वह चिकना, बड़ा, नाभिके चारों ओर बहुत ऊँचा होता है तथा तनासा मालूम होता है और पानीकी मसककी समान मालूम होता है। जिस प्रकार जलसे भरी हुई मसक झल्लर झल्लर हिलती है उसी प्रकार यह भी हिलता है गुड गुड शब्द हो, काँपे, इसको संस्कृतमें दकोदर या जलोदर और भाषामें जलंदर कहते हैं॥ २२८॥ ॥२२९॥ २३०॥

तस्य चिकित्सा।

स्विन्ने बद्धोदरे योज्यो मूत्रैस्तीक्ष्णैर्यथान्वितैः। सतैललवणश्चात्र नीरूहश्चानुवासनम्॥ २३१॥

बद्धगुदोदररोगीको प्रथम स्वेदित करके यथादोषानुसार तीक्ष्ण औषधियोंके द्वारा गोमूत्र, तेल और लवण इनकी निरूह और अनुवासनबस्ति देवे २३१॥

क्षारगुटिका।

क्षारं वनकरीषाणां स्विन्नं वस्त्रेण गालयेत्। कार्षिकं पिप्पलीमूलं पञ्चैव लवणानि च॥ २३२॥ पिप्पली चित्रकं शुण्ठी त्रिवृतात्रिफलावचाः। द्वौ क्षारौ सातला दन्ती स्वर्णक्षीरी विषाणिका॥ २३३॥ कोलप्रमाणां वटिकां पिबेत्सौवीरसंयुताम्। श्वयथावथ वक्त्रस्य प्रवृद्धे च दकोदरे २३४

आरने उपलोंको लेकर वस्त्रमें छान लेवे,फिर उसमें पीपलामूल और पांचोंनमक, पीपल, चीता, सोंठ, निसोत, त्रिफला, बच, जवाखार, सज्जी, सातला दंती, सत्यानासीकेटेरी (चोक) और मेढाशिंगी ये प्रत्येक औषधि एक एक तोला लेकर सबको एकत्र कूट पीसकर एक एक तोलेकी गोलीयाँ बना लेवे। प्रतिदिन एक गोली सौवीरनामक कांजीके साथ पान करे। इससे अत्यन्त बढा हुआ जलोदर और मुखशोथ दूर होताहै॥ २३२॥ २३३॥ २३४॥

× यहबद्धगुदोदर उससे पृथक् है जो क्षुद्ररोगोंमें बद्धगुद नामसे है. हेतुलक्षणोंभी अन्तर है।

छिद्रान्त्रयक्षतनेतु जठरेषु प्रयोगविन्- त । लब्धानुज्ञो भिषक्कुर्यात्पाटन व्यधनक्रियाम् ॥ २३५ ॥

क्षतोदर× तथा बद्धगुदोदररोगमें वैद्य रोगीके सम्बन्धियोंकी आज्ञा लेकर पश्चात् पाटन (चीरना) और वेध (काढ़ना) क्रिया करे ॥ २३६ ॥

तथा जातोदकं सर्वमुदरं व्यधयेद्भि- षक् । ज्ञातींश्च सुहृदो दारान्ब्राह्मणा- न्नृपतिं गुरुम् ॥ २३६ ॥

सब प्रकारके जलोदरोंमें वैद्य रोगीके जातिके मनुष्योंसे, मित्रोंसे, स्त्रीसे, ब्राह्मण, राजा, और गुरुसे पूँछ कर पश्चात् वेध कर्म्म करे ॥ २३६ ॥

अनुज्ञाप्य भिषक्कर्म्म विदध्यात्संश- यावहम् । सुवेष्टितमधो नाभेर्वामत- श्चतुरंगुलात ॥ २३७ ॥

वैद्य रोगीसे पहले कह देवे कि भेदनेसे या तो आरोग्य होजाओगे अथवा मर जाओगे । यदि इस कहनेपर भी रोगी आज्ञा दे देवे तो उदरको अच्छे प्रकारसे वस्त्र आदिसे वेष्टित करके नाभिके नीचे वामओर चार अंगुल प्रमाण स्थानसे आगे वेध करे ॥ २३७ ॥

अंगुल्योदरमात्रन्तु व्रीहिवक्त्रेण भेद- येत् । नाडीमुभयतो द्वारां संयोज्या- पहरेज्जलम् ॥ २३८ ॥

व्रीहिमुख (धानके समान मुखवाले) शस्त्रको अंगुलीमें लेकर उससे भेदे और उसमें दोमुखी नली डाल कर जलको निकाल देवे ॥ १३८ ॥

न चैकस्मिन्दिने सर्वं दोषन्त्वपहरे- त्तथा । कासश्वासज्वरास्तृष्णा गात्र- भङ्गश्च वेपथुः ॥ २३९ ॥ अतिसारश्च सुतरां पूर्य्यते जठरं तथा । तृतीय- पञ्चमाद्येषु दिवसेष्वल्पशः पुनः २४०॥

एक ही दिनमें समस्त दोषों (जल)को नहीं निका- लना चाहिये क्योंकि एक दिनमें एक साथ सबको निकालनेसे खांसी, श्वास, ज्वर, तृषा, शरीरका टूटना, कम्प, अतिसार और पहलेके समान पेटका परिपूर्ण होजाना यह सब विकार उत्पन्न हो जाते हैं इस कारण तीसरे, अथवा पांचवें दिन धीरे धीरे वारंवार थोडा २ जल निकाले ॥ २३९ ॥ २४० ॥

× क्षतोदर और बद्धगुदोदरकी पाटनादि क्रिया तथा जलोदरवालेके उदरमेंसे जल निकालनेकी विधि भलीभांति सुश्रुतके चिकित्सा स्थानके चतुर्दश अध्यायमें लिखी है ।

स्रावयेदुदकं तैललवणाभ्यां दृढं व्र- णम् । बध्नीयाद्विस्रुते दोषे जठरं परिगृह्य वा ॥ २४१ ॥ संवेष्टयेद्गाढतरं कौशेयाऽऽविकचर्म्मभिः । निःस्रुते लङ्घितः पेयामस्नेहलवणां पिबेत ॥ ॥२४२॥ अतःपरन्तु षण्मासान्क्षीरवृ- त्तिर्भवेन्नरः । त्रीन्मासान्पयसा पेयां पिबेत्त्रींश्चापि भोजयेत् । सकोरदूषं श्यामाकं पयसा लवणं लघु । नरः संवत्सरेणैव जयेत्प्राप्तजलोदरम्२४३॥

उदरका जल निकालनेके पश्चात् उदरको अच्छे प्रकारसे पकड कर व्रणमें दोषोंको प्रवेश होनेसे पह- ले ही लवण और तेलको एकत्र पीसकर व्रणपर लेप कर देवे और ऊपर रेशम अथवा भेड़के चर्म्मको बांध देवे । जल निकलनेके पश्चात् लंघन करा कर स्नेह और लवणरहित पेया पिलावे । फिर इसके उपरांत बराबर छः महीने तक केवल एक दूधका ही सेवन करावे पश्चात् तीन महीने तक दूधकी पेया बनाकर देवे और इसी प्रकार तीन महीने पर्य्यन्त कोदों, समा, दूध, नमक और हलके पदार्थ इन सबका भोजन देवे । इस प्रकार एकवर्ष पर्य्यन्त बराबर उपचार करनेसे जलोदररोग दूर हो जाता है ॥ २४१ ॥ २४२ ॥ २४३ ॥

उदरारिलोह ।

स्नुह्यर्कदन्तीधववह्निफञ्जी शोफारि- पाशीशनकन्दकन्दः । माणत्रया- माग्निकबाणरण्डा तालं तथा मञ्जरि- पारभद्रौ ॥ २४४ ॥ प्रत्येकशः क्षार- चतुःपलांशं तथा पलाशस्य समैः समःस्यात् । चतुर्गुणे क्काथजलाष्टशेषे पचेद्विधिज्ञो विधिशुद्धलोहम् ॥२४५॥ चूर्णीकृतं तत्पुटितं पुटेन तन्तुच्युतं षोडशिकं पलानाम् । वर्षाभुभल्लात- कवह्निदन्तीत्रिवृद्द्रवन्तीरविवृद्धमूल-

म् ॥ २४६ ॥ कञ्चुकी तालमूली च पीवरी गिरिकर्णिका। नीलिनी बृहतीपत्रं शम्याकं विजयासमम् ॥२४७॥ चतुष्पलांशं क्वथिताष्टशेषं स्नुह्यर्कदुग्धेन पलाष्टकेन । दत्त्वा पचेत्ताम्रमये सुपात्रे पलैर्द्विरष्टैर्हविषस्तथैव॥ ॥ २४८ ॥ अमूनि चूर्णानि च सिद्धशीते क्षिपेत्तथा लोहरजः समानि ॥ २४९ ॥ लवणानि च सर्वाणि क्षारः पञ्चोषणस्तथा । मरिचं चाजमोदा च हिंगुभल्लातकानि च ॥ २५० ॥ चित्रकं तालमूलञ्च गवाक्षी त्रिवृतामृता । वर्षाभूः सूरणो मानो विडङ्गं दन्तिग्रन्थिकम् ॥ २५१ ॥ पलं माक्षिकचूर्णस्य कंकुष्टकशिलाजतोः । गुग्गुलोर्गन्धकस्यापि पारदस्य पलं पृथक्॥२५२॥ शीते पलाष्टकं क्षौद्रं दत्त्वा मधुघृतान्वितम् । लोहदण्डेन संघृष्य लोहपात्रे चिरं भिषक् ॥ २५३ ॥ विधिज्ञोक्तेन विधिना हिताहारविहारवान् । अन्नपानं यथासात्म्यं कुर्वन्नित्यं निरामयः ॥ २५४॥ उदरेषु च सर्वेषु शोथेषु विविधेषु च । अर्शःसु च विशेषेण पांडुरोगे सकामले । विधिनोक्तेन कुर्वाणो नरो रोगान्न विन्दति ॥ २५५ ॥

थूहर, आक, दंती, धौं, भिलावे,भारंगी, पुनर्नवा, वरना,चर्म्मकारालु,जिमीकंद,मानकंद, हल्दी, चीता, नीला, अण्ड,ताड, चिरचिटा और फरहद इन प्रत्येक औषधियोंका चार २ पल और सबके बराबर ढाकका खार लेवे इनको चौगुने जलमें पकावे जब पकते २ आठवां भाग जल शेष रहजाय तब उतार लेवे।पश्चात् उत्तम विधिसे पुटपाक किया हुआ तंतुरहित ऐसा शुद्ध लोहा सोलह पल लेकर वारंवार अग्निमें तपा कर उपरोक्त काथमें बुझावे फिर पुनर्नवा,भिलावे,चीता,दंती, निसोत, द्रवंती,आककी जड, क्षीर, कंचुकी, मुसली, शतावर,कोइली, नील, बडीकटेरीके पत्ते, अमलतास और भांग ये प्रत्येक औषधि चार २ पल लेकर चौगुने जलमें पकावे। जब पकते २ जल चौथाई भाग बाकी रहजाय तब उतारकर छान लेवे । फिर इस काथमें थूहरका दूध चार पल, आकका दूध ४ पल और गौका घी १६ पल मिलाकर तांबेके पात्रमें पकावे। जब पक कर गाढा हो जाय तब इसमें पूर्वोक्त लोहेका चूर्ण १६ पल, पांचों लवण, जवाखार, सज्जीखार, पंचकोल, काली मिर्च अजमोद, हींग, भिलावे, चीता, मुसली,इद्रायन,निसोत,गिलोय,पुनर्नवा, सूरणकंद, मानकंद, वायविडंग, दंती, पीपलामूल, सोनामाखीका चूर्ण, मुरदाशंख, सिलाजीत, गूगल, गंधक और शुद्ध पारा ये प्रत्येक औषधि चार चार तोले मिलाकर पकावे। जब पक कर शीतल हो जाय तब शहद ३२ तोले मिला देवे पश्चात् इसको एक उत्तम लोहेके पात्रमें भर कर रख देवे और इसमें शहद तथा घी मिला कर लोहेके डंडेसे खूब अच्छे प्रकारसे चला देवे। इसमेंसे विधिपूर्वक यथा मात्रानुसार सेवन करे। इसपर हितकारक आहार और विहार करे। और जो अपनेको सात्म्य (माफिक) हो ऐसे अन्नपान सेवन करे। इससे मनुष्य आरोग्य हो जाते हैं। यह लोह सब प्रकारके उदररोग सब प्रकारके शोथ, विशेष कर अर्शरोग, पाण्डुरोग और कामलादि रोगोंको नष्ट करता है। इसको विधिपूर्वक सेवन करनेसे कोई भी रोग अवशेष नहीं रहता ॥ २४४–२५५ ॥

साध्यासाध्यविचार ।

जन्मनैवोदरं सर्वं प्रायः कृच्छ्रतमं स्मृतम् । बलिनस्तदजाताम्बु यत्नात्साध्यं नवोत्थितम् ॥ २५६ ॥ पक्षाद्बद्धगुदं तूर्ध्वं सर्वजातोदकं तथा । प्रायो भवत्यभावाय छिद्रान्त्रं चोदरं नृणाम् ॥ २५७ ॥ शूनाक्षं कुटिलोपस्थमुपक्लिन्नतनुत्वचम् । बलशोणितमांसाग्निपरिक्षीणन्तु वर्जयेत् ॥२५८॥ पार्श्वभङ्गान्नविद्वेषशोथातीसारपीडि-

तम् । विरक्तं चाप्युदरिणं पूर्यमाणं विवर्जयेत् ॥ २५९ ॥

प्रायः सब प्रकारके उदररोग उत्पन्न होते ही कष्टसाध्य होते हैं । उनमें बलवान् मनुष्यके थोडे दिनोंसे उत्पन्न हुआ और पानीरहित ऐसा उदररोग कदाचित् बडे प्रयत्नोंसे साध्य हो जाता है । बद्धगुदोदर पन्द्रह दिनके पश्चात् असाध्य हो जाता है । जिनमें जल उत्पन्न हो गया हो वे उदररोग सब असाध्य हैं और क्षतोदर प्रायः मृत्युके लिये ही उत्पन्न होता है। जिसके नेत्रोंमें सूजन आ गई हो लिंग टेढा हो गया हो उदरकी त्वचा गीलीसी लचलची पतली पडगई हो बल, मांस, रुधिर और जठराग्नि क्षीण हो गई हो ऐसा उदररोगी असाध्य जानना । जिसकी पसली टेढी हो गई हो,अन्नमें अरुचि हो, सूजन और अतिसार इनसे दुःखित हो तथा विरेचन करानेसे जिसका पेट फिर पानीसे भर जाय ऐसा उदररोगी त्यागनेयोग्य है ॥ २५६–२५९ ॥

कतिपययोग ।

हरीतकीनागरदेवदारुपुनर्नवाछिन्नरुहाकषायः । सगुग्गुलुर्मूत्रयुतः सपेयः शोफोदराणां प्रवरः प्रयोगः २६०

हरड, सोंठ, देवदारु, पुनर्नवा और गिलोय इनके काथमें गूगल और गोमूत्र डाल कर पान करनेसे शोफोदररोग दूर होता है ॥ २६० ॥

पुनर्नवानिम्बपटोलशुण्ठीतिक्तामृतादार्व्यभयाकषायः । सर्वाङ्गशोथोदरकासशूलश्वासान्वितं पांडुगदं निहन्ति ॥ २६१ ॥

पुनर्नवा, नीम, पटोलपत्र, सोंठ, कुटकी, गिलोय, दारुहलदी और हरड इनका काथ बनाकर पान करनेसे सर्वांगगत सूजन, शोथोदर, खाँसी, शूल, श्वास और पांडुरोग दूर होता है ॥ २६१ ॥

पुनर्नवां दार्व्यभयां गुडूचीं पिबेत्समूत्रां महिषाख्ययुक्ताम् । त्वग्दोषशोफोदरपांडुरोगस्थौल्यप्रसेकोर्ध्वकफामयेषु ॥ २६२ ॥

पुनर्नवा, दारुहलदी, हरड और गिलोय इनके काथमें गोमूत्र और गूगल डालकर पान करनेसे त्वचाके विकार, शोफोदर, पाण्डुरोग, स्थूलता और मुख नासिकादिसे स्रावका होना, तथा ऊर्ध्वजत्रुगत समस्त कफरोग नष्ट होते हैं ॥ २६२ ॥

पुराणवारुणी वह्नि त्र्यूषणं लवणानि च । चविकाचिरबिल्वश्च भस्म चैषां सुसंस्कृतम् ॥ २६३ ॥ गव्येन मस्तुना साध्यं भोजयेत भिषग्वरः । श्वयथूदरगुल्मेषु बस्तिसादे च दुस्तरे ॥२६४॥

पुरानी इंद्रायन, चीता, त्रिकुटा,पांचों नमक,चव्य और करंज इन सब औषधियोंकी उत्तम विधिसे भस्म करके गौके घी और दहीके तोडमें पकावे । इसको सेवन करनेसे, सूजन, गुल्म, उदररोग और दुस्तर बस्तिशूल नष्ट होता है॥ २६३ ॥ २६४ ॥

पुराणं पानकं पिष्ट्वा द्विगुणीकृततण्डुलम् । साधितं तोयक्षीराभ्यामभ्यासे पायसन्तु तम् ॥ २६५ ॥ हन्ति वातोदरं शोथं ग्रहणीपांडुतामपि२६६

पुराने मानकंदको पीसकर उसमें दुगुने चावल मिलाकर जल और दूधमें खीर बनावे । यह खीर वातोदर, सूजन, संग्रहणी और पाण्डुरोगको नष्ट करती है ॥ २६५ ॥ २६६ ॥

आर्द्रकघृत ।

नवघृतमार्द्रककल्कस्वरसाभ्यां परिसाधितं च विधिना । श्वयथूदराग्निसादैरभिभूतः पिबेद्भवत्यरोगः २६७॥

नैनी घी और अदरखका कल्क इन दोनोंको अदरखके रसमें पकाकर घृतको ग्रहण करे। यह घृत शोथोदर, मंदाग्नि और सब प्रकारके उदररोगोंको दूर करता है ॥ २६७ ॥

बिल्वादिघृत ।

बिल्वाग्निचव्यार्द्रकशृङ्गवेरकाथेन कल्केन च सिद्धमाज्यम् । सछागदुग्धं

ग्रहणीगदोत्थे शोथाग्निसादारुचिषु प्रदिष्टम् ॥ २६८ ॥

बेलगिरी, चीता, चव्य, अदरख और सोंठ इन सब औषधियोंके काथ और कल्कके द्वारा बकरीके दूधमें गौके उत्तम घीको पकावे। यह घृत संग्रहणी-रोग, सूजन, मंदाग्नि और अरुचिको नष्ट करता है ॥ २६८ ॥

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायां उदररोगाधिकारः समाप्तः ॥ ४० ॥

अथ शोथरोगाधिकारः।

रक्तपित्तकफान्वायुर्दुष्टो दुष्टान् बहिः-शिराः। नीत्वा रुद्धगतिस्तैर्हि कुर्यात्त्वङ्मांससंश्रयम् उत्सेधं संहतं शोथं तमाहुर्निचयात्मकम् ॥ १ ॥

अपने कारणोंसे कुपित हुई वायु, दुष्ट हुए रक्तपित्त और कफको बाहरकी नसोंमें प्राप्त करके उनकी गतिको रोकदेता है उनके रुकनेसे वह वायु, त्वचा और मांसमें स्थित होकर कठिन और ऊँची सूजनको उत्पन्न करती है। यह सूजन पूर्वोक्त दोषोंके संग्रहसे होती है ॥ १ ॥

सर्वं हेतुविशेषैस्तु रूपभेदान्नवात्मकम् दोषैः पृथग्द्वयैः सर्वैरभिघाताद्विषादपि ॥ २ ॥ तत्पूर्वरूपं दवथुः शिरायामोऽङ्गगौरवम् ॥ ३ ॥

यह शोथरोग कारण, विशेष और रूपभेदसे नौ प्रकारका है। इनमें पृथक् ३ भेदोंसे तीन, द्वन्द्वज तीन सन्निपातज एक, अभिघातज एक और विषज एक ऐसे नौ प्रकारका है। सूजनके उत्पन्न होनेके पूर्व नसोंका तनना, और जिस अंगमें सूजन उत्पन्न होनेको होती है वह अंग किञ्चित् उन्नत और भारी होजाता है ॥ २ ॥ ३ ॥

शोथरोगका निदान।

शुद्ध्यामयाऽभक्तकृशाबलानां क्षाराम्लतीक्ष्णोष्णगुरूपसेवा। दध्याममृच्छाकविरोधिदुष्टजरोपसृष्टान्ननिषेवणञ्च ॥ ४ ॥ अर्शांस्यचेष्टा न च देहशुद्धिर्मर्मोपघातो विषमा प्रसूतिः। मिथ्योपचारः प्रतिकर्म्मणाञ्च निजस्य हेतुःश्वयथोः प्रदिष्टः ॥ ५ ॥

वमन, विरेचनादि, ज्वरादि और अभोजन (उपवास या विगुण भोजन) इनसे जो मनुष्य कृश और बलहीन होगये हैं उनको क्षार, अम्ल, तीक्ष्ण, उष्ण, भारी, दही, कच्चे पदार्थ, मृत्तिका, शाक, विरुद्ध, दुष्ट और संयोगज विषयुक्त भोजनका सेवन करना सूजनका कारण होता है। तथा अर्शरोग, निश्चेष्ट रहना शरीरकी अशुद्धता, मर्मस्थानोंमें अभिघातका लगना, असमय गर्भपातादिक तथा वमनादिक मिथ्या उपचार ये सब शोथरोगके कारण हैं ॥ ४ ॥

सामान्य लक्षण।

सगौरवं स्यादनवस्थितत्वं सोत्सेधमूष्माऽथ शिरातनुत्वम्। सलोमहर्षश्च विवर्णता च सामान्यलिङ्गं श्वयथोः प्रदिष्टम् ॥ ६ ॥

शरीर भारी, चित्तमें व्याकुलता, ऊंची सूजन, दाह, नसें पतली हों, रोमांचोंका होआना और शरीरका रंग बदलजाना ये शोथरोगके सामान्य लक्षण जानने ॥ ६ ॥

वातजशोथके लक्षण।

चलस्तनुत्वक्परुषोऽरुणोऽसितः सुसुप्तिहर्षार्तियुतो निमित्ततः। प्रशाम्यति प्रोन्नमति प्रपीडितो दिवा बली च श्वयथुः समीरणात् ॥ ७ ॥

वातजशोथ (सूजन) चंचल (चलायमान), त्वचा पतली कर्कश हो, लाल, काली, स्पर्श करनेसे न मालूम हो, रोमांच होआवे, तीव्रपीडा, कदाचित् विना कारण शांत होजाय, कभी बढजाय और दबानेसे नीचेको दबकर फिर उठआवे तथा दिनमें प्रबल हो ॥ ६ ॥

पित्तजशोथके लक्षण ।

मृदुः सगन्धोऽसितपीतरागवान् भ्रमज्वरस्वेदतृषामदान्वितः । य उष्यते स्पृष्टरुगक्षिरागकृत स पित्तशोथो भृशदाहपाकवान् ॥ ८ ॥

पित्तकी सूजन-कोमल, गंधयुक्त, काले और पीले रंगकी, तथा भ्रम, ज्वर, पसीना, तृषा, मद, इनसे युक्त, उष्णता सहित, स्पर्श करनेसे पीडा, नेत्रोंमें लाली, सूजनमें अत्यन्त दाह और पाकयुक्त होती है ॥ ८ ॥

कफजशोथके लक्षण ।

गुरुस्थिरः पांडुररोचकान्वितः प्रसेकनिद्रावमिवह्निमान्द्यकृत् । स कृच्छ्रजन्मप्रशमो निपीडितो न चोन्नमेद्रात्रिबली कफात्मकः ॥ ९ ॥

कफकी सूजन भारी, स्थिर और पांडुरंगकी होती है । इसमें अरुचि, मुखसे पानीका निकलना, निद्रा, वमन, मंदाग्नि, बहुत दिनोंमें उत्पन्न हो और बहुत दिनोमें नष्ट हो, दवानेसे ऊपर नहीं उठे और रात्रिमें बलवान् होती है ॥ ९॥

द्वन्द्वज और सन्निपातज शोथोंके लक्षण ।

निदानाकृतिसंसर्गाच्छ्वयथुः स्याद्विदोषजः । सर्वाकृतिः सन्निपाताच्छोथो व्यामिश्रलक्षणः ॥ १० ॥

जिसमें दो दोषोंके लक्षण हों उसको द्विदोषज सूजन जानना, जिस सूजनमें वात, पित्त, कफ इन तीनोंके लक्षण मिलते हों उसको सन्निपातकी सूजन जानना ॥ १०॥

अभिघातजशोथके लक्षण ।

अभिघातेन शस्त्रादिछेदभेदक्षतादिभिः । हिमानिलोदध्यनिलैर्भल्लातकपिकच्छुजैः ॥११॥ रसैः शूकैश्च संस्पर्शाच्छ्वयथुः स्याद्विसर्पवान् । भृशोष्मालोहिताभासः प्रायशः पित्तलक्षणः ॥ १२ ॥

लाठी आदिकी चोटके लगनेसे, शस्त्रादिके छिदनेभिदनेसे, या फटनेसे अथवा घाव आदिके होनेसे पहाडोंमें बर्फके पवनके लगनेसे, भिलावेके रसके लगनेसे और कौंछकी फलीके या काँटोंके स्पर्शसे जो सूजन उत्पन्न होती है उसको अभिघातज कहते हैं । यह चारोंओर फैल जाती है, इसमें दाह अधिक होती है इसका रंग लाल और इसमें विशेष करके पित्तके लक्षण मिलते हैं ॥ ११ ॥ १२ ॥

विषजशोथके लक्षण ।

विषजः सविषप्राणिपरिसर्पणमूत्रणात् । दंष्ट्रादन्तनखाघातादविषप्राणिनामपि ॥ १३ ॥ विण्मूत्रशुक्रोपहतमलवद्वस्त्रसंकरात् । विषवृक्षानिलस्पर्शाद्गरयोगावचूर्णनात् ॥ १४ ॥ मृदुश्चलोऽवलम्बी च शीघ्रदाहरुजाकरः ।

विषैले प्राणियोंके अंगके स्पर्शसे अथवा उनके मूत्रके स्पर्शसे, या निर्विष जो मनुष्यादिक उनके डाढ, दांत,नख इनके लगनेसे अथवा विषैले जीवोंको मलमूत्र और वीर्य्यसे सने हुए एवं मलिन ऐसे वस्त्रोंके स्पर्शसे, अथवा विषैले वृक्षोंकी पवनके स्पर्शसे, या संयोगज विषके शरीरमें लगनेसे जो सूजन उत्पन्न होती है उसको विषज कहते है । यह सूजन-कोमल, चंचल, नीचेको लटकनेवाली, शीघ्र उत्पन्न होनेवाली, दाह और पीडाकारक होती है ॥ १३॥ १४॥

दोषपरत्वसे सूजनका स्थानान्तरकथन ।

दोषाः श्वयथुमूर्ध्वं हि कुर्वन्त्यामाशयस्थिताः॥१५॥पक्वाशयस्था मध्ये तु वर्चस्थानगतास्त्वधः । कृत्स्नं देहमनुप्राप्ताः कुर्युः सर्वसरं तथा ॥ १६ ॥

आमाशयमें रहनेवाले दोष शरीरके ऊर्ध्वभागमें, पक्वाशयमें रहनेवाले दोष शरीरके मध्यभागमें और मलाशयमें रहनेवाले दोष सर्वप्रकारकी सूजनको उत्पन्न करते हैं ॥ १६ ॥

शोथके कृच्छ्रादिभेद।

यो मध्यदेशे श्वयथुः सकष्टः सर्वग-श्च यः। अर्धाऽङ्गेऽरिष्टभूतः स्याद्य-श्चोर्ध्वं परिसर्पति ॥ १७॥

जो सूजन शरीरके मध्यभागमें स्थित हुई हो अथवा संपूर्ण शरीरमें उत्पन्न हुई हो वह कष्टसाध्य है। जो सूजन नीचेके भागमें उत्पन्न होकर ऊपरको चढे वह अत्यन्त कष्टसाध्य है॥ १७॥

असाध्यलक्षण।

श्वासः पिपासा छर्दिश्च दौर्बल्यं ज्वर एव च। यस्य चान्नेऽरुचिर्नास्ति श्वयथुं तं विवर्जयेत् ॥ १८॥

श्वास, तृषा, वमन, दुर्बलता और ज्वर तथा अन्नमें अरुचि इन लक्षणोंसे युक्त शोथके रोगियोंको वैद्य त्याग दे॥ १८॥

अनन्योपद्रवकृतः शोथः पादसमुत्थितः। पुरुषं हन्ति नारीश्च मुखजो गुदजो द्वयम् ॥ १९॥ ऊर्ध्वगामी नरं पद्भ्यामधोगामी मुखात्स्त्रियम्। उभयं बस्तिसंजातः शोथो हन्ति न संशयः ॥ २०॥ नवोऽनुपद्रवः शोथः साध्योऽसाध्यः पुरेरितः ॥ २१॥

जो अन्यान्य रोगोंके उपद्रवरूपसे उत्पन्न नहीं हो अर्थात् जो केवल अपने निदानसे अपने आपही उत्पन्न हुई हो ऐसी सूजन यदि मनुष्यके पांवोंमें उत्पन्न होकर ऊपर जाय तो मनुष्यको मारे और यदि स्त्रीके मुखसे उत्पन्न होकर पैरोंपर जाय तो स्त्रीको मारे। एवं जो शोथ केवल अपने निदावसे गुह्यस्थानमें उत्पन्न होकर अथवा बस्तिस्थानसे उत्पन्न होकर सर्व शरीरमें फैलजाय वे स्त्री पुरुष दोनोंको मारे और जो शोथ नवीन और उपद्रव रहित है वह साध्य है एवं पूर्वोक्त लक्षणोंवाली असाध्य सूजन जानना॥ १९॥ ॥ २०॥ २१॥

आमयुक्तशोथके लक्षण।

क्षुन्नाशो हृदयाशुद्धिस्तन्द्राजठरगौरवैः। दोषप्रवृत्तिर्नो यत्र व्याधिमामान्वितं वदेत् ॥ २२॥

क्षुधाका नाश, हृदयमें अशुद्धता, तन्द्रा, उदरमें भारीपन और जिसमें दोषोंकी प्रवृत्ति नहीं हो उसको आमयुक्त शोथ जानना॥ २२॥

शोथकी चिकित्सा।

पुराणयवशाल्यन्नं दशमूलाम्बुसाधितम्। अल्पमल्पं पटुस्नेहं भोजनं श्वयथौ हितम् ॥ २३॥

अब अनेक तन्त्रान्तरोंसे शोथरोगकी चिकित्सा कहते हैं। पुराने जौ और पुराने शालिधान इनको दशमूलके काथमें शिद्ध करके उसमें थोडा नमक और स्नेह (तेलघृतादि) डाल कर शोथरोगमें भोजनके लिये देवे॥ २३॥

सप्ताहं माहिषं मूत्रं पयसान्नांबुवर्जितम्। पीत्वा चौष्ट्रमजामूत्रं श्वयथूदरनाशनम् ॥ २४॥

दूध, अन्न और जलको छोडकर सात दिनतक भैंसके मूत्रको पीनेसे अथवा ऊंटनी या बकरीके मूत्रको पान करनेसे सूजन और उदररोग दूर होता है ॥ २४॥

शिग्रुत्वङ्नक्तमालार्कदार्व्यारग्वधमूलकैः। गोमूत्रपिष्टैः श्वयथुः प्रलिप्तव्यः कफात्मकः ॥ २५॥

सहिजनेकी छाल, करंज, आक, दारुहल्दी और अमलतास फलका गूदा इनको एकत्र गोमूत्रमें पीसकर लेप करनेसे कफकी सूजन दूर होता है॥ २५॥

निदानदोषैस्तु विपर्ययक्रमैरुपाचरेद्बलकालदोषवित्। यथाऽऽमजं लङ्घनपाचनक्रमैर्विशोधनैरुल्बणदोषमादितः ॥ २६॥

शोथरोगमें रोगीका बलाबल, समय और दोषों-को विचार कर निदान और दोषोंके विपरीत चिकित्सा करनी चाहिए। जैसे कि, आमसंयुक्त शोथमें लंघन और पाचन प्रयोग करने चाहिए और जो दोषोंकी उल्वणता हो तो शोधन करना चाहिए ॥ २६ ॥

शिरोगतं शीर्षविरेचनैश्च संशोधनैः शोध्यमधस्तथोर्ध्वम्। उपाचरेत्स्नेहभवं हि रूक्षणैः प्रकल्पयेत्स्नेहगणैस्तु रूक्षजम् ॥ २७ ॥

जो शिरोगत शोथ हो तो शिरोविरेचन करना चाहिये। शोधन योग्य हो तो संशोधक औषधियोंके द्वारा संशोधन करना चाहिये। ऊर्ध्वगत शोथमें ऊर्ध्वशोधन और अधोगत शोथमें अधःशोधन करना चाहिये। स्नेहजनित शोथमें रूक्षचिकित्सा और रूक्ष द्रव्योंके सेवन करनेसे उत्पन्न हुए शोथमें स्निग्ध चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २७॥

विबद्धविट्केऽनिलजे निरूहणं घृतं तु पित्तानिलजे सतिक्तकम्। पयश्च मूर्च्छावतिदाहतर्षिते विशोधनीये तु समूत्रमिष्यते। कफोत्थितं क्षारकटूष्णसंयुतैः समूत्रदुग्धासवयुक्तिभिर्हरेत् ॥ २८ ॥

वातजशोथमें जो मलबद्ध होय तो निरूहणबास्ति देवे और वातपित्तजशोथमें तिक्त औषधियोंके द्वारा घृतको सिद्ध करके सेवन करावे जो शोथरोगमें मूर्च्छा, अत्यन्त दाह और तृषा हो तो दूध पिलाना चाहिए। और शोधनके लिये गोमूत्रके द्वारा शोधन कराना चाहिए। कफजनित शोथमें क्षार कटु और उष्णपदार्थोंके साथ गोमूत्र दूध और आसवादिकोंको सेवन कराना चाहिए ॥ २८ ॥

शोथे वातोत्थिते पूर्वं मासोर्ध्वं त्रिवृतं पिबेत्। तैलमैरण्डजं वापि मलबन्धे तदेव तु ॥ २९ ॥

वातजनित सूजनमें पहले एक महिने पर्य्यन्त निसोथको सेवन करे। और मल बँधा होय तो अंडीके तैलको पिये ॥ २९ ॥

शाल्यन्नं पयसा युक्तं रसैर्वापि प्रयोजयेत्। स्वेदाभ्यङ्गांश्च वातघ्नान्सेकलेपांश्च कल्पितान् ॥ ३० ॥

वातजनितशोथमें दूधके साथ चावल और मांसरसको सेवन करे तथा वातनाशक औषधियोंके द्वारा कल्पित करके स्वेदकर्म्म, अभ्यंग, सेक और प्रलेप प्रदान करे ॥ ३० ॥

शुण्ठीपुनर्नवैरण्डपञ्चमूलशृतं जलम्। वातिके श्वयथौ शस्तं पानाहारपरिग्रहे॥ ३१ ॥

सोंठ, पुनर्नवा, अंडकी जड और पंचमूल इनका काथ–पान और आहारमें सेवन करना चाहिये ॥ ३१॥

न्यग्रोधादिगणे सिद्धं सर्पिः स्यात्पित्तशोथिने। तृण्मोहदाहपादस्थे हिमलेपादि चाचरेत् ॥ ३२ ॥

पित्तजनितशोथमें न्यग्रोधादि गणकी औषधियोंके द्वारा घृतको सिद्ध करके सेवन करावे। तथा तृषा, मोह और पाँवोंमें दाह हो तो शीतलपदार्थोंका पांवोंपर लेपादि करे ॥ ३२ ॥

क्षीराशनः पित्तकृते तु शोथे पिबेद्गुडूचीत्रिफलाकषायम्। पिबेद्गवां मूत्रविमिश्रितं वा फलत्रिकाचूर्णमथाक्षमात्रम् ॥ ३३ ॥

पित्तजनितशोथमें दूधको सेवन करनेवाला मनुष्य गिलोय और त्रिफलेके काथको पान करे अथवा एक तोले प्रमाण त्रिफलेके चूर्णको लेकर गोमूत्रके साथ पान करे ॥ ३३ ॥

पटोलत्रिफलारिष्टदार्वीक्वाथः सगुग्गुलुः। हन्ति पित्तकृतं शोथं तृष्णाज्वरसमन्वितम् ॥ ३४ ॥

पटोलपत्र, त्रिफला, नीमकी छाल और दारुहल्दी इनके काथमें गूगल डालकर पान करनेसे तृषा और ज्वर समेत पित्तकी सूजन दूर होती है ॥ ३४ ॥

कफोद्भवे पिबेत्तैलं सिद्धमारग्वधादिना । मन्दाग्नौ स्तिमिते कोष्ठे स्रोतोरोधे रुजावति ॥ ३५ ॥ क्षारमूत्रासवारिष्टचूर्णतक्राणि योजयेत ॥३६॥

कफजनितशोथमें आरग्वधादि औषधियोंके द्वारा तेलको सिद्ध करके पानकरे । और शोथरोगमें मंदाग्नि,कोष्ठबद्ध और स्रोतोंका अवरोध हो तो क्षार, मूत्र, आसव, अरिष्ट, चूर्ण और तक्रादि पदार्थ प्रयोग करने चाहिएँ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

कफे तु कृष्णासिकतापुराणपिण्याकशिग्रुत्वगुमाप्रलेपः । कुलित्थशुण्ठीजलमूत्रसेकश्चंडागुरुभ्यामनुलेपनं च ॥ ३७ ॥

कफजनितशोथमें—पीपल, मिश्री, पुरानी खल, सहिंजनेकी छाल और अलसी इनको एकत्र पीसकर प्रलेप करनेसे अथवा कुलथी, सोठ इनको जलमें या गोमूत्रमें पीसकर सेंचनेसे, अथवा शिवलिंगी और अगर इनका लेप करनेसे शोथरोग दूर होता है ॥ ॥ ३७ ॥

बर्हीतुरूपः स्वरसः सर्षपतैलेन मिश्रितः पीतः । पङ्कजपत्रसमुत्थः शोथानां नाशनः परमः ॥ ३८ ॥

मोरके मांसके रसको सरसोंके तेलमें मिलाकर पान करनेसे कमलपत्रकी समान उठी हुई सूजन भी शांत होती है ॥ ३८ ॥

पुनर्नवाविश्वत्रिवृद्गुडूचीशम्याकपथ्यासुरदारुकल्कम् । शोथे कफोत्थेऽक्षसमं समूत्रं क्वाथं पिबेद्वाप्यथ चैव तेषाम् ॥ ३९ ॥

पुनर्नवा, सोंठ निसोत, गिलोय, अमलतास,हरड और देवदारु इनका एक तोला प्रमाण कल्क लेकर गोमूत्रके साथ पान करनेसे अथवा उपरोक्त औषधियोंका काथ बनाकर पान करनेसे कफजनितशोथ दूर होता है ॥ ३९ ॥

व्योषं त्रिवृत्तिक्तकरोहिणी च सायोरजः सत्रिफलारसेन । पीताः कफोत्थं शमयन्ति शोथं गव्येन मूत्रेण हरीतकी वा ॥ ४० ॥

त्रिकुटा, निसोत, कुटकी, लोहका चूर्ण इन सबको एकत्र कूट पीसकर त्रिफलेके काथके साथ अथवा हरडको गोमूत्रके साथ पान करनेसे कफजनित शोथ दूर होता है ॥ ४० ॥

विडङ्गातिविषादारुनागरेन्द्रयवावचाः । उष्णांबुना पिबेच्छोथी ह्यक्षमात्रं सहोषणम् ॥ ४१ ॥

बायविडंग, अतीस, देवदारु, सोंठ, इन्द्रजौ, वच एवं कालीमिरच इनको एकत्र पीसकर गरम जलके साथ एक तोलाभर पानकरनेसे कफशोथ नष्ट होता है ॥ ४१ ॥

स्नुक्क्षारभाविताः कृष्णाः पथ्यामूत्रेण वा युताः । योजिताः शमयन्त्याशु शोथं श्लेष्मभवं नृणाम् ॥ ४२ ॥

थूहरके दूधमें भावना दी हुई पीपलको सेवन करनेसे अथवा गोमूत्रके साथ हरडको सेवन करनेसे कफजनित शोथरोग दूर होता है ॥ ४२ ॥

पुनर्नवादिलेह ।

पुनर्नवाऽमृतादारुदशमूलरसाढके । आर्द्रकस्वरसे प्रस्थे गुडस्य च तुलां पचेत् ॥ ४३ ॥ तत्सिद्धं व्योषचव्यैलात्वक्पत्रैः कार्षिकैः पृथक् । चूर्णीकृतैर्लिहेच्छीते मधुनः कुडवं क्षिपेत् ॥ ४४ ॥ लेहः पौनर्नवो नाम्ना श्लेष्मशोथनिषूदनः । श्वासकासारुचिहरो बलपुष्ट्यग्निवर्द्धनः॥४५॥

पुनर्नवा, गिलोय, देवदारु और दशमूल इन सब औषधियोंका काथ एक आढक, अदरखका स्वरस १ प्रस्थ और गुड १ तुला प्रमाण सबको लेकर उत्तमविधिसे पकावे । जब पककर सिद्ध हो जाय तब त्रिकुटा, चव्य, इलायची, दालचीनी, तेजपात इन प्रत्येक औषधियोंका चूर्ण एक एक तोला और शीतल होनेपर उत्तम शहद एक कुडव परिमाण मिला देवे । यह पुनर्नवादिलेह कफशोथनाशक, श्वास,खाँसी और अरुचिको दूर करनेवाला तथा बल,पुष्टि और जठराग्निको बढानेवाला है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

द्विदोषज और त्रिदोषज शोथकी चिकित्सा ।

मिश्रे मिश्रक्रमं कुर्य्यात्सर्वजे सर्वमेव तु ॥ ४६ ॥

द्वन्द्वजशोथमें मिश्रित चिकित्सा करना चाहिए और त्रिदोषजशोथमें त्रिदोषनाशक चिकित्सा करना चाहिए ॥ ४६ ॥

पिप्पल्यजाजी गजपिप्पली च निदग्धिका नागरचित्रके च । रजन्यथो पिप्पलिमूलपाठा मुस्तश्च चूर्णं सुखतोयपीतम् ॥ ४७ ॥ हन्यात्त्रिदोषं चिरजश्च शोथं कल्कोऽथ भूनिम्बमहौषधाभ्याम् । रसस्तथैवाऽर्द्रकनागरस्य पयोऽथ जीर्णे पयसाऽन्नमद्यात ॥ ४८ ॥

पीपल, जीरा, गजपीपल, कटेरी, सोंठ, चीता, हलदी, पीपलामूल, पाढ और नागरमोथा इन प्रत्येक औषधिको समान भाग लेकर मंदोष्ण जलके साथ पान करनेसे त्रिदोषजनित और बहुत दिनोंका पुराना शोथ दूर होता है । अथवा चिरायता और सोंठके कल्कका गरम जलके साथ पान करे। अथवा अदरख और सोंठके रसको पान करे और जीर्ण होनेपर दूधके साथ भोजन करे तो शोथ नष्ट होता है॥४७॥ ॥ ४८ ॥

शिलाह्वयश्च त्रिफलारसेन हन्यात्त्रिदोषं श्वयथुं प्रसह्य । तक्रं पिबेद्वा गुरुभिन्नवर्चाः सव्योषसौवर्चलमाक्षिकश्च । विज्ञातसङ्गे पयसा रसैर्वा प्रागुष्णमद्यादुरुबुकतैलम् ॥ ४९ ॥

शिलाजीतको त्रिफलेके क्वाथके साथ सेवन करनेसे अत्यन्त बढ़ी हुई त्रिदोषज सूजन दूर होती है । जो शरीरमें भारीपन और मल पतला हो अर्थात् दस्त आते हों तो त्रिकुटा, कालानमक और शहद इनको एकत्र मिलाकर सेवन करे और तक्र पान करे जो वायु और मलका अवरोध हो तो उपर्युक्त औषधियोंको दूधके साथ अथवा रसोंके साथ सेवन करावे और पहले अंडीके तेल अथवा चूकेके तेलको गरम करके पीवे ॥ ४९ ॥

बिल्वपत्ररसं पूतं शोषणं श्वयथौ त्रिजे । विड्भङ्गे चैव दुर्नाम्नि विदध्यात्कामलासु च ॥ ५० ॥

बेलके पत्तोंका रस निकालकर वस्त्रमें छानकर पान करनेसे त्रिदोषजनित सूजन दूर होती है । तथा यह प्रयोग विड्भंग, बवासीर और कामलामें हितकारी है ॥ ५० ॥

शोथे वाऽऽगन्तुजे कुर्य्यात्सेकलेपादिशीतलम् ॥ ५१ ॥ भल्लातकया जयेच्छोथं सतिला कृष्णमृत्तिका । माहिषो नवनीतं वा लेपाद्दग्धं तिलान्वितम् ॥ ५२ ॥

आगन्तुकशोथमें शीतल सेक लेपादिक प्रयोग करे । तिल और कालीमिट्टीको एकत्र पीसकर प्रलेप करनेसे भिलावेकी सूजन दूर होती है । अथवा भैंसके नैनी घीका प्रलेप करनेसे अथवा तिलोंको दूधमें पीसकर प्रलेप करनेसे भिलावेकी सूजन दूर होती है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

यष्टीदुग्धतिलैर्लेपो नवनीतेन संयुतः । शोथमारुष्करं हन्ति चूर्णं सालदलस्य च ॥ ५३ ॥

मुलैठी, दूध और तिल इनको एकत्र पीसकर नैनी घीके साथ मिलाकर लेप करनेसे भिलावेकी सूजन दूर होती है । अथवा अर्जुनके पत्तोंको एकत्र दूधमें पीसकर लेप करनेसे भिलावेकी सूजन दूर होती है ॥ ५३ ॥

महिषीक्षीरसंपिष्टैर्नवनीतसमन्वितैः । भल्लातककृतः शोथस्तिललिप्तश्च शाम्यति ॥ ३४ ॥

तिलोंको भैंसके दूधमें पीसकर और नैनी घीमें मिलाकर शरीरपर लेप करनेसे भिलावेकी सूजन दूर होती है ॥ ५४ ॥

सरूचकप्रलेपस्तु तिलवृक्षोद्भवा मृदा । भल्लातकोत्थं श्वयथुं हन्ति सर्वरुजां ध्रुवम् ॥ ५५ ॥

कालानमक और तिलके वृक्षकी मिट्टी इनको एकत्र पीसकर प्रलेप करनेसे बहुत दिनोंकी पुरानी भिलावेकी सूजन दूर होती है ॥ ५५ ॥

विषनिमित्तोत्थेषु शोथेषु विषोक्तः प्रतीकारः कर्त्तव्यः।

विषजनित शोथमें विषनाशक यत्न करना चाहिए।

पथ्यामृताभार्ङ्गिपुनर्नवाग्निदार्वीनिशादारुमहौषधानाम्। क्काथः प्रसह्योदरपाणिपादवक्त्रास्थितं हन्त्यचिरेण शोथम्॥ ५६ ॥

हरड़, गिलोय, भारंगी, पुनर्नवा, चीता, दारुहल्दी, देवदारु और सोंठ इनका क्काथ बना कर पान करनेसे उदर, हाथ, पाँव और मुखकी सूजन तत्काल दूर होती है ॥ ५६ ॥

पुनर्नवामूलकविश्वदारुच्छिन्नोद्भवाचित्रकमूलसिद्धाः। रसायवाग्वश्च पयांसि यूषाः शोथे प्रदेया दशमूलगर्भाः॥ ५७ ॥

दशमूल, पुनर्नवा, मूली, सोंठ, देवदारु, गिलोय और चित्रकी जड़ इन औषधियोंके द्वारा रस, यवागू, दूध और यूषको सिद्ध करके शोथरोगमें प्रयोग करे ॥ ५७ ॥

वृश्चीरदेवद्रुमनागरैर्वा दन्तीत्रिवृत्त्र्यूषणचित्रकैश्च। पयः सुसिद्धं विधिना निपीतं गीतं परं शोथहरं भिषग्भिः॥ ५८ ॥

पुनर्नवा, देवदारु, सोंठ, दंती, त्रिकुटा, निसोत और चीता इन सब औषधियोंको दूधमें औटाकर पान करनेसे सर्व प्रकारका शोथ दूर होता है ॥५८॥

क्षीरं शोथहरं दारु वर्षाभूनागरैः शृतम्। पेयं वा चित्रकव्योषत्रिवृद्दारुप्रसाधितम्॥ ५९ ॥

देवदारु, पुनर्नवा और सोंठ इनको दूधमें औटा कर पान करनेसे अथवा चीता, त्रिकुटा, निसोत और देवदारु इनको दूधमें औटा कर पान करनेसे सब प्रकारकी सूजन दूर होती है ॥ ५९ ॥

बिल्वमूलं त्रिकटुकं श्यामा चित्रकमेव च। क्षीरमेतैः शृतं पेयं श्वयथोर्विनिवारणम्॥ ६० ॥

बेलकी जड़, त्रिकुटा, निसोत और चीता इन सबको समान भाग लेकर दूधमें औटा कर पान करनेसे सर्व प्रकारकी सूजन दूर होती है ॥६०॥

यूषो मूलकशुण्ठीनां शाकं वह्निपुनर्नवा। माणकन्दकृता हन्ति यवागूः शोथमुद्धतम्॥ ६१ ॥

मूली और सोंठ इनका यूष, चीता और पुनर्नवका शाक और मानकंदकी बनाई हुई यवागू, सब प्रकारकी सूजनको दूर करती है ॥ ६१ ॥

सेकस्तथार्कवर्षाभूनिम्बक्काथेन शोफजित्। गोमूत्रेणापि कुर्वीत सुखोष्णेनावसेचनम्॥ ६२ ॥

आक, पुनर्नवा और नीम इनका क्काथ बना कर उसके द्वारा सेचन करनेसे अथवा मंदोष्ण गोमूत्रके द्वारा सेचन करनेसे सब प्रकारका शोथ दूर होता है ॥ ६२ ॥

उरुबूककरञ्जार्कवर्षाभूनिम्बकैः शृतम्। कोष्णं सेकं प्रशंसन्ति शोफे सर्वाङ्गगे नृणाम्॥ ६३ ॥

अंडकी जड, करंज, आककी जड, पुनर्नवा और नीम इनका क्काथ बनाकर सुहाता २ सेचनेसे सर्वांगशोथ दूर होता है ॥ ६३ ॥

पुनर्नवा दारु शुण्ठी सिद्धार्थःशिग्रुमेव च। पिष्ट्वा चैवारनालेन प्रलेपः सर्वशोथनुत्॥ ६४ ॥

पुनर्नवा, देवदारु, सोंठ, सरसों और सहिंजना इनको एकत्र कांजीमें पीस कर लेप करनेसे सर्व प्रकारका शोथ दूर होता है ॥ ६४ ॥

विभीतकानां फलमध्यलेपः सर्वेषु दाहार्त्तिहरः प्रदिष्टः। यष्ट्याह्वमुस्तैः सकपित्थपत्रैः सचन्दनैस्तत्पिडिकासु लेपः ॥ ६५ ॥

बहेडेके फलकी मींगको पीसकर लेप करनेसे सूजनकी दाह और पीडा दूर होती है। और मुलैठी, नागरमोथा, कैथके पत्ते और चन्दन इनको एकत्र पीसकर प्रलेप करनेसे शोथ और शोथकी पिड़िका दूर होती हैं ॥ ६५ ॥

रास्नावृषार्क त्रिफलाविडङ्गं शिग्रुत्वचो मूषिककर्णिका च। निम्बार्कजो व्याघ्रनखः समूर्वा सुवर्त्तिकातिक्तकरोहिणी च ॥ ६६ ॥ सकाकमाचीबृहतीसकृष्णापुनर्नवानागरचित्रकैश्च। उद्वर्त्तनं शोथिषु मूत्रपिष्टं शस्तं तथा गोसलिलेन सेकः ॥ ६७ ॥

रायसन, वासा, आक, त्रिफला, वायविडंग, सहिंजनकी छाल, मूसाकानी, आक, व्याघ्रनख, मूर्वा, सज्जी, कुटकी, मकोय, कटाई, पीपल, पुनर्नवा, सोंठ और चीता इनको एकत्र गोमूत्रमें पीसकर इनका उद्वर्त्तन करनेसे अथवा गोमूत्रमें पीसकर सेचन करनेसे सर्वप्रकारका शोथरोग दूर होता है ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

त्र्यूषणायोरजः क्षारः शोथनुत्त्रिफलारजः। कटुकायो रजो व्योषत्रिवृद्भिर्वा समन्वितम् ॥ ६८ ॥

त्रिकुटा, लोहेका चूर्ण, जवाखार और त्रिफलेका चूर्ण इनको एकत्र मिलाक सेवन करनेसे शोथरोग दूर होता है। अथवा कुटकी, लोहेका चूर्ण, त्रिकुटा और निसोत इनके चूर्णको एकत्र सेवन करनेसे सब प्रकारका शोथ दूर होता है ॥ ६८ ॥

पुरो मूत्रेण सेव्यश्च पिप्पली वा पयोऽन्विता। गुडेन वाऽभयातुल्या विश्वा वा शोथरोगिभिः ॥ ६९ ॥

गूगलको गोमूत्रके साथ सेवन करनेसे, अथवा पीपलको दूधके साथ सेवन करनेसे या गुडके साथ हरडको किंवा सोंठको सेवन करनेसे सब प्रकारका शोथरोग दूर होता है ॥ ६९ ॥

दारुगुग्गुलुशुण्ठीनां कल्को मूत्रेण शोथजित्। वर्षाभूशृङ्गवेराभ्यां कल्को वा सर्वशोथजित् ॥ ७० ॥

देवदारु, गूगल और सोंठ इनका गोमूत्रमें कल्क बनाकर सेवन करनेसे शोफरोग दूर होता है। अथवा पुनर्नवा और अदरख इनका गोमूत्रके द्वारा कल्क बनाकर सेवन करनेसे सब प्रकारका शोथरोग दूर होता है ॥ ७० ॥

गोमूत्रस्य प्रयोगो वा शीघ्रं श्वयथुनाशनः। कल्को वा गिरिकर्ण्याश्च पीतः शोथविनाशनः ॥ ७१ ॥

अथवा केवल गोमूत्रको ही सेवन करनेसे शोथरोग दूर होता है अथवा नाली विष्णुक्रान्ताके कल्कको पान करनेसे सब प्रकारका शोथरोग नष्ट होता है ॥ ७१ ॥

पिबेदुष्णांबुना दारुपथ्याशुण्ठीपुनर्नवाः। विडङ्गातिविषावासाविश्वदारुकणान्विताः ॥ ७२ ॥

देवदारु, हरड, पुनर्नवा, वायविडंग अतीस, वासा, सोंठ, दारुहल्दी और पीपल इनको एकत्र पीसकर गरमजलके साथ पान करनेसे सब प्रकारका शोथरोग दूर होता है ॥ ७२ ॥

विडङ्गदन्तीकटुकात्रिवृच्चित्रकदारुणाः। व्योषेभकृष्णात्रिफलाः समा देया ह्ययोरजः। द्विगुणन्तु पिबेच्चूर्णं पयसा शोथशान्तये ॥ ७३ ॥

वायविडंग, दंती, कुटकी, निसोत, चीता, देवदारु, त्रिकुटा, गजपीपल और त्रिफला ये प्रत्येक औषधि समान भाग लेवे, लोहेका चूर्ण सबसे दुगुना लेवे, सबको एकत्र कूट पीसकर चूर्ण कर लेवे। इस चूर्णको दूधके साथ पान करनेसे शोथरोग शांत होता है ७३ ॥

सितपुनर्नवामूलं पीतञ्च गोसलिलेन निहन्ति। शोथं सर्वसमुत्थमुदराणि च दुस्तराण्यचिरात् ॥ ७४ ॥

सफेद पुनर्नवेकी जड़को गोमूत्रके साथ पान करनेसे बहुत शीघ्र सब प्रकारका शोथ और विशेष कर उदरशोथ दूर होता है ॥ ७४ ॥

मानमण्ड ।

पुराणं मानकं पिष्ट्वा द्विगुणीकृततंडुलम् । साधितं क्षीरतोयाभ्यामभ्यसेत्पायसन्तु तत् ॥ ७५ ॥ इति वातोदरं शोथं ग्रहणीं पाण्डुतामपि । सिद्धो भिषग्भिराख्यातः प्रयोगोऽयं निरत्ययः ॥७६॥

पुराना मानकंद लेकर उसको पीसलेवे फिर उसमें दुगुने चावल डालकर दूध और जलके द्वारा पकावे । इस खीरको सेवन करनेसे—वातोदर, शोथ. संग्रहणी, पांडुरोग और विशेषकर सर्व शोथ नष्ट होते हैं ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

सुसाध्यं वज्रकन्देन पायसं याति मानवः । युक्तं कोशाम्रतैलेन तेनाभ्यङ्गं प्रकुर्वतः । शोथः प्रशान्तिमायाति बहुदुष्टं निरन्तरम् ॥ ७७ ॥

वज्रकंदको पीसकर दूधमें पकाकर खीर बनावे । उस खीरको कोशाम्रके तेलमें मिलाकर मालिस करनेसे बहुत दिनोंके पुरानी अत्यन्त दुष्ट सूजन दूर होती है ॥ ७७ ॥

आर्द्रकं सगुडं खादेत्प्रकुश्वार्द्धविवर्द्धितम् । यावत्पञ्चपलं मुद्गयूषक्षीररसाशिनः ॥ ७८ ॥ श्वयथुं गुल्ममुदरं कासं श्वासमरोचकम् । पीनसं पांडुदुर्नामहृद्रोगश्च विनाशयेत् ॥ ७९ ॥

अदरखको गुडमें मिलाकर नित्य दो तोला बढाकर सेवन करे । इस प्रकार पांच पल पर्य्यन्त सेवन करे । इसपर मूँगका यूप दूध और मांसरस इनको भोजन करे । इससे—सूजन, गुल्म, उदररोग, खाँसी श्वास, अरुचि, पीनस, पांडुरोग और हृदयरोग दूर होता है ॥ ७८ ॥ ७९ ॥

गुडार्द्रकं वा गुडनागरं वा गुडाभयां वा गुडपिप्पलीं वा । कर्षाभिवृद्ध्या त्रिपलप्रमाणं खादेन्नरः पक्षमथापि मासम् ॥ ८० ॥ शोथप्रतिश्यायगलास्यरोगान् सश्वासकासारुचिपीनसादीन् । जीर्णज्वरार्शो ग्रहणीविकारान् हन्यात्तथान्यान्कफवातरोगान् ॥ ८१ ॥

गुड़को अदरखके साथ, अथवा गुड़को सोंठके साथ, या गुड़को हरडके साथ, किंवा गुड़को पीपलके साथ एक तोलेसे लेकर अपने बलानुसार तीन पल प्रमाण एक पक्ष अथवा एक महीनेतक सेवन करनेसे शोथ, प्रतिश्याय, गलरोग, मुखरोग, श्वास, खाँसी, अरुचि, पीनस, जीर्णज्वर, बवासीर, संग्रहणी और अन्यान्य कफजनित रोग दूर होते हैं ॥ ८०॥८१ ॥

आर्द्रकस्य रसः पीतः पुराणगुडमिश्रितः । अजाक्षीराशिनां शीघ्रं सर्वशोथहरो भवेत् ॥ ८२ ॥

अदरखके रसमें पुराने गुड़को मिलाकर सेवन करे और ऊपरसे बकरीके दूधको पान करे तो सर्वप्रकारका शोथ दूर होता है ॥ ८२ ॥

भूनिम्बविश्वकल्कं भुक्त्वा पेयः पुनर्नवाक्काथः । अपहरति नियतमाशु श्वयथुं सर्वाङ्गजं नृणाम् ॥ ८३ ॥

चिरायता और सोंठ इनके कल्कको भक्षण करके पश्चात् ऊपरसे पुनर्नवेके काथको पान करनेसे सर्वांगगत सूजन दूर होती है ॥ ८३ ॥

विश्वं गुडेन तुल्यं वृश्चीवरसानुपानमभ्यस्तम् । विनिहन्ति सर्वशोथं घनवृन्दं चण्डवायुरिव ॥ ८४ ॥

सोंठ और गुड़को समान भाग लेकर एकत्र मिला कर भक्षण करे और ऊपरसे पुनर्नवेके स्वरसको पीवे इससे सब प्रकारका शोथ दूर हो जाता है । जिसप्रकार प्रचण्ड पवनसे बादलोंका समूह नष्ट होजाता है ॥ ८४ ॥

गुडचूर्ण ।

गुडपिप्पलिशुण्ठीनां चूर्णं श्वयथुनाशनम् । आमाजीर्णप्रशमनं शूलघ्नं बस्तिशोधनम् ॥ ८५॥

गुड़, पीपल और सोंठ इनका एकत्र चूर्ण करके सेवन करनेसे सब प्रकारका शोथ, आमाजीर्ण और शूल नष्ट होता है और बस्तिशुद्ध होती है ॥ ८५ ॥

द्वितीयगुडचूर्ण ।

गुडात्पलत्रयं ग्राह्यं शृङ्गवेरफलत्रयम् । शृङ्गवेरसमा कृष्णा लोहाविट्भस्मनः पलम् ॥ एतच्चूर्णं समुद्दिष्टं सर्वश्वयथुनाशनम् ॥ ८६ ॥

गुड़ १२ तोले, अदरख १२ तोले, पीपल १२ तोले और मंडूरकी भस्म ४ तोले इन सबको एकत्र मिला कर सेवन करनेसे सब प्रकारका शोथ नाश होता है ॥ ८६ ॥

पुनर्नवाद्यचूर्ण ।

पुनर्नवा दार्व्यमृता पाठा विश्वं श्वदंष्ट्रिका । रजन्यौ द्वौ बृहत्यौ च पिप्पल्यश्चित्रकं विषम् ॥ ८७ ॥ समभागानि संचूर्ण्य गवां मूत्रेण वा पिबेत । बहुप्रकारं श्वयथुं सर्वगात्रप्रसारिणम् । हन्ति चैवोदराण्यष्टौ व्रणांश्चैवोद्धतानपि ॥ ८८ ॥

पुनर्नवा, दारुहलदी, गिलोय, पाढ, सोंठ, गोखुरू, दोनों हलदी, कटेरी, बड़ी कटेरी, पीपल, चीता और अतीस, इन सब औषधियोंको समानभाग लेकर चूर्ण करके गोमूत्रके साथ पान करनेसे बहुत प्रकारकी सूजन, सब शरीरमें फैलनेवाली सूजन, आठों प्रकारके उदररोग और अत्यन्त बढे हुए व्रण दूर होते हैं ॥ ८७ ॥ ८८ ॥

सिंहास्यामृतभाण्डाकीकाथं कृत्वा समाक्षिकम् । पीत्वा शोथं जयेज्जन्तुः श्वासं कासं ज्वरं वमिम् ॥ ८९ ॥

वासा, गिलोय और कटेरी इनका काथ बनाकर उसमें शहद डालकर पान करनेसे सब प्रकारका शोथ, श्वास, खांसी, ज्वर और वमन दूर होते हैं ॥ ८९ ॥

गोमूत्रमंडूर ।

गोमूत्रसिद्धं मंडूरं सुरभीरसभावितम् । माणकार्द्रककन्दानां रसेष्वपि च भावयेत् ॥ ९० ॥ त्रिफलाव्योषचव्यानां चूर्णं पाणितलद्वयम् । क्षिपेत्सुसिद्धे पाके च मधुनश्च पलद्वयम् ॥ ९१ ॥ निहन्ति सर्वजं शोथं सर्वाङ्गश्च विशेषतः ॥ ९२ ॥

मण्डूरको गोमूत्रमें सिद्ध करके गोमूत्रमें भावना देवे, पश्चात् मानकंद, अदरख और जमीकंदके रसमें भावना देवे, फिर उसमें त्रिफला, त्रिकुटा और चव्य इन प्रत्येकका चूर्ण दो दो तोले प्रमाण डालकर उत्तमविधिसे पकावे । जब पककर स्वयं शीतल होजाय तब इसमें शहत ८ तोले मिला देवे यह सर्वांग शोथको नष्ट करता है ॥ ९० ॥ ९१ ॥ ९२ ॥

अत्र गोमूत्रसिद्धं लोहमयं चूर्णं माणकार्द्रकरसैरातपे परिभाव्य । त्रिफलादिचूर्णं द्विगुणमूत्रे पक्तव्यम् ।

यहां गोमूत्रमें सिद्ध किये हुए लोहके मण्डूरको लेकर मानकंद और अदरखके रसके द्वारा धूपमें भावना देनी चाहिए और त्रिफलादि औषधियोंके चूर्णको दुगुने गोमूत्रमें पकाना चाहिऐ ।

पुनर्नवाद्य घृत ।

पुनर्नवापत्ररसालमूलं संक्षुद्य तोयार्म्मणशेषसिद्धम् । चतुर्थभागेन घृतं विपक्कं प्रस्थं तु तत्कल्कपलाष्टकेन ॥ ॥ ९३ ॥ संसेवितं वातबलासरोगान्सर्वांश्च शोथानपि दुस्तरांश्च । गुल्मोदरप्लीहगुदोद्भवांश्च निहन्ति वह्निं कुरुते हि पुंसाम् ॥ ९४ ॥

पुनर्नवेके पत्ते और आमकी जड़को कूटकर एक द्रोण जलमें पकावे, जब पकते पकते जल चौथाई भाग बाकी रहजाय तब उतारकर छान लेवे । फिर उसमें एक प्रस्थ घी, पुनर्नवा और आमकी जड़का कल्क ३२ तोले डालकर विधिपूर्वक घृतको सिद्ध करे । यह घृत-सर्वप्रकारके वातकफके रोग, विशेष करके शोथ, गुल्म, उदररोग, प्लीहा और गुदाके रोगोंको दूर करता है तथा अग्निको दीपन करता है ॥ ९३ ॥ ९४ ॥

द्वितीयपुनर्नवादिघृत।

पुनर्नवाचित्रकदेवदारुवचोषणक्षारहरीतकीनाम् । कल्केन पक्वं दशमूलतोये घृतोत्तमं शोथनिषूदनं स्यात् ॥ ९५ ॥

पुनर्नवा, चीता, देवदारु, वच, मिरच, जवाखार और हरड़ इनके कल्कद्वारा दशमूलके क्वाथमें घृतको पकावे। यह उत्तम घृत–सर्व प्रकारके शोथोंको अवश्य नष्ट कर देता है ॥ ९५ ॥

चित्रकादिघृत।

सचित्रकाधान्ययवानिपाठासदीप्यकात्र्यूषणवेतसाम्लाः । बिल्वोत्पलं दाडिमयावशूकं सपिप्पलीमूलमथापि चव्यम् ॥ ९६ ॥ पिष्ट्वाऽक्षमात्राणि जलाढकेन पक्त्वा घृतप्रस्थमथोपयुञ्ज्यात्। अर्शांसि गुल्मं श्वयथुञ्च कृत्स्नं निहन्ति वह्निं कुरुते च दीप्तम् ॥ ९७ ॥

चीता, धनियाँ, अजवायन, पाढ, अजमोद, त्रिकुटा, अमलबेंत, सोंठ, कमल, अनारदाना, जवाखार, पीपलामूल और चव्य ये प्रत्येक औषधि दो २ तोले प्रमाण लेकर एक आढक जलमें पीसकर पकावे और उसमें एक प्रस्थ घृत डाले । जब पकते पकते केवल घृतमात्र अवशेष रह जाय तब उतार लेवे। इस घृतको सेवन करनेसे बवासीर, गुल्म और अत्यन्त बढा हुआ शोथ रोग शमन होता है तथा अग्नि अत्यन्त दीपन होती है ॥ ९६ ॥ ९७ ॥

द्वितीयचित्रकघृत।

क्षीरं घटे चित्रककल्कलिप्ते दध्यागतं साधु विमथ्य तेन। तज्जं घृतं चित्रकमूलगर्भं तक्रेण सिद्धं श्वयथुघ्नमुग्रम्। अर्शोऽतिसारानिलगुल्ममेहांस्तद्धन्ति सम्वर्धयते च वह्निम् ॥ ९८ ॥

चीतेका कल्क बनाकर एक घडेमें लेप कर देवे पश्चात् उस घडेमें दूध भरकर दही जमावे। पश्चात् उस दहीको मथ लेवे । उसमेंसे जो घृत निकले उसको ग्रहण कर ले उस घृतको चीतेकी जडका कल्कमें और उसी तक्रमें पकावे। यह घृत–उग्रसूजन, बवासीर, अतिसार, वातगुल्म और प्रमेहको नष्ट करता है और अग्निको बढाता है ॥ ९८ ॥

माणकघृत।

माणकक्काथकल्काभ्यां घृतप्रस्थं विपाचयेत। एकजं द्वन्द्वजं शोथं त्रिदोषञ्च व्यपोहति ॥ ९९ ॥

मानकंदके कल्क और क्वाथके द्वारा एक प्रस्थ घृतको पकावे। यह घृत–एकज, द्विदोषज और त्रिदोषज शोथको भी नष्ट करता है ॥ ९९ ॥

स्थलपद्मकादिघृत।

स्थलपद्मपलान्यष्टौ त्र्यूषणस्य चतुष्पलम्। घृतप्रस्थं पचेदेतैर्दत्वा क्षीरं चतुर्गुणम् ॥ पञ्चकासान्हरेच्छीघ्रं शोथञ्चैवसुदुस्तरम् ॥ १०० ॥

स्थलकमल ८ पल, त्रिकुटा ४ पल, गौका उत्तम घी १ प्रस्थ और उत्तम गौका दूध ४ प्रस्थ लेवे। इन सबको एकत्र मिला कर उत्तम विधिसे घृतको सिद्ध करे। यह घृत–शीघ्र ही पाँचों प्रकारकी खाँसी और दुस्तर शोथको नष्ट करता है ॥ १०० ॥

पञ्चकोलकघृत।

रसेन विपचेत्सर्पिः पञ्चकोलकुलित्थयोः। पुनर्नवायाः कल्केन तत्परं शोथनाशनम् ॥ १०१ ॥

पंचकोल और कुलथीके क्वाथमें और पुनर्नवेके कल्कमें घृतको पकावे। यह घृत–शोथको नष्ट करता है ॥ १०१ ॥

शुष्कमूलकादि तैल।

शुष्कमूलकवर्षाभूदारुरास्नामहौषधैः। पक्वमभ्यञ्जनं तैलं समूलं शोथनाशनम् ॥ १०२ ॥

सूखीमूली, पुनर्नवा, देवदारु, रायसन और सोंठ इनके कल्क और क्वाथके द्वारा तेलको पकावे । इस

तेलको मालिश करनेसे सर्व प्रकारका शोथ दूर होता है ॥ १०२ ॥

वेतसादिप्रदेह ।

सवेतसाः क्षीरवतां द्रुमाणां त्वचः समञ्जिष्ठलतामृणालाः । सचन्दनं पद्मकवालकौ च पैत्ते प्रदेहस्तु सतैलपाकः ॥ १०३ ॥

बेत, बड, गूलर, पीपल, पिलखन और पारिस, पीपल इन पाँच क्षीरवृक्षोंकी छाल, मजीठ, कमलकी नाल, चन्दन, पद्माख और सुगंधवाला इन औषधियोंको तेलमें पका कर पित्तजशोथपर प्रलेप करे ॥ ॥ १०३ ॥

यवादि तैल ।

यवान्कुलित्थान्कोलांश्च दशमूलञ्च साधयेत् । एतत्कषाये विपक्वैतैलं क्षीरचतुर्गुणम् ॥ १०४ ॥ शतावरीजीवनीयैः पिष्टैः समधुशिग्रुभिः । पानाभ्यङ्गाज्जयत्याशु श्वयथुं मारुतोल्वणम् ॥ १०५॥

जौ, कुलथी, बेर और दशमूलकी समस्त औषधियाँ इन सबको लेकर चौगुने जलमें पकावे। जब पकते पकते जल चौथाई भाग बाकी रह जाय तब उतार कर छान लेवे। फिर इस काथमें उत्तम तिलोंका तेल १ प्रस्थ, गौका दूध ४ प्रस्थ, तथा शतावर, जीवनीयगणकी औषधियें और लाल सहिंजना इन प्रत्येकका कल्क दो दो तोले डाल कर उत्तमविधिसे तेलको पकावे। इस तेलको पान और अभ्यंग कर्म्ममें प्रयोग करनेसे वातोल्बणशोथ दूर होता है ॥१०४॥ ॥ १०५ ॥

शैलादि तैल ।

शैलेयकुष्ठाऽगुरुदारुकौन्तीत्वक्पद्मकोलांबुशटीसमुस्तैः। प्रियंगुस्थौणेयकहेममांसीतालीशपत्राऽपरपत्रधान्यैः ॥ १०६ ॥ श्रीवेष्टकं ध्यामकपिप्पलीभिः पृक्कानखैश्चैव यथोपलाभम् । वातोत्थितेऽभ्यङ्गमुशन्ति तैलं सिद्धं सुपिष्टैरपि च प्रदेहम् ॥ १०७ ॥

भूरिछरीला, कूठ, अगर, देवदारु, रेणुका, दालचीनी, कमल, बेर सुगंधवाला, कचूर, नागरमोथा, फूलप्रियंगु, थुनेर चोक, बालछड, तालीशपत्र, तेजपत्र, धनियाँ, लोबान, सुगंधतृण, पीपल असवरग और सुगंधनख इनके कल्कके द्वारा तेलको पकावे। इस तेलकी मालिश करनेसे अथवा शरीर पर इन औषधियोंको पीस कर लेप करनेसे वातज शोथ दूर होता है ॥ १०६ ॥ १०७ ॥

पञ्चमूलादि तैल ।

पञ्चमूलं सलवणं सरलं देवदारु च । हस्तिकर्णपलाशस्य फलानि निचुलस्य च ॥ १० ॥ पलाशं काकनासा च गुडूचीदेवपुष्पकम् । अहिंस्राश्रेयसीहिंस्रावत्सगन्धापुनर्नवाः१०९॥ कायस्था च वयस्था च दारुको जटिला जटा । अलंबुषोरुबूकश्च प्रपुन्नाटं सनागरम् ॥ ११० ॥ शिग्रुगोधावतीभार्ङ्गीतर्कारीपौष्करीजटाः । एतैः सिद्धं यथालाभं तैलमभ्यञ्जनैस्त्रिभिः ॥ १११ ॥ निहन्त्युदीर्णं श्वयथुं जन्तोर्वातकफात्मकम् ॥ ११२ ॥

पंचमूल, सैंधानमक, धूपसरल, देवदारु, हस्तिकर्ण पलाशके फल, समुद्रफल, ढाक, कौआठोडी, गिलोय, लौंग, काकादनी, हरड, हींग, अजगंधा, पुनर्नवा, आमले, इलायची, पीलादेवदारु, बालछड, कौंछ, मजीठ, अंडकी जड, पमाड, सोंठ, सहिजना, हंसपदीलता, भारंगी, अरणी और पोहकरमूल इन सब औषधियोंमेंसे जितनी मिल सकें उतनी लेकर इनके काथ और कल्कके द्वारा तेलको पकावे। यह तेल-मालिश करनेसे तीन दिनमें अत्यन्त बढे हुए और वातकफसे उत्पन्न हुए शोथको नष्ट करदेता है॥१०८॥ ॥ १०९ ॥ ११० ॥ १११ ॥ ११२ ॥

कंसहरीतकी ।

द्विपञ्चमूलस्य पचेत्कषाये कंसेऽभयानाश्च शतं गुडाच्च । लिहेत्सुसिद्धे च विनीय चूर्णं व्योषं त्रिसौगन्ध्यमुपस्थिते च ॥ ११३ ॥ प्रस्थार्द्धमात्रं

मधुनः सुशीते किञ्चिच्च चूर्णादपि यावच्छूकात। एकाभयां प्राश्य ततश्च लेहाच्छुक्तिं निहन्ति श्वयथुं प्रवृद्धम् ॥ ॥ ११४ ॥ श्वासज्वरारोचकमेहगुल्मप्लीहांस्त्रिदोषोदरपाण्डुरोगान्। कार्श्यामवातावसृगम्लपित्तं वैवर्ण्यमूत्रानिलशुक्रदोषान् ॥ ११५ ॥

दशमूलकी दशों औषधियाँ ५ सेर, उत्तम और बडी हरडें सौ, पाकके लिये जल २६ सेर, शेष ५ सेर। फिर इस क्वाथको छानकर इसमें ५सेर पुराना गुड मिलाकर और उन सीजी हुई हरडोंकी गुठली निकालकर इसमें मिलादेवे। तत्पश्चात् विधिपूर्वक इसको मृत्तिकाके पात्रमें पकावे। जब पाक समान होजाय तब पीपल, सोंठ, मिरच, दालचीनी, इलायची, नागकेशर और तेजपात इन प्रत्येकका चूर्ण एक २ पल मिला देवे। शीतल होनेपर ३२ तोले शहद और एक तोला जवाखारका चूर्ण मिला देवे। प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर एक हरड और दो तोले अवलेह भक्षण करे। यह अवलेह–अत्यन्त बढे हुए शोथ, श्वास, ज्वर, अरुचि, प्रमेह, गुल्म, प्लीहा, त्रिदोषज, उदररोग, पाण्डुरोग, कृशता, आमवात, रक्तपित्त, अम्लपित्त, विवर्णता, मूत्ररोग, वातरोग और शुक्रके दोषोंको दूर करता है ॥ ११३ ॥ ११४ ॥ ११५ ॥

किञ्चिच्च कर्षपर्य्यायः शुक्तिरर्द्धपलं मतम्। निदध्यान्मधुनो मानं व्योषाद्यैर्मिश्रितस्य च ॥ ११६ ॥ दशमूल्या हरीतक्या तुल्यं कंसहरीतकी। मानं तेनात्र तत्रत्यं चरके प्राह जेज्जटः ॥ ११७ ॥

किंचित् यह कर्षका पर्य्याय है और आधे पल अर्थात् दो तोलेको शुक्ति कहते हैं। यहां व्योषाद्य औषधियाँ मधुकी समान लेनी चाहिए दशमूलकी औषधियाँ और हरड समान भाग लेनी चाहिए ॥ ॥ १६ ॥ १७ ॥

दशमूलहरीतकी।

दशमूलीकषायस्य कंसे पथ्याशतं गुडात्। तुलां पचेद्घने दद्याद्व्योषक्षारचतुष्पलम् ॥ ११८ ॥ त्रिजातकं सुचूर्णांशं प्रस्थार्धं मधुना लिहेत्। दशमूलीहरीतक्यः शोथं घ्नन्ति सुदुस्तरम् ॥ ११९ ॥ ज्वरारोचकगुल्मार्शोमेहपांडूदरामयान्। श्वासकार्श्यामवाताऽम्लपित्तं वह्नेश्च मन्दताम् ॥ १२० ॥

दशमूलके १०२४ तोले क्वाथसें १०० हरडोंको पकावे और पकते समय एक तुला प्रमाण गुड डाल देवे जब पककर गाढा होजाय तब त्रिकुटा और जवाखारका चूर्ण ४ पल तथा त्रिजातकका चूर्ण ४ तोले और शहद ३२ तोले मिलावे। यह दशमूल हरीतकी दुस्तर शोथको दूर करनेवाली तथा ज्वर, अरुचि, गुल्म, अर्श, प्रमेह, पाण्डुरोग, उदररोग श्वास, कृशता, आमवात,अम्लपित्त और अग्निकी मंदताको नष्ट करनेवाली है ॥ ११८ ॥ ११९ ॥ १२० ॥

"यथा दोषञ्च तीक्ष्णानि वमनानि विरेचनानुवासनान्यजस्रमुपसेवत। शिराभिश्चाभीक्ष्णं शोणितमवसेचयेदन्यत्र पांडुशोथादिभिरिति"।

शोथरोगमें यथादोषानुसार तीक्ष्ण वमन,विरेचन और अनुवासनबस्ति निरंतर सेवन करे तथा शिरामोक्षण, रुधिरनिकलवाना इत्यादि ये सब उपचार पाण्डु- रोग और शोथादिकोंमें करने चाहिये ॥

पथ्यापथ्य।

पुराणयवशाल्यन्नं दशमूलोपसाधितम्। अल्पमल्पं पटुस्नेहभोजनं शोथिने हितम् ॥ १२१ ॥ पिष्टान्नमम्लं लवणानि मद्यं मृदं दिवास्वप्नमजाङ्गलञ्च। पयो गुडं तैलमथो गुरूणि शोथं जिघांसुः परिवर्जयेत्तु ॥ १२२ ॥

दशमूलकी ओषधियोंके क्वाथमें सिद्ध किये हुए पुराने जौ और शालिचावलोंका भात इनमें थोडा २ नमक और घृत डालकर शोथरोगीको भोजनके लिए देवे उडदीके पिट्ठीके बने अन्न (पकान्न मिष्टान्न

खटाई, नमक, मदिरा, मट्टी, दिनमें सोना, अनूपदेशके जीवोंका मांस, गुड, दूध, तैल और अन्यान्य समस्त भारी पदार्थ शोथरोगी त्याग देवे ॥ १२१॥१२२॥

त्रिकुटादिलोह ।

त्रिकटु त्रिफला दन्ती बिडङ्गं कटुका तथा । चित्रको देवदारुश्च त्रिवृच्च गजपिप्पली ॥ १२३ ॥ चूर्णान्येतानि तुल्यानि द्विगुणं स्यादयोरजः ॥ क्षीरेण पीतमेतत्तु श्रेष्ठं श्वयथुनाशनम् ॥ १२४ ॥

त्रिकुटा, त्रिफला, दंति, वायविडंग, कुटकी, चीता, देवदारु, निसोत और गजपीपल ये सब औषधि समान भाग इन सबसे दुगुना लोहेका चूर्ण लेवे सबको एकत्र मिलाकर दूधके साथ सेवन करनेसे-सर्व प्रकारकी सूजन दूर होती है ॥ १२३ ॥ १२४ ॥

शोथोदरलोह ।

पुनर्नवामृतावह्निगवाक्षीमाणशिग्रुकाः । सूर्य्यावर्त्तकमूलञ्च पृथगष्टपलं जले ॥ १२५ ॥ पादशेषे शृते द्रोणे सुपूते वस्त्रगालिते । विधिवत्पाचितं पूतं योज्यश्च पुटनक्रमैः ॥ १२६ ॥ लोहचूर्णाष्टपलकं पचेत्ताम्रादिपात्रके । अर्कस्य द्विपलं क्षीरं स्नुहीक्षीरं चतुष्पलम् ॥ १२७ ॥ पलद्वयं कौशिकस्य गन्धकस्य पलं तथा । पलार्धं पारदं तत्र विधिवच्छोधितं क्षिपेत् ॥ ॥ १२८ ॥ सिद्धेऽवतारिते चूर्णं वक्ष्यमाणं निधापयेत् । कंकुष्ठवह्निकं दन्ती गवाक्ष्या खण्डकर्णजम् ॥ १२९॥ पलाशस्य च बीजानि कञ्चुकी तालमूलिका । त्रिफला वा कृमिरिपुस्त्रिवृद्दन्तीभवं तथा ॥ १३० ॥ सूर्य्यावर्तगवाक्षश्च वर्षाभूवज्रवल्लिजम् । एषां लोहसमा मात्रा भाण्डे स्निग्धे सुगोपिते ॥ १३१ ॥ संस्थापिते ततः शुद्धौ सुयोगादस्य सर्वशः । उदराणि पांडुरोगाश्च कामला सहलीमका ॥ ॥ १३२ ॥ अर्शो भगन्दरं कुष्ठं कृमिः शूलं तथैव च । ये चान्ये विविधा रोगाश्चिरकालानुबन्धिनः ॥ १३३ ॥ ते सर्वे नाशमायान्ति प्रयोगादस्य सर्वशः । नातः परतरं किञ्चिच्छोथोदरविनाशनम् ॥ १३४ ॥

पुनर्नवा, गिलोय, चीता, इन्द्रायन, मानकन्द, सहिंजना और हुलहुलकी जड ये प्रत्येक औषधि आठ आठ पल लेकर एकद्रोण जलमें पकावे जब पकते पकते जल चौथाई भाग बाकी रहजाय तब उतार कर छान लेवे । फिर उस काथमें विधिपूर्वक पुटपाक किया हुआ लोहेका चूर्ण ८ पल डाल कर तांबे आदिके पात्रमें पकावे। और उसमें आकका दूध ८ तोले, थूहरका दूध १६ तोले, गूगल ८ तोले, गंधक ४ तोले डाले । अच्छे प्रकारसे शुद्ध किया हुआ पारा २ तोले डाले । जब पककर सिद्ध होजाय तब उतारकर निम्नलिखित औषधियां चूर्ण करके मिला देवे । मुरदाशंख, चीता, दंती, इन्द्रायन, खण्डकर्णआलू, पलाशके बीज, क्षीरकञ्चुकी, मुसली, त्रिफला, वायविडंग, निसोत, दंती, हुलहुल, गोरक्षककडी, पुनर्नवा और वज्रवल्ली ये प्रत्येक औषधि लोहेके समान लेकर पीस कर मिला देवे। फिर इसको एक उत्तम चिकने बासनमें करके रख देवे । और उस बासनको पवित्र और गुप्तस्थानमें गाड देवे । इसको सेवन करनेसे सर्वप्रकारके उदररोग, पाण्डुरोग, कामला, हलीमक, बवासीर, भगन्दर, कोढ, कृमि, शूल और जो अनेकप्रकारके बहुत दिनोंके पुराने रोग हैं वे सब नष्ट हो जाते हैं । इससे उत्तम शोफोदरकी अन्य औषधि नहीं है ॥ १२५-१३४ ॥

इति श्रीवङ्गसेने भाषाटीकायां
शोथाधिकारः समाप्तः ॥ ४१ ॥

अथान्त्रवृद्धिरोगाधिकार।



(अण्डवृद्धिनिदान)

क्रुद्धोऽनूर्ध्वगतिर्वायुः शोफशूलकरश्चरन्। कुक्षौ वङ्क्षणतः प्राप्य फलकोषाभिवाहिनीः। प्रपीड्य धमनीर्वृद्धिं करोति फलकोषयोः ॥ १ ॥ दोषास्रमेदोमूत्रान्त्रैः सवृद्धिः सप्तधा गदः। मूत्रान्त्रजावप्यनिलाद्धेतुभेदस्तु केवलम् ॥ २ ॥

अपने कारणोंसे कुपित हुई, नीचेको गमन करनेवाली, सूजन और शूलको उत्पन्न करनेवाली और कोखमें विचरण करती हुई वायु वंक्षणमेंसे अण्डमें प्राप्त होकर अण्ड और कोपके बहनेवाली धमनियोंको पीडित कर अण्डकोषोंको बढाती है उसको अण्डवृद्धि कहते हैं। यह अण्डवृद्धिरोग वातादि भेदों तथा रक्त मेद मूत्र और अन्त्रज उस भेदोंसे सातप्रकारका है। मूत्रज और अन्त्रजवृद्धि वातसे होती है केवल इनके कारण भेदोंसे इनमें भेद माना गया है ॥ १ ॥ २ ॥

वातादिजन्यवृद्धिके लक्षण।

वातपूर्णदृतिस्पर्शो रूक्षो वाताद्धेतुरुक्। पक्वोदुम्बरसंकाशः पित्ताद्दाहोष्मपाकवान् ॥ ३ ॥ कफाच्छीतो गुरुः स्निग्धः कंडूमान् कठिनोऽल्परुक् ॥ ४ ॥ कृष्णस्फोटावृतः पित्तवृद्धिलिङ्गस्तु रक्तजः। कफवन्मेदसा वृद्धिर्मृदुस्तालफलोपमः॥५॥

वायुसे भरी हुई मसक जैसी हाथके लगनेसे मालूम हो और विना कारण दुखने लगे इसको वातकी अंडवृद्धि जानना। जो पके गूलरके फलके समान लाल हो,तथा जिसमें पित्त,दाह,जलन और पाक हो उसको पित्तकी वृद्धि जानना। कफकी वृद्धि शीतल, भारी, चिकनी, खुजलीसहित, कठिन और वह थोड़ी पीडावाली होती है। काले फोडोंसे व्याप्त तथा जिसमें पित्तवृद्धिके लक्षण मिलते हों उसको रक्तपित्तजवृद्धि जानना। मेदकी वृद्धि कफकी वृद्धिके समान नरम और तालके फलके समान कोमल होती है ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥

मूत्रजवृद्धिके लक्षण।

मूत्रधारणशीलस्य मूत्रजः स तु गच्छतः। अम्भोभिः पूर्णदृतिवत्क्षोभं याति सरुङ्मृदुः। मूत्रकृच्छ्रमधस्ताच्च चलयन् फलकोषयोः ॥ ६ ॥

जो मनुष्य आते हुए मूत्रके वेगको रोकते हैं, उनको मूत्रजवृद्धि होती है। वह मूत्रवृद्धि चलते समय पानीकी भरी हुई मसकके समान बोलती है। पीडायुक्त और कोमल होती है तथा मूत्रकृच्छ्रके समान पीड़ा हो, फल और कोष दोनों इधर उधरको हिलते हैं ॥ ६ ॥

अन्त्रवृद्धिके लक्षण।

वातकोपिभिराहारैः शीततोयावगाहनैः। धारणे रणभाराध्वविषमाङ्गप्रवर्त्तनैः ॥ ७ ॥ क्षोभणैः क्षुभितोऽन्यैश्च क्षुद्रान्त्रावयवं यदा। पवनो विगुणीकृत्य स्वनिवेशादधो नयेत् ॥ ८ ॥ कुर्याद्वङ्क्षणसन्धिस्थो ग्रन्थ्याभं श्वयथुं तदा ॥ ९ ॥

वातको प्रकुपित करनेवाले आहारको सेवन करनेसे, शीतलजलमें घुसकर स्नान करनेसे, आये हुए मलमूत्रादिके वेगको रोकनेसे,नहीं आये हुए मलमूत्रादिकोंको बलपूर्वक खैंचनेसे, भारी बोझके ढोनेसे, अत्यन्त मार्गके चलनेसे, टेढे, तिरछे होकर चलनेसे बलवान्के साथ द्वेष करनेसे, विषम धनुषको चढ़ानेसे इत्यादि तथा और भी वातकारक द्रव्योंको सेवन करनेसे और अन्यान्य वायुको क्षुभित करनेवाले कारणोंसे वायु विगुण होकर छोटी आंतोंके अवयवोंमें प्रवेश कर उनके एक देशको बिगाड़कर रहनेके स्थानसे उसे नीचे लेजाकर वंक्षणसंधिमें स्थित होकर उस स्थानमें गांठके समान सूजनको उत्पन्न करता है ॥७॥८॥९॥

इसकी उपेक्षा करनेका फल।

उपेक्ष्यमाणस्य च मुष्कवृद्धिमाध्मानरुक् स्तंभवतीं स वायुः। प्रपीडितो-

न्नः स्वनवान्प्रयाति प्रध्मापयन्तीति पुनश्च मुक्तः ॥ १० ॥

यदि इस अण्डवृद्धिकी शीघ्र चिकित्सा न की जाय तो यह अण्डकोषोंमें प्राप्त होकर पेटमें अफारा, शूल करता है बढ़े हुए वृषणोंमें पीडा होती है और शरीर स्तम्भितसा हो जाता है जब इसको हाथसे दवाता है तो यह गुड़गुड़ शब्द करके पेटमें चली जाती है और फिर छोड़ देनेसे अण्डकोषोंको फुलाकर उसीमें प्राप्त हो जाती है ॥ १० ॥

असाध्यलक्षण ।

क्षुद्रान्त्रावयवाश्लेषो मुष्कयोर्वातसश्चयात । अन्त्रवृद्धिरसाध्येयं वातवृद्धिसमाकृतिः ॥ ११ ॥

जिसमें छोटी आंतोंके कुछ अवयव कफवातके संचयसे अण्डकोषोंमें प्राप्त होजाय और जिसमें वातवृद्धिके लक्षण मिलते हों उस अन्त्रवृद्धिको असाध्य जानना ॥ ११ ॥

अपथ्य ।

वेगाघातं पृष्ठयानं व्यायामं मैथुनं तथा । अत्यशनमथाध्वानमुपवासं परित्यजेत् ॥ १२ ॥

मलमूत्रादिके वेगोंको रोकना, हाथी, घोडे आदिकी सवारी, दण्ड, कसरत अथवा परिश्रमादि, स्त्रीप्रसंग, अत्यन्त भोजन, अत्यंत मार्ग चलना और उपवास इन सबको अण्डवृद्धिवाला त्यागदेवे ॥ १२ ॥

अन्त्रवृद्धिकी चिकित्सा ।

वातवृद्धौ पिबेत्स्निग्धैः यथान्यायं विरेचनम् । सक्षीरश्च पिबेत्तैलं मासमैरण्डसम्भवम् ॥ १३ ॥

वातजवृद्धियोगमें यथादोषानुसार स्निग्ध औषधियोंके द्वारा विरेचन देवे । अण्डीके तेलमें दूध मिलाकर एक महीनेतक पान करनेसे वातकी वृद्धि शमन होती है ॥ १३ ॥

गुग्गुल्वेरण्डजं तैलं गोमूत्रेण पिबेन्नरः । वातवृद्धिं जयत्याशु चिरकालानुबन्धिनीम् ॥ १४ ॥

गूगल और अंडीके तेलको गोमूत्रके साथ पान करनेसे बहुत दिनोंकी पुरानी वातकी वृद्धि दूर होती है ॥ १४ ॥

अन्त्रवृद्धिमदीताग्नेर्वास्तिभिः समुपाचरेत् । तैलं नारायणं योज्यं पानाभ्यञ्जनबास्तिभिः ॥ १५ ॥

जो अन्त्रवृद्धिरोगमें अग्नि मन्द हो तो बस्तिकर्म्म प्रयोग करे । तथा पान, अभ्यंजन और बस्तिकर्म्मके द्वारा नारायण तेलका व्यवहार करे ॥ १५ ॥

जलौकाभिर्हरेद्रक्तं वृद्धौ पित्तभवे तथा । पित्तग्रन्थिक्रमेणैव पित्तवृद्धिमुपाचरेत् ॥ १६ ॥

पित्तकी वृद्धिमें जोक लगवावे और पित्तजग्रन्थिके समान समस्त उपचार करे ॥ १६ ॥

चन्दनं मधुकं पद्मं चोशीरं नीलमुत्पलम् । क्षीरपिष्टैः प्रदेहः स्याद्दाहशोथरुजापहः ॥ १७ ॥

चन्दन, मुलैठी, कमल, खस और नीले कमल इनको दूधमें पीसकर प्रलेप करनेसे—दाह, सूजन और पीडा शांत होती है ॥ १७ ॥

पञ्चवल्कलकल्केन सघृतेन प्रलेपनम् । एषामेव कषायेण शीतेन परिषेचनम् ॥ १८ ॥

पंचक्षीरीवृक्षोंके कल्कको घीमें मिलाकर प्रलेप करनेसे और इन पंचक्षीरी वृक्षोंकी छालको जलमें औटाकर शीतल करके उस क्वाथका सेचन करनेसे पैत्तिक वृद्धिकी दाह, सूजन और पीडा शांत होती है ॥ १८ ॥

पञ्चवल्कल ।

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थाः सपिप्पलकपीतनाः । क्षीरवृक्षास्तु पञ्चैषां वल्कलं पञ्चवल्कलम् ॥ १९ ॥ क्वचित्कपीतनस्थाने शिरीषो वेतसः क्वचित् ॥२०॥

वड, गूलर, पीपल, वेलिया पीपल और गर्दभाण्ड (पारिसपीपल) इन पांच क्षीरवृक्षोंकी छालको

पञ्चवल्कल कहते हैं । कहीं पारिसपीपलके स्थानमें सिरसकी छाल और कहीं वेतकी छाल लेते हैं और कहीं पिलखन भी लेते हैं ॥ १९ ॥ २० ॥

कफवृद्धौ सुसंपिष्टैरुष्णवीर्यैः प्रलेपनम् । पातव्यो मूत्रसंयुक्तः कषायः पीतदारुणः ॥ २१ ॥

कफकी वृद्धिमें गोमूत्रमें पिसी हुई गरम औषधियोंका प्रलेप करना चाहिए । अथवा देवदारुके काथको गोमूत्रके साथ पान करे तो कफकी वृद्धि शमन होती है ॥ २१॥

त्रिकटुत्रिफलाक्वाथं सक्षारलवणं पिबेत् । कफवातप्रकोपेऽपि विरेकः कफवृद्धिनुत् ॥ २२ ॥

त्रिकुटा और त्रिफलेके काथमें जवाखार और सैंधा नमक डालकर पान करनेसे विरेचन होकर कफ वातके प्रकोपसे उत्पन्न हुई कफकी वृद्धि नष्ट होती है ॥ २२ ॥

त्रिफलाकाथगोमूत्रं पिबेत्प्रातरतन्द्रितः । कफवातोद्भवं हन्ति श्वयथुं वृषणोद्भवम् ॥ २३ ॥

त्रिफलेके काथमें गोमूत्र डालकर प्रातःकाल उठकर पान करे और पथ्यसे रहे तो कफवातसे उत्पन्न हुई अण्डकोषोंकी सूजन दूर होती है ॥ २३ ॥

लेपनः कटुतीक्ष्णोष्णः स्वेदनं रूक्षमेव च । परिषेकोपनाहौ च सर्वमुष्णमिहेष्यते ॥ २४ ॥

कफकी वृद्धिमें कटु,तीक्ष्ण और उष्ण औषधियोंका प्रलेप, रूक्ष औषधियोंके द्वारा स्वेद तथा परिषेक और उपनाहकर्म्म ये सब उष्ण उपचार करने चाहिए ॥ २४ ॥

वचासर्षपकल्केन प्रलेपः शोथनाशनः । शिग्रुत्वक्सर्पिषैः पिष्टैः शोथः श्लेष्मानिलापहः ॥ २५ ॥

वच और सरसोंके कल्कका प्रलेप करनेसे अण्डकोषोंकी सूजन दूर होती है । सहिंजनेकी छालको घृतमें पीसकर प्रलेप करनेसे कफवातकी अण्डवृद्धि दूर होती है ॥ २५ ॥

सरलागुरुकुष्ठानि देवदारुमहौषधम् । मूत्रारनालसंपिष्टं शोथघ्नं कफवातजित् ॥ २६ ॥

धूपसरल, अगर, कूठ, देवदारु और सोंठ इनको गोमूत्र और कांजीमें पीसकर लेप करनेसे वृद्धिगत सूजन और कफवात नष्ट होते हैं ॥ २६ ॥

हरीतकीं मूत्रसिद्धां सतैललवणान्विताम् । प्रातः प्रातश्च सेवेत कफवातामयापहाम् ॥ २७ ॥

हरडको गोमूत्रमें पकाकर फिर उसको तेलमें भून कर सैंधानमक मिलाकर प्रतिदिन प्रातःकाल सेवन करनेसे कफवातके रोग नष्ट होते हैं ॥ २७ ॥

अविदाहि च कर्त्तव्यं भेषजं रक्तपैत्तिके । सर्वं पित्तहरं कार्य्यं रक्तजे रक्तमोक्षणम् ॥ २८ ॥

रक्तपित्तज वृद्धिरोगमें सम्पूर्ण दाहरहित चिकित्सा करनी चाहिए, पित्तजवृद्धिरोगमें पित्तनाशक और रक्तजवृद्धिमें रक्तमोक्षण करावे ॥ २८ ॥

शीतमालेपनं कार्य्यं पाको रक्ष्यः प्रयत्नतः । मुहुर्मुहुर्जलौकाभिः शोणितं रक्तजे हरेत् ॥ २९ ॥

अण्डवृद्धिरोगमें पाककी रक्षा करके अर्थात् जिससे पक न जाय ऐसा बचाव करके शीतल प्रलेपादि करे । तथा रक्तजवृद्धिरोगमें वारम्वार जौंक लगवा कर रुधिर निकलवावे ॥ २९ ॥

पिबेद्विरेचनं वापि शर्कराक्षौद्रसंयुतम् । पित्तग्रन्थिक्रमं कुर्य्यादामे पक्के च रक्तजे ॥ ३० ॥

अथवा विरेचनकी औषधियोंमें खांड और शहद मिलाकर पान करे । आम, पक्क और रक्तजवृद्धिरोगमें पित्तजग्रंथिके समान चिकित्सा करनी चाहिए ॥ ३० ॥

स्विन्नं मेदःसमुत्थन्तु लेपयेत्सुरसादिना । शिरोविरेचनद्रव्यैः सुखोष्णैर्मूत्रसंयुतैः ॥ ३१ ॥

मेदसे उत्पन्न हुए वृद्धिरोगमें अण्डकोषोंको स्वेदित करके सुरसादि औषधियोंको एकत्र पीसकर लेप करना चाहिए । तथा शिरोविरेचनकी औषधियोंको गोमूत्रमें पीसकर सुहाता सुहाता प्रलेप करे ॥३१॥

संस्वेद्य मूत्रप्रभवं वस्त्रपट्टेन वेष्टितम् । सीवन्याः सर्वतोऽधस्ताद्विध्येद्व्रीहिमुखेन वै ॥ मुष्ककोशमगच्छन्त्यामन्त्रवृद्धौ विचक्षणः । वातवृद्धिक्रमं कुर्य्याद्दाहस्तत्राग्निना हितः ॥ ३२ ॥

मूत्रवृद्धिरोगमें प्रथम बफारा देकर अण्डकोषोंको वस्त्रसे लपेट देवे और अण्डकोषोंकी सीवनको एकओर करके नीचेके अंगमें व्रीहिमुख यन्त्रसे वेध करे और जो अण्डवृद्धि अण्डकी गोलीतक न पहुँची हो तो उसपर वातजअंडवृद्धिमें कहेहुए उपचार करे और दाग देवे ॥ ३२॥

शिरावेध ।

शङ्खस्योपरि कर्णान्ते त्यक्त्वा सीवनिमादरात । व्यत्यासाद्वा शिरां विध्येदन्त्रवृद्धिनिवृत्तये ॥ ३३ ॥

शंख (कनपटी) के ऊपर और कानके अन्तमें सीवनकी संधियोंको छोडकर जो दाहिनी ओर अण्डवृद्धि हो तो बाई ओर और जो बाई ओर अण्डवृद्धि हो तो दाहिनी ओरकी शिरावेध करे । इससे अन्त्रवृद्धिकी निवृत्ति होती है ।। ३३ ।।

तैलमैरण्डजं पीत्वा बलासिद्धं पयोन्वितम् । आध्मानशूलोपचितामन्त्रवृद्धिं जयेन्नरः ॥ ३४ ॥

अंडीके तेलको खिरैंटीके कल्कसे सिद्ध किये हुए दूधमें डालकर पान करनेसे आध्मान और शूल समेत अन्त्रवृद्धिरोग दूर होता है ।। ३४ ।।

रास्नायष्ट्यमृतैरण्डबलागोक्षुरसाधितः । क्वाथोऽन्त्रवृद्धिं हन्त्याशु रुबुतैलेन मिश्रितम् ॥ ३५ ॥

रायसन, मुलैठी, गिलोय, अण्डकी जड, खिरैंटी और गोखुरू इनके क्वाथमें अंडीका तेल डालकर पान करनेसे अन्त्रवृद्धिरोग दूर होता है ।। ३५ ।।

विदग्धासु च सर्वासु योज्यं कर्म्म व्रणापहम् । अंगुष्ठमध्ये त्वक् छित्त्वा दहेद्व्यायुं विवर्जयेत् ॥ अनेनैव विधानेन कुर्य्याद्वातकफात्मजे ॥ ३६ ॥

अच्छेप्रकारसे दग्ध की हुई सब प्रकारकी अण्डवृद्धियोंमें व्रणके समान चिकित्सा करनी चाहिए । पाँवके अंगूठेकी बीचकी नसको छेदन करके विपरीत क्रमसे दाग देवे अर्थात् बाई ओर हो तो दाहिनी ओर और जो दाहिनी ओर हो तो बाईओर दाग देवे और इसी प्रकार वातकफकी वृद्धिमें उपचार करना चाहिए ।। ३६ ।।

त्र्यूषणं पिप्पलीमूलं देवदारुफलत्रिकम् । कषायं पाचयेत्तेषां सक्षारलवणत्रयम् ॥ ३७ ॥ त्रिभिर्मासैः प्रशाम्येत वृद्धिर्वातकफात्मजा ॥ ३८ ॥

त्रिकुटा, पीपलामूल, देवदारु और त्रिफला इनका काथ बनाकर उसमें जवाखार और तीनों लवण डालकर पान करनेसे तीन महीनेमें कफवातकी वृद्धि शमन होती है ।। ३७ ।। ३८ ।।

रास्नायष्ट्यमृतैरण्डपटोलारेणुकाबलाः । वृषश्च क्वथितो वृद्धिं निहन्याच्चित्रतैलवान् ॥ ३९ ॥

रायसन, मुलेठी, गिलोय अण्डकी जड, पटोलपत्र, रेणुका, खिरैंटी और अडूसा इनके क्वाथमें अंडीका तेल डालकर पान करनेसे सर्व प्रकारके अंडवृद्धिरोग शांत होते हैं ।। ३९ ।।

गन्धर्वतैलसंमिश्रं विशालामूलजं रजः । क्षीरेण पीतं सप्ताहाद्वृद्धिं हन्ति न संशयः ॥ ४० ॥

इन्द्रायनके जड़के चूर्णको दूधमें पीसकर अंडीका तेल मिलाकर सात दिन पर्यंत पान करनेसे अण्डवृद्धि रोग दूर होता है ।। ४० ।।

कुरण्डरोगके निदान और लक्षण।

अत्यभिष्यन्दिगुर्वम्लसेवनान्निचयं गतः। करोति ग्रन्थिवच्छोफं दोषो वङ्क्षणसन्धिषु ॥ ४१ ॥

अत्यंत अभिष्यन्दी पदार्थोंको भक्षण करनेसे, भारी पदार्थोंको सेवन करनेसे और खट्टे पदार्थोंको सेवन करनेसे वातादिदोष कुपित होकर वंक्षणसंधियोंमें ग्रंथिके समान जो शोथको उत्पन्न करते हैं उसको "कुरण्ड" कहते हैं ॥ ४१ ॥

कुरण्डरोगकी चिकित्सा।

यथांबुना तु संपिष्टं मूलं भाङ्गर्याः प्रलेपनात। कुरण्डं गण्डमालाश्च हन्त्यवश्यं न संशयः ॥ ४२ ॥

भारंगीकी जडको जलमें पीसकर प्रलेप करनेसे कुरण्ड, गण्डमाला और वृद्धिरोग दूर होता है ॥४२॥

शम्बूकोदरनिहितं गव्यं सप्ताहमातपे सर्पिः। स्थितमपहरति कुरण्डं सैन्धवचूर्णान्वितं लेपात् ॥ ४३ ॥

शम्बूक नामक शंखमें गौके घीको भरकर सात दिनतक रख देवे, फिर उस घृतको निकालकर उसमें सैंधेनमकका चूर्ण मिलाकर लेप करनेसे कुरण्डरोग दूर होता है ॥ ४३ ॥

ससैन्धवं घृताभ्यक्तं ताम्रभाजनमातपे। प्रतप्तं चूर्णनिर्घृष्टं तन्मलं समुपाहरेत् ॥ ४४॥ म्रक्षयेत्तेन कौरण्डमनुद्विग्नो दिवानिशम्। प्रवृद्धं तेन कौरण्डं नश्यत्याह पुनर्वसुः ॥ ४५ ॥

सैंधेनमक और घीको एकत्र मिलाकर तांबेके पात्रमें करके धूपमें घिसे। उसके घिसनेसे जो मल निकले उस मलको ग्रहण करके कुरण्डके ऊपर दिनरात लगावे। इसको लगानेसे अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त हुआ भी कुरण्ड शीघ्र आरोग्य होता है ऐसा पुनर्वसु कहते हैं ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

लज्जालुमूलगृध्रस्य विट्प्रलेपः प्रयोजितः। कुरण्डं योनिरोगञ्च नाशयेदविकल्पतः ॥ ४६ ॥

लज्जावन्ती और गीधकी विष्ठा इन दोनोंको एकत्र पीस कर लेप करनेसे कुरण्ड और योनिरोग अवश्य नष्ट होते हैं ॥ ४६ ॥

सतैललवणं भस्म पारदं लेपमात्रतः। अपि तालफलाकारां वृद्धिं जयति वेगतः ॥ ४७ ॥

पारेकी भस्मको तेल और सेंधेनमकमें मिला कर लेप करनेसे तालफलके समान अत्यन्त बढीहुई भी अंडवृद्धि शान्त हो जाती है ॥ ४७ ॥

शतपुष्पाद्यघृत।

शतपुष्पामृतादारुचन्दनं रजनीद्वयम्। जीरके द्वे वचा नागं त्रिफला गुग्गुलु त्वचम् ॥ ४८ ॥ मांसी कुष्ठं पत्रकैला रास्ना शृङ्गी च चित्रकम्। कृमिघ्नमश्वगन्धा च शैलेयं कटुरोहिणी ॥ ४९ ॥ सैन्धवं तगरञ्चैव कुटजातिविषैः समैः। एतैश्च कार्षिकैः कल्कैः घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ५० ॥ वृषमुण्डितिकैरण्डनिम्बपत्रभवो रसः। कण्टकार्य्यास्तथा क्षीरं प्रस्थं प्रस्थं विनिःक्षिपेत् ॥ ५१ ॥ सिद्धमेतद्घृतं पीतमन्त्रवृद्धिं व्यपोहति। वातवृद्धिं पित्तवृद्धिं मेदोवृद्धिमथापि वा ॥५२॥ मूत्रवृद्धिं श्लीपदञ्च यकृत्प्लीहानमेव च। शतपुष्पाघृतं चैतद्धन्यादेतन्न संशयः ॥ ५३ ॥

सौंफ, गिलोय, देवदारु, चन्दन, हलदी, दारुहलदी, जीरा, काला जीरा, वच, नागकेशर, त्रिफला, गूगल, दालचीनी, बालछड, कूठ, तेजपात, इलायची, रायसन, काकडा शिंगी, चीता, वायविडंग, असगन्ध, भूरिछरीला, कुटकी, सैंधानमक, तगर, कुडा और अतीस इन प्रत्येक औषधियोंका एक एक तोला कल्क और उत्तम गौका घी १ प्रस्थ लेवे, तथा अडूसा, गोरखमुण्डी, अंडकी जड, नीमकी छाल और कटेरीके पंचांगमें इन प्रत्येक औषधिका स्वरस पृथक् पृथक् एक एक प्रस्थ और गौका दूध १

प्रस्थ लेवे । सबको एकत्र करके उत्तम विधिसे घृतको सिद्ध करे । यह घृत-अन्त्रवृद्धि, वातवृद्धि, पित्तवृद्धि, मेदवृद्धि, मूत्रवृद्धि, श्लीपदरोग, यकृत् और प्लीहाको नष्ट करता है। यह शतपुष्पाद्यघृत सम्पूर्ण रोगनाशक है ।। ४८-५३ ।।

गन्धर्वहस्ततैल ।

शतमेरण्डमूलस्य पलं शुण्ठ्या यवाढकम् । जलद्रोणे विपक्तव्यं यावत्पादावशेषितम् ॥ ५४ ॥ तेन पादावशेषेण पयसा तत्समेन च । प्रस्थमैरंडतैलस्य तन्मूलाच्च चतुष्पलम् ॥ ॥ ५५ ॥ त्रिपलं शृङ्गवेरस्य गर्भं दत्त्वा विपाचयेत् । तत्पिबेन्नियतः शुद्धो नरः क्षीरान्नभुक्सदा ॥ ५६ ॥ अन्त्रवृद्धिं जयत्याशु तैलं गन्धर्वहस्तकम् ॥ ५७ ॥

अंडकी जड १०० पल, सोंठ और जौ प्रत्येक एक एक आढक परिमाण लेकर एक द्रोण जलमें पकावे । जब पकते पकते चौथाई भाग जल बाकी रह जाय तब उतार कर छान लेवे। फिर उस क्वाथमें बराबरका दूध डाल कर तथा अंडीका तेल १ प्रस्थ, अंडकी जडका कल्क ४ पल एवं अदरखका कल्क ३ पल, इन सबको एकत्र मिला कर यथाविधिसे तेलको सिद्ध करे। इसको नियमपूर्वक नित्य शुद्ध हो कर पान करे और इसपर दूध और अन्नका भोजन करे तो यह गन्धर्वहस्तक तेल-अन्त्रवृद्धिको अवश्य दूर कर देता है ।। ५४ ।। ५५ ।। ५६ ।। ५७ ।।

तैलं नारायणं योज्यं पानाभ्यञ्जनबस्तिषु । घृतं सैरे यश्चैव ह्यन्त्रवृद्धिनिवृत्तये । आर्द्रक षट्पलं वापि चव्याद्यं च प्रयोजयेत् ॥ ५८ ॥

इस अण्डवृद्धिरोगमें पान, अभ्यंजन और वस्तिकर्मके द्वारा नारायणतेल प्रयोग करना चाहिए तथा सैरेयकघृत, आर्द्रक, षट्पलघृत और चव्याद्यघृत भी प्रयोग करने चाहिए ।। ५८ ।।

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकाया-
मन्त्रवृद्धिनिदानचिकित्सा-
धिकार समाप्त ।। ४२ ।।

अथ ब्रध्नरोगाधिकार ।



ब्रध्न (बद) का निदान ।

अत्यभिष्यन्दिगुर्वम्लसेवनान्निचयं गतः । करोति वृद्धिं शोफश्च दोषो वङ्क्षणसन्धिषु ॥ ज्वरशूलाङ्गसादाढ्यं तं ब्रध्नमिति निर्दिशेत् ॥ १॥ निर्व्यथं च कुरंडं स्याद्ब्रध्नं भवति सव्यथम् । अयमेवानयोर्भेदो ह्यन्यत्सर्वसमं तथा ॥ २ ॥

अत्यन्त अभिष्यन्दी पदार्थोंको सेवन करनेसे, भारी अन्नको भक्षण करनेसे (कच्चे पदार्थोंको सेवन करनेसे, रूखे,दुर्गन्धयुक्त और विशेष मांसादिकोंको भक्षण करनेसे) तथा अधिकतर अम्लपदार्थोंको सेवन करनेसे वातादिदोष कुपित होकर वंक्षणकी संधि अर्थात् बस्तिके नीचे और जाँधके ऊपर सूजनको उत्पन्न करते हैं । इसमें ज्वर, शूल और अंगोंमें अत्यंत शिथिलता होती है । कुरण्डमें और इसमें केवल इतना ही अन्तर है कि कुरण्डरोग पीड़ारहित होता है और इस ब्रध्नरोगमें पीड़ा होती है और शेष दोनोंके एकसे लक्षण मिलते हैं ।। १ ।। २ ।।

ब्रध्नरोगकी चिकित्सा ।

भृष्टश्चैरंडतैलेन कल्कः पथ्यासमुद्भवः। कृष्णासैन्धवसंयुक्तो ब्रध्नरोगहरः परः ॥ ३ ॥

हरडको अंडीके तेलमें भूनकर पीपल और सैंधेनोनके साथ मिला कर सेवन करनेसे ब्रध्नरोग दूर होता है ॥ ३ ।।

आविक्षीरेण गोधूमचूर्णं कुन्दुरुकस्य च । प्रलेपनं सुखोष्णं स्याद्ब्रध्नरोग-हरं परम् ॥ ४ ॥

गेहूंके चूर्णको और कुन्दुरूके चूर्णको भेडके दूधमें पीस कर मंदोष्ण प्रलेप करनेसे ब्रध्नरोग दूर होता है ॥ ४ ॥

मृतमात्रे च वै काके विशाले तु प्र-वेशयेत । ब्रध्नं मुहूर्त्त मेधावी तत्क्ष-णादरुजं भवेत ॥ ५ ॥

एक मरेहुए बड़े कौवेको लेकर उसका पेट फाड़कर उसमें बदको प्रवेशकर देवे फिर तत्काल मुहूर्तभरमें निकाल लेवे इससे ब्रध्नरोग शीघ्र शांत हो जाता है ॥ ५ ॥

अजाजीहपुषाकुष्ठं गोधूमं बदरान्वि-तम् । काञ्जिकेन तु संपिष्टं कुर्य्याद्ब्र-ध्नप्रलेपनम् ॥ ६ ॥

जीरा, हाऊबेर, कूठ, गेहूँ और बेर इनको एकत्र कांजीमें पीसकर लेप करनेसे ब्रध्नरोग दूर होताहै६॥

श्वदंष्ट्रासिन्धुविश्वाब्ददारुकृमिहरा-श्मभित् । लोध्रचूर्णं घृतेनाद्याद्वात-ब्रध्नहरं परम् ॥ ७ ॥

गोखुरू, सैंधानमक, सोंठ, नागरमोथा, देवदारु, वायविडंग, पाषाणभेद और लोध इन सबका चूर्ण करके घीमें मिलाकर सेवन करनेसे वातकी वृद्धि दूर होती है ॥ ७ ॥

पुष्योद्धृतं हरेदाशु विप्लुतं तुषवारि-णा । भार्ङ्गीमूलमखंडन्तु पानाद्वङ्क्ष-णवातजित् ॥ ८ ॥

पुष्यनक्षत्रमें भारंगीकी जड़को उखाडकर कांजीमें भावना देकर उसको नित्य पान करनेसे वंक्षणका वात दूर होता है ॥ ८ ॥

बिल्वाद्यचूर्ण।

मूलं बिल्वकपित्थयोरररलुकस्याग्नेर्बृ-हत्योर्द्वयोः श्यामापूतिकरञ्जशि-ग्रुकतरोर्विश्वौषधारुष्करम् ॥ कृष्णा-ग्रन्थिकचव्यपञ्चलवणं क्षाराजमोदा-न्वितं पीतं काञ्जिककोष्णतोयम-थितैश्चूर्णीकृतं ब्रध्नजित ॥ ९ ॥

बेलकी जड, कैथकी जड, श्योनाककी जड, चीतेकी जड, कटेरी, बडी कटेरी, कृष्ण शारिवा, दुर्गन्धकरंज, सहिंजना, सोंठ, भिलावे, पीपल, पीप-लामूल, चव्य, पांचोंनमक, जवाखार और अजमोद इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर बारीक पीसकर चूर्ण करलेवे। इस चूर्णको मंदोष्ण जलके साथ पान करनेसे अथवा कांजीके साथ पान करनेसे ब्रध्नरोग दूर होता है ॥ ९ ॥

बृहत्सैन्धवाद्यतैल।

सैन्धवं मदनं कुष्ठं शताह्वा निचुलं वचा । ह्रीबेरं मधुकं भार्ङ्गी देवदारु सनागरम् ॥ १० ॥ कट्फलं पौष्करं मेदे चविकाचित्रकं शटी । विडङ्गाऽ-तिविषा श्यामा हरेणु नलिनी स्थि-रा ॥ ११ ॥ विश्वाजमोदे कृष्णा च दन्ती रास्ना च तैः समैः । साध्यमैरं-डजं तैलमभ्यङ्गात्कफवाताजित्॥१२॥ ब्रध्नोदावर्त्तगुल्मार्शःप्लीहमेहाढ्यमा-रुतान् । आनाहमश्मरीञ्चैव हन्या-त्तदनुवासनात ॥ १३ ॥

सैंधानमक, मैनफल, कूठ, सौंफ, समुद्रफल,वच, सुगंधवाला, मुलैठी,भारंगी, देवदारु, सोंठ,कायफल, पोहकरमूल,मेदा, महामेदा, चव्य,चीता,कचूर, वाय-विडंग अतीस, सारिवा, रेणुका, नलिनी, शालिपर्णी, सोंठ,अजमोद, पीपल, दंती और रायसन यह प्रत्येक औषधि समान भाग लेकर कल्क बनाकर अंडीके तेलको पकावे। इस तेलकी मालिस करनेसे–कफ वातरोग और इसको अनुवासन बास्तिके द्वारा प्रयोग करनेसे ब्रध्न, उदावर्त्त, गुल्म, बवाशीर, प्लीहा,प्रमेह आढ्यवात, आनाह और अश्मरीरोग नष्ट होता है ॥ १०–१३ ॥

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायां ब्रध्नाधिकार समाप्त ॥ ४३ ॥

अथ गलगण्डरोगाधिकार ।



गलगण्डका निदान ।

निबद्धः श्वयथुर्यस्य मुष्कवल्लम्बते गले । महान्वा यदि वा ह्रस्वो गलगंडं तमादिशेत् ॥ १ ॥

जिस मनुष्यके गलेमें स्थिर या निश्चल छोटी अथवा बडा अण्डकोषके समान सूजन होकर लटके उसको गलगण्डरोग कहते हैं ॥ १ ॥

गलगण्डकी संप्राप्ति ।

वातः कफश्चापि गले प्रदुष्टौ मन्ये समाश्रित्य तथैव मेदः । कुर्वन्ति गंण्डं क्रमशः स्वलिङ्गैः समन्वितं तं गलगण्डमाहुः ॥ २ ॥

गलेमें दूषित हुए वात, कफ, तथा मेद गलेकी मन्या नाडियोंके आश्रित होकर अपने अपने लक्षणोंयुक्त गण्डको उत्पन्न करते हैं इससे उसको गलगण्ड कहते हैं यह गलगण्ड रोग वात, कफ और मेद इस भेदोंसे तीन प्रकारका है ॥ २ ॥

वातिकगलगण्डके लक्षण ।

तोदान्वितः कृष्णशिरावनद्धः श्यावारुणो वा पवनात्मकस्तु । पारुष्ययुक्तश्चिरवृद्धिपाको यदृच्छया पाकमियात्कदाचित् ॥ वैरस्यमास्यस्य च तस्य जन्तोर्भवेत्तथा तालुगलप्रशोषः ॥ ३ ॥

वातज गलगण्ड रोगमें सुई छेदन सरीखी पीडावाला कालीनसोंसे व्याप्त लाल अथवा धूसर रङ्गका रूखा-बहुतकालमें बढनेवाला और पकनेवाला कभी स्वयं भी पकनेवाला, मुखमें विरसता, तालु और गलेमें शोष युक्त होता है ॥ ३ ॥

कफजगलगण्डके लक्षण ।

स्थिरः सवर्णोऽगुरुरुग्रकंडूः शीतो महांश्चैष कफात्मकस्तु ॥ ४ ॥ चिराभिवृद्धिं भजते चिराद्वा प्रपच्यते मन्दरुजः कदाचित् । माधुर्य्यमास्यस्य च तस्य जन्तोर्भवेत्तथा तालुगलप्रलेपः ॥ ५ ॥

कफजगलगण्ड-निश्चल, गलेकी त्वचाके समान वर्णवाला, अल्पपीडायुक्त, अत्यंत खुजली हो, शीतल, बड़ा, वहुत समयमें बढ़ने तथा पकनेवाला तथा पाक कालमें अल्पवेदना वाला, रोगीके मुखमें मधुरता, तालु और कंठमें कफ लिहसासा रहता है ॥ ४ ॥ ५ ॥

मेदजगलगण्डके लक्षण ।

स्निग्धोऽगुरुः पांडुरनिष्टगन्धो मेदोयुतः कण्डुयुतो रुजश्च । प्रलम्बतेऽलाबुवदल्पमूलो विवर्द्धते क्षीयति चात्र देहे ॥ ६ ॥ स्निग्धास्यता तस्य भवेच्च जन्तोर्गलेऽनुशब्दं कुरुते च नित्यम् ॥ ७ ॥

मेदसे उत्पन्न हुआ गलगण्ड चिकना, भारी, पाण्डुवर्ण, दुर्गंधसहित, अल्पपीडायुक्त, खुजली हो, जडमें पतला और अलाबू (तोम्बी, लौकी) के समान लटकता रहे तथा शरीरके अनुसार घटे बढ़े । उससे मुखमें स्निग्धता और निरंतर गलेमें घुरघुर शब्द होता है ॥ ६ ॥ ७ ॥

असाध्यलक्षण ।

कृच्छ्रोच्छ्वसन्तं मृदुसर्वगात्रं सम्वत्सरातीतमरोचकार्त्तम् । क्षीणश्च वैद्यो गलगण्डयुक्तं भिन्नस्वरश्चापि विवर्जयेत्तम् ॥ ८ ॥

जो गलगण्डरोगी अत्यन्त कष्टसे श्वास लेवे, जिसका सर्व शरीर नरम होगया हो, जिसके गलगण्ड उत्पन्न हुए एकवर्ष बीतगया हो और जो अरोचक रोगयुक्त, क्षीण और स्वरभंग रोगयुक्त हो तो वैद्य उसको त्यागदेवे ॥ ८ ॥

गलगण्डकी चिकित्सा ।

स्वेदोऽनिलोत्थे गलगण्डकादौ नाड्यानिलघ्नौषधपत्रभंगैः ॥ ९ ॥

वातज गलगण्ड रोगमें प्रथम वैद्य कमलकी नाल अथवा अन्य वातनाशक औषधियोंके पत्रोंकी पिंडी बनाकर बांधे अथवा स्वेद देवे ॥ ९ ॥

निचुलं शिग्रुबीजानि दशमूलमथापि वा । आलेपनं वातगण्डे सुखोष्णं संप्रशस्यते ॥ १० ॥

समुद्रफल, सहिंजनेके बीज अथवा दशमूलकी समस्त औषधियां इनको एकत्र पीसकर सुहाता २ प्रलेप करनेसे वातज गण्डरोग दूर होता है ॥ १० ॥

स्वेदोपनाहैः कफसम्भवे तु संस्वेद्य विस्रावणमेव कुर्य्यात ॥ ११ ॥

कफजनित गलगण्डमें कफनाशक स्वेद और उपनाह कर्म करे तथा रोगीको स्वेदित करके विस्रावण करावे ॥ ११ ॥

देवदारु विशाला च कफगण्डे प्रलेपनम् । छर्दनं शीर्षरेकश्च सर्वो रेचनिको हितः ॥ १२ ॥

देवदारु और इन्द्रायन इनको एकत्र पीसकर लेप करनेसे कफज गलगण्ड रोग शमन होता है । तथा वमन, शिरोविरेचन और सर्वप्रकारकी विरेचन भी कफज गलगण्ड रोगमें हितकारी है ॥ १२ ॥

मेदःसमुत्थे तु यथोपदिष्टं विध्येच्छिरां स्निग्धतनोर्नरस्य । श्यामासुधालोहपुरीषदन्तीरसाञ्जनैश्चापि हितः प्रलेपः ॥ १३ ॥

मेदज गलगण्ड रोगमें प्रथम वैद्य रोगीको स्निग्ध करके फिर शिरावेध करावे, तथा पीपल, थूहर अथवा चूना, लोहमल, दंती और रसौत इनका लेप करे ॥ १३ ॥

मूत्रेण वालोड्य हिताय कल्कं प्रातः पिबेत्सारमहीरुहाणाम् ॥ १४ ॥

अथवा प्रातःकाल उठकर वृक्षोंके सारको गोमूत्रके साथ पीसकर पान करे ॥ १४ ॥

सर्षपान् शिग्रुबीजानि शणबीजातसीयवान् । मूलकस्य च बीजानि तक्रेणाम्लेन पेषयेत् ॥ १५ ॥ गण्डानि ग्रन्थयश्चैव गण्डमाला सुदारुणा । आलेपादेव नश्यन्ति विलयं यान्ति चाचिरात् ॥ १६ ॥

सरसा, सहिंजनेके बीज, सनके बीज, अलसी, जौ और मूलीके बीज इनको खट्टे तक्र अर्थात् मट्ठेमें पीसकर लेप करनेसे गलगण्ड, ग्रन्थि, दारुण गण्डमाला, और सर्व प्रकारके गलगण्ड इत्यादि रोग बहुत शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥

रक्षोघ्नतैलयुक्तेन जलकुम्भिकभस्मना । लेपनं गलगण्डस्य चिरोत्थस्यापि शस्यते ॥ १७ ॥

जलकुम्भीकी भस्मको भिलावेके तेलमें मिलाकर अथवा सरसोंके तेलमें मिलाकर लेप करनेसे बहुत दिनोंका पुराना गलगण्ड दूर होता है ॥ १७ ॥

दग्धं वराहपुच्छाग्रं कटुतैलसमन्वितम् । नस्येन हन्ति तरुणं गलगण्डमसंशयम् ॥ १८ ॥

सूअरकी पूंछका अग्रभाग लेकर अग्निमें जला लेवे, फिर उसको कडवे तेलमें मिलाकर नास देतो निःसंदेह गलगण्डरोग दूर होता है ॥ १८ ॥

तंडुलोदकपिष्टेन मूलेन परिलेपतः । हस्तिकर्णपलाशस्य गलगण्डः प्रशाम्यति ॥ १९ ॥

हस्तिकर्णपलाशकी जड़को चावलोंके जलमें पीस कर लेपन करनेसे गलगण्ड रोग शमन होता है ॥ १९ ॥

श्वेतापराजितामूलं प्रातः पिष्ट्वा पिबेन्नरः । सर्पिषा नियताहारो गलगंडप्रशान्तये ॥ २० ॥

सफेद कोइलकी जड़को प्रातःकाल जलमें पीसकर पान करे ओर नित्य घीके साथ भोजन खाय तो गलगण्ड रोग दूर होता है ॥ २० ॥

तिक्तालाबुफले पक्वे सप्ताहमुषितं जलम् । मद्यं वा गलगंडघ्नं पानात्पथ्यान्नसेविनः ॥ २१ ॥

कड़वी लौकीके पक्के फलमें जल अथवा मदिराको भरकर सात दिनतक रक्खा रहने देवे. फिर इसको पान करे और पथ्य भोजन करे तो अवश्य गलगण्ड रोग दूर होता है ॥ २१ ॥

कर्णयुग्मबहिः सन्धिरल्पाभ्यासे स्थितश्च यत् । उपर्य्युपरि तच्छिन्द्याद्गलगंडे शिरात्रयम् ॥ २२ ॥

दोनों कानोंके बाहरकी संधिके निकटके ऊपर भागमें तीन शिरा स्थित हैं, उनको धीरे २ छेदनेसे गलगण्ड रोग दूर होता है ॥ २२ ॥

हिंस्राद्यतैल ।

हिंस्रावचागुडूचीत्रिफलाऽनलदारुपिप्पलीकल्कैः । भृङ्गस्वरसैः सिद्धं तैलं गलगंडजिन्मधुना ॥ २३ ॥

हींस, वच, गिलोय, त्रिफला, चीता, देवदारु और पीपल इनके कल्कके द्वारा भांगरेके स्वरसमें तिलके तेलको पकावे। इस तेलको शहदके साथ सेवन करनेसे गलगण्ड रोग दूर होता है ॥ २३ ॥

अमृताद्यतैल ।

तैलं पिबद्वामृतवल्लिनिम्बहिंस्राह्वयावृक्षकपिप्पलीभिः । सिद्धं बलाभ्याश्च सदेवदारु हिताय नित्यं गलगंडरोगी ॥ २४ ॥

गिलोय, नीम, हींस, पीपल, खिरैंटी और देवदारु इनके कल्कके द्वारा तेलको सिद्ध करे । यह तेल—गलगण्डरोगियोंको सदैव हितकारी है ॥ २४॥

शाखोटाद्य तैल ।

प्रियंगुयष्टीमधुकं सकुष्ठं सपिप्पलीचन्दनमुस्तानिम्बम् । कल्कं विनिक्षिप्य विपाच्य तैलं चतुर्गुणे नस्यविधिप्रयुक्तम् । शाखोटवल्कस्वरसे च सिद्धं हन्यात्प्रवृद्धं गलगंडरोगम् २५ ॥

फूलप्रियंगू, मुलैठी, कूठ, पीपल, चन्दन, नागरमोथा और नीम इन औषधियोंके कल्कके द्वारा चौगुने सिंहोडे वृक्षकी छालके स्वरसमें तेलको पकावे। यह तेल नस्य द्वारा प्रयोग करनेसे अत्यन्त बढेहुए गलगण्ड रोगको दूर करता है ॥ २५ ॥

काञ्चनारगुग्गुलुगुटिका ।

त्रिफलायास्त्रयो भागा व्योषस्तद्द्विगुणो मतः । तस्माच्च द्विगुणं देयं काञ्चनारस्य वल्कलम् ॥ २६ ॥ एकीकृते तु चूर्णेऽस्मिन्समो देयोऽथ गुग्गुलुः । क्षौद्रस्य तु ततो दद्याद्दशभागान्विचक्षणः ॥ २७ ॥ नाडीव्रणेषु सर्वेषु गलगंडे तथैव च । सर्वासु गंडमालासु गुटिकेयं प्रशस्यते ॥२८॥

त्रिफला ३ भाग, त्रिकुटा ६ भाग और उससे दुगुनी कचनारकी छाल—सबको एकत्र पीस कूट कर चूर्ण बनालेवे और सब चूर्णकी बराबर गूगल लेवे । सबको एकजीव करले फिर दशगुने मिलाकर गोली बनावे । यह गोली—सर्वप्रकारके नाडीव्रण, सर्वप्रकारके गलगण्ड और सर्वप्रकारकी गण्डमालाओंमें हितकारी हैं ॥ २६—२८ ॥

पथ्य ।

यवमुद्गपटोलादिकटुरूक्षश्च भोजनम्। छर्दिश्च रक्तमुक्तिश्च गलगंडे प्रयोजयेत् ॥ २९ ॥

जौ, मूँग, पटोलादिफल, कटु और रूक्ष पदार्थोंका भोजन, वमन और रक्तमोक्षण ये सब गलगण्ड रोगमें प्रयोग करने चाहिए ॥ २९ ॥

इति श्रीवङ्गसेने भाषाटीकायां
गलगण्डचिकित्साधिकारः
समाप्तः ॥ ४४ ॥

अथ गण्डमालारोगाधिकार ।

गण्डमाला और अपचीके लक्षण ।

कर्कन्धुकोलामलकप्रमाणैः कक्षांसमन्यागलवङ्क्षणेषु । मेदः कफाभ्यां चिरमन्दपाकैः स्याद्गंडमाला बहुभिस्तु गंडैः ॥ १ ॥ ते ग्रन्थयः केचिदवाप्तपाकाः स्रवन्ति नश्यन्ति भवन्ति चान्ये । कालानुबन्धं चिरमादधाति सैवापचीति प्रवदन्ति केचित् ॥ २ ॥

मेद और कफसे उत्पन्न हुए कोख, कंधे, गर्दन, कंठ और वंक्षण देशमें छोटे बेर या बडे बेर अथवा आमलेके समान बहुतकालमें धीरे धीरे पकनेवाली ऐसी बहुतसी गाँठें होती हैं, उनको गण्डमाला कहते हैं । अब गण्डमालाका जो भेद अपची है उसके लक्षण कहते हैं । उपर्युक्त गण्डमालाकी ग्रन्थि पके नहीं या पक जानेपर उसमेंसे राध बहे, कोई कोई नष्ट होजाय और कोई दूसरी नवीन उत्पन्न हो ऐसी पीड़ायुक्त बहुत कालतक रहनेवाली ग्रन्थिको अपची कहते हैं ॥ १ ॥ २ ॥

साध्य और असाध्य लक्षण ।

साध्याः स्मृताः पीनसपार्श्वशूलकासज्वरछर्दियुतास्त्वसाध्याः ॥ ३ ॥

उक्त लक्षणोंवाली अपची साध्य है । यदि इसमें पीनस, पार्श्वशूल खाँसी, ज्वर और छर्दि ये उपद्रव हों तो असाध्य जानना ॥ ३ ॥

गण्डमालाकी चिकित्सा ।

सर्षपारिष्टपत्राणि दग्ध्वा भल्लातकैः सह । छागमूत्रेण संपिष्टमपचीघ्नं प्रलेपनम् ॥ ४ ॥

सरसों, नीमके पत्ते और भिलावे इनको एकत्र जलाकर भस्म कर लेवे । इसको बकरीके मूत्रमें पीस कर लेप करनेसे अपचीरोग दूर होता है ॥ ४ ॥

अश्वत्थकाष्ठं निचुलं गवां दन्तश्च दाहयेत् । वाराहमज्जसंयुक्तं भस्म हन्त्यपचीव्रणान् ॥ ५ ॥

पीपलकी छाल, जलवेंत और गोका दाँत इनको एकत्र जलाकर सुअरकी चर्बीमें मिलाकर लेप करनेसे अपचीके व्रण आरोग्य होते हैं ॥ ५ ॥

वनकार्पासजं मूलं तंडुलैः सह योजितम् । पक्वाज्ये पोलिकां खादेदपचीनाशनाय च ॥ ६ ॥

वनकपासकी जडको चावलोंमें मिलाकर दोनोंकी एकत्र पिट्ठी बनावे, फिर उस पिट्ठीकी घीमें पूरी बनावे । यह पूरी-अपचीरोगको दूर करती है ॥६॥

अलम्बुषादलोद्भूतं स्वरसं द्विपलं पिबेत् । अपच्या गण्डमालायाः कामलायाश्च नाशनम् ॥ ७ ॥

अलम्बुषा (गोरखमुंडी) के पत्तोंके ८ तोले स्वरसको पान करनेसे अपची, गण्डमाला और कामला रोग दूर होता है ॥ ७ ॥

मणिबन्धोपरिष्टाद्वा कुर्याद्रेखात्रयं भिषक् । अङ्गुलान्तरितं सम्यगपचीनां निवृत्तये ॥ ८ ॥

अपचीरोगमें हाथके पहुँचेके ऊपर और अंगुलियोंके बीचमें वैद्य शस्त्रसे तीन रेखा कर देवे तो अपचीरोग दूर होता है ॥ ८ ॥

चन्दनाद्यतैल ।

चन्दनं साभया लाक्षा वचा कटुकरोहिणी । एतैस्तैलं शृतं पीतं समूलामपचीं जयेत् ॥ ९ ॥

चन्दन, हरड, लाख, वच और कुटकी इनके कल्कके द्वारा तेलको पकावे । इस तेलको सेवन करनेसे मूलसहित अपचीरोग दूर होता है ॥ ९ ॥

व्योषाद्यतैल ।

व्योषं विडङ्गं मधुकं सैन्धवं देवदारु च । एभिस्तैलं शृतं नस्यात्कृच्छ्रामित्यपचीं जयेत् ॥ १० ॥

त्रिकुटा, वायविडंग, मुलैठी, सैंधानमक और देवदारु इनके कल्कके द्वारा तेलको पकाकर नस्य देनेसे अत्यंत कष्टसाध्य अपची रोग दूर होता है ॥ १० ॥

काकादन्यादितैल ।

काकादनीशिफाकल्कैर्निर्गुंडयाः स्वरसैः शृतम् । आरनालैश्च कटुकं तैलं स्यादपचीहरम् ॥ ११ ॥

काकादनीकी जडके कल्कके द्वारा निर्गुण्डीके स्वरसमें और काँजीमें कडवे तेलको पकावे । यह तेल-अपचीरोगको हरता है ॥ ११ ॥

महाअजमोदाद्यतैल ।

अजमोदा ससिंदूरं श्रीवासं रजनीद्वयम् । क्षारद्वयमपामार्गं हरितालं मनःशिलाः ॥ १२ ॥ आर्द्रकागुरु वा शुण्ठी जालिनी सेन्द्रवारुणी । सर्वे द्रव्याः समानाः स्युर्भागाश्चार्द्धपलोन्मिताः ॥ १३ ॥ छागेनाष्टगुणेनैव मूत्रेण मृदुवह्निना । कटुतैलं पचेदेभिः स्नुह्यर्कपयसा सह ॥ १४ ॥ उत्पाटयमानामपचीं नस्याद्विपर्यये नृणाम् । उत्पन्नामामपक्वाश्च नस्याभ्यङ्गेन नाशयेत् ॥ १५ ॥ विशीर्णकुथितात्यर्थं निर्गन्धा पूयवाहिनी । चिरजाऽसाध्यकल्पाऽपि तैलेनानेन साध्यते ॥ १६ ॥ युक्ताहारविहारेण नस्यदानेन चैव हि । रोहिता क्षिप्रमेवं हि सप्तरात्रान्न संशयः ॥ १७ ॥

अजमोद, सिन्दूर श्रीवासगोंद, हलदी, दारुहलदी, जवाखार सज्जी, चिरचिटा, हरताल, मैनशिल, अदरख, अगर, सोंठ, कड़वीतोरई और इन्द्रायन ये प्रत्येक औषधि दो दो तोले लेकर कल्क बनावे। फिर इस कल्कमें बकरीका मूत्र८ भाग, थूहरका दूध और आकका दूध समान भाग और कडवा तेल एक प्रस्थ सबको यथाविधिसे मिलाकर तेलको पकावे । इस तेलको नस्य और अभ्यंग कर्ममें प्रयोग करनेसे कच्ची और पकी सब प्रकारकी अपची तथा जो सड गई हो, जिसमेंसे अत्यंत राध बहती हो तथा जिसमें अधिकतर पीडा हो और दुर्गंध आती हो, बहुत दिनोंकी पुरानी और असाध्य अपची भी नष्ट होजाती है । इस तेलकी विधिपूर्वक नास देनेसे और विधिपूर्वक इसपर आहार विहार करनेसे सात दिनमें ही अपचीरोग अवश्य दूर होता है ॥ १२–१७ ॥

माक्षिकाढ्यः सकृत्पीतः क्वाथो वरुणमूलजः । गंडमालां हरत्याशु चिरकालानुबन्धिनीम् ॥ १८ ॥

वरनेकी छालको पीसकर क्वाथ बनाकर शहद मिलाकर पान करनेसे बहुत दिनोंकी पुरानी गण्डमाला दूर होती है ॥ १८ ॥

पिष्टा ज्येष्ठ्यम्बुना पेयाः काञ्चनारत्वचः शुभाः । विश्वभेषजसंयुक्ता गंडमालाहराः पराः ॥ १९ ॥

कचनारकी छाल और सोंठ इनको एकत्र चावलोंके जलमें पीसकर पान करनेसे गण्डमालारोग दूर होता है ॥ १९ ॥

पलमर्द्धपलं वापि पिष्ट्वा तंडुलवारिणा । काञ्चनारत्वचः पीत्वा मुच्यते गंडमालया ॥ २० ॥

चार तोले अथवा दो तोले कचनारकी छालको लेकर चावलोंके जलके साथ पीसकर पान करनेसे गण्डमाला रोग दूर होता है ॥ २० ॥

जिह्वाधः पार्श्वयोर्मूलाच्छिरा द्वादश कीर्तिताः । तासां स्थूलशिरे द्वे तु छिद्यते च शनैः शनैः ॥ २१ ॥ बडिशेनैव संगृह्य कुशपत्रेण बुद्धिमान् ।

स्रुते रक्ते व्रणे तस्मिन्दद्यात्सगुडमार्द्रकम् । भोजनं चानभिष्यन्दि यूषः कौलित्थमिष्यते ॥ २२ ॥

जीभके पार्श्वके अधोभागमें १२ नस हैं उनमेंकी दो स्थूल शिराओंको वड़िश नामका यंत्र होता है जैसी मछली कुण्डी होती है उससे ग्रहण कर धीरे २ कुशपत्रनामक शस्त्रसे छेदन करे, जब रुधिर निकलने लगे तब उसमें गुडके साथ अदरखको मिलाकर लगावे तथा अनभिष्यन्दि पदार्थोंका और कुलथीका यूष पथ्य देवे ॥२१॥२२॥

नस्यं वै रेचनं योज्यं वमनश्च प्रयोजयेत् । गंडमालाप्रशान्त्यर्थं यवमुद्गादिभोजनम् ॥ २३ ॥

गण्डमालारोगमें नस्य, विरेचन, वमन और जौ, मूँग आदिका भोजन ये सब हितकारी हैं ॥ २३ ॥

वचाद्यघृत।

वचा शटी हरिद्रे द्वे देवदारु महौषधम् । हरीतकी चातिविषा मुस्तकेन्द्रयवाः समाः ॥ २४ ॥ एतान्दशपलान्भागांश्चतुर्द्रोणेऽम्भसः पचेत् । पादशेषे जले तस्मिन्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥२५॥ कल्कं दत्त्वा पलोन्मानैः क्वाथ्यद्रव्यैः सुपेषितैः। प्रक्षिप्य त्रिगुणं क्षौद्रं व्योषचूर्णात्पलानि षट् ॥ २६ ॥ यथाकालं पिबेन्मात्रां यथेष्टाहारमेव च । गंडमालां निहन्त्याशु बहुवर्षसमुद्भवाम् ॥ २७ ॥ कासं श्वासं प्रतिश्यायं गलगंडं मुखामयम् ॥

वच, कचूर, हलदी, दारुहलदी, देवदारु, सोंठ, हरड़, अतीस, नागरमोथा और इन्द्रजौ ये प्रत्येक औषधि दश दश पल लेकर चार द्रोण जलमें पकावे। जब पकते पकते चौथाई भाग जल बाकी रह जाय तब उतारकर छान लेवे। फिर इस काथमें उपर्युक्त काथकी प्रत्येक औषधिका कल्क चार २ तोले, घृत १ प्रस्थ, त्रिकुटेका चूर्ण २४ तोले और शहद आधसेर मिलाकर यथाविधिसे घृतको पकावे । इसको यथासमय रोगीके बलाबलको विचारकर सेवन करावे और इसपर यथेष्ट भोजन देवे । यह तेल-बहुत पुरानी गण्डमाला, खांसी, प्रतिश्याय और गलगण्ड तथा समस्त मुखरोगोंको दूर करता है ॥ २४ ॥ २५ ॥ ॥ २६ ॥ २७ ॥

चक्रमर्दादिसिन्दूरतैल ।

चक्रमर्दकमूलस्य कल्कं कृत्वा विपाचयेत् । केशराजरसे तैलं कटुकं मृदुनाग्निना ॥ २८ ॥ पक्का शेषे विनिःक्षिप्य सिन्दूरमवतारयेत् । एतत्तैलं निहन्त्याशु गंडमालां सुदारुणाम् ॥ २९ ॥

चकवड़की जड़का कल्क बनाकर उसके द्वारा कुकरभांगरेके रसमें कडवे तेलको पकावे । जब पक कर सिद्ध हो जाय तब सिन्दूर डालकर उतार लेवे । यह तेल दारुण गण्डमालाको दूर कर देता है२८॥२९

निर्गुण्डीतैल।

निर्गुंडीस्वरसे तैलं लाङ्गलीमूलकल्कितम् । तैलनस्यान्निहन्त्याशु गंडमालां सुदारुणाम् ॥ ३० ॥

कलिहारीकी जड़का कल्क और निर्गुण्डीका स्वरस इनके द्वारा तेलको पकावे। इस तेलकी नास देनेसे दारुण गण्डमाला रोग दूर होताहै ॥ ३० ॥

गुञ्जाद्यतैल।

गुञ्जामूलफलैस्तैलं तोये द्विगुणिते पचेत् । नस्याभ्यङ्गेन शमयेद्गंडमालां सुदारुणाम् ॥ ३१ ॥

घुंघुचीकी जड़ और फलोंके दूने काथमें तेलको पकाकर उसकी मालिश अथवा नास देनेसे दारुण गण्डमाला रोग दूर होता है ॥ ३१ ॥

तुम्बीतैल।

विडङ्गानलसिन्धूत्थरास्नोग्राक्षारदारुभिः। तैलं चतुर्गुणं सिद्धं कटुतुम्बीजलेन वा ॥ गंडमालापहं श्रेष्ठं गलगंडहरं परम् ॥ ३२ ॥

वायविडंग, चीता, सेंधानमक, रायसन, वच, जवाखार और देवदारु इनके कल्कके द्वारा चौगुने कड़वी तोम्बीके स्वरस अथवा काथमें तेलको पकावे। यह तेल गण्डमाला और गलगण्डको नष्ट करता है३२

शाखोटकबिल्वाद्यतैल ।

गंडमालापहं तैलं सिद्धं शाखोटकत्वचा । बिल्वाश्वमारनिर्गुंडीसाधितं चापि नावनम् ॥ ३३ ॥

सिहोडेकी छाल, बेलगिरी, कनेर और निर्गुण्डी इनके कल्कके द्वारा तेलको पकावो।इस तेलको नस्यादिकर्म्मोंमें प्रयोग करनेसे गण्डमाला रोग दूर होता है ॥ ३३ ॥

छुच्छुन्दरीतैल ।

छुच्छुन्दर्य्या विपक्वन्तु क्षणात्तैलवरं ध्रुवम् । अभ्यङ्गान्नाशयेन्नृणां गंडमालां सुदारुणाम् ॥ ३४ ॥

छुछूंदरको तेलमें पकाकर उस तेलको अभ्यंगमें प्रयोग करनेसे दारुण गण्डमालारोग दूर होता है ॥ ३४ ॥

त्रिफलादिगुग्गुलु ।

त्रिफला त्रिवृता दन्ती नीलिनी चतुरंगुलैः । पञ्चविंशतिसंख्याकैः प्रत्येकं पलमात्रया ॥३५॥ कथितैः कुट्टितैरेभिश्चतुर्द्रोणे प्रमाणतः। पचेत्तु सलिले तावद्यावद्द्रोणश्च शेषितम् ॥ ३६ ॥ पञ्चाशत्तत्र निःक्षिप्य गुग्गुलोस्तु पलान्यपि । क्काथयेत्सघनं यावत्पुनस्तत्पूर्ववत्पचेत् ॥ ३७॥ ततस्तस्मिन्घनीभूते त्वगेलानागकेशरम् । त्रिकटुत्रिफलापर्णीयवानीजीरकाणिच॥३८॥ पिप्पलीमूलदहनहपुषाकृष्णजीरकम् । बाष्पिका चाजमोदा च तिन्तिडी चाम्लवेतसम् ॥ ३९ ॥ सौवर्चलयुतं कृत्वा श्लक्ष्णचूर्णं विनिक्षिपेत् । प्रत्येकमर्द्धपलिकैर्भागैः सम्यग्विचक्षणः ॥४०॥ ततोऽक्षमात्रां गुटिकां भक्षयेच्च दिने दिने । गंडमालार्बुदग्रन्थिजङ्घास्तम्भोदरार्दितः ॥ ४१ ॥

त्रिफला, निसोत, दंती, नीलनीके बीज और अण्डकी जड ये प्रत्येक औषधि पचीस २ पल लेकर कूटकर चार द्रोण जलमें पकावे। जब पकते २ चौथाई भाग अर्थात् एक द्रोण जल शेष रह जाय तब उतारकर छान लेवे। फिर उस काथमें ५० पल गूगल डाल कर पकावे जब गूगल गलजाय उतारकर फिर छाने और फिर आगपर पकावे जब पकते पकते गाढा हो जाय तब इसमें दालचीनी, इलायची, नागकेशर, त्रिकुटा, त्रिफला, शालिपर्णी, मुद्गपर्णी, अजवायन, जीरा,पीपलामूल, चीता, हाउबेर, कालाजीरा, हिंगुपत्री, अजमोद, तिंतिडी, अमलवेंत और कालानमक ये प्रत्येक औषधि दो २ तोले लेकर बारीक पीसकर डाल देवे फिर खूब कूटकर एक दो तोलेकी गोलियाँ बना लेवे इनमेंसे प्रतिदिन एक गोली खाय । यह गोली-गण्डमाला, अर्बुद, ग्रन्थि, जंघास्तम्भ और आर्दितरोग इन सबको दूर करती है ॥ ३५-४१ ॥

अनेनैव विधानेन गिरिजं वा प्रयोजयेत् ॥ ४२ ॥

अथवा इसी प्रकारसे उक्त औषधियोंमें गूगलके स्थानमें या इसी प्रयोगमें शिलाजीतको डाल कर गोली बनाकर सेवन करे ॥ ४२ ॥

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायां गण्डमालाधिकार समाप्त ॥ ४५ ॥

अथ ग्रन्थिरोगाधिकार ।

वातादयो मांसमसृग्प्रदुष्टाः संदूष्य मेदश्च तथा शिराश्च । वृत्तोन्नतं विग्रथितं तु शोथं कुर्वन्त्यतो ग्रन्थिरिति प्रदिष्टः ॥ १ ॥

अत्यंत दुष्ट हुए वातादिदोष-मांस, रुधिर, मेद और नसोंको दूषित करके गोल, ऊँची और गाठके समान सुजनको उत्पन्न कर देते हैं उसको ग्रन्थिरोग कहते हैं ॥ १ ॥

वातजग्रन्थिके लक्षण।

आयम्यते वृश्च्यति तुद्यते च प्रत्यस्यते मथ्यति भिद्यते च। कृष्णो मृदुर्बस्तिरिवाततश्च भिन्नः स्रवेच्चानिलजोऽस्रमच्छम् ॥ २ ॥

वातजग्रन्थिरोगमें ग्रन्थि खिंचती और बढती हुई मालूम होती है, तोडनेकीसी पीडा जान पडे, छेदन सरीखी तथा उठाकर फेंकनेके समान जान पडे, मथनेके समान मालूम हो, फोडने सरीखी पीडा हो, ग्रन्थि काली, कोमल एवं मसकके समान भरीसी दीखे और उसके फूटनेसे स्वच्छ रुधिर निकले॥२॥

पित्तजग्रन्थिके लक्षण।

दन्दह्यते शुष्यति चुष्यते च पापच्यते प्रज्वलतीव चापि। रक्तः सपीतोऽप्यथवापि पित्ताद्भिन्नः स्रवेदुष्णमतीव चास्रम् ॥ ३ ॥

पित्तजग्रन्थिमें दाह होती है, सोखनेके समान और चूसने सरीखी पीडा हो, एवं पकनेके समान और जलनेके समान पीडा हो, और वह लाल पीले रंगकी होती है उसके फूटनेपर उसमेंसे रक्तके रंगके समान राध अथवा दुष्ट रुधिर स्रवता है॥३॥

कफजग्रन्थिके लक्षण।

शीतो विवर्णोऽल्परुजोऽतिकंडूः पाषाणवत्संहननोपपन्नः। चिराभिवृद्धिश्च कफप्रकोपाद्भिन्नः स्रवेच्छुक्लघनं च पूयम् ॥ ४ ॥

कफजग्रन्थि शीतल, शरीरके वर्णके समान वर्णवाली, किंचित् पीडायुक्त, अत्यन्त खुजलीवाली, पत्थरके समान कठिन और बडी, बहुत देरमें बढने और पकनेवाली होती है एवं फूटनेसे उसमें श्वेत और गाढी राध निकलती है ॥ ४ ॥

मेदजग्रन्थिके लक्षण।

शरीरवृद्धिक्षयवृद्धिहानिः स्निग्धो महान्कंडुयुतोऽरुजश्च। मेदः कृतो गच्छति चात्र भिन्ने पिण्याकसर्पिःप्रतिमन्तु मेदः ॥ ५ ॥

मेदजग्रन्थि शरीरके बढनेसे बढे और शरीरके घटनेसे घटे तथा चिकनी, बडी, खुजलीयुक्त और अल्पपीडावान् होती है। इसके फूटनेपर इसमेंसे खलके समान और घृतकी सदृश मेद निकलता है ॥ ५॥

शिराजग्रन्थिके लक्षण।

व्यायामजातैरबलस्य तैस्तैराक्षिप्य वायुश्च शिराप्रतानम्। सङ्कोच्य संपीड्य विशोष्य चापि ग्रन्थिं करोत्युन्नतमाशु वृत्तम् ॥ ६ ॥

निर्बल मनुष्य अत्यंत बलके अर्थात् परिश्रमके कार्य करे तब उसके वायु कुपित होकर नसोंके जालको संकुचित, पीडित और सुखाकर ऊँची तथा गोल ग्रन्थिको उत्पन्न करता है ॥ ६ ॥

साध्यासाध्यलक्षण।

ग्रन्थिः शिराजः स तु कृच्छ्रसाध्यो भवेद्यदि स्यात्सरुजश्चलश्च। अरुक्स एवाप्यचलो महांश्च मर्मोत्थितश्चापि विवर्जनीयः ॥ ७ ॥

यदि शिराजग्रन्थि पीडायुक्त और चंचल हो तो कष्टसाध्य और जो पीडारहित, निश्चल तथा बडी और मर्मस्थानोंमें उत्पन्न हुई हो तो असाध्य है ॥ ७ ॥

ग्रन्थिकी चिकित्सा।

ग्रन्थिष्वथामेषु भिषग्विदध्याच्छोथक्रियां विस्तरतो विधिज्ञः। रक्षेद्बलं चास्य नरस्य नित्यं तद्रक्षितं व्याधिबलं निहन्ति ॥ ८ ॥

वैद्य अपक ग्रंथिमें प्रथम विधिपूर्वक शोथनाशक चिकित्सा करे। इसमें नित्य रोगीके बलकी रक्षा करनी चाहिए, क्योंकि बलकी रक्षा करनेसे व्याधिका बल घट जाता है ॥ ८ ॥

हिंस्रा सरोहिण्यमृताऽथ भार्ङ्गी स्योनाकबिल्वागुरुकृष्णगन्धाः। गोपि-

त्तपिष्टाः सह तालपत्र्या ग्रन्थैर्विधेयोऽनिलजे प्रलेपः ॥ ९ ॥

हींस, कुटकी, गिलोय, भारंगी, स्योनापाठा, बेलगिरी, अगर, सहिंजना और मुसली इन सबको एकत्र गोपित्तमें पीस कर प्रलेप करनेसे वातजग्रंथि रोग दूर होता है ॥ ९ ॥

कुर्य्यात्स्वेदोपनाहांश्च तथान्यान्सिद्धलेपनान् ॥ १० ॥

ग्रन्थिरोगमें स्वेद और उपनाह कर्म्म करे तथा अन्यान्य सिद्ध प्रलेपादिक प्रयोग करे ॥ १० ॥

विदार्य वापक्कमपोह्य पूयं प्रक्षाल्य बिल्वार्कनरेन्द्रतोयैः । तिलैश्च पश्चाङ्गुलपत्रमिश्रैः संस्वेदयेत्सैन्धवसंप्रयुक्तैः ॥ ११ ॥

पक्कग्रन्थिको शस्त्रसे चीर कर उसकी राध निकाल देवे और फिर बेल, आक और अमलतास इनके पत्तोंका क्काथ बनाकर उससे व्रणको धोवे तथा तिल और अण्डके पत्तोंको एकत्र पीसकर उसमें सैंधानमक मिलाकर स्वेद देवे ॥ ११ ॥

शुद्धं व्रणश्चाप्युपरोहयेत्तु तैलेन रास्ना सरलान्वितेन । विडङ्गयष्टीमधुकामृताभिः सिद्धेन वा क्षीरसमन्वितेन ॥ १२ ॥

ग्रन्थिके शुद्ध व्रणको रायसन, धूपसरल, वायविडंग, मुलैठी और गिलोय इनके द्वारा दूधमें तेलको पकाकर उस तेलसे भरे ॥ १२ ॥

जलायुकाः पित्तकृते हितास्तु क्षीरोदकाभ्यां परिषेचनञ्च । काकोलिवर्गस्य तु शीतलानि पित्ते कषायाणि सशर्कराणि ॥ १३ ॥ द्राक्षारसेनेक्षुरसेन चापि चूर्णं पिबेद्वापि हरीतकीनाम् ॥ १४ ॥

पित्तजग्रन्थिरोगमें प्रथम जौंक लगवाना हितकारी है । फिर दूधमें जल मिला कर सेचन करे । तथा काकोल्यादि वर्गकी शीतल औषधियोंके द्वारा क्काथ बनाकर उसमें मिश्री मिलाकर सेवन करे । अथवा दाखका रस और ईखका रस इनमें हरडका चूर्ण डालकर पान करे ॥ १३ ॥ १४ ॥

मधूकजम्ब्वार्जुनवेतसानां त्वग्भिः प्रदेहानवधारयेच्च । सशर्करैर्वा तृणमूलकल्कैर्दिह्यादभीक्ष्णं मुचुकुन्दजैर्वा ॥ १५ ॥ विदार्य चा पक्कमपोह्य पूयं धौतं कषायेण वनस्पतीनाम् । तैलैः सयष्टीमधुकैर्विशोध्य सर्पिः प्रयोज्यं मधुकैर्विपक्कम् ॥ १६ ॥ हृतेषु दोषेषु यथानुपूर्व्या ग्रन्थौ भिषक् श्लेष्मसमुत्थिते च । स्विन्नस्य विम्लापनमेव कुर्य्यादंगुष्ठलोहोपलवेणुदण्डैः ॥ १७ ॥

मुलैठी, जामुन, अर्जुन और बेत इनकी छालको एकत्र पीस कर प्रलेप करे । अथवा तृणपंचमूलके कल्कमें खाँड मिलाकर अथवा मुचकुन्दके फूलोंको पीसकर प्रलेप करे । पक्कग्रन्थियोंको चीर कर वनौषधियोंके क्काथसे धोकर राधको अलग कर देवे, पश्चात् मुलैठीके कल्कसे तेलको पका कर उस तेलके द्वारा शोधन करे । अथवा मुलैठीके कल्कके द्वारा घृतको पका कर प्रयोग करे तथा दोषोंको हरण करके फिर क्रमानुसार चिकित्सा करे । यह सब कफकी ग्रन्थिमें चिकित्सा करनी चाहिए। कफकी ग्रन्थिमें प्रथम स्वेद देकर वैद्य अँगूठा, लोहा, पत्थर, बाँस और लकडी इनसे विम्लापन कर्म्म करे ॥ १५ ॥ ॥ १६ ॥ १७ ॥

विकङ्कतारग्वधकाकणन्तीकाकादनीतापसवृक्षमूलैः । आलेपयेदेनमलाबुभार्ङ्गीकरञ्जकालामदनैश्च विद्वान् ॥ १८ ॥

विकंकत (कंटाई), अमलतास, चिरचिटा, कौआठोडी और हिंगोटकी जड इन सबको एकत्र पीस कर प्रलेप करे अथवा कडवी तोम्बी, भारंगी, करंज, निसोत और मैनफल इनको एकत्र पीस कर प्रलेप करे ॥ १८ ॥

मेदःसमुत्थितं ग्रन्थिं तिलकल्कैः प्रदिह्य च । संछाद्य वस्त्रपट्टेन स्वेदयेत्तप्तलोहकैः ॥ पाटयित्वा तु शस्त्रेण हत्वा मेदोऽग्निना दहेत् ॥ १९ ॥

मेदजग्रन्थिरोगमें तिलोंके कल्कका अथवा तिलकी खलको पीस कर प्रलेप करे तथा उसको वस्त्रसे आच्छादित करके अग्निमें तप्त किये हुए लोहेके द्वारा स्वेद देवे, एवं शस्त्रसे चीर मेदको निकालकर और अग्निसे दग्ध करे ॥ १९ ॥

ग्रन्थीनमर्मप्रभवानपक्वानुद्धृत्य चाग्निं विदधीत वैद्यः । क्षारेण चैतान्प्रतिसारयेच्च संलिख्य संलिख्य यथोपदेशम् ॥ २० ॥

जो ग्रन्थि मर्म्मस्थानोंमें उत्पन्न नहीं हुई है या पकी नहीं है, उन सबोंको छेद करके उस स्थानमें अग्निसे दग्ध अथवा क्षारादिकर्म्म प्रयोग करे॥२०॥

लेपनं शंखचूर्णेन सह मूलस्य भस्मना । कफार्बुदापहं कुर्य्याद्ग्रन्थ्यादिषु विशेषतः ॥ २१ ॥

शंखका चूर्ण और सहिंजनेके मूलकी भस्म इनको एकत्र मिला कर प्रलेप करनेसे कफका अर्बुद और विशेष करके ग्रंथिरोग दूर होता है ॥ २१ ॥

ग्रन्थीनुद्धृत्य वा पक्वं वह्निकर्म्म प्रयोजयेत् । पश्चात्क्षारेण संशोध्य व्रणवत्समुपाचरेत् ॥ २२ ॥

अपक्वग्रन्थिको काट कर अग्निके द्वारा दग्ध करे, पश्चात् क्षारसे संशोधन करके व्रणके समान चिकित्सा करे ॥ २२ ॥

शिराग्रन्थिं परित्यज्य शेषं यत्नेन साधयेत् ॥ २३ ॥

एक शिराजग्रन्थिको छोडकर शेष सर्व प्रकारकी ग्रन्थियोंकी यत्नपूर्वक चिकित्सा करनी चाहिए॥२३॥

दन्तीचित्रकमूलत्वक् सुधार्कपयसी गुडः । भल्लातकास्थिकाशीसं लेपो भिन्द्याच्छिलामपि ॥ २४ ॥

दन्ती, चीतेकी जड़की छाल,थूहर अथवा आकका दूध, पुराना गुड, भिलावेकी मींग और कसीस इन सबको एकत्र पीस कर प्रलेप करनेसे ग्रंथि छिन्न होकर गिर जाती है ॥ २४ ॥

स्वर्जिकामूलकक्षारः शङ्खचूर्णसमन्वितः । प्रलेपे विहितः श्लक्ष्णो हन्ति ग्रन्थ्यर्बुदादिकान् ॥ २५ ॥

सज्जी, मूलीका खार और शंखका चूर्ण इनको एकत्र बारीक पीस कर लेप करनेसे ग्रन्थि और अर्बुद रोग दूर होता है ॥ २५ ॥

यानि प्रतिद्वादश चांगुलानि मेढ्रञ्च बस्तिं परिवर्ज्य सम्यक् । विदार्य मत्स्याण्डनिभानि वैद्यो विकृष्य जालं पललं विदध्यात् ॥ २६ ॥

लिंग और बस्तिस्थानके बारह अंगुल स्थानको अच्छे प्रकारसे छोड़ कर उसके निकटके स्थानको शस्त्रसे चीरे । उस मछलीके अण्डके समान गाँठको विधिपूर्वक चीरकर उसमेंसे मांसके सफेद २ जालेको निकाल देवे ॥ २६ ॥

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायां ग्रंथिरोगाधिकारः समाप्तः ॥ ४६ ॥

अथार्बुदरोगाधिकारः ।

अर्बुदरोगका सम्प्राप्ति निदान ।

गात्रप्रदेशे क्वचिदेव दोषाः संमूर्च्छिता मांसमसृक्प्रदूष्य । वृत्तं स्थिरं मन्दरुजं महान्तमनल्पमूलं चिरवृद्धिपाकम् ॥ कुर्वन्ति मांसोच्छ्रयमत्यगाधं तदर्बुदं शास्त्रविदो वदन्ति ॥ ॥ १ ॥ वातेन पित्तेन कफेन चापि र-

क्तेन मांसेन च मेदसापि । यज्जायते तस्य च लक्षणानि ग्रन्थेः समानानि सदा भवन्ति ॥ २ ॥

शरीरके किसी भागमें दूषित हुए वातादि दोष मांस और रक्तको दूषित करके गोल,स्थिर, कोमल, अल्प पीड़ायुक्त, बड़ी तथा गहरी जडवाली, देरमें बढ़ने और पकनेवाली ऐसी मांसकी ग्रंथि शरीरके ऊपर उत्पन्न होती है, उसको वैद्य अर्बुद कहते हैं। वात, पित्त, कफ, मांस, रक्त और मेदा इन भेदोंसे अर्बुद रोग छः प्रकारका होता है । इसके लक्षण ग्रंथिके समान होते हैं ॥ १ ॥ २ ॥

रक्तार्बुदके संप्राप्ति लक्षण ।

दोषः प्रदुष्टो रुधिरं शिरास्तु संकोच्य संपीड्य ततस्त्वपाकम् । स स्रावमुन्नह्यति मांसपिण्डं मांसांकुरैराचितमाशु वृद्धिम् ॥ ३ ॥ करोत्यजस्रं रुधिरं सदुष्टमसाध्यमेकं रुधिरात्मकन्तु । रक्तक्षयोपद्रवपीडितत्वात्पांडुर्भवेत्सोऽर्बुदपीडितस्तु ॥ ४ ॥

अपने कारणोंसे दुष्ट हुए दोष शिरागत रुधिरको संकुचित और पीडित कर मांसके गोलेको उत्पन्न करते हैं । वह किंचित् पकानेवाला तथा अल्पस्राव-युक्त हो, एवं मांसांकुरोंसे व्याप्त और बहुत जल्दी बढ़ता है जिसमें रुधिर स्रवे इसको रक्तार्बुद कहते हैं । यह असाध्य है। रक्तार्बुदरोगीके रुधिरक्षयके उपद्रवोंके होनेसे उसके शरीरका रंग पीला पड जाता है ॥ ३ ॥ ४॥

मांसार्बुदके लक्षण ।

मुष्टिप्रहारादिभिरर्दितेऽङ्गे मांसं प्रदुष्टञ्जनयेच्च शोथम् । अवेदनं स्निग्धमनन्यवर्णमपाकमश्मोपममप्रचाल्यम् ॥ ५ ॥ प्रदुष्टमांसस्य नरस्य गाढमेतद्भवेन्मांसपरायणस्य । मांसार्बुदन्त्वेतदसाध्यमुक्तं साध्येष्वपीमानि विवर्जयेत्तु ॥ ६ ॥ संप्रसुतं मर्मणि यच्च जातं स्रोतःसु वा यच्च भवेदचाल्यम् ।

मुष्टि आदिके प्रहारसे शरीरमें जो पीडा होती है, उस पीडासे मांस दूषित होकर सूजनको उत्पन्न करता है वह सूजन पीडारहित हो, चिकनी, शरीरके रंगके समान हो, इसका पाक नहीं हो और पत्थरके समान स्थिर हो । जिस मनुष्यका मांस दूषित हो जाय अथवा जो मनुष्य सदैव मांस खाते हैं उनके यह अर्बुद रोग उत्पन्न होता है । यह मांसार्बुद असाध्य है तथा साध्य अर्बुदोंमें भी निम्नोक्त अर्बुद त्याज्य हैं जिसमें स्राव हो, जो मर्म्मस्थानोंमें उत्पन्न हुआ हो अथवा नासिकादिके छिद्रोंमें उत्पन्न हुआ हो और जो अचल हो ऐसा अर्बुद असाध्य है ॥ ५ ॥ ६ ॥

अध्यर्बुदके लक्षण ।

यज्जायतेऽन्यत्खलु पूर्वजाते ज्ञेयं तदध्यर्बुदमर्बुदज्ञैः ॥ ७ ॥

प्रथम जिस स्थानोंमें अर्बुद उत्पन्न हुआ हो उसीके ऊपर दूसरा अर्बुद उत्पन्न हो जाय तो उसको अध्यर्बुद कहते हैं ॥ ७ ॥

द्विरर्बुदके लक्षण ।

यद्द्वन्द्वजातं युगपत्क्रमाद्वा द्विरर्बुदं तच्च भवेदसाध्यम् ॥ ८ ॥

एक साथ दो अर्बुद अथवा एकके पश्चात् दूसरा अर्बुद क्रमसे उत्पन्न हो उसको द्विरर्बुद कहते हैं । यह असाध्य है ॥ ८ ॥

अर्बुद न पकनेका कारण ।

न पाकमायान्ति कफाधिकत्वान्मेदोबहुत्वाच्च विशेषतस्तु । दोषस्थिरत्वाद्ग्रथनाच्च तेषां सर्वार्बुदान्येव निसर्गतस्तु ॥ ९ ॥

कफकी अधिकतासे या विशेष करके मेदकी अधिकतासे एवं दोषोंकी स्थिरतासे अथवा दोषोंके ग्रन्थिरूप होनेसे सर्वप्रकारके अर्बुद पकते नहीं हैं ॥ ९ ॥

अर्बुदकी चिकित्सा ।

जयेद्विद्रधिवत्पूर्वमर्बुदं प्रच्छनादिभिः । क्षाराग्निभ्यां दहेच्चापि प्रदेहैर्विविधैर्जयेत् ॥ १० ॥

अर्बुदरोगमें प्रथम विद्रधिके समान पंछने आदि लगवावें, तथा क्षार और अग्निके द्वारा दग्ध करे एवं अनेक प्रकारके प्रलेपादि प्रयोग करे ॥ १० ॥

कर्कारुकैर्वारुकनारिकेलप्रियालपक्कागुलबीजपूरैः । वातार्बुदं क्षीरघृताम्लसिद्धैरुष्णैः सतैलैरुपनाहयेत्तु ॥ ११ ॥

पेठा, बडीककडी, नारियल, चिरौंजी, अंड और बिजौरानींबू इन सबको दूध, घी और कांजीमें मिलाकर इनके द्वारा तेलको पकावे। इस उष्ण तेलके द्वारा उपनाह कर्म्म करे। यह प्रयोग–वातार्बुदको नष्ट करता है ॥ ११ ॥

स्वेदं विदध्यात्कुशलस्तु नाड्या शृङ्गेण रक्तं बहुशो हरेच्च । वातघ्ननिर्यूहपयोऽम्लभागैः सिद्धां शताह्वां त्रिवृतां पिबेद्वा ॥ १२ ॥

वातार्बुदरोगमें प्रथम वैद्य विधिपूर्वक स्वेद निकलवावे, अथवा सिंगी या तोंबीसे रुधिर निकलवावे तथा वातनाशक क्वाथ, दूध खटाई (कांजी) इत्यादिमें सौंफ अथवा निसोतको सिद्ध करके पान करे ॥ १२ ॥

स्वेदोपनाहा मृदवस्तु पथ्याः पित्तार्बुदे कायविरेचनश्च । विघृष्य चोदुम्बरशाकगोजीपत्रैर्भृशं क्षौद्रयुतैः प्रलिम्पेत् ॥ १३ ॥

पित्तजन्य अर्बुदरोगमें मृदुस्वेद, मृदुउपनाह, मृदु पथ्य और मृदुविरेचन देवे। तथा गूलर और गूलरके पत्तोंको शहदमें मिलाकर प्रलेप करे॥१३ ॥

सूक्ष्मीकृतैः सर्जरसप्रियंगुपतङ्गलोध्रार्जुनयष्टिकाह्वैः ॥ १४ ॥

राल, फूलप्रियंगू, पतंग, लोध, अर्जुन और मुलैठी इन सबको एकत्र बारीक पीसकर प्रलेप करनेसे अर्बुद रोग नष्ट होता है ॥ १४॥

शुद्धस्य जन्तोः कफजेऽर्बुदे तु रक्ते च सिक्ते च ततोऽर्बुदं तत । कपोतपारावतविड्विमिश्रैः सकांस्यनीलीशुकलाङ्गलाख्यैः ॥ १५ ॥ सूक्ष्मैः काकादनमूलमिश्रैः क्षारप्रदिग्धैरथवा प्रदिह्येत ॥ १६ ॥

कफज अर्बुदरोगमें वमन और विरेचनादिसे रोगीको शुद्ध करे. तथा रक्तजअर्बुदरोगमें प्रथम रक्तमोक्षण करावे। पश्चात् कबूतर और पारेवकी विष्टा, नीला थोथा, गंधक, कलिहारी और कौवाठोंडीकी जड इन सबको बारीक पीसकर क्षार मिलाकर दग्ध करे। अथवा उपर्युक्त औषधियोंको एकत्र मिलाकर प्रलेप करे ॥ १५ ॥ १६ ॥

निष्पावपिण्याककुलत्थकल्कैर्मांसप्रगाढैर्दधिमर्दितैश्च। लेपं विदध्यात्क्रमशो यथात्र मुञ्चन्त्यपत्यान्यथ मक्षिका वा। अल्पावशिष्टं कृमिभिः प्रजग्धं लिखेत्ततोऽग्निं विदधीत पश्चात् ॥ १७ ॥

लोबिया, खल और कुलथीका कल्क इनको मांस और दहीमें मिलाकर खूब अच्छे प्रकारसे मर्दन करके लेप करनेसे कृमि और माक्षिकादि अपनी सन्तानोंको छोडकर भागजाते हैं। फिर कृमि आदिके खानेसे बचे हुए अर्बुदरोगमें प्रथम लेखन पश्चात् अग्नि कर्म्म कराना योग्य है ॥ १७ ॥

अशेषदोषाणि हि नार्बुदानि करोति तस्याशु पुनर्भवन्ति । नरानशेषाणि समुद्धरेत्तु हन्युः सशेषाणि यथा विषाग्निः ॥ १८ ॥

अर्बुदरोगमें अल्प शेष रहे भी दोष फिरसे अर्बुदको उत्पन्न करते हैं इस कारण अर्बुदरोगमें कदापि दोषोंको शेष नहीं रखना चाहिये क्योंकि वह शेषदोष विष और अग्निके समान मनुष्यको मारदेते हैं ॥ १८ ॥

हरिद्रालोध्रपतङ्गगृहधूममनःशिलाः । मधुप्रगाढो लेपोऽयं मेदोऽर्बुदहरः परः ॥ एतामेव क्रियां कुर्यादशेषां शर्करार्बुदे ॥ १९ ॥

हलदी, लोध, पतंग, घरका धुँआसा और मैनशिल इन सबको एकत्र शहदमें मिलाकर लेप करनेसे मेदज अर्बुदरोग नष्ट होता है। इसी प्रकार शर्करार्बुदकी भी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १९ ॥

यदल्पमूलं त्रपुसैः सताम्रैस्तद्वेष्टयपत्रैरथवायसैर्वा । क्षाराग्निशस्त्राण्यवचारयेच्च मुहुर्मुहुः प्राणमवेक्ष्यमाणः ॥ यदृच्छया चोपगतानि पाकं पाकक्रमेणोपचरेद्विधिज्ञः ॥ २० ॥

और जो अर्बुद अल्पमूलवाला हो तो सीसे, तांबे, और लोहेको पत्रोंसे वेष्टित करके वारंवार क्षार अग्नि और शस्त्रसे प्रयोग करे । किन्तु वारंवार प्राणोंकी रक्षा करता रहे । और जो अर्बुदरोग पकजाय तो विधिको जाननेवाला वैद्य पाकक्रमसे उपचार करे ॥ २० ॥

आस्फोतगोजीकरवीरपत्रैः कषायमिष्टं व्रणशोधनार्थम् । शुद्धश्च तैलं विदधीत भार्ङ्गीविडङ्गपाठात्रिफलासु सिद्धम् ॥ २१ ॥

विष्णुक्रान्ता, गोजिया और कनेर इनके पत्तोंका क्वाथ बनाकर व्रणको शोधन करे । एवं भारंगी, वायबिंडग, पाढ और त्रिफला इनके कल्क और क्वाथमें तेलको पकाकर शुद्ध व्रणके ऊपर लगावे ॥ २१ ॥

स्नुहीगण्डीरिकास्वेदो नाशयेदर्बुदानि च । लवणेनाथवा स्वेदः सीसकेन तथैव च ॥ २२ ॥

थूहरके डंडेका स्वेद देनेसे अर्बुदरोग नष्ट होता है। अथवा लवण और सीसेका स्वेद देनेसे भी अर्बुदरोग नष्ट होता है ॥ २२ ॥

निर्वृत्य जिह्वां दशनैर्विदंश्य त्रिधा शिराशब्दमपि प्रकृत्या । निशावसाने त्रिदिनान्यवश्यम्पीण्डां हरेदर्बुदजां सुघोराम् ॥ २३ ॥ मूलकस्य कृतः क्षारो हरिद्रायास्तथैव च । शङ्खचूर्णेन संयुक्तो लेपः सिद्धोऽर्बुदापहः ॥ २४ ॥

प्रातःकाल जिह्वाको बचाकर स्वभावसे उत्पन्न हुई शिराओंको कटकट शब्द करता हुआ दांतोंसे तीन वार काटे इस प्रकार तीन दिनतक करनेसे अर्बुदकी घोर पीडा अवश्य शान्त होती है । मूलीका खार, हलदीका खार और शंखका चूर्ण इन सबको एकत्र मिलाकर प्रलेप करनेसे अर्बुदरोग नष्ट होता है ॥ २३ ॥ २४ ॥

उपोदिकरसाभ्यक्तास्तत्पत्रपरिवेष्टिताः । प्रणश्यन्त्यचिरान्नृणां पिडिका ह्यर्बुदादयः ॥ २५ ॥

पोईका स्वरस निकालकर अर्बुदपर लेप करे और ऊपरसे पोईके पत्तोंको बाँध देवे तो तत्काल ही अर्बुदादिकी पिडिका नष्ट होजाती हैं ॥ २५ ॥

उपोदिका काञ्जिकतक्रपिष्टा तथोपनाहं लवणेन सार्धम् । दृष्टोऽर्बुदानां प्रशमाय कैश्चिद्दिने दिने वा त्रिषु मर्मजानाम् ॥ २६ ॥

मर्ममें अर्बुद उत्पन्न हो तो पोईको कांजी और तक्रमें पीसकर उसमें नमक मिलाकर रात्रिमें तथा दिनमें बराबर लेप करे ॥ २६ ॥

वटदुग्धकुष्ठरोमकलिप्तं बद्धं वटस्य कल्केन । अध्यस्थि सप्तरात्रान्महदपि शमयेत्सिद्धमिदम् ॥ २७ ॥

वडका दूध, कूठ और रोमकलवण इनको एकत्र पीसकर वडके कल्कमें मिलाकर प्रलेप करनेसे सात दिनमें सर्व प्रकारके अर्बुद रोग नष्ट होते हैं यही सिद्ध है ॥ २७ ॥

गन्धशिलाविश्वौषधविडङ्गयवभस्मजं समञ्चूर्णम् । कृकलासरक्तयुक्तं लेपात्सर्वार्बुदध्वंसि ॥ २८ ॥

गंधक, मैनशिल, सोंठ, वायविंडग और जौकी भस्म इन सबका एकत्र चूर्ण करके किलीके रुधिरमें मिला कर लेप करनेसे सर्व प्रकारके अर्बुदरोग नष्ट होते हैं ॥ २८ ॥

सितमारशिग्रुसर्षपयवमूलकबीजरसान्वितेन । लेपस्तत्र कृतोऽयं ग्रंथ्यर्बुदगण्डमालघ्नः ॥ २९ ॥

सफेद मिरच, सहिंजनेके बीज, सरसों, जौ और मूलीके बीजोंका रस इन सबको एकत्र मिला कर लेप करनेसे ग्रन्थि, अर्बुद और गण्डमाला रोग नष्ट होता है ॥ २९ ॥

शिग्रुमूलकयोर्बीजं रक्षोघ्नं सरलं यवम्। अश्वमारञ्च संपिष्य तक्रलेपोऽर्बुदादिजित ॥ ३० ॥

सहिंजने और मूलीके बीज, देवदारू, धूपसरल, जौ और कनेरकी जड़ इन सबको तक्रमें पीसकर लेप करनेसे अर्बुदादिरोग नष्ट होते हैं ॥ ३० ॥

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायां अर्बुदाधिकारः समाप्तः ॥ ४६ ॥

अथ श्लीपदरोगाधिकार।

श्लीपदका निदान।

यः सज्वरो वङ्क्षणजो भृशार्त्तिः शोथो नृणां पादगतः क्रमेण। तच्छ्लीपदं स्यात्करकर्णनेत्रशिश्नौष्ठनासास्वपि केचिदाहुः ॥ १ ॥

जो सूजन प्रथम वंक्षणमें उत्पन्न होकर फिर धीरे२ पैरोंमें आजावे और उसमें ज्वर तथा अत्यंत पीडा हो उसको श्लीपद(पीलपाया)रोग कहते हैं। यह श्लीपद रोग हाथ कान, नेत्र, लिंग, होठ और नासिकामें भी होता है ऐसा कोई कोई आचार्य्य कहते हैं॥१॥

वातजश्लीपदके लक्षण।

वातजं कृष्णरूक्षञ्च स्फुटितं तीव्रवेदनम्। अनिमित्तरुजं तस्य बहुशो ज्वर एव च ॥ २ ॥

वातजश्लीपदरोग—काला, रूखा,फटा, तीव्रपीड़ायुक्त, विनाकारण ही दुखनेवाला और अधिक ज्वरवाला होता है ॥ २ ॥

पित्तजश्लीपदके लक्षण।

पित्तजं पीतसंकाशं दाहज्वरयुतं मृदु।

पित्तका श्लीपद पीला, दाह और ज्वरसंयुक्त तथा कोमल होता है।

कफजश्लीपदके लक्षण।

श्लैष्मिकं स्निग्धवर्णञ्च श्वेतं पांडु गुरु स्थिरम् ॥ ३ ॥

कफका श्लीपद चिकना, सफेद, धूसर, भारी और स्थिर होता है ॥ ३ ॥

असाध्यलक्षण।

वल्मीकमिव संजातं कण्टकैरुपचीयते। अब्दात्मकं महत्तच्च वर्जनीयं विशेषतः ॥ ४ ॥

त्रिदोपजश्लीपद साँपकी बांवीकी समान ऊंचा नीचा कांटोंयुक्त होता है। यह त्रिदोषज श्लीपद जिसको उत्पन्न हुए एक वर्ष बीत गया हो और जो बहुत बढ गया हो उसको वैद्य त्याग देवे ॥४॥

त्रीण्यप्येतानि जानीयाच्छ्लीपदानि कफोच्छ्रयात। गुरुत्वञ्च महत्त्वञ्च यस्मान्नास्ति विना कफात ॥ ५ ॥

तीनों प्रकारके श्लीपदोंमें कफकी अधिकता होती है। कारण यह है कि, भारीपन और महत्त्व कफके विना नहीं होते ॥ ५ ॥

यच्छ्लेष्मलाहारविहारजातं पुंसः प्रकृत्याऽपि कफात्मकस्य। सस्रावमत्युन्नतसर्वलिङ्गं सकंडुरं श्लेष्मयुतं विवर्ज्यम् ॥ ६ ॥

जो श्लीपदरोग कफकारक आहार विहारोंसे उत्पन्न हो और उस रोगीकी प्रकृति भी कफकी हो एवं जिस श्लीपदमें पानी स्रवे अत्यन्त ऊँचा सर्व दोषोंके लक्षणों युक्त और जिसमें विशेष खुजली चले ऐसा श्लेष्मायुक्त श्लीपदरोग असाध्य जानना ॥६॥

पुराणोदकभूयिष्ठाः सर्वर्तुषु च शीतलाः। ये देशास्तेषु जायन्ते श्लीपदानि विशेषतः॥ ७॥

जिन देशोंमें पुराना वर्षाका जल अधिकतर भरा रहता है और जो देश सर्व ऋतुओंमें शीतल रहते हैं उन अनूपादि देशोंमें यह श्लीपदरोग विशेष करके होता है ॥ ७॥

श्लीपदकी चिकित्सा।

शाम्यति पिच्छिलगुटिका सर्षपकल्कोपनाहतः सपदि। शैलबलाभ्यां लेपः करचरणशोथतामपि च ॥ ८॥

श्लीपदरोगमें प्रथम सरसोंके कल्ककी पोटली अर्थात् पुलटिस बनाकर पांवोंमें उपनाह स्वेद देवे तथा मनशिल और खिरैंटीका हाथ और पांवोंमें मन्दोष्ण लेप करे तो तत्काल सूजन दूर होजाती है ॥ ८॥

लङ्घनालेपनस्वेदरेचनै रक्तमोक्षणैः। प्रायः श्लेष्महरैरुष्णैः श्लीपदं समुपाचरेत् ॥ ९॥

श्लीपदरोगमें लंघन, प्रलेप, स्वेद, विरेचन, रक्तमोक्षण और कफनाशक उष्णक्रिया ये सब उपचार करने चाहिये ॥ ९॥

मासमेरंडजं तैलं पिबेन्मूत्रेण मानवः। कासमर्दशिफाकल्कं गव्येनाज्येन यः पिबेत्। श्लीपदं वातजं तस्य नाशमायाति सत्वरम् ॥ १०॥

अण्डीके तेलमें गोमूत्र डालकर एक महीने पर्यन्त पान करनेसे अथवा कसौंदीके जडके कल्कको गौके घृतके साथ सेवन करनेसे वातजश्लीपदरोग शीघ्र नष्ट होता है ॥१०॥

महौषधविपक्वेन पयसा चान्नमादिशेत् ॥ ११॥

इसपर सोंठको दूधमें औटाकर भातके साथ सेवन करे ॥ ११॥

गुल्फस्याधःशिरां विध्येच्छ्लीपदे पित्तसम्भवे। पित्तघ्नीश्च क्रियां कुर्य्यात्पित्तार्बुदविसर्पवान् ॥ १२॥

पित्तजश्लीपदरोगमें गुल्फकी नीचेकी शिराको वेधकर रक्तमोक्षण करावे तथा पित्तार्बुद और पित्तविसर्पके समान चिकित्सा करे ॥ १२॥

मञ्जिष्ठामधुकं रास्नासहिंस्रासपुनर्नवाः। पिष्ट्वारनालैर्लेपोऽयं पित्तश्लीपदशान्तये ॥ १३॥

मजीठ, मुलैठी, रायसन, हींस और पुनर्नवा इन सबको एकत्र काँजीमें पीसकर लेप करनेसे पित्तका श्लीपदरोग शमन होता है ॥ १३॥

शिरां सुविदितां विध्येदङ्गुष्ठे श्लेष्मश्लीपदे। पिबेद्वाप्यभयाकल्कं मूत्रेणान्यतमेन वै ॥ १४॥

कफजश्लीपदरोगमें पाँवकी अँगूठेकी शिराको वेधे और हरडके कल्कको गोमूत्रके साथ पान करे॥१४॥

पिबेद्वा गुडूचीं वा नागरं भद्रदारु च। पिबेत्सर्षपतैलेन श्लीपदानां निवृत्तये ॥ १५॥

अथवा गिलोय, सोंठ और देवदारु इनके कल्कको गोमूत्रके साथ पीनेसे अथवा सरसोंके तेलको गोमूत्रमें मिलाकर पान करनेसे श्लीपदरोग दूर होता है ॥ १५॥

हितं वा लेपने नित्यं चित्रकं देवदारु च। सिद्धार्थशिग्रुकल्को वा सुखोष्णो मूत्रपेषितः ॥ १६॥

चीता और देवदारु अथवा सफेद सरसों और सहिंजना इनको गोमूत्रमें पीसकर मन्दोष्ण प्रलेप करनेसे श्लीपदरोग शांत होता है ॥ १६॥

सिद्धार्थसौभाञ्जनदेवदारुविश्वौषधैर्मूत्रयुतैः प्रलेपः। पुनर्नवानागरसर्षपानां कल्केन वा काञ्जिकमिश्रितेन ॥ १७॥

सफेद सरसों, सहिंजना, देवदारु और सोंठ इन सबको एकत्र गोमूत्रमें पीसकर प्रलेप करनेसे अथवा पुनर्नवा, सोंठ और सरसों इनको कांजीमें पीस कर प्रलेप करनेसे श्लीपदरोग शान्त होता है॥ १७॥

धत्तूरैरंडनिर्गुण्डीवर्षाभूशिग्रुसर्षपैः । प्रलेपः श्लीपदं हन्ति चिरोत्थमपि दारुणम् ॥ १८ ॥

धतूरा, अण्डकी जड, निर्गुण्डी, पुनर्नवा, सहिंजना और सफेद सरसों इनको एकत्र जलमें पीसकर लेप करनेसे बहुत दिनोंका पुराना और दारुण श्लीपदरोग नष्ट होता है ॥ १८ ॥

असाध्यमपि यात्यस्तं श्लीपदं चिरकालजम् । मूलेन सहदेवायास्तालमिश्रेन लेपितम् ॥ १९ ॥

सहदेई जडको पीसकर हरितालमें मिलाकर लेप करनेसे बहुत दिनोंका पुराना और असाध्य श्लीपदरोग नष्ट होता है ॥ १९ ॥

निष्पिष्टमारनालेन रूपिकामूलवल्कलम् । प्रलेपाच्छ्लीपदं हन्ति बद्धमूलमपि स्थिरम् ॥ २० ॥

लाल आककी जडकी छालको काँजीमें पीसकर लेप करनेसे बद्धमूल और स्थिर जडवाला भी श्लीपद रोग नष्ट होता है ॥ २० ॥

शाखोटवल्कलमिश्रं तोयं गोमूत्रसंयुतं पीत्वा । हन्याच्छ्लीपदमुग्रं श्लेष्मभवं श्लीपदं पुंसाम् ॥ २१ ॥

सिहोडेकी जडको जलमें पीसकर पश्चात् उसको गोमूत्रमें मिलाकर पान करनेसे कफोत्पन्न उग्र श्लीपदरोग नष्ट होता है ॥ २१ ॥

पिंडारकतरुसम्भववन्दाकशिफा जयति सर्पिषा पीता । श्लीपदमुग्रं नियतं बद्धा सूत्रेण जङ्घायाम् ॥२२॥

पिंडारवृक्षपर उत्पन्न होनेवाले बंदेकी जडको पीसकर घीमें मिलाकर पान करे और उसकी जडको सूतसे जंघाओंमें बाँधदेवे तो श्लीपदरोग नष्ट होता है ॥ २२ ॥

धत्तूरकस्य बीजानि पिप्पलीवर्द्धमानवत् । शीतोदकेन पीतानि श्लीपदं घ्नन्ति दारुणम् ॥ २३ ॥

धतूरेके बीजोंको वर्द्धमानपीपलके समान बढाने बढानेके क्रमसे शीतल जलके साथ पान करनेसे कफजन्य दारुण श्लीपदरोग शांत होता है ॥ २३ ॥

पिबन्सर्षपतैलेन श्लीपदानां निवृत्तये । पूतीकरञ्जछदजं रसं वापि यथाबलम् ॥ २४ ॥ अनेनैव विधानेन पुत्रजीवकजं रसम् । प्रयुञ्जीत भिषक्प्राज्ञः कालसाम्यविभागवित् ॥२५॥

पूतीकरंजके पत्तोंके स्वरसको अथवा जियापोताके पत्तोंके स्वरसको सरसोंके तेलके साथ प्रथम समय रोगीका बलाबल और प्रकृतिको और समयको विचारकर देवे तो श्लीपदरोग नष्ट होता है ॥२४॥ २५

सप्तताम्बूलपत्राणां कल्कं तप्तेन वारिणा । संमृष्टलवणोपेतं श्लीपदं हन्ति सेवितम् ॥ २६ ॥

पानके सात पत्तोंको पीसकर कल्क बनावे । इस कल्कमें सैंधानमक मिलाकर गरम जलके साथ सेवन करनेसे श्लीपदरोग नष्ट होता है ॥ २६ ॥

रजनीगुडसंयुक्तं गोमूत्रेण पिबेन्नरः । वर्षोत्थं श्लीपदं हन्ति कंडूं कुष्ठं विशेषतः ॥ २७ ॥

हलदी और गुडको गोमूत्रके साथ पान करनेसे एक वर्षका पुराना भी श्लीपदरोग तथा विशेष करके कण्डू और कुष्टरोग नष्ट होता है ॥ २७ ॥

वर्षाभूत्रिफलाचूर्णं पिप्पल्या सह योजितम् । सक्षौद्रं विलिहेल्लिहं चिरोत्थं श्लीपदं जयेत् ॥ २८ ॥

पुनर्नवा, त्रिफला और पीपल इनके चूर्णको शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे बहुत दिनोंका पुराना भी श्लीपदरोग नष्ट होता है ॥ २८ ॥

वृद्धदारुकचूर्णन्तु मूत्रसौवीरकादिभिः । शीलितं श्लीपदं हन्ति कृच्छ्रं संवत्सरोत्थितम् ॥ २९ ॥

विधारेके चूर्णको गोमूत्र और सौवीरनामक काँजी आदिके साथ सेवन करनेसे एक वर्षका पुराना और कष्टसाध्य श्लीपदरोग नष्ट हो जाता है ॥ ॥ २९ ॥

क्षीरेण प्रातरुत्थाय पिबेद्यस्तु बलाद्वयम् । सक्षीरं श्लीपदाज्जन्तुरसाध्यादपि मुच्यते ॥ ३० ॥

जो प्रातःकाल उठकर दूधके साथ खिरैंटी और कंघीके चूर्णको पान करता है और दूधके साथ भोजन करता है वह असाध्य भी श्लीपदरोगसे मुक्त होजाता है ॥ ३० ॥

धान्याम्लतैलसंयुक्तं कफवातविनाशनम् । दीपनं चामदोषघ्नमेतच्छ्लीपदनाशनम् ॥ ३१ ॥

धान्याम्लनामक काँजीको तेलके साथ सेवन करनेसे कफवातरोग नष्ट होता है, अग्नि दीपन होती है, आमदोष और विशेष कर श्लीपदरोग नष्ट होता है ॥ ३१ ॥

उपोद्य पिष्ट्वा क्षीरेण पिबेदक्षसमं शुचिः । कीचकस्य च बीजस्य सप्तपर्णात्वचस्तथा ॥ ३२ ॥ नाडी च बीजकस्यापि वातज्वरप्रशान्तये । पीत्वा च मासमेकं हि श्लीपदं नाशयेद्ध्रुवम् ॥ ३३ ॥

पोईको दूधमें पीसकर एकतोला प्रमाण शुद्ध होकर पान करे । बाँसके बीज, सतौनीकी छाल, नाडीका शाक और विजयसार इन सबको एकत्र पीसकर सेवन करनेसें वातज्वर नष्ट होता है । और इसको एक महीने पर्य्यंत सेवन करनेसे श्लीपदरोग निश्चय नष्ट होता है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

जिङ्गिण्यास्तु दलैः सम्यक् तुषांबुपरिपेषितैः । स्वेदः श्लीपदनाशाय कर्त्तव्यः संप्रजानता ॥ ३४ ॥

जिंगिनीके पत्तोंको अच्छे प्रकारसे काँजीमें पीसकर स्वेद देनेसे श्लीपदरोग नष्ट होता है ॥ ३४ ॥

गोमूत्रहरीतकी ।

गन्धर्वतैलसिद्धां हरीतकीं गोजलेन यः पिबति । श्लीपदबन्धनमुक्तो भवत्यसौ सप्तरात्रेण ॥ ३५ ॥

हरडको अंडीके तेलमें सिद्ध करके गोमूत्रके साथ सात दिनतक पान करनेसे श्लीपदरोग नष्ट होता है ॥ ३५ ॥

कृष्णाद्यमोदक ।

कृष्णाचित्रकदन्तीनां कर्षमर्द्धपलं पलम् । विंशतिस्तु हरीतक्यो गुडस्य तु पलद्वयम् ॥ मधुना सह संयुक्तं श्लीपदं हन्ति दारुणम् ॥ ३६ ॥

पीपल १ तोला, चीता २ तोले, दंती ४ तोले, हरड़ २० तोले और गुड ८ तोले लेवे, सबको एकत्र पीसकर शहदमें मिलाकर लड्डू बनावे । इन लड्डूओंको सेवन करनेसे दारुण श्लीपदरोग नष्ट होता है ॥ ३६ ॥

पिप्पलाद्यचूर्ण ।

पिप्पलीत्रिफलादारुनागरं सपुनर्नवम् । भागैर्द्विपलिकैरेषां तत्समं वृद्धदारकम् ॥ ३७ ॥ काञ्जिकेन हि तच्चूर्णं पिबेत्कर्षप्रमाणतः । जीर्णे वा परिहारं स्याद्भोजनं सार्वकामिकम् ॥३८॥ श्लीपदं वातरोगांश्च हन्यात्प्लीहानमेव च । अग्निश्च कुरुते घोरं भस्मकञ्च प्रयच्छति ॥ ३९ ॥

पीपल, त्रिफला, देवदारु, सोंठ और पुनर्नवा ये प्रत्येक औषधि आठ आठ तोले और सबकी बराबर विधारा लेवे। सबको एकत्र पीसकर एक तोला प्रमाण चूर्ण काँजीके साथ सेवन करे । इसके जीर्ण होनेपर यथेच्छ भोजन करे । यह चूर्ण–श्लीपद, वातरोग, प्लीहा और भस्मरोगको नष्ट करता है तथा अग्निको दीपन करता है ॥ ॥३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

वृद्धदारुकचूर्ण ।

त्रिकटुत्रिफलाचव्यं दार्वीवरुणगोक्षुरम् । अलम्बुषा गुडूची च समभा-

गानि चूर्णयेत् ॥ ४० ॥ सर्वेषां चूर्णमाहृत्य वृद्धदारुकतत्समम् । काञ्जिकेन च तत्पेयमक्षमात्रं प्रमाणतः॥४१॥ जीर्णे चापरिहारं स्याद्भोजनं सार्वकामिकम् । नाशयेच्छ्लीपदं स्थौल्यमामवातश्च दारुणम् ॥ गुल्मकुष्ठारुचिहरं वातश्लेष्मरुजापहम् ॥ ४२ ॥

त्रिकुटा, त्रिफला, चव्य, दारुहलदी, वरना, गोखुरू, गोरखमुंडी और गिलोय, ये सब औषधि समान भाग लेवे और सबके बराबर विधारा लेवे। इन सबको एकत्र पीस कर चूर्ण कर ले। इस चूर्णको काँजीके साथ एक तोला प्रमाण सेवन करे। इसके जीर्ण होनेपर यथेच्छानुसार भोजन करे। यह चूर्ण-श्लीपद, स्थौल्य, दारुण आमवात, गुल्म, कुष्ठ, अरुचि और वात तथा कफके रोगोंको दूर करता है ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

निर्गुण्ड्यादिमण्ड ।

निर्गुण्डी तिन्तिडिका शिखिमन्थदलं पुनर्नवामूलम् । भेत्ता पाषाणानां गोक्षुरुकः पारिभद्रकत्वक् ॥ ४३ ॥ एतैः पलांशैर्यो राशिस्ततः स्याद्द्विगुणः खलिः । तैलेन सर्षपाणान्तु तदेकीकृत्य बुद्धिमान् ॥ ४४ ॥ शालेर्मण्डेन संदध्यात्सप्तरात्रं नवे घटे । ततः सर्षपतैलेन पिबेत्कर्षप्रमाणतः ॥ ४५ ॥ जीर्णे भुञ्जीत शाल्यन्नं मुद्गानां पक्षिणां रसैः । पञ्चाशद्वर्षजातश्च जातांकुरमपि ध्रुवम् । त्रिसप्ताहाज्जयत्येष श्लीपदं नात्र संशयः ॥४६॥

निर्गुण्डी, इमली, अरणीके पत्ते, पुनर्नवेकी जड, पाषाणभेद, गोखरू और फरहद अथवा नीमकी छाल ये प्रत्येक औषधि चार २ तोले और सबसे दुगुनी सरसों या अलसीकी खल लेवे, इन सबको एकत्र करके सरसोंके तेलमें मिलाकर शालिचावलोंके मांडमें डाल कर एक नवीन घडेमें भर कर सात दिन तक रख देवे। फिर इसमेंसे निकाल कर सरसोंके तेलके साथ इसको एक तोला प्रमाण सेवन करे। और जब यह औषधि जीर्ण होजाय तब शालिचावलोंका भात, मूँग और पक्षियोंका मांसरस भोजन करे। यह औषधि पचास वर्षके पुराने और अंकुरवाले श्लीपदको भी केवल तीन सप्ताहमें नष्ट करती है ॥४३-४६॥

द्विनाग्यपिप्पल्यादिचूर्ण ।

पिप्पलीत्रिफलादारुनागरं सपुनर्नवम् । प्रत्येकं षोडशपलं गृहीत्वा चात्र चूर्णयेत् ॥ ४७ ॥ वृद्धदारुकचूर्णेन समभागेन मिश्रयेत् । अतश्चूर्णं पिबेत्कर्षं मानवः काञ्जकादिभिः ॥ ४८ ॥ जीर्णे त्वपरिहारं स्याद्भोजनं सार्वकामिकम् । नाशयेच्छ्लीपदं गुल्मं शूलं प्लीहानमेव च ॥ ४९ ॥ अग्निश्च कुरुते दीप्तिं सेव्यमानन्तु भस्मकम् । उदावर्त्तमजीर्णञ्च हन्त्यामानिलपांडुताम् । पिप्पल्यादिरयं ख्यातो विशेषाच्छ्लीपदे हितः ॥ ५० ॥

पीपल, त्रिफला, देवदारु, सोंठ और पुनर्नवा ये प्रत्येक औषधि सोलह २ पल लेकर बारीक पीसकर चूर्ण कर ले और सब चूर्णके बराबर विधारेका चूर्ण लेवे। सबको मिलाकर इस चूर्णमेंसे प्रतिदिन एक तोला प्रमाण कांजीके साथ अथवा अन्य किसी अनुपानके साथ सेवन करे। इसके जीर्ण होनेपर यथेष्ट भोजन करे। यह चूर्ण-श्लीपद, गुल्म, शूल, प्लीहा, भस्मक रोग, उदावर्त्त, अजीर्ण, आमवात, पाण्डुरोग और विशेष करके श्लीपदरोगको नष्ट करता है, तथा अग्निको दीपन करता है ॥४७-५० ॥

काकादन्यादिक्षार ।

काकादनी काकजङ्घा बृहती कण्टकारिका । कदम्बपुष्पी मन्दारी लवा शुकनसी तथा ॥ ५१ ॥ दग्ध्वा मूत्रेण तद्भस्म स्रावयेत्क्षारकल्कवत् । तत्र दद्यात्प्रतीवापं काकोदुम्बरिकारसम् ॥ ५२ ॥ मदनानां पलक्वाथं शुकाख्याया रसस्तथा । एषः क्षार-

स्तु पानीयः श्लीपदं हन्ति सेवितः ॥ ॥ ५३ ॥ अपचीं गंडमालाश्च ग्रहणीदोषमेव च । अभक्ते रोचनश्चैव हन्यात्सर्वविषाणि च ॥ ५४ ॥ एवमेव तैलं संसिद्धं यस्याभ्यङ्गेषु योजितम् । एतत्तानामयान्हन्ति ये च दुष्टव्रणा नृणाम् ॥ ५५ ॥

काकादनी (कौआठोडी) काकजंघा (मसी) वडीकटेरी, कटेरी, गोरखमुंडी, मंदारकी जड, लामज्जक तृण और श्योनाक इन सबको एकत्र करके भस्म कर लेवे। फिर उस भस्मको क्षारकल्कके समान गोमूत्रमें पकावे और उसमें कटूमरका रस डाले। फिर इस क्षारको चार तोले प्रमाण मैनफलके काथके साथ अथवा गुआठोडीके रसके साथ या श्योनाकके पत्तोंके रसके साथ पान करे तो श्लीपदरोग नष्ट होता है। यह औषधि—अपची, गण्डमाला, संग्रहणी, अरुचि और सर्वप्रकारके विषके विकारोंको दूर करती है। इन्हीं उपर्युक्त औषधियोंके द्वारा तेलको पकाकर उस तेलके द्वारा अभ्यंगादि करानेसे सर्व प्रकारके रोग और सर्व प्रकारके दुष्ट व्रण नष्ट होते हैं ॥५१-५५॥

सौरेश्वरघृत ।

सुरसा देवकाष्ठश्च त्रिकटु त्रिफला गजा । लवणानि च सर्वाणि विडंगग्रंथिचित्रकम् ॥ ५६ ॥ चविका पिप्पलीमूलं गुग्गुलुर्हपुषा वचा । यवाग्रजश्च पाठा च शटचेले वृद्धदारुकम् ॥ ५७ ॥ कल्कैश्च कार्षिकैरेतैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् । दशमूलीकषायेण धान्ययूषद्रवेण च ॥ ५८ ॥ दधिमंडसमायुक्तं प्रस्थं प्रस्थं पृथक्पृथक् । पक्कं तदुद्धृतं कल्कात्पिबेत्कर्षत्रयं हविः ॥ ५९ ॥ श्लीपदं कफवातोत्थं मांसरक्ताश्रितश्च यत् । मेदोश्रिताभिघातोत्थं हन्यादेव न संशयः ॥ ६० ॥ अपचीं गंडमालाञ्च अन्त्रवृद्धिं तथार्बुदम् । नाशयेद्ग्रहणीदोषं श्वयथुं गुदजान्यपि ॥ ६१ ॥ परमग्निकरं हृद्यं कोष्ठक्रिमिविनाशनम् ॥ ६२ ॥ घृतं सौरेश्वरं नाम श्लीपदं हन्ति दारुणम् । जीवकेन कृतं ह्येतद्रोगानीकविनाशनम् ॥ ६३ ॥

सुरसा (तुलसी) देवदारु, त्रिफला, त्रिकुटा, गजपीपल, पांचो नमक, वायविडंग, गठिवन, चीता, चव्य, पीपलामूल, गूगल, हाऊबेर, वच, जवाखार, पाठ, कचूर, दोनो इलायची और विधारा इन प्रत्येक औषधिका कल्क एक २ तोला और उत्तम गौका घी १ प्रस्थ, दशमूलका काथ १, प्रस्थ धानियेका काथ १ प्रस्थ और दहीका मांड १ प्रस्थ लेवे। सबको यथाविधिसे मिलाकर विधिपूर्वक घृतको पकावे । इस घृतमेंसे प्रतिदिन तीन तोले प्रमाण सेवन करे । यह घृत—कफवातोत्पन्न श्लीपदरोग, मांसरक्ताश्रित श्लीपदरोग, मेदाश्रित श्लीपद, अभिघातोत्पन्न श्लीपद, अपची, गण्डमाला, अन्त्रवृद्धि, अर्बुद, संग्रहणीरोग, सूजन और गुदज रोग इन सबको नष्ट करता है, अग्निको अत्यंत दीपन करता है, हृदयको हितकारी, कोष्ठगत क्रमियोंको नष्ट करनेवाला और दारुण श्लीपद रोगको दूर करनेवाला है । यह सौरेश्वर घृत जीवकनाथ आचार्य्यने सम्पूर्ण रोगोंको नष्ट करनेके लिये कहा है ॥ ५६-६३ ॥

दन्तीघृत ।

दन्तीमूलपलं दद्यात्त्रिवृन्मूलपलं तथा । त्रिफलातिविषाचित्रविडङ्गार्धपलोन्मितम् ॥ ६४ ॥ स्नुहीक्षारसमायुक्तं घृतस्य कुडवं पचेत् । बिन्दुमात्रोपयोगेन वेगः समुपजायते । दुर्वारं श्लीपदं हन्ति वृक्षामिन्द्राशनिर्यथा ॥ ६५ ॥

दंतीकी जड ४ तोले, निसोतकी जड ४ तोले, त्रिफला, अतीस, चीता और वायविडंग ये प्रत्येक औषधि दो दो तोले और थूहरक्षार ४ तोले लेवे । सबको मिला कर यथाविधिसे एक कुडवपरिमाण घृतको पकावे । इस घृतमेंसे एक बिन्दुमात्र सेवन करनेसे अत्यन्त वेगसे दस्त होने लगते हैं । यह घृत—अत्यंत दुर्निवार श्लीपदरोगको इस प्रकार नष्ट कर देता है जिस प्रकार इन्द्रका वज्र वृक्षोंको नष्ट कर देता है ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

बृद्धदारुकघृत और तैल।

घृतप्रस्थं विपक्तव्यं सव्योषैर्वृद्धदारकैः। कल्कैः सौवीरसिद्धं स्याच्छ्लीपदानां निवृत्तये ॥ ६६ ॥ अग्निश्च कुरुते नृणामामवाते च शस्यते। एभिः कटु पचेत्तैलं पानाच्छ्लीपदनाशनम् ॥ ६७ ॥

गौका घी १ प्रस्थ, त्रिकुटा और विधारेका कल्क ८ तोले और सौवीर नामवाली काँजी ४ प्रस्थ लेवे। सबको यथाविधिसे मिलाकर घृतको पकावे। यह घृत–अग्निको दीपनकरनेवाला, आमवातरोगमें अत्यंत हितकारी और विशेष कर श्लीपदरोगको नष्ट करता है। और जो इनहीं औषधियोंके द्वारा कडवे तेलको पकाया जाय तो वह तेल भी इसीके समान गुणोंको करता है ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

विडंगाद्यतैल।

विडङ्गमरिचार्केषु नागरं चित्रकं तथा। भद्रदार्वेलवाख्ये च सर्वेषु लवणेषु च। तैलं पक्कं पिबेद्वापि श्लीपदानां निवृत्तये ॥ ६८ ॥

वायविडंग, कालीमिरच, आककी जड़, सोंठ, चीता, देवदारु, एलुआ और सर्वप्रकारके नमक इन औषधियोंके द्वारा तेलको पकावे। इस तेलको पान करनेसे श्लीपदरोग अवश्य नष्ट होजाता है ॥ ६८ ॥

यवान्नं कटुतैलेन कूर्ममांसश्च योजयेत्। श्लीपदानां प्रशान्त्यर्थं मांसान्तो दाहमग्निना ॥ ६९

श्लीपदरोगमें जौका अन्न, कड़वा तेल और कछुएका मांस इनको सेवन करे। तथा जबतक मांस न जले तबतक अग्निसे दाग देवे ॥ ६९ ॥

इति श्रीवङ्गसेने भाषाटीकायां श्लीपदरोगाधिकारः समाप्तः ॥ ४८ ॥

---

१ सन्धानविशेषः।

अथ विद्रधिरोगाधिकार।

विद्रधिका सम्प्राप्तिपूर्वक निदान।

त्वग्रक्तमांसमेदांसि प्रदूष्यास्थिसमाश्रिताः। दोषाः शोथं शनैर्घोरं जनयन्त्युच्छ्रिता भृशम् ॥ १ ॥

अपने २ कारणोंसे कुपित हुए वातादिदोष अत्यन्त बढ़कर हड्डियोंमें स्थित होकर त्वचा, रुधिर, मांस और मेदको दूषित करके शनैः शनैः अत्यन्त दारुण और ऊपरको उठी हुई सूजनको उत्पन्न करते हैं ॥ १ ॥

महाशूलं रुजावन्तं वृत्तं वाप्यथवाऽऽयतम्। स विद्रधिरिति ख्यातो विज्ञेयः षड्विधश्च सः ॥ २ ॥ पृथग्दोषैः समस्तैश्च क्षतेनाप्यसृजा तथा। षण्णामपि हि तेषां तु लक्षणं सम्प्रचक्षते ॥ ३ ॥

वह सूजन अत्यन्त शूलयुक्त और पीडासंयुक्त होती है तथा गोल या फैली हुई होती है। उसको विद्रधि कहते हैं। वह छः प्रकारकी है। जैसे वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, क्षतज और रक्तज ऐसे यह छः प्रकारकी विद्रधि होती है। अब छहोंके लक्षण कहते हैं ॥ २ ॥ ३ ॥

वातजविद्रधिके लक्षण।

कृष्णोऽरुणो वा विषमो भृशमत्यर्थवेदनः। चित्रोत्थानप्रपाकश्च विद्रधिर्वातसम्भवः ॥ ४ ॥

वातजविद्रधि–काली, लाल, कभी छोटी, कभी मोटी ऐसे घटे बढे अत्यंत पीडायुक्त होती है। इसका उत्पन्न होना और पकना अनेकप्रकारसे होता है ४॥

पित्तजविद्रधिके लक्षण।

पक्कोदुम्बरसंकाशः श्यावो वा ज्वरदाहवान्। क्षिप्रोत्थानप्रपाकश्च विद्रधिः पित्तसम्भवः ॥ ५ ॥

गुल्म वातादिदोषोंमें रहता है और विद्रधि मांस तथा रुधिरमें रहती है, इस कारण विद्रधि तो पकजाती है और गुल्म नहीं पकता है ॥ २५ ॥

स्तनविद्रधि ।

पवनेन स्तनशिराः विकृताः प्राप्य योषिताम् । सूतानां गर्भिणीनाञ्च सम्भवे श्वयथुर्घनः ॥ २६ ॥

वातसे विकृत हुई स्तनोंकी शिरा या बालकके शिरकी चोटसे प्रसूता स्त्रियोंके तथा गार्भिणी स्त्रियोंके स्तनोंमें घन सूजनको उत्पन्न करती है उसीको स्तनविद्रधि कहते हैं ॥ २६ ॥

स्तने सदुग्धे वा बाह्यो विद्रधेर्लक्षणान्वितः । नाडीनां सूक्ष्मवक्त्रत्वात् कन्यानां न तु जायते ॥ २७ ॥

यह स्तनविद्रधि दूधवाले स्तनोंमें होती है और इसमें बाह्यविद्रधिके लक्षण मिलते हैं । यह विद्रधि कन्याओंके स्तनोंमें नाडियोंके मुख सूक्ष्म होनेसे नहीं होती है ॥ २७ ॥

विद्रधिकी चिकित्सा ।

जलौकापातनं शस्तं सर्वस्मिन्नेव विद्रधौ । मृदुर्विरेको लघ्वन्नं स्वेदः पित्तोत्तरं विना ॥ २८ ॥

प्रथम सर्वप्रकारकी विद्रधियोंमें जौंक लगवाना अत्युत्तम है तथा मृदुविरेचन, हलका अन्न और पित्तकी विद्रधिको छोड़कर अन्यविद्रधियोंमें स्वेद देना चाहिए ॥ २८ ॥

अपक्वे विद्रधौ युञ्ज्याद्व्रणशोथवदौषधम् । वातघ्नमूलकल्कैस्तु वसातैलघृतप्लुतैः ॥ २९ ॥ सुखोष्णो बहुशो लेपः प्रयोज्यो वातविद्रधौ । स्वेदोपनाहः कर्त्तव्यः शिग्रुमूलसमन्वितः ॥ ३० ॥ यवगोधूममुद्गैश्च सर्पिःपिष्टैः प्रलेपयेत् । विलीयते क्षणेनैव स विदग्धस्तु विद्रधिः ॥ ३१ ॥

अपक्व विद्रधिरोगमें व्रणशोथके समान उपचार करना चाहिए । वातनाशक औषधियोंकी जडके कल्कके द्वारा वसा, तेल और घृतादिकको सिद्ध करके वातकी विद्रधिमें सुहाता सुहाता प्रलेप करे । सहिंजनेकी जडको पीसकर उसके द्वारा स्वेद और उपनाह कर्म करने चाहिये । जौ, गेहूँ और मूँग इनको घृतमें पीसकर प्रलेप करे, इससे क्षणभरमें विद्रधिरोग विलीन होजाता है ॥ २९ ॥ ३० ॥ ॥ ३१ ॥

पुनर्नवादारुबिल्वदशमूलभवाम्भसा। गुग्गुल्वेरण्डतैलं वा पिबेन्मारुतविद्रधौ ॥ ३२ ॥

पुनर्नवा, देवदारु, बेलगिरि और दशमूलकी समस्त औषधियाँ इन सबका एकत्र क्वाथ बनाकर उसमें अंडीका तेल अथवा गूगल डालकर सेवन करनेसे वातकी विद्रधि नष्ट होती है ॥ ३२ ॥

दशमूलीछिन्नरुहापथ्यादारुपुनर्नवाः। ज्वरविद्रधिशोफे शिग्रु विश्वयुता हिताः ॥ ३३ ॥

दशमूलकी औषधियाँ, गिलोय, हरड, देवदारु और पुनर्नवा इनके क्वाथमें सहिंजनेकी जडका चूर्ण और सोंठ डालकर पान करनेसे ज्वर विद्रधि और सूजन दूर होती है ॥ ३३ ॥

पैत्तिकं सारिवा लाजा मधुकैः शर्करायुतैः । प्रदिह्यात् क्षीरपिष्टैर्वा पयस्योशीरचन्दनैः ॥ ३४ ॥

पित्तकी विद्रधिमें सारिवा, खीलें और मुलेठी इनको एकत्र दूधमें पीसकर मिश्री मिलाकर प्रलेप करनेसे अथवा क्षीरकाकोली, खस और चन्दन इनको एकत्र पीसकर प्रलेप करनेसे पित्तकी विद्रधि नष्ट होती है ॥ ३४ ॥

त्रिवृद्धरीतकीनाञ्च चूर्णं मधुयुतं पिबेत् । पिबेद्वा त्रिफलाक्काथं त्रिवृत्कल्काक्षसंयुतम् ॥ ३५ ॥

निसोत और हरड इनका एकत्र चूर्ण करके शहदमें मिलाकर सेवन करे अथवा त्रिफलेके क्वाथमें एक तोला प्रमाण निसोतका चूर्ण डाल कर पान करे ॥ ३५ ॥

पञ्चवल्कलकल्केन घृतमिश्रेण लेपनम्। सर्पिषा शतधौतेन नवनीतेन वा गवाम् ॥ ३६ ॥

पंचक्षीरी वृक्षोंकी छालको पीसकर घीमें मिलाकर प्रलेप करे अथवा सौ वार धुले हुए घीका प्रलेप करे किंवा गौके नैनी घृतका प्रलेप करे ॥ ३६ ॥

इष्टकासिकतालोहगोशकृत्तुषपांशुभिः। मूत्रैरुष्णैश्च सततं स्वेदयेच्छ्लेष्मविद्रधिम् ॥ ३७ ॥

कफकी विद्रधिमें ईट, रेता, लोह, गौका गोबर, भूसी और धूल इनको गोमूत्रमें मिला कर सुहाता सुहाता सदैव स्वेद देवे ॥ ३७ ॥

दशमूलीकषायेण सस्नेहेन रसेन वा। शोथं व्रणं वा कोष्णेन समूलं परिषेचयेत ॥ ३८ ॥

दशमूलके काथमें तेल घृतादि डालकर अथवा मांसरसमें तेल घृतादि डाल कर गरम गरम शोथ अथवा व्रणके ऊपर परिषेक करे ॥ ३८ ॥

त्रिफला शिग्रु वरुणं दशमूलाम्भसा पिबेत्। गुग्गुलं मूत्रयुक्तं वा विद्रधौ कफसम्भवे ॥ ३९ ॥

त्रिफला, सहिंजना, वरनाकी छाल और दशमूल इन सबका काथ बनाकर उसमें गूगल अथवा गोमूत्र डालकर पान करनेसे कफकी विद्रधि नष्ट होती है ॥ ३९ ॥

शिरां यथोक्तां विध्येच्च कफजे विद्रधौ भिषक्। रक्तपित्तानिलोत्थेषु केचिद्दाहा भवन्ति हि ॥ ४० ॥

कफजविद्रधिरोगमें वैद्य प्रथम यथाविधिसे शिराको वेधे और रक्तपित्त और वातकी विद्रधिमें कितने ही वैद्य दाग देना चाहिये ऐसा कहते हैं ॥ ४० ॥

पित्तविद्रधिवत्सर्वा क्रिया निरवशेषतः। विद्रध्योः कुशलः कुर्य्याद्रक्तागन्तु निमित्तयोः ॥ ४१ ॥

रक्तज और आगन्तुक विद्रधियोंमें सम्पूर्ण चिकित्सा पित्तविद्रधिके समान करनी चाहिए ॥ ४१ ॥

पिबेद्वाभ्यन्तरे पथ्यां स च सौभाञ्जनाद्रसम्। नाराचमथवा सर्पिस्तैलं वाऽन्याद्वृकजम् ॥ ४२ ॥

अन्तर्विद्रधिरोगमें हरड और सहिंजनेके रसको एकत्र मिलाकर पान करे अथवा नाराचघृतको पीवे। किंवा अंडीके तेलको पीवे ॥ ४२ ॥

कृष्णाजाजीविशाला च ह्यपामार्गफलं तथा। पीतं हन्ति विहन्त्याशु विद्रधिं कोष्ठसम्भवम् ॥ ४३ ॥

कालाजोरा, इन्द्रायन और चिरचिटेके बीज इन सबको एकत्र मिलाकर जलमें पीसकर पान करनेसे कोष्ठगत विद्रधिरोग नष्ट होता है ॥ ४३ ॥

शिग्रुमूलं जले धौतं दृषत्पिष्टं प्रगालयेत्। तद्रसं मधुना पीत्वा हन्त्यन्तविद्रधिं नरः ॥ ४४ ॥

सहिंजनेकी जडको जलमें धोकर पत्थरपर पीसकर वस्त्रमें छानलेवे। फिर उस रसमें शहद डालकर पीवे तो अन्तर्विद्रधिरोग नष्ट होता है ॥ ४४ ॥

श्वेतवर्षाभुवो मूलं मूलं वरुणकस्य च। जलेन कथितं पीतमपक्वं विद्रधिं जयेत् ॥ ४५ ॥

सफेद पुनर्नवाकी जड और वरनाकी जड इनको समान भाग लेकर जलमें काथ बनावे। इस काथको पान करनेसे अपक्व विद्रधिरोग दूर होता है ॥ ४५ ॥

सौभाञ्जनकनिर्यूहो हिंगुसैन्धवसंयुतः। अचिराद्विद्रधिं हन्ति प्रातः प्रातर्निषेवितः ॥ ४६ ॥

सहिंजनेके काथमें हींग और सैंधानमक डालकर प्रतिदिन प्रातःकाल पान करनेसे बहुत शीघ्र विद्रधिरोग नष्ट होता है ॥ ४६ ॥

शमयति पाठामूलं क्षौद्रयुतं तंडुलाम्बुना पीतम् । अन्तर्भूतं विद्रधिमुद्धतमाश्वेव मनुजस्य ॥ ४७ ॥

पाठकी जडको चावलोंके जलके साथ पीसकर शहद मिलाकर पान करनेसे अन्तर्विद्रधि रोग नष्ट होता है ॥ ४७ ॥

कासीससैन्धवशिलाजतुहिंगुचूर्णमिश्रीकृतो वरुणवल्कलजः कषायः। अभ्यन्तरोत्थितमपक्कमतिप्रमाणं नॄणामयं जयति विद्रधिमुग्रवीर्य्यम्॥४८॥

वरनेकी छालके काथमें कासीस, सैंधानमक, शिलाजीत और हींग इनका चूर्ण मिलाकर पान करनेसे अन्तर्विद्रधि, अपक्वविद्रधि, अत्यंत बढीहुई और सर्व प्रकारकी दारुण विद्रधि नष्ट होती है ॥ ४८ ॥

दन्तीचित्रकगोदन्तचिरबिल्वाश्वमारकान् । आन्तरे वितरेद्विद्वानपक्के शोथविद्रधौ ॥ ४९ ॥

दंती, चीता, गोदंत, करंज और कनेर इनको एकत्र पीसकर अन्तर्विद्रधि, अपक्व और शोथयुक्त विद्रधिरोगमें प्रयोग करे ॥ ४९ ॥

वरुणादिगणक्काथमपक्केऽभ्यन्तरोत्थिते । उषकादिप्रतीवापं पिबेत्संशमनाय वै ॥ ५० ॥

अपक्व अन्तर्विद्रधिरोगमें वरुणादि औषधियोंका क्काथ बनाकर उसमें गूगल अथवा हींग या जवाखार डालकर पान करे तो विद्रधिरोग शमन होता है॥५०॥

अपक्के त्वेतदुद्दिष्टं पक्के तु व्रणवत् क्रिया ॥ ५१ ॥

अपक्व विद्रधिरोगमें यह उपचार कहा है और पक्व विद्रधिरोगमें व्रणके समान चिकित्सा करनी चाहिए ॥ ५१ ॥

स्रुतेऽप्यूर्ध्वमधश्चापि मैरेयाम्लसुरासवैः। पेयो वरुणकादिस्तु मधुशिग्रुरसोऽथवा ॥ ५२ ॥

जो विद्रधिरोग ऊपर तथा नीचेका स्रवता हो तो ईखकी मदिरा, कांजी, मदिरा और आसव इनको वरुणादि गणकी औषधियोंके काथके साथ पान करे अथवा लाल सहिंजनेके रसके साथ पान करे ॥५२॥

मधुशिग्रस्तु मूलेन यवागूं साधुसाधिताम् । यवकोलकुलित्थानां सर्वैर्भुञ्जीत मानवः ॥ ५३ ॥

जौ, बेर और कुलथी, इनकी लालसहिंजनेके जडके काथमें यवागू बनाकर सेवक करे । इनसे सर्व प्रकारकी विद्रधि नष्ट होती है ॥ ५३ ॥

भूनिम्बाद्यचूर्ण ।

भूनिम्बार्द्धपलं निशापलयुतं दार्व्या पले द्वे तथा मूर्वार्धेन पुनर्नवां कुरु समां दार्व्याः समः प्रग्रहः। वासार्द्धयुतं पलन्तु कटुका योज्या तदर्धेन वै ह्यश्वाह्वं निशया समानममृताकर्षास्तु पञ्चैव तु ॥ ५४ ॥ सर्वं वत्सकसप्तकर्षसहितं सुश्लक्ष्णचूर्णीकृतम् । वासायाः स्वरसेन भावितमिदं त्रीन् पञ्च वै वासरान् ॥ ५५ ॥ भूयस्तद्गुडवारिणा प्रतिदिनं पीतं पुरस्थे रवौ । पुंसां विद्रधिनाशनञ्च कथितं तथ्यं स्वयं ब्रह्मणा ॥ ५६ ॥

चिरायता२ तोले,हलदी ४ तोले,दारुहलदी ८तोले, मूर्वा २ तोले, पुनर्नवा २ तोले, स्योनाककी फलीके बीज ८ तोले, बासा २ तोले, कुटकी ४ तोले, असगन्ध ४ तोले,गिलोय ५ कर्ष (तोले) और कुडेकी छाल ७ कर्ष लेवे सबको एकत्र बारीक पीसकर अडूसेके रसमें तीन दिनतक अथवा पांच दिन अथवा आठ दिनतक खरल करके प्रतिदिन प्रातःकाल गुडके शरबतके साथ पान करे। इससे विद्रधिरोग नष्ट होता है यह ब्रह्माने स्वयं तथ्ययोग कहा है ॥५४ ॥ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

वरुणकाद्यघृत ।

सिद्धं वरुणादिगणे विधिना तत्क्काथकल्पितं सर्पिः । शुद्धतनोस्तत्पीतं

भिषजा सद्योऽग्निजं प्रथितम् ॥ ५७ ॥ शिरसां शूलमशेषविद्रधिमन्तःस्थमुग्रमपहरति । पञ्चविधं गुल्मगदं शमयति वारि बहुभुक्तान्नम् ॥ ५८ ॥

वरुणादिगणकी औषधियोंके काथमें घृतको सिद्ध करे पश्चात् वमन विरेचनादिसे शुद्धशरीर होकर इस घृतको पान करे । इससे मंदाग्नि, शिरःशूल, सर्व प्रकारकी विद्रधि, अन्तर्विद्रधि, उग्रविद्रधि और पाँच प्रकारका गुल्मरोग नष्ट होता है । इसपर बहुत भोजन किया हुआ भी अन्न और जल पच जाता है ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

करञ्जघृत ।

नक्तमालस्य पत्राणि वरुणादिफलानि च । सुमनायाश्च पत्राणि पटोलारिष्टयोस्तथा ॥ ५९ ॥ द्वे हरिद्रे मधूच्छिष्टं मधुकं तिक्तरोहिणी । प्रियंगु कुशमूलञ्च निचुलस्य त्वगेव च ॥ ६० ॥ एतेषां कार्षिकैर्भागैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् । दुष्टव्रणप्रशमनं तथा नाडीविशोधनम् ॥ सद्यश्छिन्नं व्रणानाञ्च करञ्जाद्यमिदं शुभम् ॥ ६१ ॥

करंजके पत्ते, वरुणेके फल, चमेलीके पत्ते, परवलके पत्ते, नीमके पत्ते, हलदी, दारुहलदी, मोम, मुलैठी, कुटकी, फूलप्रियंगू, कुशाकी जड, जलवेंतकी त्वचा ये प्रत्येक औषधि एक २ तोला लेकर कल्क बनाकर इस कल्कके द्वारा एकप्रस्थ घृतको पकावे । यह घृत-दुष्ट व्रणोंको शमन करनेवाला, नाडीव्रणोंको शुद्ध करनेवाला और तत्कालके उत्पन्न हुए व्रणोंको भरनेवाला है ॥५९-६१॥

प्रियंग्वाद्यतैल ।

तिक्तकटुफलकं सर्पिर्महातिक्तमथापि वा । धान्वन्तरं वा नैम्बं वा विद्रधौ योजयेत्सदा ॥ ६२ ॥

इस विद्रधिरोगमें तिक्तकटुफलक घृत, महातिक्त घृत, धान्वतर घृत अथवा निम्बघृत ये सब प्रयोग करने चाहिये ॥ ६२ ॥

प्रियंगुधातकीलोध्रं कटुफलं द्विनिशान्वितम् । एतत्तैलं विपक्तव्यं विद्रधौ व्रणरोपणम् ॥ ६३ ॥

फूलप्रियंगू, धायके फूल, लोध, कायफल, हलदी और दारुहलदी इनके कल्क और काथके द्वारा तेलको पकावे । यह तेल-विद्रधिके व्रणोंको भरदेता है ॥ ६३ ॥

द्विपञ्चमूलीतैल ।

द्विपञ्चमूलीत्रिफलाकुलित्थत्रिवृच्छनैर्मूलकशिग्रुयुक्तैः । तैलं तिलैरण्डजमेतदेभिः सिद्धं हितं विद्रधिगुल्मशूले ॥ ६४ ॥

दशमूल, त्रिफला, कुलथी, निसोत, मूली और सहिंजनेकी जड इनके कल्कके द्वारा तिलके तेलको अथवा अंडीके तेलको पकाकर सेवन करनेसे विद्रधि गुल्म और शूल नष्ट होता है ॥ ६४ ॥

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायां विद्रधिनिदानचिकित्साधिकारः समाप्तः ॥ ४९ ॥

अथ व्रणशोथाधिकार ।

शोथका पूर्वरूप ।

एकदेशोत्थितः शोथो व्रणानां पूर्वलक्षणम् । षड्विधः स्यात् पृथक् सर्वरक्तागन्तुसमुद्भवः ॥ १ ॥ शोथाः षडेते विज्ञेयाः प्रागुक्तैः शोथलक्षणैः । विशेषः कथ्यते तेषां पक्वाऽपक्वादिनिश्चये ॥ २ ॥

शरीरके किसी एक देशमें सूजन उत्पन्न हो, उसको व्रणका पूर्वरूप जानना । वह सूजन वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातिक, रक्तज और आगन्तुज इन भेदोंसे छः प्रकारकी है । इन छःहोंके लक्षण

पूर्वोक्त शोथरोगके समान जानने । अब इनके पक्कापक्कादि निश्चयमें विशेष लक्षण कहते हैं ॥ १ ॥ २ ॥

व्रणपाक ।

विषमं पच्यते वातात्पित्तोत्थश्चाचिरं चिरम् । कफजः पित्तवच्छोथो रक्तागन्तुसमुद्भवः ॥ ३ ॥

वातका शोथ विषमरीतिसे अर्थात् रुकरुक कर पकता है, पित्तका शीघ्र पकता है, कफका बहुत देर में पकता है और रक्तका आगन्तुक पित्तके समान बहुत शीघ्र पकता है ॥ ३ ॥

अपक्वव्रणशोथके लक्षण ।

मन्दोष्मताल्पशोथत्वं काठिन्यं त्वक् सवर्णता । मन्दवेदनता चैव शोथानामामलक्षणम् ॥ ४ ॥

जिसमें गरमी और सूजन कम हो, व्रणका स्थान कठोर हो, सूजनका रंग शरीरके वर्णके समान हो और वेदना थोडी हो उस व्रणशोथको अपक्व(कच्चा) जानना ॥ ४ ॥

पच्यमानव्रणशोथके लक्षण।

दह्यते दहनेनैव क्षारेणैव च पच्यते । पिप्पलिकागणेनैव दश्यते छिद्यते तथा ॥ ५ ॥ भिद्यते चैव शस्त्रेण दण्डेनैव च ताड्यते । पीड्यते पाणिनैवान्तः सूचिभिरिव तुद्यते ॥ ६ ॥ सोषचोषो विवर्णः स्यादंगुल्यैवावघट्यते । आसने शयने स्थाने शान्ति वृश्चिकाविद्धवत् ॥ ७ ॥ न गच्छेदाततः शोथो भवेदाध्मानबस्तिवत् । ज्वरस्तृष्णारुचिस्त्वेतत् पच्यमानस्य लक्षणम् ॥ ८ ॥

फोडेके पकनेके समय जो लक्षण होते हैं उनको कहते हैं । जैसे अग्निसे जलानेकीसी जलन, क्षार लगानेकीसी चिनमिनाहट, चेंटीके काटनेके समान, छेदनके समान, शस्त्रसे चीरनेके समान, दंडेसे मारनेके समान, हाथसे भीतरको पीडित करनेके समान सुई चुभोनेकी और अंगुलियोंसे उखाडनेके समान पीडा हो, दाहसे व्याप्त हो, अग्निसे संतप्तके समान हो, असली रंगसे दूसरा रंग हो जाय, मूत्राशयके समान अथवा चमडेकी पुटकी समान फूला हुआ हो, बीछूकी काटनेके समान बैठते, सोते और उठते समय घोर पीडा हो अर्थात् कभी कहीं चैन न पडे और ज्वर तृषा तथा अरुचिसे संयुक्त हो ये पकते हुए व्रणशोथके लक्षण हैं ॥ ५ ॥ ६ ॥ ॥ ७ ॥ ८ ॥

पक्कव्रणशोथके लक्षण ।

वेदनोपशमः शोथो लोहितोऽल्पो न चोन्नतः । प्रादुर्भावो वलीनाञ्च तोदः कण्डूर्मुहुर्मुहुः ॥ ९ ॥ उपद्रवाणां प्रशमो निम्नतास्फुटनं त्वचः । बस्ताविवांबुसञ्चारः शोथेऽङ्गुलिनिपीडिते ॥ १० ॥ पूयस्य पीडयत्येकमन्तमन्ते च पीडिते । भक्तकाङ्क्षा भवेच्चैव शोथानां पक्कलक्षणम् ॥११॥

व्रणशोथके पकने पर दाहादि पीडा शमन होजाय, सुजनमें थोडी लाली हो, ऊँचाई कम होजाय, उसमें सिकुडन पडकर सुई चुभोने सरीखी पीडा हो, वारंवार खुजली चले, ज्वरादि उपद्रव शांत होजाँय, अंगुलीसे दबानेके समय गड्ढा पड जाय, त्वचा कुछ फट जाय, सूजनको अंगुलीसे दबानेसे जिस प्रकार चमडेकी मसकमेंसे पानी एक स्थानमेंसे दूसरे स्थानमें चला जाता है उसी प्रकार इसमेंसे एक स्थानसे राध दूसरे स्थानमें चली जाती है, एक प्रदेशको दबानेसे दूसरे प्रदेशमें राध जाकर भर जाय तथा भूँख लगे तो जानना कि सूजन पक गई है ॥ ९ ॥ ॥ १० ॥ ११ ॥

गम्भीरपाकके लक्षण ।

कफजेषु तु शोथेषु गम्भीरं पाकमेत्यसृक् । पक्कं लिङ्गञ्च तत् स्पष्टं यत्र स्याच्छान्तशोफता ॥ १२ ॥ त्वक् श्यावा च रुजोऽल्पत्वं यत्र स्पर्शत्वमश्मवत् । रक्तपातमिति ब्रूयात्तत् प्राज्ञो मुक्तसंशयः ॥ १३ ॥

कफसे उत्पन्न हुई सूजनमें रुधिर गम्भीररीतिसे पकाता है तो भी पकजानेके लक्षण स्पष्ट होते हैं और

जिस समयसे सूजन पकने लगती है उस समय लाली तथा दाहादि पीडा होकर पश्चात् सूजनसें पकजानेकी अवस्था होजाती है तब शीतलता होजाती है, सूजनका रंग चमडेकी रंगके समान होता है, अल्पवेदना होती है और स्पर्शमें पत्थरके समान कठोरता होती है। इसकारण इसको निःसन्देह वैद्य रक्तपाक ऐसा कहते हैं ॥ १२ ॥ १३ ॥

सूजनमें एकदोष उत्पन्न होनेके समय तीनों दोषोंका प्रादुर्भाव होता है उसको कहते हैं-

नर्तेऽनिलाद्रुग्न विना च पित्तं पाकः कफाच्चापि विना न पूयः। तस्माद्धि सर्वे परिपाककाले पचन्ति शोथांस्त्रिभिरेव दोषैः ॥ १४ ॥

जैसे कि, वातके विना पीडा नहीं होती, पित्तके विना पाक नहीं होता और कफके विना राध नहीं होती इसकारण पकते समय सर्व व्रणशोथ त्रिदोषान्वित होजाते हैं ॥ १४ ॥

शोथके पकनेमें मतान्तर।

कालान्तरेणाभ्युदितं तु पित्तं कृत्वा वशे वातकफौ प्रसह्य। पचत्यतः शोणितमेष पाको मतः परेषां विदुषां द्वितीयः ॥ १५ ॥

कालान्तरसे उदय हुआ पित्त, वायु और कफको कम करके बलात्कारसे रुधिरको पकाता है, ऐसा अन्य विद्वानोंका मत है। पहले मतमें कफसे राध होती है ऐसा माना है और इस दूसरे मतमें रुधिरसे राध होती है ऐसा माना है इनमें इतना भेद है ॥ १५ ॥

पक्वव्रणमेंसे राध न निकालनेका परिणाम।

कक्षं समासाद्य यथैव वह्निर्वाय्वीरितः सन्दहति प्रसह्य। तथैव पूयो ह्यविनिःसृतो हि मांसं शिराः स्नायु च खादतीह ॥ १६ ॥

जिसप्रकार सूखी घासमें प्राप्त हुई अग्नि पवनकी सहायतासे उस घासको बलात्कारसे जलाकर भस्म कर देती है उसी प्रकार पक्व व्रणमेंसे राध न निकालनेसे वह मांस, शिरा और नसोंको भक्षण कर जाती है ॥ १६ ॥

व्रणशोथके पक्कापक्क जाननेमें वैद्यके गुणदोष।

आमं विदह्यमानं हि सम्यक् पक्वञ्च यो भिषक्। जानीयात्स भवेद्वैद्यः शेषास्तस्करवृत्तयः ॥ १७ ॥

जो वैद्य सूजनको अपक्व, पकता हुआ और उत्तम प्रकारसे पकाहुआ जानता है वही पूर्ण वैद्य है। बाकी जो व्रणशोथकी पक्कापक्क अवस्थाको नहीं जानते उनको चोर समझना। क्योंकि उनका चोरोंके समान केवल धन लेनेकाही प्रयोजन होता है किंतु धर्म, यश और मित्रताका कुछ प्रयोजन नहीं होता ॥ १७ ॥

व्रणरोगनिदान।

द्विधा व्रणः स विज्ञेयः शारीरागन्तुभेदतः। दोषैराद्यस्तयोरन्यः शस्त्रादिक्षतसम्भवः ॥ १८ ॥

शरीर और आगन्तुक इन भेदोंसे व्रण दो प्रकारका है। उसमें शारीरिक वातादि दोषोंके प्रकोपसे होता है और आगन्तुक शस्त्रादिकी चोटके लगनेसे होता है ॥ १८ ॥

वातजव्रणके लक्षण।

स्तब्धः कठिनसंस्पर्शो मन्दस्रावो महारुजः। तुद्यते स्फुरति श्यावो व्रणो मारुतसम्भवः ॥ १९ ॥

वातजव्रण देखने और छूनेमें कठिन मालूम हो, जकडासा हो, उसमें थोडा स्राव हो और पीडा अधिक हो एवं सुई चुभोने सरीखी पीडा हो, फड़कता हो और उसका रंग लालीलिये काला हो ॥ १९ ॥

पित्तजव्रणके लक्षण।

तृष्णामोहज्वरक्लेददाहपाकावदारणैः। व्रणं पित्तकृतं विद्याद्गन्धैः स्रावैश्च पूतिकैः ॥ २० ॥

पित्तज व्रणमें तृषा, मोह, ज्वर, क्लेद, जलन, पकना, फटना, दुर्गंध आना और स्राव होना ये सब लक्षण होते हैं ॥ २० ॥

कफज व्रणके लक्षण ।

बहुपिच्छो गुरु स्निग्धः स्तिमितो मन्दवेदनः । पांडुवर्णोऽल्पसंक्लेदश्चिरपाकी कफव्रणः २१ ॥

कफज व्रण अत्यन्त लिवलिवा, भारी, चिकना, आर्द्र, मन्दपीडायुक्त, पाण्डुवर्ण, अल्प स्रवनेवाला और बहुत दिनोंमें पकनेवाला जानना ॥ २१ ॥

रक्तज और द्वन्द्वजव्रणके लक्षण ।

रक्तो रक्तस्रुतीरक्ताद्द्विजः स्यात्तद्न्वयैः ॥ २२ ॥

जो व्रण रुधिरसें उत्पन्न होता है, वह रक्तवर्ण होता है, उसमें रुधिर स्रवता है, एक दोष और रुधिरके सम्बन्धसे जो व्रण हो वह द्वन्द्वज और जो दो दोष तथा रुधिरके सम्बन्धसे व्रण हो उसको सान्निपातिक जानना ॥ २२ ॥

सुखसाध्यव्रणके लक्षण ।

त्वङ्मांसजः सुखे देशे तरुणस्याऽनुपद्रवः। धीमतोऽभिनवः काले सुखे साध्यः सुखं व्रणः ॥ २३ ॥

जो व्रण त्वचा और मांसमें उत्पन्न हुआ हो, एवं मर्म्मरहित स्थानमें हो, उपद्रवरहित हो, तरुण और बुद्धिमान् पुरुषोंके हो और नवीन हो तथा हेमन्त, शिशिर और वसंन्तऋतुमें उत्पन्न हुआ ऐसा व्रण सुखसाध्य जानना ॥ २३ ॥

कृच्छ्रसाध्य और असाध्यव्रणके लक्षण ।

गुणैरन्यतमैर्हीनस्ततः कृच्छ्रो व्रणः स्मृतः । सर्वैर्विहीनो विज्ञेयस्त्वसाध्यो निरुपक्रमः ॥ २४ ॥

जिस व्रणमें सुखसाध्य व्रणके कुछेक लक्षण अर्थात् थोडे लक्षण हों, वह कष्टसाध्य और जिसमें सम्पूर्ण लक्षण न हों चिकित्सा करी न हो, वह असाध्य जानना ॥ २४ ॥

दुष्टव्रणके लक्षण ।

पूतिपूयातिदुष्टासृक् स्राव्युत्सङ्गी चिरास्थितिः । दुष्टव्रणोऽतिगन्धाढ्यो शुद्धलिङ्गविपर्ययः ॥ २५ ॥

जिस व्रणमें दुर्गन्धित पीव और दूषित रुधिर वहे, ऊँचा, बहुत दिनोंका, एवं अत्यन्त दुर्गंधादि युक्त और शुद्ध व्रणके लक्षणोंसे विपरीत लक्षणोंवाला हो उसको दुष्टव्रण जानना ॥ २५ ॥

शुद्धव्रणके लक्षण ।

जिह्वातलाभोऽतिमृदुः श्लक्ष्णः स्निग्धोऽल्पवेदनः । सुव्यवस्थो निरास्रावः शुद्धो व्रण इति स्मृतः ॥ २६ ॥

जो व्रण जीभके तलेके भागके समान अत्यंत कोमल हो, स्वच्छ, स्निग्ध, अल्पपीडायुक्त, उत्तम व्यवस्थायुक्त और स्रावरहित हो वह व्रण शुद्ध जानना ॥ २६ ॥

व्रणः शुध्यति गन्धेन मृदुत्वञ्चोपगच्छति । रोहत्वं परिनिःसङ्गस्तस्माद्गन्धः प्रशस्यते ॥ २७ ॥

गंध होनेसे व्रण शुद्ध होता है तथा मृदुता उत्पन्न होती है और फिर स्वच्छ होकर भरने लगता है इसकारण व्रणमें गंधका होना उत्तम है ॥ २७ ॥

भरनेवाले व्रणके लक्षण ।

कपोतवर्णप्रतिमा यस्यान्तः क्लेदवर्जिताः । स्थिराश्च पिटिकावन्तो रोहतीति तमादिशेत् ॥ २८ ॥

जिस व्रणका रंग कबूतरके रंगके समान हो, जिसमें स्राव न हो, व्रण स्थिर हो और जिसमें अंकुर मालूम हो उसको भरताहुआ व्रण जानना ॥ २८ ॥

दोषप्रकोपाद्व्यायामादभिघातादजीर्णतः ॥ हर्षात्क्रोधाद्भयाच्चैव व्रणो रूढोऽपि दीर्यते ॥२९ ॥

वातादिदोषोंके प्रकुपित होनेसे, व्यायाम (परिश्रम दण्डकसरत आदि) करनेसे, अभिघात (चोट आदिके लगने) से, अजीर्णसे, हर्ष, क्रोध और भयके होनेसे भराहुआ व्रण भी विदीर्ण होजाता है ॥२९॥

व्याधिविशेषसे व्रणको कृच्छ्रसाध्यत्व कहते हैं।

कुष्ठिनां विषजुष्टानां शोषिणां मधुमेहिनाम्। व्रणाः कृच्छ्रेण सिध्यन्ति येषां चापि व्रणे व्रणाः॥ ३०॥

कुष्ठरोगी, विषरोगी, क्षयरोगी, मधुमेहरोगी ऐसे मनुष्योंका और जिनके व्रणमें व्रण उत्पन्न हो गया हो ऐसे मनुष्योंका व्रण अत्यन्त कष्टसाध्य होता है॥ ३०॥

साध्यासाध्य लक्षण।

वसां मेदोऽथ मज्जानं मस्तुलुङ्गञ्च यः स्रवेत्। आगन्तुजो व्रणः सिद्धयेन्न सिध्येद्दोषसम्भवः॥ ३१॥

जिस व्रणमें वसा, मेद, मज्जा और मस्तिष्क स्नेह बहते हों, वह यदि आगन्तुज हों तो साध्य और वातादिदोषजनित हों तो असाध्य जानना॥ ३१॥

मद्यागुर्वाज्यसुमनःपद्मचन्दनचम्पकैः। सुगन्धा दिव्यगन्धाश्च मुमूर्षूणां व्रणाः स्मृताः॥ ३२॥

जिन व्रणोंमें मदिरा, अगर, घी, कमल और चम्पाके फूलोंकीसी तथा चन्दन आदिकी सुगन्ध और दिव्य गन्ध आवे वह व्रण मरनेवाले रोगियोंके होते हैं॥ ३२॥

ये च मर्म्मसु संभूता भवन्त्यत्यर्थवेदनाः। दह्यन्ते चान्तरत्यर्थं बहिः शीताश्च ये व्रणाः॥ ३३॥ दह्यन्ते बहिरत्यर्थं भवन्त्यन्तश्च शीतलाः। प्राणमांसक्षयश्वासकासारोचकपीडिताः॥ ३४॥ प्रवृद्धपूयरुधिरा व्रणा येषाञ्च मर्म्मसु। क्रियाभिः सम्यगारब्धा न सिध्यंति च ये व्रणाः॥ ३५॥ वर्जयेदपि तान् वैद्यः संरक्षन्नात्मनो यशः॥ ३६॥

जो व्रण मर्म्मस्थानोंमें उत्पन्न हुए हों और उनमें अधिक वेदना हो एवं जिन व्रणोंके भीतर दाह हो और ऊपरसे शीतल हो तथा जिनमें बाहर दाह हो और भीतर शीतलता हो, अथवा जिस व्रणरोगीके प्राणबल और मांसका क्षय हो गया हो, श्वास खाँसी और अरुचि इनसे व्रणरोगी पीडित हो, तथा जो व्रण मर्म्मस्थानोंमें उत्पन्न हुए हैं और उनमें पीव रक्त अत्यन्त बहे वह व्रण, अथवा जिन व्रणोंकी उत्तम चिकित्सा करनेपर भी आराम न हो ऐसे व्रणोंको अपने यशकी इच्छा करनेवाले वैद्य छोड़ देवे॥ ३३-३६॥

व्रणरोगकी चिकित्सा।

आदौ विम्लापनं कुर्य्याद्द्वितीयमवसेचनम्। तृतीयमुपनाहन्तु चतुर्थीं पाटनक्रियाम्॥ ३७॥ पञ्चमं शोधनं कुर्य्यात् षष्ठं रोपणमिष्यते। एते क्रमा व्रणस्योक्ताः सप्तमं च कृतापहम्॥ ३८॥

व्रणशोथमें प्रथम विम्लापन (पोटली बाँधकर उससे सेकना) द्वितीय अवसेचन, तृतीय पुलिटस बाँधना, चतुर्थ छेदन, पंचम शोधन, षष्ठ रोपण और सप्तम वैकृतनाश यह व्रणकी चिकित्सा करनेकी क्रियाएँ क्रमसे कही हैं॥ ३७॥३८॥

मातुलिङ्गाग्निमन्थौ च सुरदारुमहौषधम्। अहिंस्रा चैव रास्ना च प्रलेपो वातशोथनुत्॥ ३९॥

बिजौरानींबू, अरणी, देवदारु, सोंठ, हींस और रायसन इन सबको एकत्र मिलाकर पीस कर प्रलेप करनेसे वातज व्रणशोथ नष्ट होता है॥ ३९॥

कल्कः काञ्जिकसंपिष्टः स्निग्धः शाखोटकत्वचः। सुपर्ण इव नागानां वातशोथविनाशनः॥ ४०॥

सिहोंडेकी छालको काँजीमें पीस कर घृत मिलाकर प्रलेप करनेसे वातजव्रणशोथ इस प्रकार नष्ट होता है जैसे गरुड सर्पोंका तत्काल नाश कर देता है॥ ४०॥

शिरीषोन्मत्तबीजानि हिंस्रा काला सुदर्शनः। तंडुलीयकमूलञ्च प्रलेपः शोथनाशनः॥ ४१॥

सिरसके बीज, धतूरेके बीज, हींस, कलम्बक, सुदर्शन और चौलाईकी जड इनको एकत्र पीसकर प्रलेप करनेसे व्रणशोथ नष्ट होता है॥ ४१॥

दूर्वा च नलमूलश्च मधुकं चन्दनं तथा । शीतलाश्च गणाः सर्वे प्रलेपः पित्तशोथहा ॥ ४२ ॥

दूब, नलकी जड, मुलैठी, चन्दन और सर्व प्रकारकी शीतल औषधियाँ इनका प्रलेप पित्तजव्रणशोथको दूर करता है ॥ ४२ ॥

बृहन्न्यग्रोधादिलेप।

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थप्लक्षवेतसशेलुभिः । चन्दनद्वयमञ्जिष्ठायष्टीसूरणगैरकैः ॥ ४३ ॥ शतधौतघृतोन्मिश्रैर्लेपो रक्तप्रसादनः । दाहपाकरुजास्रावशोफनिर्वापणः परः ॥ ४४ ॥

वड, गूलर, पीपल, पाखर, बेंत, बेल, चन्दन, लालचन्दन, मजीठ, मुलैठी, जमीकन्द और गेरु इन सबको एकत्र पीसकर सौबार धुले हुये घीमें मिलाकर लेप करनेसे रुधिर स्वच्छ होता है, तथा दाह, पकना, पीडा, स्राव और सूजन ये सब दूर होते हैं॥ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

विधिर्विषघ्नो विषजे पित्तघ्नोऽपि हितो विधिः ॥ ४५ ॥

विषजव्रणशोथमें विषनाशक चिकित्सा करनी चाहिए और इसमें पित्तनाशक विधि भी हितकारी है ॥ ४५ ॥

अजगन्धाजशृङ्गी च काला सरलमेव च । एकांशिकाश्वगन्धा च प्रलेपः श्लेष्मशोथहा ॥ ४६ ॥

अजगन्धा (वनतुलसी), मेढाशिंगी, कलम्बक, धूपसरल, काला निसोत और असगंध इन सबको एकत्र पीसकर प्रलेप करनेसे कफजव्रणशोथ नष्ट होता है ॥ ४६ ॥

पुनर्नवादारुशिग्रुदशमूलमहौषधैः । कफवातकृते शोथे लेपः कोष्णो विधीयते ॥ ४७ ॥

पुनर्नवा, देवदारु, सहिंजना, दशमूल और सोंठ इनको एकत्र पीसकर मंदोष्ण करके प्रलेप करनेसे कफवातजनित शोथ नष्ट होता है ॥ ४७ ॥

पिण्डीतकात्रयं लोध्रं पूर्वजैश्च प्रकीर्तिताः । वर्गास्त्रयः प्रलेपेन शोथे सर्वकृते हितः ॥ ४८ ॥

पहिले पिण्डीतक और लोध्रादिक जो तीन वर्ग कहे हैं उनको पीसकर प्रलेप करनेसे सर्व प्रकारके व्रणशोथ नष्ट होते हैं ॥ ४८ ॥

स्निग्धाम्ललवणैर्वाते स्निग्धः शीतः पयोऽन्वितः। पित्ते कोष्णः कफे क्षारमूत्राढयस्तत्प्रशान्तये ॥ ४९ ॥

वातजव्रणशोथमें स्निग्ध अम्ल और लवणमिश्रित प्रलेप करना चाहिये, पित्तजव्रणशोथमें स्निग्ध, शीतल और दूध मिश्रित प्रलेप करना चाहिये और कफजव्रणशोथमें मंदोष्ण, क्षार तथा गोमूत्रादिक मिश्रित प्रलेप करना चाहिये ॥ ४९ ॥

न रात्रौ लेपनं कुर्य्याद्दत्तश्च पतितं तथा । न च पर्युषितं चैव शुष्यमाणं न धारयेत् ॥ ५० ॥

रात्रिमें प्रलेप नहीं करना चाहिये यदि किया हुआ लेप पतित हो जाय तो उसका दूसरी बार लेप नहीं करे और जो किया हुआ लेप सूख जाय तो तत्काल उसको छुड़ादेना चाहिये एवं बासी लेप नहीं करना चाहिये ॥५० ॥

न प्रशाम्यति यः शोथः प्रलेपादिविधानतः । द्रव्याणि पाचनीयानि दद्यात्तत्रोपनाहने ॥ ५१ ॥

जो व्रणशोथ प्रलेपादिकी विधिसे शांत नहीं हो तो व्रणको पकानेवाली औषधियोंको बाँधकर शांत करे ॥ ५१ ॥

शोथयोरुपनाहन्तु कुर्य्यादामविदग्धयोः । प्रशाम्यत्यविदग्धस्तु विदग्धः पाकमेति च ॥ ५२ ॥

जो व्रणकी सूजन कच्ची हो अथवा अच्छे प्रकारसे न पकी हो तो उसके ऊपर उपनाह स्वेद देना चाहिये । यदि सूजन कच्ची हो तो उपनाह स्वेद देनेसे शांत हो जाती है और पकने लगी हो तो तत्काल पक जाती है ॥ ५२ ॥

कटुतैलान्वितैर्लेपात् सर्पनिर्मोकभस्मभिः । चयः शाम्यति गण्डस्य प्रकोपः स्फुटति ध्रुवम् ॥ ५३ ॥

साँपकी कैंचलीको जलाकर भस्म करलेवे, फिर इस भस्मको कडवे तेलमें मिलाकर लेप करनेसे व्रण शोथकी पीडा शांत होती है और व्रणकी गाँठ तत्काल फूट जाती है ॥ ५३ ॥

दण्डोत्पलकमूलेन पिटिका संप्रलेपिता । तंडुलोदकपिष्टेन नाशमायात्यसंशयम् ॥ ५४ ॥

दंडोत्पलकी जडको चावलोंके जलमें पीसकर व्रणकी पिड़िकाके ऊपर प्रलेप करनेसे व्रणशोथ अवश्य नष्ट होता है ॥ ५४ ॥

उपनाहद्रव्य ।

सतिला सातसी बीजा दध्यम्ला सक्तुपिण्डिका । सकिण्वकुष्ठलवणा शस्ता स्यादुपनाहने ॥ ५५ ॥

तिल, अलसीके बीज, दही, काँजी, सत्तूकी पिंडी, खल, कूठ और लवण ये सब उपनाहकर्म्ममें प्रयोग करने चाहिये ॥ ५५ ॥

शणमूलकशिग्रूणां फलानि तिलसर्षपाः । सक्तवः किण्वमतसी प्रदेहः पाचनः स्मृतः ॥ ५६ ॥

सन, मूली सहिंजनेके बीज, तिल, सरसों, सत्तू, खल और अलसी–इन सबको एकत्र पीसकर प्रलेप करनेसे व्रणशोथ अच्छे प्रकारसे पकजाता है ॥ ५६ ॥

संपूरणैः स्नेहपानैः संदिग्धैश्चोपनाहनैः ॥ प्रदेहपरिषेकैश्च वातव्रणमुपाचरेत् ॥ ५७ ॥

सर्वप्रकारके स्नेहपान, सर्वप्रकारके उपनाह स्वेद, प्रलेप और परिषेक ये सब वातजव्रणशोथमें प्रयोग करने चाहिये ॥ ५७ ॥

शीतलैर्मधुरास्निग्धैः प्रदेहपरिषेचनैः । अन्नपानाशनैः सर्वैः पित्तव्रणमुपाचरेत ॥ ५८ ॥

पित्तजव्रणशोथमें समस्त शीतल, मधुर और स्निग्ध पदार्थोंके प्रलेप, परिसेचन, अन्न, पान और भोजन ये सब प्रयोग करने चाहिये ॥ ५८ ॥

रूक्षैः कटुभिरुष्णैश्च प्रदेहपरिषेचनैः । कफव्रणं प्रशमयेत्तथा लङ्घनपाचनैः ॥ ५९ ॥

कफजव्रणशोथमें रूक्ष, कटु और उष्ण प्रलेप, परिसेचन, लंघन और पाचन ये सब प्रयोग करने चाहिये ॥ ५९ ॥

रुजावतां दारुणानां कठिनानां तथैव च । शोथानां स्वेदनं कार्यं ये चाप्येवंविधा व्रणाः ॥ ६० ॥

जो व्रणशोथ वेदनायुक्त, दारुण और कठिन हो उसके ऊपर स्वेदन करना चाहिये और जो व्रणकी सूजन भी इसी प्रकार हो तो उसके ऊपर भी उपनाह स्वेद देना चाहिये ॥ ६० ॥

रक्तमोक्षण ।

वेदनोपशमार्थाय तथा पाकभयादपि । सुचिरोत्पतिते शोथे कार्य्यं शोणितमोक्षणम् ॥ ६१ ॥

वेदनाके शमन होनेके लिये और पाकके भयसे चिरकालसे उत्पन्न हुई सूजनमेंसे रुधिर निकलवाना चाहिये ॥ ६१ ॥

सशोथे कठिने श्यामे सरक्ते वेदनावति । संरब्धे विषमे वापि व्रणे विस्रावणं हितम् ॥ ६२ ॥

जो व्रणमें सूजन हो, व्रण कठिन, काला, लाल, अत्यन्त वेदनायुक्त, स्तब्ध और विषम हो तो विस्रावणविधि करनी चाहिये ॥ ६२ ॥

वातपित्तप्रदुष्टेषु दीर्घकालानुबन्धिषु । विरेचनं प्रशंसन्ति व्रणेषु व्रणकोविदाः ॥ ६३ ॥

जो व्रण वातपित्तसे दूषित हो, तथा जो बहुत दिनोंके हैं उन व्रणोंमें व्रणको जाननेवाले वैद्य विरेचन देवे ॥ ६३ ॥

अन्तः पूयिष्ठवक्रेषु सर्वैवोत्सर्गवत्स्य-पि । गतिमत्सु च रोगेषु भेदनं भा-तमुच्यते ॥ ६४ ॥

जिस व्रणके भीतर राध भररही हो, जिसका मुँह होगया हो, जिसके चारोंओर राध फैल गई हो अर्थात् भीतरसे पोलासा हो गया हो तो ऐसे व्रणको एवं नाडी व्रणको तत्काल फोड देवे ॥ ६४ ॥

शस्त्रसे भेदन निषेध।

बालवृद्धासहक्षीणभीरूणां योषिता-मपि । मर्मोपरि च जातेषु भेदनं द्रव्यलेपनम् ॥ ६५ ॥

बालक, वृद्ध, जो शस्त्रभेदनको न सह सके ऐसा मनुष्य, क्षीणमनुष्य, डरपोक तथा स्त्रियें इनके उत्पन्न हुए व्रण एवं मर्म्मस्थानोंमें उत्पन्न हुए व्रणको औषधियोंका लेप करके भेदन करे, शस्त्रसे कदापि नहीं चीरे ॥ ६५ ॥

चिरबिल्वाग्निको दन्ती चित्रको ह-यमारकः । कपोतकाकगृध्राणां पुरी-षाणि च दारुणम् ॥ ६६ ॥

करंज, भिलावे, दंती, चीता, कनेर, कबूतर कौआ और गीधकी विष्ठा इन सबको एकत्र करके प्रलेप करनेसे व्रण तत्काल फूटजाता है ॥ ६६ ॥

अत्यर्थं कठिना यान्ति शोथाः पाच-नभेदनम् । द्रव्याणां पिच्छलानां त्व-ङ्मूलेन परिपीडिताः ॥६७॥ यवगो-धूममाषाणां चूर्णानि च समासतः । शुष्यमाणमुपेक्षेत प्रदेहं पीडनं प्रति ॥ न चापि मुखमालिम्पेत्तथा दोषः प्र-सिच्यति ॥ ६८ ॥

जो शोथ अत्यन्त कठिन हो तो पकाना और भेदन करना चाहिए अत्यन्त चिकनी औषधियोंकी जडकी छालको पीसकर व्रणशोथपर लगानेसे सूजन नष्ट होजाती है जौ, गेहूँ और उडद इनको एकत्र पीसकर लुपरी बनाकर बाँधनेसे तत्काल सूजन नष्ट हो जाती है। सूजनको सुखानेके लिये जो लेप करे उसको सुखा देना चाहिए, किन्तु गीलाही नहीं छुडाना चाहिए क्योंकि प्रदेह सूखनेसे व्रणका पीड़न हो जाता है। और सूजनके मुखपर लेप नहीं करना चाहिये क्योंकि इस प्रकार करनेसे सूजनमेंसे दोष स्रवते हैं ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

शोधन।

ततः प्रक्षालनः क्राथः पटोलनिम्ब-पत्रजः । अविशुद्धे विशुद्धे तु न्यग्रो-धादित्वगुद्भवः ॥ ६९ ॥

पश्चात् पटोलपत्र और नीमके पत्तोंका काथ बनाकर उससे व्रणको धोवे । न्यग्रोधादिगणकी औषधियोंकी छालका काथ बनाकर शुद्ध और अशुद्ध सर्व प्रकारके व्रणोंको धोवे ॥ ६९ ॥

पञ्चमूलीद्वयं वाते न्यग्रोधादिश्च पै-त्तिके । आरग्वधादिको योज्यः कफ-जे सर्वकर्म्मसु ॥ ७० ॥

दशमूलका काथ वातजव्रणमें, न्यग्रोधादिगणकी औषधियोंका काथ पित्तजव्रणमें और आरग्वधादि-गणकी औषधियोंका काथ कफके व्रणमें शोधनके लिये उत्तम है। अथवा सब कर्मोंमें प्रयोग करने चाहिये ॥ ७० ॥

त्रिफला खदिरो दार्वी न्यग्रोधादि बलाकुशाः । निम्बकोलकपत्राणि कषायाः शोधने हिताः ॥ ७१ ॥

त्रिफला, खैर, दारुहलदी, न्यग्रोधादिगणकी औषधियाँ, खिरैंटी,, कुशा, नीम और बेरीके पत्ते इन सबके काथ व्रणके शोधनमें अत्यन्त हितकारी हैं ॥ ७१ ॥

गृहधूमः सलवणः सकिण्वतिलचित्र-कः । भेदो दुष्टव्रणान्याशु शोधये-न्मधुमिश्रितः ॥ ७२ ॥

घरका धुँआसा, सैंधानमक, खल, तिल और चीता इन सबको एकत्र पीसकर शहदमें मिलाकर प्रयोग करनेसे भेद, दुष्टव्रण प्रभृति सब रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ७२ ॥

तिलसैन्धवयष्ट्याह्वनिम्बपत्रनिशायु-गैः । त्रिवृद्घृतयुतैः पिष्टैः प्रलेपो व्रणशोधनः ॥ ७३ ॥

तिल, सैंधानमक, मुलैठी, नीमके पत्ते, हलदी, दारुहलदी और निसोत इन सबको एकत्र पीसकर घृतमें मिलाकर प्रलेप करनेसे व्रण शुद्ध होता है॥७३

एकं वा शारिवामूलं सर्वव्रणविशोधनम् ॥ ७४ ॥

केवल एक शारिवाकी जड़को पीस कर प्रलेप करनेसे सब प्रकारके व्रण शुद्ध होते हैं ॥ ७४ ॥

निम्बपत्रतिलैः कल्को मधुना क्षतशोधनः। रोपणः सर्पिषा युक्तो यवकल्केऽप्ययं विधिः ॥ ७५ ॥

नीमके पत्ते और तिल इनको एकत्र पीसकर शहदमें मिलाकर लेप करनेसे व्रण शुद्ध होता है। इसी प्रकार जौके कल्कमें घी मिलाकर व्रणपर लगानेसे व्रण भरने लगता है ॥ ७५ ॥

व्रणान् विशोधयेद्वर्त्या सूक्ष्मास्य संधिवर्त्मजान् । अभयात्रिवृतादन्तीलाङ्गलीमधुसैन्धवैः ॥ ७६ ॥

सन्धि और वर्त्ममें उत्पन्न हुए सूक्ष्म व्रणोंको हरड, निसोत, दंती, कलिहारी, शहद और सैंधानमक इनकी बत्ती बनाकर शोधे अर्थात् व्रणमें लगावे॥७६॥

अपेतपूतिमांसानां मांसस्थानमरोहताम्। कल्कस्तु रोपणो देयस्तिलजो मधुसंयुतः ॥ ७७ ॥

जो व्रण मांसमें हो और उसमेंसे सडाहुआ मांस निकलता हो और भरता न हो तो उसके ऊपर तिलोंका कल्क शहदमें मिलाकर लगानेसे व्रण भरने लगता है ॥ ७७ ॥

निम्बपत्रमधुभ्यान्तु युक्तः संशोधनः परः। पूर्वाभ्यां सर्पिषा वापि युक्तः संरोपणः परः ॥ ७८ ॥

नीमके पत्ते और शहदको एकत्र पीसकर,व्रणपर लगानेसे व्रण शुद्ध होता है। अथवा पूर्वोक्त औषधियोंको घृतमें मिलाकर प्रयोग करनेसे व्रण भरजाता है ॥ ७८ ॥

निम्बपत्रघृतक्षौद्रदार्वीमधुकसंयुता । वर्त्तिस्तिलानां कल्को वा शोधयेद्रोपयेद्व्रणान् ॥ ७९ ॥

नीमके पत्ते, घी, शहद,दारुहलदी और मुलैठी इनको एकत्र पीसकर बत्ती बनाकर अथवा केवल तिलोंका कल्क बनाकर लगानेसे व्रण शुद्ध होता है तथा भरता है ॥ ७९ ॥

अश्वगन्धारुहालोध्रकट्फलं मधुयष्टिका । समङ्गा धातकीपुष्पं परमं व्रणरोपणम् ॥ ८० ॥

असगन्ध, कुटकी, लोध, कायफल, मुलैठी, मजीठ और धायके फूल ये व्रणको भरनेके लिये उत्तम औषधियां हैं ॥ ८० ॥

प्रपौण्डरीकं जीवन्ती गोजिह्वाधातकी बला । रोपणं सतिलं दद्यात् प्रलेपं सघृतं व्रणे ॥ ८१ ॥

पुंडेरिया, जीवंती, गोजिया, धायके फूल, खिरैंटी और तिल इनको एकत्र पीसकर घृत मिलाकर प्रलेप करनेसे व्रण भरजाता है ॥ ८१ ॥

यष्टी तिलाः सुपिष्टा वा सघृता व्रणरोपणे । धातकीचन्दनबलासमङ्गामधुकोत्पलैः । दार्वीमेदातिलैर्लेपः ससर्पिर्व्रणरोपणः ॥ ८२ ॥

मुलैठी और तिलोंको एकत्र पीसकर घृत मिलाकर लेप करनेसे व्रण भरजाता है अथवा धायके फूल-चंदन, खिरैंटी, मजीठ, मुलैठी, कमल, दारुहलदी, मेदा और तिल इन सबको एकत्र पीसकर घृत मिलाकर व्रणपर लगानेसे व्रण भरजाता है ॥ ८२ ॥

निम्बपत्रतिलादन्तीत्रिवृत्सैन्धवमाक्षिकम् । दुष्टव्रणप्रशमनो लेपः शोधनकेशरी ॥ ८३ ॥

नीमके पत्ते, तिल, दंती, निसोत, सैंधानमक और शहद इन सबको एकत्र पीसकर प्रलेप करनेसे दुष्टव्रण भरता है, यह लेप व्रणको शुद्ध करनेमें अत्यंत उत्तम है ॥ ८३ ॥

वसुकार्जुननिकुम्भमांसीलोध्रने-शाङ्कुरैः । तिलदार्वीशिखिशिखानिम्बैर्लेपो दुष्टव्रणापहः ॥ ८४ ॥

सफेदमंदार, अर्जुनकी छाल, कोहली, बालछड़, लोध, हलदी, दारुहलदी, तिल, मोरशिखा और नीमके पत्ते सबको एकत्र पीसकर प्रलेप करनेसे दुष्टव्रण शमन होता है ॥ ८४ ॥

कट्फलदाडिमरजनीप्रियंगुफलताम्र-पुष्पिकापुष्पैः । धात्रीरससंपिष्टैर्दुष्ट-व्रणरोपणः कल्कः ॥ ८५ ॥

कायफल, अनारके फलकी छाल, हलदी, फूलप्रियंगु और धायके फूल सबको आमलोंके रसमें पीसकर लेप करनेसे दुष्टव्रण शमन होता है ॥८५॥

सर्षपतैलविमिश्रो रविकरसंशोषितस्तु सप्ताहम् । विषनिशयोः समभागो दुष्टव्रणनाशनः कथितः ॥८६॥

अतीस और हलदी इनको एकत्र पीसकर सरसोंके तेलमें मिलाकर सात दिनतक धूपमें सुखाकर व्रणपर लगावे तो दुष्टव्रण शमन होता है ॥ ८६ ॥

गम्भीरे शुष्कमांसे च व्रणे चोच्छादनं मतम् । अपामार्गोऽश्वगन्धा च तालपत्री तथैव च । उच्छादने प्रशस्यन्ते काकोल्यादिश्च यो गणः॥८७॥

जो व्रण गम्भीर हो और उसका मांस सूख गया हो तो उच्छादनविधि करनी चाहिये । चिरचिटा, असगंध, मूसाकर्णी (अथवा मुसली) और काकोल्यादिगणकी समस्त औषधियाँ ये सब उच्छादनकर्म्ममें प्रयोग करनी चाहिएँ ॥ ८७ ॥

सुषवीपत्रधत्तूरकर्णमोटकुठेरकाः । पृथगेते प्रलेपेन गम्भीरव्रणरोपणाः॥८८॥

कलौंजीके पत्ते, धतूरेके पत्ते, कर्णमोटलता और करेला इन सबको अलग अलग पीसकर पृथक् पृथक् प्रलेप करनेस गहरा व्रण भी भरजाता है ॥ ८८ ॥

ककुभोदुम्बराश्वत्थजम्बूकफललोध्रजैः । त्वक्चूर्णैश्चूर्णिताः क्षिप्रं संरोहन्ति व्रणं ध्रुवम् ॥ ८९ ॥

अर्जुनकी छाल, गूलरकी छाल, पीपलकी छाल, जामुनकी छाल और लोध इन सबका चूर्ण करके व्रणके ऊपर डालनेसे व्रण भरजाता है ॥ ८९ ॥

सदाहा वेदनावन्तो ये व्रणा मारुतोत्तराः । तेषां तिलानुमांश्चैव भृष्टान् पयसि निर्वृतान् । तेनैव पयसा पिष्ट्वा दद्यादालेपनं भिषक् ॥ ९० ॥

जो वातके व्रण दाह और वेदनायुक्त हों तो उनमें तिल और अलसीको दूधमें भूनकर और दूधमें पकाकर पीसकर एवं लेप करनेसे व्रण भरजाता है ॥ ९० ॥

द्विपञ्चमूलकल्केन क्वथितेनाम्भसापि वा । सर्पिषा सह तैलेन कोष्णेन परिषेचयेत् ॥ ९१ ॥

दशमूलके कल्क अथवा काथके द्वारा उपर्युक्त व्रणोंको धोना चाहिये अथवा घृत और तेलको मिलाकर मंदोष्ण करके व्रणपर सेचन करना चाहिये ९१

यवचूर्णं समधुकं सह तैलेन सर्पिषा । दद्यात्प्रलेपनं कोष्णं दाहशूलोपशान्तये ॥ ९२ ॥

जौका चूर्ण, मुलेठीका चूर्ण, तेल और घी इन सबको एकत्र मिलाकर सुहाता २ व्रणपर लेप करनेसे दाह और शूल शांत होता है ॥ ९२ ॥

उच्छूनमृदुमांसानां व्रणानामवसादनम् । जातीपुष्पं मनोह्वा च स्नुहीकाससचित्रकैः ॥ ९३ ॥

चमेलीके फूल, मैनशिल, थूहर और चीता इनको एकत्र पीसकर ऊपरको उठे हुए और मृदु मांसवाले व्रणपर लेप करे इससे अवसादन होता है अर्थात् उठा हुआ मांस नीचेको बैठजाता है ॥ ९३ ॥

मांसोत्थितांश्चिरोत्थांश्च दुःशोथकठिनान्व्रणान् । दण्डोद्भूतसमायुक्ताञ्छोधयेत् क्षारकर्मणा ॥ ९४ ॥

मांसमें उत्पन्न हुए, बहुत दिनोंके पुराने, दुष्टशोथयुक्त, कठिन और दण्डसे उत्पन्न हुए ऐसे व्रणोंको क्षार कर्मके द्वारा शुद्ध करे ॥ ९४ ॥

वातादिभूतान्सस्रावान् धूपयेदुग्रवेदनान् । यवाज्यभूर्जमदनश्रीवेष्टकसुराह्वयैः ॥ ९५ ॥ श्रीवासगुग्गुल्वगुरुसालनिर्यासधूपिताः । काठिनत्वं व्रणा यान्ति नश्यन्त्यास्राववेदनाः ॥ ९६ ॥

वातादि दोषोंसे उत्पन्न हुए, स्रावयुक्त और जिनमें उग्रवेदना हो ऐसे व्रणोंको जौ, घी, भोजपत्र, मैनफल, श्रीवेष्ट (बिरोजा), देवदारु, श्रीवास (लोबान), गूगल, अगर और राल इन सबकी धूनी देनेसे व्रण कठिन होजाते हैं तथा स्राव और पीडा शमन होती है ॥ ९५ ॥ ९६ ॥

रक्तपित्तविषागन्तुगम्भीरान्सोष्मणान्व्रणान् । क्षीररोपणभैषज्यशृतेनाज्येन रोपयेत् ॥ ९७ ॥

रक्त और पित्तसे उत्पन्न हुए, विषसे उत्पन्न हुए, आगन्तुक, गम्भीर और उष्णतायुक्त ऐसे व्रणोंको दूध और रोपण औषधियोंसे पकाये हुए घृतसे रोपण करे ॥ ९७ ॥

निर्वापनघृतं क्षौद्रं तैलं मधुकचन्दनम् । लेपनं शोथरुग्दाहरक्तं निर्वापयेद्व्रणान् ॥ ९८ ॥

घी, शहद, तेल, मुलैठी और चन्दन इन सबको एकत्र मिलाकर व्रणमें प्रलेप करनेसे सूजन, व्रणकी पीडा, दाह और विकृतरुधिर दूर होता है ॥ ९८ ॥

करञ्जारिष्टनिर्गुण्डी रसो हन्याद्व्रणकृमीन् ।

करंज, नीमके पत्ते और निर्गुण्डी इनका रस निकालकर व्रणके ऊपर डालनेसे व्रणके कृमि नष्ट होजाते हैं।

कलायविदलीपत्रं कोशाम्रास्थि च पूरणात् । सुरसादिरसैः सेको लेपनं लशुनेन वा ॥ ९९ ॥ निम्बपत्रवचाहिंगुसर्पिर्लवणसर्षपैः । धूपनं स्याद्व्रणे देयं कृमिकंडूरुजापहम् ॥ १०० ॥

मटर, निसोतके पत्ते और कोशाम्रके भीतरकी गुठली इनको एकत्र पीसकर व्रणमें भरनेसे व्रण भर जाता है। अथवा तुलसी आदि औषधियोंके रसको परिसेचन करनेसे या लशुनको पीसकर लेप करनेसे किंवा नीमके पत्ते, वच, हींग, घी, सैंधानमक और सरसों इन सबको एकत्र पीसकर इनका धूप देनेसे व्रणकी खुजली, कृमि और पीडा शान्त होती है ॥ ९९ ॥ १०० ॥

रोमाकीर्णो व्रणो यस्तु न सम्यगुपरोहति । क्षुरकर्त्तरिसंदंशैस्तस्य रोमाणि निर्हरेत् ॥ १०१ ॥

जो व्रण अत्यन्त रोमोंसे व्याप्त होनेके कारण अच्छे प्रकारसे न भरे तो उसके ऊपरके रोमोंको उस्तरे, कैंची अथवा अन्यान्यशस्त्रसे काटदेना चाहिए या दांतोंसे काटदेना चाहिए ॥ १०१ ॥

रोमस्थाने यदा रोमव्रणशान्ते च नो भवेत् । तत्र वैद्येन कर्त्तव्यो रोमसञ्जयनो विधिः ॥ १०२ ॥

जो व्रणके आरोग्य होनेपर रोमोंके स्थानमें रोग उत्पन्न न हों तो यहाँ वैद्यको रोमोंको उत्पन्न करनेवाली चिकित्सा करनी चाहिए ॥ १०२ ॥

कपोतवङ्कालशुनं सशीर्षं ससैन्धवं चित्रकमूलमिश्रम् । तदश्वलेण्डस्य रसेन पिष्टं व्रणे प्रलेपो भवने हि रोम्णाम् ॥ १०३ ॥

ब्राह्मी, लशुन, अगर, सैंधानमक और चीतेकी जड इन सबको एकत्र घोडेकी लीदके रसमें पीसकर व्रणपर लेप करनेसे व्रणके स्थानमें रोम उत्पन्न होजाते हैं ॥ १०३ ॥

ये क्लेदपाकस्रुतिगन्धवंतो व्रणाश्चिरोत्थाः सरुजः सशोथाः । प्रयान्ति

ते गुग्गुलुमिश्रितेन पीतेन शान्ति त्रिफलारसेन ॥ १०४ ॥

जिस व्रणका पाक क्लेदयुक्त हो, व्रण स्रवता हो, दुर्गंध आती हो और बहुत कालसे उत्पन्न हुआ हो पीडायुक्त और जिसमें सूजन हो उसमें त्रिफलेके काथमें गूगल डालकर पान करे ॥ १०४ ॥

पटोलनिम्बासनसारधात्रीपथ्याक्षनिर्यूहमहर्मुखेषु । नरः पिबेद्गुग्गुलुना विसर्पविस्फोटदुष्टव्रणशान्तिमिच्छन् ॥ १०५ ॥

पटोलपत्र, नीमके भीतर की छाल, विजयसार, आमले, हरड और बहेड़ा इनका काथ बनाकर उसमें गूगल डालकर नित्य प्रातःकाल पीनेसे विसर्प, विस्फोटक तथा दुष्टव्रण शान्त हो जाते हैं ॥ १०५ ॥

मनःशिला समञ्जिष्ठा सलाक्षारजनीद्वयम् । प्रलेपात्सघृतः क्षौद्रस्त्वग्विशुद्धिकरः परः ॥ १०६ ॥

मैनशिल, मजीठ, लाख, हलदी और दारुहलदी इनको एकत्र पीसकर शहद और घीमें मिलाकर प्रलेप करनेसे त्वचा शुद्ध होती है और व्रणका स्थान फिर शरीरके वर्णके समान होजाता है ॥ १०६ ॥

पूतिगन्धिविवर्णांश्च महास्रावान्महारुजः । व्रणानशुद्धान्विज्ञाय शोधनैस्समुपाचरेत् ॥ १०७ ॥

जिनमें अत्यन्त दुर्गन्ध आती हो, जिनका रंग बुरा हो, जिनमेंसे पानी, राध आदि अत्यन्त स्रवता हो और जिनमें अत्यन्त पीडा हो ऐसे व्रणोंको अशुद्ध समझकर शोधन करे ॥ १०७ ॥

व्रणरोगियोंका भोजन ।

जीर्णशाल्योदनं स्निग्धमल्पमुष्णं द्रवोत्तरम् । भुञ्जानो जाङ्गलैर्मांसैः शीघ्रं व्रणमपोहति ॥ १०८ ॥

व्रणरोगियोंको स्निग्ध, अल्प, उष्ण और पतला ऐसा पुराने शालिचावलोंका भात, जांगलप्रदेशके जीवोंके मांसरसके साथ भक्षण करनेके लिये देवे इससे शीघ्र ही व्रण नष्ट होजाते हैं ॥ १०८ ॥

तंडुलीयकजीवन्तीसुनिषण्णकवास्तुकैः । कालमूलकवार्त्ताकुपटोलैः कारवेल्लकैः ॥ १०९ ॥ सदाडिमैः सामलकैर्घृतभृष्टैः ससैन्धवैः । अन्यैरेवं गुणैर्वापि मुद्गादीनां रसेन वा ॥ ११० ॥

चौलाई, जीवंती, शिरिआरी, बथुआ, नाडीका शाक, मूली, बैंगन, परवर, करेला, अनार और आमले इनको घीमें भूनकर सैंधानमक डालकर इनके साथ अथवा इनके समान अन्यगुणोंवाली वस्तुओंके साथ या मूँग आदिके रसके साथ भोजन करना चाहिये ॥ १०९ ॥ ११० ॥

अपथ्य ।

अम्लं दधि च शाकञ्च मांसमानूपमौदकम् । क्षीरं गुरूणि चान्नानि व्रणे च परिवर्जयेत् ॥ १११ ॥

खटाई, दही, शाक, अनूपदेश और जलचरजीवोंका मांस, दूध और भारी अन्न इन सबको व्रणरोगी त्याग देवे ॥ १११ ॥

दिवानिद्राविहीनश्च निर्वातगृहसेवकः । व्रणी वैद्यवशे तिष्ठन् शीघ्रं व्रणमपोहति ॥ ११२ ॥

जो व्रणरोगी दिनमें शयन नहीं करता और वातरहित स्थानमें निवास करता है तथा वैद्यके बचनोंके अनुसार चलता है तो उसका व्रण शीघ्र ही नष्ट होजाता है ॥ ११२ ॥

व्रणे श्वयथुरायासात् स च रागश्च जागरात् । तौ च रुक् च दिवास्वापात्ते च मृत्युश्च मैथुनात् ॥ ११३ ॥

व्रणरोगमें परिश्रम करनेसे सूजन आती है, रात्रिमें जागनेसे लाली बढती है, दिनमें सोनेसे सूजन, लाली तथा पीडा ये तीनों होती हैं और मैथुन करनेसे सूजन, लाली, पीडा और मृत्यु ये चारों होती हैं ॥ ११३ ॥

यश्छिनत्यामसज्ञानाद्यश्च पक्कमुपेक्षते। श्वपचाविव मन्तव्यो तावनिश्चितकारिणौ ॥ ११४ ॥

जो मूर्खवैद्य अज्ञानसे अपक्क व्रणको पक्क समझकर चीर देता है और जो पक्ककी उपेक्षा करता है अर्थात् पक्कको कच्चा समझकर नहीं चीरता ऐसे वैद्योंको चाण्डालके समान समझना चाहिये ॥ १४४ ॥

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायां व्रणशोथाधिकारः समाप्तः ॥ ५० ॥

अथ आगन्तुकव्रणरोगाधिकार।



नानाधारामुखैः शस्त्रैर्नानास्थाननिपातितैः। भवन्ति नानाकृतयो व्रणास्तांस्तान् निबोध मे ॥ १ ॥

अनेक प्रकारकी धारवाले और अनेक प्रकारके मुखवाले शस्त्र, शरीरके अनेक स्थानोंमें लग जानेसे नानाप्रकारकी आकृतिवाले व्रण होते हैं, उनके लक्षणोंको कहते हैं ॥ १ ॥

आगन्तुकव्रणकी संख्या और संप्राप्ति।

छिन्नं भिन्नं तथा विद्धं क्षतं पिच्चितमेव च। घृष्टमाहुस्तथा षष्ठं तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ २ ॥

छिन्न, भिन्न, विद्ध, क्षत, पिच्चित और घृष्ट, ऐसे ये आगन्तुक व्रण छः प्रकारके हैं अब इनके लक्षण कहता हूँ ॥ २ ॥

छिन्नके लक्षण।

तिर्यक् छिन्न ऋजुर्वापि व्रणो यस्त्वायतो भवेत्। गात्रस्य पाटनं तद्धि छिन्नमित्यभिधीयते ॥ ३ ॥

जो व्रण तिरछा, सीधा अथवा लम्बा हो और शरीरका एक अंग कटकर गिरजाय या नहीं गिरे उसको छिन्न व्रण कहते हैं ॥ ३ ॥

भिन्नके लक्षण।

शक्तिकुन्तेषुखड्गाग्रविषाणैराशयो हतः। यत्किञ्चित् प्रस्रवेत्तद्धि भिन्नलक्षणमुच्यते ॥ ४ ॥

बर्छी, भाला, बाण, तलवारकी नोक और विषाण (दांत सींग) इनसे जो कोठेमें आमाशयादियन्त्र छिद् जायँ और उनमेंसे कुछ रुधिरनिकले तो उसको भिन्नव्रण कहते हैं ॥ ४ ॥

कोष्ठके लक्षण।

स्थानान्यामाग्निपक्वानां मूत्रस्य रुधिरस्य च। हृदुण्डुकः फुप्फुसश्च कोष्ठ इत्यभिधीयते ॥ ५ ॥

आमाशय, अग्न्याशय, पक्वाशय, मूत्राशय, रक्ताशय, यकृत, प्लीहा, हृदय, मलाशय और गठिया इन स्थानोंको कोष्ठ कहते हैं ॥ ५ ॥

इन भेदोंके लक्षण।

तस्मिन् भिन्ने रक्तपूर्णे ज्वरो दाहश्च जायते। मूत्रमार्गगुदास्येभ्यो रक्तं घ्राणाच्च गच्छति ॥ ६ ॥ मूर्च्छाश्वासतृषाध्मानमभक्तच्छन्द एव च। विण्मूत्रवातसङ्गश्च स्वेदास्रावोऽक्षिरक्तता ॥ ७ ॥ लोहगन्धित्वमास्यस्य गात्रदौर्गन्ध्यमेव च। हृच्छूलं पार्श्वयोश्चापि विशेषं चात्र मे शृणु ॥ ८ ॥

उस कोष्ठमें शस्त्रसे छिद्र होनेसे रुधिर भरजाता है तब ज्वर और दाह होती है. मूत्रमार्ग, गुदा, मुख और नाकके द्वारा रुधिर निकलता है, मूर्च्छा, श्वास, तृषा, अफारा, अन्नमें अरुचि, मल, मूत्र और अधोवायुका अवरोध, पसीना अधिक आना, नेत्रोंमें लाली, मुखमें लोहेके समान गंध, शरीरमें दुर्गन्ध आती है, हृदय और पसलियोंमें शूल ये सब लक्षण होते हैं, अब कुछ विशेष लक्षण कहते हैं ॥ ६ ॥ ॥ ७ ॥ ८ ॥

आमाशयस्थितरक्तके लक्षण ।

अमाशयस्थे रुधिरे रुधिरं छर्दयत्यपि । आध्मानमतिमात्रञ्च शूलञ्च भृशदारुणम् ॥ ९ ॥

आमाशयमें रुधिरके भरजानेसे रुधिरकी वमन होती है, पेट फुलजाता है और दारुण शूल होता है ॥ ९ ॥

पक्वाशयस्थके लक्षण ।

पक्वाशयगते चापि रुजागौरवमेव च । अधःकाये विशेषेण शीतता च भवेदिह ॥ १० ॥

पक्वाशयमें रुधिरके भरजानेसे अत्यंत पीडा, शरीरमें भारीपन और कमरसे नीचेतक शरीर शीतल होता है ॥ १० ॥

विद्धव्रणके लक्षण ।

सूक्ष्मास्यशल्याभिहतं यदङ्गत्वाशयं विना । उत्तूडितं निर्गतं वा तद्विद्धमिति निर्दिशेत् ॥ ११ ॥

आशयोंको छोडकर अन्य अंगोंमें बहुत बारीक नोकवाले शल्य अर्थात् सुई, कांटे आदि छिदजानेसे वह अंग ऊपरको ऊँचा हो जाता है, वह शल्य निकल जायँ अथवा ऊपरको आजाय तब उसको विद्धव्रण कहते हैं ॥ ११ ॥

क्षतके लक्षण ।

नातिछिन्नं नातिभिन्नमुभयोर्लक्षणान्वितम् । विषमं व्रणमङ्गेषु तत्क्षतं तु विनिर्दिशेत् ॥ १२ ॥

जो व्रण न अत्यंत छिदा हो और न अत्यन्त कटा हो, एवं दोनों लक्षणोंसे युक्त हो तथा शरीरमें टेढा भेड़ा हो उसको क्षत कहते हैं ॥ १२ ॥

पिच्चितके लक्षण ।

प्रहारपीडनाभ्याञ्च यदङ्गं पृथुतां गतम् । सास्थि तत्पिच्चितं विद्यान्मज्जारक्तपरिप्लुतम् ॥ १३ ॥

जो अंग हाड़सहित चोटके लगनेसे अथवा किसी भारी बोझके ऊपर पडनेसे पिचजाय, उसमें मज्जा और रक्त भरा हो तो उसको पिच्चितव्रण कहते हैं ॥ ॥ १३ ॥

घृष्टके लक्षण ।

घर्षणादभिघाताद्वा यदङ्गं विगतत्वचः । ऊषास्रावान्वितं तत्तु घृष्टमित्यभिधीयते ॥ १४ ॥

घर्षणसे, अभिघातसे अथवा अन्यकारणोंसे जिस अंगकी त्वचा छिल जाय और अग्निके समान गरम रुधिर निकले उसको घृष्टव्रण कहते हैं ॥ १४ ॥

शल्यसहितव्रणके लक्षण ।

श्यावं सशोफं पिटिकाचितं च मुहुर्मुहुः शोणितवाहिनं । मृदून्नतं बुद्बुदतुल्यमांसं व्रणं सशल्यं सरुजं वदन्ति ॥ १५ ॥

जो व्रण कृष्ण रक्तवर्ण मिश्रित हो, सूजनसहित हो जिसमें छोटी २ फुंसी अधिक हों, उनमेंसे वारंवार रुधिर बहे, गरम और बबूलेके समान ऊपरको उठा हुआ जिसका मांस हो उस व्रणको शल्ययुक्त जानना अर्थात् उस व्रणमें कांटा आदि शल्य रहगया जानना चाहिये ॥ १५ ॥

कोष्ठभेदके लक्षण ।

त्वचोऽतीत्य शिरादीनि भित्वा वा परिहृत्य वा । कोष्ठे प्रतिष्ठितं शल्यं कुर्य्याद्रक्तानुपद्रवान् ॥ १६ ॥

जो काँटा आदि शल्य सातों त्वचाओंको भेदकर और नसोंको भी भेदकर अथवा नसोंको छोड कर कोठेमें जाकर स्थित हो वह पूर्वोक्त भिन्न कोष्ठके घोर उपद्रवोंको करते हैं ॥ १६ ॥

असाध्यके लक्षण ।

तत्रान्तर्लोहितं पांडु शीतपादकराननम् । शीतोच्छ्वासं रक्तनेत्रमानद्धञ्च विवर्जयेत् ॥ १७ ॥

जिसके शल्ययुक्त कोठेमें रुधिर हो और वह रोगी पीला पडजाय, तथा उसके पांव, हाथ, मुख और

श्वासोच्छ्वास ठंडा हो, नेत्र लाल होगये हों और पेटमें अफारा बहुत आगया हो, वह कोष्ठभेद असाध्य जानना ॥ १७ ॥

मर्मोंमें चोट लगनेसे जो व्रण होता है उसका सामान्य लक्षण।

भ्रमः प्रलापः पतनं प्रमोहो विचेष्टनं ग्लानिरथोष्णता च। स्रस्ताङ्गतामूर्च्छनमूर्ध्ववातस्तीव्रा रुजो वातकृताश्च तास्ताः॥ १८॥ मांसोदकाभं रुधिरश्च गच्छेत्सर्वेन्द्रियार्थो परमस्तथैव। दशार्द्धसंख्येष्वथवा क्षतेषु सामान्यतो मर्म्मसु लिङ्गमुक्तम् ॥१९॥

भ्रम, वृथा बकवाद, बार २ जमीनपर लोटना, इन्द्रिय और मनमें मोह होना, हाथ पावोंका फैलना, ग्लानि, गरमी, शरीरके अंगोंमें शिथिलता, मूर्च्छा, श्वासका ऊपरको जाना, वातकी तीव्र वेदना, धुलेहुए मांसके जलके समान रक्तका बहना, सम्पूर्ण इन्द्रियोंका व्याकुल होना ये सब लक्षण मांसादि पांच मर्मोके विद्ध होनेसे होते हैं ॥ १८ ॥ १९ ॥

मर्मरहितशिराविद्धके लक्षण।

सुरेन्द्रगोपप्रतिमं प्रभूतं रक्तं स्रवेत्तत्क्षयजश्च वायुः। करोति रोगान् विविधान्यथोक्ताञ्छिरासु विद्धास्वथवा क्षतासु ॥ ॥२० ॥

शिराके विधजानेसे अथवा शिरामें घावके होजानेसे बीरबहुटीके समान अरुणवर्ण और बहुतसा रुधिर बहता है तथा रुधिरके क्षय होनेसे वायु कुपित होकर अनेक प्रकारके रोगोंको उत्पन्न करता है ये लक्षण मर्म्मरहित शिराविद्धके जानने ॥ २० ॥

स्नायुविद्धके लक्षण।

कौब्जं शरीरावयवावसादः क्रियास्वशक्तिस्तुमुलारुजश्च। चिराद्व्रणो रोहति यस्य चापि तं स्नायुविद्धं पुरुषं व्यवस्येत् ॥२१ ॥

कुब्जता (कुबडापन), शरीरमें ग्लानियुक्त पीडा, काम करनेमें सामर्थ्यका न होना, बहुत वेदना हो और जो व्रण बहुतकालमें भरे उसको स्नायुविद्ध जानना ॥ २१ ॥

सन्धिविद्धके लक्षण।

शोथाभिवृद्धिस्तुमुलारुजश्च बलक्षयः सर्वत एव शोथः। क्षतेषु सन्धिष्वचलाचलेषु स्यात्सर्वकर्मोपरमश्च लिङ्गम् ॥ २२ ॥

जिस मनुष्यकी संधि चल अथवा निश्चल वेधीगई हो, उसके सूजन बढती जाय, अत्यंत भयंकर वेदना हो, बलका नाश, संधियोंके जोडोमें हडफूटन और सूजन तथा संधियोंके कार्य्यमें असमर्थता ये लक्षण संधिविद्धके जानने ॥ २२ ॥

अस्थिविद्धके लक्षण।

घोरा रुजो यस्य निशादिनेषु सर्वास्ववस्थासु च नैति शान्तिम्। भिषग्विपश्चिद्विदितार्थसूत्रस्तमस्थिविद्धं पुरुषं व्यवस्येत् ॥ २३ ॥

जिस मनुष्यके निरंतर रात दिन अत्यंत भयंकर वेदना हो, किसी समय चैन नहीं पडे, उसकी अस्थि विद्धहुई जाननी ॥ २३ ॥

मर्मविद्धके लक्षण।

यथा स्वमेतानि विभावयेच्च लिङ्गानि मर्म्मस्वभिताडितेषु।

मर्म्मस्थानोंमें चोटके लगनेसे पूर्वोक्त लक्षण जानने और शब्दसे भ्रम प्रलापादि जो सामान्य लक्षण हैं उनको भी जानना।

मांसमर्म्मव्रणके लक्षण।

पांडुर्विवर्णः स्पृशितं न वेत्ति यो मांसमर्माण्यभिताडितः स्यात् ॥ २४ ॥

जो मनुष्य मांसमर्म्मके स्थानमें विद्ध होता है उसका शरीर पाण्डुवर्ण, विवर्णता और उस स्थानमें स्पर्शज्ञान नहीं होता ॥२४ ॥

व्रणायामके लक्षण।

मर्म्माश्रितं व्रणं प्राप्य ह्यनिलः सर्वदेहगः। वेगैरायामयेद्देहं व्रणायामन्तु तत्त्यजेत्॥ २५॥

सम्पूर्ण शरीरगतवायु मर्म्माश्रित व्रणोंमें प्राप्त होकर वेगपूर्वक शरीरको फैला देता है इसको व्रणायाम कहते हैं यह असाध्य है॥ २५॥

सर्वव्रणके लक्षण।

विसर्पः पक्षघातश्च शिरःस्तंभोऽपतानकः। मोहोन्मादव्रणरुजो ज्वरस्तृष्णा हनुग्रहः॥ २६॥ कासश्छर्दिरतीसारो हिक्का श्वासः सवेपथुः। षोडशोपद्रवाः प्रोक्ता व्रणानां व्रणचिन्तकैः॥ २७॥

विसर्प, पक्षाघात, शिरका जकड़ना, अपतानक, मोह, उन्माद, ज्वर, व्रणमें पीड़ा, तृषा, हनुग्रह, खाँसी, वमन, अतीसार, हिचकी, श्वास और कम्प ये व्रणरोगमें १६ उपद्रव होते हैं ऐसा व्रणको जाननेवाले वैद्योंने कहा है॥ २६॥ २७॥

आगन्तुकव्रणकी चिकित्सा।

बुद्ध्वागन्तुव्रणं वैद्यो घृतक्षौद्रसमन्विता। शीता क्रिया प्रयोक्तव्या रक्तपित्तोष्मनाशिनी॥ २८॥

वैद्य आगन्तुक व्रण समझकर उसको रक्तपित्त और दाहको नष्ट करनेवाली शीतल औषधियोंमें शहद और घी मिलाकर प्रयोग करे॥ २८॥

क्रुद्धे सद्योव्रणे युञ्ज्यादूर्ध्वं चाधश्च शोधनम्। लङ्घनञ्च बलं ज्ञात्वा भोजनं चास्रमोक्षणम्॥ २९॥

तत्कालके व्रणके कुपित होनेपर रोगीके बलाबलको विचार कर वमन, विरेचन, लंघन, भोजन और रक्तमोक्षण ये सब उपचार करने चाहियें॥२९॥

घृष्टे विदालिते चैव सुतरामिष्यते विधिः। यतो ह्यल्पं स्रवत्यस्रं पाकस्तेनाशु जायते॥ ३०॥

घिसनेसे अथवा विदलित होनेसे जो व्रण हुआ हो उसमेंसे रुधिर बहुत कम निकलता है इस कारण पित्तका कोप होकर वह शीघ्रही पकजाता है अतएव उसमें उपर्युक्त विधि करनी चाहिये॥ ३०॥

छिन्ने भिन्ने तथा विद्धे क्षते वासृगतिस्रवेत्। रक्तक्षयात्तत्र रुजः करोति पवनो भृशम्॥ ३१॥

अंगोंके छिन्न भिन्न विद्ध होजानेपर और घावोंमेंसे रुधरको निकलनेलगे इसप्रकार रुधिरके क्षय होनेसे वायु अत्यन्त पीडाको उत्पन्न करता है॥ ३१॥

स्नेहपानपरीषेकलेपस्वेदोपनाहनम्। कुर्वीत स्नेहबस्तिश्च मारुतघ्नौषधैः शृतैः॥ ३२॥

जो ऐसा व्रण हो, तो उसमें परिसेचन, स्नेहपान, लेप, स्वेद, उपनाहकर्म्म और वातनाशक औषधियोंके काथके द्वारा स्नेहबस्ति प्रदान करे॥ ३२॥

छिन्ने भिन्ने तथा विद्धे क्षते सद्यो भिषग्वरः। पट्टसूत्रेण संवेष्ट्य व्रणं व्रणविशारदः॥ ३३॥ मुहुर्मुहुस्तथा दुःखं न प्राप्नोति भिषग्वरः। तथा कर्म्म प्रकुर्वीत सर्वतश्च सुखप्रदम्॥ ३४॥

छिन्न, भिन्न और विद्धव्रणोंको तत्काल रेशमसे बांधे, इसप्रकार करनेसे रोगी वारंवार दुःखको प्राप्त नहीं होता तथा सम्पूर्ण सुखकारक कर्म्म करने चाहिये॥ ३३॥ ३४॥

अथवा दीप्यलवणं पोटल्या स्वेदयेन्मुहुः। संततया तप्तलोहपात्रसंयोगतः क्रमात्। दुष्टं रक्तं स्थितं चापि शृङ्गचलाब्वादिभिर्हरेत्॥ ३५॥

अथवा उस व्रणको अजवायन और लवणकी पोटली बनाकर लोहेके पात्रमें पोटलीको रखकर उसको संतप्त करके वारंवार उससे स्वेद देवे अर्थात् सेके अथवा संचित हुए दूषित रुधिरको तोम्बी या शिंगीसे निकलवावे॥ ३५॥

सद्यःक्षते व्रणे वैद्यः सशूले परिषेचयेत्। यष्टीमधुकमिश्रेण नातिशीतेन सर्पिषा ॥ ३६ ॥

तत्कालके उत्पन्न हुए व्रणमें जो शूल हो तो मुलैठीका चूर्ण मिले हुये मन्दोष्ण घृतसे परिसेचन करे ॥ ३६ ॥

कषायमधुराः शीताः क्रियाः सर्वास्तु योजयेत्॥ ३७ ॥

तथा कषेली, मधुर और शीतल ऐसे औषधियोंके द्वारा चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३७ ॥

आमाशयस्थे रुधिरे विदध्याद्वमनं नरः। तस्मिन् पक्वाशयस्थे तु प्रकुर्वीत विरेचनम् ॥ ३८ ॥

जो व्रणका रुधिर आमाशयमें स्थित हो तो वमन करावे और जो पक्वाशयमें स्थित हो तो विरेचन विधि करानी चाहिये ॥ ३८ ॥

क्वाथो वंशत्वगेरण्डश्वदंष्ट्राऽश्मभिदा कृतः। हिंगुसैन्धवसंयुक्तः कोष्ठस्थं स्रावयेदसृक् ॥ ३९ ॥

बाँसकी छाल, अण्डकी जड़, गोखुरू और पाषाणभेद इनका क्वाथ बनाकर उसमें हींग और सैंधानमक डालकर पान करनेसे कोष्ठस्थ रुधिर निर्गत होजाता है ॥ ३९ ॥

खड्गादिछिन्नगात्रस्य तत्काले पूरितो व्रणः। गाङ्गेरुकीमूलरसैः सद्यः स्याद्गतवेदनः ॥ ४० ॥

तलवार आदिके घावमें तत्काल गंगेरनकी जडके रसको भरदेवे तो उसकी वेदना दूर होजाती है ४०॥

यवकोलकुलित्थानां निःस्नेहेन रसेन च। भुञ्जीतान्नं यवागूं वा पिबेत्सैन्धवसंयुताम् ॥ ४१ ॥

आगन्तुकव्रणवाले मनुष्योंको जौ, बेर और कुलथी इनके रसको स्नेहरहित भातके साथ भोजन करे अथवा सैंधानमक डालकर यवागू पान करे ॥ ४१॥

अपामार्गस्य संसिक्तं पत्रोत्थेन रसेन वा। सद्योव्रणेषु रक्तन्तु प्रवृत्तं परितिष्ठति ॥ ४२ ॥

तत्कालके हुये घावमें चिरचिटेके पत्तोंके स्वरसको सेचन करनेसे प्रवृत्त हुआ रुधिर स्थिर हो जाता है ॥ ४२ ॥

कर्पूरपूरितं बद्धं सघृतं सम्प्ररोहति। सद्यः शस्त्रक्षतं तत्तु व्यथापाकविवर्जितः ॥ ४३ ॥

तत्काल शस्त्रसे उत्पन्न हुए और पीडा तथा पाकरहित ऐसे व्रणमें घीमें कपूर मिलाकर बाँधनेसे व्रणमें अंकुर उत्पन्न होकर व्रण भरने लगता है ॥४३ ॥

शुनो जिह्वाकृतश्चूर्णः सद्यःक्षतविरोहणः। चुक्रतैलं क्षते विद्धे रोपणं परमं मतम् ॥ ४४ ॥

कुत्तेकी जिह्वाको सुखाकर उसका चूर्ण बनाकर व्रणपर डालनेसे तत्काल भरने लगजाता है। तथा चुक्रतेल अथवा चूकेका तेल क्षत और विद्ध व्रणोंमें व्रणको भरनेके लिये उत्तम है ॥ ४४ ॥

मानुषशिरःकपालं तदस्थि लेपनं तु मूत्रेण। रोपणमिदं क्षतानां योगशतैरप्यसाध्यानाम् ॥ ४५ ॥

मनुष्यके शिरकी खोपडीकी हड्डीको लेकर गोमूत्रके साथ पीसकर लेप करनेसे जो घाव सैकड़ों औषधियोंसे आरोग्य नहीं होसकते वे तत्काल भरजाते हैं ॥ ४५॥

स्नेहपानं परीसेकं स्नेहलेपोपनाहनम्। स्नेहबस्तिं च कुर्वीत वातघ्नौषधसाधिताम् ॥ ४६॥ इति साप्ताहिकः प्रोक्तः सद्योव्रणहितो विधिः। सप्ताहात्परतो कुर्याच्छारीरव्रणवत् क्रियाम् ॥ ४७ ॥

सद्योव्रणमें स्नेहपान, परिसेचन, स्नेहमिश्रित लेप, उपनाहकर्म्म और वातनाशक औषधियोंके काथके द्वारा स्नेहबस्ति ये सब क्रियायें सात दिनतक करनी चाहियें। सात दिनके पश्चात् शारीरव्रणके समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥४६॥४७॥

गुग्गुलुवटिका ।

त्रिफलाचूर्णसंयुक्तो गुग्गुलुर्वटकीकृतः । निर्यन्त्रणो विबंधघ्नो व्रणशोधनरोपणः ॥ ४८ ॥

गूगलको त्रिफलेके चूर्णमें मिलाकर गोली बनाकर भक्षण करनेसे व्रणकी पीड़ा, विबन्ध और व्रण नष्ट होता है तथा व्रण शुद्ध होकर भरने लगता है॥४८॥

अमृतागुग्गुलु ।

अमृतापटोलमूलत्रिफलात्रिकटुकृमिघ्नानाम् । समभागानां चूर्णं सर्वसमो गुग्गुलोर्भागः ॥ ४९ ॥ प्रतिवासरमेकैकां खादेदक्षप्रमाणां गुटिकाम् । जेतुं व्रणान्वातासृग्गुल्मोदरश्वयथुरोगादीन् ॥ ५० ॥

गिलोय, परवलकी जड़, त्रिफला, त्रिकुटा, वायविडंग यह प्रत्येक औषधि समान भाग और सबकी बराबर गूगल लेवे । सबको एकत्र मिलाकर कूट पीसकर एक जीव करके एक एक तोलेकी गोली बनावे । प्रतिदिन एक गोली खाय। यह गूगल—सर्व प्रकारके व्रण, वातरक्त, गुल्म, उदररोग और शोथादिरोगोंको नष्ट करता है ॥ ४९ ॥ ५० ॥

जात्यादिघृत ।

जातीनिम्बपटोलपत्रकटुकादार्वीनिशासारिवा । मञ्जिष्ठाऽभयसिक्थतुत्थमधुकैर्नक्ताह्वबीजैः समैः ॥ सर्पिः सिद्धमनेन सूक्ष्मवदना मर्माश्रिताः स्राविणो गम्भीराः सरुजो व्रणाः सगतिकाः शुद्ध्यन्ति रोहन्ति च ॥ ५१ ॥

चमेलीके पत्ते, नीमके पत्ते, परवल, कुटकी, दारुहलदी, हलदी, सारिवा, मजीठ, खस, मोम, नीलाथोथा, मुलैठी और करंजके बीज सबको समान भाग लेकर कल्क बनावे, इस कल्कसे पकायेहुए घृतको जात्यादिघृत कहते हैं । इस घृतको लगानेसे छोटे मुखवाले, मर्म्मोंमें उत्पन्न हुए, स्राववाले, गम्भीर वेदनायुक्त और अंगोंमें गति करनेवाले व्रण शुद्ध होजाते हैं और भर जाते हैं ॥ ५१ ॥

वृद्धवैद्योपदेशेन पारम्पर्योपदेशतः । जातीघृते तु संसिद्धे क्षेप्तव्यं सिक्थकं बुधैः ॥ ५२ ॥

यद्यपि ऊपरके पाठमें मोमको प्रथमही घीमें डालना कहा है तथापि वृद्धवैद्योंके उपदेशसे और गुरुओंकी परंपरासे ऐसा सिद्ध होता है कि,जात्यादिघृतके पकनेके पश्चात् उसमें मोम डालना चाहिये ॥ ५२ ॥

तिक्ताद्यघृत ।

तिक्तासिक्थनिशायष्टीनक्ताह्वाफलपल्लवैः । पटोलमालतीनिम्बपत्रैर्व्रण्यं भृतं घृतम् ॥ ५३ ॥

कुटकी, मोम, हलदी, मुलैठी, करंजके पत्ते और फल, परवल, चमेलीके पत्ते और नीमके पत्ते इनके कल्कके द्वारा घृतको पकावे । यह घृत-व्रणको अत्यंत हितकारी है ॥ ५३ ॥

जातिकाद्यतैल ।

जातिनिम्बपटोलानां नक्तमालस्य पल्लवाः । सिक्थं समधुकं कुष्ठं द्वे निशे कटुरोहिणी ॥ ५४ ॥ मञ्जिष्ठा पद्मकं लोध्रमभयानीलमुत्पलम् । तुत्थकं शारिवाबीजं नक्तमालस्य दापयेत् ॥ ५५ ॥ एतानि समभागानि पिष्ट्वा तैलं विपाचयेत् । विषव्रणे समुत्पन्ने स्फोटिके कच्छुरोगके ॥ ५६ ॥ दद्रुवीसर्परोगेषु कीटदुष्टेषु सर्वथा । सद्यः शस्त्रप्रहारेषु दग्धविद्धेषु चैव हि ॥ ५७ ॥ नखदन्तक्षते देहे दुष्टमांसापकर्षणे । प्रोक्षणार्थमिदं तैलं हितं शोधनरोपणम् ॥ ५८ ॥

चमेलीके पत्ते, नीमके पत्ते, परवलके पत्ते, करंजके पत्ते, मोम, मुलैठी, कूट, हलदी, दारुहलदी, कुटकी, मजीठ, पद्माख, लोध, हरड, नलिकमल, तूतिया, शारिवा और करंजके बीज इन सबको समान भाग लेकर कल्क बनाकर इस कल्कसे बुद्धिमान् वैद्य विधि-

पूर्वक तिलके तैलको पकावे तो यह जात्यादि तैल सिद्ध होता है । यह तेल-विषजनितव्रण, विस्फोटक, कच्छु (खुजली दाद),विसर्प, विषैले कीडेका काटा हुआ व्रण, तत्काल शस्त्रके प्रहारसे उत्पन्न हुआ व्रण, दग्धव्रण, विद्धव्रण, नखका घाव और दाँतका घाव इन सबमें हितकारी है तथा इनके ऊपर यह तेल लगानेसे व्रण भरने लगता है । व्रणमेंसे दूषित मांस निकालनेके लिये यह तेल परमोत्तम है । यह तेल व्रणको भरने और शुद्ध करनेके लिये अत्यंत उपयोगी है ॥ ५४-५८ ॥

विपरीतमल्लतैल ।

शरपुङ्खा-लाङ्गलीचित्रकरामठरसोन-सिन्धुवरैः । सविषामयैः समांशैः कटुतैलं साधितं विधिना ॥ ५९ ॥ विपरीतमल्लसंज्ञं तैलं दुष्टव्रणं तथा नाडीम् । बहुभेषजैरसाध्यामपथ्यभोकुश्च निस्तुदति ॥ ६० ॥

सरफौका,कलिहारी,चीता, हींग, लशुन,सिम्हालू, अतीस और कूठ इनके कल्कके द्वारा सरसोंके तेलको विधिपूर्वक पकावे, इसको विपरीतमल्लतैल कहते हैं । इस तेलको लगानेसे दुष्टव्रण नष्ट होजाता है, जो अनेक औषधियोंसे भी नष्ट न हो ऐसा असाध्य नाडीव्रण भी इससे दूर हो जाता है। इसपर यदि अपथ्य सेवन किया जाय तो भी यह उक्त गुणोंको करता है ॥ ५९ ॥ ६० ॥

कुठारतैल ।

कुठारकात्पलशतं क्राथयेद्दुल्वणेऽम्भसि । तेन पादावशेषेण तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ६१ ॥ कल्कैः कुठारापामार्गप्रोष्ठिकामाक्षिकासु च । एतत्तैलं कुठारस्य शोधनं व्रणरोपणम् । नाडीषु परमाभ्यङ्गो निजास्वागन्तुकेषु च ॥ ६२ ॥

कुठारेकी छाल १०० पल लेकर ३५६ पल जलमें पकावे, जब पकते पकते जल चौथाई भाग बाकी रह जाय तब उतारकर छान लेवे । फिर इस क्राथमें तिलका तेल एक प्रस्थ और कुठारेकी छाल, चिरचिटा, प्रोष्टिक मछली और मक्खी इनका कल्क डालकर विधिपूर्वक तेलको पकावे। यह कुठारका तेल-व्रणको शुद्ध करके भर देता है । इसकी मालिस-नाडीव्रण, साधारण और आगन्तुकव्रणमें अत्यंत हितकारी है ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

दूर्वाद्यतैल ।

दूर्वास्वरससंसिद्धं तैलं कम्पिल्लकेन वा । दार्वीत्वचश्च कल्केन प्रधानं व्रणरोपणम् ॥ ६३ ॥

दूबके स्वरस और कबीलेके कल्कके द्वारा तेलको पकाकर अथवा दारुहलदीके कल्कके द्वारा तेलको सिद्ध करके प्रयोग करे तो बहुत शीघ्र व्रण भर जाता है ॥ ६३ ॥

नूलतैल ।

बलाशिखरिकामूलं पिष्ट्वा तैलं विपाचयेत् । नूलतैलमिति ख्यातमभ्यङ्गान्नूलकान्वितम् ॥ ६४ ॥ ये व्रणाश्चिवृताः केचिच्छरीरागन्तवः सदा । रोपणार्थं भिषक्तेषामिदं तैलं प्रयोजयेत् ॥ ६५ ॥

खिरैंटी और चिरचिटेकी जडको एकत्र पीस कर तेलमें डालकर पकावे । इस तेलको नूलतैल कहते हैं । छिन्न भिन्न विवृत शारीरिक और आगन्तुक प्रायः समस्त व्रणोंको रोपण करनेके लिये यह उत्तम औषधि है ॥ ६४॥६५॥

वटिकागुग्गुलु ।

अमृतागुग्गुलुः श्रेष्ठो हितं तैलञ्च वज्रकम् ॥ ६६ ॥ विडङ्गत्रिफलाव्योषचूर्णं गुग्गुलुना समम् । सर्पिषा वटकीं कृत्वा खादेद्वा हितभोजनम् । दुष्टव्रणापचीमेहकुष्ठनाडीविशोधनः ॥ ६७ ॥

इस आगन्तुकव्रणमें अमृतागुग्गुलु और वज्रक तैल भी अत्यन्त हितकारी है। वायविडंग, त्रिफला और त्रिकुटा इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण बना लेवे और सर्व चूर्णके बराबर गूगल लेवे। सबक

घीके साथ एकत्र खरल कर गोली बनालेवे। प्रतिदिन एक गोली खाय और हितकारक भोजन करे तो दुष्ट व्रण,अपची, प्रमेह कोढ़ और नाडीव्रण शुद्ध हो जाता है ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

सप्तविंशतिकगुग्गुलु।

त्रिकटु-त्रिफलामुस्तविडङ्गामृतचित्रकम्। पटोलपिप्पलीमूलं हपुषा सुरदारु च॥ ६८ ॥ तुम्बुरुपुष्करं चव्यं विशाला रजनीद्वयम्। विडं सौवर्चलं क्षारं सैन्धवं गजपिप्पली॥ ६९ ॥ यावन्त्येतानि सर्वाणि तावद्द्विगुणगुग्गुलुः। कोलप्रमाणां गुटिकां भक्षयेन्मधुना सह॥ ७० ॥ कासं श्वासं तथा शोथमर्शांसि च भगन्दरम्। हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च कुक्षिबस्तिगुदे रुजम्॥ ७१ ॥ अश्मरीमूत्रकृच्छ्रञ्च ह्यन्त्रवृद्धिं तथा कृमीन्॥ ७२ ॥ चिरज्वरोपसृष्टानां क्षयोपहतचेतसाम्। आनाहञ्च तथोन्मादं कुष्ठान्यष्टोदराणि च॥ ७३ ॥ नाडीदुष्टव्रणान् सर्वान् प्रमेहाञ्छ्लीपदं तथा। सप्तविंशतिको नाम्ना गुग्गुलुः प्रथितो महान्। धन्वन्तरिकृतो ह्येषः सर्वरोगनिषूदनः॥ ७४ ॥

त्रिकुटा, त्रिफला, नागरमोथा,वायविडंग,गिलोय, चीता, पटोलपत्र, पीपलामूल, हाऊबेर, देवदारु, तुम्बुरु, पोहकरमूल, चव्य, इन्द्रायण,हलदी, दारुहलदी, विडनमक जवाखार, काला नमक, सैंधानमक, गजपीपल ये सब समान भाग और सबसे दुगुना शुद्ध गूगल लेवे। सबको एकत्र कूट पीसकर कपडछान कर फिर शुद्ध गुग्गुलु छिलका रहित मिलाय इतना कूटे जो एक जीव होजाय अनन्तर एक एक आठ २ माशेकी गोलियां बनालेवे। प्रतिदिन एक गोली शहतके साथ भक्षण करे यह गोली खाँसी श्वास,सूजन,बवासीर, भगन्दर, हृदयशूल, पार्श्वशूल, कुक्षिशूल, बस्तिशूल, गुदजशूल, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, अन्त्रवृद्धि, कृमि, जीर्णज्वर, क्षय, आनाह, उन्माद, कोढ, आठों प्रकारके उदररोग, नाडीव्रण समस्त दुष्ट व्रण, प्रमेह और श्लीपद इन सब रोगोंको यह सप्तविंशति नामक गूगल अवश्य नष्ट कर देता है। यह गूगल स्वयं धन्वन्तरि भगवानने कहा है और सर्व रोगोंको नष्ट करनेवाला है ॥ ६८-७४ ॥

अथाग्निदग्धव्रणनिदान।

अब अग्निसे दग्ध हुए व्रणके लक्षण कहते हैं।

तत्र स्निग्धं रूक्षं वाश्रित्य द्रव्यमग्निर्दहति। अग्निसन्तप्तो हि स्नेहः सूक्ष्ममार्गानुसारित्वात् त्वगादींस्तु प्रविश्याशु दहति। तस्मात् स्नेहदग्धेऽधिका रुजो भवन्ति। तत्र प्लुष्टं दुर्दग्धं सम्यग्दग्धमतिदग्धमिति, चतुर्विधं भवत्यग्निदग्धम्। तत्र विवर्णमात्रं पुष्यते तत्प्लुष्टं, यत्रोत्तिष्ठन्ति स्फोटास्तीव्र-दाह-वेदनाश्चिरादेवोपशाम्यन्ति तद्दुर्दग्धम्। सम्यग्दग्धमवगाढं तालवर्णं सुस्थितं पूर्वलक्षणसंयुक्तं च। अतिदग्धे त्वङ्मांसावलम्बनं गात्रविश्लेषणं शिरास्नायुसन्ध्यस्थि-व्यापादनमतिगात्रवेदना ज्वर-दाह-पिपासामूर्च्छाश्वासोपद्रवा भवन्ति। व्रणाश्चास्य चिरेणोपरोहन्ति। उपरूढा विवर्णा भवन्ति। इति व्रणः प्लुष्टादिभेदेन वह्निदग्धश्चतुर्विधो भवति।

स्निग्ध और रूक्ष द्रव्योंके आश्रित होनेसे देहके अंगोंको अग्नि दहन करती है। अग्निसे संतप्त हुआ स्नेह सूक्ष्ममार्गी होनेसे त्वचादिकोंमें प्राप्त होकर शीघ्र ही जलाता है इस कारण स्नेहदग्धमें अत्यन्त पीडा होती है। प्लुष्ट, दुर्दग्ध, सम्यग्दग्ध और अतिदग्ध इसप्रकार अग्निदग्ध चार प्रकारका है। जो जलनेका स्थान विवर्ण और ऊपरको फूलासा हो उसको प्लुष्ट कहते हैं। जिसमें तीव्र फोडे,दाह,वेदना हो और बहुत देरमें जो शान्त हो उसको दुर्दग्ध कहते हैं।जो अत्यन्त दग्ध हो तथा पक्व ताडफलके समान जिसका वर्ण हो, न अत्यन्त ऊँचा हो और न अत्यंत

नीचा हो और पूर्वोक्त लक्षणयुक्त हो उसको सम्यग्दग्ध जानना। जिसमें त्वचा और मांसका अवलम्बन, गात्रका विश्लेषण, शिरा, स्नायु, सन्धि और अस्थि इनमें अत्यंत वेदना हो, तथा ज्वर, दाह, तृषा, मूर्च्छा और श्वास इत्यादि उपद्रव हों उसको अतिदग्ध कहते हैं। यह व्रण बहुत दिनोंमें भरता है और भरनेपर भी अर्थात् आरोग्य होनेपर भी उसका स्थान विवर्ण रहता है। इस प्रकार प्लुष्टादिभेदोंसे अग्निदग्ध चार प्रकारका होता है।

अग्निदग्धकी चिकित्सा।

प्लुष्टस्याग्निप्रतपनं कुर्य्यादुष्णं तथौषधम्। शीतामुष्णाश्च दुर्दग्धे क्रियां कुर्य्यात्ततः पुनः॥ ७५॥ घृतलेपनसेकांस्तु शीतानेवास्य कारयेत्॥७६॥

प्लुष्टदग्धमें जो अंग जलगया हो उसको अग्निसे तपावे और गरम औषधियोंसे सेके और दुर्दग्धमें शीतल और उष्ण दोनों क्रियायें करनी चाहियें किन्तु दुर्दग्धके व्रणमें घृतादिका लेप करे तो शीतल ही करना चाहिये॥ ७५॥ ७६॥

अतिदग्धे तु शीर्णानि मांसानुद्धृत्य शीतलाम्। क्रियां कुर्य्याच्च तां काले शालितण्डुलचन्दनैः। तिन्दुक्यास्त्वक् कषायैर्वा घृतमिश्रैः प्रलेपयेत्७७॥

अतिदग्धमें वैद्य व्रणमेंके गले हुए मांसको निकाल कर शीतल क्रिया प्रयोग करे; पश्चात् शालिचावल और चन्दनको पीसकर लगा देवे अथवा तेंदूकी छालको पीसकर घृत मिलाकर अथवा तेंदूके क्वाथमें घृत डाल कर प्रलेप करे॥ ७७॥

सम्यग्दग्धे तुगाक्षीरीप्लक्षचन्दनगैरिकैः। सामृतैः सर्पिषा युक्तैरालेपं कारयेद्भिषक्॥ ७८॥

सम्यग्दग्धमें वैद्य वंशलोचन, पाखर, चन्दन; गेरू और गिलोय इन सबको एकत्र पीसकर घृत मिलाकर प्रलेप करे॥ ७८॥

पथ्यादिलेप।

पथ्या-कर्दम-जीरकमधुसिक्थकसर्जमिश्रितं लेपात्। गव्यं घृतमपहरति पावकजनितं व्रणं सद्यः॥ ७९॥

हरड, कीच, जीरा, मोम और राल इन सबको एकत्र पीसकर गायका घृत मिलाकर प्रलेप करनेसे अग्निसे जला हुआ व्रण शांत होता है॥ ७९॥

अन्तर्धूमकुठारको दहनजं लेपान्निहन्ति व्रणं ह्यश्वत्थस्य च शुष्कवल्कलकृतं चूर्णं तथा गुण्डनात्॥ अभ्यङ्गाद्विनिहन्ति तैलमखिलं गण्डूपदैः साधितं पिष्टा शाल्मलितूलकैर्जलगता लेपात्तथा वालुका॥ ८०॥

कुठारेकी छालको पुटपाककी विधिसे जलाकर उसका लेप करनेसे अग्निदग्धव्रण नष्ट होता है। अथवा पीपलकी सूखी छालका चूर्ण करके अग्निसे दग्ध हुए व्रण पर बुरकनेसे व्रण शमन होता है। या केंचुओंको तेलमें पकाकर उस तेलको लगानेसे अग्निदग्ध व्रण नष्ट होता है। अथवा सेमलकी रुईको या वालू(रेत) को जलमें पीसकर लेप करनेसे अग्निदग्धव्रण शांत होता है॥ ८०॥

दग्धयवभस्मचूर्णं तिलतैलाक्तं प्रलेपनादचिरात्। हरति शिखिदाहदग्धं भूयोऽभ्यङ्गाद्व्रणश्चाशु॥ ८१॥

जौकी भस्म करके तिलके तेलमें मिलाकर प्रलेप करनेसे शीघ्र ही अग्निदग्धव्रण शांत होता है॥८१॥

पित्तविद्रधिवीसर्पशमनं लेपनादिकम्। अग्निदग्धे व्रणे सम्यक् प्रयुञ्जीत विचक्षणः॥ ८२॥

अग्निदग्धव्रणमें पित्तविद्रधि और विसर्पोक्त समस्त लेपादिक प्रयोग करने चाहिये॥ ८२॥

शुभ्रा पुरातनी दध्ना वारिणा परिपेषिता। लेपनं तैलदग्धस्य विस्फोटव्याधिनाशनम्॥ ८३॥

पुरानी फटकरी अथवा पुराने चूनेको जलमें पीस कर दहीमें मिलाकर लेप करनेसे तेलसे जला हुआ विस्फोटक रोग दूर होता है ॥ ८३ ॥

अक्षिजेषु तु कर्त्तव्यमिदमाश्चोतनं हितम् । शेलुत्वक् त्रिफलादार्वी क्राथो रोचनया युतः ॥ स्नुह्यर्कक्षीरसिक्तेऽक्षिण गव्यं सर्पिर्निषेचयेत् ॥ ८४ ॥

अक्षिदग्धमें आश्चोतनविधि हितकारी है । लिसोडेकी छाल, त्रिफला और दारुहलदी इनके काथमें गोरोचन डालकर नेत्रोंको सींचे, पश्चात् गायके घृतसे सींचे । इस प्रकार करनेसे थूहरके दूध और आकके दूधसे विकृत हुए नेत्र एवं अग्निदग्ध नेत्र आरोग्य होते हैं अथवा उपर्युक्त थूहर आदिके दूधसे दग्ध हुए नेत्रोंको गायके घृतसे सींचे ॥ ८४ ॥

मधूच्छिष्टाद्यघृत ।

मधूच्छिष्टं समधुकं लोध्रं सर्जरसं तथा । मञ्जिष्ठां चन्दनं मूर्वा पिष्ट्वा सर्पिर्विपाचयेत् । सर्वेषामग्निदग्धानां व्रणरोपणमुत्तमम् ॥ ८५ ॥

मोम, मुलेठी, लोध, राल, मजीठ, चन्दन और मूर्वा इन सबको एकत्र पीसकर घृतमें पकाकर सर्वप्रकारके अग्निदग्धव्रणोंपर लगाना चाहिये, इससे बहुत शीघ्र व्रण भरजाते हैं ॥ ८५ ॥

लांगलीघृत ।

उभे हरिद्रे मञ्जिष्ठा मधुकं लोध्रकट्फलम् । कम्पिल्लकमुभे मेदे लाङ्गलीमूलमेव च ॥ ८६ ॥ पिप्पली त्रिफला चैव निम्बपत्रश्च कार्षिकम् । कपिलाया घृतप्रस्थं पचेत्तद्द्विगुणं पयः ॥८७॥ पलद्वयश्च सिक्थस्य सिद्धपूते च दापयेत् । लाङ्गलीकं घृतं नाम व्रणानां रोपणं परम् ॥ ८८ ॥ अग्निदग्धे विसर्पे च कीटलूताव्रणेषु च । चिरोत्थेषु च दुष्टेषु नाडीमर्माश्रितेषु च ॥ ८९ ॥

हलदी, दारुहलदी, मजीठ, मुलैठी, लोध, कायफल, कवीला, मेदा, महामेदा, कलिहारीकी जड़, पीपल, त्रिफला और नीमके पत्ते यह प्रत्येक औषधि एक एक तोला लेकर कल्क बनावे । गायका घी ६४ तोले और गायका दूध १२८ तोले लेवे। सबको मिलाकर यथाविधिसे घृतको सिद्ध करे । सिद्ध होनेपर ८ तोले मोम मिलादेनेसे यह लांगलीक नाम घृत सिद्ध होता है । यह घृत-व्रणोंको भरनेके लिये अत्यन्त उत्तम है । तथा अग्निदग्ध व्रण, विसर्प, कीट, लूतादिजनित व्रण बहुत दिनोंका पुराना नाडीव्रण, मर्माश्रितव्रण और दुष्टव्रण इन सबको नष्ट करता है ॥ ८६-८९ ॥

पटोलीतैल ।

सिद्धं कषायकल्काभ्यां पटोल्याः कटुतैलकम् । दग्धव्रणरुजास्रावदाहविस्फोटनाशनम् ॥ ९० ॥

कडवे परवलोंके काथ और कल्कके द्वारा कडवे तेलको पकावे । यह तेल-अग्निदग्ध व्रण, पीडा, स्राव, दाह और विस्फोटक इन सबको दूर करता है॥९०॥

चन्दनाद्यतैल ।

चन्दनं वटशुङ्गाश्च मञ्जिष्ठा मधुकं तथा । प्रपौण्डरीकं मूर्वा च पतंग धातकी तथा ॥ ९१ ॥ एतैस्तैलं विपक्तव्यं सर्पिःक्षीरसमायुतम् । अग्निदग्धे व्रणे श्रेष्ठं तत्क्षणाद्रोपणं परम् ॥ ९२ ॥

चन्दन, वडके अंकुर, मजीठ, मुलैठी, पुंडरिया, मूर्वा, पतंग और धायके फूल इनके कल्कके द्वारा घृत और दूध मिलाकर तेलको पकावे । इस तेलको लगानेसे अग्निदग्ध व्रण तत्काल भरजाता है ॥९१॥९२॥

अपथ्य ।

अम्लं दधि च शाकश्च मांसमानूपवारिजम् । क्षीरं गुरूणि चान्नानि व्रणिनः परिवर्जयेत् ॥ ९३ ॥

खटाई, दही, शाक, अनूपदेश और जलचरजीवोंका मांस, दूध और भारी अन्नपान इन सबको व्रणरोगी त्याग देवे ॥ ९३ ॥

व्रणग्रन्थिकी चिकित्सा।

वातास्रमकृतं दुष्टं सशोथं ग्रथितं व्रणम्। कुर्य्यात्सदाहं कंड्वाढ्यं व्रणग्रन्थिरिति स्मृतः ॥ क्षारसूत्रं प्रयुञ्जीत दुष्टव्रणहरं विधिम् ॥ ९४ ॥

वात तथा रुधिर यह दोनों-व्रणको स्रावरहित,दुष्ट सूजनसे युक्त, ग्रंथिसहित, दाह और खुजलीसंयुक्त करते हैं, ऐसे व्रणको व्रणग्रन्थि कहते हैं। इस व्रणग्रन्थिमें क्षारसूत्र और दुष्ट व्रणोक्त चिकित्सा करनी चाहिए ॥ ९४ ॥

कम्पिल्लकतैल।

कम्पिल्लकं विडङ्गानि त्वचं दार्व्यास्तथैव च। पिष्ट्वा तैलं विपक्तव्यं व्रणग्रन्थिहरं परम् ॥ ९५ ॥

कबीला,वायविडंग और दारुहलदीकी छाल इनको पीसकर तेलमें पकावे। यह तेल व्रणकी ग्रन्थिको दूर करता है ॥ ९५ ॥

इति श्रीवङ्गसेने भाषाटीकायां सद्योव्रणाग्निदग्धव्रणनिदानचिकित्साधिकारः समाप्तः ॥ ५१ ॥

अथ भग्नरोगाधिकार।

पतनपीडनव्यालविषदग्धप्रभृतिभिरभिघातविशेषैरनेकविधिभिस्संध्यस्थ्नां भग्नमुपदिशन्तीत्यत आह-

पतन (वृक्षादिक या मंदिर आदिसे गिरना), पीडन (दबना), व्याल (सर्पादिका डसना)अथवा विषादिका प्रयोग और अग्निदग्ध इत्यादि तथा अनेक प्रकारके अभिघातोंसे विविध प्रकारका सन्धि और अस्थिभग्न होता है, उसको कहते हैं।

भग्नं समासाद्विविधं हुताशकाण्डे च सन्धाविह तत्र सन्धौ। उत्पिष्टविश्लिष्टविवर्त्तितश्च तिर्य्यग्गतं क्षिप्तमधश्च षट्कम् ॥ १ ॥

कांडभग्न और संधिभग्न इन भेदोंसे भग्नरोग दो प्रकारका है। संधियोंकी अस्थिके एक भागमें जो भग्न हुआ हो उसको कांडभग्न कहते हैं और दो अस्थियोंकी सन्धियोंमें जो भग्न हो उसको संधिभग्न कहते हैं। संधिभग्न-उत्पिष्ट, विश्लिष्ट, विवर्त्तित, तिर्य्यग्गत, क्षिप्त और अधोगत ऐसे छः प्रकारका है ॥ १ ॥

सन्धिभग्नके सामान्यलक्षण।

प्रसारणाकुञ्चनवर्त्तनोग्रा रुक् स्पर्शविद्वेषणमेतदुक्तम्। सामान्यतः सन्धिगतस्य लिङ्गमुत्पिष्टसन्धेः श्वयथुः समन्तात्। विशेषतो रात्रिभवा रुजा च विश्लिष्टयेतौ च रुजा च नित्यम् ॥ २ ॥

फैलाते समय, सिकोडते समय और इधर उधर करते समय घोर पीडा हो, स्पर्श भी न सहा जाय यह संधिभग्नके सामान्य लक्षण जानने। उत्पिष्टमें संधिके चारोंओर सूजन और रात्रिमें अधिक पीडा होती है। विश्लिष्टमें संधिमें सूजन और रात दिन नित्य पीडा होती है ॥ २ ॥

विवर्त्तिते पार्श्वरुजश्च तीव्रास्तिर्य्यग्गते तीव्ररुजो भवन्ति ॥ क्षिप्तेऽति शूलं विषमास्थ्नोः क्षिप्ते त्वधोरुग्विघटश्च सन्धेः ॥ ३ ॥

विवर्त्तमें पसलियोंमें तीव्र वेदना होती है। तिर्य्यग्गतमें तीव्र पीडा होती है और एक हड्डी संधिस्थानको छोडकर तिरछी होजाती है। विक्षिप्तमें संधिका हाड ऊपरको सरकजाता है और बहुत वेदना होती है तथा हड्डियोंमें कम या ज्यादः पीडा होती हैं और अधःक्षिप्त अर्थात् अधोगतमें संधिकी हड्डी नीचेको सरकजाती है और पीडा होती है एवं संधिकी अस्थि परस्पर घिसती रहती है ॥ ३ ॥

काण्डभग्नके सामान्य लक्षण।

काण्डे त्वतः कर्कटकाऽश्वकर्णविचूर्णितं पिच्चितमस्थिछल्लिका। काण्डे

च भग्नं ह्यतिपातितं च मज्जागतश्च स्फुटितश्च वक्रम् ॥ ४ ॥ छिन्नं द्विधा द्वादशधा च काण्डे स्रस्तांगता शोफरुजातिवृद्धिः । सम्पीडचमानो भवतीह शब्दः स्पर्शासहः स्पन्दनतोदशूलाः ॥ ५ ॥ सर्वास्ववस्थासु न शर्मलाभो भग्नस्य काण्डे खलु चिह्नमेतत् । भग्नन्तु काण्डे बहुधा प्रयाति समासतो नामभिरेव तुल्यम् ॥६॥

कांडभग्न,-कर्कटक, अश्वकर्ण, विचूर्णित, पिच्चित, अस्थिछल्लिका, कांडभग्न, अतिपातित, मज्जागत, स्फुटित, वक्र, अल्पछिन्न और बहुछिन्न इन भेदोंसे बारह प्रकारका है । अंगोंमें शिथिलता, सूजन, अत्यन्तवेदना टूटनेके स्थानमें दबानेकासा शब्द हो, स्पर्श सहा न जाय, फडके, सुईचुभानेकेसी पीडा हो, शूल हो, कहीं भी किसी समय किसी प्रकारसे चैन नहीं पडे ये कांडभग्नके सामान्य लक्षण जानने । कांडशब्दसे नलक, कपाल, वलय, तरुण और रुचक ये पांच प्रकारके आकारसे हाडोंके नाम हैं । अब विशेष लक्षण कहते हैं-जो हाड़ दोनों ओरसे दबकर वीचमें ऊँचा हो उसको कर्कट, घोडेके कानके समान जो हाड़ बाहर निकल आवे उसे अश्वकर्ण, जो हाड भीतरही चूर्णित होगया हो और हाथके दबानेसे चुरचुर शब्द करे उसको विचूर्णित, जो हाड पिचकर पिचडा हो जाय उसको पिच्चित, जिस हाडका कोई भाग छालके समान अलग दीखने लगे उसको अस्थिछिल्लिका, जिस हाडकी नली टूटजाय उसको कांडभग्न, जो हाड सब टूट जाय उसको अतिपातित, जिस हाडके टूटनेसे उसके भीतरकी मीग बाहर निकल आवे उसको मज्जागत, जो हाड टूटके फूट २ होजाय उसको स्फुटित, जो हाड टेढ़ा होजाय उसको वक्र, जिस हाड़के टूटनेसे बहुत छोटे २ टुकड़े हो जायं उसको छिन्न और जो हाड एक ओरसे टूटकर दूसरी ओरसे निकले उसको दूसरे प्रकारका छिन्न कहते हैं । यह काण्डभग्नके संक्षेपसे नाम और लक्षण कहे हैं । इनके अतिरिक्त जिस २ स्थानमें जैसी २ आकृतिका भग्न हो उसको उसी २ आकृतिके अनुसार नाम रख कर कहना चाहिये ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥

कष्टसाध्य ।

अल्पाशिनोऽनात्मवतो जन्तोर्वातात्मकस्य च । उपद्रवैर्वा जुष्टस्य भग्नं कृच्छ्रेण सिध्यति ॥ ७ ॥

जो मनुष्य अल्प अहार करते हैं, जिनकी इन्द्रियें वशमें नहीं हैं अर्थात् जो कुपथ्य सेवन करते हैं, जिनकी वातप्रकृति है और जो ज्वरादि उपद्रवसंयुक्त हैं, ऐसे मनुष्योंके भग्नरोग अत्यंत कष्टसाध्य होता है ॥ ७ ॥

असाध्यलक्षण ।

भिन्नं कपालं कट्यान्तु संधिमुक्तं तथा च्युतम् । जघनं प्रतिपिष्टश्च वर्जयेत्तु विचक्षणः ॥ ८ ॥

जिस मनुष्यका कपालनामक हाड किसी स्थानका टूटगया हो, कमरका हाड टूट गया हो, संधिके निकटकी हड्डी टूटगई हो, अथवा नीचेको सरक गई हो और जंघाकी हड्डी चूर्णित होगई हो ऐसे रोगीको वैद्य त्याग देवे ॥ ८ ॥

असंश्लिष्टं कपालश्च ललाटे चूर्णितश्च यत् । भग्नं स्तनान्तरे शंखे पृष्ठे मूर्ध्नि तु वर्जयेत् ॥ ९ ॥

जो कपालके स्थानोंका हाड टूटकर जोडने योग्य न रहै, ललाटकी हड्डी चूर चूर होजाय तथा स्तनके मध्यकी एवं पीठकी तथा कनपटीकी अथवा मस्तककी हड्डी टूटजाय उसकी वैद्य चिकित्सा न करे ९॥

सम्यक् संहितमप्यस्थि दुर्निक्षेपनिबन्धनात् । संक्षोभाद्वापि यद्गच्छेद्विक्रियां तच्च वर्जयेत् ॥ १० ॥

जो हड्डी अच्छे प्रकारसे भी जोड दी गई हो, किंतु उसको अच्छे प्रकारसे न रक्खे तथा अच्छे प्रकारसे न बांधे उसमें किसी प्रकारके क्षोभके हो जानेसे अथवा किसीका धक्का लगजानेसे फिर जैसीकी तैसी होजाय तो उसको वैद्य त्याग देवे अर्थात् वह असाध्य है ॥ १० ॥

तरुणास्थीनि नम्यन्ते भिद्यन्ते नलकानि च । कपालानि विभज्यन्ते स्फुटन्ति रुचकानि च ॥ ११ ॥

तरुण हड्डी नव जाती है,नलकहड्डी चिर जाती है, कपालसंज्ञक अस्थि टूटकर फूट २ होजाती है और रुचक नामक अस्थि टूटकर टूक टूक होजाती है॥ ११॥

भग्नरोगकी चिकित्सा।

आदौ भग्नं विदित्वा तु सेचयेच्छीतलांबुना। पङ्केनालेपनं कार्यं बन्धनं च कुशान्वितम्॥ १२॥

भग्नरोगमें प्रथम शीतल जलसे सेंचन करे, कीचका लेप करे और कुशासे बांधे॥ १२॥

अवनामितमुन्नम्येदुन्नतं चावपीडयेत्। आञ्छेदतिक्षिप्तमधोगतश्चोपरि वर्त्तयेत्॥ १३॥

जो हड्डी नव जाय उसको ऊपरको उठाकर ऊंचा करे, जो ऊंची होजाय उसको दबाकर नीचेको बैठावे, दूर हट जाय उसको धोरेको लावे और जो हड्डी नीचे होजाय उसको ऊपरको चढावे॥ १३॥

पलाशोदुम्बराश्वत्थ-कदम्बनिचुलत्वचः। वंशसर्जार्जुनानाञ्च कुशार्थमुपसंहरेत्॥ पटस्योपरि बध्नीयान्न गाढं शिथिलं न वा॥ १४॥

ढाक, गूलर, पीपल, कदम्ब, वेंत, बांस, राल और अर्जुनवृक्षकी छाल-इनको एकत्र पीसकर इनकी पट्टी बाँधे,बंधनके ऊपर जो बंधन बांधे उसको न तो अत्यन्त सख्त और न अत्यन्त शिथिल बांधे॥ १४॥

सप्तसप्तदिनाच्छीते घर्मे मुच्येत्त्र्यहात्त्र्यहात्। समाने पञ्चपञ्चाहाद्भग्नं दोषवशेन च॥ १५॥

शीतकालमें सात दिनमें पट्टी खोलनी चाहिए। उष्णकालमें तीन तीन दिनमें और साधारण ऋतुमें पांच पांच दिनमें पट्टी खोलनी चाहिए अथवा यथादोषानुसार समयको विचारकर पट्टी खोलनी चाहिए॥ १५॥

आलेपनार्थं मञ्जिष्ठा मधुकं चाम्बुपेषितम्। शतधौतघृतोन्मिश्रं शालिपिष्टञ्च लेपनम्॥ १६॥

मजीठ और मुलैठीको जलमें पीसकर भग्नके ऊपर प्रलेप करे। अथवा शालिचावलोंको पीसकर उसमें सौ वार धुला हुआ घी मिलाकर भग्नपर प्रलेप करे॥ १६॥

सद्योऽभिघातजनिता रागरुजः श्वयथवः प्रशाम्यन्ति। पिष्टकलवणालेपादम्लीकाफलरसाभ्यां वा॥ १७॥

इमलीके फलोंके रसमें लवण पीसकर भग्नपर लेप करनेसे तत्काल अभिघातजनित पीडा, लाली और सूजन दूर होती है तथा हड्डी जुटजाती है॥ १७॥

न्यग्रोधादिकषायं तु सुशीतं परिषेचने। पञ्चमूलीविपक्वन्तु क्षीरं दद्यात्सवेदने॥ १८॥

न्यग्रोधादिगणकी औषधियोंका क्वाथ बनाकर शीतल करके भग्नपर सेचन करे। और जो भग्नमें व्यथा हो तो पंचमूलका क्वाथ बनाकर उसमें दूध डाल कर उससे सेचन करे अथवा दूधमें पंचमूलकी औषधियोंको पकाकर उससे सेचन करे॥ १८॥

सुखोष्णमवचार्य्यं वा चुक्रतैलं विजानता। अविदाहिभिरन्नैश्च पौष्टिकैः समुपाचरेत्॥ १९॥

अथवा विचारकर चूकेके तेलका सुहाता २ सेचन करे तथा जो अन्न दाहकारक नहीं है उनकी पुल्टिस भग्नके ऊपर बाँधनी चाहिए॥ १९॥

ग्लानिर्हि निहिता तस्य सन्धिविश्लेष्मकारिका॥२०॥ मांसं मांसरसक्षीरं सर्पिर्यूषः सतीनजः। बृंहणं चान्नपानञ्च देयं भग्नाय जानता॥ २१॥

सन्धियोंके भिन्न २ होनेसे रोगीके ग्लानि अवश्य होजाती है इस कारण उस रोगीको वैद्य अच्छे प्रकारसे विचार कर मांस, मांसरस (सोरुआ), दूध, घी, मटरका यूष और धातुओंको पुष्ट करनेवाले ऐसे अन्नपान देवे॥ २०॥ २१॥

गृष्टिक्षीरं ससर्पिष्कं मधुरौषधसाधितम् । शीतलं लाक्षया युक्तं प्रातर्भग्नः पिबेन्नरः ॥ २२ ॥

भग्नरोगी प्रथमवारकी व्याही हुई गायके दूधमें घी डालकर जीवनीयगणकी औषधियोंके साथ पकाकर पश्चात् उसमें लाखका रस डालकर शीतल करके प्रातःकाल पीवे ॥ २२ ॥

सघृतेनास्थिसंहारं लाक्षागोधूममर्जुनम् । सन्धिमुक्तेऽस्थिसंभग्ने पिबेत् क्षीरेण वा पुनः ॥ २३ ॥

अस्थिसंहार (हडसंधारी),लाख, गेहूँ और अर्जुनकी छाल इनको एकत्र पीसकर घी मिलाकर दूधके साथ पान करनेसे संधिभग्न और अस्थिभग्न आरोग्य होता है ॥ २३ ॥

चूर्णं पुरेण संयोज्य घृतेनार्जुनलाक्षयोः । भग्नं सन्धानमायाति लीढ्वा क्षीरघृताशनः ॥ २४ ॥

गूगल अर्जुनकी छाल और लाख इनको एकत्र पीसकर घृत मिलाकर सेवन करे और इसपर घृत और दूधका भोजन करे तो टूटा हुआ हाड अवश्य जुड जाता है ॥ २४ ॥

मूलं शृगालविन्नायाः पीत्वा मांसरसेन तु । चूर्णीकृत्य त्रिसप्ताहादस्थिभग्नमपोहति ॥ २५ ॥

पृष्टिपर्णीकी जडको पीसकर मांसरसके साथ तीन सप्ताह पर्य्यंत पान करनेसे अस्थिभग्नरोग दूर होता है ॥ २५ ॥

आभाचूर्णं मधुयुतमस्थिभग्ने त्र्यहं पिबेत् । पीत्वाप्यस्थि भवेत्सम्यग्वज्रसारनिभं दृढम् ॥ २६ ॥

बबूरकी फलिओंका चूर्ण करके शहद मिलाकर तीन दिनतक सेवन करनेसे अस्थि वज्रके समान दृढ होजाती है ॥ २६ ॥

अम्लिकाफलकल्कः सौवीरस्तैलविमिश्रितः स्वेदात् । भग्नाभिहतरुजाघ्नैरथवौषधसाधितं श्वयथौ ॥ २७ ॥

इमलीके फलोंका कल्क; सौवीरनामक काँजी और तेल इनको एकत्र मिलाकर स्वेद देनेसे भग्नकी और अभिघातकी पीडा दूर होती है । अथवा उक्त औषधियोंके द्वारा तेलको पकाकर शोथरोगमें प्रयोग करे ॥ २७ ॥

आभागुग्गुलु ।

आभाफलत्रिकव्योषैः सर्वैरेतैः समांशकैः । तुल्यगुग्गुलुना योज्यं भग्नसन्धिप्रसाधनम् ॥ २८ ॥

बबूरके बीज, सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला ये सब समान भाग और सबकी बराबर गूगल लेवे । सबको एकत्र कूट पीसकर गोली बनावे । इसको सेवन करनेसे टूटी हुई हड्डी फिरसे जुड जाती है ॥ २८ ॥

लाक्षादिगुग्गुलु ।

लाक्षास्थिसंहृतककुभोऽश्वगन्धाचूर्णीकृतो नागबला पुरश्च । सभग्नमुक्तास्थिरुजं निहन्यादङ्गानि कुर्य्यात् कुलिशोपमानि ॥ २९ ॥

लाख, हडसंधारी, अर्जुनकी छाल, असगन्ध और गंगेरन इनको एकत्र कूट पीसकर गूगलमें मिला कर सेवन करनेसे टूटा हुआ तथा हटा हुआ हाड फिरसे जुडकर वज्रके समान होजाता है और पीडा भी शमन होती है ॥ २९ ॥

गन्धतैल ।

रात्रौ रात्रौ तिलान् कृष्णान् वासयेदस्थिरे जले । दिवा दिवा शोषयित्वा गवां क्षीरेण भावयेत् ॥ ३० ॥ तृतीयं सप्तरात्रन्तु भावयेन्मधुरांबुना । ततः क्षीरं पुनः पीतान् शुष्कान् सूक्ष्मान्विचूर्णयेत् ॥ ३१ ॥ काकोल्यादि श्वदंष्ट्राह्वं मञ्जिष्ठां शारिवां तथा । कुष्ठं सर्जरसं मांसीं सुरदारु सचन्दनम् ॥ ३२ ॥ शतपुष्पाश्च संचूर्ण्य तिलचूर्णेन योजयेत् । पीडनार्थे तु कर्त्तव्यं सर्वगन्धैः शृतं पयः ॥ ३३ ॥

---

१ मूसलीको घृत लगा २ कर कूटे तो अच्छी गोली बनती हैं ।

चतुर्गुणेन पयसा तत्तैलं पाचयेत् पुनः॥ एलामंशुमतीपत्रं जीवन्ती तगरं तथा ॥ ३४ ॥ लोध्रं प्रपौण्डरीकञ्च तथा कालानुसारिवाम् । शैलेयकं क्षीरशुक्लामनन्तां समधूलिकाम् ॥ ॥ ३५ ॥ पिष्ट्वा शृङ्गाटकं चैव प्रागुक्तान्यौषधानि च । एभिर्वा विपचेत्तैलं शास्त्रविन्मृदुनाग्निना ॥ ३६ ॥ एतत्तैलं सदा पथ्यं भग्नानां सर्वकर्मसु । आक्षेपके पक्षघाते तालुशोषे तथार्दिते ॥ ३७ ॥ मन्यास्तम्भे शिरोरोगे कर्णरोगे हनुग्रहे । बाधिर्ये तिमिरे चैव ये च स्त्रीषु क्षयं गताः ॥ ३८ ॥ पथ्यं पाने तथाभ्यङ्गे नस्ये बस्तिषु भोजने । ग्रीवास्कन्धोरसां वृद्धिरेतेनैव प्रजायते ॥ ३९ ॥ मुखञ्च पद्मप्रतिमं ससुगन्धिसमीरणम् । गन्धतैलमिदं नाम्ना सर्ववातविकारनुत ॥ ४० ॥ राजार्हमेतत्कर्त्तव्यं राज्ञामेव चिकित्सकैः । तिलचूर्णसमं तत्र मिलितं चूर्णमिष्यते॥४१॥

काले तिलोंको एक उत्तम वस्त्रकी पोटलीमें बांध कर प्रत्येक रात्रिमें नदी आदिके बहते जलमें डुबोकर रक्खे और प्रतिदिन धूपमें सुखाकर गायके दूधमें भावना देवे इस प्रकार सात दिनतक करे पश्चात् तीन दिनतक अथवा सात दिनतक मुलैठीके काथमें अथवा मधुर जलमें भावना देवे, फिर दूधमें भिगोकर सुखा लेवे, पश्चात् इनका चूर्ण कर ले,इस चूर्णमें काकोल्यादिगणकी औषधियां, गोखुरू,मजीठ,शारिवा, कूठ, राल, वालछड, देवदारु,चन्दन और सोंफ इनको समान भाग ले और चूर्ण करके उक्ततिलोंके चूर्णमें मिलादेवे, फिर इस चूर्णको सम्पूर्ण सुगन्धित पदार्थोंसे मिश्रित किये हुये जलमें भिजोकर कोल्हूमें डाल कर तेल निकलवावे फिर चौगुने दूधमें तेलको पकावे पश्चात् इलायची, शालिपर्णी, तेजपात, जीवन्ती, तगर, लोध, पुण्डरिया, पीलाचन्दन, शारिवा, भूरिछरीला, सफेद विदारीकंद, अनन्तमूल, मूर्वा, सिंघाडे और पूर्वोक्त काकोल्यादिगणकी औषधियोंका कल्क वना कर मंद २ अग्निसे तेलको दुवारा पकावे तो यह गन्धतैल सिद्ध होता है। यह तेल भग्नरोगमें सदैव हितकारी है। इसको सब कर्मोंमें प्रयोग करना चाहिये। तथा आक्षेपक, पक्षाघात, तालुशोष, आर्दित, मन्यास्तंभ; शिरोरोग, कर्णरोग, हनुग्रह, वधिरता, तिमिर और अत्यन्त स्त्रीप्रसंग करनेसे उत्पन्न हुई क्षीणतामें यह तैल अत्यन्त उपकारी है। इसको पान, अभ्यंग (मालिस), नस्य, वस्तिकर्म और भोजनमें सेवन करना चाहिए। इस तेलको नित्य व्यवहार करनेसे ग्रीवा, स्कंध और छातीकी वृद्धि होती है। मुख कमलके समान सुगन्धित श्वासयुक्त हो जाता है। यह गन्धतैल सब प्रकारके वातरोगोंको दूर करता है। वैद्योंको राजाओंके लिये यह गन्धतैल बनाना चाहिए। यहाँ तिलोंके चूर्णके बराबर सब औषधियोंका चूर्ण लेना चाहिए॥ ३०-४१॥

अवस्थानुसार भग्नकी साध्यतादि।

पूर्वे वयसि जातं हि भग्नं सुकरमादिशेत्। अल्पदोषस्य जन्तोश्च काले तु समशीतले॥ ४२॥

पहली अवस्थामें हुआ भग्न साध्य है, अल्पदोषवाले मनुष्यके हुआ भग्न साध्य है और समशीतोष्णकालमें हुआ भी भग्न साध्य है॥ ४२॥

प्रथमे वयसि त्वेवं मासात्सन्धिस्थिरो भवेत्। मध्यमे द्विगुणान् कालादन्तिमे त्रिगुणात्तथा॥ ४३॥

पहली अवस्थामें टूटे हुए हाड एक महीनेमें जुड जाता है, मध्यम अवस्थामें टूटा हुआ हाड दो महीनेमें दृढ हो जाता है और तीसरी अवस्थामें टूटा हुआ हाड़ तीन महीनेमें ठीक होता है॥ ४३॥

नैति पाकं यथा भग्नं तथा यत्नेन रक्षयेत्। पक्वं हि स्याच्छिरास्नायुं तद्धि कृच्छ्रेण सिध्यति॥ ४४॥

जिससे कि, भग्न पक न जाय इस प्रकार यत्नपूर्वक उसकी रक्षा करनी चाहिए, क्योंकि भग्न पक जानेपर वह शिरा और स्नायुओंको बिगाड़ कर कष्टसाध्य हो जाता है॥ ४४॥

विशेष उपदेश ।

पतनादभिघाताद्वा शूनमङ्गं यदक्षतम् । शीतान्सेकान्प्रदेहांश्च भिषक्तस्यावचारयेत् ॥ ४५ ॥ सव्रणस्य तु भग्नस्य व्रणं सर्पिर्मधूत्तरैः । प्रतिसार्य कषायैश्च शेषं भग्नवदाचरेत् ॥ वातव्याधिविनिर्दिष्टान् स्नेहांस्तत्रापि योजयेत् ॥ ४६ ॥

वृक्षादिकसे गिर जानेसे अथवा चोट आदिके लग जानेसे जो अंग सूज जाय और उसमें घाव न हो तो शीतल औषधियोंका परिसेचन और शीतल औषधियोंका प्रलेप प्रयोग करे। जो भग्नमें व्रण हो तो उसको शहद और घी मिले काथोंसे धोवे, पश्चात् सब भग्नरोगोक्त चिकित्सा करे और इसमें वातरोगोक्त तैल घृतादि भी प्रयोग करे ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

अपथ्य ।

लवणं कटुकं क्षारमम्लमातपमैथुनम् । व्यायामं न च सेवेत भग्नो रूक्षान्नमेव च ॥ ४७ ॥

लवण, चरपरे पदार्थ, खारी पदार्थ, खटाई, धूप, मैथुन, व्यायाम (परिश्रमादिक) और रूक्ष अन्न इन सबको भग्नरोगी त्याग देवे ॥ ४७ ॥

भग्नआरोग्यके लक्षण ।

भग्नसन्धिमनाविद्धमहीनाङ्गमनुल्बणम् । सुखचेष्टाप्रचारश्च सम्यक् सन्धितमादिशेत् ॥ ४८ ॥

जब अंगोंको फैलाते सकोडते समय कुछ भी कष्ट न हो, कोई अवयव हीन अर्थात् टेढा या छोटा न रह जाय, सूजन किंचित् भी न रहे और उठते बैठते समय तथा फिरते चलते समय दुःख न हो और सब चेष्टा सुखपूर्वक होने लगे तो भग्नको अच्छे प्रकारसे आरोग्य हुआ जानना ॥ ४८ ॥

इति श्रीवङ्गसेने भाषाटीकायां भग्ननिदानाचिकित्साधिकारः समाप्तः ॥ ५२ ॥

अथ नाडीव्रणरोगाधिकारः ।

यः शोफमाममिति पक्कमुपेक्षतेऽज्ञो यो वा व्रणं प्रचुरपूयमसाधुवृत्तः । अभ्यन्तरं प्रविशति प्रविदार्य्य तस्य स्थानानि पूर्वविहितानि ततः सपूयः ॥ १ ॥ तस्यातिमात्रगमनाद्गतिरिष्यते तु नाडीव यद्वहति तेन मता तु नाडी ॥ २ ॥

जो मूर्ख मनुष्य पके हुए फोड़ोंको कच्चा समझ कर उसका मुख नहीं करता अथवा बहुत राधवाले पके हुए व्रणको कच्चा जानकर उसको शोधन पदार्थोंसे शुद्ध नहीं करता और अहित आहार विहार करता है उसके वह वृद्धिको प्राप्त हुई राध त्वचा, मांस, शिरा, स्नायु संधि, अस्थि, कोष्ठ तथा मर्म्मस्थानोंके छिद्रोंमें हो कर उनके भीतर घुसजाती है भीतर बहुत दूर घुस जानेके कारण वह राध सदैव बहा करती है, यह व्रण बांस आदिकी नलीके समान राधको बहाता है इस कारण इसको नाडीव्रण (नासूर) कहते हैं ॥ १ ॥ २ ॥

नाडीव्रणकी संख्यारूपसम्प्राप्ति ।

दोषैस्त्रिभिर्भवति सा पृथगेकशश्च संमूर्च्छितैरपि च शल्यनिमित्ततोऽन्या ॥ ३ ॥

अलग २ दोषोंसे तीन, सन्निपातसे चौथा और शल्यसे पांचवां ऐसा नाडीव्रणरोग पांच प्रकारका है॥३॥

वातजनाडीव्रणके लक्षण ।

तत्रानिलात्परुषसूक्ष्ममुखी सशूला फेनानुविद्धमधिकं स्रवति क्षपासु ।

वातजनाडीव्रण रूखा, बारीकमुखवाला, शूलयुक्त झागों सहित और रातमें अधिक बहता है ।

पित्तजनाडीव्रणके लक्षण ।

पित्ताच्च तृड्ज्वरकरी परिदाहयुक्ता पीतं स्रवत्यधिकमुष्णमहस्सु चापि॥४॥

पित्तजनाडीव्रणमें तृषा, ज्वर और दाह होती है, पीले रंगकी और अत्यन्त उष्ण राध बहती है तथा दिनमें अधिक स्रवता है ॥ ४ ॥

कफजनाडीव्रणके लक्षण।

ज्ञेया कफाद्बहुघनार्जुनपिच्छिलास्रा स्तब्धा सकंडुररुजा रजनीप्रवृद्धा।

कफजनाडीव्रणमें अत्यंत गाढी, सफेद, चिकनी राध होती है। वह कठिन, खुजलीयुक्त और रात्रिमें अधिक स्रवता है।

द्विदोषजनाडीव्रणके लक्षण।

दोषद्वयाभिहितलक्षणदर्शनेन तिस्रो गतिव्यतिकरप्रभवास्तु विद्यात् ॥ ५ ॥

जिसमें दो दोषोंके लक्षण मिलते हों उसको द्वंद्वज और जिसमें तीन दोषोंके लक्षण मिलते हों उसको त्रिदोषज जानना ॥ ५ ॥

त्रिदोषजनाडीव्रणके लक्षण।

दाहज्वरश्वसनमूर्च्छनवक्त्रशोषा यस्यां भवन्त्यभिहितानि च लक्षणानि। तामादिशेत्पवनपित्तकफप्रकोपात घोरामसुक्षयकरीमिव कालरात्रिम् ॥ ६ ॥

जिसमें दाह, ज्वर, श्वास, मूर्च्छा, मुखका सूखना और पूर्वोक्त वातपित्तादिके सब लक्षण मिलते हों उसको त्रिदोषजनाडीव्रण कहते हैं। यह कालरात्रिके समान घोर और तत्काल प्राणनाशक है ॥ ६ ॥

शल्यजनाडीव्रणके लक्षण।

नष्टं कथञ्चिदनुमार्गमुदीरितेषु स्थानेषु शल्यमचिरेण गतिं करोति। सा फेनिलं मथितमुष्णमसृग्विमिश्रं स्रावं करोति सहसा सरुजं च नित्यम् ॥ ७ ॥

पूर्वोक्तव्रणके स्थानमें कण्टकादि शल्य अनजानमें लगके रह जाय तो वह थोडे ही कालमें नाडीव्रणको उत्पन्न करता है। उस नाडीव्रणमें झागोयुक्त, मथेके समान, गरम, रुधिरमिश्रित राध बहे, नित्य पीडा हो उसको शल्यजनाडीव्रण जानना ॥ ७ ॥

साध्यासाध्यलक्षण।

नाडी त्रिदोषप्रभवा न सिध्येच्छेषाश्चतस्रः खलु यत्नसाध्याः ॥ ८ ॥

इनमें त्रिदोषजनाडीव्रण तो साध्य नहीं है और शेष चार नाडीव्रण चिकित्सा करनेसे आरोग्य हो जाते हैं ॥ ८ ॥

नाडीव्रणकी चिकित्सा।

तत्रानिलोत्थामुपनाह्य पूर्वमशेषतः पूयगतिं विदार्य्य। फलैरपामार्गभवैः सुपिष्टैः ससैंधवैः संपरिपूर्य्य बन्धेत्। प्रक्षालने वापि यदा व्रणस्य योज्यं महद्यत् खलु पञ्चमूलम् ॥ ९ ॥

वातजनाडीव्रणको प्रथम औषधिमिश्रित पुलटिस आदिसे बाँधे फिर विधिपूर्वक शस्त्रसे राधके स्थानको चीर देवे फिर उस व्रणमें सैंधानमकके साथ चिरचिटेके चावलोंको पीसकर भरदेवे और ऊपरसे बाँध देवे बृहत्पंचमूलका क्राथ बना कर उस क्राथसे व्रणको धोवे ॥ ९ ॥

हिंस्राद्यतैल।

हिंस्रां हरिद्रां कटुकीं वचाञ्च गोजिह्विकाञ्चापि सपञ्चमूलम्। संहृत्य तैलं विपचेद्व्रणस्य संशोधनं पूरणरोपणञ्च ॥ १० ॥

बेरीकी छाल, हलदी, कुटकी, वच, गोजिया और पंचमूल इनके कल्कके द्वारा तिलके तेलको पकावे। यह तेल व्रणको शुद्ध करनेवाला, भरनेवाला और व्रणको सुखानेवाला है ॥ १० ॥

पित्तजनाडीव्रणकी चिकित्सा।

पित्तात्मिकां प्रागुपनाह्य धीमानुत्कारिकाभिः सपयोघृताभिः। निपात्य

शस्त्रं तिलनागदन्तीमञ्जिष्ठकल्कैः परिपूरयेच्च ॥ प्रक्षालने वापि हरिद्रसोमनिम्बाः प्रयोज्याः कुशलेन नित्यम् ॥ ११ ॥

पित्तजनाडीव्रणपर प्रथम दूध और घीसहित गेहूँके आटेकी लुपरी बनाकर बांधे । पश्चात् शस्त्रसे चीर कर उसमें तिल, जमालगोटे और मजीठ इनका कल्क भर देवे । बुद्धिमान् वैद्य इस व्रणको नित्य हलदी, लालचन्दन और नीमकी छाल इनके काथसे धोता रहे ॥ ११ ॥

श्यामाघृत ।

श्यामात्रिभण्डीत्रिफलासुसिद्धं हरिद्रया तिल्वकवृक्षकेण । घृतं सदुग्धं व्रणतर्पणेन हन्यादुतिं कोष्ठगतापि या स्यात् ॥ १२ ॥

कालानिसोत, निसोत, त्रिफला, हलदी और लोध इनके कल्कसे पकाये हुए घीमें दूध डाल कर उस घीसे पित्तजनितनाडीव्रणको तृप्त करे तो व्रणका स्राव दूर होता है ॥ १२ ॥

कफजनाडीव्रणकी चिकित्सा ।

नाडीकफोत्थामुपनाह्य पूर्वं कुलित्थसिद्धार्थकसक्तुबिल्वैः । मृद्वीकृतामेकगतिं विदित्वा निपातयेच्छस्त्रमशेषकारि ॥ १३ ॥ दद्याद्व्रणे निम्बतिलाग्निदन्तीसुराष्ट्रजाः सैंधवसंप्रयुक्ताः । प्रक्षालने वापि करञ्जनिम्बजात्यार्कपीलुस्वरसाः प्रयोज्याः १४॥

कफजनाडीव्रणमें कुलथी, सरसों, सत्तू और बेलगिरी इनकी पुलटिस बांधकर नरम करके राधके एक स्थानमें ही मुखको जानकर अच्छे प्रकारसे चीर देवे-पश्चात् नीम, तिल, चीता, दन्ती, फटकरी और सैंधानमक इनका चूर्ण करके भर देवे। इस व्रणको नित्य करंज, नीम, चमेली, आक और पीलु इनके स्वरसोंसे धोवे ॥ १३ ॥१४॥

स्वर्जिकाद्यतैल ।

स्वर्जिकासिन्धुदन्त्यग्निरूपिका जलनीलिका । खरमञ्जरिबीजेषु तैलं गोमूत्रसाधितम् ॥ दुष्टव्रणप्रशमनं कफनाडीव्रणापहम् ॥ १५ ॥

सज्जी, सैंधानमक, दंती, चीता, सफेद आक,सिवार और चिरचिटेके बीज इनके कल्कके द्वारा गोमूत्रमें तेलको पकावे । इसको स्वर्जिकाद्यतैल कहते हैं । इस तेलको लगानेसे दुष्टव्रण तथा कफसम्बन्धी नाडीव्रण दूर हो जाता है ॥ १५ ॥

सैन्धवाद्यतैल ।

सैंधवाक्षमरिचज्वलनाख्यैः कारवेल्लरजनीद्वयसिद्धम् । तैलमेतदचिरेण निहन्याद्दूरगामपि कफानिलनाडीम् ॥ १६ ॥

सैंधानमक, बहेडा, कालीमिरच, चीता, करेला, हलदी और दारुहलदी इनके द्वारा पकायेहुए तैलको सैन्धवाद्यतैल कहते हैं । इस तेलको लगानेसे कफसम्बन्धी तथा वायुसम्बन्धी नाडीव्रण बहुत दूरतक पहुँच गया हो तो भी नष्ट हो जाता है ॥ १६ ॥

शल्यजनाडीव्रणकी चिकित्सा ।

नाडीं तु शल्यप्रभवां विदार्य्य निर्य्यात्य शल्यं प्रविशोध्य मार्गम् । बन्धेद्व्रणं क्षौद्रघृतप्रगाढं निम्बास्तिलाञ्छोध्य च रोपयेच्च ॥ १७ ॥

जो नाडीव्रण शल्यसम्बन्धी हो तो उसको शस्त्रसे चीरकर काँटेको निकालकर व्रणके मार्गको शुद्ध करके पश्चात् शहद तथा घीमें पिसेहुए नीमके पत्तोंके कल्कका तथा तिलके कल्कका उसके ऊपर लेप करदेवे । इससे व्रण भर करके सूख जाता है ॥ १७ ॥

कुम्भीकाद्यतैल ।

कुम्भीकखर्जूरकपित्थबिल्ववनस्पतीनां च शलाटुवर्गे । कृत्वा कषायं विपचेत्तु तैलमवाप्य मुस्तं सरलं प्रियंगुम् ॥ १८ ॥ सौगन्धिकं मोचरसाऽहिपुष्पलोध्राणि दत्त्वा खलु धातकीं वा । एतेन शल्यप्रभवा हि नाडी रोहेद्व्रणो वा सुखमाशु चैव ॥ १९ ॥

जमालगोटा, खजूर, कैथ, बेलगिरी और बड इनके कच्चे फलोंका क्काथ बनाकर उसमें नागरमोथा फूलप्रियंगु, धूपसरल, खस, मोचरस, नागकेशर, लोध और धायके फूल इनका कल्क डालकर तेलको पकावे। इस कुम्भीकाद्यतैलको लगानेसे शल्यसम्बन्धी नाडीव्रण और अन्यान्य समस्त व्रण नष्ट होते हैं॥ १८॥१९॥

स्नुह्यर्कदुग्धदार्वीणां वर्त्तिं कृत्वा प्रपूरयेत्। एष सर्वशरीरस्थां नाडीं हन्यात्प्रयोगराट्॥ २०॥

थूहरका दूध, आकका दूध और दारुहलदी इनकी बत्ती बना कर व्रणमें रखनेसे सब प्रकारके नाडीव्रण नष्ट हो जाते हैं॥ २०॥

आरग्वधनिशाकालं चूर्णयेत् क्षौद्रसंयुतम्। मूत्रे वर्त्तिर्व्रणे योज्या शोधिनी गतिनाशिनी॥ २१॥

अमलतास, हलदी और निसोत इनको गोमूत्रमें पीसकर शहदमें मिलाकर बत्ती बनाकर व्रणमें रक्खे तो व्रण शुद्ध हो जाता है और राधकी गति भी नष्ट होजाती है॥ २१॥

वर्त्तीकृतं माक्षिकसंप्रयुक्तं नाडीघ्नमुक्तं लवणोत्तमं वा। दुष्टव्रणे यद्विहितं तु तैलं तत्सेव्यमानं गतिमाशु हन्ति॥ २२॥

सैंधानमकको शहदमें मिलाकर उससे सूतकी बत्ती बनाकर व्रणमें रखनेसे नाडीव्रण नष्ट होजाताहै। दुष्टव्रणपर जो तेल कहे हैं उनको सेवन करनेसे भी राधकी गति तत्काल नष्ट हो जाती है॥ २२॥

जात्यर्कशम्याककरञ्जदन्तीसिन्धूत्थसौवर्चलयावशूकैः। वर्त्तिः कृता हन्त्यचिरेण नाडीं स्नुक्क्षीरपिष्टा सह चित्रकेण।

चमेली, आक, अमलतास, करंज, जमालगोटे, सैंधानमक, कालानमक, जवाखार और चीता इनको थूहरके दूधमें पीसकर तथा बत्ती बनाकर व्रणमें रखनेसे नाडीव्रण तत्काल नष्ट हो जाता है॥

बिभीतकाम्रास्थि-वटप्रवाल-हरेणुका शङ्खिनीबीजमिश्रा। वराहविट् सूक्ष्ममषी प्रदेया नाडीस्तु तैलेन विमिश्रयित्वा॥ २३॥

बहेडे, आमकी गुठली, वडके अंकुर, रेणुका, शंखाहुलीके बीज और सूअरकी विष्ठा इनको जला कर स्याही बनावे। इस स्याहीको तेलमें मिलाकर लगानेसे नाडीव्रण तत्काल नष्ट हो जाता है॥ २३॥

मेषरोममषी।

मेषरोममषी तस्यां कटुतैलविपाचिताम्। नाडीव्रणं चिरोद्भूतं जयेत्तूलकसंगमात्॥ २४॥

भेडके बालोंको जलाकर स्याही बनावे उस स्याहीको कडवे तेलमें पकाकर रुईके योगसे बत्ती बनावे उन बत्तियोंको नाडीव्रणमें रखनेसे व्रण तत्काल भर जाता है॥ २४॥

कर्पूराद्यतैल।

कर्पूरस्य रसेनैव कटुतैलं विपाचयेत्। सिन्दूरकल्कितं नाडीदुष्टव्रणविसर्पनुत्॥ २५॥

कपूरके क्काथमें सिन्दूरके कल्कके द्वारा कडवे तेलको पकावे। इस तेलको भरनेसे नाडीव्रण, दुष्टव्रण और विसर्परोगादि दूर होते हैं॥ २५॥

स्वर्जिकाद्यतैल।

स्वर्जिका सैंधवं दन्ती नीलीमूलं फलं तथा। मूत्रे चतुर्गुणे सिद्धं तैलं नाडीव्रणापहम्॥ २६॥

सज्जी, सैंधानमक, दन्ती, नीलीकी जड और फल इनके कल्कके द्वारा चौगुने गोमूत्रमें तिलके तेलको पकावे। यह तेल नाडीव्रणको दूर करता है॥ २६॥

सर्वो व्रणक्रमः कार्यो शोधनारोपणादिकः।

व्रणरोगमें शोधन और रोपणादि जो चिकित्सा कही है वह सब नाडीव्रणके ऊपर भी करनी चाहिये।

सप्ताङ्गगुग्गुलु ।

गुग्गुलुत्रिफलाव्योषैः समांशैराज्ययोजितैः । अक्षप्रमाणां गुटिकां खादेदेकामतन्द्रितः ॥ २७ ॥ नाडीं दुष्टव्रणं शूलमुदावर्त्तं भगन्दरम् । गुल्मं च गुदजान् हन्यात् पक्षिराट् पन्नगानिव ॥ २८ ॥

गूगल, त्रिफला और त्रिकुटा इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण करले । इस चूर्णको घीमें मिलाकर एक एक तोलेकी गोलियां बनालेवे । प्रतिदिन एक गोली खाय और परहेजसे रहे । यह गोली-दुष्टनाडीव्रण, दुष्टव्रण, शूल, उदावर्त्त, भगन्दर, गुल्म और बवासीर इन सब रोगोंको इस प्रकार नष्ट कर देती है जिस प्रकार गरुड सर्पोंके समूहको नष्ट कर देता है ॥ २७ ॥२८॥

या द्विव्रणीये विहितास्तु वर्त्यस्ताः सर्वनाडीषु भिषग्विदध्यात् ॥ २९ ॥ कृशदुर्बलभीरूणां नाडीं मर्माश्रितामपि । क्षारसूत्रेण तां छिन्द्यान्न शस्त्रेण कदाचन ॥ ३० ॥

जो द्विव्रणमें बत्ती कही है उन बत्तियोंको सर्व प्रकारके नाडीव्रणोंमें भी प्रयोग करना चाहिए।कृश, दुर्बल और भीरु इनके उत्पन्न हुए नाडीव्रणको तथा मर्म्मस्थानोंमें उत्पन्न हुए नाडीव्रणको क्षारमें भीजे हुए डोरेसे फोडे किंतु शस्त्रसे कदापि न चीरे॥२९॥३०॥

एषण्यागतिमन्विष्य क्षारसूत्रानुसारिणीम् । सूचीं विदध्यान्नाडचन्ते प्रोन्नम्याशु विनिर्हरेत् ॥ ३१ ॥ सूत्रस्यान्तं समानीय गाढं बन्धं समाचरेत् । ततः क्षारबलं वीक्ष्य सूत्रमन्यत्प्रवेशयेत् ॥ ३२ ॥ क्षाराक्तं मतिमान् वैद्यो यावन्न च्छिद्यते गतिः । भगन्दरेऽप्येष विधिः कार्यो वैद्येन जानता ॥ ३३ ॥ अर्बुदादिषु चोत्क्षिप्य मूले सूत्रं निधापयेत् । सूचिभिर्यववक्राभिराचितं वा समन्ततः । मूले सूत्रेण बध्नीयाच्छिन्ने चोपचरेद्व्रणम् ॥ ३४ ॥

नाडीव्रणकी गतिको एषणीसे साधन करे और कहांसे सूखा है और कहांसे हरा है यह जानकर विधिपूर्वक क्षार सूत्रके द्वारा सुई छेद देवे, राधको निकाल डाले, फिर सूत्रके अन्तमें गाँठ देकर बाँध देवे,क्षारके बलानुसार फिर दूसरा सूत उसमें प्रविष्ट करे, जबतक नाडीव्रणका मार्ग नहीं हो तबतक बराबर इसी प्रकार क्षारसूत्र प्रवेश करे और यही विधि भगन्दरोगमें भी करे । अर्बुदादिरोगोंमें उनको ऊँचा करके उनके मूलमें क्षारसे भीजा हुआ डोरा बाँधे अथवा व्रणको जौके समान मुखवाली सुईसे चारों ओर छेदकर उसकी जडमें डोरा बाँधे और व्रणके छिद जानेपर अन्य उपचार करे ॥ ३१-३४ ॥

इति श्रीवङ्गसेने भाषाटीकायां नाडीव्रणाधिकारः समाप्तः ॥ ५३ ॥

अथ भगन्दररोगाधिकार ।

गुदस्य द्व्यंगुले क्षेत्रे पार्श्वतः पिटिकार्तिकृत् । भिन्ना भगन्दरो ज्ञेयः स च पञ्चविधो मतः ॥ १ ॥

गुदाके निकट एक बाजूपर दो अंगुल जगह छोड कर ऊंची एक फुडिया हो उसमें पीडा हो और वह फूट जाय तो उसको भगन्दर कहते हैं । वह पांच प्रकारका है । यह भगाकार विदीर्ण होता है इस कारण इसको भगन्दर कहते हैं ॥ १ ॥

भगन्दरका पूर्वरूप ।

कटीकपालनिस्तोद-दाहकण्डूरुजादयः । भवन्ति पूर्वरूपाणि भविष्यंति भगन्दरे ॥ २ ॥

कमरके समीप जो कपालनामक हाड है उसमें सुई चुभानेके समान पीडा तथा उस फुडियामें दाह और खुजली हो इसके अतिरिक्त और भी पीडादिक हो यह भगन्दरका पूर्वरूप है ॥ २ ॥

वातजशतपोनकभगन्दरके निदान और लक्षण।

कषायरूक्षैरतिकोपितोऽनिलस्त्वपानदेशे पिटिकां करोति याम्। उपेक्षणात्पाकमुपैति दारुणं रुजा च भिन्नारुणफेनवाहिनी॥ ३॥ तत्रागमो मूत्रपुरीषरेतसां व्रणैरनेकैः शतपोनकं वदेत्॥ ४॥

कषैले और रूखे पदार्थोंको भक्षण करनेसे वायु अत्यन्त कुपित होकर गुदाके समीप एक फुडिया उत्पन्न करता है उसको उपेक्षा करनेसे वह फुडिया पकती और फूटजाती है तब उसमें घोर पीडा होती है और लाल एवं झागोंयुक्त राध बहती है, फिर उसमें अनेक छिद्र होजाते हैं, उन छिद्रोंके द्वारा मूत्र, मल और शुक्र बहता है, इसमें चलनीकेसे अनेक छिद्र होते हैं इस कारण इसको शतपोनक कहते हैं॥ ३॥४॥

पैत्तिकउष्ट्रग्रीवभगन्दरके निदान और लक्षण।

प्रकोपनैः पित्तमतिप्रकोपितं करोति रक्तां पिटिकां गुदाश्रिताम्। तदाशु पाकाद्दिमपूयवाहिनीं भगन्दरं चोष्ट्रशिरोधरं वदेत्॥ ५॥

अत्यन्त पित्तकारक पदार्थोंके सेवन करनेसे पित्त कुपित होकर गुदाके निकट लाल रंगकी फुडिया उत्पन्न करता है, वह फुडिया शीघ्र पकजाती है, उसमेंसे गरम राध बहती है। वह फुडिया ऊँटकी गर्दनके समान होती है इस कारण उसको उष्ट्रशिरोधर कहते हैं॥ ५॥

श्लैष्मिकपरिस्रावीभगन्दरके लक्षण।

कंडूयनो घनस्रावी कठिनो मन्दवेदनः। श्वेतावभासः कफजः परिस्रावी भगन्दरः॥ ६॥

जिसमें खुजली हो, गाढी राध बहे, भगन्दरकी फुडिया कठिन, अल्प पीडायुक्त और उसका रंग सफेद हो उसको परिस्रावी कहते हैं॥ ६॥

त्रिदोषजन्यशम्बूकावर्त-भगन्दरके लक्षण।

बहुवर्णरुजास्रावाः पिटिका गोस्तनोपमाः। शम्बूकावर्त्तवन्नाडी शम्बूकावर्त्तको मतः॥ ७॥

जिसमें गायके स्तनके समान अनेक फुंसी हों उनका रंग, पीडा और स्राव अनेक प्रकारका हो एवं उनका छिद्र घोंघेकी घेरेके समान होता है। इसको त्रिदोषजशम्बूकावर्त्त कहते हैं॥ ७॥

शल्यसम्बन्धीउन्मार्गिभगन्दरके लक्षण।

क्षताद्गतिः पायुगता विवर्द्धते ह्युपेक्षणात्सा कृमिभिर्विदार्यते। प्रकुर्वते मार्गमनेकधा मुखैर्व्रणैस्तमुन्मार्गिभगन्दरं वदेत्॥ ८॥

गुदाके निकट काँटे आदिके लगनेसे घाव होजाने पर उसका उपाय न करनेसे वह बढते २ गुदातक पहुँच जाता है, इतने पर भी उसका उपाय न किया जाय तो उसमें कीड़े पड़जाते हैं और वे कीड़े उसमें अनेक छिद्र करदेते हैं उसको उन्मार्गिभगन्दर कहते हैं॥ ८॥

साध्यासाध्यलक्षण।

घोराः साधयितुं दुःखाः सर्व एव भगन्दराः। तेष्वसाध्यस्त्रिदोषोत्थः क्षतजश्च विशेषतः॥ ९॥ वातमूत्रपुरीषाणि कृमयः शुक्रमेव च। भगन्दरात् स्रवन्तस्तु नाशयन्ति तमातुरम्॥ १०॥

सर्व प्रकारके भगन्दर अत्यन्त कष्टसाध्य हैं। उनमें त्रिदोषज असाध्य है और क्षतज विशेष करके असाध्य है। जिस भगंदररोगमें अधोवायु, मूत्र, विष्ठा, कीड़े और वीर्य्य स्रवता हो वह रोगी अवश्य मृत्युको प्राप्त होता है॥ ९॥ १०॥

भगन्दररोगकी चिकित्सा।

अथास्य पिटिकामेव तथा यत्नादुपाचरेत्। शुद्ध्यस्रस्रुतिसेकाद्यैर्यथा पाकं न गच्छति॥ ११॥

भगंदरकी फुंसी उत्पन्न होतेही उसका यत्न करना चाहिये जिससे कि वह पके नहीं । शोधन, रुधिर-मोक्षण (जोंकद्वारा रुधिर निकलवाना) और सेचन इत्यादि उपचार करनेसे फुन्सी नहीं पकती है॥११॥

वटपत्रेष्टकाशुण्ठीगुडूचीसपुनर्नवाः । सुपिष्टः पिटिकाऽवस्थे लेपः शस्तो भगन्दरे ॥ १२ ॥

वडके पत्ते, ईंट, सोंठ, गिलोय और पुनर्नवा इनको अच्छे प्रकारसे पीसकर जहाँतक भगन्दरकी फुन्सी हो वहाँतक लेप करे ॥ १२ ॥

पिटिकानामपाकानामपतर्पणपूर्वकम्। कर्म्म कुर्य्याद्विरेकांतं भिन्नानां वक्ष्यते क्रिया ॥ १३ ॥ एषणीपाटनक्षारवह्निदाहादिकं क्रमम् । विधाय व्रणवत्कार्य्यं यथादोषं यथाक्रमम् ॥ १४ ॥

जो भगन्दरकी फुन्सी न पकी हो तो लंघनसे लेकर विरेचनतक क्रिया करे । फुन्सीको फोडनेकी जो क्रियाएँ हैं उनको कहते हैं एषणीनामक शस्त्रसे चीरे, क्षार लगावे और अग्निदाह आदि कर्म्म करे । उसकी गहराई देखकर फिर उत्पाटन शस्त्रसे पश्चात् यथादोषानुसार तथा क्रमानुसार व्रणके समान क्रिया करे ॥ १३ ॥ १४ ॥

पयःपिष्टैस्तिलैराज्यमधुकैश्च सुशीतलैः । भगन्दरे प्रशस्तोऽयं सरक्ते वेदनावति ॥ १५ ॥

रुधिर और वेदनावाले भगन्दरपर तिल और मुलैठी इनको दूधमें पीसकर घीमें मिलाकर शीतल करके लेप करे ॥ १५ ॥

सुमना वटपत्राणि गुडूचीविश्वभेषजम् । सैन्धवं तक्रपिष्टश्च लेपाद्धन्ति भगन्दरम् ॥ १६ ॥

चमेलीके पत्ते, वडके पत्ते, गिलोय, सोंठ और सैंधानमक इन सबको एकत्र तक्रमें पीसकर भगन्दर-पर लेप करनेसे भगन्दर नष्ट होता है ॥ १६ ॥

त्रिवृत्तिलानला दन्ती मञ्जिष्ठा सह सर्पिषा । उत्सादनं भवेदेतत्सैंधवक्षौद्रसंयुतम् ॥ १७ ॥

निसोत, तिल, चीता, जमालगोटा, मजीठ और सैंधानमक इनको एकत्र पीसकर घी और शहदमें मिलाकर भगन्दरके ऊपर लेप करनेसे भगन्दर अवश्य नष्ट होता है ॥ १७ ॥

खदिराम्बुरतो भूत्वा कषायं त्रैफलं पिबेत् । महिषाक्षविडङ्गानां भगन्दरविनाशनम् ॥ १८ ॥

भगन्दररोगी नित्य तृषाके समय खैरका क्वाथरस पीवे और त्रिफलेके काथमें भैंसिया गूगल और वायविडंग डालकर पान करे, इससे भगन्दररोग नष्ट होता है ॥ १८ ॥

जंबूकमांसमश्नीयात् प्रकारैर्व्यञ्जनादिभिः । अजीर्णवर्जी मासेन मुच्यते स भगन्दरात् ॥ १९ ॥

अनेक प्रकारके व्यञ्जनोंसे सिद्ध किये हुए आहारमें गीदडके मांसको भक्षण करे और अजीर्ण न होने देवे, इसको एक महीनेतक सेवन करनेसे भगन्दर-रोग नष्ट होता है ॥ १९ ॥

न्यग्रोधादिगणो यश्च हितः शोधनरोपणः । तैलं घृतं वा तत्पक्वं भगन्दरविनाशनम् ॥ २० ॥

न्यग्रोधादिगण जो कि व्रणको शुद्ध करनेवाला और भरनेवाला है उसके कल्कके द्वारा तेल अथवा घृतको पकाकर सेवन करनेसे भगन्दररोग नष्ट होता है ॥ २० ॥

तिला ज्योतिष्मती कुष्ठं लाङ्गलिगिरिकर्णिका । शताह्वात्रिवृतादन्त्यः शोधनाश्च भगन्दरे ॥ २१ ॥

तिल, मालकांगनी, कूट, कलिहारी, कोंइली, सौंफ, निसोत और दंती इनका क्वाथ भगन्दरके व्रणको शुद्ध करता है ॥ २१ ॥

तिलाभयाकुष्ठमरिष्टपत्रं निशे बलालोध्रमगारधूमम् । भगन्दरे चाप्युपदंशजे च दुष्टव्रणे शोधनरोपणाय॥२२॥

तिल, हरड, कूट, नीमके पत्ते, हलदी, दारुहलदी, खिरैंटी, लोध और घरका धुआँसा इन सबको एकत्र मिलाकर भगन्दरपर लगानेसे भगन्दर, उपदंश और दुष्ट व्रण शुद्ध होकर भर जाते हैं ॥ २२ ॥

स्नुह्यर्कदुग्धदार्वीभिर्वर्त्ति कृत्वा विचक्षणः। भगन्दरगतिं ज्ञात्वा पूरयेत्तां प्रयत्नतः॥ एषा सर्वशरीरस्थां नाडीं हन्ति न संशयः॥ २३॥

थूहरका दूध, आकका दूध और दारुहलदी इनकी बत्ती बनाकर प्रयत्नसे भगन्दरमें रक्खे। यह प्रयोग सम्पूर्ण शरीरमें स्थित नाडीव्रणको निश्चय नष्ट कर देता है॥ २३॥

त्रिफलारससंयुक्तं बिडालास्थिप्रलेपनम्। भगन्दरं निहन्त्याशु दुष्टव्रणहरं परम्॥ २४॥

बिलावकी हड्डीको त्रिफलेके रसमें पीसकर लेप करनेसे शीघ्र ही भगन्दररोग तथा दुष्टव्रण नष्ट होता है॥ २४॥

कुष्ठं त्रिवृत्तिला दन्ती मागध्यः सैंधवं मधु। रजनीत्रिफलातुत्थं हितं स्याद्व्रणशोधनम्॥ २५॥

कूठ, निसोत, तिल, दंती, पीपल, सैंधानमक, हलदी, त्रिफला और नीलाथोथा इन सबको एकत्र पीसकर शहदमें मिलाकर भगन्दरके व्रणपर लगावे, इससे व्रण शुद्ध होता है॥ २५॥

रसाञ्जनं हरिद्रे द्वे मञ्जिष्ठानिम्बपल्लवाः। त्रिवृत्तेजोवती दन्ती कल्को नाडीव्रणापहः॥ २६॥

रसौत, हलदी, दारुहलदी, मजीठ, नीमके पत्ते, निसोत, तेजबल और दंती इनका कल्क नाडीव्रणको नष्ट करता है॥ २६॥

ज्योतिष्मती लाङ्गली च श्यामादन्तीत्रिवृत्तिलाः। कुष्ठं शताह्वागोलोमी मूर्वाशोधनमिष्यते॥ २७॥

मालकांगनी, कलिहारी, काला निसोत, दंती, निसोत, तिल, कूठ, सौंफ, सफेददूब और मूर्वा ये सब औषधियां व्रणको शुद्ध करनेके लिए उत्तम हैं॥ २७॥

मधुतैलयुता विडंगत्रिफलामागधिकाकणाश्च लीढाः। कुष्ठभगन्दरक्षतनाडीव्रणरोपणा भवन्ति॥ २८॥

वायविडंग, त्रिफला, पीपल और गजपीपल इन सबको एकत्र पीसकर शहद और तेलमें मिलाकर चाटे तो कुष्ठ, भगन्दर, क्षत और नाडीव्रण भी भर जाता है॥ २८॥

विष्यन्दनतैल।

चित्रकार्कौ त्रिवृत्पाठे मलयूहयमारकौ। सुधां वचां लाङ्गलकीं हरितालं सुवर्चलम्॥ २९॥ ज्योतिष्मतीश्च संहृत्य तैलं धीरो विपाचयेत्। एतद्विष्यन्दनं नाम तैलं दद्याद्भगन्दरे। शोधनं रोपणञ्चैव बलवर्णकरं तथा॥ ३०॥

चीता, आक, निसोत, पाढ, कठूमर, कनेर, थूहर, वच, कलिहारी, हरिताल, कालानमक और मालकांगनी इनके कल्कके द्वारा पकाये हुए तेलको विष्यन्दनतैल कहते हैं। इस तेलको भगन्दररोगमें प्रयोग करना चाहिए। यह तेल व्रणको शुद्ध करनेवाला और भरनेवाला है तथा बल और वर्णको उत्तम करनेवाला है॥ २९॥ ३०॥

निशाद्यतैल।

निशार्कक्षीरसिन्धूत्थपुराऽश्वहरवत्सकैः। सिद्धमभ्यञ्जनं तैलं भगन्दरहरं परम्॥ ३१॥

हलदी, आकका दूध, सैंधानमक, गूगल, कनेर और इन्द्रजौ इनके कल्कके द्वारा तेलको पकावे। इस तेलके अभ्यंग आदि करनेसे भगंदर रोग नष्ट होता है॥ ३१॥

करवीराद्यतैल।

करवीरनिशादन्तीलाङ्गलीलवणाग्निभिः। मातुलुङ्गकवत्साह्वैः पचेत्तैलं भगन्दरे॥ ३२॥

कनेर, हलदी, दन्ती, कलिहारी, सैंधानमक, चीता, बिजौरानबू और इन्द्रजौ इनके कल्कके द्वारा तेलको पकावे । यह तेल भगन्दररोगको नष्ट करता है ॥ ३२ ॥

नवकार्षिकगुग्गुलु ।

त्रिफलापुरकृष्णानां त्रिपञ्चैकांशयोजिता । गुटिका शोथगुल्मार्शोभगन्दरवतां हिता ॥ ३३ ॥

त्रिफला ३ भाग, गूगल ५ भाग और पीपल १ भाग इन सबको एकत्र पीसकर गोली बनावे । यह गोली-सूजन, गुल्म, बवासीर और भगन्दररोगको नष्ट करती है ॥ ३३ ॥

नाड्यन्तरे व्रणः कुर्य्याद्भिषक् तु शतपोनके । ततस्तेष्ववरूढेषु शेषां नाडीरुपाचरेत् ॥ ३४ ॥

शतपोनक नामक भगन्दरमें उसकी नालीके भीतर शस्त्रसे चीरकर घाव करदेवे और जब वह व्रण सूखजाय तब दूसरी नलीका उपचार करे ॥ ३४ ॥

व्याधौ तत्र बहुच्छिद्रे भिषजा तु विजानता । अर्धलाङ्गलिकश्छेदः कार्यो लाङ्गलिकोऽपि च ॥ ३५ ॥ सर्वतोभद्रको वापि कार्यो गोतीर्थकोऽपि वा । द्वाभ्यां समाभ्यां पार्श्वाभ्यां छेदो लाङ्गलिको मतः ॥ ३६ ॥ ह्रस्वमेकतरं यत्तु सोऽर्द्धलाङ्गलिकः स्मृतः । सेवनीं वर्जयित्वा तु चतुर्द्धा दारिते गुदे ॥ ३७ ॥ सर्वतोभद्रकं छेदमाहुश्छेदविदो जनाः । पार्श्वादागतशस्त्रेण छेदो गोतीर्थको मतः ॥ ३८ ॥ सर्वानास्रावमार्गांस्तु दहेद्वैद्यस्तथाग्निना । अथोष्ट्रग्रीवमेषिण्या छित्वा क्षारं निपातयेत् ॥ पूतिमांसव्यपोहार्थमग्निरत्र न पूजितः ॥ ३९ ॥

बहुत छिद्रोंवाले इस शतपोनक नामक भगन्दरमें वैद्य विचार कर अर्धलांगलिक, लांगलिक, सर्वतोभद्रक अथवा गोतीर्थक नामक छेद करे । जिस छेदके दोनों पार्श्व (बाजू) समान रक्खे जाँय उसको लांगलिक कहते हैं । जिस छेदमें एक पार्श्व छोटा रक्खा जाय उसको अर्धलांगलिक कहते हैं । सीवनको छोडकर चारों ओरसे गुदाको चीरा जाय उस छिद्रको सर्वतोभद्र कहते हैं । पार्श्वमें शस्त्र डालकर जो छिद्र किया जाय तो उसको गोतीर्थक कहते हैं। इस प्रकार वैद्य छेद करके शतपोनकके सम्पूर्ण स्रावके मार्गोंको अग्निसे दाग देवें । उष्ट्रग्रीवक नामक भगन्दर हुआ हो तो राधकी गतिको एषणी शस्त्रसे भीतरकी गहराई देखकर शोधकर उत्पाटन शस्त्रसे चीरकर क्षार लगावे, सडे हुए दुर्गंधित मांसको निकालनेके लिये अग्निसे दग्ध न करे, क्योंकि यह पित्त जनक है । ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

उत्कृत्याऽऽस्रावमार्गन्तु परिस्राविणि बुद्धिमान् । क्षारेणाऽऽस्रावितगतिं दहेद्धुतवहेन वा ॥ ४० ॥

परिस्रावीनामक भगन्दर हुआ हो तो बुद्धिमान् वैद्य स्रावके मार्गको चीरकर क्षारसे अथवा अग्निसे स्रावकी गतिको दहन करे ॥ ४० ॥

गतिमन्विष्य शस्त्रेण छिन्द्यात् खर्जूरपत्रकम् । चन्द्रार्द्धचन्द्रवक्रश्च सूचीमुखमवाङ्मुखम् ॥ छित्वाग्निना दहेत्सम्यगेवं क्षारेण वा पुनः ॥ ४१ ॥

शम्बूकावर्त्तनामक भगन्दरमें स्रावके मार्गकी एषणी शस्त्रसे गतिको देखकर शोधन करके खर्जूरपत्रके शस्त्रसे चन्द्रार्ध, चन्द्रवक्र, सूचीमुख और अवाङ्मुखनामक छेद करके पश्चात् अग्निसे अथवा क्षारसे अच्छे प्रकारसे दहन करे ॥ ४१ ॥

येषान्तु शस्त्रपतनाद्वेदना ह्यतिजायते । तत्राशु तैलेनोष्णेन परिषेकः प्रशस्यते ॥ ४२ ॥

जिनके शस्त्रसे चीरनेसे अत्यन्त वेदना हो तो वह वैद्य तत्काल गरमतेलसे सेचन करे ॥ ४२ ॥

आगन्तुजे भिषङ् नाडीं शस्त्रेणोत्कृत्य यत्नतः । यवोष्ठेनाग्निवर्णेन तप्तया वा शलाकया ॥ ४३ ॥ ॥ दहेद्यथोक्तं मतिमांस्तं व्रणं सुसमाहितः ॥ ४४ ॥

शल्यसम्बन्धी भगन्दर हो तो बुद्धिमान् वैद्य यत्न पूर्वक उसकी नालीको शस्त्रसे चीरे, तपाये हुए अग्निके वर्णके समान यवोष्ट नामक शस्त्रसे अथवा तप्त कीहुई सलाईसे शास्त्रानुसार दाग देवे ॥४३॥४४॥

पथ्यापथ्य।

व्यायामं मैथुनं युद्धं पृष्ठयानं गुरूणि च। संवत्सरं परिहरेदुपरूढव्रणो नरः॥ ४५॥

जो भगन्दरका व्रण भरकर सूख गया हो तो भी मनुष्य एक वर्ष पर्य्यंत दण्ड, कसरत, मैथुन, युद्ध, घोडे, हाथी आदिपर बैठना और भारी अन्न पानका भोजन यह सब त्याग देवे॥ ४५॥

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायां
भगन्दररोगाधिकारः
समाप्तः॥ ५४॥

अथ उपदंशरोगाधिकार।



हस्ताभिघातान्नखदन्तपाताद्धावनादत्युपसेवनाच्च। योनिप्रदोषाच्च भवन्ति शिश्ने पञ्चोपदंशा विधिधापचारैः॥ १॥

हाथकी चोटके लगनेसे, नख अथवा दांतोंकी चोटके लगजानेसे, अतिमैथुन करनेसे, मैथुन करके लिंगको नहीं धोनेसे, या लिंगको नित्य न धोनेसे, पशु आदिके साथ प्रसंग करनेसे, रोगसे दूषित योनिवाली अथवा तीक्ष्ण केशयुक्त दुष्टयोनिवाली स्त्रियोंके साथ प्रसंग करनेसे इत्यादि अनेक कारणोंसे वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज संसर्गज और रक्तज इसप्रकार लिंगमें पांच प्रकारका उपदंश(आतशक)होता है॥१॥

वातोपदंशके लक्षण।

सतोदभेदस्फुरणैः सकृष्णैः स्फोटैर्व्यवस्येत्पवनोपदंशम्।

लिंगमें काले रंगके फोडे हों, उनमें तोडने, फोडनेकीसी पीडा हो और लिंग फडके उसको वातज उपदंश कहते हैं।

पित्तोपदंश वा रक्तोपदंशके लक्षण।

पित्तैर्बहुक्लेदयुतैः सदाहैः पित्तेन रक्तातिपिशितावभासैः॥ २॥

पित्तज उपदंशमें पीले रंगके फोडे होते हैं उनमें अधिक स्राव तथा दाह होती है और रक्तजउपदंशमें फोडे मांसके समान लाल होते हैं॥ २॥

कफोपदंशके लक्षण।

सकंडरैः शोथयुतैर्महद्भिर्युक्तैर्घनैः स्रावयुतैः कफेन।

कफज उपदंशमें सफेद बडे फोडे होते हैं उनमें खुजली सूजन और गाढा स्राव होता है।

त्रिदोषज उपदंशके लक्षण।

नानाविधस्रावरुजोपपन्नमसाध्यमाहुस्त्रिमलोपदंशम्॥ ३॥

सन्निपातज उपदंशमें नानाप्रकारका स्राव और अनेकप्रकारकी पीडा होती है, यह उपदंश असाध्य है॥ ३॥

असाध्य लक्षण।

प्रशीर्णमांसं कृमिभिः प्रजग्धं मुष्कावशेषं परिवर्जयेच्च॥ ४॥

जिस उपदंशमें लिंगका मांस गलजाय और लिंगको कीडे खाजायँ, केवल अण्डकोष बाकी रहजायँ उसकी वैद्य चिकित्सा न करे॥ ४॥

उपदंशकी उपेक्षाका फल।

संजातमात्रेण करोति मूढः क्रियां नरो यो विषये प्रसक्तः। कालेन शोथः कृमिदाहपाकैः प्रशीर्णशिश्नो म्रियते स तेन॥ ५॥

जो मूढ मनुष्य विषयमें आसक्त होकर उपदंशके उत्पन्न होतेही उसका यत्न नहीं करता उसके कालान्तरमें सूजन होकर लिंगमें कृमि पडजाते हैं तथा

उसमें दाह पाक और अन्तमें इन्द्रिय गलकर रोगी मृत्युको प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

लिङ्गार्शके लक्षण।

अंकुरैरिव सञ्जातैरुपर्युपरिसंस्थितैः। क्रमेण जायते वर्त्तिस्तांम्रचूडशिखोपमा ॥ ६ ॥ कोषस्याभ्यन्तरे सन्धौ पर्वसन्धिगताऽपि वा। लिङ्गवर्त्तिरिति ख्याता लिङ्गार्श इति चापरे। सवेदना पिच्छला च दुश्चिकित्स्या त्रिदोषजा ॥ ७ ॥

धान्यके अंकुरके समान ऊपर ऊपरको क्रमसे बढती हुई लिंगमें, संधियोंमें अथवा लिंगकी सुपारीके नीचे मुरगेकी कलगीके समान जो बत्तीसी उत्पन्न होती है, उसको लिंगवर्ती कहते हैं। कितने ही वैद्य इसको लिंगार्श भी कहते हैं। यह लिंगार्श पीडासहित पिच्छिल सन्निपातसे उत्पन्न होकर अत्यन्त दुर्निवार्य्य होजाती है ॥ ६ ॥ ७ ॥

उपदंशरोगोंकी चिकित्सा।

उपदंशेषु साध्येषु स्निग्धस्विन्नस्य देहिनः। मेढ्रमध्ये शिरां विध्येत्पातयेद्वा जलौकसः ॥ ८ ॥

साध्य उपदंशमें रोगीको स्नेहन तथा स्वेदन करके उसके लिंगकी बीचकी शिराको वेधे अथवा जौंक लगावे ॥ ८ ॥

हरेदुभयतश्चापि दोषानत्यर्थमूर्च्छितान्। सद्यो निर्हृतदोषस्य रुक्शोथावुपशाम्यतः ॥ ९ ॥

वमन तथा विरेचन देकर उपदंशरोगीके अत्यन्त बढे हुए दोषोंको शमन करे। इस प्रकार करनेसे दोषोंकी लघुता होकर सूजन और पीड़ा तत्काल शांत होजाती है ॥ ९ ॥

यदि वा दुर्बलो जन्तुर्न च प्राप्तविरेचनः। निरूहेण हरेत्तस्य दोषानत्यर्थमूर्च्छितान्। पाको रक्ष्यः प्रयत्नेन शिश्नक्षयकरो हि सः ॥ १० ॥

जो उपदंशरोगी अत्यन्त दुर्बलताके कारण विरेचनके योग्य नहीं हो तो उसके अत्यन्त बढेहुए दोषोंको निरूहबस्तिके द्वारा दूर करे। उपदंशरोगमें जिसप्रकार हो सके पकने नहीं देवे, क्योंकि पकजानेसे लिंगका क्षय होजाता है ॥ १० ॥

प्रपौण्डरीकयष्ट्याह्वसरलागुरुदारुभिः। सरास्नाकुष्ठपृथ्वीकैर्वातिके लेपसेचने ॥ ११ ॥

वातजउपदंशमें पुंडेरिया, मुलैठी, धूपसरल, अगर, देवदारु, रायसन, कूठ और इलायची इन औषधियोंका कल्क बनाकर लेप करे और इन्हीं औषधियोंके रससे सेचन करे ॥ ११ ॥

निचुलैरण्डबीजानि यवगोधूमसक्तवः। एतैश्च वातजं स्निग्धैः सुखोष्णं संप्रलेपयेत् ॥ १२ ॥

जलवेंत, अण्डके बीज, जौ और गेंहूके सक्तु इन सबको पीसकर घीमें मिलाकर कुछ गरम करके लेप करे तो वातज उपदंश नष्ट होता है ॥ १२ ॥

पद्मोत्पलमृणालैश्च ससर्जार्जुनवेतसैः। सर्पिः स्निग्धैः समधुकैः पैत्तिकं संप्रलेपयेत् ॥ १३ ॥

सफेद कमल, लालकमल, कमलकी नाल, राल, अर्जुनकी छाल, वेंत और मुलैठी इनको एकत्र पीस कर घृतमें मिलाकर लेप करे तो पित्तज उपदंश शमन होता है ॥ १३ ॥

सेचयेच्च घृतक्षीरशर्करेक्षुमधूदकैः। अथवाऽपि सुशीतेन कषायेण वटादिना ॥ १४ ॥

घी, दूध, मिश्री, ईख, शहद और जल इनसे सेचन करनेसे अथवा न्यग्रोधादिगणका काथ बनाकर अच्छेप्रकारसे शीतल करके सेवन करनेसे पित्तज उपदंश शांत होता है ॥ १४ ॥

शालाजकर्णाश्वकर्णधवत्वग्भिः कफोत्थितम्। सुरापिष्टाभिरुष्णाभिस्सतैलाभिः प्रलेपयेत् ॥ १५ ॥

१ गजकर्ण=शालिभेद। २ अश्वकर्ण=गजहड।

सालकी छाल, अजकर्णनामक शालकी छाल, अश्वकर्ण (गजहंदू) की छाल और धवकी छाल इन सबको मदिरामें पीसकर गरम करके तेलमें मिलाकर लेप करनेसे कफजनित उपदंशरोग नष्ट होता है १५

आरग्वधादिक्काथेन परिषेकश्च दापयेत् ॥ १६ ॥

आरग्वधादिगणकी औषधियोंके काथके द्वारा सेचन करनेसे कफजनित उपदंश नष्ट होता है ॥१६॥

निम्बार्जुनाश्वत्थकदम्बशालाजम्बूवटोदुम्बरवेतसैश्च । प्रक्षालनालेपघृतानि कुर्य्याच्चूर्णश्च पित्तास्रभवोपदंशे ॥ १७ ॥

नीमकी छाल, अर्जुनकी छाल, पीपलकी छाल, कदमकी छाल, सालकी छाल, जामुनकी छाल, वडकी छाल, गूलरकी छाल और वेतकी छाल इनका काथ बनाकर धोनेसे अथवा उपर्युक्त और औषधियोंका चूर्ण बनाकर घृत मिलाकर लेप करनेसे पित्तजनित और रुधिरजनित उपदंशरोग नष्ट होता है ॥ १७ ॥

त्वचो दारुहरिद्रायाः शङ्खनाभिरसाञ्जनम् । लाक्षागोमयनिर्य्यासं तैलं क्षौद्रं घृतं पयः ॥ १८ ॥ एभिस्तु पिष्टैस्तुल्यांशैरुपदंशं प्रलेपयेत् । व्रणाश्च तेन शाम्यन्ति श्वयथुर्दाह एव च ॥ १९ ॥

दारुहलदीकी छाल, शंखनाभि, रसौत, लाख, गोबरका रस, तेल, शहद, घी और दूध इन सबको समान भाग लेकर एकत्र पीसकर उपदंशके ऊपर लेप करनेसे व्रण, सूजन और दाह दूर होती है ॥ १८ ॥ १९ ॥

उपदंशद्वयेऽप्येतां प्रत्याख्यायाचरेत् क्रियाम् । तयोरेव च या योग्या वीक्ष्य दोषबलाबलम् ॥ २० ॥

त्रिदोषजन्य और रुधिरजन्य दोनों प्रकारके उपदंशमें असाध्य होनेके कारण विना विचारे प्रथमसे ही उसकी चिकित्सा न करने लगे, यदि रोगीका विशेष आग्रह हो तो दोषोंका बलाबल विचार कर जो उनमें ठीक हो ऐसी चिकित्सा करे ॥ २० ॥

शस्त्रेणोपचरेच्चापि पाकमागतमाशु च । तमपोह्यमथो सर्पिः क्षौद्रयुक्तैः प्रलेपयेत् ॥ २१ ॥

जो उपदंश पकगया हो तो समयपर तत्काल शस्त्रसे उसका उल्लेखन(भेदन) करे। इस प्रकार उसको चीरकर घी और शहद मिलाकर लेप करदेवे ॥२१॥

वटप्ररोहार्जुनजंबुपथ्या लोध्रं हरिद्रा च हितः प्रलेपः । सर्वोपदंशेष्ववरोहणार्थं चूर्णश्च कार्य्यं विमलाञ्जनेन२२॥

वडके अँकुर, अर्जुनकी छाल, जामुनकी छाल, हरड़, लोध और हलदी इन सबको एकत्र पीसकर प्रलेप करनेसे और विमलामाखी (रूपामाखी विशेष) तथा रसौतके चूर्णको उपदंशके व्रणमें भरनेसे सर्व प्रकारका उपदंश नष्ट होजाता है ॥ २२ ॥

त्रिफलायाः कषायेण भृङ्गराजरसेन च । व्रणप्रक्षालनं कुर्य्यादुपदंशप्रशान्तये ॥ २३ ॥

त्रिफलेके काथके द्वारा अथवा भाँगरेके रसके द्वारा इससे उपदंशरोगको नष्ट करनेके लिए उपदंशके व्रणोंको धोना चाहिए ॥ २३ ॥

पटोलनिम्बत्रिफलाकिरातक्काथं पिबेद्वा खदिरासनाभ्याम् । सगुग्गुलं वा त्रिफलायुतं वा सर्वोपदंशापहरः प्रयोगः ॥ २४ ॥

पटोलपत्र, नीम, त्रिफला और चिरायता इनका काथ बनाकर उसमें खैरसार, विजयसार, गूगल इनका काथ पीनेसे अथवा त्रिफलेके काथमें गुग्गुल डालकर पान करनेसे सर्वप्रकारका उपदंश रोग नष्ट होता है ॥२४॥

नीलोत्पलानि कुमुदं पद्मसौगन्धिकानि च । उपदंशेषु चूर्णानि प्रदेहोयं प्रशस्यते ॥ २५ ॥

नीलकमल, कुमुद, लालकमल और सफेदकमल इन सबका एकत्र चूर्ण करके गाढा प्रलेप करनेसे उपदंशरोग नष्ट होता है ॥ २५ ॥

बंधूकदलचूर्णेन दाडिमत्वग्रजोऽथवा। गुण्डनं तद्गते शस्तं लेपः पूगफलेन वा॥ २६॥

दुपहरियाके पत्तोंका चूर्ण अथवा अनारकी छाल या सुपारीको पीसकर व्रणके ऊपर लगानेसे उपदंश रोग नष्ट होता है ॥ २६ ॥

सौराष्ट्रीगैरिकं तुत्थं पुष्पं काशीशसैन्धवम् । लोध्रं रसाञ्जनं वापि हरितालं मनःशिलाम् ॥ २७ ॥ हरेणुकैले च तथा समांशान्यपि चूर्णयेत् । तच्चूर्णं क्षौद्रसंयुक्तमुपदंशेषु योजितम् ॥ २८ ॥

फिटकरी, गेरु, नीलाथोथा, हीराकासीस, सैंधा नमक, लोध, रसौत, हरताल, मैनशिल, रेणुका और इलायची इन सबको समान भाग लेकर एकत्र पीस कर शहदमें मिलाकर लेप करनेसे उपदंशरोग नष्ट होता है ॥ २७ ॥ २८ ॥

पुटदग्धं कृतं भस्म हरितालं मनःशिला । उपदंशविसर्पाणामेतद्धानिकरं परम् ॥ २९ ॥

पुटपाककी विधिसे गुन्द्राको जलाकर उसकी भस्म हरताल और मैनशिल इनको पीसकर शहद या घृतमें मिलाकर या जलमें पीसकर लेप करनेसे उपदंश और विसर्पादिरोग नष्ट होते हैं ॥ २९ ॥

दहेत्कटाहे त्रिफलां तां मषीं मधुसैन्धवम् । उपदंशे प्रलेपोऽयं सद्यो रोपयति व्रणम् ॥ ३० ॥

कढाईमें त्रिफलेकी भस्म करके उसमें शहद और सैंधानमक मिलाकर प्रलेप करनेसे उपदंशका व्रण तत्काल भरजाता है ॥ ३० ॥

तिरीटाञ्जनवञ्जाह्वकोविदारेभकेशरैः। लेपनं पुरुषव्याधौ जलपिष्टैः प्रशस्यते ॥ ३१ ॥

लोध, रसौत, तगर, कचनार और नागकेशर इनको जलमें पीसकर लेप करनेसे उपदंश रोग नष्ट होता है ॥ ३१ ॥

रसाञ्जनं शिरीषेण पथ्यया वा समन्वितम् । सक्षौद्रं लेपनं योज्यं सर्वाङ्गगदमोचनम् ॥ ३२ ॥

रसौत और सिरसकी छाल अथवा रसौत और हरड इनका चूर्ण करके शहदमें मिलाकर लेप करनेसे सम्पूर्ण अंगोंमें प्राप्त हुआ उपदंश नष्ट होता है॥३२॥

भार्ङ्गीसम्भवशिखरिजमूलं भद्रश्रियं च संपिष्टम् । मनःशिलाश्च मधुना शमयत्युपदंशमचिरेण ॥ ३३ ॥

भारंगीकी जड, चिराचिटेकी जड और चन्दन इनको एकत्र पीसकर लेप करनेसे अथवा मैनशिलको शहदमें पीसकर लेप करनेसे शीघ्र ही उपदंश रोग नष्ट होता है ॥ ३३ ॥

जलधौतं प्रयत्नेन लिङ्गोत्थमवचूर्णयेत् । रोगं कासीसचूर्णेन पुरुषः सुखवाञ्छया ॥ ३४ ॥

हीराकसीसको पीसकर जलमें मिलाकर उस जलसे उपदंशके व्रणोंको वारंवार धोना चाहिये और हीराकसीसके चूर्णको उपदंशके व्रणोंपर छिडकना चाहिये ॥ ३४ ॥

करवीरस्य मूलेन परिपिष्टेन वारिणा । असाध्योऽपि व्रजत्यन्तं लिङ्गोत्था रुक् प्रलेपनात् ॥ ३५ ॥

कनेरकी जडको जलमें पीसकर लेप करनेसे असाध्य भी उपदंशरोग और उसकी घोर पीडा तत्काल शमन होजाती है ॥ ३५ ॥

करञ्जाद्यघृत ।

करञ्जनिम्बासनशालजम्बूवटादिभिः कल्ककषायसिद्धम् । सर्पिर्निहन्यादुपदंशदोषं सदाहपाकश्रुतिपाकयुक्तम् ॥ ३६ ॥

करंज, नीम, विजयसार, साल, जामुन और न्यग्रोधादिगणकी समस्त औषधियाँ इनके क्वाथ और कल्कके द्वारा घृतको सिद्ध करे । यह घृत—तत्काल

सर्व प्रकारके उपदंशोंके नष्ट करता है तथा दाह पाक और स्रावको भी दूर करता है ॥ ३६ ॥

भूनिम्बाद्यघृत।

भूनिम्बनिम्बत्रिफलापटोलकरञ्जधात्रीखदिरासनानाम्। सतोयकल्कैर्घृतमाशु पक्वं सर्वोपदंशापहरं प्रदिष्टम् ॥ ३७ ॥

चिरायता, नीम, त्रिफला, पटोलपत्र, करंज, आमले, खैरसार और विजयसार इनके क्वाथ और कल्कसे घृतको पकावे। यह घृत-सर्वप्रकारके उपदंशोंको शीघ्र नष्ट करता है ॥ ३७ ॥

घृतानि यानि चोक्तानि कुष्ठे नाडीव्रणे व्रणे। उपदंशे प्रयोज्यानि सेकाभ्यञ्जनभोजनैः ॥ ३८ ॥

कुष्ठरोगपर, नाडीव्रणपर और व्रणरोगपर जो जो घृत कहे हैं वे सब इस उपदंशरोगमें भी सेचन, अभ्यंजन और भोजनके द्वारा प्रयोग करने चाहिएँ॥३८॥

आगारधूमाद्यतैल।

आगारधूमो रजनी सुराकिट्टश्च तैस्त्रिभिः। यथोत्तरैः पचेत्तैलं कण्डूशोथरुजापहम् ॥ ३९ ॥ शोधनं रोपणश्चैव उपदंशहरं परम् ॥ ४० ॥

घरका धुँआसा १भाग, हलदी २ भाग और सुराकिट्ट ३ भाग लेकर इनके द्वारा तैलको पकावे। यह तेल-खुजली, सूजन और पीडाको शमन करता है। तथा शोधन और रोपण है, एवं उपदंशको नष्ट करनेवाला है॥३९॥ ४० ॥

गोजीतैल।

गोजीविडङ्गयष्टीभिः सर्वगन्धैश्च संयुतम्। एतत्सर्वोपदंशेषु श्रेष्ठं रोपणमिष्यते ॥ ४१ ॥

गोजिया, वायविडंग, मुलैठी और समस्त सुगंधित पदार्थ इनके कल्कके द्वारा तैलको पकावे। यह तेल सर्व प्रकारके उपदंशके व्रणोंको भरनेके लिए उत्तम है ॥ ४१ ॥

जम्ब्वाद्यतैल।

जंबूवेतसपत्राणि धात्रीपत्रं तथैव च। नक्तमालस्य पत्राणि तद्वत्पद्मोत्पलानि च ॥ ४२ ॥ बला चातिबलाम्रास्थिमधुकञ्च प्रियङ्गवः। लाक्षा कालीयकं लोध्रं चन्दनं त्रिवृताह्वया ॥४३॥ एतान्येकीकृतान्येव बस्तमूत्रेण पेषयेत। अक्षमात्रयुतैर्द्रव्यैस्तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ४४ ॥ सर्वव्रणहरं तैलमेतत्सिद्धं प्रयोजितम्। उपदंशहरं श्रेष्ठं मुनिभिः परिकीर्त्तितम् ॥ ४५ ॥

जामुनके पत्ते, बेंतके पत्ते, आमलेके पत्ते, करंजके पत्ते, कमल, कमोदिनी, खिरैंटी, कंघी, आमकी गुठली, मुलैठी, फूलप्रियंगू, लाख, कलम्बक, लोध, चन्दन और निसोत यह प्रत्येक औषधि एक एक तोला लेकर बकरेके मूत्रमें पीसे। फिर इस कल्कके द्वारा एक प्रस्थ तेलको पकावे यह तेल सर्व प्रकारके व्रणोंको हरनेवाला और सर्व प्रकारके उपदंशके व्रणोंको भरनेवाला है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

कोशातकी तैल।

यस्य लिङ्गस्य मांसन्तु शीर्य्यते मुष्कशेषतः। तिक्तकोशातकीलम्बाबीजनागरसाधितम् ॥ ४६ ॥ तैलं हन्त्यचिराद् घोरं व्रणं दुष्टमनेकधा ४७

कडवी तोरईके बीज, कडवी तोम्बीके बीज और सोंठ इनके कल्कसे पकाया हुआ तेल अनेक प्रकारके दुष्टव्रणोंको शमन करता है। जिसके लिंगका मांस गलगया हो, केवल अण्डकोश ही बाकी रह गये हों ऐसा उपदंश भी इस तेलसे आरोग्य हो जाता है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

पथ्य।

सेवेन्नित्यं यवान्नञ्च पानीयं कौपमेव च। अर्शसां छिन्नदग्धानां क्रिया चात्र प्रयोजयेत् ॥ ४८ ॥

उपदंशरोगी नित्य जौका भोजन और कुएके जलको ही सेवन करे। बवासीर, छिन्न और दग्धव्रणमें जो चिकित्सा कही है वह सब इसमें भी प्रयोग करनी चाहिएँ॥ ४८॥

लिङ्गार्शकी चिकित्सा ।

स्वर्जिकातुत्थशैलेयं सरलं सरसाञ्जनम् । मनःशिलाले च समे चूर्णो मांसांकुरापहः ॥ ४९ ॥

सज्जी, तूतिया, भूरिछरीला, धूपसरल, रसौत, मैनशिल और हरिताल इन सबको एकत्र पीसकर चूर्ण बनाकर प्रयोग करनेसे लिंगार्श नष्ट होजाता है॥४९॥

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायां उपदंशनिदान-चिकित्साधिकार समाप्त ॥ ५५ ॥

अथ शूकदोषरोगाधिकार ।

अक्रमाच्छेफसो वृद्धिं योऽभिवाञ्छति मूढधीः । व्याधयस्तस्य जायन्ते दश चाष्टौ च शूकजाः ॥ १ ॥

जो मूर्ख मनुष्य शास्त्रक्रमको त्याग कर लिंगको स्थूल करनेकी इच्छा करता है अर्थात् अनेक प्रकारकी विषैली औषधियोंका लेप करता है और सड़े हुए जलमें होनेवाले शूक नामके छोटे २ कीट होते हैं उनका लेप करता है उसके अठारह प्रकारके शूकदोष उत्पन्न होते हैं ॥ १ ॥

सर्षपिकाके लक्षण ।

गौरसर्षपसंस्थाना शूकदुर्भुग्नहेतुका । पिटिकाश्लेष्मवाताभ्यां ज्ञेया सर्षपिका बुधैः ॥ २ ॥

दुष्ट जलजीवोंका लिंगपर लेप करनेसे कफ वात कुपित होकर सफेद सरसोंकी समान जो लिंगपर पिड़िका उत्पन्न हो उसको सर्षपिका कहते हैं ॥२ ॥

अष्ठीलाके लक्षण।

कठिनाविषमैर्भुग्नैर्वायुनाष्ठीलिका भवेत् ॥ ३ ॥

छोटे, बडे और विषम शूकोंका प्रलेप करनेसे वायु कुपित होकर करडी निहाईके समान फुन्सी उत्पन्न होती है उसको अष्ठीला कहते हैं ॥ ३ ॥

ग्रंथितके लक्षण ।

शूकैर्यत्पूरितं शश्वद्ग्रन्थितं नाम तत्कफात् ॥ ४ ॥

निरन्तर लिंगपर लिंगवर्द्धक प्रलेप करनेसे इंद्रियके ऊपर गाँठसी होजाती है उसको ग्रंथित कहते हैं इसका मुख्य निदान कफ है ॥ ४ ॥

कुम्भिकाके लक्षण ।

कुम्भिका रक्तपित्तोत्था जाम्बवास्थिनिभा शुभा ।

जामुनकी गुठलीके समान जो सफेद फुन्सी उत्पन्न हो उसको कुम्भिका कहते हैं इसका मुख्य निदान रुधिर तथा पित्त है। यह फुन्सी कुम्भीकाफल (कायफल) के समान होती है इस कारण इसको कुम्भिका कहते हैं ।

अलजीके लक्षण ।

अलजीलक्षणैर्युक्तामलजीं प्रवितर्कयेत ॥ ५ ॥

प्रमेहपिडिकामें जो अलजी पिड़िकाके लक्षण कहे हैं उसीप्रकार प्रमेहरहित यह अलजीभी जाननी अर्थात् उसीके लक्षणोंके समान इसके लक्षण जानने । इस पिडिकाका मुख्य निदान रुधिर तथा पित्त है ॥ ५ ॥

मृदितके लक्षण ।

मृदितं पीडितं यत्तु संरब्धं वायुकोपतः ।

शूकदोष होनेपर लिंगको हाथोंसे पीडित अर्थात् दबानेसे जो सूजन होती है उसको मृदित कहते हैं । इसका मुख्य निदान वात है ।

संमूढपिडिकाके लक्षण ।

पाणिभ्यां भृशसंमूढे संमूढपिटिका भवेत् ॥ ६ ॥

लेप करनेके पश्चात् जब लिंगमें खुजली उठे तब उसको दोनों हाथोंसे खूब रगडनेपर उसमें जो फुंसी उत्पन्न होती है उसको संमूढ कहते हैं ॥ ६ ॥

अवमन्थापीडिकाके लक्षण।

दीर्घा बह्वयश्च पिटिका दीर्य्यन्ते मध्यतस्तु याः। सोऽवमन्थः कफासृग्भ्यां वेदनारोमहर्षकृत ॥ ७ ॥

शूकदोषसे कुपित हुए कफ और रक्तसे लम्बी लम्बी बहुतसी और बीचमें फूटी हुई फुँसी लिंगमें उत्पन्न हों, उनमें रोमांच और पीडा हो उसको अवमन्थ कहते हैं ॥ ७ ॥

पुष्करिकाके लक्षण।

पिटिकाभिश्चिता या तु पित्तशोणितसम्भवा। पद्मकर्णिकसंस्थाना ज्ञेया पुष्करिका तु सा ॥ ८ ॥

जो फुन्सी अन्य फुन्सियोंसे व्याप्त और कमलकर्णिकाके समान आकारवाली उत्पन्न हो उसको पुष्करिका कहते हैं। यह फुन्सी पित्तके तथा रुधिरके कोपसे होती है ॥ ८ ॥

स्पर्शहानिके लक्षण।

स्पर्शहानिं तु जनयेच्छोणितं शूकदूषितम् ॥ ९ ॥

जो फुन्सी स्पर्शको न सह सके उसको स्पर्शहानि कहते हैं यह फुन्सी शूकदोषसे कुपित हुए रुधिरसे उत्पन्न होती है ॥ ९ ॥

उत्तमाके लक्षण।

मुद्गमाषोपमारक्ता रक्तपित्तोद्भवा तु या। व्याधिरेषोत्तमा नाम शूकाजीर्णनिमित्तजा ॥ १० ॥

शूकको अत्यन्त सेवन करनेसे शूकज अजीर्ण होता है उससे रक्त और पित्त कुपित होकर मूँग या उडदके समान तथा लालरंगकी फुन्सी उत्पन्न होती है उसको उत्तमा कहते हैं ॥ १० ॥

शतपोनकके लक्षण।

छिद्रैरणुमुखैर्लिङ्गं चित्तं यस्य समंततः। वातशोणितजो व्याधिः स ज्ञेयः शतपोनकः ॥ ११ ॥

शूकदोषसे वात और रुधिर कुपित होकर लिंगमें जो बारीक बारीक छिद्र होजायँ उसको शतपोनक कहते हैं ॥ ११ ॥

त्वक्पाकके लक्षण।

वातपित्तकृतो ज्ञेयस्त्वक्पाको ज्वरदाहकृत ॥ १२ ॥

शूकदोषसे वात पित्त कुपित होकर लिंगकी त्वचाको पकाते हैं उसमें ज्वर और दाह उत्पन्न होते हैं उसको त्वक्पाक कहते हैं ॥ १२ ॥

शोणितार्बुदके लक्षण।

कृष्णैः स्फोटैः सरक्ताभिः पिटिकाभिर्निपीडितम्। यस्य बस्तिरुजश्चोग्रा ज्ञेयं तच्छोणितार्बुदम् ॥ १३ ॥

काले फोडे और लाल फुन्सियोंसे लिंग व्याप्त हो उन फुन्सियोंमें तथा फुन्सियोंके स्थानमें घोर पीडा हो और बस्ति स्थानमें उग्र पीडा हो उसको शोणितार्बुद कहते हैं ॥ १३ ॥

मांसार्बुदके लक्षण।

मांसदोषेण जानीयादर्बुदं मांससम्भवम्।

मांसकी दुष्टतासे लिंगपर मांसका अर्बुद उत्पन्न हो उसको मांसार्बुद कहते हैं।

मांसपाकके लक्षण।

शीर्य्यन्ते यस्य मांसानि यस्य सर्वाश्च वेदनाः। विद्यात्तं मांसपाकन्तु स र्वदोषकृतं भिषक् ॥ १४ ॥

शूकदोषसे त्रिदोष कुपित होकर मांस पाकको करते हैं उसमें लिंगका मांस गल जाता है और अनेक प्रकारकी पीडा होती है ॥ १४ ॥

विद्रधिके लक्षण।

विद्रधिं सन्निपातेन यथोक्तमभिनिर्दिशेत् ॥ १५ ॥

तीनों दोषोंके कुपित होनेसे लिंगमें विद्रधि उत्पन्न होती है उसके लक्षण विद्रधिमें कहे हुए सन्निपातकी विद्रधिके लक्षणोंके समान जानने ॥ १५ ॥

तिलकालकके लक्षण।

कृष्णानि चित्राण्यथवा शूकानि सविषाणि वा। पाचितानि पचन्त्याशु मेढ्रं निरवशेषतः ॥ १६ ॥ कालानि भूत्वा मांसानि शीर्य्यन्ते यस्य देहिनः। सन्निपातसमुत्थांस्तु तान्विद्यात्तिलकालकान् ॥ १७ ॥

काले अथवा चित्र विचित्र अनेक रंगके विषशूकोंके लेप करनेसे शीघ्र ही सम्पूर्ण लिंग पक जाता है। तब उसका सब मांस तिलके समान काला हो कर गल जाता है, उसको तिलकालक कहते हैं। यह रोग त्रिदोषके प्रकोपसे होता है॥ १६ ॥ १७ ॥

असाध्यलक्षण।

तत्र मांसार्बुदं यच्च मांसपाकश्च यः स्मृतः। विद्रधिश्च न सिध्यन्ति ये च स्युस्तिलकालकाः॥ १८ ॥

उपरोक्त अठारह प्रकारके शूकदोषोंमें मांसार्बुद, मांसपाक, विद्रधि और तिलकालक ये चारों असाध्य हैं॥ १८ ॥

शूकदोषकी चिकित्सा।

शूकदोषेषु सर्वेषु विषघ्नीं कारयेत्क्रियाम्। विरेचनं प्रयुञ्जीत शोणितस्य च मोक्षणम् ॥ १९ ॥ जलौकाभिर्हरेद्रक्तं मेढ्रे वा व्यधयेच्छिराम्। गुग्गुलं पाययेच्चापि त्रिफलाक्वाथसंयुतम्। क्षीरेण लेपसेकांश्च शीतेनैव च कारयेत् ॥ २० ॥

सर्व प्रकारके शूकदोषोंमें वैद्य विषनाशक चिकित्सा करे। तथा विरेचन देवे और रक्तमोक्षण करावे। जौंक लगवाकर रुधिर निकलवावे। लिंगके बीचमेंकी शिराको वेधे। त्रिफलेके क्वाथमें गूगल डालकर पान करावे, शीतल दूधके द्वारा प्रलेप और सेचन आदि कर्म्म करे॥ १९ ॥ २० ॥

सर्षपीं लिखितां सूक्ष्मैः कषायैरवचूर्णयेत्। तैरेवाभ्यञ्जनं तैलं साधयेद्व्रणरोपणम् ॥ २१ ॥ क्रियेयमवमन्थेऽपि रक्तं स्राव्यं तथोभयोः। अष्ठीलायां सृते रक्ते श्लेष्मग्रन्थिवदाचरेत् ॥ २२ ॥

सर्षपिका नामक शूकदोषको सिहोंडे आदिके पत्तोंसे खुरच कर ढाक, मजीठ, पीपल या न्यग्रोधादि कषाय द्रव्योंका चूर्ण भर देवे तथा उपर्य्युक्त वृक्षोंकी छालके क्वाथ और कल्कके द्वारा तेलको पकाकर मर्दन करे, इस प्रकार करनेसे व्रण भर जाता है। यही क्रिया अवमंथमें भी करनी चाहिए और इन दोनों पिडिकाओंमें रक्तमोक्षण करावे। अष्ठीलारोगमें रुधिर निकलवा कर कफजग्रंथिके समान चिकित्सा करे॥ २१ ॥ २२ ॥

कुम्भिकायां हरेद्रक्तं पक्वायां शोधिते व्रणे। तिन्दुकत्रिफलालोध्रलेपस्तैलञ्च रोपणम् ॥ २३ ॥

कुम्भिकापिडिकामें रक्तमोक्षण करावे और जो वह पक जाय तो शोधन औषधियोंके द्वारा राध आदिको साफ करके तेंदू, त्रिफला और लोध इनको पीस कर लेप करदेवे तथा इनहीं औषधियोंके कल्कके द्वारा तेलको पका कर अथवा व्रणरोपक तेलको लगावे॥ २३ ॥

अलज्यां हृतरक्तायामयमेव क्रियाक्रमः ॥ २४ ॥

अलजीनामक पिडिकामें प्रथम रुधिर निकलवाकर पश्चात् यही उपर्य्युक्त क्रिया करनी चाहिए॥ २४॥

स्वेदयेद्ग्रन्थितं शश्वन्नाडीस्वेदेन बुद्धिमान्। सुखोष्णैरुपनाहैश्च सुस्निग्धैरुपनाहयेत् ॥ २५ ॥

ग्रथित नामक पिडिकाको प्रथम स्निग्ध कर पश्चात् नाडीस्वेदसे स्वेदित करे। सुखोष्ण और स्निग्ध ऐसे उपनाहका प्रयोग करे॥ २५ ॥

उत्तमाख्यां तु पिटिकां संछिद्य बडिशोद्धृताम्। कल्कैश्चूर्णं कषायाणां क्षौद्रयुक्तैरुपाचरेत् ॥ २६ ॥

उत्तमापिडिकाको बडिश नामवाले शस्त्रसे उखाड कर छेदन करे तथा मधुसंयुक्त क्वाथ, कल्क और चूर्णद्वारा विधिपूर्वक चिकित्सा करे॥ २६ ॥

क्रमः पित्तविसर्पोक्तः पुष्करीमूढयोर्हितः ॥ २७ ॥

पुष्करी और संमूढनामक शूकदोषोंमें पित्तविसर्पके समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २७ ॥

त्वक्पाके स्पर्शहान्याश्च सेचयेन्मृदितं पुनः । बलातैलेन कोष्णेन मधुरैश्चोपनाहयेत् ॥ २८ ॥

त्वक्पाक, स्पर्शहानि और मृदित इनमें सेचन कर्म्म करे। तथा खिरैंटीके क्काथ और कल्कके द्वारा तेलको पकाकर मर्दन करे एवं मधुर औषधियोंके द्वारा उपनाह कर्म्म करे॥ २८ ॥

रसक्रिया विधातव्या लिखिता शतपोनके । पृथक्पर्ण्यादिसिद्धश्च तैलं देयमनन्तरम् ॥ २९ ॥

शतपोनकमें प्रथम शस्त्रसे लिखित करके रसक्रिया प्रयोग करनी चाहिये और इसके पश्चात् पृश्निपर्ण्यादि औषधियोंके द्वारा तेलको पकाकर लगाना चाहिये ॥ २९ ॥

रक्तविद्रधिवच्चापि क्रियाशोणितजेऽर्बुदे । कषायकल्कसर्पींषि तैलं चूर्णं रसक्रियाम् । शोधने रोपणे चैव वीक्ष्य वीक्ष्य विचारयेत् ॥ ३० ॥

रक्तज अर्बुदमें रक्तविद्रधिके समान चिकित्सा करनी चाहिये । कषाय, कल्क,घृत, तेल, चूर्ण और रसक्रिया, इनको शोधन और रोपणमें अच्छे प्रकारसे देख भालकर प्रयोग करे॥ ३० ॥

क्षीरेण लेपसेकांश्च शीतेनैव च कारयेत् । पूयते च यथा चाशु नैति पाकं यथा ध्वजम् ॥ ३१ ॥

शीतल दूधके द्वारा लेप और सेचन इत्यादि उपचार करे, इसप्रकार करनेसे लिंग शीघ्र नहीं पकता है ॥ ३१ ॥

अर्बुदे मांसपाके च विद्रधौ तिलकालके । प्रत्याख्यायं प्रकुर्वीत भिषक्तेषां प्रतिक्रियाम् ॥ ३२ ॥

अर्बुद, मांसपाक, विद्रधि और तिलकालक ये चार पिडिका असाध्य हैं अतएव इनको छोडकर शेष शूकदोषोंकी चिकित्सा करे अथवा उक्त असाध्य शूक दोषोंकी नवीन अवस्थामें चिकित्सा नहीं करे प्राचीन होनेपर चिकित्सा करे ॥ ३२ ॥

दार्वीतैल ।

दार्वीसुरसयष्ट्याह्वैर्गृहधूमनिशायुतैः । तैलमभ्यञ्जने पाने मेढ्ररोगं विनाशयेत् ॥ ३३ ॥

दारुहलदी, तुलसी, मुलैठी, घरका धुँआसा और हलदी इनके द्वारा तेलको पकाकर अभ्यंग और पान कर्ममें प्रयोग करनेसे सर्वप्रकारके लिंगरोग दूर होते हैं ॥ ३३ ॥

गुञ्जाभस्म मषी वाथ हरितालं मनःशिला । दार्वीहरिद्रामधुकं घृतक्षौद्रसमायुतम् । प्रलेपार्थं प्रयुञ्जीत विशुद्धव्रणरोपणम् ॥ ३४ ॥

गुंजाकी भस्म अथवा हरिताल और मैनशिल, दारुहलदी, मुलैठी, घी और शहद इन सबको एकत्र मिलाकर प्रलेप करनेसे व्रण शुद्ध होता है और भरजाता है ॥ ३४ ॥

रसाञ्जनमाह्वयमेतदेव प्रलेपमात्रेण नयेत्प्रशान्तिम् । सपूतिपूयव्रणशोथकण्डूशूलान्वितं सर्वमनङ्गरोगम्॥३५॥

केवल एक रसौतका ही लेप करनेसे दुर्गंध, राध, व्रण,सूजन, खुजली और शूलयुक्त सर्वप्रकारके लिंगरोग नष्ट होते हैं ॥ ३५ ॥

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायां शूकदोषाधिकारः समाप्तः ॥ ५६ ॥

अथ कुष्ठरोगाधिकार ।



कुष्ठरोगका निदान ।

विरोधीन्यन्नपानानि द्रवस्निग्धगुरूणि च । भजतामागतां छर्दिं वेगांश्चान्यान् प्रतिघ्नताम् ॥ १ ॥ व्यायाममतिसन्तापमतिभुक्त्वा निषेविणाम् । शीतोष्णलङ्घनाहारान् भजतामक्रमेण तु ॥ २ ॥ घर्म्मश्रमभयार्त्तानां द्रुतं शीताम्बुसेविनाम् । अजीर्णाध्यशनानाञ्च पञ्चकर्म्मापचारिणाम् ॥ ३ ॥ नवान्नदधिमत्स्यादिलवणाम्लनिषेविणाम् । माषमूलकपिष्टान्नतिलक्षीरगुडाशिनाम् ॥ ४ ॥ व्यवायं चाप्यजीर्णेऽन्ने निद्रां वा भजतां दिवा । विप्रान् गुरून्धर्षयतां पापकर्म्म च कुर्वताम् ॥ ५ ॥ वातादयस्त्रयो दुष्टास्त्वग्रक्तं मांसमम्बु च । दूषयन्ति सकुष्ठानां सप्तको द्रव्यसंग्रहः ॥ ६ ॥ अतः कुष्ठानि जायन्ते सप्त चैकादशैव तु ॥ ७ ॥

विरुद्ध (संयोगविरुद्ध, दूधके साथ मछली इत्यादि अथवा समय विरुद्ध या प्रकृतिविरुद्ध) ऐसे अन्नपानोंको सेवन करनेसे, पतले चिकने और भारी अन्नपानको सेवन करनेसे, आती हुई वमनके वेगको रोकनेसे तथा अन्यान्य मलमूत्रादिके वेगोंको रोकनेसे, अधिक भोजन करके व्यायाम करनेसे अथवा अग्नि तथा सूर्य्यके तापको सेवन करनेसे, सरदी, गरमी, लंघन और आहार इनको कुविधिसे सेवन करनेसे, पसीने आये हुए, श्रमसे थकेहुए और भयसे घबडाये हुए इन अवस्थाओंमें तत्काल शीतल जलको पीनेसे अथवा शीतल जलमें स्नान करनेसे, अजीर्णमें भोजन करनेसे अथवा भोजनपर भोजन करनेसे, वमन, विरेचन, नस्य, निरूह और अनुवासन बास्ति इनके बिगडजानेसे, नवीन अन्न, दही, मछली आदिको सेवन करनेसे, नमक, खार और खटाईको अत्यन्त सेवन करनेसे, उडद, मूली, पिट्ठी (पक्वान्न मिष्टान्न), तिल, दूध और गुड इनको भक्षण करनेसे, भोजनकी अजीर्ण अवस्थामें स्त्री-प्रसंग करनेसे, दिनमें सोनेसे, ब्राह्मण और गुरुजनोंका अनादर करनेसे और पापकर्म्म करनेसे, वात, पित्त और कफ ये तीनों दोष कुपित होकर त्वचा, रुधिर, मांस और शरीरस्थ जलको दूषित करके कोढको उत्पन्न करते हैं । वात, पित्त, कफ, रस, रुधिर, मांस तथा लसीका इन सातोंके बिगडनेसे कोढ उत्पन्न होता है । वात, पित्त और कफ ये तीनों दोष और रस, रुधिर, मांस तथा लसीका यह चार दृष्य कोढके कारण हैं । ऊपर कहे हुए सातों पदार्थोंके समुदायसे सात प्रकारका और ग्यारह प्रकारका कोढ उत्पन्न होता है । अठारह ऐसा नहीं कहा, क्योंकि सात और ग्यारह अलग २ संख्या कही । सात बडे कोढ और ग्यारह क्षुद्रकोढ हैं ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥

कुष्ठ उत्पन्न होनेके विशेषकारण ।

तिलतैलकुलित्थांश्च वल्मीकालिङ्गमेव च । माहिषं दधि वृन्ताकं सप्तैते कुष्ठहेतवः ॥ ८ ॥

तिल, तेल, कुलथी, वल्मीकरोग, लिंगरोग (उपदंशादिक), भैंसका दही और बैंगन ये भी कुष्ठ उत्पन्न होनेके सात कारण हैं अर्थात् इन सात कारणोंसे भी कुष्ठरोग उत्पन्न होता है ॥ ८ ॥

प्रकारकथन ।

कुष्ठानि सप्तधा दोषैः पृथग्द्वन्द्वैः समागतैः । सर्वेष्वपि त्रिदोषेषु व्यपदेशोऽधिकत्वतः ॥ ९ ॥

सब कुष्ठ सामान्यतासे सात प्रकारके हैं–जैसे कि, भिन्न २ तीन प्रकार, द्वन्द्वज तीन प्रकार और सान्निपातज एकप्रकार, ऐसे सामान्यतासे कुष्ठ सात प्रकारके हैं । किन्तु कुष्ठमात्र सांन्निपातज हैं तो भी जिसमें जो दोष अधिक हो उसीसे उसीके समझना चाहिये अर्थात् जिस कुष्ठमें जिस दोषके अधिक लक्षण मिलते हों, उसी दोषका उसको कुष्ठ समझना चाहिये ॥ ९ ॥

कुष्ठके पूर्वरूप ।

अतिश्लक्ष्णकरस्पर्शस्वेदास्वेदविवर्णता । दाहः कंडूस्त्वचि स्वापस्तोदः कोठोन्नतिः श्रमः ॥ १० ॥ व्रणानामधिकं शूलं शीघ्रोत्पत्तिश्चिरस्थितिः । रूढानामपि रूक्षत्वं निमित्तेऽल्पेऽपि कोपनम् । रोमहर्षोऽसृजः कार्ष्ण्यं कुष्ठलक्षणमग्रजम् ॥ ११ ॥

जिस स्थानमें कुष्ठरोग होनेको होता है वह स्थान छूनेसे अत्यन्त चिकना या अत्यन्त खरखरा मालूम होता है, वहाँ पसीना अधिक आता है अथवा बिलकुल नहीं आता तथा उस जगहका रंग बदलजाय, दाह हो, खुजली, त्वचामें सुन्नी हो, सुई चुभोने सरीखी पीडा हो, ददोरे उठें, विना श्रम किये श्रम मालूम हो, व्रणमें अधिक वेदना हो, व्रण शीघ्र उत्पन्न हो और बहुत दिनोंतक रहे, भरनेके समय रूक्ष हो जाय और अल्पकारणोंसे कुपित हो, रोमांच हों और रुधिर काला हो जाता है यह कुष्ठरोगके पूर्वरूप जानने*॥१०॥११॥

कपालकुष्ठके लक्षण ।

कृष्णारुणकपालाभं यद्रूक्षं परुषं तनु । कपालं तोदबहुलं तत् कुष्ठं विषमं स्मृतम् ॥ १२ ॥

अब महाकुष्ठोंमें प्रथम कपालकुष्ठके लक्षण कहते हैं । कपालकुष्ठके व्रण काले, लाल, कपाल (खोपडे) के समान, रूखे, कठिन और पतली त्वचावाले एवं नोचनेसरीखी पीडा हो, यह विषम अर्थात् दुःसाध्य है इसको कपालकुष्ठ कहते हैं ॥ १२ ॥

औदुम्बरकुष्ठके लक्षण ।

रुग्दाहरागकंडूभिः परीतं रोमपिञ्जरम् । उदुम्बरफलाभासं कुष्ठमौदुम्बरं वदेत ॥ १३ ॥

जिसमें पीडा, दाह, लाली और खुजली हो तथा रोम पीले रंगके हों और जिसका आकार गूलरके फलके समान हो उसको औदुम्बरकुष्ठ कहते हैं ॥ १३ ॥

---

* दूषयन्ति श्लथीकृत्य निश्चलत्वादितस्ततः । त्वचः कुर्वंति वैवर्ण्यं दोषाः कुष्ठमुशन्ति तत् ॥

मण्डलकुष्ठके लक्षण ।

श्वेतं रक्तं स्थिरं स्त्यानं स्निग्धमुत्सन्नमण्डलम् । कृच्छ्रमन्योन्यसंयुक्तं कुष्ठं मण्डलमुच्यते ॥ १४ ॥

जिसका रंग सफेद और लाल हो, जो कठिन, गोल, चिकना और जिसका आकार उठेहुए मण्डलके समान हो और जो एक दूसरेसे परस्पर मिला हो उसको मण्डलकुष्ठ कहते हैं । यह कष्टसाध्य है ॥ १४ ॥

ऋक्षाजिह्वकुष्ठके लक्षण ।

कर्कशं रक्तपर्य्यन्तमन्तःश्यावं सवेदनम् । यदृक्षाजिह्वासंकाशमृक्षजिह्वं तदुच्यते ॥ १५ ॥

जो कुष्ठ कर्कश जिसके किनारे लाल हों, बीचमें काला और लाल मिले हुए रंगका हो, पीडासहित और रीछके जीभके समान आकारवाला हो उसको ऋक्षजिह्व कुष्ठ कहते हैं ॥ १५ ॥

पुण्डरीककुष्ठके लक्षण ।

सश्वेतरक्तपर्य्यन्तं पुण्डरीकदलोपमम् । सोत्सेधश्च सरागं च पुण्डरीकं प्रचक्षते ॥ १६ ॥

जो कुष्ठ सफेद कमलके पत्तेके समान बीचमें लाल और किनारेपर सफेद हो, कुछ ऊँचाईसहित और बीचमें किंचित् लाल हो उसको पुण्डरीक कुष्ठ कहते हैं ॥ १६ ॥

सिध्मकुष्ठके लक्षण ।

श्वेतं ताम्रञ्च तनु यद्रजोघृष्टं विमुञ्चति । प्रायश्चोरसि तत्सिध्ममलाबुकुसुमोपमम् ॥ १७ ॥

जो कोढ सफेदी लिये लाल रंगका हो, पतली त्वचावाला हो, घिसने या रगड़नेसे उसमेंसे धूलके समान छोटे छोटे परमाणु गिरे और लौकीके फूलके समान हो उसको सिध्म कुष्ठ कहते हैं । यह विशेष करके छातीमें होता है ॥ १७ ॥

काकणकुष्ठके लक्षण।

यत्काकणन्तिकावर्णं सपाकं तीव्रवेदनम्। त्रिदोषलिङ्गं तत्कुष्ठं काकणं नैव सिध्यति॥ १८॥

जो कुष्ठ घुँघुचीके समान लाल और काले मुखवाला हो,पाक और तीव्रपीडायुक्त और तीनों दोषोंके लक्षणोंसे युक्त हो उसको काकणकुष्ठ कहते हैं। यह असाध्य है॥ १८॥

ग्यारह क्षुद्रकोढोंके लक्षण।

चर्मकुष्ठके लक्षण।

अस्वेदनं महावास्तु यन्मत्स्यशकलोपमम्। तदेव कुष्ठं चर्म्माख्यं बहुलं हस्तिचर्म्मवत्॥ १९॥

जिस कोढमें पसीना नहीं आता, जिसके चकत्ते बड़े बड़े हों, मछलीकी त्वचाके समान चक्राकार और अभ्रकके पत्रोंके समान तथा हाथीके चर्म्मके समान मोटा और कर्कश हो उसको चर्म्मकुष्ठ कहते हैं॥ १९॥

किटिभकुष्ठके लक्षण।

शावाङ्गिणं खरस्पर्शं परुषं किटिभं स्मृतम्।

जो कुष्ठ लाली लिये काला, जिसका स्पर्श व्रणकी चटके समान खरखरा और जो रूखा हो उसको किटिभकुष्ठ कहते हैं।

वैपादिककुष्ठके लक्षण।

वैपादिकं पाणिपादस्फुटनं तीव्रवेदनम्॥ २०॥

जिसमें हाथ और पाँवोंके तलुवे फटजायँ तथा अधिक पीडा हो उसको वैपादिक कुष्ठ कहते हैं॥२०॥

अलसककुष्ठके लक्षण।

कंडूमद्भिः सरागैश्च गण्डैरलसकश्चितम्।

जिसमें अत्यंत खुजली चले,लालीयुक्त और छोटी फुन्सी अधिक हों उसको अलसककुष्ठ कहते हैं।

दद्रुमंडलकुष्ठके लक्षण।

सकंडूरागपिडकं दद्रुमण्डलमुद्गतम्॥ २१॥

जिसमें खुजली सहित लाल फोडे हों, ऊँचे उठे हुए और मण्डलाकार गोल हों उसको दद्रुमण्डलकुष्ठ कहते हैं॥ २१॥

चर्मदलकुष्ठके लक्षण।

रक्तं सशूलं कंडूमत् सस्फोटं दलयत्यपि। तच्चर्म्मदलमाख्यातं संस्पर्शासहमुच्यते॥ २२॥

जिसका रंग लाल हो, जिसमें शूल, खुजली और फोडोंसे युक्त हो कर चर्म्म फट जाय और किसी पदार्थका भी स्पर्श न सह जाय उसको चर्म्मदलकुष्ठ कहते हैं॥ २२॥

पामाकुष्ठके लक्षण।

सूक्ष्मा बह्वयः पिटिकाः स्राववत्यः पामेत्युक्ताः कंडूमत्यः सदाहाः।

जिसमें बहुतसी छोटी छोटी, पीत स्रावयुक्त, खुजली सहित और दाहयुक्त फुन्सी हों उसको पामाकुष्ठ कहते हैं।

कच्छुकुष्ठके लक्षण।

सैव स्फोटैस्तीव्रदाहैरुपेता ज्ञेया पाण्योः कच्छुरुग्रा स्फिजोश्च॥ २३॥

जो वही पामाकी फुन्सी बडी बडी तीव्र दाह सहित, हाथोंमें और विशेष करके कमरमें हों तो उसको कच्छु कहते हैं॥ २३॥

विस्फोटककुष्ठके लक्षण।

स्फोटाः श्यावारुणाभासा विस्फोटाः स्युस्तनुत्वचः।

जिसके फोडे काले या लाल रंगके हों और जिनकी त्वचा पतली हो उसको विस्फोटककुष्ठ कहते हैं।

शतारुकुष्ठके लक्षण।

रक्तं श्यावं सदाहार्तिः शतारुः स्याद्बहुव्रणम्॥ २४॥

जिसका रंग लाल और श्याव हो, दाह और शूल हो, तथा जिसमें बहुतसे फोडे हों उसको शतारुकुष्ठ कहते हैं ॥ २४ ॥

विचर्चिकाके लक्षण।

सकंडूपिटिका श्यावा बहुस्रावा विचर्चिका ॥ २५ ॥

जिसमें खुजलीयुक्त, धूसररंगकी और स्रावयुक्त फुन्सी हों उसको विचर्चिका कहते हैं ॥ २५ ॥

वातजादिकुष्ठोंके लक्षण।

खरं श्यावारुणं रूक्षं वातकुष्ठं सवेदनम्। पित्तात् प्रकुपितं दाहरागस्रावान्वितं मतम् ॥ २६ ॥ कफात् क्लेदिघनं स्निग्धं सकण्डूशैत्यगौरवम्। द्विलिङ्गं द्वन्द्वजं कुष्ठं त्रिलिङ्गं सान्निपातिकम् ॥ २७ ॥

वातोल्वणकुष्ठ–खरखरा, श्यावरंगका, लालरंगका, रूखा और पीडायुक्त होता है। पित्तकी अधिकतासे दाहयुक्त, लालरंगका और स्रवता है। कफकी अधिकतासे गीला, घन, चिकना, खुजली और शीतलतायुक्त तथा भारी होता है। जिसमें दो दोषोंके लक्षण मिलते हों उसको द्वन्द्वज और जिसमें तीन दोषोंके लक्षण मिलते हों उसको सन्निपातज कुष्ठ कहते हैं ॥ २६ ॥ २७ ॥

सप्तधातुगतकुष्ठोंके लक्षण।

रसगतकुष्ठके लक्षण।

त्वक्स्थे वैवर्ण्यमङ्गेषु कुष्ठे रौक्ष्यञ्च जायते। त्वक्सुप्तिः रोमहर्षश्च स्वेदस्यातिप्रवर्त्तनम ॥ २८ ॥

रसगतकुष्ठमें शरीरका वर्ण विवर्ण होजाता है, शरीरमें रूखापन, त्वचा पकजाती है, रोमांच हो और पसीना अधिक आता है * ॥ २८ ॥

रक्तगतकुष्ठके लक्षण।

कंडूर्विपूयकश्चैव कुष्ठे शोणितसंश्रिते ॥ २९ ॥

रुधिरगतकुष्ठमें खुजली और पीव अधिकतासे बहती है ॥ २९ ॥

मांसगतकुष्ठके लक्षण।

दौर्गन्ध्यं सर्वदेहेऽस्मिन् पूयोऽतिक्रमयस्तथा। गात्राणां भेदनं वापि कुष्ठे मांससमाश्रिते ॥ ३० ॥

* मांसगतकुष्ठमें सम्पूर्ण शरीरमें दुर्गन्ध, अत्यन्त राध बहे और शरीर अनेक प्रकारसे फटजाता है ॥ ३० ॥

मेदोगतकुष्ठके लक्षण।

कौण्यं गतिक्षयोऽङ्गानां संभेदः क्षतसर्पणम्। मेदःस्थानगते लिङ्गं प्रागुक्तानि तथैव च ॥ ३१ ॥

मेदगतकुष्ठमें हाथ टेढे होजायँ, चलनेमें असमर्थ हो जाय, हड्फूटन हो, घावोंका फैलजाना और पूर्वोक्त रक्तमांसगतकुष्ठोंके लक्षण होते हैं ॥ ३१ ॥

अस्थिमज्जागतकुष्ठके लक्षण।

नासाभङ्गोऽक्षिरागश्च क्षतेषु कृमिसम्भवः। स्वरोपघातश्च भवेदस्थिमज्जासमाश्रिते ॥ ३२ ॥

अस्थि और मज्जागतकुष्ठमें नाक बैठजाय, आंखें लाल होजायँ, घावमें कृमि पड जायँ और स्वरभंग होजाता है ॥ ३२ ॥

शुक्रार्तवगतकुष्ठके लक्षण।

दम्पत्योः कुष्ठबाहुल्याद्दुष्टशोणितशुक्रयोः। यदपत्यं तयोर्जातं ज्ञेयं तच्चापि कुष्ठितम् ॥ ३३ ॥

कुष्ठकी अधिकतासे जिन स्त्री और पुरुषोंका वीर्य्य और आर्तव दूषित होता है उस दूषित वीर्य्य और

---

* कितनेक वैद्य ऐसा मानते हैं कि, त्वचाके स्पर्शका ज्ञान नहीं रहना, रोमांचोंका खडा होना और पसीनोंका अधिक आना यह रुधिरगत कुष्ठमें होता है अर्थात् यह लक्षण रुधिरगत कुष्ठमें होते हैं।

* अन्यान्यग्रन्थोंमें मांसगत कुष्ठके निम्नलिखित लक्षण लिखे हैं श्लोकः–बाहुल्यं वक्त्रशोषश्च कार्कश्यं पिडिकोद्गमः। तोदः स्फोटस्थिरत्वं च कुष्ठे मांससमाश्रिते।

आर्त्तवसे जो सन्तान उत्पन्न होती है वह भी कुष्ठी होती है। भावार्थ यह है कि, वीर्यमें तथा रजमें प्राप्त हुवा कुष्ठ सन्तानको भी कुष्ठी करता है रसादि धातुगत जो कुष्ठोंके लक्षण कहे हैं वे सब इसमें जानने ॥ ३३ ॥

साध्यासाध्यविचार ।

साध्यं त्वग्रक्तमांसस्थं वातश्लेष्माधिकश्च यत् । मेदसि द्वन्द्वजं याप्यं वर्ज्यं मज्जास्थिसंश्रितम् ॥ ३४ ॥ कृमितृड्दाहमन्दाग्निसंयुक्तं यत्रिदोषजम् । प्रभिन्नं प्रस्रुताङ्गञ्च रक्तनेत्रं हतस्वरम् ॥ पञ्चकर्म्मगुणातीतं कुष्ठं हन्तीह कुष्ठिनम् ॥ ३५ ॥

त्वचा रस रक्त और मांसगतकुष्ठ साध्य है तथा कफाधिक्य और वाताधिक्य कुष्ठ भी साध्य है। मेदोगत और द्वन्द्वज कुष्ठ याप्य है। तथा मज्जा, अस्थि और शुक्रगतकुष्ठ असाध्य है। एवं जिस कुष्ठमें कीड़े पडजायँ, वमन, तृषा, दाह और मंदाग्नि आदि उपद्रव हों और जो त्रिदोषोत्पन्न हो वह कुष्ठ भी असाध्य हैं। जो कुष्ठ फूटकर बहता है, जिस कुष्ठमें रोगीके अंग फटने लगजायँ और अधिक स्राव हो, नेत्र लाल होगये हों, जिसका स्वर क्षीण हो गया हो और जिसके वमन विरेचनादि पंचकर्म कुछ भी गुण नहीं करते वह रोगी अवश्य मरजाता है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

प्रधानदोषके लक्षण ।

वातेन कुष्ठं कापालं पित्तेनोदुम्बरं कफात् । मण्डलाख्यं विचर्चीं च ऋक्षाख्यं वातपित्ततः ॥ ३६ ॥ चर्मैककुष्ठं किटिभं सिध्माऽलसविपादिकाः । वातश्लेष्मोद्भवाः श्लेष्मपित्ताद्दद्रुशतारुषी ॥ ३७ ॥ पुण्डरीकं सविस्फोटं पामाचर्म्मदलं तथा । सर्वैः स्यात्काकणं पूर्वं त्रिकं दद्रुसकाकणम् ॥ पुण्डरीकर्क्षजिह्वे च महाकुष्ठानि सप्त तु ॥ ३८ ॥

कपालकुष्ठ वातज, औदुम्बर पित्तज, मण्डल और विचर्चिका कफज, ऋक्षजिह्व वातपित्तज, चर्मैककुष्ठ, किटिभ, सिध्म, अलसक और विपादिका वातकफज, दद्रु, शतारु, पुण्डरीक, विस्फोटक, पामा और चर्म्मदल ये कफपित्तप्रधान एवं काकणकुष्ठ त्रिदोषज होते हैं। पहले कपाल, औदुम्बर और मण्डल ये तीन एवं दद्रु, काकण, पुण्डरीक और ऋक्षजिह्व ये चार ऐसे सब मिलाकर सात महाकुष्ठ हैं ॥ ३६ ॥ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

श्वित्र लक्षण ।

कुष्ठैकसम्भवं श्वित्रं किलासं चारुणं भवेत् । निर्दिष्टमपरिस्रावं त्रिधातूद्भवसंश्रयम् ॥ ३९ ॥

जो निदान कुष्ठका कहा है वही निदान श्वित्र कोढका भी जानना। रुधिरके आश्रयसे किलास कहा जाता है इसकारण किलास भी श्वित्रका भेद है, श्वित्र सफेद होता है और किलास लाल होता है, कोढ टपकता है और श्वित्र नहीं टपकता है, और श्वित्र त्रिदोषसे होता है। कोढ़ रसादि समस्त धातुओंमें रहता है। और श्वित्र रुधिर, मांस तथा मेदमें रहता है। कुष्ठ और श्वित्रमें इतना ही अन्तर है ॥ ३९ ॥

दोषभेदसे लक्षणभेद।

वाताद्रूक्षारुणं पित्तात्ताम्रं कमलपत्रवत् । सदाहं रोमविध्वंसि कफाच्छ्वेतं घनं गुरु ॥ ४० ॥ सकंडूरं क्रमाद्रक्तमांसमेदस्सु चादिशेत । व्रणेनैवंदशुभयं कृच्छ्रं तच्चोत्तरोत्तरम् ॥४१॥

वातसे श्वित्र रूखा व लाल होता है और रुधिरमें रहता है। पित्तसे उत्पन्न हुवा श्वित्र कमलपत्रके समान बीचमें सफेद तथा अन्तमें लाल होता है, दाहयुक्त रोमोंको नष्ट करता है और मांसमें रहता है। कफसे उत्पन्न हुआ श्वित्र सफेद होता है तथा पुष्ट, भारी, खुजली सहित और मेदमें रहता है। श्वित्रदोषसे उत्पन्न हुआ हो अथवा व्रणसे उत्पन्न हुआ हो तो भी दोषोंके भेदानुसार उसका वर्ण ऊपरहीके माफिक होता है। वातजनित श्वित्रसे पित्तजनित श्वित्र विशेष भारी होता है और पित्तजनित श्वित्रसे कफजनित श्वित्र विशेष भारी होता है ॥ ४० ॥ ४१ ॥

श्वित्रकी साध्यासाध्यता।

अशुक्लरोमा बहुलमसंश्लिष्टमथो नवम्। अनग्निदग्धजं साध्यं श्वित्रं वर्ज्यमतोऽन्यथा ॥ ४२ ॥

जिस श्वित्रकुष्ठमें काले रोम हों, श्वित्रके मण्डल पतले होकर परस्पर मिले हों, नवीन हों, अग्निके जलनेसे न उत्पन्न हुआ हो, ऐसा श्वित्रकुष्ठ साध्य है और इससे विपरीत असाध्य है ॥ ४२ ॥

गुह्यपाणितलौष्ठेषु जातमप्यचिरन्तनम् । वर्जनीयं विशेषेण किलासं सिद्धिमिच्छता ॥ ४३ ॥

गुदास्थान, लिंग, योनि, हाथ, पाँवोंके तलुवे और होठोंमें उत्पन्न हुआ ऐसा श्वित्रकुष्ठ यदि बहुत नवीन भी हो तो भी यशकी इच्छा करनेवाला वैद्य उसकी चिकित्सा न करे ॥ ४३ ॥

सांसर्गिक रोग।

प्रसङ्गाद्गात्रसंस्पर्शान्निःश्वासात्सहभोजनात् । एकशय्यासनाच्चापि वस्त्रमाल्यानुलेपनात् ॥ ४४ ॥ कुष्ठं कण्डूश्च शोषश्च नेत्राभिष्यन्द एव च। औपसर्गिकरोगाश्च संक्रामन्ति नरान्नरम् ॥ ४५ ॥

अब संसर्गसे संसर्गी रोगोंको कहते हैं, परस्पर प्रसंगसे अर्थात् मैथुनादि या सदैव साथ रहना, शरीरसे शरीरका आलिंगन करना, परस्पर दूसरेके श्वाससे श्वास लगना, एक साथ भोजन करना, एक शय्या पर सोना, एक आसनपर बैठना, तथा पहिना हुआ कपड़ा पहरना, धारण की हुई मालाको धारण करना, लगाये हुए चन्दनादि अनुलेपोंको लगाना, इत्यादि संसर्गके कारणोंसे कुष्ठ, खुजली, शोष और नेत्राभिष्यन्दादि तथा इनके समान अन्यान्य रोग भी एक मनुष्यसे दूसरे मनुष्यके शरीरमें प्राप्त होते हैं ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

कुष्ठरोगकी चिकित्सा।

वातोत्तरेषु सर्पिर्वमनं श्लेष्मोत्तरेषु कुष्ठेषु । पित्तोत्तरेषु मोक्षो रक्तस्य विरेचनं चाग्रम् ॥ ४६ ॥

वाताधिक्य कुष्ठमें प्रथम घृतपान, कफाधिक्य कुष्ठमें वमन और पित्ताधिक्य कुष्ठमें रक्तमोक्षण और विरेचन हितकारी है ॥ ४६ ॥

घृतं महानीलमुशन्ति वाते पित्ते महातिक्तकमेव तज्ज्ञाः । तैलन्तु शैरीषमुशन्ति कुष्ठे श्लेष्मात्मकेऽभ्यञ्जनपानयोगे ॥ ४७ ॥

वातोल्वणकुष्ठमें महानील घृत, पित्तोल्वण कुष्ठमें महातिक्त घृत और कफोल्वण कुष्ठमें शैरीषतैल अभ्यंजन और पानकर्म्ममें प्रयोग करना चाहिये ॥ ४७ ॥

प्रच्छनैर्वा जलौकाभिः शृङ्गालाबुशिराव्यधैः । स्निग्धस्य मोक्षयेत् कुष्ठे दुष्टरक्तं पुनः पुनः ॥ ४८ ॥

कुष्ठ रोगीको स्निग्ध करके पँछनेके द्वारा, अथवा जौंकके द्वारा या शिंगीके द्वारा, या तोम्बीके द्वारा शिरावेध करके वारंवार दुष्टरुधिरको निकाले ॥४८॥

स्रुतरक्ते हृते दोषे स्नेहैः संशमितेऽनिले । रसायनानि प्राश्याश्च प्रशस्ताः कुष्ठिनामतः ॥ ४९ ॥

कुष्ठरोगमें रुधिरके निकालने पर दोषोंका हरण हो जाने पर वातका प्रकोप होता है अतएव उस समय उस वातको शमन करनेके लिये स्नेहपान करावे फिर रसायन और प्राश्य सेवन करावे ॥ ४९ ॥

वचावासापटोलानि निम्बस्य फलिनीत्वचः । कषायो मधुना पीतो वान्तकृन्मदनान्वितः ॥ ५० ॥

वच, अडूसा, पटोलपत्र, नीम और फूलप्रियंगू इनका क्वाथ बनाकर उसमें मैनफल और शहद डाल कर पान करनेसे वमन होजाता है ॥ ५० ॥

विरेचनं प्रयोक्तव्यं त्रिवृद्दन्तीफलत्रिकैः ॥ ५१ ॥

इस रोगमें निसोत, दंती और त्रिफला इनके द्वारा विरेचन करावे ॥ ५१ ॥

ये लेपाः कुष्ठानां प्रयुज्यन्ते निर्गतास्त्रदोषाणाम् । संशोधिताशयानां सद्यः सिद्धिर्भवति तेषाम् ॥ ५२ ॥

जिनका दूषित रुधिर निकाला गया हो और आशय जिनका शुद्ध किया गया हो ऐसे कुष्ठोंपर जो लेप प्रयोग किये जाते हैं वे शीघ्र ही सिद्धिको देते हैं ॥ ५२ ॥

पथ्या करञ्जसिद्धार्थनिशावल्गुससैन्धवैः । विडङ्गसहितैः पिष्टैर्लेपो मूत्रेण कुष्ठजित् ॥ ५३ ॥

हरड, करंज, सरसों, हलदी, बावची, सैंधानमक और वायविडंग इनको गोमूत्रमें पीसकर लेप करनेसे कुष्ठ रोग नष्ट होता है ॥ ५३ ॥

एलाकुष्ठविडङ्गानि शताह्वा चित्रको वचा । दन्तीरसाञ्जनश्चैभिर्लेपः कुष्ठविनाशनः ॥ ५४ ॥

इलायची, कूठ, वायविडंग, सौंफ, चीता, वच, दंती और रसोत इनको पीसकर लेप करनेसे कुष्ठरोग नष्ट होता है ॥ ५४ ॥

मनःशिलाले मरिचानि तैलमार्कं पयः कुष्ठहरः प्रदेहः । करञ्जबीजैडगजः सकुष्ठो गोमूत्रपिष्टश्च वरः प्रदेहः ॥ ५५ ॥

मैनशिल, इलायची, कालीमिरच, तैल और आकका दूध इनको एकत्र मिलाकर लेप करनेसे कुष्ठरोग नष्ट होता है । अथवा करंजके बीज, चकवडके बीज और कूठ इनको गोमूत्रमें पीसकर लेप करनेसे कुष्ठ रोग नष्ट होता है ॥ ५५ ॥

धात्रीस्नुहीसर्जरसचक्रमर्दतुषोदकैः । कच्छुदद्रुहरो लेपः कण्डूत्वग्दोषनाशनः ॥ ५६ ॥

आमले, थूहर, राल, और चकवड इनको काँजीमें पीसकर लेप करनेसे कच्छुदद्रु, खुजली और समस्त त्वचाके विकार नष्ट होते हैं ॥ ५६ ॥

शृङ्गाटककर्कटीमूलं हपुषा ब्रह्मचारिणी । निपीतं शमयत्याशु दद्रुरोगमसंशयम् ॥ ५७ ॥

सिंघाडे, काकडाशिंगीकी जड़, हाऊबेर और भारंगीकी जड़ इनको एकत्र पीसकर पान करनेसे दद्रुरोग शीघ्र नष्ट होता है ॥ ५७ ॥

पर्णानि पिष्ट्वा चतुरंगुलस्य तक्रेण पर्णान्यथ काकमाच्याः । तैलिप्तमात्रस्य नरस्य कुष्ठान्युद्वर्त्तयेदश्वहनच्छदैश्च ॥ ५८ ॥

अण्डके पत्तोंको तक्रमें पीसकर अथवा मकोयके पत्तोंको तक्रमें पीसकर लेप करनेसे वा कनेरके पत्तोंको पीसकर मालिस करनेसे कुष्ठरोग नष्ट होता है ॥ ५८ ॥

एडगजकुष्ठसैन्धवसौवीरसर्षपैः क्रिमिघ्नैश्च । कृमिसिध्मदद्रुमण्डलकुष्ठानां नाशनो लेपः ॥५९ ॥

पमार, कूठ, सैंधानमक, कांजी, सरसों और वायविडंग इनको एकत्र पीसकर लेप करनेसे कृमि, सिध्म दद्रुमण्डल और सर्वप्रकारके कुष्ठ नष्ट होते हैं ॥ ५९ ॥

त्रिफलामुस्तकं पिण्डी दार्वीशम्याककवत्सकाः । सिद्धार्थं कुष्ठनुच्चैभिः स्नानपानप्रलेपनम् ॥ ६० ॥

त्रिफला, नागरमोथा, तगर, दारुहल्दी, अमलतास, कुडेके बीज और सफेद सरसों इन सबको स्नान पान और प्रलेपमें प्रयोग करनेसे कुष्ठरोग नष्ट होता है ।

कासमर्दकमूलानि सौवीरेण तु पेषयेत् । किटिभसिध्मदद्रूणि जयेदेतत्प्रलेपनात् ॥ ६१ ॥

कसौंदीकी जडको काँजीमें पीसकर लेप करनेसे किटिभ, सिध्म और दाद नष्ट होते हैं ॥ ६१ ॥

बीजानि वा मूलकसर्षपाणां लाक्षारजन्यौ प्रपुनाटबीजम् । श्रीवेष्टकव्योषविडङ्गकुष्ठं पिष्ट्वा च मूत्रेण सुलेपनं स्यात् ॥ दद्रूणि सिध्मान् कि-

टिभानि पामां कपालकुष्ठं विषमं च हन्यात् ॥ ६२ ॥

मूलीके बीज, सरसों, लाख, हलदी, दारुहलदी, चकवड़के बीज, सरलका गोंद, त्रिकुटा, वायविडंग और कूठ इनको गोमूत्रमें पीसकर लेप करनेसे दद्रु, सिध्म, किटिभ, पामा, कपाल और सर्व प्रकारके दुःसाध्य कुष्ठ नष्ट होते हैं ॥ ६२ ॥

आरग्वधस्य पत्राणि चारणालेन लेपयेत् । दद्रुकिटिभकुष्ठानि हन्ति सिध्मानमेव च ॥ ६३ ॥

अमलतासके पत्तोंको कांजीमें पीसकर लेप करनेसे दद्रु, किटिभ, कुष्ठ और सिध्म ये सब कुष्ठ रोग नष्ट होते हैं ॥ ६३ ॥

प्रपुन्नाटस्य बीजानि धात्री सर्जरसस्नुही । सौवीरपिष्टं दद्रूणामेतदुद्वर्त्तनं परम् ॥ ६४ ॥

पमारके बीज, आमले, राल और थूहर इनको सिरकेमें पीसकर दादोंके ऊपर लगानेसे दाद शीघ्र नष्ट हो जाते हैं ॥ ६४ ॥

स्नुहीरसः सालतरोस्तुषेण सचक्रमर्दोऽप्यभयाविमिश्रः । पानीयभद्रेण तदम्बुपिष्टो लेपः कृतो दद्रुमृगेन्द्रसिंहः ॥ ६५ ॥

थूहरके दूधमें सालके तृणोंको पीसकर तथा चकवड और हरडको कांजीमें पीसकर लेप करनेसे या नीमको जलमें पीसकर लेप करनेसे दाद शीघ्र नष्ट होजाते हैं ॥ ६५ ॥

चक्रमर्दकबीजञ्च मूलकाम्बुप्रपेषितम् । दद्रुघ्नं लेपनं कुर्य्याच्छिग्रुमूलत्वचोऽथवा ॥ ६६ ॥

चकवडके बीजोंको मूलीके रसमें पीसकर लेप करनेसे दाद नष्ट होते हैं अथवा सहिंजनेके जडकी छालको पीसकर लेप करनेसे दाद दूर होते हैं ॥ ६६ ॥

चक्रमर्दकबीजानि जीरकञ्च समांशकम् । स्तोकं सुदर्शनामूलं दद्रुकुष्ठविनाशनम् ॥ ६७ ॥

चकवडके बीज और जीरा दोनों समान भाग और कुछ थोडीसी सुदर्शनकी जड इन सबको एकत्र पीसकर लेप करनेसे दद्रुकुष्ठ नष्ट होता है ॥ ६७ ॥

दूर्वाभयासैन्धवचक्रमर्दकुठेरकाः काञ्जिकतक्रपिष्टाः । त्रिभिः प्रलेपैरपि बद्धमूलं दद्रुश्च कंडूश्च विनाशयन्ति ॥ ६८ ॥

दूब, हरड, सैंधानमक, चकवड और वनतुलसी इनको एकत्र काँजी और तक्रमें पीसकर लेप करे, इस प्रकार केवल तीन दिन या तीन प्रलेप करनेसे बद्धमूल दद्रुरोग और खुजली दूर होती है ॥ ६८ ॥

तृणकपत्रमपि दारुणं दद्रुरोगश्च प्रघर्षयोगेन । प्रशमयति तान्विचित्रं प्रागैन्द्रीभवं यदि गृहीतम् ॥ ६९ ॥

पूर्व दिशाकी ओर उत्पन्न हुए ताडके पत्तोंको लेकर पीसकर दादोंके ऊपर घिसनेसे अत्यन्त दारुण दाद भी दूर होता है ॥ ६९ ॥

समूलपत्रस्तम्बस्य तृणकस्य तु घर्षणात् । भक्षणाद्वापि शाम्यन्ति दद्रुसिध्मविचार्चिकाः ॥ ७० ॥

ताडकी जड, पत्ते और स्तम्बको लेकर दाद पर घिसनेसे अथवा भक्षण करनेसे दाद शीघ्र नष्ट हो जाते हैं ॥ ७० ॥

शिखिरिरसेन तु पिष्टं मूलकबीजं प्रलेपतः सिध्म । क्षारेण वा कदल्या रजनीं मिश्रेण नाशयति ॥ ७१ ॥

मूलीके बीजोंको चिरचिटके रसमें पीसकर लेप करनेसे सिध्मकुष्ठ नष्ट होता है । अथवा केलेके खारको हलदीमें मिला कर लेप करनेसे सिध्मकुष्ठ नष्ट होता है ॥ ७१ ॥

कुष्ठं मूलकबीजं प्रियङ्गवः सर्षपाः सदुरालभाः । एतत् केशरषट्कं निहन्ति चिरकालजं सिध्म ॥ ७२ ॥

कूठ, मूलीके बीज, फूलप्रियंगू, सरसों और धमासा इन सबको एकत्र पीसकर व्यवहार करनेसे बहुत पुराना भी सिध्मरोग नष्ट होजाता है ॥ ७२ ॥

गन्धपाषाणमिश्रेण यवक्षारेण लेपितम् । सिध्म नाशमुपैत्याशु कटुतैलयुतेन च ॥ ७३ ॥

गंधक और जवाखार इनको एकत्र पीसकर कडवे तेलमें मिलाकर लेप करनेसे सिध्मकुष्ठ शीघ्र ही नष्ट होता है ॥ ७३ ॥

कासमर्दकबीजानि मूलकानां तथैव च । गन्धपाषाणमिश्राणि सिध्मानां परमौषधम् ॥ ७४ ॥

कसौंदीके बीज, मूलीके बीज और गंधक इन तीनोंको एकत्र मिलाकर लेप करनेसे सिध्मरोग नष्ट होता है ॥ ७४ ॥

बीजं मूलकजं निम्बपत्राणि सितसर्षपाः । गृहधूमश्च संपेष्य जलेनाङ्गं प्रलेपयेत् ॥ ७५ ॥ उद्वर्त्य नवनीतेन क्षालयेदुष्णवारिणा । त्र्यहादनेन सिध्मानि शाम्यन्त्याशु शरीरिणाम् ॥ ७६ ॥

मूलीके बीज, नीमके पत्ते, सफेद सरसों और घरका धुँआसा इन सबको एकत्र जलमें पीसकर लेप करे, पश्चात् साफ करके नैनीघीका उबटन करे और गरम जलसे प्रक्षालन करे, इसप्रकार तीन दिन तक करनेसे सिध्म रोग नष्ट होते हैं ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

लाक्षाश्रीवेष्टकं कुष्ठं हरिद्रे गौरसर्षपाः । व्योषं मूलकबीजानि प्रपुन्नाटफलानि च ॥७७॥एतान्यम्लप्रपिष्टानि कुष्ठेषूद्वर्त्तनं परम्। सिध्मानां किटिभानाश्च दद्रूणाश्च विशेषतः ॥ ७८ ॥

लाख, सरलका गोंद, कूठ, हलदी, दारु हलदी, सफेद सरसों, त्रिकुटा, मूलीके बीज और पमारके बीज इन सबको कांजीमें पीसकर उबटन करनेसे सिध्म, किटिभ और विशेष करके दद्रुकुष्ठ नष्ट होता है ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

मयूरकक्षारजले सप्तकृत्वः परिस्नुते । सिद्धं ज्योतिष्मतीतैलमभ्यङ्गात्सिध्मनाशनम् ॥७९ ॥

चिरचिटेके क्षारके जलको सातवार टपकाकर फिर उसके द्वारा मालकांगनीके तेलको पकाकर मालिस करनेसे सिध्मरोग नष्ट होता है ॥ ७९ ॥

प्रपुन्नाटार्कदुग्धाग्निदन्तीजन्तुघ्नसैन्धवैः । गृहधूमनिशायुग्मासिंहीफलयुतैः समैः ॥ लेपः समस्तकुष्ठघ्नः सुप्तिवैवर्ण्यनाशनः ॥ ८० ॥

पमारके बीज, आकका दूध, चीता, दन्ती, वायविडंग, सैंधानमक, घरका धुँआसा, हलदी, दारुहलदी और कटेरीके बीज इन सबको एकत्र पीस कर लेप करनेसे सर्वप्रकारके कोढ, सुप्ति और विवर्णता दूर होती है ॥ ८० ॥

प्रलेपोद्वर्तनस्नानपानभोजनकर्म्मसु । शीलितं खादिरं वारि सर्वत्वग्दोषनाशनम् ॥ ८१ ॥

खैरके जलको प्रलेप, उद्वर्तन, स्नान, पान और भोजन कर्म्ममें प्रयोग करनेसे सर्वप्रकारके त्वचाके दोष नष्ट होते हैं ॥ ८१ ॥

दह्यमानाच्च्युतं कुम्भे समूलखादिराद्रसम् । साज्यधात्रीरसक्षौद्रं हन्यात् कुष्ठं रसायनम् ॥ ८२ ॥

खैरकी जडको एक घडेमें भरकर पुटपाककी विधिसे पकावे, पश्चात् उसके रसको निचोडकर उसमें घी, आमलोंका रस और शहद मिलाकर सेवन करे तो यह रसायन कुष्ठरोगको अवश्य नष्ट करती है ॥ ८२ ॥

निम्बपत्रशतं पिष्ट्वा निम्बामलकमेव च ॥ ८३ ॥ श्वेतकरवीरमूलं कुटजकरञ्जौ त्वचो दार्व्याः । सुमनः प्रवालयुक्तो लेपः कुष्ठापहः सिद्धः ॥ ८४ ॥

१०० नीमके पत्ते पीसकर फिर उसमें नीम, आमले, सफेद कनेरकी जड, कुडेकी छाल और करंजकी छाल, पुष्प, और अंकुर सहित दारुहलदी इन सबको एकत्र पीसकर लेप करनेसे सिध्मकुष्ठ नष्ट होता है ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

गुडूचीत्रिफलादार्वीक्काथो मूत्रोष्णवारिभिः । त्वग्दोषव्रणशोथघ्नः पीतो मासश्च गुग्गुलुः ॥ ८५ ॥

गिलोय, त्रिफला और दारुहलदी इनका काथ बनाकर सेवन करनेसे अथवा गूगलको एक महीनेतक गोमूत्र और गरमजलके साथ सेवन करनेसे त्वचाके विकार और व्रणशोथ नष्ट होता है ॥ ८५ ॥

खदिराष्टक ।

खदिरत्रिफलानिम्बपटोलामृतवासकैः । अष्टकोऽयं जयेत् कुष्ठं कण्डूविस्फोटकानि च ॥ विसर्पपामाकिटिभशीतपित्तमसूरिकाः ॥ ८६ ॥

खैर, त्रिफला, नीम, पटोलपत्र, गिलोय और अडूसा इन आठों औषधियोंको समान भाग लेकर इनका काथ बनाकर सेवन करनेसें कण्डू, विस्फोटक, विसर्प, पामा, किटिभ, शीतपित्त और मसूरिकारोग नष्ट होता है ॥ ८६ ॥

नवकषाय ।

त्रिफलानिम्बपटोलं मञ्जिष्ठारोहिणीवचारजनी । एष कषायोऽभ्यस्तो निहन्ति कफपित्तजं कुष्ठम् ॥ ८७ ॥

त्रिफला, नीम, पटोलपत्र, मजीठ, कुटकी वच और हलदी इनका काथ बनाकर सेवन करनेसे कफपित्तजनित कुष्ठ नष्ट होता है ॥ ८७ ॥

निम्बादिमहाकषाय ।

निम्बैरण्डदुरालभाऽर्भकवचामूर्वाहरिद्राद्वयं त्रायन्ती त्रिफला पटोलदहनद्रेकामृता भार्ङ्गिभिः ॥ काकोदुम्बरिकाकरञ्जखदिरैः शाखोटसप्तच्छदैर्व्याघ्रीसिंहिशिरीषवेतसकणाभूनिम्बशक्राह्वयैः ॥ ८८ ॥ प्रापुन्नाटकबाकुचीकुशजटामातङ्गकृष्णानलैः पाठापर्पटकेन्द्रवारुणिवृषादन्तीत्रिवृच्चन्दनैः ॥ मञ्जिष्ठाऽमययासवासकटुकाराजद्रुमग्रन्थिकैस्तुल्यांशैः सुरभीजलेन पिबतां सिद्धं कषायं नृणाम् ॥ ८९ ॥ कंडूदुम्बरपुण्डरीकलसकाः कुष्ठामयाः पापजा नश्यन्ति द्रुतमेव दारुणतराः प्रोद्भूयमानाऽनलः । ज्वालादग्धप्रतप्तकाञ्चनसमान्यङ्गानि राजन्ति च क्वाथोऽयं मुनिभिर्दयालुनिपुणैरुक्तो नृणां हेतवे ॥९०॥

नीम, अण्डकी जड, धमासा, (पियावाँसा), वच, मूर्वा, हलदी, दारुहलदी, त्रायमाण, त्रिफला, पटोलपात, चीता, बकायन, गिलोय, भारंगी, कठूमर, करंज, खैर, सिंहोडा, सतवन, बडी कटेरी, कटेरी, सिरसकी छाल, बेंत, पीपल, चिरायता, इन्द्रजौं, चकवड, बावची, कुशाकी जड, गजपीपल, भिलावे, पाढ, पित्तपापडा, इन्द्रायन, अडूसा, दन्ती, निसोत, चन्दन, मजीठ, कूठ, जवासा, विसौंटा, कुटकी, अमलतास और पीपलामूल इन सबको समान भाग लेकर काथ बनाकर गोमूत्रके साथ पान करनेसे कण्डू (खुजली), उदुम्बर कुष्ठ, पुंडरीक और अलसकादि समस्त पापजनित कुष्ठरोग नष्ट होते हैं । जिसप्रकार फूंकीहुई अग्नि समस्त काष्ठादिकको भस्म करदेती है । इसको सेवन करनेसे सम्पूर्ण अंग अग्निसे सन्तप्त सुवर्णके समान सुशोभित होते हैं इस काथको मनुष्योंपर दया करके प्राचीन मुनियोंने कहा है ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥

मञ्जिष्ठादिमहाकषाय ।

मञ्जिष्ठारिष्टवासात्रिफलदहनकं द्वे हरिद्रे गुडूची भूनिम्बो रक्तसारं सखदिरकटुकाबाकुची व्याधिघातः । मूर्वादन्तीविशालाः कृमिरिपुजटिलात्रायमाणाः सपाठाः श्यामाऽनन्तापटोलाः समरिचमगधाः साधितोऽयं कषायः ॥ ९१ ॥ पीतो हन्यात्समस्तान् सकलतनुगतान् रक्तजान्वै विकारान् । कंडूविस्फोटकादीनलसकिटिभकाश्वित्रपामादिदोषान् ॥ ९२ ॥

मजीठ, नीम, अडूसा, त्रिफला, चीता, हलदी, दारुहलदी, गिलोय, चिरायता, लाल खैर, खैर, कुटकी, बापची, अमलतास, मूर्वा, दंती, इन्द्रायण, वायविडंग, बालछड, त्रायमाण, पाढ, कालीनिसोत, अनन्तमूल, पटोलपत्र, कालीमिरच और पीपल इन सबका काथ बनाकर सेवन करनेसे समस्त शरीरगत त्वचाके विकार, समस्त रुधिरके विकार, कण्डू,

विस्फोटकादि रोग, अलसक, किटिभ, श्वित्रकुष्ठ और पामादि समस्त कुष्ठरोग नष्ट होते हैं ॥ ९१॥९२ ॥

उदयमार्कण्डमहाकषाय ।

श्यामामृताखदिरसारशिरीषशिग्रु-शैलेयसर्जसुरसासुरसिन्धुवारैः । श्योनाककरञ्जकरिकर्णवचाविशाला भल्लातवेतसवरावृषसप्तपर्णैः ॥ ९३ ॥ काकादनीफलककेरुककण्टकारीकं-डूकरीकुटजकेशरकर्णिकारैः । कर्कोटकार्ककरमर्दकदम्बनिम्बजंबूनिशा तिनिसकेशरशारिवाभिः ॥ ९४ ॥ गोधोपलानलशिलाजतुकुन्दराजी-राजीवकेशरशटीप्रपुनाटचूर्णम् । अष्टावशेषितजलं सुरभीजलेन क्वाथं विधाय पिबतो व्यथितेंद्रियस्य ॥ ॥९५॥ सर्वाङ्गसादपरिपोटनतोदभेद-दाहव्रणस्फुटनसुप्तिविदीर्णभावैः । वैपादिकार्बुदविवर्णविशीर्णकर्णघ्राणां-घ्रिपाणिघनघर्घरघोरनादैः ॥ ९६ ॥ गम्भीरपाककुथितं कृमिजातपूति-पूयास्रविस्रतनुगन्धिविसन्धिदग्धम् । दुर्वारदारुणमुदुम्बरकुष्ठशोथमल्पै-र्दिनैः प्रशममेति महान्तमुग्रम् ॥ ९७ ॥

कालीनिसोत, गिलोय, खैरसार, सिरस, सहिंजनेकी छाल, भूरिछरीला, राल, तुलसी, देवदारु, सम्हालू, श्योनाक, करंज, हस्तिकर्णपलाश, वच, इंद्रायन, भिलावे, वेंत, त्रिफला, अडूसा, सतवन, कौआठोडी, (कंघी) कटेरी, कौंछ, कुडा, नागकेशर कोइल, बाँझककोडा, आक, करौंदा, कदम्ब, नीम, जामुन, हलदी, तिरिच्छ, केशर, सारिवा, हंसपदी, शर्करा, नरसल, शिलाजीत, कुन्द, कमल, कमलकेशर, कचूर और पमारके बीज ये सब औषधि समान भाग लेकर कूट लेवे, फिर इन सबको अठगुन गोमूत्रमें पकावे जब पकते पकते आठवाँ भाग जल शेष रहजाय तब उतार कर छान लेवे । इस क्वाथको कुष्ठरोगीके पीनेसे शरीरके सब अंगोंकी अवसन्नता, तोडने सरीखी पीडा, दाह, व्रण, फटना, सुन्नी, विदीर्ण होना, वैपादिका, अर्बुद, विवर्ण, कान नासिका पाँव और हाथोंका गलना, घनके समान घर घर घोर शब्द, गम्भीरपाक, कुथित, कृमियुक्तव्रण, दुर्गंध राध, रुधिर और अत्यन्त दुर्गंधयुक्त व्रण, अग्निदग्ध, दुर्निवार, दारुण, उदुम्बरकुष्ठ, शोथ और अत्यन्त उग्र कुष्ठ बहुत शीघ्र थोडे दिनोंमें ही शमन होते हैं ॥ ९३-९७ ॥

पटोलखदिरारिष्टत्रिफलाकृष्णवेत्रकम् । तिक्ताशनः पिबन् क्वाथं कुष्ठी कुष्ठाद्व्यपोहति ॥ ९८ ॥

पटोलपत्र, खैर, नीम, त्रिफला, कालावेंत, कुटकी और विजयसार इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर क्वाथ बनाकर पान करनेसे कुष्ठ रोग नष्ट होता है ॥ ९८ ॥

काकोदुम्बरिकारिष्टविडङ्गव्योषवासकम् । कल्कं पीत्वा जयेत् कुष्ठं कुटजत्वक् सिताम्बुना ॥ ९९ ॥

कठूमर, नीम, वायविडंग त्रिकुटा और अडूसा इतना कल्क बनाकर पान करनेसे अथवा कुडेकी छालको पीसकर मिश्रीके शर्बतके साथ सेवन करनेसे कुष्ठरोग नष्ट होता है ॥ ९९ ॥

विडङ्गं बाकुची कृष्णा पथ्या वाराहलाङ्गली । त्रिफला सगुडा चैषां मोदकाः कुष्ठनाशकाः ॥ १०० ॥

वायविडंग, बापची, पीपल, हरड, वाराहीकंद, कलिहारी, त्रिफला और गुड इन सबको एकत्र कूट पीसकर मोदक बनावे । इन मोदकोंको सेवन करनेसे कुष्ठरोग नष्ट होता है ॥ १००

अवल्गुजाद्बीजकर्षं पिबेदुष्णेन वारिणा । भोजनं क्षीरसर्पिर्भ्यां सर्वकुष्ठहरं परम् ॥ १०१ ॥

बापचीके एक तोला परिमाण बीजोंको लेकर गरम जलके साथ सेवन करे और इसपर घृत दूधके साथ भोजन करे, यह प्रयोग सब प्रकारके कुष्ठोंको नष्ट करता है ॥ १०१ ॥

तिलाज्यत्रिफलाक्षौद्रव्योषभल्लातशर्कराः । वृष्याः सप्तसमा मेध्याः कुष्ठहाः कामचारिणः ॥ १०२ ॥

तिल, घी, त्रिफला, शहद, त्रिकुटा, भिलाव और मिश्री ये सातों एकत्र मिलेहुए अत्यन्त वृष्य, मेधाजनक, कुष्ठनाशक और कामकी इच्छा करनेवाले मनुष्योंको अत्यन्त हितकारी हैं ॥ १०२ ॥

निंबस्य स्वरसं वापि सेव्यमानो यथाबलम् । जीर्णे घृतान्नं भुञ्जीत स्वल्पयूषोदकेन च ॥ अपि क्षीणशरीरोऽपि दिव्यरूपी भवेन्नरः ॥ १०३ ॥

अथवा नीमके स्वरसको बलानुसार सेवन करे और जब औषधि जीर्ण हो जाय तब घृतके साथ और कुछ थोड़ेसे यूषोदकके साथ भोजन करे । इसको सेवन करनेसे क्षीण शरीरवाला भी मनुष्य दिव्य शरीरको धारण करनेवाला होता है ॥ १०३ ॥

इन्द्राशनस्य पत्रं मधुना सितया च सर्पिषा युक्तम् । खादेदशेषकुष्ठनाशकरमस्मात्परं नास्ति ॥ १०४ ॥

भांगके पत्तोंको या कुडाके और विजयसारके पत्तोंको शहद, घी और मिश्रीके साथ सेवन करनेसे सर्व प्रकारके कुष्ठ नष्ट होजाते हैं ॥ १०४ ॥

अमृता वाऽभयाव्योषवह्निचरुष्करबाकुची । केशराजाः क्रमाद्वृद्धाः कुष्ठघ्नास्तैलपिण्डिकाः ॥ १०५ ॥

गिलोय, हरड, त्रिकुटा, चीता, भिलावे, बापची, और कुकुरभाँगरा इन सबको क्रमसे एक भाग २ भाग ३ भाग ऐसे एकत्र पीसकर तेलमें मिलाकर पिंड़ी बनावे । इसको व्यवहार करनेसे कुष्ठ रोग नष्ट होता है ॥ १०५ ॥

पञ्चाह्वयां समाक्षीकां सस्नेहां वापि चूर्णिताम् । तैलयुक्तां लिहेत् कुष्ठमारोग्यमचिराद्भवेत् ॥ १०६ ॥

अथवा उपर्युक्त औषधियोंको एकत्र पीस कर घीमें स्निग्ध करके शहदमें मिला कर तेलके साथ सेवन करनेसे बहुत दिनोंका पुराना कुष्ठ भी नष्ट होता है ॥ १०६ ॥

कुष्ठपर लेप ।

विषवरुणहरिद्राचित्रकागारधूममदनमरिचमूर्वाक्षीरमर्कस्नुहीभ्याम् । दहति पतितमात्रात् कुष्ठजातीरशेषाः कुलिशमिव सरोषाच्छक्रहस्ताद्विमुक्तम् ॥ १०७ ॥

विष, वरना, हलदी, चीता, घरका धुँआसा, मैनफल, कालीमिरच, मूर्वा, आकका दूध और थूहरका दूध इन सबको एकत्र पीस कर लगानेसे ही सर्वप्रकारके कुष्ठ नष्ट होते हैं ॥ १०७ ॥

चक्राह्वबीजं स्नुक्क्षीरं भावितं मूत्रसंयुतम् । रवितप्तं हि किञ्चित्तु लेपनं किटिभापहम् ॥ १०८ ॥

चकवडके बीजोंको थूहरके दूधमें भावना देकर गोमूत्रके साथ मिलाकर कुछ देर धूपमें रख कर लेप करनेसे किटिभकुष्ठ नष्ट होता है ॥ १०८ ॥

पिप्पलीपूतिकायस्थाकुष्ठगोपित्तचित्रकैः । लेपं सम्यक् प्रशंसन्ति किटिभघ्नं चिकित्सकाः ॥ १०९ ॥

पीपल, दुर्गंध करंज, हरड, कूठ, गोपित्त और चीता इन सबको एकत्र पीस कर लेप करनेसे किटिभकुष्ठ नष्ट होता है ॥ १०९ ॥

गोमूत्रवारिसंपिष्टैः शिलाकाशीशतुत्थकैः । लेपः किटिभवीसर्पकुष्ठनाशाय पूजितः ॥ ११० ॥

मैनशिल, कसीस और नीलाथोथा इनको गोमूत्र या जलमें पीस कर लेप करनेसे किटिभ और विसर्प तथा सर्वप्रकारके कुष्ठ नष्ट होते हैं ॥ ११० ॥

राजिकागुडयुक्तेन सैन्धवेन प्रयोजितम् । बिडालचर्म्मणा बद्धं नाशं चर्म्मदलं व्रजेत् ॥ १११ ॥

राईको गुडमें मिला कर सैंधनमकके साथ बिलावके चमडेके द्वारा बाँधनेसे चर्म्मदलकुष्ठ नष्ट होता है ॥ १११ ॥

वचया श्वेतया नाशं याति चर्म्मदलं द्रुतम् । लेपादिन्द्रयवैर्वापि गोमूत्रपरिपेषितैः ॥ ११२ ॥

सफेद वचका लेप करनेसे अथवा इन्द्रजौको गोमूत्रमें पीसकर लेप करनेसे चर्म्मदलकुष्ठ नष्ट होता है ॥ ११२ ॥

सलिले चाम्रपेशी तु किञ्चित्सिन्धुसमन्विता । ताम्रपात्रे विनिर्घृष्टा लेपश्चर्म्मदलापहा ॥ ११३ ॥

आमकी गुठलीको कुछ सैंधनमकके साथ मिला कर ताँबेके पात्रमें घिस कर लेप करनेसे चर्म्मदलकुष्ठ नष्ट होता है ॥ ११३ ॥

शैलेयकम्पिल्लकयष्टिकाह्वाः सौराष्ट्रिकासर्जरसोत्पलानि । शिला च चूर्णो नवनीतयुक्तः कुष्ठे स्रवत्यभ्यधिकः प्रदिष्टः ॥ ११४ ॥

भूरिछरीला, कबीला, मुलेठी, फिटकरी, राल, कमल और मैनशिल इन सबको एकत्र नैनीघीमें मिला कर लेप करनेसे अत्यन्त स्रवता हुवा कुष्ठ भी शमन होता है ॥ ११४ ॥

स्नुक्काण्डे सर्षपात्कल्कः कुकूलानलपाचितः । लेपाद्विचर्चिकां हन्ति रागवेग इव त्रपाम् ॥ ११५ ॥

थूहरके काँडमें सरसोंका कल्क भरकर कोयलोंकी अग्निमें पकावे, उसका लेप करनेसे विचर्चिका रोग नष्ट होता है जिसप्रकार प्रीतिका वेग लज्जाको नष्ट कर देता है ॥ ११५ ॥

स्नुक्काण्डे शुषिरे दग्ध्वा गृहधूमं ससैन्धवम् । अन्तर्धूमं तैलयुक्तं लेपाद्धन्ति विचर्चिकाम् ॥ ११६ ॥

थूहरके काँडमें घरका धुआँ आर सैंधानमक भर कर पुटपाककी विधिसे पकावे, फिर उसमें तेल मिला कर लेप करे तो विचर्चिकारोग नष्ट होता है ॥ ११६ ॥

मधुसिक्थकसैन्धवघृतगुडमहिषाक्षसालनिर्यासम् । गैरिकमेतत्पक्वं पादस्फुटनापहं सिद्धम् ॥ ११७ ॥

मोम, सैंधानमक, घी, गुड, गूगल, राल और गेरु इन सबको एकत्र पका कर सेवन करनेसे पादस्फोट दूर होता है ॥ ११७ ॥

पिष्ट्वा जातीफलं लेपाद्धिनिहन्ति विपादिकाम् । तद्वत्सर्जरसं क्षौद्रतिलतैलसमन्वितः ॥ ११८ ॥

जायफलको पीस कर लेप करनेसे विपादिकारोग नष्ट होता है अथवा राल, शहद और तिलका तेल इनको एकत्र मिला कर लेप करनेसे विपादिकारोग नष्ट होता है ॥ ११८ ॥

नारिकेलोदके न्यस्तास्तण्डुलाः पूतितां गताः । लेपाद्विपादिकां हन्ति चिरकालानुबन्धिनीम् ॥ ११९ ॥

चावलोंको नारियलके जलमें भिजो देवे, जब वह अच्छेप्रकारसे फूलजायँ और उनमें दुर्गंध आने लगे तब पीसकर लेप करनेसे बहुत दिनोंका विपादिकारोग नष्ट होता है ॥ ११९ ॥

धत्तूरतैल ।

धत्तूरबीजकल्केन माणकक्षारवारिणा । कटुतैलं विपक्वन्तु द्रुतं हन्याद्विपादिकाम् ॥ १२० ॥

धतूरेके बीजोंके कल्क और मानकन्दके क्षारजलके द्वारा कडवे तेलको पका कर व्यवहार करनेसे विपादिकारोग नष्ट होता है ॥ १२० ॥

अवल्गुजं कासमर्दं चक्रमर्दं निशायुतम् । मणिमन्थेन तुल्यांशं मस्तुकाञ्जिकपेषितम् ॥ १२१ ॥ कच्छुं कंडूं जयत्युग्रां सिद्ध एष प्रयोगराट् १२२

बापची, कसौंदी, चकवड, हलदी और सैंधानमक इन सबको बराबर लेकर दहीके तोड और काँजीमें पीसकर लेप करनेसे कच्छु और अत्यन्त उग्र कण्डू नष्ट होती है ॥ १२१ ॥ १२२ ॥

कोमलसिंहास्यदलं सनिशं सुरभीजलेन संपिष्टम् । दिवसत्रयेण नियतं शमयति कच्छुं विलेपनतः ॥ १२३ ॥

अडूसेके कोमल पत्ते और हलदीको गोमूत्रमें पीसकर तीन दिनतक लेप करनेसे कच्छुरोग नष्ट होता है ॥ १२३ ॥

हरिद्राकल्कसंयुक्तं गोमूत्रस्य पलद्वयम् । पिबेन्नरः कामचारी कच्छूपामाविनाशनम् ॥ १२४ ॥

गोमूत्र आठ तोले लेकर उसमें हलदीका कल्क मिलाकर पान करनेसे कच्छु और पामारोग नष्ट होता है ॥ १२४ ॥

शिवाहरिद्रागुडछर्दनानां तुल्यं विभागं मसृणं प्रपिष्य । संप्राश्य तोयं तदनुप्रपीय जयेद्व्रणानां प्रभवं सनातनम् ॥ १२५ ॥

हरड, हलदी, गुड और नीम इन सबको समान भाग लेकर खूब बारीक पीसकर जलके साथ पान करनेसे बहुत दिनोंके पुराने व्रण भी नष्ट हो जाते हैं ॥ १२५ ॥

श्रीवासघृत ।

श्रीवासकं सर्जरसं लोध्रं कम्पिल्लकं तथा । मनःशिला यवानी च गन्धपाषाणमेव च ॥ १२६ ॥ पलिकैश्चूर्णितैरेतैर्घृतप्रस्थं प्रयोजयेत् । सूर्य्यांशुपक्वमभ्यङ्गाद् घोरां कच्छूं व्यपोहति ॥ १२७ ॥

गन्धविरोजा, राल, लोध, कवीला, मैनशिल, अजवायन और गन्धक प्रत्येक औषधिका चूर्ण चार चार तोले लेकर एक प्रस्थ घृतको सूर्य्यकी धूपमें पकावे । इसकी मालिश करनेसे कच्छुरोग नष्ट होता है ॥ १२६ ॥ १२७ ॥

सिन्दूराद्यतैल ।

सिन्दूरगुग्गुलुरसाञ्जनसिक्थतुत्थैः कल्कीकृतैश्च कटुतैलमिदं विपक्वम् । कच्छूं स्रवत्पिटिकिकामथवा विशुष्कामभ्यञ्जनेन सकृदुद्धरति प्रसह्य ॥ १२८ ॥

सिंदूर, गूगल, रसौत, मोम और नीलाथोथा इनके कल्कके द्वारा कडवे तेलको पकावे । इस तेलकी मालिश करनेसे कच्छु (खुजली) बहता हुआ पिडिका अथवा सूखी खुजली ये सब नष्ट हो जाते हैं ॥ १२८ ॥

बृहत्सिन्दूराद्यतैल ।

सिन्दूरं चन्दनं मांसी विडङ्गं रजनीद्वयम् । प्रियंगुपद्मकं कुष्ठं मञ्जिष्ठाखदिरं वचा ॥ १२९ ॥ जात्यर्कं त्रिवृता निम्बं करञ्जं विषमेव च । कृष्णा चित्रकलोध्रश्च प्रपुन्नाटं च संहरेत् ॥ १३० ॥ श्लक्ष्णपिष्टानि सर्वाणि योजयेत्तैलमात्रया । अभ्यङ्गेन प्रयोज्यं तद्वर्णकृत् कुष्ठनाशनम् ॥ १३१ ॥ पामां विचर्चिकां कच्छूं विसर्पं विषमेव च । रक्तपित्तोत्थितान् हन्ति रोगानेवंविधान् बहून् । सिन्दूराद्यमिदं तैलमश्विभ्यां निर्मितं पुरा ॥ १३२ ॥

सिन्दूर, चन्दन, वालछड, वायविडंग, हलदी, दारुहलदी, फूलप्रियंगु, पद्माख, कूठ, मजीठ, खैर, वच, चमेली, आक, निसौत, नीम, करंज, विष, पीपल, चीता, लोध और पमारके बीज इन सबको समान भाग लेकर बारीक पीसकर तेलमें पकावे । इस तेलकी मालिश करनेसे वर्ण उज्ज्वल होता है एवं कुष्ठरोग नष्ट होता है । तथा पामा, विचर्चिका, कच्छु, विसर्प, विष और अनेक प्रकारके रक्तपित्तजनित रोग नष्ट होते हैं । यह सिन्दूराद्य तैल पहिले अश्विनीकुमारोंने निर्म्माण किया है ॥ १२९ ॥ ॥ १३० ॥ १३१ ॥ १३२ ॥

निशासुधारग्वधकाकमाचीपत्रैः सदार्वीप्रपुन्नाटबीजैः । तक्रेण पिष्टैः कटुतैलमिश्रैः पामादिषूद्वर्त्तनमेतदिष्टम् ॥ १३३ ॥

हलदी, थूहर, अमलतासके पत्ते, मकोयके पत्ते, दारुहलदी, और पमारके बीज इन सबको एकत्र तक्रमें पीस कर कड़वे तेलमें मिलाकर लेप करनेसे पामा और विपादिकारोग दूर होते हैं ॥ १३३ ॥

गोशकृत् सिन्धुसंयुक्तं रजनीमाक्षिकेण तु । घृष्ट्वा प्रलेपने योज्यं पामाकच्छूविनाशनम् ॥ १३४ ॥

गोबर, सैंधानमक, हलदी और शहद इन सबको एकत्र मिलाकर अच्छे प्रकारसे घिसकर लेप करनेसे पामा और कच्छुरोग नष्ट होता है ॥ १३४ ॥

सैन्धवं चक्रमर्दन्तु सर्षपं पिप्पलीं तथा । पेषयेदारनालेन पामाकंडूविनाशनम् ॥ १३५ ॥

सैंधानमक, चकवड, सरसों और पीपल इनको काँजीमें पीसकर लेप करनेसे पामा और कण्डूरोग नष्ट होता है ॥ १३५ ॥

मांसीचन्दनशम्याककरञ्जारिष्टसर्षपम् । यष्टीकुटजदार्व्यब्दं हन्ति कण्डूमयं गणः ॥ १३६ ॥

बालछड, चन्दन, अमलतासके पत्ते, करंज, नीमके पत्ते, सरसों, मुलैठी, कुडेकी छाल, दारुहलदी और नागरमोथा इनको एकत्र पीसकर लेप करनेसे कण्डूरोग नष्ट होता है ॥ १३६ ॥

जीरकस्य पलं पिष्ट्वा सिन्दूरार्द्धपलं तथा । कटुतैलं पचेदाभ्यां सद्यः पामाहरं परम् । वृद्धवैद्योपदेशेन पाच्यं तैलं पलाष्टकम् ॥ १३७ ॥

जीरा ४ तोले और सिन्दूर २ तोले लेकर इनके कल्कके द्वारा कडवे तेलको पकावे । इस तेलका लेप करनेसे तत्काल पामारोग नष्ट होता है । यहाँ वृद्ध वैद्योंके उपदेशसे आठ पल तेल पकाना चाहिए ॥ १३७ ॥

अर्कतैल ।

अर्कपत्ररसैः पक्वं रजनीकल्कसंयुतम् । कटुतैलं हरेत्तूर्णं पामाकच्छूविचर्चिकाम् ॥ १३८ ॥

आकके पत्तोंके स्वरसके द्वारा हलदीके कल्कको कडवे तेलमें पकावे । इस तेलको सेवन करनेसे पामा, कच्छू और विचर्चिकारोग नष्ट होता है ॥ १३८ ॥

त्रिफलाद्यगुटिका ।

त्रिफलारुष्करलोहैः सवल्गुजभृङ्गकलिगलीव्योषैः । सगुडैर्वाराहकन्दैः पलिकैरेकत्र संमिश्रैः ॥ १३९ ॥ गुटिकां प्रकल्प्य खादेदेकैकामक्षसंमितां प्रातः । कुष्ठं दद्रुकिलासं जित्वा वर्षेण निर्वलीपलितः । जीवति वर्षशतं वै दीप्तहुताशो युवेव सोत्साहः ॥ १४० ॥

त्रिफला, भिलावे, लोह, बापची, भाँगरा, कलिहारी, त्रिकुटा, गुड और वाराहीकन्द ये प्रत्येक औषधि चार चार तोले लेकर कूट पीसकर एक एक तोलेकी गोलियाँ बनालेवे । प्रतिदिन एक गोली प्रातःकाल भक्षण करे । यह गोली—कुष्ठ, दद्रु और किलास तथा वली और पलित इन सब रोगोंको एक वर्षमें नष्ट कर देती है । इन गोलियोंके प्रभावसे उत्साह सम्पन्न होकर युवाके समान अत्यन्त दीप्त अग्निसंयुक्त एकसौ वर्ष तक जीता रहता है ॥१३९॥ ॥ १४० ॥

शशाङ्कलेखादिलेह ।

शशाङ्कलेखा सविडङ्गसारा सपिप्पलीका सहुता समूला । सायोमला सामलका सतैला सर्वाणि कुष्ठानि निहन्ति लीढा ॥ १४१ ॥

बापची, वायविडंग, पीपल, चीतेकी जड, लोहेका मल, आमले और तेल इन सबको एकत्र मिलाकर चाटनेसे सर्वप्रकारके कुष्ठरोग नष्ट होते हैं १४१

त्रिफलाद्यमोदक ।

त्रैफलस्य तु चूर्णस्य पलानि दशपञ्चकम् । सप्त चैव विडङ्गानां लोहचूर्णं पलद्वयम् ॥ १४२ ॥ शतं भल्लातकानाञ्च पलानि दश बाकुची । शिलाजतुपलार्द्धं तु द्वे पले गुग्गुलोस्तथा ॥ १४३ ॥ पलं पुष्करमूलस्य पलार्द्धपलसैन्धवम् । सचित्रकं समरिचं पिप्पलीविश्वभेषजम् ॥ १४४ ॥

त्वक्पत्रं कुंकुमं मुस्तं कार्षिकानुपकल्पयेत्। यावन्त्येतानि चूर्णानि तावत खण्डं प्रदापयेत ॥ १४५ ॥ पलिकान्मोदकान्कृत्वा प्रातरुत्थाय नित्यशः। एकैकं भक्षयेत्प्राज्ञो यथेष्टं चात्र भोजनम् ॥१४६॥ कुष्ठान्यष्टादशानीह प्लीहगुल्मभगन्दरान्। अशीतिं वातजान् रोगांश्चत्वारिंशच्च पैत्तिकान् ॥ १४७ ॥ विंशतिं श्लैष्मिकांश्चैव संसृष्टान् सान्निपातिकान्। शालाक्यगतरोगांश्च शिरोक्षिभ्रूगतांस्तथा ॥ १४८ ॥ कण्ठतालुगतांश्चैव जिह्वायामुपजिह्वकाम्। ऊर्ध्वजत्रुगते रोगे भुक्तस्योपरि दापयेत्॥१४९॥ शरीरे दापयेद् पूर्वमोदरे मध्यभोजने। निर्दिष्टरोगाञ्छमयेत् क्रियमाणं रसायनम् ॥ १५० ॥

त्रिफलेका चूर्ण १५ पल, वायविडंग ७ पल, लोहेका चूर्ण २ पल, भिलावे १००, बावची १० पल, शिलाजीत २ तोले, गूगल ८ तोले, पोहकरमूल ४ तोले, सैंधानमक ६ तोले, चीता, कालीमिर्च, पीपल, सोंठ, दालचीनी, तेजपात, केशर और नागरमोथा ये प्रत्येक औषधि एक एक तोला लेवे इन सबको एकत्र कूट पीसकर चूर्ण बनावे और सब चूर्णके बराबर खाँड़ लेकर पहले खाँडकी चासनी बनाले फिर औषधियोंका चूर्ण डालकर चार चार तोलेके लड्डू बनावे। प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर नित्य एक मोदक खाय और यथेच्छानुसार भोजन करे। यह मोदक-अठारह प्रकारके कोढ, प्लीहा, गुल्म, भगन्दर, अस्सी प्रकारके वातरोग, चालीस प्रकारके पित्तके रोग, बीस प्रकारके कफके रोग, द्वंद्वजरोग, सन्निपातिकरोग, शालाक्यरोग, शिरोरोग, नेत्ररोग, भ्रूरोग, कण्ठरोग, तालुरोग, जिह्वारोग और उपजिह्वका, इन सब रोगोंको नष्ट करतेहैं। इसको ऊर्ध्वजत्रुरोगोंमें भोजनके पश्चात् सेवन करना चाहिये। शरीरगतरोगोंमें भोजनसे पहिले और उदरके रोगोंमें भोजनके मध्यमें सेवन करना चाहिये। इसको यथोक्तविधिसे सेवन करनेसे उपर्युक्त सम्पूर्ण रोग नष्ट होते हैं और रसायनके गुण उत्पन्न होते हैं ॥ १४२-१५० ॥

महाभल्लातक।

निम्बगोपारुणाकट्वी त्रायन्ती त्रिफला घनम्। पटोलावल्गुजानन्तावचाखदिरचन्दनम् ॥ १५१ ॥ पाठाशुण्ठीशटीभार्ङ्गीवासाभूनिम्बवत्सकम्। श्यामेन्द्रवारुणीमूर्वाविडङ्गातिविषानलम् ॥ १५२ ॥ हस्तिकर्णामृताद्रेका पटोलं रजनीद्वयम्। कृष्णाग्वथसताह्वं शिरीषं चोञ्चटाफलम् ॥ १५३ ॥ मञ्जिष्ठालाङ्गुलीरास्ना नक्तमालं पुनर्नवा। दन्तीबीजकसारञ्च भृङ्गराजं कुटन्नटम् ॥ १५४ ॥ अक्षोटकञ्च शाखोटं द्विपलांशं पृथक् पृथक्। गृह्णीयात्तानि सर्वाणि जलद्रोणे पचेच्छनैः ॥ १५५ ॥ अष्टभागावशेषन्तु कषायमवतारयेत्। विधाय वाससा पूतं स्थापयेद्भाजने दृढे ॥ १५६ ॥ भल्लातकसहस्राणि छित्वा त्रीण्यर्मणेऽम्भसि। पचेदष्टावशेषन्तु कषायमवतारयेत् ॥ १५७ ॥ तच्च वस्त्रेण संशोध्य द्वौ कषायौ विमिश्रयेत्। गुडस्य तु तुलां दत्त्वा लेहवत्तत्पचेच्छनैः ॥ १५८ ॥ भल्लातकसहस्रस्य मज्जानं तत्र निक्षिपेत्। त्रिकटुत्रिफलामुस्तं विडङ्गं चित्रकं तथा ॥ १५९ ॥ सैन्धवं चन्दनं कुष्ठं दीप्यकञ्च पृथक् पलम्। सौगन्ध्यार्थं क्षिपेत्तत्र चातुर्जातं पलं पलम् ॥ १६० ॥ महाभल्लातको ह्येष महादेवेन निर्मितः। प्राणिनान्तु हितार्थाय नाशयेच्छीघ्रमेव तु ॥ १६१ ॥ श्वित्रमौदुम्बरं दद्रुमृक्षजिह्वञ्च काकणम्। पुण्डरीकं स चर्माख्यं विस्फोटं रक्तमण्डलम् ॥ १६२ ॥ कण्डूं कापाल-

कुष्ठञ्च पामानञ्च विपादिकाम् । वातरक्तमुदावर्त्तं पांडुरोगं व्रणान् कृमीन् ॥ १६३ ॥ अर्शांसि षट्प्रकाराणि कासश्वासौ भगन्दरम् । समाभ्यासेन पलितमामवातं सुदुर्जयम् ॥ १६४ ॥ निर्य्यन्त्रणस्तु कथितः सर्वर्तुषु च शस्यते । कुरुते परमां कान्तिं प्रदीप्तं जठरानलम् ॥ १६५ ॥ अनुपानं प्रयोक्तव्यं छिन्नातोयं पयोऽथवा । भोजनञ्च तथा त्याज्यमुष्णं चाम्लं विशेषतः ॥ १६६ ॥

नीम, सारिवा, अतीस, कुटकी, त्रायमाण, त्रिफला, नागरमोथा, पटोलपत्र, बापची, अनन्तमूल, वच खैर, चन्दन, पाढ, सोंठ, कचूर, भारंगी, अडूसा, चिरायता, कुड़ा, कालीनिसोत, इन्द्रायण, मूर्वा, वायविडंग, अतीस, चीता, हस्तिकर्णपलाश, गिलोय, बकायन, कड़वे परवल, हलदी, दारुहलदी, पीपल, अमलतास, सतोना, सिरस, उटङ्गनके बीज, मजीठ, कलिहारी, रायसन, करंज, पुनर्नवा, जमालगोटा, विजयसार, भाँगरा, श्योनाक, अखरोट और सिंहोरा ये प्रत्येक औषधी आठ २ तोले लेकर एक द्रोण जलमें पकावे, जब पकते २ आठवाँ भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर वस्त्रमें छान लेवे। फिर इस क्काथको एक उत्तम दृढ पात्रमें करके रख देवे। पश्चात् उत्तम भिलावे १००० लेकर उनको छेदकर तीन अर्म्मण जलमें पकावे, जब पकते २ आठवाँ भाग जल बाकी रहजाय तब उतारकर छान लेवे, फिर इस क्वाथ और पहिले क्वाथ दोनोंको मिलाकर इनमें एक तुला प्रमाण गुड डालकर धीरे धीरे पकावे और पूर्वोक्त उसीजे हुए १००० भिलावोंकी मींग निकालकर मिलादेवे। तथा त्रिकुटा, त्रिफला, नागरमोथा, वायविडंग, चीता, सैंधानमक, चन्दन, कूठ और अजवायन प्रत्येक औषधिका चूर्ण चार २ तोले तथा सुगंधिके लिये चातुर्जातककी प्रत्येक औषधिका चूर्ण चार चार तोले डालकर विधिपूर्वक पाकको तैयार करे। यह महाभल्लातक अवलेह महादेवने प्राणियोंके हितके लिये पूर्वकालमें निर्म्माण किया है। यह औषधि श्वित्रकुष्ठ, उदुम्बरकुष्ठ, दद्रु, ऋक्षजिह्व, काकण, पुंडरीक, चर्म्माख्य, विस्फोटक, रक्तमण्डल, कण्डू, कापालकुष्ठ, पामा, विपादिका, वातरक्त, उदावर्त्त, पाण्डुरोग, व्रण, कृमि, छः प्रकारकी बवासीर, खाँसी, श्वास, भगन्दर, पलितरोग और दुर्जय आमवातरोगको नष्ट करता है। इसको सेवन करनेसे किसी प्रकारकी पीड़ा नहीं होती और यह सम्पूर्ण ऋतुओंमें सेवन करना उचित है। इसका अभ्यास करनेसे शरीरकी कांति अत्यन्त बढती है और जठराग्नि अतिशय दीपन होती है। इसका अनुपान गिलोयका क्काथ या स्वरस अथवा दूध या जल है। इसपर विशेष करके गरम और अम्ल भोजन त्यागदेना चाहिये १५१-१६६

पञ्चनिम्बादिचूर्ण।

पिचुमन्दफलं पुष्पं त्वक् पत्रं मूलमेव च। पञ्चैतानि सुसूक्ष्माणि समचूर्णानि कारयेत् ॥ १६७ ॥ अष्टभागावशेषेण खदिरासनवारिणा । भावयित्वा तु संयोज्य द्रव्याण्येतानि दापयेत् १६८॥ चित्रकोऽथ विडङ्गानि व्याधिघातकशर्कराः । भल्लातकहरीतक्यौ शुण्ठ्यामलकगोक्षुराः ॥ १६९ ॥ चक्रमर्दकबाकूची पिप्पली मरिचं निशा। लोहचूर्णसमायुक्तं समभागं प्रमाणतः ॥ १७० ॥ भावयेद्भृङ्गराजेन पुनः शुष्काणि कारयेत् । निम्बार्धं सर्वमेतेषामेकीकृत्य निधापयेत् ॥१७१ ॥ बिडालपदमात्रन्तु सर्पिषा पयसाऽपि वा । प्रातः प्रातर्निषेवेत खदिरासनवारिणा ॥ १७२ ॥ परिहारो न चात्रास्ति पञ्चनिम्बेऽवतिष्ठति । मासमात्रप्रयोगेण कुष्ठं हन्ति रसायनम् ॥ १७३ ॥ त्वग्दोषं नीलिकाव्यङ्गं तथैव तिलकालकान् ॥ अष्टादशविधं कुष्ठं सप्त चैव महाक्षयान् ॥ सर्वव्याधिविनिर्मुक्तो जीवेद्वर्षशतं सुखी ॥ १७४ ॥

नीमके फल, फूल, छाल, पत्र और जड ये पांचों समान भाग लेकर बारीक पीसकर चूर्ण कर लेवे। फिर

इस चूर्णको अष्टावशेष खैर और विजयसारके क्वाथमें भावना देकर इसमें निम्न लिखित औषधियाँ मिलावे जैसे चीता, वायविडंग, अमलतास, खांड, भिलावे, हरड, सोंठ, आमले, गोखुरू, चकवड, बापची, पीपल, कालीमिरच, हलदी और लोहेका चूर्ण ये सब समान भाग और इन सब औषधियोंका चूर्ण नीमके चूर्णसे आधा भाग लेवे, सबको एकत्र मिलाकर भाँगरेके रसकी भावना देकर सुखा लेवे। प्रतिदिन इसमेंसे एक तोला प्रमाण घृतके साथ अथवा दूधके साथ प्रतिदिन प्रातःकाल सेवन करे और ऊपरसे खैर या विजयसारका क्वाथ पान करे। इसपर कुछ परहेज नहीं है। इस औषधियोंको एक महीनेपर्य्यन्त सेवन करनेसे कुष्ठरोग नष्ट होता है और रसायनके गुण उत्पन्न होते हैं। इसको सेवन करनेवाला मनुष्य सर्व प्रकारके त्वचाके दोष, नीलिका, व्यंग, तिलकालक, अठारह प्रकारके कुष्ठ, सात प्रकारके महाक्षय और सर्व प्रकारके रोगोंसे मुक्त होकर सुखपूर्वक सौ वर्षतक जीता रहता है ॥१६७–१७४॥

त्रिफलाद्यचूर्ण।

त्रिफलातिविषाकटुका निम्बकालिङ्गवचापटोलमागधिकाः। रजनीद्वयपद्ममूर्वा विशालाभूनिम्बानि पलांशानि। दद्यात्त्रिवृतं त्रिगुणं चूर्णमिदं कुष्ठसुप्तिहरम् ॥ १७५ ॥

त्रिफला, अतीस, कुटकी, नीम, कुडा, वच, पटोलपत्र, पीपल, हलदी, दारुहलदी, कमल, मूर्वा, इन्द्रायण और चिरायता ये प्रत्येक औषधि एक २ पल और निसोत ३ पल लेवे, सबको एकत्र पीसकर चूर्ण बनावे। यह चूर्ण—कोढ और सुप्तताको नष्ट करता है ॥ १७५ ॥

पथ्याद्यवटक।

पथ्यां सेन्द्रयवां सकिंशुकफलां सार्कां तथाऽऽवर्त्तिनीं व्याधिघ्नेन च योजितां हुतभुजा सारुष्करां बाकुचीम्। तद्वद्वै कृमिशत्रुणा व्युपगतामेकैकवृद्धामिमां गोमूत्रेण विमृद्य तां च सकलां कृत्वा वटीं भक्षयेत् ॥१७६॥ निहन्ति हतनासिकाकरजकर्णपादांगुलीः क्षरद्रुधिरपूतिपूयपरिजन्तुजग्धव्रणान्। प्रभिन्नचिरलक्षितस्वरकमाशु कुष्ठं महन्निहन्ति कुरुते वपुस्तरुणभास्करार्चिःसमम् ॥ १७७ ॥

हरड, इन्द्रजौ, ढाकके पुष्प, त्रिफला, आक, मेढासिंगी, अमलतास, चीता, भिलावे, बापची और वायविडंग ये प्रत्येक औषधि क्रमसे एकसे एक बढाकर लेवे, सबको एकत्र कूट पीसकर गोमूत्रमें खरल करके एक एक तोलेकी गोली बना लेवे। प्रतिदिन एक गोली खाय। इसको विधिपूर्वक सेवन करनेसे जिन मनुष्योंकी नासिका, हाथ, कान और पावोंकी अँगुली गल गई हैं तथा जिनके अंगोंमेंसे रुधिर, दुर्गंध राध और अनेक प्रकारका स्राव गिरता है, जिनके व्रण कृमियोंके खानेसे दुष्ट हैं, जिनके अंग फट गये हैं और जिनके बहुत दिनोंका कुष्ठ दुःख देता है उनके सर्व प्रकारके विकार नष्ट होकर शरीर तरुण सूर्यके प्रकाशके समान हो जाता है ॥ १७६ ॥ १७७ ॥

तिक्तषट्कघृत।

निम्बं पटोलं दार्वीं दुरालभां तिक्तरोहिणीं त्रिफलाम्। कुर्य्यादर्द्धपलांशान् पर्पटकं त्रायमाणां च ॥१७८॥ सलिलाढकसिद्धानां रसेऽष्टभागस्थिते क्षिपेत् पूते। चन्दनकिराततिक्तकमागधिकात्रायमाणा वा १७९ ॥ मुस्तं वत्सकबीजं कल्कीकृत्यार्द्धकार्षिकान् भागान्। नवसर्पिषश्च षट्पलमेतत्सिद्धं घृतं पेयम् ॥ १८० ॥ कुष्ठं ज्वरमेहार्शोग्रहणीपांड्वामयश्वयथून् हन्ति। पामाविसर्पिपिटिकाकंडूगण्डव्रणान् सद्यः ॥ १८१ ॥

नीम, पटोलपत्र, दारुहलदी, धमासा, कुटकी, त्रिफला, पित्तपापडा और त्रायमाण ये प्रत्येक औषधि दो दो तोले लेकर एक आढक जलमें पकावे, जब पकते पकते जल आठवाँ भाग शेष रह जाय तब उतार कर छान लेवे। फिर इस क्वाथमें चन्दन, चिरायता, पीपल, त्रायमाण, नागरमोथा और इन्द्रजौ

इन औषधिका कल्क छः छः मासे और उत्तम नवीन गायका घी २४ तोले लेवे,सबको एकत्र मिलाकर यथाविधिसे घृतको पकावे । यह घृत-कुष्ठ ज्वर, प्रमेह, बवासीर, संग्रहणी, पाण्डुरोग, सूजन, पामा, विसर्प पिटिका, कण्डू और तत्काल गलगण्डके व्रणोंको नष्ट करता है ॥ १७८-१८१ ॥

पञ्चतिक्तकघृत ।

निम्बं पटोलिं व्याघ्रीं च गुडूचीवासकं तथा । कुर्य्यादशपलान् भागानेकैकस्य तु कुट्टितान् ॥ १८२ ॥ जलद्रोणे विपक्तव्यं यावत्पादावशेषितम् । घृतप्रस्थं पचेत्तेन त्रिफलागर्भसंयुतम् ॥ १८३ ॥ पञ्चतिक्तमिति ख्यातं सर्वकुष्ठविनाशनम् । अशीतिं वातजान् रोगांश्चत्वारिंशच्च पैत्तिकान् ॥ ॥ १८४ ॥ विंशतिं श्लैष्मिकांश्चापि पानादेवापकर्षति । दुष्टव्रणकृमीनर्शः पञ्चकासांश्च नाशयेत् ॥ १८५ ॥

नीम, पटोलपत्र, कटेरी, गिलोय और अडूसा ये प्रत्येक औषधि दश दश पल लेकर कूट लेवे. फिर इन सबको एकत्र एक द्रोण जलमें पकावे । जब पकते पकते जल चौथाई भाग बाकी रह जाय तब उतारकर छान लेवे । फिर इस काथमें एक प्रस्थ उत्तम गायका घी और कल्कके लिये त्रिफलेका चूर्ण मिलाकर विधिपूर्वक घृतको सिद्ध करे । यह पंचतिक्तघृत—सर्व प्रकारके कुष्ठोंको नष्ट करता है तथा अस्सी प्रकारके वातरोग, चालीस प्रकारके पित्तके रोग और वीस प्रकारके कफके रोगोंको पीते ही नष्ट कर देता है । यह घृत—दुष्टव्रण, कृमि, बवासीर और पांचों प्रकारकी खाँसीको दूर करता है॥ १८२॥ ॥ १८३ ॥ १८४ ॥ १८५ ॥

द्वितीयपञ्चतिक्तकघृत ।

निम्बामृतावृषपटोलनिदग्धिकानां पक्वं घृतं क्वथितकल्कयुतं यथावत् । ख्यातं यथोक्तममृतं भुवि पञ्चतिक्तं हन्याद्विसर्पविषमज्वरपांडुकुष्ठान्१८६

नीम, गिलोय, अडूसा, पटोलपत्र और कटेरी इन पांचों औषधियोंके काथ और कल्कके द्वारा यथाविधिसे घृतको पकावे । यह पंचतिक्तघृत—संसारमें अमृतके समान है तथा विसर्प, विषमज्वर, पाण्डु और कुष्ठको नष्ट करता है ॥ १८६ ॥

गुग्गुलुपञ्चतिक्तकघृत ।

पटोलवत्सकातिक्तनक्तमालसहामृताः । निष्काथ्य सलिलद्रोणे पलैर्विंशतिभागिकैः ॥ १८७ ॥ पादशेषे रसे तस्मिन् घृतप्रस्थं विपाचयेत् । कल्कैरक्षसमैर्दारु-त्रिफला-व्यूषणाग्निभिः ॥ १८८ ॥ पृथ्वीप्रातिविषापाठाचव्येन्द्रयवदीप्यकैः । मूर्वाक्षारद्वयाजाजीवचाकृमिहरैर्युतैः ॥१८९॥ कटुकासप्तपर्णाभ्यां पुरस्याष्टपलेन च । कुष्ठानि रक्तपित्तञ्च वीसर्पपूतिकुष्ठताम् ॥ १९० ॥ पानात्प्रशमयेदेतद्गुग्गुलुः पञ्चतिक्तकः । सिद्धमेतेन विधिना सर्पिः प्रस्थं सगुग्गुलम् । पानाभ्यञ्जननस्येषु तच्चोक्तानाप्नुयाद्गुणान् ॥ १९१ ॥

पटोलपत्र कडवे, इन्द्रजौ, करंज, पियावांसा और गिलोय ये २० पल लेकर एक द्रोण जलमें पकावे, जब पकते पकते जल चौथाई भाग बाकी रह जाय तब उतारकर छान लेवे । फिर इस काथमें घृत १ प्रस्थ, तथा कल्कके लिये देवदारु, त्रिफला, त्रिकुटा, चीता, बड़ी इलायची, अतीस, पाढ़, चव्य, इन्द्रजौ, अजवायन, मूर्वा, जवाखार, सज्जी, जीरा, वच, वायविडंग, कुटकी और सतोनाकी छाल इन प्रत्येकका कल्क एक एक तोला और गूगल ३२ तोले लेवे । सबको एकत्र मिलाकर उत्तमविधिसे घृतको पकावे । यह घृत–कुष्ठ, रक्तपित, विसर्प और जिनमें दुर्गंध आती हो ऐसे दुष्ट कुष्ठ इन सबको पान करते ही नष्ट करता है । यह पान अभ्यंग और नस्य कर्म्ममें प्रयोग करनेसे यथोक्त गुणोंको करता है ॥ १८७-१९१ ॥

द्वितीयगुग्गुलुपञ्चतिक्तकघृत ।

निम्बामृतापटोलानां कण्टकार्य्या वृषस्य च । पृथग्दशपलान् भागान्

जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ १९२ ॥ व्यूषणं स्वर्जिकाक्षारं शतपुष्पा च कार्षिका । गर्भे समावाप्य पचेद्गुग्गुलोः पञ्चविंशतिः ॥ १९३ ॥ पलञ्च खादयेदेतद्गुग्गुलुः पञ्चतिक्तकम् । विधिना हन्ति न चिरात्त्वग्दोषानतिविस्तरान् ॥ १९४ ॥ विवर्णस्वापसंकोचं क्लेदवतीः शिरांस्तथा । गण्डमालार्बुदव्यङ्गनाडीकुष्ठभगन्दरान् ॥ १९५ ॥ विषमज्वरहृद्रोगगरदोषविषकृमीन् । प्रमेहासृग्दरोन्माद-शोथ-गुल्मोदराणि च । कामलापांडूरोगांश्च क्षिप्रमेव व्यपोहति ॥ १९६ ॥

नीम, गिलोय, पटोलपत्र, कटेरी और अडूसा ये प्रत्येक औषधि दश दश पल लेकर एक द्रोण जलमें पकावे । जब पकते पकते जल चौथाई भाग बाकी रहजाय तब उतारकर छान लेवे । फिर इस काथमें पहले गुग्गुलुको पकाकर छानले फिर आंचपर गाढ़ा करे जब मावासा बन जाय अनन्तर त्रिकुटा, सज्जी और सौंफ यह प्रत्येक एक एक तोला मिलावे और उत्तम भैंसिया गूगल २५ पल डाल कर पकावे जब पक कर स्वयं शीतल हो जाय तब इसको उत्तम चिकने बासनमें भर कर रख देवे । प्रतिदिन इस पंचतिक्तनामक गूगलको चार तोले प्रमाण सेवन करे । यह गूगल बहुत शीघ्र अत्यंत विस्तृत हुए त्वचाके विकार, विवर्णता, अंगोंका संकोच, क्लेदवती शिरा (अर्थात् जिन नसोंमेंसे क्लेद बहता है), गण्डमाला, अर्बुद, व्यंग, नाडीव्रण, कुष्ठ, भगन्दर, विषमज्वर, हृदयरोग, विषबाधा, गरदोष, कृमि, प्रमेह, रक्तप्रदर, उन्माद, सूजन, गुल्म, उदररोग, कामला और पाण्डुरोगको शीघ्र ही दूर करता है ॥ १९२–१९६ ॥

महातिक्तकघृत ।

सप्तच्छदं प्रतिविषां शम्याकं तिक्तरोहिणीं पाठाम् । मुस्तमुशीरं त्रिफलां पटोलपिचुमन्दपर्पटकान् ॥ १९७ ॥ धन्वयवासं चन्दनमुपकुल्यां पद्मकं रजन्यौ च । षड्ग्रन्थां सविशालां शतावरीं शारिवे चोभे ॥ १९८ ॥ वत्सकबीजं वासां मूर्वाममृतां किराततिक्तञ्च । कल्कान् कुर्य्यान्मतिमान्यष्टयाह्वं त्रायमाणाञ्च ॥ १९९ ॥ कल्कस्य चतुर्भागं जलमष्टगुणं रसोऽमृतफलानाम् । द्विगुणं घृतं प्रदेयं तत्सर्पिः पाययेत्सिद्धम् ॥ २०० ॥ कुष्ठानि रक्तपित्तं प्रबालान्यर्शांसि रक्तवाहीनि । वीसर्पमम्लपित्तं वातासृक् पांडुरोगञ्च ॥ २०१ ॥ विस्फोटकान् सपामानुन्मादान् कामलां ज्वरान् पांडून् । हृद्रोगगुल्मपिटकामसृग्दरं गण्डमालां च ॥२०२॥ हन्यादेतत्सद्यः पीतं काले यथाबलं सर्पिः । योगशतैरप्यजितान्महाविकारान् जयेन्महातिक्तम् ॥ २०३ ॥

सतौना, अतीस, अमलतास, कुटकी, पाढ, नागरमोथा, खस, त्रिफला, पटोलपत्र, नीमकी छाल, पित्तपापडा, धमासा, चन्दन, पीपल, पद्माख, हलदी, दारुहलदी, वच, इन्द्रायण, शतावर, शारिवा, अनंतमूल, इन्द्रजौ, अडूसा, चुरनहार, गिलोय, चिरायता, मुलैठी और त्रायमाण ये प्रत्येक औषधि दो २ तोले लेकर इन सबका कल्क बनावे । कल्कसे चौगुना जल और अठगुना पटोलपत्रोंका काथ लेवे और दुगुना उत्तम घृत लेवे । सबको यथाविधिसे मिला कर विधिपूर्वक घृतको सिद्ध करे । यह सर्व प्रकारके कुष्ठ, रक्तपित्त, जिसमेंसे रुधिर बहता हो और जो अत्यन्त प्रबल हो ऐसी बवासीर, विसर्प, अम्लपित्त वातरक्त, पाण्डुरोग, विस्फोटक, पामा, उन्माद, कामला, ज्वर, हृदयरोग, गुल्म, पिडिका, रक्तप्रदर और गण्डमाला इन सब रोगोंको बलानुसार पान किया हुआ घी तत्काल नष्ट कर देता है । जो भयंकर रोग सैकडों औषधियोंसे भी आरोग्य नहीं होते उनको यह महातिक्तक घृत अवश्य दूर कर देता है ॥१९७–२०३॥

वज्रकघृत ।

वासा–गुडूची-त्रिफलापटोलकरञ्जनिम्बासनकृष्णवेत्रम् । तत्क्राथकल्केन

घृतं विपक्कं तद्वज्रकं कुष्ठहरं प्रदिष्टम् ॥ २०४ ॥ विशीर्णकर्णाङ्गुलिहस्तपादः कम्पार्दितो भिन्नगलोऽपि मर्त्यः । पौराणिकीं कान्तिमवाप्य जीवेद्व्याधिको वर्षशतं च कुष्ठी ॥ २०५ ॥

अडूसा, गिलोय, त्रिफला, पटोलपत्र, करंज, नीमकी छाल, विजयसार, कूठ और वेंत इनके काथ और कल्कके द्वारा घृतको पकावे तो वज्रकघृत सिद्ध होता है । इस वज्रकघृतसे गले हुए कर्ण, हाथ, पांवोंकी अंगुली, कम्प, अर्दित और भिन्नगल ऐसे जो मनुष्य हैं वे तथा कुष्ठरोगी उत्तम कांतिको धारण कर सौ वर्षतक जीते हैं ॥ २०४ ॥ २०५ ॥

महावज्रकघृत ।

वासा-गुडूची-त्रिफलापटोलनिदग्धिकानिंबकरञ्जतोये । वासादिकल्केन तु सिद्धमेतद्धृतं महावज्रकमादिशन्ति ॥ २०६ ॥ तन्मासमात्रञ्च निषेव्यमाणो हिताशनो नातिचिरेण कुष्ठी । विशीर्णकर्णांगुलिनासिकोऽपि भवेत्स संपूर्णतनुः शरीरी ॥ २०७ ॥ उदीर्णवेगानपि च प्रमेहांश्चिरप्रवृत्तान्विषमज्वरांश्च । तदेव सर्पिः सुजनैः प्रयुक्तं विजित्य कुष्ठं बलमादधाति ॥ २०८ ॥

अडूसा, गिलोय, त्रिफला, पटोलपत्र, कटेरी, नीम और करंज इनके काथमें इनही औषधियोंके कल्कके द्वारा घृतको सिद्ध करे । इसको महावज्रकघृत कहते हैं । इसको एक महीनेपर्यंत सेवन करनेसे हितकारक भोजन करनेवाला मनुष्य शीघ्र ही कुष्ठरोगसे मुक्त होता है । जिनके कान, अंगुली और नासिका गलगई हैं वे इस घृतके प्रभावसे सम्पूर्ण अंगयुक्त होकर अपूर्व शोभाको धारण करते हैं । तथा अत्यन्त वेगको प्राप्त हुआ प्रमेहरोग और बहुत दिनोंके उत्पन्न हुए विषमज्वरको भी नष्ट करता है । यह घृत श्रेष्ठ मनुष्यों करके प्रयोग किया हुआ कुष्ठको नष्ट करता और बलको देता है ॥ २०६-२०८ ॥

खदिराद्यघृत ।

खदिरारग्वधव्योषत्रिवृद्दन्ती सचित्रकम् । पटोलत्रिफलारिष्टहरिद्रावाकुचीफलम् ॥ २०९ ॥ कटुकातिविषापाठा त्रायन्ती धन्वयासकम् । कुष्ठं करञ्जबीजानि शारिवे द्वे सवत्सके ॥ २१० ॥ भल्लातकविडङ्गानि गुग्गुलोः कल्कसंयुतम् । पञ्चतिक्तकषायेण सर्पिः सिद्धं पिबेन्नरः ॥ २११ ॥ विषवीसर्पविस्फोटकंडूकुष्ठव्रणानिच । दद्रूकिटिभकुष्ठानि गलगण्डविचर्चिकाः । पानतः शमयत्याशु वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ २१२ ॥

खैर, अमलतास, त्रिकुटा, निसोत, दंती, चीता, पटोलपत्र, त्रिफला, नीम, हलदी, बापची, कुटकी, अतीस, पाढ, त्रायमाण, धमासा, कूठ, करंजके बीज, शारिवा, अनंतमूल, इन्द्रजौ, भिलावां, वायविडंग और गूगल इनके कल्कके द्वारा पंचतिक्तके काथमें घृतको सिद्ध करे । यह घृत-विषविकार, विसर्प, विस्फोट, कण्डू, कुष्ठ, व्रण, दद्रु, किटिभ, कुष्ठ, गलगण्ड और विचर्चिका इन सबको केवल पान मात्रसे नष्ट करता है, जिसप्रकार इन्द्रका वज्र वृक्षको नष्ट कर देता है ॥ २०९ ॥ २१० ॥ २११ ॥ २१२ ॥

महाखदिरघृत ।

खदिरस्य तुलाः पञ्च शिंशपासनयोस्तुले । तुलार्द्धं सर्व एवैते करञ्जारिष्टवेतसाः ॥ २१३ ॥ पर्पटं कुटजं चैव वृषः कृमिहरस्तथा । हरिद्रे कृतमालश्च गुडूचीत्रिफलात्रिवृत् २१४॥ सप्तपर्णं च संकुट्य चतुर्द्रोणेन वारिणा । पक्त्वा कषायं संगृह्य चतुर्भागावशेषितम् ॥ २१५ ॥ तेन क्राथेन कुशलो घृतस्यार्द्धाढकं पचेत् । कल्कैः कृतैर्महातिक्तैर्द्रव्यैरर्द्धपलोन्मि-

तैः ॥ २१६ ॥ महाखदिरमेतद्धि कुष्ठिनामुत्तमं घृतम् । अष्टादशविधं कुष्ठं पानादेव व्यपोहति ॥ २१७ ॥

खैर ५ तुला परिमाण, सीसम और विजयसार १ तुला परिमाण, तथा करंज, नीम, बेंत, पित्तपापडा, कुडेकी छाल, अडूसा, वायविडंग, हलदी, दारुहलदी, अमलतास, गिलोय, त्रिफला, निसोत और सतोना ये सब मिश्रित आधे तुला परिमाण लेवे, सबको कूटकर चार द्रोण जलमें पकावे जब पकते२ जल चौथाई भाग बाकी रहजाय तब उतारकर छान लेवे फिर इस काथमें आधे आढक परिमाण घृत और महातिक्त घृतकी औषधियोंका कल्क दो २ तोले डालकर उत्तम विधिसे घृतको पकावे। यह महाखदिर घृत कुष्ठ रोगियोंके लिये उत्तम औषधि है। इसको केवल पान करनेसे ही अठारह प्रकारके कुष्ठ नष्ट होते हैं ॥ २१६ ॥ ॥ २१७ ॥

मेषशृङ्ग्याद्यतैल ।

मेषशृङ्गीश्वदंष्ट्राशार्ङ्गेष्टागुडूचीसिद्धं कृतम् । तैलमिदं कुष्ठीनां पानाभ्यङ्गयोर्विदधीत ॥ २१८ ॥

मेढाशिंगी, गोखुरू, काकजंघा और गिलोय इनके क्वाथ और कल्कके द्वारा तेलको सिद्ध करे। यह तैल कुष्ठरोगियोंको पान और अभ्यंग कर्म्ममें प्रयोग करना चाहिये ॥ २१८ ॥

वज्रकतैल ।

सप्तपर्णकरञ्जार्कमालतीकरवीरजम् । मूलं स्नुहीशिरीषाभ्यां चित्रकास्फोटयोरपि ॥ २१९ ॥ करञ्जबीजं त्रिफला त्रिकटू रजनीद्वयम् । सिद्धार्थकं विडङ्गानि प्रपुन्नाटश्च संहरेत् ॥२२०॥ मूत्रपिष्टैः पचेत्तैलमेभिः कुष्ठविनाशनम् । अभ्यंगाद्वज्रकं नाम नाडीदुष्टव्रणापहम् ॥ २२१ ॥

१ शार्ङ्गेष्टा काकजङ्घा ।

सतवन, करंज, आक, मालती, कनेर, थूहरकी जड, सिरसकी जड, चीता, कोइली, करंजके बीज, त्रिफला, त्रिकुटा, हलदी, दारुहलदी, सफेद सरसों, वायविडंग और पमारके बीज इन सब औषधियोंको गोमूत्रमें पीसकर इनके द्वारा तेलको पकावे। यह वज्रक तैल-अभ्यंग मात्रसे सर्व प्रकारके कुष्ठ, नाडीव्रण और दुष्टव्रणको नष्ट करता है ॥ २१९ ॥ ॥ २२० ॥ २२१ ॥

महावज्रकतैल ।

एरण्डतार्क्ष्यघननीपकदंबभार्गीकपित्थवेल्लफलिनीसुरवारुणीभिः । निर्गुण्डिपुष्करसुराह्वयस्वर्णदुग्धी श्रीवेष्टगुग्गुलुशिलाहरितालमिश्रैः ॥२२२॥ तुल्यैस्त्वगर्कदुग्धैः सिद्धं तैलं महावज्रम् । अतिशायितवज्रकगुणं श्वित्रार्शो ग्रन्थिमालाघ्नम् ॥ २२३ ॥

अण्डकी जड, शाल, नागरमोथा, कदम्ब, धारा कदम्ब, भारंगी, कबीला, वायविडंग, फूलप्रियंगु, इन्द्रायण, निर्गुण्डी, पोहकरमूल, देवदारु, स्वर्णदुग्धी, (पीले दूधकी कटेरी या सत्यानासी कटेरी), गन्धविरोजा, गूगल, मैनसिल और हरिताल, इनके कल्कके द्वारा आककी छालके स्वरस और आकके दूधमें तेलको पकावे यह महावज्रकतैल वज्रके समान अत्यन्त गुणवाला है तथा श्वित्रकुष्ठ, बवासीर और ग्रन्थिमाला इनको नष्ट करता है ॥ २२२॥२२३ ॥

तृणतैल ।

चतुर्गुणे तृणरसे कटुतैलं विपाचयेत् । मञ्जिष्ठारुङ्निशाचक्रमर्दारग्वधपल्लवैः ॥ २२४ ॥ एतत्सिद्धाग्निना साध्यं वर्णदं कान्तिदायकम् । अष्टादशसु कुष्ठेषु शस्यते गात्रम्रक्षणात् ॥ दद्रुं विचर्चिकां पामां हन्ति सिध्मं विशेषतः ॥ २२५ ॥

रोहिस सुगन्धित तृणोंके चौगुने रसमें कडवे तेलको पकावे और उसमें मजीठ, कूठ, हलदी, चकवड और अमलतासके पत्ते इनका कल्क डाल देवे। जब यह तेल सिद्ध होजाय तब उतार कर उत्तम पात्रमें करके

रखदेवे। यह तेल-वर्णको उज्ज्वल करनेवाला, कांतिको उत्पन्न करनेवाला और केवल शरीर पर मलनेसे अठारह प्रकारके कुष्ठोंको नष्ट करता है तथा दाद विचर्चिका पामा और विशेष करके सिध्मको नष्ट करता है ॥ २२४ ॥ २२५ ॥

बृहत्तृणतैल।

दार्वीविडंगं हयमारमूलं श्यामा च मूलं कृतमालकस्य। कुसुम्भहेमोत्पलकासमर्दशिरीषयष्टीद्रुयगन्धसिद्धाः ॥ २२६ ॥ निंबं वचाचन्दनपद्मकं च कुष्ठं निशासैन्धवचक्रमर्दाः। मञ्जिष्ठमांसी सुरदारुलाक्षासिद्धार्थकं वाकुचिबीजमूर्वे ॥ २२७ ॥ गायत्रिसारं सुरसापटोलं यवानिकाबीजकरञ्जबीजम्। द्रव्यैः समस्तैर्विधिना विपक्कं कर्षप्रमाणैः परिकीर्त्तितैश्च ॥ २२८ ॥ प्रस्थं च तैलं सितसर्षपानां दत्त्वा रसं षड्गुणकं तृणस्य। शनैः पचेत्ताम्रमये कटाहे उद्धृत्य तैलं परिपाच्यमानम् ॥ २२९ ॥ पीत्वाथ वा नस्यविधौ प्रयोज्यं सिध्मं महादद्रुकिलासकुष्ठम्। विचर्चिकाव्यंगविसर्पपामा निहन्ति नूनं कुथितं समस्तम्। बिभर्त्ति रूपं कमनीयमन्यैर्वर्णं तथा कान्तिकरं मनुष्यम् ॥२३०॥

दारुहलदी, वायविडंग, कनेरकी जड, अनन्तमूल, अमलतासकी जड, कसूम, नागकेशर, कमल, कसौंदी, सिरस, मुलैठी, अगर, तगर, नीम, वच, चन्दन, पद्माख, कूठ, हल्दी, सैंधानमक, चकवड, मजीठ, बालछड, देवदारु, लाख, सफेद सरसों, बावचीके बीज, मूर्वा खैरसार, तुलसी, पटोलपत्र, अजवायन और करंजके बीज इन प्रत्येक औषधिका कल्क एक २ तोला, सफेद सरसोंका तेल १ प्रस्थ और रोहिस तृणका स्वरस ६ प्रस्थ लेवे, सबको यथा विधिसे मिलाकर उत्तम तांबेके पात्रमें पकावे। इस तेलको पान करनेसे अथवा नस्य कर्ममें प्रयोग करनेसे सिध्म, महादद्रु, किलासकुष्ठ, विचर्चिका, व्यंग विसर्प पामा और सर्व प्रकारके गलित त्वचाके समग्र विकार शमन होते हैं। यह तेल-वर्णको उज्ज्वल करनेवाला, कांतिको उत्पन्न करनेवाला और अपूर्व शोभाको प्रकट करनेवाला है ॥ २२६-२३० ॥

मरिचाद्यतैल।

मरिचालशिलाह्वार्कपयोऽश्वारिजटात्रिवृत्। शकृद्रसाविशालारुङ्गनिशायुग्दारुचन्दनैः ॥ २३१ ॥ कटुतैलं पचेत्प्रस्थं द्व्यक्षैर्विषपलान्वितैः। सगोमूत्रैस्तदभ्यङ्गाद्दद्रुकुष्ठविनाशनम्। सर्वेष्वपि च कुष्ठेषु तैलमेतत्प्रशस्यते ॥ २३२ ॥

कालीमिरच, हरिताल, मैनशिल, आकका दूध, कनेरकी जड, निसोत, गोबरका रस, इन्द्रायण, कूठ, हलदी, दारुहलदी, देवदारु और चन्दन यह प्रत्येक औषधि एक एक तोला और मीठा तेलिया ४ तोले लेवे सबको मिलाकर यथा विधिसे एक प्रस्थ कडवे तेलको पकावे। इस तेलमें पकते समयमें ४ सेर गोमूत्र डाले सिद्ध होजाने पर फिर इसकी मालिस करनेसे दाद और कुष्ठ नष्ट होते हैं। यह तेल सर्वप्रकारके कुष्ठोंमें हितकारी है ॥ २३१ ॥ २३२ ॥

द्वितीयमरिचाद्यतैल।

मरिचं त्रिवृता दन्ती क्षीरमार्कं शकृद्रसः। देवदारुहरिद्रे द्वे मांसिकुष्ठं सचन्दनम् ॥ २३३ ॥ विशालाकरवीरश्च हरितालं मनःशिला। चित्रको लाङ्गलीलाक्षा विडङ्गं चक्रमर्दकम् ॥ २३४ ॥ शिरीषं कुटजो निम्बं सप्तपर्णस्नुहामृताः। शम्याको नक्तमालोऽब्दः खदिरो वाकुची वचा ॥ २३५ ॥ ज्योतिष्मती च पलिका विषस्य द्विपलं भवेत्। आढकं कटुतैलस्य गोमूत्रश्च चतुर्गुणम् २३६॥ मृत्पात्रे लोहपात्रे वा शनैर्मृद्वग्निना पचेत्। हन्यात्तैलवरं ह्येतत्प्रलेपात् कौष्ठिकान् व्रणान् ॥ २३७ ॥ पामाविचर्चिकाकंडूदद्रुविस्फोटकानि च।

वलयः पलितं छाया नीली व्यंगं त-थैव च ॥ २३८ ॥ अभ्यङ्गेन प्रणश्य-न्ति सौकुमार्य्यश्च जायते । प्रथमे वयसि स्त्रीणां यासां नस्यं प्रदीयते । जरामप्यजरां प्राप्य न स्तना यान्ति नम्रताम् ॥ २३९ ॥

कालीमिरच, निसोत, दन्ती, आकका दूध, गोबरका रस, देवदारु, हल्दी, दारुहल्दी, बालछड, कूठ, चन्दन, इन्द्रायण, कनेर, हरिताल, मैनशिल, चीता, कलिहारी, लाख, वायविडंग, चकवड, सिरस, कुडेकी छाल, नीमकी छाल, सतोना, थूहर, गिलोय, अमलतास, करंज, नागरमोथा, खैर, बावची, वच और मालकांगुनी ये प्रत्येक औषधि चार २ तोले, मीठा विष ८ तोले, कडवा तेल १ आढक और गोमूत्र ४ आढक परिमाण लेवे । सबको मिलाकर यथाविधिसे मिट्टीके पात्रमें या लोहेके पात्रमें धीरे धीरे मन्द मन्द अग्निसे तेलको पकावे । इस तेलका लेप करनेसे कुष्ठके व्रण नष्ट होते हैं । यह तेल-पामा, विचर्चिका, कंडू, दद्रु, विस्फोटक, वली, पलित, छाया, नीलिका और व्यंग इन सबको केवल अभ्यंग मात्रसे नष्ट करता है तथा सुकुमारताको उत्पन्न करता है । प्रथम अवस्थामें जिन स्त्रियोंको इस तेलका नास दिया जाता है तो जराको प्राप्त होने पर भी उनके स्तन नम्रताको प्राप्त नहीं होते ॥ २३३–२३९ ॥

तृतीयमरिचाद्यतैल ।

मरिचं पिप्पलीकुष्ठमर्कक्षीरं शकृद्र-सः । देवदारु हरिद्रे द्वे मांसीलोहित-चन्दनम् ॥२४० ॥ विशाला करवीर-श्च हरितालं मनःशिला । एतैरर्द्धप-लैर्भागैर्गृहीतैः श्लक्ष्णपिष्टितैः ॥ २४१॥ कटुतैलस्य च प्रस्थं गोमूत्रं स्याच्चतु-र्गुणम् । मृद्भाण्डे लोहभाण्डे वा शनै-र्मृद्वग्निना पचेत् ॥ २४२ ॥ तत्तैलं म-धुपर्णीभ्यां निषण्णमवतारयेत् । एते-नैवोपशाम्यन्ति कोमला त्वक् प्रजा-यते ॥२४३॥ प्रस्थितानि च श्वित्राणि तैलेनानेन म्रक्षयेत् । अपि त्रिवार्षिकं श्वित्रं शमं नयाति तत्क्षणात् ॥ ॥ २४४॥ बलीवर्दस्तुरङ्गो वा गजो वा व्याधिपीडितः । त्रिभिर्बस्तिभिरत्य-र्थं भवेन्मारुतविक्रमः ॥ २४५ ॥ या-साञ्च दीयते नस्यं स्त्रीणां प्रथमयौ-वने । जरासमयमासाद्य स्तना नो यान्ति विश्लथम् ॥ २४६ ॥ पुरुष-स्यापि यस्येदं दीयते नस्यकर्म्मणि । योजनानि व्रजत्यष्टौ श्रमं नाप्नोत्यसौ पथि ॥ अष्टादशानां कुष्ठानां तैल-मेतद्विनाशनम् ॥ २४७ ॥

कालीमिरच, पीपल, कूठ, आकका दूध, गोबरका रस, देवदारु, हलदी, दारुहलदी, बालछड, लालचन्दन, इन्द्रायण, कनेर, हरिताल और मैनशिल ये प्रत्येक औषधि दो दो तोले लेकर बारीक पीस लेवे तथा कडवा तेल १ प्रस्थ और गोमूत्र ४ प्रस्थ सबको एकत्र मिलाकर यथाविधिसे तेलको मिट्टीके बासनमें अथवा लोहेके बासनमें मन्द मन्द अग्निसे धीरे धीरे पकावे । फिर इस तेलको गिलोयसे सुवासित करके उतार लेवे । इस तेलका लेप करनेसे–समस्त त्वचाके विकार नष्ट होते हैं और शरीरकी त्वचा कोमल हो जाती है, इस तेलको वारम्वार लगानेसे तत्काल तीन वर्षका पुराना भी श्वित्रकुष्ठ नष्ट हो जाता है । इस तेलकी केवल तीन बस्ति प्रदान करनेसे वातसे पीडित वृषभ, घोडे और हाथी भी व्याधियोंसे रहित होकर पवनके समान पराक्रमको प्राप्त होते हैं । इस तेलका प्रथम अवस्थामें जिन स्त्रियोंको नास दिया जाता है उनके स्तन इसके प्रभावसे वृद्ध अवस्थाके प्राप्त होनेपर भी शिथिल नहीं होते हैं । और जिन पुरुषोंको इस तेलका नास दिया जाता है वे मनुष्य इस तेलके प्रभावसे आठ योजन तक बराबर चले जाते हैं । और कुछ भी श्रम मालूम नहीं होता । यह तेल–अठारह प्रकारके कुष्ठोंको नष्ट करनेवाला है ॥ २४०–२४७ ॥

चतुर्थमरिचाद्य तैल ।

गुडूचीदारुकुष्ठञ्च शृङ्गवेरं पुनर्नवा । रास्नाबलामातुलुङ्गं त्रिफलांशं पृथक्

पृथक् ॥ २४८ ॥ जलद्रोणे समावाप्य पादशेषं समुद्धरेत् । विपाच्य तद्रसं ग्राह्यं कल्कानेतान् प्रदापयेत् ॥२४९॥ मरिचं त्रिफलां दन्तीमर्कक्षीरं शकृद्रसः । दारुकुष्ठं हरिद्रे द्वे लोमसी रक्तचन्दनम् ॥ २५० ॥ एतेषां पलिकान्भागान्विषस्यार्द्धपलं भवेत् । गोमूत्रे पेषितं सर्वं सुसूक्ष्मन्तु समाचरेत् ॥ २५१ ॥ कटुतैलपलं त्रिंशच्छनैर्मृद्वग्निना पचेत् । एतन्नस्यं प्रदातव्यं सर्वरोगापहं शुभम् ॥ २५२ ॥ दन्तरोगेषु सर्वेषु शिरोरोगे गलग्रहे । पूतिनाशे पूतिमुखे तथैवार्द्धावभेदके । गलगण्डे मुखव्यङ्गे तथैव कर्कशत्वचि ॥ २५३ ॥ प्रथमे वयसि स्त्रीणां नस्यं देयं यथाविधि । न पतन्ति स्तनास्तासां सौकुमार्य्यश्च जायते ॥ २५४ ॥ पुरुषस्याथवा नस्यं दीयते यस्य कस्यचित् । स याति योजनान्यष्टौ न श्रमं मन्यते क्वचित् ॥ २५५ ॥ दद्रुकिटिभकुष्ठानि मण्डलानि विचर्चिकाः । म्रक्षणादेव शाम्यन्ति ये च शाखाश्रया गदाः ॥ २५६ ॥ वातभग्नस्तुरङ्गो वा वृषो वा वायुपीडितः । वातामयाभिभूतो यः पुरुषो मन्दगोऽपि वा ॥ बलवेगो भवेत्तेषां बस्तिभिश्च त्रिभिस्त्रिभिः ॥ २५७ ॥ शीर्णकर्णाङ्गुलिघ्राणः पिबेदग्निबलेन यः । न विकारं तथा तस्य भवेद्देहः पुनर्नवः ॥ २५८ ॥

गिलोय, देवदारु, कूठ, अदरख, पुनर्नवा, रायसन, खिरैंटी, विजौरानींबू और त्रिफला ये प्रत्येक औषधि समान भाग लेकर एक द्रोण जलमें पकावे जब पकते २ जल चौथाई भाग बाकी रहजाय तब उतार कर छान लेवे । फिर इस काथमें कालीमिरच, त्रिफला, दंती, आकका दूध, गोबरका रस, देवदारु, कूठ, हलदी, दारुहल्दी, काकजंघा और लालचन्दन ये प्रत्येक औषधि चार २ तोले और मीठा विष दो तोले सबको गोमूत्रमें बारीक पीसकर ३० तोले कडवे तेलमें धीरे २ मंद २ अग्निसे पकावे । इस तेलकी नास देनेसे सर्वप्रकारके रोग नष्ट होते हैं । यह तेल–सर्वप्रकारके दन्तरोग, शिरोरोग, गलग्रह, जिनके नासिकामें दुर्गन्ध आती है; जिनके मुखमें दुर्गन्ध आती है, अर्धावभेदक, गलगण्ड, मुखकी झांई और त्वचाकी कर्कशता इन सब विकारोंको शमन करता है । जिन स्त्रियोंको प्रथम अवस्थामें इस तेलका नास दिया जाता है उनके इस तेलके प्रभावसे कदापि स्तन नहीं गिरते हैं तथा सुकुमारता उत्पन्न होती है और इस तेलका जिस पुरुषको नास दिया जाता है वह मनुष्य इस तेलके प्रभावसे विनाश्रम आठ योजन तक चला जाता है एवं दद्रु, किटिभकुष्ठ, मण्डलकुष्ठ और विचर्चिका ये सब विकार इस तेलके लगाने मात्रसे ही शमन हो जाते हैं और सम्पूर्ण शाखाश्रयगत रोग नष्ट होते हैं । जिन घोडोंके वातसे अंग टूट गये हैं, जो वृषभ वायुसे पीडित हैं और जिन मनुष्योंकी अत्यन्त वायुसे दुःखित होनेके कारण इन्द्रियें शिथिल होगई हैं उनके केवल तीन बस्ति लगानेसे शरीर निरोग होकर बल और बेगकी वृद्धि होती है । जिन मनुष्योंके कान, अंगुली और नासिका गल गई हैं वे मनुष्य यदि इस तेलको अग्निके बलानुसार सेवन करें तो उनके शरीरमें किसी प्रकारका विकार नहीं रहता और शरीर फिरसे नवीन होजाता है ॥ २४८–२५८ ॥

विषतैल ।

नक्तमालं हरिद्रे द्वे चार्कं तगरमेव च । करवीरं वचाकुष्ठमास्फोतं रक्तचन्दनम् ॥ २५९ ॥ मालती सप्तपर्णश्च मञ्जिष्ठा सिन्दुवारकम् । एषामर्धपलान्भागान्विषस्यापि पलं भवेत् ॥ ॥ २६० ॥ चतुर्गुणे गवां मूत्रे तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २६१ ॥ श्वित्रविस्फोटकिटिभकीटलूताविचर्चिकाः । कण्डूकच्छूविकाराश्च ये व्रणा विषदूषिताः ॥ विषतैलमिदं नाम सर्वव्रणविशोधनम् ॥ २६२ ॥

करंज, हलदी, दारुहलदी, आकका दूध, तगर, कनेर, वच, कूठ, कोइली, लालचन्दन, मालती, सतौना, मजीठ और समालु ये प्रत्येक, औषधि दो २ तोले मीठाविष ४ तोले इन सबको चौगुने गोमूत्रमें डालकर एक प्रस्थ तेलको पकावे। श्वित्रकुष्ठ, विस्फोट, किटिभ, कृमि, लूता, विचर्चिका, कण्डू, कच्छुविकार और जो व्रण विषसे दूषित हैं उन सबको यह विषतैल अवश्य दूर करदेता है। यह तैल सर्वप्रकारके व्रणोंको शुद्ध करता है ॥ २५९-२६२ ॥

सोमराजीतैल ।

सोमराजिहरिद्रे द्वे सर्षपारग्वधं गदम् । करञ्जैडगजाबीजं गर्भं दत्त्वा विपाचयेत् ॥ २६३॥ तैलं सर्षपसंभूतं नाडीदुष्टव्रणापहम् । अनेनाशु प्रशाम्यन्ति कुष्ठान्यष्टादशैव तु ॥ २६४॥ नीलिकापिडिकाव्यंगं गम्भीरं वातशोणितम् । कण्डून्यच्छप्रशमनं कच्छूपामाविनाशनम् ॥ २६५ ॥

वापची, हलदी, दारुहलदी, सरसों, अमलतास, कूठ, करंज और चकवडके बीज इन औषधियोंके कल्कके द्वारा सरसोंके तेलको पकावे । यह तेल नाड़ीव्रण, दुष्टव्रण और अठारह प्रकारके कुष्ठोंको शीघ्र ही नष्ट करता है। तथा नीलिका,पिडिका,व्यंग (झांई), गम्भीर वातरक्त, कण्डू, न्यच्छ, कच्छू, और पामारोगको दूर करता है ॥ २६३-२६५ ॥

श्वेतकरवीराद्यतैल ।

श्वेतकरवीरमूलं विषांशसाधितं गवां मूत्रे । चर्मदलसिध्मपामाविस्फोटकिटिभजित्तैलम् ॥ २६६ ॥

सफेद कनेरकी जड और मीठाविष इनके कल्कके द्वारा गोमूत्रमें तेलको पकावे । यह तेल चर्म्मदल, सिध्म, पामा,विस्फोट और किटिभकुष्ठको नष्ट करता है ॥ २६६ ॥

गण्डीराद्यतैल ।

गण्डीरिकाचित्रकमार्कवार्ककुष्ठद्रुमत्वक्लवणैस्समूत्रैः। तैलं पचेन्मण्डलदद्रुकुष्ठदुष्टव्रणारूकिटिभापहारि२६७॥

गण्डीर (समष्ठिलवृक्ष अथवा थूहर), चीता, आक, हुलहुल, कूठकी छाल और सैंधानमक इनके कल्कके द्वारा गोमूत्रमें तेलको पकावे। यह तेल मंडल, दद्रु, कुष्ठ, दुष्टव्रण और किटिभकुष्ठको दूर करता है ॥ २६७ ॥

स्नुहाद्यतैल ।

स्नुहीक्षीरं विडंगानि अर्कक्षीरं च लांगली । बलापलाशबीजानि कोशातक्योऽथ पिप्पली ॥ २६८॥ सिद्धं तैलन्तु गोमूत्रं कुष्ठानां नाशनं परम् । पामापहरणं प्रोक्तं पूयघ्नं व्रणरोपणम् ॥ २६९ ॥

थूहरका दूध, वायविड़ंग, आकका दूध, कालिहारी, खिरैंटी, ढाकके बीज, तोरई और पपिल इनके कल्क के द्वारा गोमूत्रमें तेलको पकावे । यह तेल, कुष्ठको नाश करनेवाला,पामाको दूर करनेवाला,राधको हरनेवाला और व्रणको भरनेवाला है २६८ ॥ २६९ ॥

कनकबिन्दुनामारिष्ट ।

खदिरकषायद्रोणं कुम्भे घृतभाविते समावाप्य । प्रक्षेप्याः पृथक् पलिकाः सर्वास्तु चूर्णितास्तस्मिन् ॥ २७० ॥ त्रिफलात्रिकटुकरजनी मुस्तारुष्करविडङ्गवाकुचिकाः । सुवर्णत्वक् छिन्नरुहा धातकी मधुशतपलं मासम् ॥ २७१ ॥ विदधीत धान्यमध्ये प्रातःप्रातः पिबेत्ततो युक्त्या । मासेन महाकुष्ठं हन्त्यनल्पश्च पक्षेणार्शः ॥ ॥ २७२ ॥ श्वासभगन्दरकासाकिलासप्रमेहशोफांश्च । स भवति कनकवर्णः पीत्वारिष्टं कनकबिन्दुश्च ॥ २७३ ॥

खैरका काथ एकद्रोण परिमाण लेकर घीके चिकने बासनमें भरकर रख देवे, फिर उसमें त्रिफला, त्रिकुटा, हलदी, नागरमोथा, भिलावे,वायविडंग,बापची धतूरेकी छाल, गिलोय और धायके फूल इनका चूर्ण चार ४ तोले और शहद ४०० तोले डाल देवे । इसको एक महीनेपर्य्यन्त धानोंके ढेरमें गाड देवे फिर

प्रतिदिन प्रातःकाल विधिपूर्वक पान करे। यह औषधि एक महीनेमें कुष्ठको नष्ट करती है। एक पक्षमें बवासीरको दूर करदेती है। तथा श्वास, भगन्दर, खाँसी, किलास, प्रमेह और सूजन ये सब रोग शमन होते हैं। जो मनुष्य इस कनकबिन्दुअरिष्टका अभ्यास करता है उसका शरीर सुवर्णके समान हो जाता है ॥ २७१-२७३ ॥

पथ्यापथ्य।

पक्षात्पक्षाच्छर्दनान्यभ्युपेयान्मासान्मासाच्छोधनं चाप्यधस्तात्। त्र्यहात्त्र्यहान्नस्यानिष्ठीवनश्च मासेष्वसृङ्मोक्षयेत षट्सु षट्सु ॥ २७४ ॥

कुष्ठरोगमें एक एक पक्षके बाद वमन, एक एक महीनेमें विरेचन, तीन २ दिनमें नस्य और निष्ठीवन इसी प्रकार छः छः महीनेमें रक्तमोक्षण कराना चाहिए ॥ २७४ ॥

शालिषष्टिकगोधूमयवमुद्गादयो हिताः। पुराणाः कुष्ठिनां तिक्तं शाकं जांगलसंयुतम् ॥ २७५ ॥

कुष्ठरोगमें शालिधानके चावल, साठीके चावल, गेहूँ जौ और मूंग आदि ये सब पुराने हितकारी हैं तथा जांगल देशके जीवोंके मांसके साथ कडवे शाक पथ्य हैं ॥ २७५ ॥

नीचरोमनखो यस्तु नित्यमौषधतत्परः। योषिन्मांससुरावर्जी कुष्ठी कुष्ठादपोहति ॥ २७६ ॥

जो कुष्ठरोगी रोम और नखको सदैव काटता रहता है जो नित्य औषधि सेवन करता है और जो स्त्री मांस एवं मदिराका सेवन नहीं करती वह अवश्य कुष्ठसे मुक्त होजाती है ॥ २७६ ॥

श्वित्रकुष्ठकी चिकित्सा।

श्वित्रिणो हतदोषस्य हतरक्तस्य चाऽसकृत्। खदिरांबुयवान्नानां तृप्तस्य मलपूरसः। सगुडः शस्यते पाने यवागूमण्डभोजिनः ॥ २७७ ॥

श्वित्रकुष्ठरोगीके वारंवार रक्तमोक्षण कराकर दोषोंको हरण करे और खैरका क्राथ तथा जौका अन्न देवे तृप्त होनेके पश्चात् कठूमरके रसमें गुड डालकर पीनेको देवे और खानेके लिये मंडके साथ यवागू देवे ॥ २७७ ॥

अशुद्धे तत्र ये स्फोटा जायन्ते तांश्च कण्टकैः। भित्त्वा लेपैः प्रदेहैस्तान् क्षाराग्निभ्यां प्रसाधयेत् ॥ २७८ ॥

श्वित्रकुष्ठमें जो अशुद्ध स्फोटक हों और उनमें काटे उत्पन्न होजायँ तो उनको अनेकप्रकारके लेपादिकसे फोडे तथा क्षार और अग्निके द्वारा चिकित्सा करे ॥ २७८ ॥

खादिरामलककषायं बाकुचिबीजान्वितं पिबेन्नित्यम्। शङ्खेन्दुकुन्दधवलं श्वित्रं हन्तीह तच्छीघ्रम् ॥ २७९ ॥

खैर और आमलेके क्वाथमें बावचीके बीजोंका चूर्ण डालकर नित्य पान करनेसे शंख, चन्द्र और कुन्दके समान श्वेत श्वित्रकुष्ठ भी शीघ्र नष्ट हो जाता है ॥ २७९ ॥

कुडवमवल्गुजबीजं हारितालचतुर्थभागसंमिश्रम्। मनःशिलातोलकार्द्धं गुञ्जाफलमग्निमूलश्च ॥ गोमूत्रेण च पिष्टं सवर्णकरणं परं श्वित्रे ॥२८०॥

बावचीके बीज १६ तोले, हरिताल ४ तोले, मैनशिल, चौंटली और चीतेकी जड ये प्रत्येक औषधि छः छः मासे लेकर गोमूत्रमें पीसकर लेप करनेसे श्वित्र कुष्ठ नष्ट होकर शरीरके वर्णके समान वर्ण हो जाता है ॥ २८० ॥

दग्ध्वा च गोः शकृत्क्षारं तन्मूत्रेणैव गालितम्। प्रच्छितं बर्हिपित्ताक्तं सद्यः सावर्ण्यमाप्नुयात् ॥ २८१ ॥

गोबरको जलाकर उसके क्षारको ग्रहण करे फिर उस क्षारको गोमूत्रमें डालकर मयूरका पित्त मिलाकर लेप करनेसे तत्काल श्वित्रकुष्ठका वर्ण शरीरके वर्णके समान होजाता है ॥ २८१ ॥

श्वेतकुष्ठं व्रजत्यस्तं पक्षार्धेनाधिकेन वा। गिरिकर्ण्यास्तु कृष्णाया मूलेन परिलेपितम् ॥ २८२ ॥

काली कोइलीकी जडको पीसकर लेप करनेसे एक सप्ताहमें अथवा कुछ अधिक दिनोंमें श्वेतकुष्ठ नष्ट होता है ॥ २८२ ॥

कुनटीशिखिपित्तेन भस्मवातालकोद्भवम् । गजदन्तेन मालत्याः क्षारो वा श्वित्रनाशनः ॥ २८३ ॥

मनशिलको मोरके पित्तके साथ अथवा हरितालके भस्मको मोरके पित्तके साथ या हाथीके दांतके साथ मालतीके खारको पीसकर लेप करनेसे श्वित्रकुष्ठ नष्ट होता है ॥ २८३ ॥

स्नुगर्कजातीपूतीकसुवर्णहरिपल्लवाः । मूत्रपिष्टाः प्रलेपेन श्वित्रदद्रुव्रणच्छिदः ॥ २८४ ॥

थूहर, आक, चमेली, दुर्गंध करंज और धतूरेके हरे पत्ते इन सबको एकत्र गोमूत्रमें पीसकर लेप करनेसे श्वित्र, दद्रु और व्रण नष्ट होजाते हैं ॥ २८४ ॥

शुनोऽस्थिकदलीभस्मकाकस्य विट्प्रलेपतः । श्वित्रमुग्रं निहन्त्येतच्चत्वारिंशद्दिनैष्किल ॥ २८५ ॥

कुत्तेकी हड्डी, केलेकी भस्म और कौवेकी विष्टा इन सबको एकत्र मिलाकर लेप करनेसे चालीस दिनमें अत्यन्त उग्र श्वित्रकुष्ठभी नष्ट होजाता है ॥ २८५ ॥

सुमनःशिलाविडंगं कासीसरोचना कनकपुष्पी च । श्वित्राणां प्रशमार्थं ससैन्धवं लेपनं दद्यात् ॥ २८६ ॥

चमेली, मनशिल, वायविडंग, कसीस, गोरोचन, अमलतास और सैंधानमक इन सबको एकत्र पीसकर लेप करनेसे श्वित्रकुष्ठ नष्ट होता है ॥ २८६ ॥

अयोरजःकृष्णतिलाञ्जनानि सावल्गुजान्यामलकानि दग्ध्वा । पिष्टानि भृङ्गस्य सकृद्रसेन हन्यात्किलासं परिघृष्य लेपात् ॥ २८७ ॥

लोहेका चून, काले तिल, रसौत, वापची और आमले इन सबको एकत्र भाँगरेके रसमें पीसकर श्वित्र कुष्ठपर घिसनेसे श्वित्रकुष्ठ अवश्य नष्ट होजाता है ॥ २८७ ॥

दासीकुरण्टस्य सितस्य पुष्पमादित्यवल्यञ्जनवह्निनीली । पुष्पाणि तेषां स्वरसं प्रपीड्य तल्लोहचूर्णाञ्जनसंप्रयुक्तम् ॥ २८८ ॥ विघृष्य पूर्वं सकलान् व्रणास्तु ततः प्रयोगेन पुनः प्रलिम्पेत् । सितानि रोमाणि निहन्ति शीघ्रं कृष्णानि कुर्य्यादपि योगकोऽयम् ॥ २८९ ॥

नीले फूलका पियावाँसा, पीले फूलका पियावाँसा, सफेद फूलका पियावाँसा, हुलहुल, रसौत, चीता और नीली इन सबके फूलोंका स्वरस लेकर उसमें लोहेका चूर्ण और रसौत डालकर इससे श्वित्रकुष्ठके दागोंको खूब घिसे फिर इसका लेप करे तो शीघ्रही सफेद रोम नष्ट होकर तत्काल काले रोम होजाते हैं ॥ २८८ ॥ २८९ ॥

कपोतवंकालशुनस्य शीघ्रं ससैन्धवं चित्रकमूलमिश्रम् । ततश्च तेषां स्वरसेन मिश्रं व्रणप्रलेपाज्जननं हि रोम्णाम् ॥ २९० ॥

ब्राह्मी, लशुन, सैंधानमक और चीतेकी जड इन सबको एकत्र पीसकर इन्हींके स्वरसमें मिलाकर लेप करनेसे रोम उत्पन्न होजाते हैं ॥ २९० ॥

कटुकालाबुसव्योषहिंस्रार्कहयमारकाः । कुष्ठं वल्गुजभल्लातस्नुहीमूलानि सर्षपाः ॥ २९१ ॥ बिल्वकारिष्टपीलूनां पत्राण्यारग्वधस्य च । त्रिफलामुस्तजीमूतविशालामूत्रपेषितः ॥ २९२ ॥ गोगजाश्वाजमूत्राणामाढकं त्वाढकं पचेत् । स्नुह्यर्कक्षारकुडवं तैलं युक्त्या प्रदापयेत् ॥ ॥ २९३ ॥ पचेद्दार्वीप्रलेपन्तु घृष्ट्वा कुष्ठानि लेपयेत् । श्वित्राणि द्विःप्रलिप्तानि यान्ति नाशमशेषतः ॥ २९४ ॥

कुटकी, कडवी लौकी, त्रिकुटा, हींस, आक, कनेर, कूठ, वापची, भिलावे, थूहरकी जड, सरसों, बेल नीम, पीलू और अमलतासके पत्ते, त्रिफला, नागरमोथा,

वंदाल और इन्द्रायण इन सबको समान भाग लेकर गोमूत्रमें पीसकर कल्क बनावे तथा गाय, हाथी और घोडा इन प्रत्येकका मूत्र एक एक आढक परिमाण लेवे, थूहरका और आकका क्षार एक एक कुडव परिमाण लेवे, इन सबको एकत्र मिलाकर इनमें तेल डाल कर यथाविधिसे पकावे । जबतक करछीसे न लगे तब तक पकावे । इसको श्वित्रके दागोंपर वारम्वार घिसकर लगावे । इससे सर्व प्रकारके बहुत पुराने श्वित्रकुष्ठ नष्ट होते हैं ॥ २९१-२९४ ॥

सोमराजी घृत ।

खदिरस्य पलान्यष्टौ सोमराज्याः पलद्वयम् । जलाढकद्वये साध्यं यावत्पादावशेषितम् ॥ २९५ ॥ क्वाथ्यमानश्च मृद्वग्नौ घृतप्रस्थं विपाचयेत् । चतुष्पलं सोमराज्याः खदिरस्य पलं भिषक् ॥ २९६ ॥ पटोलमूलं त्रिफलां त्रायमाणां दुरालभाम् । कल्कार्थं योजयेदेतान्कार्षिकाञ्श्लक्ष्णपेषितान् ॥ २९७ ॥ पलद्वयं कौशिकस्य शुद्धस्यात्र प्रदापयेत् । सिद्धं सर्पिरिदं नश्येच्छ्वित्रमम्भ इवानलम् ॥ २९८ ॥ अष्टादशानां कुष्ठानां परमं भेषजं मतम् । आमवातापतन्त्राणां पांडुप्रदरशोषिणाम् ॥ २९९ ॥ किलासघ्नं च कंडूघ्नं दीपनं पाचनं तथा । सोमराजीघृतं नाम निर्मितं ब्रह्मणा पुरा ॥ ३०० ॥

खैर ३२ तोले और वापची ८ तोले इनको दो आढक जलमें पकावे, जब पकते पकते जल चौथाई भाग वाकी रहजाय तब उतारकर छानलेवे फिर इस क्वाथमें एकप्रस्थ घी, वापची १६ तोले, खैरसार ४ तोले तथा पटोलकी जड, त्रिफला, त्रायमाण और धमासा ये प्रत्येक औषधि एक एक तोला लेकर बारीक पीसकर एवं शुद्ध गूगल ८ तोले, इन सबको यथा विधिसे मिलाकर विधि पूर्वक घृतको सिद्ध करे । यह घृत शीघ्र ही सर्व प्रकारके श्वित्रकुष्टको नष्ट करता है । जिसप्रकार जल अग्निको नष्ट करता है । यह घृत-अठारह प्रकारके कोढोंकी परम औषधि है । तथा आमवात, अपतन्त्र, पाण्डु, प्रदर, राजयक्ष्मा, किलास और कण्डूको नष्ट करता है तथा दीपन और पाचन है । यह सोमराजीघृत-पहिले ब्रह्माजीने निर्माण किया है ॥ २९५-३०० ॥

निलीघृत ।

त्रिफलाढकं तथा प्रस्थावयसो रजसो मतौ । वायसीकाकमाचीभ्यां द्वे तुले शङ्खिनीतुला ॥ ३०१ ॥ द्विद्रोणेऽपां पचेदेतत्पादभागावशेषितम् । घृतप्रस्थं तु विपचेद्गर्भे चैतत्समाचरेत् ॥ ३०२ ॥ वरुणं वत्सकफलं त्र्यूषणं देवदारु च । निदिग्धिकां भृङ्गराजं पारावतपदीमपि ॥ ३०३ ॥ नीलकं नाम विख्यातं घृतं कुष्ठविनाशनम् । श्वित्राणि रञ्जयेच्चैतत्पानाभ्यञ्जनयोजितम् । पामाविचर्चिकासिध्मकिटभानि च नाशयेत् ॥ ३०४ ॥

त्रिफला १ आढक, लोहेका चून २ प्रस्थ, कौआठोढ़ी और मकोय २ तुला परिमाण और शंखपुष्पी १ तुला इन सबको दो द्रोण जलमें पकावे । जब पकते पकते जल चौथाई भाग शेष रहजाय तब उतार कर छान लेवे । फिर इस क्वाथमें १ प्रस्थ घृत तथा वरनाकी छाल, इन्द्रजौ, त्रिकुटा, देवदारु, कटेरी, भाँगरा और हंसपदी इन सबका कल्क डाल कर यथाविधिसे घृतको सिद्ध करे । इसको नीलकघृत कहते हैं । यह कुष्ठको अवश्य नष्ट करता है । इसको पान और अभ्यंग कर्ममें प्रयोग करनेसे श्वित्रकुष्ठ नष्ट होता है । तथा पामा, विचर्चिका, सिध्म और किटिभकुष्ठ दूर होजाता है ॥ ३०१ ॥ ॥ ३०२ ॥ ३०३ ॥ ३०४ ॥

महानीलीघृत ।

आरग्वधं वायसी च सुरमा मदयन्तिकी । एकैकस्य तुला देया त्रिफलं चाढकद्वयम् ॥ ३०५ ॥ दन्ती दारु हरिद्रा च कुडवं वरुणत्वचम् । चित्रकं चार्कमूलञ्च काकमाची निद-

ग्धिका ॥ ३०६ ॥ एषां दशपलान्भागांश्चतुर्द्रोणेऽम्भसः पचेत् । अष्टभागावशिष्टन्तु पूतं पुनरधिश्रयेत् ॥ ॥ ३०७ ॥ दधि सर्पिश्च दुग्धं च गोमूत्रं च शकृद्रसम् । आढकाढकमेतेषां गर्भं चैनं समावपेत् ॥ ३०८ ॥ अवल्गुजं सकटुकं नक्तमालफलानि च । त्रिफलाचित्रको दन्ती मुस्तं कटुकरोहिणी ॥ ३०९ ॥ पिचुमन्दस्य शिग्रोश्च सैंगुदस्य फलानि च । किराततिक्तकं श्यामा नीलिनीनीलमुत्पलम् ॥ ३१० ॥ एतैः सिद्धं घृतं स्राव्यं पाययेच्छ्वित्ररोगिणाम् । महानीलमिति ख्यातमेतच्छ्वित्रहरं परम् ॥ ३११ ॥ भगन्दरं तथार्शांसि कृमीनपि विनाशयेत् । अष्टादशानां कुष्ठानां सर्पिरेतच्चिकित्सितम् ॥३१२॥ अथर्वविहिते दीप्ते ब्रह्मदण्ड इवाशनिः । विशेषतश्च श्वित्राणि रञ्जयेच्च भिनत्ति च । प्रयोगतः सेव्यमानं पानेनाभ्यञ्जनेन च ॥ ३१३ ॥

अमलतास, कौआठोडी, तुलसी और मोतिया ये प्रत्येक औषधि एक एक तुला परिमाण लेवे, त्रिफला २ आढक परिमाण, दंती, दारुहलदी और बरनेकी छाल यह प्रत्येक एक २ कुडव परिमाण, चीता, आककी जड, मकोय और कटेरी ये प्रत्येक औषधि दश दश पल लेकर चार द्रोण जलमें पकावे। जब पकते पकते जल आठवाँ भाग बाकी रह जाय तब उतार कर छानलेवे । फिर इस काथमें दही, घृत, दूध, गोमूत्र और गोबरका रस ये प्रत्येक पदार्थ एक २ आढक परिमाण तथा बापची, त्रिकुटा, करंजके फल, त्रिफला, चीता, दंती, नागरमोथा, कुटकी, नींमके बीज, सहिंजनेके बीज, हिंगोटके बीज, चिरायता, अनन्तमूल, नील और नीले कमल इन सबका कल्क डालकर यथाविधिसे घृतको पकावे। यह घृत–श्वित्ररोगियोंको पान कराना चाहिये। यह महानीलघृत–श्वित्रको अवश्य नष्ट करता है। तथा भगन्दर, बवासीर, कृमिरोग और अठारह प्रकारके कुष्ठोंकी परमोत्तम औषधि है । यह विशेष करके श्वित्रकुष्ठके वर्णको बदलता और नष्ट करता है। इसको पान और अभ्यंग कर्ममें प्रयोग करना चाहिए ॥ ३०५–३१३ ॥

ज्योतिष्मतीतैल ।

मयूरकक्षारजलैः सप्तकृत्वः परिश्रुते । सिद्धं ज्योतिष्मतीतैलमभ्यङ्गाच्छ्वित्रनाशनम् ॥ ३१४ ॥

नीलेथोथेके क्षार जलमें सातवार मालकांगुनीके तेलको पकावे। इस तेलकी मालिश करनेसे श्वित्रकुष्ठ नष्ट होता है ॥ ३१४ ॥

विषतैल ।

कुष्ठाधिकारनिर्दिष्टं विषतैलमिहोच्यते ॥ ३१५ ॥

कुष्ठरोगमें जो विषतैल कहा है वह उस श्वित्रकुष्ठमें भी प्रयोग करना चाहिये ॥ ३१५ ॥

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायां
कुष्ठश्वित्रनिदानचिकित्साधिकार समाप्त ॥ ५७ ॥

अथ उदर्दशीतपित्तकोठाधिकार ।



शीतमारुतसंस्पर्शात्प्रदुष्टौ कफमारुतौ । पित्तेन सह संभूय बहिरन्तर्विसर्पतः ॥ १ ॥

शीतल पवनके लगनेसे दुष्ट हुए कफ और वायु अपने कारणोंसे दूषित हुए पित्तके साथ मिलकर त्वचा तथा रुधिर आदिमें फैलते हैं तब उससे शीतपित्तादि रोग होते हैं ॥ १ ॥

शीतपित्तके पूर्वरूप ।

पिपासारुचिहल्लासदेहसादाङ्गगौर-

वम् । रक्तलोचनता तेषां पूर्वरूपस्य लक्षणम् ॥ २ ॥

तृषा, अरुचि, उबकाई, शरीरमें ग्लानि, अंगोंमें भारीपन और नेत्रोंमें लाली ये शीतपित्तादिके पूर्व लक्षण हैं ॥ २ ॥

उदर्द या शीतपित्तके लक्षण ।

वरटीदष्टसंस्थानः शोफः सञ्जायते बहिः । सकण्डूतोदबहुलश्छर्दिज्वरविदाहवान् ॥ ३ ॥ उदर्दमिति तं विद्याच्छीतपित्तमथापरे । वाताधिकं शीतपित्तमुदर्दस्तु कफाधिकः ॥ ४ ॥ सोत्संगैश्च सरागैश्च कडूमद्भिश्च मण्डलैः । शैशिरः कफजो व्याधिरुदर्दः परिकीर्तितः ॥ ५ ॥

वरटी अर्थात् ततैयाके काटनेके समान शरीरकी त्वचामें चकत्ते पड जायँ, उनमें खुजली हो, सुई चुभोनेकीसी पीडा आधिक हो, वमन, ज्वर और दाह हो इसको संस्कृतमें उदर्द, कोई वैद्य शीतपित्त और हिन्दीभाषामें पित्ती कहते हैं। शीतपित्त वाताधिक और उदर्द कफाधिक होता है। शीतसे कफ कुपित होकर शरीरके ऊपर लाल चकत्तोंको उत्पन्न करता है। उनमें खुजली अधिक होती है तथा वह चकत्ते मण्डलाकार, बीचमें गहरे और किनारेपर ऊँचे होते हैं उसको उदर्दरोग कहते हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥

कोठके लक्षण ।

असम्यग्वमनोदीर्णपित्तश्लेष्मान्नविग्रहैः । मण्डलानि सकंडूनि रागवन्ति बहूनि च ॥ उत्कोठः सानुबन्धश्च कोठ इत्यभिधीयते ॥ ६ ॥

अच्छेप्रकारसे वमनके न होनेसे अथवा वमनके वेगको रोकनेसे अर्थात् वमनके वेगके आने पर पित्त और कफ तथा अन्न इनको रोकनेसे बहुतसे लाल खुजलीयुक्त चकत्ते उठें, उसको कोठ कहते हैं येही कोठरोग यदि क्षणक्षणभरमें होकर नष्ट होजायँ तो उत्कोठ कहा जाता है ॥ ६ ॥

उदर्दकी चिकित्सा ।

अत्राशु वमनं कार्यं पटोलारिष्टवासकैः । त्रिफलापुरकृष्णाभिर्विरेकश्चात्र शस्यते ॥ ७ ॥

शीतपित्तरोगमें प्रथम शीघ्र ही कडवे परवल, नीम और अडूसा इनके काथके द्वारा वमन करावे। तथा त्रिफला, गूगल और पीपल इनके द्वारा विरेचन करावे ॥ ७ ॥

त्रिफलाक्षौद्रसंयुक्तं पिबेद्वा नवकार्षिकम् । विसर्पोक्तममृतादि भिषगत्रापि योजयेत् ॥ ८ ॥

त्रिफलेके चूर्णको शहदके साथ खानेसे अथवा नवकार्षिक गूगलको सेवन करनेसे शीतपित्तरोग नष्ट होता है। विसर्परोगोक्त अमृतादिगूगल भी इस शीतपित्तरोगमें प्रयोग करना चाहिये ॥ ८ ॥

सितां त्रिकटुसंयुक्तां गुडमामलकैः सह । यवानीं पाययेच्चापि सव्योषक्षारसंयुताम् ॥ ९ ॥

शीतपित्तरोगमें त्रिकुटेके साथ मिश्रीको, आमलों के साथ गुडको तथा त्रिकुटा और जवाखार इनको अजवायनके साथ खानेसे शीतपित्तरोग नष्ट होता है ॥ ९ ॥

रास्नादेवाह्वत्रिफलां साश्वगन्धां शतावरीम् । यवानीं हिंगुसंयुक्तामुदर्दविनिवृत्तये ॥ १० ॥

रायसन, देवदारु, त्रिफला, असगन्ध, शतावर, अजवायन और हींग इनको एकत्र मिलाकर सेवन करनेसे उदर्दरोग नष्ट होता है ॥ १० ॥

प्रियालं तिल्वकं कालं खदिरः खदिरासनः । सप्तपर्ण्यरिमेदा च गणोऽयं स्यादुदर्दहा ॥ ११ ॥

चिरौंजी, लोध, बेर, खैर, खैरसार, विजयसार, ततौना और दुर्गंधकरंज इन सब औषधियोंका समूह उदर्द रोगको नष्ट करता है ॥ ११ ॥

सगुडं दीप्यकं यस्तु खादेत्पथ्यान्नभुङ्नरः। तस्य नश्यति सप्ताहादुदर्दः सर्वदेहजः॥ १२॥

जो मनुष्य अजवायनको गुडके साथ भक्षण करे और पथ्यसे रहे तो उसके सम्पूर्ण शरीरगत उदर्दरोग सात दिनमें नष्ट हो जाता है॥ १२॥

सिद्धार्थकाद्युद्वर्तन।

सिद्धार्थरजनीकल्कैः प्रपुन्नाटतिलैः सह। कटुतैलेन संमिश्रमेतदुद्वर्त्तनं परम्॥ १३॥

सफेद सरसों, हलदी, पमाडके बीज और तिल इन सबको एकत्र पीसकर कडवे तेलमें मिलाकर उबटन करनेसे शीतपित्तादिरोग नष्ट होते हैं॥१३॥

आर्द्रकस्वरसः पेयः पुराणगुडसंयुतः। शीतपित्तापहः श्रेष्ठो वह्निमान्द्यविनाशनः॥ १४॥

अदरखके स्वरसमें पुराना गुड मिलाकर सेवन करनेसे शीतपित्तरोग नष्ट होता है और अग्नि दीपन होती है॥ १४॥

क्षीरस्विन्नानि काश्मर्याः फलान्यश्नन्हिताशनः। कृमिदद्रुहराण्येव शीतपित्ते प्रयोजयेत्॥ १५॥

कुम्भेरके फलोंको दूधमें पकाकर सेवन करे और हितकारक भोजन करे तो कृमि, दद्रु और शीतपित्तादि रोग नष्ट होते हैं॥ १५॥

घृतं पीत्वा महातिक्तं शोणितं मोक्षयेत्तथा। स्निग्धस्विन्नस्य संशुद्धिमादौ कोठे समाचरेत्॥ १६॥

शीतपित्तरोगमें महातिक्तनामक घृतको पीकर रक्त मोक्षण करावे। कोठरोगमें प्रथम स्निग्ध और स्वेदित करके संशोधन (वमन विरेचनादि) करावे॥ १६॥

सर्वतः शुद्धदेहस्य कुष्ठघ्नीं कारयेत्क्रियाम्। कुष्ठोक्ताश्च क्रियाः कुर्यादम्लपित्तघ्नमेव च॥ उदर्दोक्तां क्रियां वापि कोठरोगे समासतः॥ १७॥

जब वमन, विरेचनादिसे शरीर शुद्ध हो जाय तब कुष्ठनाशक चिकित्सा करे। इस कोठरोगमें कुष्ठरोगोक्त और अम्लपित्तनाशक चिकित्सा करे तथा उदर्दरोगोक्त भी चिकित्सा करनी चाहिए॥ १७॥

निम्बस्य पत्राणि सदा घृतेन धात्रीविमिश्राण्यथवोपयुञ्ज्यात्। विस्फोटकण्डूकृमिशीतपित्तमुदर्दकोठौ च कफञ्च हन्यात्॥ १८॥

नीमके पत्तोंको घीमें चुपडकर और उनमें आमले मिलाकर सेवन करनेसे विस्फोट, कण्डू, कृमि, शीतपित्त, उदर्द, कोठ और कफ नष्ट होता है॥ १८॥

कुष्ठं हरिद्रा सुरसा पटोलं निम्बाश्वगन्धा सुरदारुशिग्रु। ससर्षपं तुम्बुरुधान्यचव्यमिमानि चूर्णानि समानि कुर्यात्॥ १९॥ तक्रपिष्टैः प्रथमं शरीरं तैलाक्तमुद्वर्त्तयुतं यतेत। ततोऽस्य कंडूपिटिकासशोथकुष्ठानि शोथाश्च शमं व्रजन्ति॥ २०॥

कूठ, हलदी, तुलसी, पटोलपात, नीमकी छाल, असगन्ध, देवदारु, सहिंजना, सरसों, तुम्बुरु, धनियां और चव्य ये सब औषधि समान भाग लेकर बारीक पीसकर चूर्ण कर ले। इस चूर्णको तक्रमें पीसकर प्रथम शरीरमें तेलको मलकर फिर इसको मले तो इससे कण्डू, पिटिका, शोष, कुष्ठ और शोथ ये सब रोग नष्ट होते हैं॥ १९॥ २०॥

तैलस्योद्वर्त्तने योगे योज्यो राज्यादिको गणः॥ २१॥

उबटन करनेके लिये जो तेल लेना चाहिये उसमें राज्यादिगणकी औषधि मिलानी उचित है॥ २१॥

इति श्रीवङ्गसेने भाषाटीकायामुदर्दशीतपित्तकोठाधिकार समाप्त॥ ५८॥

अथ अम्लपित्ताधिकार।

विरुद्धदुष्टाम्लविदाहिपित्तप्रकोपिपानान्नभुजो विदग्धम्। पित्तं स्वहेतूपचितं पुरा यत्तदम्लपित्तं प्रवदन्ति सन्तः॥ १॥

विरुद्ध (संयोगविरुद्ध दूध मछली इत्यादि) दुष्ट (विकृत भोजन), खट्टे, दाहकारक और पित्तको कुपित करनेवाले अन्नपानोंको सेवन करनेसे अम्लपाकको प्राप्त हुआ पित्त प्रथम वर्षादि ऋतुओंमें अम्लपाकी जलोंसे तथा ऐसे अन्यान्य पदार्थोंसे संचित हुआ पित्त कुपित होता है उसको प्राचीनवैद्य अम्लपित्तरोग कहते हैं॥ १॥

अम्लपित्तके लक्षण।

अविपाकक्लमोत्क्लेशतिक्ताम्लोद्गारगौरवैः। हृत्कण्ठदाहारुचिभिश्चाम्लपित्तं वदेद्बुधः॥ २॥

अन्नका न पचना, ग्लानि, वमनकीसी इच्छाका होना, कडवी और खट्टी डकारोंका आना, शरीरमें भारीपन, हृदय और कण्ठमें दाह होना तथा अन्नमें अरुचिका होना ये सब लक्षण जिसमें हों उसको अम्लपित्त कहते हैं॥ २॥

प्रथम अधोगतअम्लपित्तके लक्षण।

तृड्दाहमूर्च्छाभ्रममोहकारि प्रयात्यधो वा विविधप्रकारम्। हृल्लासकोठानलसादहर्षस्वेदाङ्गपीतत्वकरं कदाचित्॥ ३॥

ऊर्ध्वगत और अधोगत इन भेदोंसे अम्लपित्तरोग दो प्रकारका है। प्रथम अधोगत अम्लपित्तके लक्षण कहते हैं। अधोगतअम्लपित्तमें तृषा, दाह, मूर्च्छा, भ्रम, मोह, उबकाई, चकत्तोंका पड़ना, मन्दाग्नि, रोमांचोंका होना, पसीनेका आना और शरीरमें पीलापन ये सब लक्षण होते हैं और गुदाके मार्गसे अनेक रंगके पित्त गिरते हैं॥ ३॥

ऊर्ध्वगतअम्लपित्तके लक्षण।

वातं हरित्पीतकनीलकृष्णमारक्तरक्ताभमतीव चाम्लम्। मांसोदकाभं त्वतिपिच्छिलाभं श्लेष्मानुजातं विविधं रसेन॥ ४॥

हरे, पीले, नीले, काले, किंचिन्लाल, अत्यंत खट्टे, मांसके धोवनके समान, अत्यंत पिच्छिल, कफसंयुक्त और खारे, तीखे तथा कडवे रसवाले ऐसे पित्तवमनमें गिरते हों तो ऊर्ध्वगत अम्लपित्त जानना ४॥

अम्लपित्तकी विशेष अवस्था।

भुक्ते विदग्धेऽप्यथवाप्यभुक्ते करोति तिक्ताम्लवमिं कदाचित्। उद्गारमेवंविधमेव कण्ठहृत्कुक्षिदाहं शिरसो रुजश्च॥ ५॥ करचरणदाहमौष्ण्यं महतीमरुचिं ज्वरश्च कफपित्तम्। जनयति कंडूमण्डलपिडिकाशतनिचितगात्ररोगचयम्॥ ६॥

भोजन करनेपर जब अन्नका विदग्ध पाक होता है अथवा कदाचित् विना ही भोजन करनेपर कडवी और खट्टी वमन और डकार आती है, कण्ठमें, हृदयमें और कोखमें दाह होती है, शिरमें पीडा, हाथ और पाँवोंमें दाह, संताप होता है, भयंकर अरुचि कफ और पित्तजनित ज्वर होता है, तथा खुजली, मण्डलाकार चकत्ते और फुंसियोंसे व्याप्त देहमें अन्नका विदग्धपाक तथा ग्लानि आदि रोगोंके समूह उत्पन्न होते हैं ५।६॥

साध्यासाध्यता।

रोगोऽयमम्लपित्ताख्यो यत्नात्संसाध्यते नवः। चिरोत्थितो भवेद्याप्यः कृच्छ्रसाध्यः स कस्यचित्॥ ७॥

थोडे समयका उत्पन्न हुआ यह अम्लपित्तरोग साध्य और बहुत दिनोंका याप्य और मिथ्याहार विहार करनेवाले मनुष्यके कष्टसाध्य होता है॥ ७॥

अम्लपित्तमें दोषोंका संसर्ग।

सानिलं सानिलकफं सकफं तच्च लक्षयेत्। दोषलिङ्गेन मतिमान्भिषङ्मोहकरं हि तत् ॥ ८ ॥

बुद्धिमान् वैद्य दोषोंके संसर्गसे जाने कि, यह अम्लपित्त वातसंबंधी है अथवा वात और कफ दोनोंके संसर्गवाला है या कफसंबंधी है। यह अवश्य खूब विचार कर जानना चाहिये। क्योंकि यदि यह अम्लपित्त ऊर्ध्वगतिसे हो तो वमनकी भ्रांति होती है और अधोगतिसे हो तो अतीसार प्रतीत होता है। यहाँ वैद्यके भ्रम उत्पन्न होता है इसलिये अच्छे प्रकारसे बुद्धिको बल देकर निश्चय करे कि, जिसमें किसी प्रकारका संदेह न रहे ॥ ८ ॥

दोषभेदोंसे लक्षणभेद।

कम्पप्रलापमूर्च्छाचिमिचिमिगात्रावसादशूलानि। तमसो दर्शनविभ्रमहर्षणमोहाश्च वातयुते ॥ ९ ॥

वातज अम्लपित्तमें कम्प, वृथा बकवाद, मूर्च्छा, सब शरीरमें चिमचिमाहट, ग्लानि, शूल, अंधकारदर्शन, विभ्रम, रोमांचोंका होना और मोह होता है ९

कफनिष्ठीवनगौरवजडतारुचिशीतसादवमिलेपाः। दहनबलसादकंडूनिद्राचिह्नं कफानुगते ॥ १० ॥

कफज अम्लपित्तमें कफका थूकना, शरीरमें भारीपन, जडता, अरुचि, शीतका लगना, ग्लानि, वमन, मुखमें और छातीमें कफ लिसासा रहे, जठराग्निके बलका नाश, खुजली और निद्राका अधिक आना ये सब लक्षण होते हैं ॥ १० ॥

उभयमिदमेव चिह्नं मारुतकफसंभवे भवत्यम्ले ॥ ११ ॥

जो अम्लपित्त वात और कफ दोनोंसे उत्पन्न हुआ हो तो उसमें उपरोक्त दोनों दोषोंके लक्षण होते हैं ॥ ११ ॥

कफपित्तके लक्षण।

तिक्ताम्लकटुकोद्गारवमिहृत्कण्ठदाहकृत्। तमो मूर्च्छारुचिश्छर्दिरालस्यश्च शिरोरुजा ॥ प्रसेको मुखमाधुर्य श्लेष्मपित्तस्य लक्षणम् ॥ १२ ॥

कफपित्तज अम्लपित्तमें कडवी, खट्टी और चरपरी डकारोंका आना, वमन, हृदय और कण्ठमें दाहका होना, अंधकार दर्शन, मूर्च्छा, अरुचि, आलस्य, शिरमें पीडा, मुखसे लारका गिरना और मुखमें मधुरता ये सब लक्षण होते हैं ॥ १२ ॥

अम्लपित्तकी चिकित्सा।

अम्लपित्ते तु वमनं पटोलारिष्टवासकैः। कारयेन्मदनक्षौद्रसिन्धुयुक्तं ततो भिषक् ॥ १३ ॥

अम्लपित्तरोगमें पटोलपत्र, नीम, अडूसा, मैनफल, शहद और सैंधानमक इनके द्वारा वमन करावे॥ १३॥

विरेचनं त्रिवृच्चूर्णं मधुधात्रीफलद्रवैः १४

निसोतका चूर्ण, शहद और आमलोंका रस इनके द्वारा विरेचन करावे ॥ १४ ॥

सम्यग्वान्तविरिक्तस्य सुस्निग्धस्यानुवासनम्। आस्थापनं चिरोद्भूते देयं दोषाग्न्यपेक्षया ॥ १५ ॥

बहुत दिनोंके अम्लपित्तमें दोष और अग्निके बलाबलको विचार कर प्रथम अच्छे प्रकारसे वमन और विरेचनादिसे शुद्ध करके तथा सम्यक् प्रकारसे स्निग्ध करके अनुवासन और आस्थापन बस्ति देवे ॥ १५ ॥

तिक्तभूयिष्ठमाहारं पानं वापि प्रयोजयेत्। यवगोधूमविकृतीस्तीक्ष्णसंस्कारवर्जिताः ॥ यथास्वं लाजशक्तून्वा सितामधुयुतान्पिबेत् ॥ १६ ॥

अम्लपित्तरोगमें कडवी औषधियोंका रसमिश्रित आहार और पानको व्यवहार करे। जौ अथवा गेहूँके बनाये हुए यूषादि पदार्थ और उनमें मिरचादिक तीक्ष्ण वस्तु न पडी हों ऐसे पदार्थ पान करने चाहिये अथवा भक्षण करने चाहिये। तथा खीलोंके सत्तुओंमें मिश्री और शहद मिला कर दोषोंको विचार कर पिये ॥ १६ ॥

पूतीकरञ्जाङ्कुराणि घृतभृष्टानि रोगिणे। निवेद्य भोजने कार्यं वमनं कोष्णवारिणा ॥ १७ ॥

दुर्गंधकरंजके अंकुरोंको घीमें भून कर रोगीको भोजनमें खानेके लिये देवे और गरम जलके द्वारा वमन करावे ॥ १७ ॥

अलसं मूर्च्छितं चास्य सुखं निर्ह्रीयते यतः। अरोचकस्य वैरस्यव्रणकण्ठोपलेपनात् ॥ १८ ॥

जो अम्लपित्तरोगमें कफाधिक्यताके कारण आलस्य, मूर्च्छा, अरुचि, विरसता और व्रण हो तो कण्ठपर कफनाशक ओषधियोंका लेप करनेसे कफका ह्रास होकर सुख उत्पन्न होता है ॥ १८ ॥

द्व्यहाद्त्रैव वमनं प्रकुर्य्याद्योगवित्तरः। धारयेत्कवलानिष्टान्पित्तहानतिरोचकान्। भृष्टान्कलायानथवा मसूरान्वा प्रकल्पयेत् ॥ १९ ॥

अम्लपित्तरोगमें दो दिनके पश्चात् योगको जाननेवाला वैद्य वमन करावे। तथा इष्टकवल; पित्तनाशक, और रुचिकारक पदार्थ, भूनी मटर, अथवा मसूर इनको प्रयोग करे ॥ १९ ॥

ऊर्ध्वगं वमनैर्धीमानधोगं रेचनैर्हरेत् २०

ऊर्ध्वगत अम्लपित्तको वमनके द्वारा और अधोगत अम्लपित्तको विरेचनके द्वारा शमन करे ॥२०॥

वमने शोधने जाते यदि दोषो न शाम्यति। तदा वै शिशिरा लेपा असृक्स्रावश्च युक्तितः ॥ २१ ॥

जो अम्लपित्तरोगमें वमन और विरेचनके द्वारा दोष शमन न हो तो शीतल प्रलेप और युक्तिपूर्वक रक्तमोक्षण करावे ॥ २१ ॥

कम्पप्रलापमूर्च्छाङ्गदाहतृष्णास्रपित्तिनः। वातप्रकोपं तृष्णाश्च रक्षञ्छोधनमाचरेत् ॥ २२ ॥

अम्लपित्तरोगमें जो कम्प, प्रलाप, मूर्च्छा, दाह, तृषा, रक्तपित्त, वातका प्रकोप और तृषा हो तो शोधन कर्म करे ॥ २२ ॥

चित्रकैरण्डमूलानि यवाश्च सयवासकाः। जलेन क्वथितं शीतं कोष्ठदाहरुजापहम् ॥ २३ ॥

चीता, अण्डकी जड, जौ और जवासा इनका काथ बनाकर पान करनेसे कोष्ठगत दाह दूर होता है२३

अभयापिप्पलीद्राक्षासिताधन्वयवासकम्। मधुना कण्ठदाहघ्नमम्लपित्तहरं परम् ॥ २४ ॥

हरड, पीपल, दाख, मिश्री और धमासा इनका काथ बनाकर मिश्री डालकर पान करनेसे अम्लपित्तरोग दूर होता है ॥ २४ ॥

निस्तुषयवधात्री च त्रिगन्धं क्वथितं पिबेत्। क्षौद्रयुक्तं निहन्त्याशु छर्दिं पित्ताम्लसम्भवाम् ॥ २५ ॥

तुषरहित जौ, आमले, दालचीनी, इलायची और तेजपात इनके काथमें शहद डालकर पान करनेसे अम्लपित्तकी वमन दूर होती हैं ॥ २५ ॥

छिन्नोद्भवा निम्बपटोलपत्रं फलत्रिकं सुक्वथितं सुशीतम्। क्षौद्रान्वितं पित्तमनेकरूपं सुदारुणं हन्ति तदम्लपित्तम् ॥ २६ ॥

गिलोय, नीमकी छाल, पटोलपात और त्रिफला इनका काथ बनाकर शीतल करके शहद डालकर पान करनेसे अनेक प्रकारका दारुण पित्तरोग और अम्लपित्त रोग दूर होता है ॥ २६ ॥

अमृतानागरमुस्तकिरातसमभागसाधितं तोयम्। दारुणं तदम्लपित्तं जयत्यवश्यं नृणां सद्यः ॥ २७ ॥

गिलोय, सोंठ, नागरमोथा और चिरायता इन सबको समान लेकर काथ बनाकर पान करनेसे अत्यंत दारुण अम्लपित्तरोग अवश्य दूर होता है ॥ २७ ॥

पटोलशुण्ठीयवपिप्पलीनां क्काथं पिबेन्माक्षिकसंप्रयुक्तम् । तदम्लपित्तं विनिहन्ति शूलमग्नेश्च वृद्धिं भुजयोर्बलश्च ॥ २८ ॥

पटोलपत्र, सोंठ, जौ और पीपल इनका क्काथ बना कर शहद डालकर पान करनेसे अम्लपित्त और शूल नष्ट होता है, अग्निकी वृद्धि होती है, और भुजाओंमें बल उत्पन्न होता है ॥ २८ ॥

वासामृतापर्पटकनिम्बभूनिम्बमार्कवैः । त्रिफलाकुलकैः क्काथः सक्षौद्रश्चाम्लपित्तहा ॥ २९ ॥

अडूसा, गिलोय, पित्तपापड़ा, नीम, चिरायता, भाँगरा, त्रिफला और बेर इनके क्काथमें शहद डालकर पान करनेसे अम्लपित्तरोग नष्ट होता है ॥ २९ ॥

हिंगु च कतकफलानि चिञ्चात्वचो घृतश्च पुटदग्धम् । शमयति तदम्लपित्तमम्लभुजो यथोत्तरं द्विगुणम् ॥ ३० ॥

हींग, निर्म्मलीके फल, इमलीकी छाल और घृत ये प्रत्येक औषधि एकसे एक दुगुनी लेकर पुटपाककी विधिसे दग्धकर सेवन करनेसे खटाई खानेवालेका भी अम्लपित्तरोग नष्ट होता है ॥ ३० ॥

एलापटोलघनचन्दनधान्यधात्रीत्वक्क्षीरीवरांगदलनागकणाभयाभिः । लेहः सिताज्यमधुभिः सितया च पिण्डी सम्यक् कृता शुभदिनेन सुमन्त्रपूता ॥ ३१ ॥ हन्त्यम्लपित्तवमनारुचिदाहमोहखालित्यमेहतिमिरव्रणशुक्रदोषान् । भुक्ता नरः सततमामलकीरसेन वृद्धोऽप्यनेन सुभवेत्तरुणोरिरंसुः ॥ ३२ ॥

इलायची, पटोलपत्र, नागरमोथा, चन्दन, धनियाँ, आमले, वंशलोचन, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर, पीपल और हरड इन सबको समानभाग लेकर कूट पीसकर चूर्ण कर ले, फिर इस चूर्णको मिश्री, घी और शहदमें मिलाकर मन्त्र पढ कर उत्तम दिनमें पिंडी बनावे। इसको आमलोंके रसके साथ नित्य सेवन करनेसे अम्लपित्त, वमन, अरुचि, दाह, मोह, खालित्य, प्रमेह, तिमिर, व्रण और शुक्रदोष ये सब विकार नष्ट हो जाते हैं। इसके प्रभावसे वृद्ध मनुष्य भी तरुणके समान होजाता है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

यवकृष्णपटोलानां क्काथं क्षौद्रयुतं पिबेत् । नाशयेदम्लपित्तञ्च ह्यरुचिञ्च वमिन्तथा ॥ ३३ ॥

जौ, पीपल और पटोलपत्र इनके क्काथमें शहद डालकर पान करनेसे अम्लपित्त, अरुचि और वमन दूर होती है ॥ ३३ ॥

वासानिम्बपटोलत्रिफलासनयासयोजितो जयति । अधिककफमम्लपित्तं प्रयोजितो गुग्गुलुः क्रमशः ॥ ३४ ॥

अडूसा, नीमकी छाल, पटोलपत्र, त्रिफला, विजयसार और जवासा इनको समान भाग लेकर गूगल मिलाकर सेवन करनेसे अधिक कफ और अम्लपित्तरोग नष्ट होता है ॥ ३४ ॥

त्रिकटुकतुकण्टकारीपर्पटकारिष्टकुटजबीजानाम् । सौराष्ट्रिकापटोलत्रायन्तीदारुमूर्वाणाम् ॥ ३५ ॥ तिक्तामृणालचन्दनधवकलिङ्गकैलाकिराततिक्तानाम् । सवचातिविषाकेशरदीप्यकमधुशिग्रुबीजानाम् ॥ ३६ ॥ चूर्णं पटघृष्टमिदं पीतं शिशिरेण वारिणा प्रातः । लीढं क्षौद्रेण चाम्लपित्तं प्रायेणाधोगतं हन्ति ॥ ३७ ॥

त्रिकुटा, कटेरी, पित्तपापड़ा, नीमकी छाल, इन्द्रजौ, सोरठकी मिट्टी, पटोलपत्र, त्रायमाण, देवदारु, मूर्वा, कुटकी, कमलकी नाल, चन्दन, कुडेकी छाल, इलायची, चिरायता, वच, अतीस, नागकेशर, अजवायन और लाल सहिंजनेके बीज इन सबको समान भाग लेकर शिलापर बारीक चूर्ण पीसकर प्रातःकाल शीतल जलके साथ पान करनेसे अथवा शहदमें मिलाकर चाटनेसे अधोगत अम्लपित्तरोग नष्ट होता है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

अधोगतेऽम्लपित्ते तु पैत्तिकीं ग्रहणीविधिम् । पाचनीं दीपनीश्चैव वीक्ष्यावीक्ष्यावचारयेत् ॥ ३८ ॥

अधोगत अम्लपित्तरोगमें पित्तजग्रहणीके समान चिकित्सा करे तथा रोगीका बलाबल विचार कर पाचन और दीपन औषधि देवे ॥ ३८ ॥

ज्वलन्तमिव चात्मानं मन्यते योऽम्लपित्तवान् । तस्य संशोधनं पथ्यं न शान्तिः शोधनं विना ॥ ३९ ॥

जिस अम्लपित्तरोगीका शरीर अग्निके समान जले अर्थात् घोर दाह हो तो उसको संशोधन कराना अत्यन्त पथ्य है, क्योंकि विना संशोधनके शान्ति नहीं हो सकती ॥ ३९ ॥

अचिरोत्थे चिरोत्थे वा वमनं तत्र कारयेत् ॥

अम्लपित्त रोग चाहे पुराना हो अथवा नवीन हो किंतु वमन सबमें करानी चाहिए ।

सवाते सविबन्धेऽस्मिन्हिता कंसहरीतकी ॥ ४० ॥

अम्लपित्तरोगमें जो वातकी विबन्ध हो तो कंस हरीतकीका सेवन करे ॥ ४० ॥

क्षीरं तथा गुडश्चैव सर्पिर्लेहोऽथवा पुनः । अम्लपित्ते प्रयोक्तव्यः कफपित्तहरो विधिः ॥ ४१ ॥

अम्लपित्तरोगमें गुड़, घृत और अवलेह ये सब प्रयोग करने चाहियें तथा कफपित्तनाशक विधि करनी चाहिये ॥ ४१ ॥

गुडकूष्माण्डकं चैव तथा खण्डामलक्यपि । गुडक्षीरकणासिद्धं सर्पिरत्रापि योजयेत् ॥ ४२ ॥

कूष्मांडगुड तथा आमलकी खण्ड एवं गुड, दूध और पीपलके द्वारा सिद्ध किया हुआ घृत भी इसमें प्रयोग करना चाहिये ॥ ४२ ॥

रक्तपित्तेऽपि यच्चोक्तं यच्छूले चापि पैत्तिके । तत्सर्वं कारयेद्धीमानम्लपित्ते विशेषतः ॥ ४३ ॥

रक्तपित्तरोगमें और पैत्तिकशूलमें जो चिकित्सा कही है वह सब अम्लपित्तरोगमें भी विशेष करके करनी चाहिये ॥ ४३ ॥

पिप्पलीघृत ।

पिप्पलीक्वाथकल्कानां घृतं सिद्धं मधुप्लुतम् । पिबेत्प्रातः समुत्थाय ह्यम्लपित्तनिवृत्तये ॥ ४४ ॥

पीपलके क्वाथ और कल्कके द्वारा घृतको पकाकर उसमें शहद मिलाकर प्रातःकाल पान करनेसे अम्लपित्तरोग नष्ट होता है ॥ ४४ ॥

शतावरीघृत ।

शतावरीमूलकल्कं घृतप्रस्थं पयः समम् । पचेन्मृद्वग्निना सम्यक् क्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम् ॥ ४५ ॥ नाशयेदम्लपित्तञ्च वातपित्तोत्थितं ध्रुवम् । रक्तपित्तं तृषां मूर्च्छां श्वासं सन्तापमेव च ॥ ४६ ॥

शतावरकी जडका स्वरस ४ प्रस्थ, दूध ४ प्रस्थ और उत्तम गायका घी १ प्रस्थ इन सबको एकत्र मिलाकर यथाविधिसे घृतको पकावे । इस घृतको सेवन करनेसे-वातपित्तजनित अम्लपित्त, रक्तपित्त, तृषा, मूर्च्छा, श्वास और सन्ताप ये सब रोग नष्ट होते हैं ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

तिक्तकं षट्पलं सर्पिः पञ्चतिक्तमथापि वा ॥ गुग्गुलुतिक्तकं वापि ह्यम्लपित्ते प्रयोजयेत् ॥ ४७ ॥

अम्लपित्तरोगमें तिक्तकघृत, षट्पलघृत, पंचतिक्त घृत अथवा गुग्गुलतिक्तकघृत इन सबको प्रयोग करना चाहिये ॥ ४७ ॥

धात्रीशतावरीक्षौद्रं तुल्यं शर्करया समम् । लिहेदत्राद्यनुपानेन पयसाथ

घृतेन च ॥४८॥ अम्लपित्तं निहन्त्याशु वलीपलितनाशनम् । चक्षुष्यमायुष्यतमं चतुःसममुदाहृतम् ॥ ४९ ॥

आमले, शतावर, शहद और मिश्री यह सब समान भाग लेवे, सबको एकत्र मिलाकर दूधके साथ और घृतके साथ सेवन करे। इससे अम्लपित्त, वलीपलितरोग और अम्लपित्त सम्बन्धी सब उपद्रव नष्ट हो जाते हैं। यह नेत्रोंकी ज्योतिको बढावे और अवस्थाको स्थापन करता है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

रसामृतचूर्ण ।

त्रिकुटत्रिफलामुस्तं विडङ्गं चित्रकं तथा । एषां संचूर्णितानान्तु प्रत्येकन्तु पलं भवेत् ॥ ५० ॥ कर्षद्वयं गन्धकस्य तदर्धं पारदस्य च । बिडालपदमात्रं तु लिह्यात् तन्मधुसर्पिषा ॥ ५१ ॥ शीतोदकं चानुपिबेत्क्रमाद्गव्यं पयस्तथा । अम्लपित्तमग्निमान्द्यं परिणामरुजं तथा ॥ कामलां पांडुरोगश्च हन्यादेतद्रसामृतम् ॥ ५२ ॥

त्रिकुटा, त्रिफला, नागरमोथा, वायविडंग और चीता यह प्रत्येक औषधि चार चार तोले, गन्धक २ तोले, पारा १ तोला इन सबको एकत्र पीसकर एक तोले शहद और घीमें मिलाकर सेवन करे और शीतल जलका अनुपान करे अथवा क्रमसे गायका दूध पीवे। यह औषधि–अम्लपित्त, मन्दाग्नि, परिणामशूल, कामला और पाण्डुरोग इन सबको दूर करती है ॥५०॥ ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

नारिकेलखण्ड ।

कुडवं नारिकेरस्य जले मृद्वग्निना पचेत् । नारिकेरजलाभावे गव्ये पयसि तत्पिबेत् ॥५३॥ धान्यकं पिप्पली मुस्तं चातुर्जातं विचूर्णितम् । प्रत्येकं टङ्कमात्रन्तु शीते तस्मिन्विनिःक्षिपेत्

॥ ५४ ॥ पलमात्रस्तदर्द्धोऽपि भक्षितः प्रत्यहं नरैः । नारिकेलकखण्डोऽयं पुंस्त्वनिद्राबलप्रदः ॥ ५५ ॥ अम्लपित्तं रक्तपित्तं शूलञ्च परिणामजम् । क्षयं क्षपयति क्षिप्रं शुष्कं दावानलो यथा ॥ ५६ ॥

नारियलकी गिरी एक कुडव परिमाण लेकर नारियलके जलमें पकावे और जो नारियलका जल नहीं मिले तो गायके दूधमें पकावे, जब पकते पकते गाढा हो जाय तब धनियाँ, पीपल, नागरमोथा, दालचीनी, इलायची, तेजपात और नागकेशर इन प्रत्येकका चूर्ण एक एक टंक शीतल होनेपर मिला देवे। प्रतिदिन इसमेंसे चार तोले अथवा दो तोले भक्षण करे। यह नारिकेलखण्ड–पुरुषत्व, निद्रा और बलको उत्पन्न करता है। तथा अम्लपित्त, रक्तपित्त, परिणामशूल और राजयक्ष्मारोगको नष्ट करता है। जिस प्रकार शुष्कवनको दावानल दग्ध कर देता है ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

बृहन्नारिकेलखण्ड ।

प्रस्थन्तु नारिकेलस्य सूक्ष्मं दृषदि पेषितम् । निष्कुलीकृतकूष्माण्डखण्डानामर्द्धमाढकम् ॥ ५७ ॥ तद्द्वयं भर्जयेद्गव्ये घृते तु कुडवोन्मिते । ततस्तत्र क्षिपेच्छुद्धं गोदुग्धं चाढकोन्मितम् ॥ ५८ ॥ तत्रैव निक्षिपेद्धव्यां सितां प्रस्थद्वयोन्मिताम् । पचेत्सर्वाणि चैकत्र मृदुना वह्निना भिषक् ॥ ॥ ५९ ॥ सुपक्के शीतले तत्र चूर्णीकृत्य विनिःक्षिपेत् । सूक्ष्मैला धान्यकं धात्री पर्पटं जलदं जलम् ॥ ६० ॥ उशीरं चन्दनं द्राक्षां शृङ्गाटं च कसेरुकम् । त्वक्पत्रकसुकर्पूरं कर्षयुग्मं पृथक् पृथक् ॥ ६१ ॥ सर्वं संमिश्रयेद्रक्षेद्भाजने मृन्मये नवे । पलमात्रमिदं प्रातर्भक्षयेद्वा यथानलम् ॥६२॥

एतन्निषेवितं हन्ति रोगानेतान्न संशयः। अम्लपित्तं ज्वरं पित्तं रक्तपित्तमरोचकम् ॥ ६३ ॥ वातरक्तं तृषां दाहं पांडुरोगं च कामलाम्। क्षयं क्षपयति क्षिप्रं शूलञ्च परिणामजम् ॥ ॥ ६४ ॥ नारिकेलस्य खण्डोऽयमाश्विभ्यां भाषितः पुरा। वर्णदो बृंहणो वृष्यः पुंस्त्वनिद्राबलप्रदः ॥ ६५ ॥

नारियलकी गिरी एक प्रस्थ लेकर बारीक पीस लेवे, फिर छिलकेरहित पेठेके टुकडे आधे आढक परिमाण लेवे, दोनोंको एक कुडव परिमाण गायके घृतमें भून लेवे। फिर इनको एक आढक परिमाण उत्तम गायके शुद्ध दूधमें पकावे और इसमें २ प्रस्थ सफेद मिश्री डालकर मन्द मन्द अग्निसे पकावे। जब पककर अच्छे प्रकारसे सिद्ध होजाय तब शीतल होनेपर छोटी इलायची, धनियाँ, आमले, पित्तपापडा, नागरमोथा, सुगन्धवाला, खस, चन्दन, दाख, सिंघाडे, कशेरु, दालचीनी, तेजपात और कपूर ये प्रत्येक औषधि दो दो तोले लेकर चूर्ण करके मिला देवे। इसको एक उत्तम मिट्टीके नवीन बासनमें करके रख देवे। प्रतिदिन प्रातःकाल इसमेंसे चार तोले परिमाण अग्निके बलानुसार भक्षण करे। इसको सेवन करनेसे अम्लपित्त, ज्वरपित्त, रक्तपित्त, अरुचि, वातरक्त, तृषा, दाह, पाण्डुरोग, कामला, क्षय और परिणामशूल इत्यादि अनेक रोग नष्ट होते हैं। यह नारिकेलखण्ड पूर्वकालमें अश्विनीकुमारोंने कहा है। यह वर्णको सुन्दर करनेवाला, पुष्टिकारक, वीर्यजनक तथा पुरुषत्व, निद्रा और बलको देनेवाला है ॥ ५७--६५॥

नारिकेलामृत।

नारिकेलफलप्रस्थं पिष्टं घृतविभर्जितम्। प्रस्थं प्रस्थं समादाय शुण्ठ्याश्चूर्णस्य तद्युतम् ॥ ६६ ॥ द्विपात्रं नारिकेलाम्बु तत्समं क्षीरमेव च। धात्र्याश्च स्वरसप्रस्थं खण्डस्यापि तुलां न्यसेत् ॥ ६७ ॥ एकीकृत्य पचेत्सर्वं शनैर्मृद्वग्निना भिषक्। सिद्धशीते प्रदातव्यं चूर्णं तत्र सुकण्डितम् ॥ ६८ ॥ त्रिकटुः सचतुर्जातः प्रत्येकं तु पलोन्मितम्। धात्रीजरिकयुग्मश्च धान्यकं ग्रन्थिपर्णकम् ॥ ६९ ॥ तुगापयोदचूर्णानि त्रिकर्षञ्च पृथक् पृथक्। मधुनः पलानि चत्वारि स्निग्धे भाण्डे निधापयेत् ॥ ७० ॥ कर्षप्रमाणं कर्त्तव्यं रसं यूषं पिबेदनु। अम्लपित्तं निहन्त्याशु शूलं चैव सुदुस्तरम् ७१ परिणामभवं शूलं पृष्ठशूलं च नाशयेत्। अन्नोपरि भवं शूलं हृच्छूलं च सुदुस्तरम् ॥ ७२ ॥ सर्वशूलहरं श्रेष्ठं वायोर्वेगं यथा गिरिः। कण्ठदाहं च हृदाहं छर्दिं तृष्णां सुदारुणाम् ॥ ७३॥ कासं पञ्चविधं चैव रक्तपित्तं सुदारुणम्। पीनसञ्च प्रतिश्यायं यक्ष्माणं विनिहन्ति च ॥ ७४ ॥ परं वाजीकरं श्रेष्ठं बलपुष्टिविवर्द्धनम्। अग्निसन्दीपनकरं रसायनमिदं शुभम् ७५ मूत्ररोगेषु सर्वेषु वातरोगेषु शस्यते। गुदजानि च सर्वाणि तांस्तान्रोगान्निहन्ति च ॥ ७६ ॥ रोगानीकविनाशाय लोकानुग्रहहेतुना। आश्विभ्यां निर्मितं श्रेष्ठममृताख्यं रसायनम् ॥ ७७ ॥

नारियलकी गिरी १ प्रस्थ लेकर घीमें भूनलेवे, और घीमें भूना हुआ सोंठका चूर्ण १ प्रस्थ, दो कुम्भपरिमाण नारियलका जल और दो कुम्भपरिमाण दूध तथा आमलोंका स्वरस १ प्रस्थ और उत्तम खांड १ तुला परिमाण इन सबको एकत्र मिलाकर यथाविधिसे मन्द मन्द अग्निसे पकावे। जब पककर तैयार होजाय तब शीतल होनेपर सोंठ, मिरच, पीपल, दालचीनी, इलायची, तेजपात और नागकेशर प्रत्येकका चूर्ण चार २ तोले, आमले, जीरा, कालाजीरा, धनियाँ, गठिवन, वंशलोचन और नागरमोथा इन प्रत्येकका चूर्ण ३--३ तोले, शहद १६ तोले इन सबको

मिलाकर एक चिकने बासनमें भरकर रख देवे। इसमेंसे एक तोला लेकर सेवन करे और इसपर मांसरस अथवा यूषका अनुपान करे। यह औषधि–अम्लपित्त, दुस्तरशूल, परिणामशूल, पृष्ठशूल, अन्नद्रवशूल, दुस्तर हृदयशूल, सर्व प्रकारके शूल, कण्ठदाह, हृदयकी दाह, वमन, दारुणतृषा, पाँचो प्रकारकी खाँसी, दारुण रक्तपित्त, पीनस, प्रतिश्याय, राजयक्ष्मा और सर्व प्रकारके रोगोंको दूर करती है । तथा अत्यन्त वाजीकरण, श्रेष्ठ, बल और पुष्टिको बढानेवाली अग्निको दीपन करनेवाली और उत्तम रसायन है। यह सब प्रकारके मूत्ररोगोंको, सब प्रकारके वातरोगोंको, सब प्रकारके गुदाके रोग और अन्यान्य अनेक प्रकारके दुस्तर रोगोंको विनाश करती है। रोगोंको नष्ट करनेके लिये संसारके जीवोंपर अनुग्रह करके पूर्वकालमें अश्विनीकुमारोंने इस अमृत रसायनको बनाया था ॥ ६६–७७ ॥

अविपत्यकरचूर्ण ।

त्रिकटुत्रिफलामुस्तं बीजं चैव विडङ्गजम् । एलापत्रं च सर्वाणि समभागानि कारयेत् ॥ ७८ ॥ यावन्त्येतानि सर्वाणि लवङ्गं तत्समं भवेत् । सर्वचूर्णाद्द्विगुणितं त्रिवृच्चूर्णं च कारयेत् ॥ ७९ ॥ यावन्त्येतानि सर्वाणि तावती शर्करा भवेत् । सर्वमेकीकृतं पात्रे स्निग्धे चैव निधापयेत् ॥ ॥ ८० ॥ भोजनादौ ततो भक्षेन्माषाष्टकमिदं शुभम् । शीततोयानुपानश्च नारिकेलोदकं तथा ॥ ८१ ॥ ततो यथेष्टमाहारं कुर्यात्क्षीरोदनश्च वै । अम्लपित्तं हरत्याशु शूलदुर्नामनाशनम् ॥ ८२ ॥ प्रमेहं विंशतिश्चैव मूत्राघातं तथाश्मरीम् । अविपत्यकरं चूर्णमगस्तिमुनिभाषितम् ॥ ८३ ॥

त्रिकुटा, त्रिफला, नागरमोथा, वायविडंगके बीज, इलायची और तेजपात यह सब औषधि समान भाग लेवे और सबकी बराबर लौंग लेवे, सबको एकत्र पीसकर चूर्ण कर ले और सब चूर्णसे दुगुना निसोतका चूर्ण लेवे और सबके बराबर मिश्री लेवे। इन सबको एकत्र करके एक उत्तम चिकने पात्रमें करके रख देवे। प्रतिदिन इसमेंसे भोजनसे पहिले आठमासे भक्षण करे और इसपर शीतल जल अथवा नारियलके जलका अनुपान करे । इसपर यथेष्ट आहार करे अथवा दूधके साथ भात खाय। यह चूर्ण--अम्लपित्त, शूल, बवासीर, बीस प्रकारके प्रमेह, मूत्राघात और अश्मरी इन सबको नष्ट करता है। इस अविपत्यकर चूर्णको अगस्ति मुनिने कहा है ७८-८३॥

पिप्पल्याद्यवलेह ।

पिप्पल्याः कुडवं चूर्णं घृतस्य कुडवद्वयम् । पलं षोडशकं खण्डाच्छतावर्य्याः पलाष्टकम् ॥ ८४ ॥ शिवायाः स्वरसस्यापि पलं षोडशकं मतम् । क्षीरप्रस्थद्वये साध्ये लेहीभूतेऽत्र निःक्षिपेत् ॥ ८५ ॥ त्रिजातकाभयाजाजीधान्यमुस्तशिवातुगाः । एतेषां कार्षिकं चूर्णं कर्षार्द्धं कृष्णजीरकम् ॥ ८६ ॥ नागरं नागकं जातीफलं समरिचं हिमम् । दत्वा पलत्रयं क्षौद्रं स्निग्धभाण्डे विनिःक्षिपेत् ॥ ८७ ॥ प्रातर्य्यथाबलं लिह्यादम्लपित्तप्रशान्तये । हृल्लासारोचकच्छार्दिपिपासादाहनाशनम् ॥ ८८ ॥

पीपलका चूर्ण १ कुडवपरिमाण, घी २ कुडव परिमाण, खांड १६ पल, शतावर ८ पल, हरडका स्वरस या काथ १६ पल और दूध २ प्रस्थ लेवे सबको एकत्र मिलाकर पकावे। जब पकते २ लेहके समान होजाय तब दालचीनी, इलायची, तेजपात, हरड, जीरा, धनियां, नागरमोथ, आमले और वंशलोचन प्रत्येक औषधिका चूर्ण एक २ तोला परिमाण, कालाजीरा ६ मासे, सोंठ, नागकेशर, जायफल, कालीमिरच और कपूर यह प्रत्येक छः छः मासे और शहद १२ तोले इन सबको एकत्र मिला देवे, पश्चात् एक उत्तम चिकने बासनमें भरकर रख देवे इसमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल अग्निके बलानुसार चाटे इससे अम्लपित्त, हल्लास, (उबकाई) अरुचि, वमन, पियास और दाह नष्ट होती है ॥ ८४--८८ ॥

खण्डकूष्माण्ड ।

कूष्माण्डकरसो ग्राह्यः पलानां शतमात्रकम् । रसतुल्यं गवां क्षीरं धात्रीचूर्णं पलाष्टकम् ॥ ८९ ॥ लघ्वग्निना पचेत्तावद्यावद्भवति पिण्डितम् । धात्रीतुल्या सिता योज्या पलार्द्धं लेहयेदनु । खंडकूष्मांडकं ख्यातमम्लपित्तं नियच्छति ॥ ९० ॥

पेठेका स्वरस १०० पल, गायका दूध १०० पल और आमलोंका चूर्ण ३२ तोले, सबको एकत्र मिलाकर मन्द २ अग्निसे पकावे । जब पकते २ पिंडके समान होजाय तब ३२ तोले उत्तम खांड डाल देवे । इसमेंसे प्रतिदिन दो तोले प्रमाण खाय । यह खण्डकूष्माण्ड--अम्लपित्तरोगको नष्ट करता है॥८९॥९०॥

द्राक्षाद्यघृत ।

द्राक्षामृताशक्रपटोलपत्रैः सोशीरधात्रीघनचन्दनैश्च । त्रायन्तिकापद्मकिरातधान्यैः कल्कैः पचेत्सर्पिरुपेतमेभिः ॥ ९१ ॥ युञ्जीत मात्रां सह भोजनेन सर्वर्तुपानेऽपि भिषग्विदध्यात् । बलासपित्तं ग्रहणीं प्रवृद्धां कासाग्निसादं ज्वरमम्लपित्तम् । सर्वं निहन्याद्घृतमेतदाशु सम्यक् प्रयुक्तं ह्यमृतोपमञ्च ॥ ९२ ॥

दाख, गिलोय, कुडेकी छाल, पटोलपत्र, खस, आमले, नागरमोथा, चन्दन, त्रायमाण, कमल, चिरायता और धनियाँ इन सब औषधियोंके कल्कके द्वारा उत्तम गायके घीको पकावे इसको बलानुसार भोजनके साथ प्रत्येक ऋतुमें सेवन करे। यह औषधि कफपित्त, अत्यन्त बढी हुई संग्रहणी, खाँसी, मन्दाग्नि, ज्वर और अम्लपित्तको नष्ट करती है ॥ ९१॥९२ ॥

द्राक्षादिगुटिका ।

द्राक्षापथ्ये समे कृत्वा तयोस्तुल्यां सितां क्षिपेत् । संकुट्याक्षद्वयमितं पिण्डिकां कारयेद्भिषक् ॥ ९३ ॥ तां खादेदम्लपित्तार्तो हृत्कण्ठदहनापहाम् । तृण्मूर्च्छाभ्रममन्दाग्निनाशिनीं चामवातहाम् ॥ ९४ ॥

दाख और हरड दोनों समान भाग लेवे और दोनोंकी बराबर मिश्री लेवे, सबको कूट पीसकर दो दो तोलेकी गोली बनावे । प्रतिदिन एक गोली खाय । इससे अम्लपित्तरोग, हृदयकी और कण्ठकी दाह, तृषा, मूर्च्छा, भ्रम, मंदाग्नि और आमवात यह सब नष्ट होते हैं ॥ ९३ ॥ ९४ ॥

इति श्रीवङ्गसेने भाषाटीकायां अम्लपित्ताधिकार समाप्त ॥ ५९ ॥

अथ विसर्परोगाधिकार ।



लवणाम्लकटूष्णादिसंसेवाद्दोषकोपतः । विसर्पः सप्तधा ज्ञेयः सर्वतः परिसर्पणात् ॥ १ ॥

लवण (नमकीन खारे), अम्ल (खट्टे), चरपरे और गरम आदि पदार्थोंको सेवन करनेसे वातादिदोष कुपित होकर सात प्रकारके विसर्परोगको उत्पन्न करते हैं । यह सर्वत्र फैल जाता है इस कारण इसको विसर्प कहते हैं ॥ १ ॥

विसर्पके सातप्रकार ।

पृथक् त्रयस्त्रिभिश्चैको विसर्पा द्वन्द्वजास्त्रयः । वातिकः पैत्तिकश्चैव कफजः सान्निपातिकः । चत्वार एते वीसर्पा वक्ष्यन्ते द्वन्द्वजास्त्रयः ॥ २ ॥

वातज, पित्तज, कफज और सान्निपातिक इस प्रकार तीन दोषसम्बन्धी चार और दो दोषोंसे उत्पन्न हुए तीन इस प्रकार विसर्प सात प्रकारका जानना ॥ २ ॥

आग्नेयो वातपित्ताभ्यां ग्रन्थ्याख्यः कफवातजः । यस्तु कर्दमको घोरः स पित्तकफसम्भवः ॥ ३ ॥

वातपित्तसे आग्नेय विसर्प होता है, कफवातसे ग्रन्थिविसर्प होता है और पित्तकफसे घोर कर्दमक विसर्प होता है ॥ ३ ॥

विसर्पके दोषदूष्य ।

रक्तं लसीकात्वङ्मांसं दूष्यं दोषास्त्रयो मलाः । विसर्पाणां समुत्पत्तौ विज्ञेयाः सप्तधातवः ॥ ४ ॥

रुधिर, लसीका, त्वचा और मांस यह चार दूष्य और वातादि तीनों दोष इस प्रकार ये सप्त धातु विसर्प होनेके कारण हैं ॥ ४ ॥

वातजविसर्पके लक्षण ।

तत्र वातात्सवीसर्पो वातज्वरसमव्यथः । शोफस्फुरणनिस्तोदभेदायामार्त्तिहर्षवान् ॥ ५ ॥

वातजविसर्पके लक्षण वातज्वरके समान होते हैं तथा सूजन, फडकने नोचने सरीखी पीडा, तोडने सरीखी पीडा, खैंचने सरीखी पीडा, दुःख होना और रोमांचोंका होना ये सब लक्षण होते हैं ॥ ५ ॥

पित्तजविसर्पके लक्षण ।

पित्तादद्रुतगतिः पित्तज्वरलिङ्गोऽतिलोहितः ।

पित्तजविसर्प बहुत शीघ्र फैलता है, इसमें पित्तज ज्वरके लक्षण होते हैं और यह अत्यन्त लाल होता है।

कफजविसर्पके लक्षण ।

कफात्कंडूयुतः स्निग्धः कफज्वरसमानरुक् ॥ ६ ॥

कफजविसर्प अत्यन्त खुजलायुक्त, चिकना और इसमें कफज्वरके समान पीडा होती है ॥ ६ ॥

सन्निपातजविसर्पके लक्षण ।

सन्निपातसमुत्थश्च सर्वरूपसमन्वितः ॥ ७

सन्निपातजविसर्पमें उपर्युक्त तीनों दोषोंके सब लक्षण होते हैं ॥ ७ ॥

वातपित्तोत्पन्न आग्नेयविसर्पके लक्षण ।

वातपित्तज्वरच्छर्दिमूर्च्छातीसारतृड्भ्रमैः । अस्थिभेदाग्निसदनतमकारोचकैर्युतः ॥ ८ ॥ करोति सर्वदेहञ्च दीप्ताङ्गारावकीर्णवत् । यं यं देशं विसर्पश्च विसर्पति भवेत्तु सः ॥ ९ ॥ शान्ताङ्गारासितोऽनीलो रक्तो वाऽऽश्वपचीयते । अग्निदग्ध इव स्फोटः शीघ्रं गत्वा द्रुतं स च ॥१०॥ मर्मानुसारी वीसर्पः स्यात्ततोऽतिबलस्ततः । व्यथेतांगं हरेत्संज्ञां निद्राञ्च श्वासमीरयेत् ॥ ११ ॥ हिध्माञ्च स गतोऽवस्थामीदृशीं लभते नरः । क्वचिच्छर्मारतिग्रस्तो भूमिशय्यासनादिषु ॥ १२ ॥ चेष्टमानस्ततः क्लिष्टो मनोदेहसमुद्भवः । दुष्प्रबोधोऽश्नुते निद्रां सोऽग्निवीसर्प उच्यते ॥ १३ ॥

वातपित्तज विसर्पमें ज्वर, वमन, मूर्च्छा, अतिसार तृषा, भ्रम, हड्डियोंमें तोडने सरीखी पीडा, मंदाग्नि, अन्धकारदर्शन, अरुचि, सम्पूर्ण शरीर प्रज्वलित अंगारोंसे आच्छादितके समान प्रतीत हो, जिस जिस स्थानमें यह विसर्प फैलता है उसी उसी स्थानमें बुझे हुए अंगारोंके समान काला, नीला और लालरंगका होकर बहुत जल्दी सूजजाता है अग्निसे जलेके समान ऊपर फफोले पडें वह विसर्प शीघ्र फैलनेके कारण मर्मोंमें प्राप्त होकर अत्यन्त प्रबल होजाता है, प्रबलतासे शरीरको पीडित करता है, संज्ञा और निद्रा जाती रहती हैं, श्वास अधिक बढजाता है, हिचकी आने लगती है, ऐसी अवस्थाको प्राप्त होकर वह मनुष्य रोगसे दुःखित हुआ पृथिवीमें कहीं भी आसन शयनादिकोंमें सुख नहीं पाता अर्थात् सदैव सबकालमें सब जगह बेचैन रहता है तब उस क्लेशसे व्याकुल हुआ इधर उधर भ्रमता है। फिर मन और शरीरके श्रमसे उत्पन्न हुई जो अज्ञान-निद्रा उसके वश होता है। उसको अग्निविसर्प कहते हैं ॥ ८-१३ ॥

वातपित्तोद्भवग्रन्थिविसर्पके लक्षण ।

कफेन रुद्धः पवनो भित्वा तं बहुधा कफम् । रक्तं वा वृद्धरक्तस्य त्वक्छिरास्नायुमांसगम् ॥ १४ ॥ दूषयित्वा तु दीर्घाणुं वृत्तस्थूलखरात्मनाम् । ग्रन्थीनां कुरुते मालां रक्तानां तीव्ररुक् ज्वरम् ॥ १५ ॥ श्वासकासातिसारास्यशोषहिध्मावमिभ्रमैः । मोहवैवर्ण्यमूर्च्छाङ्गभङ्गाग्निसदनैर्युतः ॥ इत्ययं ग्रन्थिवीसर्पः कफमारुतकोपजः ॥ १६ ॥

अपने कारणोंसे कुपितहुए, कफसे रुकीहुई और अपने कारणोंसे दूषित हुई वायु कफको और रुधिरको अनेक प्रकारसे बढे हुए रुधिरवाले मनुष्यकी त्वचामें, शिराओंमें, स्नायुओंमें और मांसमें प्राप्त हुए रुधिरको दूषित करके लंबी, गोल, मोटी, लाल और खरखरी गाठोंकी पंक्तिको उत्पन्न करता है, इन गाँठोंके होनेसे तीव्र वेदना, ज्वर, श्वास, खाँसी, अतिसार, शोष, हिचकी, वमन, भ्रम, मोह, विवर्णता, मूर्च्छा, अंगोंका टूटना और जठराग्निकी मंदता होती है। इसको ग्रन्थिविसर्प कहते हैं । यह कफ और वायुके कोपसे होता है ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥

कफपित्तोत्पन्नकर्दमकविसर्पके लक्षण ।

कफपित्ताज्ज्वरस्तम्भो निद्रातन्द्राशिरोरुजा । अङ्गावसादविक्षेपप्रलापारोचकभ्रमाः ॥ १७ ॥ मूर्च्छाग्निहानिर्भेदोऽस्थ्नां पिपासेन्द्रियगौरवम् । आमोपवेशनं लेपः स्रोतसां स विसर्पति ॥ १८ ॥ प्रायेणामाशयं गृह्णन्नेकदेशं न चातिरुक् । पिडकैरवकीर्णोऽति पीतलोहितपांडुरैः ॥ २० ॥ स्निग्धो सितो मेचकाभो मलिनः शोफवान्गुरुः । गम्भीरपाकः प्रायोष्मास्पर्शः क्लिन्नोऽवदीर्य्यते ॥ २० ॥ पंकवच्छीर्णमांसश्च स्पर्शस्नायुशिरागणः । शवगन्धश्च वीसर्पः कर्दमाख्यमुशन्ति तम् ॥ २१ ॥

कफसे तथा पित्तसे उत्पन्न होनेवाला जब कर्दमक विसर्प उत्पन्न होता है तो उसमें ज्वर, जडता, निद्रा, तन्द्रा, मस्तकमें पीडा, अंगोंमें ग्लानि, विक्षेप (हाथ पांवोंको इधर उधर पटकना), बकवाद, अरुचि, भ्रम, मूर्च्छा, अग्निकी मन्दता, हडफूटन, तृषा, इन्द्रियोंम भारीपन, आमसहित दस्तका आना और मुखादि स्रोतोंमें कफ लिसासा रहता है । यह विसर्प एक प्रदेशको ग्रहण करके विशेष करके आमाशयमें फैलता है । इसमें विशेष पीडा नहीं होती । अत्यन्त पीली, लाल तथा सफेद फुन्सियोंसे व्याप्त होता है । स्निग्ध, काला, रूखा, कालेरंगका, मलीन, सूजनयुक्त, भारी, गम्भीर-पाकवाला, छूनेसे गरम होता है, फटनेवाला कीचके समान त्वचाका रंग होता है, मांस गलकर गिरनेलगे तथा स्नायु और शिराओंको स्पर्श करे और उसमें मुरदेके समान वास आवे उसको कर्दमकविसर्प कहते हैं ॥ १७-२१ ॥

क्षतजविसर्पके लक्षण ।

बाह्यहेतोः क्षतात्क्रुद्धः सरक्तं पित्तमीरयन् । वीसर्पं मारुतः कुर्य्यात्कुलित्थसदृशैश्चितम् । स्फोटैः शोथज्वररुजा दाहाढ्यं श्यावशोणितम् ॥ २२ ॥

शस्त्र आदिके आघातसे, व्याघ्र, सिंह आदि जानवरोंके दांत या नख आदिका लग जाना इत्यादि आगन्तुक कारणोंसे क्षत होकर प्रकोपको प्राप्त हुई वायु रुधिर और पित्तको प्रेरित करके विसर्पको उत्पन्न करता है । यह विसर्प कुलथीके दानोंके समान फुन्सियोंसे व्याप्त होता है, काले रुधिरसे युक्त होता है और सूजन, ज्वर वेदना तथा दाहसे अत्यन्त पीडित होता है ॥ २२ ॥

विसर्पके उपद्रव ।

ज्वरातिसारौ वमथुस्त्वङ्मांसदरणं क्लमः । अरोचकाविपाकौ च विसर्पाणामुपद्रवाः ॥ २३ ॥

ज्वर, अतिसार, वमन, त्वचाका फटना, मांसका फटना, ग्लानि, अरुचि और अन्नका अविपाक ये सब विसर्पके उपद्रव हैं ॥ २३ ॥

साध्यासाध्य लक्षण।

सिध्यन्ति वातकफपित्तकृता विसर्पाः सर्वात्मकः क्षतकृतश्च न सिद्धिमेति। पित्तात्मकोऽञ्जनवपुश्च भवेदसाध्यः प्रायेण मर्म्मसु भवन्ति हि सर्व एव ॥ २४ ॥

वात, पित्त और कफजनित विसर्प साध्य है। सान्निपातज और क्षतजविसर्प असाध्य है। तथा पित्तज काले रंगका विसर्प भी असाध्य है और मर्म्मस्थानोंमें उत्पन्न हुआ विसर्प भी प्रायः असाध्य है ॥ २४॥

तृट्श्वासमांससंकोचदाहहिक्कामदज्वराः। विसर्पा मर्म्मसंरोधास्तेषां प्रोक्ता ह्युपद्रवाः ॥ २५ ॥

मर्म्मस्थानमें उत्पन्न हुए विसर्पमें तृषा, श्वास, मांसका संकोच, दाह, हिचकी, मद और ज्वर ये सब उपद्रव होते हैं ॥ २५ ॥

विसर्परोगकी चिकित्सा।

सर्वेष्वेव विसर्पेषु कुर्य्याल्लङ्घनरूक्षणम्। विरेकवमनालेपसेचनाऽसृग्विमोक्षणैः ॥ उपाचरेद्यथादोषं विसर्पानविदाहिभिः ॥ २६ ॥

सर्वप्रकारके विसर्परोगमें लंघन, रूक्षण, विरेचन, वमन, लेप, सेचन और रक्तमोक्षण ये सब उपचार यथादोषानुसार प्रयोग करने चाहिये, किन्तु दाहकरक प्रयोग कोई भी कभी नहीं करना चाहिये ॥ २६ ॥

पटोलपिचुमन्दाभ्यां पिप्पल्या मदनेन वा। विसर्पे वमनं शस्तं तथा चेन्द्रयवैः सह ॥ २७ ॥

पटोलपत्र, नीम, पीपल अथवा मैनफल इनके द्वारा इन्द्रजौ मिलाकर विसर्परोगमें वमन करानेके लिये देवे ॥ २७ ॥

त्रिफलारससंयुक्तं सर्पिस्त्रिवृतया सह। प्रयोक्तव्यं विरेकार्थं वीसर्पज्वरशान्तये ॥ २८ ॥

त्रिफलेके स्वरस अथवा क्वाथमें घी और निसोतका चूर्ण डालकर विसर्पज्वरको शांत करनेके लिये विरेचनार्थ प्रयोग करे ॥ २८ ॥

रास्नानीलोत्पलं दारु चन्दनं मधुकं बला। घृतक्षीरयुतो लेपो वातवीसर्पनाशनः ॥ २९ ॥

रासयन, नीलेकमल, देवदारु, चन्दन, मुलैठी और खिरैंटी इनको एकत्र पीसकर घी और दूधमें मिलाकर लेप करनेसे वातजविसर्प नष्ट होता है ॥२९॥

शकृद्रसं पयोमूत्रं पञ्चमूलं च तत्समम्। एतत्सुखोष्णकं कार्यं विसर्पेऽनिलसम्भवे ॥ ३० ॥

गोबरका रस, दूध, गोमूत्र और पंचमूलका क्वाथ इन सबको एकत्र पकाकर मन्दोष्ण सेवन करनेसे वातज विसर्प नष्ट होता है ॥ ३० ॥

तृणवर्ज्यं विधातव्यं पञ्चमूलचतुष्टयम्। प्रदेहसेकौ सर्पिर्भिर्विसर्पे वातसम्भवे ॥ ३१ ॥

तृणपंचमूलको छोडकर शेष चारों प्रकारके पंचमूलकी औषधियोंको पीसकर घीमें मिलाकर सेचन और लेपन करना चाहिये, इससे वातजविसर्प नष्ट होता है ॥ ३१ ॥

कुष्ठं शताह्वा सुरदारुमुस्तावाराहिकुस्तुम्बुरुकृष्णगन्धाः। वातेर्कवंशार्त्तगलाश्च योज्याः सेके प्रलेपेषु तथा घृतेषु ॥ ३२ ॥

कूठ, शतावर, देवदारु, नागरमोथा, वाराहीकन्द, धनियां, सहिंजना, आक, बाँस और नीले फूलका पियावाँसा इनके द्वारा किया हुआ सेक प्रलेप अथवा इनके कल्कके द्वारा घृतको पकाकर वातजविसर्पमें प्रयोग करना चाहिये ॥ ३२ ॥

द्राक्षारग्वधकाश्मर्य्यत्रिफलैरण्डपीलुभिः। त्रिवृद्धरीतकीभिश्च विसर्पे शोधनं हितम् ॥ ३३ ॥

दाख, अमलतास, कुम्भेर, त्रिफला, अण्डकी जड, पीलू, निसोत और हरड इनके द्वारा विसर्पमें शोधन करना चाहिये ॥३३॥

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थप्लक्षवेतसपीलुभिः । चन्दनद्वयमञ्जिष्ठापद्मकोशीरगैरिकैः ॥३४॥ शतधौतघृतोन्मिश्रैर्लेपो रक्तप्रसादनः । दाहपाकरुजास्रावशोथनिर्वापणः परः ॥ ३५ ॥

वड, गूलर, पीपल, पाखर, वेंत, पीलु, चन्दन, लाल चन्दन, मजीठ, पद्माख, खस और गेरु इन सबको एकत्र पीसकर सौबार धुले हुए घीमें मिलाकर लेप करनेसे शरीरका रुधिर स्वच्छ होता है तथा दाह, पाक, पीडा, स्राव और सूजन ये सब दूर होजाते हैं ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

दशांगलेप।

शिरीषयष्टी-नतचन्दनैलामांसीहरिद्राद्वयकुष्ठवालैः । लेपो दशाङ्गः सघृतः प्रयोज्यो विसर्पकुष्ठज्वरशोथहारी ॥ ३६ ॥

सिरसकी छाल, मुलैठी, तगर, चन्दन, इलायची, वालछड, हलदी, दारुहलदी, कूठ और सुगंधवाला इन सबको एकत्र पीसकर घृतमें मिलाकर लेप करनेसे विसर्प, कुष्ठ, ज्वर और सूजन नष्ट होती है ॥ ३६ ॥

प्रपौण्डरीकं मञ्जिष्ठा पद्मकोशीरचन्दनैः । सयष्टीन्दीवरैः पैत्ते क्षीरपिष्टैः प्रलेपनम् ॥ ३७ ॥

पुण्डेरिया, मजीठ, पद्माख, खस, चन्दन, मुलैठी और कमल, इन सबको एकत्र दूधमें पीसकर प्रलेप करनेसे पित्तज विसर्प नष्ट होता है ॥ ३७ ॥

कशेरुशृङ्गाटकपद्मगुन्द्राः सशैवलाः सोत्पलकर्दमाश्च । वस्त्रान्तराः पित्तकृते विसर्पे लेपो विधेयः सघृतः सुशीतः ॥ ३८ ॥

कसेरू, सिंघाडे, कमल, गुन्द्रकतृण, सिवार, कमोदिनी और कीच इन सबको एकत्र पिसकर घीमें मिला कर वस्त्रमें लपेटकर अर्थात् कपडे पर लेपकर उस कपडेको चिपका देनेसे पित्त जनित विसर्प नष्ट होता है ॥ ३८ ॥

मृणालचन्दनं लोध्रमुशीरं कमलोत्पलम् । शारिवा शल्लकी पथ्या प्रदेहाः पित्तमुद्धराः ॥ ३९ ॥

कमलकी नाल, चन्दन, लोध, खस, कमल, कमोदिनी, सारिवा, साल और हरड इन सबको एकत्र पीसकर लेप करनेसे पित्तज विसर्प नष्ट होता है ॥ ३९ ॥

प्रदेहाः परिषेकाश्च शस्यन्ते पञ्चवल्कलैः । पद्मकोशीरमधुकचन्दनैर्वा प्रशस्यते ॥ ४० ॥

पंचवल्कलको पीसकर लेप और सेचन करनेसे अथवा पद्माख, खस, मुलैठी अथवा चन्दन इनको पीसकर लेप और सेकादि करनेसे पित्तज विसर्प नष्ट होता है ॥ ४० ॥

न्यग्रोधपादा गुन्द्रा च कदलीगर्भ एव च । विषयग्रन्थिकलेपः स्याच्छतधौतघृतप्लुतः ॥ ४१ ॥

वडकी डाढी, गुन्द्रकतृण और केलेकी गोव इनको एकत्र पीसकर सौबार धुले हुए घीमें मिलाकर लेप करनेसे ग्रन्थिविसर्प नष्ट होता है ॥ ४१ ॥

मांसीसर्जरसं लोध्रं मधुकं सह रेणुभिः । हरेणवो मसूराश्च मुद्गाश्चैव सशालयः । पृथग् लेपा विसर्पघ्नाः सर्वे वा सर्पिषा सह ॥ ४२ ॥

वालछड, राल, लोध, मुलैठी और रेणुका अथवा हरेणुका, मसूर, मूँग और शालिचावल इन प्रत्येक औषधियोंका अलग अलग लेप करनेसे अथवा इन सबको एकत्र मिलाकर घीमें पीसकर लेप करनेसे विसर्परोग नष्ट होता है ॥ ४२ ॥

श्लैष्मिके वमनं पूर्वं रेचनं च कफापहम् ॥ ४३ ॥

कफज विसर्परोगमें प्रथम वमन करावे और कफनाशक विरेचन देवे ॥ ४३ ॥

मदनं मधुकं निम्बं वत्सकस्य फलानि च । वमनञ्च विधातव्यं विसर्पे कफसम्भवे ॥ ४४ ॥

मैनफल, मुलैठी, नीम और इन्द्रजौ इनके द्वारा कफसे उत्पन्न हुए विसर्पमें वमन करावे ॥४४॥

गायत्रीसप्तपर्णाब्दवासारग्वधदारुभिः । कुटन्नटैर्भवेल्लेपो विसर्पे श्लेष्मसम्भवे ॥ ४५ ॥

खैर, सतौना, नागरमोथा, अडूसा, अमलतास, देवदारु और श्योनाक इन सबको एकत्र पीसकर लेप करनेसे कफजनित विसर्परोग नष्ट होता है ॥ ४५ ॥

अजाश्वगन्धा सरलाथ कालसैकेशिवा चाप्यथवाजशृङ्गी । गोमूत्रपिष्टैर्विहितः प्रदेहो हन्याद्विसर्पं कफजं सुशीघ्रम् ॥ ४६ ॥

मेढाशिंगी, असगंध, धूपसरल, नाडीका शाक अथवा केवल इकली हरड, या मेढाशिंगीको गोमूत्रमें पीसकर लेप करनेसे कफका विसर्प नष्ट होता है॥४६॥

त्रिफलापद्मकोशीरसमङ्गाकरवीरकम् । नलमूलमनन्ता च लेपः श्लेष्मविसर्पहा ॥ ४७ ॥

त्रिफला, पद्माख, खस, मजीठ, कनेर, नरसलकी जड और अनन्तमूल इन सबको एकत्र पीसकर लेप करनेसे कफज विसर्प नष्ट होता है ॥ ४७ ॥

काकजङ्घाशिरीषस्य पुष्पं श्लेष्मातकत्वचम् । कृतमालकपत्राणि चाश्वगन्धा प्रियङ्गवः ॥ प्रदेहः कफवीसर्पे कदूष्णः सुप्रयोजितः ॥ ४८ ॥

काकजंघा (मसी) और सिरसके फूल, लिसोडेकी छाल, अमलतासके पत्ते, असगंध और फूलप्रियंगू इनको एकत्र पीसकर मंदोष्ण करके लेप करनेसे कफका विसर्प नष्ट होता है ॥ ४८ ॥

आरग्वधस्य पत्राणि त्वचः श्लेष्मातकोद्भवाः । शिरीषपुष्पसहिता हिता लेपावचूर्णनैः ॥ ४९ ॥

अमलतासके पत्ते, लिसौडेकी छाल और सिरसके फूल इनका एकत्र चूर्ण करके लेप करनेसे कफजविसर्प नष्ट होता है ॥ ४९ ॥

मुस्तारिष्टपटोलानां क्वाथः सर्वविसर्पनुत् । धात्रीपटोलमुद्गानामथवा घृतसंयुतः ॥ ५० ॥ अमृतघनपटोलं निम्बकल्कैरुपेतं त्रिफलखदिरसारं व्याधिघातञ्च तुल्यम् ॥ क्वथितमिदमशेषं गुग्गुलोः पादयुक्तं हरति त्रिषविसर्पान्कुष्ठसङ्घातमाशु ॥ ५१ ॥

नागरमोथा, नीमकी छाल और पटोलपत्र इनका काथ सब विसर्परोगोंको दूर करता है। अथवा आमले, मूंग और पटोलपत्र इनके काथमें घी डालकर सेवन करनेसे अथवा गिलोय, नागरमोथा, पटोलपत्र,नीमकी छाल,त्रिफला,खैरसार और अमलतास इन सबको समान भाग लेकर काथ बनाकर गूगल डालकर पान करनेसे सर्व प्रकारके विष विसर्प और सर्वप्रकारके कुष्ठरोग नष्ट होते हैं ॥ ५० ॥ ५१ ॥

भूनिम्बवासाकटुकापटोलं फलत्रिकं चन्दननिम्बसिद्धः । विसर्पदाहज्वरशोषकंडूविस्फोटतृष्णावमिनुत्कषायः ॥ ५२ ॥

चिरायता, अडूसा, कुटकी, पटोलपत्र, त्रिफला, चन्दन और नीमकी छाल इनका काथ बनाकर पान करनेसे विसर्प, दाह, ज्वर, शोष, कण्डू, विस्फोट, तृषा और वमन दूर होती है ॥ ५२ ॥

पटोलं पिचुमन्दश्च दार्वीं कटुकरोहिणीम् । यष्ट्याह्वं त्रायमाणाश्च दद्याद्वीसर्पशान्तये ॥ ५३ ॥

पटोलपत्र, नीमकी छाल, दारुहलदी, कुटकी, मुलैठी और त्रायमाण इनका काथ बनाकर विसर्पको शांत करनेके लिये सेवन करे ॥ ५३ ॥

त्रायन्ती निम्बदारुकुण्डलिधात्रीपटोलकटुकाभिः । क्वाथो हन्ति विसर्पान्मकरन्दयुतो वृद्धदारान् ॥ ५४॥

त्रायमाण, नीम, देवदारु, गिलोय, आमले, पटोलपत्र और कुटकी इनका क्वाथ बनाकर शहद और विधारेका चूर्ण डालकर पान करनेसे विसर्परोग नष्ट होता है ॥ ५४ ॥

त्रिदोषजां क्रियां कुर्य्याद्विसर्पे द्वन्द्वसम्भवे । सकफे रक्तपित्ते च त्रिफलां योजयेत्पुरैः ॥ ५५ ॥

द्वन्द्वजविसर्पोंमें त्रिदोषनाशक चिकित्सा करनी चाहिये । कफज और रक्तपित्तसंयुक्त विसर्पमें त्रिफलेको गूगलके साथ सेवन करे ॥ ५५ ॥

दुरालभां पर्पटकं पटोलं कटुकां तथा । कोष्णं गुग्गुलुसंमिश्रं पिबेद्वा खदिराष्टकम् ॥ ५६ ॥

धमासा, पित्तपापडा, पटोलपत्र और कुटकी इनका क्वाथ बनाकर मन्दोष्ण करके गूगल डालकर पान करनेसे अथवा खदिराष्टक नामक क्वाथको पान करनेसे द्वन्द्वज विसर्प नष्ट होता है ॥ ५६ ॥

वातपित्तप्रशमनमग्निवीसर्परोहणम् । कफपित्तप्रशमनं प्रायः कर्दमसंज्ञके ५७॥

अग्निविसर्पमें वातपित्तनाशक चिकित्सा करनी चाहिये और कर्दमनामक विसर्पमें कफपित्तनाशक चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ५७ ॥

वातपित्तहरं कर्म्म ग्रन्थिवीसर्पिणे हितः । मसूरिस्फोटकुष्ठघ्नी क्रिया योज्या विसर्पिणाम् ॥ ५८ ॥

ग्रन्थि विसर्पमें वातपित्तनाशक चिकित्सा हितकारक है । तथा मसूरिका स्फोट और कुष्ठरोगोंमें जो चिकित्सा कही है वह सब विसर्परोगमें भी प्रयोग करनी चाहिये ॥ ५८ ॥

कुष्ठामयस्फोटमसूरिकोक्तचिकित्सयाप्याशु हरेद्विसर्पान । सर्वास्तु पक्वान्परिशोध्य धीमान्व्रणक्रमेणोपचरेद्यथोक्तम् ॥ ५९ ॥

कुष्ठरोग, स्फोट और मसूरिकारोगमें जो चिकित्सा कही है वही चिकित्सा विसर्पको दूर करनेके लिये करनी चाहिये । सर्वप्रकारके पक्व विसर्पोंको अच्छे प्रकारसे शुद्ध करके पश्चात् व्रणके समान व्रणरोगोक्त चिकित्सा करे ॥ ५९ ॥

यच्च सर्पिर्महातिक्तं पित्तकुष्ठनिबर्हणम् । निर्दिष्टं तदपि प्राज्ञो दद्याद्वीसर्पशान्तये ॥ ६० ॥

महातिक्तघृत तथा अन्यान्य पित्त और कुष्ठको नष्ट करनेवाले समस्त घृत विसर्परोगमें प्रयोग करने चाहिये ॥ ६० ॥

वृषाद्यघृत ।

वृषखदिरपटोलनिम्बपत्रत्वगमृतसुशिवाकषायकल्कैः । घृतमभिनवमेतदाशु पक्वं जयति खलु विसर्पकुष्ठगुल्मान् ॥ ६१ ॥

अडूसा, खैर, पटोलपत्र, नीमके पत्ते, नीमकी छाल, गिलोय और हरड इनके कल्क और क्वाथके द्वारा उत्तम नवीन घृतको पकावे । यह घृत–विसर्प, कुष्ठ और गुल्मको नष्ट करता है ॥ ६१ ॥

गौरवाद्यघृत ।

द्वे हरिद्रे स्थिरा मूर्वा शारिवा चन्दनद्वयम् । मधुकं मधुपर्णी च पद्मकं पद्मकेशरम् ॥ ६२ ॥ उशीरमुत्पलं मेदा त्रिफला पञ्चवल्कलम् । कल्कैरक्षसमैरेभिर्घृतप्रस्थं विपाचयेत्॥६३॥ विषवीसर्पविस्फोटकीटलूताव्रणापहम् । गौरवाद्यमिति ख्यातं सर्पिः श्रेष्ठमनुत्तमम् ॥ ६४ ॥

हलदी, दारुहलदी, शालिपर्णी, मूर्वा, शारिवा, चन्दन, लालचन्दन, मुलैठी, गिलोय, पद्माख, कमलकेशर, खस, कमोदिनी, मेदा, त्रिफला और पंचवल्कल इन प्रत्येक औषधियोंका एक २ तोला कल्क लेकर एक प्रस्थ घृतको पकावे । यह घृत–विष, विसर्प, विस्फोट, कीट, लूता और सब प्रकारके

व्रणोंको नष्ट करता है। इस उत्तम घृतको गौरवाद्य कहते हैं ॥ ६२-६४ ॥

कुष्ठेषु यानि सर्पींषि व्रणेषु विविधेषु च। विसर्पेषु प्रयोज्यानि सेकालेपनभोजनैः ॥ ६५ ॥

कुष्ठरोगमें और व्रणरोगमें जो अनेक प्रकारके घृत कहे हैं वे सब परिसेचन, लेप और भोजनके द्वारा विसर्परोगमें भी प्रयोग करने चाहिये ॥ ६५ ॥

करञ्जतैल।

करञ्जसप्तच्छदलाङ्गलीकस्नुह्यर्कदुग्धानलभृङ्गराजैः। तैलं निशामूत्रविषैर्विपक्वं विसर्पविस्फोटविचर्चिकाघ्नम् ॥ ६६ ॥

करंज, सतौना, कलिहारी, थूहरका दूध, आकका दूध, चीता और भँगरा इनके क्वाथमें हलदीका कल्क, गोमूत्र और विषका कल्क डालकर तेलको सिद्ध करे। यह तैल-विसर्प, विस्फोट और विचर्चिका रोगको नष्ट करता है ॥ ६६ ॥

इति श्रीवङ्गसेने भाषाटीकायां विसर्परोगाधिकार समाप्त ॥ ६० ॥

अथ विस्फोटकरोगाधिकार।



कट्वम्लतीक्ष्णोष्णविदाहिरूक्षक्षारैरजीर्णाध्यशनातपैश्च। तथर्तुदोषेण विपर्य्ययेण कुप्यन्ति दोषाः पवनादयस्तु ॥ १ ॥ त्वचमाश्रित्य ते रक्तं मांसास्थीनि प्रदूष्य च। घोरान्कुर्वन्ति विस्फोटान्सर्वाञ्ज्वरपुरःसरान् ॥२॥

चरपरे या तीखे, खट्टे, तीक्ष्ण, गरम, दाहकारक, रूखे और खारी पदार्थोंसे, अजीर्णसे, भोजनपर भोजन करनेसे, धूप या अग्निका सेवन करनेसे और ऋतुओंके परिवर्तनसे तथा उन ऋतुओंमें आहार विहारकी विपरीततासे कोपको प्राप्त हुए वातादि दोष रुधिर, मांस तथा अस्थियोंको दूषित करके ज्वरको उत्पन्न कर त्वचामें सर्वप्रकारके भयंकर विस्फोटोंको उत्पन्न करते हैं ॥ १ ॥ २ ॥

विस्फोटकका स्वरूप।

अग्निदग्धनिभाः स्फोटाः सज्वरा रक्तपित्तजाः। क्वचित्सर्वत्र वा देहे विस्फोटक इति स्मृतः ॥ ३ ॥

ज्वरयुक्त रुधिर तथा पित्तसे उत्पन्न हुआ अग्निसे जलाये हुएके समान ऐसा फोडा शरीरके किसी एक प्रदेशमें अथवा सम्पूर्ण शरीरमें उत्पन्न होता है तब उसको विस्फोटक कहते हैं। जिसप्रकार सब प्रकारकी पीडाओंमें वायुको प्राधान्य है उसी प्रकार सर्वप्रकारके विस्फोटकोंमें रुधिर और पित्तकी प्रधानता है, विस्फोटकोंको उत्पन्न करनेमें रुधिर तथा पित्तमें वायुका सम्बन्ध भी होता है ऐसा जानना ॥ ३ ॥

वातज विस्फोटकके लक्षण।

शिरोरुक्शूलभूयिष्ठं ज्वरतृट् पर्वभेदनम्। सकृष्णवर्णता चेति वातविस्फोटलक्षणम् ॥ ४ ॥

शिरमें पीडा, शूल, ज्वर, तृषा, संधियोंमें तोडने सरीखी पीडा और फोडोंका वर्ण कृष्ण हो यह वातज विस्फोटकके लक्षण जानने ॥ ४ ॥

पित्तजविस्फोटकके लक्षण।

ज्वरदाहरुजास्रावपाकतृष्णाभिरन्वितम्। पीतलोहितवर्णश्च पित्तविस्फोटलक्षणम् ॥ ५ ॥

ज्वर, दाह, दुःख, स्राव (बहना), पकना, तृषा, व्रणका रंग पीला और लाल हो ये सब लक्षण पित्तज विस्फोटकके जानने ॥ ५ ॥

कफज विस्फोटकके लक्षण।

छर्द्यरोचकजाड्यानि कंडूकाठिन्यपांडुताः। अवेदनश्चिरात्पाकी स विस्फोटः कफात्मकः ॥ ६ ॥

वमन, अरुचि, जडता, फोडोंमें खुजली, कठिनता और फोडे पांडुवर्णके हों, पीडारहित और बहुत दिनोंमें पके ये सब लक्षण कफज विस्फोटकके जानने ॥ ६॥

कफपित्तात्मक विस्फोटकके लक्षण ।

कंडूर्दाहोऽरुचिश्छर्दिरेतैस्तु कफपैत्तिकः ।

कफपित्तज विस्फोटकमें खुजली, दाह, अरुचि और वमन होती है ।

वातपित्तात्मक विस्फोटकके लक्षण ।

वातपित्तात्मको यस्तु कुरुते तीव्रवेदनाम् ।

वातपित्तज विस्फोटकमें अत्यन्त पीडा होती है ।

कफवातात्मकविस्फोटकके लक्षण ।

कंडूस्तैमित्यगुरुभिर्जानीयात्कफवातिकम् ॥ ७ ॥

कफवातज विस्फोटकमें खुजली, अंगोंमें जडता और भारीपन होता है ॥ ७ ॥

त्रिदोषजनित विस्फोटकके लक्षण ।

मध्ये निम्नोन्नतोऽन्ते च कठिनोऽल्पप्रपाकवान् । दाहरागतृषामोहच्छर्दिमूर्च्छारुजो ज्वरः । प्रलापो वेपथुस्तन्द्रा सोऽसाध्यः स्यात्त्रिदोषजः ॥ ८ ॥

बीचमें नीचा, चारों ओर ऊँचा, कठिन, थोडा पकनेवाला, दाह, लाली, तृषा, मोह, वमन, मूर्च्छा, वेदना, ज्वर, वृथा बकवाद, कंप और तन्द्रा ये सब लक्षण त्रिदोपजविस्फोटकमें होते हैं यह असाध्य है ८

रक्तजविस्फोटकके लक्षण ।

रक्तारक्तसमुत्थाना गुञ्जाफलनिभास्तथा । वेदितव्यास्तु रक्तेन पैत्तिकेन च हेतुना ॥ न ते सिद्धिं समायान्ति सर्वैर्योगवरैरपि॥ ९ ॥

पित्तको कुपित करनेवाले जो कारण हैं उन्हीं कारणोंसे रुधिर भी कुपित होता है । इसप्रकार कुपित रुधिरसे उत्पन्न हुए विस्फोटक चौंटलीके समान लाल स्रावबाले और दाह करनेवाले होते हैं । यह विस्फोटक सैकडों अनुभव किये हुए सिद्धयोगोंसेभी आरोग्य नहीं होते हैं ॥ ९ ॥

साध्यासाध्यविचार ।

एकदोषोत्थितः साध्यः कृच्छ्रसाध्यो द्विदोषजः । सर्वरूपान्वितो घोरस्त्वसाध्यो भूर्युपद्रवः ॥ १० ॥

एक दोषसे उत्पन्न हुआ विस्फोटक साध्य, द्विदोषज विस्फोटक कष्टसाध्य और त्रिदोषज विस्फोटक तथा जिसमें अनेक उपद्रव हों उसको असाध्य जानना ॥ १० ॥

विस्फोटकके उपद्रव ।

हिक्का श्वासोऽरुचिस्तृष्णा चाङ्गमर्दो हृदि व्यथा । विसर्पज्वरहृल्लासा विस्फोटानामुपद्रवाः ॥ ११ ॥

हिचकी, श्वास, अरुचि, तषा, शरीरका टूटना, हृदयमें पीडा, विसर्प, ज्वर और उबकाई ये सब विस्फोटकके उपद्रव हैं ॥ ११ ॥

विस्फोटककी चिकित्सा ।

तत्रादौ लङ्घनं कार्यं वमनं पथ्यभोजनम् । यथायुक्तं बलं वीक्ष्य युक्तमुक्तं विरेचनम् ॥ १२ ॥

विस्फोटकरोगमें प्रथम लंघन करावे तथा वमन और पथ्यभोजन एवं दोष और अग्निका बलाबल विचार कर विरेचन देवे ॥ १२ ॥

पटोलेन्द्रयवारिष्टवचामदनसाधितम् । वमनं तत्प्रदातव्यं विस्फोटे कफपैत्तिके ॥ १३ ॥

कफपित्तजनित विस्फोटकरोगमें पटोलपत्र, इन्द्रजौ, नीम, वच और मैनफल इनके द्वारा वमन करावे ॥ १३ ॥

क्षुधिते लङ्घिते वान्ते जीर्णशालियवादिभिः । मुद्गाढकीमसूराणां रसैर्वा विश्वसंयुतैः ॥ १४ ॥

विस्फोटकमें क्षुधाके समय, लंघन किये हुए और वमन किये हुए रोगीको पुराने शालिधानके

चावल, पुराने जौ, मूँग, अरहर और मसूर इनके यूषको मांसरस और सोंठके साथ सेवन करे॥१४॥

सुनिषण्णकवेत्राग्रतंडुलीयककेतकैः । कुलकाभीरुकैरेभिः सपर्पटसतीनकैः॥ १५ ॥ कर्कोटकारवेल्लैश्च कुसुमैर्निम्बबिल्वजैः । तिक्तद्रव्यसमायुक्तं भोजनं संप्रयोजयेत् ॥ १६ ॥

शिरिआरी, वेंतका अग्रभाग, चौलाई काटोंवाली, केतकी, बेर, शतावर, पित्तपापडा, कांगुनी या चीना ककोडा, करेला, नीमके फूल और बेलके फूल इनके एवं अन्यान्य तिक्तपदार्थोंको भोजनादिमें प्रयोग करे ॥१५-१६ ॥

द्विपश्चमूलं रास्ना च दार्व्युशीरं दुरालभाम् । अमृताधान्यकं मुस्तं जयेद्वातसमुद्भवाम् ॥ १७ ॥

दशमूल, रायसन, दारुहलदी, खस, धमासा, गिलोय, धनियां और नागरमोथा इनका क्वाथ बनाकर पान करनेसे वातज विस्फोटक नष्ट होता है ॥१७॥

द्राक्षाकाश्मर्य्यखर्जूरपटोलारिष्टवासकैः । कटुकालाजदुःस्पर्शैः सितायुक्तं तु पैत्तिके ॥ १८ ॥

दाख, कुम्भेर, खजूर, पटोलपत्र, नीम, अडूसा, कुटकी, खीलें और धमासा इनके काथमें मिश्री मिलाकर पान करनेसे पित्तजविस्फोटक नष्ट होता है॥१८॥

भूनिम्बनिम्बवासाश्च त्रिफलेन्द्रयवासकैः । पिचुमन्दं पटोलश्च सक्षौद्रं कफजे हितम् ॥ १९ ॥

चिरायता, नीमकी छाल, अडूसा, त्रिफला, इन्द्रजौ, जवासा, नीम और पटोलपत्र इनके काथमें शहद डालकर पान करनेसे कफजविस्फोटक नाश होता है ॥ १९ ॥

किराततिक्तकारिष्टयष्ट्याह्वाम्बुदवासकम् । पटोलपर्पटोशीरत्रिफलाकौटजान्वितम् ॥ द्वादशाङ्गं तथैवैतत्सर्वविस्फोटनाशनम् ॥ २० ॥

चिरायता, नीमकी छाल, मुलैठी, नागरमोथा, अडूसा, पटोलपत्र, पित्तपापडा, खस, त्रिफला और कुडेकी छाल, ये प्रत्येक औषधि समान भाग लेकर क्वाथ बनावे । इस द्वादशांगनामक क्वाथको पान करनेसे सर्वप्रकारके विस्फोटकरोग नष्ट होते हैं ॥ २० ॥

पटोलामृतभूनिम्बवासकारिष्टपर्पटैः । खदिराष्टयुतैः क्वाथो विस्फोटज्वरशान्तये ॥ २१ ॥

पटोलपत्र, गिलोय, चिरायता, अडूसा, नीम और पित्तपापडा इनके क्वाथमें खदिराष्टककी औषधि डालकर पान करनेसे विस्फोटकज्वर नष्ट होता है २१

कुण्डलीपिचुमन्दाम्बुखदिरेन्द्रयवाम्बुना । विस्फोटं नाशयत्याशु वायुर्जलधरानिव ॥ २२ ॥

गिलोय, नीम, सुगन्धवाला, खैर और इंद्रजौं इनके क्वाथको पान करनेसे शीघ्र ही विस्फोटकरोग नष्ट होता है जैसे वायुके वेगसे बादल नष्ट होजाते हैं ॥ २२ ॥

अमृतवृषपटोलं मुस्तकं सप्तपर्णं खदिरमसितवेत्रं निम्बपत्रं हरिद्रे । विविधविषविसर्प कुष्ठविस्फोटकण्डूरपनयति मसूरीं शीतपित्तं ज्वरञ्च २३

गिलोय, अडूसा, पटोलपत्र, नागरमोथा, सतौना, खैर, कालावेंत, नीमके पत्र, हलदी और दारुहलदी इनका क्वाथ बनाकर पान करनेसे विविधप्रकारके विष, विसर्प, कुष्ठ, विस्फोट, कण्डू, मसूरिका, शीत पित्त और ज्वर नष्ट होते हैं ॥ २३ ॥

पटोलत्रिफलारिष्टगुडूचीमुस्तचन्दनैः । समूर्वा रोहिणी पाठा रजनी सदुरालभा ॥ २४ ॥ कषायं योजयेदेतत्पित्तश्लेष्मज्वरापहम् । कण्डूत्वग्दोषविस्फोटविषवीसर्पनाशनम् ॥ २५ ॥

पटोलपत्र, त्रिफला, नीमकी छाल, गिलोय, नागरमोथा, चन्दन, मूर्वा, कुटकी, पाढ, हलदी और धमासा इनका क्वाथ बनाकर पान करनेसे पित्तकफज्वर, खुजली, त्वचाके विकार, विस्फोट, विषबाधा और विसर्परोग नष्ट होता है ॥ २४ ॥ २५ ॥

दशांगलेप ।

शिरीषयष्टीनतचन्दनैलामांसीहरिद्राद्वयकुष्टवालैः । लेपो दशाङ्गः सघृतः प्रयोज्यो विसर्पविस्फोटककण्डुहारी ॥ २६ ॥

सिरसकी छाल, मुलैठी, तगर, चन्दन, इलायची, वालछड, हलदी, दारुहलदी, कूठ और सुगन्धवाला इन सबको समान भाग लेकर कूट पीसकर घीमें मिलाकर लेप करनेसे विसर्प, विस्फोट और कण्डूरोग नष्ट होते हैं ॥ २६ ॥

चन्दनं नागपुष्पञ्च तंडुलीयकशारिवा । शिरीषवल्कलं पत्रं लेपः स्याद्दाहनाशनः ॥ २७ ॥

चन्दन, नागकेशर, काँटोंवाली चौलाई, शारिवा और सिरसकी छाल तथा पत्र इनको एकत्र पीसकर लेप करनेसे दाह नष्ट होती है ॥ २७ ॥

विस्फोटव्याधिनाशाय तंडुलांबुप्रपेषितैः । बीजैः कुटजवृक्षस्य लेपः कार्यो विजानता ॥ २८ ॥

कुडेके बीज अर्थात् इन्द्रजौको चावलोंके जलमें पीसकर लेप करनेसे विस्फोटक दूर होता है ॥ २८ ॥

उत्पलं चन्दनं लोध्रमुशीरं शारिवाद्वयम् । जलेन पिष्ट्वा लिम्पेत स्फोटदाहार्तिनाशनम् ॥ २९ ॥

कमोदनी, चन्दन, लोध, खस और दोनों शारिवा इनको जलमें पीसकर लेप करनेसे स्फोटककी दाह और पीडा शांत होती है ॥ २९ ॥

शिरीषोशीरनागाह्वहिंस्राभिर्लेपनाद्द्रुतम् । विसर्पविषविस्फोटाः प्रशाम्यन्ति न संशयः ॥ ३० ॥

सिरसकी छाल, खस, नागकेशर और हींग इन सबको एकत्र पीसकर लेप करनेसे विसर्प, विष और विस्फोटक अवश्य शांत होते हैं ॥ ३० ॥

शिरीषचन्दनानङ्गातिन्तिडीवल्कपूरकैः । प्रलेपः सघृतः कार्यो विस्फोटश्लेष्मनाशनः ॥ ३१ ॥

सिरस, चन्दन, रेणुका, तिंतिडी और विजौरानींबू इनको एकत्र पीसकर घीमें मिलाकर लेप करनेसे विस्फोटक और कफ नष्ट होता है ॥ ३१ ॥

शिरीषोदुम्बरौ जम्बु सेकालेपनयोर्हिताः । श्लेष्मातकत्वचो वापि प्रलेपाश्चोतने हिताः ॥ ३२ ॥

शिरसकी छाल, गूलरकी छाल और जामुनकी छाल इनके द्वारा सेचन और लेप करना विस्फोटकरोगमें हितकारी है । लिसोडेकी छालको पीसकर लेप और आश्चोतनकर्म्ममें प्रयोग करे ॥ ३२ ॥

शिरीषपूगमञ्जिष्ठाचव्यामलकयष्टिकाः । सजातिपल्लवक्षौद्रा विस्फोटे कवलग्रहाः ॥ ३३ ॥

शिरसकी छाल, सुपारी, मजीठ, चव्य, आमले, मुलैठी, चमेलीके पत्ते और शहद इनका कवल बनाकर विस्फोटकरोगमें प्रयोग करना चाहिये ॥ ३३ ॥

पद्मकघृत ।

पद्मकं मधुकं लोध्रं नागपुष्पञ्च केशरम् । द्वे हरिद्रे विडङ्गानि सूक्ष्मैला तगरं तथा ॥ ३४ ॥ कुष्ठं लाक्षापत्रकञ्च सिन्धूत्थं तुत्थमेव च । तोयेनालोड्य तत्सर्वं घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ॥ ३५ ॥ यांश्च रोगान्निहन्त्येतत्तान्निबोध महामुने । सर्पकीटादिदष्टेषु लूता मूत्रकृतेषु च ॥ ३६ ॥ विविधेषु च स्फोटेषु तथा कुष्ठविसर्पिषु । नाडीषु गण्डमालासु प्रभिन्नासु विशेषतः ॥ ३७ ॥ अगस्तिविहितं धन्यं पद्मकं तु महाघृतम् ॥ ३८ ॥

पद्माख, मुलैठी, लोध, नागकेशर, केशर, हलदी, दारुहलदी, वायविडंग, छोटी इलायची, तगर, कूठ

लाख, तेजपात, सैंधानमक और तूतिया इन सबको जलमें पीसकर इस कल्कके द्वारा एक प्रस्थ घीको पकावे । यह घृत–सर्पका विष, कीडेका विष, लूताके मूतनेसे उत्पन्न हुआ विष, विविध प्रकारके विस्फोटकरोग, सर्व प्रकारके कुष्ठ और विसर्प रोग, नाडीव्रण और गण्डमाला इन सबको नष्टकरता है । इस महापद्मक घृतको अगस्त्यजीने निर्माण किया है । यह धन्य है ॥ ३४–३८ ॥

पञ्चतिक्तकघृत ।

पटोलसप्तच्छदनिम्बवासाफलत्रिकच्छिन्नरुहाविपक्वम् । तत्पञ्चतिक्तं घृतमाशु हन्ति त्रिदोषविस्फोटविसर्पकण्डूः ॥ ३९ ॥

पटोलपत्र, सतौना, नीमकी छाल, अडूसा, त्रिफला और गिलोय इनके कल्क और क्वाथके द्वारा घृतको पकावे । यह घृत–त्रिदोषज विस्फोटकरोग, विसर्प और कण्डूको नष्ट करता है ॥ ३९ ॥

कम्पिल्लकाद्यतैल ।

कम्पिल्लकं विडङ्गानि वत्सकं त्रिफलां बलाम्।पटोलं पिचुमन्दश्च लोध्रं मुस्तप्रियंगुकम् ॥ ४० ॥ धातकी खदिरं सर्जमेला चागुरुचन्दनम् । पिष्ट्वा तैलं भवेत्साध्यं तत्तैलं व्रणरोपणम् ॥ ४१ ॥

कबीला, वायविडंग, कुडेकी छाल, त्रिफला, खिरैंटी, पटोलपत्र, नीम, लोध, नागरमोथा, फूलप्रियंगू, धायके फूल, खैरसार, राल, इलायची, अगर और चन्दन इनके कल्कके द्वारा तेलको पकावे । यह तेल व्रणको भरने वाला है ॥ ४० ॥ ४१ ॥

पीत्वा घृतं महातिक्तं कौशिकेन च साधितम् । कदाचिद्रक्तमोक्षश्च ज्ञात्वा दोषं प्रयोजयेत् ॥ ४२ ॥

विस्फोटकरोगमें गूगलके द्वारा सिद्ध कियाहुआ महातिक्तघृत भी प्रयोग करना चाहिये । तथा दोषोंके बलाबलको विचारकर कभी रक्तमोक्षण भी करना चाहिये ॥ ४२ ॥

इति श्रीवङ्गसेने भाषाटीकायां विस्फोटकरोगाधिकार समाप्त ॥ ६१ ॥

अथ स्नायुरोगाधिकार ।

शाखासु कुपितो दोषः शोथं कृत्वा विसर्पवत् । भित्त्वैव तं क्षते तत्र सोष्मा मांसं विशोष्य च ॥ १ ॥ कुर्य्यात्तन्तुनिभं सूत्रं वृत्तं सितद्युतिं बहिः । शनैः शनैः क्षतादेति छेदात्तत्कोपमावहेत् ॥ २ ॥ तत्पाताच्छोथशान्तिः स्यात्पुनः स्थानान्तरे भवेत् । स स्नायुकः परिख्यातः क्रियोक्तात्र विसर्पवत् ॥ ३ ॥ बाह्वोर्यदि प्रमादेन त्रुट्यते जङ्घयोरपि । सङ्कोचं खञ्जतां चापि छिन्नो नूनं करोत्यसौ ॥ ४ ॥

हाथ, पाँव आदि शाखाओंमें वातादिदोष कुपित होकर विसर्पके समान सूजनको उत्पन्न करते हैं । पश्चात् उस स्थानकी गरमी सूजनको फोडकर स्नायुको सुखाकर तंतु अर्थात् डोरेकी समान सफेद जीवको उत्पन्न करती है । यह डोरा शनैः शनैः व्रणमेंसे निकलता है और जो बीचमेंसे टूट जावे तो अत्यन्त पीडा होती है । जब सब निकल जाता है तब सूजन शांत होजाती है। किसीको फिर दूसरे स्थानमें उत्पन्न होता है, इसको संस्कृत भाषामें स्नायुकरोग कहते हैं और देशभाषामें नहरुआ कहते हैं । इसकी विसर्पकी समान चिकित्सा करनी चाहिये । प्रमादसे जो इसका तंतु अर्थात् नहरुआ बीचमेंसे टूट जावे तो हाथसे टूंटा और पाँवोंसे लूला कर देता है ॥१॥२॥३॥४॥

स्नायुरोगकी चिकित्सा ।

स्नेहस्वेदप्रलेपादि कर्म्म कुर्य्याद्यथेप्सितम् । रामठं शीततोयेन पीतं तन्तुकरोगनुत् ॥ ५ ॥

स्नायुकरोगमें स्नेहन, स्वेदन और प्रलेपादि यथोचित चिकित्सा करनी चाहिये । हींगको शीतलजलमें पीसकर पान करनेसे स्नायुकरोग नष्ट होता है॥५

मञ्जिष्ठादिप्रलेप ।

मञ्जिष्ठयष्टीमधुकं पयस्या प्रपौण्डरीकं सह पद्मकेन । सौगन्धिकं चेति सुखं प्रलेपः शस्तो विसर्पे त्वथ तन्तुरोगे ॥ ६ ॥

मजीठ, मुलैठी, काकोली, पुंडेरिया, पद्माख और सुगंधित तृण इन सबको एकत्र पीसकर लेप करनेसे विसर्परोग और स्नायुरोग शमन होता है ॥ ६ ॥

स्वेदात्स्नायुकमत्युग्रं भेकः काञ्जिकसाधितः । तद्वद्बब्बूलजं बीजं पिष्टं हन्ति प्रलेपनात् ॥ ७ ॥

मेडकको काँजीमें पकाकर उसका स्वेद अर्थात् बफारा देनेसे अथवा बबूरके बीजोंको पीसकर लेप करनेसे स्नायुरोग शांत होता है ॥ ७ ॥

गव्यं सर्पिस्त्र्यहं पीत्वा निर्गुण्डीस्वरसं त्र्यहम् । पिबेत्स्नायुकमत्युग्रं हन्त्यवश्यं न संशयः ॥ ८ ॥

प्रथम गायके घीको तीन दिनतक पानकर पश्चात् निर्गुण्डीके स्वरसको तीन दिनतक पान करनेसे अत्यंत उग्र स्नायुरोग निश्चय आरोग्य होता है ॥ ८ ॥

मूलं सुषव्या हिमवारिपिष्टं पानादिकं तन्तुकरोगमुग्रम् । शान्तिं नयेत्सव्रणमाशु पुंसां गन्धर्वगन्धेन घृतेन पीतम् ॥ ९ ॥

कलौंजीकी जडको शीतल जलमें पीसकर पान करनेसे स्नायुरोग नष्ट होता है । अश्वगन्धाघृत अथवा असगन्धके द्वारा पकाये हुए घृतको पान करनेसे व्रणसहित स्नायुरोग नष्ट होता है ॥ ९ ॥

अतिविषमुस्तकभार्ङ्गीविश्वौषधपिप्पलीविभीतकीनाम् । चूर्णमिदं तन्तुघ्नं पुंसामुष्णेन वारिणा पीतम् ॥ १० ॥

अतीस, नागरमोथा, भारंगी, सोंठ, पीपल और बहेडा इनका चूर्ण करके गरम जलके साथ पान करनेसे स्नायुरोग नष्ट होता है ॥ १० ॥

शिग्रुमूलदलैः पिष्टैः काञ्जिकेन ससैन्धवैः । लेपनं स्नायुकव्याधेः शमनं परमुच्यते ॥ ११ ॥

सहिंजनेकी जड और पत्तोंको काँजीमें पीसकर सैंधानमक डाल कर लेप करनेसे स्नायुरोग शमन होता है ॥ ११ ॥

इति श्रीवङ्गसेने भाषाटीकायां स्नायुरोगाधिकार समाप्त ॥ ६२ ॥

अथ मसूरिकारोगाधिकार ।

कट्वम्ललवणक्षारविरुद्धाध्यशनाशनैः । दुष्टनिष्पावशाकाद्यैः प्रदुष्टपवनोदकैः ॥ १ ॥ क्रुद्धग्रहेक्षणाच्चापि देहे दोषाः समुद्गताः । जनयन्ति शरीरेऽस्मिन् दुष्टरक्तेन सङ्गताः ॥ मसूराकृतिसंस्थानाः पिडकाः स्युर्मसूरिकाः ॥ २ ॥

चरपरे, खट्टे, नमकीन, खारी, संयोगमान विरुद्ध और भोजनपर भोजन, दुष्ट अन्न, निष्पाव (उडद लोविया इत्यादि) शाकादिक पदार्थ, दूषित पवन और दूषित जलको सेवन करनेसे, देहमें राहु शनि आदि क्रूर ग्रहोंकी दृष्टि पडनेसे, इत्यादि कारणोंसे देहमें वातादिदोष कुपित होकर दुष्ट रुधिरसे मिलकर मसूरके समान शरीरमें अनेक फुंसियोंको उत्पन्न करते हैं अतः इसको मसूरिका कहते हैं ॥ १ ॥ २ ॥

मसूरिकाके पूर्वरूप ।

तासां पूर्वं ज्वरः कंडूर्गात्रभङ्गोऽरतिर्भ्रमः । त्वचि शोथः सवैवर्ण्यो नेत्ररागस्तथैव च ॥ ३ ॥

मसूरिकाके उत्पन्न होनेसे ज्वर, खुजली, शरीरका टूटना, अरुचि, भ्रम, त्वचामें सूजन, विवर्णता और नेत्र लाल होते हैं ॥ ३ ॥

वातजमसूरिकाके लक्षण।

स्फोटा रूक्षारुणाः कृष्णास्तीव्रवेदनयान्विताः। कठिनाश्चिरपाकाश्च भवन्त्यनिलसम्भवाः ॥ ४ ॥ सन्ध्यस्थिपर्वणां भेदः कासः कम्पोऽरतिः क्लमः ॥ शोषस्ताल्वोष्ठजिह्वानां तृष्णा चारुचिसंयुताः ॥ ५ ॥

वातजमसूरिकाकी फुंसियें काली, लाल, रूखी और तीक्ष्ण पीडायुक्त होती हैं तथा कठिन और बहुत कालमें पकती हैं। संधि, हड्डी और गाँठोंमें तोडने सरीखी पीडा होती है। तथा खाँसी, कम्प, मनमें व्याकुलता, ग्लानि हो, तालु,होठ और जीभमें खुश्की होना एवं तृषा और अरुचि होना यह सब वातजमसूरिकाके लक्षण जानने ॥ ४ ॥ ५ ॥

पित्तजमसूरिकाके लक्षण।

रक्ताः पीताः सिताः स्फोटाः सदाहास्तीव्रवेदनाः। भवन्त्यचिरपाकाश्च पित्तकोपसमुद्भवाः। विड्भेदश्चाङ्गमर्दश्च तृष्णारत्यरुची तथा। मुखपाकोऽक्षिपाकश्च ज्वरस्तीव्रः सुदारुणः ॥ ६ ॥

पित्तजमसूरिकाकी फुंसियें लाल, पीली और सफेद रंगकी होती हैं। उनमें जलन और अत्यन्त पीडा होती है,शीघ्र पकती हैं,मल पतला उतरता है, शरीरमें तोडने सरीखी पीडा, दाह,तृषा बेचैनी और अरुचि होती है, मुख और नेत्र पकजाते हैं तथा अत्यन्त तीव्र ज्वर होता है ॥ ६ ॥

रक्तजमसूरिकाके लक्षण।

रक्तजायां भवन्त्येते विकाराः पित्तलक्षणाः ॥ ७ ॥

रक्तजमसूरिकामें पित्तजमसूरिकाके सम्पूर्ण लक्षण होते हैं ॥ ७ ॥

कफजमसूरिकाके लक्षण।

कफप्रसेकः स्तैमित्यं शिरोरुग्गात्रगौरवम्। हृल्लासः सारुचिस्तन्द्रानिद्रालस्यसमन्विताः ॥ ८ ॥ श्वेताः स्निग्धा भृशं स्थूलाः कण्डूरा मन्दवेदनाः ॥ मसूरिकाः कफोत्थाश्च चिरपाकाः प्रकीर्तिताः ॥ ९ ॥

कफजमसूरिकामें मुखसे पानी गिरता है, शरीरमें गीलापन, शिरमें पीडा, देहका भारी होना, उबकाई, अरुचि, तन्द्रा, निद्रा और आलस्य होना, फुंसियाँ सफेद, चिकनी, मोटी, खुजलीयुक्त और कम पीड़ावाली होती हैं और बहुतकालमें पकती हैं ॥ ८ ॥९॥

त्रिदोषजमसूरिकाके लक्षण।

नीलाश्चिपिटविस्तीर्णा मध्ये निम्ना महारुजाः। चिरपाकाः पूतिस्रावाः प्रभूताः सर्वदोषजाः ॥ १० ॥

सन्निपातज मसूरिकाकी फुंसियें—नीली, चपटी, विस्तीर्ण और बीचमें नीची होती हैं. उनमें अत्यन्त वेदना होती है,वे बहुत कालमें पकती हैं,दुर्गंधित राध बहती है तथा बहुतसी होती हैं ॥ १० ॥

चर्मपिडिका।

कण्ठरोधोऽरुचिस्तन्द्राप्रलापारतिसङ्गताः। दुश्चिकित्स्याः समुद्दिष्टाः पिडकाश्चर्म्मसंज्ञिताः ॥ ११ ॥

जिनमें कण्ठका अवरोध, अरुचि, तन्द्रा, प्रलाप और बेकली हो तथा जिनकी चिकित्सा न हो सके उनको चर्मपिडिका कहते हैं ॥ ११ ॥

रोमान्तिक।

रोमकूपोन्नतिसमा लोहिताः कफपित्तजाः। कासारोचकसंयुक्ता रोमान्त्यो ज्वरपूर्विकाः ॥ १२ ॥

जो मसूरिका रोम कूपोंके समान ऊंची और लाल हों जिसमें खाँसी और अरुचि हो तथा जिसमें पहिले ज्वर हो वह कफपित्तोद्भव रोमांतिका मसूरिका जाननी ॥ १२ ॥

सप्तधातुगतमसूरिकाके लक्षण ।

तोयबुद्बुदसंकाशास्त्वग्गताश्च मसूरिकाः । स्वल्पदोषाः प्रजायन्ते भिन्नास्तोयं स्रवन्ति च ॥ १३ ॥ रक्तस्था लोहिताकाराः शीघ्रपाकास्तनुत्वचः । साध्या नात्यर्थदुष्टाश्च भिन्ना रक्तं स्रवन्ति च ॥ १४ ॥

जो मसूरिका पानीके ववूलेके समान आकारवाली हों, जिनमें फूटनेसे पानी वहे वह रसगतमसूरिका जाननी, इसमें दोष स्वल्प होते हैं इस कारण वह त्वग्गत* जाननी । रक्तगत मसूरिका–लोहितवर्ण, शीघ्र पकनेवाली, पतली त्वचावाली और फोडनेपर उसमेंसे रुधिर निकलता है, रुधिरमें रहनेवाली मसूरिका जो अत्यन्त दुष्ट रुधिरवाली न हो तो साध्य और अत्यन्त दुष्ट रुधिरवाली हो तो कष्टसाध्य होती हैं ॥ १३ ॥१४॥

मांसस्थाः कठिनाः स्निग्धाश्चिरपाका घनत्वचः । गात्रशूलारतिकंडूतृष्णारुचिसमन्विताः ॥ १५ ॥

मांसगत मसूरिका कठिन, चिकनी और बहुतकालमें पकती हैं, मोटी त्वचावाली तथा शरीरमें पीडा, बेकली, खुजली, तृषा और अरुचि होती है ॥१५॥

मेदोजा मण्डलाकारा मृदवः किञ्चिदुन्नताः । घोरज्वरपरीताश्च स्थूलाः स्निग्धाः सवेदनाः ॥ १६ ॥ सम्मोहारतिसन्तापाः कश्चिदाभ्यो विनिस्तरेत् ॥ १७ ॥ क्षुद्रा गात्रसमा रूक्षाश्चिपिटाः किञ्चिदुन्नताः । मज्जोत्था भृशसंमोहवेदनाऽरतिसंयुताः ॥ १८॥ छिन्दन्ति मर्म्मधामानि प्राणानाशु हरन्ति च । भ्रमरेणेव विद्धानि कुर्वन्त्यस्थीनि सर्वतः ॥ १९ ॥

मेदगत मसूरिका मण्डलके समान गोल, नरम, कुछ ऊपरको उठी हुई, घोर ज्वरयुक्त, मोटी, चिकनी, पीडायुक्त तथा बेहोसी, व्याकुलता और सन्तापसे युक्त होती है । इस मसूरिकासे प्रायः कोई ही रोगी बचता है । अस्थि और मज्जागत मसूरिका क्षुद्र, शरीरके वर्णके समान रूखी, चिपटी, कुछ ऊपरको उठी हुई, ये अस्थिगतके लक्षण हैं । तथा अत्यन्त मोह, वेदना और व्याकुलतासे युक्त होती है और उन मर्म्मस्थानोंको छेद करके शीघ्र ही प्राणोंका नाश करती है । इसके होनेसे हड्डियोंमें भौंरेके काटने सरीखी पीडा होती है ॥ १६–१९ ॥

पक्वाभाः पिडकाः स्निग्धाः सूक्ष्माश्चात्यर्थवेदनाः । स्तैमित्यारतिसंमोहदाहोन्मादसमन्विताः ॥ २० ॥ शुक्रजायां मसूर्य्यान्तु लक्षणानि भवन्ति च । निर्दिष्टं केवलं चिह्नं दृश्यते न हि जीवितम् ॥ २१ ॥

शुक्रगत मसूरिकाकी फुडियें पकनेके समान होती हैं, किन्तु पकती नहीं हैं तथा चिकनी, बहुत छोटी, अत्यन्त वेदनावाली, शरीरमें जडता, बेचैनी, मोह, दाह और उन्मादयुक्त होती हैं । यह शुक्रगत मसूरिका केवल लक्षण जाननेके लिये कही हैं, किन्तु इसकी चिकित्सा करनी योग्य नहीं है । क्योंकि इस मसूरिकासे कभी रोगी बचता नहीं देखा जाता । ॥ २० ॥ २१ ॥

दोषमिश्रास्तु सप्तैता द्रष्टव्या दोषलक्षणैः ॥ २२ ॥

दोषके विना रसादिकका दुष्ट होना सम्भव नहीं इस कारण यह सातों प्रकारकी मसूरिका दोषोंके विना नहीं होती हैं । इन सातों प्रकारकी मसूरिकामें उन २ दोषोंके लक्षण ऊपरके दोषोंके सम्बन्धसे जानने ॥ २२ ॥

साध्यासाध्यविचार ।

त्वग्गता* रक्तजाश्चैव पित्तजाः श्लेष्म-

* सप्तधातु कहनेसे रसादि सात धातुओंका बोध होता है त्वचाका नहीं. आश्रय सबका त्वचा ही है क्योंकि प्रत्यक्ष रूप बाहर आकर ही होता है इससे त्वग्गतसे सप्तधातु समझना.

* इसका अर्थ इसप्रकार समझना कि रसादि विकृत सात धातुओंमें दोष उत्पन्न होकर त्वग्गत ही प्रत्यक्ष होते हैं.

जास्तथा। एता विनापि क्रियया प्रशाम्यन्ति शरीरिणाम्॥ २३॥

रसगत, रक्तगत, पित्तज, कफज और पित्तकफज ये मसूरिका सुखसाध्य हैं। ये मसूरिका विना चिकित्साके भी शांत हो जाती हैं॥ २३॥

वातजा वातपित्तोत्थाः श्लेष्मवातकृताश्च याः। कृच्छ्रसाध्यमतास्तस्मा-द्यत्नादेता उपाचरेत्॥ २४॥

वातज, वात और पित्त दोनोंसे उत्पन्न हुई और वात तथा कफसे उत्पन्न हुई मसूरिका कष्टसाध्य हैं। इस कारण इनकी यत्नपूर्वक चिकित्सा करनी चाहिये॥ २४॥

असाध्याः सन्निपातोत्थास्तासां वक्ष्यामि लक्षणम्। प्रवालसदृशाः काश्चित्काश्चिज्जंबूफलोपमाः॥ २५॥ लोहजालसमाः काश्चिदलसीफलसन्निभाः। आसां बहुविधा वर्णा जायन्ते दोषभेदतः॥ २६॥

सन्निपातज मसूरिका असाध्य है, अब उसके लक्षण कहता हूँ। इस मसूरिकाकी फुंसी कोई मूंगेके समान लाल, कोई जामुनके समान रंगवाली, कोई लोहेकी जालीके समान और कोई अलसीके फलके समान रंगवाली होती है, इसके सिवा दोषोंके भेदसे और भी अनेक रंगकी होती हैं॥ २५॥२६॥

कासो हिक्का प्रमोहश्च ज्वरस्तीव्रः सुदारुणः। प्रलापश्चारतिर्मूर्च्छा तृष्णा दाहो विघूर्णता॥ २७॥ मुखेन प्रस्रवेद्रक्तं तथा घ्राणेन चक्षुषा। कण्ठे घुर्घुरकं कृत्वा श्वसित्यत्यर्थदारुणम्॥ २८॥ मसूरिकाभिभूतस्य यस्यैतानि भिषग्वरः। लक्षणानीह दृश्यंते न दद्यात्तत्र भेषजम्॥ २९॥

जिस मसूरिकाके रोगीको खाँसी, हिचकी, बेहोशी, दारुण तीव्रज्वर, प्रलाप, बेचैनी, मूर्छा, तृषा, दाह, विघूर्णता (घूमनी), मुख, नासिका और नेत्रोंके द्वारा रुधिरका गिरना, कण्ठमें घुरघुर शब्दका होना और दारुण श्वास ये सब लक्षण हों तो उसको वैद्य कदापि औषधि न देवे॥२७॥२८॥२९॥

मसूरिकाका अरिष्ट।

मसूरिकाभिभूतो यो भृशं घ्राणेन निःश्वसेत्। स ध्रुवं त्यजति प्राणांस्तृ-षार्त्तो वायुदूषितः॥ ३०॥

मसूरिकारोगसे पीडित जो मनुष्य नासिकाके द्वारा श्वास लेवे तथा अत्यन्त तृषासे पीडित हो और अपतानक आदि वातव्याधिवाला हो तो वह रोगी तत्काल मर जाता है॥ ३०॥

मसूरिकान्ते शोथः स्यात्कूर्परे मणिबन्धके। तथांसफलके वापि दुश्चिकित्स्यः सुदारुणः॥ ३१॥

मसूरिकारोगके आरोग्य होनेपर हाथकी कोहनीके ऊपर अथवा पहुँचेपर वा कन्धोंके ऊपर अत्यन्त दारुण सूजन हो तो उसको कष्टसाध्य जानना यह अत्यन्त दारुण कष्टसाध्य अथवा असाध्य है॥३१॥

अथान्यग्रन्थान्तरात्।

द्वित्रिलक्षणसंयुक्तो द्वन्द्वोपद्रवसंयुतः। द्वन्द्वजास्तु त्रयो ज्ञेया मनुष्याणां मसूरिकाः॥ ३२॥

जिसमें दो दोषोंके लक्षण अथवा तीनों दोषोंके लक्षण मिलते हों और जिसमें दो दोषोंके अथवा तीनों दोषोंके उपद्रव हों उसको द्वन्द्वज या त्रिदोषज मसूरिका जानना॥ ३२॥

मसूरिकाका अन्यभेद।

कफवातादिसंभूतः कोद्रवो नाम संज्ञितः। लोके वदन्ति कक्षाक्षः स पाकं न च गच्छति॥ ३३॥

कफवातसे उत्पन्न होनेवाली, कोदोंके समान आकारवाली कोद्रवसंज्ञक जो मसूरिका होती है उसको लोकमें कक्षाक कहते हैं। यह पाकको प्राप्त नहीं होती॥ ३३॥

यवशूकवदङ्गेषु विध्यति च विशेषतः। सप्ताहाद्द्वादशाहाद्वा स्वस्थो भवति मानवः॥ ३४॥

यह मसूरिका जौके शूकके समान विशेष करके अंगोंको वेधती है इससे सात दिनमें या दश दिनमें रोगी विना ही औषधिके स्वयं ही आरोग्य हो जाता है॥ ३४॥

मसूरिकाकी चिकित्सा ।

मसूरिकायां कुष्ठोक्ता प्रलेपादिक्रिया हिता । पित्तश्लेष्मविसर्पोक्ता क्रिया चात्र प्रशस्यते ॥ ३५ ॥

कुष्ठरोगमें जो लेपादि चिकित्सा कही है तथा पित्तकफजविसर्पपर जो चिकित्सा कही है वह सब क्रिया इस मसूरिकारोगमें भी प्रयोग करनी चाहिये ॥ ३५ ॥

धूप ।

वेणुत्वक् सुरसा लाक्षा कार्पासास्थिमसूरिकाः । यवपिष्टं विषं सर्पिर्वचा ब्राह्मी सुवर्चला । धूपनार्थे यथालाभं धूममेतत्प्रयोजयेत् ॥ ३६ ॥ आदावेतत्प्रयोक्तव्यं नश्यंत्याशु मसूरिकाः । न गृह्णन्ति विषं केचिद्यथालाभश्रुतेरिह ॥ ३७ ॥

बाँसकी छाल, तुलसी, लाख, कपासके वीज (बिनौले), मसूर, जौका चून, अतीस, घी, वच, ब्राह्मी और हुलहुल इनमेंसे जितने पदार्थ मिल सकें उतने लेकर इनकी धूप बनावे । मसूरिकाके आदिमें इस धूपको देवे, इससे शीघ्र ही मसूरिका नष्ट हो जाती है । इसमें कोई कोई वैद्य अतीसको "यथा लाभ" नहीं लेना ऐसा अर्थ करते हैं ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

श्वेतचन्दनकल्केन हिलमोचाभवं रसम् । पिबेन्मसूरिकारम्भे नैम्बं वा केवलं रसम् ॥ ३८ ॥

हिलमोचा (हुलहुल)के रसमें सफेद चन्दनका कल्क डालकर मसूरिकाके आरम्भमें पान करनेसे अथवा केवल नीमका रस पान करनेसे मसूरिकाका भय नष्ट होता है ॥ ३८ ॥

बिल्वपत्ररसेनैव मूर्च्छितः पारदो रसः । हिलमोचरसं पीतं हन्ति माक्षिकसंयुतम् ॥ ३९ ॥ मसूरीं सर्वजां शीघ्रमस्थिजां सर्वदेहजाम् । वमने मरणं प्रोक्तं स्तंभने जीवनं मतम् ॥४०॥

पारेको बेलके पत्तोंके स्वरसमें मूर्च्छित करके हिलमोचिकाके रसमें शहद मिला पारेको पान करे । इससे सर्व शरीरगत मसूरिका, अस्थिगत और सर्व प्रकारकी मसूरिका नष्ट होती हैं । जो इस औषधिको सेवन करनेसे वमन हो जाय तो मृत्यु होती है और जो यह औषधि शरीरमें ठहर जाय तो शरीर आरोग्य हो जाता है ॥ ३९ ॥ ४० ॥

सर्वासां वमनं पूर्वं पटोलारिष्टवासकैः । कषायैश्च वचावत्सयष्ट्याह्वफलकल्कितैः ॥ ४१ ॥

सर्वप्रकारके मसूरिकारोगमें प्रथम पटोलपत्र, नीम और अडूसेके क्वाथके द्वारा वमन करावे । तथा वच, इन्द्रजौ, मुलैठी और त्रिफला इनके कल्कके द्वारा वमन करावे ॥ ४१ ॥

सक्षौद्रं पाययेद्ब्राह्मीरसं वा हैलमोचकम् । वान्तस्य रेचनं देयं शमनं वाऽबले नरे ॥ ४२ ॥

हिलमोचिकाके रसमें अथवा ब्राह्मीके रसमें शहद डालकर पान कराकर वमन करावे। वमन कराये हुए मनुष्यको विरेचन देवे और निर्बल मनुष्यको शमनकारक औषधि देवे ॥ ४२ ॥

उभाभ्यां हृतदोषस्य विशुष्यन्ति मसूरिकाः । निर्विकाराश्चाल्पपूयाः पच्यन्ते चाल्पवेदनाः ॥ ४३ ॥

वमन और विरेचनके द्वारा दोषहरण हो जाने पर मसूरिका अच्छे प्रकार सूख जाती है तथा विकाररहित होकर अल्पराधवाली और अल्पपीडायुक्त होकर पकती है ॥ ४३ ॥

वाणीरबिल्वजनितं क्वाथं पर्य्युषितमुत्तमे दिवसे । चैत्रस्य पापरोगं पिबतां न भवेद्द्रुतं चैतत् ॥ ४४ ॥

जलवेत और बेलका क्वाथ बनाकर बासी करके उत्तम दिनमें पान करनेसे तत्काल पापरोग (मसूरिका) नष्ट होती है ॥ ४४ ॥

नारीणां वामपादस्थं नराणामपसव्यगम् । पापरोगं त्यजेद्दूराच्छिरास्थिविनिवारणम् ॥ ४५ ॥

स्त्रियोंके वामपादगत और पुरुषोंके दक्षिणपादगत तथा शिरा और अस्थिगत ऐसा मसूरिकारोग असाध्य है, अतएव इसको दूरसे त्यागदेना चाहिये ॥ ४५ ॥

चैत्रसितभूतादिने रक्तपताका स्नुहीभवने। धवलितकलसे न्यस्ता पापरुजो दूरतो धत्ते ॥ ४६ ॥

चैत्रशुक्ला त्रयोदशीके दिन घरमें थूहरके वृक्षके ऊपर सफेद कलश स्थापन करे और उसपर लाल पताका धारण करे इससे शीघ्र ही पापरोग नष्ट होता है ॥ ४६ ॥

पटोलसारिवामुस्तं पाठा कटुकरोहिणी। खदिरः पिचुमन्दश्च बलाधात्रीविकङ्कतम् । एषां कषायपानं तु हन्ति वातमसूरिकाम् ॥ ४७ ॥

पटोलपत्र, सारिवा, नागरमोथा, पाढ, कुटकी, खैर, नीम, खिरैंटी, आमले और कटाई इनके क्राथको पान करनेसे वातजमसूरिका नष्ट होती है॥४७॥

द्विपञ्चमूलं रास्ना च धात्र्युशीरं दुरालभा। सामृतं धान्यकं मुस्तं जयेद्वातमसूरिकाम् ॥ ४८ ॥

दशमूल, रायसन,आमले,खस, धमासा, गिलोय, धनियाँ और नागरमोथा, इनका क्वाथ बनाकर पान करनेसे वातजमसूरिकारोग नष्ट होता है ॥४८॥

न्यग्रोधप्लक्षमञ्जिष्ठाशिरीषोदुम्बरत्वचाम् । ससर्पिष्कं मसूर्य्यान्तु वातजायां प्रलेपनम् ॥ ४९ ॥

वड, पाखर, मजीठ, शिरस और गूलरकी छाल इनको एकत्र पीसकर घी मिला कर लेप करनेसे वातकी मसूरिका नष्ट होती है ॥ ४९ ॥

गुडूचीं मधुकं रास्नां पञ्चमूलं कनिष्ठकम् । चन्दनं काश्मर्य्यफलं बलामूलं विकङ्कतम् । पाककाले मसूर्यान्तु वातजायां प्रयोजयेत् ॥ ५० ॥

गिलोय, मुलैठी, रायसन, लघुपञ्चमूल, चन्दन, कुम्भेरके फल,खिरैंटीकी जड और कटाइ इन औषधियोंका क्वाथ बनाकर वातजनित मसूरिकामें पाकके समय सेवन करे ॥ ५० ॥

गुडूची मधुकं द्राक्षा मोरटं दाडिमैः सह। पाककाले प्रदातव्यं भेषजं गुडसंयुतम् ॥ ५१ ॥ तेन पाकं व्रजत्याशु न च वायुः प्रकुप्यति ॥ ५२ ॥

गिलोय, मुलैठी,दाख, क्षीरमोरट और अनार इनका कल्क बनाकर गुड मिलाकर मसूरिकाके पकनेके समय सेवन करे।इससे शीघ्र ही मसूरिका पकजाती है और वायुका प्रकोप भी नहीं होता है ॥५१॥५२॥

लिह्याद्बदरचूर्णन्तु पाचनार्थं गुडेन तु। कफवातकृतास्तेन पच्यन्ते च मसूरिकाः ॥ ५३ ॥

बेरोंका चूर्ण करके गुडमें मिलाकर मसूरिकाको पचानेके लिये देवे इससे कफवातजनित मसूरिका तत्काल पकजाती है ॥ ५३ ॥

शोधनं पित्तजायान्तु कार्य्यं वैद्येन जानता। तत्रादौ तर्पणं कार्य्यं लाजचूर्णैः सशर्करैः ॥ ५४ ॥

पित्तजनितमसूरिकामें वैद्य शोधनकर्म्म करे।इसमें प्रथम खीलोंके चूर्णमें मिश्री मिलाकर तर्पण देवे ५४

भोजनं तिक्तयूषैश्च प्रतुदानां रसेन वा। भोजनं चाथवा कार्य्यं दुष्टव्रणविसर्पिणा ॥ ५५ ॥

मसूरिकारोगमें तिक्त औषधियोंके यूषके साथ अथवा प्रतुदजातिके पक्षियोंके मांसरसके साथ अथवा दुष्टव्रण और विसर्परोगियोंके लिए जो अहार कहे हैं उनके साथ इसमें भोजन कराना चाहिये ५५

आदावेव मसूर्य्यान्तु पित्तजायां प्रयोजयेत् ॥ ५६ ॥ निम्बपर्पटकं पाठापटोलं चन्दनद्वयम् । वासा दुरालभा धात्री व्योषं कटुकरोहिणी ॥ ५७ ॥ एतत्पलं शृतं शीतं मधुशर्करयान्वितम् । मसूर्य्यान्तु प्रयोक्तव्यं पित्त-

जायां विज्ञानता । दाहे ज्वरे विसर्पे तु व्रणे पित्ताधिके तथा ॥ ५८ ॥ द्राक्षाकाश्मर्य्यखर्जूरपटोलारिष्टवासकैः । लाजामलकदुःस्पर्शैः सितायुक्तन्तु पैत्तिके ॥ ५९ ॥

पैत्तिकमसूरिकारोगमें प्रथम नीम, पित्तपापडा, पाठ, पटोलपत्र, चन्दन, लालचन्दन, अडूसा, धमासा, आमले, त्रिकुटा और कुटकी इनके क्वाथमें शहद और मिश्री डालकर पान करे । पित्तजनित मसूरिकारोगमें दाह, ज्वर, विसर्प, व्रण और पित्तकी आधिकता हो तो दाख, कुम्भेर, खजूर, पटोलपत्र, नीम, अडूसा, खीलें, आमले और धमासा इनके क्वाथमें मिश्री डालकर पान करे ॥ ५६ ॥५७॥ ५८ ॥५९॥

शिरीषोदुम्बराश्वत्थपीलुन्यग्रोधवल्कलैः । प्रलेपः सघृतः शीघ्रं व्रणवीसर्पदाहहा ॥ श्यामापर्पटकारिष्टचन्दनद्वयमूलकैः । धात्रीतिक्तवृषोशीरयासैश्च क्वथितं जलम् । पीतं मसूरिकां हन्ति पित्तजां दाहसंयुताम् ६०

शिरसकी छाल, गूलर, पीपल, पीलू और वड इनकी छालको पीसकर घीमें मिलाकर लेप करनेसे शीघ्रही व्रण, विसर्प और दाहरोग नष्ट होता है । अनंत मूल, पित्तपापडा, नीमकी छाल, चन्दन, लालचन्दन, मूली, आमले, कुटकी, अडूसा, खस और जवासा इनका क्वाथ बनाकर पान करनेसे दाहसंयुक्त पैत्तिक मसूरिका नष्ट होती है ॥ ६० ॥

मोरटं काश्मर्य्यफलं शृतशीतं सशर्करम् । लाजाचूर्णयुतं दद्यात्पित्तजायान्तु पाचनम् ॥ ६१ ॥

क्षीरमोरट और कुम्भेरके फल इनका क्वाथ बनाकर शीतल करके मिश्री और खीलोंका चूर्ण डालकर पान करनेसे पैत्तिकमसूरिका नष्ट होती है ॥ ६१ ॥

दुरालभापर्पटकं पटोलं कटुरोहिणी । श्लैष्मिक्यां पित्तजायाञ्च पाने निःक्वाथ्य दापयेत् ॥ ६२ ॥

धमासा, पित्तपापडा, पटोलपत्र और कुटकी इनका क्वाथ बनाकर श्लैष्मिक और पैत्तिक मसूरिकारोगमें पान करे ॥ ६२ ॥

भूनिम्बमुस्तकं वासा त्रिफलेन्द्रयवासकम् । पिचुमन्दं पटोलञ्च सक्षौद्रं योजितं हितम् ॥ ६३ ॥

चिरायता, नागरमोथा, अडूसा, त्रिफला, इन्द्रजौ, जवासा, नीमकी छाल और पटोलपत्र इनका क्वाथ बनाकर शहद डालकर पान करनेसे मसूरिकारोग शमन होता है ॥ ६३ ॥

खदिरारिष्टपत्रैश्च शिरीषोदुम्बरत्वचा । कुर्य्याल्लेपं कफोत्थायां पित्तजायामथापि वा ॥ ६४ ॥

खैर, नीमके पत्र, शिरसकी छाल और गूलरकी छाल इन सबको एकत्र पीसकर कफजनित और पित्तजनित मसूरिकापर प्रलेप करना चाहिये ॥ ६४ ॥

वृषस्य स्वरसं दद्यात्क्षौद्रयुक्तं कफात्मके ॥ ६५ ॥

कफजमसूरिकामें अडूसेके स्वरसमें शहद मिलाकर पान करे ॥ ६५ ॥

कफजायां मसूर्य्यान्तु कठिनायां विशेषतः । पाचनाय प्रदातव्यं लेपनं दधिसक्तुभिः ॥ ६६ ॥

कफजनित और विशेष करके कठिन मसूरिकाओंमें दही और सक्तु मिलाकर पकानेके लिये लेप करना चाहिये ॥ ६६ ॥

पटोलादिक्वाथ ।

पटोलं कुण्डलीमुस्तवृषधान्ययवासकैः । भूनिम्बनिम्बकटुकापर्पटैश्च शृतं जलम् ॥ ६७ ॥ मसरीं शमयेदामां पक्वां चैव विशोधयेत् । नातः परतरं किञ्चिद्विस्फोटज्वरशान्तये ६८

पटोलपत्र, गिलोय नागरमोथा, अडूसा, धनियाँ, जवासा, चिरायता, नीम, कुटकी और पित्तपापड

इनका क्राथ बनाकर पान करनेसे अपक्क मसूरिकारोग नष्ट होता है और पक्क मसूरिका शुद्ध होती है इससे उत्तम अन्य औषधि विस्फोटज्वरको शांत करनेवाली नहीं है ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

पटोलमुस्ताऽरुणतंडुलीयकं पचेद्धरिद्रामलकल्कसंयुतम् । मसूरिविस्फोटविसर्पशान्तये तदेव रोमान्तिवमिज्वरापहम् ॥ ६९ ॥

पटोलपत्र, नागरमोथा, श्योनाक और चौलाईके काथमें हलदी और आमलोंका कल्क डालकर पान करनेसे मसूरिका, विस्फोटक, विसर्प, रोमांतिक, वमन और ज्वर नष्ट होता है ॥ ६९ ॥

निम्बादिक्वाथ ।

निम्बपर्पटकं द्राक्षा पटोलं कटुरोहिणी । वासा दुरालभा धात्री चोशीरं चन्दनद्वयम् ॥ ७० ॥ एष निम्बादिकः क्वाथः पीतः शर्करयान्वितः । मसूरीं सर्वजां हन्ति ज्वरवीसर्पसम्भवाम् । उत्थिता प्रविशेद्यातु पुनस्तां बाह्यतो नयेत् ॥ ७१ ॥

नीम, पित्तपापडा, दाख, पटोलपत्र, कुटकी, अडूसा, धमासा, आमले, खस, चन्दन और लालचन्दन इनका क्राथ बनाकर उसमें खांड मिलाकर पान करनेसे सर्व शरीरगत मसूरिकारोग, ज्वर, विसर्प और उत्पन्न होकर जो भीतरको चलीजाय ऐसी मसूरिका फिर बाहरको निकल आती है ॥ ७० ॥ ७१ ॥

काञ्चनारत्वचः क्वाथस्ताप्यचूर्णावचूर्णितः । निर्ग्रन्थ्यान्तः प्रविष्टान्तु मसूरीं बाह्यतो नयेत् ॥ ७२ ॥

कचनारकी छालके काथमें सोनामाखीका चूर्ण डालकर पान करनेसे भीतरको घुसीहुई मसूरिका फिर निकल आती है ॥ ७२ ॥

पटोलमूलारुणतंडुलीयकं तथैव धात्रीखदिरेण संयुतम् । पिबेज्जलेन कथितं सुशीतलं मसूरिकारोगविनाशनं परम् ॥ ७३ ॥

पटोलपत्र, लालचौलाई बड़ी, आमले और खैरसार इनका काथ बनाकर शीतल करके पान करनेसे मसूरिकारोग नष्ट होता है ॥ ७३ ॥

सुषवीपत्रनिर्य्यासं हरिद्राचूर्णसंयुतम् । रोमन्तीज्वरवीसर्पमसूरीशान्तये पिबेत् ॥ ७४ ॥

करेलेके पत्तोंके स्वरसमें हलदीका चूर्ण डालकर पान करनेसे रोमान्तिक ज्वर, विसर्प और मसूरिकारोग शमन होता है ॥ ७४ ॥

दुरालभापर्पटकं पटोलं कटुरोहिणी । श्लेष्मपित्तमसूर्य्यान्तु क्राथमेषां प्रयोजयेत् । ॥ ७५ ॥

धमासा, पित्तपापडा, पटोलपत्र और कुटकी इनका क्राथ बनाकर कफपैत्तिक मसूरिकारोगमें पान करे ७५

रसं पूतिकरञ्जस्य चामलक्या रसं तथा । पिबेत्सशर्कराक्षौद्रं शोफनुत्कफपैत्तिके ॥ ७६ ॥

दुर्गंधकरंजका रस और आमलोंका रस इनमें मिश्री और शहद मिलाकर पान करनेसे सूजन तथा कफपैत्तिक मसूरिका नष्ट होती है ॥ ७६ ॥

अमृतादिकषायन्तु जयेत्पित्तकफात्मिकाम् । तथा शोणितसंसृष्टं जयेच्छोणितमोक्षणैः ॥ ७७ ॥

अमृतादि क्वाथको पान करनेसे पित्तकफजनित मसूरिका दूर होती है। रक्तजमसूरिकाको रक्तमोक्षणके द्वारा जीते ॥ ७७ ॥

साध्यासाध्यविचार ।

काश्चिद्विना प्रयत्नेन सिद्ध्यन्त्याशु मसूरिकाः । कृच्छ्रात्कृच्छ्रतराः काश्चित्काश्चित्सिध्यन्ति वा नवा । काश्चिन्नैव प्रसिध्यन्ति साध्यमानाः प्रयत्नतः ॥ ७८ ॥

कोई मसूरिका बिना ही यत्नके सिद्ध होजाती है, कोई कष्टसाध्य होती है, कोई अत्यन्त कष्टसाध्य होती है, कोई आरोग्य होती है, कोई नहीं होती और कोई बहुतसे प्रयत्न करनेपर भी आरोग्य नहीं होती॥७८॥

सौवीरेण तु संपिष्टं मातुलुङ्गस्य केशरम् । प्रलेपात्पाचयत्याशु दाहं वापि नियच्छति ॥ ८१ ॥

बिजौरेनींबूके केशरको सौवीरनामक काँजीमें पीसकर लेप करनेसे मसूरीका पकजाती है और दाहभी दूर होजाती है ॥ ७९ ॥

पाददाहन्तु कुरुते पिटिका पादजा भृशम् । तत्र सेकं प्रकुर्वीत बहुशस्तंडुलांबुना ॥ ८० ॥

पाँवोंमें उत्पन्न हुई पिडिका पावोंमें दाहको करती है, पाँवोंकी पिडिकाओंमें वारंवार चावलोंके जलके द्वारा सेचन करना चाहिये ॥ ८० ॥

पाककाले तु सर्वास्ता विशोषयति मारुतः । तस्मात्संबृंहणं कार्यं न तु पथ्यं विशोषणम् ॥ ८१ ॥

पकनेके समय सर्वप्रकारकी मसूरिकाओंको वायु सुखा देती है। इसकारण पाकके समय बृंहण (पुष्टिकारक) पथ्य देना चाहिये और शोषरूप पथ्य नहीं देना चाहिये ॥ ८१ ॥

लिह्याच्च बादरं चूर्णं पाचनार्थं गुडेन तु । अनेनाशु विपच्यन्ते वातपित्तकफात्मकाः ॥ ८२ ॥

वेरोंके चूर्णको गुडमें मिलाकर सेवन करे। इससे वातपित्त और कफजनित मसूरिका शीघ्र पचजाती है ॥ ८२ ॥

शूलाध्मानपरीतस्य कम्पमानस्य वायुना । धन्वमांसरसाः शस्ता ईषत्सैन्धवसंयुताः ॥ ८३ ॥

शूल और आध्मानसे पीडित एवं वायुसे कंपित रोगीको जांगलप्रदेशके जीवोंके मांसके रसमें किंचित् सैंधानमक डालकर पान करावे ॥ ८३ ॥

दाडिमाम्लरसैर्युक्ता यूषाः स्युस्त्वरुचौ हिताः ॥ ८४ ॥

अरुचिके होनेपर अनार और अम्लरस मिलाकर यूषको पीवे ॥ ८४ ॥

पिवेदम्भस्तप्तशीतं भावितं खदिरासनैः ॥ ८५ ॥

खैर और विजयसार इनका क्वाथ बनाकर शीतल करके पान करे ॥ ८५ ॥

शौचे वारि प्रयुञ्जीत गायत्रिबहुवारजम् ॥ ८६ ॥

खैर और लिसोडेके जलको शौच कर्म्मके लिये प्रयोग करे ॥ ८६ ॥

जातीपत्रसमञ्जिष्ठा दार्वीपूगफलं शमी । धात्रीफलं समधुकं कथितं मधुसंयुतम् ॥ मुखव्रणे कण्ठरोगे गडूषार्थं प्रशस्यते ॥ ८७ ॥ अक्ष्णोः सेकं प्रशंसन्ति गवेधुमधुकांबुना ॥ ८८ ॥

चमेलीके पत्ते, मजीठ, दारुहलदी, सुपरी, जंडी, आमले और मुलैठी इनके क्वाथमें शहद डालकर मुखव्रण और कण्ठरोगमें गण्डूषके लिये प्रयोग करे। गवेधुधान्य और मुलैठी इनके क्वाथसे नेत्रोंको सेचन करनेसे मसूरिकासे दूषित हुई आँखें आरोग्य होजाती हैं ॥८७॥८८॥

मधुकं त्रिफला मूर्वा दार्वीत्वङ्नीलमुत्पलम् । उशीरलोध्रमञ्जिष्ठालेपाश्चाच्योतने हिताः ॥ ८९ ॥ नश्यन्त्यनेन दृग्जाता मसूर्यो न भवन्ति च । प्रलेपमञ्जनं दद्याद्बहुवारस्य वल्कलैः ॥ ९० ॥

मुलैठी, त्रिफला, मूर्वा, दारुहलदीकी छाल, नील कमल, खस, लोध और मजीठ इनका लेप करनेसे नेत्र आरोग्य हो जाते हैं और फिर मसूरिका नहीं होती। लिसोडेकी छालका लेप और अंजन लगानेसे नेत्ररोग आरोग्य होजाते हैं ॥ ८९ ॥ ९० ॥

पञ्चवल्कलचूर्णेन क्लिन्ना स्रावयती यथा । दशाङ्गलेपचूर्णेन चूर्णिता शान्तिमेति च ॥ ९१ ॥

मसूरिकामेंसे जो क्लेद बहता हो या स्रवता हो तो पंचवल्कलका चूर्ण करके उसपर बुरकना चाहिये । अथवा दशांगलेपका चूर्ण डालनेसे भी मसूरिका शांत होजाती है ॥ ९१ ॥

कृमिपातभयाच्चापि धूपयेत्सरलादिभिः । वेदनादाहशान्त्यर्थं स्रुतानां च विशुद्धये ॥ ९२ ॥ तथाष्टाङ्गावलेहोऽत्र कवलश्चार्द्रकादिभिः ॥९३॥

मसूरिकामें कीडे आदिके पडनेके भयसे सरल आदि औषधियोंकी धूप देवे । वेदना और दाहको शांत करनेके लिये तथा स्रवती हुई मसूरिकाको शुद्ध करनेके लिये अष्टांगावलेह और अदरख आदिका केवल प्रयोग करना चाहिये ॥ ९२ ॥ ९३ ॥

निशाद्वयोशीराशिरीषमुस्तकैः सलोध्रभद्रश्रियनागकेशरैः । सस्वेदविस्फोटविसर्पकुष्ठदौर्गन्ध्यरोमान्तिहरः प्रदेहः ॥ ९४ ॥

हलदी, दारुहलदी, खस, शिरस, नागरमोथा, लोध, चन्दन और नागकेशर इनको एकत्र पीसकर लेप करनेसे स्वेद, विस्फोटक, विसर्प, कुष्ठ, दुर्गन्ध और रोमांतिक मसूरिका नष्ट होती है ॥ ९४ ॥

पञ्चतिक्तं प्रयुञ्जीत पानाभ्यञ्जनभोजनैः । कुर्य्याद्व्रणविधानञ्च तैलादीन्वर्जयेच्चिरम् ॥ ९५ ॥

पान, अभ्यंजन और भोजनमें पंचतिक्त क्वाथको प्रयोग करे । तथा फिर व्रणके समान विधि करे और तैलादिक पदार्थोंको बहुत दिनोंतक त्याग देवे॥९५॥

निम्बबर्बूरकाशोकं बिम्बीवेतसवल्कलम् । शृतशीतं प्रयोक्तव्यं स्रावप्रक्षालने सदा ॥ ९६ ॥

नीम, बबूर, अशोक, कन्दूरी और वेंतकी छाल इनका क्वाथ बनाकर शृत शीतल करके स्रावको धोनेके लिये प्रयोग करे ॥ ९६ ॥

जपहोमोपचारैश्च दानस्वस्त्ययनादिभिः । घण्टाकर्णं द्विजान् गाश्च शिवं गौरीञ्च पूजयेत् ॥ ९७ ॥

शीतलाकी शांतिके लिये जप, होम, दान, पुण्याहवाचन, इष्टपूजन, घंटाकर्ण, ब्राह्मण, गौ, महादेव और गौरी इनकी पूजा करे ॥९७॥

अगदानि विषघ्नानि रत्नानि च भिषग्वरः । धारयेद्वाचयेच्चापि वैनतेयस्य संहिताम् ॥ ९८ ॥

श्रेष्ठवैद्य विषनाशक औषधि और रत्न इनको धारण करावे और गरुडपुराणको बचवावे ॥ ९८ ॥

दार्वीघृत ।

कृत्वा दार्वीकषायञ्च कल्कैरेभिः पचेद्घृतम् । दशमूलीबलापथ्याकुष्ठराज्ञाविभीतकैः ॥ ९९ ॥ दार्वीत्वक्तमालैश्च समञ्जिष्ठैः सुपेषितैः । अपक्काः पाचयत्याशु पक्काश्चैव विशोधयेत् ॥ क्षुद्रास्तु शमयत्येतत्सेकादपि मसूरिकाः ॥ १०० ॥

दारुहलदीके काथमें दशमूल, खिरैंटी, हरड,कूठ, रायसन, बहेडा, दारुहलदीकी छाल, करंजकी छाल और मजीठ.इनके कल्कके द्वारा घृतको पकावे । इस घृतको सेचनादि कर्म्मोंमें प्रयोग करनेसे अपक्व मसूरिका पक जाती है और पक होकर शुद्ध होती है एवं क्षुद्रमसूरिका भी इसके सेकसे नष्ट होजाती है ॥ ९९ ॥ १०० ॥

मसूरीषु प्रयुञ्जीत गौराद्यं पद्मकं तथा । नैम्बं शैरीषिकं वापि भिषक् सर्वेषु कर्म्मसु ॥ १०१ ॥

मसूरिकारोगमें गौराद्यघृत तथा पद्मकघृतको प्रयोग करे । एवं सम्पूर्ण कर्म्मोंमें नीम और शिरसको प्रयोग करे ॥ १०१ ॥

कूर्परादि भवे शोथे यत्नात्सिद्धिः प्रजायते । व्रणशोथहरैर्योगैर्वातयोगहरैस्तथा ॥ १०२ ॥

मसूरिकामें कूर्परादिस्थानमें जो शोथ होजाता है उसमें व्रणशोथोक्त औषधियोंके द्वारा अथवा वातनाशक औषधियोंके द्वारा यत्नपूर्वक चिकित्सा करे क्योंकि इसमें यत्नसे सिद्धि होती है ॥ १०२ ॥

दुष्टव्रणेषु तेष्वेव जलौकाभिर्हरेदसृक् ॥ १०३ ॥

मसूरिकामें जो दुष्टव्रण होजाँय तो जलोकाके द्वारा रुधिरको हरण करे ॥ १०३ ॥

इति श्रीवङ्गसेने भाषाटीकायां मसूरिकानिदानचिकित्साधिकारः समाप्त ॥ ६९ ॥

अथ क्षुद्ररोगाधिकार ।



अजगल्लिकाके लक्षण ।

स्निग्धाः सवर्णा ग्रथिता नीरुजा मुद्गसन्निभाः । कफवातोत्थिता ज्ञेया बालानामजगल्लिकाः ॥ १ ॥

जो फुन्सी–चिकनी शरीरके वर्णके समान वर्णवाली, गाँठसी बँधी हुई, पीडारहित और मूँगके समान बालकोंके उत्पन्न हों उनको अजगल्लिका कहते हैं । यह वातकफोद्भव जाननी ॥ १ ॥

अजगल्लिकाकी चिकित्सा ।

तत्राजगल्लिकामामां जलौकाभिरुपाचरेत् । शुक्तिसौराष्ट्रिकाक्षारकल्कैश्चालेपयेन्मुहुः ॥ २ ॥

प्रथम जो अजगल्लिका अपक्व हो तो जोंकके द्वारा रुधिर निकलवावे । फिर सीप, फिटकरी और जवाखार इनके कल्कका वारम्वार लेप करे ॥ २ ॥

कठिनां क्षारयोगैश्च द्रावयेदजगल्लिकाम् । श्यामालाङ्गलिकामूर्वाकल्कैर्वापि विलेपयेत् ॥ पक्वां व्रणविधानेन यथोक्तेन प्रसाधयेत् ॥ ३ ॥

जो अजगल्लिकाकी फुन्सी कठिन हो तो क्षारके द्वारा द्रवीभूत अर्थात् गलावे । तथा शारिवा कलिहारी और मूर्वा इनके कल्कका प्रलेप करे । और जो अजगल्लिका पक्व जाय तो व्रणोक्त समस्त चिकित्सा करे ॥ ३ ॥

विवृतापिडिकाके लक्षण ।

विवृतास्यां महादाहां पक्वोदुम्बरसन्निभाम् । प्रमण्डलां पित्तकृतां विवृता नाम तां विदुः ॥ ४ ॥

जो फुन्सी फैलेमुखकी, अत्यन्त दाहयुक्त, पके गूलरके समान और चारोंओर मण्डलाकार हो उसको पित्तोत्पन्न विवृता जाननी ॥ ४ ॥

इन्द्रवृद्धाके लक्षण ।

पद्मकर्णिकवन्मध्ये पिडिकाभिः समाचिताम् । इन्द्रवृद्धान्तु तां विद्याद्वातपित्तोत्थितां भिषक् ॥ ५ ॥

प्रथम बीचमें एक बडी फुन्सी कमलकी कर्णिकाके समान उत्पन्न हो फिर उसके चारोंओर बहुतसी छोटी छोटी फुन्सी उत्पन्न हों उसको वातपित्तोत्पन्न इन्द्रवृद्धा कहते हैं ॥ ५ ॥

गर्दभिकाके लक्षण ।

मण्डलं वृत्तमुत्सन्नं सरक्तं पिडिकान्वितम् । रुजाकरीं गर्दभिकां तां विद्याद्वातपित्तजाम् ॥ ६ ॥

जो फोडा मण्डलके समान गोल, ऊँचा, लाल हो और जिसमें चारोंओर छोटी छोटी फुन्सी हों तथा जिसमें अत्यन्त पीडा हो उसको वातपित्तोत्पन्न गर्दभिका जाननी ॥ ६ ॥

पाषाणगर्दभके लक्षण ।

वातश्लेष्मसमुद्भूतः श्वयथुर्हनुसन्धिजः । स्थिरो मन्दरुजः स्निग्धो ज्ञेयः पाषाणगर्दभः ॥ ७ ॥

वातकफसे ठोडीकी संधिमें सूजन उत्पन्न हो, वह सूजन कठिन, अल्पपीडायुक्त और चिकनी हो तो उसको पाषाणगर्दभ कहते हैं ॥ ७ ॥

पनसिकाके लक्षण ।

कर्णस्याभ्यन्तरे जातां पिडिकामुग्रवेदनाम् । स्थिरां पनसिकां तां तु विद्यादन्तःप्रपाकिनीम् ॥ ८ ॥

कानके भीतर जो फुंसी अत्यन्त पीडायुक्त और कठिन उत्पन्न हो उसको पनसिका कहते हैं । यह चारों ओरसे पकती है ॥ ८ ॥

जालगर्दभके लक्षण ।

विसर्पवत्सर्पति यः शोथस्तनुरपाकवान् । दाहज्वरकरः पित्तात्स ज्ञेयो जालगर्दभः ॥ ९ ॥

विसर्पके समान फैलनेवाली, पतली और पाकरहित जो सूजन हो उसके होनेसे शरीरमें दाह और ज्वर होता है इसको पित्तोद्भव जालगर्दभ कहते हैं ॥ ९ ॥

इरिवेल्लिकाके लक्षण ।

पिडिकामुत्तमाङ्गस्थां वृत्तामुग्ररुजाकरीम् । सर्वात्मिकां सर्वलिङ्गां जानीयादिरिवेल्लिकाम् ॥ १० ॥

जो फुन्सी मस्तकमें गोल, उग्रपीडा और ज्वरसहित उत्पन्न हो तथा जिसमें त्रिदोषके लक्षण मिलते हों उसको त्रिदोषोत्पन्न इरिवेल्लिका जानना ॥ १० ॥

कक्षाके लक्षण ।

बाहुपार्श्वांसकक्षेषु कृष्णस्फोटां सवेदनाम् । पित्तप्रकोपसंभूतां कक्षामित्यभिनिर्दिशेत् ॥ ११ ॥

जो बाहु, पसली, कंधे और कोखमें काले रंगका वेदनायुक्त फोडा उत्पन्न हो उसको पित्तोत्पन्न कक्षा कहते हैं ॥ ११ ॥

गन्धनाम्नीके लक्षण ।

एकामेतादृशीं दृष्ट्वा पिटिकां स्फोटसन्निभाम् । त्वग्गतां पित्तकोपेन गन्धनाम्नीं प्रचक्षते ॥ १२ ॥

ऊपर कहे हुए बाहु आदिके स्थानोंकी त्वचामें पित्तके प्रकोपसे काली और वेदनायुक्त फोडेके समान जो एक फुन्सी उत्पन्न होती है उसको पित्तजन्य गन्धनाम्नी कहते हैं ॥ १२ ॥

विवृतापिडिकाकी चिकित्सा ।

विवृतामिन्द्रवृद्धां च गर्दभीं जालगर्दभम् । इरिवेल्लीं गन्धनामां कक्षाविस्फोटकांस्तथा ॥ पित्तजस्य विसर्पस्य क्रियया साधयेद्भिषक् ॥ १३ ॥

विवृता, इन्द्रवृद्धा, गर्दभिका, जालगर्दभ, इरिवेल्लिका, गन्धनामा, कक्षा और विस्फोटक इन सबकी चिकित्सा पित्तजविसर्पके समान करनी चाहिये ॥ ॥ १३ ॥

रोपयेत्सर्पिषा पक्वान् सिद्धेन मधुरौषधैः ॥ १४ ॥

मधुर औषधियोंके कल्कके द्वारा घृतको सिद्ध करके व्रणोंको रोपण करनेके लिये प्रयोग करे ॥ १४ ॥

सुरदारुशिलाकुष्ठैः स्वेदयित्वा प्रलेपयेत् । कफमारुतशोथघ्नो लेपः पाषाणगर्दभे ॥ परिपाकगतं भित्त्वा व्रणवत्समुपाचरेत् । १५ ॥

देवदारु, मैनशिल और कूठ इनके द्वारा पाषाणगर्दभनामक पिडिकाको स्वेदित करके लेप करे तथा कफ, वात, शोथनाशक औषधियोंका प्रलेप करे । जब पक जाय तब उसको भेद कर व्रणके समान चिकित्सा करे ॥ १५ ॥

नीलीपटोलयोर्मूलं जलपिष्टं घृतप्लुतम् । निहन्ति लेपनान्नूनं जालगर्दभजां रुजाम् ॥ १६ ॥

नीलकी जड और परवलकी जड़को जलमें पीस कर घीमें मिलाकर लेप करनेसे जालगर्दभरोग दूर होता है ॥ १६ ॥

अन्त्रालजीके लक्षण ।

घनामवक्त्रां पिटिकामुन्नतां परिमण्डलाम् । अन्त्रालजीमल्पपूयां तां विद्यात्कफवातजाम् ॥ १७ ॥

जो फुन्सी घन मुखरहित ऊँची मण्डलाकार और अल्पराधयुक्त हो उसको कफवातोत्पन्न अन्त्रालजी या अन्धालजी कहते हैं ॥ १७ ॥

यवप्रख्याके लक्षण ।

यवाकारा सुकठिना ग्रथिता मांससंश्रिता । पिटिका श्लेष्मवाताभ्यां यवप्रख्येति सोच्यते ॥ १८ ॥

जो फुन्सी जौके आकारवाली कठिन गठीली और मांसमें स्थित हो उसको वातकफोत्पन्न यवप्रख्या कहते हैं ॥ १८॥

कच्छपिकाके लक्षण ।

ग्रथिताः पञ्च वा षड्वा दारुणाः कच्छपोन्नताः । कफानिलाभ्यां पिटिका ज्ञेया कच्छपिका बुधैः ॥ १९ ॥

पाँच या छः फुन्सी गठीली, अत्यन्त दारुण और कछुवेके समान ऊपरको उठीहुई एक जगह उत्पन्न हो तो उसको कफवातोत्पन्न कच्छपिका कहते हैं ॥ ॥ १९ ॥

अन्त्रालजीकी चिकित्सा ।

अलजीं यवप्रख्याञ्च पनसीं कच्छपीं तथा । पाषाणगर्दभञ्चैव पूर्वं स्वेदैरुपाचरेत् ॥ २० ॥

अन्त्रालजी, यवप्रख्या, पनसी, कच्छपिका और पाषाणगर्दभ इन सबमें प्रथम स्वेदके द्वारा उपचार करे ॥ २० ॥

मनःशिलादेवदारुकुष्ठकल्कैः प्रलेपयेत् । पक्वान्व्रणविधानेन यथोक्तेन प्रसाधयेत् ॥ २१ ॥

मैनशिल, देवदारु और कूठ इनका कल्क बनाकर प्रलेप करे और जब ये पक जायँ तव व्रणके समान इनकी चिकित्सा करे ॥ २१ ॥

अनुशयीके लक्षण ।

गम्भीरामल्पसंरम्भां सवर्णामुपरिस्थिताम् । पादस्यानुशयीं तान्तु विद्यादन्तःप्रपाकिनीम् ॥ २२ ॥

जो पिडिका पाँवमें उत्पन्न हो और भीतर ही पके वह अत्यन्त गम्भीर, किंचित् सूजनयुक्त और शरीरके वर्णके समान उसका रंग हो तो उसको अनुशयी कहते हैं ॥ २२ ॥

अनुशयीकी चिकित्सा ।

श्लेष्मविद्रधिकल्केन जयेदनुशयीं भिषक् ॥ २३ ॥

कफविद्रधिपर जो औषधियोंका कल्क आदि कहा है वही इस अनुशयीपर प्रयोग करना चाहिये ॥२३॥

विदारिकाके लक्षण ।

विदारीकन्दवद्वृत्तां कक्षावङ्क्षणसन्धिषु । विदारिकामिति वदेत्सर्वजां सर्वलक्षणाम् ॥ २४ ॥

काँख अथवा वंक्षणसंधिमें विदारीकंदके समान बँधी हुई, गोल, लाल, सम्पूर्ण दोषोंसे उत्पन्न होनेवाली और सम्पूर्ण दोषोंके लक्षणोंसे युक्त जो फुन्सी हो उसको विदारिका कहते हैं ॥२४॥

विदारिकाकी चिकित्सा ।

रक्तावसेकैर्बहुभिः स्वेदनैरपतर्पणैः । जयेद्विदारिकां लेपैः शिग्रुदेवद्रुमोद्भवैः ॥ नगपृश्निकवर्षाभूबिल्वमूलैरथापि वा ॥ २५ ॥

विदारिका रोगमें वारंवार रक्तमोक्षण, स्वेदप्रदान, लंघन तथा सहिंजने और देवदारुको पीस कर प्रलेप करे अथवा पर्वतीमैनफल, पुनर्नवा और बेलकी जड इनका प्रलेप करे ॥ २५ ॥

पक्वां विदार्य्य शस्त्रेण पटोलपिचुमन्दयोः । कल्केन तिलयुक्तेन सर्पिर्मिश्रेण लेपयेत् ॥ २६ ॥ बद्धा च क्षीरवृक्षस्य कषायैः खादिरस्य च । व्रणं प्रक्षालयेच्छुद्धां ततस्तां रोपयेत्पुनः ॥ रोपणार्थं हितं तैलं कषायमधुरैः शृतम् ॥ २७ ॥

पक्वविदारीको शस्त्रसे चीर कर पटोलपत्र और नीम इनके कल्कमें तिल और घी मिला कर व्रणमें

भर देवे और ऊपरसे उसको बाँध देवे, फिर क्षीरवृक्षोंके और खैरके क्वाथसे उस व्रणको धोवे। जब व्रण शुद्ध होजाय तब व्रण भरनेकी चिकित्सा करे। मधुर औषधियोंके क्वाथके द्वारा तेलको पकाकर उस तेलको व्रणपर लगावे ॥ २६ ॥ २७ ॥

कच्छपिकां पनसिकामनेन विधिना भिषक्। साधयेत्कठिनानन्यान्छोथान्दोषसमुद्भवान् ॥ २८ ॥

कच्छपिका और पनसिकाकी भी इसी प्रकार चिकित्सा करे। एवं अन्यान्य कठिन सूजनपर भी इसी प्रकार चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २८ ॥

शर्कराके सम्प्राप्ति लक्षण।

प्राप्य मांसं शिरां स्नायुं श्लेष्ममेदस्तथाऽनिलः। ग्रन्थिं करोत्यसौ भिन्नो मधुसर्पिर्वसानिभम् ॥ २९ ॥ स्रवत्या स्रावमनिलस्तत्र वृद्धिं गतः पुनः। मांसं विशोष्य ग्रथितां शर्कराञ्जनयत्यतः ॥ ३० ॥

कफ, मेदा और वायु ये तीनों दोष मांस, स्नायुमें जाकर गाँठको उत्पन्न करते हैं। जब वह गाँठ फूटती है तब उसमेंसे शहद, घी और चर्बीके समान राध बहती है फिर उसमें वायु बढकर मांसको सुखाकर अनेक गाँठ उत्पन्न कर देती है उसको शर्करा कहते हैं ॥ ॥ २९ ॥ ३० ॥

शर्करार्बुदके लक्षण।

दुर्गन्धिक्लिन्नमत्यर्थं नानावर्णं ततः शिराः। स्रवन्ति रक्तं सहसा तं विन्द्याच्छर्करार्बुदम् ॥ ३१ ॥

शर्करा होनेके पश्चात् नाडियोंके द्वारा दुर्गंधित, क्लिन्न, विविधवर्णका रक्त बहता है उसको शर्करार्बुद कहते हैं, इसकी गांठें रेतेके समान होती हैं ॥ ३१ ॥

शर्करार्बुदकी चिकित्सा।

मेदोऽर्बुदविधानेन साधयेच्छर्करार्बुदम् ॥ ३२ ॥ कच्छाविचर्चिकापामालसकाः कुष्ठलिङ्गकाः। कुष्ठरोगोक्तविधिना एतांस्तद्वदुपाचरेत् ॥ ३३ ॥

शर्करार्बुदकी चिकित्सा मेदोऽर्बुदके समान करनी चाहिये। कक्षा, विचर्चिका, पामा, लसका और जिन रोगोंमें कुष्ठरोगोंके लक्षण मिलते हों उन सबकी कुष्ठ रोगके समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

लेपश्च शस्यते सिक्थशताह्वागौरसर्षपैः। वचादार्वीसर्षपैर्वा तैलं वा नक्तमालजम् ॥ सारतैलमथाभ्यङ्गं कुर्वीत कटुकैः शृतम् ॥ ३४ ॥

मोम, सौंफ और सफेद सरसों इनको पीसकर लेप करे। अथवा वच, दारुहलदी और सरसों इनको पीसकर लेप करे। या करंजके तेलका लेप करे। अथवा कडवी औषधियोंके द्वारा सिद्ध किये हुए सार तेलकी मालिश करे ॥ ३४ ॥

जन्तुमणिका निदान।

सममुत्सन्नमरुजं मण्डलं कफरक्तजम्। सहजं लक्ष्म चैकेषां लक्ष्यो जन्तुमणिस्तु सः ॥ ३५ ॥

शरीरके समान वर्णवाला, पीडारहित, मण्डलाकार और गोल ऐसा जन्मसे ही मनुष्योंके शरीरमें जो चिह्न हो उसको जन्तुमणि कहते हैं। यह कफरक्तसे होता है। कितने वैद्य जन्तुमणिको लक्ष्य (लहसन या लहसा) कहते हैं ॥ ३५ ॥

माषके लक्षण।

अवेदनं स्थिरश्चैव यस्मिन् गात्रे प्रदृश्यते। माषवत्कृष्णमुत्सन्नमनिलान्माषमादिशेत् ॥ ३६ ॥

किसी अंगमें वातसे पीडारहित, स्थिर, उड़दके समान काली और किंचित् ऊँची गाँठ उत्पन्न हो उसको माष अर्थात् मस्सा कहते हैं ॥ ३६ ॥

कृष्णानि तिलमात्राणि नीरुजानि समानि वा। वातपित्तकफोद्रेके तान्विद्यात्तिलकालकान् ॥ ३७ ॥

काले तिलके समान पीडारहित, शरीरके समान जो देहमें चिह्न होते हैं उनको तिलकालक और लोकमें तिल कहते हैं यह त्रिदोषज है ॥ ३७ ॥

जन्तुमणिकादिकी चिकित्सा ।

चर्मकीलं जन्तुमणिं माषकांस्तिलकालकान् । उत्कृत्य शस्त्रेण दहेत्क्षाराग्निभ्यामशेषतः ॥ ३८ ॥

चर्मकील, जन्तुमणि, माष और तिलकालक इनको शस्त्रसे चीरकर फिर सम्पूर्ण रीतिसे क्षार और अग्निके द्वारा दहन करे ॥ ३८ ॥

मुखदूषिकाके लक्षण ।

शाल्मलीकण्टकप्रख्याः कफमारुतशोणितैः । जायन्ते पिटका यूनां विज्ञेया मुखदूषिकाः ॥ ३९ ॥

कफ, वात और रुधिरके कुपित होनेपर युवा मनुष्यके मुखपर सेमलके काँटोंके समान जो पिडिका उत्पन्न होती हैं उनको मुखदूषिका (मुँहासे) कहते हैं ॥ ३९ ॥

न्यच्छके लक्षण ।

महद्वा यदि वाल्पं स्याच्छ्यावं वा यदि वा सितम् । नीरुजं मण्डलं गात्रे न्यच्छमित्यभिधीयते ॥ ४० ॥

बडा अथवा छोटा काला या सफेद शरीरके साथ उत्पन्न हुआ और वेदना रहित जो मण्डल होता है उसको न्यच्छ कहते हैं ॥ ४० ॥

व्यंगके लक्षण ।

क्रोधायासप्रकुपितो वायुः पित्तेन संयुतः । मुखमागम्य सहसा मण्डलं विसृजत्यतः ॥ नीरुजं तनुकं श्यावं मुखे व्यङ्गं तमादिशेत् ॥ ४१ ॥

क्रोध और श्रमसे पित्तके साथ वायु कुपित होकर एक साथ मुखमें प्राप्त होकर मुखपर काले पतले और पीडारहित मण्डल उत्पन्न करता है उसको व्यंग (झाँई) कहते हैं ॥ ४१ ॥

नीलिकाके लक्षण ।

कृष्णमेवं गुणं गात्रे मुखे वा नीलिकां विदुः ॥ ४२ ॥

व्यंगके समान लक्षणोंवाला जो काला मण्डल, अंगमें अथवा मुखपर ही हो उसको नीलिका कहते हैं । व्यंग और नीलिकामें केवल इतनाही अन्तर है कि व्यंग लालिमा लिये काला होता है और नीलिका विशेष काला होता है ॥ ४२ ॥

मुखदूषिकादिकी चिकित्सा ।

युवानपिटकान्यच्छनीलिकाव्यङ्गशर्कराः । शिराव्यधैः प्रलेपैश्च जयेद्‌भ्यञ्जनैस्तथा ॥ ४३ ॥

युवान,पिडिका (मुहाँसे) न्यच्छ,नीलिका, व्यंग (झाँई) और शर्करा इनकी शिरावेध (नसको खोलना) प्रलेप और अभ्यंगसे चिकित्सा करनी चाहिये ॥४३॥

मुखपर लेप करनेकी मात्रा और लेप करनेकी विधि ।

अंगुलस्य चतुर्भागो मुखलेपो विधीयते । मध्यमस्तु त्रिभागः स्यादुत्तमोर्धांगुलो भवेत् ॥ स्थितिकालश्च शुष्कत्वं शुष्को दूषयति त्वचम् ॥४४॥

मुखपर चौथाई अंगुल प्रमाण लेप करना कनिष्ठमात्रा है । अंगुलका तीसराभाग लेप करना मध्यम मात्रा है । और आधे अंगुल प्रमाण लेप करना उत्तम मात्रा है । लेप की हुई औषधि जबतक सूखे नहीं तबतक मुखपर रखनी चाहिये,सूखनेके पश्चात् मुखपर नहीं रखना चाहिये क्योंकि सूखा हुआ लेप त्वचाको दूषित करता है ॥ ४४ ॥

रोध्रधान्यवचालेपस्तारुण्यपिटकापहः । तद्वद्गोरोचनायुक्तं मरिचं मुखलेपनात् ॥ ४५ ॥

लोध,धनियाँ और वच इनको पीसकर लेप करनेसे युवा अवस्थाकी पिडिका दूर होती है । गोरोचन और कालीमिरचोंको एकत्र पीसकर लेप करनेसे युवापिडिका दूर होती हैं ॥ ४५ ॥

सिद्धार्थकवचालोध्रसैन्धवैश्च प्रलेपनम् । वमनं च निहन्त्याशु पिटिकां यौवनोद्भवाम् ॥ ४६ ॥

सफेद सरसों, वच, लोध और सैंधानमक इनका लेप करनेसे अथवा इनके द्वारा वमन करानेसे यौवनकी पिडिका शान्त होती है ॥ ४६ ॥

व्यङ्गेषु चार्जुनत्वग्वा मञ्जिष्ठा वा समाक्षिका । लेपः सनवनीतो वा श्वेताश्वखुरजामषी ॥ ४७ ॥

अर्जुनकी छाल अथवा मजीठ और शहद इनको एकत्र मिलाकर लेप करनेसे अथवा सफेद घोडेके खुरकी स्याही बनाकर नैनीघीमें मिलाकर लेप करनेसे व्यंग दूर होती है ॥ ४७ ॥

रक्तचन्दनमञ्जिष्ठाः कुष्ठलोध्रप्रियङ्गवः । वटांकुरमसूराश्च व्यङ्गघ्ना मुखकान्तिदाः ॥ ४८ ॥

लालचन्दन, मजीठ कूठ; लोध, फूलप्रियंगू वडके अंकुर और मसूर इनको एकत्र पीसकर लेप करनेसे व्यंग (झांई) दूर होती है और मुखकी कांति बढ़ती है ॥ ४८ ॥

व्यङ्गानां लेपनं शस्तं रुधिरेण शशस्य च । व्यङ्गो मञ्जिष्ठया कुर्य्याल्लेपनं मधुसंयुतम् ॥ ४९ ॥

खरगोशके रुधिरका लेप करनेसे व्यंग (झांई) दूर होती है मजीठको पीसकर, शहदमें मिलाकर लेप करनेसे व्यंग (झांई) दूर होती है ॥ ४९ ॥

तिलतैलं प्रतिमर्षात्रिसप्ताहात्कृताभवम् । नश्यन्ति चण्डपिटिकाः पयोत्था इव घर्मतः ॥ ५० ॥

तिलके तेलकी तीन सप्ताह पर्यन्त नस्य देनेसे अत्यन्त प्रचण्ड पीडिका ऐसे नष्ट होजाती है जैसे धूप लगनेसे घृत पिघल जाता है ॥ ५० ॥

मातुलुङ्गजटासर्पिः शिलागोशकृतो रसः । मुखकान्तिकरो लेपः पिटिका व्यङ्गकालजित् ॥ ५१ ॥

बिजौरेनींबूकी जड,घी, मैनशिल, गोबरका रस इन सबको एकत्र करके लेप करनेसे मुखकी कांति बढती है तथा मुखकी पिडिका मुंहासे व्यंग(झाँई) और कलौंच दूर होती है॥ ५१ ॥

परिणतदधिसरपुङ्खैः कुवलयदलकुष्ठचन्दनोशीरैः । मुखकमलकान्तिकारि पिटकातिलकालकाञ्जयति॥५२॥

तगर, दही, सरफोंका, कमलके पत्ते, कूठ, चन्दन और खस इन सबको एकत्र पीसकर मुखपर लेप करनेसे मुख कमलके समान कांतिवाला होजाता है तथा पिडिका (मुहाँसे) और तिलकालकरोग दूर होता है ॥ ५२ ॥

त्रिभुवनविजयापत्रं मूलं स्थविरस्य शिंशपा चैभिः । कल्पितमुद्वर्त्तनैम्ब्य- न्यच्छव्यंगापहं सिद्धम् ॥ ५३ ॥

भाँग, विधारेकी जड अथवा देवदारु और सीसम इन सबको एकत्र पीसकर उद्वर्त्तन करनेसे न्यच्छ और व्यंगरोग दूर होता है ॥ ५३ ॥

अर्कक्षीरहरिद्राभ्यां मर्दयित्वा प्रलेपनात् । मुखकार्ष्ण्यं शमं याति चिरकालोद्भवं ध्रुवम् ॥ ५४ ॥

आकका दूध और हलदी इनको एकत्र पीसकर लेप करनेसे बहुत दिनोंकी मुखकी कृष्णता दूर होती है ॥ ५४ ॥

गोमयस्य रसः सर्पिर्मातुलुङ्गं मनःशिला । मुखस्य वर्णकरणं तिलकालकनाशनम् ॥ ५५ ॥

गोबरका रस, घी, बिजौरानींबू और मैनशिल इनको एकत्र पीसकर लेप करनेसे मुखकी शोभा बढती है और तिलकालक दूर होता है ॥ ५५ ॥

वटस्य पांडुपत्राणि मालतीरक्तचन्दनम् । कुष्ठं कालीयकं लोध्रमेभिर्लेपं प्रयोजयेत् ॥ ५६ ॥ युवानपिटिकानां तु व्यंगानां च विनाशनम् । मुखं पद्मनिभं कुर्य्यान्नीलिकादिविवर्जितम् ॥ ५७ ॥

वडके पीले पत्ते, चमेलीके पत्र,लालचन्दन, कूठ, पीला चन्दन और लोध इनको एकत्र पीसकर लेप करनेसे युवा अवस्थाकी पिडिका और व्यंग (झाँई) दूर होती है। मुख कमलके समान होता है और नीलिकादिरोग नष्ट होते हैं॥ ५६ ॥ ५७ ॥

यवान्सर्जरसं लोध्रमुशीरं चन्दनं मधु । घृतं गुडश्च गोमूत्रे पचेदादार्वीलेपनम् ॥ ५८ ॥ तदभ्यङ्गान्निहन्त्याशु नीलिकां व्यङ्गदूषिकाम् । मुखं करोति पद्माभं पादौ पद्मदलोपमौ ।५९।

जौ, राल, लोध, खस, चन्दन, शहद, घी, गुड और गोमूत्र इन सबको एकत्र पकावे । जब पकते २ करछीसे लगने लगे तब उतार लेवे । इसको मलनेसे शीघ्र ही नीलिका, व्यंगऔर मुखदूषिकादिरोग नष्ट होते हैं । एवं मुख कमलके समान और पाँव कमलपत्रके समान हो जाते हैं ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

कालीयकोत्पलाऽऽमयदधिसरवरास्थिमध्यफलिनीभिः । लिप्तं भवति हि वदनं शशिप्रभं सप्तरात्रेण ॥ ६० ॥

पीलाचन्दन, कमल, कूठ, दहीकी मलाई, त्रिफलेकी मींग और फूलप्रियंगु इनको एकत्र पीसकर लेप करनेसे मुख सात दिनमें चन्द्रमाके समान हो जाता है ॥ ६० ॥

रक्षोघ्नशर्वरीद्वयमञ्जिष्ठागैरिकाह्वबस्तपयः । सिद्धेन लिप्तमाननमुद्यच्छरदिन्दुबिम्बवद्विभाति ॥ ६१ ॥

सफेद सरसों, हलदी, दारुहलदी, मजीठ और गेरु इनको बकरी या भेडके दूधमें पकाकर मुखपर लेप करनेसे मुख शरद् ऋतुके चन्द्रमाके समान निर्मल हो जाता है ॥ ६१ ॥

प्रियङ्गुचन्दनं लोध्रं कुष्ठं पांडुवटच्छदम् । कालीयकान्वितं लेपात्कुर्य्याच्चन्द्रनिभं मुखम् ॥ ६२ ॥

फूलप्रियंगु, चन्दन, लोध, कूट, वडके पीले पत्ते और पीलाचन्दन इनको पीसकर लेप करनेसे मुख चन्द्रमाके समान होता है ॥ ६२ ॥

हरिद्राद्यतैल ।

हरिद्राद्वययष्ट्याह्वकालीयककुचन्दनैः । प्रपौण्डरीकमञ्जिष्ठाः पद्मकं कुष्ठ कुंकुमम् ॥ ६३ ॥ कपित्थतिन्दुकप्लक्षवटपत्रैः पयोन्वितैः । पाचयेत्कलिकतैरेतैस्तैलं वाभ्यञ्जने चरेत् ॥ ६४ ॥ विप्लवं नीलिकाऽव्यङ्गतिलकान्मुखदूषिकान् । नित्यसेवी जयेत्क्षिप्रं मुखं कुर्य्यान्मनोहरम् ॥ ६५ ॥

हलदी, दारुहलदी, मुलैठी, कालम्बक, लालचन्दन, पुंडेरिया, मजीठ, पद्माख, कूठ, केशर, कैथ, तेंदू पाखर और वडके पत्ते इनको दूधमें पीसकर इनके द्वारा तेलको पकावे । इस तेलकी नित्य मालिश करनेसे नीलिका, व्यंग, तिलकालक और मुखदूषिकादिरोग दूर होते हैं तथा मुख अत्यंत मनोहर हो जाता है ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

मञ्जिष्ठाद्यतैल ।

मञ्जिष्ठाकेशरं लाक्षा सर्षपालोध्रचन्दनम् । प्रपौण्डरीकं मधुकं पतङ्गं गैरिकं वचा ॥ ६६ ॥ कार्पासास्थिशिलामज्जकर्षैः कल्कैर्द्वयोन्वितैः । पचेत्तैलस्य कुडवमजाक्षीरं चतुर्गुणम् ॥ ६७ ॥ सिद्धेऽवतारिते दद्यान्मधूच्छिष्टं द्विरंशकम् । म्रक्षयेन्मुखमेतेन सप्तरात्रमतन्द्रितः ॥ ६८ ॥ पिटकास्तेन शाम्यन्ति तिलकाऽव्यङ्गकालिकाः । मुखकार्ष्ण्यं जन्तुमणिपद्मिनीकण्टकास्तथा । मञ्जिष्ठाद्यमिदं तैलं मुखवर्णप्रसादनम् ॥ ६९ ॥

मजीठ, केशर, लाख, सरसों, लोध, लाल चन्दन, पुंडेरिया, मुलैठी, पतंग, गेरु, वच, बिनौलेकी दाल, मैनशिल और चर्बी ये प्रत्येक औषधि दो दो तोले लेवे, इनका कल्क बनाकर एक कुडव परिमाण तिलके तेल, चर्बी या हड्डीके भीतरका स्नेह और तेलसे चौगुने दूधमें एकत्र मिलाकर पकावे । जब पककर तेल सिद्ध हो जाय तब उसमें मोम २ भाग मिलावे । इसको एक सप्ताह पर्य्यंत मुखपर मलनेसे पिडिका, तिलकालक, व्यंग, नीलिका, मुखकी कृष्णता, जन्तुमणि और पद्मिनी कण्टकादिरोग दूर होते हैं । यह मञ्जिष्ठाद्यतैल मुखके वर्णको उज्ज्वल करनेवाला है ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

कनकतैल ।

मधूकस्य कषायेण तैलस्य कुडवं पचेत्। कल्कैः प्रियंगुमञ्जिष्ठाचन्दनोत्पलकेशरैः ॥७०॥ कनकं नाम तत्तैलं मुखकान्तिकरं परम् । अभीरुनीलिकाव्यंगशोधनं परमर्चितम् ॥ ७१ ॥

मुलैठीके क्वाथमें एक कुडव परिमाण तिलका तेल फूलप्रियंगु, मजीठ, चन्दन, कमल और केशर इनका कल्क डालकर पकावे । इसको कनकतेल कहते हैं । यह तेल—मुखकी कांतिको बढानेवाला तथा अभीरुनीलिका, व्यंग आदि रोगोंको दूर करता है ॥ ७० ॥ ७१ ॥

कुंकुमाद्यतैल ।

कुंकुमं चन्दनं पत्रमुशीरं चन्दनोत्पलम् । गोरोचना हरिद्रे द्वे मञ्जिष्ठा मधुयष्टिका॥७२॥पतङ्गं शारिवा लोध्रं कुष्ठं गैरिककेशरम् । स्वर्णमाक्षीप्रियंगुश्च कालीयं रक्तचन्दनम् ॥ ७३ ॥ एतैरक्षसमैर्भागैस्तैलप्रस्थं विपाचयेत । अभ्यङ्गो राजपत्नीभ्यां ये चान्ये धनिनो नराः ॥ ७४ ॥ तिलकापिटिकाव्यङ्गनीलिकामुखदूषिकाः । शर्कराश्च शरीरस्य दुश्छायाश्च विसर्पणम् ॥ ७५ ॥नाशयत्याशु जनयेद्रूपं चापि मनोरमम्। पद्मकेशरवर्णाभं मुखं भवति कान्तिमत् ॥ ७६ ॥

केशर, चन्दन, तेजपात, खस, लालचन्दन, कमल, गोरोचन, हलदी, दारुहलदी,मजीठ, मुलैठी, पतंग, शारिवा, लोध, कूठ, गेरु, नागकेशर, सोनामक्खी, फूलप्रियंगु, अम्बाहलदी और लालचन्दन, ये प्रत्येक औषधि एक एक तोला लेकर कल्क बनावे । इस कल्कके द्वारा एक प्रस्थ तेलको पकावे। राजपत्नी और धनवान् मनुष्योंको इस तेलकी मालिश करनी चाहिये । यह तेल—तिल, पिड़िका, व्यंग, नीलिका, मुखदूषिका, शर्करा और शरीरमें अशुभ छायाका फैलना इन सबको दूर करता है । सुन्दर मनोरम रूप होता है तथा मुख कमलकी केशरके समान और कांतियुक्त होता है ॥ ७२ ॥ ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

पद्मिनीकण्टकके लक्षण ।

कण्टकैराचितं वृत्तं मण्डलं पांडु कंडुरम् । पद्मिनीकण्टकप्रख्यैस्तदाख्यं कफवातजम् ॥ ७७ ॥

कफ तथा वायुसे उत्पन्न हुई कमलके कांटोंके समान कांटोंसे व्याप्त, खुजली सहित, गोल और किंचित् पांडु वर्ण जो मण्डल होता है उसको पद्मिनीकण्टक कहते हैं ॥ ७७ ॥

पद्मिनीकण्टककी चिकित्सा ।

पद्मिनीकण्टके रोगे छर्दयेन्निम्बवारिणा । तेनैव सिद्धं सक्षौद्रं सर्पिष्पातुं प्रदापयेत ॥ ७८ ॥ निम्बारग्वधकल्कैर्वा मुहुरुद्वर्त्तनं हितम् ॥ ७९ ॥

पद्मिनीकण्टकरोगमें नीमके जलके द्वारा वमन करावे । तथा नीमके पानीके द्वारा घृतको पकाकर उसमें मधु डालकर पान करे। और नीम एवं अमलतासके कल्कके द्वारा वारंवार उद्वर्त्तन करे॥७८॥७९॥

पाददारीके लक्षण ।

परिक्रमणशीलस्य वायुरत्यर्थरूक्षयोः । पादयोः कुरुते दारीं सरुजां तलसंश्रिताम् ॥ ८० ॥

अत्यंत मार्ग चलनेवाले मनुष्यके या जिनके एडियोंकी रेखोंमें मट्टी भरी रहे, पांव वायुके योगसे रूखे होजाते हैं तब वायु पैरोंके तलुओंको विदीर्ण कर देती है उसमें पीडा होती है उसको पाददारी कहते हैं और देशमें इसको 'बिवाई'कहते हैं ॥८०॥

पाददारीकी चिकित्सा ।

पाददार्य्यां शिरां प्राज्ञो मोक्षयेत्तलशोधिनीम् । स्नेहस्वेदोपपन्नौ तु पादौ वा लेपयेन्मुहुः । मधूच्छिष्टवसामज्जाघृतैः क्षारविमिश्रितैः ॥८१॥ सर्जाह्वसिंधूद्भवयोश्चूर्णं मधुघृताप्लुतम् । निर्म्मथ्य कटुतैलाक्तं हितं पादप्रमार्ज्जनम् ॥ ८२ ॥

पाददारीरोगमें वैद्य तलुओंको शुद्ध करनेके लिये नसको खोलकर रुधिरको निकलवावे । पाँवोंमें स्नेहन तथा स्वेदन करके पश्चात् मोम, चर्बी, मज्जा घी और जवाखार इनको एकत्र मिलाकर वारंवार लेप करे तो पाददारी (विवाई) दूर होजाती है राल, सैंधानमक, शहद और घी इन सबको एकत्र कड़वे तेलमें मिलाकर पांवोंपर लेप करनेसे विवाई दूर हो जाती है ॥८१॥८२॥

मधुसिक्थकसैन्धवघृतगुडमाहिषाख्यसालनिर्य्यासैः । गैरिकसहितैर्लेपः पादस्फुटनापहः सिद्धः ॥ ८३ ॥

मोम, सैंधानमक, घी, गुड, भैंसिया गूगल, राल और गेरु इनको एकत्र मिलाकर लेप करनेसे पाँवोंका फटना बंद हो जाता है ॥ ८३ ॥

खाखसजालीमुस्तकहविषा संलिप्य चरणमतिबहुशः। संमृद्य नयति नाशं पादस्फुटनाह्वयं रोगम् ॥ ८४ ॥

खसखस, तोरई और नागरमोथा इनको एकत्र पीसकर घीमें मिलाकर पाँवोंपर लेप करनेसे तत्काल ही पाँवोंका फटना बंद हो जाता है ॥ ८४ ॥

उपोदिकाद्यतैल ।

उपोदिकासर्षपनिंबमोचकर्कारुकैर्वारुकभस्मतोयैः । तैलं विपक्कं लवणांशयुक्तं तत्पाददारीं विनिहन्ति लेपात् ॥ ८५ ॥

पोईका शाक, सरसों, नीम, केला, पेठा और ककड़ी इनकी भस्म बनाकर उसको जलमें नितारे । इस क्षार जलके द्वारा तेलको पकावे । इस तेलमें सैंधानमक डालकर मालिस करे तो पाददारीरोग शीघ्र ही नष्ट हो जाता है ॥ ८५ ॥

उन्मत्ततैल ।

उन्मत्तकस्य नीरेण माणकक्षारवारिणा । कटुतैलं विपक्कन्तु शीघ्रं हन्याद्विपादिकाम् ॥ ८६ ॥

धतूरेके जल और मानकन्दके क्षारजलके द्वारा कड़वे तेलको पकावे यह तेल शीघ्रही विपादिकारोगको दूर करता है ॥ ८६ ॥

कदरके लक्षण ।

शर्करोन्मथिते पादे क्षते वा कण्टकादिभिः। ग्रन्थिः कोलवदुत्सन्नो जायते कदरन्तु तत् ॥ ८७ ॥

पाँवोंमें कंकर, पत्थर, रेता आदिके लगनेसे अथवा काँटे आदिके छिद्जानेसे पाँवमें छोटे बेरके समान ऊँची गाँठ उत्पन्न होती है उसको कदर कहते हैं देशमें ठेक या ठेठ कहते हैं ॥ ८७ ॥

कदरकी चिकित्सा ।

दहेत्कदरमुद्धृत्य तैलेन दहनेन वा ॥८८॥

कदरको शस्त्रसे चीरकर गरम तेलका अथवा अग्निका दाग देनेसे कदर नष्ट हो जाती है ॥ ८८ ॥

चिप्यके लक्षण ।

नखमांसमधिष्ठाय वायुः पित्तश्च देहिनाम् । कुरुते दाहपाकौ च तं व्याधिं चिप्यमादिशेत् ॥ ८९ ॥

वात और पित्त यह मनुष्योंके नखोंके मांसमें प्राप्त होकर नखको क्षय करते हैं तथा दाह और पाकको करते हैं उसको चिप्यरोग कहते हैं ॥८९॥

चिप्यकी चिकित्सा ।

चिप्यं शोणितमोक्षेण शोधनैश्चाप्युपाचरेत् । गतोष्माणं तथा चैनमुष्णाम्बुपरिषेचितम् ॥ ९० ॥

चिप्यरोगमें रुधिर निकलवावे और शोधन करे और जो इसमें गरमी रहे तो गरम जलसे सेचन करे ॥ ९० ॥

शस्त्रेणापि यथायोगमुत्कृत्य स्रावयेद्व्रणम् । व्रणोक्तेन विधानेन रोपयेत्तं विचक्षणः ॥ ९१ ॥

विचक्षण वैद्य योग्यरीत्यनुसार चिप्यको शस्त्रसे चीरकर स्राव करावे, पश्चात् व्रणकी चिकित्साके अनुसार शोधन रोपण करे ॥ ९१ ॥

शिला तेजोवती चैव रोचना च रसाञ्जनम् । कल्कैरेतैरम्बुपिष्टैः शोधयित्वा व्रणश्च तत् ॥ ९२ ॥

मैनशिल, तेजबल, गोरोचन और रसौत इन सबको एकत्र जलमें पीसकर व्रणको शुद्ध करनेके लिये प्रयोग करे ॥ ९२ ॥

हरिद्रागुल्मकालीयकल्कैश्च सरसाञ्जनैः । सिद्धेन तिलतैलेन ततस्तु रोपयेद्व्रणम् ॥ ९३ ॥

हलदी, आंबाहलदी और रसौत इनको एकत्र पीस कर इनके द्वारा तेलको पकावे इस तेलको व्रणरोपणके लिये प्रयोग करे ॥ ९३ ॥

दाडिमजकुसुमधन्वयासाभयाश्लक्ष्णचूर्णिता क्षिप्ता । नखकोटिपूतिमांसं शमयति च शूलं तत्क्षणतः ॥ ९४ ॥

अनारके फूल, धमासा और हरड इनका बारीक चूर्ण करके बुरकानेसे नखका गला हुआ मांस और शूल तत्काल दूर होता है ॥ ९४ ॥

अन्तर्धूमनिदग्धस्य हरितालान्वितस्य च । तंडुलीयकमूलस्य चूर्णं पूतिनखापहम् ॥ ९५ ॥

चौंलाईकी जड और हरितालको एकत्र पुटपाककी विधिसे भस्मकर फिर चूर्ण करके लगानेसे पूतिनख दूर होता है ॥ ९५ ॥

उद्धृत्य कोणात्समुपास्य कल्कं सिक्तं नखं पूयत्वगस्थिमज्जः । तैलप्रदानात्सततं नखाश्च रोहन्ति शुद्धा विगतामयाश्च ॥ ९६ ॥

चिप्यरोगमें नखके कोनेको चीरकर उसमें कल्क भरे और जिसमें राध, त्वचा, अस्थि और मज्जा दीखने लगे उसको वारंवार औषधियोंके काथसे धोवे । वारंवार शुद्ध नखपर तेल लगानेसे नखका व्रण दूर हो कर भर जाता है ॥ ९६ ॥

स्वरसेन हरिद्रायाः पात्रे कृत्वायसेऽभयाम् । पिष्ट्वा तज्जेन कल्केन लिम्पेच्चिप्यं पुनःपुनः ॥ ९७ ॥

हलदीके स्वरसको लोहेके पात्रमें डालकर उसमें हरडको घिसकर वारंवार चिप्यपर प्रलेप करनेसे नख आरोग्य हो जाते हैं ॥ ९७ ॥

कुनखलक्षण ।

तदेवाल्पतरैर्दोषैः कुनखं परुषं भवेत् ॥ ९८ ॥

जो इस चिप्यरोगमें दोषोंकी अल्पता हो तो इसको कुनख कहते हैं, यह विशेष रूखासा होता है॥ ९८॥

तंत्रान्तरे च–

अभिघातात्प्रदुष्टो यो नखो रूक्षोऽसितः खरः । भवेत्तं कुनखं विद्यात्कुलीरमिति संज्ञितम् ॥ ९९ ॥

काष्ठ आदिकी चोटके लगनेसे दुष्ट हुवा नख रूखा सफेद और खरखरा होजाता है इसको कुनख अथवा कुलीरक कहते हैं ॥ ९९ ॥

कुनखकी चिकित्सा ।

श्लेष्मविद्रधिकल्केन कुनखं समुपाचरेत् ॥ १०० ॥

कुनखके रोगपर कफविद्रधिके समान चिकित्सा करे ॥ १०० ॥

नखकोटिप्रविष्टेन टङ्कणेन न शाम्यति । कुनखश्चेत्तदा भ्रान्तः शैलोऽपि प्लवते जले ॥ १०१ ॥

कुनखके भीतर सुहागा भरनेसे कुनख निश्चय आराम हो जाता है यदि इस प्रकार करनेसे कुनख आरोग्य नहीं हो तो पत्थर भी इधर उधर जलमें तैरने लगे ॥ १०१ ॥

काश्मर्य्याः सप्तभिः पत्रैः कोमलैः परिवेष्टितैः । अंगुलीवेष्टकः पुंसां ध्रुवमाशु प्रशाम्यति ॥ १०२ ॥

कुम्भेरके कोमल सात पत्तोंको अंगुलीपर बाँधनेसे अंगुलीवेष्टकरोग दूर होता है ॥ १०२ ॥

अलसके लक्षण।

क्लिन्नांगुल्यन्तरौ पादौ कंडूदाहरुजान्वितौ। दुष्टकर्दमसंस्पर्शादलसन्तं विभावयेत् ॥ १०३ ॥

पाँवोंके अँगुलियोंके तलुवे भीजे रहनेसे और सडी हुई कीच तथा मेघादिकके जलमें बहुत फिरनेसे अँगुलियोंके बीचमें सफेद दादसे होजाते हैं उनमें अत्यन्त खुजली, दाह और पीडा होती है उसको अलस (खारुआ) कहते हैं ॥ १०३ ॥

अलसकी चिकित्सा।

पादौ सिक्तारनालेन लेपनं त्वलसे हितम्। कल्कैः कृतैर्निम्बतिलशिलाकासीसरोचनैः ॥ १०४ ॥ लाक्षाभयारसालेपः कार्य्यं वा रक्तमोक्षणम् ॥ १०५ ॥

अलसरोगमें पाँवोंको प्रथम काँजीसे सींचकर फिर लेप करे। नीम, तिल, मैनशिल, कसीस और गोरोचन इनका कल्क बनाकर लाख और हरडोंके रसमें मिलाकर लेप करनेसे अलसरोग दूर होता है अथवा इसमें रक्तमोक्षण करावे ॥ १०४ ॥ १०५ ॥

बृहतीरससिद्धेन तैलेनाभ्यज्य बुद्धिमान्। शिलारोचनकाशीसचूर्णैर्वा प्रतिसारयेत् ॥ १०६ ॥

बड़ीकटेरीके रसके द्वारा तेलको पकाकर उस तेलका अलसपर लेप करे अथवा मैनशिल, गोरोचन और कसीस इनका चूर्ण करके प्रतिसारण करे ॥ १०६ ॥

करञ्जबीजं रजनी काशीसं पद्मकं मधु। रोचना हरितालश्च लेपोऽयमलसे हितः ॥ १०७ ॥

करंजके बीज, हलदी, कसीस, पद्माख, शहद, गोरोचन और हरिताल इन सबको एकत्र पीसकर लेप करनेसे अलसरोग दूर होता है ॥ १०७ ॥

अरूंषिकाके लक्षण।

अरूंषि बहुवक्त्राणि बहुक्लेदीनि मूर्धनि। कफासृक्कृमिकोपेन नृणां विद्यादरूंषिकाम् ॥ १०८ ॥

मनुष्योंके मस्तकमें कफ रुधिर और कृमिके कोपसे बहुतसी अनेक मुखवाली फुन्सी हो जाँय और उनमें राध बहे तो उनको अरूंषिका कहते हैं ॥ १०८ ॥

अरूंषिकाकी चिकित्सा।

अरूंषिकां जलौकाभिर्ग्राहयेद्बहुशो भिषक्। प्रक्षालयेन्मुहुस्तत्र सैन्धवक्राथवारिभिः ॥ १०९ ॥

अरुंषिकामें वारंवार जौंक लगवावे तथा सैंधवादि काथके द्वारा वारंवार धोवे ॥ १०९ ॥

अरूंषिकायां रुधिरेऽवसिक्ते शिराव्यधेनाथ जलौकसा वा। निम्बाम्बुसिक्ते शिरसि प्रलेपो देयोऽश्ववर्चोरससैन्धवाभ्याम् ॥ ११० ॥

अरूंषिकामें शिरा वेधकर रुधिर निकलवावे अथवा जौंक लगाकर रुधिर निकाले, तथा नीमके जलसे सेचन करे एवं घोडेकी लीदके रसमें सैंधानमक मिलाकर शिरपर लेप करे ॥ ११० ॥

मुहुर्मुहुस्ततो लिम्पेत्पटोलारिष्टवासकैः। खदिरारिष्टजंबूनां त्वग्भिर्वा मूत्रसंयुतैः ॥ १११ ॥

पटोलपत्र, नीम और अडूसा इनके कल्कका वारंवार लेप करे। खैर, नीम और जामुन इनकी छालको गोमूत्रमें पीसकर प्रलेप करनेसे अरूंषिकारोग दूर होता है ॥ १११ ॥

कुटजत्वक् च लवणं संप्रपिष्टं प्रलेपयेत्। गोशकृद्रसपिष्टं वा तालमूलं प्रशस्यते ॥ ११२ ॥

कुडेकी छाल और सैंधानमक इनको एकत्र पीस कर लेप करनेसे अथवा ताडकी जडको गोबरके रसमें पीस कर लेप करनेसे अरूंषिका रोग दूर होता है ॥ ११२ ॥

निम्बोदकेन लवणैः प्रलेपोऽश्वशकृद्रसैः ॥ ११३ ॥

नीमके जलमें सैंधानमक और घोडेकी लीदका रस मिलाकर लेप करनेसे अरूंषिकारोग दूर होता है ॥ ११३ ॥

पुराणमथ पिण्याकं पुरीषं कुक्कुटस्य च । मूत्रपिष्टः प्रलेपोऽयं शीघ्रं हन्यादरूंषिकाम् ॥ ११४ ॥

पुरानी खल और मुरगेकी विष्ठा इनको गोमूत्रमें पीसकर लेप करनेसे अरूंषिकारोग शीघ्र नष्ट होता है ॥ ११४ ॥

कपालभ्रष्टकुष्ठं वा चूर्णितं तैलसंयुतम् अरूंष्यां लेपनं क्लेददाहास्रज्वरनाशनम् ॥ ११५ ॥

कूठको एक ठीकरेमें भूनकर उसका चूर्ण करलेवे उसके तेलमें मिलाकर लेप करनेसे अरूंषिका, क्लेद, दाह, रक्तविकार और ज्वर नष्ट होता है ॥ ११५ ॥

स्नुह्यर्कदुग्धधत्तूरपत्रं मूत्रविमिश्रितम् । लेपनं तैलसंयुक्तं हितं कंडूशिरोव्रणे ॥ ११६ ॥

थूहर तथा आकका दूध और धतूरेके पत्ते इनको गोमूत्रमें पीसकर तेलमें मिलाकर लेप करनेसे शिरकी खुजली और शिरोव्रण नष्ट होते हैं ॥ ११६ ॥

मुण्डयित्वा शिरः पूर्वं क्रियामेतां प्रयोजयेत् ॥ ११७ ॥

प्रथम शिरको मुँडवाकर फिर यह क्रिया करनी चाहिए ॥ ११७ ॥

हरिद्राद्वय-भूनिम्बत्रिफलारिष्टचन्दनैः । एतत्तैलमरूंषीणां सिद्धमभ्यञ्जने हितम् ॥ ११८ ॥

हलदी, दारुहलदी, चिरायता, त्रिफला, नीम और चन्दन इनके द्वारा तेलको पकावे । इस तेलकी मालिश करनेसे अरूंषिकारोग दूर होता है ॥ ११८ ॥

स्नुह्याद्यतैल ।

स्नुही सुपरशुच्छिन्ना शालिपर्ण्यजमृत्तिका । एतेषां पलिकान् भागान् कर्षं स्यात्केशभस्मतः ॥११९॥ शफरीं विंशतिं दद्यात्तावन्तीं माक्षिकाः क्षिपेत् । अरूंषिकां नाशयति जयेद् दुष्टव्रणानपि ॥ १२० ॥ नखदन्तक्षतोत्पन्नान्विच्छिन्नांश्च विसर्पिणः । अत्यन्तपूयबहुला अस्रावाः कुपिताश्च ये ॥ १२१ ॥ म्रक्षणाच्छोषयेद्ग्रीष्मं पल्लवाम्भोरुहान्यथा । शोधयेद्रोपयेच्चैव यथाभिहितभोजिनः ॥ १२२ ॥

उत्तम कुल्हाडेसे कटा हुआ थूहर, शालिपर्णी और बकरीके स्थानकी मिट्टी ये प्रत्येक चार चार तोले, बालोंकी भस्म १ तोला, मछली २० और मक्खी २० इन सबको एकत्रित करके तेलमें पकावे । यह तेल मलते ही—अरूंषिका और दुष्टव्रण दूर करता है । तथा नख और दाँतसे उत्पन्न हुए क्षत, विच्छिन्न फैलनेवाले, जिनमें अत्यन्त राध बहती हो अथवा जिनमें बिलकुल राध नहीं बहती हो और सूजे हुये हो ऐसे व्रण शीघ्र भरजाते हैं । जैसे ग्रीष्म ऋतु पत्तोंसहित कमलोंको सुखा देता है । यह व्रणको भरनेवाला और शुद्ध करनेवाला है । इसपर हितकारक भोजन करना चाहिये ॥ ११९–१२२ ॥

मांसीतैल ।

मांसीस्वरससंसिद्धं कटुतैलं चतुष्पलम् । मनःशिला तथा मांसी राजीवजश्च गन्धकम् ॥ १२३ ॥ शाणामात्रैस्तदभ्यङ्गाद्धन्त्यवश्यमरूंषिकाम् । पामां विचर्चिकाश्चैव तथान्याञ्छिरसो व्रणान् ॥ १२४ ॥

वालछडके स्वरसमें अथवा मांसरोहिणीके स्वरसमें कडवा तेल १६ तोले, मैनशिल, वालछड या मांसरोहिणी, कमलकेशर और गन्धक प्रत्येकका कल्क चार २ माशे डाल कर तेलको पकावे । इस तेलकी मालिश करनेसे अरूंषिकारोग, पामा, विचर्चिका और अन्यान्य शिरके सब व्रण अवश्य दूर होते हैं ॥ १२३ ॥ १२४ ॥

इन्द्रलुप्तोक्तविधिना तैलेनानेन वा जयेत् ।

इस अरूंषिका रोगमें इन्द्रलुप्तरोगमें कहेहुए तेलोंके द्वारा चिकित्सा करनी चाहिये ।

दारुणकके लक्षण ।

दारुणा कण्डुरा रूक्षा केशभूमिश्च जायते। कफमारुतकोपेन विद्याद्दारुणकं भिषक् ॥ १२५ ॥

बालोंके उत्पन्न होनेकी जमीन कफ और वातके कुपित होनेसे कठिन और रूखी हो कर अत्यन्त खुजाती है उसको दारुणक कहते हैं ॥ १२५ ॥

दारुणककी चिकित्सा।

दारुणे तु शिरां विध्येत्स्निग्धां स्विन्नां ललाटजाम् । अवपीडशिरोबस्तिमभ्यंगांश्चावचारयेत् ॥ १२६ ॥

दारुणरोगमें स्निग्ध और स्वेदित करके मस्तककी शिराको वेधे तथा अवपीडन, शिरोबस्ति और अभ्यंग कर्म्म उन सबका प्रयोग करे ॥ १२६ ॥

कोद्रवाणां तृणक्षारपानीयं परिधावने ॥ १२७ ॥

कोदोंके तृणोंके क्षारजलको धोनेके लिये लेवे ॥ १२७ ॥

कार्य्यो दारुणके मूर्ध्नि प्रलेपो मधुसंयुतः । प्रियलबीजमधुककुष्ठमाषैः ससैन्धवैः ॥ १२८ ॥

चिरौंजी, मुलैठी, कूठ, उड़द और सैंधानमक इन सबको एकत्र पीसकर शहदमें मिलाकर लेप करनेसे दारुणकरोग दूर होता है ॥ १२८ ॥

नीलोत्पलस्य किञ्जल्कं धात्रीफलसमन्वितम् । यष्टीमधुकसंयुक्तं प्रलेपाद्दारुणं जयेत् ॥ १२९ ॥

नीलकमलकी केशर, आमले और मुलैठी इनको पीसकर लेप करनेसे दारुणकरोग दूर होता है १२९

गुञ्जादितैल।

गुञ्जाफलैः शृतं तैलं भृङ्गराजरसेन वा । कंडूदारुणहृत्कुष्ठकपालव्याधिनाशनम् ॥ १३० ॥

चौंटलीके क्वाथ अथवा भाँगरेके रसके द्वारा तेलको पकाकर लेप करनेसे खुजली, दारुण और कपालकुष्ठ नष्ट होता है ॥ १३० ॥

कीचकाद्यतैल।

कीचकानां पलैः पिष्टैः कटुतैलं विपाचयेत् । सगोमूत्रं तदभ्यङ्गात्कपालव्याधिनाशनम् ॥ १३१ ॥

छिद्रयुक्त बाँसका कल्क ४ तोले लेकर गोमूत्रमें मिलाकर कडवे तेलमें पकावे । इस तेलकी मालिश करनेसे कपालरोग नष्ट होता है ॥ १३१ ॥

चित्रकतैल।

चित्रकं दन्तिमूलञ्च कोशातकिसमन्वितम् । कल्कं पिष्ट्वा पचेत्तैलं केशदद्रुविनाशनम् ॥ १३२ ॥

चीता, दंतीकी जड और तोरई इनके कल्कके द्वारा तेलको पकावे । यह तेल-केशोंके दादको दूर करता है ॥ १३२ ॥

भृङ्गराजतैल।

भृङ्गराजत्रिफलोत्पलशारि लोहपुरीषसमन्वितकारि । तैलमिदं पच दारुणहारि कुञ्चितकेशघनस्थिरकारि ॥ १३३ ॥

भाँगरा, त्रिफला, कमल, शारिवा, लोह और मण्डूर इनके कल्कके द्वारा तेलको पकावे । यह तेल-दारुणकरोगको नष्ट करता है तथा केशोंको कुंचित, घन और स्थिर करनेवाला है ॥ १३३ ॥

इन्द्रलुप्तके लक्षण।

रोमकूपानुगं पित्तं वातेन सह मूर्च्छितम् । प्रच्यावयति रोमाणि ततः श्लेष्मा सशोणितः ॥ १३४ ॥ रुणद्धि रोमकूपांस्तु ततोऽन्येषामसम्भवः। तदिन्द्रलुप्तं खालित्यं रुह्येति च विभावयेत् ॥ १३५ ॥

वातके साथ पित्त कुपित होकर रोमकूपोंमें प्राप्त होकर रोमोंको गिराता है, पश्चात् रुधिरके साथ कफ रोमोंके छिद्रोंको रोक देता है इससे फिर बाल नहीं जमते । इसको इन्द्रलुप्त (गंज या टाक), खालित्य और रुह्या कहते हैं ॥ १३४ ॥ १३५ ॥

इन्द्रलुप्तकी चिकित्सा।

इन्द्रलुप्ते शिरां मूर्ध्नि स्निग्धस्विन्नस्य मोक्षयेत् । कल्कैः समरिचैर्दिह्याच्छिलाकाशीसतुत्थकैः ॥ १३६ ॥

इन्द्रलुप्तरोगमें स्निग्ध और स्विन्न करके मस्तककी शिराको खोले तथा कालीमिरच, मैनशिल, कसीस और तूतिया इनके कल्कका लेप करे ॥ १३६ ॥

कुटन्नटादारुकल्कलेपनं वा प्रशस्यते ॥ १३७ ॥

अथवा श्योनाक और देवदारु इनके कल्कका प्रलेप करे ॥ १३७ ॥

तिक्तापटोलीपत्रस्वरसे घृष्ट्वा शमं याति। चिरकालजापि रुह्या नियतं दिनत्रयादेव ॥ १३८ ॥

कडवे परवलके पत्तोंके स्वरसको तीन दिन पर्य्यंत घिसनेसे बहुत दिनोंका पुराना इन्द्रलुप्तरोग भी दूर होजाता है ॥ १३८ ॥

अवगाढपदं वापि प्रक्षयित्वा पुनः पुनः। गुञ्जाफलैश्चिरं लिम्पेत्केशभूमिं समंततः ॥ १३९ ॥

चौंटलीके फलोंको पीसकर बाल जमनेके स्थानमें वारंवार गाढा लेप करनेसे बाल फिरसे निकल आते हैं ॥ १३९ ॥

इन्द्रलुप्तापहोलेपान्मधुना बृहतीरसः। गुञ्जामूलफलं वापि भल्लातकरसोऽपि वा ॥ १४० ॥

बडीकटेरीके रसमें शहद मिलाकर लेप करनेसे अथवा चौंटली और चौंटलीकी जडको भिलावेके रसमें पीसकर लेप करनेसे इन्द्रलुप्तरोग दूर होता है ॥ १४० ॥

गुञ्जापत्रं विषं तैलं तिलामधुककाञ्जिकम्। पतन्त्यनेन नो केशा लेपाद्रोहन्ति चाद्भुतम् ॥ १४१ ॥

चौंटलीके पत्ते, मीठाविष, तेल, तिल, मुलैठी और कांजी इन सबको एकत्र पीसकर लेप करनेसे बालोंका गिरना बंद हो जाता है और बाल जम जाते हैं ॥ १४१ ॥

गोक्षुरं तिलपुष्पाणि तुल्ये च मधुसर्पिषी। शिरः प्रलेपितं तेन केशैः समुपचीयते ॥ १४२ ॥

गोखुरु, तिलके फूल, शहद और घी ये सब समान भाग लेकर एकत्र मिलाकर लेप करनेसे बाल उत्पन्न हो जाते हैं ॥ १४२ ॥

हस्तिदन्तमषीं कृत्वा आजं क्षीरं रसाञ्जनम्। लोमान्यनेन जायन्ते नृणां पाणितलेष्वपि ॥ १४३ ॥

हाथीदाँतकी स्याही बनाकर बकरीके दूधमें मिलाकर और उसमें रसौत डालकर एकत्र घिसकर लेप करनेसे मनुष्योंकी हथेलीतकमें भी बाल जम जाते हैं ॥ १४३ ॥

मधुकेन्दीवरं मूर्वा तैलाज्यगोक्षीरभृङ्गलेपेन। अचिराद्भवन्ति केशा दृढमूलायता ऋजवः ॥ १४४ ॥

मुलैठी, नीलकमल, दाख, तेल, घी, गायका दूध और भाँगरा इन सबको एकत्र मिलाकर लेप करनेसे थोडेही समयमें बाल दृढ मूलवाले हो जाते हैं ॥ १४४ ॥

चतुष्पदानां त्वग्रोमनखशृङ्गास्थिभस्मभिः। तैलाक्ता केशभूमिश्चावृता केशयुता भवेत् ॥ १४५ ॥

चौपाये जीवोंकी त्वचा (खाल), रोम (बाल), नाखून, सींग और हड्डी इनकी भस्म करके तेलमें मिलाकर बाल उपजनेके स्थानमें लगानेसे शीघ्र ही बाल निकल आते हैं ॥ १४५ ॥

शीर्य्यत्सु वापि केशेषु बहुशो वेधयेच्छिराम्। मूर्ध्नि तैलं प्रकुर्वीत नस्यकर्म्मविरेचनैः ॥ १४६ ॥

जो बाल विशेष गिरने लगे अथवा गळने लगे तो वारंवार शिराको वेधे तथा शिरमें तेल मले एवं नस्यकर्म्म और विरेचनकर्म्म करे ॥ १४६ ॥

मालतीकरवीराग्निनक्तमालैर्विपाचितम्। तैलमभ्यञ्जने शस्तमिन्द्रलुप्तहरं परम् ॥ १४७ ॥

मालती, कनेर, चीता और करंज इनके कल्कके द्वारा तेलको पकावे। इसकी मालिस करनेसे इन्द्रलुप्त रोग दूर होता है ॥ १४७ ॥

स्नुह्याद्खालित्यहरतैल ।

स्नुहीपयः पयोर्कस्य लाङ्गलीमार्कवो विषम् । अजामूत्रं सगोमूत्रं रक्तिका सेन्द्रवारुणी ॥ १४८ ॥ सिद्धार्थकं तीक्ष्णगंधा गर्भं दत्त्वा विपाचितम्। वह्निना मृदुना पक्कं तैलं खालित्यनाशनम् ॥ १४९ ॥ कूर्म्मपृष्ठसमानापि रूक्षायारोमतस्करी । दिग्धा सानेन जायेत ऋक्षशारीरलोमशा१५०॥

थूहरका दूध, आकका दूध, कलिहारी, भाँगरा, मीठा विष,बकरीका मूत्र, गोमूत्र,चौंटली, इन्द्रायण, सफेद सरसों और वच इनके कल्कके द्वारा मन्द मन्द अग्निसे तेलको पकावे। इस तेलको मालिश करनेसे खालित्य रोग दूर होता है। जिस मनुष्यका मस्तक कच्छपकी पीठके समान भी हो वह भी इस तेलका नित्य सेवन करनेसे रीछके शरीरके समान बालोंवाला होजाता है ॥ १४८ ॥ १४९ ॥ ॥ १५० ॥

यष्टीमधुकाद्यतैल ।

तैलं सयष्टीमधुकैः क्षीरे च त्रैफलैः शृतम्। नस्ये दत्तं जनयति केशान् श्मश्रूणि चाप्यथ॥ १५१ ॥

मुलैठीके कल्क, त्रिफलेके क्वाथ और दूधके द्वारा तेलको पकावे। इस तेलके द्वारा नस्य देनेसे केश और श्मश्रु आदि उत्पन्न हो जाते हैं॥ १५१ ॥

पलितके लक्षण ।

क्रोधशोकश्रमकृतः शरीरोष्मा शिरोगतः । पित्तञ्च केशान्पचति पलितं तेन जायते ॥ १५२ ॥

अत्यन्त क्रोध, शोक और परिश्रम करनेसे उत्पन्न हुई शरीरकी गरमी पित्तके साथ मिलकर मस्तकमें प्राप्त होकर बालोंको पका देती है अर्थात् सफेद कर देती है उसको पलितरोग कहते हैं॥ १५२ ॥

पलितकी चिकित्सा ।

धात्रीफलं द्वयं पथ्ये द्वे तथैकां बिभीतकीम् । लोहचूर्णस्य कर्षन्तु दशार्द्धं चूतमज्जतः॥ १५३ ॥ पिष्ट्वा लोहमये पात्रे स्थापयेदुषितं निशाम् । लेपोऽयं हन्ति न चिरादकालपलितं महत् ॥ १५४ ॥

आमले २, हरड २, बहेडा १, लोहेका चूर्ण १ तोला और आमकी गुठली मींग ५ तोले इन सबको एकत्र लोहेके पात्रमें घिसकर एक रात्रिभर रक्खा रहने देवे। फिर दूसरे दिन इसका लेप करनेसे असमयमें श्वेतहुए बाल श्यामवर्ण हो जाते हैं१५३॥१५४॥

अयोरजो भृङ्गराजं त्रिफला कृष्णमृत्तिका । स्थितमिक्षुरसे मासं समूलं पलितं जयेत् ॥ १५५॥

लोहेका चून, भाँगरा, त्रिफला और काली मिट्टी इन सबको एकत्र पीसकर ईखके रसमें मिलाकर एक महीने तक गाड़ देवे। फिर उसका लेप करनेसे जड़ सहित सफेद बाल काले होजाते हैं ॥ १५५ ॥

लोहमलामलककल्कैः सजपाकुसुमैर्नरः सदा स्नायी । पलितानीह न पश्यति गङ्गास्नायीव नरकाणि ॥ १५६ ॥

लोहेका चून, आमलोंका कल्क और गुडहलके फूल इनके द्वारा जो मनुष्य सदैव स्नान करता है वह कदापि पलितरोगसे पीडित नहीं होता। जिसप्रकार गंगामें स्नान करनेवाला मनुष्य नरकको नहीं देखता ॥ १५६ ॥

त्रिफलानीलिकापत्रं लोहभृङ्गरजः समम् । आविमूत्रेण संयुक्तं कृष्णीकरणमुत्तमम् ॥ १५७ ॥

त्रिफला, नीलके पत्ते, लोहचून और भाँगरा इन सबको भेडके दूधमें पीसकर लेप करनेसे बाल काले होजाते हैं ॥ १५७ ॥

निम्बबीजतैल ।

निम्बस्य बीजानि हि भावितानि

भृङ्गस्य तोयेन तथाऽशनस्य । तैलञ्च तेषां विनिहन्ति नस्याद्दुग्धान्नभोक्तुः परितं समूलम् ॥ १५८ ॥

नीमके बीजोंको भाँगरेके रसमें और विजयसारके रसमें भावना देवे। फिर उन बीजोंका तेल निकलवाकर उस तेलके द्वारा नास देवे और इसपर दूध चावलोंका भोजन करे तो इससे जडसहित बाल काले होते हैं ॥ १५८ ॥

केतक्यादितैल ।

केतकं भृंगनीलीकाः पार्थपुष्पं सबीजकम् । सहचरं तिलः कृष्णा पिण्डीतकमयोरजः ॥ १५९ ॥ अमृता चोत्पलं श्यामा त्रिफलापद्मकर्दमैः । कल्कैरेभिः पचेत्तैलं त्रिफलाक्वाथमार्कवैः ॥ १६० ॥ अकालपलितं हन्ति नाशयेदुपजिह्विकाम् । केशाश्च तेन जायन्ते स्निग्धाश्चाञ्जनसन्निभाः॥१६१॥

केतकी, भाँगरा, नील, अर्जुनके फूल, अर्जुनके बीज, पियावाँसा, तिल, पीपल, मैनफल, लोहेका चून, गिलोय, कमल, शारिवा, त्रिफला, पद्माख और कीच इनके कल्कके द्वारा त्रिफलेके काथ और भाँगरेके काथमें तेलको पकावे। यह तेल-विना समयही बालोंके सफेद होनेको नष्ट करता है । इससे उपजिह्विकारोग दूर होता है और बाल चिकने तथा अञ्जनके समान काले होजाते हैं ॥ १५९ ॥१६०॥ ॥ १६१ ॥

नीलबिन्दुतैल ।

अञ्जनं मधुकं श्यामा तार्क्ष्यजं शारिवोत्पलम् । त्रिफला नीलिकापत्रं काशीसं मुस्तकं तिलाः ॥ १६२ ॥ आम्रास्थि तालपत्रञ्च विभीतकफलं तथा । जम्ब्वाम्रार्जुनपुष्पाणि कूर्म्मपित्तं सतुत्थकम् ॥१६३॥ शिंशिपा पूतकेशी च मार्कवश्च त्रिकण्टकम् । पृथक् कर्षसमान् भागांस्तथा लोहरजः समम् ॥ १६४॥ तैलप्रस्थमजाक्षीरं धात्रीभृङ्गरसाढकम् । अक्षकस्य रसस्यापि लोहपात्रे विपाचयेत् १६५ पक्वं तल्लोहभाण्डस्थं शिरसोभ्यञ्जनस्ययोः । यत्नेन योजयेत्तैलं वराङ्गे विनिपातयेत् ॥ १६६ ॥ पतन्ति बिन्दवो यत्र कृष्णं तदुपजायते । भवन्ति कुटिलाः शीघ्रं कचाः षट्पदकोपमाः ॥ १६७ ॥ खालित्यं पलितञ्चैव इन्द्रलुप्तश्च नाशयेत् । मेध्यं चक्षुष्यमायुष्यं बलवर्णकरं परम् । नीलबिन्द्विति विख्यातं विश्वामित्रेण पूजितम् ॥ १६८ ॥

अंजन, मुलैठी, अनन्तमूल, रसौत, शारिवा, कुमुद, त्रिफला, नीलके पत्ते, कसीस, नागरमोथा, तिल, आमकी गुठली, ताड़के पत्ते, बहेडा, जामुन, आम और अर्जुनके फूल, कछुएका पित्त, तूतिया सीसम, भूतकेशी (नीला सम्हालू) भाँगरा और गोखुरू ये प्रत्येक औषधि एक एक तोला लेवे और लोहेका चून सबके बराबर लेवे और तिलका तेल १ प्रस्थ, बकरीका दूध १ आढक, आमलोंका स्वरस १ आढक, भाँगरेका रस १ आढक, और बहेडेका रस १ आढक लेकर सबको लोहेके पात्रमें एकत्रित करके यथाविधिसे मन्द मन्द अग्निसे पकावे। इस प्रकार पकाये हुए तेलको लोहेके पात्रमेंसे इस तेलको अच्छी तरह शिरमें मले और नास देवे । जहाँ जहाँ इसकी बिन्दु गिरती हैं वहीं वहीं वह स्थान काला होजाता है। इससे शीघ्रही बाल भौंरेके समान काले होजाते हैं तथा खालित्य, पलित और इन्द्रलुप्त रोग नष्ट होता है । यह तेल मेधाको बढानेवाला, नेत्रोंको हितकारी बल और वर्णको उज्ज्वल करनेवाला है । इस नीलबिन्दु नामक तैलको विश्वामित्रने निर्म्माण किया है ॥ १६२-१६८ ॥

काश्मर्याद्यतैल ।

काश्मर्य्यार्ज्जुन-जंबू-सहचरकुसुमानि चूतफलमध्यम् । पिण्डीतकफलत्रिफलातैलस्य पलाष्टकं विपाचयेत्॥१६९॥ दत्त्वा पयश्चतुर्गुणमंबुभृङ्गस्य मधुक-

लरसमिश्रम् । सिद्धेन तेन दिग्धा भवन्ति धवलाप्यलिकुलनिभाः॥१७०॥ कुन्देन्दुशंखधवलैश्चितमपि केशैः शीर्षं मासेन। अञ्जनभृङ्गश्यामं भवति सदा नस्यतोऽब्दशतम् ॥ १७१ ॥

कुम्भेर, अर्जुन, जामुन और पियाबांसा इन सबके फूल, आमकी गुठलीकी मींग मैनफल और त्रिफला ये प्रत्येक औषधि चार चार तोले लेकर कल्क बनावे फिर इस कल्कको आठ पल तिलके तेल, ३२ पल दूध, ३२ पल भांगरेका रस और ३२ पल महुवेके फलोंके रसमें मिलाकर पकावे । जब तेल सिद्ध हो जाय तब उतार लेवे। इस तेलको लगानेसे सफेद बाल भी भौंरेके समान काले हो जाते हैं । इस तेलकी सदैव नास देनेसे कुन्द,चन्द्रमा और शंखके समान शिरके सफेद बाल भी एक महीनेमें अञ्जन और भौंरेके समान काले हो जाते हैं और वह मनुष्य सौ वर्षकी आयुवाला होता है ॥ १६९ ॥ १७० ॥ १७१ ॥

केशरञ्जनतैल ।

काश्मर्य्या मूलमादौ सहचरकुसुमं केतकीनाञ्च मूलं लायश्चूर्णं सभृङ्गं त्रिफलजलयुतं तैलमेभिः पचेद्यः । कृत्वा लोहस्य भाण्डे क्षितितलनिहितं स्थापयेन्मासमेकं केशाः काशप्रकाशा भ्रमरकुलनिभा म्रक्षणादेवमुक्ताः ॥ १७२ ॥

कुम्भेरकी जड, पियावांसेके फूल, केतकीकी जड लोहेका चून, भाँगरेका रस और त्रिफलेका काथ इन सबके साथ तेलको पकावे । फिर उस तेलको लोहेके पात्रमें करके पृथिवीमें एक महीने तक गाड़ देवे।इस तेलको लगानेसे बाल काशके समान कांतियुक्त और भौंरेके समान काले हो जाते हैं ॥ १७२ ॥

केतक्याद्यतैल ।

केतकी त्रिफला दार्वी तत्फलं मदनत्वचः । आम्रास्थिमज्जकुष्ठञ्च तिला भृङ्गरसोऽञ्जनम् ॥ १७३ ॥ पिण्डीतकमयश्चूर्णं नीलीपंकञ्च पद्मजम् । कल्कैरेतैः पचेत्तैलं वचाभृङ्गरसेन तु ॥१७४॥ शिरोऽभ्यंगात्प्रणश्यंति दारुणं चेन्द्रलुप्तकम् । अकालपलितं कंडूं लूतिकां दद्रुमेव च ॥ १७५ ॥ करोति कुञ्चितान्केशान् भ्रमरोदरसन्निभान् । केतक्याद्यमिदं नाम्ना विदेहादिप्रकीर्त्तितम् ॥ १७६ ॥

केतकी, त्रिफला, दारुहलदी, दारुहलदीके फल, मैनफलकी छाल,आमकी गुठलीकी मींग, कूठ,तिल, भाँगरा, रसौत, दूसरे प्रकारका मैनफल, लोहेका चून, नील, कीचड और कमल इनके कल्कके द्वारा वच और भांगरेके रसमें तेलको पकावे । इस तेलको शिरमें मलनेसे दारुण इन्द्रलुप्त, अकालपलित (विना ही समय बालोंका पकना), खुजली, लूता और दद्रु ये सब रोग नष्ट होते हैं। यह तेल--बालोंको कुंचित और भौंरेके उदरके समान काला करते हैं । यह केतकाद्यतैल विदेहादि आचार्य्यने निर्माण किया है ॥ १७३--१७६ ॥

मयूरपित्ताद्यतैल ।

शिखिपित्तविषाम्रास्थि-मद्यन्त्यञ्जनोत्पलैः । सनीलभृङ्गकाशीसैस्तक्रे तैलं विपाचयेत् ॥ १७७ ॥ लोहभाण्डे स्थितं मासमकालं पलितं जयेत् ॥ १७८ ॥

मोरका पित्त, विष, आमकी गुठली, मोतिय, अञ्जन,कमलनील, भांगरा और कसीस इनके कल्कके द्वारा तक्रमें तेलको पकावे । फिर इसको लोहेके पात्रमें करके छः महीने तक गाड देवे । यह तेल--सफेद बालोंको काला करता है ॥ १७७ ॥ १७८ ॥

मधूकतैल ।

क्षीरात्समार्कवरसाद्विप्रस्थं मधुके पले । विपचेत्तैलकुडवं तन्नस्यं पलितापहम् ॥ १७९ ॥

उत्तम गायका दूध २ प्रस्थ, भांगरेका रस २ प्रस्थ, और मुलैठीका कल्क ४ तोले इन सबको एकत्र करके एक कुडव तेलको पकावे । इस तेलकी नास देनेसे पलितरोग (बालोंका श्वेत होना) दूर होता है ॥ १७९ ॥

प्रपौण्डरीकाद्यतैल।

प्रपौण्डरीक-मधुकपिप्पलीचन्दनोत्पलैः। सिद्धं धात्रीरसे तैलं नस्येनाभ्यञ्जनेन वा। सर्वान्मूर्द्धगतान्हन्ति पलितानि च शीलितम् ॥ १८० ॥

पुण्डेरिया, मुलेठी, पीपल, चन्दन और कमल इनके कल्कको आमलोंके रसमें डाल कर विधिपूर्वक तेलको पकावे। इस तेलको नस्य और अभ्यंगके द्वारा प्रयोग करनेसे मस्तकके सम्पूर्ण सफेद बाल काले होजाते हैं ॥ १८० ॥

अग्निरोहिणीके लक्षण।

कक्षाभागेषु ये स्फोटा जायन्ते मांसदारुणाः। अन्तर्दाहज्वरकरा दीप्तपावकसन्निभाः ॥१८१॥ सप्ताहाद्वा दशाहाद्वा पक्षाद्वा घ्नन्ति मानवम्। तामग्निरोहिणीं विद्यादसाध्यां सन्निपातिकीम् ॥ १८२ ॥

काखके मांसको विदीर्ण करनेवाले जो फोडे उत्पन्न होते हैं उनके होनेसे अन्तर्दाह और ज्वर होता है तथा वह फोडे प्रज्वलित अग्निके समान होते हैं। यह बात, पित्त और कफकी उल्बणतासे यथाक्रमसे सात दिन, या बारह दिन अथवा पन्द्रह दिनमें मनुष्यको मार देते हैं। इसको सन्निपातोद्भव अग्निरोहिणी कहते हैं। यह असाध्य है ॥ १८१ ॥ १८२ ॥

अग्निरोहिणीकी चिकित्सा।

पित्तवीसर्पविधिना साधयेदग्निरोहिणीम्। रोहिण्यां लङ्घनं कुर्य्याद्रक्तमोक्षं विरूक्षणम्। शरीरस्य च संशुद्धिस्तां त्यजेद्वर्धितां पुनः ॥ १८३ ॥

पित्तविसर्पोक्त चिकित्साके अनुसार अग्निरोहिणीकी चिकित्सा करे। अग्निरोहिणीरोगमें प्रथम लंघन करावे, रक्तमोक्षण (किसी प्रकारसे रुधिर निकलवावे) करावे और वमन विरेचनादिसे शरीरको शुद्ध करे। जो वह अग्निरोहिणी विशेष बढजाय तो इसकी चिकित्सा न करे ॥ १८३ ॥

वल्मीकका निदान तथा लक्षण।

ग्रीवांसकक्षाकरपाददेशे सन्धौ गले वा त्रिभिरेव दोषैः। ग्रन्थिः सवल्मीकवदक्रियाणां जातः क्रमेणैव गतः प्रवृद्धिम् ॥ १८४ ॥ मुखैरनेकैः स्रुततोदवद्भिर्विसर्पवत्सर्पति चोन्नताग्रैः। वल्मीकमाहुर्भिषजो विकारं निष्प्रत्यनीकं चिरजं विशेषात् ॥ १८५ ॥

ग्रीवा, कंधे, कोख, हाथ, पाँव, सन्धि और गलेमें तीनों दोषोंके कुपित होनेसे साँपकी बाँबीके समान गाँठ उत्पन्न हो तो उसकी चिकित्सा न करनेसे वह धीरे २ बढकर फैल जाती है तब उसके बहुतसे मुख हो जायँ तथा उनमें राध बहे, तोडनेसरीखी पीडा हो फिर वह मुखपर किंचित् ऊँची होकर विसर्पके समान फैलजाती है, इसको वल्मीकरोग कहते हैं। यह पुराना होजानेपर असाध्य होजाता है ॥ १८४ ॥ १८५ ॥

वल्मीककी चिकित्सा।

शस्त्रेणोत्कृत्य वल्मीकं क्षाराग्निभ्यां प्रसाधयेत्। विधानेनार्बुदोक्तेन शोधयित्वा च रोपयेत् ॥ १८६ ॥

वल्मीकको शस्त्रसे चीरकर क्षारसे तथा अग्निसे दूर करे। अर्बुदके समान प्रथम शोधन कर पश्चात् भरे ॥ १८६ ॥

वल्मीकन्तु भवेद्यस्य नातिवृद्धस्य मर्म्मजम्। तत्र संशोधनं कृत्वा शोणितं मोक्षयेद्भिषक् ॥ १८७ ॥

जो वल्मीकरोग अत्यन्त वृद्धको नहीं हुआ हो और मर्म्मस्थानमें उत्पन्न भी न हुआ हो तो प्रथम वैद्य संशोधन करके पश्चात् रुधिर निकलवावे ॥१८७॥

कुलित्थिकानां मूलैश्च गुडूच्या लवणेन वा। आरग्वधस्य मूलैश्च दन्तीमूलैस्तथैव च ॥ १८८ ॥ श्यामामूलैः सपललैः सक्तुमिश्रैः प्रलेपयेत्। सुस्निग्धैश्च सुखोष्णैर्वा भिषक्तमुपनाहयेत ॥ १८९ ॥ पक्वं वातं विजानीयाद्गतीः सर्वा यथाक्रमम्। अभिज्ञा-

य ततश्छित्त्वा प्रदहेन्मतिमान्भिषक् ॥ १९० ॥ संशोध्य दुष्टमांसानि क्षारेण प्रतिसारयेत् । व्रणं विशुद्धं विज्ञाय रोपयेन्मतिमान्भिषक् ॥ १९१ ॥

कुलथीकी जड, गिलोय, सैंधानमक, अमलतासकी जड, दन्तीकी जड, निसोतकी जड, मांस और सक्तु इनको मिलाकर वल्मीकपर प्रलेप करे और अत्यन्त स्निग्धपदार्थोंकी पुल्टिस बनाकर उससे कुछ २ गरम करके उसके ऊपर पट्टी बाँध देवे । जब वल्मीक पक जाय तब उसको क्रमसे राधकी गतिको विचारकर शस्त्रसे चीरकर बुद्धिमान् वैद्य लेपकरें दूषित मांसको साफ करके पश्चात् क्षार डालकर प्रतिसारण करे । व्रणको साफ समझकर फिर वैद्य रोपण औषधियोंसे भरे ॥ १८८-१९१ ॥

मनःशिलाद्यतैल ।

मनःशिलालभल्लात-सूक्ष्मैला-गुरुचन्दनैः । जातिपल्लवतक्रैश्च निम्बतैलं विपाचयेत् ॥ वल्मीकं नाशयेत्तद्धि बहुच्छिद्रं बहुव्रणम् ॥ १९२ ॥

मैनशिल, हरिताल, भिलावे, छोटी इलायची, अगर, चन्दन और चमेलीके पत्ते इनके कल्कके द्वारा तक्र (मट्ठा या छाँछ) में नीमके तैलको पकावे । यह तेल बहुत छिद्रोंवाले और बहुत व्रणोंवाले वल्मीकको नष्ट करता है ॥ १९२ ॥

वल्मीकके असाध्य लक्षण ।

पाणिपादोपरिष्टात्तु छिद्रैर्बहुभिरावृतम् । वल्मीकं यत्सशोफं स्याद्वर्ज्यं तत्तु विजानता ॥ १९३ ॥

हाथ अथवा पाँवके ऊपर जो वल्मीक छिद्रोंसे व्याप्त हो और जिसमें सूजन आगई हो ऐसा वल्मीकरोग असाध्य समझकर त्याग देवे ॥ १९३ ॥

गुदभ्रंशके लक्षण ।

प्रवाहणातिसाराभ्यां निर्गच्छति गुदो बहिः । रूक्षदुर्बलदेहस्य गुदभ्रंशं तमादिशेत् ॥ १९४ ॥

रूखे और दुर्बल शरीरवाले मनुष्यके किंचकर बल पूर्वक मल त्यागनेसे तथा प्रवाहिका और अतिसारके होनेसे गुदा बाहरको निकल आती है उसको गुदभ्रंशरोग कहते हैं हिन्दीमें "काँच" कहते हैं १९४॥

गुदभ्रंशकी चिकित्सा ।

गुदभ्रंशे गुदं स्विन्नं स्नेहेनाक्तं प्रवेशयेत् । प्रविष्टं रोहयेद्यत्नाद्गव्यसच्छिद्रचर्म्मणा ॥ १९५ ॥

गुदभ्रंशरोगमें गुदाको सेककर घीसे अथवा तेलसे कांचको चुपडकर हाथसे भीतरको प्रवेश कर देवे और प्रवेश करनेके पश्चात् छिद्रयुक्त बैलके चमडेसे उसको यत्नपूर्वक रोक देवे ॥ १९५ ॥

पद्मिनीकोमलं पत्रं यः खादेच्छर्करान्वितम् । एतन्निश्चित्य निर्दिष्टं न तस्य गुदनिर्गमः ॥ १९६ ॥

कमलिनीके कोमल पत्तोंको मिश्रीके साथ भक्षण करनेसे गुदाका निकलना बंद होजाता है ॥ १९६ ॥

गुदश्च गव्यवसया म्रक्षयेदसकृन्नरः । दुष्प्रवेशो गुदभ्रंशो विशत्याशु न संशयः ॥ १९७ ॥

गुदापर गायकी चर्बी लगानेसे दुष्प्रवेश गुदा भी भीतरको प्रविष्ट होजाती है ॥ १९७ ॥

मूषकाणां वसाभिर्वा गुदभ्रंशे प्रलेपनम् । सुस्विन्नमूषिकामांसेनाथवा स्वेदयेद्गुदम् ॥ १९८ ॥

काँचके ऊपर चूहेकी चर्बी चुपडनेसे अथवा चूहेके मांसका बफारा देनेसे काँच निकलनी बंद होजाती है ॥ १९८ ॥

वृक्षाम्लानलचांगेरी बिल्वं पाठायवाग्रजम् । तक्रेण शीलयेत्पायुभ्रंशार्त्तोऽनलदीपनम् ॥ १९९ ॥

विषांबिल, चीता, चांगेरी, बेलगिरी, पाढ और जवाखार इनको तक्रमें पीसकर पान करनेसे गुदभ्रंशरोग दूर होता है और अग्नि दीपन होती है ॥ १९९ ॥

मूषकाद्यतैल ।

मूषिकाकुडवं मांसं चित्रकस्य पलं तथा। दशमूलपलानाञ्च पलं भल्लातकस्य च ॥ २०० ॥ त्रिफलायाः पलञ्चैषां कल्कं दत्त्वा चतुर्गुणे । क्षीरे तैलं पचेत्प्रस्थमभ्यङ्गाच्च प्रशाम्यति ॥ २०१ ॥ गुदनिस्सरणं शूलं दुष्टव्रणविशोधनम् । मूषकाद्यमिदं तैलं कृष्णात्रेयेण पूजितम् ॥ २०२ ॥

चूहेका मांस १ कुडव परिमाण, चीता ४ तोले, दशमूलकी औषधियें ४ तोले, भिलावे ४ तोले और त्रिफला ४ तोले इनका कल्क बनाकर चार प्रस्थ दूधमें एक प्रस्थ तेलको पकावे। इस तेलकी मालिस करनेसे गुदाका निकलना, शूल और दुष्टव्रण दूर होते हैं एवं दुष्टव्रण शुद्ध होता है। यह मूषिकाद्यतैल–कृष्णात्रेय करके पूजित किया हुआ है ॥ २०० ॥ ॥ २०१ ॥ २०२ ॥

द्वितीयमूषकाद्यतैल ।

मूषिकामांसकुडवं दशमूलं पलोन्मितम्। चित्रस्य द्वे पले वापि निःक्वाथ्याष्टगुणेऽम्भसि ॥ २०३ ॥ पादशेषेण तेनैव तैलप्रस्थं पयः समम्। जीवनीयप्रतीवापं पाचयेन्मृदुनाग्निना ॥ २०४ ॥ अभ्यङ्गान्नाशयत्याशु गुदभ्रंशं सुदारुणम्। भगन्दरं गुदे शूलं नाडीदुष्टव्रणापहम् ॥ २०५ ॥

चूहेका मांस १ कुडव परिमाण, दशमूलकी औषधियें४ तोले और चीता आठ तोले इनको अठगुने जलमें पकावे । जब पकते २ जल चौथाई भाग बाकी रहजाय तब उतारकर छान लेवे। फिर इसमें तिलका तेल एक प्रस्थ और उत्तम गायका दूध १ प्रस्थ तथा जीवनीयगणकी औषधियोंके कल्क डालकर मन्द २ अग्निसे पकावे। इस तेलकी मालिश करनेसे दारुण गुदभ्रंशरोग नष्ट होता है तथा भगन्दर, गुदशूल, नाडीव्रण और दुष्टव्रण नष्ट होते हैं ॥ २०३ ॥ २०४ ॥ २०५ ॥

तृतीयमूषकाद्यतैल ।

निरन्त्रं मूषिकं पक्त्वा पञ्चमूलपयोयुतम्। तैलं वातहरैः सिद्धं गुदभ्रंशहरं परम् ॥ २०६ ॥ तुल्यमंशं समादाय पञ्चमूलाम्बुमांसयोः। क्षीरपाकविधानेन विपाच्यैतत्समाहितः। पश्चाद्वातहरैः कल्कैः पक्तव्यं मूषकादिकम् ॥ २०७ ॥

आंतेरहित चूहेका मांस लेकर पंचमूलके क्वाथ और दूधमें वातनाशक औषधियोंके कल्कके द्वारा तेलको पकावे। यह तेल गुदभ्रंशको अवश्य नष्ट करता है। इसमें पंचमूलका क्वाथ और चूहेका मांस बराबर लेना चाहिये और क्षीरपाककी विधिसे पकाना चाहिये। फिर वातनाशक औषधियोंके कल्कसे इस मूषकाद्यतैलको पकावे ॥ २०६ ॥ २०७ ॥

चतुर्थमूषकाद्यतैल ।

मूषकाणां पलशतं जलद्रोणे विपाचयेत्। पादशेषे पचेत्तैलं दुग्धं तैलचतुर्गुणम् ॥ २०८ ॥ मूषकाणां शिरः कल्कं बस्तावभ्यञ्जने हितम्। गुदनिस्सरणे शूले रक्तस्रावे च तद्धितम् ॥ २०९ ॥

चूहेका मांस १०० पल लेकर एक द्रोण जलमें पकावे। जब पकते २ चौथाई भाग बाकी रहजाय तब उतारकर छान लेवे। फिर इसमें २ प्रस्थ तेल और ४ चार प्रस्थ दूध एवं चूहोंके शिरका कल्क डालकर पकावे। इस तेलको बस्ति और अभ्यंग कर्ममें प्रयोग करनेसे गुदाका निकलना, रुधिरस्राव और गुदज शूल नष्ट होता है ॥ २०८ ॥ २०९ ॥

शूकरदंष्ट्रके लक्षण ।

सदाहो रक्तपर्य्यन्तस्त्वक्पाकी तीव्रवेदनः। कंडूमाञ्ज्वरकारी च स स्याच्छूकरदंष्ट्रकः ॥ २१० ॥

जो सूजन, दाह सहित, लाल किनारोंवाली हो तथा जिसकी त्वचा पकनेवाली, जिसमें अत्यन्त

पीडा और खुजली एवं ज्वर हो उसको सूकरदंष्ट्र (सूअर डाढ) कहते हैं ॥ २१० ॥

सूकरदंष्ट्रकी चिकित्सा।

सर्षपरजनीकल्कस्तालमूलीसंयुतो लेपात् । शमयाति सूकरदंष्ट्रं पिडिकादाहान्वितं पुंसाम् ॥ २११ ॥

सरसों, हलदी और मुसली इनको एकत्र जलमें पीसकर प्रलेप करनेसे सूकरदंष्ट्र और दाहयुक्त पिडिका शमन होती हैं ॥ २११ ॥

भृङ्गराजस्य मूलस्य रजन्या सहितस्य च । चूर्णश्च सहसा लेपाद्वराहद्विजनाशनम् ॥ २१२ ॥

भाँगरेकी जड और हलदीको जलमें पीसकर लेप करनेसे सूकरदंष्ट्र दूर होता है ॥ २१२ ॥

रजनीमार्कवमूलं पिष्टं शीतेन वारिणा तुल्यम् । हन्ति विसर्पं लेपाद्वराहदशनाह्वयं घोरम् ॥ २१३ ॥

हलदी और भाँगरेकी जडको शीतल जलमें पीसकर लेप करनेसे विसर्परोग और सूकरदंष्ट्र नष्ट होता है ॥ २१३ ॥

सूर्य्यावर्त्तजटां सूर्य्यवारेणोत्पाट्य बुद्धिमान् । पिष्ट्वा भृङ्गांबुना लेपाद्वराहद्विजनाशनम् ॥ २१४ ॥

बुद्धिमान् मनुष्य आदित्यवारके दिन हुलहुलकी जडको उखाडकर भाँगरेके जलमें पीसकर लेप करे तो सूकरदंष्ट्र नष्ट होता है ॥ २१४ ॥

विसर्पोक्तः प्रतीकारः कार्य्यः सूकरदंष्ट्रयोः ॥ २१५ ॥

इस सूकरदंष्ट्ररोगमें विसर्पके समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २१५ ॥

मेध्याविकतैल।

मूलकं बीजमुद्धृत्य चोन्मत्तकदलानि तु । सूर्य्यावर्त्तशुकाख्याश्च मेध्यावीरसपाचितम् ॥ २१६ ॥ तैलं मेध्याविकं नाम वराहद्विजनाशनम् । कण्डूकुष्ठप्रशमनं कृच्छ्रं दद्रुविनाशनम् ॥ बलवर्णकरश्चैव कृष्णात्रेयेण भाषितम् ॥ २१७ ॥

मूलीके बीज, धतूरके पत्ते, हुलहुल और शुआ-ठोडी इनके कल्कके द्वारा ब्राह्मीके रसमें तेलको पकावे । यह तेल-सूकरदंष्ट्रको अवश्य दूर करता है तथा खुजली, कोढ, मूत्रकृच्छ्र और दद्रुको दूर करता है बल और वर्णको बढाता है इसको कृष्णात्रेयने कहा है ॥ २१६ ॥ २१७ ॥

परिवर्त्तिकाके लक्षण।

मर्दनात्पीडनाद्वापि तथैवाप्यभिघाततः । मेढ्रचर्म्म यदा वायुर्भजते सर्वतश्चरन् ॥ २१८ ॥ तदा वातोपसृष्टत्वाच्चर्म्म तत्परिवर्तते । सवेदनं सदाहश्च पाकं च व्रजति क्वचित् ॥२१९॥ मणेरधस्तात्कोषश्च ग्रन्थिरूपेण लम्बते । परिवर्त्तिकेति तां विद्यात्सरुजां वातसम्भवाम् ॥ सकण्डूकाठिना वापि सैव श्लेष्मसमुत्थिता ॥२२०॥

लिंगको मर्दन करनेसे या पीडित करनेसे अर्थात् दबानेसे अथवा किसीप्रकारकी चोटके लगजानेसे व्यान वायु कुपित होकर लिंगके चर्म्ममें प्राप्त होकर चारों ओर विचरण करती है तब मणि और लिंगके अग्रभागका चर्म्म वायुके लगनेसे फिर जाता है अर्थात् अलग होजाता है और सुपारीके नीचे गाँठसी होकर लटकती है उसमें पीडा और दाह होती है, कोई कोई पक भी जाती है उसको परिवर्त्तिका कहते हैं। जो यह वातसे हो तो उसमें पीडा अधिक होती है और जो कफज हो तो इसमें खुजली अधिक और कठिनता होती है ॥ २१८ ॥ २१९ ॥ २२० ॥

परिवर्त्तिकाकी चिकित्सा ।

परिवर्तीं घृताभ्यक्तां सुस्विन्नामुपनाहयेत् । त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा वातघ्नैः साल्वनादिभिः ॥ २२१ ॥ ततोऽभ्यज्य शनैश्चर्म्म वेशयेत्पीडयेन्मणिम् ।

प्रविष्टे चर्म्मणि मणौ स्वेदयेदुपनाहनैः ॥ २२२ ॥ दद्याद्वातहरान्बस्तीन्स्निग्धान्यन्नानि भोजयेत् ॥ २२३ ॥

परिवर्त्तिकाको घी चुपडकर अच्छेप्रकारसे उपनाह स्वेद देवे और तीन रात्रितक अथवा पांच रात्रितक वातको हरनेवाले शाल्वनादि कल्कोंकी पट्टी बांधे, फिर त्वचाको घीसे चुपडकर धीरे धीरे बढाकर लिंगकी मणिको दबावे कि, जिससे मणि त्वचाके भीतर चली जाय । मणिको त्वचामें प्रवेश कराकर पश्चात् उपनाह स्वेद देकर वातनाशक पिचकारी लगावे तथा रोगीको स्निग्ध अन्न भोजनके लिये देवे ॥ २२१ ॥ ॥ २२२ ॥ २२३ ॥

अवपाटिकाके लक्षण ।

अल्पीयःखां यदा हर्षाद्बलाद्गच्छेत्स्त्रियं नरः । हस्ताभिघातादथवा चर्म्मण्युद्वर्त्तते बलात् ॥ यस्यावपाटयते चर्म्म तां विद्यादवपाटिकाम् ॥ २२४ ॥

अखण्डितयोनिवाली अथवा जिस स्त्रीकी योनिका छिद्र बहुत छोटा हो ऐसी योनिवाली स्त्रीसे हर्षके साथ बलपूर्वक प्रसंग करनेसे अथवा हस्तमैथुनादि करनेसे या हाथकी चोटके लगनेसे या या जोरसे लिंगके चर्म्मको उलटनेसे अथवा मर्दन करनेसे या दबानेसे अथवा वीर्य्यके वेगको रोकनेसे लिंगके बन्द होनेकी त्वचा जगह जगहसे चिरजाती है उसको अवपाटिकारोग कहते हैं ॥ २२४ ॥

वातात्परुषरूक्षाभा सूक्ष्मा कृष्णा रुगन्विता । पित्तात्सपीतारक्ताभा दाहतृष्णासमन्विता । श्लैष्मिकी कठिना स्निग्धा कण्डूमत्यल्पवेदना॥२२५॥

यह अवपाटिकारोग जो वातसम्बन्धीय हो तो खरखरा, रूखा, पतला, काला और वेदनायुक्त होता है । पित्तकी उल्बणता हो तो यह पीला, लाल, दाह और तृषायुक्त होता है और जो यह कफ सम्बन्धीय हो तो कठिन, चिकना, खुजली और अल्प पीडायुक्त होता है ॥ २२५ ॥

अवपाटिकाकी चिकित्सा ।

स्नेहस्वेदैस्तथैवैनां चिकित्सेदवपाटिकाम् ॥ २२६ ॥

वैद्य स्नेहों तथा स्वेदोंसे अवपाटिकाकी चिकित्सा करे ॥ २२६ ॥

निरुद्धप्रकशके लक्षण ।

वातोपसृष्टे मेढ्रे च चर्म्म संश्रयते मणिम् । मणिश्चर्मोपनद्धस्तु मूत्रस्रोतो रुणद्धि च ॥ २२७ ॥ निरुद्धप्रकशे तस्मिन्मन्दधारमवेदनम् । मूत्रं प्रवर्त्तते जन्तोर्मणिर्विव्रियते न च ॥ निरुद्धप्रकशं विद्यात्सरुजं वातसंभवम् ॥ २२८ ॥

लिंगमें वातका प्रकोप होकर लिंगका चर्म्म सुपारीके ऊपर चढकर चिपटजाता है, फिर वह सुपारी चर्म्मके सकुच जानेसे मूत्रके प्रवाहको रोक देती है इसको निरुद्धप्रकश कहते हैं । इस रोगमें मूत्र मन्द मन्द धारसे तथा वेदना रहित निकलता है और लिंगकी सुपारी खुलती नहीं है, यह रोग वायुसे होता है और इसमें वेदना होती है ॥ २२७ ॥ २२८ ॥

निरुद्धप्रकशकी चिकित्सा ।

निरुद्धप्रकशे नाडीं लौहीमुभयतोमुखीम् । दारवीं वा जन्तुकृतां सघृतां वा प्रवेशयेत् ॥२२९॥ परिषिञ्चेद्वसां मज्जां शिशुमारवराहयोः । चुक्रतैलं तथा योज्यं वातघ्नद्रव्यसंयुतम्॥२३०॥

निरुद्धप्रकशरोगमें दोनों ओर मुखवाली घीसे चुपडे हुई लोहेकी या लकडीकी अथवा लाखकी बनी हुई नली लिंगके छिद्रमें प्रवेश करे, पश्चात् उसके ऊपर शिशुमार (सूस)नामक जंतुकी तथा सुअरकी चरबीका वा मज्जाका सेचन करे और वातनाशक पदार्थोंके साथ चूकेके तेलका सेचन करे ॥२२९॥२३०॥

त्र्यहात्स्थूलतरां सम्यङ्नाडीं मार्गे प्रवेशयेत् । स्रोतः प्रवर्द्धयेदेवं स्नि-

ग्धमन्नञ्च भोजयेत् ॥ भित्वा वा सेवनीं मुक्त्वा सद्यः क्षतवदाचरेत् ॥२३१॥

तीन तीन दिनके पश्चात् क्रम क्रमसे वढाकर वडी नली उसमें अच्छे प्रकारसे प्रवेश करे कि, जिससे मूत्रका मार्ग बढे। इसमें रोगीको भोजनके लिये स्निग्ध अन्न देवे अथवा सीवनको छोडकर शस्त्रसे चीरे और फिर तत्काल क्षतके समान चिकित्सा करे इससे निरुद्धप्रकश शीघ्र नष्ट होजाता है ॥२३१॥

सन्निरुद्धगुदके लक्षण ।

वेगसन्धारणाद्वायुर्विहितो गुदसंश्रितः। निरुणद्धि महत्स्रोतः सूक्ष्मद्वारं करोति च ॥२३२॥ मार्गस्य सौक्ष्म्यात्कृच्छ्रेण पुरीषं तस्य गच्छति । सन्निरुद्धगुदं व्याधिमेनं विद्यात्सुदुस्तरम् ॥ ५३३ ॥

मलके वेगको धारण करनेसे गुदामें रहनेवाले अपानवायु मल निकलनेवाली गुदाके छेदको रोककर गुदद्वारको छोटा कर देती है, उसके छोटे होजानेसे मल अत्यंत कष्टसे थोडा २ उतरता है। इस दारुण रोगको सन्निरुद्धगुद कहते हैं ॥ २३२ ॥ २३३ ॥

सन्निरुद्धगुदकी चिकित्सा।

सन्निरुद्धगुदे तैलैः सेको वातहरैर्हितः। तथा निरुद्धप्रकशक्रमः कार्यो विजानता ॥ २३४ ॥

सन्निरुद्धगुदको वातनाशक तैलसे सेचन करे अथवा निरुद्धप्रकशकी जो चिकित्सा कही है वह सब इस सन्निरुद्धगुदमें भी करे ॥ २३४ ॥

अहिपूतनके लक्षण ।

शकृन्मूत्रसमायुक्तेऽधौतेऽपाने शिशोर्भवेत्। स्विन्ने वाऽस्नाप्यमाने वा कंडूरक्तकफोद्भवा ॥ २३५ ॥ कंडूयनात्ततः क्षिप्रं स्फोटः स्रावश्च जायते। एकीभूतं व्रणं घोरं तं विद्यादहिपूतनम् ॥ २३६ ॥

मलमूत्रके त्यागनेके पश्चात् बालककी गुदामें विष्ठा लगारहनेसे अर्थात् उसको नहीं धोनेसे अथवा पसीनेके आनेपर उसको साफ नहीं करनेसे या बालकको कभी स्नान नहीं करानेसे रुधिर तथा कफके प्रकोपसे खुजली होती है और खुजयानेसे तत्काल फुन्सी तथा स्राव होता है फिर वह सब फुंसी एकत्रित होकर छत्तासा होता है इस भयंकर रागको अहिपूतन कहते हैं ॥ २३५॥२३६ ॥

अहिपूतनकी चिकित्सा ।

ततः संशोधनैः पूर्वं धात्रीस्तन्यं विशोधयेत् ॥ २३७ ॥

अहिपूतनके उत्पन्न होते ही प्रथम संशोधन औषधियोंसे माताके या धायके दूधको शुद्ध करे ॥ २३७ ॥

त्रिफलाखदिरक्वाथैर्व्रणानां धावनं सदा। शङ्खसौवीरयष्ट्याह्वैर्लेपः कार्योऽतिपूतने ॥ २३८ ॥

त्रिफला और खैरके काथसे व्रणोंको धोवे। शंख, सौवीर नामक काँजी और मुलैठी इनको एकत्र पीस कर व्रणोंपर लेप करे ॥ २३८ ॥

कंडूरक्तोत्कटे कुर्य्याद्रक्तस्रावं जलौकसा । करञ्जत्रिफलातिक्तैः सर्पिः सिद्धं शिशोर्हितम् ॥ २३९ ॥

अहिपूतनरोगमें जो रुधिरकी उल्वणता और खुजली हो तो जौंकके द्वारा रुधिर निकलवावे। करंज, त्रिफला और कुटकीके द्वारा घृतको पकाकर अहिपूतनरोगसे ग्रसित बालकोंको देवे ॥ २३९ ॥

कासीसरोचनातुत्थहरितालरसांजनैः। अम्लपिष्टैः प्रलेपोऽयं व्रणकंडूहिपूतने ॥ २४० ॥

कसीस, गोरोचन, तूतिया, हरताल और रसौत इनको कांजीमें पीसकर लेप करनेसे व्रण, खुजली और अहिपूतनरोग दूर होता है ॥ २४० ॥

पटोलघृत ।

पटोलपत्रत्रिफलारसाञ्जनविपाचितम्। पीतं घृतं नाशयति कृच्छ्रमप्यहिपूतनम् ॥ २४१ ॥

पटोलपत्र, त्रिफला और रसौत इनके कल्कके द्वारा घृतको पकावे। इस घृतको पान करनेसे अत्यन्त कष्टसाध्य भी अहिपूतनरोग दूर होता है ॥ २४१ ॥

वृषणकच्छूके लक्षण।

स्नानोत्सादनहीनस्य मलो वृषणसंस्थितः। यदा प्रक्लिद्यते स्वेदात्कंडूञ्जनयते तदा ॥ २४२ ॥ कंडूयनात्ततः क्षिप्रं स्फोटः स्रावश्च जायते। प्राहुर्वृषणकच्छूं तां श्लेष्मरक्तप्रकोपजाम् ॥ २४३ ॥

स्नान नहीं करनेसे तथा अंगोंको साफ नहीं करनेसे अथवा स्नान करते समय जो मनुष्य अण्डकोषके मैलको नहीं धोता तब वह मैल सूखकर जम जाता है, फिर पसीना आनेपर गीला होजाता है तब अण्डकोषोंमें अत्यन्त खुजली उत्पन्न होती है उसको खुजानेसे शीघ्रही फुंसी होजाती हैं। उनमेंसे स्राव होता है पश्चात् परस्पर सब मिलकर चकत्तेसे होजाते हैं इसको वृषणकच्छू कहते हैं। यह कफ तथा रुधिरसे उत्पन्न होती है ॥ २४२ ॥ २४३ ॥

वृषणकच्छूकी चिकित्सा।

भिषग् वृषणकच्छूं तु चिकित्सेत्पामरोगवत्। अहिपूतननिर्दिष्टक्रिययापि च तां हरेत् ॥ २४४ ॥

वैद्य वृषणकच्छूरोगमें पामाके समान चिकित्सा करे। अथवा अहिपूतनरोगमें कहीहुई चिकित्सा करे ॥ २४४ ॥

सर्जाह्वकुष्ठसैन्धवसितसिद्धार्थैः प्रकल्पितो योगः। उद्वर्त्तनेन नियतं शमयति वृषणकण्डूतिम् ॥ २४५ ॥

राल, कूठ, सैंधानमक और सफेद सरसों इनको एकत्र पीसकर मलनेसे अण्डकोषोंकी खुजली दूर होती है ॥ २४५ ॥

चर्मकीलके लक्षण।

समुत्थाननिदानाभ्यां चर्म्मकीलं प्रकीर्तितम् ॥ २४६ ॥

चर्म्मकीलका निदान लक्षण अर्शरोगमें कहे गये हैं वे उसीके अनुसार जानने ॥ २४६ ॥

चर्मकीलकी चिकित्सा।

कटूवीकापालिकामूलं पूतीकं सैन्धवं तथा। शंबूकेन श्लक्ष्णपिष्टं चर्म्मकीलकनाशनम् ॥ २४७ ॥

कुटकी, कपालिकाकी जड, दुर्गन्धकरंज, सैंधानमक और घोंघा इन सबको एकत्र बारीक पीसकर प्रलेप करनेसे चर्मकीलरोग नष्ट होता है ॥ २४७ ॥

क्षुद्ररोगोंकी सामान्यचिकित्सा।

प्रायेण क्षुद्ररोगेषु शस्त्रक्षारानलक्रिया। लेपनं शोणितस्रावमिति सामान्यसंग्रहः ॥ २४८ ॥

प्रायः सर्वप्रकारके क्षुद्ररोगोंमें शस्त्र, क्षार, अग्निकर्म्म, औषधियोंका लेप और रक्तमोक्षण करना ये सब सामान्य चिकित्सा है ॥ २४८ ॥

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायां क्षुद्ररोगनिदानचिकित्साधिकार समाप्त ॥ ६३ ॥

अथ मुखरोगाधिकार।

मुखरोगाः पञ्चषष्टिः सप्तस्वायतनेषु च। तत्र चायतनान्यष्टौ दन्ता दन्ताशनं तथा ॥ १ ॥ तालुकण्ठश्च जिह्वा च मुखं सर्वश्च सप्तमम् ॥ २ ॥

मुखमें ६५ रोग होते हैं और वे मुखके सात स्थानोंमें रहते हैं। ऊपर नीचेके दोनों ओष्ठ, दंत, दंतवेष्ट, तालु, कण्ठ और जिह्वा ये सात आयतन

---

१ दन्तेष्वष्टा ८ वोष्ठयोश्च ८ मूलेषु दशपञ्च च १५ नव ९ तालुनि जिह्वायां पञ्च ५ सप्तदशामयाः १७। कण्ठे त्रयः सर्वसरा एकषष्टिचतुः परे ॥ ६५ ॥

हैं। इन सातों आयतनोंमें युक्त मुख कहा जाता है अर्थात् मुखमें ये सातों आयतन होते हैं और इन आयतनोंमें उपर्युक्त रोग उत्पन्न होते हैं ॥ १ ॥ २ ॥

मुखरोगोंका निदान ।

आनूपपिशितक्षारदधिमाषादिसेवनात्। मुखमध्ये गदान्कुर्युः क्रुद्धा दोषाः कफोत्तराः ॥ ३ ॥

आनूप (जल प्रायः देश-खादर) देशके जीवोंका मांस, क्षार, दही और उडद आदि पदार्थोंको सेवन करनेसे कफादिदोष कुपित हो कर मुखमें रोगोंको उत्पन्न करते हैं ॥ ३ ॥

वातिकओष्ठरोगके लक्षण ।

कर्कशौ परुषौ स्तब्धौ संप्राप्तानिलवेदनौ । दाल्येते परिपाट्येते चाष्ठौ मारुतकोपतः ॥ ४ ॥

वात,पित्त,कफ,इन तीनों दोषें तथा रुधिर, मांस और मेदके विकारोंसे अभिघातके होनेसे इस प्रकार ओष्ठोंके आठ प्रकारके रोग होते हैं; वातकोपजन्य ओष्ठरोगमें दोनों ओष्ठ खरखरे, रूखे, कठोर, स्तब्ध (जकडे हुएसे), तीव्र वातकी वेदनासे युक्त, तथा चिरे हुए और किञ्चित् फटे हुए होते हैं ॥ ४ ॥

पैत्तिकओष्ठरोगके लक्षण ।

चीयेते पिटिकाभिश्च सरुजाभिः समन्ततः । सदाहपाकपिडिकौ पीताभासौ च पित्ततः ॥ ५ ॥

पित्तके कुपित होनेसे दोनों ओष्ठ चारों ओरसे पीडायुक्त फुन्सियोंसे घिर जाते हैं वे फुन्सियें दाह और पाकयुक्त तथा पीले रंगकी होती हैं ॥ ५ ॥

श्लैष्मिकओष्ठरोगके लक्षण ।

सवर्णाभिस्तु चीयेते पिटिकाभिरवेदनौ । भवतस्तु कफादोष्ठौ पिच्छिलौ शीतलौ गुरू ॥ ६ ॥

कफजनित ओष्ठरोगमें दोनों ओष्ठ शरीरके चमडेकी सदृश वर्णवाली और अल्प पीडावाली फुन्सियोंसे व्याप्त होजाते हैं। तथा खुजली, सफेदी,चिकनाईयुक्त, शीतल और भारी होते हैं ॥ ६ ॥

सान्निपातिकके लक्षण ।

सकृत् कृष्णौ सकृत्पीतौ सकृच्छ्वेतौ तथैव च । सन्निपातेन विज्ञेयावनेकपिटिकान्वितौ ॥ ७ ॥

जिसके एकसाथ तीनों दोषोंके कुपित होनेसे ओष्ठ कभी काले, कभी पीले, कभी सफेद और अनेक फुंसियोंसे युक्त हों तो उसको सन्निपातज ओष्ठरोग जानना चाहिए ॥ ७ ॥

रक्तजओष्ठरोगके लक्षण ।

खर्जूरफलवर्णाभिः पिटिकाभिर्निपीडितौ । रक्तोपसृष्टौ रुधिरं स्रवन्तौ शोणितप्रभौ ॥ ८ ॥

रुधिरके कुपित होनेसे दोनों होठोंमें खजूरके रंगके समान और अल्प पीडा युक्त फुंसियें होती हैं, उनमेंसे रुधिर बहता है और ओष्ठोंका रंग रुधिरके समान लाल होता है ॥ ८ ॥

मांसजनित ओष्ठरोगके लक्षण।

मांसदुष्टौ गुरू स्थूलौ मांसपिण्डवदुन्नतौ । कृमयश्चात्र मूर्च्छन्ति नरस्योभयतो मुखात् ॥ ९ ॥

मांसके दूषित होनेसे दोनों ओष्ठ भारी, मोटे और मांसके पिंडके समान ऊँचे होते हैं। इस मांसज ओष्ठरोगमें मनुष्यके दोनों गलफुओंमें कीडे पड़जाते हैं ॥ ९ ॥

मेदजओष्ठरोगके लक्षण ।

सर्पिर्मण्डप्रतीकाशौ मेदसा कंडुरौ गुरू । स्वच्छं स्फटिकसंकाशमास्रावं स्रवतो भृशम् ॥ तयोर्व्रणं न संरोहेन्मृदुत्वं न च गच्छति ॥ १० ॥

मेदजनित ओष्ठरोगमें दोनों ओष्ठ घी और माडके समान होते हैं उनमें खुजली तथा भारीपन होता है। स्फटिकमणिके समान निर्मल, अधिकस्रावयुक्त होते हैं। उनमें उत्पन्न हुआ व्रण न नरम होता है और न भरता है ॥ १० ॥

अभिघातजके लक्षण ।

ओष्ठौ पर्य्यवदीर्येते पाट्येते चाभिघाततः । ग्रथितौ च तथा स्यातामोष्ठौ कंडूसमन्वितौ ॥ ११ ॥

अभिघातजओष्ठरोगमें दोनों होठ चिरजाते हैं या फट जाते हैं उनमें पीडा होती है, गांठें पडजाती हैं खुजली होती है ॥ ११ ॥

मुखरोगकी चिकित्सा ।

मुखदन्तमूलदशनच्छदेषु रोगाः कफास्रभूयिष्ठाः । तस्मात्तेषामसकृद्रुधिरं विस्रावयेद्दुष्टम् ॥ १२ ॥

मुखरोग, मसूढोंके रोग और ओष्ठरोगोंमें प्रायः कफ और रुधिरकी प्रधानता होती है इस कारण इन रोगोंमें वारंवार दूषित रुधिर निकलवाना चाहिये ॥ ॥ १२ ॥

स्नेहैंस्तथोष्णान्परिषेकलेपान्घृतस्य पानं रसभोजनञ्च । अभ्यञ्जनस्वेदनलेपनानि चौष्ठे विदध्यात्पवनाभिभूते ॥ १३ ॥

वातजनित ओष्ठरोगमें उष्ण स्नेह, उष्ण परिषेक, उष्ण औषधियोंके प्रलेप, घृतका पान, मांसरसका भोजन,अभ्यंजन, स्वेदन और लेपन इत्यादि उपचार करने चाहियें ॥ १३ ॥

चतुर्विधेन स्नेहेन मधूच्छिष्टयुतेन च । वातजेऽभ्यञ्जनं कुर्य्यान्नाडीस्वेदञ्च बुद्धिमान् ॥ १४ ॥

बुद्धिमान् वैद्य तेल,घी,चरबी और मज्जा इन चार प्रकारके स्नेहोंके साथ मोम मिलाकर वातज ओष्ठरोगमें अभ्यंजन करे और इनके द्वारा नाडीको स्वेद देवे ॥ १४ ॥

मस्तिष्के चैव नस्ये च तैलं वातहरं हितम् । स्वेदोऽभ्यङ्गः स्नेहपानं रसायनमिहेष्यते ॥ १५ ॥

वातनाशक औषधियोंके द्वारा तेलको पकाकर मस्तिष्कमें नास देवे । इस रोगमें स्वेद, अभ्यंग और स्नेहपान ये सब रसायनके समान गुण करते हैं ॥ १५ ॥

तैलं घृतं सर्जरसं ससिक्थं रास्ना गुडं सैन्धवगैरिकञ्च । पक्कं समांशं दशनच्छदानां त्वग्भेदहन्तृ प्रवदन्ति लेपम् ॥ १६ ॥

तेल, घी,राल,मोम, रास्ना, गुड, सैंधानमक और गेरू ये सब औषधि समान भाग लेकर पकावे । इसको ओष्ठोंपर प्रलेप करनेसे होठोंका फटना और ओष्ठव्रण नष्ट होते हैं ॥ १६ ॥

श्रीवेष्टकं सर्जरसं गुग्गुलं सुरदारु च । यष्टीमधुकचूर्णञ्च विदध्यात्प्रतिसारणम् ॥ १७ ॥

श्रीवेष्ट (लोबान), राल, गूगल, देवदारु और मुलैठी इनका चूर्ण करके प्रतिसारण करे ॥ १७ ॥

वेधं शिराणां वमनं विरेकं तिक्तास्य-पानं रसभोजनञ्च । शीतान्प्रदेहान्परिषेचनञ्च पित्तोपसृष्टेष्वधरेषु कुर्य्यात् ॥ १८ ॥

पित्तजओष्ठरोगमें नस छेदकर रुधिर निकलवाना, वमन करना, विरेचन करना, तिक्त नामक घृत पिलाना अथवा तिक्तपदार्थोंको सेवन कराना, मांसरसका भोजन देना, शीतल लेप और शीतल सेचन आदि उपचार करने चाहिएँ ॥ १८ ॥

रक्तपित्तोपघातोत्थे जलौकाभिरुपाचरेत् । पित्तविद्रधिवच्चापि क्रियां कुर्य्यादशेषतः ॥ १९ ॥

रक्तपित्तजनित ओष्ठरोगमें जौंकके द्वारा रुधिर निकलवावे तथा पित्तविद्रधिके समान सम्पूर्ण चिकित्सा करे ॥ १९ ॥

शिरोविरेचनं धूमं स्वेदः कवल एव वा । हृते रक्ते प्रयोक्तव्यमोष्ठपाके कफात्मके ॥ २० ॥

कफजओष्ठरोगमें रुधिर निकलवानेके पीछे शिरो-

विरेचन देवे, धूम्रपान करावे, स्वेदन करे और कवल धारण करावे ॥ २० ॥

त्रिकटुस्वर्जिकाक्षारः क्षारश्च यवशूकजः । क्षौद्रयुक्तं विधातव्यमेतच्च प्रतिसारणम् ॥ २१ ॥

त्रिकुटा, सज्जीखार और जवाखार इनको शहदमें मिलाकर प्रतिसारण करे अर्थात् इस औषधिसे ओठोंको घिसे ॥ २१ ॥

शूलं विवर्णं सलसीकमोष्ठं सकंडुरं तीव्ररुजं प्रवातम् । लिखेच्च फेनाद्रिपलाशबालैर्निष्पीड्य वातक्षतसारयेद्वा ॥ २२ ॥

जो ओष्ठमें शूल हो, ओष्ठका रंग विवर्ण हो, चिपकतासा पानी गिरे, खुजली और तीव्र वातकी पीडा हो तो ओष्ठोंको लिखे तथा ढाकके दो कोमल पत्ते लेकर उनको मसल करके उनके झाग निकालकर उन झागोंसे वातज ओष्ठक्षतमें प्रतिसारण करे २२॥

जीवन्तिकल्कं पयसा समांशं तैलं विपक्वा मधुना विमिश्रम् । ओष्ठास्ययोः सर्जरसाष्टभागं व्रणं निहन्यात्सकृदेव लेपात् ॥ २३ ॥

जीवंतीके कल्कको समान भाग लेकर गौके दूध, तेल, शहद और आठवें भाग रालके चूर्णमें मिलाकर पकावे । इसका केवल एक बार लेप करनेसे ओष्ठ और मुखके व्रण शांत होजाते हैं ॥ २३ ॥

मेदोजे स्वेदिते भिन्ने शोधिते ज्वलनो हितः । प्रियंगुत्रिफलालोध्रं सक्षौद्रं लेपने हितम् ॥ २४ ॥ हितश्च त्रिफलाचूर्णं मधुयुक्तं प्रलेपनम् । एतद्दोषप्रकोपाणां साध्यानां कर्म्म कीर्तितम् ॥ २५ ॥

मेदजन्य ओष्ठरोगमें–स्वेदन, भेदन, दूषित मांसको निकलवावे और शोधन करने, अग्निके द्वारा सेक करना हितकर है । इसमें फूलप्रियंगु, त्रिफला और लोधके चूर्णको शहदमें मिलाकर होठोंको घिसना चाहिये तथा त्रिफलेके चूर्णको शहदमें मिलाकर होठोंमें प्रलेप करना चाहिए यह साध्य ओष्ठके रोगोंको चिकित्सा कही है ॥ २४ ॥ २५ ॥

स्विन्नं क्षतोष्ठमुल्लिख्य पीडयेत्तुसमाहितः । शतधौतघृताभ्यक्तं द्विधात्कंबलिकां कृते ॥ क्लिन्नव्रणे च तत्सर्वं यक्ता व्रणवदाचरेत् ॥ २६ ॥

क्षतजओष्ठमें अथवा ओष्ठोंमें क्षतके हो जाने पर प्रथम ओष्ठोंको स्वेदन करके पश्चात् अच्छे प्रकारसे लेखन करे अर्थात् लिखे, फिर दबावे । तथा कवलुको धारण करे, और सौबार धुले हुए घृतका लेप करे । ओष्ठमें क्लिन्न व्रण होजाय तो सब विधिको छोडकर व्रणके समान चिकित्सा करे ॥ २६ ॥

सामान्यमुखरोगलक्षण ।

मुखामये मारुतजे तु शोषकार्कश्यरौक्ष्याणि चला रुजश्च । कृष्णारुणं निष्पतनं सशैत्यं प्रस्पंदनं स्रंसनतोददाहाः ॥ २७ ॥

वातजनित मुखरोगमें शोष, कर्कशता, रूक्षता चञ्चलता, पीडा, काले और लालरंगके छालोंका मुखमें होना अथवा मुखमेंसे काला और लालरंगका पानी गिरना, शीतलता, कम्प, स्राव तोडनेसरीखी पीडा और दाह होती है ॥ २७ ॥

तृष्णाज्वरस्फोटकदाहपाका धूमायनं चास्यविदीर्णता च । पित्तात्समूर्च्छा विविधा रुजश्च मुखं च पीतारुणवर्णयुक्तम् ॥ २८ ॥

पित्तके मुखरोगमें तृषा, ज्वर, स्फोटक, दाह, पकना, मुखमें धुँआसा निकलना, मुखका फटना, मूर्च्छा, अनेक प्रकारकी पीडायें और मुखका वर्ण पीला तथा लाल होता है ॥ २८ ॥

कंडूगुरुत्वं सितवज्जलत्वं स्नेहोऽरुचिर्जाड्यकफप्रसेके । उत्क्लेशनं दालनभावतंद्रारुजश्च मन्दा कफवक्त्ररोगे२९

कफजमुखरोगमें–खुजली, भारीपन, सफेद जल-सा निकलना, चिकनापन, अरुचि, जडता, कफका स्राव, उत्क्लेश, दलने सरीखी पीडा तन्द्रा और अल्प-वेदना होती है ॥ २९ ॥

द्विदोषलिङ्गानि भवन्ति यत्र द्विदोषजो वक्त्रगदः स वेद्यः । लिङ्गानि सर्वाणि मुखे च यस्य भवन्ति तस्यैव तु सन्निपातात् ॥ ३० ॥

जिस मुखरोगमें दो दोषोंके लक्षण मिलें, उसको द्वन्द्वज मुखरोग जानना और जिसमें तीन दोषोंके लक्षण मिलते हों उसको सन्निपातज अर्थात् त्रिदोषज मुखरोग जानना चाहिये ॥ ३० ॥

ये मुखरोगके सब लक्षण चरकसंहितामें कहे हैं ।

दंतवेष्टरोगानिदान ।

दंतवेष्टरोगोंकी संख्या और नाम ।

शीताद दन्तपुप्पुट, दंतवेष्ट, सौषिर, महासौषिर, परिदर, उपकुश, वैदर्भ, खलिवर्द्धन, अधिमांस, पांचप्रकारकी दन्तनाडी और दंतविद्रधि ये सौलह रोग दंतवेष्टों (दांतोंकी जडों) में उत्पन्न होते हैं ।

प्रथम शीतादके लक्षण कहते हैं ।

शोणितं दन्तवेष्टेभ्यो यस्याकस्मात्प्रवर्त्तते । दुर्गन्धीनि सकृष्णानि प्रक्लेदीनि मृदूनि च ॥ ३१ ॥ दन्तमांसानि शीर्य्यन्ते पचन्ति च परस्परम् । शीतादो नाम स व्याधिः कफशोणितसम्भवः ॥ ३२ ॥

जिसके दंतमूल अर्थात् मसूढेंमेंसे अकस्मात् रुधिर निकले, मसूढोंका मांस दुर्गंधित, काला, क्लेदयुक्त और कोमल हो तथा मांस गलकर गिरे और मसूढे परस्पर पकजायँ तो इसको शीताद कहते हैं । यह रोग कफ और रुधिरसे उत्पन्न होता है ॥३१॥३२॥

दन्तपुप्पुटके लक्षण ।

दन्तयोस्त्रिषु वा यस्य जायते श्वयथुर्महान् । दन्तपुप्पुटको नाम स व्याधिः कफरक्तजः ॥ ३३ ॥

जिसके दो या तीन दाँतोंमें अत्यन्त सूजन हो उसको दंतपुप्पुट कहते हैं । यह रोग कफ और रक्तसे होता है ॥ ३३ ॥

दन्तवेष्टके लक्षण ।

स्रवंति पूयरुधिरं चला दन्ता भवन्ति च । दन्तवेष्टः स विज्ञेयो दुष्टशोणितसम्भवः ॥ ३४ ॥

जब मसूढोंमेंसे रुधिर या राध बहती है और दांत हिलते हैं तब उसको दंतवेष्ट रोग कहते हैं । यह रोग दुष्ट रुधिरसे उत्पन्न होता है ॥ ३४ ॥

शौषिरके लक्षण ।

श्वयथुर्दन्तमूलेषु रुजावान् कफरक्तजः । लालास्रावी स विज्ञेयः शौषिरो नाम नामतः ॥ ३५ ॥

दांतकी जडोंमें कफ और रक्तके कुपित होनेसे उत्पन्न हुई और लारका स्राव करनेवाली जो सूजन होती है उसको शौषिररोग जानना चाहिए ॥३५॥

महाशौषिरके लक्षण ।

दन्ताश्चलन्ति वेष्टेभ्यस्तालु चाप्यवदीर्य्यते । यस्मिन् स सर्वजो व्याधिर्महाशौषिरसंज्ञितः ॥ ३६ ॥

जिसमें त्रिदोषके कुपित होनेसे दाँत मसूढोंसे अलग होकर हिलने लगें और तालुवा फटजाय (मसूढे पकजाँय और मुख अत्यन्त पीडित होय) तो इस रोगको महाशौषिर कहते हैं । (यह रोग मनुष्यको सात दिनमें मारदेता है । क्योंकि भोज कहता है कि—"यह महाशौषिररोग सात रात्रिमें प्राणोंका नाश करदेता है") ॥ ३६ ॥

परिदरके लक्षण ।

दन्तमांसानि शीर्य्यन्ते यस्मिन् ष्ठीवति चाप्यसृक् । पित्तासृक्कफजो व्याधिर्ज्ञेयः परिदरो हि सः ॥ ॥ ३७ ॥

जिसमें मसूढोंका मांस गलजाय और थूकते समय रुधिर गिरे उसको परिदररोग कहते हैं । यह रोग पित्त रुधिर और कफके प्रकोपसे होता है ॥ ३७ ॥

उपकुशके लक्षण ।

वेष्टेषु दाहः पाकश्च ताभ्यां दन्ताश्चलन्ति च । अत्यर्दिताः प्रस्रवन्ति शोणितं मन्दवेदनम् ॥ ३८ ॥ आध्मायन्ते च्युते रक्ते मुखं पूतिश्च जायते । यस्मिन्सोपकुशो नाम पित्तरक्तकृतो गदः ॥ ३९ ॥

जिसमें मसूढोंमें दाह और पाक होता है, तथा उन दोनों कारणोंसे दाँत हिलने लगते हैं, मसूढोंके अत्यन्त पीडित होनेसे अल्पवेदनायुक्त रुधिर गिरने लगाता है और रुधिरके गिरने पर मसूढे तत्काल सूजजाते हैं और मुखमें दुर्गंध आती है तो वह उपकुश नामक रोग होता है यह रोग पित्त तथा रुधिरके प्रकोपसे होता है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

वैदर्भके लक्षण ।

घृष्टेषु दन्तमांसेषु संरम्भो जायते महान् । भवन्ति चञ्चला दन्ताः स वैदर्भोऽभिघातजः ॥ ४० ॥

जब मसूढोंके घिसनेसे अत्यन्त सूजन हो जाती है और दाँत हिलने लगते हैं (और वेदना दाह एवं पाक होता है) तो उस रोगको वैदर्भ कहते हैं । यह रोग काष्ठ आदिकी चोट लगनेसे उत्पन्न होता है ॥ ४० ॥

खल्लिवर्द्धनके लक्षण ।

मारुतेनाधिको दन्तो जायते तीव्रवेदनः । खल्लिवर्द्धनसंज्ञोऽसौ संजाते रुक् च शाम्यति ॥ ४१ ॥

वातके कुपित होनेसे दांतके ऊपर दांत जम जाती है जमते समय उसमें पीडा होती है और जब वह जमजाता है तब पीडा शमन होजाती है, इस रोगको खल्लिवर्द्धन कहते हैं ॥ ४१ ॥

करालके लक्षण ।

शनैः शनैः प्रकुरुते वायुर्दन्तसमाश्रितः । करालान्विकटान्दन्तान्करालो न च सिध्यति ॥ ४२ ॥

जब दांतोंमें स्थित वायु शनैः शनैः दांतोंको ऊँचा नीचा, टेढा, तिरछा कर देता है तब उसको कराल कहते हैं । यह रोग असाध्य है ॥ ४२ ॥

अधिमांसके लक्षण ।

हानव्ये पश्चिमे दन्ते महाञ्छोथो महारुजः । लालास्रावी कफकृतो विज्ञेयः सोऽधिमांसकः ॥ ४३ ॥

जिसमें पीछेकी डाढके नीचे अत्यन्त सूजन हो, तीव्र पीडा हो और अत्यन्त लार गिरे उस रोगको अधिमांस कहते हैं, यह कफसे उत्पन्न होता है ॥४३॥

पांच प्रकारकी दन्तनाडियोंके लक्षण ।

दन्तमूलगता नाड्यः पञ्च ज्ञेया यथेरिताः ॥ ४४ ॥

जिस प्रकार नाडीव्रणमें वात, पित्त, कफ, सन्निपात और शल्यसे उत्पन्न हुई पांच प्रकारकी नाडी कही है उसी प्रकार पांच प्रकारकी नाडी दाँतोंके मसूढोंमें होती है । इस प्रकार इनके लक्षण नाडीव्रणाधिकारमें कहे अनुसार जानने चाहिये ॥ ४४ ॥

दन्तरोगका निदान ।

दीर्यमाणेष्विव रुजा भृशं दन्तेषु जायते । दालनो नाम स व्याधिः सदागतिनिमित्तजः ॥ ४५ ॥

जिसके दाँतोंमें चीरनेसरीखी अत्यन्त पीडा हो, उसको दालन रोग कहते हैं । यह रोग वातके प्रकोपसे होता है ॥ ४५ ॥

कृमिदन्तके लक्षण ।

कृष्णच्छिद्रश्चलस्रावी ससंरम्भो महारुजः । अनिमित्तरुजो वातात्स ज्ञेयः कृमिदन्तकः ॥ ४६ ॥

वातके कुपित होनेसे दाँतोंमें काले छिद्र पड जाते हैं, दाँत हिलने लगते हैं, उनमेंसे स्राव होता है, पीडा अधिक होती है, सूजन होती है और विनाकारण दुखते हैं उसको कृमिदन्तरोग कहते हैं ॥ ४६ ॥

भंजनके लक्षण ।

वक्रं वक्रं भवेद्यस्य दन्तभङ्गश्च जायते । कफवातकृतो व्याधिः स भञ्जनकसंज्ञितः ॥ ४७ ॥

जिसमें मुख टेढा होजाय और दांत टूट जाय उसको दन्तभञ्जन कहते हैं । यह रोग कफवातज है ॥ ४७ ॥

दन्तहर्षके लक्षण ।

शीतरूक्षप्रवाताम्ल--स्पर्शानामसहा द्विजाः । पित्तमारुतकोपेन दन्तहर्षः स नामतः ॥ ४८ ॥

जिसमें दांत-शीत, रूक्ष, वायु और खट्टे पदार्थ आदिके स्पर्शको न सह सकें उसको दंतहर्ष कहते हैं । यह पित्त और वातके प्रकोपसे होता है ॥ ४८॥

दन्तविद्रधिके लक्षण ।

दन्तमांसमलैः सास्रैर्बाह्यतः श्वयथुर्महान् । सदाहरुक् स्रवेद्भिन्नः पूयास्रं दन्तविद्रधिः ॥ ४९ ॥

दांतोंके मांसमें स्थित वात, पित्त, कफ और रुधिर इन दोषोंके प्रकोपसे बाहर दाह तथा वेदनायुक्त अत्यन्त सूजन उत्पन्न होती है । उसके छेदनेसे राध और रुधिर निकलता है । इस रोगको दंतविद्रधि कहते हैं ॥ ४९ ॥

दन्तशर्कराके लक्षण ।

मलो दन्तगतो यस्तु कफमारुतशोषितः । शर्करेव खरस्पर्शा सा ज्ञेया दन्तशर्करा ॥ ५० ॥

कफ और वातसे दांतोंका जो मैल सूख कर खांडके समान खरखरा स्पर्शवाला मालूम होता है उस रोगको दंतशर्करा कहते हैं ॥ ५० ॥

कपालिकाके लक्षण ।

कपालेष्विव दीर्य्यन्तु दन्तानां सैव शर्करा । कपालिकेति सा ज्ञेया सदा दन्तविनाशिनी ॥ ५१ ॥

उसी दंतशर्करारोगमें मैलसहित दांत कपाल अर्थात् खिपडेके समान गिरें और टूटे उसको कपालिका कहते हैं । यह दांतोंको सदैव तोडँ तोडकर गेरता है ॥ ५१ ॥

श्यावदन्तके लक्षण ।

योऽसृङ्मिश्रेण पित्तेन दग्धोदन्तस्त्वशेषतः । श्यावतां नीलतां वापि गतः स श्यावदन्तकः ॥ ५२ ॥

जिसमें रुधिरसहित पित्तसे जले हुएके समान दांत बिल्कुल काले अथवा नीले हो जाते हैं उस रोगको श्यावदंतक कहते हैं ॥ ५२ ॥

हनुमोक्षके लक्षण ।

हनुमोक्ष इति ज्ञेयो व्याधिरर्दितलक्षणः ॥ ५३ ॥

वातसे जिस २ हनुसंधिमें अभिघात होनेसे दाँत हिलने लगें उसको हनुमोक्ष कहते हैं । इसके लक्षण अर्दितरोगके समान जानने ॥ ५३ ॥

दन्तरोगकी चिकित्सा ।

सामान्येन निदानेन ये निर्दिष्टा मुखामयाः। तान्विदित्वा त्विदं कुर्य्याद्यथास्वं भेषजक्रियाम् ॥ ५४ ॥

सामान्य निदानके द्वारा मुखरोगोंके जो लक्षण कहे हैं उन सबको अच्छेप्रकारसे विचारकर यथादोषानुसार औषधकी कल्पना करके चिकित्सा करे ॥ ५४ ॥

तेजोह्वामागधीमूलं समङ्गाकटुकाघनम् । पाठाज्योतिष्मतीलोध्रं दार्विकुष्ठश्च चूर्णयेत ॥ ५५॥ दन्तानां घर्षणं कंडूरक्तस्रावरुजापहम् ॥ ५६ ॥

तेजबल, पीपलामूल, मजीठ, कुटकी, नागरमोथा, पाढ, मालकांगनी, लोध, दारुहलदी और कूठ इन सबको एकत्र चूर्ण करके दाँतोंको घिसनेसे दांतोंकी खुजली, रुधिरका गिरना और पीडा दूर होती है ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

शीतादे हृतरक्ते तु तोयं नागरसर्षपान् । निष्क्वाथ्य त्रिफलाश्चापि कुर्य्याद्गंडूषधारणम् । प्रियङ्गवश्च मुस्ता च त्रिफला च प्रलेपनम् ॥ ५७ ॥

शीताद नामक दन्तरोगमें रुधिर निकलवानेके पश्चात् जलमें सोंठ, सरसों, हरड, बहेडा और आमला इनका काथ बनाकर उस काथके कुल्ले करे । तथा फूलप्रियंगु, नागरमोथा और त्रिफला इन तीनोंको एकत्र पीसकर प्रलेप करे ॥ ५७ ॥

काशीस-लोध्र-कृष्णा-मनःशिलास-प्रियंगुतेजोह्वाः । एषां चूर्णं मधुयुक्तं शीतादे पूतिमांसहरम् ॥ ५८ ॥

हीराकसीस, लोध, पीपल, मैनशील, फूलप्रियंगु और तेजबल इनके चूर्णको शहदमें मिलाकर शीताद रोगमें प्रयोग करे तो दुर्गन्धित सड़ाहुआ मांस दूर होता है ॥ ५८ ॥

प्रपौण्डरीकमधुकत्रिफलोत्पलसाधितम् । तैलं घृतं वा वातघ्नं शीतादेः संप्रशस्यते ॥ ५९ ॥

पुण्डेरिया, मुलैठी, त्रिफला और कमल इनके कल्कके द्वारा सिद्ध किया हुआ घृत अथवा तेल, अथवा वातनाशक औषधियोंके कल्कके द्वारा पकाया हुआ तेल या घृत शीतादरोगको नाश करनेके लिये श्रेष्ठ है ॥ ५९ ॥

कुष्ठं दार्वीलोध्रमब्दं समङ्गा, पाठातिक्ता तेजनी पीतिका च । चूर्णं शस्तं घर्षणं तद्विजानां, रक्तस्रावं हन्ति कंडूं रुजाश्च ॥ ६० ॥

कूठ, दारुहलदी, लोध, नागरमोथा, मजीठ, पाढ, कुटकी, तेजबल और पियाँबासा इनका चूर्ण करके दांतोंको घिसनेसे रुधिरस्राव, खुजली और पीडा दूर होती है ॥ ६० ॥

पाठालोध्रसमङ्गापर्पटगदतेजनीनिशायुगलैः । कंडू रुक्स्रावयुतं चूर्णीकृतैर्विघर्षयेच्छ्लक्ष्णैः ॥ ६१ ॥

पाढ, लोध, मजीठ, पित्तपापडा, कूठ, तेजबल हलदी और दारुहलदी इनको वारीक पीसकर दांतोंमें घिसनेसे खुजली, पीडा, रुधिरका गिरना और समस्त दांतोंके रोग दूर होते हैं ॥ ६१ ॥

दन्तपुप्पुटके कार्यं तरुणे रक्तमोक्षणम् । शिरोविरेकश्च हितो नस्यं स्निग्धश्च भक्षणम् ॥ ६२ ॥

दन्तपुप्पुटरोगमें तत्कालही रुधिर निकलवाना चाहिये । तथा शिरोविरेचन, नस्य और स्निग्धभोजन करना चाहिये ॥ ६२ ॥

तिलभवबीजपावकसिततरसिद्धार्थकल्पितः कवलः । उष्णांबुसंप्रयुक्तो द्विजतलसंजातशोथहरः ॥ ६३ ॥

तिल, चीता और सफेद सरसों इनको एकत्र पीसकर गरम जलमें मिलाकर कवल धारण करे, इससे दांतोंकी सूजन दूर होजाती है ॥ ६३ ॥

विस्राविते दन्तवेष्टे व्रणन्तु प्रतिसारयेत् । लोध्रं पतङ्गमधुकलाक्षाचूर्णैर्मधूत्तरैः ॥ ६४ ॥

दन्तवेष्टरोगमें जो रुधिर गिरता हो तो लोध, पतंग, मुलैठी और लाख इनके चूर्णको शहदमें मिलाकर व्रणके ऊपर अंगुलीसे घिसे ॥ ६४ ॥

गण्डूषे क्षीरिणो योज्याः सक्षौद्रघृतशर्कराः ॥ ६५ ॥ चलदन्तस्थिरकरं कार्यं बकुलचर्वणम् ॥ ६६ ॥

वटादि पंचक्षीरीवृक्षोंका काथ बनाकर उसमें शहद, घी और मिश्री डालकर कुल्ले करे । तथा मौलसिरीकी छालको चर्वण करे तो हिलते हुए दांत स्थिर होजाते हैं ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

भद्रमुस्तादिवटिका ।

भद्रमुस्ताभयाव्योषविडङ्गारिष्टपल्लवैः । गोमूत्रपिष्टैर्वटिकां छायाशुष्कां प्रकल्पयेत् ॥ ६७ ॥ तां निधाय मुखे सुप्याच्चलदन्तांतरो नरः । नातः परतरं किञ्चिच्चलद्दन्तस्य भेषजम् ॥ ६८ ॥

भद्रमोथा, हरड, त्रिकुटा, वायविडंग और नीमके पत्ते इन सबको एकत्र गोमूत्रमें पीसकर गोली बना लेवे । फिर उस गोलीको छायामें सुखा सोते समय मुखमें रखकर सो जावे तो हिलते हुए दांत स्थिर हो जाते है । हिलते हुए दांतोंकी इससे उत्तम अन्य औषध नहीं है ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

दशमूलीकषायेण तैलं वा घृतमेव च । विपक्वं कवले शस्तं सक्षौद्रं दन्तधावने ॥ ६९ ॥

दशमूलके काथमें तैल अथवा घृतको पकाकर उसमें शहद मिलाकर दन्तधावनके समय उसका कवल धारण करे ॥ ६९ ॥

दन्तचाले दन्तहर्षे मुखरोगे च वातिके । मुखोष्णमथवा शीतं तैलकल्कोदकं हितम् ॥ ७० ॥

हिलते हुए दांतोंमें, दन्तहर्षमें और वातजमुखरोगमें शीतल औषधियोंके द्वारा पकाया हुआ मुखोष्ण तेल या कल्क अथवा औषधियोंका क्वाथ हितकारी है ॥ ७० ॥

शौषिरे हृतरक्ते तु लोध्रमुस्तारसाञ्जनैः । सक्षौद्रैः शस्यते लेपो गण्डूषे क्षीरिणो हिताः ॥ ७१ ॥

शौषिररोगमें दांतोंमेंसे, रुधिर निकलवानेके पश्चात् लोध, नागरमोथा और रसौत इनका चूर्ण करके शहद मिलाकर लेप करना चाहिए और पंचक्षीरी वृक्षोंके क्वाथके गण्डूष (कुल्ले) करने चाहिए ॥ ७१ ॥

माक्षिकं पिप्पलीसर्पिर्मिश्रितं धारयेन्मुखे । दन्तशूलहरं प्रोक्तं प्रधानमिदमौषधम् ॥ ७२ ॥

शहद, पपिल और घी इनको एकत्र मिलाकर मुखमें धारण करे । दांतोंकी पीडाको शमन करनेके लिए यह प्रधान औषध है ॥ ७२ ॥

हिंगुकट्फलकाशीसस्वर्जिकाकुष्ठवल्कजम् । रदपीडां जयत्याशु वक्त्रस्थं दशने धृतम् ॥ ७३ ॥

हींग, कायफल, कसीस, सज्जी और कूठकी छाल इन सबको एकत्र पीसकर मुखके भीतर दांतोंमें रखने से दांतोंकी पीडा शीघ्र शान्त होती है ॥ ७३ ॥

शारिवोत्पलयष्ट्याह्वशारिवागुरुचन्दनैः । क्षीरे दशगुणे सिद्धं सर्पिर्नस्ये च पूजितम् ॥ ७४ ॥

शारिवा, कमल, मुलैठी, अनन्तमूल, अगर और चन्दन इनको दशगुने दूधमें डालकर घीको पकावे । इस घीको नाश देनेसे दांतोंकी पीडा शांत होती है ॥ ७४ ॥

क्रियां परिदरे कुर्य्याच्छीतादोक्तां विचक्षणः । संशोध्योभयतः कार्य्यं शिरश्चोपकुशे तथा ॥ ७५ ॥

परिदररोगमें शीतादरोगोक्त चिकित्सा करे । तथा वमन और विरेचन देवे और उपकुशरोगमें शिरोविरेचन देवे ॥ ७५ ॥

काकोदुम्बरिकापत्रैर्व्रणं विस्रावयेद्भिषक् । लवणैः क्षौद्रयुक्तैश्च सव्योषैः प्रतिसारयेत् ॥ ७६ ॥

वैद्य, कठूमरके पत्तोंसे दांतोंके व्रणको घिसकर रुधिर निकलवावे तथा सैंधानमक, शहद और त्रिकुटेका चूर्ण इनको एकत्र मिलाकर धीरे २ दांतोंको घिसवावे ॥ ७६ ॥

पिप्पलीसर्षपाः श्वेता नागरं नैचुलं फलम् । सुखोदकेन संसृष्टं कवलश्चापि धारयेत् ॥ ७७ ॥

पीपल, सरसों, फटकरी, सोंठ और जलवेंतके फल इनको पीसकर मन्दोष्ण जलमें मिलाकर कवल धारण करावे ॥ ७७ ॥

घृतं मधुरकैः सिद्धं हितं कवलनस्ययोः । क्षौद्रद्वितीयाः पिप्पल्याः कवलश्चात्र कीर्त्तितः ॥ ७८ ॥

इसमें मधुर औषधियोंके द्वारा घृतको पकाकर कवल धारण करना और नस्य देना उपयोगी है तथा दोनों प्रकारकी पीपलोंको शहदमें मिलाकर कवल धारण करना श्रेष्ठ है ॥ ७८ ॥

पटोलनिम्बत्रिफलाकषायश्चात्र धावने । शिरोविरेकश्च हितो धूमो वैरेचनश्च यः ॥ ७९ ॥

इसमें दांतोंको धोनेके लिए पटोलपत्र, नीम और त्रिफला इनका क्वाथ हितकर है तथा शिरोविरेचन और विरेचन करानेवाला धूम्रपान करना हितकारी है ॥ ७९ ॥

नाडीव्रणहरं कर्म्म दन्तनाडीषु कारयेत् । यद्दन्तमध्ये जायेत नाडी तं दन्तमुद्धरेत् ॥ ८० ॥

दंतनाडीव्रणमें नाडीव्रणके समान चिकित्सा करे वह नाडी जिस दांतमें हो उस दांतको उखाड डालना चाहिए॥ ८० ॥

छित्वा मांसानि शस्त्रेण यदि नोपरिजो भवेत् । शोधयित्वा दहेच्चापि क्षारेण ज्वलनेन वा ॥ ८१ ॥

यदि वह नाडी ऊपरके दांतमें हो तो उस स्थानके मांसको शस्त्रसे छेदन करके निकाल डाले तथा शोधन कर क्षार भरे अथवा अग्निसे दग्ध करे ॥ ८१ ॥

भिनत्त्युपेक्षिते दन्ते हनुकास्थिगतिर्ध्रुवम् । समूलं दशनं तस्मादुद्धरेद्भग्नमास्थि च ॥ ८२ ॥

ऐसे दांतकी उपेक्षा करनेसे अर्थात् नहीं उखाडनेसे अर्थात् उसमें राध निकलने लगती है, उस नाडीकी ठोडीकी हड्डीमें गति होजाती है, इसकारण ऐसे दांतोंको और टूटी हुई दांतकी हड्डीको जड सहित उखाड डाले ॥ ८२ ॥

उद्धृते तूत्तरे दन्ते शोणितं संप्रसिच्यते । रक्तातियोगात्पूर्वोक्ता घोरा रोगा भवंति च ॥ ८३ ॥

ऊपरका दांत उखाडनेसे रुधिर अधिक बहने लगता है और उस रुधिरके अधिक बहनेसे पूर्वोक्त भयंकर रोग उत्पन्न होते हैं ॥ ८३ ॥

काणः सञ्जायते जन्तुरर्दितं चास्य जायते । चलमप्युत्तरं दन्तमतो नापहरेद्भिषक् ॥ ८४ ॥

वह रोगी उस ओरके नेत्रसे काणा होजाता है अथवा अर्दितरोगसे पीडित होता है इस कारण बुद्धिमान् वैद्य ऊपरके हिलते हुए दांतोंको भी नहीं उखाडे ॥ ८४ ॥

धावने जातिमदनस्वादुकण्टकखादिरम् ॥ ८५ ॥

चमेलीके पत्ते, मैनफल, गोखुरू और खैर इनके काथसे दांतोंको धोवे ॥ ८५ ॥

कषायैर्जातिमदन-कण्टकीस्वादुकण्टकैः । लोध्रखदिरमञ्जिष्ठायष्ट्याह्वैश्चापि तत्कृतम् । तैलं संशोधनं तद्धि हन्याद्दन्तगतां गतिम् ॥ ८६ ॥

चमेलीके पत्ते, मैनफल, कटेरी और गोखुरू इनके काथको अथवा लोध, खैर, मजीठ और मुलैठी इनके क्वाथके द्वारा तेलको पकावे । यह तेल-दांतोंको शुद्ध करता है और दन्तगतनाडीकी गति (दांतोंके नसूर) को दूर करता है ॥ ८६ ॥

कषायं परतः कृत्वा पिष्ट्वा लोध्रादिकल्कितम् । कण्टकीमदनो योज्यः स्वादुकण्टो विकङ्कतः ॥ एभिः कृतं कषायमपि नाडीधावनार्थं योज्यम् ८७

बडी कटेरी, मैनफल, गोखुरू और विकंकत इनका क्वाथ बनाकर उसमें लोध आदि औषधियोंके कल्कको मिलाकर उसको अथवा केवल क्वाथको नाडीको धोनेके लिये प्रयोग करे ॥ ८७ ॥

दन्तोपक्रमः ।

सुखोष्णाः स्नेहकवलाः सर्पिषस्त्रिवृतस्य च । निर्यूहश्चानिलघ्नानां दन्तहर्षप्रमर्दनाः ॥ ८८ ॥

दंतहर्षरोगमें घृत, तैलादि स्नेहोंका अथवा निसोतके कल्कके द्वारा पकाये हुए घृतका सुहाता २ कवल और काथ दंतहर्षरोगको दूर करता है ॥ ८८ ॥

स्नैहिकश्च हितो धूमो नस्यं स्नैहिकमेव च । पेया रसा यवाग्वश्च क्षीरं सन्तानिका घृतम् ॥ शिरोबस्तिर्हितश्चापि क्रमो यश्चानिलापहः ॥८९॥

दंतहर्षरोगमें स्नैहिक धूम्रपान, स्नैहिक नस्य, पेया, रस, यवागू, दूधकी मलाई, घी, शिरोवस्ति और वातनाशक क्रिया ये सब हितकारक हैं ॥ ८९ ॥

दन्तानां तोदहर्षौ तु जायेते वाततस्तयोः । उष्णतैलाज्यवातघ्ननिर्यूहाः कवलग्रहाः ॥९० ॥

वातके प्रकोपसे दांतोंमें तोडनेसरीखी पीडा और हर्ष हो तो उन दोनोंको शमन करनेके लिए उष्ण तेल, घी, वातनाशक औषधियोंका क्वाथ और कवल इनका प्रयोग करे ॥ ९० ॥

अहिंसन्दन्तमूलानि शर्करामुद्धरेद्भिषक् । लाक्षाचूर्णैर्मधुयुतैस्ततस्तां प्रतिसारयेत् ॥ ९१ ॥

दंतशर्करा रोग हो तो वैद्य दाँतोंकी जड़ोंको काटती हुई दंतशर्कराको शस्त्रसे चीरकर निकाल डाले। फिर लाखके चूर्णको शहदमें मिलाकर दाँतोंमें मले ॥ ९१ ॥

दन्तहर्षक्रियां चापि कुर्य्यान्निरवशेषतः । कपालिका कृच्छ्रतमा तत्राप्येषा क्रिया हिता ॥ ९२ ॥

दंतहर्षमें जो चिकित्सा कही है वही सब दंतशर्करामें भी करनी चाहिये। कपालिका नामक दंतरोग यद्यपि अत्यन्त कष्टसाध्य है तथापि उसपर दंतहर्षके समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ९२ ॥

कृमिदन्तकमादौ तु सकृमिं गुडपूरणम् । दहेच्छलाकया क्षीरमार्कवं कृमिनाशनम् ॥ ९३ ॥

कृमिदंतरोगमें प्रथम कृमियुक्त दाँतोंमें गुडको भरे, फिर लोहेकी शलाकासे दहन करे पश्चात् कृमिनाशक आकका दूध भरे ॥ ९३ ॥

जयेद्विस्रावणैः स्विन्नमचलं कृमिदन्तकम् । तथावपीडैर्वातघ्नैः स्नेहगंडूषधारणैः । भद्रदार्व्यादिवर्षाभूलेपैः स्निग्धैश्च भोजनैः ॥ ९४ ॥

स्थिरपनको प्राप्त हुए कृमिदंतक नामक रोगको स्वेदन देकर रुधिर निकलवावे । तथा वातनाशक औषधियोंके अवपीडनोंसे, स्नेहपदार्थके द्वारा कुल्ले करनेसे,भद्रदारु आदि गणके तथा पुनर्नवेके प्रलेपोंसे और स्निग्धभोजनसे दूर करे ॥ ९४ ॥

कृमिदन्तापहं कोष्णं हिंगुदन्तान्तरे स्थितम् ॥ ९५ ॥

हींगको कुछ गरम करके दाँतोंके बीचमें अर्थात् डाढके तले दबानेसे कृमिदंतरोग दूर होता है ॥९५॥

बृहती भूमिकदम्बं पञ्चांगुलकण्टकारिकाक्वाथः । गंडूषस्तैलयुतः कृमिदन्तवेदनाशमनः ॥ ९६ ॥

बड़ी कटेरी,भूमिकदम्ब, अण्ड और कटेरी इनका क्वाथ बनाकर उसमें तेल मिलाकर उससे कुल्ले करनेसे कृमिदंतकी पीडा शांत होती है ॥ ९६ ॥

नीलीवायसजङ्घास्नुग्दुग्धीनां तु मूलमेकैकम् । सञ्चर्व्य दशनविधृतं दशनकृमिपातनं प्राहुः ॥ ९७ ॥

नीली, काकजंघा, थूहर और दुद्धी इन प्रत्येककी जडको चबाकर दांतोंमें रखनेसे कृमिदंतरोग नष्ट होता है ॥ ९७ ॥

बीजपूरकमूलस्य वाकुचीनां तथैव च । भागाभ्यां तु समं कृत्वा पिष्ट्वा वर्त्तिन्तु कारयेत् ॥ ९८ ॥ एषा दन्तस्थवर्त्तिस्तु दन्तैर्दन्तैर्निपीडयेत् । सद्योऽवस्थितमात्रा तु कृमिदन्तरुजापहा ॥ ९९ ॥

बिजौरे नींबूकी जड और बावचीकी जड़ इन दोनोंको समान भाग लेकर एकत्र पीसकरके बत्ती बना लेवे । इस बत्तीको दांतोंमें धारण करे और दाँतोंसे चावे । इस प्रकार करनेसे दंतकृमिरोग तत्काल दूर होजाता है ॥ ९८ ॥ ९९ ॥

दन्तीसुवर्णदुग्धाकासीसविडङ्गवत्सकफलानाम् । चूर्णैरर्कस्नुह्योः पयोभिर्वा पूरणं श्रेष्ठम् ॥ १०० ॥

दंती, सत्यानासी,कटेरी, कसीस,वायविडंग और इन्द्रजौ इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण बनाकर दांतोंमें रखनेसे अथवा आक या थूहरके दूधको दांतोंमें भरनेसे दांतोंके कृमि दूर होते हैं ॥ १०० ॥

विदार्य्यादितैल ।

चलमुद्धृत्य च स्थानं विदहेच्छुषिरस्य च । ततो विदारीयष्ट्याह्वशृङ्गाटककसेरुभिः । तैलं दशगुणे क्षीरे सिद्धं नस्ये हितं भवेत् ॥ १०१ ॥

शौषिररोगके हिलते हुए दांतको उखाड़ कर उस स्थानको अग्निसे दग्ध करे। पश्चात् विदारीकंद,मुलैठी,

सिंघाडे और कसेरू इनके कल्कके द्वारा दशगुने दूधमें तेलको पकाकर उस तेलकी नस्य देवे ॥ १०१ ॥

हनुमोक्षे समुद्दिष्टां कुर्यादर्दितवत्क्रियाम् ॥ १०२ ॥

हनुमोक्षदंतरोगमें अर्दितके समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १०२ ॥

बकुलाद्यतैल ।

बकुलस्य फलं लोध्रं वज्रवल्लीकुरण्टकम् । चतुरंगुलबब्बोलवाजिकर्णारिमाशनम् ॥ १०३ ॥ तेषां तु क्वाथकल्काभ्यां तैलं पक्वं मुखे धृतम् । स्थैर्यं करोति दन्तानां चलतां पवनेन च ॥ १०४ ॥

मौलसिरीके फल, लोध, वज्रवल्ली, पियावाँसा, अमलतासकी जड, बबूर, अश्वकर्ण, खैर और विजयसार इनके काथ और कल्कके द्वारा तेलको पकावे। यह तेल मुखमें धारण करनेसे वायुसे हिलते हुए दांतोंको स्थिर करता है ॥ १०३ ॥ १०४ ॥

सहचराद्यतैल ।

तुलां पृतं नीलसहाचरस्य द्रोणेऽम्भसः संश्रययेद्यथावत् । पूते चतुर्भागरसे तु तैलं पचेच्छनैरर्द्धपलप्रयुक्तैः ॥ १०५ ॥ कल्कैरनन्ताखदिरारिमेदाजंब्वाम्रयष्टीमधुकोत्पलानाम् । तत्तैलमाश्विव धृतं मुखेन स्थैर्यं द्विजानां विदधाति सद्यः ॥ १०६ ॥

नीले फूलके पियावांसाको १ तुला परिमाण लेकर एक द्रोण जलमें पकावे । जब पकते पकते चौथाई भाग जल बाकी रहजाय तब उतारकर छान लेवे । फिर उसमें घी अथवा उत्तम तिलका तेल तथा धमासा, खैर, दुर्गन्धित खैर, जामुन और आमकी छाल, मुलैठी और कमल इन प्रत्येकका कल्क दो २ तोले डालकर शनैः शनैः घृतको या तेलको पकावे । इस तेलको मुखमें धारण करनेसे तत्काल दांत स्थिर हो- जाते हैं ॥ १०५ ॥ १०६ ॥

हरिद्राद्यतैल ।

उभे हरिद्रे पिप्पल्यः सैन्धवं देवदारु च । विडङ्गं चित्रकं बिल्वं रोहिषस्य च पल्लवाः ॥ १०७ ॥ गन्धं सौवर्चलं द्राक्षा मञ्जिष्ठा मधुकं बला । वेतसस्य च मूलानि पद्मकोशीरचन्दनैः ॥ १०८ ॥ बिल्वप्रमाणैः कल्कैस्तु तैलप्रस्थं विपाचयेत् । द्विगुणं च पयो दद्यात् तत्सिद्धं नस्यतां नयेत् ॥ १०९ ॥ श्लेष्मजं सन्निपातोत्थं शिरोरोगं नियच्छति । उपजिह्वां चमालाश्च कण्ठशालूकमर्बुदम् ॥ ११० विदारिकां मांसपाकं मुखशोफं गलग्रहम् । दन्तचालं हनुस्तम्भं तैलमेतन्नियच्छति ॥ १११ ॥

हलदी, दारुहलदी, पीपल, सैंधानमक, देवदारु, वायविडंग, चीता, बेलगिरी, सुगन्धित रोहिसतृणके पत्ते, कालीअगर, कालानमक, दाख, मजीठ, मुलैठी, खिरैंटी, वेंतकी जड, पद्माख, खस और चन्दन इन प्रत्येकके चार चार तोले कल्कके साथ १ प्रस्थ तेलको दुगुने दूधमें पकावे । यह तेल नस्य द्वारा प्रयोग करनेसे कफज और सन्निपातज शिरोरोग, उपजिह्वा, कण्ठमाला, कण्ठशालूक, अर्बुद, विदारिका, मांसपाक, मुखशोष, गलग्रह, दंतचालन और हनुस्तम्भरोगको दूर करता है ॥ १०७-१११ ॥

लाक्षाद्यतैल ।

तैलं लाक्षारसं क्षीरं पृथक् प्रस्थं समं पचेत् । चतुर्गुणमितैः क्वाथैर्द्रव्यैश्च पलसंमितैः ॥ ११२ ॥ लोध्रकट्फलमञ्जिष्ठापद्मकेशरपद्मकैः । चन्दनोत्पलयष्ट्याह्वैस्तैलं गंडूषधारणम् ॥ ११३ दालनं दन्तचालश्च दन्तमोक्षं कपालिकाम् । शीतादं पूतिवक्त्रश्च ह्यरुचिं विरसास्यताम् ॥ ११४ ॥ हन्यादाशु गदानेतान् कुर्य्याद्दन्तानपि

स्थिरान्। लाक्षादिकमिदं तैलं दन्तरोगेषु पूजितम् ॥ ११५ ॥

तिलका तेल, लाखका रस और उत्तम गायका दूध ये प्रत्येक पदार्थ एक एक प्रस्थ तथा लोध, कायफल, मजीठ, कमलकेशर, पद्माख, चन्दन, कमल और मुलैठी इनका उक्त औषधियोंसे चौगुना काथ और इन्हीं औषधियोंका चार चार तोले कल्क लेवे। फिर सबको एकत्र मिला कर तेलको पकावे। यह तेल गण्डूष धारण करनेसे दालन, दन्तचालन, दंतमोक्ष, कपालिका, शीताद, मुखकी दुर्गंध, अरुचि और मुखकी विरसता इन सब रोगोंको दूर करता है तथा दातोंको स्थिर करता है। यह लाक्षादितैल दन्तरोगोंमें अत्यन्त हितकारी है ॥ ११२-११५ ॥

इरिमेदाद्यतैल।

इरिमेदत्वक् पलशतमभिनवमापोथ्य खण्डशः कृत्वा। तोयाढकैश्चतुर्भिर्निष्काथ्यश्चतुर्थशेषेण ॥ ११६ ॥ क्काथेन तेन मतिमांस्तैलस्याद्धाढकं पचेच्छनकैः। कल्कैरक्षसमांशैर्मञ्जिष्ठालोध्रमधुकानाम् ॥११७॥ इरिमेदखदिरकट्फललाक्षान्यग्रोधमुस्तसूक्ष्मैला। कर्पूरागुरुपद्मकलवङ्गकङ्कोलजातीनाम् ॥ ११८॥ फलपतङ्गगैरिकवरांगगजकुसुमधातकीनाश्च। सिद्धं भिषग्विदध्यादिदं मुखोत्थेषु रोगेषु॥ ॥११९॥ परिशीर्णदन्तविद्रधिशौषिरशीतादइन्तहर्षेषु। कृमिदन्तदरणचलितप्रदुष्टमांसावशीर्णेषु ॥ मुखदौर्गन्ध्येषु च कार्यं प्रागुक्तेष्वामयेषु तैलमिदम् ॥ १२० ॥

नवीन दुर्गंध खैरकी छालको १०० पल लेकर टुकडे २ करके चार आढक जलमें पकावे जब पकते २ जल चौथाई भाग शेष रह जाय तब उतारकर छान लेवे। फिर उस काथमें आधा आढक तेल तथा मजीठ, लोध, मुलैठी, दुर्गंध खैर, कायफल, लाख, वड, नागरमोथा, छोटीइलायची, कपूर, अगर, पद्माख, लौंग, शीतलचीनी, जायफल, पतंग, गेरु, दालचीनी, नागकेशर और धायके फूल इन प्रत्येकका कल्क एक एक तोला मिलाकर यथा विधि धीरे धीरे तेलको पकावे। फिर वैद्य इस तेलको सर्व प्रकारके मुखरोग, शीर्णदन्त, दन्तविद्रधि, शौषिर, शीताद, दन्तहर्ष, कृमिदन्त, दन्तचालन, दुष्टमांस, शीर्णमांस मुखकी दुर्गंध और पूर्वोक्त सर्व प्रकारके मुखरोगोंमें सेवन करावे ॥ ११६-१२० ॥

स्वल्पखदिरवटिका।

खदिरस्य तुलां सम्यग् जलद्रोणे विपाचयेत। शेषेऽष्टभागे तत्रैव प्रतिवापं प्रदापयेत ॥ १२१ ॥ जातिकर्पूरपूगानि कंकोलकफलानि च। इत्येषा गुटिका कार्य्या मुखसौभाग्यवर्धिनी ॥ दन्तौष्ठगलरोगेषु जिह्वातात्वामयेषु च ॥ १२२ ॥

खैरकी उत्तम छालको एक तुला परिमाण लेकर एक द्रोण जलमें पकावे। जब पकते पकते जल आठवाँ भाग बाकी रह जाय तब उसको उतार कर छान लेवे। फिर उस काथमें जायफल, कपूर, सुपारी और कंकोल इन सब औषधियोंको डाल कर दुबारा पकावे। जब वह पक कर खूब गाढा होजाय तब उतार कर गोली बना लेवे इन गोलियोंको मुखमें धारण करनेसे मुखमें सौभाग्यकी वृद्धि होती है। यह वटी दाँत, ओष्ठ, गला, जिह्वा और तालुरोगमें अत्यंत उपयोगी है ॥ १२१ ॥ १२२ ॥

महाखदिरवटिका।

गायत्रिसारतुलयारिमवल्कलानां सार्द्धं तुलायुगलमम्बुघटैश्चतुर्भिः। निष्काथ्यपादमवशेषसुवस्त्रपूतं भूयः पचेदथ शनैर्मृदुपावकेन ॥ १२३ ॥ तस्मिन् घनत्वमुपगच्छति चूर्णमेषां श्लक्ष्णं क्षिपेच्च कवलग्रहभागिकानाम्। एलामृणालसितचन्दनचन्दनानां श्यामातमालविकसानललोहयष्टी ॥ १२४ ॥ लज्जाफलत्रयरसाञ्जनधातकीनां श्रीपुष्पगैरिककटाह्वयकट्फलानाम्। पद्माह्वलोध्रवटरोहयवा-

सकानां मांसीनिशासुरभिवल्कलसंयुतानाम् ॥ १२५ ॥ कंकोलजातिकफकोशलवङ्गकानां चूर्णीकृतानि विदधीत पलांशकानाम् । शीतेऽवतार्य्य घनसारचतुष्पलश्च क्षिप्त्वा कलायसदृशीं गुटिकां प्रकुर्यात् ॥१२६॥ शुष्का मुखे विनिहिता विनिवारयन्ति रोगान् गलोष्ठरसनाद्विजतालुजातान् । कुर्य्यान्मुखे सुरभितां पटुतां रुचिश्च स्थैर्य्यान्वितश्च दशनं रसनालघुत्वम् ॥ १२७ ॥

खैरसार १ तुलापरिमाण और दुर्गंध खैरकी छाल डेढ तुला परिमाण लेकर दोनोंको चार कुम्भ जलमें पकावे । जब पकते पकते जल चौथाई भाग बाकी रह जाय तब उतार कर छान लेवे । फिर इसको दुबारा मन्द मन्द अग्निसे पकावे । जब वह पकते पकते गाढा होजाय तब उसमें इलायची, कमलमूल सफेद चन्दन, लालचन्दन, शारिवा, श्यामतमाल, मजीठ, चीता, अगर, मुलैठी, लज्जावन्ती, त्रिफला, रसौत, धायके फूल, लौंग, गेरु, कायफल, कमलकन्द, पद्माख,लोध, वडके अंकुर, जवासा,वालछड, हलदी, गंधतृण, दालचीनी, कंकोल, जायफल, जावित्री और लवंग, इन प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले मिला देवे । जब वह पक कर स्वयं शीतल हो जाय तब उसको नीचे उतार कर उसमें चार पल कपूर मिला देवे और मटरके समान गोलियां बनालेवे । ये गोलियाँ सुखा कर मुखमें रखनेसे गलरोग, ओष्ठरोग, जिह्वारोग, दन्तरोग, तालुरोग, तथा अन्यान्य सर्व प्रकारके मुखरोगोंको दूर करता है । एवं मुखमें सुगंधि, पटुता, रुचि, दाँतोंमें स्थिरता और जिह्वामें लघुता उत्पन्न करती है ॥१२३-१२७॥

पथ्यापथ्य ।

फलान्यम्लानि शीताम्बुरूक्षान्नं दन्तधावनम् । तथातिकठिनान्भक्ष्यान् दन्तरोगी विवर्जयेत् ॥ १२८ ॥

दंतरोगी खट्टेफल, शीतलजल, रूखा अन्न, दाँतौन करना और अत्यन्त कठिन पदार्थोंका भक्षण ये सब त्याग देवे ॥ १२८ ॥

अथ जिह्वारोगनिदान ।

वातज, पित्तज, कफज, अलास और उपजिह्विका इस प्रकार जीभके पाँच रोग हैं ।

वातजजिह्वारोगके लक्षण ।

जिह्वाऽनिलेन स्फुटिता प्रसुप्ता भवेच्च शाकच्छदनप्रकाशा ।

जिसमें जिह्वा कुछएक फूटसी गई हो, खट्टे,मीठे रसोंके ज्ञानको नहीं जान सकती हो और सागोनवृक्षके पत्तोंके समान खरखरी हो तो वातसम्बन्धी रोग जानना चाहिये ।

पित्तजजिह्वारोगके लक्षण ।

पित्तेन दह्यत्युपचीयते च दीर्घैः सरक्तैरपि कण्टकैश्च ॥ १२९ ॥

पित्तके प्रकोपसे जिह्वा दाहयुक्त बडे २ और लाल २ काँटोंसे युक्त होती है ॥ १२९ ॥

कफजजिह्वारोगके लक्षण ।

कफेन गुर्वी बहुला चिता च मांसोच्छ्रये शाल्मलिकण्टकाभैः ॥ १३० ॥

कफके प्रकोपसे जिह्वा भारी और मोटी होती है तथा उसमें सेमलके काँटोंके समान मांसके काँटोंसे युक्त होती है ॥ १३० ॥

अलासके लक्षण ।

जिह्वातले यः श्वयथुः प्रगाढः सोऽलाससंज्ञः कफरक्तमूर्त्तिः । जिह्वां स तु स्तंभयति प्रवृद्धो मूले च जिह्वा भृशमेति पाकम् ॥ १३१ ॥

कफरक्तके कोपसे जिह्वाके नीचे अत्यन्त कठोर सूजन होती है, उसको अलास कहते हैं । और जब वह अधिक बढजाती है तब जिह्वा जकड जाती है, और जडमें पकने लगती है ॥ १३१ ॥

उपजिह्वाके लक्षण ।

जिह्वाग्ररूपः श्वयथुर्हि जिह्वामुन्नम्य जातः कफरक्तमूलः । लालाकरः कंडुयुतः सचोषः सा तूपजिह्वा कथिता भिषग्भिः ॥ १३२ ॥

कफ और रक्तके कोपसे जिह्वाके अग्रभागमें उत्पन्न हुई सूजन जिह्वाको ऊँचा कर देती है तब जिह्वा अनीके समान होजाती है उसमें लार अधिक बहती है, खुजली होती है और चूसनेके समान पीडा होती है उसको वैद्य उपजिह्वा कहते हैं॥१३२॥

जिह्वारोगकी चिकित्सा ।

जिह्वागतविकाराणां शस्तं शोणितमोक्षणम् । गुडूचीपिप्पलीनिम्बकवलः कटुभिर्युतः ॥ १३३ ॥

जिह्वागतरोगोंमें प्रथम रुधिर निकलवाना फिर गिलोय, पीपल और नीम इनका तीखे पदार्थोंके साथ कवल धारण करना श्रेष्ठ है ॥ १३३ ॥

पटोलकटुकव्योषपाठासैन्धवगर्भिभिः। चूर्णैर्मधुयुतैर्लेपः कवलो मधुतैलिकः ॥ १३४ ॥

पटोलपत्र, कुटकी, त्रिकुटा, पाढ और सैंधानमक इनका चूर्ण करके शहदमें मिलाकर जिह्वापर लेप करे । अथवा शहदमें तेल मिलाकर उसका कवल धारण करे ॥ १३४ ॥

विडङ्गपिप्पलीभ्यां तु धावनं सरसाञ्जनम् ॥ १३५ ॥

वायविडंग, पीपल और रसौत इनका क्वाथ बनाकर जिह्वाको धोवे ॥ १३५ ॥

ओष्ठप्रकोपेऽनिलजे यदुक्तं प्राक् चिकित्सितम् । कण्टकेष्वनिलोत्थेषु तत्कार्यं भिषजा खलु ॥ १३६ ॥

वातज ओष्ठरोगमें जो पहिले चिकित्सा कही है वही चिकित्सा वातजिह्वाके काँटेपर करनी चाहिये ॥ १३६ ॥

पित्तजेषु विघृष्टेषु निःसृजे दुष्टशोणिते । प्रतिसारणगंडूषं नस्यश्च मधुरं हितम् ॥ १३७ ॥

पित्तजन्य जिह्वारोगमें प्रथम जिह्वाको घिसकर दूषित रुधिरको निकाले, पश्चात् मधुर प्रतिसारण, मधुर कवल और मधुर नस्य इन सबको प्रयोग करे ॥ १३७ ॥

कण्टकेषु कफोत्थेषु लिखितेष्वसृजः क्षये । पिप्पल्यादिर्मधुयुतः कार्य्यस्तु प्रतिसारणे ॥ १३८ ॥

जो कफसे जिह्वाके ऊपर काँटे हों तो उन काँटोंको छील रुधिर निकलवावे, फिर पिप्पल्यादि गणकी औषधियोंको शहदमें मिलाकर प्रतिसारण करे ॥ ॥ १३८ ॥

गृह्णीयात्कवलांश्चापि गौरसर्षपसैन्धवैः । पटोलनिम्बवार्त्ताकुक्षारयूषैश्च भोजयेत् ॥ १३९ ॥

सफेद सरसों और सैंधानमक इनका कवल धारण करे । तथा परवल, नीम, बैगन, क्षार और यूष ये सब भोजन करे ॥ १३९ ॥

उपजिह्वां तु संलिख्य क्षारेण प्रतिसारयेत् । शिरोविरेकगंडूषधूमैश्चैनामुपाचरेत् ॥ १४० ॥

उपजिह्वा रोग हो तो उसको कतर कर क्षारसे प्रतिसारण करे और शिरोविरेचन, गण्डूष, धूम्रपान आदि उपचार करे ॥ १४० ॥

व्योषक्षाराभयावह्निश्चूर्णमेतत्प्रघर्षणम् । उपजिह्वाप्रशान्त्यर्थमेभिस्तैलं विपाचयेत् ॥ १४१ ॥

त्रिकुटा, जवाखार, हरड और चीता इनका चूर्ण बनाकर जिह्वाको घिसनेसे अथवा इनके द्वारा तेलको पकाकर कुल्ले करनेसे उपजिह्विकारोग शांत होता है ॥ १४१ ॥

वासाक्वाथो माक्षिकसैन्धवगृहधूममालतीयुक्तः । कुलित्थकेन निहन्यादुपजिह्विकां कण्ठघर्षणतः ॥ १४२ ॥

अडूसेके क्वाथमें शहद.सैंधानमक,घरका धुआँसा, मालतीके पत्ते और कुलथी डालकर उससे जिह्वाके काटोंको कण्ठपर्यन्त घिसनेसे उपजिह्वारोग शांत होता है ॥ १४२ ॥

तालुरोगनिदान ।

तालुगतशुण्डीरोगके लक्षण ।

श्लेष्मासृग्भ्यां तालुमूलात्प्रवृद्धो दी-

र्घः शोथो ध्मातबस्तिप्रकाशः । तृष्णाकासश्वासकृत्तं वदन्ति व्याधिं वैद्याः कण्ठशुण्डीति नाम्ना ॥१४३॥

कफ और रुधिरके कोपसे तालुकी जडमें अत्यन्त बढी हुई, लम्बी भरी हुई मसकके समान एवं तृषा, खाँसी तथा श्वासको उत्पन्न करनेवाली जो सूजन उत्पन्न होती है उसको वैद्य गलशुण्डी कहते हैं ॥ १४३ ॥

तुंडिकेरीके लक्षण ।

शोथः स्थूलस्तोददाहप्रपाकी प्रागुक्ताभ्यां तुण्डिकेरी मता तु ।

कफ और रुधिरके प्रकोपसे तालुमें जो वनकपासके फलके समान मोटी सूजन होती है, उसमें सुई चुभोने सरीखी पीडा तथा दाह और पाक हो जाता है उसको तुण्डिकेरी कहते हैं ।

अध्रूषके लक्षण ।

शोथो मन्दो लोहितः शोणितोत्थो ज्ञेयोऽध्रूषः सज्वरस्तीव्ररुक् च ॥१४४

जब रुधिरके प्रकोपसे तालुमें मन्द लालरंगकी ज्वर सहित और तीव्र पीडायुक्त सूजन होती है उसको अध्रूष जानना चाहिए ॥ १४४ ॥

कच्छपके लक्षण ।

कूर्मोत्सन्नोऽवेदनोऽशीघ्रजन्मा रोगो ज्ञेयः कच्छपः श्लेष्मणा वा ।

कफके प्रकोपसे तालुमें कछुवेके समान बीचमें ऊँची और चारों ओर नीची तथा अल्पपीडावाली जो बहुत शीघ्र सूजन उत्पन्न होती है उसको वैद्य कच्छपरोग कहते हैं ।

तालवर्बुदके लक्षण ।

पद्माकारं तालुमध्ये तु शोथं विद्याद्रक्तादर्बुदं प्रोक्तलिङ्गम् ॥ १४५ ॥

तालुके बीचमें रुधिरके प्रकोपसे कमलकी केसरके समान लम्बे मांसके अंकुरोंसे वेष्टित और सम्पूर्ण पित्तके लक्षणोंसे युक्त जो सूजन होती है, उसको वैद्य तालवर्बुद कहते हैं ॥ १४५ ॥

मांससंघातके लक्षण ।

दुष्टं मांसं नीरुजं तालुमध्ये श्लेष्माबद्धं मांससंघातमाहुः ।

कफके प्रकोपसे तालुके भीतर पीडारहित जो दुष्ट मांस एकत्रित होजाता है उसको मांससंघात कहते हैं ।

तालुपुप्पुटके लक्षण ।

नीरुक् स्थायी कोलमात्रः कफेन मेदोयुक्तः पुप्पुटस्तालुदेशे ॥ १४६ ॥

कफके प्रकोपसे तालुमें पीडारहित, स्थिर, और मेदयुक्त बेरीके फलके समान जो ग्रन्थि उत्पन्न होती है उसको तालुपुप्पुट कहते हैं ॥ १४६ ॥

तालुशोषके लक्षण ।

शोषोऽत्यर्थं दीर्य्यते चापि तालु श्वासश्चोग्रस्तालुशोषोऽनिलाच्च ।

वातके प्रकोपसे तालुमें अत्यन्त शोष होता है तालुआ फटने लगता है और अत्यन्त उग्र श्वास हो जाता है उसको तालुशोष कहते हैं ।

तालुपाकके लक्षण ।

पित्तं कुर्य्यात्पाकमत्यर्थघोरं तालुन्येवं तालुपाकं वदन्ति ॥ १४७ ॥

जब पित्त तालुमें अत्यन्त भयंकर पाक करता है तब उसको तालुपाक कहते हैं ॥ १४७ ॥

तालुरोगकी चिकित्सा ।

युञ्ज्यात्कफहरं शुण्ड्यां रसं गंडूषधारणे ॥ १४७ ॥

कण्ठशुण्डीरोगमें कफनाशक औषधियोंके रसका गण्डूष धारण करे ॥ १४८ ॥

कुष्ठोषणवचासिन्धुकणापाठाप्लवैः सह । सक्षौद्रैर्भिषजा कार्यं गलशुण्डीप्रघर्षणम् ॥ १४९ ॥

कूठ, कालीमिरच, वच, सैंधानमक, पीपल, पाढ और केवटीमोथा इनके चूर्णको शहदमें मिलाकर घिसनेसे तालुशुण्डीरोग नष्ट होता है ॥ १४९ ॥

अङ्गुष्ठांगुलिसन्दंशेनाकृष्यगलशुण्डिकाम् । छेदयेन्मण्डलाग्रेण जिह्वोपरि तु संस्थिताम् ॥ १५० ॥

जो गलशुण्डी जीभपर हो तो अँगूठे और अंगुलीरूपी सण्डासीसे उसे खींच कर मण्डलाग्रनामक शस्त्रसे काट देवे ॥ १५० ॥

नोत्कृष्टश्चैव हीनश्च त्रिभागं छेदयेद्भिषक् ॥ १५१ ॥

गलशुण्डीको न अत्यन्त अधिक और न अत्यन्त कम छेदन करे, किंतु मध्यभागको छेदे ॥ १५१ ॥

अत्यादानात् स्रवेद्रक्तं तन्निमित्तं म्रियेत च । हीनच्छेदाद्भवेच्छोथो लालास्रावो भ्रमस्तथा ॥१५२॥ तस्माद्वैद्यः प्रयत्नेन दृष्टकर्म्मा विशारदः । गलशुण्डीं छेदयित्वा कुर्य्यात्प्राप्तामिमं क्रमम् ॥ १५३ ॥ नातिमूलेन चाप्यग्रे सम्यक् छेदं समाचरेत् । छित्वा तां व्योषसिन्धूग्रासक्षौद्रैः प्रतिसारयेत ॥ १५४ ॥

गलशुण्डीके अधिक छिद जानेसे रुधिरका अत्यन्त स्राव होता है इस कारण मनुष्य मर जाता है और कम छेदन होनेसे सूजन, लारका गिरना, भ्रम आदि उपद्रव होते हैं इस कारण जिसने छेदनकी बहुतसी क्रिया देखी हों ऐसा प्रवीण वैद्य यत्न पूर्वक गलशुण्डीको काट कर पीछे निम्न लिखित उपचार करे। उसको न अत्यन्त जड़मेंसे ही छेदे और न अत्यन्त आगेसे ही छेदे, किंतु बीचमेंसे अच्छे प्रकारसे छेदे । छेदनेके पश्चात् त्रिकुटा, सैंधानमक और वच इनके चूर्णको शहदमें मिलाकर उसके ऊपर प्रतिसारण करे ॥ १५२ ॥ १५३ ॥ १५४ ॥

गलशुण्डीशमं याति वज्रीक्षीरेण लेपनात् ॥ १५५ ॥

थूहरके दूधका लेप करनेसे-गलशुण्डी शमन होती है ॥ १५५ ॥

वचामतिविषां पाठां रास्नां कटुकरोहिणीम् । निष्क्वाथ्य पिचुमन्दश्च कवलं तत्र योजयेत् ॥ १५६ ॥

वच, अतीस, पाठ, रायसन, कुटकी और नीम इनका काथ बनाकर उसको कवलधारण करे॥१५६॥

क्षारसिद्धेषु मुद्गेषु यूषाश्चाप्यशने हिताः ॥ १५७ ॥

इसमें जवाखारसे सिद्ध किया हुआ मूँगका यूप भोजन करे ॥ १५७ ॥

इङ्गुदी किणिही दन्ती सरलं देवदारु च । पञ्चाङ्गां कारयेद्वर्त्तिमेतां गन्धोत्तरां भिषक् ॥ तस्या धूमं पिबेज्जन्तुर्द्विरह्नः कफनाशनम् ॥ १५८ ॥

हिंगोट, चिरचिटा, दंती, धूपसरल और देवदारु इनके पंचांगको लेकर उसका चूर्ण करके वत्ती बनावे। रोगी मनुष्य उस वत्तीको सुवासित करके उसका धुआँ पावे तो इससे दो दिनमें कफ नष्ट होजाताहै१५८

तुण्डिकेर्यध्रुषे कूर्मे संघाते तालुपुप्पुटे । एष एव विधिः कार्यो विशेषः शस्त्रकर्म्मणि ॥ १५९ ॥

तुण्डिकेरी, अध्रूष, कच्छप, मांससंघात और तालुपुप्पुट इन रोगोंमें भी ये ही सब चिकित्सा करनी चाहिये । किन्तु शस्त्रक्रिया इनमें कुछ विशेषरूपसे करनी चाहिये ॥ १५९ ॥

तालुपाके तु कर्त्तव्यं विधानं पित्तनाशनम् । स्नेहस्वेदौ तालुशोषे विधिश्चानिलनाशनः ॥ १६० ॥

तालुपाकरोगमें पित्तनाशक विधि करनी चाहिये। और तालुशोषरोगमें स्नेहन, स्वेदन तथा अन्यान्य वातनाशक चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १६० ॥

गलरोगका निदान ।

सबसे प्रथम रोहिणीके लक्षण कहते हैं ।

गलेऽनिलः पित्तकफौ च मूर्च्छितौ प्रदूष्य मांसं च तथैव शोणितम् । गलोपसंरोधकरैस्तथांकुरैर्निहन्त्यसून् व्याधिरयं हि रोहिणी ॥ १६१ ॥

गलेमें वृद्धिको प्राप्त हुआ वात, पित्त और कफ ये तीनों दोष मांस और रुधिरको दूषित करके गलेमें मांसके अंकुरोंको उत्पन्न करते हैं । उन अंकुरोंसे गला रुँध जाता है उसको रोहिणी कहते हैं। यह रोहिणी प्राणनाशक है ॥ १६१ ॥

वातजाके लक्षण ।

जिह्वासमन्ताद्भृशवेदनास्तु मांसांकुराः कण्ठनिरोधनाः स्युः। सा रोहिणी वातकृता प्रदिष्टा वातात्मकोपद्रवगाढयुक्ता ॥ १६२ ॥

जिसमें जीभके चारों ओर अत्यन्त वेदनावाले और गलेको रोकनेवाले मांसके अंकुर हों और उनके साथ वातसम्बन्धीय स्तब्धता आदि उपद्रवभी होते हैं उसको वातोत्पन्नरोहिणी कहते हैं ॥ १६२ ॥

पित्तजाके लक्षण ।

क्षिप्रोद्गमा क्षिप्रविदाहपाका तीव्रज्वरा पित्तनिमित्तजा तु ।

जिसमें गलेमें मांसके अंकुर तत्काल उत्पन्न होजाते हैं उनमें तत्काल दाह और पाक होता है एवं तीव्रज्वर होता है तो उसको पित्तजरोहिणी कहते हैं ।

कफजाके लक्षण ।

स्रोतोनिरोधिन्यचलोन्नता च स्थिरांकुरा या कफसम्भवा सा ॥ १६३ ॥

जो गलेकी शिराओंको रोक कर गलेमें मांसक अंकुर उत्पन्न होते हैं और स्थिर ऊँचे तथा भारी होते हैं, मन्द मन्द पकते हैं, उसको कफरोहिणी कहते हैं ॥ १६३ ॥

त्रिदोषजाके लक्षण ।

गम्भीरपाकिन्यनिवार्यवीर्या त्रिदोषलिङ्गा त्रितयोत्थिता तु ॥ १६४ ॥

गलेमें उपर्युक्त तीनों दोषोंके लक्षणोंवाले, गम्भीर रूपसे पकनेवाले और कठिनतासे आराम होनेवाले जो मांसके अंकुर उत्पन्न होते हैं, उसको त्रिदोषरोहिणी कहते हैं ॥ १६४ ॥

रक्तजाके लक्षण ।

स्फोटैश्चिता पित्तसमानलिङ्गा साध्या प्रदिष्टा रुधिरात्मका तु ॥१६५॥

रक्तजरोहिणी छोटी छोटी फुंसियोंसे व्याप्त और पित्तजरोहिणीके समान लक्षणोंवाली होती है यह साध्य है ॥ १६५ ॥

रोहिणीकी मारनेकी अवधि ।

सद्यस्त्रिदोषजा हन्ति त्र्यहाच्छ्लेष्मसमुद्भवा । पञ्चाहात्पित्तसंभूता सप्ताहात्पवनान्विता ॥ १६६ ॥

त्रिदोषजरोहिणी तत्काल मार देती है कफजा रोहिणी तीन दिनमें मारती है, पित्तजा रोहिणी पांच दिनमें मारती है और वातजा रोहिणी सात दिनमें मार देती है ॥ १६६ ॥

कण्ठशालूकके लक्षण ।

कोलास्थिमात्रः कफसम्भवो यो ग्रन्थिर्गले कण्टकशूकभूतः । खरः स्थिरः शस्त्रनिपातसाध्यस्तं कण्ठशालूकमिति ब्रुवन्ति ॥ १६७ ॥

गलेमें काँटेके समान, तथा धानकी अनीके समान वेदना उत्पन्न करनेवाले, खरखरे, कठिन बेरकी गुठलीके समान और शस्त्रकाटथ जो ग्रंथि हो उसको कण्ठशालूक कहते हैं यह ग्रंथि कफके प्रकोपसे होती है । और शस्त्रके द्वारा चीरनेसे आराम होती है ॥ १६७ ॥

अधिजिह्वके लक्षण ।

जिह्वाग्ररूपः श्वयथुः कफाच्च जिह्वोपरिष्टादपि रक्तमिश्रात् । ज्ञेयोऽधिजिह्वः खलु रोग एष विवर्जयेदागतपाकमेनम् ॥ १६८ ॥

रक्तमिश्रित कफके प्रकोपसेजीभके ऊपर जीभकी अनीके समान जो सूजन होती है उसको अधिजिह्वा रोग कहते हैं यदि यह सूजन पक जाय तो इसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये ॥ १६८ ॥

वलयके लक्षण।

बलास एवायतमुन्नतश्च ग्रन्थिं करोत्यन्यगतिं निवार्य्य। तं सर्वथैवाऽप्रतिवार्य्य वीर्यं विवर्जनीयं वलयं वदन्ति ॥ १६९ ॥

प्रकोपको प्राप्त हुआ कफ अन्नकी गतिको रोककर गलेमें लम्बी और ऊँची सूजनको उत्पन्न करता है उसको वलय कहते हैं। यह रोग किसी प्रकार भी आराम नहीं होता है इस कारण इसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये ॥ १६९ ॥

बलासके लक्षण।

गलोपरोधं कुरुतः प्रवृद्धौ श्लेष्मानिलौ श्वासरुजोपपन्नम्। मर्म्मच्छिदं दुस्तरमेतदाहुर्बलाससंज्ञं निपुणा विकारम् ॥ १७० ॥

वृद्धिको प्राप्त हुए कफ और वायु गलेमें श्वास और पीडासहित, तथा हृदयके मर्म्मस्थलको छेदन करने वाली जो सूजन उत्पन्न करते हैं उसको वैद्यलोग बलास कहते हैं यहरोग अत्यन्त दुस्तरहै १७०

एकवृन्दके लक्षण।

वृत्तोन्नतोऽन्तः श्वयथुः सदाहः सकंडुरोऽपाक्यमृदुर्गुरुश्च। नाम्नैकवृन्दः परिकीर्तितोऽसौ व्याधिर्बलासक्षतजप्रसूतः ॥ १७१ ॥

कफ और रक्तके प्रकोपसे गलेमें गोल, ऊँचे किनारों पर दाह और खुजली युक्त सूजन उत्पन्न होती है वह कुछ कुछ पकती है और कुछेक नरम एवं भारी होती है, उस रोगको एकवृन्द कहते हैं ॥ १७१ ॥

वृन्दके लक्षण।

समुन्नतं वृत्तममन्ददाहं तीव्रज्वरं वृन्दमुदाहरन्ति। तच्चापि पित्तक्षतजप्रकोपाज्ज्ञेयं सतोदं पवनात्मकन्तु ॥ १७२ ॥

पित्त और रक्तके प्रकोपसे गलेमें ऊँची, गोल, तीव्र दाह और तीव्र ज्वरयुक्त जो सूजन होती है उसको वृन्द कहते हैं। इसमें यदि तोडने सरीखी पीडा हो तो इसको वातात्मक जानना चाहिये १७२

शतघ्नीके लक्षण।

वर्तिर्घनाकण्ठनिरोधिनी तु चितातिमात्रं पिशितप्ररोहैः। अनेकरुक् प्राणहरी त्रिदोषाज्ज्ञेया शतघ्नी तु शतघ्निरूपा ॥ १७३ ॥

गलेमें वत्तीके समान लम्बी, घन और कण्ठको रोकनेवाली सूजन हो, वह मांसके अंकुरोंके अधिकतासे दाह व्यथा आदि उपद्रवोंसे युक्त हो अनेक प्रकारके व्याप्त हो और प्राणनाशकशतघ्नी (तोप) शस्त्रके समान हो तो उसको शतघ्नी कहते हैं इसको त्रिदोषसे उत्पन्न हुआ जानना चाहिये ॥ १७३ ॥

गिलायुके लक्षण।

ग्रन्थिर्गले त्वामलकास्थिमात्रः स्थिरोऽल्परुक् यः कफरक्तमूर्तिः। संलक्ष्यते सक्तमिवाशनश्च स शस्त्रसाध्यस्तु गिलायुसंज्ञः ॥ १७४ ॥

कफ और रक्तके प्रकोपसे गलेमें आमलेकी गुठलीके समान,स्थिर और अल्पपीडावाली गाँठ उत्पन्न होती है उससे खायाहुआ अन्नका ग्रास गलेमें अटकतासा मालूम होता है इसको गिलायुरोग कहते हैं यह रोग शस्त्र क्रियाके द्वारा दूर होता है ॥१७४ ॥

गलविद्रधिके लक्षण।

सर्वं गलं प्राप्य समुत्थितो यः शोथो रुजः संति च यत्र सर्वाः। ससर्वदोषो गलविद्रधिस्तु तस्यैव तुल्यः खलु सर्वजस्य ॥ १७५ ॥

जिसमें तीनों दोषोंके कुपित होनेसे सर्व प्रकारकी वेदना वाली और समस्त गलेमें व्याप्त होकर जो सूजन उत्पन्न होती है, उसको कण्ठविद्रधि कहते हैं यह कंठविद्रधि त्रिदोषजविद्रधिके समान है ॥१७५॥

गलौघके लक्षण।

शोथो महानन्नजलावरोधी तीव्रज्वरो वायुगतेर्निहन्ता। कफेन जा-

ता रुधिरान्वितेन गले गलौघः परि-
कीर्तितोऽसौ ॥ १७६ ॥

कफ और रुधिरके प्रकोपसे गलेमें अन्न तथा जलको रोकनेवाली, उदानवायुकी गतिको हरनेवाली और तीव्र ज्वरवाली जो बडी सूजन उत्पन्न होती है उसको गलौघ कहते हैं ॥ १७६ ॥

स्वरघ्नके लक्षण ।

यस्ताम्यमानः श्वसिति प्रसक्तं भिन्नस्वरः शुष्कविमुक्तकण्ठः । कफोपदिग्धेष्वनिलायनेषु ज्ञेयः सतोदः श्वसनात् स्वरघ्नः ॥ १७७ ॥

जिसमें वायु निकलनेके मार्ग कफसे परिपूर्ण होजाते हैं, अन्धकारसा दीखता है, रोगी निरन्तर अत्यन्त कष्टसे श्वास लेता है, तथा स्वरभङ्ग होजाता है, कण्ठ सूखने लगता है और वह अन्नादि निगलनेमें असमर्थ हो जाता है तथा उसमें तोडने सरीखी पीडा होती है उसको स्वरघ्नरोग कहते हैं। यह वातसे उत्पन्न होता है ॥ १७७ ॥

मांसतनके लक्षण ।

प्रतानवान्यः श्वयथुः सकष्टो गलोपरोधं कुरुते क्रमेण । स मांसतानः कथितोऽवलम्बी प्राणप्रणुत्सर्वकृतो विकारः ॥ १७८ ॥

अत्यन्त फैलनेवाली, लटकती हुई और अत्यन्त कष्ट देनेवाली क्रमक्रमसे जो सूजन गलेको रोक देती है उसको मांसतान रोग कहते हैं। यह रोग त्रिदोषसे उत्पन्न होनेवाला और प्राणनाशक है ॥ १७८ ॥

विदारीके लक्षण ।

सदाहतोदं श्वयथुं सुताम्रमन्तर्गले पूतिविशीर्णमांसम् । पित्तेन विद्याद्वदने विदारीं पार्श्वे विशेषात्स तु येन शेते ॥ १७९ ॥

पित्तके प्रकोपसे गलेमें दाह, तोडने सरीखी तीव्रपीडा युक्त, अत्यन्त लाल, दुर्गंधित और मांसको फाडनेवाली जो सूजन उत्पन्न होती है, उसको विदारी कहते हैं वह मनुष्य जिस करवटसे अधिक होता है उसी पार्श्वमें यह रोग उत्पन्न होता है१७९॥

गलरोगोंकी चिकित्सा ।

साध्यानां रोहिणीनाञ्च हितं शोणितमोक्षणम् । छर्दनं धूमपानञ्च गंडूषो नस्यकर्म्म च ॥ १८० ॥

साध्यरोहिणीमें प्रथम रक्तमोक्षणकर्म्म अर्थात् रुधिर निकलवाना, फिर वमन, धूम्रपान, गण्डूष और नस्यकर्म्म इन सबका प्रयोग करना उपयोगी है ॥ १८० ॥

तथान्तर्बाह्यतः स्विन्नां वातरोहिणिकां लिखेत् । अंगुलीशस्त्रकेनाशु पटुयुक्तं नखेन वा ॥ १८१ ॥

फिर अन्तर और बाहरकी वातरोहिणीको स्वेदित करके शीघ्र अंगुलीनामक शस्त्रसे अथवा लवणयुक्त नखसे जल्दी लेखन करे ॥१८१॥

वातकी तु हृते रक्ते लवणैः प्रतिसारयेत् । सुखोष्णान् स्नेहकवलान् धारयेच्चाप्यभीक्ष्णशः ॥ १८२ ॥

वातजरोहिणीमें प्रथम रुधिर निकलवाकर पश्चात् सैंधानमक आदि लवणोंसे प्रतिसारण करे । और सुहाते २ उष्ण स्नेहोंके कवलको वारंवार धारण करे ॥ १८२ ॥

विश्राव्य पित्तसंभूतां सिताक्षौद्रप्रियंगुभिः । घर्षयेत्क्षौद्रपत्तङ्गैः शर्कराभिस्तथायुतैः ॥ १८३ ॥

पित्तसे उत्पन्न हुई रोहिणी हो तो उसमेंसे रुधिर निकलवाकर खाँड, शहद और फूलप्रियंगू इनसे प्रतिसारण करे । अथवा शहद, पतंग और खाँड इनको एकत्र मिलाकर प्रीतसारण करे ॥ १८३ ॥

द्राक्षापरूषकक्काथो हितश्च कवलग्रहे । उपाचरेदेवमेतां सुवैद्यः पित्तसंभवाम् ॥ १८४ ॥

दाख और फालसे इनका काथ कवल धारण करनेमें अत्यन्त श्रेष्ठ है इसलिए उत्तम वैद्य पित्तजरोहिणीकी उक्त प्रकारका कवल धारण कराकर चिकित्सा करे ॥ १८४ ॥

आगारधूमकटुकैः कफजां प्रतिसारयेत् ॥ १८५ ॥

कफजरोहिणीपर घरका धुँआसा और त्रिकुटेका चूर्ण इन दोनोंके द्वारा प्रतिसारण करे ॥ १८५ ॥

श्वेताविडङ्गदन्तीभिस्तैलं सिद्धं ससैन्धवम् । नस्यकर्म्मणि दातव्यं कवलश्च कफोच्छ्रये ॥ १८६ ॥

कफजरोहिणीमें सफेदकोइल, वायविडंग, दंती और सैंधानमक इनके कल्कके द्वारा पकाये हुए तेलकी नस्य देवे, अथवा इस तेलका कवल धारण करे॥१८६॥

रोहिणीकण्ठशालूकतुण्डिकेरीगलायुषु । विद्रधौ वृन्दके श्रेष्ठं रोचनाताक्ष्यर्गैरिकाः ॥ सलोध्रमधुपत्तङ्गक्षौद्रैर्गण्डूषधारणम् ॥ १८७ ॥

रोहिणी, कण्ठशालूक, तुण्डिकेरी, गलायु, विद्रधि और वृंद इन सब रोगोंमें गोरोचन, रसौत, गेरू, लोध, मुलैठी, पतंग और शहद इनका गण्डूष धारण करे॥ १८७ ॥

विस्राव्य कण्ठशालूकं साधयेत्तुण्डिकेरिवत् । एककालं यवान्नश्च भुञ्जीत स्निग्धमल्पशः ॥ १८८ ॥

कण्ठशालूकमेंसे रुधिर निकलवाकर तुण्डिकेरीके समान चिकित्सा करे और दिनरातमें एकबार थोडासा स्निग्ध जौका भोजन करे ॥ १८८ ॥

उपजिह्वकवच्चापि साधयेदधिजिह्विकम् । उन्नम्य जिह्वामाकृष्य बडिशेनाधिजिह्विकाम् ॥ छेदयेन्मण्डलाग्रेण तीक्ष्णोष्णैर्घर्षणादिभिः ॥ १८९ ॥

अधिजिह्वककी चिकित्सा उपजिह्वकके समान करे । जीभको उठाकर और अधिजिह्वाको सण्डासीसे पकड करके अच्छे प्रकारसे खींचकर मण्डलाग्र नामक शस्त्रसे छेदे फिर तीक्ष्ण और उष्ण औषधियोंके चूर्णसे घर्षण करे॥ १८९ ॥

एकवृन्दं तु विस्राव्य विधिं शोधनमाचरेत् । गिलायुश्चापि यो व्याधिस्तं च शस्त्रेण साधयेत् ॥ १९० ॥

एक वृंदमेंसे प्रथम रुधिर निकलवाकर पश्चात् शोधन विधि करे और गिलायुको शस्त्रसे छेदकर सिद्ध करे ॥ १९० ॥

अमर्म्मस्थन्तु सम्पक्कं छेदयेद्गलविद्रधिम् । कण्ठरोगेष्वसृङ्मोक्षस्तीक्ष्णैर्नस्यादिकर्म्म च ॥ १९१ ॥

कण्ठविद्रधि जो मर्ममें न हो और वह अच्छे प्रकारसे पकगई हो तो शस्त्रसे छेदे । प्रायः सर्वप्रकारके कण्ठरोगोंमें प्रथम रुधिर निकलवाकर फिर तीक्ष्ण नस्यादिका प्रयोग करना चाहिए ॥ १९१ ॥

क्वाथं पिबेच्च दार्वीत्वङ्निम्बताक्ष्यर्कलिङ्गजम् । हरीतकीकषायो वा हितो माक्षिकसंयुतः ॥ १९२ ॥

दारुहल्दी, नीमकी छाल, रसौत और इंद्रजौ इनका क्वाथ बनाकर पान करनेसे अथवा केवल हरडके क्वाथमें शहद डालकर पान करनेसे गलरोग नष्ट होता है ॥ १९२ ॥

कटुकातिविषादारुपाठामुस्तकलिङ्गजः । गोमूत्रक्वथितः पीतः कण्ठरोगविनाशनः ॥ १९३ ॥

कुटकी, अतीस, देवदारु, पाढ, नागरमोथा और कुडेकी छाल इनका गोमूत्रमें क्वाथ बनाकर पीनेसे कंठके समस्त रोग नष्ट होते हैं ॥ १९३ ॥

मृद्वीकाकटुकाव्योषं दार्वी त्वक् त्रिफलाघनम् । पाठारसाञ्जनं मूर्वा तेजोह्वेति सुचूर्णितम् ॥ १९४ ॥ क्षौद्रयुक्तं विधातव्यं गलरोगे भिषङ्मतम् । योगाश्चैते त्रयः प्रोक्ता वातरक्तकफापहाः ॥ १९५ ॥

दाख, कुटकी, त्रिकुटा, दारुहलदी, त्रिफला, नागरमोथा, पाढ, रसोत, मूर्वा और तेजबल इनका चूर्ण करके शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे गलरोग नष्ट होता है । ये उपर्युक्त तीनों योग-वात, रुधिरदोष और कफको नष्ट करनेवाले हैं ॥ १९४ ॥ १९५ ॥

सितादिघृत ।

सितातमालपत्राभ्यां मरिचं द्विगुणं न्यसेत् । तेन सर्पिर्विपक्वन्तु नस्याद्धन्याद्गलग्रहान् ॥ १९६ ॥

मिश्री १ भाग, तमालपत्र १ भाग और कालीमिरच २ भाग लेकर इनके कल्कके द्वारा घृतको पकावे । फिर इस घृतके द्वारा नस्य देवे तो गलग्रह नष्ट होते हैं ॥ १९६ ॥

कालकचूर्ण ।

गृहधूमो यवक्षारः पाठा व्योषं रसाञ्जनम् । तेजोह्वात्रिफला लोध्रं चित्रकश्चेति चूर्णितम् ॥ १९७ ॥ सक्षौद्रं धारयेदेतद्गलरोगविनाशनम् । कालकं नाम तच्चूर्णं दन्तास्यगलरोगनुत् ॥ १९८ ॥

घरका धुआँसा, जवाखार, पाढ, त्रिकुटा, रसौत, तेजबल, त्रिफला, लोध और चीता ये सब औषधि समान भाग लेकर चूर्ण कर लेवे । इस चूर्णको शहदमें मिलाकर मुखमें धारण करनेसे सर्व प्रकारके गलेके रोग नष्ट होते हैं । यह कालकनामक चूर्ण-दंत, मुख और गलेके समस्तरोगोंको नष्ट करनेवाला है ॥ १९७ ॥ १९८ ॥

पीतकचूर्ण ।

मनःशिलायवक्षारौ हरितालं ससैन्धवम् । दार्वीत्वक् चेति तच्चूर्णं माक्षिकेण समायुतम् ॥ १९९ ॥ मूर्छितं घृतमण्डेन कण्ठरोगेषु धारयेत् । मुखरोगेषु च श्रेष्ठं पीतकं नाम कीर्त्तितम् ॥ २०० ॥

मैनशिल, जवाखार, हरताल, सैंधानमक और दारुहलदी, इन सबको चूर्ण करके शहदमें मिलाकर घृतके मण्डसे मूर्च्छित करके मुखमें धारण करे तो सर्व प्रकारके कण्ठरोग और मुखरोग नष्ट होते हैं यह पीतक नामक चूर्ण-मुखरोगोंमें अत्यन्त श्रेष्ठ है ॥ १९९ ॥ २०० ॥

यवक्षारादिगुटिका ।

यवाग्रजं तेजवतीं सपाठां रसाञ्जनं दारुनिशाश्च कृष्णाम् । क्षौद्रेण कुर्याद्गुटिकां मुखेन तां धारयेत्सर्वगलामयेषु ॥ २०१ ॥

जवाखार, तेजबल, पाढ, रसौत, दारुहलदी, हल्दी और पीपल इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण करके शहदमें मिलाकर गोली बनालेवे । इन गोलियोंको मुखमें धारण करनेसे सर्वप्रकारके गलरोग नष्ट होते हैं ॥ २०१ ॥

क्षारगुटिका ।

पञ्चकोलकतालीशपत्रैलामरिचत्वचः । पलाशमुष्ककक्षारयवक्षाराश्च चूर्णिताः ॥ २०२ ॥ गुडे पुराणे द्विगुणे क्वथिते गुटिकाः कृताः । कर्कन्धुमात्राः सप्ताहं स्थिता मुष्ककभस्मनि । कण्ठरोगेषु सर्वेषु धार्य्याः स्युरमृतोपमाः ॥ २०३ ॥

पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ, तालीशपत्र, इलायची, कालीमिरच, दालचीनी, ढाकका खार, मोखेका खार और जवाखार ये प्रत्येक औषधि समान भाग और सबसे दुगुना पुराना गुड़ लेवे । सबको एकत्र पका कर छोटे बेरकी बराबर गोलियाँ बनालेवे फिर उन गोलियोंको सात दिनतक मोखेकी भस्ममें रख देवे । ये गोलियाँ सबप्रकारके कण्ठरोगोंमें मुखमें धारण करनेसे अमृतके समान गुण करती हैं ॥ २०२ ॥ २०३ ॥

अथ सर्वमुखगतरोगका निदान ।

वातजमुखपाकके लक्षण ।

स्फोटैः सतोदैर्वदनं समन्ताद्यस्याऽऽचितं सर्वसरः स वातात् ॥ २०४ ॥

जिसका मुख तोड़ने सरीखी पीडा करनेवाले छालोंसे चारों ओरसे भरा हुआ हो उसको वातसे उत्पन्न हुआ सर्वसर रोग जानना चाहिए ॥ २०४ ॥

पित्तजमुखपाकके लक्षण ।

रक्तैः सदाहैस्तनुभिः सपीतैर्यस्याचितश्चापि स पित्तकोपात् ॥ २०५ ॥

जिसका मुख लाल और पीले रंगके दाहयुक्त छोटे २ छालोंसे व्याप्त हो, उसको पित्तके प्रकोपसे हुआ सर्वसररोग जानना चाहिए ॥ २०५ ॥

कफजमुखपाकके लक्षण ।

अवेदनैः कण्डुयुतैः सवर्णैर्यस्याचितश्चापि स वै कफेन ॥ २०६ ॥

जिसके समस्त मुखमें अल्प पीडायुक्त, खुजली वाले और मुखमें वर्णके समान वर्णवाले छाले भरे हों, उसको कफजनित सर्वसररोग समझना चाहिए ॥ २०६ ॥

सर्वमुखगतरोगोंकी चिकित्सा।

वातात्सर्वसरं चूर्णैर्लवणैः प्रतिसारयेत् । तैलं वातहरैः सिद्धं हितं कवलनस्ययोः ॥ २०७ ॥

वातजमुखपाकरोगमें लवण आदिके चूर्णोंसे प्रतिसारण करे। और वातनाशक औषधियोंके द्वारा तेलको पकाकर कवल तथा नस्यकर्म्ममें प्रयोग करे ॥ २०७ ॥

स्नैहिक धूम।

ततोऽस्मै स्नैहिकं धूममिमं दद्याद्विचक्षणः । शालराजादनैरण्डसारेंगुदिमधूकजाः ॥ २०८ ॥ मज्जानो गुग्गुलुध्याममांसीकालानुशारिवाः । श्रीसर्जरसशैलेयमधूच्छिष्टानि वा हरेत् ॥ ॥ २०९ ॥ तत्सर्वं सुकृतं चूर्णं स्नेहेनालोड्य युक्तितः । टुण्टूकवृन्तं सक्षौद्रं मतिमांस्तेन लेपयेत् ॥ २१० ॥

इसके पश्चात् प्रवीण वैद्य रोगीके लिये स्नैहिक धूम्रपान करावे फिर शाल, खिरनी, अण्ड, हिंगोट और महुआ इनके फलोंकी मींग, गूगल, रोहिष, सुगंधिततृण, बालछड, भूरिछरीला, लोबान, राल, पत्थरका फूल और मोम इन सबका एकत्र अच्छे प्रकारसे चूर्ण करके घृत अथवा तेलमें युक्तिपूर्वक मर्दन करे। फिर शहदमें मिलाकर उसको गुण्ठलपर लेप करे ॥ २०८ ॥ २०९ ॥ २१० ॥

एष सर्वसरे धूमः प्रशस्तः स्नैहिको मतः ॥ कफघ्नो मारुतघ्नश्च मुखरोगविनाशनः ॥ २११ ॥

इसका सर्वसरनामक मुखपाकरोगमें धूम्रपान करनेसे कफ और वातरोग नष्ट होता है तथा सर्वप्रकारके मुखरोग नष्ट होते हैं ॥ २११ ॥

सर्वसरोपक्रम।

पित्तात्मके सर्वसरे शुद्धकायस्य देहिनः । सर्वपित्तहरः कार्यो विधिर्मधुरशीतलः ॥ २१२ ॥

पित्तजनित सर्वसररोगमें वमन विरेचनादिसे शरीरको शुद्ध करके रोगीको सम्पूर्ण पित्तनाशक मधुर और शीतल क्रिया करनी चाहिए ॥ २१२ ॥

प्रतिसारणगंडूषधूमसंशोधनानि च । कफात्मके सर्वसरे क्रमं कुर्य्यात्कफापहम् ॥ २१३ ॥

कफजनित सर्वसररोगमें प्रतिसारण, गण्डूषधारण, धूम्रपान और वमन विरेचनादि द्वारा शरीरको संशोधन करना चाहिए। उस क्रमसे सब कफ नाशक चिकित्सा करनी चाहिए ॥ २१३ ॥

मुखपाके शिरावेधः शिरःकायविरेचनम् । मधुमूत्रघृतक्षीरैः शीतैश्च कवलग्रहः ॥ २१४ ॥

मुखपाकरोगमें—शिरावेध, शिरोविरेचन और शरीरविरेचन करना तथा शहद, गोमूत्र, घी और दूध इनके द्वारा कवल धारण करना अथवा शीतल पदार्थोंका कवल धारण करना चाहिए ॥ २१४ ॥

• जातीपत्रामृताद्राक्षायासदार्वीफलत्रिकैः । क्वाथः क्षौद्रयुतः शीतो गंडूषो मुखपाकनुत् ॥ २१५ ॥

चमेलीके पत्ते, गिलोय, दाख, जवासा, दारुहलदी और त्रिफला इनका क्वाथ बनाकर उसको शीतल करके उसमें शहद डालकर गण्डूष धारण करे तो मुखपाकरोग नष्ट होता है ॥ २१५ ॥

कार्य्यश्च बहुधा नित्यं जातीपत्रस्य चर्वणम् । कृष्णजीरककुष्ठेन्द्रयवचर्वणतस्त्र्यहात् । मुखपाकव्रणक्लेददौर्गन्ध्यमुपशाम्यति ॥ २१६ ॥

चमेलीके पत्तोंको सदैव चबानेसे अथवा कालाजीरा, कूठ और इन्द्रजौ इनको एकत्र मिलाकर तीन दिन तक चबानेसे मुखपाक, व्रण, क्लेद और मुखकी दुर्गंध दूर होती है ॥ २१६ ॥

पटोलनिम्बजम्ब्वाम्रमालतीनवपल्लवैः। पञ्चपल्लवजः श्रेष्ठः कषायो मुखधावने ॥ २१७ ॥

पटोलपत्र, नीम, जामुन, आम और चमेलीके नवीन पत्ते इन पंचपल्लवोंका क्काथ बनाकर मुख धोनेके लिये प्रयोग करे ॥ २१७ ॥

स्वरसः क्वथितो दार्व्या घनीभूतो रसक्रिया। सक्षौद्रा मुखरोगासृग्दोषनाडीव्रणापहा ॥ २१८ ॥

दारुहलदीको जलमें डालकर पकावे, जब वह पकते पकते अत्यन्त गाढा होजाय तब शहद डालकर प्रयोग करे। इससे मुखरोग, रुधिरविकार और नाडीव्रणरोग दूर होता है ॥ २१८ ॥

सतच्छदोशीरपटोलमुस्ताहरीतकीतिक्तकरोहिणीभिः। यष्ट्याह्वराजद्रुमचन्दनैश्च क्काथं पिबेत्पाकहरं मुखस्य ॥ २१९ ॥

सतौना, खस, पटोलपत्र, नागरमोथा, हरड, कुटकी, मुलैठी, अमलतास और लालचन्दन इनका क्काथ बनाकर पान करनेसे मुखपाकरोग दूर होता है ॥ २१९ ॥

पटोलशुण्ठीत्रिफलाविशालात्रायन्तितिक्ताद्विनिशामृतानाम्। पीतः कषायो मधुना निहन्ति मुखे स्थितश्चास्य गदानशेषान् ॥ २२० ॥

पटोलपत्र, सोंठ, त्रिफला, इंद्रायण, त्रायमाण, कुटकी, हलदी, दारुहलदी और गिलोय इनका क्काथ शहद मिलाकर पान करनेसे सर्वप्रकारके मुखरोगोंको नष्ट करता है ॥ २२० ॥

तिला नीलोत्पलं सर्पिः शर्कराक्षीरमेव च। क्षौद्राढ्यो दग्धवक्त्रस्य गंडूषो मुखपाकनुत् ॥ २२१ ॥

तिल, नीलोत्पल (नीलोफर), घी, मिश्री, दूध और शहद इन सबको एकत्र मिलाकर गण्डूष धारण करनेसे मुखपाकरोग दूर होता है, जलनेसे मुखमें उत्पन्न हुए पाकको नष्ट करनेकी यह उत्तम औषधि है ॥ २२१ ॥

आस्वादिता च सकृदपि मुखगन्धं सकलमपनयाति। त्वग्बीजपूरफलजा पवनमुपक्कं च नाशयति ॥ २२२ ॥

विजौरेनींबूके फलके कल्कको एक बार खानेसे मुखकी दुर्गन्ध और वातजनित मुखपाक रोग दूर होता है ॥ २२२ ॥

जातीफलजातिपत्रीफाणिज्जवाह्लीककुष्ठसम्वरिता। अपहरति पूतिगन्धं मुखज्वरे संस्थिता गुटिका ॥ २२३ ॥

जायफल, जावित्री, वनतुलसी, केशर और कूठ इनको समान भाग लेकर गोली बनाकर मुखमें रखनेसे ज्वरमें उत्पन्न हुई मुखकी दुर्गन्ध दूर होती है ॥ २२३ ॥

कुष्ठैलवालुकैलामुस्ताधान्याकयष्टिमधुकबलाः। हरति मुखपूतिगन्धं रसोनमदिरादिगन्धश्च ॥ २२४ ॥

कूठ, एलुआ, इलायची, नागरमोथा, धनियाँ, मुलैठी और खिरैंटी इनको एकत्र पीसकर मुखमें रखनेसे मुखकी दुर्गन्ध तथा लहसुन और मदिरा आदिकी गन्ध भी दूर होती है ॥ २२४ ॥

हरिद्रानिम्बपत्राणि मधुकं नीलमुत्पलम्। तैलमेभिर्विपक्तव्यं मुखपाकहरं परम् ॥ २२५ ॥

हलदी, नीमके पत्ते, मुलैठी और नलिकमल इनके कल्कके द्वारा तेलको पकाकर प्रयोग करनेसे मुखपाक रोग दूर होता है ॥ २२५ ॥

यष्टीतैल।

यष्टीमधु पलमेकं त्रिंशन्नीलोत्पलस्य तैलस्य। प्रस्थश्च द्विगुणं पयोविधिना पक्कं तु नस्येन ॥ २२६ ॥ निशिवदनस्य स्रावं क्षपयति गात्रस्य दोषसंघातम्। वपुःस्वर्णत्वमवश्यं क्रमशोऽभ्यङ्गेन जन्तूनाम् ॥ २२७ ॥

मुलैठी ४ तोले, नीलेकमल ३० पल, तिलका तेल १ प्रस्थ और गायका दूध २ प्रस्थ लेवे। इन सबको

एकत्र मिला कर विधिपूर्वक तेलको पकावे । इस तेलकी रात्रिके समय नस्य से मुखका स्राव और शरीरके दोष दूर होते हैं और मालिश करनेसे शरीर स्वर्णके समान सुन्दर होजाता है ॥ २२६ ॥२२७॥

मुखरोगोंमें असाध्य रोग ।

मुखगत समस्त असाध्यरोगोंको कहते हैं:-

ओष्ठप्रकोपे वर्ज्याः स्युर्मांसरक्तत्रिदोषजाः । दन्तमूलेषु वर्ज्यौ च त्रिलिङ्गगतिशौषिरौ ॥ २२८ ॥ दन्तेषु च न सिध्यंति श्यावदालनभञ्जनाः । जिह्वागतेष्वलासस्तु तालुजेष्वर्बुदं तथा ॥ २२९ ॥ स्वरघ्नो वलयो वृन्दो बलासः सविदारिकः । गलौघो मांसतानश्च शतघ्नी रोहिणीगले ॥२३०॥ असाध्याः कीर्त्तिता ह्येते रोगा नवदशैव तु । तेषु चापि क्रियां वैद्यः प्रत्याख्याय समाचरेत् ॥ २३१ ॥

ओष्ठरोगोंमें मांसजनित, रक्तजनित और त्रिदोषजनित रोग असाध्य हैं । दंतमूल (मसूढ़ेके) रोगोंमें त्रिदोषजनित नाडीव्रण और शौषिर असाध्य हैं । दंतरोगोंमें श्याव, दालन और भंजन असाध्य हैं । जिह्वारोगोंमें अलास असाध्य है । तालुरोगोंमें अर्बुद और गलरोगोंमें स्वरघ्न, बलय, वृन्द, बलास, विदारी, गलौघ, मांसतान, शतघ्नी और रोहिणी ये सब रोग असाध्य हैं । इस प्रकार ये १९उन्नीस मुखरोग असाध्य कहे गये हैं । यदि इनकी चिकित्सा करे तो वैद्य प्रथम यह कह देवे कि, ये रोग असाध्य हैं । पर विचार पूर्वक इनको असाध्य समझ कर छोड़े भी नहीं, क्योंकि कदाचित् औषध करनेसे रोगी आरोग्य हो ही जाय ॥ २२८ ॥ २२९ ॥ २३० ॥ २३१ ॥

इति श्रीवङ्गसेने भाषाटीकायां मुखरोगाधिकार समाप्त ॥ ६४ ॥

अथ कर्णरोगाधिकार ।

कर्णरोगका निदान ।

समीरणः श्रोत्रगतोऽन्यथाचरन्समन्ततः शूलमतीव कर्णयोः । करोति दोषैश्च यथास्वमावृतः स कर्णशूलः कथितो दुराचरः ॥ १ ॥

कानोंमें चारों ओर विपरीत गतिसे विचरण करता हुआ वायु अपने २ निदानोंसे प्रकुपित हुए कफ, पित्त और रुधिर इन दोषोंसे आवृत होकर उसी उसी दोषके अनुसार कानोंमें अत्यन्त भयंकर शूल उत्पन्न करता है, उसको कर्णशूल कहते हैं यह रोग दुश्चिकित्स्य है अर्थात् कठिनतासे आरोग्य होता है ॥ १ ॥

कर्णनादके लक्षण ।

कर्णस्रोतः स्थिते वाते शृणोति विविधान्स्वरान् । भेरीमृदङ्गशङ्खानां कर्णनादः स उच्यते ॥ २ ॥

जब कानके छिद्रमें विविध प्रकारका वायु स्थित होता है तब मनुष्य विविध प्रकारके स्वरोंको तथा भेरी, मृदंग, शंख इत्यादि अनेक प्रकारके शब्दोंको सुनता है इसको कर्णनाद रोग कहते हैं ॥ २ ॥

बाधिर्यके लक्षण ।

यदा शब्दवहं वायुः स्रोत आवृत्य तिष्ठति । शुद्धः श्लेष्मान्वितो वापि बाधिर्य्यं तेन जायते ॥ ३ ॥

कफ संयुक्त अथवा केवल वायु जब शब्दवाहिनी नाड़ीको रोक कर कानमें रहता है तब उससे बधिरता अर्थात् बहरापन होता है ॥ ३ ॥

कर्णक्ष्वेडके लक्षण ।

वायुः पित्तादिभिर्युक्तो वेणुघोषोपमं स्वनम् । करोति कर्णयोः क्ष्वेडं कर्णक्ष्वेडः स कीर्तितः ॥ ४ ॥

जब पित्तादिके साथ मिला हुआ वायु कानोंमें प्राप्त होकर बंशीके शब्दके समान शब्द उत्पन्न करता है तब उसको कर्णक्ष्वेड कहते हैं ॥ ४ ॥

कर्णस्रावके लक्षण ।

शिरोऽभिघातादथवा निमज्जनाज्जले प्रपाकादथवापि विद्रधेः । स्रवेद्धि पूयं श्रवणोऽनिलार्दितः स कर्णसंस्राव इति प्रकीर्तितः ॥ ५ ॥

शिरमें चोटके लगनेसे या जलमें डूबनेसे अथवा कानमें विद्रधिके पकनेसे वायु कुपित होकर कानोंमेंसे राधको या रसको अथवा जलको बहाती है, इसको कर्णस्राव कहते हैं ॥ ५ ॥

कर्णकण्डूके लक्षण ।

मारुतः कफसंयुक्तः कर्णकंडूं करोति च।

कफसंयुक्त वायु जब कानमें खुजली उत्पन्न करता है तब उसको कर्णकण्डू कहते हैं ।

कर्णगूथके लक्षण ।

पित्तोष्मशोषितः श्लेष्मा जायते कर्णगूथकः ॥ ६ ॥

पित्तकी उष्णतासे जब कफ कानमें सूख कर मलरूप होजाता है तब उसको कर्णगूथ कहते हैं ॥६ ॥

कर्णप्रतिनाहके लक्षण ।

स कर्णगूथो द्रवतां यदा गतो विलायितो घ्राणमुखं प्रपद्यते । तदा स कर्णप्रतिनाहसंज्ञितो भवेद्विकारः शिरसोऽर्द्धभेदकृत् ॥ ७ ॥

वह कर्णगूथ अर्थात् कानका मैल जब तैलादिस्नेहके डालनेसे पिघल कर स्वेद देनेसे पतला होकर मुख और नासिकामें प्राप्त होता है तब उसको कर्णप्रतिनाह कहते हैं । यह अर्द्धावभेदक अर्थात् आधासीसीको उत्पन्न करता है ॥ ७ ॥

कृमिकर्णके लक्षण ।

यदा तु मूर्च्छन्त्यथवापि जन्तवः सृजन्त्यपत्यान्यथवापि मक्षिकाः । तदञ्जनत्वाच्छ्रवणो निरुच्यते भिषग्भिराद्यैः कृमिकर्णको गदः ॥ ८ ॥

जब कानमें कृमि पड़ जाते हैं अथवा कानोंमें मक्खियां बैठ कर जो अपने अण्डे बच्चे रखती हैं तब कानोंमें कृमिकेसे लक्षण दीखते हैं इस लिए इसको कृमिकर्णरोग कहते हैं ॥ ८ ॥

कानमें पतंगादिकृमि घुसनेके लक्षण ।

पतङ्गाः शतपद्यश्च कर्णस्रोतः प्रविश्य हि । अरतिं व्याकुलत्वञ्च भृशं कुर्वन्ति वेदनाम् ॥ ९ ॥ कर्णो निस्तुद्यते तस्य तथा च फुरफुरायते । कीटे चरति रुक्तीव्रा निस्पन्दे मन्दवेदना ॥ १० ॥

पतंग, कानखजूरा, या कानसलाई आदि कानमें घुस कर बेचैनी, बेकली और अत्यन्त पीडाको उत्पन्न करते हैं और उस मनुष्यके कानमें तीव्र नोचने व छेदने सरीखी पीडा होती है। जब वह कृमि कानके भीतर कुलकुलाता और चलता है उस समय अत्यन्त तीव्र पीडा होती है और जब वह चलनेसे रुकजाता है तब पीडा भी कम होजाती है ॥९ ॥ १०॥

द्विविधकर्णविद्रधिके लक्षण ।

क्षताभिघातप्रभवस्तु विद्रधिर्भवेत्तथा दोषकृतोऽपरः पुनः । स पीतनीलारुणमस्रमास्रवेत्प्रतोदधूमायनदाहचोषवान् ॥ ११ ॥

जो घावके होजानेसे अथवा चोटके लग जानेसे कानमें विद्रधि होती है उसमेंसे लाल पीले और नीले रंगके रुधिरका स्राव होता है । और जो वातादि दोषोंके द्वारा दूसरे प्रकारकी विद्रधि होती है, उसमें चीरने सरीखी पीडा होती है, धुआँसा निकलता है, तथा दाह और चूसनेके सरीखी पीडा होती है॥११॥

कर्णपाकके लक्षण ।

कर्णपाकस्तु पित्तेन कोथविक्लेदकृद्भवेत् । कर्णविद्रधिपाकाद्वा जायते चाम्बुपूरणात् ॥ १२ ॥

पित्तके कुपित होनेसे या कानकी विद्रधिके पकनेसे अथवा कानमें जल भरजानेसे कर्णपाकरोग होता है । उस समय कानमें दुर्गन्ध और गीलापन रहता है ॥ १२ ॥

पूतिकर्णके लक्षण ।

पूयं स्रवति यः पूतिः स ज्ञेयः पूतिकर्णकः ।

कानमेंसे जो दुर्गन्धयुक्त राध बहती है, उसको पूतिकर्ण कहते हैं।

कर्णशोथादिकोंके लक्षण।

कर्णशोथार्बुदार्शांसि जानीयादुक्तलक्षणैः ॥ १३ ॥

कर्णशोथ, कर्ण अर्बुद और कर्णअर्श इनके लक्षण शोथ, अर्बुद और अर्शरोगके लक्षणोंके समान जानने चाहिये ॥ १३ ॥

वातजकर्णरोगके लक्षण।

नादोतिरुक्कर्णमलस्य शोषः स्रावस्तनुश्चाश्रवणश्च वातात्।

चरकने जो चार प्रकारके कर्णरोग कहे हैं, उनको कहते हैं। वातजकर्णरोगमें शब्द होता है, अत्यन्त वेदना होती है, कानका मैल सूख जाता है, थोडा २ बहता और सुनाई नहीं आता है।

पित्तजकर्णरोगके लक्षण।

शोथः सरागो दरणं विदाहः सपीतपूतिस्रवणश्च पित्तात् ॥ १४ ॥

जो लाल सूजन हो,दाह हो, कान फटता हो और दुर्गन्धयुक्त पीला स्राव होता हो तो उसको पित्तसे उत्पन्न हुआ कर्णरोग जानना चाहिए ॥ १४ ॥

कफजकर्णरोगके लक्षण।

वैश्रुत्यकंडूस्थिरशोथशुक्लाः स्निग्धा स्रुतिः श्लेष्मभवेऽल्परुक् च।

कफजकर्णरोगमें विपरीत सुनना अर्थात् कहे कुछ और सुने कुछ, खुजली, कठिन सूजन तथा सफेद और चिकनी राध बहती है एवं अल्पपीडा होती है॥

सन्निपातजके लक्षण।

सर्वाणि रूपाणि च संन्निपातात्स्रावश्च तत्राधिकदोषवर्णः ॥ १५ ॥

त्रिदोषज (सन्निपातज) कर्णरोगमें ये सब लक्षण मिलते हैं सर्वप्रकारका स्राव होता है अथवा जो दोष अधिक होता है उसी रंगका स्राव होता है ॥ १५ ॥

परिपोटकके लक्षण।

सौकुमार्याच्चिरोत्सृष्टे सहसैवातिवर्द्धिते। कर्णे शोथो भवेत्पाल्यां सरुजः परिपोटवान् ॥ कृष्णारुणनिभः स्तब्धः स वातात्परिपोटकः ॥ १६ ॥

अधिक समयतक कानमें कोई भारी आभूषण पहरनेसे अथवा अन्य कोई वस्तु डालकर ऐसे ही छोड देनेसे सुकुमारताके कारण उसमें सहसा अत्यन्त सूजन होजाती है, पीडा होती है और किंचित् कान फट जाता है उसमें कालापन मिला हुआ लाल और जकडा हुआसा जो शोथ होता है उसको परिपोटक कहते हैं, यह रोग वायुसे होता है ॥ १६ ॥

उत्पातके लक्षण।

गुर्वाभरणसंयोगात्ताडनाद्घर्षणादपि। शोथः पाल्यां भवेच्छ्यावो दाहपाकरुजान्वितः ॥ रक्तो वा रक्तपित्ताभ्यामुत्पातः स गदो मतः ॥ १७ ॥

कानमें भारी आभूषण पहरनेसे या किसी प्रकारकी चोटके लगनेसे अथवा कानके रगडे जानेसे रक्त पित्तके कुपित होनेके कारण कानकी पालिमें काली और लाल रंगकी मिली हुई, तथा लाल, दाह पीडा पाकयुक्त जो सूजन उत्पन्न होती है, उसको उत्पात कहते हैं ॥ १७ ॥

उन्मन्थकके लक्षण।

कर्णं बलाद्वर्द्धयतः पाल्यां वायुः प्रकुप्यति। कफं संगृह्य कुरुते शोफं स्तब्धमवेदनम् ॥ उन्मन्थकः सकंडूको विकारः कफवातजः ॥ १८ ॥

कानको बलात्कार बढानेसे पालीमें वायु प्रकुपित होजाता है फिर वह वायु कफको सञ्चित करके वहां स्तब्धतायुक्त, अल्पवेदनावाली और खुजली सहित सूजनको उत्पन्न करता है, उसको उन्मन्थकरोग कहते हैं। यह रोग कफ और वायु इन दोनोंके प्रकोपसे होता है ॥ १८ ॥

दुःखवर्द्धनके लक्षण।

संवर्द्धमाने दुर्विद्धे कण्डूदाहरुजान्वितः। शोथो भवति पाकश्च त्रिदोषो दुःखवर्द्धनः ॥ १९ ॥

अयोग्य प्रकारसे कानको छेदनेपर और बढानेपर उसमें खुजली, दाह और पीडा सहित सूजन होती है और पाक होता है । इस रोगको दुःखवर्द्धन कहते हैं । यह रोग तीनों दोषोंसे होता है ॥ १९ ॥

परिलेहीके लक्षण ।

कफासृक्कृमयः क्रुद्धाः सर्षपाभा विसर्पिणः। कुर्वन्ति पिटिकाः पाल्यां कण्डूदाहसमन्विताः ॥ २० ॥ कफासृक्कृमिसंभूतः स विसर्पन्नितस्ततः । लिहेच्च सकलां पालीं परिलेहीति स स्मृतः ॥ २१ ॥

कफ, रुधिर और कृमि कुपित होकर कानकी पाली खुजलीवाली और दाहयुक्त सरसोंके समान फुन्सियोंको उत्पन्न करते हैं । यह रोग चारोंओरको फैलता हुआ कानके छेदको तथा-पाली (कानकी-लौर) को मांसरहित करडालता है । कफ,रुधिर और कृमि इनके प्रकोपसे हुआ यह रोग परिलेही कहलाता है ॥ २० ॥ २१ ॥

कर्णरोगोंकी चिकित्सा ।

कर्णशूले प्रणादे च बाधिर्ये क्ष्वेड एव च । चतुर्णामपि रोगाणां सामान्यं भेषजं विदुः ॥ २२ ॥

कर्णशूल, कर्णनाद,बाधिर्य्य और क्ष्वेड इन चारों कर्णरोगोंकी एकसी औषध करनी चाहिये ॥ २२ ॥

स्निग्धं वातहरैः स्नेहैर्नरं वापि विरेचयेत् । भुक्तोपरि हितं सर्पिर्बस्तिकर्म च पूजितम् ॥ २३ ॥

कर्णशूलमें स्निग्ध और वातनाशक स्नेह पदार्थोंके द्वारा रोगोंको स्निग्ध करके विरेचन करावे तथा भोजनके पश्चात् घृतपान और बस्तिकर्म्म प्रयोग करे ॥ २३ ॥

कोष्णं पयोऽनुपानञ्च त्रिरात्रं पाययेद् घृतम् ॥ २४ ॥

घृतको मन्दोष्ण दूधके साथ तीन दिनतक पान करानेसे कर्णशूल नष्ट होता है ॥ २४ ॥

अश्वत्थपत्रखल्लं वा विधाय बहुपत्रकम् । तैलाक्तमङ्गारपूर्णं निदध्याच्छ्रवणोपरि ॥ २५ ॥ यत्तैलं च्यवते तस्मात्खल्लादङ्गारतापितात् । तत्प्राप्तं श्रवणस्रोतः सद्यो गृह्णाति वेदनाम् ॥२६॥

पीपलके पत्तोंको तेलमें भिजोकर उनका छिद्र-युक्त दौना बनाकर उसको अंगारोंपर रक्खे अंगारोंपर तपानेसे उन दोनेमेंसे जो तेल टपके उस तेलको कानमें डाले तो कानकी पीडा तत्काल शांत होती है ॥२५॥२६॥

शृङ्गवेरञ्च मधुकं सैन्धवं तैलमेव च । कदुष्णं कर्णयोर्द्देयमेतद्वा वेदनापहम् ॥ २७ ॥

अदरख, मुलैठी, सैंधानमक और तेल इनको एकत्र पकाकर सुहाता २ कानमें डालनेसे कानकी पीडा दूर होती है ॥ ॥ २७ ॥

कपित्थमातुलुङ्गाम्लशृङ्गवेररसैः शुभैः । सुखोष्णैः पूरयेत्कर्णं कर्णशूलोपशान्तये ॥२८ ॥

कैथ, विजौरा नीबू, काँजी और अदरख इनका रस निकालकर उसको गरम करके सुहाता २ कानमें डालनेसे कर्णशूल शांत होता है ॥ २८ ॥

लशुनार्द्रकशिग्रूणां सुरङ्ग्या मूलकस्य च । कदल्याः स्वरसः श्रेष्ठः कदुष्णं कर्णपूरणे ॥२९ ॥

लहसुन,अदरख, सहिंजना और लाल सहिंजनेकी जड तथा केला इन सबके स्वरसको कुछ एक गरम करके कानमें डालना कानके शूलमें हितकर है॥२९॥

कर्णं कोष्णेन शुक्तेन पूरयेत्कर्णशूलिनः। समुद्रफेनचूर्णेन शुक्त्या वाप्यवचूर्णयेत् ॥ ३० ॥

कानकी पीडावाले रोगीके काँजीको कुछ एक गरम करके उसमें समुद्रफेन अथवा सीपका चूर्ण मिलाकर कानमें डालनेसे कानकी पीडा शांत होती है ॥ ३० ॥

अर्कांकुरानम्लपिष्टांस्तैलाक्ताँल्लवणान्वितान् । सन्निदध्यात्स्नुहीकाण्डे कोरिते तच्छदावृते ॥ ३१ ॥ पुटपाकक्रमात्स्विन्नं पीडयेदारसागमात् । सुखोष्णं तद्रसं कर्णे दापयेच्छूलशान्तये ॥ ३२ ॥

आकके अंकुरोंको काँजीमें पीसकर उनमें तेल और सैंधानमक मिलाकर सेंडके डंडेके भीतर भरदेवे फिर उसको कपरौटी आदिसे बंद करके पुटपाककी विधिसे पकावे । जब वह शीतल होजाय तव उसमेंसे रस निचोड कर सुहाता सुहाता कानमें डाले तो कानका शूल शांत हो जाता है ॥३१॥३२॥

दीपिकातैल ।

महतः पञ्चमूलस्य काष्ठान्यष्टांगुलानि च । क्षौमेनावेष्ट्य संसिच्य तैलेनादीपयेत्ततः ॥ ३३ ॥ यत्तैलं च्यवते तेभ्यः सुखोष्णं तत्प्रदापयेत् । ज्ञेयं तद्दीपिकातैलं सद्यो गृह्णाति वेदनाम् ॥ ३४ ॥

बृहत्पंचमूलकी आठ अंगुल परिमाण लकडी लेकर उसको कपडेसे वेष्टित कर और तेलमें भिजोकर दीपकके योगसे जलावे उसमेंसे टपक टपककर जो तेल गिरे,उसको ग्रहण करे उस तेलको सुहाता२ कानमें डालनेसे कानका शूल तत्काल शांत हो जाता है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

एवं कुर्याद्भद्रकाष्ठे कुष्ठे काष्ठे च सारले । मतिमान्दीपिकातैलं कर्णशूलनिवारणम् ॥ ३५ ॥

इसीप्रकार बुद्धिमान् मनुष्य देवदारु, कूठ और धूपसरलकी लकडियोंको भी जलाकर तेल ग्रहण करे यह तेल भी कानके शूलको दूर करता है ॥ ३५ ॥

अर्कस्य पत्रं परिणामपीतमाज्येन लिप्तं शिखिनावतप्तम् । आपीड्य तोयं श्रवणे निषिक्तं निहन्ति शूलं बहुवेदनञ्च ॥ ३६ ॥

आकके पके हुए पत्तोंको लेकर उनपर घी चुपडकर दीपककी लोय अथवा अग्नि पर सेंके फिर उनके रसको निचोडकर कानमें डालनेसे तो अत्यन्त वेदनासहित कानका शूल तत्काल दूर होता है ॥३६॥

तीव्रशूलातुरे कर्णे सशब्दे क्लेदवाहिनि । छागमूत्रं प्रशंसन्ति कोष्णं सैन्धवसंयुतम् ॥ ३७ ॥

अत्यन्त शूलसे पीडित रोगीके शब्द करते हुए और बहते हुए कानमें बकरेके मूत्रको गरम करके उसमें सैंधानमक मिलाकर सुहाता २ डालनेसे तत्काल शूल शांत होता है ॥ ३७ ॥

एरण्डपत्रपुटपाकविपाचिताम्बु तुल्यार्द्रकस्य सलिलं मधुकेन मिश्रम् । पक्का च तैललवणेन युतं सुखोष्णं कर्णे रुजं हरति तत्क्षणमेव दत्तम् ॥३८॥

अण्डके पत्तोंको पुटपाककी विधिसे पकाकर उनका रस निकाल लेवे फिर उसमें समान भाग अदरखका रस, शहद, तेल और सैंधानमक पकावे । जब वह अच्छे प्रकारसे पकजाय तब उसको सुहाता सुहाता कानमें डाले । इसके कानमें डालते ही कानकी पीड़ा तत्क्षण शांत हो जाती है ॥ ३८ ॥

बिल्वैरण्डार्कवर्षाभूदधित्थोन्मत्तशिग्रुभिः । वत्सगन्धाश्वगन्धाभ्यां तर्कारीयवरेणुभिः ॥३९॥ आरनालशृतैरेभिर्नाडीस्वेदः प्रयोजितः । कफवातसमुत्थानं कर्णशूलं निवारयेत्॥४०॥

बेलगिरी, अण्डकी जड, आक, पुनर्नवा, कैथ, धतूरा, सहिंजना, अजगंध, (वनतुलसी या अजमोद,) असगंध, अरणी, इन्द्रजौ और रेणुका इन सबको समान भाग लेकर कांजीमें पकावे । फिर इससे कानकी नाडीमें स्वेद देवे तो कफवातजनित कर्णशूल नष्ट होता है ॥ ३९ ॥ ४० ॥

रास्नागुग्गुलु ।

रास्नामृतैरण्डसुराह्वविश्वं तुल्यं पुरेणापि विमर्द्य खादेत् । वातामयी कर्णशिरोगदी च नाडीव्रणी चैव भगन्दरी च ॥ ४१ ॥

रायसन, गिलोय, अण्डकी जड, देवदारु और सोंठ ये सब समान भाग लेवे और सबके बराबर

गूगल लेवे इन सबको एकत्र मर्दन करके सेवन करे तो इससे वातरोग, कर्णशूल, शिरोरोग, नाडीव्रण और भगन्दर रोग दूर होता है ॥ ४१ ॥

वंशावलेखसंयुक्ते मूत्रे वाऽऽजाविके भिषक् । तैलं पचेत्तेन कर्णं पूरयेत्कर्णशूलिनः ॥ ४२ ॥

वैद्य बांसकी छालको भेड या बकरीके मूत्रमें डालकर उसमें तेलको पकावे । उस तेलको कानकी पीडावाले रोगीको कानमें डालनेसे कर्णरोग नष्ट होता है ॥ ४२ ॥

कर्णपूरणविधि ।

धारयेत्पूरणं कर्णे कर्णशूलं विमर्दयेत् । रुजः स्यान्मार्दवं यावन्मात्राशतमवेदनम् ॥ ४३ ॥

कानको तेलसे भरकर उसको तबतक एक ओरको रक्खे जबतक पीडा कम न हो, मृदुता न हो और सौ १०० तक मात्रा पूरी न हो जाय फिर उसको मर्दन करे । इस प्रकार करनेसे कर्णशूल नष्ट हो जाता है ॥ ४३ ॥

मात्रा लक्षण ।

यावत्पर्येति हस्ताग्रं दक्षिणं जानुमण्डलम् । निमेषोन्मेषकालेन समं मात्रा तु सा स्मृता ॥ ४४ ॥

हाथको दहिनी जंघाके ऊपर फेरकर चुटकी बजानेमें जितना समय लगे अथवा आँखको खोलने मींचनेमें जितना समय लगे उसको एक मात्रा कहते हैं ॥ ४४ ॥

श्योनाकतैल ।

तैलं श्योनाकमूलेन मन्दाग्नौ परिसाधितम् । हरेदाशु त्रिदोषोत्थं कर्णशूलं प्रपूरणात् ॥ ४५ ॥

श्योनाककी जडके कल्कके साथ मन्द मन्द अग्निके द्वारा तेलको पकाकर कानमें भरनेसे त्रिदोषजनित कर्णशूल नष्ट होता है ॥ ४५ ॥

हिंग्वादितैल ।

हिंगुतुम्बुरुशुण्ठीभिः साध्यं तैलं ससार्षपम् । कर्णशूले प्रधानं तत्पूरणं हितमुच्यते ॥ ४६ ॥

हींग, तुम्बुरु, सोंठ और सरसों इनके तेलको उत्तम प्रकारसे पकाकर कानमें डाले यह तेल कर्णशूलमें अत्यन्त हितकारी है ॥ ४६ ॥

देवदार्वादितैल ।

देवदारुवचाशुण्ठिशताह्वाकुष्ठसैन्धवैः । तैलं सिद्धं हि गोमूत्रे कर्णशूलनिवारणम् ॥ ४७ ॥

देवदारु, वच, सोंठ, शतावर, कूठ और सैंधानमक इनके कल्कके द्वारा गोमूत्रमें तेलको पकावे । यह तेल कर्णशूलको नष्ट करता है ॥ ४७ ॥

पिप्पल्यादितैल ।

पिप्पल्यो बिल्वमूलञ्च कुष्ठं मधुकमेव च । सूक्ष्मैलादेवदारूणि मांसीव्याघ्रीनखीगुरु ॥ ४८ ॥ गर्भेणानेन तैलस्य प्रस्थं मृद्वग्निना पचेत् । केयूरमूलकरसौ दद्यात्स्नेहेन संयुतौ ॥४९॥ तेन कर्णे पिचुं दद्याद्वस्तिकर्म्म च कारयेत् । तेनोपशाम्यते क्षिप्रं कर्णशूलं सुदारुणम् ॥ ५० ॥

पीपल, बेलकी जड़, कूठ, मुलैठी, छोटी इलायची, देवदारु, बालछड, कटेरी, नख और अगर इनके कल्कके द्वारा एक प्रस्थ तेलको मन्द मन्द अग्निसे पकावे और इसमें केयूर (केमुआ) और मूलीका रस स्नेहके साथ मिलाकर डाल देवे । विधिपूर्वक इस तेलको सिद्ध करे । इस तेलका फाया कानमें रक्खे और इसके द्वारा बस्तिकर्म्म करे । इससे दारुण कर्णशूल शीघ्र शमन होजाता है ॥४८-५०॥

वातरोगे च निर्दिष्टा क्रिया चात्र प्रयोजयेत् । स्नानं शीताम्बुसंपानं मैथुनञ्च विवर्जयेत् ॥ ५१ ॥

वातरोगमें जो चिकित्सा कही है, वही चिकित्सा इस कर्णरोगमें भी प्रयोग करनी चाहिये । इसमें शीतल जलसे स्नान और शीतलजलका पान तथा मैथुनकर्म्म ये सब त्याग देवे ॥ ५१ ॥

पित्तजे शर्करायुक्तं घृतस्निग्धं विरेचनम्। द्राक्षायष्टीशृतं क्षीरं शस्यते कर्णपूरणम् ॥ ५२ ॥

पित्तजकर्णरोगमें मिश्रीयुक्त घी और चिकने पदार्थोंका विरेचन देवे। दाख और मुलैठी इनको दूधमें औटाकर पान करे, यह कर्णपूरणमें उत्तम है॥ ५२॥

पित्तवद्रक्तजे कुर्य्याच्छिराया रक्तमोक्षणम्। कफजे मागधीसिद्धं हविर्दुग्धं प्रवाप्य च ॥ कुर्य्याद्गण्डूषसंस्वेदं धूमनं कफनाशनम् ॥ ५३ ॥

रक्तजकर्णरोगमें पित्तके समान चिकित्सा करे तथा शिरावेध कर रक्तमोक्षण करावे। कफजकर्णरोगमें पीपलके कल्कके द्वारा सिद्ध कियेहुए घृतको दूधमें डालकर गण्डूष धारण करे, स्वेद देवे और कफनाशक धूप देवे॥ ५३॥

कर्णक्ष्वेडे कर्णनादे कटुतैलेन पूरयेत्। नादबाधिर्य्ययोः कुर्य्यात्कर्णशूलोक्तमौषधम् ॥ ५४ ॥

कर्णनाद और कर्णक्ष्वेडमें कडवे तेलको कानमें भरे। कर्णनाद और बाधिर्य्यरोगमें कर्णशूलोक्त औषध प्रयोग करे॥ ५४॥

कफजे चाचरेत्पूर्वं वमनाद्यैः क्रियाक्रमम्। वातजे कर्णके वापि लाङ्गलीक्षीरमिश्रितम् ॥ ५५ ॥

कफजकर्णरोगमें प्रथम वमनादिके द्वारा चिकित्सा करे। वातजकर्णरोगमें दूधमें कलिहारीका चूर्ण डाल कर पान करे॥ ५५॥

दलेनाश्वत्थवृक्षस्य वेष्टितं सुविपाचितम्। सतैललवणं कोष्णं बाधिर्ये कर्णपूरणम् ॥ ५६ ॥

पीपलके पत्तोंको पुटपाककी विधिसे पकाकर फिर उनका रस निचोडकर उसमें तेल और सैंधानमक डालकर कुछ गरम करके कानमें डालनेसे बधिरता नष्ट होती है॥ ५६॥

एरण्डादितैल।

एरण्डशिग्रुवरुणमूलिकापत्रजे रसे। चतुर्गुणे पचेत्तैलं क्षीरे चाष्टगुणान्विते ॥ ५७ ॥ यष्ट्याह्वक्षीरकाकोलीकल्कयुक्तं निहन्ति तत्। नादबाधिर्यशूलानि नावनाभ्यङ्गपूरणैः ॥ ५८ ॥

अण्डकी जड, सहिंजना, वरना और मूलीके चौगुने स्वरसमें तथा अठगुणे दूधमें मुलैठी और क्षीरकाकोली इनके कल्कके सहित डालकर तेलको पकावे इस तेलको नस्य, अभ्यंग और कर्णपूरण आदि कर्म्मके द्वारा प्रयोग करनेसे कर्णनाद, बधिरता और कर्णशूल नष्ट होते हैं॥ ५७॥ ५८॥

सूकरवसा।

कल्ककाथैश्च यष्ट्याह्वकाकोलीद्वियमाषकैः। सूकरस्य वसा पक्वा कर्णनादार्तिनाशिनी ॥ ५९ ॥

मुलैठी, काकोली, क्षीरकाकोली और उडद इनके कल्क और काथमें सूअरकी चर्बीको पकाकर उसको कानमें डालनेसे कर्णनादरोग दूर होता है॥ ५९॥

स्वर्जिकातैल।

स्वर्जिकामूलकं शुष्कं हिंगुकृष्णामहौषधम्। शतपुष्पा च तैस्तैलं पक्वं शुक्ते चतुर्गुणे ॥ ६० ॥ प्रणादशूलबाधिर्य्यं स्रावं चाशु व्यपोहति ॥ ६१ ॥

सज्जी, सूखीमूली, हींग, पीपल, सोंठ और सौंफ इनके कल्कके द्वारा चौगुनी शुक्तनामक काँजीमें तेलको पकावे। इस तेलको कानमें डालनेसे कर्णनाद, कर्णशूल, बधिरता और कर्णस्राव शीघ्र दूर होता है॥ ६०॥ ६१॥

मयूरनालाद्यतैल।

मयूरनालगोमांसं लशुनं शुष्कमूलकम्। सशुक्तं साधितं तैलं कर्णनादार्त्तिनाशनम् ॥ ६२ ॥

मोरकी नाल (नली), गायका मांस, लहसुन और सूखीमूली इनको शुक्तनामक काँजीमें मिला कर तेलको पकावे। यह तेल–कर्णनाद और कानकी पीडाको शांत करता है॥ ६२॥

बिल्वतैल ।

गवां मूत्रेण बिल्वानि पिष्ट्वा तैलं विपाचयेत् । सजलश्च सदुग्धश्च बाधिर्ये कर्णपूरणम् ॥ ६३ ॥

बेलको गोमूत्रमें पीसकर उसको जल और दूधके साथ तेलको पकावे । बधिर होने पर इस तेलको कानमें डालनेसे शिघ्र लाभ होता है ॥ ६३ ॥

अपामार्गतैल ।

अपामार्गक्षारजले तत्कृतकल्केन साधितं तैलम् । अपहरति कर्णनादं बाधिर्यं चापि पूरणतः ॥ ६४ ॥

चिरचिटेके क्षार जलमें चिरचिटेका कल्क डाल कर उसके साथ तेलको पकावे । यह तेल कानमें डालनेसे कर्णनाद और बधिरताको नष्ट करता है ॥६४॥

क्षारतैल ।

बालमूलकशुण्ठीनां क्षारो हिंगुसनागरम् । शतपुष्पावचाकुष्ठं दारुशिग्रुरसाञ्जनम् ॥ ६५ ॥ सौवर्चलं यवक्षारः स्वर्जिकोद्भिदसैन्धवम् । भूर्जग्रन्थिविडं मुस्तं मधुशुक्तं चतुर्गुणम् ॥ ६६ ॥ मातुलुङ्गरसश्चैव कदल्या रस एव च । तैलमेभिर्विपक्तव्यं कर्णशूलहरं परम् ॥ ६७ ॥ बाधिर्यं कर्णनादश्च पूयस्रावश्च दारुणः । पूरणादस्य तैलस्य कृमयः कर्णमाश्रिताः ॥ ६८ ॥ क्षिप्रं विनाशमायान्ति कृष्णात्रेयस्य शासनात् । क्षारतैलमिदं श्रेष्ठं मुखकर्णामयापहम् ॥ ६९ ॥

कच्चीमूलीको सुखाकार उसका बनाया हुआ क्षार और सोंठका क्षार एवं हिंगु,सोंठ, सोया,वच, कूठ, देवदारु, सहिंजना, रसौत, काला नमक, जवाखार, सज्जी, विरियासंचर नमक, सैंधानमक, भोजपत्र, पीपलामूल, वायविडंग और नागरमोथा इनके कल्कको चौगुनी मधुशुक्तनामक काँजी, विजौरे नींबूके रस और केलेके रसमें डालकर इन सबके द्वारा तेलको पकावे । यह तेल-कर्णशूल, बधिरता, कर्णनाद और पूयस्रावको दूर करता है । इस तेलको कानमें पूर्ण करनेसे कानके कृमि शीघ्र नष्ट होजाते हैं । यह क्षारतेल कृष्णात्रेयका कहाहुआ है । यह मुख तथा कानके समस्त रोगोंको दूर करनेके लिए परम श्रेष्ठ है ॥ ६५-६९ ॥

मधुशुक्तके लक्षण ।

जम्बीराणां फलरसः प्रस्थैकः कुडवोन्मितम् । माक्षिकं तत्र दातव्यं पिप्पली च पलोन्मिता ॥ ७० ॥ घृतभांडे विनिःक्षिप्य धान्यराशौ निधापयेत् । मासेन तज्जातरसं मधुशुक्तमुदाहृतम् ॥ ७१ ॥

जम्भीरीनींबुओंका स्वरस १ प्रस्थ लेकर उसमें एक कुडव परिमाण शहद और चार तोले पीपलका चूर्ण डालकर उसको घीके चिकने बासनमें भरकर धानोंके ढेरमें गाड देवे । फिर एक महीनेके बाद उसको उखाड लेवे । उस समय उसमेंसे जो रस निकलता है उसको मधुशुक्त कहते हैं ॥ ७० ॥ ७१ ॥

एष एव विधिः कार्य्यः प्रणादे नस्यपूर्वकः । गुडनागरतोयेन नस्यं स्यादुभयोरपि ॥ ७२ ॥

कर्णनाद रोगमें प्रथम नस्य देकर फिर यही सब विधि करनी चाहिये । गुड और सोंठ इनको जलमें मिलाकर उपर्युक्त दोनों रोगोंमें नास देवे ॥ ७२ ॥

कर्णस्रावे पूतिकर्णे तथैव कृमिकर्णके । सामान्यं कर्म्म कुर्वीत योगान्वैशेषकानपि ॥ ७३ ॥

कर्णस्राव, पूतिकर्ण और कृमिकर्ण इन रोगोंमें उपर्युक्त सामान्यचिकित्सा करनी चाहिये और विशेष क्रिया भी करनी चाहिए ॥ ७३ ॥

शिरोविरेचनं चैव धूपनं पूरणं तथा । प्रमार्जनं धावनश्च वीक्ष्य वीक्ष्यावचारयेत् ॥ ७४ ॥

दोषोंका बलाबल विचारकर शिरोविरेचन, धूपप्रदान,कर्णपूरण, प्रमार्जन और धावन ये सब प्रयोग करने चाहिए ॥ ७४ ॥

राजवृक्षादितोयेन सुरसादिजलेन च । कर्णप्रक्षालनं कार्यं चूर्णैरेतैस्तु पूरणम् ॥ ७५ ॥

अमलतास आदिके जलके द्वारा अथवा तुलसी आदि औषधियोंके जलके द्वारा कानको धोवे । और इन्हीं औषधियोंके चूर्णको कानमें डाले ॥७५॥

चूर्णं पञ्चकषायाणां कपित्थरससंयुतम् । कर्णस्रावे प्रशंसन्ति पूरणं मधुना सह ॥ ७६ ॥

पंचकषायके चूर्णको कैथके रस और शहदके साथ मिलाकर कानमें भरनेसे कर्णस्रावरोगमें शीघ्र लाभ होता है ॥ ७६ ॥

तिन्दुकान्यभयालोध्रं समङ्गा चामलक्यपि । पञ्चकषायशब्देन ग्राह्यमेतद्धि बोधितम् ॥ ७७ ॥

तेंदू, हरड,लोध, मजीठ और आमले इनको पंच कषाय कहते हैं अर्थात् पंचकषायशब्दसे इनको ग्रहण करना चाहिये ॥ ७७ ॥

सर्जत्वक्चूर्णसंयुक्तं बीजपूररसं क्षिपेत् । कर्णस्रावे रुजो दाहाः प्रणश्यन्ति न संशयः ॥ ७८ ॥

शालकी छालका चूर्ण करके उसको बिजौरेनीबूके रसमें मिलाकर कानमें डालनेसे कर्णस्राव, कानकी पीडा और कानका दाह निस्सन्देह दूर होता है ॥ ७८ ॥

सर्जत्वक्चूर्णसंयुक्तः कार्पासीफलजो रसः । योजितो मधुना वापि कर्णस्रावे प्रशस्यते ॥ ७९ ॥

शालकी छालके चूर्णको कपासके फलोंके रसमें मिलाकर शहद डालकर कानमें डालनेसे कर्णस्रावरोग दूर होता है ॥ ७९ ॥

पुटपाकक्रमस्विन्नो हस्तिविड्जातछत्रजः । रसः सतैलसिन्धूत्थः कर्णस्रावहरः परः ॥ ८० ॥

हाथीकी लीदसे उत्पन्न हुए छत्रशाक (साँपकी छत्री) को पुटपाककी विधिसे पका कर उसका रस निचोड लेवे । उसको तेल और सैंधानमकके चूर्णके साथ कानमें डालनेसे कर्णस्रावरोग दूर होता है ॥ ८० ॥

जम्ब्वाद्यतैल ।

जम्ब्वाम्रपत्रं तरुणं समांशं कपित्थकार्पासफलञ्च सान्द्रम् । क्षुण्णं रसं तन्मधुना विमिश्रं स्रावापहन्तं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥ एतैः शृतं निम्बकरञ्जतैलं ससार्षपं स्रावहरं प्रदिष्टम् ॥ ८१ ॥

जामुन और आमके नवीन पत्ते, तथा कैथ और कपास इनके गीले फल इन सबको समान भाग लेकर एकत्र छेद करके रस निचोड लेवे । उस रसमें शहद मिलाकर उसको कानमें डालनेसे कानका स्राव दूर होता है । अथवा इनके रसको, नीम और करंजको सरसोंके तेलमें डालकर तेलको पकावे । यह तेल भी ऊपर्युक्त कर्णस्रावादिरोगोंको दूर करता है ॥ ८१ ॥

विषगर्भतैल ।

अर्कस्य पत्रस्वरसं निर्गुण्डीस्वरसं तथा । राजवृक्षादितोयेन सूर्य्यावर्त्तरसं तथा ॥ ८२ ॥ चित्रकोद्भवसंमिश्रं वज्रीक्षीरं तथैव च । तथा हुलहुलतोयेन प्रस्थैकेन क्रमेण तु ८३॥ तैलप्रस्थं पचेत्तस्मिन् हरितालपलद्वयम् । सैन्धवञ्च पलं योज्यं विषं पादांशकं तथा ॥ एतत्तैलं हरेत् क्षिप्रं कर्णशूलञ्च दुस्तरम् ॥ ८४ ॥

आकके पत्तोंका स्वरस, सिम्हालुके पत्तोंका स्वरस, अमलतास आदिका स्वरस, सूर्य्यावर्त्तका रस, चीतेका स्वरस, थूहरका दूध और हुलहुलका रस ये प्रत्येक एक प्रस्थ एवं तिलका तेल १ प्रस्थ, हरिताल ८ तोले, सैंधानमक ४ तोले और शुद्ध मीठाविष २ तोले लेकर इनका कल्क बनाकर सबको एकत्र करके तेलको पकावे । यह तेल दुस्तर कर्णशूलको शीघ्र नष्ट कर देता है ॥ ८२-८४ ॥

मुसलीबाकुचीचूर्णं खादेद्बाधिर्य्य-शान्तये ॥ ८५ ॥

मुसली और बापचीके चूर्णको सेवन करनेसे बधिरता नष्ट होती है ॥ ८५ ॥

पञ्चवल्कलतैल ।

बिल्वोदुम्बरजम्बूदधित्थचूतानां वल्कलैः सिद्धम् । श्रुतिरोधश्च निहन्ति तैलं प्रपाकपूतिश्रुतं जयति ॥ ८६ ॥

बेलगिरी, गूलर, जामुन, कैथ और आम इनकी छालको पीसकर तेलमें डालकर पकावे । यह तेल-बधिरता, कर्णपाक और कर्णस्रावको दूर करता है ॥ ८६ ॥

चतुष्पर्णतैल ।

आम्रजंबूप्रवालानि मधुकस्य वटस्य च । एभिः सुसाधितं तैलं पूतिकर्णोपशान्तये ॥ ८७ ॥

आम और जामुन, महुआ और वड इनके कोमलपत्तोंके द्वारा तेलको पकाकर कानमें डाले यह तेल कर्णस्राव और कानकी दुर्गन्धको नष्ट करनेके लिये अत्युत्तम है ॥ ८७ ॥

चतुष्पल्लवतैल ।

वरुणाह्वकपित्थाम्र-जंबूपल्लवसाधितम् । पूतिकर्णापहं तैलं जातीपत्ररसोऽथवा ॥ ८८ ॥

वरनाकी छाल,कैथ, आम और जामुन इनकेपत्तोंके द्वारा पकाया हुआ तेल अथवा चमेलीके पत्तोंके रसके द्वारा पकाया हुआ तेल कानमें डालनेसे पूतिकर्णको दूर करता है ॥ ८८ ॥

निर्गुण्डीस्वरसे तैलं सिन्धुधूमरजो गुडः । पूरणात् पूतिकर्णस्य शमनो मधुसंयुतः ॥ ८९ ॥

निर्गुण्डीके स्वरसमें तेल, सैंधानमक, घरका धुआँसा और गुड डालकर शहद मिलाकर कानोंमें भरनेसे पूतिकर्णरोग शमन होता है ॥ ८९ ॥

जातीपत्ररसे तैलं विपक्वं पूतिकर्णजित् ॥ ९० ॥

चमेलीके पत्तोंके स्वरसमें तेलको पकाकर कानमें डालनेसे पूतिकर्णरोग दूर होता है ॥ ९० ॥

घृष्टं रसाञ्जनं नार्य्याः क्षीरेण मधुसंयुतम् । प्रशस्यते चिरोत्थेषु सस्रावे पूतिकर्णके ॥ ९१ ॥

रसौतको स्त्रीके दूधमें घिसकर उसमें शहद मिलाकर कानमें डालनेसे बहुत दिनोंका पुराना कर्णस्राव और पूतिकर्णरोग दूर होता है ॥ ९१ ॥

कुष्ठाद्यतैल ।

कुष्ठं हिंगुवचादारुशताह्वाविश्वसैन्धवैः । पूतिकर्णापहं तैलं वत्समूत्रेणसाधितम् ॥ ९२ ॥

कूठ, हींग, वच, देवदारु, सोया, सोंठ और सैंधानमक इनके कल्कको और तैलको बकरेके मूत्रमें डाल कर पकावे । यह तेल पूतिकर्णरोगको दूर करता है ॥ ९२ ॥

शम्बूकतैल ।

शम्बूकस्य तु मांसेन कटुतैलं विपाचयेत् । तस्य पूरणमात्रेण कर्णनाडी प्रशाम्यति ॥ ९३ ॥

शम्बूक (घोंघे) के मांसके द्वारा कडवे तेलको पकावे । केवल उस तेलको कानमें भरनेसे कर्णनाडी शांत होजाती है ॥ ९३ ॥

गन्धकाद्यतैल ।

चूर्णेन गन्धकशिलारजनीभवेन मुष्टचंशकेन कटुतैलपलाष्टकञ्च । धत्तूरपत्ररसतुल्यमिदं विपक्वं नाडी जयेच्चिरभवामपि कर्णजाताम् ॥ ९४ ॥ गन्धकादीनामत्रमिलित्वा पलं ग्राह्यम् ।

गन्धक, मैनशिल और हलदी इन सबके चार तोले चूर्णके साथ और आठ पल धतूरेके पत्तोंके स्वरसके साथ आठपल कडवे तेलको पकावे । यह तेल-बहुत दिनोंकी पुरानी कर्णनाडीको भी दूर करता है । गंधकादिकको मिलाकर यहाँ एक पल लेना चाहिये ॥ ९४ ॥

कृमिकर्णविनाशाय कृमिघ्नां कारयेत्क्रियाम् । वार्त्ताकुधूमश्च हितः सर्षपस्नेह एव च ॥ ९५ ॥

कृमिकर्णको नष्ट करनेके लिये कृमिनाशक चिकित्सा करानी चाहिये । इसमें बैंगुनका धूम्र और सरसोंका तेल हितकारी है ॥ ९५ ॥

पूरणं हरितालेन गवां मूत्रयुतेन च । धूपने कर्णदौर्गन्ध्ये गुग्गुलुः श्रेष्ठ उच्यते ॥ ९६ ॥

कानमें दुर्गन्ध आनेपर हरितालको पीसकर गायके मूत्रमें मिला कर कानमें भरे । और गूगलकी धूनी देवे ॥ ९६ ॥

सूर्य्यावर्त्तस्य स्वरसं सिन्धूवाररसं तथा । लाङ्गलीमूलजरसं त्र्यूषणं चूर्णितं तथा ॥ पूरयेत कृमिकर्णन्तु जन्तूनां नाशनं परम् ॥ ९७ ॥

हुलहुलका स्वरस, सिम्हालूका स्वरस और कलिहारीकी जडका रस इनको एकत्र करके इनमें त्रिकुटेका चूर्ण मिला कर कानमें डालनेसे कृमिकर्णरोग दूर होजाता है ॥ ९७ ॥

हरिरविभक्तिव्योषानेकीकृत्य प्रगालयेद्बद्धा । वसनेन तस्य रसने श्रवणे परिपूरयेत्सुतराम् ॥ ९८ ॥ कर्णजलौकानियतं कृमिकीटपिपीलिकास्तथान्येऽपि। निपतन्ति निरवशेषाः कारण्डाश्चापि मुण्डस्थाः ॥ ९९ ॥

कलिहारी, हुलहुल और त्रिकुटा इनको एकत्र जलमें पीस कर वस्त्रमें बाँध कर रस निचोड लेवे । उस रसको कानमें भरनेसे कानमें घुसी हुई जौंक, कृमि, कीट, चैंटी, कानसलाई, कानखजूरा आदि सम्पूर्ण मस्तकके कृमि गिर जाते हैं ॥ ९८ ॥९९॥

अथ कर्णप्रतीनाहे स्नेहस्वेदौ प्रयोजयेत । ततो विरक्तशिरसः क्रियां प्रोक्तां समाचरेत् ॥ १०० ॥

कर्णप्रतिनाहमें प्रथम स्नेह, स्वेद और शिरोविरेचन देकर पश्चात् पूर्वोक्त चिकित्सा करे ॥ १०० ॥

विद्रधौ चापि कुर्वीत विद्रध्युक्तं चिकित्सितम् । कर्णपाकस्य भैषज्यं कुर्य्यात क्षतविसर्पवत ॥ १०१ ॥

कर्णविद्रधिरोगमें विद्रधिमें कही हुई साधारण चिकित्सा करनी चाहिये और कर्णपाककी क्षत और विसर्पके समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥१०१॥

प्रक्लेद्य धीमांस्तैलेन प्रविलाप्य च शोधयेत । कर्णगूथन्तु मतिमान् भिषक् सम्यक् शलाकया ॥ १०२ ॥

बुद्धिमान् वैद्य कर्णगूथ अर्थात् कानमें मैल होजानेपर प्रथम उसमें तेल डाले, फिर शोधनकी औषध डाल कर पश्चात् सलाईसे उस मैलको निकाल देवे ॥ १०२ ॥

स्नेहस्वेदौ च वमनं धूमो मूर्ध्नि विरेचनम् । विधिश्च कफहृत्सर्वः कर्णकंडूमपोहति ॥ १०३ ॥

कर्णकण्डूरोगमें स्नेह, स्वेद, वमन, धूमपान, शिरोविरेचन और समस्त कफनाशक विधि करनेसे कर्णकण्डूरोग दूर होता है ॥ १०३ ॥

बाधिर्य्यं बालवृद्धोत्थं चिरोत्थश्च विवर्जयेत ॥ १०४ ॥

बालक और वृद्धके उत्पन्न हुई एवं बहुत दिनोंकी बधिरताकी चिकित्सा न करे ॥ १०४ ॥

कर्णपालीकी चिकित्सा ।

पालीसंशोषणे कुर्य्याद्वातकर्णरुजः क्रियाम् । स्वेदयेद्यत्नतस्ताश्च स्विन्नां संवर्द्धयेत्तिलैः ॥ १०५ ॥

कानकी पाली सूखी जाती हो तो वातजकर्णरोगोक्त चिकित्सा करे । तथा यत्नपूर्वक पालीको सेंके और सेकनेके पश्चात् तिलका कल्क लगा कर उसको बढावे ॥ १०५ ॥

माहिषनवनीतयुतं सप्ताहं धान्यराशिपर्युषितम् । नवमूसलिकन्दचूर्णं वृद्धिकरं कर्णपालीनाम् ॥ १०६ ॥

नवीन मुसलीका चूर्ण करके उसको भैंसके नैनी घीमें मिला कर धानोंके ढेरमें एक सप्ताह पर्यंत गाढ देवे फिर उसको लगावे तो कानकी पाली बढ जाती है ॥ १०६ ॥

शतावरीतैल ।

शतावरीवाजिगन्धा-पयस्यैरण्डबीजकैः । तैलं विपक्वं सक्षीरं पालीनां पुष्टिकृत्परम् ॥ १०७ ॥

शतावर, असगंध, काकोली और अण्डीके बीज इनके कल्कके द्वारा दूधमें तेलको पकावे। यह तेल पालीमें लगानेसे कानकी पालीको अत्यन्त पुष्ट करता है ॥ १०७॥

जीनवीयतैल ।

कल्केन जीवनीयेन तैलं पयसि पाचितम् । आनूपमांसक्वाथेन पालीशोषणवर्द्धनम् ॥ १०८ ॥ एतेनैव हि तैलेन चिकित्सेद्भिषजां वरः । हृतास्रं परिपोटञ्च चन्द्रिकाञ्च प्रयत्नतः॥१०९॥

जीवनीयगणकी औषधियोंके कल्कके द्वारा दूधमें और अनूपदेशके जीवोंके मांसके क्वाथमें तेलको पकावे यह तेल सूखी हुई पालीको बढाता है। वैद्य परिपोटकका प्रथम रुधिर निकलवा कर फिर इसी तेलके द्वारा परिपोटक और चन्द्रिकाकी यत्नपूर्वक चिकित्सा करे ॥ १०८ ॥ १०९ ॥

शीतैर्लेपैर्जलौकाभिरुत्पातं समुपाचरेत् ॥ ११० ॥

उत्पातरोगमें शीतल लेप और जौंक लगा कर चिकित्सा करे ॥ ११० ॥

गोपवल्लीबलायष्टी जम्ब्वाम्रपल्लवोत्पलैः । सधान्याम्लैः समञ्जिष्ठैः स्विन्नैर्लोध्रान्वितैः समैः । तैलमभ्यङ्गतः सिद्धं कर्णोत्पातहरं परम् ॥ १११ ॥

कालीसर, खिरैंटी, मुलैठी, जामुन और आमके पत्ते, कमल, कांजी, मजीठ और लोध इनको तेलमें पकावे। उस तेलके द्वारा मालिश करनेसे कर्णोत्पातरोग दूर होता है ॥ १११ ॥

त्रायन्त्यश्वगन्धार्कवाकुचीबीजासिन्धुजैः । फलिनीसुरसाभ्याञ्च गोधाकङ्कवसान्वितैः ॥ तैलमभ्यङ्गतः पक्वमुत्पातं नाशयेद्ध्रुवम् ॥ ११२ ॥

त्रायमाण, असगंध, आक, वापचीके बीज, सैंधानमक, फूलप्रियंगू, तुलसी, गोय और कंकपक्षीकी चर्बी, इन सबको तेलमें डाल कर तेलको पकावे। इस तेलकी मालिश करनेसे कर्णोत्पात रोग अवश्य दूर होता है ॥ ११२ ॥

दुःखवर्द्धनकं सिक्त्वा जम्ब्वाम्राश्वत्थपत्रजैः । क्वाथैस्तैलेन सुस्निग्धं तच्चूर्णैरवचूर्णयेत् ॥ ११३ ॥

दुःखवर्द्धनको जामुन, आम और पीपल इनके पत्तोंके काथसे सींचे पश्चात् तेलसे स्निग्ध करके उसपर चूर्ण लगावे ॥ ११३ ॥

बहुशो गोमयपिण्डैः स्वेदितं परिलेहिकम् । मेघसारैः समालिम्पेद्दधिमूत्रेण कल्कितैः ॥ ११४ ॥

परिलेहीको बारम्बार गोबरके पिंडसे स्वेदित करके पश्चात् कपूरको दही और गोमूत्रमें पीस कर लेप करे ॥ ११४ ॥

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायां कर्णरोगाधिकार समाप्त ॥ ६५ ॥

अथ नासारोगाधिकार ।

नासारोगका निदान और पीनसके लक्षण ।

आनह्यते यस्य विशुष्यते च प्रक्लिद्यते धूप्याति चैव नासा । न वेत्ति यो गन्धरसांश्च जन्तुर्जुष्टं व्यवस्येत्तम्पीनसेन ॥ तच्चानिलश्लेष्मभवं विकारं ब्रूयात्प्रतिश्यायसमानलिङ्गम् ॥ १ ॥

नासागत जो चौंतीस रोग कहे हैं, उनमें सबसे प्रथम पीनसके लक्षण कहते हैं। जिसकी नासिका, श्वासके द्वारा सूखे हुए कफसे वन्द होजाती है, सूख जाती है, फिर गीली होजाती है और धुआँसा निकलता है तथा दाह होती है। और वह मनुष्य सुगन्ध व दुर्गन्धको तथा रसादिको नहीं जानसकता है, उसको पीनसरोग कहते हैं। यह रोग वात और कफके द्वारा उत्पन्न होता है। इसमें वात कफज प्रतिश्यायके समान लक्षण होते हैं॥ १॥

पूतिनस्यके लक्षण।

दोषैर्विदग्धैर्गलतालुमूले संमूर्च्छितो यस्य समीरणस्तु। निरेति पूतिर्मुखनासिकाभ्यां तं पूतिनस्यं प्रवदन्ति रोगम्॥ २॥

जिसके गले और तालुकी जड़में दूषित पित्त, कफ और रुधिर इन दोषोंके द्वारा वायु दुर्गंधित होकर मुख और नाकमेंसे निकलता है, उसको पूतिनस्यरोग कहते हैं (यहाँ दोषोंके साथ मिले रहनेसे रुधिरको भी दोष कहा है। पूति अर्थात् दुर्गन्धित हो, नस्य नाककी वायु जिसमें वह पूतिनस्य है इस व्याख्याके अनुसार इस रोगका नाम पूतिनस्य रक्खा गया है)॥ २॥

नासापाकके लक्षण।

घ्राणाश्रितं पित्तमरूंषि कुर्य्याद्यस्मिन् विकारे बलवांश्च पाकः। तं नासिकापाकमिति व्यवस्येद्विक्लेदकोथावथवापि यत्र॥ ३॥

जिसमें नासिकामें रहनेवाला पित्त दूषित होकर छोटी २ फुंसियोंको उत्पन्न करता है, नाक भीतरसे अत्यन्त पकजाती है और क्लेदयुक्त तथा दुर्गन्धित रहती है उसको नासापाक रोग कहते हैं॥ ३॥

पूयरक्तके लक्षण।

दोषैर्विदग्धैरथवापि जन्तोर्ललाटदेशेऽभिहतस्य तैस्तैः। नासा स्रवेत् पूयमसृग्विमिश्रं तं पूयरक्तं प्रवदन्ति रोगम्॥ ४॥

मनुष्यके ललाटमें चोट लगनेसे अथवा स्वयं ही वातादि दोषोंके दूषित होनेसे उन्हीं उन्हीं दोषोंके अनुसार नाकमेंसे रक्त मिलीहुई राध बहती है, उसको पूयरक्त रोग कहते हैं॥ ४॥

क्षवथुके लक्षण।

घ्राणाश्रिते मर्मणि संप्रदुष्टो यस्यानिलो नासिकया निरेति। कफानुयातो बहुशोऽतिशब्दस्तं रोगमाहुः क्षवथुं विधिज्ञाः॥ ५॥

जिसके नासिकाके आश्रित शृङ्गाटक मर्म्म दूषित हुआ वायु कफके साथ मिलकर नासिकाके द्वारा अत्यन्त जोरसे बारम्बार शब्दोंको निकालता है उसको क्षवथु रोग अर्थात् छींक कहते हैं॥ ५॥

आगन्तुजक्षवथुके लक्षण।

तीक्ष्णोपयोगादतिजिघ्रतो वा भावान् कटूनर्कनिरीक्षणाद्वा। सूत्रादिभिर्वातरुणास्थिमर्म्मण्युद्घाटितेऽन्यः क्षवथुर्निरेति॥ ६॥

राई आदि तीक्ष्ण पदार्थोंको या चरपरे पदार्थोंको भक्षण करनेसे अथवा तीक्ष्ण और चरपरे पदार्थोंको अधिक सूंघनेसे, सूर्य्यके सन्मुख देखनेसे अथवा डोरे आदिकी बत्ती बनाकर नाकमें चढानेसे, अथवा अन्यान्य पदार्थोंसे तरुणास्थिनामक मर्म्मस्थलको घिसनेसे जो छींकें आती हैं, उनको वैद्यलोग आगन्तुज क्षवथु कहते हैं॥ ६॥

भ्रंशथुके लक्षण।

प्रभ्रश्यते नासिकयैव यस्य सान्द्रो विदग्धो लवणः कफस्तु। प्राक् सञ्चितो मूर्धनि सूर्यतप्ते तं भ्रंशथुं रोगमुदाहरंति॥ ७॥

जिसके मस्तकमें पहलेसे सञ्चित हुआ गाढा और खारीपन युक्त दूषित कफ सूर्यकी धूपसे मस्तकके सन्तप्त होनेपर नाकसे गिरता है, उसको वैद्य भ्रंशथु रोग कहते हैं॥ ७॥

दीप्तके लक्षण।

घ्राणे भृशं दाहसमन्विते तु विनिश्चरेद्धूम इवोर्द्ध्ववायुः। नासा प्रदीते-

१ दोषसाहचर्याद्रक्तस्याप्यत्र दोषत्वमुक्तम्। पूतिर्नस्यो यस्मिन्स पूतिनस्यः।

व च यस्य जन्तोर्व्याधिं तु तं दीप्त-मुदाहरन्ति ॥ ८ ॥

जिस मनुष्यकी अत्यन्त दाहयुक्त नासिकामेंसे धुएँके समान ऊर्ध्ववायु (श्वास) निकले और नाकसे अग्नि जलनेके समान अत्यन्त गरम रहे उसको दीप्तरोग कहते हैं ॥ ८ ॥

प्रतिनाहके लक्षण ।

उच्छ्वासमार्गं तु कफः सवातो रुन्ध्यात्प्रतीनाहमुदाहरेत्तम् ।

जब वायुके साथ कफ श्वासके मार्गको रोक देता है तब नाकसे अच्छे प्रकारसे श्वास नहीं आता, उस रोगको प्रतीनाह कहते हैं ।

नासास्रावके लक्षण ।

घ्राणाद्घनः पीतसितस्तनुर्वा दोषः स्रवेत् स्रावमुदाहरेत्तम् ॥ ९ ॥

नाकसे जो गाढ़ा, पीला अथवा सफेद रंगका या पतला कफ गिरता है, उसको नासास्राव कहते हैं॥९॥

अन्यमतसे नासास्रावके लक्षण ।

घ्राणात् सपिच्छिलः श्लेष्मा अबलो-द्रव उष्मणा । अजरः स्पन्दते घ्राणा-न्नासास्रावं तमादिशेत् ॥ १० ॥

जिसकी नासिकामेंसे अत्यन्त चिकना, गिलगिला, पतला, गरम और कच्चा कफ निकलता है उसको नासास्राव कहते हैं ॥ १० ॥

नासापरिशोषके लक्षण ।

घ्राणाश्रिते स्रोतसि मारुतेन पित्तेन गाढं परिशोषिते च । कृच्छ्राच्छ्वसे-दूर्ध्वमधश्च जन्तुर्यस्मिन् स नासाप-रिशोष उक्तः ॥ ११ ॥

जिसमें नासिकाके छिद्रमें रहनेवाले वायु और पित्तके द्वारा कफ अत्यन्त सूखजाता है तब मनुष्य बडी कठिनतासे ऊपर नीचेको श्वास लेता है उसको नासापरिशोष कहते हैं ॥ ११ ॥

दोषैस्त्रिभिर्वा पृथगेकशश्च ब्रूयात्तथा-र्शांसि तथैव शोथान् । शालाकसि-द्धान्तमवेक्ष्य चापि सर्वात्मकं सर्व-गमर्बुदं स्यात् ॥ १२ ॥

नासार्श और नासाशोथ ये दोनों रोग वातज, पित्तज, कफज और सन्निपातज इसप्रकारसे चार २ प्रकारके हैं । और नासार्बुद, वात, पित्त, कफ, रक्त, मांस, मेद इन प्रत्येकके द्वारा उत्पन्न होनेसे और सन्निपातज होनेसे सात प्रकारका है ॥ १२ ॥

आमपीनसके लक्षण ।

शिरोगुरुत्वमरुचिर्नासास्रावस्तनु-स्वरः । क्षामः ष्ठीवत्यथाभीक्ष्ण-मामपीनसलक्षणम् ॥ १३ ॥

शिरमें भारीपन, अरुचि, नासिकाके द्वारा पानी गिरना, स्वरहीन होना, शरीरमें कृशता और निरन्तर मुखसे थूकका गिरना ये सब लक्षण अपक्व पीनसके हैं ॥ १३ ॥

पक्वपीनसके लक्षण ।

आमलिङ्गान्वितः श्लेष्मा घनः खेषु निमज्जति । स्वरवर्णविशुद्धिश्च परि-पक्वस्य लक्षणम् ॥ १४ ॥

जब अपक्व लक्षणोंसे युक्त कफ गाढा होजाय एवं जलमें डालनेसे डूबजाय, स्वर निर्मल और वर्ण शुद्ध होजाय तो उसको पक्व पीनस कहते हैं अर्थात् यह पक्वपीनसके लक्षण जानने चाहिए ॥ १४ ॥

पीनसरोगकी चिकित्सा ।

सर्वेषु पीनसेष्वादौ निवातागारगो भवेत् । शिरसोऽभ्यञ्जनैः स्वेदैर्नस्यैः कट्वम्लभोजनैः ॥ वमनैर्घृतपानैश्च नासारोगानुपाचरेत् ॥ १५ ॥

सर्वप्रकारके पीनसरोगोंमें प्रथम रोगीको निर्वात अर्थात् पवनरहित स्थानमें रक्खे । शिरपर मालिश करे, स्वेद और नस्य देवे, कटु और अम्ल पदार्थोंका भोजन करावे, तथा वमन और घृतपानके द्वारा नासा-रोगकी चिकित्सा करे ॥ १५ ॥

पंचमूल्यादियूष ।

पञ्चमूलीशृतं क्षीरं चित्रकश्च हरीत-की । सर्पिर्गुडं षडङ्गश्च यूषः पीनस-शान्तये ॥ १६ ॥

पीनसको शान्त करनेके लिए पञ्चमूलकी औषधियोंके द्वारा औटाया हुआ दूध, एवं चीता, हरड, घी और गुड इनका यूप बनाकर देवे ॥१६॥

सर्वेषु सर्वकालं पीनसरोगेषु जातमात्रेषु । मरिचं गुडेन दध्ना भुञ्जीत नरः सुखं लभते ॥ १७ ॥

सर्व प्रकारके पीनसरोगोंके उत्पन्न होतेही सदैव काली मिरचोंके चूर्णको गुड और दहीके साथ खायें तो वह मनुष्य सुखको प्राप्त होता है ॥ १७ ॥

कटुत्रिकादिचूर्ण और गुटिका ।

कटुत्रिकं चित्रकतिन्तिडीकं तालीशपत्रं चविकाम्लसंज्ञम् । विचूर्णितं जीरकचूर्णयुक्तमेलात्वचा तत्सुरभीकृतं च । मिश्रं पुराणेन गुडेन दद्यात्तत्पीनसानां परिपाचनार्थम् ॥ १८ ॥

त्रिकुटा, चीता, तिन्तिडी, तालीशपत्र, चव्य, अम्लबेत और जीरा इनको समान भाग लेकर चूर्ण करलेवे फिर इलायची और दालचीनीके चूर्णसे सुवासित करके पुराने गुडमें मिलाकर उसकी गोलियाँ बनाकर सेवन करावे तो पीनसरोग दूर होता है ॥ १८ ॥

कट्फलादिचूर्ण ।

कट्फलं शृङ्गवेरं च पिप्पलीमरिचानि च । शटीपुष्करमूलञ्च भार्ङ्गीमधुरसा वरा ॥ १९ ॥ अभयाकृष्णलवणं शृङ्गीकर्कटकस्य च । एतच्चूर्णवरं प्रोक्तं क्वाथो वा मूत्रमूर्छितः ॥ २० ॥ पीनसे स्वरभेदे च तमके सहलीमके । सन्निपातेऽनिलकफे कासे श्वासे च शस्यते ॥ २१ ॥

कायफल, अदरख, पीपल, काली मिरच, कचूर, पोहकरमूल, भारंगी, मूर्वा, त्रिफला, हरड, कालानमक और काकडाशिंगी इनका चूर्ण अथवा इन्हीं औषधियोंका गोमूत्रसे मूर्च्छित किया हुआ काथ पीनसे, स्वरभेद, तमक, हलीमक, सन्निपात, वात, कफ, खाँसी और श्वास इन सब रोगोंमें हितकारी है ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥

पूर्वोद्दिष्टे पूतिनस्ये च कुर्य्यात् स्नेहस्वेदौ छर्दनं स्रंसनं वा । युक्तं भुक्तं तीक्ष्णमल्पं लघु स्यादुष्णं तोयं धूमपानञ्च कार्य्यम् ॥ २२ ॥

पूतिनस्यरोगमें पूर्वोक्त स्नेह, स्वेदन, वमन, विरेचन, तीक्ष्ण और हलके पदार्थोंका युक्ति पूर्वक अल्प भोजन, उष्णजल और धूम्रपान ये सब प्रयोग करने चाहिये ॥ २२ ॥

स्निग्धस्य छर्दनैर्दोषान्निर्हरेद्वातपीनसे । पित्ते सर्पिः पिबेत्सिद्धं शृङ्गवेरेण वा पयः ॥ २३ ॥

वातजन्य पीनसरोगमें रोगीको स्निग्ध करके वमनके द्वारा दोषोंको दूर करे । पित्तजपीनसरोगमें घृतपान करे अथवा दूधमें सोंठको पकाकर उस दूधको पान करे ॥ २३ ॥

देयं कफघ्नमुष्णञ्च भोजनं रूक्षणं हितम् । विरेकं वमनं ह्यादौ लङ्घनं कफपीनसे ॥ २४ ॥

कफजपीनसरोगमें प्रथम वमन विरेचन और लंघन करावे फिर कफनाशक, गरम और रूखा भोजन देवे ॥ २४ ॥

स्नेहसेकश्च वा कार्य्यो लेपः शिरसि सर्षपैः । लशुनं मुद्गचूर्णैश्च व्योषक्षारयुतैर्हितः ॥ २५ ॥

शिरपर स्नेह, सेक, अथवा सरसोंका लेप करे । अथवा लशुन, मूंगका चूर्ण, त्रिकुटेका चूर्ण और जवाखार इन सबका प्रलेप करे ॥ २५ ॥

सकासे पीनसे पूतिघ्राणे स्रावे सकंडुरे । धूमः शस्तोऽवपीतश्च कटुभिः कफपीनसे ॥ २६ ॥

कफपीनसरोगमें जो खाँसी, दुर्गंधित स्राव और खुजली हो तो कटु औषधियोंके द्वारा धूम्रपान कराना चाहिए ॥ २६ ॥

कफघ्नमन्नं वार्त्ताकुं कुलित्थाढकिमुद्गजाः । यूषाः प्रशस्ताः सव्योषास्तथा तोयोष्णसेवनम् ॥ २७ ॥

कफनाशक अन्न, बैंगुन, कुलथी, अरहर और मूँग इनका यूष बनाकर त्रिकुटेका चूर्ण डाल करके सेवन करे और गरमजलको पान करे ॥ २७ ॥

कलिङ्गहिंगुमरिचे लाक्षासुरसकट्फलैः । कुष्ठोग्राशिग्रुजन्तुघ्नैरवपीडः प्रशस्यते ॥ २८ ॥

इन्द्रजौ, हींग, कालीमिरच, लाखका स्वरस, कायफल, कूठ, वच, सहिंजना और वायविंडग इनके द्वारा अवपीडन करे ॥ २८ ॥

तैरेव मूत्रसंयुक्तैः कटुतैलं विपाचयेत् । अपीनसे पूतिनस्ये शमनं कीर्तितं परम् ॥ २९ ॥

अथवा उपर्युक्त औषधियोंके कल्क और गोमूत्रके द्वारा कडवे तेलको पकावे । यह तेल-पीनस और पूतिनस्य रोगको दूर करनेके लिए अत्यन्त श्रेष्ठ है ॥ २९ ॥

व्योषाद्यचूर्ण ।

व्योषचित्रकतालीशतिन्तिडीकाम्लवेतसम् । सचव्याजाजितुल्यांशमेलात्वक्पत्रपादिकाम् ॥ ३० ॥ व्योषादिकमिदं चूर्णं पुराणगुडसंयुतम् । पीनसश्वासकासघ्नं रुचिस्वरकरं परम् ॥ ३१ ॥

त्रिकुटा, चीता, तालीशपत्र, तिंतिडीक, अमलवेंत, चव्य और जीरा ये सब औषधि समान भाग तथा इलायची, दालचीनी और तेजपात ये प्रत्येक औषधि चौथाई भाग लेवे । सबको एकत्र पीसकर पुराने गुडमें मिलाकर सेवन करनेसे पीनस, श्वास, खाँसी दूर होती है तथा रुचि उत्पन्न होती है और स्वर सुन्दर होता है ॥ ३० ॥ ३१ ॥

व्याघ्रीतैल ।

व्याघ्रीदन्तीवचाशिग्रुसुरसाव्योषसिन्धुजैः । पाचितं नावनं तैलं पूतिनासागदापहम् ॥ ३२ ॥

कटेरी, दंती, वच, सहिंजना, तुलसी, त्रिकुटा और सैंधानमक इनके कल्कके द्वारा तेलको पकाकर उस तेलकी नस्य देनेसे पूतिनस्य और नासिकाके समस्त रोग दूर होते हैं ॥ ३२ ॥

त्रिकटुकाद्यतैल ।

त्रिकटुकविडङ्गसैन्धवबृहतीफलशिग्रुसुरसदन्तीभिः । तैलं गोजलसिद्धं नस्यं स्यात् पूतिनस्यस्य ॥ ३३ ॥

त्रिकुटा, वायविडंग, सैंधानमक, बड़ी कटेरीके फल, सहिंजना, तुलसी और दंती इनके कल्कके द्वारा गोमूत्रमें तेलको पकावे । इस तेलके द्वारा पूतिनस्य रोगीको नस्य देनेसे यह रोग दूर होता है ॥ ३३ ॥

शिग्रुतैल ।

शिग्रुसिंहिनिकुम्भानां बीजैः सव्योषसैन्धवैः । बिल्वपत्ररसे तैलं नावनं पूतिनस्यजित् ॥ ३४ ॥

सहिंजना, कटेरी, दंतीके बीज, त्रिकुटा और सैंधानमक इनके कल्कके द्वारा बेलके पत्तोंके रसमें तेलको पकावे । यह तेल नस्य देनेसे पूतिनस्यरोगको दूर करता है ॥ ३४ ॥

राजरसायन ।

चित्रककषाय-पलशतममृताजाती-रसश्च तुल्यांशम् । प्रक्षिप्य गुडशतश्च द्विपश्चमूलीकषायेण ॥ ३५ ॥ तत्तुल्येन च हरीतक्याढकमेकं विपाच्य गुडपाकम् । अर्द्धप्रस्थं मधुनस्तस्मिन् दद्यात्ततो वैद्यः ॥ ३६ ॥ द्वे द्वे पले निदद्यादेलात्वक्पत्रत्रिकटुकानाम् । यवक्षारादर्द्धपलं प्रयोजयेदग्निवर्द्धनं पुंसाम् ॥ ३७ ॥ एतद्रसायनोत्तममश्विभ्यां निर्मितं सुविख्यातम् । उपयुक्तवतां पुंसां तृणकाष्ठान्यपि जीर्य्यति ॥ ३८ ॥ अजितमपि भेषजशतैः पीनसरोगं त्र्यहाज्जयति । नृपतिरसायनमेतदाहारयन्त्रणारहितश्च ॥ ३९ ॥

चीतेका काथ १०० पल, गिलोयका स्वरस १०० पल, आमलोंका स्वरस १०० पल, गुड १०० पल, दशमूलका काथ १ आढक और हरडका काथ १ आढक परिमाण लेवे। इन सबको एकत्र करके गुडपाककी विधिसे पकावे। फिर वैद्य उसमें शहद आधा प्रस्थ, तथा इलायची, दालचीनी, तेजपात, सोंठ, मिरच, पीपल,ये प्रत्येक औषधि आठ २ तोले और जवाखार २ तोले इन सबको एकत्र पीस कर मिला देवे। इसको सेवन करनेसे मनुष्योंकी जठराग्नि अत्यन्त दीपन होती है। इस उत्तम रसायनको अश्विनीकुमारोंने निर्म्माण किया है। इसको सेवन करनेवाले मनुष्योंके तृण और काष्ठतक भी जीर्ण हो जाते हैं। जो पीनसरोग सैकडों औषधियोंसे भी आरोग्य नहीं होता, उसको यह रसायन तीन दिनमें दूर कर देती है। यह राजरसायन आहारकी यन्त्रणाको शीघ्र ही नष्ट कर देती है॥ ३५-३९॥

नासापाके पित्तहृत्संविधानं कार्यं सर्वं बाह्यमाभ्यन्तरञ्च। हृत्वा रक्तं क्षीरिवृक्षत्वचश्च योज्याः सेकाः सघृताश्च प्रदेहाः॥ ४०॥

नासापाकरोगमें सम्पूर्ण पित्तनाशक चिकित्सा करनी चाहिये। बाहर भीतरसे रुधिर निकलवावे, तथा क्षीरवृक्षोंकी छालको पीस कर घृत मिला कर लेप करे और उपर्युक्त छालका काथ बनाकर परिषेक करे॥ ४०॥

सर्ज्जार्जुनोदुम्बरवत्सकानां त्वचां कषायैः परिधावनीयः। कषायकल्कैरपि चैभिरेव सिद्धं घृतं घ्राणविपक्कनुत्परम्॥ ४१॥

राल, अर्जुनकी छाल, गूलर और कूडेकी छाल इनके काथके द्वारा नासापाकको धोवे। तथा इन ही औषधियोंके काथ और कल्कके द्वारा घृतको पकाकर नस्य देवे तो नासापाकरोग दूर होता है॥ ४१॥

पूयास्रे रक्तपित्तघ्नाः कषाया नावनानि च। पाकदाहादिरोगेषु शीतलेपादिकाः क्रियाः॥ ४२॥

पूयास्रावरोगमें रक्तपित्तनाशक काथ और नस्य आदि प्रयोग करे। पाक और दाहादि रोगोंमें शीतल लेपादि करे॥ ४२॥

वान्ते सम्यक् चावपीडं विदध्यात्तीव्रं धूमं शोधनं चात्र नस्यम्। क्षेप्यं नस्यं मूर्द्धवैरेचनीयैर्नाड्या चूर्णं क्षुत्रद्धे भ्रंशथौ वा॥ ४३॥

क्षवथु अथवा भ्रंशथुरोगमें अच्छे प्रकारसे वमन करानेके पश्चात् अवपीडन, तीक्ष्ण धूम्रपान, शोधन (विरेचनादि), नस्य, शिरोविरेचन और नाडीचूर्ण इन सबका प्रयोग करे॥ ४३॥

घृतगुग्गुलुमिश्रस्य सिक्थकस्य प्रयत्नतः। धूमः क्षवथुरोगघ्नो भ्रंशथुघ्नश्च निर्दिशेत्॥ ४४॥

घी, गूगल और मोम इनका धूम्रपान करनेसे क्षवथु और भ्रंशथुरोग नष्ट होता है॥ ४४॥

पिप्पलीतैल।

सपिप्पलीकुष्ठमहौषधीनां विडङ्गमृद्वीककषायकल्कैः। तैलं विपक्कं क्षवथौ च नस्यं वसां पचेत्तैलमथो घृतञ्च॥ ४५॥

पीपल, कूठ, सोंठ, वायविडंग और दाख इनके काथ और कल्कके द्वारा तेलको पकावे। अथवा वसा या घृतको पकावे। इस तेल या घीका नस्य देनेसे क्षवथुरोग शीघ्र दूर होजाता है॥ ४५॥

द्रव्याणि यानि क्षवथौ प्रदिष्टान्येतानि सर्वाणि सकट्फलानि। चूर्णानि कृत्वा प्रधमेत नस्ये शस्तञ्च दत्तं भ्रंशथुं निहन्यात्॥ ४६॥

जो जो औषधियें क्षवथुरोगमें कही हैं उन सबको और कायफलको मिला कर सबका एकत्र चूर्ण करके नस्य देनेसे भ्रंशथुरोग दूर होता है॥ ४६॥

शुण्ठीतैल और घृत।

शुण्ठिकुष्ठकणाबिल्वद्राक्षाकल्ककषायवत्। साधितं तैलमाज्यञ्च नस्यात् क्षवथुरुग्जयेत्॥ ४७॥

सोंठ, कूठ, पीपल, बेलगिरी और दाख इनके काथ और कल्कके द्वारा तेलको अथवा घृतको पकावे। इस तेल या घृतकी नस्य देनेसे क्षवथुरोग दूर होता है॥ ४७॥

दीप्ते रोगे पित्तहृत् संविधानं कार्यं सर्वं माधुरं शीतलश्च ॥ ४८ ॥

दीप्तरोगमें सम्पूर्ण पित्तनाशक कार्य्य, मधुर और शीतल औषधि व्यवहार करे ॥ ४८ ॥

नस्यं हितं निम्बरसाञ्जनाभ्यां दीप्ते शिरः स्वेदनमल्पशस्तु । नस्ये कृते क्षीरजलावसेकान् शंसन्ति भुञ्जीत च मुद्गयूषैः ॥ ४९ ॥

नीमके रस और रसौतकी दीप्तरोगमें नस्य देवे और शिरको अल्पस्वेद देवे । फिर नस्य देनेके पश्चात् दूध और जलको मिला कर उससे सींचे और मूँगका यूष भोजन करनेके लिये देवे ॥ ४९ ॥

नासानाहे स्नेहपानं प्रधानं स्निग्धा धूमा मूर्द्धबस्तिश्च नित्यम् ।

नासाप्रतिनाहरोगमें स्नेहपान कराना प्रधान है । स्नेहके पश्चात् धूम एवं ऊर्ध्वबस्ति देवे ।

बलातैलं सर्वथैवापि युञ्ज्याद्वातव्याधावन्यदुक्तं च यद्यत् ॥ ५० ॥

खिरैंटीके कल्कसे पकाया हुआ तेल अथवा वातव्याधिपर कही हुई अन्यान्य औषधि सर्वथा प्रयोग करे ॥ ५० ॥

नासास्रावे घ्राणतश्चूर्णमुक्तं नाड्या देयं येऽवपीडाश्च पथ्याः । तीक्ष्णान् धूमान् देवदार्व्याग्निकाभ्यां मांसं त्वाजं पथ्यमत्रादिशन्ति ॥ ५१ ॥

नासास्रावमें उत्तम औषधियोंके चूर्णको नलीसे नाकमें डाले तथा अवपीडन, पथ्य और देवदारु तथा चीतेकी अग्निके द्वारा तीक्ष्ण धूम्रपान करावे । इसमें बकरेका मांसका पथ्य देवे ॥ ५१ ॥

नासाशोषे क्षीरसर्पिः प्रधानं सिद्धं तैलं चाणुकल्पेन नस्ये । सर्पिः पीतं भोजनं जाङ्गलैश्च स्नेहस्वेदौ स्नैहिकश्चापि धूमः ॥ ५२ ॥

नासाशोषरोगपर दूध घृत प्रधानरूपसे देवे और औषधियोंके द्वारा तेलको सिद्ध करके नस्य देवे । घृतपान करे, जांगलजीवोंके मांसका भोजन करे । एवं स्नेह, स्वेद और स्नेहयुक्त धूम्रपान करावे ॥ ५२ ॥

प्रतिश्यायका निदान ।

सन्धारणाजीर्णरजोऽतिभाष्यक्रोधर्त्तुवैषम्यशिरोऽभितापैः । प्रजागरातिस्वपनाम्बुशीतैरवश्ययामैथुनबाष्पशोकैः । संस्त्यानदोषे शिरसि प्रवृद्धो वायुः प्रतिश्यायमुदीरयेत्तु ॥ ५३ ॥

मल मूत्रादिके वेगोंको धारण करनेसे, अजीर्णसे, नाकमें धूल आदिके गिर जानेसे, अत्यन्त बोलनेसे, क्रोध करनेसे, ऋतुकी विषमतासे, सूर्य्यकी धूपसे मस्तकके संतापित होनेसे, रात्रिमें अधिकतर जागनेसे दिनमें विशेष सोनेसे, नवीन अर्थात् कच्चे जलको पीनेसे अथवा, विशेष कर शीतल जलको पीनेसे, शीतल पदार्थोंको अधिक सेवन करनेसे, तुषार या बर्फको सेवन करनेसे, अतिशय स्त्रीसंसर्ग करनेसे और हर्ष या शोकके आसुओंको रोकनेसे, मस्तकमें दोषोंके एकत्रित हो जानेसे वृद्धिको प्राप्त हुआ वायु प्रतिश्यायको उत्पन्न करता है ॥ ५३ ॥

चयादिकक्रमसे इसका दूसरा निदान ।

चयङ्गतामूर्धनि मारुतादयः पृथक् समस्ताश्च तथैव शोणितम् । प्रकुप्यमाना विविधैः प्रकोपनैर्नृणां प्रतिश्यायकरा भवन्ति हि ॥ ५४ ॥

अब वातादिदोषोंके संचयक्रमसे प्रतिश्यायका निदान कहते हैं । मस्तकमें वातादि दोष पृथक् पृथक् अथवा सब एकत्र मिल कर एवं रुधिरसहित संचित होकर जब अपने अपने कोप होनेके कारणोंसे कुपित होते हैं तब मनुष्योंके प्रतिश्यायको उत्पन्न करते हैं ॥ ५४ ॥

प्रतिश्यायका पूर्वरूप ।

क्षवप्रवृत्तिः शिरसोऽतिपूर्णतास्तम्भोऽङ्गमर्दः परिहृष्टरोमता । उपद्रवाश्चाप्यपरे पृथग्विधा नृणां प्रतिश्यायपुरःसराः स्मृताः ॥ ५५ ॥

छींकोंका अधिकतर आना, शिरमें भारीपन शरीरका जकडना और टूटना, रोमांचोंका खडे होना

नाकमेंसे धुआँसा निकलना इत्यादि तथा इनके अतिरिक्त और भी उपद्रव होते हैं। ये प्रतिश्यायके पूर्वरूप हैं ॥ ५५ ॥

वातिकप्रतिश्यायके लक्षण।

आनद्धा पिहिता नासा तनुस्रावप्रसेकनी। गलताल्वोष्ठशोषश्च निस्तोदः शङ्खयोस्तथा। भवेत् स्वरोपघातश्च प्रतिश्यायेऽनिलात्मके ॥ ५६ ॥

नाकका भारी और बन्द होजाना, पतला स्राव होना, गला, तालु और ओठोंका सूख जाना, कनपटीमें तोडने सरीखी पीडा होना और स्वरभंग होना वातज प्रतिश्यायमें ये सब लक्षण होते हैं ॥ ५६ ॥

पैत्तिकप्रतिश्यायके लक्षण।

उष्णः सपीतकः स्रावो घ्राणात् स्रवति पैत्तिके। कृशोऽतिपांडुः सन्तप्तो भवेदुष्णाभिपीडितः ॥ सधूमम-ग्निं सहसा वमतीव च नासया ॥५७॥

पित्तजनित प्रतिश्यायमें नाकमेंसे गरम और पीला स्राव होता है। तथा मनुष्य कृश, पांडुवर्णवाला, सन्तप्त शरीरवाला और गरमीसे पीडित होता है, उसकी नाकमेंसे अकस्मात् अग्निके समान धुआँसा निकलता है। ॥ ५७ ॥

श्लैष्मिकप्रतिश्यायके लक्षण।

घ्राणात्कफः कफकृते श्वेतः पांडुः स्रवेद्बहुः। शुक्लावभासः शूनाक्षो भवेद्गुरुशिरा नरः। कण्ठताल्वोष्ठशिरसां कण्डूभिरतिपीडितः ॥ ५८ ॥

जिसमें नाकके द्वारा सफेद और पीलेरंगका बहुतसा कफका स्राव हो, उस मनुष्यका शरीर सफेद होजाय, नेत्रोंमें सूजन हो, शिर भारी हो, कण्ठ, तालु, ओष्ठ और शिर इनमें खुजलीके द्वारा अधिक पीडा हो तो इसको कफजप्रतिश्याय कहते हैं ॥ ५८ ॥

त्रिदोषजप्रतिश्यायके लक्षण।

भूत्वा भूत्वा प्रतिश्यायो योऽकस्माद्विनिवर्त्तते। संपक्को वाप्यपक्को वा स सर्वप्रभवः स्मृतः॥ ५९ ॥

जिसमें पूर्वोक्त तीनों दोषोंके लक्षण मिलते हों, और वह बारम्बार होकर पक्का अथवा कच्चा ही नष्ट होजाता हो तो उसको सन्निपातज प्रतिश्याय कहते हैं ॥ ५९ ॥

दुष्टप्रतिश्यायके लक्षण।

प्रक्लिद्यते पुनर्नासा पुनश्च परिशुष्यति। पुनरानह्यते वापि पुनर्विव्रियते तथा ॥ ६० ॥ निःश्वासे वाति दौर्गन्ध्यं नरो गन्धान्न वेत्ति च। एवं दुष्टप्रतिश्यायं जानीयात् कष्टसाधनम् ॥ ६१ ॥

जिसमें बारम्बार नाक बहे और सूखे, नाकके द्वारा अच्छे प्रकारसे श्वास न लिया जाय, बारम्बार नाक बन्द होजाय और बारम्बार खुलजाय, श्वास लेते समय दुर्गन्ध आवे और उस मनुष्यको सुगन्ध दुर्गन्धका ज्ञान न रहे तो इस प्रकारके लक्षणोंवाले प्रतिश्यायको दुष्टप्रतिश्याय कहते हैं। यह प्रतिश्याय कष्ट साध्य है (और असाध्य भी) होता है॥६०॥६१॥

रुधिरजन्यप्रतिश्यायके लक्षण।

रक्तजे तु प्रतिश्याये रक्तस्रावः प्रवर्त्तते। ताम्राक्षस्तु भवेज्जन्तुरुरोघातप्रपीडितः ॥ दुर्गन्धोच्छ्वासवदनो गन्धानपि न वेत्ति सः ॥ ६२ ॥

रक्तसे उत्पन्न हुए प्रतिश्यायमें नाकके द्वारा रुधिर गिरता है, नेत्र लाल होजाते हैं, उरःक्षतके समान पीडा होती है, श्वास या मुखमें दुर्गंध आती है और उस मनुष्यको सुगन्ध, दुर्गन्धका ज्ञान नहीं रहता है॥ ६२ ॥

असाध्यलक्षण।

सर्व एव प्रतिश्याया नरस्याप्रतिकारिणः। दुष्टतां यान्ति कालेन तदाऽसाध्या भवन्ति च ॥ ६३ ॥ मूर्च्छन्ति चात्र कृमयः श्वेताः स्निग्धास्तथाणवः। कृमिजो यः शिरोरोगस्तुल्यन्तेनास्य लक्षणम् ॥ ६४ ॥

यदि प्रतिश्यायकी चिकित्सा न कीजाय तो वह कालान्तरमें दुष्ट होकर असाध्य हो जाते हैं। इसमें

कफसे सफेद, चिकने और महीन महीन कृमि पड जाते हैं। उसके लक्षण कृमिज शिरोरोगके समान जानने चाहिएँ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

वृद्धिको प्राप्तहुआ प्रतिश्याय।

बाधिर्य्यमान्ध्यमघ्रत्वं घोरांश्च नयनामयान्। शोथाग्निसादकासांश्च वृद्धाः कुर्वन्ति पीनसाः॥ ६५ ॥

जब यह प्रतिश्याय अधिक वृद्धिको प्राप्त होजाता है तब बधिरता, अन्धापन, सुगन्ध दुर्गन्धका ज्ञान न होना,नेत्रोंके भयंकररोग, सूजन, अग्निकी मन्दता और खाँसी ये सब विकार उत्पन्न होते हैं॥ ६५ ॥

नासिकागत अन्यान्यरोग।

अर्बुदं सप्तधा शोथश्चत्वारोऽर्शश्चतुर्विधम्। चतुर्विधं रक्तपित्तमुक्तं घ्राणेऽपि तद्विदुः॥ ६६ ॥

अब नासिकाके अन्यान्य अर्बुदादिरोगोंकी संख्या पूर्तिके लिये कहते हैं। वातार्बुद, पित्तार्बुद,कफार्बुद, सन्निपातार्बुद, रक्तार्बुद, मांसार्बुद और मेदोर्बुद इस प्रकार नाकमें सात प्रकारके अर्बुद होते हैं। वातशोथ, पित्तशोथ, कफशोथ और सन्निपातशोथ इसप्रकार नाकमें सूजन चार प्रकारकी होती है। वातार्श, पित्तार्श,कफार्श और सन्निपातार्श इस प्रकार नासिकामें चार प्रकारका अर्श होता है। वातजरक्तपित्त, पित्तजरक्तपित्त,कफजरक्तपित्त और सन्निपातजरक्तपित्त इसप्रकार नाकमें चार प्रकारका रक्तपित्त होता है। अर्बुदोंके लक्षण अर्बुदरोगाधिकारमें, सूजनके लक्षण शोथाधिकारमें,अर्शोंके लक्षण अर्शरोगाधिकारमें और रक्तपित्तके लक्षण रक्तपित्ताधिकारमें कहे हैं, उनसे जानलेना चाहिए॥ ६६ ॥

नासिकागत अर्श और अर्बुदके लक्षण।

शिरोललाटताल्वनां गौरवं दुःखनिद्रता। अर्शसामर्बुदानाञ्च दोषकोपाकृतिः समा॥ ६७ ॥

शिर, ललाट और तालु इनमें भारीपन, दुःख, निद्रासी मालूम होती है और इनमें दोषोंका कोप समान रूपसे होता है॥ ६७ ॥

अर्शांसि गोस्तनाकाराण्यर्बुदं कोलसन्निभम्॥ ६८ ॥

नासिकामें अर्श गायके स्तनके समान होता है और अर्बुद बेरके समान होता है॥ ६८ ॥

प्रतिश्यायकी चिकित्सा।

प्रतिश्यायेषु सर्वेषु गृहं वातविवर्जितम्। वस्त्रेण गुरुणोष्णेन शिरसो वेष्टनं हितम्॥ ६९ ॥

सर्व प्रकारके प्रतिश्यायोंमें रोगीको वातरहित स्थानमें रक्खे। एवं भारी और गरम वस्त्रसे उसके शिरको बांध देवे॥ ६९ ॥

विडङ्गं सैन्धवं हिंगु गुग्गुलुः समनःशिलाः। प्रतिश्यायो वचायुक्तं चूर्णमाघ्राय नश्यति॥ ७० ॥

वायविडंग, सैंधानमक, हींग, गूगल, मैनशिल और वच इनका चूर्ण करके सूँघनेसे प्रतिश्याय रोग नष्ट होता है॥ ७० ॥

अथवा सघृताञ्छक्तून् कृत्वामलकसंपुटे। नवप्रतिश्यायवतां धूमो वैद्यः प्रयोजयेत्॥ ७१ ॥

सक्तुओंको घीमें मिलाकर आमलोंके सम्पुटमें रख कर धूम्रपान करे। यह धूम नवीन प्रतिश्यायवालोंको अत्यन्त हितकारी है॥ ७१ ॥

घृततैलेन संयुक्तं शक्तुधूमं पिबेन्नरः। प्रतिश्यायहरं प्रोक्तं कासहिक्कानिवारणम्॥ ७२ ॥

घृत और तेलमें सक्तुओंको मिलाकर धूम्रपान करे यह धूम्रपान प्रतिश्याय, खाँसी और हिचकीको दूर करता है॥ ७२ ॥

प्रतिश्याये पिबेद्धूमं सर्वगन्धसमायुतम्। चातुर्जातकचूर्णं वा घ्रेयं वा कृष्णजीरकम्॥ ७३ ॥

सम्पूर्ण सुगन्धित पदार्थोंका धूम्रपान करनेसे प्रतिश्यायरोग दूर होता है। अथवा दालचीनी, इलायची, तेजपात और नागकेशर इनको एकत्र पीसकर सूंघनेसे अथवा कालेजीरेके चूर्णको सूंघनेसे प्रतिश्यायरोग दूर होता है ॥ ७३ ॥

पुटपाकं जयापत्रं सिन्धुतैलसमन्वितम्। प्रतिश्यायेषु सर्वेषु शीलितं परमौषधम् ॥ ७४ ॥

विजया (भाँग) के पत्तोंको पुटपाककी विधिसे पकाकर उनका रस निकाल कर उसमें सैंधानमक और तेल मिलाकरके सेवन करनेसे प्रतिश्यायरोग दूर होता है। सब प्रकारके प्रतिश्यायोंमें यह औषध अत्यन्त हितकारी है ॥ ७४ ॥

भक्षयति भुक्तमात्रे सलवणं सुस्विन्नमाषमत्युष्णम्। शमयति सर्वसमुत्थं चिरजातं च प्रतिश्यायम् ॥ ७५ ॥

भोजन करनेके पश्चात् उड़दोंको उबालकर गरमागरम उनमें नमक डालकर भक्षण करनेसे सर्व दोषोंसे उत्पन्न हुआ और बहुत दिनोंका पुराना प्रतिश्यायरोग नष्ट होता है ॥ ७५ ॥

शटीतामलकीव्योषचूर्णं सर्पिर्गुडान्वितम्। हन्ति घोरं प्रतिश्यायं पार्श्वहृद्बस्तिशूलनुत् ॥ ७६ ॥

कचूर, भुँई आमला और त्रिकुटा इनके चूर्णमें घी और गुड़ मिलाकर सेवन करनेसे घोर प्रतिश्यायरोग, पार्श्वशूल, हृदयशूल और बस्तिशूल नष्ट होता है ७६

कुलित्थयवधान्याम्लयूषं तिन्तिडिपत्रजम्। स्वेदोष्णश्च हिमं भोज्यं पाचनाय प्रशस्यते ॥ ७७ ॥

कुलथी, जौ, काँजी और इमलीके पत्तोंका यूष, गरम तथा शीतल भोजन और पसीनेका निकलवाना ये सब प्रतिश्यायको पचानेके लिये सेवन करे ॥७७

गुडान्वितं चार्द्रमथादिशन्ति शुक्तोषितं तत्परिपाचनाय ॥ ७८ ॥

प्रतिश्यायको पकानेके लिये गुड़के साथ अदरखको अथवा वासीशुक्तनामक काँजीको सेवन करे७८

त्र्यूषणं गुडसंयुक्तं स्निग्धं दुग्धान्नभोजनम्। प्रतिश्यायहरं प्रोक्तं विशेषात्कफनाशनम् ॥ ७९ ॥

त्रिकुटेके चूर्णको गुडमें मिलाकर सेवन करे और स्निग्ध तथा दूधके साथ भात खावे तो प्रतिश्याय और विशेष करके कफ नष्ट होता है ॥ ७९ ॥

ततः पक्वं कफं ज्ञात्वा हरेच्छीर्षविरेचनैः। पिप्पल्यः शिग्रुबीजानि विडङ्गं मरिचानि च ॥ अवपीडः प्रशस्तोऽयं प्रतिश्यायनिवारणः ॥ ८० ॥

पश्चात् कफको पक्व समझकर उसको शिरोविरेचनकी औषधियोंके द्वारा दूर करे। तथा पीपल, सहिंजनेके बीज, वायविडंग और कालीमिरच इनके द्वारा अवपीड करनेसे प्रतिश्यायरोग दूर होता है ८०

शिरसोऽभ्यञ्जनं स्वेदं नस्यं कट्वम्लभोजनैः। वमनैर्घृतपानैश्च नान्यथा समुपाचरेत् ॥ ८१ ॥

शिरपर मालिस, स्वेद, नस्य, कटु और अम्लभोजन, वमन और घृतपान इन सबका प्रयोग करनेसे प्रतिश्याय रोग दूर होता है ॥ ८१ ॥

वातके तु प्रतिश्याये पिबेत्सर्पिर्यथाबलम्। पञ्चभिर्लवणैः सिद्धं प्रथमेन गणेन च ॥ ८२ ॥

वातजप्रतिश्यायमें पंचलवणोंके द्वारा अथवा पंचमूलकी औषधियोंके द्वारा घृतको सिद्ध करके अपने बलाबलके अनुसार पान करे ॥ ८२ ॥

नस्यादिषु विधिं कृत्स्नमवेक्षेतार्दितेरितम् ॥ ८३ ॥

इसमें सम्पूर्ण नस्यादि विधि रोगीके बलानुसार प्रयोग करे ॥ ८३ ॥

रक्तपित्तोत्थयोः पेयं सर्पिर्मधुरकैः शृतम्। परिषेकान् प्रदेहांश्च कुर्यादपि च शीतलान् ॥ ८४ ॥

रक्तपित्तसे उत्पन्न हुए प्रतिश्यायरोगमें मधुर औषधियोंके द्वारा घृतको पकाकर पान करे।तथा शीतल परिषेक और शीतल प्रलेप करने चाहिये ॥ ८४ ॥

युञ्जते कवलांश्चात्र विरेको मधुरैरपि॥८५

इसमें मधुर औषधियोंका कवल धारण करे एवं मधुर औषधियोंके द्वारा विरेचन करावे ॥ ८५ ॥

हितं पित्तप्रतिश्याये पाचनार्थं शृतं पयः । शृङ्गवेरेण पयसा शृङ्गवेरमथापि वा ॥ ८६ ॥

पित्तजप्रतिश्यायको पचानेके लिये औषधियोंके द्वारा पकायाहुआ दूध पिलावे । अथवा अदरखको दूधमें डालकर पान करे या केवल अदरखको सेवन करे ॥ ८६ ॥

धवाद्यतैल ।

धवत्वक् त्रिफला श्यामा तिल्वकैर्मधुकेन च । श्रीपर्णीरजनीमिश्रैः क्षीरे दशगुणे पचेत् ॥ तैलं कालोपयुक्तं तु नस्यं स्यादनयोर्हितम् ॥ ८७ ॥

धायकी छाल, त्रिफला, अनन्तमूल, लोध, मुलैठी, कुम्भेर और हलदी इनके कल्कके द्वारा दशगुने दूधमें तेलको पकावे । इस तेलका नास देनेसे पित्तजप्रतिश्याय रोग दूर होता है ॥ ८७ ॥

कफजे सर्पिषा स्निग्धं तिलमाषविपक्वया । यवाग्वा वामयित्वा च श्लेष्मघ्नं क्रममाचरेत् ॥ ८८ ॥

कफजप्रतिश्यायरोगमें घृतसे स्निग्ध करके तिल और उड़दोंकी यवागू बनाकर सेवन करावे फिर वमन कराकर समस्त कफनाशक चिकित्सा करे ॥ ८८ ॥

बलाद्ययाद्यतैल ।

उभे बले बृहत्यौ च विडङ्गं सविकङ्कतम् । श्वेतामूलं महाभद्रां वर्षाभूं चापि संहरेत् ॥ तैलमेभिर्विपक्वं तु नस्यमस्योपकल्पयेत् ॥ ८९ ॥

खिरैंटी, कंघी, कटेरी, बड़ी कटेरी, वायविडंग, कटाई, सफेद कोयलकी जड़, कुम्भेर और पुनर्नवा इनके कल्कके द्वारा तेलको पकाकर उसकी नस्य देनेसे कफज प्रतिश्यायरोग दूर होता है ॥ ८९ ॥

दार्वीङ्गुदीनिकुम्भैश्च किणिह्या सरलेन च । वर्तयोऽत्र कृता योज्या धूमपाने यथाविधि ॥ ९० ॥

दारुहलदी, हिंगोट, दंती, चिरचिटा और धूपसरल इन सबको एकत्र पीसकर उसकी यथाविधि बत्ती बनाकर उसका धूम्रपान करे ॥ ९० ॥

सर्पींषि कटुसिद्धानि तीक्ष्णधूमाः कटूनि च । भेषजान्युपयुक्तानि हन्युः सर्वप्रकोपजम् ॥ ९१ ॥

कटुओषधियोंके द्वारा सिद्ध कियाहुआ घृत, तीक्ष्ण धूम्रपान और सम्पूर्ण कटुओषधि ये सर्वदोषजनित प्रतिश्यायरोगको दूर करते हैं ॥ ९१ ॥

रसाञ्जनाद्यतैल ।

रसाञ्जने सातिविषे मुस्तायां देवदारुणि । तैलं विपक्वं नस्यार्थे विदध्याच्चात्र बुद्धिमान् ॥ ९२ ॥

बुद्धिमान् वैद्य इसमें रसौत, अतीस, नागरमोथा और देवदारु इनके कल्कके द्वारा तेलको पकाकर नास देवे तो प्रतिश्याय रोग नष्ट होता है ॥ ९२ ॥

मुस्तकादितैल ।

मुस्ता तेजोवती पाठा कट्फलं कटुकावचा । सर्षपा पिप्पलीमूलं पिप्पलीसैन्धवाग्निकौ ॥ ९३ ॥ तुत्थं करञ्जबीजञ्च लवणं भद्रदारु च । एतैः कृतं कषायञ्च कवले तच्च धारयेत् ॥९४॥ हितं शिरोविकारे च तैलमेभिर्विपाचयेत् ॥ ९५ ॥

नागरमोथा, तेजबल, पाढ, कायफल, कुटकी, बच, सरसों, पीपलामूल, पीपल, सैंधानमक, चीता, तूतिया, करंजके बीज, नमक और देवदारु इनका क्वाथ बनाकर उसका कवल धारण करे । अथवा इन औषधियोंके क्वाथ और कल्कके द्वारा तेलको पकाकर शिरोरोगमें प्रयोग करे ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ ९५ ॥

क्षीरघृत।

क्षीरमर्द्धजलं क्राथ्यं जाङ्गलैर्मृगपक्षिभिः। पुष्पैर्विमिश्रं जलजैर्वातघ्नैरौषधैरपि ॥ ९६ ॥ हिमे क्षीरावशिष्टेऽस्मिन् घृतमुत्पाद्य यत्नतः ॥ सर्वगन्धासितानन्ता मधुकं चन्दनं तथा ॥ ९७ ॥ अत्राप्य विपचेद्भूयो दशक्षीरश्च तद्घृतम्। नस्यप्रयुक्तमुद्रिक्तान्प्रतिश्यायान्व्यपोहति ॥९८॥

दूध एक भाग, दूधसे आधा भाग जल, जंगलप्रदेशके पशु और पक्षियोंका मांस, कमल आदिके फूल और वातनाशक औषधियोंका काथ, इन सबको एकत्र मिला कर पकावे। जब केवल दूधमात्र बाकी रह जाय तब उतार कर छान लेवे फिर उसमें उत्तम घी, सम्पूर्ण सुगंधित औषधि, मिश्री, अनन्तमूल, मुलैठी और चन्दन इनका कल्क डाल कर यथाविधि घृतको पकावे। इस घृतको शीतल होजानेपर नस्यादिक कर्म्मोंमें प्रयोग करनेसे प्रतिश्याय रोग नष्ट होता है ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ ९८ ॥

गोमूत्रपिष्टाश्चोद्दिष्टाः क्रियाः कृमिषु योजयेत्। धावनानि कृमिघ्नानि भेषजानि च बुद्धिमान् ॥ ९९ ॥

बुद्धिमान् वैद्य कृमिनासारोगमें कृमिनाशक औषधियोंको गोमूत्रमें पीस कर धोनेके लिये प्रयोग करे ९९

शेषाणान्तु विकाराणां स्वयं कुर्य्याच्चिकित्सितम्। घ्राणार्बुदेऽधिमांसे च क्रियां शेषेषु वीक्ष्य च ॥ १०० ॥

नासिकाके अन्यान्य शेषरोगोंमें यथादोषानुसार वैद्य विचार कर चिकित्सा करे। नासार्बुद, अधिमांस और शेषरोगोंमें दोषोंको विचार कर उत्तम प्रकारसे चिकित्सा करे ॥ १०० ॥

गृहधूमतैल।

गृहधूमकणादारुक्षारनक्ताह्वसैन्धवैः। सिद्धं शिखरिबीजैश्च तैलं नासार्शसां हितम् ॥ १०१ ॥

घरका धुआँसा, पीपल, देवदारु, जवाखार, करंज और सैंधानमक तथा चिरचिटेके बीज इनके कल्कके द्वारा तेलको पकावे। यह तेल-नासिकाकी ववासीरको नष्ट करता है ॥ १०१ ॥

शिग्रुतैल।

शिग्रुकान्तावचाव्योषद्राक्षासुरससैन्धवैः। नस्यदानाज्जयेत्सिद्धं तैलं नासागदे नृणाम् ॥ १०२ ॥

सहिंजना, रेणुका, बच, त्रिकुटा, दाख और सैंधानमक इनके कल्कके द्वारा तेलको पकावे। इस तेलके द्वारा नस्य देनेसे मनुष्योंकी नासिकाके समस्तरोग दूर होते हैं ॥ १०२ ॥

करवीराद्यतैल।

रक्तकरवीरपुष्पं जात्यशनमल्लिकायाश्च। एतैः समन्तु तैलं नासार्शोनाशनं श्रेष्ठम् ॥ १०३ ॥

लाल कनेरके फूल, चमेली, विजयसार और मोतिया इनके कल्कके द्वारा तेलको पका कर सेवन करनेसे नासिकागत अर्शरोग दूर होता है ॥१०३॥

व्योषाद्यतैल।

व्योषं धान्यककुसुमं गण्डीरकमवल्गुजं बीजम्। एभिस्तैलं पक्कं नासार्शोनाशनं सिद्धम् ॥ १०४ ॥

त्रिकुटा, धनियाँ, समष्ठिलवृक्षके फूल और वापचीके बीज इनके कल्कके द्वारा तेलको पकावे। इस तेलको प्रयोग करनेसे नासिकागत अर्शरोग दूर होता है ॥ १०४ ॥

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायां नासारोगाधिकार समाप्त ॥ ६६ ॥

अथ नेत्ररोगाधिकार।



उष्णाभितप्तस्य जलप्रवेशाद्दूरेक्षणात् स्वप्नविपर्ययाच्च। स्वेदाद्रजोधूमनिषेवणाच्च छर्देर्विघाताद्वमनातियोगात् ॥ १ ॥ द्रवान्नपानाति-

निषेवणाच्च विण्मूत्रवातक्रमनिग्रहाच्च । प्रसक्तसंरोदनशोककोपाच्छिरोभिघातादतिमद्यपानात् ॥२॥ तथा ऋतूनाञ्च विपर्य्ययेण क्लेशाभिघातादति मैथुनाच्च । बाष्पग्रहात् सूक्ष्मनिरीक्षणाच्च नेत्रे विकारान् जनयन्ति दोषाः ॥ ३ ॥

धूप आदि गरमीसे अत्यन्त व्याकुल होकर जलमें घुसनेसे, दूरके पदार्थोंको विशेष देखनेसे, दिनमें सोनेसे, रात्रिमें जागनेसे, नेत्रोंमें पसीना, धूल अथवा धुँयेके जानेसे, आये हुए वमनके वेगको रोकनेसे या बहुत वमन करनेसे, पतले अन्नपानको अधिक सेवन करनेसे, मल, मूत्र और अधोवायुके वेगको रोकनेसे बहुत दिनोंतक रोनेसे,शोक और कोपके विशेष करनेसे, शिरमें चोटके लगनेसे, अत्यन्त मद्यपान करनेसे, ऋतु विपरीत आचरण करनेसे, काम और क्रोधादिजन्य पीडासे, अत्यन्त मैथुन करनेसे, आँसुओंके वेगको रोकनेसे और बहुत बारीक पदार्थोंको देखनेसे वातादिदोष नेत्रोंमें अनेक प्रकारके दारुण रोगोंको उत्पन्न करते हैं ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥

अभिष्यन्दके लक्षण ।

वातात्पित्तात्कफाद्रक्तादभिष्यन्दश्चतुर्विधः । प्रायेण जायते घोरः सर्वनेत्रामयाकरः ॥ ४ ॥

वात,पित्त, कफ, और रुधिरके प्रकोपसे अभिष्यन्दरोग चार प्रकारका होता है । इसमें घोर पीडा होती है, यह प्रायः सम्पूर्ण नेत्ररोगोंका कारण है । इसको देशमें "आँखें दुखना" कहते हैं ॥ ४ ॥

वाताभिष्यन्दके लक्षण ।

निस्तोदनस्तम्भनरोमहर्षसंघर्षपारुष्यशिरोभितापाः । विशुष्कभावः शिशिराश्रुता च वाताभिपन्ने नयने भवन्ति ॥ ५ ॥

वाताभिष्यन्दरोगमें सुई चुभोने सरीखी पीडा,या तोड़ने भोंकने सरीखी पीड़ा होती है,जड़ता,रोमांचोंका होना,नेत्रोंमें रेत पडने सरीखी खडक,कठिनता, और शिरमें पीडा होती है नेत्रोंमें कीचड नहीं आते तथा नेत्रोंमेंसे शीतल आँसू गिरते हैं ॥ ५ ॥

पित्ताभिष्यन्दके लक्षण ।

दाहप्रपाकौ शिशिराभिनन्दा धूमायनं बाष्पसमुच्छ्रयश्च । उष्णाश्रुता पीतकनेत्रता च पित्ताभिपन्ने नयने भवन्ति ॥ ६ ॥

पित्तजअभिष्यन्दरोगमें दाह, पाक, शीतल पदार्थोंको नेत्रोंसे स्पर्श करनेकी इच्छा, नेत्रोंमेंसे धुआँसा निकलना प्रतीत होना, गरम आँसुओंका अधिक निकलना तथा नेत्रोंका पीला होना ये सब लक्षण होते हैं ॥ ६ ॥

कफाभिष्यन्दके लक्षण ।

उष्णाभिनन्दा गुरुताक्षिशोथः कंडूपदेहावतिशीतता च । स्रावो बहुः पिच्छल एव चापि कफाभिपन्ने नयने भवन्ति ॥ ७ ॥

कफजअभिष्यन्दरोगमें नेत्रोंसे गरम पदार्थ स्पर्श करनेकी इच्छा, नेत्रोंमें भारीपन, सूजन, खुजली, कीचडोंका अधिक आना, अत्यन्त शीतलता और चिपक होती है । तथा उनमेंसे बहुत पिच्छिल स्राव होता है ॥ ७ ॥

रक्ताभिष्यन्दके लक्षण ।

ताम्राश्रुता लोहितनेत्रता च राज्यः समन्तादतिलोहिताश्च । पित्तस्य लिङ्गानि च यानि तानि रक्ताभिपन्ने नयने भवन्ति ॥ ८ ॥

रक्तजअभिष्यन्दरोगमें नेत्रोंमेंसे लाल आँसू गिरते हैं, नेत्रोंका रंग लाल हो जाता है । नेत्रोंके चारों ओर लाल २ रेखायें दीखती हैं तथा इसमें पित्तज अभिष्यन्दके सम्पूर्ण लक्षण होते हैं ॥ ८ ॥

अभिष्यन्दसे अधिमन्थकी उत्पत्ति ।

वृद्धैरेतैरभिष्यन्दैर्नराणामक्रियावताम् । तावन्तस्त्वधिमन्थाः स्युर्नयने तीव्रवेदनाः ॥ ९ ॥ उत्पाटचत इ-

वात्यर्थं नेत्रं निर्मथ्यते तथा। शिरसोऽर्द्धश्च तं विद्यादधिमन्थं स्वलक्षणैः॥ १०॥

अभिष्यन्दसे अधिमन्थरोग होता है, उसके लक्षण कहते हैं। जो मनुष्य अभिष्यन्द रोगकी चिकित्सा नहीं करते, उनके यह अभिष्यन्द रोग वृद्धिको प्राप्त होकर नेत्रोंमें तीव्र पीडावाले उसी प्रकार चार प्रकारके अधिमन्थरोगको उत्पन्न करते हैं। अधिमन्थरोगमें नेत्रोंमें उखाडने सरीखी पीडा तथा मथने सरीखी पीडा और आधे शिरमें पीडा होती है। उसमें ये लक्षण विशेष होते हैं, शेष वाताभिष्यन्दादिकोंके जो लक्षण हैं उन सब लक्षणोंसे युक्त वाताधिमन्थ, पित्ताधिमन्थ आदिके लक्षण जानने चाहिये॥ ९॥ १०॥

दोषभेदसे कालमर्यादा।

हन्याद् दृष्टिं श्लैष्मिकः सप्तरात्रात्तद्धन्मन्थो रक्तजः पञ्चरात्रात्। षड्रात्राद्वा वातिको वै निहन्यान्मिथ्याचारात्पैत्तिकः सद्य एव॥ ११॥

मिथ्या आचरण अर्थात् अयोग्य उपचार आदिके करनेसे कफाभिष्यन्दजन्य अधिमन्थ सात दिनमें दृष्टिको नष्ट करदेता है। रक्ताभिष्यन्दजन्य अधिमंथ पांच रात्रिमें दृष्टिको नष्ट करदेता है। वाताभिष्यन्दजन्य अधिमन्थ छः रात्रिमें दृष्टिको नष्ट करदेता है और पित्ताभिष्यन्दसे उत्पन्न हुआ अधिमन्थ तत्काल ही दृष्टिको नष्ट करदेता है॥ ११॥

आमयुक्तनेत्ररोगके लक्षण।

उदीर्णवेदनं नेत्रं रागोद्रेकसमन्वितम्। घर्षनिस्तोदशूलाश्रुयुक्तमामान्वितं विदुः॥ १२॥

अब नेत्ररोगके आमपक्वलक्षण कहते हैं। जिसमें नेत्रोंमें चीरने सरीखी अत्यन्त भयंकर पीडा हो, लाली अधिक हो, करकराहट हो, सुई चुभोने सरीखी पीडा हो, शूल हो और पानी बहता हो तो, आमयुक्त नेत्ररोग जानना चाहिए॥ १२॥

निरामके लक्षण।

मन्दवेदनता कंडूः संरम्भाश्रुप्रशान्तता। प्रसन्नवर्णता चाक्ष्णोः संपक्वं दोषमादिशेत्॥ १३॥

नेत्रोंमें मन्द मन्द पीडा, खुजली, सूजन और आंसुओंकी कमी हो, तथा नेत्रोंका वर्ण निर्मल हो तो पक्वदोषके लक्षण जानने चाहिएँ॥ १३॥

सशोथ और शोथरहित नेत्रपाकके लक्षण।

कंडूपदेहाश्रुयुतः पक्वोडुम्बरसन्निभः। संरम्भी पच्यते यस्तु नेत्रपाकः सशोथजः॥ १४॥ शोथहीनानि लिङ्गानि नेत्रपाके त्वशोथजे॥ १५॥

नेत्रोंमें खुजली हो, चिपक हो और आंसू बहते हों तथा पक्के गूलरके समान लाल सूजनयुक्त पाक हो तो उसको शोथयुक्त नेत्रपाक कहते हैं। और जिसमें ये लक्षण न हों तो उसको शोथरहित नेत्रपाक जानना चाहिए॥ १४॥ १५॥

हताधिमन्थके लक्षण।

उपेक्षणादक्षि यदाधिमन्थो वातात्मकः सादयति प्रसह्य। रुजाभिरुग्राभिरसाध्य एष हताधिमन्थः खलु नाम रोगः॥ १६॥

वाताभिष्यन्दसे उत्पन्न हुआ अधिमंथ योग्य उपचारोंकी उपेक्षा करनेसे जब उग्रवेदनाके द्वारा आंखोंको बलात्कारसे सुखाकर नष्ट करदेता है तब यही अधिमन्थ हताधिमन्थ कहा जाता है यह हताधिमन्थ असाध्य है॥ १६॥

वातपर्य्ययके लक्षण।

वारंवारं च पर्य्येति भ्रुवौ नेत्रे च मारुतः। रुजश्च विविधास्तीव्राः स ज्ञेयो वातपर्य्ययः॥ १७॥

जिसमें वायु किसी समय भौंओंमें और किसी समय नेत्रोंमें वारम्वार फिरती है और अनेक प्रकारकी तीव्र पीडाको उत्पन्न करती है उसको वातपर्य्यय नेत्र रोग कहते हैं॥ १७॥

शुष्काक्षिपाकरोगके लक्षण ।

यत्कूणितं दारुणरूक्षवर्त्म संदह्यते चाविलदर्शनञ्च । सुदारुणं यत्प्रतिबोधने च शुष्काक्षिपाकोपहतं वदन्ति ॥ १८ ॥

नेत्रोंके पलक दारुण तथा कठिन और रूखे होजायँ, आँख मिची रहैं, दाह हो, आँखसे साफ न दीख सकै और खोलते समय अत्यन्त विकृतसा दीखे तो इस रोगको शुष्काक्षिपाकरोग कहते हैं ॥ १८ ॥

अन्यतोवातके लक्षण ।

यस्याऽवटूः कर्णशिरोहनुस्थो मन्यागतो वाप्यनिलोऽन्यतो वा । कुर्य्याद्रुजं वै भ्रुविलोचने च तमन्यतोवातमुदाहरन्ति ॥ १९ ॥

जिसके घाटीमें, कानमें, मस्तकमें, ठोडीमें, मन्यानाडी और अन्य पीठके बाँस आदिमें स्थित वायु भौंओंमें और नेत्रोंमें घोर वेदनाको उत्पन्न करती है तो इस रोगको अन्यतोवात कहते हैं । एक स्थानमें स्थित वायु दूसरी वेदनाको उत्पन्न करती है, इस कारण इसको अन्यतोवात कहते हैं । विदेह भी कहता है कि जब नाडीके मध्यमें अथवा पीठके बाँसमें स्थित वायु कनपटी, नेत्र और भौंओंमें भेदन तथा तोडने सरीखी पीडाको उत्पन्न करता है तब इस रोगको नेत्रतत्त्व जाननेवाले वैद्य अन्यतोवात कहते हैं ॥ १९ ॥

अम्लाध्युषितके लक्षण ।

श्यावं लोहितपर्य्यन्तं सर्वं चाक्षि प्रपच्यते । सदाहशोथं सास्रावमम्लाध्युषितमम्लतः ॥ २० ॥

जो नेत्ररोग बीचमें काला और किनारोंपर लाल होकर सर्वत्र नेत्रोंको पकावे तथा उसमें दाह हो, सूजन हो और नेत्रोंमेंसे पानी बहे तो उसको अम्लाध्युषित कहते हैं यह खटाई आदिके खानेसे होता है ॥ २० ॥

शिरोत्पातकेलक्षण ।

अवेदना वापि सवेदना वा यस्याक्षिराज्यो हि भवन्ति ताम्राः । मुहुर्विरज्यंति च याः स ताहग्व्याधिः शिरोत्पात इति प्रदिष्टः ॥ २१ ॥

पीडासहित या पीडारहित जिसकी आँखोंकी नसें ताँबेके समान लाल हों और बारम्बार अधिक लाल रंगकी होती जायँ तो इसको श्रेष्ठवैद्य शिरोत्पातरोग कहते हैं ॥ २१ ॥

शिराहर्षके लक्षण ।

मोहाच्छिरोत्पात उपेक्षितस्तु जायेत रोगः स शिराप्रहर्षः । ताम्राश्रुमच्छं स्रवति प्रगाढं तथा न शक्नोत्यभिवीक्षितुं च ॥ २२ ॥

यदि मूर्खतासे शिरोत्पातकी उपेक्षा की जाय तो वही शिराहर्षरोग हो जाता है । इसमें तांबेके समान लाल और निर्मल आंसू गिरते हैं और रोगी देखनेको असमर्थ हो जाता है ॥ २२ ॥

पांचरोगोंकी चिकित्सा ।

अक्षिकुक्षिभवा रोगाः प्रतिश्यायव्रणज्वराः । पञ्चैते पञ्चरात्रेण रोगाः शाम्यन्ति लङ्घनैः ॥ २३ ॥

नेत्ररोग, कुक्षि (उदर) के रोग, प्रतिश्याय, व्रण और ज्वर ये पांचों रोग लंघन करनेसे पांच दिनमें अपने आप शान्त होजाते हैं ॥ २३ ॥

लङ्घनालेपनस्वेदाशिराव्यधविरेचनैः । उपाचरेदभिष्यन्दानञ्जनाश्च्योतनादिभिः ॥ २४ ॥

लंघन, लेप, स्वेद, शिरावेध, विरेचन, अञ्जन और आश्चोतन ये सब नेत्राभिष्यन्दरोगमें प्रयोग करे ॥ २४ ॥

स्वेदः प्रलेपस्तिक्तान्नं सेको दिनचतुष्टयम् । लङ्घनं चाक्षिरोगाणामामानां पाचनानि षट् ॥ २५ ॥

स्वेद, प्रलेप, तिक्त अन्नका भोजन, परिषेक, चार दिन (अर्थात् चार दिनतक उपेक्षा करनी) और लंघन ये छः आमको पचानेवाले हैं ॥ २५ ॥

मारुतानशनास्वप्नक्रोधशोकसमुद्भवान्। न लङ्घयेदभिष्यंदान् वातव्याधिनराश्च ये ॥ २६ ॥

वातसे उत्पन्न हुए, उपवास करनेसे उत्पन्न हुए, रात्रिमें जागने, क्रोध करने और शोक करनेसे उत्पन्न हुए अभिष्यन्दरोगमें और जो वातव्याधिसे ग्रसित हों उन मनुष्योंको कदापि लंघन कराने नहीं चाहिये २६॥

अभिष्यन्देऽधिमन्थे च वातोत्थे वातपर्य्यये। शुष्कपाकेऽन्यतो वाते सामान्यो वक्ष्यते विधिः ॥ २७ ॥

वातोत्पन्न-अभिष्यंद और अधिमंथरोगमें, वातविपर्य्यय, शुष्काक्षिपाक और अन्यतोवात इनमें सामान्य विधि कहते हैं ॥ २७ ॥

स्नेहस्वेदविधिः कृत्स्नो ग्राम्यानूपोदकामिषम्। नस्यं क्षीरघृताभ्याश्च शिरावेधश्च शस्यते ॥ २८ ॥

इनमें स्नेहविधि, स्वेदनविधि, ग्राम्य और अनूपप्रदेशके जीवोंका मांस तथा जलचर जीवोंका मांस, दूध और घीकी नस्य तथा शिरावेध ये सब उपचार करे ॥ २८ ॥

अथवा वेदनार्तस्य न शिराव्यधनक्रमः ॥ २९ ॥

जो वेदनासे अत्यन्त पीडित हैं उनके शिरावेध न करे ॥ २९ ॥

तत उपाचरेद्वैद्यः सामान्यविधिना नरम्। पुराणसर्पिषा चैव सम्यक् स्नेहविरेचनैः ॥ ३० ॥ तर्पणैः पुटपाकैश्च धूमैराश्च्योतनैस्तथा। नस्यैः स्नेहपरीषेकैः शिरोबस्तिभिरेव च ३१॥

किंतु सामान्य विधिसे उपचार करे। पुराने घीके द्वारा अच्छे प्रकारसे स्नेहयुक्त विरेचन देवे। तथा तर्पण, पुटपाक, धूम्रपान, आश्च्योतन, नस्य स्नेह, सेक और शिरोबस्ति ये सब कर्म करे ॥ ३०॥३१॥

कुरण्टपुष्पयष्ट्याह्वसिताविश्चैः समस्तुभिः। शुण्ठीसैन्धवयष्ट्याह्वलोध्रभृष्टैर्घृतैरपि ॥ ३२ ॥ श्रीवासद्विनिशालोध्रैश्चूर्णितैरल्पसैन्धवैः। अव्यक्तेऽक्षिगते कार्यं प्रोतस्थैर्गुण्डनं बहिः ॥ ३३ ॥

पियाबाँसेके फूल, मुलैठी, मिश्री और सोंठ इनको दहीके जलमें पीसकर पोटली बनाकर अथवा सोंठ, सैंधानमक, मुलैठी और घीमें भुनाहुआ लोध इनकी पोटली बनाकर अथवा श्रीवास, हलदी, दारुहलदी, लोध और कुछ सैंधानमक इनका चूर्ण करके पोटली बनाकर इसको अव्यक्त नेत्ररोगपर फेरे ॥३२॥३३॥

धात्री फलनिर्य्यासो नवदृक्कोपं निहन्ति पूरणतः। एरण्डपत्रसतकरसोऽथवा सैन्धवसंयुक्तः ॥ ३४ ॥ नवदृक्कोपशमनः क्षौद्रयुतः शिग्रुमूलरससेकः। नश्यत्यवश्यमथवा काञ्जिकपुनर्नवासैन्धवैर्विहितैः ॥ ३५ ॥

आमलोंके रसको नेत्रोंमें भरनेसे नवीन नेत्ररोग दूर होता है। सात अण्डके पत्तोंके रसमें सैंधानमक डालकर नेत्रोंमें लगानेसे या सहिंजनेकी जड़के रसमें शहद मिलाकर नेत्रोंमें लगानेसे नवीन नेत्ररोग अवश्य दूर होता है। अथवा काँजी, पुनर्नवा और सैंधानमक इनको एकत्र मिलाकर नेत्रोंमें लगानेसे नवीन नेत्ररोग दूर होता है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

वातपित्तकफसन्निपातजां नेत्रयोर्बहुविधामपि व्यथाम्। शीघ्रमेव विनिहन्ति योजितः शिग्रुपल्लवरसः समाक्षिकः ॥ ३६ ॥

सहिंजनेके पत्तोंके रसमें शहद डालकर नेत्रोंमें प्रयोग करनेसे वात, पित्त, कफ और सन्निपातजन्य अनेक प्रकारकी नेत्रोंकी पीडा शीघ्र शांत होती है ३६

गोमूत्रे छगलरसेऽम्लकाञ्जिके च स्त्रीस्तन्ये हविषि विषे च माक्षिके च ॥

यत्तुत्थं ज्वलितमनेकशो निषिक्तं तत्कुर्य्याद्गरुडसमं नरस्य चक्षुः॥३७॥

खपरिया अथवा तूतियेको वारंवार अग्निमें तपाकर गोमूत्र, बकरीके दूध, खट्टी काँजी, स्त्रीके दूध, घी, विष और शहदमें बुझाकर फिर उसका अञ्जन बनाकर नेत्रोंमें आँजनेसे मनुष्यके नेत्र गरुड़के समान तीव्र हो जाते हैं ॥ ३७ ॥

सूर्य्योपरागानलविद्युदादिविलोकनेनोपहतेक्षणस्य । संतर्पणं स्निग्धहिमादि योज्यं तथाञ्जनं माक्षिकहेमघृष्टम् ॥ ३८ ॥

सूर्य्य, चमकीले पदार्थ, अग्नि और बिजली आदि अनेक प्रदीप्त पदार्थोंको देखनेसे जिनके नेत्र दूषित होजाते हैं उनके लिये चिकने और शीतल पदार्थोंका सन्तर्पण देवे तथा सोनामाखीको पीसकर नेत्रोंमें आँजे ॥ ३८ ॥

करवीरतरुणकिसलयछिन्नोद्भवरसातिसंपूर्णम् । नयनयुगं भवति दृढं सहसैव तत्क्षणात् कुपितम् ॥ ३९ ॥

कनेरके कोमलपत्तोंके तोडनेसे जो रस निकले उसको दोनों नेत्रोंमें भरनेसे तत्कालके दूषित हुए नेत्र तत्काल दृढ और पीडारहित हो जाते हैं ॥३९॥

सैन्धवदारुहरिद्रागैरिकपथ्यारसाञ्जनैः पिष्टैः । दत्तो बहिः प्रलेपो भवत्यशेषाक्षिरोगहरः ॥ ४० ॥

सैंधानमक, दारुहलदी, गेरु, हरड़ और रसौत इनको एकत्र पीसकर नेत्रोंके बाहर प्रलेप करनेसे समस्त नेत्ररोग दूर होते हैं ॥ ४० ॥

बहिरवलिप्तं लोचनमभिकुपितमपि प्रसीदति क्षिप्रम् । लोध्ररसाञ्जनचन्दनमनःशिलाकुष्ठपथ्याभिः ॥४१॥

लोध, रसौत, चन्दन, मैनशिल, कूठ और हरड इन सबको एकत्र घिसकर नेत्रोंके ऊपर लेप करनेसे नेत्रोंकी पीडा तत्काल शांत होती है ॥ ४१ ॥

भूम्यामलकी पिष्टा सैन्धवगृहवारियोजिता ताम्रे । जाता घनत्वमक्ष्णोर्जयति बहिर्लेपतः पीडाम् ॥ ४२ ॥

भुईआमला और सैंधानमक इनको काँजीके साथ तांबेके पात्रमें खरल करे । जब वह गाढा हो जाय तब उसको नेत्रोंके ऊपर लेप करनेसे नेत्रोंकी पीडा तत्काल शांत होजाती है ॥ ४२ ॥

आर्कश्च मूलमापोथ्य मुहूर्तं वारिणि न्यसेत् । एतदाश्च्योतनं दृष्टं नयनामयनाशनम् ॥ ४३ ॥

वारुणीनक्षत्रमें आंककी जडको उखाडकर उसका रस निचोडकर आश्च्योतन करनेसे नेत्रोंके समस्त रोग दूर होते हैं ॥ ४३ ॥

निम्बस्य चोदुम्बरवल्कलस्य एरण्डयष्टीमधुचंदनस्य । पिण्डी विधेया नयने प्रकोपिते कफेन पित्तेन समीरणेन ॥ ४४ ॥

नीमकी छाल, गूलरकी छाल, अंडकी जड, मुलैठी और चन्दन इनको एकत्र पीसकर पिंडी बनाकर नेत्रोंपर बाँधनेसे कफ, पित्त और वाताभिष्यन्दरोग दूर होता है ॥ ४४ ॥

यद्याक्षिशूलं मन्येत सरुजं व्यक्तलक्षणम् । वेदनानिग्रहार्थश्च कुर्यादाश्च्योतनं तदा ॥ ४५ ॥

जो आँखमें शूल, पीडा और व्यक्त लक्षण हों तो वेदनादिको शांत करनेके लिये आश्च्योतन कर्म्म करे ॥ ४५ ॥

आश्च्योतनमभिष्यन्दो युञ्जीतार्वाग् दिनत्रयम् । अञ्जनं पक्कदोषस्य नेत्ररोगेऽनिलात्मके ॥ ४६ ॥

नेत्ररोगमें प्रथम तीन दिनतक केवल आश्च्योतन कर्म्म करे । वातजनित और पक्कदोषवाले नेत्ररोगमें अञ्जन प्रयोग करे ॥ ४६ ॥

शोथश्च दाहरोगश्च क्लेदकंडू तथारुणम् । अक्ष्णोरस्रप्रसेकश्च क्षिप्रमाश्च्योतनं हरेत् ॥ ४७ ॥

आश्च्योतनकर्म्म-नेत्रोंकी सूजन, दाह, क्लेद, खुजली, लाली और रुधिरका गिरना इन सबको शीघ्र दूर करता है ॥ ४७ ॥

ग्रीष्मे वर्षाशरत्काले ह्यस्रपित्तामयेषु च । मुहुर्मुहुः स्वादु शीतं क्रमादाश्च्योतनं तथा ॥ ४८ ॥

ग्रीष्म, वर्षा और शरद्‌ऋतुमें तथा रक्तपित्तजन्य नेत्ररोगमें वारम्वार मधुर और शीतल औषधियोंके द्वारा आश्च्योतनकर्म्म करे ॥ ४८ ॥

वातश्लेष्माणि हेमन्ते वसन्ते शिशिरेषु च । तीक्ष्णोष्णमम्लशश्चैव कार्य्यमाश्च्योतनं बुधैः ॥ ४९ ॥

हेमन्त, वसन्त और शिशिर ऋतुमें तथा वात और कफजन्यनेत्ररोगोंमें तीक्ष्ण, उष्ण और अम्ल औषधियोंके द्वारा विद्वान् वैद्योंको आश्च्योतनकर्म्म करना चाहिये ॥ ४९ ॥

पक्के च श्लैष्मिके व्याधौ पाणिः शुक्तिश्च वातिके । आश्च्योतने प्रमाणं स्याद्वे शुक्ती चाशु पैत्तिके ॥ ५० ॥

पकदोषवाले कफजन्यनेत्ररोगमें एक तोला परिमाण, वातजन्यनेत्ररोगमें एक शुक्तिपरिमाण और पित्तजन्य नेत्ररोगमें दो शुक्तिपरिमाण आश्च्योतनकी मात्रा देनी चाहिय ॥ ५० ॥

अष्टौ दश द्वादशबिंदवस्तु संलेखनस्नेहनरोपणेषु। आश्च्योतने च क्रमशो विधेया मात्रास्तु तिस्रो नयनामयेषु ॥ ५१ ॥

लेखनविषयमें आश्च्योतनकी आठ बूंदें, स्नेहन विषयमें दश बूँदें और रोपणविषयमें बारह बूँदें डालनी चाहिये। नेत्ररोगोंमें इस तरह तीन प्रकारकी मात्रा कल्पना करनी चाहिए ॥ ५१ ॥

आश्च्योतने मारुतजे क्वाथो बिल्वादिभिर्हितः । कोष्णः सैरण्डबृहती तर्कारीमधुशिग्रुभिः ॥ ५२ ॥ शूलघ्नं वारुणोदीच्ययष्टीसैन्धवसाधितम् । ह्रीबेरचक्रमञ्जिष्ठोदुम्बरत्वक्षु साधितम् ॥ साम्भसा पयसा तेन शूले चाश्च्योतनं परम् ॥ ५३ ॥

वातजन्यनेत्ररोगमें बिल्वादि औषधियोंके मंदोष्णक्वाथसे आश्च्योतनकर्म्म करना हितकर है। अण्डकी जड, बडी कटेरी, अरणी और लाल सहिंजना इनके काथके द्वारा आश्च्योतनकर्म्म करनेसे नेत्रशूल नष्ट होता है। तथा बरनाकी छाल, नागरमोथा, मुलैठी और सैंधानमक इनके क्वाथको आश्च्योतनमें प्रयोग करनेसे अथवा सुगंधवाला, तगर, मजीठ, गूलरकी छाल और ईख इनका क्वाथ बनाकर दूधमें मिलाकर उसको नेत्रशूलमें आश्च्योतनके द्वारा प्रयोग करे ५२॥५३॥

सर्पिषाश्च्योतनं श्रेष्ठं सर्पिषा चोपनाहनम् । परिषेकः सुखोष्णेन मूर्ध्नि तैलविधारणम् ॥ ५४ ॥

इसमें घीका आश्च्योतन और घीका उपनाहन करना अत्यन्त हितकारी है। तथा मंदोष्ण, घृत, तैलादिका परिषेक करना और शिरपर तेलको धारण करना चाहिए ॥ ५४ ॥

पूर्वभक्तं हितं सर्पिः क्षीरश्चाप्यथ भोजनम् । जात्याः पुष्पं घृतभृष्टं चक्षुष्यमुपनाहनम् ॥ ५५ ॥

प्रथम घीका भोजन करके फिर दूधके साथ भोजन करना और चमेलीके फूलोंको घीमें भूनकर उपनाहन करना नेत्रोंके लिए अत्यन्त हितकारी है ॥ ५५ ॥

तथा शाबरकं लोध्रं घृतभृष्टं बिडालकः । कार्य्यो हरीतकी तद्वद् घृतयुक्ता रुजापहा ॥ ५६ ॥

पठानीलोधको घीमें भूनकर अथवा हरडको घीमें भून करके पीसकर नेत्रके पलके ऊपर लेप करे तो नेत्रकी पीडा दूर होती है ॥ ५६ ॥

सुखाम्बुपिष्टैः संयुक्तं शर्करालोध्रसैन्धवैः । दग्ध्वा ससैंधवं लोध्रं मधूच्छिष्टयुते घृते ॥ पिष्टमञ्जनलेपाभ्यां सद्यो नेत्ररुजापहम् ॥ ५७ ॥

मिश्री, लोध और सैंधानमक इनको एकत्र मदा-ष्णजलमें पीसकर नेत्रोंपर लगानेसे अथवा सैंधानमक और लोध इनको भूनकर मोम और घीमें मिलाकर नेत्रोंमें आँजनेसे या लेप करनेसे नेत्रोंकी पीडा तत्काल शांत होजाती है ॥ ५७ ॥

ततः संपक्वदोषस्य प्राप्तमञ्जनमाचरेत् ॥५८॥ हेमन्ते शिशिरे चैव मध्याह्नेऽञ्जनमिष्यते । पूर्वाह्ने चापराह्ने च ग्रीष्मे शरदि चेष्यते ॥ ५९ ॥ वर्षास्वनभ्रे नात्युष्णे वसन्ते च सदैव हि । प्रातः सायं च तत्कुर्य्यान्न च कुर्य्यात्सदैव हि ॥ ६० ॥

दोष पकजानेके पश्चात् नेत्रोंमें योग्य अंजन लगाना चाहिये । हेमत और शिशिरऋतुमें मध्याह्नके समय अञ्जन आँजना चाहिये। ग्रीष्म और शरदृऋतुमें पूर्वाह्नके समय अथवा अपराह्नके समय अञ्जन आँजना चाहिये । वर्षाऋतुमें बादलोंके न होनेपर और बहुत गरमीके न होनेपर अंजन आँजना चाहिये । वसन्तऋतुमें सदैव अंजन लगाना चाहिये । साधारण कालमें प्रातःकाल और संध्याके समय अंजन आँजना चाहिये, किंतु निरन्तर अंजन नहीं आँजना चाहिये ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥

हरेणुमात्रं कुर्वीत वर्तिस्तीक्ष्णाञ्जने भिषक् । प्रमाणं मध्यमे सार्द्धं द्विगुणं तु मृदौ भवेत् ॥ ६१ ॥

वैद्य तीक्ष्ण अंजनकी मटरका समान गोली बनावे। मध्यम अर्थात् जो न तीक्ष्ण हो और न अत्यन्त कोमल हो तो ऐसे अंजनकी डेढमटरकी समान गोली बनावे और कोमल अंजनकी दो मटरकी बराबर गोली बनानी चाहिये ॥ ६१ ॥

विडङ्गमात्रं त्वधमं मध्यं द्विश्चोत्तमं त्रयम् । रसक्रियाणां वर्तीनां प्रमाणं परिकीर्तितम् ॥ ६२ ॥

रसरूपी अंजनकी अथवा वर्त्तिरूप अंजनकी एक वायविडंगके समान मात्रा अधम है। दो वायविडंगके समान मध्यम मात्रा है और तीन वायविडंगके समान उत्तम मात्रा है ॥ ६२ ॥

वैरेचनिकचूर्णन्तु द्विशलाका विधीयते । मृदौ तु त्रिशलाका स्याच्चतस्रः स्नैहिकेऽञ्जने ॥ ६३ ॥

चूर्णरूप लेखन अञ्जनकी दो सलाई नेत्रोंमें लगानी चाहिये । रोपणअंजनकी तीन सलाई और स्नेहनअंजनकी चार सलाई नेत्रोंमें लगानी चाहिये ॥ ६३ ॥

सुवर्णरूप्यताम्रायःकांस्याश्मास्थिमयाः शुभाः । शलाकाश्चाञ्जने कार्य्यास्त्वष्टांगुलमिता बुधैः ॥ ६४ ॥

अञ्जन आँजनेके लिए विद्वानोंको सुवर्ण, चाँदी, ताँबा, लोहा, काँसा, पत्थर और अस्थि इनकी आठ अँगुल लम्बी, उत्तम, सचिक्कन और गोल सलाई बनानी चाहिये ॥ ६४ ॥

बृहत्येरण्डमूलत्वक् शिग्रुमूलं ससैन्धवम् । अजाक्षीरेण पिष्टं स्याद्वर्त्तिर्वाताक्षिरोगनुत् ॥ ६५ ॥

बडी कटेरी, अण्डकी जडकी छाल, सहिंजनेकी जड़की छाल और सैंधानमक इनको समान भाग लेकर बकरीके दूधमें पीसकर बत्ती बनाकर नेत्रोंमें लगावे तो वातजन्य पीडा शांत होती है ॥ ६५ ॥

हरिद्रां मधुकं पथ्यां देवदारु च पेषयेत् । आजेन पयसा श्रेष्ठमभिष्यन्दे तदञ्जनम् ॥ ६६ ॥

हलदी, मुलैठी, हरड और देवदारु इनको बकरीके दूधमें पीसकर अभिष्यन्दरोगमें नेत्रोंमें आँजना हितकर है ॥ ६६ ॥

सैन्धवं दारु शुण्ठी च मातुलुङ्गरसो घृतम् । स्तन्योदकार्द्धं कर्त्तव्यं शुष्कपाके तदञ्जनम् ॥ ६७ ॥

सैंधानमक, देवदारु, सोंठ, बिजौरेनींबूका रस, घी, दूध और आधा जल इनको एकत्र मिला कर शुष्काक्षिपाकरोगमें अञ्जनके समान आँजे ॥६७॥

शुष्काक्षिपाके हविषः पानमक्ष्णोश्च तर्पणम् । घृतेन जीवनीयेन नस्यं तैलेन चाम्बुना ॥ ६८ ॥

शुष्काक्षिपाकरोगमें घृतपान करावे, जीवनीय गणकी औषधियोंके द्वारा घृतको सिद्ध करके उससे नेत्रोंका संतर्पण करे, तथा तैल और जलके द्वारा नस्य देवे ॥ ६८ ॥

यावन्मज्जति पक्ष्माग्रं भ्रुवोरन्तरनेत्रयोः । तावच्च पूरयेन्नेत्रे तत उन्मीलयेच्छनैः ॥ ६९ ॥ मारुते दश धार्याणि पित्तेऽष्टौ वा शतानि च । निर्दिष्टानि कफे षड्वा व्याधौ व्याधिवशेन वा ७०॥

अब तर्पण करनेकी विधि कहते हैं । प्रथम नेत्रोंके पलक बंद करवाकर उनके ऊपर उडदके चूनको जलमें सानकर चारोंओर गोल मण्डलसा बनादेवे, फिर उसमें घी अथवा अन्य तर्पण करनेके पदार्थ भौंपर्यंत भरे अथवा पलकके बालोंतक भरे फिर धीरे २ नेत्रोंको खुलवावे । इसप्रकार वातजन्य नेत्ररोगोंमें एक सहस्र मात्रापर्य्यंत, पित्तजन्य नेत्ररोगोंमें आठसौ मात्रा पर्य्यंत और कफजन्यनेत्ररोगोंमें छः सौ मात्रापर्य्यंत तर्पणको धारण करे ॥ ६९ ॥ ७० ॥

परिषेके हितं चात्र पयः कोष्णं ससैन्धवम् । रजनीदारुसिद्धं वा सैन्धवेन समायुतम् ॥ ७१ ॥ सर्पिर्युक्तं स्तन्यघृष्टमञ्जनं च महौषधम् । वाताभिष्यन्दशमनं हितं मारुतपर्य्यये ७२॥

इसमें मन्दोष्णदूधमें सैंधानमक डालकर नेत्रोंपर सेचन करे अथवा हल्दी, देवदारु और सैंधानमक इनको घीमें मिलाकर इनके द्वारा घृतको सिद्ध करके उसको दूधमें मिलाकर नेत्रोंको सींचे या सोंठको दूधमें घिसकर नेत्रोंमें आँजे तो वाताभिष्यन्दरोग शमन होता है और वातपर्य्ययरोगमें यह योग अत्यन्त हितकारी है ॥ ७१ ॥ ७२ ॥

वाताभिष्यन्दवच्चात्र वाते मारुतपर्य्यये । पूर्वं तत्र हितं सर्पिः क्षीरं वाप्यथ भोजनम् ॥ ७३ ॥

इस वातपर्य्ययरोगमें वाताभिष्यन्दरोगके समान चिकित्सा करनी चाहिये । पहिले इसमें घृतपान अथवा दूधका भोजन करना हितकर है ॥ ७३ ॥

वृक्षादन्याद्यघृत ।

वृक्षादन्याह्वया चैव पञ्चमूली महत्यपि । सक्षीरं कर्कटरसे सिद्धं वापि पिबेद् घृतम् ॥ ७४ ॥

बांदा और वृहत्पंचमूल इनके कल्कके द्वारा तथा दूध और काकडाशिंगीके रससे घृतको पकावे । इस घृतको पान करनेसे उक्त वाताभिष्यन्द और वातपर्य्ययादिरोग दूर होते हैं ॥ ७४ ॥

अनेनैव विधानेन भिषक् तमपि साधयेत् । अभिष्यन्दमधिमन्थमन्यानपि च पित्तजान् ॥ ७५ ॥ व्याधीनुपाचरेद्धीमांस्तीक्ष्णैः सुस्निग्धशीतलैः । आश्च्योतनैः परीषेकैः पुटपाकैः सतर्पणैः ।स्नेहैर्विरेचनैर्लेपै रक्तस्य च विमोक्षणैः ॥ ७६ ॥

इसीप्रकार बुद्धिमान् वैद्य अभिष्यन्द, अधिमन्थ और अन्यान्य पित्तजन्य नेत्ररोगोंको तीक्ष्ण, स्निग्ध और शीतल आश्च्योतन, परिषेक, पुटपाक, तर्पण, स्नेह, विरेचन, प्रलेप और रक्तमोक्षण इन सब क्रियाओंके द्वारा चिकित्सा करे ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

प्रपुण्डरीकयष्ट्याह्वनिशामलकपद्मकैः । सितामधुसमायुक्तैः सकपित्थैश्च रोगनुत् ॥ ७७ ॥

पुण्डेरिया, मुलैठी, हल्दी, आमले, पद्माख और कैथ इनके काथमें मिश्री और शहद डाल कर पान करनेसे नेत्ररोग दूर होता है ॥ ७७ ॥

निम्बस्य पत्रैः परिलिप्य लोध्रं स्वेदाग्निना चूर्णमथापि कल्कम् । आश्च्योतनं मानुषदुग्धमिश्रं पित्तास्रवातापहमन्यमुक्तम् ॥ ७८ ॥

लोधको पीसकर नीमके पत्तोंपर लपेट करके अग्निसे सेके । पश्चात् उसका चूर्ण अथवा कल्क बनाकर स्त्रीके दूधमें मिलाकर नेत्रोंमें उसका रस डाले तो पित्त, रुधिर और वातजन्य अत्यन्त पीडायुक्त नेत्र रोग दूर होता है ॥ ७८ ॥

द्राक्षामधुकमञ्जिष्ठाजीवनीयैः शृतं पयः । प्रातराश्च्योतनं पथ्यं शोथशूलाक्षिरोगनुत् ॥ ७९ ॥

दाख, मुलैठी, मजीठ और जीवनीयगणकी औषधियोंके द्वारा दूधको पकाकर प्रातःकाल उसके द्वारा आश्च्योतनकर्म्म करनेसे नेत्रोंकी सूजन, शूल और समस्त नेत्रोंकी पीडा दूर होती है ॥ ७९ ॥

चन्दनारिष्टपत्राणि यष्टीं दार्वीं ससैन्धवम् । पिष्टाम्भसा भवेत्सेकः पित्तक्षौद्रसमन्वितः ॥ ८० ॥

चन्दन, नीमके पत्ते, मुलैठी, दारुहलदी और सैंधानमक इनको जलमें पीसकर शहदमें मिलाकर पित्तजन्य नेत्ररोगोंमें परिषेक करे ॥ ८० ॥

पैत्तिके चन्दनानन्ता-मञ्जिष्ठाभिर्बिडालकः । कार्य्यः सपद्मयष्ट्याह्वमांसीकालीयकैस्तथा ॥ ८१ ॥

पित्तजन्य अभिष्यंदरोगमें लालचन्दन, अनंतमूल और मजीठ इनका अथवा पद्माख, मुलैठी, वालछड और कलम्बक इनका वा दारुहलदीको पीसकर प्रलेप करे ॥ ८१ ॥

धात्रीलोध्रं घृते भृष्टं शिलायुक्तं सुवर्त्तितम् । प्रमृज्येद् गुटिकां कृत्वा कुपिते लोचने बहिः ॥ ८२ ॥

आमले और लोधको घीमें भूनकर उसमें मैनशिल मिलाकर एकत्र पीसकरके गोली बनावे । उन गोलियोंको नेत्रोंके बाहर लगानेसे नेत्रोंकी पीडा दूर होती है ॥ ८२ ॥

उदुम्बरफलं लोध्रं घृष्ट्वा चात्यन्तधूपितम् । साज्यं समाक्षिकं दारु शूलरोगाश्रुजिद्भवेत् ॥ ८३ ॥

गूलरके फल और लोधको घी और शहदमें घिसकर देवदारु आदिसे सुवासिक करके नेत्रोंमें लगानेसे नेत्रोंका शूल और अधिक आँसुओंका गिरना ये सब दूर होता है ॥ ८३ ॥

चन्दनं मधुकं लोध्रं जातिपत्राणि गैरिकम् । प्रलेपो दाहरोगघ्नस्तोदाभिष्यन्दनाशनः ॥ ८४ ॥

लालचन्दन, मुलैठी, लोध, चमेलीके पत्ते और गेरू इनको एकत्र पीसकर लेप करनेसे नेत्रोंकी दाह, तोडने सरीखी पीडा और नेत्राभिष्यन्दरोग दूर होता है ॥ ८४ ॥

भृष्टा घृतेन नागरतिरीटधात्रीमनःशिलागुटिका । उपर्युपरि मार्जनेन क्षपयति शूलं क्षणेनाक्ष्णोः ॥ ८५ ॥

सोंठ, लोध, आमले और मैनशिल इनको एकत्र घीमें भूनकर गोली बनाकर उसको नेत्रोंके ऊपर मलनेसे नेत्रोंका शूल तत्काल नष्ट होता है ॥ ८५ ॥

गुन्द्रां शालिं सैन्धवं शैलभेदं दर्भामिक्षुं लोध्रकं वेतसञ्च । दार्वीं द्राक्षां चन्दनं चोत्पलं वा स्त्रीणां स्तन्यं शर्करां क्षौद्रकं च ॥ ८६ ॥ पद्मात्पत्रं यष्टिकाह्वं हरिद्रा तालानन्ते चापि संहृत्य सर्वान् । सिद्धं सर्पिस्तर्पणे नावनं च शस्ते क्षीरं श्च्योतने चैव सेके ॥७८॥

गुन्द्रतृण, शालिधान, सैंधानमक, पाषाणभेद, डाभकी जड, ईखकी जड, लोध, वेंत, दारुहलदी, दाख, चन्दन और कमोदिनी इनको एकत्र पीसकर स्त्रीके दूध, मिश्री और शहदमें मिलाकर नेत्रोंमें परिषेक करनेसे अथवा कमलके पत्ते, मुलैठी, हलदी और ताडकी जड इनके कल्कके द्वारा घृतको सिद्ध करके उसको तर्पण, नस्य आदिमें प्रयोग करनेसे अथवा उपर्युक्त औषधियोंके द्वारा दूधको पकाकर आश्चोतनकर्म्म और परिषेकमें प्रयोग करना श्रेष्ठ है ॥७६ ॥ ॥ ८७ ॥

क्रियाः सर्वाः पित्तहार्य्यः प्रशस्तास्त्र्यहादूर्ध्वं क्षीरसर्पिश्च नस्यम् । पालाशं स्याच्छोणितं चाञ्जनार्थं शल्लक्या वा शर्कराक्षौद्रयुक्तम् ॥ ८८ ॥

पित्ताभिष्यन्दरोगमें सम्पूर्ण पित्तनाशक क्रिया करनी चाहिये । तीन दिनके बाद दूध और घृतका नस्य देवे । पलाश अथवा सालईके रसमें मिश्री और शहद मिलाकर अंजनके लिये प्रयोग करे ॥ ८८ ॥

तिक्तस्य सर्पिषः पानं बहुशश्च विरेचनम् । अम्लाध्युषितशान्त्यर्थं कुर्य्याल्लेपान् सुशीतलान् ॥ ८९ ॥

अम्लाध्युषितरोगमें तिक्तघृतका पान, विशेष करके विरेचन और शीतल औषधियोंके लेप प्रयोग करे ॥ ८९ ॥

तैल्वकं त्रैफलं सर्पिर्जीर्णं वा केवलं पिबेत् । शिराव्यधं विना कार्य्यः पित्ताभिष्यन्दहो विधिः ॥ ९० ॥

तिल्वकघृत अथवा त्रिफलाघृत या केवल पुराने घीको पीवे । इसमें शिरावेधको छोडकर सभी पित्ताभिष्यन्दनाशक विधि करे ॥ ९० ॥

कोष्णस्य सर्पिषः पानं विरेकासेकलेपनैः । स्वादुशीतैः प्रशमयेच्छुक्तिकं चाञ्जनैस्ततः ॥ ९१ ॥

मन्दोष्णघृतका पान, मधुर और शीतल औषधियोंके द्वारा विरेचन, सेक और प्रलेप एवं अंजन इनके द्वारा शुक्तिकरोगको दूर करे ॥ ९१ ॥

प्रवालमुक्तावैडूर्य्यशङ्खस्फटिकचन्दनम् । सुवर्णरजतक्षौद्रमञ्जनं शुक्तिकापहम् ॥ ९२ ॥

मूँगा, मोती, वैडूर्य्यमणि, शंख, फटकरी, लालचन्दन, सोना, चांदी और शहद इन सबको एकत्र पीसकर अंजन बनाकर नेत्रोंमें लगावे तो शुक्तिकरोग दूर होता है ॥ ९२ ॥

धूमदर्शी पिबेत्सर्पिः सर्वपित्तामयं जयेत् ॥ ९३ ॥

जिस मनुष्यकी धुएँके समान दृष्टि हो, वह घृत पान करे इससे सर्वप्रकारके पित्तके रोग नष्ट होते हैं ॥ ९३ ॥

अभिष्यन्दमधिमन्थं रक्तोत्थमथवार्जुनम् । शिरोत्पातं शिराहर्षमन्यान् वातोद्भवान् गदान् ॥ स्निग्धस्य कोष्णेनाज्येन शिरावेधैः शमं नयेत् ॥ ९४ ॥

अभिष्यन्द, अधिमन्थ, रुधिरसे उत्पन्न हुए रोग, अर्जुनरोग, शिरोत्पात, शिराहर्ष और अन्य समस्त वातजन्य नेत्ररोगोंको प्रथम सन्दोष्णघृतसे स्निग्ध करके फिर शिरावेधके द्वारा शमन करे ॥ ९४ ॥

तिरीटत्रिफलायष्टीशर्करामद्रमुस्तकैः । पिष्टैः शीताम्बुना सेको रक्ताभिष्यन्दनाशनः ॥ ९५ ॥

लोध, त्रिफला, मुलैठी, मिश्री और नागरमोथा इनको शीतल जलमें पीसकर सेचन करनेसे रक्ताभिष्यन्दरोग दूर होता है ॥ ९५ ॥

लोध्रचूर्णं घृते भृष्टं रुजमाश्च्योतनं हरेत् । शर्करात्रिफलाचूर्णमिदमाश्च्योतनं परम् ॥ ९६ ॥

लोधके चूर्णको घीमें भूनकर उसकी बूंदें नेत्रोंमें डाले अथवा मिश्री और त्रिफलेके चूर्णको जलमें पीसकर उसकी बूंदें नेत्रोंमें डाले तो नेत्रोंकी पीडा शांत होती है ॥ ९६ ॥

लाक्षामधुकमाञ्जिष्ठा लोध्रं कालानुशारिवा । प्रपुण्डरीकसंयुक्तः सेको रोगहरो हितः ॥ ९७ ॥

लाख, मुलैठी, मजीठ, लोध, तगर और पुंडेरिया इनको एकत्र पीसकर सेचन करनेसे रक्ताभिष्यन्दरोग दूर होता है ॥ ९७ ॥

कशेरुमधुकानाश्च चूर्णमम्बरसंभृतम् । न्यस्तमप्स्वन्तरिक्ष्यासु हितमाश्च्योतनं भवेत् ॥ ९८ ॥

कशेरू और मुलैठी इनके चूर्णको वस्त्रमें बांधकर पोटली बनाकरके वर्षाके जलमें भिजोकर वारंवार नेत्रोंमें टपकानेसे रक्ताभिष्यन्दरोग दूर होता है ॥ ९८ ॥

नीलोत्पलोशीरकटंकटेरीकालीययष्टीमधुमुस्तलोध्रैः । सपद्मकैर्धौतघृतप्रदिग्धैस्तिस्रः प्रसेकाः प्रहिता प्रयुक्तान् ॥ ९९ ॥

नीलोत्पल, खस और दारुहलदी अथवा पीला-चन्दन, मुलेठी, नागरमोथा और लोध अथवा केवल पद्माखको घीमें मिलाकर नेत्रोंको सींचनेसे अभिष्य-न्दादिरोग दूर होते हैं ॥ ९९ ॥

रुजायां चातितीव्रायां स्वेदाश्च मृदवो हिताः । अक्ष्णोः समन्ततः कार्यं पातनश्च जलौकसाम् ॥ १०० ॥

जो नेत्रोंमें अत्यन्त तीव्र पीडा हो तो मृदु स्वेद देवे। और नेत्रोंके चारों ओर जौंक लगवावे॥१००॥

घृतस्य महती मात्रा पीत्वा चार्तिं नियच्छति । पित्ताभिष्यन्दशमनो विधिश्चाप्युपपादितः ॥ १०१ ॥

घृतको अधिक मात्रामें पान करनेसे भी पीडा शांत हो जाती है । इसमें पित्ताभिष्यन्दको शमन करनेवाली विधि प्रयोग करनी चाहिये ॥ १०१ ॥

कशेरूमधुकानाञ्च चूर्णमम्बरसंभृतम । छागीक्षीरे घृते सेकः पित्तरक्ताभिघातजित ॥ १०२ ॥

कशेरू और मुलैठीका चूर्ण बनाकर वस्त्रमें बांध करके बकरीके दूध अथवा घृतमें भिजोकर उसके द्वारा नेत्रोंको सींचनेसे पित्ताभिष्यन्द, रक्ताभिष्यन्द और अभिघातजन्य नेत्रोंकी पीडा शमन होती है ॥ १०२ ॥

श्रीपर्णीपाटलाधात्री-धातकीतिल्वकार्जुनात् । पुष्पाण्यथ बृहत्याश्च बिंबीलोध्रश्च तुल्यशः ॥ १०३ ॥ समञ्जिष्ठानि मधुना पिष्टानीक्षुरसेन वा । रौधिरस्यन्दशान्त्यर्थमेतदञ्जनमिष्यते ॥ १०४ ॥

कुम्भेर, पाढल, आमले, धायके फूल, सफेद लोध, अर्जुनके फूल, बडी कटेरीके फूल, कन्दूरी, लोध और मजीठ इन सबको समान भाग लेकर शहदमें पीसकर अथवा ईखके रसमें पीसकर नेत्रोंमें आँजनेसे रक्ताभिष्यन्दरोग दूर होता है ॥ १०३ ॥ ॥ १०४ ॥

मृणालचन्दनोशीरपद्मकोत्पलयष्टिभिः । परिषेकः प्रकुर्वीत रक्तजेऽप्येतदेव तु ॥ १०५ ॥

कमलकी नाल, चन्दन, खस, पद्माख, कमल और मुलैठी इनको जलमें पीसकर उससे नेत्रोंको सींचनेसे रक्ताभिष्यन्दरोग दूर होता है ॥ १०५ ॥

सुमनःक्षारकं शङ्खं त्रिफलां मधुकं बलाम् । पित्तरक्तापहा वर्तिः पिष्टा दिव्येन वारिणा ॥ १०६ ॥

चमेलीके फूल, जवाखार, शंख, त्रिफला, मुलैठी और खिरैंटी इनको वर्षाके जलमें पीसकर बत्ती बना करके नेत्रोंमें आँजनसे पित्त और रुधिरकी पीडा शांत होती है ॥ १०६ ॥

दार्वी पटोलं मधुकं सनिम्बं पद्मकोत्पलम् । प्रपौण्डरीकं चैतानि पचेत्तोये चतुर्गुणे ॥ १०७ ॥ विपाच्य पादशेषं तु तत्पुनः कुडवं पचेत् । शीते तस्मिन्मधुसिते दद्यात्पादांशिके ततः । रसक्रियैषा दाहाश्रुरोगरक्तरुजापहा ॥ १०८ ॥

दारुहलदी, पटोलपत्र, मुलैठी, नीम, पद्माख, कमल और पुंडेरिया इन सबको समान भाग लेकर चौगुने जलमें पकावे। जब पकते पकते जल चौथाई भाग बाकी रहजाय तब उतारकर छान लेवे । फिर इस काथको एक कुडव परिमाण लेकर पकावे । जब पकते पकते गाढा होजावे तब नीचे उतार कर स्वयं शीतल होनेपर उसमें दो तोला शहद और दो तोला मिश्री मिला देवे । इसको रसक्रिया कहते हैं । यह नेत्रोंकी दाह, अश्रुरोग और रक्तसम्बधीय अभिष्यंदादि रोगोंको दूर करती है ॥१०७॥१०८॥

सर्पिः क्षौद्राञ्जनं च स्याच्छिरोत्पातस्य भेषजम् । तद्वत्सैन्धवकासीसं स्तन्यपिष्टश्च पूजितम् ॥ १०९ ॥

शिरोत्पादरोगमें घी और शहदका अञ्जन बनाकर नेत्रोंमें लगाना शिरोत्पातरोगका औषध है। तथा सैंधानमक और कसीसको स्त्रीके दूधमें पीसकर आँजना चाहिए ॥ १०९ ॥

शिराहर्षेऽञ्जनं कार्यं फाणितं मधुसं- युतम् । मधुना तार्क्ष्यशैलं वा का- सीसं वा समाक्षिकम् ॥ वेतसाम्लं स्तन्ययुक्तं फाणितं तु ससैन्धवम्११०॥

शिराहर्षरोगमें रावको शहदमें मिलाकर नेत्रोंमें अंजन करे। अथवा रसौंतको शहदमें मिलाकर या कसीसको शहदमें मिलाकर अथवा अमलवेंत, राव और सैंधानमकको स्त्रीके दूधमें पीसकर नेत्रोंमें आं- जनेसे उक्तरोग दूर होता है॥ ११० ॥

कफजे लङ्घनं स्वेदो नस्यं तिक्तादि- भोजनम् । तीक्ष्णैः प्रधमनं कुर्या- त्तीक्ष्णैरेवोपनाहनम् ॥ १११ ॥

कफजन्य अभिष्यन्दरोगमें लंघन, स्वेदन, नस्य, तिक्तरसवाले पदार्थोंका भोजन, तीक्ष्ण औषधियोंके द्वारा प्रधमन और तीक्ष्ण औषधियोंके ही द्वारा उप- नाह कर्म्म करे ॥ १११ ॥

उष्णैस्तथाश्च्योतनसंविधानैस्तथैव तीक्ष्णैः पुटपाकयोगैः ॥ ११२ ॥

कफाभिष्यन्दरोगमें उष्ण और तीक्ष्ण औषधियोंके द्वारा आश्च्योतन और पुटपाक कर्म्म करे॥ ११२॥

अभिष्यन्देऽधिमन्थे च सञ्जाते श्ले- ष्मसम्भवे । स्निग्धस्विन्नोत्तमाङ्गस्य स्निग्धतीक्ष्णैर्विरेचयेत् ॥ ११३ ॥

कफजन्य अभिष्यन्दरोगमें और अधिमंथरोगमें प्रथम रोगीको स्निग्ध और स्वेदित करके शिरको स्नि- ग्ध और तीक्ष्ण औषधियोंके द्वारा विरेचन देवे११३॥

स्रावैः प्रपीडैः प्रधमैर्धूमैश्च विविधै- र्मुहुः । रूक्षैस्तीक्ष्णविरेकैश्च मलं स- म्यग्विनिर्हरेत् ॥ ११४ ॥

कफाभिष्यन्दरोगमें वारंवार अनेकप्रकारके स्राव, अवपीडन, प्रधमन और धूम्रपान प्रयोग करे तथा रूक्ष और तीक्ष्ण औषधियोंके द्वारा विरेचन देकर उत्तम प्रकारसे मलको बाहर निकाल देवे ॥११४ ॥

रसाञ्जनेन वा लेपः पथ्याविश्वदलै- रपि । वचाहरिद्राविश्वाभिस्तथा नागरगैरिकैः ॥ ११५ ॥

रसौंतका लेप करनेसे अथवा हरड और अदरखके पत्तोंका लेप करनेसे या बच, हलदी और सोंठ इनका लेप करनेसे अथवा सोंठ और गेरूको पीसकर लेप करनेसे कफाभिष्यंदरोग शमन होता है ॥ ११५ ॥

शिलाह्वाञ्जनमारिचं लोध्रञ्च परिपू- रितम् । सितवस्त्रेण संबद्धं शस्तम- क्ष्णोः प्रघर्षणात् ॥ ११६ ॥

मैनशिल, सहिंजनके बीज और लोध इनको एकत्र पीसकर सफेद वस्त्रमें बाँधकर पोटली बनाकरके नेत्रोंपर घिसनेसे कफाभिष्यंदरोग दूर होता है ११६॥

निम्बपत्रैः कृतं चूर्णं लोध्रचूर्णसम- न्वितम् । वस्त्रबद्धं जले क्षिप्तं पूरणं नेत्ररोगनुत् ॥ ११७ ॥

नीमके पत्तोंके और लोधके समान भाग चूर्णको वस्त्रमें बाँधकर पोटली बनाकरके जलमें भिजोकर नेत्रोंमें लगानेसे नेत्रोंका कफाभिष्यंदरोग दूर होता है।

फणिज्जकास्फोतकपित्थबिल्वधत्तूर- पीलुसुरसार्ज्जभृङ्गैः । स्वेदं विद- ध्यादथवा प्रलेपं बर्हिष्टशुण्ठीसुरदा- रुकुष्ठैः ॥ ११८ ॥

छोटे पत्तोंकी वनतुलसी, कोइला, कैथ, बेलगिरी, धतूरा, पीलु, तुलसी, कालीतुलसी और भाँगरा इन सब औषधियोंको एकत्र पीसकर लुगदी बनाकर उसके द्वारा स्वेद देनेसे अथवा सुगन्धवाला, सोंठ, देवदारु और कूट इनको एकत्र पीसकर इनका लेप करनेसे कफाभिष्यंद रोग दूर होता है॥ ११८ ॥

शुण्ठीनिम्बदलैः पिण्डः सुखोष्णः स्वल्पसैन्धवः । धार्य्यश्चक्षुषि संक्षेपा- च्छोथकंडूव्यथापहः ॥ ११९ ॥

सोंठ और नीमके पत्तोंको एकत्र पीसकर उसमें कुछ एक सैंधानमक डालकर पिंडी बनाकर उसको सुहाता २ नेत्रोंपर धारण करनेसे सूजन, खुजली और नेत्रोंकी पीडा दूर होती है ॥ ११९ ॥

ससैन्धवं लोध्रमथाज्यभृष्टं सौवीर- पिष्टं सितवस्त्रबद्धम् । आश्च्योतनं

तन्नयनस्य कुर्य्यात्सर्वाक्षिरोगमशेषार्थमेतत् ॥ १२० ॥

सैंधानमक और लोधको घीमें भूनकर काँजीमें पीसकर सफेद वस्त्रमें बाँधकर पोटली बनाकरके उसको नेत्रोंमें निचोडनेसे सर्वप्रकारके नेत्ररोग दूर होते हैं ॥ १२० ॥

द्वौ द्वौ भागौ रजन्योश्च भागिकौ धूमसर्षपौ । कफाभिष्यन्दजिद्घृष्टं पिष्टमाश्च्योतमम्भसा ॥ १२१ ॥

हलदी २ भाग, दारुहलदी २ भाग, घरका धुआँसा १ भाग और सरसों १ भाग इन सबको एकत्र घीमें भूनकर जलमें पीसकरके उसके नेत्रोंमें बिंदु डालनेसे कफाभिष्यंदरोग दूर होता है॥१२१॥

लोध्रं संपेष्य संपक्वं खदिराजाजिसर्षपैः । नागरारिष्टसिन्धूत्थैर्युक्तं दृषदि चूर्णितम् ॥ १२२ ॥ सिते वाससि तद्बद्धं न्यसेत् स्वच्छाम्लकाञ्जिके । तदक्ष्णोः पूरणं कार्यं चक्षुसंवर्त्मरोगजित् ॥ १२३ ॥

लोध, खैर, जीरा, रससों, सोंठ,नीमके पत्ते और सैंधानमक इनको एकत्र भूनकर अच्छे प्रकारसे पीसकरके सफेद वस्त्रमें बाँधकर पोटली बना लेवे । उस पोटलीको खट्टीकाँजीमें डुबोकरके नेत्रोंमें निचोडनेसे कफाभिष्यंद, नेत्रोंके समस्तरोग और वर्त्मरोग दूर होता है ॥ १२२ ॥ १२३ ॥

वल्कलं पारिजातस्य तैलसैन्धवकाञ्जिकम् । कफवाताक्षिशूलघ्नं तरुघ्नं कुलिशं यथा ॥ १२४ ॥

पारिजात (फरहद) की छालको पीसकर तेल, सैंधानमक और काँजीमें मिलाकर नेत्रोंमें डालनेसे कफवातजन्य नेत्रशूल दूर होता है ॥ १२४ ॥

सौवीरं सैन्धवं तैलं मूर्वामूलं तथैव च । कांस्यपात्रे विघृष्टं स्यादक्ष्णोः शूलनिवारणम् ॥ १२५ ॥

सौवीरनामक काँजी, सैंधानमक,तेल और मूर्वाकी जड इनको एकत्र काँसेके पात्रमें घिसकर नेत्रोंमें आँजनेसे नेत्रशूल नष्ट होता है ॥ १२५ ॥

सैन्धवं त्रिफलाव्योषं शङ्खनाभिसमुद्रजः । फेनोग्रलेपकः सर्जो वर्तिः श्लेष्माक्षिरोगनुत् ॥ १२६ ॥

सैंधानमक, त्रिफला, त्रिकुटा, शंखनाभि, समुद्रफेन, सहिंजना और सज्जी इन सबको एकत्र पीसकर बत्ती बनाकर नेत्रोंमें लगानेसे कफाभिष्यन्दरोग दूर होता है ॥ १२६ ॥

निम्बार्कपत्रसंपक्वं लोध्रं भागचतुष्टयम् । धूमः सर्पिः पयोभागैः कफसेकः सुखांबुना ॥ १२७ ॥

नीमके पत्ते और आकके पत्तोंमें चौगुने लोधको पकाकर उसका धुआँ पिलानेसे और घी, दूध, जल इनका सुहाता सुहाता परिषेक करनेसे कफाभिष्यन्द रोग दूर होता है ॥ १२७ ॥

नागरं त्रिफलानिम्बवासानिम्बरसः कफे । साज्यं बिल्वच्छदं घृष्टं पात्रे ताम्रमये दृढे ॥ शोथहृद्वह्निना धूमं छागक्षीरपरिप्लुतम् ॥ १२८ ॥

कफाभिष्यन्द नेत्ररोगमें सोंठ, त्रिफला, नीम, अडूसेका रस और नीमका रस इन सबको एकत्र मिश्रित करके नेत्रोंमें सेचन करे । घीमें भुनेहुए बेलके पत्तोंको मजबूत तांबेके पात्रमें खरल करके बकरीके दूधकी भावना देकर सुखा लेवे । फिर अग्निके योगसे उनकी धूनी देवे तो इससे नेत्रोंकी सूजन दूर होती है ॥ १२८ ॥

बिल्वपत्ररसः पूतः साज्यः सिन्धुभवान्वितः। शुल्वे वराटिकां घृष्ट्वा धूपितो गोमयाग्निना॥१२९॥पयसालोडितश्चाक्ष्णोः पूरणाच्छोथशूलजित् । अभिष्यन्देऽधिमन्थे च रक्तस्रावे च शस्यते ॥ १३० ॥

बेलके पत्तोंके रसमें घी और सैंधानमक डालकर उसको एक उत्तम तांबेके पात्रमें कौडियोंसे घिसे,फिर आरनेउपलोंकी अग्निके द्वारा धूनी देवे । पश्चात् उसको दूधमें मिलाकर नेत्रोंमें भरनेसे नेत्रशोथ, शूल, अभिष्यन्द, अधिमंथ और रक्तस्राव दूर होता है ॥ १२९ ॥ १३० ॥

सलवणकटुतैलं काञ्जिकं कांस्यपात्रे घनितमुपलघृष्टं धूपितं गोमयाग्नौ। सपवनकफकोपं छागदुग्धावसिक्तं जयति नयनशूलं स्रावशोथं सरागम्॥ १३१॥

सैंधानमक, कडवातेल और काँजी इनको काँसेके पात्रमें एकत्र करके पत्थरसे खरल करे, फिर आरने-उपलोंकी अग्निमें धूनी देकर बकरीका दूध मिलाकर नेत्रोंमें लगावे तो वातकफजन्य अभिष्यन्द, नेत्रशूल, नेत्रस्राव, सूजन और नेत्रोंकी लाली दूर होती है १३१

त्रिदोषज अभिष्यन्दकी चिकित्सा।

कोष्णमाश्च्योतनं मिश्रैर्भेषजैः सान्निपातिके।

सन्निपातजन्य अभिष्यन्दरोगमें अनेकप्रकारकी मिश्रित औषधियोंका रस निकालकर उसको कुछ एक गरम करके नेत्रोंमें डाले॥

यष्टीं गुडूचीं त्रिफलां सदार्वीमक्ष्यामये सर्वगते पिबेद्वा। आश्च्योतनं सर्जरसेन दार्व्याः शस्तं सदा क्षौद्रयुतं नराणाम्॥ १३२॥

मुलैठी, गिलोय, हरड, बहेडा, आमला और दारुहलदी इनका क्वाथ बनाकर त्रिदोषजअभिष्यन्दमें पान करे। अथवा राल और दारुहलदीको जलमें पीसकर शहद मिलाकर नेत्रोंमें आश्च्योतन करे १३२

गुडूचीत्रिफलाक्वाथो मधुना सह योजयेत्। पीतः सर्वाक्षिरोगघ्नः कृष्णाचूर्णावचूर्णितः॥ १३३॥

गिलोय और त्रिफला इनका क्वाथ बनाकर उसमें शहद और पीपलका चूर्ण डालकर पान करनेसे सर्वप्रकारके नेत्राभिष्यन्दरोग दूर होते हैं॥ १३३॥

प्रपौण्डरीकयष्ट्याह्वदार्वीलोध्रैः सचन्दनैः। एरण्डाम्बुयुतैः सेकः सर्वनेत्ररुजापहः॥ १३४॥

पुंडेरिया, मुलैठी, दारुहलदी, लोध, चन्दन और अण्डकी जड इनको जलमें पीसकर अथवा इनका क्वाथ बनाकर उसमें नेत्रोंको सींचनेसे सर्वप्रकारके नेत्ररोग दूर होते हैं॥ १३४॥

श्वेतलोध्रं घृते भृष्टं चूर्णितं ताप्यतुत्थकम्। उष्णाम्बुना विमृदितं सेकः शूलहरः परः॥ १३५॥

सफेद लोधको घीमें भून कर उसमें सोनामाखी और तूतियेका चूर्ण मिलाकर उसको गरम जलमें घोलकर नेत्रोंको सींचनेसे सर्वप्रकारकी नेत्रपीडा दूर होती है॥ १३५॥

पिष्टैर्निम्बस्य पत्रैरतिविमलतरैर्जातिसिन्धूत्थमिश्रा ह्यन्तर्गर्भं दधाना पटुतरगुटिका पिष्टरोध्रेण भृष्टा॥ तूलैः सौवीरकार्द्रैरतिशयमृदुभिर्वेष्टिता सा समन्ताच्चक्षुः कोपोपशान्तिं चिरमुपरि दृशो भ्राम्यमाणा करोति॥ १३६॥

चमेली और सैंधे नमकको एकत्र पीसकर एक लुगदी बनालेवे फिर उत्तम नीमके पत्तोंको पीसकर उस लुगदीको उन नीमके पत्तोंमें रख देवे, पश्चात् लोधको भूनकर और बारीक पीस कर उसके ऊपर लपेट देवे फिर रुईको काँजीमें भिजोकर उसके चारोंओर लपेटकर उसको नेत्रोंके ऊपर फिरावे तो सम्पूर्णदोषजन्य बहुत दिनोंके पुराने अभिष्यन्दरोग दूर होते हैं॥ १३६॥

यष्टीगैरिकसिन्धूत्थदार्वीतार्क्ष्यैः समांसकैः। जलपिष्टैर्बहिर्लेपः सर्वनेत्ररुजापहः॥ १३७॥

मुलैठी, गेरू, सैंधानमक, दारुहलदी और रसौत इन सब औषधियोंके समान भाग लेकर जलमें पीसकर नेत्रोंके ऊपर लेप करनेसे सर्वप्रकारके नेत्ररोग दूर होते हैं॥ १३७॥

शिग्रुपल्लवनिर्यासः सुपिष्टस्ताम्रसंपुटे। घृतेन धूपितो हंति शोथघर्षाश्रुवेदनाः॥ १३८॥

सहिंजनेके कोमल पत्तोंका रस निकालकर ताँबेके संपुटमें घिसे, फिर उसमें घी मिलाकर धूप देवे तो

नेत्रोंकी सूजन, खुजली और आँसुओंका गिरना ये सब दूर होते हैं ॥ १३८ ॥

षोडशभिः सलिलपलैस्तथैव कण्टकार्य्याः पयःसिद्धाम् । शिलां चिरं विमृद्य तद्रसः सर्वनेत्ररोगहरः ॥१३९॥

कटेरीको सोलह पल जल और सोलह पल दूधमें पकावे, फिर उसमें बहुत समयतक मैनशिल अथवा कपूरको खरल करे। फिर उसके रसको नेत्रोंमें डाले तो सर्वप्रकारके नेत्ररोग दूर होते हैं ॥ १३९ ॥

एरण्डपत्रवेष्टित—बिल्वच्छदकल्कनिक्षिप्तो लोध्रः । कुकूनपक्कः पिष्टः सुसिन्धूद्भवेन संयुक्तः ॥ १४० ॥ घनतरवस्त्रपरिस्रुतदारुहरिद्रा--कषायमध्यगतः । आश्च्योतनेन हन्यात्सर्वाण्येवाक्षिशूलानि ॥ १४१ ॥

बेलके पत्तोंका कल्क बनाकर उसमें लोधको डालकर अण्डके पत्तोंसे बांधकर पुटपाककी विधिसे पकावे। फिर उसका रस निचोड़कर उसमें सैंधानमक मिला कर उसको दारुहलदीके काथमें डालकर वस्त्रमें छान लेवे। इस रसकी बूंदें नेत्रोंमें डालनेसे सर्व प्रकारका नेत्रशूल दूर होता है ॥ १४० ॥ १४१ ॥

अयमेव विधिः सर्वो मन्थादिष्वपि शस्यते । अधिमन्थेषु सर्वेषु ललाटे व्यधयेच्छिराम् ॥ अशान्तौ सर्वथा मन्थे भ्रुवोरुपरि दाहयेत् ॥ १४२ ॥

अधिमंथरोगमें भी येही सब चिकित्सा करनी चाहिये। सर्वप्रकारके अधिमंथोंमें प्रथम ललाटकी शिराको वेधे और जो इस प्रकार करनेसे भी शांती न हो तो फिर भौंहके ऊपर दाग देवे ॥ १४२ ॥

जलौकापातनं शस्तं नेत्रपाके विरेचनम् । शिराव्यधं वा कुर्वीत सेको लेपस्तु शुक्रनुत् ॥ १४३ ॥

नेत्रपाकरोगमें जौंक लगावे, विरेचन देवे, शिरावेध करावे तथा नेत्रशुक्रनाशक सेक और लेप प्रयोग करे ॥ १४३ ॥

विभीतकशिवा--धात्री-पटोलारिष्टवासकैः । काथो गुग्गुलुना पेयः शोथाक्षिपाकरोगनुत् ॥ १४४ ॥ पिल्लश्च सव्रणं शुक्ररागादींश्च विनाशयेत् । एतैश्चापि घृतं पक्कं रोगास्तांश्च व्यपोहति ॥ १४५ ॥

बहेडा, हरड, आमले, पटोलपत्र, नीमके पत्र और अडूसा इनके काथमें गूगल डालकर पान करनेसे नेत्रोंकी सूजन, नेत्रपाक, पिल्ल, व्रण, शुक्र और लाली आदिरोग दूर होते हैं। तथा इन्हीं उपर्युक्त औषधियोंके द्वारा घृतको पकाकर सेवन करनेसे उक्त समस्तरोग दूर होते हैं ॥ १४४ ॥ १४५ ॥

वासकादिक्काथ ।

आटरूषाभयानिम्बधात्रीमुस्ताक्षवल्कलैः । रक्तस्रावं कफं हन्ति चक्षुष्यं वासकादिकम् ॥ १४६ ॥

अडूसा, हरड, नीमकी छाल, आमले, नागरमोथा और बहेडेकी छाल इन सबको समान भाग लेकर काथ बनाकर सेवन करनेसे रक्तस्राव, कफ और नेत्रोंके समस्तरोग दूर होते हैं ॥ १४६ ॥

द्वितीयवासकादि क्काथ ।

वासाघनं निम्बपटोलपत्रतिक्तामृताचन्दनवत्सकत्वक् । कलिङ्गधात्रीदहनं च शुण्ठी भूनिम्बदार्व्यावभया बिभीतम् ॥ १४७ ॥ पीतः समांशैः क्वथितैः कषायो नृभिस्तु मुख्यानखिलाक्षिरोगान् । तैमिर्य्यकंडूपटलार्बुदश्च शुक्रं तथा सव्रणमव्रणं च ॥ ॥ १४८ ॥ सदाहरागं सरुजं सपिल्लं हन्यात्समस्तानपि नेत्ररोगान् । वातामयान् पित्तकफामयांश्च वासादिकोऽयं मुनिभिः प्रदिष्टः ॥ १४९ ॥

अडूसा, नागरमोथा, नीमकी छाल, पटोलपत्र, कुटकी, गिलोय, चन्दन, कुड़ेकी छाल, इन्द्रजौ, आमले

चीता, सोंठ, चिरायता, दारुहलदी, हरड और बहेडा इन सब औषधियोंको समानभाग लेकर काथ बना कर पान करनेसे सर्व प्रकारके मुख्य २ नेत्ररोग, तिमिर, कण्डू, पटलगत अर्बुद, सव्रण और अव्रणशुक्र तथा दाह, लाली, पीडा, पिल्ल एवं वात, पित्त और कफजन्य समस्त नेत्ररोग दूर होते हैं। इस वासकादि काथको प्राचीन मुनियोंने निर्दिष्ट किया है ॥ १४७ ॥ १४८ ॥ १४९ ॥

त्रिफला अथवा पथ्यादिक्काथ ।

पथ्यास्तिस्रो विभीतक्यः षड् धात्र्यो द्वादशैव तु । प्रस्थार्द्धे सलिले क्वाथ्यमष्टभागावशेषितम् ॥ १५० ॥ पित्ताभिष्यन्दमास्रावं रोगं वा तिमिरं जयेत् । संरंभदाहशूलासृङ्नाशनं दृक्प्रसादनम् ॥ १५१ ॥

हरड ३, बहेडे ६ और आमले १२ लेवे, इन सबको एकत्र कूट कर ३२ तोले जलमें पकावे। जब पकते २ आठवाँ भाग जल बाकी रह जाय तब उतार कर छान लेवे । इस काथको पान करनेसे पित्ताभिष्यंद, नेत्रस्राव, तिमिर, अनेक प्रकारकी पीडा, उपद्रव, दाह, शूल और रुधिरके दोष नष्ट होते हैं ।एवं दृष्टि शुद्ध होती है ॥१५० ॥ १५१ ॥

अथ कृष्णगतरोगनिदान ।

सव्रणरोगके लक्षण ।

निमग्नरूपन्तु भवेद्धि कृष्णे सूच्येव विद्धं प्रतिभाति यश्च । स्रावं स्रवेद्दुष्टमतीव यश्च तत्सव्रणं शुक्रमुदाहरन्ति ॥ १५२ ॥

जो फूला नेत्रके काले भागमें गढा हुआसा दीखे, सुईसे विंधासा मालूम हो, गोल तथा व्यथायुक्त हो और उसमेंसे गरम जल बहता हो तो उसको सव्रणशुक्र कहते हैं ॥ १५२ ॥

सव्रणशुक्रके साध्यासाध्यलक्षण ।

दृष्टेः समीपे न भवेत्तु यच्च न चावगाढं न च संस्रवेच्च । अवेदनं वा न च युग्मशुक्रं तत्सिद्धिमायाति कदाचिदेव ॥ १५३ ॥

जो फूला नेत्रकी पुतलीसे दूर हो, गहरा न हो, अधिक स्रवे नहीं, पीडा न हो और एकत्र दो न हों अर्थात् एक स्थानमें एकही हो तो ऐसा फूला कदाचित् साध्य होता है । किंतु जो सव्रणशुक्र दृष्टिके समीपमें हो, दूसरी त्वचामें प्राप्त हुआ हो, वेदनासहित,स्रावसहित और एक स्थानमें युग्मरूप हो ऐसा फूला कदापि साध्य नहीं होता ॥ १५३ ॥

अव्रणशुक्रके लक्षण ।

स्यन्दात्मकं कृष्णगते सचोषं शंखेन्दुकुन्दप्रतिमावभासम् । वैहायसाभ्रप्रतनुप्रकाशमथाऽव्रणं साध्यतमं वदन्ति ॥ १५४ ॥

जो फूला नेत्राभिष्यन्दसे अर्थात् आंखोंके दुखनेसे उत्पन्न हुआ हो, काली पुतलीमें चूसने सरीखी पीडा हो, तथा शंख चन्द्रमा और कुन्दके फूलके समान सफेद एवं आकाशके समान निर्म्मल और पतला हो ऐसा अव्रणशुक्र सुखसाध्य होता है ॥ १५४ ॥

अव्रणशुक्रकी अवस्थाभेदसे असाध्यता ।

गंभीरजातं बहुलश्च शुक्रं चिरोत्थितश्चापि वदन्ति कृच्छ्रम् ॥ १५५ ॥

जो अव्रणशुक्र (फूला) गहरा हो तथा मोटा हो और बहुत दिनोंका हो उसको कष्टसाध्य जानना चाहिये ॥ १५५ ॥

अव्रणशुक्रकी अवस्थादोषसे असाध्यता ।

विच्छिन्नमध्यं पिशितावृतं वा चलं शिरासूक्ष्ममदृष्टिकृच्च । द्वित्वग्गतं लोहितमन्ततश्च चिरोत्थितं चापि विवर्जनीयम् ॥ १५६ ॥ उष्णाश्रुपातः पिडिका च नेत्रे यस्मिन् भवेन्मुद्गनिभश्च शुक्रम् । तदप्यसाध्यं प्रवदन्ति केचिदन्ये तु यत्तित्तिरिपक्षतुल्यम् ॥ १५७ ॥

अव्रणशुक्र अर्थात् फूलेका मांस गिर जानेसे बीचमें गढासा पड जाय, या उसके चारोंओर मांस बढकर उसको घेर लेवे, अथवा अचल न रहे अर्थात्

एक जगहसे दूसरी जगहमें चला जाय, सूक्ष्मशिरा-ओंसे व्याप्त हो, दृष्टि नाशक हो, दूसरे पटलमें उत्पन्न हुआ हो और चारोंओरसे लाल हो तथा बहुत दि-नोंका उत्पन्न हुआ हो ऐसे शुक्रको वैद्य त्याग देवे। केवल दो पटलोंमें प्राप्त और बहुत कालसे उत्पन्न हुआ हो तो वह कष्टसाध्य होता है। किंतु दो पटलोंमें प्राप्त हुआ और बहुत कालसे उत्पन्न हुआ भी ऊपरके विशेष लक्षणोंवाला हो तो असाध्य होता है। नेत्रोंमेंसे गरम आंसू गिरें तथा छोटी २ फुंसी हों और मूगके समान शुक्र (फूला) हो तो असाध्य होता है। कितनेही वैद्य कहते है कि, तीतरके पंखके समान श्यामवर्ण शुक्र(फूला) असाध्य होता है ॥ १५६ ॥ १५७ ॥

अक्षिपाकात्ययके लक्षण ।

श्वेतः समाक्रामति सर्वतो हि दोषेण यस्यासितमण्डलन्तु । तमक्षिपाकात्ययमाक्षिरोगं सर्वात्मकं वर्जयितव्यमाहुः ॥ १५८ ॥

तीनों दोषोंसे जिसके नेत्रोंके काले भागमें चारों-ओरसे सफेदी छा जाती है उस नेत्रपाकको त्रिदोषज अक्षिपाकात्यय कहते हैं। यह असाध्य है,इस कारण इसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये ॥ १५८ ॥

अजकाजातके लक्षण ।

मिथ्योपचाराद्रोगाणां दोषादाघाततोऽपि च । अजका जायते नेत्रे कृष्णाद्दृष्टिसमाऽसृजा ॥ १५९ ॥

अभिष्यन्दादिरोगोंमें मिथ्या उपचार करनेसे और दोषोंके आघातसे नेत्रके कालेभागमें जो फूला होता है, उसको अजका कहते हैं। यह रुधिरसे होता है ॥ १५९ ॥

अन्यमतसे अजकाके लक्षण ।

अजापुरीषप्रतिमो रुजावान् सलोहितो लोहितपिच्छलाश्रु । विगृह्य कृष्णं प्रचयोऽभ्युपैति तच्चाजकाजातमिति व्यवस्येत् ॥ १६० ॥

नेत्रके काले भागमें बकरीके मेंगनके समान, पीडासहित, काला तथा लाल और पिच्छिल आंसु-ओंसे युक्त जो फूला होता है, उसको अजकाजात कहते हैं ॥ १६० ॥

अन्यच्च ।

अजापुरीषसङ्काशा मृद्वीका फलसन्निभा । वातरक्तसमुत्थानां प्रायशस्त्वजका हि सा ॥ १६१ ॥

बकरीके मेंगनके समान और दाखके समान वातरक्तसे जो नेत्रके काले भागमें फूला उत्पन्न होता है, उसको अजका कहते हैं ॥ १६१ ॥

अजकाजातकी साध्यासाध्यता ।

मूर्द्धाक्षिकर्णभ्रूगण्ड-शङ्खचर्माश्रिताजका । जायते व्यथते नेत्रं मथ्यमानमिवान्तरा ॥ १६२ ॥ उष्णमसृक् स्रवत्यक्षि दूयते क्लिद्यते भृशम् । असाध्यरोगसंभूतां दृष्टिजाश्च विवर्जयेत् ॥ स्वयंभिन्नां च कठिनां चिरकालोत्थितामपि ॥ १६३ ॥

जो शिर, नेत्र, कर्ण, भ्रू, गण्ड, ललाट, शंख और चर्म्म इनके आश्रयसे अजरोग उत्पन्न हुआ हो तथा नेत्रोंमें मथनेकीसी अत्यन्त पीडा हो, नेत्रोंसे गरम जल गिरता हो एवं अत्यन्त सन्ताप हो, जो असाध्यरोगोंसे उत्पन्न हुआ हो, दृष्टिमें अपने आप उत्पन्न हुआ हो,कठिन और बहुत दिनोंका पुराना हो ऐसा अजकाजातरोग असाध्य जानना॥१६२॥१६३

कृष्णगतरोगोंकी चिकित्सा ।

साध्यरोगसमुत्पन्नां कृष्णजान्त्वजकां जयेत् ॥ १६४ ॥ साध्यान्यवेक्ष्य शुक्राणि स्निग्धस्यासृग्विमोक्षणैः । आश्च्योतनसुखालेपघर्षणाञ्जनबस्तिभिः ॥ पुटपाकैश्च नस्यैश्च सामान्यं शुक्रभेषजम् ॥ १६५ ॥

साध्यरोगोंसे उत्पन्न हुए और काले भागमें आश्रित अजकारोगमें औषधि प्रयोग करे। शुक्ररोगको साध्य समझ कर प्रथम रोगीको स्निग्ध करके फिर रक्तमोक्षण करावे। आश्च्योतन,सुखोष्ण प्रलेप,अंजन और बस्तिके द्वारा घर्षण,पुटपाक और नस्य ये सब शुक्रकी सामान्य औषधि हैं ॥ १६४ ॥ १६५ ॥

धात्रीफलं निम्बकपित्थपत्रं यष्ट्या-ह्वलोध्रं खदिरं तिलाश्च । क्राथः स शीतो नयने निषिक्तः सर्वप्रकारं विनिहन्ति शुक्रम् ॥ १६६ ॥

आमले, नीम, कैथके पत्ते, मुलैठी, लोध, खैर और तिल इनका काथ बनाकर शीतल करके नेत्रोंको सींचनेसे सर्वप्रकारका नेत्रका शुक्र (फूला) दूर होता है ॥ १६६ ॥

फणिज्जकरसे बीजं पलाशस्य विभावितम् । शोषयित्वा सुपिष्टं तच्चाञ्जनाच्छुक्रहृत्परम् ॥ १६७ ॥

वनतुलसीके रसमें ढाकके बीजोंकी भावना देकर सुखालेवे,फिर उनको पीसकर नेत्रोंमें आँजे तो शुक्र (नेत्रका फूला) दूर होता है ॥ १६७ ॥

जात्या प्रवालं मधुकं ससर्पिर्भृष्टं सुखोष्णांम्बु सुशीतरश्मिः । आश्च्योतनं शुक्रहरं प्रदिष्टं शुक्रापहं स्त्रीपयसा महार्हम् ॥ १६८ ॥

चमेलीके पत्ते और मुलैठीको घीमें भूनकर फिर मंदोष्णजलमें घोल लेवे । फिर कुछ कपूर मिलाकर अथवा स्त्रीके दूधमें नेत्रोंमें मिला कर आश्च्योतन करे तो नेत्रका फूला दूर होता है ॥ १६८ ॥

सैन्धवं बृहतीमूलं ताम्रचूर्णं सनागरम् । धात्रीरसेन पिष्टा च ताम्रपात्रे प्रलेपयेत् । तत्पूते धूमयेच्चैनं शुद्धशुक्रं व्यपोहति ॥ १६९ ॥

सैंधानमक,बडी कटेरीकी जड, ताँबेका चूर्ण और सोंठ इन सबको आमलोंके रसमें पीसकर ताँबेके पात्रमें लेप करदेवे । फिर उसको छुडाकर वस्त्रमें छानकर धूनी देनेसे शुद्धशुक्र नष्ट होता है ॥ १६९॥

शुद्धशुक्रे निशायष्टी शारिवाशावराम्भसा । सेचयेन्नेत्रयोर्दृष्टिं कृष्णांभो मग्नजां तथा ॥ १७० ॥

शुद्धशुक्ररोगमें हलदी, मुलैठी, शारिवा और लोध इनको जलमें पीसकर नेत्रोंको सींचे ॥ १७० ॥

क्षुण्णपुन्नागपर्णेन परिभावितवारिणा । श्यामाक्राथाम्बुना वाथ सेवनं शुक्रनाशनम् ॥ १७१ ॥

पुन्नागके पत्तोंको तोडकर उनका रस निकालकर जलमें मिलाकर सिंचन करनेसे अथवा पीपलके काथके जलसे नेत्रोंको सिंचन करनेसे फूला नष्ट होता है ॥ १७१ ॥

सैन्धवं त्रिफलाकृष्णा-कटुका---शंखनाभयः । सताम्ररजसो वर्त्तिः शुद्धशुक्रविनाशिनी ॥ १७२ ॥

सैंधानमक, त्रिफला, पीपल, कुटकी, शंखकी नाभि और तांबेका चूर्ण इन सबको एकत्र पीसकर बत्ती बनाकर नेत्रोंमें लगानेसे शुद्धशुक्र नष्ट होता है ॥ १७२ ॥

स्थिरशुक्रे घने चैव बहुशोऽपहरेद्सृक् । शिरःकायविरेकांश्च पुटपाकांश्च कारयेत् ॥ १७३ ॥

जो शुक्र स्थिर और गाढा हो तो वारम्वार रुधिर निकलवावे तथा शिरोविरेचन और कायविरेचन एवं पुटपाकविधि करे ॥ १७३ ॥

समुद्रफेनसिन्धूत्थशङ्खदक्षाण्डवल्कलैः । शिग्रुबीजयुतैर्वर्त्तिः शुक्रादीञ्छस्त्रवल्लिखेत् ॥ १७४ ॥

समुद्रफेन, सैंधानमक, शंख, मुरगीके अण्डेका बक्कल और सहिंजनेका बीज इन सबको एकत्र पीसकर बत्ती बनावे । उस बत्तीके नेत्रोंमें लगानेसे शुक्रादिरोग तत्काल नष्ट हो जाते हैं ॥ २७४ ॥

वटक्षीरेण संयुक्तं श्लक्ष्णकर्पूरजं रजः । क्षिप्रमञ्जनतो हन्ति शुक्रं वापि घनोन्नतम् ॥ १७५ ॥

कपूरके चूर्णको वडके दूधमें बारीक पीसकर अंजन लगानेसे गाढा और उन्नत फूला तत्काल नष्ट होजाता है ॥ १७५ ॥

शिरीषबीजनिर्वैश्च पिप्पलीसैन्धवैरपि । शुक्रे प्रघर्षणं कार्य्यमथवा सैन्धवेन च ॥ १७६ ॥

सिरसके बीज, नीमके बीज, पीपल और सैंधानमक इन सबको एकत्र पीसकर फूलेपर घिसनेसे अथवा केवल सैंधेनमकसे फूलेको घिसनेसे फूला नष्ट होता है ॥ १७६ ॥

वंशजारुष्करौ तालं नारिकेलश्च तद्दहेत् । विस्राव्य क्षारवच्चूर्णं भावयेत्करभास्थिजम् । बहुशोऽञ्जनमेतत्स्याच्छुक्रवैवर्ण्यनाशनम् ॥ १७७ ॥

बवँईकी छाल, भिलावे, ताड और नारियलकी छाल इन सबको जलाकर भस्म करलेवे फिर उस क्षारको जलमें नितार कर सुखा लेवे पश्चात् ऊंटकी हड्डीको जलमें पीसकर उसमें इस क्षारकी भावना देकर नेत्रोंमें वारंवार आंजे तो नेत्रका फूला और विवर्णता नष्ट होती है ॥ १७७ ॥

बहुशः पलाशकुसुमस्वरसैः परिभाविता जयत्यचिरात् । नक्ताह्वबीजवर्त्तिः कुसुमचयं दृक्षु चिरजमपि॥१७८॥

करंजके बीजोंको ढाकके फूलोंके रसमें अनेकवार भावना देकर बत्ती बना लेवे । इस बत्तीको नेत्रोंमें लगानेसे बहुत दिनोंका फूला भी अवश्य नष्ट हो जाता है ॥ १७८ ॥

स्फटिकोषणयष्ट्याह्व-शङ्खगोदन्तसैन्धवैः । पिष्टैः सचन्दनैर्वर्त्तिः शुक्रघ्नी शिग्रुवारिणा ॥ १७९ ॥

फटकिरी, कालीमिरच, मुलैठी, शंख, गायका दांत, सैंधानमक और चन्दन इन सबको एकत्र पीसकर सहिंजनेके रसमें बत्ती बनालेवे । यह बत्ती लगाते ही नेत्रके फूलेको दूर करती है ॥ १७९ ॥

संघृष्य पिप्पलीचूर्णं सफेनं कांस्यभाजने । सक्षौद्रं सैन्धवोपेतमञ्जनं शुक्रनाशनम् ॥ १८० ॥

पीपलका चूर्ण और समुद्रफेनको कांसेके पात्रमें घिसकर शहद और सैंधानमक मिलाकर नेत्रोंमें अञ्जन करनेसे नेत्रका फूला दूर होता है ॥ १८० ॥

समुद्रफेनमभयां ह्रीबेरं सकुटन्नटम् । पिष्ट्वा धात्रीफलक्काथे वर्त्तिः स्याच्छुक्रनाशिनी ॥ १८१ ॥

समुद्रफेन, हरड, सुगन्धवाला और केवटीमोंथा इन सबको एकत्र पीसकर आमलोंके रसमें खरल करके बत्ती बनालेवे । इन बत्तियोंको नेत्रोंमें लगानेसे नेत्रका फूला दूर होता है ॥ १८१ ॥

चन्दनं सैन्धवं पथ्या पलाशतरुशोणितम् । मधुनाञ्जनयोगाः स्युश्चत्वारः शुक्रनाशनाः ॥ १८२ ॥

चन्दन, सैंधानमक, हरड और ढाकके फूलोंका स्वरस इन चारों औषधियोंमेंसे किसी एक औषधिको लेकर शहदमें मिलाकर आंजनेसे नैनका फूला दूर होता है ॥ १८२ ॥

त्रिफला चन्दनं व्योषं मञ्जिष्ठा नागरं निशा । प्रियंगुशारिवानन्ता सकृदाजश्च चूर्णितम् ॥ १८३ ॥ क्षौद्रसैन्धवसर्पिर्भिः संयोज्य विधिवत्पचेत् । पुटपाकः प्रशस्तोऽयं शुक्राणां लेखनः परः ॥ १८४ ॥

त्रिफला, चन्दन, मजीठ, सोंठ, हलदी, फूल, प्रियंगु, शारिवा, अनन्तमूल और बकरीकी विष्ठा इन सबको एकत्र पीसकर उसमें शहद, सैंधानमक और घी मिलाकर विधिपूर्वक पुटपाकविधिसे पकावे । इसको लगानेसे नेत्रका फूला नष्ट होता है ॥१८३॥ ॥ १८४ ॥

लामज्जकाद्यञ्जन ।

लामज्जकोत्पलसिता-चन्दनद्वयकार्षिकान् । क्षिप्ता च शारिवाप्रस्थं क्राथयेत्सलिलाढकम् ॥ १८५ ॥ पादशेषं परिस्राव्य पचेदादर्विलेपनात् । भाजने लोहशैले वा तत्प्रातः सायमञ्जनम् ॥ १८६ ॥ प्रधानमेतच्छुक्रघ्नं व्रणशुक्रं शमं नयेत् ॥ १८७ ॥

लामज्जकतृण, कमल, मिश्री और चन्दन ये प्रत्येक औषधि २ तोले और शारिवा एक प्रस्थ लेकर सबको एक आढक जलमें पकावे । जब पकते २ जल चौथाई भाग बाकी रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर उसको लोहेके या पत्थरके वर्त्तनमें दुबारा पकावे । जब वह पकते २ खूब गाढा हो जाय अर्थात् करछीसे लगने लगे तब उतार कर शीतल

कर लेवे । इस अञ्जनको प्रातःकाल या सन्ध्याके समय नेत्रोंमें लगानेसे शुक्र और व्रणशुक्र नष्ट होता है ॥ १८५ ॥१८६॥१८७॥

व्रणशुक्रोपशान्त्यर्थं षडङ्गं गुग्गुलुं पिबेत् । शिरसो वा हरेद्रक्तं जलौकाभिश्च लोचनात् ॥ १८८ ॥

व्रणशुक्रको शान्त करनेके लिये षडंगगूगलको पान करे । अथवा शिरका रुधिर निकलवावे या जौंक लगवाकर नेत्रोंमेंसे रुधिर निकलवावे ॥ १८८ ॥

ससैन्धवत्रिवृत्क्वाथे त्रीन्वारान् पाचितं घृतम् । पीत्वा सर्वेषु शुक्रेषु शीघ्रं कुर्य्याच्छिराव्यधम् ॥ १८९ ॥

सैंधानमक और निसोतके क्वाथमें तीनवार घृतको पकावे । उसको. सर्वप्रकारके शुक्ररोगोंमें पानकरके तत्काल शिराको वेध करे ॥ १८९ ॥

यष्ट्याह्वदार्व्युत्पलपद्मलाक्षा प्रपौण्डरीकं नलदं लता च ।आश्च्योतनं स्त्रीपयसा विपक्वं निहन्ति तत्सव्रणदाहशुक्रम् ॥ १९० ॥

मुलैठी, दारुहलदी,कमल, कमोदिनी,लाख,पुण्डेरिया,लामज्जकतृण और फूलप्रियंगु इन सबको एकत्र पीसकर स्त्रीके दूधमें पकाकर नेत्रोंमें आश्च्योतन करनेसे व्रण, दाह और नेत्रका फूला दूर होता है ॥ १९० ॥

श्यामामूलं कषायं वा मधुना व्रणशुक्रिणाम् ।

श्याम लताकी जड़का क्काथ बनाकर उसमें शहद डाल कर पान करनेसे व्रणशुक्ररोग दूर होता है ।

रत्नानि दन्ताः शृङ्गाणि धातवश्च फलत्रिकः । करञ्जबीजं लशुनो व्रणघ्नादि च भेषजम् ॥ १९१ ॥

रत्न, दाँत, सींग, धातु, त्रिफला या त्रिकुटा,करंजके बीज और लहशुन ये सब औषध व्रणशुक्रनाशक हैं ॥ १९१ ॥

सव्रणाव्रणगम्भीरत्वक् शुक्रघ्नमथाञ्जनम् । हितान्येतानि सर्वाणि नराणां व्रणशुक्रिणाम् ॥ १९२ ॥

व्रणशुक्र और गम्भीर त्वचावाला अव्रणशुक्र इनमें सम्पूर्ण शुक्रनाशक अञ्जन हितकारी हैं ॥ १९२ ॥

कतकस्य फलं शङ्खं तिन्दुकं रूप्यमेव च । कांस्ये निघृष्य स्तन्येन क्षतशुक्रार्तिरोगजित ॥ १९३ ॥

निर्म्मलीके फल, शंख, तेंदू और रूपा इन सबको एकत्र काँसेके पात्रमें स्त्रीके दूधके साथ घिसकर नेत्रोंमें डालनेसे व्रणशुक्र और उसकी पीडा दूर होती है ॥१९३॥

चन्दनं गैरिकं लाक्षा मालतीकलिकाः समाः । व्रणशुक्रहरी वर्त्तिः शोणितस्य प्रणाशिनी ॥ १९४ ॥

चन्दन, गेरू, लाख और चमेलीकी कली इन सबको समानभाग लेकर बत्ती बनालेवे । इस बत्तीको नेत्रोंमें लगानेसे व्रणशुक्ररोग नष्ट होता है और रुधिर स्वच्छ होता है ॥ १९४ ॥

दन्तवर्त्ति ।

दन्तैर्दन्तिवराहोष्ट्रगवाश्वाजखरोद्भवैः । सशङ्खमौक्तिकाम्भोऽधिफेनैर्मरिचपादिकैः ॥ १९५ ॥ जलपिष्टैः कृता सर्वैर्दन्तवर्त्तिरिति स्मृता । तिमिरार्बुदकाचार्म्मव्रणशुक्रविनाशिनी ॥ १९६ ॥

हाथीका दाँत, सूअरका दाँत, ऊँटका दाँत,बैलका दाँत, घोडेका दाँत, बकरेका दांत और गधेका दांत ये सब समानभाग, शंख, मोती, समुद्रफेन और कालीमिरच ये प्रत्येक चौथाई २ भाग लेवे । इन सबको एकत्र जलमें पीसकर बत्ती बनालेवे । यह दंतवर्ति–तिमिर, अर्बुद, काच, अर्म्म और व्रणशुक्रको नष्ट करनेवाली है ॥ १९५ ॥ १९६ ॥

ताम्रे च मस्तुनोद्घृष्टं तुत्थकं श्यावतां गतम् । सर्वाभिष्यन्दशुक्रार्मशिरःशूलजिदञ्जनात् ॥ १९७ ॥

तूतियेको दहीके पानीके द्वारा तांबेके पात्रमें घिसे जब वह घिसते घिसते काला होजाय तब उसको

नेत्रोंमें लगानेसे सर्वप्रकारके अभिष्यन्द, शुक्र, अर्म्म और शिरःशूल नष्ट होते हैं ॥ १९७ ॥

दक्षाण्डत्वक्शिला-शङ्खरक्तचन्दनसैंधवैः । तुल्यैरञ्जनयोगोऽयं पुष्पार्म्मादिविलेखनः ॥ १९८ ॥

मुरगीके अंडेकी छाल, मैनाशिल, शंख, लालचन्दन, और सैंधानमक इन सबको समान भाग लेकर अंजन बनाकर नेत्रोंमें लगानेसे नेत्रका फूला और अर्म्मादिरोग दूर होते हैं ॥ १९८ ॥

गोशकृत्कृमयः सप्त पीताभाः क्षौद्रसंयुताः । घृष्टा शुक्रहरा दृष्टाः क्षतजस्य विशेषतः ॥ १९९ ॥

गायकी विष्ठाके सात पीले कृमि और शहद इनको एकत्र घिसकर नेत्रोंमें लगानेसे शुक्र और विशेष करके व्रणशुक्र नष्ट होता है ॥ १९९ ॥

एकं वा पुण्डरीकश्च गवांक्षीरावशेषितम् । रागाऽसृग्वेदनां हन्यात् क्षतपाकाजकास्तथा ॥ २०० ॥

एक या दो सफेद कमलको गोदुग्धमें पकाकर जो दूध बचे उसको पीनेसे लाली, रक्तका निकलना, रक्तसम्बन्धी सब प्रकारकी पीडा और घावके पकजानेसे जो दुःख होता है वह सब दूर होता है ॥ २०० ॥

सौवीरमञ्जनं तुत्थं ताप्यं धात्री मनःशिला । चतुर्हरेणुमधुकं लोहं शुक्रघ्नमञ्जनम् ॥ २०१ ॥

सौवीरनामक अंजन, तूतिया, सोनामाखी, आमले, मैनशिल ये सब समान भाग और चारमटरकी बराबर मुलैठी तथा लोहा लेवे इन सबको एकत्र पीसकर नेत्रोंमें लगानेसे नेत्रका फूला शीघ्र नष्ट होता है ॥ २०१ ॥

कुक्कुटाण्डकपालानि शङ्खकाचोऽपि चन्दनम् । सैन्धवार्द्धांशसंयुक्तमञ्जनं शुक्रलेखनम् ॥ २०२ ॥

मुरगेके अण्डेका बक्कल, शंख, कांच और चन्दन ये प्रत्येक औषधि समान भाग और सैंधानमक आधा भाग लेवे, सबको एकत्र घिसकर नेत्रोंमें आंजनेसे नेत्रका फूला नष्ट होता है ॥ २०२ ॥

शङ्खस्रोतोऽञ्जनं लाक्षा मरिचं समनःशिलाम् । यवान्युदधिजं फेनं ताम्रचूर्णं समाक्षिकम् ॥ श्यामावर्तिर्लिखत्येव शुक्रकाचार्मपिष्टकम् ॥ २०३ ॥

शंख, काला अञ्जन, लाख, कालीमिरच, मैनशिल, अजवायन, समुद्रफेन, तांबेका चूर्ण, पीपल और शहद इन सबको एकत्र पीसकर बत्ती बनाकर नेत्रोंमें आंजनेसे शुक्र, काच और अर्म्मरोग नष्ट होता है ॥ २०३ ॥

रसाञ्जनं सशैलेयं कुंकुमं सुमनःशिला । शङ्खश्च श्वेतमरिचं शर्करा चेति सप्तमम् ॥ २०४ ॥ एषा चन्द्रोदया नाम्ना वर्त्तिर्वैद्येन निर्मिता । हन्यात् पिल्लश्च कण्डूश्च शुक्रं सतिमिरार्बुदम् ॥ २०५ ॥

रसौत, भूरिछरीला, केशर, मैनशिल, शंख, सफेद मिरच और मिश्री ये सातों औषधि समानभाग लेकर एकत्र पीसकर बत्ती बनालेवे। इसको चंद्रोदया वर्त्ती कहते हैं । यह पिल्ल, कण्डू, शुक्र, तिमिर और अर्बुदरोगको नष्ट करती है ॥ २०४ ॥ २०५ ॥

अयः सयष्टित्रिफला कणानां चूर्णानि तुल्यानि पुरेण नित्यम् । सर्पिर्मधुभ्यां सह भक्षितानि सर्वाणि शुक्राणि निहन्ति शीघ्रम् ॥ २०६ ॥

लोह, मुलैठी, त्रिफला और पीपल इन सबका चूर्ण समान भाग और गूगल सबकी बराबर भाग लेवे । इन सबको घी और शहदमें एकत्र मिलाकर सेवन करनेसे सर्व प्रकारके शुक्र शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ २०६ ॥

चूर्णाञ्जन ।

शङ्खस्य भागाश्चत्वारस्ततोऽर्द्धेन मनःशिला । मनःशिलार्द्धं मरिचं मरिचार्द्धेन सैन्धवम् ॥ २०७ ॥ एतच्चूर्णाञ्जनं श्रेष्ठं शुक्रयोस्तिमिरेषु च ।

पिच्चटे मधुना योज्यमर्बुदे मस्तुना तथा ॥ २०८ ॥

शंख ४ भाग, मैनशिल २ भाग, कालीमिरच १ भाग और सैंधानमक आधा भाग लेवे इन सबको एकत्र पीस कर अंजन बना कर शुक्र और तिमिररोगमें प्रयोग करे। पिच्चिटरोगमें इसको शहदमें मिलाकर और अर्बुदरोगमें दहीके जलमें घिस कर नेत्रोंमें लगावे ॥ २०७ ॥ २०८ ॥

स्नेहनस्याञ्जनैः शुक्रं निम्नमाशु समुद्धरेत्। शुक्रं करोति निर्मूलं पुटपाकैः सलेखनैः ॥ २०९ ॥

नीचेको प्राप्त हुए अर्थात् गहरे शुक्रको स्नेहन अंजनसे शीघ्र ही उखाड़ देवे। पुटपाक और लेखनपदार्थोंसे शुक्रको निर्मूल करना चाहिये ॥ २०९ ॥

पटोलाद्यघृत।

पटोलं कटुकां दार्वीं निम्बं वासां फलत्रिकम्। दुरालभां पर्पटकं त्रायन्तीञ्च पलोन्मिताम् ॥ २१० ॥ प्रस्थमामलकानान्तु क्वाथयेन्नल्वणेऽम्भसि। तेन पादावशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २११ ॥ कल्कैर्भूनिम्बकुटजमुस्तयष्ट्याह्वचन्दनैः। सपिप्पलीकैस्तत्सिद्धं चक्षुष्यं शुक्रयोर्हितम् ॥ ॥ २१२ ॥ घ्राणकर्णाक्षिवर्त्मत्वङ्मुखरोगव्रणापहम्। कामलाज्वरवीसर्पगण्डमालापहं परम् ॥ २१३ ॥

पटोलपत्र, कुटकी, दारुहलदी, नीमकी छाल, अडूसा, त्रिफला, धमासा, पित्तपापडा और त्रायमाणा ये प्रत्येक औषधि चार चार तोले तथा आमले १ प्रस्थ लेकर सबको एक द्रोण जलमें पकावे। जब पकते पकते जल चौथाई भाग बाकी रह जाय तब उतार कर छान लेवे। फिर उस क्वाथमें चिरायता, कुड़ेकी छाल, नागरमोथा, मुलैठी, चन्दन और पीपल इन सबका कल्क और उत्तम गायके एक प्रस्थ घृतको डाल कर पकावे। यह घृत-नेत्रोंको अत्यन्त हितकारी है। तथा शुक्रको नष्ट करता है। एवं नासिका, कर्ण, नेत्र, वर्त्म, त्वचा और मुखके रोग, एवं व्रण, कामला, ज्वर, विसर्प और गण्डमालाको नष्ट करता है॥२१०-२१३॥

द्राक्षाद्यघृत।

द्राक्षाचन्दनमञ्जिष्ठाकाकोलीद्वयजीरकैः। सिताशतावरीमेदापुण्ड्रेक्षुमधुकोत्पलैः ॥ २१४ ॥ पचेज्जीर्णघृतप्रस्थं समक्षीरं विचूर्णितैः। हन्ति तच्छुक्रतिमिरं रक्तराजीं शिरोरुजम् ॥ २१५ ॥

दाख, चन्दन, मजीठ, काकोली, जीरा, कालाजीरा, मिश्री, शतावर, मेदा, पुण्ड्रकईख, मुलैठी, और कमल इनके कल्कके द्वारा बराबरके दूधमें एक प्रस्थ पुराने घृतको पकावे। यह घृत-शुक्र, तिमिर, रक्तराजी और शिरोरोगको नष्ट करता है ॥ २१४ ॥ ॥ २१५ ॥

कृष्णाद्यतैल।

कृष्णाविडङ्गमधुयष्टिकसिन्धुजन्मविश्वौषधैः पयसि सिद्धमिदं छगल्याः। तैलं नृणां तिमिरशुक्रशिरोऽक्षिशूलपाकात्ययान् जयति नस्यविधौ सुयुक्तम् ॥ २१६ ॥

पीपल, वायविडंग, मुलैठी, सैंधानमक और सोंठ इन सबको समान भाग लेकर कल्क बना लेवे। उस कल्कके साथ बकरीके दूधमें तेलको पकावे। यह तेल-मनुष्योंके तिमिर, शुक्र, शिरःशूल, नेत्रशूल, पाकात्यय और अन्यान्य अनेक रोगोंको दूर करता है। इसको नस्यके द्वारा प्रयोग करना चाहिये ॥ २१६ ॥

न विना शोणितं शुक्रक्षतपाकात्ययोऽजकाः। भवन्ति रुधिरं तेन जलौकाभिरतो हरेत् ॥ २१७ ॥

शुक्र, व्रणशुक्र, पाकात्यय और अजका ये सब रोग विना रक्तमोक्षणके दूर नहीं होते, इसकारण जोंक लगवाकर इनका रुधिर निकलवाना चाहिये ॥२१७॥

अजकायां शिरां मुक्त्वा त्रिवृच्चूर्णाैर्विरेचयेत्। घृतं वातहरैः सिद्धमजका-

यां प्रयोजयेत् ॥ सेके पाने तथाऽभ्यङ्गे भोज्ये दृष्टिविदांवरः ॥२१८॥

अजकारोगमें प्रथम शिराको वेधकर पश्चात् निसोतके चूर्णके द्वारा रेचन करावे। तथा वातनाशक औषधियोंके द्वारा घृतको पका कर परिषेक, पान, अभ्यंग और भोजनके द्वारा अजकारोगमें प्रयोग करे ॥ २१८ ॥

पक्वबटपत्रपुटके विधाय मांसं बल्लूरकर्कटयः। पुटवद्विदध्याद्बध्वा तद्रससेको जयेदजकाम् ॥ २१९ ॥

केकडेके मांसको वडके पके हुए पत्तोंमें लपेट कर पुटपाककी विधिसे पकावे। फिर उसके रसको निचोड कर उससे नेत्रोंको सेचन करे तो अजकारोग नष्ट होता है ॥ २१९ ॥

गवामस्थित्वचं कांस्ये विनिर्घृष्य सुखांबुना। पूरयेदक्षि तेनाशु प्रशाम्यत्यजकामयः ॥ २२० ॥

गायकी हड्डी और गायकी त्वचाको कांसेके पात्रमें घिसकर सुखोष्णजलमें मिला कर नेत्रोंमें आंजनेसे अजकादिरोग शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ २२० ॥

सैन्धवं वाजिपादश्च गोरोचनसमायुतम्। शैलत्वग्रससंयुक्तं पूरणं वाजकापहम् ॥ २२१ ॥

सैंधानमक, घोडेका खुर और गोरोचन इनको एकत्र पीसकर लिसौडेके रसमें मिला कर नेत्रोंमें भरनेसे अजकादि रोग नष्ट होते हैं ॥ २२१ ॥

बृहच्छशकाद्यघृत।

शशकस्य कषायेण घृतप्रस्थं विपाचयेत्। कल्कं दद्यात्तु सक्षीरं यथोक्तान् कर्षसम्मितान् ॥ २२२ ॥ शारिवामधुकं लाक्षा चन्दनं नीलमुत्पलम्। बला चातिबला चैव मृणालं पत्रकं तथा ॥ २२३ ॥ कार्षिकं सविषालोध्रं जीवनीयगणान्वितम्। घृतमेतत्प्रयोक्तव्यं पाने नस्ये च पूरणे ॥ २२४ ॥ अजकामर्जुनं काचं पटलं शुक्रमेव च। तथाक्षिरोगान् सकलान् वातपित्तोत्तरं जयेत् ॥२२५॥

खरगोशके काथमें शारिवा, मुलैठी, लाख, चन्दन, नीकलमल, खिरैंटी, कंघी, कमलकी नाल, तेजपात, अतीस, लोध और जीवनीयगणकी औषधियां इन प्रत्येकका कल्क एक २ तोला डाल कर गायके दूधमें एक प्रस्थ घृतको पकावे। इस घृतको पान, नस्य और अंजन कर्म्ममें प्रयोग करे। यह घृत–अजका, अर्जुन, काच, पटल, शुक्र तथा सर्व प्रकारके वात–पित्तजन्य नेत्ररोगोंको नष्ट करता है ॥ २२२ ॥ ॥ २२३ ॥ २२४ ॥ २२५ ॥

दृष्टिगतरोगनिदान।

प्रथमे पटले दोषो यस्य दृष्ट्यां व्यवस्थितः। अव्यक्तानि च रूपाणि कदाचिदथ पश्यति ॥ २२६ ॥

जिसकी दृष्टिके पाहिले पटलमें दोष स्थित होते हैं वह मनुष्य रूपोंको कभी २ स्पष्ट रूपसे देखता है और जो दोष अल्प होते हैं तो किसी समय स्पष्ट भी देखता है ॥ २२६ ॥

दूसरेपटलगतदोषोंका स्वभाव।

दृष्टिर्भृशं विह्वलति द्वितीयं पटलङ्गते। मक्षिकान् मशकान् केशान् जालकानीव पश्यति ॥ २२७ ॥ मण्डलानि पताकांश्च मरीचीन् कुण्डलानि च। पारिप्लवांश्च विविधान् वर्षमभ्रतमांसि च ॥ २२८ ॥ दूरस्थानि च रूपाणि मन्यते स समीपतः। समीपस्थानि दूरे च दृष्टेर्गोचरविभ्रमात् ॥ २२९ ॥ यत्नवानपि चात्यर्थं सूचीपाशं च पश्यति ॥ २३० ॥

दूसरे पटलमें दोषके प्राप्त होनेसे दृष्टि अत्यन्त विह्वल होजाती है, अत एव मनुष्य मक्खी, मच्छर, और केश आदिको मकडीके जालेके समान देखता है। एवं मण्डल, पताका और किरणें न हों तो भी होनेके समान देखता है और प्रकाशमान वस्तुओंको कुण्डलके समान गोल देखता है। परछाई आदिके संचारको ऊंचा नीचा तथा टेढा आदि अनेक प्रकारसे देखता है और वर्षा, बादल तथा अन्धकारके न

होने पर भी उनको वह मनुष्य दृष्टिके रूपमें भ्रम होनेसे दूरके पदार्थोंको अपने समीप देखता है और समीपके पदार्थोंको दूर समझता है तथा अत्यन्त यत्न करने पर भी सुईके नकुये (छेद) को नहीं देख सकता है ॥ २२२-२३० ॥

तृतीयपटलगतदोषके लक्षण ।

ऊर्ध्वं पश्यति नाधस्तात्तृतीयं पटलं गते । महान्त्यपि च रूपाणि छादितानीव चाम्बरैः ॥ २३१ ॥ कर्णनासाक्षिहीनानि विकृतानीव पश्यति । यथा दोषश्च रज्येत दृष्टिर्दोषे बलीयसि ॥ २३२ ॥ अधःस्थे तु समीपस्थं दूरस्थं चोपरिस्थिते। पार्श्वस्थिते तथा दोषे पार्श्वस्थन्नैव पश्यति २३३ समन्ततः स्थिते दोषे संकुलानीव पश्यति । दृष्टिमध्यस्थिते दोषे महद्धस्वञ्च पश्यति ॥ २३४ ॥ दोषे दृष्टिस्थिते तिर्य्यगेकं वै मन्यते द्विधा । द्विधास्थिते त्रिधा पश्येद्बहुलश्चानवस्थिते ॥ २३५ ॥

तीसरे पटलमें दोषके प्राप्त होनेपर रोगी ऊपरके पदार्थोंको अत्यन्त बडे होनेपर भी वस्त्रोंसे ढकाहुआसा देखता है और नीचेके पदार्थको समीप होने पर भी नहीं देखता । कान, नाक और नेत्र आदि अवयवोंको विकृत तथा इनसे रहित शरीरको देखता है। जब दोष बलवान् होता है तब दृष्टिदोषके अनुसार वर्ण होजाता है । जब दोष नीचेके भागमें स्थित होते हैं तब रोगी समीपके पदार्थोंको नहीं देखसकता और जब दोष ऊपरके भागमें स्थित होते हैं तब दूरके पदार्थोंको नहीं देख सकता। जो दोष इधर उधर पार्श्वभागमें स्थित होते हैं तो पार्श्वकी ओरके पदार्थोंको नहीं देखसकता । जो दोष चारोंओर स्थित होते हैं तो ऊपर नीचे तथा पार्श्वके पदार्थ अलग २ होने पर भी मिलेहुए दीखते हैं । जो दोष दृष्टिके बीचमें स्थित होते हैं तो बड़े पदार्थ छोटे दीखते हैं और जो दोष दृष्टिमें टेढे स्थित होते हैं तो एक ही पदार्थ दो प्रकारका दीखताहै जो दोष दृष्टिके दो भागोंमें स्थित होते हैं तो एक पदार्थके तीन पदार्थ दीखते हैं और जो दोष अनियमित रीतिसे स्थित होतेहैं तो एक पदार्थके अनेक पदार्थ दीखते हैं२३१-२३५

चतुर्थपटलगततिमिरके लक्षण ।

तिमिराख्यः स वै दोषश्चतुर्थं पटलं गतः । रुणद्धि सर्वतो दृष्टिं लिङ्गनाशमतः परम् ॥ २३६ ॥ अस्मिन्नपि तमोभूते नातिरूढे महागदे । चन्द्रादित्यौ सनक्षत्रावन्तरिक्षे च विद्युतः ॥ २३७ ॥ निर्मलानि च रूपाणि भ्राजिष्णूनि च पश्यति । स एव लिङ्गनाशस्तु नीलिकाकाचसंज्ञितः ॥ २३८ ॥

जब दोष दृष्टिके चौथे पटलमें स्थित होजाता है तब उसको अन्धकार दीखनेके कारण तिमिर कहते हैं, वह चारोंओरसे दृष्टिको रोक देता है । इसको अन्य ग्रन्थोंमें लिंगनाश रोग कहते हैं । जबतक अन्धेरेके समान यह भयंकर रोग नवीन होता है, तबतक तो मनुष्य चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र और बिजलीको देखता है, क्योंकि आकाशके प्रकाशमान होनेसे अन्धकारका अभाव रहता है । अग्नि आदिके निर्म्मल तेजको भी देखता है और रत्न तथा सुवर्ण आदि प्रकाशित पदार्थोंको भी देखता है । किन्तु जब यह रोग पुराना होजाता है तब चन्द्रमा आदि प्रकाशित पदार्थ भी नहीं दीखते । इस तिमिरनामक रोगको जैसे लिंगनाशक कहते हैं उसी प्रकार नीलिका और काच रोग भी कहते हैं । लिंग अर्थात् दृष्टिके तेजको जो नाश करता है वह लिंगनाश कहा जाता है ॥ २३६ ॥ २३७ ॥ २३८ ॥

दोषविशेषके द्वारा रूपोंका दीखना ।

वातेन चात्र रूपाणि भ्रमन्तीव च पश्यति । आविलान्यरुणाभानि व्याविद्धानीव मानवः ॥ २३९ ॥

वायुके द्वारा उत्पन्न हुए लिंगनाशमें मनुष्य सम्पूर्ण रूपोंको भ्रमण करता हुआसा देखता है तथा मलिन, कुछ लाल, गदले, विकृत और टेढे तिरछे रूपको देखता है ॥ २३९ ॥

पित्तजलिंगनाशके लक्षण ।

पित्तेनादित्यखद्योतशक्रचापतडिद्गुणान् । नृत्यंतश्चापि शिखिनः सर्वं नीलञ्च पश्यति ॥ २४० ॥

पित्तके लिंगनाशमें मनुष्य सूर्य, पटवीजना, इन्द्रधनुष और बिजली इनको नाचते हुए मोरकी पूछके समान विचित्र और नीले काले रंगका देखता है ॥ २४० ॥

कफजलिंगनाशके लक्षण ।

कफेन पश्येद्रूपाणि स्निग्धानि च सितानि च । सलिलप्लावितानीव जालकानीव मानवः ॥ २४१ ॥

कफके लिंगनाशमें मनुष्य सम्पूर्ण पदार्थोंको चिकना, सफेद, जलमें डुबोकर निकाले हुएके समान और जालके समान देखता है ॥ २४१ ॥

रक्तजलिंगनाशके लक्षण ।

पश्येद्रक्तेन रक्तानि तमांसि विविधानि च । हरितान्यथ कृष्णानि पीतान्यपि च मानवः ॥ २४२ ॥

रुधिरके द्वारा उत्पन्न लिंगनाशमें मनुष्यको लाल और अनेकप्रकारके अन्धकाररूप, हरे, काले और पीले रंगके पदार्थ दीखते हैं ॥ २४२ ॥

सन्निपातेन चित्राणि विप्लुतानीव पश्यति । बहुधा च द्विधा वापि सर्वाण्येव समन्ततः ॥ हीनाधिकाङ्गान्यथवा ज्योतींष्यपि च भूयसा२४३॥

सन्निपातके लिंगनाशमें प्रायः नानावर्णकी विपरीत वा दो प्रकारके अथवा सर्व प्रकारके रूप चारों ओर देखनेमें आते हैं । अथवा अधिक और हीन अंगवाले दीखते हैं अथवा तेजोमय दीखते हैं ॥ २४३ ॥

परिम्लायिसंज्ञक लिङ्गनाशके लक्षण ।

पित्तंकुर्यात्परिम्लायि मूर्च्छितं रक्ततेजसा । पीता दिशस्तथोद्यन्तमादित्यमिव पश्यति ॥ विकीर्य्यमाणान्खद्योतैर्वृक्षांस्तेजोभिरेव च ॥ २४४ ॥

रुधिरसे मूर्छित हुआ पित्त परिम्लायिनामक लिंगनाशको उत्पन्न करता है । इसमें सम्पूर्ण दिशायें पीली ही पीली दीखती हैं, सूर्य्य उदय होतासा दीखता है और वृक्ष, पटवीजने तथा अग्निके तेजसे व्याप्त दीखते हैं ॥ २४४ ॥

वातादिजन्यनेत्रके वर्णानुसार लिंगनाशके छः प्रकार ।

वक्ष्यामि षड्विधं रागैर्लिङ्गनाशमतःपरम् ॥ २४५ ॥ रागोऽरुणो मारुतजः प्रदिष्टो म्लायी च नीलश्च तथैव पित्तात् । कफात्सितः शोणितजश्च रक्तः समस्तदोषप्रभवे विचित्रः ॥ २४६ ॥

वातादिसे उत्पन्न हुए नेत्रोंके वर्णानुसार भी लिंगनाश छः प्रकारका होता है । कौनसे दोषसे नेत्रका कौनसा रंग होता है, यह कहते हैं । वातसे लिंगनाश हुआ हो तो नेत्रोंका रंग लाल होता है । पित्तजन्य परिम्लायी लिंगनाश हो ता नेत्रोंका वर्ण नीला होता है । कफजन्यलिंगनाश हो तो नेत्रोंका रंग सफेद होता है । रुधिरसे लिंगनाश हो तो नेत्रोंका रंग लाली लिये होता है और सन्निपातसे लिंगनाश हुआ हो तो नेत्रोंका रंग विचित्र वर्णका होता है॥२४५॥२४६ ॥

परिम्लायिमण्डलके लक्षण।

अरुणं मण्डलं दृष्ट्यां स्थूलकाचारुणप्रभम् । परिम्लायिनि रोगे स्यान्म्लायि नीलश्च मण्डलम् ॥ दोषक्षयात् स्वयं चात्र कदाचित् स्यात्तु दर्शनम् ॥ २४७ ॥

परिम्लायिरोगमें दृष्टिभागमें स्थूल काचके समान लाल मण्डल होता है । वह लाल तथा पीला और नीला मिला हुआ होता है । उसमें किसी समय दोषोंके क्षय होनेसे अपने आप भी दीखने लगता है ॥ २४७ ॥

वातादिकारणभूतसे उत्पन्न नेत्रमंडलके रूपविशेष ।

अरुणं मंडलं वाताच्चञ्चलं परुषं तथा । पित्ततो मंडलं नीलं कांस्याभं पीतमेव च ॥ २४८ ॥ श्लेष्मणा बहुलं स्निग्धं शङ्खकुन्देन्दुपाण्डुरम् । चलत्पद्मपलाशस्थः शुक्लो बिन्दुरिवाम्भसः ॥ २४९ ॥ मृज्यमाने तु नयने मंडलं तद्विसर्पति । प्रवालपद्मपत्राभं मंडलं शोणितात्मकम् ॥ २५० ॥ दृष्टिरोगो भवेच्चित्रो लिङ्गनाशे त्रिदोषजे । यथास्वं दोषलिङ्गानि सर्वेष्वेव भवन्ति हि ॥ २५१ ॥

वातसे लिंगनाश हुआ हो तो मण्डल–लाल, चंचल तथा कठिन होता है । पित्तसे लिंगनाश हुआ हो तो मण्डल–नीला, कांसेके समान अथवा सफेद वा पीला होता है । (सफेद और पीला होना यह व्याधिके प्रभावसे होता है) कफसे लिंगनाश हो तो मण्डल–मोटा, स्निग्ध, शंख, कुन्द और चन्द्रमाके समान सफेद होता है और चंचल कमलके पत्रपर पडे हुए जलके बिंदुके समान होता है । आंखको खूब मलनेसे यह मण्डल पसर जाता है । रुधिरसे लिंगनाश हुआ हो तो मण्डल प्रवालके समान और कमलकी पँखडीके समान होता है । तीनों दोषोंसे लिंगनाश हो तो मण्डल लाल और विचित्र अर्थात् वातादिदोषजनित सम्पूर्ण वर्णोंवाला होता है । सब प्रकारके लिंगनाशोंमें प्रत्येक दोषके अपने २ लक्षण भी अवश्य होते हैं ॥ २४८–२५१ ॥

दृष्टिरोगोंके नाम तथा संख्या ।

यथा नरः पित्तविदग्धदृष्टिः कफेन चान्यस्त्विह धूमदर्शी । यो ह्रस्वजात्यो नकुलान्धता च गम्भीरसंज्ञा च तथैव दृष्टिः ॥ २५२ ॥ षड्लिङ्गनाशाः षडिमे च रोगा दृष्ट्याश्रयाः षट् च षडेव च स्युः ॥ २५३ ॥

नेत्ररोगमें पित्तविदग्धदृष्टि १, कफविदग्धदृष्टि २, धूमदर्शी ३, ह्रस्वजात्य ४, नकुलान्ध्य ५ और गम्भीर दृष्टि ६ इस प्रकार छः तो ये और छः लिंगनाश इस प्रकार दृष्टिके सब बारह रोग हैं ॥ २५२ ॥ २५३ ॥

पित्तविदग्धदृष्टि एवं दिवान्धके लक्षण ।

पित्तेन दुष्टेन यदा च दृष्टिः पीता भवेद्यस्य नरस्य किञ्चित् । पीतानि रूपाणि च तेन पश्येत् स वै नरः पित्तविदग्धदृष्टिः ॥ २५४ ॥

जब दुष्टहुआ पित्त दृष्टिके पहिले और दूसरे पटलमें प्राप्त होजाता है तब मनुष्यकी दृष्टि कुछ पीली पडजाती है, उस समय वह सम्पूर्ण पदार्थोंको पीला देखता है । उसको पित्तविदग्धदृष्टि कहते हैं ॥ २५४ ॥

प्राप्ते तृतीयं पटलं च दोषे दिवा न पश्येन्निशि वीक्ष्यते सः । रात्रौ च शीतानुगृहीतदृष्टिः पित्ताल्पभावादपि तानि पश्येत् ॥ २५५ ॥

जब पित्त तीसरे पटलमें प्राप्त होता है तब उस रोगीको दिनमें सूर्य्यकी गरमीसे पित्तकी अधिकताके कारण नहीं दीखता, किन्तु रात्रिमें दीखता है। कारण रात्रिमें पित्तकी अल्पतासे शीतलता होनेके कारण दीखने लगता है ॥ २५५ ॥

कफविदग्धदृष्टि और नक्तान्धके लक्षण ।

तथा नरः श्लेष्मविदग्धदृष्टिस्तान्येव शुक्लानि च मन्यते तु ॥ २५६ ॥

दूषितहुआ कफ जब दृष्टिके पहिले, दूसरे पटलमें प्राप्त होता है तब मनुष्य सम्पूर्ण पदार्थोंको सफेद ही देखता है, इसको कफविदग्धदृष्टि कहते हैं ॥ २५६ ॥

त्रिषु स्थितोऽल्पः पटलेषु दोषो नक्तान्ध्यमापादयति प्रसह्य । दिवा स सूर्य्यानुगृहीतदृष्टिः पश्येत रूपाणि कफाल्पभावात् ॥ २५७ ॥

थोडासा ही कफ जब नेत्रोंके तीनों पटलोंमें प्राप्त होजाता है, तब हठात् रात्र्यन्धरोगको उत्पन्न करता है । इसमें सूर्य्यके अनुग्रहसे दिनमें जब कफ कम होजाता है तब दीखता है, किंतु रात्रिमें कफाधिक्यके

कारण नहीं दीखता। इस रोगको रात्र्यन्ध और देशभाषामें रतौंधा या रतौंधी कहते हैं ॥ २५७ ॥

धूमदृष्टिके लक्षण ।

शोकज्वरायासशिरोऽभितापैरभ्याहता यस्य नरस्य दृष्टिः । स धूमकान्पश्यति सर्वभावान्स धूमदर्शीति नरः प्रदिष्टः ॥ २५८ ॥

शोक, ज्वर, परिश्रम और शिरस्ताप इन कारणोंसे पित्त कुपित होकर जिस मनुष्यकी दृष्टिको बिगाड देताहै तब वह मनुष्य सम्पूर्ण पदार्थोंको धुँयेके रङ्गके समान देखता है,उसको धूमदर्शी कहते हैं। धूमदर्शी दृष्टि दिनमें ही होती है रात्रिमें नहीं,कारण इसमें पित्त प्रधान है । रात्रिमें पित्त जब शांत होजाता है तब दृष्टि निर्म्मल होजाती है ॥ २५८ ॥

ह्रस्वजात्यके लक्षण ।

यो ह्रस्वजात्यो दिवसेऽतिकृच्छ्राद्ध्रस्वानि रूपाणि च तेन पश्येत् । रात्रौ पुनर्यः प्रकृतानि पश्येत्स ह्रस्वजात्यो मुनिभिः प्रदिष्टः ॥ २५९ ॥

जो मनुष्य दिनमें अत्यन्त कष्टसे देखे तथा बड़े बड़े पदार्थोंको भी छोटा देखे और रात्रिमें सम्पूर्ण रूप जैसेके तैसे देखे तो उस रोगको मुनि ह्रस्वजात्य कहते हैं ॥ २५९ ॥

नकुलान्ध्यके लक्षण ।

विद्योतते यस्य नरस्य दृष्टिर्दोषाभिपन्ना नकुलस्य यद्वत् । चित्राणि रूपाणि दिवा स पश्येत्स वै विकारो नकुलान्ध्यसंज्ञः ॥ २६० ॥

जिस मनुष्यकी दृष्टि दोषोंसे दूषित होकर नौलेके नेत्रोंके समान चमकती है और वह मनुष्य दिनमें चित्रविचित्र रूपोंको देखता है, उसको नकुलांध्यरोग कहते हैं ॥ २६० ॥

गम्भीरदृष्टिके लक्षण ।

दृष्टिर्विरूपा श्वसनोपसृष्टा सङ्कोचमभ्यन्तरतस्तु याति । रुजावगाढा च तमक्षिरोगं गम्भीरिकेति प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥ २६१ ॥

जिस मनुष्यकी दृष्टि वायुसे उपहत होकर विकृत हो जाती है, संकुचित होकर भीतरको चलीजाती है और अत्यन्त भयंकर पीडासे युक्त होती है तो उस नेत्ररोगको विद्वान् वैद्य गम्भीरिका दृष्टि कहते हैं ॥ २६१ ॥

आगन्तुज लिंगनाशके लक्षण ।

बाह्यौ पुनर्द्वाविह संप्रदिष्टौ निमित्ततश्चाप्यनिमित्ततश्च । निमित्ततस्तत्र शिरोऽभितापाज्ज्ञेयस्त्वभिष्यन्दनिदर्शनः सः ॥ २६२ ॥

सुश्रुतादि आचार्योंने जो दृष्टिके बारह रोग कहे हैं उनमें दो रोग चरकादि मुनियोंने अधिक कहे हैं । वे यह हैं,एक तो सनिमित्तलिंगनाश और दूसरा अनिमित्तलिंगनाश । विषैले फूलोंकी गन्धवाली पवनके स्पर्शनरूप निमित्तसे मस्तकमें अभिताप होकर जो लिंगनाश होता है उसको सनिमित्तलिंगनाश कहते हैं । अभिष्यन्दके लक्षणोंसे इस रोगको जानना चाहिये ॥ २६२ ॥

अनिमित्तलिंगनाशके लक्षण ।

सुरर्षिगन्धर्वमहोरगाणां सन्दर्शनेनापि च भास्करस्य । हन्येत दृष्टिर्मनुजस्य यस्य स लिंगनाशस्त्वनिमित्तसंज्ञः ॥ २६३ ॥ तत्राक्षिविस्पष्टमिवावभाति वैडूर्य्यवर्णा विमला च दृष्टिः । विभिद्यते सीदति हीयते च नृणामभीघातहता च दृष्टिः॥२६४॥

देव, ऋषि, गन्धर्व, महासर्प और सूर्य इनके सन्मुख दृष्टि लगाकर देखनेसे जिस मनुष्यकी दृष्टि नष्ट होजाती है, उसको अनिमित्तलिंगनाश कहते हैं इसमें नेत्र निर्म्मल और दृष्टि वैडूर्यमणिके समान स्वच्छ होती है । देवादिलोक विशेषकरके सर्वजनोंको नहीं दीखते, इस कारण उनके दर्शनरूप निमित्तसे उत्पन्न हुए लिंगनाशको अनिमित्त माना है । इसमें अभिघातके कारण मनुष्यकी दृष्टि फट जाती है,संकुचित होती है अथवा कम होजाती है२६३॥२६४॥

साध्यासाध्य ।

वर्जयेदुपसर्गोत्थं गम्भीरं ह्रस्वसंज्ञितम् । काचांस्तु याप्यते सर्वान्नकुलान्ध्यं तथैव च । तिमिरं नेत्ररोगेषु कष्टं तद्यत्नतो हरेत ॥ २६५ ॥

नेत्ररोगोंमें सनिमित्तोत्पन्न, गम्भीरदृष्टि और ह्रस्व दृष्टि असाध्य है, काच और नकुलान्ध्य याप्य हैं और तिमिर रोग अत्यन्त कष्टसाध्य है इस कारण यत्नपूर्वक इसकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥२६५॥

दृष्टिगतरोगकी चिकित्सा ।

मूलं दृष्टिविनाशस्य तिमिरं समुदाहृतम् । ऋषिभिस्तूदितं तस्मात्तस्य कुर्य्याच्चिकित्सितम् ॥ २६६ ॥

नेत्रोंके सम्पूर्ण रोगोंमें दृष्टिको नाश करनेका मूल कारण तिमिररोग कहा है,इस कारण इस तिमिर रोगकी यत्नपूर्वक चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २६६ ॥

द्वे पादमध्ये पृथुसन्निवेशे शिरोगते ते बहुधा च नेत्रे । ता म्रक्षणोच्छादनलेपनादीन्पादप्रयुक्तान्नयनं नयन्ति ॥ २६७ ॥

पाँवोंकी दो मोटी नसें मस्तकमें गई हैं और उनमेंसे बहुतसी छोटी छोटी नसें नेत्रोंमें पहुँची हैं । इस कारण पाँवोंमें सेचन, मर्दन और लेपन करनेसे वे नसें नेत्रोंको लाभ पहुँचाती हैं ॥ २६७ ॥

मलोष्णसंघट्टनपीडनाद्यैस्ता दूषयन्ते नयनानि दुष्टाः । भजेन्नरो दृष्टिहितानि तस्माद्रुपानदभ्यञ्जनधावनानि ॥ २६८ ॥

मैलसे, गरमीसे, संघट्टनसे तथा दबाने आदिसे दूषित हुई पाँवोंकी नसें नेत्रोंको बिगाड देती हैं, इस कारण जूतेका पहरना, पाँवोंपर मालिस करना और पाँवोंको धोना ये सब कार्य सदैव करने चाहिये। ये सब नेत्रोंके लिये हितकारी हैं ॥ २६८ ॥

नेत्ररोगमें पथ्य ।

जीवन्तिशाकं सुनिषण्णकञ्च सतंडुलीयम्बरवास्तुकञ्च । चिल्ली तथा मूलकपोतिका च दृष्टेर्हितं शाकुनजाङ्गलञ्च ॥ २६९ ॥

जीवंतीका शाक, शिरिआरीका शाक, चौलाईशाक, बथुआ,चिल्ली (लाल बथुआ) मूली और पोईका शाक तथा पक्षी और जंगलप्रदेशके जीवोंका मांस ये सब नेत्रोंको हितकारी हैं ॥ २६९ ॥

पटोलककर्कोटककारवेल्लवार्ताकतर्कारिकरीरजानि । शाकानि शिग्रवार्तगलानि चैव हितानि दृष्टेर्घृतसाधितानि ॥ २७० ॥

पटोलपत्र, ककोडा, करेला,वैगुन, अरणी, करील, सहिंजनेके पत्ते और पियाबाँसा ये सब शाक घृतमें सिद्ध किये हुए पथ्य हैं ॥ २७० ॥

त्रिफलाघृतमधुयवाः पादाभ्यङ्गः शतावरीमुद्गाः । चक्षुष्यः संक्षेपाद्वर्गः कथितो भिषग्भिरयम् ॥ २७१ ॥

त्रिफला,घी, शहद और जौं इनका सेवन, पाँवोंपर मालिस, शतावर और मूँग ये समस्त पदार्थ नेत्रोंके लिए अत्यन्त हितकारी हैं, विद्वान् वैद्योंने यह संक्षिप्त पथ्यवर्ग कहा है ॥ २७१ ॥

नेत्ररोगमें अपथ्य ।

कट्वम्लगुरुतीक्ष्णोष्णमाषनिष्पावमैथुनम् । मद्यं वल्लूरपिण्याकं मत्स्यं शाकं विरूढकम् ॥ विदाहीन्यन्नपानानि नेत्ररोगी विवर्जयेत ॥ २७२ ॥

चरपरे पदार्थ, खट्टे पदार्थ, भारी पदार्थ, तीक्ष्ण पदार्थ, गरम पदार्थ, उडद, लोबिया, स्त्रीप्रसंग, मदिरा, सूखा हुआ मांस, खल,मछली, शाक,जिनमें अंकुर उत्पन्न होगये हों ऐसे धान्य और दाहकारक अन्नपान इन सबको नेत्ररोगी त्यागदेवे ॥२७२ ॥

स्निग्धानि नस्याञ्जनशोधनानि पाकाः पुटानामथ तर्पणञ्च । घृतस्य पानान्यथ बस्तिकर्म्म कुर्य्यादभीक्ष्णं तिमिरेऽनिलोत्थे ॥ २७३ ॥

स्निग्ध नस्य, अंजन, विरेचन, पुटपाक, तर्पण, घृतपान और बस्तिकर्म्म ये सब क्रियायें - वातजन्य तिमिररोगमें करनी चाहिये ॥ २७३ ॥

रास्नादिघृत ।

रास्नाफलत्रयक्काथे दशमूलरसे शृतम् । कल्केन जीवनीयानां घृतं तिमिरनाशनम् ॥ २७४ ॥

रास्ना, त्रिफला और दशमूलके काथमें जीवनीयगणकी औषधियोंका कल्क डाल कर घृतको सिद्ध करे यह घृत तिमिरको नष्ट करता है ॥ २७४ ॥

वातिके तिमिरे पक्कं दशमूलरसे घृतम् । त्रिवृच्चूर्णसमायुक्तं वैरेकार्थं प्रयोजयेत् ॥ २७५ ॥

वातके तिमिररोगमें दशमूलके काथमें घृतको सिद्ध करके उसमें निसोतका चूर्ण डाल कर विरेचनके लिये देवे ॥ २७५ ॥

त्रिफलादशमूलानां निर्यूहं दुग्धमिश्रितम् । गन्धर्वतैलसंयुक्तं प्रयुञ्जीत विरेचनम् ॥ २७६ ॥

त्रिफला और दशमूलके काथमें दूध और अण्डीका तेल डालकर विरेचनके लिये प्रयोग करे २७६॥

अथ पित्ततिमिरकी चिकित्सा ।

शीताञ्जनाश्च्योतनतर्पणैश्च नस्यैर्विरेकैर्मृदुभिर्घृतैश्च । तिक्तप्रधानैस्तिमिरं निहन्यात्पित्तात्मकं शोणितमोक्षणैश्च ॥ २७७ ॥

पित्तजन्य तिमिररोगको शीतल अंजन, आश्च्योतन, तर्पण, नस्य, विरेचन, घृतपान, विशेष करके तिक्त पदार्थोंका सेवन और रक्तमोक्षण इन उपचारोंके द्वारा शमन करे ॥ २७७ ॥

पित्तजे तिमिरे सर्पिर्जीवनीयवराशृतम् । पाययित्वा शिरां विध्येत्सितैलाकुम्भसम्भवैः ॥ २७८ ॥ चूर्णैर्माक्षिकसंयुक्तै रेचनं कारयेत्तराम् । शीतलां लेपसेकांश्च शिरोवदनचक्षुषु ॥ २७९ ॥

पित्तजन्यतिमिररोगमें-जीवनीयगणकी औषधि और त्रिफलेके काथमें सिद्ध किये हुए घृतको पान कराकर शिरावेध करे। एवं मिश्री, इलायची और निसोत इनका चूर्ण करके उसको शहदमें मिलाकर विरेचनके लिये देवे। फिर शीतल औषधियों मस्तक मुख और नेत्रोंमें प्रलेप और सेचन करे ॥२७८॥२७९॥

बलाशतावरीवीरासितासैरेयकैः पचेत् । त्रिफलासहितं सर्पिस्तिमिरघ्नमनुत्तमम् ॥ २८० ॥

खिरैंटी, सतावर, काकोली, मिश्री और पियावाँस एवं त्रिफला इनके कल्क और काथके द्वारा घृतको पकावे। यह घृत–तिमिररोगको दूर करनेके लिए उत्तम है ॥ २८० ॥

शारिवाशावरोशीरमुक्तापद्मकचन्दनम् । पिष्टं वर्त्तिकृतं हन्ति पित्तोत्थं तिमिरं नृणाम् ॥ २८१ ॥

शारिवा, लोध, खस, मोती, पद्माख और चन्दन, इनको एकत्र पीसकर वर्त्ती बनाकर नेत्रोंमें लगानेसे पित्तजन्यतिमिररोग दूर होता है॥ २८१ ॥

कफतिमिरकी चिकित्सा ।

तीक्ष्णानि यस्याञ्जनशोधनानि पाकाः पुटानामथ तर्पणानि । घृतानि वासात्रिफलापटोलसंज्ञानि कुर्य्यात्तिमिरे कफोत्थे ॥ २८२ ॥

कफजन्यतिमिररोगमें तीक्ष्ण नस्य, अञ्जन, विरेचन, पुटपाक, तर्पण, वासाघृत, त्रिफलाघृत और पटोलघृत ये सब प्रयोग करे ॥ २८२॥

कफोद्भवे वराचव्यामृताक्काथशृतं हविः । पाययित्वा शिरां विध्येद्रेचनं तिमिरे भिषक् ॥ २८३ ॥

कफजन्यतिमिररोगमें–त्रिफला, चव्य, और गिलोयके काथमें सिद्ध किये हुए घृतको पान करा कर शिरावेध करे और रेचन जुलाब देवे ॥२८३॥

यूथी पथ्या कणा शुण्ठी कुसुम्भस्या-म्बुनिर्झरः । गोमूत्रक्वथिता शुण्ठी त्रिवृत्तिसिद्धं विरेचयेत् ॥ २८४ ॥

जूही, हरड, पीपल, सोंठ और कुसूमके फूल इनको झरनेके जलमें औटाकर अथवा सोंठको और निसोतको गोमूत्रमें सिद्ध करके विरेचनके लिये देवे ॥२८४

नस्यं मरिचयष्ट्याह्वविडङ्गामरदारुभिः । नैपालत्रिफलाशङ्खकान्ताव्योषश्च पेषिताः ॥ वर्तिं कृत्वा बलासोत्थमञ्जनं तिमिरं हरेत् ॥ २८५ ॥

कालीमिरच, मुलैठी, वायविडंग, देवदारु इनकी नस्य देवे। नैपालदेशीय चिरायता, त्रिफला, शंख, फूलप्रियंगू और त्रिकुटा इनको एकत्र पीसकर वत्तियाँ बनालेवे । इन वत्तियोंको नेत्रोंमें लगानेसे कफजन्यतिमिररोग दूर होता है ॥ २८५ ॥

संसर्गे सन्निपाते च यथा दोषोदयक्रिया। धात्री रसाञ्जनं क्षौद्रं सर्पिर्भिस्तु रसक्रिया । पित्तानिलाक्षिरोगघ्नी तैमिर्य्यपटलापहा ॥ २८६ ॥

द्वन्द्वज और त्रिदोषज तिमिररोगमें यथादोषानुसार चिकित्सा करे। इसमें आमले, रसौत, शहद और घी इनके द्वारा रसक्रिया करे तो पित्तवातजन्य नेत्ररोग, तिमिररोग और पटलरोग दूर होता है ॥ २८६ ॥

दध्यान्मसूरनिर्यूहं चूर्णितं कणसैन्धवम् । तच्छृतं सघृतं भूयः पचेत्क्षौद्रं घने ततः ॥ शीते चास्मिन्हितमिदं सर्वजे तिमिरे हितम् ॥ २८७ ॥

मसूरके काथमें पीपल और सैंधानमकके कल्कको डालकर घृतको पकावे जब वह पककर तैयार होजाय तब नीचे उतार कर घृतको छान लेवे फिर उसमें शहद डालकर पकावे । जब वह गाढा होजाय तब नीचे उतार कर शीतल होनेपर नेत्रोंमें आँजे यह घृत–सर्वप्रकारके तिमिररोगोंमें हितकारी है ।।२८७।।

मधुकामलकस्नानं पित्तघ्नं तिमिरापहम् ।

मुलैठी और आमलोंको पीसकरके जलमें मिलाकर स्नान करनेसे पित्त और तिमिररोग नष्ट होता है ।

वचाद्यैः स्नानमिच्छन्ति श्लेष्मघ्नं तिमिरापहम् ॥ २८८ ॥

वचआदि औषधियोंके द्वारा स्नान करनेसे कफ और तिमिररोग नष्ट होता है ॥ २८८ ॥

स्नानं कृष्णतिलैश्चापि चाक्षुष्यं तिमिरापहम् ।

काले तिलोंके द्वारा स्नान करना नेत्रोंको अत्यंत हितकारी है और तिमिरोगको दूर करता है ।

आमलैः सततं स्नानं परं दृष्टिबलावहम् ॥ २८९ ॥

आमलोंके द्वारा सदैव स्नान करनेसे दृष्टिके बलकी अत्यन्त वृद्धि होती है ॥ २८९ ॥

चित्रकमूलत्रिफलापटोलयवसाधितं पिबेदम्भः । सघृतं निशि चाक्षुष्यं तिमिराणि विशेषतो हन्ति ॥२९० ॥

चीतेकी जड, त्रिफला, पटोलपत्र और जौ इनका काथ बनाकर उसमें घृत डालकर रात्रिमें पान करे। यह काथ नेत्रोंको अत्यन्त हितकारी और विशेष करके तिमिररोगोंको दूर करनेवाला है ॥ २९० ॥

कल्कः क्वाथोऽथवा चूर्णं त्रिफलाया निषेवितम् । मधुना हविषा वापि समस्ततिमिरान्तकृत् ॥ २९१ ॥

त्रिफलेके कल्कको अथवा काथको या चूर्णको शहद या घीमें मिलाकर सेवन करनेसे सर्वप्रकारका तिमिररोग नष्ट होता है ॥ २९१ ॥

त्रिफलालोहचूर्णं वा माक्षिकं मधुयष्टिका । सायं मध्वान्वितं भुक्तं सद्यस्तिमिरनाशनम् ॥ २९२ ॥

त्रिफला, लोहचूर्ण, सोनामाखी और मुलैठी इन सबको एकत्र पीसकर शहदमें मिलाकर संध्याके समय सेवन करनेसे तिमिररोग शीघ्र दूर होता है २९२

कुष्ठमुत्पलयष्टी च पिप्पलीरक्तचन्दनम् । अञ्जनश्चन्दनश्चैव सद्यस्तिमिरनाशनम् ॥ २९३ ॥

कूठ, कमल, मुलैठी, पीपल, लालचन्दन, अंजन और चन्दन इन सबको एकत्र पीसकर सेवन करनेसे तिमिररोग तत्काल दूर होता है ॥ २९३ ॥

धात्रीसैन्धवकृष्णाभिस्तुल्याभिर्मरिचं समम् । क्षौद्रयुक्तं निहन्त्याशु पटलश्च रसक्रिया ॥ २९४ ॥

आमले, सैंधानमक, पीपल और कालीमिरच इन सबको एकत्र पीसकर शहदमें मिलाकर रसक्रिया करनेसे पटलगतरोग और तिमिर आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ २९४ ॥

लिह्यात्सदा वा त्रिफलां सुचूर्णितां घृतप्रगाढां तिमिरेऽथ पित्तजे । समीरणे तैलयुतां कफात्मके मधुप्रगाढां विदधीत युक्तितः ॥ २९५ ॥

पित्तजन्य तिमिररोगमें त्रिफलेके चूर्णको घीमें मिलाकर नित्य सेवन करना चाहिए । वातज तिमिररोगमें तेलमें मिलाकर सेवन करना चाहिए और कफजन्य तिमिररोगमें शहदमें मिलाकर सेवन करना चाहिए । इससे तीनों प्रकारका तिमिररोग दूर होता है ॥ २९५ ॥

सघृतं वा वराक्काथं शीलयेत्तिमिरामये । पायसं वा वरीयुक्तं शीतं समधुशर्करम् ॥ २९६ ॥

तिमिररोगमें त्रिफलेके काथमें घी मिलाकर पान करे अथवा खीरको शीतल करके उसमें शतावरका चूर्ण डालकर शहद और खांडके साथ खावे ॥२९६॥

शतावरीपायस एव केवलस्तथा कृतो वामलकेषु पायसः । प्रभूतसर्पिस्त्रिफलोदकोत्तरो यवौदनो वा तिमिरं व्यपोहति ॥ २९७ ॥

केवल शतावरकी खीरको सेवन करनेसे अथवा आमलोंकी खीर बनाकर सेवन करनेसे वा त्रिफलेके काथमें खूब घी डालकर सेवन करनेसे अथवा जौका भात बनाकर सेवन करनेसे तिमिररोग नष्ट होता है ॥ २९७ ॥

त्रिफलायाः कषायस्तु धावनान्नेत्ररोगजित् । कवलोन्मुखरोगघ्नः पानतः कामलापहः ॥ २९८ ॥

त्रिफलेके काथसे नेत्रोंको धोनेसे नेत्ररोग दूर होता है । त्रिफलेके काथके कवलको धारण करनेसे मुखरोग और पान करनेसे कामलारोग दूर होता है ॥ २९८ ॥

अयस्थं त्रिफलाक्काथं सर्पिषा सह योजितम् । भुक्तोपरि पिबेत्सायं मासेनान्धोऽपि पश्यति ॥ २९९ ॥

लोहेके बासनमें त्रिफलेके काथको बनाकर उसमें घी मिलाकर भोजन करनेके पश्चात् संध्याके समय पान करनेसे एक महीनेमें अंधा मनुष्य भी देखने लगता है ॥ २९९ ॥

पुराणसर्पिस्तिमिरेषु सर्वतो हितं भवेदायसभाजनस्थितम् । हितश्च विद्यात्त्रिफलाघृतं सदा कृतश्च यन्मेषविषाणनामभिः ॥ ३०० ॥

पुराने घीको लोहेके पात्रमें रखकर सेवन करनेसे सब प्रकारका तिमिररोग दूर होता है । एव त्रिफला घृतमें मेढाशिंगीका चूर्ण डालकर सेवन करना सदैव नेत्रोंको हितकारी है ॥ ३०० ॥

त्रिफलायाः कषायेण प्रातर्नयनधावनात् । जाता रोगा विनश्यन्ति न भवन्ति कदाचन ॥ ३०१ ॥

त्रिफलेके काथसे प्रातःकाल नेत्रोंको धोनेसे सम्पूर्ण नेत्ररोग नष्ट होते हैं और फिर कभी उत्पन्न नहीं होते ॥ ३०१ ॥

जलगण्डूषैः प्रातर्भूयोऽम्भोभिः प्रपूर्य मुखरन्ध्रम् । निर्दयमुक्षन्नक्षि क्षपयति तिमिराणि ना सद्यः ॥ ३०२ ॥

प्रातःकाल शीतल जलके गण्डूष मुखमें धारण करके फिर निर्दयी होकर नेत्रोंपर मारनेसे तत्काल तिमिर रोग दूर होता है ॥ ३०२ ॥

भुक्त्वा पाणितलं घृष्ट्वा चक्षुषोर्यदि दीयते । अचिरेणैव तद्वारि तिमिराणि व्यपोहति ॥ ३०३ ॥

भोजनके पश्चात् हाथोंकी हथेलीको घिसकर नेत्रोंमें वारम्वार लगानेसे तिमिररोग शीघ्र ही दूर होता है ॥ ३०३ ॥

त्रिफलाक्वाथयुक्तेन क्षौद्रमिश्रेण गुग्गुलम्। भुक्त्वा गन्धर्वतैलेन रेचनं तिमिरापहम् ॥ ३०४ ॥

त्रिफलेके क्वाथमें शहद और गूगल मिलाकर अण्डीका तेल डालकर विरेचन देनेसे तिमिररोग दूर होता है ॥ ३०४ ॥

अञ्जनं गैरिकं पत्रं कर्पूरं नीलमुत्पलम्। सनागपुष्पं मधुकमञ्जनं तिमिरापहम् ॥ ३०५ ॥

अंजन, गेरू, तेजपात, कपूर, नीलकमल, नागकेशर और मुलैठी इन सबको एकत्र पीसकर अञ्जन बनाकर नेत्रोंमें आंजनेसे तिमिररोग दूर होता है ॥ ३०५ ॥

कतकस्य फलं घृष्टं मधुना सह योजयेत्। प्रभूततिमिरस्रावे धूपितश्च प्रशाम्यति ॥ ३०६ ॥

प्रबल तिमिर और नेत्रस्रावमें निर्म्मलीके फलोंको घिसकर शहदमें मिलाकर धूप देनेसे तिमिर और नेत्रस्राव दूर होता है ॥ ३०६ ॥

त्रिफलामायसं चूर्णं क्वाथयित्वा विचक्षणः। घृतत्रिभागसंयुक्तमभयाकर्षमेव च ॥ ३०७ ॥ भक्तस्योपरि पानं स्यादहो मांसेन भोजनम्। पटलं तिमिरं काचमर्बुदं कंडुवेदनम् ॥ सप्तरात्रोपयोगेन अन्धोऽपि तेन पश्यति ॥ ३०८ ॥

प्रवीण मनुष्य त्रिफला और लोहेके चूर्णका काथ बनाकर उसमें घी तीन भाग और हरड़ोंका चूर्ण एक तोला डालकर भोजनके पश्चात् सेवन करे और इस पर दिनमें मांसका भोजन करे। इससे पटल, तिमिर, काच, अर्बुद, खुजली, वेदना और अन्यान्य समस्त नेत्ररोग दूर होते हैं। इसको सात दिनतक सेवन करनेसे अन्धा मनुष्य भी देखने लगता है ३०७॥३०८

कृष्णापथ्ये क्रमाद्वृद्धे भृङ्गराजरसप्लुते। छायाशुष्के हृते सद्यस्तिमिरं चापि योजिते ॥ ३०९ ॥

पीपल १ भाग और हरड २ भाग लेकर दोनोंके चूर्णको एकत्र भाँगरेके रसमें भावना देकर छायामें सुखालेवे। उसको नेत्रोंमें आँजनेसे तिमिर रोग तत्काल दूर होता है ॥ ३०९ ॥

भास्करवर्ति।

त्रिंशद्भागन्तु नागस्य गन्धपाषाणपञ्चकम्। शुल्वतालकयोर्द्वौ द्वौ वङ्गस्यैकोऽञ्जनत्रयम् ॥ ३१० ॥ अंधमूषागतं ध्मातं पक्कं विमलमञ्जनम्। तिमिरान्तकल्लोके द्वितीयो भास्करो यथा ॥ ३११ ॥

सीसा ३० भाग, गन्धक ५ भाग, ताँबा २ भाग, हरताल २ भाग, वंग १ भाग और अंजन ३ भाग इन सबको एकत्र करके अन्धमूषा यंत्रमें रख कर फूँकदेवे तो निर्म्मल अञ्जन तैयार होता है। इस अञ्जनको नेत्रोंमें लगानेसे सर्वप्रकारका तिमिररोग दूर होता है। यह संसारमें तिमिरको दूर करनेके लिये दूसरे सूर्यके समान है ॥ ३१० ॥ ३११ ॥

सलिलमकरन्दसर्पिस्तैलैः प्रत्येकमस्तु सप्ताहम्। विनिहन्ति तिमिरमचिरादंजनतश्चन्दनं रक्तम् ॥ ३१२ ॥

लालचन्दनको जल, शहद, घी अथवा तेलमें घिस कर नेत्रोंमें लगानेसे बहुत दिनोंका पुराना तिमिररोग एक सप्ताहमें दूर होजाता है ॥ ३१२ ॥

अन्धसुदर्शक अञ्जन।

कृष्णसर्पं मृतं न्यस्य चतुरश्चापि वृश्चिकान्। क्षीरकुम्भे त्रिसप्ताहं क्लेदयित्वा प्रमन्थयेत् ॥ ३१३ ॥ तत्र यन्नवनीतं स्यात्पुष्णीयात्तेन कुक्कुटम्। अन्धस्तस्य पुरीषेण पश्यति ध्रुवमञ्जनात् ॥ ३१४ ॥

एक मरेहुएकाले साँपको और चार विच्छुओंको एकत्र दूधके घड़ेमें डालकर,खूब अच्छे प्रकारसे चला कर तीन सप्ताहतक रखकर मथे । फिर उसमेंसे जो नवनीत निकले वह एक मुरगेको खिलादेवे।उस मुरगेकी विष्ठाको लेकर नेत्रोंमें लगानेसे अन्धा मनुष्य भी निःसन्देह देखने लगता है ॥ ३१३ ॥ ३१४ ॥

सुखावतीवर्ति ।

कतकस्य फलं शङ्खं त्र्यूषणं सैन्धवं सिता । फेनो रसाञ्जनं क्षौद्रं विडङ्गानि मनःशिला ॥ ३१५ ॥ कुक्कुटाण्डकपालानि वर्त्तिरेषा व्यपोहति । तिमिरं पटलं काचमर्म्मशुक्रं सुखावती ॥ ३१६ ॥

निर्म्मलीके फल,शङ्ख, त्रिकुटा, सैंधानमक,मिश्री, समुद्रफेन, रसौत, शहद, वायविडङ्ग, मैनशिल और मुरगेके अण्डेका बक्कल-इन सबको एकत्र पीसकर बत्ती बनालेवे । इन बत्तियोंको नेत्रोंमें लगानेसे-तिमिर, पटल, काच, अर्म्म और नेत्रका फूला दूर होता है ॥ ३१५ ॥ ३१६ ॥

शाणार्द्धं मरिचं द्वौ च पिप्पल्यर्णवफेनयोः । शाणार्द्धं सैन्धवाच्छाणात्सौवीरस्य जलेन च ॥ ३१७ ॥ पिष्टं सुसूक्ष्मं चित्रायां चूर्णाञ्जनमिदं शुभम् । काचकंडूकफार्त्तानां मलानाञ्च विशोधनम् ॥ ३१८ ॥

कालीमिरच२माशे, पीपल और समुद्रफेन प्रत्येक दोदो माशे और सैंधानमक २ माशे इन सबको एकत्र चार माशे सौवीरनामक काँजीके साथ चित्रानक्षत्रमें बारीक पीसलेवे । यह चूर्णांजन-काच, कण्डू, कफ और नेत्रके मलोंको शुद्ध करनेके लिए अत्युत्तम है ॥ ३१७ ॥ ३१८ ॥

कृष्णसर्पवसाक्षौद्रं रसो धात्र्या रसक्रिया । शस्ता सर्वाक्षिरोगेषु वैदेहपतिनिर्मिता ॥ ३१९ ॥

काले सांपकी चर्बी, शहद और आमलोंका रस इनको एकत्र मिलाकर रसक्रिया बनाकर आंजनेसे सम्पूर्ण प्रकारके नेत्ररोग दूर होते हैं ॥ ३१९ ॥

मुक्तादिमहाञ्जन ।

मुक्ताकर्पूरकाचागुरुमरिचकणासैन्धवैलाप्रवाला--शुण्ठी--कङ्कोलकांस्यत्रपुरजानिशिलाशङ्खनाभ्यभ्रतुत्थम् । दक्षाण्डत्वक् च साक्षक्षतजयुतशिवाक्रीतकं राजवर्त्तं, जातीपुष्पं तुलस्याः कुसुममभिनवं बीजमस्यास्तथैव ॥ ३२० ॥ पूतीकनिम्बाञ्जनभद्रमुस्तं सताम्रसारं रसगर्भयुक्तम् । प्रत्येकमेषां खलु माषकैकं पाषाणपिष्टं मधुना च सूक्ष्मम् ॥ ३२१ ॥ भवन्ति रोगा नयनाश्रिता ये नितान्तमात्रोपचिताश्च तेषाम् । विधीयते शान्तिरवश्यमेव मुक्तादिनानेन महाञ्जनेन ॥ ३२२ ॥

मोती, कपूर, कांच, अगर, कालीमिरच, पीपल, सैंधानमक, इलायची, मूँगा, सोंठ, कंकोल, कांसा, सीसा, हलदी, मैनशिल, शंखनाभि, अभ्रक,तूतिया, मुरगेके अण्डेका बक्कल, बहेडा, केशर, हरड़, मुलैठी, रेवटी,चमेलीके फूल,तुलसीकी नवीन मंजरी और बीज, पूतिकरंज,नीम, अँजन,नागरमोथा,लाल चंदन और रसौत यह प्रत्येक औषधि एक २ मांशा लेकर सबको एकत्र शहदमें मिला कर पत्थरके ऊपर बारीक पीस लेवे । इस अञ्जनको नेत्रोंमें लगानेसे समस्त नेत्ररोग अवश्य दूर होते हैं॥३२०॥ ॥३२१॥३२२॥

चन्द्रोदयादिवर्ति ।

हरीतकी वचाकुष्ठं पिप्पलीमरिचानि च । बिभीतकस्य मज्जा च शंखनाभिर्मनःशिला ॥ ३२३ ॥ सर्वमेतत्समं कृत्वा त्वजाक्षीरेण पेषयेत् । नाशयेत्तिमिरं कंडू पटलान्यर्बुदानि

च ॥ ३२४ ॥ अधिकानि च मांसानि यश्च रात्रौ न पश्यति । अपि द्विवार्षिकं पुष्पं मासेनैकेन शाम्यति ॥ वर्त्तिश्चन्द्रोदया नाम नृणां दृष्टिविशोधिनी ॥ ३२५ ॥

हरड, वच, कूठ, पीपल, कालीमिरच, वहेडेकी मज्जा, शंखनाभि और मैनशिल इन सबको समान भाग लेकर वकरीके दूधमें पीस लेवे । इसको नेत्रोंमें लगानेसे तिमिर, कण्डू, पटल, अर्बुद, मांसाधिक्य और रात्रांधता ये सब रोग नष्ट होते हैं । इससे दो वर्षका फूला भी एक महीनेमें दूर हो जाता है । यह चन्द्रोदयनामक वर्ती मनुष्योंकी दृष्टिको शुद्ध करती है ॥ ३२३ ॥ ३२४ ॥ ३२५ ॥

हरीतक्यादिवर्ति ।

हरीतकी हरिद्रा च पिप्पली लवणानि च । कंडूतिमिरजिद्वर्त्तिर्न क्वचित्प्रतिहन्यते ॥ ३२६ ॥

हरड, हलदी, पीपल और सैंधानमक इनको एकत्र पीसकर बत्ती बनाकर नेत्रोंमें लगानेसे कण्डू और तिमिरादि रोग दूर होते हैं ॥ ३२६ ॥

त्रिफलादिवर्ति ।

त्रिफलाकुक्कुटाण्डत्वक्काशीशमयसो रजः । नीलोत्पलं विडङ्गानि फेनश्च सरितांपतेः ॥ ३२७ ॥ आजेन पयसा पिष्ट्वा भावयेत्ताम्रभाजने । सप्तरात्रं स्थितं भूयः पिष्ट्वा क्षीरेण वर्त्तयेत् । एषा दृष्टिप्रदा वर्त्तिरन्धस्याभिन्नचक्षुषः ॥ ३२८ ॥

त्रिफला, मुरगीके अण्डेका बक्कल, कसीस, लोहचूर्ण, नीला कमल, वायविडंग और समुद्रफेन इन सबको एकत्र बकरीके दूधमें पीसकर तांबेके पात्रमें सात दिनतक भावना देवे । पश्चात् सूखनेपर दूधमें पीसकर बत्ती बना लेवे. । इन दृष्टिप्रद बत्तियोंको नेत्रोंमें लगानेसे अंधमनुष्योंके भी नेत्र नवीन होजाते हैं ॥ ३२७ ॥ ३२८ ॥

शङ्खादिवटी ।

शङ्खस्य भागाश्चत्वारस्ततोऽर्द्धेन मनःशिला । मनःशिलार्द्धं मरिचं मरिचार्द्धेन सैन्धवम् ॥ ३२९ ॥ वारिणा तिमिरं हन्ति चार्बुदं हन्ति मस्तुना । पिच्चटं मधुना हन्ति स्त्रीक्षीरेण तथार्जुनम् ॥ ३३० ॥

शंख ४ भाग, मैनशिल २ भाग, कालीमिरच १ भाग और सैंधानमक आधा भाग लेवे । इनको एकत्र जलमें पीसकर नेत्रोंमें लगानेसे तिमिर रोग दूर होता है । दहीके पानीमें पीसकर नेत्रोंमें लगानेसे अर्बुदरोग नष्ट होता है । शहदमें पीसकर लगानेसे पिच्चिटरोग और स्त्रीके दूधमें पीसकर नेत्रोंमें लगानेसे अर्जुनरोग दूर होता है ॥ ३२९ ॥ ३३० ॥

कतकं चन्दनं लाक्षां मधुकं मरिचोत्पलम् । तुत्थाक्षामलकाबीजं मनोह्वासुमनासिताः ॥ ३३१ ॥ विडङ्गोदधिफेनैलाशङ्खनाभिरसाञ्जनम् । एषा दृष्टिप्रदा नाम्ना वर्त्तिर्वैद्येन निर्मिता ॥ ३३२ ॥ नित्योपयोगात्पटलं तिमिरं शुक्रराजिकाम् । शुक्रं शुक्राक्षिरोगश्च विवृद्धं वाऽर्म एव च ॥ निहन्ति सहसा रोगान्त्रिदोषानपि दुस्तरान् ॥ ३३३ ॥

निर्म्मलीके फल, चंदन, लाख, मुलैठी, कालीमिरच, कमल, तूतिया, बहेडेके बीज, आमलेके बीज, मैनशिल, चमेली, मिश्री, वायविडंग, समुद्रफेन, इलायची, शंखनाभि और रसौत इन सबको एकत्र पीसकर वैद्य बत्ती बना लेवे । ये बत्तियां नित्य नेत्रोंमें लगानेसे पटल, तिमिर, शुक्रराजिका, शुक्र, शुक्राक्षि रोग, विवृद्ध, अर्म और त्रिदोषजनित दुस्तररोगको एक साथ दूर करदेती है ॥ ३३१ – ३३३ ॥

कुसुमिकावर्ति ।

अशीतिस्तिलपुष्पाणि षष्टिर्मागधितण्डुलाः । जातीकुसुमपञ्चाशन्मरि-

चानि च षोडश । एषा कुसुमिकावर्त्तिर्गतं चक्षुर्निवर्त्तयेत् ॥ ३३४ ॥

तिलके फूल ८०, पीपलके चावल ६०, चमेलीके फूल ५० और कालीमिरच १६ लेवे। इन सबको एकत्र पीसकर नेत्रोंमें लगानेसे नष्ट हुए नेत्र भी फिरसे नवीन होजाते हैं ॥ ३३४ ॥

चन्दनादिवर्त्ति ।

चन्दनत्रिफलापूगपलाशतरुशोणितैः । जलपिष्टैरियं वर्त्तिरशेषतिमिरापहा ॥ ३३५ ॥

चन्दन, त्रिफला, सुपारी और ढाकके अंकुर इनको जलमें पीसकर बत्ती बनालेवे। इस बत्तीको नेत्रोंमें लगानेसे सर्वप्रकारका तिमिररोग दूर होता है ॥ ३३५ ॥

व्योषादिवर्त्ति ।

व्योषोत्पलाभयाकुष्ठतार्क्ष्यैर्वर्तिः कृता हरेत् । अर्बुदं पटलं काचं तिमिरार्म्माश्रुनिस्रुतिम् ॥ ३३६ ॥

त्रिकुटा, कमल, हरड, कूठ और रसौत इनकी बत्ती बनाकर नेत्रोंमें लगानेसे अर्बुद, पटल, काच, तिमिर, अर्म्म और आंसुओंका स्राव ये सब दूर होते हैं ॥ ३३६ ॥

नागार्जुनाञ्जन ।

त्रिफलाव्योषसिन्धूत्थयष्टीतुत्थरसाञ्जनम् । प्रपौण्डरीकं जन्तुघ्नं लोध्रं ताम्रं चतुर्दश ॥ ३३७ ॥ द्रव्याण्येतानि संचूर्ण्य वर्त्तिः कार्य्या नभोऽम्बुना। नागार्जुनेन लिखिता स्तम्भे पाटलिपुत्रके ॥ ३३८ ॥ नाशिनी तिमिराणाञ्च पटलानां तथैव च । सद्यः कोपञ्च स्तन्येन स्त्रिया विजयते ध्रुवम् ॥ ३३९ ॥ किंशुकस्वरसेनाथ पिल्लपुष्पकरक्तता । अञ्जनाल्लोध्रतोयेन आसन्नतिमिरं जयेत् ॥ ३४० ॥ चिरसंछादिते नेत्रे बस्तमूत्रेण संयुता । उन्मूलयति कृच्छ्रेण प्रसादं वाधिगच्छति ॥ ३४१ ॥

त्रिफला, त्रिकुटा, सैंधानमक, मुलैठी, तूतिया, रसौत, पुंडेरिया, वायबिडंग, लोध और ताँबा इन चौदह औषधियोंको समान भाग लेकर मेघके जलमें बत्ती बनालेवे ॥ इस बत्तीको स्त्रीके दूधमें पीसकर लगानेसे तिमिर और पटलरोग एवं नेत्रका प्रकोप तत्काल शांत होजाता है। टेसूके फूलोंके रसमें मिलाकर लगानेसे पिल्लरोग, नेत्रका फूला और लाली दूर होती है, लोधके रस या काथमें मिलाकर लगानेसे तत्काल तिमिररोग दूर होता है । बकरीके मूत्रमें घिसकर लगानेसे चिरकालसे ढकेहुए नेत्र खुलजाते हैं अथवा जो कठिनतासे खुलें वे अच्छे प्रकारसे खुलने लगते हैं। यह बर्त्ती नागार्जुन सिद्धने पाटलिपुत्र (पटना) के स्तम्भेम लिखी है ॥३३७-३४१॥

शशचर्मगर्भमषी ।

वर्त्यार्कतूलैः कृतया सशशं चर्म्मगर्भया । प्रदीप्तया मषी ग्राह्या सर्वनेत्रामयांतकी ॥ ३४२ ॥

खरगोशके चमडेको लेकर उसके ऊपर आककी रुई लपेटकर बत्ती बनालेवे उस बत्तीको जलानेसे जो स्याही हो उसको ग्रहण करके नेत्रोंमें लगावे। इससे सर्वप्रकारके नेत्ररोग दूर होते हैं ॥ ३४२ ॥

त्रपुगैरिककर्पूरयष्टीनीलोत्पलाञ्जनम् । नागकेशरसंयुक्तमशेषतिमिरान्तकृत ॥ ३४३ ॥

सीसा, गेरू, कपूर, मुलैठी, नीलकमल, अंजन और नागकेशर इनको एकत्र पीसकर नेत्रोंमें आँजनेसे सर्वप्रकारका तिमिररोग दूर होता है ॥ ३४३

शतावर्यादिचूर्णाञ्जन ।

शतावरी सूर्य्यसमा प्रदेया एला तथा वारणमूर्द्धतुल्या । देयं विडङ्गं वसुभिः समानमृतोः समं चामल-

कास्थिबीजम् ॥ ३४४ ॥ विष्णोर्भुजैस्तुल्यगुणं मरीचं तद्विक्रमैर्मागधिका प्रदेया । चूर्णं समध्वाञ्जनकर्षमर्द्धमक्ष्णामयानां विनिवारणार्थम् ॥ ॥ ३४५ ॥ कंडूं सधूमं तिमिरं सुघोरमर्माणि काचं पटलं त्रिदोषम् । ये चापरे रक्तभवा विकारास्तांश्चामयांश्चूर्णवरो निहन्ता ॥ ३४६ ॥

शतावर १२ भाग, इलायची २१ भाग, वायविडंग ८ भाग, आमलेके बीज ६ भाग, कालीमिरच ४ भाग और पीपल २ भाग. तथा शहद ६ मासे और अंजन ६ मासे लेवे । सबको एकत्र चूर्ण करके नेत्रोंमें आँजे । यह चूर्ण–कण्डू, धूम्र, घोर तिमिररोग, अर्म्म, काच, त्रिदोषजपटल और अन्यान्य रुधिरजन्य समस्त नेत्ररोगोंको दूर करता है ॥ ३४४ ॥ ३४५ ॥ ३४६ ॥

नयनामृताञ्जन ।

रसेन्द्रभुजगौ तुल्यौ ताभ्यां तुल्यमथाञ्जनम् । ईषत्कर्पूरसंयुक्तमञ्जनं नयनामृतम् ॥ ३४७ ॥

पारा और सीसा ये प्रत्येक एक एक भाग और दोनोंके बराबर अंजन लेवे और इनमें कुछ एक कपूर मिलाकर सबको एकत्र पीसकरके नेत्रोंमें आँजे तो समस्त नेत्ररोग दूर होते हैं ॥ ३४७ ॥

मनःशिलादि अञ्जन ।

मनोह्वातुत्थकस्तूरीमांसीमलयनागरम् । समांशं शङ्खकर्पूरमशीतिगुणमञ्जनम् ॥ एतच्चूर्णीकृतं सर्वं षड्विधे तिमिरे हितम् ॥ ३४८ ॥

मैनशिल, तूतिया, कस्तूरी, वालछड, चन्दन, सोंठ, शंख और कपूर ये सब औषधि दशदश भाग लेवे, सबको एकत्र पीसकर नेत्रोंमें लगावे तो छः प्रकारका तिमिररोग दूर होता है ॥ ३४८ ॥

कृष्णसर्पवदने सहविष्कं दग्धमञ्जनमनिर्गतधूमम् । चूर्णितं नलदपत्रविमिश्रं भिन्नसारमपि रक्षति चक्षुः ॥ ३४९ ॥

काले सांपके मुखमें अंजनको घीमें पीसकर भर देवे कि उसके ऊपर कपरौटी करके पुटपाककी विधिसे पकावे पश्चात् उसको चूर्ण करके वालछडका चूर्ण मिलाकर नेत्रोंमें लगानेसे फटतीहुई आँखें भी आरोग्य हो जाती हैं ॥ ३४९ ॥

त्र्यूषणं त्रिफलातुत्थसैन्धवालमनःशिला । क्लेदोष्णदाहकण्डूघ्ना वर्त्तिः शस्ता कफापहा ॥ ३५० ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेड़ा, आमला, तगर, सैंधानमक, हरताल और मैनशिल इनको एकत्र पीसकर बत्ती बनाकर नेत्रोंमें लगानेसे क्लेद, उष्णता, दाह और कण्डू ये सब नष्ट होजाते हैं यह बत्ती विशेषकर कफको हरती है ॥ ३५० ॥

सौवीरमञ्जनं नित्यं पथ्यमक्ष्णोस्ततो भजेत् । पञ्चरात्राष्टरात्रं वा स्रावणार्थं रसाञ्जनम् ॥ चक्षुस्तेजोमयं तेन भवेन्न श्लेष्मतो भयम् ॥ ३५१ ॥

सौवीराञ्जन अर्थात् काला सुर्म्मा नेत्रोंको सदैव हितकारी है, इसकारण उसको नित्य व्यवहार करना चाहिये । नेत्रोंका स्राव होनेके लिये पाँच रात्रि पर्य्यंत अथवा आठ रात्रिपर्यंत रसौतको लगावे इससे नेत्रोंकी ज्योति बढ़ती है और कफका भय नहीं रहता ॥ ३५१ ॥

सूतकं गन्धकोपेतं चाङ्गेरीरसमूर्च्छितम् । अंजनं दृष्टिदं नृणां नेत्रामयविनाशनम् ॥ ३५२ ॥

पारे और गंधकको चांगेरी (नोनिया) के रसमें मूर्च्छित करके एकत्र खरल कर नेत्रोंमें आँजनेसे नेत्रोंकी दृष्टि बढती है और नेत्रोंके समस्त रोग दूर होते हैं ॥ ३५२ ॥

त्रिफलाभृङ्गमहौषध–सर्पिर्गोमूत्रमध्वजाक्षीरे । नागं सप्तनिषिक्तं करोति गरुडोपमं चक्षुः ॥ ३५३ ॥

सीकेको अग्निके द्वारा गलाकर त्रिफलेके रसमें, भांगरेके रसमें, सोंठके क्वाथमें, घीमें, गोमूत्रमें, शहदमें और बकरीके दूधमें अलग अलग सात सात बार बुझाकर उसकी सलाई बनाकर अथवा अंजन घिसकर नेत्रोंमें लगानेसे नेत्र गरुडके समान तेज होजाते हैं ॥ ३५३ ॥

त्रिफलाम्भसि भृङ्गरसे च हविषि मधुन्यजादुग्धे च पक्केन सप्तकृत्वः शीसेनोत्पादितयांजनं कार्यं प्रत्यहमंजनतश्चक्षुषोर्जिताशेषरोगेण वर्षायामपि पश्येत्पिपीलिकाघृष्टमयनमिति ।

सीसेको अग्निके द्वारा तपाकर या गलाकर त्रिफलेके रसमें, भाँगरेके रसमें, घीमें, शहदमें और बकरीके दूधमें अलग अलग सात सात बार बुझाकर अंजन बनाकर प्रतिदिन नेत्रोंमें लगानेसे नेत्रोंके सम्पूर्ण दोष दूर होकर नेत्र स्वच्छ होजाते हैं तथा वर्षाऋतुमें चींटियोंके घिसनेसे उत्पन्न हुए स्थानोंको भी देखसकता है ।

शीशकशलाका ।

त्रिफलसलिलयोगे भृङ्गराजद्रवे च हविषि च विषकल्के क्षीर आजे मधूत्रे ॥ प्रतिपदमभितप्तं सप्तधा शीतमेकं प्रणिहितगाति पश्चात्कारयेत्तच्छलाकाम् ॥ ३५४ ॥ तिमिरपटलकण्डूस्रावरक्तप्रकोपानुपचितबहुरोगान्सन्धिवर्त्माभिजातान् । सवितुरुदयकाले सांजना व्यंजना वा हरति नयनरोगाञ्छोध्यमाना शकाला ॥ ३५५ ॥

सोसेको अग्निमें तपा तपाकर प्रथम त्रिफलेके रसमें सातबार बुझावे, फिर भाँगरेके रसमें, घीमें, कमलकन्दके कल्कमें, बकरीके दूधमें और फिर शहदमें सात सातबार भावना देवे इसप्रकार उक्त औषधियोंके रसमें भावना देनेके पाश्चात् सीसेकी सलाई बनालेवे उस सलाईको सूर्य्योदयके समय अंजनके साथ अथवा खाली लगानेसे तिमिर पटल, कण्डू, नेत्रस्राव, रक्तप्रकोप, त्रिविधप्रकारके संधिगत और वर्त्मजरोग एवं अन्यान्य अनेकप्रकारके नेत्ररोग दूर तथा नेत्र शुद्ध होते हैं ॥ ३५४ ॥ ३५५ ॥

शृङ्गवेरं भृङ्गराजं यष्टीतैलेन मिश्रितम् । नस्यमेतेन दातव्यं महापटलनाशनम् ॥ ३५६ ॥

अदरख, भाँगरा, मुलैठी और तिलका तेल इनको एकत्र मिलाकर नास देनेसे महापटलरोग दूर होता है ॥ ३५६ ॥

पिण्डीततरुमूलन्तु क्षौद्रेण सह योजयेत् ॥ अपक्कं पटलं हन्यात्पक्कञ्च परिशोधयेत् ॥ ३५७ ॥

मैनफलकी जडको शहदमें मिलाकर नेत्रोंमें लगानेसे अपक्कपटलरोग दूर होता है और पक्कपटल शुद्ध होता है ॥ ३५७ ॥

दिवा तु न प्रयोक्तव्यं नेत्रयोस्तीक्ष्णमञ्जनम् । विरेकदुर्बलादृष्टिरादित्यं प्राप्य सीदति ॥ ३५८ ॥

तीक्ष्ण अंजन नेत्रोंमें दिनमें नहीं लगाना चाहिये, क्योंकि दिनमें तीक्ष्ण अंजन लगानेसे नेत्रोंमेंसे जलका स्राव होनेके कारण दृष्टि दुर्बल होकर सूर्य्यके तापसे विह्वल हो जाती है ॥ ३५८ ॥

तस्मात्साध्यं निशायान्तु ध्रुवमञ्जनमिष्यते । रात्र्यन्धगुणितं चापि पुष्णात्यञ्जनकार्षितम् ॥ ३५९ ॥

इस कारण तीक्ष्ण अंजन रात्रिमें लगाना चाहिये, क्योंकि वह अंजन अपकर्षण करनेसे नेत्रोंको पुष्ट करता है एवं रतौंधेमें गुण करता है ॥ ३५९ ॥

दोषप्रतिनिवृत्तस्तु हन्याद्दृष्टिबलं तथा । अधावनाद्बहिस्तिष्ठन्भूयः सञ्जनयेद्भयम् ॥ ३६० ॥

दोषोंके निवृत्त होनेपर भी नेत्रोंको न धोनेसे बाहर स्थित दोष भयको उत्पन्न करके फिर दृष्टिके बलको नष्ट कर देते हैं ॥ ३६० ॥

श्रान्ते भीते प्ररुदिते मद्यपीते नवज्वरे। उष्णवेगविघाते च अञ्जनं न प्रशस्यते॥ ३६१॥

थक जानेपर, भयभीत होनेपर, रोनेपर, मद्यपान करनेपर, नवीनज्वरमें, गरमीसे सन्तप्त और मलमूत्रादिक वेगोंके रोकने पर अंजन नहीं लगाना चाहिये॥ ३६१॥

वैमल्यार्थं यथादर्शं सतैलमवधारणम्। तद्वदञ्जनसंयोगादक्ष्णोर्मलनिबर्हणम्॥ ३६२॥

जिसप्रकार सीसेको तेल लगाकर देखनेसे स्वच्छ दीखता है, उसीप्रकार नेत्रोंमें अञ्जन लगानेसे नेत्रोंके मल दूर होकर नेत्र स्वच्छ हो जाते हैं॥ ३६२॥

प्रसन्ना विमला शुद्धा स्थिरा दृष्टिर्भवेद्यतः। प्रातः कुर्यात्सदैवैतदञ्जनं व्याधिनाशनम्॥ ३६३॥

नेत्रोंमें अंजन लगानेसे दृष्टि प्रसन्न, निर्मल, स्वच्छ और स्थिर होती है तथा सर्वप्रकारके नेत्ररोग दूर होते हैं, इस लिए प्रातःकाल सदैव अञ्जन लगाना चाहिए॥ ३६३॥

अथ नेत्रनिर्माणप्रकार।

पुत्रिणीलिङ्गिनीलिङ्गं तन्नाशो लिङ्गनाशनः। सर्वेषु लिङ्गनाशेषु वेध्य एकः कफात्मकः॥ ३६४॥

लिंगयुक्त नेत्रोंकी पुतलीमें जो लिंग है उसके नाश होनेको लिंगनाश कहते हैं। हिन्दीमें इसे मोतियाविन्द कहते हैं सर्वप्रकारके लिंगनाशोंमें एक कफजन्यलिंगनाशको ही शस्त्रसे चीरना चाहिये॥ ३६४॥

एकोनविंशतिवर्षस्य नाशीत्यभ्याधिकस्य च। नाश्रुपूर्णस्य नोष्णे च लिङ्गनाशन्तु वेधयेत्॥ ३६५॥

उन्नीस वर्षसे कम अवस्थावाले और अस्सी वर्षसे अधिक अवस्थावाले मनुष्यके तथा अश्रुओंसे पूर्णनेत्रोंवाले और उष्णतापीडित मनुष्योंके लिंगनाशको नहीं वेधें॥ ३६५॥

कासश्वास-क्षतक्षीणकर्णशूलाक्षिरोगिणाम्। गर्भिणीक्षामभीरूणां तृष्णाभुक्तवतोऽन्यथा॥ ३६६॥ मद्यतैलज्वराजीर्णक्षयशुक्र--विकारिणाम्। पटोलाद्येन संस्निह्य त्रिफलाद्येन सर्पिषा॥ ३६७॥ लिङ्गनाशे समुद्भूते यथावद्विधिपूर्वकम्। विध्याद्दैवकृते छिद्रे नेत्रं स्तन्येन सेचयेत्॥ ३६८॥

खाँसी, श्वास, क्षत, क्षीण, कर्णशूल और नेत्ररोगवाले मनुष्य तथा गर्भवती स्त्री, असमर्थ, भयभीत, तृषा और क्षुधासे पीडित, एवं मद्यपान किये हुए, तेल लगाये हुए, ज्वर और अजीर्णसे पीडित, क्षय और शुक्ररोगी मनुष्योंके लिंगनाशको भी नहीं वेधना चाहिये। प्रथम पटोलाद्य घृत अथवा त्रिफलाद्यघृतके द्वारा रोगीको स्निग्ध करके पश्चात् लिंगनाशरोगमें उत्पन्न हुए दैवकृत छिद्रको विधिपूर्वक वेधे तथा नेत्रोंको तत्काल दूधसे सींचे॥ ३६६–३६८॥

ततो दृष्टेषु रूपेषु शलाकामपहरेच्छनैः। नयनं सर्पिषाभ्यज्य वस्त्रपट्टेन वेष्टयेत्॥ ३६९॥ ततो गृहे निराबाधे शयीतोत्तानमेव च॥ ३७०॥ उद्गारकासःक्षवथुः ष्ठीवनं कम्पनानि च। तत्कालं नाचरेदूर्ध्वं यन्त्रणा स्नेहपतिवत्॥ ३७१॥ त्र्यहात्त्र्यहाच्च धावेत कषायैरनिलापहैः। वायोर्भयात्त्र्यहादूर्ध्वं स्नेहयेदक्षिपूर्ववत्॥ ३७२॥ दशरात्रस्थितं सम्यग्घृतं दृष्टिप्रसाधनम्। पश्चात्कर्म्म च संसेव्यं लघ्वन्नं चापि मात्रया॥ ३७३॥

फिर जब स्वरूप दीखने लगे तब धीरे२ सलाईको निकालदेवे और नेत्रोंको घृत चुपड़कर वस्त्रसे बांधदेवे फिर उस रोगीको धूम, धूप और वातरहित स्थानमें सीधा सुला देवे। इस प्रकार नेत्रवेध होनेपर रोगीको तत्काल उद्गार लेना (डकारना), खांसना, छींकना, थूकना, कांपना आदि क्रियायें नहीं करनी चाहिए। कारण इनके द्वारा नेत्रोंमें पीडा होती है। उसको स्नेहपान करनेवालेके समान रहना चाहिए। तीन २ दिनके बाद नेत्रोंके बंधन खोलकर वात-

नाशक औषधियोंके काथसे नेत्रोंको धोवे । वायुके भयसे तीन ३ दिनमें स्नेहसे नेत्रोंको पूरण करे, इस प्रकार करते हुए जब दशदिन व्यतीत होजायँ तब दृष्टिप्रसारणक्रिया और हलका अन्न आदि मात्रानुसार देवे ॥३६९ ॥३७०॥३७१॥३७२॥३७३॥

रागः शोथोऽर्बुदश्चोषं बुद्बुदं केकराक्षिता । अधिमन्थादयश्चान्ये रोगाः स्युर्दुष्टवेधजाः ॥ ३७४ ॥

कुविधिसे नेत्रोंको वेधनेसे नेत्रोंमें लाली, सूजन, अर्बुद, चूसने सरीखी पीडा, बुद्बुद, केकडेके समान नेत्रोंका होना और अधिमन्थादि घोर रोग उत्पन्न होते हैं ॥ ३७४ ॥

अहिताचारतो वापि यथास्वन्तानुपाचरेत् । रुजायामाक्षिरोगे वा भूयो योगान्निबोध मे ॥ ३७५ ॥

इन रोगोंकी विधिपूर्वक चिकित्सा करे और इनमें मिथ्या आहार विहार करना त्याग करदेवे, क्योंकि मिथ्या आचरण करनेसे भी यह रोग उत्पन्न होतेहैं। अब इन नेत्ररोगोंकी चिकित्सा कहते हैं ॥ ३७५ ॥

सदुग्धा सघृता दूर्वा यवगैरिकशारिवाः । सुखालेपः प्रयोक्तव्यो रुजारागोपशान्तये ॥ ३७६ ॥

दूब, जौ, गेरू और शारिवा इनको दूध और घीमें पीसकर सुखोष्ण लेप करनेसे नेत्रोंकी लाली और पीडा शांत होती है ॥ ३७६ ॥

पयस्या-शारिवापत्रैर्मञ्जिष्ठामधुकैरपि । अजाक्षीरान्वितैर्लेपः सुखोष्णः पथ्य उच्यते ॥ ३७७ ॥

क्षीरकाकोली अथवा दुद्धी, शारिवा, तेजपत्र, मजीठ और मुलैठी इनको एकत्र बकरीके दूधमें पीसकर कुछ गरम करके नेत्रोंमें लेप करना हितकर है ॥ ३७७ ॥

लोध्रसैन्धवमृद्वीकामधुकैश्छागलं पयः । शृतामाश्च्योतने पथ्यं रुजारोगविनाशनम् ॥ ३७८ ॥

लोध, सैंधानमक, दाख और मुलैठी इनको एकत्र बकरीके दूधमें औटाकर उस दूधको शीतल करके नेत्रोंमें आश्च्योतन करे तो नेत्रोंकी पीडा दूर होती है ॥ ३७८ ॥

वातघ्नसिद्धे पयसि सिद्धं सर्पिश्चतुर्गुणे । काकोल्यादिप्रतीवापं प्रयुञ्ज्यात्सर्वकर्म्मसु ॥ ३७९ ॥

वातनाशक औषधियोंके द्वारा सिद्ध किये हुए चौगुने दूधमें काकोल्यादि गणकी औषधियोंका कल्क डालकर घृतको पकावे । इस घृतको नस्य पानादि सर्व कर्म्मोमें प्रयोग करे । इससे सर्वप्रकारकी नेत्रपीडा शांत होती है ॥ ३७९ ॥

शाम्यत्येवं न चेच्छूलं स्निग्धस्विन्नस्य मोक्षयेत । ततः शिरां दहेद्वापि मतिमान्कीर्त्तितं तथा ॥ ३८० ॥ दृष्टेरतः प्रसादार्थमंजनं शृणु मे शुभम् । मेषशृङ्गस्य पुष्पाणि शिरीषधवयोरपि । मालत्याश्चैव तुल्यानि मुक्तावैडूर्य्यमेव च ॥ ३८१ ॥ अजाक्षीरेण संपिष्य ताम्रे सप्ताहमावपेत् । प्रणिधाय च तद्वर्त्ति योजयेदंजने भिषक् ॥ ३८२ ॥

जो इसप्रकार करनेसे भी नेत्रशूल शांत न हो तो रोगीको स्निग्ध और स्वेदित करके रक्तमोक्षण करे अथवा शिरा वेधे या दग्ध करे । अब दृष्टिको परिष्कार करनेके लिए अञ्जन कहता हूँ उसको श्रवण करो । मेढाशिंगीके फूल, शिरसके फूल, धवके फूल और चमेलिके फूल तथा मोती और वैडूर्यमणि इन सबको समान भाग लेकर एकत्र बकरीके दूधमें पीसकर तांबेके पात्रमें सात दिन तक रक्खा रहनेदेवे फिर वैद्य उसकी वत्ती बनाकर नेत्रोंमें आञ्जे तो नेत्रोंकी समस्त पीड़ा शांत होती है ॥ ३८०-३८२ ॥

स्रोतोजं विद्रुमं फेनं सागरस्य मनःशिला । मरिचानि च तावन्ति कारयेद्वापि पूर्ववत् ॥ ३८३ ॥

सफेद अंजन, मूँगा, समुद्रफेन, मैनशिल और कालीमिरच इन सबको समान भाग लेकर एकत्र बकरीके दूधमें पीसकर और सात दिनतक, ताँबेके पात्रमें रखकर पूर्ववत् वत्ती बनाकरके पूर्ववत् नेत्रोंमें लगावे इससे भी नेत्रोंकी समग्र पीड़ा दूर होती है ॥ ३८३ ॥

मासैकेन समालिप्य पटलं गृध्रदृष्टिकृत् । शम्बूकमांससंजातं रसः पीतोऽनुवासनम् ॥ ३८४ ॥

एक महीनेतक इस अंजनके द्वारा नेत्रोंमें लेखन क्रिया करनेसे पटलगत दोष दूर होकर दृष्टि गृध्रके समान होजाती है । इसपर शम्बूकके माँसरसको पान करे तथा अनुवासन बस्ति देवे॥ ३८४ ॥

आढकीमूलमरिचहरितालरसांजनैः । विद्धेऽक्ष्णि सगुडावर्त्तिर्योज्या दिव्यांबुपेषिता ॥ ३८५ ॥

अरहरकी जड़, कालीमिरच, हरिताल और रसौत इनको समान भाग लेकर एकत्र पीसकर गुडमें मिलाकर वत्ती बनालेवे । इस बत्तीको मेघके जलमें पीसकर वेधे हुए नेत्रोंमें प्रयोग करे ॥ ३८५ ॥

त्रिफलाव्योषसिन्धूत्थैर्घृतं सिद्धं पिबेन्नरः । चक्षुष्यं भेदनं हृद्यं दीपनं कफनाशनम् ॥ ३८६ ॥

त्रिफला, त्रिकुटा और सैंधानमक इनके कल्कके द्वारा घृतको पकाकर पान करे। यह घृत–नेत्रोंको हितकारी, भेदक, हृदयको हितकारी, अग्निको दीपन करनेवाला और कफको नष्ट करनेवाला है ॥ ३८६ ॥

फलत्रिकाद्यघृत ।

फलत्रिकाभीरुकषायसिद्धं दुग्धेन यष्टीमधुकल्कयुक्तम् । सर्पिः समं क्षौद्रचतुर्थभागं हन्यात्त्रिदोषं तिमिरं सुदारुणम् ॥ ३८७ ॥

त्रिफलेका काथ, शतावरका स्वरस और दूध इनमें मुलैठीका कल्क डालकर यथाविधिसे घृतको पकावे। फिर इस घृतको चौथाई भाग शहद मिलाकर सेवन करे तो त्रिदोषजन्य दारुण तिमिररोग दूर होता है ३८७

मध्यमत्रिफलाद्यघृत ।

त्रिफलात्र्यूषणं द्राक्षा मधुकं कटुरोहिणी । प्रपौण्डरीकं सूक्ष्मैला विडङ्गं नागकेसरम् ॥ ३८८ ॥ नीलोत्पलं शारिवे द्वे चन्दनं रजनीद्वयम् । कार्षिकैः पयसा तुल्यैः त्रिगुणं त्रिफलारसम् ॥ ३८९ ॥ घृतप्रस्थं पचेदेतत्सर्वनेत्ररुजापहम् । तिमिरं दोषमास्रावं कामलां काचमर्बुदम् ॥३९०॥ विसर्पं पटलं कंडूं तोदनं श्वयथुं तथा । खालित्यं पलितञ्चैव केशानां पतनं तथा ॥ ३९१ ॥ अन्ये च बहवो रोगा नेत्रजा वर्त्मजाश्च ये । तान्सर्वान्नाशयत्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥ ३९२ ॥ न चैवास्मात्परं किञ्चिद्भेषजं काश्यपादिभिः । दृष्टिप्रसादनं दृष्टं यथा स्यात्त्रिफलाघृतम् ॥ २९३ ॥

त्रिफला, त्रिकुटा, दाख, मुलैठी, कुटकी, पुंडेरिया, छोटी इलायची, वायविडंग, नागकेशर, नीलेकमल, दोनों शारिवा, चन्दन, हलदी और दारुहलदी ये प्रत्येक औषधि एक एक तोला और सबकी बराबर दूध तथा दूधसे तिगुना त्रिफलेका रस लेवे । सबको एकत्र करके इनमें एक प्रस्थ घृतको पकावे । यह घृत–सर्व प्रकारके नेत्ररोग, तिमिर, दोष, आस्राव, कामला, काच, अर्बुद, विसर्प, पटल, खुजली, तोडने सरीखी पीडा, सूजन, खालित्य, पलितरोग, बालोंका पतित होना और अन्यान्य अनेक प्रकारके नेत्ररोग तथा वर्त्मरोग इन सबको इस प्रकार तत्काल नष्ट करता है, जिसप्रकार सूर्य्य अन्धकारके समूहको नष्ट करदेता है । काश्यपादि ऋषियोंने इस त्रिफलाघृतसे उत्तम अन्य कोई भी औषध नेत्रोंको हितकारी नहीं कही है ॥ ३८८–३९३ ॥

महात्रिफलाद्यघृत ।

त्रिफलाया रसप्रस्थं प्रस्थं भृङ्गरसस्य च । वृषस्य च रसप्रस्थं शतावर्य्याश्च तत्समम् ॥ ३९४ ॥ अजाक्षीरं गुडूच्याश्च ह्यामलक्या रसं तथा । प्रस्थं प्रस्थं समाहृत्य सर्वैरेभिर्घृतं प-

चेत् ॥ ३९५ ॥ कल्कैः कणासिताद्राक्षात्रिफलानीलमुत्पलम् । मधुकं क्षीरकाकोली मधुपर्णी निदिग्धिका ॥ ३९६ ॥ तत्साधुसिद्धं विज्ञाय शुभे भाण्डे निधापयेत् । ऊर्ध्वपानमधःपानं मध्ये पानञ्च शस्यते॥३९७॥यावन्तो नेत्ररोगास्तान्पानादेवापि कर्षयेत् । सरक्ते रक्तदुष्टे च रक्ते चातिस्रुतेऽपि च ॥ ३९८॥ नक्तांधे तिमिरे काचे नीलिकापटलार्बुदे । अभिष्यन्देऽधिमन्थे च पक्ष्मकोपे सुदारुणे ॥ ३९९ ॥ नेत्ररोगेषु सर्वेषु वातपित्तकफेषु च । अदृष्टिं मन्दृष्टिश्च कफवातप्रदूषिताम् ॥ ४०० ॥ स्रवतो वातपित्ताभ्यां सकण्ड्वासन्नदूरकृत् । गृध्रदृष्टिकरं सद्यो बलवर्णाग्निवर्द्धनम् ॥ सर्वनेत्रामयं हन्यात्रिफलाद्यं महाघृतम् ॥ ४०१ ॥

त्रिफलेका रस १ प्रस्थ, भांगरेका रस १ प्रस्थ, अडूसेका रस १ प्रस्थ, शतावरका रस १ प्रस्थ, बकरीका दूध १ प्रस्थ, गिलोयका रस एक प्रस्थ और आमलोंका रस एक प्रस्थ लेवे तथा पीपल, मिश्री, दाख, त्रिफला, नीलकमल, मुलैठी, क्षीरकाकोली, कुम्भेर और कटेरी इन सबका कल्क आधासेर लेवे सबको एकत्र मिलाकर इनमें उत्तमविधिसे गायके एक प्रस्थ घृतको पकावे । इस घृतको विधिपूर्वक पकाकर एक उत्तम बासनमें भरकर रखदेवे । इसको भोजनके पहिले, भोजनके बीचमें और भोजनके पीछे पान करे । इस घृतको पान करते ही सर्वप्रकारके नेत्ररोग दूर होते हैं । यह घृत-रक्तयुक्त, दुष्टरक्तयुक्त, अतिरक्तस्रावयुक्त, नेत्ररोग, रात्र्यंधरोग, तिमिररोग, काच, नीलिका, पटल, अर्बुद, अभिष्यन्द, अधिमन्थ, दारुणपक्ष्मकोप, वात, पित्त और कफजन्य समस्त नेत्ररोगोंमें प्रयोग करना चाहिए। यह अदृष्टि, मन्दृष्टि, कफ, वातसे दूषितदृष्टि, नेत्रस्राव, वातपित्तजन्य खुजली और समीपकी वस्तुका दूर दीखना इन सब रोगोंको दूर करता है और तत्काल दृष्टिको गृध्रके समान कर देता है। तथा बल वर्ण और जठराग्निको बढाता है। यह महात्रिफलाद्यघृत सब प्रकारके नेत्ररोगोंको दूर कर देता है ॥ ३९४-४०१ ॥

द्वितीयमहात्रिफलाद्यघृत ।

शतमेकं हरीतक्यास्त्रिगुणञ्च विभीतकम् । धात्रीफलानां चत्वारि वृषमार्कवयोः समम् ॥ ४०२ ॥ चतुर्गुणोदकं दत्वा शनैर्मृद्वग्निना पचेत् । चतुर्भागस्थितं ज्ञात्वा तदेवमवतारयेत् ॥ ४०३ ॥ शर्करामधुकं द्राक्षा मधुयष्टी निदिग्धिका । काकोलीक्षीरकाकोली-त्रिफलानागकेसरम् ॥ ४०४ ॥ पिप्पलीचन्दनं मुस्तं त्रायमाणा तथोत्पलम् । घृतप्रस्थं समं क्षीरं कल्कैरेतैर्विपाचयेत् ॥४०५ हन्यात्सतिमिरं काचं नक्तान्ध्यं शुक्रमेव च । तथा स्रावञ्च कण्डूञ्च श्वयथुञ्च कषायताम् ॥ ४०६ ॥ कलुषत्वञ्च नेत्रस्य बिन्दूर्मपटलापहम् । बहुनात्र किमुक्तेन सर्वान्नेत्रामयान्हरेत् ॥ ४०७ ॥ यस्य चोपहता दृष्टिः सूर्याग्निभ्यां प्रशस्यते । तस्मै तद्भेषजं प्रोक्तमूर्ध्वजत्रुगदापहम् ॥ ४०८ ॥ यथादर्शो मले नीते निर्मलत्वं नियच्छति । तद्वदेतेन पीतेन दृष्टिर्निर्मलतां व्रजेत् ॥ ४०९ ॥ वारिद्रोणद्वयञ्चैव वृषभृङ्गकयोस्तुले ॥ ४१० ॥

हरड़ १००, बहेड़े ३०० और आमले ४०० एवं अडूसा और भांगरा ये प्रत्येक सौ २ पल लेकर सबको एकत्र चौगुने-अर्थात् दो द्रोण-जलमें डालकर मन्द मन्द अग्निसे पकावे । जब पकते २ चौथाई भाग जल शेष रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर उस काथमें मिश्री, महुआ, दाख, मुलैठी, कटेरी काकोली, क्षीरकाकोली, त्रिफला, नागकेशर, पीपल, चंदन, नागरमोथा, त्रायमाण और कमल

इन सबका समानभाग कल्क एवं बराबरका दूध और एक प्रस्थ घृत इन सबको एकत्र मिश्रित करके विधिपूर्वक घृतको पकावे। यह घृत-तिमिर, कांच, नक्तांध्य (रतौंधा), शुक्र, स्राव, कण्डू, सूजन, कषायता, कलुषता, नेत्रगतबिंदु, अर्म्म और पटल आदि रोगोंको दूर करता है। बहुत कहनेसे क्या यह घृत सम्पूर्ण नेत्ररोगोंको दूर करता है। जिनकी सूर्य अथवा अग्निसे दृष्टि दूषित होगई है, उनके लिये यह त्रिफलाद्यघृत उत्तम औषध है। तथा ऊर्ध्वजत्रु रोगोंकी भी यह अपूर्व औषध है। जिस प्रकार दर्पणमें देखनेसे मलके होनेपर भी स्वच्छरूप दीखता है, उसी प्रकार इस घृतको पान करनेसे दृष्टि निर्म्मलताको प्राप्त होती है ॥ ४०२-४१० ॥

भास्कराद्यघृत।

कृष्णा सशर्करा द्राक्षा चतुर्मधुकयष्टिका । एकद्वित्रिचतुर्थांशभागाः सर्वेषु कल्पिताः ॥ ४११ ॥ मृद्वग्निना पचेद्धीमान्बहु दर्व्या विघट्टयन् । भास्कराख्यमिदं सर्पिर्ब्रह्मणा निर्मितं पुरा ॥ ४१२ ॥ तिमिरं शुक्तिकं हन्ति पिल्लं वाऽध्युषितानि च । अदृष्टिं मन्ददृष्टिश्च दिवा नक्तान्ध्यमेव च ॥ ४१३ ॥ अस्योपयोगादत्यन्तं संहारादतिवर्त्तयेत । वयस्तम्भनमायुष्यं वलीपलितनाशनम् ॥ प्रदरश्च क्षयं श्वासं शुक्रमूत्रमलार्त्तिनुत् ॥४१४॥

पीपल १ भाग, मिश्री २ भाग, दाख ३ भाग और मुलैठी ४ भाग लेवे। इन सबको एकत्र जलमें पीसकर मंद २ अग्निसे पकावे और बार बार करछीसे चलाता जाय। एक भाग इसमें घृत भी डाल देवे। जब पकते पकते करछीसे लगने लगे तब उतार कर एक उत्तम चिकने बासनमें करके रख देवे। इस भास्कर नामक घृतको पूर्वकालमें ब्रह्माजीने निर्म्माण किया है। इसको सेवन करनेसे तिमिर, शुक्तिकरोग, पिल्ल, अम्लाध्युषित, अदृष्टि, मंददृष्टि दिवांध, रात्र्यन्ध इत्यादि समस्त नेत्ररोग दूर होते हैं। तथा अवस्था स्थापन होती है, आयुकी वृद्धि होती है, वली और पलितरोग नष्ट होते हैं, एवं प्रदर, क्षय, श्वास, शुक्रदोष, मूत्र और मलकी पीडा शांत होती है ॥ ४११-४१४ ॥

महापटोलाद्यघृत।

पटोलं कटुकं दार्वी निम्बवासाफलत्रिकम् । दुरालभा पर्पटकं त्रायन्ती घनचन्दनम् ॥ ४१५ ॥ किराततिक्तयष्ट्याह्व पिप्पलीकौटजं फलम् । लामज्जकं मृणालश्च तत्फलं च समं भवेत् ॥ ४१६ ॥ एतैस्तु कार्षिकैः कल्कैर्विपचेत्सर्पिरुत्तमम्।आमलक्या रसं देयं शतावर्य्याःसमन्वितम् ४१७॥ सुरदारुकषायश्च भृङ्गराजरसं तथा। प्रस्थं प्रस्थश्च गृह्णीयाद्विप्रस्थं सर्पिषः पचेत् ॥ ४१८ ॥पाने च भोजने दद्यात्सर्वमूर्धामयापहम् । विशेषादक्षिरोगघ्नं तिमिरं च त्रिदोषजम् ॥४१९॥ पटलं रक्तराजिश्च व्रणशुक्रहरं तथा । काचार्म्मनात्त्यमान्ध्यश्च कण्डूपिल्लामयान्हरेत् ॥ ४२० ॥ वर्त्मशोथहरं चैव दृष्टिरोगकुलापहम् । आसन्नातिमिराणाश्च यश्च दूरान्न पश्यति ॥ अदृष्टिं मन्ददृष्टिश्च सर्वनेत्रामयापहम् ॥ ४२१ ॥ बलवर्णकरं धन्यं दृष्टिपुष्टिविवर्द्धनम् । महापटोलाद्यमिदं ख्यातं वैदेहनिर्मितम् ॥ ४२२ ॥

पटोलपत्र, त्रिकुटा, दारुहलदी, नीम, अडूसा, त्रिफला, धमासा, पित्तपापडा, त्रायमाण, नागरमोथा, चन्दन, चिरायता, मुलैठी, पीपल, इन्द्रजौ, लामज्जकतृण, कमलकी नाल और कमलगट्टा इन प्रत्येक औषधियोंका कल्क एक एक तोला तथा आमलोंका स्वरस १ प्रस्थ, शतावरका रस १ प्रस्थ, देवदारुका काथ १ प्रस्थ और भाँगरेका स्वरस १ प्रस्थ एवं उत्तम गायका घृत २ प्रस्थ लेवे। सबको यथाविधिसे मिला कर धीरे धीरे घृतको पकावे। इस घृतको भोजन और पानमें व्यवहार करनेसे सर्व प्रकारके शिरके रोग

दूर होते हैं। तथा विशेष करके नेत्ररोग, त्रिदोषजन्य तिमिररोग, पटल, रक्तराजि, व्रणशुक्र, काच, अर्म्म, रात्र्यंध, कण्डू, पिल्ल, वर्त्मशोथ और सर्वप्रकारके दृष्टिरोग दूर होते हैं। यह घृत-दूरके पदार्थों को न दीखना, अदृष्टि, मंददृष्टि और सर्वप्रकारके नेत्ररोगोंको दूर करने तथा बल और वर्णको उत्पन्न करने और नेत्रोंकी ज्योतिको बढानेके लिए धन्य है इस महापटोलाद्य घृतको वैदेह आचार्य्यने निर्म्माण किया है ॥ ४१५-४२२ ॥

रास्नाद्यघृत।

रास्नाफलत्रयक्काथे दशमूले च तत्कृते। कल्के च जीवनीयानां घृतं तिमिरनाशनम् ॥ ४२३ ॥

रास्ना, त्रिफला और दशमूलके काथमें जीवनीयगणकी औषधियोंका कल्क डालकर घृतको पकावे। इस घृतको सेवन करनेसे तिमिररोग दूर होता है ॥ ४२३ ॥

विभीतकाद्यतैल।

विभीतकशिवाधात्रीपटोलारिष्टवासकैः। आढकीरससंसिद्धं तैलं तिमिरनुत्परम् ॥ ४२४ ॥

बहेडे, हरड, आमले, पटोलपत्र, नीम और अडूसा इनके कल्कके द्वारा अरहरके रस या काथमें तेलको पकावे यह तेल तिमिररोगको नष्ट करता है ॥ ४२४ ॥

त्रिफलाद्यतैल।

संपिष्य त्रिफलालोध्रमुशीराणि प्रियंगुकम्। तैलमेतैर्विपक्कं स्याच्छ्लैष्मिके नस्यमुत्तमम् ॥ ४२५ ॥

त्रिफला, लोध, खस और फूलप्रियंगू इनके कल्कके द्वारा तेलको पकावे। इस तेलकी कफजन्यनेत्ररोगमें नस्य देना उत्तम है ॥ ४२५ ॥

गोमयतैल।

गवां शकृत्काथविपक्कमुत्तमं हितञ्च तैलं तिमिरे च नस्यतः। घृतं हितं केवलमेव पैत्तिके तथाऽणुतैलं पवनासृगुत्थयोः ॥ ४२६ ॥

गायके गोबरके काथमें विधिपूर्वक तेलको पकावे। इस तेलकी नस्य देनेसे तिमिररोग दूर होता है। घृतको नस्य देनेसे केवल पित्तजन्यतिमिररोग दूर होता है और अनुतैल वातरक्तके दोषोंको दूर करता है ॥ ४२६ ॥

भृङ्गराजतैल।

भृङ्गराजरसप्रस्थे यष्टीमधुपलेन च। तैलस्य कुडवं पक्कं सद्यो दृष्टिं प्रसादयेत् ॥ नस्याद्वलीपलीतघ्नं मासेनैतन्न संशयः ॥ ४२७ ॥

भाँगरेके १ प्रस्थ रसमें चार तोले मुलैठीका कल्क डालकर एक कुडव परिमाण तेलको पकावे। यह तेल तत्काल दृष्टिको प्रसन्न करता है। इसकी नस्य देनेसे वली और पलितरोग एक महीनेमें दूर होते हैं ४२७

द्वितीय भृङ्गराजतैल।

भृङ्गप्रस्थं तैलात्कुडवं तथा पलञ्च मधुकस्यापि। क्षीरप्रस्थविपक्कं गतमपि चक्षुर्विनिवर्त्तयेत् ॥ ४२८ ॥

भाँगरेका स्वरस १ प्रस्थ, तिलका तेल १ कुडव, मुलैठी ४ तोले और उत्तम गायका दूध १ प्रस्थ लेवे। सबको एकत्र मिलाकर यथाविधिसे तेलको पकावे। यह तेल नष्ट हुए नेत्रोंको फिर नवीन कर देता है ॥ ४२८ ॥

अजिततैल।

तैलस्य पचेत्कुडवं मधुकस्य पलेन कल्कपिष्टेन। आमलकरसप्रस्थं क्षीरप्रस्थेन संयुतं कृत्वा ॥ ४२९ ॥ अजितं नाम्ना तैलं तिमिरं हन्यान्निमिप्रोक्तम्। विमलां कुरुते दृष्टिं नष्टामप्यानयेन्नयने ॥ ४३० ॥

तिलका तेल १ कुडव, मुलैठीका कल्क चार तोले आमलोंका स्वरस १ प्रस्थ और दूध एक प्रस्थ लेवे। इन सबको एकत्र मिलाकर यथाविधि तेलको पकावे इसको अजिततैल कहते हैं। यह तेल निमिआचार्य्यने कहा है। इसको व्यवहार करनेसे तिमिररोग दूर होता है, दृष्टि निर्म्मल होती है और नष्ट दृष्टि भी फिरसे नूतन होती है ॥ ४२९ ॥ ४३० ॥

नीलोत्पलाद्यतैल।

नीलोत्पलं मधुकनागरपुण्डरीकद्राक्षासुयष्टिमधुकांशुमतीकणाश्च । कण्टारिकामलकशावरचोग्रगन्धाः कासीसशर्करबलावृषभाश्च रास्ना ॥ ॥ ४३१ ॥ माञ्जिष्ठया सह समैरपि सूक्ष्मपिष्टैस्तैलं पचेत्तु पयसा च चतुर्गुणेन । नस्यं नृणां तिमिरकाचनिशान्ध्ययुक्तान् पाकात्ययान् सपटलार्जुननीलिकांश्च ॥ ४३२ ॥ पिल्लार्बुदार्मरुधिरस्रुतिवर्त्मकंडून स्पदं जयेद्धिहितभोजनभङ्गुराणाम् । बाधिर्य्यमर्दितहनुग्रहदन्तचालं नासास्यपूयगलगण्डकृकाटिकार्त्तान् ४३३॥ कर्णाक्षिशूलदशनामयशीर्षरोगाजिह्वामयाञ्जयाति कण्ठगतांश्च सर्वान् । अभ्यञ्जनेन नियतं शिरसि प्रयत्नात् सर्वान्निहंति वदनाक्षिशिरोविकारान् ॥ ४३४ ॥

नीलकमल, महुएके फूल, सोंठ, पुण्डेरिया, दाख, मुलैठी, शालिपर्णी, पीपल,कटेरी,आमले,लोध, वच, कसीस, मिश्री, खिरैंटी, अडूसा, रायसन और मजीठ इन सबको समान भाग लेकर बारीक पीसकर उस कल्कके द्वारा चौगुने दूधमें तेलको पकावे। यह तेल नस्यादिके द्वारा प्रयोग करनेसे तिमिर, काच, रात्र्यंध, पाकात्यय, पटल, अर्जुन, नीलिका, पिल्ल, अर्बुद, अर्म्म, रुधिरस्राव, वर्त्मकण्डू, स्पन्दता, बधिरता,अर्दित, हनुग्रह, दन्तचालन, नासास्राव मुखस्राव, गलगण्ड, कृकाटिका, कर्ण और नेत्रशूल, दंतरोग, शिरोरोग, जिह्वारोग और सम्पूर्ण कंठरोग इन सबको नष्ट करता है। तथा निरन्तर शिरपर मालिस करनेसे समस्त मुखरोग, नेत्ररोग और शिरोरोगको दूर करता है ॥ ४३१ ॥ ४३२ ॥ ४३३ ॥ ॥ ४३४ ॥

नृपवल्लभतैल।

जीवकर्षभकौ मेदा द्राक्षांशुमती निदिग्धिकाबृहती। मधुकंबलाविडङ्गं मञ्जिष्ठाशर्करारास्नाः ॥ ४३५ ॥ नीलोत्पलं श्वदंष्ट्रा प्रपौण्डरीकं पुनर्नवा लवणम् । पिप्पल्यः सर्वेषां भागरक्षांशिकैः पिष्टैः ॥ ४३६ ॥ तैलं वा यदि सर्पिर्दत्वा क्षीरं चतुर्गुणं पक्कम् । आत्रेयनिर्मितमिदं तैलं नृपवल्लभं नाम्ना ॥ ४३७ ॥ तिमिरं पटलं काचं नक्तान्ध्यमर्बुदं तथान्ध्यश्च । श्वेतश्च लिङ्गनाशं नाशयति नीलकाव्यङ्गम् ॥ ४३८ ॥ मुखनासादौर्गन्ध्यं पलितश्च कालजं हनुस्तम्भम् । श्वासं कासश्च हिक्कां शोषं स्तम्भं तथान्यांश्च ॥ ४३९ ॥ मुखजान्ध्यमर्द्धभेदं रोगं बाहुग्रहं शिरःस्तम्भम् । रोगानथोर्ध्वजत्रोः सर्वानचिरेण नाशयति ॥ ४४० ॥

जीवक, ऋषभक, मेदा, दाख, शालिपर्णी,कटेरी, बडी कटेरी, मुलैठी, खिरैंटी, वायविडंग, मजीठ, मिश्री, रायसन, नीलकमल, गोखुरू, पुंडेरिया, पुनर्नवा, सैंधानमक और पीपल यह प्रत्येक औषधि एक एक तोला लेकर एकत्र पीस लेवे। इनके कल्कके द्वारा तेल या घृतको चौगुने दूधमें पकावे । इस नृपवल्लभतेलको महर्षि आत्रेयने निर्म्माण किया है। यह तेल तिमिर, पटल, काच, रात्र्यन्ध, अर्बुद, अन्धता, श्वेत, लिंगनाश, नीलिका, व्यंग, मुख और नासिकाकी दुर्गंध, पलितरोग, हनुस्तम्भ, श्वास, खाँसी, हिक्का; शोष, स्तम्भ तथा अन्यान्य मुखजन्य रोग, अन्ध्य, अर्द्धभेद, बाहुग्रह, शिरस्तम्भ, अर्द्धजत्रुरोग और अन्यान्य बहुतसे रोगोंको दूर करता है ॥ ४३५-४४०

महापिप्पल्याद्यतैल।

पिप्पली मधुकं द्राक्षा शुभ्रा ऋषभजीवकौ । सोत्पलं पुण्डरीकश्च मधुपर्णीफलत्रयम् ॥ ४४१ ॥ धावनीक्षीरकाकोली-मञ्जिष्ठाबृहतीबलाः । पुनर्नवा शताह्वा च विडङ्गं गोक्षुरु स्थिरा ॥ ४४२ ॥ एतान्यर्द्धपलानीह

श्लक्ष्णपिष्टानि पाचयेत् । त्रिफलाभृङ्गवासानां प्रपीड्य प्रस्थसम्मितान् ॥ ४३ ॥ बीजसारो वरस्तस्य प्रस्थमेकं तु दापयेत् । गृष्टेः क्षीरस्य प्रस्थौ च द्वौ द्वौ तस्य प्रदापयेत् ४४४ तिलतैलं समादाय शनैर्मृद्वग्निना पचेत् । त्रिफलाद्येन पयसा सम्यग्दृष्टन्तु मानवम् ॥ ४४५ ॥ मोदकेनाभयाद्येन कृत्वा संशोधनं ततः । यथोक्तेन विधानेन भिषग्वश्यं प्रदापयेत् ॥ ४४६ ॥ तिमिरे च सनक्तान्ध्ये शुक्रे काचे चतुर्विधे । आसन्नं यो न पश्येत यश्च दूरान्न पश्यति ॥ ४४७ ॥ प्रकाशमायतं वा यो नष्टदृष्टिश्च मानवः । मन्ददृष्टिः स्तब्धदृष्टिरधोदृष्टिश्च योजयेत् ४४८॥ अतिरिक्ते प्रदिष्टे च रक्ते वाताश्रिते तथा । वातपित्तप्रदुष्टेऽक्ष्णि पित्तश्लेष्मप्रदूषिते ॥ ४४९ ॥ कंडूयते च स्रवति पित्तेनात्याकुलाक्षता ॥ ४५० ॥ विद्युत्खद्योतवत्पश्येत्सूर्य्यचन्द्रसमप्रभाम् । सर्वदा चक्रता दृष्टिः सर्वनेत्रविकारनुत् ॥ ४५१ ॥

पीपल. मुलैठी, दाख, फटकिरी, ऋषभक, जीवक, कमल, पुंडेरिया, कुम्भेर, त्रिफला, पिठवन, क्षीरकाकोली, मजीठ, बडी कटेरी, खिरेंटी, पुनर्नवा, शतावर, वायविडंग, गोखुरू और शालिपर्णी ये प्रत्येक औषधि दो दो तोले लेकर बारीक पीसकर कल्क बनावे । तथा त्रिफला, भांगरा और अडूसा इनको पीसकर इनका कल्क एक एक प्रस्थ लेवे । विजयसारका काथ १ प्रस्थ, वाराहीकंदका स्वरस २ प्रस्थ, एक बारकी व्याई हुई गायका दूध २ प्रस्थ और तिलका तेल १ प्रस्थ इन सबको एकत्र मिलाकर उत्तम विधिसे तेलको पकावे । रोगीको अच्छे प्रकारसे देखकर त्रिफलादिके रसके साथ अथवा दूधके साथ अभयाद्य मोदकको सेवन कराकर प्रथम संशोधन करे, पश्चात् इस तेलको यथाविधिसे सेवन करावे । इस तेलको विधिपूर्वक सेवन करनेसे तिमिर, रात्र्यन्ध, शुक्र, चार प्रकारका काच, जो समीपमें उपस्थित पदार्थोंको नहीं देखसकता, जोदूरके पदार्थोंको नहीं देख सकता, जिसकी दृष्टि अच्छे प्रकारसे प्रकट नहीं होती, नष्टदृष्टि, मंददृष्टि, स्तब्धदृष्टि अधोदृष्टि, नेत्रोंसे विशेष स्राव होना, रुधिरजन्य दोष, वातजनित पीडा, वातपित्तसे दूषित नेत्र, पित्तकफजन्य नेत्ररोग, खुजली, स्राव, पित्तसे नेत्रोंकी व्याकुलता, नेत्रव्रण जो मनुष्य बिजली या खद्योतके समान देखते हैं, सूर्य और चंद्रमाके समान प्रकाशका दीखना, सदैव दृष्टिका चकित होना और सर्व प्रकारके नेत्ररोग दूर होते हैं ॥ ४४१ ॥ ४५१ ॥

अथ कृष्णागतकी चिकित्सा ।

काचे रक्तं जलौकाभिः हृत्वा पूर्वोक्तमाचरेत् ॥ ४५२ ॥

काचरोगमें जलौका आदिके द्वारा रुधिर निकलवाकर पूर्वोक्त चिकित्सा करे ॥ ४५२ ॥

मरिचादिचूर्णाञ्जन ।

शाणार्द्धं मरिचं द्वौ च पिप्पल्यर्णवफेनयोः । शाणार्धं सैन्धवाच्छाणं नवसौवीरकाञ्जनात् ॥ ४५३ ॥ पिष्टं सूक्ष्मं शिलायाश्च चूर्णाञ्जनमिदं शुभम् । कण्डूकाचकफार्त्तानां मलानाञ्च विशोधनम् ॥ ४५४ ॥

कालिमिरच २ माशे, पीपल २ माशे, समुद्रफेन २ माशे, सैंधानमक २ माशे और सौवीराञ्जन १८ माशे लेवे, इन सबको एकत्र शिलापर बारीक पीसलेवे । यह चूर्णाजन-कण्डू, काच, कफजन्य पीडा और मलको दूर करता है ॥ ४५३ ॥ ४५४ ॥

मेषशृङ्गाद्यञ्जन ।

समेषशृङ्गाञ्जनभागसम्मितः शङ्खाञ्जनः काचमलं व्यपोहति ॥ ४५५ ॥

भेडके सींगको घिसकर अञ्जन बनावे और उसमें बराबरका शंख मिलावे । दोनोंको एकत्र घिस लेवे यह अंजन-काच और मलको दूर करता है ॥४५५॥

मनःशिलाद्यञ्जन ।

शिलासैन्धवकासीसशंखव्योषरसांजनैः । सक्षौद्रैः काचशुक्रार्मतिमि-

रघ्नी रसक्रिया ॥ ४५६ ॥ दोषांधे तिमिरान्धे च तिमिरोक्तं क्रमं हितम् ॥ ४५७ ॥

मैनशिल, सैंधानमक, कसीस, शंख, त्रिकुटा और रसौत इन सबको समान भाग लेकर एकत्र जलमें घिसकर अंजन बनावे। फिर इसको शहदमें मिलाकर नेत्रोंमें आंजे तो काच, शुक्र, अर्म्म और तिमिर रोग नष्ट होता है। दोषान्ध और तिमिरान्धरोगमें तिमिरोक्त चिकित्सा करनी चाहिये ॥४५६॥ ॥ ४५७ ॥

वचादिक्काथ।

वचात्रिवृच्चन्दनकुण्डली च भूनिम्बनिम्बे रजनी सवासा। प्रस्थं जलस्य क्वथिताष्टभागं पिबेत्सुजीर्णे नकुलान्ध्यरोगे ॥ ४५८ ॥ काचं निशान्ध्यं तिमिरं तथाऽन्यान्नेत्रामयांस्तस्य च वर्त्मसंधौ। चिरप्रवृत्तानचिरेण हन्ति वज्रो यथाद्रीन्सुरराजमुक्तः ॥ ४५९ ॥

बच, निसोत, चन्दन, गिलोय, चिरायता, नीम, हलदी और अडूसा ये प्रत्येक औषधि समान भाग लेकर एक प्रस्थ जलमें पकावे। जब पकते पकते जल आठवां भाग बाकी रहजाय तब उतारकर छान लेवे। इस क्राथको पान करनेसे पुराना नकुलान्ध्यरोग दूर होता है। तथा काच, रात्र्यन्ध, तिमिर एवं अन्यान्य वर्त्म और संधिगतरोग ये सब बहुत पुराने होनेपर भी शीघ्र दूर होजाते हैं। जिसप्रकार इन्द्रके हाथसे छूटाहुआ वज्र अनेक पर्वतोंको नष्ट कर देता है ॥ ४५८ ॥ ४५९ ॥

अथ नक्तान्धकी चिकित्सा।

करञ्जपद्मकिञ्जल्कं चन्दनोत्पलगैरिकैः। गोशकृद्रससंपिष्टैर्नक्तान्ध्येऽञ्जनमिष्यते ॥ ४६० ॥

करंजके बीज, कमलकी केशर, चन्दन, कमल और गेरु इनको एकत्र गोबरके रसमें पीसकर नेत्रोंमें आंजनेसे रात्र्यन्धरोग दूर होता है ॥ ४६० ॥

रसाञ्जनं निशा दारु जातीपत्ररसो मधु। नक्तान्ध्यतां जयेदेतदञ्जनं साधु योजितम् ॥ ४६१ ॥

रसौत, हलदी, देवदारु, चमेलीके पत्तोंका रस और शहद इन सबको एकत्र घिसकर नेत्रोंमें आंजनेसे रात्र्यन्धरोग दूर होता है ॥ ४६१ ॥

रसांजनं हरिद्रे द्वे मालतीमधुपल्लवाः। गोशकृद्रससंयुक्ता वर्त्ती रात्र्यन्धनाशिनी ॥ ४६२ ॥

रसौत, हलदी, दारुहलदी, चमेली और महुवेके पत्ते इन सबको एकत्र पीसकर गोबरके रसमें खरल करके बत्ती बना लेवे। इन बत्तियोंको नेत्रोंमें लगानेसे रात्र्यन्धरोग दूर होता है ॥ ४६२ ॥

जातीपत्ररसक्षौद्रनिशाह्वयरसांजनैः। नक्तान्ध्यमञ्जनं हन्यात्कृष्णाया गोमयान्वितम् ॥ ४६३ ॥

चमेलीके पत्तोंका रस, शहद, हलदी और रसौत इनको एकत्र पीसकर नेत्रोंमें आंजनेसे अथवा केवल पीपलको गोबरके रसमें घिसकर नेत्रोंमें लगानेसे रात्र्यन्धरोग दूर होता है ॥ ४६३ ॥

दध्ना विघृष्टं मरिचं रात्र्यन्ध्याञ्जनमिष्यते। पिप्पल्योऽपि हितास्तद्वद्गोशकृद्रसभाविताः ॥ ४६४ ॥

कालीमिरचको भेडके दहीमें घिसकर नेत्रोंमें आंजनेसे रात्र्यन्धरोग दूर होता है इसीप्रकार पीपलको गोबरके रसमें भावना देकर नेत्रोंमें लगानेसे रात्र्यन्ध रोग दूर होता है ॥ ४६४ ॥

कणा छागयकृन्मध्ये पक्वा तत्राणुपेषिता। अचिराद्धन्ति नक्तान्ध्यं तद्वत्सक्षौद्रमूषणम् ॥ ४६५ ॥

पीपलको बकरीके यकृत् (कलेजा) में पकाकर उसीमें घिसकर नेत्रोंमें लगानेसे तत्काल ही रतौंधी दूर होजाती है। अथवा कालीमिरचको शहदमें घिसकर नेत्रोंमें लगानेसे रतौंधी दूर होती है ॥ ४६५ ॥

पचेच्च गोधायकृदर्द्धपाटितं सुपूरितं मागधिकाभिरग्निना। निषेवितं तद्यकृदंजनेन निहन्ति नक्तान्ध्यमसंशयं खलु ॥ ४६६ ॥

गोहके यकृत् (कलेजा) में पीपलको पकाकर और उसीमें घिसकर नेत्रोंमें लगानेसे रात्र्यन्ध (रतौंधी) दूर होती है ॥ ४६६ ॥

अथ दृष्टिरोगकी चिकित्सा ।

नीलोत्पलस्य किञ्जल्कं गैरिकञ्च शकृद्रसम् । गुटिकाञ्जनमेतत्स्याद्दिनरात्र्यन्धयोर्हितम् ॥ ४६७ ॥

नीलकमलकी केशर और गेरू इनको गोबरके रसमें खरल करके गोलियां बना लेवे । उनको घिस कर नेत्रोंमें लगानेसे दिवांधता और रात्र्यन्धता दूर होती है ॥ ४६७ ॥

नदीजशंखत्रिकटून्यथाञ्जनं मनःशिला द्वे च निशे गवां शकृत् । सचन्दनेयं गुटिकाथ चाञ्जने प्रशस्यते रात्रिदिनेष्वपश्यताम् ॥ ४६८ ॥

नदीका शंख, सोंठ, मिरच, पीपल, अंजन, मैनशिल, हलदी, दारुहलदी और चन्दन इनको समान भाग लेकर गोबरके रसमें पीसकर गोली बना करके नेत्रोंमें आँजनेसे रात्रि और दिन दोनोंमें न दीखनेवाले मनुष्योंको अच्छे प्रकारसे दीखने लगता है ॥ ४६८ ॥

सूर्य्यदर्शनदग्धायां क्रियां शीतां प्रयोजयेत् । हिमं घृष्टं घृतोपेतमञ्जनञ्चोपशस्यते ॥ ४६९ ॥

सूर्य्यको देखनेसे जिनकी दृष्टि दग्ध होगई है उनके लिये शीतल उपचार करे । कपूर या चन्दनको घृतमें घिसकर नेत्रोंमें लगानेसे नेत्रोंकी गरमी दूर होती है ॥ ४६९ ॥

रसांजनं घृतं क्षौद्रं तालीसं स्वर्णगैरिकम् । गोशकृद्रससंयुक्तं पित्तोपहतदृष्टये ॥ ४७० ॥

रसौत, घी, शहद, तालीसपत्र और पीलागेरू इन सबको एकत्र पीसकर गोबरके रसमें मिलाकर नेत्रोंमें लगानेसे पित्तहत दृष्टि शांत होती है ॥ ४७० ॥

काश्मरीपुष्पमधुकदार्वीलोध्ररसांजनैः । सक्षौद्रमञ्जनं कुर्य्यात्पित्तव्याधिप्रशान्तये ॥ ४७१ ॥

कुम्भेरके फूल, मुलैठी, दारुहलदी, लोध और रसौत इनको एकत्र बारीक पीसकर शहदमें मिलाकर नेत्रोंमें आंजनेसे पित्तजन्य नेत्र रोग दूर होता है ॥ ४७१ ॥

अथ शुक्लगतरोगका निदान ।

प्रस्तार्यर्मके लक्षण ।

प्रस्तार्य्यर्म्म तनुस्तीर्णं श्यावं रक्तनिभं सिते ।

नेत्रोंके सफेद भागमें पतला, विस्तीर्ण (फैला हुआ चौडा), कलौंचलिये हुए अथवा लाल और मण्डलाकार जो सफेद चिह्न होता है उसको प्रस्तार्यर्म कहते हैं ।

शुक्लार्म्मके लक्षण ।

सश्वेतं मृदु शुक्लार्म्म शुक्ले तद्वर्द्धते चिरात् ॥ ४७२ ॥

नेत्रोंके सफेद भागमें बहुत सफेद और कोमल जो चिन्ह होता है, उसको शुक्लार्म्म कहते हैं, वह बहुत दिनोंमें बढता है ॥ ४७२ ॥

रक्तार्मके लक्षण ।

पद्माभं मृदु रक्तार्म्म यन्मांसञ्चीयते सिते ।

लाल कमलके समान लाल और नरम जो मांस नेत्रोंके सफेद भागमें बढता जाता है उसको रक्तार्म्म कहते हैं ।

अधिमांसार्मके लक्षण ।

पृथुमृद्वधिमांसार्म बहुलञ्च यकृन्निभम् ॥ ४७३ ॥

विस्तीर्ण, कोमल, गाढा और कुछ एक कलौंस लिये जो मांस बढता है उसको अधिमांसार्म्म कहते हैं ॥ ४७३ ॥

स्नाय्वर्मके लक्षण ।

स्थिरं प्रसारि मांसाढ्यं शुष्कं स्नाय्वर्मपञ्चमम् ॥ ४७४ ॥

सफेद भागमें कठिन, फैलनेवाला और स्रावरहित जो मांस ऊँचा होता है उसको स्नाय्वर्म कहते हैं ॥ ४७४ ॥

शुक्तिरोगके लक्षण ।

श्यावाः स्युः पिशितनिभास्तु बिन्दवो ये शुक्त्याभाः सितनियताः स शुक्तिसंज्ञः ।

नेत्रोंके सफेदभागमें काले रंगका, मांसके समान और सीपके आकारवाला जो बिंदु होता है उसको शुक्ति कहते हैं ।

अर्जुनके लक्षण ।

एको यः शशरुधिरोपमश्च बिन्दुः शुक्लस्थो भवति तमर्जुनं वदन्ति ४७५

नेत्रोंके सफेद भागमें खरगोशके रुधिरके समान जो एक बिंदु होता है उसको अर्जुन कहते हैं ४७५

पिष्टकके लक्षण ।

श्लेष्ममारुतकोपेन शुक्ले मांसं समुन्नतम् । पिष्टवत्पिष्टकं विद्धि मलाक्तादर्शसन्निभम् ॥ ४७६ ॥

कफ और वातके प्रकोपसे नेत्रोंके सफेदभागमें पिट्ठीके समान जो मांस ऊँचा होता है और मलयुक्त दर्पणके समान दीखता है उसको पिष्टक कहते हैं ४७६

शिराजालके लक्षण ।

जालाभः कठिनशिरो महान्सरक्तः सन्तानः स्मृत इह जालसंज्ञितस्तु ।

नेत्रोंके सफेदभागमें जालेके समान कठिन शिराओंसे व्याप्त, लाल और बडा जो शिराओंका समूह होता है, उसको शिराजाल या जाला कहते हैं ।

शिराजपिडिकाके लक्षण ।

शुक्लस्था सितपिडिका शिरावृता या तां ब्रूयादसितसमीपजा शिराजा ॥ ४७७ ॥

नेत्रके सफेदभागमें शिराओंसे आवृत जो सफेद फुंसी कृष्णभागके समीप होती है, उसको शिराजपिडिका कहते हैं ॥ ४७७ ॥

बलासके लक्षण ।

कांस्याभोऽमृदुरथ वारिबिन्दुकल्पो विज्ञेयो नयनसिते बलाससंज्ञः४७८॥

नेत्रके सफेद भागमें कांसेके समान सफेद, कठिन और जलके बूंदके समान कुछ एक ऊंची जो बूंद होती है उसको बलासग्रथित कहते हैं ॥ ४७८ ॥

शुक्लगतरोगकी चिकित्सा ।

प्रस्तार्यर्म च स्नाय्वर्म तथैवार्माधिसंज्ञकम् । लोहितार्म च शुक्लार्म कृष्णं प्राप्तानि छेदयेत् ॥ ४७९ ॥

प्रस्तार्य्यर्म, स्नाय्वर्म्म,अधिमांसार्म्म,रक्तार्म्म और शुक्लार्म्म ये सब जब नेत्रके कृष्णभागमें पहुँच जायँ तब इनको शस्त्रके द्वारा छेद देना चाहिये ॥४७९॥

अर्म चाल्पं दधिनिभं नीलं रक्तमथापि वा । धूसरं तनु यच्चापि शुक्लवत्समुपाचरेत ॥ ४८० ॥

जो अर्म्म अल्प हो, दहीके समान सफेद, नीला, लाल, धूसर अथवा पतला हो तो शुक्लार्म्मके समान चिकित्सा करे ॥ ४८० ॥

कृष्णलोहरजस्ताम्रशंखविद्रुमसिन्धुजैः । समुद्रफेनकासीसस्रोतोऽञ्जनसुमस्तुभिः । लेपनं वा कृतं नस्यं परमुत्तममर्म्मणि ॥ ४८१ ॥

काले लोहेका चूर्ण, तांबा, शंख,मूँगा, सैंधानमक, समुद्रफेन, कसीस और अंजन इनको एकत्र दहीके पानीमें खरल करके नेत्रोंमें लेप करना अथवा इसके द्वारा नस्य देना अर्म्मरोगमें अत्यन्त श्रेष्ठ है ॥४८१॥

पिप्पलीत्रिफलालाक्षा लोहचूर्णं ससैन्धवम् । भृङ्गराजरसे पिष्टं गुटि. कांजनमिष्यते ॥ ४८२ ॥ अर्म सतिमिरं काचं कंडूं शुक्रं तथार्जुनम् । अजकां नेत्ररोगांश्च हन्यान्निरवशेषतः ॥ ४८३ ॥

पीपल, त्रिफला, लाख, लोहेका चूर्ण और सैंधानमक इन सबको एकत्र खरल करके भाँगरेके रसमें पीसकर गोली बनाकर नेत्रोंमें लगानेसे अर्म्म,तिमिर, काच,कण्डू, शुक्र,अर्जुन, अजका और सर्व प्रकारके नेत्ररोग दूर होते हैं ॥ ४८२ ॥ ४८३ ॥

संचूर्ण्य मरिचाऽक्षे च रजन्या रसमर्दिते । लेपनादर्मणां नाशं करोत्येष प्रयोगराट् ॥ ४८४ ॥

कालीमिरच और बहेड़ेको पीसकर हलदीके रसमें खरल करके लेपकरनेसे अर्मरोग नष्ट होता है ४८४॥

पुष्पाख्यतार्क्ष्यजसितोदधिफेनशङ्ख,-सिन्धूत्थगैरिकशिलामरिचैः समांशैः । पिष्टैस्तु माक्षिकरसेन रसक्रियेयं, हन्त्यर्मकाचतिमिरार्जुनवर्त्मरोगान् ॥ ४८५ ॥

सौंफ, रसौत, मिश्री, समुद्रफेन, शंख, सैंधानमक, गेरू, मैनशिल और कालीमिरच इन सबको समान भाग लेकर शहदमें खरल करके नेत्रोंमें लगानेसे अर्म्म, काच, तिमिर, अर्जुन और वर्त्मरोग नष्ट होते हैं ४८५

क्रियां शुक्तयामये कुर्य्यात्पित्ताभिष्यन्दजिच्छुभाम् ॥ ४८६ ॥ बलासाह्वयपिष्टे तु कार्य्यं शोणितमोक्षणम् । कफाभिष्यन्दवत्सर्वं क्रमं कुर्य्याद्विचक्षणः ॥ अञ्जनं कट्फलं व्योषबीजपूररसाञ्जनैः ॥ ४८७ ॥

शुक्तिरोगमें पित्ताभिष्यंदके समान चिकित्सा करनी चाहिये । बलासग्रथित और पिष्टरोगमें रक्तमोक्षण कराना चाहिये । तथा कफाभिष्यन्दरोगके समान सम्पूर्ण चिकित्सा करे । एवं अंजन, कायफल, त्रिकुटा, बिजौरानींबू और रसौत इन सबको एकत्र पीसकर नेत्रोंमें आँजे ॥ ४८६ ॥ ४८७ ॥

अर्जुने शर्करामस्तुक्षौद्रैराश्च्योतनं हितम् ।

अर्जुनरोगमें मिश्री, दहीका पानी और शहद इनको मिलाकर आश्च्योतन करे ।

शङ्खः क्षौद्रेण संयुक्तः कतकः सैन्धवेन वा । सितयाऽर्णवफेनो वा पृथगंजनमर्जुने ॥ ४८८ ॥

शंखको शहदमें घिसकर, निर्म्मलीके फलोंको सैंधेनमकके साथ घिसकर और मिश्रीको समुद्रफेनके साथ घिसकर नेत्रोंमें आँजनेसे अर्जुनरोग दूर होता है ॥ ४८८ ॥

अथ सन्धिजरोगका निदान ।

पक्वः शोथः सन्धिजो यः सतोदः पूयस्रावी सोऽत्र पूयालसाख्यः ।

नेत्रकी सन्धियोंमें उत्पन्न होकर जो सूजन पक जाती है उसमें सुई चुभाने सरीखी पीडा होती है और उसमेंसे दुर्गंधित राध बहती है उसको पूयालस रोग कहते हैं ॥

उपनाहके लक्षण ।

ग्रन्थिर्नाल्पो दृष्टिसन्धावपाकी कंडूप्रायो नीरुजस्तूपनाहः ॥ ४८९ ॥

नेत्रकी सन्धियोंमें बड़ी, कम पकनेवाली, खुजलीयुक्त और अल्प पीडावाली, जो गाँठ उत्पन्न होती है उसको उपनाह कहते हैं ॥ ४८९ ॥

स्राव अथवा नेत्रनाडीके लक्षण ।

गत्वा सन्धीनश्रुमार्गेण दोषाः कुर्युः स्रावाँल्लक्षणैः स्वैरुपेतान् । तं हि स्रावं नेत्रनाडीति चैके तस्या लिङ्गं कीर्त्तयिष्ये चतुर्धा ॥ ४९० ॥ पाकात्सन्धौ संस्रवेद्यस्तु पूयं पूयस्रावोऽसौ गदः सर्वजस्तु । श्वेतं सान्द्रं पिच्छलं यः स्रवेत्तु श्लेष्मस्रावोऽसौ विकारो मतस्तु ॥ ४९१ ॥ रक्तस्रावः शोणितोत्थो विकारो रक्तं चोष्णं संस्रवेत्तत्प्रभूतम् । हारिद्राभं पीतमुष्णं जलाभं पित्तात्स्रावः संस्रवेत्सन्धिमध्यात् ॥ ४९२ ॥

दोष अश्रुमार्गके द्वारा संधियोंमें जाकर अपने अपने लक्षणोंसे युक्त स्रावको उत्पन्न करते हैं । उस स्रावको कोई कोई आचार्य नेत्रनाडी कहते हैं । यह नेत्रनाड़ी चार प्रकारकी होती है, उसके लक्षण नीचे कहते हैं । जो संधिमें पाक होनेसे दुर्गंधित राध बहती है, उसको पूयास्राव रोग कहते हैं । वह त्रिदोषसे उत्पन्न होता है । जो सफेद, गाढा और स्निग्ध स्राव होता है उसको

कफस्राव कहते हैं । जिस सन्धिमेंसे बहुत गरम रुधिर बहता है उसको रक्तजन्य रुधिरस्राव कहते हैं । संधिमेंसे हलदीके समान पीला, गरम या पानीके समान जो स्राव होता है उसको पित्तस्राव कहते हैं ॥४९०॥ ॥ ४९१ ॥ ४९२ ॥

पर्वणी तथा अलजीके लक्षण ।

ताम्रा तन्वी दाहशूलोपपन्ना रक्ताज्ज्ञेया पर्वणी वृत्तशोथा । जाता सन्धौ कृष्णशुक्लेऽलजी स्यात्तस्मिन्नेव ख्यापिता पूर्वलिङ्गैः ॥ ४९३ ॥

नेत्रकी संधियोंमें तांबेके समान लाल, छोटी, गोल और सूजन युक्त जो फुंसी उत्पन्न होती है उसमें दाह और शूल होता है उसको पर्वणी कहते हैं तथा नेत्रोंकी सफेद और काली संधियोंमें जो पूर्वोक्त लक्षणोंवाली अर्थात् प्रमेहाधिकारमें लिखेलक्षणोंके अनुसार फुंसी उत्पन्न हो तो उसको अलजी कहते हैं ४९३

कृमिग्रन्थिके लक्षण ।

कृमिग्रन्थिर्वर्त्मनः पक्ष्मणश्च कंडूं कुर्युः कृमयः संधिजाताः । नानारूपा वर्त्मशुक्लान्तसन्धौ गच्छंत्यन्तर्लोचनं दूषयन्तः ॥ ४९४ ॥

जो पलककी संधिमें और पलकोंके रोमोंकी संधिमें खुजली करनेवाले अनेकप्रकारके कृमि उत्पन्न होते हैं ये आंखोंके पलक और सफेद भागकी संधिमें विचरते हुए नेत्रके भीतरके भागको दूषित कर देते हैं, इसको कृमिग्रंथि कहते हैं ॥ ४९४ ॥

सन्धिजरोगकी चिकित्सा ।

पूयालसे शिरां भित्त्वा ततस्तमुपनाह्य वा । नेत्रपाकविधिं कुर्य्यात्परं मुक्तांजनं हितम् ॥ ४९५ ॥

पूयालसरोगमें प्रथम शिराको वध कर फिर उपनाहकर्म अर्थात् लेप पिंडी आदि प्रयोग करे । तथा नेत्रपाकके समान चिकित्सा करे और महामुक्तांजन प्रभृति औषधि सेवन करे ॥ ४९५ ॥

भित्त्वोपनाहं कफजं पिप्पलीमधुसैंधवैः । विलिखेन्मण्डलाग्रेण प्रच्छयेद्वा समन्ततः ॥ ४९६ ॥

कफजउपनाहको प्रथम भेदन करके फिर पीपल शहद और सैंधानमक इनसे एकत्र पीसकर मण्डलाग्रशस्त्रके द्वारा लेखनकर्म्म करे । अथवा उपर्युक्त औषधियोंको नेत्रोंमें भरे ॥ ४९६ ॥

त्रिफलामृतकासीससैन्धवैः सरसांजनैः । रसक्रिया कृमिग्रन्थौ भिन्ने स्यात्प्रतिसारणम् ॥ ४९७ ॥

कृमिग्रन्थिरोगमें त्रिफला, घी, हीराकसीस, सैंधा नमक और रसौत इनको एकत्र मिलाकर नेत्रोंमें डाले और जो वह ग्रन्थि फूटजाय तो प्रतिसारण करे ॥ ४९७ ॥

पर्वणीं पिटिकां सन्धिभागे छिन्द्यादसंशयम् । हितं चाभ्यधिके छिन्ने श्च्योतनं मधुसैन्धवैः ॥ ४९८ ॥

पर्वणीपिडिकाको निःसंदेह होकर संधिभागमें छेदन करे । फिर शहदमें सैंधानमकका चूर्ण मिलाकर नेत्रोंमें उसकी बूँदें डाले ॥ ४९८ ॥

स्रावेषु त्रिफलाक्वाथं यथादोषं प्रयोजयेत् । क्षौद्रेणाज्येन पिप्पल्या मिश्रं विध्येच्छिरां तथा ॥ ४९९ ॥

स्राव होनेपर यथादोषानुसार त्रिफलेके क्वाथमें शहद, घी और पीपल डालकर देवे एवं शिरावेध करे ॥ ४९९ ॥

पथ्याक्षधात्रीफलमध्यबीजैस्त्रिद्व्येकभागैर्विदधीत वर्त्तिम् । तयाऽञ्जयेदश्रुमतिप्रवृद्धमक्ष्णोर्हरेत्कष्टमपि प्रकोपम् ॥ ५०० ॥

हरडकी मींग ३ भाग, बहेडेकी मींग २ भाग और आमलेकी मींग १ भाग इनको एकत्र पीसकर बत्ती बनालेवे । इस बत्तीको नेत्रोंमें लगानेसे नेत्रोंका अत्यन्त बढाहुआ स्राव, पीडा और प्रकोप दूर होता है ॥ ५०० ॥

सप्ताह्वशारिवानन्ता-कालीयागरुचन्दनैः । शतपुष्पाश्वगन्धानां चूर्णैस्तैलं विपाचयेत् ॥ ५०१ ॥ पयस्यष्टगुणे नस्यमेतदश्रुहरं परम् ॥ ५०२ ॥

सतावन, शारिवा, अनन्तमूल, दारुहलदी, अगर, चंदन सोंफ और असगंध इन सबको एकत्र पीसकर कल्क बना लेवे । उस कल्कके साथ अठगुने दूधमें तेलको पकावे। इस तेलकी नस्य देनेसे नेत्रस्रावरोग दूर होता है ॥ ५०१ ॥ ५०२ ॥

चक्षुःस्रावप्रशान्त्यर्थं कार्य्यमेतन्महौषधम् । हिज्जलस्य फलं घृष्ट्वा पानीये नित्यमंजनम् ॥ ५०३ ॥ कार्पासीफलजम्ब्वाम्रं जलैर्घृष्टं रसांजनम् । मधुयुक्तं चिरोत्थश्च चक्षुःस्रावमपोहति ॥ ५०४ ॥

नेत्रोंके स्रावको नष्ट करनेके लिए ये सब औषध प्रयोग करे । समुद्रफलको जलमें घिसकर नित्य नेत्रोंमें आँजे अथवा कपासके फल, जामुन, आमकी छाल और रसौत इन सबको एकत्र जलमें घिस कर और शहद मिलाकर नेत्रोंमें लगावे तो नेत्रोंका स्राव दूर होता है ॥ ५०३ ॥ ५०४ ॥

अथ वर्त्मजरोगका निदान ।

उत्संगिनीके लक्षण ।

अभ्यन्तरमुखी ताम्रा बाह्यतो वर्त्मनश्च या । सोत्सङ्गोत्सङ्गपिडिका रक्तजा स्थूलकंडुरा ॥ ५०५ ॥

नेत्रोंके पलकोंके भीतर मुखवाली, बाहरसे लाल और भीतरसे जो राधयुक्त फुन्सी होती है उसके भीतर अनेकों छोटी छोटी फुन्सियाँ होती हैं। वह स्थूल और खुजलीयुक्त होती है, उसको उत्संगिनी कहते हैं । वह रुधिरके प्रकोपसे होती है और नीचेके कोयेमें होती है ऐसा जानना चाहिए ॥ ५०५ ॥

कुम्भिकाके लक्षण ।

वर्त्मान्ते पिडिकाध्माता भिद्यन्ते च स्रवन्ति च। भिषग्भिराद्यैस्ताः प्रोक्ताः कुम्भिकाः सान्निपातजाः ॥ ५०६ ॥

पलकके किनारेपर ऊँची और जलकुम्भीके बीजके समान जो फुंसियाँ होती हैं और फूटती हैं तथा फूट २ कर बहती हैं उनको कुम्भीका कहते हैं, सान्निपातसे उत्पन्न होती हैं और असाध्य हैं ॥ ५०६ ॥

पोथकाके लक्षण ।

स्राविण्यः कण्डुरा गुर्व्यो रक्तसर्षपसन्निभाः । रुजावत्यश्च पिडिकाः पोथक्य इति कीर्तिताः ॥ ५०७ ॥

नेत्रोंके पलकोंमें जो फुन्सियें बहनेवाली, खुजलीसहित, भारी, लाल सरसोंके समान लाल और पीडा करनेवाली होती हैं उनको पोथकी कहते हैं ५०७

वर्त्मशर्कराके लक्षण ।

पिटिका या खरा स्थूला सूक्ष्माभिरभिसंवृता । वर्त्मस्था शर्करा नाम स रोगो वर्त्मदूषकः ॥ ५०८ ॥

नेत्रोंके कोयेमें जो बड़ी और कठिन स्पर्शवाली फुंसी हो और वह छोटी छोटी अनेक फुंसियोंसे व्याप्त हों तो उसको वर्त्मशर्करा कहते हैं । वह कोयोंको बिगाड़ देती है ॥ ५०८ ॥

अर्शोवर्त्मके लक्षण ।

एर्वारुबीजप्रतिमाः पिटिका मन्दवेदनाः । श्लक्ष्णाः खराश्च वर्त्मस्थास्तदर्शोवर्त्म कीर्त्यते ॥ ५०९ ॥

पलकोंमें ककडीके बीजोंके समान, मन्दपीडायुक्त, चिकनी और तीक्ष्ण अग्रभागवाली जो फुंसियां होती हैं उनको अर्शोवर्त्म कहते हैं ॥ ५०९ ॥

शुष्कार्शके लक्षण ।

दीर्घाङ्कुरः खरस्पर्शो दारुणोऽभ्यन्तरोद्भवः । व्याधिरेषोऽतिविख्यातः शुष्कार्श इति कीर्त्यते ॥ ५१० ॥

नेत्रके पलकके भीतर खरखरे, कठिन और दारुण जो बड़े बड़े अंकुर होते हैं उनको शुष्कार्श कहते हैं ॥ ५१० ॥

अंजननामिकाके लक्षण ।

दाहतोदवती ताम्रा पिडिका वर्त्मसम्भवा । मृद्वी मन्दरुजा सूक्ष्मा ज्ञेया साञ्जननामिका ॥ ५११ ॥

जो फुंसी दाह, सुई चुभाने सरीखी पीडायुक्त, लाल, कोमल, छोटी और मन्दपीडावाली नेत्रके पलकमें उत्पन्न होती है, उसको अंजननामिका कहते हैं ॥ ५११ ॥

बहुलवर्त्मके लक्षण ।

वर्त्मोपचीयते यस्य पिडिकाभिः समन्ततः । सवर्णाभिः स्थिराभिश्च विद्याद्बहुलवर्त्म तत् ॥ ५१२ ॥

जिसके नेत्रोंके पलकके चारों ओरसे त्वचाके वर्णके समान वर्णवाली और कठिन जो फुंसियें भरजाती हैं उसको बहुलवर्त्म कहते हैं ॥ ५१२ ॥

वर्त्मबन्धके लक्षण ।

कंडूमताल्पतोदेन वर्त्मशोथेन यो नरः । न समं छादयेदाक्षि स भवेद्वर्त्मबन्धकः ॥ ५१३ ॥

जब नेत्रके पलकोंमें नेत्रोंके समान सूजन होंजानेसे मनुष्य नेत्रोंको अच्छे प्रकारसे बन्द नहीं कर सकता है उसको वर्त्मबंध कहते हैं । उस सूजनमें खुजली और कुछएक सुई चुभाने सरीखी पीडा होती है ॥ ५१३ ॥

क्लिष्टवर्त्मके लक्षण ।

मृद्वल्पवेदनं ताम्रं यद्वर्त्म सममेव च । अकस्माच्च स्रवेद्रक्तं क्लिष्टवर्त्मेति तद्विदुः ॥ ५१४ ॥

नेत्रके दोनों कोयें जब नरम, ताम्रवर्ण, अल्पपीडायुक्त और अकस्मात् एक साथ लाल होजाते हैं तो उसको क्लिष्टवर्त्म कहते हैं ॥ ५१४ ॥

वर्त्मकर्दमके लक्षण ।

क्लिष्टं पुनः पित्तयुतं शोणितं विदहेद्यदा । ततः क्लिन्नत्वमापन्नमुच्यते वर्त्मकर्दमम् ॥ ५१५ ॥

उपर्युक्त क्लिष्टवर्त्म जब पित्तसहित रुधिरको दहन करता है तब वह गीला होजाता है, गीलेपनसे उसको वर्त्मकर्दम कहते हैं ॥ ५१५ ॥

श्यावबर्त्मके लक्षण ।

वर्त्म यद्बाह्यतोऽन्तश्च श्यावं शूनं सवेदनम् । तदाहुः श्याववर्त्मेति वर्त्मरोगविशारदाः ॥ ५१६ ॥

जो नेत्रके पलकके बाहर और भीतर काली सूजन हो और उसमें पीडा हो तो उसको वर्त्मरोगजाननेवाले वैद्य श्याववर्त्म कहते हैं ॥ ५१६ ॥

प्रक्लिन्नवर्त्मके लक्षण ।

अरुजं बाह्यतः शूनं वर्त्म यस्य नरस्य हि । प्रक्लिन्नवर्त्म तद्विद्यात् क्लिन्नमत्यर्थमन्ततः ॥ ५१७ ॥

जिस मनुष्यके कोये कुछ एक पीडायुक्त, बाहरसे सूजे हुए और अधिकतर कीचडयुक्त तथा भीजे हुए हों तो उसको प्रक्लिन्नवर्त्म कहते हैं ॥ ५१७ ॥

अक्लिन्नवर्त्मके लक्षण ।

यस्य धौतान्यधौतानि सम्बध्यन्ते पुनः पुनः । वर्त्मान्युपरिपक्वानि विद्यादक्लिन्नवर्त्म तत् ॥ ५१८ ॥

जिसके नेत्रके पलक धोनेपर या नहीं धोनेपर वारम्वार चिपककर मिलजायँ और पके नहीं अर्थात् कच्चे रहें उसको अक्लिन्नवर्त्म कहते हैं ॥ ५१८ ॥

वातहतवर्त्मके लक्षण ।

विमुक्तसन्धिनिश्चेष्टं वर्त्म यस्य न मील्यते । एतद्वातहतं वर्त्म सरुजं यदि वारुजम् ॥ ५१९ ॥

जिसके पलककी सन्धि अलग अलग होजायँ, पलक मिचें और खुलें नहीं और वेदनासहित अथवा वेदनारहित तथा सकुचनेवाली होजायँ तो उसको वातहतवर्त्म कहते हैं ॥ ५१९ ॥

वर्त्मार्बुदके लक्षण ।

वर्त्मान्तरस्थं विषमं ग्रन्थिभूतमवेदनम् । विज्ञेयमर्बुदं पुंसां सरक्तमविलम्बितम् ॥ ५२० ॥

मनुष्योंके पलकोंके भीतर टेढी, तिरछी, अल्पपीडावाली, लाल और शीघ्र बंढनेवाली कठिन गांठ हो तो उसको वर्त्मार्बुद जानना चाहिए ॥ ५२० ॥

निमेषके लक्षण ।

निमेषिणीः शिरा वायुः प्रविष्टो वर्त्मसंश्रयः । चालयत्यथ वर्त्मानि निमेष इति तद्विदुः ॥ ५२१ ॥

पलकोंमें रहनेवाली वायु पलकोंको खोलने और बंद करनेवाली नेत्रोंकी नसोंमें प्राप्त होकर जब पलकोंको चलायमान करती है उसको तो निमेष कहते हैं ॥ ५२१ ॥

शोणितार्शके लक्षण ।

वर्त्मस्थो यो विवर्धेत लोहितो मृदुरंकुरः । तद्रक्तजं शोणितार्शश्छिन्नं छिन्नं विवर्धते ॥ ५२२ ॥

नेत्रके कोयेमें जो लाल और नरम मांसका अंकुर उत्पन्न होकर बढ़ता है उसको रुधिरजन्य शोणितार्श कहते हैं । यह वारंवार काटनेसे वारंवार बढजाते हैं ॥ ५२२ ॥

लगणके लक्षण ।

अपाकी कठिनः स्थूलो ग्रन्थिर्वर्त्मभवो रुजः । सकंडूः पिच्छिलः कोलसंस्थानो लगणस्तु सः ॥ ५२३ ॥

नहीं पकनेवाली, कठिन, अल्प पीडायुक्त, बडी, खुजली सहित, चिकनी और झडबेरके समान जो गांठ नेत्रके पलकमें होती है, उसको लगण कहते हैं ॥ ५२३ ॥

बिसवर्त्मके लक्षण ।

त्रयो दोषा बहिः शोथं कुर्युश्छिद्राणि वर्त्मनोः । प्रस्रवंत्यन्तरुदकं बिसवद्बिसवर्त्म तत् ॥ ५२४ ॥

वातादि तीनों दोष कुपित होकर नेत्रोंके पलकोंके ऊपर सूजन और छिद्रोंको उत्पन्न करते हैं । उन छिद्रोंमेंसे कमलकंदके छिद्रोंके समान जल झरता रहता है उसको बिसवर्त्मरोग कहते हैं ॥ ५२४ ॥

कुञ्चनके लक्षण ।

वाताद्या वर्त्मसंकोचं जनयन्ति यदा मलाः । तदा द्रष्टुं न शक्नोति कुञ्चनं नाम तद्विदुः ॥ ५२५ ॥

जब वातादिदोष नेत्रोंके दोनों पलकोंको संकुचित करते हैं तब मनुष्य देखनेको असमर्थ होजाता है उसको कुंचन कहते हैं ॥ ५२५ ॥

पक्ष्मकोपके लक्षण ।

प्रचालितानि वातेन पक्ष्माण्यक्षि विशन्ति हि । घृष्यन्त्यक्षि मुहुस्तानि संरम्भं जनयन्ति च ॥ ५२६ ॥ असिते च सिते भागे मूलकोशात्पतन्त्यपि । पक्ष्मकोपः स विज्ञेयो व्याधिः परमदारुणः ॥ ५२७ ॥

वायुसे चलायमान पलकोंके बाल नेत्रोंमें घुस जाते हैं और वे वारंवार नेत्रोंको घिसते हैं इससे नेत्रके काले या सफेद भागमें सूजन होजाती है और वह बाल जड़से टूट जाते हैं इस दारुणरोगको पक्ष्मकोप कहते हैं ॥ ५२६ ॥ ५२७ ॥

पक्ष्मशातके लक्षण ।

वर्त्मपक्ष्माशयगतं पित्तं रोमाणि शातयेत् । कंडूं दाहञ्च कुरुते पक्ष्मशातं तमादिशेत् ॥ ५२८ ॥

पलक और कोयेकी जड़में प्राप्त हुआ पित्त नेत्रोंके बालोंको गिरा देता है । इससे नेत्रोंमें खुजली और दाह होती है उसको पक्ष्मशात कहते हैं ॥ ५२८ ॥

वर्त्मजरोगकी चिकित्सा ।

उत्सङ्गिनी बहुलकर्दमवर्त्मनी च श्यावश्च यच्च पठितं त्विह बन्धवर्त्म । क्लिष्टश्च पोथकियुतं खलु वर्त्म यच्च कुम्भीकिनी च सह शर्करया च लेख्याः ॥ ५२९ ॥

उत्संगिनी, बहुलवर्त्म, कर्दमवर्त्म, श्याववर्त्म, बंधवर्त्म, क्लिष्टवर्त्म, पोथकीवर्त्म और कुम्भिनी इन सबमें मिश्रीके द्वारा अथवा खाँडके द्वारा लेखन कर्म करे ॥ ५२९ ॥

श्लेष्मोपनाहलगणौ च बिसं च भेद्याः, ग्रन्थिश्च यः कृमिकृतोऽञ्जननामिका च ॥ ५३० ॥

श्लेष्मोपनाह, लगण, बिसवर्त्म, कृमिग्रन्थि और अंजननामिका इनको भेदन करे अर्थात् चीरदेवे५३०

स्विन्नां भित्त्वा विनिष्पीडच भिन्नामञ्जननामिकाम् । शिलैलानतसिन्धूत्थैः सक्षौद्रैः प्रतिसारयेत॥ ५३१॥ रसाञ्जनमधुभ्यां वा भित्त्वा शस्त्रेण कर्म्मवित । प्रतिसार्य्याञ्जनैर्युञ्ज्यादुष्णैर्दीपशिखोद्भवैः॥ ५३२ ॥

अंजननामिका यदि फूटजाय तो स्वेदित करके दबादेवे तथा मैनशिल, इलायची, तगर, सैंधानमक और शहद इनसे प्रतिसारण करे।अथवा रसौत और शहद इनसे विधिपूर्वक घिसे या शस्त्रसे चीरकर गरम अंजनसे अथवा गरम दीपकके काजलसे घिसे ॥ ५३१ ॥ ५३२ ॥

स्वेदयेद् घृष्टयांगुल्या हरेद्रक्तं जलौकसा । करे संघृष्य दुर्वर्णमञ्जयेल्लोचनं मुहुः ॥ द्विस्त्रिवारं शमयति कंडूं दोषान्विताञ्जनम् ॥ ५३३ ॥

अंजननामिकारोगमें हाथपर अंगुलीको घिसकर उससे नेत्रको सेके तथा जौंक लगाकर रुधिर निकाल देवे । अथवा चाँदीको हाथपर घिसकर नेत्रमें लगावे इस प्रकार दिनमें दोन तीन बार करनेसे खुजली और दोष सहित अंजननामिकारोग दूर होता है।।५३३।।

रसाञ्जनं व्योषयुतं संपेष्य वटकीकृतम् । कंडूपाकान्वितां हन्ति नूनमञ्जननामिकाम् ॥ ५३४ ॥

रसौत और त्रिकुटेको एकत्र पीसकर गोलियाँ बना लेवे । इन गोलियोंको घिसकर नेत्रोंमें लगानेसे खुजली और पाक सहित अंजननामिकारोग निश्चय दूर होता है ॥ ५३४ ॥

रोचनाक्षारतुत्थानि पिप्पल्यः क्षौद्रमेव च । प्रतिसारणमेकैकं भिन्ने लगण इष्यते ॥ ५३५ ॥

गोरोचन, जवाखार, तूतिया, पीपल और शहद इनमेंसे किसी एकके द्वारा लगणके फूटजानेपर प्रतिसारण करे ॥ ५३५ ॥

निमेषं नाशमायाति सर्पिस्तेन च पूरणम् ॥ ५३६ ॥

नेत्रोंमें घृत भरनेसे निमेष नाशको प्राप्त होता है ॥ ५३६ ॥

स्वेदयित्वा बिसग्रथिं छिद्राण्यस्य निराश्रयः । पक्वं भित्त्वा तु शस्त्रेण सैन्धवेन च पूरयेत ॥ ५३७ ॥

बिसवर्त्मग्रंथिको स्वेदन करके छिद्रको चौंडा करे और जब वह पकजाय तब शस्त्रसे चीरकर सैंधानमक भर देवे ॥ ५३७ ॥

आलदारुवचा पिष्ट्वा सुरसापत्रवारिणा । छायाशुष्ककृता वर्त्तिः क्लिन्नवर्त्मनिवारिणी ॥ ५३८ ॥

हरताल,देवदारु और वच इनको तुलसीके पत्तोंके रसमें पीसकर बत्ती बनाकर छायामें सुखा देवे । यह बत्ती नेत्रोंमें लगानेसे क्लिन्नवर्त्मरोगको दूर करती है ॥ ५३८ ॥

रसाञ्जनं सर्वरसो जातीपुष्पं मनःशिला । समुद्रफेनो लवणं गैरिकं मरिचानि च ॥ ५३९ ॥ एतत्समांशं मधुना पिष्ट्वा प्रक्लिन्नवर्त्मनि । अञ्जनं क्लेदकंडूघ्नं पक्ष्मणाञ्च प्ररोहणम् ॥ ५४० ॥

रसौत, राल, चमेलीके फूल, मैनशिल,समुद्रफेन, सैंधानमक,गेरू और काली मिरच इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर शहदमें पीसकर प्रक्लिन्नवर्त्मरोगमें नेत्रोंमें लगानेसे क्लेद, खुजली और प्रक्लिन्नवर्त्मरोग दूर होता है । एवं पलकोंके गिरेहुए बाल फिर जमजाते हैं॥ ५३९ ॥ ५४० ॥

अथ पिल्लरोगका निदान ।

पित्तश्लेष्मप्रकोपेन वर्त्मान्तः संप्रकुप्यति । नाम्नाऽतिलोमशं वापि विक्लिष्टं पिल्लमेव च ॥ ५४१ ॥

पित्त और कफके कुपित होनेसे नेत्रोंके पलकोंमें शोथ उत्पन्न होता है । उसको अतिलोमश या विक्लिष्ट अथवा पिल्ल रोग कहते हैं॥ ५४१ ॥

पिल्लरोगकी चिकित्सा ।

वर्त्माऽवलेखं बहुशस्तथा शोणितमोक्षणम् । पुनःपुनर्विरेकश्च पिल्लरोगातुरो भजेत् ॥ ५४२ ॥

पिल्लरोगसे पीडित मनुष्यके पलकोंपर बारम्बार लेखन करे, बारम्बार रक्तमोक्षण करे और बारम्बार विरेचन करे अर्थात् जुल्लाब लेवे ॥५४२॥

पिल्ली स्निग्धो वमेत्पूर्वं शिरया च सुतेऽसृजि । शिलारसाञ्जनव्योषगोपित्तैर्वर्त्तिरञ्जनम् ॥ ५४३ ॥ पिल्लघ्नं छागमूत्रेण भावितं देवदारु च ॥ ॥ ५४४ ॥ हरितालवचादारुसुरसारसपिष्टितम् । अभयारससंपिष्टं तगरं पिल्लनाशनम् ॥ ५४५ ॥

पिल्लरोगमें रोगीको प्रथम स्निग्ध करके वमन करावे, पश्चात् शिरामोक्षण अर्थात् रुधिर निकलवावे । फिर मैनशिल, रसौत, त्रिकुटा और गौका पित्त इनको एकत्र पीसकर बत्ती बनाकरके नेत्रोंमें अंजन करे । अथवा देवदारुको बकरेके मूत्रमें भावना देकर नेत्रोंमें आँजे तो पिल्लरोग दूर होता है । अथवा हरताल, बच और देवराज इनको तुलसीके रसमें पीसकर नेत्रोंमें आँजे तो पिल्लरोग अवश्य नष्ट होजाता है । या हरडके रसमें तगरको पीसकर नेत्रोंमें आँजनेसे पिल्लरोग नष्ट होता है ॥ ५४३ ॥ ॥ ५४४ ॥ ५४५ ॥

काकमाचीफलैकेन घृतयुक्तेन बुद्धिमान् । धूपयेत्पिल्लरोगार्त्तं पतन्ति कृमयोऽचिरात् ॥ ५४६ ॥

केवल एक मकोयके फलोंको घीमें मिलाकर पिल्ल रोगीको धूप देनेसे पिल्लरोगके कृमि बहुत शीघ्र नष्ट होजाते हैं ॥ ५४६ ॥

तुत्थकस्य पलं श्वेतमरिचानि च विंशतिः । त्रिंशता काञ्जिकपलैः पिष्ट्वा ताम्रे निधापयेत् ॥ ५४७ ॥ पिल्लानपिल्लान्कुरुते बहुवर्षोत्थितानपि । उत्सेकेनोपदेहाश्रुकंडूशोथांश्च नाशयेत् ॥ ५४८ ॥

नीलाथोथा ४ तोले, भूरीमिर्च २० पल और काँजी ३० पल लेवे । इन सबको एकत्र ताँबेके पात्रमें खरल करके नेत्रोंमें लगानेसे बहुत दिनोंका पुराना पिल्लरोग भी नष्ट होजाता है । और इनके द्वारा सेंक या पट्टी बांधनेसे अश्रु,खुजली और शोथ इन सबको नष्ट करता है ॥ ५४७ ॥ ५४८ ॥

सैन्धवं गृहांबुयुक्तमपामार्गजटया ताम्रे घृष्ट्वा । वर्त्मविलेखनविधिना सप्ताहाच्चिपिटपिल्लहरम् ॥ ५४९ ॥

सैंधानमक, काँजी और चिरचिटेकी जड इन सबको एकत्र ताँबेके पात्रमें खरल करके वर्त्मलेखनकी विधिसे नेत्रोंमें लगानेसे सात दिनमें चिपट और पिल्लरोग नष्ट होता है ॥ ५४९ ॥

कासीसजातिकलिकारसाञ्जनक्षौद्रमरिचतुल्यांशैः । अपनयति पिल्लकत्वं पिष्टैः पयसाञ्जनं सद्यः ॥ ५५० ॥

कसीस, चमेलीकी कली, रसौत, शहद और कालीमिरच ये सब औषधियाँ समान भाग लेकर दूधमें पीसकर नेत्रोंमें आँजनेसे तत्काल पिल्लरोगको दूर करती हैं ॥ ५५० ॥

ताम्रपात्रे गुहामूलं सिन्धूत्थं मरिचान्वितम् । आरनालेन संघृष्टमञ्जनं पिल्लनाशनम् ॥ ५५१ ॥

शालपर्णी और पृश्निपर्णी इनकी जड, सैंधानमक और कालीमिरच इन सबको काँजीमें एकत्र घिसकर नेत्रोंमें आँजनेसे पिल्लरोग नष्ट होता है ॥ ५५१ ॥

पुष्पकासीसचूर्णं वा सुरसारसभावितम् । ताम्रे दशाहं तत्पिल्लपक्ष्मशातनभञ्जनम् ॥ ५५२ ॥

अथवा चमेलीके पुष्प और कसीसके चूर्णको तुलसीके रसमें भावना देकर ताँबेके पात्रमें दश दिनतक रक्खा रहनेदेवे। फिर उसको नेत्रोंमें आंजे तो पिल्ल और पक्ष्मशातन रोग दूर होता है ॥ ५५२ ॥

प्रलेपाच्छमयेन्नूनं चिपिटाख्यं गदं नृणाम् । शटीपत्रकनिर्य्यासं रसघृष्टं हरीतकी ॥ ५५३ ॥

कचूर, तेजपात और हरड इनको इन्हींके रसमें घिसकर नेत्रोंमें प्रलेप करनेसे चिपिटरोग निस्सन्देह नष्ट होता है ॥ ५५३ ॥

लाक्षानिर्गुण्डीभृङ्गदार्वीरसेन श्रेष्ठं कार्पासं भावितं सप्तकृत्वः । दीपं प्रज्वाल्य सर्पिषा तत्समुत्था श्रेष्ठा पिल्ले रोपणार्थे मषी सा ॥ ५५४ ॥

उत्तम कपासको लेकर लाख, निर्गुण्डी, भाँगरा और दारुहलदी इन प्रत्येकके रसकी सात सातवार भावना देकर सुखा लेवे। फिर घीमें मिलाकर दीपकके ऊपर जलाकर उसकी स्याही बनालेवे । ये स्याही पिल्लरोगमें रोपण करनेके लिये श्रेष्ठ है ॥ ५५४ ॥

याप्यः पक्ष्मोपरोधस्तु रोमोद्धरणलेखनैः । वर्त्मन्युपचितं लेख्यं स्राव्यमुत्क्लिष्टशोणितम् ॥ ५५५ ॥

यदि पक्ष्मरोध रोग याप्य हो तो प्रथम पलकके रोमोंको उखाडकर लेखन करे, फिर नेत्रमें संचित हुए रुधिरको निकाले ॥ ५५५ ॥

अथोपपक्ष्मके लक्षण ।

अन्तर्मुखानि पक्ष्माणि जनयन्ति मलास्त्रयः । बाधां कुर्वन्ति रोमाणि तमाहुरुपपक्ष्मकम् ॥ ५५६ ॥

वातादि तीनों दोष कुपित होकर पलकोंके बालोंको नेत्रोंके भीतर प्रविष्ट कर देते हैं तब वे बाल नेत्रोंमें घोर बाधा उत्पन्न करते हैं इस रोगको उपपक्ष्म कहते हैं ॥ ५५६ ॥

उपपक्ष्मकी चिकित्सा ।

प्रवृद्धान्तर्मुखं रोमसहिष्णोरुद्धरेच्छनैः । सन्देशेनोद्धरेद्दृष्ट्यां पक्ष्मरोमाणि बुद्धिमान् ॥ ५५७ ॥

बढेहुए और भीतरको घुसेहुए नेत्रोंके बालोंको धीरे २ सदंश यंत्र (संडासी) से बुद्धिमान् वैद्य निकाल देवे अथवा उनको धीरे२ उखाड देवे ॥ ॥ ५५७ ॥

सर्पिषा शतधौतेन सेचयेद्व्रणरोपणैः। यष्टीसिद्धं घृतं सेकात्सद्यो हराति वेदनाम् ॥ ५५८ ॥

बुद्धिमान् वैद्य सौवार धुलेहुए घीके द्वारा अथवा व्रणको भरनेवाले घृतोंके द्वारा सेचन करे अथवा मुलैठीके द्वारा पकाये हुए घृतसे सेचन करे । इस प्रकार करनेसे तत्काल व्रणकी वेदना शांत हो जाती है ॥ ५५८ ॥

सेचनात्पाचितं छित्वा गैरिकेनावचूर्णयेत् । रसाञ्जनाम्बुना सेकान्कुर्याल्लाक्षारसेन तु ॥ ५५९ ॥

यदि सेचन करनेसे वह पकजाय तब छेदन करके गेरूके चूर्णको बुरका देवे । एवं रसौतके जलके द्वारा अथवा लाखके रसके द्वारा सेचन करे ॥ ५५९ ॥

द्वयोर्भ्रुवोरधोभागौ पक्ष्मान्तादेकमेव च । भागं त्यक्त्वा तु शस्त्रेण व्यध्येत्तिर्य्यग्गतं स्थितम् ॥ ५६० ॥

दोनों भौंके नीचेके भागवाले पक्ष्मोंके अन्तके एक भागको छोडकर शेष स्थित हुए वे तिर्य्यग्गत गदको शस्त्रसे छेदे ॥ ५६० ॥

रक्तं वस्त्रेण गृह्णीयात्स्थिते रक्ते च सेचयेत् । मुद्गमात्रान्तरैर्भागैर्बन्ध्यात्पट्टं ललाटतः ॥ ५६१ ॥

शस्त्रसे चीरनेपर जो रुधिर निकले उसको एक वस्त्रमें एकत्र करलेवे फिर उसके द्वारा नेत्रोंको सींचे फिर एक मूँगकी बराबर अन्तरको छोडकर मस्तकपर पट्टी बांधे ॥ ५६१ ॥

सूच्यग्रेणाग्निवर्णेन रोमकूपाणि निर्दहेत् । प्रदेहाः शीतलाः कार्य्याः क्रिया पक्ष्मोपरोधनी ॥ ५६२ ॥

सुईके अग्रभागसे रोमोंको उखाड़कर अग्निके द्वारा रोमकूपोंको दग्ध करे पश्चात् शीतल प्रलेपादि एवं पक्ष्मोंको उत्पन्न करनेवाली क्रिया प्रयोग करे ॥ ५६२ ॥

रक्षन्नक्षि दहेत्पक्ष्म तप्तलोहशलाकया । पक्ष्मकोपे पुनर्नैव कदाचिद्रोमसम्भवः ॥ ५६३ ॥

नेत्रोंकी रक्षा करता हुआ पलकोंको तप्त लोहेकी सलाईसे दग्ध करे इस प्रकार करनेसे फिर कभी रोमोंकी वृद्धि नहीं होती है ॥ ५६३ ॥

अथ सशल्यनेत्ररक्षण ।

स्रवत्यश्रु च यन्नेत्रं वृत्तं लोहितराजिभिः । निमिषोन्मेषणाऽशक्तिं सशल्यं तं विनिर्दिशेत् ॥ ५६४ ॥

जिसके नेत्रोंमेंसे सदैव आँसू बहा करैं, तथा लाल २ गोल रेखा नेत्रोंमें दीखें और नेत्र खुलने तथा बंद होनेमें असमर्थ हों तो उसको सशल्यनेत्र जानना ॥ ५६४ ॥

सशल्यनेत्रकी चिकित्सा ।

नेत्रे त्वभिहितं कुर्य्याच्छीतमाश्च्योतनं हितम् । अन्तः स्त्रीस्तन्यसेकश्च रक्तमोक्षश्च शस्यते ॥ ५६५ ॥

सशल्य अर्थात् चोटके लगनेसे उत्पन्न हुए नेत्ररोगमें शीतल आश्च्योतन करे। नेत्रके भीतर स्त्रीके दूधको डाले और दूषित रुधिरको निकालदेवे॥५६५॥

दृष्टिप्रसादजननं विधिमाशु कुर्यात्स्निग्धैर्हिमैश्च मधुरैश्च तथा प्रयोगैः ॥ स्वेदाग्निधूमभयशोकरुजाभिघातैर्व्याहतामपि तथैव भिषक् चिकित्सेत् ॥ ५६६ ॥

दृष्टिके प्रसन्न करनेवाली विधिका शीघ्र प्रयोग करे, एवं स्निग्ध, शीतल और मधुर औषधि प्रयोग करे। तथा स्वेद, अग्नि, धुआँ, भय, शोक और अन्यान्य प्रकारके आगंतुक कारणोंसे जिसके नेत्र पीडित हों तो उसकी भी इसी प्रकार चिकित्सा करे॥ ५६६ ॥

आगन्तुदोषं प्रसमीक्ष्य कार्यं वक्त्रोष्मणा स्वेदनमादितस्तु । आश्च्योतनं स्त्रीपयसा तु सद्यो यच्चापि पित्तक्षतजापहं स्यात् ॥ ५६७ ॥

प्रथम आगन्तुकदोषोंको विचार करके मुखकी वाफसे नेत्रोंको सेंके, फिर तत्काल स्त्रीके दूधके द्वारा आश्च्योतन करे। एवं पित्त और क्षतको दूर करनेवाली औषधियोंके द्वारा आश्च्योतन करे ॥ ५६७ ॥

सूर्य्योपरागाम्बरविद्युदादिविलोचनेनोपहतेक्षणस्य । सन्तर्पणं स्निग्धहिमादिकार्यं सायं निषेव्यास्त्रिफलाप्रयोगाः ॥ ५६८ ॥

जिसकी दृष्टि सूर्य्य, दिशाओंकी लाली और बिजली आदि दीप्त पदार्थोंको देखनेसे नष्ट होगई हो उसके नेत्रोंको स्निग्ध और शीतलादि पदार्थोंके द्वारा सन्तर्पण करे एवं सन्ध्याके समय त्रिफलेको सेवन करे ॥ ५६८ ॥

निशाब्दत्रिफलादार्वीसितामधुसमन्वितम् । अभिघाताक्षिशूलघ्नं नारीक्षीरेण पूरणम् ॥ ५६९ ॥

हलदी, नागरमोथा, त्रिफला, दारुहलदी, मिश्री और शहद इन सबको एकत्र स्त्रीके दूधमें पीसकर नेत्रोंमें भरनेसे अभिघातजन्य नेत्रशूल दूर होता है ॥ ५६९ ॥

उत्कटांकुरजस्तद्वत्स्वरसो नेत्रपूरणम् ॥ ५७० ॥

उटकटेरेके अंकुरोंके स्वरसको नेत्रोंमें भरनेसे नेत्राभिघातरोग दूर होता है ॥ ५७० ॥

वटपत्रपुटे क्षिप्तं कलिङ्गं सघृतं पचेत् । तद्रसस्तर्पणे चाक्ष्णोरेवं स्युर्जाङ्गला रसाः ॥ ५७१ ॥

वडके पत्तोंके दोनेमेंसे इन्द्रजौ और घीको रखकर पुटपाककी विधिसे पकावे। फिर उसका रस निकालकर नेत्रोंमें भरे अथवा जंगल प्रदेशके जीवोंके रसको नेत्रोंमें भरे तो नयनाभिघातरोग दूर होता हैं ॥ ५७१ ॥

आजं घृतं क्षीरपात्रं मधुकं सोत्पलानि च । जीवकर्षभकौ मेदा पिष्ट्वा सर्पिर्विपाचयेत् ॥ सर्वनेत्राभिघातेषु सर्पिरेतत्प्रशस्यते ॥ ५७२ ॥

बकरीका घी, बकरीका दूध, मुलैठी, कमल, जीवक, ऋषभक और मेदा इनको एकत्र पीसकर उत्तम विधिसे घृतको पकावे। यह घृत-सर्वप्रकारके नेत्राभिघातरोगोंमें हितकारी है ॥ ५७२ ॥

सितमरिचनागरकेशरनीलोत्पलकल्कवर्त्तिता वर्त्तिः। शमयति सततं निद्रां सूर्य्यस्तमश्चन्द्रलेखेव ॥ ५७३ ॥

भूरी मिर्च, नागकेशर और नीलकमल इन सबको एकत्र पीसकर वर्त्ती बनावे। इस वर्त्तीको नेत्रोंमें लगानेसे निरन्तरकी निद्रा इस प्रकार दूर होती है, जिस प्रकार सूर्य और चन्द्रमाकी कान्तिसे अन्धकारका समूह नष्ट होजाता है ॥ ५७३ ॥

बृहतीफलसैन्धवयष्टीमधुकल्कीकृतैर्नस्यम्। अतिविततामपि सततां निद्रामेव सततं हन्यात् ॥ ५७४ ॥

बड़ीकटेरीके फल, सैंधानमक और मुलैठी इनको एकत्र पीसकर कल्क बनावे। इस कल्कके द्वारा नस्य देनेसे निरन्तर आती हुई निद्रा तत्काल नष्ट हो जाती है ॥ ५७४ ॥

क्षौद्राश्वलालासंघृष्टैर्मरिचैर्नेत्रमञ्जयेत्। अतिनिद्रा शमं याति तमः सूर्य्योदयादिव ॥ ५७५ ॥

शहद, घोडेकी लार और काली मिरच इनको एकत्र घिसकर नेत्रोंमें लगानेसे अत्यन्त घोर निद्रा इस प्रकार शमन होजाती है जिस प्रकार सूर्योदयसे अन्धकारका समूह नष्ट हो जाता है ॥ ५७५ ॥

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायां नेत्ररोगनिदान चिकित्साधिकार समाप्त ॥ ६७ ॥

अथ शिरोरोगाधिकार।

शिरोरोगका निदान।

शिरोरोगास्तु जायन्ते वातपित्तकफैस्त्रिभिः। सन्निपातेन रक्तेन क्षयेण कृमिभिस्तथा ॥ १ ॥ सूर्य्यावर्त्तानन्तवातशंखकार्द्धावभेदकैः। एकादशविधस्यास्य लक्षणानि प्रचक्ष्यते ॥ २ ॥

वात, पित्त, कफ, इन तीनों दोष तथा सन्निपात रक्त दुष्टमें, धातुक्षय और कृमि इन सात कारणोंसे सात, सूर्यावर्त १ अनंतवात १, अर्धावभेदक १ और शंखक १ इन भेदोंसे शिरोरोग ग्यारह प्रकारका है। अब इनके पृथक् पृथक् लक्षण कहते हैं ॥ १ ॥ २ ॥

वातजशिरोरोगके लक्षण।

यस्याऽनिमित्तं शिरसो रुजश्च भवन्ति तीव्रा निशि चातिमात्रम्। बन्धोपतापप्रशमश्च यत्र शिरोऽभितापः स समीरणेन ॥ ३ ॥

जिस मनुष्यके शिरमें विनाकारण ही तीव्र पीडा हो और रात्रिमें अधिक बढजाय तथा बांधने और सेकनेसे कम हो जाय तो उसको वातजशिरोऽभितापरोग कहते हैं ॥ ३ ॥

पित्तजशिरोरोगके लक्षण।

यस्योष्णमङ्गारचितं तथैव धूप्येच्छिरो दह्यति चाक्षिनासा। शीतेन रात्रौ च भवेत्क्षयश्च शिरोऽभितापः स तु पित्तकोपात् ॥ ४ ॥

जिसका शिर अंगारोंसे तपाये हुएके समान गरम हो तथा नेत्र और नाकमें दाह हो और रात्रिमें शीतके कारण शांति हो जाय तो उसको पित्तजशिरोऽभिताप रोग कहते हैं ॥ ४ ॥

श्लैष्मिकशिरोरोगके लक्षण।

शिरो भवेद्यस्य कफोपदिग्धं गुरुप्रतिष्टब्धमथो हिमश्च। शूनाक्षिकूटं वदनश्च यस्य शिरोऽभितापः स कफप्रकोपात् ॥ ५ ॥

जिस मनुष्यका शिर कफसे भराहुआसा मालूम हो, भारी जकडासा और शीतल हो तथा मुख और नेत्र सूज जाँय तो उसको कफजशिरोभितापरोग कहते हैं ॥ ५ ॥

त्रिदोषजशिरोरोगके लक्षण।

शिरोऽभितापे त्रितयप्रवृत्ते सर्वाणि लिङ्गानि समुद्भवन्ति।

त्रिदोषज शिरोऽभितापरोगमें तीनों दोषोंके लक्षण प्रकट होते हैं ।

रक्तजशिरोरोगके लक्षण ।

रक्तात्मकः पित्तसमानलिङ्गः स्पर्शासहत्वं शिरसो भवेच्च ॥ ६ ॥

रक्तजशिरोऽभितापरोगमें सम्पूर्ण लक्षण पित्तजशिरोरोगके समान होते हैं । तथा मस्तक स्पर्श करनेसे अत्यन्त दुखता है ॥ ६ ॥

रसादिधातुक्षयजन्यशिरोरोगके लक्षण ।

असृग्वसाश्लेष्मसमीरणानां शिरोगतानामिह संक्षयेण । क्षवप्रवृत्तिः शिरसोऽभितापः कष्टो भवेदुग्ररुजोऽतिमात्रम् ॥ संस्वेदनच्छर्दनधूमनस्यैरसृग्विमोक्षैश्च विवृद्धिमेति ॥ ७ ॥

शिरमें अत्यन्त तीव्र पीडा होती हो और वह सेंकनेसे, वमन करानेसे, धूम्रपानसे, नस्य देनेसे और रुधिरको निकलवानेसे अधिक बढजाती हो तो उस पीडाको शिरमें रहनेवाली चरबी, कफ, वात और रुधिरके अत्यन्त क्षय होनेसे हुई जाननी चाहिए। वह शिरोरोग कष्टसाध्य है । इस क्षयजशिरोरोगमें छींक अधिक आवे, मस्तकमें अभिताप और मस्तकमें सुई चुभाने सरीखी कष्ट देनेवाली पीडा होती है, नेत्रोंकी पुतली बारम्बार फिरती है । मूर्च्छा और अंगोंमें ग्लानि होती है ॥ ७ ॥

कृमिजशिरोरोगके लक्षण ।

निस्तुद्यते यस्य शिरोऽतिमात्रं संभक्ष्यमाणं स्फुरतीव चान्तः । घ्राणाच्च गच्छेद्रुधिरं सपूयं शिरोऽभितापः कृमिभिः स घोरः ॥ ८ ॥

जिसका शिर सुईचुभाने सरीखी पीडासे अत्यन्त दुखता है तथा कीड़ोंके द्वारा मस्तकको भीतरसे खा लेनेसे मस्तक भीतरसे फडकता है और नाकके द्वारा रुधिर, राध और कृमि गिरते हैं तो उसको कृमिजशिरोरोग कहते हैं। यह शिरोरोग बड़ा भयङ्कर है ८॥

सूर्यावर्त्तके लक्षण ।

सूर्य्योदयं या प्रतिमन्दमन्दमक्षिभ्रुवं रुक्समुपैति गाढम् । विवर्द्धते चांशुमता सहैव सूर्य्यापवृत्तौ विनिवर्त्तते च ॥ ९ ॥ शीतेन शान्तिं लभते कदाचिदुष्णेन जन्तुः सुखमाप्नुयाद्वा । सर्वात्मकं कष्टतमं विकारं सूर्य्यापवृत्तं तमुदाहरन्ति ॥ १० ॥

सूर्य्यके उदय होनेपर जो धीरे २ आंखों और भौंओंमें मंद २ पीड़ा होती है और वह ज्यों २ सूर्य्य आकाशमें अधिक चढ़ता जाता है त्यों २ अधिक बढ़ती जाती है और जब दो प्रहरके पश्चात् सूर्य्य पश्चिममें ज्यों ज्यों छिपता जाता है त्यों त्यों यह पीडा शांत होती जाती है और जब सूर्य्य अस्त होजाताहै तब यह पीडाभी बिल्कुल शांत होती जाती है । किसिसमय यह पीडा शीतसे शांत होती है और किसी समय उष्णतासे शांत होती है। इसको सूर्य्यावर्त्तरोग कहते हैं । यह रोग तीनों दोषोंके प्रकोपसे होता है और अत्यन्त कष्टसाध्य है ॥ ९ ॥ १० ॥

अनन्तवातके लक्षण ।

दोषाः प्रदुष्टास्त्रय एव मन्यां संपीड्य गाढं सरुजां सुतीव्राम् । कुर्वन्ति चाक्षिभ्रुवि शंखदेशे स्थितिं करोत्याशु विशेषतस्तु ॥ ११ ॥ गण्डस्य पार्श्वे तु कृतेति कम्पं हनुग्रहं लोचनजांश्च रोगान् । अनन्तवातं तमुदाहरन्ति दोषत्रयोत्थं शिरसो विकारम् ॥ १२ ॥

दूषित हुए वातादि तीनों दोष मन्यानाडीको अत्यन्त जकडकर अपने अपने स्वभावके अनुसार व्यथा और भारीपन आदि तीव्र वेदनाको उत्पन्न करते हैं । यह वेदना तत्काल आखोंमें, भौंओंमें और कनपटियोंमें स्थित होतीहै तथा विशेष करके गण्डस्थानमें स्थित होती है । यह वहां स्थित होकर कम्प, हनुग्रह तथा नेत्ररोगोंको उत्पन्न करती है इसको अनन्तवात कहते हैं । यह नेत्ररोग तीनों दोषोंके प्रकोपसे होता है ॥ ११ ॥ १२ ॥

अर्द्धावभेदके निदान और लक्षण ।

रूक्षाशनाध्यशन-प्राग्वातावश्याय-मैथुनैः । वेगसन्धारणायासव्याया-

मैः कुपितोऽनिलः ॥ १३ ॥ केवलः सकफो वार्द्धं गृहीत्वा शिरसो बली । मन्याभ्रूशंखकर्णाक्षिललाटार्द्धेऽतिवेदनाम् ॥ १४ ॥ शस्त्राशननिभां कुर्यात्तीव्रां सोऽर्द्धावभेदकः । नयनं वाथवा श्रोत्रमतिवृद्धो विनाशयेत् ॥ १५ ॥

अत्यन्त रूखे पदार्थोंको भक्षण करनेसे, अधिक भोजन करनेसे, भोजनके ऊपर भोजन करनेसे, संमुखकी पवनको सेवन करनेसे, बर्फ या तुषारका सेवन करनेसे, अधिक मैथुन करनेसे, मल मूत्रादिके वेगोंको रोकनेसे, अधिक श्रम और कसरत करनेसे इत्यादि कारणोंसे केवल वायु कुपित होकर अथवा कफसंयुक्त प्रवल वायु कुपित होकर आधे शिरको ग्रहण करके मन्यानाडी, भौंह, कनपटी, कान, नेत्र और मस्तक इनमें एकओरसे पीडा करती है । वह पीडा शस्त्र और वज्रसे काटने व चीरनेके समान होती है । उसको संस्कृतमें अर्धावभेदक और हिन्दी भाषामें आधासीसी कहते हैं । यह रोग जब अधिक बढजाता है तब एक ओरके कान या नेत्रको नष्ट कर देता है ॥ १३-१५ ॥

शंखके लक्षण ।

रक्तपित्तानिला दुष्टाः शंखदेशे विमूर्छिताः । तीव्ररुग्दाहरागं हि शोथं कुर्वन्ति दारुणम् ॥१६॥ सशिरो विषवद्वेगी निरुध्याशु गलं तथा । त्रिरात्राज्जीवितं हन्ति शंखको नामतः परम् । त्र्यहाज्जीवति भैषज्यं प्रत्याख्यायाऽस्य कारयेत् ॥ १७ ॥

दूषित हुए पित्त, रुधिर और वात कनपटीमें अत्यन्त पीडा, भयंकर दाहयुक्त लाल वर्णकी सूजनको उत्पन्न करते हैं। वह विषके वेगके समान बहुत शीघ्र बढ़कर मस्तक और गलेको जकड देती है। यह शंखकरोग तीन दिनमें ही मनुष्यको मारदेता है । कदाचित् तीनही दिनमें उत्तम वैद्यकी चिकित्सा करनेसे रोगी बचभी जाता है, किन्तु वैद्यको चाहिए कि, प्रथम कहकर और निश्चय करके चिकित्सा करे ॥ १६ ॥ १७ ॥

शिरोरोगकी चिकित्सा ।

वातिके शिरसो रोगे स्नेहस्वेदान्सनावनान् । पानाहारोपनाहांस्तु कुर्य्याद्वातामयापहान् ॥ १८ ॥

वातजन्यशिरोरोगमें स्नेहन, स्वेदन और नस्यकर्म्म प्रयोग करे तथा वातनाशक पान, आहार और उपनाह ये सब करे ॥ १८ ॥

पिण्डोपनाहस्वेदश्च धन्वमांसकृतो हितः । वातघ्नदशमूलादिसिद्धक्षीरेण सेचनम् ॥ १९ ॥

जांगलप्रदेशके जीवोंके मांसके द्वारा पिण्डोपनाह और स्वेदादि प्रदान करे । तथा वातनाशक औषधियोंके द्वारा और दशमूलादि औषधियोंके द्वारा दूधको पकाकर सेचन करे ॥ १९ ॥

धूमं चास्य यथा कालं योजयेत् स्नैहिकं भिषक् ॥ २० ॥ पानाभ्यञ्जननस्येषु वस्तिकर्म्मणि सेचने । विदध्यात्रैवृतं तैलं बलातैलमथापि वा २१

वैद्य यथा समय स्नैहिक पदार्थोंके द्वारा धूम्रपान करावे तथा पान, अभ्यंजन, नस्य, बस्तिकर्म्म और सेचन इनमें त्रिवृत्तैल अथवा बलातैल प्रयोग करे ॥ २० ॥ २१ ॥

मुद्गान्माषान्कुलित्थांश्च खादेच्च निशि केवलान् । कटुकोष्णान्ससर्पिष्कानुष्णं वापि पिबेत्पयः ॥ २२ ॥

रात्रिके समय केवल मूँग, उडद और कुलथी इनको सेवन करे अथवा कटु औषधियोंके द्वारा सिद्ध किये हुए दूधमें घृत मिलाकर मंदोष्ण करके पान करै ॥ २२ ॥

पिबेद्वा पयसा तैलं तत्कालं चातिमानवः । पञ्चमूलीशृतं क्षीरं नस्ये दद्याच्छिरोगदे ॥ २३ ॥

अथवा दूधमें तेल डालकर पीवे और तत्काल पंचमूलकी औषधियोंके द्वारा पकाये हुए दूधकी नस्य देवे ॥ २३ ॥

कुष्ठमैरण्डमूलञ्च लेपात्काञ्जिकपेषितम् । शिरोऽर्त्तिं नाशयत्याशु पुष्पं वा मुचुकुन्दजम् ॥ २४ ॥

कूठ और अण्डकी जडको काँजीमें पीसकर लेप करनेसे अथवा मुचकुन्दके फूलोंको पीसकर लेप करनेसे शिरकी पीडा शांत होती है ॥ २४ ॥

देवदारुनतं कुष्ठं नलदं विश्वभेषजम् । लेपः काञ्जिकसंपिष्टस्तैलयुक्तः शिरोऽर्त्तिनुत् ॥ २५ ॥

देवदारु, तगर, कूठ, बालछड और सोंठ इन सबको एकत्र कांजीमें पीसकर तेलमें मिलाकर लेप करनेसे शिरकी पीडा शांत होती है ॥ २५ ॥

शिरोबस्ति ।

वातकोपभयादत्र नोक्तं रक्तावसेचनम् । आशिरोव्यापनश्चर्म्म कृत्वाष्टांगुलमुच्छ्रितम् । तेनावेष्ट्य शिरोऽधस्तान्माषकल्केन लेपयेत् ॥२६॥ निश्चलस्योपविष्टस्य तैलैरुष्णैः प्रपूरयेत् । धारयेदारुजः शान्तेर्यामं यामार्द्धमेव वा ॥ २७ ॥ शिरोबस्तिर्जयत्येष शिरोरोगं मरुद्भवम् । हनुमन्याक्षिकर्णार्त्तिमर्दितं मूर्द्धकम्पनम् ॥ २८ ॥

वातके प्रकोपके भयसे यहाँ रक्तमोक्षण करना नहीं कहा है । जिससे समस्त मस्तक ढक जावे इतना लम्बा और आठ अंगुल चौडा चमडा लेकर उसको मस्तकसे बाँधदेवे और उसके नीचेके जोडोंमें उडदका चून जलमें सानकर लगादेवे । फिर रोगीको निश्चल बैठाकर सुहाता सुहाता तिलका तेल उस चमडेमें भर देवे । जबतक पीडा शांत नहीं हो तबतक अथवा एक प्रहरतक या चार घडीतक उसको ऐसाही बैठा रहने देवे। यह शिरोबस्ति-वातजशिरोरोग, हनुग्रह, मन्यास्तम्भ, नेत्रकी पीडा, कानकी पीडा, अर्दित और मस्तककम्पको शीघ्रही दूर करता है ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥

तैलेनापूर्य्य मूर्द्धानं पञ्चमात्रा शतानि च । तिष्ठेच्छ्लेष्माणि पित्तेऽष्टौ दश वाते शिरोगदे ॥ २९ ॥

कफजन्यशिरोरोगमें पांचसौ ५०० मात्रापर्य्यंत तेल धारण करना चाहिये । पित्तजन्यशिरोरोगमें आठसौ८०० मात्रापर्य्यंत तेल धारण करना चाहिये और वातजन्यशिरोरोगमें एकहजार १००० मात्रापर्य्यंत तेलको धारण करे ॥ २९ ॥

एष एव विधिः कार्य्यस्तथा कर्णाक्षिपूरणे । विनाभोजनमेवैष शिरोबस्तिः प्रयुज्यते ॥ ३० ॥ घटिकाधिकयामैकं वृद्धवैद्योपदेशतः । प्रयोज्यस्तु शिरोबस्तिः पञ्चाहं सप्त एव च ॥ ३१ ॥

यही विधि कर्ण और नेत्रोंके पूर्ण करनेमें करनी चाहिये । शिरोबस्ति भोजनसे पहिले करनी चाहिये वृद्धवैद्योंके उपदेशसे चार घडी या छः घडीतक पांच दिन या सात दिन शिरोबस्ति प्रदान करे॥३०॥३१॥

ततः स्नेहमपनीय कर्णतो बस्तिबन्धनं विमोच्य शिरःस्कन्धग्रीवापृष्ठललाटान् मुखञ्च पाणिभ्यां मृद्नीयात् । ततः सुखोष्णजलेन परिषिक्तगात्रः शालिषष्टिकादिभिर्जाङ्गलानूपरसैर्दाडिमाम्लैर्मात्रया भोजयेत् ।

फिर एक कानकी ओर शिर नवाकर तेल निकाल देवे और बस्तिके चमडेको खोलकर शिर, स्कन्ध, ग्रीवा, पृष्ठ, ललाट और मुखको हाथोंसे मर्दन करे । फिर मन्दोष्ण जलसे स्नान कराकर शालि और साठी आदिके भातको, तथा जांगल और अनूपप्रदेशके जीवोंके मांस रसको अनार आदिके रससे अम्ल करके उचित मात्रासे भोजन करावे ।

मयूरघृत ।

हेमन्तकाले शिशिरे वसन्ते सेव्यं हि मायूरमुशन्ति सर्पिः । उष्णो हि

बर्हीं विषभोजनश्च वर्षाशरद्ग्रीष्ममुखेष्वपथ्यः ॥ ३२ ॥

हेमन्तऋतु, शिशिरऋतु और वसंतऋतुमें मयूरघृतका सेवन अत्यंत हितकारी है। किंतु मोर गरम और विषभोजन करनेवाला होनेके कारण वर्षा, शरद और ग्रीष्मऋतुमें पथ्य नहीं है ॥ ३२ ॥

लघुमयूरघृत ।

दशमूलबलारास्नामधुकैस्त्रिफलैः सह। मयूरं पक्षपित्तान्त्रशकृत्पादास्यवर्जितम् ॥ ३३ ॥ जले पक्त्वा घृतप्रस्थं तस्मिन् क्षीरसमं पचेत्। मधुरैः कार्षिकैः कल्कैः शिरोरोगार्दितापहम् ॥ ३४ ॥ कर्णनासाक्षिजिह्वास्यगलरोगविनाशनम् । मायूरमिति विख्यातमूर्द्ध्वजत्रुगदापहम्॥३५॥

दशमूल, खिरैंटी, रायसन, मुलैठी और त्रिफला इन सब समान भाग औषधियोंके साथ एक मयूरको उसके पक्ष, पित्त, आतें, मल, पाँव और मुखको अलग करके जलमें पकावे। जब पकते २ जल चौथाई भाग बाकी रहजाय तब उतारकर छान लेवे फिर उस क्वाथमें एक प्रस्थ घी और एक प्रस्थ दूध एवं एक २ तोला मधुरादिगणकी औषधियोंका कल्क डालकर पकावे। यह घृत–शिरोरोगकी घोर पीडा, कर्णरोग, नासारोग, नेत्ररोग, जिह्वारोग और गलरोगको दूर करता है। इसको मयूरघृत कहते हैं, यह सम्पूर्ण ऊर्ध्वजत्रुरोगोंका नाश करता है ॥ ३३ ॥ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

दशमूलादिना तुल्यो मयूर इह गृह्यते। अन्ये त्वाकृतिमानेन मयूरग्रहणं विदुः॥ एषां जलद्रोणे पादावशेषः क्वाथः कर्त्तव्यः मधुराणि च जीवनीयानि दश ॥ ३६ ॥

इस घृतमें दशमूलकी बराबर मोर लेना चाहिये पर कितने ही वैद्य एक मोरको लेते हैं। क्वाथकी औषधि एक द्रोण जलमें पकानी चाहिये और जब जल चौथाई भाग बाकी रहजाय तब उतारकर छान लेना चाहिये। कल्कके लिये जीवनीयगणकी दश मधुर औषधियां लेनी चाहिये ॥ ३६ ॥

महामयूरघृत ।

एतेनैव कषायेण घृतप्रस्थं विपाचयेत्। चतुर्गुणेन पयसा कल्कैरभिश्च कार्षिकैः ॥ ३७ ॥ समङ्गाचविकाभार्ङ्गीकाश्मरीकुक्कुटाह्वयैः। आत्मगुप्ता-महामेदातालखर्ज्जूरमुस्तकैः ॥ ३८ ॥ मृणालविश्वखर्ज्जूरमधुकैश्च सजीवकैः। शतावरीविदारीक्षुबृहतीशारिवायुगैः ॥ ३९ ॥ मूर्वाश्वदंष्ट्राशार्दूलशृङ्गाटककशेरुकैः। स्थिरामलकरास्नाभिः सूक्ष्मैलाशटिपौष्करैः ॥ ४० ॥ पुनर्नवातुगाक्षीरिकाकोलीद्वयवासकैः ॥ मधुकाक्षोटवाताममुञ्जानाभिशुकैरपि ॥ ४१ ॥ द्रव्यैरेतैर्यथालाभं पूर्वकल्केन साधितम्। पाने बस्तौ तथाभ्यङ्गे नस्ये चैव प्रयोजयेत् ॥ ४२ ॥ शिरोरोगेषु सर्वेषु कासे श्वासेऽतिदारुणे । मन्यादृष्टिग्रहे शोथे स्वरभेदे तथार्दिते ॥४३॥ योन्यसृक्छुक्रदोषेषु शस्तं वन्ध्यासुतप्रदम् । महामायूरमित्येतद्घृतमात्रेयपूजितम् ॥ ४४ ॥

उपर्युक्त दशमूलादि और मयूरके क्वाथमें १ प्रस्थ घृत, चौगुना दूध तथा मजीठ, चव्य, भारंगी, कुम्भेर, सेमल, कौंछ, महामेदा, ताड़ और खजूर, मुस्तक, कमलकी नाल, सोंठ, खजूर, मुलैठी, जीवक, शतावर, विदारीकंद, ईख, बडी कटेरी, दोनों शारिवा, मूर्वा, गोखुरू, चीता, सिंघाडे, कशेरू, शालिपर्णी, आमले, रास्ना, छोटी इलायची, कचूर, पोहकरमूल, पुनर्नवा, वंशलोचन, काकोली, क्षीरकाकोली, अडूसा, महुआ, अखरोट, बदाम, घुंघुची, कस्तूरी और गठिवन ये सब औषधियां यथालाभ दो २ तोले लेकर कल्क बनाकर के डाल देवे। फिर यथाविधिसे घृतको पकावे। इस घृतको पान, वस्तिकर्म्म, अभ्यंग और नस्य आदि कर्म्मोंमें प्रयोग करे। यह घृत सर्व प्रकारके शिरोरोग, खांसी, श्वास, दारुण मन्यास्तम्भ, दृष्टिरोग, सूजन, स्वरभेद, अर्दित, योनिसे रुधिरका गिरना और सर्व

प्रकारके शुक्रदोष दूर करता है । और वन्ध्यास्त्रीको पुत्र प्रदान कर देता है । यह महामायूरघृत आत्रेय करके पूजित है ॥ ३७-४४ ॥

बलादिघृतमण्डूर ।

बलाबिल्वभृते क्षीरे घृतं मण्डं विपाचयेत् । तस्य शुक्तिं प्रकुञ्चं वा नस्यं शीर्षगतेऽनिले ॥ ४५ ॥

खिरैंटी और बेलगिरी इनके द्वारा पकाये हुए दूधमें घृत और घृतका मण्ड डालकर पकावे । फिर उसमेंसे दो तोले या चार तोले घृत लेकर नस्य देवे तो वातजन्य शिरोरोग दूर होता है ॥ ४५ ॥

पित्तजशिरोरोगकी चिकित्सा ।

पित्तात्मके शिरोरोगे स्निग्धं सम्यग्विरेचयेत् । मृद्वीकात्रिफलेक्षूणां रसैः क्षीरैर्घृतैरपि ॥ ४६ ॥ शर्कराक्षीरसलिलैः शिरश्च परिषेचयेत् । सर्पिषः शतधौतस्य शिरसा धारणं हितम् ॥ ४७ ॥

पित्तजन्यशिरोरोगमें स्निग्ध औषधियोंके द्वारा विरेचन करावे। तथा दाख,त्रिफला और ईखका रस, दूध,घी इनके द्वारा या दूधमें तथा जलमें खाँड मिला कर उसके द्वारा शिरपर सेचन करे । एवं सौबार धोये हुए घृतको शिरपर मालिश करनी चाहिए । ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

निमज्जनश्च शिरसः शीतले शस्यते मुहुः ॥ ४८ ॥

एवं वारंवार शीतलजलमें शिरको डुबोकर स्नान करना चाहिये ।

कमलोत्पलपद्मानां शीतानां चन्दनाम्बुभिः । स्पर्शाः स्निग्धश्च पवनः सेव्यो दाहार्त्तिनाशनः ॥ ४९ ॥

कमल, कमोदिनी, लालकमल, अन्यान्य शीतल और सुगन्धित पदार्थ और चन्दन इनको पीसकरके जलमें मिलाकर उससे शिरसे स्नान करे एवं स्निग्ध स्पर्शवाले और शीतल पदार्थ तथा शीतल पवनका सेवन करे इससे दाह और पीड़ा शान्त होती है ४९

चन्दनोशीरयष्ट्याह्वबलाव्याघ्रनखोत्पलैः । क्षीरपिष्टैः प्रदेहः स्याच्छीतैर्वा परिषेचनम् ॥ ५० ॥

चन्दन, खस, मुलैठी, खिरैंटी, नखी और कमल इनको एकत्र दूधमें पीसकर लेप करे. अथवा इनको शीतल जलमें मिलाकर परिषेचन करे ॥ ५० ॥

मृणालबिसशालूकचन्दनोत्पलकेशरैः । स्निग्धैः शीतैः शिरो दिह्यात्तद्वदामलकोत्पलैः ॥ ५१ ॥

कमलकी नाल, कमलकी जड़, भसीड़ा,चन्दन, कमल और कमलकी केशर इनको एकत्र पीसकर शिरपर लेप करे अथवा अन्यान्य स्निग्ध और शीतल पदार्थोंको पीसकर शिरपर लेप करे । अथवा आमले और कमल इनको जलमें पीसकर लेप करे या इसी जलके द्वारा सेचन करे ॥ ५१ ॥

यष्ट्याह्वचन्दनानन्ताक्षीरसिद्धं हितं घृतम् । नावनं शर्कराद्राक्षामधुकैश्चापि पित्तजे ॥ ५२ ॥

मुलैठी, चन्दन और अनन्तमूल इनके कल्कके द्वारा दूधमें घृतको पकाकर उसकी नस्य देना अथवा मिश्री, दाख और मुलैठी इनको पीसकर नस्य देना हितकर है ॥ ५२ ॥

त्वक्पत्रशर्करापिष्टा नावनं तंडुलाम्बुना । क्षीरसर्पिर्हितं नस्यं जाङ्गला वा शुभा रसाः ॥ ५३ ॥

दालचीनी, तेजपात और मिश्री इनको चावलोंके जलमें पीसकर नस्य देवे । या दूध और घृत मिलाकर नस्य देवे । अथवा इसमें जांगलप्रदेशके जीवोंके मांसका रस भी हितकारी है ॥ ५३ ॥

पद्मचन्दनकर्पूरं नागरं नीलमुत्पलम् । प्रदेहः सघृतः कार्य्यः शिरःशूलहरो नृणाम् ॥ ५४ ॥

कमल, चन्दन, कपूर, सोंठ और नीलकमल इनको एकत्र पीसकर घृतमें मिलाकर लेप करनेसे शिरकी पीड़ा दूर होती है ॥ ५४ ॥

रुधिरजन्यशिरोरोगकी चिकित्सा।

रक्तजे पित्तवत्सर्वं भोजनालेपसेचनम्। शीतोष्णयोश्च विन्यासो विशेषाद्रक्तमोक्षणम्॥ ५५॥

रक्तजशिरोरोगमें भोजन, लेप और सेचन आदि सम्पूर्ण उपचार पित्तजशिरोरोगके समान करने चाहिए। विशेषकर शीतल और उष्ण मिले हुए कर्म करे और रक्तमोक्षण करावे॥ ५५॥

कफजशिरोरोगकी चिकित्सा।

कफजे लेपनं स्वेदो रूक्षोष्णैः पाचनात्मकैः। तीक्ष्णावपीडधूमाश्च तीक्ष्णाश्च कवला हिताः॥ ५६॥

कफजशिरोरोगमें रूखे, गरम और पाचन औषधियोंके द्वारा लेप और स्वेद देना तथा तीक्ष्ण अवपीडन, तीक्ष्ण धूम्रपान और तीक्ष्ण कवल प्रयोग करना हितकारी है॥ ५६॥

भुञ्जीत कटुतीक्ष्णोष्णैर्यूषैस्तिक्तोपसंभृतैः। पुराणयवगोधूमाञ्छुष्कमूलकसंयुतान्॥ ५७॥

कटु, तीक्ष्ण, उष्ण और तिक्त औषधियोंके साथ पुराने जौ, गेहूँ और सूखी मूली इनका यूष सेवन करे॥ ५७॥

अच्छश्च पाययेत्सर्पिः पुराणं स्वेदयेत्ततः। मधूकसारेण शिरः स्विन्नश्चास्य विरेचयेत्॥ ५८॥

प्रथम पुराना स्वच्छ घृत पान करावे। फिर मधूकसारसे शिरको स्वेदित करके विरेचन(नस्य) देवे ५८

हरेणुनतशैलेयमुस्तैलागुरुदारुभिः। रास्नास्थौणेयनलदैः रूक्षणोष्णैर्लेपयेच्छिरः॥ ५९॥

रेणुका, तगर, भूरिछरीला, नागरमोथा, इलायची, अगर, देवदारु, रास्ना, थुनेर और वालछड इनको पीस कर गरम करके अथवा अन्यान्य रूक्ष और उष्ण औषधियोंको पीसकरके शिरपर प्रलेप करे॥ ५९॥

सरलागुरुशार्ङ्गेष्टादेवकाष्ठैः सरोहिषैः। क्षीरपिष्टैः सलवणैः सुखोष्णैर्लेपयेच्छिरः॥ ६०॥

धूपसरल, अगर, करंज, देवदारु, रोहिसतृण और सेंधानमक इन सबको एकत्र दूधमें पीसकर कुछ गरम करके सुहाता सुहाता लेप करे॥ ६०॥

कृष्णाब्दशुण्ठीमधुकशताह्वोत्पलपावकैः। जलपिष्टैः शिरोलेपः सद्यः शूलनिवारणः॥ ६१॥

पीपल, नागरमोथा, सोंठ, मुलेठी, शतावर, कमल और चीता इनको एकत्र जलमें पीसकर शिर पर लेप करनेसे शिरका शूल तत्काल शांत होता है ६१॥

यवषष्टिकयोश्चान्नं व्योषं क्षारसमन्वितम्। पटोलमुद्गकौलित्थैर्मात्रावद्भोजयेद्रसैः॥ ६२॥

जौ और साठीके चावलोंके भातको त्रिकुटेका चूर्ण और जवाखारका चूर्ण डालकर पटोल, मूँग और कुलथीके यूषके साथ यथोचित मात्रासे भोजन करे॥ ६२॥

हरिद्राद्यतैल।

उभे हरिद्रे पिप्पल्यः सरलं देवदारु च। विडङ्गं चित्रको बिल्वं रोहिषस्य च पल्लवाः॥ ६३॥ गन्धं सौवर्चलं द्राक्षा मञ्जिष्ठा मधुकं बला। वेतसस्य च मूलानि पद्मकोशीरचन्दनम्॥ ६४॥ एभिर्बिल्वप्रमाणैस्तु तैलप्रस्थं विपाचयेत्। द्विगुणश्च पयो दद्यात्सिद्धं तन्नस्यतो जयेत्॥ ६५॥ श्लेष्मजं सन्निपातश्च शीर्षरोगं नियच्छति। उपजिह्विकां गण्डमालां कण्ठशालूकमर्बुदम्॥ ६६॥ विदारिकां मांसपाकं मुखशीर्षगलग्रहम्। दन्तचालं हनोः कम्पं तैलमेतन्नियच्छति॥ ६७॥

हलदी, दारुहलदी, पीपल, धूपसरल, देवदारु, वायविडंग, चीता, बेलगिरी, रोहिषतृणके पत्ते, गंधक, कालानमक, दाख, मजीठ, मुलैठी, खिरैंटी, बेंतकी जड़, पद्माख, खस और चन्दन इन प्रत्येक औषधियोंको चार चार तोले लेकर कल्क बना करके दो प्रस्थ दूधमें डालकर उसके द्वारा एकप्रस्थ तेलको पकावे इस तेलकी नस्य देनेसे कफजनित और त्रिदोषजन्य शिरोरोग नष्ट होता है। यह तेल–उपजिह्वा, गण्डमाला, कण्ठशालूक, अर्बुद, विदारिका, मांसपाक, मुख, शिर और गलेकी पीडा, दन्तचलन, हनुकम्प और अन्यान्य अनेक ऊर्ध्वज रोगोंको दूर करता है ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

सन्निपातभवे कार्य्या सन्निपातहरी क्रिया । पुराणसर्पिषः पानं विशेषेणादिशन्ति हि ॥ ६८ ॥

सन्निपातजनित शिरोरोगमें सन्निपातनाशक चिकित्सा करनी चाहिये । विशेष करके इसमें पुराने घृतका पान कराना हितकारी है ॥ ६८ ॥

श्यामानागरमिश्रेण श्वेतस्यन्देन तत्क्षणात्। संप्रलेपात्प्रणश्यन्ति त्रिदोषोत्थाः शिरोऽर्तयः ॥ ६९ ॥

श्यामा (अनन्तमूल), सोंठ और सफेद अपराजिता इनको एकत्र पीसकर प्रलेप करनेसे त्रिदोषजनित शिरकी पीडाएँ तत्काल शांत होती हैं ॥ ६९ ॥

त्रिकटुकपुष्कररजनीरास्नासुरदारुतुरगगन्धानाम् । क्वाथः शिरोऽर्त्तिजालं नासा पीतो निवारयति॥७०॥

त्रिकुटा, पोहकरमूल, हलदी, रायसन, देवदारु और असगन्ध इन सबका क्वाथ बनाकर उसको नासिकाके द्वारा पान करनेसे शिरकी पीडा शांत होती है ॥ ७० ॥

नागरकल्कविमिश्रं क्षीरं नस्येन योजितं पुंसाम् । नानादोषोद्भूतां शिरोरुजां हन्ति तीव्रतराम् ॥ ७१ ॥

सोंठके कल्कको दूधमें मिलाकर नस्य देनेसे मनुष्योंके अनेक दोषोंसे उत्पन्न हुआ अत्यन्त उग्र शिरोरोग दूर होता है ॥ ७१ ॥

संक्षुण्णाः शर्कराद्धांशा दाडिमीकलिकाः शुभाः । नावने योजिताः सद्यः शिरःशूलहराः पराः ॥ ७२ ॥

अनारकी उत्तम कलियोंको कूट पीसकर उसमें आधा भाग खाँड मिलाकर नास देनेसे तत्काल शिरकी पीडा शांत होती है ॥ ७२ ॥

करञ्जशिग्रुबीजानि पत्रकं शर्करावचाः । सर्वेषां शीर्षरोगाणामेतच्छीर्षविरेचनम् ॥ ७३ ॥

करंज, सहिंजनेके बीज, तेजपात, मिश्री और बच इन सबको एकत्र पीसकर नस्य देनेसे सर्वप्रकारका शिरोरोग दूर होता है ॥ ७३ ॥

नावनं सगुडं विश्वं पिप्पली वा ससैन्धवम् । भुजस्तंभादिरोगेषु सर्वमूर्द्धगदेषु च ॥ ७४ ॥

गुड और सोंठको मिलाकर नस्य देना अथवा पीपल और सैंधेनमकको मिलाकर नस्य देना भुजस्तम्भादि रोग और सर्वप्रकारके शिरोरोगोंमें उपयोगी है ॥ ७४ ॥

षड्बिन्दुतैल ।

यष्टीमधुकविडङ्गैः सभृङ्गराजनागरैर्घृतं सिद्धम् । षड्बिन्दुनस्यदानाद्धृतच्छीर्षामयं हन्यात् ॥ ७५ ॥ पततां शिरोरुहाणां दन्तानां भ्रंशतां दृढीकरणम् । नेत्रसुपर्णप्रतिमं करोति वै दृढं बलश्चापि ॥ ७६ ॥

मुलैठी, वायविडंग, भाँगरा और सोंठ इनके कल्कके द्वारा दूधमें घृतको पकावे इस घृतको षड्बिंदु घृत कहते हैं। इस घृतकी नस्य देनेसे सर्वप्रकारके शिरोरोग, बालोंका गिरना और दाँतोंका टूटना आदि अनेक रोग दूर होते हैं । एवं गरुडके समान तीव्र दृष्टि और अत्यन्त दृष्टिके बलकी वृद्धि होती है तथा दांत दृढ होते हैं ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

षड्बिन्दुतैल ।

एरण्डमूलं तगरं शताह्वा जीवन्तिरास्ना सह सैन्धवञ्च । भृङ्गं विडङ्गं

मधुयष्टिका च विश्वौषधं कृष्णतिलस्य तैलम् ॥ ७७ ॥ अजापयस्तैलविमिश्रितश्च चतुर्गुणे भृङ्गरसे विपक्वम् । षड्बिन्दवो नासिकया विधेयाः सर्वाणि हन्युः शिरसो विकारान् ॥ ७८ ॥ च्युतांश्च केशांश्चलितांश्च दन्तान्निर्बन्धमूलान्सुदृढी करोति । सुपर्णदृष्टिप्रतिमं च चक्षुर्बाह्वोर्बलञ्चाप्यधिकं करोति ॥ ७९ ॥

अण्डकी जड़, तगर, शतावर, जीवंती, रास्ना, सैंधानमक, भाँगरा, वायविडंग मुलैठी और सोंठ इनके कल्कके साथ काले तिलोंके तेलको बकरीके दूध और भाँगरेके चौगुने रसमें पकावे । इसको षड्बिंदु तैल कहते हैं । इस तेलकी नासिकाके द्वारा नस्य देनेसे सर्व प्रकारके शिरोरोग दूर होते हैं । यह तेल गिरते हुए बालोंके, हिलते हुए दाँतों और जिनकी जड़ उखड़ गई है ऐसे दाँतोंको दृढ़ करता है । तथा दृष्टिको गरुडके समान तीक्ष्ण करता है । एवं नेत्र और बाहुओंके बलकी अत्यन्त वृद्धि करता है॥७७॥ ॥ ७८ ॥ ७९ ॥

शताह्वातैल ।

शताह्वैरण्डमूलोग्राचक्रव्याघ्रीफलैः शृतम् । तैलं नस्यान्मरुच्छ्लेष्मातिमिरोर्ध्वगदापहम् ॥ ८० ॥

शतावर, अण्डकी जड, बच, पमाड और बडी कटेरीके फल इनके कल्कके द्वारा तेलको पकावे। इस तेलकी नस्य देनेसे वात, कफ, तिमिर और ऊर्ध्वगतरोग दूर होते हैं ॥ ८० ॥

जीवकाद्यतैल ।

जीवकर्षभकौ द्राक्षा सितायष्टीबलोत्पलैः । तैलं नस्यं पयः पक्वं वातपित्तशिरोगदे ॥ ८१ ॥

जीवक, ऋषभक, दाख, मिश्री, मुलैठी, खिरैंटी और कमल इनके कल्कके द्वारा दूधमें तेलको पकावे । इस तेलकी वातपित्तजन्य शिरोरोगमें नस्य देनेसे लाभ होता है ॥ ८१ ॥

बलाद्यतैल ।

बलाजीवन्तिनिर्यासैः पयोभिर्यमकं पचेत । जीवनीयैश्च नस्यैश्च सर्वजत्रूर्ध्वरोगजित ॥ ८२ ॥

खिरैंटी और जीवंतीके रस, दूध और जीवनीय गणकी औषधियोंके कल्कके साथ तेलको पकावे । इस तेलकी नस्य देनेसे सर्वप्रकारके ऊर्ध्वजत्रुरोग दूर होते हैं ॥ ८२ ॥

क्षयशिरोरोगकी चिकित्सा ।

क्षयजे क्षयनाशाय कर्त्तव्यो बृंहणो विधिः । पाने नस्ये च सर्पिः स्याद्वातघ्नैर्मधुरैः शृतम् ॥ क्षयकासापहं चात्र सर्पिः पथ्यतमं सदा ॥ ८३ ॥

क्षयजशिरोरोगमें क्षयको नष्ट करनेके लिये बृंहण विधि करनी चाहिये । पान और नस्यमें वातनाशक तथा मधुर औषधियोंके द्वारा घृतको पकाकर सेवन करे । एवं कहा हुआ घृत भी यहां अत्यन्त उपयोगी है ॥ ८३ ॥

कृमिजे व्योषनक्ताह्वशिग्रुबीजैश्च नावनम् । अजामूत्रयुतं नस्यं कर्त्तव्यं कृमिजित्परम् ॥ ८४ ॥

कृमिजन्यशिरोरोगमें त्रिकुटा, करंजके बीज और सहिंजनेके बीज इनको एकत्र बकरीके मूत्रमें पीसकर नस्य देनेसे कृमिज शिरोरोग दूर होता है ॥ ८४ ॥

शोणितं नस्यतो दद्यात्तेन मूर्च्छन्ति जन्तवः । मत्ताः शोणितगन्धेन समायान्ति यतस्ततः ॥ ८५ ॥

कृमिजन्यशिरोरोगमें रुधिरकी नस्य देवे, रुधिरकी गंधसे शिरके कृमि नष्ट होते हैं । इस कारण रुधिरके नस्यसे कृमिजशिरोरोग दूर होता है ॥ ८५ ॥

सुतीक्ष्णधूमनस्याभ्यां कुर्य्यान्निर्हरणं भृशम् । पूतिमांसकृतान्धूमान्कृमिघ्नांश्च प्रयोजयेत ॥ भोजनानि कृमिघ्नानि पानानि विविधानि च ८६॥

तीक्ष्ण धूम्र और नस्यके द्वारा कृमियोंको दूर कर और दुर्गंधित मांसकी धूनी देवे । तथा अनेक प्रकारके कृमिनाशक भोजन और पान प्रयोग करे ॥८६॥

ह्रस्वशिग्रुकबीजैर्वा कांस्यनीलीसमायुतैः । कृमिघ्नैरवपीडैश्च मूत्रपिष्टैः समाचरेत् ॥ ८७ ॥

छोटे सहिंजनेके बीज और नीलाथोथा,-इनको एकत्र गोमूत्रमें पीसकर कृमिनाशक अवपीडन देवे८७

विडंगतैल ।

विडङ्गस्वर्जिकादन्तीहिंगुगोमूत्रसंयुतम् । विपक्वं सार्षपं तैलं कृमिघ्नं नस्यमुत्तमम् ॥ ८८ ॥

वायविडंग, सज्जी, दन्ती और हींग इनका कल्क बनाकर उसके साथ गोमूत्रमें सरसोंके तेलको पकावे यह तेल कृमिनाशक है, इसीलिये इसकी कृमिजन्य शिरोरोगमें नस्य देना उत्तम है ॥ ८८ ॥

अपामार्गके तैल ।

अपामार्गफलं व्योषं निशाक्षारकरामठैः । सविडङ्गं शृतं मूत्रे तैलं नस्यं कृमिं जयेत् ॥ ८९ ॥

चिरचिटेके फल, त्रिकुटा, हलदी, जवाखार, हींग और वायविडंग इनके कल्कके द्वारा गोमूत्रमें तेलको पकावे । इस तेलकी नस्य देनेसे कृमिजन्यशिरोरोग दूर होता है ॥ ८९ ॥

सूर्यावर्तरोगकी चिकित्सा ।

सूर्य्यावर्त्ते विधातव्यं नस्यकर्मादिभेषजम् । पाययेत्सगुडं सर्पिर्घृतपूरांश्च भक्षयेत् ॥ ९० ॥

सूर्यावर्तरोगमें नस्यकर्म्मादिक औषधिका प्रयोग करे तथा गुड और घी इनको एकत्र मिलाकर पान करावे अथवा घृतपूर (घेवर) भक्षण करावे ॥९०॥

सूर्य्यावर्त्ते शिरावेधो नावनं क्षीरसर्पिषा । हितः क्षीरघृताभ्यासस्ताभ्याश्चैव विरेचनम् ॥ ९१ ॥

सूर्यावर्त्तरोगमें शिरावेध करके दूध और घृत मिलाकर नस्य देवे तथा दूध और घीको मिलाकर पान करावे और इनहींके द्वारा विरेचन देवे ॥९१॥

क्षीरपिष्टैस्तिलैः स्वेदो जीवनीयैश्च शस्यते ॥ ९२ ॥

तिलोंको दूधमें पीसकर स्वेद देनेसे अथवा जीवनीयगणकी औषधियोंको दूधमें पीसकर स्वेद देनेसे सूर्यावर्त्तरोग दूर होता है॥ ९२ ॥

महौषधस्य स्वरसं वचापिप्पलिभिर्युतम् । अवपीडं प्रयोक्तव्यं सूर्य्यावर्त्तविभेदनम् ॥ ९३ ॥

अदरखका स्वरस, वचा और पीपल इनके द्वारा अवपीडन करनेसे सूर्यावर्त्तरोग दूर होता है॥ ९३ ॥

भृङ्गराजरसश्छागक्षीरतुल्योऽर्कतापितः । सूर्य्यावर्त्तं निहन्त्याशु नस्येनैव प्रयोजितः ॥ ९४ ॥

भाँगरेका स्वरस और बकरीका दूध इन दोनोंको समान भाग लेकर धूपमें गरम करके नस्य देनेसे सूर्यावर्त्तरोग शीघ्र नष्ट होता है ॥ ९४ ॥

जाङ्गलानि च मांसानि कारयेदुपनाहनम् । तेनास्य शाम्यते व्याधिः सूर्य्यावर्त्तः सुदारुणः ॥ ९५ ॥

जांगलप्रदेशके जीवोंके मांसके द्वारा उपनाहनकर्म्म करावे इससे दारुण सूर्यावर्त्तरोग नष्ट होता है ॥ ९५ ॥

मयूरान्कुक्कुटाञ्छागीक्षीरेणैव विपाचयेत् । तत्क्षीरात्तु समुद्भूतं नवनीतमथोद्धरेत् ॥ ९६ ॥ तत्क्षीरे षड्गुणे साध्यं जीवनीयौषधैः सह । तस्य नस्यं प्रदातव्यं सूर्य्यावर्त्तविनाशनम् ॥ ९७ ॥

मोर और मुरगेको बकरीके दूधमें पकावे । फिर उस दूधका दही जमाकर उसको मथकर नवनीत निकाल लेवे। फिर उसको छःगुने दूधमें जीवनीयग-

णकी औषधियोंके कल्कके साथ सिद्ध करे। इस घृतकी नस्य देनेसे सूर्य्यावर्त्तरोग दूर होता है॥९७॥

कृतमालपल्लवरसैः [illegible]रिमञ्जरिमूल-कल्कनवनीतम्। नस्येन जयति नियतं सूर्य्यावर्त्तं सुदारुणं पुंसाम्॥९८॥

अमलतासके पत्तोंका रस, चिरचिटेकी जडका कल्क और नैनीघी इनको एकत्र मिलाकर नस्य देनेसे मनुष्योंका दारुण सूर्य्यावर्त्तरोग दूर होता है॥९८॥

अर्धावभेदके पूर्वं स्नेहस्वेदौ हि योजयेत। विरेकः कायशुद्धिश्च धूमः स्निग्धोष्णभोजनम्॥ ९९॥

अर्धावभेदकरोगमें प्रथम स्नेह और स्वेद प्रयोग करे, फिर विरेचन, शरीरशुद्धि, धूम्रपान, स्निग्ध और उष्ण भोजन देवे॥ ९९॥

तिलकल्करसं तैलं सक्षौद्रलवणान्वितम्। तैलस्य लेपनं शीर्षमर्द्धभेदं व्यपोहति॥ १००॥

तिलोंके कल्कका रस, तेल, शहद और सैंधानमक इन सबको एकत्र मिलाकर इस तेलका लेप करनेसे अर्द्धावभेदक शिरोरोग दूर होता है॥ १००॥

विडङ्गानि तिलान्कृष्णान्समं कृत्वा तु पेषयेत्। नस्यकर्म्माणि दातव्यमर्द्धभेदं व्यपोहति॥१०१॥

वायविडंग और काले तिल इन दोनोंको समान भाग लेकर एकत्र पीसकर नस्य देनेसे अर्द्धावभेदक शिरोरोग दूर होता है॥ १०१॥

शालिपर्ण्यम्भसा पिष्ट्वा नस्यमर्द्धविभेदजित्। चक्रमर्दकबीजैर्वा लेपः काञ्जिकपेषितः॥ १०२॥

शालिपर्णीके पत्तोंको जलमें पीसकर नस्य देनेसे अथवा चकवडके बीजोंको काँजीमें पीसकर प्रलेप करनेसे अर्द्धावभेदक शिरोरोग दूर होता है॥१०२॥

यद्यस्ति ते शिरसि शूलमतीव गाढं सूर्य्योदये समसितञ्च पयः पिब त्वम्। नासापुटेन पयसार्धमपि[illegible]न्यथशक्ति ह-[illegible] सकलं मर्दैव॥१०३॥

जो सिरमें [illegible] सूर्योदयके सन्मुख [illegible] बराबरकी खाँड मिलाकर दूध पान करे [illegible] उत्पन्न होती है और सम्पूर्ण शिरकम्पकी पीडा दूर होती है। मैंने सदा यह अनुभूत फल देखा है॥ १०३॥

शारिवोत्पलयष्ट्याह्वकुष्ठैर्लेपोऽम्लसंयुतैः। घृतपूराश्च सेव्या वा सूर्य्यावर्त्तार्द्धभेदयोः॥ १०४॥

सूर्य्यावर्त्त और अर्द्धावभेद शिरोरोगमें शारिवा, कमल, मुलैठी और कूठ इनको एकत्र जलमें पीसकर लेप करना अथवा घृतपूर (घेवर) को सेवन करना चाहिए। इससे शीघ्र लाभ होता है॥ १०४॥

दशमूलीकषायन्तु सर्पिःसैन्धवसंयुतम्। नस्यमर्द्धावभेदघ्नं सूर्य्यावर्त्तशिरोर्त्तिनुत॥ १०५॥

दशमूलका काथ, घी और सैंधानमक इनको एकत्र मिलाकर नस्य देनेसे अर्द्धावभेदक और सूर्य्यावर्त्त शिरकी पीडा दूर होती है॥ १०५॥

भृष्टाज्ये कुंकुमं किञ्चित्पिहितं सितया समम्। पिष्टं छगल्याः क्षीरेण भुक्तं पित्तविनाशकम्॥ एतदर्द्धावभेदघ्नं सूर्य्यावर्त्तशिरोर्तिनुत॥१०६॥

केशरको किंचित् घीमें भूनकर उसमें बराबरकी मिश्री मिलावे। फिर बकरीके दूधमें पीसकर पान करे तो पित्तजन्यरोग, अर्द्धावभेदक और सूर्य्यावर्त्त नामक शिरकी पीडा शांत होती है॥ १०६॥

अपामार्गस्य बीजानि विश्वं सक्षौद्रशर्करम्। नस्यं प्रयोजयेन्नित्यं सूर्य्यावर्त्तार्द्धभेदयोः॥ १०७॥

चिरचिटेके बीज, सोंठ, मिश्री और शहद इन सबको एकत्र मिलाकर निरन्तर नस्य देनेसे सूर्य्यावर्त्त और अर्द्धावभेदकरोग दूर होता है॥ १०७॥

एष एव प्रयोक्तव्यः शिरोरोगे कफात्मके ॥ १०८ ॥

यही सम्पूर्ण विधि कफजन्यशिरोरोगमें करनी चाहिये ॥ १०८ ॥

अनंतवाते कर्त्तव्यः सूर्य्यावर्तेरितो विधिः । शिराव्यधश्च कर्तव्योऽनन्तवातप्रशान्तये ॥ १०९ ॥

अनन्तवातरोगमें सूर्य्यावर्त्तोक्त विधि करनी चाहिये।तथा अनन्तवातको शांत करनेके लिये शिरावेध भी करना चाहिये ॥ १०९ ॥

आहारश्च विधातव्यो वातपित्तविनाशनः । मधुमिश्रकसंयावघृतपूरैश्च भोजनैः ॥ ११० ॥

इसमें वातपित्तनाशक आहार देना चाहिये । एवं मधुमिश्रित संयाव (हलुआ) और घृतपूर (घेवर) आदिका भोजन करना चाहिये ॥ ११० ॥

सशर्करं कुंकुममाज्यभृष्टं नस्यं विधेयं पवनासृगुत्थे ॥ भ्रूशङ्खकर्णाक्षिशिरोर्द्धशूले सूर्य्योदये शङ्खकसार्धभेदे ॥ १११ ॥

वातजन्य शिरकी पीडामें अथवा भौं, कनपटी, कर्ण, नेत्र और शिर इनके शूल, अर्द्धशूल, शंखक और अर्द्धावभेदक शिरोरोगमें केशर घीमें भूनकर मिश्री मिलाकर सूर्य्योदयके समय नस्य देवे तो सब प्रकारका शिरोरोग दूर होता है ॥ १११ ॥

शिरीषमूलकफलैरवपीडश्च योजयेत् । अवपीडो हितो वा स्याद्वचापिप्पलिभिः कृतः ॥ ११२ ॥

शिरसकी जड और फल अथवा शिरसकी छाल और मूलीके बीज इनके द्वारा अवपीडन देनेसे अथवा बच और पीपल इनसे अवपीडन करनेसे सूर्य्यावर्त्त और अर्धावभेदकरोग दूर होता है ॥ ११२ ॥

पीत्वा शशमुण्डरसं मरिचैरवचूर्णितं समभ्यस्तम् । सप्ताहं भक्तादौ सूर्य्यावर्त्तार्द्धभेदकौ हन्यात् ॥ ११३ ॥

खरगोशके शिरके रसमें कालीमिरचोंके चूर्णको डालकर भोजनके पहले सात दिनतक सेवन करे तो सूर्य्यावर्त्त और अर्धावभेदरोग दूर होता है ॥ ११३ ॥

धात्र्यक्षपथ्यासनिशागुडूचीभूनिम्बनिम्बैः क्वथितः षडङ्गः । भ्रूशङ्खकर्णाक्षिशिरोर्द्धशूले सूर्योदये शङ्खकमर्द्धभेदे ॥ ११४ ॥ नक्तान्ध्यकाचे पटले सशुक्रे पाकेऽश्रुपाते तिमिरेऽक्षिरोगे । पक्ष्मप्रकोपे विनिहन्ति चैष सद्यो गदं वायुरिवाभ्रवृन्दम् ॥ ११५ ॥

आमले, बहेडा, हरड, हलदी, गिलोय, चिरायता और नीम इनका क्वाथ बनाकर सूर्य्योदयके समय पान करनेसे भ्रू, शंख, कर्ण,नेत्र और शिरका शूल, ऊर्ध्वशूल, शंखक और अर्धावभेदक ये सब रोग दूर होते हैं । तथा रात्र्यंध, काच, पटल, शुक्र, पाक, अश्रुपात, तिमिर,अक्षिरोग और पक्ष्मप्रकोप इत्यादि समस्त नेत्ररोग इसप्रकार दूर होते हैं, जिस प्रकार वायुके द्वारा मेघोंका समूह दूर होजाता है ॥ ११४ ॥ ॥ ११५ ॥

शर्करा कुंकुमं द्राक्षा चतुर्थांशेन निक्षिपेत् । नवनीते ततस्तेन कृत्वैक्यं नस्यमाचरेत् ॥ ११६ ॥ नस्यमेतत्प्रशंसन्ति सूर्य्यावर्त्तार्धभेदके । शिरोरोगे परं वापि वातपित्तसमुद्भवे ॥ ११७ ॥

मिश्री, केशर और दाख ये सब समान भाग और चौथाई भाग नवनीत लवे । इन सबको एकत्र मिलाकर नस्य देनेसे सूर्य्यावर्त्त और अर्धावभेदक शिरोरोग दूर होता है। यह नस्य वातपित्तजन्यशिरोरोगमें भी हितकारी है ॥ ११६ ॥ ११७ ॥

सूर्य्यावर्त्तहरः कृत्स्नो विधिरप्यत्र शस्यते ॥ ११८ ॥

इस अर्धावभेदकरोगमें सूर्यावर्त्तनाशक सम्पूर्ण विधि भी प्रयोग करनी चाहिये ॥ ११८ ॥

जीवकाद्यतैल ।

जीवकर्षभकौ द्राक्षा मधूकं मधुकं बला । नीलोत्पलं चन्दनश्च विदारी

शर्करा तथा ॥ ११९ ॥ तैलप्रस्थं पचेदेभिः शनैः पयसि षड्गुणे । जांगलस्य तु मांसस्य तुलार्द्धस्य रसेन तु ॥ १२० ॥ सिद्धमेतद्भवेन्नस्यं तैलमर्द्धावभेदकम् । बाधिर्य्यं कर्णशूलञ्च तिमिरं गलशुण्डिकाम् ॥ १२१ ॥ वातिकं पैत्तिकञ्चैव शीर्षरोगं नियच्छति । दन्तचालं शिरश्चालमर्दितञ्चापकर्षति ॥ १२२ ॥

जीवक, ऋषभक, दाख, मुलैठी, महुवा, खिरैंटी, नलिोत्पल (अभावमें नीलोफर), चन्दन, विदारीकंद और शर्करा (मिश्री) इनके कल्कके द्वारा एक प्रस्थ तैलको छः गुने दूधमें और जांगलप्रदेशके जीवोंके आधा तुला परिमाण मांसरसके साथ यथाविधि तेलको पकावे । इस तेलकी नस्य देनेसे अर्धावभेदक शिरोरोग, बधिरता, कर्णशूल, तिमिर, गलशुण्डी, वात और पित्तजन्य शिरोरोग, दंतचलन, शिरका हिलना और अर्दित ये सब रोग नष्ट होते हैं ॥ ११९ ॥१२०॥१२१॥१२२ ॥

सूर्य्यावर्ते हितं यत्तच्छंखके स्वेदवार्जितम् । क्षीरसर्पिः प्रशंसन्ति नस्ये पाने च शंखके ॥ १२३ ॥

सूर्य्यावर्त्तरोगमें स्वेदको छोडकर और जो चिकित्सा कही है, वह सब शंखकरोगमें भी करनी चाहिये । दूध और घी मिलाकर शंखकरोगमें नस्य और पानमें प्रयोग करना हितकर है ॥ १२३ ॥

शतावरीं कृष्णतिलान्मधुकं नीलमुत्पलम् । दूर्वां पुनर्नवां वापि लेपे साध्ववतारयेत् ॥ १२४ ॥

शतावर, कालेतिल, मुलैठी, नीलकमल, दूब और पुनर्नवा इनको एकत्र पीसकर भलीभांति लेप प्रयोग करे ॥ १२४ ॥

भद्रश्रियं पुंडरीकं मधुकं नीलमुत्पलम् । पद्मकं वेतसं दूर्वालामज्जकमथापि वा ॥ १२५ ॥ दार्वींहरिद्रामञ्जिष्ठाफेनिलोशीरमेव च । एतदालेपनं कुर्याच्छङ्खकस्य प्रशान्तये ॥ १२६ ॥

शंखकरोगको शमन करनेके लिये सफेदचन्दन, पुण्डरीक (पुण्डेरिया), मुलैठी, नीलकमल, पद्माख, बेंत, दूध, लामज्जकतृण, दारुहलदी, हलदी, मजीठ, रीठा और खस इन सबको एकत्र मिलाकर लेप करना चाहिए ॥ १२५ ॥ १२६ ॥

सूर्य्यावर्त्तापहं चास्मिन्नवपीडं प्रयोजयेत् ॥ १२७ ॥

इसमें सूर्य्यावर्त्तनाशक अवपीडन भी प्रयोग करे ॥ १२७ ॥

क्रौञ्चकादम्बहंसानां शराय्याः कच्छपस्य च । रसैः संबृंहितस्याथ तस्य शङ्खस्य सन्धिजाः ॥ १२८ ॥

क्रौंच (कुरर), कादम्ब (कलहंस), हस, शरारी (सिन्दुआडी) और कछुआ इनके मांसरसके द्वारा हृष्ट पुष्ट शरीरवाले मनुष्यके शंखकी, सन्धियोंकी शिराओंको वेधे ॥ १२८ ॥

शङ्खकस्य शिरां प्राज्ञो विध्येदेव न ताडयेत् । सर्पिषा क्षीरपानन्तु नस्येनापि सुखेन वा ॥ १२९ ॥

बुद्धिमान वैद्य शंखककी शिराको वेधकर ताडन नहीं करे । और घृतके साथ दूधको पान करे और सुखपूर्वक नस्य देवे ॥ १२९ ॥

एष एव विधिः श्रेष्ठः शंखके शर्करान्वितः । शर्कराक्षीरसलिलैः शिरश्च परिषेचयेत् ॥ १३० ॥

शंखकरोगमें शर्करासहित यह विधि करना अत्यन्त श्रेष्ठ है । मिश्री, दूध और जल इनको एकत्र मिलाकर इनसे शिरपर सेचन करे ॥१३०॥

वातो रूक्षादिभिः क्रुद्धः शिरःकम्पमुदीरयेत् ॥१३१ ॥ तत्रामृताबलारास्नामहास्नेहातिगन्धकैः । स्नेहस्वेदोऽतिवातघ्नं शस्तं नस्यञ्च तर्पणम् १३२

रुक्ष आदि प्रयोगोंको सेवन करनेसे वायु कुपित होकर शिरकम्पको उत्पन्न करता है उसमें गिलोय,

खिरैंटी, रायसन तथा अन्यान्यवातनाशक द्रव्य तैल, घृतादि और सुगन्धितपदार्थोंके द्वारा स्नेह और स्वेद देवे तथा नस्य और तर्पण देवे यह प्रयोग अत्यन्त वातनाशक है ॥ १३१ ॥ १३२ ॥

दग्धमत्स्यं विनिष्पीड्य निर्द्रवीकृत्य यत्नतः । कण्डूरामूलनिर्य्यासो माषयूषावलोडितम् ॥ १३३ ॥ भक्षितं शमयेच्चूर्णं शिरःकम्पनसंशयम् ॥ १३४ ॥

मछलीको पुटपाककी विधिसे पकाकर उसका रस निकालकर धूपमें सुखा लेवे । फिर उसको कौंछकी जडके रसमें और उडदोंकी जडके यूषमें आलोडन करके भक्षण करे । इस चूर्णके सेवनसे शिरःकम्प अवश्य नष्ट होता है ॥ १३३ ॥ १३४ ॥

नस्यकर्म्म च कुर्वीत शिरोरोगेषु शास्त्रवित् । कम्पदाहार्दिते कुर्य्याद्वातव्याधिक्रियाविधिः ॥ १३५ ॥

शास्त्रको जाननेवाला वैद्य शिरोरोगमें विधिपूर्वक नस्य कर्म्म करे। कम्प और दाहकी पीडामें वातव्याधिकी चिकित्साके समान चिकित्सा करे।१३५

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायां शिरोरोगनिदान चिकित्साधिकार समाप्त ॥ ६८ ॥

अथ स्त्रीरोगाधिकार ।

अब सबसे पहले नष्टआर्त्तवकी चिकित्सा कहते हैंः-

गृहचिरस्थितमङ्गलचूतदलैः संस्कृतं जलं पेयम् । मरिचासजाम्रमदिरापानस्तारसलिलस्य ॥ १ ॥

घरमें बहुत दिनोंसे बँधीहुई आमके पत्तोंकी बन्दनवारके द्वारा जलको संस्कार करके पान करनेसे अथवा काली मिर्च, विजयसार और मद्यका फूल इनको एकत्र मिलाकर पानकरनेसे स्त्रियोंके नष्टहुआ रजोधर्म फिरसे होने लगता है ॥ १ ॥

कटुकालाबीजदन्तीचपलागुडमदनाकिण्वयावशूकैः । सस्नुकक्षीरैर्वर्त्तिर्योनिगता कुसुमसञ्जननी ॥ २ ॥

कडवी तोम्बीके बीज, दन्ती (अभावमें जमालगोटा), पीपल, गुड, मैनफल, सुराबीज और जवाखार इन सबको एकत्र थूहरके दूधमें पीसकरके बत्ती बनाकर योनिमें रखनेसे स्त्रीके रजोदर्श होता है ॥ २ ॥

सलिलनिपीतं कुसुमं रक्तजपाया गृहाम्बुसंपीतम् । जनयति कुसुमं नार्य्या भृष्टं ज्योतिष्मतीपत्रम् ॥ ३ ॥

लालगुडहलके फूलोंको काँजीमें पीसकर पान करनेसे अथवा मालकांगुनीके पत्तोंको भूनकर काँजीके साथ पीसकर पान करनेसे स्त्रियोंके रजोदर्श उत्पन्न होता है ॥ ३ ॥

पंकेरुहाणां मूलं पिष्टकमशितं तथा सुराबीजम् । हिमसलिलेन निपीतं भवतीह कुसुमाय नारीणाम् ॥ ४ ॥

कमलकी जड़को पीसकर भक्षण करनेसे अथवा सुराके बीजको शीतल जलके साथ पीसकर पान करनेसे स्त्रियोंके आर्त्तव उत्पन्न होता है ॥ ४ ॥

अथ प्रदररोगका निदान ।

विरुद्धमद्याध्यशनादजीर्णाद्गर्भप्रपातादतिमैथुनाच्च । यानाध्वशोकादतिकर्षणाच्च भाराभिघाताच्छयनाद्दिवा च ॥ ५ ॥

संयोग विरुद्ध भोजन करनेसे, मदिराको पीनेसे, भोजनपर भोजन करनेसे, अजीर्णसे, गर्भके पतित होनेसे, अत्यन्त मैथुन करनेसे, हाथी, घोड़े आदिपर चढकर उसको दौड़ानेसे, अधिक मार्गके चलनेसे, अत्यन्त शोक करनेसे, अत्यन्त कर्षण करनेसे (उपवासादि करनेसे), बहुत बोझको उठानेसे, अभिघातसे और दिनमें अधिक सोनेसे स्त्रियोंके अनेकप्रकारके प्रदर रोग उत्पन्न होते हैं ॥ ५ ॥

प्रदरके समान्य लक्षण।

असृग्दरं भवेत्सर्वं साङ्गमर्दं सवेदनम् ॥ ६ ॥

सर्वप्रकारके प्रदररोगमें कुष्टरजका अत्यन्त स्राव होता है, अंग टूटते हैं और पीडा होती है ॥ ६ ॥

अत्यन्त रुधिर बहनेके उपद्रव।

तस्यातिवृद्धौ दौर्बल्यं भ्रमो मूर्च्छा मदस्तृषा । दाहः प्रलापः पांडुत्वं तन्द्रा रोगाश्च वातजाः ॥ ७ ॥

प्रदरके अधिक बढजानेसे दुर्बलता, भ्रम, मूर्च्छाका आना, मद (नशासा) होना, पियासका अधिक लगना, दाहका होना, वृथा बकवाद, शरीरका रंग, सफेदी युक्त पीला पडजाना, नेत्रोंमें तन्द्रा और वातजनित आक्षेपकादिरोग होते हैं ॥ ७ ॥

तं श्लेष्मपित्तानिलसन्निपातैश्चतुःप्रकारं प्रदरं वदन्ति ।

यह प्रदररोग कफ,पित्त, वात और सन्निपात इन भेदोंसे चार प्रकारका होता है ।

कफजप्रदरके लक्षण।

आमं सपिच्छाप्रतिमं सपाण्डुपुलाकतोयप्रतिमं कफात्तु ॥ ८ ॥

कफके प्रदरमें आम अर्थात् कच्चे रसवाला, सेमल आदिके गोंदके समान चिकना, कुछएक पीलापन लिये हुए सफेद और तुच्छ चावलोंके धोवनके समान सफेद स्राव होता है ॥ ८ ॥

पित्तजनितप्रदरके लक्षण।

सपीतनीलासितरक्तमुष्णं पित्तार्त्तियुक्तं भृशवेगि पित्तात् ।

पित्तजन्य प्रदरमें पीला, नीला,काला, लाल और गरम,ऐसा पित्तकी दाह और पीडा सहित बारम्बार स्राव होता है ।

वातजन्यप्रदरके लक्षण।

रूक्षारुणं फेनिलमल्पमल्पं वातार्त्तिवातात्पिशितोदकाभम् ॥ ९ ॥

वातके प्रदरमें रूखा, लाल, झागोंसहित और वायुकी पीड़ा सहित मांसके धोवनके समान थोडा थोड़ा स्राव होता है । ॥ ९ ॥

त्रिदोषजप्रदरके लक्षण।

मक्षौद्रसर्पिर्हरितालवर्णं मज्जाप्रकाशं कुणपं त्रिदोषम् । तं चाप्यसाध्यं प्रवदन्ति तज्ज्ञा न तत्र कुर्वीत भिषक् चिकित्साम् ॥ १० ॥

त्रिदोषजनित प्रदररोगमें शहद,घी और हरतालके समान रंगवाला, मज्जाके समान और शवके अभ्यन्तर जीवके समान गंधवाला रुधिर बहता है । विद्वान् वैद्य इस प्रदरको असाध्य कहते हैं । इस कारण वैद्य इसकी चिकित्सा नहीं करे ॥ १० ॥

असाध्यप्रदररोगवाली स्त्रीकी त्याज्य चिकित्सा।

शश्वत् स्रवन्तीमास्रावं तृष्णादाहज्वरान्विताम् । क्षीणरक्तां दुर्बलाञ्च तामसाध्यां विनिर्दिशेत् ॥ ११ ॥

जिस स्त्रीके निरन्तर रुधिरका स्राव हो, तृषा, दाह,तथा ज्वरसे युक्त हो, बहुत दुर्बल और जिसका रुधिर क्षीण होगया हो ऐसी प्रदररोगवाली स्त्रीकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये ॥ ११ ॥

चिकित्सानिवृत्तिके पश्चात् शुद्धार्त्तवके लक्षण।

मासान्निष्पिच्छदाहार्त्ति पञ्चरात्रानुबन्धि च । नैवातिबहुलात्यल्पमार्त्तवं शुद्धमादिशेत् ॥ १२ ॥ शशासृक्प्रतिमं यच्च यद्वा लाक्षारसोपमम् । तदार्त्तवं प्रशंसन्ति यद्वासो न विरञ्जयेत् ॥ १३ ॥

जो आर्त्तव महीनेके महीने निकले,जिसमें चिकनापन, दाह और शूल न हो तथा पांच दिनतक निकलता रहे और जो न बहुत निकले और न थोडा निकले, वह आर्त्तव शुद्ध होता है । जो आर्त्तव खरगोशके रुधिरके समान लाल हो अथवा लाखके रसके समान हो और जिसके सने हुए वस्त्रको जलमें धोनेसे उसका रंग छूटजाय उसको शुद्धआर्त्तव कहते हैं ॥ १२ ॥ १३ ॥

खिरैंटी, रायसन तथा अन्यान्यवातनाशक द्रव्य तैल, घृतादि और सुगन्धितपदार्थोंके द्वारा स्नेह और स्वेद देवे तथा नस्य और तर्पण देवे यह प्रयोग अत्यन्त वातनाशक है ॥ १३१ ॥ १३२ ॥

दग्धमत्स्यं विनिष्पीड्य निर्द्रवीकृत्य यत्नतः । कण्डूरामूलनिर्य्यासो माषयूषावलोडितम् ॥ १३३ ॥ भक्षितं शमयेच्चूर्णं शिरःकम्पनसंशयम् ॥ १३४ ॥

मछलीको पुटपाककी विधिसे पकाकर उसका रस निकालकर धूपसे सुखा लेवे । फिर उसको कौंछकी जडके रसमें और उडदोंकी जडके यूषमें आलोडन करके भक्षण करे । इस चूर्णके सेवनसे शिरःकम्प अवश्य नष्ट होता है ॥ १३३ ॥ १३४ ॥

नस्यकर्म्म च कुर्वीत शिरोरोगेषु शास्त्रवित् । कम्पदाहार्दिते कुर्य्याद्वातव्याधिक्रियाविधिः ॥ १३५ ॥

शास्त्रको जाननेवाला वैद्य शिरोरोगमें विधिपूर्वक नस्य कर्म्म करे। कम्प और दाहकी पीडामें वातव्याधिकी चिकित्साके समान चिकित्सा करे।१३५

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायां शिरोरोगनिदान चिकित्साधिकार समाप्त ॥ ६८ ॥

अथ स्त्रीरोगाधिकार ।

अब सबसे पहले नष्टआर्त्तवकी चिकित्सा कहते हैं:-

गृहचिरस्थितमङ्गलचूतदलैः संस्कृतं जलं पेयम् । मरिचासजाग्रमदिरापानस्तारसलिलस्य ॥ १ ॥

घरमें बहुत दिनोंसे बँधीहुई आमके पत्तोंकी बन्दनवारके द्वारा जलको संस्कार करके पान करनेसे अथवा काली मिर्च, विजयसार और मद्यका फूल इनको एकत्र मिलाकर पानकरनेसे स्त्रियोंके नष्टहुआ रजोधर्म फिरसे होने लगता है ॥ १ ॥

इक्ष्वाकुबीजदन्तीचपलागुडमदनकिण्वयावशूकैः । सस्नुक्क्षीरैर्वर्त्तिर्योनिगता कुसुमसञ्जननी ॥ २ ॥

कडवी तोम्बीके बीज, दन्ती (अभावमें जमालगोटा), पीपल, गुड, मैनफल, सुराबीज और जवाखार इन सबको एकत्र थूहरके दूधमें पीसकरके बत्ती बनाकर योनिमें रखनेसे स्त्रीके रजोदर्श होता है ॥ २ ॥

सलिलनिपीतं कुसुमं रक्तजपाया गृहांबुसंपीतम् । जनयति कुसुमं नार्य्या भृष्टं ज्योतिष्मतीपत्रम् ॥ ३ ॥

लालगुडहलके फूलोंको काँजीमें पीसकर पान करनेसे अथवा मालकांगुनीके पत्तोंको भूनकर काँजीके साथ पीसकर पान करनेसे स्त्रियोंके रजोदर्श उत्पन्न होता है ॥ ३ ॥

पंकेरुहाणां मूलं पिष्टकमशितं तथा सुराबीजम् । हिमसलिलेन निपीतं भवतीह कुसुमाय नारीणाम् ॥ ४ ॥

कमलकी जड़को पीसकर भक्षण करनेसे अथवा सुराके बीजको शीतल जलके साथ पीसकर पान करनेसे स्त्रियोंके आर्त्तव उत्पन्न होता है ॥ ४ ॥

अथ प्रदररोगका निदान ।

विरुद्धमद्याध्यशनादजीर्णाद्गर्भप्रपातादतिमैथुनाच्च । यानाध्वशोकादतिकर्षणाच्च भाराभिघाताच्छयनादिवा च ॥ ५ ॥

संयोग विरुद्ध भोजन करनेसे, मदिराको पीनेसे, भोजनपर भोजन करनेसे, अजीर्णसे, गर्भके पतित होनेसे, अत्यन्त मैथुन करनेसे, हाथी, घोड़े आदिपर चढकर उसको दौड़ानेसे, अधिक मार्गके चलनेसे, अत्यन्त शोक करनेसे, अत्यन्त कर्षण करनेसे (उपवासादि करनेसे), बहुत बोझको उठानेसे, अभिघातसे और दिनमें अधिक सोनेसे स्त्रियोंके अनेकप्रकारके प्रदर रोग उत्पन्न होते हैं ॥ ५ ॥

प्रदरके समान्य लक्षण ।

असृग्दरं भवेत्सर्वं साङ्गमर्दं सवेदनम् ॥ ६ ॥

सर्वप्रकारके प्रदररोगमें दुष्टरजका अत्यन्त स्राव होता है, अंग टूटते हैं और पीडा होती है ॥ ६ ॥

अत्यन्त रुधिर बहनेके उपद्रव ।

तस्यातिवृद्धौ दौर्बल्यं भ्रमो मूर्च्छा मदस्तृषा । दाहः प्रलापः पांडुत्वं तन्द्रा रोगाश्च वातजाः ॥ ७ ॥

प्रदरके अधिक बढजानेसे दुर्बलता, भ्रम, मूर्च्छाका आना, मद (नसासा) होना, पियासका अधिक लगना, दाहका होना, वृथा बकवाद, शरीरका रंग, सफेदी युक्त पीला पडजाना, नेत्रोंमें तन्द्रा और वातजनित आक्षेपकादिरोग होते हैं ॥ ७ ॥

तं श्लेष्मपित्तानिलसन्निपातैश्चतुःप्रकारं प्रदरं वदन्ति ।

यह प्रदररोग कफ,पित्त, वात और सन्निपात इन भेदोंसे चार प्रकारका होता है ।

कफजप्रदरके लक्षण ।

आमं सपिच्छाप्रतिमं सपाण्डुपुलाकतोयप्रतिमं कफात्तु ॥ ८ ॥

कफके प्रदरमें आम अर्थात् कच्चे रसवाला, सेमल आदिके गोंदके समान चिकना, कुछएक पीलापन लिये हुए सफेद और तुच्छ चावलोंके धोवनके समान सफेद स्राव होता है ॥ ८ ॥

पित्तजनितप्रदरके लक्षण ।

सपीतनीलासितरक्तमुष्णं पित्तार्त्तियुक्तं भृशवेगि पित्तात् ।

पित्तजन्य प्रदरमें पीला, नीला,काला, लाल और गरम,ऐसा पित्तकी दाह और पीडा सहित बारम्बार स्राव होता है ।

वातजन्यप्रदरके लक्षण ।

रूक्षारुणं फेनिलमल्पमल्पं वातार्त्तिवातात्पिशितोदकाभम् ॥ ९ ॥

वातके प्रदरमें रूखा, लाल, झागोंसहित और वायुकी पीड़ा सहित मांसके धोवनके समान थोडा थोड़ा स्राव होता है । ॥ ९ ॥

त्रिदोषजप्रदरके लक्षण ।

सक्षौद्रसर्पिर्हरितालवर्णं मज्जाप्रकाशं कुणपं त्रिदोषम् । तं चाप्यसाध्यं प्रवदन्ति तज्ज्ञा न तत्र कुर्वीत भिषक् चिकित्साम् ॥ १० ॥

त्रिदोषजनित प्रदररोगमें शहद,घी और हरतालके समान रंगवाला, मज्जाके समान और शवके अभ्यन्तर जीवके समान गंधवाला रुधिर बहता है । विद्वान् वैद्य इस प्रदरको असाध्य कहते हैं । इस कारण वैद्य इसकी चिकित्सा नहीं करे ॥ १० ॥

असाध्यप्रदररोगवाली स्त्रीकी त्याज्य चिकित्सा ।

शश्वत् स्रवन्तीमास्रावं तृष्णादाहज्वरान्विताम् । क्षीणरक्तां दुर्बलाञ्च तामसाध्यां विनिर्दिशेत् ॥ ११ ॥

जिस स्त्रीके निरन्तर रुधिरका स्राव हो, तृषा, दाह,तथा ज्वरसे युक्त हो, बहुत दुर्बल और जिसका रुधिर क्षीण होगया हो ऐसी प्रदररोगवाली स्त्रीकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये ॥ ११ ॥

चिकित्सानिवृत्तिके पश्चात् शुद्धार्त्तवके लक्षण ।

मासान्निष्पिच्छदाहार्त्ति पञ्चरात्रानुबन्धि च । नैवातिबहुलात्यल्पमार्त्तवं शुद्धमादिशेत् ॥ १२ ॥ शशासृक्प्रतिमं यच्च यद्वा लाक्षारसोपमम् । तदार्त्तवं प्रशंसन्ति यद्वासो न विरञ्जयेत् ॥ १३ ॥

जो आर्त्तव महीनेके महीने निकले,जिसमें चिकनापन, दाह और शूल न हो तथा पांच दिनतक निकलता रहे और जो न बहुत निकले और न थोडा निकले, वह आर्त्तव शुद्ध होता है । जो आर्त्तव खरगोशके रुधिरके समान लाल हो अथवा लाखके रसके समान हो और जिसके सने हुए वस्त्रको जलमें धोनेसे उसका रंग छूटजाय उसको शुद्धआर्त्तव कहते हैं ॥ १२ ॥ १३ ॥

अथ स्त्रीरोगकी चिकित्सा ।

असृग्दरः प्राणहरः स्त्रीणां सर्वत्र कीर्तितः । तस्मात्तस्य प्रशमने परं यत्नं समाचरेत् ॥ १४ ॥

स्त्रियोंका प्रदररोग सर्वत्र प्राणनाशक कहा है, इस कारण उसको शमन करनेके लिये विशेष यत्न करना चाहिये ॥ १४ ॥

नारीणां प्रदरार्तानां योगान्वक्ष्याम्यतःपरम् । योनिशूलापहान्सिद्धान्गर्भसंस्थापनान्परान् ॥ १५ ॥ सर्वेषु पूर्वं वमनं प्रशस्तं रसेक्षुद्राक्षोदकतर्पणैश्च । सपिप्पलीभिर्मधुमण्डकल्कैर्मुस्तायवानाश्च गुडाम्बुमिश्रैः॥१६॥

अब प्रदररोगसे पीडित स्त्रियोंके लिये प्रदररोगको हरनेवाले प्रयोगोंको तथा योनिशूलनाशक और गर्भजनक सिद्ध प्रयोगोंको कहता हूँ। सर्व प्रकारके प्रदरोंमें प्रथम वमन करानी चाहिये और ईखका रस तथा दाखका जल इनके द्वारा तर्पण कराना चाहिये एवं पीपल,शहद,माँड,नागरमोथेका कल्क और जौ इनका गुडके शर्बतके साथ प्रयोग करे ॥ १५ ॥ ॥ १६ ॥

पद्मकोत्पलबीजानि त्रापुसानि शतावरी । विदारी चेक्षुमूलञ्च पिष्ट्वा धौतघृतायुतम् ॥ योन्यां शिरसि गात्रे च प्रदेहोऽसृग्दरापहः ॥ १७ ॥

पद्माख, कमलके बीज, खीरेके बीज, शतावर, विदारीकन्द और ईखकी जड इन सबको एकत्र पीसकर धुले हुए घीमें मिलाकर योनि और शिर तथा शरीरपर मलनेसे प्रदररोग दूर होता है ॥ १७ ॥

मुद्गपर्णीविपक्केन तैलेन पिचुधारणम् । कर्त्तव्यं रक्तनाशाय मार्दवाय सुखाय च ॥ १८ ॥

मुद्गपर्णी द्वारा तेलको पकाकर उसमें रुई अथवा कपडेको भिजोकर फाया रखनेसे रुधिरका गिरना दूर होता है । एवं मृदुता और सुख उत्पन्न होता है ॥ ॥ १८ ॥

दध्ना सौवर्चलाजाजीमधुकं नीलमुत्पलम् । पिबेत्क्षौद्रयुतं नारी वातासृग्दरपीडिता ॥ १९ ॥

कालानमक, जीरा, मुलैठी,नीलकमल और शहद इन सबको एकत्र दहीमें मिलाकर सेवन करनेसे स्त्रियोंका वातजन्य प्रदररोग दूर होता है ॥ १९ ॥

तिलचूर्णं दधि घृतं फाणितं शौकरीं वसाम् । क्षौद्रेण संयुतं पेयं वातासृग्दरनाशनम् ॥ २० ॥

तिलोंका चूर्ण, दही,घी, राब और सूअरकी चर्बी इन सबको एकत्र शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे वातजनित प्रदररोग दूर होता है ॥ २० ॥

वाराहस्य रसो मेध्यः सकौलित्थो निशाधिकः । वातासृग्दरशांत्यर्थं पिबेद्दध्ना वराङ्गना ॥ २१ ॥

सूअरका मांसरस, बकरेका मांसरस और कुलथीका रस इनको दही और अधिकतर हलदीके साथ वातजनित प्रदररोगको शमन करनेके लिए सेवन करना चाहिए ॥ २१ ॥

पित्तासृग्दरशान्त्यर्थं पिबेदिक्षुरसेन वा ॥ २२ ॥

अथवा पित्तजप्रदरको दूर करनेके लिये स्त्री ईखके रसको पान करे ॥ २२ ॥

पिबेदैणेयकं रक्तं शर्करामधुसंयुतम् । वासकस्वरसं पैत्ते गुडूच्या रसमेव वा ॥ २३ ॥

हिरनके रुधिरको मिश्री और शहद मिलाकर पान करनेसे अथवा अडूसेके रसको या गिलोयके रसको पान करनेसे पित्तजनित प्रदररोगमें लाभ होता है ॥ २३॥

चन्दनोशीरपत्तङ्गमधुकं नीलमुत्पलम् । त्रपुसैर्वारुबीजानि धातकीकदलीफलम् ॥२४॥ कोललाक्षावटारोहं पद्मकं पद्मकेशरम् । एतान्कल्कान्मधुयुतान्पाययेत्तंडुलांबुना ॥ २५ ॥

त्र्यहात्प्रशमयेदेतद्योषितां पैत्तिकं रजः ॥ २६ ॥

चन्दन, खस, पतंग, मुलैठी, नीलकमल, खीरे और ककडीके बीज, धायके फूल, केलेकी फली, बेर, लाख, वडके अंकुर, पद्माख और कमलकेशर इनका कल्क बनाकर उसको शहदमें मिलाकर चावलोंके जलके साथ पान करावे इससे स्त्रियोंका पित्तजन्य प्रदररोग तीन दिनमें दूर होता है ॥ २४ ॥ ॥ २५॥ २६ ॥

शर्कराक्षौद्रसंयुक्तं यष्ट्याह्वं नागरं दधि । पयस्योत्पलशालूकबिसकालीयजं रजः ॥ पयसा शर्कराक्षौद्रयुतेनासृग्दरे पिबेत् ॥ २७ ॥

मिश्री, शहद, मुलैठी, सोंठ और दही इन सबको एकत्र मिलाकर सेवन करे। अथवा काकोली, कमल, कमलकन्द (भसींडा), कमलकी नाल और पीत चन्दनका चूर्ण इनको दूध, मिश्री और शहदमें मिलाकर पित्तजनित प्रदररोगमें पान करना चाहिए॥२७

कपित्थवेणुपत्रञ्च सममेकत्र पेषयेत् । मधुना सह दातव्यं तीव्रप्रदरनाशनम् ॥ २८ ॥

कैथके पत्ते और बांसके पत्ते इन दोनोंको एकत्र पीसकर शहदमें मिलाकर सेवन करानेसे तीव्र रक्तप्रदररोग शांत होता है ॥ २८ ॥

अशोकवल्कलक्काथं शृतं दुग्धं सुशीतलम् । यथाबलं पिबेत्प्रातस्तीव्रासृग्दरनाशनम् ॥ २९ ॥

अशोककी छालका काढा बनाकर उसमें दूधको पकावे जब वह अपने आप शीतल होजाय तब बलानुसार प्रातःकाल सेवन करे तो तीव्र रक्तप्रदररोग शांत होता है ॥ २९ ॥

क्षौद्रयुक्तं फलरसं काकोदुम्बरजं पिबेत्। असृग्दरविनाशाय सशर्करपयोऽन्नभुक् ॥ ३० ॥

प्रदररोगको विनाश करनेके लिए कठूमरके फलोंके रसको शहदके साथ मिलाकर सेवन करे और इस पर मिश्री दूध और भातका भोजन करे ॥३०॥

मधुकं त्रिफलालोध्रमुस्तं सौराष्ट्रिकां मधु। मद्यैर्निम्बगुडूच्यौ तु कफजेऽसृग्दरे पिबेत् ॥ ३१ ॥

मुलैठी, त्रिफला, लोध, ऊटकटीरा, फिटकरी, शहद, मदिरा, नीम और गिलोय इन सबको एकत्र मिश्रित करके कफजनित प्रदररोगमें पान करे ॥ ३१ ॥

रोहितकान्मूलकल्कं पाण्डुरेऽसृग्दरे पिबेत् । जलेनामलकीबीजकल्कं वा ससितं मधु। पिबेद्दिनत्रयेणैव श्वेतप्रदरनाशनम् ॥ ३२ ॥

रोहिड़ेकी जडका कल्क बनाकर उसको श्वेतप्रदररोगमें पान करे। आमलेके बीजोंका कल्क, मिश्री और शहद इनको जलमें मिलाकर तीन दिन तक पान करनेसे श्वेतप्रदर नष्ट होता है ॥ ३२ ॥

काकजङ्घाकमूलं वा मूलं कार्पासमेव वा। पांडुप्रदरनाशाय पिबेत्तंडुलवारिणा ॥ ३३ ॥

काकजंघाकी जड अथवा कपासकी जडको चावलोंके जलके साथ पीसकर पान करनेसे श्वेतप्रदर नष्ट होता है ॥ ३३ ॥

तक्राशनरता सम्यक्संपिबेन्नागकेशरम् । त्र्यहं तक्रेण संपीड्य श्वेतप्रदरशान्तये ॥ ३४ ॥

श्वेत प्रदरको शमन करनेके लिए तक्रमें पीसकर नागकेशरको तीन दिनतक सेवन करे और तक्रके साथ ही भोजन करे ॥ ३४ ॥

फलत्रिकं दारुवचा सवासा लाजा सदूर्वाकलशीसमङ्गा । क्षौद्रान्वितं क्वाथमिदं सुशीतं सर्वात्मके पेयमसृग्दरे हि ॥ ३५ ॥

त्रिफला, देवदारु, वच, अडूसा, खीलें, दूब, पृश्निपर्णी और मजीठ इन सबका क्वाथ बनाकर उसको शीतल करके शहद मिलाकर त्रिदोषजनित प्रदररोगमें पान करना चाहिए ॥ ३५ ॥

दार्वीरसाञ्जनवृषाब्दकिरातबिल्वभल्लातकैरवकृतो मधुना कषायः । पीतो जयत्यतिबलं प्रदरं सशूलं पीतासितारुणविलोहितनीलशुक्लम् ॥ ३६

दारुहलदी, रसौत, अडूसा, नागरमोथा, चिरायता, बेलगिरी, भिलावे इनका क्वाथ बनाकर शहद मिलाकर पान करनेसे अत्यन्त बढा हुआ शूलयुक्त पीला, काला, लाल, लोहित, नीला और सफेद रंगका प्रदर नष्ट होता है यह अनुभूत प्रयोग है ॥ ३६ ॥

लिप्ते ललाटपट्टे बलतरखञ्जनेत्रकल्केन । प्रदरः शाम्यति नित्यं विचित्रिता द्रव्यशक्तिरियम् ॥ ३७ ॥

खंजपक्षीके नेत्रोंका कल्क बना करके ललाटपर लेप करनेसे प्रदररोग अवश्य नष्ट होजाता है । इस द्रव्यकी विचित्र शक्ति है ॥ ३७ ॥

आखोः पुरीषं पयसा निषेव्यं वह्नेर्बलादेकमहर्द्व्यहं वा । स्त्रियो महाशोणितवेगनद्याः क्षणेन पारं परमाप्नुवन्ति ॥ ३८ ॥

मूसेकी विष्ठाको दूधके साथ अग्निके बलानुसार एक दिनतक अथवा दो दिनतक सेवन करे तो स्त्रियोंका नदीके वेगके समान अत्यन्त बहता हुआ भी रुधिर क्षणभरमें बंद होजाता है ॥ ३८ ॥

मधुना तार्क्ष्यसंयुक्तं मूलं स्यात्तण्डुलीयकम् । तंडुलाम्बुयुतं पानात्सर्वप्रदरनाशनम् ॥ ३९ ॥

रसौत और चौलाईकी जड इन दोनोंको एकत्र पीसकर शहदमें मिलाकर चावलोंके जलके साथ पान करनेसे सर्वप्रकारका प्रदररोग नष्ट होता है विशेष करके रक्तप्रदर दूर होता है ॥ ३९ ॥

कुशमूलं समाहृत्य पाययेत्तंडुलांबुना । एतत्पीत्वा त्र्यहं नारी प्रदरात्परिमुच्यते ॥ ४० ॥

कुशाकी जडको लाकर चावलोंके जलके साथ पीसकर पान करावे । इसको तीन दिनतक पीनेसे स्त्री प्रदररोगसे मुक्त होती है ॥ ४० ॥

प्रदरं शमयति नार्याः क्वथितः सलिलेन वा पयसा । मूलं वास्तुकाब्जयोः पीतं दिवसत्रयेणैव ॥ ४१ ॥

बथुआ अथवा कमलकी जडको जलमें अथवा दूधमें पकाकर तीन दिनतक पान करनेसे स्त्रियोंका प्रदररोग शमन होता है ॥ ४१ ॥

भूम्यामलकबीजन्तु पीतं तण्डुलवारिणा । दिनद्वयत्रयेणैव स्त्रीरोगं नाशयेद्ध्रुवम् । मेढ्रगं रुधिरस्रावं रक्तातीसारमुल्बणम् ॥ ४२ ॥

भुंइ आमलेके बीजोंको चावलोंके जलके साथ पीसकर पान करनेसे दो या तीन दिनमें प्रदररोग अवश्य नष्ट होता है । तथा लिंगसे रुधिरका गिरना और उल्बण रक्तातीसार नष्ट होता है ॥ ४२ ॥

असितोत्पलशालूकं निस्तुषा रक्तशालयः । यवानीगैरिकं यासाः समभागेन चूर्णिताः ॥ क्षौद्रेण तांश्च संयोज्य लिह्यात्प्रदरपीडिता ॥ ४३ ॥

प्रदररोगसे पीडित स्त्री नीलकमल, भसींड़ा (कमलकन्द), लालशालिधानोंके चावल, अजवायन, गेरू और जवासा इन समस्त औषधियोंको समान भाग लेकर एकत्र बारीक चूर्ण करके शहदमें मिलाकर सेवन करे तो प्रदररोग दूर होता है ॥ ४३ ॥

तण्डुलीयकमूलञ्च सक्षौद्रं तण्डुलांबुना । रसाञ्जनञ्च लाक्षाञ्च छागेन पयसा पिबेत् ॥ ४४ ॥

चौलाईकी जडको पीसकर शहद और चावलोंके जलके साथ पान करे अथवा रसौत और लाखको बकरीके दूधमें पीसकर रक्तप्रदरसे पीडित स्त्री पान करे ॥ ४४ ॥

प्रदरं हन्ति बलाया मूलं दुग्धेन समधुना पीतम् । कुशवाट्यालकमूलं तण्डुलसलिलेन रक्ताख्यम् ॥ ४५ ॥

खिरैंटीकी जडको दूधमें पीसकर शहदमें मिलाकर पान करनेसे प्रदररोग नष्ट होता है। तथा कुशाकी जड और खिरैंटीकी जडको चावलोंके जलमें पीसकर पान करनेसे रक्तप्रदर नष्ट होता है ॥ ४५ ॥

दग्ध्वा मूषकविष्ठान्तु लोहिते प्रदरे पिबेत् ॥ ४६ ॥

मूसेकी विष्ठाको जलाकर दूध या जलके साथ रक्तप्रदरमें पान करे ॥ ४६ ॥

शर्करायाः पलं पिष्ट्वा मधुकस्य चतुष्पलम् । तण्डुलोदकसंयुक्तं लोहितप्रदरे पिबेत् ॥ ४७ ॥

मिश्री ४ तोले, मुलैठी ४ तोले इन दोनोंको एकत्र पीसकर चावलोंके जलके साथ रक्तप्रदरमें पान करना चाहिये ॥ ४७ ॥

काश्मर्यवटशुङ्गानि दुःस्पर्शायास्तथैव च । घृतं सिद्धं भवेच्छ्रेष्ठं शोणितप्रदरे पिबेत् ॥ ४८ ॥

कुम्हेर, बड़के अंकुर और ईसी इन प्रत्येक औषधिके कल्कके द्वारा पृथक् पृथक् घृतको पकावे । इन तीनों घृतोंमेंसे किसी एक घृतको रक्तप्रदररोगमें सेवन करना उत्तम है ॥ ४८ ॥

तरुण्याऽहितसेविन्यास्तदल्पोऽपद्रवं भिषक् । रक्तपित्तविधानेन यथावत्समुपाचरेत् ॥ ४९ ॥

युवावस्थावाली अहित पदार्थोंको सेवन करनेवाली स्त्रीके यदि अल्पउपद्रव हों तो वैद्य रक्तपित्तके विधानसे उसकी यथाविधि चिकित्सा करे ॥ ४९ ॥

हितश्चात्र विशेषेण लेहो यः कुटजाष्टकः ॥ ५० ॥

विशेष करके इस रक्तप्रदरमें कुटजाष्टकावलेह हितकारी है ॥ ५० ॥

पुष्यानुगं चूर्णम् ।

पाठाजंब्वाम्रयोर्मध्यं शिलाभेदं रसाञ्जनम् । अम्बष्ठको मोचरसः समङ्गा पद्मकेसरम् ॥ ५१ ॥ वाह्लीकातिविषामुस्तं बिल्वं लोध्रं सगैरिकम् । कट्फलं मरिचं शुण्ठी मृद्वीका रक्तचन्दनम् ॥ ५२ ॥ कट्वङ्गवत्सकानन्ताधातकीमधुकार्जुनम् । पुष्येणोद्धृत्य तुल्यानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ॥ ५३ ॥ तानि क्षौद्रेण संयुज्य पाययेत्तंडुलांबुना । असृग्दरातिसारेषु रक्तं यच्चोपवेश्यते ॥ ५४ ॥ दोषागन्तुकृता ये च बालानां तांश्च नाशयेत् । योनिदोषं रजोदोषं श्वेतं नीलं सपीतकम् ॥ ५५ ॥ स्त्रीणां श्यावारुणं यच्च तत्प्रसह्य निवर्तयेत् । चूर्णं पुष्यानुगं नाम हितमात्रेयपूजितम् ॥ ५६ ॥

पाठा, जामुन और आमकी गुठली, पाषाणभेद, रसौत, अम्बष्ठा, मोचरस, मजीठ, कमलकेसर, केशर, अतीस, नागरमोथा, बेलगिरी, लोध्र, गेरू, कायफल, कालीमिरच, सोंठ, दाख, लालचन्दन, स्योनाक, कुड़ा, अनन्तमूल, धायके फूल, मुलैठी और अर्जुनकी छाल इन सबको पुष्यनक्षत्रमें समान भाग लेकर बारीक चूर्ण कर लेवे । फिर इस चूर्णको शहदमें मिलाकर चावलोंके जलके साथ सेवन करावे । यह पुष्यानुगचूर्ण—सब प्रकारका प्रदर, अतिसार, रक्तातिसार, तथा बालकोंके आगन्तुकदोष, स्त्रियोंके योनिदोष, रजोदोष, श्वेतप्रदर, नीलप्रदर, पीतप्रदर, श्यावप्रदर और लालप्रदर, इन सबको बलात्कारसे दूर करता है । आत्रेयमुनिके द्वारा यह चूर्ण पूजित किया गया है । इसको पुष्यानुग चूर्ण कहते हैं ॥ ५१-५६ ॥

अशोकघृत ।

अशोकवल्कलप्रस्थं तोयाढकविपाचितम् । चतुर्भागावशिष्टेन घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ५७ ॥ तंडुलांबु त्वजाक्षीरं घृततुल्यं प्रदापयेत् । जीवकस्य रसश्चापि केशराजोद्भवस्तथा । जीवनीयैः प्रियालैश्च पुरुषैः सरसाञ्जनैः ॥ ५८ ॥ यष्ट्याह्वशोकमूलञ्च मृद्वीका च शतावरी । तंडुलीयकमूलञ्च कल्कैरेभिः पलार्द्धिकैः ॥ ५९ ॥ शर्करायाः पलान्यष्टौ गर्भे दत्त्वा सुचूर्णितम् । पुष्ययोगेन तत्सर्पिः शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ ६० ॥ पीतमेतद्घृतं हन्यात्सर्वदोषसमुद्भवम् । श्वेतं नीलं तथा कृष्णं प्रदरं हन्ति दुस्तरम् ॥ ६१ ॥ कुक्षिशूलं कटीशूलं योनिशूलञ्च सर्वगम् । मन्दाग्निमरुचिं पांडुं कृशत्वं श्वासकासकम् ॥ ६२ ॥

आयुःपुष्टिकरं धन्यं बलवर्णप्रसादनम् । देयमेतद्वरं सर्पिर्विष्णुना परिकीर्त्तितम ॥ ६३ ॥

अशोककी छालको एक प्रस्थ लेकर एक आढक जलमें पकावे । जब पकते २ चौथाई भाग जल शेष रह जाय तब उतारकर छानलेवे । फिर इस काथमें घृत एक प्रस्थ, चावलोंका जल १ प्रस्थ, बकरीका दूध १ प्रस्थ, जीवकका रस १ प्रस्थ और कुकुरभांगरेका रस १ प्रस्थ,तथा कल्कके लिये जीवनीयगणकी ओषधियाँ चिरौंजी,फालसे,रसौत, मुलैठी,अशोककी छाल,दाख,शतावर और चौलाईकी जड,इन प्रत्येकका कल्क दो२ तोले,और मिश्रीका चूर्ण३२तोले डाल यथाविधिसे पुष्य नक्षत्रमें मन्द मन्द अग्निके द्वारा घृतको पकावे । यह घृत पान करते ही सम्पूर्ण दोषोंसे उत्पन्न हुए श्वेतप्रदर, नीलप्रदर और कृष्णप्रदरको नष्ट करता है । तथा कुक्षिशूल, कटिशूल, योनिशूल, सर्वांगशूल, मन्दाग्नि, अरुचि, पांडुरोग, कृशता, श्वास और खाँसी इन सबको दूर करता है यह आयुको बढानेवाला, पुष्टिकारक तथा बल और वर्णको प्रसन्न करनेके लिए धन्य है। इस श्रेष्ठ घृतको श्री विष्णुभगवानने निर्माण किया है ॥ ५७-६३ ॥

शीतकल्याणघृत ।

कुमुदं पद्मकोशीरं गोधूमा रक्तशालयः । मुद्गपर्णी पयस्या च काश्मरीमधु यष्टिका ॥ ६४ ॥ बलातिबलयोर्मूलमुत्पलं तालमस्तकम् । विदारी शतमूली च शालपर्णी सजीविका ॥ ६५ ॥ फलं त्रपुसबीजानि प्रत्यग्रं कदलीफलम् । एषामर्द्धपलान्भागान्गवां क्षीरं चतुर्गुणम् ॥ ६६ ॥ पानीयं द्विगुणं दत्त्वा घृतप्रस्थं विपाचयेत् । प्रदरे रक्तगुल्मे च रक्तपित्ते हलीमके ॥ ६७ ॥ बहुरूपश्च यत्पित्तं कामलावातशोणिते। अरोचके ज्वरे जीर्णे पाण्डुरोगे मदे भ्रमे ॥ ६८ ॥ तरुणी चाल्पपुष्पा या या च गर्भं न विन्दति । अहन्यहनि च स्त्रीणां भवति प्रीतिवर्द्धनम् । शीतकल्याणकं नाम परमुक्तं रसायनम् ॥ ६९ ॥

कमोदिनी, कमल, खस, गेहूँ, लाल शालिधान, मुगवन, काकोली, कुम्भेरु, मुलैठी, खिरैंटीकी जड, कंघीकी जड, ताडकामस्तक, विदारीकंद, शतावर, शालिपर्णी,नीलकमल,जीवक, त्रिफला, खीरेके बीज और केलेकी कच्ची गोभ ये प्रत्येक औषधि दो दो तोले लेकर कल्क बनालेवे । फिर गायका दूध ४ प्रस्थ, जल २ प्रस्थ और गायका घी १ प्रस्थ लेकर सबको एकत्रित करके यथाविधिसे घृतको पकावे । यह घृत-प्रदर, रक्तगुल्म, रक्तपित्त,हलीमक, अनेक प्रकारका पित्त, कामला,वातरक्त, अरुचि, जीर्णज्वर पाण्डुरोग, मद और भ्रम इन रोगोंमें हितकारी है। जो स्त्री अल्पपुष्पवाली होती है और जो गर्भको धारण नहीं कर सकती उनके लिए यह घृत विशेष उपयोगी है इस घृतके प्रभावसे अवश्य गर्भ होता है । तथा दिन प्रतिदिन स्त्रियोंमें प्रीति बढती है । यह शीतकल्याणनामक घृत स्त्रियोंके लिए उत्तम रसायन है ॥ ६४-६९ ॥

शतावरीघृत ।

शतावरीरसप्रस्थं क्षोदयित्वा च पीडयेत् । घृतप्रस्थसमायुक्तं क्षीरं द्विगुणितं तथा ॥ ७० ॥ अन्तः कल्कानिमान्दद्यात्कार्षिकाञ्श्लक्ष्णपेषितान् । जीवनीयानि यान्यष्टौ यष्टी चन्दनपद्मके ॥ ७१ ॥ श्वदंष्ट्रा चात्मगुप्ता च बला नागबला तथा । शालपर्णीपृष्टपर्णीविदारी-शारिवाद्वयम् ॥ ७२ ॥ शर्करा च समा देया काश्मर्य्याश्च फलानि च । सम्यक् सिद्धन्तु विज्ञाय तदेतदवतारयेत् ७३॥ रक्तपित्तविकारेषु वातपित्तकृतेषु च । वातरक्तं क्षयं श्वासं हिक्कां कासश्च दुस्तरम् ॥ ७४ ॥ अंगदाहं शिरोदाहं रक्तपित्तसमुद्भवम् । असृग्दरं सर्वभूतं मूत्रकृच्छ्रश्च दारुणम् ॥ एतान्रोगाञ्छमयति भास्करस्तिमिरं यथा ॥ ७५ ॥

शतावरको छेद करके उसका रस निचोड लेवे। ऐसा शतावरका रस ? प्रस्थ, गायका घी १ प्रस्थ, गायका दूध २ प्रस्थ, तथा जीवनीयगणकी आठ औषधियाँ, मुलैठी, चन्दन, पद्माख, गोखुरू, कौंछ, खिरैटी, नागवला, शालिपर्णी पृश्निपर्णी, विदारीकन्द, दोनों शारिवा, मिश्री और कुम्भेरके फल ये प्रत्येक औषधि एक एक तोला लेकर सबको वारीक पीसकर कल्क बना लेवे। फिर सबको एकत्रित करके यथाविधिसे घृतको पकावे। जब वह अच्छेप्रकारसे पककर सिद्ध होजाय तब उतारकर छान लेवे। यह शतावरी घृत–रक्तपित्तके विकार,वातपित्तके विकार, वातरक्त, क्षय, श्वास, हिचकी, दुस्तर खांसी, रक्तपित्तजनित अंगदाह और शिरोदाह, सर्वदोषोत्पन्न प्रदर और दारुण मूत्रकृच्छ्र इन सब रोगोंको इस प्रकार दूर करता है जिसप्रकार सूर्य अंधकारके समूहको नष्ट कर देता है॥ ७०–७५॥

मुद्गघृत।

मुद्गमाषस्य निर्यूहे रास्नाचित्रकनागरैः। सिद्धं सपिप्पलीविश्वैः सर्पिः श्रेष्ठमसृग्दरे॥ ७६॥

मूँग और उडदोंके काथमें रायसन, चीता, सोंठ और पीपल इनका कल्क डालकर घृतको पकावे। इस घृतको प्रदर रोगमें सेवन करना अत्यन्त हितकारी है॥ ७६॥

शाल्मलीघृत।

शाल्मलीपुष्पनिर्यासः पृश्निपर्ण्यस्तथैव च। काश्मर्यं चन्दनश्चैषां कल्केन स्वरसेन च॥ ७७॥ एभिः पचेद्घृतप्रस्थमवतार्य सुशीतलम्। पिबेत्सर्पिरिदं नारी सर्वप्रदरशान्तये॥७८

सेमलके फूलोंका गोंद (मोचरस), पृश्निपर्णी, कुम्भेर और चन्दन इनके कल्क और काथके द्वारा एक प्रस्थ घृतको पकावे। जब पककर स्वयं शीतल हो जाय तब उतार लेवे। फिर सर्वप्रकारके प्रदरको नष्ट करनेके लिये स्त्रियोंको यह घृत सेवन कराना चाहिये॥ ७७॥ ७८॥

काश्मरीघृत।

काश्मरीबदरानन्तागुडूचीमधुकैः शृतम्। आजेन पयसा सिद्धमेतद्घृतमसृग्दरे॥ ७९॥

कुम्भेर, वेर, अनन्तमूल, गिलोय और मुलैठी इनके कल्कके द्वारा बकरीके दूधमें घृतको पकावे यह घृत सेवन करनेसे प्रदररोगमें हित करता है॥७९

सोमरोगका निदान।

स्त्रीणामतिप्रसंगाद्वा शोकाद्वापि श्रमादपि। अतिसारकरोगाद्वा गरदोषात्तथैव च॥ ८०॥ आपः सर्वशरीरस्थाः क्षुभ्यन्ति प्रस्रवन्ति च। तस्यास्ताः प्रच्युताः स्थानान्मूत्रमार्गं व्रजन्ति हि॥ ८१॥

अत्यन्त मैथुन, शोक, परिश्रम, अतिसार और विषदोष इन सब कारणोंसे स्त्रियोंके समस्त शरीरमें रहनेवाला जल क्षोभित होकर गिरता है फिर वह जल अपने स्थानसे हटकर मूत्रमार्गसे निकलता है॥ ८०॥ ८१॥

सोमरोगके लक्षण।

प्रसन्ना निर्मलाः शीता निर्गन्धा नीरुजाः सिताः। स्रवन्ति चातिमात्रन्ताः सा न शक्नोति दुर्बला॥८२॥ वेगं धारयितुं तासां न विन्दति सुखं क्वचित्। शिरसः शिथिलत्वाच्च मुखतालुकशोषणम्। मूर्च्छा जृम्भा प्रलापश्च त्वग्रूक्षा चातिमात्रतः॥८३॥ भक्ष्यैर्भोज्यैश्च पेयैश्च तृप्तिं न लभते सदा। सोमरोग इति ज्ञेयो देहे सोमक्षयात्स्त्रियाः॥ ८४॥ शरीरधारणाच्चापि सोमद्रव्याभिशब्दितः। तस्मात्सोमक्षयाद्देहो निश्चेष्टश्च भवेत्सदा॥ ८५॥

प्रसन्न, निर्म्मल, शीतल, गंधरहित, स्वच्छ, सफेद और पीडारहित जल अत्यन्त बहता है। इससे दुर्बल होजानेके कारण वह स्त्री उस जलके वेगको रोकनेमें असमर्थ होनेसे निरंतर बेचैन रहती है। मस्तक शिथिल होजाता है, मुख और तालु सूखने

लगता है, मूर्छा होती है, जम्भाई आती है, प्रलाप होता है, त्वचा अत्यन्त रूखी होजाती और भक्ष्य भोज्य तथा पीनेके पदार्थोंसे कभी तृप्ति नहीं होती। स्त्रियोंके शरीरमेंसे सोमधातुका क्षय होनेसे इसको सोमरोग कहते हैं। अर्थात् यह जल शरीरको धारण करनेवाला होनेसे सोम कहाता है। और यह रोग इसी सोम धातुका क्षयरूप है इसलिए सोमके क्षय होनेसे शरीर सदैव शिथिल रहता है ॥ ८२-८५॥

सोमरोगकी चिकित्सा।

कदलीनां फलं पक्वं धात्रीफलरसं मधु। शर्करासहितं खादेत्सोमधारणमुत्तमम् ॥ ८६ ॥

केलेकी पकी फली, आमलोंका स्वरस, शहद और मिश्री इन सबको एकत्र मिलाकर सेवन करे सोमरोगको नष्ट करनेके लिए यह उत्तम प्रयोग है८६

माषचूर्णं समधुकं विदारीं मधुशर्कराम्। पयसा पाययेत्प्रातस्त्वपां धारणमुत्तमम् ॥ ८७ ॥

उडदोंका चूर्ण, मुलैठी, विदारीकन्द, शहद और मिश्री इन सबको एकत्र मिलाकर दूधके साथ प्रातःकाल सेवन करावे तो सोमरोग नष्ट होता है ॥८७॥

कदलीनां फलं पक्वं विदारीश्च शतावरीम्। क्षीरेण पाययेत्प्रातस्त्वपां धारणमुत्तमम् ॥ ८८ ॥

केलेकी पकी फली, विदारीकन्द और शतावर इन सबको एकत्र मिलाकर दूधके साथ प्रातःकाल सेवन करानेसे सोमरोग नष्ट होता है ॥८८॥

स एव सरुजः सोमो मूत्रेण स्रवते मुहुः। तत्रैलापत्रचूर्णेन पाययेत्तरुणीं सुराम् ॥ ८९ ॥

यदि इस सोमरोगमें विशेष पीडा हो और बार-बार मूत्र स्रवता हो तो इलायची और तेजपात इनके चूर्णके साथ मदिराका पान करना चाहिये॥८९॥

मूत्रातिसारके लक्षण।

सोमलक्षणसंसृष्टाः कालातिक्रान्तयोगतः। सातिक्रान्तक्रमेणैव स्रवेन्मूत्रमभीक्ष्णशः ॥ ९० ॥

बहुत दिनोंके सोमरोगमें जब मूत्र अत्यन्त बहने लगता है तब उसको मूत्रातिसार कहते हैं। यह मूत्रातिसार बलका अत्यन्त नाश करता है ॥ ९० ॥

स्त्रियोंके विद्वेषकी चिकित्सा।

अथ स्त्रीणां विद्वेषमविधास्ये। स त्रिविधो विद्वेषः, तद्यथा-दैवकृतः अदक्षपुरुषत्वयोगकृतः सपत्नीकृतश्चेति। तत्र प्रथमो विरुद्धनक्षत्रकृतपरिणयित्रादिदोषादादित एव जायते। द्वितीयश्चाविदग्धपुरुषसंयोगात्। तृतीयस्त्वौषधकृतः अनियत एव काले प्रजायेत। तत्र प्रथमो त्रिशाहकालिक इति तद्धोमः कर्त्तव्यः। ततः प्रदोषे भक्तपुत्तलिकां कृत्वा गन्धधूपादिपूजितां वस्त्रावृतजीवन्तिकां दीपसहितां शुक्लपुष्पमालार्चितां कुशचण्डिकां कोणेषु च चतुर्वर्णध्वजायुक्ताम्। तस्या दर्शनं पूजनञ्च कृत्वा विनयान्वितो मन्त्रं जपेत्। ततः कुमारीश्च पूजयेद्भोजयेच्च। ततः संपद्यते सुखम्। ॐ द्रूँ हूँ वँ वशीकरणं कुरुष्व स्वाहा। इति वशीकरणमन्त्रः।

अब स्त्रियोंके विद्वेषको कहते हैं। (विद्वेष शब्दका अर्थ यहां अशुभ होनेका है)। वह विद्वेष तीन प्रकारका होता है। एक प्रारब्धजनित, दूसरा मूर्खपुरुषके प्रसंगसे उत्पन्न हुआ और तीसरा सपत्नी अर्थात् सौतनके करानेसे होता है। इनमें पहिला विवाहके समय पतिके अथवा अपने विरुद्ध नक्षत्रादिके दोषसे उत्पन्न होता है। दूसरा अविदग्ध अर्थात् मूर्खपुरुषके साथ संसर्ग करनेसे होता है और तीसरा सौतनका कराया हुआ औषधादिके प्रयोगसे विनासमय होता है। इनमेंसे प्रथम प्रारब्धजनित विद्वेषको शांत करनेके लिये हवन करे। फिर प्रातःकाल भातकी पुतली बनाकर उसकी सुगन्धित पदार्थ और धूपादिकोंसे पूजा करके उसको वस्त्रमें लपेट कर प्रतिमा रखनेके जीवंतिका नामक पात्रमें

धारण करे और उसके सामने दीपक रक्खे। फिर सफेद फूलोंकी मालासे उसकी पूजा करे और उसके चारों कोणोंमें कुशाकी चार देवियोंकी मूर्तियाँ स्थापन करे, और उनके हाथमें चार रंगकी ध्वजा दे देवे। फिर उसका विद्वेषवाली स्त्री दर्शन और पूजन करके विनयपूर्वक मन्त्रको जपे। फिर कुमारी (क्वाँरीकन्याओं) की पूजा करे और उनको भोजन करावे। इसप्रकार करनेसे सुख उत्पन्न होता है। 'ॐ ह्रूँ ह्रूँ वँ वशीकरणं कुरुष्व स्वाहा-' यह वशीकरणमन्त्र है।

द्वितीये च लज्जालुमूलेन गजान्वितेन कर्पूरमिश्रितेन वराङ्गे प्रलेपं कृत्वा प्रसिद्धनरनारीविभ्रमधूमधूपेन कृताङ्गधूपः। समालम्बनादिकृतशृङ्गारकावेशः। नारीं गृहसम्बन्धवद्धस्त्रियं चाटुवचनां विषयोचितां समाहितः पुरुषोऽनिच्छन्तीमभिगच्छेत्। कुमारीणाञ्च भोजनमुत्सृजेत्। ततः सम्पद्यते शुभम्।

दूसरे मूर्खपुरुषजनित विद्वेषमें-लज्जावन्तीकी जड, नागकेशर और कपूर इन तीनोंको एकत्र मिलाकर लिङ्गके ऊपर लेप करके प्रसिद्ध नरनारियोंके विलास रूपी धूपसे सर्वांगके धूपित किये हुए और केशर, कस्तूरी आदि प्रलेपके द्वारा शरीरको शृङ्गार किये हुए स्वस्थ पति, घरकी सखीसहेलियोंके सहित प्रिय वचन बोलनेवाली, विषयभोगके लिये उपयुक्त और स्वयं विषयकी इच्छा नहीं करती हुई भी स्त्रीके साथ सम्भोग करे। और कुमारी (क्वाँरी) कन्याओंको भोजन देवे तो इस प्रकार करनेसे उस स्त्रीको सुख उत्पन्न होता है।

तृतीये प्रियंगुकमयूरशिखाश्वेतपुनर्नवामूलं पिष्ट्वा छागलपयसालोड्य योनिं प्रक्षालयेत्। पिष्टसूकरमांसेन रचितां स्त्रीप्रमाणां पुत्तलिकां कृत्वा गन्धादिना समालभ्य पूजयित्वा स्त्रियं निर्मथयित्वा श्मशाने रात्रिप्रहरैकगते दापयेत्। कुमारीश्च पूजयेत। ततः संपद्यते शुभम्। ॐ घोरारूपे प्रियजननि ह्रूँ स्वाहा। इत्यपि वशीकरणमन्त्रः। इति नागार्जुनकृतौ योगसारे स्त्रीदोषचिकित्सापरिच्छेदः।

और तीसरे नरनारीकृत यदि विद्वेषमें -फूलप्रियंगु, मोरशिखा और श्वेतपुनर्नवाकी जडको पीसकर बकरीके दूधमें घोलकर उससे योनिको धोवे। फिर सूअरके मांसको पीसकर उससे स्त्रीके बराबर पुतली बनाकर उसको गन्धादिक द्रव्योंसे सुवासित करके पूजा करे। पश्चात् उसे स्त्रीके ऊपर उतारकर एक प्रहर रात्रिके व्यतीत होनेपर श्मशान भूमिमें रख आवे। फिर कुमारीकी पूजा करे तो इस प्रकार करनेसे सुख उत्पन्न होता है। "ॐ घोरारूपे प्रिय जननि ह्रूँ स्वाहा-" यह भी वशीकरणमन्त्र है। यह नागार्जुनकृत योगसारगत स्त्रीरोग चिकित्साका परिच्छेद समाप्त हुआ।

अथ योनिरोगका निदान।

विंशतिर्व्यापदो योनेर्निर्दिष्टा रोगसंग्रहे। मिथ्याचारेण ताः स्त्रीणां प्रदुष्टेनार्त्तवेन च ॥ ९१ ॥ जायन्ते बीजदोषाच्च दैवाच्च शृणु ताः पृथक् ॥ ९२ ॥

मिथ्या आहार और विहारके करनेसे, रजके दूषित होनेसे, बीजके दोषसे और प्रारब्धके योगसे स्त्रियोंकी योनिमें बीस प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं ऐसा रोगनिदानमें कहा गया है अब उनको पृथक्२ कहते हैं, सुनो ॥ ९१ ॥ ९२ ॥

सा फेनिलमुदावर्त्ता रजः कृच्छ्रेण मुञ्चति। वन्ध्यां नष्टार्त्तवां विद्याद्विप्लुतां नित्यवेदनाम् ॥ ९३ ॥

जिसमें झागोंयुक्त मासिकधर्म्मका रुधिर अत्यन्त कष्टसे निकलता है उसको उदावर्त्तयोनि कहते हैं। जिसका रजोधर्म नष्ट होगया हो उसको वंध्या कहते हैं। जिसकी योनिमें सदैव पीडा होती हो उसको विप्लुता योनि कहते हैं ॥ ९३ ॥

परिप्लुतायां भवति ग्राम्यधर्मेण रुग्भृशम्। वातला कर्कशा स्तब्धा

शूलनिस्तोदपीड़िता । चतसृष्वपि चाद्यासु भवन्त्यनिलवेदनाः ॥ ९४ ॥

जिसकी योनिमें मैथुन करनेसे अत्यन्त वेदना हो उसको परिप्लुता कहते हैं । वातलायोनि सूखी तथा कठोर होती है और उसमें सुई चुभाने सरीखी पीडा होती है । पहले जो उदावर्त्तादि चार योनि कही हैं उनमें भी वातसम्बन्धी पीड़ा होती है परन्तु इस वातलामें वातकी अधिक पीडा होती है ॥ ९४ ॥

सदाहं क्षीयते रक्तं यस्यां सा लोहितक्षया । सवातमुद्गिरेद्बीजं वामिनी रजसा युतम् ॥ ९५ ॥ प्रस्रंसिनी स्रंसते तु क्षोभिता दुःप्रजायिनी । स्थितं स्थितं हन्ति गर्भं पुत्रघ्नी रक्तसंक्षयात् ॥ ९६ ॥ अत्यन्तपित्तला योनिर्दाहपाकज्वरान्विता । चतसृष्वपि चाद्यासु पित्तलिङ्गोच्छ्रयो भवेत् ॥ ९७ ॥ अत्यानंदा न सन्तोषं ग्राम्यधर्मेण गच्छति । कर्णिन्यां कर्णिकायोनौ श्लेष्मासृग्भ्याश्च जायते ॥ ९८ ॥ मैथुनाचरणात्पूर्वं पुरुषादतिरिच्यते । बहुशश्चातिचरणात्तयोर्बीजं न विंदति ॥ ९९ ॥ श्लेष्मला पिच्छला योनिः कंडूयुक्तातिशीतला । चतसृष्वपि चाद्यासु श्लेष्मलिङ्गोच्छ्रयो भवेत् ॥ १०० ॥

जिस योनिमें दाहसहित रुधिर निकलता है उसको लोहितक्षया कहते हैं । जिसमेंसे वायु रजके साथ पुरुषके वीर्य्यको बाहर निकाल देता है उसको वामिनी कहते हैं । जो योनि मैथुनके समय अत्यन्त घर्षित होनेसे बाहरको निकल आती है उसको स्रंसनी कहते हैं । वह अत्यन्त कष्टसे प्रसववती होती है अथवा विफलसन्तानको उत्पन्न करती है । जो योनि रुधिरके क्षय होनेसे गर्भको गिरा देती है उसको पुत्रघ्नी कहते हैं । जो योनि अत्यन्त दाह, पाक और ज्वरसे संयुक्त हो उसको पित्तला कहते हैं । पहले जो लोहितक्षयादि चार योनि कही हैं उनमें पित्तके लक्षण होते हैं । परन्तु पित्तलामें पित्तके लक्षण अधिक होते हैं । जो अत्यन्त मैथुन करनेसे भी सन्तोषित नहीं होती उसको अत्यानन्दा कहते हैं । जिसमें रक्त और कफसे कमलकी कर्णिकाके समान कर्णिका होती है उसको कर्णिनी कहते हैं । जो योनि मैथुनके समय पुरुषके पहले शोणितको छोड़ती है उसको चरणा कहते हैं और जो योनि अनेकबार मैथुन करनेसे पुरुषके पीछे स्खलित होतीहै उसको अतिचरणा कहते हैं । इन दोनों योनियोंमें वीर्य्य स्थित नहीं होता । जो योनि चिकनी, खुजलीसहित और अत्यन्त शीतल होती है उसको श्लेष्मला योनि कहते हैं । इससे पहले जो अत्यानन्दादिक चार योनि कही हैं उनमें भी कफके लक्षण होते हैं । परन्तु श्लेष्मलायोनिमें कफ अधिक होता है ॥ ॥ ९५-१०० ॥

अनार्त्तवाऽस्तनी षण्ढी खरस्पर्शा च मैथुने ।

जो योनि रजरहित रहती हो और मैथुनके समय खरदरी मालूम होती हो उसको षंढी कहते हैं । इस योनिवाली स्त्रीके स्तन छोटे होते हैं ।

अतिकायगृहीतायास्तरुण्यास्त्वण्डिनी भवेत् ॥ १०१ ॥

जिसकी योनिका छिद्र छोटा हो और वह स्त्री मोटे लिंगवाले पुरुषके साथ मैथुन करे तो उसकी योनि वृषणके समान लटक आती है उसको अंडिनीयोनि कहते हैं ॥ १०१ ॥

विवृताऽतिमहायोनिः सूचीवक्त्रातिसंवृता । सर्वलिङ्गसमुत्थाना सर्वदोषप्रकोपजा ॥ १०२ ॥

जिस योनिका बहुत बडा छिद्र हो उसको विवृता कहते हैं । जिस योनिका बहुत बारीक छिद्र हो उसको सूचीवक्त्रा कहते हैं । जिस योनिमें सम्पूर्ण दोषोंके कोपके कारण सम्पूर्ण दोषोंके लक्षण हों उसको त्रिदोषिणी योनि कहते हैं ॥ १०२ ॥

चतसृष्वपि चाद्यासु सर्वलिङ्गोच्छ्रयो भवेत् । पञ्चसाध्या भवन्तीह योनयः सर्वदोषजाः ॥ १०३ ॥

यद्यपि उपर्युक्त चारों प्रकारकी योनियोंमें तीनों दोषोंके लक्षण होते हैं, तथापि इस पाँचवें प्रकारकी योनिमें त्रिदोषके लक्षण विशेष होते हैं ॥ १०३ ॥

योनिरोगकी चिकित्सा ।

योनिव्यापत्सु भूयिष्ठं कर्त्तव्यं कर्म्म वातजित् । स्नेहस्वेदनबस्त्यादि विशेषाद्वातजासु च ॥ १०४ ॥

सर्व प्रकारके योनिरोगोंमें वातनाशक कर्म्म, एवं स्नेहन, स्वेदन और बस्तिकर्म्म ये सब प्रयोग करने चाहिएँ । परन्तु, वातजयोनिरोगोंमें इनको विशेष रूपसे प्रयोग करना चाहिए ॥ १०४ ॥

स्निग्धस्विन्नां तथा योनिं दुःस्थितां स्थापयेच्च ताम् । मधुरौषधसंसिद्धान्वेशवारांश्च योनिषु ॥ १०५ ॥

प्रथम योनिको स्निग्ध और स्वेदित करके इधर उधर टेढी या तिरछी हो गई हो तो अथवा बाहर निकल आई हो तो उसको यथास्थानमें स्थापित करे। तथा फिर मधुर औषधियोंके द्वारा वेसवार बनाकर उसको योनिमें प्रवेश करे ॥ १०५ ॥

निक्षिप्य धारयेच्चापि पिचुतैलं यथाबलम् । योनिशूलरुजादौःस्थ्यशोफस्रावप्रशान्तये ॥ १०६ ॥

रुईके फायेको तेलमें भिजोकर बलानुसार योनिके भीतर रक्खे । इससे योनिका शूल, पीडा, योनिकी दुष्टता, सूजन और योनिका स्राव ये सब विकार दूर होजाते हैं ॥ १०६ ॥

कर्णिन्यां वर्त्तयो देया शोधनद्रव्यसंयुताः ॥ १०७ ॥

कर्णिनीयोनिमें शोधनद्रव्योंकी बत्ती बनाकर उनको योनिमें रक्खे ॥ १०७ ॥

स्रंसनीं वै घृताभ्यक्तां क्षीरस्विन्नां प्रशान्तयेत् । विधाय वेशवारैश्च ततो बन्धं समाचरेत् ॥ १०८ ॥

स्रंसनीयोनिमें घृत लगाकर उसको गरम दूधसे स्वेदित करे, फिर वेसवार भरकर बाँधदेवे ॥१०८॥

पाणिना नामयेज्जिह्मां संवृतां वर्धयेत्पुनः । प्रवेशयेन्निःसृताश्च विच्छुतां परिवर्जयेत् ॥ १०९ ॥

वक्र अर्थात् टेढी योनिको हाथसे नवावे और संकुचित अर्थात् लुप्तयोनिको बारम्बार बढावे तथा बाहरको निकलीहुई योनिको भीतरको प्रविष्ट करे और विच्छुत (विचिन्न) योनिको त्याग देवे ॥ १०९ ॥

वचोपकुञ्चिकाजाजीकृष्णावृषकसैन्धवम् । अजमोदा यवक्षारं चित्रकं शर्करान्वितम् ॥ ११० ॥ पिष्ट्वा प्रसन्नयालोडय खादेत्तद्घृतभर्जितम् । योनिपार्श्वार्तिहृद्रोगगुल्मार्शोविनिवृत्तये ॥ १११ ॥

वच, कलोंजी, जीरा, पीपल, अडूसा, सैंधानमक, अजमोद, जवाखार, चीता और मिश्री इन सबको एकत्र पीसकर और घीमें भूनकर प्रसन्नानामक मदिरामें आलोडन करके पान करे । इससे योनिपार्श्वकी पीडा, हृदयरोग, गुल्म और बवासीर नष्ट होता है ॥ ११० ॥ १११ ॥

सुखं नारी पिबेत्काले योनिशूलनिपीडिता । रास्नाश्वगन्धावृषकैः शृतं शूलहरं पयः । गुडूचीत्रिफलादन्तीक्वाथैश्च परिषेचनम् ॥ ११२ ॥

रायसन, असगन्ध और अडूसा इनको दूधमें पकाकर स्त्री प्रतिदिन प्रातःकाल पान करे तथा गिलोय, त्रिफला और दंती इनके क्वाथसे योनिको सेचन करे तो योनिशूल नष्ट होता है ॥ ११२ ॥

मूषवीमूलविलेपात्प्रविष्टयोनिस्तु भवति निस्सरणम् । मूषकवसयाभ्यक्ता निस्सृतयोनेः प्रवेशाय ॥ ११३ ॥

करेलेकी जडको पीसकर लेप करनेसे भीतरको प्रविष्ट हुई योनि बाहरको निकल आती है। चूहेकी चर्बीका लेप करनेसे बाहरको निकलीहुई योनि भीतरको प्रविष्ट होजाती है ॥ ११३ ॥

गुडूच्यादिघृत ।

गुडूचीत्रिफला-भीरुशुष्कनासानिशाद्वयैः । श्रीपर्णीरोर्यकद्राक्षाकासमर्दकबिल्वकैः ॥ ११४ ॥ पल्लवकान्वितैरक्षसमैः प्रस्थो घृतश्रृतः । योनिवातविकारघ्नो गर्भदः परमो भवेत् ॥ ११५ ॥

गिलोय, त्रिफला, शतावर, श्योनाक, हलदी, अरणी, पियावाँसा, दाख, कसौंदी, बेलगिरी और फालसे ये प्रत्येक औषधि एक १ तोला लेकर इनके कल्कके द्वारा एक प्रस्थ घृतको पकावे। यह घृत–योनिरोग और वातके विकारोंको दूर करता है तथा गर्भको उत्पन्न करता है ॥ ११४ ॥ ११५ ॥

गुडूच्यादितैल।

तैलप्रस्थं गवां मूत्रे क्षीरे द्विगुणिते पचेत्। गुडूच्यादेस्तु कल्केन तद्युक्तश्च भिषग्वरः ॥ वातार्त्तायां पिचुं दद्याद्योनौ संचारयेत्सदा ॥ ११६ ॥

तिलके १ प्रस्थ तेलको १ प्रस्थ गोमूत्र और २ प्रस्थ दूधमें गिलोयके कल्कके साथ डालकर विधिपूर्वक तेलको पकावे इस तेलके वातजनित योनिकी पीडामें बार बार फाये रखनेसे शान्ति होती है ११६॥

नताद्यतैल।

नतवार्त्ताकिनीकुष्ठसैन्धवामरदारुभिः। तैलप्रसाधितो धार्य्यः पिचुर्योनौ रुजापहः ॥ ११७ ॥

तगर, कटेरी, कूठ, सैंधानमक और देवदारु इनके कल्कके द्वारा तेलको पकावे। इस तेलके फाये योनिमें रखनेसे योनिकी पीडा दूर होती है ॥ ११७ ॥

पित्तलानान्तु योनीनां सेकाभ्यङ्गपिचुक्रियाः। शीताः पित्तहराः कार्य्याः स्नेहनार्थं घृतानि च ॥११८॥

पित्तजनितयोनिरोगमें सेचन, अभ्यंग और फायेको रखना ये सब शीतल और पित्तनाशक प्रयोग करे। तथा स्नेहके लिये घृतप्रयोग करे ॥ ११८ ॥

वरीघृतं बलातैलं युञ्ज्यात्पित्तविकारनुत्। दोषं ज्ञात्वाऽसृजं योज्यं प्रदरघ्नं क्रियाक्रमम् ॥ ११९ ॥

शतावरीघृत और बलातैल इनको प्रयोग करनेसे पित्तजनित विकार नष्ट होते हैं। तथा दोषको जानकर रक्तजयोनिरोगमें प्रदरनाशक चिकित्सा करनी चाहिए ॥ ११९ ॥

काश्मरीकुटजक्वाथे सिद्धमुत्तरबस्तिना। रक्तयोन्यरजस्का याऽपुत्रा तासां हितं घृतम् ॥ १२० ॥

कुम्भेर और कुडेके क्वाथमें घृतको सिद्ध करके उत्तरबस्तिके द्वारा प्रयोग करे। यह घृत–रक्तजनित योनिरोग, आर्त्तवरहित स्त्री और विना सन्तानवाली स्त्रियोंको अत्यन्त हितकारी है ॥ १२० ॥

योन्यां बलासदुष्टायां सर्वं रूक्षोष्णमौषधम्। तैलं सिन्धुयवान्नश्च यथारिष्टश्च योजयेत् ॥ १२१ ॥

कफजन्ययोनिरोगमें समस्त रूक्ष और उष्ण औषधें प्रयोग करे। तथा कफनाशक तेल, सैंधानमक, यवान्न और अरिष्ट ये सब प्रयोग करे ॥ १२१ ॥

पिप्पल्या मरिचैर्माषैः शताह्वाकुष्ठसैन्धवैः। वर्त्तिस्तुल्या प्रदेशिन्या धार्य्या योनिविशोधिनी ॥ १२२ ॥

पीपल, कालीमिरच, उड़द, शतावर, कूठ और सैंधानमक इनकी अँगुलीकी बराबर बत्ती बनाकर योनिमें रक्खे तो योनि शुद्ध होजाती है ॥ १२२ ॥

हिंस्राकल्कन्तु वातार्त्ता कोष्णमभ्यज्य धारयेत्। पञ्चवल्कस्य पित्तार्त्ता श्यामादीनां कफार्दिता ॥ १२३ ॥

वातसे पीड़ित योनिरोगवाली स्त्री हींगके कल्कको मन्दोष्ण घृतमें मिलाकर योनिमें धारण करे। पित्तसे पीडित योनिरोगमें पंचवल्कके कल्कको घृतमें मिलाकर धारण करे और कफजन्ययोनिरोगवाली स्त्री श्यामादिक औषधियोंके कल्कको घृतमें मिलाकर योनिमें धारण करे ॥ १२३ ॥

स्तब्धायां कर्कशायाश्च कुर्य्यान्मार्द्दवकारकम्। सन्निपातसमुत्थायां क्रमं साधारणं हितम् ॥ १२४ ॥

स्तब्ध और कर्कशयोनिमें मृदुताकरनेवाली चिकित्सा करे और सन्निपातजन्य योनिरोगमें साधारण क्रिया करे ॥ १२४ ॥

एला सधातकीजम्बूसमङ्गामोचसर्जकम्। दुर्गन्धे पिच्छले स्विन्ने स्तम्भिते चूर्णमिष्यते ॥ १२५ ॥

इलायची, धायके फूल, जामुनकी मज्जा, मजीठ, मोचरस और राल इन सबको एकत्र पीसकर चूर्ण कर ले। योनिकी दुर्गंधता, पिच्छिलता, स्विन्नता और स्तम्भतामें यह चूर्ण योनिमें रखनेसे शीघ्र उपकार करता है ॥ १२५ ॥

दुर्गन्धानां कषायः स्यात्तैलं कल्कस्तथैव च। चूर्णो वा सर्वगन्धानां पूतिगन्धापकर्षणम् ॥ १२६ ॥

समस्त सुगन्धित पदार्थोंका काथ, तेल, या कल्क अथवा चूर्ण बनाकर योनिमें प्रयोग करनेसे दुर्गंध दूर होजाती है ॥ १२६ ॥

अथ गर्भप्रदयोग।

लक्ष्मणाद्यघृत।

लक्ष्मणा चन्दनं लोध्रमुशीरं पद्मकं शटी। द्वे हरिद्रे वचा कुष्ठं पद्मकेशरमुत्पलम् ॥ १२७ ॥ शारिवे द्वे विडङ्गानि सुमनः कुसुमानि च। मांसी दारु श्वदंष्ट्रा च रेणुकं चोत्पलं तथा ॥ १२८ ॥ मधुकं शतपुष्पा च मात्रैषां कार्षिका भवेत्। एभिर्वाजघृतप्रस्थं क्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम्। तत्कषायं दशगुणं स्नेहपाकविधिं पचेत् ॥ १२९ ॥ गुणांस्तस्य प्रवक्ष्यामि घृतस्यास्य महात्मनः। गर्भिणीनाञ्च नारीणां पानाभ्यञ्जनभोजनैः ॥ १३० ॥ बालानां ग्रहजुष्टानां घृतमेतत्प्रशस्यते। वन्ध्यापुष्टिप्रदं पौष्ट्यमपुत्राणाञ्च पुत्रदम् ॥ १३१ ॥ श्रेष्ठं वा योनिरोगे स्यादसृग्दरविनाशनम्। यन्मया निर्मितं ह्येतल्लक्ष्मणाद्यं घृतं महत् ॥ १३२ ॥

लक्ष्मणा, (सफेद कटेरी), चन्दन, लोध, खस, पद्माख, कचूर, हल्दी, दारुहल्दी, वच, कूठ, कमलकेशर, कमल, उसवा, अनन्तमूल, वायविडंग, चमेलीके फूल, बालछड, देवदारु, गोखुरू, रेणुका, कमोदिनी मुलैठी और सौंफ इन औषधियोंको एक एक तोला लेकर कल्क बना लेवे। फिर बकरीका घृत १ प्रस्थ, दूध ४ प्रस्थ और उपर्युक्त कल्कवाली औषधियोंका ही काथ १० प्रस्थ लेवे। इन सबको एकत्र मिलाकर स्नेहपाककी विधिसे घृतको पकावे। अब इस श्रेष्ठ घृतके लक्षण कहता हूँ। इसको गर्भवती स्त्रियोंको पान और अभ्यंग तथा भोजनके द्वारा प्रयोग करावे। मैंने (ग्रन्थकार) जो यह महन् लक्ष्मणाद्य घृत निर्माण किया है, यह ग्रहग्रसित बालकोंको अत्यन्त हितकारी है तथा वन्ध्या स्त्रियोंको पुष्टि देनेवाला और अपुत्रवाली स्त्रियोंको हृष्ट पुष्ट पुत्र देनेवाला एवं योनिरोगमें हितकारी और प्रदरको नष्ट करनेवाला है ॥ १२७–१३२ ॥

फलघृत।

सहचरे द्वे त्रिफलां गुडूचीं सपुनर्नवाम्। शुकनासां हरिद्रे द्वे रास्नां मेदां शतावरीम् ॥ १३३ ॥ कल्कीकृत्य घृतप्रस्थं पचेत्क्षीरचतुर्गुणम्। तत्सिद्धं प्रपिबेन्नारी योनिशूलनिपीडिता ॥ १३४ ॥ पीडिता चलिता योनिर्निःसृता विवृता च या। पित्तयोनिश्च विस्रस्ता षण्ढयोनिश्च या स्मृता ॥ १३५ ॥ प्रपद्यन्ते तु ताः स्थानं गर्भं गृह्णन्ति चासकृत्। एतत्फलघृतं नाम योनिदोषहरं परम् १३६

दोनों प्रकारका पियाबाँसा, त्रिफला, गिलोय, पुनर्नवा, श्योनाक, हलदी, दारुहलदी, रायसन, मेदा, और शतावर इनके कल्कके द्वारा एक प्रस्थ घृतको चौगुने दूधमें पकावे। इस प्रकार इस घृतको सिद्ध कर योनिशूलसे पीडितयोनि चलायमानयोनि, तथा निःसृतयोनि, विवृतयोनि, पित्तयोनि, विस्रस्तयोनि और षण्ढयोनिवाली स्त्रियोंको पान करना चाहिये। इससे योनि यथा स्थानमें प्राप्त होकर समस्त योनिरोग शीघ्र दूर होते हैं और वे योनियाँ फिर बारम्बार गर्भको धारण करती हैं। यह फलघृत सबप्रकारके योनिदोषोंको दूर करनेके लिए अत्यन्त श्रेष्ठ है ॥ १३३–१३६ ॥

गर्भोत्पादनविधि।

एवं योनिषु शुद्धासु गर्भं विन्दन्ति योषितः। अदुष्टे प्राकृते बीजे बीजोपक्रमणे सति ॥ १३७ ॥

इस प्रकार योनिके शुद्ध होजानेपर और बीजके दूषित न होनेपर, स्वभावसे शुद्ध होनेपर अथवा औषध आदिसे शुद्ध करनेपर स्त्री गर्भको धारण करती है ॥ १३७ ॥

बीजस्य प्लवनं न स्याद् यदि मूत्रश्च फेनिलम् । पुमान्स्याल्लक्षणैरेतैर्विपरीतैस्तु षण्ढकः ॥ १३८ ॥

जो बीर्ज जलमें डालनेसे न डूबे और उसका मूत्र झागोंवाला हो तो उसको पुरुष जानना और जिसका बीर्ज जलमें डालनेसे डूबजाय और मूत्रमें झाग न उठें उसको नपुंसक जानना चाहिए ॥ १३८ ॥

शिशुः स्याच्छुक्रबाहुल्याद्दुहिता चार्तवाधिके । नपुंसकं तयोः साम्ये यथेच्छा परमेश्वरी ॥ १३९ ॥

शुक्रकी बाहुल्यतासे पुत्र उत्पन्न होता है और आर्त्तवकी अधिकतासे कन्या उत्पन्न होती है । और दोनोंकी समतासे नपुंसक सन्तान उत्पन्न होती या जैसी परमेश्वरकी इच्छा वह होता है ॥ १३९ ॥

सक्षीरशाल्यन्नभुजा तिलमाषोत्तराशना । प्रमदा समुदा सेव्या चेमे ह्युच्चार्य्य मन्त्रके ॥ १४० ॥

दूध और शालिधानके चावलोंका भोजन करके अथवा तिल और उडद इनका भोजन करके निम्नलिखित मंत्रको पढकर आनन्दपूर्वक स्त्रीको सेवन करे ॥ १४० ॥

“ ॐ अहिरसि आयुरसि सर्वतः प्रतिष्ठासि धाता त्वा दधातु ब्रह्मवर्चसे भवेदिति । ॐ ब्रह्माप्रजापतिर्विष्णुः सोमः सूर्य्यस्तथाश्विनौ । भगोऽथमित्रावरुणौ वीरं दधतु मे सुतमितीमौ द्वौ मन्त्रौ पठेदिति ॥”

और “अहिरसि आयुरसि सर्वतः प्रतिष्ठासि धाता त्वा दधातु ब्रह्मवर्चसे भवेदिति । ॐ ब्रह्मा प्रजापतिर्विष्णु सोमः सूर्यस्तथाश्विनौ । भगोऽथ मित्रावरुणौ वीरं दधतु मे सुतमितीमौ द्वौ मंत्रौ ”

उच्चित्ताननदेहा स्त्री तिष्ठेद्रत्याःश्रमं त्यजेत् । एवं सा सुतमाप्नोति रूपायुर्बलशालिनम् ॥ १४१ ॥

फिर मैथुनके अन्तमें स्त्री सीधा मुख और सीधा शरीर करके रतिके श्रमको छोडकर शयन करे । इस प्रकार करनेसे वह रूप बल और दीर्घायुसम्पन्न पुत्रको उत्पन्न करती है ॥ १४१ ॥

पुष्ये पुत्तलिकां कृत्वा हैमां वह्निप्रतापिताम् । क्षीरे निर्वाप्य संतप्तं पिबेद् दुग्धं पलाष्टकम् ॥ १४२ ॥

पुष्यनक्षत्रमें सोनेकी पुतली बनाकर उसको अग्निसे गरम करके दूधमें बुझावे । ऐसे ३२ तोले दूधको पान करे ॥ १४२ ॥

लक्ष्मणां वटशुङ्गान्वा पिष्ट्वा क्षीरेण बिन्दुकान् । सवर्ति पुत्रकामायै सव्येतरपुटे क्षिपेत् ॥ सव्ये नासापुटे कन्यां लभेन्नारीमसंशयम् ॥ १४३ ॥

लक्ष्मणाकी जड या बडके अंकुरोंको दूधमें पीसकर बत्ती द्वारा उसकी बूँद दहिने नासिकाके छिद्रमें डालनेसे पुत्र उत्पन्न होता है । और बाँये नासिकाके छिद्रमें डालनेसे कन्या उत्पन्न होती है ॥ १४३ ॥

बलामातिबलां चैव शर्करां मधुयष्टिकाम् । क्षीरं मधु घृतं चैव पीतं गर्भप्रदं भवेत् ॥ १४४ ॥

खिरैंटी, कंघी, मिश्री, मुलैठी, दूध, शहद और घृत इन सबको एकत्र मिलाकर रजोधर्मसे शुद्ध होनेके पश्चात् पान करनेसे गर्भकी प्राप्ति होती है ॥ १४४ ॥

नागकेशरपूगास्थिचूर्णं वा गर्भदं परम् ॥ १४५ ॥

नागकेशर और सुपारी इनका चूर्ण सेवन करनेसे गर्भ उत्पन्न होता है ॥ १४५ ॥

क्वाथेन हयगन्धायाः साधितं सघृतं पयः । ऋतुस्नाताऽबला पीत्वा गर्भं धत्ते न संशयः ॥ १४६ ॥

असगंधके काथके द्वारा दूधमें घृतको पकावे । इस घृतको ऋतुकालके अन्तमें पान करनेसे स्त्री अवश्य गर्भवती होती है ॥ १४६ ॥

पिप्पली शृङ्गवेरश्च मरिचं केशरं तथा । घृतेन सह पातव्यं वन्ध्यागर्भप्रदं परम् ॥ १४७ ॥

पीपल, अदरख, कालीमिरच और नागकेशर इन सबको एकत्र चूर्ण करके घृतके साथ पान करनेसे वंध्यास्त्रीके भी गर्भ उत्पन्न होता है ॥ १४७ ॥

तिलतैलदुग्धफाणितदधिघृतमेकत्र पाणिना मथितम् । पीतं सपिप्पलीकं जनयति वन्ध्याप्यपत्यमाशुतरम् ॥ १४८ ॥

तिलका तेल, दूध, राब, दही और घी इन सबको एकत्र हाथसे मथकरके पीपलका चूर्ण डालकर सेवन करनेसे वंध्यास्त्रीके भी शीघ्र पुत्र उत्पन्न होता है ॥ १४८ ॥

पत्रमेकं पलाशस्य गर्भिणी पयसान्वितम् । पीत्वा च लभते पुत्रं वीर्य्यवन्तमसंशयः ॥ १४९ ॥

केवल एक ढाकके पत्तेको दूधमें पीसकर पान करनेसे गर्भिणीस्त्री निस्सन्देह अत्यन्त सामर्थ्यवान् पुत्रको प्राप्त करती है ॥ १४९ ॥

पुष्योद्धृतं लक्ष्मणाया मूलं पिष्टश्च कन्यया । ऋत्वंते घृतदुग्धाभ्यां पीत्वाप्नोत्यबला सुतम् ॥ १५० ॥

पुष्यनक्षत्रमें लक्ष्मणाकी जडको उखाडकर और कन्यासे पिसवाकर घृत और दूधके साथ ऋतुकालके अन्तमें पान करनेसे पुत्रको प्राप्त करती है १५०

तिलतैलकुडवमेकं वृषसलिलसंयुतं पक्वम् । ऋतुकालान्ते पीत्वा गर्भं विदधाति वन्ध्यापि ॥ १५१ ॥

एक कुडवपरिमाण तिलके तेलको अडूसेके काथके साथ पकाकर ऋतुकालके अन्तमें पान करनेसे वंध्या स्त्री भी गर्भको धारण करती है ॥ १५१ ॥

जीवकपुत्रकबीजं क्षीरेण पिबेत्सपत्रमूलञ्च । दारकनष्टा वनिता जनयति दीर्घायुषं पुत्रम् ॥ १५२ ॥

पतिजियाके बीज, पत्ते और जडको दूधके साथ पीसकर पान करनेसे नष्टहुई सन्तानवाली स्त्री दीर्घायु पुत्रको उत्पन्न करती है ॥ १५२ ॥

क्षीरेण श्वेतबृहतीमूलं नासिकया पिबेत् । दक्षिणयात्मजार्थं वा कन्यार्थं वामया तथा ॥ १५३ ॥

सफेद कटेरीकी जडको दूधके साथ पीसकर पुत्र उत्पन्न होनेकी इच्छा हो तो नासिकाके दहिने छिद्रके द्वारा पान करे और कन्या उत्पन्न होनेकी इच्छा हो तो नासिकाके बायें छिद्रके द्वारा पान करे ॥ ॥ १५३ ॥

पुष्योद्धृतं लक्ष्मणायाश्चक्राङ्गायास्तु कन्यया । पिष्टं मूलं हविर्दुग्धं पीतमृतौ तु पुत्रदम् ॥ १५४ ॥

पुष्यनक्षत्रममें लक्ष्मणाकी जड और सुदर्शनकी जडको उखाडकर कन्याके हाथसे पिसवाकर घी और दूधके साथ मिलाकर ऋतुकालमें पान करे । यह प्रयोग पुत्र प्रदान करता है ॥ १५४ ॥

न्यग्रोधशुङ्गासनकं प्रवालचूर्णञ्च सवर्णवत्सायाः । गोक्षीरं परिपीतं पुत्रं प्रकरोति पुष्यर्क्षे ॥ १५५ ॥

पुष्यनक्षत्रमें वडके अंकुर, विजयसार और मूँगेका भस्म इन सबको एक वर्णकी बछडेवाली गायके दूधके साथ पीसकर पान करनेसे पुत्र उत्पन्न होता है ॥ १५५ ॥

रोमराजी भवेद्यस्या वामपार्श्वेति मूर्च्छिता । कन्यां तस्या विजानीयाद्दक्षिणे च तथा सुतः ॥ १५६ ॥

जिस गर्भवतीस्त्रीके वामपार्श्वमें रोमोंकी पंक्ति गिरजाय तो उसके कन्या उत्पन्न होगी और जो दाहिने पार्श्वमें रोमोंकी पंक्ति गिरजाय तो पुत्र उत्पन्न होगा ऐसा जानना चाहिये ॥ १५६ ॥

बृहत्कल्याणघृत ।

मुस्ता कुष्ठं हरिद्रे द्वे पिप्पलीकटुरोहिणी । काकोली क्षीरकाकोली विडङ्गं त्रिफला वचा ॥ १५७ ॥ मेदा रास्नाश्वगन्धा च विशाला च प्रियंगुका । द्वे शारिवे शताह्वा च दन्ती मधुकमुत्पलम् ॥ १५८ ॥ अजमोदा महामेदा चन्दनं रक्तचन्दनम् । जातीपुष्पन्तुगाक्षीरीशर्कराहिंगुकट्फलम् ॥ १५९ ॥ चतुर्गुणेन पयसा विपचेद्गोमयाग्निना । नक्षत्रे पुष्यसम्पन्ने

भांडे ताम्रमये दृढे ॥ १६० ॥ कलशे वापि कल्याणे कृतकौतुकमङ्गलः । सर्पिरेव नरः पीत्वा स्त्रीषु नित्यं वृषायते ॥ १६१ ॥ एतद्वन्ध्या पिबेन्नारी या च कन्या प्रजायिनी । या चैवास्थिरगर्भा स्याद्या च सूता पुनः स्थिता ॥ १६२ ॥ अनायुषं वा जनयेद्या वा जनयते मृतम् ॥ सा नारी जनयेत्पुत्रं वेदवेदाङ्गपारगम् ॥१६३॥ रूपलावण्यसम्पन्नमजरञ्च शतायुषम्। बृहत्कल्याणकं सर्पिर्भारद्वाजेन भाषितम् । अनुक्तं लक्ष्मणामूलं क्षिपन्त्यत्र चिकित्सकाः ॥ १६४ ॥

नागरमोथा, कूठ, हलदी, दारुहलदी, पिप्पली, कुटकी, काकोली, क्षीरकाकोली, वायविडंग, त्रिफला, बच, मेदा, रायसन, असगन्ध, इंद्रायण, फूलप्रियंगू, उसवा, अनन्तमूल, शतावर, दंती, मुलैठी, कमल, अजमोद, महामेदा, चन्दन, लालचन्दन, चमेलीके फूल, वंशलोचन, मिश्री, हींग और कायफल इन सबको समान भाग लेकर कल्क बनावे, इस कल्कके द्वारा चौगुने दूधमें मन्द मन्द अग्निसे घृतको पकावे। इस घृतको उत्तम ताँबेके दृढ़पात्रमें भरकर पुष्यनक्षत्रमें मंगल कार्य. करके पकाना चाहिए। इस कल्याणनामक घृतको पान करनेसे पुरुष स्त्रियोंमें वृषभके समान नित्य रमण करता है, वन्ध्या स्त्री, अथवा जिसके कन्या ही उत्पन्न होती हों या जिसके गर्भ नहीं रहता हो अथवा जिसके गर्भ रहकर नष्ट होजाता हो या जो मृत सन्तानको उत्पन्न करती हो अथवा जो अल्पायुपुत्रको उत्पन्न करती हो तो वे स्त्रियाँ इस घृतको पान करें। इससे वह वेदवेदांगके पारगामी, रूप, लावण्यतायुक्त, अजर और शतायु पुत्रको उत्पन्न करती हैं। इस बृहत्कल्याणघृतको भारद्वाजऋषिने कहा है। इसमें लक्ष्मणाकी जडके न कहनेपर भी वैद्यलोक डालते हैं ॥ १५७-१६४॥

बृहत्फलघृत ।

माञ्जिठा मधुकं कुष्ठं त्रिफलाशर्कराबलाः । मेदा पयस्या काकोली मूलं चैवाश्वगन्धजम् ॥ १६५ ॥ अजमोदा हरिद्रे द्वे हिंगूकटुकरोहिणी । उत्पलं कुमुदं द्राक्षा काकोल्यौ चन्दनद्वयम् ॥ १६६ ॥ एतेषां कार्षिकैर्भागैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् । शतावरीरसक्षीरं घृताद्देयं चतुर्गुणम् ॥ १६७ ॥ सर्पिरेतन्नरः पीत्वा स्त्रीषु नित्यं वृषायते । पुत्रं जनयते नारी मेधाढ्यं प्रियदर्शनम् ॥ १६८ ॥ या चैवास्थिरगर्भा स्याद्या वा जनयते मृतम् । अल्पायुषं वा जनयेद्या च कन्यां प्रसूयते ॥ १६९ ॥ योनिदोषे रजोदोषे परिस्रावे च शस्यते । प्रजावर्द्धनमायुष्यं सर्वग्रहनिवारणम् ॥ १७० ॥ नाम्ना फलघृतञ्चैतदश्विभ्यां परिकीर्त्तितम् । अनुक्त लक्ष्मणामूलं क्षिपन्त्यत्र चिकित्सकाः ॥ १७१ ॥

मजीठ, मुलैठी, कूठ, त्रिफला, मिश्री, खांड, खिरैंटी, मेदा, विदारीकंद, काकोली, असगन्धकी जड, अजमोद, हल्दी, दारुहलदी, हींग, कुटकी, कमल, कमोदिनी, दाख, दोनों काकोली और दोनों चन्दन, इन ओषधियोंको एक २ तोला लेकर कल्क बनालेवे। उस कल्कके साथ एक प्रस्थ घृतको चौगुने शतावरके रस और चौगुने दूधमें पकावें। इस घृतको पान करनेसे पुरुष स्त्रियोंमें नित्य वृषभके समान आचरण करता है। स्त्री इस घृतको पान करै तो वह मेधासम्पन्न और प्रियदर्शन पुत्रको उत्पन्न करती है। जिन स्त्रियोंके गर्भ स्थिर नहीं रहता, जिनके मृतसन्तान उत्पन्न होती है, जिनके अल्पायुसन्तान उत्पन्न होती है या जिनके कन्याही कन्या उत्पन्न होती हैं, उन स्त्रियोंके लिए तथा योनिरोग, रजोदोष और योनिस्राव इन सब रोगोंमें हितकारी है। फलघृत नामसे प्रसिद्ध यह घृत-सन्तानको बढानेवाला, अवस्थाको स्थापनकरनेवाला और सम्पूर्ण ग्रहोंको दूर करनेवाला है। इसको अश्विनीकुमारोंने निर्म्माण किया है। इसमें लक्ष्मणाकी जड न कहनेपर भी वैद्य लोक डालते हैं ॥ १६५-१७१ ॥

शतावरीघृत ।

शतावर्य्या विदार्य्याश्च तथा माषा-

त्मगुप्तयोः। श्वदंष्ट्रायाश्च निःक्वाथे नल्वणे च पृथक् पृथक् ॥ १७२ ॥ साधयित्वा घृतप्रस्थं पयश्चतुर्गुणे पचेत् । शर्करामधुसंयुक्तं मिलित्वा त्प्रयोजयेत ॥ १७३ ॥

शतावर, विदारीकन्द, उडद, कौंछ और गोखुरू इनका एक २ द्रोण जलमें अलग २ क्वाथ बनाकर उसमें १ प्रस्थ घृतको चौगुने दूधके साथ पकावे। फिर उसमें मिश्री और शहद मिलाकर सेवन करे। इसको सेवन करनेसे वन्ध्या स्त्रीके गर्भ स्थित होता है ॥ १७२ ॥ १७३ ॥

वृद्धदारुकघृत ।

वृद्धदारुकमूलेन घृतं पक्वं पयोन्वितम् । एतद्वृष्यतमं सर्पिः पुत्रकामः पिबेन्नरः ॥ १७४ ॥

विधारेकी जडके कल्कके और दूधके साथ घृतको पकावे। पुत्रकी इच्छा करनेवाला मनुष्य इस अत्यन्त वृषतम घृतको पान करे ॥ १७४ ॥

अथ संजातगर्भके लक्षण ।

छर्दिरम्ले रुचिर्नित्यं ष्ठीविकारोमराजिका । अरुचिस्स्तनयोः कार्ष्ण्यं ग्लानिराटोपवर्जितम् ॥ कुक्षेरक्ष्णोः पक्ष्मलत्वं गर्भिणीस्फुटलक्षणम् ॥१७५॥

वमनका होना, अम्लपदार्थों पर रुचिका उत्पन्न होना, निरंतर थूकना, रोमाचोंका खडा होना, भोजनमें अरुचि, स्तनोंमें कृष्णता, ग्लानि, आटोप, (पेटमें गुड २ शब्दका होना) कोख और आँखोंके पलकोंका भारी होना, ये सब गर्भवाली स्त्रीके स्पष्ट लक्षण हैं ॥ १७५ ॥

नागोदरके लक्षण ।

यस्याः कुक्षौ भवेद्ग्लानिः पुनराध्मानमेव च। गर्भिण्या दृश्यते नार्य्यास्तस्या नागोदरं विदुः ॥१७६॥ व्यवायस्वेदवर्जिन्यास्तस्याः स्यादौहृदं हितम् ॥ १७७ ॥

जिस गर्भवती स्त्रीकी कोखमें ग्लानि होकर फिर अफारा हो जाता है, उसको नागोदर कहते हैं। ऐसी गर्भिणीको मैथुन और स्वेदसे वर्जित रख कर गर्भप्रद पदार्थ सेवन कराने चाहिये ॥ १७६ ॥ १७७ ॥

गर्भस्राव और गर्भपातके अवधिपूर्वलक्षण ।

भयाभिघातात्तीक्ष्णोष्णपानाशननिषेवणात । गर्भे पतति रक्तस्य सशूलं दर्शनं भवेत ॥ १७८ ॥

भयसे, अभिघात (चोट आदिके लगने) से, तीक्ष्ण और उष्ण पदार्थोंको पान और भोजन करनेसे गर्भपात अथवा गर्भस्राव होता है। जब गर्भ स्रवता या गिरता है तब शूलकी पीडा सहित रुधिर निकलता है ॥ १७८ ॥

आचतुर्थात्ततो मासात्प्रस्रवेद्गर्भविद्रवः। ततः स्थिरशरीरस्य पातः पञ्चमषष्ठयोः ॥ १७९ ॥

चौथे महीनेतक जो गर्भ रुधिररूपसे स्रवता है, उसको गर्भस्राव कहते हैं और पांचवें महीनेमें अथवा छठे महीनेमें जब कि गर्भका शरीर स्थिर हो जाता है तब जो गर्भ गिरता है, उसको गर्भपात कहते हैं १७९.

गर्भस्राव और पातकी चिकित्सा ।

सेकावगाहना लेपाः शस्यंते तत्र शीतलाः । जीवनाद्यैः कृतक्षीरपानश्चैव सशर्करम् ॥ १८० ॥

गर्भस्राव अथवा गर्भपातमें सम्पूर्ण शीतल पदार्थोंका सेचन, शीतल अवगाहन, और शीतल लेप ये सब प्रयोग करे तथा जीवनीयगणकी औषधियोंके द्वारा दूधको पकाकर मिश्री डालकर सेवन करै ॥ १८० ॥

अकालपातमें निदानपूर्वकदृष्टान्त ।

गर्भोऽभिघात-विषमाशनपीडनाद्यैः, पक्वं द्रुमादिव फलं पतति क्षणेन ॥

जिसप्रकार वृक्षकी शाखामें लगा हुआ पक्का फल वृक्षसे तत्काल गिर पडता है, अथवा कच्चा फल भी अभिघात आदिसे गिर पडता है, उसीप्रकार गर्भ अभिघातसे, विषम भोजन करने या विषम आसनपर बैठने और दबाने आदिसे असमयमें गिरजाता है॥

मूढगर्भके लक्षण ।

मूढः करोति पवनः खलु मूढगर्भं शूलश्च योनिजठरादिषु मूत्रसंगम् ।

अपने ही कारणोंसे कुपित होकर मूढ हुआ वायु गर्भाशयमें प्राप्त होकर गर्भको मूढ अर्थात् टेढी गतिवाला कर देता है, उसको मूढगर्भ कहते हैं । उसके योगसे योनि और उदरादिकमें शूल तथा मूत्रका अवरोध होता है ॥

मूढगर्भकी आठप्रकारकी गति ।

भुग्नोऽनिलेन विगुणेन ततः स गर्भः संख्यामतीत्य बहुधा समुपैति योनिम् ॥ १८१ ॥ द्वारं निरुध्य शिरसा जठरेण कश्चित् कश्चिच्छरीरपरिवर्त्तनकुब्जदेहः । एकेन कश्चिदपरस्तु भुजद्वयेन तिर्य्यग्गतो भवति कश्चिदवाङ्मुखोऽन्यः ॥१८२॥पार्श्वापवृत्तगतिरेति तथैव कश्चिदित्यष्टधा गतिरियं ह्यपरा चतुर्धा । सङ्कीलकः प्रतिखुरः परिघोऽथ बीजस्तेषूर्ध्वबाहुचरणैः शिरसा च योनिम् ॥१८३॥सङ्गी च यो भवति कीलकवत्स कीलो दृश्यैः खुरैः प्रतिखुरः स हि कायसङ्गी ॥ गच्छेद्भुजद्वयशिराः स च बीजकाख्यो योनौ स्थितः सपरिघः परिघेण तुल्यः ॥ १८४ ॥

दुष्टवातसे गर्भ टेढा होकर अनेकप्रकारसे योनिके मुखपर आकर अडजाता है । वहां कोई गर्भ योनिके मुखको शिरसे रोक लेता है, कोई गर्भ उदरसे योनिद्वारको रोक लेता है और कोई अपने शरीरको गोळ घुमाकर कुबडेपनसे योनिद्वारको रोकता है।कोई एक हाथसे,कोई दोना हाथोंसे योनिद्वारको रोकता है । कोई तिरछा होकर योनिद्वारको रोकता है । कोई नीचा मुख होकर योनिद्वारको रोकता है और कोई पसालयोंसे टेढा करके योनिद्वारको रोकता है । ऐसे आठ प्रकारसे विकृतगर्भकी गति होती है । और दूसरे प्रकारसे जो गर्भकी चार गति होती हैं, उनको कहते हैं । जैसे संकील, प्रतिखुर, परिघ और बीज । इनमें जो गर्भ हाथ, पाँवोंको ऊपरको करके शिरसे योनिको कीलके समान रोकदेता है उसको संकील कहते हैं । जो गर्भ हाथ और पाँवोंको योनिके बाहर निकाल देता है और शरीर योनिके भीतर अटक जाता है उसको प्रतिखुर कहते हैं । जो गर्भ दोनों हाथोंमें मस्तकको रखकर योनिद्वारपर अटक जाता है उसको बीज कहते हैं और जो द्वारके अर्गलके समान योनिद्वारपर अटक जाता है उसको परिघ मूढगर्भ कहते हैं॥ १८१-१८४ ॥

असाध्य मूढगर्भ और गर्भिणीके लक्षण ।

अपविद्धशिरा या तु शीताङ्गी निरपत्रपा । नीलोद्धूतशिरा हन्ति सा गर्भं च स तां तथा ॥ १८५ ॥

अब मूढगर्भ और गर्भिणीके असाध्यलक्षण कहते हैं । जिस गर्भिणीका शिर नवगया हो, अर्थात् ऊपरको न उठसके, शरीर शीतल होगया हो, लज्जा नष्ट होगई हो और कोखमें नीलेरंगकी नसें दीखती हों तो वह गर्भिणी गर्भको नष्ट करती है और गर्भ गर्भिणीको नष्ट करदेता है ॥ १८५ ॥

मृतगर्भके लक्षण ।

गर्भास्पन्दनमावीनां प्रणाशः श्यावपाण्डुता । भवेदुच्छ्वासपूतित्वं शूलश्चान्तर्मृते शिशौ ॥ १८६ ॥

गर्भमें बालकके मरजानेपर ये लक्षण होते हैं:- गर्भ फडकता नहीं, प्रसवकी पीडा नहीं होती तथा मूत्र, कफका आना आदि प्रसवके लक्षण नष्ट हो जाते हैं, शरीरका रंग काला पीलासा हो जाता है, श्वासमें दुर्गंध आती है और पेटमें बालकके मर जानेसे शूल सहित सूजन होती है ॥ १८६ ॥

गर्भमरण हेतु ।

मानसागन्तुभिर्मातुरुपतापैः प्रपीडितः । गर्भो व्यापद्यते कुक्षौ व्याधिभिश्च निपीडितः ॥ १८७ ॥

माताके शोक वियोगादि मानसिक दुःखों और प्रहारादिके आगन्तुक दुःखोंसे दुःखित तथा रोगोंसे पीडित होनेसे बालक गर्भमें भी मरजाता है॥१८७॥

असाध्य लक्षण ।

योनिसंवरणं सङ्गः कुक्षौ मारुत

एव च। हन्युः स्त्रियं मूढगर्भा यथोक्ताश्चाप्युपद्रवाः ॥ १८८ ॥

जिस गर्भिणीकी योनिमें योनिसंवरणरोग होजाय अथवा योनि सकुच जाय, गर्भ योनिके द्वारपर अड-जाय तथा वायु कोखमें भरजाय और वातके विकार खाँसी, श्वासादि जिसमें उपद्रव हों ऐसे मूढगर्भ ग-र्भिणीको नष्ट करदेते हैं ॥ १८८ ॥

गर्भस्य गतयश्चित्रा जायन्तेऽनिलकोपतः । तत्रानल्पमतिर्वैद्यो वर्त्तेत मतिपूर्वकम् ॥ १८९ ॥

वातके प्रकोपसे गर्भकी अनेकप्रकारकी गतियाँ होती हैं । उनमें अत्यंत बुद्धिमान् वैद्य सूक्ष्म बुद्धिके साथ बर्त्ताव करे अर्थात् चिकित्सा करे ॥ १८९ ॥

मृतं गर्भं भिषक्प्राज्ञः छित्त्वा कर्षेत्प्रयत्नतः । धान्वन्तरिमतात्प्राज्ञः साध्यज्ञातश्च शल्यवित् ॥ १९० ॥

शल्यतंत्रका जाननेवाला अत्यन्त बुद्धिमान् वैद्य मरेहुए गर्भको धन्वन्तरिके मतसे साध्य समझकर शस्त्रसे यत्नपूर्वक काटकर निकाललेवे ॥ १९० ॥

अभिघातान्मृतायास्तु गर्भः प्रस्पन्दते यदि । जन्मकाले ततः शीघ्रं पाटयित्वोद्धरेच्छिशुम् ॥ १९१ ॥

जो अभिघात आदि आगंतुककारणोंसे गर्भिणी स्त्री मरजाय और उसकी कोखमें गर्भ फडकता हो तो जन्मके समय तत्काल गर्भको चीरकर बालकको निकाल लेवे ॥ १९१ ॥

गर्भाशयं परिहरन्नथ गर्भिणीञ्च यत्नं करोति सहसा महदाशुकर्म्मा । वैद्यस्तु चेद्भवति शास्त्रगतिप्रवीणः प्राप्नोति मित्रधनधान्ययशांसि लोके ॥ १९२ ॥

जो गर्भाशयको बचाकर और गर्भिणीकी रक्षा करता हुआ, तथा शास्त्रगतिको जाननेवाला और बडी जल्दी काम करनेवाला वैद्य शीघ्रतासे यत्न करता है वह ही संसारमें मित्र, धन, धान्य और यशका भागी होता है ॥ १९२ ॥

गर्भस्य सन्ति गतयोऽष्टविधाः पुरोक्ताः, भ्राम्यन्ति वैगतिषु वातगतिस्वभावात् । अंसे त्रिके शिरसि भूयसि तस्य सङ्गा, उत्तानकायात्रिनिकुश्चितसक्थिदेशम् ॥ १९३ ॥ कट्यां समुन्नमितवासासि सन्निषण्णस्फिग्देशसंस्थमथ पाणितले निजे च । मृच्छाल्मलैर्घृतयुतैः परिमार्जयित्वा, गर्भं समानयति रक्षति योषिताश्च ॥१९४॥

वायुके विकृतगति होनेपर गर्भकी पूर्वोक्त आठ प्रकारकी गतियाँ होती हैं । इसप्रकार वायु गतिस्वभावसे गर्भको अनेक प्रकारसे घुमाता है । इसमें वह वायु गर्भके साथ होनेसे किसीको अंश (कंधे)के द्वारा किसीको त्रिकस्थानके द्वारा और किसीको शिरके द्वारा वारंवार योनिके मुखपर लाकर अडा देता है। उस समय बुद्धिमान् वैद्य उस गर्भवती स्त्रीके शरीरको ऊँचा करके और सक्थि (साँथल)को सिकोडकर सीधा शयन करादेवे तथा कमर और कंधोंको ऊंचा करके स्फिग्देश (कूलों) को वस्त्रसे लपेटकर वैद्य अपने हाथोंसे मिट्टी और घृतसहित सेमलके गोंदको लेपकर गर्भवती स्त्रीकी योनिमें डालकर गर्भिणीकी रक्षा करता हुआ यत्नपूर्वक गर्भको निकाल लेवे ॥ ॥ १९३ ॥ ११४ ॥

सक्थ्यागतं सततमुन्नतमंसदेशं स्निग्धे समागतकपूर्वनिपीडितेन । सक्थिप्रसार्य परिधाय तथैव तिर्यगुत्क्षिप्य यत्पथगतं ननु योनिमार्गम् ॥ ॥ १९५ ॥ पार्श्वागतस्य परिवृत्य शिरो निपीडय पूर्वं समुन्नतशिरोपरिणिय योन्याम् । हस्तेन तं सपादितं परिलभ्य शस्त्रैश्छित्त्वा हरेन्मृतकगर्भशरीरदेशान् ॥ १९६ ॥

जो गर्भ सक्थिके द्वारा आनकर योनिमार्गमें अडजाय तो गर्भवतीके अंसदेशको ऊँचा करके तथा घृतादिसे योनिको चिकना करके धीरे धीरे आयेहुए गर्भको पीडित करके निकाल लेवे । और जो तिर्य्यक् रीतसे योनिमार्गमें आनकर डंडेके समान अडजाय, उसमें एक सक्थिको फैलाकर और दूसरी सक्थिको सिकोडकर गर्भको निकाल लेवे । जो

शिरको घुमाकर पार्श्व (पसली) के बलसे योनिमें आकर अडजाय उसके शिरको प्रथम योनिमें अच्छेप्रकारसे ऊँचा करके धीरेसे गर्भको निकाललेवे। मरेहुए गर्भको हाथसे पकड़कर शीघ्रताकेसाथ उसको शस्त्रसे यत्नपूर्वक काटकर निकाल लेवे १९५॥१९६

यद्यदङ्गं हि गर्भस्य तत्तत्सज्जति सद्भिषक् । सम्यग्विनिर्हरेच्छित्त्वा रक्षन्नारीञ्च यत्नतः ॥ १९७ ॥

गर्भका जो २ अंग मूढ अर्थात् काटने योग्य हो उसी २ अंगको स्त्रीकी यत्नपूर्वक रक्षा करताहुआ अच्छेप्रकारसे काटकर निकाल लेवे ॥ १९७ ॥

सचेतनं तु शस्त्रेण न कथंचन दारयेत् । आत्मानं जननीञ्चैव हन्यादाशु ह्यचेतनः ॥ १९८ ॥ नचोपेक्षेत मृतं गर्भं मुहूर्त्तमपि पण्डितः । स ह्याशु जननीं हन्ति निरुच्छ्वासं पशुं यथा ॥ १९९ ॥

चेतनायुक्त गर्भको शस्त्रसे कदापि नहीं चीरे । चेतना रहित अर्थात् मृतकगर्भ अपने आपको और माताको शीघ्र ही मार डालता है इसकारण विद्वान् वैद्यको मृतकगर्भको एक मुहूर्त मात्र भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये क्योंकि मृतकगर्भ शीघ्र ही माताको मार देता है । जिसप्रकार श्वास बन्द किया हुआ पशु शीघ्र मरजाता है ॥ १९८ ॥ १९९ ॥

मण्डलाग्रेण कर्त्तव्यं छेद्यमन्तर्विजानता । वृद्धिपत्रन्तु तीक्ष्णाग्रं न योनाववचारयेत् ॥ २०० ॥

गर्भाशयको जाननेवाला वैद्य मण्डलाग्रनामक शस्त्रसे मूढगर्भको चीरे, किंतु वृद्धिपत्र और तीक्ष्णाग्रनामक शस्त्रोंको कदापि योनिमें व्यवहार नहीं करे ॥ २०० ॥

प्रतिमासगर्भिणीकी चिकित्सा ।

प्रथमाद्द्वादशं यावन्मासं गर्भच्युतौ रुजि । जानीयात्क्रमसञ्जातयोगानेतान्भिषग्वरः ॥ २०१ ॥

पहले महीनेसे लेकर बारह महीनेपर्य्यन्त जो गर्भस्राव या पीडा आदि होती है उसकी अनेक योगोंके द्वारा क्रमसे चिकित्सा कहते हैं ॥ २०१ ॥

मधुकं शाकबीजन्तु पयस्यासुरदारु च । अश्मन्तकः कृष्णतिलास्ताम्रवल्ली शतावरी ॥ २०२ ॥

पहिले महीनेमें यदि गर्भस्राव या गर्भशूल हो तो मुलैठी, सागोनके बीज, काकोली और देवदारु इनका एक २ तोला कल्क दूधके साथ पान करे । दूसरे महीनेमें, अश्मन्तक, (इसको पश्चिममें आपटा और कहीं कहीं आम्ललौना या अम्लनोनिया अथवा दीपक वृक्षभी कहते हैं) इसके पत्ते कचनारके समान होते हैं । काले तिल, मजीठ और शतावर इनका एक तोला कल्क लेकर दूधके साथ सेवन करे ॥ २०२ ॥

वृक्षादनीपयस्या च लता सोत्पलशारिवा । अनन्ताशारिवारास्ना पद्माऽथ मधुयष्टिका ॥ बृहतीद्वयकाश्मर्य्यक्षीरी शुङ्गास्त्वचोघृतम् । पृथक्पर्णी बलाशिग्रुश्वदंष्ट्रामधुयष्टिका । शृङ्गाटकं बिसं द्राक्षा कशेरुमधुकं सिता ॥ २०३ ॥ सप्तैतान्पयसा योगानर्द्धश्लोकसमापनान् । क्रमात्सप्तसु मासेषु गर्भे स्रवति योजयेत् २०४॥

तीसरे महीनेमें बंदा, क्षीरकाकोली, फूलप्रियंगू, कमल और अनन्तमूल इनका दूधमें एक तोला कल्क बनाकर पान करे। चौथे महीनेमें अनन्तमूल, शारिवा, रायसन, पद्माख और मुलैठी इनका कल्क बनाकर दूधके साथ सेवन करे । पांचवें महीनेमें दोनों कटेरी कुम्भेर एवं बड आदि क्षीरवृक्षोंके अंकुर, और छाल इनको पीसकर घृत और दूधमें मिलाकर सेवन करावे । छठे महीनेमें पृश्निपर्णी, खिरैंटी, सहिंजना, गोखुरू और मुलैठी इनका कल्क बनाकर दूधमें मिलाकर सेवन करे । और सातवें महीनेमें सिंघाडे, भसींडेकी जड, दाख, कशेरू, मुलैठी और मिश्री इनका कल्क बनाकर दूधके साथ सेवन करे। गर्भस्राव होता हो तो इन आधे २ श्लोकमें कहे हुए सातों योगोंको सात महीनोंमें क्रम २ से दूधके साथ सेवन करावे ॥ २०३ ॥ २०४ ॥

कपित्थबिल्वबृहतीपटोलेक्षुनिदिग्धिकाः । मूलानि क्षीरसिद्धानि पाययेद्भिषगष्टमे ॥ २०५ ॥

आठवें महीनेमें कैथ, बेलगिरी, बड़ी कटेरी, पटोलपात, ईख और कटेरी इनकी जडोंके क्वाथमें दूधको औटाकर पान करावे ॥ २०५ ॥

संप्राप्ते चाष्टमे मासे मैथुनं परिवर्जयेत् । यदि गच्छति दुर्मेधाः काममोहादचेतनात ॥ २०६ ॥ विपद्यते तदा गर्भं पतते नात्र संशयः । अन्धमूकादिबधिरो जायते कुब्जमेव च ॥ २०७ ॥

आठवें महीनेसे मैथुन करना सर्वथा त्याग करदेना चाहिये । यदि कोई दुष्टबुद्धि कामके वशीभूत होकर आठवें महीनेमें स्त्रीके पास जाता है तो गर्भ निःसन्देह विकृत या पतित होजाता है । उसके विकृत होनेसे अन्धा, बहरा, गूँगा, कुबड़ा आदि अनेकप्रकारकी विकृत सन्तान उत्पन्न होती है ॥ ॥ २०६ ॥ २०७ ॥

नवमे मधुकानन्तापयस्याशारिवाः पिबेत् । पयस्तु दशमे शुंठ्या शृतशीतं प्रशस्यते ॥ २०८ ॥ सक्षीरा वा हिता शुण्ठी मधुकं देवदारु च ॥ २०९ ॥

नौवे महीनेमें मुलैठी, अनन्तमूल, क्षीरकाकोली और शारिवा इनको दूधके साथ पान करे । दशवें महीनेमें सोंठको दूधमें औटाकर फिर शीतल करके पान करे । अथवा सोंठ, मुलैठी और देवदारु इनको दूधमें औटकर पीवे ॥ २०८ ॥ २०९ ॥

क्षीरिकामुत्पलं दुग्धं समङ्गामूलकं शिवाम् । पिबेदेकादशे मासि गर्भिणी शूलशान्तये ॥ २१० ॥

ग्यारहवें महीनेमें क्षीरकाकोली, कमल, मजीठकी जड और हर्ड इनको एकत्र करके दूधके साथ पान करे तो गर्भिणीका शूल शान्त होता है ॥ २१० ॥

सिताविदारिकाकोली क्षीरे चैव मृणालिका । गर्भिणी द्वादशे मासि पिबेच्छूलघ्नमौषधम् ॥ एवमाप्यायते गर्भः स्त्रियो रुक् चोपशाम्यति॥२११॥

बारहवें महीनेमें गर्भिणी स्त्री मिश्री, विदारीकन्द, काकोली और कमलकी नाल इनको एकत्र दूधके साथ पीसकर पान करे । यह औषध शूलनाशक है । इसप्रकार चिकित्सा करनेपर स्रवताहुआ या पतित होताहुआ गर्भ स्थिर होजाता है और स्त्रीका शूल भी नष्ट होजाता है ॥ २११ ॥

कुशकाशोरुबूकानां मूलैर्गोक्षुरुकस्य च । शृतं दुग्धं सितायुक्तं गर्भिण्याः शूलनुत्परम् ॥ २१२ ॥

कुशा, कास, अण्ड और गोखुरू, इनकी जडके द्वारा दूधको औटाकर मिश्री डाल कर पान करनेसे गर्भिणीका शूल नष्ट होता है ॥ २१२ ॥

कशेरुशृङ्गाटकजीवनीयैः पद्मोत्पलैरण्डशतावरीभिः । सिद्धं पयः शर्करया विमिश्रं संस्थापयेद्गर्भमुदीर्णशूलम् ॥ २१३ ॥

कशेरू, सिंघाडे, जीवनीयगणकी औषधियाँ, कमल, कमोदिनी, अण्ड और शतावर इनके काथके साथ दूधको औटाकर मिश्री डाल कर पान करनेसे गर्भ स्थित होता है और घोर शूलकी पीड़ा शान्त होती है ॥ २१३ ॥

कशेरुशृङ्गाटकपद्मकोत्पलं समुद्गपर्णीमधुकं सशर्करम् । सशूलगर्भस्रुतिपीडितांगना पयोविमिश्रं पयसान्नभुक्पिबेत् ॥ २१४ ॥

गर्भशूल और गर्भस्रावसे पीड़ित स्त्री कशेरू, सिंघाडे, पद्माख, कमल, मुगवन और मुलैठी इन सबके चूर्णको मिश्री मिलाकर दूधके साथ पान करे तो गर्भशूल और गर्भस्राव आदि समस्त विकार दूर होते हैं । किंतु इस औषध पर दूधके साथ भात खावे ॥ २१४ ॥

व्यवस्थिते च गर्भे गव्येनोदुम्बरशलाटुसिद्धेन पयसा भोजयेद्गर्भे पतिते तीक्ष्णं मद्यं पेयं तस्योपद्रवशान्त्यै । त्यागोपचशाद्वा न पिबति मद्यं या तु सा च कोलसाधितां पेयामेवाश्नातु अतीते स्नेहलवणवर्ज्याभि-

र्यवागूभिरुद्दालकादीनां पाचनीयोपसंस्कृताभिरुपक्रमेत । यावन्तो मासा गर्भस्य तावन्त्यहानीति । इति गर्भशूलम् ।

गर्भके स्थिर होनेपर गायके दूधमें कच्चे गूलरोंको पकाकर उस दूधको पान करे । और यदि गर्भ पतित होजाय तो उसके उपद्रवोंको शांत करनेके लिये तीक्ष्ण मदिरादि पान करे । और जिन स्त्रियोंके मद्यपान आदिका त्याग हो वे बेरके द्वारा सिद्ध की हुई अथवा पंचकोलके द्वारा सिद्ध कीहुई पेया पान करें। और गर्भ पतित होनेके पश्चात् घी और नमकरहित यवागू या उद्दालक आदिको पकाकर और अच्छे प्रकारसे संस्कार करके जितने महीनोंका गर्भ गिरा हो उतने दिनोंतक पिलावे ।

गर्भिणीके ज्वरकी चिकित्सा ।

मधूकचन्दनोशीरशारिवापद्मयष्टिकैः । शर्करामधुसंयुक्तः कषायो गर्भिणी ज्वरे ॥ २१५ ॥

गर्भवती स्त्रीको ज्वर होनेपर मुलैठी, चन्दन, खस, शारिवा और पद्माख इनके द्वारा सिद्ध किया हुआ क्वाथ मिश्री और शहद डालकर पान करना चाहिए इससे ज्वर नष्ट होता है ॥ २१५ ॥

चन्दनं शर्करालोध्र-मृद्वीकाशर्करान्वितम् । क्वाथं कृत्वा प्रदातव्यं गर्भिणीज्वरशान्तये ॥ २१६ ॥

गर्भवती स्त्रीके ज्वरको शमन करनेके लिए चन्दन, मिश्री, लोध और दाख इनका क्वाथ बनाकर मिश्री मिलाकर पान कराना चाहिये ॥ २१६ ॥

पिबेद्विश्वमजाक्षीरं नाशयेद्विषमज्वरम् ॥ २१७ ॥

सोंठको बकरीके दूधमें औटाकर पान करनेसे विषमज्वर नष्ट होजाता है ॥ २१७ ॥

आम्रजंबूत्वचं क्वाथ्य लेहयेल्लाजसक्तुभिः । अनेन लीढमात्रेण गर्भिणी ग्रहणीं जयेत् ॥ २१८ ॥

आम और जामुनकी छालका क्वाथ बनाकर उसमें खीलोंके सत्तुओंको मिलाकर चाटनेसे गर्भिणीका संग्रहणीरोग नष्ट होता है ॥ २१८ ॥

ह्रीबेराऽरलुरक्तचन्दनबला-धान्याकवत्सादनी मुस्तोशीरयवासपर्पटविषाक्वाथं पिबेद्गर्भिणी । नानावर्णरुजातिसारकगदे रक्तस्रुतौ वा ज्वरे योगोऽयं मुनिभिः पुरा निगदितः सूत्यामये सत्तमः ॥ २१९ ॥

सुगन्धवाला, सोनापाठा, लालचन्दन, खिरैंटी, धनियां, गिलोय, नागरमोथा, खस, जवासा, पित्तपापडा और अतीस इनका क्वाथ बनाकर गर्भिणीस्त्रीको पान करना चाहिये । इससे गर्भिणी स्त्रियोंका अनेकप्रकारकी पीडासहित अतीसार, रक्तस्राव और ज्वर यह सब दूर होते हैं । यह योग पूर्वकालमें प्राचीन ऋषियोंने कहा है । यह सूतिकी रोगमें अत्यन्त श्रेष्ठ है ॥ २१९ ॥

गोधामांसं प्रयत्नेन गर्भिणीश्च प्रदापयेत् । वातपित्तकफोद्रिक्ता ग्रहोत्था येऽप्युपद्रवाः॥ गर्भिण्युपद्रवान्सर्वान्गोधामांसं विनाशयेत् ॥ २२० ॥

गोधामांस (गोयका मांस) गर्भवतीस्त्रीको यत्नपूर्वक सेवन करावे । वात, पित्त और कफसे उत्पन्न हुए, एवं ग्रहोंसे उत्पन्न हुए तथा अन्यान्य सर्व प्रकारके गर्भिणीके उपद्रवोंको गोधामांस नष्ट करदेता है ॥ २२० ॥

समधुच्छागदुग्धेन कुलालकरमृत्तिका। अवश्यं स्थापयेद्गर्भं बालिनं पानयोगतः ॥ २२१ ॥

शहद और बकरीके दूधमें कुम्हारके हाथकी मट्टीको मिलाकर सेवन करनेसे गर्भ अवश्य स्थापन होता है ॥ २२१ ॥

पारावतशकृत्पीतं शालितण्डुलवारिणा । गर्भपातान्तरोत्थे च गर्भस्रावनिवारणम् ॥ २२२ ॥

परेवा (कबूतर) की विष्टाको शालिचावलोंके जलके साथ पान करनेसे गर्भपात होनेपर उत्पन्न हुए गर्भस्राव आदि उपद्रव दूर होते हैं ॥ २२२ ॥

गर्भिणीप्रसवविलम्बकी चिकित्सा।

जीवति गर्भे सूतिका गर्भनिर्हरणे प्रयतेत । निर्हर्तुमशक्ये च्यवनान्मन्त्रानुपशृणुयात । तान्वक्ष्यामः ।

जीवितगर्भ जो नहीं प्रसव होता हो तो गर्भिणी उसको प्रसवकरनेका यत्न करे।और जो निकालनेको असमर्थ हो तो नीचे लिखे च्यवनमंत्रोंको श्रवण करे। उन च्यवनमंत्रोंको कहते हैं ।

'इहामृतश्च सोमश्च चित्रभानुश्च भामिनि । उच्चैःश्रवाश्च तुरगो मंदिरे निवसन्तु ते ॥ २२३ ॥ इदममृतमपां समुद्धृतं वै तव लघुगर्भमिमं विमुञ्चतु स्त्री। तदनलपवनार्कवासवास्ते सह लवणाम्बुधरैर्दिशन्तु शान्तिम् २२४॥ मुक्ताः पशोर्विपाशाश्च मुक्ताः सूर्य्येण रश्मयः । मुक्तः सर्वभयाद्गर्भ एह्येहि माचिरं स्वाहा'' ॥ २२५ ॥ जलं च्यवनमन्त्रेण सप्तवाराभिमन्त्रितम् । पीत्वा प्रसूयते नारी दृष्ट्वा चोभयत्रिंशकम् ॥ २२६ ॥

नाड़ी १६, ऋतुः ६, वसुभिः ८, सहपक्ष २, दिग १०, ष्टादश १८, भिरेव च । अर्क १२, भुवन १४, वेद ४, सहितैरुभयत्रिंशकमाश्चर्य्यम् ॥

१६	२	१२
६	१०	१४
८	१८	४

''इहामृतश्च सोमश्च........स्वाहा'' इस च्यवनमंत्रसे जलको सातवार अभिमंत्रित करके स्त्रीको पिलावे । और नीचे लिखे ३० तीसके यन्त्रको दिखावे तो स्त्रीके सुख पूर्वक प्रसव होता है २२३–२२६

	३०	३०	३०	
३०	१६	२	१२	३०
३०	६	१०	१४	३०
३०	८	१८	४	३०
	३०	३०	३०	

इस यंत्रको लिखकर गर्भिणीको दिखानेसे सुखपूर्वक प्रसव होता है ॥

क्षितिर्जलं वियत्तेजो वायुर्विष्णुः प्रजापतिः । ते गर्भ पातु नैरुज्यं वैशल्यञ्च दधत्व्यपि ॥ २२७ ॥ प्रसूयत्वमविक्लिष्टमविक्लिष्टे शुभानने । कार्तिकेयद्युतिं पुत्रं कार्त्तिकेयाभिरक्षितम् ॥ २२८ ॥

''क्षितिर्जलं........रक्षितम'' ॥२२७॥२२८॥

प्रसवकाले गर्भिण्याः कर्ण एतत्सप्तवारान् जपत्यम् ।

इस मंत्रको प्रसवके समय गर्भिणीस्त्रीके कानमें सातवार सुनानेसे सुखपूर्वक प्रसव होता है ॥

पुरुषकाशिफालेपः स्थिरामूलकृतोऽपि वा । नाभिबस्तिभगे लेपः सुखं नारी प्रसूयते ॥ २२९ ॥

फालसेकी जड़ और शालपर्णीकी जड इनको एकत्र पीसकर स्त्रीकी नाभि, बस्ति और भगपर लेप करनेसे स्त्री सुखपूर्वक प्रसव करती है ॥ २२९ ॥

तुषाम्बुपरिपिष्टेन कन्देन परिलेपयेत् । लाङ्गल्याश्चरणौ सूते क्षिप्रमापन्नगर्भिणी॥ २३० ॥

कलिहारीके कन्दको कांजीमें पीसकर गर्भिणीके पांवोंपर लेप करनेसे सुखपूर्वक प्रसव होता है २३०

सितया चर्वणं कृत्वा कोकिलाक्षस्य मूलकम् । तत्कर्णपूरणेनाशु सुखं नारी प्रसूयते ॥ २३१ ॥

तालमखानेकी जडको मिश्रीके साथ चाबकर उसका रस कानमें डालनेसे स्त्री सुखपूर्वक प्रसव करती है ॥ २३१ ॥

श्यामासुदर्शनाभ्यान्तु लताभ्यां परिकल्पितम् । क्षिपेत्कुडवकं मूर्ध्नि यावत्पादतलं व्रजेत ॥ उद्धृतगात्रपीडायाः सुखप्रसवकारकम् ॥ २३२॥

काली निसोत और सुदर्शनलताको एक कुडव परिमाण लेकर पीसकरके शिरपर धारण करे।जबतक कि, वह पांवोंतक टपककर आवे तबतक धारण करे रहे। इससे प्रसवकी पीडा शांत होती है और सुखपूर्वक प्रसव होता है ॥ २३२ ॥

अपामार्गशिखां योनिमध्ये निक्षिप्य धार्य्यते । सुखं प्रसूयते नारी भेषजस्यास्य योगतः ॥ २३३ ॥

चिरचिटेकी जडको उखाड कर योनिमें धारण करनेसे सुखपूर्वक प्रसव होता है ॥ २३३ ॥

पाठामूलं तु तद्वत्स्यादाटरूषकमूलकम् । लेपनाद्धारणाद्वापि सुखप्रसवकारकम् ॥ २३४ ॥

पाढकी जडको अथवा अडूसेकी जडको पीसकर योनिपर लेप करने अथवा योनिमें धारण करनेसे स्त्रीके सुखपूर्वक प्रसव होता है ॥ २३४ ॥

मूलञ्च शालिपर्ण्यास्तु पिष्टं वा तंडुलाम्बुना । नाभिवस्तिभगालेपात्सुखं नारी प्रसूयते ॥ २३५ ॥

शालिपर्णीकी जडको चावलोंके जलमें पीसकर नाभि, वस्ति और भगके ऊपर लेप करनेसे सुखपूर्वक स्त्री प्रसवती होती है ॥ २३५ ॥

सितपिकलोचनवर्णं चर्वणपूर्वश्च कर्णपूरणतः । अपि विषमगर्भपीडितवनिता सुखं सूतिमभितनुते ॥ २३६ ॥

सफेद कोकिलाक्ष (तालमखाना) की जडको चाबकर कानमें डालनेसे विषमगर्भकी पीड़ा दूर होकर सुखपूर्वक प्रसव होता है ॥ २३६ ॥

पिष्ट्वा पाठापत्रं नारीक्षीरेण या पिबेद्बला । सा गर्भमूढजनितव्यथया प्रविमुच्यते झटिति ॥ २३७ ॥

पाढके पत्तोंको स्त्रीके दूधमें पीसकर पान करनेसे मूढगर्भकी व्यथासे स्त्री शीघ्र ही निवृत्त होजाती है ॥ २३८ ॥

मातुलुङ्गस्य मूलानि मधुकं मधुसंयुतम् । घृतेन सह पातव्यं सुखं नारी प्रसूयते ॥ २३८ ॥

बिजौरेकी जड और मुलैठीको एकत्र पीसकर शहद और घीमें मिलाकर सेवन करानेसे सुखपूर्वक प्रसव होता है ॥ २३८ ॥

इक्षोरुत्तरदिङ्मूलं स्त्रीप्रमाणेन तन्तुना । बध्वा कट्यांश्च नियतं सुखं नारी प्रसूयते ॥ २३९ ॥

उत्तर दिशामें उत्पन्न हुई ईखकी जडको उखाडकर स्त्रीके बराबर डोरेमें बाँधकर कमरमें धारण करनेसे सुखपूर्वक प्रसव होता है ॥ २३९ ॥

तालस्य चोत्तरं मूलं स्त्रीप्रमाणेन तन्तुना । बद्ध्वा कट्यांश्च नियतं सुखं नारी प्रसूयते ॥ २४० ॥

उत्तरदिशामें उत्पन्न हुए ताडके वृक्षकी जडको स्त्रीके बराबर लम्बे डोरेसे कमरमें बाँधनेसे स्त्रीके सुखपूर्वक प्रसव होता है ॥ २४० ॥

पञ्चाङ्गं हास्तिशौण्डं लोध्रपत्राभ्यां विमिश्रितं कृत्वा । सर्पिषि विपाच्य पिष्टं भक्षितमात्रेण सूतिवनितायाः॥ गङ्गाप्रवाहतुल्यं रक्तं वै स्वास्थ्यमति कुरुते ॥ २४१ ॥

हस्तिशुंडीबूटीका पंचांग और लोधके पत्ते इनका कल्क बनाकर इस कल्कके द्वारा घृतको पकावे। इस घृतको सेवन करनेसे गंगाके प्रवाहके समान वेगवाला स्त्रियोंका बहताहुआ रुधिर भी रुकजाता है और अतीव स्वास्थ्य उत्पन्न होता है ॥ २४१ ॥

वेगाघाताद्वायुर्योनिं संधार्य्य वेदनां कुरुते । तत्र विधेयः कल्कः शतपुष्पायाः सलिलेन लेपेन ॥ २४२ ॥

वेगके अभिघातसे वायु योनिमें स्थित होकर पीड़ा करता है उससमय सौंफ या सोयेके कल्कको जलमें पीसकर योनिमें लेप करे ॥ २४२ ॥

करङ्कीभूतगोमूर्द्धसूतिकाभवनोपरि। स्थापितस्तत्क्षणान्नार्य्याः सुखं प्रसवकारकः॥ २४३ ॥

गायके मस्तककी हड्डीको प्रसूताके घरके ऊपर रखनेसे स्त्री तत्काल सुखपूर्वक प्रसव होती है २४३

गोशिरः करंकीभूतमस्थिमात्रमेव स्थितम्।

केवल हड्डीमात्र अवशिष्ट मृतगायके शिरको करंक कहते हैं ॥

कटुतुम्ब्यहिनिर्मोककृतवेधनसर्षपैः। कटुतैलान्वितैर्योनेर्धूमः पातयतेऽपराम् ॥ २४४ ॥

कड़वीतोम्बी, सांपकी कैंचली, कड़वी तोरइ और सरसों इनको कड़वे तेलमें मिलाकर इनकी धूनी योनिमें देनेसे अपरा अर्थात् जेर गिरजातीहै॥२४४॥

भूर्जगुग्गुलुधूपेन श्रोण्याश्चास्याः प्रधूपनम्। अपरापातनं शस्तं सद्यः शूलनिवारणम् ॥ २४५ ॥

भोजपत्र और गूगलकी प्रसूता स्त्रीकी कमरको धूनी देनेसे जेर गिरजाती है और तत्काल पीडा नष्ट होजाती है ॥ २४५ ॥

कचवेष्टितयांगुल्या घृष्टे कण्ठे मुखं पतत्यपरा। मूलेन लाङ्गलक्याः संलिप्ते पाणिपादे वा ॥ २४६ ॥

बालोंको अंगुलीमें बाँधकर उससे कण्ठ या मुखको घिसनेसे जेर सहजमें गिरजाती है। अथवा कलिहारीकी जड़को पीसकर हाथ पावोंमें लेप करनेसे जेर गिरजाती है ॥ २४६ ॥

कुष्ठं सशालिमूलञ्च सगोमूत्रञ्च पाययेत्। अपरा पतिता क्षिप्रं छिन्नं पक्षं बकं यथा ॥ २४७ ॥

कूठ, शालिधानकी जड़ और गोमूत्र इनको एकत्र मिलाकर पान करानेसे जेर आदि इस प्रकार शीघ्र गिरजाते हैं, जैसे बगलेके पंख शीघ्र गिरजाते हैं ॥ ॥ २४७ ॥

हिंगुपिप्पलिपाटल्यो भार्ङ्गीमेदामहौषधम्। रास्नामतिविषाचव्यमेभिर्दोषः प्रसिध्यति। योनिश्च मृद्वी भवति योनिशूलञ्च शाम्यति ॥ २४८ ॥

हींग, पीपल, दोनों प्रकारकी पाढल, भारंगी, मेदा, सोंठ, रायसन, अतीस और चव्य इन सब औषधियोंको एकत्र मिलाकर सेवन करनेसे सम्पूर्ण योनिगतदोष दूर होते हैं। योनि मृदु होती है और योनिशूल शान्त होता है ॥ २४८ ॥

बिल्वमार्कवजं मूलं कल्कं मद्येन पाययेत्। तेन योनिगतं शूलमाशु शाम्यति योषिताम् ॥ २४९ ॥

बेल और भाँगरेकी जडका कल्क बनाकर मदिराके साथ पान करानेसे स्त्रियोंका योनिगतशूल तत्काल शान्त होजाता है ॥ २४९ ॥

शालिमूलाक्षमात्रन्तु मूत्रेणाम्लेन वा युतम्। उपकुञ्चिकां पिप्पलीं च मदिरां लाभतः पिबेत् ॥ सौवर्चलेन संयुक्तं योनिशूलनिवारणम् ॥ २५० ॥

शालिधानोंकी जडको एक तोला परिमाण लेकर गोमूत्रके साथ अथवा काँजीके साथ सेवन करनेसे अथवा इलायची और पीपलको पीसकर मदिराके साथ कालानमक डालकर पान करनेसे योनिशूल नष्ट होता है ॥ २५० ॥

अथापतन्तीमपरां पातयेत्पूर्ववद्भिषक्। हस्तेनापहरेद्वापि पार्श्वाभ्यां परिपीड्य वा ॥ २५१ ॥ धुनुयाद्वा मुहुर्नारीं पीडयेद्वा सपिण्डिकाम्। तैलाक्तयोनेरेवं तां पातयेन्मतिमान्भिषक् ॥ २५२ ॥ प्रसूतिकुशला योषिद्विधिमेनं करोति सा। एवं निर्हृतशल्यां तां सिञ्चेदुष्णेन वारिणा ॥ २५३ ॥ ततोऽभ्यक्तशरीराया यो-

नौ स्नेहं निधापयेत । एवं मृद्वी भवेद्योनिस्तच्छूलं चोपशाम्यति ॥ २५४॥

जो जरायु (जेर) नहीं गिरे तो उसको वैद्य पूर्वोक्तविधियोंसे पतित करे अथवा प्रसूत स्त्रीके दोनों पार्श्व प्रदेशों (पसली) को दबाकर योनिमें हाथ डालकर निकाल लेवे । अथवा किंचित् समयके लिये उसको कम्पित कर और उसकी पिंडलिओंको पीडित करके योनिमें तेल लगाकर निकाल देवे । यह कर्म्म प्रसूतकर्म्ममें कुशल जनयित्री (दाई)को करना चाहिए इसप्रकार उसको शल्यरहित करके पश्चात् प्रसूता-स्त्रीके शरीरको गरमजलसे सींचे और मालिश करे फिर उसकी योनिमें तेल लगाकर उस स्त्रीको विश्राम करावे। इस प्रकार करनेसे योनि मृदु होती होती है और योनिशूल शांत होता है ॥ २५१-२५४ ॥

अथ मक्कल्लशूलका निदान ।

वायुः प्रकुपितः कुर्य्यात्संरुध्य रुधिरं सुतम् । सूताया हृच्छिरोबस्तिशूलमक्कल्लसंज्ञितम् ॥ २५५ ॥

प्रसवके समय प्रसूतास्त्रीके योनिमें पवनके लगनेसे वायु कुपित होकर गिरतेहुए रुधिरको रोक देता है इससे उसके हृदय, शिर और बस्तिस्थानमें जो शूल होता है, उसको मक्कल शूल कहते हैं ॥२५५॥

पृथिव्यां पतिते गर्भे योनौ पीडनमिष्यते । अप्रवेशो यथा वायोस्तस्य संरक्षणक्रिया ॥ हृद्बस्तिशूलमाध्मानं प्रविष्टे तत्र जायते ॥२५६॥

प्रसवके समय बालकके भूमिमें गिरते ही तत्काल योनिको दबा देवे,जिससे कि प्रसूताकी योनिमें वायुका प्रवेश न होजाय ऐसी रक्षा करे । क्योंकि, उससमय योनिमें वायुके प्रवेश होनेसे हृदय और बस्तिमें शूल तथा आध्मान इत्यादि अनेक उपद्रव होजाते हैं २५६॥

मक्कल्लशूलकी चिकित्सा ।

संचूर्णितयवक्षारं पिबेत्कोष्णेन वारिणा । सर्पिषा वा पिबेन्नारी मक्कल्लस्य निवृत्तये ॥ २५७ ॥

जवाखारके चूर्णको गरम जलके साथ पान करनेसे अथवा घीके साथ पान करनेसे मक्कलशूल शान्त होता है ॥ २५७ ॥

त्रिकटुचातुर्जातककुस्तुम्बरूचूर्णसंयुक्तम् । खादेद्गुडं पुराणं नित्यं नारी मक्कल्लशूलनाय ॥ २५८ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल,दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर और धनियाँ इन सबको एकत्र चूर्ण करके पुराने गुडमें मिलाकर नित्य सेवन करनेसे मक्कलशूल नष्ट होता है ॥ २५८ ॥

मातुलुङ्गस्य मूलन्तु मल्लिकामूलमेव च । बिल्वमुस्तमिदं लेपं शिरोरोगविनाशनम् ॥ २५९ ॥

बिजौरेनींबूकी जड, मोतियाकी जड, बेलगिरी और नागरमोथा इन सबको एकत्र पीसकर लेप करनेसे शिरोरोग नष्ट होता है ॥ २५९ ॥

त्र्यूषणं पिप्पलीमूलं दारुचव्यं सचित्रकम् । रजन्यौ हपुषाजाजीसक्षारलवणत्रयम् ॥ कल्कमुष्णांबुना पीत्वा सुखेनाशु विरिच्यते ॥ २६० ॥

सोंठ, मिरचं, पीपल, पीपलामूल, देवदारु,चव्य चीता, हलदी, दारुहलदी,हाऊबेर, जीरा,जवाखार सैंधानमक, कालानमक और कचियानमक इन सबका कल्क बनाकर गरम जलके साथ पान करनेसे सुखपूर्वक विरेचन होजाता है ॥ २६० ॥

अथ सूतिकारोगके लक्षण ।

प्रलापो वेपथुर्यस्याः सूतिका सा उदाहृता ॥ २६१ ॥ अङ्गमर्दो ज्वरः कम्पः पिपासा गुरुगात्रता । शोथः शूलातिसारौ च सूतिकारोगलक्षणम् ॥ २६२ ॥

जिसके प्रलाप (वृथा बकवाद) और कम्प हो उसको सूतिकारोग कहते हैं । तथा अंगोंका टूटना, ज्वर, कम्प, प्यास, शरीरमें भारीपन, सूजन, शूल और अतिसार ये सब सूतिकारोगके लक्षण हैं ॥ ॥ २६१ ॥ २६२ ॥

सूतिकारोगका निदान ।

मिथ्योपाचारात्संक्लेशाद्विषमाजीर्णभोजनात् । सूतिकायास्तु जायन्ते ये रोगास्ते सुदारुणाः ॥ २६३ ॥

प्रसूतास्त्रीके मिथ्या उपचार करनेसे अथवा दोषजनक आहार विहार करनेसे, या क्लेश करनेसे, विषमभोजन और अजीर्णमें भोजन करनेसे दारुण प्रसूतिरोग उत्पन्न होते हैं ॥ २६३ ॥

ज्वरातिसारशोफाश्च शूलानाहबलक्षयाः । तन्द्रारुचिप्रसेकाद्याः कफवातामयोद्भवाः ॥ २६४ ॥ कृच्छ्रसाध्या हि ते रोगाः क्षीणमांसबलाश्रिताः । ते सर्वे सूतिका नाम्ना रोगास्ते चाप्युपद्रवाः ॥ २६५ ॥

इस प्रसूतिरोगमें ज्वर, अतिसार, सूजन, शूल, अफारा, बलका नाश, तन्द्रा, अरुचि, मुखसे पानीका गिरना, कफ और वातसे उत्पन्न होनेवाले रोग इत्यादि अनेक रोग होते हैं ये सब रोग मांस और बलकी क्षीणतासे होते हैं । ये सब सूतिकानामसे प्रसिद्ध हैं । इनमें एक कोई रोग होता है और बाकीके उपद्रवरूप होते हैं। ये सब कष्ट साध्य हैं ॥ २६४ ॥ २६५ ॥

अथ सूतिकारोगकी चिकित्सा ।

दशमूलकृतं तोयं कोष्णञ्च हविषान्वितम् । पथ्याशिन्या द्रुतं नार्य्या पीतं सूतीरुजं जयेत् ॥ २६६ ॥

दशमूलके काथको मन्दोष्ण करके उसमें घी डाल कर पीवे और पथ्यसे रहे तो शीघ्र ही प्रसूता स्त्री प्रसूति रोगसे मुक्त होजाती है ॥ २६६ ॥

कृत्वोपवासमबला सुतजन्मघस्त्रे, प्रातर्निपीय कृमिशत्रुभवं हि मूलम् । वासाम्भसा किमथवा हविषापि पीत्वा, सूती जयेत्षडिति रोगसमूहमुग्रम् ॥ २६७ ॥

प्रसवके दिन स्त्री उपवास करके प्रातःकाल वायविडंगकी जडको अडूसेके जलके साथ अथवा घीके साथ पान करे तो प्रसूतके घोर छओं रोगोंका समूह दूर होजाता है ॥ २६७ ॥

क्षुद्रैरण्डजटा शृङ्गी कणा शुण्ठी सुखास्पृहम् । सूतिका च प्रशान्त्यर्थं निष्काथ्य मधुना पिबेत् ॥ २६८ ॥

कटेरी, अंडकी जड, काकडाशिंगी, पीपल और सोंठ इनका मंदोष्ण काथ बनाकर शहद डालकर सुखकी इच्छा करनेवाले पान करें इससे समस्त सूतिकारोग नष्ट होते हैं ॥ २६८ ॥

निम्बवल्कलकल्कस्तु सर्पिषा काञ्जिकेन तु । पीतः प्रशान्तयेन्नूनमचिरात्सूतिकागदम् ॥ २६९ ॥

नीमकी छालका कल्क बनाकर घी और काँजीके साथ पान करनेसे सूतिकारोग शीघ्र नष्ट होता है २६९

पञ्चमूलकषायन्तु सूतिकां लवणान्वितम् । सुखोष्णं पाययेत्पूतं सूतिकारोगनाशनम् ॥ २७० ॥

पंचमूलका काथ बनाकर उसमें सैंधानमक डालकर प्रसूताको सुहाता सुहाता पान करानेसे सूतिकारोग नष्ट होता है ॥ २७० ॥

सूतिकारोगशान्त्यर्थं कार्थैर्वातहरा क्रिया । स्वेदोपनाहनाभ्यङ्गैः सावगाहैः प्रशस्यते ॥ २७१ ॥

सूतिकारोगको शांत करनेके लिये वातनाशक काथोंके द्वारा समस्त वातनाशक क्रिया करे । तथा वातनाशक स्वेद, उपनाह, अभ्यंग और अवगाह इनका प्रयोग करे ॥ २७१ ॥

पञ्चमूलस्य वा काथं तप्तलोहेन सङ्गतम् । सूतिकारोगनाशाय पिबेद्वातहरां सुराम् ॥ २७२ ॥

अथवा सूतिकारोगको विनाश करनेके लिए पंचमूलके काथमें संतप्त लोहेको बुझाकर पान करे। अथवा वातनाशक मदिरा पान करे ॥ २७२ ॥

सुतप्तलोहमाकृष्य वारुण्यान्तु निधापयेत् । सूतिकोपद्रवान्सर्वान्हन्ति पीत्वा न संशयः ॥ २७३ ॥

संतप्त लोहेको लेकर वारुणी नामक मदिरामें बुझा देवे । उस मदिराको पान करनेसे सूतिकारोग और उसके सब उपद्रव निःसन्देह नष्ट होते हैं ॥ २७३ ॥

वह्नौ तप्तेन लोहेन मुद्गयूषं सुवापितम् । पीत्वैवं सूतिका नारी सर्वव्याधीन्व्यपोहति ॥ २७४ ॥

मूँगके यूषमें सन्तप्त लोहेको बुझाकर पान करनेसे समस्त सूतिकारोग नष्ट होते है ॥ २७४ ॥

अमृतानागरसहचरभद्रोत्कटपञ्चमूलजलदजलम् । शीतं पीतं मधुना सह शमयति सूतिकान्तकम् ॥ २७५ ॥

गिलोय, सोंठ, पियावाँसा, गंधप्रसारणी, पंचमूल, नागरमोथा और सुगन्धवाला इनका क्काथ बनाकर शीतल करके शहदके साथ पान करनेसे सूतिकारोग नष्ट होता है ॥ २७५ ॥

सहचरकुलित्थपुष्करवैकंकतदारुवेतसः क्काथः । पीतः सहिंगुलवणः शमयति शूलज्वरौ सूत्याः ॥ २७६ ॥

पियावाँसा, कुलथी, पोहकरमूल, विकंकत (कंटाई), देवदारु और वेंत इनका क्काथ बनाकर हींग और सैंधानमक डालकर पान करनेसे सूतिका स्त्रीका शूल और ज्वर नष्ट होता है ॥ २७६ ॥

सहचरमुस्तगुडूचीभद्रोत्कटविश्ववालकैः क्कथितम् । पेयमिदं मधुमिश्रं सद्यो ज्वरशूलनुत्सूत्याः ॥ २७७ ॥

पियावाँसा, नागरमोथा, गिलोय, गंधप्रसारिणी, सोंठ और सुगन्धवाला इन सबका क्काथ बनाकर शहद डालकर पान करनेसे तत्काल प्रसूतास्त्रियोंका ज्वर और शूल नष्ट होता है ॥ २७७ ॥

देवदारुवचाकुष्ठं पिप्पलीविश्वभेषजम् । कट्फलं मुस्तभूनिम्बतिक्ताधान्यहरीतकी ॥ २७८ ॥ गजकृष्णा च दुस्पर्शा गोक्षुरं धन्वयासकम् । बृहत्यातिविषाछिन्नाः कर्कटं कृष्णजीरकम् ॥ २७९ ॥ समभागान्वितैरेतैः सिन्धुरामठसंयुतम् । क्काथमष्टावशेषन्तु प्रसूतां पाययेत्स्त्रियम् ॥ ॥ २८० ॥ शूलकासज्वरश्वासमूर्च्छाकम्पशिरोऽर्तिनुत । युक्तं प्रलापतृड्दाहतन्द्रातीसारवान्तिभिः ॥ निहन्ति सूतिकारोगं वातपित्तकफोत्थितम् ॥ २८१ ॥

देवदारु, बच, कूठ, पीपल, सोंठ, कायफल, नागरमोथा, चिरायता, कुटकी, धनियाँ, हरड, गजपीपल, कटेरी, गोखुरू, धमासा, बडी कटेरी, अतीस, गिलोय, काकडाशिंगी और काला जीरा इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर इनका अष्टावशेष क्काथ बनाकर हींग और सैंधानमक डालकर प्रसता स्त्रीको पान करानेसे शूल, खाँसी, ज्वर, श्वास, मूर्च्छा, कम्प, शिरकी पीडा, प्रलाप, तृषा, दाह, तन्द्रा, अतीसार, वमन और वात, पित्त तथा कफसे उत्पन्न हुए समस्त प्रसूतके रोग नष्ट होजाते हैं ॥ २७८ ॥ २७९ ॥ २८० ॥ २८१ ॥

सिद्धं द्विपञ्चमूलाभ्यां पयः शर्करया युतम् । सूतिकोपद्रवान्हन्ति पीतमात्रं न संशयः ॥ २८२ ॥

दशमूलकी औषधियोंके साथ दूधको पकाकर उसमें मिश्री डालकर पान करनेसे प्रसूतके समस्त उपद्रव निःसन्देह शांत होते हैं ॥ २८२ ॥

कृष्णातन्मूलशुण्ठयेलाहिंगुभार्ङ्गीसदीप्यकम् । वचामतिविषां रास्नां चव्यं संचूर्ण्य पाययेत् ॥ २८३ ॥ स्नेहेन दोषशान्त्यर्थं वेदनोपशमाय च । क्काथश्चैषां तथा कल्कं चूर्णं वा स्नेहभर्जितम् ॥ २८४ ॥

दोषोंको शान्त करने और वेदनाको शमन करनेके लिये पीपल, पीपलामूल, सोंठ, इलायची, हींग, भारंगी, अजमोद, वच, अतीस, रास्ना और चव्य इन सबका चूर्ण बनाकर घृतके साथ पान करावे । अथवा उपर्युक्त औषधियोंका क्काथ एवं कल्क या चूर्ण बनाकर घीमें भूनकर सेवन करावे २८३॥ ॥२८४

शाकत्वग्हिग्वतिविषापाठाकटुकरोहिणी । तथा तेजोवती चापि पाययेत्पूर्ववद्भिषक् ॥ २८५ ॥

सागोनकी छाल, हींग, अतीस, पाढ, कुटकी और तेजबल इन औषधियोंका भी पूर्ववत् चूर्ण, कल्क अथवा क्काथ बनाकर वैद्य प्रसूता स्त्रीको सेवन करावे ॥ २८५ ॥

१-यह देवदार्वादि क्काथ अवश्य ही इन समस्त गुणोंको करता है । आयुको बढाता है इसमें सन्देह नहीं, बीसियों वारका परीक्षा किया हुआ है ।

दशाहं भोजने देयं क्षीरं वातहरैः शृतम्। रसेनान्नं दशाहश्च शिरीषो धावने हितः॥ २८६॥

प्रसूतास्त्रीको दशदिनतक भोजनके लिए वातनाशक औषधियोंके द्वारा दूधको पकाकर पान करावे। तथा दशदिनतक मांसरसके साथ भात देवे। और इसमें शिरसकी लकडीके द्वारा दतौन करना लाभदायक है॥ २८६॥

प्राजापत्येन विधिना जातकर्म्मादि कारयेत्। पञ्चमेऽह्नि तृतीये वा स्त्रीणां स्तन्यं प्रवर्त्तते॥ २८७॥ प्रथमे दिवसे तस्मात्रिकालं मधुसर्पिषी। अनन्तामिश्रिते मन्त्रैः पाययेत्प्रेरिते शिशुम्॥ २८८॥

प्राजापत्यविधिसे सम्पूर्ण जातकर्म्मादिक करे। पाँचवें अथवा तीसरे दिन स्त्रीके स्तनमें दूध प्रकट होता है। इसकारण पहिले दिन तीनों समय शहद घी और अनन्तमूलके चूर्णको एकत्र मिलाकर उससे स्त्रीके स्तनोंको निम्न लिखित मंत्रोंसे अभिमंत्रित करके बालकको दूध पिलावे॥ २८७॥ २८९॥

चत्वारः सागराः पुण्याः स्तनयोः क्षीरवाहिनः। भवन्तु सुभगे नित्यं बालस्यायुर्बलप्रदाः॥ २८९॥ पिबन्बालोऽमृतसमं पयस्तव शुभानने। दीर्घमायुरवाप्नोति देवाः प्राश्याऽमृतं यथा॥ २९०॥

"चत्वारः सागराः.........प्राश्याऽमृतं यथा" यह मंत्र है॥ २८९॥ २९०॥

षष्ठीनिशाविशेषेण कृतरक्षो बलिक्रियाः। जगर्जुर्बान्धवास्तस्य दधन्तः परमां मुदम्॥ २९१॥

मुलैठी और हलदीके द्वारा राक्षसोंको बलिदान देवे और उसके बान्धवजन गर्जनपूर्वक मंत्र पढकर हर्षसहित मंगलकार्य्य करें॥ २९१॥

दशमे दिवसे पूर्णे विधिभिः कुशलोचितैः। कारयेत्सूतिकोत्थानं नाम बालस्य चार्चितम्॥ २९२॥

दशदिनके पूर्ण होनेपर कार्य्यकरनेमें कुशल वैद्य विधिपूर्वक सूतिकोत्थान करावे तथा बालकका नामकरण संस्कार प्रभृति कार्य्य भी करावे॥ २९२॥

तुम्बीपत्रं तथा लोध्रं समभागानि कारयेत्। दद्याल्लेपं भगस्येदं प्रसूताप्यक्षता भवेत्॥ २९३॥

कडवी तोम्बीके पत्ते और लोध इन दोनों औषधियोंको समान भाग लेकर एकत्र पीसकरके स्त्रीकी योनिपर लेप करावे तो प्रसूता स्त्री भी अक्षत (व्रणरहित) योनि हो जाती है॥ २९३॥

वेतसस्य सुमूलानि क्राथयेन्मृदुवह्निना। भगः प्रक्षालितस्तेन गाढत्वमुपगच्छति॥ २९४॥

वेंतकी जड़का मंद मंद अग्निके द्वारा क्वाथ बनाकर उससे योनिको धानेसे योनि गाढ़ी (दृढ़) होजाती है॥ २९४॥

मूषिकाणां वसायाश्च वल्गुनीनां तथैव च॥ योनिषु म्रक्षणं श्रेष्ठं कन्याकरणमुत्तमम्॥ २९५॥

चूहेकी चर्वी अथवा वल्गुनीकी चर्वीको योनिपर मर्दन करनेसे योनि कन्याके समान होजाती है २९५

पलाशोदुम्बरफलं तिलतैलसमन्वितम्। मधुना योनिमालिप्य गाढीकरणमुत्तमम्॥ २९६॥

ढाक और गूलरके फलोंको तिलके तेलमें मिलाकर शहदके साथ योनिके ऊपर लेप करनेसे योनि गाढी होजाती है॥ २९६॥

प्रसूतवनितावृद्धिकुक्षिह्रासाय संपिबेत्। प्रातर्मथितसंमिश्रं त्रिसप्ताहं कणायुगम्॥ २९७॥

प्रसूतास्त्रीकी कुक्षि बढ़जाती है, इसकारण उसको कम करनेके लिये प्रातःकाल तीन सप्ताह पर्य्यंत पीपल और पीपलामूलके चूर्णको मथित नामक तक्रके साथ पान करे तो कुक्षि दबजाती है॥ २९७॥

सूतायाः कुम्भमुदरं पीतं तक्रेण मालतीमूलम्। घृतमधुलीढा सहसा करोति धात्रीसमं निशा चैव॥ २९८॥

मालतीकी जडको तक्रके साथ पीसकर घृत और शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे अथवा आमले और हलदीको समान भाग लेकर एकत्र पीसकर सेवन करनेसे प्रसूती स्त्रीका वडेकी समान बढा हुआ उदर छोटा होजाता है ॥ २९८ ॥

प्रतापलंकेश्वररस ।

एकेन्दुचन्द्रानलबाणकुम्भीकलैकभागं क्रमशो विमिश्रम् । धृताभ्रगन्धोषणलोहशङ्खवनोत्पलाभस्मविषं सुपिष्टम् ॥ २९९ ॥ प्रसूतचापानलदन्तबन्धान्पुराऽमृताब्दत्रिफलायुतोऽयम् ॥ आर्द्राम्बुना वा किल सन्निपातान्गुदांकुरान्वल्लमितो निहन्ति ॥ ३०० ॥ निजानुपानैर्निजपथ्यभुक्तान्सर्वातिसारग्रहणीगदांश्च । प्रतापलंकेश्वरनामधेयः सूतश्च प्रोक्तो गिरिराजपुत्र्या ॥ ३०१ ॥

शुद्धपारा १ भाग, अभ्रक १ भाग, शुद्ध गन्धक १ भाग, कालीमिरच ३ भाग, लोह ५ भाग, शंख ८ भाग, आरनेउपलोंकी राख १६ भाग और शुद्ध मीठा तेलिया १ भाग लेकर सबको एकत्र पीस लेवे यह रस दो २ रत्ती प्रणाम लेकर गूगल, गिलोय नागरमोथा और त्रिफलेके साथ मिलाकर सेवन करनेसे प्रसूतरोग, धनुर्वात और दंतवेष्टरोगोंको नष्ट करता है। तथा अदरखके रसके साथ सेवन करनेसे सन्निपातजन्य अर्शरोगके अंकुरोंको नाश करता है। यह अनेकप्रकारके अनुपानोंके साथ अथवा यथोक्त प्रकारसे पथ्य पदार्थोंको सेवन करनेवाले मनुष्योंके सर्व प्रकारके अतिसार और संग्रहणीरोगको दूर करता है । इस प्रतापलंकेश्वर नामक रसको पार्वतीने कहा है ॥ २९९-३०१ ॥

शुण्ठ्याग्निमूलं निर्गुण्डीमेषशृङ्गी प्रसारिणी । स्वरसः परिमृष्टः स्याद्धिङ्गुजीरकसंस्कृतः ॥ ३०२ ॥ कटुतैलेन या नारी नक्तं भुञ्जीत वा पिबेत् । निहन्ति सूतिकारोगान्बलमग्नेर्लभेत सा ॥ ३०३ ॥

सोंठ और चीतेकी जडको निर्गुण्डी, मेढाशिंगी और प्रसारिणी इनके स्वरसमें भूनकर हींग और जीरेका बघार देकर कडवे तेलके साथ रात्रिमें जो स्त्री खाय अथवा पान करे तो उसके सूतिकारोग नष्ट होते हैं और अग्निके बलकी वृद्धि होती है॥ ३०२ ॥

यवादियूष ।

यवकोलकुलित्थांश्च मुद्गमाषसमन्वितान् । द्विपञ्चमूलसहितान्क्वाथयेत्सलिलाढके ॥ ३०४ ॥ तत्क्वाथे तक्रसंयुक्ते यूषं कृत्वा सजीरकम् । घृतं घृताक्षमात्रेण सैन्धवेन च योजितम् ॥ ३०५ ॥ एष यूषः प्रदातव्यश्चतुर्भागावशेषितः । एतेनैव समश्नीयात्पुराणाञ्छालिषष्टिकान् ॥ ३०६ ॥ वातशूलं सविष्टम्भं हन्ति मक्कल्लसंज्ञितम् । सूतिकारोगशमनो यूषोऽयं परिकीर्त्तितः ॥ ३०७ ॥

जौ, बेर, कुलथी, मूँग, उडद, और दशमूलकी औषधियां इन सबको समान भाग लेकर एक आढक परिमाण जलमें पकावे और चतुर्भागावशिष्ट जलके रहनेपर उतार कर छान लेवे फिर उस क्वाथमें तक्र डालकर जीरा, घी और सैंधे नमकके द्वारा बघार देकर यूष बनावे । जब यह पकते पकते चौथाई भाग शेष रहजाय तब उतारकर सेवन करे । इसके साथ पुराने शालिचावल और साठीचावलोंका भोजन करे । यह यूष-शूल, वातशूल, विष्टम्भ, मक्कलशूल और सूतिकारोगको शमन करता है ३०४-३०७ ॥

द्वितीय यवादियूष ।

यवकोलकुलित्थानां शालिमूलं तथैव च । शस्तोऽयं सूतिकातंके यूषः सर्वज्वरापहः ॥ ३०८ ॥

जौ, बेर, कुलथी, शालि धानकी जड इनका यूष बनाकर सूतिकारोगमें प्रयोग करे यह यूष सबप्रकारके ज्वरको दूर करता है ॥ ३०८ ॥

पिप्पल्यादियूष ।

पिप्पलीदेवकाष्ठञ्च भद्रमुस्तकमेव च। अगुरुपिप्पलीमूलं श्लक्ष्णपिष्टञ्च का-

रयेत् ॥ ३०९॥ तक्रेण सह संयुक्तं पचेद्यूषं विचक्षणः । अयन्तु घृतसंयुक्तः पीतमात्रो न संशयः॥ ३१० ॥ वातिकं पैत्तिकञ्चैव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् । सूतिकोपद्रवं हन्ति वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ ३११ ॥

पीपल, देवदारु, नागरमोथा, अगर और पपिलामूल इन सबको एकत्र बारीक पीसकर तक्रके साथ इनका यूष बनावे। इस यूषको घृतके साथ पान करनेसे वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक और सान्निपातिक प्रसूतरोग और उसके उपद्रव इस प्रकार नष्ट होजाते हैं, जैसे इन्द्रका वज्र वृक्षोंको तत्काल नाश कर देता है ॥ ३०९ ॥ ३१० ॥ ३११ ॥

तृतीययवादियूष ।

यवकोलकुलित्थानां शालिमूलं तथैव च । क्राथयेदप्रमत्तस्तु सुपूते सलिलाढके ॥ ३१२ ॥ तत्पादावस्थितं क्राथं सर्पिर्युक्तं सजीरकम् । पक्कं घृताक्षमात्रेण सैन्धवेन समायुतम् ॥ ३१३ ॥ एतेनैव च यूषेण चाश्नीयाच्छालिषष्टिकम् । सूतिकोपद्रवं हन्ति भुक्तमात्रान्न संशयः ॥३१४॥

जौ, बेर, कुलथी और शालिधानोंकी जड इन सब औषधियोंका एक आढक जलमें क्राथ बनावे । जब पकते२जल चौथाई भाग बाकी रह जाय तब उतार कर वस्त्रमें छान लेवे । फिर इस क्राथमें घी और जीरा डालकर संस्कार करे । पश्चात् घृत और सैंधानमक डालकर इस यूषके साथ शालिचावल और सांठीके चावलोंको भोजन करे । इसको सेवन करनेसे सूतिकाके समस्त उपद्रव शमन होते हैं ॥ ३१२ ॥ ॥ ३१३ ॥ ३१४ ॥

पिप्पल्यादिक्काथ ।

पिप्पलीदेवकाष्ठञ्च आर्द्रकं गजपिप्पली । चित्रकं सैन्धवञ्चैव पिप्पलीमूलमेव च ॥ ३१५ ॥सुखोष्णं योजयेदेतत्सूतिकारोगशान्तये। वातिकान्पैत्तिकांश्चैव श्लैष्मिकान्सान्निपातिकान् ॥ सूतिकोपद्रवान्हन्ति पतिं ह्येतन्न संशयः ॥ ३१६ ॥

प्रसूताके सम्पूर्ण रोगोंको शमन करनेके लिये पीपल, देवदारु, अदरख, गजपीपल, चीता, सैंधानमक और पीपलामूल इन सबका क्राथ बनाकर सुहाता २ पान करावे । यह क्राथ पान करते ही वातजनित, पित्तजनित, कफजन्य और सन्निपातजनित सर्वप्रकारके सूतिकाके उपद्रवोंका नाश करता है ॥ ३१५ ॥ ३१६ ॥

पिप्पल्याद्यघृत ।

पिप्पली पिप्पलीमूलं चित्रको हस्तिपिप्पली । चव्यश्च रजनी देवा भद्रमुस्तवचाभयाः ॥ ३१७ ॥ धान्याकमजमोदा च सपञ्चलवणानि च । भद्रदारुयवानी च भार्ङ्गीकुटजतण्डुलाः ॥ ३१८ ॥ कण्टकार्य्याश्च मूलं वै बृहती बिल्वपेशिका । मरिचानि विडङ्गानि कल्कैरेतैश्च पादिकैः॥ ॥ ३१९ ॥ यवकोलकुलित्थानां निर्यूहे च चतुर्गुणे । दधिप्रस्थं पयःप्रस्थं दत्त्वा प्रस्थं घृतं पचेत् ॥ ३२० ॥ वातिकान्पैत्तिकांश्चैव श्लैष्मिकान्सान्निपातिकान् । सूतिकोपद्रवान्सर्वानभ्यङ्गादेव नाशयेत् ॥ ३२१ ॥

पीपल, पीपलामूल, चीता, गजपीपल, चव्य, हलदी, नागरमोथा, वच, हरड, धनियाँ, अजमोद, पांचोंनमक देवदारु, अजवायन, भारंगी, इन्द्रजौ, कटेरीकी जड, बेलगिरी, कालीमिरच और वायविडंग इन सबके एक एक भाग कल्कके साथ जौ बेर और कुलथीके चौगुने क्राथमें एक प्रस्थ दही, एक प्रस्थ दूध और एक प्रस्थ घृत डालकर उत्तमविधिसे घृतको पकावे । यह घृत मालिश करनेसे वातजन्य, पित्तजन्य, कफजन्य, और सन्निपातजन्य सर्व प्रकारके सूतिकाके उपद्रवोंको शान्त करता है ॥ ३१७–३२१ ॥

भद्रोत्कटाद्यघृत ।

समूलपत्रशाखं तु शतं भद्रोत्कटस्य च। वारिद्रोणेन साध्यं स्यात्स्थाप्यं पादावशेषितम् ॥ ३२२ ॥ घृतप्रस्थं विपक्तव्यं गर्भं दत्त्वा च कार्षिकम्। सव्योषं पिप्पलीमूलं चित्रको जीरकं तथा ॥ ३२३ ॥ पञ्चमूलं कनिष्ठन्तु रास्नैरण्डसमायुतम्। बलासिन्धुयवक्षारं स्वर्जिकाकृष्णजीरकम्३२४॥ सिद्धमेतद्धृतं सद्यो निहन्यात्सूतिकागदान्। ग्रहणीं पांडुरोगञ्च अर्शांसि जठरं तथा ॥ अग्निञ्च कुरुते दीप्तिं स्त्रीणां स्तन्यस्य शोधनम् ३२५

मूल, पत्र और शाखासहित प्रसारणीको १०० पल लेकर एक द्रोण जलमें पकावे । जब पकते २ जल चौथाई भाग बाकी रह जाय तब उतार कर छान लेव फिर इस काथमें त्रिकुटा, पीपलामूल, चीता, जीरा, लघुपंचमूल, रायसन, अण्डकी जड़, खिरैंटी, सैंधानमक, जवाखार, सज्जी और काला जीरा इन प्रत्येक औषधिका कल्क एक एक तोला डालकर उसके साथ एक प्रस्थ घृतको विधिपूर्वक पकावे । इस प्रकार सिद्ध किया हुआ यह घृत सेवन करनेसे समस्त प्रसूतरोग, एवं संग्रहणी, पांडु रोग, बवासीर और उदररोग इन सबको दूर करता है तथा अग्निको दीपन करता है और स्त्रियोंके दूधको शुद्ध करता है ॥३२२-३२५॥

पञ्चजीरकगुड ।

जीरकं हपुषा धान्यं शताह्वा बदराणि च। यवानीमेथिकाहिंगुपत्रिका कासमर्दकम् ॥३२६॥ पिप्पली पिप्पलीमूलमजमोदाथ बाष्पिका। चित्रकश्च पलांशानि तथा धान्यश्चतुष्पलम् ॥ ३२७ ॥ कशेरुकं नागरञ्च यष्टीदीप्यकमेव च। गुडस्य च शतं दद्याद् घृतप्रस्थं तथैव च ॥ ३२८ ॥ क्षीरद्विप्रस्थसंयुक्तं शनैर्मृद्वग्निना पचेत्। पञ्चजीरकमित्येतत्सूतिकानां प्रशस्यते ॥ ३२९ ॥ गर्भार्थिनीनां नारीणां बृंहणीयं समारुते। विंशतिं व्यापदो योनेः श्वासं कासं स्वरक्षयम् ॥ ३३० ॥ हलीमकं पांडुरोगं दौर्बल्यं मूत्रकृच्छ्रताम्। हान्ति पीतोन्नतकुचाः पद्मपत्रायतेक्षणाः ॥ उपयोगात्स्त्रियो नित्यमलक्ष्मीमलवर्जिताः ॥ ३३१ ॥

जीरा, हाऊबेर, धनियाँ, शतावर, बेर, अजवायन, मेथी, हिंगुपत्री, कसौंदी, पीपल, पीपलामूल, अजमोद, हींग, और चीता ये प्रत्येक औषधि चार ४ तोले और धनियां १६ तोले, एवं कशेरु, सोंठ, मुलैठी और अजमोद ये प्रत्येक चार २ पल लेकर सबका एकत्र चूर्ण करके फिर १०० पल गुड, एक प्रस्थ घृत और दो प्रस्थ दूध इन सबको लेकर एकत्र करके धीरे २ मन्द २ अग्निसे पकावे । पहले गुड, घृत और दूधको पकावे । जब घन होनेपर आवे तब दवाइयोंके चूर्णको डाले । इसको पंचजीरकगुड कहते हैं । यह पंचजीरकगुड प्रसूतास्त्रियोंको अत्यन्त हितकारी है। यह पंचजीरक गुड़ गर्भकी इच्छा करनेवाली स्त्रियोंको अत्यंत पुष्टिकारक है और वात शमन करता है । तथा बीसप्रकारके योनिरोग, श्वास, खांसी, स्वरभंग, हलीमक, पाण्डुरोग, दुर्बलता और मूत्रकृच्छ्रता इन सब रोगोंको नष्ट करता है । इसको नित्य व्यवहार करनेसे अलक्ष्मी और मलसे रहित होकर स्त्रियें उन्नतस्तनों वाली और कमलके समान नेत्रोंवाली होजाती हैं ॥ ३२६-३३१ ॥

अथ स्तनरोगका निदान ।

सक्षीरौ वाप्यदुग्धौ वा प्राप्य दोषः स्तनौ स्त्रियाः। प्रदूष्य मांसं रुधिरं स्तनरोगाय कल्पते ॥ ३३२ ॥

प्रसूता स्त्रीके वातादि दोष, दूधसंयुक्त अथवा दूधहीन स्तनोंमें प्राप्त होकर मांस और रुधिरको दूषित करके स्तनरोगको उत्पन्न करते हैं ॥ ३३२ ॥

यत्सरक्तं तनुस्रावं रुधिरामिषगन्धकम्। शोथवृद्धिसमायुक्तं सरुजञ्च पयोधरम् ॥ ३३३ ॥

उन स्तनोंमें पतला और मांसके समान गन्धवाला रुधिर स्रवता है। तथा उनमें सूजनकी वृद्धि और पीडा होती है ॥ ३३३ ॥

पञ्चानामपि तेषां हि रक्तजं विद्रधिं विना। लक्षणानि समानानि बाह्यविद्रधिलक्षणैः॥ ३३४॥

यह स्तनरोग—वात, पित्त, कफ, सन्निपात और आगन्तुज इन भेदोंसे पांच प्रकारका है। इसके लक्षण रक्तजविद्रधिको छोड़कर बाह्यविद्रधिके समान जानने चाहिएँ ॥ ३३४ ॥

स्तनरोगकी चिकित्सा।

शोथं स्तनोत्थितमवेक्ष्य भिषग्विदध्याद्यद्विद्रधावपि हितं बहुधा विधानम्। आमे विदाहिनि तथैव गते च पाकं तस्याः स्तनौ सततमेव विनिर्दुहीतः॥ ३३५॥

स्त्रीके स्तनोंमें सूजन उत्पन्न हो तो वैद्य विद्रधि-अधिकारोक्त अनेक प्रकारकी चिकित्सा करे और यदि स्तनकी सूजन अपक्व अथवा पक्व या दाहयुक्त हो तो भी उनमेंसे दूध निकाल देवे ॥ ३३५ ॥

जलौकाभिर्हरेद्रक्तं न स्तनावुपनाहयेत्। दुःखस्तना तु या नारी सा शीघ्रं सुखिनी भवेत्॥ ३३६॥

स्तनोंकी सूजनपर जोंक लगाकर रुधिर निकलवावे किंतु स्तनशोथमें स्वेद कभी नहीं देवे। इस प्रकार करनेसे स्तनोंके दुःखसे पीडित स्त्री शीघ्र ही सुखी होती है ॥ ३३६ ॥

लेपो विशालमूलेन हन्ति पीडां स्तनोत्थिताम्। निशाकनककल्काभ्यां लेपश्चापि स्तनार्त्तिहा॥ ३३७॥

इन्द्रायणकी जड़का लेप करनेसे स्तनजनित पीड़ा शांत होजाती है। हलदी और धतूरेके पत्र पीसकर लेप करनेसे भी स्तनकी पीडा शमन होती है ॥ ३३७ ॥

लेपो निहन्ति मूलं वन्ध्याकर्कोटकीभवं शीघ्रम्। निर्वाप्य तप्तलोहं सलिले तद्वा पिबेत्तत्र॥ ३३८॥

बाँझककोडेकी जड़को पीसकर प्रलेप करनेसे स्तनोंकी पीडा शांत होती है। अथवा जलमें संतप्त लोहेको बुझाकर उस जलको पान करनेसे स्तनोंकी पीडा शांत होती है ॥ ३३८ ॥

यष्टिर्निम्बं हरिद्रा च निर्गुण्डीधातकीसमम्। चूर्णं स्तनव्रणे देयं रोपणं कुरुते भृशम्॥ ३३९॥

मुलैठी, नीम, हलदी, सम्हालू और धायके फूल इन सबका एकत्र चूर्ण करके उस चूर्णको स्तनोंके व्रणोंके उपर डालनेसे व्रण भर जाते हैं ॥ ३३९ ॥

अथ स्तन्यरोगका निदान।

गुरुविदग्धाहारैस्तु दुष्टैर्दोषैः प्रदूषितम्। क्षीरं धात्र्याः कुमारस्य नानारोगाय कल्पते॥ ३४०॥

अनेक प्रकारके भारी और विदग्धपाकी भोजन करनेसे वातादि दोषोंके दूषित होजानेके कारण धायका दूध दूषित होजाता है उस दूधको पीनेवाले बालकको अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न होजाते हैं ३४०

लवणं तनु चाम्लञ्च कटुकं फेनिलं तथा। मांसधावनसंकाशं पीतकञ्च तथैव च॥ ३४१॥ एतत्सप्तविधं क्षीरमशुद्धं जीवकोऽब्रवीत्। करोति लवणं क्षीरं बालस्य मलनिर्गमम्। तनुक्षीरं कफं कुर्य्यादम्लञ्च मुखपाकताम्॥ ३४२॥ मांसधावनसंकाशं छर्दिञ्च कुरुते शिशोः। फेनिलं श्वासकासन्तु मूत्रलं कटुपीतकम्॥ ३४३॥

वह दूषित दूध खारी, पतला, खट्टा, चरपरा, झागोंदार, मांसके धोवनके समान और पीला ऐसे सात प्रकारका दूध अशुद्ध होता है। इनमें खारी दूध बालकोंके मलकी प्रवृत्ति (दस्तोंका होना) को करता है। पतला दूध कफको करता है। खट्टादूध मुखपाकको करता है तथा मांसके धोवनके समान दूध वमनको करता है। झागोंदार दूध श्वास और खाँसीको करता है। चरपरा और पीला दूध अधिकतर मूत्रको लाता है ॥ ३४१॥३४२॥३४३॥

कषायं सलिलप्लावि स्तन्यं मारुतदूषितम्। कट्वम्ललवणं पीतराजिमत्पित्तसंयुतम्॥ ३४४॥

वातसे दूषित दूध कषैला और जलमें डालनेसे डूब जाता। है पित्तसे दूषित दूध कटु, अम्ल, लवण स्वादवाला और पीली पीली रेखाओंवाला होता है॥ ॥ ३४४ ॥

कफदुष्टं घनं तोये निमज्जति सपिच्छलम्। द्विलिङ्गं द्वन्द्वजं विद्यात्सर्वलिङ्गं त्रिदोषजम्॥ ३४५॥

कफसे दूषित दूध-गाढा, अत्यन्त पिच्छिल और जलमें डालनेसे डूब जाता है। दो दोषोंसे दूषित दूध-दो दोषोंके लक्षणोंसेयुक्त होता है और त्रिदोषसे दूषित दूधमें तीनों दोषोंके लक्षण मिलते हैं॥३४५॥

शुद्धदुग्धके लक्षण।

अदुष्टं चाम्बुनिक्षिप्तमेकीभवति पांडुरम्। मधुरश्च विवर्णश्च प्रसन्नं तत्प्रशस्यते॥ ३४६॥

शुद्ध दूध जलमें डालनेसे एकसा श्वेतरंगका रहता है, तथा वह मधुर, वर्ण रहित और सुन्दर होता है॥ ३४६॥

स्तन्यरोगकी चिकित्सा।

तत्र वातात्मके स्तन्ये दशमूलं त्र्यहं पिबेत्। वातव्याधिहरं सर्पिः पीत्वा मृदु विरेचयेत॥ ३४७॥

वातसे दूषित दूधमें तीन दिनतक दशमूलका काथ पान करे। तथा वातनाशक औषधियोंके द्वारा सिद्ध किये हुए घृतको पान कराकर मृदु विरेचन देवे॥ ३४७॥

बस्तिकर्म्म ततः कुर्य्यात्स्नेहादींश्चानिलापहान्॥ ३४८॥

पश्चात् वातनाशक स्नेहोंका और बस्तिकर्म्मका प्रयोग करे॥ ३४८॥

पित्तदुष्टेऽमृताभीरुपटोलं निम्बचन्दनम्। धात्रीकुमारश्च पिबेत्क्वाथयित्वा सशर्करम्॥ ३४९॥

पित्तसे दूषित दूधमें गिलोय, शतावर, पटोलपत्र, नीम और लालचन्दन इनका काथ बनाकर मिश्री डालकर बालक और धायको पिलावे॥ ३४९॥

अथवा त्रिफलोशीरनिम्बं कटुकरोहिणी। शारिवादिगणैः सिद्धं घृतं पीत्वा ततोऽनु च॥ पित्तघ्नं रेचनं कुर्य्याच्छीतं चाभ्यङ्गलेपनम्॥३५०॥

अथवा त्रिफला, खस, नीम, कुटकी और शारिवादिगणकी औषधियोंके कल्कके द्वारा घृतको सिद्ध करके पान करे। पश्चात् पित्तनाशक रेचन देवे और शीतल अभ्यंग एवं लेप करे॥ ३५०॥

कफदुष्टे घृतं पीत्वा यष्टीसैन्धवसंयुतम्। रामपुष्पैः स्तनौ लिम्पेच्छिशोश्च दशनच्छदौ॥ सुखमेवं वमेद्बालस्तीक्ष्णैर्धात्रीश्च वामयेत्॥ ३५१॥

कफसे दूषित दूधवाली धाय मुलैठी, सैंधानमक मिलाकर घृतका पान करके चिरायताको पीसकर स्तनोंपर लेप करे तथा बालकके दाँतोंपर और होठोंपर लेप करे। बालकको मृदु औषधियोंके द्वारा वमन करावे और तीक्ष्ण औषधियोंके द्वारा धायको वमन करावे॥ ३५१॥

अन्यान्यलक्षण।

स्तन्ये त्रिदोषसंदुष्टे शकृदामं जलोपमम्। नानावर्णरुजं चार्द्धं विबद्धमुपवेश्यते॥ ३५२॥

त्रिदोषसे दूषित दूधमें तो आमसहित, जलके समान, अनेक वर्णका, अनेक प्रकारकी पीडायुक्त, तथा जलमें डालनेसे आधा ऊपर और आधा नीचे तैरनेवाला मल निकलता है॥ ३५२॥

भ्रमारोचकवम्यास्यपाकतृष्णाज्वरादयः। स्युर्यत्र तं विजानीयात्क्षीरालसकसंज्ञितम्॥ ३५३॥

जिसमें भ्रम, अरुचि, वमन, मुखपाक, तृष्णा, और ज्वर आदिक उपद्रव हों उस रोगको क्षीरालसक रोग कहते हैं॥ ३५३॥

तस्य चिकित्सा।

बालं तत्र च धात्रीश्च मृदुरेकैर्विरेचयेत॥ ३५४॥ क्रमं पेयादिकश्चैव मुस्तादिः संप्रयोजयेत। पेयादिकं क्रमं कृत्वा मुस्तादि पाययेद्घृतम्॥३५५॥ धात्री क्षीरविशुद्ध्यर्थं मुद्गयूषरसाशिनी। भार्ङ्गीदारुवचापाठाः पिबेत्सातिविषाः शृताः॥ ३५६॥

इस रोगमें बालक और धायको मृदु औषधियोंके द्वारा विरेचन देवे । एवं पेयादिके क्रमसे मुस्तादि करे । और पेयादिके क्रमसेही मुस्तादि घृत प्रयोग करे । धाय दूधको शुद्ध करनेके लिये मूँगके यूषका भोजन करे । तथा भारंगी, देवदारु, बच, पाढ और अतीस इनका क्वाथ बनाकर पान करावे ॥ ३५४ ॥ ३५५ ॥ ३५६ ॥

पाठा मूर्वा च भूनिम्बदारुशुण्ठीकलिङ्गकाः । शारिवामृततिक्ताख्याः क्वाथः स्तन्यविशोधनः ॥ ३५७ ॥ हरिद्राद्यं वचाद्यं वा पिबेत्स्तन्यविशुद्धये ॥ ३५८ ॥

पाढ, मूर्वा, चिरायता, देवदारु, सोंठ, इन्द्रजौ, शारिवा, गिलोय और कुटकी इनका क्वाथ दूधको शुद्ध करता है । अथवा हरिद्राद्य, या वचाद्य घृतको दूध शुद्ध करनेके लिये पान करे ॥ ३५७ ॥ ३५८॥

पटोलनिम्बासनदारुपाठा मूर्वा गुडूचीं कटुरोहिणीश्च । सनागरं वा क्वथितश्च तोये धात्री पिबेत्स्तन्यविशुद्धिहेतोः ॥ ३५९ ॥

पटोलपात, नीम, विजयसार, देवदारु, पाढ, मूर्वा, गिलोय, कुटकी और सोंठ इनका क्वाथ बनाकर धाय दूधको शुद्ध करनेके लिये पान करे ॥३५९

भूमिकूष्माण्डमूलं पिबति क्षीरेण या नारी । सशर्करेणैव पुष्टा ह्यतिशयदुग्धवती सा भवति ॥ ३६० ॥

जो स्त्री विदारीकन्दको दूधके साथ पीसकर मिश्री मिलाकर पान करे तो वह अत्यन्त पुष्ट होती है और उसके स्तनोंमें अत्यन्त दूध उत्पन्न होता है॥ ३६० ॥

कमलस्य तंडुलानां कल्कं क्षीरेण दधि पिबेदबला । सा भवति प्रचुरक्षीरा घनकुचयुगलापि वार्द्धक्ये ३६१

कमलगट्टेकी गिरीको पीसकर दूध और दहीके साथ पान करनेसे स्त्रीके स्तनोंमें अत्यन्त दूध उत्पन्न होता है । और वृद्ध अवस्थामें भी कुच पुष्ट होते है ॥ ३६१ ॥

वनकार्पासिकेक्षूणां मूलं सौवीरकेण च । विदारीकन्दस्वरसं पिबेद्वा स्तन्यवर्द्धनम् ॥ ३६२ ॥

वनकपासकी जड और ईखकी जडको सौवीरनामक काँजीके साथ पीसकर पान करनेसे अथवा केवल विदारीकन्दके स्वरसको पान करनेसे स्तनोंमें दूधकी वृद्धि होती है ॥ ३६२ ॥

वज्रकाञ्जिक ।

पिप्पली पिप्पलीमूलचव्यशुण्ठियवानिकाः । जीरके द्वे हरिद्रे च विडं सौवर्चलं तथा ॥ ३६३ ॥ एतैरेवौषधैः पिष्टैरारनालं विपाचयेत् । आमवातहरं वृष्यं कफघ्नं वह्निदीपनम् । वज्रकं काञ्जिकं नाम स्त्रीणामग्निप्रवर्द्धनम् ॥ ३६४ ॥

पीपल, पीपलामूल, चव्य, सोंठ, अजवायन, जीरा, कालाजीरा, हलदी, दारुहलदी, विरियासंचर नमक और कालानमक इन सबको एकत्र पीसकर इनके साथ काँजीको पकावे । इसको वज्रकाँजी कहते हैं यह वज्रकाँजी आमवातनाशक, वृष्य, कफनाशक, अग्निप्रदपिक और स्त्रियोंके अग्निको अत्यन्त दीपन करती है ॥ ३६३ ॥ ३६४ ॥

पत्रकाञ्जिक ।

स्वर्णशेफालिकापत्रं स्नुहीपत्रं तथैव च । चित्रकस्य च पत्राणि पत्रं साखोटकस्य च ॥ ३६५ ॥ वासितं काञ्जिकाम्लेन वातश्लेष्मगदापहम् । पत्रकाञ्जिकमाख्यातं स्त्रीणां क्षीरविवर्द्धनम् ॥ ३६६ ॥

पीले पीले हारसिंगारके पत्ते, थूहरके पत्ते, चीतेके पत्ते और सिंघाडेके पत्ते इन सबको अम्लकाँजीमें वासना देकर सेवन करनेसे वात और कफके रोग नष्ट होते हैं । इसको पत्रकाँजी कहते हैं । यह पत्रकाँजी स्त्रियोंके दूधको बढानेवाली है ॥ ३६५ ॥ ३६६ ॥

अलंबुषाद्यतैल ।

अलम्बुषाकणाकल्कैः सिद्धं तैलं करोति वनितायाः । पिचुधारणनस्यदानात्कुचद्वयं श्रीफलाकारम्॥३६७॥

काटोंवाली लज्जावन्ती और पीपलके कल्कके द्वारा तेलको पकाकर उस तेलके फाये रखनेसे अथवा नस्य देनेसे स्त्रीके दोनों कुच नारियलके समान होजाते हैं ॥ ३६७ ॥

श्रीपर्णीतैल ।

श्रीपर्णीरसकल्काभ्यां तैलं सिद्धं तिलोद्भवम् । तत्तैलं तूलकेऽन्यस्य स्तनयोः परिधारयेत् ॥ ३६८ ॥ पतितावुत्थितौ स्त्रीणां भवेयातां पयोधरौ । गजकुम्भसमाकारावुत्पन्नौ परिमण्डलौ ॥ ३६९ ॥

अरणीके स्वरस और कल्कके द्वारा तिलके तेलको पकावे । उस तेलके द्वारा रुईके फाये भिजोकर स्तनोंपर धारण करनेसे पतित हुए स्तन भी फिरसे उठ आते हैं । तथा स्तनोंके मण्डल हाथीके कुम्भस्थलके समान होजाते हैं ॥ ३६८ ॥ ३६९ ॥

शङ्खचूर्णस्य भागौ द्वौ हरितालश्च भागिकम् । चुक्रेण सह संयुक्तं लोमशातनमुत्तमम् ॥ ३७० ॥

शंखका चूर्ण २ भाग और हरिताल १ भाग इनको सिरकेके साथ पीसकर लेप करनेसे रोम गिरजाते हैं ॥ ३७० ॥

तैलं कुसुम्भकस्याथ स्नुहीक्षीरं तथैव च । प्रगृह्यैकत्र मतिमाँल्लोमशातनमुत्तमम् ॥ ३७१ ॥

कसूमका तेल और थूहरका दूध इन दोनोंको एकत्र मिलाकर लेप करनेसे रोम गिरजाते हैं ॥ ३७१ ॥

कदलीदीर्घवृन्तानां भस्मालं लवणं शमी । बीजं शीताम्भसा पिष्टं लोमशातनमुत्तमम् ॥ ३७२ ॥

केला और श्योनाकके पत्तोंकी भस्म हरताल नमक और छोंकरके बीज इनको शीतल जलके साथ एकत्र पीसकर लेप करनेसे रोम गिरजाते हैं ॥ ३७२ ॥

कासीसाद्यतैल ।

कासीसतुरगगन्धासावरगजपिप्पलीविपक्केन । तैलेन यान्ति वृद्धिं स्तनकर्णपालिलिङ्गानि ॥ ३७३ ॥

हीराकसीस, असगन्ध, लोध और गजपीपल इनके द्वारा तेलको पकाकर लेप करनेसे स्तन, लिंग और कर्णपाली बढ जाती हैं ॥ ३७३ ॥

हरितालभाग एको भागाः पञ्चैव शंखचूर्णस्य । भागः पलाशभस्मत एतल्लेपात्कचा न स्युः ॥ ३७४ ॥

हरिताल १ भाग, शंखका चूर्ण ५ भाग और ढाककी भस्म १ भाग इन सबको एकत्र मिलाकर लेप करनेसे बाल गिरजाते हैं ॥ ३७४ ॥

करवीराद्यतैल ।

करवीरशिफादन्ती त्रीणि कोशातकानि च । रम्भाक्षारोदके तैलं प्रशस्तं लोमशातनम् ॥ ३७५ ॥

कनेरकी जड, दंती और तोरई इन तीनोंको एकत्र पीसकर उसके साथ केलेके खारके जलमें पकावे । यह तेल रोमोंको पतित करनेमें उत्तम है ॥ ३७५ ॥

कर्पूराद्यतैल ।

कर्पूरभल्लातकशङ्खचूर्णं क्षारो यवानां सुमनःशिला च । तैलं विपक्कं हरितालमिश्रं लोमानि निर्मूलयति क्षणेन ॥ ३७६ ॥

कपूर, भिलावे, शंखका चूर्ण, जवाखार और मैनशिल इन सबका कल्क बनाकर तेलको पकावे । इसमें हरिताल का चूर्ण डालकर लेप करनेसे क्षणभरमें सम्पूर्ण बाल गिरजाते हैं ॥ ३७६ ॥

अथ योनिकन्दनिदान ।

दिवास्वप्नादतिक्रोधाद्व्यायामादतिमैथुनात् । क्षताच्च नखदन्ताद्यैर्वाताद्याः कुपिता यदा ॥ ३७७ ॥ पूयशोणितसंकाशं लकुचाकृतिसन्निभम् । उत्पद्यते यदा योनौ नाम्ना कन्दस्तु योनिजः ॥ ३७८ ॥

दिनमें सोनेसे, अत्यन्त क्रोध करनेसे, अत्यन्त परिश्रम करनेसे, अत्यन्व मैथुन करनेसे और नख

तथा दाँत आदिके द्वारा घाव होजानेसे अपने अपने कारणोंसे वातादि दोष कुपित होकर योनिमें राधके समान, रुधिरके समान और बडहलके समान जो गाँठ उत्पन्न करते हैं, उसको योनिकन्दरोग कहते हैं ॥ ३७७ ॥ ३७८ ॥

वातादिभेदसे रूप।

रूक्षं विवर्णं स्फुटितं वातिकन्तु विनिर्दिशेत्।

जो योनिकन्द रूखा, विवर्ण और फटासा होता है उसको वातजनित जानना चाहिए।

दाहरागज्वरयुतं विद्यात्पित्तात्मकं तु तत् ॥ ३७९ ॥

जो योनिकन्द दाह, लाली और ज्वरसहित हो उसको पित्तजनित जानना चाहिए ॥ ३७९ ॥

नीलपुष्पप्रतीकाशं कंडूमन्तं कफात्मकम्। सर्वलिङ्गसमायुक्तं सन्निपातात्मकं वदेत् ॥ ३८० ॥

जो योनिकन्द नीले फूलके समान और खुजली सहित हो उसको कफजनित जानना एवं जिस योनिकन्दमें वातादि तीनों दोषोंके लक्षण मिलते हों उसको सन्निपातजनित जानना चाहिए ॥ ३८० ॥

योनिकन्दकी चिकित्सा।

स्वेदयेद्वातिकं कन्दं पैत्तिकन्तु विरेचयेत्। कफजे वमनं भूयः सर्वजे सर्वमर्हति ॥ ३८१ ॥

वातजयोनिकन्दमें प्रथम स्वेदन करे। पित्तजयोनिकन्दमें विरेचन देवे। कफजनितयोनिकन्दमें प्रथम वमन करावे और त्रिदोषजयोनिकन्दमें मिश्रित चिकित्सा करे ॥ ३८१ ॥

त्रिफलायाः कषायेण मधुयुक्तेन सेचयेत्। प्रमदा योनिकन्देन व्याधिना परिमुच्यते ॥ ३८२ ॥

त्रिफलेके काथमें शहद डालकर योनिको सेचन करनेसे स्त्री योनिकन्दरोगसे मुक्त होती है ॥ ३८२ ॥

गैरिकाञ्जनजन्तुघ्नकट्फलाम्रास्थिचूर्णितैः ॥ पूरयेत्सततं योनिं निशाक्षौद्रसमायुतैः ॥ ३८३ ॥

गेरू, अंजन, वायविडंग, कायफल, आमकी गुठली और हलदी इन सबको चूर्ण करके शहदमें मिलाकर योनिमें भरे ॥ ३८३ ॥

पूरयेच्चाभयारिष्टं मध्वारिष्टमथापि वा। महामायूरमथवा बस्तौ पाने प्रयोजयेत् ॥ ३८४ ॥

अभयारिष्ट अथवा मध्वारिष्ट या महामायूरघृतको बस्ति और पानकर्ममें प्रयोग करे ॥ ३८४ ॥

कोलभेकस्य मांसेन कन्दः शाम्यति योषिताम्। मूषिकामांससंयुक्तं तैलमातपभावितम्। अभ्यङ्गाद्धन्ति कन्दं वा स्वेदं तन्मांससैन्धवैः ॥ ३८५ ॥ आखोर्मांसं सपदि बहुधा सूक्ष्मखण्डीकृतं यत्तैले पाच्यं द्रवति नियतं यावदेतेन सम्यक्। तत्तैलाक्तं वसनमनिशं योनिभागे दधानं हन्ति व्रीडाकरभगफलं नात्र सन्देहबुद्धिः ॥ ३८६ ॥

सूअरके मांस और मेंढकके मांसके द्वारा भी स्त्रियोंका योनिकन्दरोग शमन होता है। चूहेके मांसको तेलमें डालकर धूपमें भावना देकर उसके द्वारा अभ्यंग करनेसे अथवा चूहेके मांसमें सैंधानमक डाल कर स्वेद देनेसे योनिकन्द रोग शमन होता है। चूहेके मांसके बहुत छोटे २ टुकडे करके तेलमें पका लेवे। उस तेलमें वस्त्रको भिजोकर नित्य योनिमें रखनेसे लज्जाजनक योनिकन्द निस्सन्देह शमन होजाता है ॥ ३८५ ॥ ३८६ ॥

पिष्टं शंबूकमांसञ्च पक्वं तित्तिडिसंयुतम्। लेपमात्रेण नारीणां योनिकन्दहरं परम् ॥ ३८७ ॥

घोंघेके मांसको पीसकर उसमें पकी तितिडिका रस मिलाकर लेप करनेसे स्त्रियोंका योनिकन्दरोग नष्ट होता है ॥ ३८७ ॥

घोषकस्वरसः पीतो मस्तुना च समन्वितः। योनिकन्दं निहन्त्याशु तन्नाडी चैव धूपतः ॥ ३८८ ॥

कडवी तोरईके स्वरसमें दहीका पानी मिलाकर पान करनेसे योनिकन्दरोग नष्ट होता है। अथवा उसकी नाडीकी धूप देनेसे भी योनिकन्द नष्ट हो जाता है ॥ ३८८ ॥

सद्यो व्रीडाकरं कन्दं योनेर्बहुविकारजम् । शलाकया तप्तया वा दहेत्तु कुशलो भिषक् ॥ ३८९ ॥

अथवा सन्तप्त लोहेकी शलाकासे योनिकन्दको दहन करे तो बहुत विकारोंसे उत्पन्न हुआ लज्जाजनक योनिकन्द शीघ्र नष्ट होता है ॥ ३८९ ॥

एतत्कन्दस्य निर्दिष्टं समासेन चिकित्सितम् ।

योनिकन्दकी यह सक्षेपसे चिकित्सा कही है।
इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायां स्त्रीरोगनिदान चिकित्साधिकार समाप्त ॥ ६९ ॥

अथ बालरोगाधिकार ।

बालरोगका निदान ।

त्रिविधः कथितो बालः क्षीरान्नोभयवर्त्तकः । स्वास्थ्यं ताभ्यामदुष्टाभ्यां दुष्टाभ्यां रोगसम्भवः ॥ १ ॥

पहिले दूधको पीनेवाले, दूसरे अन्नको खानेवाले और तीसरे दूध और अन्न दोनोंको सेवन करनेवाले इस प्रकार बालक, तीन प्रकारके होते हैं। इनमें दूध और अन्नके अदूषित होनेसे बालक निरोगी रहते हैं और दूध तथा अन्नके दूषित होजानेसे बालक रोगी होजाते हैं ॥ १ ॥

दन्तोद्भेदस्तु सर्वेषां रोगाणामपि कारणम्। विशेषाज्ज्वरविड्भेदकासच्छर्दिशिरोरुजः । अभिष्यन्दश्च शोथश्च विसर्पश्चापि जायते ॥ २ ॥

बालकके दाँतोंका निकलना सम्पूर्ण रोगोंका कारण कहा जाता है। इसमें विशेष करके ज्वर, दस्तोंका होना, खाँसी, वमन, शिरकी पीडा, नेत्रोंका दुखना सूजन और विसर्प ये सब उपद्रव होते हैं ॥ २ ॥

पृष्ठभङ्गे बिडालानां बर्हिणाञ्च शिखोद्गमे । दन्तोद्भेदे च बालानां न ते किञ्चिन्न दूयते ॥ ३ ॥

बिलावकी पीठमें चोट लगनेके समय, मोरकी चोटीके उत्पन्न होते समय और बालकोंके दाँतोंके निकलते समय अवश्य घोर पीडा होती है ॥ ३ ॥

वातदूषितदूधके लक्षण ।

वातदुष्टं शिशुः स्तन्यं पिबन्वातगदातुरः । क्षामस्वरः कृशाङ्गः स्याद्बद्धविण्मूत्रमारुतः ॥ ४ ॥

जो बालक वातसे दूषित दूधको पीता है वह वातके रोगोंसे पीडित होता है । उसका स्वर क्षीण होजाता है, शरीर कृश होजाता है, तथा मल, मूत्र, और अधोवायुका अवरोध होता है ॥ ४ ॥

पित्तदूषितदूधके लक्षण ।

स्विन्नो भिन्नमलो बालः कामलापित्तरोगवान् । तृष्णालुरुष्णसर्वांगः पित्तदुष्टं पयः पिबन् ॥ ५ ॥

जो बालक पित्तदूषित दूधका पान करता है, उसको पसीना अधिक आता है, मल पतला और पीला उतरता है, वह कामला और पित्तके रोगोंसे पीडित होता है, तृषा अधिक लगती है और उसका सम्पूर्ण शरीर उष्ण रहता है ॥ ५ ॥

कफदूषितदूधके लक्षण ।

कफदुष्टं पिबेत्क्षीरं लालालुः श्लेष्मरोगवान् । निद्रार्दितो जडः शूनः शुक्लाक्षः छर्दनः शिशुः ॥ ६ ॥

जो बालक कफदूषित दूधको पीता है उसके मुखसे लार अधिक गिरती है, वह कफके रोगोंसे पीडित रहता है, निद्रा अधिक आती है, शरीरमें जडता होती है, शोथ होता है, नेत्र सफेद होते हैं और वमन होती है ॥ ६ ॥

द्वन्द्वजे द्वन्द्वजं रूपं सर्वजे सर्वलक्षणम् ।

दो दोषोंसे दूषित दूधको पान करनेसे दो दोषोंके लक्षण तथा त्रिदोषसे दूषित दूधको पान करनेसे तीनों दोषोंके लक्षण प्रकट होते हैं।

बालकोंकी अन्तर्गत पीडाजाननेका उपाय।

शिशोस्तीव्रामतीव्राञ्च रोदनाल्लक्षयेद्रुजम् ॥ ७ ॥

अब जो बालक बोल नहीं सकते उनके अन्तर्गत रोगोंको जाननेका उपाय कहते हैं। बालकोंके रोनेसे अत्यन्त तीव्र या अल्प पीडा जाननी अर्थात् बालक सहजसे रोवे तो कम और बहुत जोरसे चिल्लाकर रोवे तो अधिक पीडा जाननी। वह बालक जिस स्थानमें हाथ लगाकर रोवे अथवा उस स्थानमें अन्य किसीके हाथ लगानेसे रो पडे तो उसके उसी स्थानमें पीडा जाननी ॥ ७ ॥

क्षुद्ररोगे च कथिते ह्यजगल्ल्यहिपूतने। ज्वराद्या व्याधयः सर्वे महतां ये पुरेरिताः ॥ ८ ॥ बालदेहेऽपि ते तद्वद्विज्ञेयाः कुशलैः सदा। अनुबन्ध यथा व्याधिः प्रतिकुर्वीत कालवित् ९॥

क्षुद्ररोगोंमें जो अजगल्ली और अहिपूतनरोग कहे हैं अथवा बडे मनुष्योंके जो ज्वरादिकरोग पहले कहे हैं।वे सब बालकोंके शरीरमें भी जानने चाहिए बालकोंके जिस रोगमें जैसा अनुबन्धन होसके चतुर वैद्य उसीके अनुसार समयको विचार कर चिकित्सा करे ॥ ८ ॥ ९ ॥

यथादोषं यथारोगं यथोद्रेकं यथा बलम्। विभज्य देशकालादींस्तत्र युंज्येद्भिषग्घितम् ॥ १० ॥

जैसे दोष, जैसे रोग, जैसी पीडा और जैसा शरीरमें बलाबल हो उसीके अनुसार तथा देश,कालको विचारकर वैद्य हितकारक यत्न करे ॥ १० ॥

भैषज्यं पूर्वमुद्दिष्टं महतां यज्ज्वरादिषु। कार्यं तदेव भैषज्यं तेषु दाहादिकं विना ॥ ११ ॥ त एव दूष्या दोषाश्च ज्वराद्या व्याधयश्च ये। अतस्तदेव भैषज्यं मात्रा तस्य कनीयसी ॥ १२ ॥

ज्वरादि रोगोंमें जो बडे मनुष्योंके लिये प्रथम औषधियाँ कही हैं वेही सब औषधियां बालकोंके लिए भी प्रयोग करनी चाहियें। किन्तु दाह, क्षारकर्म्म, और शिरावेध आदि कभी न करे। बालकोंके दोष और दूष्य तथा ज्वरादि रोग भी बडे मनुष्योंके समान होते हैं, इस कारण बालकोंको भी प्रत्येक रोगमें प्रत्येक रोगाधिकारोक्त औषधि देवे। किन्तु उसकी मात्रा कनिष्ठ अर्थात् थोडी देवे ॥ ११ ॥ १२ ॥

एकोऽधिकश्चर्मगतो विकारः कुकूणको नाम शिशोः प्रदिष्टः। नन्दिग्रहो नाम महानिहास्ति विज्ञाय तं वै शमयेद्यथावत ॥ १३ ॥

बालकके एक चर्म्मगत विकार अधिक होता है, जिसको कुकूणकरोग कहते हैं। और कोई इसको नन्दिग्रह इस नामसे भी कहते हैं। उसको अच्छेप्रकारसे जानकर यथादोषानुसार चिकित्सा करे १३॥

बालरोगोंकी चिकित्सा।

विडङ्गफलमात्रन्तु जातमात्रस्य भेषजम्। मासि मासि प्रयोक्तव्यं विडङ्गानां प्रवर्द्धनम् ॥ १४ ॥

बालकको जन्मसे लेकर एक महीने पर्य्यंत वायविडंगकी बराबर औषधकी मात्रा देवे। और फिर क्रमसे प्रत्येक महीनेमें एक एक वायविडंगकी बराबर मात्राको बढाता हुआ प्रयोग करे ॥ १४ ॥

अब्दादूर्ध्वं कुमारस्य दद्यात्कोलास्थिमात्रकम्। क्षीरान्नादः शिशोः कोलमन्नादो बदरोपमम् ॥ १५ ॥

फिर एक वर्षके पश्चात् बालकको झडबेरके गुठलीकी बराबर औषधकी मात्रा देवे। जबतक केवल दूधको पान करे तबतक ये ही मात्रा रक्खे और जब दूध और अन्न दोनोंको खानेलगे तो झडबेरकी बराबर मात्रा करदेवे। इसके पश्चात् जब दूधको छोड देवे और केवल अन्नको ही खानेलगे तब बेरकी बराबर मात्रा देवे ॥ १५ ॥

---

१ यदि श्लेष्मा बढ जानेपर या बालकोंके पसलीके रोगमें वमन तथा विरेचन न दे तो शीघ्र ही मृत्युपाशमें चला जाता है, इस कारण कोमल औषधसे वमन विरेचनका निषेध नहीं है।

क्षीरपस्यौषधं धात्र्याः क्षीरान्नादस्य चोभयोः । आत्मन्यन्नाशनैर्देयमौषधं भेषजं सदा ॥ १६ ॥

जो बालक दूधको पीते हों उनकी धायको औषध देवे, जो बालक दूध और अन्न दोनोंका सेवन करते हों, उनकी धाय और बालक दोनोंको औषध देवे और जो केवल अन्नको खाते हों तो केवल उनकोही औषध देवे ॥ १६ ॥

यथारोगं स्तनौ लिम्प्य स्वौषधैः पाययेच्छिशुम् । मात्रया लङ्घयेद्धात्रीं शिशोर्नोक्तं विलङ्घनम् ॥ १७ ॥

यथारोगानुसार धाय स्तनोंपर औषधिका प्रलेप करके बालकोंको दूध पिलावे । यदि कदाचित् बालकको लंघन करानेकी आवश्यकता हो तो बालककी धायको लंघन करावे, बालकको कदापि लंघन नहीं करावे ॥ १७ ॥

सर्वं निवार्य्यते बाले स्तन्यं न प्रतिवार्य्यते । स्तन्याभावे पयश्छागं गव्यं वा तद्गुणं पिबेत् ॥ १८ ॥

बालकोंके समस्त पदार्थोंको त्यागन करा देवे, किंतु दूधको कदापि त्याग नहीं करावे । और दूधके अभावमें बकरीका दूध अथवा उसके समान गुणोंवाला गायका दूध पिलावे ॥ १८ ॥

मृत्पिण्डेनाग्निवर्णेन क्षीरसिक्तेन सोष्मणा । स्वेदयेदुत्थितां नाभिं शोथस्तेनोपशाम्यति ॥ १९ ॥

मिट्टीके पिण्डको अग्निमें संतप्त करे जब वह खूब तपकर अग्निके समान लाल होजाय तब निकाल कर उसको दूधमें बुझा देवे । उस दूधके द्वारा बालककी उठी हुई नाभिपर स्वेद देनेसे नाभिशोथ दूर हो जाता है ॥ १९ ॥

दग्धेन छागशकृता नाभिपाकेऽवचूर्णनम् । त्वक्चूर्णैः क्षीरिणां वापि कुर्य्याच्चन्दनरेणुना ॥ २० ॥ नाभिपाके निशालोध्रप्रियंगुमधुकैः शृतम् । तैलमभ्यञ्जने शस्तमेभिर्वाप्यवचूर्णनम् ॥ २१ ॥

बकरीकी मैंगनको अग्निमें जलाकर उसको चूर्ण करके बालकोंकी पकती हुई नाभिके ऊपर लगावे । अथवा क्षीरवृक्षोंकी छालका चूर्ण, चंदन और रेणुका चूर्ण इनको मिलाकर नाभि पाकपर लगावे । अथवा हलदी, लोध, फूलप्रियंगू और मुलैठी इनके कल्कके द्वारा तेलको पकाकर उस तेलकी मालिस करनेसे अथवा उपर्युक्त औषधियोंका चूर्ण करके बुरकनेसे नाभिपाकरोग दूर होता है ॥ २० ॥ २१ ॥

बालो यश्चिराज्जातः स्तन्यं न गृह्णाति तस्य सैन्धवधात्रीमधुघृतपथ्याकल्केनोद्घर्षयेज्जिह्वाम् ।

जो बालक बहुत दिनोंका होजाय और दूधको पान नहीं करे तो सैंधानमक, आमले, शहद, घी और हरड इनके कल्कसे इसकी जिह्वाको घिसे ।

कुष्ठाभयावचाब्राह्मीटंकणं क्षौद्रसर्पिषा । सपाठामधुना लीढा स्तन्यदोषनिबर्हणाः ॥ २२ ॥

कूठ, हरड, बच, ब्राह्मी और सुहागा इनको एकत्र पीसकर शहद और घीमें मिलाकर चटावे । अथवा पाठेका चूर्ण करके शहदमें मिलाकर चटानेसे बालकोंके दूधके विकार शान्त होजाते हैं ॥ २२ ॥

प्रियंगुस्वर्जिकासिन्धुमधुना लेहयेच्छिशुम् । क्षीरामयं निहन्त्याशु विडङ्गेन युतं कृमीन् ॥ २३ ॥

फूलप्रियंगू, सज्जी, सैंधानमक और शहद इन सबको एकत्र मिलाकर चटानेसे बालकोंके दूधका विकार शीघ्र शांत होजाता है । और इसी औषधमें वायविडंगका चूर्ण मिलाकर सेवन करानेसे कृमिरोग नष्ट होजाता है ॥ २३ ॥

पीतं पीतं वमति यः स्तन्यं तं मधुसर्पिषा । द्विवार्त्ताकीफलरसं पञ्चकोलञ्च लेहयेत् ॥ २४ ॥

जो बालक दूध पी पीकर डालदेवे उसको शहद और घीके साथ दोनोंप्रकारकी कटेरीका रस और पंचकोलका चूर्ण मिलाकर चटावे ॥ २४ ॥

शर्कराक्षौद्रसंयुक्ता तिक्ता लीढा ज्वरं जयेत् । लिम्पेन्मुहुर्मुहुर्बालं तत्कल्केन च बुद्धिमान् ॥ २५ ॥

मिश्री और शहदके साथ कुटकीके चूर्णको मिलाकर चाटनेसे ज्वर दूर होता है। अथवा इसही औषधिके कल्कको वारंवार स्त्रीके स्तनोंपर लेप करनेसे दूधका विकार शांत होता है ॥ २५ ॥

भद्रमुस्ताभयानिम्बपटोलामधुकैः कृतः। क्वाथः सोष्णस्तु बालानामशेषज्वरनाशनः ॥ २६ ॥

नागरमोथा, हरड, नीम, पटोलपत्र और मुलैठी इनका काथ बनाकर सुहाता २ पिलानेसे बालकोंका सर्वप्रकारका ज्वर दूर होता है ॥ २६ ॥

पलंकषादिधूप।

पलंकषावचाकुष्ठं गजचर्म्माविचर्म्म च। निम्बस्य पत्रं माक्षीकं सर्पिर्युक्तन्तु धूपनम् ॥ ज्वरवेगं निहन्त्याशु बालानान्तु विशेषतः ॥ २७ ॥

गूगल, वच, कूठ, हाथीका चर्म्म, भेडका चर्म्म, नीमके पत्ते, शहद और घी इन सबको एकत्र मिलाकर धूप देनेसे ज्वरका वेग शमन होता है। और विशेषकरके बालकोंका ज्वर दूर होता है ॥ २७ ॥

सर्पत्वगादिधूप।

सर्पत्वक्सर्षपारिष्टपल्लवं तेजनीवचा। रसोनहिंग्वजालोम-शृङ्गीमरिचमाक्षिकैः ॥ धूपः सर्वग्रहघ्नोऽयं कुमाराणां ज्वरापहः ॥ २८ ॥

साँपकी कैंचुली, सरसों, नीमके पत्ते, तेजबल, वच, रसोन (लहशुन), हींग, बकरीके रोम, काकडाशिंगी, कालीमिरच और शहद इन सबको एकत्र मिलाकर धूप देनेसे बालकोंके सर्वप्रकारकी ग्रहोंकी बाधा ओर ज्वर दूर होता है ॥ २८ ॥

मध्वरिष्टदलश्वेतसर्षपैर्योजितो ज्वरम्। बालानां शमयेद्धूपो मृतगोकुक्षिरोमजः ॥ २९ ॥

शहद, नीमके पत्ते और सफेदसरसों इनकी धूप बनाकर देनेसे बालकोंका ज्वर और समस्त पीडा शांत होती है। अथवा मरी हुई गायके पेटके रोमोंकी धूनी देनेसे बालकोंकी समस्त ग्रहपीडा शांत होती है ॥ २९ ॥

आम्रत्वक्जाचजम्बूत्थकषाये पादशेषिते। शालिसिद्धां यवागूश्च भुक्त्वा कुक्ष्यामयं जयेत ॥ ३० ॥

आमकी छाल और जामुनकी छाल इनका चतुर्थांश शेष काथ बनावे फिर उस काथमें शालिचावलोंकी यवागू बनाकर सेवन करानेसे कुक्षिरोग नष्ट होता है ॥ ३० ॥

समङ्गाशाल्मलीवेष्टं धातकीपद्मकेसरैः। पिष्टैरेतैर्यवागूः स्यादतीसारविनाशिनी ॥ ३१ ॥

मजीठ, सेमलका गोंद, धायके फूल और कमलकेशर इनको पीसकर यवागू बनाकर सेवन करनेसे अतिसाररोग नष्ट होता है ॥ ३१ ॥

बिल्वश्च पुष्पाणि च धातकीनां गजं सलोध्रं गजपिप्पली च ॥ क्वाथावलेहौ मधुना विमिश्रौ बाल्येषु योज्यावतिसारितेषु ॥ ३२ ॥

बेलगिरी, धायके फूल, नागकेशर, लोध और गजपीपल इनका काथ या अवलेह बनाकर शहदमें मिलाकर बालकोंके अतिसाररोगमें सेवन करावे ॥ ३२ ॥

नागरातिविषामुस्ताबालकेन्द्रयवैः शृतम्। जलं हन्ति कुमाराणां कुक्षिरोगमसंशयम् ॥ ३३ ॥

सोंठ, अतीस, नागरमोथा, सुगन्धवाला और इन्द्रजौ इनका काथ बनाकर पान करानेसे बालकोंका अतिसाररोग दूर होता है ॥ ३३ ॥

अंकोटमूलधातक्यौ बिल्वपेशीमहौषधम्। क्वथितं शीतलं पेयं कुक्षिरोगविनाशनम् ॥ ३४ ॥

अंकोलकी जड, धायके फूल, बेलगिरी और सोंठ इनका काथ बनाकर शीतल करके पान करानेसे कुक्षिरोग नष्ट होता है ॥ ३४ ॥

समङ्गाधातकीलोध्रं शारिवाभिः शृतं जलम्। विवृद्धेऽपि शिशोर्देयमतीसारे समाक्षिकम् ॥ ३५ ॥

मजीठ, धायके फूल, लोध और शारिवा इनका काथ बनाकर शहद मिलाकर पान करनेसे अत्यन्त बढाहुआ भी अतिसार रोग दूर होता है ॥ ३५ ॥

पिष्ट्वा पटोलमूलञ्च शृङ्गवेरं वचामपि । विडङ्गान्यजमोदाञ्च पिप्पलीतण्डुलानि च ॥ ३६ ॥ एतान्यालोड्य सर्वाणि सुखतप्तेन वारिणा । आमप्रवृत्तेऽतीसारे कुमारं योजयेद्भिषक्॥३७॥

परवलकी जड, अदरख, वच, वायविडंग, अजमोद और पीपलके चावल इन सबको एकत्र पीसकर मंदोष्णजलमें अच्छेप्रकारसे आलोडन करके बालकको सेवन करानेसे अत्यन्त बढाहुआ बालकोंका आमातिसार नष्ट होता है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

पीडिताम्रास्थिकल्कोत्थस्वरसं मधुना सह । कोष्ठभेदी शिशुः शीर्णो न चिरात्स्वस्थतां व्रजेत् ॥ ३८ ॥

आमकी गुठलीके कल्कका स्वरस निकालकर उसमें शहद मिलाकर सेवन करनेसे बालकोंका पुराना अतिसार नष्ट होता है और बालक शीघ्र स्वस्थ होता है ॥ ३८ ॥

शालिपर्णी पृश्निपर्णी घोटात्वक् कथितं जलम् । क्षौद्रयुक्तं त्रिदोषघ्नं सर्वातीसारनाशनम् ॥ ३९ ॥

शालिपर्णी, पृश्निपर्णी और सुपारीकी छाल इनका काथ बनाकर शहद मिलाकर सेवन करनेसे त्रिदोषजन्य और सर्वप्रकारके अतिसार नष्ट होते हैं ॥ ३९ ॥

हरिद्राद्वययष्ट्याह्वसिंहीशक्रयवैः शृतम् । शिशोर्ज्वरातिसारघ्नं श्वासकासवमीहरम् ॥ ४० ॥

हलदी, दारुहलदी, मुलैठी, कटेरी और इन्द्रजौ इनका काथ बनाकर सेवन करनेसे बालकोंका ज्वरातिसार, श्वास, खाँसी और वमन दूर होता है ॥४०॥

धातकीबिल्वधान्याकलोध्रेन्द्रयववालकैः । लेहः क्षौद्रेण बालानां ज्वरातीसारवातनुत् ॥ ४१ ॥

धायके फूल,बेलगिरी,धनियाँ, लोध, इन्द्रजौ और सुगन्धवाला इनको एकत्र पीसकर शहदके साथ अवलेह बनाकर चाटनेसे ज्वरातिसार और वातविकार नष्ट होता है ॥ ४१ ॥

लोध्रेन्द्रयवधान्याकधात्रीह्रीबेरमुस्तकम् । मधुना लेहयेद्बालं ज्वरातीसारनाशनम् ॥ ४२ ॥

लोध, इन्द्रजौ, धनियां आमले, सुगन्धवाला और नागरमोथा इनका चूर्ण बनाकर शहदमें मिलाकर बालकको चटानेसे ज्वरातिसार नष्ट होता है ॥४२॥

मधुसर्पिर्विडङ्गानि सरलं देवदारु च । पटोलकुटजारिष्टसप्तपर्णयवानिकाः ॥ ज्वरं छर्दिमतीसारं शमयेच्चूर्णकं त्विदम् ॥ ४३ ॥

शहद, घी, वायविडंग, धूपसरल, देवदारु, पटोलपत्र, कुडेकी छाल, नीम, सतोना, और अजवायन इनका चूर्ण बनाकर सेवन करनेसे ज्वर, वमन और अतिसार नष्ट होता है ॥ ४३ ॥

कल्कः प्रियंगुकोलास्थिमधुमुस्ताञ्जनैः कृतः । क्षौद्रलीढः कुमारस्य छर्दितृष्णातिसारनुत् ॥ ४४ ॥

फूलप्रियंगु, बेरकी गुठली, मुलैठी, नागरमोथा और रसौत इनका कल्क बनाकर शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे बालकोंकी वमन, तृषा और अतिसार दूर होता है ॥ ४४ ॥

बृहती पुष्पमूलत्वक् कृष्णाग्रन्थिकसंभवः । तुगाक्षीरीयुतः काथः पीतो हन्ति शिशोर्वमिम् । मूर्च्छां श्वासं ज्वरं कासमतीसारञ्च पीनसम् ॥४५॥

बडी कटेरीके फूल और उसकी जडकी छाल, पीपल और पीपलामूल इनका काथ बनाकर उसमें वंशलोचन डालकर सेवन करानेसे बालकोंके वमन, मूर्च्छा, श्वास, ज्वर, खाँसी अतिसार और पीनसरोग दूर होते हैं ॥ ४५ ॥

धान्यमतिविषाशृङ्गीगजाह्वाश्लक्ष्णचूर्णितम् । बालानां छर्द्यतीसारं मधुना हन्ति लेहनात् ॥ ४६ ॥

धनियाँ, अतीस, काकडाशिंगी और गजपीपल इनका बारीक चूर्ण करके शहदमें मिलाकर चटानेसे बालकोंकी वमन और अतीसार दूर होता है ॥४६॥

ह्रीबेरशर्कराक्षौद्रं पीतं तंडुलवारिणा। शिशोः सर्वातिसारघ्नं तृट्छर्दिज्वरनाशनम् ॥ ४७ ॥

सुगन्धवाला, मिश्री और शहद इन तीनोंको एकत्र मिलाकर चावलोंके जलके साथ पान करनेसे बालकोंके सब प्रकारके अतिसार, तृषा, वमन और ज्वर नष्ट होते हैं॥ ४७ ॥

श्वेतकमलकिञ्जल्कं संपिष्टं तंडुलांबुना। मत्स्यण्डिमधुसंयुक्तं क्षिप्रं हन्ति प्रवाहिकाम् ॥ ४८ ॥

सफेद कमलकी केशरको पीस करके राव और शहदमें मिलाकर चावलोंके जलके साथ सेवन करनेसे बालकोंका प्रवाहिकारोग दूर होता है॥४८॥

बिल्वमूलकषायेण लाजाश्चैव सशर्कराः। आलोड्य पाययेद्बालं छर्द्यतिसारनाशनम् ॥ ४९ ॥

बेलकी जडका काथ बनाकर उसमें खीलोंका चूर्ण और मिश्री मिलाकर बालकको पान करानेसे वमन और अतिसार दूर होता है ॥ ४९ ॥

फलिन्यञ्जनमुस्तानां चूर्णं पीतं समाक्षिकम्। तृष्णां छर्दिमतीसारं शिशूनामुद्धतं हरेत् ॥ ५० ॥

फूलप्रियंगू, रसौत और नागरमोथा इनका चूर्ण बनाकर शहदके साथ सेवन करनेसे बालकोंकी तृषा, वमन और प्रबल अतिसार नष्ट होता है ॥ ५० ॥

आम्रजम्बूप्रवालानि शालुकातिविषाणि च। क्षीरिणाञ्च प्रवालानि यष्टीमधुकमेव च ॥ ५१ ॥ दर्भमूलीगिराचुक्रक्वथितानि जलेन तु। शर्करामधुसंयुक्तं तृष्णाछेदनमुत्तमम् ॥ ५२॥

आम और जामुनके कोमल पत्ते, भसींडे, अतीस, क्षीरीवृक्षोंकी कोंपल, मुलैठी, कुशाकी जड और नोनिया इनका काथ बनाकर मिश्री और शहद मिला कर सेवन करनेसे तृषा दूर होती है॥ ५१ ॥५२ ॥

दाडिमस्य तु बीजानि जीरकं नागकेशरम्। चूर्णः सशर्कराक्षौद्रो लेहस्तृष्णाविनाशनः ॥ ५३ ॥

अनारदाना, जीरा और नागकेशर इनके चूर्णको मिश्री और शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे तृषा दूर होती है ॥ ५३ ॥

हिंगुसैन्धवपालाशचूर्णं माक्षिकसंयुतम्। लीढं निवारयत्याशु शिशूनामुद्धतां तृषाम् ॥ ५४॥

हींग, सैंधानमक और तेजपात इनका चूर्ण बनाकर शहदमें मिलाकर चाटनेसे बालकोंकी अत्यन्त बढी हुई तृषा तत्काल शांत होती है ॥५४॥

शृङ्गीं समुस्तातिविषां विचूर्ण्य लेहं विदध्यान्मधुना शिशूनाम्। कासज्वरच्छर्दिभिरर्दितानां समाक्षिकां चातिविषां तथैकाम् ॥ ५५ ॥

काकडाशिंगी, नागरमोथा और अतीस इनका चूर्ण बनाकर शहद मिलाकर चटानेसे बालकोंकी खाँसी, ज्वर और वमन दूर होती है। अथवा केवल अतीसके ही चूर्णको शहदमें मिलाकर चटानेसे उपर्युक्त विकार दूर होते हैं॥ ५५ ॥

मुस्तकातिविषायासकणाशृङ्गीरजो लिहन्। मुच्यते मधुना बालः कासैः पञ्चभिरुत्थितैः ॥ ५६ ॥

नागरमोथा, अतीस, जवासा, पीपल और काकडाशिंगी इनका चूर्ण बनाकर शहदमें मिलाकर चाटनेसे बालकोंकी पाँचों प्रकारकी खाँसी दूर होती हैं।

क्षीरादस्य शिशोः कासं शुष्कं दृष्ट्वा सुदारुणम्। माषयूषं पिबेद्धात्री पिप्पलीघृतभर्जितम् ॥ ५७ ॥

जो बालक केवल दूधको पीता हो उसके यदि दारुण शुष्क खाँसी हो जाय तो उसकी धायको पीपल और घीसे भुनाहुआ उडदोंका यूष पीना चाहिये ॥५७ ॥

द्राक्षां पिप्पलिशुण्ठीनां चूर्णं माक्षिकसर्पिषा । लीढं निवारयेच्छीघ्रं कासं पञ्चविधं शिशोः ॥ ५८ ॥

दाख,पीपल और सोंठ इनका चूर्ण बनाकर शहद और घीमें मिलाकर चटानेसे बालकोंकी पांच प्रकारकी खाँसी शीघ्र दूर हो जाती है ॥ ५८ ॥

व्याघ्रीकुसुमसञ्जातकेशरैरवलेहिका । जग्ध्वापि चिरजं जातं शिशोः कासं व्यपोहति ॥ ५९ ॥

कटेरीके फूलोंकी केशरको पीसकर शहदमें मिलाकर चटानेसे बालकोंकी बहुत दिनोंकी पुरानी खाँसी दूर होती है ॥ ५९ ॥

धान्यं शर्करया युक्तं तंडुलोदकसंयुतम् । पानमेतत्प्रदातव्यं कासश्वासापहं शिशोः ॥ ६० ॥

धनियाँ और मिश्री इनके चूर्णको चावलोंके जलमें मिलाकर सेवन करानेसे बालकोंकी खांसी, श्वास और ज्वर नष्ट होता है ॥ ६० ॥

गुडोदकश्च क्वथितं व्योषसैन्धवसंयुतम् । सुखोष्णं पाययेद्बालं कासरोगप्रशान्तये ॥ ६१ ॥

त्रिकुटेका चूर्ण और सैंधानमक इनको गुड़के शर्बतमें पकाकर सुहाता सुहाता सेवन करानेसे बालकोंकी खाँसी शांत होती है ॥ ६१ ॥

कुलीरशृङ्गीचूर्णश्च मूलकस्य फलं तथा । युक्तोऽयं मधुसर्पिर्भ्यां लेहः श्वासापहः शिशोः ॥ ६२ ॥

काकडासिंगी और मूलीके फल इनके चूर्णको शहद और घीमें मिलाकर सेवन करनेसे बालकोंका श्वासरोग शमन होता है ॥ ६२ ॥

कृष्णादुरालभाद्राक्षा कर्कटाख्या तुगाह्वया । चूर्णिता मधुसर्पिर्भ्यां लीढा हन्ति शिशोर्गदान् ॥ श्वासं कासं सतमकं ज्वरं वापि नियच्छति ॥ ६३ ॥

पीपल, धमासा, दाख, काकडासिंगी और वंशलोचन इन सबको चूर्ण करके शहद और घीमें मिला कर चाटनेसे बालकोंके श्वास, खाँसी, तमक और ज्वरादिरोग नष्ट होते हैं ॥ ६३ ॥

द्राक्षा दुरालभा चैव पिप्पल्योऽथ हरीतकी । एतानि कृत्वा चूर्णानि योजयेन्मधुसर्पिषा ॥ ६४ ॥ त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा चूर्णमेतन्निषेवितम् । कासः श्वासश्च बालानां तमकश्चोपशाम्यति ॥ ६५ ॥

दाख, धमासा, पीपल और हरड सबको एकत्र चूर्ण करके शहद और घीमें मिलाकर तीन दिनतक या पाँच दिनतक सेवन करावे तो बालकोंकी खाँसी श्वास और तमक रोग शांत होता है ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

हिंगुकर्कटशृङ्गी च गैरिकं मधुयष्टिका । त्रुटिः क्षौद्रं नागरञ्च हिक्काश्वासविनाशनम् ॥ ६६ ॥

हींग, काकडासिंगी,गेरू,मुलैठी,छोटी इलायची, सोंठ और शहद इन सब औषधियोंका अवलेह बना कर सेवन करनेसे हिचकी और श्वास दूर होता है ॥ ६६ ॥

चातुर्जातकसंयुक्तो गव्यस्य शकृतो रसः । लेहोऽयं मधुना देयश्छर्दिप्रशमनः परः ॥ ६७ ॥

दालचीनी, इलायची, तेजपात और नागकेशर इनका चूर्ण, गायके गोबरका रस और शहद इन सबका एकत्र अवलेह बनाकर सेवन करनेसे बालकोंकी वमन दूर होती है ॥ ६७ ॥

नागरं पिप्पली पाठा भार्ङ्गी च मरिचानि च । लेहोऽयं मधुना कासश्लेष्मच्छर्दिनिषूदनः ॥ ६८ ॥

सोंठ, पीपल, पाढ, भारंगी और कालीमिरच इन सबको एकत्र चूर्ण करके शहदमें मिलाकर चाटनेसे खाँसी, कफ और वमन दूर होती है ॥ ६८ ॥

निशा कृष्णाञ्जनं लाजा शृङ्गीमरिचमाक्षिकैः । लेहः शिशोर्विधातव्यश्छर्दिकासरुजापहः ॥ ६९ ॥

हलदी, पीपल, रसौत, खीलें, काकडाशिंगी, कालीमिरच और शहद इनका अवलेह बनाकर बालकको चटानेसे बालकोंकी वमन और खाँसी दूर होती है ॥ ६९ ॥

पत्रैर्बदरचाङ्गेरीकाकमाचीकपित्थजैः। शिशो रुग्वम्यतीसारनाशनं मूर्द्ध लेपनम् ॥ ७० ॥

बेरके पत्ते, चाँगेरीके पत्ते, मकोयके पत्ते और कैथके पत्ते इनको एकत्र पीसकर शिरपर लेप करनेसे बालकोंकी पीडा सहित वमन और अतिसार नष्ट होता है ॥ ७० ॥

आम्रास्थिलाजसिन्धूत्थैः लेहक्षौद्रेण छर्दिनुत्। शिशोर्यष्टयूषणं पीतं बीजपूररसेन वा ॥ ७१ ॥

आमकी गुठली, खीलें और सैंधानमक इनको पीसकर शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे बालकोंकी वमन दूर होती है। अथवा मुलैठी और पीपलको पीसकर बिजौरेनींबूके रसके साथ सेवन करनेसे बालकोंकी वमन दूर होती है ॥ ७१ ॥

जंबूकतिन्दुकानाञ्च पुष्पाणि च फलानि च। घृतेन मधुना लीढ्वा मुच्यते हिक्कया शिशुः ॥ ७२ ॥

जामुन और तेंदूके फूल और फल इनको पीसकर घी और शहदमें मिलाकर चाटनेसे बालकका हिक्कारोग शांत होता है ॥ ७२ ॥

पिप्पलीमधुकानाञ्च चूर्णं समधुशर्करम्। रसेन मातुलुङ्गस्य हिक्काछर्दिनिवारणम् ॥ ७३ ॥

पीपल और मुलैठी इनका चूर्ण बनाकर शहद और मिश्रीके साथ मिलाकर विजौरेनींबूके रसके साथ सेवन करनेसे हिचकी और वमन दूर होती है ॥ ७३ ॥

चूर्णं कटुकरोहिण्या मधुना सह योजितम्। हिक्कां प्रशमयेत्क्षिप्रं छर्दिं चातिचिरोत्थिताम् ॥ ७४ ॥

कुटकीके चूर्णको शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे हिचकी और बहुत दिनोंकी उत्पन्न हुई वमन शीघ्र शमन होती है ॥ ७४ ॥

सुवर्णगैरिकस्यापि चूर्णानि मधुना सह। लीढ्वा सुखमवाप्नोति क्षिप्रं हि छर्दितः शिशुः ॥ ७५ ॥

पीले गेरूके चूर्णको शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे शीघ्रही बालक वमन रोगसे मुक्त होकर सुखको प्राप्त होता है ॥ ७५ ॥

विसर्पमहापद्मरोगके लक्षण।

विसर्पस्तु शिशोः प्राणनाशनो बस्तिशीर्षजः। पद्मवर्णो महापद्मो रोगो दोषत्रयोद्भवः ॥ ७६ ॥ शंखाभ्यां हृदयं याति हृदयाच्च गुदं व्रजेत् ॥ ७७ ॥

बालकके मस्तक और मूत्राशयमें तीनों दोषोंके प्रकोपसे प्राणोंका नाश करनेवाला लाल कमलके समान अत्यन्त लालरंगका विसर्परोग उत्पन्न होता है उसको महापद्मक कहते हैं। मस्तकमें उत्पन्न हुआ विसर्प कनपटियोंके द्वारा हृदयमें जाता है और हृदयमेंसे गुदामें जाता है, उसीप्रकार मूत्राशयमें उत्पन्न हुआ विसर्प गुदामें जाता है, और गुदामेंसे हृदयमें जाता है और हृदयमेंसे मस्तकमें जाता है ॥ ७६ ॥ ७७ ॥

उसकी चिकित्सा।

पटोलं त्रिफलारिष्टं हरिद्रां त्रिफलां पिबेत्। क्षतविस्फोटवीसर्पज्वराणां शान्तये शिशुः ॥ ७८ ॥

पटोलपत्र, त्रिफला और नीमकी छाल इनका क्काथ बनाकर पान करनेसे अथवा हलदी और त्रिफलेका क्काथ बनाकर पान करनेसे क्षत, विस्फोट, विसर्प और ज्वर शांत होता है ॥ ७८ ॥

शारिवोत्पलकह्लारभद्रश्रीमुस्तचन्दनैः। प्रपौण्डरीकमञ्जिष्ठायष्टीमधुकसर्षपैः। कुमाराणां प्रशस्तोऽयं लेपो वीसर्पनाशनः ॥ ७९ ॥

शारिवा, कमल, कमोदिनी, चंदन, नागरमोथा, लालचंदन, पुण्डेरिया, मजीठ, मुलैठी और सरसों इनको एकत्र पीसकर लेप करनेसे बालकोंका विसर्प रोग नष्ट होता है ॥ ७९ ॥

अभ्यङ्गविषये कार्यं बालानां पद्मकं घृतम् । विस्फोटरोगे निर्दिष्टं नात्र कार्या विचारणा ॥ ८० ॥

विस्फोटकरोगमें जो महापद्मक घृत कहा है, वह इस विसर्परोगमें भी निस्सन्देह बालकोंके अभ्यंगके लिये प्रयोग करना चाहिये ॥ ८० ॥

न्यग्रोधोदुम्बरोऽश्वत्थप्लक्षवेतसजम्बुजैः । त्वग्भिर्यष्ट्याह्वमञ्जिष्ठाचन्दनोशीरपद्मकैः ॥ ८१ ॥ श्लक्ष्णपिष्टैर्यथालाभं शिशोः कार्यं प्रलेपनम् । सदाहरागविस्फोटवेदनाव्रणशान्तये ॥ ८२ ॥

बड, गूलर, पीपल, पाखर, बेंत और जामनकी छाल, तथा मुलैठी, मजीठ, चन्दन, खस और पद्माख इनमेंसे जितनी औषधि मिलसके उनको लेकर बारीक पीसकर लेप करनेसे बालकोंकी व्रणकी दाह, लाली, बिस्फोटक, वेदना और व्रण शांत होते हैं ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

गृहधूमनिशाकुष्ठसर्जकेन्द्रयवैः शिशोः । चन्दनोशीरपद्मैश्च सिध्मापामाविचर्चिनुत ॥ ८३ ॥

घरका धुआँ , हलदी, कूठ, राल और इन्द्रजौ इनको पीसकर प्रलेप करनेसे बालकोंका विसर्परोग शमन होता है । अथवा चंदन, खस और पद्माख इनको एकत्र पीसकर लेप करनेसे सिध्म, पामा और विचार्चिकारोग नष्ट होता है ॥ ८३ ॥

वचाकुष्ठविडङ्गानां कोष्ठक्वाथावगाहनम् । कच्छूविचर्चिकाकंडूदद्रुभिर्मुच्यते शिशुः ॥ ८४ ॥

वच, कूठ और वायविडंग इनका काथ बनाकर उसमें कोष्ठपर्य्यंत बालकको स्नान करानेसे बालक कच्छू, विचार्चिका, कण्डू और दद्रुरोगोंसे मुक्त हो-जाता है ॥ ८४ ॥

तिलतंडुलयोर्नाडीमूलाभ्यां लेपनाद्द्रुतम् । बालानां ब्राह्मणीयष्टी रोगः शाम्यति साम्प्रतम् ॥ ८५ ॥

तिल और चावलोंको एकत्र पीसकर नाडीमूल अर्थात् नाभिपर लेप करनेसे अथवा भारंगी और मुलैठीको पीसकर लेप करनेसे बालकोंका नाडीमूल रोग दूर होता है ॥ ८५ ॥

कणोषणासिताक्षौद्रसूक्ष्मैला--सैन्धवैः कृतैः । मूत्रग्रहे प्रदातव्यः शिशूनां लेह उत्तमः ॥ ८६ ॥

पीपल, मिरच, मिश्री, शहद, छोटी इलायची और सैंधानमक इन सबको एकत्र मिलाकर अवलेह बनाकर मूत्रावरोधमें सेवन करानेसे बालकोंका मूत्ररोधरोग दूर होता है ॥ ८६ ॥

घृतेन हिंगुविश्वैला--हिंगुभार्ङ्गीरजो लिहन् । आनाहं वातिकं शूलं हन्यात्तोयेन वा शिशोः ॥ ८७ ॥ पिप्पलीत्रिफलाचूर्णं घृतक्षौद्रपरिप्लुतम् । रुदते त्रस्यते वापि लेहं दद्यात्सुखावहम् ॥ ८८ ॥

हींग, सोंठ और इलायची इनका चूर्ण करके घीमें मिलाकर सेवन करानेसे अथवा हींग और भारंगीका चूर्ण करके जलके साथ सेवन करानेसे बालकोंका आनाह और वातजनित शूल दूर होता है । पीपल और त्रिफलेका चूर्ण करके घी और शहदमें मिलाकर बालकोंको चटानेसे बालकोंका बहुत रोना और डरना दूर होता है ॥ ८७ ॥ ८८ ॥

छुच्छुन्दरमलो माषोहरिद्राबिल्वपत्रकम् । इन्द्रं शिरीषपत्रश्च धूमेनैतत्प्रयोजितम् ॥ निहन्ति रोदनं रात्रौ बालस्याशु न संशयः ॥ ८९ ॥

छछुन्दरकी विष्ठा, उडद, हलदी, बेलके पत्ते, इन्द्रजौ और शिरसके पत्ते इन सबकी धूनी देनेसे बालकोंका रात्रिमें रोना बंद होता है ॥ ८९ ॥

अथ कुकूणकके लक्षण ।

कुकूणकः क्षीरदोषाच्छिशूनामेव वर्त्मनि । जायते तेन तत्रेत्रं कंडूरश्च स्रवेन्मुहुः ॥ ९० ॥ शिशोः कुर्य्याल्ललाटाक्षिकूटनासावघर्षणम् । न शक्तोऽर्कप्रभां द्रष्टुं न वर्त्मोन्मीलनक्षमः ॥ ९१ ॥

दूधके दोषसे बालकोंके पलकोंमें कुकूणक रोग उत्पन्न होजाता है । जिससे नेत्रोंमें अत्यन्त पीडा, खुजली और स्राव होताहै । इस रोगसे बालक अपने मस्तकको, आँखोंके भागको और नाकके भागको घिसता है । सूर्य्यकी प्रभाके देखनेको और आंखोंके खोलनेको असमर्थ होता है ॥ ९० ॥ ९१ ॥

कुकूणककी चिकित्सा ।

बद्धगोशकृतोष्णेन कुकूणं स्वेदयेत्ततः ॥ ९२ ॥

गोबरको अग्निके द्वारा पकाकर फिर एक वस्त्रमें बांधकर स्वेद देनेसे बालकोंका कुकूणकरोग शमन होता है ॥९२॥

मातृस्तन्यकटुस्नेहकाञ्जिकैर्भावितो जयेत् । स्वेदाद्दीपशिखातप्तो नेत्रामयमलक्तकः ॥ ९३ ॥

लाखको प्रथम माताके दूध, कडुवे तेल और कांजीमें भावना देकर फिर दीपककी लोयसे तप्त कर स्वेद देनेसे बालकोंका कुकूणकरोग दूर होता है९३॥

द्विनिशालोध्रयष्ट्याह्वरोहिणीनिम्बपल्लवैः । कुकूणके हिता वर्त्तिः पिष्टैस्ताम्ररजोन्वितैः ॥ ९४ ॥

हलदी, दारुहलदी, लोध,मुलैठी, कुटकी, नीमके पत्ते और तांबेकी भस्म इन सबको एकत्र पीसकर बत्ती बनाकर लगावे यह बत्ती कुकूणक रोगमें अत्यन्त हितकारी है ॥ ९४ ॥

फलत्रिकं लोध्रपुनर्नवे च सशृङ्गवेरं बृहतीद्वयञ्च । आलेपनं श्लेष्महरं सुखोष्णं कुकूणके कार्य्यमुदाहरन्ति॥ ९५

त्रिफला,लोध, पुनर्नवा,अदरख और दोनों कटेरी इन सबको एकत्र पीसकर सुहाता २ लेप करनेसे कुकूणकरोग शांत होता है और कफ दूर होता है ९५

व्योषं सशृङ्गं समनःशिलालं करञ्जबीजञ्च सुपिष्टमेतत् । कण्वादिंतानामथ वर्त्मनान्तु श्रेष्ठं शिशूनां नयने विदध्यात् ॥ ९६ ॥

त्रिकुटा, काकडासिंगी, मनशिल, हरताल और करंजके बीज इन सबको एकत्र पानीमें पीसकर बालकोंके पलकोंपर लगानेसे कुकूणक रोग दूर होता है । यह औषध बालकोंके नेत्ररोगोंमें अत्यन्त हितकारी है ॥ ९६ ॥

स्वरसं वृद्धदारस्य माक्षिकेण समन्वितम् । आश्च्योतनेन बालानां कुकूणामयनाशनम् ॥ ९७ ॥

विधारेका स्वरस और शहद इन दोनोंको एकत्र मिलाकर आश्च्योतन करनेसे बालकोंका कुकूणकरोग शांत होता है ॥ ९७ ॥

कृमिघ्नालशिलादार्वीलाक्षागैरिककाञ्जिकैः । चूर्णाञ्जनं कुकूणे स्याच्छिशूनां पोथकीषु च ॥ ९८ ॥

वायविडंग, हरताल, मैनशिल, दारुहलदी, लाख और गेरू इन सबको चूर्ण करके कांजीमें पीसकर अंजन बनावे । यह अञ्जन बालकोंके पोथकीगत कुकूणक रोगमें अत्यन्त हितकारी है ॥ ९८ ॥

मनःशिला शङ्खनाभिः पिप्पल्योऽथ रसाञ्जनम् । वर्त्तिः क्षौद्रेण संयुक्ता बालसर्वाक्षिरोगनुत् ॥ ९९ ॥

मैनशिल, शंखकी नाभि, पीपल और रसौत इन सबको एकत्र पीसकर शहदमें मिलाकर बत्ती बनावे । यह बत्ती बालकोंके सब प्रकारके नेत्ररोगोंको दूर करनेवाली है ॥ ९९ ॥

अथ पारिगर्भिकका निदान ।

मातुः कुमारो गर्भिण्याः स्तन्यं प्रायः पिबन्नपि । कासाग्निसादवमथुतन्द्राकार्श्याऽरुचिभ्रमैः ॥ १०० ॥ युज्यते कोष्ठवृद्ध्या च तमाहुः पारिगर्भिकम् । रोगं परिभवाख्यश्च युञ्ज्यात्तत्राग्निदीपकम् ॥ १०१ ॥

प्रायः गर्भिणीमाताका दूध पीनेसे बालकों खाँसी, मंदाग्नि, वमन,तन्द्रा,अन्नमें अरुचि,शरीरमें दुर्बलता और भ्रांति होती है तथा पेट बढ़जाता है इसमें सुई चुभाने सरीखी पीडा होतीहै।इस रोगको पारिगर्भिक

और परिभवभी कहतेहैं । इस रोगमें अग्निदीपन करनेवाले पदार्थोंको प्रयोग करे ॥ १०० ॥ १०१ ॥

पारिगर्भिककी चिकित्सा ।

पारिगर्भिकरोगे तु युज्यते वह्निदीपनम् ॥ १०२ ॥

इस पारिगर्भिक रोगमें अग्निको दीपन करनेवाली चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १०२ ॥

अथ तालुकण्टकरोगका निदान ।

तालुमध्ये कफः क्रुद्धः कुरुते तालुकण्टकम् । तेन तालुप्रदेशस्य निम्नता मूर्ध्नि जायते ॥ १०३ ॥ तालुपातः स्तनद्वेषः कृच्छ्रात्पानं शकृद्द्रवम् । तृडक्षिकण्ठास्यरुजा ग्रीवादुर्धरता वमिः ॥ १०४ ॥

तालुके मांसमें कुपित हुआ कफ तालुकंटक नामक रोगको उत्पन्न करता है । इस रोगसे शिरमें तालुआ नीचेको झुक जाता है अर्थात् लटक आता है और शिरमें गढहा पडजाता है इस कारण बालक माताके दूधको नहीं पीता अथवा बडे कष्टसे थोडा थोडा पीता है, दस्त पतला होता है । तृषा लगती है, आँखोंमें, गलेमें तथा मुखमें पीडा होती है, बालक गरदनको ऊपरको घुमाता है और वमन करता है ॥ १०३ ॥ १०४ ॥

तालुपाकरोगकी चिकित्सा ।

तालुपाके यवक्षारं मधुना प्रतिसारणम् ॥ १०५ ॥

तालुपाकरोगमें जवाखारको शहदमें मिलाकर प्रतिसारण करे अर्थात् घिसे ॥ १०५ ॥

हरीतकीवचाकुष्ठं कल्कं माक्षिकसंयुतम् । पीत्वा कुमारस्स्तन्येन मुच्यते तालुकण्टकात् ॥ १०६ ॥

हरड, वच और कूठ इनका कल्क बनाकर शहदमें मिलाकर माताके दूधके साथ पिलानेसे बालक तालुकण्टकरोगसे मुक्त होता है ॥ १०६ ॥

शारिवातिललोध्राणां कषायो मधुकस्य च । विस्राविते मुखे शस्तो धावनार्थं शिशोः सदा ॥ १०७ ॥

शारिवा, तिल, लोध और मुलैठी इनका क्वाथ बनाकर जिन बालकोंके मुखसे स्राव होता हो उनको मुखधावनके लिये प्रयोग कराना चाहिये ॥ १०७ ॥

मुखपाके तु बालानामाम्रसारमयोरजः । गैरिकं क्षौद्रसंयुक्तं भेषजं सरसाञ्जनम् ॥ १०८ ॥

बालकोंके मुखपाकरोगमें आमकी मींग, लोहचूर्ण, गेरू और रसौत इन सबको शहदमें मिलाकर प्रयोग करे ॥ १०८ ॥

अश्वत्थत्वग्दलक्षौद्रैर्मुखपाके प्रलेपनम् । दार्वीयष्ट्याभयाजाजिपत्रक्षौद्रैस्तथा परम् ॥ १०९ ॥

पीपलकी छाल और पत्तोंको शहदमें पीसकर मुखपर प्रलेप करनेसे मुखपाकरोग दूर होता है । अथवा दारुहलदी, मुलैठी, हरड, जीरा और तेजपात इन सबका चूर्ण करके शहदमें मिलाकर लेप करनेसे मुखपाक रोग दूर होता है ॥ १०९ ॥

गुदपाके तु बालानां पित्तघ्नीं कारयेत्क्रियाम् । रसाञ्जनं विशेषेण पानालेपनयोर्हितम् ॥ ११० ॥

बालकोंके गुदपाकरोगमें पित्तनाशक चिकित्सा करनी चाहिये । तथा विशेष करके रसौतको पान और लेपनमें प्रयोग करना चाहिये ॥ ११० ॥

शंखयष्ट्यञ्जनैश्चूर्णं शिशूनां गुदपाकनुत् ॥ १११ ॥

शंख, मुलैठी और रसौत इनका चूर्ण करके सेवन करानेसे बालकोंका गुदपाक रोग दूर होता है ॥ १११ ॥

गोजिह्वादन्तकालेपः पेयं वा सितचन्दनम् । शंखसौवीरयष्ट्याह्वैर्लेपो देयोऽहिपूतने ॥ ११२ ॥

गोजिया और दंती इनको एकत्र पीसकर लेप करनेसे अथवा सफेद चंदनको पीसकर पान करनेसे अथवा शंख, सफेद चंदन और मुलैठी इनको एकत्र पीसकर लेप करनेसे अहिपूतन रोग दूर होता है ११२

गुदपाकोत्कटे कुर्याद्रक्तस्रावं जलौकसा ॥ ११३ ॥

उत्कटगुदपाकरोगमें जौंकके द्वारा रक्तस्राव कराना चाहिए ॥ ११३ ॥

अथ व्रणपश्चात्तकरोगके लक्षण ।

दुष्टं मलादिभिर्मातुः स्तन्यं संपिबतः शिशोः । यदा हि कुपितं पित्तं गुदं समभिधावति ॥ ११४ ॥ तदा सञ्जायते तत्र जलौकोदरसन्निभः । व्रणः सदाह आरक्तो ज्वरकासकरः परः ॥ ११५ ॥ करोति पीतकश्चापि वर्चस्तंभं भवेदपि । व्रणः पश्चात्तकं नाम व्याधिः परमदारुणः ॥ ११६ ॥

माताके वातादिदोषोंसे दूषित दूधको पीनेसे बालकके पित्त कुपित होकर गुदामें प्राप्त होता है, उससे जौंकके पेटके समान गुदामें अत्यन्त लाल रंगकी दाह, ज्वर और खाँसीयुक्त व्रण उत्पन्न होता है । उसमें मल पीला और स्तम्भित होता है । इसको व्रणपश्चात्तकरोग कहते हैं, यह अत्यन्त दारुण है ॥ ११४--११६ ॥

व्रणपश्चात्तकी चिकित्सा ।

तत्र सम्पातयेद्युक्त्या जलौकस उदारधीः । क्षीरवृक्षकषायेण किञ्चिदुष्णेन धावयेत् । ॥ ११७ ॥

इस व्रणपश्चात्तकरोगमें श्रेष्ठवैद्य युक्तिपूर्वक जौंक लगवाकर रुधिर निकलवावे । पश्चात् पंचक्षीरीवृक्षोंके मंदोष्ण क्काथके द्वारा गुदाको धोवे ॥ ११७ ॥

पिष्ट्वा मधुरकं वापि लेपः पश्चात्तके हितः । चन्दनं शारिवे द्वे च शंखनाभिसमायुतम् ॥ पश्चात्तके प्रलेपोऽयमेषां लेहश्च शस्यते ॥ ११८ ॥

व्रणपश्चात्तकरोगमें मुलैठीको पीसकर लेप करना अथवा चन्दन, दोनों शारिवा और शंखनाभि इन सबको एकत्र पीसकर प्रलेप करना अथवा इनका अवलेह बनाकर सेवन कराना उपयोगी है ॥११८॥

असनस्य तु पुष्पाणि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् । गुटिकां कारयेद्वैद्यस्तां च भक्तस्य वारिणा ॥ एनां पश्चात्तके दद्याद्बालेषु मतिमान्भिषक् ॥ ११९ ॥

विजयसारके फूलोंका बारीक चूर्ण करके भातके जल (मांड) में गोली बनालेवे । इन गोलियोंको सेवन करानेसे बालकोंका व्रणपश्चात्तरोग शांत होता है ॥ ११९ ॥

अलम्बुजाजटाकल्कः सर्जचूर्णसमन्वितः । बहुधा कटुतैलेन मिश्रयित्वा च पाचितम् ॥ सन्दद्यात्तन्तुलीभावं गते विच्छर्यां प्रलेपनम् ॥१२०॥

गोरखमुण्डीकी जड़का कल्क बनाकर उसमें रालका चूर्ण डालकर उसको कडवे तेलमें मिलाकर पकावे । जब पकते पकते उसमेंसे तारसे छूटने लगे तब उतारकर उसका लेप करे । इससे विच्छीरोग दूर होता है ॥ १२० ॥

अभ्यज्य तिलतैलेन सर्जचूर्णावचूर्णिताम् । विच्छिन्नश्येत्स्थिरैरण्डबीजाभ्याश्च प्रलेपनात् ॥ १२१ ॥

तिलके तेलमें रालका चूर्ण मिलाकर मालिश करनेसे अथवा शालिपर्णी और अण्डके बीजोंको एकत्र पीसकर प्रलेप करनेसे विच्छिन्न रोग दूर होता है ॥ १२१ ॥

आमलक्याः पलान्यष्टौ गोमूत्रे सप्त भावयेत् । भावयित्वा तपेत्पश्चाद्विच्छिर्लिप्ता प्रशाम्यति ॥ १२२ ॥

आठपल आमलोंको गोमूत्रमें सात बार भावना देकर पश्चात् धूपमें भावना देवे । फिर उसका लेप करे तो विच्छिन्नरोग शांत होता है ॥ १२२ ॥

मरिचं नवनीताढ्यं शोथघ्नं भक्षयेच्छिशुः । मुस्ताकूष्माण्डबीजानि भद्रदारुकलिङ्गकान् ॥ पिष्ट्वा तोयेन लेपोऽयं शोथघ्नः परमः शिशोः ॥१२३॥

कालीमिरचको नैनी घीमें मिलाकर सेवन करनेसे बालकोंकी सूजन दूर होती है । अथवा नागरमोथा, पेठेके बीज, देवदारु और इन्द्रजौ इनको जलमें पीसकर लेप करनेसे बालकोंकी सूजन दूर होती है ॥ १२३ ॥

अम्लकाञ्जिकसंपिष्टं शतपुष्पाससैन्धवम् । कुष्ठं स्नेहं तदत्युष्णं लोमशोद्वर्त्तनं शिशोः ॥ १२४ ॥

सौंफ, सैंधानमक और कूठको काँजीमें पीसकर फिर तेलमें मिलाकर गरम करके बालकोंके रोमोंके ऊपर उबटन करे ॥ १२४ ॥

मसूरं गृहपानीये विरसं वाथ पेषितम् । सनिशं वाथवा तद्वद्यवचूर्णं शिशोर्हरेत् ॥ १२५ ॥

मसूरको बासी काँजीमें पीसकर लेप करनेसे अथवा हलदी और जौका चूर्ण करके लेप करनेसे बालकोंके त्वचाके विकार शांत होते हैं ॥ १२५ ॥

अथ शय्यामूत्रचिकित्सा ।

अङ्गुलीग्रहपादो यः स्थाल्याम्भक्तं निवेश्य तत् । कृतमूत्रार्थभूभागे जानुभ्यां धरणीं गतः ॥ तण्डुलोत्थाय यः खादेत्स शय्यामूत्रणं त्यजेत् ॥१२६॥

जो बालक सोते समय शय्यापर मूत रहते हैं. अब उनकी चिकित्सा कहते हैं । प्रथम उस बालकको मूतनेके स्थानमें घुटनोंके द्वारा बैठाल कर उसकी पाँवोंकी अँगुलियोंको हाथसे पकड़वावे । फिर एक थालीमें भात भरकर उसमेंसे चावलोंको उठाकर जो बालक खाय तो वह शय्यापर पेशाब करना छोड़ देता है ॥ १२६ ॥

कृतमूत्रार्थभूभागे मृदं भृष्ट्वा तुषोदके । संचूर्ण्य मधुसर्पिभ्र्यां लीढ्वा तल्पविमूत्रणम् ॥ न करोति नरो जातु भ्रष्टमेनं निरन्तरम् ॥ १२७ ॥

जिस स्थानमें बालक मूतता हो उस स्थानकी मिट्टीको लेकर कांजीमें भूनकर चूर्ण करले । उस चूर्णको शहद और घृतमें मिलाकर सेवन करानेसे बालक कदापि शय्यापर नहीं मूतता है इस भ्रष्ट योगको कभी करे निरन्तर न करे ॥ १२७ ॥

इन्द्रगोपं ससिद्ध्यर्थं मधुसर्पिःसमायुतम् । पक्कं कच्छपतैले तु पुष्ट्यायुर्बलवर्द्धनम् ॥ १२८ ॥

इन्द्रगोप (वीरबहूटी) और सफेद सरसोंको कछुवेके तेलमें पकाकर शहद और घृतमें मिलाकर सेवन करावे । यह औषधि बालकोंके पुष्टि, आयु और बलको बढानेवाली है ॥ १२८ ॥

उपशीर्षरोगका निदान ।

कपाले योऽनिलो दुष्टो गर्भे तस्य च जायते । सवर्णो निर्व्यथः शोथस्तं विद्यादुपशीर्षकम् ॥ यथा दोषोद्भवं विद्यात्पिडिकार्बुदविद्रधिम् ॥ १२९ ॥

बालकोंके कपालमें वायुके दुष्ट होजानेसे उसके भीतर उसीके रंगकी पीड़ारहित जो सूजन होती है उसको उपशीर्षकरोग कहते हैं । इसमें यथादोषानुसार पिड़िका, अर्बुद और विद्रधि आदि निश्चय करे ॥ १२९ ॥

उपशीर्षरोगकी चिकित्सा ।

उपशीर्षे नावनं शस्तं वातव्याधिचिकित्सितम् । पक्के विद्रधिवत्तस्मिन्क्रमं कुर्य्याद्यथोदितम् ॥ १३० ॥

उपशीर्षरोगमें नस्य प्रयोग करे और वातव्याधिके समान चिकित्सा करे और उसके पकनेपर यथादोषानुसार विद्रधिके समान चिकित्सा करे १३०

व्योषशिवोग्रारजनीकल्कं वा पीतमथ पयसा । उल्वं निःशेषं कुरुते पटुतां बालस्य चात्यन्तम् ॥ १३१ ॥

त्रिकुटा, हरड, वच और हलदी इनका कल्क बनाकर दूधके साथ पान करनेसे जरायुका दोष शमन होता है और बालकको अत्यन्त पटुता उत्पन्न होती है ॥ १३१ ॥

स्रोतस्सु कफरुद्धेषु शिशोः शीतादिरेचनात् । ज्वरेऽरुचौ प्रतिश्याये कासश्वसनसम्भवे ॥ १३२ ॥ प्रशुध्याति यदा बालः स्वस्थः स्निग्धमुखेक्षणः । पञ्चकोलकतिक्तानां चूर्णं मधुघृतं युतम् ॥ तदा तस्य प्रयोक्तव्यं ज्वरारुच्यादिशान्तये ॥ १३३ ॥

बालकोंके ज्वर, अरुचि, प्रतिश्याय, खाँसी और श्वासादि रोगोंमें शीतल आदि औषधियोंके द्वारा विरेचन देनेसे शरीरके स्रोतोंमें कफके रुक जानेपर बालक सूखने लगता है । परन्तु वह ऊपरसे स्वस्थ दीखता है और उसके मुख तथा नेत्र स्निग्ध होते हैं। ऐसी अवस्थामें बालकको पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ और कुटकी इनका चूर्ण बनाकर शहद और घृतमें मिलाकर सेवन करावे इससे ज्वर और अरुचि आदि रोग शांत होते हैं ॥ १३२॥ १३३ ॥

सैन्धवं व्योषशार्ङ्गेष्टापाठागिरिकरञ्जकान् । शुष्यते मधुसर्पिर्भ्यां गुडूच्यादिश्च योजयेत् ॥ १३४ ॥

सैंधानमक,त्रिकुटा, बड़ीकरंज,पाढ और पर्वतीय करंज इनको एकत्र पीसकर शहद और घीमें मिलाकर सेवन करनेसे अथवा गुडूच्यादि वर्गकी औषधियोंको सेवन करनेसे बालकोंका सूखना दूर होता है ॥ १३४ ॥

यदा तु दुर्बलो बालः क्षुधया पीडितोऽग्निवान् । विदारीकन्दगोधूमयवचूर्णं घृतप्लुतम् । पाययेत्तु च क्षीरं शृतं समधुशर्करम् ॥ १३५ ॥

जो बालक दुर्बल हो और उसकी जठराग्नि अत्यंत बढ गई हो तथा जो निरंतर क्षुधासे पीड़ित हो तो उसको विदारीकंद, गेहूँ और जौका चून इन सबको एकत्र घृतमें मिलाकर सेवन करावे और ऊपरसे औटाये हुए दूधमें शहद, खाँड और घी मिलाकर पान करावे ॥ १३५ ॥

दन्तरोगका निदान ।

दन्तमूलाश्रितो वायुर्दन्तवेष्टान्विशोषयन् । यदा शिशोः प्रकुपितो नोत्तिष्ठन्ति तदा द्विजाः ॥ १३६ ॥

जब बालकोंके दाँतोंकी जड़में स्थित वायु दन्तवेष्टों (मसूढों) को सुखाकर कुपित होती है तब बालकोंके दाँत नहीं जमते हैं ॥ १३६ ॥

दन्तरोगकी चिकित्सा ।

दन्तपालिन्तु मधुना चूर्णेन प्रतिसारयेत् । धातकीपुष्पपिप्पल्योर्धात्रीफलरसेन वा ॥ १३७ ॥

दंतपालीको चूर्णमें शहद मिलाकर उससे घिसे । अथवा धायके फूल, पीपल और आमलोंका रस इनको एकत्र मिलाकर लगावे ॥ १३७ ॥

लावतित्तिरवल्लूरजःपुष्परसप्लुतम् । द्रुतं करोति बालानां दन्तं केसरवन्मुखम् ॥ १३८ ॥

लवा और तीतरके मांसके चूर्णको धायफूलोंके रसमें भावना देकर सेवन करनेसे बालकोंके तत्काल दाँत उत्पन्न होजाते हैं और मुख केसरके समान होजाता है ॥ १३८ ॥

अथाकालदन्तोत्पातके लक्षण ।

दन्तोत्पातभवे रोगे न बालमतिपीडयेत् । पाते दन्ते हि शाम्यन्ति स्वयं तन्द्तका गदाः ॥ १३९ ॥

दाँत निकलनेके समय होनेवाले रोगोंमें बालकको अत्यन्त पीडित नहीं करे अर्थात् विशेष यत्न नहीं करे, क्योंकि दाँतोंके निकल आनेपर वे सम्पूर्णरोग अपने आप शांत होजाते हैं ॥ १३९ ॥

सद्यो जातस्य दृश्येत यस्य दन्तस्य सम्भवः । तं बालं राक्षसं विद्यात्सर्वलोकभयावहम् ॥ अचिरेणैव कालेन माता तस्य विनश्यति ॥ १४० ॥

जिस तत्कालके उत्पन्नहुए बालकके दांत दीखें अर्थात् जो बालक दाँतोंसहित जन्मे उस बालकको राक्षसके समान जानना चाहिए । वह सम्पूर्ण मनुष्योंके लिए भयंकर होता है । और उस बालककी माता थोडे ही समयमें मरजाती है ॥ १४० ॥

एकमासे द्विमासे च त्रिमासे दन्तदर्शनात् । पिता तस्य विनश्येत वैवस्वतसमो हि सः ॥ १४१ ॥

जिस बालकके जन्मसे एक महीने पश्चात् अथवा दो महीनेके पश्चात् या तीन महीनेमें दांत निकलें तो उसका पिता मरजाता है । उस बालकको यमके समान जानना ॥ १४१ ॥

चतुर्थे भ्रातरं हन्याद्यदा दंतस्य दर्शनात् । मासे तु पञ्चमे हन्यान्मातरं भ्रातरं तथा ॥ १४२ ॥

जिसके चौथे महीनेमें दांत निकले तो उस बालकका भ्राता मरजाता है। जिसके पांचवें महीनेमें दांत निकलें उसकी माता और भ्राता दोनों मरजाते हैं ॥ १४२ ॥

षष्ठे मासे तु दन्तस्य दर्शनं हि यदा भवेत् । मातापित्रोर्धनश्चैव नष्टं भवति निश्चितम् ॥१४३॥

जिस बालकके छठे महीनेमें दाँत निकलें उसके माता पिताका और धनका नाश होता है ॥ १४३॥

सप्तमे यदि दृश्येत दन्तानां हि समुद्भवः । शिशोर्वा तपते चैव दासी दासान्गुरूंस्तथा ॥ १४४ ॥

जो बालकके सातवें महीनेमें दांत निकलें तो उसके दासी दास ओर गुरुजन आदि सब आपत्ति भोगते हैं ॥ १४४ ॥

अष्टमे नवमे चैव दशमैकादशे तथा। द्वादशे त्रयोदशे चैव तथा चैव चतुर्दशे ॥ दन्ताश्चैव हि दृश्यन्ते तदा दन्ताः शुभावहाः ॥ १४५ ॥

जिस बालकके आठवें, नवमें, दशवें, ग्यारहवें, बारहवें, तेरहवें और चौदहवें महीनेमें दांत निकलते हैं तो वे दांत शुभ होते हैं ॥ १४५ ॥

अथ प्रायश्चित्त ।

सदन्तो जायते बालो जातेऽप्यस्य द्विजोद्भवः । कुर्वन्ति तस्मिन्नुत्पाते शान्तिं च द्विजजातयः ॥ १४६ ॥

जो बालक दांत सहित उत्पन्न हो अथवा जिसके उत्पन्न होते ही दांत निकल आवें तो उसके अनेक उत्पात होते हैं।उन उत्पातोंकी शांतिके लिये ब्राह्मण आदिके द्वारा शांति करावे ॥ १४६ ॥

शिशुं सदक्षिणं दद्यान्नैगमेषश्च पूजयेत् । वत्सस्य मधुलाजानां प्राङ्मुखं दधिदीपयोः ॥ चुम्बेत्कुमारं त्रीन्वारान्प्रायश्चित्तमिदं स्मृतम्॥१४७॥ नौकामारोहयेद्बालं सह धात्र्या गजोत्तमम् । भोजयेद्भोजनं धात्रीं सर्पिषा पयसाऽथवा ॥ १४८ ॥

दक्षिणाके साथ बालकको दे देवे और नैगमेषग्रह की पूजा करे। फिर पूर्वकी ओर मुँह करके दही और दीपकको रख कर बालकको शहद और खीलें सेवन करावे तथा तीन बार बालकको चूँबे। इस प्रकार प्रायश्चित्तविधान कहा है। बालकको धायके साथ नौका (नाव) में अथवा हाथीपर चढावे और धायको दूधके साथ अथवा घृतके साथ भोजन करावे ॥ १४७ ॥ १४८ ॥

अथ दन्तदंष्ट्रके लक्षण ।

रूक्षाशिनो हि बालस्य चालयत्यनिलः शिराः । हन्वाः शय्याप्रसुप्तस्य दन्तैः शब्दं करोत्यतः ॥ १४९ ॥

रूखे भोजन करनेवाले बालककी ठोड़ीकी शिराओंमें वायु प्राप्त होकर शय्यापर सोते समय बालक दाँतोंको चबाया करता है ॥ १४९ ॥

दन्तदंष्ट्रकी चिकित्सा ।

कर्कटशाकविपक्वं क्षीरेण चरणतललेपनादचिरात् । दन्तदंष्ट्रागतशब्दं शमयति बहुधैव दृष्टमिदम् ॥१५०॥

काकडाशिंगी और सागोनके द्वारा दूधको पकाकर उस दूधका पाँवोंके तलुवेमें लेप करनेसे सोते समय बालकोंका दाँतोंका चबाना बहुत शीघ्र दूर होता है यह अनेक बारका अनुभव किया हुआ है ॥१५०॥

अन्यरोग ।

योषिद्भ्यो वत्सरादूर्ध्वं बालो नो याति पोषताम् । मन्दाग्निर्बहुविण्मूत्रो दृश्यमानास्थिपञ्जरः ॥ १५१ ॥ शुष्कः स्थिरमहद्रोगः पूर्वन्तं मृदु शोध्य च । कृष्णास्थिहृत्पयो मांसं वस्तौ स्नेहं च योजयेत् ॥ १५२ ॥

यदि एक वर्षका बालक होनेपरभी स्त्रियोंके द्वारा पुष्टिको प्राप्त नहीं हो तथा मंदाग्नि, मल और मूत्रकी अधिक प्रवृत्ति हो एवं सम्पूर्ण शरीर सूखजाय केवल अस्थिपञ्जर मात्र दीखे तो वह स्थिर सूखेका महाभयंकर रोग होता है। उसमें बालकको प्रथम मृदु शोधन कराकर पश्चात् बस्तिके द्वारा पारल

और हडसंहारीके चूर्ण तथा दूध और मांसको प्रयोग करे और स्नेहपान करावे ॥ १५१ ॥१५२ ॥

अश्वगन्धाद्यघृत ।

पादकल्केऽश्वगन्धायाः क्षीरे दशगुणे पचेत्। घृतं पेयं कुमाराणां पुष्टिकृद्बलवर्द्धनम् ॥ १५३ ॥

असगंधके ८ तोले कल्कके साथ दशगुने दूधमें घृतको पकावे। यह घृत बालकोंको पिलानेसे पुष्टि और बलकी वृद्धि होती है ॥ १५३ ॥

रास्नाद्यघृत ।

रास्नाश्वगन्धाकाकोलीपयस्यामुद्गपर्णिभिः। विडङ्गजीरकाभ्याश्च घृतं त्वृषभकेण च ॥ शिशूत्तमाङ्गनिर्यूहे सिद्धं पुष्टिविवर्द्धनम् ॥ १५४ ॥

रायसन, असगंध, काकोली, क्षीरकाकोली, मुगवन, वायविडंग, जीरा, कालाजीरा और ऋषभक इनके क्काथमें घृतको पकावे। इस घृतको बालकोंके शिरपर प्रयोग करनेसे पुष्टि और वृद्धि होती है१५४

गौर्य्याद्यघृत ।

गौरियष्टीवचालोध्रं पर्ण्यौ राजादनं सिता। चन्दनं पद्मकं लाक्षा सपद्मं कुमुदोत्पलम् ॥ १५५ ॥ जीवकर्षभकौ मेदा काकोलीशारिवाद्वयम्। पश्चत्वग्दशमूलाम्बुक्षीरे प्रस्थं घृतं पचेत् ॥ १५६ ॥ योजितं पित्तवीसर्पे मुखपाके ग्रहार्त्तिषु। शस्तं गौर्यादिकं नाम बालानां सर्वरोगनुत् ॥१५७॥

हलदी, मुलैठी, वच, लोध्र, शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, खिरनी, मिश्री, चन्दन, पद्माख, लाख, कमल, कमोदिनी, नीलकुमुद, जीवक, ऋषभक, मेदा, काकोली, दोनों शारिवा, पञ्चक्षीरीवृक्षोंकी छाल और दशमूलकी औषधियां इन सबको एक २ कर्ष लेकर द्रोण जलमें क्काथ बनाकर उसमें और दूधमें एक प्रस्थ घृतको पकावे। यह गौर्य्याद्यनामक घृत-पित्तरोग, विसर्प रोग, मुखपाक और ग्रहकी पीडामें हितकारी तथा सर्वप्रकारके बालकोंके रोगोंको नष्ट करनेवाला है ॥ १५५-१५७ ॥

लाक्षाद्यघृत ।

लाक्षाकुष्ठविडङ्गानि सरलं रजनीद्वयम्। सूक्ष्मैलापद्मकं लोध्रं पद्मकं नागकेशरम् ॥ १५८ ॥ दधित्थतुत्थशैरीषशैरेयोद्दालपत्रकम्। घृतप्रस्थं पचेदेतैर्यावत्पाकश्च गच्छति ॥ १५९॥ कीटाखुसर्पदष्टेषु स्फोटेषु विविधेषु च। विसर्पेषु कुमाराणां लूतामूत्रकृतेषु च ॥ गण्डमालासु नारीषु सर्पिरेतद्यथामृतम् ॥ १६० ॥

लाख, कूठ, वायविडंग, धूपसरल, हलदी, दारुहलदी, छोटीइलायची, पद्माख, लोध, कमल, नागकेशर, कैथ, तूतिया, शिरस, नीली कटसरैया और लिसोडेके पत्ते इनके क्काथके द्वारा घृतको पकावे। जब उत्तम प्रकारसे पककर तैयार होजावे तब उतार लेवे। यह घृत-कृमि, आखु और सर्पविषमें, अनेक प्रकारके स्फोटक, विसर्परोग, बालकोंके रोग, लूता, मूत्ररोध, गण्डमाला और स्त्रियोंके रोगोंमें अमृतके समान है ॥ १५८ ॥ १५९ ॥ १६० ॥

चांगेरीघृत ।

अजाक्षीरसमं सर्पिश्चांगेरीस्वरसाढके। समङ्गाधातकीलोध्रं कपित्थोत्पलसैन्धवैः ॥ १६१ ॥ सव्योषकुष्ठबिल्वाब्दैः पिष्टैः प्रस्थोन्मितं घृतम्। पचेद्ग्रहण्यतीसारान्हन्ति पथ्यभुजः शिशोः ॥ १६२ ॥

बकरीका दूध १ प्रस्थ, घृत १ प्रस्थ, चांगेरी(नोनिया)का स्वरस १ आढक परिमाण तथा कल्कके लिये मजीठ, धायके फूल, लोध, कैथ, कमल, सैंधानमक, त्रिकुटा, कूठ, बेलगिरी और नागरमोथा इन प्रत्येकको दो २ तोले लेकर कल्क बनाकर सबको एकत्र करके घृतको पकावे यह घृत-बालकोंकी संग्रहणी और अतिसारको दूर करता है। किन्तु इसपर बालकोंको पथ्यसे रहना योग्य है ॥ १६१ ॥ १६२ ॥

पाठाद्यघृत ।

पाठामतिविषां कुष्ठं सरलं देवदारु च। द्विपिप्पल्यौ तेजवती चित्रकं

विश्वभेषजम् ॥ १६३ ॥ उभे हरिद्रे सरलं फलानि कुटजस्य च । गण्डीरीमजमोदाश्च विडङ्गं कटुरोहिणीम् ॥ १६४ ॥ वचां सर्पसुगन्धाश्च श्रेयसीं मरिचानि च । मातुलुङ्गस्य मूलानि दाडिमस्य रसेन तु ॥ १६५॥ श्लक्ष्णपिष्टानि संयोज्य क्षीरे सर्पिर्विपाचयेत् । मृद्वग्निर्यः कुमारः स्यात्क्रिमिकोष्ठश्च यो भवेत् ॥ १६६ ॥ अरोचकगृहीतश्च तथा यश्चातिसार्यते । एतत्सर्पिः प्रयोक्तव्यं कुमारो बलवान् भवेत् ॥ १६७ ॥ पाण्डुरोगाच्च गुल्माच्च तथा श्वयथुसश्चयात् । कृशभावाच्च दैन्याच्च स्वरभेदात्तथैव च ॥ भस्माग्निवर्णभेदाच्च क्षिप्रमेव विमुच्यते ॥ १६८ ॥

पाढ,अतीस, कूठ,धूपसरल, देवदारु, पीपल,गजपीपल, तेजबल, चीता, सोंठ, हलदी, दारुहलदी, सुगन्धतृण, विजौरा, इन्द्रजौ, थूहर, अजमोद, वायविडंग, कुटकी, वच, नागगन्धा अथवा नागजिह्वा, वा नागदौन, हरड़, कालीमिरच और बिजौरेनिंबूकी जड इन सबको एकत्र अनारके रसमें बारीक पीसकर इस कल्कके द्वारा दूधमें घृतको पकावे। यह घृत जिन बालकोंकी अग्नि मन्द हो, जिनके कोठेमें कृमि हो गये हों, जो अरुचि, अतीसारसे पीडित हों तथा पांडुरोग,गुल्म, सूजन, कृशता,दीनता और स्वरभेदसे दुःखित हों ऐसे बालकोंको यह घृत सदैव प्रयोग कराना चाहिये । इस घृतको सेवन करनेसे बालकोंकी भस्माग्नि और वर्णभेद शीघ्र दूर होजाता है तथा बलकी वृद्धि होती है ॥ १६३-१६८ ॥

सोमघृत ।

सिद्धार्थकवचाब्राह्मीशङ्खपुष्पीपुनर्नवाः। पयस्यामधुयष्ट्याह्वकटुतैलफलत्रयम् ॥ १६९ ॥ शारिवे रजनीपाठाभृङ्गदारुसुवर्चलाः । मञ्जिष्ठात्रिफलाश्यामावृषपुष्पं सगैरिकम् ॥१७०॥ एभिः पक्वा घृतप्रस्थं सम्यङ्मन्त्राभिमन्त्रितम् । द्विमासं गर्भिणी नारी षण्मासानुपयोजयेत् ॥ १७१ ॥ सर्वज्ञं जनयेत्पुत्रं सर्वामयविवर्जितम् । न ग्रहैरभिभूयेत बलवर्णान्वितः सुखी॥१७२॥ अस्य प्रयोगात्कुक्षिस्थः स्फुटवाग्व्याहरत्यपि । योनिदुष्टाश्च या नार्यः शुक्रदुष्टाश्च ये नराः॥१७३॥ वन्ध्यापि लभते पुत्रं शूरं पण्डितमानिनम् । खञ्जगद्गदमूकत्वं पानादेवापकर्षति ॥ १७४ ॥ सप्तरात्रिप्रयोगेण नरः श्रुतिधरो भवेत् । नाग्निर्दहति तद्वेश्म न वज्रमपहन्ति च ॥ न तत्र म्रियते बालो यत्रास्ते सोमसंज्ञकः । फलत्रयं चात्र काश्मद्राक्षापरुषकाणि वै ॥ १७५ ॥

सफेद सरसों, वच, ब्राह्मी, शंखपुष्पी, पुनर्नवा, काकोली, मुलैठी,कडवा तेल, दाख, फालसे,कुम्भेर, दोनों शारिवा, हलदी, पाढ, भांगरा, देवदारु, हुलहुल, मजीठ, त्रिफला, निसोत, अडूसेके फूल और गेरू इन सब ओषधियोंके द्वारा अच्छे प्रकारसे एक प्रस्थ घृतको पकावे । फिर मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित करके गर्भवतीस्त्रीको दूसरे महीनेसे छठे महीनेतक सेवन करावे । इससे स्त्रियाँ सर्वज्ञ, आरोग्य और ग्रह बाधासे रहित, सुन्दर, बलवान् और सुखी पुत्रको उत्पन्न करती हैं । इसके प्रयोगसे कुक्षिमें स्थित बालक भी स्फुटवचन बोलने लगता है । जो स्त्रियाँ दुष्टयोनिवाली हैं या जिन पुरुषोंका शुक्र दूषित है उनके लिये यह घृत अत्यन्त हितकारी है।इस घृतके प्रसादसे वन्ध्यास्त्रीभी शूर, पंडित और मानी पुत्रके उत्पन्न करती हैं । तथा इसको केवल पान करनेसेही खंजता गद्गदता और मूकता नष्ट होजाती है । इसको सात दिनतक सेवन करनेसे मनुष्य अनेक शास्त्रोंको धारण करनेवाला होता है । जिस घरमें यह सोमसंज्ञक नाम घृत रहता है उसमें न कभी अग्नि लगती है और न कभी वज्र गिरता है और न उसमें बालक मरते हैं । फलत्रय शब्दसे यहां दाख, कुम्भेर और परूषक ये तीन फल लेने चाहियें ॥ १६९-१७५ ॥

अष्टमङ्गलघृत ।

वचा कुष्ठं तथा ब्राह्मी सिद्धार्थकमथापि वा । शारिवासैन्धवं चैव पिप्पलीघृतमष्टमम् ॥ १७६ ॥ मेध्यं घृतमिदं सिद्धं पातव्यं मासमेव च । दृढश्रुतिः क्षिप्रमेधाः कुमारो बुद्धिमान्भवेत ॥ १७७ ॥ न पिशाचा न रक्षांसि न दैत्या न च मानवाः । बाधन्ते च कुमाराणां पिबतामष्टमंगलम ॥ १७८ ॥

बच, कूठ, ब्राह्मी, सफेद सरसों, शारिवा, सैंधानमक, पीपल और उत्तम गायका घी, इन औषधियोंके द्वारा यथाविधिसे घृतको पकावे इस अष्टमंगल घृतको एक महीनेतक सेवन करनेसे बालकोंके मेधा, स्मरणशक्ति, धारणाशक्ति और अत्यन्त बुद्धिकी वृद्धि होती है। तथा पिशाच, राक्षस, दैत्य और पितृग्रह इन सबकी बाधा दूर होती है ॥ १७६ ॥ ॥ १७७ ॥ १७८ ॥

कुमारकल्याणघृत ।

शङ्खपुष्पीवचाब्राह्मी कुष्ठं त्रिफलया सह । द्राक्षा सशर्करा शुण्ठी जीवंती जीवकं बला ॥ १७९ ॥ शटीदुरालभाबिल्वं दाडिमं सुरसा तथा । मुस्त पुष्करमूलश्च सूक्ष्मैला गजपिप्पली ॥ ॥ १८० ॥ एषां कर्षसमैर्भागैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् । कषाये कण्टकार्य्याश्च क्षीरं तस्माच्चतुर्गुणम् ॥ १८१ ॥ एतत्कुमारकल्याणं घृतरत्नं सुखप्रदम् । बलवर्णकरं धन्यं कोष्ठाग्नेरतिवर्द्धनम् ॥ १८२ ॥ छायासर्वग्रहाऽलक्ष्मीकृमिदन्तगदापहम् । सर्वबालामयहरं दन्तोद्भेदे विशेषतः ॥ १८३ ॥ वसामज्जाथवा तैलमेभिरेव विपाचितम् । पूर्वार्थकृद्यथा शाम्येद्देशकालोपपादितम् ॥ १८४ ॥

शंखाहुली, वच, ब्राह्मी कूठ, त्रिफला, दाख, खांड[1], सोंठ, जीवन्ती, जीवक, खिरैंटी, कचूर, धमासा, बेलगिरी, अनारदाना, तुलसी, नागरमोथा, पोहकरमूल, छोटी इलायची और गजपीपल इन प्रत्येक औषधियोंका कल्क एक एक तोला लेकर उसके साथ चौगुने कटेरीके स्वरस और दूधमें एक प्रस्थ घृतको पकावे । यह कुमारकल्याणघृतरत्न, सुखको देनेवाला, बलवर्णजनक और कोठेकी अग्निको अत्यन्त बढानेवाला है । तथा छाया, सर्वप्रकारके ग्रहोंकी बाधा, अलक्ष्मी, कृमिदन्तरोग, सर्वप्रकारके बालरोग और विशेष करके दांतोंके रोगोंको दूर करता है । यथादोष तथा देश और कालके अनुसार वसा, मज्जा और तेलको भी इन औषधियोंके द्वारा पकावे । यह भी पूर्व जो गुण घृतके कहे हैं उनको करते हैं ॥ १७९ ॥ १८४ ॥

खदिराद्यघृत ।

खदिरार्जुनतालीसकुष्ठस्यन्दनजे रसे । सक्षीरं साधितं सर्पिः श्वयथुश्च नियच्छति ॥ १८५ ॥

खैर, अर्जुन, तालीशपत्र, कूठ और तिनिशके स्वरसमें दूधके द्वारा घृतको पकावे । यह घृत–सूजनको दूर करता है ॥ १८५ ॥

अथ अवस्थाविशेषसे बालकोंको घृतपान ।

सिद्धार्थकादिघृत ।

वराहारस्य सिद्धार्थकवचापयस्याब्राह्मयपामार्गशतावरीशारिवापिप्पलीकुष्ठसैन्धवैः सिद्धं सर्पिः पातुं प्रयच्छति ।

जो बालक केवल दूधको पीते हैं उनको सरसों, वच, काकोली, ब्राह्मी, चिरचिटा, शतावर, शारिवा, पीपल, कूट और सैंधानमक इनके कल्कके द्वारा घृत पकाकर पान करावे ।

मधुक ।

क्षीरान्नादस्य मधुकवचात्रिफलासिद्धम् ।

[1] जहाँ शर्करा शुद्ध हो तहाँ खांड ही लेनी योग्य हैं। सब योगोंमें जहां सिताशब्द हो तहां मिश्री लेनी चाहिये यह निश्चय किया हुआ है ।

जो बालक दूध और अन्न दोनोंको सेवन करते हैं उनको मुलैठी, वच और त्रिफला इनके कल्कके द्वारा घृतको पकाकर वह घृत सेवन करावे ॥

द्विपंचमूलाद्य घृत ।

अन्नादस्य द्विपञ्चमूलीक्षीरतगरभद्रदारुमरिचविडङ्गमधुकद्राक्षासिद्धम् । तेन बालस्यारोग्यबलमेधायूंषि भवन्ति ।

जो बालक केवल अन्नको खाते हैं उनको दशमूल, क्षीरतगर, देवदारु, कालीमिरच, वायविडंग, मुलैठी और दाख इनके कल्कके द्वारा घृतको पकाकर सेवन करावे । इस प्रकार घृतको पान करानेसे बालकोंके आरोग्य, बल, मेधा और आयुकी वृद्धि होती है ।

वचाद्यघृत ।

वचाद्विबृहतीपाठाकटुकातिविषाघनैः । मधुरैश्च घृतं सिद्धं शस्तं दशनजन्मनि ॥ १८६ ॥

वच, कटेरी, बडीकटेरी, पाढ़, कुटकी, अतीस, नागरमोथा और मधुर गुणकी औषधी इनके द्वारा घृतको पकावे । यह घृत–बालकोंके दांत निकलते समयकी समस्त पीडाको दूर करता है ॥ १८६ ॥

श्यामाद्यघृत ।

श्यामाजयासतिक्तानां पुष्पाणां क्वाथसाधितम् । यष्टीगर्भं घृतं पीत्वा कासश्वासौ जयेच्छिशुः । रक्तपित्तं पिपासाश्च मूर्च्छां निरवशेषतः ॥१८७॥

निसोत, अरणी और कुटकी इनके फूलोंके क्वाथके द्वारा और मुलैठीके कल्कके द्वारा घृतको पकावे । इस घृतको पान करनेसे बालकोंकी खांसी, श्वास, रक्तपित्त, पिपासा और सर्वप्रकारकी मूर्च्छा दूर होती है ॥ १८७ ॥

नागराद्यघृत ।

नागरं सुवहाभार्ङ्गी नैचुलानि फलानि च । कल्कैरक्षसमैरेतैः प्रस्थार्धं सर्पिषः पचेत् ॥१८८॥ द्विगुणेन जलेनैव जीर्णाहारः पिबेत् शिशुः । घृतमेतन्निहन्त्याशु कासश्वासापतन्त्रकान् ॥१८९॥

सोंठ, हारसिंगार, भारंगी और समुद्रफल इनके एक एक तोला कल्कके द्वारा आधे प्रस्थ घृतको दुगुने जलमें पकावे । इस घृतको आहारके जीर्ण होनेपर पान करे । यह घृत–खाँसी, श्वास और अपतन्त्रकरोगको दूर करता है ॥ १८८ ॥ १८९ ॥

क्षीरद्वयाद्यघृत ।

क्षीरद्वयं देवदारुविश्वाजाजीसदीप्यकम् । ग्रन्थिकं पिप्पलीतिक्ताद्रव्यैरेतैः समैर्घृतम् ॥ १९० ॥ सौवीरदधिमद्यैश्च कल्कैरेतैः पचेद्भिषक् । प्रयुक्तं हन्ति तत्सर्पिः शिशोः परिभवाख्यकम् ॥ १९१ ॥

दो प्रकारके दूध, देवदारु, सोंठ, जीरा, अजमोद, पीपलामूल, पीपल और कुटकी इनके कल्कके द्वारा तथा सौवीरनामक काँजी, दही और मदिराके द्वारा कल्कद्रव्योंसे समभाग घृतको पकावे । यह घृत–बालकोंके परिभव या पारिगर्भ रोग दूर करता है ॥ १९० ॥ १९१ ॥

विभीतकाद्यतैल ।

विभीतकं वचा कुष्ठं हरितालं मनःशिला । एभिस्तैलं विपक्वन्तु बालानां पूतिकर्णके ॥ १९२ ॥

बहेडा, वच, कूठ, हरिताल और मैनाशिल इनके कल्कके द्वारा तेलको पकावे । यह तेल–बालकोंके पूतिकर्णरोगमें अत्यन्त हितकारी है ॥ १९२ ॥

लाक्षाद्यतैल ।

लाक्षारससमं तैलं सिद्धं मस्तुचतुर्गुणम् । रास्नाचन्दनकुष्ठाब्दवाजिगन्धानिशायुतैः ॥ १९३ ॥ शताह्वादारुकुष्ठाह्वमूर्वातिक्ता–हरेणुभिः । बालानां ज्वररक्षोघ्नमभ्यङ्गाद्बलवर्णकृत् ॥ १९४ ॥

लाखका रस १ भाग, तिलका तेल १ भाग, दहीका तोड ४ भाग, तथा कल्कके लिये रायसन, चन्दन, कूठ, नागरमोथा, असगन्ध, हलदी, शतावर, देवदारु, कूठ, भुँइआमला, मूर्वा, कुटकी और रेणुका इनके कल्कके द्वारा उपर्युक्त द्रव्योंमें तेलको पकावे। इस तेलकी मालिश करनेसे बालकोंका ज्वर और

राक्षसबाधा दूर होती है। तथा बल और वर्णकी वृद्धि होती है ॥ १९३ ॥ १९४ ॥

अथ बालग्रहनिदान ।

सामान्यग्रहग्रसितके लक्षण ।

क्षणादुद्विजते बालः क्षणात्त्रस्यति रोदिति । नखैर्दन्तैर्दारयति धात्रीमात्मानमेव च ॥१९५॥ ऊर्ध्वं निरीक्षते दन्तान्खादेत्कूजति जृम्भते । भ्रुवौ क्षिपति दन्तोष्ठं फेनं वमति चासकृत् ॥१९६॥ क्षामोऽति निशि जागर्त्ति शूनाङ्गो भिन्नविट्स्वरः । मांसशोणितगन्धश्च न चाश्नाति यथा पुरा ॥ सामान्यग्रहजुष्टानां लक्षणं समुदाहृतम् ॥ १९७ ॥

क्षणमें बालक विकल होकर डरने लग जाय, क्षणमें दुःखी होकर रोने लगे, नख और दांतोंसे माताके और अपने शरीरको काटे, ऊपरकी ओर देखे, दाँतोंको चाबे, किल्ली मारे, जम्भाई लेवे, भौंह, दांत और होंठोंको चलाता रहे, बारम्बार मुखसे झाग डाले, अत्यन्त कृश होजावे, रात्रिमें जागता रहे शरीरमें सूजन हो, मल पतला उतरे, स्वर मन्द होजाय, शरीरमें रुधिर और मांसके समान दुर्गंध आवे और पहिलेकी अपेक्षा भोजन कम करे अर्थात् भूँख घटजाय। ये सब सामान्य ग्रहजुष्टबालकोंके लक्षण कहे हैं ॥ १९५ ॥ १९६ ॥ १९७ ॥

बालग्रहकी चिकित्सा ।

रसोननिम्बपत्राणि जतुवंशावलेखनम् । सिद्धार्थनिम्बपत्राणि वंशत्वग् जतुना सह ॥ १९८ ॥ सर्पनिर्मोककोशानि निर्माल्यं गौरसर्षपाः । धूपत्रयं ससर्पिष्कमेतत्सर्वग्रहापहम् ॥ १९९ ॥

लहसुन, नीमके पत्ते, लाख और वंशलोचन १ एवं सफेद सरसों, नीमके पत्ते, वंशत्वचा और लाख २ अथवा साँपकी कैंचली, जायफल, शिवनिर्माल्य और सफेद सरसों ३ इन तीनों धूपोंमेंसे किसी एकको लेकर घीमें मिलाकर बालकको धूप देनेसे बालकोंकी सर्वप्रकारके ग्रहोंकी बाधा दूर होती है ॥ १९८ ॥ १९९ ॥

द्वीपिव्याघ्राऽहिसिंहर्क्षचर्म्मभिर्घृतमिश्रितैः । पूतीकरञ्जसिद्धार्थवचाभल्लातदीप्यकैः ॥ सकुष्ठैः सघृतैर्धूपः सर्वग्रहविमोक्षणः ॥ २०० ॥

गैंडा, बाघ, साँप, सिंह और रीछ इनके चर्म्ममें घृत मिलाकर धूप देनेसे, अथवा दुर्गंधकरंज, सफेद सरसों, वच, भिलावे, अजवायन और कूठ इन सब औषधियोंको एकत्र पीसकर घृत मिलाकर धूप देनेसे सर्वप्रकारके ग्रहोंकी बाधा शांत होती है ॥ २०० ॥

काकजङ्घामलाश्वेताकपित्थक्षीरिपादिकैः । सकरञ्जकदंबैश्च धूपं स्नातस्य चाचरेत् ॥ २०१ ॥

काकजंघा, भुँईआमला, सफेद कोइल, कैथ, क्षीरवृक्षोंकी जड, करंज और कदंबकी जड इन सबको एकत्र पीसकर स्नान किये हुए बालकको धूनी देनेसे सर्वप्रकारकी ग्रहबाधा शांत होती है ॥ २०१ ॥

अथ स्कन्दग्रहजुष्टके लक्षण ।

एकनेत्रस्य गात्रस्य स्रावः स्पन्दनकम्पनम् । अर्द्धदृष्ट्या निरीक्षेत वक्रास्यो रक्तगन्धिकः ॥ २०२ ॥ दन्तान्खादति वित्रस्तः स्तन्यं नैवाभिनन्दति । स्कन्दग्रहगृहीतानां रोदनं चाल्पमेव च ॥ २०३ ॥

बालककी एक आँखमेंसे पानी बहे, एक ओरका अंग फडके और काँपे, आधी दृष्टिसे देखे, मुख टेढ़ा होजावे, शरीरमें रुधिरके समान दुर्गंध आवे, दाँतोंको चावे, शरीर शिथिल होजाय, माताके दूधको नहीं पीवे और थोडा रोवे ये स्कन्दग्रहग्रसित बालकोंके लक्षण होते हैं ॥ २०२ ॥ २०३ ॥

स्कन्दग्रहजुष्टकी चिकित्सा ।

स्कन्दोपग्रहसृष्टानां कुमाराणाञ्च शस्यते । वातघ्नद्रुमपत्राणां निष्क्वाथः परिषेचने ॥ २०४ ॥ तेषां मूलेन सिद्धं च तैलमभ्यञ्जने हितम् । सर्वगंधसुरामण्डकैटर्य्यावापमिष्यते ॥२०५॥

स्कन्दग्रहसे ग्रसित बालकोंको वातनाशक वृक्षोंके पत्तोंका क्वाथ बनाकर उससे सेचन करे अर्थात् स्नाव करावे। तथा उन्हीं वातनाशक वृक्षोंकी जडके कल्कके द्वारा तेलको पकाकर उस तेलमें सर्वप्रकारके सुगंधितद्रव्य, सुरामंड और नीमका चूर्ण डालकर अभ्यंगके लिये प्रयोग करे ॥ २०४ ॥ २०५ ॥

देवदारुणि रास्नायां मधुरेषु गणेषु च । सिद्धं सर्पिश्च सक्षीरं पानमस्मै प्रदापयेत् ॥ २०६ ॥

देवदारु, रास्ना और समस्त मधुरवर्गकी औषधियोंके कल्क और दूधेक साथ घृतको पकाकर वह घृत बालकको पीनेके लिए देवे ॥ २०६ ॥

सर्षपाः सर्पनिर्मोको वचाकाकादनीघृतम् । उष्ट्राजाविगवां वापि रोमाण्युद्भमनं शिशोः ॥ २०७ ॥

सरसों, साँपकी कैंचुली, वच, सफेद घुँघुची, घी, ऊँट, बकरी, भेड़ और गायके रोम इन सबकी धूप बनाकर बालकको देवे ॥ २०७ ॥

रक्तानि माल्यानि तथा पताका रक्ताश्च गन्धान्विविधांश्च भक्ष्यान् । घण्टा च देवाय बलिं निवेद्य सकुक्कुटं स्कन्दग्रहे हिताय ॥ स्नानं त्रिरात्रं निशि चत्वरेषु कुर्य्यात्परं शालियवैर्निवेद्यम् ॥ २०८ ॥ गायत्रिपूताभिरथाद्भिरग्निं प्रज्वालयेदाहुतिभिश्च धीमान् ॥ २०९ ॥

स्कन्दग्रहजुष्ट बालकके हितके लिये लालफूलोंकी माला, लाल झंडी, लाल चंदन, नानाप्रकारके गंध, लोबान, गूगल इत्यादि गंधद्रव्य, अनेकप्रारके भक्ष्य पदार्थ, घंटा और मुरगा ये सब बालकपर उतारकर चौराहेमें देवताके निमित्त रक्खे। नवीन शालीचावल और नवीन जौ इनका बलिदान देकर जलको गायत्री मंत्रसे अभिमंत्रित करके रात्रिमें बालकको चौराहेमें तीन रात्रि तक स्नान करावे, नवीन शालिके चावल और नवीन जौकी आहुति अग्निमें देवे॥२०८॥२०९॥

सोमवल्लीमिन्द्रवल्लीं वृन्दाकं बिल्वजं शमीम् । मृगादन्याश्च मूलानि ग्रथितान्यथ धारयेत् ॥ २१० ॥

सोमलता, इन्द्रायण, बेलके पेडका बंदा, छोंकर और इन्द्रायणकी जड इन सबको एक डोरेमें बांधकर उस डोरेको बालकके गलेमें पहना देवे॥२१०॥

एलवालुकदार्व्वेला-कुष्ठलाक्षाहरेणुभिः । रास्नाशिलासमञ्जिष्ठाह्वीबेरगुरुचन्दनैः ॥ स्कन्दग्रहे प्रलेपोऽयं श्लक्ष्णापिष्टैः समाहितः ॥ २११ ॥

एलुआ, दारुहलदी, इलायची, कूठ, लाख, रेणुका, रास्ना, मैनशिल, मजीठ, सुगन्धवाला, अगर और चन्दन इन सबको एकत्र बारीक पीसकर स्कन्द ग्रहकी शांतिके लिये बालकके शरीरपर लेप करे२११

बिल्वाग्निमन्थतर्कारीकासीसैरण्डपल्लवैः । पाटल गस्फोतवासाभिः सायं पानं प्रशस्यत ॥ २१२ ॥

बेलगिरी, अरणी, जैती, कसीस, अंडके पत्ते, पाढल, कोइली और अडूसा इनका क्वाथ बनाकर सन्ध्याके समय बालकको पान करावे ॥ २१२ ॥

जीवनीयाविपक्वन्तु घृतपानं प्रशस्यते । शतपुष्पादिभिः सिद्धं तैलमभ्यञ्जने हितम् ॥ २१३ ॥

स्कन्दग्रहग्रसित बालकको जीवनीयगणकी औषधियोंके द्वारा घृतको पकाकर सेवन करावे । और शतपुष्पादि औषधियोंके द्वारा तेलको पकाकर उसकी बालकके शरीरपर मालिश करे ॥ २१३ ॥

रक्षाविधि ।

रक्षामतः प्रवक्ष्यामि बालानां ग्रहनाशिनीम् । अहन्यहानि कर्त्तव्या याभिरद्भिरतन्द्रितैः ॥ २१४ ॥

अब बालकोंके ग्रहोंको दूर करनेवाली रक्षाको कहता हूं । वैद्य आलस्यको त्याग कर नित्य बालकोंके निकट निम्नलिखित जलसे सेचन करता हुआ रक्षापाठ पढे ॥ २१४ ॥

तपसां तेजसाञ्चैव वपुषां यशसां तथा। निधानं योऽव्ययो देवः स ते स्कन्दः प्रसीदतु ॥ २१५ ॥

जो तपके, तेजके, यशके तथा शरीरकी सामर्थ्योंके भंडाररूप हैं ऐसे देव कार्तिकेय स्वामी तेरे ऊपर प्रसन्न हों ॥ २१५ ॥

ग्रहसेनापतिर्देवो देवसेनापतिर्विभुः। देवसेनारिपुहरः पातु त्वां भगवान् गुहः ॥ २१६॥

ग्रहोंके सेनापति, देवताओंके सेनापति और देवताओंकी सेनाके शत्रुओंको नाश करनेवाले, व्यापक और महासामर्थ्ययुक्त कार्तिकेय देव तेरी रक्षा करैं ॥ २१६ ॥

देवदेवस्य महतः पावकस्य च यः सुतः। गङ्गोमाकृत्तिकानाञ्च स ते शर्म्म प्रयच्छतु ॥ २१७ ॥

जो महादेवके, अग्निके, गंगाके, पार्वती और कृत्तिकाके पुत्र हैं ऐसे कार्त्तिकेयस्वामी तेरा कल्याण करैं ॥ २१७ ॥

रक्तमाल्यांबरः श्रीमान्रक्तचन्दनभूषितः। रक्तदिव्यवपुर्देवः पातु त्वां क्रौञ्चनाशनः ॥ २१८ ॥

लालफूलोंकी माला और लाल वस्त्रोंको धारण करनेवाले, श्रीसम्पन्न, लालचन्दनसे विभूषित, लाल और दिव्यशरीरवाले एवं क्रौञ्च नामक दैत्यका नाश करनेवाले कार्तिकेय देव तेरी रक्षा करैं २१८

अथ स्कन्दापस्मारग्रहजुष्टानिदान।

नष्टसंज्ञो वमेत्फेनं संज्ञावानतिरोदिति। पूयशोणितगंधित्वं स्कन्दापस्मारलक्षणम् ॥ २१९ ॥

जो बालक बेहोश होजाय, मुखसे झागोंको गेरे, चैतन्य होनेपर बहुत जोरसे रोवे तथा जिसके शरीरमें राध और रुधिरके समान वास आवे उसको स्कन्दापस्मारग्रहसे ग्रसित जानना ॥ २१९ ॥

तस्य चिकित्सा।

बिल्वः शिरीषो गोलोमी सुरसादिश्च यो गणः। परिषेके प्रयोक्तव्यः स्कन्दापस्मारशान्तये ॥ २२० ॥

बेलकी जड, शिरस, सफेद दूब और सुरसादिगणकी औषधियां इनके काथसे स्कन्दापस्मारग्रहकी शांतिके लिये बालकके शरीरको सेचन करे ॥ २२० ॥

सुरसादिगण।

सुरसा श्वेतसुरसा पाठा फञ्जी फणिज्जकः। सौगंधिकं भूस्तृणको राजिका श्वेतबर्बरी ॥ २२१ ॥ कट्फलं खरपुष्पा च कासमर्दश्च शल्लकी। विडङ्गमथ निर्गुण्डी कर्णिकार उदुम्बरः ॥ ॥ २२२ ॥ बला च काकमाची च तथा च विषमुष्टिका। कफक्रमिहरः ख्यातः सुरसादिरयं गणः ॥ २२३॥

तुलसी, सफेद तुलसी, पाढ, भारंगी, मरुआ, कह्लारनामक सुगंधि कुमुद, भूस्तृणनामक सुगंधि तृण, राई, सफेद सरसों, कायफल, कालीवनतुलसी, कसौंदी, सालई, वायविडंग, निर्गुण्डी, सम्हालू, कनेर, गूलर, खिरैंटी, मकोय और तेंदू इन सब औषधियोंके समुदायको सुरसादिगण कहते हैं। यह सुरसादिगण कफ और क्रमियोंको नष्ट करता है ॥२२१–२२३ ॥

अष्टमूत्रतैल।

अष्टमूत्रविपक्कं तु तैलमभ्यञ्जने हितम् ॥ २२४ ॥

गाय, बकरी, भेंड, भैंस, घोडा, गधा, ऊँट और हाथी इन आठ पशुओंके मूत्रके द्वारा तेलको पकावे। इस तेलकी मालिश करनेसे स्कन्दापस्मारग्रह शान्त होता है ॥ २२४ ॥

काकोल्यादिघृत।

क्षीरवृक्षकषाये तु काकोल्यादौ गणे तथा। विपक्तव्यं घृतञ्चापि पानीयं पयसा सह ॥ २२५ ॥

क्षीरीवृक्षोंके काथमें काकोल्यादि गणकी औषधियोंके कल्कके साथ घृतको पकाकर बालकको दूधके

साथ पिलावे इससे स्कन्दापस्मारग्रह शान्त होता है ॥ २२५ ॥

उत्सादनं वचाहिंगुयुक्तं स्कन्दग्रहे हितम् ।

वच और हींग इनके कल्कके द्वारा बालकके शरीर पर उबटन करना स्कन्दापस्मारग्रहजुष्टमें अत्यन्त हितकारी है ।

गृध्रोलूकपुरीषाणि केशा हस्तिनखोद्भूतम् । वृषभस्य तु रोमाणि योज्यान्युद्धूपनेऽपि च ॥ २२६ ॥

गीधकी विष्ठा, उल्लूकी विष्ठा और बाल, हाथीके नख, और बैलके रोम इनकी नित्य धूनी देनेसे स्कन्दापस्मारकी शांति होती है ॥२२६॥

अनन्तां कुनटीं बिम्बीं मर्कटीश्चापि धारयेत् ।

जवासा (सेमलके पुष्प), मैनशिल, कन्दूरी और कौंछकी जड इन सबको डोरेमें बाँधकर बालकके गलेमें बाँध देवे ।

पक्कापक्कानि मांसानि प्रसन्नां रुधिरं तथा ॥ २२७ ॥ मुद्गौदनो निवेद्यश्च स्कन्दापस्मारिणे वटे । चतुष्पथे च कर्त्तव्यं स्नानमस्य यतात्मना ॥ २२८॥

स्कन्दापस्मारकी शांतिके लिये अनेक प्रकारके पक्वान्न अथवा अपक्व अन्न, मांस, मदिरा, रुधिर और मूँगभात इन सबको एक सेनकमें भरकर रात्रिके समय वडके वृक्षके तले या चौरायेमें रख देवे । फिर बालकको स्नान कराकर उसके निकट एकाग्र चित्तसे नीचे लिखा मंत्र पढे ॥ २२७ ॥ २२८ ॥

स्कन्दापस्मारसंज्ञो यः स्कन्दस्य दयितः सखा । विशाखसंज्ञश्च शिशोः शिवोऽस्तु विकृताननः ॥२२९॥

कार्तिकेयस्वामीका विकृत मुखवाला स्कन्दापस्मार जो प्रियमित्र है, उसको विशाख भी कहते हैं वह उस बालकका कल्याण करे ॥ २२९ ॥

अथ शकुनिग्रहका निदान ।

स्रस्ताङ्गो भयचकितो विहङ्गगन्धिः सास्रावव्रणपरिपीडितः समन्तात् । स्फोटैश्च प्रचिततनुः सदाहपाकैर्विज्ञेयो भवति शिशुर्युतः शकुन्या॥२३०॥

जिसका शरीर शिथिल हो, जो भयसे चकित हो जाय, जिसके शरीरमें पक्षिके समान गन्ध आवे, चहुँ ओर स्रावसहित व्रणोंसे पीडित और दाह तथा पाकयुक्त फोडोंसे सारा शरीर व्याप्त हो उस बालकको शकुनिग्रहग्रसित जानना ॥ २३० ॥

शकुनिग्रहकी चिकित्सा ।

शकुन्यभिपरीतस्य कार्यो वैद्येन जानता । वेतसाम्रकपित्थानां निःक्काथपरिषेचनं ॥ २३१ ॥

जो बालक शकुनिग्रहसे पीडित हो, उसको विज्ञ वैद्य वेत, आम और कैथके क्वाथसे परिसेचन करे ॥ २३१ ॥

कषायमधुरैस्तैलं कार्य्यमभ्यञ्जने शिशोः ॥ २३२ ॥

कषैली और मधुर औषधियोंके क्वाथ तथा कल्कके द्वारा तेलको पकाकर बालकके अभ्यंग करनेके लिये प्रयोग करे ॥ २३२ ॥

मधुकोशीरह्रीबेरशारिवोत्पलपद्मकैः । लोध्रं प्रियंगुमञ्जिष्ठागैरिकैः प्रदिहेच्छिशुम् ॥ २३३ ॥

मुलैठी, खस, सुगन्धवाला, शारिवा, कमल, पद्माख, लोध, फूलप्रियंगू, मजीठ और गेरू इनको एकत्र पीसकर बालकके शरीरपर लेप करे या सूका बुरकावे अर्थात् छिडके ॥ २३३ ॥

व्रणेषूक्तानि चूर्णानि पथ्यानि विविधानि च । स्कन्दग्रहे धूपनानि तानीहापि प्रयोजयेत् ॥ २३४ ॥

व्रणरोगमें जो चूर्ण और पथ्य कहे हैं तथा स्कन्दग्रहमें जो धूप कही है वे सब इस शकुनिग्रहसे पीडित बालकके लिये भी प्रयोग करे ॥ २३४ ॥

शतावरीमृगैर्वारुनागदन्तीनिदिग्धिकाः । लक्ष्मणां सहदेवीश्च बृहतीश्चापि धारयेत् ॥ २३५ ॥

शतावर, बडी इन्द्रायण, नागदौन, कटेरी, लक्ष्मणा, सहदेई और बडी कटेरी इन सबकी जडको एक डोरेमें बांधकर बालकके गलेमें बांधदेवे ॥ २३५ ॥

तिलतंडुलकं माल्यं हरितालं मनःशिला । बलिरेष करञ्जेषु निवेद्यो नियतात्मना ॥ २३६ ॥

तिल, चावल, माला, हरिताल और मैनशिल इनकी करंजके वृक्षके नीचे स्थिरचित्त होकर बलि देवे ॥ २३६ ॥

निकुञ्जे च प्रयोक्तव्यं स्नानमस्य यथाविधि । श्वेताशिरीषगन्धाष्टकुष्ठगुग्गुलुसर्षपैः ॥ २३७ ॥ सिद्धमभ्यञ्जने तैलं धारणं पूर्वमेव तु । शकुनिग्रहशान्त्यर्थं प्रदेहं कारयेद्धितम् ॥२३८॥

फिर निकुञ्जस्थानमें बालकको विधिपूर्वक स्नान करावे । और उससे पहलेही सफेद दूब, शिरस, अष्टगंध, कूठ, गूगल और सरसों इनके कल्कद्वारा तेलको पकाकर रखदेवे फिर बालकको स्नान करानेके पश्चात् इस तेलकी मालिस करावे । यह तेल शकुनिग्रहकी शांतिके लिए अत्यन्त उपयोगी है ॥२३७ ॥२३८॥

स्कन्दापस्मारशमनं घृतश्चापीह योजयेत् । कुर्य्याच्च विविधां पूजां शकुन्याः कुसुमैः शुभैः ॥ २३९ ॥

स्कन्दापस्मारको शमन करनेवाला जो घृत कहा है वह घृत भी इसमें प्रयोग करना चाहिये। एवं अनेक प्रकारके उत्तम फूलोंसे शकुनिग्रहकी विविधप्रकारसे पूजा करे और नीचे लिखे मंत्रको पढे ॥ २३९ ॥

अन्तरिक्षचरा देवी सर्वालङ्कारभूषिता । अधोमुखी तीक्ष्णतुण्डा शकुनी ते प्रसीदतु ॥ २४० ॥

अन्तरिक्षमें विचरण करनेवाली, सम्पूर्णअलंकारोंसे सुशोभित, नीचेको मुखवाली और तीक्ष्ण मुखवाली शकुनिदेवी तेरे ऊपर प्रसन्न हो ॥ २४०॥

अथ रेवतीग्रहका निदान।

व्रणैः स्फोटैश्चितं गात्रं पंकगन्धं स्रवेदसृक् । भिन्नवर्चा ज्वरी दाही रेवतीग्रहलक्षणम् ॥ २४१ ॥

जिसका शरीर व्रण और फोडोंसे भरा हो, उनमेंसे कीचकी समान दुर्गन्ध आती हो और रुधिर बहता हो, मल पतला हो, ज्वर और दाह हो तो इस बालकको रेवतीग्रहसे पीडित जानना चाहिए॥२४१

रेवतीग्रह चिकित्सा ।

अश्वगन्धाजशृङ्गी च शारिवाथ पुनर्नवा। सहे विदारी च तथा कषायं परिषेचने ॥ २४२ ॥

असगन्ध, मेढाशिंगी, शारिवा, पुनर्नवा, दोनो प्रकारका पियाबांसा और विदारीकन्द इनके क्वाथसे बालकको सेचन करे ॥ २४२ ॥

तैलमभ्यञ्जने कार्य्यं कुष्ठे सर्जरसे तथा । पलंकषायं नलदे तथा गिरिकदम्बके ॥ २४३ ॥

कूठ, राल, गूगल, खस और पर्वती कदम्ब इनके कल्कसे तेलको पकाकर बालकके शरीरमें मले२४३।

धवाश्वकर्णककुभधातकीतिन्दुकेषु च। काकोल्यादौ गणे चापि पानीयं सर्पिरिष्यते ॥ २४४ ॥

धव, अश्वकर्णछाल, अर्जुन, धायके फूल, तेंदू और काकोल्यादिगणकी औषधियों इनके कल्कके द्वारा घृतको पकाकर बालकको पिलावे ॥ २४४ ॥

कुलित्थाः शंखचूर्णश्च प्रदेहः पूर्वगंधिकाः। गृध्रोलूकपुरीषाणि वचायवफलं घृतम् ॥ सन्ध्ययोरुभयोः कार्य्यमेतद्धूपनं शिशोः ॥ २४५ ॥

कुलथी, शंखका चूर्ण और असगंध इनको एकत्र पीसकर लेप करे। गीधकी विष्ठा, उल्लूकी विष्ठा, वच, जौ अथवा बांसके अंकुर और घृत इनकी धूनी बालकको दोनों संध्याओंमें देवे ॥ २४५ ॥

शुक्लाः सुमनसो लाजाः पयः शाल्योदनं तथा । बलिर्निवेद्यो गोतीर्थे रेवत्यै प्रयतात्मना ॥ २४६॥

वैद्य स्थिरचित्त होकर रेवतीग्रहकी शान्तिके लिये गायके स्थानमें सफेद फूल, खीलें, दूध और शालिचावलोंका भात इनकी बलि देवे और "नानाशस्त्रधरा" इस मंत्रको पढे ॥ २४६ ॥

सङ्गमे च भिषक् स्नानं कारयेत्स्त्रीकुमारयोः ॥ २४७ ॥

जहाँ समुद्र और नदी मिली हों अथवा जहाँ दो नदी मिली हों ऐसे स्थानमें वैद्य बालक और उसकी माताको स्नान करावे ॥ २४७ ॥

नानाशस्त्रधरा देवी चित्रमाल्यानुलेपनैः ॥ चलत्कुण्डलिनी श्यामा रेवती ते प्रसीदतु ॥ २४८ ॥

अनेक शस्त्रोंको धारण करने वाली चित्रविचित्र पुष्पोंकी मालाओंसे सुशोभित, विचित्र लेपनयुक्त, चलत्कुण्डवाली और श्यामवर्णवाली ऐसी रेवती देवी तेरे ऊपर प्रसन्न हो ॥ २४८ ॥

अथ पूतनाग्रहजुष्टके लक्षण ।

अतिसारो ज्वरस्तृष्णा तिर्य्यक्प्रेक्षणरोदनम् । नष्टनिद्रस्तथोद्विग्नो ग्रहपूतनया शिशुः ॥ २४९ ॥

जो बालक पूतनाग्रहसे ग्रसित होता है वह अतिसार, ज्वर और तृषासे पीडित होता है, टेढी दृष्टिसे देखता है, रोता है, निद्रा नहीं आती और विह्वल रहता है ॥ २४९ ॥

पूतनाग्रहजुष्टकी चिकित्सा ।

अरलुकपोतवङ्का च वरुणः पारिभद्रकः । आस्फोटा चैव योज्याः स्युर्बालानां परिषेचने ॥ २५० ॥

अरलु (श्योनाक), ब्राह्मी, वरना, फरहद अथवा नीम और अपराजिता (कोइली) इनके क्वाथसे बालकोंके शरीर पर सेचन करे ॥ २५० ॥

वचावयस्थागोलोमीहरितालं मनःशिला । कुष्ठं सर्जरसश्चैव तैलार्थे वर्ग इष्यते ॥ २५१ ॥

वच,हर्ड, सफेद दूब, हरिताल, मैनशिल, कूट और राल इनके कल्कके द्वारा तेलको पकाकर बालकके शरीरमें मालिस करे ॥ २५१ ॥

हितं घृतं तुगाक्षीर्य्या सिद्धं मधुरकेषु च ॥ २५२ ॥

इसमें वंशलोचन और मधुरादिगणकी औषधियोंके द्वारा घृतको पकाकर पान करना हितकारी है॥

कुष्ठतालीशतगरं चन्दनस्यन्दने तथा । ब्रह्मास्थिमूलसंयुक्तं कुशमूलश्च सप्तकम् ॥ २५३ ॥ दूर्वायाः पत्रकं वापि तण्डुलांश्चाक्षतांस्तथा । धूपनात्पूतनां हन्ति स्तम्भं वाप्युपजायते ॥ २५४॥

कूठ, तालीशपत्र, तगर, चन्दन, तिरिछ ढाककी जड, कुशाकी जड, दूबके सात पत्ते और अक्षत चावल इन सबकी एकत्र धूनी देनेसे पूतनाग्रह दूर होता है । अथवा पूतनाका स्तम्भन होता है ॥ २५३ ॥ २५४ ॥

हस्त्यस्थिशकलं गृह्य वारिणा परिपेषयेत् । गात्रलेपात्कुमाराणां पानाद्वा पूतनां जयेत् ॥ २५५ ॥

हाथीकी हड्डीके टुकडे जलमें पीसकर बालकोंके शरीरपर लेप करनेसे अथवा पान करनेसे पूतनाग्रहकी बाधा शान्त होती है ॥ २५५ ॥

गन्धनाकुलिकुम्भीका मज्जानो बदरस्य च । कुक्कुटास्थिघृतश्चापि धूपनं सह सर्षपैः ॥ २५६ ॥

गंधनाकुली (नाई), जलकुम्भी, बेरकी मींग, मुरगेकी हड्डी,घी और सरसों इनकी धूप बनाकर देनेसे बालकोंके पूतनाग्रहकी बाधा शांत होती है ॥ २५६॥

धवः कदम्बः कुष्ठैले तथा गिरिकदम्बकः । देवाह्वं रेणुका हिंगु प्रलेपः पूतनाग्रहे ॥ २५७ ॥

धव, कदम्ब, कूठ, इलायची, पर्वतीकदम्ब,देवदारु, रेणुका और हींग इनको एकत्र पीसकर बालकके शरीरपर लेप करनेसे पूतनाग्रहकी बाधा दूर होती है ॥ २५७ ॥

मत्स्योदनश्च कुर्वीत कृशरां पललं तथा । शरावसंपुटे कृत्वा बलिं शून्यगृहे भिषक् ॥ २५८ ॥

मछली और भात, खिचडी और मांस इन सबको एक मट्टीके सकोरेमें रखकर वैद्य सूते घरमें पूतनाके लिये बलिदान करे ॥ २५८ ॥

काकादनीं चित्रफलां बिम्बीं गुञ्जाश्च धारयेत् ॥ २५९ ॥

सफेद घुंघुची, इन्द्रायण, कन्दूरी और घूँघुची इनको एक डोरेमें बांधकर बालकके गलेमें बांध देवे ॥ २५९ ॥

मलिनांबरसंवीता मलिना रूक्षमूर्द्धजाः । शून्यागाराश्रया देवी दारकं पातु पूतना ॥ २६० ॥

बालकके निकट बैठकर कहे कि,—मैले वस्त्रोंको धारण करनेवाली, मलिन अंगवाली, रूखे बालोंवाली, और शून्यघरमें रहनेवाली पूतनादेवी इस बालककी रक्षा करे ॥ २६० ॥

अथान्धपूतनाग्रहनिदान ।

छर्दिः कासो ज्वरस्तृष्णावसागन्धोऽतिरोदनम् । स्तन्यद्वेषोऽतिसारश्च अन्धपूतनया भवेत् ॥ २६१ ॥

जिस बालकको अंधपूतना ग्रहण करती है, उसके वमन, खांसी, ज्वर, तृषा और शरीरमें चर्बीके समान गंध होती है तथा वह बालक बहुत रोता है, दूध नहीं पीता और उसको दस्त होते हैं ॥ २६१ ॥

अथान्धपूतनाग्रहकी चिकित्सा ।

तिक्तद्रुमाणां पत्रैस्तु क्काथः कार्य्योऽभिषेचने ॥ २६२ ॥

अंधपूतनाजुष्टबालकके शरीरको कडवे वृक्षोंके पत्तोंके क्काथसे धोना चाहिए ॥ २६२ ॥

सुरासौवीरकं कुष्ठं हरितालं मनःशिला । तथा सर्जरसश्चापि तैलार्थमुपसंहरेत् ॥ २६३ ॥

मदिरा, कांजी, कूठ, हरिताल, मैनशिल और राल इनके द्वारा तेलको पकाकर बालकके शरीर पर मर्दन करे ॥ २६३ ॥

पिप्पल्यः पिप्पलीमूलं वर्गो मधुरको मधु । शालिपर्णीबृहत्यौ च घृतार्थमुपदिश्यते ॥ २६४ ॥

पीपल, पीपलामूल, मधुरवर्गकी सम्पूर्ण औषधियां, शहद, शालिपर्णी, कटेरी और बडीकटेरी इनके कल्कके द्वारा घृतको पकाकर बालकको पान करावे ॥ २६४ ॥

सर्वगन्धैः प्रदेहश्च गात्रेष्वक्ष्णोश्च शीतलैः ॥ २६५ ॥

सम्पूर्ण सुगंधितपदार्थोंको पीसकर शरीरपर लेप करे और नेत्रोंके ऊपर शीतल पदार्थोंका लेप करे ॥ २६५ ॥

पुरीषं कौक्कुटं केशाश्चर्म्मसर्पभवन्तथा । जीर्णश्चाभीक्ष्णशो वासो धूपनार्थोपकल्पयेत् ॥ २६६ ॥

मुरगेकी विष्ठा, बाल, सांपकी कैंचली, या चमडा और बालकके नीचेका पुराना वस्त्र इन सबकी धूनी देवे ॥ २६६ ॥

काकादनीमृगेर्वारुतुम्बीसत्रिफलावचाः । धारणं शिरसा शस्तमन्धपूतनया ग्रहे ॥ २६७ ॥

चौंटली, इन्द्रायण, कन्दूरी, कडुतुम्बीके बीज, त्रिफला और वच इनको एक डोरेमें बांधकर अंधपूतग्रहसे ग्रसित बालकके शिरमें बांध देवे ॥ २६७ ॥

कौक्कुटीं मर्कटीं बिम्बीमनन्तांश्चापि धारयेत् ॥ २६८ ॥

सेमल, करंज, कन्दूरी और जवासा, या अतन्तमूल इनको भी एक डोरेमें बांधकर बालकके गलेमें बांधदेवे ॥ २६८ ॥

आममांसं तथा पक्कं शोणितञ्च चतुष्पथे । निवेद्यमन्तश्च गृहे शिशो रक्षानिमित्ततः ॥ २६९ ॥ शिशोश्च स्नपनं कुर्य्यात्सर्वगन्धादिकैः शुभैः । कुंकुमागुरुकर्पूरकस्तूरीचन्दनैः समैः । सर्वगन्ध इति ख्यातो गणो ह्युत्तमगन्धकः ॥ २७० ॥

कच्चा और पक्का मांस तथा रुधिरकी चौराहेमें आगे लिखे मंत्रसे बलि देवे। फिर बालककी रक्षाके

ालए उसको घरके भीतर सर्व सुगंधित पदार्थोंसे मलकर स्नान करावे। केशर,अगर,कपूर,कस्तूरी और चन्दन इन सब समान भाग मिश्रित औषधियोंको सर्वगंध कहते हैं। यह वर्ग उत्तम गंधवाला है ॥ ॥ २६९ ॥ २७० ॥

कराला पिङ्गला मुण्डी कषायांबरवासिनी। देवी बालमिमं प्रीता संरक्षत्वन्धपूतना ॥ २७१ ॥

बालकके निकट बैठकर यह कहे कि विकाल, पिंगलवर्णवाली, मुंडित और भगवे कपडोंको धारण करनेवाली अन्धपूतना देवी प्रसन्न होकर इस बालककी रक्षा करे ॥ २७१ ॥

अथ शीतपूतनाग्रहके लक्षण ।

वेपते कासते क्षीणे नेत्ररोगो विगन्धिता । छर्द्यतीसारयुक्तश्च शीतपूतनया शिशुः ॥ २७२ ॥

जिस बालकको शीतपूतना ग्रहण करती है, वह काँपता है खांसता है, क्षीण होजाता है,नेत्ररोगोंसे पीडित होता है उसके शरीरमें दुर्गंध आती है तथा वह वमन और अतिसारसे दुःखित होता है ॥ २७२ ॥

शीतपूतनाग्रहकी चिकित्सा ।

बिम्बीं कपित्थं सुवहां तथा बिल्वत्वचो बले। नन्दी भल्लातकश्चैव परिषेके प्रयोजयेत् ॥ २७३ ॥

कन्दूरी, कैथ, हारसिंगार, बेलकी छाल, खरैंटी, पारिसपीपल और भिलावे इनके काथसे बालकके शरीरको सेचन करे ॥ २७३ ॥

वत्समूत्रं गवां मूत्रं मुस्ताश्चामरदारु च । कुष्ठश्च सर्वगन्धश्च तैलार्थमवचारयेत् ॥ २७४ ॥

बकरेका मूत्र, गोमूत्र, नागरमोथा, देवदारु, कूठ और सर्वगन्ध इनके कल्कके द्वारा तेलको पकाकर बालकके शरीरपर मर्दन करे ॥ २७४ ॥

रोहिणीसर्जखदिरपलाशककुभत्वचः । निष्क्वाथ्य तस्मिन्निःक्वाथे सक्षीरं विपचेद् घृतम् ॥ २७५ ॥

कुटकी, शाल, खैर, ढाक और अर्जुनकी छाल इनका काथ बनाकर उसमें दूधके साथ घृतको पकावे फिर वह घृत बालकको पान करावे ॥ २७५ ॥

प्रदेहः पूतनोक्तो यः स शस्तोऽत्र यदौषधम् । शीतपूतनया ग्रस्ते तदेव हितमुच्यते ॥ २७६ ॥

पूतनारोगमें जो प्रलेपकी औषधि कही हैं, वही इस शीतपूतनाग्रसितबालकके लिये भी प्रयोग करनी चाहिये ॥ २७६ ॥

गृध्रोलूकपुरीषाणि वत्सगन्धामहित्वचम् । निम्बपत्राणि मधुकं धूपनार्थं प्रयोजयेत् ॥ २७७ ॥

गीध और उल्लूकी विष्ठा, वन तुलसीकी जटा, सांपकी खाल, नीमके पत्ते और मुलैठी इनकी धूप बनाकर शीतपूतनामें देवे ॥ २७७ ॥

धारयेदपि लम्बाश्च गुञ्जां काकादनीं तथा ।

कडवी तोम्बी, चोंटली और सफेद चोंटली इनको एकत्र डोरेमें बांधकर बालकके गलेमें पहरा देवे ।

नद्यां मुद्गौदनैश्चापि तर्पयेच्छीतपूतनाम् ॥ २७८ ॥ जलाशयान्ते बालस्य स्नपनश्चोपदिश्यते । देव्यै देयश्चोपहारो वारुणीरुधिरं तथा ॥ ॥ २७९ ॥ मुद्गौदनाशना देवी सुराशोणितपायिनी । जलाशयरता देवी पातु त्वां शीतपूतना ॥ २८० ॥

नदीपर मूंगभातसे शीतपूतनाको तृप्त करे । जलाशयमें बालकको स्नान करावे । शीतपूतनाको मदिरा और रुधिर चढावे । पश्चात् बालकके निकट यह पाठ पढे कि मूँगभातको खानेवाली, मदिरा और रुधिरको पीनेवाली तथा जलाशयोंमें रहनेवाली शीतपूतना देवी सर्वदा तेरी रक्षा करे ॥ २७८॥ ॥ २७९ ॥ २८० ॥

अथ मुखमण्डिकाका निदान ।

प्रसन्नवर्णवदनः शिराभिरिव संवृतः । मूत्रगन्धीशुष्ककासी मुखमण्डिकया ग्रहे ॥ २८१ ॥

मुखमण्डिकाग्रहसे ग्रसित होनेपर बालक प्रसन्न मुखवाला और उज्ज्वल वर्णवाला होता है और वह उभरीहुई नसोंसे व्याप्त होता है, उसके शरीरमें मूत्रके समान दुर्गंध आती है और सूखी खाँसी होती है ॥ २८१ ॥

मुखमण्डिकाकी चिकित्सा।

कपित्थबिल्वतर्कारीवासागन्धर्वहस्तकः। कुबेराक्षी च योज्याः स्युर्बालानां परिषेचने ॥ २८२ ॥

कैथ, बेल, अरणी, अडूसा, अंड और वनतुलसी इनके क्वाथसे बालकोंके शरीरको परिषेचन करे२८२॥

स्वरसैर्भङ्गवृक्षाणां हयगन्धस्य वै तथा। तैलं वसाञ्च संयोज्य पचेदभ्यञ्जने शिशोः ॥ २८३ ॥

भाँगरेका स्वरस और असगंध इनके क्वाथके द्वारा चर्बीको अथवा तेलको पकावे। इस तेलका बालकके शरीर पर मर्दन करे ॥ २८३ ॥

मधूलिकायां पयसि तुगाक्षीर्य्यां गणे तथा। मधुरे पञ्चमूले च कनीयसि घृतं पचेत ॥ २८४ ॥

मुलेठी, दूध, वंशलोचन, मधुरगणकी औषधियाँ और लघुपंचमूलकी औषधियाँ इनके साथ घृतको पकाकर बालकोंको सेवन करावे ॥ २८४ ॥

वचासर्जरसः कुष्ठं सर्पिश्चोद्धूपने हितम्। धारयेदपि जिह्वाश्च चाषचीरल्लिसर्पजाः ॥ २८५ ॥

वच, राल, कूठ और घी इनकी धूनी देवे। तथा नीलकंठ, चील और साँपकी जिह्वाको एक डोरेमें बांधकर बालकके गलेमें बाँधदेवे ॥ २८५ ॥

वर्णकं चूर्णकं माल्यमञ्जनं पारदं तथा। मनःशिलां चोपहरेद्गोष्ठमध्ये बलिं तथा ॥ २८६ ॥ पायसं तु पुरोडाशं बल्यर्थमुपनाहयेत्। मन्त्रपूताभिरद्भिश्च तत्रैव स्नपनं हितम् ॥२८७॥ अलंकृता रूपवती सुभगा कामरूपिणी। गोष्ठमध्यालयरता पातु त्वां मुखमण्डिका ॥ २८८ ॥

चन्दन, सिंगरफ, फूलोंकी माला, अंजन, पारा और मैनशिल इनको गायक रहनेके स्थानमें मुखमण्डिकाको अर्पण कर खीरके पुरोडाशकी बलि देवे। पश्चात् निम्नलिखित मन्त्रसे जलको अभिमन्त्रित करके उसी स्थानमें बालकको स्नान करावे। शोभायमान, सुन्दररूपवाली, सुन्दर और यथेष्ट रूपोंको धारण करनेवाली और गायोंके स्थानमें रहनेवाली मुखमण्डिका देवी तेरी रक्षा करे ॥ २८६-२८८ ॥

अथ नैगमेषग्रहका निदान।

छर्दिस्पन्दनकण्ठास्यशोषो मूर्च्छा विगन्धिता। ऊर्ध्वं पश्येद्दशेद्दन्तान्नैगमेषं ग्रहं वदेत् ॥ २८९ ॥

जो बालक वमन करता हो, काँपता हो, जिसका कंठ और मुख सूख जाय, सदैव मूर्च्छा रहती हो, शरीरमेंसे दुर्गंध आती हो, वह ऊपरको देखता हो और दांतोंको चावता हो तब उसको नगमेष ग्रहसे गृहीत कहना चाहिए ॥ २८९ ॥

नैगमेषग्रहकी चिकित्सा।

बिल्वाग्निमन्थपूतीकाः कार्य्याः स्युः प्रतिषेचने। सुरासौवीरधान्याकं परिषेके प्रशस्यते ॥ २९० ॥

बेलगिरी, अरणी और दुर्गंधकरंज इनके क्वाथसे बालकको सेचन करे। अथवा मदिरा, काँजी और धनियां इनसे बालकके शरीरको सींचे ॥ २९० ॥

प्रियंगुसरलानन्ताशतपुष्पाकुटंनटैः। पचेत्तैलं सगोमूत्रैर्दधिमस्त्वम्लकाञ्जिकैः ॥ २९१ ॥

फूलप्रियंगु, धूपसरल, अनंतमूल, सौंफ और श्योनाक इनके कल्कके द्वारा गोमूत्र, दहीका तोड और खट्टी कांजीमें तेलको पकावे। इस तेलको बालकके शरीर आदिमें मर्दन करे ॥ २९१ ॥

पञ्चमूलद्वयक्वाथे क्षीरे च मधुके तथा। पचेद् घृतञ्च मतिमान्खर्जूर्य्यां मस्तकेऽथवा ॥ २९२ ॥

दशमूलके क्वाथ और मुलैठीके कल्कके द्वारा दूधमें घृतको पकावे अथवा खजूरके मस्तकके कल्कके द्वारा घृतको पकाकर बालकको सेवन करावे ॥ २९२ ॥

वचां वयःस्थां गोलोमीं जटिलां वापि धारयेत् ।

वच, हरड, सफेददूब और बालछड इनको एक डोरेमें बाँधकर बालकके गले आदिमें बांधदेवे ।

उत्सादनं हितं चात्र स्कन्दापस्मारनाशनम् ॥ २९३ ॥

स्कन्दापस्मारग्रहमें जो उत्सादन कहे हैं, वे ही इसमें प्रयोग करने चाहिये ॥ २९३ ॥

सिद्धार्थकं वचाहिंगुकुष्ठं चैवाक्षतैः सह । भल्लातकाजमोदश्च हितमङ्गूपनं शिशोः ॥ २९४ ॥ अधस्तात्क्षीरवृक्षस्य स्नपनं चोपदिश्यते ॥२९५॥ मर्कटोलूकगृध्राणां पुरीषाणि पितृगृहे । धूपः सुप्ते जने कार्य्यो बालस्य हितमिच्छता ॥ २९६ ॥

बालकको सफेदसरसों, बच, हींग, कूठ, अक्षत भिलावे और अजमोद इनकी धूनी देवे । दूधवाले वृक्षके नीचे बालकको स्नान करावे । बालकके हितकी इच्छा करनेवाला वैद्य जब घरके सम्पूर्ण मनुष्य सोजायँ तब बंदर उल्लू और गीधकी विष्ठाकी पिताके घरमें धूप देवे ॥ २९४ ॥ २९५ ॥ २९६ ॥

तिलतंडुलकं माल्यं भक्ष्याणि विविधानि च । कुमारपितृमेषाय प्लक्षमूले निवेदयेत् ॥ २९७ ॥

तिल, चावल, फूलोंकी माला और अनेकप्रकारके मिष्टान्न, पकान्न, भक्ष्य नैगमेषग्रहकी तृप्तिके लिये पाखरकी जडमें बलिदान करे ॥ २९७ ॥

अजाननश्चलाक्षिभ्रूः कामरूपी महायशाः । बालं पालयिता देवो नैगमेषोऽभिरक्षितु ॥ २९८ ॥

बकरेके समान मुखवाला, चंचलनेत्र और भोंहवाला, यथेष्टरूपोंको धारण करनेवाला महा यशस्वी और बालककी रक्षा करनेवाला ऐसा नैगमेषग्रह इस बालककी रक्षा करे ॥ २९८ ॥

अथ अन्यग्रहग्रसितके लक्षण ।

यः कृशः शास्त्रदृग्वीक्षी तृड्दाहाप्रतिघातकृत् । कुर्य्याच्च साहसं कर्म्म सहसा कामपीडितः ॥ २९९ ॥ सशब्दं वीक्ष्यते रात्रौ यो नाश्नाति बुभुक्षितः । शुष्कास्यो बलिकामेन स गृहीतोऽपि बाध्यति ॥ ३०० ॥

अब अन्यग्रहग्रसित बालकके तथा सम्पूर्ण मनुष्योंके लक्षण कहते हैं । जो कृश, शास्त्रदृष्टिसे देखनेवाला, तृषा और दाहसे व्याकुल होनेवाला, एक साथ कामसे पीडित होकर साहस कर्म्म करनेवाला, एवं रात्रिमें जो शब्द करे, चारों ओरको देखे तथा अत्यंत भूखा होनेपर भी भोजन नहीं करे और जिसका मुख सूखने लगे तो इन लक्षणोंसे युक्त बालक अथवा साधारण मनुष्यको बलिकी इच्छावाले ग्रहसे ग्रसित जानना चाहिए ॥ २९९ ॥ ३०० ॥

ग्रहबाधाकी चिकित्सा ।

महामुण्डीतिकोदीच्यक्वाथस्नानं ग्रहापहम् । सप्तच्छदामयनिशाचन्दनैश्चानुलेपनम् ॥ ३०१ ॥

बडी गोरखमुंडी और सुगंधवाला इनके क्वाथसे बालकको स्नान करानेसे सर्वप्रकारके ग्रह नष्ट होते हैं । एवं सतवन, कूठ, हलदी और चंदन इनको एकत्र पीसकर लेप करनेसे समस्त ग्रहबाधा शांत होती है ॥ ३०१ ॥

समूला सदला पिष्टा मूर्वा तिक्ता समन्विता । शिशोरुद्वर्त्तनं कुर्य्यात्सर्वग्रहनिवारणम् ॥ ३०२ ॥

जड और पत्तोंसहित मूर्वा और कुटकीको एकत्र पीसकर बालकके शिरपर उद्वर्तन करनेसे सर्वप्रकारके ग्रहोंकी बाधा शांत होती है ॥ ३०२ ॥

सर्पत्वग्लशुनं मूर्वा सर्षपारिष्टपल्लवाः । बिडालबिडजारोममेषशृङ्गीवचामधु ॥ धूपः शिशोर्ज्वरघ्नोऽयमशेषग्रहनाशनः ॥ ३०३ ॥

साँपकी कैंचली, लहशुन, मूर्वा, सरसों, नीमके पत्ते, बिलावकी विष्ठा, बकरीके रोम, मेंढाशिंगी, वच और शहद इनकी धूनी देनेसे बालकोंका ज्वर और समस्त ग्रहबाधा शांत होती है ॥ ३०३ ॥

मृतगोकुक्षिसंस्थेन गोमयेन च धूपनम् । हन्ति सर्वग्रहांश्चाशु ज्वरघ्नन्तु न संशयः ॥ ३०४ ॥ बालशान्तीष्टकर्माणि कार्य्याणि ग्रहशान्तये ३०५

मरी हुई गायके गोबरकी धूनी देनेसे सर्व प्रकारके ज्वर और ग्रहबाधा शांत होती है । ग्रहोंकी शांतिके लिये बालशांति आदि कार्य्य करे ॥३०४॥३०५ ॥

ग्रहेष्वधिपतिः स्कन्दः सर्वरोगेषु रेवती । पूजनीयौ ततस्तस्मात्तौ बालानां हितेच्छया ॥ ३०६ ॥

सर्वग्रहोंका अधिपति स्कन्द है और सर्वरोगोंका अधिपति रेवती है । इस कारण बालककी हितकी इच्छा करनेवाले इन दोनोंकी पूजा करे ॥ ३०६ ॥

स्वस्ति ते सम्मुखः स्कन्दो महाभागा च रेवती । दिशः सूर्योऽन्तरिक्षश्च स्वस्ति कुर्वन्तु सर्वदा ॥ ३०७॥ तेजसा ब्रह्मणश्चाथ विष्णोरिन्द्रस्य तेजसा । सिद्धानां तेजसा चैव रक्षितोऽस्मिन्सुखी भव ॥ ३०८॥ मन्त्रैरेतैर्भिषक्पश्चाद्रक्षां कुर्वीत बालके । भवन्ति निग्रहा बालाः सुखिनो रोगवर्जिताः ॥ ३०९ ॥

"स्वस्ति०सुखी भव" इन मंत्रोंके द्वारा बालककी रक्षा करे । इस प्रकार करनेसे बालक ग्रहरहित सुखी और रोगरहित हो जाते हैं ॥ ३०७–३०९ ॥

बालरोगाधिकारोक्तमष्टमंगलकं घृतम् । भिषजा तत्प्रयोक्तव्यमायुर्वेदविचारिणा ॥ ३१० ॥

बालरोगाधिकारमें जो अष्टमंगलघृत कहा है उस अष्टमंगलघृतको आयुर्वेदको जाननेवाला वैद्य इस ग्रहबाधामें भी प्रयोग करे ॥ ३१० ॥

ग्रहोपसृष्टबालास्तु दुश्चिकित्स्यतमाः स्मृताः वैकल्यं मरणं वापि ध्रुवं स्कन्दग्रहे नृणाम् ॥ ३११ ॥

ग्रहोंसे पीडित बालक प्रायः दुश्चिकित्स्य कहे हैं और स्कन्दग्रहमें तो बालकोंको निश्चय विकलता और मृत्यु होती है ॥ ३११ ॥

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायां बालरोगनिदानचिकित्साधिकार समाप्त ॥ ७० ॥

अथ विषरोगाधिकार ।

वैद्यके गुण ।

कुलिनं धार्मिकं स्निग्धं सुभृतं सततोत्थितम् । अलुब्धमशठं भक्तं कृतज्ञं प्रियदर्शनम् ॥ १ ॥ क्रोधपारुष्यमात्सर्य्यमदालस्यविवर्जितम् । जितेंद्रियं क्षमावन्तं शुचिं शीलदयान्वितम् ॥ २ ॥ मेधाविनमविश्रान्तमनुरक्तं हितैषिणम् । पटुं प्रगल्भं निपुणं दक्षं मायाविवर्जितम् ॥ ३॥ पूर्वोक्तैश्च गुणैर्युक्तं नित्यं सन्निहिताऽगदम् । महानसे प्रयुञ्जीत वैद्यं तद्विद्यपूजितम् ॥ ४ ॥

कुलीन, धार्म्मिक, स्निग्ध (रूक्षतारहित), सुभृत (जिसकी आजीविका अच्छेप्रकारसे होती हो), सततोत्थित (जो निरन्तर पढने पढाने और रोगियोंको आरोग्य करनेमें तत्पर रहता हो), लोभरहित, निष्कपट, भक्त, कृतज्ञ, रूपवान् तथा क्रोध, कर्कशता, मत्सरता, मद और आलस्यसे रहित, जितेंद्रिय, क्षमायुक्त, पवित्र, शील और दयासे युक्त, बुद्धिमान्, परिश्रमी, अनुरागयुक्त, हितैषी, चतुर, प्रगल्भ, निपुण, चतुर और मायारहित इन पूर्वोक्त गुणोंसे युक्त तथा सदैव रोगियोंको देखते रहनेवाले और पाकतत्त्वको जाननेवाले जिसकी प्रशंसा करते हों ऐसे वैद्यको पाकशालामें नियुक्त करे ॥ १–४ ॥

पाकशालाका विधान ।

प्रशस्तदिग्देशकृतं शुचिभाण्डं महाशुचि । सजालकं गवाक्ष्याढ्यमात्मवर्गनिषेवितम् ॥ ५ ॥ विकक्षसृष्टसंसृष्टं सवितानं कृतार्चनम् । परीक्षितस्त्रीपुरुषं भवेच्चापि महानसम् ॥ ६ ॥ महानासिकवोढारः सौपोदनिकपौपिकः । भवेयुर्वैद्यवशगा ये चाप्यन्ये तु केचन ॥ ७ ॥

पाकशाला उत्तमदेशमें और श्रेष्ठ दिशा उत्तर या पूर्वकी ओर मुखवाली होनी चाहिये । उसमें भोजन बनानेके पात्र राखमें माँजकर जलसे अत्यन्त शुद्ध करके रक्खे । बान्धव जनोंसे युक्त, उसके द्वारपर परदा अथवा वस्त्र लटका देवे, जिससे कि उसमें मच्छर मक्खी आदि प्रवेश न कर सकें और प्रकाशके लिये तथा धूम्र निकलनेके लिये जाली, झरोखे, रोशनदान आदि बनवा देवे । फिर उसमें अग्निका पूजन तथा हवनादिक करे और परीक्षा किये हुए आत्मीय जनोंको या अन्य स्त्रीपुरुषोंको उसमें कार्यके लिये नियुक्त करे । पाक बनानेवाले तथा अन्यान्य कार्य्य करनेवाले और दाल, भात, पूरी, कचौरी आदि बनानेवाले सब कर्म्मचारी वैद्यके आज्ञानुसार होने चाहिये ॥ ५-७ ॥

विषके लक्षण ।

स्थावरं जङ्गमश्चैव द्विविधं विषमुच्यते । मूलाद्यात्मकमाद्यं स्यात्परं सर्पादिसम्भवम् ॥ ८ ॥

स्थावर और जंगम इन भेदोंसे विष दो प्रकारका कहा गया है । इनमें वृक्षादिककी जडके विषको स्थावर और सर्पादिकसे उत्पन्न विषको जंगम विष कहते हैं ॥ ८ ॥

स्थावरश्च ज्वरं हिक्कां दन्तहर्षं गलग्रहम् । फेनछर्द्यरुचिश्वासं मूर्च्छाश्च कुरुते विषम् ॥ ९ ॥

स्थावर विष-ज्वर, हिचकी, दन्तहर्ष, गलेमें पीडा, झागोंका डालना, वमन, अरुचि, श्वास और मूर्च्छाको करता है ॥ ९ ॥

निद्रां तन्द्रां क्लमं दाहं सपाकं लोमहर्षणम् । शोथं चैवातिसारश्च कुरुते जङ्गमं विषम् ॥ १० ॥

जंगम विष-निद्रा, तन्द्रा, ग्लानि, दाह, पाक, रोमांचका होना, सूजन और अतिसारको उत्पन्न करता है ॥ १० ॥

विष देनेवालेके लक्षण ।

इङ्गितज्ञो मनुष्याणां वाक्चेष्टामुखवैकृतैः । जानीयाद्विषदातारमेभिर्लिङ्गैश्च बुद्धिमान् ॥ ११ ॥ न ददात्युत्तरं पृष्टो विवक्षुर्मोहमेति च । अपार्थं बहुसंकीर्णं भाषते चापि मूढवत् ॥ १२ ॥ हसत्यकस्मात्स्फोटयेदङ्गुलीर्विलिखेन्महीम् । वेपथुश्चास्य भवति त्रस्तश्चैकैकमीक्षते ॥ १३ ॥ विवर्णवक्त्रोध्यामश्च नखैः किञ्चिच्छिनत्त्यपि । वर्त्तते विपरीतश्च विषदाता विचेतनः ॥ १४ ॥

प्रायः राजा और बडे मनुष्योंको उनके शत्रुसेवक अन्नादिकमें विष मिलाकर देते हैं इसलिये उस विष देनेवालेके लक्षण लिखते हैंः—

मनुष्योंके अभिप्रायको जाननेवाले, बुद्धिमान् पुरुष वाणी, चेष्टा और मुखकी विकृतिसे तथा नीचे लिखे अन्यान्य लक्षणोंसे विष देनेवालेको जानलेवे । विष देनेवाला पूँछनेपर अपने दुष्टकर्मकी बेहोशीसे उत्तर नहीं देता और जो मनको रोककर बोलता है तो बोला नहीं जाता, घबरा जाता है अथवा मूर्खके समान बहुत व्यर्थ तथा गिड़गिड़ाकर वचन बोलता है, अकस्मात् हँसता है, भयसे उत्पन्न हुई सन्धियोंकी पीडाको दूर करनेके लिये अँगुलियोंको चटकाता है पृथ्वीको लिखता या खोदता है, काँपता है, भयभीत होकर एक एक मनुष्यकी ओर देखता है, रंकके समान वारंवार बालोंको हाथसे छूता है, दरवाजेको छोडकर दूसरे मार्गसे जानेकी बारंबार चेष्टा करता है, मुखका रंग बदलजाता है या जलेके समान रंग होजाता है, नखोंसे तृण आदिको तोडता है, विपरीत कामोंकी इच्छा करता है और उन्मत्त होकर

इधर उधर देखता है । ये सब विष देनेवालेके लक्षण हैं ॥११-१४॥

विषयुक्त अन्नकी परीक्षाका प्रकार ।

नृपभक्ते भुवि न्यस्ते क्रौञ्चश्च मदमिच्छति । हृष्येन्मयूरस्तद्दृष्ट्वा क्रोशतः शुकशारिके ॥ १५ ॥ हंसः क्रीडति चात्यर्थं भृङ्गराजस्तु कूजति । शुनको विसृजत्यश्रु विष्ठां मुञ्चति मर्कटः १६ ॥

राजाके भोजनको परीक्षाके लिये पृथ्वीमें डाले, जो उसमें विष मिला होता है तो उसको देख कर क्रौंचपक्षी मदको प्राप्त होजाता है, मयूर उसको देखकर उन्मत्त होजाता है, तोता और मैना उसको देखकर रोते हैं, हंस क्रीडा करता है, भृंगराज अत्यन्त कूँजता है, शुनक पक्षी आंसू डालता है और उस भोजनको देखनेसे बन्दरको दस्त होने लगते हैं ॥ ॥ १५ ॥ १६ ॥

उपक्षिप्तस्य चान्नस्य बाष्पान्यर्थे विसर्पते । हृत्पीडोष्णश्च नेत्रत्वं शिरोदुःखश्च जायते ॥ १७ ॥

थालीमें परोसेहुए उस विषमिश्रित अन्नकी बाफके लगनेसे हृदयमें पीडा, नेत्रोंमें उष्णता और शिरोविकार उत्पन्न होता है ॥ १७ ॥

विषरोगकी चिकित्सा ।

तत्र स्यादञ्जने कुष्ठं लामज्जं नलदं मधु । कुर्य्याच्छिरीषरजनीचन्दनैश्च प्रलेपनम् । हृदि चन्दनलेपश्च कृत्वा वै सुखमाप्नुयात् ॥ १८ ॥

उस समय कूठ, लामज्जकतृण, खस और शहद इन सबको एकत्र पीसकर नेत्रोंमें आंजे तथा शिरस हलदी और चन्दन इनको पीसकर लेप करे और हृदयपर चन्दनका लेप करे तो सुखकी प्राप्ति होती है ॥ १८ ॥

प्राणिप्राप्तं पाणिदाहं नखशान्तिं करोति च ॥ तत्र प्रलेपे श्यामेन्द्रगोपीश्यामोत्पलानि च ॥ १९ ॥

जब विष मनुष्यके हाथमें पहुंचता है तब हाथमें दाह होती है और नख गिरने लगते हैं। उस समय निसोत, दोनोंप्रकारकी शारिवा और कमल इनका लेप करना चाहिये ॥ १९ ॥

प्रमादान्मोहतोचेतास्तदन्नमुपसेवते । ॥ २० ॥ ततोऽस्याष्ठीलवज्जिह्वा भवत्यरसवेदिनी । तुद्यते दह्यते वापि श्लेष्मा चास्ये प्रवर्त्तते ॥ २१ ॥ तत्र बाप्पेरितं कर्म्म यश्च स्याद्धातुकर्षितम् ॥ २२ ॥

जो असावधानीसे या अज्ञानतासे विषको भक्षण करलेते हैं उनकी जिह्वा पत्थर अथवा लकडीके समान जकड जाती है, इस लिए उस समय वे जो अन्न खाते हैं उसके रसका ज्ञान नहीं रहता तथा तोडनेसरीखी पीडा और दाह होती है, और मुखके द्वारा कफ गिरने लगता है। इस अवस्थामें बाफके द्वारा जो शिरीषादिका लेप कहा है वह करे और धातुको अपकर्षण करनेवाले कर्म्म करे॥२०॥२१॥२२॥

मूर्च्छाछर्दिभ्रमोदाहमाध्मानक्लमवेपथुः । इन्द्रियाणां च वैकृत्यं कुर्य्यादामाशये गतम् ॥ २३ ॥

जब विष आमाशयमें प्राप्त होजाता है तब मूर्च्छा, वमन, भ्रम, दाह, अफारा, ग्लानि, कम्प और इन्द्रियोंमें विकृति होती है ॥ २३ ॥

तत्राशु मदनालाबुविश्वघोषवतीफलैः । छर्दनं दध्युदाश्विद्वाममथवा तंडुलाम्बुना ॥ २४ ॥

इस अवस्थामें शीघ्र ही मैनफल, तोम्बी, सोंठ, कड़वीतोरई, दही, उदश्वित, (तक्रका भेद) अथवा चावलोंका जल इनके द्वारा वमन करावे ॥ २४ ॥

कोशातक्यग्निकः पाठा सूर्य्यवर्णामृताभया । शैलं शिरीषकिणही हरिद्रे बृहतीद्वयम् ॥ २५॥

तोरई, चीता, पाढ, हुलहुल, गिलोय, हरड, शिलारस, शिरस, कटभी, हलदी, दारुहलदी और दोनों प्रकारकी कटेरी इनके द्वारा वमन करावे ॥२५॥

स्थावरविषके सामान्यकार्य ।

उद्वेष्टनं मूलविषैः प्रलापो मोह एव च। जृम्भणं वेपनं श्वासो ज्ञेयं पत्रविषेण तु ॥ २६॥

मूलविषको भक्षण करनेसे शरीरमें ऐंठ,प्रलाप(वृथा बकवाद) और बेहोशी होती है। पत्रविषको भक्षण करनेसे जंभाईयोंका आना, कंप और श्वास होता है ॥ २६ ॥

मुष्कशोथः फलविषैर्दाहोऽन्नद्वेष एव च । भवेत्पुष्पविषैश्छर्दिराध्मानं श्वास एव च ॥ २७ ॥

फलविषको भक्षण करनेसे अण्डकोशोंमें सूजन, दाह और भोजनमें अरुचि होती है । फूलविषको भक्षण करनेसे वमन,अफारा और श्वास होता है२७

त्वक्सारनिर्य्यासविषैरुपयुक्तैर्भवन्ति हि । आस्यदौर्गन्धपारुष्याशिरोरुक्फसंस्रवाः ॥ २८ ॥

छाल, सार और गोंदके विषको भक्षण करनेसे मुखमें दुर्गंध, शरीरमें रूक्षता, कठिनता, शिरमें पीडा और कफका स्राव होता है ॥ २८ ॥

क्षीरविषके कार्य ।

फेनागमः क्षीरविषैर्विड्भेदो गुरुजिह्वता ।

क्षीरविषको खानेसे मुखमें झागोंका आना, दस्तोंका होना और जिह्वामें जड़ता होती है ।

धातुविषके कार्य ।

हृत्पीडनं धातुविषैर्मूर्च्छा दाहश्च तालुनि ॥ २९ ॥

धातुविषको खानेसे हृदयमें पीडा, मूर्च्छा और तालुवेमें दाह होती है ॥ २९ ॥

प्रायेण कालघातीनि विषाण्येतानि निर्दिशेत् ॥ ३० ॥

उपर्युक्त मूल आदि नव विषोंको विशेष कर खानेसे कालान्तरमें मृत्यु होती है ॥ ३० ॥

विषलिप्तशस्त्रहतके लक्षण ।

सद्यः क्षतं पच्यते यस्य जन्तोः स्रवेद्रक्तं पच्यते चाप्यभीक्ष्णम् । कृष्णीभूतं क्लिन्नमत्यर्थपूति क्षतान्मांसं शीर्य्यते यस्य वापि ॥ ३१ ॥ तृष्णा मूर्च्छा ज्वरदाहौ च यस्य दिग्धाहतं तं मनुजं व्यवस्येत् । लिङ्गान्येतान्येव कुर्य्याद्‌मित्रैर्व्रणे विषं यस्य दत्तं प्रमादात् ॥ ३२ ॥

जिस मनुष्यका घाव तत्काल पकजाय उस घावमसे रुधिर बहै,और वारम्वार पके।तथा जिसके घावमेंसे काला,सडा हुआ और अत्यन्त दुर्गंधित मांस गलकर गिरे । एवं जिसके तृषा, मूर्च्छा, ज्वर और दाह हो तो उसके विषमें बुझाये हुए अथवा विषसे लिप्त हुए शस्त्रका घाव जानना । जिसके व्रणमें शत्रुने कपट करके विष लगा दिया हो, उस घावके भी ऐसे ही लक्षण जानने ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

विषपानके लक्षण ।

सवातं गृहधूमाभं पुरीषं योऽतिसार्य्यते । फेनमुद्वहते चापि विषपीतं तमादिशेत् ॥ ३३ ॥

जिसके अपानवायुके साथ घरके धुंयेंकी समान वर्ण वाले दस्त हों और जो झागोंको डाले तो उसके विष पीनेके लक्षण जानने ॥ ३३ ॥

जङ्गमविषलक्षण ।

सबसे प्रथम सर्पविषके लक्षण कहते हैं ।

वातपित्तकफात्मानो भोगिमण्डलराजिलाः । यथाक्रमं समाख्याता द्व्यंतरा द्वंद्वरूपिणः ॥ ३४ ॥

मुख्यतासे प्रायः भोगी, मण्डली और राजिल इस प्रकार तीन जातिके सर्प हैं । इनमेंसे भोगीसर्प वातप्रकृतिवाले हैं, मंडलीसर्प पित्तकी प्रकृतिवाले हैं और राजिलसर्प कफकी प्रकृतिवाले हैं।और जो एक जातिके सर्पसे दूसरी जातिकी सर्पिणीमें उत्पन्न (जैसे कि भोगी जातिके सर्पसे मण्डलीजातिकी सर्पिणीमें उत्पन्न) हुआ हो तो वह मिश्रितप्रकृतिवाले अर्थात् द्वन्द्वज होते हैं ॥ ३४ ॥

---

(१)फणिनो भोगिनो ज्ञेयाः संख्यातास्तेऽत्र विंशतिः । मण्डलैर्विविधैश्चित्राः पृथवो मन्दगामिनः ॥ षट् ते मण्डलिनो ज्ञेयाज्वलनार्कविषाःस्मृताः। स्निग्धा विविधवर्णाभिस्तिर्यगूर्ध्वश्च राजिभिः । विचित्रा इव ये भांति राजिलास्तेहि तेऽपि षड्

दंशो भोगिकृतः कृष्णः सर्ववातविकारकृत् । पीतो मण्डलिनो शोथो मृदुः पित्तविकारवान् ॥ ३५ ॥ राजिलोत्थो भवेद्दंशः स्थिरशोथश्च पिच्छलः । पांडुः स्निग्धोऽतिसान्द्रासृक् सर्वश्लेष्मविकारवान् ॥ ३६ ॥

भोगीसर्पका काटा हुआ स्थान–काला होजाता है और सर्वप्रकारके वायुके विकारोंको उत्पन्न करता है मण्डलीसर्पका काटाहुआ स्थान–पीला, सूजन युक्त, नरम और सम्पूर्ण पित्तके विकारोंको उत्पन्न करता है। राजिलसर्पका काटाहुआ स्थान–काठिन, सूजनयुक्त, पिच्छिल, पांडुवर्ण और चिकना होता है। उसमेंसे अत्यन्त गाढा रुधिर निकलता है और वह सर्वप्रकारके कफके विकारोंको उत्पन्न करता है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

विषके दशगुण ।

लघ्वव्यक्तरसं सूक्ष्मं रूक्षणोष्णाशुव्यवायि च । विकासि विशदं तीक्ष्णं विषं दशगुणं स्मृतम् ॥ ३७ ॥

लघु, अव्यक्तरस, सूक्ष्म, रूक्ष, उष्ण, आशु व्यवायि, विकासि, विशद और तीक्ष्ण ये दश गुण विषमें रहते हैं ॥ ३७ ॥

मघाद्रार्कृत्तिकाश्लेषाभरणीषु प्रयत्नतः। पूर्वासु मर्म्मदष्टस्य कस्यचिज्जीवनं भवेत् ॥ ३८ ॥

मघा, आर्द्रा, कृतिका, आश्लेषा, भरणी, पूर्वाषाढा, पूर्वाफाल्गुनी और पूर्वाभाद्रपदा इन नक्षत्रोंमें काटा हुआ अथवा मर्म्मस्थानोंमें काटा हुआ कदाचित् कोई रोगी जीता है ॥ ३८ ॥

नवमी पञ्चमी षष्ठी तथा कृष्णचतुर्दशी । चतुर्थी सन्धिके द्वे च दष्टा एषु न जीविताः ॥ ३९ ॥

नवमी, पञ्चमी, षष्ठी, कृष्णाचतुर्दशी और चतुर्थी इन तिथियोंमें काटाहुआ एवं दोनों संधियों अर्थात् संध्याके समय और प्रभातके समयमें कटेहुए मनुष्य नहीं जीते हैं ॥ ३९ ॥

विषरोगकी सामान्यचिकित्सा ।

चन्दनं वृषणच्छेददाहस्रावाः प्रकीर्त्तिताः । पूर्वं दष्टस्य पानञ्च हृदयावरणं घृतम् ॥ ४० ॥

सर्पके काटनेपर प्रथम चंदनका प्रयोग फिर अंडकोषोंको छेदना, दागदेना और रुधिर निकलवाना चाहिए। एवं हृदयको आवरण करनेवाले घृतादिक पान करे ॥ ४० ॥

देश और कालकी विशेषतासे सर्पदंशको असाध्यत्व कहते हैं ।

अश्वत्थदेवायतनश्मशानवल्मीकसन्ध्यासु चतुष्पथेषु । याम्ये च दष्टाः परिवर्जनीया ऋक्षे नरा मर्म्मसु ये च दष्टाः ॥ दर्वीकराणां विषमाशु घाति सर्वाणि चोष्णे द्विगुणीभवन्ति ॥ ४१ ॥ अजीर्णपित्तश्रमपीडितेषु बालेषु वृद्धेषु बुभुक्षितेषु । क्षीणे क्षते मेहनि कुष्ठजुष्टे रूक्षेऽबले गर्भवतीषु चापि ॥ ४२ ॥ शस्त्रक्षते यस्य न रक्तमस्ति राज्यो लताभिश्च न संभवन्ति । शीताभिरद्भिश्च न रोमहर्षो विषाभिभूतं परिवर्जयेत्तम् ॥ ४३ ॥

पीपलके वृक्षके नीचे, देवमन्दिरमें, श्मशानमें, बांबीमें, सन्ध्या समयमें, चौराहेमें, तथा भरणी, मघा, आर्द्रा, आश्लेषा, मूल और कृत्तिकादिनक्षत्रोंमें तथा पंचमी आदि तिथियोंमें और शिरागत मर्म्मस्थानोंमें सर्प काटे तो वह मनुष्य नहीं जीता है। दर्वीकर सर्पका काटा हुआ मनुष्य तत्काल प्राणोंको त्याग देता है । प्रायः सर्वप्रकारके विष उष्णतासे अर्थात् गरमीमें दूना जोर करते हैं। जो मनुष्य अजीर्ण, पित्त और श्रमसे पीडित, तथा बाकक, वृद्ध, भूखा, क्षीण, क्षतरोगी, प्रमेहरोगी, कुष्ठरोगी, रूखे शरीरवाला, निर्बल, गर्भवती स्त्री, जिसके शस्त्र लगनेसे भी रुधिर नहीं निकले, चाबुक मारनेपर शरीरपर नहीं उछले और जिसके शरीरपर शीतल जल डालनेसे रोमांच न हों उस सर्पके डसे हुए मनुष्यकी चिकित्सा न करे अर्थात् उसको असाध्य समझ कर वैद्य त्याग देवे ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

जिह्वां मुखं यस्य च केशशातो नासावसादश्च सकण्ठभङ्गः । कृष्णः सरक्तः

श्वयथुश्च दंशो हन्वोः स्थिरत्वञ्च स वर्जनीयः ॥ ४४ ॥

जिस मनुष्यका मुख टेढा होजाय, केश स्पर्श करनेसे टूट टूट कर गिरें, नाक टेढी पडजाय, गर्दन झुकजाय, अथवा स्वरभंग होजाय, डसनेकी जगह लाल अथवा काली सूजन युक्त हो और ठोढी कठिन हो,ठोढीका भाग जकड़ जाय अर्थात् मुख नहीं खुले उसको वैद्य त्याग देवे ॥ ४४ ॥

वर्त्तिर्घना यस्य निरेति वक्राद्रक्तं स्रवेदूर्ध्वमधश्च यस्य । दंष्ट्राभिघाताश्चतुरश्च यस्य स चापि वैद्यैः परिवर्जनीयः ॥ ४५ ॥

जिस मनुष्यके मुखसे लारकी गाढी बत्तीसी गिरे, ऊर्ध्व(मुख, नासिका, कर्ण,नेत्र इत्यादि) और अधो (गुदा, लिंग, योनि इत्यादि) मार्गसे रुधिर गिरे और जिसके बराबर २ चार दाँत लगे हों उसको भी वैद्य त्याग देवे ॥ ४५ ॥

उन्मत्तमत्यर्थमुपद्रुतञ्च हीनस्वरं वाप्यथवा विवर्णम् । सारिष्टमत्यर्थमवेगिनञ्च जह्यान्नरं यत्र न कर्म्म कुर्य्यात् ॥ ४६ ॥

जो मनुष्य विषकी व्याकुलतासे अत्यन्त मत्त अर्थात् बावलासा होजावे तथा ज्वर अतिसारादि उपद्रवोंसे युक्त हो, जिसका स्वर क्षीण होगया हो, शरीरका रंग बदल गया हो, मृत्युके लक्षणोंसे युक्त और जिसके मलमूत्र बंद होगये हों अथवा वेग अर्थात् लहर न उठे ऐसे सांपके काटे हुए मनुष्यको त्याग देवे ॥ ४६ ॥

दूषीविषके लक्षण ।

जीर्णं विषघ्नौषधिभिर्हतं वा दावाग्निवातातपशोषितं वा । स्वभावतो वा गुणविप्रहीनं विषं हि दूषीविषतामुपैति ॥ ४७ ॥

जो विष अत्यंत पुराना होगया हो, अथवा विषनाशक औषधियोंसे हीनवीर्य्य कियागया हो,अथवा दावाग्नि, वायु और धूपसे सूख गया हो, या सर्दी, गरमीसे बिगड गया हो अथवा स्वाभाविक दशगुणों मेंसे एक, दो या तीन चार गुणोंसे रहित होगया हो तो उसको दूषीविष कहते हैं ॥ ४७॥

दूषीविषके कार्य ।

वीर्य्याल्पभावान्न निपातयेत्तत्कफान्वितं वर्षगुणानुबंधि । तेनार्दितो भिन्नपुरीषवर्णो विगंधवैरस्ययुतः पिपासी ॥ मूर्च्छां भ्रमं गद्गदवान्वमित्वं विचेष्टमानोऽरतिमाप्नुयाद्वा॥४८

यह दूषीविष हीनवीर्य्य होनेके कारण मारता तो नहीं है, किन्तु कफसे उष्णादिगुणोंके मद होनेके कारण एवं अग्निकी मंदता होनेसे यह विष नहीं पचनेके कारण बहुत दिनोंतक शरीरमें रहता है । दूषीविषसे पीडित मनुष्यके दस्त पतला आता है, मुखमें दुर्गंध और शरीरका रंग बदल जाता है, नीरसता होतीहै एवं, तृषा, मूर्च्छा, भ्रम, वाणीमें गद्गदपन और वमन ये सब रोग होते हैं। वह विरुद्ध चेष्टा करता है और उसे चैन नहीं मिलता ॥ ४८ ॥

स्थानविशेषसे उत्पन्न दूषीविषके लक्षण ।

आमाशयस्थे कफवातरोगी पक्वाशयस्थेऽनिलपित्तरोगी । भवेत्समुद्ध्वस्तशिरोरुहांगो विलूनपक्षस्तु यथा विहङ्गः ॥ ४९ ॥

दूषीविष आमाशयमें प्राप्त होनेपर कफ और वायुके रोगोंको उत्पन्न करता है । पक्वाशयमें प्राप्त होकर वात और पित्तसम्बन्धीरोगोंको उत्पन्न करता है। और जब यह दूषीविष शिरके बाल और रोमोंमें प्राप्त होता है तब पंखरहित पक्षीके समान कर देता है ॥ ४९ ॥

स्थितं रसादिष्वथवा यथोक्तान्करोति धातुप्रभवान्विकारान् ।

जब यह दूषीविष रसादिधातुओंमें प्राप्त होता है तो सुश्रुतके सूत्रस्थानके व्याधिसमुद्देशीयनामके चौवीसवें अध्यायमें कहे अनुसार धातुसम्बन्धीविकारोंको करता है ।

दूषीविषके प्रकोपका समय ।

कोपश्च शीतानिलदुर्दिनेषु यात्याशु पूर्वं शृणु तस्य रूपम् ॥ ५० ॥

यह दूषीविष अत्यंत शीतके समय, अत्यंत पवन चलनेके समय और मेघोंसे घिरे हुए दिनमें तत्काल प्रकोपको प्राप्त होता है। अब प्रकुपित दूषीविषके पूर्वरूपको कहता हूं, सो सुन ॥ ५० ॥

प्रकुपितदूषीविषके पूर्वरूप ।

निद्रागुरुत्वञ्च विजृम्भणञ्च विश्लेषहर्षावथवाङ्गमर्दम् ।

निद्रा, शरीरमें भारीपन, जंभाइयोंका आना, अंगोंमें शिथिलता, रोमांचोंका होना और अंगोंका टूटना, ये प्रकुपित दूषीविषके पूर्वरूप हैं।

प्रकुपितदूषीविषके रूप ।

ततः करोत्यन्नमदाविपाकावरोचकं मण्डलकोठजन्म ॥ ५१ ॥ मांसक्षयं पादकरप्रशोथं मूर्च्छान्तथा छर्दिमथातिसारम् । दूषीविषं श्वासतृषाज्वरांश्च कुर्य्यात्प्रवृद्धिं जठरस्य चापि ॥ ५२ ॥

प्रकोपको प्राप्त हुआ दूषीविष, अन्नको भोजन करनेपर सुपारीके समान मदको करता है, अन्नको पचने नहीं देता, तथा अरुचि, शरीरमें चकत्ते और गांठोंको उत्पन्न करता है। मांसक्षय, हाथ पांवोंमें सूजन, मूर्च्छा, वमन, अतिसार, श्वास, तृषा, ज्वर और उदरको बढाता है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

दूषीविषके भेदोंसे विकारभेद ।

उन्मादमन्यज्जनयेत्तथान्यदानाहमन्यत्क्षयते च शुक्रम् । गद्गदमन्यज्जनयेच्च कुष्ठं तांस्तान्विकारांश्च बहुप्रकारान् ॥ ५३ ॥

कोई दूषीविष उन्मादको उत्पन्न करता है। कोई दूषीविष आनाहको उत्पन्न करता है। कोई दूषीविष वीर्य्यको क्षीण करता है। कोई दूषीविष वाणीको गद्गद करता है। कोई दूषीविष कुष्ठको उत्पन्न करता है और कोई दूषीविष विसर्प और विस्फोटकादि रोगोंको उत्पन्न करता है ॥ ५३ ॥

दूषीविषशब्दकी निरुक्ति ।

दूषितं देशकालान्नदिवास्वप्नैरभीक्ष्णशः । यस्मात्सन्दूषयेद्धातूंस्तस्माद्दूषीविषं स्मृतम् ॥ ५४ ॥

देश, काल, अन्न और दिनकी निद्राके कारण दूषित हुआ विष वारंवार धातुओंको दूषित करता है, इस कारण इसको दूषीविष कहते हैं ॥ ५४ ॥

दूषीविष साध्य याप्य और असाध्य ।

साध्यमात्मवतः सद्यो याप्यं संवत्सरोषितम् । दूषीविषमसाध्यं स्यात्क्षीणस्याऽहितसेविनः ॥ ५५ ॥

दूषीविष जितेन्द्रिय अर्थात् पथ्य सेवन करनेवाले मनुष्यको तत्काल साध्य होता है। एक वर्षके पश्चात् याप्य होजाता है और क्षीण तथा अपथ्य सेवन करनेवाले मनुष्यके दूषीविष असाध्य होता है ॥ ५५ ॥

अथ गरविष ।

सौभाग्यार्थं स्त्रियः स्वेदरजोनानाङ्गजान्मलान् । शत्रुप्रयुक्तांश्च मलान्प्रयच्छन्त्यन्नमिश्रितान् ॥ ५६ ॥ तैः स्यात्पांडुः कृशोऽल्पाग्निः गरश्चास्योपजायते । मर्म्मप्रधमनाध्मानं हस्तयोः शोथलक्षणम् ॥ ५७ ॥ जठरं ग्रहणीरोगो यक्ष्मगुल्मयकृज्ज्वराः । एवंविधस्य चान्यस्य व्याधेर्लिङ्गानि निर्दिशेत् ॥ ५८ ॥

स्त्रियें पतिको वशमें करनेके लिये, पसीना, रज और अंगके अनेकमलोंको भोजनमें मिलाकर पतियोंको खिलादेती हैं। तथा शत्रुभी इसी प्रकारके पदार्थोंको भोजनमें मिलाकर मनुष्योंको खिलादेते हैं। यह पसीना आदि अधम पदार्थ गर कहाते हैं। पसीना तथा रज आदि गरसे पांडुता होती है, शरीर कृश होजाता है, अग्नि मंद हो जाती है, गरदोष उत्पन्न होजाता है, ज्वर आता है, मर्म्मस्थानोंमें

पीडा होती है,अफारा होता है,धातुक्षय और हाथोंमें सूजन होती है तथा उदररोग, संग्रहणी, राजयक्ष्मा,गुल्म,यकृत् और ज्वर एवं इसीप्रकार और भी अनेकरोगोंके लक्षण होते हैं ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८॥

अथ लूताविषकी उत्पत्ति और निरुक्ति ।

यस्माल्लूनं तृणं प्राप्ता मुनेः प्रस्वेदबिन्दवः । तस्माल्लूताः प्रभाषन्ते संख्ययास्ताश्च षोडश ॥ ५९ ॥

जब वसिष्ठजीकी गायको विश्वामित्र बलात्कारसे लेकर चले तब वसिष्ठजीके क्रोधसे मस्तकमें पसीना आया,उससमय उस पसीनेके जो बिन्दु घासपर गिरे उनसे जो जीव उत्पन्न हुये लूता कहे जाते हैं।लूताकी सोलह जाति हैं। "लु" इस धातुका अर्थ काटनेका है ॥ ५९ ॥

ताभिर्दष्टे दंशकोथ प्रवृत्तिः क्षतजस्य च । ज्वरो दाहोऽतिसारश्च गदाः स्युश्च त्रिदोषजाः ॥ ६० ॥ पिडिका विविधाकारा मण्डलानि महान्ति च । शोथा महान्तो मृदवो रक्ताः श्यावाश्चलास्तथा ॥ सामान्यं सर्वलूतानामेतद्दंशस्य लक्षणम् ॥६१॥

लूताके काटने पर स्थान सड़जाता है, रुधिर बहने लगता है, एवं ज्वर, दाह, अतिसार और त्रिदोषजनित रोग होते हैं, अनेकप्रकारकी फुन्सियें उत्पन्न होती हैं, बड़े २ चकत्ते पडजाते हैं, और बड़ी गम्भीर, कोमल, लाल, चंचल तथा कलौंसयुक्त सूजन होती है । यह लूतादंशके सामान्य लक्षण हैं ॥ ६० ॥ ६१ ॥

दंशमध्ये तु यत्कृष्णं श्यावं वा जालकावृतम् । ऊर्ध्वाकृति भृशं पाकं क्लेदकोथज्वरान्वितम् ॥ सर्पाणामेव विण्मूत्रशवकोथसमुद्भवाः । दूषीविषाश्च कृमय इति संक्षेपतो मताः॥ दूषीविषाभिर्लूताभिस्तं दष्टमिति निर्दिशेत् ॥ ६२ ॥ शोथाः श्वेतासिता रक्ताः पीताः सपिडिका ज्वराः । प्राणान्तिकाभिजायन्ते श्वासहिक्काशिरोग्रहाः ॥ ६३ ॥

जो कटाहुआ स्थान काला तथा लाल, काले, पीले, मिले हुए तीनों रंगका हो, जालके समान ढकाहुआ, ऊँचा, शीघ्र पकनेवाला, सदैव भीजा, सफेद राध बहानेवाला तथा ज्वरयुक्त हो उसको दूषीविषवाली लूतासे कटाहुआ जानना । साँपोंके मलमूत्रके संयोगसे अथवा मरेहुए साँपके शरीरके सड़जानेसे दूषीविषके कृमि उत्पन्न होते हैं । वे प्राणनाशक हैं । उनसे काटे हुए स्थान सूजनयुक्त, सफेद, काले, लाल, पीले और फुन्सियोंयुक्त होते हैं तथा ज्वर, श्वास, हिचकी और शिरपीडा ये सब रोग होते हैं ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

आखुदूषीविषके लक्षण ।

आदंशाच्छोणितं पांडु मण्डलानि ज्वरोऽरुचिः । रोमहर्षश्च दाहश्चाप्याखुदूषीविषार्दिते ॥ ६४ ॥

जिस चूहेके काटनेसे रुधिर पीला पड़जाय, शरीरमें चकत्ते उठआवें, ज्वर, अरुचि, रोमांचका होना और दाह हो तो उसको दूषीविषवाले मूसेसे काटा हुआ जानना ॥ ६४ ॥

असाध्यमूसेके लक्षण ।

मूर्च्छाङ्गशोथवैवर्ण्यक्लेदशब्दाऽश्रुतिज्वराः । शिरोगुरुत्वं लालासृक्छर्दिश्चासाध्यमूषिकैः ॥ ६५ ॥

जिस मूसेके काटनेसे मूर्च्छा, शरीरमें सूजन, विवर्णता, क्लेद, शब्दका यथार्थ न सुन सकना, ज्वर, शिरमें भारीपन, लारका गिरना और रुधिरकी वमनका होना ये लक्षण हों तो उसको विषैले मूसेसे काटा हुआ जानना, वह रोगी असाध्य होता है६५॥

कृकलासदष्टके लक्षण ।

कार्श्यं श्यावत्वमथवा नानावर्णत्वमेव च । व्यामोहो वर्चसो भेदो दष्टः स्यात्कृकलासकैः ॥ ६६ ॥

करकैंटे अर्थात् गिरगिटका काटा हुआ स्थान काला, अथवा लाल और काले रंगका, अथवा अनेक रंगका होता है तथा बेहोशी और दस्त होते हैं ॥६६

वृश्चिकदष्टके लक्षण।

दहत्यग्निरिवादौ तु भिनत्तीवोर्ध्वमाशु च। वृश्चिकस्य विषं याति दंशे पश्चात्तु तिष्ठति ॥ ६७ ॥

विच्छूका विष प्रथम अग्निकीसमान दाह करता है फिर शीघ्र ही ऊपरको चढकर अंगोंको तोडनेके समान पीडा करता है। फिर काटनेके स्थानमें आकर विच्छूका विष स्थिर होजाता है ॥ ६७ ॥

असाध्यवृश्चिकदष्टके लक्षण।

दष्टोऽसाध्यस्तु हृद्घ्राणरसनोपहतो नरः। मांसैः पतद्भिरत्यर्थं वेदनार्तो जहत्यसून् ॥ ६८ ॥

जिस मनुष्यके हृदय, नासिका और जिह्वामें विच्छू डंक मारता है तो उसके मांस गलकर गिरने लगता है, अत्यन्त पीडासे पीडित होकर रोगी प्राण त्याग देता है ॥ ६८ ॥

कणभदष्टके लक्षण।

विसर्पः श्वयथुः शूलं ज्वरश्छर्दिरथापि वा। लक्षणं कणभैर्दष्टे दंशश्चैव विशीर्य्यते ॥ ६९ ॥

कणभनामक क्रमिके काटनेपर विसर्प, सूजन, शूल, ज्वर और वमन होती है तथा काटनेके स्थानका मांस गल जाता है ॥ ६९ ॥

उच्चिटिंगदष्टके लक्षण।

हृष्टरोमोच्चिटिङ्गेन स्तब्धलिंगो भृशार्तिमान्। दष्टः शीतोदकेनैव सिक्तान्यङ्गानि मन्यते ॥ ७० ॥

उच्चिटिंग अर्थात् झींगरके काटनेसे रोमांच हो आते हैं, लिंग जकड जाता है, अत्यन्त वेदना होती है और सम्पूर्ण शरीर शीतल जलसे भीजनेके समान प्रतीत होता है ॥ ७० ॥

मण्डूकदष्टके लक्षण।

एकदंष्ट्रार्दितः शूनः सरुजः पीतकः सतृट्। छर्दिर्निद्रा च सविषैर्मण्डूकैर्दष्टलक्षणम् ॥ ७१ ॥

विषैले मेंढकके काटनेसे, मेंढकका एक ही दांत लगता है। उस स्थानमें वेदनायुक्त पीलीसूजन होती है, तृषा लगती है, निद्रा आती है और वमन होती है ॥ ७१ ॥

मत्स्यविषके लक्षण॥

मत्स्यास्तु सविषाः कुर्युर्दाहं शोथं रुजं तथा।

विषैली मछलीके काटनेसे दाह, सूजन और पीडा होती है।

जलौकाविषके लक्षण।

कण्डूं शोथं ज्वरं मूर्च्छां सविषास्तु जलौकसः ॥ ७२ ॥

विषैली जौंकके काटनेसे खुजली, सूजन, ज्वर और मूर्च्छा होती है ॥ ७२ ॥

प्रहगोधिकाके लक्षण।

विदाहं श्वयथुं तोदं स्वेदश्च प्रहगोधिका।

छिपकलीके काटनेसे दाह, सूजन, सुई चुभानेसरीखी पीडा होती है और पसीना आता है।

शतपदीके विषके लक्षण।

दंशे स्वेदं रुजं दाहं कुर्याच्छतपदीविषम् ॥ ७३ ॥

शतपदी अर्थात् कानखजूरेके काटनेपर काटनेकी जगह पसीना, पीडा और दाह होती है ॥ ७३ ॥

मशकविषके लक्षण।

कण्डूमान्मशकैरीषच्छोथः स्यान्मन्दवेदनः॥

मच्छरके काटनेपर खुजली और थोडी वेदनायुक्त कुछएक सूजन होती है।

असाध्य मशकदंशके लक्षण ।

असाध्यकीटसदृशमसाध्यं मशकक्षतम् ॥ ७४ ॥

असाध्य विषैला मच्छर काटे तो असाध्य मकोडे आदिके समान घावमें पीडा होती है ॥ ७४ ॥

मक्षिकादंशके लक्षण ।

सद्यः प्रस्रावणी श्यावा दाहमूर्च्छाज्वरान्विता । पिटकामक्षिकादंशे तासान्तु स्थगिकाऽसुहृत् ॥ ७५ ॥

विषैली मक्खी काटे तो तत्काल स्रावमाली, काली, दाहयुक्त, मूर्च्छासहित और ज्वरवाली फुंसियें उत्पन्न होती हैं । सुश्रुतोक्त छः प्रकारकी मक्खियोंमें स्थगिका नामवाली जो मक्खी कही है वह तत्काल प्राणनाश करती है ॥ ७५ ॥

चतुष्पदादिकोंके विषके साधारण लक्षण ।

चतुष्पाद्भिर्द्विपाद्भिर्वा नखदन्तविषश्च यत् । शूयते पच्यते वापि स्रवति ज्वरयत्यपि ॥ ७६॥

चार पांववाले व्याघ्रादिक (चौपाई, बाघ, सिंह, भेडिया, गीदड कुत्ता, बन्दर आदि) अथवा दो पांववाले जंगली मनुष्यादिकोंके नखोंमें और दांतोंमें आघात जनित विषसे जो घाव होता है वह सूजजाता है, पकता है, बहता है और ज्वरको उत्पन्न करता है॥७६

विष उतरे हुए मनुष्यके लक्षण ।

प्रसन्नदोषं प्रकृतिस्थधातुमन्नाभिकामं सममूत्रविट्कम् । प्रसन्नवर्णेन्द्रियचित्तचेष्टं वैद्योऽवगच्छेदविषं मनुष्यम् ॥ ७७ ॥

जब वातादिदोष स्वाभाविक स्थितिमें स्थित होजायँ, सम्पूर्ण धातुमें भी यथास्थानमें स्थित होजायँ, अन्नमें रुचि हो, मल, मूत्र पहिलेके अनुसार अच्छे प्रकारसे उतरने लगे तथा शरीरका रंग, इन्द्रियें, मन और शरीरकी चेष्टा ये सब प्रसन्न अर्थात् साफ होजायँ तो वैद्य उस मनुष्यको विषसे रहित हुआ जाने ॥ ७७ ॥

चिकित्सा ।

स्थावरेण विषेणार्त्तं नरं यत्नेन वामयेत् । वमनेन समं नास्ति यतस्तस्य चिकित्सितम् ॥ ७८ ॥

स्थावरविषसे पीडित मनुष्यको यत्नपूर्वक वमन करावे, क्योंकि वमनके समान अन्य अधिक गुणकारक औषधि नहीं है ॥ ७८ ॥

विषमत्यर्थमुष्णञ्च तीक्ष्णञ्च कथितं यतः । अतः सर्वविषेषूक्तं वातशीताम्बुसेवनम् ॥ ७९ ॥

विष अत्यन्त उष्ण और तीक्ष्ण है, इस कारण सर्व प्रकारके विषोंमें शीतल वायु और शीतल जलका सेवन करना चाहिये ॥ ७९ ॥

पाययेन्मधुसर्पिर्भ्यां विषघ्नं भेषजं घृतम् । यष्टीक्वाथेन शीतेन घृतं वा मधुना पिबेत् ॥ ८० ॥

विषनाशक औषधियोंको घी और शहदके साथ मिलाकर तत्काल पान करावे । एवं मुलैठीके शीतल क्वाथमें घी अथवा शहद डालकर पान करे ॥ ८० ॥

अथवा गोपुरीषस्य रसेन मधुना सह । हृदयावरणं सर्पिर्गवां चैव प्रयोजयेत् ॥ ८१ ॥

गोबरके रसको शहदमें मिलाकर और हृदयको आवरण करनेवाले गायके घृतके साथ पान करे।८१।

रजनीसैन्धवक्षौद्रसंयुक्तं घृतमुत्तमम् । पानं मूलविषार्त्तस्य दग्धविद्धस्य चेक्षते ॥ ८२ ॥

हलदी, सैंधानमक, शहद और उत्तम घी इन सबको एकत्र मिलाकर मूलविषसे पीडित और दग्ध विद्ध (विषादि शस्त्रलिप्तसे हत) मनुष्योंको पान करावे ॥ ८२ ॥

खादिते खाद्यमाने च खादितव्ये च यो विषे । अश्वगन्धाजटां भुङ्क्ते तत्र नैव विषं क्रमेत् ॥ ८३ ॥

विषको खानेपर या खातेहुए अथवा खानेके पश्चात् असगंधकी जडको भक्षण करनेसे विषका आक्रमण शांत होजाता है ॥ ८३ ॥

तुल्याज्यमधुपानान्ते लघुकोष्ठो घृतं पिबेत् । ततो निम्बाम्बुपानं वा कृत्रिमन्तु विनाशयेत् ॥ ८४ ॥

घी और शहदको समान भाग मिलाकर सेवन कराके प्रथम वमन विरेचनादिके द्वारा कोठेको हलका करे पश्चात् घृतको पान करे । फिर नीमके जलको पान करे तो सर्वप्रकारका कृत्रिमविष नष्ट होता है ॥ ८४॥

दोषविशेषसे विषभेदके लक्षण।

प्रायो वातोल्बणा भेकमूषपिंगाः सवृश्चिकाः । वातपित्तोल्बणाः कीटाः श्लैष्मिकाः कणभादयः ॥ ८५ ॥ यस्य यस्य च दोषस्य लिङ्गाधिक्यं प्रवर्त्तयेत् । तस्य तस्यौषधैः कुर्याद्विपरीतगुणैः क्रियाम् ॥ ८६ ॥

प्रायः मेडक, मूष, मूषिका और वृश्चिक वातोल्बण हैं, कीटादि वातपित्तोल्बण हैं और कणभ आदि कफोल्बणवाले हैं । इन उपर्युक्तसर्पवृश्चिकादिके दंशमें जिस जिस दोषके अधिक लक्षण दीखें उसमें उसी उसी दोषोंके गुणोंसे विपरीत गुणोंवाली औषधियोंके द्वारा चिकित्सा करनी चाहिये ॥८५॥८६

हृत्पीडा चानलस्तम्भः शिरायामस्थिपर्वरुक् । चूर्णनोद्वेष्टनं गात्रे व्यामता वातिके विषे ॥ ८७ ॥

वाताधिक्य विषमें हृदयमें पीडा,अग्निकी मन्दता, नसों, हड्डियों और संधियोंमें पीडाका होना,शरीरका घूमना अथवा भ्रमका होना, शरीरका ऐंठना और टेढा होना ये सब लक्षण होते हैं ॥ ८७ ॥

संज्ञानाशस्तु निःश्वासो हृद्दाहकटुकास्यता । दन्तावदारणं शोथो रक्तपित्तश्च पैत्तिके ॥ ८८ ॥

रक्तपित्ताधिक्य और पित्ताधिक्य दंशमें संज्ञाका नाश (बेहोशी), श्वासकी बाहुल्यता, हृदयमें दाह मुखमें कटुता, दांतोंका फटना और सूजन ये सब लक्षण होते हैं ॥ ८८ ॥

छर्द्यरोचकहृल्लासप्रसेकक्लेशगौरवैः । सशैत्यमुखमाधुर्यैर्विद्याच्छ्लेष्माधिकं विषम् ॥ ८९ ॥

श्लेष्माधिक्यदंशमें वमन, अरुचि, उबकाई,मुखसे पानीका गिरना,शरीरमें बाधा,भारीपन, शीतता और मुखमें मधुरता ये सब लक्षण जाननेचाहिए॥ ८९ ॥

चिकित्सा ।

घृतेन बहुलो लेपस्तैलाभ्यङ्गश्च वातिके । स्वेदनाडीप्रलेपाद्यैर्बृंहणश्च हितो विधिः ॥ ९० ॥

वातिकदंशमें विशेषकर घृतका लेप,तेलकी मालिश, नाडीस्वेद, अनेकप्रकारके प्रलेप और बृंहणविधि ये सब हितकारी हैं ॥ ९० ॥

सुशीतैस्तम्भयेच्छेकैः प्रदेहैश्चापि पैत्तिके । लेपनच्छेदनस्वेदवमनैः श्लैष्मिकं जयेत् ॥ ९१ ॥

पित्तजदंशमें शीतल सेक (परिषेचन) और प्रलेप करना चाहिये । एवं कफजदंशको कफनाशक लेप, छेदन, स्वेद और वमन इन प्रयोगोंके द्वारा जीतना चाहिए ॥ ९१ ॥

शालयः षष्टिकाश्चैव कोरदूषाः प्रियंगवः ॥ भोजनार्थे प्रशस्यन्ते लवणार्थे च सैन्धवम् ॥ ९२ ॥

विषरोगीको भोजनके लिये शालिधान,साठीधान, कोदों और कंगुनी ये सब अन्न तथा नमकके लिये सैंधानमक देवे ॥ ९२ ॥

तंडुलीयकजीवन्तीवार्ताकुः सुनिषण्डकः । मंडूकपर्णीकुलकं शाकवर्गे च शस्यते ॥ ९३ ॥

शाकके लिये चौलाई,बडी जीवंती, बेंगुन,बथुआ, ब्रह्ममण्डूकी, ब्राह्मी, मंडूकपर्णी और परवर ये सब प्रयोग करने चाहियें ॥ ९३ ॥

हरेणुमुद्गौ यूषार्थमम्लार्थं धात्रिदाडिमम् । रसार्थश्च प्रशस्ता वा लावातित्तिरवर्त्तकाः ॥ ९४ ॥

यूषके लिये मटर और मूँग लेवे । खटाईके लिये आमले और अनार लेवे। और मांसरसके लिये लवा, तीतर और बटेर लेनी चाहिये ॥ ९४ ॥

विषघ्नौषधसंयुक्ता रसा यूषाश्च संस्कृताः। अविदाहीनि चान्नानि विषार्त्तानां च दापयेत् ॥ ९५ ॥

विषरोगियोंको विषनाशक औषधियोंके द्वारा संस्कार कियेहुए रस और यूष तथा दाहको न करनेवाले अन्न देने चाहिये ॥ ९५ ॥

उष्णवर्ज्यो विधिः कार्य्यो विषार्त्तानां विजानता । मुक्त्वा कीटविषं तद्धि शीतेनातिप्रवर्द्धते ॥ ९६ ॥

विषरोगियोंको सम्पूर्ण उष्णविधि त्यागदेनी उचित है, किन्तु, कीटविषमें उष्णविधि वर्जित नहीं है । क्योंकि,वह शीतसे अत्यन्त बढता है ॥ ९६ ॥

दिवास्वप्नं व्यवायश्च व्यायामं क्रोधमातपम् । सुरातिलकुलित्थांश्च वर्जयेच्च विषातुरः ॥९७ ॥

विषसे पीडित मनुष्य-दिनमें सोना, मैथुन,व्याम (परिश्रम, दंड, कसरत), क्रोध, धूप, मदिरा, तिल और कुलथी इन सबको त्याग देवे ॥ ९७ ॥

अथ जङ्गमविषकी चिकित्सा ।

अरिष्टबन्धन ।

सर्वैरेवादितः सर्पैः शाखादुष्टस्य देहिनः । बध्नीयाद्गाढमुपरि दंशन्तु चतुरंगुलम् ॥ ९८ ॥ वस्त्रचर्मान्तवल्कानां मृदुनान्यतमेन च । न गच्छति विषं देहमरिष्टाभिर्निवारितम् ॥ ९९ ॥

जो हाथ पांव आदिमें सांप काटे तो उस मनुष्यके उसी समय काटनेकी जगह चार अंगुल ऊपर बारीक वस्त्र, नरमचर्म अथवा नरमवृक्षकी छालसे या रस्सीसे खूब खैंचकर बाँध देवे । इस प्रकार बाँधनेसे फिर विष आगेको शरीरमें नहीं फैलता ॥ ९८ ॥ ९९ ॥

आचूषणच्छेददाहादिक्रिया ।

दहेद्दंशमथोत्कृत्य यत्र बन्धो न जायते । आचूषणच्छेददाहाः सर्वत्रैव तु पूजिताः ॥ १०० ॥ प्रतिपूर्य्य मुखं वस्त्रैर्हितमाचूषणं भवेत् । स दष्टव्योऽथवा सर्पो लोष्टश्चापि हि तत्क्षणात् ॥ १०१ ॥

जो दंशस्थान ऐसी जगह हो कि जहाँ बाँध नहीं बँध सकता हो तो वहां चीरकर दाग देवे। अथवा सींग वा तुम्बीसे चूसे, चीरा देवे और जलावे,अथवा कपडेको मुखम भरकर उस जगहको मुखसे चूसे अथवा जो सांप काटे उसी सांपको तत्काल पकडकर काटखाये, और काटनेके साथ ही मट्टीके ढेलेको काट खाय तो विष नहीं चढ़ता है ॥१००॥१०१॥

मूलं तंडुलवारिणा पिबति यः प्रत्यङ्गिरासम्भवं निष्पिष्टं शुचिभद्रयोगदिवसे तस्याऽहिभीतिः कुतः ॥ दर्पादेव फणी यदा दशति तं मोहान्वितो निष्पतन्स्थाने तत्र तदैव याति नियतं वक्त्रं यमस्याचिरात् ॥ १०२ ॥

सफेदपुनर्नवेकी जडको चावलोंके जलमें पीसकर आषाढ़के महीनेमें शुभदिन, शुभ योग और शुभनक्षत्रमें पान करनेसे सर्पका भय नहीं रहता । जब सर्प क्रोधसे मनुष्यको काटता है तब वह मोहको प्राप्त होकर पृथ्वीपर गिरपडता है और तत्काल उसी स्थानमें अवश्य यमराजके गृहको जाता है ॥१०२॥

मसूरनिम्बपत्राभ्यां योऽत्ति मेषगते रवौ । अब्दमेकं न भीतिः स्याद्विषार्त्तस्य न संशयः ॥ १०३ ॥

मसूर और नीमके पत्तोंको जो एकबार मेषके सूर्य्यमें भक्षण करता है, उसके एक वर्षपर्य्यंत सर्पके विषका भय नहीं रहता ॥ १०३ ॥

श्लेष्मणः कर्णरूढस्य वामनासिकया कृतः। नृमूत्रसेविनं घोरं लेपं हन्याद्विषं तथा ॥ १०४ ॥

कफजन्यकानके मैलको नासिकाके बांये नथनेपर लेप करनेसे अथवा मनुष्यके मूत्रको सेवन करनेस सर्पका घोर विष दूर होता है ॥ १०४ ॥

कुलकमूलनस्येन कालदष्टोऽपि जीवति ॥ १०५ ॥

परबलकी जड़की नस्य देनेसे कालरूपी सर्पका डसा हुआ भी बचजाता है ॥ १०५ ॥

पिंडी तगरकं नेत्रे पुष्येणोत्पाट्य योजितम्। चालयत्यत्र नो चित्रं पुरुषं दृष्टमृतं खलु ॥ १०६ ॥

पिण्डी तगरको पुष्यनक्षत्रमें उखाड कर नेत्रोंमें लगानेसे साँपका काटाहुआ मनुष्य मृत्युको प्राप्त होनेपर भी आरोग्य हो जाता है, यह आश्चर्य्य की बात है ॥ १०६ ॥

शिरीषपत्रस्वरसे सप्ताहं मरिचं सितम्। भावितं सर्पदष्टानां नस्यपानाञ्जनैर्हितम् ॥ १०७ ॥

शिरसके पत्तोंके रसमें सफेद मरिचको सात दिन तक भावना देकर साँपके काटे हुए मनुष्योंको नस्य, पान और अञ्जन इनके द्वारा प्रयोग करानेसे अत्यंत लाभ होता है ॥ १०७ ॥

वन्ध्याकर्कोटमूलञ्च छागमूत्रेण भावितम्। नस्यं काञ्जिकसंपिष्टं विषोपहतचेतसः ॥ १०८ ॥

बांझककोड़ेकी जड़को बकरीके मूत्रमें भावना देकर और कांजीमें पीसकर नास देनेसे सर्पका विष दूर होता है ॥ १०८ ॥

गृहधूमं हरिद्रे द्वे समूलं तण्डुलीयकम्। अपि वासुकिना दष्टः पिबेद्दधिघृतप्लुतम् ॥ १०९ ॥

घरका धुआँ, हलदी, दारुहलदी और चौलाईकी जड़ इन सबको एकत्र पीसकर दही और घीमें मिलाकर पान करनेसे वासुकी सर्पका काटाहुआ भी आरोग्य होजाता है ॥ १०९ ॥

श्लेष्मातकीकट्फलमातुलुङ्गश्वेतागिरिह्वा किणिही सिना च। सतण्डुलीयोऽगद एष मुख्यो विषेषु दर्वीकरराजिलानाम् ॥ ११० ॥

लसौडा, कायफल, बिजौरानींबू, सफेद कोइल, सफेद पुनर्नवा और चौलाई इन सबको एकत्र पीसलेवे। यह उत्तम औषध दर्वीकर और राजिल जातिके साँपोंके विषोंमें अतीव हितकारी है ॥ ११० ॥

निर्गुण्डीसहितं पानात्सद्यः फणिविषापहम्। स्वरसेनैव मूलञ्च भावितं सिन्धुवारिजम् ॥ १११ ॥

सिम्हालूकी जड़को सिम्हालूके ही स्वरसमें भावना देकर पान करनेसे सर्पका विष शीघ्र दूर होता है सिम्हालूका ही नाम निर्गुण्डी है ॥ १११ ॥

सैन्धवं मरिचं तुल्यं निम्बबीजसमं कृतम्। मधुसर्पिर्युतं हन्ति विषं स्थावरजङ्गमम् ॥ ११ ॥

सैंधानमक, कालीमिरच और नीमके बीज इन तीनों औषधियोंको समान भाग लेकर एकत्र पीसकर शहद और घीमें मिलाकर सेवन करनेसे स्थावर और जंगम विष दूर होता है ॥ ११२ ॥

सचतुर्मरिचः कर्षः चाङ्गेर्याः सह सर्पिषा। हन्ति पानप्रलेपाभ्यां चोग्रसर्पविषं भयम् ॥ ११३ ॥

चार दाना या चार कर्ष कालीमिरच और चाँगेरीका रस १ तोला परिमाण इन दोनोंको एकत्र घीके साथ मिलाकर पान और प्रलेपके द्वारा सेवन करनेसे भयंकर सर्पका विष और भय नष्ट होता है ॥ ११३ ॥

पारावतामिषं शुण्ठी पुष्कराह्वं सितं हितम्। गरतृष्णारुचिश्वासकासहिक्कापहं परम् ॥ ११४ ॥

कबूतरका मांस, सोंठ, पोहकरमूल और मिश्री इन सबको एकत्र मिलाकर सेवन करनेसे गर दोष और इससे उत्पन्नहुए उपद्रव तृषा, अरुचि, श्वास, खाँसी और हिचकी दूर होती हैं ॥ ११४ ॥

द्राक्षाश्वगन्धानगमृत्तिका च श्वेता च पिष्टा सदृशैः स्वभागैः। देयो विभा-

गः सुरसाछदस्य कपित्थबिल्वादपि दाडिमाच्च । एषोऽगदः क्षौद्रयुतो निहन्ति विशेषतो मण्डलिनां विषाणि ॥ ११५ ॥

दाख, असगंध, गेरु, सफेदकोइल, तुलसीके पत्ते, कैथ, बेल और अनारके पत्ते इन सबको समान भाग लेकर एकत्र पीसकर शहदमें मिलाकर सेवन करे। यह औषध विशेष करके मण्डलीसर्पोंके विषको दूर करता है ॥ ११५ ॥

तार्क्ष्य अगद ।

प्रपौण्डरीकं सुरदारुमुस्ता कालानुसारी कटुरोहिणी च । स्थौणेयकं ध्यामकगुग्गुलूनि पुन्नागतालीससुवर्चिकाश्च ॥ ११६ ॥ कुटन्नटैलासितसिन्धुवारशैलेयकुष्ठं तगरं प्रियंगु । लोध्राञ्जनं काञ्चनगैरिकञ्च गन्धं समं चन्दनसैन्धवञ्च ॥ ११७ ॥ सूक्ष्माणि चूर्णानि समानि कृत्वा शृङ्गे निदध्यान्मधुसंयुतानि । एषोऽगदस्तार्क्ष्य इति प्रसिद्धो विषं निहन्यादपि तक्षकस्य ॥ ११८ ॥

पुंडेरिया, देवदारु, नागरमोथा, भूरिछरीला, कुटकी, थुनेर, सुगंधरोहिसतृण, गूगल, पुन्नाग (नागकेशरका वृक्ष), तालीसपत्र, सज्जी, केवटीमोथा, इलायची, सफेदसिम्हालु, शैलजगंधद्रव्य, या शिलाजीत, कूठ, तगर, फूलप्रियंगु, लोध, रसौत, पीला गेरू, गन्धक, चन्दन और सैंधानमक इन सबको एकत्र बारीक चूर्ण करके शहदमें मिलाकर गायके सींगमें भरकर रख देवे। इस औषधिको तार्क्ष्यागद कहते हैं। यह तक्षकके विषको भी नष्ट करदेती है ॥ ११६ ॥ ॥ ११७ ॥ ११८ ॥

महागद ।

त्रिवृद्विशाले मधुकं हरिद्रे मञ्जिष्ठवर्गो लवणाश्च सर्वे । कटुत्रिकं चैव विचूर्णितानि शृङ्गे निदध्यान्मधुसंयुतानि ॥ ११९ ॥ अयं गदो हन्त्युपयुज्यमानः पानाञ्जनाभ्यञ्जननस्ययोगैः । आवार्य्यवीर्य्यौ विषवेगहन्ता महागदो नाम महाप्रभावः ॥ १२० ॥

निसोत, इन्द्रायण, मुलैठी, दोनों हलदी, मंजिष्ठादि वर्गकी सम्पूर्ण औषधियाँ, पांचों नमक और त्रिकुटा इन सबको एकत्र बारीक चूर्ण करके शहदमें मिलाकर गायके सींगमें भर कर रख देवे। इसको महागद कहते हैं। इसको पान, अभ्यंजन, अंजन और नस्यके द्वारा प्रयोग करनेसे अत्यंत उग्र वीर्यवाले सर्पोंका विष, दुर्निवार तथा सर्वप्रकारका विष दूर होता है। यह महाप्रभाववाली औषध है ॥ ११९ ॥ १२० ॥

दशाङ्गधूप ।

बिल्वपुष्पत्वचौ मांसी फलिनीनागकेशरम् । शिरीषं तगरं कुष्ठं हरितालं मनःशिला ॥ १२१ ॥ एतानि समभागानि पेषयेत्सलिलेन तु । समभ्यङ्गञ्च ततो गात्रं सर्पदष्टार्त्तिदारणः ॥ १२२ ॥ विषान्वा भक्षयेदुग्रान्गरांश्च विविधान्हरेत् । कन्यासंवरणं गच्छेद्युद्धे देवासुरोपमे ॥ १२३ ॥ राजद्वारेषु सर्वेषु धूपैश्चैवापराजितः । बृहस्पतिरिति प्रोक्तो ब्रह्मणा निर्मितः स्वयम् ॥ १२४ ॥ नाग्निर्दहति तद्वेश्म प्रभवन्ति न राक्षसाः । न म्रियन्ते तथा बाला दशाङ्गो यत्र तिष्ठति १२५॥

बेलके फूल और छाल, बालछड, फूलप्रियंगु, नागकेशर, शिरस, तगर, कूठ, हरिताल और मैनशिल इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर जलमें पीसकर सांपके डसेहुये मनुष्यके शरीर पर अभ्यंग करे। यह औषध अत्यंत उग्र विष और अनेकप्रकारके गरोंको दूर करती है। इन औषधियोंकी धूप लगाकर कन्याके स्वयंवरमें, देवता और असुरोंकी समान युद्धमें और सर्व प्रकारके राजद्वारोंमें जानेसे मनुष्य विजयलक्ष्मीको प्राप्त होता है। इस धूपको बृहस्पतिने कहा है और ब्रह्माजीने स्वयं निर्माण किया है। जिसघरमें यह दशाङ्गधूप रहती है, उस घरमें न कभी अग्नि लगती है; न कभी राक्षसोंकी बाधा होती है और न उस घरके बालक मरते हैं ॥ १२१ - १२५ ॥

वटशुङ्गं समाञ्जिष्ठं जीवकर्षभकौ सिता । काश्मर्य्यमुदकं चैव पानं मण्डलदष्टके ॥ १२६ ॥

बडके अंकुर, मजीठ, जीवक, ऋषभक, मिश्री और कुम्भेर इनको जलमें पीसकर पान करनेसे मण्डलसर्पका विष शांत होता है ॥ १२६ ॥

कौन्तीकुष्ठं नतं व्योषं मधुकातिविषामधु । गृहधूमश्च पानेन घ्नन्ति सर्पभवं विषम् ॥ १२७ ॥

रेणुका, कूठ, तगर, त्रिकुटा, मुलैठी, अतीस, शहद और घरका धुआँ इन सबको एकत्र पीसकर पान करनेसे सांपका विष दूर होता है ॥ १२७ ॥

मांसिचन्दनसिन्धूत्थकृष्णायष्ट्यूषणोत्पलैः । अञ्जनं स्यात्सगोपित्तं विषसुप्तस्य बोधनम् ॥ १२८ ॥

बालछड, चन्दन, सैंधानमक, पीपल, मुलैठी, कालीमिरच, कमल और गायका पित्त इन सबको एकत्र पीसकर नेत्रोंमें आंजनेसे विषसे मूर्च्छित मनुष्य चैतन्य होजाता है ॥ १२८ ॥

नक्तमालफलं व्योषं बिल्वमूलं निशाद्वयम् । सौरसं पत्रमाजश्च मूत्रं बोधनमञ्जनम् ॥ १२९ ॥

करञ्जके बीज, त्रिकुटा, बेलकी जड, हलदी, दारुहलदी, तुलसीके पत्ते और बकरीका मूत्र इन सबको एकत्र पीसकर नेत्रोंमें आंजनेसे विषसे वेहोश मनुष्य चैतन्यताको प्राप्त होता है ॥ १२९ ॥

बीजकल्कं ससिन्धूत्थं मयूरकाशिरीषयोः । नस्यं यवफलं बीजं सपाठं वा प्रबोधकम् ॥ १३० ॥

सैंधानमक, चिरचिटा और शिरसके बीजोंका कल्क इन सबको एकत्र पीसकर नस्य देनेसे अथवा इन्द्रजौ और पाढके बीजोंको पीसकर नस्य देनेसे विषसे मोहको प्राप्त हुआ मनुष्य ज्ञानको प्राप्त होता है ॥ १३० ॥

सम्यङ्मधुकसारेण गोमूत्रे भावितेन तु । दद्याद्विषहरं नस्यं सिध्मापघ्नश्च प्रलेपनम् ॥ १३१ ॥

गोमूत्रमें अनेकप्रकारसे महुवेके सारको भावना देकर नास देनेसे सर्पका विष नष्ट होता है । अथवा शरीरके ऊपर लेप करनेसे सिध्मकुष्ठ दूर होता है ॥ १३१ ॥

मयूरपित्तेन च तन्दुलीयकं काकाण्डयुक्तं प्रपिबेदनल्पम् । विषाणि च स्थावरजङ्गमानि सोपद्रवाण्याशुचिरेण हन्ति ॥ १३२ ॥

मोरके पित्तको चौलाईके रस और कौवेके अण्डेके साथ एकत्र मिलाकर पान करनेसे सर्व प्रकारके स्थावर और जंगमविष और उनके उपद्रवभी शीघ्रही नष्ट होते हैं ॥ १३२ ॥

शिरीषारिष्टनक्ताह्वत्वक्कोशातकीफलैः । हन्ति गोमूत्रसंपिष्टैर्विषं स्थावरजंगमम् ॥ १३३ ॥

शिरस, नीम, करंजकी छाल और तोरई इन सबको एकत्र गोमूत्रमें पीसकर प्रयोग करनेसे स्थावर और जंगम विष दूर होता है ॥ १३३ ॥

वचोषणशिलादारुनक्ताह्वद्विनिशाञ्जनम् । शिरीषपिप्पलीयुक्तं गरदोषनिषूदनम् ॥ १३४ ॥

वच, कालीमिरच, मैनाशिल, देवदारु, करंज, हलदी दारुहलदी, शिरस और पीपल इन सबको एकत्र पीसकर नेत्रोंमें आंजनेसे गरदोष दूर होता है १३४॥

तिक्ततुम्बीजबीजानि गोपित्तेन प्रलेपयेत् । एष सर्वविषध्वंसी ब्रह्मपुत्रादिनाशनः ॥ १३५ ॥

कड़वीतोम्बीके बीज और गोपित्त इनको एकत्र पीसकर प्रलेप करनेसे ब्रह्मपुत्रादि सर्वप्रकारका विष दूर होता है ॥ १३५ ॥

मूलत्वक्पत्रपुष्पाणि बीजश्चेति शिरीषतः । गवां मूत्रेण संपिष्टं भेषजं विषवारणम् ॥ १३६ ॥

शिरसकी जड, छाल, पत्ते, फूल, और बीजोंको गोमूत्रमें पीसकर व्यवहार करनेसे विषकी बाधा होती है ॥ १३६ ॥

मञ्जिष्ठैला निशा द्राक्षा मांसी यष्टी हरेणुका। क्षौद्रं चेति विषघ्नोऽयमगदः काशिकोऽब्रवीत् ॥ १३७ ॥

मँजीठ, इलायची, हलदी, दाख, बालछड, मुलैठी, रेणुका और शहद इन सबको एकत्र पीसकर व्यवहार करनेसे सर्वप्रकारके विष दूर होते हैं। यह अगद काशिराजने कहा है ॥ १३७ ॥

लवणानि त्रिवृद्दन्ती विशाला त्र्यूषणं निशा। मञ्जिष्ठामधुकं शृङ्गं ह्यगदः सर्वकर्म्मकृत् ॥ १३८ ॥

पाँच नमक, निसोत, दंती, इन्द्रायण, त्रिकुटा, हलदी, मजीठ, मुलैठी और सींग इन सबको एकत्र पीसकर सेवन करे। यह औषध सर्वप्रकारके विषोंके विकारोंको दूर करता है ॥ १३८ ॥

चन्द्रोदयोऽगद।

चन्दनश्च शिलाकुष्ठत्वक्पत्रैलाब्दसर्षपाः। मांसीपद्मकवत्साऽसृक्सुरभीभवरोचनाः ॥ १३९ ॥ स्पृक्काहिंग्ववुलामज्जशतपुष्पाप्रियंगवः। पिष्ट्वा सर्वविषोन्मन्था नाम्ना चन्द्रोदयोऽगदः ॥ १४० ॥

चन्दन, मैनशिल, कूठ, दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागरमोथा, सरसों, बालछड, पद्माख, इन्द्रजौ, केशर, गोरोचन, असबरग, हींग, सुगंधबाला, लामज्जकतृण, सौंफ और फूलप्रियंगू इन सबको एकत्र पीसकर रख देवे। इसको चन्द्रोदय अगद कहते हैं। यह सर्व प्रकारके विषोंको दूर करता है॥१३९॥१४०

सूर्योदयोऽगद।

श्यामेभपाटलीकृष्णा मञ्जिष्ठाकिणहीशिलाः। कोविदारोषणे चक्रं निशे द्व्यपराजितम् ॥ १४१ ॥ बृहतीमधुकश्चैव गोमूत्रेण प्रपेषयेत्। एष सूर्योदयो नाम्ना विषरक्षामयोऽगदः ॥ १४२ ॥

कालीनिसोत, नागकेशर, पाढल, पीपल, मजीठ, पुनर्नवा, मैनशिल, कचनार, कालीमिरच, पमारके बीज, हलदी, दारुहलदी, दूही, कोइली, बडीकटेरी और मुलैठी इन सबको एकत्र गोमूत्रमें पीस लेवे। इसको सूर्योदय अगद कहते हैं। यह सर्वप्रकारके विषोंसे रक्षा करता है ॥ १४१ ॥ १४२ ॥

अमृतघृत।

अपामार्गस्य बीजानि शिरीषस्य तथैव च। द्वे मेदे काकमाची च गवां मूत्रेण पेषयेत् ॥ १४३ ॥ सर्पिरेतेषु संसिद्धं विषसंशमनं परम्। अमृतं नाम विख्यातमपि सञ्जीवयेन्मृतम् ॥ १४४ ॥

चिरचिटेके बीज, शिरसके बीज, मेदा, महामेदा और मकोय इन सबको गोमूत्रमें पीसकर कल्क बनाकर उसके द्वारा घृतको पकावे। यह घृत–सर्वप्रकारके विषोंको दूर करता है और मृतकको भी जिवा देता है, इसी लिये इसको अमृत कहते हैं ॥ ॥ १४३ ॥ १४४ ॥

नागदन्त्याद्यघृत।

नागदन्ती त्रिवृद्दन्ती स्नुक्पयः पलिकैः समैः। गवां मूत्राढके सिद्धं सर्पिः सर्वविषापहम्। सर्पकीटविषार्त्तानां गरार्त्तानाञ्च शस्यते ॥ १४५ ॥

नागदन्ती (हत्थाजोडी), निसोत, दन्ती और थूहरका दूध इन प्रत्येक चार चार तोले औषधिके साथ एक आढक गोमूत्रमें उत्तम प्रकारसे गायके घृतको पकावे। यह घृत–सर्वप्रकारके विषोंको दूर करता है, इसलिये सांप और कीटके विषोंको एवं गर विषोंसे पीडित व्यक्तियोंके लिए यह अत्यन्त श्रेष्ठ है ॥ १४५ ॥

तण्डुलीयघृत।

तण्डुलीयकमूलेन गृहधूमेन चैकतः। क्षीरेण सघृतं सिद्धं समस्तं विषरोगनुत् ॥ १४६ ॥

चौलाईकी जड और घरका धुआँ इन दोनोंको दूधमें मिलाकर उसके साथ घीको पकावे। यह घृत–सर्वप्रकारके विषोंको दूर करता है ॥ १४६ ॥

अजेयघृत।

मधुकं तगरं कुष्ठं भद्रदारुहरेणवः

पुन्नागमेलवालुकं नागपुष्पोत्पलं सिता ॥ १४७ ॥ विडङ्गं चन्दनं पत्रं प्रियंगु ध्यामकं तथा । हरिद्रे द्वे बृहत्यौ च शारिवांशुमती बला ॥१४८॥ कल्कैरेतैर्घृतं सिद्धमजेयमिति विश्रुतम् । विषाणि हन्ति सर्वाणि शीघ्रमेवाजितं क्वचित् ॥ १४९ ॥

मुलैठी, तगर, कूठ, देवदारु, रेणुका, पुन्नाग, एलुआ, नागकेशर, कमल, मिश्री, वायविडंग, चन्दन, तेजपात, फूलप्रियंगू, सुगंधिततृग, हलदी, दारुहलदी, कटेरी, बडी कटेरी, शारिवा, शालिपर्णी और खिरैंटी इनके कल्कके द्वारा घृतको पकावे । यह घृत—सर्वप्रकारके विषोंको शीघ्र ही दूर करता है । इसको अजेयघृत कहते हैं ॥ १४७ ॥ १४८ ॥ १४९ ॥

मृत्युपाशापहघृत ।

सरोध्रमभयाकुष्ठमर्कपुष्पीं तथोत्पलम् । नलवेतसमूलानि गरलं सुरसां तथा ॥ १५० ॥ सकालिंदीं समञ्जिष्ठामनन्तां सशतावरीम् ॥ शृङ्गाटकं समङ्गाश्च पद्मकेसरमित्यपि ॥ १५१ ॥ कल्कीकृत्वा पचेत्सर्पिः पयो दत्त्वा चतुर्गुणम् । सम्यक्पक्वेऽवतीर्णे च शृतशीते विनिःक्षिपेत् ॥ १५२ ॥ सर्पिस्तुल्यं भिषक् क्षौद्रं कृतरक्षं निधापयेत् । विषाणि हन्ति दुर्गाणि जङ्गमस्थावराणि च ॥ १५३ ॥ कृत्रिमाणि च यावन्ति गरदोषकृतानि च । स्पर्शादेव विषं हन्ति गरैरुपहतत्वचम् ॥ १५४ ॥ योगोऽयं तमकं कंडूं मांसादश्च विसंज्ञताम् । नाशयत्यञ्जनाभ्यङ्गपानबस्तिषु भोजने ॥१५५॥ सर्पकीटाखुलुताभिर्दष्टानां विषनुत्परम् । मृत्युपाशहरं नाम घृतमेतत्प्रकीर्तितम् ॥ १५६ ॥

लोध, हरड, कूठ, हुलहुल, लाल कमल, बेंतकी जड, विष, गरल, तुलसी, पुनर्नवा, मजीठ, अनन्तमूल, शतावर, सिंघाडे लज्जावंती और कमलकेशर इन सबका कल्क बनाकर उसके साथ चौगुने दूधमें डालकर उत्तम घृतको पकावे । जब वह अच्छे प्रकारसे पकजाय तब नीचे उतारकर अपने आप शीतल होजाने पर उसमें घृतके बराबर शहद डालकर उसको एक उत्तम चिकने बासनमें भरकर रखदेवे । यह घृत—अत्यन्त दारुण, जंगम और स्थावरविष एवं सर्वप्रकारके कृत्रिम और गरदोष इन सबको दूर करता है । तथा गरविषके स्पर्शमात्रसे ही दूषित हुई त्वचाके विकारोंको दूर करदेता है । यह प्रयोग तमक, कण्डू, मांसाद और बेहोशीको अंजन, अभ्यंग, पान, बस्ति और भोजनमें प्रयोग करनेसे नष्ट करता है । तथा सर्प, कीट, मूषा और लूता आदि जीवोंके सर्वप्रकारके विषोंको दूर करता है इसको मृत्युपाशहर घृत कहते हैं ॥ १५०–१५६ ॥

अथ दूषीविषकी चिकित्सा ।

दूषीविषार्त्तं सुस्निग्धमूर्ध्वं चाधश्च शोधितम् । पाययेदगदं मुख्यमिदं दूषीविषापहम् ॥ १५७ ॥

दूषीविषवाले रोगीको प्रथम अच्छेप्रकारसे स्निग्ध करके पश्चात् वमन और विरेचनसे संशोधन करे । फिर इस नीचे लिखे दूषीविषनाशक मुख्य अगदको पिलावे ॥ १५७ ॥

पिप्पली ध्यामकं मांसी लोध्रमेला सुवर्चिका । बालकं परिपेला च तथा कनकगैरिकम् ॥ १५८ ॥ क्षौद्रयुक्तो गदो ह्येष दूषीविषमपोहति । दूषीविषारिनामायं न कैश्चिदपि बाध्यते ॥१५९॥

पीपल, सुगंधिततृण, बालछड, लोध, इलायची, सज्जी, सुगन्धवाला, केवटीमोथा और पीला गेरू इन सबको एकत्र करके शहदमें मिलाकर सेवन करे तो यह औषधि दूषीविषको नष्ट करती है यह दूषीविषारि नाम अगद किसीसे भी बाधित नहीं होती है ॥ १५८ ॥ १५९ ॥

गरविष ।

अन्यैरुपविषैस्तीव्रैरेकीकृत्वा तु भूरिभिः । कालांतरजिघांसाये क्रियते च गरन्तु तत ॥ १६० ॥

अन्यान्य बहुतसे तीव्र उपविषोंको एकत्र करके गरविष सिद्ध होता है। वह कालान्तरमें मृत्युको करता है ॥ १६० ॥

घृणालस्यारुचिश्वासांस्ततश्चैवाभिमार्दवम् । अविपाकाबलत्वञ्च कुर्य्यादुपचितो गरः ॥ १६१ ॥

शरीरमें ग्लानि, आलस्य, भोजनमें अरुचि, श्वास, मंदाग्नि, भोजनका न पकना और बलको हीनता यह सब संचितगरके कार्य हैं ॥ १६१ ॥

अङ्कोटमूलं निःक्वाथ्य सफाणितघृतं लिहेत् । तैलाक्तः स्विन्नसर्वाङ्गो गरदोषविषापहम् ॥ १६२ ॥

अंकोलकी जडका क्वाथ बनाकर उसमें राब और घृत डालकर, तेलसे स्वेदित किये हुये गरदोषवाले रोगीको पिलावे। इससे गरदोषजनित विष नष्ट होता है ॥ १६२ ॥

शर्कराक्षौद्रसंयुक्तं चूर्णं ताप्यसुवर्णयोः । लेहः प्रशमयत्युग्रं नानायोगकृतं विषम् ॥ १६३ ॥

मिश्री, शहद, सोनामाखी और सुवर्णकी भस्म इन सबको एकत्र मिलाकर चाटनेसे अनेकप्रकारके रोगोंसे उत्पन्न किया हुआ अत्यन्त तीक्ष्ण विष दूर होता है ॥ १६३ ॥

वृषाद्यघृत ।

वृषनिम्बपटोलानां क्वाथेनापि पचेद्घृतम् । अभया गर्भितं तोयमेतदारोग्यदं परम् ॥ १६४॥

अडूसा, नीम और परवल इनके क्वाथके साथ हरडका कल्क और जल मिलाकर उससे घृतको पकावे। इस घृतको सेवन करनेसे गरदोष दूर होकर आरोग्यता उत्पन्न होती है ॥ १६४ ॥

लूताविषकी चिकित्सा ।

रजनीद्वयमाञ्जिष्ठापतङ्गनागकेशरैः । शीताम्बुपिष्टैरालेपः सद्यो लूतां विनाशयेत् ॥ १६५ ॥

हलदी, दारुहलदी, मजीठ, पतंग और नागकेशर इन सबको एकत्र शीतल जलमें पीसकर काटनेके स्थानपर लेप करनेसे तत्काल मकडीका विष दूर हो जाता है ॥ १६५ ॥

कटभ्यर्जुनशैरीषशैलुक्षीरिद्रुमत्वचः । कषायकल्कचूर्णाः स्युः कीटलूताव्रणापहाः ॥ १६६ ॥

कटभी, अर्जुन, शिरस, बेल और क्षीरिवृक्ष (पाखर, बड, गूलर, पीपल, बेलियापीपल) इनकी छालके क्वाथ, कल्क और चूर्णको सेवन करनेसे मकडी कीट, पतङ्ग आदिके विषसे उत्पन्न हुये व्रण दूर होते हैं ॥ १६६ ॥

चन्दनं पद्मकं कुष्ठं नतं चोशीरपाटले । निर्गुण्डीशारिवाशैलुलूताविषहरोऽगदः ॥ १६७ ॥

चंदन, पद्माख, कूठ, तगर, खस, पाढल, निर्गुण्डी, शारिवा और बेल इन सबको एकत्र पीसकर पान या प्रलेप करनेसे मकडीका विष दूर होता है ॥

चन्दनं पद्मकोशीरं शिरीषं सिन्धुवारिणा । क्षीरशुक्ला नतं कुष्ठं शारिवोदीच्यपाटलाः ॥ शैलुंबरी च पिष्टोऽयं लूताया विषनाशनः ॥ १६८ ॥

चंदन, पद्माख, खस, शिरस, सिम्हालू, क्षीरविदारी, तगर, कूठ, शारिवा, सुगन्धवाला, पाढल, बेल और शतावर इन सबको एकत्र पीसकर प्रलेप करनेसे मकडीका विष दूर होता है ॥ १६८ ॥

फलिनीद्विनिशाक्षौद्रसर्पिर्भिः पद्मकाह्वयैः । अशेषकीटलूतानामगदः सर्वकामिकः ॥ १६९ ॥

फूलप्रियंगू, हलदी, दारुहलदी, शहद, घी और पद्माख इन सबको एकत्र करके सेवन करनेसे सर्वप्रकारके कीट और लूताका विष दूर होता है ॥ १६९ ॥

करञ्जार्कपयोवाजिमारकैः सविषानलैः । साक्षोटस्वरसैः सिद्धं तैलं लूताव्रणापहम् ॥ १७० ॥

करंज, आकका दूध, कनेर, अतीस, चीता और अखरोट इनके स्वरसके द्वारा तेलको पकाकर लेप करनेसे मकडीके काटनेसे व्रण हुआ दूर होता है ॥ १७० ॥

मूषकविषकी चिकित्सा ।

छर्दनं जालिनीक्वाथैः शुकाख्यां मूषिकाविषे । विरेचने त्रिवृद्दन्ती त्रिफलाकल्क इष्यते ॥ १७१ ॥

मूसेके विषमें कड़वीतोरई और शिरसके बीजोंके द्वारा वमन करावे तथा निसोत, दंती और त्रिफलेके कल्कके द्वारा विरेचन करावे ॥ १७१ ॥

शैरीषस्य च मूलं वा सक्षौद्रं तंडुलांबुना । अङ्कोटकस्य वा मूलं बस्तमूत्रेण कल्कितम् ॥ पानालेपनयोरुक्तं सर्वाखुविषनाशनम् ॥ १७२॥

शिरसकी जड़को शहदके साथ अथवा चावलोंके जलके साथ या अंकोलकी जडके कल्कको बकरीके मूत्रके साथ पान करनेसे किम्वा लेप करनेसे सर्वप्रकारके मूसोंका विष दूर होता है ॥ १७२ ॥

विशालांकोटमूलञ्च तिलमूलं सिता मधु । घृतेनाखुविषं हन्ति पीतमात्रञ्च दुस्तरम् ॥ १७३ ॥

इन्द्रायणकी जड़, अंकोलकी जड़, तिलोंकी जड़, मिश्री और शहद तथा घी इन सबको एकत्र मिलाकर पान करनेसे चूहेका दुस्तर विष दूर होता है ॥ १७३ ॥

कुसुम्भपुष्पगोदन्तस्वर्णक्षीरीकपोतविट् । दन्तीत्रिवृत्सैन्धवैलाकिणिहीफाणिनं तथा ॥ क्षीरेणाखुविषं हन्ति पीता तिलकमञ्जरी ॥ १७४ ॥

कसूमके फूल, गायका दाँत, सत्यानाशी, कटेरी, कबूतरकी विष्ठा, दंती, निसोत, सेंधानमक, इलायची, पुनर्नवा, राब और तिलकल्क इन सबको एकत्र मिलाकर दूधके साथ सेवन करनेसे चूहेका विष दूर होता है ॥ १७४ ॥

त्रिकटुकाद्यश्च हितो गोमयस्वरसोऽञ्जने । कपित्थगोमयरसो सक्षौद्रो लेह इष्यते ॥ १७५ ॥

त्रिकुटेको गोबरके रसमें पीसकर नेत्रोंमें आँजनेसे अथवा कैथको गोबरके रसमें और शहदमें मिलाकर चाटनेसे मूसेका विष दूर होता है ॥१७५॥

मार्जारकस्य पित्तेन पीतो मांसरसोसृजा । सोपद्रवमपि क्षिप्रं जयेन्मूषकजं विषम् ॥ १७६ ॥

बिलावके पित्तके साथ मांसरस और रुधिरको पान करनेसे उपद्रवयुक्त मूसेका विष शीघ्र दूर होता है ॥ १७६ ॥

गवाक्षीबिल्वकाकोलतिलमूलाः सशर्कराः । मध्वाज्यसंयुताः पीता मूषिकाविषनाशनाः ॥ १७७ ॥

गोरक्षककडी, बेलगिरी, काकोलीकी जड, तिलोंकी जड और मिश्री इन सबको एकत्र पीसकर शहद और घीमें मिलाकर सेवन करनेसे चूहेका विष दूर होजाता है ॥ १७७ ॥

बिल्वकाकोलयोर्मूलं गिरिकर्ण्यास्तिलस्य च । एतेषां मधुसर्पिभ्यां पानमाखुविषापहम् ॥ १७८ ॥

बेलगिरी, काकोलीकी जड, कोयल और तिल इनको शहद और घीमें मिलाकर सेवन करनेसे चूहेका विष दूर होता है ॥ १७८ ॥

तंडुलीयकमूलेन सिद्धं सर्पिः पिबेन्नरः । मूषिकाणां विषं तेन नाशमायाति सत्वरम् ॥ १७९ ॥

चौलाईकी जडके कल्कके द्वारा घृतको पकाकर सेवन करनेसे मूसोंका विष तत्काल दूर होजाता है ॥ १७९ ॥

अलर्कविषकी चिकित्सा ।

दंशस्त्वलर्कदष्टस्य दुग्धयुक्तेन सर्पिषा । प्रसिञ्च्यादगदैस्तैस्तैः पुराणञ्च घृतं पिबेत् ॥ १८० ॥

पागल कुत्तेके काटे हुए स्थानमें दूध और घृतको मिलाकर सिंचन करे अथवा और जो जो अगद कहे हैं उन्होंसे सींचे और पुराने घृतको पान करे ॥ १८० ॥

मूलस्य शरपुङ्खायाः कर्षं धत्तूरकान्वितम् । सतंडूलोदकैः पिष्ठा छायोन्मत्तभवैर्दलैः ॥ पक्वालर्कविषेणार्त्तः खादेत्तद्विषनाशनम् ॥ १८१ ॥

सरफोंकेकी और धतूरेकी एक एक कर्ष जडको चावलोंके जलमें पीसकर फिर धतूरेके पत्तोंमें लपेटकर छायामें पकावे। इस औषधको खानेसे पागल कुत्तेका विष दूर होता है ॥ १८१ ॥

पिबेद्धत्तूरकाशिफां क्षीरेण परिपेषिताम्। अङ्कोलवंशजां वापि श्वविषघ्नीं प्रयत्नतः ॥ १८२ ॥

धतूरेकी जडको दूधके साथ पीसकर पान करनेसे अथवा अंकोलकी जडको चावलोंके जलके साथ पान करनेसे कुत्तेका विष दूर होता है ॥ १८२ ॥

काकोदुम्बरमूलन्तु धत्तूरफलकान्वितम्। पिबेत्तंडुलतोयेन सारमेयविषापहम् ॥ १८३ ॥

कठूमरकी जड और धतूरेके फल इनको एकत्र पीसकर चावलोंके जलके साथ पान करनेसे कुत्तेका विष दूर होता है ॥ १८३ ॥

अङ्कोटोत्तरमूलोत्थं कषायन्तु पलद्वयम्। सर्पिषश्च पलं पीतमलर्कविषनाशनम् ॥ १८४ ॥

अंकोलकी जडके आठ तोले क्राथमें चार तोले घृत डालकर पान करनेसे पागल कुत्तेका विष दूर होता है ॥ १८४ ॥

रसोनोषणवैदेहीवचागोपित्तकल्किताः। पाननस्याञ्जनालेपैः श्वदंष्ट्राविषहाः पराः ॥ १८५ ॥

लहसुन, कालीमिरच, पीपल, वच और गायका पित्त इन सबका कल्क बनाकर पान, नस्य, अंजन और लेप द्वारा प्रयोग करनेसे कुत्तेका विष दूर होता है ॥ १८५ ॥

जलवेतसवृक्षस्य मूलं कुष्ठं पचेज्जले। स क्राथः शीतलः पेयः परश्च विषनाशनः ॥ १८६ ॥

जलवेंतकी जड और कूठको जलमें पकाकर काथ बनावे उसको शीतल करके पान करनेसे कुत्तेका विष दूर होता है ॥ १८६ ॥

वृश्चिकविषकी चिकित्सा।

सद्यो वृश्चिकजं दंशं चुक्रतैलेन सेचयेत्। विदारिगन्धासिद्धेन कवोष्णेनतरेण वा ॥ १८७ ॥ लवणोत्तमयुक्तेन सर्पिषा वा पुनःपुनः। सिञ्चेत्कोष्णारनालेन सक्षीरलवणेन वा ॥१८८॥

बिच्छूके काटे हुए स्थानको तत्काल चूकेके तेलसे सिंचन करे। अथवा शालिपर्णीके खूब गरम क्राथसे सींचे अथवा गरमघृतमें सैंधानमक डालकर बारबार सिंचन करे। या कुछ कुछ गरम काँजीके द्वारा सींचे। अथवा दूधमें नमक डालकर गरम करके सींचे ॥ १८७ ॥ १८८ ॥

शिखिकुक्कुटबर्हाणि सैन्धवं तिलसर्पिषा। धूपो हन्ति प्रयुक्तस्तु कीटवृश्चिकजं विषम् ॥ १८९ ॥

मोर और मुरगेकी शिखा (चोटी), सैंधानमक, तिल और घी इन सबकी धूप बनाकर देनेसे कीट और वृश्चिकका विष दूर होता है ॥ १८९ ॥

घृतेन सैन्धवं पीत्वा वृश्चिकस्य विषं जयेत् ॥ १९० ॥

घृतके साथ सैंधेनमकको पान करनेसे वृश्चिकका विष दूर होता है ॥ १९० ॥

तालनिम्बदलं केशाजीर्णाश्च लवणं घृतम्। धूपो वृश्चिकविद्धस्य शिखिपत्रं घृतेन वा ॥ १९१ ॥

ताड और नीमके पत्ते, पुराने बाल, सैंधानमक और घी इनकी धूप बनाकर देनेसे बिच्छूका विष दूर होता है। अथवा मोरके पंखोंको घी मिलाकर धूप देनेसे बिच्छूका विष दूर होता है ॥ १९१ ॥

अर्कक्षीरेण संपिष्टं लेपाद्बीजं पलाशजम्। वृश्चिकार्त्तिं हरेत् कृष्णा सशिरीषफला तथा ॥ १९२ ॥

ढाकके बीजोंको आकके दूधमें पीसकर लेप करनेसे अथवा पीपल और शिरसके बीजोंको पीसकर लेप करनेसे बिच्छूका विष दूर होता है ॥ १९२ ॥

मनोह्वासैन्धवं हिंगु जातीपत्रं सनागरम्। गोशकृद्रससंपिष्टं गुटिका वृश्चिकार्त्तिनुत् ॥ १९३ ॥

मैनशिल, सैंधानमक, हींग, चमेलीके पत्ते और सोंठ इन सबको एकत्र गायके गोबरके रसमें पीस

कर गोली बनावे। यह गोली-बिच्छूके विषको दूर करती है॥ १९३॥

जीरकस्य कृतः कल्को घृतसैन्धवसंयुतः। सुखोष्णो वृश्चिकार्त्तानां प्रलेपो मधुना सह॥ १९४॥

जीरेका कल्क बनाकर उसको घी और सैंधेनमकके साथ शहदमें मिलाकर सुहाता सुहाता लेप करनेसे वृश्चिकका विष दूर होता है। १९४॥

गन्धमाघ्राय मृदितसूर्य्यावर्त्तदलस्य च। वृश्चिकैर्व्यथितो जन्तुः क्षणाद्भवति निर्विषः॥ १९५॥

हुलहुलके पत्तोंको चूर्ण करके सूँघनेसे क्षणभरमें वृश्चिकका विष दूर होता है॥ १९५॥

कासमर्दकपत्रञ्च मूलञ्च कुशकाशयोः। चर्वयित्वा च फूत्कारः कर्णे वृश्चिकजं हरेत्॥ १९६॥

कसौंदीके पत्ते, कुशा और काँसकी जड़ इन तीनोंको चावकर वृश्चिकसे काटेहुये मनुष्यके कानमें थूकदेवे तो वृश्चिकका विष दूर होता है॥ १९६॥

पारावतः शकृत्पथ्या तगरं विश्वभेषजम्। बीजपूररसोपेतः परमो वृश्चिकागदः॥ १९७॥

कबूतरकी विष्ठा, हरड, तगर और सोंठ इन सबको एकत्र पीसकर बिजौरेनींबूके रसमें मिलाकर सेवन करनेसे बिच्छूका विष दूर होता है॥ १९७॥

नखदन्तजविषकी चिकित्सा।

सोमवल्कोऽश्वकर्णश्च गोजिह्वा हंसपादिका। रजन्यौ गैरिको लेपो नखदन्तविषापहः॥ १९८॥

कायफल, अश्वकर्णपलाश, गोजिया, हंसपदी, हलदी, दारुहल्दी और गेरू इन सबको एकत्र पीसकर लेप करनेसे नख और दाँतोंका विष दूर होता है॥ १९८॥

शमीनिम्बजटापत्रवल्कलैः क्वथितैर्जलैः। नखदन्तक्षतं पुंसां नाशाय परिषेचयेत्॥ १९९॥

छोंकर (जंडी) और नीमकी जड, पत्ते और छालका काथ बनाकर उससे सींचनेसे मनुष्योंके नख और दाँतोंसे हुआ घाव दूर होता है॥ १९९॥

मञ्जिष्ठापद्मकोशीरैर्धान्यकैः परिपेषितैः। सघृतैर्लेपनं दद्यान्नखदन्तविषापहम्॥ २००॥

मजीठ, पद्माख, खस और धनियाँ इनको एकत्र पीसकर घीमें मिलाकर लेप करनेसे नख और दाँतोंका विष दूर होता है॥ २००॥

द्विनिशागैरिकं लेपो नखदन्तविषापहः। गोजिह्वामधुना लेपो नखदन्तविषप्रणुत्॥ २०१॥

हलदी, दारुहलदी और गेरु इनको एकत्र पीसकर लेप करनेसे अथवा गोजियाको शहदमें मिलाकर लेप करनेसे नख और दाँतोंका विष दूर होताहै २०१

खर्जूरविषकी चिकित्सा।

लेपः प्रदीपतैलेन खर्जूरविषनाशनः। हरिद्राद्वयलेपो वा सगैरिकमनःशिलाः॥ २०२॥

दीपकके तेलका लेप करनेसे कानखजूरेका विष दूर होता है। हलदी और दारुहलदी या गेरू और मैनशिलका लेप करनेसे कानखजूरेका विष दूर होता है॥ २०२॥

कुंकुमं तगरं शिग्रु पद्मकं रजनीद्वयम्। अगदो जलपिष्टोऽयं शतपद्विषनाशनः॥ २०३॥

केशर, तगर, सहिंजना, पद्माख, हलदी और दारुहलदी इन सबको जलमें पीसकर व्यवहार करनेसे शतपदी (कानसलाई) का विष दूर होताहै २०३

कृष्णवेत्रस्य निक्वाथः कल्को वा घृतमिश्रितः। शृङ्गीमत्स्यविषं हन्ति धूमो वा बर्हिपक्षजः॥ २०४॥

काले बेंतके काथ अथवा कल्कमें घृत मिलाकर लेप करनेसे शृंगीमछलीका विष दूर होता है। अथवा मोरके पंखोंका धुआँ देनेसे शृंगीमछलीका विष दूर होता है॥ २०४॥

जलौकाविषकी चिकित्सा ।

कीटदष्टक्रियाः सर्वाः समानाः स्युर्जलौकसाम् ॥ २०५ ॥ शिरीषकटभीपार्थशैलक्षीरिद्रुमत्वचः । विषं जलौकसां घ्नन्ति प्रयुक्ताः पानलेपयोः॥ २०६ ॥

जलौका अर्थात् जौंकके विषमें कीटदष्टके समान सम्पूर्ण क्रिया करनी चाहिये। शिरस, कटभी, अर्जुन, बेल और क्षीरा वृक्षोंकी छाल इन सबको पीसकर पान और लेपमें प्रयोग करनेसे जलौकाका विष दूर होताहै ॥ २०५॥२०६॥

कीटविषकी चिकित्सा ।

कीटघ्नन्तुलसीमूलं पीतं यष्टीसुकल्कितम् । मेघनादबृहन्मूलं तथा गव्येन सर्पिषा ॥ २०७ ॥ क्षीरिवृक्षत्वचा लेपः कीटदष्टविषापहः॥२०८॥

तुलसीकी जड और मुलैठीका कल्क बनाकर पान करनेसे अथवा काँटोंवाली चौंलाईकी जडको पीस कर गायके घीके साथ सेवन करनेसे अथवा क्षीर वृक्षों (पीपल, पाखर, बड, बेलियापीपल अथवा पारिसपीपल) की छालको पीसकर लेप करनेसे कीडोंका विष दूर होता है ॥ २०७ ॥ २०८ ॥

हिंगुकुष्ठनतव्योषपाठाजन्तुघ्नसैन्धवैः। सक्षारातिविषैस्तुल्यैर्लेपः कीटविषप्रणुत ॥ २०९ ॥

हींग, कूठ, तगर, त्रिकुटा, पाढ, बायविडंग, सैंधानमक, जवाखार और अतीस इन सबको समान भाग लेकर एकत्र पीसकर लेप करनेसे कीटविष नष्ट होता है ॥ २०९ ॥

लाङ्गलीनिर्विषालाबूजालिनीमूलबीजकैः । लेपो धान्याम्बुना पिष्टः पिंडिकाकीटनाशनः ॥ २१०॥

कलिहारी, निर्विषी, तोम्बी, कड़वीतोरई और मूलीके बीज इन सबको एकत्र कांजीमें पीसकर लेप करनेसे कीटजनित पिडिका दूर होती है ॥ २१० ॥

वचाहिंगुविडङ्गानि सैन्धवं गजपिप्पली । पाठाप्रतिविषाव्योषं काश्यपेन विनिर्मितम् ॥ दशाङ्गमगदं पीत्वा सर्वकीटविषं जयेत् ॥ २११ ॥

वच, हींग, बायविडंग, सैंधानमक, गजपीपल, पाढ, अतीस और त्रिकुटा इन सबको एकत्र पीस लेवे। इसको दशांगअगद कहते हैं । इसको पान करनेसे सबप्रकारके कीडोंका विष दूर होता है, इसको काश्यप ऋषिने निर्माण किया है ॥ २११ ॥

पिपीलिकादिविषकी चिकित्सा ।

पिपीलिकाभिर्दष्टानां मक्षिकामशकैस्तथा । गवां मूत्रयुतो लेपः कृष्णवल्मीकमृत्कृतः ॥ २१२ ॥

चैंटी, मक्खी और मच्छरके काटनेपर काली बांबीकी मिट्टीको गोमूत्रमें पीसकर लेप करे॥२१२॥

गुग्गुलुधूपं दत्त्वा कोमलरविपत्रापिण्डिका सघृता । बद्धा क्षतेऽतिलोहितकाचण्डादंशविकृतिहरी ॥ ३१३ ॥

प्रथम गूगलकी धूनी देकर पश्चात् कोमल आकके पत्तोंको एकत्र पीसकर गोलासा बनाकर उसको घीसे चुपडकर घावपर बांधनेसे अत्यन्त लाल ततैयाका विष तत्काल दूर होता है ॥ २१३ ॥

सर्जरसेन सेको संदंशेनापि कण्टकोद्धरणम् । वरटीदष्टविषस्य प्रशमनमेतद्द्वयं दृष्टम् ॥ २१४ ॥ मरिचं नागरोपेतं सिन्धुसौवर्चलान्वितम् । फणिज्जकरसं हन्याल्लेपनाद्वरटीविषम् ॥ २१५ ॥

रालका सिंचन करनेसे या संदंशयन्त्रसे गवाडा हुआ वरटीदष्टका शेष रहा कांटा (डंक) शीघ्र निकलजाता है। कालीमिरच, सोंठ, सैंधानमक और कालानमक इन सबको एकत्र पीसकर वनतुलसीके रसमें मिलाकर लेप करनेसे वरटी (ततैया) का विष दूर होता है ॥ २१४ ॥ २१५ ॥

शतपुष्पासमायुक्तं सैन्धवं परिपेषितम् । सघृतं लेपनं दद्यान्मक्षिकाविषनाशनम् ॥ २१६ ॥

सौंफ और सैंधेनमकको एकत्र पीसकर घीमें मिलाकर लेप करनेसे मक्खीका विष दूर होता है॥ २१६॥

केशरं तगरं शुण्ठी मरिचश्च प्रलेपनात्। मक्षिकादंशजा पीडा नाशं याति ध्रुवं नृणाम्॥ २१७॥

केशर, तगर, सोंठ और कालीमिरच इन सबको एकत्र पीसकर प्रलेप करनेसे मक्खीके डंककी पीडा निश्चय शांत होती है॥ २१७॥

स्नुक्क्षीरपरिपिष्टेन बीजेन परिलेपनम्। शिरीषस्य व्रजत्यस्तं विषं दर्दुरजं क्षणात्।

शिरसके बीजोंको थूहरके दूधमें पीसकर लेप करनेसे तत्काल मेंढकका विष दूर होता है।

दुर्वारापि व्यथा क्षिप्रं मत्स्यदंशात्तु तत्क्षणात्॥ २१८॥

अंकोलके पत्तोंकी धूप देनेसे अत्यन्त दुःसाध्य मछलीके डंककी पीडा भी तत्काल शांत होती है२१८

अङ्कोटपत्रधूपेन धूपिता संप्रशाम्यति। कटुतैलसक्तुकेशानां धूपाद्दंशस्य च व्यथा॥ २१९॥ यवतिक्ततैललेपान्मीनजस्य विनश्यति॥२२०॥

कडवा तेल, सत्तू और बाल इनको एकत्र पीसकर धूनी देनेसे अथवा इन्द्रजौ और तेलका लेप करनेसे मछलीका विष दूर होता है ॥ २१९॥ २२०॥

वृकव्याघ्रतरक्षर्क्षशृगालहयशृङ्गकैः। दष्टानां तत्क्षणात्तैलम्रक्षणञ्च चिकित्सितम्॥ २२१॥

वृक (भेडिया), व्याघ्र (बाघ), तरक्ष (तेंदु), ऋक्ष (रीछ), शृगाल (गीदड), घोडा और सींगवाले जीवोंके काटनेके स्थानमें तत्काल तेलको मले॥२२१॥

घण्टाबीजस्य पत्रं वा मूलं पिष्टं प्रलेपनात्। निहन्ति शूकजं घोरं विषं कूष्माण्डपत्रकम्॥ २२॥

मोखके बीज या पत्ते अथवा जडको पीसकर प्रलेप करनेसे और पेठके पत्तोंसे शूकका विष दूर होता है॥ २२२॥

सेक्षुसर्जरसोपेतं सर्षपापत्रकैः सह। सुवर्णभास्करतरोः कुसुमैरर्जुनस्य च॥ धूपो वा धूपितो हन्ति विषं स्थावरजङ्गमम्॥ २२३॥

ईख, राल, सरसों, धतूरा और आकके पत्ते और अर्जुनके फूल इन सबको एकत्र करके धूनी देनेसे स्थावर और जंगम विष दूर होता है॥ २२३॥

न तत्र कीटा न विषा दर्दुरा न सरीसृपाः। न कृत्यकर्म्म तत्र स्याद्धूपोऽयं यत्र दह्यते॥ २२४॥

जिस स्थानमें यह धूप दी जाती है, वहां कीट, मेंडक और साँप आदि कुछ भी नहीं करसकते और इनका विष भी तत्काल दूर होजाता है॥ २२४॥

बिल्वाढकीयवक्षारपाटलावह्निकोत्पलम्। श्रीपर्णीशाल्मलीयुक्ता निःक्वाथ्य प्रोक्षणं परम्॥ स रोगी प्रोक्षितस्तेन सद्यो भवति निर्विषः॥२२५॥

बेलगिरी, अरहर, जवाखार, पाढल, चीता, कमल, कुम्भेर और सेमल इन सबका काथ बनाकर उसके द्वारा सेचन करनेसे रोगी तत्काल विषकी बाधासे रहित होता है॥ २२५॥

छत्री जर्जरपाणिश्च चरेद्रात्रौ तथा दिवा। तच्छायाशब्दवित्रस्ताः प्रणश्यन्ति हि पन्नगाः॥ २२६॥

छत्री और जर्जरपाणिनामक पक्षी रात्रिमें और दिनमें विचरण करते हैं, उनकी छाया और शब्दोंसे सर्प त्रासको प्राप्त होकर नष्ट हो जाते हैं। इस कारण ऐसे पक्षियोंको घरमें रखना चाहिये॥ २२६॥

असाध्य लक्षण।

सोत्कम्पं पुलकावृतं प्रतिमुहुर्वक्त्रं समालोकते दन्तेनाधरपल्लवं दशति चेच्छीतान्वितः कूजति॥ यस्तापं जडतामुपैति नितरामन्तश्च सोत्क-

ण्ठते यद्भस्मास्थिसितामलांबर-वती रौद्री श्मशानस्थली ॥ २२७ ॥

जो साँपका काटाहुआ मनुष्य कंप और रोमांच-युक्त होकर बारंबार मुखको देखे, दांतोंसे होठोंको चाबे, शीतयुक्त होकर कूंजे, निरंतर संतापको प्राप्त हो और अन्तःकरणकी गतिसे हीन तथा जिसको असह्य वेदना हो ऐसा सांपका डसा हुआ रोगी भस्म, अस्थि और निर्मल तथा सफेद वस्त्रके समान श्वेत और अत्यन्त भयंकर श्मशानस्थलकी सेवा करता है २२७

नेत्रे शुक्लतरे च यस्य यदि वा मृत्युं व्रजेद्दंशकः सन्ध्यायाश्च सुरेन्द्र-गोपसदृशे रात्रौ च नीलप्रभे ॥ दं-शे रक्तजलाविलेऽतिसुभगे भक्तं न किञ्चिद्विषो मात्रं मा लभते तदेव नियतं पित्रालयं गच्छति ॥ २२८ ॥

जिसके नेत्र अधिक सफेद हों ऐसा सर्पका काटा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मृत्युको प्राप्त होता है । तथा जिसके नेत्र संध्याके समय इन्द्रगोप (वीरबहूटी) के समान और रात्रिमें नीलके समान हों तथा काटने-का स्थान कलुषित लाल जलके समान और अत्यन्त सुभग हो एवं भोजनसे द्वेष न हो ऐसा विषरोगी क्षणमात्रमें यमराजके घरको जाता है ॥ २२८ ॥

नासावर्त्म विहाय यस्य पवनो व-क्त्रेण याति द्रुतं नेत्रे याति विका-सिते वहति यो ग्रीवाश्च वक्रा-मलम् ॥ चन्द्रं पश्यति भानुबिम्ब-सदृशं सूर्यं शशाङ्काकृतिं दृष्टो या-ति स एव गेहमचिरात् कालाभि-धानस्य वै ॥ २२९॥

जिसका श्वासवायु, नासिकाके छिद्रोंको छोडकर मुखके द्वारा शीघ्रतासे निकले, नेत्र फैलजायँ, ग्रीवा टेढी होजाय, मुख उज्ज्वल होजाय और जो चन्द्रमा सूर्य्यमण्डलके समान देखे और सूर्य्यमण्डलको चन्द्रमण्डलके समान देखे वह सर्पका काटा हुआ रोगी शीघ्र ही यममंदिरको जाता है ॥ २२९ ॥

पथ्य ।

विरुद्धाध्यशनक्रोधक्षुद्भयायासमै-थुनम् । वर्जयेद्विषदुष्टोऽपि दिवास्वप्नं विशेषतः ॥ २३० ॥

विषरोगी—विरुद्ध भोजन, भोजनपर भोजन या अधिक भोजन, क्रोध, क्षुधा, भय, परिश्रम, मैथुन और दिनमें सोना इन सबको विशेषकरके त्याग-देवे ॥ २३० ॥

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायां विषनिदानचिकि-त्साधिकार समाप्त ॥ ७१ ॥

अथ जलदोषादियोगाधिकार ।



भोजनादौ तु संभुक्ते शुण्ठिराज्यभ-योत्थितम् । कल्कन्तु सहते नित्यं नानादेशोद्भवं जलम् ॥ १ ॥

भोजनसे पहिले सोंठ और हरडके कल्कको घीमें मिलाकर सेवन करनेसे, अनेक देशोंके जलको पान करनेसे उत्पन्न हुए विकार शांत होते हैं ॥ १ ॥

महार्द्रकयवक्षारौ पीत्वा चैवोष्णवा-रिणा । नानादेशोद्भवश्चैव वारिदोष-मपोहति ॥ २ ॥

आर्द्रकपक और जवाखार इनको गरम जलके साथ पान करनेसे, अनेक देशोंके जलको पान करनेसे उत्पन्न हुए रोग शांत होते हैं ॥ २ ॥

नागरंगफलचोचमातपे शोषितं तद-नुचूर्णितमेकम् । कर्षमात्रमुपयुज्य गु-डेन वारिकर्म्म कुरुते न कदापि ॥३॥

नारंगी और केलेकी फली इन दोनोंको छायामें सुखाकर चूर्ण करले । इस चूर्णको एक तोला परिमाण लेकर गुडके साथ सेवन करनेसे किसी देशका पान किया हुआ जल कुछभी विकार नहीं करता है ॥३॥

यो लेढि शयनसमये मधुमिश्रं बीज-पूरदलचूर्णम् । स च पीडाकरवातप्र-सरनिरोधात् सुखं स्वपिति ॥ ४ ॥

जो बिजौरेनींबूके पत्तोंका चूर्ण करके उसको शहदमें मिलाकर सोतेसमय रात्रिमें चाटे तो वायुके वेगका निरोध होनेसे उत्पन्न हुई वातकी पीडा शांत होती है और वह मनुष्य सुखसे सोता है ॥ ४ ॥

दत्त्वैव दुग्धभक्तं विप्रायोत्पाट्य सितबलामूलम् । पुष्ये कन्यापिष्टं दत्तमनिच्छाहरं भक्ष्ये ॥ ५ ॥

प्रथम ब्राह्मणको दूध और भात देकर पश्चात् सफेदफूलकी खिरैंटी अथवा कंघीकी जड़को उखाड कर लावे। फिर उसको पुष्यनक्षत्रमें कन्याके हाथसे पिसवाकर भक्ष[illegible]निछा दूर होती है।।५।।

भूयः स्वार्त्तवे[illegible]तभावितगोरोचनरचिततिलकानि । नारी यं यं पश्यति पुरुषं तं तं वशीकुरुते ॥ ६ ॥

अपने आर्त्तवके रुधिरमें गोलोचनको भिजोकर उसका अपने मस्तकपर तिलक लगाकर स्त्री जिस जिसको देखती है, उसी उसी पुरुषको वह अपने वशमें करलेती है ॥ ६ ॥

सुरदारुशर्वरीद्वयकमलोद्भवकेशरैः कृतो लेपः । दुर्जययोषिद्विहितो रुचिकर इति गीयते बहुभिः ॥ ७ ॥

देवदारु, हलदी, दारुहलदी और कमलकी केशर इन सबको एकत्र पीसकर लेप करनेसे अत्यन्त कठिनतासे प्राप्त होनेवाली स्त्री भी सहज ही वशमें होजाती है ॥ ७ ॥

जम्बूधातकिपर्णैस्तद्भवकल्कैश्च धूपिता योनिः । त्यजति समस्तविकारं जन्मान्तरसञ्चितश्चापि ॥ ८ ॥

जामुन और धायके पत्तोंका कल्क बनाकर उसकी योनिको धूनी देनेसे जन्मान्तरोंके संचित किये हुये भी समस्त योनिविकार दूर होते हैं ॥ ८ ॥

नालसमेतं कमलं पिष्ट्वा क्षीरेण वर्त्तिता गुटिका। योषिद्योनौ विहिता तदेव कन्याकरं चित्रम् ॥ ९ ॥

कमलको नालसमेत दूधमें पीसकर बत्ती बनालेवे। बत्तीको योनिमें रखनेसे कन्याकी समान योनि होजाती है ॥ ९ ॥

तालचन्दनसहितं कुटजकदम्बोद्भवं फलं पिबति । आसवमिश्रं कान्ता या सा वन्ध्या भवेन्नियतम् ॥ १० ॥

हरिताल और चन्दन तथा कूडेके फूल और कदम्बके फूलोंको आसवमें मिलाकर जो स्त्री पान करती है वह अवश्य वंध्या होजाती है ॥ १० ॥

एकं माक्षिकमिश्रं लेपात्कोशातकीभवं चूर्णम् । योन्यां वरांगपाते कुरुते रेतः स्रुतिस्तस्याः ॥ ११ ॥

तोरइयोंके चूर्णको शहदमें मिलाकर योनिके ऊपर लेप करनेसे संभोगके समय पुरुष शीघ्र स्खलित होजाता है ॥ ११ ॥

पथ्योपभोगविधिना परितः संवेष्ट्य वाससा त्रिवृताम्। विहिता जलौका योनौ पातस्तनयोः कदापि न स्यात् ॥ १२ ॥

उपभोगकी विधिसे एक हरडको लेकर उसके ऊपर चारो ओर तीनबार कपडेको लपेटकर उसकी जलौका बनाकर योनिमें रखनेसे स्तनोंका पात कदापि नहीं होता है ॥ १२ ॥

चूर्णं हयगन्धायाः सितया सहितश्च सर्पिषा लीढम् । विदधाति नष्टनिद्रे निद्रामाश्वेव सिद्धमिदम् ॥ १३ ॥

असगन्धका चूर्ण बनाकर उसमें मिश्री और शहद मिलाकर सेवन करनेसे नष्टहुई निद्रा शीघ्र ही आजाती है ॥ १३ ॥

किमत्र चित्रं यदि वज्रपर्णीवचाश्वगन्धाजलशूकचूर्णम् । अन्तर्विदग्धं नवनीतमिश्रं करोति मेढ्रं गजमेढ्रतुल्यम् ॥ १४ ॥

हडसंघारी, वच, असगंध और कुपित जलके सूक्ष्म जीव, सिवार, इन सबको चूर्ण करके इसप्रकार पकावे, कि, जिससे बाहर धुआँ न निकले। पश्चात् उस चूर्णको नैनी घीमें मिलाकर लिंगपर लेप करे तो लिंग हाथीके लिंगके समान स्थूल होजाता है ॥ १४ ॥

मुष्कशिराजं मूलं दृढमंगुल्या निपीड्य रतिकाले। चिन्तान्तररहितमनास्तंभितरेताश्च्युतिं जयति ॥१५॥

सम्भोगके समय अण्डकोषकी नसोंकी जडको अंगुलियोंसे खूब पीडन करके चिंतारहित होकर मैथुन करे तो वीर्य्यपात नहीं होता ॥ १५ ॥

शुष्केन्दीवरकुसुमं तंडुलसहितं सदाऽशितं सायम् । तनुते सुगन्धिवदनं विकसितनीलोत्पलामोदम् ॥ १६ ॥

नीले कमलको सुखाकर चावलोंके साथ संध्याके समय भक्षण करनेसे मुखमें महासुगन्धि उत्पन्न होती है और मुखमण्डल विकसित नीलकमलके समान होजाता है ॥ १६ ॥

कोमलवरुणजपत्रं करमृदितं सदा स्तने निहितम् । तद्गतपुंसां वृद्धिं हरिद्रुतसिद्धमिदं दृष्टम् ॥ १७ ॥

वरनेके कोमल पत्तोंको हाथसे मर्दन करके स्तनों पर लेप करनेसे स्तन वृद्धिको प्राप्त होते हैं ॥ १७ ॥

कच्छपमस्तकचरणं तिलजे सिद्धं विनाशयत्यचिरात् । धातुक्षीणं षण्ढं कुरुते बलं रतौ तथोग्रम् ॥ १८ ॥

कछुवेके मस्तक और पाँवोंको तिलके तेलमें पकाकर सेवन करे तो वह तेल शीघ्र ही धातुक्षीणता और नपुंसकताको दूर करके अपूर्व पुरुषार्थको उत्पन्न करता है और रतिके समय अपूर्वबलको करता है ॥ १८ ॥

शमयति गोक्षुरुचूर्णं छागक्षीरेण साधितं समधु । भुक्तं क्षपयति षाण्ढ्यं यज्जनितं प्राक् प्रयोगेण ॥ १९ ॥

गोखुरूओंके चूर्णको बकरीके दूधमें पकाकर और शहद मिलाकर सेवन करनेसे पूर्व किसी औषधि प्रयोगसे उत्पन्न हुइ नपुंसकता शीघ्र दूर होती है१९॥

निर्गुण्डिकनकवासाश्रीफलामलकासनोत्थपत्राणि । गन्धर्वहस्तमूलं दूर्वा कुसुमं तथा रजनी ॥ २० ॥ सिद्धार्थैडगजत्वगिति समभागं प्रक्षिप्य नवनीते । उद्वर्त्तनं विधेयं सततं वालिनाशनं दृष्टम् ॥ २१ ॥

निर्गुण्डी, धतूरा, अडूसा, बेल, आमले, विजयसारके पत्ते, अण्डकी जड, दूब, नागकेशर, हलदी, सफेद सरसों और पमारकी छाल इन सबको समान भाग लेकर नैनीघीमें मिलाकर उबटन करनेसे वली (शरीरमें विना ही समय वलियोंका पडना) का नाश होता है ॥ २० ॥ २१ ॥

इति श्रीवंगसेने जलदोषवीर्य्यस्तंभादियोगाधिकार समाप्त ॥ ७२ ॥

अथ रसायनाधिकार ।

माषस्याढकमादाय जलद्रोणे विपाचयेत् । अर्धावशेषं तत्पूतं दत्त्वा चेक्षुरसं ततः ॥ १ ॥ आर्द्रकस्य रसञ्चैव प्रस्थत्रयसमन्वितम् । संयोज्यमेकतः कृत्वा स्थापयेद्भाजने दृढे॥२॥ त्रिरात्रे पञ्चरात्रे वा माषचूर्णं विनिःक्षिपेत् । मासेन तज्जातरसं दशरात्रं स्थितं तथा ॥ ३ ॥ शुक्तञ्च तत्प्रयोज्यं स्यात्तैले बस्तौ घृतेऽपि वा । एतच्छुक्तं प्रशंसन्ति मन्दाग्नेर्दीपनं परम् ॥ ४ ॥

एक आढक उडदोंको लेकर एक द्रोण जलमें पकावे । जब पकते पकते जल आधा भाग बाकीरह जाय तब उसको उतारकर छान लेवे । फिर उसमें ईखका रस और अदरखका रस तीनप्रस्थ मिलाकर उसको किसी उत्तम पात्रमें भर कर तीन दिनतक अथवा पांच दिनतक रक्खा रहने देवे । पश्चात् उसमें उडदोंका चूर्ण मिलादेवे इसप्रकार रक्खा रहनेसे एक महीनेमें उसमें रस उत्पन्न होजायगा । फिर एक महीना दशदिनतक उसी प्रकार रक्खा रहनेके पश्चात् उसको निकाल लेवे । इसको "शुक्त" कहते हैं । इस शुक्तको तेल, बस्तिकर्म्म अथवा घृतमें प्रयोग करे । यह शुक्त मन्दाग्निको दीपन करनेके लिए परम श्रेष्ठ है ॥ १-४ ॥

मधुशुक्त ।

जम्बीरस्य फलरसं पिप्पलीमधुसंयुतम् । मधुभाण्डे विनिक्षिप्य रसा-

र्द्ध तत्पिधापयेत् ॥ मासेन तज्जात-रसं मधुशुक्तमुदाहृतम् ॥ ५ ॥

जम्भीरीनींबूका रस, पीपल और शहद इन सबको एकत्र मिलाकर शहदके बर्तनमें भरकर और ढककर रखदेवे। एक महीनेमें इसमें रस उत्पन्न होजाता है। इसको मधुशुक्त कहते हैं ॥ ५ ॥

गुडतक्र ।

गुडमधुकाञ्जिकतक्रं यथोत्तरं द्विगुणभागसंवृद्धम् । न्यस्तन्तु धान्यराशौ त्रिदिवसामिति भवेच्छुक्तम् ॥ ६ ॥

गुड १ भाग, शहद २ भाग, काँजी ४ भाग और तक्र (छाँछ) आठ भाग इन सबको एकत्र मिलाकर एक बर्तनमें करके धानोंके ढेरमें गाड देवे। तीन दिन तक रक्खारहनेपर यह शुक्त होजाता है ॥६॥

पिप्पल्यादिषट्घृत ।

पिप्पलीक्षीरसंसिद्धं सर्वरोगहरं घृतम् । कालीयकहरिद्राभ्यां कामलामेहनुत्परम् ॥ ७ ॥

पीपलके कल्कसे दूधमें घृतको पकावे। यह पिप्पली घृत सर्वप्रकारके रोगोंको दूर करता है। पीतचन्दन, दारुहलदी और हलदीके कल्कके द्वारा पकाया हुआ घृत कामला और प्रमेहको दूर करता है ॥ ७ ॥

बृहतीरसकल्काभ्यां दुष्टकासक्षयापहम् । गुडूचीरसकल्काभ्यां वातरक्तविकारनुत् ॥ ८ ॥

बड़ी कटेरीके रस और कल्कके द्वारा पकाया हुआ घृत दुष्ट खाँसी और क्षयरोगको दूर करता है। गिलोयके स्वरस और कल्कके द्वारा घृतको सेवन करनेसे वातरक्तके विकार शमन होते हैं ॥ ८ ॥

खदिराष्टकसंसिद्धं श्वित्रकुष्ठाविसर्पनुत् । मृद्वीकारसकल्काभ्यां रक्तपित्तज्वरांतकृत् ॥ ९ ॥ पिप्पल्यादिघृतं षट्कं वैदेहाधिपकीर्तितम् ॥ १० ॥

खदिराष्टककी औषधियोंके द्वारा पकाया हुआ घृत श्वेत कुष्ठ और विसर्परोगको नष्ट करता है। दाखके स्वरस और कल्कके द्वारा पकायाहुआ घृत रक्तपित्त और ज्वरको दूर करता है। यह पिप्पली आदि छः घृत विदेह आचार्यने कहे हैं ॥ ९ ॥ १० ॥

पालिवर्द्धनचतुःस्नेह ।

आनूपजो रसो मज्जा वसा तैलं नवं घृतम् । रसक्षीरं पचेत्सम्यगवाप्य मधुरं गणम् ॥ ११ ॥ अश्वगन्धामपामार्गं तथा लाक्षारसं समम् । अथ सिद्धश्च पूतश्च चानुगुप्तं निधापयेत् ॥ १२ ॥ तेनाभ्यङ्ग्य सदा कर्णपालिश्च सुप्रमर्दयेत् । अनेन पाल्यो वर्द्धन्ते नीरुजो निरुपद्रवाः ॥ मृदुपुष्पसमाः स्निग्धा जायन्ते भूषणक्षमाः ॥ १३ ॥

अनूपदेशके जीवोंका मांसरस, मज्जा, चर्बी, तेल, नवीन घी, रस और दूध इनको अच्छे प्रकारसे पकावे। पकते समय इसमें मधुरगणकी औषधियां, असगन्ध, चिरचिटा और लाखका रस ये सब समान भाग मिलाकर डाल देवे। जब पककर वह अच्छे प्रकारसे तैय्यार होजायँ तब उसको उतारकर वस्त्रमें छान करके उत्तम पात्रमें भरकर और उसका मुंह ढककर रखदेवे। इसके पश्चात् इस तेलको सदैव कर्णपालिपर अभ्यंग करके और कर्णपालिको अच्छे प्रकार मर्दन करनेसे रोग उपद्रवरहित होकर कर्णपालि बढती हैं पुष्पके समान कोमल चिकनी और भूषण धारण करनेको समर्थ होजाती हैं ॥ ११-१३ ॥

शिवगुटिका ।

शिलाजतु षोडशपलं त्रिस्त्रिवारं विभावयेत् । बलाया दशमूलस्य गुडूच्याः कर्कटस्य च ॥ १४ ॥ वराया मधुयष्ट्याश्च रसमध्ये च वारिणा । क्षीरे शकृत्क्रमेणैव सप्तकृत्वः ततो द्रुतम् ॥ १५ ॥ काकोलियुग्मघनपुष्करवह्निरास्नामेदायुगर्द्धिचविकागजपिप्पलीनाम् । पाठाद्विजीरकनिकुम्भविदारियुग्म-वीरावरीमधुफलांशुमतीद्वयानाम् ॥ १६ ॥ पलि-

कानामपां द्रोणे सिद्धानां पादशेषिते । क्वाथे भावितमित्थं वा गिरिजं द्विपलश्च तत् ॥ १७ ॥ गुञ्ज्यात्कर्कटशृङ्गीधात्री--व्योषतालीसकुडवेन । चूर्णपलेन विदार्य्यास्त्वक्क्षीर्य्या वा कर्षयुग्मेन ॥ १८ ॥ द्विपलेन चतुर्जातात्तैलघृतक्षौद्रशर्कराभिश्च । तद्द्विपलाद्द्विगुणाभिः कुर्य्याद्गुटिकास्ततोऽक्षसमाः ॥ १९ ॥ ताः सिद्धा नवकुम्भे शुष्के जातिपुष्पाधिवासिते स्थाप्याः । तासामेकां खादेत्प्रतिदिनमनुपानं पेयश्च ॥ २० ॥ क्षीररसदाडिमाम्भः शीतजलमधुरासवान्यतमम् । जीर्णान्ने लघुभोज्यं यूषः पयांसि पिशितनिर्यूहैः ॥ २१ ॥ सप्ताहमात्रमेवं सामान्यमतः क्रमं भवेत्परितः । भुक्तस्यान्ते प्राग्वा गुटिका न विरुध्यते चैषा ॥ २२ ॥ निष्पापा भूरिफला परिहारसुखोपयोजिता जयति । प्रबलवातशोणितमूरुस्तम्भं ज्वरं दीर्घम् ॥ २३ ॥ भगमूत्रशुक्रदोषान्प्लीहार्शः—पांडुहृद्यकृद्दोषान् । वर्ध्मवमिगुल्मपीनसहिक्काकासारुचिश्वासान् ॥ २४ ॥ विद्रधिमुदरं कृच्छ्रं श्वित्रं षंढी क्षयं मदं मूर्च्छाम् । उन्मादमपस्मारं मुखरोगशिरोगदस्तभान् ॥ २५ ॥ आनाहमतीसारं हलीमककामलाग्रहणिरोगान् । ग्रन्थार्बुदांश्च पिडिकाभगन्दरं गण्डमालाश्च ॥ २६ ॥ अतिकार्श्यमतिस्थौल्यं स्वेदमतिश्लीपदं गुदे कीलान् । दंष्ट्राविषं समूलङ्गरप्रयोगान् सुघोरांश्च ॥ २७ ॥ मन्त्रौषधिप्रयोगान् विप्रमुक्तान् भौतिकांस्तथा भवान् । पाप्माऽलक्ष्मी चेयं गुटिका शिवा नाम्ना प्रथिता ॥ २८ ॥ वृष्या बल्या धन्या कान्तियशःश्रीवर्द्धनी मेध्या । कुरुते स्त्रीवल्लभतां जयं विवादे मुखस्थाश्च ॥ २९ ॥ वलीपलितरोगरहितो न भवति गात्रं सुबद्धमति चैव । वर्षद्वयप्रयोगाद्वर्षशतचतुष्टयं जीवेत् ॥ ३० ॥

शिलाजीतको १६ पल लेकर खिरैंटी, दशमूल, गिलोय, काकडाशिंगी, त्रिफला और मुलैठी इन प्रत्येकके क्वाथमें तीन तीनबार भावना देवे । फिर दूधमें और गोबरके रसमें क्रमसे सात २ बार भावना देकर पश्चात् काकोली, क्षीरकाकोली, नागरमोथा, पोहकरमूल, चीता, रायसन, मेदा, महामेदा, ऋद्धि, चव्य, गजपीपल, पाढ, जीरा, कालाजीरा, दंती, विदारीकंद, क्षीरविदारी, बड़ी शतावर, शतावर, दाख, शालिपर्णी और पृश्निपर्णी ये प्रत्येक औषधि चार चार तोले लेकर एक द्रोण जलमें पकावे । जब पकते २ जल चौथाई भाग बाकी रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर इस क्वाथमें उपर्युक्त शिलाजीतकी भावना देवे । इस प्रकार शुद्ध की हुई शिलाजीतमेंसे आठ तोले शिलाजीत तथा काकडाशिंगी, आमले, त्रिकुटा और तालीशपत्र ये सब औषधि एक २ कुडवपरिमाण, एवं बिदारी कंदका चूर्ण ४ तोले, वंशलोचन ४ तोले, चातुर्जातककी औषधियाँ आठ तोले, तेल २ पल, घी ४ पल, शहद ८ पल, और मिश्री १६ पल लेकर सबको एकत्र मिलाकर बहेडेके समान गोलियां बनालेवे । इस प्रकार तैयारकी हुई उन गोलियोंको चमेली आदिके फूलोंके सुवासित किये हुये शुष्क और नवीन घडेमें भरकर रखदेवे । प्रतिदिन उन गोलियोंमेंसे एक गोली खाय और ऊपरसे दूध, मांसरस, दाडिमक स्वरस, शीतलजल, शहद और आसव इनमेंसे किसी एकका अनुपान करे । भोजनके जीर्ण होनेपर हलका भोजन, यूष, दूध और मांसका रस इनका सेवन करे । इस प्रकार सात दिनतक इसपर सामान्य भोजन करे । फिर भोजन करनेके पश्चात् अथवा भोजन करनेसे पहिले सेवन करनेपर भी यह गुटिका कुछ बाधा नहीं करती । यह शिवनामक गुटिका पापरहित विशेष फलकेदेनेवाली और

विनापरहेजके सुखपूर्वक सेवन करने योग्य है । यह गुटिका प्रबल वातरक्त, ऊरुस्तम्भ, पुराना ज्वर, भग, मूत्र और शुक्रके दोष, प्लीहा, अर्श, पाण्डुरोग हृदयरोग, यकृत्‌रोग, वर्ध्म, वमन, गुल्म, पीनस, हिचकी, खाँसी, अरुचि, श्वास, विद्रधि, उदर-रोग, मूत्रकृच्छ्र, श्वित्रकुष्ठ, नपुंसकता, क्षय, मद, मूर्च्छा, उन्माद, अपस्मार, मुखरोग, शिरोरोग, शिरकी जडता, आनाह, अतिसार, हलीमक, कामला, संग्रहणी, ग्रंथि, अर्बुद, पिडिका, भगन्दर, गण्डमाला, अत्यंत कृशता, अत्यंत स्थूलता, स्वेद, अतिशय श्लीपदरोग, गुदकील, दंष्ट्राविष, मूल-विष, गरविष, शत्रुओंके द्वारा किये हुए अनेकप्रकार-के मंत्र और औषधियोंके प्रयोग, भौतिक बाधा, पाप और अलक्ष्मी इन सबको दूर करती है । यह गोली वीर्य्यवर्द्धक, बलकारक, धन्य, कांति, यश और लक्ष्मीको बढानेवाली, तथा मेधाजनक है । इस गोलीको मुखमें रखनेसे मनुष्य स्त्रियोंको प्रिय और विवादमें जयको प्राप्त होता है । इसको सेवन करने वाला मनुष्य वली और पलितादि रोगोंसे रहित होजाता है। उसका शरीर सदैव सुगठित और निरोग रहता है । इसको दो वर्ष पर्य्यंत सेवन करनेसे मनुष्य चारसौ वर्षतक जीता रहता है ॥१४–३०॥

अथ गुग्गुलुरसायन ।

त्रिफलाशनखदिरामृतवर्षाभूभृङ्गगोक्षुरुक्वाथे । सार्द्धाढके तु गुग्गुलुपलानि त्रिंशच्च लेहवद्विपचेत् ॥ ३१ ॥ मधुघृतसिताविमिश्रं लिहेन्नरः कान्तिबलबुद्धियुतः ॥ तथाऽगदैर्विमुक्तो जीवति संवत्सरांस्त्रिशतान्॥३२॥

त्रिफला, विजयसार, खैर, गिलोय, श्वेत पुनर्नवा, भाँगरा और गोखुरुओंके डेढ आढक क्वाथमें तीस पल गूगलको लेहके समान पकावे । फिर उसमें शहद, घी और मिश्री मिलाकर उसको अपनी शक्त्यनुसार सेवन करे । यह अवलेह–कांति, बल और बुद्धिको उत्पन्न करता है । इसको सेवन करनेवाला मनुष्य सम्पूर्णरोगोंसे रहित होकर तीनसौ वर्ष पर्य्यंत जीता रहता है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

अथ गन्धककल्प ।

चूर्णीकृत्य पलानि पञ्च निरगं गन्धाश्मनो यत्नतस्तच्चूर्णं त्रिगुणे च मार्कवरसे छायाविशुष्कीकृतम् । पथ्याचूर्णमथो तथा मधुघृतं प्रत्येकमेकं पलं वृद्धो यौवनमेति प्राज्ञयुगलं खादेन्नरः प्रत्यहम् ॥ ३३ ॥

उत्तम आमलासारगंधकको पांच पल लेकर उसका बारीक चूर्ण करके तिगुने भाँगरेके रसमें भावना देकर छायामें सुखालेवे । पश्चात् उसमें हरडोंका चूर्ण १ पल, शहद १ पल और घी एक पल मिलाकर रखदेवे । इसको प्रतिदिन दो बार सेवन करनेसे वृद्धमनुष्य भी युवा अवस्थाको प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥

अथ गन्धकरसायन ।

गन्धकस्यार्द्धकर्षन्तु मरिचं शाणमात्रकम् । असिताम्बरमष्टांशं शिलायां चूर्णितं शुभम् ॥ ३४ ॥ एतच्चूर्णत्रयं तैले तिलजे दिवसत्रयम् । वर्त्तित्रयं समारभ्य घृते वा स्थापितं तथा ॥ ३५ ॥ तदुद्धृत्य क्षीरपात्रे दीपं प्रज्वाल्य बुद्धिमान् । पातयेद्वर्त्तिसत्त्वं च तद्भवा रसरक्तिका ॥ ३६ ॥ पर्णत्रयं समारोप्य तद्भवाद्गुञ्जकद्वयम् । संमूर्च्छ्य भक्षयेत्प्रातः क्षेत्रपालबलिं ततः ॥ ३७ ॥ दत्त्वा तु विधिना कृत्वा कामचारी भवेत्सदा । न चात्र परिहारोस्ति विहाराय नृणां सदा ॥ ३८ ॥ वलीपलितनाशाय वह्नेर्बलविवर्द्धनम् । हितमेतत्सदा प्रोक्तं रसायनगुणैषिणाम् ॥ ३९ ॥

गंधक ६ माशे, कालीमिरच ४ माशे और काला अभ्रक आठवाँ भाग इन सबको एकत्र पत्थरपर पीसकर पश्चात् तिलके तेलमें तीन दिनतक भावना देकर तीन बत्ती बनावे । फिर उन बत्तियोंको घीमें सानकर दीपककी लौयसे प्रज्वलित करे और उसके नीचे

एक दूधका भरा पात्र रखदेवे । उन बत्तियोंसे जो सत्व गिरे उसको ग्रहण करलेवे । पश्चात् तीन पानों को कुचलकर उनका रस निकाललेवे । इन पानोंके दो रत्ती रसमें एक रत्ती इस उपर्युक्त गंधकके सत्व को मिलाकर प्रतिदिन प्रातःकाल क्षेत्रपालको बलि देकर सेवन करे । इसपर यथेच्छ आहार विहार करे । इसपर कुछभी परहेज नहीं है । यह उत्तमरसायन-बली और पलितनाशक, अग्निके बलको बढानेवाला और रसायनकी इच्छा करनेवाले मनुष्यों-को सदैव हितकारी है ॥ ३४-३९ ॥

अथ गन्धकवर्त्ति ।

पलमिह गन्धकचूर्णं राजिकातःकर्षकलितमादाय । सिततरवसननिरुद्धं हविषा प्लुतशोषितं वह्नौ ॥ ४० ॥ तद्द्रवमाज्यं मग्नं त्रिकटुकचूर्णककर्षसंयुक्तम् । मिलितैकशाणमात्रं प्रातः खाद्यं नियतपर्णम् ॥ ४१ ॥ वर्णबलयुतमेतज्जनयति कुरुते देहसुखम् । सतताभ्यासवशादाति जनयति सुधाधामलावण्यम् ॥ ४२ ॥

गन्धकका चूर्ण ४ तोले और राईका चूर्ण १ तोला लेकर दोनोंको एकत्र करके उत्तम सफेद वस्त्रमें बांध कर और उस कपडेको घीमें भावना देकर सुखालेवे फिर बत्ती बनाकर अग्निके द्वारा उन बत्तियोंको प्रज्वलित करे और उनसे जो स्नेह अर्थात् द्रवपदार्थ गिरे उसको एकपात्रमें ग्रहण करलेवे । फिर उस स्नेहको एक तोला त्रिकुटके चूर्णमें मिलालेवे । फिर प्रतिदिन इस औषधको चार मासे सेवन करे । इसको सदैव सेवन करनेसे शरीरमें वर्ण, बल, सुख और लावण्यता उत्पन्न होती है ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

अथ गन्धकयोग ।

यो गन्धाश्म सुचूर्णितं पिबति ना तैलेन कर्षोन्मितमभ्यङ्गोष्णजलावसेचनरतः पेयामृतं प्रत्यहम् । सप्ताहान्नियतं निहन्ति सकलां पामादिसर्वां रुजं नित्याभ्यासवशाद्विनष्टसकलक्लेशोपतापः पुमान् ॥ ४३ ॥

जो मनुष्य प्रतिदिन एक तोला गन्धकका चूर्ण तेलके साथ पान करता है तथा शरीरपर तैलादिकी मालिश करके नित्य गरमजलसे स्नान करता है और प्रतिदिन दूध घृतादिक अथवा अमृतादि पेया किम्वा स्वादु द्रव्योंकी पेया पान करता है, उसके सात-दिनमें सर्वप्रकारके वातादिक रोग नष्ट होजाते हैं । इसका नित्य सेवन करनेके अभ्याससे समस्त क्लेशादि और उपताप दूर होजाते हैं ॥ ४३ ॥

अथ गन्धककल्प ।

यो वात्युग्रमतिः सुचूर्णितमिदं गन्धाश्म कृष्णासमं पथ्या तुल्यमथापि पूजितगुरुर्भूतेशपूजारतः ॥ आहारादिषु यन्त्रणाविरहितः स्यात्पुष्टिशौर्यान्वितः प्रोत्फुल्लाम्बुजनेत्र एवमजरश्चामीकराभाश्रयः ॥४४॥

जो तीक्ष्णबुद्धिमनुष्य गंधक, पीपल और हरड इन तीनोंको समान भाग लेकर चूर्ण करके उस चूर्णको प्रथम गुरु महादेवकी पूजा करके सेवन करता है, वह मनुष्य अहारादिकके पचनेकी यंत्रणासे रहित होकर पुष्टि और शूरतादिको प्राप्त होता है । तथा विकसित कमलकेसे नेत्रोंवाला, जरारहित और सुवर्णकी कांतिके समान सुन्दर शरीरवाला होजाता है ॥ ४४ ॥

गन्धकरसपर्पटी ।

भृङ्गराजरसेनैव लोहपात्रेऽग्निना पचेत् । द्रावयित्वा विनिक्षिप्य मायूर इव जायते ॥ ४५ ॥ जयादलरसेनापि वर्द्धमानरसेन च । शृङ्गवेररसेनापि काकमाच्या रसेन वा ॥ ४६ ॥ रसगन्धद्वयं लब्धं लोहपात्रे प्रियोत्तमे । एकीकृतं च तावच्च खल्वयेदपि यत्नतः ॥ ४७ ॥ यावच्च नीलवर्णं स्यात् कोलाङ्गारैश्च पाचयेत् । गोमयस्यालवालेन स्थापिते कदलीदले ॥ ४८ ॥ ढालयेत्पाकवित्प्राज्ञस्ततस्तु प्राशयेन्नरः । एवं सति सुखार्थाय पथ्यभुग्भिः प्रसेव्यते ॥ ४९ ॥

गन्धकपर्पटी चैषा सिद्धा कालस्य सिद्धिदा । दुर्नामग्रहणीमामशूलञ्च ग्रहणीगदम् ॥५०॥ कामलां पांडुरोगञ्च प्लीहगुल्मजलोदरम् । भस्मकं चामवातञ्च कुष्ठानि च ध्रुवं जयेत् ॥ ५१॥ एवमादीनि जित्वैव वपुषा निर्मलः सुखी । जीवेद्वर्षशतं पूर्णं वलीपलितवर्जितः ॥ सर्वव्याधिचिकित्सायां कल्कोऽयमिति दुर्लभः ॥ ५२ ॥

गंधकको प्रथम भांगरेके रसके साथ लोहेके पात्रमें अग्निसे पकावे। जब वह गलजाय तब उसको उतार कर जयंतीके पत्तोंके रसमें, अंडके रसमें, अदरखके रसमें और मकोयके रसमें क्रमसे डाल डालकर बुझावे। इसप्रकार शुद्ध कियाहुआ गंधक और शुद्ध पारा लेकर दोनोंको एकत्र करके उत्तम लोहेके खरलमें तबतक अच्छे प्रकारसे खरल करे जबतक कि नीले रंगकी कज्जली न होजाय। फिर उसको बेरीके अँगारोंसे पकावे। और गोबरका आलवाल(थामला बनाकर उसपर केलेका पत्ता रखकर उस पत्तेके ऊपर इसको डालदेवे। इस प्रकार उस रस पर्पटीके सिद्ध होजानेपर सुख प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले और पथ्यसे रहनेवाले मनुष्योंको इसका सेवन करना चाहिये। यह गन्धक पर्पटी–तत्काल सिद्धि देनेवाली है। तथा बवासीर, संग्रहणी, आमशूल, ग्रहणी, कामला, पांडुरोग, प्लीहा, गुल्म, जलोदर, भस्मक, आमवात और सर्वप्रकारके कुष्ठोंको नष्ट करती है। तथा शरीरको आरोग्य और सुखी करती है। इसको सेवन करनेवाला मनुष्य वली और पलितरोगसे रहित होकर पूरे सौ बर्षतक जीता रहता है। सर्वप्रकारके रोगोंकी चिकित्सामें यह कल्प अत्यन्त दुर्लभ है ॥ ४५–५२ ॥

ताम्ररसायन।

तनुपत्रीकृतं ताम्रं नैपालं गन्धकं समम् । दत्त्वा चोर्ध्वमधो मध्ये स्थालिकामध्यसंस्थितम् ॥ ५३ ॥ कृत्वा स्वल्पपिधानञ्च स्थालीमध्ये निधाय च । शर्कराभक्तलेपेन लिप्ताः सन्धीस्तदूर्ध्वतः ॥ ५४ ॥ वालुकापूरिता स्थाली विहितायां पुनस्तथा । सुलिप्तायाञ्च यामैकमधोज्वालां प्रदापयेत ॥ ५५ ॥ तत आकृष्टताम्रस्य मृतस्य त्विह योजना॥५६॥ अथ कर्ष गन्धकस्य वह्निस्थं लोहपात्रगम् । शिलावट्टेन संमर्द्य द्रुतं घृष्टं पुनः पुनः ॥ ५७ ॥ रसोऽम्लमथितः शुद्धस्तावन्मानः प्रदीयते । ततस्तथैव संमर्द्य घनराज्यं प्रदापयेत ॥ ५८ ॥ अष्टाबिन्दुकमानञ्च मर्दयेन्मूर्च्छितं तथा । सर्वं स्यात्तत आकृष्य शिलावट्टादिकं दृढम् ॥ ॥ ५९ ॥ संहत्यालंबुषरसप्रसृतेन विलोडितम् । पुनस्तथैव वह्निस्थे लोहपात्रे विमर्दयेत् ॥ ६० ॥ यावद्रसक्षयः पश्चादाकृष्टं संप्रयोजयेत् । अलम्बुषारसेनैव गोलकं संप्रकल्पयेत् ॥ ६१ ॥ तं पिण्डवस्त्रे निष्पीड्य पिंडे त्रिकुटजे पुनः । वसनांतरिते दत्त्वा पोटलीं कारयेत्सुधीः॥ ॥ ६२ ॥ ततस्तां पोटलीमाज्ये मग्नां कृत्वा विधारिताम् । सूत्रेण दण्डसंलग्नां पाचयेत्कुशलो भिषक् ॥ ६३ ॥ यदा निष्फेनता चाज्ये गुटिका च दृढा भवेत् । तदा पक्कं तमाकृष्य पञ्चगुञ्जातुला घृतम् ॥ ६४ ॥ त्रिकटुत्रिफलाचूर्णं तुल्यं प्रातः प्रयोजयेत् । तक्रं स्यादनुपाने तु ह्यम्लपित्तोच्छ्रये पुनः ॥ ६५ ॥ त्रिफलैव समा देया कोष्णं वारि पिबेदनु । सप्तमे दिवसे रक्ती वृद्धिस्ताम्रात्तु माषकम् ॥ ६६ ॥ यावत्प्रयोगस्तथैव ह्यपकर्षः पुनर्भवेत् । योगोऽयं ग्रहणीयक्ष्मपंक्तिशूलाम्लपित्तहा ॥ ६७ ॥ रसायनं समुद्दिष्टं गुदकीलादिनाशनम् । न चात्र परि-

हारः स्याद्विहाराहारकर्म्मसु । ताम्रं रसायनमिदं सर्वव्याधिहरं परम् ॥ घृतमधुशर्करया हितं लेहवन्मर्दनीयम् ॥ ६८ ॥

नेपालदेशका ताँबा लेकर उसके बारीक पत्रे करलेवे और उसके समान भाग शुद्ध गन्धक लेकर उसका चूर्ण करलेवे । फिर एक हांडी लेकर उसमें आधा गन्धकका चूर्ण बिछाकर उसके ऊपर उपर्युक्त तांबेके पत्रोंको रक्खे और उनके ऊपर शेष गन्धकका चूर्ण डालदेवे । फिर उस हांडीके ऊपर स्वल्पापिधान अर्थात् छोटा ढक्कन ढकदेवे और उसके ऊपरके जोडोंको खांड और भातके द्वारा लेपकरके बन्द करदेवे । फिर एक दूसरी हांडी और लेकर उसमें बालु भरकर उसमें पूर्वोक्त हांडीको रखकरके दोनो हांडियोंको एकत्र जोडकर उनकी संधियोंको अच्छेप्रकार कपरमिट्टी आदिसे बन्द करके उसके नीचे एक प्रहरतक अग्निदेवे । पश्चात् तांबेकी भस्मको निकालकर उसमें एक तोलाभर गन्धक मिलाकर अग्निपर रक्खे हुए लोहेके पात्रमें डालदेवे । जब वह गल जाय तब तत्काल निकालकर शिलापर पीसलेवे । इस प्रकार बारंबार शिलापर पीस पीसकर अग्निपर पकावे । फिर बराबरके अम्लरसमें मर्दन करके शुद्ध करे । पश्चात् आठ बिंदुप्रमाण घृतसे मूर्च्छित कर मर्दन करे । पीछे इसको लेकर आठ तोले लज्जावंतीके रसमें शिलवट्टा आदिसे अच्छेप्रकार पीसकर फिर लोहेके पात्रमें करके अग्निपर स्थापन करे । जब उसका रस जलजाय तब उसको पीसकर लज्जावंतीके रसके द्वारा गोला बनावे । तत्पश्चात् उस गोलेको वस्त्रमें रखकर दबावे और फिर उसमेंसे गोलेको निकालकर उसमें त्रिकुटेका चूर्ण मिलाकर एक कपडेमें रखकर उस कपडेकी पोटली बनावे। फिर उस पोटलीको घृतमें भिजोकर सूत डंडेपर बाँधकर घृतपात्रमें लटकाकर अग्निसे पकावे। जब घृत झागरहित होजाय तब वह पिंड दृढ हो जाता है। फिर उसको निकालकर उसमेंसे पांच २ रत्तीभर लेकर बराबरको घृत और त्रिकुटेका चूर्ण तथा त्रिफलेका चूर्ण मिलाकर प्रातःकाल सेवन करे। और अम्लपित्तरोगमें इस औषधके ऊपर तक्रका अनुपान करे अथवा त्रिफला समानभाग लेकर चूर्ण करके मंदोष्ण जलके साथ सेवन करे। सातवें दिनसे क्रमक्रमसे एक एक रत्ती मात्रा बढाता जाय और जब एक मासे पर्य्यंत होजाय तब फिर उसी क्रमसे घटाता जाय । यह उत्तमरसायन-संग्रहणी, राजयक्ष्मा, परिणामशूल, अम्लपित्त और बवासीर आदि रोगोंको नष्ट करता है इसपर आहार और विहारको कुछ परहेज नहीं है यह ताम्ररसायन सम्पूर्ण रोगोंको नष्ट करता है । इसको घी, मिश्री और शहदमें मिलाकर सेवन करना उचित है ॥ ५३-६८ ॥

द्वितीय ताम्ररसायन ।

कण्टकवेधनयोग्यं ताम्रस्य पत्रं कृतं समादाय । कर्षाधिकपलमात्रं भस्माग्नौ निर्दहेद्भिषक्कुशलः ॥ ६९ ॥ एवं पुनरपि वारद्वितयं विमर्द्यमतिगाढम् । प्रत्येकं मिलितेष्वपि तथैव वारत्रयं दद्यात् ॥ ७० ॥ इन्द्रस्वरसंभावितगन्धकलिप्तन्तु ताम्रकं कृत्वा । खर्परसंपुटमध्ये विनिधाय मृदा तमुपलिम्पेत् ॥ ७१ ॥ हस्तप्रमाणवदने गर्ते चतुर्हस्तपरिमाणे । दत्त्वेन्धनं करीषन्तुषमध्ये दहनमादाय ॥ ७२ ॥ तदुपरि दत्त्वा ताम्रसंपुटं निहितं पुनश्च करीषाभिः । संछाद्य तत्र वह्निं प्रज्वालयेद्भिषग्विशंकः॥७३॥ तावत् पुटं प्रदेयं यावत्ताम्रश्च मृत्युमायाति। मृतमधिगम्य च भांडे क्वचिदपि तत् स्थापयेत् पुटितम् ॥ ७४ ॥ तदनु तावत्प्रमाणपारदमादाय खल्वयेत्त्रिपुणः । खल्वशिलायां मध्ये गृहधूमनिशेष्टकाचूर्णैः ॥ ७५ ॥ पश्चाद्वारिविधानं पुनश्च त्रिकटुना खल्लयेत्त्रिपुणः । खल्लितसूतस्यैवं पातयंत्रेण चोद्धारः ॥ ७६ ॥ समकृतगन्धकसहितं पुनरपि कृत्वा खल्लयेत्त्रिदिनम् । एवं तन्मृतसूतकमृतताम्रकमिश्रितं कुर्य्यात् ॥ ७७ ॥ दुग्धपलाष्टकमाज्यं तत्समश्च नारिकेलजलम् । द्विपलं

कलितत्रिफलक्काथश्च चतुर्गुणं दद्यात ॥ ७८ ॥ मुदृढ ताम्रकटाहे मार्त्ते वा स्थापयेद्विविधविधिज्ञः । दर्व्या च ताम्रमय्याऽऽयस्या चाल्पं पुनः पचेद्वैद्यः ॥ ७९ ॥ ज्ञात्वा पाकं भूयो झटिति कडाहमवतारयेन्निपुणः । तदनु च तस्मिन्नष्टलक्षणांश्च विश्राम्य क्रियतेऽपि ॥८०॥ त्रिकटुत्रिफलालोहितचित्रकविडङ्गकभद्रमुस्तानाम् । जीरिकयोः प्रत्येकं कर्षकलितचूर्णनिक्षेपः ॥ ८१ ॥ पुनरेलाकङ्कोललवङ्गजातिफलजातिकोषाणाम् । चूर्णं गुडत्वचोऽपि माषाष्टपरिमितं दद्यात ॥ ८२ ॥ ततः सुशीतं ताम्रं माषाष्टकमाति विकीर्य्य घनसारम् । ताम्रमयादिनि भाण्डे स्निग्धे मार्त्ते ह्यवस्थाप्यम् ॥ ८३ ॥ मनसि च विधाय सूर्य्यपूजां कृत्वा शुभे दिने चर्क्षे । आदाय मापमेकं दधि मधुना सह भक्षयेत्सुचिरम् ॥ ८४ ॥ तदनु च कण्ठप्रायः क्षीरं कार्य्यमनुपानमधिकाल्पम् । नक्तमनल्पं पुनरपि तांबूलं भक्षयेत्सरुजः ॥ ८५ ॥ रक्तीद्वयमथ त्रितयं पञ्चकं वृद्धेर्माषकं यावत् । स्थितमतश्चोपरिष्टात्प्रतिलोमं ह्रासयेत्तदनु ॥ ८६ ॥ खादितमेतन्नियतं यस्य न ताम्रं प्रवर्त्तते प्रायः ॥ तत्रापि सयवक्षारस्त्रिफलाक्काथोऽत्र पानीयः ॥ ८७ ॥ प्रारब्धेऽस्मिंस्ताम्रे कतिचिद्दिवसान्न भक्षयेन्मत्स्यान् । क्रोधश्च दिवा निद्रां वेगनिरोधांस्त्यजेद्वैरम् ॥ ८८ ॥ शाकं चाम्लं वर्ज्यं दधि बहिरम्लं क्षयेदेव । जह्यात्तिक्तकषायं जह्यात्तात्कालिकीं पुष्टिम् ॥ ८९ ॥ वृष्यं मधुरं शीतलमथ शाल्यन्नं मधुघृतमश्नीयात । मद्गुररोहितशकुलशशमृगेणादिकं मांसम् ॥ ९० ॥ खादन्नतद्भेषजमजीर्णं च न भवति न जानाति। जयति च कफमतिगाढं कासं श्वासं च निवारयति ॥९१ ॥ विरचितमेतत्ताम्रं धर्म्माध्यक्षेण धर्म्मपालेन । वन्ध्यावटी यः पिण्डित इडानिबन्धचर्य्यादिः ॥ ९२ ॥

बुद्धिमान् वैद्य कंटकवेधी तांबेके पत्रोंको पांच पल लेकर प्रथम भस्मक अग्निमें दहन करे । फिर निकाल कर मर्दन करके इसीप्रकार दूसरीवार अग्निमें फूके और खरल करे । फिर तीसरीवार अग्निमें तपावे और खूब मर्दन करे । पश्चात् इन्द्रजौके काथमें अथवा कुडेकी छालके रसमें गंधककी भावना देकर उसका तांबेके पत्तोंपर लेप करदेवे। फिर उन पत्रोंको शराव सम्पुटमें रखकर ऊपरसे कपरमिट्टी करके सुखावे । पश्चात् वैद्य एक हाथ चौडा और चार हाथ गहरा गड्ढा खोदकर उस गड्ढेमें प्रथम भुस बिछाकर उसके ऊपर आरने उपले रखे, फिर उनके ऊपर ताम्रसम्पुटको रखकर और उसको आरने उपलोंसे ढककर निःशंक होकर अग्नि लगादेवे । इस प्रकार तबतक पुट देवे जबतक तांबेकी अच्छे प्रकारसे भस्म न होजाय । पश्चात् उसमेंसे भस्मको निकालकर मिट्टीके पात्रमें रखदेवे । फिर उस ताँबेकी भस्मकी बराबर पारा लेकर उसमें घरका धुआँसा, हलदी और ईटका चूर्ण मिलाकर उसको उत्तम खरलमें डालकर पारेको खरल करे । पश्चात् त्रिकुटेके काथ के द्वारा उसको मर्दन करे । इस प्रकार खरल किये हुये पारेको पातनयंत्रमें पतन करे । फिर इसमें बराबरका गन्धक मिलाकर तीन दिनतक खरल करे । इसप्रकार मारण किये हुए पारेको उपयुक्त ताँबेमें मिलाकर दोनोंको एकत्र खरल करे। तदनन्तर इसको आठपल दूध,आठ पल घृत, आठ तोले नारियलकौ जल और आठ तोले त्रिफलेका काथ इन सबके

साथ एकत्रित करके उत्तम दृढ़ ताँबेके पात्रमें अथवा मिट्टीके पात्रमें डालकर धीरे २ अग्निसे पकावे और तांबेकी अथवा लोहेकी करछीसे चलाता जावे। जब समझले कि पाक अच्छे प्रकारसे तैयार होगया है और जलने लगा है तब तत्काल उतार लेवे। फिर अच्छे प्रकारसे शीतल होजानेपर उसमें त्रिकुटा, त्रिफला, लालचंदन, चीता, वायविडंग, नागरमोथा, जीरा और कालाजीरा इन प्रत्येकका चूर्ण एक एक तोला परिमाण तथा इलायची, कंकोल, लौंग जायफल, जावित्री और दालचीनी इन प्रत्येकका चूर्ण आठ आठ मासे और शुद्ध कपूर आठ मासे उत्तम प्रकारसे मिलादेवे। पश्चात् उसको तांबेके पात्रमें अथवा लोहके पात्रमें किम्वा मिट्टीके चिकने पात्रमें भरकर रखदेवे। फिर मनसे सूर्य्यदेवकी पूजा करके शुभ दिन और शुभ नक्षत्रमें एक मासा यह औषध लेकर दही और शहदके साथ खाय और ऊपरसे थोडा बहुत दूधका अनुपान करे रोगी रात्रिमें इसके ऊपर ताम्बूल अधिक खाय, प्रतिदिन दो रत्ती, तीन रत्ती, पांच रत्ती, इस क्रमसे बढ़ाकर खाय और जब मासे पर्य्यंत होजाय तब विपरीत क्रमसे घटाता जाय। नियमित रूपसे सेवन किया ताम्र जिसके शरीरमें प्रवृत्त हो उसको जवाखारका चूर्ण डालकर काथके साथ पान करना चाहिये। इस ताम्रको सेवन करना प्रारम्भ करनेपर कुछ दिनोंतक मछली नहीं खाय, तथा क्रोध, दिनमें सोना, मलमूत्रके वेगको रोकना, द्वेष, शाक, खटाई, दही और कांजी आदि समस्त अम्ल पदार्थोंको त्याग देवे। तथा तिक्त और कषायपदार्थ रसवाले और तत्काल पुष्टिकरनेवाले पदार्थोंको भी भक्षण न करे। इसपर वृष्य (वीर्यवर्द्धक), मधुर, शीतल, शालि चावलोंका भात, शहद, घृत, एवं मद्गुर, रोहित, शकुल मछली, शशक और एणादिक हिरणका मांस, इन सबको सेवन करे। इस औषधिके सेवन करनेपर अजीर्ण नहीं होता। तथा अत्यंत बढाहुआ कफ नष्ट होता है। खाँसी और श्वास दूर होता है। यह उत्तम ताम्ररसायन धर्माध्यक्ष धर्म्मपालने निर्माण किया है। इन्होंने वन्ध्यावटी और इडानिवन्धचर्य्यादिक ग्रंथ भी निर्माण किये हैं ॥ ६९-९२ ॥

पञ्चामृतरस।

जातीफलं जातिपत्रं लवङ्गं केसरं तथा। चातुर्जातकशुण्ठी च पिप्पलीत्र्यूषणानि च ॥ ९३ ॥ चित्रकं पिप्पलीमूलं वरीमूलन्तु वंशजम्। सर्वं पिष्ट्वा सुसूक्ष्मञ्च वाससा परिशोधयेत् ॥ ९४ ॥ लोहचूर्णं तथाभ्रञ्च ताम्रभस्म च वङ्गकम्। रसराजञ्च नागञ्च कल्कस्यार्द्धं प्रयोजयेत् ॥९५॥ नागवल्लीरसेनैव ह्यथवा माक्षिकेण च। गुटिका तत्र संकार्य्या माषद्वयप्रमाणिका ॥ ९६ ॥ षड्सांश्चाव-भेदांश्च यथोक्तं भक्षयेद्बुधः। गोदुग्धस्यानुपानञ्च ह्युष्णं चैव विशेषतः ॥ ९७ ॥ वर्द्धनं सप्तधातूनां वीर्य्यबुद्धिबलप्रदम्। वल्लभाकान्तिरुचिरमग्नेः संदीप्तिकारकम् ॥ ९८ ॥ कफरोगहरश्चैवं बुद्धिज्ञानस्य कारणम्। वन्ध्या च लभते गर्भं षण्ढोऽपि पुरुषायते ॥ ९९ ॥ नपुंसको याति पुंस्त्वं रामाः कामायते शतम्। वज्रकायः शुचिर्धातुर्दिव्यदृष्टिस्तु जायते ॥ जराव्याधिविनिर्मुक्तो वर्षसेवी यदा भवेत् ॥ १०० ॥

जायफल, जावित्री, लौंग, केशर, दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर, सोंठ, पीपल, त्रिकुटा, चीता, पीपलामूल, शतावर और वंशलोचन इन सबको समान भाग लेकर बारीक पीसकर वस्त्रमें छानलेवे। फिर लोहेका चूर्ण, अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, वंगभस्म, पारदभस्म, चन्द्रोदय और सीसेकी भस्म इन सबका कल्क बनाकर उसको समस्तचूर्णसे आधा भाग लेवे और उपर्युक्त चूर्णमें मिलाकर नागरवेलके पानके रस अथवा शहदमें खरलकरके दो दो मासेकी गोलियाँ बना लेवे। इन गोलियोंको षट्रसोंके

अनुपानभेदसे यथारोगानुसार सेवन करे। इसको गायके उष्णदूधके साथ सेवन करनेसे साता धातुओं-की वृद्धि, तथा वीर्य्य, बल और बुद्धिकी वृद्धि होती है। स्त्रियोंके शरीरकी कांति बढ़ती है, रुचि उत्पन्न होती है। और अग्निदीपन होताहै। सर्वप्रकारके कफरोग नष्ट होते हैं। बुद्धि तथा ज्ञान प्रकट होता है। वंध्यास्त्री भी गर्भको धारण करती है, नपुंसक पुरुष भी पुरुषताको प्राप्त होता है और सो स्त्रियोंकी इच्छा करता है। इसको एक वर्षपर्यंत सेवन करनेसे वज्रके समान शरीर, शुद्ध धातु, दिव्यदृष्टि होती है और जराव्याधिसे विमुक्त होकर आरोग्यताको प्राप्त करके मनुष्य बहुतकालपर्यंत जीता रहता है ॥ ९३-१०० ॥

ताम्रक।

गन्धकस्य पलं प्रोक्तं रसस्य द्विपलं तथा। नैपालस्य विशुद्धस्य ताम्रस्य च पलं भवेत् ॥ १०१ ॥ ततो गन्धार्द्धचूर्णेन ताम्रं संयुज्य चूर्णयेत्। शेषार्द्धगन्धकं कृत्वा पारदं खल्लयेद्भिषक् ॥ १०२ ॥ रसेन हस्तशुण्डयाश्च लोहपात्रे पचेच्छनैः। कृत्वा पङ्कसमं पाकं ताम्रेण सह योजयेत् ॥ १०३ ॥ तच्च गन्धकचूर्णेन संवेष्ट्य हविषा सह। पाचयीत भिषक्प्राज्ञः पाकविन्मृदुवह्निना ॥ १०४ ॥ आलोडय मधुसर्पिर्भ्यां भुक्ता तक्रं पिबेदनु। अग्निमांद्यमजीर्णश्च ग्रहणीपांडुकामलाम्। परिमाणमरुजं चाशु नाशयेत्तु प्रयोजितम ॥ १०५ ॥

शुद्ध गंधक ४ तोले, शुद्ध पारा ८ तोले और शुद्ध नैपाल देशीय तांबा ४ तोले लेवे। प्रथम गंधकके आधे चूर्णको तांबेके साथ मिलाकर पीसलेवे और बाकीके आधे गंधकको पारेमें मिलाकर खरल करे। फिर इस कज्जलीको हाथीशुंडाके रसके साथ लोहेके पात्रमें धीरे धीरे पकावे। जब यह पाक पकते पकते कीचके समान होजाय तब इसमें तांबेका चूर्ण मिला देवे। फिर गंधकके चूर्णसे इसको वेष्टित करके अर्थात् लपेटकर घीके साथ धीरे धीरे मन्द मन्द अग्निसे पकावे। फिर इसको घी और शहदमें मिलाकर सेवन करे और ऊपरसे तक्रका अनुपान करे। यह रसायन--मंदाग्नि, अजीर्ण, संग्रहणी, पांडुरोग, कामला और परिणामशूलको नष्ट करता है ॥ ॥ १०१ ॥ १०२ ॥ १०३ ॥ १०४ ॥ १०५ ॥

द्वितीयताम्रक।

जीर्णं ताम्ररसं चैव गन्धकञ्च सुचूर्णितम्। स्वर्णमाक्षिकमादाय धत्तूरकरसे पचेत् ॥ १०६ ॥ यावत्पाकं तथा कृत्वा शास्त्रविन्मन्दवह्निना। त्रिफलापिण्डिकावेष्ट्य विधिवत्सर्पिषा पचेत् ॥ १०७ ॥ ज्ञात्वा पाकं समुत्तार्य्य शीते निष्कास्य भक्षयेत्। विमर्द्य मधुसर्पिर्भ्यां नारिकेलं पिबेदनु॥१०८॥ पाण्डुरोगश्च कासश्च ज्वरांश्च विषमांस्तथा। गुल्मं प्लीहामयश्चैव विनाशयति भक्षणात् ॥ १०९ ॥

पुराना तांबा, शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक और सोनामाखी इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर एकत्र चूर्ण करके धतूरेके रसमें मन्द मन्द अग्निसे पकावे जब ये पकते पकते पिण्डकी समान होजाय तब त्रिफलेके चूर्णमें मिला पिण्डी बनाले विधिपूर्वक घृतमें पकावे और उत्तम प्रकारसे पकनेपर उतार लेवे। जब शीतल होजाय तब इसमेंसे निकालकर शहद और घीमें मिलाकर सेवन करे और ऊपरसे नारियलका जल पान करे। इसको भक्षण करनेसे पांडुरोग, खांसी, विषमज्वर, गुल्म और प्लीहारोग नष्ट होता है ॥ १०६ ॥ १०९ ॥

ताम्रामृताख्यरसायन।

गन्धकं जीर्णताम्रञ्च सूतकञ्च समांशकम्। तण्डुलीयकमूलस्य रसेऽपि लवणस्य च ॥ ११० ॥ लोहपात्रे पचेत्तावद्यावत्तद्गुलिकायते। वस्त्रे तत्पो-

टलीं बद्ध्वा वेष्टयेत्तां सुपिष्टया ॥१११॥ आमलक्या ततः पक्त्वा सर्पिषा मृदुवह्निना । शर्करामधुसर्पिर्भ्यामालोड्य विधिवल्लिहेत् ॥ ११२ ॥ नारिकेलपयः पेयं तक्रं चानु यथाविधि । आचरेद्ब्रह्मचर्य्यन्तु हितार्थं वैद्यवत्सलः ॥ ११३ ॥ दुर्नामप्लीहपांडुत्वज्वरकासादिकान्गदान् । अग्निमान्द्यकृतान्सर्वान्निहन्यात्क्षिप्रमेव तु ॥११४॥

शुद्ध गंधक, पुराना तांबा और शुद्धपारा इन तीनों औषधियोंको समान भाग लेकर बारीक पीसकर चौलाईकी जडके रसमें और सेंधेनमकके जलमें लोहेके पात्रमें धीरे २ मंद मंद अग्निसे पकावे । जब ये पकते पकते गोलेके समान होजायँ तब वस्त्रकी पोटलीमें बांधकर उसको आमलोंकी पिट्ठीसे वेष्टित करके घृतके द्वारा मंद मंद अग्निसे पकावे । जब वह शीतल होजाय तब मिश्री और शहदमें यथाविधि मिलाकर इसको अपनी शक्तिके अनुसार चाटे और ऊपरसे नारियलका जल अथवा तक्रका अनुपान करे । इसको सेवन करनेपर अपने हितके लिये मनुष्य ब्रह्मचर्य्यको धारण करके रहे और वैद्यकी आज्ञानुसार चले । यह ताम्ररसायन-बवासीर, प्लीहा, पांडुरोग, ज्वर, खांसी और मंदाग्निप्रभृति समस्त रोगोंको शीघ्र नष्ट करती है ॥ ११०-११४ ॥

पर्पटाख्यरसायन ।

रसगन्धकताम्राणां चूर्णं कृत्वा समांशकम् । पुटपाकविधौ पक्त्वा मधुनालोड्य संलिहेत् । सर्वरोगहरश्चैतत्पर्पटाख्यं रसायनम् ॥ ११५ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक और तांबा इन सबको समान भाग लेकर एकत्र खरल करके पुटपाककी विधिसे पकाकर और शहदमें मिलाकर सेवन करे तो यह पर्पटाख्य रसायन सर्वप्रकारके रोगोंको नष्ट करती है ॥ ११५ ॥

गन्धकं त्रिफला भृङ्गी समभागन्तु कारयेत् । भक्षयेत्कर्षमात्रन्तु वर्षान्मृत्युजरापहः ॥ ११६ ॥

शुद्ध गंधक, त्रिफला और भांगरा इनको समान भाग लेकर चूर्ण करलेवे। फिर उसमेंसे प्रतिदिन एक तोला परिमाण सेवन करे । इसको एक वर्षतक सेवन करनेसे जरा और मृत्यु दूर होती है ॥ ११६ ॥

गन्धकरसायन ।

शुद्धगन्धपलान्यष्टौमृततीक्ष्णपलद्वयम् । सूर्य्यपाके त्रिसप्ताहं दत्त्वा कन्याद्रवं पचेत् ॥ ११७ ॥ कर्षैकं पातयेत्क्षीरे वर्षमेकं निरन्तरम् । दिव्यदृष्टिर्भवेन्मर्त्यो जीवेदाचन्द्रतारकम् ॥ ११८ ॥ मन्त्रमत्र प्रवक्ष्यामि गन्धराजस्य भक्षणे ॥ ११९ ॥

शुद्ध गन्धक ३२तोले और लोहेकी भस्म ८ तोले दोनोंको एकत्र घीकारके रसमें तीन सप्ताहपर्यंत सूर्य्यपाककी विधि (सूर्य्यकी तीक्ष्ण धूप) से पकावे। फिर इसमेंसे प्रतिदिन एक तोला पर्य्यंत लेकर दूधमें डालकर निरन्तर एकवर्षतक सेवन करे। इसके प्रभावसे मनुष्य दिव्यदृष्टि होकर जबतक चन्द्रमा सूर्य्य और तारे हैं तबतक जीता रहता है । और इस गन्धराजके भक्षण करनेके मन्त्रको कहता हूं ११७-११९

" ॐ हः अमृतीय अमृतशक्तीय अमृतगंधोपजीवानिष्पन्नचन्द्रामृतं आज्ञापनममृतत्वं कुरु स्वाहा" ।

"ॐ हः अमृतीय अमृतशक्तीय अमृतगन्धोपजीवनिष्पन्नचन्द्रामृतम् । आज्ञापनममृतत्वं कुरु स्वाहा" इति मन्त्रः ।

कुर्य्याद्गंधकयोगानां क्षीरशाल्यन्नभोजनम् । केवलं वा पिबेत्क्षीरमन्यत्सर्वं विवर्जयेत् ॥ १२० ॥

सर्वप्रकारके गन्धकयोगोंपर दूध और शालि चावलोंका भात भोजन करे । अथवा अन्य समस्त पदार्थोंको छोडकर केवल दूधको पान करे ॥ १२० ॥

अभ्रककल्प।

अतिकृष्णमतिस्निग्धं वज्रमञ्जनसन्निभम्। सर्वदोषपरित्यक्तं विशेषोपलवर्जितम् ॥ १२१ ॥ गिरिदोषोज्झितं शुद्धं प्रयुंज्यात्सर्वकर्म्मसु। विहितं मत्तके नित्यं रसं रासायनादिषु ॥ १२२ ॥ एतद्वज्राख्यमाख्यातं सर्वदेवनमस्कृतम्। सर्वव्याधिहरं नूनमजरामरकारकम् ॥ १२३ ॥ तद्वत्तेनैव पञ्चत्वं कृत्वा च सुविचक्षणः। कृत्वाथ मृण्मये भाण्डे दृढे संस्थाप्य बुद्धिमान् ॥ १२४ ॥ यथोक्तं मेघनादस्य निर्यासे याति संप्लुतम्। स्थापयेद्दिवसं पञ्च चतुष्टयमथापि वा ॥ ॥ १२५ ॥ स्थापयेद्रससंच्छन्नं छायया दिव्यमौषधम्। सतीक्ष्णमसृणायाञ्च शिलायां पेषयेत्ततः ॥ १२६ ॥ पिष्ट्वा तथैव संस्थाप्य संस्थानोपरिसंवृतः। अतः पुनः पञ्चदिने पुटयेत्सदृढं तदा ॥ १२७ ॥ बलवांस्तद्रसेनैव पिष्ट्वा संस्थापयेत्ततः। एवमादिक्रमेणैव पेषणं क्रियते सदा ॥ १२८ ॥ पूर्वोक्तक्रमयोगेन धात्रीव्योषविडङ्गकैः। संमिश्रं पेषयेद्धीरो यावन्निश्चन्द्रको भवेत् ॥ १२९ ॥ निश्चन्द्रिकेऽतिसंपीड्य अंगुष्ठाग्रप्रमाणतः। गुटिकां कारयेत्सर्वां छायायाञ्चैव शोषयेत् ॥१३०॥ एकैकां भक्षयेत्प्राज्ञो वर्षमेकं निरंतरम्। द्वितीये च पुनर्वर्षे भक्षयेद्गुटिकाद्वयम् ॥ १३१ ॥ एवं संवत्सरेणैव एकैकां वर्द्धयेद्गुटीम्। अनेनैव विधानेन व्योम्नः शतपलं नरः १३२॥ अद्याद्भवेन्न सन्देहो वज्रकायो महाबलः। मासत्रयेण रक्ताख्यं क्षयं कासं सुदारुणम् ॥ १३३॥ पञ्चकासञ्च हृच्छूलं ग्रहण्यर्शोऽगदांस्तथा। आमवातं तथा शोथं पांडुरोगं सुदारुणम् ॥ १३४ ॥ मृत्युकल्पं महाव्याधिं वातपित्तकफोद्भवम्। हन्त्यष्टादशकुष्ठानि यथोक्तं पथ्यसेवनात् ॥१३५॥

अत्यन्त काला, अत्यन्त चिकना, अंजनके समान और सम्पूर्ण दोषोंसे रहित, विशेष कर पाषाण और पर्वतके दोषसे रहित, शुद्ध अभ्रक सर्व प्रकारके कर्म्मोंमें तथा रस और रसायनकर्म्ममें विशेषरूपसे प्रयोग करना चाहिए। यह वज्राख्य अभ्रक सम्पूर्ण देवताओंके द्वारा पूजित है। यह निस्सन्देह सब प्रकारके रोगोंको हरनेवाला तथा अजर और अमर करनेवाला है। इसलिए ऐसे अभ्रककी उत्तमविधिसे भस्म बनाकर उसको उत्तम और दृढ मिट्टीके पात्रमें भरकर और यथाविधि चौंलाईके रसमें प्लावित करके चार या पांच दिनतक रक्खा रहने देवे। पश्चात् वस्त्रमें छानकर और छायामें सुखाकर उसको सोनामाखी और लोहेके चूर्णमें मिलाकर चिकनी और तीक्ष्ण शिलापर पीसे और फिर वैसेही ढककर रख देवे। पश्चात् पांचवें दिन दृढ पुट देवे। प्रथम आमले, त्रिकुटा और वायविडंग इनके रसोंके द्वारा बलवान् पुरुष खूब जोरसे पेषण करे, फिर पुट देवे। क्रमसे इसको बारम्बार पीसकर जबतक यह निश्चन्द्र नहीं हो तबतक बराबर पुट देवे। फिर निश्चन्द्र होजानेपर अँगूठेके अग्रभागसे इसको खूब मलकर गोली बनाकर छायामें सुखालेवे। तदनन्तर एक वर्ष तक इसकी प्रतिदिन एक एक गोली खाय और एक वर्षके पश्चात् नित्य दो २ गोली खायँ। इस प्रकार दो वर्ष तक दो गोली खायँ। फिर इसी क्रमसे प्रतिवर्ष एक एक गोली बढाता जाय। इस प्रकार इसको १०० पल सेवन करनेसे मनुष्यका शरीर अवश्य वज्रके समान होजाता है। इसको तीन महीनेतक सेवन करनेसे रुधिरजनित रोग, दारुण क्षयकी खाँसी, पांचों प्रकारकी खाँसी, हृदयशूल, संग्रहणी, बवासीर, आमवात, शोथ और दारुण पाण्डुरोग दूर होता है। इसपर यथोक्त विधिसे पथ्य सेवन करनेसे मृत्युके समान महारोग

वात पित्त और कफजनित रोग और अठारह प्रकारके कुष्ठरोग नष्ट होते हैं ॥ १२१-१३५ ॥

महाबलविधानाभ्रक ।

गगनं कज्जलसन्निभं स्निग्धमदोषं वियोजितम् । बहुशो दूर्वालंबुषमूलैर्युक्तं वस्त्रे विबन्धश्च ॥ १३६ ॥ दत्त्वा सलिलं तावत्करेण घर्षश्च पंकतां नीतम् । निपुणं गृहीतमुदकादञ्जनपुञ्जघनीभूतम् ॥ १३७ ॥ द्वित्रिवारपरिपुटितं रवितरुमथिताल्पदुग्धकादिरसे । चूर्णितमाथितं शिलायां कुडवमेकं तदादाय ॥ १३८ ॥ प्रथमं चतुरष्टगुणे गोमूत्रे वा पचेन्मृदुज्वालम् । निपुणमनलं दत्त्वा समुद्धयाभ्रं तथा दुग्धे ॥ १३९ ॥ श्लक्ष्णं विडङ्गचूर्णं गगनार्धं त्रिकटुसम्भवश्च रजः । त्रिकटुसमं त्रिफलोत्थं पृथक्तदर्द्धश्च वन्ध्यायाः ॥ १४० ॥ नतकीरकर्णीवृद्धदारुकरक्तानलनीलकानाश्च । मूलस्य तालमूलीरक्ताश्वमारहपुषाणाश्च ॥ १४१ ॥ पत्रकसवाजिगंधाशतावरीमूलसम्भवश्चापि। अमलिनपुनर्नवार्कतर्कारीसवाट्यालमूलस्य १४२॥ चूर्णं कण्टकपर्णीभवं समृताभृङ्गराजस्य । त्रिवृताख्यायास्त्रिभुवनविजयस्य केशराजस्य ॥ १४३ ॥ सुविदितपाकं शीतं गगनचूर्णश्च भाजने सर्वम् । समधुसितैरनुरूपैः संमिश्रं मध्वाज्यकर्षेण ॥ १४४ ॥ पिष्टं तदनु शिलायां स्निग्धभाण्डे निधाय साविधिज्ञः । सोत्साहः सुविनीतो गृह्णीयाद्गगनाभ्रकं कल्पम् ॥ १४५ ॥ मृदुकृतं वमनविरेकं वैद्यप्रदिष्टेन सात्म्ययोगेन । याति शरीरविशुद्धिर्दीपितदेहानलो नीरुक् ॥ १४६ ॥ पूजितगुरुदेवानलातिथिसिद्धसाधुमान्यजनः। स्निग्धोदनपरितृप्तः दीनग्लानिरहितः सत्कृतः ॥ १४७ ॥ स्थिरसंकल्पो विनीतसर्वेंद्रियः प्रशान्तसर्वात्मा च । परिकृतपरोपकारःवासः समुज्झितो जितक्रोधः ॥ १४८ ॥ श्रद्धावानश्नीयाद्भेषजराजस्य माषकानष्टौ । पुण्ये दिवसे कृत्वा गुटिकां तथा भक्षयेत्प्रातः ॥ १४९ ॥ अनुपानं शीतजलं सततमन्नातिभोजनं नाऽ । हिताहिताद्यं सुखदं शाकाम्लदधिपरिहीनश्च ॥ १५० ॥ अतितिक्तकटुकषायक्षाराभिष्यंदितीक्ष्णरूक्षाणि । वातलविदाहिदुर्जरगुरूण्यसेव्यानि वस्तूनि ॥ १५१ ॥ पानं दूराध्ययनं रतिमतिशीतं दिवा स्वप्नम् । प्रत्युपदेशं द्वेषं वातातपजागरणोद्गतान् ॥ १५२ ॥ चिन्ताशोकविषादव्यायाममदकरोन्मादकरान् । पिशितश्चानूपदेशं शीतपानं वर्जयेदनिशम् ॥ १५३ ॥ कुक्करमयूरकलावकतित्तिरिशशकाजमेषसारङ्गम् । जांगलं पिशितं श्यामं माषं पटोलश्च वार्त्ताकुम्१५४॥ पथ्याशी पिशितं रसं सैन्धवं सघृतकं सधान्याकम् ।स्वस्तिकषष्टिकलोहितशालीनतिनिस्तुषान्मुद्गान्१५५॥ क्रमुकफलानि द्राक्षापक्वाम्रफलानि चैव शस्तानि । स्वादु च परिणाति मधुरं कलिकरश्चापि वाऽऽसवन्तोयम् ॥ १५६ ॥ प्रतिसप्ताहकमेतत्क्रमाद्वा प्रवर्द्धयेद्धीमान् । युक्तिविचाराभिज्ञो भेषजस्य पर्य्यन्तं भवति ॥ ॥ १५७ ॥ रसायनराजं कुर्वन् मनुजो-

मनोभिलाषं प्राप्नोति । नागार्जुनोपदिष्टं षण्मासोपविहितविधिना च ॥ १५८ ॥ अपगतसकलव्याधिर्वलीपलितवर्जितोऽति महातेजाः । शूरः प्राज्ञो वाग्ग्मी त्रिवर्गफलभाजनो दक्षः ॥ १५९ ॥ मदमत्तकुञ्जरबलः सौकुमार्योत्साहसंपन्नश्च । षोडशवर्षकरो बहुप्रसूतः सुचिरजीविनोपेतः ॥ १६० ॥ जीवेद्वर्षसहस्रं सततभ्यासाच्च सर्वसम्पन्नः । चन्द्रकमनीयकान्तिः पवनबलो धामसमधामा ॥ १६१ ॥ शोषयकृदतिसारप्लीहापस्मारसिध्मयक्ष्मणः। कासश्वासविसर्पग्रहणी–गुल्माश्मरीशोथान् ॥ १६२ ॥ प्रदरजलोदरभस्मकवमिपामाश्लीपदश्रमेहांश्च । विबन्धभगन्दरकुष्ठविषमज्वरपांडुरोगांश्च ॥ १६३ ॥ श्रुतिवदनोदरलोचनमस्तकरोगान्समूत्रकृच्छ्रांश्च । आशु रसायनराजः शमयति युक्त्या प्रयुक्तस्तु ॥ १६४ ॥ सामं समीरमुपहन्ति कफं सपित्तं, सास्रश्च पित्तमथ जाठरवह्निमान्द्यम् । वातप्रकोपजनितान्कफजांश्च सर्वान् पित्तोद्भवांश्च निखिलान्सगदांस्तथैव ॥ १६५ ॥ नागार्जुनोदितरसायनसंहितायामालोच्य चात्मनि समस्तरुजाविधाने । राजानमेनमुपयुज्य रसायनानां श्रीविश्वरूपमुपसंस्कृतवान्कृतार्थः ॥ १६६ ॥

कज्जलके समान काला, चिकना और दोषरहित अभ्रक लेकर सब कामोंमें प्रयोग करना चाहिए। इसको प्रथम दूब और लज्जावन्तीके जडके साथ वस्त्रकी पोटलीमें बांधकर और जलमें भिजोकर तबतक हाथसे रगडे जबतक कि वह कीचडके समान न निकलने लगे फिर उस पोटलीमेंसे निकले हुए अंजनके समान काले अभ्रकको लेकर वैद्य उसको छायामें सुखा लेवे। फिर भाकके दूधमें या रसमें खरल करके दो तीन बार पुट देवे। पश्चात् इसका चूर्णकरके अच्छे प्रकारसे शिलापर पीसे । उसमेंसे एक कुडव परिमाण चूर्ण लेकर उसको बारह गुने गोमूत्रमें मन्द मन्द अग्निसे पकावे और उत्तम विधिसे अग्नि देनेपर समुद्रके जलमें तथा दूधमें बुझावे। इसके पश्चात् उसको निकाल कर चूर्ण करलेवे फिर बारीक पिसाहुआ वायविडंगका चूर्ण, त्रिकुटेका चूर्ण और त्रिफलेका चूर्ण ये प्रत्येक अभ्रकसे आधा २ भाग, तथा त्रिफलेके चूर्णसे आधा भाग बांझककोडेकी जडका चूर्ण एवं तगर, हस्तिकर्णी, विधारा, लालचीता, नीलकी जड, मूली, मुसली, लाल कनेर, हाऊबेर, तेजपात, असगन्ध, शतावर, आमले, पुनर्नवा, आक, अरणी, खिरेंटी, कटेरी, गिलोय, भांगरा, निसोत, भांग और कुकुर भांगरा इन सबके समान भाग चूर्णको और उक्त अभ्रकको एक पात्रमें डालकर विधिपूर्वक पकावे। जब पाक पक कर अपने आप शीतल होजाय तब उसमें शहद और मिश्री मिलाकर तथा एक एक कर्ष शहद और घी मिलाकर पत्थरकी शिलापर पीसकर चिकने बासनमें भरकर रख देवे। पश्चात् उत्साहपूर्वक और जितेन्द्रिय होकर विनीतभावसे इस श्रेष्ठ अभ्रक कल्पको ग्रहण करना चाहिए। प्रथम वैद्यके अनुभूत सात्म्ययोगों और मृदु औषधियोंके द्वारा शरीरको कोमल कर वमन, विरेचनादि करे । इस प्रकार जब शरीर शुद्ध और जठराग्नि दीपन होजाय तब स्वस्थ मनुष्य गुरु, देवता, अग्नि,अतिथि, सिद्ध, साधु और अन्यान्य मान्यजनोंकी पूजा करके तथा उनको स्निग्ध भातसे तृप्त करके एवं दीनता और ग्लानिसे रहित होकर सदनुष्ठानसहित स्थिरसंकल्प तथा विनम्रभावसे सम्पूर्ण इन्द्रियों और आत्माको वशमें करनेवाला तथा परोपकार करनेसे क्षीण होगया है शरीर जिसका ऐसा गृहस्थ[illegible] तथा क्रोध लोभ मोहादिको जीतनेवाला और श्रद्धालु मनुष्य इस औषधको शुभ दिनमें प्रातःसमय आठ माशे परिमाण लेकर गोलीसी बनाकर भक्षण करे और शीतलजलका अनुपान करे। इसपर अत्यन्त भोजन नहीं करे। हिताहितका विचारकर सुखकर पदार्थोंको सेवन करे। और शाक, खटाई, दही, तथा अत्यन्त

कड़वे, चरपरे, कषैले, क्षार, अभिष्यन्दीपदार्थ, तीक्ष्ण और रूक्षपदार्थ, वातकारक, दाहकारक, विलम्बसे जीर्ण होनेवाले और भारीपदार्थ ये सब त्याग देवे। एवं मद्यपान, दूरसे पढना, मैथुन, अत्यन्त शीतलपदार्थोंका सेवन, दिनमें सोना, विशेष बकवाद, द्वेष, पवन, धूप, रात्रिमें जागना, चिन्ता, शोक, विषाद, दंड—कसरत, मदकारक और उन्माद करनेवाले पदार्थ, अनूपदेशके जीवोंका मांस और शीतल जलपान इन सबको सदाके लिए छोडदेवे। इसपर कुकर, मोर, लवा, तीतर, खरगोश, बकरा, मेंढा और हिरनका मांस एवं जांगल प्रदेशके जीवोंका मांस, कालेहिरनका मांस, उडद, परवल, बैंगुन खानेमें हितकारी मांसरस, सैंधानमक, घी, धनियां, स्वस्तिकधान्य, साठीधान्य, लालशालिचावल, तुषरहित मूंग, सुपारी, दाख, पक्के आम, मधुर और स्वादुपदार्थ, आसव और जल ये सब हितकारी हैं। बुद्धिमान् तथा युक्तिपूर्वक विचार करनेवाला वैद्य औषधके अन्त तक प्रतिसप्ताह क्रम क्रमसे इसकी मात्रा बढ़ाकर सेवन करावे। इस रसायनराजको विधिपूर्वक छः महीने पर्य्यंत सेवन करनेसे मनुष्य मनके सम्पूर्णमनोरथोंको प्राप्त करता है, ऐसा महात्मा नागार्जुनने कहा है। इससे—सम्पूर्ण व्याधि और वलीपलित आदि रोगोंसे निवृत्त होकर मनुष्य अपूर्वतेजको धारण करनेवाला, शूर, प्राज्ञ, वाग्मी, चतुर और त्रिवर्ग, (धर्म्म, अर्थ, काम) का भाजन होता है। तथा मदोन्मत्त हाथीके समान बल, सुकुमारता और उत्साहसे सम्पन्न होकर सोलहवर्षकी अवस्थाके समान होजाता है। और उसके दीर्घायुषी बहुतसी संतानें होती हैं। इसको निरंतर सेवन करनेसे पुरुष सर्वगुणसम्पन्न होकर एकहजारवर्षपर्य्यंत जीता रहता है। चन्द्रमाके समान कमनीय, कांतियुक्त और पवनके समान बलवान् तथा सूर्यके समान तेजस्वी होता है। युक्तिपूर्वक प्रयोग की हुई यह रसायनराज-शोष, यकृत्, अतिसार, प्लीहा, अपस्मार, सिध्म, राजयक्ष्मा, खाँसी, श्वास, विसर्प, संग्रहणी, गुल्म, पथरी, शोथ, प्रदर, जलोदर, भस्मक, वमन, पामा, श्लीपद, प्रमेह, विबन्ध, भगन्दर, कोढ, विषमज्वर, पांडुरोग, कर्णरोग, मुखरोग, उदररोग, नेत्ररोग, शिरोरोग और मूत्रकृच्छ्र इन सब रोगोंको शीघ्रही नष्ट करदेती है। एवं आमवात, कफ, पित्त, रक्तपित्त, उदररोग, मंदाग्नि, वातजनित सम्पूर्ण रोग और पित्तजनित समस्तरोगोंको नष्ट करती है। नागार्जुन रचित रसायनसंहिताको देखकर और सम्पूर्ण रोगोंकी चिकित्साको विचार कर श्रीविश्वरूपने यह राजरसायन कही है ॥१३६–१६६

अभ्रक।

गगनमुलूखलक्षुण्णंकाञ्जिकपुनर्नवाविजलदनादरसैः। कुलिशरसमुनिरसाभ्यां पिष्ट्वा प्रत्येकशः पुटितम् ॥१६७॥ सौवीरादिरसेन सम्पन्नं प्राप्य रविकरैः शोष्यम्। मिलितत्रिफलात्रिकटुकविडङ्गचूर्णश्च पादसमम् ॥१६८॥ घृतमधुसिताविमिश्रं प्रातः कृत्वाष्टमाषपरिमाणम्। शिशिरसलिलानुपानं भोजनमिह मासमुद्गादि ॥१६९॥

अभ्रकको ओखलीमें कूटकर काँजी, पुननेवा, नागरमोथा, चौलाई, काकड़ासिंगी और अगस्तिया इन सबके क्काथ या रसमें अलग अलग पीसकर पुट देवे। फिर काँजी आदिसे युक्त करके इस अभ्रकको सूर्य्यकी धूपमें सुखावे। पश्चात् इसमें त्रिफला, त्रिकुटा और वायविडंग प्रत्येकका चूर्ण अभ्रकसे चौथाई भाग तथा घी शहद और मिश्री इन सबको मिलाकर प्रतिदिन प्रातःकाल आठ २ मासे परिमाण सेवन करे, ऊपरसे शीतल जलका अनुपान करे और इसपर मांस, मूँग आदिका भोजन करे ॥ १६७–१६९ ॥

साधितं यः सदा भुंक्ते पञ्चभूतमिदं नरः। अभ्रकमूर्चिमस्तत्र जायन्ते ये गुणानथ ॥ १७० ॥ घननिबिडगूढसन्धिः श्वसनबलोन्मत्तकुञ्जरप्राणः। सर्वद्वन्द्वसहिष्णुर्द्विरष्टवर्षाकृतं निचैरेव ॥ १७१ ॥

जो पञ्चमहाभूतमय मनुष्य इसको निरन्तर विधिपूर्वक सेवन करता है उसके जो गुण उत्पन्न होते हैं उनको कहते हैं। वह मनुष्य अतीव सघन, कठोर, गूढ, संधियुक्त, मत्त हाथीके समान बलवान्, श्वास-

युक्त, सर्वप्रकारके कष्टोंको सहनेवाला और सोलह वर्षके युवाके समान आकृतिवाला होजाता है ॥ ॥ १७० ॥ १७१ ॥

उमाभाषित अभ्रक ।

रजनीकराक्षयपक्षे प्रशस्ततिथिनक्षत्रकरणयोगेन । सितकुसुमाद्यैस्तु बलिं दद्यात्साधुप्रयत्नेन ॥१७२॥ अङ्गारराशिदहनज्वालातिध्मातमग्निवर्णं तत् । आकरदोषोत्थित्यै पयसि सुवाप्य धारयेत्तदनु ॥ १७३ ॥ असकृत् कृतैकपत्रं मरिचजलेन त्र्यहं च पर्युषितम् । शुक्लामलमसृणायां शिलायां वर्त्तयेद्बहुशः ॥ १७४॥ शुचिभाजनोदरस्थं सम्यक्सितविपुलवस्त्रसंछन्नम् । परिपीतसकलसलिलं दिनकरकिरणैस्तु कुर्वीत ॥ १७५ ॥ घनरजसः पलमेकं तण्डुलमेकश्च परिगृह्य । त्रिंशत्पलानि पयसो व्योषं सदुग्धघृतमन्नभुक् ॥१७६॥ मासेन गुणगणांश्च स प्राप्नोति नरस्तमाख्यातः । घनकुञ्चितनीलकचो दुन्दुभिनादविरहितश्रवणः ॥ स नरो वाग्मी श्रुतिवाञ्छास्त्रविज्जीवेद्ब्रह्मणो दिवसम् ॥ १७७ ॥

शुक्लपक्षकी शुभ तिथि, शुभनक्षत्र, उत्तम करण और उत्तमयोगमें सफेद फूल आदिसे बलि देकर बुद्धिमान् वैद्य यत्नपूर्वक अभ्रकको लेकर कोयलोंकी अग्निमें रखकर धोंकनीसे फूंके । जब उसका अग्निकी समान लालरंग होजाय तब खान (पर्वत)के दोषोंको दूर करनेके लिये उसको दूधमें डालदेवे फिर इसके बहुतसे पत्र करके उनको लाल मिरचोंके पानीमें डालकर तीन दिनतक रक्खा रहने देवे पश्चात् सफेद स्वच्छ और चिकनी शिलापर बहुत देरतक पीसे फिर शुद्ध पात्रमें एक सफेद और बडा वस्त्र बिछाकर उसमें उसको छानकर सूर्य्यकी किरणोंसे उसके जल आदिको सुखावे । ऐसे अभ्रकका चूर्ण चार तोले, चावल ४ तोले, जल ३० पल और त्रिकुटेका चूर्ण इन सबको एकत्र मिलाकर सिद्ध करे । फिर प्रतिदिन इसको यथाशक्ति सेवन करे । और इसके ऊपर घी, दूध तथा चावलोंका भात खाय । इस औषधको एकमहीनेतक सेवन करनेसे मनुष्य अनेकगुणोंके समूहको प्राप्त होता है तथा श्रेष्ठमनुष्योंमें प्रसिद्ध होता है । उसके बाल सघन, कुञ्चित और नीलवर्णके हो जाते हैं । तथा श्रवण दुन्दुभि आदि शब्दों रहित और निर्विकार होजाते हैं । वह मनुष्य-वाग्मी और सुनते ही शब्दोंको धारण करनेवाला एवं शास्त्रोंको जाननेवाला होकर ब्रह्माके दिनतक जीता रहता है ॥ १७२-१७७ ॥

तृतीय अभ्रक ।

अभ्रं चतुष्पलं ग्राह्यममलं धौतशोषितम् । पत्रितं लोहपात्रस्थं तण्डुलीयरसाप्लुतम् ॥ १७८ ॥ गोजीरसेन संमर्द्य मृदुपंकसमं कृतम् । वचाविडङ्गचूर्णेन तुल्यभागेन योजितम् ॥ १७९ ॥ झिण्टीप्रवर्त्तकाकासभृङ्गराजतिलद्रवैः । प्रत्येकं क्रमशो दत्त्वा प्रस्थार्द्धं घट्टयेत्ततः ॥ १८० ॥ पिष्ट्वाष्टमाषकान्दत्त्वा वटिकान्वर्त्तयेद्भिषक् । कवर्णाद्यश्च द्रव्यादि सप्ताहत्रितयं त्यजेत् ॥ १८१ ॥ ततो यथेष्टं कुर्वीत व्यवायाश्रमभोजनम् । हन्त्येतदम्लपित्तश्च शूलामवातपांडुताः ॥ प्लीहाग्निसादशोथार्शोविष्टम्भग्रहणीगदान् ॥ १८२ ॥

स्वच्छ, धुलाहुआ और सुखाया हुआ ऐसा अभ्रक चार पल लेकर उसके पत्र बनाकरके उनको लोहेके पात्रमें चौलाईके रस और गोजियाके रसके साथ अच्छे प्रकारसे मर्दन करके कीचडके समान मृदु करलेवे । फिर इसमें वच और वायविडंगका चूर्ण समान भाग तथा पियाबाँसा, कसौंदी, भाँगरा और तिल इन्हींके जलकी भावना देकर पुट देवे फिर प्रत्येकका कल्क आधा २ प्रस्थ मिलाकर यथाविधिसे मर्दन करके पीसकर आठ आठ मासेकी गोलियाँ बनालेवे । पश्चात् इसको यथाशक्ति सेवन करे और इसपर ककारादिनामवाले पदार्थ

तीन सप्ताहतक छोड़देवे तथा यथेष्ट मैथुन, उत्तम भोजनादि श्रम करे । यह रसायन-अम्लपित्त, शूल, आमवात, पांडुरोग, प्लीहा, मंदाग्नि, सूजन, बवासीर, विष्टम्भ और संग्रहणी इन सब रोगोंको दूर करती है ॥ १७८-१८२ ॥

पानीयभक्तवटी ।

कृष्णाभ्रकपलमेकं संकुटचोलूखल तु मुसलेन । अम्लरसायनमेतत्क्षेप्या टंकोन्मिता पथ्या ॥ १८३ ॥ आर्द्रकरसेन भाव्यं शुष्कं कृत्वैतत्क्षिपेच्चूर्णम् । त्रिकटुत्रिफलामुस्तकचित्रकपयसाश्च पिचुमानम् ॥ १८४ ॥ कृमिरिपु चाक्षद्वितयं प्रक्षेप्यं चात्र गगनमानमयः । कृत्वा तोयेन वटीं षण्माषोन्मितां भुक्त्वा च ॥ १८५ ॥ अम्लं वार्य्यनुपेयं दधिशुक्तं धार्य्यमनुदिवसम् । शूलं कफाम्लपित्तं विनिहन्ति वातरुजः सद्यः ॥ १८६ ॥

काले अभ्रकको चार तोले लेकर ओखलीमें डालकर मूसलसे खूब कूटे । फिर इसको कांजीमें डालकर और एक टंक हरडोंका चूर्ण मिलाकर अदरखके रसकी भावना देवे । फिर सुखाकर इसमें सोंठ, मिरच, पीपल, त्रिफला, नागरमोथा, चीता, और सुगन्धवाला यह प्रत्येक एक एक तोला और वायविडंगका चूर्ण दो तोले तथा अभ्रकके समान लोहेका चूर्ण डाले, सबको एकत्र पीसकर जलके योगसे छः छः मासेकी गोलियाँ बनालेवे । प्रतिदिन प्रातःकाल इसकी एक गोली सेवन करे और ऊपरसे काँजीका अनुपान करे, तथा नित्य दही और शुक्त भोजन करे । यह गोली-शूल, कफ, अम्लपित्त और समस्त वातके रोगोंको तत्काल दूर करती है॥१८३॥ १८४ ॥ १८५ ॥ १८६ ॥

द्वितीय पानीयभक्तवटी ।

त्रिफला त्रिकटुकमुस्तविडङ्गभल्लातककेसराणाम् । करिवर्त्तच्छददन्ती तंडुलिकापुनर्नवात्रिवृता ॥ १८७ ॥ चित्रद्विजीरकंचूर्णान्येकत्र कर्षमितानि कार्य्याणि । गन्धतिलाः कर्षार्धं गगनपलशोधितं विधिवत् ॥ १८८ ॥ अम्लशुक्तभक्तपयसि दत्त्वा कुर्य्यार्धमाषिकां वटिकाम् । अम्लं वार्य्यनुपेयं कार्य्यं तदधिविहितपथ्यम् ॥ ॥ १८९ ॥ कफातिदुष्टवह्नेर्नातः परमत्र भेषजं दृष्टम् । हन्यात्तदामवातं ग्रहणीगदगुल्मशूलरुजः ॥ १९० ॥

त्रिफला, त्रिकुटा, नागरमोथा, वायविडंग, भिलावे, नागकेशर, हस्तिकर्ण, पलाशके पत्र, दंती, चौलाई, पुनर्नवा, निसोत, चीता, जीरा और काला जीरा ये प्रत्येक औषधि एक २ तोला, शुद्ध गन्धक ६ मासे, तिल ६ मासे और विधिपूर्वक शुद्ध भस्म किया हुआ अभ्रक ४ तोले लेवे । इन सबको एकत्र पीसकर कांजी, शुक्त और भातके मांडमें खरल करके आधे आधे मासेकी गोलियां बनालेवे । फिर प्रति दिन प्रातःकाल एक गोली खाय और कांजीका अनुपान करे तथा यथोक्त पथ्य सेवन करे । कफसे अत्यन्त दुष्ट हुई अग्निके लिए इससे उत्तम अन्य औषध नहीं है । यह वटी-आममात, संग्रहणी, गुल्म और शूलको नष्ट करती है ॥ १८७-१९० ॥

तृतीय पानीयभक्तवटी ।

ग्रन्थिकं त्रिफलाचित्र त्रिवृल्लोहितकुम्भकी । एषां कर्षार्द्धकं चूर्णं प्रत्येकं तावदुन्मितम् ॥ १९१ ॥ त्र्यूषणं लवणं पाक्यं विडङ्गं कार्षिकं पृथक् । पलं कृष्णाभ्रकस्यैवमन्तर्दग्ध्वा विनिःक्षिपेत् ॥ १९२ ॥ तेनैव पेषणं कृत्वा सर्वमेकत्र योजयेत् । शिखर्य्यार्द्रकनिर्गुण्डीनागवल्ल्यस्थिसंहृता ॥ रसैर्द्विपालिकैरेषां वटी भाव्याक्षसंमिता ॥१९३॥

पीपलामूल, त्रिफला, चीता, निसोत और लाल कुम्भी, इन प्रत्येकका चूर्ण छः छः मासे, सोंठ, मिरच, पीपल, सेंधानमक, कालानमक और वायविडंग इन प्रत्येकका चूर्ण एक एक तोला और

जिसमें बाहर धुआँ न निकले इसप्रकार भस्म किया हुआ अभ्रक ४ तोले लेवे, सबको एकत्र मिलाकर खूब पीसे। फिर चिरचिटा, अदरख, निर्गुण्डी; पान और हडसंघारी इन प्रत्यक औषधिके दो दो पल रसमें भावना दकर एक एक तोलका गोली बनालेवे ॥ १९१ ॥ १९२ ॥ १९३ ॥

चतुर्थ पानीयभक्तवटी।

विडङ्गं पिप्पलीमूलं त्रिफला मुनिजं फलम्। लोहकं गन्धक चित्रं पलार्द्धं चूर्णितं पृथक्॥ १९४ ॥ त्र्यूषणं चूर्णितं ग्राह्यं सार्द्धं द्विपलिकं पृथक्। अम्लशुद्धाभ्रकपलं कर्षार्धं पारदस्य च॥ १९५ ॥ अस्तिसंहारनिर्गुण्डी नागवल्ल्यार्द्रकैः शुभैः। रसैश्चतुष्पलैरेवं भावयित्वा पृथक् पृथक्॥१९६॥ यथाग्नि भक्षयेदेतां वटीमनुपिबेज्जलम्। वारिभक्तश्च भुञ्जीत कुर्य्यात्पूर्वोक्तकान्गुणान्॥ १९७ ॥

वायविडंग, पीपलामूल, त्रिफला, अगस्तियाके फल, लोह, शुद्ध गंधक और चीता ये प्रत्येक औषधि चूर्ण की हुई दो दो तोले, त्रिकुटेकी प्रत्येक औषधि दश दश तोले, कांजीमें शुद्ध किया हुआ अभ्रक भस्म ४ तोले और शुद्ध पारा या चन्द्रोदय आधा कर्ष (छः मासे) परिमाण लेवे † इन सबको एकत्र पीसकर हडसंहारी, निर्गुण्डी, नागरवेलके पान और अदरख इन प्रत्येक औषधिके चार २ पल रसमें अलग अलग भावना देकर गोलियां बनालेवे। फिर अपनी अग्निका बलाबल विचार कर नित्य प्रातः-काल एक गोली खाय और ऊपरसे जलका अनुपान करे इसपर भातका पानी पीवे यह वटी भी पूर्वोक्त गुणोंको करती है ॥ १९४-१९७ ॥

पञ्चम पानीयभक्तवटी।

गन्धार्द्रकरसस्तुल्यो विडङ्गमरिचार्द्रकैः। त्रिफलात्रिवृतावह्निः कणादन्ती पुनर्नवा॥ १९८ ॥ त्वक्क्षीरी माणिकुलिशयवागूरागखाण्डिकाः। प्रत्येकैकं पलं चूर्णमुष्णपानीयकं हविः॥ १९९ ॥ अभ्राच्चतुष्पलं चूर्णमेकीकृत्वार्द्रकांबुना। त्रिफला पयसा भाव्या कोलार्द्धमानकी वटी ॥ ॥ २०० ॥ भक्तोदकानुपानेन सेव्या वह्निप्रदीपनी। अम्लपित्तामवातादीन्हन्ति पयसान्नभोजनम्॥ २०१ ॥

प्रथम शुद्ध गंधकको लेकर बराबर अदरखके रसमें खरल करे, पश्चात् इसमें वायविडंगका चूर्ण, कालीमिरच, अदरख, त्रिफला, निसोत, चीता, पीपल, दंती, पुनर्नवा, वंशलोचन, मानकंद, हडसंहारी, यवागू और रागखाण्डव ये प्रत्येक चार चार तोले, तथा गरम जल, घृत और अभ्रकका चूर्ण चार पल लेवे। इन सबको एकत्र करके अदरखके रसमें, त्रिफलेके जलमें और दूधमें भावना देकर छः छः मासेकी गोलियाँ बना लेवे इन गोलियोंको नित्य भातके जलके साथ सेवन करे। इससे अग्नि अत्यंत दीपन होती है तथा अम्लपित्त और आमवातादि समस्त रोग दूर होते हैं। इसपर दूधके साथ भातका भोजन करना चाहिए। ॥ १९८ ॥ १९९ ॥ २०० ॥ २०१ ॥

अभ्रकसन्धान।

भेकदलावरुणार्द्रैर्दण्डोत्पलखण्डिकारुणाशिखरिभिः। वचाभृङ्गराजमानैस्तण्डुलीयकामरावतीभिः॥ २०२॥ सूरणपुनर्नवाभिर्गगनं पृथगेव भावितं नूनम्। खरतरणिकरार्पणशोषणशुद्धिर्विधातव्या॥ २०३ ॥(१) पलमेकं छिन्नरुहा कृष्णागुडूचीसत्वपलमेकम्। अभ्रकमानं त्रिफलात्रिकटुरजः पारदानाञ्च॥ २०३ ॥ (२)प्रथमञ्च मधुसर्पिर्भ्यां मूर्च्छितेन रसेन मर्दयेद्व्योम्। तदनुत्रिफलारजसा तदनुगुडूच्याः सत्त्वेन॥ २०४॥ तदनु त्रिकटुरजोभूयिष्ठमवनितमवदाय। स्निग्धे निधाय भांडे रक्षन्सुव-

---

† यदि पारद डाले तो पहले गन्धक और पारदको पीस कज्जलि करले फिर और औषधि मिलावे।

स्त्रपिहितमुखे ॥ २०५ ॥ खादेद्भोजनमादौ मध्ये चान्ते च वारमेवैकम् । जलमभिपिबेद्रसाम्लं रक्तीवृद्ध्या द्विगुणमेव ॥ २०६ ॥ जीरं दधि चात्र घृतं सपूतमस्थिमांसानि । नाद्यादशेषशाकं मद्यं जीर्णमन्नञ्च ॥ २०७ ॥ हरति चाम्लपित्तं ग्रहणीं दुर्नामकामलादिरुजः । जनयत्यचिराद्रुधिरं जठरानलपुष्टिदं परम् ॥ २०८ ॥

मण्डूकपर्णी, वरना, अदरख, दण्डोत्पल, खण्डकर्णकन्द, लालचिरचिटा, वच, भाँगरा, मानकंद, चौलाई, गिलोय, जिमिकंद और पुनर्नवा इन प्रत्येकके स्वरस अथवा क्काथमें मृत अभ्रकको अच्छेप्रकारसे भावना देकर सूर्य्यकी तीक्ष्ण धूपमें सुखावे। पश्चात् इसमें गिलोय चार तोले, पीपल ४ तोले और गिलोयका सत्व ४ तोले तथा अभ्रकके समान त्रिफला, त्रिकुटा और पारा मिलावे। प्रथम उसको शहद और घीमें मूर्च्छित करके गायके दूधके साथ मर्दन करे, फिर त्रिफलेके चूर्णके द्वारा, गिलोयके सत्वके द्वारा और त्रिकुटेके चूर्णके द्वारा, खरल करके एक उत्तम चिकने बासनमें भरकर रखदेवे और उस बासनका मुख उत्तम कपडेसे अच्छेप्रकार बांधदेवे। इसमेंसे प्रतिदिन एक एक रत्ती मात्रा बढाकर भोजनके आदि, भोजनके मध्य और भोजनके अंतमें नित्य एकबार खाय और ऊपरसे कांजी अथवा माडका अनुपान करे। इसपर जीरा, दही, घी और अस्थिरहित पवित्र मांस ये सब हितकारी हैं। तथा सर्वप्रकारके शाक, मदिरा और पुराना अन्न ये सब त्याग देवे। यह–अम्लपित्त, संग्रहणी, बवासीर और कामलादि रोगोंको दूर करता है। तथा शीघ्रही शरीरमें रुधिरको उत्पन्न करता है और अग्निको अत्यंत दीपन करता है ॥ २०२–२०८ ॥

षष्ठी पानीयभक्तवटी ।

मानकन्दोऽश्वकर्णश्च त्रिवृता मुस्तकं समम् । त्रिकटुत्रिफलाभृङ्गमपामार्गश्च दाडिमम् ॥ २०९ ॥ लावीबृहतिकाजातीद्वयञ्च शतपुष्पिका । सुर्य्यावर्त्तस्तालमूलीचूर्णमेषाञ्च कार्षिकम् ॥ २१० ॥ विडङ्गचूर्णं द्विगुणं पादहीनञ्च गन्धकम् । चतुर्गुणाभ्रकं कार्यं गुडूचीमपि तद्गुणाम् ॥२११॥ सुचूर्णमभ्रकं वस्त्रपातितं काञ्जिके क्षिपेत् । अम्ले पयसि वा पश्चादुद्धरेत्पञ्चमेऽहनि ॥ २१२ ॥ मंडूरपेषितापेष्य वंशपत्ररसेन च । ततः पुटानि देयानि वक्ष्यमाणैर्महौषधैः ॥ २१३ ॥ वंशपत्ररसैः पूर्वं पुटयेदातपे भिषक् । मंडूरपर्णी चित्रश्च दन्तीरसपुनर्नवा ॥ २१४ ॥ त्रिवृत्तातालपाटोलं चास्थिसंहार एव च । आर्द्रकं तालमूली च सूर्य्यावर्त्तश्च शिम्बिका ॥ २१५ ॥ केशराजो भृङ्गराजः शतमूली च मुस्तकम् । ततः प्राक्षिप्य चूर्णानि हिंगुनोऽथ चतुष्टयम् ॥ २१६ ॥ सप्तधा पेषयेद्गाढं त्रिफलाक्काथवारिणा। तेनैव गुटिकाः कुर्य्यान्माषैकैकप्रमाणिकाः ॥२१७॥ वटिकाद्वितयं भक्ष्यमम्लवार्य्यनुपानतः । वयोवस्थामग्निबलं व्याधिं प्रकृतिमेव च ॥ २१८ ॥ दृष्ट्वा मात्रां प्रयुञ्जीत यथा क्षेपः प्रदीयते । ग्रहणीमम्लपित्तञ्च पित्तश्लेष्माणमेव च ॥२१९॥ अर्शांसि वह्निसादञ्च प्लीहानमरुचिन्तथा । वटिकेयं निहन्त्याशु नात्र कार्य्या विचारणा ॥२२०॥ निर्वापयेच्च मंडूरं त्रिफलाया रसे शुभे सूर्य्यावर्त्तरसे वाथ उभयत्र च वा भिषक् ॥ २२१ ॥ तत्तु संचूर्णितं वस्त्रपातितं स्थापयेद्भिषक् । ततः काञ्जिकनिक्षेपं समुद्धारादिसंस्कृतम् ॥२२२॥

मानकन्द, अश्वकर्ण, निसोत, नागरमोथा, त्रिकुटा, त्रिफला, भांगरा, चिरचिटा, अनार, लौकी

(तोम्बी),बडी कटेरी, दोनों चमेली, सौंफ, हुलहुल और मुसली, इन प्रत्येकका चूर्ण एक २ तोला, वायविडंगका चूर्ण २ तोले, गंधकका चूर्ण ९ मासे, अभ्रक भस्मका चूर्ण ४तोले और गिलोयका चूर्णभी चार तोले लेवे। इन अभ्रक आदि समस्त औषधियोंको अच्छे प्रकारसे चूर्ण करके वस्त्रमें छानकर कांजीमें डालदेवे। फिर खटाईके जलमें अथवा नींबूके रसमें किम्वा दूधमें डालकर रखदेवे, फिर पाँचवें दिन निकाले। फिर बहेडेकी लकडियोंके कोयलोंमें शुद्ध किये मण्डूरको वंशपत्रीके रसके द्वारा पीसकर आगे कही हुई औषधियोंके द्वारा पुट देवे। प्रथम वैद्य वंशपत्रीके रसके द्वारा पुट देवे, पश्चात् मण्डूकपर्णीके रसके द्वारा पुट देवे। फिर इसी क्रमसे चीता, दन्ती, पुनर्नवा, निसोत, ताड़,परवल, हडसंहारी, अदरख, मुसली, हुलहुल, खेस, कुकुरभाँगरा, भाँगरा, शतावर और नागरमोथा इन प्रत्येकके रस में पास पीसकर अलग २ पुट देवे। पश्चात् चारों प्रकारकी हींगका चूर्ण डालकर त्रिफलेके काथमें सात बार खूब दृढतासे पेषण करे। फिर सुखाकर एक एक मासेकी गोली बनालेवे। इसकी प्रतिदिन दो गोली खाय और ऊपर कांजीका अनुपान करे। रोगीकी अवस्था, अग्निका बलाबल, रोगकी व्यवस्था और रोगीकी प्रकृति इनसबको अच्छेप्रकारसे विचार कर प्रक्षेप आदिको औषधि डालनेकी मात्राका यथा योग्य निरूपण करे। यह गोली–संग्रहणी, अम्लपित्त, पित्त, कफ, बवासीर, मन्दाग्नि, प्लीहा और अरुचि इन सब रोगोंको निश्चय दूर करती है। इसमें मण्डूरको उत्तम त्रिफलेके रसमें अथवा हुलहुलके रसमें किम्वा त्रिफला और सूर्य्यावर्त्त दोनोंके रसमें डालकर छायामें सुखा लेवे। फिर चूर्ण करके वस्त्रमें छानकर और कांजीमें डालकर संशोधन करे॥ २०९–२२२॥

अथ लोहरसायन।

सूर्यमयूखसे लोहमारण।

सर्वेषां लोहजातीनां कान्तं भवति कान्तिदम्। तथा कान्तं विशेषेण भवेत्तद्गुणदं स्मृतम्॥ २२३॥ एकान्ते च पचेल्लोहमादौ शस्ते दिने ततः। धात्रीपिण्डारकोद्भूतस्वरसेनार्करश्मिभिः॥ २२४॥ स्थापयेद्द्रवेच्चूर्णं ग्राहयेत्तु पृथक्पृथक्। उच्चटास्वरसेनैव पूर्वोक्तेनैव भावयेत॥२२५॥ धात्र्यश्वगन्धयोः पिण्डारकस्यापि रसेन च। मिलित्वैवं पुनर्भाव्यं प्रचंडरविरश्मिभिः॥ २२६॥ काकमाचीरसेनैव स्थापनीयं पुनः पुनः। भावनान्ते च सर्वत्र खल्लितव्यं प्रयत्नतः॥२२७॥ पश्चाच्चूर्णं विधातव्यमप्रमत्तेन धीमता। इदं सूर्य्यमयूखेन मारणं परिकीर्तितम्॥ २२८॥ धात्रीपिंडारकजः स्वरसेन प्रकल्पयेत्। नारिकेलस्य पात्रे तु भावनाविधिरिष्यते॥ २२९॥

सर्वप्रकारके लोहोंमें कांतलोह कांतिजनक है, इस कारण कांतलोह विशेष गुणवाला कहा जाता है। प्रथम शुभदिनमें कान्तलोहेको लेकर आमले और पिण्डारकके स्वरसके साथ एकान्त स्थानमें सूर्य्यकी धूपके द्वारा अलग अलग पकावे। फिर चूर्ण करके उच्चटाके स्वरसमें पूर्वोक्तविधिसे भावना देवे पश्चात् आमले, असगन्ध और पिण्डारकके रसमें मिलाकर इसी प्रकार फिर दूसरी बार प्रचंड सूर्य्यकी धूपमें पकावे। तदुपरान्त मकोयके रसमें बारम्बार भावना देकर बारम्बार खरल करे। प्रत्येक भावनाके अन्तमें बराबर खरल करना चाहिये फिर बुद्धिमान् वैद्य प्रमादरहित होकर इसका चूर्ण करले। यह सूर्य्यकी किरणोंके द्वारा मारण कहा है। यहां भावना देनेके लिये आमले और पिंडारकके चूर्णका स्वरस बनाकर उसके द्वारा नारियलके पात्रमें भावना देनी चाहिये॥ २२३–२२९॥

सूर्यमयूखके द्वारा अभ्रकमारण।

एकपत्रीकृतं कृष्णमभ्रकं वज्रसंज्ञिकम्। भावयेद्द्वित्रिदिवसं जम्बीररसकाञ्जिकैः॥ २३०॥ त्रिफलाया रसे

भाव्यं ततः शिग्रुरसे पुनः । प्रत्येकशः शोधितव्यं सूक्ष्मं खल्लेन बुद्धिमान् ॥ ॥२३१॥ ततो लज्जालुकरसे वाजिगन्धारसे तथा । भावनं खल्लके कार्य्यमिति चाभ्रकमारणम् ॥ भावना नारिकेलस्य पात्रे नान्यत्र शस्यते॥२३२॥

वज्रसंज्ञक कृष्ण अभ्रकको एक पत्री करके दो तीन दिनतक जम्भीरीनिंबूके रसमें, कांजीमें, त्रिफलेके रसमें और सहिंजनेके रसमें अलग अलग भावना देकर सूर्य्यकी प्रचंड धूपमें रखकर खरलमें खूब बारीक खरल करे । पश्चात् लज्जावंतीके रसमें और असगंधके स्वरसमें, या काथमें पूर्वोक्तविधिसे भावना देकर खूब खरल करे । यह सूर्य्यकी धूपसे अभ्रकका मारण कहा है । इसमें नारियलके पात्रमें भावना नहीं देनी चाहिए । किन्तु और सर्वत्र नारियलका पात्र लेना चाहिये ॥ २३० ॥२३१॥२३२॥

सप्तम पानीयभक्तवटिका ।

त्रिवृता चित्रकं मुस्तं त्रिफलात्र्यूषणं तथा । एकैकशो मतो भागस्तदर्धं रसगन्धयोः ॥ २३३ ॥ लोहाभ्रकविडङ्गानां भागश्च द्विगुणो भवेत् । एतत्सकलचूर्णन्तु चूर्णयित्वा विचक्षणः ॥ २३४ ॥ त्रिफलायाः कषायेण गुटिकां कारयेद्भिषक् । तत्रैकां भक्षयेत्प्रातर्भक्तवारि पिबेद्नु ॥ २३५ ॥ पंक्तिशूलं त्रिदोषोत्थमम्लपित्तं वमिं तथा । हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च बस्तिकुक्षिगुदारुजम् ॥ २३६ ॥ कासं श्वासं तथा कुष्ठं ग्रहणीदोषमामजम् । यकृत्प्लीहोदरं गुल्मं यक्ष्माणं ग्रहमेव च ॥२३७॥ विष्टम्भमामदौर्बल्यमग्निसादं नियच्छति । सर्वानेतान्क्षमयाति भास्करस्तिमिरं यथा ॥ २३८ ॥

निसोत, चीता, नागरमोथा, त्रिफला और त्रिकुटा ये प्रत्येक औषधि एक एक भाग, शोधित पारा और गंधक आधा २ भाग, लोह, अभ्रक और वायविडंग ये प्रत्येक दो दो भाग लेवे । इन सबको एकत्र चूर्ण करके त्रिफलेके काथमें खरल करके गोली बना लेवे । उनमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल एक गोली खाय और ऊपरसे कांजीका अनुपान करे । यह गोली-परिणामशूल, त्रिदोषजनित अम्लपित्त, वमन, हृदयशूल, पार्श्वशूल, बस्तिरोग, कुक्षिरोग, गुदारोग, खाँसी, श्वास, कोढ, आमदोषजनितसंग्रहणी, यकृत्, प्लीहा, उदररोग, गुल्म, राजयक्ष्मा, विष्टम्भ, आम, दुर्बलता और मंदाग्नि इन सबको इसप्रकार नष्ट करती है, जिसप्रकार सूर्य अन्धकारके समूहोंको नष्ट करदेता है ॥२३३-२३८

सर्वतोभद्रलोह ।

गव्येन नवनीतेन स्वर्णमाक्षिकवृश्चिकौ । निष्पिष्य लेपयेल्लोहं कान्तपांड्वादिसम्भवम् ॥ २३९ ॥ ध्मापयेत्कर्म्मकाराग्नौ सिक्त्वा सिक्त्वा पुनःपुनः॥ त्रिफलाक्काथतोयेन ततो निर्वापयेत्सुधीः ॥ २४० ॥ पश्चात्संपिष्यते लोहं दाहयेत्पुटवह्निना । अग्नेराकृष्य विधिना जलधौतं प्रयत्नतः ॥ २४१ ॥ श्लक्ष्णचूर्णं ततः कृत्वा बहुघृष्टन्तु कारयेत् । पलं चतुष्टयं तस्य मधूकस्यापि तत्समम् ॥ २४२ ॥ पथ्याधात्रीविभीतक्या रसश्च त्रिकटोस्तथा । वचावह्निविडङ्गानि कृष्णजीरकजीरके ॥ २४३ ॥ दन्तीपुनर्नवामूली प्रत्येकं पलसंख्यया । एलायाः कर्षकं दद्यात्कार्षिकं कटुरोहिणी ॥ २४४ ॥ एलार्धं गन्धकं देयं पलार्द्धं गुग्गुलुत्वचम् । चूर्णयित्वा विधानेन सर्वमेकत्र कारयेत् ॥ २४५ ॥ घृतमष्टपलं दत्त्वा क्षीरं चतुःशरावकम् । चतुर्विंशपलक्काथे त्रिफलाशेषवारिणा॥२४६॥ वस्त्रपूतेन विधिवत्पाचयेत्ताम्रभाजने । दार्वीं लोहमयीं गृह्य पाकं कुर्य्याद्विपाकवित् ॥ २४७ ॥ शीतल-

ञ्च ततः कुर्य्यात्स्निग्धे भाण्डे निधापयेत् । रक्तिकादिक्रमेणैव घृतेन मधुना सह ॥ २४८ ॥ संमर्द्य लोहदण्डेन लोहपात्रे च भक्षयेत् । क्षीरानुपानं दातव्यं पित्तदुष्टाय रोगिणे ॥ ॥२४९॥ तथामकोष्ठिने दद्याद्यवक्षारस्य वारिणा । मूर्च्छाछर्दितृषारक्तपित्तशूलादिसम्भवे । क्षीरं शर्करया मिश्रं ह्यनुपानं प्रयोजयेत् ॥ २५०॥ चतुर्धा ग्रहणी ज्ञेया वातपित्तकफोद्भवा । ज्ञात्वा कुक्षौ मनाक्छूलमामगन्ध सलोहितम् ॥ २५१ ॥ कुक्षौ दक्षिणतः शूलं नाभिमण्डलतोपरि । वात पित्तनिदानं हि लक्षयित्वा प्रदीयते ॥ ॥ २५२ ॥ नारिकेलञ्च समधु पानञ्च हितमिच्छता । रक्तच्छर्द्यां विगन्धत्वमीषत्पानन्तु पैत्तिके । क्षीरं शर्करया युक्तमनुपानन्तु दापयेत् ॥ २५३ ॥ कटिशूले त्रिकशूले कुक्षिशूले अरोचके । आमवातनिदाने च मुखस्रावे प्रकीर्त्तितम् ॥ २५४ ॥ पार्श्वशूले उरःशूले नाभिमण्डलतोपरि । ज्वरे सशूले सामे च वायुमामं निवर्त्तयेत् ॥२५५॥ क्वचिन्नाभेरधः शूले वामपार्श्वे क्वचिद्भवेत् । शूले वा परिणामे च भ्रमे पृष्ठे क्वचित्क्वचित् । शीतलेन यवक्षारमनुपानञ्च वारिणा ॥ २५६ ॥

कांत अथवा पाण्ड्य आदि लोहेको लेकर उसपर गायका नैनी घी, सोनामाखी और विछाटी इनको एकत्र पीसकर कंटकवेधी यंत्र बनाये हुए लोहेपर लेप करदेवे । फिर उस लोहेको लोहारकी धौंकनी में रखकर फूँके और त्रिफलाके काथमें बुझावे इसप्रकार बारम्बार त्रिफलेके काथमें बुझावे। फिर यत्नपूर्वक लोहेको पीसकर अग्निके द्वारा पुट देवे। पश्चात् अग्निसे निकाल कर उसको विधिपूर्वक जलसे धोवे और बारीक चर्ण करके बहुत समयतक घिसे । फिर ऐसे लोहेका चूर्ण १६ तोले, मुलैठी १६ तोले, तथा हरड़, आमले, बहेडे और त्रिकुटा इनका काथ,वच,चीता, वायविडंग, कालाजीरा, जीरा, दंती, पुनर्नवा और शतावर ये प्रत्येक औषधि चार चार तोले,इलायची एक तोला, कुटकी एक तोला,शुद्ध गन्धक ६ माशे गूगल २ तोले और दालचीनी २ तोले लेकर इन सबको एकत्र पीसकर चूर्ण करलेवे फिर इस चूर्णको आठ पल घी और बत्तीस पल दूध तथा वस्त्रमें छानकर त्रिफलेके चौबीस पल काथमें मिलाकर सबको ताँबेके पात्रमें करके पाकको जाननेवाला वैद्य यथाविधि लोहेकी करछीसे पकावे । जब वह पककर स्वयं शीतल होजाय तब उसको चिकने बासनमें भरकर रखदेवे । फिर उसको प्रतिदिन एक एक रत्तीके क्रमसे घी और शहदके साथ लोहेके डंडेसे लोहेके पात्रमें मर्दन करके भक्षण करे। दुष्टपित्तवाले रोगीको इस लोह पर दूधका अनुपान कराना चाहिये । आमकोष्ठरोगीको जवाखारके जलके साथ सेवन कराना चाहिये । तथा मूर्च्छा, वमन, तृषा, रक्तपित्त और पित्तशूलादिमें मिश्री मिलाये हुए दूधका अनुपान कराना चाहिये । वातज, पित्तज और कफज एवं त्रिदोषज इन चारों प्रकारकी संग्रहणीको जानकर तथा धीरे २ कुक्षिमें शूल हो, आमगंधयुक्त और लालरंगका मलस्राव हो अथवा कुक्षिमें दहिनी ओर और नाभिमण्डलके ऊपर शूल हो तो उसमें वातपित्तका निदान समझकर इस औषधपर शहद डालकर जलका अनुपान कराना चाहिए। गंधयुक्त रुधिरकी वमनमें और पैत्तिक शूलादिमें थोड़ीसी मिश्री डालकर उसका अनुपान करावे । तथा कटिशूल,त्रिकशूल,कुक्षिशूल, अरुचि, आमवात, मुखस्राव, पार्श्वशूल, उरःशूल, नाभिमण्डलके ऊपर शूल, शूल और आमयुक्त ज्वर, आमवात, कभी नाभिके नीचे शूल होनेपर, कभी नाभिके वामपार्श्वमें शूल होनेपर अथवा परिणामशूल, या कभी कभी भ्रम और पृष्ठशूल हो तो इन सब रोगोंमें शीतलजल या जलमें जवाखार डालकर उसके साथ यह औषध सेवन कराना चाहिए २३९-२५६ ॥

प्रकम्पश्चोर्ध्ववायुश्च हस्तकम्पं मुहुर्मुहुः । कुक्षिशूलं मूर्द्धशूलमूर्ध्वधूमश्च नश्यति ॥ २५७ ॥ हरीतकीयवक्षारं

सैन्धवं सितशर्करा । हिङ्गुघृतं नारिकेलजलेन त्वनुपानकम् ॥ २५८ ॥

यह सर्वतोभद्र लोह-प्रकम्प, ऊर्द्धवायु, बारंबार हाथोंका काँपना, कुक्षिशूल, मस्तकशूल और ऊर्ध्वधूम इन सब रोगोंको हरड़, जवाखार, सैंधानमक, मिश्री, हींग, घृत और नारियलका जल, इनसबके अनुपान द्वारा सेवन करनेसे नष्ट करता है २५७॥२५८

शुक्राश्मरीशुक्रस्रावे मूर्द्धशूलञ्च पंक्तिकम् । कुक्षौ नाभौ भवेच्छूल मेहत्वं परिणामकम् ॥ २५९ ॥ रसं कूष्मांडमज्जाया यवक्षारं सशर्करम् । एकीकृत्यानुपानन्तु दद्यादश्मरिरोगिणे ॥ २६० ॥

शुक्राश्मरी, शुक्रस्राव, मस्तकशूल, पंक्तिशूल, कुक्षिशूल, नाभिशूल, प्रमेह और परिणामशूल इन सब रोगोंमें इस औषध पर पेठेकी मज्जाके रसमें जवाखार और मिश्री डाल कर अनुपान करावे । इन्हीं सब अनुपानोंको एकत्र करके अश्मरीरोगीके लिए देवे ॥ २५९ ॥ २६० ॥

शर्करा छागलं क्षीरं शृङ्गाटककरीरकौ । त्रिफलाया रसं ग्राह्यं मूलमाम्रातकस्य च ॥ एकीकृत्यानुपानेन शाम्येच्छुक्रप्रमेहकम् ॥ २६१ ॥

मिश्री, बकरीका दूध, सिंघाडे, बांसके अंकुर, त्रिफलेका रस और अम्बाडेकी जडका रस इन सबको एकत्र करके इस अनुपानके द्वारा उक्तऔषधिकासेवन करनेसे शुक्रप्रमेह नष्ट होता है ॥२६१॥

वातश्लेष्मप्रकृतिवाले रोगिके लिये रसायन ।

त्रिगुणमायसं चूर्णं त्रिफला चाभ्रकाद्रसात । द्विरष्टभागिनिवारिण्यष्टशिष्टन्तु कारयेत ॥ २६२ ॥ तेन पादावशेषेण समेनाज्येन यत्नतः । रसेन बहुपुत्राया द्विगुण क्षीरसम्मितम् ॥ २६३ ॥ लोहमय्याऽप्ययद्रव्ये पात्रे चायसि मृण्मये । दिव्यौषधहतं लोहं प्रदत्तं संपुटादिभिः ॥२६४॥ पचेत्पाकविधिज्ञैस्तु वह्निना मृदुना शनैः । अभ्रकं निहतं कृष्णं सूतकञ्च विमूर्च्छितम् ॥ २६५ ॥ अयसश्चार्द्धभागञ्च त्वादौ पाके प्रयोजयेत् । रसेन त्रिफला दन्ती विडगं जीरकद्वयम् ॥ २६६ ॥ पलाशबीजं हपुषा चित्रकं वृद्धदारुकम् । लतापलाशमूलञ्च बृहत्पत्रं गुडत्वचम् ॥ २६७ ॥ व्योषं समं ग्रन्थिकञ्च गुडूचीतालमूलकम् । शिग्रुमन्थौ तथायासस्तथा च क्षीरकञ्चुकी२६८॥ कापालिकाकलिङ्गाख्यं गन्धानिम्बयवानिकम् । चूर्णीकृत्य क्षिपेद्यत्नाल्लोहाभ्रकसमं भिषक् ॥ २६९ ॥ वातश्लेष्मप्रधानस्य संस्कृतं नागेरण च। निहन्ति वातसन्दिग्धं कफजुष्टं तथैव च ॥ २७० ॥ सद्यो वह्निकरं ह्येतद्बलपुष्टिकरं तथा । रसायनमिदं दिव्यममृताख्यं परं शुभम् ॥ २७१ ॥

अभ्रक १ भाग, पारा १ भाग, लोहेका चूर्ण ३ भाग और त्रिफलेका चूर्ण ३ भाग लेवे । लोहेके चूर्णको और त्रिफलेके चूर्णको सोलह गुने जलमें पकावे । जब पकते पकते जल आठवाँ भाग बाकी रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर इस क्राथमें बराबरका घी, दुगुना शतावरका रस और दुगुना दूध, तथा दिव्यौषधियोंके द्वारा उत्तमप्रकारसे पुट देदेकर मारा हुआ लोहा एक भाग, उपर्युक्त विधिसे की हुई कृष्णाभ्रककी भस्म और मूर्च्छित पारा ये लोहसे आधा आधा भाग इन सबको पाकसे पहले ही मिलाकर लोहेके पात्रमें अथवा मिट्टीके पात्रमें डालकर पाकको जाननेवाला वैद्य मन्द मन्द अग्निसे पकावे और लोहेकी करछीसे चलाता जावे । फिर त्रिफला, दंती, वायविडंग, जीरा, कालाजीरा, ढाकके बीज, हाऊबेर, चीता, विधारा, लतापलाशकी जड, लोध, दालचीनी, सोंठ, मिरच, पीपल, पीपलामूल,

गिलोय, मुसली, सहिंजना, अरणी, जवासा, क्षीर-मोरट, विडंग, इन्द्रजौ, जवादिकस्तूरी, नमि और अजवायन ये प्रत्येक औषध लोहे और अभ्रकके समान भाग लेकर एकत्र चूर्ण करके उपर्युक्त औषधियोंमें मिला देवे। पश्चात् सोंठके द्वारा इसका संस्कार करके वातकफप्रकृतिवाले मनुष्यको देवे। यह रसायन--वातकी पीडा और कफकी पीडाको दूर करता है। तत्काल अग्निको दीपन करता है, बल और पुष्टिको उत्पन्न करता है। यह अमृताख्य दिव्य रसायन परम श्रेष्ठ है ॥ २६२–२७१ ॥

कफपित्तप्रकृतिवाले रोगियोंके लिये रसायन।

कफपित्तविनाशाय लिख्यते चाधुना पुनः। अरुचिं सकलां पुंसां व्यपोहति वरः सदा ॥ २७२ ॥ मधुकं पिंडखर्जूरं धान्यकं जीरकद्वयम् । व्योषं हविष्यमाजेयं शर्करा च पलद्वयम् ॥ २७३ ॥ तिक्तं बकश्च तालीशं सविडङ्गं गुडत्वचम् । मेघाक्षच्छद्बीजश्च चविकश्चैलकं तथा ॥२७४॥ गुडूचीत्रिवृतादन्ती वचा च चविकास्तथा । बलापलाशशिग्रुश्च कुंकुमं वृद्धदारुकम् ॥ २७५ ॥ ग्रन्थिकं चित्रकं वापि कलिङ्गं भद्रमुस्तकम् । बृहत्पत्रं पृथुलिकां काकजंघापुनर्नवाम् ॥ २७६ ॥ संचूर्ण्य चूर्णमादाय गगनं द्विगुणं मतम् । रसायनविधेर्युक्तं सर्वोपद्रवनाशनम् ॥ २७७ ॥ मन्दाग्निग्रहणीदोषाः कफपित्तभवाश्च ये । भस्मत्वं यान्ति वै क्षिप्रं काष्ठभङ्गो यथाग्निना ॥ २७८ ॥

अब कफपित्तको नष्ट करनेके लिये और रसायन लिखते हैं। यह श्रेष्ठ रसायन मनुष्योंकी सर्वप्रकारकी अरुचिको सदैव दूर करती है। मुलैठी, पिण्डखजूर, धनियाँ, जीरा, कालाजीरा, सोंठ, मिरच, पीपल, बकरीका घृत और मिश्री ये प्रत्येक दो दो पल, तथा पित्तपापडा, अगस्तिया, तालीशपत्र, वायविडंग, दालचीनी, नागरमोथा, बहेडेके पत्ते और बीज, चव्य, इलायची, गिलोय, निसोत, दंती, चव्य, वच, खिरैंटी, ढाकके बीज, सहिंजनेकी जड़, केशर, विधारा, पीपलामूल, चीता, इन्द्रजौ, भद्रमोथा, लोध, हिंगुपत्री, काकजंघा और पुनर्नवा इन प्रत्येक औषधियोंका चूर्ण करके एक एक तोला और अभ्रककी भस्म २ तोले लेकर सबको एकत्र खरल करके एक चिकने बासनमें भरकर रखदेवे। इस रसायनको विधिपूर्वक सेवन करनेसे सम्पूर्ण उपद्रव नष्ट होते हैं। तथा कफपित्तसे उत्पन्न हुई मन्दाग्नि और ग्रहणी आदि विकार इस प्रकार शीघ्रही भस्म होजाते हैं, जिसप्रकार अग्निके द्वारा काठके टुकड़े भस्म होजाते हैं ॥ २७२–२७८ ॥

आमवातादिरोगोंपर दिव्यरसायन।

तत्सिद्धं सिद्धनाथेन निर्मितं सत्वहेतुना । आमवातादिनाशाय लिख्यते चाधुनेरितम् ॥ २७९ ॥ धान्यनागरवैडङ्गं गुडूचीजीरकद्वयम् । पलाशबीजं कौलश्च पिप्पलीमुस्तकन्तथा ॥ २८० ॥ त्रिवृच्च त्रिफला दन्ती एलकं बृहतीद्वयम् । चविकाग्रन्थिकाचित्रं सवचं वृद्धदारुकम् ॥ २८१॥ पञ्चायसः पलानाञ्च प्रत्येकं तद्वाद्विकार्षिकम् । आमवातघ्नचूर्णश्च यथाविधि निषेवितम् ॥ २८२ ॥

श्रीसिद्धनाथने प्राणियोंके बलकी रक्षाके लिये जो सिद्धरसायन कही है वह ही आमवातरोगको नष्ट करनेके लिये यहाँ लिखते हैं। धनियां, सोंठ, वायविडंग, गिलोय, जीरा, कालाजीरा, ढाकके बीज, बेर, पीपल, नागरमोथा, निसोत, त्रिफला, दन्ती, इलायची, कटेरी, बडी कटेरी, चव्य, पीपलामूल, चीता, वच और विधारा ये प्रत्येक औषधि दो दो तोले और पंचलोहका चूर्ण ५ पल देवे। इन सबका एकत्र चूर्ण करके यथाविधि सेवन करनेसे आमवातरोग नष्ट होता है ॥ २७९–२८२ ॥

श्वासादि व्याधियोंपर रसायन ।

शिरःशूलमुखश्वासकफपित्तापनुत्तये । लिख्यते चाधुना दिव्यं रसायनमनुत्तमम् ॥ २८३ ॥ शर्करामधुकं द्राक्षा मुसली त्रायमाणकम् । वासा गुडूची कालिङ्गं व्योषश्च त्रिफला त्रिवृत् ॥ २८४ ॥ दन्ती कृमिहरं चूर्णं वृद्धदारं पलोन्मितम् । मृदुपाके विनिःक्षिप्तं क्षिप्तपाकमनाकृति ॥ सेवितं हरते नित्यं रक्तपित्तं सुदारुणम् ॥ २८५ ॥

अब शिरःशूल,मुखरोग,श्वास और कफ पित्तको नष्ट करनेवाली यहां अनुत्तम दिव्यरसायन लिखतेहैं मिश्री, मुलैठी, दाख, मुसली, त्रायमाण, अडूसा, गिलोय, इन्द्रजौ, त्रिकुटा, त्रिफला, निसोत, दन्ती, वायविडंग और विधारा प्रत्येक औषधिको चार चार तोले लेकर सबका एकत्र चूर्ण करके उपर्युक्त लोहरसायनमें डालकर मंद मन्द अग्निसे पकाकर उतार लेवे । इस रसायनको प्रतिदिन सेवन करनेसे दारुण रक्तपित्तरोग नष्ट होता है ॥ २८३-२८५ ॥

वातरक्तादिरोगोंपर रसायन ।

वातरक्ते महाकुष्ठे जङ्घोर्वोः स्तब्धतां गते । सर्वाङ्गके तथा वाते क्रियमाणं रसायनम् ॥ २८६ ॥ अभ्रकेन समं गन्धं नवनीतामलच्छवि । मूर्च्छितश्च तथा सूतं त्रिकटुत्रिफला वचा ॥ २८७ ॥ विडङ्गं जीरके द्वे च पलाशं बीजमैलकम् । वृद्धदारुत्वचं कन्दं सविडङ्गं सचित्रकम् ॥ २८८ ॥ श्यामाकं शिग्रु दन्ती च त्रिवृतावर्गदूषिका ॥ प्रत्येकं कार्षिकं मात्रं पाके खरतरे क्षिपेत् ॥ २८९ ॥

वातरक्त, महाकुष्ठ, जंघा और ऊरुओंकी स्तब्धतामें और सर्वांगवात एवं सब प्रकारके वातरोगोंपर यह रसायन कहते हैं । अभ्रक १ भाग, नवनीतके समान कांतिवाला शुद्ध गन्धक १ भाग और मूर्च्छितपारा (रस सिन्दूर) १ भाग, तथा सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेड़ा, आमला, वच, वायविडंग, जीरा, कालाजीरा, ढाकके बीज, इलायची, विधारे की छाल, जिमीकन्द, वायविडंग, चीता, सारिवा, सहिंजना, दन्ती, निसोत और वर्गदूषिका, ये प्रत्येक औषधि एक २ तोला लेकर सबका एकत्र चूर्ण करके उपर्युक्त लोहरसायनमें मिलाकर खरपाक बनाकरके उतार लेवें । यह उत्तम रसायन है ॥ २८६-२८९ ॥

प्लीहादिरोगोंपर रसायन ।

प्लीहोदरं यकृद्गुल्मं शस्त्रक्षाराग्निभिर्विना । विनाशाय प्रयोज्यानि चूर्णानीमानि देहिनाम् ॥ २९० ॥ कन्दं कापालिका चव्यं विडङ्गं सबृहद्दलम् । शरपुंखा च पाठा च चित्रकं समहौषधम् ॥ २९१ ॥ एषान्तु पलिकां मात्रां क्षिपेल्लोहरसायने । लवणानि च सर्वाणि सक्षारं वृद्धदारकम् ॥ २९२ ॥ दीप्यकश्च प्रयुञ्जीत पाकार्थमुभयासुरी । प्लीहोदरविनाशाय द्वे पल च पृथक् पृथक् ॥ मानेन खण्डकर्णेन सूरणेनाधिकं पुनः ॥ २९३ ॥

शस्त्र, क्षार और अग्निके विना प्लीहा, उदररोग, यकृत् और गुल्म रोगको नष्ट करनेके लिये मनुष्योंको औषधियां चूर्ण करके प्रयोग करनी चाहियें । कापाली कन्द, चव्य, वायविडंग, मानकन्द, सरफोंका, पाढ, चीता और सोंठ ये प्रत्येक औषधि चार चार तोले लेकर चूर्ण बनाकर उपर्युक्त लोहरसायनमें डाल देवे तथा पाँचो प्रकारके नमक, जवाखार, विधारा, अजमोद, हरड, देवदार एवं पाकके लिये दोनों प्रकारकी सुरा, मानकन्द और खण्डकर्ण ये प्रत्येक आठ आठ तोले और जिमीकन्द १६ तोले लेकर सबको उत्तम प्रकारसे कूट पीसकर प्लीहा और उदररोगको नष्ट करनेके लिये रोगीको सेवन करावे ॥ २९० ॥ २९१ ॥ १९२ ॥ २९३ ॥

राजयक्ष्मापर रसायन।

राजयक्ष्माणि श्वासे च कासे रक्तोल्बणे हितम्। महौषधं सतालीशं काकणं नागकेशरम्॥ २९४॥ जीवन्तिमभयां मृद्वीं सर्वाभ्यो द्विगुणां तथा। शर्कराञ्च क्षिपेत्तत्र गुडूचीसत्त्वमेव च॥ २९५॥

राजयक्ष्मा, श्वास, खाँसी और रक्तकी उल्बणतावाले रोगोंमें सोंठ, तालीशपत्र, कूठ, नागकेशर, जीवंती, हरड और दाख ये प्रत्येक औषधि समानभाग और सबसे दुगुणी मिश्री एवं गिलोयका सत्त लेकर सबको एकत्र मर्दन करके सेवन करे२९४॥२९५

वातजग्रहणीरोगपर रसायन।

त्रिफलायाः प्रकुर्वीत प्रत्येकं पलसप्तकम्। वारिण्यष्टगुणे पक्त्वा पञ्चभागेन शेषयेत्॥ २९६॥ षट्शरावास्तु दुग्धस्य हविषः पलपञ्चकम्। पुटितादायसः पञ्च शुद्धाभ्रस्य पलद्वयम्२९७॥ विडङ्गं त्रिफला जीरं द्वयं त्रिकटुचूर्णितम्। लोहचूर्णं समं ग्राह्यं गुणवृद्धं ततः पचेत्। ग्रहणीगदमत्युग्रं हन्त्येतद्वातसम्भवम्॥ २९८॥

त्रिफलेकी प्रत्येक औषधि सात सात पल लेकर अठगुने जलमें पकावे। जब पकते पकते जल पाँचवा भाग बाकी रह जाय तब उतार कर छानलेवे। फिर इस छने हुए काथमें दूध ४८ पल, घी ५ पल, लोहभस्म पाँच पल और शुद्ध अभ्रक दो पल तथा वायविडंग, त्रिफला, जीरा, कालाजीरा और त्रिकुटा इन प्रत्येकका चूर्ण लोहेके चूर्णके समानभाग क्रमसे बढ़ाकर लेवे। फिर सबको एकत्र करके यथाविधिसे पकावे। यह उत्तम रसायन–अत्यन्त उग्र वातज संग्रहणीको दूर करती है॥ २९६॥ २९७॥२९८॥

पित्तजग्रहणीपर रसायन।

विभीतकाभयाधात्री प्रत्येकं तु पलाष्टकम्। वारिण्यष्टगुणे साध्यं षडंगेनादतारिते॥ २९९॥ अयःपलानि पञ्चैव पयसोऽष्टौ शरावकान्। सर्पिषो दशपलान्यत्र दद्याल्लोहं विपाचयेत्॥ ३००॥ त्रिकटुत्रिफलाचूर्णं प्रत्येकं तु द्विकार्षिकम्। विडङ्गं भद्रमुस्तञ्च जीरकं द्वयमेव च॥ ३०१॥ पृथगर्धपलं ग्राह्यं कुर्य्यात्पाकन्तु मध्यमम्। पैत्तिके ग्रहणीरोगे योजयेन्मतिमान् भिषक्॥ ३०२॥

बहेडा, हरड आर आमले ये प्रत्येक औषधि आठ आठ पल लकर अठगुणे जलमें पकावे। जब पकते पकते छठा भाग जल बाकी रहजाय तब उतारकर छान लेवे। फिर इस छनेहुए काथमें लोहेकी भस्म पांच पल, दूध एक आढक और घी दश पल इन सबको एकत्र करके उत्तम विधिसे लोहेको पकावे। फिर त्रिकुटा और त्रिफला इन प्रत्येक औषधियोंका चूर्ण दो दो तोले तथा वायविडंग, नागरमोथा, जीरा और कालाजीरा ये प्रत्येक औषधि दो दो तोले लेकर सबको एकत्र चूर्ण करके उपर्युक्त पाकमें मिलाकर मध्यम पाक करे। बुद्धिमान् वैद्य उत्तमरसायनको पित्तजनित ग्रहणीरोगमें प्रयोग करे॥२९९–३०२॥

कफजग्रहणीपर रसायन।

प्रत्यकं षट्पलं धात्री शिवा वैभीतकत्वचम्। उदकानां शरावैस्तु षड्विंशत्या विपाचयेत्॥ ३०३॥ पञ्चभागावशिष्टेन लौहं पञ्चपलानि च। तावद्दत्वा दधि तस्मिन् खरपाकं विपाचयेत्॥ ३०४॥ त्रिकटुत्रिफलावह्निविडङ्गं भद्रमुस्तकम्। चूर्णं लोहसमं चात्र प्रक्षिपेदवतारिते॥ श्लैष्मिकं ग्रहणीदोषं हन्यादेतद्रसायनम्॥ ३०५॥

आमले, हरड और बहेडेका वक्कल ये प्रत्येक औषधि छः छः पल लकर ३ आढक, ८ कुडव जलमें पकावे। जब पकते पकते जल पांचवाँ भाग बाकी

रहजाय तब उतारकर छान लेवे । फिर उस काथमें लोहेकी भस्म पांच पल, और दही पांच पल डालकर यथाविधि लोहेका खरपाक करे फिर उसको उतारकर उसमें त्रिकुटा, त्रिफला, चीता, वायविडंग और नागरमोथा इनका चूर्ण लोहेके चूर्णके समान भाग मिला कर एक चिकने बासनमें भरकर रख देवे । यह दिव्यरसायन कफजग्रहणीरोगको नष्ट करता है ॥३०३-३०५॥

वातपैत्तिकग्रहणीपर रसायन ।

लोहं पूर्वं पुटेच्छुद्धं गृहीत्वा पलपञ्चकम्। पुनर्नवावरीमूलं त्रिफलापुटितं पुनः ॥ ३०६ ॥ वराचतुर्गुणं लोहं पचेदष्टगुणे जले । सप्तभागावशेषेण द्विशरावं पयः क्षिपेत् ॥ ३०७ ॥ शतावरीरसश्चापि लोहतुल्यं प्रदापयेत् । पलानि दश चाज्यस्य मृदुपाकेऽवतारिते ॥ ३०८ ॥ द्विजीरकं विडङ्गञ्च पलाशबीजमेव च । त्र्यूषणं त्रिफलाचव्यं चूर्णमेषां पयःसमम् ॥ ३०९ ॥

प्रथम शुद्ध लोहेको लेकर पुनर्नवा, शतावर और त्रिफला इनके रसके द्वारा पुट देवे। फिर इसप्रकार भस्म किया हुआ लोहा पांच पल लेवे । पश्चात् लोहेसे चौगुना त्रिफला लेकर उसको अठगुने जलमें पकावे। जब पकते पकते जल सातवां भाग बाकी रहजाय तब उतारकर छान लेवे । फिर इस छनेहुए त्रिफलेके काथमें १२८ तोले दूध, शतावरका स्वरस पांचपल और घृत दश १० पल डालकर मन्द मन्द अग्निसे मृदुपाक करके उतार लेवे फिर उसमें कालाजीरा, जीरा, वायविडंग, ढाकके बीज, सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमले और चव्य इनका चूर्ण दूधके समान मिलाकर एक चिकने बासनमें भरकर रखदेवे । यह रसायन वातापित्त जनित ग्रहणीको दूर करती है ॥ ३०६-३०९॥

वातकफजग्रहणीपर रसायन ।

अष्टादशपलान्यत्र त्रिफलाया विपाचयेत् । सलिले द्व्याढके चास्मिन्नवभागावशेषितम् ॥ ३१० ॥ विपचेत्पूर्ववल्लोहं पुटितं वक्ष्यमाणकैः । वरायाः केशराजस्य चार्द्रकस्य रसेन च ॥ ३११ ॥ एतत्पञ्चपलं ग्राह्यं सर्पिर्दशपलानि च । शतावरीरसस्याष्टौ नारिकेलोदकस्य च ॥३१२॥ पलार्द्धं मरिचं कृष्णा नागरं पलसम्मितम् । षड्विंशमाषकं चूर्णं त्रिफलायाः प्रकल्पयेत् ॥३१३॥ त्रिचत्वारिंशतामाषैरर्विकं चूर्णितं पलम् । चित्रकस्य विडङ्गस्य पचेत्पाकखरं ततः । वातश्लेष्मोत्तरे चैव कुक्षिरोगे तथा हितम् ॥ ३१४ ॥

अठारह १८ पल त्रिफला लेकर दो आढक जलमें पकावे । जब पकते पकते जल नवमाँ भाग बाकी रहजाय तब उतारकर छानलेवे । पश्चात् इस काथमें त्रिफला, कुकुरभाँगरा और अदरखके रसके द्वारा मारण कियाहुआ लोहा पांच पल, घी दश पल, शतावरका रस आठपल, नारियलका जल आठपल, कालीमिरच और पीपल ये प्रत्येक दो २ तोले, तथा सोंठ चार तोले, त्रिफलेका चूर्ण २६ मासे, आकका चूर्ण ४३ मासे, चीतेका चूर्ण और वायविडङ्गका चूर्ण एक २ पल इन सबको मिलाकर पूर्वोक्तविधिसे खरपाक करे । यह औषध-वातकफजरोगों और कुक्षिरोगोंमें अतीव हितकारी है ॥ ३१०-३१४ ॥

पित्तकफजग्रहणीपर रसायन ।

मूर्च्छितं पुटितं शुद्धमायसः पलपञ्चकम् । शतावरीरसे सम्यक् पुटितं पञ्चधा पुनः ॥ ३१५ ॥ अष्टौ पलानि गृह्णीयात्त्रिफलायाः पृथक् पृथक् । सलिलस्यार्मणे पक्त्वा पादशिष्टेऽवतारिते ॥ ३१६ ॥ द्वात्रिंशच्च पलान्यत्र सर्पिरष्टादशैव तु । मध्यपाकं ततः पक्त्वा चैषां कर्षद्वयं पृथक्॥३१७॥ त्रिकटु त्रिफला वह्निं विडङ्गं भद्रमु-

स्तकम् । पलाशस्य च बीजानि क्षिप्त्वा कुर्य्याद्रसायनम् ॥ पित्तश्लेष्माधिकश्चैव निहन्याद्ग्रहणीगदम् ॥३१८॥

मूर्च्छित और पुटित ऐसे शुद्ध लाहको पांचपल लेकर शतावरके रसमें प्रत्येक बार खरल करके पांचवार पुट देवे । फिर त्रिफलेकी प्रत्येक औषधि आठ आठ पल लेकर एक अर्मण जलमें पकावे । जब पकते पकते जल चौथाई भाग बाकी रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर इस छने हुए त्रिफलेके ३२ पल क्वाथमें उपर्युक्त लोहेका चूर्ण और अठारह पल घृत डालकर मध्यमपाक करे । फिर इसमें सोंठ, मिरच, पीपल, हरड़, बहेडा, आमला, चीता, वायविडंग, नागरमोथा और ढाकके बीज इन प्रत्येक औषधिका चूर्ण दो दो तोले डालदेवे । यह उत्तम रसायन–पित्तकफजनित ग्रहणीको तत्काल दूर करती है ॥ ३१५ ॥ ३१६ ॥ ३१७ ॥ ३१८ ॥

लोहाभ्रक ।

आज्यं चतुष्पलं शुद्धं घनं वस्त्रान्तविस्रुतम् । क्षुद्रार्द्रारिष्टवृश्चीक मधूकपर्णिकादिभिः ॥ ३१९ ॥ तिग्मांशुकरसं पक्कं पुटिताभ्रं चतुष्पलम् । प्रस्थार्द्धं पयसो दद्यान्नारिकेलोदकस्य च ॥३२०॥ पचेत्पाकविधानज्ञो वह्निना मृदुना शनैः । त्रिफलात्रिकटुवह्निर्विडङ्ग जीरकद्वयम् ॥३२१॥ जातीफलं जातिकोषं लवङ्गं भद्रमुस्तकम् । कंकोलकश्च संचूर्ण्य शाणमात्रं क्षिपेत पृथक् ॥ ३२२ ॥ पाकं ज्ञात्वा समुद्धृत्य भ्रामराष्टपलान्वितम् । रक्तकादिविधानेन खादेन्माषाष्टकं पुनः ॥ ॥३२३॥ सर्वव्याधिविनिर्मुक्तो जीवेद्वर्षशतं सुखी । नागार्जुनेन रचितं रसाख्यमिदमुत्तमम् ॥ विनापि परिहाराद्यैर्लोहोदितफलप्रदम् ॥ ३२४ ॥

वस्त्रमें छनाहुआ और अग्निसे संतप्त करके शुद्ध किया हुआ गाढा घृत चारपल तथा कटेरी, अदरख, नीम, महुआ, कुम्भेर और आकके रसके द्वारा पुट किया हुआ अभ्रक चारपल, दूध ३२ तोले और नारियलका जल ३२ तोले इन सबको एकत्र मिलाकर पाकको जाननेवाला वैद्य विधिपूर्वक मंद मंद अग्निसे पकावे । पश्चात् त्रिफला, त्रिकुटा, चीता, वायविडंग, जीरा, कालाजीरा, जायफल, जावित्री, लौंग, नागरमोथा और शीतलचीनी इन प्रत्येक औषधियोंका चूर्ण चार चार मासे मिलादेवे । पाकको सिद्ध हुआ जानकर उसको उतार कर स्वयं शीतल होजाने पर उसमें आठ पल शहद मिलाकर एक चिकने वासनमें भरकर रखदेवे । इसमें प्रतिदिन एक२ रत्ती के क्रमसे मात्रा बढाकर सेवन करताहुआ आठमासेतक सेवन करे । इसके प्रसादसे मनुष्य सर्वरोगोंसे रहित होकर सौवर्षतक जीता रहताहै । नागार्जुन ऋषिने यह उत्तमरसायन निर्माण किया है । यह आहार विहारके पथ्यके विना ही लोहोक्तफलको प्रदान करती है ॥ ३१९—३२४ ॥

खर्पराख्यरसायन ।

शङ्खस्य नाभिचूर्णश्च सुराक्षारश्च सैन्धवम् । टङ्कणश्च खटीशुभ्रा वराटोभयमाक्षिकम् ॥ ३२५ ॥ शाणं गुडश्च यशदं पूर्वोक्तं शुभताम्रकम् । तुरटीधूमसारश्च नवसारं निशा सिता ॥ ३२६ ॥ सर्वं समं गृहीत्वा तु द्वेकाविंशतिभिर्दिनैः । जलोषितन्तु तत्सर्वं स्थापयेद्विधिविद्भिषक् ॥३२७॥ तत उद्धृत्य संकुट्य शिलायां पेषयेन्नरः । पिष्ट्वा पिष्ट्वा पुनः पिष्ट्वा स्निग्धां पिष्टिं प्रकारयेत् ॥ ३२८ ॥ शरेषु ताश्च संलेप्य कोष्ठिकायन्त्रगे पचेत् । तीव्राग्निना दिनैकेन पक्कं पक्कं समाहरेत् ॥ ३२९ ॥ एतद्रसायनं दिव्यं खर्पराख्यं महोत्तमम् । सर्वनेत्रामयान् हन्ति विषमज्वरनाशनम् ॥ ३३० ॥

शंखकी नाभिका चूर्ण,सोराखार,सैंधानमक,सुहागा, खडियामिट्टी, सेलखडी, कौडी, सोनामाखी, रूपामाखी, शण, गुड़, जस्त, पूर्वोक्तविधिसे भस्म किया हुआ तांबा, गोपीचंदन, धूमसार,नवसादर, हलदी और मिश्री इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर एकत्र पीसकर इक्कीस दिनतक जलमें भिजोकर रख देवे । फिर उसमेंसे निकाल.कर पत्थरपर कूट कर वारंबार पीसे । पीसते २ खूब चिकनी पिट्ठी करलेवे । फिर उसको सकोरोंपर लेप करके कोष्टिक यंत्रमें पकावे । एक २ दिनतक तीव्र अग्निसे पकाकर एक उत्तमपात्रमें करके रखदेवे । यह उत्तम खर्पराख्य दिव्यरसायन सर्वप्रकारके नेत्ररोग और विषमज्वरको नष्ट करती है ॥ ३२५-३३०. ॥

शिरोबस्ति प्रकार।

हनुमन्यास्तम्भार्दित--शिरःकम्पभ्रमशङ्खतोदश्रवण-दशनशूलावभेदशयन-नयनेन्द्रलुप्तघ्राणादक्ष्वेडबाधिर्यपीनस-पूयरक्तप्रतिनाहघ्राणाक्षिग्रीवातिमिराभिष्यन्दमूर्द्धहतानाम् शिरोबस्तिः प्रधानः । अनायाश्रये पीठे स्थापयित्वा पादाभ्यङ्गं कार्य पुरा भुक्तवतां बस्तिचर्म्म गव्यं माहिषं वा कषायमष्टांगुलोच्छ्रितं द्विमुखं शिरःप्रमाणमादाय तं निर्वलीकं कृत्वा ललाटे सूत्रेण बद्धा । सुखोष्णाम्बुपरिक्लिन्नमाषपिष्टानुलिप्तमपरिस्रावीकृत्य ततोऽस्य यथाव्याधिदोषहद्धितभेषजसिद्धमन्यतरं स्नेहमासिञ्चेत् । केशभूमेरूपर्य्यष्टांगुलं तावच्च धार्यो यावत्कर्णमुखनासाभ्यः स्नेहस्रावो वेदनोपशमो वा न भवेत् विशेषतस्तु वातविकारेष्वष्टादशमात्रा सहस्राणि पित्तरक्तजेष्वष्टौ षट् कफजेषु सहस्रमारोग्यं प्रति सर्वकालप्रतिषिद्धः।

हनुस्तम्भ, मन्यास्तम्भ,अर्दित, शिरःकम्प, भ्रम, शंखतोद,कर्णशूल, दंतशूल, अवभेद, निद्राभंग, नेत्ररोग, इन्द्रलुप्त,नासारोग,कर्णक्ष्वेड, बधिरता, पीनस, पूयरक्त,प्रतिनाह,नासिका, नेत्र,ग्रीवा, तिमिर,अभिष्यन्द और अन्यान्य समस्त ऊर्ध्वजरोगसे पीडित मनुष्योंको शिरोबस्ति प्रदान करनी उत्तम है । प्रथम रोगीको आश्रयरहित आसन (पीढा, चौकी आदि) पर बैठाकर पहले पावोंमें तेलको मर्दन करे । पश्चात् आठ अँगुल ऊँचा और शिरकी बराबर ऐसा गाय या भैंसका चमडा लेकर उसकी टोपीसी बनाकर दोमुख करके उसकी सिलवट निकालकर मस्तकपर डोरेसे बाँध देवे । फिर उडदोंके चूनको गरमजलमें सानकर उसकी संधियोंमें लेप करके अच्छे प्रकारसे बंद कर देवें । फिर यथारोग और यथादोषानुसार औषधियोंके द्वारा तेलको सिद्ध करके उस तेलको चमडेके भीतर आठ अँगुलतक भरदेवे । जबतक कर्ण, मुख और नासासे स्नेह नहा स्रवने लगे अथवा जबतक वेदना शांत नहीं हो तबतक बराबर धारण करे । विशेषकर बातके रोगोंमें १८००० मात्रा, पित्त और रक्तके रोगियोंको आठहजार मात्रा, कफके रोगोंमें छः हजार मात्रा और निरोगी मनुष्यको १००० परिमाण मात्रातक तैलको धारण करना चाहिये ।

प्रयोज्यस्तु शिरोबस्तिस्त्र्यहानि पञ्चाहानि सप्तदिनानि वा ततः पानीयन्तु स्नेहं विमोच्य बस्तिं शिरःस्कन्धग्रीवापृष्ठललाटादीननुसुखं पाणिभ्यां मर्दयेत् । ततः सुखोष्णाम्बुपरिसिक्तगात्रं शालिपिष्टकादीनां जाङ्गलानुपरसेन दाडिमाम्लैर्मात्रां भोजयेत् । सर्वेन्द्रियाणां हि बलं केशानां दृढमूलताम् । करोति वाग्विशुद्धिञ्च मूर्ध्नि तैलांबुसेचनात् ॥ ३३१ ॥

शिरोबस्ति तीन दिनतक या पाँच दिनतक अथवा सात दिन तक करे । फिर बस्तिको खोलकर, तेलको ग्रहण कर और चमडेको खोलकर रखदेवे ।

तथा शिर, स्कन्ध, ग्रीवा, पृष्ठ और मस्तक आदिको हाथोंसे मर्दन करे। तत्पश्चात् मन्दोष्ण जलसे शरीरको परिषेचन करके शालिचावल, पकान्न, जांगल और अनूपदेशके जीवोंका मांसरस, अनारकी खटाई इत्यादि पदार्थोंको मात्रानुसार भक्षण करे। शिरपर तैलको अथवा जलको सेचन करनेसे सम्पूर्ण इन्द्रियोंमें बल और बालोंकी जड दृढ होती है तथा वाणी शुद्ध होती है ॥ ३३१ ॥

मर्मनिर्देश।

सप्तोत्तरं मर्म्मशतम्। तानि मर्माणि पञ्चात्मकानि। तद्यथा--मांसमर्म्माणि, शिरामर्म्माणि, स्नायुमर्म्माणि, अस्थिमर्म्माणि, सन्धिमर्म्माणि चेति। तत्रैकादशमांसमर्म्माणि, एकचत्वारिंशत् शिरामर्म्माणि। सप्तविंशतिः स्नायुमर्म्माणि, अष्टावस्थिमर्म्माणि, विंशतिः सन्धिमर्माणि, तदेतत् सप्तोत्तरं मर्म्मशतम्। तेषामेकादशैकस्मिन् सक्थ्नि भवन्ति। एतेनेतरसक्थिबाहू च विख्यातौ। उदरोरसोर्द्वादश चतुर्दशपृष्ठे ग्रीवां प्रत्यूर्ध्वं सप्तत्रिंशत्।

सम्पूर्ण मर्म्मोंकी संख्या एकसौ सात १०७ है और इनके पांच भेद हैं, जैसे—मांसमर्म्म, शिरामर्म्म, स्नायुमर्म, अस्थिमर्म्म और संधिमर्म्म। इनमें मांसमर्म्म ग्यारह हैं, शिरामर्म्म इकतालिस हैं। स्नायुमर्म्म २७ हैं, अस्थिमर्म्म आठ और संधिमर्म्म २० हैं इस प्रकार सब मर्म्म एकसौ सात हैं। इनमेंसे ग्यारह मर्म्म एक सक्थिमें होते हैं। इसीप्रकार दूसरी सक्थि और बांहोंमें जानने। इस तरहसे चारों हाथों पावोंमें चौव्वालीस मर्म्म हैं। उदर और वक्षस्थलम बारह, पीठमें चौदह और ग्रीवासे ऊपर ३७ सैंतीस हैं।

सक्थिमम।

तत्र सक्थिमर्म्माणि क्षिप्रतलहृदयकूर्चकूर्च्चशिरो--गुल्फेन्द्रवस्तिजान्वाण्युर्वीलोहिताक्षाणि विटपश्चेति। एतेनेतरसक्थिर्व्याख्यातम्।

क्षिप्र, तल, हृदय, कूच, कूर्चशिर, गुल्फ, इन्द्रबस्ति, जानु, आणि, उर्वी, लोहिताक्ष और विटप ये ग्यारह मर्म्म एक सक्थिमें होते हैं। इसीप्रकार दूसरी सक्थि पांवकी सांतलमें जानने॥

उदर और उरोगतमर्म्म।

उदरोरसस्तु गुदबस्तिनाभिहृदयस्तनमूलस्तनरोहितापलापापस्तम्भौ चेति।

गुदा, बस्ति, नाभि, हृदय, स्तनमूल, स्तनरोहित, अपलाप और अपस्तम्भ यह उदर और वक्षःस्थलके मर्म्मस्थान हैं॥

पृष्ठमम।

पृष्ठमर्म्माणि तु कटिकतरुणकुकुन्दरनितम्बपार्श्वसन्धि--बृहत्यंसफलकान्यंसौ चेति।

कटीक, तरुण, कुकुन्दर, नितम्ब, पार्श्वसन्धि, बृहती, अंसफलक और स्कन्ध यह पीठके मर्म्मस्थान हैं॥

बाहुमम।

बाहुमर्म्माणि तु क्षिप्रतलहृदयकूर्च्चकूर्च्चशिरो--मणिबन्धेन्द्रबस्तिकूर्पराण्युर्वीलोहिताक्षाणि कक्षधरश्चेति। एतेनेतरो बाहुर्व्याख्यातः।

क्षिप्र, तल, हृदय, कूर्च, कूचशिर, मणिबन्ध, इन्द्रबस्ति, कूपर, आणि, उर्वी, लोहिताक्ष और कक्षधर ये बाहुमर्म्म हैं इसीप्रकार दूसरे बाहुके भी जानने चाहिये॥

जत्रूर्ध्वमर्म्म।

जत्रूर्ध्वं मर्म्माणि चतस्रो धमन्योऽष्टौ मातृका द्वे कृकाटिके द्वे विधुरे द्वौ फणौ द्वावपाङ्गौ द्वावावर्त्तौ द्वावुत्क्षेपौ द्वौ शङ्खावेका स्थपनी पञ्च सीमन्ताश्चत्वारिशृङ्गाटकान्येकोऽधिपतिरिति।

चार धमनी, आठ मातृका, दो कृकाटिका, दो विधुर, दो फलक, दो अपाङ्ग, दो आवर्त्त, दो उत्क्षेप, दो शंख, एक स्थपनी, पाँच सीमन्त, चार शृंगाटक और एक अधिपति ये जत्रुस्थानके ऊपरके ३७ मर्म्म हैं ॥

मांसमम ।

तत्र तलहृदयेन्द्रबस्तिगुदस्तनरोहितानि मांसमर्म्माणि ।

तल, हृदय, इन्द्रबस्ति, गुदा, स्तन और रोहित ये मांसमर्म्म हैं ।

शिरामर्म्म ।

नीलधमनीमातृकाशृङ्गाटकापाङ्गस्थपनीफणस्तनमूलापलापापस्तम्भहृदयनाभिपार्श्वसन्धिबृहतीलोहिताक्षोर्व्यः शिरामर्म्माणि ।

नील, धमनी, मातृका, शृङ्गाटक, अपाङ्ग, स्थपनी, फण, स्तनमूल, अपलाप, अपस्तम्भ, हृदय, नाभि, पार्श्वसंधि, बृहती, लोहिताक्ष और उर्वी ये शिरामर्म्म हैं ॥

स्नायुमर्म्म ।

आणिविटपकक्षधरकूर्चकूर्च्चशिरोबस्तिक्षिप्रांसविधुरोत्क्षेपः स्नायुमर्माणि ।

आणि, विटप, कक्षधर, कूर्च, कूर्चशिर, बस्ति, क्षिप्र, अंस, विधुर और उत्क्षेप ये स्नायुमर्म्म हैं ॥

अस्थिमर्म ।

कटिकतरुणनितम्बांसफलकशंखास्त्वस्थिमर्म्माणि ।

कटीक, तरुण, नितम्ब, अंस, फलक और शंख ये अस्थिमर्म्म हैं ॥

सन्धिमर्म ।

जानुकूर्परसीमन्ताधिपतिगुल्फमणिबन्धकुकुन्दरावर्त्तकृकाटिकाश्चेति सन्धिमर्म्माणि ।

जानु, कूर्पर, सीमन्त, अधिपति, गुल्फ, मणिबन्ध, कुकुन्दर, आवर्त्त और कृकाटिका ये सन्धिमर्म्म हैं ॥

मर्मोंके पांच विकल्प ।

तान्येतानि पञ्चविकल्पानि मर्म्माणि भवन्ति । तद्यथा, सद्यःप्राणहराणि, कालान्तरप्राणहराणि, विशल्यघ्नानि, वैकल्यकराणि, रुजाकराणीति । तत्र सद्यःप्राणहराण्येकोनविंशतिः, कालान्तरप्राणहराणि त्रयस्त्रिंशत, त्रीणि विशल्यघ्नानि, चतुश्चत्वारिंशद्वैकल्यकराणि, अष्टौ रुजाकराणीति ।

इन सम्पूर्ण मर्म्मोंके पांच विकल्प हैं इनमें एक सद्यःप्राणहर, कालान्तरप्राणहर, विशल्यघ्न, वैकल्यकर और रुजाकर । इनमें सद्यःप्राणनाशक १९ उन्नीस मर्म हैं । कालान्तरमें प्राणहारक ३३ तैंतीस मर्म्म हैं । विशल्यघ्न तीन ३ हैं । वैकल्यकर ४४ चौवालीस हैं और आठ ८ रुजाकर हैं ॥

सद्यःप्राणनाशकमर्म्म ।

शृङ्गाटिकान्यधिपतिः शंखौ कण्ठशिरोगुदम् । हृदयं बस्तिनाभी च घ्नन्ति सद्यो हतानि वै ॥ ३३२ ॥

चार शृंगाटक, एक अधिपति, दो शंख, आठ कंठशिरा, एक गुदा, एक हृदय, एक बस्ति और एक नाभिगत ये उन्नीस १९ मर्म आभघात होनेसे तत्काल प्राणोंको नष्ट करनेवाले हैं ॥ ३३२ ॥

कालान्तरप्राणहारकमर्म ।

वक्षोमर्म्माणि सीमन्ततलक्षिप्रेन्द्रबस्तयः । कटीकतरुणे सन्धी बृहत्यौ ये च पार्श्वयोः ॥ नितम्बाविति चैतानि कालान्तरहराणि च ॥ ३३३ ॥

आठ वक्षःस्थलके मर्म्म, पांच सीमन्त, चार तलहृदय, चार क्षिप्र, चार इन्द्रबस्ति, दो कटी, तरुण, दो पार्श्वसंधि, दो बृहती और दो नितम्ब इसकारण सब मिलकर ये तैंतीस मर्म्म कालान्तरमें प्राणोंको हरनेवाले हैं ॥ ३३३ ॥

विशल्यघ्नमर्म ।

उत्क्षेपौ स्थपनी चैव विशल्यघ्नानि निर्दिशेत् ॥ ३३४ ॥

दो उत्क्षेप और एक स्थपनी ये तीन विशल्यघ्न मर्म्म हैं ॥ ३३४ ॥

वैकल्यकरमर्म ।

लोहिताक्षाणि जानूर्वोः कूर्चा विटपकूर्पराः । कुकुन्दरे कक्षधरे विधुरे सकृकाटिके ॥ ३३५ ॥ अंसांसफलकापांगा नीले मन्ये फणे तथा । वैकल्यकरणान्याहुरावर्त्तौ द्वौ तथैव च ३३६

चार लोहिताक्ष, चार आणि, दो जानु, चार उर्वी, चार कूर्चा, दो विटप, दो कूर्पर, दो कुकुन्दर, २ कक्षधर, दो विधुर, दो कृकाटक, दो अंस, दो अंसफलक, दो अपांग, दो नीले, दो मन्या, दो फणी और दो आवर्त्त ये चौवालीस मर्म्म वैकल्यकर हैं अर्थात् इनमें चोट आदिके लगनेसे विकलता होती है ॥ ३३५ ॥ ३३६ ॥

गुल्फौ द्वौ मणिबन्धौ द्वौ द्वे द्वे कूर्चशिरांसि च । रुजाकराणि जानीयादष्टावेतानि बुद्धिमान् ॥ ३३७ ॥

दो गुल्फ, दो मणिबन्ध, अलग २ दोनों हाथों और दोनों पांवोंकी कूर्चशिरायें इसप्रकार ये आठ रुजाकर मर्म्म हैं, अर्थात् इनमें चोट आदिके लगनेसे घोर पीडा होती है ॥ ३३७ ॥

सद्यःप्राणहरं हन्ति सप्ताहाभ्यन्तरे हितम् । कालान्तरहरं पक्षान्मासाद्वा हन्ति वै क्वचित् ॥ ३३८ ॥ यथा चानुविशल्यघ्नं वैकल्यञ्च रुजाकरम् । पूर्वमुद्धृतशल्येन मृत्युदं ये रुजाकरे ॥ ३३९ ॥ विद्धमन्ते तु मर्मैतदन्यं यच्चान्तरावकृत् । कदाचिद्वैकल्यकरं क्षिप्रं हन्याद्बहिश्च्युतम् ॥ ३४० ॥

सद्यःप्राणहरमर्म्म--सातदिनमें मनुष्यको मारदेते हैं, कालान्तरप्राणहर एक पक्षमें अथवा एक महीनेमें मनुष्यको मारदेते हैं । विशल्यघ्नमर्म्मके समीप चोटके लगनेसे विकलता और पीडा होती है। विशल्यघ्नमर्म्मसे शल्य निकालनेपर तत्काल मृत्यु होती है, रुजाकरमर्म्म अंतमें विधनेसे तथा इसीप्रकार अन्यान्य मर्म्म अन्तमें बिधनेसे मर्म्मोंके अन्तरकर्म्मों को करते हैं । कभी क्षिप्र मर्म्म बाहरको स्रवनेसे विकलता करता है, अथवा मारदेता है ॥ ३३८ ॥ ॥३३९॥ ३४० ॥

इन्द्रियार्थेषु संवित्तिर्मनोबुद्धिविपर्ययः । रुजश्च तीव्रा विविधा भवन्त्यसुहरे हते ॥ ३४१ ॥

सद्यःप्राणहारकमर्म्मोंमें चोट लगनेसे इन्द्रियोंका ज्ञान नष्ट होजाता है तथा मन और बुद्धिमें विपरीतता होती है और विविधप्रकारकी तीव्र पीडा होती है ॥ ३४१ ॥

हते कालान्तरहरे ध्रुवो धातुक्षये नृणाम् । ततो धातुक्षयाज्जन्तुर्वेदनाभिश्च पीड्यते ॥ ३४२ ॥ हते वैकल्यजनने केवलं वैद्यनैपुणात् । शरीरक्षयमासाद्य विकलत्वमवाप्नुयात् ॥ ३४३ ॥

मनुष्योंके कालान्तरप्राणनाशक मर्म्मोंमें चोटके लगनेपर धातुक्षय होता है । उस धातुक्षयकी पीडासे पीडित होकर मनुष्य मृत्युको प्राप्त होता है । वैकल्यकारक मर्म्मोंमें चोटके लगनेपर कदाचित् वैद्यकी चतुरतासे शरीर बचजाता है अन्यथा विकलताके अधिक होनेसे शरीर नष्ट होजाता है ॥ ३४२ ॥ ॥ ३४३ ॥

विशल्यघ्नेषु विज्ञेयं पूर्वोक्तं यच्च कारणम् ॥ ३४४ ॥

विशल्यघ्नमर्मोंमें जबतक उसमें शल्य अर्थात् काँटा रहता है तबतक मनुष्य जीता रहता है और शल्य निकालनेपर मरजाता है ॥ ३४४ ॥

रुजाकराणि मर्म्माणि क्षतानि विविधा रुजः । कुर्वंति तानि वैकल्यं कुवैद्यवशगो यदि ॥ ३४५ ॥

रुजाकरमर्मोंमें चोटके लगनेसे घावमें अनेकप्रकारकी घोर पीडा और विकलतादि अनेक यंत्रणायें होती हैं । किन्तु ये पीडायें मूर्ख वैद्यके द्वारा चिकित्सा करानेसे होती हैं ॥ ३४५ ॥

छेदभेदाभिघातेभ्यो दहनाद्दारणातथा । उपघातं विजानीयान्मर्म्मणां तुल्यलक्षणम् ॥ ३४६ ॥

मर्मके निकट छेदन, भेदन, अभिघात, दहन, दारण और उपघात आदिके होनेसे मर्म्मविद्धके लक्षणोंके समान लक्षण होते हैं ॥ ३४६ ॥

मर्माघातसे मृत्युका कारण ।

अग्निः सोमोऽनिलः सत्त्वं रजश्च तम एव च । प्रायेण मर्म्मसु नृणां भूतात्मा चावतिष्ठते ॥ अस्मान्मर्म्मस्वभिहता न जीवन्ति शरीरिणः ॥ ३४७ ॥

पित्त, कफ, वात, सत्त्व, रज, तम और भूतात्मा ये सब प्रायः मनुष्योंके मर्म्मस्थानोंमें रहते हैं,इसकारण मर्म्मोंमें चोट लगनेसे मनुष्य नहीं जीते हैं३४७

छिन्नेषु पाणिचरणेषु शिरा नराणां सङ्कोचमीयुरसृगल्पमतो निरेति । प्राप्याऽमितव्यसनमुग्रमतो मनुष्याः संछिन्नशाखतरुवन्निधनं न यांति३४८

मनुष्योंके हाथ और पांवोंके कटजानेपर नसें सकुड जाती हैं, इसकारण अत्यन्त रुधिर नहीं बहता है । यद्यपि पीडा अत्यन्त होती है, किंतु वह कटी हुई वृक्षकी शाखाके समान नष्ट नहीं होते हैं ३४८ ॥

क्षिप्रेषु तत्र सतलेषु हतेषु चाग्रें गच्छत्यसृग्बहुरुजं च करोति वायुः । एवं विनाशमुपयांतिविह तत्र विद्धाः किञ्जल्कपत्रमथनादिव पङ्कजानि॥३४९॥

क्षिप्र और तलमर्म्मोंके कटजानेपर अत्यन्त रुधिर बहता है और वायु अतीव पीडा करती है इसलिये इन मर्म्मस्थानोंमें चोट लगजानेसे मनुष्य मरजाते हैं, जिस प्रकार कमलकेशरके पत्तोंको मंथन करनेसे कमल नष्ट होजाता है ॥ ३४९ ॥

मर्म्माण्यधिष्ठाय हि ये विकारा मूर्च्छंति काये विविधा नराणाम् । प्रायेण ते कृच्छ्रतमा भवन्ति नरस्य यत्नैरभिसेव्यमानाः ॥ ३५० ॥

मर्म्मस्थानोंमें जो अनेक प्रकारके विकार होते हैं उनकी पीडा मनुष्योंके सम्पूर्ण शरीरमें होती है। इस कारण यत्नपूर्व्वक चिकित्सा करनेपर भी मनुष्यके वे विकार प्रायः कृच्छ्रसाध्य होजाते हैं ॥ ३५० ॥

वातजरोगगणना ।

अशीतिर्वातजा रोगाः स्वरभेदो विपादिकाम् । पादशूलं पाददाहं पादयोर्भङ्गसुप्तते ॥ ३५१ ॥ गुल्फग्रहं पिंडिकार्त्तिर्जानुनोर्भेदनं तथा । ऊरुस्तम्भोरुसादौ च पाङ्गुल्यं गुल्फगृध्रसी ॥ ३५२ ॥ गुदभ्रंशो गुदस्यार्त्तिराक्षेपौ मुष्कयोरपि । शिरःस्तम्भो वङ्क्षणार्तिः श्रोणिभेदोऽथ खञ्जता ॥ ३५३ ॥ उदावर्त्तः सविड्भेदः कुब्जत्वं वामनं तथा । त्रिकपृष्ठग्रहौ कुक्षौ वेष्टकौ पार्श्वमर्दकः ॥ ३५४ ॥ हृद्भेदो हृद्ग्रहश्चैव हर्षभेदौ च वक्षसः । ग्रीवास्तम्भो बाहुशोषो मन्यास्तम्भश्च कम्परुक् ॥ ३५५ ॥ हनुग्रहौष्ठश्यावौ च दन्तशैथिल्यभञ्जने । वाक्सङ्गो मूकता चैव शोषश्चास्य कषायता ॥ ३५६ ॥ रसानामनभिज्ञत्वं गन्धनाशोऽथ कर्णरुक् । उच्चैः श्रवणबाधिर्यमशब्दश्रवणं तथा ॥ ३५७ ॥ वर्त्मनोः स्तंभसंकोचौ तिमिरं नेत्रशूलिनम् । अक्षि-

भ्रुवोः स्फुरत्वश्च भेदः शङ्खललाटयोः ॥ ३५८ ॥ शिरोर्त्तिः केशविस्फोटोऽर्दिताक्षेपप्रदण्डकाः। एकसर्वाङ्गरोगौ च स्तंभः पक्षवधः श्रमः ॥ ॥ ३५९ ॥ जृम्भणश्च स्मिमतत्वश्च प्रलापो स्वप्नवेपथुः। विश्वाचीरौक्ष्यपारुष्यौ ग्लानिः श्यावारुणाभताः ॥ ३६० ॥

वातरोग अस्सी ८० प्रकारके होते हैं। उनके नाम इसप्रकार हैं। जैसे स्वरभेद, विपादिका, पादशूल, पाददाह, पादभंग, पादसुप्त, गुल्कग्रह, पिंडिका, ऊरुभेद, ऊरुस्तम्भ, ऊरुसाद, पंगुता, गुरुक, गुध्रसी, गुदभ्रंश, गुदाकी पीडा, आक्षेप, अण्डशोथ अथवा अंडवृद्धि, शिरःस्तम्भ, वंक्षणकी पीडा, कटिभेद, खञ्जता, उदावर्त, विड्भेद, कुब्जता, बौनापन, त्रिकग्रह, पृष्ठग्रह, कुक्षिवेष्ट, पार्श्वमर्दक, हृदयभेद, हृद्ग्रह, दंतहर्ष, दंतभेद, वक्षभेद, ग्रीवास्तम्भ, बाहुशोष, मन्यास्तम्भ, कम्प, हनुग्रह, ओष्ठश्याव, दंतशैथिल्य, दंतभंजन, वाचालता, मूकता, मुखशोष, मुखमें कषायता अथवा विरसता, रसज्ञानका, नाश, सुगंध-दुर्गंधके ज्ञानका नाश, कर्णरोग, ऊँचेसे सुनना, बधिरता, कान विना ही शब्दोंके शब्दका सुनना, वर्त्मस्तम्भ, वर्त्मसंकोच, तिमिर, नेत्रशूल, नेत्रस्फुरण, भ्रूस्फुट, शंखभेद, शिरभेद, शिरोरोग, केशोंमें स्फोटकोंका होना, अर्दित, आक्षेप, दंडक, एकांगरोग, सर्वांगरोग, अंगस्तम्भ, पक्षाघात, श्रम, जंभाई, स्मितता, प्रलाप, निद्राभंग, स्वप्नोंका दीखना, कंप, विश्वाची, रूक्षता, परुषता, ग्लानि, श्यावता और अरुणता ये वातजनितरोग हैं ॥३५१-३६० ॥

पित्तजनितरोगगणना।

चत्वारिंत्पित्तजाश्च ओष्ठशोषोऽथ धूमकः। अम्लको वमथुर्दाहो विपाकः प्रबलोष्मता ॥ ३६१ ॥ अन्तर्दाहोऽग्निसादश्च अतिस्वेदोऽग्निगन्धता। अथैकदेशदरणं क्लेदो मांसासृजोरपि ॥ ३६२ ॥ त्वग्दाहो रक्तपित्तश्च दारणं मांसमर्मणोः। कोठमण्डलविस्फोटा रक्तास्यं हरितालता ॥ ३६३ ॥ हरिद्रागुलिकाकारं चक्षुस्तृष्णा सकामला। तिक्तास्यता पूतिमुखमामगन्धि भवेत्तु ॥ ३६४ ॥ तमःप्रवेशनं चास्यगुदमेढ्राक्षिपक्तयः। हरिद्रमूत्रता वक्रजीवादानमतृप्तिता ॥ ३६५ ॥

पित्तके चालीस रोग होते हैं। उनके नाम ये हैं। जैसे-ओष्ठशोष, धुयेंकी समान खट्टी वमन, दाह, विपाक (पकना), प्रबल उष्णता, अन्तर्दाह, अग्निसाद, अत्यंत स्वेद, स्राव, अग्निके समान शरीरमें गन्धका आना, शरीरके किसी एक प्रदेशका फटना, मांस और रुधिरमें क्लेदका होना, त्वचामें दाह, रक्तपित्त, मांस और मर्म्मोंका फटना, लाल चकत्ते, मण्डल और विस्फोटक, मुखपर पीलापन, नेत्र गोल और हलदीके समान पीले, तृषा, कामला, मुखमें कड़वापन, शरीरमें दुर्गंधका आना, शरीरमें आमके समान दुर्गन्धका होना, अन्धकारमें प्रवेश होना, मुख, गुदा, लिंग, नेत्र और मूत्र इन सबका पीला होना और भोजन एवं जलसे अतृप्तिता ये सब पित्तके रोग हैं ॥ ३६१-३६५॥

कफके बीस रोग।

विंशतिः श्लेष्मजा तन्द्री तृप्तिनिद्राङ्गगौरवम्। आलस्यं मुखमाधुर्य्यं स्तिमितत्वं मुखस्रवः ॥ ३६६ ॥ श्लेष्मोद्गारो मलाधिक्यो बलासो धमनीचयः। उरःकण्ठप्रलेपौ च गलगण्डोऽतिनिद्रता ॥ ३६७ ॥ श्वेताभो मूत्रबाहुल्यमुदर्दः शीतवह्निता। अमी ख्याताः समालोक्य अष्टौ च गुणकर्म्मभिः ॥ ३६८॥ इत्यशीतिर्वातजाश्च चत्वारिंशच्च पित्तजाः। विंशतिः कथितं पूर्वैः श्लेष्मरोगोपदर्शनम् ॥ ३६९ ॥

अब कफके २० प्रकारके रोगोंको कहते हैं। तन्द्रा, तृप्ति, निद्रा, शरीरमें भारीपन, आलस्य,

मुखमें मधुरता, शरीर भीजे कपडेसे आच्छादितसा प्रतीत होना, मुखमेंसे पानीका गिरना, कफसहित डकारका आना, मलका अधिक आना, धमनियोंमें कफ संचय रहना,हृदय और कंठमें कफसा लिहसा रहना, गलगण्ड, अत्यंत निद्राका आना, शरीरका अथवा मूत्रका वर्ण सफेद होना और मूत्रका अधिक आना, उदर्द और मंदाग्नि ये कफके रोग हैं। आठों गुण कर्म्मोंके द्वारा जान कर ये ८० वातके रोग, ४० पित्तके रोग, २० कफके रोग पूर्व वैद्योंने कहे हैं ॥ ३६६-३६९ ॥

रसायनविधि ।

चिकित्सितं वातहरं पथ्यसाधनमौषधम् । प्रायश्चित्तप्रशमनं प्रकृतिस्थापनं हितम् ॥ ३७० ॥ यज्जराव्याधिविध्वंसि भेषजं तद्रसायनम् । दीर्घमायुर्धृतिं मेधामारोग्यं तरुणं वयः ॥ ३७१ ॥ प्रभां वर्णं स्वरौदार्य्यं देहेन्द्रियबलप्रदम् । वाक्सिद्धिं प्रणतां कान्तिं लभतेऽन्यात्रसायनात् ॥ ३७२ ॥ पूर्वे वयसि मध्ये वा शुद्धकायः समाचरेत् । नाविशुद्धशरीरस्य युक्तो रासायनो विधिः ॥ न भाति वाससि क्लिष्टे रङ्गयोग इवार्पितः ॥ ३७३ ॥

चिकित्सित,वातहर, पथ्य, साधन, औषध, प्रायश्चित्त, प्रशमन, प्रकृतिस्थापन और हित ये सब भेषजके नाम हैं। जो भेषज मनुष्यकी जरा और व्याधिको नाश करती है, उसको रसायन कहते हैं। रसायनको सेवन करनेसे दीर्घआयु, धारणाशक्ति, मेधा, आरोग्यता, तरुण अवस्था, प्रभा, वर्णकी सुन्दरता, स्वरकी श्रेष्ठता शरीर और इन्द्रियोंमें बलकी वृद्धि, वचनकी सिद्धि, कांति और अत्यन्त बुद्धिकी वृद्धि होती है। इसको प्रथम अवस्थामें अथवा मध्यम अवस्थामें प्रथम शरीरको वमन विरेचनादिके द्वारा अच्छे प्रकारसे शुद्ध करके सेवन करे। क्योंकि, अशुद्ध शरीरमें सेवन कीहुई रसायन यथार्थ गुण नहीं करती जैसे कि-मैले वस्त्रपर रंग नहीं चढ़ता ॥ ३७०-३७३ ॥

शीतोदकं पयः क्षौद्रं घृतमेकैकशो द्विशः । त्रिशः समस्तमथवा प्राक्पीतं स्थापयेद्वयः ॥ ३७४ ॥

शीतल जल, दूध, शहद और घी इन चारोंमेंसे एक किसीको अथवा दोनोंको मिलाकर या तीनोंको मिलाकर किम्वा चारोंको एकत्र मिलाकर नित्य प्रातःकाल पीवे। यह उत्तम रसायन अवस्थाको स्थापन करती है ॥ ३७४ ॥

मण्डूकपर्ण्याः स्वरसः प्रभाते प्रयोज्य यष्टीमधुकस्य चूर्णम् । रसो गुडूच्यास्तु समूलपुष्पः कल्कः प्रयोज्यः खलु शंखपुष्प्याः ॥ ३७५ ॥ आयुःप्रदान्यामयनाशनानि बलाग्निवर्णस्वरवर्धनानि । मेध्यानि चैतानि रसायनानि मेध्याविशेषेण च शंखपुष्पी ३७६

प्रतिदिन प्रातःकाल ब्राह्मीके स्वरसको पान करनेसे अथवा मुलैठीके चूर्णको सेवन करनेसे या गिलोयके रसको सेवन करनेसे अथवा जड़ और फूलों समेत शङ्खपुष्पीका कल्क बनाकर सेवन करे। ये प्रयोग आयुकी वृद्धि करनेवाले सम्पूर्ण रोगोंको नष्ट करनेवाले, एवं बल,जठराग्नि और स्वर तथा मेधाकी वृद्धि करनेवाले हैं। इनमें शंखपुष्पी विशेषकर बुद्धिको बढानेवाली है ॥ ३७५ ॥ ३७६ ॥

माक्षिकेण तुगाक्षीर्य्या पिप्पल्या लवणेन च । त्रिफलासितया वापि युक्तिसिद्धं रसायनम् ॥ ३७७ ॥

शहदके साथ वंशलोचन, सैंधानमकके साथ पीपल और मिश्रीके साथ त्रिफलेके चूर्णको सेवन करना युक्तिसिद्ध रसायन है ॥ ३७७ ॥

असिततिलसमेतैश्छिन्नपत्रस्य भृङ्गैः प्रतिदिनमपि युक्तैः स्यान्नरः कामरूपः । अमृतफलसिताद्यैश्चूर्णितैस्तैर्द्विमासात् प्रहतगणसमूहः कृष्णकेशश्चिरायुः ॥ ३७८ ॥

काले तिल और भाँगरेके पत्तोंका चूर्ण करके प्रतिदिन सेवन करनेसे मनुष्य कामदेवके सदृश रूपवाला हो जाता है। अथवा आमलोंका चूर्ण बनाकर मिश्री मिलाकर दो महीने पर्य्यन्त नियमसहित सेवन करनेसे-सर्वरोग नष्ट होकर बाल काले होते हैं और दीर्घ आयु होती है ॥ ३७८ ॥

चूर्णीकृतं भृङ्गराजस्यपत्रं कृष्णैस्तिलैरामलकैश्च सार्द्धम्। सितासमं भक्षयतां नराणां न व्याधयो नैव जरा न मृत्युः ॥ ३७९ ॥

भाँगरेके पत्तोंका चूर्ण १ भाग, काले तिल और आमले ये प्रत्येक आधा भाग लेकर चूर्ण बनावे। और सब चूर्णके बराबर मिश्री मिलावे। इस औषधिको प्रतिदिन नियमपूर्वक सेवन करनेसे मनुष्योंको न रोग होते और न वृद्धता होती है और न मृत्यु होती है ॥ ३७९ ॥

भृंगराजरसायन।

सम्यग् भृंगरजः क्षुण्णं वस्त्रपूतं प्रयत्नतः। क्षीरन्तु समभागेन मासमेकं नियोजयेत् ॥ ३८० ॥ वर्षेनान्धो गमनरहितो मत्तमातङ्गगामी मूको वाग्मी श्रवणरहितो दूरशब्दानुश्रावी। षण्ढः पुत्री भवति पलितो नीलजीमूतकेशो जीर्णा दन्ताः पुनरपि दृढा वज्रदेहा भवन्ति ॥ ३८१ ॥

अच्छे प्रकारसे भाँगरेके पत्तोंका चूर्ण बनाकर वस्त्रमें छानकर बराबरके दूधके साथ एक महीने पर्य्यंत सेवन करे। इस रसायनके प्रभावसे अन्धा मनुष्य और चलनेमें असमर्थ ये दोनों एक वर्षमें मत्त हाथीके समान गमन करते हैं। गूँगा मनुष्य वाचाल होजाता है। कर्णरहित अर्थात् बहरा मनुष्य दूरके शब्दोंको श्रवण करता है। नपुंसकपुरुष पुरुषार्थको प्राप्त होकर पुत्रोंको उत्पन्न करता है। पलितरोगी (सफेदबालोंवाला) मेघके समान नीलवर्णके केशोंको धारण करता है। एवं पुराने दांत फिरसे दृढ और शरीर वज्रके समान होजाता है ॥ ३८० ॥ ३८१ ॥

तिस्रस्तिस्रस्तु पूर्वाह्णे भुक्त्वा वा भोजयेन्नरः। पिप्पल्यः किंशुकक्षारभाविता घृतभर्जिताः ॥ ३८२ ॥ प्रयोज्या मधुसर्पिर्भ्यां रसायनगुणैषिणा। जेतुं श्वासं क्षयं शोथं हिक्कां कासं गलग्रहम् ॥ ३८३ ॥ अर्शांसि ग्रहणीरोगं पांडुतां विषमज्वरम्। वैस्वर्यं पीनसं शोथं गुल्मवातबलासकम् ३८४

रसायनके गुणोंकी इच्छा करनेवाला मनुष्य पीपलोंको ढाकके खारमें भावना देकर और घीमें भूनकर उनमेंसे प्रतिदिन प्रातःकाल तीन तीन पीपलोंको शहद और घृतमें मिलाकर भोजनसे पहले सेवन करे। इससे श्वास, क्षय, शोथ, हिचकी, खांसी, गलग्रह, बवासीर, संग्रहणी, पांडुता, विषमज्वर, स्वरभंग, पीनस, सूजन, गुल्म, वात और कफके रोग नष्ट होते हैं ॥ ३८२-३८४ ॥

सिन्धूत्थशर्कराशुण्ठीकणामधुगुडैः क्रमात्। वर्षादिष्वभया प्राश्या रसायनगुणैषिणा ॥ ३८५॥

रसायनके गुणोंकी इच्छा करनेवाला मनुष्य हरड़के चूर्णको वर्षाऋतुमें सैंधेनमकके साथ, शरद्तुमें मिश्रीके साथ, हेमन्तऋतुमें सोंठके चूर्णके साथ, शिशिरऋतुमें पीपलके चूर्णके साथ, वसन्तऋतुमें शहदके साथ और ग्रीष्मऋतुमें गुडके साथ सेवन करे ॥ ३८५ ॥

ग्रीष्मे तुल्यगुडां ससैन्धवयुतां मेघावनद्धांबरे सार्द्धं शर्करया शरद्यमलया शुण्ठ्या तुषारागमे ॥ पिप्पल्या शिशिरे वसन्तसमये क्षौद्रेण संयोजिता राजन् भक्ष हरीतकीं प्रतिदिनं नश्यन्ति ते व्याधयः ॥३८६॥

हे राजन्, हरडको ग्रीष्मऋतुमें बराबरके गुडके साथ, वर्षाऋतुमें सैंधेनमकके साथ, शरद्तुमें ड्योढे भाग मिश्रीके साथ, हेमन्त ऋतुमें सोंठके साथ, शिशिरऋतुमें पीपलके साथ और वसन्तऋतुमें शहदके साथ प्रतिदिन सेवन कर। तेरे सम्पूर्ण रोग नष्ट होजायंगे ॥ ३८६ ॥

जीर्णान्तेत्वभयामेकां प्राग्भुंक्ते च विभीतकम् । भुंक्ते तु मधुसर्पिर्भ्यां चत्वार्य्यामलकानि च ॥ ३८७ ॥ प्रयोजयेत्समानेकं त्रिफलाया रसायनम् । जीवेद्वर्षशतं पूर्णमजराव्याधिरेव च ॥ ३८७॥ ३८८ ॥

भोजनके जीर्ण होनेपर एक हरड़को, भोजनसे पाहिले बहेडेको और भोजन करनेके पश्चात् शहद और घीमें मिलाकर आमलोंको भक्षण करे । इस प्रकार इसको बराबर सेवन करनेसे यह त्रिफलारसायन-जरा और व्याधिको दूर करके सौ वर्षकी अवस्थाको करती है ॥३८७॥ ३८८ ॥

विडङ्गासनधात्रीणां चूर्णं लोहरजो घृतम् । एतत्संप्राश्य वृद्धोऽपि तारुण्यमधिगच्छति ॥ ३८९ ॥

वायविडंग, विजयसार और आमले इन सबका चूर्ण करके उसमें लोहेका चूर्ण और घृत मिलाकर सेवन करनेसे वृद्धमनुष्य भी तरुणताको प्राप्त होता है ॥ ३८९ ॥

कृमिघ्नामलकापथ्याकृष्णालोहरजोघृतम् । तैलान्वितं रजो लीढ्वा जरया नाभिभूयते ॥ ३९० ॥

वायविडंग, आमले, हरड, पीपल, लोहचून घी और तेल इन सबको एकत्र मिलाकर सेवन करनेसे बुढापा नहीं आता ॥ ३९० ॥

मासं वचाश्चाप्युपसेव्यमाना क्षीरेण तैलेन घृतेन वापि । भवन्ति रक्षोभिरघृष्टरूपा मेधाविनो निर्म्मलवर्ण्यवाचः ॥ ३९१ ॥

वचके चूर्णको एक महीनेतक दूधके साथ, तेलके साथ अथवा घृतके साथ सेवन करनेसे सम्पूर्ण विकारोंसे रहित होकर मनुष्य अत्यन्त सुन्दर शरीर, मेधायुक्त और निर्मलवाणीको धारण करता है ॥ ३९१ ॥

तीव्रेण कुष्ठेन परीतमूर्त्तिः यः सोमराजीं नियतेन खादेत् । संवत्सरं कृष्णतिलं द्वितीयं स सोमराजीव वपुर्विधत्ते ॥ ३९२ ॥

तीव्रकुष्ठसे पीडित जो मनुष्य वापचीको या काले तिलोंके चूर्णको एक वर्ष पर्यन्त नियमसे सेवन करे तो वह चन्द्रमाके समान कान्तिमान् शरीरको धारण करता है ॥ ३९२ ॥

पुनर्नवस्यार्धपलं नवस्य पिष्ट्वा पिबेद्यः पयसार्द्धमासम् । मासद्वयं तत्रिगुणं समं वा जीर्णोऽपि भूयः स पुनर्नवः स्यात् ॥ ३९३ ॥

दो तोले नवीन पुनर्नवेकी जडको दूधमें पीसकर अर्द्धमासपर्य्यन्त या एक महीनेतक अथवा दो महीनेतक किंवा तीन महीनेतक अथवा अधिक दिनोंतक जो मनुष्य सेवन करता है वह जीर्ण(वृद्ध)होनेपर भी फिरसे नव यौवन युक्त होजाता है ॥ ३९३ ॥

ये मासमेकं स्वरसं पिबन्ति दिने दिने भृङ्गरजःसमुत्थम् । क्षीराशिनस्ते बलवीर्य्ययुक्ताः समाः शतं जीवितमाप्नुवन्ति ॥ ३९४ ॥

नित्य प्रति दूधको सेवन करनेवाले जो मनुष्य प्रतिदिन एक महीनेतक भांगरेका स्वरस पान करते हैं वे अत्यन्त बल वीर्य्ययुक्त होकर सौ वर्षतक जीते हैं ॥३९४ ॥

शतावरीमुण्डतिकागुडूची सहस्तिकर्णा सह तालमूली । एतानि कृत्वा समभागयुक्तया सर्पिर्मधुभ्यां सततं विलिह्यात् ॥ ३९५ ॥ जरारुजामृत्युविमुक्तदेहो भवेन्नरः कान्तिबलादियुक्तः । विभाति देवोपम एव नित्यं शुद्धामयो भूरिविशुद्धबुद्धिः ॥३९६॥

शतावर, गोरखमुंडी, गिलोय, हस्तिकर्ण, पलाश और मुसली इन सबोंको समानभाग लेकरके एकत्र

पीसकर शहद अथवा घीके साथ सेवन करनेसे जरा मरण और रोगरहित होकर मनुष्य अत्यंत वीर्य्य और बलसे युक्त होता है। तथा देवताके समान शोभायमान और अत्यंत शुद्धबुद्धिवाला एवं रोगरहित होता है ॥ ३९५ ॥ ३९६ ॥

पीताऽश्वगन्धा पयसाऽर्द्धमासं घृतेन तैलेन सुखांबुना वा । कृशस्य पुष्टिं वपुषो विधत्ते बालस्य सस्यस्य यथांबुवृष्टिः ॥ ३९७ ॥

असगंधके चूर्णको दूधके साथ, अथवा घृतके साथ, या तेलके साथ, किम्वा गरम जलके साथ १५ दिनतक सेवन करनेसे, कृश शरीरकी इसप्रकार अत्यन्त पुष्टि होती है, जिसप्रकार मेघके जलसे नवीन खेती परिपुष्ट होती है ॥ ३९७ ॥

आभाश्च सोमराजीश्च समभागविचूर्णिताम् । नरः क्षीरेण संपीत्वा सुकृशः स्थूलतां व्रजेत् ॥ ३९८ ॥ देहकम्पे च शोषे च योगमेतत् प्रयोजयेत् । मासमात्रोपयोगेन मातिमाञ्जायते नरः ॥ मेधावी स्मृतिमांश्चैव वलीपलितनाशनः ॥ ३९९ ॥

बबूरके बीज और बापचीके बीज इन दोनोंको समानभाग लेकर एकत्र चूर्ण करके दूधके साथ सेवन करनेसे कृशमनुष्य स्थूलताको प्राप्त होता है। तथा शरीरकंप और शोषरोगमें भी यह योग प्रयोग करना चाहिए। इसको केवल एक महीनेपर्य्यंत सेवन करनेसे मनुष्य बुद्धिमान् होजाता है। तथा मेधायुक्त, स्मरणशक्तिसम्पन्न और वली, पलित आदि रोगोंसे रहित होता है ॥ ३९८ ॥ ३९९ ॥

अश्वगन्धातसी शुण्ठी निर्गुण्डी मागधी तथा । षड्वाऽपराजिताश्चैव समभागानि कारयेत् ॥ ४०० ॥ कर्षैकं भक्षयेन्नित्यं पयसान्नं पिबेदनु । सन्धिवातं निहन्त्याशु साध्यासाध्यं न संशयः ॥ रसायनमिदं प्रोक्तं वलीपलितनाशनम् ॥ ४०१ ॥

असगंध, अलसी, सोंठ, सम्हालू, पीपल और कोइली ये छहों औषधियाँ समानभाग लेकर सबको एकत्र पीसकर प्रतिदिन एक २ तोला परिमाण सेवन करे और ऊपरसे दूधके साथ भात खाय। यह उत्तमरसायन साध्य और असाध्य प्रायः सभीप्रकारके संधिवातके रोगोंको नष्ट करती है। तथा वली पलितआदि रोगोंको भी नष्ट करती है॥४००॥४०१॥

वृद्धदारकमूलन्तु योजयेन्मधुसर्पिषा । सप्ताहात् क्षीरभक्ताशी किन्नरैः सह गीयते ॥ ४०२ ॥

जो विधारेकी जडको शहद और घीमें मिलाकर सात दिनतक सेवन करे और दूधके साथ भोजन करे तो वह मनुष्य किन्नरोंके समान गाने लगता है ॥ ४०२ ॥

हस्तिकर्णरजः खादेत्प्रातरुत्थाय सर्पिषा । यथेष्टाहारचारोऽपि सहस्रायुर्नरो भवेत् ॥ ४०३ ॥

हस्तिकर्ण और पलाशकी जडको पीसकर घृतमें मिलाकर प्रतिदिन प्रातःकाल सेवन करे और इसपर यथेष्ट आहार विहार करे तो भी मनुष्य सहस्र वर्षकी आयुवाला होता है ॥ ४०३ ॥

मेधावी बलवान् कामी स्त्रीशतानि व्रजत्यसौ । मधुना त्वश्ववेगः स्याद्बलिष्ठः स्त्रीसहस्रगः । अयं मन्त्रः प्रयोक्तव्यो भिषजा वाऽभिमन्त्रणे ॥ ४०४॥

और वह मनुष्य मेधायुक्त, बलवान्, कामनायुक्त तथा सैकडों स्त्रियोंमें गमन करनेवाला होता है। और जो इसको शहदके साथ सेवन करे तो अश्वके समान वेगवाला, बलवान् और एक सहस्र स्त्रियोंमें गमन करनेवाला होता है। इस नीचे लिखे हुए मंत्रसे वैद्यको प्रथम हस्तिकर्ण पलाशका चूर्ण अभिमंत्रित करलेना चाहिये ॥ ४०४ ॥

ॐ नमो महाविनायकाय अमृतं रक्ष रक्ष मम फलसिद्धिं देहि रुद्रस्य वचनेन स्वाहा ।

"ॐ नमो महाविनाकाय अमृतं रक्ष रक्ष मम फलसिद्धिं देहि रुद्रस्य वचनेन स्वाहा" यह मंत्र है॥ (मंत्रार्थ) ॐकाररूप महाविनायकके लिए प्रणाम है।

हे महाविनायक तुम मेरे प्राणकी रक्षा करो और शंकर भगवान् की आज्ञासे मुझको फलसिद्धि प्रदान करो।

गुडूच्यपामार्गविडङ्गशङ्खिनी वचाभयाशुण्ठिशतावरीसमा । घृतेन लीढा प्रकरोति मानवं त्रिभिर्दिनैः श्लोकसहस्रधारिणम् ॥ ४०५ ॥

गिलोय, चिरचिटा, वायविडंग, शंखाहुली, बच, हरड़, सोंठ और शतावर ये सब औषधियां समान भाग लेकर एकत्र पीसकर घीमें मिलाकरके सेवन करनेसे तीन दिनमें मनुष्यको एक हजार श्लोकोंको धारण करनेकी शक्ति उत्पन्न करती हैं ॥ ४०५ ॥

ब्राह्मीवचाभयावासा पिप्पलीमधुसंयुता । अस्य प्रयोगात्सप्ताहात् किन्नरैः सह गीयते ॥ ४०६ ॥

ब्राह्मी, वच, हरड, अडूसा, पीपल और शहद इन सबको एकत्र मिलाकर सात दिनतक सेवन करनेसे मनुष्य किन्नरोंके समान गाता है ॥ ४०६ ॥

पञ्चाङ्गमिन्द्राशनश्लक्ष्णचूर्णं पलाष्टकं सप्त सिता पलानि । सितार्धमानं मधु तस्य चार्द्धं घृतं क्षिपेत्सर्वमिदं विमिश्रम् ॥ ४०७ ॥ कृत्वा नरो मासचतुष्टयं यत् पयोऽन्नभक्षी पयसा च भुंक्ते । विहाय रोगान् सकलान्मनीषी जीवेच्चिरं यौवनसंस्थितश्रीः ॥४०८

भांगके पंचांगका बारीक चूर्ण ८ पल और मिश्री ७ पल, मिश्रीसे आधा शहद और शहदसे आधा भाग घृत लेवे । सबको एकत्र मिलाकर उसमेंसे प्रतिदिन चार २ माशे दूधके साथ खाय और ऊपरसे दूध भातका भोजन करे तो सर्व प्रकारके रोगोंसे रहित होकर मनुष्य अत्यन्त बुद्धिमान् और नवयौवनकी शोभासे युक्त होकर बहुतकालतक जीता रहता है ॥ ४०७ ॥ ४०८ ॥

द्रोणीमार्द्रपलासस्य सपिधानं निरूपितम् । धात्रीफलसहस्रेण नीरुजा ब्रह्मदारुणी ॥ ४०९ ॥ नीरन्ध्रं निर्दहेन्मन्दं गोमयस्य च वह्निना । स्विन्नमामलकं क्षुण्णं पश्चाद्धृत्य चूर्णकम् ॥ शौण्डीतण्डुलचूर्णानामप्येवाढकसंयुतम् ॥ ४१० ॥ तत्तुल्येन शिलार्द्धश्च विडङ्गस्याढकेन च । सर्पिर्माक्षिकतैलानामाढकानां पृथक् पृथक् ॥ ४११ ॥ तत्संस्थाप्य त्रिसप्ताहं सुभाण्डे घृतभाविते । ततोऽग्निबलमालोक्य प्रयुञ्जीत यथाविधि ॥ ४१२ ॥ एतद्रसायनं श्रेष्ठं महामुनिनिषेवितम् । अनेनाब्दशतं पूर्णं वपुस्तिष्ठति निर्जरम् ॥ ॥ ४१३ ॥ अङ्गानाञ्च न शैथिल्यं न च लावण्यशून्यता । जायते नच वैकल्यमिन्द्रियाणां कदाचन ॥४१४॥

ढाककी गीली लकडीकी द्रोणी बनाकर उसमें एक हजार आमले भरकर और ऊपरसे कृमिरहित बेल या पीपलकी खूब अच्छेप्रकारके ढकन लगाकर जोड बन्द करके उपलोंकी अग्निके द्वारा मन्द मन्द पकावे फिर उन सीजे हुये आमलोंको पीसकर चूर्ण करले । पश्चात् पीपलके चावलोंका चूर्ण एक आढक परिमाण, शिलाजीत १ आढक, वायविडंगका चूर्ण १ आढक एवं शहद, घृत और तेल ये प्रत्येक एक एक आढक परिमाण लेकर इन सबके साथ उक्त आमलोंके चूर्णको मिलाकर चिकने बासनमें भरकर २१ दिनतक रखदेवे । फिर अग्निका बलाबल विचार कर यथाविधिसे प्रयोग करे । यह श्रेष्ठ रसायन महामुनिकी सेवन कीहुई है । इसको विधिपूर्वक सेवन करनेसे जरारहित होकर मनुष्य पूर्ण सौवर्षतक जीता रहता है । इसको सेवन करनेसे न तो कभी अंगोंमें शिथिलता होती है, न कभी लावण्यता दूर होती है और न कभी इन्द्रियोंमें विकलता होती है ॥४०९--४१४॥

जलपान ।

कासश्वासातिसारज्वरपिटककटीकुष्ठमेदोविकारान् । मूत्राघातोदरार्शःश्वयथुगलशिरःस्रावशूलाक्षिरोगान् ॥ ४१५ ॥ ये चान्येवातपित्तश्रमज-

कफकृता व्याधयः सन्ति जन्तोः । तांस्तानभ्यासयोगादपनयति पयः पीतमन्ते निशायाः ॥ ४१६ ॥

जो मनुष्य प्रतिदिन प्रातःकाल सूर्य्योदयसे पहिले अर्थात् रात्रिके अंतमें नित्य नियमपूर्वक जलपान करता है उसके खांसी, श्वास, अतीसार, ज्वर, पिटक, कटिग्रह, कुष्ठ, मेदके विकार, मूत्राघात, उदररोग, अर्शरोग, शोथ, गलरोग, शिरोरोग, स्राव, शूल, नेत्ररोग, तथा अन्यान्य वात, पित्त, श्रम और कफजनित सम्पूर्ण रोग नष्ट होते हैं ॥ ४१५ ॥ ४१६ ॥

अम्भसः प्रसृतान्यष्टौ रवावनुदिते पिबेत् । वातपित्तकफान् हत्वा जीवेद्वर्षशतं नरः ॥ ४१७ ॥

सूर्य्योदयके समय जो मनुष्य प्रतिदिन नियमके साथ आठप्रसृति परिमाण जलपान करता है, वह मनुष्य समस्त वातपित्त और कफके रोगोंसे रहित होकर सौवर्षतक जीता रहता है ॥ ४१७ ॥

व्यङ्गवलीपलितघ्नं पीनसवैस्वर्यकासशोथघ्नम् । रजनीक्षयेऽम्बुनस्यं रसायनं दृष्टिजननञ्च ॥ ४१८ ॥

रात्रिके अंतमें जलकी नस्य देनेसे व्यंग (झाई), वली (शरीरमें त्रलोंका पडना), पलित (बालोंका सफेद होजाना), पनिस, स्वरभंगता, खांसी और सूजन नष्ट होती है । यह रसायन दृष्टिकी शक्तिको बढाता है ॥ ४१८ ॥

विगतघननिशीथे प्रातरुत्थाय नित्यं पिबति खलु नरो यो घ्राणरंध्रेण वारि। स भवति मतिपूर्णश्चक्षुषा तार्क्ष्यतुल्यो वलिपलितविहीनः सर्वरोगैर्विमुक्तः ॥ ४१९ ॥

जो मनुष्य मेघरहित रात्रिके अंतमें प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर नासिकाके द्वारा जलपान करता है, वह महामतियुक्त, गरुडके समान नेत्रोंवाली, वली और पलित तथा सम्पूर्ण रोगोंसे रहित होकर बहुतादिनोंतक जीता रहता है ॥ ४१९ ॥

प्रसन्नदृष्टिर्दृढदन्तकेशः शशाङ्कवक्त्रः पलितैर्विहीनः । पिडिकाविनाशः कमलास्यगन्धो नस्योपसेवी भवतीह मर्त्यः ॥ ४२० ॥

मनुष्य विधिपूर्वक नित्य जलकी नस्य सेवन करे तो दृष्टि प्रसन्न होती है, दाँत और केश दृढ होते हैं, मुख चन्द्रमाके समान होजाता है, पलितरोगसे मुक्त होता है, सम्पूर्ण मुखपिडिकायें दूर होती हैं और मुखमें कमलके समान गन्ध आने लगती है ॥ ४२० ॥

तत्रिफलाम्बु निशिस्थं वलीपलितहरं दृष्टिजननञ्च । प्रसृतत्रयं प्रपेयं नासिकरंध्रेण नैशिकं तोयम् ॥ ४२१ ॥

त्रिफलेको रात्रिके समय जलमें भिजोकर रखदेवे फिर प्रातःकाल वस्त्रमें छानकर प्रतिदिन तीन प्रसृत परिमाण नासिकाके द्वारा पान करे तो वली और पलितरोग नष्ट होते हैं और दृष्टिकी शक्ति बढती है ॥ ४२१ ॥

मधुहरीतकी ।

दुर्नामश्वासकासज्वरवमथुतृषापांडुता नेत्ररोगान् । हिक्काकुष्ठातिसारभ्रममदसदृशाऽजीर्णशूलप्रदोषान् ॥ तृष्णाशूलास्रपित्तं ज्वरविगतजरारोचकानाहवातान् । हन्यादेतानवश्यं मधुनि परिगता पूतना चाम्लपित्तम् ॥ ४२२ ॥

शहदमें पड़ीहुई हरडको सेवन करनेसे बवासीर, श्वास, खाँसी, ज्वर, वमन, तृषा, पांडुता, नेत्ररोग, हिचकी, कुष्ठ, अतिसार, भ्रम, मद, अजीर्ण, शूल, तृषा, रक्तपित्त, ज्वर, जरा, अरुचि, अनाह, अम्लपित्त और वातरोग ये सब अवश्य नष्ट होते हैं ४२२

लोहगुग्गुलु ।

अयःपलं गुग्गुलुरत्र योज्यं पलत्रयं व्योषपलानि पञ्च । पलानि चाष्टौ त्रिफलारजस्य कर्षं लिहन् यात्यमरत्वमेव ॥ ४२३ ॥

लोहेका चूर्ण ४ तोले, गूगल १२ तोले, त्रिकुटा २० तोले और त्रिफलेका चूर्ण ३२ तोले लेवे । सबको

एकत्र मिलाकर प्रतिदिन एक एक तोला परिमाण खाय तो जरा दूर होकर अमरता प्राप्त होती है ॥ ४२३ ॥

नरसिंहचूर्ण ।

त्रिकण्टविदारिनिस्तुषतिलबहुपत्रीरजश्चतुःप्रस्थम् । भल्लातकप्रस्थयुतं तत्समानं गुडूच्याश्च ॥ ४२४ ॥ पञ्चत्रिंशन्मधुनो व्योषस्याष्टौ पलानि दश वह्निः । द्विगुणवाराही सप्तदशगुणा शर्करा सघृता च ॥ ४२५ ॥ खादेद्यथाग्निर्हिन्तुं रोगानीकं क्षयं कासम् । अश्मर्य्युदरभगन्दरकुष्ठवलीपलितपीनसानान्ध्यम् ॥ ४२६ ॥ नरसिंहसदृशविक्रममन्यान्यप्यभिवांछितानि लभते । बलवर्णस्वरकान्तिःपुष्ट्युत्साहसत्त्वसंयुक्तम् ॥ ४२७ ॥ उपयुज्य चूर्णमिदं सर्वरोगहरञ्च नरसिंहाख्यम् । पुत्राञ्जनयति वीरान् नरसिंहपराक्रमानरोगान् ॥ ४२८ ॥ वाराहमूर्धवत्कन्दो वाराहीकंदसंज्ञितः । भिषजा तदलाभेऽपि चर्मकारालुको मतः ॥ ४२९ ॥

गोखुरू, विदारीकन्द, छिलके रहित स्वच्छ धुले हुए तिल और शतावर इन सबका चूर्ण ४ प्रस्थ, शुद्ध भिलावे १ प्रस्थ और गिलोयका चूर्ण १ प्रस्थ, शहद ३५ पल, त्रिकुटा आठ पल, चीता १० पल, सब चूर्णसे दुगुना वाराहीकन्दका चूर्ण, मिश्री और घृत १७ गुना मिलाकर सबको अच्छेप्रकारसे एकत्रित करके एक चिकने बासनमें भरकर रखदेवे। इसको अग्निका बलाबल विचार कर सेवन करे। यह नरसिंह नामक चूर्ण-सर्वप्रकारके रोगोंके समूह यथा राजयक्ष्मा, खाँसी, पथरी, उदररोग, भगन्दर, कुष्ठ, वली, पालित, पीनस और अन्धता आदि समस्त रोगोंको दूर करता है । तथा नरसिंहके समान पराक्रम और अन्यान्य मनोवाञ्छित कामनाओंको भी प्राप्त होता है । एवं बल, वर्ण, स्वर, कान्ति, पुष्टि, उत्साह और साहस इनसे युक्त होता है । यह नरसिंहचूर्ण नरसिंहके समान पराक्रमी, आरोग्य और वीरपुत्रोंको उत्पन्न करता है । सूअरके शिरके समान जो कन्द होता है, उसको वाराहीकन्द कहते हैं । वैद्य इसके अभावमें चर्म्मकारालु प्रयोग करते हैं ॥ ४२४-४२९ ॥

अश्वगन्धाद्यचूर्ण ।

अश्वगन्धापलं त्रिंशच्चूर्णयित्वा विचक्षणः । वृद्धदारकचूर्णेन समभागन्तु कारयेत् ॥ ४३० ॥ स्थापयित्वा घटे दिव्ये सर्पिषा परिभाविते । कर्षमेकं समश्नीयाच्चूर्णस्य पयसा सह ॥४३१॥ अवाहिकस्य स्वेदस्य परिहारो न विद्यते । करीव नित्यं स्रवति सर्वदोषाविवर्जितम् ॥ ४३२ ॥ तेजसा प्रभवत्युग्रो रश्मिवानिव भास्करः । भवत्येव चतुर्मासैर्वलीपलितवर्जितः॥४३३

शुद्ध असगन्धको ३० पल लेकर चूर्ण करके उसमें ३० पल विधारेका चूर्ण मिलावे । दोनोंको एकत्र करके घृतके चिकने सुन्दर बासनमें भरकर रखदेवे । फिर प्रतिदिन उस चूर्णको एक तोला परिमाण दूधके साथ सेवन करे । इसपर अवाहिक स्वेदका कुछ परिहार नहीं है । इसके प्रभावसे हाथीके समान सर्वदोषोंसे रहित होकर मनुष्य निरन्तर स्रवता रहताहै। इसको चार महीने पर्य्यंत सेवन करनेसे सूर्य्यके समान अतीव तेजको धारण करता है तथा वली और पलितरोगरहित होजाता है ॥४३०-४३३

वृद्धदारुकल्प ।

वृद्धदारुत्रिवृद्दन्तीकदम्बार्जुनगोक्षुराः । वाट्यालकाजकर्णौ च वाजिगन्धा शतावरी ॥ ४३४ ॥ कार्पासी पृश्निपर्णी द्वे वह्निश्चैवापराजिता । कञ्चुकी तालमूली च बृहत्पत्री पलाशिका ॥ ४३५ ॥ ग्रन्थिकं चित्रकं चैव विश्वेदेवावचामृता । बाणपुष्पी च पाठा च बिम्बीवरुण एव च ॥ ४३६ ॥ शिग्रुः

कुलिशभृङ्गौ च मुण्डी च कोकिलाख्यकः। अर्कक्षीरं शताह्वा च वचा चव्यफलत्रिकम् ॥ ४३७ ॥ यवानी चाजमोदा च द्विजीरं धान्यतण्डुलाः। विडङ्गमुस्तताली्शं निशे लवणपञ्चकम् ॥ ४३८ ॥ एलापुष्करनागाह्वत्वक्पत्रं हस्तिपिप्पली। फलीकुष्ठं शटीरेणु जलहिंगु सबालकम् ॥ ४३९ ॥ पाषाणभेदो वृक्षाम्लभद्रोत्कटवितुन्नकः। पलिकाभागतो ग्राह्या गुडूचीविश्वदारुकम् ॥ ४४० ॥ स्नुहीपलाशमृत्पार्श्वशिखरीविडकं गणा। स्वर्जिका यावशूकाख्या चैषां क्षारः पलोन्मितः ॥ ४४१ ॥ अभ्रकस्य पलान्यष्टौ चत्वारि गन्धकस्य च। पलद्वयरसं ग्राह्यं लोहं चाष्टपलं तथा ॥ ४४२ ॥ गवाक्षीभृङ्गकेशी च शालिश्च केशराजकम्। माणकन्दः कटिल्लश्च दहनो हस्तिकर्णकः ॥ ॥ ४४३ ॥ भल्लातमुसलीशुण्ठी त्रिफलावज्रवल्ल्यपि। एषां रसे पृथग्लोहं पुटयेन्मर्दयेत्तथा ॥ ४४४ ॥ ग्रन्थिमान्मारिषश्चैव क्षारं बृहतिका तथा। उत्कटो लोहितो वह्निर्माणो बाणरसैः शुभैः ॥ ४४५ ॥ पुटयेदभ्रकश्चैवमयसश्च यथाविधि। काकशामणिपिण्डेन पयसा संयुतेन च ॥ ४४६ ॥ यावत्पिण्डो भवेत्तावच्छास्त्रविन्मृदुवह्निना। एकीकृत्य शुभे भाण्डे स्थापयेद्रसगोपितम् ॥४४७॥ सर्पिषा मकरन्देन भक्षयेत्प्रत्यहं तु सः। अनुपिबेत्पयः क्षीरं यूषं मांसरसं तथा ॥ ४४८ ॥ भोजनं चाग्निसापेक्षं कार्यश्चैव सहं तथा। विहितश्च मितं चाद्यादौषधे पाकमागते ॥ ४४९ ॥ आहारेण समं कार्यं नित्यमेवाल्पवह्निना ॥ अग्निवृद्धिकरः कायरोगाणां चापहारकः ॥ ४५० ॥ वाते पित्ते कफे शूले हृद्रोगश्वासकासयोः। क्षये च विविधे घोरे शोथे चैवाङ्गसंगमे ॥ ४५१ ॥ आमवाते त्रिकशूले पंक्तिशूले च सर्वगे। अम्लपित्ते सशूले च शोथे सर्वोदरे तथा ॥ ४५२ ॥ पुत्रकार्यं मृते योन्ये पुंसो नार्य्यां भिषक्तमैः। अयमेव हितो नित्यं शुक्रवृद्धिकरः परः ॥४५३॥

विधारा, निसोत, दंती, कदम्ब, अर्जुन, गोखुरू, खिरैंटी, विजयसार, असगंध, शतावर, कपास, पृश्निपर्णी, शालिपर्णी, चीता, कोइली, क्षीरमोरट, मुसली, त्रिपर्णीकन्द, गंधपलाशी, पीपलामूल, चीता, लालफूलका दंडोत्पल, वच, गिलोय, बाणपुष्पी, पाढ, कन्दूरी, वरना, सहिंजना, हडसंघारी, भाँगरा, गोरखमुण्डी, तालमखाना, आकका दूध, सौंफ, वच, चव्य, त्रिफला, अजमोद, अजवायन, जीरा, कालाजीरा, धनियेके चावल, वायविडंग, नागरमोथा, तालीशपत्र, हलदी, दारुहलदी, पांचोंनमक, इलायची, पोहकरमूल, नागकेशर, दालचीनी, तेजपात, गजपीपल, फूलप्रियंगू, कूठ, कचूर, रेणुका, सुगंधबाला, हींग, खस, पाषाणभेद, विषांबिल, प्रसारणी, भुंई आमला, गिलोय, देवदारु, थूहर, ढाक, पारिसपीपल, और चिरचिटा इन सबका खार, विड्लवण, सज्जी और जवाखार ये प्रत्येक औषधि चार चार तोले, तथा अभ्रककी भस्म ८ पल, गन्धक ४ पल, पारा २ पल और लोहेकी भस्म ८ पल लेवे। सबको एकत्र पीसकर रखदेवे। इसमें जो आठ पल लोहा कहा है उसको मारनेकी विधि इस प्रकार है। प्रथम लोहेको लेकर इन्द्रायण, भाँगरा, बालछड, शालिचशाक, कुकुरभाँगरा, मानकंद, करेला, चीता, हस्तिकर्णपलाश, भिलावे, मुसली, सोंठ, त्रिफला और हडसंहारी इन औषधियोंके रसमें अलग अलग मर्दन करके बारंवार पुट देवे। फिर इसीप्रकार हडसंहारी, मरसा और बडी कटेरीका खार तथा सहिंजना, पतंग, चीता, मानकंद और सरपता

इन प्रत्येकके रसके द्वारा अभ्रकको पुट देदेकर मर्दन करे। इसप्रकार लोहे और अभ्रकको मारण करके उनमें पूर्वोक्त औषधियाँ मिलावे। फिर इस औषधिको चौटलीकी लुगदीमें रखकर दूधके योगसे मंद २ अग्निके द्वारा जबतक पकते २ पिंडके समान गोला सा न होजाय तबतक पकावे। फिर इसको अच्छे प्रकारसे खूब एकमएक करके उत्तम चिकने बासनमें भरकर रखदेवे। इसको प्रतिदिन घी और शहदके साथ मिलाकर अग्निका बलावल विचारकर भक्षण करे और ऊपरसे जल, दूध, यूष और मांसरसका अनुपान करे। औषधिके जीर्ण होनेपर अग्निके बलानुसार आहार करे। यह औषधि अग्निको दीपन करनेवाली और सम्पूर्ण शरीरगत रोगोंको हरनेवाली है। तथा वात, पित्त,कफ,शूल,हृदयरोग, श्वास, खाँसी, अनेकप्रकारका घोर क्षयरोग, शोथ, आमवात, त्रिकशूल, परिणामशूल, सर्वांगशूल, शूलसहित अम्लपित्त,शोथ और समस्त उदररोगोंमें यह औषध अतीव हितकारी है। जिन स्त्रियोंके पुत्र नहीं होता अथवा जिनकी संतान होकर मर जाती है और जो पुरुष सदैव स्त्रियोंमें आसक्त रहना चाहते हैं, उनको यह औषध नित्य शुक्रवृद्धि करनेके लिये सेवन करनी चाहिये॥ ४३४-४५३ ॥

ज्योतिष्मतितैलपानविधि।

जगति ज्योतिष्मती प्रसिद्धगुणिनी तस्यास्तैलंनिष्कासयित्वा जीर्णपुराणशाल्यन्नेन मत्स्यण्डमधुरेण पाणितलार्द्ध संवृद्धया प्रत्यहं भक्षयेच्च। वर्द्धयेत्पलं यावन्नातः परतरं विवृद्धिः कार्य्या मासस्थितिश्चैषा पलमप्युत्तममात्राहुतभुग्बलानुरोधेन भिषजानानुकल्पनीया एवं तैलाढकमुपयुज्य महाबलो महाप्राणः षोडशवर्षाकृतिनीरोगो भवति ।

जगत्में ज्योतिष्मती प्रसिद्ध गुणोंवाली औषधि है उसका तेल निकालकर उसमेंसे प्रतिदिन छःमासे लेकर पुराने शालिचावलोंके भात राब और शहद्के साथ खाय। इसीप्रकार प्रतिदिन क्रमसे मात्रा बढाकर खाय जब बढकर चार तोलेकी मात्रा होजाय तब फिर आगे अधिक नहीं बढावे फिर नित्य चार तोले खाय। इसप्रकार एक महीनेतक सेवन करे। एकपल इसकी उत्तम मात्रा है। अग्निके बलानुसार वैद्य अनुपानकी कल्पना करे। इसप्रकार इस मालकांगुनीके तेलको एक आढकपरिमाण सेवन करनेसे मनुष्य महाबलवान्, महाप्राण और सोलहवर्षके समान युवा अवस्थाको धारण करता हुआ आरोग्य होता है॥

लोहरसायन।

विडङ्गसारो मेघाख्यो रक्तवह्निरुष्करः। हस्तिकर्णः सितार्कस्तु श्वेतवर्षासमुद्भवम् ॥ ४५४ ॥ वाकुचीमुण्डिकाभृङ्गो राजको वृद्धदारकः। गुडूच्यतिबलारास्ना तालमूलीशतावरी ॥ ४५५ ॥ पिण्डारकश्चैडगजो वैडालः केशराजकः। एकैकं पलमेतेषां ग्राह्यं समधुना घृतम् ॥ ४५६ ॥ रसस्यैकं पलं ग्राह्यं लोहस्य पलविंशतिः। चत्वारिंशत्तथाभ्रस्य शुल्वं चापि चतुष्पलम् ॥ ४५७ ॥ गन्धकस्य पलान्यष्टौ षट्पलानि मनःशिला। स्वर्णमाक्षिकचत्वारि षट्पलानि शिलाजतोः॥ ४५८ ॥ त्रिफलात्रिकटूनाञ्च प्रत्येकञ्च पलत्रयम्। सर्वाण्येतानि संचूर्ण्य घृतेन मधुना सह ॥४५९॥ स्निग्धे भाण्डे समालोड्य स्थापयित्वा विचक्षणः। भक्षयेत् क्रमयोगेन लोहं सर्वरसायनम् ॥ ४६० ॥

विडंगसार, नागरमोथा, लालचीता, भिलावे, हस्तिकर्णपलाश, सफेदआक, सफेदपुनर्नवा, वापची, गोरखमुंडी, भाँगरा, विधारा, गिलोय, कंघी, रायसन, मुसली, शतावर, पिंडार, चकवड, जवादिकस्तूरी और कुकुरभाँगरा ये प्रत्येक औषधि चार चार तोले लेकर सबको एकत्र पीसकर, शहद और घीमें मिलाकर रखदेवे। फिर इसमें पारेकी भस्म चार तोले, लोहेकी भस्म या रससिन्दूर २० पल,अभ्रककी भस्म ४० पल, ताँबेकी भस्म १६ तोले, शुद्ध-

गंधक ३२ तोले, शुद्ध मैनशिल २४ तोले, सोनामाखी १६ तोले, शिलाजीत २४ तोले तथा त्रिफला और त्रिकुटेकी प्रत्येक औषधि बारह बारह तोले लेकर सबको एकत्र कूट पीसकर शहद और घीमें मिलाकर एक उत्तम चिकने बासनमें भरकर रखदेवे। फिर प्रतिदिन इस लोहरसायनको क्रमसे मात्रा बढाकर नियम पूर्वक सेवन करे ॥ ४५४–४६० ॥

दासरसायनलोह ।

पारदं विधिना शुद्धं पलद्वितयसंमितम् । चतुष्पलं लोहचूर्णं चतुर्विंशपलं सिता ॥ ४६१ ॥ मनोह्वागन्धपाषाणं हरितालश्च शुद्धकम् । कासीसं हिंगुकुष्ठश्च वचाशीररसाञ्जनम् ॥ ४६२ ॥ सारं खदिरवृक्षस्य जातीफलमन्वितम् । द्विपलं सूक्ष्मचूर्णन्तु सर्वेषां परिकीर्त्तितम् ॥ ४६३ ॥ गगनाद्विपलं कृष्णा लोहवत्पुटितात् क्षतात् । शास्त्रोक्तपृथगुद्दिष्टैः संयोज्य विधिनोचितम् ॥४६४ ॥त्रिंशश्च त्रैफले तोये प्रस्थेन सह सर्पिषा । शृङ्गवेररसप्रस्थं निष्क्वाथ्यं वक्ष्यमाणकैः ॥ ॥ ४६५ ॥ त्रिवर्णोदितचित्रश्च चास्थिसंहारसूरणम् । नामवर्षा सगोधूमभूमिकूष्माण्डतण्डुलाः ॥ ४६६ ॥ सौभाञ्जनं तालमूली मोरटं शंखपुष्पिका । पृथगष्टपलश्चैषां वारिद्रोणे विपाचयेत् ॥ ४६७ ॥ अष्टभागावशिष्टेन कषायं कारयेत्सुधीः । मधुनो द्वात्रिंशत्पलं क्षिपेत्तत्र सुशीतले ॥ ॥ ४६८ ॥ त्रिकटुत्रिफलासिन्धु विडं सौवर्चलं तथा । टङ्कणो यावशूकश्च सुरदारुपरं पराः ॥ ४६९ ॥ अम्लवेतसमृद्वीका महाद्रमधुयष्टिका । शृङ्गीदुरालभामुस्तं विडङ्गं रक्तचन्दनम् ॥ ४७० ॥ जीरकश्च सधन्याकं पलार्द्धं चूर्णकं पृथक् । दासरसायणं प्रोक्तं नराणां हितकाम्यया ॥ ४७१ ॥ न चात्र परिहारोऽस्ति विहाराहारयन्त्रणे । अन्नपानानि सर्वाणि भक्ष्यभोज्यानि यानि च ॥४७२ तानि प्रकृतिभेदज्ञो बुद्धिपूर्वं प्रदापयेत् । सर्वव्याधिहरश्चैतत् स्वस्थास्वस्थहितं सदा ॥ ४७३ ॥

विधिपूर्वक शुद्ध किया हुआ पारा ८ तोले, मृत लोहेका चूर्ण १६ तोले, ९६ तोले मिश्री, मैनशिल, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हरिताल, कसीस, हींग, कूठ, वच, खस, रसौत, खैरसार और जायफल इन सब औषधियोंका चूर्ण आठ आठ तोले और लोहेके समान पुटित कियाहुआ तथा शास्त्रोक्त विधिसे मारा हुआ कृष्ण अभ्रक ८ तोले लेकर सबको एकत्र पीसकर ३० पल त्रिफलेके काथमें तथा १ प्रस्थ घृत १ प्रस्थ अदरखके रस और नीचेलिखी औषधियों- के काथमें डालकर विधिपूर्वक पकावे।काथकी औषधि–निसोत, चीता, हडसंहारी, जिमीकन्द, पुनर्नवा, गेहूँ, विदारीकन्द, चावल, सहिंजना, मुसली, क्षीरमोरट, और शंखाहूली इन प्रत्येक औषधियोंका आठ आठ तोले लेकर अलग अलग एक एक द्रोण जलमें पकावे । जब पकते पकते जल आठवां भाग बाकी रहजाय तब उतारकर छानलेवे । फिर इसमें उपर्युक्त औषधिको पकावे । जब वह पककर शीतल होजाय तब उसमें शहद ३२ पल एवं त्रिकुटा, त्रिफला, सैंधानमक, विड नमक, कालानमक, सुहागा, जवाखार, देवदारु, अमलवेंत, दाख, महामेदा, मुलैठी, काकडाशिंगी, धमासा, नागरमोथा, बायविडंग, लालचन्दन, जीरा और धनियाँ इन प्रत्येकका चूर्ण दो दो तोले डालकर सबको एकजीव करलेवे । मनुष्योंके हितकी अभिलाषासे यह दास रसायन कही गई है इसपर आहार विहारका कुछ परहेज नहीं है। सर्वप्रकारके भक्ष्य और भोज्य अन्नपानोंको प्रकृतिके भेदोंको जानकर वैद्य बुद्धिपूर्वक देवे । यह रसायन सब प्रकारके रोगोंको हरनेवाली तथा रोगी और निरोगी सबको हितकारी है ॥ ४६१–४७३ ॥

नागार्जुनलोह ।

नागार्जुनो मुनीन्द्रः शशास यल्लोहशास्त्रमतिगहनम् । तस्यार्थस्य स्मृ-

तये वयमेतद्विशदाक्षरैर्वक्ष्यामः॥४७४॥ मेने मुनिः स्वतन्त्रे भूयः पाकं न पलपञ्चकादर्वाक् । सुबहुप्रयासदोषादूर्ध्वञ्च न पलत्रयोदशकात्॥४७५॥तत्रायसि पचनीये पञ्चपलादौ त्रयोदशपलकांते। लोहात्त्रिगुणा त्रिफलाग्राह्या षड्भिः पलैरधिका ॥ ४७६ ॥ मारणपुटनस्थालीपाकास्त्रिफलैकभागसंपाद्याः । त्रिफलाभागद्वितयं ग्रहणीयं लोहपाकार्थम् ॥४७७ ॥ सर्वत्रायः पुटना यथैषां सशरावसंख्यानाम् । प्रतिपलमेव त्रिगुणं पाकार्थं क्वाथमादेयम् ॥ ४७८ ॥ सप्तपलादौ भागे पञ्चदशान्तेऽम्भसां शरावैश्च । त्र्याद्यैकादशकान्तैरधिकं तद्वारि कर्त्तव्यम् ॥ ॥ ४७९ ॥ तत्राष्टमो विभागः शेषः क्वाथस्य यत्नतः स्थाप्यः । तेन हि मारणपुटनस्थालीपाका भविष्यन्ति ॥ ४८० ॥ पाकार्थे तु त्रिफलाभागद्वितये शरावसंख्यातम् । प्रतिपलमम्बुसमं दद्यादधिकं द्वाभ्यां शरावाभ्याम् ॥ ४८१ ॥ तत्र चतुर्थो भागः शेषो निपुणैः प्रयत्नतो ग्राह्यः । अयसः पाकार्थत्वात् स च सर्वस्मात् प्रधानतमः ॥ ४८२ ॥ पाकार्थमश्मसारे पञ्चपलादौ त्रयोदशपलान्ते । दुग्धशरावद्वितयं पादैरेकाधिकैरधिकम् ॥ ४८३ ॥ पञ्चपलादिमात्रा तदलाभे तदनुसारतो ग्राह्यम् । चतुरादिकमेकान्तं शक्त्यावधिकं त्रयोदशकात् ॥ ४८४ ॥ त्रिफलात्रिकटुकचित्रकफान्तक्रामकविडङ्गचूर्णानि । अन्यान्यपि देयानि पलाशस्य च बीजानि॥४८५॥जातीफलजातिकोषैलाकंकोलकलवङ्गानाञ्च । सितकृष्णजीरकयोरपि चूर्णानि पयसा समानि स्युः । त्रिफलात्रिकटुविडङ्गा नियता अन्ये यथाप्रकृति ॥ ४८६॥ कालायसदोषहृते जातीफलादेर्लवङ्गकांतस्य । क्षेपः प्राज्ञानुरूपः सर्वस्योनस्य चैकाद्यैः ॥ ४८७ ॥ कान्तिकामकमेकं निःशेषदोषमपहरत्ययसः। द्विगुणत्रिगुणचतुर्गुणमाज्यं देयं यथा प्रकृति ॥४८८ ॥ यदि भेषजभूयस्त्वं स्तोकत्वं वा तथापि चूर्णानाम् । अयसासाम्यं संख्या भूयोऽल्पत्वेन भूयोऽल्पा ॥ ४८९ ॥

नागार्जुनऋषिने जो अत्यन्त गहन लोहशास्त्र कहा है, उसको अर्थकी स्मृतिके लिये हम यहां विशद रूपसे कहेंगे । नागार्जुनमुनिने अपने ग्रन्थमें पाँच पलसे पहिले अर्थात् २० तोलेसे कम लोहेका पाक करना नहीं कहा और प्रयोगकी बाहुल्यताके दोषसे १३पलसे ऊपर अर्थात् ५२ तोलेसे अधिक लोहेका पाक करना नहीं माना है । इसकारण लोहेका पाक करनेके लिये पांचपलसे लेकर तेरहपल पर्य्यंत लोहा लेना चाहिये । तथा लोहेसे तिगुना और २४ तोले अधिक त्रिफला लेवे ।मारण, पुटन और स्थालीपाकके लिये त्रिफला एक भाग लेना चाहिये । लोहपाकके लिये त्रिफला दो भाग लेना चाहिये । और सर्वत्र लोहका पुटदेनेके लिये एक शराब परिमाण त्रिफला लेवे, पाकके लिये प्रत्येक पलके हिसाबसे तिगुना काथ डाले । सातपलसे लेकर पन्द्रह पलतक तीन शराव जल डालना चाहिये।तीनपलसे लेकर ग्यारह पलतक अधिक जल डालना चाहिये । जब पककर जल आठवां भाग बाकी रहजाय तब उतारकर छान लेना चाहिये । उस काथके द्वारा मारण पुटन और स्थालीपाक करना चाहिये । पाकके लिये दो भाग त्रिफलेमें एक शराव परिमाण और दो शरावसे अधिकमें प्रत्येक पलके हिसाबसे जल समान भाग डालना चाहिये । इसमें चौथाई भाग शेष काथको बुद्धिमान् वैद्य यत्नपूर्वक ग्रहण करे । लोहेका पांक यह सबमें प्रधान है । लोहेके पाकमें पांच पलसे लेकर तेरह पलपर्य्यंत एक एक पादसे अधिक दो २

शराव दूध लेवे । पांचपलकी आदि मात्रा है । उसके अभावमें उसके अनुसार मात्रा ग्रहण करे । चारसे लेकर एकतक और शक्तिके अधिक होनेमें तेरह पर्य्यंत मात्रा जाननी । त्रिफला, त्रिकुटा, चीता, केशर, लोध और वायविडंग तथा ढाकके बीज, जायफल, जावित्री, इलायची, शीतलचीनी, लौंग, सफेद जीरा और काला जीरा इन सबका चूर्ण दूधके बराबर लेवे । त्रिफला, त्रिकुटा और वायविडंग ये नियमानुसार लेनी चाहिये और अन्य औषधियाँ प्रकृतिके अनुसार लेवे । लोहेके दोषोंको दूर करनेके लिये जायफलसे लेकर लौंग पर्य्यंत सब औषधियां न्यूनाधिक मात्राका विचार करके डालनी चाहिये । केशर और लोध लोहके सम्पूर्ण दोषोंको दूर करते हैं । लोहेसे दुगुना, तिगुना, अथवा चौगुना घृत प्रकृतिके अनुसार डालना चाहिये । जो औषधि अधिक हो और चूर्ण कम हो तो लोहेकेबराबर करना चाहिये४७४-४८९॥

स्थालीपाकविधि ।

गजकर्णपत्रमूलैः शतावरीभृङ्गकेशराजरसैः॥ आद्यस्थालीपाकं दद्यात् प्रत्येकमेकं वा॥ ४९०॥

गजकर्णके पत्ते और जड, शतावर, भांगरा और कुकुरभांगरा इन प्रत्येकके रसके द्वारा प्रथम स्थालीपाक करे ॥ ४९० ॥

त्रिफलांबुभृङ्गकेशरशतावरिकाकन्दमाणसहजरसैः । भल्लातककरिकर्णच्छदमूलपुनर्नवास्वरसैः ॥ ४९१ ॥

त्रिफलेका काथ, भांगरा, केशर, शतावर, मानकंद, पियावांसा, भिलावा, हस्तिकर्ण, पलाशके पत्ते जड़ और पुनर्नवेका स्वरस इनके द्वारा पुट देवे॥ ४९१ ॥

सारस्वतघृत ।

समूलपत्रामुत्पाट्य ब्राह्मीं प्रक्षाल्य वारिणा । उलूखले क्षोदयित्वा रसं वस्त्रेण गालयेत् ॥ ४९२ ॥ रसे चतुर्गुणे तस्मिन् घृतप्रस्थं विपाचयेत् । भेषजानि च पेष्याणि तत्रेमानि प्रदापयेत् ॥ ४९३ ॥ हरिद्रामलकं कुष्ठं त्रिवृतां सहरीतकीम् । एतेषां पलिकान् भागाञ्छेषांस्तु कार्षिकान्विदुः ॥ ॥ ४९४ ॥ पिप्पल्योऽथ विडङ्गानि सैन्धवं शर्करं वचा । सर्वमेतत्समालोड्य शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ ४९५ ॥ एतत्प्राशितमात्रेण वाग्विशुद्धिश्च जायते । सप्तरात्रप्रयोगेण श्रुतमात्रन्तु धारयेत् ॥ ४९६ ॥ हन्त्यष्टादशकुष्ठानि ह्यर्शांसि षड्विधानि च । पञ्चगुल्मान् प्रमेहांश्च कासं पञ्चविधं जयेत् ॥ ४९७ ॥ वन्ध्यानाञ्चैव नारीणां नराणामल्परेतसाम् । घृतं सारस्वतं नाम वर्णायुर्बलवर्द्धनम्॥४९८॥

जड़ और पत्तोंसमेत ब्राह्मीको उखाड कर जलसे धोकर ओखलीमें डालकर कूटे । फिर उसको वस्त्रमें छान लेवे पश्चात् चार प्रस्थ उसके रसमें एक प्रस्थ घृत डालकर पकावे । तथा कल्कके लिये उसमें हलदी, आमले, कूठ, निसोत और हरड़ ये प्रत्येकचार२ तोले, पीपल, वायविडंग, सैंधानमक, मिश्री और वच ये प्रत्येक एक २ तोला इन सब औषधियोंको पीसकर डाल देवे । फिर धीरे धीरे मंद मंद अग्निसे पकावे । इस घृतको सेवन करनेसे वाणी शुद्ध होती है । सात दिनतक पान करनेसे मनुष्य सुनते ही अनेक शास्त्रोंको धारण करता है । तथा अठारह प्रकारके कोढ, छः प्रकारकी बवासीर, पांच प्रकारका गुल्म, प्रमेह और पांचोंप्रकारकी खाँसी दूर होती है, वंध्या स्त्री और अल्पवीर्य्यवाले मनुष्यों के यह सारस्वत घृत-बल, वर्ण और आयुको बढ़ाता है ॥ ४९२-४९८ ॥

गुडूच्यादिघृत ।

गुडूच्यपामार्गविडङ्गशंखिनी वचाशतावर्यभयामहौषधैः । घृतं विपक्वं पिबतां प्रशस्तं वचस्तु येषां विकलञ्च जल्पताम् ॥ ४९९ ॥

गिलोय, चिरचिटा, वायविडंग, शंखाहुली, बच, शतावर, हरड और सोंठ इन औषधियोंके कल्कके द्वारा घृतको पकावे । यह घृत मनुष्योंको अत्यंत हितकारी है कि, जो गद्गदवचन बोलते हैं॥ ४९९ ॥

चतुष्कुवलयघृत ।

यत्कन्दनालदलकेसरवाद्विपक्कं नीलोत्पलस्य तदपि प्रथितं द्वितीयम् । सर्पिश्चतुष्कुवलयं सहिरण्यपात्रं मेध्यं गवामपि भवेत्किमु मानुषाणाम् ॥ ५०० ॥

नीलोत्पलका कंद, नीलोत्पलकी नाल, नीलोत्पलके पत्र और नीलोत्पलकी केसर इनके कल्कके द्वारा उत्तम गायके घृतको पकावे । इस घृतको सुवर्णके पात्रमें स्थापन करे । यह घृत गौओंकी भी अत्यंत मेधाको बढाता है, फिर मनुष्योंकी तो बात ही क्या है ॥ ५०० ॥

द्वितीय सारस्वतघृत ।

आजं पयः शृङ्गवेरं वचाशिग्रुहरीतकी । पिप्पल्यो मरिचं पाठा सैन्धवं दशमं घृतम् ॥ ५०१ ॥ शृङ्गवेराद्यो भागा लवणान्ताः पलाष्टकम् । चतुर्गुणेन पयसा घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ॥ ५०२ ॥ एतत् प्राशितमात्रेण किन्नरैः सह गीयते । जडगद्गदमूकत्वं पानादेव प्रशाम्यति ॥ ५०३ ॥ नष्टश्च स्मरते ग्रन्थं श्रुतिश्चाप्युपजायते। एतत्सारस्वतं नाम स्मृतिमेधाविवर्द्धनम् ॥ ५०४ ॥

बकरीका दूध, अदरख, वच, सहिंजना, हरड, पीपल, मिरच, पाढ, सैंधानमक और घृत इन सबको एकत्र करके पकावे । इसमें अदरखसे लेकर सैंधानमकतक प्रत्येक औषधि कल्कके लिये आठ आठ पल लेवे । बकरीका दूध चार प्रस्थ और गायका घृत एक प्रस्थ लेवे । इन सबको यथाविधिसे मिलाकर घृतको पकावे । इस घृतको पान करनेमात्रसे मनुष्य किन्नरोंके समान गायन करताहै तथा जडता, गद्गदपना और मूकता दूर होती है। नष्टस्मरणशक्तिवाले मनुष्य भी सुनते ही शास्त्रोंको धारण करते हैं। यह सारस्वतघृत-स्मरणशक्ति और मेधाको बढाता है ॥ ५०१-५०४ ॥

अष्टाङ्गमङ्गलघृत ।

मण्डूकीं सवचां सशंखकुसुमां सब्रह्मसौवर्चलाम् । गुञ्जां श्वेतवतीं शतावरियुतां ब्राह्मीं गुडूचीं तथा ॥ ५०५ ॥ पिष्ट्वांशैः पलिकैरिमानि विधिवद्द्रव्याणि प्रस्रावणम् । सर्पिष्प्रस्थमथाढकेन पयसा युक्तिं पचेत्पाचनम् ॥ ५०६ ॥ नाम्नाष्टांगमिदं विदेहरचितं ख्यातं पिबेद्यो घृतम् । स श्लोकस्य सहस्रमेकदिवसेनैवाखिलं धारयेत् ॥ अक्षीणाप्रतिहनिवारि मधुरस्पष्टाभिदायी सदा । लोके शुक्रबृहस्पतीसमनृणां पूज्यश्च नित्यं सदा ॥ ५०७ ॥

ब्रह्ममण्डूकी, वच, शंखाहुली, हुलहुल, सफेद घुँघुची, शतावर, ब्राह्मी और गिलोय ये प्रत्येक औषधि चार चार तोले लेकर सबका कल्क बनाकर एक प्रस्थ घृत और एक आढक दूधके साथ एकत्र मिलाकर यथाविधिसे घृतको पकावे । यह अष्टांगनामकघृत-विदेह आचार्य्यने कहा है । इस घृतको पान करनेसे एक दिनमें सहस्र श्लोकोंको धारण करनेकी शक्ति उत्पन्न होती है । तथा वह शुद्ध, स्पष्ट और मधुर वाणीयुक्त होकर संसारमें शुक्र और बृहस्पतिके समान बुद्धिमान् और पूजनीय होता है ॥ ५०५ ॥ ५०६ ॥ ५०७ ॥

पथ्यापथ्य ।

सतताध्ययनं वादः परतन्त्रावलोकनम् । सद्विद्याचार्य्यसेवा च बुद्धिमेधाकरो गणः ॥ ५०८ ॥

निरंतर पढना, शास्त्रसम्बन्धी वादविवाद, अन्यान्यशास्त्रोंका अवलोकन, सद्विद्याका धारण और आचार्य्यों (गुरुजनों) की सेवा करना ये सब बुद्धि और मेधाको बढानेवाले विषय हैं ॥ ५०८ ॥

आयुष्यं भोजनं जीर्णे वेगानामविधारणम् । ब्रह्मचर्य्यमहिंसा च साहसानाञ्च वर्जनम् ॥ ५०९ ॥

भोजनके जीर्ण होनेपर भोजन करना, मलमूत्रादिके वेगोंको नहीं रोकना, ब्रह्मचर्य्य रखना, सर्वथा

हिंसाका त्याग, अत्यन्त और साहसके कामोंको न करना ये सब आयुको बढानेवाले हैं । तथा रसायनके गुणोंको करते हैं ॥ ५०९ ॥

रसायनका विशेष फल ।

न केवलं दीर्घमथायुरश्नुते रसायनं यो विधिवन्निषेवते । गतिं स दिव्यां मुनिसेवितां शुभां प्रपद्यते ब्रह्म तथैव चाक्षयम् ॥ ५१० ॥

जो मनुष्य विधिपूर्वक अनेकप्रकारके रसायनोंको सेवन करता है, वह केवल दीर्घायुको ही प्राप्त नहीं होता, किन्तु वह मुनियोंकी दिव्यगतिको प्राप्त होकर अंतमें अक्षय ब्रह्मपदरूप मोक्षको प्राप्त होता है ॥ ५१० ॥

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायां रसायननिदान-चिकित्साधिकार समाप्त ॥ ७३ ॥

अथ वाजीकरणाधिकार ।

दूषितशुक्रके लक्षण ।

रक्तेन कुणपं श्लेष्मवाताभ्यां ग्रन्थिसन्निभम् । पूयाभं रक्तपित्ताभ्यां क्षीणं मारुतपित्ततः ॥ १ ॥ कृच्छ्राण्येतान्यसाध्यन्तु त्रिदोषं मूत्रविड्निभम् । तेष्वाद्यान्छुक्रदोषांस्तान् स्नेहस्वेदादिभिर्जयेत् ॥ २ ॥

मनुष्योंका वीर्य्य रक्तके द्वारा दूषित होनेसे दुर्गन्धियुक्त, कफ और वातके द्वारा दूषित होनेसे ग्रन्थियुक्त, रक्त-पित्तसे राधके समान, वातपित्तसे क्षीण और त्रिदोषसे मूत्र तथा मलके समान होता है। इनमें त्रिदोषजनित शुक्रदोष असाध्य और शेष कष्टसाध्य हैं । इनमें पहिले अर्थात् रुधिरसे दूषित आदि शुक्रदोषोंको स्नेह और स्वेदादिके द्वारा जीते ॥ १॥ २ ॥

वाजीकरणकी चिकित्सा ।

क्रियाविशेषैर्मतिमांस्तथैवोत्तरबस्तिभिः । पाययेत्सरुजं सर्पिर्भिषक्शोणितशोषिणाम् ॥ ३ ॥

बुद्धिमान् वैद्य रुधिरसे दूषित हुए शौकिनमनुष्यों को शुक्रदोषमें रोगीको वमन विरेचनादि विशेषक्रिया और उत्तरबस्तिके द्वारा शुद्ध करके कूठके साथ घृतपान करावे ॥ ३ ॥

धातकीपुष्पखदिरदाडिमार्जुनसाधितम् । कुणपाख्ये पिबेत्सर्पिः शालिसारादिसाधितम् ॥ ४ ॥

कुणपाख्य अर्थात् रुधिरसे दूषित शुक्रमें धायके फूल, खैर, अनार और अर्जुनके कल्क और काथके द्वारा सिद्ध कियाहुआ घृतपान करे । अथवा शालिसारादिगणकी औषधियोंके द्वारा घृतको पकाकर सेवन करे ॥ ॥ ४ ॥

ग्रन्थिभूते पिबेत्सर्पिश्चित्रकोशीरहिंगुभिः । स्निग्धं वान्तविरिक्तञ्च निरूहमनुवासितम् ॥ ५ ॥

ग्रन्थिभूत अर्थात् जिसका शुक्र कफवातसे ग्रन्थिके समान होजाय उसको चीता, खस और हींग इनके कल्कके द्वारा घृतको सिद्ध करके पान करना चाहिए तथा स्नेह, वमन, विरेचन, निरूहवस्ति अनुवासन वस्ति और उत्तरबस्ति ये सब प्रयोग करे ॥५॥

दूषितआर्तवकी चिकित्सा ।

योजयेच्छुक्रदोषार्त्तं सम्यगुत्तरबस्तिना । विधिमुत्तरवस्त्यन्तं कुर्य्यादार्त्तवशुद्धये ॥६॥ स्त्रीणां स्नेहादियुक्तानां चतसृष्वार्त्तवार्त्तिषु । कुर्य्यात्कल्कप्रिभश्चापि पथ्यानां वमनानि च ॥७॥

जिसप्रकार मनुष्योंका शुक्र वातादि दोषोंसे दूषित होता है, उसीप्रकार स्त्रियोंका आर्त्तव भी उपर्युक्त वातादि दोषोंसे दूषित होता है । उसमें उपरोक्त कुणप ग्रन्थि आदि सब लक्षण यथादोषानुसार होते हैं। शुक्रदोषको दूर करनेके लिये उत्तरबस्तिका उत्तम प्रकारसे प्रयोग करे और स्त्रियोंके आर्त्तवकी शुद्धिके लिये उत्तरबस्ति पर्य्यन्त समस्त विधि करनी चाहिये । स्नेहन, वमन, विरेचनादिसे युक्त स्त्रियोंके वात, पित्त, कफ और रुधिर इन चार प्रकारके आर्तवकी पीडामें वातादि दोषोंको हरने-

वाले द्रव्योंके कल्क, क्काथ और पिचुके द्वारा क्रमसे योनिको प्रक्षालन करे तथा वातादिनाशक क्काथ, कल्कसे घृतको सिद्ध करके निरूहबस्ति, अनुवासन-बस्ति आदिका प्रयोग करे । एवं स्नेह, वमन, विरेचनादि युक्त, उत्तरबस्ति देवे ॥ ६ ॥ ७ ॥

ग्रन्थिभूते पिबेत्पाठां त्र्यूषणं वृक्ष-काणि च ।

ग्रन्थिके समान आर्त्तवमें पाढ,त्रिकुटा और कुड़ेकी छाल इनका क्वाथ बनाकर पान करे ।

दुर्गन्धे पूयसंकाशे मज्जातुल्ये तथा-र्त्तवे ॥ ८ ॥ पिबेद्भद्रश्रियः क्काथं च-न्दनक्काथमेव च । शुक्रदोषहराणाञ्च यथास्वमद्धारणम् ॥ ९ ॥

दुर्गंधित, राधके समान और मज्जाके तुल्य आर्त्तवमें चन्दन और लालचन्दनका क्काथ बनाकर पीवे । विशेष करके वातादि दोषोंसे दूषित आर्त्तवमें पूर्वोक्त वातादिदोषदूषितशुक्रके समान यत्न करें ॥ ८ ॥९॥

वाजीकरणप्रयोग ।

योगैः समस्तैः सघृतैस्तैले पूपालिकां पचेत् । तां भक्षयित्वा पीत्वाऽनु-शर्करामधुना पयः । नरश्चटकवद्गच्छे-च्छतवारं निरन्तरम् ॥ १० ॥

पुष्टिकारक औषधियोंका चूर्ण करके अथवा पीपल, उड़द, शालिचावल आदिद्रव्योंका चूर्ण करके खूब बारीक वस्त्रमें छान लेवे । फिर उस चूर्णको पानीमें सानकर उसकी पूरी बनाकर घृत अथवा तेलमें पकावे उन पूरियोंको खाकर ऊपरसे मिश्री और शहद मिला दूध पीवे । इससे मनुष्य निरंतर चिडेके समान सौवार स्त्रियोंमें गमन करता है ॥ १० ॥

चूर्णं विदार्य्याः सुकृतं स्वरसेनैव भावितम् । सर्पिः क्षौद्रयुतं लीढ्वा दश गच्छेन्नरोऽङ्गनाः ॥ ११ ॥

विदारीकंदके चूर्णको विदारीकंदके स्वरसमें भावना देकर घी और शहदमें मिलाकर सेवन करनेसे मनुष्य दश स्त्रियोंमें गमन करता है ॥ ११ ॥

एवमामलकञ्चूर्णं स्वरसेनैव भावितम् । शर्करामधुसर्पिर्भ्यां युक्तं लीढ्वा पयः पिबेत् । एतेनाशीतिवर्षोऽपि युवेव परिहृष्यते ॥ १२ ॥

इसीप्रकार आमलोंके चूर्णको आमलोंके रसमें भावना देकर मिश्री,शहद और घीमें मिलाकर खाय और ऊपरसे दूध पीवे। इससे अस्सीवर्षका वृद्ध मनुष्य भी युवाके समान स्त्रियोंमें रमण करता है १२॥

विदारीकन्दकल्कञ्च घृतेन पयसा नरः । उदुम्बरसमं खादेद् वृद्धोऽपि तरुणायते ॥१३ ॥

विदारीकन्दका कल्क बनाकर उसको एक तोला परिमाण घृत और दूधके साथ सेवन करनेसे वृद्ध मनुष्य भी तरुणके समान आचरण करता है॥१३॥

अश्वत्थफलशुङ्गाग्रमूलं त्वग्भिः शृतं पयः । पीत्वा सशर्करञ्चैव वृद्धोऽपि तरुणायते ॥ १४ ॥

पीपलवृक्षके फल, अंकुर,मूल और छालको दूधमें औटाकर उसमें मिश्री डालकर पान करनेसे वृद्धमनुष्य भी तरुणके समान आचरण करता है ॥ १४ ॥

स्वयंगुप्ताखसखसयोर्बीजचूर्णं सशर्करम् । धारोष्णेन नरः पीत्वा पयसा न क्षयं व्रजेत् ॥ १५ ॥

कौंछके बीज और खसखसके बीजोंके चूर्णको धारोष्णदूधके साथ मिश्री मिलाकर पान करनेसे कदापि वीर्य्यक्षय नहीं होता ॥ १५ ॥

माषाणां पलमेकन्तु संयुक्तं मधुसर्पिषा । तं लीढ्वानुपिबेत् क्षीरं तेन वाजी भवेन्नरः ॥ १६॥

उड़दोंका चूर्ण तोलाभर लेकर शहद और घीमें मिलाकर सेवन करे और ऊपरसे दूधका अनुपान करे तो उत्तम वाजीकरण होता है ॥ १६ ॥

कर्षं मधुकचूर्णन्तु घृतक्षौद्रसमन्वितम् । पयोऽनुपानं यो लिह्यात्स गच्छेद्दश चाङ्गनाः ॥ १७ ॥

सुलैठीके चूर्णको १ तोला परिमाण लेकर शहद और घीमें मिलाकर सेवन करे और ऊपरसे दूध पीवे तो दश स्त्रियोंमें गमन करनेकी सामर्थ्य उत्पन्न होती है ॥ १७ ॥

गृष्टीनां वृद्धवत्सानां माषवर्णभृतां गवाम् । यत्क्षीरं तत्प्रशंसन्ति बलकामेषु जन्तुषु ॥ १८ ॥

एकबार व्याईहुई, जिसका वछडा बडा हो और जो उड़दोंके रंगके समान काली हो ऐसी गायका दूध पुरुषोंके बल और कामशक्तिके बढानेमें अत्यंत श्रेष्ठ है ॥ १८ ॥

पूपालिका ।

शर्करायास्तुलैकं स्यादेकं गव्यस्य सर्पिषा । पक्त्वा पूपालिकां खादेद्बह्व्यः स्युर्यस्य योषितः ॥ १९ ॥

उत्तममिश्री १ तुलापरिमाण और गायका घी १ तुलापरिमाण लेवे । इनमें उड़दोंका चूर्ण अथवा अन्यान्य पुष्टिकारक औषधियोंका चूर्ण मिलाकर पूरी बनावे । अथवा केवल मिश्री और घृतकी पूरी बनावे । यह पूरी वह मनुष्य खाय जिसके घरमें १०० स्त्रियें हों ॥ १९ ॥

रसाला ।

दध्नोऽर्धाढकमीषदम्लमधुरं खण्डस्य चन्द्रद्युतेः प्रस्थं क्षौद्रपलं पलश्च हविषः शुण्ठ्याश्चतुर्माषकम् ॥ अक्षार्धं मरिचाद्विडङ्गत इह द्वौ माषकावेकतः कृत्वा शुक्लपटाच्छनैः करतलेनोन्मथ्य विस्रावयेत् ॥ २० ॥ मृद्भाण्डे मृगनाभिचन्दनरसस्पृष्टेऽगुरौ धूपिते । कर्पूरेण सुगन्धितां तदखिलां संलोड्य संस्थापयेत् ॥ यः पीतो मधुरस्वरेण सुरसा सेयं रसाला तथा । ख्याता मन्मथदीपनी सुखकरी कान्तेव नित्यं प्रिया ॥ २१ ॥

किंचित् अम्ल और मधुर ऐसा उत्तम दही अर्ध आढकपरिमाण, चन्द्रमाकी कांतिके समान उज्ज्वल खाँड१प्रस्थ, शहद४तोले, घृत४तोले, सोंठका चूर्ण४ मासे,कालीमिरच६मासे और वायविडंग२मासे लेवे । इन सबको एकत्र मिलाकर एक उत्तम सफेद वस्त्रमें अच्छे प्रकारसे मथकर छान लेवे । फिर उसको कपूरके द्वारा सुवासित करके और अच्छेप्रकार आलोडन करके कस्तूरी और चंदनसे लिप्त तथा अगरसे धूपित किये हुए मिट्टीके पात्रमें भरकर रखदेवे । जो मनुष्य मधुरस्वरसे धीरे धीरे इस सुरस रसालेको पान करता है, उसके कामोद्दीपन होता है और सुख करता है । इस लिए यह रसाला इसको स्त्रीके समान नित्यप्रिय होता है ॥ २० ॥ २१ ॥

बृहदश्वगन्धाद्यघृत ।

शुभेऽह्नि देशसंभूतं पलशतं सम्यगश्वगन्धायाः । पुण्येऽहनि संक्षुण्णं द्रोणेऽम्भसि पचेत् सुविद्वान् ॥ २२ ॥ ज्ञात्वाष्टभागशेषं गृह्णीयात्तद्रसं सुपरिपूतम् । द्वे चैवात्र पलशते दद्याच्छागस्य शुद्धमांसस्य ॥ २३ ॥ सर्पिः प्रस्थमथैकं मेध्यं गोपयश्चतुर्गुणं दद्यात् । कल्कानक्षसमांशानूर्ध्वमतः संप्रवक्ष्यामि ॥ २४ ॥ काकोली द्वे मृद्वी द्वे मेदे जीवकं स्वयंगुताम् । ऋषभकमेलां मधुकं मृद्वीकां शूर्पपर्णीश्च ॥ २५ ॥ जीवन्तीं सोपकुल्यां बलां विदारीं शतावरीश्चापि । दत्त्वा सम्यग्विपचेत्सर्पिरथोद्धृत्य पीत्वा च ॥ २६ ॥ मधुशर्करयोः कुडवं दत्त्वा भाण्डे स्थितं मृदितम् । लीढ्वा तत्पाणितलं यथेष्टाहारमश्नीयात् ॥ २७ ॥ क्षीणक्षताशिशुवृद्धाः क्षीणेंद्रिया हीनमांसाश्च । प्राश्य प्राप्नुयुः सद्यो पुष्टिबलारोग्यतेजांसि ॥ २८ ॥ उपयुज्य सर्पिरेतत्सप्ततिवर्षोऽपि युवेव सो भूत्वा । बहुशः स्त्रियोऽभिगच्छेत् न चात्र शुक्रक्षयं लभते ॥ २९ ॥ पुत्रार्थिनी च नारी लभते पुत्रान् वयस्यतीतेऽपि । वंध्यापि लभते पुत्रं प्रयोगादश्वगन्धायाः॥३०॥

उपयुक्ते यः पुरुषस्त्रिमासं सार्धमासं वा । नारीशतं स गच्छेन्नैव भजेद्योषितां तृप्तिम् ॥ खालित्यवलीपलितैर्न चास्य देहोऽभिभूयते क्षिप्रम् ॥३१॥ वातव्याधिभिरार्त्तास्तथैव हृद्वस्तिशूलार्त्ताः । भुञ्जानाः सर्पिरिदं नरा निरोगा भवन्तीह ॥ ३२ ॥ एवं जगद्धितार्थं सर्पिरिदं वाजिगन्धायाः । श्रेष्ठं वाजीकरणं निर्दिष्टं पूर्वमश्विभ्याम् ॥ ३३ ॥

उत्तम देशमें उत्पन्न हुई और शुभ दिनमें उखाड़ी हुई असगंधको सौ पल लेकर शुभदिनमें कूटकर एक द्रोण जलमें पकावे । जब पकते पकते जल आठवां भाग बाकी रहे तब उतार कर छान लेवे । फिर इस क्काथमें बकरेका शुद्ध मांस २०० पल, गायका उत्तम घृत १ प्रस्थ, गायका दूध ४ प्रस्थ तथा काकोली, क्षीरकाकोली, दाख, मेदा महामेदा, जीवक, कौंछ, ऋषभक, इलायची, मुलैठी, कालीदाख, हस्तिकर्ण, पलाश, जीवंती, पीपल, खिरैंटी, विदारीकंद और शतावर इन प्रत्येक औषधियोंका कल्क एक २ तोला इन सबको यथाविधिसे मिलाकर अच्छेप्रकारसे घृतको पकावे । जब स्वयं शीतल होजाय तब इसमें शहद और मिश्री एक एक कुडव परिमाण मिलाकर एक चिकनेमिट्टीके बासनमें भरकर रख देवे । प्रतिदिन इसमेंसे एक तोला परिमाण लेकर खाय और इसके ऊपर यथेष्ट आहार करे । यह अश्वगन्धाघृत-क्षीण, क्षत, बालक, वृद्ध, क्षीणेन्द्रिय और हीनमांसवाले मनुष्योंके तत्काल पुष्टि, बल, पराक्रम और आरोग्यताको करता है । इस घृतको सेवन करनेसे सत्तर वर्षका वृद्ध भी युवाके समान होजाता है तथा बहुतसी स्त्रियोंमें गमन करनेकी शक्ति उत्पन्न होती है और कदापि वीर्य्यक्षय नहीं होता । पुत्रकी इच्छा करने वाली स्त्री अवस्था बीतजानेपर भी पुत्रोंको उत्पन्न करती है । इस अश्वगंधाघृतका प्रयोग करनेसे वंध्यास्त्री भी पुत्रको उत्पन्न करती है । जो मनुष्य इस उत्तम औषधिको डेढ़ महीने पर्य्यंत अथवा तीनमहीनेतक सेवन करता है वह सौ स्त्रियोंमें गमन करता है और कदापि उसको स्त्रियोंसे तृप्ति नहीं होती तथा खालित्य बली और पलितादि रोगोंसे कभी पीडित नहीं होता । तथा वात रोगसे पीडित एवं हृदयशूल और वस्तिशूलवाले रोगी इसको सेवन करनेसे शीघ्र निरोगी हो जाते हैं। इस श्रेष्ठ वाजीकरण अश्वगंधाघृतको जगत्के हितके लिये पूर्वकालमें अश्विनीकुमारोंने निर्माण किया है ॥ २२-३३ ॥

अश्वगन्धादि घृत ।

अश्वगन्धाप्रस्थमेकं दुग्धश्चैवाढकं द्वयम् । घृतप्रस्थमिदं दद्याच्छनैर्मृद्वाग्निना पचेत् ॥ ३४ ॥ त्रिकटुकं चतुर्जातं विडङ्गं जातिपत्रकम् । बला चातिबला चैव श्वदंष्ट्रा वृद्धदारुकम् ॥३५॥ पलैकश्च प्रदातव्यं लोहं वङ्गं तथाभ्रकम् । प्रस्थार्द्धं माक्षिकं दद्यात्प्रस्थार्धं शर्करा शुभा ॥ ३६ ॥ सर्वमेतद्विनिःक्षिप्य स्निग्धे भाण्डे निधापयेत् । द्वौ कालौ भक्षयेन्नित्यं समीक्ष्याग्निबलं यथा ॥ ३७ ॥ अर्धं वातं हनुस्तम्भं मन्यास्तम्भं कटिग्रहम् । शोषसन्धिगतं वातमास्थिभंगश्च गृध्रसीम् ॥ ३८ ॥ अग्निदोषश्च त्वग्दोषं पाददोषं तथैव च । गर्भप्रसवजान्दोषानामगर्भस्रवाश्च यत ॥३९॥ पाण्डुत्वमामवातश्च शुक्रदोषश्च षण्ढताम् । सर्ववातान्निहन्त्येतद्यथा सिंहो गजानिव ॥ अश्वगन्धादिविख्यातं सर्ववातरुजापहम् ॥ ४० ॥

असगंध १ प्रस्थ, दूध २ आढक परिमाण और उत्तम गायका घी १ प्रस्थ इन सबको एकत्र करके मन्द मन्द अग्निसे धीरे धीरे घृतको पकावे । पश्चात् इसमें त्रिकुटा, चातुर्जातक, वायविडंग, जावित्री, खिरैंटी, कंघी, गोखरू और विधारा इन प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले तथा लोहा, वंग और अभ्रक ये प्रत्येक चार २ तोले, शहद ३२ तोले और उत्तम मिश्री ३२ तोले डालकर उतार लेवे । इसको एक उत्तम चिकने बासनमें भरकर रखदेवे । अग्निका बलाबल विचारकर इसको प्रतिदिन प्रातःकाल और

संध्याके समय सेवन करे। यह अश्वगंधाघृत आर्दितवात, वात, हनुस्तम्भ, मन्यास्तम्भ, कटिग्रह, शोष, सन्धिगतवात, अस्थिभंग, गृध्रसी, अग्निदोष, त्वचाके विकार, पाददोष, गर्भजनितदोष, प्रसवके समयके विकार, गर्भस्राव, पांडुता, आमवात, शुक्रदोष, नपुंसकता और सर्वप्रकारके वातविकारोंको इस प्रकार दूर करता है, जिस प्रकार सिंह हस्तियोंके समूहको नष्ट करदेता है। यह अश्वगंधादि इस नामसे प्रसिद्ध है और सर्वप्रकारके वातरोगोंको नष्ट करनेवाला है॥ ३४-४० ॥

शतावरीघृत।

घृतं शतावरीगर्भं क्षीरे दशगुणे शृतम्। रेतःशुद्धिकरं तच्च शस्तं चाप्यार्त्तवार्त्तिषु ॥ ४१ ॥

शतावरके कल्कको दशगुने दूधमें डालकर घृतको पकावे। यह शतावरीघृत-वीर्य्यको शुद्ध करनेवाला और आर्त्तव आदिकी पीडामें हितकारी है ॥ ४१ ॥

वाजीकरण विधान।

यद्द्रव्यं पुरुषं कुर्य्याद्वाजीव सुरतक्षमम्। तद्वाजीकरमाख्यातं मुनिभिर्भिषजांवरैः॥ ॥ ४२ ॥

जो द्रव्य पुरुषको घोडेके समान मैथुन करनेकी शक्तिको देवे, उसको वाजीकरण कहते हैं ॥ ४२ ॥

नपुंसकत्वकथन।

क्लीबः स्यात्सुरताशक्तस्तद्भावः क्लैब्यमुच्यते। तच्च सप्तविधं प्रोक्तं निदानं तस्य कथ्यते ॥ ४३ ॥

जो पुरुष स्त्रीके साथ मैथुन करनेमें असमर्थ हो अर्थात् मैथुनके समय जिसका लिंग नहीं उठे, उसको क्लीब (नपुंसक) कहते हैं। उस क्लीबतायुक्तको क्लैब्य कहते हैं वह क्लीब सातप्रकारका है। अब उसका पृथक् २ निदान कहते हैं ॥ ४३ ॥

तैस्तैर्भावैरहृद्यैस्तु रिरंसोर्मनसि क्षते। ध्वजः पतत्यतो नॄणां क्लैब्यं समुपजायते।

कामी पुरुषके चित्तको अप्रिय लगनेवाले भय, शोक, क्रोधादिकारणोंके द्वारा मनमें क्षोभ होनेसे लिंग शिथिल होजाता है अर्थात् उठता नहीं तब मैथुन करनेकी शक्ति नहीं रहती, उसको नपुंसक कहते हैं।

द्वेष्यस्त्रीसंप्रयोगाच्च क्लैब्यं तन्मानसं स्मृतम् ॥ ४४ ॥

जो मनुष्य स्त्रीप्रसंगसे द्वेष करे अर्थात् जिसको विषयवासना बुरी लगे उसको मानसक्लीब कहते हैं ॥ ४४ ॥

अन्नैरम्लोष्णलवणैरतिमात्रेण सेवितैः। सौम्यधातुक्षयो दृष्टः क्लैब्यं तस्मात्प्रजायते ॥ ४५ ॥

खट्टे, गरम और नमकीन खार आदि अन्नोंको अधिक सेवन करनेसे पित्त अतिशय बढकर सोमधातुका क्षय करदेता है तब वह मनुष्य नपुंसक होजाता है उसको पित्तजनपुंसक कहते हैं ॥ ४५ ॥

अतिव्यवायशीलो यो न च वाजीक्रियारतः। ध्वजभङ्गमवाप्नोति स शुक्रक्षयहेतुकम् ॥ ४६ ॥

जो मनुष्य अधिकतर मैथुन करता है और वाजीकरण पदार्थोंको सेवन नहीं करता, उनके अधिकशुक्र क्षय होनेके कारण जो नपुंसकता होती है, उसको ध्वजभंग नपुंसक कहते हैं ॥ ४६ ॥

महता मेढ्ररोगेण चतुर्थी क्लीबता भवेत्। वीर्य्यवाहिशिराछेदात् मेहनानुन्नतिर्भवेत् ॥ ४७ ॥

बहुत बडे लिंगके होनेके कारण जो क्लीबता होती है, उसको चौथा नपुंसक कहते हैं और वीर्यवाहिनी नसोंके कटजानेसे जो लिंगकी चैतन्यता नष्ट होजाती है अर्थात् खडा नहीं होता उसको पंचम क्लीब कहते हैं ॥ ४७ ॥

बलिनः क्षुब्धमनसो निरोधाद् ब्रह्मचर्य्यतः। षष्ठं क्लैब्यं स्मृतं तत्तु शुक्रस्तम्भनिमित्तकम् ॥ ४८ ॥

बलवान् पुरुषके मनके क्षुब्ध होनेसे या मैथुन करनेके वेगको रोकनेसे अथवा शुक्रको स्तम्भन करनेके लिए ब्रह्मचर्य धारण करनेसे वीर्य्यके रुकनेके कारण जो नपुंसकता होती है उसको षष्ठ क्लीब कहते हैं ॥ ४८ ॥

जन्मप्रभृति यत् क्लैब्यं सहजं तद्धि सप्तमम् ॥४९॥

जो जन्मसे ही नपुंसक होता है उसको सप्तम सहज क्लीब कहते हैं ॥ ४९ ॥

असाध्यं सहजं क्लैब्यं मर्म्मच्छेदाच्च यद्भवेत् । साध्यानामवशिष्टानां कार्यो वाजीकरो विधिः ॥ ५० ॥

इन सब नपुंसकोंमें सहज और मर्म्मच्छेदी ये दो असाध्य हैं, बाकी सब साध्य हैं । इस कारण पूर्वोक्त दोनोंको त्यागकर शेष साध्योंकी वाजीकरण विधिसे चिकित्सा करे ॥ ५० ॥

नरो वाजीकरान्धत्ते सम्यक्छुद्धो निरामयः । आसप्तातिं प्रकुर्वीत वर्षादूर्ध्वन्तु षोडशात् ॥ ५१ ॥ न तु वै षोडशादर्वाक् सप्तत्याः परतो न च । आयुष्कामो नरः स्त्रीभिः संयोगं कर्तुमर्हति ॥ ५२ ॥

जो निरोगी मनुष्य उत्तम प्रकारसे शुद्ध होकर वाजीकरण औषधियोंको सेवन करता है उसको १६ वर्षसे लेकर ७० वर्षकी अवस्था पर्य्यंत विधिपूर्वक स्त्रीप्रसंग करना चाहिये । आयुकी कामना करनेवाले मनुष्यको सोलह वर्षकी अवस्थासे कम और सत्तर वर्षकी अवस्थासे ऊपर कदापि स्त्रीप्रसंग नहीं करना चाहिए ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

शुष्कं रूक्षं तथा काष्ठं जन्तुकीटविजर्जरम् । धृतमाशु विशीर्येत तथा वृद्धः स्त्रियं व्रजन् ॥ ५३ ॥

जिसप्रकार कीडे मकोडे आदिकोंके खानेसे जर्जर हुआ, या घुना, पुराना और रूखा सूखा काठका टुकडा पृथिवीपर डालनेसे तत्काल खण्ड खण्ड हो जाता है उसी प्रकार वृद्ध मनुष्य स्त्रीमें गमन करने पर तत्काल शिथिल होकर विशीर्ण होजाताहै॥५३॥

शोथकासज्वरार्शांसि स्वरकार्श्यातिपांडुताः । अतिव्यवायाज्जायन्ते रोगाश्च क्षयकादयः ॥ ५४ ॥

अत्यंत मैथुन करनेसे शोथ, खांसी, ज्वर, बवासीर, स्वरभंग, कृशता, पाण्डुता और क्षयादिकरोग उत्पन्न होते हैं ॥ ५४ ॥

आयुष्मन्तो मन्दजरा वपुर्वर्णबलान्विताः । स्थिरोपचितमांसाश्च भवन्ति स्त्रीषु संयताः ॥ ५५ ॥ त्रिभिस्त्रिभिरहोभिश्च सेवेत प्रमदां नरः । सर्वर्त्तुषु नरो ग्रीष्मे पक्षाद्योषां भजेद् बुधः ॥ ५६ ॥

आयुष्मान्, जरासे रहित, सुन्दर शरीर और सुन्दर वर्णवाले, बलवान्, तथा स्थिर और हृष्टपुष्ट मनुष्य स्त्रीप्रसंगमें श्रेष्ठ होते हैं ऐसे मनुष्योंको प्रत्येक ऋतुमें तीन २ दिनके पश्चात् और ग्रीष्मऋतुमें पन्द्रह दिनके बाद स्त्रीसेवन करना चाहिये ॥ ५५ ॥ ५६॥

ग्लानिः श्रमश्च दौर्बल्यं धात्विन्द्रियबलक्षयः । क्षयवृद्ध्युपदंशाद्या रोगाश्चातीव दुर्जयाः ॥ अकालमरणञ्च स्याद्व्रजतः स्त्रियमन्यथा ॥ ५७ ॥

जो इस ऊपरलिखे क्रमको उल्लंघन करके अन्यप्रकारसे स्त्रीप्रसंग करते हैं, उनके ग्लानि, श्रम, दुर्बलता, धातु और इन्द्रियोंके बलका नाश, क्षय, अण्डवृद्धि और अन्यान्य उपदंशादिक दुर्जयरोग, एवं अकालमरण प्रभृति अनेक घोर उपद्रव निश्चय ही प्राप्त होते हैं ॥ ५७ ॥

रजस्वलामकामाञ्च मलिनामप्रियामपि । वर्णवृद्धां वयोवृद्धां तथा व्याधिप्रपीडिताम् ॥ ५८ ॥ हीनांगीं गर्भिणीं द्वेष्यां योनिदोषसमन्विताम् । स्वगोत्रां गुरुपत्नीं च तथा प्रव्रजतामपि ॥ सन्ध्ययोः पर्वकाले च नोपेयात्प्रमदां नरः ॥ ५९ ॥

रजस्वला, अकामा (जिसको मैथुनकी इच्छा नहीं हो), मलिन अंगवाली, अप्रिय, जो अपनेसे जातिमें बडी हो, अवस्थामें बडी, रोगोंसे पीडित, हीन अंगवाली, गर्भिणी, शत्रुकी स्त्री अथवा शत्रुता करनेवाली स्त्री, योनिके दोषोंसे पीडित अर्थात् योनिरोगवाली, अपने गोत्रमें उत्पन्न हुई, गुरुकी स्त्री और परिव्राजककी स्त्री (बैरागिन या संन्यासिनी) इनके साथ हितकी इच्छा करनेवाला मनुष्य कदापि मैथुन नहीं करे । तथा दोनों संध्या और पर्वके समय भी स्त्रीप्रसंग नहीं करना चाहिये ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

रजस्वलां गतवतो नरस्यासंयतात्मनः। दृष्टयायुस्तेजसां हानिरधर्म्मश्च ततो भवेत् ॥ ६० ॥

रजस्वलास्त्रीके साथ प्रसंग करनेमें दृष्टि, आयु, तेजकी हानि होती है और महापाप होता है इस कारण कदापि रजस्वलाके साथ प्रसंग नहीं करना चाहिये ॥ ६० ॥

लिङ्गिनीं गुरुपत्नीश्च स्वगोत्रामथ पर्वसु। वृद्धां वा सन्ध्ययोश्चापि गच्छेज्जीवितसंक्षयम् ॥ ६१ ॥

परिव्राजककी स्त्री, वैरागिन या संन्यासिनी, गुरुकी स्त्री, अपने गोत्रकी और वृद्धा स्त्री इनके साथ प्रसंगकरनेसे तथा पर्वके दिन और संध्याओंमें मैथुन करनेसे जीवन नष्ट होता है ॥ ६१ ॥

वयोरूपगुणोपेतां तुल्यशीलकुलोद्भवाम्। अभिकामोऽभिकामाख्यां हृष्टो हृष्टामलंकृताम्॥ सेवेत प्रमदां नित्यं वाजीकरणसेवनः॥ ६२ ॥

समान अवस्था, समान रूप, समान गुण और समान स्वभाववाली, तथा समान कुलमें उत्पन्न हुई, स्वयं रमण करनेकी इच्छावाली, प्रसन्नचित्त और आभूषणादिके द्वारा अच्छे प्रकारसे अपने शरीरको अलंकृत करनेवाली स्त्रीको वाजीकरण औषधियोंको सेवन करनेवाला, रमण करनेकी इच्छावाला और प्रसन्नचित्त मनुष्य युक्तिपूर्वक सेवन करे ॥ ६२ ॥

स्नानं सशर्करं क्षीरं मांसभोक्ष्याणि गौडकाः। सुजलं स्वप्नसेवा च व्यवायान्ते हितानि तु ॥ ६३ ॥

स्नान, मिश्रीमिला दूध, अनेक प्रकारके मांसके भोजन, अनेकप्रकारके मिष्टान्न और पक्वान्न अथवा गुडके बने पदार्थ, शीतल जल और निद्रा ये सब मैथुनके अंतमें हितकारी हैं ॥ ६३ ॥

स्त्रीष्वक्षयं मृगयतां वृद्धानां च रिरंसताम्। क्लीबानामल्पशुक्राणां योगा वाजीकरा हिताः ॥ ६४ ॥

जो अत्यन्त स्त्रीप्रसंग करनेमें क्षयको प्राप्त हो गये हैं अथवा जो वृद्ध होनेपर भी स्त्रियोंको भोगनेकी इच्छा करते हैं तथा नपुंसक और अल्पशुक्रवाले पुरुष इनको वाजीकरण औषधि अत्यंत हितकारी है ॥ ६४ ॥

इक्षुरगोक्षुरकाः शतमूली वानरिनागबलातिबला च। चूर्णमिदं पयसा निशि पेयं यस्य गृहे प्रमदाशतमस्ति ॥ ६५ ॥

तालमखाना, गोखुरु, शतावर, कौंछके बीज, गंगेरन, कंघी और खिरैटी इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण करके रात्रिके समय दूधके साथ वह मनुष्य पीवे जिसके घरमें सौ स्त्री हों ॥ ६५ ॥

माक्षीकधातुमधुपारदलोहचूर्णं पथ्याशिलाजतुविडङ्गघृतानि लिह्यात्। एकाधिविंशतिमहानि गदार्दितोऽपि चाशीति कोऽपि रमयेत्प्रबलो युवेव ॥ ६६ ॥

सोनामाखी, शहद, पारेकी भस्म, रससिन्दूर या चन्द्रोदय, लोहचूर्ण, हरड, शिलाजीत, वायविडंग और घी इन सबको एकत्र मिलाकर २१ दिनतक सेवन करनेसे व्याधियोंसे पीडित अस्सी वर्षका वृद्ध भी प्रबल युवाके समान रमण करसकता है ॥ ६६ ॥

गवां विरूढवत्सानां सिद्धं पयसि पायसम्। गोधूमैस्तत्सिताक्षौद्रसर्पिर्मिश्रं सुशीतलम्। भुक्त्वा वाप्यतिजीर्णोऽपि दशदारा व्रजत्यपि॥ ६७॥

जिसका बछडा बडा हो ऐसी गायके दूधमें गेहूँका सत्व डालकर खीर पकावे। फिर उसमें शीतल होजानेपर मिश्री, शहद, और घृत मिलाकर सेवन करनेसे अत्यन्त वृद्ध मनुष्य भी दश स्त्रियोंमें गमन करता है ॥ ६७ ॥

पिप्पलीलवणापेतौ बस्ताण्डौ क्षीरसर्पिषा। साधितौ भक्षयेद्यस्तु स गच्छेत्प्रमदाशतम् ॥ ६८ ॥

बकरेके आंडोंको दूध और घृतमें पकाकर पश्चात् पीपलका चूर्ण और कुछ थोडासा सैंधानमक डालकर

सेवन करे तो सौ स्त्रियोंमें गमन करनेकी सामर्थ्य उत्पन्न होती है ॥ ६८ ॥

बस्ताण्डसिद्धे पयसि भावितानसकृत्तिलान् । यः खादेत्स नरो गच्छेत्स्त्रीणां शतमपूर्ववत् ॥ ६९ ॥

बकरेके आंडोंको दूधमें पकाकर पश्चात् उस दूधमें अनेकबार तिलोंको भावना देकर भक्षण करनेसे मनुष्य सौ स्त्रियोंमें गमन करता है ॥ ६९ ॥

कुलीरकूर्म्मनक्राणामण्डान्येवं हि भक्षयेत् ॥ ७० ॥

इसीप्रकार कुलीर (केकडा), कूर्म्म (कछुवा) और नक्र (नाका) के अंडोंको दूधमें पकाकर सेवन करनेसे भी उपर्युक्त गुण होता है ॥ ७० ॥

उच्चटाचूर्णमप्येवं क्षीरेणोत्तममुच्यते । शतावर्य्युच्चटाचूर्णं पेयमेव सुखांबुना ॥ ७१ ॥

दूधके साथ उच्चटाके चूर्णको सेवन करना अथवा शतावरी और उच्चटाके चूर्णको मन्दोष्ण पानीके साथ खाना चाहिये ॥ ७१ ॥

घृतलिप्तं माषाविदलं दुग्धे सिद्धं सिताज्यसंयुक्तम् । भुक्तं तदेव कुरुते शक्तिं रमणस्य शतयोषाम् ॥ ७२ ॥

उडदोंकी पीठीको घीमें भूनकर दूधमें पकावे । फिर उसमें मिश्री और घृत डालकर सेवन करे तो सौ स्त्रियोंके साथ रमण करनेकी शक्ति उत्पन्न होती है ॥ ७२ ॥

त्रिकण्टकात्मगुप्तानां बीजचूर्णं सशर्करम् । क्षीरेण यः पिबेन्नच्छेद्दशवारं निरन्तरम् ॥ ७३ ॥

गोखरू और कौंछके बीजोंका चूर्ण करके मिश्री मिलाकर दूधके साथ सेवन करनेसे निरंतर दशबार स्त्रियोंमें गमन करनेकी शक्ति उत्पन्न होती है ॥ ७३ ॥

शतावरीघृत ।

घृतं शतावरीगर्भं क्षीरे दशगुणे पचेत् । शर्करापिप्पलीक्षौद्रयुक्तं तद् वृष्यमुच्यते ॥ ७४ ॥

शतावरके कल्कको दशगुने दूधमें डालकर उसके साथ घृतको पकावे । फिर उसमें मिश्री, पीपलका चूर्ण और शहद मिलाकर सेवन करे तो अत्यंत रमण करनेकी सामर्थ्य उत्पन्न होती है ॥ ७४ ॥

माषघृत ।

माषाणामात्मगुप्तानां बीजानामाढकत्रयम् । जीवकर्षभकौ मेदे वीरा वृद्धी शतावरी ॥ ७५ ॥ मधुकं चाश्वगन्धा च साधयेत् कुडवोन्मितम् । तमेवास्मिन्घृतप्रस्थे द्रव्याद्दशगुणं पयः ॥ ७६ ॥ विदारिणो दशप्रस्थं प्रस्थमिक्षुरकस्य च । दत्त्वा मृद्वग्निना साध्यं सिद्धं सर्पिर्निधापयेत् ॥ ७७ ॥ शर्करायास्तु गोक्षीर्य्याः क्षौद्रस्य च पृथक् पृथक् । भागांश्चतुष्पलांश्चात्र पिप्पल्याश्च द्वयं पलम् ॥ ७८ ॥ पलंपूर्वमतो लीढ्वा ततोऽन्नमुपयोजयेत् । यदीच्छेदक्षयं शुक्रं शेफसश्चोत्तमं बलम् ॥ ७९ ॥

उडद और कौंछके बीज तीन आढक परिमाण, जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, वृद्धि, शतावर, मुलैठी और असगंध ये प्रत्येक औषधि एक एक कुडव परिमाण लेकर सबको अठगुने जलमें पकावे । जब पकते पकते जल चौथाई भाग बाकी रहजाय तब उतार कर छान लेवे । फिर उस काथमें घृत १ प्रस्थ, द्रव्योंसे दशगुना दूध, विदारीकंदका स्वरस १० प्रस्थ और ईखका रस १ प्रस्थ इन सबको एकत्र करके मंद मंद अग्निसे पकावे । जब घृत सिद्ध होजाय तब उसमें मिश्री, वंशलोचन और शहद ये प्रत्येक सोलह सोलह तोले और पीपलका चूर्ण आठतोले डालदेवे । प्रथम चार तोला परिमाण लेकर खाय और ऊपरसे भात खाय । इससे वीर्य्यकी अपार वृद्धि होती है और लिंगमें अपूर्व बल उत्पन्न होताहै ॥ ७५-७९ ॥

गोधूमाद्यघृत ।

गोधूमाच्च पलशतं निःक्वाथ्य सलिलाढके । पादावशेषे पूते च द्रव्या-

णीमानि दापयेत् ॥ ८० ॥ गोधूमं युञ्जातफलं माषद्राक्षापरूषकम् । काकोली क्षीरकाकोली विदारी च शतावरी ॥ ८१ ॥ अश्वगन्धा सखर्जूरा मधुकं त्र्यूषणं सिता । भल्लातकं चात्मगुप्ता समभागानि कारयेत् ॥ ८२ ॥ घृतप्रस्थं पचेदेवं क्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम् । मृद्वग्निनाथ सिद्धेऽस्मिन् द्रव्याण्येतानि निक्षिपेत् ॥ ८३ ॥ त्वगेला पिप्पली धान्यं कर्पूरं नागकेशरम् । यथालाभं विनिक्षिप्य सिताक्षौद्रपलाष्टकम् ॥ ८४ ॥ दत्त्वेक्षुखण्डमालोड्य विधिवद्विनियोजयेत् । शाल्योदनेन भुञ्जीत पिबेन्मांसरसेन वा ॥ ८५ ॥ केवलं वा पिबेदस्य पलमात्रं प्रयत्नतः । न तस्य लिङ्गशैथिल्यं न च शुक्रक्षयो भवेत् ॥ ८६ ॥ बल्यं परं वातहरं शुक्रसंजननं परम् । परमोजस्करश्चैव पुष्टिवर्णबलप्रदम् ॥ ८७ ॥ वातपित्तहरं वृष्यं पित्तगुल्महरं परम् । मूत्रकृच्छ्रप्रशमनं वृद्धानां चापि शस्यते ॥ ८८ ॥ पलद्वयं तदाश्नीयाद्दशरात्रमतन्द्रितः । स्त्रीणां शतं च भजते पीत्वा ह्यनुपिबेत्पयः ॥ ८९ ॥ अश्विभ्यां निर्मितं चैव गोधूमाद्यं रसायनम् ॥ ९० ॥ जलद्रोणे तु गोधूमक्काथे तच्छेषमाढकम् । युञ्जातकस्य स्थाने तु तद्गुणं तालमस्तकम् ॥ ९१ ॥

गेहूंको १०० पल लेकर एक आढक जलमें पकावे जब पकते पकते जल चौथाई भाग बाकी रह जाय तब उतार कर छान लेवे फिर इस छनेहुए काथमें गेहूँका सत्व, युंजातफल (इसके अभावमें ताडका मस्तक लेना चाहिये), उडद, दाख, फालसे, काकोली, क्षीरकाकोली, विदारीकन्द, शतावर, असगंध, खजूर, मुलैठी, सोंठ, मिरच, पीपल, मिश्री भिलावे और कौंछके बीज इन सबका कल्क समान भाग, उत्तम गायका घृत १ प्रस्थ और दूध ४ भाग डालकर मन्द मन्द अग्निसे पकावे । जब घृत सिद्ध होजाय तब इसमें दालचीनी, इलायची, पीपल, धनियां, कपूर और नागकेशर ये सब यथालाभ अर्थात् जितने इनमेंसे मिलसके उतने तथा मिश्री और शहद प्रत्येक आठ आठ पल डालकर ईखके डंडेसे अर्थात् गन्नेके टुकडेसे खूब अच्छे प्रकारसे आलोडन करके एक उत्तम चिकने बासनमें भरकर रखदेवे । जो इसको प्रतिदिन चार तोले परिमाण लेकर शालिचावलोंके भातके साथ अथवा मांसरसके साथ सेवन करे या केवल इसको अकेला ही सेवन करे तो उस मनुष्यका लिंग कदापि शिथिल नहीं होता और न कभी वीर्य्यक्षय होता है। यह घृत अत्यन्त बलकारक, वातनाशक, वीर्य्यजनक, परम ओजकारक, पुष्टिकर, वर्ण और बलवर्द्धक, वातपित्तनाशक, वीर्य्यवर्द्धक पित्तगुल्मनाशक, मूत्रकृच्छ्रहारक और वृद्ध मनुष्योंको अतीव हितकारी है । इसमेंसे प्रतिदिन आठ तोले परिमाण लेकर दश दिनतक निरालस्य होकर सेवन करे और ऊपरसे मिश्रीमिला दूध पीवे तो सौ स्त्रियों में गमन करनेकी शक्ति उत्पन्न होती है । यह गोधूमाद्य रसायन अश्विनीकुमारोंने निर्माण की है । यद्यपि ऊपर पाठम सापल गेंहूँको एक आढक जलमें पकाकर चतुर्थांश शेष काथ रखना लिखा है, किंतु यहां पर गेंहूँको एक द्रोणजलमें पकाकर एक आढक शेष जलमें रखनेकी आज्ञा है, और युञ्जातफलके अभावमें ताडका मस्तक प्रयोग करना लिखा है ॥ ८०-९१ ॥

जीवन्तीयमक ।

जीवन्त्यतिबलामेदा-काकोलीद्वयजीरकैः । साभयातिकृता कृष्णा काकनासारसायनैः ॥ ९२ ॥ स्वयंगुप्ता शटी भृङ्गी जीवकं शारिवाद्वयैः । सहाचरवराविश्वापिप्पलीमूलभर्जनैः ॥ ९३ ॥ पिष्टैस्तैलं घृतं पक्वं क्षीरेणाष्टगुणेन च । दत्तानुवासनेऽश्नीयं शुक्राग्निबलवर्द्धनम् ॥ ९४ ॥ बृंहणं वातपित्तघ्नं गुल्मानाहहरं

परम् । नस्यैः पानैश्च संयुक्तमूर्ध्वजत्रुगदापहम् ॥ ९५ ॥

जीवन्ती, कंघी, मेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, जीरा, कालाजीरा, हरड, पीपल, कौवाठोडी, वायविडंग, कौंछ, कचूर, काकडाशिंगी, जीवक, दोनों शारिवा, पियाबाँसा, त्रिफला, सोंठ और पीपलामूल इन सबको एकत्र घृतमें भूनकर कल्क बनाकर उसके साथ तेल और घृतको अठगुने दूधमें पकावे। इसके द्वारा अनुवासन बस्ति देनेसे शुक्र, अग्नि और बलकी वृद्धि होती है । तथा ये दोनों अत्यंत पुष्टिकारक, वातपित्तनाशक, गुल्म और आनाहको दूर करनेवाले हैं। इसको नस्य और पान आदिमें प्रयोग करनेसे ऊर्ध्वजत्रुरोग नष्ट होता है ॥ ९२-९५ ॥

गुडकूष्माण्ड ।

कूष्माण्डकात्पलशतं सुस्विन्नं निष्कुलीकृतम् । प्रस्थं च घृततैलस्य तस्मिन् तप्ते निधापयेत् ॥ ९६ ॥ त्वक्पत्रधान्यकव्योषजीरकैलाद्वयानलम्। षड्ग्रन्थाचव्यमातङ्गपिप्पलीशृङ्गवेरकम् ॥ ९७ ॥ शृंगाटकं कशेरुश्च प्रलम्बं तालमस्तकम् । चूर्णीकृतं पलान्यत्र गुडस्य तु तुलां पचेत् ॥ ९८ ॥ शीतीभूते पलान्यष्टौ मधुनः संप्रदापयेत् । कफपित्तानिलहरं मन्दाग्नीनां च दीपनम् ॥ ९९ ॥ कृशानां बृंहणं श्रेष्ठं वाजीकरणमुत्तमम् । प्रमदासु प्रसक्तानां ये च स्युः क्षीणरेतसः ॥ १०० ॥ क्षयेण च गृहीतानां परमं भेषजं मतम् । कासं श्वासं ज्वरं हिक्कां हन्ति छर्दिमरोचकम् ॥ गुडकूष्माडकं ख्यातमश्विभ्यां समुदाहृतम् ॥ १०१ ॥

उसीजे हुए और छिलेहुए पेठेके टुकडे १०० पल, घृत १ प्रस्थ, तेल १ प्रस्थ और गुड १०० पल इन सबको एकत्र करके पकावे । जब पकते २ वे गाढे होजायँ तब उनमें दालचीनी, तेजपात, धनियां, सोंठ, मिरच, पीपल, जीरा, इलायची, बड़ी इलायची, चीता, वच, चव्य, गजपीपल, अदरख, सिंघाडे, कशेरु, ताडके अंकुर और ताडका मस्तक ये प्रत्येक चार चार तोले लेकर चूर्ण बनाकर मिला देवे जब पाक अपने आप शीतल होजाय तब उसमें आठ पल शहद मिला देवे । यह उत्तम औषध-कफपित्त वातनाशक, मंदाग्निको दीपन करनेवाली, कृश मनुष्योंको अतीव पुष्टिकारक और उत्तम वाजीकरण है। जो पुरुष स्त्रियोंमें आसक्त हैं, जो पुरुष क्षीण बीर्य्य हैं और जो मनुष्य क्षयरोगसे पीडित हैं उनके लिये यह परम उत्तम औषध है । इस गुडकूष्मांडको अश्विनीकुमारोंने निर्म्माण किया है । यह खांसी, श्वास, ज्वर, हिचकी वमन और अरुचिको दूर करता है ॥ ९६-१०१॥

यत्किञ्चिन्मधुरं स्निग्धं जीवनं तर्पणं गुरु। हर्षणं मनसश्चैव सर्वं तद्वृष्यमुच्यते ॥ १०२ ॥ अभ्यंगच्छादनस्नानगन्धमाल्यविभूषणैः । गृहशय्यासनसुखैर्वासोभिर्विदितैः प्रियैः॥१०३ विहङ्गानान्तु तैरिष्टैः स्त्रीणां वाऽऽभरणस्वनैः ॥ संवादैर्वरस्त्रीणामिष्टानाश्च वृषायते ॥ १०४ ॥ सुरूपा यौवनावस्था लक्षणैर्वा विभूषिता । या वश्या शिक्षिता चैव सा स्त्री वृष्यतमा स्मृता ॥ १०५ ॥

जो पदार्थ मधुर, स्निग्ध, प्राणरक्षक, तृप्तिकारक, भारी और मनमें आनंद उत्पन्न करनेवाले हैं, उन सब को वृष्य कहते हैं। तैलादिककी मालिस, अनेकप्रकारके वस्त्रोंका धारण, स्नान, सुगंधित चंदनादि पदार्थोंका और पुष्पमालादि आभूषणोंका धारण, सुन्दर गृह, सुन्दर वस्त्रों करके वेष्टित शय्या और आसन, मनोहर कोकिल मयूरादि पक्षियोंका कलरव, अथवा सुन्दर मानिनी स्त्रियोंके आभूषणोंकी झनकार और प्रियें स्त्रियोंका सम्भाषण यह सब वृष्य अर्थात् कामोद्दीपक हैं । सुन्दर स्वरूपवान, यौवन अवस्थाको प्राप्त हुई, शुभलक्षणों करके विभूषित, अपने अनुकूल और रतिकर्म्ममें शिक्षित ऐसी स्त्री वृष्य होती है॥१०२॥ ॥१०३॥ १०४॥ १०५॥

वीर्य्यक्षयके कारण और लक्षण ।

जरया चिन्तया शुक्रं व्याधिभिः कर्मकर्षणात् । क्षयं गच्छत्यनशनात्स्त्रीणां चातिनिषेवणात् ॥ १०६ ॥ क्षयाद्भयादविश्रम्भाच्छोकात्स्त्रीदोषकर्षणात् । नारीणामरसज्ञत्वादभिचारादिसेवनात् ॥ १०७ ॥

जरा, चिंता और अनेकप्रकारकी व्याधियोंसे तथा वमन विरेचनादि पंचकर्म्मोंके बिगड़ जानेसे, उपवास करनेसे, अत्यन्त स्त्रीप्रसंगकरनेसे, क्षयसे, भयसे, अविश्वाससे, शोकसे, स्त्रियोंके दोषोंको देखनेसे, स्त्रियोंके अरसज्ञ (रसको नहीं जानना) होनेसे और अभिचारसे मनुष्योंका वीर्य्य क्षयको प्राप्त होता है ॥ १०६ ॥ १०७ ॥

दौर्बल्यं मुखशोषश्च पाण्डुत्वं सदनं भ्रमः । क्लैब्यं शुक्राविसर्गश्च क्षीणशुक्रस्य लक्षणम् ॥ १०८ ॥

दुर्बलता, मुखशोष, पांडुता, शरीरका टूटना, भ्रम, नपुंसकता और शुक्रका क्षरण होना ये सब क्षीणशुक्रवाले मनुष्यके लक्षण जानने ॥ १०८ ॥

इति श्रीवङ्गसेने भाषाटीकायां वाजीकरणनिदानचिकित्साधिकार समाप्त ॥ ७४ ॥

अथ स्नेहपानाधिकार ।



वमनं रेचनं नस्यं निरूहश्चानुवासनम् । ज्ञेयं पञ्चविधं कर्म्म विधानं तस्य कथ्यते ॥

वमन, विरेचन, नस्य, निरूहबस्ति और अनुवासन बस्ती ये पंच कर्म्म हैं । अब इनके विधानको कहते हैं ॥

आपो यथा विरुध्यन्ते स्निग्धापात्रादयत्नतः । तथा संशोधनद्रव्यैः स्निग्धकोष्ठात्कफं नयेत् ॥

जब स्निग्ध पानोंको कुविधिसे सेवन करनेसे शरीरका रस बिगड जाय तब संशोधन द्रव्योंसे कोष्ठको स्निग्धकरके कफको निकाले ॥

मलापहं रोगहरं बलवर्णप्रसादनम् । पीत्वा संशोधनं सम्यगायुष्मान्पूज्यते चिरम् ॥

विधिपूर्वक संशोधनको करनेसे मल और रोगोंका नाश होता है, बल और वर्णकी वृद्धि होती है तथा आयु दीर्घ होतीहै ॥

कटचरुजङ्घपादस्थे वाते स्नेहं विशेषतः । पिबेत्प्राग्भोजनाज्जन्तुः कट्यादीनां मलापहम् ॥

कटि, ऊरु, जंघा और पादस्थ वातरोगमें विशेष करके भोजनसे पहिले मनुष्य स्नेहपान करे तो कटि आदिकोंका दोष दूर होता है ॥

पिबेत्संशोधनादूर्ध्वमूर्ध्वजत्र्वनिलेगदे । बलितेनेन्द्रियाणाञ्च वैमल्यं चोपजायते ॥

ऊर्ध्वजत्रुरोगमें और वातके रोगोंमें संशोधनके पीछे स्नेहको पान करे । इससे इन्द्रियोंमें बल तथा विमलता उत्पन्न होती है । तथा पक्षाघात और हृदयरोग नष्ट होता है ॥

पक्षाघातं सहृद्रोगं सेव्यमानं निहन्ति च । सहान्नेनाशिनः स्नेहो बलवर्णकरः परः ॥

भोजनके साथ स्नेहको सेवन करनेसे पक्षाघात और हृदयरोग नष्ट होता है तथा शरीरमें बल उत्पन्न होता है और वर्ण सुन्दर होताहै ॥

सोपानक्तलघौ कोष्ठे निरामे वीक्ष्य पावकम् । पाययित्वा भिषक् स्नेहं कटूष्णं वारि पाययेत् ॥

लघुकोष्ठ और आमरहितऐसे रोगीके अग्निके बलाबलको विचार कर वैद्य यथाविधिसे स्नेहपान करावे और ऊपरसे गरम जल पिलावे ॥

यथादोषं यथाकालं यथाव्याधिर्यथाबलम् । स्नेहं पक्वमपक्वं वा पाययित्वा चिकित्सकः ॥

जैसा दोष, जैसा काल, जैसा रोग और जैसा बल हो उसीके अनुसार वैद्य पक्क अथवा अपक्क स्नेहको पान करावे ॥

सर्पिः शरदि पातव्यं वसामज्जा च माधवे । तैलं प्रावृषि नात्युष्णं शीते स्नेहं पिबेन्नरः ॥

मनुष्य शरदृतुमें घृत, वसन्तऋतुमें वसा और मज्जा तथा वर्षाऋतुमें तेल और शीतऋतुमें अल्प उष्ण स्नेहको पान करे ॥

जलमुष्णं घृते पथ्यं यूषस्तैलेषु शस्यते । वसामज्जनि मण्डस्तु सर्वेषूष्णमथांबु वा ॥

घृतके ऊपर उष्णजल पान करना चाहिए। तेलके ऊपर यूष तथा वसा और मज्जाके ऊपर मांडका अनुपान करे । अथवा सर्वप्रकारके स्नेहोंमें गरम जलका अनुपान करे ॥

ऋते भल्लातकस्नेहात्तत्र तोयं सुशीतलम् । त्रिकर्षादर्धकर्षेण वृद्धिः सार्धपलं तथा ॥ ततः कर्षाभिवृद्धिश्च भवेद्यावत्पलत्रयम् । ततोऽपि च पलार्धेन वृद्धिर्यावच्च षट्पलम् ॥ मात्रेयं स्नेहपानस्य जघन्यामध्यमोत्तमाः ॥

भिलावेके तेलके ऊपर केवल शीतल जल ही पीना चाहिये । स्नेहकी प्रथम मात्रा तीन कर्षकी देवे। फिर क्रमसे आधा आधा कर्ष बढाकर डेढ पलतक देवे। फिर एक एक कर्षसे बढाकर तीन पलतक देवे । पश्चात् आधा आधा पल बढ़ाकर छः पलतक देवे । यह स्नेहपानकी उत्कृष्ट मात्रा है ।अर्थात् तीन कर्षकी जघन्य, तीन पलकी मध्यम और छः पलकी उत्तम मात्रा जाननी ॥

एकाहमुत्तमा पेया त्र्यहमेव तु मध्यमा । स्नेहमात्रा यथायोगं सप्ताहन्तु कनीयसी ॥

उत्तम मात्रा एक ही दिन पीनी चाहिये, मध्यम मात्रा तीन दिनतक पीनी चाहिये और जघन्यमात्रा एक सप्ताहतक सेवन करनी चाहिये ॥

अहोरात्रेण महती जीर्यत्यह्नि तु मध्यमा । दिनार्धे चापरास्तिस्रः स्नेहमात्राः प्रमाणतः ॥

उत्तम मात्रा एक दिनरातमें पचजाती है, मध्यम मात्रा एक दिनमें पचजाती है और जघन्य मात्रा आधे दिनमें पचजाती है । इस प्रकार ये स्नेहकी तीन मात्रायें कही हैं ॥

केवलं पैत्तिके सर्पिर्वातिके लवणान्वितम् । देयं बहुकफे तैलं व्योषक्षारसमायुतम् ॥

पित्तके रोगोंमें केवल घृतको पान करे, वातके रोगोंमें घृतको लवणके साथ पान करे और बहुतसे कफके रोगोंमें तेलमें जवाखार और त्रिकुटेका चूर्ण मिलाकर पान करे ॥

शीतकाले दिवास्नेहमुष्णकाले पिबेन्निशि । वातपित्ताधिके रात्रौ वातश्लेष्माधिके दिवा ॥

शीतऋतुमें दिनमें स्नेहपान करे,ग्रीष्मऋतुमें रात्रिमें स्नेहपान करे, वातपित्ताधिक्य रोगोंमें रात्रिके समय और वातकफके रोगोंमें दिनमें स्नेहपान करे ॥

पिबेत्पित्तकफे चोष्णं स्नेहमूर्च्छातृषाकरम् । शीतं वातकफार्त्तस्य गौरवारुचिशूलकृत् ॥

पित्तकफजरोगोंमें उष्ण स्नेहपान करनेसे मूर्च्छा और तृषा उत्पन्न होती है । वात और कफके रोगोंमें शीतल स्नेह पान करनेसे शरीरमें भारीपन, अरुचि और शूल होता है ॥

स्युः पच्यमाने तृड्दाहभ्रमो मूर्च्छारुचिस्तमः । परिषिंच्याऽप्यनुष्णाद्भिर्जीर्णस्नेहो यतो नरः ॥ यवागूं प्राशयेदुष्णां कृतां षष्टिकतंडुलैः । अल्पस्नेहां विलेपीञ्च जीर्णस्नेहे सुखोदनम् ॥

स्नेहके पचनेके समय तृषा, दाह, भ्रम, मूर्च्छा अरुचि और अंधकारदर्शन ये सब होते हैं। उस समय गरमजलसे शरीरको धोवे और जब अच्छे प्रकारसे स्नेह पचजावे तब साठीके चावलोंकी यवागू बनाकर गरम गरम देवे। अथवा थोडासा घृत डाल कर विलेपी देवे किंवा सुहाता सुहाता भात देवे।

वृद्धस्य स्नेहसिद्धेन यूषेनाल्पशृतेन वा। पिबेत्संशमनं स्नेहमन्नकाले प्रकाङ्क्षितम्॥ सिद्धयर्थं पुनराहारे नैशे जीर्णे पिबेन्नरः॥

वृद्धमनुष्यको स्नेहके द्वारा सिद्ध किया हुआ और अल्प पकाया हुआ ऐसा यूष अथवा संशमनस्नेह भोजनकी आकांक्षाके समय पान करावे। फिर शुद्धिके लिये रात्रिके समय आहारके जीर्ण होनेपर स्नेहको पान करे।

स्नेहसात्म्यः क्लेशसहश्चोष्णकाले न शीतले। अच्छमेव पिबेत्स्नेहमच्छपानं हि शोभनम्॥

स्नेहपान–सात्म्य (जिसके प्रकृतिके अनुकूल हो) और क्लेशको सहन करनेवाला पुरुष ऐसे समय स्नेहको सेवन करे कि, न तो जब अत्यंत शीत हो और न अत्यंत गरमी हो। स्वच्छनिर्मल स्नेहको पान करे, क्योंकि स्वच्छ स्नेह ही श्रेष्ठ होता है॥

द्रवोष्णमनभिष्यन्दि भोज्यमन्नं प्रमाणतः॥ नातिस्निग्धमसंकीर्णं सुस्नेहं पातुमिच्छता॥

स्नेहको पान करनेकी इच्छा करनेवाला पुरुष द्रव (पतला), उष्ण, अभिष्यन्दरहित, प्रमाणका, न अत्यंत स्निग्ध और न बहुतसे एकत्र मिले हुए भोज्य पदार्थोंवाले अन्नका भोजन करे॥

पिबेत्र्यहं चतुरहं पञ्चाहं षडहानि वा। सप्तरात्रात्परं स्नेहं सात्म्यभावाय कल्पते॥

स्नेहपान तीन दिनतक, चार दिनतक, पाँच दिनतक अथवा छः दिनतक करे, क्योंकि फिर सात दिनके पश्चात् स्नेह स्वभावमें मिल जाता है॥

मृदुकोष्ठस्त्रिरात्रेण स्निह्यत्यच्छोपसेवया। स्निह्यति क्रूरकोष्ठस्तु सप्तरात्रेण मानवः॥

मृदुकोष्ठवाला मनुष्य तीन दिनतक स्नेहको पीनेसे स्निग्ध होजाता है और क्रूरकोष्ठवाला मनुष्य सात-दिनमें स्निग्ध होजाता है॥

मिथ्याचाराद्बहुत्वाद्वा यस्य स्नेहो न जीर्यते। विष्टभ्य वापि जीर्येत वारिणोष्णेन वामयेत्॥ ततः स्नेहं पुनर्दद्याल्लघुकोष्ठाय देहिने॥

मिथ्या आचरण करनेसे अथवा स्नेहकी बाहुल्यतासे जिसके स्नेह नहीं पचता है अथवा जिसके विष्टब्ध होकर अर्थात् पेटमें गुड़गुड़ शब्द होकर स्नेह पचता है उसको गरम जल पिलाकर वमन करावे। और लघुकोष्ठवाले मनुष्यको फिर स्नेह पान करावे॥

स्नेहाऽजीर्णविशंकार्यां पुनरुष्णोदकं पिबेत्। तदोद्गारो भवेच्छुद्धो रुचिरन्ने प्रजायते॥

जो स्नेहपानमें जीर्ण अजीर्णकी आशंका हो अर्थात् स्नेह पचा है या नहीं ऐसा संदेह हो तो गरमजल पान करे। इस प्रकार करनेसे डकार शुद्ध होजायगी और भोजनमें रुचि उत्पन्न होगी॥

स्नेहपीतस्तु तृष्णायां पिबेदुष्णोदकं नरः। एवं चानुप्रशाम्यन्तं स्नेहमुष्णाम्बुना हरेत्॥

स्नेहपानके पश्चात् तृषा लगे तो उष्णजल पान करे। इस प्रकार करनेसे भी जो तृषा शांत नहीं हो तो गरम जलको विशेष रूपसे पान करके वमन करदेवे।

स्नेहद्विषः शिशून्वृद्धान् सुकुमारान् कृशानपि। तृष्णालुं चोष्णकाले च सहभक्तेन पाययेत्॥

जो मनुष्य स्नेहसे द्वेष करते हैं तथा बालक, वृद्ध, कोमल, कृश और तृषासे पीडित मनुष्योंको उष्णकालमें भोजनके साथ स्नेहपान कराना चाहिये॥

बालवृद्धादिषु स्नेहपरिहारासहिष्णुषु । योगानिमाननुद्वेगान् सद्यः स्नेहान् प्रयोजयेत् ॥

बालक और वृद्ध तथा स्नेहपानके परहेजको नहीं सहन करनेवाले मनुष्योंको उद्वेग रहित और तत्काल स्नेहन करनेवाले इन नीचे लिखे प्रयोगोंको सेवन करावे ॥

प्राश्य मांसरसान् स्नेहान् पेया वा स्नेहभर्जिता । पिबेत्सुखोष्णं मनुजः सद्यः स्नेहनमुच्यते ॥

स्नेहके द्वारा भुनी हुई पेया अथवा स्नेहयुक्त मांसरसको मनुष्य सुहाता २पान करे तो तत्काल स्नेहन होता है ॥

धारोष्णं स्नेहसंयुक्तं पीत्वा सलवणं पयः । दध्नो रसं सारगुडं पीत्वा स्निह्यति मानवः ॥

धारोष्ण दूधमें घृत डालकर अथवा दूधमें सैंधानमक और स्नेह डालकर अथवा दहीकी मलाईमें गुड डालकर पीनेसे मनुष्य तत्काल स्निग्ध होता है ॥

सर्पिष्मती बहुतिला तथैव स्वल्पतंडुला । सुखोष्णा सेव्यमाना तु सद्यः स्नेहनमुच्यते ॥

घीमें पकाई हुई, बहुत तिलोंवाली और थोडे चावलोंकी यवागू बनाकर सुहाता २ सेवन करनेसे तत्काल स्नेहन होता है ॥

शर्कराघृतसंसृष्टे दुह्याद्गां कलशेऽथवा । पाययेदक्षमेतद्धि सद्यः स्नेहनमुच्यते ॥

खाँड और घृतसे लिपे हुए कलसेमें गायके दूधको दुहकर अक्षप्रमाण पान करनेसे तत्काल स्नेहन होता है ॥

स्नेहपानका निषेध ।

विवर्जयेत् स्नेहपानमजीर्णी तरुणज्वरी । दुर्बलोऽरोचकी स्थूलो मूर्च्छार्त्तो मदपीडितः ॥ छर्द्याभिभूतस्तृषितः श्रान्तः पानक्लमान्वितः । दत्तबस्तिर्विरिक्तश्च वान्तो यश्चापि मानवः ॥ अकाले च प्रसूता स्त्री स्नेहपानं विवर्जयेत् । स्नेहपानाद्भवेदेषां नृणां नानाविधो मदः । गदा वा कृच्छ्रतां यान्ति न सिध्यन्ति तथा पुनः ॥

अजीर्ण, तरुणज्वर, दुर्बल, अरुचि, स्थूलता, मूर्च्छा और मदसे पीडित, तथा वमन, तृषायुक्त, थका हुआ, मद्यपानसे ग्लानिको प्राप्त हुआ, जिसको बस्तिकर्म्म विरेचन कर्म्म और वमन कराई गई हो ऐसे मनुष्यको स्नेहपान नहीं कराना चाहिये । विनासमयमें प्रसूतास्त्रीको भी स्नेहपान नहीं कराना चाहिये । क्योंकि, इनको स्नेहपान करानेसे अनेक प्रकारके मद और घोर रोग उत्पन्न होते हैं और वे रोग कष्टसाध्य होकर आरोग्य नहीं होते ॥

उष्णोदकोपचारी स्याद् ब्रह्मचारी क्षपाशयः ॥

स्नेहको पान करनेवाला उष्णजलका उपचार करे ब्रह्मचर्य्यको धारण करे और रात्रिमें शयन करे ॥

वेगरोधनव्यायामक्रोधशोकहिमातपान् । वर्जयेत्प्रयतो नित्यं सेवयेच्छयनासनम् ॥

तथा मलमूत्रादिके वेगोंका अवरोध, व्यायाम, क्रोध, शोक, शीत, धूप और वायु इन सबको त्याग देवे एवं सुखपूर्वक शयन करे ॥

स्नेहं पीत्वा पुनः स्नेहं प्रतिभुञ्जानमेव च । स्नेहपथ्यापचाराद्धि जायन्ते दारुणा गदाः ॥

स्नेहको पीकर फिर स्नेहपान करनेसे अथवा स्नेहपानके ऊपर स्नेह मिला भोजन करनेसे इत्यादि अपथ्य अपचारोंसे अनेक प्रकारके दारुण रोग उत्पन्न होते हैं ।

अस्निग्धमात्रके लक्षण ।

पुरीषं ग्रन्थितं रूक्षं वायुरप्रगुणो विटम् । पक्वा खरत्वं रौक्ष्यश्च गात्रस्यास्निग्धलक्षणम् ॥

मलमें गांठें पडना, शरीरमें रूखापन, मल वायुसे बिगड़ाकर फटासा हो जाना,कठिणतासे पचना और अन्तमें रूखा होना ये अस्निग्धगात्रके लक्षण जानने ॥

स्निग्धके लक्षण ।

वातानुलोम्यं दीप्ताग्निर्वर्चः स्निग्धमसंहितम् । मार्दवं स्निग्धता चाङ्गे स्निग्धानामुपजायते ॥

वायु अनुलोमन हो अर्थात् अच्छे प्रकारसे काष्ठमें संचार करे, अग्नि दीपन हो, मल स्निग्ध और अलग अलग हो, शरीरमें मृदुता और स्निग्धता हो ये स्निग्धशरीरके लक्षण जानने ॥

अतिस्निग्धके लक्षण ।

पांडुता सदनं तन्द्रा पुरीषस्य विपक्वता । उत्क्लेशो जाड्यमरुचिः स्यादतिस्निग्धलक्षणम् ॥

शरीरमें पांडुपन, आलस्य, अवसन्नता, तन्द्रा, मलका न पकना, उत्क्लेश:(उबकाईसी आना),जड़ता, और अरुचि ये अतिस्निग्धके लक्षण जानने ॥

मिथ्याहारादिना लोके स्नेहः पीतो ज्वरादिकृत् । प्रकुर्य्याल्लंघनं तत्र मलं ज्ञात्वा विरेचनम् ॥

मिथ्या आहारादिके साथ अथवा कुविधिसे स्नेहको पान करनेसे ज्वरादिरोग उत्पन्न होते हैं । उन ज्वरादि रोगोंमें यथादोषानुसार और रोगीके बलके अनुसार लंघन करावे और जो मलकी बद्धता हो तो विरेचन करावे ॥

रूक्षस्य स्नेहनं स्नेहैरतिस्नेहस्य रूक्षणम् । श्यामाककोरदूषान्नतक्रपिण्याकसक्तुभिः ॥

रूक्षमनुष्यको स्नेहपान कराकर स्निग्ध करे। और अति स्निग्धमनुष्यको समा, कोदो, तक्र, खल और सत्तू इनके द्वारा रूक्ष करे ॥

स्नेहपानका फल ।

दीप्तान्तराग्निः परिशुद्धकोष्ठः प्रत्यग्रधातुर्बलवर्णयुक्तः । दृढेन्द्रियो मन्दजरः शतायुः स्नेहोपसेवी पुरुषः प्रदिष्टः ॥

स्नेहको पान करनेसे जठराग्नि दीपन होती है, कोठा शुद्ध होता है, धातुओंकी वृद्धि होती है, बल और वर्ण सुन्दर होता है, इन्द्रियें दृढ होती हैं, तथा स्नेहसेवी पुरुषके वृद्धता सहसा नहीं आती और अवस्था सौ वर्षकी होती है ॥

स्नेहमेवं परं विद्याद्दुर्बलानलदीपनम् । बलं स्नेहसमिद्धश्च समायानः सदुर्बलः ॥

मंदाग्निको दीपन करनेके लिये स्नेहपान उत्तम उपाय है । स्नेहकी समिधासे दुर्बल मनुष्य बलको प्राप्त होता है ॥

स्नेहे व्यायामसंशीतवेगाघातप्रजागरान् । दिवास्वप्नमभिष्यन्दिरूक्षान्नञ्च विवर्जयेत् ॥

स्नेहपानके ऊपर व्यायाम (दण्ड कसरत),अत्यन्त शीत, मलमूत्रादिकोंके वेगोंका अवरोध, रात्रिमें जागना, दिनमें सोना, अभिष्यंदि पदार्थोंका सेवन और रूक्ष अन्न इन सबको त्याग देवे ॥

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायां स्नेहपानाधिकार समाप्त ॥ ७५ ॥

अथ स्वेदाधिकार ।

येषां नस्यं विधातव्यं बस्तिश्चैवापि देहिनाम् । शोधनीयाश्च ये केचित्पूर्वं स्वेद्यास्तु ते मताः ॥ १ ॥

जिन मनुष्योंको नस्य देना हो, बस्तिकर्म्म करना हो, अथवा विरेचन कराना हो उनके शरीरमें प्रथम स्वेद देना चाहिये ॥ १ ॥

पश्चात् स्वेद्याहते शल्ये मूढगर्भाद्युपद्रवाः । सम्यक् प्रसूताऽकाले च पश्चात् स्वेद्यैव यत्नतः ॥ २ ॥

मूढगर्भादि उपद्रवोंमें स्त्रियोंके शरीरमेंसे शल्यके निकलनेके पश्चात् स्वेद देना चाहिये, उचित समयमें प्रसव होनेपर अथवा असमयमें प्रसव होनेपर प्रसवके पश्चात् स्वेद देना चाहिये ॥ २ ॥

स्वेद्यः पूर्वं च पश्चाच्च भगंदर्य्यर्शसस्तथा । अश्मर्य्या चातुरो जन्तुः शेषाञ्छास्त्रे प्रचक्ष्महे ॥ ३ ॥

भगन्दर, बवासीर और पथरी इन रोगोंमें शस्त्रकर्म्म करनेसे पहिले और पीछे दोनों समय स्वेद देना चाहिये और शेषरोगोंमें यथाप्रसंग कहेंगे ॥ ३ ॥

स्नेहक्लिन्नशरीराय तैलाभ्यक्ताय देहिने । दोषानार्त्तवकालज्ञो ध्यानस्वेदं प्रयोजयेत् ॥ ४ ॥

स्नेहपानादिसे स्निग्ध कियेहुए शरीरवाले और शरीर तेलादिकका अभ्यंग कियेहुए मनुष्यको दोष, ऋतु पीडा और कालको जाननेवाला वैद्य यथाविधिसे स्वेद देवे ॥ ४ ॥

नानभ्यक्ते नापि चास्निग्धदेहे स्वेदो योज्यः स्नेहवद्भिः कथञ्चित् । दृष्टं लोके काष्ठमस्निग्धमाशु गच्छेद्भङ्गं स्वेदयोगैर्गृहीतम् ॥ ५ ॥

अभ्यंग और स्नेहनकर्म्मके विना शरीरमें स्वेद देना कदापि ठीक नहीं है । क्योंकि, देखो काठको विना चिकनाई लगाये अग्निके द्वारा स्वेदित करके नवाया जाय तो वह शीघ्र टूट जाता है ॥ ५ ॥

मांसमाषतिलादीनां वालुकानामथापि वा । कुम्भीपिण्डेऽष्टका स्वेदान्नायं प्रस्तरसंकरात् ॥ ६ ॥

मांस, माष और तिलोंके द्वारा, वालुके द्वारा, कुम्भी, पिण्ड, इष्टका, प्रस्त और संकर स्वेद किया जाता है ॥ ६ ॥

वातघ्नैर्दशमूलैर्वा शीतैराच्छाद्य चक्षुषी । वृषणौ हृदयं दृष्टी स्वेदयेन्मृदु वा न वा ॥ मध्यमं वङ्क्षणे शेषमङ्गावयवमिष्टतः ॥ ७ ॥

प्रथम रोगीके नेत्रोंको वातनाशक पदार्थोंसे अथवा दशमूलकी औषधियोंसे किंवा शीतलपदार्थोंसे आच्छादित करके पश्चात् वृषणोंको, हृदयको और नेत्रोंको कोमल स्वेद देवे । फिर वंक्षणदेशको स्वेदित करे और मध्यम तथा शेष अंगोंको यथेच्छरूपसे स्वेदित करे ॥ ७ ॥

स्वेदो हितस्त्वनाग्नेयो वाते मेदःकफावृते । निवातगृहमायासो गुरुप्रावरणं भयम् ॥ ८ ॥ उपनाहाहवक्रोधभूरिपानक्षुधातपाः । स्वेदयन्ति दशैतानि नरमग्निगुणादृते ॥ ९ ॥

मेद और कफसे आच्छादित वातमें विना अग्निके स्वेद देना हितकर है, वायुरहित स्थानमें रहना, परिश्रम, भारी आच्छादन, भय, उपनाह, क्रोध, अधिक पान, अधिकक्षुधा और धूप ये दश अग्निके विना मनुष्यको स्वेदित करते हैं ॥ ८ ॥ ९ ॥

सर्वान् स्वेदान्निवाते च जीर्णेऽन्ने वा च कारयेत् ॥ १० ॥

सर्वप्रकारके स्वेदोंको वातरहित स्थानमें और भोजनके जीर्ण होनेपर करे ॥ १० ॥

व्याधौ शीते शरीरे च महान् स्वेदो महाबले । दुर्बले दुर्बलः स्वेदो मध्यमे मध्यमो मतः ॥ ११ ॥

व्याधि, शीत और शरीर ये तीनों महाबलवान् हों तो महास्वेद, इनके दुर्बल होनेपर दुर्बलस्वेद और मध्यम होनेपर मध्यमस्वेद देवे ॥ ११ ॥

बलासे रूक्षणः स्वेदो रूक्षस्निग्धः कफानिले । कफमेदोवृते वाते सेवेत्कोष्णं गृहं रविम् ॥ १२ ॥

कफके रोगमें रूक्ष करनेवाला स्वेद देवे, कफसहित वायुके रोगमें रूक्ष और स्निग्ध स्वेद देवे, कफ और मेद सहित वायुरोगमें उष्णगृह और सूर्यकी किरणोंको सेवन करे ॥ १२ ॥

तत्र तापोष्मस्वेदौ विशेषतः श्लेष्मघ्नौ । उपनाहस्वेदो वातघ्नः अन्यतरास्मिन् पित्तसंसृष्टे द्रवस्वेद इति

कफमेदोऽन्विते वायौ निवातग्रहातपगुरुप्रावरणादिभिः स्वेदमुत्पादयेदिति ।

सर्व स्वेदोंमें विशेष करके तापस्वेद और उष्मस्वेद कफनाशक हैं । उपनाहस्वेद वातनाशक है । वात या कफ जब पित्तसे मिलजाते हैं तब द्रवस्वेद दियाजाता है । कफ और मेदयुक्त वायुमें रोगीको निर्वातस्थानमें बैठाकर अथवा धूपमें बैठाकर या भारी वस्त्र उढाकर पसीना निकलवावे ॥

स्नेहक्लिन्ना धातुसंस्थाश्च दोषाः स्वस्थानस्था ये च मार्गेषु लिप्ताः । सम्यक् स्वेदैर्योजितैस्ते द्रवत्वं प्राप्ताः कोष्ठं यान्ति देहादशेषात् ॥१३॥

स्नेहसे स्निग्धहुए धातुओंमें स्थित दोष, स्वस्थानमें स्थितदोष तथा मार्गोंमें लिप्तदोष अच्छेप्रकारसे स्वेदित होनेपर पिघल कर सम्पूर्ण शरीरसे कोठेमें पहुँच जाते हैं ॥ १३ ॥

शीतशूलव्युपरमे स्तम्भगौरवनिग्रहे । सञ्जाते मार्दवे देहे स्वेदनाद्विरतिर्मता ॥१४॥

शीतके और पीडाके निवृत्त होनेपर तथा स्तम्भता और गौरवताके नष्ट होनेपर और शरीरके मृदु होनेपर स्वेदनकर्म्म त्याग देना चाहिए ॥ १४ ॥

अग्नेर्दीप्तिं मार्दवं त्वक्प्रसादं भक्तश्रद्धां स्रोतसां निर्मलत्वम् । कुर्यात्स्वेदो हन्ति निद्रां सतन्द्रां सन्धींस्तब्धांश्चेष्टयेदाशु युक्तः ॥ १५ ॥

स्वेदनकर्म्म जठराग्निको दीपन करता है, शरीरमें कोमलता और त्वचामें मृदुता, भोजनमें रुचि और शरीरके स्रोतोंमें निर्मलता उत्पन्न करता है । निद्रा, तन्द्रा और संधियोंकी स्तब्धताको दूर करके देहमें अपूर्व स्फूर्तिको उत्पन्न करता है ॥ १५ ॥

अच्छेप्रकारसे स्वेदित किये हुएके लक्षण ।

स्वेदास्रावो व्याधिहानिर्लघुत्वं शीतार्थित्वं मार्द्दवं चातुरस्य । सम्यक् स्विन्ने लक्षणं प्राहुरेतन्मिथ्यास्विन्ने व्यत्ययेनैतदेव ॥ १६ ॥

रोगीके पसीनोंका निकलना बंद होजाय, रोगका नाश होजाय, शरीरमें हलकापन होजाय, शीतलताकी इच्छा हो और शरीरमें कोमलता होजाय तो जानना कि अच्छे प्रकारसे स्वेदन हुआ है और जो इससे विपरीत लक्षण हों तो जानना कि मिथ्यास्वेद हुआ है ॥ १६ ॥

अत्यंत स्विन्नके लक्षण ।

स्फोटोत्पत्तिः पित्तरक्तप्रकोपो मूर्च्छा भ्रान्तिर्दाहतृष्णे क्लमाच्च । अतिस्विन्ने संधिपीडा तृषा च क्रियां शीतां तत्र कुर्य्याद्विधिज्ञः ॥ १७ ॥

अत्यंत स्वेदन करनेसे शरीरमें फोडे, फुंसियोंका निकलना, पित्तरक्तका प्रकोप, मूर्च्छा, भ्रम, दाह, तृषा, क्लान्ति और संधिपीडा ये सब लक्षण होते हैं । इस प्रकार लक्षण होनेपर शीघ्र ही विधिको जाननेवाला वैद्य शीतक्रिया करे ॥ १७ ॥

अतिस्विन्ननराणाञ्च शीतांबुप्राशनं हितम् । स्नानमुष्णांबुना चापि ह्यनभिष्यंदिभोजनम् ॥ १८ ॥

अत्यन्त स्विन्नमनुष्यको शीतल जल पिलावे, उष्ण जलके द्वारा स्नान करावे और अनभिष्यंदि भोजन करावे ॥ १८ ॥

पांडुर्मेही रक्तपित्ती तृषार्तोऽक्षामोऽजीर्णी चोदरार्तो विषार्तः । तृट्छर्द्यार्तौ गर्भिणी पीतमद्यो नैते स्वेद्या यश्च मर्त्योऽतिसारी ॥ १९ ॥

पाण्डुरोगी, प्रमेहरोगी, रक्तपित्तरोगी, तृषासे पीडित, असमर्थ, अजीर्णरोगी, उदररोगी, विषरोगी, तृषा और वमनसे व्याकुल, गर्भवती स्त्री, मद्यपी और अतिसाररोगी इन सबको स्वेद नहीं देना चाहिये ॥ १९ ॥

स्वेदादेषां यान्ति देहा विनाशञ्चासाध्यत्वं यान्ति चैषां विकाराः ।

स्वेदैः साध्यौ दुर्बलाजीर्णभक्तौ यदि स्यातां स्वेदनीया ततस्तौ ॥ २० ॥

इन उपर्युक्त रोगोंमें स्वेद देनेसे शरीरका नाश होजाता है । अथवा रोग असाध्य होजाते हैं । जो दुर्बल और अजीर्णरोगी स्वेदहीसे आरोग्य होने योग्य हों तो उनको मृदुस्वेद देना चाहिये ॥ २० ॥

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायां स्वेदाधिकार समाप्त ॥ ७६ ॥

अथ वमनाधिकार ।

शरत्काले वसन्ते च प्रावृट्काले च देहिनाम् । वमन रचनं चैव कारये-त्कुशलो भिषक् ॥ १ ॥

चतुरवैद्य शरदृतुमें,वसन्तऋतुमें और वर्षाऋतुमें प्राणियोंको और वमन विरेचन करावे ॥ १ ॥

कफे कफोल्बणे चापि वमनं सम्प्रशस्यते ॥ २ ॥

कफके रोगोंमें अथवा कफकी उल्बणतावाले रोगोंमें वमन कराना हितकारी है ॥ २ ॥

वामयेदतिसारार्त्तमधः पित्तास्ररोगिणाम् । ग्रन्थिमेहापचीकुष्ठश्लीपदोन्मादरोगिणः ॥ ३ ॥ सर्वदोषपरीसर्पश्वासकासोर्ध्वरोगिणः । नवज्वरगृहीतश्च हृल्लासार्त विशेषतः ॥ ४ ॥

अतिसाररोगी, अधोरक्तपित्तरोगी, ग्रंथि, प्रमेह, अपची, कुष्ठ, श्लीपद और उन्मादरोगी, सम्पूर्ण दाषास व्याप्त,श्वास,खांसी और ऊर्ध्वरोगी एवं नवज्वरवाले और विशेष करके हृल्लास (उबकाई) से पीडित इन सबको वमन करानी चाहिये ॥ ३॥४ ॥

न वामयेत्तैमिरिकं न गुल्मिनं न चापि पाण्डूदररोगपीडितम् । स्थूलक्षतक्षीणकृशातिवृद्धानर्शोर्दिताक्षेपकपीडितांश्च ॥ ५ ॥ रूक्षे प्रमेहे तरुणे च गर्भे गच्छत्यथोर्ध्वं रुधिरे च तीव्रे । दुष्टे च कोष्ठे कृमिभिर्मनुष्यं वर्चोऽभिघाते न च वामयेत्तु ॥ ६ ॥

तिमिररोगी, गुल्मरोगी, पांडुरोगी, उदररोगी, स्थूलशरीरवाले मनुष्य, क्षतक्षीण, अत्यन्त कृश, अत्यंत वृद्ध, अर्श, आर्दित और आक्षेपकसे पीडित मनुष्योंको एवं रूक्षशरीर, प्रमेह, नवीन गर्भवती स्त्री, तीव्र ऊर्ध्वरक्तपित्तरोगी, दुष्टकोष्ठवाले, कृमिरोगी और मलक्षय रोगी इनको कदापि वमन नहीं करावे ॥ ५ ॥ ६ ॥

एतेऽप्यजीर्णव्यथिता वाम्या ये च विषातुराः । अत्युल्बणकफा ये च ते च स्युर्मधुकाम्बुना ॥ ७ ॥

यदि इन उपर्युक्त रोगोंमें भी अजीर्णरोगी, विषरोगी और अत्यन्त उल्बण कफरोगी वमन कराने योग्य हों तो उनको मुलैठीके क्वाथसे वमन करावे ॥ ७ ॥

अवाम्या वमनाद्रोगाः कृच्छ्रतां यान्ति देहिनाम् । असाध्यतां वा गच्छन्ति नैते वाम्यास्ततः स्मृताः ॥ ८॥

मनुष्योंके जिन रोगोंमें वमन करानी उचित नहीं है, उनमें यदि वमन कराई जाय तो वे रोग कष्टसाध्य होजाते हैं अथवा असाध्य होजाते हैं, इसलिये उनको वमन नहीं करावे ॥ ८ ॥

दोषाः कदाचित्कुप्यन्ति जिता लंघनपाचनैः । जिताः संशोधनैर्ये तु न तेषां पुनरुद्भवः ॥ ९ ॥

लंघन और पाचनसे नष्ट कियेहुए दोष तो कदाचित् कुपित होजाते हैं किन्तु संशोधनसे जीते हुए दोष फिर कदापि कुपित नहीं होते ॥ ९ ॥

पेशलैर्विविधैरन्नैर्दोषानुत्क्लेश्य देहिनः । स्निग्धस्विन्नाय वमनं दत्तं सम्यक् प्रवर्त्तत ॥ १० ॥

वमन करानेसे पहिले दिन रोगीको अनेक प्रकार के कोमल और पतले अन्नोंको सेवन कराकर दोषोंको उत्क्लेशित करदेवे । फिर स्नेहन और स्वेदन कर्म्म

कराकर वमन देवे तो वमन अच्छे प्रकारसे होने लगती है ॥ १० ॥

निशि सुतश्च पूर्वाह्ने जीर्णाहारकृतेक्षणम् । वमनं पाययित्वा तु जानुमात्रासने स्थितम् ॥ कण्ठं गन्धर्वनालेन स्पृशन्तं वामयेद्भिषक् ॥ ११ ॥

रात्रिमें जिसने अच्छे प्रकारसे निद्रा ली हो ऐसे मनुष्यको दिनके पहिले प्रहरमें भोजनके जीर्ण होनेपर वमनकारक ओषधि पान कराकर जानु पर्य्यंत ऊँचे आसनपर बिठालकर वमन करावे और वैद्य उसके गलेको अण्डकी नालसे उसीके हाथसे वारम्वार स्पर्श कराता जाय ॥ ११ ॥

ललाटं वमतः पुंसः पार्श्वौ हस्तेन बोधयेत् ॥ १२ ॥

वमन करनेवाले मनुष्यके ललाटको और पसलियोंको हाथोंसे मलता जाय ॥ १२ ॥

कफश्च कटुतीक्ष्णोष्णैः पित्तं स्वादुहिमैर्वमेत् । सुस्वादुलवणाम्लोष्णैः संसृष्टं वायुना कफम् ॥ १३ ॥

कफके रोगीको कटु, तीक्ष्ण और उष्णपदार्थोंके द्वारा वमन करावे । पित्तके रोगीको मधुर और शीतलपदार्थोंके द्वारा वमन करावे और वायुमिश्रित कफके रोगीको मधुर, लवण, अम्ल और उष्ण पदार्थोंके द्वारा वमन करावे ॥ १३ ॥

पानद्रव्यरसस्योक्तैः स्वरसः पलमिष्यते । वमनं रेचनं चाक्षं स्नेहादिशमनं परम् ॥ १४ ॥

वमन, विरेचनके लिये पानद्रव्योंका स्वरस एक पल अर्थात् चार तोले परिमाण लेना चाहिये और स्नेहादि शमन द्रव्य दो तोले प्रमाण लेने चाहिये १४॥

क्वाथ्यद्रव्यस्य कुडवं श्रपयित्वा जलाढके । अर्द्धभागावशिष्टश्च वमनेष्वविचारयेत् ॥ १५ ॥

वमनके लिये काथ करनेके पदार्थोंको सोलह तोल डालकर एक आढक जलमें पकावे । जब पकते पकते जल आधा भाग बाकी रहजाय तब उता कर छान लेवे, पश्चात् रोगीको वमनके लिये देवे ॥ १५ ॥

यष्टीमधुवचाकुष्ठं बीजानां कुटजस्य च । कल्कैरालोड्य निम्बस्य कषायं पाययेद्भिषक् ॥ प्रवृत्तलालाहृल्लासं वामयेत् स्निग्धमातुरम् ॥ १६ ॥

मूलैठी, बच, कूठ और कुडेके बीज इन सबका एकत्र कल्क बनाकर उसको नीमके काथमें अच्छे प्रकारसे मिलाकर वह काथ पानकरावे । घृत-तैलादिकसे स्निग्ध कियेहुए रोगीके चित्तको मलिन कराकर उबकाई और लारको गिराता हुआ वमन करावे ॥ १६ ॥

कृष्णेन्द्रयवसिन्धूत्थराठकल्कयुतं पिबेत् ॥ यष्टीकषायं सक्षौद्रं तेन साधु वमत्यलम् ॥ १७ ॥

पीपल, इन्द्रजौ, सैंधानमक और हींग इनके कल्कको और शहदको मिला मुलैठीका काथ पान करनेसे अच्छेप्रकारसे वमन होजाती है ॥ १७ ॥

निंबकषायोपेतं फलिनीगदमदनमधुसिन्धूत्थम् ॥ मधुयुतमेतत्पानं कफपरिपूर्णाशये शस्तम् ॥ १८ ॥

फूलप्रियंगू, कूठ, मैनफल मुलैठी और सैंधानमक इनका कल्क और शहद नीमके काथमें डालकर पान करनेसे अत्यंत भराहुआ कफ वमनके द्वारा निकल जाता है ॥ १८ ॥

तण्डुलसलिलनिपिष्टं यः पीत्वा वमति नरः पूर्वाह्ने । फलिनीवल्कलकल्कं हरति गदश्च कफपित्तरुजम् ॥१९॥

फूलप्रियंगूकी छालको चावलोंके जलमें पीसकर प्रभातकालमें जो मनुष्य पान करके वमन करता है उसके कफ और पित्तके समस्त रोग नष्ट होजाते हैं ॥ १९ ॥

आटरूषवचानिंबं पटोलं फलिनीत्वचम् । क्वाथयित्वा पिबेत्तोयं वांतिकृन्मदनान्वितम् ॥ २० ॥

अडूसा, वच, नीम, पटोलपत्र और फूलप्रियंगूकी छाल इनका काथ बनाकर उसमें मैनफलका चूर्ण डालकर पान करे तो अच्छे प्रकारसे वमन होजाती है ॥ २० ॥

जीमूतकफलेक्ष्वाकुकुटजाः कृतवेधनः। धामार्गवश्च संयोज्यः सर्वथा वमनेष्वमी ॥ २१ ॥

देवदालीके फल(बंदाल),कडवी तोम्बी, इन्द्रजौ कडवी तोरई और बडी तोरई ये सब वमनके लिये प्रयोग करनी चाहिये ॥ २१ ॥

मदनफलमज्जसिद्धं क्षीरं दधितां गतं तत्समं वा। वमनाय कफप्रसेके वमनं कफेषु च प्रयुञ्ज्यात् ॥ २२ ॥

मैनफलकी मज्जाको दूधमें पकाकर दहीको जमावे पश्चात् कफके रोगोंमें कफको निकालनेके लिये रोगीको यह सेवन कराकर वमन करावे ॥ २२ ॥

तत्र सुकुमारं कृशं बालं वृद्धं भीरुं वा वमनसाध्येषु विकारेषु क्षीरदाधितक्रयवागूनामन्यतमेनाकण्ठं पाययित्वा वामयेत्।

सुकुमार (कोमल), कृश, बालक, वृद्ध और भयभीत इनके यदि कोई रोग उत्पन्न होजाय और वह वमन करानेसे ही आरोग्य होसके तो उसमें दूध, दही, तक्र और यवागू इनमेंसे किसी एकको कंठ पर्य्यंत पान कराकर वमन करावे।

कफप्रसेकं हृदयाविशुद्धिः कण्डूश्च दुर्वान्तलिङ्गमाहुः। पित्तातियोगश्च विसंज्ञताश्च हृत्कण्ठपीडामपि चातिवान्ते ॥ २३ ॥

कुविधिसे अत्यन्त वमन होनेसे अथवा हीन वमन होनेसे मुखसे कफका गिरना, हृदयमें भारीपन और खुजलीका होना इत्यादि लक्षण होते हैं। अत्यंत वमन होनेसे अत्यंत पित्तका निकलना, बेहोसी, हृदय और कंठमें पीडा होती है ॥ २३ ॥

पित्ते कफस्यानुसुखं प्रवृत्ते शुद्धेषु हृत्कण्ठशिरःसु चापि। लघौ च देहे कफसंश्रये च स्थिते सुवान्तं पुरुषं व्यवस्येत् ॥ २४ ॥

पित्तके पश्चात् सुखपूर्वक कफका निकलजाना, हृदय, कण्ठ और शिरमें शुद्धता, शरीरमें हलकापन और कफका विना रुके निकलजाना ये सब लक्षण अच्छे प्रकारसे वमन हुए पुरुषके जानने ॥ २४ ॥

पित्तान्तमिष्टं वमनं विरेकादर्द्धं कफान्तञ्च विरेकमाहुः। द्वित्रीन् सविट्कानपनीय वेगान्मेयं विरेके वमने तु पीतम् ॥ २५ ॥

जब पित्त निकलने लगे तबतक वमन करानी चाहिये और जब कफ निकलने लगे तबतक विरेचन कराना चाहिये। विरेचनसे वमनमें आधे द्रव्यका परिमाण है। विरेचनमें मलसहित दो तीन वेगोंको त्याग करके विरेचन और वमनमें पिये हुए द्रव्यको छोड़ कर शेष वेगोंको प्रमाण जानना ॥ २५ ॥

सम्यग्वान्तं चैनमभिवीक्ष्य स्नैहिकवैरेचनिकोपशमनीयानामन्यतमं धूममाकण्ठं सामर्थ्यतः पाययित्वा आचारिकमुपदिशेत्।

जब अच्छे प्रकारसे वमन होचुके तब स्रोतोंमें लिपटे हुए कफको निकालनेके लिये धूमपान करावे। वातकी प्रकृतिमें स्नेहन औषधियोंके द्वारा, कफकी प्रकृतिमें विरेचन औषधियोंके द्वारा और समप्रकृतिमें संशमनीय औषधियोंके द्वारा कण्ठपर्य्यंत सामर्थ्यपूर्वक धूमपान कराकर फिर योग्य उपचारको उपदेश करे।

वान्त्यर्थमौषधे पीते वान्तिर्भवति नो यदि। पिबेद्धात्रीकणानिम्बकषायमुष्णवारिणा ॥ २६ ॥

यदि वमनकारक औषधियोंके पीनेपर वमन नहीं हो तो आमले, पीपल और नीमके काथको गरमजलके साथ पान करे ॥ २६ ॥

वमनस्यातियोगे तु शीताम्बुपरिसेवनः। पिबेत्कटुरसैर्मण्डं सघृतक्षौद्रशर्करम् ॥ वमनेऽतिप्रवृद्धे च हृद्यं कार्यं विरेचनम् ॥ २७ ॥

अत्यन्त वमनके होनेपर शीतल जलको सेवन करे। अथवा तीखे रसोंमें मांड, घी, शहद और मिश्री मिलाकर पान करे। वमनकी अत्यन्त प्रवृत्ति होनेपर हृदयको हितकारी विरेचन देवे ॥ २७ ॥

सोद्गारायां भृशं छर्द्यां मूर्च्छायां यासमुस्तयोः। समधूकांजनं चूर्णं लेहयेन्मधुसर्पिषा ॥ २८ ॥ वमतोऽन्तःप्रविष्टायां जिह्वायां कवलग्रहः। निःश्रिताश्च तिलद्राक्षाकल्कालिप्तां प्रवेशयेत् ॥ २९ ॥

यदि डकार सहित अत्यन्त वमनके होनेपर मूर्च्छा (बेहोशी) होजाती हो तो जवासा, नागरमोथा, मुलैठी और श्वेताञ्जन इनके चूर्णको शहद और घीमें मिलाकर सेवन करे। जो वमन करानेसे जिह्वा भीतरको बैठगई हो तो खट्टे, नमकीन अथवा दूध, तक्र ऐसे द्रव्योंका कवल धारण करे। और जो जिह्वा बाहरको निकल आवे तो तिल और दाखके कल्कको जिह्वाके ऊपर लगाकर भीतरको प्रविष्ट करदेवे ॥ २८ ॥ २९ ॥

ततो पराह्ने सुविशुद्धदेहमुष्णाभिरद्भिः परिषिक्तगात्रम्। कुलित्थमुद्गाढकजाङ्गलानां यूषै रसैर्वाप्युपभोजयेत्तम् ॥ ३० ॥

जब वमनसे रोगीका शरीर शुद्ध होजाय तब दुपहरके पश्चात् उष्ण जलसे स्नान कराकर कुलथी, मूंग और अडहर अथवा जांगलदेशके जीवोंके मांसरसके साथ भोजन करावे ॥ ३० ॥

पेयां विलेपीमकृतं कृतं च यूषं रसं त्रीनुभयं तथैकम्। क्रमेण सेवेत नरोऽन्नकालान् प्रधानमध्यावरशुद्धिशुद्धः ॥ ३१ ॥

वमनसे उत्तम शुद्धि, मध्यमशुद्धि और [illegible] शुद्धि वाला मनुष्य भोजनके समय पेया, विलेपी [illegible] और कृत यूषरस इनमेंसे तीनोंको या [illegible] एकको यथाक्रमसे सेवन करे ॥ ३१ ॥

धान्यकल्केन संशुद्धा नागरेण [illegible]न्विता। सुलघ्वी दीपनी पेया वातरक्ते च शस्यते ॥ ३२ ॥

धनियेके कल्कसे संस्कार की हुई और सोंठसेयुक्त ऐसी पेया वमनसे शुद्ध शरीरवाले मनुष्यको हलकी दीपन और वातरक्तको हरनेवाली है ॥ ३२ ॥

यथाणुरग्निस्तृणगोमयाद्यैः संधुक्षमाणो भवति क्रमेण। महान् स्थिरः सर्वपचस्तथैव शुद्धस्य पेयादिभिरन्तराग्निः ॥ ३३ ॥

जिसप्रकार अग्निकी बहुत छोटी चिनगारी तृण और उपलों आदिके संयोगसे बडे बडे वनकाष्ठसमूहको जलानेमें समर्थ होजाती है, उसीप्रकार वमनादिसे शुद्ध किये हुए मनुष्यके सेवन कीहुई पेया जठराग्निको अत्यन्त दीपन करदेती है ॥ ३३ ॥

कफसेकस्वरभेदनिद्रा–तन्द्रास्यदौर्गन्ध्यविषोपसर्गाः। गुरुत्वकंडूग्रहणीप्रदोषा न सन्ति जन्तोर्वमतः कदाचित् ॥ ३४ ॥

वमनको करनेवाले मनुष्यके कफका थूकना, स्वरभेद, निद्रा, तन्द्रा, मुखमें दुर्गंध, विषकी पीडा, शरीरमें भारीपन, खुजली और संग्रहणी ये विकार कदापि उत्पन्न नहीं होते ॥ ३४ ॥

छिन्ने तरौ पुष्पफलप्रवाला यथा विनाशं सहसा व्रजन्ति। तथाहृते श्लेष्मणि छर्दितेन तज्जा विकारा विलयं व्रजन्ति ॥ ३५ ॥

जिसप्रकार वृक्षके काटनेपर उसके फूल, फल और अंकुर अपने आप ही नष्ट होजाते हैं, उसीप्रकार वमनके द्वारा कफके नष्ट होजानेपर कफके विकार अपने आप ही नष्ट होजाते हैं ॥ ३५ ॥

पथ्यापथ्य।

वमना[illegible]विधानेषु [illegible]त्कालस्तु गच्छ[illegible]। [illegible] [illegible]र्हर्तव्यं शीतनोय[illegible] ॥ ३६ ॥

[illegible] ही [illegible] त्याग देय ॥ ३६ ॥

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायां वमनाधिकार समाप्त ॥ ७७ ॥

अथ विरेचनाधिकार।

ऋतौ वसन्ते शरदि देहशुद्धौ विरेचयेत्। अन्यदात्ययिके काले शोधनं शीलयेद्बुधः ॥ १ ॥

वसन्त और शरदृतुमें शरीरको शुद्ध करनेके लिये विरेचन देना चाहिये और किसी रोगके होनेपर अन्यान्य आवश्यक समयोंमें भी विरेचन देना चाहिये ॥ १ ॥

पित्ते विरेचनं युञ्ज्याद्दोषे पित्तोल्बणेऽपि च। पित्तमत्युल्बणीकृत्य स्नेहे स्वेदे कृते सति ॥ २ ॥

पित्तमें और पित्तकी उल्बणतामें पित्तको अत्यन्त उल्वण करके प्रथम रोगीको अच्छे प्रकारसे स्निग्ध और स्वेदित करके विरेचन देवे ॥ २ ॥

वमने च कृते पूर्वं ततः सम्यग्विरेचयेत्। अन्यथा योजितं कुर्य्यान्मन्दाग्निं गौरवारुची ॥ ३ ॥

प्रथम वमन देकर पश्चात् विधिपूर्वक विरेचन देना चाहिए और जो इसके विपरीत विरेचन दिया जाय तो मंदाग्नि, शरीरमें भारीपन और अरुचि उत्पन्न होती है ॥ ३ ॥

पित्ताधिको मृदुः कोष्ठः पयसापि विरिच्यते। वातेन श्लेष्मणा क्रूरो दुर्विरेच्यः स उच्यते ॥ ४ ॥

पित्तकी अधिकतावाले मृदुकोष्ठमें केवल दूधसे भी विरेचन होजाता है और वात तथा कफसे दुष्टकोष्ठमें अत्यन्त ताक्ष्ण औषधियोंके द्वारा भी काठिनतासे विरेचन होता है ॥ ४ ॥

समदोषो मध्यमः साधारण इति तत्र मृदौ मृद्वीमात्रा क्रूरे तीक्ष्णा मध्ये मध्यमा कर्त्तव्येति।

जिसमें वातादिदोष समान हों उसको मध्यम अथवा साधारण कहते हैं उसमें मृदुकोष्ठरोगीके लिये मृदुमात्रा, क्रूरकोष्ठरोगीके लिये तीक्ष्णमात्रा और मध्यमकोष्ठवालेके लिये मध्यममात्रा देनी चाहिये ॥

मृदुमध्यक्रूरकोष्ठे कर्षमर्द्धपलम्पलम्। उष्णोदकानुपानन्तु पलं द्वे च पलत्रयम् ॥ ५ ॥

मृदुकोष्ठवाले मनुष्यको एक तोला, मध्यमकोष्ठवालेको दो तोला और क्रूरकोष्ठवालेको चार तोला औषधिकी मात्रा देनी चाहिये। और इसीप्रकार मृदु मध्यम और क्रूर कोष्ठमें क्रमसे उष्णजलका चार तोले, आठ तोले और बारह तोलेका अनुपान करना चाहिये ॥ ५ ॥

तदर्द्धम्पाययेच्चूर्णमनुपानञ्च तादृशम्। क्वाथे क्वाथविधिः कार्य्यस्तदर्द्धः स्वरसोऽपि च ॥ पिचुं दद्यात्तथा स्नेहं पलार्द्धं पलमेव वा ॥ ६ ॥

उससे आधी मात्रा चूर्णकी देनी चाहिये और उसीके अनुसार अनुपान करना चाहिये। क्वाथके विषयमें क्वाथकी विधि करनी चाहिये और उससे आधी स्वरसकी मात्रा देनी चाहिये और स्नेह दो तोले अथवा चार तोले प्रमाण देना चाहिये ॥ ६ ॥

यथा वमने प्रसेकौषधकफपित्तानिलाः क्रमेणायान्ति तथा विरेचने पुरीषपित्तौषधकफा इति।

जिसप्रकार वमनमें प्रसेक (लार) को निकालनेवाली औषधिसे कफ, पित्त और वायु ये क्रमसे निकलते हैं, उसीप्रकार विरेचनमें मल, पित्त, औषधि और कफ ये क्रमसे निकलते हैं।

स्नेहस्वेदावकृत्वाग्रे यस्तु संशोधनं पिबेत्। दारुशुष्कमिवानाम्य तद्देहमतिपातयेत् ॥ ७ ॥

जो मनुष्य विना ही स्नेहन और स्वेदन किये विरेचनकी औषधि पीता है, उसका शरीर सूखे काष्ठको नवानेकी समान टूट जाता है ॥ ७ ॥

स्नेहस्वेदैः प्रचलिता रसैः स्निग्धैरुदीरिताः। दोषाः कोष्ठगता जन्तोः सुखा हर्तुं विरेचनैः ॥ ८ ॥

स्नेह और स्वेदस प्रचलित तथा स्निग्धद्रव्योंसे उदीरित दोष सुखपूर्वक विरेचन औषधियोंसे कोठेमसे निकल जाते हैं ॥ ८ ॥

शारदे सौक्ष्म्यतैक्ष्ण्याद्वा विकाशित्वाद्विरेचनम् । वमनं च हरेद्दोषं सम्यगुक्तं तथान्यथा ॥ ९ ॥

शरदृतुमें सूक्ष्मगुणोंवाली, तीक्ष्णगुणोंवाली अथवा विकाशिगुणोंवाली औषधियोंके द्वारा विरेचन देवे । तथा प्रकृतिमें प्राप्त हुये और सम्यक्प्रकारसे कहे हुए दोषोंको वमन दूर करदेती है ॥ ९ ॥

यात्यधो दोषमादाय पच्यमानं विरेचनम् । गुणोद्रेकाजेद्धदूर्ध्वमपक्कं भेषजं पुनः ॥ १० ॥

पच्यमानविरेचनकी औषधि दोषोंको ग्रहण करके नीचेको लेजाती है और अपक्व विरेचनकी औषधि गुणोत्कर्षसे दोषोंको ऊपर लेजाती है ॥ १० ॥

मृदुकोष्ठस्य दीप्ताग्नेर्दत्तं सम्यग्विरेचनम् । न सम्यङ्निर्हरेद्दोषानातिमात्रप्रधावितम् ॥ ११ ॥

जिस मनुष्यका कोठा नरम और अग्नि दीपन हो उसको अच्छे प्रकारसे अधिक मात्राका दिया हुआ विरेचन अच्छे प्रकारसे दोषोंको नहीं निकालता ११॥

त्रिवृत्सैन्धवशुण्ठीनां चूर्णमम्लैः पिबेन्नरः । वातार्दितो विरेकाय जाङ्गलानां रसेन वा ॥ १२ ॥

निसोत,सैंधानमक और सोंठ इनका चूर्ण बनाकर उसको कांजीके साथ अथवा जांगलप्रदेशके जीवोंके मांसरसके साथ वातसे पीडित मनुष्य विरेचनके लिए पान करे ॥ १२ ॥

पित्तोत्तरे त्रिवृच्चूर्णं स्वादुक्काथादिभिः पिबेत् ॥ १३ ॥

पित्तके रोगमें निसोतके चूर्णको मधुर औषधियोंके क्काथादिके साथ पान करै ॥ १३ ॥

भित्त्वा द्विधेक्षुं परिलिप्य कल्कैस्त्रिमण्डिजातैः परिवेष्टय रज्वा । पक्वन्तु सम्यक् पुटपाकयुक्त्या खादेत्तु तां पित्तगदी सुशीताम् ॥ १४ ॥

एक ईख(गन्ने)का टुकडा लेकर उसको बीचमें चीर करके उसमें निसोतका कल्क भरकर ऊपरसे रस्सीसे बाँधकर कपरौटी करदेवे । फिर पुटपाककी रीतिसे अच्छे प्रकार पकाकर शीतल होनेपर उस पित्तरोगीको विरेचनके लिये सेवन करावे ॥ १४ ॥

हरीतकीविडङ्गानि सैन्धवं नागरं त्रिवृत ॥ १५ ॥ मरिचानि च तत्सर्वं गोमूत्रेण विरेचनम् ॥ १६ ॥

हरड, वायविडंग. सैंधानमक, सोंठ, मिरच और निसोत इन सबको एकत्र पीसकर गोमूत्रके साथ सेवन करनेसे उत्तम विरेचन होता है ॥ १५॥१६॥

त्रिवृच्छाणत्रयसमा त्रिफला तत्समानि च । क्षारकृष्णाविडङ्गानि तच्चूर्णं मधुसर्पिषा ॥ १७ ॥ लिह्याद्गुडेन गुटिकां कृत्वा वाप्युपयोजयेत् । कफवातकृतान् गुल्मान् प्लीहोदरभगन्दरान् । हन्त्यन्यानपि चाप्येतान्निरुपायं विरेचनम् ॥ १८ ॥

निसोत१ तोला,त्रिफलाकी प्रत्येक औषधि एकएक तोला,जवाखार१तोला,पीपल१ तोला और वायविडंग १तोला इन सबको एकत्र चूर्ण बनाकर उसको शहद और घीम मिलाकर गुडके योगसे गोलियाँ बनालेवे इन गोलियोंको सेवन करनेसे सुखपूर्वक विरेचन होता है । तथा कफ,वात,गुल्म,प्लीहा,उदर और भगन्दररोग नष्ट होते हैं ॥ १७ ॥ १८ ॥

त्रिफलाक्काथमूत्रैश्च सव्योषं कफपीडितः । कृष्णाशुण्ठीत्रिवृत्क्षारचूर्णं क्षौद्रेण लेहयेत् ॥ १९ ॥ एतद्विरेचनं मुख्यं सर्वश्लेष्मविकारिणाम् ॥ २० ॥

कफसे पीडित मनुष्यको त्रिकुटेके चूर्णको त्रिफलेके क्काथके साथ अथवा गोमूत्रके साथ विरेचनके लिये पान करावे । अथवा पीपल, सोंठ, निसोत और जवाखार इनका चूर्ण बनाकर शहदमें मिलाकर सेवन करावे । सर्वप्रकारके कफरोगियोंके लिये यह उत्तम विरेचन है ॥ १९ ॥ २० ॥

शर्करा क्षौद्रसंयुक्तं त्रिवृच्चूर्णविचूर्णितम् । रेचनं सुकुमाराणां त्वक्पत्रमरिचान्वितम् ॥ २१ ॥

निसोत, तेजपात, दालचीनी और कालीमिरच इन सबका चूर्ण बनाकर मिश्री और शहदमें मिला कर सेवन करे । यह कोमलप्रकृतिवाले मनुष्योंके लिये उत्तम विरेचन है ॥ २१ ॥

पथ्यासैन्धवकृष्णानां कल्कमुष्णाम्बुना पिबेत् । विरेकः सर्वदोषघ्नः श्रेष्ठो नाराचसंज्ञितः ॥ २२ ॥

हरड, सैंधानमक और पीपल इनका कल्क बनाकर गरम जलके साथ सेवन करनेसे अच्छे प्रकारसे विरेचन होकर सर्वदोष नष्ट हो जाते हैं । इसको नाराच कहते हैं ॥ २२ ॥

त्रिवृत्पिप्पलिसिन्धूत्थैरन्वितं गुग्गुलुं पिबेत् । फलत्रिककषायेण रेचनं सर्वदोषनुत् ॥ २३ ॥

निसोत, पीपल, सैंधानमक और गूगल इन सबको एकत्र करके त्रिफलेके क्वाथके साथ पान करनेसे अच्छेप्रकारसे विरेचन होकर सम्पूर्ण दोष नष्ट होते हैं ॥ २३ ॥

पिप्पलीनागरक्षारश्यामात्रिवृतया सह । लेहयेन्मधुना सार्द्धं कफव्याधौ विरेचनम् ॥ २४ ॥

पीपल, सोंठ, जवाखार, कालानिसोत और निसोत इन सबको एकत्र पीसकर चूर्ण करके शहदमें मिलाकरकफके रोगमें देनेसे उत्तम विरेचन होताहै॥२४॥

हरीतक्यास्तु कर्षार्द्धं कर्षार्द्धं त्रिवृतस्तथा । शीताम्बुना समम्पिष्ट्वा भर्ज्जयेत्सर्पिषा मनाक्॥ २५ ॥तद्द्रव्यं शीतलं ज्ञात्वा सिताकर्षेण योजयेत् । भुक्त्वा विरिच्यते जन्तुर्यावदुष्णं न सेवते२६

हरडका चूर्ण ६ मासे और निसोतका चूर्ण ६ मासे इन दोनोंको एकत्र शीतल जलमें पीसकर मन्द मन्द अग्निसे थोडे घीमें भून लेवे । जब शीतल होजाय तब इसमें एक तोला मिश्री मिलाकर सेवन करे । इसको खानेसे जब तक मनुष्य इसके ऊपर शीतल जल नहीं सेवन करेगा तबतक बराबर दस्त होते रहैंगे ॥ २५ ॥ २६ ॥

हरीतकीभिः क्वथितं सुवीरं दन्त्यग्निकृष्णाविडचूर्णयुक्तम् । विरेचनं वा ऋतुतैलमिश्रं निरत्ययं योज्यमथामयघ्नम् ॥ २७ ॥

हरड़का सौवीरनामक कांजीमें क्वाथ बनाकर उसमें दंती, चीता, पीपल और विड नमकका चूर्ण डालकर अथवा अंडीका तेल डालकर निरन्तर पान करनेसे अच्छे प्रकारसे विरेचन होकर सम्पूर्ण रोग नष्ट होते हैं ॥ २७ ॥

त्रिवृतां कौटजं बीजं पिप्पलीं विश्वभेषजम् । समृद्वीकारसं क्षौद्रं वर्षाकाले विरेचनम् ॥ २८ ॥

निसोत,इंद्रजौ, पीपल और सोंठ इनको पीसकर दाखके रस और शहदके साथ वर्षाऋतुमें विरेचनके लिये देवे ॥ २८ ॥

त्रिवृद्दुरालभा मुस्ता शर्करोदीच्यचंदनम् । द्राक्षाम्बुना सयष्ट्याह्वं शीतलञ्च घनात्यये ॥ २९ ॥

निसोत, धमासा, नागरमोथा,मिश्री, सुगंधवाला, चन्दन और मुलैठी इन सबका चूर्ण बनाकर दाखके रसके साथ शरदऋतुमें सेवन करे । यह विरेचन शीतल है ॥ २९ ॥

त्रिवृता शर्करा तुल्या ग्रीष्मकाले विरेचनम् । त्रिवृतां हपुषां दन्तीं सप्तलां कटुरोहिणीम् ॥ ३० ॥ स्वर्णक्षीरीञ्च कम्पिल्लं गोमूत्रे भावयेत्त्र्यहम् । एष सर्वर्त्तुको योगः स्निग्धानां मलदोषहा ॥ ३१ ॥

निसोत और मिश्री दोनोंको समान भाग लेकर चूर्ण बनाकर ग्रीष्मऋतुमें विरेचनके लिये देवे। निसोत हाऊबेर, दंती, सातला, कुटकी, सत्यानासी कटेरी और कबीला इन सबको एकत्र करके गोमूत्रमें

तीन दिनतक भावना देवे । यह योग–सर्वऋतुओंमें विरेचनके लिये उत्तम है और स्निग्धमनुष्योंके मलदोषोंको अच्छेप्रकारसे निकालता है ॥ ३१ ॥

सक्षौद्रां शर्करां पक्त्वा कुर्यान्मृद्भाजने नवे। दद्याच्छीते त्रिवृच्चूर्णं त्वक्पत्रमरिचैः सह ॥ लिह्यात्तं मात्रया लेहमीश्वराणां विरेचनम् ॥ ३२ ॥

शहद और मिश्रीको एकत्र करके एक उत्तम नवीन मिट्टीके पात्रमें पकावे । जब वह पककर अपने आप शीतल होजाय तब उसमें निसोतका चूर्ण तथा दालचीनी, तेजपात और काली मिरचोंका चूर्ण डालकर उसको यथोचितमात्रासे सेवन करे । यह उत्तम विरेचन ऐश्वर्यवान् मनुष्योंके योग्य है ॥ ३२ ॥

अभयाद्यमोदक।

अभया पिप्पलीमूलं मरिचं विश्वभेषजम् । त्वक्पत्रपिप्पलीमुस्तविडङ्गामलकानि च ॥ ३३ ॥ एतानि समभागानि दन्ती च त्रिगुणा भवेत्। त्रिवृदष्टगुणा देया षड्गुणा चात्र शर्करा ॥ ३४ ॥ मधुना मोदकान् कृत्वा चाक्षमात्रान् प्रमाणतः । एकैकं भक्षयेत्प्रातः शीतं चानु पिबेज्जलम् ॥ ॥ ३५ ॥ तावद्विरिच्यते जन्तुर्यावदुष्णं न सेवते। पानाहारविहारेषु भवेन्निर्यन्त्रणः सदा ॥ ३६ ॥ पाण्डुत्वकासविषमज्वरवह्निसादान् जंघोरुपृष्ठजघनोदरपार्श्वशूलान् । दुर्नाममण्डलभगन्दरशोफगुल्मान् यक्ष्मोदरभ्रमविदाहकमूत्रकृच्छ्रान् ॥ ॥ ३७ ॥ प्लीहाक्षिरोगयकृदश्मरिकुष्ठमेहान् हन्याद्रसायनमिदं भिषजा प्रयुक्तम् । अल्पव्ययं बहुफलं सततं प्रयोज्यमायुष्करं पलितनाशनमाश्विदृष्टम् ॥ ३८ ॥

हरड़, पीपलामूल, कालीमिरच, सोंठ,दालचीनी, तेजपात, पीपल, नागरमोथा, वायविडंग और आमले ये सब औषधि समानभाग और दंती तिगुनी लेवे। निसोत आठगुनी और उत्तम खाँड छः गुनी लेवे। इन सबको एकत्र पीसकर शहदमें मिलाकर एक एक तोलेके मोदक बनालेवे। इनमेंसे प्रतिदिन प्रातः एक एक मोदक खाय और ऊपरसे शीतल जल अनुपान करे। इस मोदकके खानेसे तबतक दस्त होते रहते हैं जबतक कि मनुष्य [illegible] जल नहीं पिये। इन मोदकोंको सेवन करनेवालेको विशेष पान,आहार और विहारमें परहेज करनेकी आवश्यकता नहीं है। उत्तम वैद्यके द्वारा प्रयोग की हुई यह औषधि पाण्डुरोग, खांसी, विषमज्वर, मंदाग्नि, [illegible] जंघा, ऊरु, पृष्ठ, जघन, उदर और पार्श्वशूल, बवासीर, मण्डल, भगन्दर, सूजन, गुल्म, राजयक्ष्मा, उदररोग, भ्रम, दाह, मूत्रकृच्छ्र, प्लीहा, नेत्ररोग, यकृत्, अश्मरी, कुष्ठ और प्रमेह इन सब रोगोंको नष्ट करती है। तथा अल्पव्ययसे सिद्ध होनेवाली और महान् फलको देनेवाली है, इस लिए इसको सदैव प्रयोग करना चाहिये। यह औषध–अवस्थाको स्थापन करनेवाली और पलितरोगको नष्ट करनेवाली है, यह अश्विनीकुमारोंके द्वारा अनुभव की हुई है ॥ ३३–३८ ॥

माणिभद्रमोदक।

विडङ्गसारामलकाभयानां पलं पलं स्यात्त्रिवृतस्त्रयश्च । गुडस्य षड् द्वादशभागयुक्ता मानेन त्रिंशद्गुटिका विधेयाः ॥ ३९ ॥ निवारणे यक्षवरेण सृष्टः स माणिभद्रः किल शाक्यभिक्षवे। अयं हि कुष्ठक्षयकासनाशनो भगन्दरप्लीहगुदोदरार्त्तिजित् ॥ यथेष्टचेष्टान्नविहारसेवी [illegible] वृद्धोऽपि तरुणो भवेच्च ॥ ४० ॥

विडंगसार, आमले और हरड ये प्रत्येक औषधि चार चार तोले, निसोत १२ तोले और गुड़ अठारह भाग लेवे। इन सबको एकत्र पीसकर [illegible] गोली या मोदक बनालेवे । यह औषधि–कुष्ठ, राजयक्ष्मा, खाँसी, भगन्दर, प्लीहा, गुदरोग और उदररोग इन सबको दूर करती है। इसपर यथेष्ट आहार, चेष्टा और विहार करे। इससे वृद्धमनुष्य भी तरुणताको

प्राप्त होता है यह माणिभद्र मोदक कुबेरने शाक्यभिक्षु मुनिके कष्टोंको निवारण करनेके लिए निर्माण किये हैं ॥ ३९ ॥ ४० ॥

गुडाद्यमोदक ।

गुडस्याष्टपलं पथ्या विंशतिः स्युः पलानि च । दन्तीचित्रकयोः कर्षाः पिप्पलीत्रिवृतोर्दश ॥ ४१ ॥ कृत्वैतान्मोदकानेकं दशमे दशमेऽहनि । स खादेदुष्णसेवी चाहारे निर्य्यन्त्रणास्त्वमी ॥ दोषघ्ना ग्रहणीपाण्डुरोगार्शःकुष्ठनाशनाः ॥ ४२ ॥

गुड़ ८ पल, हरड २० पल, दंती, चीता, पीपल और निसोत ये प्रत्येक औषधि दश दश कर्ष लेवै । इन सबको एकत्र करके मोदक बनालेवे । एक एक मोदक दशवें दशवें दिन खाय और उष्णजलका अनुपान करे । इसपर आहारादिका कुछ विशेष परहेज नहीं है । ये मोदक वातादिदोष, संग्रहणी, पांडुरोग, बवासीर और कुष्ठको नष्ट करते हैं ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

विरेकायौषधं पीतं न सम्यग्यदि रेचयेत् । पिबेदुष्णांभसा तत्र सैन्धवं दोषशान्तये ॥ ४३ ॥

जो विरेचनकी औषधिके पीनेपर अच्छे प्रकारसे विरेचन नहीं हो तो गरमजलमें सैंधानमक डालकर पान करे ॥ ४३ ॥

हृत्कुक्ष्यशुद्धिं परिदाहकंडूर्विण्मूत्रसंगाश्च न सद्विरिक्ते । मूर्च्छा गुदभ्रंशकफातियोगाः शूलोद्गमश्चातिविरिक्तलिङ्गम् ॥ ४४ ॥

जब अच्छेप्रकारसे विरेचन होजाता है तब हृदय और कोखमें अशुद्धि, शरीरमें दाह, खुजली, मल और मूत्रका अवरोध ये लक्षण नहीं होते हैं । मूर्च्छा, गुदभ्रंश (काँचका निकलना) अत्यंत कफकी प्रवृत्ति और शूलका होना ये लक्षण अधिक विरेचन होनेके हैं ॥ ४४ ॥

गतेषु दोषेषु कफान्वितेषु नाभ्या लघुत्वे मनसश्च तुष्टौ । गतेऽनिले चाप्यनुलोमभावं सम्यग्विरिक्तम्मनुजं व्यवस्येत् ॥ ४५ ॥

कफके साथ सम्पूर्ण दोषोंके निकलजानेपर नाभिके चारों ओर हलकापन, मनमें प्रसन्नता और अधोवायुका उत्तमरीतिसे अनुलोमन होना ये सब लक्षण उत्तमरीतिसे विरेचन होनेके हैं ॥ ४५ ॥

मन्दाग्निमक्षीणमसद्विरिक्तं न पाययेत्तद्दिवसे यवागूम् । क्षीणं तृषार्त्तं सुविरेचितञ्च तन्वीं सुखोष्णां लघु पाययेत्ताम् ॥ ४६॥

मंदाग्निवाले अक्षीण और जिसको अच्छेप्रकारसे विरेचन नहीं हुआ हो ऐसे मनुष्यको उसी दिन यवागू नहीं देनी चाहिये। किंतु क्षीण,तृषासे पीडित और जिसको अच्छेप्रकारसे विरेचन होगया हो,ऐसे मनुष्यको पतली मंदोष्ण और हलकी यवागू पिलानी चाहिए ॥ ४६ ॥

छर्दितोक्तं क्रमं सर्वं धूपं मुक्त्वा प्रयोजयेत् । शोणितस्रावसंशुद्धिस्नेहयोजनलंघनैः ॥ ४७॥ वह्निर्यस्य ततो मन्दः स्याद्वैद्यस्तमुपाचरेत् । मद्यपो वातपित्ताढ्यो योऽल्पपित्तकफाश्रयः। पेयादिरहितस्तस्य तर्पणादिक्रमं दिशेत् ॥ ४८ ॥

अत्यन्त विरेक होनेपर वमनोक्त धूम्रपानको छोड कर शेष सम्पूर्ण वमनोक्त क्रिया करे। रुधिरस्राव,संशोधन, स्नेहयोग और लंघन करानेसे जिसकी अग्नि मन्द होगई हो तो वैद्य उसके अग्निदीपन करनेवाली चिकित्सा करे ।मद्यको पीनेवाला,वातापित्तकी प्रकृति वाला और जिसके पित्त तथा कफ अल्प हो ऐसे मनुष्यको पेयाका त्याग कर केवल तर्पणादि क्रिया करे ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

आस्थाप्य स्नेहितं तीक्ष्णै रेचयेद्धीनरेचितम् ॥ ४९ ॥

जिसके हीनरेचन हुआ हो उसको स्निग्ध करके आस्थापनवस्ति देकर तीक्ष्णरेचन देवे॥ ४९॥

पद्मकोशीरनागाह्वचन्दनानि प्रयोजयेत् । अतियोगे विरेकस्य पानलेपनसेचनैः ॥ ५० ॥

अत्यंत विरेचनके होनेपर पद्माख,खस,नागकेशर और चंदन इनको पान, लेपन और सेचनके द्वारा प्रयोग करे ॥ ५० ॥

सौवीरपिष्टः सहकारकल्को नाभिप्रलेपादतिसारहन्ता ॥ ५१ ॥

आमकी छालको काँजीमें पीसकर नाभिके ऊपर लेप करनेसे अत्यंत विरेचनके होनेसे उत्पन्नहुआ अतिसाररोग नष्ट होता है ॥ ५१ ॥

शाल्मलीमूलकल्कश्च मस्तुना सह संपिबेत् । गङ्गाप्रवाहतुल्यं हि नाशयेद् ग्रहणीगदम् ॥ ५२ ॥

सेमलकी जडके कल्कको दहीके तोडमें पीसकर पान करनेसे गंगाके प्रवाहके समान वेगवाला भी संग्रहणीरोग तत्काल नष्ट होजाता है ॥५२ ॥

अञ्जनं चन्दनोशीरं मज्जाम्रं चातियोगनुत् । लाजचूर्णैः पिबेन्मन्थमतियोगहरं परम् ॥ ५३ ॥

रसौत, चंदन, खस और आमकी मज्जा इनको पीसकर शीतल जलके साथ पान करनेसे अथवा खीलोंके चूर्णको मंथके साथ सेवन करनेसे अत्यंत विरेचनसे हुआ विकार नष्ट होता है ॥५३ ॥

दध्यारनालधात्रीचूर्णयुताः शक्तवः प्रलेपेन । सन्तापारुचितृष्णावमनविरेकातियोगहराः ॥५४ ॥

दही, काँजी, आमले और सत्तू इन सबको एकत्र पीसकर लेप करनसे संताप, अरुचि, तृषा और अत्यंत वमन तथा अत्यंत विरेचनका विकार ये सब दूर होते हैं ॥ ५४ ॥

क्षीणक्षयोरःक्षतबालवृद्धा दीनोऽथ शोषी भयशोकतप्तः । श्रान्तस्तृषार्त्तौ परिजीर्णभक्तो गर्भिण्यधो गच्छति यस्य चासृक् ॥ ५५ ॥ नवप्रतिश्याय-मदात्ययी च नवज्वरी या च नवप्रसूता । शल्यार्दिताश्चाप्यविरेचनीयाः स्नेहादिभिय त्वनुपस्कृताश्च ॥ ५६ ॥

क्षीण, क्षय, उरःक्षत, बालक, वृद्ध, दीन, शोषरोगी, भय और शोकसे संतापित, श्रान्त(थकाहुआ) तृषासे पीडित, अजीर्णमें भोजन करनेवाला, गर्भिणी स्त्री, अधोगत रक्तपित्तरोगी, नवीन प्रतिश्यायरोगी, मदात्ययरोगी,नवीन ज्वररोगी, नवीन प्रसूता स्त्री, शल्यस पीडित, अर्दितरोगी और जिनके पहिले स्नेहन कर्म्म नहीं किया हो ऐसे मनुष्योंको विरेचन नहीं देना चाहिये ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

अत्यर्थपित्ताभिपरीतदेहा विरेचयेत्तानपि मन्दवीर्य्यैः । विरेचनैर्यान्ति नरा विनाशमज्ञप्रयुक्तैरविरेचनीयाः ॥ ५७ ॥

यदि इन उपर्युक्त रोगियोंके भी पित्त अधिक बढ गया हो तो मंदवीर्य्यवाली मधुर औषधियोंके द्वारा विरेचन देवे । जो मूर्ख मिथ्याभिमानी वैद्य ऐसे रोगियोंको तीक्ष्ण विरेचन दे देते हैं इससे वे मनुष्य नाशको प्राप्त होजाते हैं ॥ ५७ ॥

नचातिस्निग्धकायस्य दद्यात्स्नेहविरेचनम् । दोषाः प्रच्याविता भूयो लीयन्ते तेन वर्त्मसु ॥ ५८ ॥

अत्यन्त स्निग्ध देहवाले,अथवा जिसने अत्यन्त स्नेहपान किया हो, उसको स्नेहविरेचन नहीं देवे, क्योंकि दोष स्थानोंसे चलायमान होकर फिर मार्गमें लय होजाते हैं ॥ ५८ ॥

विषाभिघातपिडिकाः शोफपांडुविसर्पिणः । नातिस्निग्धा विशोध्याः स्युस्तथा कुष्ठप्रमेहिणः ॥ ५९ ॥

विषरोगी, अभिघात, पिडिका और शोथसे युक्त पांडुरोगी,विसर्परोगी,अत्यन्त स्निग्ध, कुष्ठरोगी और प्रमेहरोगी इनको भी विरेचन नहीं देना चाहिये॥५९॥

विरूक्ष्य स्नेहसात्म्यन्तु भूयः सस्नेह्य रेचयेत् । तेन दोषा हृतास्तस्य भवन्ति श्लथबन्धनाः ॥ ६० ॥

जो स्वभावसे ही स्निग्ध है, उनको पहले रूक्ष करके और फिर स्निग्ध करके विरेचन देवे । इस प्रकार करनेसे दोष नष्ट होजाते हैं और उसके बन्धन शिथिल होजाते हैं ॥ ६० ॥

बुद्धेः प्रसादम्बलमिन्द्रियाणां धातुस्थिरत्वं ज्वलनाभिवृद्धिम् । चिराच्च पाकं वयसः प्रकुर्य्याद्विरेचनं सम्यगुपास्यमानम् ॥ ६१ ॥

अच्छे प्रकारसे विरेचन होजानेसे बुद्धिमें प्रसन्नता, इन्द्रियोंमें सामर्थ्य, धातुओंमें स्थिरता, अग्निकी वृद्धि और बहुत दिनोंमें आयुका पकना अर्थात् वृद्धताका होना ये सब लक्षण होते हैं ॥ ६१ ॥

यथोदकानां स्थिरजङ्गमानां जलेऽपनीते ध्रुवमेव नाशः । पित्ते हृते त्वेवमुपद्रवाणां पित्तात्मकानां ध्रुवमेव नाशः ॥ ६२ ॥

जिसप्रकार जलके हटजानेसे जलके आश्रित रहनेवाले स्थावर और जंगमोंका निश्चय नाश होजाता है, उसीप्रकार पित्तके नष्ट होनेपर पित्तजनित रोगोंका अवश्य नाश होता है ॥ ६२ ॥

सव्योषं पिप्पलीमूलं त्रिवृद्दन्ती सचित्रकम् । तच्चूर्णं गुडसम्मिश्रं भक्षयेत्प्रातरुत्थितः ॥ ६३ ॥ एतद्गुडाष्टकं चूर्णं बलवर्णाग्निवर्द्धनम् । शोथोदावर्त्तगुल्मघ्नं प्लीहपाण्ड्वामयापहम् ॥ ६४ ॥

त्रिकुटा, पीपलामूल, निसोत, दंती और चीता इन सबको चूर्ण करके गुडमें मिलाकर प्रतिदिन प्रातःकाल सेवन करे । यह गुडाष्टकचूर्ण-बल, वर्ण और अग्निको बढाता है तथा सूजन, उदावर्त्त, गुल्म, प्लीहा और पांडुरोगको नष्ट करता है ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

पश्चाद्विरिक्तो वान्तश्च ततश्चापि निरूहणम् । निरूढस्त्वनुवास्यः स्यात्सप्तरात्राद्विरेचितः ॥ ६५ ॥

विरेचन और वमनके पश्चात् निरूहबस्ति देवे और निरूहबस्तिके बाद विरेचनके सात दिनके पश्चात् अनुवासनबस्ति देवे ॥ ६५ ॥

पथ्यापथ्य ।

कृतः शिराव्यधो यस्य कृतं यस्य च शोधनम् । मासं परिहरेज्जन्तुर्यावन्नो बलवान् भवेत् ॥ ६६ ॥ क्रोधायासौ मैथुनञ्च दिवास्वप्नोच्चभाषणे । पानं यानासने स्थानं चिरञ्च क्रमणं हिमम् ॥ ६७ ॥ सम्भोगतोययोः सेवा प्रवातातपयोस्तथा । विरुद्धाध्यशनासात्म्यभोजनानि विशेषतः ॥ ६८ ॥

जिसके शिरावेध (फस्त) हुआ हो और जिसके विरेचनादि संशोधन किया हो उसको एक महीनेपर्य्यन्त अर्थात् जबतक वह बलवान् न हो तबतक क्रोध, परिश्रम, मैथुन, दिनमें सोना, उच्चभाषण, पान, हाथी, घोडे आदिकी सवारी पर चढना, भ्रमण करना, शीत, अथवा शीतल जल, स्त्रीप्रसंग, पवन, धूप इनका सेवन, विशेषकर विरुद्ध भोजन, भोजन पर भोजन और असात्म्यभोजन ये सब त्यागदेने चाहिये ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायां विरेचनाधिकार समाप्त ॥ ७८ ॥

अथ बस्तिकर्म्माधिकार ।

बस्तिर्वाते च पित्ते च कफे रक्ते च शस्यते । संसर्गे सन्निपाते च बस्तिरेव सदा हितः ॥ १ ॥

वात, पित्त, कफ, रक्त, वातपित्त, वातकफ, कफपित्त और त्रिदोषजरोग इन सब रोगोंमें बस्तिकर्म्म, पिचकारी लगाना सदैव हितकारी है अर्थात् उपर्युक्त सम्पूर्ण रोगोंमें बस्तिकर्म्म करना चाहिये ॥ १ ॥

वायोर्वेगं समुद्धन्तं नान्या बस्तिमृते क्रिया । पवनाविद्धतोयस्य वेला वेगमिवोदधेः ॥ २ ॥

सम्पूर्ण रोगोंमें वायु प्रधान है इस कारण जब अत्यंत वायुका वेग बढकर शरीरको नाश करने लगता है, तबवायुके वेगको नष्ट करनेवाली बस्तिके सिवा अन्य क्रिया नहीं है । जिसप्रकार पवनके वेगसे जब समुद्र उभरता है अर्थात् उसमें ज्वारभाटा आता है तब

उसके वेगको रोकनेके लिये सिवाय कूल मर्य्यादाके और कोई समर्थ नहीं होता ॥ २॥

वाते वातोल्बणे व्याधौ बस्तिः शस्तः स च त्रिधा। निरूहोऽन्वासनाख्यश्च लिङ्गे चोत्तरसंज्ञितः॥ ३॥

अतएव वातजनितरोगोंमें अथवा वातकी उल्वणतामें बस्ति अतीव हितकारी है। यह बस्ति निरूह अनुवासन और उत्तर इन भेदोंसे तीन प्रकारकी है॥ ३॥

कषायक्षीरतो बस्तिर्निरूहः स निगद्यते। यः स्नेहैर्दीयते स स्यादनुवासनसंज्ञकः॥ ४॥

क्काथ और दूधके द्वारा जो बस्ति दीजाती है उसको निरूहबस्ति कहते हैं। घी अथवा तैलादिकके द्वारा जो बस्ति दीजाती है, उसको अनुवासन कहते हैं॥ ४॥

बस्तिभिर्दीयते यस्मात्तस्माद्बस्तिरिति स्मृतः। निरूहस्यापरं नाम प्रोक्तमास्थापनं बुधैः॥ ५॥

इसमें मृग आदिकोंके मूत्राशयकी कोथलीरूप साधनसे पिचकारी दीजातीहै, इसकारण इस पिचकारीको बस्ति कहते हैं। बस्ति मूत्राशयका नाम है। निरूहबस्तिका दूसरा आस्थापनबस्ति है ऐसा विद्वानोंने कहा है॥ ५॥

निरूहो दोषहरणाद्रोहणादथवा तनोः। आस्थापयेद्वयो देहं यस्मादास्थापनः स्मृतः॥ ६॥

निरूहबस्ति दोषोंको हरण करती है और देहको आरोहण करती है, इसकारण इसको निरूह ऐसा कहते हैं। आस्थापनबस्ति अवस्था और देहको स्थापन करती है, इस कारण इसको आस्थापनबस्ति कहते हैं॥ ६॥

निशानुवासनात् स्नेहोऽन्वासनश्चानुवासनः॥ ७॥

अनुवासनबस्तिमें रात्रिमें स्नेहके अनुवासित होनेके कारण इसको अनुवासबस्ति कहते हैं॥ ७॥

विरिक्तसम्यग्गृहिताशनस्य आस्थाप्य शय्यामनुदीयते यत। तदुच्यते वाप्यनुवासनश्च तेनानुवासश्च बभूव नाम॥ ८॥

अच्छेप्रकारसे विरेचन होनेपर उत्तम प्रकारसे पथ्य सेवन करनेवाले मनुष्यको शय्यापर स्थापन करके पश्चात् यह अनुवासन दीजाती है, इसकारण इसको "अनुवासनबस्ति" कहते हैं॥ ८॥

उत्कृष्टावयवे दानाद्बस्तिरुत्तरसंज्ञितः। निरूहमात्रा प्रथमे प्रकुञ्चो वत्सरे परम्॥ ९॥ प्रकुञ्चवृद्धिः प्रत्यब्दं यावत् षट्प्रसृतास्ततः। प्रसृतं वर्द्धयेदूर्ध्वं द्वादशाष्टादशावधि॥ १०॥ आसप्ततेरिदं मानं दशैव प्रसृतं परम्। यथायथं निरूहस्य पादो मात्रानुवासने॥ ११॥

उत्कृष्ट अवयवमें प्रदान करनेसे इसको उत्तरबस्ति कहते हैं। प्रथम वर्षमें निरूहकी मात्रा प्रकुञ्च अर्थात् चार तोले भरकी है। फिर क्रम क्रमसे प्रत्येक वर्षमें चार चार तोलेकी वृद्धि तबतक करनी चाहिए जबतक कि ६ प्रसृत पूरे हों। जब छः प्रसृत होजायँ तब प्रत्येक वर्षमें एक २ प्रसृत मात्रा बढ़ावे। इस प्रकार अठारहवर्षकी अवस्था पर्य्यन्त बारह प्रसृतकी मात्रा होजायगी। यह क्रम सत्तरवर्षतक रक्खे और फिर सत्तरवर्षके पश्चात् दश प्रसृतकी मात्रा देवे। निरूहमें मात्राका जो जो क्रम कहा है उसीके अनुसार चौथाई मात्रा अनुवासनमें जाननी॥ ९॥ ॥ १०॥ ११॥

बस्तियन्त्रनिर्माणविधि।

सुवर्णरूप्यत्रपुताम्ररीतिकांस्यायसास्थिद्रुमवेणुदन्तैः। नलैर्विषाणैर्मणिभिश्च तैस्तैः कार्य्याणि नेत्राणि सुकर्णिकानि॥ १२॥

सुवर्ण, चांदी, रांग, तांबा, पीतल, कांसी, लोहा, हड्डी, वृक्ष, बांस, दंत, नल, सींग और मणि इनके द्वारा सुन्दर कर्णिकावाली बस्ति देनेकी नली बनावे १२

षड् द्वादशाष्टांगुलसम्मितानि षड्विंशतिद्वादशवर्षजानाम् । स्युर्मुद्गकर्कंधुसतीनवाहिच्छिद्राणि वर्त्या पिहितानि चापि ॥ १३ ॥

एक वर्षसे लेकर छः वर्षकी अवस्थावाले बालकके ६ अंगुलकी नली प्रयोग करे। छैसे बारह वर्षकी अवस्थावाले मनुष्यके आठ अंगुलकी नलीका प्रयोग करे। और बारहवर्षसे लेकर बीसवर्षकी अवस्थावाले मनुष्यके बारह अंगुलकी नलीका प्रयोग करे। छः अंगुलकी नलीमें मूंगकी बराबर, आठ अंगुलकी नलीमें मटरकी बराबर और बारह अंगुलकी नलीमें बेरकी गुठलीकी बराबर छिद्र रखना चाहिये ॥ १३ ॥

यथावयोऽगुष्ठकनिष्ठिकाभ्यां मूलाग्रयोः स्युः परिणाहवन्ति । ऋजूणि गोपुच्छसमाकृतीनि श्लक्ष्णानि च स्युर्गुटिकामुखानि ॥ १४ ॥

नली यथा अवस्थानुसार मूलमें अंगुठेके समान और अग्रभागमें कनिष्ठा अंगुलके समान मोटी, कोमल,गायके पूंछके समान जडमें मोटी और उसके पीछे क्रमक्रमसे सूक्ष्म चिकनी और गोल मुखवाली होनी चाहिये ॥ १४ ॥

स्यात्कर्णिकैकाग्रचतुर्थभागे मूलाश्रिते बस्तिनिबन्धने द्वे । जारद्गवो माहिषहारिणो वा स्याच्छौकरो बस्तिरजस्य वापि ॥ १५ ॥

नलीके तीनभाग छोडकर चौथे भागरूप जडमें २ कर्णिका बनावे। उन कर्णिकाओंमें वृद्ध बैलकी, भैंसकी, हिरनकी, सूअरकी अथवा बकरेके मूत्राशयकी कोथलीको २ बंधनोंसे बांधकर मिलादेवे॥१५॥

दृढस्तनुर्नष्टशिरोविगन्धः कषायरक्तः सुमृदुस्तु सिद्धः । नृणां वयो वीक्ष्य यथानुरूपं नेत्रेषु योज्यस्तु सुबद्धसूत्रः ॥ १६ ॥

यह बस्ति (कोथली) दृढ, पतली, शिरा और गन्धरहित, काथके रंगसे रंगी हुई, नरम तथा सुन्दर और उत्तम प्रकारसे सूतसे मनुष्योंकी अवस्थाको विचार कर पिचकारीमें बांधनी चाहिये ॥ १६ ॥

नेत्राभावे हिता नाडी नलवंशास्थिसम्भवा । बस्त्यभावे हितं चर्म्म वस्त्रं वापि हितं घनम् ॥ १७ ॥

जो उपर्युक्त प्रकारके नेत्र (नली) न मिले तो नल, बाँस और हड्डी आदिकी नली बना लेवे और जो पिचकारी न मिले तो चर्म्म अथवा मोटे कपडेकी बस्ति बनावे ॥ १७ ॥

द्वादशांगुलकं नेत्रं कलाययवरन्ध्रकम् । अंगुले कर्णिकायुक्तं मुखे वृत्तं समं मृदु ॥ १८॥

उपर्युक्त बस्तिके बारह अंगुलके नेत्र (नली) बनावे और उसमें मटर अथवा जौके समान छिद्र करे और एक अगुलकी कर्णिका बनावे और उसका मुख गोल, समान और नरम बनावे ॥ १८ ॥

विरेचनात्सप्तरात्रे गते जातबलाय वै । कृताहाराय सायाह्ने बस्तिर्देयोऽनुवासनः ॥ १९ ॥

विरेचन देनेके सात दिन पश्चात् जब शरीरमें अच्छे प्रकारसे बल आजाय तब अनुवासनके योग्य रोगीको भोजन कराकर संध्या समय अनुवासन बस्ति देवे ॥ १९॥

उत्तमा स्यात्पलैः षड्भिर्मध्यमा स्यात्पलैस्त्रिभिः । तदर्द्धेन च हीना स्यात्त्रिधामात्रानुवासने ॥ २० ॥

अनुवासनबस्तिमें स्नेहकी छः पलकी उत्तम मात्रा है,तीन पलकी मध्यम मात्रा है और डेढपलकी कनिष्ठ मात्रा है। इस प्रकार अनुवासनकी तीन मात्रा हैं२०

प्रसृतस्य पलार्द्धेन पलस्य पिचुना तथा । तदर्द्धस्यार्द्धकर्षेण वृद्धिः कार्य्या यथाक्रमम् ॥२१॥ षट्पल त्रिपल सार्द्धपलं पूर्णं यथा भवेत् ॥ २२ ॥

स्नेहकी मात्रा अवस्थानुसार आधाकर्ष,एक कर्ष, एक तोला,दो तोले,चार तोले और आठ तोलेके क्रमसे बढाकर डेढपल, तीनपल और छः पल पर्य्यन्त करे

अर्थात् कनिष्ठ मात्रा डेढ पल पर्य्यंत करे, मध्यम मात्रा तीन पल पर्य्यंत और उत्कृष्ट मात्रा छः पल पर्य्यंत करे ॥ २१ ॥ २२ ॥

देवदारुवचारास्नाशताह्वाकुष्ठसैन्धवैः। अवचूर्णम्प्रदातव्यं षट्चतुर्द्वयमाषकैः ॥ २३ ॥

स्नेहमें देवदारु, वच, रायसन, सौंफ, कूट और सैंधानमक इनका चूर्ण बनाकर उत्तम मात्रामें छःमासे, मध्यममें चार मासे और कनिष्ठमें दो मास मिलावे ॥ २३ ॥

यद्वा सैन्धवचूर्णेन शताह्वेन च संयुतम्। चूर्णं माषं पले स्नेहे सिन्धुजन्मशताह्वयोः ॥ २४ ॥

अथवा सैंधानमक और सौंफका चूर्ण मिलावे किन्तु सैंधेनमक और सौंफका एक मासा चूर्ण एकपल स्नेहमें मिलावे ॥ २४ ॥

क्षीरं न चेद्वैतरणं प्रदाय द्व्यहे त्र्यहे वाप्यनुवासनीयः ॥ २५ ॥ उत्सृष्टानिलाविण्मूत्रे नरे बस्तिं निधापयेत्। अन्यथा निहितो बस्तिर्नैवान्तः सम्प्रपद्यते ॥ २६ ॥

अनुवासनवस्ति देने योग्य रोगीको सन्तर्पणके लिये दूसरे, तीसरे दिन भी दुग्ध पान कराकर केवल रोगीके मलमूत्र और वायुका त्याग कराकर पश्चात् अनुवासनवस्ति देवे। क्योंकि, मलमूत्रके भीतर रहनेपर स्नेहबस्ति भीतर अच्छे प्रकारसे प्रवेश नहीं कर सक्ती है ॥ २५ ॥ २६ ॥

प्रसुप्तं वामपार्श्वेण कृतान्नमनुवासयेत् ॥ २७ ॥

प्रथम रोगीको भोजन कराकर और कुछ काल विश्राम अथवा भ्रमण कराकर पश्चात् बाईं करवटसे सुलाकर अनुवासनबस्ति देवे ॥ २७ ॥

वामाश्रया हि ग्रहणीगुदश्च तत्पार्श्वसंस्थस्य गुदोपलब्धिः। लीयन्त एवं वलयश्च तस्मात्सव्ये च पार्श्वे हितबस्तिदानम् ॥ २८ ॥

ग्रहणीगुदा बायें अंगके आश्रित है उसके पार्श्वमें गुदाकी उपलब्धि है और उसमें गुदाकी वली लीन है, इस कारण बाँये पार्श्वमें बस्ति देनी चाहिये ॥ २८ ॥

प्रसारितैकजंघेन कार्य्योऽन्योपरिकुञ्चिता। बस्तिं सव्ये करे कृत्वा दक्षिणेनावपीडयेत् ॥ २९ ॥

एक जंघाको फैलाकर और दूसरीको सकोडकर तथा बांये हाथमें बस्तिको लेकर दाहिने हाथसे दबाकर बस्ति लगावे ॥ २९ ॥

तथास्य नेत्रं प्रणयेत स्निग्धस्विन्नमुखं गुदे। उच्छ्वास्य बस्तवदनं बद्ध्वं हस्तमकम्पयन् ॥ ३० ॥ पृष्ठवंशम्प्रति तता नातिद्रुतविलम्बितम्। नातिवेगं नातिमन्दं सकृदेव प्रपीडयेत् ॥ ॥ ३१ ॥ सावशेषमकुर्वीत वायुः शेषे हि तिष्ठति। निरूहदानेऽपि विधिरयमेव समीरितः ॥ ३२ ॥ शीते वसन्ते च दिवानुवास्यो रात्रौ शरद्ग्रीष्मघनागमेषु ॥ ३३ ॥

वैद्यको उचित है कि, रोगीकी गुदाको प्रथम घृतादिसे चिकना और स्वेदित करके पश्चात् नलीके मुखको चिकना कर गुदामें रक्खे और अपना श्वास रोककर, बस्तिके मुखको बांधकर, हाथोंको निष्कंप करके, पीठके बाँसको न अत्यन्त शीघ्रतासे न अत्यन्त बिलम्बसे, न अत्यन्त वेगसे और न अत्यन्त धीरे२ किन्तु एकदम पीडित करके सम्पूर्ण बस्तिको प्रविष्ट करदेवे। क्योंकि वायु शेषमें ही कुपित होती है। निरूहवस्तिकी भी यही विधि जानना। शीत और वसन्तऋतुमें दिनमें अनुवासनबस्ति देनी चाहिये और शरद्, ग्रीष्म, तथा वर्षाऋतुमें रात्रिके समय अनुवासनबस्ति देनी चाहिये ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

स्नेहबस्तिर्विधेयस्तु नाविशुद्धस्य देहिनः। स्नेहो वीर्य्यं तथा दत्ते देहं नानुविसर्पति ॥ ३४ ॥

अशुद्ध शरीरवाले रोगीके स्नेहबस्ति नहीं देनी चाहिये, क्योंकि अशुद्ध शरीरमें दिया हुआ स्नेह वीर्यको ग्रहण करता है और शरीरमें नहीं फैलता ॥ ३४ ॥

अशुद्धमपि वातेन केवलेनातिपीडितम् । अहोरात्रस्य कालेषु सर्वेष्वेवानुवासयेत् ॥ ३५ ॥

किन्तु केवल वायुसे अत्यन्त पीडित अशुद्ध शरीरवाले रोगीको भी दिनरातके सब कालोंमें अनुवासनबस्ति देवे ॥ ३५ ॥

ततः प्रणिहिते स्नेह उत्तानो वाक्छतं भवेत् । प्रसारितैः सर्वगात्रैस्तथा वीर्यं प्रसर्पति ॥ ३६ ॥

शरीरमें स्नेहके अच्छेप्रकारसे पहुँच जानेके पश्चात् सौ मात्रातक देहको चित्त करके शयन करे। क्योंकि सम्पूर्ण अंगोंको फैलानेसे स्नेह सम्पूर्ण शरीरमें फैल जाता है ॥ ३६ ॥

आकुञ्चयेच्छनैस्त्रींस्त्रीन्सक्थिबाहू ततः परम् । ताडयेत्तलयोरेनं त्रींस्त्रीन्वारांच्छनैः शनैः ॥ ३७ ॥

फिर धीरे धीरे तीन तीन बार सक्थि और बाहुको सकोड़े। पश्चात् उसके तलुओंको तीन तीन बार धीरे धीरे हाथोंसे थपोडे ॥ ३७ ॥

स्फिजोश्चैनं ततः श्रोणीं शय्यां त्रींस्तूत्क्षिपेद्बुधः । एवं प्रणिहिते बस्तौ मन्दायासोऽथ मन्दवाक् ॥ ३८ ॥ स्वास्तीर्णे शयने काममासीताचारिके ततः । कूर्परे जानुनी चैव कुर्य्यात्त्रीणि गतागतम् ॥ ३९ ॥ पाणिपादतले चास्य हन्तव्ये मुष्टिना तदा । त्रिकसंचालनं चापि कुर्य्याद्वारत्रयं ततः ॥ ४० ॥

पश्चात् दोनों नितम्ब और कटिको धीरे धीरे तीन तीन बार थपोडे। फिर उसकी शय्याको उचकाकर अपने हाथोंसे तीन तीन बार पहलेके अनुसार ठोंके पश्चात् पांवोंके ओरकी शय्याको उठावे। इस प्रकार विधान करनेपर रोगीको परिश्रम न करने दे तथा थोडा बोलने देवे। इस प्रकार बस्तिके विधानके आचरणोंमें ध्यान रखता हुआ विस्तृत शय्यापर सुखपूर्वक बैठे। फिर इसकी कोहनी और जानुप्रदेशको भी अच्छे प्रकारसे थपोडे तथा हाथ और पावोंके तलुओंको मुष्टिसे ताडित करे। पश्चात् तीन बार धीरे धीरे त्रिक (पृष्ठवंश) स्थानको संचालन करे ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥

भवेत्सुखोष्णश्च तथा निरेति सहसा सुखम् । यथोचितात्पादहीनं भोजयित्वानुवासयेत् । नित्यमेकान्तरे वापि दोषकायाग्न्यपेक्षया ॥ ४१ ॥

फिर मंदोष्ण जलसे कुछ एक सींचे इस प्रकार करनेसे सहसा सुख उत्पन्न होता है। नित्य अथवा एक दिनको छोडकर तीसरे दिन यथोचित भोजनसे पादहीन (अर्थात् पौनमात्रा) भोजन कराकर रोगीके यथादोष,शरीरकी अवस्था और अग्निको विचार कर अनुवासनबस्ति देवे ॥ ४१ ॥

स्नेहेन पार्ष्ण्यङ्गुलिपिण्डिकाद्या ये चापि गात्रावयवा रुगार्त्ताः । तांश्चावमृद्नीत सुखं ततश्च निद्रामुपासीत कृतोपधानः ॥ ४२ ॥

पश्चात् पार्ष्णि,अंगुलि,पिंडिका तथा अन्यान्य जो जो शरीरके अवयव पीड़ित हों उन सबको स्नेहसे मलकर सुखपूर्वक शय्यापर शयन करावे और अच्छे प्रकारसे उसके सिरहाने तकिया लगा देवे ॥ ४२ ॥

अनुवासिताय दातव्यमितरेऽह्नि सुखोदकम् । धान्यशुण्ठीकषायं वा स्नेहव्यापत्तिनाशनम् ॥ ४३ ॥

अनुवासनबस्ति दिये हुए मनुष्यको दूसरे दिन मंदोष्ण जल पान करावे अथवा धनियाँ और सोंठका काथ बनाकर स्नेहके विकारोंको नष्ट करनेके लिये पिलावे ॥ ४३ ॥

पित्तोत्तरे कदुष्णाम्भस्तावन्मात्रं पिबेदनु । स्नेहाजीर्णं शमयति श्लेष्माणं तद्भिनत्ति च ॥ ४४ ॥

पित्तोल्बणरोगोंमें मंदोष्ण जल तबतक पीना चाहिये जबतक कि स्नेहका अजीर्ण शमन न हो जाय और कफ न फट जाय ॥ ४४ ॥

पवनस्यानुकूलत्वं कुर्य्यादुष्णोदकं नृणाम्। क्वाथार्द्धमात्रया प्रातर्धान्यशुण्ठीजलं पिबेत् ॥ ४५ ॥

वायुकी गतिके अनुकूल मनुष्योंको उष्णजल पिलावे। प्रातःकाल धनियें और सोंठको जलमें पका कर काथकी. आधीमात्राके परिमाणसे सेवन करे.४५

यस्यानुवासनो दत्तः सकृदन्वक्षमां व्रजेत् । अत्युष्णो वातिशीतो वा वायुना वा प्रपीडितः ॥ ४६ ॥ अमात्रोऽधिकमात्रो वा गुरुत्वाद्बहुभेषजः । तस्यान्योऽल्पतरो देयो न हि स्निह्यति तिष्ठति ॥ ४७ ॥

जिसके एकबार अनुवासनबस्ति देनेसे अत्यन्त उष्णता, अत्यन्त शीतलता अथवा वायुके द्वारा प्रपीडित होनेके कारण या अधिकमात्रा, वा मात्राहीन होनेसे किम्वा औषधियोंके भारीपनसे अथवा औषधियोंकी अधिकतासे स्नेह बाहर निकलआवे तब उसको फिर स्नेहकी अल्पमात्रा देवे। क्योंकि, बस्तिके विना स्निग्धता नहीं होती ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

त्रीण्यस्य यामाननुवर्त्तते च स्नेहो नरः स्यात्स विशुद्धदेहः ॥ ४८ ॥

जिसके बस्तिके द्वारा दिया हुआ स्नेह तीन पहरमें फिर बाहर निकल आता है, उसको शुद्धशरीरवाला जानना ॥ ४८ ॥

अशुद्धमपि वातेन केवलेनातिपीडितम् । स्नेहप्रगाढैर्मतिमान्निरूहैः समुपाचरेत् ॥ ४९ ॥

बुद्धिमान् वैद्य केवल वायुसे अत्यन्त पीडित हुए अशुद्ध शरीरवाले मनुष्यको भी गाढ स्नेहोंके द्वारा हिरूहणबस्ति देवे ॥ ४९ ॥

रूक्षस्य बहुवातस्य द्वौ त्रीन्वाप्यनुवासनान्। दत्त्वा स्निग्धतनुं ज्ञात्वा ततः पश्चान्निरूहयेत ॥ ५० ॥

रूक्षशरीरवाले और अत्यन्त वायुकी उल्बणतावाले मनुष्योंके दो तीन बार अनुवासनबस्ति देकर जब देखे कि, शरीर स्निग्ध होगया है तब निरूहण बस्ति देवे ॥५०॥

न चाभुक्तवतः स्नेहः प्रणिधेयः कथञ्चन । सूक्ष्मत्वात् शून्यकोष्ठात्तु क्षिप्रमूर्ध्वमधो नयेत् ॥ ५१ ॥

विना भोजन किये हुए मनुष्यके कदापि स्नेहनबस्ति नहीं देनी चाहिये, क्योंकि स्नेह सूक्ष्म होनेके कारण खाली कोठमेंसे शीघ्रही बमन और विरेचनके द्वारा बाहर निकल जाता है ॥ ५१ ॥

एकं तथा त्रीन् कफजे विकारे पित्तात्मके पञ्च तु सप्त वापि । वाते तु चैकादशधा पुनर्वा बस्तीनयुग्मान् कुशली विदध्यात् ॥ ५२ ॥

कफके रोगमें एक अथवा तीन बस्ति देवे। पित्तके रोगमें पांच अथवा सात बस्ति देवे और वायुके रोगमें ग्यारह बस्ति देवे। इसप्रकार चतुर वैद्य प्रत्येक रोगमें अनुक्रमसे अयुग्म बस्ति देवे ॥५२॥

सदानुवासयेद्भुक्तं सार्द्रपाणिं नरं भिषक्। ज्वरं विदग्धभुक्तस्य कुर्य्यात् स्नेहः प्रयोजितः ॥ ५३ ॥

वैद्यसदैव भोजन किये हुए मनुष्यके दोनों हाथोंको भिजोकर अनुवासनबस्ति देवे। विदग्ध भोजन करनेवाले मनुष्यके दिया हुआ स्नेह ज्वरको उत्पन्न करता ह ॥ ५३ ॥

न चातिस्निग्धमशनं भोजयित्वानुवासयेत् । मदं मूर्च्छाञ्च जनयेद्द्विधा स्नेहः प्रयोजितः ॥ ५४ ॥

अत्यन्त स्निग्ध भोजनको खिलाकर भी मनुष्यको अनुवासनबस्ति नहीं देवे। क्योंकि एक भोजनका और दूसरा बस्तिका इस प्रकार २ बारका प्रयोग किया हुआ स्नेह-मद और मूर्च्छाको उत्पन्न करता है ॥ ५४ ॥

स्नेहबस्तिं निरूहं वा नैकमेवाभ्यसेच्चिरम् । स्नेहात्पित्तकफोत्क्लेशौ निरूहात्पवनाद्भयम् ॥ ५५ ॥

केवल एक स्नेहनबस्ति अथवा अनुवासनबस्तिको ही बहुत दिनोंतक नहीं देवे। क्योंकि. स्नेहनबस्तिसे

पित्त और कफका उत्क्लेश होता है और निरूहणबस्तिसे वायुका भय होता है ॥ ५५ ॥

तस्मान्निरूढोऽनुवास्यो निरूह्यश्चानुवासितः । नैवं पित्तकफोत्क्लेशौ स्यातां न पवनाद्भयम् ॥ ५६ ॥

इसकारण अनुवासनबस्ति देनेके पश्चात् निरूहण बस्ति देवे और निरूहणबस्तिके पश्चात् अनुवासन देवे क्योंकि इसप्रकार करनेसे न पित्त और न कफका उत्क्लश होता है और न वायुका भय होता है॥ ५६॥

निरूहशोधितैर्मार्गैः स्नेहः सम्यग्विसर्पति । अपेतसर्वदोषासु नाडीष्विव बहिर्जलम् ॥ ५७ ॥

जब निरूहबस्तिसे मार्ग अच्छेप्रकार शुद्ध होजाते हैं तब स्नेह शरीरमें अच्छे प्रकारसे फैलजाताहै जिस प्रकार नलोंमेंसे कूड़ा आदिके साफ होजानेपर जल विना रुके निकला चला जाता है ॥ ५७ ॥

अहोरात्रादपि स्नेहः प्रत्यागच्छन्न दुष्यति । कुर्य्याद्वस्तिगुणांश्चापि जीर्णस्त्वल्पगुणो भवेत् ॥ ५८ ॥

स्नेहनबस्तिसे दिया हुआ स्नेह जो एक दिनरातमें बाहर निकल आता है तो वह कुछ भी विकार नहीं करता किन्तु और गुणोंको करता है और जो वह स्नेह पचजाता है तो बहुत ही अल्प गुण करता है५८

यस्य नोपद्रवं कुर्य्यात् स्नेहबस्तिरनिःसृतः । सर्वोऽल्पो वावृतो रौक्ष्यादुपेक्ष्यः संविजानता ॥ ५९ ॥

जिस मनुष्यको नहीं निकलने पर स्नेहबस्ति यदि कुछ उपद्रव नहीं करे तो मनुष्यके रूक्ष होनेसे उसके देहमें समस्त स्नेह काममें आगया ऐसा समझकर चतुर वैद्य उसकी उपेक्षा करे अर्थात् उस स्नेहको बाहर निकालनेका यत्न नहीं करे ॥ ५९ ॥

अनायान्तमहोरात्रात् स्नेहं सोपद्रवं हरेत् । स्नेहबस्तावनायाते नान्यः स्नेहः प्रशस्यते ॥ ६० ॥

जो दिनरातमें भी स्नेह नहीं निकले तो उसको उपद्रव सहित निकाल देवे। जबतक स्नेहनबस्ति बाहर नहीं आवे तबतक दूसरी स्नेहनबस्तिका प्रयोग न करे ॥ ६० ॥

कुष्ठक्रमुककल्कन्तु पाययेत्तक्रसंयुतम् । औष्ण्यात्तैक्ष्ण्यात्सरत्वाच्च बस्तिं तस्यानुलोमयेत् ॥ गोमूत्रेण त्रिवृत्पथ्याकल्कं वातानुलोमनम् ॥६१॥

कूठ और सुपारीके कल्कको तक्रके साथ सेवन करावे । यह उष्ण,तीक्ष्ण और सारक होनेसे बस्तिको अनुलोमन करता है। निसोत और हरडका कल्क बनाकर गोमूत्रके साथ सेवन करानेसे वायुका अनुलोमन होता है ॥ ६१॥

अशुद्धस्य मलोन्मिश्रः स्नेहो नैति यदा पुनः। तदाङ्गसादनाध्माने शूलं श्वासश्च जायते ॥ ६२ ॥ पक्काशयगुरुत्वश्च तदा दद्यान्निरूहणम् । तीक्ष्णं तीक्ष्णौषधैरेव सिद्धं चाप्यनुवासनम् ॥ ६३ ॥

अशुद्ध शरीरवाले मनुष्यके मलसे मिश्रित होनेके कारण स्नेह जब देहमें नहीं फैलता है तब अंगोंमें टूटन, अफारा, शूल, श्वास और पक्काशयमें भारीपन होताहै । उस समय निरूहणबस्ति अथवा तीक्ष्ण बस्ति देवे। या तीक्ष्णऔषधियोंके द्वारा सिद्ध की हुई अनुवासनबस्ति देवे ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

भयोन्मादतृषाशोषाऽजीर्णारुचिप्रमेहिणः । मूर्च्छाकुष्ठोदरस्थौल्यकासश्वासक्षयातुराः ॥ ६४ ॥ शोषभ्रममदच्छर्दियुता बस्त्यसहाऽबलाः । नास्थाप्या नानुवास्याश्च वातरोगादृते नराः ॥ ६५ ॥

भय, उन्माद, तृषा, शोष, अजीर्ण, अरुचि, प्रमेह, मूर्च्छा, कुष्ठ, उदररोग, स्थूलता,खाँसी,श्वास, क्षय, राजयक्ष्मा, भ्रम, मद और वमन इन रोगोंसे पीडित,असमर्थ और बलहीन तथा वातरोगको छोडकर अन्यदोषोंके रोगी इन सबको न अनुवासनबस्ति देनी चाहिए और न निरूहणबस्ति देनी चाहिये ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

उदरी च प्रमेही च कुष्ठी स्थूलश्च मानवः । अवश्यं स्थापनीयाश्च नानुवास्याः कथञ्चन ॥ ६६ ॥

उदररोगी, प्रमेहरोगी, कुष्ठरोगी और स्थूलमनुष्य इनको अवश्य आस्थापनबस्ति देनी चाहिये और अनुवासन बस्ति कदापि नहीं देनी चाहिये ॥ ६६ ॥

अनेन विधिना सप्त तथाष्टौ वा नवैव वा । विधेया बस्तयो नृणामन्तरान्तर्निरूहणम् ॥ ६७ ॥

इसप्रकार मनुष्योंके सात, आठ अथवा नौ बस्ति देवे और बीचमें निरूहण बस्ति देवे ॥ ६७ ॥

विष्टब्धानिलविण्मूत्रः स्नेहहीनोऽनुवासनः । दाहक्लमपिपासार्त्तिकरश्चात्यनुवासनः ॥ ६८ ॥

स्नेह बिना अनुवासन देनेसे विष्टब्धता होती है तथा अधोवायु, मल और मूत्रका अवरोध होता है। अत्यन्त अनुवासनबस्ति देनेसे दाह, क्लान्ति और तृषाकी पीडा होती है ॥ ६८ ॥

सानिलः सपुरीषश्च स्नेहः प्रत्येति यस्य वा । ओषचोषौ विना शीघ्रं स सम्यगनुवासितः ॥ ६९ ॥

जिसके पवनके साथ और मलके साथ दाह और चोष आदि पीडाके विना स्नेह शीघ्र ही गुदामेंसे निकल जाय उसको अच्छे प्रकारसे अनुवासित हुआ जानना ॥ ६९ ॥

शुद्धस्य दूरानुगते स्नेहे स्नेहस्य दर्शनम् । मुखे सर्वेन्द्रियाणां वाप्युपलेपोऽवसादनम् ॥ ७० ॥ स्नेहगन्धि मुखश्चापि कासश्वासावरोचकाः । अतिपीडितवत्तत्र विधिरास्थापनं तथा ॥ ७१ ॥

शुद्ध मनुष्यके शरीरमें जब स्नेह फैल जाता है तब समस्त देहमें स्निग्धता (चिकनाई) दीखने लगती है, मुख और समस्त इन्द्रियोंमें चिकनाईका मालूम होना, अंगोंमें, मुखमें स्नेहकी गन्धका आना, श्वास, खाँसी, और अरुचि ये सब लक्षण होते हैं इसमें अति पीडित बस्तिके समान आस्थापन बस्तिकी विधि करे ॥ ७० ॥ ७१ ॥

गले निपीडय तत्राशु कम्पयेत्तं प्रयत्नतः। कार्य्यं नस्यं सुतीक्ष्णश्च तीक्ष्णं वापि विरेचनम् ॥ ७२ ॥

इस समय उसके गलेको बहुत शीघ्र हाथोंसे दबावे और उसके शरीरको खूब यत्नपूर्वक कँपावे तथा तीक्ष्ण नस्य और तीक्ष्ण विरेचन देवे ॥ ७२ ॥

उत्क्लेशो ग्लानिरङ्गस्य सादः पर्वव्यथाऽरुचिः । निरेति स्नेहसंमिश्रं पुरीषं बहुशो मृदु ॥ ७३ ॥ ईषत्स्थौल्यं भवेत्कुक्षिगुदवंक्षणबस्तिषु । स्निग्धस्यैतानि लिङ्गानि जानीयादनुवासने ॥ ७४ ॥

देहमें उत्क्लेश, अंगोंमें ग्लानि, शरीरमें अवसन्नता, सन्धियोंमें पीडा, अरुचि, स्नेह मिले हुए बहुतसे और कोमल मलका निकलना, कोख, गुदा, वंक्षण और बस्ति इनमें किंचित् स्थूलताका होना ये सब लक्षण अनुवासन बस्तिके द्वारा स्निग्ध हुए मनुष्यके जाने ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

जीर्णान्नमथ सायाह्ने स्नेहात्प्रत्यागतो पुनः । लघ्वन्नं भोजयेत्कामं दीप्ताग्निस्तु नरो यदि ॥ ७५ ॥

भोजनके जीर्ण होने पर और संध्याके समय स्नेहके निकलै जानेपर जब रोगीकी अग्नि दीपन हो जाय और उसकी इच्छा हो तब उसको हलका अन्न भोजनके लिये देवे ॥ ७५ ॥

दत्तस्तु प्रथमो बस्तिः स्नेहयेद्बस्तिवंक्षणौ । सम्यग्दत्तो द्वितीयस्तु कोष्ठस्थमनिलं जयेत् ॥ ७६ ॥ बलवर्णौ च जनयेत्तृतीयस्तु प्रयोजितः । रसं चतुर्थो रक्तन्तु पञ्चमः स्नेहयेदपि ॥ ॥ ७७ ॥ षष्ठस्तु स्नेहयेन्मांसं मेदः स्निह्यति सप्तमः । अष्टमो नवमश्चा-

स्थि तथा मज्जानमेव च ॥ ७८ ॥ एवं शुक्रगतान् दोषान् द्विगुणः साधु साधयेत् । अष्टादशाष्टादशकान् यो बस्तीनां निषेवते ॥ यथोक्तेन विधानेन परिहारक्रमेण तु ॥ ७९ ॥ सकुञ्जरबलोऽश्वस्य जवतुल्योऽमरप्रभः । वीतपाप्मा श्रुतधरः सहस्रायुर्नरो भवेत् ॥ ८० ॥

पहली दी हुई बस्तिसे मूत्राशय और वंक्षणप्रदेश स्निग्ध होता है। अच्छीप्रकारसे दी हुई दूसरी बस्तिसे कोठेकी वायु दूर होती है। तीसरी बस्तिके लगानेसे बल और वर्ण उत्पन्न होते हैं । चौथी बस्ति रसको स्निग्ध करती है । और पांचवीं बस्ति रुधिरको स्निग्ध करती है । छठी बस्ति मांसको स्निग्ध करती है। सातवीं बस्ति मेदको स्निग्ध करती है । आठवीं बस्ति अस्थिको स्निग्ध करती है । नवमी बस्ति मज्जाको स्निग्ध करती है और अठारह बार प्रयोग की हुई बस्ति शुक्रसम्बंधी दोषोंको दूर करती है। जो मनुष्य अठारह बस्तियोंको विधिपूर्वक सेवन करता है और यथाविधि पथ्य सेवन करता है, वह बलमें हाथीके समान, वेगमें अश्वके समान, कांतिमें देवताके समान, तथा अलक्ष्मी और पापसे रहित होकर अनेक शास्त्रोंको धारण करता हुआ एक सहस्रवर्ष तक जीता रहता है ॥ ७६–८० ॥

आपादतलमूर्द्धस्थान् दोषान् पक्काशयस्थितः । वीर्येण बस्तिरादत्ते वृषादित्यो रसानिव ॥ ८१ ॥

पक्काशयमें प्राप्त हुई बस्ति अपने प्रभावसे पांवसे लेकर शिरतकके दोषोंको इस प्रकार ग्रहण करलेती है जिसप्रकार वृषराशिगत सूर्य्य भूमिके रसोंको खींच लेता है ॥८१ ॥

पक्काशयाद्वस्तिवीर्य्यं स्वदेहमनुसार्य्यति । वृक्षमूले निषिक्तानामपाम्पूर इव द्रुमम् ॥ ८२ ॥

बस्तिका वीर्य्य पक्काशयमेंसे सम्पूर्ण शरीरमें इस प्रकार फैलजाता है, जिसप्रकार वृक्षकी जड़में दिया हुआ जल सम्पूर्ण वृक्षमें व्याप्त होता है ॥ ८२ ॥

स चापि बस्तिः सहसा केवलः समलोऽपि वा । प्रत्येति वीर्य्यंन्त्वनिलैरपानाद्यैः प्रणीयते ॥ ८३ ॥

वह बस्ति केवल अथवा मलके साथ सहसा वीर्य्यको अपानादि वायुके द्वारा निकाल देती है ॥ ८३ ॥

मूले निषिक्तो हि यथा द्रुमः स्यान्नीलच्छदः कोमलपल्लवश्च । काले बृहत्पुष्पफलानुबन्धस्तथा नरः स्यादनुवासनेन ॥ ८४ ॥

जिसप्रकार वृक्षकी जडको सींचनेसे वह कोमल पल्लव और हरे पत्तोंसे परिपूर्ण होकर कालान्तरमें महान् पुष्प और फलोंको देता है, उसी प्रकार अनुवासनबस्ति देनेसे मनुष्य हृष्ट पुष्ट शरीरवाला बलिष्ठ होकर सुन्दर संतानको उत्पन्न करता है ॥ ८४ ॥

स्तब्धाश्च ये संकुचिताश्च केचित्पङ्गवो येऽपि च गात्रभग्नाः । येषाञ्च शाखासु चरन्ति वाताः शस्तो विशेषेण हि तेषु बस्तिः ॥ ८५ ॥

जिनका शरीर वायुसे जकड गया हो, जिनके अंग सकुच गये हों, जो पंगु ह, जिनका देह भग्न हो गया है और जिनके हाथ पाँवमें वायु विचरण करती है, उनके लिये बस्तिकर्म्म विशेष करके हितकारी है॥८५॥

आग्लापिते प्राग्ग्रथिते पुरीषे शूले च भक्तानभिनन्दने च । एवंप्रकाराश्च भवन्ति कुक्षौ य आमयास्तेषु च बस्तिरिष्टः ॥ ८६ ॥

अंगग्लानि और अफारे आदिमें, मलके विबन्धमें, शूलमें, भोजनमें, अरुचि होनेमें और इसीप्रकारके जो कुक्षिगत रोग ह, उन सबोंमें भी यह बस्तिकर्म्म हितकारी है ॥ ८६ ॥

याश्च स्त्रियो वातकृतोपसर्गा गर्भन्न विंदन्ति नृभिः समेताः । क्षीणेन्द्रिया ये च नराः कृशाश्च बस्तिः प्रशस्तः परमो हि तेषु ॥ ८७ ॥

जो स्त्रियां वायुके विकारसे पुरुषके साथ संगम होने पर भी गर्भको धारण नहीं करती हैं तथा जिन मनुष्योंकी इन्द्रियें क्षाण हैं और जो मनुष्य कृश हैं उनके लिये यह बस्ति अतीव हितकारी है ॥ ८७ ॥

उष्णाभिभूतेषु तथातिशीतान् शीताभिभूतेषु तथा सुखोष्णान् । तत्प्रत्यनीकेऽथ स युक्तयुक्त्या सर्वत्र बस्तीन् प्रविभज्य दद्यात् ॥ ८८ ॥

उष्णतासे पीड़ित मनुष्योंको अत्यंत शीतल और शीतसे पीडित रोगियोंको सुखोष्ण इस प्रकार सर्वत्र पीडाके विपरीत औषधियोंके द्वारा युक्तिपूर्वक क्रमसे विभक्त करके बस्ति देवे ॥ ८८ ॥

न बृंहणीयान्विदधीत बस्तीन् विशोधनीयेषु गदेषु वैद्यः । कुष्ठप्रमेहादिषु मेढ्रगेषु नरेषु ये चापि विशोधनीयाः ॥ ८९ ॥

जो रोग विशोधनके योग्य हों वैद्य उनमें बृंहणकी बस्ति नहीं देवे तथा अन्यान्य जो शोधनके योग्य कुष्ठ, प्रमेह और लिंगगत रोग हैं उनमें बस्ति नहीं देवे ॥ ८९ ॥

क्षीणक्षतानामविशोधितानां न शोषिणां नो कृशदुर्बलानाम् । न मूर्च्छितानां विदधीत बस्तिं येषाञ्च दोषाः पुनरूर्ध्वगाः स्युः ॥ ९० ॥

क्षीण, क्षत, अशुद्ध शरीरवाले, शोषरोगी, कृश, दुर्बल, मूर्च्छित और जिनके दोष उर्ध्वगत हैं उनको बस्ति देनी चाहिये ॥ ९० ॥

शाखागता कोष्ठगताश्च रोगा मर्मोर्ध्वसर्वावयवाङ्गगाश्च । ये सन्ति दोषा न तु कश्चिदन्यो वायोः परं जन्मनि हेतुरस्ति ॥ ९१ ॥

शाखागत और कोष्ठगत जो रोग हैं तथा मर्म्मगत, उर्ध्वगत, सर्वांग और अर्द्धांगगत जो रोग हैं उनके उत्पन्न करनेके लिये वायुके अतिरिक्त अन्य कोई कारण नहीं है ॥ ९१ ॥

विण्मूत्रपित्तादिमलाशयानां वाताक्षेपः सौख्यकरश्च यस्मात् । तस्मान्न वातैकसमाश्रयाणां बस्तिं विना भेषजमन्यदस्ति ॥

विष्ठा, मूत्र और पित्तादि तथा मलाशयोंकी वायु को रोकनेवाली और सुखकारक होनेसे एवं वायुके एक आधारभूत होनेसे बस्तिके सिवा अन्य औषधि नहीं है ॥

तस्माच्चिकित्सार्धमिति ब्रुवन्ति सर्वां चिकित्सामपि बस्तिमेके ॥ ९२ ॥

इसकारण कितनेही आचार्य्य केवल एक बस्तिको अर्धचिकित्सा और कितनेही वैद्य सर्वचिकित्सा भी कहते हैं ॥ ९२ ॥

गुडूचीतैल ।

गुडूच्येरण्डपूतीकभार्ङ्गीवृषकरोहिषम् । शतावरीं सहचरं काकनासां पलोन्मिताम् ॥ ९३ ॥ यवमाषातसीकोलकुलित्थान् प्रसृतोन्मितान् । चतुर्द्रोणेऽम्भसः पक्त्वा द्रोणशेषेण तेन च ॥ ९४ ॥ पचेत्तैलाढकं पेष्यैर्जीवनीयैः पलोन्मितैः । अनुवासनमेतद्धि सर्ववातविकारनुत् ॥ ९५ ॥

गिलोय, अंडकी जड, दुर्गन्धकरंज, भारंगी, अडूसा, रोहिषतृण, शतावर, पियाबांसा और कौआठोडी ये प्रत्येक औषधि चार चार तोले, तथा जौ, उडद, अलसी, बेर और कुलथी ये प्रत्येक आठ २ तोला परिमाण लेकर सबको एकत्र करके चार द्रोण जलमें पकावे । जब पकते पकते एक द्रोण जल शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवे फिर उसमें एक आढक परिमाण तिलका तेल और जीवनीयगणकी औषधियोंका कल्क चार २ तोले परिमाण डालकर विधिपूर्वक तेलको पकावे। इस तेलके द्वारा अनुवासनबस्ति देनेसे सबप्रकारके वातविकार नष्ट होते हैं । ॥ ९३–९५ ॥

जीवन्त्याद्ययमक ।

जीवन्तीं मदनं मेदां श्रावणीं मधुकं बलाम् । जीवकर्षभकौ कृष्णां काकनासां शतावरीम् ॥ ९६ ॥ स्वगुप्तां क्षीरकाकोलीं कर्कटाख्यां शटीं वचाम् । पिष्ट्वा तैलं घृतं क्षीरे साध-

येत्तु चतुर्गुणे ॥ ९७ ॥ बृंहणं वातपित्तघ्नं बलशुक्राग्निवर्द्धनम् । मूत्ररेतोरजोदोषान् हरेत्तदनुवासनात् ॥९८ ॥

जीवंती, मैनफल, मेदा, गोरखमुंडी, मुलैठी, खिरैंटी, जीवक, ऋषभक, पीपल, कौआठोडी, शतावर, कौंछ, क्षीरकाकोली, काकडाशिंगी, कचूर और वच इन सबको समान भाग लेकर कल्क बनाकर उसके साथ तेल और घृतको चौगुने दूधमें पकावे । इस तेल अथवा घृतके द्वारा अनुवासनबस्ति देनसे-बृंहण, वातपित्तका नाशक, बल, वीर्य्य और जठराग्निकी वृद्धि होती है । तथा यह बस्ति मूत्र, शुक्र और रजके विकारोंको दूर करती है ॥ ९६-९८ ॥

अथ निरूहणविधि ।

निरूहबस्तिर्बहुधा भिद्यते कारणान्तरैः । तैरेव तस्य नामानि कृतानि मुनिपुङ्गवैः ॥ ९९ ॥

पृथक् २ औषधियोंके मिलानेसे निरूहबस्तिके अनेक भेद होते हैं । और उन भेदोंके होनेसे उसी उसी बस्तिके अनुसार महात्मा मुनियोंने उनके नाम कहे हैं ॥ ९९ ॥

वातव्याधावुदावर्त्ते वातासृग्विषमज्वरे । मूत्रकृच्छ्रोदरानाहमूत्रदोषाश्मरीषु च ॥१००॥ वृद्ध्यसृग्दरमन्दाग्निप्रमेहेषु निरूहणम् । शूलेऽम्लपित्ते हृद्रोगे योजयेद्विधिवद्बुधः ॥ १०१ ॥

वातव्याधि, उदावर्त्त, वातरक्त, विषमज्वर, मूत्रकृच्छ्र, उदररोग, आनाह, मूत्रविकार, अश्मरी, वृद्धि, प्रदररोग, मंदाग्नि, प्रमेह, शूल, अम्लपित्त और हृदयरोग इन सबमें बुद्धिमान् वैद्य विधिपूर्वक निरूहणबस्तिको प्रयोग करे ॥ १०० ॥ १०१ ॥

मधुस्नेहनकल्काख्याः कषाया वा मताः क्रमात् । त्रीणि षट् द्वादश त्रीणि पलान्यनिलरोगिषु ॥ १०२ ॥ पित्ते चत्वारि चत्वारि द्वे द्वे चैव चतुष्टयम् । षट्त्रीणि द्वादशत्रीणि कफे चापि निरूहणम् ॥ १०३ ॥

वातके रोगोंमें मधु, स्नेह, कल्क और क्वाथ ये क्रमसे तीन, छः, बारह और तीन पल मिलावे अर्थात् वातरोगमें निरूहणवस्ती देनी हो तो उसमें शहद तीनपल, स्नेह छः पल, कल्क बारह पल और क्वाथ तीनपल मिलावे । पित्तके रोगोंमें शहद चार पल, स्नेह चार पल, कल्क दो पल और क्वाथ दोपल मिलावे। तथा कफके रोगोंमें शहद छः पल, स्नेह तीन पल, कल्क बारह पल और क्वाथ तीन पल मिलावे १०२॥१०३

नात्युच्छ्रितं नाप्यतिनीचपादं सपादपीठं शयनं प्रशस्तम् । प्रधानमृद्वास्तरणोपपन्नं प्राक् शीर्षकं शुक्लपटोत्तरीयम् ॥ १०४ ॥

जिसके न अत्यंत ऊंचे और न अत्यंत नीचे पाये हो तथा पीठ और पाये समान एवं उत्तम हो ऐसी सुखकारक शय्यापर बहुत कोमल और गाढे वस्त्र (रेशमीन, गलीचा, रत्न, कम्बल, तोषकप्रभृति) बिछाकर उसके उपर रोगीको पूर्वकी ओर मुंह करके शयन करादेवे और हलका सफेद वस्त्र ऊपरसे उढा देवे ॥ १०४ ॥

प्रक्षिप्य बस्तौ मथितं खजेन सुबद्धपुच्छाननानिर्व्यलीकम् । अंगुष्ठमध्येन मुखं पिधाय गृह्णीत वैद्यो निजसव्यहस्ते ॥ १०५ ॥

बस्तीके द्रवको करछीसे अच्छेप्रकार मथकर उसको बस्तिमें डालकर और बस्तीके मुखके ऊपरके बंधनको खोलकर तथा बस्तिके मुखको अंगुठेसे बुद्धिमान वैद्य उसको अपने बायें हाथमें ग्रहण करे ॥१०५॥

तैलाक्तगात्रं कृतमूत्रविट्कं नातिक्षुधार्तं शयने मनुष्यम् । समे सुदेशे नतशीर्षकश्च नात्युच्छ्रितो नास्तरणोपपन्ने॥१०६॥सव्येन पार्श्वेन सुखं शयानं कृत्वर्जुदेहश्च भुजोपपन्नम्।निष्कुंच्य सव्येतरमस्य सक्थि वामं प्रसार्य्य प्रणयेच्च बस्तिम् ॥१०७॥स्निग्धे गुदे नेत्रचतुर्थभागं स्निग्धं शनै रक्षितपृष्ठवंशम् । अकम्पनावेपनलाघवादीन्

पाण्योर्गुणांश्चापि हि दर्शयद्भिः॥१०८॥ प्रपीड्य चैकग्रहणेन दत्ते नेत्रं शनैरेव ततोऽपकर्षेत्। तिर्य्यक् प्रणीते न गता च धारा गुदं प्रणश्येच्चलिते च नेत्रे॥१०९॥

पश्चात् जिसने अपने शरीरपर तेल मर्दन किया हो, जो मल और मूत्रकी बाधासे निवृत्त होगया हो और जो अत्यन्त क्षुधासे पीडित न हो ऐसे रोगीको पूर्वोक्त समान शय्यापर शयन करा देवे। उस शय्या पर ऐसा बिछौना बिछावे कि जो न अत्यन्त ऊँचा हो और न अत्यन्त नीचा हो, किन्तु सिराहनेकी ओर कुछ नीचा होना चाहिये। ऐसे बिछौनेपर रोगीको बाईं करवटसे सुलावे और उसके शरीरको सीधा करदेवे तथा उसकी भुजाओंको फैला देवे फिर उसकी दहिनी टाँगको सकोडकर और बांयी टांगको फैलाकर बस्ति लगावे। उसकी गुदाको स्निग्ध करके उसमें स्निग्ध बस्तिकी नलीके चौथाभागको रखकर पीठके बांसके ऊपर शनैः शनैः हाथ फेरता हुआ और हाथोंको न कँपाता हुआ न डिगमिगाता हुआ और हलके हाथोंवाला ऐसा वैद्य अपने गुणोंको दिखताहुआ एक हाथसे बस्तिको पीडित करके दूसरे हाथसे धीरेसे बस्ति देवे। बस्तिके टेढे होजानेपर अच्छेप्रकारसे धारा नहीं जाती और नेत्रके चलायमान होनेपर गुदामें व्रण होजाता है ॥१०६-१०९॥

दत्तः शनैर्नाशनमेति बस्तिः कण्ठं प्रधावत्यतिपीडितस्तु। शीतस्तु विष्टभ्य करोति दाहं मूर्च्छाञ्च तापन्त्वतिमात्रमुष्णः॥११०॥

शनैः शनैः दीहुई बस्ति आशयमें नहीं जाती और अत्यन्त शीघ्रतासे लगाईहुई बस्ति कंठमेंको आजाती है अत्यन्त शीतलबस्ति विष्टब्धता करती है और अत्यन्त उष्ण बस्ति दाह, मूर्च्छा और सन्तापको उत्पन्न करती है ॥ ११० ॥

स्निग्धोऽग्निनाशं पवनं विरूक्षस्तथाल्पमात्रोऽलवणस्त्वयोगम्। करोति मात्राभ्यधिकोऽतिरोगं क्षामन्तु सान्द्रः सुचिरेण चैति॥१११॥

स्निग्धबस्ति अग्निको नष्ट करती है। रूक्षबस्ति बायुको बढाती है, अल्पमात्रावाली और लवणरहित बस्ति असह्य होजाती है तथा घृणाको करती है। अधिकमात्राकी दी हुई बस्ति अत्यन्त घोर रोगोंको उत्पन्न करती है और दुर्बल मनुष्योंके दी हुई गाढी बस्ति बहुत समयमें प्राप्त होती है ॥ १११ ॥

दाहातिसारौ लवणोऽतिकुर्य्यात्तस्मात्सुयुक्त्या सममेव दद्यात्। विड्वातवेगश्च विधार्य्य दत्ते निःसृत्य मुक्ते प्रणयेच्च शेषम्॥११२॥

बस्तिमें लवण अधिक होनेसे वह दाह और अतिसारको उत्पन्न करती है। इसकारण युक्ति पूर्वक विचार करके समान भाग लवण मिलावे। जो बस्तिके लगाते समय मल और वायुका वेग हो तो बस्तिको निकाल कर उनके वेगोंको त्यागकर पश्चात् शेष रहे द्रवको फिर बस्ति लगावे ॥ ११२॥

अन्यच्च।

अनुवासितमभ्यक्तं स्विन्नं स्नेहैर्निरूहयेत्। अनुवास्य स्निग्धतनुं तृतीयेऽह्नि निरूहयेत्॥ मध्याह्ने किञ्चिदावृत्ते निरूहन्तु समाचरेत्॥११३॥

अनुवासनबस्ति देनेके पश्चात् जिसने अपने शरीरको तेल मलकर और स्वेदित करके शुद्ध करलिया है ऐसे मनुष्यको तीसरे दिन स्नेहके द्वारा निरूहण बस्ति देवे। दोपहरके समय कुछ वस्त्र उढाकर निरूहणबस्ति देनी चाहिए ॥ ११३ ॥

सव्यं प्रसारयेत् सक्थि दक्षिणञ्चोपकुञ्चयेत्। मध्याह्ने सुमना जीर्णे निरन्नो वाग्यतो नरः॥११४॥ बस्तिं सव्ये करे कृत्वा दक्षिणेनावपीडयेत्। एकेनैवावपीडेन न द्रुतं न विलम्बितम्॥११५॥

बाईं साथल फैलावे और दहिनी सिकोडे। फिर दो पहरके समय भोजनके जीर्ण होनेपर जब वह प्रसन्नचित्त होजाय और कुछ कुछ क्षुधातुर हो तब चुपचाप मनुष्य बस्तिको बांये हाथमें लेकर दहिने हाथसे पीडित करे। और इसप्रकार पीडित करे कि, जिससे एकही बारके पीडन करनेसे स्नेह शरीरमें प्रविष्ट होजाय।

पीड़ित करनेमें न अत्यन्त शीघ्रता करनी चाहिये और न अत्यंत विलम्ब करना चाहिये॥११४॥११५

ततो नेत्रमपनीय त्रिंशन्मात्राः पीडनकालादवेक्ष्योत्तिष्ठेत्यातुरं ब्रूयात् । आतुरमुपवेशयेदुत्कटकं बस्तेरागमनायेति । निरूहप्रत्यागमनकालो मुहूर्तो भवतीति पूर्वाचार्यैः कथितम् ।

फिर बस्तिको निकाल कर पीडन कालसे तीस मात्रातक उपेक्षा करके रोगीसे उठनेके लिये कहे । पश्चात् बस्तिके निकालनेके लिये रोगीको ऊर्ध्वजानु आसनसे बैठावे । निरूहणबस्तिके द्वारा दी हुई औषधि एक मुहूर्त्तमें फिर बाहर निकल आती है, ऐसा पूर्वाचार्य्योंने कहा है ।

यावत्प्रत्येति हस्ताग्रं दक्षिणं जानुमण्डलम् । निमेषोन्मेषकालश्च सा मात्रा परिकीर्तिता ॥ ११६ ॥

जितने समयमें हाथका अग्रभाग दाहिनी जंघाको स्पर्श करता है,उतने समयको निमेष और उन्मेष एवं मात्रा कहते हैं ॥ ११६ ॥

अनेन विधिना दद्याद्बस्तिं बस्तिविशारदः।द्वितीयं वा तृतीयं वा चतुर्थं वा यथार्हतः ॥ ११७ ॥

इसप्रकार बस्तिकर्म्मको जाननेवाला वैद्य यथा दोषानुसार दो या तीन अथवा चार बस्ति देवे॥११७

सम्यङ्निरूढलिङ्गे तु प्राप्ते बस्तिं निवारयेत् । अपि हीनं क्रमं कुर्य्यान्नैव कुर्य्यादतिक्रमम् । विशेषात् सुकुमाराणां हीन एव क्रमो मतः ॥ ११८ ॥

जब अच्छे प्रकारसे निरूहणके लक्षण होजायँ ब बस्ति नहीं लगावे । थोडी ही बस्ति लगाना उत्तम है, अधिक बस्ति लगाना उत्तम नहीं है और विशेष करके सुकुमार मनुष्योंके तो थोडी ही बस्ति लगानी चाहिये ॥ ११८ ॥

मृदुर्बस्तिः प्रयोक्तव्यो विशेषाद्बालवृद्धयोः । तयोस्तीक्ष्णः प्रयुक्तस्तु ध्रुवं हन्याद्बलौजसी ॥ ११९ ॥

विशेषकरके बालक और वृद्धोंके मृदुबस्ति प्रयोग करनी चाहिये । यदि बालक और वृद्ध मनुष्योंके तीक्ष्ण बस्ति दीजाय तो वह उनके बल और ओजको अवश्य नष्ट करती है ॥ ११९ ॥

सस्नेह एकः पवने निरूहो द्वौ स्वादुशीतौ पयसा च पित्ते । त्रयः समूत्राः कटूकोष्णरूक्षाः कफे निरूहा न परे विधेयाः ॥ १२० ॥

स्नेहयुक्त एक निरूह बस्ति वातमें, दुधयुक्त मधुर और शीतल ऐसी दो निरूह बस्ति पित्तमें, गोमूत्रयुक्त, कटु,रूक्ष और उष्ण ऐसी तीन निरूह कफके रोगोंमें लगावे । इससे अधिक और निरूह नहीं लगावे ॥ १२० ॥

एकोऽपकर्षत्यनिलं स्वमार्गात्पित्तं द्वितीयस्तु कफं तृतीयः । प्रत्यागते कोष्णजलावसिक्तः शाल्यन्नमद्यात्तनुना रसेन ॥ १२१ ॥

एक बस्ति अपने मार्गसे वायुको अपकर्षण करती है । दूसरी बस्ति पित्तको अपने मार्गसे खींचती है और तीसरी बस्ति कफको खींचती है । जब बस्ति बाहर निकल आवे तब उष्णजलसे शरीरको सींचे और पतले रसोंके साथ शालिचावलोंका भात खाय ॥ १२१ ॥

जीर्णे च सायं लघु चाल्पमात्रं भुक्त्वानुवास्यः परिबृंहणार्थम् । निरूहणाद्धागमनेन तैलेनाम्लानिलघ्नौषधसाधितेन ॥१२२॥ दत्त्वा स्फिजौ पाणितलेन ताल्ं स्नेहस्य शीघ्रागमनाय वैद्यः ॥१२३ ॥

जब जीर्ण होजाय तब संध्याके समय थोडासा हलका भोजन करे और भोजन करनेके पश्चात् पुष्टिके लिये अनुवासन करे । आधी निरूहके बाहर आनेपर वैद्य स्नेहके शीघ्र निकलनेके लिए अम्ल और वातनाशक औषधियोंके द्वारा सिद्ध किये हुए तेलको हथेलीमें लेकर रोगीके कूलोंपर मारे॥१२२॥१२३॥

अल्पाल्पवेगी विड्वातहीनो हीननिरूहणः। मूर्च्छाशूलकफप्रायो महावेगोऽतिशब्दितः ॥ १२४ ॥

हीननिरूहणमें मल और वायुका अल्प अल्प वेग होता है और अधिक निरूहणमें मूर्च्छा, शूल और कफादिरोग एवं वायु और मलका महावेग होता है ॥ १२४ ॥

यस्य मूत्रं पुरीषञ्च कफो वायुश्च गच्छति। क्रमेण लघुता चैव सुनिरूढः स मानवः ॥ १२५ ॥

जिसके क्रमसे प्रथम मूत्र फिर मल, कफ और वायु निकलता है पश्चात् शरीरमें हलकापन होता है उसको अच्छे प्रकारसे निरूहित हुआ जानना १२५

सुनिरूढं ततो जन्तुं स्नातभुक्तरसौदनम्। यथोक्तेन विधानेन योजयेत् स्नेहबस्तिना ॥ १२६ ॥

जब अच्छेप्रकारसे निरूहण हो जाय तब उस मनुष्यको स्नान कराकर और मांसरसके साथ भातका भोजन कराकर यथोक्त विधिसे स्नेहबस्ति प्रयोग करे ॥ १२६ ॥

तदहस्तस्य पवनाद्भयं बलवदिष्यते। रसौदनोऽनुशस्तश्च तदहश्चानुवासनम् ॥ १२७ ॥

जिस दिन स्नेहबस्ति दीजाती है, उस दिन रोगीको वायुका विशेष भय रहता है, इसकारण उस दिन मांसरसके साथ भोजनके लिये भात देवे और फिर उसी दिन अनुवासनबस्ति देवे ॥ १२७ ॥

सम्यङ्निरूढं तलाक्तं जलेनोष्णेन सेचितम्। अल्पस्नेहं जाङ्गलेन रसेनार्द्धन्तु भोजितम् ॥ १२८ ॥

अच्छेप्रकारसे निरूहणबस्ति दिये हुए मनुष्यके शरीरको तेलसे मलकर गरमजलसे सेचन करे फिर कुछ थोडासा स्नेह मिलाकर जांगलदेशके जीवोंके मांसरसके साथ आधा भोजन करावे ॥ १२८ ॥

योजयेदल्पमात्रेण तत्क्षणं स्नेबस्तिना। पश्चादग्निबलं ज्ञात्वा पवनस्य विचेष्टितम् ॥ अन्नोपस्तम्भिते कोष्ठे स्नेहबस्तिर्विधीयते ॥ १२९ ॥

फिर तत्काल अल्पमात्राकी स्नेहबस्ति लगावे। और अग्निका बलाबल विचारकर तथा वायुकी चेष्टाको समझकर अन्नसे उपस्तम्भित हुए कोठेमें स्नेहबस्ति लगावे ॥ १२९ ॥

द्व्यहे त्र्यहे चाह्निचय पञ्चमे च पुनर्निरूहादनुवासनञ्च ॥ १३० ॥

दूसरे तीसरे अथवा पांचवे दिनमें निरूहणके देनेसे अनुवासनबस्ति देवे ॥ १३० ॥

विविक्तता मनस्तुष्टिः स्निग्धता व्याधिनिग्रहः। आस्थापने स्नेहबस्तौ सम्यग्दत्ते तु लक्षणम् ॥ १३१ ॥

अच्छेप्रकारसे आस्थापन और स्नेहन बस्ति देनेपर और बस्तिकी औषधिके निकलजानेपर अंगोंमें विविक्तता, मनमें प्रसन्नता, शरीरमें स्निग्धता और रोगोंका नाश होता है ॥ १३१ ॥

अनायान्तं मुहूर्त्तान्तं निरूहं शोधनैर्हरेत्। निरूहैरेव मतिमान् क्षारमूत्राम्लसंयुतः ॥ १३२ ॥

जो एक मुहूर्त्तमें निरूह नहीं निकले तो शोधन औषधियोंके द्वारा निकाले। बुद्धिमान् वैद्य जवाखार, गोमूत्र और काँजी इनको एकत्र मिलाकर निरूहबस्तिके द्वारा प्रयोग करे ॥ १३२ ॥

विगुणानिलविष्टब्धं चिरं तिष्ठन्निरूहणम्। शूलारतिज्वराटोपान्मरणञ्च प्रपद्यते ॥ १३३ ॥

जब निरूहण विगुणवायुसे विष्टब्ध होकर बहुत कालतक ठहरता है तब शूल, व्याकुलता, ज्वर, पेटमें गुडगुड़ाहट और मृत्युतक भी होजाती है ॥ १३३ ॥

न तु भुक्तवते देयमास्थापनमिति स्थितिः। आमं तदुद्धरेद्भुक्तं छर्दिं वा जनयेद् भृशम् ॥ १३४ ॥ कोपयेत्सर्वदोषान्वा तस्माद्दद्यादभोजिने ॥ १३५ ॥

भोजन करनेपर कदापि आस्थापनबस्ति नहीं देवे क्योंकि भोजनके पश्चात् बस्ति देनेपर वह अपकही निकलजाती है अथवा वमनको उत्पन्न करती है तथा सम्पूर्ण दोषोंको कुपित करती है । इसकारण बिना भोजन किये ही आस्थापनबस्ति देनी चाहिये ॥ १३४ ॥ १३५ ॥

आवस्थिकं क्रमं चापि मत्वा कार्य्यं निरूहणम् । मलेऽपकृष्टे दोषाणां बलवत्त्वं न विद्यते ॥ १३६ ॥

अवस्थाके क्रमको देखकर निरूहणबस्ति देवे, क्योंकि मलके निकलजानेपर फिर दोषोंमें बल नहीं रहता है ॥ १३६ ॥

अतिप्रपीडितो बस्तिः प्रक्रम्यामाशयं गतः । वातेरितो नासिकाया मुखतो वा प्रपद्यते ॥ १३७ ॥

अत्यन्त पीडित की हुई बस्ति आमाशयमें चली जाती है और फिर वायुसे प्रेरित होकर नासिका और मुखके द्वारा निकलती है ॥ १३७ ॥

छर्दिहृल्लासमूर्च्छादीन् प्रकुर्य्याद्दाहमेव च । तत्र तूर्णं गलापीडं प्रकुर्य्याद्वधूननम् ॥ १३८ ॥

तथा वमन, हृल्लास (उबकाई), मूर्च्छा और दाहादि विकारोंको उत्पन्न करती है । उस समय शीघ्रही गलेको दबावे और शरीरको खूब हिलावें ॥ १३८ ॥

शिरःकायविरेकौ च तीक्ष्णैः सेकांश्च शीतलान् ।

तीक्ष्ण शिरोविरेचन और तीक्ष्ण कायविरेचन देवे और शीतल औषधियोंके द्वारा परिसेचन करे ॥

अथ द्वादशप्रसृत ।

दत्त्वादौ सैन्धवस्याक्षं मधुनः प्रसृतद्वयम् । विनिर्मथ्य ततो दद्यात् स्नेहस्य प्रसृतत्रयम् ॥ १३९ ॥ एकीभूते ततः स्नेहे कल्कस्य प्रसृतं क्षिपेत् । संमूर्च्छिते कषायन्तु चतुःप्रसृतसम्मितम् ॥ १४० ॥ वितरेच्च तथा वापमन्ते द्विप्रसृतोन्मितम् । एवं प्रकल्पितो बस्तिर्द्वादशप्रसृतिर्भवेत् ॥ १४१ ॥

अब निरूहकी मात्रा कहते हैं । प्रथम एक तोले सेंधेनमकको सोलह तोले शहदमें डालकर खूब मथे, फिर उसमें चौबीस तोले स्नेह डालकर सबको अच्छे प्रकारसे मर्दन करके एकमएक करलेवे । फिर उस स्नेहमें आठ तोले कल्क मिलादेवे उसको अच्छेप्रकारसे मिलजानेपर उसमें ३२ तोले काथ डालदेवे । पश्चात् १६ तोले योग्यचूर्ण डालकर अच्छेप्रकारसे घोटलेवे । इसप्रकार कल्पित कीहुई बस्तिको द्वादश प्रसृत कहते हैं ॥ १३९ ॥ १४० ॥ १४१ ॥

धारयेदौषधं पाणौ न तिष्ठत्यवलिप्य च । न करोति च सीमन्तं सुनिरूहः प्रयोजितः ॥ १४२ ॥

जो औषध हाथमें धारण करनेसे हाथमें नहीं ठहरे, न चिपके तथा न सीमन्तको करे ऐसी औषधिके द्वारा सुन्दर निरूह होता है ॥ १४२ ॥

वातघ्नौषधनिष्काथाः सैन्धवत्रिवृतायुताः । साम्लाः सुखोष्णा देयाः स्युर्बस्तयः कुपितेऽनिले ॥ १४३ ॥

कुपित हुई वायुमें वातनाशकऔषधियोंका काथ बनाकर उसमें सधानमक और निसोत तथा काँजी ये सब यथोचितमात्राके अनुसार डालकर सुखोष्णबस्ति लगावे ॥ १४३ ॥

न्यग्रोधादिगणक्काथः काकोल्यादिसमायुतः । विधेया बस्तयः पित्ते सक्षौद्रघृतशर्कराः ॥ १४४ ॥

न्यग्रोधादि गणकी औषधियोंके काथमें काकोल्यादि गणकी औषधियोंका कल्क तथा शहद, घी और मिश्री डालकर इन सबके द्वारा पित्तके रोगोंमें बस्ति देवे ॥ १४४ ॥

न्यग्रोधादिगणक्काथाः पिप्पल्यादिसमायुताः । सक्षौद्रमूत्रा देयाः स्युर्बस्तयः कुपिते कफे ॥ १४५ ॥

कफके रोगोंमें न्यग्रोधादिगणकी औषधियोंके काथमें पिप्पल्यादि गणकी औषधियोंका कल्क, शहद और गोमूत्र डालकर बस्ति लगावे ॥ १४५ ॥

शर्करेक्षुरसक्षौद्रघृतयुक्ताः सुशीतलाः। क्षीरिवृक्षकषायाढ्या बस्तयः शोणिते हिताः ॥ १४६ ॥

रुधिरके विकारोंमें मिश्री, ईखका रस, शहद और घृत इनको क्षीरिवृक्षोंके काथमें डालकर शीतल करके बस्तिके द्वारा प्रयोग करना हितकर है ॥ १४६ ॥

प्रियंग्वादिगणक्काथा अम्बष्ठादिसमायुताः । सक्षौद्राः सघृता वापि बस्तयो ग्राहिणो हिताः ॥ १४७ ॥

प्रियंग्वादि गणकी औषधियोंके काथमें अम्बष्ठादि गणकी औषधियोंका कल्क, शहद और घी डालकर बस्ति लगावे इसको ग्राहिणीबस्ति कहते हैं। यह अतिसार और संग्रहणीरोगमें हितकारी है॥१४७॥

पिच्छिलबस्ति ।

विदार्यैरावतीशेलुशाल्मलीधन्वनांकुराः । क्षीरसिद्धाः क्षौद्रयुक्ता नाम्ना पिच्छिलबस्तयः ॥ १४८ ॥

विदारीकंद, वटपत्री, लिसोड़े, सेमल और धामिनके अंकुर इनको दूधमें पकाकर और शहदमें मिला कर बस्तिमें प्रयोग करे । इसको पिच्छिलबस्ति कहते हैं ॥ १४८ ॥

वाराहमाहिषौरभ्रबैडालैणेयकौक्कुटम् । सद्यस्कमसृगाजम्बा देयं पिच्छिलबस्तिषु ॥ १४९ ॥ मात्रा पिच्छिलबस्तीनां पलैर्द्वादशभिर्मता ॥१५०॥

सूअर, भैंसा, मेढा, बिलाव, हिरन, मुरगा और बकरा इनका तत्कालका निकाला हुआ रुधिर पिच्छिलबस्तिमें डालना चाहिये । पिच्छिलबस्तिकी बारहपलकी मात्रा जाननी ॥ १४९ ॥ १५० ॥

दद्यादुत्क्लेशनं पूर्वं मध्यं दोषहरं पुनः । पश्चात्संशमनीयञ्च बस्तिं दद्याद्विचक्षणः ॥ १५१ ॥

बुद्धिमान् वैद्य प्रथम उत्क्लेशनबस्ति देवे, फिर दोषहाबस्ति देवे और फिर संशमनीय बस्ति देवे ॥ १५१ ॥

उत्क्लेशनबस्ति ।

एरण्डमूलं मधुकं पिप्पलीसैन्धवं वचा । हपुषाफलकल्कश्च बस्तिरुत्क्लेशनः स्मृतः ॥ १५२ ॥

अंडकी जड, मुलैठी, पीपल, सैंधानमक, बच और हाऊबेरका कल्क डालकर जो बस्ति दीजाती है उसको उत्क्लेशनबस्ति कहते हैं ॥ १५२ ॥

दोषहरबस्ति ।

शताह्वा मधुकं बिल्वं कौटजं फलमेव च । सकाञ्जिकः सगोमूत्रो बस्तिर्दोषहरः स्मृतः ॥ १५३ ॥

सौंफ, मुलैठी, बेलगिरी और इन्द्रजौ इनका कल्क बनाकर उसको कांजी और गोमूत्रमें मिलाकर बस्ति देवे । इसको दोषहरबस्ति कहते हैं१५३॥

शमनबस्ति ।

प्रियंगुर्मधुकं मुस्तं तथैव च रसाञ्जनम् । सक्षीरः शस्यते बस्तिर्दोषाणां शमनः स्मृतः ॥ १५४ ॥

फूलप्रियंगू, मुलैठी, नागरमोथा और रसौत इनका कल्क बनाकर दूधमें डालकर बस्ति लगावे । यह बस्ति दोषोंको शमन करती है, इसकारण इसको संशमनबस्ति कहते हैं ॥ १५४ ॥

शोधनबस्ति ।

शोधनद्रव्यनिष्क्काथास्तत्कल्कैः स्नेहसैन्धवैः । युक्त्या खजेन मथिता बस्तयः शोधनाः स्मृताः ॥ १५५ ॥

शोधन औषधियोंके काथमें शोधन औषधियोंका कल्क, स्नेह और सैंधानमक डालकर उसको युक्तिपूर्वक करछीसे मथकर बस्तिमें प्रयोग करे । इसको शोधनबस्ति कहते हैं ॥ १५५ ॥

लेखनबस्ति ।

त्रिफलाक्काथगोमूत्रैः क्षौद्रक्षारसमायुताः । ऊषकादिप्रतीवापा बस्तयो लेखनाः स्मृताः ॥ १५६ ॥

त्रिफलेका क्काथ, गोमूत्र, शहद और जवाखार इन सबको एकत्र मिलाकर और उसमें ऊषकादि औषधियोंके कल्कको डालकर बस्ति लगावे। इसको लेखनबस्ति कहते हैं ॥ १५६ ॥

बृंहणबस्ति ।

बृंहणद्रव्यनिष्क्काथाः कल्कैर्मधुरकैर्युताः । सर्पिर्मांसरसोपेता वस्तयो बृंहणाः स्मृताः ॥ १५७ ॥

बृंहण औषधियोंके क्काथमें मधुरादिगणकी औषधियोंका कल्क मिलाकर तथा घी और मांसरस डालकर जो बस्ति दीजाती है उसको बृंहणबस्ति कहते हैं ॥ १५७ ॥

शताह्वा शिग्रुसिद्धार्थवक्रा क्रौञ्चवचाघनैः । राठेन्द्रयवसिंधूत्थैः पिष्टैर्वस्तिः प्रकाल्पितः ॥१५८॥ दशमूलीरसक्षौद्रतैलकाञ्जिकयोगतः । शोधनो दोषनाशाय पुष्टिवर्णाग्निवर्धनः १५९॥

सौंफ, सहिंजना, सफेद सरसों, तगर, पीपल, वच, नागरमोथा, हींग, इन्द्रजौ और सैंधानमक इन सबका एकत्र कल्क बनाकर उसको दशमूलके क्काथ, शहद, तेल और कांजीमें मिलाकर उसके द्वारा बस्ति लगावे। यह बस्ति-शोधन, दोषनाशक तथा पुष्टि, वर्ण और अग्निको बढानेवाली है १५८॥१५९

चत्वारो मदनाः पिष्टाः क्षौद्रतैलचतुष्पलम् । कुडवं मांसनिर्य्यासाद्त्वार्द्धं रुचकाद्भवेत् ॥ १६० ॥ बलवर्णकरो बस्तिर्वृष्यो मांसबलप्रदः । वातशोषितदेहानां बृंहणः स्थैर्य्यकारकः ॥ १६१ ॥

मैनफलका कल्क चारपल, शहद चार पल, तेल चार पल, मांसरस १ कुडवपरिमाण और सैंधानमक आधा कुडवपरिमाण लेवे। इन सबको एकत्र मिलाकर बस्ति लगावे। यह बस्ति- बल और वर्णको बढाती है, वीर्य्यको उत्पन्न करती है, मांस और बलप्रदायक है। तथा वायुसे जिनके शरीर सूखगये हैं उनको पुष्ट और स्थिर करनेवाला है ॥१६० ॥ १६१ ॥

पटोलनिम्बभूनिम्बरास्नासप्तच्छदाम्भसः । चत्वारः प्रसृता ह्येको घृतात्सर्षपकल्कतः ॥ निरूहः पञ्चतिक्तोऽयं मेहाभिष्यन्दनाशनः ॥ १६२॥

पटोलपत्र, नीम, चिरायता, रायसन और सतवन इनके चार प्रसृत क्काथमें एक प्रसृत घी और सरसोंका कल्क डालकर बस्ति देवै । यह पंचतिक्तबस्ति प्रमेह और अभिष्यन्दको नष्ट करनेवाली है ॥ १६२ ॥

विडङ्गत्रिफलादन्तीमुस्ताखुपर्णिकास्तथा । कषायाः प्रसृताः पञ्च तैलादेको विमथ्य तान् । विडङ्गादिकषायेण निरूहः कफनाशनः ॥ १६३ ॥

वायविडंग, त्रिफला, दंती, नागरमोथा और मूषाकर्णी इनका क्काथ पाँच प्रसृत और तेल एक प्रसृत लेकर उन सबको एकत्र मर्दन करके बस्ति देवे विडंगादिके क्काथके द्वारा बनाया हुआ यह निरूह कफको नष्ट करता है ॥ १६३ ॥

मधुतैलिकबस्ति ।

मधुतैलात्प्रकुञ्चाः षट् षट् चैरण्डकषायतः । युक्तः सैन्धवकर्षेण शताह्वार्द्धपलेन च ॥१६४॥ बल्यो वृष्यो निरूहोऽयं मलहन्मधुतैलिकः । गुल्मोदावर्त्तवृद्ध्यर्शोमेहहन्ता निरत्ययः ॥ १६५ ॥

शहद और तल छः२ पल, अण्डीका क्काथ छः पल, सैंधेनमकका कल्क १ तोला और सौंफका कल्क दो तोले डालकर सबको एकत्र मथकर निरूहणबस्तिके द्वारा प्रयोग करे यह मधुतैलिक बस्ति बलकारक, वीर्य्यजनक, मलको हरण करनेवाली, तथा गुल्म, उदावर्त्त, अण्डवृद्धि, बवासीर और प्रमेहको सदैव नष्ट करती है॥१६४॥१६५ ॥

एरण्डक्काथतुल्यांशं मधुतैलपलाष्टकम् । शतपुष्पापलार्द्धं च सैन्धवाक्षेण संयुतः ॥ १६६ ॥ बलवर्णकरो बस्तिर्वृष्यो दीपनबृंहणः । मेदोगुल्मकृमिप्लीहगूथोदावर्त्तनाशनः ॥१६७॥

अण्डीका काथ ३२ तोले, शहद और तेल ३२ तोले, सौंफ २ तोले और सैंधानमक १ तोला लेवे। सबको अच्छेप्रकार मथकरके निरूहणबस्ति देनेसे बल और वर्णकी वृद्धि होती है। तथा वीर्य्य उत्पन्न होता है, अग्नि दीपन होती है, शरीर पुष्ट होता है एवं मेद, गुल्म, कृमि, प्लीहा, मल और उदावर्त्तादिरोग नष्ट होते हैं ॥ १६६ ॥ १६७ ॥

मधुतैले समे स्यातां क्वाथश्चैरण्डमूलजः। पलार्द्धं शतपुष्पायास्ततोऽर्द्धं सैन्धवस्य च ॥ १६८ ॥ फलेनैकेन संयुक्तः खजेन तु विलोडितः। देयः सुखोष्णो भिषजा मधुतैलिकसंज्ञकः ॥ १६९ ॥

शहद ओर तेल तथा अंडका काथ ये सब समान भाग, सौंफका कल्क २ तोले, सैंधानमक १ तोला और मैनफल १ पल लेवे। इन सबको एकत्र करछीसे अच्छेप्रकारसे मथकर सुखोष्णबस्तिके द्वारा प्रयोग करे। इसको मधुतैलिकबस्ति कहते हैं ॥१६८॥१६९॥

तदेव मधुतैलञ्च क्वाथः सरससैन्धवः। पिप्पलीफलसंयुक्तो बस्तिर्युक्तरथः स्मृतः ॥ १७० ॥

इसी मधुतैलिकबस्तिमें यदि शहद, तेल, काथ, स्वरस, सैंधानमक, पीपल और मैनफल डालकर बस्ति देवे तो इसको युक्तरथबस्ति कहते हैं ॥ १७० ॥

चतुष्पलं तु मधुनस्तैलस्यापि चतुष्पलम्। एरण्डमूलक्वाथस्य तथा देयं पलाष्टकम् ॥ १७१ ॥ पलार्द्धं शतपुष्पायास्ततोऽर्द्धं सैन्धवस्य च। मदनस्य पलञ्चैकं योज्यं युक्त्या विमर्दयेत् ॥ १७२ ॥ रसक्षीराम्लमूत्राणामाज्यश्च पलमात्रकम्। खजेनालोडितः कोष्णो मधुतैलिकसंज्ञितः ॥ १७३ ॥ पादहीनोऽपि देयः स्याद्बस्तिर्लेखनबृंहणः। दीपनो गाढविट्कघ्नः कृमीणां नाशनः पर ॥ १७४ ॥ पाचनो निष्परीहारः सुखदो निरुपद्रवः। पुटकैकप्रदानेन सिद्धोऽयं बस्तिरुत्तमः ॥ १७५ ॥

शहद १६ तोले, तेल सोलह तोले, अडण्के जड़का काथ ३२ तोले, सौंफ २ तोले, सैंधानमक १ तोला और मनफल १ पल डालकर सबको एकत्र करके युक्तिपूर्वक मर्दन करे पश्चात् उसमें मांसरस, दूध, कांजी, गोमूत्र और घृत ये प्रत्येक चार चार तोले डालकर करछीसे खूब मर्दन करके उसको सुहाता सुहाता विधिपूर्वक बस्ति लगावे। इसको मधुतैलिक बस्ति कहते हैं। यह पादहीन दी हुई भी बस्ति लेखन और बृंहणके गुणोंको करती है। तथा अग्निको दीपन करती है, गाढ़े मलको हरण करती है, कृमियोंको नष्ट करती है और पाचन है। इसपर कुछ पहरेज नहीं है। यह सुखकारक और उपद्रवरहित है। एक ही पुटके देनेसे यह उत्तमबस्ति सिद्ध होजाती है ॥ १७१–१७५ ॥

यापनबस्तिः।

क्षौद्राज्यक्षीरतैलानां प्रसृतं प्रसृतं भवेत्। हपुषासैन्धवाक्षांशो बस्तिः स्याद्यापनः परः ॥ १७६ ॥

शहद, घी, दूध और तेल ये प्रत्येक एक एक प्रसृत तथा हाऊबेर और सैंधानमक इनका कल्क एक एक तोला डालकर जो बस्ति दीजाती है उसको यापनबस्ति कहते हैं ॥ १७६ ॥

शुद्धबस्ति।

गोमूत्रस्य पलान्यष्टौ गुडाऽत्यम्लकयोः पलम्। शताह्वासैन्धवे स्यातामक्षमात्रे प्रमाणतः ॥ १७७ ॥ देय आमेऽनिले रूक्षे तद्वत्तैलपलान्वितः। उदावर्त्ते वातकोष्ठे सिद्धबस्तिरिति स्मृतः ॥ १७८ ॥

गामूत्र आठ पल, गुड़ और चूक ये प्रत्येक चार चार तोले तथा सौंफ और सैंधानमक ये प्रत्येक एक एक तोला हों, सबको अच्छेप्रकारसे मथकर और चार तोले तेलमें मिलाकर उसको आमवात, उदावर्त्त,

रूक्षता और बालकोष्ठ इत्यादि रोगोंमें बस्तिके द्वारा प्रयोग करे। इसको सिद्धबस्ति कहते हैं १७७-१७८

क्षारबस्ति ।

सैन्धवाक्षं समादाय शताह्वाक्षसमन्वितम् । गोमूत्रस्य पलान्यष्टावम्लिकायाः पलद्वयम् ॥ १७९ ॥ गुडस्य तु पले द्वे तु सर्वमालोड्य यत्नतः । वस्त्रपूतं सुखोष्णश्च बस्तिं दद्याद्विचक्षणः ॥ १८० ॥ शूलं विट्संगमानाहं मूत्रकृच्छ्रश्च दारुणम् । कृम्युदावर्त्तवातादीन् सद्यो हन्यात्प्रयोजितः ॥ १८१ ॥

सैंधानमक १ तोला, सौंफ १ तोला, गोमूत्र आठ पल, इमली दो पल और गुड दो पल लेवे। इन सबको एकत्र अच्छेप्रकारसे मर्दन करके वस्त्रमें छानकर मंदोष्ण बस्ति देवे। यह क्षारबस्ति शूल, मलबन्ध, आनाह, दारुण मूत्रकृच्छ्र, कृमि, उदावर्त्त और वातादिरोगोंको तत्काल नष्ट करदेती है ॥ १७९ ॥ १८० ॥ १८१ ॥

मूत्रबस्ति ।

अष्टौ पलानि मूत्रस्य रुबुकाथाच्चतुष्पलम् । पलद्वयं तु तैलस्य माक्षिकप्रसृतं तथा ॥ १८२ ॥ रसकक्षीरसौवीरतित्तिडीकम्पलम्पलम् । गुडादेकं पलं दद्यान्मदनस्य पलं तथा ॥ ॥ १८३ ॥ शतपुष्पा वचा रास्ना कुष्ठदारुघनं निशा । सिद्धार्थकं बिल्वपेशी यवानीसैन्धवं बला ॥१८४॥ कर्षान्वितं श्लक्ष्णपिष्टं खजेनाशु प्रमथ्य च । युञ्ज्यान्निरूहवत्प्राज्ञो निरपायं महद्गुणम् ॥ १८५ ॥ मूत्रबस्तिरिति ख्यातः सर्वव्याधिहरः परः ।

गोमूत्र ८ पल, अंडका क्वाथ ४ पल, तिलका तेल २ पल, शहद १ प्रसृत, मांसरस, दूध, काँजी और इमली ये प्रत्येक चारचार तोले, गुड १ पल, मैनफल १ पल, तथा सौंफ, वच, रायसन, कूठ, देवदारु, नागरमोथा, हलदी, सरसों, बेलगिरी, अजवायन, सैंधानमक और खिरैंटी ये प्रत्येक औषधि एक एक तोला लेवे। इन सबको बारीक पीसकर और करछीसे अच्छेप्रकार मथकर निरूहणके समान प्रयोग करे। इसपर कुछ परहेज नहीं है। यह महान् गुणों को करती है। इसको मूत्रबस्ति कहते हैं। यह सर्व प्रकारके रोगोंको हरनेवाली है ॥ १८२-१८५ ॥

वैतरणबस्ति ।

सिन्धूद्भवस्य कर्षमम्लीकायाः पलं गुडार्द्धपलम् । सुरभीपयसः कुडवः सर्वैरेतैः कृतो बस्तिः ॥ १८६ ॥ ईषत्तैलयुतोऽयं भुक्ते दत्ते निहन्ति रोगगणम् । कट्यूरुपृष्ठशोथं शूलं चामानिलं घोरम् ॥ १८७ ॥ चिरभवमूरुस्तम्भं गृध्रसिरोगं च जानुसंकोचम् । विषमज्वराणि घोरं क्लैब्यश्च विनाशितायाशु ॥ १८८ ॥ बस्तिर्वैतरणोक्तो गुणगणयुक्तः सुविख्यातः १८९ ॥ भोजयित्वा च सायाह्ने सर्वस्याय प्रशस्यते । अथ चेद्बलवान् जन्तुरभुक्त्वापि तदा क्वचित् ॥ १९० ॥

सैंधानमक १ तोला, इमली चार तोले, गुड २ तोले, गोदुग्ध १ कुडवपरिमाण और कुछ थोडासा तेल इन सबको एकत्र मिलाकर अच्छे प्रकारसे मथकर भोजन करनेके पश्चात् बस्तिके द्वारा व्यवहार करे। यह बस्ति कटी, ऊरु और पृष्ठका शोथ, शूल और वायुके रोगोंको दूर करती है तथा बहुत दिनोंके ऊरुस्तम्भ, गृध्रसीरोग, जानुसंकोच, घोर विषमज्वर और क्लीबताको भी शीघ्र नष्ट करती है। यह वैतरणबस्ति अनेकगुणोंके समूहसे युक्त है। भोजन कराकर संध्याके समय इसको देना चाहिये। और जो बलवान् मनुष्य हो तो उसको विना भोजन कराये भी कभी कभी वैतरणबस्तिको प्रयोग करे ॥ १८६ ॥ १८७ ॥ १८८ ॥ १८९ ॥ १९० ॥

अर्द्धमात्रिकनिरूह ।

दशमूलीकषायस्य पलान्यष्टौ पल-

द्वयम्। तैलस्य मधुनश्चाथ शताह्वाक्षं प्रयोजयेत् ॥१९१॥ अक्षश्च सैन्धवस्येष्टं बस्तिरेभिर्महागुणः। आत्रेयानुमतो ह्येष भुक्ते योज्यो विचक्षणैः ॥१९२॥ नित्यमेकान्तरं वापि परिहारविवर्जितः। सुकुमारेषु वृद्धेषु स्त्रीषु यन्त्रणभीरुषु ॥ दीयमानो निहन्त्याशु दोषानीकान् सुदुस्तरान् ॥ ॥ १९३ ॥ वातरक्तं क्षयं कास कुष्ठञ्च विषमज्वरम्। अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रञ्च गुल्मप्लीहहलीमकम् ॥ १९४ ॥ वातपित्तभवान्रोगान् कफजान् सान्निपातिकान्। तान् सर्वान्नाशयत्याशु बलवर्णाग्निवर्द्धनः ॥ १९५ ॥ नैरूहिकेषु सर्वेषु बस्तिषु प्रवरो मतः। शुक्रसंजननो वृष्यश्चार्द्धमात्रिकसंज्ञकः ॥ १९६ ॥

दशमूलका क्वाथ ८ पल, तेल और शहद दो पल, सौंफका कल्क एक तोला और सैंधानमक एक तोला सबको एकत्र अच्छेप्रकारसे मथकर इनके द्वारा दीहुई बस्ति अनेक गुणोंको करती है। आत्रेयादिके मतसे भोजन करने पश्चात् इसको प्रयोग करे। नित्य अथवा एक दिनको छोडकर तीसरे दिन परहेजका त्याग करके सुकुमार, वृद्ध, स्त्री और जो पीडासे भयभीत हों उनके प्रयोग कीहुई यह बस्ती अनेकप्रकारके दुस्तर दोषोंको दूर करती है। तथा वातरक्त, क्षय, खाँसी, कोढ़, विषमज्वर, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, गुल्म, सन्निपातजनितरोग इन सबको यह तत्काल नष्ट करती है। तथा बल, वर्ण और अग्निको बढाती है। यह सर्वप्रकारकी निरूहबस्तिओंमें उत्तम है। इसको अर्धमातृकाबस्ति कहते हैं। यह बस्ति शुक्रको उत्पन्न करनेवाली और अतीव पुष्टिकर है ॥ १९१-१९६ ॥

शतशः सन्ति निरूहाः सुश्रुतचरकादिमुनिगदिताः। भिषजा पुनरमुनेव व्यवहारश्चार्द्धमात्रेण ॥ १९७ ॥

निरूहबस्ति सैकडों हैं जो कि, सुश्रुत और चरकादि ऋषियोंने कही हैं। किन्तु वे लोग इसी बस्तिको अर्धमात्रासे व्यवहार करते हैं ॥ १९७ ॥

एरण्डाद्यनिरूह।

एरण्डमूलं त्रिफला पलांशा ह्रस्वानि मूलानि पलानि पञ्च। रास्नाश्वगन्धा सबलागुडूची पुनर्नवारग्वधदेवदारु ॥ १९८ ॥ भागाः पलांशा मदनाष्टयुक्ता जले द्विकंसे क्वथिताष्टशेषे। पेष्याशताह्वाहपुषाप्रियंगुसपिप्पलीकं मधुकं वचा च ॥ १९९ ॥ रसाञ्जनं वासकबीजमुस्तमक्षप्रमाणं लवणांशयुक्तम्। समाक्षिकस्तैलयुतः समूत्रो बस्तिर्नृणां लेखनदीपनीयः ॥ २०० ॥ जंघोरुपादत्रिकपृष्ठशूलं कफावृतं मारुतविग्रहञ्च। विण्मूत्रवातग्रहणं सशूलमाध्मानकं साश्मरिशर्कराञ्च। आनाहमर्शोग्रहणीप्रदोषानेरण्डबस्तिः शमयेत्प्रयुक्तः ॥ २०१ ॥

अण्डकी जड और त्रिफला ये प्रत्येक चार चार तोले, लघुपंचमूल २० तोले, रास्ना, असगंध, खिरेंटी, गिलोय, विषखपरा, अमलतास और देवदारु ये प्रत्येक औषधि चार चार तोले और मैनफल आठ इन सबको दो आढक जलमें पकावे। जब पकते पकते जल आठवां भाग बाकी रहजाय तब उतार कर छानलेवे। फिर इसमें सौंफ, हाऊबेर, फूलप्रियंगू, पीपल, मुलैठी, वच, रसौत, अडूसेके बीज और नागरमोथा ये प्रत्येक औषधि एक एक तोला परिमाण मिलाकर तथा सैंधानमक, एवं शहद, तैल और गोमूत्र एक पल डालकर सबको अच्छेप्रकारसे मथकर बस्तिक द्वारा प्रयोग करे। यह बस्ति-लेखन और दीपन है। तथा जंघा, ऊरु, पाद, त्रिक और पृष्ठशूल, कफ, आवृत वायु और वायुके विकार, मल, मूत्र और वायुका अवरोध, शूल, आध्मान, अश्मरी, शर्करा, आनाह, अर्श और संग्रहणी इन सबको यह एरण्डबस्ति नष्ट करदेती है ॥ १९८-२०१ ॥

स्नेहं गुडं मांसरसं पयश्च ह्यम्लानि मूत्रं मधुसैन्धवञ्च । एतान्यनुक्तान्यपि दापयेच्च निरूहयोगे मदनात् फलञ्च ॥ २०२ ॥

स्नेह, गुड, मांसरस, दूध, खटाई, गोमूत्र, शहद और सैंधानमक ये यदि निरूहबस्तिमें नहीं भी कहे हों तो भी डालने चाहिये और इसीप्रकार मैनफल भी अवश्य डालना चाहिये ॥ २०२ ॥

लवणं कार्षिकं दद्यात् फलमेकन्तु मादनम् । वाते गुडः सिता पित्ते कफे सिद्धार्थकादयः ॥ २०३ ॥

सैंधानमक १ तोला और मैनफल १ डाले । वायुके रोगमें गुड मिलावे । पित्तके रोगोंमें मिश्री मिलावे। और कफके रोगोंमें सरसों आदि डाले ॥ २०३ ॥

विट्श्लेष्मपित्तानिलमूत्रकर्षी दार्ढ्यावहः शुक्रबलप्रदश्च । विट्कं स्थितं दोषचयं निरस्य सर्वान् विकारान् शमयेन्निरूहः ॥ २०४ ॥

निरूहबस्ति—मल, कफ, पित्त, वात और मूत्रको कर्षित करती हैं, तथा दृढता, शुक्र और बलको बढ़ाती है । मल विबन्धको और संचित दोषोंको निकालकर सब प्रकारके विकारोंको दूर करती है ॥ २०४ ॥

ज्वरेच्छर्द्यामतीसारे गूढशल्यार्दितेषु च । हृद्रोग्रहे कृताहारे दुर्बले व्याधिकर्षिते ॥ २०५ ॥ क्षीणे रक्तातिसारे च तथा मूर्च्छातिकर्षिते । प्रथितानां नराणाञ्च निरूहो न प्रशस्यते ॥ २०६ ॥

ज्वर, वमन, अतिसार और जिसके शरीरमें गूढ शल्य प्रविष्ट हो उसके हृदयरोग, तथा आहारके करनेपर दुर्बलता और व्याधिसे कृशता होनेपर एवं क्षीण, रक्तातिसार और मूर्छासे अत्यंत पीडित, इन कहे हुए सम्पूर्ण मनुष्योंके निरूह बस्ति नहीं देनी चाहिये ॥ २०५ ॥ २०६ ॥

पीतस्नेहस्य वान्तस्य विरिक्तस्य स्नुतासृजः । निरूहितस्य कायाग्निर्मन्दो भवति देहिनः ॥ २०७ ॥

स्नेहपान, वमन, विरेचन, रक्तमोक्षण और निरूहण बास्ति इनको सेवन करनेवाले मनुष्यके शरीरकी अग्नि मन्द होजाती है ॥ २०७ ॥

स चाल्पैर्लघुभिश्चान्नैरुपयुक्तैर्विवर्द्धते । काष्ठैरणुभिरल्पैश्च संधुक्षित इवानलः ॥ २०८ ॥

वह मंद अग्नि-थोडे और हलके अन्नोंको भोजन करनेसे शीघ्र ही वृद्धिको प्राप्त होजाती है, जिसप्रकार काठके बहुत छोट छोट टुकडोंके योगसे बाली हुई अग्नि अत्यंत प्रचण्ड होजाती है ॥ २०८ ॥

युक्तेऽग्नौ जीवति चिरं रोगी स्याद्विकृतिं गते । शान्ते पञ्चत्वमायाति देही तस्माद्वरोऽनलः ॥ ॥ २०९ ॥

अग्निके दीपन होनेपर, रोगी विकृत होजानेपर भी जीता रहता है और अग्निके शांत होनेपर मनुष्य मृत्युको प्राप्त होजाता है । इसकारण शरीरमें अग्नि प्रधान है ॥ २०९ ॥

पथ्य ।

कालस्तु बस्तिष्वनुयाति यावत्तावद्द्वैद्वै परिहारकालः ॥ अत्याशनस्थानवचांसि पानं स्वप्नं दिवामैथुनवेगरोधान् । शातोपवातातपशोकरोषांस्त्यजेदकालाहितभोजनञ्च ॥ २१० ॥

जबतक बास्ति बाहर नहीं आवे तबतक मनुष्यको इसपर पथ्य करना चाहिये । एवं अत्यंत भोजन, अत्यंत बैठे रहना, अत्यंत बोलना, पान, दिनमें सोना, मैथुन, मलमूत्रके वेगोंको रोकना शीत, वायु, धूप, शोक, क्रोध, अकालमें भोजन और आहित भोजन इन सबको त्याग देवे ॥ २१० ॥

अथोत्तरबास्तविधि ।

बस्तेरुत्तरसंज्ञस्य विधिं वक्ष्याम्यतः परम् । द्वित्र्यास्थापनतः शुद्धा निदध्याद्बस्तिमुत्तरम् ॥ २११ ॥

अब उत्तरबस्तिके विधानको कहता हूँ । प्रथम दो तीन आस्थापनबास्ति देकर शुद्ध कियहुय मनुष्यके पश्चात् उत्तरबस्ति देना चाहिये ॥ २११ ॥

आतुराङ्गुलिमानेन नेत्रन्तु द्वादशांगुलम् । वृत्तं गोपुच्छवन्मूलं मध्ययोः कृतकर्णिकम् ॥ २१२ ॥

रोगीके अंगुलके बराबर बस्तिकी नली बारह अंगुलकी बनावे उसकी मूल-गोल और गायकी पूँछके समान होनी चाहिये और उसके बीचमें सुन्दर कर्णिका बनावे ॥ २१२ ॥

सिद्धार्थवाहिच्छिद्राग्रं हेमरूप्यादिनिर्मितम् । चतुर्दशाङ्गुलं नेत्रं तत्र कार्य्यं विजानता ॥ २१३ ॥ मालतीपुष्पवृत्ताभं कर्त्तव्यं छिद्रमेव च । मेढ्रायामसमं केचिदिच्छन्ति खलु तद्विदः ॥ २१४ ॥

जिसमें सरसों चलीजायें ऐसा छिद्र करै और सुवण अथवा चाँदीकी बस्ति बनावै । कोई वैद्य कहते हैं कि चौदह अंगुलकी नली बनावे और उसमें चमेली फूलके समान गोल छिद्र करे और कोई वैद्य कहते हैं कि वह लिंगके समान होनी चाहिये ॥ २१३ ॥ २१४ ॥

स्नेहप्रमाणं परमं प्रकुञ्चं चात्र कीर्तितम् ॥ २१५ ॥ पञ्चविंशतिवर्षाणामधोमात्रा द्विकार्षिकी। तदूर्ध्वम्पलमात्रा च स्नेहस्योक्ता भिषग्वरैः॥२१६॥

इसमें स्नेहका उत्कृष्ट मात्र चार तोलेकी कही है । पचीसवर्षसे कम अवस्थावाले मनुष्यको दो कर्षकी मात्रा देवे और ऊपरकी अवस्थावाले मनुष्यको १ पलकी मात्रा करे इसप्रकार वैद्याचार्योंने स्नेहकी मात्रा कही है ॥ २१५ ॥ २१६ ॥

निविष्टकर्णिकं मेढ्रे नारीणां चतुरङ्गुलम् । मूत्रस्रोतः परीणाहं मुद्गवाहि दशाङ्गुलम् ॥ २१७ ॥

कर्णिका पर्य्यन्त पुरुषके लिंगमें बस्ति प्रविष्ट करे। स्त्रियोंके लिये उसमें चार अंगुलकी कर्णिका बनावे और उसकी गोलाई मूत्रके मार्गके समान होनी चाहिये । तथा जिसमें मूंग निकलजाय ऐसा छिद्र और उसकी लम्बाई दश अंगुलकी होनी चाहिये ॥ २१७ ॥

तासामपत्यमार्गे तु निदध्याच्चतुरङ्गुलम्।द्व्यंगुलं मूत्रमार्गे तु कन्यानां त्वेकमंगुलम् । विधेयश्चांगुलश्चासां विधिवद्वक्ष्यते यथा ॥ २१८ ॥

स्त्रियोंके गर्भाशयमें यदि यह पिचकारी लगानी हो तो चार अंगुल प्रविष्ट करे और मूत्रमार्गमें लगानी हो तो दो अंगुल प्रविष्ट करे । किन्तु कन्याओंके लगानी हो तो एक अंगुलकी पिचकारी लगावे। यह स्त्रियोंके अंगुलका प्रमाण स्त्रियोंके ही अंगुलसे मापना चाहिये ॥ २१८ ॥

स्नेहस्य प्रसृतं चात्र स्वांगुलीमूलसम्मितम् । एवं प्रमाणं विहितमर्थाद्बुद्धिविकल्पितम् ॥ २१९ ॥

स्नेहका जो यहाँ प्रसृत मानागया है, वह रोगीके अंगुलियोंकी जडसे नापाजाता है,इसप्रकारका प्रमाण कम या ज्यादह अपनी बुद्धिकी कल्पनासे विधान करे ॥ २१९ ॥

औरभ्रः शौकरी वापि बस्तिराजश्च पूजितः । उदलाभे नियुञ्जीत गलचर्म च पक्षिणाम् ॥ २२० ॥

स्त्रियोंके लिये मेढा, सूअर और बकरा इनके कोमल चर्मकी बस्ति बनावे और जो ये न मिलसके तो पक्षियोंके गलेके चमडेकी बनावे ॥ २२० ॥

अथातुरमुपस्निग्धं सुस्विन्नं प्रथिताशयम् । यवागूं सघृतक्षीरां पीतवन्तं यथाबलम् ॥ २२१ ॥

रोगीको प्रथम स्निग्ध और स्वेदित करके जब उसको आशय विस्तृत होजाय तब उसको बलानुसार घृत और दूधयुक्त यवागू पिलावे ॥ २२१ ॥

निषण्णमाजानुसमे पीठे स्थानाश्रये समे । स्वभ्यक्तबस्तिमूर्द्धानं तैलेनोष्णेन युक्तितः ॥ २२२ ॥ ततः समं स्थापयित्वा नालमस्य प्रहर्षितः। पूर्वं शलाकयान्विष्य मार्गे नेत्रमनन्तरम् ॥ २२३ ॥ शनैःशनैर्घृताभ्यक्तं निदध्यादंगुलानि षट् । ततोऽवपीडयेद्बस्तिं शनैर्नेत्रञ्च निर्हरेत्॥२२४॥

ततः प्रयोजितस्नेहमपराह्णे विचक्षणः । पयसा भोजयेदेनं यूषैर्मांसरसेन च ॥ २२५ ॥ अनेन विधिना दद्याद्बस्तींस्त्रींश्चतुरोऽपि वा । ततः प्रत्यागते स्नेहे स्नेहबस्तिक्रमो हितः ॥ २२६ ॥

पश्चात् समान भूमिपर स्थित घुटनोंपर्य्यंत ऊँचे आसनपर रोगीको बैठाकर उसके बस्तिस्थानपर गरमतेलको मलदेवे । पश्चात् रोगीके लिंगको समान करके प्रथम सलाईसे खोलकर पश्चात् नलीसे खोले फिर उसपर घृत चुपडकर धीरे धीरे छः अंगुलकी पिचकारी उसमें प्रविष्ट करे पश्चात् बस्तिको कुछएक पीडित करके धीरेसे पिचकारीको निकाललेवे । जब बस्तिद्वारा लगाया हुआ स्नेह बाहर आजावे तब अपराह्णके समय उसको दूध,यूष और मांसरसके साथ भोजन करावे । इसप्रकार तीन या चार बस्ति देवे । बस्तिगतस्नेहके बाहर निकल आने पर स्नेहबस्तिका क्रम करे ॥ २२२–२२६॥

स्त्रीणां कनिष्ठिकास्थूलं नेत्रं कुर्य्याद्दशांगुलम् । मूत्रकृच्छ्रविकारेषु बालानां त्वेकमंगुलम् ॥ २२७ ॥

स्त्रियोंके लिये उत्तरबस्तिकी नली कनिष्ठिकाअंगुलीके समान स्थूल और दश अंगुल लम्बी होनी चाहिये और बालकोंके मूत्रकृच्छ्रविकारमें यदि बस्ति देनी हो तो एक अंगुलकी नली बनावे ॥ २२७ ॥

योनिमार्गेषु नारीणां स्नेहमात्रा द्विपालिकी । मूत्रमार्गे पलोन्माना बालानाश्च द्विकार्षिकी ॥ २२८ ॥

स्त्रियोंके गर्भाशयमें बस्ति लगानी हो तो उसके स्नेहकी मात्रा दो पलकी करनी चाहिये, मूत्रमार्गमें पिचकारी लगानी हो तो चार तोले स्नेह डालना चाहिये और बालकोंके लिये स्नेह २ तोले डालना चाहिये ॥ २२८ ॥

उत्तानायै स्त्रियै दद्यादूर्ध्वजान्वै समाहितः । कन्येतरस्यै कन्यायै तद्वत्सम्यङ्निपीडयेत् ॥ २२९ ॥ त्रिकर्णिकेन नेत्रेण दद्याद्योनिमुखं प्रति । गर्भाशयविशुद्ध्यर्थं स्नेहेन द्विगुणेन तु ॥ २३० ॥

स्त्रीको साधा चित्त सुलाकर और उसके घुटने ऊपरको करके पिचकारी मारे । जो कन्याके पिचकारी लगानी हो तो उसको अच्छेप्रकारसे पीडित करके तीन कर्णिकावाली नली उसकी योनिक मुखमें लगावे । गर्भाशयकी शुद्धिके लिये दुगुने स्नेहकी पिचकारी लगावे ॥ २२९ ॥ २३०॥

अप्रत्यागच्छति भिषग्बस्ता उत्तरसंज्ञके । भूयो बस्तिं निदध्यात्तु संयुक्तं शोधनौषधैः ॥ २३१ ॥

जो उत्तरबास्तिमें दिया हुआ स्नेह बाहरको नहीं निकले तो फिर वैद्य शोधन औषधियोंकी मिश्रित दूसरी पिचकारी लगावे ॥ २३१ ॥

पायौ बस्तिं निदध्यात्तु प्रोक्तं गुल्मचिकित्सिते । प्रवेशयेद्वा मतिमान् फलवर्तिं तु योनिगाम् ॥ २३२ ॥

अथवा बुद्धिमान वैद्य गुल्मचिकित्सामें कहे विधिके अनुसार गुदामें बस्ति लगावे या योनिमार्गमें फलवर्त्ती प्रविष्ट करे ॥ २३२ ॥

सूत्रैर्विशिष्टान्तां स्निग्धां शोधनद्रव्यसंयुताम् । पीडयेद्वाप्यधोनाभेर्बस्तेरुपरि वेष्टिताम् ॥ २३३ ॥

अथवा सूतसे बँधीहुई, शोधन द्रव्योंसे मिलीहुई और चिकनी बत्ती बनाकर उसको योनिमें रक्खे । अथवा बस्तिस्थान (मूत्राशय) के ऊपर मोटा कपडा लपेट कर नाभिके नीचे मुट्ठीसे दबावे ॥ २३३ ॥

आरग्वधस्य पत्रेण निर्गुण्ड्याः स्वरसेन च । कुर्य्याद्गोमूत्रपिष्टेन वर्त्तिश्चापि ससैन्धवाम् ॥ २३४ ॥ मुद्गैलासर्षपसमां प्रविभिद्य वयांसि च । बस्तेरागमनार्थाय तां निदध्याच्छलाकया ॥ २३५ ॥

अमलतासके पत्तोंको निर्गुण्डीके स्वरस, गोमूत्र और सैंधानमक इन सबके साथ एकत्र पीसकर मूँग,

इलायचीके दाने और सरसोंके समान मुखवाली अवस्थाके अनुसार बत्ती बनाकर उसको बस्तिके निकालनेके लिये सलाईसे चढावे ॥ २३४ ॥ २३५ ॥

आगारधूमबृहतीफलपिप्पलिसैन्धवैः। त्रिवृताशुक्तगोमूत्रसुरापिष्टैः सनागरैः ॥ २३६ ॥

घरका धुआँ, बडी कटेरीके फल, पीपल, सैंधानमक, निसोत, कांजी, गोमूत्र, मदिरा और सोंठ इन सबको एकत्र पीसकर बत्ती बनाकर प्रयोग करे२३६

दह्यमाने भिषग्बस्तौ पायौ बस्तिं प्रदापयेत् । क्षीरिवृक्षकषायेण पयसा शीतलेन च ॥ शर्करामधुमिश्रेण शीतेन मधुकाम्बुना ॥ २३७ ॥

बस्तिमें यदि तीक्ष्ण औषधियोंके प्रयोगसे दाह हो तो वैद्य दूधवाले वृक्षोंके क्वाथके द्वारा अथवा शीतल दूधके द्वारा अथवा मुलैठीके शीतल काथमें मिश्री और शहद डालकर पिचकारी लगावे ॥ २३७ ॥

बस्तिः शुक्ररुजः पुंसां स्त्रीणामार्त्तवजा रुजः । हन्यादुत्तरबस्तिस्तु नोचितो मेहिनां क्वचित् ॥ २३८ ॥

यह उत्तरबस्ति पुरुषोंके सर्वप्रकारके शुक्रदोषोंको और स्त्रियोंके आर्त्तवके विकारोंको नष्ट करती है। किन्तु यह बस्ति प्रमेहरोगियोंको कदापि हितकारी नहीं है ॥ २३८ ॥

अपिच ।

शुक्रं दुष्टं शोणितं चाङ्गनानां कष्टं शान्तिं याति चासृग्दरश्च । मूत्राघातं मूत्रदोषान् प्रवृद्धान् योनेर्दोषांश्चापराऽऽघातसंज्ञम् ॥ २३९ ॥ शुक्राघातं शर्करामश्मरीञ्च शस्तं बस्तौ वंक्षणे मेहने च । घोरानन्यान् बस्तिजातांश्च रोगांश्चार्त्ते मेहादुत्तरो हन्ति बस्तिः ॥ २४० ॥

विधिपूर्वक प्रदान कीहुई उत्तरबस्ति–दूषित वीर्य्य, दूषितरज, कष्टसाध्य प्रदररोग, मूत्राघात, बढेहुए मूत्रदोष, योनिविकार, जरायुके रुकनेके विकार, शुक्राघात, शर्करा, अश्मरी, बस्तिरोग, लिंगरोग, वंक्षणरोग और अन्यान्य घोर बस्तिजनित रोग प्रमेहके विना इन सबको यह बस्ति नष्ट करदेती है॥२३९॥२४०॥

सम्यग्दत्तस्य लिङ्गञ्च व्यापदः क्रम एव च । बस्तेरुत्तरसंज्ञस्य समानं स्नेहबस्तिना ॥ २४१ ॥

अच्छे प्रकारसे दी हुई उत्तरबस्तिके लक्षण, रोग और क्रम ये सब स्नेहबस्तिके समान जानने॥२४१॥

घृताभ्यक्ते गुदे क्षेप्या श्लक्ष्णा स्वांगुष्ठसन्निभा । मलप्रवर्त्तिनी वर्त्तिः फलवर्त्तिश्च सा स्मृता ॥ २४२ ॥

मल निकलनेके लिये गुदामें घी चुपडकर रोगीके अंगूठेके सदृश मोटी और चिकनी बत्ती प्रवेश करे। इसको वैद्यलोग मलप्रवर्त्तिनी और फलवर्त्ती भी कहते हैं ॥ २४२ ॥

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायां बस्त्यधिकार समाप्त ॥ ७९ ॥

अथ धूमपानाधिकार ।

प्रायोगिकः कासहरश्च धूमो वैरेचनः स्नैहिकवामनीयौ । पञ्चप्रकारा गदिताश्च धूमाः सिद्धान्तविद्भिर्मुनिभिश्च वैद्यैः ॥ १ ॥

प्रायौगिक, कासहर, वैरेचन, स्नैहिक और वामनीय इसप्रकार प्राचीन महर्षि और वैद्योंने धूमपानके पांच भेद कहे हैं ॥ १ ॥

एलादिना कुष्ठनतोज्झितेन क्षौमं प्रलिप्यांगुलकाष्ठमाना । प्रायोगिके वर्त्तिरियञ्च नेत्रमष्टांगुलं षड्गुणितं प्रशस्तम् ॥ २ ॥

कूठ और तगरको छोडकर एलादिवर्गकी औषधियोंको बारीक पीसकर कल्क बनावे । फिर एक बारह

अंगुलका नरसलका टुकडा लेकर उसपर उत्तम वस्त्र लपेटकर उस वस्त्रके ऊपर कल्कको आठ अंगुल परिमाण लेप करदेवे । पश्चात् नरसलका टुकडा निकालकर इस बत्तीको अडतालीस अंगुलकी नलीमें रखकर धूमपान करे ॥ २ ॥

बृहत्यौ त्र्यूषणं शृङ्गी सेंगुदीत्वङ्मनःशिला । एषा कासहरा वर्त्तिर्नेत्रं षोडशकांगुलम् ॥ ३॥

कटेरी, बडी कटेरी, त्रिकुटा, काकडासिंगी, हिंगोटकी छाल और मैनशिल इनको उपर्युक्तरीतिसे बत्ती बनाकर सोलह अंगुलकी नलीमें रखकर पान करे । इसको कासहरधूम कहते हैं ॥ ३ ॥

शिरोविरेचनैर्वर्त्तिर्नेत्रं हस्तमितं मतम् ॥ ४ ॥

चिरचिटा, पीपल इत्यादि शिरोविरेचनऔषधियोंके द्वारा बत्ती बनाकर उसको चौबीस अंगुल लम्बी नलीमें रखकर पान करे । इसको वैरेचन धूमपान कहते हैं ॥ ४ ॥

स्निग्धसंज्ञैर्मधूच्छिष्टस्नेहगुग्गुलुसर्षपैः । स्नैहिको वर्त्तिरेभिस्तु नेत्रं द्वात्रिंशदंगुलम् ॥ ५ ॥

स्निग्धपदार्थ, मोम, स्नेह, गूगल और सरसों इत्यादि स्निग्धपदार्थोंकी बत्ती बनाकरे उसको बत्तीस अंगुल लम्बी नलीमें रखकर पान करे । इसको स्नैहिकधूमपान कहते हैं ॥ ५॥

वामनीये तु वल्लूरस्नाय्वस्थिखुरचर्मभिः । वर्त्तिर्दशांगुलं नेत्रं धूमः पञ्चविधो मतः ॥ ६ ॥

वल्लूर (सूखामांस), स्नायु, अस्थि, खुर और चर्म्म इत्यादि वमनकारक पदार्थोंके द्वारा बत्ती बनाकर उसको दश अंगुल लम्बी नलीमें रखकर पान करे । इसको वामनीय धूमपान कहते हैं । इसप्रकार धूमपानके ये पांच भेद जानने ॥ ६ ॥

अथ सुखोपविष्टः सुमना ऋज्वधोदृष्टिरतन्द्रितः । स्नेहाक्तां प्रदीप्ताग्रां वर्त्तिं स्रोतसि प्रणिधाय धूमं पिबेत् ॥

प्रसन्नचित्त होकर सुखपूर्वक सीधा बैठाहुआ रोगी दृष्टिको नीचा करके और आलस्यको छोडकर सावधानताके साथ स्नेहसे भीजीहुई बत्तीके अग्रभागमें अग्नि लगाकर उसको नलीमें रखकर धूमपान करे ।

मुखेन तं पिबेत्पूर्वं नासिकायाः पुनः पिबेत् । मुखपीतं मुखेनैव वमेत्पीतश्च नासया ॥ ७ ॥ यो वमेन्नस्ततो धूमं नस्तपीतं मुखेन वा । स नेत्रकर्णनासास्यसंश्रयान लभते गदान् ॥ ८ ॥

प्रथम मुखके द्वारा धूमपान करे पश्चात् नासिकाके द्वारा धूमपान करे । मुखके द्वारा पान कियेहुए धूमको मुखसे और नासिकाके द्वारा पान किये हुये धूमको नासिकाके द्वारा निकाले । किन्तु जो मुखके द्वारा पान किये हुए धूमको नासिकाके द्वारा निकालता है और नासिकाके द्वारा पान किये हुए धूमको मुखके द्वारा निकालता है तो उसके कर्ण, नासिका और मुखमें अनेकप्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं इस लिए इसका विपरीत करना चाहिए ॥ ७ ॥ ८ ॥

तत्र प्रायोगिकं त्रींस्त्रीनुच्छ्वासानाददीत मुखनासिकाभ्यांश्च पर्यायांस्त्रींश्चतुरो वेति । मुखनासाभ्यां पीतं स्नैहिकं यावदश्रुप्रवृत्तिरिति । नासिकया च पीतं वैरेचनिकमल्पदोषदर्शनात् । मुखेनैव कासान्तकरो ग्रासान्तरेषु च । वामनीयश्च मुखेनैव तिलतण्डुलकृतां यवागूं पीत्वा वामनीयो यथायोगम् ।

प्रायोगिकधूमको मुख और नासिकाके द्वारा तीन बार जोर जोरसे श्वासको खींचकर पीवे । शेष धूमोंको अपने बलानुसार तीन चार बार पीवे । स्नैहिकधूमको मुख और नासिकाके द्वारा तबतक पीवे जबतक कि आंसू न निकलने लगे । वैरेचनिकधूमको नासिकाके द्वारा तबतक पीवे जबतक कि दोष निकलते रहैं । कासहरधूमको मुखके द्वारा भोजनके ग्रासके बीचमें अथवा ग्रासके अन्तमें पीवे। वामनीय

धूमको प्रथम तिल और चावलोंकी यवागू पान करके पश्चात् मुखके द्वारा यथाविधिसे पान करे ॥

हृत्कण्ठेन्द्रियसंशुद्धिर्लाघवं शिरसः शमः । यथेरितानां दोषाणां सम्यक् पीतस्य लक्षणम् ॥ ९ ॥

अच्छेप्रकारसे धूमपान करनेसे हृदय और इन्द्रियोंमें शुद्धि, शिरमें हलकापन और उक्तदोषोंकी शांति ये लक्षण होते हैं ॥ ९ ॥

बाधिर्य्यमान्ध्यं मूकत्वं रक्तपित्तं शिरोभ्रमम् । अकाले चातिपीतश्च धूमः कुर्य्यादुपद्रवान् ॥ १० ॥

विनासमय और अधिकतर धूमपान करनेसे बधिरता, अंधता, मूकता, रक्तपित्त और शिरोभ्रम इत्यादि रोगोंको उत्पन्न करती है ॥ १० ॥

तत्रेष्टं सर्पिषः पानं विरेको रक्तमोक्षणम् ॥ ११ ॥

इन विकारोंमें घृतपान, विरेचन और रक्तमोक्षण ये उपचार करे ॥ ११ ॥

तस्य योगातियोगौ विज्ञातव्यौ । तत्र योगे रोगोपशमनमिति । अतियोगे तालुशोषपरिदाहपिपासामदमूर्च्छाकर्णक्ष्वेडदौर्बल्यमिति ।

धूमपानके योग और अतियोगोंको भी जानना उचित है । इसमें अच्छेप्रकारसे धूमपान करनेको योग कहते हैं और कुविधिसे पान करनेको अतियोग कहते हैं। योगसे धूमपान करनेपर सम्पूर्ण रोग शमन होते हैं और अतियोगसे तालुशोष, दाह, पिपासा, मद, मूर्च्छा, कर्णक्ष्वेड और दुर्बलतादि अनेक उपद्रव उत्पन्न होते हैं ॥

स्नैहिकं धूमकं दोषे वायौ पित्तानुगे यदि । शीतन्तु रक्तपित्ते स्याच्छ्लेष्मपित्ते विरूक्षणम ॥ १२ ॥

स्नैहिकधूमपानके दूषित होनेसे यदि वायु पित्तके अनुकूल हो तो रक्तपित्तमें शीत और कफपित्तमें विरूक्षण क्रिया करे ॥ १२ ॥

धूमपाननिषेध।

न विरिक्तः पिबेद्धूमं न कृते बस्तिकर्मणि । न रक्ते न विषे नोक्तो नाशक्तो न च गर्भिणी ॥ १३ ॥ न श्रमे न मदे नामे न पित्ते न प्रजागरे । न मूर्च्छाभ्रमतृष्णासु न क्षीणे नापि च क्षते ॥ १४ ॥

विरेचन करनेपर, बस्तिकर्म्म करनेपर, रुधिरके विकारोंमें, विषके विकारोंमें, असमर्थ, गर्भवती स्त्री, श्रम, मद, आम, पित्त, जागरण, मूर्च्छा, भ्रम, तृष्णा, क्षीण और क्षत इन सब रोगोंमें पान नहीं करना चाहिये ॥ १३ ॥ १४ ॥

न मद्यदुग्धे पीत्वा च न स्नेहञ्च न माक्षिकम् । धूमं न भुक्त्वा दध्ना च न रूक्षः क्रुद्ध एव च ॥ १५ ॥ न तालुशोषे तिमिरे शिरस्यभिहते न च । न शंखके न रोहिण्यां न रोगे च मदात्यये ॥ १६ ॥ एषु धूममकाले च मोहात्पिबति यो नरः । रोगास्तस्य प्रवर्द्धन्ते दारुणा धूमविभ्रमात् ॥ १७ ॥

एवं मद्यपान अथवा दूध पान करके स्नेह अथवा शहद सेवन करके अथवा दही सेवन करके किम्वा रूक्षशरीरवाला और क्रोधी मनुष्य इन सबको धूम्रपान त्याग देना चाहिये । तथा तालुशोष, तिमिर, शिरकी पीडा, शंखरोग, रोहिणी और मदात्यय इन रोगोंमें भी धूमपान नहीं करना चाहिय । जो मनुष्य उपर्युक्त विकारोंमें अथवा अकालसमयमें मोहसे धूमपान करता है उसके धूमविभ्रमसे दारुणरोग उत्पन्न होते हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥

अन्यच्च ।

तत्र शोकश्रमभयामर्षौष्ण्यविषरक्तपित्तमदमूर्च्छादाहपिपासा—पांडुरोगतालुशोषछर्दिमूर्धाभिघातोद्गारमेहोदराध्मानोर्ध्ववातार्तबालवृद्धदुर्बलविरिक्तास्थापिनजागरितगर्भिणी रूक्षक्षतक्षीणमधुघृतदधिदुग्धमत्स्यमद्ययवागूपीताल्पकफाश्च धूमं न सेवेरन्निति ।

शोक, श्रम, भय, क्रोध, उष्णता, विषीविकार, रक्तपित्त, मद, मूर्छा, दाह, पियासा, पाण्डु रोग, तालुशोष, वमन, शिरोभिघात, उद्गार, प्रमेह, उदररोग, आध्मान और ऊर्ध्ववात इन सब रोगोंमें एवं बालक, वृद्ध, दुर्बल, जिसने विरेचन और आस्थापन बस्ति सेवन की हो, जिसने जागरण किया हो, तथा गर्भवती स्त्री, रूक्षशरीरवाला, क्षत और क्षीण रोगी, जिसने शहद, घी, दही, दूध, मछली, मदिरा और यवागू पान किये हों तथा जिसके शरीरमें कफ बहुत कम हो ऐसे रोगियोंको कदापि धूमपान नहीं सेवन करना चाहिये ॥

गौरवं शिरसः शूलं पीनसार्द्धावभेदकौ । कर्णाक्षिशूलं कासश्च हिक्काश्वासौ गलग्रहः ॥ १८ ॥ दन्तदौर्बल्यमास्रावः श्रोत्रघ्राणाक्षिदोषजः । पूतिस्रावश्च छर्दिश्च दन्तशूलमरोचकः ॥ १९ ॥ हनुमन्याग्रहः कण्डूः कृमयो मुखपाण्डुता । श्लेष्मप्रसेकौ वैस्वर्य्यं गलशुण्ड्युपजिह्विका॥ २० ॥ खालित्यं पिञ्जरत्वञ्च केशानां पतनं तथा । क्षवथुश्चातितन्द्रा च बुद्धेर्मोहोऽतिनिद्रता ॥ २१ ॥ धूमपानात्प्रशाम्यन्ति बलं भवति चाधिकम् । शिरोरुहकपालानामिन्द्रियाणां रसस्य च ॥२२॥

शिरका भारीपन, शिरका शूल, पीनस, अर्द्धावभेदक, कर्णशूल, नेत्रशूल, खाँसी, हिचकी, श्वास, गलग्रह, दाँतोंकी दुर्बलता, दंतस्राव, कर्णस्राव, नासिका स्राव, नेत्रस्राव, पूतिस्राव, वमन, दंतशूल अरुचि, हनुस्तम्भ, मन्यास्तम्भ, कण्डू, कृमि, मुखकी पांडुता, फकका स्राव, स्वरकी भंगता, गलशुण्डी, उपजिह्विका, खालित्य, बालोंका पकना, बालोंका गिरना, छीकना, अत्यन्त आलस्य, बुद्धिका मोह और अत्यन्त निद्रा ये धूमपानको सेवन करनेसे नष्ट होजाते हैं । अत्यन्त बलकी वृद्धि होती है, तथा बाल, कपाल, इन्द्रियें और रस इनके भी बलकी वृद्धि होती है ॥ १८-२२ ॥

न च वातकफात्मानो बलिनोऽप्यूर्ध्वजत्रुजाः । धूमारक्तकपालस्य व्याधयः स्युः शिरोगताः ॥ २३ ॥

धूमपान करनेसे जिस मनुष्यका कपाल आच्छादित होगया है ऐसे मनुष्यकी वात और कफकी प्रकृति होनेपर एवं उसके बलवान होनेपर ऊर्ध्वजत्रु रोग और शिरोरोग उत्पन्न नहीं होते हैं ।

धूमप्रयोगात्पुरुषः प्रसन्नेन्द्रियवाङ्मनाः । दृढकेशद्विजश्मश्रुः प्रसन्नविशदाननः ॥ २४ ॥

धुयेंको विधिपूर्वक सेवन करनेसे सम्पूर्ण इन्द्रियें, वाणी और मन प्रसन्न होते हैं । केश, दन्त, दाढी और मूछ ये दृढ होजाते हैं और मुखकमल प्रफुल्लित होता है ॥ २४ ॥

धूमपानका काल ।

प्रयोगपाने तस्याष्टौ कालाः सम्परिकीर्त्तिताः । स्नात्वा भुक्त्वा समुल्लिख्य क्षुत्वा दन्तान्निघृष्य च ॥ २५ ॥ नावनाञ्जननिद्रान्ते चात्मवान्धूमपो भवेत् । वातश्लेष्मसमुत्क्लेशः कालेष्वेषु हि लक्ष्यते ॥ २६ ॥

प्रयोगनामक धूमपानके आठ समय कहे हैं । स्नान करनेके पश्चात्, भोजन करनेके पश्चात्, जिह्वा आदिको घिसनेके पश्चात्, छींक लेनेके पश्चात्, दाँतोंको घिसनेके पश्चात्, नस्यकर्म, अञ्जन और निद्राके अन्तमें बुद्धिमान् मनुष्य धूमपान करे । क्योंकि वात कफका उत्क्लेश इन ही समयोंमें होता है ॥ २५ ॥ २६ ॥

अंगुष्ठपरिणाहेन मध्ये स्थूलोऽन्तयोस्तनुः । षड्भागो धूमनेत्रस्य वर्त्या मानं प्रशस्यते ॥ २७ ॥

अँगूठेके समान विस्तृत मध्यमें स्थूल और अन्तमें पतली धूमकी नलीका परिमाण, बत्तिके मानसे छठा भाग होना चाहिए ॥ २७ ॥

ऋजुत्रिकोणकलितकोलास्थ्यग्रप्रमाणितम् । बस्तिनेत्रसमद्रव्यं धूमनेत्रं प्रशस्यते ॥ २८ ॥

सीधा, तीन सन्धिवाले और बेरकी गुठलीके अग्रभागके समान तथा बस्तिके नेत्रके समान द्रव्यवाला ऐसा धूमपान करनेका नेत्र उत्तम होता है ॥ २८ ॥

शरावसंपुटयुतं व्रणधूमं नयेद्व्रणे। धूमनेत्रेण मतिमान् वेदनास्रावशान्तये ॥ २९ ॥

जो व्रणमें धुआँ देना हो तो अंगारोंसे सुलगाये हुए कल्कको शरावसम्पुटमें रखकर ऊपरके शरावमें छिद्र करके उसमें नली लगाकर उससे व्रणको धूनी देवे इससे व्रणकी वेदना और स्राव शांत होता है २९ ॥

इति श्री वंगसेने भाषाटीकायां धूमपानाधिकार समाप्त ॥ ८० ॥

अथ कवलाधिकार।

चतुर्द्धा कवलः स्नेही प्रसादी शोधिरोपणौ। स्निग्धोष्णः स्नैहिको वाते स्वादुशीतैः प्रसादनः ॥ १ ॥ पित्ते कट्वम्ललवणै रूक्षैः संशोधनः कफे। कषायतिक्तमधुरैः कटुकै रोपणो व्रणे ॥ २ ॥

अब कवलग्रहकी विधिको कहते हैं। स्नेही, प्रसादी, शोधि और रोपण इनभेदोंसे कवल चार प्रकारका है। वातके विकारमें स्निग्ध और उष्णद्रव्योंके द्वारा स्नेही कवल धारण करना चाहिये। पित्तके रोगोंमें मधुर और शीतल औषधियोंके द्वारा प्रसादी कवल धारण करना चाहिये। कफके रोगोंमें कटु, अम्ल, लवण और रूक्ष औषधियोंके द्वारा संशोधनकवल धारण करना चाहिये और व्रणके रोपण करनेमें कसैली, कडवी, मधुर और कटु औषधियोंके द्वारा रोपणकवल धारण करना चाहिये ॥ १ ॥ २ ॥

वचात्रिकटुकैश्चैव सिद्धार्थैः कल्कपेषितैः। तैलमूत्रसुरायुक्तैर्मधुनान्यतमेन च ॥ ३ ॥ सहितैः स्विन्नमृदितः स्निग्धभालकपोलकः। मुखे गृहीत्वा कवलं मात्रयाऽनन्यमानसः ॥ ४ ॥ तिष्ठेद्यावन्मुखं पूर्णं स्रावश्च घ्राणचक्षुषोः। ततस्त्यक्त्वाऽपरो ग्राह्यो यावदाऽऽदोषसंक्षयः ॥ ५ ॥

वच, त्रिकुटा और सरसों इनका कल्क बनाकर उसको तेल, गोमूत्र, मदिरा और शहद इनमेंसे एक किसीके साथ मिलाकर कुछेक गरम करके मुखमें धारण करे। इसको तबतक धारण करे जबतक कि मस्तक और कपोलोंपर पसीना न आजाय तथा वह मृदु और स्निग्ध न होजाय। अथवा तबतक धारण करे जबतक कि नासिकाके स्रोत और नेत्र जलसे परिपूर्ण न होजायँ इसप्रकार होनेपर उस कवलको निकालदेवे और फिर दूसरा कवल धारण करे। जब तक अच्छे प्रकारसे संचित दोष न निकलजायँ तबतक धारण करे ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥

एवं स्नेहपयःक्षौद्ररसमूत्राम्लसंयुताः। कषायोष्णोदकाभ्याश्च कवला दोषतो हिताः ॥ ६ ॥

इसप्रकार स्नेह, दूध, शहद, मांसरस, गोमूत्र और काँजी इनके द्वारा क्वाथ और उष्णजलके साथ अथवा जो दोषोंमें हितकारी हैं उनके द्वारा कवलोंको धारण करे ॥ ६ ॥

मुखं संचार्य्यते या तु सा मात्रा कवले स्मृता। असंचार्य्या तु सा मात्रा गण्डूषे सा प्रकीर्त्तिता ॥ ७ ॥

जो मुखमें अच्छेप्रकारसे विचरण करसकती है उस मात्राको कवल कहते हैं और जो मात्रा मुखमें संचार नहीं करसकती उसको गण्डूष कहते हैं ॥ ७ ॥

तावद्धारयितव्योऽनन्यमनसाऽतुरतदेहेन यावद्दोषपरिपूर्णकपोलत्वं नासास्रोतो नयनपरिप्लवश्च भवति तदा विमोक्तव्यः। पुनश्चान्यो ग्रहीतव्य आशुद्धिलिङ्गमिति।

अब सुश्रुतसे कवल धारणकी विधि कहते हैं। रोगीको उचित है कि एकाग्रचित्त होकर और शरीरको उन्नत करके तबतक कवलको धारण करे जबतक कपोल नासिकाके छिद्र और नेत्र दोषोंके जलसे परिपूर्ण न होजाय, जब ऐसा होजायँ तब उसको

थूककर शीघ्र ही दूसरा कवल धारण करे। जबतक कि, अशुद्धताके लक्षण दीखते रहें तबतक बराबर इसीप्रकार कवल धारण करे।

कवलशुद्धिके लक्षण।

व्याधेरपचयस्तुष्टिर्वैशद्यं वक्त्रलाघवम्। इन्द्रियाणां प्रसादश्च कवले शुद्धिलक्षणम्॥ ८॥

रोगका दूर होना, निर्मलता, मुखमें हलकापन और इन्द्रियोंमें प्रसन्नता ये कवलशुद्धिके लक्षण जानने॥ ८॥

अशुद्धकवलके लक्षण।

हीने जाड्यकफोत्क्लेशावरसज्ञानमेव च। अतियोगे मुखे पाकः शोषस्तृष्णारुचिः क्लमः॥ ९॥

हीनकवल धारणमें जडता, कफका उत्क्लेश और रसका ज्ञान नष्ट होना ये सब लक्षण होते हैं और अत्यंत कवल धारणमें मुखपाक, शोष, तृषा, अरुचि और क्लम ये सब लक्षण होते हैं॥ ९॥

शोधनीये विशेषेण भवत्येतत्तु लक्षणम्॥ १०॥

शोधनीयकवलमें भी प्रायः येही सब लक्षण होते हैं॥ १०॥

तिला नीलोत्पलं सर्पिः शर्कराक्षीरमेव च। सक्षौद्रो दग्धवक्त्रस्य गण्डूषो दाहनाशनः॥ ११॥

तिल, नीलकमल, घृत, मिश्री, दूध और शहद इनका गण्डूष बनाकर धारण करनेसे जले हुए मुखकी दाह नष्ट होती है॥ ११॥

कवलस्य विधिर्ह्येष समासेन प्रकीर्तितः। विभज्य भेषजं बुद्ध्या कुर्वीत प्रतिसारणम्॥ १२॥

यह कवलकी विधि संक्षेपसे कही है। अब प्रतिसारणकी विधि कहते हैं। वैद्यको चाहिये कि यथादोषानुसार औषधियों द्वारा विवेचना करके प्रतिसारण करे॥ १२॥

कल्को रसक्रिया क्षौद्रं चूर्णं चेति चतुर्विधम्। अंगुल्यग्रप्रणीतं तु यथास्वं मुखरोगिषु॥ १३॥

कल्क, रसक्रिया, शहद और चूर्ण इन चार द्रव्योंसे प्रतिसारण होता है। मुखरोगमें यथादोषानुसार अंगुलीके अग्रभागसे प्रतिसारण करे॥ १३॥

तस्य योगातियोगश्च कवलोक्तं विभावयेत्। तानेव शमयेद्व्याधीन् कवलोऽय प्रयोजितः॥ १४॥

इसके भी योग और अतियोगके लक्षण कवलके समान होते हैं। जो रोग कवलको धारण करनेसे नष्ट होते हैं वेही रोग प्रतिसारण करनेसे भी नष्ट होते हैं॥ १४॥

दोषघ्नमनभिष्यन्दि भोजयेच्च तथा नरम्॥ १५॥

इसपर दोषनाशक और अभिष्यंदतारहित ऐसा भोजन रोगीको सेवन करावे॥ १५॥

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायां कवलाधिकार समाप्त॥ ८१॥

अथ नस्याधिकार।

प्रतिमर्शोऽवपीडश्च नस्यं प्रधमनं तथा। शिरोविरेचनं पञ्च नस्यभेदाः प्रकीर्त्तिताः॥ १॥

प्रतिमर्श, अवपीडन, नस्य, प्रधमन और शिरोविरेचन इन भेदोंसे नस्य पाच प्रकारका है। अर्थात् नस्यके ये पांच भेद हैं॥ १॥

द्वारं हि शिरसो नासा तेन तद्व्याप्य हन्ति तान्॥ २॥

शिरका द्वार नासिका है इसलिये नासिकासे दियाहुआ नस्य नासिकामें व्याप्त होकर शिरके रोगाको नष्ट करता है। इसकारण इसको नस्य कहते हैं॥ २

औषधमौषधपक्वो वा स्नेहो नासिकाभ्यां दीयत इति नस्यम् ।

औषधियोंके द्वारा सिद्ध की हुई औषध अथवा केवल औषधि या औषधियोंके द्वारा पकायाहुआस्नेह जो नासिकाके द्वारा दियाजाता है अर्थात् सुँघाया जाता है, उसको नस्य कहते हैं ॥

नस्यं तद्विविधं शिरोविरेचनं स्नेहनञ्च तद्विविधमपि पञ्चधा । तद्यथा–प्रतिमर्शो विरेचनविकल्पोऽवपीडः प्रधमन चेति ।

नस्य–शिरोविरेचन और स्नेहन इन भेदोंसे दोप्रकारका है और दोप्रकारके भी प्रतिमर्श, विरेचन, विकल्प अवपीडन और प्रधमन ये पांच भेद हैं ।

ये तु वातात्मका रोगाः शिरःकम्पार्दितादयः । शिरसस्तर्पणं तेषु नस्यकर्म्म प्रशस्यते ॥ ३ ॥

शिरःकम्प और आर्दितादि जो वातजनितरोग हैं उनमें शिरस्तर्पण (स्नेहन) नस्य हितकारी है ॥३॥

स्तम्भसुप्तिगुरुत्वाद्याः श्लैष्मिका ये शिरोगदाः । शिरोविरेचनं तेषु नस्यकर्म्म प्रशस्यते ॥ ४ ॥

जडता, सुन्नी और भारीपन आदि जो कफजनित शिरके रोग हैं, उनमें शिरोविरेचन नस्य अतीवहितकारी है ॥ ४ ॥

शर्करेक्षुरसक्षीरघृतमांसरसान् पृथक् । क्षीणानां नस्यतो दद्याद्रक्तपित्तगदेषु च ॥ ५ ॥

शर्करा, ईखका रस, दूध, घी और मांसरस इनमेंसे एक किसी द्रव्यका क्षीणमनुष्योंको और रक्तपित्तरोगीको नस्य देवे ॥ ५ ॥

वातपैत्तिकेषु रोगेषु वातपित्तहरद्रव्यसिद्धेन स्नेहेनेति ।

वातपैत्तिकरोगमें वातपित्तनाशक औषधिके द्वारा स्नेहको सिद्ध करके नस्य देवे ।

यथा दोषोदये काले रोगिणो नावनं भिषक् । शरद्वसन्तयोः स्वस्थे पूर्वाह्णे सम्प्रयोजयेत् ॥ वर्षासु शिशिरे ग्रीष्मे सायं मध्यन्दिनेऽथवा ॥ ६ ॥

वैद्य यथादोषानुसार यथासमयमें रोगीको नस्य देवे । स्वस्थमनुष्यको शरद् और वसन्त ऋतुमें पूर्वाह्णके समय नस्य देवे । वर्षा, शिशिर और ग्रीष्म ऋतुमें संध्याके समय अथवा मध्याह्नके समय नस्य देवे ॥ ६ ॥

भुक्तवानपतर्पितोऽत्यर्थतरुणप्रतिश्यायी गर्भिणी स्नेहोदकमद्यद्रवपीतोऽजीर्णी दत्तवस्तिः क्रुद्धो गरार्त्तस्तृषाभिभूतो बालो वृद्धः श्रान्तो वेगावरोधितः शिरःस्नातः स्नातुकामश्च न नस्यकर्म्मार्ह इति ।

जो भोजन करचुका हो, जिसने लंघन किये हों, जिसके नया प्रतिश्याय हुआ हो, गर्भवती स्त्री,तथा जिसने स्नेह,जल,मदिरा और पतले पदार्थ पान किये हों, अजीर्णरोगी, जिसको वस्ति दी गई हो, क्रोधित, विषसे पीड़ित, तृषासे व्याकुल, बालक, वृद्ध, थका हुआ जिसने मल और मूत्रादिका वेग रोका हो, जिसने शिरसे स्नान किया हो और जो स्नान करनेकी इच्छा करता हो ऐसे मनुष्यको नस्य नहीं देवे ॥

तस्य स्नेहननस्यस्य प्रमाणमष्टौ बिन्दवः । प्रदेशिनी पर्वद्वयनिःसृता प्रथममात्रा द्वितीया शुक्तिस्तृतीया पाणिशुक्तिरित्येतास्तिस्रो मात्रा यथाबलं प्रयोज्याः ।

नस्यके स्नेहकी मात्रा आठ बिन्दु परिमाण है तर्जनी अंगुलीके दो पौरुयोंसे निकलीहुई प्रथम मात्रा है । दूसरी मात्रा एक शुक्तिकी है और तीसरी मात्रा पाणिशुक्तिकी है । इसप्रकार ये तीन मात्रायें बलानुसार प्रयोग करनी चाहिये ।

तत्रोज्झितवातमूत्रपुरीषाय भुक्तवते व्यभ्रे काले पाणितापोपस्वेदितगलकपोलललाटप्रदेशाय वातातपरजोहीनवेश्मन्युत्तानशायिने प्रसा-

रितकरचरणाय किञ्चित्प्रलम्बित-शिरसे वस्त्राच्छादितनयनाय वाम-हस्तप्रदेशिन्यग्रोन्नामितनासाग्राय विशुद्धस्रोतसि दक्षिणहस्तेन स्नेह-मुष्णानुतप्तं रजतसुवर्णताम्रमृत्पात्र-शुक्तीनामन्यतमस्थं शुक्त्या पिचुना वा सुखोष्णमद्रुतं विच्छिन्नधारया सिञ्चेत् । यथा नेत्रे न प्राप्नोति तथा प्रयतेतेति ।

वायु, मूत्र और मलकी बाधासे निवृत्त होकर भोजनके पचजानेपर जिस समय आकाशमण्डल स्वच्छ होरहा हो ऐसे समय रोगीके हाथोंको तपा तपाकर उनकी गरमीसे उसके गले, कपोल और ललाटको स्वेदित करके; पवन, धूप और धूलरहित ऐसे घरमें उसको सीधा चित्त शयन कराकर और उसके हाथ पांवोंको फैलाकर शिरको कुछ ऊँचा करके नेत्रोंको वस्त्रसे ढककर बांये हाथकी तर्जनी अंगुलीसे नासिकाके अग्रभागको ऊपरको उठाकर उसके शुद्ध स्रोतोंमें दहिने हाथसे चांदी, सोना, ताँबा, मिट्टीके पात्र, सीप तथा अन्यान्य किसी पात्रमें रखकर गरम किये हुए सुहाते सुहाते स्नेहको सीपके द्वारा अथवा फायेके द्वारा धीरे २ धारको तोड तोड करके नस्य द्वारा प्रयोग करे । किन्तु औषध नेत्रमें न पहुँचे, इसका विशेष रूपसे यत्न करे ।

स्नेहेन सिञ्चति शिरो न कथञ्चन कम्पयेत् । न भाषेत न कुप्येत न ब्रूयान्न हसेत्तथा ॥ ७ ॥

स्नेहसे नस्य देते समय रोगी शिरको कदापि नहीं कँपावे, तथा बोले नहीं, न कुपित हो और न हँसे ॥ ७ ॥

एवं हि विहितः स्नेहो नैवान्तः प्रतिपद्यते । ततः कासप्रतिश्यायशिरोक्षिगदसम्भवः ॥ ८ ॥

क्योंकि शिरको कँपाने आदिसे विचालित हुआ स्नेह भीतरतक नहीं जाता है और खाँसी, प्रतिश्याय, शिर और नेत्ररोग उत्पन्न होजाते हैं ॥ ८ ॥

शृङ्गाटकमभिप्राप्य स्थापयेन्न गिलेद्रवम् । पञ्चसप्तदशैव स्युर्मात्रा नस्यविधारणे ॥ ९ ॥

स्नेहको शृंगाटक अर्थात् कपालकी हड्डीतक पहुँचाकर स्थिर रक्खे जिससे द्रव निकल नहीं जाय और कोई यहाँ ऐसा अर्थ करते हैं कि द्रवको निगले नहीं। इसप्रकार पाँच, सात अथवा दश गुरु अक्षरोंका जब तक उच्चारण हो तबतक नस्यको धारण करे ॥ ९ ॥

उपविश्याथ निष्ठीवेन्नासावक्रान्तगं द्रवम् । वामदक्षिणपार्श्वाभ्यां निष्ठीवेत्संमुखं न हि ॥ १० ॥

फिर बैठकर नासिकासे मुखमें गयेहुए द्रवको बाँई या दहिनी ओर थूक देवे, किन्तु सन्मुख नहीं थूके ॥ १० ॥

ललाटस्वेदनं कुर्य्याद्यदि नो बहिराव्रजेत् ॥ ११ ॥

जो दियाहुआ नस्य यदि बाहर नहीं आवे तो मस्तकको स्वेदित करे ॥ ११ ॥

नीते नस्ये मनस्तापं रजःक्रोधादिकं त्यजेत् । शयीत निद्रां त्यक्त्वा च प्रोत्तानो वाक्शतं नरः ॥ १२ ॥

नस्यके लेनेपर मनमें संताप, धूल और क्रोधादिकको त्यागदेवे और सौ गुरु अक्षरोंके उच्चारण पर्य्यंत निद्रा नहीं लेवे फिर चित्त होकर शयन करे ॥ १२ ॥

तथा वैरेचनस्यान्ते धूमो वा कवलो हितः । व्यवभुक्तवते नस्यं करस्विन्नाय दापयेत् ॥ १३ ॥

वैरेचन नस्यके अंतमें धूमपान करे अथवा कवलको धारण करे । तथा विनाभाजन किये और हाथोंको स्वेदित करके नस्य देना चाहिये ॥ १३ ॥

स्नेहस्य बिन्दवो ह्यष्टौ प्रदेया नस्यकर्मणि । शुक्तिश्च पाणिशुक्तिश्च तिस्रो मात्राः प्रकीर्त्तिताः ॥ १४ ॥ द्वात्रिंशद्बिन्दवश्चापि शुक्तिरित्यभिधीयते । द्वे शुक्ती पाणिशुक्तिश्च ज्ञेया तु कुशलैर्नरैः ॥ १५ ॥

नस्यकर्म्ममें स्नेहकी आठ बूँदें डालनी चाहिये । इसप्रकारके नस्यकी अष्टबिन्दु, शुक्ति और पाणिशुक्ति ये तीन मात्रा जाननी । बत्तीस बिन्दुओंकी एक शुक्ति होती है और दो शुक्तिकी एक पाणिशुक्ति होती है ॥ १४ ॥ १५ ॥

चत्वारो बिन्दवः षड् वा तथाष्टौ वा यथाबलम् । शिरोविरेचने योज्या ऊर्ध्वजत्रुविकारिणाम् ॥ १६ ॥

शिरोविरेचनमें ऊर्ध्वजत्रुरोगियोंको औषधिकी चार बिन्दु, छः बिन्दु अथवा आठ बिन्दु यथाबलानुसार देने चाहिये ॥ १६ ॥

शिरोऽभिघाते त्वरुचौ स्वरभङ्गे गलग्रहे । कासे नासामयेऽपच्यां नस्यं देयं विरेचनम् ॥ १७ ॥

शिरोऽभिघात, अरुचि, स्वरभंग, गलग्रह, खाँसी, नासारोग और अपची इनमें विरेचननस्य देना चाहिये ॥ १७ ॥

शिरीषशिग्रुसिन्धूत्थरुचकत्र्यूषणादयः । हिंग्वार्द्रकरसश्चैव प्रयोज्या नस्यकर्म्मणि ॥ १८ ॥

शिरस, सहिंजना, सैंधानमक, कालानमक, त्रिकुटा, हींग और अदरसका रस इन सबको विरेचननस्यमें प्रयोग करे ॥ १८ ॥

शुद्धनस्यके लक्षण ।

लाघवं शिरसो योगे सुखस्वप्नावबोधनम् । विकारोपशमः शुद्धिरिन्द्रियाणां मनःसुखम् ॥ १९ ॥

शिरमें हलकापन, सुखपूर्वक निद्राका आना, विकारोंका शमन होना और इन्द्रियों तथा मनमें प्रसन्नता होना ये अच्छेप्रकारसे दिये हुये नस्यके लक्षण जानने ॥ १९ ॥

अन्यच्च ।

लाघवं शिरसः शुद्धिः स्रोतसां व्याधिसंक्षयः । चित्तेन्द्रियप्रसादश्च शिरसः शुद्धिलक्षणम् ॥ २० ॥

शिरमें हलकापन, शरीरके स्रोतोंका शुद्ध होना, रोगोंका नाश, चित्त और इन्द्रियोंमें प्रसन्नताका होना ये सम्यक् प्रकारसे दिये हुये नस्यके द्वारा शिरकी शुद्धिके लक्षण हैं ॥ २० ॥

हीनशुद्धिके लक्षण ।

कण्डूपदेहौ गुरुता स्रोतसां कफसंस्रवः । हीने विशुद्धे शिरसि लक्षणं सम्प्रकीर्तितम् ॥ २१ ॥

शरीरमें खुजलीका होना, शरीर लिसासा रहना, भारीपन और नासिकादिस्रोतोंसे कफका गिरना ये हीननस्यके लक्षण जानने ॥ २१ ॥

अतिशुद्धिके लक्षण ।

मस्तुलुङ्गागमो वातदुष्टिरिन्द्रियविभ्रमः । शून्यता शिरसश्चापि मूर्ध्नि गाढं विरेचिते ॥ २२ ॥ हीने विशुद्धे शिरसि कफवातघ्नमाचरेत् । सम्यङ्नियोजिते वापि सर्पिर्नस्ये नियोजयेत् ॥ २३ ॥

नासिकासे मस्तिष्काभ्यन्तरके समान चिकनाईका निकलना, वायुका दुष्ट होना, इंद्रियोंमें भ्रम होना और शिरमें खालीपन, मस्तकमें गाढामल ये अत्यन्त नस्य हुयेके लक्षण जानने । हीननस्यके होनेपर कफवातनाशक विधि करे और अच्छेप्रकारसे नस्यके होनेपर घृतका नस्य देवे ॥ २२ ॥ २३ ॥

प्रतिमर्शस्तु चतुर्दशसु कालेषूपादेयो भवति । तद्यथा–तल्पोत्थितन प्रक्षालितमुखेन गृहान्निर्गच्छता व्यवायव्यायामाध्वपरिश्रान्तेन मूत्रोच्चारकवलाञ्जनान्ते भुक्तवता छर्दितवता दिवास्वप्नोत्थितेन सायं चेति ।

प्रतिमर्श देनेके चौदह समय होते हैं । जैसे शय्यासे उठनेपर, मुखके धोनेपर, घरसे बाहर जातेसमय, व्यवाय (मैथुन), व्यायाम (परिश्रम) और मार्गके चलनेसे थकनेपर, मूत्र और मलकी बाधासे निवृत्त होनेपर, कवलधारण करने और अंजन लगानेके पश्चात्, भोजन करनेपर, वमन करनेपर, दिनमें सोकर उठनेपर और संध्याके समय प्रतिमर्श नस्य प्रयोग करना चाहिये।

ईषदुत्सिञ्चितः स्नेहो यदा वक्त्रं प्रपद्यते। नस्ये निषिक्तं तं विद्यात्प्रतिमर्शं प्रमाणतः॥ २४ ॥

जब कुछ ऊपरको उभरा हुआ स्नेह मुखमें आने लगता है तब प्रतिमर्शका प्ररिमाण जानना ॥ २४ ॥

उत्सिञ्चन्न पिबेत् स्नेहं निष्ठीवेन्मुखमागतम्।

उभरेहुये स्नेहको पान नहीं करे और मुखमें आये हुये स्नेहको थूकदेवे ।

क्षीणे तृष्णास्यशोषार्त्ते बाले वृद्धे च युज्यते ॥ २५॥ तेन रोगाः प्रशाम्यंति नराणामूर्ध्वजत्रुजाः । इन्द्रियाणाञ्च वैमल्यं कुर्य्यादास्यं सुगंधि च ॥ २६ ॥ हनुदन्तशिरोग्रीवात्रिकबाहूरसां बलम् । वलीपलितखालित्यव्यङ्गानां चाप्यसम्भवः ॥ २७॥

क्षीण, तृषासे पीडित, मुखशोष, बालक और वृद्ध इन सबको यह नस्य प्रयोग करना चाहिये । इससे मनुष्योंके ऊर्ध्वजत्रुगतरोग नष्ट होजातेहैं,तथा इन्द्रियोंमें निर्मलता और मुखमें सुगंधि उत्पन्न होती है। तथा हनु, दंत, शिर,ग्रीवा,त्रिक,बाहू और हृदयमें बल उत्पन्न होता है । वली, पलित, खालित्य और व्यंग ये सब नष्ट होजाते हैं ॥२५ ॥ २६ ॥ २७ ॥

तैलं कफे सवाते च केवले पवने वसाम् । दद्यान्नस्यः सदा पित्ते सर्पिर्मज्जानमेव च ॥ २८ ॥

कफवायुके विकारोंमें तेल प्रयोग करना चाहिये। केवल वायुके विकारोंमें वसा प्रयोग करनी चाहिये। और पित्तके विकारोंमें सदैव घृत और मज्जाके द्वारा नस्य देना चाहिये ॥ २८ ॥

चतुर्विधस्य स्नेहस्य विधिरेष प्रकीर्त्तितः । श्लेष्मस्थानां विरोधित्वात्तेषु तैलं प्रशस्यते ॥ २९ ॥

चारों प्रकारके स्नेहोंकी यह विधि कही है। कफके स्थानोंका विरोधि होनेसे इसमें तेल हितकारी कहा है ॥ २९ ॥

अवपीडः प्रधमन द्वौ भेदावपरौ स्मृतौ । शिरोविरेचनस्यात्र तौ तु देयौ यथायथम् ॥ ३० ॥

रेचननस्यके अवपीडन और प्रधमन ये दो भेद हैं । यदि शिरोविरेचन देना हो तो यथोक्तविधिसे दोनोंको प्रयोग करना चाहिये ॥ ३० ॥

कल्कीकृतादौषधाद्यः पीडितो निःसृतो रसः । अवपीडः स निर्दिष्टस्तीक्ष्णद्रव्यसमुद्भवः ॥ ३१ ॥

जिसके साथ तीक्ष्ण पदार्थ मिले हों ऐसी औषधिका कल्क बनाकर उसको निचोड़ कर जो रस निकालाजाता है, उसको अवपीडन कहते हैं ॥ ३१ ॥

षडंगुला द्विवक्त्रा या नाडी चूर्णं तया धमेत्। तीक्ष्णं कोलमितं वक्त्रवातैः प्रधमनं हितम् ॥ ३२ ॥

छः अंगुलकी दो मुखवाली नलीमें एक तोलाभर तीक्ष्ण चूर्ण भरकर उसको मुखसे फूंककर जो नाकमें चढादेवे तो इसको प्रधमन कहते हैं ॥ ३२ ॥

ऊर्ध्वजत्रुगते रोगे कफजे स्वरसंक्षये । अरोचके प्रतिश्याये शिरःशूले च पीनसे ॥ शोफापस्मारकुष्ठेषु नस्यं वैरेचनं हितम् ॥ ३३ ॥

ऊर्ध्वजत्रुगतरोग, कफजरोय, स्वरभंग, अरुचि, प्रतिश्याय, शिरःशूल, पीनस, शोफ, अपस्मार और कोढ़ इन सब रोगोंमें वैरेचननस्य हितकारी है३३॥

भीरुस्त्रीकृशबालानां नस्यं स्नेहनमिष्यते ॥ ३४ ॥ गलरोगे सन्निपाते निद्रायां विषमज्वरे । मनोविकारे कृमिषु युज्यते चावपीडनम् ॥ ३५ ॥

डरपोक, स्त्री, कृश और बालकोंको स्नेहनस्य हितकारी है । गलरोग, सन्निपात, निद्रा, विषमज्वर, मानसिकरोग और कृमिरोग इन सब रोगोंमें अवपीनडन नस्य हितकारी है॥ ३४ ॥ ३५ ॥

अत्यन्तोत्कटदोषेषु विसंज्ञेषु च दीयते । चूर्णं प्रधमनं धीरैस्तद्धि तीक्ष्णतरं यतः ॥ ३६ ॥

अत्यंत उत्कट दोषोंमें और संज्ञाके नष्ट होनेपर अत्यंत तीक्ष्ण होनेके कारण विद्वान् वैद्य प्रधमन चूर्णको नस्यमें प्रयोग करते हैं ॥ ३६ ॥

नस्यं स्याद्गुडशुण्ठीभ्यां पिप्पल्या सैन्धवेन वा । जलपिष्टेन तेनाक्षिकर्णनासाशिरोगदाः । मन्याहनुगलोद्भूता नश्यन्ति भुजपृष्ठगाः ॥ ३७ ॥

गुड,सोंठ,पीपल और सैंधानमक इन सबको एकत्र जलमें पीसकर नस्य देनेसे--नेत्र, कर्ण, नासिका और शिरके समस्त रोग नष्ट होते हैं । तथा मन्यानाडी, हनु, गल, भुजा और पृष्ठगत समस्तरोग शीघ्र दूर होते हैं ॥ ३७ ॥

मधूकसारकृष्णाभ्यां वचामरिचसैंधवैः । नस्यं कोष्णजलैः पिष्टं दद्यात संज्ञाप्रबोधनम् ॥ ३८ ॥

महुवेका सार, पीपल, वच, काली मिरच और सैंधानमक इन सबको एकत्र गरम जलमें पीसकर नस्य देनेसे चेतना उत्पन्न होती है ॥ ३८ ॥

रोहितमत्स्यपित्तेन भावितं मरिचं वचाः कट्फलं चेति तच्चूर्ण देयं प्रधमनं बुधैः ॥ ३९ ॥

बुद्धिमान् वैद्य काली मिरच और वचके चूर्णको रोहूमछलीके पित्तमें भावना देकर और कायफलका चूर्ण मिलाकर उसको प्रधमननस्यमें व्यवहार करे ॥ ३९ ॥

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायां, नस्याधिकार समाप्त ॥ ८२ ॥

अथ स्वस्थवृत्ताधिकार ।

उत्थायात्मवता ब्राह्मे स्वस्थेनारोग्यमिच्छता । धीमता यदनुष्ठेयं तत्सर्वं सम्प्रवक्ष्यते ॥ १ ॥

आरोग्यताको इच्छा करनेवाले, स्वस्थ शरीरवाले और बुद्धिमान मनुष्यको ब्राह्म मुहूर्तमें उठकर मल मूत्रादिकी बाधासे निवृत्त होकर जो कार्य करने चाहिये उन सबको आगे वर्णन करते हैं ॥ १ ॥

प्रतिपद्दर्शषष्ठीषु नवम्येकादशीषु च । दन्तानां काष्ठसंयोगो दहत्यासप्तमं कुलम् ॥ २ ॥

प्रतिपदा, अमावस्या, षष्ठी, नवमी और एकादशी इन तिथीयोंमें दतौन नहीं करना चाहिये ॥ २ ॥

कनिष्ठाग्रसमस्थूलमायतं द्वादशांगुलम् । प्रातरुत्थाय मतिमान् भक्षयेद्दन्तधावनम् ॥ ३ ॥

बुद्धिमान् मनुष्य कनिष्ठा अँगुलीके अग्रभागके समान स्थूल और बारह अँगुल लम्बी दातोनको प्रति दिन प्रातःकाल उठकर करे ॥ ३ ॥

करञ्जकरवीरार्कमालतीककुभाशनाः । खादिराम्रातकौ शुद्धौ सहकारकपित्थकौ ॥ ४ ॥ शस्यन्ते दन्तपवना ये चाप्येवंविधा द्रुमाः ॥ ५ ॥

करंज, कनेर, आक, मालती, अर्जुन, विजयसार, खैर, अम्बाड़ा, आम और कैथ इन सब वृक्षोंकी दतौन श्रेष्ठ होती है। तथा इन्हींके समान जो अन्यान्य वृक्ष हैं उनकी भी दतौन करनी चाहिये ॥ ४ ॥ ५ ॥

आयुर्यशो बलं वर्णं प्रजापशुवसूनि च । ब्रह्मप्रज्ञाञ्च मेधाञ्च त्वं नो देहि वनस्पते ॥ इत्यादि श्रुतिवाक्येन गृह्णीयात्तु वनस्पतिम् ॥ ६ ॥

(हे वनस्पते तुम हमारे लिये आयु, यश, बल, वर्ण, सन्तान, पशु, धन, ब्रह्मज्ञान और सुबुद्धि प्रदान करो) इस मंत्रको पढकर दतौनके लिये वनस्पतीको ग्रहण करे ॥ ६ ॥

द्वादशांगुलमाद्यानां क्षत्रियाणां दशांगुलम् । अष्टांगुलन्तु वैश्यानां शूद्राणां तु षडंगुलम् ॥ ७ ॥

ब्राह्मणोंके लिये बारह अंगुल लम्बी, क्षत्रियोंके लिये दश अंगुल लम्बी, वैश्योंके लिये आठ अंगुल

लम्बी और शूद्रोंके लिये छः अंगुल लम्बी दतौन लेनी चाहिये ॥ ७ ॥

दन्तकाष्ठन्तु नारीणां विधिवच्चतुरंगुलम् । तदग्रेण शनैर्दन्तान् घर्षयेत्तानपीडयन् ॥ ८ ॥

स्त्रियोंको दतौन करनेकी लकडी चार अंगुलकी लेनी चाहिये । दतौनके अग्रभागसे धीरे धीरे दांतोंको घिसे, किन्तु मसूडोंको पीडित न करे ॥ ८ ॥

निहन्ति गन्धं वैरस्यं जिह्वादन्तास्यजं मलम् । निरस्य शुचिमाधत्ते सद्यो दन्तविशोधनम् ॥ ९ ॥

विधिपूर्वक नित्य प्रति दतौन करनेसे-मुखकी दुर्गंध, विरसता, जिह्वा, दाँत और मुखका मैल ये सब दूर होजाते हैं । मुखमें शुद्धता उत्पन्न होती है और तत्काल दांत शुद्ध होते हैं ॥ ९ ॥

मुखवैरस्यवैगन्ध्यं शोषजाड्यापहं सुखम् । दृढीकरञ्च दन्तानां स्नेहगंडूषधारणम् ॥ १० ॥

स्नेहका गण्डूष धारण करनेसे मुखकी विरसता, दुर्गंध,शोष और जडता दूर होती है, यह दाँतोंको अतीव दृढ करता है ॥ १० ॥

विण्मूत्राखिलदोषधातुशमनाकांक्षान्नपाने रुचिर्भुक्तं जीर्य्यति पुष्टये परिणतिः स्वप्नावबोधैः सुखम्॥ गृह्णीतो विषयान्यथास्वमुचितान् वृत्तिं मनोवृत्तितः स्वस्थस्याभिहितं चतुर्दशविधं जन्तोरिदं लक्षणम् ॥ ११ ॥

मल,मूत्र, सम्पूर्ण दोष और सम्पूर्ण धातुओंकी शांति,अन्नपानमें इच्छा और शरीरमें कन्तिका होना, किये हुए भोजनका अच्छेप्रकारसे पचजाना, शरीरमें पुष्टि और बलका होना, सुखपूर्वक निद्राका आना,सुखपूर्वक जागना और इन्द्रियोंका अपने अपने विषयोंको अच्छेप्रकारसे ग्रहण करना,हर्ष और मनोवृत्तियोंका निर्मल होना; स्वस्थ मनुष्यके ये चौदह लक्षण कहे गये हैं ॥ ११ ॥

दध्याज्यादर्शसिद्धार्थबिल्वगोरोचनास्नजाम् । दर्शनं स्पर्शनं कार्यं प्रवृत्तमशुभापहम् ॥ १२ ॥

दही, घृत, दर्पण, सरसों, बेल, गोरोचन और केशर इनका नित्य प्रातःकाल दर्शन और स्पर्शन करना अशुभकर्मोंको नष्ट करता है ॥ १२ ॥

पञ्चरात्रान्नखश्मश्रुकेशलोमानि कर्तयेत् । केशश्मश्रुनखादीनां कर्तनं संप्रसाधनम् ॥ पौष्टिकं धन्यमायुष्यं शौचकान्तिकरं परम् ॥ १३ ॥

पाँच पाँच दिनमें नख,डाढी,मूंछ और केश रोमादिकको कटवावे । केश, नख, रोमादिकका कटवाना अर्थात् क्षौरकर्म्म कराना देहमें प्रसन्नता उत्पन्न करता है । तथा पुष्टि करता, धन्य, अवस्थाको स्थापन करता एवं पवित्रता और अत्यन्त कांतिको उत्पन्न करता है ॥ १३ ॥

उत्पाटयेन्न लोमानि नासायास्तु कथञ्चन । दृष्टिदौर्बल्यतिमिरमभीक्ष्णोद्धरणाद्भवेत् ॥ १४ ॥

नासिकाके रोमोंको कदापि नहीं उखाडे । क्योंकि नासिकाके बालोंको निरन्तर उखाडनेसे दृष्टि दुर्बल होती है और तिमिररोग उत्पन्न होता है ॥१४॥

तांबूलपत्रसत्कारं पूगाढ्यञ्च कफापहम् । चूर्णं कफानिलहरं खादिरः कफपित्तनुत् ॥ १५ ॥

ताम्बूलपत्र-सत्कारको करता है । सुपारी-कफको नष्ट करदेती है । चूना-कफ और वायुको नष्ट करता है । खैर कत्था-कफ और पित्तको नष्ट करता है ॥ १५ ॥

संयोगतो दोषहरं कान्तिसौष्ठवकारकम् । पथ्यं सुप्तोत्थिते भुक्ते वान्ते श्रान्ते च मानवे ॥ १६ ॥

तथा कत्था,चूना, सुपारी आदि मिश्रित पान दोषनाशक,कांति और सुष्ठुताको उत्पन्न करता है।सोकर उठनेपर, भोजन करनेपर, वमनके अंतमें और थकनेपर मनुष्यको पान सेवन करना हितकारी है१६

तांबूलञ्च विषार्त्तानां मूर्च्छाक्षयास्रपित्तिनाम् । रूक्षदुर्बलमत्तानामहितं चास्य शोषिणाम् ॥ १७ ॥

विषसे पीडित, मूर्च्छा, राजयक्ष्मा, रक्तपित्त, रूक्ष, दुर्बल, उन्मत्त और मुखशोषरोगी इन सबको ताम्बूल भक्षण करना हितकारी नहीं है ॥ १७ ॥

देहदृक्केशदन्ताग्निश्रोत्रवर्णबलक्षयः । शोषः पित्तानिलास्रं स्यादतितांबूलभक्षणात् ॥ १८ ॥

अत्यंत ताम्बूल भक्षण करनेसे-शरीर, दृष्टि, केश, दंत, जठराग्नि, कर्ण, वर्ण और बल इनका नाश होता है। तथा शोष, पित्त और वातरक्तरोग ये उत्पन्न होते हैं ॥ १८ ॥

पर्णमूले वसेद्व्याधिः पर्णाग्रे पापसम्भवः। मध्यं पर्ण हरत्यायुः शिरा बुद्धिविनाशिनी ॥ १९ ॥

पानकी जडमें रोग रहते हैं, पानके अग्रभागमें पाप रहते हैं, पानका मध्यभाग आयुको हरण करता है और पानकी शिराएँ बुद्धिको नष्ट करती हैं ॥ १९ ॥

आयुरग्रेऽयशो मूले मध्येऽलक्ष्मीर्व्यवस्थिता। तस्मादग्रञ्च मध्यञ्च मूलं पर्णे विवर्जयेत् ॥ २० ॥

पानके अग्रभागमें आयु, मूलमें अयश और मध्यमें अलक्ष्मी निवास करती हैं, इसकारण पानके अग्रभाग, मध्यभाग और मूलको त्यागदेवे ॥ २० ॥

केशभूमिगतान्रोगाञ्छिरोभ्यङ्गोऽपकर्षति। केशानां मृदुता स्नेहं रक्षःशान्ति करोति च ॥ २१ ॥ करोति शिरसस्तृप्तिं केशानां दृढतामपि। तर्पणं चेन्द्रियाणाञ्च दत्तोऽभ्यङ्गस्तु मूर्धनि ॥ २२ ॥

शिरमें नित्य तेलकी मालिस करनेसे-सम्पूर्ण शिरोगतरोग नष्ट होते हैं। बालोंमें कोमलता तथा स्निग्धता बढती है और राक्षसबाधाकी शांति होती है एवं शिरमें तृप्ति, केशोंमें दृढता और इन्द्रियोंमें तृप्ति उत्पन्न होती है ॥ २१ ॥ २२ ॥

केशप्रसादनी केश्या रजोजन्तुमलापहा। हनुमन्याशिरःकर्णशूलघ्नं कर्णपूरणम् ॥ २३ ॥

कंघी-केशोंको स्वच्छ करनेवाली, केशोंको हितकारी, धूल, कृमि और मलको दूर कर देती है। तथा कानोंमें तेल डालना-हनु मन्या, शिर और कर्णशूलको नष्ट करता है ॥ २३ ॥

अभ्यङ्गो मार्दवकरः कफवातविनाशनः। धातूनां पुष्टिजननो मृजावर्णबलप्रदः ॥ २४ ॥

नित्य शरीरपर तैलादिककी मालिस करना-मृदुताकारक, कफ वातनाशक, धातुओंमें पुष्टिको उत्पन्न करनेवाला तथा कोमलता, वर्ण और बलको सुंदर करता है ॥ २४ ॥

पादप्रक्षालनं पादमलरोगश्रमापहम्। दृष्टिप्रसादनं हृद्यं रक्षोघ्नं प्रीतिवर्द्धनम् ॥ २५ ॥

नित्य पांवोंको धोना यह पांवोंके मैल, पांवोंके रोग और पांवोंके श्रमको नष्ट करता है। दृष्टिको प्रसन्न करता तथा हृदयको हितकारी, राक्षसबाधाको दूर करता और प्रीतिको बढाता है ॥ २५ ॥

निद्राप्रदो देवसुखश्चक्षुष्यः पादरोगहा। पादत्वङ्मृदुकर्त्ता च पादाभ्यङ्गः प्रशस्यते ॥ २६ ॥

नित्य पांवोंमें तैलादिक मर्दन करनेसे-सुखपूर्वक निद्रा आती है, शरीरमें सुख उत्पन्न होता है, नेत्रोंकी ज्योति बढती है, पांवोंके रोग नष्ट होते हैं और पांवोंकी त्वचा नरम होती है ॥ २६ ॥

उद्वर्त्तनं वातहरं कफमेदोविलायनम्। स्थिरीकरणमङ्गानां त्वक्प्रसादकरं तथा ॥ २७ ॥

उद्वर्त्तन अर्थात् उबटन करना-वातनाशक, कफ और मेदको नष्ट करनेवाला, समस्त अँगोंको स्थिर करनेवाला और त्वचाको प्रसन्न करनेवाला है ॥ २७ ॥

तन्द्रापाप्मापशमनं तुष्टिदं पुष्टिवर्द्धनम्। रक्तप्रसादनं चापि स्नानमग्नेश्च दीपनम् ॥ २८ ॥

स्नान-तन्द्रा और पापोंको शमन करनेवाला, संतुष्टताजनक, पुष्टिको बढानेवाला, रुधिरको प्रसन्न करनेवाला और जठराग्निको दीपन करनेवाला है २८

तच्चातिसारज्वरितकर्णशूलार्दितादिषु । आध्मानारोचकाजीर्णे भुक्तवत्सु च गर्हितम् ॥ २९ ॥

वही स्नान-अतिसाररोगी, ज्वररोगी, कर्णरोगी, शूलरोगी, अर्दितरोगी, आध्मान, अरुचि और अजीर्णरोगी इन सबको एवं भोजन करनेके पश्चात् नहीं करना चाहिये ॥ २९ ॥

श्रीमत्पारिषदं शस्तं निर्म्मलांबरधारणम् । वृष्यं सौगन्ध्यमायुष्यं काम्यं पुष्टिबलप्रदम् ॥ ३० ॥

निर्मलवस्त्रोंका धारण करना-लक्ष्मीको बढाताहै, वीर्य्यवर्द्धक है एवं सुगन्धि, आयुकारक, कामना, पुष्टि और बलको प्रदान करता है ॥ ३० ॥

सौमनस्यमलक्ष्मीघ्नं गन्धमाल्यनिषेवणम् ॥ ३१ ॥

पुष्पादिकी सुगंधित मालाको धारण करना-अलक्ष्मी और अनेकप्रकारकी बाधाको दूर करता है। तथा सुन्दरताको उत्पन्न करता है ॥ ३१ ॥

पक्ष्मलं विशदं कान्त्यमक्ष्णोरञ्जितमञ्जनम् । नेत्रमञ्जनसंयोगाद्भवेन्निर्मलतारकम् ॥ ३२ ॥

नेत्रोंमें अंजन आंजना-नेत्रोंपर पलकोंको उत्पन्न करता है, एवं निर्मल कांतिकी उत्पत्ति और नेत्रोंके तारोंको निर्मल करता है ॥ ३२ ॥

चक्षुष्यं स्पर्शनार्हश्च पदयोर्व्यसनापहम् । बल्यं पराक्रमसुखं वृष्यं पादत्रधारणम् ॥ ३३ ॥

जूता पहरना-नेत्रोंको हितकारी, पांवोंके रोगोंको हरनेवाला, बलकारक, वृष्य और पराक्रमके सुखको बढाता है ॥ ३३ ॥

घर्मानिलरजोऽम्बुघ्नं छत्रधारणमुच्यते ॥ ३४ ॥

छत्र या छत्रीको धारण करना-धूप, पवन, धूल और वृष्टिसे रक्षा करता है ॥ ३४ ॥

सुखस्थानप्रतिष्ठानं शत्रूणाञ्च निषेधनम् । अवष्टम्भनमायुष्यं भयघ्नं दण्डधारणम् ॥ ३५ ॥

दण्ड (अर्थात् यष्टि-लाठी) को धारण करना सुखपूर्वक गमन करनेवाला, शत्रुओंको दूर करनेवाला, बल और अवस्थाको उत्पन्न करनेवाला तथा भयको दूर करता है ॥ ३५ ॥

अग्निर्वातकफस्तम्भशीतवेपथुनाशनः। आमाभिष्यन्दशमनो रक्तपित्तप्रकोपनः ॥ ३६ ॥

अग्निका सेवन-वात, कफ, स्तम्भ, शीत, कम्प, आम और अभिष्यन्दको शमन करनेवाला तथा रक्तपित्तको कुपित करनेवाला है ॥ ३६ ॥

आहारः प्राणनः सद्यो बलकृद्देहधारकः । शक्त्यायुःशुक्रसत्त्वौजस्तेजरुत्साहवर्द्धनः ॥ ३७ ॥

भोजन-तृप्तिकारक, तत्काल बलकारक, देहधारक तथा शक्ति, आयु, शुक्र, सत्त्व, ओज, तेज और उत्साहको बढाता है ॥ ३७ ॥

अपि शाकं जलस्विन्नं लवणस्नेहभर्जितम् । बुभुक्षितस्य कल्पं स्यात् स्वादु स्याद्बृंहणं तथा ॥ तत्तु षड्रससंपन्नं मन्दाग्नेर्भोजनञ्च यत् ॥ ३८ ॥

जलमें सीजाहुआ, स्नेह और नमकके द्वारा संस्कार किया हुआ केवल शाक भी भूंखे मनुष्यके लिये स्वादिष्ठ और पुष्टिकारक भोजन होता है और षड्रससंयुक्त भोजन होने पर भी वह मंदाग्निवाले मनुष्यके लिये सदैव अहितकर होता है ॥ ३८ ॥

क्षुत्सम्भवति जीर्णेषु मलदोषरसेषु च । उचितोऽनुचितो वापि सोऽन्नकाल उदाहृतः ॥ ३९ ॥

मल, दोष और रसके जीर्ण होनेपर क्षुधा लगती है, इस कारण समय ठीक हो चाहे ठीक न हो जब भूख लगे तब ही भोजनका समय जानना चाहिये ॥ ३९ ॥

यः प्रसादः परोऽन्नस्य परं जीर्णस्य सर्वशः । स रसोऽजलयस्तस्य नव

देहेषु देहिनः ॥ ४० ॥ रक्तस्यांजलयस्त्वष्टौ शकृतः सप्त सर्वशः । पित्तस्यांजलयः पञ्च षट् कफस्य प्रचक्षते ॥ ४१ ॥ मूत्रस्य विद्याच्चत्वारो वसायाश्चाञ्जलित्रयम् । द्वावञ्जली मेदसस्तु मज्जश्चैवाञ्जलिर्मतः ॥ ४२ ॥ शुक्रस्याप्यञ्जलिर्ज्ञेयो मास्तिष्कस्यौजसस्तथा । चत्वारोञ्जलयः स्त्रीणां रजसः प्रकृतिस्थितिः ॥ ४३ ॥ द्वावंजली प्रसूतायाः स्तन्यस्यापीह योषिताम् । एवं तस्य परं मानमनिर्देश्यं प्रचक्षते ॥ ४४ ॥ प्रमाणमेतद्धातूनामदुष्टानामुदाहृतम् । हीनाः स्वेन प्रमाणेन विविधाश्चापि धातवः ॥ योजयन्ति विकारैश्च दोषा वृद्धाः क्षयप्रदाः ॥ ४५ ॥

जो अन्नके सर्वप्रकारसे जीर्ण होनेपर भोजनका रस बनता है, वह मनुष्योंके शरीरमें नव अंजलीके परिमाण है । इस प्रकार शरीरमें नव अंजलि परिमाण है । रुधिर आठ अंजलि परिमाण है । विष्ठा सात अंजलि परिमाण है । पित्त पाँच अंजलिभर है । कफ छः अंजलिभर है । मूत्र चार अंजलि परिमाण है । वसा तीन अंजलि परिमाण है । मेद दो अंजलि परिमाण है । मज्जा एक अंजलिभर है । तथा शुक्र, मस्तिष्क और ओज ये प्रत्येक पदार्थ भी एक एक अंजलि परिमाण स्थित हैं । स्त्रियोंके मासिकधर्म्मका रुधिर (रज) चार अंजलि परिमाण है । और प्रसूता स्त्रीके स्तनोंमें दूध दो अंजलिपरिमाण है । इसप्रकार शरीरगत निर्दोष धातुओंका यह परिमाण कहा है । किन्तु अपने देहके प्रमाणानुसार दोषोंकी वृद्धि और क्षयके क्रमसे हीन या अधिक अनेकप्रकारके विकारोंको योजित करनेवाली धातु जाननी ॥ ४०–४५ ॥

बालव्यजनमोजस्यं मक्षिकादीन् व्यपोहति ॥ ४६ ॥

चमर अथवा चमरीकी पवन–तेजोवर्द्धक और मक्षिका आदिको दूर करती है ॥ ४६ ॥

सेवेत विषयान् काले मुक्त्वा तत्परतां वशी । नातिजागरणं निद्रां सर्वभूतहितैषिताम् ॥ ४७ ॥ देवगोब्राह्मणाचार्य्यं गुरुवृद्धान् सदार्चयेत् ॥ ४८॥

जितेन्द्रिय पुरुष विषयोंको यथोचित समयमें सेवन करे, किन्तु अपने चित्तसे वशीभूत उनमें तत्पर न हो एवं न अत्यंत जागरण करे और न अत्यंत शयन करे । संपूर्ण प्राणियोंके हितैषी मनुष्योंको देवता, गो ब्राह्मण, आचार्य्य, गुरु और वृद्ध इनकी सदैव पूजा करनी चाहिये ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

चतुष्पथनमस्कर्ता दाता यष्टा प्रियंवदः । क्रुद्धानामनुनेता च दीनानामनसूयकः ॥ ४९ ॥

वह मनुष्य चतुष्पथोंको नमस्कार करनेवाला, दान देनेवाला, यज्ञ करनेवाला और प्रियवचन बोलनेवाला; कुपित मनुष्योंकी प्रार्थना करनेवाला, दीनजनोंकी रक्षा करनेवाला और किसीकी निन्दा नहीं करनेवाला होना चाहिये ॥ ४९ ॥

आश्वासकश्च भीतानां बन्धुवत्सर्वदेहिनाम् । रागद्वेषनिदानानां हन्ता धर्म्मपरायणः ॥ ५० ॥

भयभीतमनुष्योंको धैर्य्य देना, संम्पूर्ण प्राणियोंको भाई बन्धुके समान समझना, राग और द्वेषके कारणोंको त्यागना और धर्ममें तत्पर रहना चाहिये ॥ ५० ॥

नित्यं हिताहारविहारसेवी समीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्तः । दाता समः सत्यपरः क्षमावानाप्तोपसेवी च भवत्यरोगः ॥ ५१ ॥

नित्य हितकर आहार और विहारको सेवन करने वाला, विचार कर कार्य्योंको करने वाला, विषयोंमें आसक्त न होनेवाला, दीन अथवा दुःखित जनोंको दान देनेवाला, सबको समान समझनेवाला, सत्यवान, क्षमायुक्त और आप्तजनकी सेवा करनेवाला अथवा ईश्वरकी उपासना करनेवाला पुरुष कदापि रोगको प्राप्त नहीं होता ॥ ५१ ॥

पृष्ठतोऽर्कं निषेवेत जठरेण हुताशनम्। स्वामिनं सर्वभावेन पुण्यश्लोकममायया ॥ ५२ ॥

सूर्य्यकी धूपको पृष्ठ (पीठ) के द्वारा सेवन करे, अग्निको उदरसे सेवन करे, स्वामीको सर्वभावसे और परमात्माको पुण्यलोककी प्राप्तिके लिये निष्कपटतासे सेवन करे ॥ ५२ ॥

भुंक्ष्व वास्तूकशाकेन तक्रं सलवणं पिब। राजन् हरीतकीं भुंक्ष्व नश्यन्तु भवतो गदाः ॥ ५३ ॥

हे राजन् बथुयेके शाकके साथ भोजन करो, लवण मिलाकर तक्रको पान करो और सदैव हरड़को भक्षण करो। इस प्रकार करनेसे सर्वप्रकारके रोग नष्ट हो जायेंगे ॥ ५३ ॥

न वेगान्धारयेद्धीमान् वातविण्मूत्ररेतसाम्। जृम्भाकासक्षवोद्गारश्वासतृष्णावमीक्षुधाम् ॥ ५४ ॥ धारितेष्वेषु जायन्ते तन्मार्गस्थानजा गदाः। धार्यो वेगस्तु शस्तानां मनोवाक्कायकर्म्मणाम् ॥ ५५ ॥

बुद्धिमान् मनुष्य वायु, विष्ठा, मूत्र, वीर्य्य, जम्भाई, खाँसी, छींक, उद्गार, श्वास, तृषा, वमन और क्षुधा इनके वेगोंको कदापि धारण न करे अर्थात् नहीं रोके क्योंकि इनको धारण करनेसे इनके मार्गस्थानोंमें अनेकप्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं, किंतु मन, वचन और शरीरके कर्म्मोंके वेगोंको अवश्य रोके ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

न पीडयेदिन्द्रियाणि न चैतान्यतिलालयेत्। अनुजायाः प्रतिपदं सर्वधर्मेषु तुल्यताम् ॥ ५६ ॥

ज्ञानेन्द्रियोंको अत्यन्त पीडित न करे और न कर्मेन्द्रियोंके अत्यन्त लाड लडावे। तथा स्त्रीसे प्रतिक्षण संपूर्ण धर्म्मोंमें समानताका व्यवहार करे ॥ ५६ ॥

स्त्रियं श्रियं धनश्चापि परस्याभिलषेन्न हि। न कुर्याच्चंचलं चेतो न कालमातिवाहयेत् ॥ ५७ ॥

परस्त्री, पराई शोभा और पराये धनकी कदापि अभिलाषा न करे। चित्तको अत्यन्त चंचल न करे और समयको व्यर्थ नहीं करे ॥ ५७ ॥

प्रणयेनापि नो वाच्यं वचनं परतोऽपि यत्। अहिंसा सततं कार्य्या धार्य्या चेतस्यनित्यता ॥ ५८ ॥

दूसरोंको सन्ताप देनेवाले वचन किसीसे नम्रभावसे भी कदापि न कहे, सदैव अहिंसाव्रतका धारण करे और चित्तमें संसारकी अनित्यताक धारण करे ॥ ५८ ॥

हिताभिर्जुहुयान्नित्यमन्तराग्निं समाहितः। अन्नपानसमिद्भिर्ना मात्राकालौ विचारयन् ॥ ५९ ॥

मनुष्य प्रतिदिन हितकारी द्रव्योंके द्वारा सावधान होकर अन्नपानरूपी समिधाओंसे मात्रा और कालको विचार कर जठराग्निमें आहुति देवे ॥ ५९ ॥

तच्च नित्यं प्रयुञ्जीत स्वास्थ्यं येनानुवर्त्तते। अजातानां विकाराणामनुत्पत्तिकरञ्च यत् ॥ ६० ॥

जिससे स्वास्थ्य ठीक रहे और जो नहीं उत्पन्न हुए विकारोंको उत्पन्न न करे ऐसे हितकारी आहार विहार नित्य सेवन करने चाहिये ॥ ६० ॥

सर्वमन्यत्परित्यज्य शरीरमनुपालयेत्। तदभावे हि भावानां सर्वाभावः शरीरिणाम् ॥ ६१ ॥

और समस्त विषयोंको छोडकर केवल शरीरकी रक्षा करे। क्योंकि मनुष्योंके उस शरीरके अभावसे सम्पूर्ण भावोंका सर्वथा अभाव होजाता है ॥ ६१ ॥

मतिर्वचः कर्म्मसुखानुबन्धि सत्त्वं विधेयं विशदा च बुद्धिः। ज्ञानं तपस्तत्परता च योगे यस्यास्ति तं नानुपतन्ति रोगाः ॥ ६२ ॥

जिसके मति, वचन और कर्म्ममें अनुबंध, सत्यपरायणता, निर्मलबुद्धि तथा ज्ञान तप और योगमें तत्परता है उसके कदापि रोग उत्पन्न नहीं होते ॥ ६२ ॥

अर्थेष्वलभ्येष्वकृतप्रयत्नं कृतादरं नित्यमुपायवत्सु। जितेन्द्रियं नानुपतन्ति रोगास्तत्कालयुक्तं यदि नास्ति दैवम् ॥ ६३ ॥

जो अलभ्यविषयोंमें यत्न नहीं करता अर्थात् जो दुःसाध्य पदार्थोंकी प्राप्ति होनेकी इच्छा नहीं करता और जो उपाय करनेसे सिद्ध होनेवाले कार्य्योंमें नित्य आदर करता है और जो निरंतर जितेन्द्रिय रहता है वह यदि भाग्यहीन हो तथापि समयानुकूल होनेपर उसके कदापि रोग उत्पन्न नहीं होते ॥ ६३ ॥

कफे प्रच्छर्दनं पित्ते विरेको वस्तिरीरिणे । शस्यते त्रिष्वपि हितो व्यायामो दोषपाचनः ॥ भुक्तं विरुद्धमप्यन्नं व्यायामात्र प्रदुष्यति ॥ ६४ ॥

कफके रोगोंमें वमन, पित्तके रोगोंमें विरेचन, वातके रोगोंमें वस्तिकर्म्म और तीनों दोषोंके विकारोंमें व्यायाम (परिश्रम) हितकारी है । क्योंकि व्यायाम दोषपाचक है। तथा खाया हुआ विरुद्ध अन्न भी व्यायामको करनेसे विरुद्धता नहीं करता है ॥ ६४ ॥

अशाकभोजीघृतमत्ति योऽन्धसा पयोरसान् सेवति नाति योऽम्भः । निराममुग्वातकृतां विदाहिनां न च प्रभुग्जीर्णभुगल्परुक् सः ॥ ६५ ॥

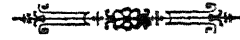
जो मनुष्य कभी शाकके साथ भोजन नहीं करता तथा घृत, भात, एवं दूध और मांसरसको नित्य सेवन करता है, जो अत्यंत जल नहीं पीता, जो पक और हलका भोजन करता है, जो वातकारक और दाहकारक भोजन नहीं करता और जो बारम्बार नहीं खाता, जीर्ण होनेपर भोजन करता है वह बडे बडे रोगोंको प्राप्त नहीं होता ॥ ६५ ॥

नगरी नगरस्येव रथस्येव रथी सदा । स्वशरीरस्य मेधावी कृत्येष्विवहितो भवेत् ॥ ६६ ॥

जिसप्रकार नगरी (नगरपति) नगरकी और रथी (रथपति) रथकी सदैव रक्षा करता है, उसीप्रकार बुद्धिमान् मनुष्यको सब कामोंमें यत्नपूर्वक अपने शरीरका हित करना चाहिये ॥ ६६ ॥

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायामनागतामयप्रतिषेधाधिकार समाप्त ॥ ८३ ॥

अथ द्रव्यगुणाधिकार ।



चक्षुष्यो मधुरो वृष्यो बल्यो धातुविवर्द्धनः ।

प्रथम रसोंके गुणोंको कहते हैं । मधुररस–नेत्रोंको हितकारी, वृष्य, बलकारक और धातुवर्द्धक है ।

अम्लो रसो मतो हृद्यः क्लेदी दीपनपाचनः ॥ १ ॥

अम्लरस–हृदयको हितकारी, क्लेदजनक, दीपन और पाचन है ॥ १ ॥

दीपनो ज्वरतृष्णाघ्नस्तिक्तः शोधनरोपणः ।

तिक्तरस–कडुआ, अग्निको दीपन करनेवाला, ज्वर और तृषाको हरनेवाला, तथा शोधन और रोपण है ॥

पीडनो लेखनः स्तम्भी कषायो ग्राहिरोपणः ॥ २ ॥

कषायरस–पीडन, लेखन, स्तम्भक, मलरोधक और व्रणको भरनेवाला है ॥ २ ॥

लवणः शोधनो रुच्यः पाचनः कफपित्तहा ।

लवणरस–शोधन, रुचिकारक, पाचन, कफ और पित्तको नष्ट करता है ।

कटुरुष्णश्च तीक्ष्णश्च विशदो वातपित्तकृत् ॥ ३ ॥

कटुरस–तीखा चरपर, उष्ण, तीक्ष्ण, विशद, वात और पित्तकारक है ॥ ३ ॥

रसवीर्य्यविपाकानामाश्रयाद्द्रव्यमुत्तमम् । उत्तरोत्तरसंश्लेषादितरेषां प्रधानता ॥ ४ ॥

रस, वीर्य्य और विपाकके आश्रित होनेसे द्रव्य उत्तम गुणवाले हैं । अर्थात् जैसा जैसा द्रव्योंमें रस, वीर्य्य और विपाक होता है, वैसाही उसमें गुण होता

है। और उन्हीं उत्तरोत्तर गुणोंके निमित्त होनेसे उत्तरोत्तर द्रव्योंमें प्रधानता होती है ॥ ४ ॥

सतिक्तकटुकं कुष्ठं स्वल्पवातविषापहम् ।

कूठ-कडवा, चरपरा तथा किंचित् वायु और विषको नष्ट करनेवाला है ॥

स्वादुपाकरसो ज्ञेयस्तगरः कुष्ठवद् गुणैः ॥ ५ ॥

तगर-पाकमें मधुर है और इसके शेष गुण कूठके समान जानने ॥ ५ ॥

बल्याश्वगन्धा वातघ्नी कासश्वासक्षये हिता ।

असगंध-बलकारक, वातनाशक तथा खाँसी, श्वास और क्षयरोगमें हितकारी है ।

देवदारु भवेत्तद्वत्कासश्वासामयापहम् ॥ ६ ॥

देवदारु-असगंधके समान गुणोंवाला है । तथा खांसी और श्वासरोगको दूर करता है ॥ ६ ॥

सोष्णं लघु च शीतश्च सुगन्धि कटुकं गुरु ।

विशेष करके उष्ण, लघु, शीतल, सुगंधित, कटु और भारी है ॥

वातपित्तहरी बल्या वृष्या संग्राहिणी बला ॥ ७ ॥

खिरैंटी-वातपित्तनाशक, बलकारक, वृष्य और मलरोधक है ॥ ७ ॥

श्रीफलैरण्डमूलानि शूले वातकफोल्बणे ।

बेल और अण्डकी जड वात और कफकी उल्बणता तथा शूलमें अतीव हितकारी है ॥

पृश्निपर्णी स्थिरा चैव पित्तश्लेष्मातिसारिणाम् ॥ ८ ॥

पृश्निपर्णी और शालिपर्णी-पित्तकफातिसारमें हितकारी है ॥ ८ ॥

वातभोजनसंस्कारे शस्यते गन्धपत्रिका ।

कपूरकचरी-वायुके विकारोंमें और भोजनके संस्कार करनेमें हितकारी है ।

चक्षुष्यं वातपित्तघ्नं बल्यं लोहितचन्दनम् ॥ ९ ॥

लालचन्दन-नेत्रोंको हितकारी, वातपित्तनाशक और बलकारक है ॥ ९ ॥

ह्रीबेरं छर्दिहृल्लासं तृष्णातीसारनाशनम् ।

सुगन्धवाला-वमन, उबकाई, तृषा और अतिसार इनको दूर करता है ।

पाचनं दीपनं वृष्यं शूलघ्नं विश्वभेषजम् ॥ १० ॥

सोंठ-पाचन, अग्निप्रदीपक, वृष्य और शूलनाशक है ॥ १० ॥

वातश्लेष्महरं हृद्यं मुस्तं पित्तविरोधि च ।

मोथा-वातकफनाशक, हृदयको हितकारी और पित्तको दूर करनेवाला है ।

पिप्पली प्लीहगुल्मार्शजठरेषु विधीयते ॥ ११ ॥

पीपल-प्लीहा, गुल्म, बवासीर और उदररोगमें अतीव हितकारी है ॥ ११ ॥

दीपनी पाचनी हृद्या नात्युष्णा कटुका मता ।

कुटकी-दीपन, पाचन, हृदयको हितकारी और अत्यन्त उष्ण नहीं है ।

मरिचं नातिशीतोष्णं पित्तलं कफवातजित् ॥ १२ ॥

मिरच-न अत्यन्त शीतल है और न अत्यन्त उष्ण है, पित्तकारक और कफवातनाशक है ॥ १२ ॥

संग्राहि रोचनं मुस्तं दीपनं दोषपाचनम् ।

नागरमोथा-मलरोधक, रुचिकारक, अग्निको दीपन करनेवाला और दोषोंको पचानेवाला है ।

सातिक्तातिविषा सोष्णा संग्रहिण्यामपाचनी ॥ १३ ॥

अतीस-कडवा, गरम, संग्राही और आमको पचानेवाला है ॥ १३ ॥

गुडूची वातपित्तघ्नी मेहघ्नी पाचनी सरा । छर्दिकुष्ठज्वरश्वासकासारोचकनाशिनी ॥ १४ ॥

गिलोय-वातपित्तनाशक, प्रमेहहारक, पाचक, सारक तथा वमन, कोढ, ज्वर, श्वास, खाँसी और अरुचिको दूर करता है ॥ १४ ॥

किराततिक्तकस्तिक्तो रक्तपित्तज्वरापहः । यावद्गुणै रसैस्तिक्ता प्रोक्ता भूनिम्बवत्सकौ ॥ १५ ॥ किराततिक्तवज्ज्ञेये त्रायमाणदुरालभे । कफवातज्वरच्छर्दिकृम्यरोचकनाशने ॥१६॥

चिरायता-कडवा, रक्तपित्त और ज्वरको दूरकरनेवाला है । जो गुण और रस कुटकीके कहे हैं वही गुण और रस चिरायते और इन्द्रजौके हैं । चिरायतेके समान त्रायमाण और धमासेके गुण जानने । विशेष कर ये दोनों कफ,वायु, ज्वर, वमन, कृमि और अरुचिको नष्ट करते हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥

कफपित्तहरौ तिक्तावरिष्टखदिरद्रुमौ । तृष्णारोचकवीसर्पकंडूकुष्ठविनाशनौ ॥ १७ ॥

नीम और खैर-कफपित्तनाशक, तिक्त तथा तृषा, अरुचि, विसर्प, कंडू और कुष्ठको नष्ट करनेवाले हैं ॥ १७ ॥

वासकः कासवैस्वर्य्यरक्तपित्तकफापहः ।

अडूसा-खाँसी, स्वरभंग, रक्तपित्त और कफको दूर करता है ।

सेव्यः पित्तकफस्वेददाहदौर्गन्ध्यनाशनः ॥ १८ ॥

खस-पित्त,कफ, पसीना,दाह और दुर्गंधको नष्ट करता है ॥ १८ ॥

कफवातहरी पथ्या बुद्ध्यायुःस्वरवर्द्धिनी । विबन्धश्वासकासास्रहिक्कामरुचिनाशिनी ॥ १९ ॥

हरड-कफवातनाशक, बुद्धि,आयु,स्वरको बढानेवाली तथा विबंध, श्वास, खाँसी, रुधिरविकार, हिचकी, आम और अरुचिको नष्ट करती है ॥१९॥

कफवातहरं केश्यमक्ष्मक्षिबलप्रदम् । वयसः स्थापनं वृष्यं शस्तमामलकं त्रिपु ॥ २० ॥

हरड-कफवातनाशक, केशोंको हितकारी और नेत्रोंकी ज्योतिको बढानेवाला है । एवं आमला-अवस्थाको स्थापन करनेवाला, वीर्य्यवर्धक और त्रिफलेकी तीनों औषधियोंमें श्रेष्ठ है ॥ २० ॥

ककुभो भग्नरुग्घाती कदरो दन्तदार्ढ्यकृत् ।

अर्जुन-भग्नरोगको दूर करनेवाला है और श्वेत खैर-दांतोंको पक्का करता है ।

कण्डूरोगापचीपिल्ले विशेषाद्रजनी हिता ॥ २१ ॥

हलदी-कण्डूरोग,अपची और पिल्लरोगमें विशेषकर हितकारी है ॥ २१ ॥

तद्वद्दार्वी विशेषेण कफाभिष्यन्दनाशिनी । पार्श्वरुक्कासश्वासार्तिहिक्काघ्नं पौष्करम्मतम् ॥ २२ ॥ मूलं कर्कटकस्यापि शृङ्गीकुक्ष्यनिले हिता । जीरकैलाद्वयं पृथ्वी चव्या दीपनपाचनी ॥ २३ ॥

जो गुण हलदीमें हैं,वेही गुण दारुहलदीके जानने । विशेष कर यह कफ और अभिष्यन्दको नष्ट करनेवाली है । पोहकरमूल-पसलीकी पीडा,खांसी, श्वास और हिचकीको नष्ट करता है । कर्कटशृंगीकी जड और शृंगी उदररोग और वातरोगमें

हितकारी है । जीरा, दोनों इलायची, कालाजीरा, और चव्य दीपन और पाचन है॥ २२ ॥ २३ ॥

भेदनं पिप्पलीमूलं दीपनं शूलनाशनम् । कट्फलो मुखरोगघ्नः कासश्वासकफापहः ॥ २४ ॥

पीपलामूल-भेदक, दीपन और शूलनाशक है । कायफल-मुखरोगनाशक, खांसी, श्वास और कफनाशक है ॥ २४ ॥

कर्पूरः शीतलः पाके चक्षुष्यः कफनाशनः । सुगन्धिः कटुको हृद्यः कंकोलः कफवातजित् ॥ २५ ॥

कपूर-पाकमें शीतल,नेत्रोंको हितकारी और कफनाशक है । शीतलचीनी-सुगंधित,कटु,हृदयको हितकारी है और कंकोल कफवातनाशक है ॥ २५ ॥

तद्वज्जातीफलं प्रोक्तं लवङ्गकुसुमानि च । चक्षुष्यं मधुरं सेव्यं पुण्डरीकं च शस्यते ॥ २६ ॥

इसीप्रकार जायफल और लौंगके गुण जानने । पुण्डरीक (पुण्डेरिया) और लामज्जकतृण-नेत्रोंको हितकारी और मधुर है ॥ २६ ॥

कुंकुमं तूष्णवीर्य्यं स्याद्वातघ्नं विषनाशनम् । नात्युष्णं नातिशीतश्च वीर्य्यतो मरिचं सितम् ॥ २७ ॥

केशर-उष्णवीर्य्य, वातनाशक और विषको हरनेवाली है । सफेदमिरच-न अत्यंत गरम है और न अत्यंत शीतल है ॥ २७ ॥

कण्डूघ्नं रोचनं हृद्यं वृष्यं चैवार्द्रकं स्मृतम् । स्निग्धं तीक्ष्णं कटुरसं शूलाजीर्णविबन्धजित् ॥ २८ ॥

अदरख-कण्डुनाशक, रुचिकारक,हृदयको हितकारी, वृष्य, स्निग्ध,तीक्ष्ण, कटुरसयुक्त तथा शूल, अजीर्ण और विबन्धको दूर करता है ॥ २८॥

तीक्ष्णोष्णं कटुकं पाके रुच्यं पित्ताग्निवर्द्धनम् । कटुश्लेष्मानिलहरं गन्धाढ्यं जीरकं हितम् ॥ २९ ॥

जीरा-तीक्ष्ण, उष्ण, पाकमें कटु,रुचिकारक,पित्त और अग्निको बढानेवाला, कटु, कफवातनाशक, सुगंधित और हितकर है ॥ २९ ॥

आर्द्रा कुस्तुम्बरी कुर्य्यात्स्वादु सौगन्ध्यहृद्यताम् । सा शुष्का मधुरा पाके तृष्णादाहरुजापहा ॥ ३० ॥

गीला धनियाँ-स्वादिष्ठ,सुगंधिजनक और हृदयको हितकारी है । सूखाधनियाँ-पाकमें मधुर, तथा तृषा और दाहकी पीडाको दूर करता है ॥ ३० ॥

जम्बीरः पाचनस्तीक्ष्णः कृमिवातकफापहः । सुरभिर्दीपनो हृद्यो मुखवैशद्यकारकः ॥ ३१ ॥

जम्भीरीनींबू-पाचक, तीक्ष्ण, कृमि, वात और कफनाशक तथा सुन्दर, गंधयुक्त, अग्निको दीपन करनेवाला, हृदयको हितकारी और मुखमें विशदता उत्पन्न करता है ॥ ३१ ॥

कफानिलविषश्वासकासदौर्गन्ध्यनाशनः । पित्तहृत्पार्श्वशूलघ्नः सुरसः समुदाहृतः ॥ ३२ ॥

गंधतृण-कफ, वात, विष, श्वास, खाँसी और दुर्गंधको दूर करनेवाला एवं पित्तनाशक और पार्श्व शूलको नष्ट करनेवाला है ॥ ३२ ॥

कफघ्ना लघवस्तीक्ष्णा वीर्योष्णाः पित्तवर्द्धनाः । कटुतिक्तरसाश्चैव सुमुखार्जकभूस्तृणाः ॥ ३३ ॥

वनतुलसी, सफेदवनतुलसी और भूस्तृण ये तीनों कफनाशक, हलके, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, पित्तवर्द्धक, कटु और तिक्तरसयुक्त हैं ॥ ३३ ॥

कटुः सक्षारमधुरः शिग्रुस्तिक्तोऽतिपिच्छिलः । मधुशिग्रुः परस्तिक्तः शोषघ्नो दीपनः कटुः ॥ ३४ ॥

सहिंजना-कटु, खारी,मधुर, तिक्त और अत्यन्त पिच्छिल है । तथा लाल सहिंजना-अधिक तिक्त, शोषनाशक, दीपन और कटु है॥ ३४ ॥

हेम स्वादुरसं प्रोक्तं वर्णायुर्बलवर्द्धनम् । अम्लस्तिक्तरसः प्रोक्तो रजतोऽम्लरसः सरः ॥ ३५ ॥

सुवर्ण–मधुररसयुक्त, तथा वर्ण, आयु और बलको बढ़ानेवाला है । तथा चाँदी–अम्लरस और तिक्तरस युक्त,मधुर और सारक है ॥ ३५ ॥

कृष्णायः पांडुरोगघ्नं पित्तलं चापि तद्गुणम् । स्रोतोजं रक्तपित्तघ्नं तद्वत्काञ्चनगैरिकम् ॥ ३६ ॥

कालालोह–पांडुरोग नाशक है । और पित्तलके गुणभी इसीके समान जानने । सुफेदअंजन–रक्तपित्तनाशक है । तथा पीले गेरुके भी गुण इसीके समान जानने ॥ ३६ ॥

सौवीरमञ्जनं पथ्यं परं दृष्टिप्रसादनम् । विलायनं विशेषेण चक्षुष्यं त्रपुसीसकम् ॥ ३७ ॥

काला अंजन–नेत्रोंको पथ्य और दृष्टिको अत्यन्त प्रसन्न करता है । रांग और सीसा–नेत्ररोगनाशक और विशेषकरके नेत्रोंको हितकारी हैं ॥ ३७ ॥

रक्तपित्ते क्षतोरस्के शस्तं खर्जूरमस्तकम् ।

खजूरका मस्तक–रक्तपित्त और उरःक्षतरोगमें हितकारी है ।

विदारिकन्दो वृष्यश्च वातपित्तहरस्तथा ॥ ३८ ॥

विदारीकन्द–वृष्य, तथा वात और पित्तको हरनेवाला है ॥ ३८ ॥

माणकं स्वादु शीतञ्च गुरु चापि प्रकीर्तितम् । सकंदलशुनोऽत्युष्णः शूरणो गुदकीलहा ॥ ३९ ॥

मानकन्द–मधुर, शीतल और भारी है । लसुनकन्द–अत्यन्त उष्ण है । जिमीकन्द–बवासीरको नष्ट करनेवाला है ॥ ३९ ॥

चक्षुष्यं सैन्धवं वृष्यं विशेषात् शमनं स्मृतम् । सौवर्चलं विबन्धघ्नमुष्णं हृच्छूलनाशनम् ॥ ४० ॥

सैंधानमक–नेत्रोंको हितकारी, वृष्य और विशेष कर दोषोंको शमन करनेवाला है । कालानमक–विबन्धनाशक, गरम और हृदयशूलको नष्ट करता है ॥ ४० ॥

उष्णं शूलहरं तीक्ष्णं विडं वातानुलोमनम् ।

विड नमक–गरम, शूलनाशक, तीक्ष्ण और वायुको अनुलोमन करनेवाला है ।

रुचकं वह्निकृत्तीक्ष्णं सामुद्रं क्लेदनं गुरु ॥ ४१ ॥

रुचक नोन–अग्निको दीपन करनेवाला और तीक्ष्ण है । समुद्रनमक–क्लेदकारक और भारी है ॥ ४१ ॥

हृत्पांडूदररोगघ्नो यवक्षारोऽतिदीपनः । दहनो दीपनस्तीक्ष्णः स्वर्जिक्षारोऽतिदीपनः॥ ४२ ॥

जवाखार–हृदय, पांडु और उदररोगको नष्ट करता है । तथा अत्यन्त दीप्रन है । चीता–दीपन और अत्यन्त तीक्ष्ण है । सज्जीखार–अग्निको अत्यन्त दीपन करनेवाला है ॥ ४२ ॥

अग्निदीप्तिकरस्तीक्ष्णष्टङ्कणः क्षार उच्यते ॥ ४३ ॥

सुहागा–अग्निको दीपन करनेवाला, खार और अत्यन्त तीक्ष्ण है ॥ ४३ ॥

या गन्धं केतकीनां वहति परिमलं वर्णता पिञ्जराभा । स्वादे तिक्ता कटुर्वा परिलघुतुलिता मर्दिता चिक्कणाभा ॥ भस्मत्वं नैति दग्धा छिमिछिमि कुरुते चर्म्मगन्धा हुतान्ते । सा शुद्धा शोभनीया वरतनुमृगजा राजयोग्यप्रशस्ता ॥ ४४ ॥

जिसमें केतकीके समान सुगन्ध आती हो, जो सुवर्णके समान रक्तपित्त मिश्रित वर्णवाला हो, स्वादमें तिक्त अथवा कटु हो, तोलमें हलकी हो, मर्दन करनेमें चिकनी हो, अग्निमें डालनेसे भस्म नहीं हो तथा चिमचिम शब्द करे और चमड़ा जलनेकीसी जिसमें गन्ध आवे वह कस्तूरी शुद्ध,शोभनीय

उत्तम मृगके शरीरसे उत्पन्न हुई और राजाओंके सेवन करने योग्य जाननी चाहिये ॥ ४४ ॥

करतलजलमध्ये स्थापयित्वा महद्भिः पुनरपि तदवश्यं चिन्तनीयं महद्भिः। भवति यदि सरक्तं तज्जलं पीतवर्णं न भवति मृगनाभिः कृत्रिमोऽसौ विकारः ॥ ४५ ॥

हाथकी हथेलीमें जलको रखकर और उसमें कस्तूरी डालकर फिर विद्वान मनुष्योंको कुछ समय तक उसकी परीक्षा करनी चाहिये। यदि वह जल लाल अथवा पीतवर्ण होजाय तो उसको कस्तूरी नहीं समझना, किन्तु कृत्रिम (बनावटी) विकार जानना ॥४५॥

सौवर्चलन्तु काचाभं सैन्धवं स्फटिकप्रभम् । करमर्दफलाकारा द्राक्षा सा मध्यमा स्मृता ॥ ४६ ॥

कालानमक-काँचके समान उत्तम होता है। सैंधानमक स्फटिकमणिके समान उत्तम होता है। दाख करौंदेके समान मध्यम होती है ॥ ४६ ॥

उत्तमा सैव विज्ञेया या भवेद्गोस्तनाकृतिः । रक्तचन्दनमत्यन्तं लोहितं चोत्तमं मतम् ॥ ४७ ॥

वही दाख गायके स्तनोंके समान आकृतिवाली उत्तम होती है । और लालचन्दन-अत्यंत लाल उत्तम होता है ॥ ४७ ॥

हरिद्रा कुंकुमाभा तु श्रेष्ठा पीता तु मध्यमा । अतिपीता प्रशस्ता तु ज्ञेया दारुनिशा बुधैः ॥ ४८ ॥

हलदी केशरके समान उत्तम होती है। पीले रंगकी हलदी मध्यम होती है। दारु हलदी अत्यन्त पीली श्रेष्ठ होती है ॥ ४८ ॥

खण्डश्च विमलं श्रेष्ठं चन्द्रकान्तसमप्रभम् । रुद्रपुष्पसुसंकाशा मनोह्वा चोत्तमा मता ॥ ४९ ॥

खांड-उज्ज्वल और चन्द्रमाके समान धवल श्रेष्ठ होती है । तथा मैनशिल-रुद्रपुष्पके समान वर्णवाली उत्तम होती है ॥ ४९ ॥

श्वेतचन्दनमत्यन्तश्रेष्ठं गुरु सुगन्धि च । सुवर्णच्छविकं ज्ञेयं धातुमाक्षिकमुत्तमम् ॥ ५० ॥

सुफेदचंदन-भारी और सुगंधित उत्तम होता है। सोनामाखी-सोनेकी कांतिके समान श्रेष्ठ होती है ॥ ५० ॥

श्रेष्ठं शिलाजतु ज्ञेयं यत्क्षिप्तं न विशीर्य्यति । तोयपूर्णे कांस्यपात्रे प्रतानेन विवर्द्धते ॥ ५१ ॥

जो जलसे भरे हुए कांसिके पात्रमें डालनेसे एक साथ न घुलजाय, किन्तु तंतुसे छोड़े ऐसा शिलाजीत उत्तम होता है ॥ ५१

स्निग्धः काञ्चनसंकाशः पक्वजम्बूफलोपमः । नूतनो गुग्गुलुः प्रोक्तः सुगन्धिर्यस्तु पिच्छिलः ॥ ५२ ॥

चिकना, कांचनके समान पीतवर्ण, पक्के जामुनके फलके समान कांतिवाला, सुगंधित और पिच्छिल ऐसा गूगल नवीन श्रेष्ठ होता है ॥ ५२ ॥

शुष्को दुर्गन्धिकश्चैव वर्णान्यत्वमुपागतः । गुग्गुलुः स तु विज्ञेयः पुराणो वीर्य्यवर्जितः ॥ ५३ ॥

सूखा, दुर्गंधित, जिसका वर्ण बदल गया हो अर्थात् जिसका रंग बुरा हो गया हो ऐसा और पुराना गूगल गुणरहित जानना ॥ ५३ ॥

शशिकान्तनिभं श्रेष्ठं तथा स्फटिकसन्निभम् । कर्पूरं स्निग्धमत्यर्थं मुद्गतुल्या हरेणुका ॥ ५४ ॥

चन्द्रमाकी कांतिके समान स्वच्छ और स्फटिकमणिके समान श्वेत तथा अत्यंत चिकना ऐसा कपूर उत्तम होता है । और रेणुका-मूँगके समान उत्तम होती है ॥ ५४ ॥

समं शुभ्रं गुरु स्निग्धं फलं जात्याः प्रशस्यते । एला सूक्ष्मफला श्रेष्ठा प्रियंगुः श्यामपाण्डुरा ॥ ५५ ॥

समान, शुभ्र, भारी और चिकना ऐसा जायफल उत्तम होता है। तथा इलायची-सूक्ष्म दानोंकी उत्तम होती

है और फूलप्रियंगू-श्याम और पाण्डुवर्णका उत्तम होता है ॥ ५५ ॥

मुरा पीता वरा प्रोक्ता मुस्तमानूपसम्भवम् ।

मुरामांसी अर्थात् कपूरकचरी-पीलेरंगकी उत्तम होती है । और नागरमोथा अनूपदेशमें उत्पन्न हुआ श्रेष्ठ होता है ।

अविकारा लघुर्दीर्घा लता कस्तूरिका मता ॥ ५६ ॥

लताकस्तूरी-हलकी और लम्बाकृतिवाली निर्विकार होती है ॥ ५६ ॥

सरलत्वक्छविर्ज्ञेया नलिका स्निग्धपिच्छिला । सुगन्धि गुरु रूक्षञ्च सुरदारु प्रकीर्त्तितम् ॥ ५७ ॥

नली-सरलकी छालके समान, स्निग्ध और पिच्छिल उत्तम होती है । देवदारु-सुगंधित, भारी और रूक्ष उत्तम होती है ॥ ५७ ॥

सरलं स्निग्धमत्यर्थं सुगन्धि च मनोहरम् । मृगशृङ्गनिभं कुष्ठं शिरोच्छेदे वचारुणा ॥ ५८ ॥

धूपसरल-अत्यन्त स्निग्ध, सुगन्धित और मनोहर ऐसा उत्तम होता है । कूठ-हिरनके सींगके समान उत्तम होता है । वच-छेदनेमें लाल उत्तम होती है ॥ ५८ ॥

कनिष्ठांगुलिसंकाशमुत्तमं ग्रन्थिपर्णकम् । सुसूक्ष्मकेसरा स्निग्धा मांसी पिङ्गजटाकृतिः ॥ काकतुण्डानिभः स्निग्धः श्रेष्ठः स्यादगुरुर्गुरुः ॥ ५९ ॥

कनिष्ठा अंगुलीके समान गाठिवन उत्तम होता है। सूक्ष्मकेशरसे युक्त, स्निग्ध, पीली जटावाली ऐसी वालछड उत्तम होतीहै। अगर-कौवेकी चोंचके समान, चिकनी और भारी ऐसी उत्तम होती है ॥ ५९ ॥

वर्त्तुला मांसला स्वच्छा श्रेष्ठा पूतिः प्रकीर्तिता । सुगन्धि शीतं चोशीरं कीर्त्तितं गन्धकर्म्मणि ॥ ६० ॥

गोल, गुदाल और निर्मल ऐसी जवादिकस्तूरी उत्तम होती है । खस-सुगंधित और शीतल है । इसको गंधकर्म्ममें प्रयोग करना चाहिये ॥ ६० ॥

वराहमूर्धवत्कन्दो वाराहीकन्दसंज्ञितः । भिषजा तदलाभे तु चर्म्मकारालुको मतः ॥ ६१ ॥

सूअरके शिरके समान वाराहीकंद उत्तम होता है । वैद्य लोग उसके अभावमें चर्म्मकारालुको प्रयोग करते हैं ॥ ६१ ॥

सूक्ष्मास्थिमांसला पथ्या सर्वकर्म्मणि सम्मता । क्षिप्ताम्भसि च या मज्जेद्भल्लातकवरा च सा ॥ ६२ ॥

छोटी गुठलीवाली और बहुत गूदेवाली हरड़ सब कार्योंमें उत्तम होती है । जिसकी गिरी जलमें डालनेसे डूबजाय ऐसा भिलावा उत्तम होता है॥६२

एतेषामपरेषाञ्च नवता प्रवरो गुणः ६३

ये उपर्युक्त औषधियाँ अथवा अन्यान्य औषधियाँ नवीन ही विशेष गुणवाली होती हैं ॥ ६३ ॥

अक्षोटकश्च वातामं मुञ्जातो विपुकस्तथा । पारावतं पीलुफलं लवलीफलमेव च ॥ नवान्येतानि सर्वाणि प्रसिद्धान्युक्तनामभिः ॥ ६४ ॥

अखरोट, वादाम, मुञ्जातकफल, विपुक, पारावत, पीलुफूल और लवलीफल ये सब उक्तनामोंसे प्रसिद्ध हैं । ये सब नवीन ही श्रेष्ठ होते हैं ॥ ६४ ॥

प्रतिनिधिः ।

शकृद्रसो गोमये स्याच्चन्दने रक्तचन्दनम् । सिद्धार्थे सर्षपः प्रोक्तः सैन्धवं लवणे मतम् ॥ ६५ ॥

जहाँ गोबर लिखा हो वहां गोबरका रस लेना चाहिये । जहां चंदन लिखा हो वहाँ लालचंदन लेना चाहिये । जहां सिद्धार्थ लिखा हो वहां सरसों लेनी चाहिये और जहाँ लवण लिखा हो वहां सेंधानमक ही लेना चाहिये ॥ ६५ ॥

मधु यत्र न विन्देत तत्र जीर्णगुडो मतः । क्षीराभावे भवेन्मौद्गो रसो मासूर एव वा ॥ ६६ ॥

जहां शहद न मिले वहां पुराना गुड लेना चाहिये तथा दूधके अभावमें मूंग अथवा मसूरका यूष लेना चाहिये ॥ ६६ ॥

वाराहकान्तकाभावे स्तम्भने विकसा मता । चित्रकाभावतो दन्ती क्षारः शिखरिजोऽथवा ॥ ६७ ॥ दद्यात्संकुष्ठकं वैद्यः सुवर्णक्षीर्य्यभावतः । अभावादम्लवेतस्य पक्कं चुक्रं प्रयोजयेत् ॥ ६८ ॥

वाराहकांताके अभावमें मजीठ लेना चाहिये । चीतेके अभावमें दंती अथवा चिरचिटेका खार लेना चाहिये । सत्यनाशी कटेरी (चोक) के अभावमें कूठ लेना चाहिये । और अमलवेंतके अभावमें पक्क चुक प्रयोग करना चाहिये ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

अर्कपर्णादिपयसो ह्यभावे तद्रसो मतः । रसाञ्जनस्याभावे तु सम्यग्दार्वी प्रयुज्यते ॥ ६९ ॥

आकके पत्तोंके दूध आदिके अभावमें उनके पत्तोंका रस लेना चाहिये और रसौतके अभावमें दारुहलदी लेनी चाहिये ॥ ६९ ॥

नीलोत्पलस्याभावे तु कुमुदं देयमिष्यते । रक्तचन्दनकाभावे नवोशीरं विदुर्बुधाः ॥ ७० ॥

नीलोत्पलके अभावमें कुमुद लेना चाहिये और लालचंदनके अभावमें नवीन खस लेनी चाहिये ७० ॥

श्रीखण्डचन्दनाभावे देयं कर्पूरमिष्यते । कर्पूराभावतो देयं ग्रन्थिपर्णं विशेषतः ॥ ७१ ॥

श्रीखण्डचन्दनके अभावमें कर्पूर लेना चाहिये । तथा कपूरके अभावमें विशेषकर गठिवन लेना चाहिये ॥ ७१ ॥

रुचकाभावतो दद्याल्लवणं विडमुत्तमम् । शल्लक्यभावतो देयं शिखिपिच्छञ्च तद्गुणम् ॥ ७२ ॥

कालेनमकके अभावमें विड़नमक लेना चाहिए । और शल्लकीके अभावमें तद्गुणसम्बन्धी मयूरपिच्छ लेनी चाहिये ॥ ७२ ॥

अभावे हिंगुपत्र्यास्तु हिंगु तद्गुणकारकम् । ऊषराभावतो देयं लवणं पांशुपूर्वकम् ॥ ७३ ॥

हींगपत्रीके अभावमें समान गुणवाली होनेसे हींग लेनी चाहिये । खारीनमकके अभावमें रेहगवाँनमक लेनी चाहिये ॥ ७३ ॥

अन्योन्याभावतोऽन्योन्यं देयं वैद्येन जानता । सिताभावे भवेत् खण्डः शाल्यभावे च षष्ठिकः ॥ ७४ ॥

अन्यान्य द्रव्य जो कि यहाँ नहीं कहे हैं उनके अभावमें उन्हींके समान गुणोंवाले अन्यान्य द्रव्य वैद्यको विचार कर लेने चाहिये । मिश्रीके अभावमें खाँड लेनी चाहिये और शालिधानोंके अभावमें साठीधान लेने चाहिये ॥ ७४ ॥

सुवर्णमथवा रूप्यं योगे यत्र न लभ्यते । तत्र लोहेन कर्माणि भिषक्कुर्य्याद्विचक्षणः ॥ ७५ ॥

जहाँ सुवर्ण अथवा चांदी नहीं मिले वहाँ वैद्यको लोहेके द्वारा कार्य करना चाहिये ॥ ७५ ॥

तालीशपत्राभावे तु स्वर्णताली प्रशस्यते । अभावान्नागपुष्पस्य पद्मकेसरमुच्यते ॥ ७६ ॥

तालीसपत्रके अभावमें सुवर्णतालीस लेना चाहिये नागकेशरके अभावमें कमलकेशर लेनी चाहिये ७६ ॥

सौराष्ट्र्यभावतो ज्ञेया कठिनी गुणकारिणी । अभावे लक्ष्मणायास्तु नीलकण्ठशिखा मता ॥ ७७ ॥

फिटकरीके अभावमें समान गुणवाली होनेसे सेलखडी अथवा खडियामिट्टी लेनी चाहिये । लक्ष्मणाके अभावमें मयूरशिखाकी जड लेनी चाहिये ॥ ॥ ७७ ॥

यूथिकाभावतो ज्ञेया जाती तद्गुणकारिणी। मयूराऽभावतो दद्याच्छशहंसाखुकानपि॥ ७८॥

जुहीके अभावमें समान गुण करनेवाली चमेली लेनी चाहिये। मोरके अभावमें खरगोस, हंस अथवा मूसा लेना चाहिये॥ ७८॥

कंकोलाऽभावतो जाती शस्ता तस्या अभावतः। लवङ्गकुसुमं देयं यतो दृष्टं तदर्थकृत्॥ ७९॥ बन्धूकाऽभावतो देयं पुष्पं पुन्नागसम्भवम्। बकुलाभावतो देयं कह्लारोत्पलपंकजम्॥ ८०॥

कंकोलके अभावमें जायफल लेना चाहिये। जायफलके अभावमें लौंग लेनी चाहिये। दुपहरियाके फलके अभावमें नागकेशर लेनी चाहिये। मौलश्रीके अभावमें लाल कुमुद, उत्पल और कमल लेना चाहिये॥ ७९॥ ८०॥

माक्षिकस्याप्यभावे तु प्रदद्यात्स्वर्णगैरिकम्। अभावे सोमराज्यास्तु प्रपुन्नाटफलं मतम्॥ ८१॥

सोनामाखीके अभावमें सोनागेरू लेना चाहिये। बावचीके अभावमें पमारके फल लेने चाहिये॥८१॥

दारुहरिद्राभावे तु हरिद्रा दीयते बुधैः। अहिंस्राया अभावे तु मानकन्दः प्रकीर्त्तितः॥ ८२॥

दारुहलदीके अभावमें हलदी लेना चाहिये। अहिंस्र (हींस) के अभावमें मानकंद लेना चाहिये॥ ८२॥

तुम्बुरुतैलाभावे तु हितमारुष्करं यदि। यदा न पौष्करं मूलं कुष्ठं योज्यं तदा बुधैः॥ ८३॥

तुम्बुरुके तेलके अभावमें भिलावे लेने चाहिये। जब पोहकरमूल न मिले तो वैद्यको कूठ लेना चाहिये॥ ८३॥

लाङ्गल्यभावतो वह्निपर्त्री दद्याद्भिषग्वरः। असम्भवे तु द्राक्षायाः काश्मर्याः फलमिष्यते॥ ८४॥

कलिहारीके आभावमें अग्निपत्री लेनी चाहिये, दाखके अभावमें कुम्भेरका फल लेना चाहिये॥८४॥

तयोरभावे पुष्पन्तु मधूकस्य समीरितम्। न भवेद्दाडिमं यत्र वृक्षाम्लं तत्र योजयेत्॥ ८५॥ चविकागजपिप्पल्यौ पिप्पलीमूलवत्स्मृते। अभावे पृश्निपर्ण्यास्तु सिंहपुच्छी विधीयते८६॥

इन दोनोंके अभावमें अर्थात् जहाँ दाख और कुम्भेरका फल ये दोनों न मिलें तो महुवेके फूल लेने चाहिये। जहाँ अनार नहीं मिले वहाँ विषांबिल (तित्तिडीक) लेना चाहिये। चव्य और गजपीपलके अभावमें पीपलामूल लेना चाहिये। और पृश्निपर्णीके अभावमें सिंहपुच्छी लेनी चाहिये॥ ८५॥ ८६॥

मूर्वाभावे त्वचं ग्राह्या लताजिङ्गिन्यसम्भवे। न तं तगरपादी स्यादभावे कुष्ठमिष्यते॥ ८७॥

मूर्वाके अभावमें जिंगीनीकी छाल लेनी चाहिये। और तगरके अभावमें कूठ लेना चाहिये॥ ८७॥

युञ्जातः पश्चिमे ख्यातो ग्राह्यं तालस्य मस्तकम्। भल्लातकासहत्वे तु रक्तचन्दनमिष्यते॥ ८८॥

युञ्जात इस नामसे पश्चिममें जो प्रसिद्ध है उसके अभावमें ताड़का मस्तक लेना चाहिये। तथा भिलावेके अभावमें लालचन्दन लेना चाहिये॥ ८८॥

रसवीर्य्यविपाकाद्यैः समं द्रव्यं विचिन्त्य च। युञ्ज्यात्तद्विधमन्यन्तु द्रव्यज्ञानविशारदः॥ ८९॥

इसके शिवाय अन्यान्य औषधियोंकी जो प्रतिनिधि नहीं कही हैं, उनकी उन ही औषधियोंके रस, वीर्य्य और विपाक आदिके तुल्य अन्य औषधियोंको जाननेमें चतुर वैद्य विचार कर उसको प्रयोगमें डाले॥ ८९॥

पयः सर्पिः प्रयोगे च गव्यमेव प्रशस्यते। मूत्रे गोमूत्रमप्येवं विशेषो यत्र नेरितः॥९०॥

जहाँ दूध अथवा घृत ऐसा लिखा हो वहाँ गायका दूध और घृत लेना चाहिये । एवं जहाँ केवल मूत्र शब्द लिखा हो वहाँ गोमूत्र लेना चाहिये ॥ ९० ॥

सारः स्यात्खदिरादीनां निम्बादीनां त्वचस्तथा । फलं तु दाडिमादीनां पटोलादेश्छदस्तथा ॥ ९१ ॥

खदिरादि वृक्षोंका सार लेना चाहिये । नीम आदि वृक्षोंकी छाल लेनी चाहिये । अनार आदिके फल लेने चाहिये और पटोलादिके पत्ते लेने चाहिये ॥ ९१ ॥

महान्ति यानि मूलानि काष्ठगर्भाणि यानि च । तेषान्तु वल्कलं ग्राह्यं ह्रस्वमूलानि कृत्स्नशः ॥ ९२ ॥

जिन वृक्षोंकी जड़ बहुत बड़ी बड़ी और छालसे लिपटी हुई है, उनकी छाल लेनी चाहिये । जिनकी छोटी जड़ हो उनका सर्वांग लेना चाहिये ॥ ९२ ॥

कूर्म्मपृष्ठा नरास्थीव मध्ये निम्ना समाचला । दुर्गन्धा शब्दसंयुक्ता शिला नेष्टा तु पेषणे ॥ ९३ ॥

कछुएकी पीठके समान, मनुष्यके कपालके समान, बीचमें नीचा एक समान और स्थिर ऐसा खरल उत्तम होता है । दुर्गन्धित और जिसमें पेषण करते समय शब्द हो ऐसा खरल उत्तम नहीं होता ९३

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायां द्रव्यगुणाधिधिकार समाप्त ॥ ८४ ॥

अथ गणपाठाधिकार ।

स्थिरापुनर्नवैरण्डशंखसर्षपजीवकाः । श्वदंष्ट्राभरुलांगूलीविदारीहंसपादिकाः ॥ १ ॥ बृहत्यौ पृश्निपर्णी च विश्वेदेवा महाबलाः । सहाशृगालविन्ना च वृश्चिकाली महासहा ॥ शोषगुल्मानिलश्वासकासपित्तहरो गणः॥२॥

शालिपर्णी, पुनर्नवा, अंडका जड, शंख या शंखपुष्पी, सरसों, जीवक, गोखुरू, शतावर, कलिहारी, विदारीकंद, हंसपदी, बड़ी कटेरी, कटेरी, प्रश्निपर्णी, गंगेरन, सहदेवी, पियाबांसा, पिठवनका भेद, बिछाटी और माषपर्णी इन सब औषधियोंके समुदायको स्थिरादिगण कहते हैं । यह स्थिरादिगण-शोष, गुल्म, वात, श्वास, खांसी और पित्तको दूर करता है १॥२

आरग्वधो निशांबष्ठा करकस्तापसद्रुमः । क्षुद्रश्वेता महाश्वेता वृश्चिकालीत्ययं गणः ॥ व्रणकुष्ठविषश्वासकृमिमेदःकफापहः ॥ ३ ॥

अमलतास, हल्दी, मोइया, करंज, हिंगोट, क्षुद्रश्वेता, महाश्वेता और वृश्चिकाली इन सब औषधियोंके समुदायको आरग्वधादिगण कहते हैं । यह आरग्वधादिगण-व्रण, कुष्ठ, विष, श्वास, कृमि, मेद और कफको नष्ट करता है ॥ ३ ॥

सुरसे कासमर्दश्च फणिज्जार्जकभूस्तृणम् । निर्गुण्डी सुरसा फञ्जी कुलाहलसुगन्धकौ ॥ ४ ॥ क्षवकः कालमालश्च क्षवपुष्टिः प्रचीवलः । विडङ्गः काकमाची च मरिचो मूषकर्णिका ॥ ॥ ५ ॥ सुपर्णी चेति वर्गोऽयं कृमिश्लेष्मविनाशनः । कासारुचिप्रतिश्यायश्वासहा व्रणशोधनः ॥ ६ ॥

श्वेततुलसी, कालीतुलसी, कसौंदी, वनतुलसी, सफेद वनतुलसी, भूस्तृण, निर्गुण्डी, साधारण तुलसी, भारंगी, कुलाहल (भुइकदंब), सुगन्धक (बृहद्गन्ध तृण), नकछिकनी, कालमाल, काले पत्तोंकी छोटी वनतुलसी (गूमा) कौआठोडी, वायविडंग, मकोय, मिरच, मूसाकर्णी और सुपर्णी (पनडी) इन सब औषधियोंके समुदायको सुरसादिगण कहते हैं । यह वर्ग-कृमि, कफ, खांसी, अरुचि, प्रतिश्याय और श्वासको दूर करता है तथा व्रणको शोधन करनेवाला है ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥

कुष्ठकं त्रिफलाराठं वृश्चिकाग्निः स्नुहीपयः । वातारिरप्यपामार्गो मेदोऽर्शोऽश्मरिमेहहा ॥ ७ ॥

कूठ, त्रिफला, हींग, विछाटी, चीता, थूहरका दूध, अंडकी जड और चिरचिटा इन सब औषधियोंके समुदायको कुष्ठादिगण कहते हैं। यह–मेद, बवासीर, पथरी और प्रमेहको दूर करता है ॥ ७ ॥

पिप्पल्यग्निवचावासा-कालग्रन्थिकमुस्तकम् । भार्ङ्गीमूर्वा महानिम्बं पाठा यष्टी च सर्षपः ॥ हिंगुतिक्ता विडङ्गश्च वातश्लेष्महरो गणः ॥ ८ ॥

पीपल, चीता, वच, अडूसा, गठिवन, नागरमोथा, भारंगी, मूर्वा, बकायन, पाढ, मुलैठी, सरसों, हींग, कुटकी और वायविडंग इन सब औषधियोंके समुदायको पिप्पल्यादिगण कहते हैं । यह वात कफको दूर करता है ॥ ८ ॥

एला चक्राह्वकौन्तीत्वक्पत्ररोमाह्वरोचकाः । चण्डाश्वफलपुन्नागदारुसर्जरसोनतम् ॥ ९ ॥ शकृच्छुक्तिदधिध्यामकुन्दरुव्याघ्रहस्तजाः।एलादिपिडकाकण्डूविषानिलकफान्तकृत् ॥ १० ॥

इलायची, पमार, रेणुका, दालचीनी, तेजपात, रोमाह्व (पेंडस), लालप्याज, भटेउर, पीपलफल, पुन्नागवृक्ष, देवदारु, राल, तगर, गोबर, काँजी, दही, रोहिसतृण, कुन्दरु और एरंडवृक्ष, इन सब औषधियोंको एलादिगण कहते हैं। यह गण–पिडिका, खुजली, विष, वायु और कफको नष्ट करता है ॥ ९ ॥ १० ॥

वचाजलजदेवाह्वानागरातिविषाभयाः। हरिद्राद्वययष्ट्याह्वकलशीकुटजोद्भवा ॥११॥ वचाहरिद्रादिगणौ वातातीसारनाशनौ । मेदःकफाढ्यपवनस्तन्यदोषनिबर्हणौ ॥ १२ ॥

बच, नागरमोथा देवदारु, सोंठ, अतीस, हरड, हल्दी, दारुहल्दी, मुलैठी, पृश्निपर्णी और इन्द्रजौ इन औषधियोंके गणको वचादिगण तथा ही गण कहते हैं । ये दोनों गण वातातिसारको नष्ट करते हैं तथा मेद, कफ, आमवात और स्तनोंके दूधके रोगोंको दूर करते हैं ॥ ११ ॥ १२ ॥

मूर्वा घण्टामृताराठपाठाभूनिम्बकूलकाः । करञ्जवरशैरीयसुषवीसकठिल्लकाः ॥ मेहकुष्ठज्वरच्छर्दिविषश्लेष्महरो गणः ॥ १३ ॥

मूर्वा, कटपाढल, गिलोय, हींग, पाढ, चिरायता, पटोलपात, करञ्ज, अदरख, पियावांसा, करेला और वनकरेला इन सब औषधियोंके समुदायको मूर्वादिगण कहते हैं । यह गण–प्रमेह, कुष्ठ, ज्वर, वमन, विषबाधा और कफको नष्ट करता है ॥ १३ ॥

सालस्यन्दनकालीयधवसर्जार्जुनासनाः। शिरीषशिंशपाभूर्जखादिरं चन्दनद्वयम् ॥ १४ ॥ कदरो वाजिकर्णश्च करञ्जः केम्बकोऽगुरुः। गणोऽयं कफपांडुत्वकुष्ठमेहविनाशनः ॥ १५ ॥

शाल, तिनिश, कलम्बक, धौं, पियासाल, अर्जुन, विजयसार, शिरस, सीसम, भोजपत्र, खैर, चन्दन, लालचन्दन, सफेदखैर, अश्वकर्णशाल, करंज, केमुक और अगर इन सब औषधियोंके समूहको शालादि गण कहते हैं । यह गण–कफ, पांडुता, कुष्ठ और प्रमेह इन सबको नष्ट करता है ॥ १४ ॥ १५ ॥

वारुणी तगराभीरुबिल्वजातीविषाणिकाः । मैरेयबृहतीयुग्मदर्भपूतीकशिंशपाः ॥ १६ ॥ जयाग्निमन्थबिल्वाग्निनक्तमालाग्निमोरटाः । वर्गोऽन्तर्विद्रधिश्लेष्ममेदोगुल्मशिरोर्त्तिनुत् ॥ १७ ॥

इन्द्रायण, तगर, शतावर, बेल, जायफल, काकड़ाशिंगी, मैरेय दोनों प्रकारकी कटेरी, डाभ, दुर्गन्धकरंज, सीसम, मेथी, अरणी, चीता, करंज और मोरठ इन सब औषधियोंका गण–अन्तर्विद्रधि, कफ, मेद, गुल्म और शिरकी पीडाको दूर करता है॥१६॥१७॥

वीरवृक्षोऽग्निमन्थश्च काशवृक्षादनीकुशाः । मोरटेन्दीवरीसूर्य्यभक्तादण्ड-

कगोक्षुराः ॥ १८ ॥ वसुको वसिरो दर्भसैरेयाश्मकभेदकाः । अश्मरी शर्करा कृत्स्नमारुतार्त्तिहरो गणः१९॥

वीरवृक्ष, अरणी, कांस, बांदा, कुशा, मोरट, शतावर, हुलहुल, दण्डक, गोखुरू, आक, चिरचिटा, डाभ, नीलेफूलका पियाबांसा और पाषाणभेद इन सब औषधियोंका समूह अश्मरी, शर्करा और सब प्रकार के वायुके विकारोंको दूर करता है ॥ १८ ॥ १९ ॥

रोध्रद्वयप्लवाशोकजम्भशैलेयवालुकाः । कदम्बो जिङ्गिनी चैव श्रीपर्णी च बहुस्रवा ॥ २० ॥ वर्गो लोध्रादिको नाम्ना कफमेदोविशोषणः । पानदोषहरो बल्यः स्तम्भी सर्वविषापहः ॥ २१ ॥

लोध, सफेदलोध, केवटीमोथा, अशोक, जम्भीरी नींबू, भूरिछरीला, रेणु, कदम, जिंगिनी कुम्भेर और शालई इन सब औषधियोंके समुदायको लोध्रादिगण कहते हैं । यह वर्ग—कफ और मेदको दूर करता है । मद्य तथा पानके दोषोंको हरनेवाला, बलकारक, स्तम्भक और सब प्रकारके विषोंको दूर करता है ॥ २० ॥ २१ ॥

अर्कालर्केन्दुपुष्पी च करञ्जो नागदन्तिका । रास्ना मधुकमायूरपादा एष गणः शुभः ॥ मेदःकफाढ्यः पवनस्तन्यदोषविनाशनः ॥ २२ ॥

आक, सफेद आक, कलिहारी, करंज, नागदन्ती, रास्ना, मुलैठी और मयूरपादा इन सब औषधियोंके समुदायको अर्कादिवर्ग कहते हैं। यह गण—मेद, कफ, आमवात और स्तनके दूधके दोषको दूर करता है ॥ २२ ॥

श्यामा दन्ती द्रवन्ती च यवाश्यामामृताऽमृताः । सप्तला शंखिनी श्वेता राजवृक्षः सतिल्वकः ॥ २३ ॥ कम्पिल्लकः करञ्जश्च हेमक्षीरीत्ययं गणः । उदावर्त्तोदरानाहविषगुल्मविनाशनः ॥ २४ ॥

निसोत, दन्ती, द्रवन्ति, मूसाकर्णी, यवेची, कालानिसोत, गिलोय, हरड, सातला, शंखपुष्पी, फटकरी, अमलतास, लोध, कवीला, करंज और सत्यानासीकटेरी इन सब औषधियोंके समुदायको श्यामादिगण कहते हैं । यह गण उदावर्त्त, उदररोग, आनाह, विष और गुल्मको नष्ट करता है ॥ २३ ॥ २४ ॥

बृहती धातकी पाठा यष्टीमधुकलिङ्गकाः । दीपनीयो बृहत्यादिः कृच्छ्रदोषत्रयापहः॥ २५ ॥

बडी कटेरी, धायके फूल, पाढ, मुलैठी और इन्द्रजौ इन सब औषधियोंके समुदायको बृहत्यादिगण कहते हैं । यह गण अग्निदीपक, मूत्रकृच्छ्र और त्रिदोषको नष्ट करता है ॥ २५ ॥

पटोलं चन्दनं मूर्वा पाठा तिक्तामृता घनः। पित्तश्लेष्मानिलच्छर्दिज्वरकण्डूविषापहः ॥ २६ ॥

परवल, चन्दन, मूर्वा, पाढ, कुटकी, गिलोय और नागरमोथा इन सब औषधियोंका समुदाय पित्त, कफ, वायु, वमन, ज्वर, खुजली और विषको दूर करता है ॥ २६ ॥

काकोली मधुकं शृङ्गी मेदे द्वे जीवकर्षभौ । अपौंडरीकं मृद्वीका ऋद्धिवृद्धी तुगासहा ॥ २७ ॥ पयस्या पद्मकं छिन्नेत्येष वर्गोऽतिबृंहणः । स्तन्यश्च जीवनीवृक्षः पित्तास्रानिलनाशनः ॥ २८ ॥

काकोली, मुलैठी, काकडाशिंगी, मेदा, महामेदा, जीवक, ऋषभक, पुण्डेरिया, दाख, ऋद्धि, वृद्धि, वंशलोचन, खिरैंटी, क्षीरकाकोली, पद्माख, गिलोय और जीवन्ती इन सब औषधियोंके समूहको काकोल्यादिवर्ग कहते हैं।यह वर्ग—अत्यन्त पुष्टिकारक, स्तनोंमें दूधको उत्पन्न करनेवाला, एवं जीवन प्रदान करनेवाला, पित्त और रक्तको दूर करनेवाला है॥२७॥२८॥

उषसैन्धवकाशीसद्वयहिंगुशिलाजतु। तुत्थकं चेति मेदघ्नः शर्कराश्मरिहृद्गणः ॥ २९ ॥

खारी, सैंधानमक, कसीस, हीराकसीस, हींग, शिलाजीत और तूतिया इन सब औषधियोंका समुदाय भेद, शर्करा और अश्मरीको नष्ट करता है॥२९॥

सारिवा पद्मकोशीरं मधुकं चन्दनद्वयम् । काश्मरी मधुकं चेति सारिवादिरयं गणः ॥ ३० ॥ रक्तपित्तं निहन्त्याशु तृष्णां चातिप्रमाथिनीम् । तीव्रपित्तज्वरामर्द–सर्वदाहविनाशनः ॥ ३१ ॥

सारिवा, पद्माख, खस, मुलैठी, चन्दन, लालचन्दन, कुम्भेर और महुआ इन सब औषधियोंके समुदायको सारिवादिगण कहते हैं। यह गण–रक्त, पित्त, भयंकर तृषा, तीव्र पित्तज्वर, अंगोंका टूटना, दाह और अन्यान्य सब प्रकारके पित्तरोगोंको दूर करता है ॥ ३० ॥ ३१ ॥

अञ्जनं फलिनी मांसी पद्मोत्पलरसाञ्जने । एला मधुकनागाह्वा विषान्तर्दाहपित्तनुत ॥ ३२ ॥

अञ्जन, फूलप्रियंगू, बालछड, कमल, कमोदनी, रसौत, इलायची, मुलैठी और लक्ष्मणाकन्द इन सब औषधियोंके समुदायको अञ्जनादिगण कहते हैं। यह वर्ग-विषबाधा, अन्तर्दाह और पित्तको नष्ट करता है ॥ ३२ ॥

परूषो दाडिमं द्राक्षा काश्मरी काकजं फलम् । राजादनं सधात्रीकं कतकेन समन्वितम् ॥ ३३ ॥ परूषकादिको नाम्ना गणो वातामयापहः । हृद्यो रुचिप्रदस्तृष्णामूत्रदोषविनाशनः ॥ ३४ ॥

फालसा, अनार, दाख, कुम्भेर, काकजफल, खिरनी, आमले और निर्मलीफल इन सब औषधियोंके समुदायको परूषकादिवर्ग कहते हैं। यह परूषकादिवर्ग वातरोगोंको नष्ट करनेवाला, हृदयको हितकारी, रुचिकारक, तथा तृषा और मूत्रके विकारोंको दूर करता है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

प्रियंगु–समांगा–धातकीलोध्रपुन्नागचन्दनकुचन्दनमोचरसाञ्जनकुम्भीकस्रोतोऽञ्जनपद्मकेसरयोजनवल्ल्यो दीर्घमूला चेति ।

फूलप्रियंगू, लज्जावन्ती, धायके फूल, लोध, पुन्नाग, चन्दन, लालचन्दन, मोचरस, अञ्जन, जलकुम्भी, सफेद अञ्जन, कमलकेशर, मंजीठ और शालिपर्णी इनको प्रियंग्वादिगण कहते हैं।

अम्बष्ठा धातकी लोध्रसमंगापद्मकेसरम् । मधुकारलुबिल्वश्च गणो मुनिभिरीरितः ॥ ३५ ॥

पाढ, धायके फूल, लोध, मजीठ, कमलकेशर, मुलैठी, अरलु और बेल इन सब औषधियोंको अम्बष्ठादिगण कहते हैं ॥ ३५ ॥

प्रियंग्वम्बष्ठकादी च पक्वातिसारनाशनौ । सन्धानीयौ हितौ पित्ते व्रणानां चातिरोपणौ ॥ ३६ ॥

ऊपर जो प्रियंग्वादिगण कहा है वह और यह अम्बष्ठकादिगण ये दोनों पक्वातिसारको नष्ट करते हैं। एवं टूटे हुए हाड़को जोड़नेवाले, पित्तमें हितकारी और व्रणको भरनेवाले हैं॥ ३६ ॥

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थमधुकप्लक्षातिन्दुकाः । प्रियालबदरीपार्थनन्दिवृक्षाम्लजम्भलाः ॥ ३७ ॥ पलशोऽरुष्करः श्वेतः लोध्रजम्बूरयं गणः। पित्तासृङ्मेहनुद्व्रण्यो योनिदाहनिवारणः॥३८॥

वड, गूलर, पीपल, महुवा, पाखर, तेंदू, चिरौंजी, बेर, अर्जुन, नन्दीवृक्ष, जम्भीरी, ढाक, भिलावे, सफेद लोध और जामुन इन सब औषधियोंके समुदायको न्यग्रोधादिगण कहते हैं। यह न्यग्रोधादिगण–रक्तपित्त, प्रमेह और योनिके दाहको दूर करता है तथा व्रणोंको हितकारी है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

गुडूचीनिम्बधान्याकमधुकं चन्दनान्वितम् । तृष्णादाहारुचिच्छर्दिसर्वज्वरहरो गणः ॥ ३९ ॥

गिलोय, नीम, धनियाँ, मुलैठी और चन्दन इन सब औषधियोंके समुदायको गुडूच्यादिवर्ग कहते हैं। यह

तृषा, दाह, अरुचि, वमन और सर्वप्रकारके ज्वरोंको दूर करता है ॥ ३९ ॥

उत्पलं कुमुदं पद्मं कह्लारं लोहितोत्पलम् । मधुकं चेति पित्तास्रविषच्छर्दिहरो गणः ॥ ४० ॥

सफेद कमल कमोदिनी, कमोदिनी, कमल, लाल कमोदिनी, लालकमल और मुलैठी इन सब औषधियोंके समुदायको उत्पलादिगण कहते हैं। यह गण-रक्तपित्त, विष, और वमनको दूर करता है ॥ ४० ॥

मुस्ता पाठा हारिद्रे द्वे तिक्ता हैमवती वचा । द्रवन्त्यतिविषा कुष्ठं भल्लातकफलत्रयम् ॥ ४१ ॥ साम्बष्ठं चेति वर्गोऽयं कफरोगनिषूदनः । शोधनः पाचनः स्तन्यो योनिदोषहरो गणः ॥ ४२ ॥

नागरमोथा, पाढ, हलदी, दारुहलदी, कुटकी, सत्यानासी कटेरी, वच, द्रवन्ती, अतीस, कूठ, भिलावे, त्रिफला और पाढ इन सब औषधिके समुदायको, मुस्तकादिगण कहते हैं। यह मुस्तकादिगण-कफरोगोंको नष्ट करता है। तथा शोधन, पाचन, स्तनोंमें दूधको उत्पन्न करनेवाला और योनिके विकारोंको दूर करता है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

अक्षधात्र्यभया हन्ति त्रिफलाविषमज्वरम् ॥ चक्षुष्या दीपनी पित्तकुष्ठमेहकफान्तकृत् ॥ ४३ ॥

बेहडा, आमला और हरड़ इन तीनों औषधियोंके समुदायको त्रिफला कहते हैं । यह त्रिफला-विषमज्वरको हरनेवाला, नेत्रोंको हितकारी, अग्निको दीपन करनेवाला तथा पित्त, कोढ, प्रमेह और कफको हरनेवाला है ॥ ४३ ॥

आमलक्यभया कृष्णा चित्रकश्चेत्ययं गणः । सर्वज्वरकफघ्नश्च भेदी दीपनपाचनः ॥ ४४ ॥

आमले, , पीपल और चीता इन सब औषधियोंका समूह सब प्रकारके ज्वर और कफको नष्ट करता है । तथा भेदक, दीपन और पाचन है ॥ ४४ ॥

त्रपु ताम्रमयः शीसं हेम रूप्यश्च तन्मयः । वर्गश्च शूलहृद्रोगपांडुमेहगदापहः ॥ ४५ ॥

रांग, तांबा, लोहा, सीसा, सुवर्ण, रूपा और लोहमल इन सब औषधियोंका वर्ग-शूल, हृदयरोग, पांडुरोग और प्रमेहको नष्ट करता है ॥ ४५ ॥

लाक्षारेवतकुटजाऽश्वमारकट्फलहरिद्राद्वयनिम्बसप्तच्छदमालत्यस्त्रायमाणा चेति ।

लाख, अमलतास, कुडेके बीज, कनेर, कायफल, हलदी, दारुहलदी, नीम, सतौना, मालती और त्रायमाण इन सब औषधियोंके समुदायको लाक्षादिवर्ग कहते हैं।

कषायतिक्तमधुरः कफपित्तार्त्तिनाशनः । कुष्ठकृमिहरश्चैव दुष्टव्रणविशोधनः ॥ ४६ ॥

यह लाक्षादिवर्ग-कषैला, कडवा, मधुर, कफ और पित्तकी पीडाको हरनेवाला, कुष्ठ और कृमिरोगको दूर करनेवाला तथा व्रणको शुद्ध करनेवाला है ॥ ४६ ॥

बिल्वोऽग्निमन्थः श्योनाकः श्रीपर्णी पाटला महत् । दीपनं कफवातघ्नं पञ्चमूलमिति स्मृतम् ॥ ४७ ॥

बेल, अरणी, श्योनाक, कुम्भेर और पाढर इन पांचो औषधियोंके समुदायको बृहत् पंचमूल कहते हैं। यह अग्निदीपक और कफवातनाशक है ॥४७॥

पृश्निपर्णी स्थिरा चैव बृहतीद्वयगोक्षुरम् । बृंहणं कफवातघ्नं पञ्चमूलं कनिष्ठकम् ॥ ४८ ॥

पृश्निपर्णी, शालिपर्णी, कटेरी, बड़ीकटेरी और गोखुरू इन सब औषधियोंको लघुपंचमूल कहते हैं। यह लघुपंचमूल-पुष्टिकारक और कफवातनाशक है ॥ ४८ ॥

विदारी सारिवाछागशृङ्गी वत्सादनी निशा । कृच्छ्रपित्तानिलहरं वल्लीजं मूलपञ्चकम् ॥ ४९ ॥

विदारीकंद, सारिवा, मेढाशिंगी, गिलोय और हलदी, इन सब औषधियोंके समुदायको वल्लीजपंचमूल कहते हैं। यह वल्लीजपंचमूल-मूत्रकृच्छ्र और पित्तवातको नष्ट करता है ॥ ४९ ॥

गृध्रनखी श्वदंष्ट्रा च शैरेयकरमर्दिका । एतच्छ्लेष्मानिलौ हन्ति कण्टकं मूलपञ्चकम् ॥ ५० ॥

गृध्रनखी, गोखुरू, दो प्रकारका पियाबाँसा और कालाबाँसा, करौंदा, इनको कंटकपंचमूल कहते हैं । यह कफ और वायुको नष्ट करता है ॥ ५० ॥

कुशः काशद्वयं दर्भो नलश्चेति तृणोद्भवम् । पित्तकृच्छ्रहरं पञ्चमूलं बस्तिविशोधनम् ॥ ५१ ॥

कुशा, दोनोप्रकारकी काँस, डाभ और नरसल इन पाँचोंकी जड़को तृणपंचमूल कहते हैं । यह तृणपंचमूल-पित्तनाशक और मूत्रकृच्छ्रके विकारोंको हरनेवाला तथा बस्तिशोधक है ॥ ५१ ॥

एतैस्तैलानि सर्पींषि प्रलेपं पानकान्यपि । गणैर्विभज्य कुर्वीत यथाविधि भिषग्वरः ॥ ५२ ॥

वैद्योंको इन उपर्युक्त औषधियोंके गणोंके द्वारा तथा विधिसे तेल, घृत, प्रलेप, काथ प्रभृति पृथक् पृथक् प्रस्तुत करने चाहिये ॥ ५२ ॥

एकद्विद्रव्यहीनोऽपि क्रियायोग्यो बृहद्गणः । हृत्वा तु तत्समं द्रव्यमथ योज्योऽल्पभेषजः ॥ ५३ ॥

बुद्धिमान् वैद्यको उचित है कि, यदि इन गणोंमें एक, दो औषधि नहीं मिले तो भी उसको प्रयोगमें मिलावे अथवा उनके परिवर्त्तनमें उनहींके समान गुणवाली अन्य औषधि मिलावे या थोडी ही औषधियोंके द्वारा कर्म्म करे ॥ ५३ ॥

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायां द्रव्यगणाधिकार समाप्त ॥ ८५ ॥

अथ संशोधनसंशमनरसद्रव्यादीनां वर्गाधिकार ।

अब संशोधन और संशमन औषधियोंका वर्णन करते हैं ।

मदनकुटज-जीमूतेक्ष्वाकुधामार्गवलोध्रकृतवेधन-सर्षप-विडङ्गपिप्पली-करञ्ज-प्रपुन्नाट-कोविदार-पीलु-कर्चूरनत-कटुम्भरारिष्टाश्वगन्धाजगन्धाविदुलबन्धुजीवकश्वेताशतपुष्पाबिंबीवचैर्वारुकचित्रकश्चेत्यूर्ध्वभागहरा इति । तत्र कोविदारपूर्वाणां फलानि, कोविदारादीनां मूलानि ।

मैनफल, इन्द्रजौ, नागरमोथा, बंदाल, कडवीतोम्बी, कडवीतोरई, लोध, सरसों, वायविडंग, पीपल, करंज, पमार, कचनार, पीलू, कचूर, तगर, कुटकी, नीम, असंगन्ध, वनतुलसी, वेंत, जियापोता, सफेद कटभी, सौंफ, कन्दूरी, वच, कडवी ककडी और कचरिया ये सब औषधियाँ वमनके द्वारा ऊर्ध्वभागको शुद्ध करती हैं । इनमें कचनार (कोविदार) से पहले जो औषधियाँ हैं उनके फल लेने चाहिये और कचनारसे लेकर कचरिया (चित्रा) पर्यन्त औषधियोंकी जडें लेनी चाहिये ।

त्रिवृच्छ्यामा-दन्ती-द्रवन्ती-सप्तला-शंखिनी-विषाणिका-गवाक्षी-छगलान्त्री-स्नुहीसुवर्णक्षीरी-चित्रक-किणिहीकुशकाशतिल्वक-काम्पिल्लकचम्पकरम्यकपाटलापूगहरीतक्यामलकबिभीतक-नीलिनी-चतुरंगुल-पूतीकारग्वध-महावृक्ष-सप्तच्छदार्कज्योतिष्म-

त्यश्चेत्यधोभागहरा इति । तत्र तिल्वकपूर्वासां मूलानि तिल्वकादीनां पाटलान्तानां त्वचः । काम्पिल्लकफलरज इति पूगादीनामेरण्डान्तानां फलानि । पूतीकारग्वधयोः पत्राणि । शेषाणां क्षीराणीति ।

निसोत, कालानिसोत, दन्ती, द्रवन्ती, (मूसाकानी) सातला, शंखाहुली, मेढाशिंगी, गोरखककडी, नीलबोना, थूहर, सत्यानासी कटेरी, चीता, कटभी, कुशा, कास, लोध, कवीला, चम्पा, बकायन, पाढल, सुपारी, हरड, आमला, बहेडा, नील, अमलतास, दुर्गन्ध करंज, सैंड, सतवन, आक और मालकांगनी ये औषधियाँ विरेचनके द्वारा अधोभागको शुद्ध करती हैं। इनमें लोधसे पहली जो औषधियाँ हैं उनकी जडें लेनी चाहियें और लोधसे पाढलतक जो औषधियाँ हैं, उनकी छाल लेनी चाहिये। कबीलेके फलकी रज लेनी चाहिये । सुपारीसे अण्डतक जो औषधियां हैं उनके फल लेने चाहिये । दुर्गन्धकरंज और अमलतासके पत्ते लेने चाहिये और शेष औषधियोंका दूध लेना चाहिये ।

कोशातकीसप्तलाशङ्खिनीदेवदालीकारवल्लिका चेत्युभयतो भागहरा एतासां स्वरसा इति ।

तोरई, सातला, शंखाहुली, वंदालडोडा और करेला ये सब औषधियां वमन और विरेचन दोनोंकार्य करनेवाली हैं, इनका स्वरस लेना चाहिये ।

पिप्पलीविडङ्गापामार्गशिग्रुशिरीषसिद्धार्थकमरिच-करवीरबिम्बी-गिरिकर्णिका-किणिही-वचाज्योतिष्मती-करञ्जार्कालर्कलशुनातिविषाशृङ्गवेर-तालीसतमालसुरसार्जकेङ्गुदीमेषशृङ्गी-मातुलुङ्गीमुरुङ्गी-पीलुजातीसालतालमधूकलाक्षाहिंगुलवणमद्यगोशकृद्रसमूत्राणि चेति शिरोविरेचनानि । तत्र करवीरपूर्वासां फलानि-करवीरादीनामर्कान्तानां मूलानि तालीसपूर्वासां कन्दाः । तालीसादीनामर्जकान्तानां पत्राणि।इंगुदीमेषशृङ्गयोस्त्वक् । मातुलुङ्गीरुङ्गीपीलुजातीनां पुष्पाणि । सालतालमधूकानां साराः । लाक्षाहिंगुनिर्य्यासौ । लवणानि पार्थिवविशेषाः। मद्यमांसासवसंयोगाः । गोशकृद्रसमूत्रे मलाविति ।

पीपल, वायविडंग, चिरचिटा, सहिंजना, सिरस, सफेद सरसों, कालीमिरच, कनेर, कन्दुरी, कोयल, कटभी, वच, मालकांगनी, करंज, आक, सफेद आक, लहसुन, अतीस, अदरख, तालीसपत्र, तमाल, तुलसी, वनतुलसी, हिंगोट, मेढाशिंगी, बिजौरा, लालफूलका सहिंजना, पीलू, चमेली, साल, ताड, महुआ, लाख, हींग, लवण, मदिरा, गोबरका रस, और गोमूत्र ये सब औषधियां शिरोविरेचन करनेवाली हैं । इनमें कनेरसे जो पहले औषधियां हैं, उनके फल लेने चाहिये और कनेरसे लेकर आकतक जो औषधियां हैं उनकी जड़ें लेनी चाहिये । तालीसपत्रसे जो पहले औषधियां हैं, उनका कंद लेना चाहिये और तालीसपत्रसे लेकर वनतुलसीतक जो औषधियां हैं उनके पत्ते लेने चाहिये हिंगोट और मेढाशिंगीकी छाल लेनी चाहिये। बिजौरानींबू, लाल सोंजना, पीलू और चमेली इनके फूल लेने चाहिये । साल, ताड और महुएका सार लेना चाहिये । लाख और हींग यह निर्य्यास है (गोंद या रस है)। लवण ये पार्थिव द्रव्य हैं । मद्य और मांसरस आसव है। गोबरका रस और गोमूत्र ये मल हैं।

अब इसके उपरांत संशमन औषधियोंका वर्णन करते हैं ।

तत्र भद्रदारुकुष्ठहरिद्रा-वरुणमेषशृङ्गी बलातिबलातगरार्त्तगलकच्छुराशल्लकी-कुबेराक्षी-वीरतरू-सहचराग्निमन्थ-वत्सादनी-श्वदंष्ट्राश्मभेद-कालकार्क-शतावरी-पुनर्नवावसुक-वासिरकर्बूर-भार्ङ्गीकार्पासीवृश्चिकाली-पत्तूर-बदर-यव-कोल-कुलित्थप्रभृति विदारिगन्धादिश्च द्वे

चाद्ये पञ्चमूल्यौ समासेन वातसंशमनो वर्गः।

देवदारु, कूठ, हलदी, वरणा, मेढाशिंगी, खिरैटी, कंघी, तगर, पियाबाँसा कौंच, सालई, पाढल, वीरवृक्ष, कालापियाबाँसा अरणी, गिलोय, गोखुरू, पाषाणभेद, सफेदआक, आक, शतावर, पुनर्नवा, साम्बरनमक, समुद्रनमक, कचिया, हल्दी, भारंगी, कपास, विछाटी, पतंग, बेर, जौ, बडेबेर और कुलथी इत्यादि तथा विदारीगन्धादिगणकी औषधियां और दोनों पंचमूल यह संक्षेपसे वातको संशमन करनेवाली औषधियोंका वर्ग कहा है।

चन्दनकुचन्दनह्रीबेरोशीरमंजिष्ठापयस्याविदारीशतावरीगुन्द्राशैवालकह्लारकोकनदोत्पलकदलीदूर्वाप्रभृतिकाकोल्यादिः सारिवादिन्यग्रोधादिरुत्पलादिस्तृणपञ्चमूलामिति समासेन पित्तसंशमनो वर्गः।

चन्दन, लालचन्दन, सुगन्धवाला, खस, मजीठ, क्षीरकाकोली, विदारीकन्द, शतावर, गुंद्रपटेर, शिवार, लालकमोदिनी, लालकमल, कमल, केला और दूब इत्यादि तथा काकोल्यादि, सारिवादि, न्यग्रोधादि, उत्पलादि गण और तृणपंचमूल यह संक्षेपसे पित्तको शमन करनेवाली औषधियोंका वर्ग कहा है॥

कालीयकागुरुतैलपर्णी-कुष्ठ-हरिद्राशीतशिवशतपुष्पासरलरास्नाप्रकीर्योदकीयेंगुदीसुमनःकाकादनीलाङ्गलकीहस्तिकर्णमुञ्जातलामज्जकादयो वल्लीकण्टकपञ्चमूल्यौ पिप्पल्यादिर्बृहत्यादिर्वचादिर्मुष्ककादिः सुरसादिरारग्वधादिरिति समासेन श्लेष्मसंशमनो वर्गः।

पीलाचन्दन, अगर, तिलपर्णी, कूठ, हलदी, सैंधानमक, सौंफ, धूपसरल, रास्ना, रीठा, करंज, हिंगोट, चमेली, घुँघुची, कलिहारी, हस्तिकर्णपलास, मुँजात, ताड और लामज्जकतृण इत्यादि औषधियां तथा वल्लीपंचमूल, कंटकपंचमूल, पिप्पल्यादि, बृहत्यादि, वचादि, मुष्ककादि, सुरसादि और आरग्वधादि गण यह संक्षेपसे कफका संशमन करनेवाली औषधियोंका वर्ग कहा है।

काकोल्यादिःक्षीरघृतवसामज्जाशालिषष्टिकयवगोधूममाषशृङ्गाटककशेरुकत्रपुसैर्वारुकालाबुकालिन्दककर्कारुकतकाद्यालुक-प्रियालपुष्करबीजकाश्मर्य्यमधूकद्राक्षाखर्जूरतालनारिकेलेक्षुविकारबलातिबलात्मगुप्ताविदारीपयस्यागोक्षुरकक्षीरकक्षीरमोरटमधूलिकाकूष्माण्डकादिः समासेन मधुरो वर्गः।

काकोल्यादि वर्गकी औषधियाँ दूध, घी, वसा, मज्जा, शालिधान, साठीधान, जौ, गेहूँ, उडद, सिंघोड, कसेरू खीरा, ककडी, लौकी, तरबूज, खरबूज, पेठा, निर्मलीफल, आलुक, चिरौंजी, कमलगट्टा, कुम्भेर, महुएके फल, दाख, खजूर, ताड़, नारियल, ईखके विकार (ईखके रसके द्वारा बनाये हुए पदार्थ), खिरैटी, कंघी, कौंछके बीज, विदारीकन्द, दूधविदारी, गोखुरू, पंचक्षीरी वृक्ष, क्षीरमोरट वृक्ष, मुलैठी और पेठा इत्यादि यह संक्षेपसे मधुर औषधियोंका वर्ग कहा है।

दाडिमामलकमातुलुङ्गाम्रातककपित्थकरमर्दबदरकोलप्राचीनामलकातिन्तिडीककोशाम्रभव्यपारेवतवेत्रफललकुचाम्लवेतसदन्तशठदधितक्रसुराशुक्तसौवीरक-तुषोदक--धान्याम्लप्रभृतिसमासेनाम्लो वर्गः।

अनार, आमले, बिजौरानीम्बू, अम्बाडी, कैथ, करौंदा, बडा बेर, पुरानाबेर, पानीआमला, इमली, कोशाम्र, भव्य, पारेवत, वेंतफल, कठल, अम्लवेंत, कमरख, दही, तक्र (छाछ), मदिरा, शुक्त, सौवीर, तुषोदक और धान्याम्ल इत्यादि यह संक्षेपसे अम्ल औषधियोंका वर्ग कहा है।

सैन्धवसौवर्चलविडपाक्यरोमकसामुद्रकपाक्रिमयवक्षारोषरसुवर्चिकादीनां समासेन लवणो वर्गः।

सैंधानमक, कालानमक, विडनमक, पांसुनमक,

साम्भरनमक, जवटीनमक, समुद्रनमक, जवाखार, खारी और सज्जी इनका संक्षेपसे लवणवर्ग जानना।

पिप्पल्यादिः सुरसादिर्मधुशिग्रुमूलक-लशुन-सुपुंख-शीतशिवकुष्ठदेवदारुहरेणुकावल्गुजफलचण्डागुग्गुलु-मुस्तालाङ्गलकीशुकनासापीलुप्रभृति-शालसारादिश्च प्रायशः कटुको वर्गः।

पिप्पल्यादि तथा सुरसादि गण-लालसहिंजना, मूली, लहसुन, सरफोंका, सैंधव, कूठ, देवदारु, रेणुका, बावची, शिवलिंगी, गूगल, नागरमोथा, कलिहारी, श्योनाक और पीलू इत्यादि तथा सालसारादिगणकी औषधियाँ यह प्रायः कटु औषधियोंका वर्ग कहा है।

आरग्वधादिर्गुडूच्यादिर्मण्डूकपर्णीवेत्रकरीरहरिद्राद्वयेन्द्रयववरुण-स्वादुकण्टकसप्तपर्ण-बृहतीद्वय-शंखिनीद्रवन्ती-त्रिवृत्कृतवेधन-कर्कोटक-कारवेल्लकवार्त्ताककरीरकरवीरसुमनःशंखपुष्पापामार्ग-त्रायमाणाऽशोकरोहिणी-वैजयन्ती-पुनर्नवावृश्चिकाली-ज्योतिष्मतिप्रभृतीनां समासेन तिक्तको वर्गः।

आरग्वधादि, तथा गुडूच्यादि गण, मण्डूकपर्णी, वेंत, करीर, हलदी, दारुहलदी, इन्द्रजौ, वरुना, गोखुरू, सतौना, कटेरी, बड़ी कटेरी, शंखाहुली, मूषाकर्णी, निसोत, कडवी तुरई, ककोडा, करेला, वैगुन, वाँसके अंकुर, कनेर, चमेली, शंखपुष्पी शिवलिंगी, चिराचिटा, त्रायमाण, अशोक, कुटकी, अरणी, पुनर्नवा, विछाटी और मालकांगुनी इत्यादि औषधियोंका संक्षेपसे तिक्त वर्ग जानना।

न्यग्रोधादिरम्बष्ठादिःप्रियंग्वादिर्लोध्रादिस्त्रिफलाशल्लकी-जम्ब्वाम्रास्थितिन्दुकादीनि कतकशाकफलपाषाणभेदक-वनस्पतिफलानि । आमलक्यादिः शालसारादिश्च प्रायशः कोविदारकुरबकजीवन्तीचील्लीपालंकी सुनिषण्णप्रभृतीनि नीवारचणकादयो मुद्गादयश्च समासेन कषायो वर्गः।

न्यग्रोधादि, अम्बष्ठादि, प्रियंग्वादि और लोध्रादि गण तथा त्रिफला, सालई, जामुन और आमकी गुठली, तेंदूआदि निर्मलीफल, सागौनके फल, पाषाणभेद, बडके फल, आमलक्यादि, सालसारादि, लालकचनार, लालपियाबांसा, जीवन्ती, चिल्ली, (लालवथुआ) पालक, शिरआरी इत्यादि नीवार धान, चने और मूंग आदि यह सब संक्षेपसे कषाय औषधियोंका वर्ग कहा है।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकशृङ्गवेराम्लवेतसमरिचाजमोदाभल्लातकास्थिहिंगुनिर्यासा इति दशेमानि दीपनीयो वर्गः।

पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, अद्रख, अम्लवेंत, मिरच, अजमोद, भिलावेकी मींग और हींग इन दश औषधियोंका यह दीपनीयवर्ग कहा है।

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायां संशोधनसंशमनरसद्रव्यादीनां वर्गाधिकार समाप्त ॥ ८६ ॥

अथर्त्तुचर्य्याधिकार ।

भूवाष्पान्मेघनिःस्यन्दात्पाकादम्लाज्जलस्य च । वर्षास्वग्निबले क्षीणे कुप्यन्ति पवनादयः ॥ १ ॥

वर्षाऋतुमें—पृथ्वीमेंसे भाप उठनेसे, मेघोंके वर्षनेसे और जलका अम्लपाक होनेसे अग्निका बल क्षीण होजानेपर वातादि दोष कुपित होते हैं ॥ १ ॥

तस्मात्साधारणः सर्वो विधिर्वर्षासु वक्ष्यते । उदमन्थं दिवास्वापमवश्यायं नदीजलम् ॥ व्यायाममातपं चैव व्यवायं चात्र वर्जयेत् ॥ २ ॥

इस कारण वर्षाऋतुमें सम्पूर्ण साधारण विधिको कहते हैं। इस ऋतुमें उदमंथ (जलको मंथन करना अथवा जलके द्वारा क्रीडा करनी), दिनमें शयन करना, बर्फ, नदीजल, परिश्रम, धूप और मैथुन इन सबको सेवन करना त्याग देवे ॥ २ ॥

दिव्यं क्वथितकूपोत्थं वाप्यं सारसमेव वा ॥ ३ ॥

दिव्यजल, औटाया हुआ जल, कुएका जल, बावडीका जल और सरोवरका जल सेवन करे ॥ ३ ॥

प्रावृषि व्याकुले वह्नौ भोज्यमक्लेदि वातजित् । परिशुष्कं लघु स्निग्धमुष्णाम्ललवणश्च यत् ॥ ४ ॥

वर्षा ऋतुमें अग्निके व्याकुल होनेपर क्लेदरहित और वातनाशक तथा शुष्क(जो गीले न हों),हलके, चिकने,गरम, खट्टे और अम्ल नमकीन ऐसे भोजन करे ॥ ४ ॥

प्रायोऽन्नपानं सक्षौद्रं संस्कृतश्च घनोदये ।

मेघोंसे आच्छादित दिनमें प्रायः समस्त अन्न और पानोंको शहदके द्वारा संस्कार करके सेवन करे ।

पुनः संरक्षता चाग्निं यवगोधूमशालयः। पुराणैर्जाङ्गलैर्मांसैर्भोज्या यूषैश्च संस्कृतैः ॥ पिबेत् क्षौद्रान्वितं चाल्पं माध्वीकारिष्टमेव वा ॥ ५ ॥

फिर अग्निकी रक्षा करता हुआ पुराने जौ, गेहूं और शालिचावल तथा जांगलप्रदेशके जीवोंके मांसक भोजन ओर संस्कार किये हुए यूष एवं शहदके साथ माध्वीक नामक मदिरा अथवा अरिष्ट थोडा थोडा पान करे ॥ ५ ॥

सविषप्राणिविण्मूत्रलालानिष्ठीवनादिभिः। सदाप्लुतं तदा तोयं नाभकं विषसन्निभम् ॥ ६ ॥

इस ऋतुमें विषैले जीवोंकी विष्ठा, मूत्र, लार और थूक आदि आकाशका जल सदैव विषके समान रहता है ॥ ६ ॥

वायुना विषजातेन तत्पूर्वेण च घर्षितम्। वर्ज्यं सर्वोपयोगेषु तस्मिन्काले विपश्चिता ॥ ७ ॥

विद्वान् मनुष्य वर्षाऋतुकी विषैली पवनके घर्षण होनेसे दूषित हुए उस वर्षाके जलको वर्षाऋतुमें किसी कार्यमें भी प्रयोग न करे ॥ ७ ॥

सोपदंशं निषेवेत माध्वीकारिष्टमासवम् । पिबेत्प्रावृषि धीरोऽल्पं रात्रौ तदपि वर्जयेत् ॥ ८ ॥

उपदंश (चाट, नमकीन, दाल सेव इत्यादि) के साथ माध्वीक मदिरा (महुएकी मदिरा) और महुएके अरिष्ट या आसवको सेवन करे। प्रावृट्ऋतुमें बुद्धिमान् मनुष्य थोडा थोडा जल पान करे और रात्रिमें वह भी त्याग देवे ॥ ८ ॥

निरूहैर्बस्तिभिश्चान्यैरथान्यैर्मारुतापहैः। कुपितं शमयेद्वातं वार्षिकं वाचरेद्विधिम् ॥ ९ ॥

इस प्रावृट् ऋतुमें प्रकुपित वायुको निरूहबस्तिके द्वारा अथवा अन्यान्य वातनाशक उपायोंके द्वारा शमन करे। और वर्षाऋतुमें कहीहुई सब विधि प्रयोग करनी चाहिये ॥ ९ ॥

भूयो वर्षासु संयोगो गङ्गाया दक्षिणे तटे। ततः प्रावृण्यवर्षाख्यावृतू तेषां प्रकीर्त्तितौ ॥ १० ॥ तस्या एवोत्तरे देशे बहुशो हिमसंकुले । भूयः शीतमतस्तत्र हेमन्तशिशिरावुभौ॥११॥

गंगाके दक्षिणतट देशमें वर्षा अधिक होती है, इस कारण मुनियोंने प्रावृट् और वर्षा दोनों ऋतु अलग अलग कही हैं। गंगाके उत्तर प्रदेशमें पृथ्वी हिम (बर्फ) से आच्छादित रहती है इस कारण वहां शीत अधिक होता है, इसलिये हेमंत और शिशिर ये दो ऋतुयें कही हैं ॥ १० ॥ ११ ॥

ततो व्यतीते वर्षर्त्तौ नीलमेघावगुण्ठिते। व्योम्नि प्रसन्नदिङ्मार्गे लब्धप्रसरभास्करे ॥ १२ ॥ शुक्रस्त्वलब्धसंदर्शजातमाममदस्ततः। आक्रामति रवेर्लक्ष्मीस्तिरस्कृत्य घनान्मलान् ॥ १३ ॥

तदनन्तर वर्षाऋतुके व्यतीत होनेपर आकाशमंडल नीले मेघोंसे आच्छादित होकर स्वच्छ होजाता है। तथा दिशायें और मार्ग सूर्यकी किरणोंके पडनेसे निर्मल होजाती हैं। तब मेघोंके नहीं दीखने से सूर्यकी किरणें नवीन मदको धारण करती हैं और मेघोंके मलोंका तिरस्कार करके सूर्य्यकी लक्ष्मी जगत्‌में आक्रमण करती है ॥ १२ ॥ १३ ॥

द्राक्षेक्षुक्षीरसेवी च भवेत्तत्र नराधिपः। वर्षासूपचितं पित्तं निर्हरेच्च विरेचनैः॥ तिक्तसर्पिःप्रयोगैर्वा शिराणां चापि मोक्षणैः॥ १४॥

शरद्दतुमें दाख, ईख और दूध इनको सेवन करे। वर्षाऋतुमें संचित हुए पित्तको विरेचन औषधियोंके द्वारा निकाले अथवा तिक्त घृतोंके सेवन या शिरामोक्षण इनके द्वारा शमन करे ॥ १४ ॥

दिवा सूर्य्यांशुसंतप्तं निशि चन्द्रांशुशीतलम् ॥ कालेन पक्कं निर्दोषमगस्त्येनाविषीकृतम् ॥ १५ ॥ हंसोदकमिति ख्यातं शारदं विमलं शुचि । स्नानपानावगाहेषु हितमम्बु यथाऽमृतम् ॥ १६ ॥

जो दिनमें सूर्य्यकी किरणोंसे संतप्त किया गया हो और रात्रिमें चन्द्रमाकी किरणोंसे शीतल किया गया हो, तथा समयानुकूल पककर निर्दोष हो गया हो और अगस्त्यके उदय होनेसे निर्विष होगया हो ऐसे जलको हंसोदक कहते हैं। इस प्रकार निर्मल और शुद्ध किये हुए जलको शरद्दतुमें स्नान, पान और अवगाहन इन सब कार्योंमें प्रयोग करे। यह जल अमृतके समान अतीव हितकारी है ॥१५॥१६

शारदानि च माल्यानि वासांसि विविधानि च । इक्षवः शालयो मुद्गाः सरोऽम्भः क्कथितं पयः ॥ १७ ॥

शरद्दतुमें सुगन्धित पुष्पोंकी माला, अनेकप्रकारके वस्त्र, ईख, शालिचावल, मूँग, तालाबका जल और औटाया हुआ जल ये सब हितकारी हैं ॥ १७ ॥

शरत्काले प्रशस्यन्ते प्रदोषे चेन्दुरश्मयः ॥ १८ ॥

शरद्दतुमें प्रदोषके समय चन्द्रमाकी किरणें सेवन करनी चाहियें ॥ १८ ॥

हेमन्ते शिशिरे चाग्र्यं विसर्गादानयोर्बलम् । शरद्वसन्तयोर्मध्यं हीनं वर्षानिदाघयोः ॥ १९ ॥

हेमन्त और शिशिरऋतुके पूर्वमें आदान और विसर्गका बल होता है । शरद् और वसंतऋतुके मध्यमें और वर्षा तथा ग्रीष्मऋतुके अंतमें बल होता है ॥ १९ ॥

शीते शीतानिलस्पर्शसंरुद्धो बलिनां बली । पक्ता भवति हेमन्ते मात्राद्रव्यगुरुक्षमा ॥ २० ॥

शीतऋतुमें शीतल पवनके स्पर्शसे मनुष्योंके शरीरकी उष्णता बाहर नहीं निकलती, इस कारण इस ऋतुमें बलवान् मनुष्योंकी पाचकाग्नि अत्यन्त प्रबल होकर बहुतसे भोजन और भारी पदार्थोंको पचानेमें समर्थ हो जाती है ॥ २० ॥

स यदा नेन्धनं युक्तं लभते देहजं तदा । रसं हिनस्त्यतो वायुः शीते शीतः प्रकुप्यति ॥ २१ ॥ तस्मात्तुषारसमये स्निग्धाम्ललवणान्रसान् । औदकानूपमांसानाममेध्यानाञ्च योजयेत् ॥ २२ ॥

अब वह पाचकाग्नि उचित समयमें पकानेके लिये आहार रूप ईंधनको नहीं पाती है। तब वह शरीरके रसादिधातुओंका क्षय करना आरम्भ कर देती है। शीतऋतुमें रसके क्षय होनेसे शीतल वायु कुपित होता है, इस कारण इस हेमंतऋतुमें स्निग्ध अम्ल और लवण रसवाले पदार्थोंको तथा जलचर और अनूपदेशके जीवोंके मांसको सेवन करना चाहिये ॥ २१ ॥ २२ ॥

बिलेशयानां मांसानि प्रसहानां भृतानि च । भक्षयेन्मदिरां सीधुं मधु चानुपिबेन्नरः ॥ २३ ॥

बिलेशयजातिके जीवोंका मांस और प्रसह जातिके जीवोंका मांस इन सबको भक्षण करे। सीधूनामक मदिराको सेवन करे और शहदको पान करे ॥२३॥

गोरसानिक्षुविकृतिर्वसां तैलं नवौदनम् । हेमन्ते भजतस्तोयमुष्णमायुर्न हीयते ॥ २४ ॥

हेमंतऋतुमें गोरस (दूधआदि), ईखके विकार (ईखके रसके द्वारा बनेहुए पदार्थ), वसा, तेल और नवीन चावलोंका भात ये सब द्रव्य सेवन करे । और गरमजल पीवे तो मनुष्यकी आयु नहीं घटती है ॥ २४ ॥

शस्ता रसाला हेमन्ते पीतधूमो मदोत्कटः । चौलकौशेयसंवीतस्त्वाशये कुथकास्तृते ॥ २५ ॥ कुंकुमागुरुदिग्धाङ्गो निर्वाते भूमिगह्वरे । शयीत शयने चापि सुविस्तीर्णे मनोरमे ॥ २६ ॥

हेमंतऋतुमें अनेकप्रकारके रसाले और उत्कट मदवाले धूमपान सेवन करे । तथा ऊनी, रेशमी, रत्नकम्बल, पट्टू, पश्मीना और अनेकप्रकारके रुईके बने हुए वस्त्रोंसे शरीर को आच्छादित करे. और इसीप्रकारके वस्त्रोंसे संयुक्त सवारी, आसन और शय्या सेवन करे। केशर और अगरका शरीरपर लेप करके वातरहित स्थानमें सुविस्तीर्ण और मनोहर शय्यापर शयन करे ॥ २५ ॥ २६ ॥

तत्रोपनीतदारस्तु प्रिया नारीः स्वलङ्कृताः । रमयेत यथाकामं बलादपि मदोत्कटः ॥ २७ ॥

उस शय्यापर सुन्दर, प्रिय और अनेक प्रकारके अलंकारोंसे सुसज्जित किया है शरीर जिन्होंने ऐसी स्त्रियोंसे मदोन्मत्त होकर बलपूर्वक इच्छानुसार रमण करे ॥ २७ ॥

प्रवातं प्रमिताहारमुदमन्थं हिमागमे । वर्जयेच्छीतसंस्पर्शं शीतान्युपवनान्यपि ॥ २८ ॥

हेमंतऋतुमें अधिक वायु, थोडा भोजन, उदमंथ (जलक्रीडा या जलको मंथन करना), शीतल पदार्थोंका स्पर्श और अनेक प्रकारके शीतल उपवन, पुष्पोद्यान आदिका सेवन इन सबको त्याग देवे २८

एष एव विधिः कार्य्यः शिशिरेऽपि सदा बुधैः । हेमन्तशिशिरौ तुल्यौ शिशिरेऽल्पं विशेषणम् ॥ २९ ॥ रौक्ष्यमादानजं शीतं मेघमारुतवर्षजम् । तस्माद्धैमन्तिकः सर्वः शिशिरे विधिरिष्यते ॥ ३० ॥

जो विधि हेमंतऋतुमें कही है, वही सब विधि बुद्धिमानोंको शिशिरऋतुमेंभी सदैव सेवन करना चाहिये । प्रायः हेमंत और शिशिरऋतु समान हैं । केवल शिशिरऋतुमें अन्तर इतना ही है कि शिशिर ऋतुमें आदानजनित रूक्षता और मेघ, वायु तथा वर्षासे उत्पन्न हुआ शीत अधिक होता है । इसकारण हेमंतऋतुमें कहीहुई सम्पूर्ण आहार विहार विधि शिशिरऋतुमें प्रयोग करनी कही गई है ॥ २९ ॥ ३० ॥

निर्वातमुष्णं त्वधिकं शिशिरे गृहमाश्रयेत् । कटुतिक्तकषायाणि वातलानि लघूनि च । वर्जयेदन्नपानानि शिशिरे शीतलानि च ॥ ३१ ॥

शिशिरऋतुमें वायुरहित और विशेष गरम घरमें रहना चाहिये । तथा कटु, तिक्त, कपैले, वातकारक, हलके और शीतल अन्न पानोंको त्याग देना चाहिये ॥ ३१ ॥

हेमन्ते निचितः श्लेष्मा दिनकृद्भाभिरीरितः । कायाग्निं बाधते रोगांस्ततः प्रकुरुते बहून् ॥ ३२ ॥

हेमंतऋतुमें संचित हुआ कफ सूर्यकी तीक्ष्ण किरणोंसे चलायमान होकर जठराग्निको मंद कर देता है इससे वह अनेक प्रकारके रोगोंको उत्पन्न करता है ॥ ३३ ॥

तस्माद्वसन्ते कर्म्माणि वमनादीनि कारयेत् । गुर्वम्लस्निग्धमधुरं दिवास्वप्नञ्च वर्जयेत् ॥ ३३ ॥

इससे वसन्तऋतुमें कै कराना, जुल्लाब देना इत्यादि कर्म कराना चाहिये । एवं भारी, खट्टे, चिकने और मीठे पदार्थोंका सेवन तथा दिनमें सोना इन सबको त्याग देना चाहिये ॥ ३३ ॥

यष्टिकान्वा यवाञ्छालीन् मुद्गनीवारकोद्रवान् । लावादिविष्किररसैर्व्याद्भृष्टैश्च युक्तितः ॥ ३४ ॥

लवादि विष्किरजातिके जीवोंके मांसरसके द्वारा अच्छे. प्रकारसे संस्कार किये हुए साठीचावल,जौ, शालिचावल, मूँग, नीवारधान, और कोदों इन सब अन्नोंको सेवन करे ॥ ३४ ॥

पटोलनिम्बवार्ताकैस्तिक्तैश्चान्यैर्हि-मात्यये ॥ ३५ ॥

वसन्तऋतुमें पटोल (परवल), नीम, बैगुन और अन्यान्य तिक्त रसवाले शाकोंको सेवन करे ॥ ३५॥

शुचिशुक्लांबरधरश्चन्दनागुरुधूपितः । पीनस्तनोरुजघनां रूपयौवनशालि-नीम् ॥ ३६ ॥ काननेषु विचित्रेषु स-र्वालङ्कारभूषिताम् । कामयेद्यावदु-त्साहं सुमनाः कुसुमागमे ॥ ३७ ॥

वसन्तऋतुमें चन्दन और अगरसे अपने शरीर को अच्छे प्रकारसे सुवासित करके स्वच्छ और शुक्ल वस्त्रोंको धारण करनेवाला मनुष्य जिसके स्तन, ऊरु और जंघा पुष्ट हों एवं रूप, यौवन-युक्त और सम्पूर्ण अलंकारोंसे सुसज्जित स्त्रीको अनेकप्रकारके विचित्र बनोंमें प्रसन्न चित्त होकर यथेच्छानुसार सेवन करे ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

व्यायाममञ्जनं धूपं तीक्ष्णश्च कवल-ग्रहम् । तैक्ष्ण्ययुक्तांश्च सर्वान्वा सेवेत कुसुमागमे ॥ ३८ ॥

वसन्तऋतुमें व्यायाम (दण्ड, कसरत), अंजन, प, तीक्ष्णकवल और सम्पूर्ण तीक्ष्ण पदार्थोंको युक्तिपूर्वक सेवन करे ॥ ३८ ॥

मयूखैर्जगतःस्नेहो ग्रीष्मे यः शोषते रविः । स्वादु शीतं द्रवं स्निग्धमन्न-पानं तदा हितम् ॥ ३९ ॥

ग्रीष्मऋतुमें संसारके स्नेहपदार्थोंको सूर्य्य अपनी तीक्ष्ण किरणोंके द्वारा सुखा देता है । इसकारण इस ऋतुमें मधुर, शीतल, पतले और चिकने अन्न और पान हितकारी हैं ॥ ३९ ॥

शीतं सशर्करं मन्थं जाङ्गलान्मृगप-क्षिणः । घृतम्पयः सशाल्यन्नं भजन् ग्रीष्मे न सीदति ॥ ४० ॥

ग्रीष्मऋतुमें मिश्री मिलाहुआ मंथ (तक्र विशेष अथवा सत्तु विशेष), जांगलदेशके पशु और पक्षियों का मांस, घी, दूध और शालिचावलोंका भात ये सब सेवन करने चाहिये ॥ ४० ॥

व्यायाममुष्णमायासं मैथुनं परिदा-हि च । रसांश्चाग्निगुणोद्रिक्तान्वि-शेषेण विवर्जयेत् ॥ ४१ ॥

व्यायाम, (दण्ड कसरत), गरम पदार्थ, परिश्रम, मैथुन, दाहकारक पदार्थ और विशेष करके आग्नेय गुणविशिष्ट पदार्थोंको त्याग देवे ॥ ४१ ॥

सर्पिः खण्डगुणाक्तांश्च सहकारसम-न्वितान् । प्रातराशं पिबेत्तक्रं न च शीतोत्तरं ततः ॥ ४२ ॥

एवं प्रातः काल घृत, खाँड और गुड़से युक्त तथा अनेक प्रकारकी सुगंधि युक्तसे भोजन करे और भोजनके साथ तक्रपान करे तथा उष्ण पदार्थोंका कदापि सेवन न करे ॥ ४२ ॥

यवगोधूमविकृतीञ्छालींश्च विविधा-नपि । प्रसहानूपमांसानि वृष्यान्य-न्यानि यान्यपि ॥ ४३ ॥

जौ और गेहूँके बनेहुए पदार्थ, अनेकप्रकारके शालिचावल, प्रसह और अनूपदेशके प्राणियोंका मांस तथा अन्यान्य जो वृष्यपदार्थ हों उन सबको सेवन करे ॥ ४३ ॥

मद्यमल्पं न वा योज्यमथवा सुबहू-दकम् । लवणाम्लकटूष्णानि व्याया-मं चात्र वर्जयेत् ॥ ४४ ॥

जिनको मदिरा पीनेका अभ्यास है उनको थोडीसी मद्य पीनी चाहिये अथवा बिलकुल नहीं पीनी चाहिये । यदि किसी प्रकार भी न रहा जाय तो बहुतसी जल मिलाहुई मदिरा पीवे एवं लवण, अम्ल, कटु और उष्ण पदार्थ एवं व्यायाम ये सब इस ग्रीष्मऋतुमें त्याग देवे ॥ ४४ ॥

दिवा शीतगृहे निद्रां निशि सोमां-शुशीतले । भजेच्चन्दनादिग्धाङ्गः प्र-वातं हर्म्यमस्तके ॥ ४५ ॥

शरीरमें चन्दनादिका लेप करके मनुष्य दिनके समय खसकी टट्टी और बर्फ आदिसे सींचे हुए शीतल घरमें शयन करे और रात्रिके समय चन्द्रमाकी किरणोंसे और सुगंधित पवनसे शीतल हुए ऊपरके स्थान (छत, या अटारी) पर शयन करे ॥ ४५ ॥

व्यजनैः पाणिसंस्पर्शैश्चन्दनोदकशीतलैः। सेव्यमानो भजेदस्यां मुक्तामणिविभूषितः ॥ ४६ ॥

इस ऋतुमें दुपहरके समय चन्दन खस आदिके शीतल जलसे छिड़के हुए पंखेके द्वारा हाथोंसे शीतल पवनको स्पर्श करता हुआ शयन करे तथा मोती और मणि आदिको धारण करे ॥ ४६ ॥

काननानि च शीतानि जलानि कुसुमानि च। ग्रीष्मकाले निषेवेत मैथुनाद्विरतो नरः ॥ ४७ ॥

ग्रीष्मकालमें मैथुनसे विरक्त होता हुआ मनुष्य शीतलवन, शीतल जल और शीतल सुगंधित पुष्पोंको सेवन करे ॥ ४७ ॥

व्यायाममातपं यासं व्यवायं चात्र वर्जयेत्। पानभोजनसंस्कारान् प्रायः क्षौद्रान्वितान् भजेत ॥ ४८ ॥

इनमें व्यायाम, धूप, परिश्रम और मैथुन इनको त्याग देवे। तथा पान और भोजनके समस्त पदार्थोंको शहद मिलाकर सेवन करे ॥ ४८ ॥

सरांसि वाप्यः सरितो वनानि रुचिराणि च। चन्दनानि जलार्द्राश्च स्रजश्च कमलोज्ज्वलाः ॥ ४९ ॥ तालवृन्तानि नीहारास्तथा शीतगृहाणि च। घर्मकाले निषेवेत वासांसि सुलघूनि च ॥ ५० ॥

सरोवर, बावड़ी, नदी, मनोहर वन, चन्दन, जिनमेंसे चन्दनमिश्रित जल टपकता हो ऐसी कमलादि पुष्पोंकी बनी हुई मालायें अथवा पंखे ताड़के पंखेकी पवन, बर्फ, शीतल घर और हलके वस्त्र इन सबको ग्रीष्मऋतुमें सेवन करे ॥४९॥५०॥

ऋत्वोरन्त्यादिसप्ताहावृतुसन्धिरिति स्मृतः। तत्र पूर्वो विधिस्त्याज्यः सेवनीयः परः क्रमात् ॥ ५१ ॥

दो दो ऋतुओंके आदि और अन्तके सात सात दिनोंको ऋतुसन्धि कहते हैं। उन ऋतुसन्धियोंमें पूर्वऋतुकी विधिको त्याग कर आगामीऋतुकी विधिको सेवन करे ॥ ५१ ॥

सता वृत्तोपपन्नेन विधिना वर्त्तते नरः। घोरानृतुकृतान्दोषान्नाप्नुयात्स कदाचन ॥ ५२ ॥

जो मनुष्य प्रत्येकऋतुमें सत्पुरुषोंकी कही हुई इन विधियोंके अनुसार आहार विहार करताहै, वह मनुष्य ऋतुजनित घोर दोषोंको कदापि प्राप्त नहीं होता है ॥ ५२ ॥

कार्त्तिकस्य दिनान्यष्टावष्टावग्रहणस्य च। यमदंष्ट्रा इति प्रोक्ता स्वल्पाहार्यत्र जीवति ॥ ५३ ॥

कार्त्तिकके अंतके आठदिन और अगहनके पूर्वके आठदिन इस समयको यमदंष्ट्रा कहते हैं। इस समयमें जो मनुष्य थोडा भोजन करता है वही आरोग्य रहता है ॥ ५३ ॥

वर्षासु मद्यमल्पं वा समन्तादुदकं पिबेत्। उष्णमेव वसन्ते च कामं ग्रीष्मेषु शीतलम् ॥ ५४ ॥

वर्षाऋतुमें अल्प मदिरा पीवे अथवा बारम्बार थोडा २ जल पीवे। बसन्तऋतुमें उष्णजल पीवे और ग्रीष्मऋतुमें यथेच्छ शीतल जल पीवे ॥ ५४ ॥

हेमन्ते च वसन्ते च शीतमिष्टं पिबेन्नरः। शृतशीतपयो ग्रीष्मे प्रावृट्काले रसं पिबेत् ॥ ५५ ॥

हेमन्त और वसन्तऋतुमें भी शीतल जल पीवे। ग्रीष्मऋतुमें शृतशीत (औटाकर शीतल किया हुआ) जल पीवे और प्रावृट् ऋतुमें रस पान करे ॥५५॥

यूषं वर्षागमस्यान्ते प्रपिबेच्छीतलं जलम्। अतिस्निग्धकटुप्रायं हितमम्भो घनक्षये ॥ ५६ ॥

वर्षाऋतुके आगमनके समयमें यूष पान करे और वर्षाऋतुके अंतमें शीतल जल पीवे । तथा शरदृतुमें अत्यंत स्निग्ध और कटुरसविशिष्ट जल पीवे ॥५६॥

स्वस्थके लक्षण ।

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः । प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते ॥ ५७ ॥

जिसके वातादि दोष समान हों, जठराग्नि भी समान अर्थात् यथावस्थामें स्थित हो, तथा धातु, मल और क्रिया ये भी समान हों, आत्मा, इन्द्रिय और मन ये प्रसन्न हों तो उसको स्वस्थ कहते हैं ॥ ५७॥

इतिश्री वंगसेने भाषाटीकायामृतुचर्य्याधिकार समाप्त ॥ ८७ ॥

अथ धान्यवर्गाधिकार ।

रक्तशालिस्त्रिदोषघ्नस्तृष्णामेदोनिवारणः । महाशालिः परं वृष्यः कलमः श्लेष्मपित्तहा ॥ १ ॥

लालशालिधान–त्रिदोषनाशक, तृषा और मेदको दूर करते हैं । महाशालिधान (सुगंधित शालिधान)–अत्यंत वृष्य हैं । कलमीधान–कफ और पित्तनाशक हैं ॥ १ ॥

शीतो गुरुस्त्रिदोषघ्नो मधुरो गौरयष्टिकः । किञ्चिद्धीनो सितस्तस्मात्परोऽयं रसपाकतः ॥ २ ॥

गौरयष्टिक शालिधान–शीतल, भारी, त्रिदोषनाशक और मधुर हैं । सफेद शालिधान इससे रस और पाकमें कुछ हीन हैं ॥ २ ॥

दग्धायामवनौ जाताः शालयो लघुपाकिनः । कषाया बद्धविण्मूत्रा रूक्षाः श्लेष्मापकर्षणाः ॥ ३ ॥

दग्धभूमिमें उत्पन्न हुए शालिधान–लघुपाकी कषैले, मल और मूत्रको बाँधनेवाले, रूखे और कफको अपकर्षण करते हैं ॥ ३ ॥

स्थलजाः कफपित्तघ्नाः कषायाः कटुकान्वयाः । किञ्चित्सतिक्तमधुराः पवनानलवर्द्धनाः ॥ ४ ॥

स्थलमें उत्पन्न हुए शालिधान–कफपित्तनाशक, कषैले, कटुरसयुक्त, किंचित् तिक्त, मधुर तथा वायु और पित्तको बढ़ानेवाले हैं ॥ ४ ॥

कैदारा मधुरा वृष्या बल्याः पित्तनिबर्हणाः । ईषत्कषायाल्पमला गुरवः कफशुक्रलाः ॥ ५ ॥

कैदार (क्षेत्रमें उत्पन्न होनेवाले) शालिधान–मधुर, वृष्य, बलकारक, पित्तनाशक, किंचित् कषैले कुछ एक मलको करनेवाले, भारी, कफ और वीर्य्यको बढ़ानेवाले हैं ॥ ५ ॥

रोप्यातिरोप्या लघवः शीघ्रपाका गुणोत्तराः । विदाहिनो दोषहरा बल्या मूत्रविवर्द्धनाः ॥ ६ ॥

रोप्यातिरोप्यधान–हलके, शीघ्रपाकी, अत्यंत गुणयुक्त, दाह रहित, दोषनाशक, बलकारक और मूत्रको बढ़ानेवाले हैं ॥ ६ ॥

शालयश्छिन्नरूढा ये रूक्षास्ते बद्धवर्चसः । श्यामाकः शोषणो रूक्षो वातलः श्लेष्मपित्तहा ॥ ७ ॥

छिन्नरूढशालिधान–रूखे, और मलको बाँधनेवाले हैं । श्यामाक (समाधान)–शोषक, रूखे, वातकारक, और कफ, पित्तको नष्ट करनेवाले हैं ॥ ७ ॥

तद्वत्प्रियंगुनीवाराः कोरदूषाः प्रकीर्त्तिताः । बहुमूत्राः कफहराः कषाया वातकोपनाः ॥ ८ ॥

श्यामाकधानके समान कंगुनी, नीवार (तिनी) और कोदोंके गुण जानने । ये मूत्रको अधिक लानेवाले, कफनाशक, कषैले और वातको कुपित करनेवाले हैं ॥ ८ ॥

सूपानामुत्तमा मुद्गा लघीयांसोऽल्पमारुताः । हरितास्तेष्वपि वरा आढकी कफपित्तनुत् ॥ ९ ॥

मूँग सम्पूर्ण दालोंमें उत्तम है । यह-हलकी किंचित् वायुको कुपित करनेवाली है । सब मूँगोंमें हरी मूँग श्रेष्ठ होती है । अडहर-कफ और पित्तको नष्ट करती है ॥ ९ ॥

रूक्षः कषायो विषदोषशुक्रबलासदृष्टिक्षयकृद्विदाही । कटुर्विपाके मधुरस्तु शिम्बिः प्रभिन्नविण्मारुतपित्तलश्च ॥ १० ॥

शिम्बीधान्य-रूखे, कषैले विषदोष, वीर्य्य,कफ, और दृष्टिको नष्ट करते हैं। दाहकारक, पाकमें कटु, मधुर तथा, मल, वायु, और पित्तकारक हैं ॥ १० ॥

उष्णः कुलत्थो रसतः कषायः कटुर्विपाके कफमारुतघ्नः । कुष्ठाश्मरीगुल्मनिषूदनश्च संग्राहकः पीनसकासहन्ता ॥ ११ ॥

कुलथी-गरम, कषायरसयुक्त, पाकमें कटु, कफवातनाशक, कोढ, अश्मरी और गुल्मको नष्ट करनेवाली, मलरोधक, पीनस और खाँसीको दूर करनेवाली है ॥ ११ ॥

आनाहमेदोगुदकीलहिक्काश्वासापहः शोणितपित्तकृच्च । बलासहन्ता नयनामयघ्नो विशेषतो वन्यकुलत्थ उक्तः ॥ १२ ॥

वनकुलथी-अफारा, मेद, बवासीर, हिचकी और श्वासको हरनेवाली, रक्तपित्तको कुपित करनेवाली कफनाशक और विशेष करके नेत्रोंके रोगोंको दूर करती है ॥ १२ ॥

दन्त्योऽग्निमेधाजननोऽल्पमूत्रः स्तन्योऽथ केश्योऽनिलहा गुरुश्च । तिलेषु सर्वेष्वसितः प्रधानो मध्यःसितो हीनतरास्तथान्ये ॥ १३ ॥

तिल-दाँतोंको हितकारी, अग्नि और मेधाको वढ़ाने वाले मूत्रको अल्प लानेवाले, स्तनोंमें दूधको बढ़ानेवाले,केशोंको हितकारी, वातनाशक और भारी हैं।सर्वप्रकारके तिलोंमें काले तिल उत्तम होते हैं,सफेद तिल मध्यम और अन्यान्य तिल हीनगुणवाले जानने ॥ १३ ॥

पाके रसे चापि कटुः प्रदिष्टः सिद्धार्थकः शोणितपित्तकोपी । स्निग्धोष्णतीक्ष्णः कफवातहन्ता तथा गुणश्चासितसर्षपोऽपि ॥ १४ ॥

सफेद सरसों-रस और पाकमें कटु, रक्तपित्तको कुपित करनेवाली, स्निग्ध, उष्ण, तीक्ष्ण और कफवातनाशक है । इसी प्रकार कालीसरसोंके भी गुण जानने ॥ १४ ॥

माषो गुरुर्भिन्नपुरीषमूत्रः स्निग्धोऽतिवृष्यो मधुरोऽनिलघ्नः । सन्तर्पणः स्तन्यकरो विशेषाद्बलप्रदः शुक्रकफावहश्च ॥ १५ ॥

उड़द-भारी मल और मूत्रको अनुलोमन करनेवाले, स्निग्ध, अत्यन्त वृष्य,* मधुर, वातनाशक, तृप्तिकारक, स्तनोंमें दूधको उत्पन्न करनेवाले, विशेष करके बलकारक, तथा शुक्र और कफको करनेवाले हैं ॥ १५ ॥

अवृष्यः श्लेष्मपित्तघ्नो राजमाषोऽनिलार्तिकृत् । अवल्गुजः सैडगजो निष्पावा वातपित्तलाः ॥ १६ ॥

राजमाष (लोविया)-वीर्य्यको क्षय करनेवाला, कफपित्तनाशक, और वायुकी पीड़ाको करनेवाला है । अवल्गुज (वापचीके बीज), एडगज (पमारके बीज)-और निष्पाव (सेमके बीज)-वात और पित्तको कुपित करनेवाले हैं ॥ १६ ॥

काकाण्डमात्मगुप्तानां माषवत् फलमादिशेत् ।

काकाण्डधान्य (लहुवा) और कौंछके बीज इनके गुण उड़दोंके समान जानने ॥

मसूरा मधुराः पाके ग्राहिणो रूक्षशीतलाः ॥ १७ ॥

मसूर-पाकमें मधुर, मलरोधक, रूखी और शीतल हैं ॥ १७ ॥

मकुष्टकाः प्रशस्यन्ते रक्तपित्तज्वरादिषु । चणकाश्च मसूराश्च षण्डीकाः सहरेणवः । गुरवः शीतमधुराः सकषाया विरूक्षणाः ॥ १८ ॥ पित्तश्लेष्माणि शस्यन्ते सूपेष्वालेपनेषु च ॥ १९ ॥

मोठ–रक्तपित्त और ज्वरमें हितकारी हैं। चने, मसूर,कस्सा (खेसारी) और मटर ये भारी, शीतल मधुर, कषैले, रूखे, पित्त और कफमें हितकारी तथा दाल और लेपमें उपयोगी हैं ॥ १८ ॥ १९ ॥

यवः कषायो मधुरो हिमश्च कटुर्विपाके कफपित्तहारी । व्रणेऽतिपथ्यस्तिलवच्च नित्यं प्रबद्धमूत्रो बहुवातवर्चाः ॥ २० ॥ स्थैर्याग्निमेधास्वरवर्णकृच्च सुपिच्छिलः कण्ठ्यविलेपनश्च । मेदोमरुत्तृट्शमनोऽथ रूक्षः प्रसादनः शोणितपित्तयोश्च ॥ २१ ॥ एतैर्गुणैर्हीनतराश्च किञ्चिद्विद्याद्यवेभ्योऽतियवानशेषैः ॥ २२ ॥

जौ–कषैले, मधुर, शीतल, पाकमें कटु, कफपित्तनाशक, व्रणमें तिलके समान पथ्य, मूत्रको रोकनेवाले, वायु और मलको अत्यन्त करनेवाले, स्थिरता, अग्नि, मेधा, स्वर और वर्णको बढ़ानेवाले, पिच्छिल कण्ठको हितकारी, लेपमें हितकारी, मेद, वायु और तृषाको शमन करनेवाले,रूखे और रक्तपित्तको प्रसन्न करनेवाले हैं। जौओंसे अतियव कुछ हीन गुणवाले हैं ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥

गोधूम उक्तो मधुरो गुरुश्च बल्यः स्थिरः शुक्ररुचिप्रदश्च । स्निग्धोऽतिशीतोऽनिलपित्तहारी सन्धानकृच्छ्लेष्महरः सरश्च ॥ २३ ॥

गेहूँ–मधुर, भारी, बलकारक, स्थिर, वीर्य्य और रुचिको उत्पन्न करनेवाले, स्निग्ध, अत्यन्त शीतल, वातपित्तनाशक, भग्नसंधानकारक, कफनाशक और सारक हैं ॥ २३ ॥

अनार्त्तवं व्याधिहरमपर्यागतमेव च । अभूमिजं नवं चापि धान्यं न गुणवत्स्मृतम् । नवं धान्यमभिष्यंदि लघु संवत्सरोषितम् ॥ विदाहि गुरु विष्टम्भि विरूढं वातकोपनम् ॥ २४ ॥

विना ऋतुमें उत्पन्न हुए तथा कृमि,शरदी, गरमी आदिसे दूषित तथा बुरी भूमिमें उत्पन्न हुए और नवीन धान्य गुणवान् नहीं होते ।नवीन धान्य अभिष्यन्दकारक हैं । एक वर्षके पुराने धान्य हलके होते हैं । विरूढ अर्थात् जिनमें अंकुर निकल आये हों ऐसे धान्य–दाहकारक, विष्टम्भजनक और वायुको कुपित करनेवाले जानने ॥ २४ ॥

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायां धान्यवर्गाधिकार समाप्त ॥ ८८ ॥

अथ मांसवर्गाधिकार ।

संग्राही दीपनः शीतः कषायो मधुरो लघुः । लावः कटुविपाकश्च सन्निपाते च पूजितः ॥ १ ॥

लवाका मांस–मलरोधक, अग्निका दीपन करनेवाला, शीतल, कषैला, मधुर, हलका, पाकमें कटु और सन्निपातमें हितकारी है ॥ १ ॥

ईषद्गुरुस्तु मधुरो वृष्यो मेधाग्निवर्द्धनः । तित्तिरिः सर्वदोषघ्नो ग्राही वर्णप्रसादनः ॥ २ ॥

ततिरका मांस–किंचित् भारी, मधुर,वीर्य्यवर्धक मेधा और अग्निको बढ़ानेवाला, सर्वदोषनाशक, मलरोधक और वर्णको उज्ज्वल करनेवाला है ॥२॥

रक्तपित्तहरः शीतो लघुश्चापि कपिञ्जलः । कफोत्थेषु च रोगेषु मंदे वाते च शस्यते ॥ ३ ॥

सफेद ततिरका मांस–रक्तपित्तनाशक, शीतल, हलका तथा कफजनितरोग, मद और वातके रोगोंमें हितकारी है ॥ ३ ॥

वातपित्तहरा बल्या मेधाग्निबलवर्द्धनाः। लघवः क्रकरा हृद्यास्तथा चैवोपचक्रकाः॥ ४॥

क्रकरपक्षीका मांस–वातपित्तनाशक, बलकारक, मेधा, अग्नि और बलको बढानेवाला, हलका और हृदयको हितकारी है। उपचक्रकके मांसके गुण भी इसीके समान जानने॥ ४॥

कषायः स्वादुलवणस्त्वच्यः केश्यो रुचिप्रदः। मयूरः स्वरमेधाग्निदृक्छ्रोत्रेन्द्रियदार्ढ्यकृत॥ ५॥

मयूरका मांस–कषैला, स्वादिष्ट, लवणरसयुक्त, त्वचा और बालोंको हितकारी, रुचिकारक तथा स्वर, मेधा, जठराग्नि, दृष्टि, कर्ण और इंद्रियोंको दृढ करनेवाला है॥ ५॥

स्निग्धोष्णोऽनिलहा वृष्यः स्वेदस्वरबलावहः। बृंहणः कुक्कुटो वन्यस्तद्वद्ग्राम्यो गुरुर्मतः॥ ६॥

वनमुरगेका मांस–चिकना, गरम, वातनाशक, वृष्य, स्वेद, स्वर और बलको उत्पन्न करदेवाला तथा पुष्टिकारक है। ग्राम्यमुरगेका मांस भी इसीके समान जानना। विशेष कर यह भारी है॥ ६॥

मृगाः सर्वप्रकाराश्च पित्तश्लेष्महराः स्मृताः। किञ्चिद्वातकराश्चापि लघवो बलवर्द्धनाः॥ ७॥

सब प्रकारके मृगोंके मांस–पित्तकफनाशक, किंचित् वातकारक, हलके और बलको बढानेवाले हैं॥ ७॥

कषायो मधुरो हृद्यः पितासृक्कफवातहा। संग्राही रोचनो बल्यस्तेषामेण्यो ज्वरापहः॥ ८॥

इनमें एणहरिण (काले हिरन) का मांस–कषैला, मधुर, हृदयको हितकारी, रक्त, पित्त और कफ, वातनाशक, मलरोधक, रुचिकारक, बलकारक और ज्वरको दूर करता है॥ ८॥

मधुरो मधुरः पाके दोषघ्नोऽनलदीपनः। शीतलो बद्धविण्मूत्रः सुगन्धिर्हरिणो लघुः॥ ९॥

हरिणका मांस–मधुर, पाकमें भी मधुर, त्रिदोषनाशक, अग्निको दीपन करनेवाला, शीतल, मलमूत्रको रोकनेवाला, सुगन्धित और हलका है॥ ९॥

कषायः स्वादु लवणो गुरुः काणकपोतकः।

काणकपोतक (काकातुआ) का मांस–कषैला, स्वादिष्ट, लवणरसयुक्त और भारी है।

रक्तपित्तप्रशमनो विशदोऽपि कषायकः। विपाके मधुरश्चापि गुरुः पारावतः स्मृतः॥ १०॥

कबूतरका मांस–रक्तपित्तको शमन करनेवाला, विशद, कषैला, पाकमें मधुर और भारी है॥ १०॥

कुलिङ्गो मधुरः स्निग्धः कफशुक्रविवर्द्धनः। सन्निपातहरो वेश्मकुलिङ्गस्त्वतिशुक्रलः॥ ११॥

कुलिंग–(चिडा) का मांस–मधुर, स्निग्ध, कफ और शुक्रको बढानेवाला और सन्निपातनाशक है। घरमें पाले हुए चिडेका मांस–अत्यन्त शुक्रजनक है॥ ११॥

प्रसहाः शोषगुल्मार्शोग्रहणीदोषिणां हिताः। सर्वदोषहरास्तेषां मेदस्तु बलदूषकम्॥ १२॥

प्रसहजीवोंका मांस–शोष, गुल्म, अर्श और ग्रहणी रोगवालोंको हितकारी है। तथा सर्वदोषनाशक, मेद और बलको दूषित करता है॥ १२॥

वृकसिंहकपिव्याघ्रभासमार्जारमूषिकाः। तरक्षुकुररश्येनशशघ्नीजम्बुकादयः॥ १३॥

वृक, सिंह, कपि, व्याघ्र, भास, मार्जार, मूषक, तरक्षु, कुरर, श्येन, शशघ्न, जम्बुकादि इनको गुहाशय कहते हैं॥ १३॥

गुहाशया वातहरा गुरूष्णा मधुराश्च ते। स्निग्धा बल्या हिता नित्यं नेत्रगुह्यविकारिणम्॥ १४॥

गुहाशयजीवोंका मांस–वातनाशक, भारी, गरम, मधुर, स्निग्ध, बलकारक, तथा नेत्ररोगी और अर्शरोगियोंको सदैव हितकारी है॥ १४॥

नकुलः शल्लकी गोधा शशश्चापि भुजङ्गमाः । श्वासकासानिलहरा भूशयाः कफपित्तलाः ॥ १५ ॥

नकुल, शल्यकी, गोधा, शशक और सर्प, इनको भूशय कहते हैं । भूशयप्राणियोंका मांस श्वास, खाँसी और वातनाशक है । तथा कफ और पित्तको बढाता है ॥ १५ ॥

कषायो मधुरस्तेषां शशः पित्तकफापहः । नातिशीतलवीर्य्यत्वाद्वातसाधारणो मतः ॥ १६ ॥

शशकका मांस-कषैला, मधुर, पित्तकफनाशक और अत्यन्त शीतवीर्य्य न होनेसे साधारण वातको करता है ॥ १६ ॥

महिषो गवयः खड्गी वराहश्चमरो रुरुः । आनूपा मधुरा बल्या गुरुस्निग्धाः कफप्रदाः ॥ १७ ॥

महिष, गवय, खड्गी, वाराह, चमर और रुरु इन प्राणियोंको अनूप कहते हैं । आनूपप्राणियोंक मांस मधुर, बलकारक, भारी, स्निग्ध और कफकारक हैं ॥ १७ ॥

नातिस्निग्धाश्चमर्य्यस्तु मदपित्तकफाः स्मृताः । छगलस्त्वनभिष्यन्दी तेषां पीनसनाशनः ॥ १८ ॥

चमरगायका मांस-अत्यन्त स्निग्ध नहीं है तथा मद, पित्त और. कफको करता है । बकरेका मांस अनभिष्यन्द और पीनसको दूर करता है ॥ १८ ॥

बृंहणं मांसमौरभ्रं पित्तश्लेष्मकरं गुरु । मेदःपुच्छोद्भवं वृष्यमौरभ्रसदृशं गुणैः ॥ १९ ॥

भेडका मांस-पुष्टिकारक,. पित्तकफकारी और भारी है । दुम्बेका मांस-अत्यन्त वीर्य्यवर्द्धक होता है और शेषगुण इसके भेडके मांसके समान जानने ॥ १९ ॥

श्वासकासप्रतिश्यायविषमज्वरनाशनम् । गव्यं श्रमात्यग्निहितं दुष्पाकमनिलापहम् ॥ २० ॥

गायका मांस-श्वास, खाँसी, प्रतिश्याय और विषमज्वरको नष्ट करता है । तथा श्रमको दूर करनेवाला, अत्यन्त बढी हुई अग्निके लिये हितकारी, देरमें पचनेवाला और वायुनाशक है ॥ २० ॥

औरभ्रवत्सलवणं मांसमेकशफोद्भवम् । हंसकारण्डवक्रौञ्चमद्गुमल्लाह्वसारसाः । नन्द्यावर्त्ता बलाकाश्च श्लेष्मला गुरवः प्लवाः ॥ २१ ॥

एकखुरवाले जीवोंका मांस-नमकीन होता है । इसके विशेषगुण भेडके मांसके समान जानने । हँस, कारण्डव, क्रौंच, मद्गु, मल्लाह्व, सारस, नन्द्यावर्त और बलाका इनको प्लव कहते हैं । प्लवजीवोंका मांस कफकारी और भारी है ॥ २१ ॥

मत्स्यः कर्कटकः कूर्म्मः शिशुमारोऽथ शुक्तयः । शंखाश्च गुरवः स्निग्धाः शीता वृष्या जलेशयाः ॥ २२ ॥

मत्स्य, कर्कट, कूर्म, शिशुमार, शुक्ति और शंख इनको जलेशय कहते हैं । जलेशयोंका मांस भारी स्निग्ध, शीतल और वृष्य है ॥ २२ ॥

सामुद्रा गुरवः स्निग्धा मधुरा नातिपित्तलाः । उष्णा वातहरा वृष्या वर्चश्लेष्मविवर्द्धनाः ॥ २३ ॥

समुद्रके जीवोंका मांस-भारी, स्निग्ध, मधुर, अत्यन्त पित्तकारक नहीं, गरम, वातनाशक, वृष्य, मल और कफको बढानेवाला है ॥ २३ ॥

बलावहा विशेषेण मत्स्याशित्वात्समुद्रजाः । समुद्रजेभ्यो नादेया बृंहणत्वाद्गुणोत्तराः ॥ २४ ॥

मत्स्योंको भक्षण करनेसे समुद्रके जीवोंका मांस-विशेष करके बलकारक है । समुद्रके प्राणियों के मांससे अतीव बृंहण होनेके कारण नदीके प्राणियोंका मांस विशेष गुणवाला है ॥ २४ ॥

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायां मांसवर्गाधिकारः समाप्तः ॥ ८९ ॥

अथ शाकफलवर्गाधिकार ।

पाठा मूर्वा शठिशाकं वास्तुकं सुनिषण्णकम् । विद्याद्ग्राहि त्रिदोषघ्नं मार्कवं चिल्लिवास्तुकम् ॥ १ ॥

पाढ, मूर्वा, कचूर, बथुआ, चौपतिया भाँगरा और चिल्लीबथुआ इन सबका शाक मलरोधक और त्रिदोष नाशक है ॥ १ ॥

संग्राही क्षवकः प्रोक्तः स्निग्धः पञ्चांगुलः सरः । भण्टी वत्सादनी फञ्जी वातघ्नी लघुदीपनी ॥ २ ॥

क्षवक (चिरचिटेका शाक)–मलरोधक है। पञ्चांगुल (अण्डके पत्तोंका शाक)–स्निग्ध और सारक है । भण्टी (कटेरीका भेद) गिलोय और फंजी (तुलसीका भेद) ये तीनों वातनाशक, हलकी और अग्निको दीपन करती हैं ॥ २ ॥

काकमाचीत्रिदोषघ्नी स्तन्या वृष्या कलाम्बिका । चाङ्गेरी कफवातघ्नी सार्षपं सर्वदोषकृत् ॥ ३ ॥

मकोयका शाक–त्रिदोषनाशक है । कलमीशाक स्तनोंमें दूधको उत्पन्न करनेवाला और वृष्य है। चँगेरी (नोनिया)–कफवातनाशक और सरसोंका शाक सर्वदोषकारक है ॥ ३ ॥

सार्षपं च सकौसुम्भं राजिकैकान्तपित्तला । नाडीकः कफवातघ्नः कटुमधुरशीतलः ॥ ४ ॥

सरसों, कसूम और राई इनका शाक विशेष पित्तकारक है । तथा नाड़ीका शाक-कफवातनाशक, कटु, मधुर और शीतल है ॥ ४ ॥

सतीनशाकं श्लेष्मघ्नं त्रैपुटं वातकृन्मतम् । श्रीहस्तिनी सपत्तूरा मूत्रलाश्मरिभेदनी ॥ ५ ॥

मटरका शाक–कफनाशक है। खिसारीका शाक–वातकारक है । श्रीहस्तिनी (नागदन्ती) और शालिंचशाक–मूत्रजनक और पथरीको दूर करता है ॥ ५ ॥

कालशाकन्तु कटुकं दीपनं कफशोथजित् । वृष्या स्निग्धा च शीता च मृत्युघ्नी चाप्युपोदिका ॥ ६ ॥

कालशाक–कटु, अग्निप्रदीपक, कफ और सूजनको दूर करता है । पोईका शाक–वृष्य, स्निग्ध, शीतल और मृत्युनाशक है ॥ ६ ॥

रूक्षो विषमदघ्नश्च प्रशस्तो रक्तपित्तिनाम् । मधुरो मधुरः पाके शीतलस्तंडुलीयकः ॥ ७ ॥

चौलाईका शाक–रूखा, विष और मदनाशक, रक्तपित्तरोगियोंको हितकारी, मधुर, पाकमें भी मधुर और शीतल है ॥ ७ ॥

वर्षाभ्वौ कफवातघ्नौ हितौ शोफोदरेऽर्शसि ॥ ८ ॥

दोनो प्रकारके पुनर्नवेका शाक–कफवातनाशक तथा सूजन, उदर और अर्शरोगमें अत्यंत हितकारी है ॥ ८ ॥

कटुतिक्तरसा हृद्या रोचना वह्निदीपनी । सर्वदोषहरी लघ्वी कण्ठ्या मूलकपोतिका ॥ ९ ॥

छोटीमूली–कटु और तिक्तरसान्वित, हृदयको हितकारी, रुचिकारक, अग्निको दीपन करनेवाली समस्त दोषनाशक, हलकी और कंठको हितकारी है ॥ ९ ॥

महत्तद्गुरु विष्टम्भि तीक्ष्णमामञ्च दोषलम् । तदेव स्नेहसिद्धन्तु वातनुत् कफपित्तजित् ॥ १० ॥

बड़ीमूली–भारी और विष्टम्भकारी है। कच्चीमूली तीक्ष्ण और दोषकारक है । वही मूली तेल घृतादिकोंमें सिद्ध कीहुई–वातनाशक और कफपित्तको दूर करनेवाली है ॥ १० ॥

शुष्कन्तु शोथशमनं गरदोषहरं लघु । विष्टम्भि वातलं शाकं शुष्कमन्यत्र मूलकात् ॥ ११ ॥

सूखीमूली–शोथनाशक, विषदोषनाशक और हलकी है । सूखीमूलीके सिवाय अन्यान्य समस्त सूखेशाक–विष्टम्भकारक और वायुको कुपित करते हैं ॥ ११ ॥

पुष्पञ्च पत्रञ्च फलं तथैव यथोत्तरन्ते लघवः प्रदिष्टाः । तेषान्तु पुष्पं कफवातहन्तृ फलं निहन्यात्कफमारुतौ च ॥ १२ ॥

पुष्प, पत्र और फलशाक ये क्रमसे उत्तरोत्तर लघु हैं । इनमें पुष्पशाक-कफवातनाशक और फलशाक भी कफवायुको दूर करनेवाला है ॥ १२ ॥

रक्तपित्तहरी शोथकुष्ठघ्नी हिलमोचिका । कफापहं शाकमुक्तं वरुणप्रपुनाटयोः ॥ १३ ॥

हिलमोचिका (हुलहुल) का शाक रक्तपित्तनाशक शोथ और कुष्ठ नाशक है। वरना और पमारका शाक कफनाशक है ॥ १३ ॥

स्निग्धोष्णतीक्ष्णः कटुपिच्छिलश्च गुरुः सरः स्वादुरसोऽथ बल्यः । वृष्यश्च मेधास्वरवर्णचक्षुर्भग्नास्थिसंधानकरो रसोनः ॥१४॥ हृद्रोगजीर्णज्वरकुक्षिशूलविबन्धगुल्मारुचिकासशोषान् । दुर्नामकुष्ठानलसादजन्तुः समीरणश्वासकफांश्च हन्ति ॥ १५ ॥

लहसुन-स्निग्ध, उष्ण, तीक्ष्ण, कटुरसान्वित,पिच्छिल, भारी, सारक, स्वादु,बलकारक,वृष्य, मेधा, स्वर,वर्ण और नेत्रोंको हितकारी है । टूटी हुई हड्डीको जोडनेवाला तथा हृदयरोग, जीर्णज्वर,कुक्षिशूल, विबन्ध, गुल्म, अरुचि, खांसी, शोष, ववासीर,कोढ, मंदाग्नि, वायु, श्वास और कफ इन सबको दूर करता है ॥ १४ ॥ १५ ॥

नात्युष्णवीर्य्योऽनिलहा कटुश्च तीक्ष्णो गुरुर्नातिकफावहश्च । बलावहः पित्तहरोऽथ किञ्चित्पलांडुरग्नेश्च विवृद्धिकारी ॥ १६ ॥

प्याज-अत्यंत उष्णवीर्य्य नहीं है, वातनाशक, चरपरा, तीक्ष्ण, भारी, न अत्यंत कफको, करनेवाला, बलको बढानेवाला,पित्तनाशक और किंचित् अग्निको दीपन करता है ॥ १६ ॥

स्निग्धोऽथ रुच्यः स्थिरधातुकर्त्ता बल्योऽथ मेधा कफपुष्टिदाता । स्वादुर्गुरुः शोणितपित्तशस्तः सपिच्छलः क्षीरपलांडुरुक्तः ॥ १७ ॥

सफेद प्याज-चिकना, रुचिकारक, धातुओंको स्थिर करनेवाला, बलकारक, मेधा, कफ और पुष्टिको करनेवाला, स्वादु, भारी, रक्तपित्तमें हितकारी और पिच्छिल है ॥ १७ ॥

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थप्लक्षपद्मादिपल्लवाः । कषायाः स्तम्भनाः शीता हिताः पित्तातिसारिणाम् ॥ १८ ॥

बड़,गूलर,पपिल,पाखर और कमल आदिके पत्तोंका शाक-कषैला, स्तम्भक, शीतल और पित्तातिसार रोगियोंको हितकारी है ॥ १८ ॥

स्रंसनं कटुकं पाके कफघ्नमनिलापहम् । शोथघ्नमुष्णवीर्य्यश्च पत्रं पूतिकरंजजम् ॥ १९ ॥

दुर्गंधकरंजके पत्तोंका शाक-स्रंसन, पाकमें कटु कफ वातनाशक, सूजनको दूर करनेवाला और उष्णवीर्य्य है ॥ १९ ॥

वेणोः करीराः श्लेष्मघ्नाः कटुका रसपाकतः । विदाहिनो नातिबलाः सकषाया निरूक्षणाः ॥ २० ॥

बाँसके अंकुर-कफनाशक, रस और पाकमें कटु, दाहकारक, अत्यंत बलकारक नहीं,कषैले और रूक्ष हैं ॥ २० ॥

कफशोणितपित्तघ्नं रोचनं कारवेल्लकम् । कारवेल्लकवज्ज्ञेयं फलं कर्कोटकस्य च ॥ २१ ॥

करेला-कफ और रक्तपित्तको दूर करनेवाला और रुचिकारक है । ककोडेके गुण भी करेलेके समान जानने ॥ २१ ॥

पटोलपत्रं पित्तघ्नं नालं तस्य कफापहम् । फलं त्रिदोषशमनं मूलं तस्य विरेचनम् ॥ २२ ॥

पटोलपत्र–पित्तनाशक । पटोलकी नाल–कफनाशक । पटोलके फल (परवल)–त्रिदोषनाशक और पटोलकी जड विरेचन है ॥ २२ ॥

पित्तनुत्तेषु कूष्माण्डं बालं मध्यं कफापहम् । शुष्कं लघूष्णं सक्षारं दीपनं बस्तिशोधनम् ॥ २३ ॥

कच्चापेठा–पित्तनाशक । मध्यम अवस्थाका पेठा–कफनाशक । सूखापेठा–हलका, गरम, खारी, अग्निप्रदीपक और बस्तिशोधक है ॥ २३ ॥

सर्वदोषहरं हृद्यं पथ्यं चेतोविकारिणाम् ।

यह पेठा सम्पूर्ण दोषनाशक, हृदयको हितकारी और मानसिकरोगवाले मनुष्योंको अतीव हितकारी है ।

बालं सनीलं त्रपुसं तत्तु पित्तहरं स्मृतम् । तत्पांडु कफकृज्जीर्णमम्लं वातविनाशनम् ॥ २४ ॥

कच्चा हरेरंगका खीरा–पित्तनाशक है । पीलेरंगका मध्यमअवस्थाका खीरा– कफकारक है । पुराना खीरा अम्ल और वातनाशक है ॥ २४ ॥

एर्वारुकं सकर्कारुसंपकं कफवातजित् । साक्षारं मधुरं रुच्यं तच्चोक्तं नातिपित्तलम् ॥ २५ ॥

ककडी और पेठा ये दोनों पके हुए कफवातनाशक हैं। तथा क्षार, मधुर, रुचिकारक और अत्यंत पित्तकारक नहीं हैं ॥ २५ ॥

सक्षारमधुरं भेदि शीर्णवृन्तं कफापहम् ॥ २६ ॥

तरबूज–क्षारयुक्त, मधुर, भेदक, फटनेवाला और कफकारक है ॥ २६ ॥

कंडूकुष्ठकृमिघ्नानि कफपित्तहराणि च । फलानि बृहतीनान्तु कटुतिक्त लघूनि च ॥ २७ ॥

बडीकटेरीके फल– कण्डू, कुष्ठ, कृमि, कफ और पित्तको दूर करते हैं तथा कटु, तिक्त और लघु है ॥ २७ ॥

कफवातहरं तिक्तं रोचनं कटुकं लघु । वार्त्ताकु दीपनं प्रोक्तं जीर्णं सक्षारपित्तलम् ॥ २८ ॥

वैगुन–कफवातनाशक, तिक्त, रुचिकारक, कटु, हलका और अग्निप्रदीपक है । पुराना वैगुन–क्षार और पित्तकारक है ॥ २८ ॥

अत्यर्थमधुरा रुच्याः पित्तघ्नी मधुककर्टी । कर्कन्धुकोलबदरमम्लं वातविनाशनम् ॥ २९ ॥

मीठी ककडी–अत्यंतमधुर, रुचिकारक और पित्तनाशक है । छोटाबेर, बडाबेर और समस्त प्रकारके बेर अम्ल और वातनाशक हैं ॥ २९ ॥

पक्कं पित्तानिलहरं स्निग्धं समधुरं सरम् । पुराणं तृट्प्रशमनं श्रमघ्नं दीपनं परम् ॥ ३० ॥

पके हुए बेर–पित्तवातनाशक, स्निग्ध, मधुर और सारक हैं । पुराने बेर–तृषाको शांत करनेवाले, श्रमनाशक और अग्निको दीपन करते हैं ॥ ३० ॥

सौवीरं बदरं स्निग्धं मधुरं वातपित्तजित् । आमं कपित्थं वैस्वर्यं ग्राही मधुरवातलम् ॥ ३१ ॥

सौवीर (पेमदी) बेर–स्निग्ध, मधुर और वातपित्तनाशक हैं । कच्चा कैथ–स्वरको बिगाडनेवाला मलरोधक और वातकारक है ॥ ३१ ॥

कफानिलहरं पक्कं मधुराम्लरसं गुरु । दोषलं पित्तकृत्पांडु जम्बीरमतिपित्तलम् ॥ ३२ ॥

पक्काकैथ–कफवातनाशक, मधुर और भारी है । पांडुनींबू–दोषजनक और पित्तकारक है तथा जम्भीरीनींबू–अत्यंत पित्तकारक है ॥ ३२ ॥

गुल्मवातकफश्वासकासघ्नं बीजपूरकम् । केसरं मातुलुङ्गस्य दीपनं कफवातजित् ॥ ३३ ॥

बिजौरानींबू–गुल्म, वात, कफ, श्वास और खाँसीको दूर करता है । बिजौरेनींबूकी केसर–अग्निप्रदीपक और कफवातनाशक है ॥ ३३ ॥

वातपित्तहरं मांसं त्वक्स्निग्धोष्णानिलापहा ।

बिजौरेनींबूका गूदा-वातपित्तनाशक और बिजौरेनींबूकी छाल स्निग्ध, उष्ण और वातनाशक है ।

अत्यर्थमधुरा रुच्या पित्तघ्नी मधुककर्कटी ॥ ३४ ॥

मीठानींबू-अत्यंतमधुर, रुचिकारक और पित्तनाशक है ॥ ३४ ॥

पित्तमारुतकृद्बालं पित्तलं बद्धकेसरम् । हृद्यं वर्णकरं रुच्यं रक्तमांसबलप्रदम् ॥ ३५ ॥

वही कच्चानींबू-पित्तवातकारक, बद्धकेसर, पित्तकारक, हृदयको हितकारी, वर्णकारक, रुचिकारक, तथा रुधिर मांस और बलको बढाता है ॥ ३५ ॥

कषायानुरसं स्वादु वातघ्नं बृंहणं गुरु । पित्ताविरोधिसंपक्वमाम्रं शुक्रविवर्द्धनम् ॥ ३६ ॥

अच्छे प्रकारसे पका हुआ आम कषायरसान्वित, स्वादिष्ठ, वातनाशक, पुष्टिकारक, भारी, पित्तको नहीं कुपित करनेवाला और वीर्यको बढाता है ॥ ३६ ॥

बृंहणं मधुरं बल्यं गुरु विष्टभ्य जीर्यति । आम्रातकफलं वृष्यं सस्नेहं कफवर्द्धनम् ॥ ३७ ॥

अम्बाडा-पुष्टिकारक, मधुर, बलकारक, भारी, विष्टम्भतापूर्वक पचनेवाला, स्नेहयुक्त, वृष्य है और कफको बढाता है ॥ ३७ ॥

त्रिदोषविष्टम्भकरं लकुचं शुक्रनाशनम् ।

बडहल-त्रिदोषको कुपित करनेवाला, विष्टम्भकारक और शुक्रको नष्ट करता है ।

अम्लं तृष्णाहरं रुच्यं पित्तकृत्करमर्दकम् ॥ ३८ ॥

करौंदा-अम्ल, तृषानिवारक, रुचिकारक और पित्तको कुपित करता है ॥ ३८ ॥

हृद्यं स्वादु कषायाम्लं भव्यमास्यविशोधनम् ।

भव्यफल-हृदयको हितकारी, स्वादु, कषैला, अम्ल और मुखको शुद्ध करता है ।

गरदोषहरं नीपं प्राचीनामलकं तथा ॥ ३९ ॥

कदमके फल और पुराना आमला-गर विषदोषनाशक हैं ॥ ३९ ॥

वातापहं तित्तिडीकमामं पित्तबलासकृत् । ग्राहि संदीपनं हृद्यं सम्पक्कं कफवातनुत् ॥ ४० ॥

तित्तिडीकका कच्चाफल वातनाशक तथा पित्त और कफको कुपित करता है । पका हुआ तित्तिडीकका फल-मलरोधक अग्निको दीपन करनेवाला, हृदयको हितकारी तथा कफ और वातको नष्ट करता है ॥ ४० ॥

तस्मादल्पान्तरगुणं कोशाम्रफलमुच्यते । अम्लीकायाः फलं तद्वत्पक्वं भेदि तु केवलम् ॥ ४१ ॥

कोशाम्रके गुण इससे कुछ कम जानने । इमलीके गुण भी इसीके समान जानने और पकी इमली केवल भेदक है ॥ ४१ ॥

अम्लं समधुरं हृद्यं वृष्यमेतत्तु रोचनम् । वातघ्नं दुर्जरं प्रोक्तं नागरङ्गफलं गुरु ॥ ४२ ॥

नारंगी-अम्ल, मधुर, हृदयको हितकारी, वृष्य, रुचिकारक, वातनाशक, देरमें जीर्ण होनेवाला और भारी है ॥ ४२ ॥

कषायानुरसं चैषां दाडिमं नातिपित्तलम् । दीपनीयं रुचिकरं हृद्यं वर्चो विबन्धनम् ॥ ४३ ॥

अनार-कषायरसान्वित, अत्यन्त पित्तकारक नहीं, अग्निको दीपन करनेवाला, रुचिकारक, हृदयको हितकारी और मलको रोकनेवाला है ॥ ४३ ॥

द्विविधं तत्तु विज्ञेयं मधुरं चाम्लमेव च । त्रिदोषघ्नन्तु मधुरमम्लं वातकफापहम् ॥ ४४ ॥

अनार मधुर और अम्ल इन भेदोंसे दो प्रकारका है। इनमें मधुर अनार त्रिदोषनाशक और खट्टा अनार वात और कफको नष्ट करता है ॥ ४४ ॥

अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षन्यग्रोधानां फलानि च । कषायमधुराम्लानि वातलानि गुरूणि च ॥ ४५ ॥

पीपल, गूलर, पाखर और बड इनके फल कषैले मधुर, खट्टे, वातनाशक और भारी हैं ॥ ४५ ॥

वृत्तामारुष्करं स्वादु पित्तघ्नं शोथवह्निकृत् ॥ ४६॥

भिलावेका डंठल, स्वादु, पित्तनाशक, शोथ और अग्निको उत्पन्न करता है ॥ ४६ ॥

अत्यम्लं वातलं ग्राहि जाम्बवं कफपित्तजित् ॥ ४७ ॥

जामुन–अत्यंत अम्ल, वातकारक, मलरोधक तथा कफ और पित्तनाशक है ॥ ४७ ॥

आमं कषायं संग्राहि तिन्दुकं वातकोपनम् । विपाके गुरु सम्पक्कं मधुरं कफपित्तजित् ॥ ४८ ॥

तेंदुका कच्चाफल–कषैला, मलरोधक और वायुको कुपित करता है। तेंदुका पकाफल पाकमें भारी, मधुर और कफपित्तको नष्ट करता है ॥ ४८ ॥

मधुरं च कषायश्च स्निग्धं संग्राहि चालुकम् । स्थिरीकरश्च दन्तानां बाकुलं फलमुच्यते ॥ ४९ ॥

आलु–मधुर, कषैला, स्निग्ध और मलरोधक है। मौलसिरीका फल दाँतोंको स्थिर करता है ॥ ४९ ॥

अत्यम्लमीषन्मधुरं कषायानुरसं लघु । वातघ्नं पित्तजननमामं विद्यात्परूषकम् ॥ ५० ॥

कच्चाफालसा–अत्यंत अम्ल, किंचित् मधुर, कषैला, हलका, वातनाशक और पित्तको उत्पन्न करता है ॥ ५० ॥

तदेव मधुरं पक्कं वातपित्तनिबर्हणम् । विपाके मधुरं शीतं रक्तपित्तप्रसादनम् ॥ ५१ ॥

वही पकाफलसा–मधुर, वातपित्तनाशक, पाकमें मधुर, शीतल और रक्तपित्तको शमन करता है ॥ ५१ ॥

पौष्करं स्वादु विष्टम्भि बल्यं कफहरम्परम् ॥

कमलगट्टा–स्वादु, विष्टम्भकारक, बलकारक और कफको दूर करता है।

कफानिलहरं तीक्ष्णं स्निग्धं संग्राहि दीपनम् । कटुतिक्तकषायोष्णं बालं बिल्वमुदाहृतम् ॥ ५२ ॥

कच्चाबेल–कफवातनाशक, तीक्ष्ण, स्निग्ध, मलरोधक अग्निको दीपन करनेवाला, कटु, तिक्त, कषायरसान्वित, और गरम है ॥ ५२ ॥

तदेव विद्यात्संपक्कं मधुरानुरसं गुरु । विदाहि विष्टम्भकरं दोषकृत्पूतिमारुतम् ॥ ५३ ॥

वही पका हुआ बेल–मधुर, और भारी है। तथा दाहकारक, विष्टम्भकारक, दोषकारक और दुर्गन्धित वायुको करता है ॥ ५३ ॥

पनसं सकषायन्तु स्निग्धं स्वादु हिमं गुरु ॥ ५४ ॥ मोचं स्वादुरसं प्रोक्तं कषायं नातिशीतलम् । रक्तपित्तहरं वृष्यं रुच्यं श्लेष्मकरं गुरु ॥ ५५ ॥

कटहलका फल–कषैला, स्निग्ध, मधुर, शीतल और भारी है। केलेकी फली–मधुर, कषैली, अत्यंत शीतल नहीं, रक्तपित्तनाशक, वृष्य, रुचिकारक कफकारी और भारी है ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

फलं स्वादुरसं चैव तालजं गुरुपित्तजित् । तद्बीजं स्वादु पाकश्च मूत्रलं वातपित्तजित् ॥ ५६ ॥

ताडका फल–मधुर, भारी और पित्तनाशक है। ताड़के फलके बीज–मधुर, पाकी, मूत्रजनक और वातपित्तको नष्ट करते हैं ॥ ५६ ॥

हृद्यं मूत्रविबन्धघ्नंपित्तासृग्वातनाशनम् । केश्यं रसायनं मेध्यं काश्मर्य्यफलमुच्यते ॥ ५७ ॥

कुम्भेरका फल–हृदयको हितकारी, मूत्रके बिबन्धको दूर करनेवाला, रक्तपित्तनाशक,वातविनाशक, केशोंको हितकारी,रसायन और मेधाजनक है ॥५७॥

क्षतक्षयापहं हृद्यं बृंहणं तर्पणं गुरु । स्निग्धं वृष्यं समधुरं खर्जूरं रक्तपित्तजित् ॥ ५८ ॥

खजूर–क्षत और क्षयको हरनेवाला, हृदयको हितकारी, पुष्टिकारक, तृप्तिकारी, भारी, चिकना, वृष्य मधुर और रक्तपित्तनाशक है ॥ ५८ ॥

बृंहणीयमहृद्यञ्च मधूककुसुमं गुरु। वातपित्तप्रशमनं फलं तस्योपदिश्यते॥५९॥

महुवेके फूल–पुष्टिकारक, हृदयको अहितकारी और भारी हैं।महुवेके फल वातपित्तनाशक हैं।।५९।।

कषायं कफपित्तघ्नं किञ्चित्तिक्तं रुचिप्रदम् । हृद्यं सुगन्धि साम्लञ्च लवलीफलमुच्यते ॥ ६०॥

लवलीफल (हरफारेवडी) कषायरसान्वित, कफपित्तनाशक, किंचित् तिक्त, रुचिकारक,हृदयको हितकारी, सुगंधित और अम्ल है ॥ ६० ॥

शमीफलं गुरु स्वादु रूक्षोष्णं कफनाशनम् । गुरु श्लेष्मातकफलं कफकृन्मधुरं हिमम् ॥ ६१ ॥

छोकरके (जंडीके) फल–भारी, मधुर, रूक्ष, गरम और कफनाशक हैं। लिसोड़े भारी,कफकारी, मधुर और शीतल हैं ॥ ६१ ॥

करञ्जकिंशुकारिष्टफलं जन्तुप्रमेहनुत् । प्रियालमज्जा मधुरो वृष्यः पित्तानिलापहः ॥ ६२ ॥

करंज, ढाक और नीमके फल–कृमि और प्रमेहरोगनाशक हैं। चिरौंजी की मींग–मधुर, वृष्य, तथा पित्त और वातको नष्ट करती है ॥ ६२ ॥

बैभीतको मदकरः कफवातविनाशनः। कषायो मधुरो मज्जा कोलानां पित्तनाशनः ॥ ६३ ॥

बहेडेकी मींग–मदकारक और कफवातनाशक,है। बेरोंकी मींग–कषैली,मधुर और पित्तनाशक है॥६३॥

तृष्णाछर्द्यनिलघ्नश्च तद्वदामलकस्य च।

आमलेकी मींगके गुण भी इसीके समान जानने विशेष करके तृषा,वमन और वायुको शमन करती है।

बीजपूरकसंपाको मज्जा कोशाम्रसम्भवः । स्वादुपाकोऽग्निबलदः स्निग्धः पित्तानिलापहः ॥ ६४ ॥

बिजौरेनींबूकी मींग,अमलतासकी मींग और कोशाम्रकी मींग–पाकमें मधुर, अग्निजनक, बलदायक स्निग्ध और पित्तवातनाशक है ॥ ६४ ॥

शीतं कषायमधुरं टङ्कं मारुतकृद्गुरु ॥ ६५ ॥

टंकफल–शीतल, कषैला, मधुर, वातकारक और भारी है ॥ ६५ ॥

यस्य यस्य फलस्येह वीर्य्यम्भवति यादृशम् । तस्य तस्यैव वीर्येण मज्जानमपि निर्दिशेत् ॥ ६६ ॥

जिस जिस फलका जैसा जैसा वीर्य्य होता है। उस उसकी मज्जकोभी उसीके वीर्य्यके अनुसार गुण जानने ॥ ६६ ॥

धान्येषु मांसेषु फलेषु चैव शाकेषु चानुक्तमपि प्रमोहात् । आस्वादतो भूतगुणैर्गृहीत्वा तदादिशेद्द्रव्यमनल्पबुद्धिः ॥ ६७ ॥

धान्यवर्ग, मांसवर्ग, फलवर्ग और शाकवर्गमें जो बहुतसे धान्य, मांस, फल और शाक आदि बुद्धिके दोषसे नहीं कहे हैं, उनके बुद्धिमान् वैद्य स्वादके द्वारा उत्पन्न हुए गुणोंको जानकर यथाविधिसे प्रयोग करे ॥ ६७ ॥

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायां शाकफलवर्गाधिकार समाप्त ॥ ९० ॥

अथ व्यंजनमांसव्यंजनाधिकार।



वातश्लेष्महरश्चैव रक्तपित्तप्रदूषणम्। अग्निसन्दीपनं हृद्यमुष्णान्नं तु प्रशस्यते॥ १॥

उत्तम चावलोंके द्वारा सिद्ध किया हुआ गरमागरम भात–वातनाशक, रक्तपित्तको दूषित करनेवाला अग्निको दीपन करनेवाला, हृदयको हितकारी और उत्तम है॥ १॥

धौतः सुविमलः शुद्धो मनोज्ञः सुरभिः समः। स्विन्नः सुप्रस्नुतस्तूर्णो विशदश्चौदनो लघुः॥ २॥

धुले हुऐ,स्वच्छ शुद्ध, मनोहर और सुगंधित ऐसे सूक्ष्म चावलोंको पकाकर मांड निचोड हुआ गरमागरम भात विशद और हलका है॥ २॥

शीतलं तर्पणं हृद्यं मधु श्रमहरं परम्।लघु द्रुतविपक्वन्तु सद्योऽन्नं वारिभावितम्॥ ३॥

तत्काल सिद्ध किया हुआ और जलसे धोया हुआ भात–शीतल, तृप्तिकारक, हृदयको हितकारी,मधुर, श्रमनाशक, हलका और शीघ्र पचनेवाला है॥ ३॥

त्रिदोषकोपनं रूक्षं मलकृन्मूत्रशोधनम्। स्वादु मेदः कफोत्क्लेदि वार्यन्नं निशि संस्थितम्॥ ४॥

जलयुक्त और रात्रिमें रक्खा हुआ बासी भात-त्रिदोषको कुपित करनेवाला, रूखा, मलकारक, मूत्रशोधक, मधुर, मेद और कफको उत्क्लेदित करता है॥ ४॥

मधुरं शीतलं साम्लं तृष्णाघ्नं दीपनं परम्। आमघ्नं तर्पणं हृद्यं घोलभक्तं रुचिप्रदम्॥ ५॥

घोलयुक्त भात–मधुर, शीतल, अम्ल, तृषानाशक, अग्निप्रदीपक, आमनाशक, तृप्तिकारक, हृदयको हितकारी और रुचिकारक है॥ ५॥

भोजनाग्रे सदा पथ्यं जिह्वाकण्ठविशोधनम्। अग्निसन्दीपनं हृद्यं लवणार्द्रकभक्षणम्॥ ६॥

भोजनसे पहिले लवणके साथ अदरखको भक्षण करना सदैव पथ्य है। यह जिह्वा और कंठको शुद्ध करता, अग्निको दीपन करता और हृदयको हितकारी है॥ ६॥

वातश्लेष्महरं रुच्यं दीपनं पाचनं परम्। विशेषादामवातघ्नं लवणं काञ्जिकार्द्रकम्॥ ७॥

लवण और काँजीयुक्त अदरख-वातकफनाशक, रुचिकारक, अग्निप्रदीपक, पाचन और विशेषकरके आमवातनाशक है॥ ७॥

दीपनं तर्पणं रुच्यमामघ्नमनुलोमनम्। मन्दाग्नीनां सदा पथ्यं बिल्वं काञ्जिकसंस्थितम्॥ ८॥

काँजीमें पड़ा हुआ बेल अग्निप्रदीपक,तृप्तीकर, रुचिकारक, आमनाशक वातादि दोषोंको अनुलोमन करनेवाला और मंदाग्निवाले रोगियोंको सदैव पथ्य है८।

कषायो मधुरो रूक्षः शीतः पाके कटुर्लघुः। श्लेष्मपित्तप्रशमनो मुद्गयूषोत्तमो मतः॥ ९॥

मूँगका यूष उत्तम, कषैला, मधुर, रूखा,शितल, पाकमें कटु, हलकी और कफ, पित्तको शमन करनेवाला है॥ ९॥

सुस्विन्नो निस्तुषो भृष्ट ईषत्सूपो लघुर्मतः। माषः समधुरो रुच्यो विदाही चाम्लपित्तकृत्॥ १०॥

छिलकेरहित और कुछ एक भुनी हुई ऐसी सीजी हुई मूँगकी दाल–हलकी है। उड़दकी दाल अथवा उड़द–मधुर, रुचिकारक, दाहजनक और अम्लपित्तको कुपित करते हैं॥ १०॥

वातघ्नो दीपनश्चैव चाम्लमाषो गुरुः सरः। स्विन्नं निष्पीडितं शाकं हितं स्यात्स्नेहसंस्कृतम्॥ ११॥ वातपित्तहरं वृष्यं पुष्टिकृद्बलवर्द्धनम्। क-

फमेदोऽनिलहरं सरं सुलघु दीपनम् ॥ १२ ॥

अम्लमाष (खटाईयुक्त उड़द) वातनाशक दीपक,भारी और सारक हैं। सीजा हुआ और निचोडा हुआ तथा स्नेह (तेल,घृतादि)के द्वारा भुना हुआ शाक—हितकारक, वातपित्तनाशक, वृष्य, पुष्टिकारक और बलवर्द्धक है। तथा कफ, मेद और वातनाशक, सारक और हलका एवं अग्निको दीपन करनेवाला है ॥ ११ ॥ १२ ॥

वार्त्ताकं पित्तलं किञ्चिदङ्गारपरिपाचितम्। हितं ततो गुरुतरं सतैलं लवणान्वितम् ॥ १३ ॥

अंगारोंपर भुने हुए बैंगुन—किंचित् पित्तकारक हैं। तेलके द्वारा भुने हुए और लवणयुक्त बैगुन हितकारक और अत्यंत भारी हैं ॥ १३ ॥

वृद्धं कूष्माण्डकं स्विन्नं घृतभृष्टं सुपाचितम्। पक्वं चिञ्चाफलं तक्रं गुडयुक्तं सुभावितम्। त्रिकटुत्रिसुगन्धिभ्यां मोदितं दोषनाशनम् ॥ १४ ॥

जलमें सीजा हुआ और घृतमें भुना हुआ तथा अच्छेप्रकारसे पकाया हुआ एवं पक्व इमली, तक्र और गुडके द्वारा भावना दिया हुआ तथा त्रिकुटा और त्रिसुगंधिसे युक्त ऐसा पुराना पेठा त्रिदोषनाशक है ॥ १४ ॥

सुस्विन्नमग्नौ घृतपाचितश्च गुडान्वितं क्षीरविलोडितश्च। त्रिजातयुक्तं च सकेसरं च दुग्धाम्रमेतत्परिकीर्त्तितश्च ॥ १५ ॥

अग्निके द्वारा सीजा हुआ घृतके द्वारा पकाया हुआ गुडयुक्त और दूधमें आलोडित किया हुआ, त्रिसुगंधि और नागकेशरसे युक्त इस प्रकार सिद्ध किये हुये आमको दुग्धाम्र कहते हैं ॥ १५ ॥

वृष्यश्च पुष्टिश्च करोति कान्तिं निषेव्यमाणं बलमादधाति ॥ १६ ॥

यह दुग्धाम्र—वृष्य, पुष्टिकारक, तथा कान्ति और बलको उत्पन्न करता है ॥ १६ ॥

लघवो बृंहणा रुच्याश्छर्दिघ्ना रागषाण्डवः। रसाला पाचनी वृष्या वातहृत्सगुडं दधि ॥ १७ ॥

रागषांडव-हलका, पुष्टिकारक, रुचिकारक और वमनको दूर करता है। रसाला—पाचन और वृष्य है, गुडयुक्त दही वातनाशक है ॥ १७ ॥

गुरवः पैष्टिका भक्ष्या बृंहणा वातनाशनाः। वातपित्तहरो वृष्यो घृतपूरोऽग्निनाशनः ॥ १८ ॥

पैष्टिका अर्थात् बने हुए पकान्न और मिष्टान्न-पुष्टिकारक और वातनाशक हैं। घृतपूर (घेवर) वातपित्तनाशक, वृष्य और अग्निनाशक हैं ॥ १८ ॥

बृंहणाः समिता भक्ष्या बल्याः पित्तानिलापहाः। पिशितैर्वेशवाराद्यैः संपूर्णा गुरुतर्पणाः ॥ १९ ॥

मदाके बने हुए पदार्थ—बृंहण, बलकारक और पित्तवातनाशक हैं। मांसके बने हुए सम्पूर्ण वेशवारादि पदार्थ—भारी और तृप्तिकारक हैं ॥ १९ ॥

द्विदलाः श्लेष्मला ज्ञेया गुरवो भिन्नवर्चसः। वातपित्तहरा वर्ण्या दृष्टिदा घृतपाचिताः ॥ २० ॥

द्विदलवाले अन्नोंके बनाये हुए पदार्थ—कफकारक, भारी और मलको करनेवाले हैं। घृतके बनाए हुये पदार्थ—वातपित्तनाशक, वर्णकारक और दृष्टिजनक हैं ॥ २० ॥

भक्ष्यास्तैलकृता दृष्टिवातघ्नाः पित्तकोपनाः। तोयेनालोडिता भक्ष्याः स्विन्नाश्चाम्भसि दुर्जराः ॥ २१ ॥

तेलके बने हुये पदार्थ—दृष्टि और वातनाशक तथा पित्तको कुपित करते हैं। जलमें आलोड़ित किये हुये तथा जलमें सीजे हुये पदार्थ—दुर्जर (अर्थात् देरमें जीर्ण) होते हैं ॥ २१ ॥

गुरवो बृंहणा वृष्या ये च क्षीरोपसाधिताः। अत्युष्णा मण्डलाः पथ्याः शीतला गुरवो मताः ॥ २२ ॥

दूधके द्वारा अथवा दूधके विकारोंके द्वारा सिद्ध-किये हुए पदार्थ-भारी, पुष्टिकारी और वीर्यवर्द्धक हैं। मण्डला-अत्यंत उष्ण,पाच्य शीतल और भारी है॥ २२॥

लाजाश्छर्दिहराः शीता वृष्या गुर्वी च शष्कुली।

खीलें-वमननिवारक और शीतल हैं। शष्कुली-(पूरी)वृष्य और भारी हैं॥

पिष्टकं गुरु विष्टम्भि विदाहि कफपित्तलम् ॥ २३ ॥

पिष्टकपदार्थ-भारी, विष्टम्भकारी, दाहजनक और कफपित्तकारक हैं॥ २३॥

कपालाङ्गारपक्काः स्युः किञ्चिल्लघुतराश्च ते। कुल्माषा वातला रूक्षा गुरवो भिन्नवर्चसः ॥ २४ ॥

खीपडे या तवेपर अथवा अँगारोंपर पकाये हुए पदार्थ(रोटी,वाटी इत्यादि) पिष्टक (घृतादिके द्वारा पकाये हुए पकान्न) पदार्थोंकी अपेक्षा किंचित् अधिक हलके हैं। कुल्माष (घुघुरी)-वातकारक, रूखे, भारी और मलकारक हैं॥ २४॥

शक्तवो वातला रूक्षा वातवर्चोऽनुलोमिनः। तर्पयन्ति नरं शीघ्रं पीताः सद्यो बलाश्च ते ॥ २५॥

सत्तू-वातकारक,रूखे, वायु और मलको अनुलोमन करनेवाले हैं। तथा शीघ्रही मनुष्यको तृप्त करते हैं और पान करते ही तत्काल शरीरमें बलको उत्पन्न करते हैं॥ २५॥

मधुरा लघवः शीताः शक्तवः शालिसम्भवाः। ग्राहिणो रक्तपित्तघ्नास्तृष्णाछर्दिज्वरापहाः ॥ २६ ॥

शालिधानोंकी खीलोंके सत्तू-मधुर, हलके,शीतल मलरोधक, रक्तपित्तनाशक,तृषा, वमन और ज्वरको दूर करते हैं॥ २६॥

पूपका वा यवैर्घोलमोदकाः पित्तनाशनाः। विष्टम्भी पायसो बल्यो मेदः कफकरो गुरुः ॥ २७॥

पूपक (पूये) अथवा जौके घोलके बनाये हुए मोदक-पित्त नाशक हैं। खीर-विष्टम्भकारक, बलकारक, मेद और कफकारी तथा भारी है॥ २७॥

कफपित्तकरा बल्या कृशराऽनिलनाशिनी। पाचनो दीपनः पथ्यो मण्डः स्याद्भृष्टतण्डुलैः ॥ २८ ॥

खिचडी-कफ,पित्तकारक,बलकारक और वायुको शमन करती है। भुने हुये चावलोंका माँड-पाचक, दीपन और पथ्य है॥ २८॥

लाजमण्डो विशुद्धानामपथ्यः पाचनदीपनः। वातानुलोमनो हृद्यः पिप्पलीनागरायुतः ॥ २९ ॥

खीलोंका मांड-वमन,विरेचनादिसे शुद्ध शरीरवाले मनुष्योंको-पथ्य,पाचन और अग्निप्रदीपक है। तथा उसमें पीपल और सोंठका चूर्ण डालकर सेवन किया जाय तो वातको अनुलोमन करता है और हृदयको हितकारी है॥ २९॥

वातानुलोमनी लघ्वी सोष्णा तन्वी ज्वरापहा। ग्राहिणी तर्पिणी हृद्या विलेपी बलवर्द्धिनी ॥ ३० ॥

विलेपी-वातको अनुलोमन करनेवाली, हलकी, उष्णा, गरम, सूक्ष्म, ज्वरनाशक, मलरोधक, तृप्तिकारक, हृदयको हितकारी और बलवर्द्धक है॥३०॥

शाकमांसफलैर्युक्ता विलेप्योऽम्लाश्च दुर्जराः। दाडिमामलकैर्यूषो वह्निकृद्वातपित्तहा ॥ ३१ ॥

शाक, मांस और फलयुक्त विलेपी अम्ल और दुर्जर है। अनार और आमलोंका यूष-अग्निजनक और वातपित्तनाशक है॥ ३१॥

श्वासकासप्रतिश्यायकफघ्नो मूलकैः कृतः। यवकोलकुलित्थानां यूषः कण्ठ्योऽनिलापहः ॥ ३२ ॥

मूलीका यूष-श्वास, खाँसी, प्रतिश्याय और कफनाशक है। जौ,बेर और कुलथीका यूष-कंठको हितकारी और वातनाशक है॥ ३२॥

कपित्थतक्रचांगेरी मरिचाजाजिचित्रकैः। कफवातहरो ह्येष खण्डो दीपनपाचनः ॥ ३३ ॥

कैथ, तक्र, चांगेरी, कालीमिरच, जीरा और चीता इनके द्वारा सिद्ध किये हुये यूषको खण्डयूष अथवा खडयूष कहते हैं। यह खंडयूष-दीपन पाचन तथा कफवातनाशक है ॥ ३३ ॥

प्रीणनः प्राणजनकः श्वासकासक्षयापहः। रक्तपित्तश्रमहरो हृद्यो मांसरसः स्मृतः ॥ ३४ ॥

मांसरस (सोरुअ) तृप्तिकारक, प्राणजनक, श्वास, खांसी और क्षयको दूर करनेवाला, रक्तपित्त और श्रमनाशक तथा हृदयको हितकारी है ॥ ३४॥

रोचनी पाचनी हृद्या सास्ला वातकफापहा। जम्भीरसाधिता चैव कलम्बी च निगद्यते ॥ ३५ ॥

जम्भीरीनींबूके द्वारा सिद्ध किये हुये यूषको कलम्बी कहते हैं। कलम्बी-रुचिकारक,पाचन, हृदयको हितकारी, अम्ल और वातकफनाशक है ॥ ३५ ॥

अम्लं समधुरं हृद्यं रोचनं वातकोपनम्। वार्त्ताकं दीपनं हृद्यं तित्तिडीगुडसाधितम् ॥ ३६ ॥

इमली और गुडके द्वारा सिद्ध किये हुये बैगुन-अम्ल, मधुर, हृदयको हितकारी, रुचिकारक,वातप्रकोपक और अग्निको दीपन करते हैं ॥ ३६ ॥

रक्तपित्तहरं रुच्यं स्नेहेन परिभावितम्। वातपित्तहरं बल्यं रोचनं वह्निदीपनम् ॥ ३७ ॥

स्नेह (घृतादि) के द्वारा भावना दिये हुए बैगुन-रक्तपित्तनाशक,वातपित्तनाशक, बलकारक, रोचक और अग्निप्रदीपक हैं ॥ ३७ ॥

संग्राहि पुष्टिदं ज्ञेयं कदलीमूलसाधितम्।

केलकी जड़के द्वारा सिद्ध किये हुए बैगुन-मलरोधक और पुष्टिकारक हैं।

कृमिकुष्ठहरं रुच्यं हरिद्रानाडिकायुतम् ॥ ३८ ॥

हलदी और नाडीके शाकके द्वारा सिद्ध किये हुए बैगुन-कृमि, कुष्ठनाशक तथा रुचिकारक हैं ॥ ३८॥

सुगन्धिमधुरं साम्लं दुर्जरं तक्रभावितम्।

तक्रके द्वारा भावना दिये हुए बैगुन-सुगंधित, मधुर और दुर्जर हैं।

रुच्यं वातहरश्चैव नागरंगस्यकेसरम् ॥ ३९ ॥

नारंगीके रसके द्वारा सिद्ध किये हुए बैगुन-रुचिकारक और वातनाशक हैं ॥ ३९ ॥

ईषत्तिक्तं समधुरं हृद्यं रोचनदीपनम्। वार्त्ताकं कटुकं पाके सतीनदलसाधितम् ॥ ४० ॥ वातलं रोचनं हृद्यं कलायदलसाधितम्।

मटरके पत्तोंके द्वारा सिद्ध किये हुए बगुन-किंचित् तिक्त, मधुर, हृदयको हितकारी, रुचिकारक, अग्निप्रदीपक और पाकमें कटु हैं। खेसारीके पत्तोंके द्वारा सिद्ध किये हुए बैगुन-वातकारक, रुचिकारक, और हृदयको हितकारी हैं ॥ ४० ॥

अम्लं समधुरं हृद्यं रोचनं कण्ठशोधनम्। वातघ्नं दुर्जरं चैव नष्टक्षीरप्रसाधितम् ॥ ४१ ॥

फटे हुए दूधके द्वारा सिद्ध किये हुए बैगुन-अम्ल, मधुर, हृदयको हितकारी, रुचिकारी, कण्ठशोधक, वातनाशक और दुर्जर हैं ॥ ४१ ॥

दुर्जरा मधुरा रुच्या वटका माषकादिभिः।

उडद आदिके बडोंके द्वारा सिद्ध किये हुए बैगुन-दुर्जर, मधुर, और रुचिकारक हैं।

चिञ्चाफलेन संसिद्धा रोचनाश्च विशेषतः ॥ ४२ ॥

इमलीके द्वारा सिद्धं किये हुये बैंगुन विशेष कर रुचिकारक होते हैं ॥ ४२ ॥

कफवातहरं रुच्यं दीपनं चानुलोमनम् । ज्वरितानां हितं मांसं पटोलफलसाधितम् ॥ ४३ ॥

पटोल (परवल) के फलोंके द्वारा सिद्ध किया हुआ मांस कफवातनाशक, रुचिकारक, अग्निप्रदीपक, वातानुलोमक और ज्वररोगिओंको विशेष हितकारी है ॥ ४३ ॥

रक्तपित्तविसर्पघ्नं कुष्ठमेहज्वरापहम् । रोचनञ्च विशेषेण वेत्राग्रपरिसाधितम् ॥ ४४ ॥

बेंतके अग्रभागके द्वारा सिद्ध किया हुआ मांस रक्तपित्तनाशक, विसर्पहारक, कोढ, प्रमेह और ज्वरको दूर करनेवाला तथा विशेष करके रुचिकारक है ॥ ४४ ॥

वातश्लेष्महरं रुच्यं दीपनं चानुलोमनम् । ज्वरकुष्ठहरं मांसं ह्रस्ववार्त्ताकुसाधितम् ॥ ४५ ॥

छोटे बैंगुनोंके द्वारा सिद्ध किया हुआ मांस वातकफनाशक, रुचिकारक, अग्निप्रदीपक, वातानुलोमक तथा ज्वर और कुष्ठको नष्ट करता है ॥ ४५ ॥

कफपित्तप्रशमनं ज्वरकुष्ठविनाशनम् । कृमिमेहहरं हृद्यं मांसं केम्बुकसाधितम् ॥ ४६ ॥

केम्बुकके द्वारा सिद्ध किया हुआ मांस कफपित्त नाशक, ज्वर और कुष्ठनाशक, कृमि तथा प्रमेहको दूर करनेवाला और हृदयको हितकारी है ॥ ४६ ॥

कफवातहरं हृद्यं तृष्णारोचकनाशनम् । श्रमघ्नं तर्पणं मांसं सिद्धं बदरशुण्ठकैः ॥ ४७ ॥

बेरोंके गूदेके द्वारा सिद्ध किया हुआ मांस—कफवातनाशक, हृदयको हितकारी तृषा और अरुचिनाशक, श्रमनिवारक और तृप्तिकारक है ॥ ४७ ॥

आर्द्रामामलकैः सिद्धं त्रिदोषशमनं लघु । ज्वरहृच्चाममेदोघ्नं मांसं वह्निप्रदीपनम् ॥ ४८ ॥

अदरख और आमलोंके द्वारा सिद्ध किया हुआ मांस त्रिदोषनाशक, हलका, ज्वर, आम और मेदको नष्ट करता है तथा अग्निको दीपन करता है ॥४८॥

वातश्लेष्महरं हृद्यमनुलोम्यग्निदीपनम् । गलरोगप्रशमनं शुष्काम्रफलसाधितम् ॥ ४९ ॥

सूखे आमके फलोंके द्वारा सिद्ध किया हुआ मांस वातकफनाशक, हृदयको हितकारी, वातानुलोमक, अग्निप्रदीपक और गलरोगको शमन करता है ॥४९॥

रुच्यं प्रीतिकरं हृद्यं मांसमाम्रेण साधितम् । कफपित्तप्रशमनं व्रणशोधनरोपणम् ॥ ५० ॥

आमके द्वारा सिद्ध किया हुआ मांस—रुचिकारक, प्रीतिजनक, हृदयको हितकारी कफपित्तशामक तथा व्रणको शुद्ध करनेवाला और भरनेवाला है ॥ ५० ॥

अग्निसन्दीपनं मांसं कारवेल्लकसाधितम् । कफवातहरं हृद्यं दीपनं चानुलोमनम् ॥ ५१ ॥

करलेके द्वारा सिद्ध किया हुआ मांस—अग्निप्रदीपक कफवातनाशक, हृदयको हितकारी, दीपन और अनुलोमक है ॥ ५१ ॥

रोचनं बलकृन्मांसं बालमूलकसाधितम् ।

छोटी मूलीके द्वारा सिद्ध किया हुआ मांस रुचिकारक और बलवर्द्धक है।

प्रक्षीणबलमांसस्य वातेनाभिहतस्य च ॥ ५२ ॥ रुच्यं पुष्टिकरं हृद्यं मृगमांसं हितं नृणाम् । वातहृद्गलगण्डास्यरोगशोथविनाशनम् ॥ ५३ ॥

मृगका मांस—जिनके बल और मांस क्षीण हो गया है, जो वातसे पीडित हैं, उन मनुष्योंके लिये यह अति-

हितकारी है तथा रुचिकारी; पुष्टिकारक, हृदयको हितकारी वातनिवारक, एवं गलगण्ड, मुखरोग और शोथको दूर करता है ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

स्नेहनं रोचनं दीप्यं मांसं दाधिकमुच्यते । मांसन्तु कफपित्तघ्नं तोडकादिरसाधिकम् ॥ ५४ ॥

दहीके साथ मांस-स्नेहन, रुचिकारक और अग्निको दीपन करता है। तोड़ आदि मिश्रित मांस कफपित्तनाशक है ॥ ५४ ॥

कासश्वासहरं हृद्यं चक्षुष्यं स्वरवर्णदम् । हृद्यं वातहरं रुच्यं वृष्यं पुष्टिबलप्रदम् ॥ ५५ ॥ श्रेष्ठं पथ्यतमं मांसं करमर्दकसाधितम् । शूलघ्नं दीपनं मांसं सिद्धं चिञ्चाफलेन तु ॥ कफपित्तहरं रुच्यं बालचिञ्चाकसाधितम् ॥ ५६ ॥

करौंदेके द्वारा सिद्ध किया हुआ मांस खाँसी और श्वासको हरनेवाला, हृदयको हितकारी, नेत्रोंको हितकारी, स्वर और वर्णको बढानेवाला, वातनाशक, रुचिकारक, वृष्य, पुष्टि और बलकारक तथा अत्यन्त पथ्य है। इमलीके द्वारा सिद्ध किया हुआ मांस-शूलनाशक, और अग्निप्रदीपक है एवं कच्ची इमलीके द्वारा सिद्ध किया हुआ मांस-कफपित्तनाशक और रुचिकारक है ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

रुच्यं कफानिलहरं विबन्धानाहभेदनम् । शूलघ्नं दीपनं हृद्यं पक्वचिञ्चाफलेन तु ॥ ५७ ॥

पकी इमलीके द्वारा सिद्ध किया हुआ मांस-रुचिकारक, कफवातनाशक, विबन्ध और आनाहको दूर करनेवाला, शूलनाशक, दीपन और हृदयको हितकारी है ॥ ५७ ॥

वातश्लेष्महरं हृद्यमर्शःकुष्ठविनाशनम् । विबद्धमीषन्मधुरं मूलकैः सह जाङ्गलम् ॥ ५८ ॥

मूलीके द्वारा सिद्ध किया हुआ जांगल प्राणियोंका मांस-वातकफनाशक, हृदयको हितकारी, अर्श और कुष्ठको हरनेवाला, मलावरोधक और किंचित् मधुर है ॥ ५८ ॥

वातश्लेष्मानिलहरं मेहकुष्ठविषापहम् । धातूनां बृंहणं वृष्यं करीरैः सह साधितम् ॥ ५९ ॥

बाँसके अँकुरोंके द्वारा सिद्ध किया हुआ मांस-वात, कफनाशक, प्रमेह, कुष्ठ और विषनाशक, धातुओंको पुष्ट करनेवाला और अतवि वृष्य है ॥ ५९ ॥

गुरुर्विपाके मधुरो रुच्यो मांसवटः स्मृतः । उदावर्तानिलहरो हृद्यो मूलकसाधितः ॥ ६० ॥

मांसवटक-भारी, पाकमें मधुर और रुचिकारक, हैं। मूलीके द्वारा बनाये हुए मांसके बड़े-उदावर्त और वातनाशक तथा हृदयको हितकारी हैं ॥ ६० ॥

कफपित्ताविरोधी स्याद्वार्त्ताकेन प्रसाधितः । पिष्टः सिद्धः पटोलस्य पत्रैर्जीर्णज्वरापहः ॥ ६१ ॥

बैंगुनके द्वारा सिद्ध किये हुए मांसके बड़े-कफ पित्तनाशक हैं। और पटोलपत्रके द्वारा सिद्ध किये हुए पिष्टकके बड़े जीर्णज्वरनाशक हैं ॥ ६१ ॥

कफपित्तहरो रुच्यो ग्रीष्मसुन्दरसाधितः ।

ग्रीष्मसुन्दरशाकके द्वारा सिद्ध किये हुए बड़े-कफपित्तनाशक और रुचिकारक हैं।

त्रिदोषकोपनं सर्वं पूतिमांसं प्रकीर्त्तितम् ॥ ६२ ॥

सर्वप्रकारके दुर्गंधित मांस-त्रिदोषको कुपित करते हैं ॥ ६२ ॥

कफपित्तहरं हृद्यं दीपनं कृमिनाशनम् । मांसं वह्निकरं विद्यादार्द्रकेन प्रसाधितम् ॥ ६३ ॥

अदरखके द्वारा पकाया हुआ मांस–कफपित्तनाशक, हृदयको हितकारी, दीपन, कृमिनाशक और अग्निको संदीपन करता है ॥ ६३ ॥

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायां व्यञ्जनमांसव्यंजनाधिकार समाप्त ॥ ९१ ॥

अथ मत्स्यव्यञ्जनगुणाधिकार ।



गुरवो बृंहणाः सर्वे मत्स्याः शुक्रबलप्रदाः । विपाके मधुराश्चोष्णाः कफपित्तविवर्द्धनाः ॥ १ ॥ दीप्ताग्नीनां हिताः पुंसां मैथुनप्रतिसेविनाम् । मत्स्यादं नाभिबाधन्ते रोगा वातसमुद्भवाः ॥ २ ॥

प्रायः सर्वप्रकारके मत्स्य–भारी, पुष्टिकारी, शुक्र और बलजनक, पाकमें मधुर, गरम तथा कफ और पित्तको बढाते हैं जिन मनुष्योंके अग्निदीपन है और जो नित्य मैथुन करते हैं, उनके लिये मत्स्य अतीव हितकारी हैं । जो मनुष्य मत्स्यको सदैव सेवन करते हैं उनके वातजनित रोग कदापि उत्पन्न नहीं होते ॥ ॥ १ ॥ २ ॥

मधुरो बृंहणो वृष्यो वातहा वह्निदीपनः । दग्धमत्स्यो रुचिकरो जम्बीरपरिभावितः ॥ ३ ॥

भुनी हुई और जम्भीरी नींबूके रसमें भावना दीहुई मछली–मधुर, पुष्टिकारक, वृष्य, वातनाशक, अग्निदीपन और रुचिकारक है ॥ ३ ॥

दग्धमत्स्यो भवेच्छ्रेष्ठो बलपुष्टिविवर्द्धनः । क्षीणाः क्षताश्च ये केचिद्ये भग्ना जर्जरीकृताः ॥ दग्धमत्स्या हितास्तेषां सतैललवणान्विताः ॥ ४ ॥

दग्धमछली–श्रेष्ठ, बल और पुष्टिवर्द्धक है ज मनुष्य क्षीण व क्षत रोगी है और जिनका शरी भग्नरोगसे जर्जरीभूत हो गया है, उनके लिये ते और लवणयुक्त दग्धमछली अतीव हितकारी है ॥ ४ ॥

हृद्यः प्रीतिकरो रुच्यो वातहृदार्द्रकान्वितः ।

अदरखयुक्त मछली–हृदयको हितकारी, प्रीतिजनक, रुचिकारी और वातनाशक है ।

वातानुलोमनो हृद्यः पुष्टिकृद्बलवर्द्धनः । अत्यग्नीनां नृणां शस्तः सस्नेहः शाकमत्स्यकः ॥ ५ ॥

स्नेहयुक्त मछलीका शाक–वातको अनुलोमन करनेवाला, हृदयको हितकारी, पुष्टिकारक, बलवर्द्धक और जिनमनुष्योंकी अग्नि अत्यंत दीपन है, उनका अतीव हितकारी है ॥ ५ ॥

विपाके मधुरो हृद्यो विष्टम्भी वातकोपनः । रोचनस्तु विशेषेण मूलकेन प्रसाधितः ॥ ६ ॥

मूलीके द्वारा सिद्ध कीहुई मछली–पाकमें मधुर, हृदयको हितकारी, विष्टम्भकारक, वातप्रकोपक और विशेषकरके रुचिकारक है ॥ ६ ॥

आरेवतैः सिद्धमत्स्य आमवातविनाशनः । कटिशूलहरः सम्यग्विड्विबन्धेऽर्शसां हितः ॥ ७ ॥

आरेवत (अमलतास) नामक वृक्षके फलके द्वारा सिद्ध कीहुई मछली–आमवातनाशक कटिशूलनाशक, तथा मलबद्धता और अर्शरोगमें अत्यंत हितकारी है ॥ ७ ॥

कफवातहरो हृद्यो दीपनो भक्तरोचनः । आरनालश्रृतो मत्स्यो हृद्यश्चैव गुणोत्तरः ॥ ८ ॥

आरनाल नामक कांजीके द्वारा सिद्ध की हुई मछली–कफवातनाशक, हृदयको हितकारी, अग्निप्रदीपक, भोजनमें रुचिकारक और अत्यंतगुणयुक्त है ॥ ८ ॥

वातश्लेष्महरो हृद्यो दीपनो भक्तरोचनः । अम्लैस्तु संस्कृतो मत्स्यो विबन्धानिलनाशनः ॥ ९ ॥

खटाईके द्वारा सिद्ध कीहुई मछली–वातकफनाशक, हृदयको हितकारी दीपन, भोजनमें रुचि करनेवाली तथा विबन्ध और वायुकी पीडाको शांत करती है ॥ ९ ॥

विष्टम्भी रोचनो हृद्यो राजमाषप्रसाधितः।

लोवियेके द्वारा सिद्ध की हुई मछली-विष्टम्भकारक, रुचिकारक और हृदयको हितकारी है।

कफघ्नः पित्तशमनो हृद्यः पथ्योऽग्निवर्द्धनः। शोथसंशमनश्चैव मत्स्यो वार्त्ताकुसाधितः॥ १०॥

बैगुनके द्वारा सिद्ध की हुई मछली-कफनाशक पित्तशामक, हृदयको हितकारी, पथ्य, अग्निवर्द्धक और सूजनको दूर करती है॥ १०॥

अम्लीकया भृतो मत्स्यो विबन्धानाहशूलनुत्॥ ११॥

इमली के द्वारा सिद्ध कीहुई मछली-विबन्ध, आनाह और शूलको नष्ट करनेवाली है॥ ११॥

दधितक्रारनालैश्च सिद्धा मत्स्या रुचिप्रदाः॥ १२॥

दही, तक्र और आरनाल (कांजी) के द्वारा सिद्ध की हुई मछली-रुचिकारक है॥ १२॥

त्रिदोषशमनी हृद्या रुच्या पुष्टिविवर्द्धिनी। मधुरा कटभी प्रोक्ता सतीनदलसाधिता॥ १३॥

मटरके पत्तोंमें सिद्ध कीहुई मछली-त्रिदोषनाशक, हृदयको हितकारी, रुचिकारक, पुष्टिजनक और मधुर है॥ १३॥

वातहा रोचनो हृद्यः पालंक्येन प्रसाधितः। वातघ्नो गुरुरुच्यस्तु मत्स्यघण्टो बलप्रदः॥ १४॥

पालकके शाकके द्वारा सिद्ध की हुई मछली-वातनाशक, रुचिकारक और हृदयको हितकारी है। तथा मत्स्यघंट वातनाशक, भारी, रुचिकारी और बलवर्द्धक है॥ १४॥

विष्टम्भी भिन्नवर्चास्तु शाकघण्टो बलप्रदः। रोचनो मधुरो हृद्यः पित्तघ्नः शीर्णवृन्तयुक्॥ १५॥

मछलीका शाकघंट विष्टम्भकारक, मलकारक और बलकारक है। तरबूजके द्वारा सिद्ध कीहुई मछली-रुचिकारक, मधुर, हृदयको हितकारी और पित्तनाशक है॥ १५॥

मूत्रलो गुरुपाकश्च कथितो दधिमत्स्यकः। कफपित्तहरो रुच्यः कर्कोटेन प्रसाधितः॥ १६॥

दहीके साथ सिद्ध की हुई मछली-मूत्रजनक और गुरुपाकी है। ककोडेके द्वारा सिद्ध कीहुई मछली-कफपित्तनाशक और रुचिकारक है॥ १६॥

कर्कटी मधुरा हृद्या रुच्या मत्स्येन साधिता। कफपित्तहरी रुच्या निम्बेन परिपाचिता॥ १७॥

ककडीके द्वारा सिद्ध कीहुई मछली-मधुर, हृदयको हितकारी और रुचिजनक है। नीमके पत्तोंके द्वारा सिद्ध की हुई मछली-कफपित्तनाशक और रुचिकारी है॥ १७॥

मधुरो रोचनो हृद्यो मत्स्यः कूष्मांडघण्टितः॥ १८॥

पेठेकी घण्टीके द्वारा सिद्ध कीहुई मछली-मधुर, रुचिकारक और हृदयको हितकारी है॥ १८॥

मूत्रला भिन्नविट्का च गुर्वी रुच्या कफापहा। अलाबूर्मधुरा प्रोक्ता निर्गुण्डीसाधिता बुधैः॥ १९॥

अलाबू (लौकी) और निर्गुंडीके द्वारा सिद्ध की हुई मछली-मूत्रजनक, मलकारक, भारी, रुचिकारी कफनाशक और मधुर है॥ १९॥

रोचनः कफपित्तघ्नः केम्बुनाडीप्रसाधितः। रोचनः कफहृत् ज्ञेयः कूष्माण्डाग्रप्रसाधितः॥ २०॥

केमुककी नाडीके द्वारा सिद्ध की हुई मछली-रुचिकारक और कफपित्तनाशक है। पेठेके अग्रभागके द्वारा सिद्ध की हुई मछली-रुचिकारक और कफनाशक है॥ २०॥

कषाय ईषन्मधुरो रुच्यो हृद्यः कफापहः। तृष्णाघ्नो गुरुपाकश्च कदलीनाडिकाभृतः॥ २१॥

केलेके मोचेके सिद्ध की हुई मछली–कषैली' किंचित् मधुर, रुचिकारक हृदयको हितकारी, कफनाशक, तृषानाशक और गुरुपाकी है ॥ २१ ॥

कफघ्नः कटुकः पाके पिच्छिलो दीपनः परम् । रुच्यः पित्तहरो ज्ञेयः पिप्पलीनाडिकाशृतः ॥ २२ ॥

पीपलके वृक्षकी नाडीके द्वारा सिद्ध कीहुई मछली–कफनाशक, पाकमें कटु, पिच्छिल, अग्निप्रदीपक रुचिकारक और पित्तनाशक है ॥ २२ ॥

मधुरो रोचनो हृद्यो दृष्टिवह्निविनाशनः । ज्ञेयः सिद्धफलेनैव साधितः कृमिवर्द्धनः ॥ २३ ॥

सिद्धफलके द्वारा सिद्ध की हुई मछली–मधुर, रुचिकारक, हृदयको हितकारी तथा दृष्टि और अग्निको नष्ट करती है एवं कृमिवर्धक है ॥ २३ ॥

वातघ्नो मधुरो वृष्यो रोचनः शिंबिसाधितः ॥ २४ ॥

सेमके द्वारा सिद्ध कीहुई मछली–वातनाशक, मधुर, वृष्य और रुचिकारक है ॥ २४ ॥

कफपित्तहरस्तिक्तो रोचनस्तु विशेषतः । शुष्कपत्रेण मत्स्याम्लः सर्वेषां परिकीर्त्तितः ॥ २५ ॥

सूखे पत्तोंके द्वारा सिद्ध कीहुई मछली–कफपित्तनाशक, तिक्त, विशेषकरके रुचिकारक एवं अम्ल है ॥ २५ ॥

अर्शोघ्नो दीपनो ग्राही रुच्यो मधुरपाकतः । कफवातामशूलघ्नश्चाङ्गेरीतक्रसाधितः ॥ २६ ॥

चाँगेरी और तक्रके द्वारा सिद्ध कीहुई मछली-अर्शनाशक, दीपन, मलरोधक, रुचिकारी, मधुरपाकी तथा कफ, वात और आमशूलको नष्ट करती है॥२६॥

संग्राही दीपनो हृद्यो रुच्यो वातानुलोमनः । कफवातहरः साम्लस्तिन्तिडीकप्रसाधितः ॥ २७ ॥

इमलीके द्वारा सिद्ध कीहुई मछली–मलरोधक अग्निप्रदीपक, हृदयको हितकारी, रुचिजनक, वातानुलोमक, कफवातनाशक और अम्ल है ॥ २७ ॥

कफपित्तहरो रुच्यः स्वादुकृद्वातकोपनः । विपाके दुर्जरः प्रोक्तो राजिकापरिसाधितः ॥ २८ ॥

राईके द्वारा सिद्ध कीहुई मछली--कफपित्तनाशक, रुचिकारक, मधुर, वातप्रकोपक और पाकमें दुर्जर है ॥ २८ ॥

अम्लः समधुरो हृद्यो रोचनश्चाग्निवर्द्धनः । वातानुलोमनश्चैव मत्स्यश्चुक्रेणसाधितः ॥ २९ ॥

चूकेके साथ सिद्ध कीहुई मछली--अम्ल, मधुर, हृदयको हितकारी, रोचक अग्निवर्धक और वायुको अनुलोमन करता है ॥ २९ ॥

मधुरो दुर्जरः प्रोक्तो मत्स्यः कूष्माण्डशुण्ठकैः । गुर्वी विपाके मधुरा वटिका वा कृता स्मृता ॥ ३० ॥

पेठेके गूदे और सोंठके साथ मछलीको सिद्ध करे पेठेकी बडियों द्वारा सिद्ध हुई ऐसी मछली–मधुर, दुर्जर भारी और पाकमें मधुर हैं ॥ ३० ॥

वातश्लेष्महरो हृद्यो बलकृत्पित्तकारकः । क्षये क्षीणे मद्यपाने त्रिषु मत्स्यः सदा हितः ॥ ३१ ॥

मछली–वातकफनाशक, हृदयको हितकारी, बलकारक, पित्तकारी तथा क्षय, क्षीण और मद्यपान करनेवाले मनुष्योंको सदैव हितकारी है ॥ ३१ ॥

संग्राही दीपनो हृद्यः शूलघ्नो रक्तनाशनः । वातघ्नो मधुरः प्रोक्तो मत्स्यः कञ्चटसाधितः ॥ ३२ ॥

कंचटशाकके द्वारा सिद्ध कीहुई मछली–मलरोधक, अग्निप्रदीपक, हृदयको हितकारी, शूलनाशक, रुधिरविकार नाशक, वातनाशक और मधुर है॥३२॥

कषायो मधुरो हृद्यः पित्तघ्नो रोचनस्तथा । दीपनो वातहा ग्राही हृद्यः कञ्चटघण्टिकः ॥ ३३ ॥

कचटशाकके द्वारा सिद्ध कीहुई मत्स्यघंटिका-कषैली, मधुर, हृदयको हितकारी, पित्तनाशक, रुचिकारक, अग्निप्रदीक, वातनाशक, मलरोधक और हृदयको हितकारी है ॥ ३३ ॥

शूलघ्नो दीपनो हृद्यः कफवातामनाशनः । संग्राही च विशेषेण पाठापत्रेण साधितः ॥ ३४ ॥

पाढके पत्तोंके द्वारा सिद्ध कीहुई मछली-शूलनाशक, अग्निप्रदीपक, हृदयको हितकारी, कफ वात और आमनाशक, और विशेषकरके मलरोधक है ३४

संग्राही दीपनो हृद्यः कासमर्दकसाधितः ।

कसौंदीके शाकके द्वारा सिद्ध कीहुई मछली-मलरोधक, अग्निप्रदीपक और हृदयको हितकारी है ।

कफपित्तहरो हृद्यो मूलिकाशुण्ठिसाधितः ॥ ३५ ॥

सूखी मूलीके द्वारा सिद्ध कीहुई मछली-कफपित्तनाशक और हृदयको हितकारी है ॥ ३५ ॥

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायां मत्स्यव्यञ्जनगुणाधिकार समाप्त ॥ ९२ ॥

अथ द्रवद्रव्याधिकार ।

तत्रादौ तोयवर्गः ।

पानीयमव्यक्तरसं सुशीतं तर्षनाशनम् । अच्छं लघु च हृद्यश्च तोयं गुणवदुच्यते ॥ १ ॥

साधारण जल-अप्रकट (गुप्त) रसयुक्त, शीतल और तृषानाशक है और स्वच्छ जल-हलका, हृदयको हितकारी और अधिक गुणवान् हैं ॥ १ ॥

नादेयं वातलं रूक्षं दीपनं लघु लेखनम् । तदभिष्यन्दि मधुरं सान्द्रं गुरुकफावहम् ॥ २ ॥

नदीका जल-वातकारक, रूखा, अग्निप्रदीपक, हलका, लेखन, अभिष्यन्दि, मधुर, गाढा, भारी और कफकारी होता है ॥ २ ॥

ताडागं वातलं स्वादु कषायं कटुपाकि च । तृष्णाघ्नं दीपनं हृद्यं पित्तघ्नं मधुरं गुरु ॥ ३ ॥

तालाबका जल-वातकारक, स्वादु, कषैला, कटुपाकी, तृषानाशक, दीपन, हृदयको हितकारी, पित्तनाशक मधुर और भारी है ॥ ३ ॥

वातश्लेष्महरं वाप्यं सक्षारं कटु पित्तलम् ॥ ४ ॥

बावडीका जल-वातकफनाशक, खारी, कटु और पित्तकारक है ॥ ४ ॥

चौण्ड्यमग्निकरं रूक्षं मधुरं कफपित्तकृत् ।

चौन्डका जल-अग्निजनक, रूखा, मधुर और कफपित्तकारक है ।

कफघ्नं दीपनं हृद्यं लघु प्रस्रवणोद्भवम् ॥ ५ ॥

झरनेका जल-कफनाशक, जठराग्निको दीपन करनेवाला, हृदयको प्रिय और हलका है ॥ ५ ॥

सक्षारं पित्तलं कौपं श्लेष्मघ्नं वह्निदीपनम् ।

कुएका जल-खारी, पित्तकारी, कफनाशक और अग्निप्रदीपक है ।

मधुरं पित्तशमनमविदाह्यौद्भिदं मतम् ॥

उद्भिद जल-(पृथ्वीको फोडकर जो बडे वेगसे जल बहता है)-मधुर, पित्तनाशक और अविदाही है।

वैकिरं लघु सक्षारं कफघ्नं वह्निदीपनम् ॥ ६ ॥

वैकिरजल-(नदीके निकटकी पृथ्वीमें जो गढा खोदकर जल निकालते हैं उसको वैकिरजल कहते हैं हलक, खारी, कफनाशक और अग्निप्रदीपक है ॥ ६

केदारं मधुरं प्रोक्तं विपाके गुरु दोषलम् । तद्वत्पाल्वलमुद्दिष्टं विशेषाद्दोषलन्तु तत् ॥ ७ ॥

खेतका जल–मधुर, पाकमें भारी और दोषकारक है और इसीके समान तलइयाके जलके गुण जानने । किन्तु यह विशेष करके त्रिदोषकारक है ॥ ७॥

सामुद्रमुदकं क्लिष्टं लवणं सर्वदोषकृत् ।

समुद्रका जल–क्लिष्ट, नमकीन और सम्पूर्ण दोषोंको कुपित करता है ।

अनेकदोषमानूपं वार्यभिष्यन्दि गर्हितम् ॥ ८ ॥

अनूपदेशका जल–अनेकदोषयुक्त होनेसे अभिष्यन्दकारक और त्यागने योग्य है ॥ ८ ॥

परिदोषैरसंयुक्तं निरवद्यं तु जाङ्गलम् ।

जांगलप्रदेशका जल–सम्पूर्ण दोष रहित और निर्विकार होता है ।

पाके विदाहि तृष्णाघ्नं प्रशस्तं प्रीतिवर्द्धनम् ॥ ९ ॥ दीपनं स्वादु शीतञ्च तोयं साधारणं लघु ॥ १० ॥

साधारण जल–पाकके समय दाहजनक, तृषानाशक, प्रीतिवर्धक, दीपन, स्वादु, शीतल और हलका होता है ॥ ९ ॥ १० ॥

नद्यः शीघ्रवहा लघ्व्यः प्रोक्ता याश्चामलोदकाः । गुर्व्यः शैवालसञ्छन्नाः कलुषा मन्दगाश्च याः ॥ ११ ॥

शीघ्र बहनेवाली नदियोंका जल–हलका और निर्मल है । सिवार आदिसे ढकी हुई और मन्द २ बहने वाली नदियोंका जल–भारी और कलुषित होता है ॥ ११ ॥

प्रायेण नद्यो मरुषु सुतिक्तलवणान्विताः । लघ्व्यः समधुराश्चैव पौरुषेयावलेहिताः ॥ १२ ॥

प्रायः मरुदेशकी नदियोंका जल–तिक्त और लवण रसयुक्त होता है । पुरुषोंके द्वारा अवलेहित नदियोंका जल–हलका और मधुर होता है ॥ १२ ॥

दिवार्ककिरणैर्जुष्टं जुष्टमिन्दुकरैर्निशि । अरूक्षमनभिष्यन्दि तत्तुल्यङ्गनांबुना ॥ १३ ॥

जिसपर दिनमें सूर्य्यकी किरणें पडती हों और रात्रिमें चन्द्रमाकी किरणें पडती हों ऐसा जल–रूक्षता रहित, अनभिष्यन्दी और आकाशके जलके समान गुणवाला है ॥ १३ ॥

गगनाम्बु त्रिदोषघ्नं गृहीतं यत्सुभाजने । बल्यं रसायनं नेत्र्यं पात्रापेक्षि ततः परम् ॥ १४ ॥

आकाशका जल जो उत्तम पात्रमें ग्रहण किया हो तो वह–त्रिदोष नाशक, बलकारक, रसायन, नेत्रोंको हितकारी और पात्रानुसार विशेष गुणवाला है॥ १४॥

मूर्च्छापित्तास्रदाहेषु विषे रक्ते मदात्यये । क्लमभ्रमपरीतेषु तमके वमथौ तथा । ऊर्ध्वगे रक्तपित्ते च शीतमम्भः प्रशस्यते ॥ १५ ॥

शीतलजल–मूर्च्छा, रक्तपित्त, दाह, विष, रुधिरविकार, मदात्यय, क्लम, भ्रम, तमक, वमन और उर्ध्वगत रक्तपित्त इन सबमें हितकारी है ॥ १५ ॥

पार्श्वशूले प्रतिश्याये वातरोगे गलग्रहे । आध्माने स्तिमिते कोष्ठे सद्यः शुद्धौ नवज्वरे ॥ हिक्कायां स्नेहपीते च शीताम्बु परिवर्जयेत् ॥ १६॥

पार्श्वशूल, प्रतिश्याय, वातरोग, गलग्रह, अफारा और स्तिमितकोष्ठमें तथा वमन, विरेचनादिसे तत्काल शुद्ध होनेपर, नवीन ज्वर, हिचकी और स्नेहपान पर मनुष्यको शीतल जल त्याग देना चाहिये॥ १६॥

कफमेदोऽनिलघ्नञ्च दीपनं बस्तिशोधनम् । कासश्वासज्वरहरं पथ्यमुष्णोदकं निशि ॥ १७ ॥

रात्रिमें पिया हुआ गरम जल-कफ, मेद और वायुको दूर करता है, अग्निप्रदीपक, बस्तिशोधक, खांसी श्वास और ज्वरको दूर करता है तथा पथ्य है ॥ १७ ॥

अरोचके प्रतिश्याये प्रमेहे श्वयथौ क्षये । मन्देऽग्नावुदरे कुष्ठे ज्वरे नेत्रामये तथा ॥ व्रणे च मधुमेहे च पानीयं मन्दमाचरेत् ॥ १८ ॥

अरुचि, प्रतिश्याय, प्रमेह, सूजन, क्षय, मंदाग्नि, उदररोग, कोढ,ज्वर,नेत्ररोग, व्रण और मधुमेहरोग इन सबमें थोडा थोडा जल पान करे ॥ १८ ॥

चन्द्रकान्तमणिस्पृष्टः शुभ्रैश्चन्द्रांशुभिर्निशि । यन्मुश्चेन्निर्मलं वारि तद्विद्यादमृतोपमम् ॥ १९ ॥

रात्रिमें चन्द्रमाकी स्वच्छ किरणोंके स्पर्शसे चन्द्रकान्तमणिमेंसे जो जल निकलता है, वह अमृतके समान है ॥ १९ ॥

स्निग्धं स्वादुहिमं हृद्यं दीपनं बस्तिशोधनम् । वृष्यं पित्तपिपासाघ्नं नारिकेलोदकं गुरु ॥ २० ॥

नारियलका जल—स्निग्ध,मधुर, शीतल, हृदयके हितकारी,दीपन, बस्तिशोधक,वृष्य,पित्त और तृषानाशक और भारी है ॥ २०॥

अथ क्षीरवर्ग ।

अल्पाभिष्यन्दि गोक्षीरं गुरु स्निग्धं रसायनम् । रक्तपित्तहरं शीतं मधुरं रसपाकयोः ॥ २१ ॥

गायका दूध—किंचित् अभिष्यन्दि, भारी, स्निग्ध रसायन, रक्तपित्तनाशक, शीतल, रस और पाकमें मधुर है ॥ २१ ॥

अल्पाम्बुपानव्यायामकटुतिक्ताशनैर्लघु । आजं शोषज्वरश्वासरक्तपित्तातिसारनुत् ॥ २२ ॥

बकरी अल्पजल पान करती है तथा दिनभर परिश्रम करती है अर्थात् कूदती फिरती है एवं कटु और तिक्त रसवाले द्रव्योंको भक्षण करती है, इस कारण बकरीका दूध—हलका, तथा शोष, ज्वर, श्वास, रक्तपित्त और अतिसारको दूर करता है ॥ २२ ॥

महिषीणां गुरुतरं गव्याच्छीततरं पयः । स्नेहादूनमनिद्राणामत्यग्नीनाञ्च तद्धितम् ॥ २३ ॥

भैंसका दूध—गायके दूधकी अपेक्षा अधिकतर भारी और शीतल है । तथा जिनके शरीरमें स्निग्धता नहीं है अर्थात् जिनका शरीर रूक्ष है, जिनको निद्रा नहीं आती और जिनकी अग्नि अत्यन्त दीपन है,उनके लिये भैंसका दूध अतीव हितकारी है॥२३॥

रूक्षोष्णमीषल्लवणमौष्ट्रं संदीपनं लघु । शस्तं वातकफानाहकृमिशोथोदरार्शसाम् ॥ २४ ॥

ऊँटनीका दूध—रूखा, गरम, किंचित् लवणरसयुक्त, अग्निप्रदीपक और हलका है । तथा वात,कफ, आनाह, कृमि, शोथ, उदररोग और अर्शरोग इन सब रोगोंमें हितकारी है ॥ २४ ॥

नारीणां मधुरं क्षीरं कषायानुरसं हिमम् । नस्याश्च्योतनयोः पथ्यं जीवनं लघु दीपनम् ॥ २५ ॥

स्त्रीका दूध—मधुर, कषैला, शीतल, नस्य और नेत्रोंके आश्च्योतनकर्म्ममें हितकारी, जीवनदाता हलका और दीपन है ॥ २५ ॥

कषायतिक्तानुरसं कासशोथज्वरापहम् । औरभ्रं मधुरं स्निग्धमुष्णं पित्तकफापहम् ॥ २६ ॥

भेंडका दूध—कषैला, तिक्त, खाँसी, सूजन, और ज्वरनाशक, तथा मधुर, स्निग्ध, गरम एवं पित्त और कफको नष्ट करता है ॥ २६ ॥

पयोऽभिष्यन्दि गुर्वामं प्रायशः परिकीर्त्तितम् । तदेवोष्णं लघुतरं तदभिष्यन्दि चाशृतम् ॥ २७ ॥

प्रायः अपक (कच्चा) दूध—अभिष्यन्दि और भारी होता है।वही यदि औटाया जाय तो गरम और

हलका होता है और वही औटाकर शीतल किया हुआ दूध अभिष्यन्दि है ॥ २७ ॥

वर्जयित्वा स्त्रियाः स्तन्यमामं तद्धि गुणोत्तरम् । धारोष्णं गुणवत्क्षीरं विपरीतमतोऽन्यथा ॥ २८ ॥

किंतु स्त्रियोंका दूध गरम नहीं करना चाहिये, क्योंकि, वह कच्चा ही गुणकारक होता है। धारोष्ण दूध गुणवान् होता है। और इसके विपरीत गुणवान नहीं होता ॥ २८ ॥

अनिष्टगन्धमम्लञ्च विवर्णं विरसञ्च तत् । वर्ज्यं सलवणं क्षीरं यच्च पर्युषितं भवेत् ॥ २९ ॥

जिसमें बुरी गन्ध आती हो, जो खट्टा हो, बुरे रंगका, जिसका स्वाद बिगड गया हो, तथा जो नमकीन और बासी हो वह दूध त्याग देना चाहिये ॥ २९ ॥

अथ दधिवर्ग ।

स्निग्धं विपाके मधुरं दीपनं बलवर्द्धनम् । वातापहं पवित्रञ्च गव्यं दधि रुचिप्रदम् ॥ ३० ॥

गायका दही—चिकना, पाकमें मधुर, अग्निप्रदीपक बलवर्द्धक, वातनाशक, पवित्र और रुचिकारक है ३०

दध्याजं कफवातघ्नं लघु पाके क्षयापहम् । दुर्नामश्वासकासेषु हितमग्नेश्च दीपनम् ॥ ३१ ॥

बकरीका दही—कफवातनाशक, पाकमें हलका क्षयनाशक, बवासीर, श्वास और खाँसीमें अतीव हितकारी तथा अग्निको दीपन करता है ॥ ३१ ॥

विपाके मधुरं वृष्यं रक्तपित्तप्रसादनम् । बलासवर्द्धनं स्निग्धं विशेषाद्दधि माहिषम् ॥ ३२ ॥

भैंसका दही—पाकमें मधुर, वृष्य, रक्तपित्तको प्रसन्न करनेवाला, कफकारक और विशेष करके चिकना है ॥ ३२ ॥

विपाके कटुसक्षारमम्लं भेद्यौष्ट्रिकं दधि । वातमर्शांसि कुष्ठानि कृमीन् हन्त्युदराणि च ॥ ३३ ॥

ऊँटनीका दही-पाकमें कटु, खारी, खट्टा और भेदक है। तथा वातरोग, बवासीर, कुष्ठ, कृमि और उदररोगोंको नष्ट करता है ॥ ३३ ॥

चक्षुष्यमग्निदोषघ्नं दधि नार्य्या गुणोत्तरम् । लघुपाके बलासघ्नं वीर्योष्णं पंक्तिनाशनम् ॥ ३४ ॥

स्त्रीका दही—नेत्रोंको हितकारी, अग्निदीपनाशक, अत्यन्त गुणयुक्त, पाकमें हलका, कफनाशक, उष्णवीर्य्य और परिणामशूलको दूर करता है ॥ ३४ ॥

रसे पाके च मधुरं कषायं वातापित्तनुत् । कोपनं कफवातानां दुर्नाम्नाश्चाविकं दधि ॥ ३५ ॥

भेडका दही—रस और पाकमें मधुर, कषैला, वातपित्तनाशक, कफ और वातको कुपित करनेवाला तथा बवासीरको बढ़ाता है ॥ ३५ ॥

पीनसे चातिसारे च शीतके विषमज्वरे । अरुचौ मूत्रकृच्छ्रे च कार्श्ये च दधि शस्यते ॥ ३६ ॥

पीनसरोग, अतिसार, शीतज्वर, विषमज्वर, अरुचि, मूत्रकृच्छ्र और कृशता इन सब रोगोंमें दही अतीव हितकारी है ॥ ३६ ॥

शरद्ग्रीष्मवसन्तेषु प्रायशो दधि गर्हितम् । हेमन्ते शिशिरे चैव वर्षासु दधि शस्यते ॥ ३७ ॥

शरद, ग्रीष्म और वसन्तऋतुमें प्रायः दही त्याज्य है । हेमन्त, शिशिर और वर्षाऋतुमें दही हितकारी होता है ॥ ३७ ॥

वातघ्नं कफकृत् स्निग्धं बृंहणं वातपित्तकृत् । कुर्य्याद्भक्ताभिलाषञ्च दधि यत्सुपरिस्रुतम् ॥ ३८ ॥

अच्छे प्रकारसे छाना हुआ दही-वातनाशक, कफकारक, स्निग्ध, पुष्टिकारक, वातपित्तजनक और भोजनमें रुचिको उत्पन्न करता है ॥ ३८ ॥

शृतक्षीरात्तु यज्जातं गुणवद्दधि तत् स्मृतम् । वातपित्तहरं वृष्यं धात्वग्निबलवर्द्धनम् ॥ ३९ ॥

दूधको औटाकर जो दही जमाया जाता है वह अधिक गुणवाला जानना । वह वातपित्तनाशक, वृष्य, एवं धातु, अग्नि और बलको बढाता है ॥३९॥

दध्नः सरो गुरुर्वृष्यो विज्ञेयोऽनिलनाशनः । वह्नेर्विवर्द्धनश्चापि कफशुक्रविवर्द्धनः ॥ ४० ॥

दहीकी मलाई-भारी, वृष्य, वातनाशक, अग्निवर्धक तथा कफ और शुक्रको बढ़ाती है ॥ ४० ॥

दधि सारं च रूक्षन्तु ग्राहि विष्टम्भि वातलम् । दीपनीयं लघुतरं सकषायं रुचिप्रदम् ॥ ४१ ॥

दहीका सार-रूक्ष, मलरोधक, विष्टम्भकारक, वातजनक, अग्निप्रदीपक, हलका, कषैला और रुचिकारक है ॥ ४१ ॥

तृष्णाक्लमहरं मस्तु लघु स्रोतोविशोधनम् ॥ ४२ ॥

दहीका तोड़-तृषा और क्लमनाशक, हलका, और स्रोतोंको शुद्ध करता है ॥ ४२ ॥

अथ तक्रवर्ग ।

ग्रहणीदोषशोफार्शो ग्रहातीसारगुल्मनुत् । त्रिदोषशमनं तक्रमुद्धृतस्नेहमादिशेत् ॥ ४३ ॥

जिसमेंसे घृत निकाल लिया गया हो ऐसा तक्र-संग्रहणी, सूजन, बवासीर, ग्रह, अतिसार, गुल्म और त्रिदोषको शमन करता है ॥ ४३ ॥

शीतकालेऽग्निमान्द्ये च कफोत्थेष्वामयेषु च । मार्गावरोधे दुष्टे च वायौ तक्रं प्रशस्यते ॥ ४४ ॥

शीतऋतु, मंदाग्नि, कफजनितरोग, स्रोतोंके रुकनेमें और वायुकी दुष्टतामें तक्र अतीव हितकारी है ॥४४॥

वातेऽम्लं सैन्धवोपेतं पित्ते स्वादु सशर्करम् । पिबेत्तक्रं कफे वापि व्योषक्षारसमायुतम् ॥ ४५ ॥

वातजनितरोगोंमें-खट्टे तक्रको सैंधेनमकके साथ, पित्तके रोगोंमें मधुर तक्रको मिश्रीकेसाथ और कफके रोगोंमें तक्र को त्रिकुटेके चूर्ण और जवाखारके साथ सेवन करे ॥ ४५ ॥

न तु तक्रं क्षते दद्यान्नोष्णकाले न दुर्बले । न मूर्च्छाभ्रमदाहेषु न रोगे रक्तपैत्तिके ॥ ४६ ॥

क्षत, उष्णकाल, दुर्बलमनुष्य, मूर्च्छा, भ्रम, दाह और रक्तपित्तरोग इन सबमें तक्र सेवन नहीं करना चाहिये ॥ ४६ ॥

ग्राहिणी वातला रूक्षा दुर्जरा तक्रकूर्चिका । गुरुः किलाटोऽनिलहा पुंस्त्वनिद्राबलप्रदः ॥ ४७ ॥

तक्रकूर्चिका-मलरोधक, वातकारक, रूक्षा और दुर्जर है । किलाट (मावा,खोवा अथवा फटे हुये दूधका पिंड)-भारी, वातनाशक, तथा पुरुषता, निद्रा और बलको बढानेवाला है ॥ ४७ ॥

मधुरौ बृंहणौ वृष्यौ तद्वत्पीयूषमोरटौ ॥ ४८ ॥

पीयूष और मोरट-ये दोनों समान गुणवाले, मधुर, बृंहण और वृष्य हैं ॥ ४८ ॥

अथ नवनीत और घृतवर्ग ।

नवनीतं नवं ग्राहि हृद्यं रोचनदीपनम् । क्षयारुच्यर्दितप्लीहग्रहण्यर्शोविकारनुत् ॥ ४९ ॥

नवीन नवनीत (नैनी घी) मलरोधक, हृदयको हितकारी, रुचिकारक, अग्निप्रदीपक तथा क्षय अरुचि अर्दित, प्लीहा, संग्रहणी और बवासीरको नष्ट करता है ॥ ४९ ॥

क्षीरोद्भवं हिमं ग्राहि रक्तपित्ताक्षिरोगनुत्। स्मृतिबुद्ध्यग्निशुक्रौजः कफमेदो विशोधनम्॥ ५०॥

तत्काल दूधमेंसे निकाला हुआ मक्खन–शीतल, मलरोधक, रक्तपित्त और नेत्ररोगनाशक तथा स्मरणशक्ति, बुद्धि, अग्नि, शुक्र और ओजको बढाता है। कफ और मेदको शुद्ध करता है॥ ५०॥

विपाके मधुरं सर्पिर्वातपित्तविकारनुत्। गव्यं मेध्यञ्च चक्षुष्यं तत्संस्कारात्रिदोषनुत्॥ ५१॥

घृत–पाकमें मधुर और वातपित्तके विकारोंको नाश करता है। गायका घृत–मेधाजनक, नेत्रोंको हितकारी और संस्कार होनेसे त्रिदोषको नष्ट करता है॥ ५१॥

अपस्मारगरोन्मादमूर्च्छाघ्नमनवं घृतम्। अजाविनान्तु सर्पींषि विद्यात् स्वक्षीरवद्गुणैः॥ ५२॥

पुराना घृत–अपस्मार, विष, उन्माद और मूर्छाको दूर करता है। बकरी और भेड़के घृतोंके गुण उनके दूधके अनुसार जानने॥ ५२॥

अथ तैलवर्ग।

छिन्नभिन्नच्युतोत्पिष्टमथितक्षतपिच्चिते। भग्नस्फुटितविद्धाग्निदग्धाविश्लिष्टदारिते॥ ५३॥ तथाभिहतनिर्भुग्नमृगव्याघ्रादिभिः क्षते। सेकाभ्यङ्गावगाहेषु तिलतैलं प्रशस्यते॥५४॥

तिलका तेल–शरीरके किसी अङ्गके कटजाने, टूट जाने या मनुष्यके गिर जाने, पिसजाने, मसलजाने अथवा शरीरमें घाव हो जाने या पिच जाने, टूट जाने, फट जाने, विध जाने, आगसे जल जाने, किसी हड्डी आदिके स्थानसे हटजाने और चिरजाने पर तथा चोट लगने अङ्गके टेढा होजाने अथवा मृग और व्याघ्रादिके काटनेसे घायल हो जानेपर तथा सेचन, अभ्यंग और अवगाहन इन सब क्रियाओंमें तिलका तेल अतीव हितकारी है॥ ५३॥ ५४॥

तद्वद्वस्तिषु पाने च नस्ये कर्णाक्षिपूरणे। अनुपानविधौ चापि प्रयोज्यं वातशान्तये॥ ५५॥

तिलके तेलको वस्तिकर्म्म, पान, नस्य, कान, और नेत्रोंके भरनेमें तथा वातको शान्त करनेके लिये अनुपानविधि में भी प्रयोग करना चाहिये॥ ५५॥

कृमिघ्नं सार्षपं तैलं कण्डूकुष्ठापहं लघु। कफमेदोऽनिलहरं लेखनं कटु दीपनम्॥ ५६॥

सरसोंका तेल–कृमिनाशक, खुजली और कोढको दूर करनेवाला, हलका तथा कफ, मेद और वातको हरनेवाला, लेखन, कटु और अग्निको दीपन करनेवाला है॥ ५६॥

विपाके कटुकं तैलं कौसुम्भं सर्वदोषकृत्। क्षौमं तैलमचक्षुष्यं पित्तकृद्वातनाशनम्॥ ५७॥

कसूमका तेल–पाकमें कटु और सम्पूर्ण दोषोंको कुपित करता है। अलसीका तेल–नेत्रोंको अहितकारी, पित्तकारक और वातनाशक है॥ ५७॥

फलोद्भवानि तैलानि यान्यनुक्तानि तानि च। गुणात्कर्म्म च विज्ञाय फलैस्तान्यपि निर्दिशेत्॥ ५८॥

जो तेल नहीं कहे गये हैं उन फलोंके तैलोंके गुण उन फलोंके गुण और कर्म्मोंके अनुसार जानने चाहिए॥ ५८॥

यावन्तः स्थावराः स्नेहाः समासात्परिकीर्तिताः। सर्वे तैलगुणा ज्ञेयाः सर्वे चानिलनाशनाः॥ ५९॥

जितने स्थावर स्नेह संक्षेपसे कहे गये हैं, उनमें उन्हींके समान गुण होते हैं जिनसे कि वे उत्पन्न होते हैं और वे समस्त वातरोगोंको दूर करते हैं॥५९॥

अथ मधुवर्ग।

त्रिदोषघ्नं मधु प्रोक्तं मेध्यं शंसन्ति वातलम्। हिक्काश्वासकृमिच्छर्दिमेहतृष्णाविषापहम्॥ ६०॥

मधु (शहद)–त्रिदोषनाशक, मेधाजनक, वातकारक तथा हिचकी, श्वास, कृमि, वमन, प्रमेह, तृषा और विषको दूर करता है॥ ६०॥

मेदःस्थौल्यापहं ग्राहि पुराणमतिलेखनम् । दोषत्रयहरं पक्कमाममम्लश्च दोषलम् ॥ ६१ ॥

पुराना शहद-मेद और स्थूलतानाशक, मलरोधक और अत्यन्त लेखन है । पक्क शहद-त्रिदोषनाशक और अपक्क (नहीं पका हुआ) शहद-अम्ल और दोषजनक है ॥ ६१ ॥

अथेक्षुवर्ग ।

इक्षवो रक्तपित्तघ्ना बल्या वृष्याः कफप्रदाः । स्वादुपाकरसाः स्निग्धा गुरवो मूत्रला हिमाः ॥ ६२ ॥

ईख-रक्तपित्तनाशक,बलकारक, वृष्य, कफजनक, पाक और रसमें मधुर, स्निग्ध, भारी, मूत्रजनक और शीतल है ॥ ६२ ॥

अविदाही कफकरो वातपित्तनिवर्हणः । वक्त्रप्रह्लादनो हृद्यो दन्तनिष्पीडितो रसः ॥ ६३ ॥

दांतोसे चूसकर पिया हुआ ईखका रस-दाहरहित, कफकारी, वातपित्तनाशक, मुखको प्रसन्न करनेवाला और हृदयको हितकारी है ॥ ६३ ॥

गुरुर्विदाही विष्टम्भी यान्त्रिकस्तु प्रकीर्त्तितः ॥ ६४ ॥

कोल्हूमें पेला हुआ ईखका रस-भारी, दाहजनक और विष्टम्भकारक है ॥ ६४ ॥

मूलाग्रजन्तुजग्धादिपीडनान्मलसंकरात् । किञ्चित्कालविधृत्या च विकृतिं याति यान्त्रिकः ॥ ६५ ॥

ईखकी जड और उसका अग्रभाग कृमि आदिके द्वारा भक्षण किया हुआ होनेसे और पेलते समय मैलके मिश्रित होजानेसे कोल्हू में पेला हुआ ईखका रस थोडी देर तक रक्खा रहनेसे ही विकारको प्राप्त हो जाता है ॥ ६५ ॥

फाणितं गुर्वभिष्यन्दि बलकृन्मूत्रशोधनम् । नातिश्लेष्मकरः स्निग्धः सृष्टमूत्रशकृद्गुडः ॥ ६६ ॥

फाणित (राव) भारी, अभिष्यन्दि, बलकारक, मूत्रशोधक है और गुड अत्यन्त कफकारक नहीं, स्निग्ध, मूत्र और मलका भेदी है ॥ ६६ ॥

पित्तघ्नो मधुरः स्निग्धो वातहासृक्प्रसादनः । स पुराणोऽधिकगुणो गुडः पथ्यतमो मतः ॥ ६७ ॥

वही गुड-पित्तनाशक, मधुर, स्निग्ध, वातनाशक और रुधिरको प्रसन्न करता है । पुराना गुड-अधिक गुणवाला और अत्यन्त पथ्य है ॥ ६७ ॥

खण्डं वृष्यं सरं स्निग्धं स्वाद्वसृक् पित्तवातजित् ।

खाँड-वृष्य, सारक, स्निग्ध, मधुर, रक्तपित्त और वातको दूर करती है ।

वातपित्तप्रशमनी रक्तपित्तहरी सिता ।

मिश्री-वातपित्तनाशक और रक्तपित्तको दूर करती है ।

छर्द्यतीसारहृत्प्रोक्ता ह्लादिनी मधुशर्करा ॥ ६८ ॥

शहदकी खाँड-वमन और अतिसार इनको दूर करती है और मनमें प्रसन्नताको उत्पन्न करती है॥६८॥

अथ मद्यवर्ग ।

सर्वम्पित्तकरं मद्यमम्लं रोचनदीपनम् । भेदनं कफवातघ्नं हृद्यं बस्तिविशोधनम् ॥ ६९ ॥

प्रायः सब प्रकारकी मदिरा पित्तकारक, अम्ल, रुचिकारक, दीपन, भेदक, कफवातनाशक, हृदयको हितकारी और बस्तिको शुद्ध करती है ॥ ६९ ॥

कार्श्यार्शो ग्रहणीरोगमूत्राघातानिलापहा । स्तन्यरक्तक्षयहिता सुरा दीपनबृंहणी ॥ ७० ॥

सुरा-कृशता, बवासीर, संग्रहणीरोग, मूत्राघात, और वातनाशक है । तथा स्त्रियोंके स्तन्यजनितरोग और जिन मनुष्योंका रुधिर क्षय हो गया है उनको अत्यन्त हितकारी है । तथा दीपन और पुष्टिकारक है ॥ ७० ॥

रक्तपित्तकरास्तीक्ष्णाः शुक्तसौवीरजातयः । पित्तदाहनुदो बाह्ये स्थिताः शीतकराः स्मृताः ॥ ७१ ॥

शुक्त (सिर्फी) और सौवीर (कांजी) आदि अनेक प्रकारके संधान रक्तपित्तकारक और तीक्ष्ण हैं। इनको शरीरके ऊपर लेप करनेसे वे पित्त और दाहको दूर करते हैं तथा शीतलताको उत्पन्न करते हैं ॥ ७१ ॥

अथ मूत्रवर्ग ।

गोमूत्रं कटु तीक्ष्णोष्णं सक्षारत्वान्न वातलम् । लघ्वग्निदीपनं मेध्यं पित्तलं कफवातजित् ॥ ७२ ॥

गोमूत्र–कटु, तीक्ष्ण, गरम और क्षारयुक्त होनेसे वातकारक नहीं है । तथा हलका, .अग्निको दीपन करनेवाला, मेधाजनक, पित्तकारक और कफवातको दूर करता है ॥ ७२ ॥

शूलगुल्मोदरानाहविरेकास्थापनादिषु । मूत्रप्रयोगसाध्येषु गव्यं मूत्रं प्रयोजयेत् ॥ ७३ ॥

शूल, गुल्म, उदररोग, आनाह, विरेचन और आस्थापनादि कर्मोंमें तथा जो रोग मूत्रके द्वारा ही सिद्ध होवें हैं इन सबमें गायका मूत्र प्रयोग करना चाहिये ॥ ७३ ॥

हृल्लासोदरगुल्मेषु कुष्ठमेहविशुद्धिषु । आनाहशोथाष्ठीलासु पांडुरोगेषु माहिषम् ॥ ७४ ॥

हृल्लास (उबकाई) उदररोग, गुल्म,कुष्ठ, प्रमेह और शरीरके अशुद्ध होनेपर तथा आनाह, शोथ, अष्ठीला और पांडुरोग इन सबमें भैंसका मूत्र हितकारी है ॥ ७४ ॥

कासश्वासापहं शोथकामलापांडुरोगनुत् । कटुतिक्तान्वितं छागमीषन्मरुतकोपनम् ॥ ७५ ॥

बकरीका मूत्र–खाँसी, श्वास, सूजन, कामला और पांडुरोगको दूर करता है। तथा कटु, तिक्त और किंचित् वातको कुपित करता है ॥ ७५ ॥

प्लीहोदरहरं श्वासशोथवर्चोग्रहे हितम् । सक्षारतिक्तकटुकमुष्णं वातघ्नमाविकम् ॥ ७६ ॥

भेड़का मूत्र–प्लीहा, उदररोग, श्वास, सूजन और मलकी बद्धता इन सबमें हितकारी है । तथा क्षार, तिक्त, कटु, गरम और वातनाशक है ॥७६॥

दीपनं कटु तीक्ष्णोष्णं वातरेतोविकारनुत् । आश्वं कफहरं रूक्षं कृमिदद्रुविनाशनम् ॥ ७७ ॥

घोडेका मूत्र–दीपन, कटु, तीक्ष्ण, उष्ण, वात और वीर्य्यके विकारोंको दूर करता है। तथा कफनाशक, रूक्ष, कृमि और दद्रुको दूर करता है॥७७॥

सातिक्तलवणं भेदि वातघ्नं पित्तकोपनम् । तीक्ष्णं क्षारे किलासे च नागमूत्रं प्रयोजयेत् ॥ ७८ ॥

हाथीका मूत्र–तिक्त, नमकीन, भेदक, वातनाशक, पित्तप्रकोपक, तीक्ष्ण, तथा क्षार और किलासरोगमें हितकारी है ॥ ७८ ॥

गररेतो विकारघ्नं तीक्ष्णं जठररोगनुत् । दीपनं गार्दभं मूत्रं कृमिवातकफापहम् ॥ ७९ ॥

गधीका मूत्र–विष और वीर्य्यके विकारोंको दूर करता है । तीक्ष्ण, उदररोगनाशक, दीपन तथा कृमि,वात और कफकेविकारोंको दूर करता है॥७९॥

शोथकुष्ठोदरोन्मादमारुतकृमिनाशनम् । अर्शोघ्नं कारभं मूत्रं मानुषन्तु विषापहम् ॥ ८० ॥

ऊँटका मूत्र–सूजन, कुष्ठ, उदररोग, उन्माद, वात, कृमि और बवासीरको दूर करता है । तथा मनुष्यका मूत्र विषनाशक है ॥ ८० ॥

इति श्रीवंगसेने-भाषाटीकायां द्रवद्रव्याधिकार समाप्त ॥ ९३ ॥

अथारिष्टाधिकारः ।

फलाग्निजलवृष्टीनां पुष्पधूमाम्बुदा यथा । ख्यापयन्ति भविष्यत्वं तथारिष्टानि पञ्चताम् ॥ १ ॥

जिसप्रकार वृक्षपर फूल आनेसे फल आनेकी संभावना होती है, जिस प्रकार धुएँके होनेसे अग्निकी संभावना होती है और जिसप्रकार मेघोंके होनेसे वृष्टि होनेकी सम्भावना होती है, उसी प्रकार अरिष्टके लक्षणोंके होनेसे मृत्युकी संभावना होती है ॥ १ ॥

तानि सौक्ष्म्यात्प्रमादाद्वा तथैवाशुव्यतिक्रमात् । अज्ञानाच्च न गृह्यन्ते मुमूर्षोर्न त्वसम्भवात् ॥ २ ॥

ये अरिष्टके लक्षण अत्यन्त सूक्ष्म होनेसे तथा प्रमादसे एवं बहुत शीघ्र२ एक लक्षणके पश्चात् दूसरा लक्षण होनेसे उनका रोगीको ठीक २ ज्ञान नहीं होता, परन्तु मृत्युके पूर्व ये अरिष्टके लक्षण होते अवश्य हैं ॥ २ ॥

नत्वरिष्टस्य जातस्य नाशोऽस्ति मरणादृते । मरणञ्चापि तत्रास्ति यत्रारिष्टं पुरःसरम् ॥ ३ ॥

अरिष्टके होनेसे मृत्यु अवश्य होती है, वह मृत्यु नहीं जिसमें प्रथम अरिष्टके लक्षण नहीं होते, और वह अरिष्ट नहीं कि जिसके होनेसे मृत्यु न हो ॥ ३ ॥

ध्रुवं त्वरिष्टे मरणं ब्राह्मणैस्तत्किलाऽमलैः । रसायनपरैर्जाप्यं तत्परैर्वा निवार्यते ॥ ४ ॥

जब यह बात निश्चय हो जाय कि अरिष्टके लक्षण हैं और इनके होनेसे मृत्यु अवश्य होगी तब रसायनको जाननेवालोंमें श्रेष्ठ पवित्र तपस्वी और जितेंद्रिय ब्राह्मणोंके द्वारा जप कराकर उस अरिष्टको दूर करे ॥ ४ ॥

असिद्धिं प्राप्नुयाल्लोके प्रतिकुर्वन्गतायुषः । तस्माद्यत्नैररिष्टानि लक्षयेत कुशलो भिषक् ॥ ५ ॥

गतायुष मनुष्यकी चिकित्सा करनेसे वैद्यको सिद्धि प्राप्त नहीं होती है, इस कारण कुशल वैद्य अच्छेप्रकारसे यत्नपूर्वक अरिष्टके लक्षणोंको जानकर चिकित्सा करे ॥ ५ ॥

वैद्योऽरिष्टानि सिद्ध्यर्थं भविष्यं मरणं स्फुटम् । कथयन्त्यातुरगतं शुभञ्चाशुभमेव च ॥ ६ ॥

अरिष्टकी सिद्धिके लिये मृत्यु अवश्य होती है। इस कारण वैद्य रोगीके शुभ और अशुभ अरिष्टके लक्षणोंको अवश्य कह देवे ॥ ६ ॥

नक्षत्रोद्भवपीडा च यथाकालं विपच्यते । अरिष्टपाकन्तु तथा ब्रुवंते बहवो जनाः ॥ ७ ॥

जिस प्रकार नक्षत्रजनितपीडा यथा समयमें प्राप्त होनेपर फल देती है, उसी प्रकार अरिष्टके होनेपर मृत्यु होती है ऐसा बहुतसे मनुष्य कहते हैं ॥ ७ ॥

अथ दूतलक्षण ।

दूतस्य गच्छतो वैद्यमानेतुं रोगिणः कृते । प्रदीप्तं शोभनं प्रोक्तं सौम्यं न शकुनं शुभम् ॥ ८ ॥

जो रोगीके लिये वैद्यके बुलानेको मनुष्य जाता है, उसको दूत कहते हैं। उसको जाते हुए मार्गमें प्रदीप्त (प्रज्वलित) अग्नि आदि शकुन हों तो शुभ और सौम्य शकुन हों तो अशुभ होते हैं ॥ ८ ॥

उत्तमस्यापि नीचोऽपि नीचस्याप्युत्तमो जनः। नरो विकृतवेषश्च न दूतः शुभसूचकः ॥ ९ ॥

उत्तम जातिके रोगीके लिये नीच जातिका दूत और नीच जातिके रोगीके लिये उत्तम जातिका दूत तथा विकृत वेषवाला मनुष्य दूत अशुभसूचक होता है ॥ ९ ॥

पाखण्डाश्रमवर्णानां सवर्णाः कर्म्मसिद्धये । त एव विपरीताः स्युर्दूताः कर्म्मविपत्तये ॥ १० ॥

पाखंडी-(भिक्षामाँगनेवाले-जिनके हाथमें कपाल अथवा लोहनिर्मित अन्यान्य पात्र हो), आश्रमी-(ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वाणप्रस्थ, संन्यासी) और वर्ण-(ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) इन सब-प्रकारके रोगियोंके लिये इन्हीं २ जातियोंके दूत होने चाहियें। अर्थात् पाखंडीके लिये पाखंडी, ब्रह्मचारीके लिये ब्रह्मचारी और ब्राह्मण, क्षत्रियादिके लिये ब्राह्मण क्षत्रियादि जातिका दूत ठीक होता है। और इसके विपरीत अर्थात् गृहस्थोंके लिये ब्रह्मचारी, अथवा पाखंडी ब्राह्मणके लिए क्षत्रिय और क्षत्रियके लिये ब्राह्मणजातिका दूत शुभ नहीं होता। अर्थात् यह कार्यमें विपत्ति करते हैं॥ १०॥

नपुंसकः स्त्रीबहवोऽनेककार्य्याभिसूचकाः। पाशदण्डायुधधराः पाण्डुरेतरवाससः॥ ११॥ आर्द्रजीर्णापसव्यैकमलिनोद्धतवाससः। रूक्षनिष्ठुरवक्तारस्त्वमङ्गल्याभिधायिनः॥१२॥

नपुंसक, जिसके बहुत स्त्रियें हों, जो अनेक प्रकारके अन्यान्य कार्य्योंकी चिंता करता हो तथा जो पाश (फाँसी जाल इत्यादि), दंड (लठिया आदि) और अनेक प्रकारके अस्त्रोंको हाथमें धारण किये हो तथा लाल और काले वस्त्र पहरे हो एवं गीले और पुराने कपड़े पहरे हो या जो बाँये कंधेपर एक मलिन वस्त्र धारण किये हो, रूखे और कठोर वचन बोलनेवाला तथा अमंगलजनक वचन बोलनेवाला हो ऐसे दूत वैद्यको बुलानेके लिये श्रेष्ठ नहीं होते॥११॥१२॥

न्यूनाधिकाङ्गा उद्विग्ना विकला रौद्ररूपिणः। छिन्दन्तस्तृणकाष्ठानि स्पृशन्तो नासिकास्तनम्॥ १३॥ वस्त्रान्तानामिकाकेशनखरोमदशास्पृशः। वैद्यं य उपसर्पन्ति दूतास्ते चापि गर्हिताः॥ १४॥ कपालोपलभस्मास्थितुषाङ्गारकराश्च ये। विलिखन्तो महीं केचिन्मुञ्चन्तो लोष्ठभेदिनः॥१५॥ तैलकर्दमदिग्धाङ्गा रक्तस्रगनुलेपनाः। फलं पक्कमसारं वा गृहीत्वान्यच्च तद्विधम्॥ १६॥ नखैर्नखान्तरं वापि करेण चरणौ तथा। काष्ठोपानच्चर्महस्ता विकृता व्याधिपीडिताः॥ १७॥ वामाचारा रुदन्तो वा श्वासिनो विकृतेक्षणाः। याम्यां दिशि प्राञ्जलयो विषमैकपदस्थिताः॥ १८॥ दैन्यामङ्गल्यचिह्नानि दधतश्चापराण्यपि। दक्षिणाभिमुखं देशे मलिने क्रूरकर्म्मणि॥ १९॥ ज्वालयन्तं पठन्तं वा क्षुरकर्म्मणि चोद्यतम्। भूमौ शयानं नग्नं वा वेगोत्सर्गेषु वा शुचिम्॥ २०॥ प्रकीर्णकेशमभ्यक्तक्लिन्नं क्लान्तमथापि वा। वैद्यं य उपसर्पन्ति दूतास्ते चापि गर्हिताः॥२१॥

न्यूनअंगवाला-(अंगहीन, लूला, लँगड़ा इत्यादि), अधिकअंगवाला, (छंगा इत्यादि), उद्विग्नचित्तवाला, विकल और भयंकर चेष्टावाला तथा जो तृणको और काष्ठको तोडता हो, नासिका और स्तनोंको छूता हो, एवं वस्त्रोंके कोने, अनामिका अंगुली, केश, नख, रोम और वस्त्रोंके मध्यभाग इनको बारंबार स्पर्श करता हो ऐसी चेष्टायुक्त जो दूत वैद्यको बुलाने के लिये जाते हैं, वे शुभ नहीं होते हैं। जो हाथमें कपाल (खोपडी), पत्थर, भस्म, हड्डी, भुस और अँगारे इनको धारण किये हों, नाखूनोंसे पृथ्वीको लिखें अथवा हाथमेंसे कुछ गिरावें या नाखूनोंसे मिट्टीको तोडें तथा जिसके शरीरपर तेल और कीचड लिपट रही हो अथवा लालचन्दन वा अन्यान्य लाल रंगके अनुलेपनोंको धारण किये हो या लाल फूलोंकी मालाको धारण कियेहो अथवा सार रहित पके फलोंको धारण किये हों तथा अन्यान्य इसी प्रकारकी और अशुभ वस्तुको धारण कियेहो तथा नखोंसे नाखूनोंको अथवा हाथोंसे पांवोंको स्पर्श करताहो, काष्ठ, उपानह (जूता) और चर्म इनको हाथ में धारण कियेहो, विकृत और अनेक रोगोंसे पीडित हो अथवा जो उलटे आचरण करता हो, रोता हो, जो बडे बडे श्वासों को छोडता हो, जो विकृत नेत्रोंसे देखता हो और जो दक्षिण दिशामें एक पैरसे हाथ जोडकर विषम आसनसे बैठा हो, अथवा दीनताजनक और अमंगलकारक ऐसे अन्यान्य पदार्थोंको हाथमें धारण किये हों, दक्षिणकी ओरको

मुख करके बैठा हुआ अथवा मलिन स्थानमें बैठा हुआ, क्रूर कर्म्ममें तत्पर अथवा अग्निको जलाता हुआ, पढता हुआ, नख या बालोंको काटता हुआ भूमिमें शयन करता हुआ, नग्न, मल,मूत्र इत्यादिकोंको त्यागता हुआ, शौचाचार करता हुआ और खुले हुए बालोंवाला मालिस किये हो, क्लेदित शरीरवाला और भ्रान्तियुक्त चित्तवाला इन चेष्टाओंसे युक्त जो दूत वैद्यको बुलानेके लिये जाता है वह शुभ नहीं होता ॥ १३-२१ ॥

पित्र्ये चाहुतिकार्ये वा तथा चोत्पातदर्शने । मध्याह्ने चार्द्धरात्रे च सन्ध्ययोः कृत्तिकासु च ॥ २२ ॥ आर्द्राश्लेषामघामूलपूर्वासु भरणीषु च । चतुर्थ्यांश्च नवम्यांश्च षष्ठ्यां सन्धिदिनेषु च ॥ वैद्यं य उपसर्पन्ति दूतास्ते चापि गर्हिताः ॥ २३ ॥

जिस दिन वैद्यके घर श्राद्ध हो अथवा आहुतिकर्म (यज्ञादिक) हो तथा जिस दिन कोई उत्पात हो एवं मध्याह्नके समय, अर्धरात्रिके समय, दोनों संध्याओंमें तथा कृत्तिका, आर्द्रा, आश्लेषा, मघा,मूल, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा और भरणी इन नक्षत्रोंमें तथा चौथ, नवमी, छठ और सन्धिके दिन इनमें जो दूत वैद्यको बुलानेके लिये जाते हैं वे भी शुभ नहीं होते ॥ २२ ॥ २३ ॥

स्विन्नाभितप्ता मध्याह्ने ज्वलनस्य समीपतः । गर्हिताः पित्तरोगेषु दूता वैद्यमुपागताः ॥ २४ ॥

जिसका शरीर पसीनेसे व्याप्त अथवा धूपसे संतप्त,हो, मध्याह्नके समय और अग्निके निकटसे अथवा पित्तरोगोंके होनेपर जो दूत वैद्यको बुलानेके लिये जाते हैं वे शुभ नहीं होते ॥ २४ ॥

ते वातकफरोगेषु कर्म्मसिद्धिकरा मताः । रक्तपित्तातिसारेषु प्रमेहेषु विशेषतः ॥ प्रशस्तो जलयोगेषु दूतवैद्यसमागमः ॥ २५ ॥

और इन्हीं लक्षणोंसे युक्त जो दूत वात और कफके रोगोंके होनेपर वैद्यके पास जाय तो कार्यको सिद्ध करनेवाला जानना । तथा रक्तपित्त, अतिसार और विशेष करके प्रमेह इन रोगोंसे ग्रसित होनेपर दूतका और वैद्यका समागम जलके स्थानोंमें होना सिद्धिदायक है ॥ २५ ॥

शुभदूतके लक्षण ।

शुक्लवासो गौरशुचिः श्यामा वा प्रियदर्शनाः । स्वस्यां जातौ स्वगोत्रे वा दूताः कार्य्यकराः स्मृताः ॥ २६ ॥

सफेद वस्त्रोंको धारण किये हुये, गौरवर्ण, अथवा श्यामवर्णवाला, शुद्ध, प्रियदर्शन अपनी जातिका और अपने गोत्रका ऐसे दूत कार्य्यको सिद्ध करनेवाले जानने ॥ २६ ॥

अव्यङ्गाः पटवो दूताः शुभ्रलेपांबरस्रजः । वृषवाजिसमारूढाश्चारुचेष्टाः सुजातयः ॥ २७ ॥ भिषजः समये प्राप्ताः सजीवदिशमाश्रिताः । ऊनसंख्याः प्रशस्ताः स्यू रोगिणः सुखहेतवः ॥ २८ ॥

सम्पूर्ण अंगयुक्त, चतुर, सफेद प्रलेप, सफेद वस्त्रों और सफेद मालादिके धारण करनेवाले तथा केशर मालाआदि पदार्थोंको धारण करनेवाला, बैल घोड़े आदिपर चढे हुए उत्तम चेष्टावाले और अपनी जातिके, वैद्यके मिलनेके समय प्राप्त हुए, सजीव दिशामें स्थित हुआ अर्थात् जो स्वर चलता हो उसी ओर खड़ा हो और आयुमें थोडी संख्यावाले ऐसे दूत रोगीको सुख देनेवाले जानने ॥ २७॥२८ ॥

यस्यां प्राणानिलो वाति सा नाडी जीवसंयुता । दिग्विभागोऽपि तस्या यः सजीवः स निगद्यते ॥ २९ ॥ स्वस्थं प्राङ्मुखमासीनं समे देशे शुचौ शुचिम् । उपसर्पन्ति ये वैद्यं ते च कार्य्यकराः स्मृताः ॥ ३० ॥

जिस दिशामें दूतकी प्राण वायु बहती है, वह नाड़ी जीवयुक्त होती है । उसकी दिशाके जो विभाग है,उसको सजीव दिशा कहते हैं।उसी दिशामें वैद्यको दूत मिले तो रोगीको सुख होता है । स्वस्थचित्त पूर्वको मुख करके समान और शुद्धस्थानमें पवित्र होकर बैठे हुए वैद्यको जो दूत बुलाने जाते हैं, वे दूत कार्यसिद्धि करनेवाले होते हैं ॥ २९ ॥ ३० ॥

अथ शकुनलक्षण।

वैद्यस्य गच्छतः कर्तुं चिकित्सां रोगिणो भवेत्। सिद्धिदं शकुनं सौम्यं दीप्तं नैव प्रशस्यते ॥ ३१ ॥

रोगीकी चिकित्सा करनेके लिये वैद्यको रोगीके घर जाते समय मार्गमें जो सौम्य शकुन हों तो शुभ और दीप्त शकुन हों तो अशुभ जानने ॥ ३१ ॥

मांसोदकुम्भातपत्रविप्रवारणगोवृषाः। शुक्लवर्णाश्च पूज्यन्ते प्रस्थाने दर्शनं गताः ॥ ३२ ॥

वैद्यको रोगीके घर जाते हुए यदि मार्गमें मांस, जलका कुम्भ, छत्री, ब्राह्मण, हस्ती; गाय, बैल और सफेद रंगके समस्त पदार्थ आवें तो शुभ शकुन जानने ॥ ३२ ॥

स्त्री पुत्रिणी सवत्सा गौर्वर्द्धमानाः स्वलङ्कृता। कन्या मत्स्याः फलं चामं स्वस्तिको मोदको दधि ॥३३॥ हिरण्याक्षतदूर्वाश्च रत्नानि सुमनो नृपः। अप्रशान्तोऽनलो वाजी चाषो हंसः शिखी तथा ॥ ३४ ॥ भवन्ति दर्शनादेव भिषजः कार्य्यसिद्धिदाः। ब्रह्मदुन्दुभिनिर्घोषःशङ्खवेणुरथस्वनाः ॥ ३५ ॥ सिंहगोवृषनादोऽश्वह्रेषितं गजबृंहितम्। शस्तं हंसरुतं नृणां वाचश्च हृदयप्रियाः ॥ ३६ ॥

पुत्रवती स्त्री, बछडेयुक्त गाय, वर्द्धमानपदार्थ, अलंकृत कन्या, मछली, कच्चे फल, स्वास्तिक, (स्वस्तिक चिह्न सथिया अथवा मांगलिक पदार्थ), मोदक, दही, सुवर्ण, अक्षत, दूब, रत्न, पुष्प, राजा, प्रज्वलित अग्नि, घोडा, नीलकण्ठ, हंस और मयूर ये शुभ शकुन वैद्यके कार्यको सिद्ध करते हैं। वेदध्वनि, दुन्दुभि और अन्यान्य मांगलिक बाजोंके शब्द, शंख, वेणु और रथका शब्द, सिंह, गाय और बैल इनका नाद, घोडेका हींसना, हाथीका चिंघारना, हंसका शब्द और हृदयको प्रिय लगनेवाले मनुष्योंके वचन ये सब शुभ शकुन हैं ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

पत्रपुष्पफलोपेताः सक्षीरा नीरुजो द्रुमाः। आश्रिता वा नभोवेश्म ध्वजतोरणवेदिकाः ॥ ३७ ॥

पत्र, फूल, फल और दूधयुक्त, एवं रोग रहित वृक्ष, आकाश सम्बन्धी घर, अथवा ध्वजा, तोरण और वेदी इनके आश्रित जो शकुन हों तो वे शुभ जानने ॥ ३७ ॥

दिक्षु शान्तासु वक्तारो मधुरं पृष्ठतः खगाः। वामा वा दक्षिणा वापि शकुनाः कर्म्मसिद्धये ॥ ३८ ॥

शान्त दिशाओंमें अथवा पीठके पीछे, बाँई ओर अथवा दहिनी ओर जो पक्षी मधुर शब्द करें तो कार्य्यकी सिद्धिके लिये शुभ शकुन जानने ॥ ३८ ॥

दक्षिणाद्वामगमनं प्रशस्तं श्वशृगालयोः। भासकौशिकयोश्चैवं नोभयं शशसर्पयोः ॥ ३९ ॥

कुत्ता और गीदड़ दोनोंका दहिनी ओरसे बाँई ओरको जाना शुभ शकुन है। गिद्ध और उल्लू इन दोनों पक्षियोंका बाँई ओर जाना यात्रामें श्रेष्ठ नहीं है। तथा खरगोश और सर्प इन दोनोंका बाँई ओरसे दहिनी ओर जाना अशुभ है ॥ ३९ ॥

दर्शनं वा रुतं वापि न गोधाकृकलासयोः। ग्रंथ्यर्बुदादिषु सदा छेदशब्दः प्रशस्यते ॥ ४० ॥

गोधा (गोय), कृकलास (गिरगट) इन दोनोंका दर्शन और इनका शब्द दोनों ही अशुभसूचक जानने। ग्रंथि और अर्बुदादि रोगोंमें छेद शब्दका होना सदैव श्रेष्ठ है ॥ ४० ॥

विद्रध्युदरगुल्मेषु भेदशब्दस्तथैव च। रक्तपित्तातिसारेषु रुद्धशब्दश्च पूजितः ॥ ४१ ॥

विद्रधि, उदररोग और गुल्मरोग इनमें "भेद" शब्दका होना सदैव श्रेष्ठ है। रक्तपित्त और अतिसार रोगमें "रुद्ध" शब्दका होना सदैव शुभ है ॥ ४१ ॥

दौर्म्मनस्यञ्च वैद्यस्य यात्रायां नैव पूजितम्। वैद्यासनावसादो वा आ-

तुरो वाप्यधोमुखः ॥ ४२ ॥ वैद्यसंभाषणाङ्गानि कुड्यमास्तरणानि च । प्रमृज्याद्वाधुनीयाद्वा करौ पृष्ठं शिरस्तथा ॥ ४३ ॥ हस्तं चाकृष्य वैद्यस्य न्यसेच्छिरसि चोरसि । न स सिद्ध्यति वैद्यो वा गृहे यस्य न पूज्यते ॥ ४४ ॥

यात्राके समय वैद्यके चित्तमें उद्विग्नताका होना सदैव अशुभ है । वैद्यको बैठनेके लिये जो आसन दिया जाय उसका गिरना, रोगीका अधोमुख होना और वैद्यसे सम्भाषण करते समय रोगीका अपने अंगोंको रगड़ना अथवा मर्दन करना, अथवा दोनों हाथोंसे पीठ और शिरको धुनना या रोगीका अपने हाथसे वैद्यके हाथको खींचकर शिर और हृदयपर रखना और जिस घरमें वैद्यका सत्कार नहीं होता वहाँ कार्य्यकी सिद्धि नहीं होती ॥४२॥४३॥४४॥

वैद्यं यश्चोन्मुखं पृच्छेत्पार्ष्णि वा स्वाङ्गमातुरः । भूयः संपूज्यते यस्य गृहे वैद्यः स सिद्ध्यति ॥ ४५ ॥

जो रोगी ऊँचा मुख करके अथवा करवटसे शयन करके वैद्यसे अपने रोगका हाल कहे तो यह भी शुभ नहीं है । जिस घरमें वैद्यकी अच्छेप्रकारसे पूजा होती है, वहां शीघ्र ही आरोग्य प्राप्त हो जाता है ॥ ४५ ॥

शुभं शुभेषु दूतादिष्वशुभं ह्यशुभेषु च । आतुरस्य ध्रुवं तस्मात्तद्दूतादींल्लक्षयेद्भिषक् ॥ ४६ ॥

दूत और शकुन इनके शुभ होनेपर शुभ फल और अशुभ होनेपर अशुभ फल होता है । इस कारण वैद्य रोगीके दूतादिककी अच्छेप्रकारसे परीक्षा करे ॥४६॥

अथ स्वप्नाधिकार ।

स्वप्नाध्यायं प्रवक्ष्यामि मरणाय शुभाय च । पश्यन्ति सुहृदो यांस्तु स्वप्नान् स्वयमथापि वा ॥ ४७ ॥

अब यहांसे स्वप्नाध्यायको कहते हैं । जिसको रोगीके मित्र अथवा रोगी स्वयं देखता है और उससे मृत्यु अथवा आरोग्य मालूम होता है ॥ ४७ ॥

स्नेहाभ्यक्तशरीरस्तु करभव्यालगर्दभैः । मार्जारकपिशार्दूलशृगालैर्नारकेन च ॥ ४८ ॥ तरक्षुहामृगाभ्यां च भल्लुकेन शुनापि वा । वराहैर्माहिषैर्वापि यो यायाद्दक्षिणामुखः ॥ ४९ ॥

जो मनुष्य स्वप्नमें अपने शरीर पर तैलादिककी मालिस करके हाथी व्याल (व्याघ्र अथवा सर्प), गधा, बिलाव, बन्दर, सिंह, गदिड, हिंसक पशु, तरक्षु (व्याघ्रविशेष), इहामृग (वृकविशेष), रीछ, कुत्ता, सूकर और भैंसा इनके ऊपर चढ़कर दक्षिण दिशाको जाता है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

कृष्णरक्ताम्बरधरा हसन्ती रक्तमूर्धजा । यं चाकर्षति बध्वा स्त्री नृत्यन्ती दक्षिणामुखम् ॥ ५० ॥

अथवा स्वप्नमें काले रंगके अथवा लालरंगके वस्त्र धारण किए हुए, हँसती हुई, लालशिरवाली और नाचती हुई स्त्री जिस मनुष्यको बाँधकर दक्षिणकी ओर खींचे ॥ ५० ॥

अन्त्यावसायिभिर्यो वाकृष्यते दक्षिणामुखः । परिष्वजेयुर्यं वापि प्रेताः प्रव्रजितास्तथा ॥ ५१ ॥

अथवा जिस मनुष्यको स्वप्नमें नीच चांडालादिक दक्षिणकी तरफको खींचें या जिसको स्वप्नमें प्रेत और सन्यासी आलिंगन करें ॥ ५१ ॥

आघ्रायते यश्च मुहुः श्वापदैर्विकृताननैः । पिबेन्मधु च तैलं वा यो वा पङ्केऽवसीदति ॥ ५२ ॥ पंकप्रलिप्तगात्रो वा नृत्येद्वापि हसेत्तथा । निरम्बरश्च यो रक्तां शिरसा धारयेत् स्रजम् ॥ ५३ ॥ यस्य वंशोऽनलो वापि तालो वोरसि जायते । मत्स्यादिभिर्ग्रस्यते यो वा नीरेऽग्नौ वा विलीयते ॥ ५४ ॥ उच्चादधः पतेद्यस्तु श्वापदैर्वा निहन्यते । क्षियते स्रोतसां यो वा यो वा मोहमवाप्नु-

यात् ॥ ५५ ॥ पराजीयेत बध्येत काकाद्यैर्वाभिभूयते । पतनं तारकादीनां प्रणाशं दीपचक्षुषोः ॥ ५६ ॥ यः पश्येद्देवतानां वा प्रकम्पमवनेस्तथा । यस्य च्छर्दिर्विरेको वा दशनाः प्रपतन्ति वा ॥ ५७ ॥

अथवा जिसको स्वप्नमें भयंकर मुखवाले कुत्ते वारंवार सूंघें तथा जो स्वप्नमें शहद और तेलको पान करे। किंवा जो स्वप्नमें कीचड़में गिरजाय अथवा जो अपने शरीरमें कीचड़ लपेट कर नांचे और हँसे तथा जो मनुष्य स्वप्नमें नग्न होकर लालफूलोंकी मालाको शिरपर धारण करे या जिसके हृदयमें बाँस, नरसल और ताडके वृक्ष उत्पन्न हों तथा जो स्वप्नमें मछली आदिकोंके द्वारा ग्रसा जाय अथवा जल और अग्निमें विलीन होजाय या जो स्वप्नमें ऊपरसे नीचेको गिरे अथवा व्याघ्रादिकसे माराजाय या नदीके जलके प्रवाहमें डूब जाय या जो बेहोश होजाय जो स्वप्नमें दूसरोंके द्वारा पराजित किया जाय अथवा बाँधा जाय या कौवे आदि पक्षियोंके द्वारा पीडित किया जाय किंवा जो स्वप्नमें तारे आदिको पतित होता हुआ देखे अथवा दीपकको बुझता हुआ और नेत्रोंको फूटता हुआ देखे अथवा जो देवताओंकी मूर्तियोंको काँपता हुआ या पृथ्वीको कांपता हुआ देखे। जिसके स्वप्नमें वमन और विरेचन हों तथा जिसके दाँत टूट जाँय ॥ ५२–५७ ॥

शाल्मलीं किंशुकं यूपं वल्मीकं पारिभद्रकम् । पुष्पाढ्यं कोविदारं वा चितां वा योऽधिरोहति ॥ ५८ ॥

जो स्वप्नमें सेमल, ढाक, यूप, साँपकी बँबई, नीम और फूलोंसे आच्छादित कचनारका वृक्ष देखे अथवा जो स्वप्नमें चिताके ऊपर बैठे ॥ ५८ ॥

कार्पासतैलपिण्याकलोहानि लवणं तिलान् । लभेताश्नाति वा पक्वं मांसं यश्च पिबेत्सुराम् ॥ ५९ ॥

तथा जो स्वप्नमें कपास, तेल, खल, लोह, लवण और तिलोंको प्राप्त करे अथवा भक्षण करे किंवा पक्व मांसको भक्षण करे या जो स्वप्नमें मदिराको पान करे ॥ ५९ ॥

यः स्वप्नेषु नरः पश्येद्रक्तकृष्णाम्बरावृतान् । कृष्णांश्च विकृतान्व्यङ्गान्दण्डपाशधरानपि ॥ ६० ॥ कुर्वतो भर्त्सनं त्रासं दक्षिणाशां समाश्रितान् । स स्वस्थो लभते रोगं व्याधितो मृत्युमृच्छति ॥ ६१ ॥

जो मनुष्य स्वप्नमें लाल, काले वस्त्रोंको धारण किये हुए ऐसे काले रंगके, विकृत, व्यंग दंड और पाशको धारण किये हुए तथा ग्लानिजनक वचनोंको कहते हुए और त्रास देते हुए मनुष्योंको दक्षिण दिशामें देखे तो वह स्वस्थमनुष्य रोगको प्राप्त होता है और रोगी मनुष्य मृत्युको प्राप्त होता है ॥ ६० ॥ ६१ ॥

यथास्वंप्रकृति स्वप्नो विस्मृतो विहितस्तथा । चिन्ताकृतो दिवा दृष्टो भवन्त्यफलदास्तु ते ॥ ६२ ॥

अपनी प्रकृतिके अनुसार देखा हुआ स्वप्न जिसको देखकर मनुष्य भूलगयाँ हो ऐसा स्वप्न अथवा जो एक स्वप्नके पश्चात् दूसरा स्वप्न देखकर नष्ट हो गया हो, या जो किसी प्रकारके विचार करनेसे देखा हो और जो दिनमें देखा गया हो, ऐसे स्वप्न निष्फल होते हैं ॥ ६२ ॥

ज्वरितानां शुना सख्यं शोषिणां कपिभिस्तथा । उन्मादे राक्षसैः प्रेतैरपस्मारे प्रवर्त्तनम् ॥ ६३ ॥ मेहातिसारिणां तोयपानं स्नेहस्य कुष्ठिनाम् । गुल्मेषु स्थावरोत्पत्तिः कोष्ठे मूर्ध्नि शिरोरुजि ॥ ६४ ॥

जो ज्वर रोगी स्वप्नमें कुत्तेके साथ, शोष रोगी बन्दर के साथ, उन्माद रोगी राक्षस के साथ और अपस्मार रोगी प्रेतोंके साथ मित्रता करता है तथा प्रमेह रोगी और अतिसार रोगी जलपान करे, कुष्ठ रोगी स्नेह पान करे, गुल्म रोगीके उदरमें और शिरोरोगी के सिरमें वृक्ष उत्पन्न हो ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

पिपासाश्वासयोश्छर्द्यां शष्कुल्याश्चैव भक्षणम् । हरिद्राभक्षणं वापि यद्भवेत्पांडुरोगिणः ॥ रक्तपित्ती पिबेद्यस्तु शोणितं स विनश्यति ॥ ६५ ॥

तथा जो तृषा, श्वास और वमनमें शष्कुली (पूरी) को भक्षण करता है एवं पांडुरोगी हलदीको भक्षण करता है, और रक्त पित्तरोगी स्वप्नमें रुधिर को पान करता है तो ये सब नष्ट होजाते हैं ॥ ६५॥

क्रव्यादाक्रमणं श्मशानगमनं पातस्तथोच्चादधो रक्तस्रग्वसनं विवाहकलहौ क्षौरं विरेको वमिः । बन्धं लौहकपर्दलाभनटनं पंकाम्भसोर्मज्जनं दन्ताक्षिग्रहपादचर्म्मपतनं स्वप्ने गदादिप्रदम् ॥ ६६ ॥

मांसका टूटना या खींचना, श्मशानभूमिमें जाना ऊँचेसे नीचेको पतित होना, लालवस्त्र अथवा लाल फूलोंकी माला को धारण करना, विवाह और कलह देखना, क्षौर कर्म, विरेचन, वमन, बंधन, लोहा और कौडी इनकी प्राप्ति, नृत्य करना, कीचड और जलमें डूबना, दाँत, नेत्र, ग्रह, पांव और चमडा इनका पतित होना ये सब स्वप्नमें देखे तो अनेकप्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं ॥ ६६ ॥

स्वप्नानेवंविधान् दृष्ट्वा प्रातरुत्थाय यत्नवान् । दद्यान्माषांस्तिलाँल्लोहं विप्रेभ्यः काञ्चनं तथा ॥ ६७ ॥

जो इस प्रकारके अनिष्टकारक स्वप्न देखे तो यत्न-पूर्वक प्रातः उठकर उडद, तिल, लोहा और सुवर्ण इनका ब्राह्मणोंको दान देवे ॥ ६७ ॥

जपेद्वापि शुभान्मंत्रान् गायत्रीन्त्रिपदीं तथा । दृष्ट्वा तु प्रथमे यामे स्वप्नान्ध्यायेत्पुनः शुभम् ॥ ६८ ॥

अथवा गायत्री, त्रिपदी आदि शुभ मंत्रोंको जपे। यदि रात्रिके प्रथम प्रहरमें दुष्टस्वप्न देखे तो शुभवस्तु का स्मरण करके सो रहे ॥ ६८ ॥

जपेद्वान्यतमं देवं ब्रह्मचारी समाहितः ।न चाऽऽचक्षीत कस्मैचिद्दृष्ट्वा स्वप्नमशोभनम् ॥ ६९ ॥ देवतायतने चैव वसेद्रात्रित्रयं तथा । विप्रांश्च पूजयेन्नित्यं दुःस्वप्नात्परिमुच्यते॥७०॥

अथवा ब्रह्मचर्य्यको धारण करके अन्य किसी देवता की उपासना करे और दुष्टस्वप्न देखकर किसीसे नहीं कहे अथवा तीन रात्रितक किसीदेवताके मंदिरमें निवास करे और नित्यप्रति ब्राह्मणोंका पूजन करे तो दुष्टस्वप्न शीघ्र ही नाश होते हैं ॥ ६९ ॥ ७० ॥

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि प्रशस्तस्वप्नदर्शनम् । देवान् द्विजान् गोवृषभान् जीवतः सुहृदो नृपान् ॥ ७१ ॥ समिद्धमग्निं साधूंश्च निर्मलानि जलानि च । पश्येत्कल्याणलाभाय व्याधेरपगमाय च ॥ ७२ ॥

अब इसके उपरान्त शुभस्वप्नोंको कहते हैं। जो देवता, ब्राह्मण, गाय, बैल, जीवितमित्र, राजा, जलती हुई अग्नि, साधु और निर्मल जल इनको स्वप्नमें देखे तो कल्याणका लाभ और रोगका नाश होता है ॥ ७१ ॥ ७२ ॥

युद्धे चात्मजयं दृष्ट्वा नरः सुखमवाप्नुयात् ।उरगो वृश्चिको भृङ्गो मक्षिकाश्च जलौकसः। स्वप्ने दशन्ति यं तस्य धनारोग्ये विनिर्दिशेत् ॥ ७३ ॥

जो स्वप्नमें अपनेको युद्धमें जयको प्राप्त हुआ देखे तो वह शीघ्रही सुखको प्राप्त होता है। जिसको स्वप्नमें साँप, बिच्छू, भौंरा मक्खी और जौंक ये काटें तो उसको धन और आरोग्य प्राप्त होता है ॥ ७३ ॥

मांसं मद्यं स्रजः श्वेता वासांसि च फलानि च । लभेत कल्याणलाभाय व्याधेरपगमाय च ॥ ७४ ॥

मांस, मदिरा, रुधिर, श्वेतवस्त्र और श्वेत फल यह स्वप्नमें देखे तो कल्याणका लाभ और रोगका नाश होता है ॥ ७४ ॥

वीणाद्यादर्शशुभ्रश्वेतवसनातपवारणम्। गुर्वङ्गनादि भोगो यः सोऽर्थदो गदनाशनः ॥ ७५ ॥

वीणा आदि वादित्र, दर्पण, श्वेतवस्त्र, छत्र, स्थूल स्त्रीके साथ प्रसंग यह जो स्वप्नमें देखे तो धनकी प्राप्ति और रोगका नाश होता है ॥ ७५ ॥

विषस्यापक्वमांसस्य गवादीनां विशेषतः। भक्षणं विड्विलेपश्च रोदनं मरणं निजम् ॥ दृष्ट्वा जागरणं कुर्य्यादर्थलाभाय रोगनुत् ॥ ७६ ॥

जो स्वप्नमें विषको भक्षण करे अथवा अपक्व मांसको भक्षण करे या गोमांसको भक्षण करे अपने शरीरपर विष्ठाका लेप करे अथवा अपनेको रोता हुआ या मरा हुआ देखे तो जागते ही धनकी प्राप्ति और रोगका नाश होता है ॥ ७६ ॥

नदीनदसमुद्रांश्च क्षुभितान् कलुषोदकान्। तरेत् कल्याणलाभाय व्याधेरपगमाय च ॥ ७७ ॥

जो स्वप्नमें नदी, नद और क्षोभित समुद्र तथा कलुषित जल इनमें तैरे तो कल्याणका लाभ और रोगका नाश होता है ॥ ७७ ॥

वृषाश्वगजसौधाग्रनौशैलद्रिवनस्पतीन्। आरोहेद्द्रव्यलाभाय व्याधेरपगमाय च ॥ ७८ ॥

जो मनुष्य स्वप्नमें बैल, घोड़ा, हाथी और मंदिरका अग्रभाग, नौका, पर्वत और हरेवृक्षके ऊपर चढता है उसको द्रव्यकी प्राप्ति होती है और उसके रोगका नाश होता है ॥ ७८ ॥

इत्यादिकाञ्छुभान् स्वप्नान् दृष्ट्वा फलसमृद्धये। स्तुत्वा देवान् द्विजातिभ्यो दद्यात्स्वर्णं च भोजनम् ॥ ७९ ॥

इत्यादि शुभस्वप्नोंको देखकर फलकी समृद्धिके लिये देवताओंकी स्तुति करके ब्राह्मणोंको सुवर्ण और भोजन देवे ॥ ७९ ॥

भूयो दृष्टश्रुतध्याताऽनुभूतेष्टैकगोचराः। स्वप्नो निरर्थकाजीर्णोच्छिष्टभावादिसम्भवः ॥ ८० ॥

बारंबार देखे और सुने हुए, ध्यान किए हुए, अनुभव किए हुए, कल्पित, इच्छित, जाने हुए, अजीर्ण अवस्थामें देखे हुए और उच्छिष्टादि कारणोंसे उत्पन्न हुए ऐसे स्वप्न प्रायः निष्फल होते हैं ॥ ८० ॥

अथ कालज्ञान।

अकस्माच्छीलविकृतिरकस्माद्वपुरुत्तमम्। अकस्मादिन्द्रियोत्पत्तिः सन्निपाताग्रलक्षणम् ॥ ८१ ॥

जिसका अकस्मात् स्वभाव विकृत् अर्थात बदल जाय और अकस्मात् शरीर उत्तम होजाय और अकस्मात् इन्द्रियोंकी उत्पत्ति हो तो ये सन्निपातके पूर्व लक्षण हैं ॥ ८१ ॥

शरीरशीलयोर्यस्य प्रकृतेर्विकृतिर्भवेत्। तदरिष्टं समासेन व्यासतश्च निबोध मे ॥ ८२ ॥

जिस मनुष्यका शरीर और शील तथा प्रकृति यह विपरीतभावको प्राप्त होजायँ उसको अरिष्ट कहते हैं। अर्थात् शरीर पुष्टसे कृश होजाय और कृशसे पुष्ट हो जाय तथा श्यामसे गौरवर्ण होजाय और गौरवर्णसे श्यामवर्ण होजाय तथा जो धर्म्मात्मासे पापी हो जाय और पापीसे धर्म्मात्मा होजायं और कफ प्रकृतिसे पित्त प्रकृति होजाय और पित्तप्रकृतिसे कफप्रकृति होजाय यह संक्षेपसे अरिष्टके लक्षण कहे। अब आगे विस्तारपूर्वक कहते हैं ॥ ८२ ॥

व्यञ्जनानि सुतो विद्या बुद्धिर्मेदो धनं यशः। स्वल्पे वयसि यस्यैतन्न स जीवेच्चिरन्नरः ॥ ८३ ॥

जिसके व्यञ्जन (परिगृह), पुत्र, विद्या, बुद्धि, मेदा, धन और यश ये सब थोडी ही अवस्थामें प्राप्त होजाँय वह मनुष्य शीघ्र ही मृत्युको प्राप्त होजाता है ॥ ८३ ॥

भक्तिः शीलं स्मृतिस्त्यागो मेधाबलमनुत्तमम्। भजन्ति वा निवर्त्तन्ते षड्भिर्म्मासैर्मरिष्यति ॥ ८४ ॥

जिसके भक्ति, शील, स्मरणशक्ति, त्याग, मेधा और बल ये अकस्मात् अपूर्व रीतिसे एक साथ प्राप्त होजाँय अथवा एक साथ नष्ट होजाँय तो वह मनुष्य छः महीनेमें मृत्युको प्राप्त होजाता है ॥ ८४ ॥

शृणोति विविधान् शब्दान् यो दिव्यानसतो बहून्। समुद्रपुरमेघाना-

मसम्पत्तौ च निःस्वनाः ॥ ८५॥ तान् स्वरान्नावगृह्णीते गृह्णीते चान्यशब्दवत् । ग्राम्यारण्यस्वनांश्चापि विपरीतान् शृणोति च ॥ ८६ ॥

जो मनुष्य अनेकप्रकारके दिव्य शब्दोंको या बहुतसे अशुभ शब्दोंको सुने तथा समुद्र,नगर और मेघ इनके अभावमें इनके शब्दोंको सुने अथवा इनके शब्द होने परभी नहीं सुने अथवा विपरीतभावसे श्रवण करे । या ग्राम्यके शब्दोंको वनके शब्दोंके समान और वनके शब्दोंको ग्राम्य शब्दोंके समान श्रवण करे तो उसको गतायु जानना ॥ ८५ ॥ ८६ ॥

द्विषच्छब्देषु रमते सुहृच्छब्देषु कुप्यति । यश्चाकस्मान्न शृणुते स गतायुरिति स्मृतः ॥ ८७ ॥

जो द्वेषीके शब्दोंको सुनकर प्रसन्न होता है और मित्रोंके प्रियशब्द सुनकर कुपित होता है और जो अकस्मात् नहीं सुनने लगता है उसको गतायु जानना ॥ ८७ ॥

यस्तूष्णसमये शीतमुष्णं जानाति शीतके । सञ्जातशीतपिटको यश्च दाहे न पीड्यते ॥ दाहार्त्तो यश्च रोमाञ्ची पञ्चत्वं तस्य निश्चितम् ॥८८॥

जो गर्मीके समय शीतको और शीतके समय गर्मीको जाने और जिसके शरीरमें शीतकी पीडिका उत्पन्न हो और फिर वह दाहसे पीडित हो और जिसके दाह होनेपर रोमांच हो आवे उसकी शीघ्रही मृत्यु जानना ॥ ८८ ॥

उष्णगात्रोऽतिमात्रश्च यश्च शीतेन वेपते। प्रहारं नाभिजानाति स याति यममन्दिरम् ॥ ८९ ॥

जो अत्यन्त गरम शरीर होनेपर भी अत्यन्त शीतकी बाधासे काँपे और जिसको अनेकप्रकारकी चोट लगनेपरभी बोध नहीं हो वह अवश्य यममंदिरको जाता है ॥ ८९ ॥

पांशुनेवावकीर्णानि यस्तु गात्राणि मन्यते । नानावर्णाश्च राज्यो वा यस्य गात्रे भवन्ति हि॥९०॥ स्नातोऽनुलिप्तं यं वापि सेवन्ते नीलमक्षिकाः । सुगन्धिर्वाति चाकस्मात्तं ब्रुवन्ति गतायुषम् ॥ ९१ ॥

जो अपने शरीरको विना ही धूलके धूलसे व्याप्त देखे अथवा जिसके शरीरपर अनेकप्रकारकी रोमराजी उत्पन्न होजाय और जिसके स्नान करनेपर भी देहपर नीले रंगकी मक्खी आनकर बैठे अथवा जिसके शरीरमें अकस्मात् सुगंध उत्पन्न होजाय उसको गतायु जानना ॥ ९० ॥ ९१ ॥

सुगन्धं वेत्ति दुर्गन्धं दुर्गन्धं सुरभिं तथा । विपरीते न गृह्णाति भावान्यश्चोपसेवितान् ॥ ९२ ॥

जो सुगन्धको दुर्गन्ध समझे और दुर्गंधको सुगंध समझे इस प्रकार विपरीत भाव हो तो उसको गतायु जानना ॥ ९२ ॥

क्रमोपयुक्ताश्च रसा यस्य दोषाभिवृद्धये । यस्य दोषाग्निसात्म्यश्च कुर्युर्मिथ्योपयोजिताः ॥ यो वा रसान्न संवेत्ति तं वदन्ति गतायुषम् ॥ ९३ ॥

जिसके क्रमपूर्वक प्रयोग किये हुए भी रस दोषोंको बढावें और जिसके मिथ्यारीतिसे सेवन किये हुए रस भी दोषोंको और अग्निको सात्म्यताको करें अथवा जो रसोंको नहीं जाने उसको गतायु जानना ॥९३॥

शृणोत्यापीडिते कर्णे न यो धुकधुकध्वनिम् । यो वा गन्धं न गृह्णाति शान्तदीपस्य मानवः ॥ ९४ ॥

जो कानके पीडित होनेपर "धुक २" शब्दको नहीं श्रवण करे अथवा जिस मनुष्यको बुझे हुए दीपककी गंध नहीं आवे उसको गतायु जानना ॥९४॥

दिवा ज्योतींषि यश्चापि ज्वलितानीव पश्यति । चन्द्रं सूर्यमिवाचष्टे सूर्यं वा चन्द्रवर्चसम् ॥ ९५ ॥ अमेघोपप्लवे चापि शक्रचापतडिद्गुणान् । तडिद्वन्तोऽसितान् वापि निर्मले गगने घनान् ॥ ९६ ॥ विमानयान-

प्रासादैर्यश्च संकुलमम्बरम् । यश्चानिलं मूर्त्तिमन्तमन्तरिक्षे च पश्यति ॥ ॥ ९७ ॥ उष्णशीतादिकान् भावान् कालावस्थादिशस्तथा । विपरीतेन गृह्णाति भावानन्यांश्च यो नरः ॥९८॥

जो दिनमें तारेआदिकोंको प्रज्वलित रूपसे देखे तथा सूर्य्यविम्बको चन्द्रबिम्बके समान और चन्द्रबिम्बको सूर्य्यबिम्बके समान देखे अथवा बिना ही मेघोंके(बादलोंके) इन्द्रधनुष और बिजली आदिको देखे और जो निर्मल आकाशमें बिजली युक्त काले मेघोंको देखे। शून्य आकाशको विमान, वाहन और अनेकप्रकारके मंदिर आदिसे व्याप्त देखे तथा जो वायुमें अनेकप्रकारकी मूर्तियोंको देखे अथवा आकाशमें अनेकप्रकारकी मूर्तियोंको देखे।जो मनुष्य उष्ण शीतादि भावोंको विपरीत जाने अर्थात् शीतको उष्ण और उष्णको शीत समझे तथा काल, अवस्था और दिशा इनको विपरीत जाने और अनेकप्रकारके अन्यान्यभावोंको उलटा जाने उसको गतायु जानना ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ ९८ ॥

धूमनीहारवासोऽभिरावृतामिव मेदिनीम् । प्रदीप्तामिव चाकाशं यो वाप्लुतमिवाम्भसि ॥ भूमिमष्टपदाकारां रेखाभिर्यश्च पश्यति ॥ ९९॥ अरुन्धतीं ध्रुवश्चैव विष्णोरपि पदत्रयम् । न पश्येत् स गतायुः स्याच्चतुर्थम्मातृमण्डलम् ॥ १०० ॥

जो मनुष्य धुँआ, तुषार (बर्फ) और वस्त्रोंसे आच्छादित पृथ्वीको देखे तथा जो आकाशको प्रज्वलित अथवा जलमें डूबता हुआ देखे। जो पृथ्वीको अष्टपदाकार रेखाओंसे व्याप्त देखे। जो मनुष्य अरुन्धती, ध्रुव, विष्णुके त्रिपद अर्थात् श्रवण नक्षत्रके तीन तारे और चतुर्थ मातृमण्डल अर्थात् कृत्तिकाके छः तारे इनको नहीं देखे उसको गतायु जानना ॥ ९९ ॥ १०० ॥

रसज्ञारुन्धती ज्ञेया घ्राणाग्रं च ध्रुवं विदुः । भ्रुवोर्मध्यं पदं विष्णोस्तारकामातृमण्डलम् ॥ १०१ ॥

यहां जिह्वाको अरुन्धती,नासिकाके अग्रभागको ध्रुव, भौंके बीचके स्थानको विष्णुपद और नेत्रोंके तारे को मातृमंडल कहते हैं। अर्थात् जिसको यह उपर्युक्त जिह्वा और नासिकाका अग्रभाग आदि नहीं दीखें उसको गतायु जानना ॥ १०१ ॥

ज्योत्स्नादर्शोष्णतोयेषु छायां यश्च न पश्यति । पश्यत्येकाङ्गहीनां वा विकृतां वान्यसत्त्वजाम् ॥ १०२ ॥

जो मनुष्य ज्योत्स्ना (चांदनी) दर्पण, धूप और जलमें अपनी छायाको नहीं देखे अथवा एक अंगहीन देखे किम्वा विकृत अंगवाली देखे वा किसी अन्य प्रकारसे देखे तो उसको गतायु जानना॥१०२॥

श्वकाककंकगृध्राणां प्रेतानां यक्षरक्षसाम् । पिशाचोरगनागानां भूतानां विकृतामपि ॥ १०३ ॥

अथवा कुत्ता,कौआ,कंक, गीध, प्रेत,यक्ष,राक्षस, पिशाच, उरग, सर्प और भूत इत्यादिको अथवा अन्य किसी भयंकर प्राणियोंकी आकृति देखे तो उसकोभी गतायु जानना॥ १०३ ॥

ह्रीश्रियौ नश्यतो यस्य बुद्धिर्मेधा स्मृतिस्तथा । अकस्माद्यं भजन्ते च सगतासुरसंशयम् ॥ १०४ ॥

जिसके लज्जा, कांति, बुद्धि, मेधा और स्मरणशक्ति ये सब अकस्मात् नष्ट हो जाँय उसको गतायु जानना ॥ १०४ ॥

यस्याधरोष्ठः पतितः क्षिप्तश्चोर्ध्वमन्तथोत्तरः । उभौ वा जाम्बवाभासौ दुर्लभं तस्य जीवितम् ॥ १०५ ॥

जिसका नीचेका होठ नीचेको लटकजाय और ऊपरका होठ ऊपरको चढजाय अथवा दोनों ओष्ठ जामुनकी समान नीलवर्ण होजाँय उसको गतायु जानना ॥ १०५ ॥

आरक्ता दशना यस्य श्यावा वाथ पतन्ति च । खञ्जनप्रतिमा वापि तं गतायुषमादिशेत् ॥ १०६ ॥

जिसके दांत-लाल या श्यामवर्ण (लाल काले मिश्रित) होजायँ किंवा टूट टूट कर गिरने लगैं अथवा खंजन पक्षीके समान होजांय उसको गतायु जानना ॥ १०६ ॥

अकस्माद्वदनं यस्य कुंकुमाभं प्रजायते । अङ्गकम्पो गतिभ्रंशो यदि वा स न जीवति॥ १०७ ॥

जिसका मुख अकस्मात् केशरके वर्णके समान होजाय तथा शरीर कांपने लगे और जो गमन करनेमें असमर्थ होजाय तो वह मनुष्य नहीं जीता है॥१०७

पीड्यते कुण्डली यस्य नाभिस्थाहारबन्धना । दह्यते यस्य चाहारः स वर्षेण मृतिं व्रजेत् ॥ १०८ ॥

जिसकी नाभिमें स्थित आहारकी बंधनरूप कुण्डली पीडित हो और भोजन करनेपर दाह उत्पन्न हो तो वह मनुष्य एक वर्षमें मरजाता है ॥ १०८ ॥

अकस्माद्यः कृशः स्थूलो भवेत् स्थूलोऽथवा कृशः । प्रकृतिं वा त्यजेच्छीघ्रमष्टमासान्न स जीवति ॥ १०९ ॥

जो मनुष्य अकस्मात् कृशसे स्थूल होजाय अथवा स्थूलसे कृश होजाय और जिसका शीघ्रही स्वभाव बदल जाय वह आठ महीनेमें अवश्य मृत्युको प्राप्त होता हैं ॥ १०९ ॥

कृष्णास्तब्धावलिप्ता च जिह्वा शूना च यस्य वै । कर्कशा वा भवेद्यस्य सोऽचिराद्विजहात्यसून् ॥ ११० ॥

जिसकी जिह्वा काली,लिसीसी, सूजन युक्त और कर्कश (खरखरी) होजाय वह शीघ्रही मृत्युको प्राप्त हो जाता है ॥ ११० ॥

कुटिला स्फुटिता वापि प्रसुप्ता यस्य नासिका । भग्ना विस्फुरिता वापि स परासुरसंशयम् ॥ १११ ॥

जिसकी नासिका टेढी, फटीसी, सुन्न, टूटीसी और स्फुरण करती हो अर्थात् उसमेंसे पवन संचार करती हो उसको गतायु जानना ॥ १११ ॥

केशाः सीमन्तिनो यस्य संक्षिप्ते विनते भ्रुवौ । लुनन्ति चाक्षिपक्ष्माणि स परासुरसंशयम् ॥ ११२ ॥

जिसके बालोंमें सीमन्त (मांग) पड़जाय अकस्मात् घूंघरवाले. होजाँय भौंहें सिकुड जाँय और पलकोंके बाल टूटकर गिरें उसको शीघ्रही गतायु जानना ॥ ११२ ॥

न धारयति यः शीर्षन्नाहरत्यन्नमास्यगम् । नखांगुलित्रयं चापि दन्ताः शुष्यन्ति यस्य च ॥ एकाग्रदृष्टिर्मूढात्मा स परासुरसंशयम् ॥ ११३ ॥

जोमनुष्य अपने शिरको धारण करनेमें असमर्थ होजाय अर्थात् जिसकी ग्रीवा शिरको धारण नहीं करसके और जो मुखमें दिये हुए ग्रासको नहीं निगल सके एवं जिसके नख और तीन अंगुलि तथा जिसके दाँत सूखने लगें और जो एक दृष्टिसे एकओर को देखता हो और जो मूर्ख अर्थात् जड़सा होजाय उसको गतायु जानना ॥ ११३ ॥

बलवान् दुर्बलो वापि संमोहं योऽधिगच्छति । उत्थाप्यमानो बहुशः स परासुरसंशयम् ॥ ११४ ॥

जो बारंबार उठानेपरभी मोहके वश होकर गिर गिर पड़े अर्थात् बेहोश होजाय तब वह दुर्बल हो अथवा बलवान् हो तो भी मृत्युको प्राप्त हो जाता है ॥ ११४ ॥

उत्तानः सर्वदा शेते पादौ विकुरुते च यः । विप्रसारणशीलो वा स परासुरसंशयम् ॥ ११५ ॥

जो मनुष्य अपने पांवको सदैव ऊपरको करके शयन करे अथवा बारम्बार टेढे तिरछे करे अथवा सिकोड़े ही रक्खे, कभी नहीं फैलावे तो वह अवश्य मृत्युको प्राप्त होता है ॥ ११५ ॥

शीतपादकरोच्छ्वासश्छिन्नोच्छ्वासश्च यो भवेत् । काकोच्छ्वासश्च यो मर्त्यः स परासुरसंशयम् ॥ ११६ ॥

जिसके पांव, हाथ और श्वास ये शीतल होजांय तथा जिसको रुकरुककर श्वास आवे अथवा जो कौवेके समान श्वास लेवे वह मनुष्य शीघ्रही मृत्युको प्राप्त होता है ॥ ११६ ॥

निद्रा न च्छिद्यते यस्य यो वा जागर्ति सर्वदा । मुह्येद्वा वक्तुकामश्च प्रत्याख्येयः स जानता ॥ ११७ ॥

जो मनुष्य निरंतर सोयाही करे अथवा जो सदैव जागाही करे और बोलनेकी इच्छा होनेपर बेहोश होजाय उसको वैद्य त्याग देवे ॥ ११७ ॥

खेभ्यः सरोमकूपेभ्यो यस्य रक्तं प्रवर्त्तते । पुरुषस्याविषार्त्तस्य स परासुरसंशयम् ॥ ११८ ॥

विषके नहीं सेवन करनेपरभी जिसके रोमकूपोंसे रुधिर निकले वह मनुष्य शीघ्रही प्राणोंको त्याग देते हैं ॥ ११८ ॥

अनन्योपद्रवकृतः शोथः पादसमुद्भवः । पुरुषं हन्ति नारीन्तु मुखजो गुह्यजो द्वयम् ॥ ११९ ॥

जो सूजन अपने कारणोंसे उत्पन्न हुई हो वह यदि प्रथम पाँवोंमें उत्पन्न हुई हो तो पुरुषको और मुखमें उत्पन्न हुई हो तो स्त्रीको और जो गुह्यस्थानमें उत्पन्न हुई हो तो स्त्री पुरुष दोनोंको मारदेती है ॥ ११९ ॥

अतीसारो ज्वरो हिक्का छर्दिः शूलोऽङ्गभेदनम् । कासिनः श्वासिनो वापि यस्य तं परिवर्जयेत् ॥ १२० ॥

जिस खाँसी और श्वासवाले रोगीके अतिसार, ज्वर, हिचकी, वमन, शूल और अंगमें तोडनेसरीखी पीडा हो तो उसको वैद्य त्याग देवे ॥ १२० ॥

स्वेदो दाहश्च बलवान् हिक्का श्वासस्तथैव च । बलवन्तमपि प्राणैर्वियुञ्जीत न संशयः ॥ १२१ ॥

अत्यंत स्वेद, दाह, हिक्का और श्वास ये अत्यन्त बढे हुए बलवान् रोगीके भी प्राणोंको नष्ट कर देते हैं ॥ १२१ ॥

श्यावा जिह्वा भवेद्यस्य सर्वश्चाक्षि निमज्जति । मुखं च जायते पूतिर्यस्य तं परिवर्जयेत् ॥ १२२ ॥

जिस मनुष्यकी जीभ काली पड़जाय, नेत्र भीतरको घुसजाँय और मुखमें दुर्गन्ध आने लगे ऐसे रोगीको वैद्य त्याग देवे ॥ १२२ ॥

वक्त्रमापूर्यतेऽश्रुभ्यः खिद्येते चरणौ तथा । चक्षुश्चाकुलतां याति यमराष्ट्रं गमिष्यति ॥ १२३ ॥

जिसरोगीका मुख आँसुओंसे परिपूर्ण होजाय, दोनों पाँव पसीनेसे भीज जाँय और नेत्र व्याकुल होजांय वह अवश्य यमराजके घरको जाता है १२३॥

अतिमात्रं लघूनि स्युर्गात्राणि गुरुकानि च । यस्याकस्मात् स विज्ञेयो गन्ता वै यमशासनम् ॥ १२४ ॥

जिस मनुष्यका बहुत भारीशरीर अकस्मात् हलका होजाय वह मनुष्य शीघ्र ही यममंदिरको जाता है ॥ १२४ ॥

पङ्कमत्स्यवसातैलघृतगन्धाश्च ये नराः । पूतिगन्धाश्च ये चाति गन्तारस्ते यमालयम् ॥ १२५ ॥

जिन मनुष्योंके शरीरमेंसे कीचड, मछली, चर्बी, तेल, घी की गन्ध और अनेकप्रकारकी दुर्गन्ध आवे तो वे शीघ्र ही यमपुरको जाते हैं ॥ १२५ ॥

ज्वरातिसारशोथाः स्युर्यस्यान्योन्यावसादिनः । प्रक्षीणबलमांसस्य स न शक्यश्चिकित्सितुम् ॥ १२६ ॥

जिस मनुष्यके ज्वर, अतिसार और शोथ ये अन्यान्य उपद्रवयुक्त हों तथा जिसका बल और मांस क्षीण होगया हो उसकी चिकित्सा कदापि नहीं करनी चाहिये ॥ १२६ ॥

यूका ललाटमायान्ति बलिं नाश्नन्ति वायसाः । येषां चापि रतिर्नास्ति गतास्ते यममन्दिरम् ॥ १२७ ॥

जिनके मस्तकपर वारंवार जुएँ चलें और जिनकी दीहुई बलिको कौवे न खाँय और जिनको कहीं भी चैन न पडे वे अवश्य यममंदिरको जाते हैं ॥१२७॥

क्षीणस्य यस्य क्षुत्तृष्णे हृद्यैर्मिष्टैर्हितैस्तथा । अन्नपानैर्न शाम्येते तस्य मृत्युरुपस्थितः ॥ १२८ ॥

जिस क्षीणमनुष्यकी क्षुधा और तृषा हृदयको हितकारी, मधुर और हितकारक अन्नपानोंसे शांत न हो उसकी शीघ्रही मृत्यु जाननी ॥ १२८ ॥

प्रवाहिका शिरःशूलं कोष्ठशूलश्च दारुणम् । पिपासा बलहानिश्च तस्य मृत्युरुपस्थितः ॥ १२९ ॥

जिसके एक साथ प्रवाहिका, शिरःशूल, कोढ, शूल, प्यास और बलका नाश ये सब हों उसकी शीघ्रही मृत्यु जाननी ॥ १२९ ॥

निवर्त्तते महाव्याधिः सहसा यस्य देहिनः । उत्पद्यते च वा यस्य सहसा स विनश्यति ॥ १३० ॥

जिसके महाभयंकर रोग शीघ्रही एकदम नष्ट होजाँय अथवा एक साथ उत्पन्न हो होजाँय वह शीघ्रही मृत्युको प्राप्त होता है ॥ १३० ॥

न चाहारबलं यस्य दृश्यते स विनश्यति । नासाभङ्गो भवेद्यस्य सप्तरात्रं स जीवति ॥ १३१ ॥

जिस मनुष्यके किये हुए भोजनका कुछभी बल मालूम नहीं होता वह शीघ्रही मृत्युको प्राप्त होताहै। जिस मनुष्यकी नासिका बैठजाय वह सातदिनमें मरजाता है ॥ १३१ ॥

चिकित्स्यमानः सम्यक् च विकारो योऽभिवर्द्धते । प्रक्षीणबलमांसस्य लक्षणन्तद्गतायुषः ॥ १३२ ॥

जिसका बल और मांस क्षीण हो गया हो ऐसे मनुष्यकी अच्छे प्रकार चिकित्सा करने परभी रोगकी वृद्धि हो तो उसको गतायु जानना ॥ १३२॥

यस्याण्डे निर्गते मेढ्रमुत्क्षिप्तमथवान्यथा। अचिरान्म्लानमम्लानं माल्यं मूर्ध्नि चिरादपि॥१३३॥भामण्डलं न पश्येद्यो मार्जिते नयने नरः। विकृतं वाथ सम्पश्येत्स गतायुरिति ध्रुवम्॥१३४॥

जिसके अंडकोश नीचेको अलग लटकजाँय और लिंग ऊपरको सिकुडजाय तो वह शीघ्रही मृत्युको प्राप्त होता है। जिसके शिरपर विकसित पुष्पोंकी धारण की हुई माला शीघ्रही मुरझा जाय,जो प्रक्षालित नेत्रोंसे प्रभामंडलको नहीं देखे अथवा विकृत रूपसे देखे उसको गतायु जानना ॥ १३३ ॥१३४॥

भ्रुवौ केशाः ससीमन्ताः सावर्त्ता अपि मृत्यवे । कपोतो वायसो गृध्रः काकोल्यौ यस्य मूर्द्धनि ॥ क्रव्यादो वापि लीयेते षण्मासायुः स उच्यते ॥ १३५ ॥

जिसकी भौं और केशोंकी चोटीसी बँधजाय अथवा वेष्टित होजाय उसको मृत्युके मुखमें प्राप्त हुआ जानना । जिसके कबूतर, कौवा, गिद्ध, काक और उल्लू शिरपर बैठकर मांसको भक्षण करें उसकी छः महीनेमें मृत्यु जाननी ॥ १३५ ॥

व्याप्यते पांशुवर्षेण काकपक्षैश्च ताड्यते । स्वप्नेऽपि यो नरस्तस्य मृतिर्मासचतुष्टयात् ॥ १३६ ॥

जो मनुष्य स्वप्नमें अपने शरीरके ऊपर धूलीकी वर्षा देखे और कौवेके पंखोंसे ताडित देखे उसकी चार महीनेमें मृत्यु जाननी ॥ १३६ ॥

यस्याभिषिक्तमात्रस्य हृदि नीरं प्रशुष्यति । पिबतोऽपि जलं शोषः स्याद्दशाहं स जीवति ॥ १३७ ॥

जिसके स्नान करतेही प्रथम हृदय परका जल सूख जाय और जिसके जलपान करनेपरभी दाह (खुश्की) हो तो वह दशदिनतक जीता है॥१३७॥

स्थापयित्वा करं भूमौ निरुन्ध्यान्मध्यमांगुलिम् । प्रहरेण भवेन्मृत्युर्यद्युत्तिष्ठेदनामिका ॥ १३८ ॥

हाथको भूमिमें स्थापन करके उसमें मध्यमा अंगुलीको स्थापन करे इसप्रकार करनेसे यदि अनामिका अंगुलि हाथको स्पर्श न करे अर्थात् अलग उठी रहे तो उसकी एक प्रहरमें मृत्यु जाननी ॥ १३८ ॥

मध्याह्ने विमलेऽम्बरे दिनमणेर्बिंबं जले निर्मले पश्येत्पात्रगते यदा गतयुतः पूर्णन्तदा स्याच्छुभम् ॥ हीनं दाक्षिणपश्चिमोत्तरपुरोभागेषु मासैः क्रमात् षट्त्रिद्व्येकमितैर्दिनैश्च दशभिश्छिद्रं सधूमं दिनैः ॥ १३९ ॥

मध्याह्नके समय आकाशके निर्मल होनेपर स्वच्छ जल भरे हुए पात्रमें रोगी सूर्य्यमण्डलको देखे जो सूर्य्यमण्डल पूर्ण दीखे तो शुभ जानना । यदि

दक्षिणकी ओर हीन दीखे तो छः महीनेमें, पश्चिमकी ओर हीन देखे तो तीन महीनेमें, उत्तरकी ओर हीन देखे तो दो महीनेमें और पूर्वकी ओर हीन देखे तो एक महीनेमें मृत्यु जाननी। और वह यदि छिद्र और धूमयुक्त दीखे तो दश दिनमें मृत्यु जाननी ॥ १३९ ॥

हस्तयोः पादयोश्चापि कनिष्ठायाश्च सन्धयः। चत्वारो यस्य भिद्यन्ते तुल्यं मासात्स मृत्युभाक् ॥ १४० ॥

जिसके हाथ, पांव, कनिष्ठा अंगुलि और सन्धि ये चारों भिदी हुई रहें तो एक महीनेमें मृत्यु जाननी ॥ १४० ॥

कपोलमांसविच्छेदो मृत्युः स्यात्पञ्चरात्रतः। चक्षुर्नासिकयोर्मध्ये स्यन्दाभावेन पञ्चमे ॥ १४१ ॥

जिसके कपोलोंके मांसका विच्छेद हो उसकी पांच दिनमें मृत्यु जाननी। जिसके नेत्र और नासिकाके बीचके भागका क्षरण हो उसकी भी पांच दिनमें मृत्यु जाननी ॥ १४१ ॥

मृत्युः स्यादथ गात्राणां स्तब्धत्वादेकवासरे। ललाटस्य त्रिरेखाणां नाशान्मृत्युरहस्त्रये ॥ १४२ ॥

जिसका शरीर अकस्मात् स्तब्ध होजाय उसकी एक दिनमें मृत्यु जाननी। जिसके मस्तककी तीन रेखायें नष्ट होजाँय उसकी तीन दिनमें मृत्यु जाननी ॥ १४२ ॥

सप्ताहान्मृत्युरङ्गस्य शीतताऽर्द्धस्य चोष्णता। अकस्माद्वृषणं निम्नं पक्षान्मृत्युप्रदं भवेत् ॥ १४३ ॥

जिसका आधा अंग शीतल और आधा अंग गर्म हो उसकी सात दिनमें मृत्यु कहनी। जिसके अण्डकोष अकस्मात् नीचेको लटक जांय उसकी एक पक्षमें मृत्यु जाननी ॥ १४३ ॥

ग्रीवायाः स्कन्धयोर्नाड्योर्विच्छेदादपि पक्षतः। अकस्मात्कृष्णरेखा स्याज्जिह्वाया यदि मध्यतः॥ दृढो वा दन्तसंदंशस्तदा मृत्युस्त्रिरात्रतः॥१४४॥

जिसकी ग्रीवा और स्कंधोंकी नाडियोंका विच्छेद होजाय उसकी एक पक्षमें मृत्यु होती है। जिसकी जिह्वाके बीचमें अकस्मात् काली रेखा दिखाई दे अथवा दांतोंके काटनेसे दृढ होजाय उसकी तीन दिनमें मृत्यु जाननी ॥ १४४ ॥

रात्राविन्दुवधं पश्येद्दिवा नक्षत्रमण्डलम्। अमेघे विद्युतं पश्येत् स्फुरन्तीं दक्षिणाश्रिताम्। जले चेन्द्रधनुर्जीवेद्द्वित्रिमासान् स मानवः॥१४५॥

जो रात्रिमें चन्द्रमाको नष्ट होता हुआ देखे और दिनमें तारोंको देखे तथा विना मेघके दक्षिण दिशामें चमकती हुई बिजलीको देखे और जलमें इन्द्रधनुषको देखे वह मनुष्य दो महीनेमें अथवा तीन महीनेमें मृत्युको प्राप्त होता है ॥१४५॥

दिवा छायां न यः पश्येदुल्कायाः पतनं तथा। हंसकाकमयूराणां पश्येदेकत्र मेलनम् ॥ १४६ ॥ चन्द्रद्वन्द्वं द्विसूर्यं वा स्वशिरोज्वलनं तथा। गन्धर्वनगरं वापि वृक्षाग्रे शिखरे गिरौ ॥ १४७ ॥ पश्येत्तत्र पिशाचानां रूपमन्यच्च भीषणम्। प्रकम्पितो भृशं चैव मूर्च्छितो वा भवेन्मुहुः ॥ ॥ १४८ ॥ छर्दन्मूत्रं पुरीषं वा सुवर्णरजतप्रभम्। प्रत्यक्षं यदि वा स्वप्ने दशमासान्स जीवति ॥ १४९ ॥

जो दिनमें अपनी छायाको न देखे अथवा उल्कापात देखे, हंस, कौवे और मोरोंको एकत्र क्रीडा करते हुए देखे तथा दो चन्द्रमा और दो सूर्य्योंको देखे और अपने शिरको जलता हुआ देखे एवं गन्धर्वनगरको देखे और अपने आपको वृक्षके अग्रभाग पर अथवा पर्वतके शिखरपर चढता हुआ देखे और पिशाच या अन्यान्य भयंकर रूपोंको देखकर कांपे अथवा वारंवार मूर्च्छित होजाय तथा सुवर्ण और चांदीके समान वर्णवाले मूत्र या मलको वमन करता हुआ देखे। इन सब विषयोंको प्रत्यक्ष देखे अथवा स्वप्नमें देखे तो वह दश महीनेतक जीता है ॥ १४६-१४९ ॥

कंठौष्ठतालुरसना दन्ता यस्य पृथक् पृथक्। शुष्यत्यभीक्ष्णं षण्मासात्तस्य मृत्युं विनिर्दिशेत् ॥ १५० ॥

जिसके कण्ठ, ओष्ठ, तालु, जीभ और दाँत ये अलग अलग सूखें तो उसकी छः महीनेमें मृत्यु कहनी ॥ १५० ॥

सप्तर्षिचन्द्रनक्षत्रदिशां रात्रावदर्शनात् । कलंकरहितं चन्द्रं सूर्यं रश्मिविवर्जितम् ॥ १५१ ॥ अग्निं तेजोविहीनश्च सोमश्चाप्यपरश्मिकम् । रात्रौ सूर्यं दिवा चन्द्रं स्वनेत्रे ज्वलनं तथा ॥ १५२ ॥ नाभौ हिक्कां गुदे राजीं वर्णम्पद्मोपमं मुखे । गण्डेऽतिरिक्तापिडकां गात्रे वर्णविचित्रताम् ॥१५३॥ हृदये स्फुरणश्चाशु प्रकम्पमथ तालुनि । चन्द्रच्छिद्रं रविच्छिद्रं पश्येद्भूमौ तथाम्बरे ॥ आत्मनैव हि यः पश्येत्पश्येन्मृत्युं त्रिपक्षतः ॥१५४॥

जो सप्तर्षि, चन्द्रमा, नक्षत्र और दिशा इनको रात्रिमें नहीं देखता अथवा कलंकरहित चन्द्रमा और किरणरहित सूर्य्यको देखता है तथा तेज रहित अग्नि और कांति रहित चन्द्रमाको देखता है तथा रात्रिमें सूर्य्यको और दिनमें चन्द्रमाको तथा अपने नेत्रोंको जलता हुआ देखता है । और जिसकी नाभिमें हिक्का, गुदापर रोमराजि, मुखपर कमलके समान कांति, गण्डस्थल पर अतिशय पिडिका और शरीरका वर्ण विचित्र होजाय तथा जिसके हृदयमें अत्यन्त शीघ्रतासे स्फुरण और तालुमें कम्प हो, एवं अपने आपही पृथ्वीमें और आकाशमें चन्द्रमा और सूर्य्यको छिद्रयुक्त देखे तो उसकी तीन पक्षमें मृत्यु कहनी ॥ १५१ ॥ १५२॥ ॥ १५३ ॥ १५४ ॥

मूत्रशुक्रपुरीषाणि तुल्यकालं पतन्ति चेत् । वर्षान्मृत्युर्भवेत्तस्य भेषजादिक्रिया वृथा ॥ १५५ ॥ कर्णयोर्यदि नो शब्दस्तर्जनीभ्यां निरुद्धयोः । जायते प्राप्तकालस्य लक्षणं तत्समादिशेत् ॥ सर्वाङ्गशीतलत्वश्च दशाहान्मरणं वदेत् ॥ १५६ ॥

जिसके मूत्र, शुक्र और मल ये तीनों एकसाथ एक कालमें पतित हों उसकी एक वर्षमें मृत्यु जाननी । उसकी औषधादि क्रिया करनी व्यर्थ है । यदि तर्जनी अंगुलियोंसे दोनों कानोंके बन्द करनेपर जिसको शब्द प्रतीत नहीं हो तो उसकी मृत्युका समय आया हुआ जानना और जिसका सम्पूर्ण शरीर शीतल हो उसकी दशदिनमें मृत्यु कहनी चाहिये ॥ १५५ ॥ १५६ ॥

कर्दमे पांशुदेशे वा पुरतः पृष्ठतोऽपि वा । खण्डपादोदये नूनं मृत्युर्मासचतुष्टयात् ॥ १५७ ॥

जिसका आगेसे अथवा पीछेसे धूलमें अथवा कीचड़में पड़ेहुए पाँवका प्रतिबिम्ब साफ नहीं दीखे उसकी चार महीनेमें मृत्यु जाननी ॥ १५७ ॥

श्रुतिबाधिर्य्यतो मृत्युश्चतुर्मासान्तरे भवेत् । स्वस्थेन्द्रियस्य पततो मृत्युर्मासत्रयाद्भवेत् ॥ १५८ ॥ भ्रूमध्ये ज्योतिषो दृष्टौ द्विमासाद्यमदर्शनम् । एकमासात्तथा मृत्युर्घर्षणे गोलकक्षयात् ॥ १५९ ॥ जिह्वाया अपवृत्तौ च दशाहान्मृत्युसंगमः । दक्षिणाशां गतां छायामात्मनो यदि पश्यति ॥ अद्यैव मृत्युरस्माकमिति पश्येदनित्यताम् ॥ १६० ॥

जो कानोंके निर्दोष होनेपर भी बहरा सुने उसकी चार महीनेमें मृत्यु जाननी, स्वस्थ होनेपर भी जिसकी इन्द्रियें पतितहों उसकी तीन महीनेमें मृत्यु जाननी । जो दोनों भौंके बीचमें जोतिको देखे उसकी, दो महीनेमें मृत्यु जाननी, जिसके दोनों नेत्रोंके गोलकोंका क्षय होगया हो या बारम्बार घर्षण हो, उसकी एक महीनेमें मृत्यु जाननी । जिह्वाकी अपवृत्ति हो तो दश दिनमें मृत्यु जाननी । जो मनुष्य अपनी छायाको दक्षिण दिशामें स्थित हुई देखे तो उसकी संसारको अनित्य समझकर मृत्यु कहनी ॥ १५८ ॥ ॥ १५९ ॥ १६० ॥

स्वस्थस्य स्थूलजिह्वा चेन्निःस्पर्शा रसवर्जिता । यावत्पञ्चदिनं मृत्युः पञ्चाशद्दिवसेऽथ वा ॥ १६१ ॥

जिस स्वस्थ मनुष्यकी जिह्वा अकस्मात् स्थूल स्पर्शरहित और रसरहित होजाय उसकी पांच दिनमें अथवा पचास दिनमें मृत्यु कहनी ॥ १६१ ॥

अम्लादित्वञ्च रसतो नीलादित्वञ्च वर्णतः । विकारे शुक्रमूत्राणां षण्मासाद्यमदर्शनम् ॥ १६२ ॥

जो आम्लादिक रसोंको और नीलादिक वर्णोंको अन्यप्रकारसे जाने तथा जिसके वीर्य और मूत्रमें विकार हो उसकी छः महीनेमें मृत्यु कहनी ॥ १६२ ॥

युगत्रिपञ्चधारं वा वर्त्यावर्तिसुगंधि वा । मूत्रं यस्य भवेत्तस्य मृत्युः षण्मासमध्यतः ॥ १६३ ॥

जिसके मूत्रकी एक साथ दो धारें, तीन धारें, अथवा पाँच धारें सुगन्धयुक्त, क्रमसे अथवा क्रमरहित निकलती हों तो उसकी छः महीनेमें मृत्यु कहनी ॥ १६३ ॥

स्थिरत्वेऽपि स्वदेहस्य तच्छाया चञ्चला यदि । चतुर्मासाद्भवेन्मृत्युरित्यागमविदो विदुः ॥ १६४ ॥

जिसके शरीरके स्थिर होनेपर भी उसकी छाया चंचल हो तो उसकी चार महीनेमें मृत्यु जाननी ॥ १६४ ॥

ज्वरो यस्य तु पूर्वाह्णे शुष्ककासश्च दारुणः । बलमांसविहीनस्य दुर्लभं तस्य जीवितम् ॥ १६५ ॥ ज्वरो यस्यापराह्णे तु श्लेष्मकासश्च दारुणः । प्रक्षीणबलमांसस्य दुर्लभं तस्य जीवितम् ॥ १६६ ॥

यदि बल और मांसहीन मनुष्यके पूर्वाह्णके समय ज्वर तथा दारुण शुष्क खाँसी हो तो उसका जीवन दुर्लभ जानना तथा जिस क्षीणबल और क्षीण मांसवाले मनुष्यके अपराह्णके समय ज्वर और दारुण कफकी खाँसी हो तो उसका जीवन भी दुर्लभ जानना ॥ १६५ ॥ १६६ ॥

प्रेतैः सह पिबेन्मद्यं स्वप्ने यः कृष्यते शुना। स घोरं ज्वरमासाद्य सद्यः प्राणैर्विमुच्यते ॥ १६७ ॥

जो मनुष्य स्वप्नमें प्रेतोंके साथ मद्यपान करता है और जिसको कुत्ते खींचते हैं वह घोर ज्वरको प्राप्त होकर तत्काल प्राणोंको त्याग देता है॥१६७॥

सहसा ज्वरसन्तापस्तृष्णामूर्च्छा बलक्षयः । विश्लेषणं च सन्धीनां मुमूर्षोरुपजायते ॥ १६८ ॥

जिसके अकस्मात् एक साथ ज्वर, सन्ताप, तृषा, मूर्च्छा, बलका नाश और सन्धियोंका टूटना ये सब लक्षण हों उसको मृत्युके मुखमें पतित हुआ जानना ॥ १६८ ॥

गोसर्गे वदनाद्यस्य स्वेदः प्रच्यवते भृशम् । लेपज्वरोपसृष्टस्य दुर्लभं तस्य जीवितम् ॥ १६९ ॥ देवद्विजसुहृद्वैद्यगुरुभ्यो द्वेष्टि यस्य वा । मज्जन्त्यप्सु शकृच्छ्लेष्मरेतांसि स न जीवति ॥१७०॥

जिस कफज्वरवाले मनुष्यके प्रातःकाल मुखसे अत्यन्त पसीना गिरे, उसका जीवन दुर्लभ जानना। तथा जो देवता, ब्राह्मण, इष्ट, मित्र, वैद्य और गुरुजनोंसे विनाकारण द्वेष करने लगता है तथा जिसका मल, कफ और वीर्य जलमें डालनेसे डूब जाते हैं उसको गतायु जानना ॥ १६९ ॥ १७० ॥

इत्यादि लक्षणैर्ज्ञात्वा मरणं समुपस्थितम् । लोकद्वयसुखप्राप्त्यै धर्म्ममेव समाचरेत् ॥ १७१ ॥

इसप्रकार उपर्युक्त लक्षणोंसे मरणको उपस्थित जानकर दोनों लोकोंमें सुखकी प्राप्तिके लिये यत्नपूर्वक धर्मको करे ॥ १७१ ॥

सौम्याकारेन्द्रियः श्रोता द्रष्टा वक्ता च विन्दति । सम्यक् स्पर्शं रसं गन्धं रोगी रोगात्प्रमुच्यते ॥ १७२ ॥

जिसका शरीर और इन्द्रियें सौम्य हैं तथा जो अच्छेप्रकारसे सुनता है, देखता है, कहता है एवं स्पर्श, रस और गन्धको जानता है वह रोगी रोगसे छूट जाता है ॥ १७२ ॥

स्वल्पो ज्वरो भवेद्यस्य जिह्वा भवति कोमला । उष्णौ पादौ तथा पाणी स रोगी सुखमाप्नुयात् ॥ १७३ ॥

जिसको ज्वर अल्प हो, जिसकी जिह्वा कोमल हो पांव और हाथ गरम हों वह रोगी सुखको प्राप्त होता है ॥ १७३ ॥

ज्वरः स्वेदविहीनः स्यात् कण्ठः कफविवर्जितः । नासामार्गगतिः प्राणो यस्य रोगी स जीवति ॥ १७४ ॥

जो ज्वररोगी स्वेदहीन हो, जिसका कंठ कफसे रहित हो और जिसकी नासिकाके द्वारा पवन अच्छे-प्रकारसे संचार करती हो वह रोगी रोगसे मुक्त हो जाता है ॥ १७४ ॥

भवेन्निद्रा सुखं यस्य स्मृतिभ्रंशो न जायते । नाकारवर्णहानिः स्यात् स रोगी जीवति ध्रुवम् ॥ १७५ ॥

जिसको सुखपूर्वक निद्रा आवे और जिसकी स्मरणशक्ति न्यून नहीं हुई हो तथा जिसकी चेष्टा और वर्ण नहीं बिगडा हो वह रोगी अवश्य आरोग्य होजाता है ॥ १७५ ॥

यस्यादरो भवेद्वैद्ये प्रीतिर्भैषज्यकर्म्मणि । पथ्ये रुचिः स्पृहा धर्मे स रोगी जीवति ध्रुवम ॥ १७६ ॥ इत्यादिलक्षणैर्वैद्यः साध्यं विज्ञाय रोगिणम् । आयुर्वेदोक्तमार्गेण चिकित्सां सम्यगाचरेत ॥ १७७ ॥

जिसके यहां वैद्यका अच्छे प्रकारसे सत्कार होता है और जो औषधिमें प्रीति करता है तथा पथ्यमें रुचि और धर्म्ममें इच्छा रखता है वह रोगी निश्चय आरोग्य होजाता है । इसकारण इत्यादि लक्षणोंसे वैद्य रोगीको साध्य समझकर आयुर्वेदोक्तरीतिके द्वारा अच्छे प्रकारसे चिकित्सा करे ॥ १७६ ॥ १७७ ॥

अथ नेत्रपरीक्षा ।

रौद्रे रूक्षे च धूम्राभे नयने स्तब्धचञ्चले । तथाभ्यन्तरकृष्णाभे भवतो वातरोगिणः ॥ १७८ ॥ पित्तरोगे तु पीताभे नीले वा रक्तवर्णके । सन्तप्ते भवतो दीपं सहेते नावलोकितुम् ॥ १७९

वातरोगीके नेत्र भयंकर, रूखे, धुंएके समान कांतिवाले, जडसे अथवा बन्धेसे, चंचल और भीतरसे काले रंगके होते हैं । पित्तरोगमें नेत्र पीलेरंगके, नीलरंगके अथवा लाल रंगके और सन्तप्त होते हैं तथा दीपक आदि प्रदीप्तपदार्थोंके देखनेको असमर्थ होते हैं ॥ १७८ ॥ १७९ ॥

ज्योतिर्हीने च शुक्लाभे जलपूर्णे सगौरवे । मन्दावलोकने नेत्रे भवतः कफकोपतः ॥ १८० ॥

कफके रोगमें नेत्र ज्योतिहीन, सफेदरंगके जलसे भरे हुए, भारी और मन्द अवलोकन करनेवाले होते हैं ॥ १८० ॥

तन्द्रामोहाकुले श्यामे निर्भुग्ने रूक्षरौद्रके । रक्तवर्णे च भवतो नेत्रे दोषत्रयोदये ॥ १८१ ॥

त्रिदोषके प्रकोपमें नेत्र तन्द्रा और मोहसे आकुलित, श्यामवर्ण, टेढ़े, रूखे, भयानक और लालरंगके होते हैं ॥ १८१ ॥

दोषत्रये भवेच्चिह्नं नेत्रयोस्तु त्रिदोषजम् । दोषद्वयप्रकोपे तु भवेद्दोषद्वयोद्भवम् ॥ १८२ ॥

त्रिदोषजनेत्रोंमें प्रायः तीनों दोषोंके लक्षण होते हैं। दो दोषोंके कोपमें दो दोषोंके लक्षण होते हैं॥१८२॥

एकदृष्टिर्यदा नेत्रे स्वाधीने न च रोगिणः । उन्मीलिते च भवतः क्षणादेव निमीलिते ॥ १८३॥ सततोन्मीलिते नेत्रे यद्वा नित्यं निमीलिते । विलुप्तकृष्णतारे च भ्रमद्धूम्रोग्रतारके ॥ १८४॥ बहुवर्णे च भवतो विकृतानेकचेष्टिते । नेत्रे मृत्युं कथयतो रोगिणो नात्र संशयः ॥ १८५ ॥

जब रोगीके नेत्र स्वाधीन न हों और वह रोगी एक दृष्टिसे एकटकी लगाकर देखता रहे। अथवा क्षणभरमें खोल ले और क्षणभरमें बन्द करले या सदैव नेत्रोंको खुला रक्खे अथवा सदैव बन्द रक्खे, जिसके काले रंगका तारा लुप्त होजाय और धुंयेकेसे रंगका बडा तारा घूमने लगे तथा नेत्र अनेक प्रकारके रंगवाले विकृत और अनेक चेष्टावाले हों तो उस रोगीकी निःसन्देह मृत्यु कहना ॥ १८३-१८५ ॥

आरोग्यदृष्टिके लक्षण

सौम्यदृष्टी प्रसन्नाभे प्रकृतिस्थे मनोरमे। नेत्रे कथयतः शीघ्रं रोगशान्तिं च रोगिणः॥ १८६॥

जिसकी दृष्टि सौम्य हो, नेत्र प्रसन्न हों और यथा प्रकृतिमें स्थित हो और देखनेमें सुन्दर हो तो उस रोगीके रोगकी शीघ्र ही शान्ति कहनी चाहिये॥ १८६॥

अथ मुखपरीक्षा।

वातकोपे मुखं रूक्षं स्तब्धं वक्रं गतप्रभम्। पित्तकोपे भवेद्रक्तं पीतं वा परितप्तकम्॥ १८७॥ कफकोपे गुरु स्निग्धं भवेच्छूनमिवाननम्। त्रिलिङ्गश्च त्रिदोषे स्याद्विलिङ्गश्च द्विदोषके॥ १८८॥

वातके प्रकोपमें मुख स्तब्ध (जड़सा), रूखा, टेढा और कांतिहीन होता है। पित्तके प्रकोपमें मुख लाल, पीला अथवा सन्तापित होता है और कफके कोपमें मुख भारी, चिकना और सूजासा होता है। त्रिदोषमें तीनों दोषोंके लक्षण होते हैं और दो दोषोंके प्रकोपमें दो दोषोंके लक्षण होते हैं॥१८७॥१८८॥

अथ जिह्वापरीक्षा।

वातकोपे प्रसुप्ता वा स्फुटिता मधुरा भवेत्। स्तब्धा वर्णेन हरिता जिह्वा लालां प्रमुञ्चति॥ १८९॥

वायुके प्रकोपमें जिह्वा सुप्त (सुन्न), फटीसी, मधुर स्तब्ध (जड), हरेरंगकी और लारको गिराती है१८९

पित्तकोपे तु रक्ताभा तिक्ता दग्धेव जायते। जिह्वा दाहान्विता विद्धा कण्टकैरिव सर्वतः॥ १९०॥

पित्तके प्रकोपमें जिह्वा लालरंगकी, कड़वी, जले हुएके समान, दाहयुक्त और चारों ओरसे काँटोंसे व्याप्त होती है॥ १९०॥

कफोदये भवेज्जिह्वा स्थूला गुर्वी विलेपनी। सुस्थूलकण्टकोपेता क्षारा बहुकफावहा॥ १९१॥ दोषद्वये द्विदोषोक्तलक्षणा रसना भवेत्। सर्वचिह्ना त्रिदोषे स्याद्विकृतानेकलक्षणा॥ १९२॥

कफके प्रकोपमें जिह्वा स्थूल, भारी, लिसीलसी, स्थूल, काँटोंसे व्याप्त, खारी और बहुत कफयुक्त होती है तथा दो दोषोंके प्रकोपमें जिह्वा दो दोषोंके लक्षणोंवाली और त्रिदोषके प्रकोपमें सम्पूर्ण लक्षणोंवाली तथा अनेक प्रकारके विह्वल लक्षणोंमें युक्त होती है॥ १९१॥ १९२॥

अथ मूत्रपरीक्षा।

रात्रेश्चतुर्थयामस्य घटिकानां चतुष्टये। उत्थाप्य रोगिणं वैद्यो मूत्रोत्सर्गन्तु कारयेत्॥ १९३॥ आद्यन्तधारां सन्त्यज्य मध्यमां काचभाजने। कारयेत्कांस्यपात्रे वा कुर्य्यात्पात्रं पटावृतम्॥ १९४॥ ततः सूर्योदये जाते प्रकाशे सति भाजने। स्थितं मूत्रं समालोक्य कुर्य्यात्तस्य परीक्षणम्॥ वाते तोयसमं मूत्रं रूक्षं बहुतरं भवेत्॥ १९५॥

रात्रिके चौथे प्रहरमें चार घडीके तडके वैद्य रोगीको उठाकर मूत्रका त्याग करावे। पहली और अन्तकी धाराको पृथ्वीपर गिराकर बीचकी धाराको कांचके पात्रमें अथवा कांसीके पात्रमें ग्रहण करावे और उसको अच्छे प्रकारसे ढककर रख देवे। फिर सूर्य्यके उदय होनेपर जब अच्छे प्रकारसे प्रकाश होजाय तब अथवा सूर्य्यकी धूपमें पात्रमें रक्खे हुए मूत्रको देखकर उसकी परीक्षा करे। वातके प्रकोपमें मूत्र जलके समान, रूक्षता और अधिक परिमाणमें होता है॥ १९३॥ १९४॥ १९५॥

रक्तवर्णम्भवेत्पित्ते पीतं वा स्वल्पमेव च। कफे श्वेतं घनं मूत्रं स्निग्धं सञ्जायते तथा। द्विदोषे द्वन्द्वचिह्नं स्यात् सर्वलिङ्गं त्रिदोषजे॥ १९६॥

पित्तके प्रकोपमें मूत्रका रंग लाल या पीला तथा थोडा मूत्र होता है। और कफके प्रकोपमें मूत्रका वर्ण सफेद, गाढा और चिकना होता है। दो दोषोंके प्रकोपमें दो दोषोंके लक्षणों वाला होता है और

त्रिदोषके प्रकोपमें मूत्रका वर्ण सम्पूर्ण दोषोंके लक्षणों युक्त होता है ॥ १९६ ॥

अब अन्यप्रकारसे मूत्रकी परीक्षा कहते हैं ।

सुलक्षितं गृहीतं यन्मूत्रं घर्मे निधाय तत् । तैलबिन्दुं क्षिपेत्तत्र निश्चले वैद्यसत्तमः ॥ १९७ ॥ जायन्ते बुद्बुदा यत्र विकारः सोऽस्ति पित्तलः । रूक्षश्च श्यामलच्छायं वाते मूत्रं प्रजायते ॥ १९८ ॥ तरीमुपरि बध्नाति तैलबिंदुस्तथात्र वै । मूत्रं श्लेष्मणि जायेत समं पल्वलवारिणा ॥ १९९॥ मूत्रेण सार्द्धम्मिलितस्तैलबिन्दुः प्रजायते । सिद्धार्थतैलसदृशं मूत्रं वै पित्तमारुते ॥ २०० ॥

मूत्रको उत्तमविधिसे ग्रहण करके धूपमें रखदेवे। फिर प्रवीण वैद्य उसके निश्चल होजाने पर उसमें तेलकी बूंदें डाले।जब मूत्रमें तेलकी बूंद डालनेसे मूत्र बुद्बुदाकार अर्थात् बबूलेके समान होजाय तो उसके पित्तका विकार जानना । वातके विकारमें तेलकी बूंदें डालने से मूत्र रूखा और कालासा हो जाता है ।और इसमें तेलकी बूंदे मूत्रके ऊपर तैरती रहती हैं । कफके विकारमें तेलकी बूंद डालनेसे मूत्र कींचके समान अथवा तालाबके जलके समान हो जाता है। इसमें तेलकी बूँदे मूत्रके साथ मिल जाती हैं । और वात पित्तके विकार में तेलकी बूँदें डालनेसे मूत्रका वर्ण सरसोंके तेलके समान होजाता है । ॥ १९७ ॥ १९८ ॥ १९९॥ २०० ॥

श्वेतधारा महाधारा पीतधारा तदा ज्वरः । रक्तधारा ज्वरे दीर्घे कृष्णा च मरणाय वै ॥ २०१ ॥

सफेद धारा,महाधारा और पीली धारा ज्वररोग में होती है । लालधारा महाज्वरमें होती है. और काली धारा रोगीकी मृत्युके लिये होती है ॥२०१॥

श्लेष्मवाते भवेन्मूत्रं काञ्जिकेन समन्तथा । पांडुरं श्लेष्मपित्ते च पीतश्चैव परीक्षयेत ॥ २०२ ॥

कफवातमें कांजीके समान मूत्रका वर्ण होता है और कफपित्तमें मूत्र पांडुरंगका और पीलेरंगका होता है ॥ २०२ ॥

सन्निपाते च यन्मूत्रं कृष्णं तल्लक्षयेद्बुधः । काञ्जिकेन समं मूत्रं मातुलुङ्गसमप्रभम्।पानीयेन समं मूत्रं विकाररहितं भवेत् ॥ २०३ ॥

सन्निपातमें मूत्रका वर्ण काला होता है कांजीके समान, विजौरे नींबूके समान और जलके समान मूत्र निर्दोष होता है ॥ २०३ ॥

रक्तवातेन रक्तं स्यात् कौसुम्भं रक्तपित्ततः ॥ २०४ ॥

रक्तवातमें मूत्रका रंग लाल होता है और रक्तपित्तरोगमें मूत्रका वर्ण कसूमके समान लाल होता है ॥ २०४ ॥

तैलतुल्यं भवेन्मूत्रं नित्यं सहजपित्ततः । कफप्रकृतितो मूत्रं तुल्यं पल्वलवारिणा ॥ २०५ ॥ वातप्रकृतितो मूत्रं नीराभं बहुलं भवेत् । अधो बहुलमारक्तं मूत्रमालोक्यते यदा ॥ वदन्ति तदतीसारलिङ्गं तल्लिङ्गवेदिनः ॥ २०६ ॥

स्वाभाविक पित्तमें मूत्रका वर्ण तेलके समानहोता है । कफप्रकृतिवालेका मूत्र कींचके जलके समान अथवा तालाबके जलके समान होता है । वातप्रकृति वाले मनुष्यका मूत्र जलके समान और अधिकतर होता है । जो मूत्र नीचेसे बहुतसा लाल दीखे उसको अतीसार जानना ॥ २०५॥ २०६ ॥

जलोदरसमुद्भूतं मूत्रं घृतकणोपमम् । आमवातवशान्मूत्रं तक्रतुल्यं प्रजायते ॥ २०७ ॥

जलोदररोगमें मूत्र घृतके कणोंके समान होता है। और आमवातमें तक्रके समान मूत्र होता है ॥२०७॥

मलेन पीतवर्णश्च बहुलश्च निगद्यते । पीतवर्णं यदा मूत्रं तैलतुल्यं सबुद्बुदम्। तदप्यसाध्यमादिष्टं सद्भिर्वैद्यकवेदिभिः ॥ २०८ ॥

मलकी अधिकतासे मूत्रका वर्ण नीला और मूत्र अधिकतर होता है। जिसका मूत्र पीलेरंगका हो और उसमें तेलके समान बबूले हों तो उस रोगीको वैद्यक शास्त्रके जाननेवालोंने असाध्य कहा है ॥ २०८ ॥

अजीर्णेन भवेन्मूत्रं श्वेतश्चापि तथारुणम् । अजामूत्रसमं मूत्रमजीर्णत्वाञ्च जायते ॥ २०९ ॥

अजीर्णमें मूत्रका वर्ण सफेद और लाल होता है तथा बकरीके मूत्रके समान भी होता है ॥ २०९ ॥

मूत्रन्तु कृष्णतां याति क्षयरोगे तथा किल । क्षयरोगे यदा श्वेतमसाध्यं तद्विनिर्दिशेत् ॥ २१० ॥

क्षयरोगमें मूत्रका रंग काला होता है और जो क्षय रोगमें मूत्रका रंग सफेद हो तो असाध्य जानना २१०

पीतमच्छञ्च जायेत मूत्रं पित्तोदये सति । समधातोः पुनः कूपजलतुल्यञ्च कथ्यते ॥ २११ ॥

पित्ताधिक्यमें मूत्रका वर्ण पीला और स्वच्छ होता है। और धातुओंके समान होनेपर मूत्र कुएँके जलके समान होता है ॥ २११ ॥

ऊर्ध्वन्नीलमधोरक्तं रुधिरेण प्रजायते ॥ २१२ ॥

रुधिरका प्रकोप होनेसे मूत्र ऊपरसे नीला और नीचेसे लाल होता है ॥ २१२ ॥

प्रवर्त्तते यदा मूत्रं स्निग्धं तैलसमप्रभम् । आहारादुदरन्तस्य वृद्धिं याति तदा किल ॥ २१३ ॥

जो मूत्र तेलके समान चिकना हो उसके आहारसे उदरकी वृद्धि जाननी ॥ २१३ ॥

ऊर्ध्वम्पीतमधोरक्तं मूत्रं चेद्रोगिणस्तदा । पित्तप्रकृतिसंभूतं सन्निपातं वदेद्भिषक् ॥ २१४ ॥

जो मूत्र ऊपरसे पीला और नीचेसे लाल हो तो उसरोगीके पित्तोल्बण सन्निपात कहना चाहिए२१४॥

यस्येक्षुरससंकाशं मूत्रं नेत्रे च पिञ्जरे । रसाधिक्यं विजानीयाल्लंघनं तस्य निर्दिशेत् ॥ २१५ ॥

जिसका मूत्र ईखके रसके समान और नेत्र पिंजर (लाल, पीतवर्ण) हों तो उसके रसाधिक्य जानना । उस रोगीको लंघन करावे ॥ २१५ ॥

रक्तं स्वच्छञ्च यन्मूत्रं तज्ज्वराधिक्यलक्षणम् । धूम्रवर्णं यदा मूत्रं ज्वराधिक्यं तदादिशेत् ॥ २१६ ॥

ज्वरकी अधिकतामें मूत्र लाल और निर्मल होता है । धूम्रवर्ण मूत्रभी ज्वरकी अधिकतामें होता है ॥ २१६ ॥

कृष्णमच्छञ्च जानीयात् सन्निपातज्वरोद्भवम् ॥ २१७ ॥

सन्निपातज्वरमें काला और स्वच्छ मूत्र होता है२१७

उपरिष्टात्पीतवर्णमधःकृष्णं सबुद्बुदम् । मूत्रं प्रसूतदोषेण संशयो नात्र कश्चन ॥ २१८ ॥

जो मूत्र ऊपरसे पीले रंगका और नीचेसे काले रंगका तथा बुद्बुदाकारका हो तो उसके प्रसूत दोष जानना ॥ २१८ ॥

आपीतफेनरक्ताद्यमसितेक्षुरसोपमम् । पित्ते कफेऽनिले मूत्रं निरामे च ज्वरे भवेत् ॥ २१९ ॥

पित्त, कफ, वात और निरामज्वरमें पीला, झागोंयुक्त, लाल, काला और ईखके रसके समान मूत्रका वर्ण क्रमसे होता है ॥ २१९ ॥

अब तेलकी बूँद मूत्रमें डालनेसे वह फैलकर जैसा जैसा रूप प्रकट करती है उसको कहते हैं ।

यदा प्रसारमाप्नोति तैलं क्षेमं तदादिशेत् । बिन्दुरूपं यदा तैलमसाध्यत्वाय रोगिणः ॥ २२० ॥

जो मूत्रमें तेलकी बूंद डालनेसे फैल जाय तो उसका रोग साध्य समझना और जो वह नहीं फैले अर्थात् बिन्दुके आकार ही रहे तो उसको असाध्य समझना ॥ २२० ॥

प्रसरेत्पूर्वदिग्भागे पश्चिमे वा तथोत्तरे। तैलबिन्दुस्तदा रोगविमुक्तिं रोगिणो दिशेत् ॥ २२१ ॥

जो मूत्रमें तेलकी बूंद डालनेसे पूर्वदिशाकी ओर अथवा पश्चिम या उत्तर दिशाकी ओर फैले तो रोगी रोगसे मुक्त हो जाता है ॥ २२१ ॥

दक्षिणस्यामथैशाने आग्नेये नैर्ऋते तथा । वायव्ये चापि दिग्भागे प्रसरन्मृत्युसूचकः ॥ २२२ ॥

जो वह तेलकी बूँद दक्षिणकी अथवा ईशानकोणकी ओर अथवा वायव्य दिशाकी ओर फैले तो उसको मृत्युसूचक जानना ॥ २२२ ॥

निमज्जति यदा मूत्रे भ्रमन्वा नैव सर्पति । तदारिष्टं विजानीयाद्रोगिणो नात्र संशयः ॥ २२३ ॥

जो तेलकी बूंद मूत्रमें डालनेसे डूबजाय अथवा घूमती रहे और फैले नहीं तो उस रोगीकी निश्चय मृत्यु जाननी ॥ २२३ ॥

तैलप्रसारणान्मूत्रे विकृताकारमूर्त्तयः । हलकूर्मखरोष्ट्राद्यैर्भवन्ति मृतिसूचकाः ॥ २२४ ॥

जो तेलकी बूंद मूत्रमें डालनेसे फैलकर अनेक प्रकारकी विकृत मूर्त्तियेंसी होजाँय अथवा उसमें हल, कछुआ, गधा और ऊँट आदिकीसी आकृति दीखे तो उस रोगीको असाध्य जानना ॥ २२४ ॥

यदि मूत्रगते तैले हंसच्छत्रादिकं भवेत् । रोगी रोगाविमुक्तः स्यात्तदायुश्चाप्नुयाच्चिरम् ॥ २२५ ॥

जो मूत्रमें तेल डालनेसे हंस और छत्रादिकासा आकार वाला होजाय तो रोगी रोगसे मुक्त होकर बहुत कालतक जीता रहता है ॥ २२५ ॥

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायां अरिष्टाधिकार समाप्त ॥ ९४ ॥

अथ दीपनपाचनद्रव्यलक्षणाधिकार ।



पचेन्नामं वह्निकृच्च दीपनं तद्यथा मिसिः पचत्यामन्न यत् कुर्यादनलं तद्धि पाचनम् ॥ नागकेसरवद्विद्याच्चित्रो दीपनपाचनः ॥ १ ॥

अब दीपन, पाचन आदि शब्दोंके लक्षण कहते हैं जो औषधि आमको नहीं पचावे, केवल अग्निको दीपन करे, उसको दीपन कहते हैं । जैसे-"सौंफ"। जो औषधि आमको पचावे अग्निको दीपन नहीं करे, उसको पाचन कहते हैं । जैसे-" नागकेशर "। जो औषधि अग्निको भी दीपन करे और आमको भी पचावे उसको दीपनपाचन कहते हैं । जैसे-"चीता" ॥ १ ॥

न शोधयति न द्वेष्टि समान्दोषांस्तथोद्धतान् । समीकरोति यज्ज्ञेयं शमनन्तद्यथाऽमृता ॥ २ ॥

जो औषधि समान वातादि दोषोंको बिगाडे नहीं और न शोधन करे, किन्तु विषमदोषोंके साथ मिलकर समान दशामें प्राप्त करे, उसको शमन औषधि कहते हैं । जैसे-"गिलोय" ॥ २ ॥

कृत्वा पाकम्मलानां यद्भित्वा बन्धमधो नयेत् । तच्चानुलोमनं ज्ञेयं तथा प्रोक्ता हरीतकी ॥ ३ ॥

जो वातादि दोषोंको पचाकर बँधे हुए मलको भेदन करके उसको गुदाद्वारसे बाहर निकाल देवे, उसको अनुलोमन कहते हैं । जैसे-"हरड" ॥ ३ ॥

पक्तव्यं यदपक्त्वैव श्लिष्टं कोष्ठे मलादिकम् । नयत्यधः स्रंसनन्तद्यथा स्यात् कृतमालकः ॥ ४ ॥

जो कोठेमें पाक होनेके योग्य मल और संयुक्त वातादि दोषोंको विना पचाये ही बलात्कार गुदाके द्वारा बाहर निकाले, उसको स्रंसन औषधि कहते हैं। जैसे-"अमलतास" ॥ ४ ॥

मलादिकमबद्धं यद्बद्धं वा पिण्डितं मलैः । भित्त्वाधः पातयेत्तद्धि भेदनं कटुकी यथा ॥ ५ ॥

जो वातादि दोषोंसे बँधेहुए अथवा विना बंधेहुए या पिण्डाकारहुए मलमूत्रादिको अलग अलग करके गुदासे बाहर निकाले, उसको भेदन कहते हैं । जैसे-"कुटकी" ॥ ५ ॥

विपक्वं यदपक्वं वा मलादि द्रवतान्नयेत्। रेचयत्यपि तज्ज्ञेयं रेचनं त्रिवृता यथा ॥ ६ ॥

जो पक्व अथवा अपक्व अन्नादिको और मलादि दोषोंको पतला करके गुदाद्वारसे बाहर निकाले, उसको रेचन कहते हैं। जैसे-"निसोत" ॥ ६ ॥

अपक्वपित्तश्लेष्माणं बलादूर्ध्वं नयेत्तु यत्। वमनं तद्धि विज्ञेयं मदनस्य फलं यथा ॥ ७ ॥

जो विनाही पके कफ पित्तको बलात्कारसे मुखके द्वारा बाहर निकाले, उसको वमनसंज्ञक कहते हैं। जैसे-"मैनफल" ॥ ७ ॥

स्थानाद्बहिर्नयेदूर्ध्वमधो वा मलसञ्चयम्। देहे संशोधनन्तत्स्याद्देवदालीफलं यथा ॥ ८ ॥

जो औषधि शरीरके यथास्थानमें संचित मलादिको ऊपरके भागमें लाकर मुखके द्वारा अथवा अधोभागमें लाकर गुदाके द्वारा बाहर निकाले, उसको संशोधन औषधि कहते हैं। जैसे-"देवदालीका फल" (घघरवेल या वंदाल डोडा) ॥ ८ ॥

श्लिष्टान् कफादिकान्दोषानुन्मूलयति यद्बलात्। छेदनन्तद्यथा क्षारो मरिचानि शिलाजतु ॥ ९ ॥

जो औषधि परस्पर मिले हुए कफादि दोषोंको अपनी शक्तिसे अलग २ कर देवे उसको छेदन औषधि कहते हैं। जैसे-" जवाखार, कालीमिरच, और शिलाजीत " ॥ ९ ॥

धातून्मलान्वा देहस्य विशोष्योल्लेखयेच्च यत्। लेखनन्तद्यथा क्षौद्रन्नीरमुष्णं वचा यवाः ॥ १० ॥

जो औषधि रसादि धातु और वातादि दोषोंको सुखाकर देहसे बाहर निकाल देवे, उसको लेखन औषधि कहते हैं। जैसे-" शहद, गरमजल, वच और जौ" ॥ १० ॥

दीपनं पाचनं यत्स्यादुष्णत्वाद्द्रवशोषकम्। ग्राही तच्च यथा शुण्ठी जीरकं गजपिप्पली ॥ ११ ॥

जो औषधि अग्निको दीपन करे और आमको पचावे तथा उष्णवीर्य्य होनेसे जलरूप कफादिदोष और धातुमलको शोषण करे, उसको ग्राही कहते हैं। जैसे-"सोंठ, जीरा और गजपीपल" ॥ ११ ॥

रौक्ष्याच्छैत्यात्कषायत्वाल्लघुपाकाच्च यद्भवेत्। स्तम्भकृत्स्तम्भनन्तत्स्याद्यथा टुण्टुकवत्सकौ ॥ १२ ॥

जो औषधि रूक्ष, शीत, कषाय और लघुपाकी होनेसे स्तम्भता उत्पन्न करे, उसको स्तम्भन औषधि कहते हैं। जैसे-" स्योनाक और कुड़ा" ॥ १२ ॥

रसायनञ्च तज्ज्ञेयं यज्जराव्याधिनाशनम्। यथाऽमृता रुदन्ती च गुग्गुलुश्च हरीतकी ॥ १३ ॥

जो औषधि जरा (वृद्धता) और व्याधि (रोग) को दूर करे, उसको रसायन कहते हैं। जैसे-" गिलोय, रुदन्ती, गूगल और हरड़ " ॥ १३ ॥

यस्माद्द्रव्याद्भवेत् स्त्रीषु हर्षो वाजीकरञ्च तत्। यथा नागबलाद्याः स्युर्बीजञ्च कपिकच्छुजम् ॥ १४ ॥

जिस औषधिसे शरीरमें धातु बढ़कर स्त्रियोंमें आनन्द उत्पन्न हो उसको वाजीकरण कहते हैं। जैसे-"गंगेरनके बीज और कौंछके बीज,, ॥१४॥

यस्माच्छुक्रस्य वृद्धिः स्याच्छुक्रलञ्च तदुच्यते। यथाश्वगन्धा मुशली शर्करा च शतावरी ॥ १५ ॥

जिस औषधिसे वीर्यकी वृद्धि हो, उसको शुक्र वर्धक कहते हैं। जैसे-"असगन्ध, मुसली, मिश्री और शतावर" ॥ १५ ॥

प्रवर्त्तकानि कथ्यन्ते जनकानि च रेतसः। दुग्धं माषाश्च भल्लातफलमज्जाऽऽमलानि च ॥ १६ ॥

जो औषधियाँ वीर्य्यको उत्पन्न करके प्रवर्त्तन करें अर्थात् कामको दीपन करें, उनको धातुचेतन जानना। जैसे-" दूध उड़द, भिलावेकी गिरी और आमले " ॥ १६ ॥

प्रवर्त्तनी स्त्री शुक्रस्य रेचनं बृहतीफलम् । जातीफलं स्तम्भनं स्यात् कालिन्दं क्षयकारि च ॥ १७ ॥

स्त्री वीर्य्यको प्रवर्त्तन करती है । बड़ी कटेरीका फल वीर्य्यको रेचन करता है । जायफल वीर्य्यको स्तम्भन करता है । और तरबूज वीर्य्यको नष्ट करता है ॥ १७ ॥

देहस्य सूक्ष्मच्छिद्रेषु विशेत्तत्सूक्ष्ममुच्यते । तद्यथा सैन्धवं क्षौद्रं निम्बस्तैलं रुवुद्भवम् ॥ १८ ॥

जो शरीरके सूक्ष्म रोमकूपोंके द्वारा शरीरमें प्रवेश करे उसको सूक्ष्म कहते हैं । जैसे-"सैंधानमक शहद, नीमका तेल, और अण्डीका तेल" ॥ १८ ॥

पूर्वं व्याप्याखिलं कायं ततः पाकञ्च गच्छति । व्यवायि तद्यथाभङ्गा फेनं चाहिसमुद्भवम् ॥ १९ ॥

जो औषधि सम्पूर्ण शरीरमें पचनेसे पहलेही व्याप्त होकर फिर पचती है, उसको व्यवायी कहते हैं । जैसे-"भांग, अफीम" ॥ १९ ॥

सन्धिबन्धांस्तु शिथिलान् यत्करोति विकाशि तत । विश्लिष्यौजश्च धातुभ्यो यथाक्रमुककोद्रवौ ॥ २० ॥

जो शरीरकी सन्धियोंके बंधनों और धातुओंके ओजको सुखाकर शिथिल करे, उसको विकाशी कहते हैं । जैसे-"सुपारी, कोदों" ॥ २० ॥

बुद्धिं लुम्पति यद्द्रव्यं मदकारी तदुच्यते । तमोगुणप्रधानञ्च यथा मद्यं सुरादिकम् ॥ २१ ॥

जो द्रव्य तमोगुणकी प्रधानतासे बुद्धिको लुप्त करे उसको मदकारी कहते हैं । जैसे-"मदिरा, सुरादि" ॥ २१ ॥

व्यवायि च विकाशि स्यात् सूक्ष्मच्छेदि मदावहम् । आग्नेयं जीवितहरं योगवाहि स्मृतं विषम् ॥ २२ ॥

जो पदार्थ व्यवायी, विकाशी, सूक्ष्म, छेदन, मादक आग्नेय और योगवाही हो उसको प्राणनाशक जानना जैसे-"विष" ॥ २२ ॥

निजवीर्येण यद्द्रव्यं स्रोतोभ्यो दोषसञ्चयम् । निरस्यति प्रमाथि स्यात्तद्यथा मारिचं वचा ॥ २३ ॥

जो द्रव्य अपनी शक्तिसे मुख और नासिकाके द्वारा कफादि दोषोंको बाहर निकाले उसको प्रमाथी कहते हैं । जैसे-" मिरच और वच" ॥ २३ ॥

पैच्छिल्याद्गौरवाद्द्रव्यं रुद्ध्वा रसवहाः शिराः । धत्ते यद्गौरवं तत्स्यादभिष्यन्दि यथा दधि ॥ २४ ॥

जो द्रव्य अपनी पिच्छिलता और गुरुतासे रसको बहानेवाली नाडियोंको रोककर शरीरमें भारीपन करता है, उसको अभिष्यन्दि कहते हैं । जैसे-" दही " ॥ २४ ॥

इति श्रीवंगसेने भाषाटीकायां दीपनपाचनादिलक्षणाधिकार समाप्त ॥ ९५ ॥

वङ्गसेनोत्पत्ति ।

श्रीकृष्णः पृथिवीं निजाङ्घ्रिकमलाऽरोगीकृतां हा यदा त्यक्त्वा धामनिजं गतस्तत इयं मह्यल्पकालान्तरे ॥ जाता रोगवती पुनर्भयकरी दृष्ट्वा तदा तामहं लब्ध्वैवाशुजनिं गदाधरगृहे चक्रे च नीरोगिकाम् ॥१॥ भूमावागमनञ्च मे सुभिषजो ज्ञास्यन्ति सर्वे कथमित्येवं सुविचार्य्य वै क्षितितले स्वीयामिमां संहिताम् ॥ लोकानां हितकाम्यया स्वयशसे सुस्थापयित्वा ततो वैद्यानां प्रभुताकरीञ्च गमनं याम्याश्रमं मे कृतम् ॥ २ ॥ अगस्तिसंहितेयं प्राक् ख्याता मज्जन्मतस्ततः । गदाधरगृहे जन्म लब्ध्वा मे संस्कृता पुनः ॥ ३ ॥ वङ्गसेन इति नाम्ना विख्यातस्तद-

न्तरम् । ग्रन्थोऽयं सर्वसिद्धान्तसारः शीघ्रफलप्रदः ॥ ४ ॥

इति श्रीमद्वैद्यगदाधरात्मजसद्वैद्यविद्याचार्य्यश्रीवङ्गसेनविरचितो वङ्गसेनाह्वयो ग्रन्थः समाप्तः ॥

जब श्रीकृष्ण अपने चरणकमलोंके प्रभावसे आरोग्य की हुई इस पृथिवीको त्यागकर वैकुण्ठ लोकको चले गये तब अल्प कालके पश्चात् ही यह पृथ्वी भयंकर रोगोंसे युक्त हो गई। तब ऐसी रोगवाली और भयकारक पृथिवीको देखकर मैंने गदाधरके घरमें शीघ्र जन्म लेकर इस पृथ्वी को आरोग्य किया। सम्पूर्ण वैद्य पृथिवीपर मेरे आगमन को किसप्रकार जानेंगे, ऐसा विचारकर मैंने आरोग्यताको करनेवाली और वैद्योंको प्रभुता प्राप्त करानेवाली अपनी इस "वङ्गसेन संहिता" को पृथिवीके समस्त लोकोंके हितकी कामनासे और अपने यशकी प्राप्तिके लिये निर्माण किया। पश्चात् इस संहिताको बनाकर मैंने परलोकको प्रयाण किया। यह मेरे जन्मसे पहिले "अगस्तिसंहिता" इस नामसे संसारमें प्रसिद्ध थी। फिर मैंने गदाधरके घरमें जन्म लकर इसका प्रति संस्कार किया तबसे यह ग्रन्थ "बंगसेन" इस नामसे प्रसिद्ध हुआ। यह "वंगसेन" ग्रन्थ सम्पूर्ण ग्रन्थोंका सारभूत और शीघ्र फलदेनेवाला है ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥

अथ टीकाकारोक्तविज्ञप्तिवर्णनम् ।

सद्वैश्यवंशे सवितासमानो गुणाकरः सर्वकलास्वभिज्ञः । शिरोमणिः सज्जनगोष्ठिमध्ये धीरोऽथ वीरो महनीयकीर्त्तिः ॥ १ ॥

सत्साहसी धर्म्मविदां वरिष्ठो विकासकः काव्यसरोरुहाणाम् । पुंरत्नमेकोऽभवदत्र शालिग्रामाभिधानः पुरि (मुरादाबादे) माथुराग्र्यः ॥ २ ॥

यस्मिन्स्थिते पुरुषसिंहवरेऽवनौ सत्ख्यातिमगाम खलु माथुरजातिरग्र्याम् । यत्कीर्तिरुज्ज्वलतरा भुवि भारतेऽस्मिन्साहित्यरञ्जनवसंस्थलगाऽऽविरस्ति ॥ ३ ॥

विश्वोपकारकरणाय स सद्गुणाग्र्यः कार्य्याण्यनेकगतिकानिचकार भूयः। यस्य प्रभूतसमयोऽवितथः परोपकारार्थ एव समभूद्भिषजां वरस्य ॥ ४ ॥

यश्चासहायजनतासु सहायतां द्रागापामरञ्च विगतस्पृह आर्त्तबन्धुः । रोगापनोदनविधौ कृतवान्प्रयत्नः सम्यक् चिकाय च यशो विततं पृथिव्याम् ॥ ५ ॥

यश्चानेकविधानि काव्यकुतुकान्यास्थाय सन्नाटकान्यन्यान्यप्यतिगूढभावघटितान्याचष्ट शास्त्राण्यहो । यश्चैको निबबन्ध शुन्धनपरःसद्धर्मशास्त्राणि यान्यादर्त्तव्यतया विदां पुर इतान्येतर्हि सज्ञानते ॥ ६ ॥

कृत्वा चैतान्याप्तवर्य्योऽयमन्ते आयुर्वेदोद्धारकोऽभूद्यदत्र । प्राचीनायुर्वेदशास्त्राण्यजस्रमालोच्यार्वाचीनग्रन्थप्रतीकैः ॥ ७ ॥

नानाकारान्वैद्यकग्रन्थवर्य्यान्सज्ञप्राह्यानूचिवान्निर्म्ममे च । येऽद्यत्वे सद्वैद्यहस्तासते द्राक्कुर्वन्तोऽपूर्वचमत्कारभावम् ॥ ८ ॥

प्रायोऽगाधधियामुनाऽथ सकले सद्वैद्यकेऽनूदितुं, निर्मातुञ्च पुरा मनो विनिहितं किन्त्वेष काले बली । सर्वाशी नहि कस्यचिद्व्यवसितिं सर्वात्मना पूरितुं, रातीत्येष तदीयदन्तपतितो यक्ष्मार्दितोऽबोभवीत् ॥ ९ ॥

तत्रैवं सति वङ्गसेनलिखितं ग्रन्थं पुरानूदितुं प्रक्रम्याऽमुमथात्मनोऽन्तिमसवं ज्ञात्वा नुकम्प्याह माम् । नोह्लाघो भवितास्म्यतस्त्वमथ मे सर्वाकृतिं पूरयेः,निर्म्मातुं प्रकृतां मनस्यवहिताश्चेत्यस्ति कामो मम ॥१०॥

सोऽहन्तस्य निदेशमाशु शिरसा सन्धार्य्य सर्वात्मना, सञ्चिन्त्याथ समस्तग्रन्थहृदयं सद्भाषयानूचिवान्॥ आश्वासेऽन्यमपि प्रकृत्य निहितं तस्यानुवक्तुं स्फुटं कालेन प्रभवामि भक्षु कियता सम्पूरितुं यत्नतः ॥११॥
क्वाहं मन्दमतिः क्वचायमतिसंक्लिष्टोऽत एतस्य वै, सद्भाषानुवचोविधौ स्खलतिका चेत्कापि चित्रं न तत् । क्षंस्यंते गुणगृध्नवः सहृदयाःप्रोत्साह्य मां तां पुनर्येनाहं भिषजां पुरः प्रभवितास्म्यन्यानपि शार्पितुम् ॥ १२ ॥
यद्यप्यमुष्य कृतिनस्तनयो न चाभूत किन्त्वस्ति शीलनिधिरात्मसमो विनीतः॥ पुत्रादपि प्रियतमो दुहितुः सुतः श्रीकल्याण कोटिनिलयो हरिशंकराख्यः॥ १३ ॥
योऽयं तदीयसविधे चिरमूषिवान्संप्रापाथ शिक्षणमनुत्तममेतदीयम् । मां ज्येष्ठभ्रातृवदनुक्षणमेष धीमान् सर्वत्र सम्परिचरन्ददतेऽथ साह्यम्॥१४॥
आयुर्वेदोद्धारकाख्यं पुरा ये तेनागारं निर्मितं स्वौषधस्य ॥ तत्रोपस्थायाथ नित्यञ्च तद्वद्रोगार्तेभ्योऽमूल्यमेवौषधानि ॥ १५ ॥
आवां दद्वो येन तुल्यं न चात्रास्त्यागारं कस्यापि सत्स्वौषधस्य। श्रीमानीशस्तस्य पुण्यप्रभावादेतत्कुर्य्यात्स्थायि यावन्नगोर्वी ॥ १६ ॥
यावत्खे रविशशलाञ्छनौ धरायां सप्ताम्भोनिधय इहासते च तावत् । रोदस्योरविरतमेधिता तदीया सत्कीर्त्तिव्रततिरविप्लवाऽऽविरस्तु॥१७॥
ग्रामेऽथ कुन्दरखिनाम्नि गृहीतजन्मा सन्मानितो गुणचयाश्रितपादपद्मः । खाण्डेलवालकुलसम्भव आप्तवर्यःश्रीभोजदेव इति यःप्रथितःपृथिव्याम्॥१८
तस्यात्मजोऽजनि सनातनजैनधर्म्मा वित्तिकरश्च खलु शंकरलालनामा । मातुःपितुःपरिचरश्चरणौ मुरादाबाद समागत इहार्त्तजनोपकृत्यैः ॥ १९ ॥
स स्वेष्टदेवकृपयाथ गुरोः प्रसादात्क्ष्माषणवावनिमिते शुदि वैक्रमेऽब्दे । चन्द्रे शुचावहितिथौ निजमन्दमत्या श्रीवङ्गसेनकृतमेतदनूचिवान्वै ॥ २० ॥

इति श्रीमदायुर्वेदोद्धारककविकुलचूडामणिमुरादाबादनिवासी लालाशालिग्रामजीवैश्यकृत एवं कुन्दरखी ग्रामनिवासी श्रीभोजदेवतनय शंकरलालवैद्यपरिपूरितवंगसेन भाषाटीका समाप्त ।

समाप्तोऽयं ग्रन्थः ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना–

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेंकटेश्वर" (स्टीम्) प्रेस,खेतवाडी–बंबई,

KHEMRAJ SHRIKRISHNDAS.

Proprietor Shri Venkateshwar Steam Press,--BOMBAY.

अन्य पुस्तकें ।



नाम	की.	रु.आ.
करावादीनइहसानी-भाषा यूनानी चिकित्सा नामी पुस्तक है		१-८
कोकसार वैद्यक सचित्र-कोकपण्डित कृत वैद्यक ग्रन्थोंका सार यह उत्तम बृहद् वैद्यक ग्रन्थ तैयार हुआ है आज तक ऐसा और कहीं नहीं छपा था		२-०
खूबचन्दीचिकित्सा-(वैद्यकसार) लाला खूबचन्द आनरेरी मजिस्ट्रेटके ४० वर्षकी अनुभव की हुई तत्काल गुणप्रद स्त्री, पुरुष और बच्चों के लिये उपयोगी एकसे एक बढकर १२२ नुस्खोंका पुस्तक		०-१४
चिकित्सासमूह-अर्थात घरू और सफरी वैद्य । इसमें मनुष्य, घोडा, ऊँट, हाथी, गाय, बैल और भैंसियोंके रोग और उनकी अनुभूत औषधि लिखी हुई हैं यह उपयोगी पुस्तक प्रत्येक गृहस्थके पास रहनी चाहिये		१-४
चिकित्साचन्द्रोदय-अर्थात् करावादीनजुकाई		२-८
तिब्बइहसानी-यूनानी वैद्यकके मतसे नुस्खे और विषचिकित्साका वर्णन है		१-०
पाकबिलास-नृप जयदेवात्मज श्रीपद्मसिंह कृपापात्र श्रीसाहनिर्मित नानाप्रकारके भोज्य बनानेकी विधि है		०-८
पारदसंहिता—भाषाटीका समेत । पारदके सिद्ध होजानेसे मनुष्य अजर अमर होसकता है रोगनाश होकर निरोग देह होना तो साधारण बात है, हजारों रुपयेके व्यय और अनेक वर्षोंके निरन्तर अनुभव करनेसे यह ग्रन्थ तैयार हुआ है, वैद्योंका तो सर्वस्व है शीघ्र मंगाकर लाभ उठाइए		१२-०
फिरङ्गादर्श-आतशक रोग गर्मी, सुजाक इलाज		०-८
भावप्रकाशनिघण्टु-टिप्पणीसहित । बडा प्रमाणिक ग्रन्थ है अङ्गरेजी हिन्दी बँगला आदि भाषामें भी औषधियोंके नाम दिये हैं		२-०
भावप्रकाश मूल-नूतनमुद्रित । इसबार बड़े बड़े वैद्योंसे शोधन कराकर छापा गया है		५-०
माधवनिदान-मधुकोष और आतंकदर्पण दो टीका सहित		५-०
रसेन्द्रसारसंग्रह-भाषाटीकासहित तीन खण्डोंमें १ खण्डमें रस, उपरस, धातु उपधातुओंके मारण शोधन जारण आदि विधि है २ य तथा ३ य खण्डोंमें उन्हीं रसादिसे सम्पूर्ण रोगोंकी चिकित्सा		